मिताक्षरा भाषा टीका सहित ॥

यह पुस्तकसम्पूर्णधर्मशास्त्रोंका शिरोमणिहै जिसमें आचारकांड, व्यवहारकांड और प्रायश्चित्त-नामक तीन कांड हैं जिनसेगृहस्थादिचारों आश्रम और ब्राह्मणादि चारोंवर्णोंके सम्पूर्णकर्म और राजसम्बन्धी कार्योंमेंदायभागादि व्यवहारोंमेंवादी प्रतिवादियोंके धर्म्मशास्त्र सम्बन्धी ते औरमुक़द्दमोंकी व्यवस्था वर्णितहै ॥

इस यन्त्रालयमें जितने प्रकारकी महाभारतें छपी हैं उनकी सूची नीचे लिखी है ॥

महाभारत वार्त्तिक ॥

कि सम्पूर्ण पुराणोंमें श्रेष्ठहै जिसको पंचमवेद भी कहते हैं जिसमें आदि १ सभा २ बन ३ ४ उद्योग ५ भीष्म ६ द्रोण ७ कर्ण ८ शल्य ९ सौप्तिक १० विशोक ११ स्त्री १२ शांति १३ ासन १४ अश्वमेध १५ आश्रमवासिक १६ मुशल १७ स्वर्गारोहण १८ और हरिवंशपर्व १९ तथा आगरापुर पीपलमंडी निवासि चौरासियागौड़ वंशावतंस प्रधान पंडित कालीचरणजी ाध्यापक केनिंगकालेज लखनऊने संस्कृत महाभारतसे प्रत्यक्षरका भाषामें उलथा कियाहै पृथक्२ पर्व्वभीखरीदारोंको मिलसक्तेहैं—यहपुस्तकभी अवश्यही अवलोकन करनीचाहिये।

महाभारतदर्पण काशीनरेश कृत ॥

ो काशीनरेश की आज्ञानुसार गोकुलनाथादिक कवीश्वरों ने अनेक प्रकारके ललितछन्दों हपर्व औरउन्नीसवें हरिवंशको निर्माण किया-यह पुस्तक सर्वपुराण और वेदकासारहै लोग इसविचित्र मनोहर पुस्तकको पंचमवेद बताते हैं क्योंकि पुराणान्तर्गत कोई कथा ास और वेदकथित धर्माचारकी कोई बात इससे छूट नहीं गई मानों यह पुस्तक वेद २। ोरूपहै—अनुमान ६० वर्षके बीते कि कलकत्तेमें यह पुस्तक छपीथी उस समय यह पुस्तक अलभ्य होगईथी कि अन्तमें मनुष्य ५०) रु० देनेपर राज़ीथे पर नहीं मिलती थी पहले ३ ई० में इस छापेखाने में छपीथी और क़ीमत बहुत सस्ती याने वाजिबी १२) थे ... ानेका दस्तूर है ॥

ब दूसरीबार उपलपैका बड़ेहरफ़ोंमें छापीगई जिसको अवलोकन करनेवालोंने बहुतही ... ेखा है—और सौदागरी के वास्ते इससे भी क़ीमत में किफ़ायत होसक्ती है पैमाना १२। ... ई सन् १८८४ ई० २५६८ सफ़े क़ीमत १०) पुख्ता। इन महाभारतके भागनीचे लिखे ... र भाग २ भी मिलतेहैं ॥

हिले भागमें (१) आदिपर्व्व (२) सभापर्व्व (३) वनपर्व्वसफ़े५२० जुज़ ३२ वर्क६ क़ीमत २ ... सरे भागमें (४) विराटपर्व्व (५) उद्योगपर्व्व (६) भीष्मपर्व्व (७) द्रोणपर्व्व सफ़े ४०२ ज...

मिताक्षरा स० के परिच्छेदों का सूचीपत्र ॥

मिताक्षरा स० के परिच्छेदों का सूचीपत्र ।

मिताक्षरा स० का आशयपृष्ठांक सूचीपत्र

मिताक्षरा स० का आशयपृष्ठांक सूचीपत्र।

मिताक्षरा स० का आशयपृष्ठांक सूचीपत्र ।



मिताक्षरा सटीक॥

व्यवहाराध्याय॥

द्वितीय काण्ड॥

धनादिव्यवहर्तॄणांव्यवहारांगदर्शनम्। भेषजंपरमंप्रोक्तंद्वन्द्वजामयनाशनम् १॥
राज्ञांचविदुषांचैवतेषांसंसर्गिनामपि। जीवनंभूषणंसम्यक्प्रतिष्ठानकरम्परम् २॥
अतःसर्वेषुभूतेषुस्वायुःक्षेमविधायकम्। व्यवहारंसमालोच्यभाषयाचानुवाद्यते ३॥

(तदेवेतिशेषं योज्यम्)

अर्थः०—धनजन पशु आदि सर्व पदार्थों के व्यवहर्ता लोगोंको व्यवहारांग शास्त्र का देखना विचारना पढ़ना समुझना यहकाम उनके द्वंद्वजनाम कलहसे उत्पन्न हुये आमयउपद्रवों का नाशकरनेवाला परमभेषज उपाय विशेषकर कहाहै जैसेबातपित्त आदि विकारोंके द्वंद्वकहिये मिलापसे उत्पन्नहुये नानारोगोंको नाशकरनेवाला भेषज परमरसरूप औषध प्रसिद्धहोताहै १ इनके सिवाय राजाओंको और ज्ञानवान् विद्वानोंको पुनि उन्हीं राजाओं वा विद्वानोंके संसर्गीजनोंको भी सम्यक् आयुका दृढ़करने वाला जीवनरूप तथा भूषणरूप और अधिक स्थितिका करनेवाला उत्कृष्टपद विख्यातहै २ इस हेतुसे व्यवहारांग शास्त्रको सभी प्राणी मात्रमें धन आयुनाम जीवन वृद्धि और क्षेम नाम कल्याण अर्थात् शरीरऔर हस्तगत लब्धस्वपदार्थकी रक्षाका विस्तार करनेवालाभली विधिसे विचारिकै पुनि वही व्यवहारभाषासे अनुवादरूप उलथा करतेहैं कि सबके काम आवै॥

तत्रादौन्यायसभानिरूपणम्॥

व्यवहारान्नृपःपश्येद्विद्वद्भिर्ब्राह्मणैस्सह। धर्म्मशास्त्रानुसारेणक्रोधलोभविवर्जितः १॥

अक्ष०—नृपति क्रोध से बचाहुआ विद्वान् ब्राह्मणों के साथ धर्मशास्त्र के अनुसार व्यवहारों को देखै १॥

अभि०—जो कि आचाराध्याय संबंधी राजधर्म प्रकरणमें

राजाको प्रजापालन करना परम धर्मकहाहै वहदुष्ट निग्रहविना किंतु दुष्टोंको ताड़न शासन आदि दंडदेनेविना नहीं होसक्ता और दुष्टोंका यथार्थ परिज्ञानभी व्यवहारके देखे विना नहीं होसक्ता इसलिये नित्यंप्रति इस व्यवहाराध्याय रूपधर्मशास्त्रके पाठ को विद्वानोंसाथ विचारै-इसमें विद्वानोंका वहुवचन इसहेतुसे कहा कि व्यवहार संबंधी पदोंके निर्णयमें एकहीकी वुद्धिसे यथार्थनिश्चय दुर्लभहोता किन्तु कईकेहोनेमें किसी की दृष्टिकिसीविशेष लक्ष्यपर किसीकी द्वितीयपर जासक्ती इस्सेअच्छा निर्णयहोजाता है परन्तु प्रधानता इस विचारमें राजाकीहीरही किन्तु विद्वान्‌ब्राह्मण उसके साथ में कहे-और क्रोधलोभों से वुद्धिचंचल होकर विकृतहोजाती फिर यथार्थन्यायपर जमती नहीं इस्सेइन्हें वचातारहे १॥

मधि०—व्यवहार किसको कहते और कितनेप्रकारका होता और किसरीतिसे निर्णय कियाजाता है इसीबातके समुझनेको यह द्वितीयखंड व्यवहाराध्याय आरंभ करतेहैं-जोबात या जोवस्तु अन्यकेविरोध और अपने संबंधसे कहिकर किसीराज-सभामें निवेदन करीजाय उसके निर्णयको अंत्यक्रिया पर्यंत (व्यवहार)कहते परन्तु मूलवाक्य में व्यवहारोंको देखै यह वहुवचन कहा तिसकी संभवता यद्यपि अनेक व्यवहारों परघटतीहै तथापि शास्त्रवक्ताने एकही व्यवहारके अनेकलक्षण दर्शानेके लियेयह वहुवचन कियाहै (दृष्टांत) यथा-क्षेत्रआदि कोईधन जिसकोकोई अपना वतलाता और दूसराकहताहै कि इसकानहीं मेराहै और प्रमाण अपना २ दोनोंप्र-कटकरते हैं इसदशामें तीसराकोई अन्यहेतु खड़ाकरके उसीवस्तुसे दोनोंको कच्चा करताहै अवनहीं मालूम कि यथार्थमें क्यावातहै इत्यादि एकहीमें अनेकभेद निर्णय कर्त्तव्यहैं यह शास्त्रवक्ता का सिद्धांतहै-मूलवाक्यमें (धर्मशास्त्रानुसारेण) अर्थात् धर्मशास्त्रके अनुसार व्यवहारोंको देखै यहकहाथा तिसकायह सिद्धांतनहींहै कि धर्म शास्त्रमें जो लिखाहो सोईकरै और कुछनहीं किंतु लिखेहुयेसे न्यूनाधिक वर्त्तावाभी करै यहसिद्धांतहै परन्तु न्यूनाधिकमेंभी उसीकेअनुसार कहिये अनुरूपकरै अर्थात् प्रतिकूल उसकेनकरै (भला) वे कौनसीदशाहैं कि जिनमेंशास्त्रसे न्यूनाधिक वर्तावाहो पर उससे प्रतिकूल नहीहोनपावै (ऐसी) वे दशाहैं कि जिनमेंलिखेहुयेसे भिन्नव्यवहारोंकी आवश्यकताहो सो बहुधाऐसी दशायेंसमयके अतिक्रमसे होजातीहैं किंतु लिखीहुई मर्यादेंभी सर्वदा सबदिन एकसीनहींरहतीं और जब समयकेआधीन उनमेंकुछ पलटाहोजाता अथवा उनमेंअधिक आपड़तीहैं तब उनप्रवर्तितसमयकी नवीनमर्यादों को सामयिकधर्म कहतेहैं और उनकोभी सामयिकधर्म कहतेहैं कि जो अनेकशिष्टोंकी संमतिसे आरंभित कीजाती हैं क्योंकि संमतिकोभी समयकहते हैं इसलिये जो समयमें उत्पन्नहुये वे सामयिक कहलाये परन्तु अभी जो कालरूपसमयसे उत्पन्नहुये

सामयिक बतलायेथे तिनका और इनकाभी लक्षणदोनोंका एकहै कुछअंतर नहीं क्योंकि जो कालरूपीसमयसे पलटावाहोता अथवा वृद्धिहोतीहै वहभी बिनासज्जन संमतिके नहींहोता-अब इसविषयके प्रमाणमध्ये जो स्मृतिप्रमाण है सो लिखते हैं क्योंकि धर्मभी कईभाँतिके होतेहैं और थोड़ाबहुत पालनसभीका यथायोग्य उचित होताहै-तथाच(निजधर्माविरोधेनयस्तुसामयिकोभवेत् । सोपियत्नेनसंरक्ष्यो धर्मोराजकृतश्चयः)अर्थात्-अपने जातीधर्मके अविरोध पूर्वयत्नसे वहधर्मभी पालनीयहै कि जो शास्त्रकेसिवाय सामयिकधर्म कोईसा प्रवर्तितहो और वहभी कि जो राजाका नियत किया धर्महो अर्थात् समयकेराजाने प्रजाके परमकल्याणके हेतुसे कोई अधिकरीति नियतकरीहो १ ॥

श्रुताध्ययनसंपन्नाधर्मज्ञाःसत्यवादिनः । राज्ञासभासदःकार्यारिपौमित्रेचयेसमाः २ ॥

अक्ष०—राजाको सभासद ऐसेनियत करनेचाहिये जो शत्रु और मित्रमेंभी समान बुद्धिहों श्रुताध्ययन लक्षणसे सम्पन्नहों धर्मशास्त्रज्ञहों सत्यबचन शीलहों २ ॥

अभि०—राजाको ऐसे करनेचाहिये अर्थात् जिसकिसी सभासदमें जब कदाचित् किसी लक्षणकी न्यूनता देखै तब दानमानसत्कार आदि या जिस किसी प्रकारसे उचितजानै उसके गुणोंकी समृद्धि करतारहै किंतु यही नियम नहींहै कि उक्त लक्षण वाले सभासद नियतहोचुके फिर उनकी चौकसाई से कुछ कामनहीं क्योंकि बहुधा मनुष्योंकी प्रकृति सर्वकाल एकसी नहींरहती इसलिये राजाको सदाही इस उपायमें समुद्यत रहना चाहिये २ ॥

अधि०—कात्यायनजी के वाक्यसे सभासदों में द्विजोत्तमकी मुख्यता पाई जातीहै-यथा (सतुसभ्यैःस्थिरैर्युक्तःप्राज्ञैर्मौलैर्द्विजोत्तमैः । धर्मशास्त्रार्थकुशलैरर्थशास्त्रविशारदैः) अर्थात्-वह राजा ऐसे सभ्यजनोंसे युक्त परिवृत होकर विचारकरै जो स्थिरहों किंतु अभी कुछ कहा और पीछे बात बदलगये ऐसेनहों-प्राज्ञहों किंतु थोथरी बुद्धि-वाले नहों-मौलहों जिनके लक्षण बहुधा आचाराध्यायमें बर्णन होचुकेहैं (द्विजोत्तम) हों किंतु (द्विजोत्तमसंज्ञा) यद्यपि मुख्यतासे ब्राह्मणोंकी होतीहै क्योंकि द्विजातियों में उत्तमहो सो द्विजोत्तम तथापि द्विजोत्तम वेभीहोते हैं जो त्रैवार्णिक अपने २ वर्णमें विद्यादिगुण सम्पन्न कुलाचारसे उत्तमहों देशकालकी अपेक्षा सभासद होनेके अधि-कारीहोते हैं परन्तु शूद्रका अधिकार इसमें नहीं-धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्रसे भी नि-पुणहों क्योंकि जो केवल धर्म शास्त्रज्ञहोंगे उनसे अर्थकी हानिहोगी जो केवल अर्थ शास्त्र जानेंगे उनसे धर्मकी हानिहोगी और धर्मअर्थ दोनोंका परस्पर सम्बन्ध मिला होताहै इसलिये जो दोनों विधिमें कुशलहों वे सभासद कियेजायँ-बृहस्पतिने इनकी संख्याका भी नियम कियाहै-यथा(लोकवेदज्ञधर्मज्ञाःसप्तपञ्चत्रयोपिवा । यत्रोपविष्टावि

प्राःस्युःसायज्ञसदृशीसभा) अर्थात्-लोकाचार वेद धर्मशास्त्र इनके जाननेवाले सात या पांच अथवा तीन जहां जिस सभामें इसप्रकारके इतने विप्र बैठेहों वहसभा यज्ञ सभाके समानहोतीहै-यद्यपि इसमें विप्रोंका अधिकार कहा और (यस्मिन्देशेनिषीदन्ति विप्रावेदविदस्त्रयः) इस वाक्यसे मनुजीनेभी विप्रोंका अधिकार प्रकट कियाहै परन्तु यह नियमकेवल पारलौकिकादि धर्मोंके निर्णयमध्ये समंजसहै और जहांराजधर्मसम्बन्धी व्यवहारोंके सभासदकहे तहाँ त्रैवर्णिकमात्रसे अपेक्षाहै उनमें यहविप्र संख्या अन्यसभासदोंसे अधिक अर्थात् अन्यसाधारणोंके होनेपरभी सभामें इतने इसप्रकारके विप्रोंकाहोना अवश्यभावसे संभवितहै पर यह सिद्धांतनहीं है कि केवल इतनेविप्रहों और कोईनहो-जिनब्राह्मणोंका चर्चा पहलेश्लोकमें आयाथा वे अनियुक्तब्राह्मण राजाकोविचार समय अपनेसाथ लेनेकहेथे और जिनकाचर्चा इसदूसरे श्लोकमें कियागया ये अपने२ अधिकारपदोंपर नियुक्तहुये सभासद वर्णन किये हैं सोई इसकाभेद कात्यायनजीके अग्रोक्तवाक्यसे स्पष्टहुआजाता है-यथा (सप्राड्विवाकःसामात्यःसब्राह्मणपुरोहितः।ससभ्यःप्रेक्षकोराजास्वर्गेतिष्ठतिधर्मतः)अर्थात्-कात्यायनऋषि ने साधारणभावसे राजसभाओं का यह डौलवर्णन किया है कि जो राजा अपने प्राड्विवाक सहित अमात्योंसहित ब्राह्मणोंसहित पुरोहितसाथ सभ्यजनोंसाथ धर्मसे व्यवहारोंकी प्रेक्षाकरनेवाला होताहै वह जानोंस्वर्गमें बैठाहुआ न्यायकरता है किंतु इनसभीको इकट्ठाकरके सबकेसन्मुख धर्मका निर्णयकरै परोक्षमेंनहीं-इसमें यह संदेहशेषरहा कि जो ब्राह्मण अनियुक्त कहेगये उनको राजसभासे क्या अपेक्षा और अधिकारहै तहाँ यह स्मृतिप्रमाणहै कि चाहै नियुक्तहो या अनियुक्तहोवे परन्तु जो धर्मज्ञहों वहसभी ऐसेस्थलपर कहनेके अधिकारी होतेहैं-तथाच (नियुक्तोवाऽनियुक्तो वाधर्मज्ञोवक्तुमर्हति) तहाँइसवार्ताकी यहमर्यादाहै कि जब नियुक्तोंके यथावत् कहते हुयेभी राजाकुछ अन्यथाकरताहो जिस्से अनर्थ वा अन्यायकी संभावना प्रत्यक्षदेख परतीहो या आगे पीछे सूचितहो तब ऐसीदशामें अनियुक्तोंकोभी राजाके निवारण करनेको धर्मकेअनुसार कहनेकाअधिकारहै अन्यथा वेभी दोषी होतेहैं-तथाच कात्यायनः (अन्यायेनापितंयांतंयेनुयांतिसभासदः।तेपितद्भागिनस्तस्माद्बोधनीयःसतैर्नृपः) अर्थात्-अन्यायसे भी उस राजाके चलतेहुये जो २ सभासद उसकी अनुमतिमें दृढ़ होतेहैं वे भी उस अधर्मके भागीहोने निमकारण से वह राजा उन सभासदों वा अनियुक्तोंकरके समझाने योग्यहै-सभासदोंके सिवाय अनियुक्तोंको भी दोष उसी अवस्थामें लगताहै कि वे जानतेहुये राजाको अन्यथाकरनेदेवें किंतु वे आप राजाको अपनी शक्तिसे निवारणकरें और फिर भी राजा अन्यथाकरे तो उनको दोषनहीं-इसीसे मनुने यह कहाहै कि या तो सभामें जावे नहीं पर जो जावे तौ जो ठीकहो

सोईकहे क्योंकि गये पीछे जानिकर न कहनेसे भी पुरुष दोषीहोताहै और विशेष बनावटकर विरुद्धकहनेसे भी दोषीहोताहै-इसी दूसरे मूल श्लोक चौथे चरणमें (रिपौ मित्रेच) इसमें जो (च) शब्दआया इसके हेतु गर्भित आशयसे लोक रंजनके अर्थ कुछेक वणिग्जनोंसे भी सभाको अधिष्ठितकरनाचाहिये-यही कात्यायनजीने कहाहै-यथा(कुलशीलवयोवृत्तवित्तवद्भिरमत्सरैः। वणिग्भिःस्यात्कतिपयैःकुलभूतैरधिष्ठितम्) अर्थात्-अच्छेकुलोंमें उत्पन्नहुये कुछेक वणिक्जाती लोगों से सभा अधिष्ठित कर्त्तव्य है परंतु उन लोगोंमें यह लक्षण भी अवश्यहोनेचाहिये किंतु अपने कुलके अनुरूप जिनका शील स्वभावहो अवस्थासे पूरेहों वृत्त चरित्र आचरणों से भी शुद्धहों धनवान्हों मत्सरता चुगुली चाई आदि कुलक्षणोंसे भी रहितहों २ ॥

अथानुकल्पः ॥

अपश्यताकार्यवशाद्व्यवहारान्नृपेणतु। सभ्यैस्सहनियोक्तव्योब्राह्मणःसर्वधर्मवित् ३ ॥

अक्ष०-कार्यबशहोने से व्यवहारोंको न देखतेहुये राजाकरके सर्वधर्मोंका विज्ञाता ब्राह्मण एक सभ्यों सहित नियुक्त कर्तव्यहै ३ ॥

अभि०-यह अनुकल्प उसका कहतेहैं कि जो पहले दो श्लोकोंसे राजाको व्यवहार देखने कहेगये-क्योंकि-जव राजा कामोंकी बहुतायतसे अन्यकार्योंमें व्यग्रहोकर व्यवहारोंको न देखसक्ताहो तब उस राजाको यह कर्त्तव्यहोताहै कि अपने पूर्वोक्त सभासदों करके सहित एक सर्वधर्मोंका जाननेवाला ब्राह्मण राजसभा में नियुक्तकरै और उसके द्वारा व्यवहारोंका भुगतानकरावै ॥

अधि०-(सर्व धर्म्मवित्) यह विशेषण कहनेसे यह सिद्धांतहै कि केवल शास्त्रमात्रके अभ्यासवाला न हो अर्थात् धर्मशास्त्रोक्त धर्मों के सिवाय सामयिक धर्मोंका भी विचार वा निरूपणकरनेमें समर्थहो-तिसमें भी कात्यायनजीके कहेहुये गुण अधिकहोने चाहिये-यथा(दांतंकुलीनंमध्यस्थमनुद्वेगकरंस्थिरम्। परत्रभीरुंधर्मिष्ठमुद्युक्तंक्रोधवर्जितम्)अर्थात् (दांत) जोजितेन्द्रियहो कुलसंपन्नहो (मध्यस्थ) जोउदासीन मध्यम प्रकृतिवाला किंतु किसीसे विरोध या अधिकतर प्रीति भी न रखताहो अनुद्वेगकर जो अपने चित्तको या औरोंके चित्तको उद्वेग पैदा न करताहो (स्थिर) जो अपने मुहँसे कहे वाक्यपर सदैव एकसा स्थिर सावधान अंगीकृत बनारहताहो(परत्रभीरु) जो परलोकसे डरताहो धर्मिष्ठहो (उद्युक्त) जो अपने अधिकारमें निरंतरलगा रहकर उपाय करताहो इन बातोंके होनेपर भी क्रोधी न हो तिसको राजा उस व्यवहार दर्शनमें नियुक्तकरै-और यही अनुकल्प राजा अपने बड़े२ मुहालोंमें या देशोंमें भी जहाँ उचितहोता तहाँ करताहै क्योंकि राजा अपने आप केवल राजधानीमें व्यवहार देखसक्ताहै-ऐसे ब्राह्मणके न मिलने या किसी प्रकारकी असंभवतामें उक्त गुण

प्राःस्युःसायज्ञसदृशीसभा) अर्थात्-लोकाचार वेद धर्मशास्त्र इनके जाननेवाले सात या पांच अथवा तीन जहां जिस सभामें इसप्रकारके इतने विप्र बैठेहों वहसभा यज्ञ सभाके समानहोतीहै-यद्यपि इसमें विप्रोंका अधिकार कहा और (यस्मिन्देशेनिषी दन्ति विप्रावेदविदस्त्रयः) इस वाक्यसे मनुजीनेभी विप्रोंका अधिकार प्रकट कियाहै परन्तु यह नियमकेवल पारलौकिकादि धर्मोंके निर्णयमध्ये समंजसहै और जहांराज-धर्मसम्बन्धी व्यवहारोंके सभासदकहे तहाँ त्रैवर्णिकमात्रसे अपेक्षाहै उनमें यहविप्र संख्या अन्यसभासदोंसे अधिक अर्थात् अन्यसाधारणोंके होनेपरभी सभामें इतने इसप्रकारके विप्रोंकाहोना अवश्यभावसे संभवितहै पर यह सिद्धांतनहीं है कि केवल इतनेविप्रहों और कोईनहो-जिनब्राह्मणोंका चर्चा पहलेश्लोकमें आयाथा वे अनियुक्तब्राह्मण राजाकोविचार समय अपनेसाथ लेनेकहेथे और जिनकाचर्चा इसदूसरे श्लोकमें कियागया ये अपने२ अधिकारपदोंपर नियुक्तहुये सभासद वर्णन किये हैं सोई इसकाभेद कात्यायनजीके अग्रोक्तवाक्यसे स्पष्टहुआजाता है-यथा (सप्राड्विवाकःसामात्यःसब्राह्मणपुरोहितः।ससभ्यःप्रेक्षकोराजास्वर्गेतिष्ठतिधर्मतः)अर्थात्-कात्यायनऋषि ने साधारणभावसे राजसभाओं का यह डौलबर्णन किया है कि जो राजा अपने प्राड्विवाक सहित अमात्योंसहित ब्राह्मणोंसहित पुरोहितसाथ सभ्यजनोंसाथ धर्मसे व्यवहारोंकी प्रेक्षाकरनेवाला होताहै वह जानोंस्वर्गमें बैठाहुआ न्यायकरता है किंतु इनसभीको इकट्ठाकरके सबकेसन्मुख धर्मका निर्णयकरै परोक्षमेंनहीं-इसमें यह संदेहशेषरहा कि जो ब्राह्मण अनियुक्त कहेगये उनको राजसभासे क्या अपेक्षा और अधिकारहै तहाँ यह स्मृतिप्रमाणहै कि चाहे नियुक्तहो या अनियुक्तहोवे परन्तु जो धर्मज्ञहों वहसभी ऐसेस्थलपर कहनेके अधिकारी होतेहैं-तथाच (नियुक्तोवाऽनियुक्तो वाधर्मज्ञोवक्तुमर्हति) तहाँइसवार्ताकी यहमर्यादाहै कि जब नियुक्तोंके यथावत् कहते हुयेभी राजाकुछ अन्यथाकरताहो जिस्से अनर्थ वा अन्यायकी संभावना प्रत्यक्षदेख परतीहो या आगे पीछे सूचितहो तब ऐसीदशामें अनियुक्तोंकोभी राजाके निवारण करनेको धर्मकेअनुसार कहनेकाअधिकारहै अन्यथा वेभी दोषी होतेहैं-तथाच कात्यायनः (अन्यायेनापितंयांतंयेनुयांतिसभासदः।तेपितद्भागिनस्तस्माद्बोधनीयःसतैर्नृपः) अर्थात्-अन्यायसे भी उस राजाके चलतेहुये जो २ सभासद उसकी अनुमतिमें दृढ़-ताकरतेहैं वे भी उस अधर्मके भागीहोते तिसकारण से वह राजा उन सभासदों वा अनियुक्तोंकरके समुझाने योग्यहै-सभासदोंके सिवाय अनियुक्तोंको भी दोष उसी अवस्थामें लगताहै कि वे जानतेहुये राजाको अन्यथाकरनेदेवैं किंतु वे आप राजाको शुभ उक्तियोंसे निवारणकरैं और फिर भी राजा अन्यथाकरै तौ उनको दोषनहीं-इसीलिये मनुने यह कहाहै कि या तौ सभामें जावै नहीं पर जो जावै तौ जो ठीकहो

सोईकहे क्योंकि गये पीछे जानिकर न कहनेसे भी पुरुष दोषीहोताहै और विशेष बनावटकर विरुद्धकहनेसे भी दोषीहोताहै-इसी दूसरे मूल श्लोक चौथे चरणमें (रिपौ मित्रेच) इसमें जो (च) शब्दआया इसके हेतु गर्भित आशयसे लोक रंजनके अर्थ कुछेक वणिग्जनोंसे भी सभाको अधिष्ठितकरनाचाहिये-यही कात्यायनजीने कहाहै-यथा(कुलशीलवयोवृत्तवित्तवद्भिरमत्सरैः। वणिग्भिःस्यात्कतिपयैःकुलभूतैरधिष्ठितम्) अर्थात्-अच्छेकुलोंमें उत्पन्नहुये कुछेक वणिक्जाती लोगों से सभा अधिष्ठित कर्त्तव्य है परंतु उन लोगोंमें यह लक्षण भी अवश्यहोनेचाहिये किंतु अपने कुलके अनुरूप जिनका शील स्वभावहो अवस्थासे पूरेहों वृत्त चरित्र आचरणों से भी शुद्धहों धनवान्हों मत्सरता चुगुली चाई आदि कुलक्षणोंसे भी रहितहों २ ॥

अथानुकल्पः ॥

अपश्यताकार्यवशाद्व्यवहारान्नृपेणतु। सभ्यैस्सहनियोक्तव्योब्राह्मणःसर्वधर्मवित् ३ ॥

अक्ष०-कार्यवशहोने से व्यवहारोंको न देखतेहुये राजाकरके सर्वधर्मोंका विज्ञाता ब्राह्मण एक सभ्यों सहित नियुक्त कर्तव्यहै ३ ॥

अभि०-यह अनुकल्प उसका कहतेहैं कि जो पहले दो श्लोकोंसे राजाको व्यवहार देखने कहेगये-क्योंकि-जब राजा कामोंकी बहुतायतसे अन्यकार्योंमें व्यग्रहोकर व्यवहारोंको न देखसक्ताहो तब उस राजाको यह कर्त्तव्यहोताहै कि अपने पूर्वोक्त सभासदों करके सहित एक सर्बधर्मोंका जाननेवाला ब्राह्मण राजसभा में नियुक्तकरै और उसके द्वारा व्यवहारोंका भुगतानकरावे ॥

अधि०-(सर्व धर्म्मवित्) यह विशेषण कहनेसे यह सिद्धांतहै कि केवल शास्त्रमात्रके अभ्यासवाला न हो अर्थात् धर्मशास्त्रोक्त धर्मों के सिवाय सामयिक धर्मोंका भी विचार वा निरूपणकरनेमें समर्थहो-तिसमें भी कात्यायनजीके कहेहुये गुण अधिकहोने चाहिये-यथा(दांतंकुलीनंमध्यस्थमनुद्वेगकरंस्थिरम्। परत्रभीरुंधार्मिष्ठमुद्युक्तंक्रोधवर्जितम्)अर्थात् (दांत) जोजितेन्द्रियहो कुलसंपन्नहो (मध्यस्थ) जोउदासीन मध्यम प्रकृतिवाला किंतु किसीसे विरोध या अधिकतर प्रीति भी न रखताहो अनुद्वेगकर जो अपने चित्तको या औरोंके चित्तको उद्वेग पैदा न करताहो (स्थिर) जो अपने मुहँसे कहे वाक्यपर सदैव एकसा स्थिर सावधान अंगीकृत बनारहताहो(परत्रभीरु) जो परलोकसे डरताहो धार्मिष्ठहो (उद्युक्त) जो अपने अधिकारमें निरंतरलगा रहकर उपाय करताहो इन बातोंके होनेपर भी क्रोधी न हो तिसको राजा उस व्यवहार दर्शनमें नियुक्तकरै-और यही अनुकल्प राजा अपने बड़े२ मुहालोंमें या देशोंमें भी जहाँ उचितहोता तहाँ करताहै क्योंकि राजा अपने आप केवल राजधानीमें व्यवहार देखसक्ताहै-ऐसे ब्राह्मणके न मिलने या किसी प्रकारकी असंभवतामें उक्त गुण

विशिष्ट क्षत्रीको या वैश्यकोही नियुक्तकरै पर शूद्रको नहीं-सोई कात्यायनजीने कहा है-यथा(ब्राह्मणोयत्रनस्यात्तुक्षत्रियंतत्रयोजयेत्। वैश्यंवाधर्मशास्त्रज्ञंशूद्रंयत्नेनवर्जयेत्) अर्थात् जहाँ-ब्राह्मण ऐसा न हो तहां ऐसेगुणवाले क्षत्रियको लगावै या ऐसेगुणवाले धर्मशास्त्रके ज्ञाता वैश्यकोही लगावै परंतु जहाँतकहोसकै शूद्रको यत्नसे बचावै-यहअनुकल्पित पुरुष जिसकाचर्चा इसतीसरे श्लोकसेअबतकहोरहा (प्राड्विवाक)पद नाम से विख्यातहोताहै यही प्राड्विवाक दूसरी अधिकोक्तिमें कात्यायनजीकेवाक्यमेंगिनती हुआथा और यथार्थसे लौकिकप्रचार में जिसको मातहत हाकिम कहतेहैंकि जोमुख्य हाकिमकाअधोवर्ती-दूसरा तद्वत्होताहै फिरचाहैठठराजा केहीनिकटकामकरै या राजा के स्थापितकिये किसीमुख्य हाकिमके नीचे कामकरै इसका नियमनहीं-परन्तु इसवार्त्ताके लिये यहीनियमनहींहै किजबराजा अन्यकामोंमें व्यग्रहो तभी ऐसा प्राड्विवाक ढूँढ़े या नियतकरै किन्तु सदैवही ऐसा प्राड्विवाक प्रत्येक राजसभामें इसलिये नियत रहताहै कि नजानै राजा या मुख्यहाकिम किसदिन किसकार्यमें व्यग्रहो या दोदिनको कहींजानाचाहै या रोगादिचिंतासे दरबारमें नजानाचाहै तबउसका प्रतिस्थानी होकर प्राड्विवाक सबकामोंका संसाधन करै और सदैवउसके सन्मुख रहकर आज्ञाके अनुकूल साधनकरै-इसीलिये नारदजीके कथनसेइस प्राड्विवाकमेंकुछ अधिकप्रधानता पाईजाती है-तथाचनारदः(धर्मशास्त्रंपुरस्कृत्य प्राड्विवाकमतेस्थितः। समाहितमतिःपश्येद्व्यवहारान‌नुक्रमात्)अर्थात् राजाको सभामेंयह उचितहै कि धर्मशास्त्रको आगेरखकर और प्राड्विवाक पदवाच्य पुरुषके मतमें स्थितहुआ आप अपनीमतिको समाहित कियेहुये यथोक्तक्रमसे व्यवहारोंको देखै यहनारद ऋषिनेकहा-परन्तु यहशंका नहींकरनी कि उलटाराजा उसकेमतमें आधीनहुआ फिरवह अधोवर्त्ती या मातहत क्योंकर कहलाया-इसका यह सिद्धांतहै कि जबराजा या मुख्य हाकिमने थोड़ेदिनसे अधिकार पाया और प्राड्विवाक उसकाप्राचीन है कि वह सारे कामधंधोंमें निपुणहै तबराजा यामुख्य हाकिमको उसीका मतलेकर कामकरना चाहिये क्योंकि वहसभी बातोंकाभेदू है तथापिकुछ सर्वोत्कृष्ट आज्ञादेनेका अधिकारी वह राजा परनहीं होसक्ता वरनअन्य साधारणों परभी राजाके अभिप्राय और प्रमाणपूर्वक होताहै-यद्यपि इस प्राड्विवाक पदवाच्य पुरुषको सरकारी उल्था उसूल धर्मशास्त्र नामकमें हाकिमआला अर्थात् मुख्यहाकिम निश्चित किया है और यद्यपि यथार्थ में एकप्रकारसे वहभी ठीकहोसक्ता है और न कोई उसलेखमें किन्तु कहसक्ताहै तथापि किसी२कीबुद्धि इसबातपर अधिकजमतीहै किवह हाकिममातहत अर्थात् अधोवर्ती कहलासक्ता है इसकेआगे जोकुछहो विवेकीआप समुझैं और इससे निचलेलेखसे मिलावैं-इसके सिवाय जहांराजा या मुख्य हाकिमभी बहुकालका अधिकारीहो उसदशामेंभी प्राड्-

विवाकसे इसलिये संमतलिया जाताहै कि राजाबहुधा देश वा नगरके आचरणोंका समक्षभेद नहींहोता और प्राड्विवाक प्रत्येकमनुष्योंकेभी आचरणोंसे समक्ष या समक्षवत् भेदहोते हैं इसलिये राजा जैसे दूरदेशस्थपर सेनाको चाररूपी चक्षुसे देखताहै तैसेही प्राड्विवाक द्वाराप्रजाके यथावत् आचरणोंसे समक्षवत् भेदहोसक्ताहै (अर्थिप्रत्यर्थिनौपृच्छतीतिप्राट् तयोर्वचनंविरुद्धम विरुद्धंचसभ्यैःसहविविनक्तिविवेचयतीतिविवाकः-प्राट्चासौविवाकश्चेतिप्राड्विवाकः) अर्थात प्राड्विवाक इसको इसलिये कहतेहैं कि अर्थी और प्रत्यर्थी दोनोंसे वृत्तांतउनका पूंछता है तबतो इसकी (प्राट्) संज्ञाहोतीहै फिर इन्हींदोनोंके विरुद्ध या अविरुद्ध वचनोंको सभासदों सहितविवेचन करतातब इसकी (विवाक) संज्ञाहोतीहै फिरयही दोनों संज्ञामिलकर (प्राड्विवाक) यह यौगिकी संज्ञाहोजाती है-सोई स्मृत्यंतर में यहवाक्य है कि(विवादानुगतंपृष्ट्वासससभ्यस्तत्प्रयत्नतः।विचारयतियेनासौप्राड्विवाकस्ततःस्मृतः)अर्थइसकाभी वही है जो ऊपरअभी कहचुके ३ ॥ अथसभ्यदमः ॥

रागाल्लोभाद्भयाद्वापिस्मृत्यपेतादिकारिणः। सभ्याःपृथक्पृथग्दंड्याविवादाद्द्विगुणंदमम् ४ ॥

अक्ष०- रागसे या लोभसे अथवा भयसेही स्मृति विरुद्धआदि करनेवाले सभ्यजन पृथक्२ दंडदेनेयोग्य हैं-विवादसे दूनादंड ४ ॥

अभि०- प्राड्विवाक आदि पूर्वोक्त सभासद कदाचित् रजोगुण वृत्तिसे निरंकुश हुये (राग) नामअतिस्नेहसे या लोभकी अपेक्षासे अथवा किसीसेभय संत्रासके हेतुसे (स्मृत्यपेत) अर्थात् स्मृतिसे विरुद्धखिलाफ़ क़ानून करनेलगें और आदि शब्दके अभिप्रायसे आचार विरुद्ध या देशविरुद्ध आदि करनेलगें तब राजाउनको भिन्न२ एक २ को विवादसे दूनादंड करै अर्थात् उनके विरुद्धकरनेसे विवादकी पराजय में जो कुछ किसीको दंड या फिर मुक़द्दमा खड़ाहोने से धनहानि हुईहो उस्से दूना दंड उनपर करै यहसिद्धांतहै अर्थात् यह सिद्धांतनहीं है कि जितनेकी नालिश हुईहो उसधनसे दूनादंड करै क्योंकि जो यहीसिद्धांत होता तौ केवलधनके अभियोगों में दंड होसक्ता किंतु परस्त्रीसंग्रह आदिके अभियोग जिनमेंधनकाबाद नहीं उनमेंदंड न होता उन विरुद्धकारियोंको इसलिये वही सिद्धांत ठीकहै कि जो अर्थी प्रत्यर्थी दोमेंसे किसीकोभी विरुद्धपराजय के हेतुसे हानिहुईहो उससे दूना-और केवल राग लोभ भय इन्हींके हेतुमें द्विगुण दंडकहने से अज्ञानमोह चित्तभ्रम आदि अन्यसाधारण दशाओंमें यहदंड सभ्यों योग्य नहीं निश्चितहै ४ ॥

अधि०-गौतमजीके वाक्यसे राजाकी पदवीसबसे अधिकहै परब्राह्मणों से नहीं तथापि इसवाक्यसे ब्राह्मणजुर्माना योग्यनहीं यहसिद्धांतनहींहै क्योंकि वहबड़प्पन ब्राह्मणकीप्रशंसा विषयपर आरूढ़है-और जो कि गौतम सूत्रमें यहआज्ञाहै कि ब्रा-

ह्मणोंकी अपेक्षामें राजाछःबातोंसे बचता रहे-अर्थात् उन छे बातोंसे ब्राह्मणकोबचावे एक तौ (देहदंड) मारपीट आदि (बंधन) क़ैद (धनदंड) जुर्माना आदि बहिःकरणदेश निकाला (परिवाद) निरादरकरना (परिहार)त्याग अर्थात् अपनेदरबारसे निकालदेना-ब्राह्मण इनछःबातोंके योग्य नहीं सो यहबाक्य सभी ब्राह्मणसेसंबंध नहींरखता किंतु इसबाक्यसे उसब्राह्मणकी अपेक्षा है जो बहुश्रुतहो लोकचर्यामें निपुणहो वेद और वेदांगभी जानताहो वाको बाक्य इतिहास पुराण इनमें कुशलहो और इनसभीबातों के आराधनमें तत्परभीहो औरइन्हींद्वारा जीवन ब्रत्तिभीरखताहो अर्थात् व्यापारया परसेवाआदि से संबंध जिसकोनहो और ४८ संस्कारोंसे संयुक्तहो तीन कर्मोंमें अभिरतहो षट्कर्मवान्हो बर्तमान समय और देशके आचारका विज्ञाताहो तिसब्राह्मणसे अपेक्षाहै कुछ ब्राह्मण जातिमात्रसे अपेक्षा नहींहै ४॥

अथव्यवहारविषयोनामद्वितीयःपरिच्छेदः २॥

इसपरिच्छेदमें नालिशका प्रकार बर्णनहोगा॥

स्मृत्याचारव्यपेतेनमार्गेणाधर्षितःपरैः। आवेदयतिचेद्राज्ञेव्यवहारपदंहितत् ५॥

अक्ष०-स्मृति या समयकेआचार विरुद्ध मार्गसे परजनोंकरके आधर्षितजोकोई राजापर आवेदन करताहै वही आवेदन व्यवहार पदहोताहै ५॥

अभि०-धर्मशास्त्रके विरुद्ध या लोकाचार समयाचार कुलाचार देशाचारके विरुद्धमार्गसेपरजनों करके अवमान कियाहुआ जबकोईकुछराजापास या प्राड्विवाकपास जाकरनिंदापूर्वक विज्ञापन करताहै तभीवह विज्ञापनमात्र उसका कहना व्यवहारका पदकहताहै इसीको मुक़द्दमाकहते हैं (क्योंकि उसमेंप्रतिज्ञा उत्तर संशयहेतु परामर्श प्रमाणनिर्णय प्रयोजन इतनीबातोंके व्यवहारकापद कहिये विषयस्थान भूत निश्चित होताहै इसलिये उसकोव्यवहारपद कहते हैं) यहव्यवहार पदका सामान्यलक्षण कहागया किंतुइसके विशेष लक्षण नीचे कहतेहैं ५॥

अधि०-ऊर्ध्वोक्त व्यवहारपद राजद्वारमेंप्रवेश करनेको(अभियोग)कहतेहैं इसीका नाम नालिश दायरकरनाभी प्रसिद्ध है नालिशकरनेवालेको अर्थी और अभियोक्ता भी कहते हैं परन्तु (अभियोग) दो प्रकारका होताहै एक तो शंकाभियोग जोदुर्जनों के संसर्गसे भविष्यत् भयकी शंकामात्रसे कियाजाय-दूसरा तत्त्वाभियोग जो साक्षात् साहस चौर्य्यादि उपद्रवोंके प्रकटहोनेपर कियाजाय यहीप्रमाण नारदजी ने कहा है-यथा(अभियोगस्तुविज्ञेयःशंकातत्त्वाभियोगतः। शंकाऽसतांतुसंसर्गात्तत्त्वंहोढ़ाभिदर्शनात्)अर्थांश इसकाऊपर कहचुके (होढ़ालोप्त्रलिंगमितियावत् तेनदर्शनंसाक्षाद्दादर्शनं होढ़ाभिदर्शनं)-अभियोग पद नालिशका बाचक है जिसके दो भेदऊपर कहे गये कि एक शंकाभियोग दूसरा तत्त्वाभियोग इनमें से यह तत्त्वाभियोग नाम

की नालिश दीवानी फ़ौजदारी के भेद से दो प्रकार की होती है अर्थात् अनन्त-रोक्त तत्त्वाभियोग दो प्रकार का होता है एक तो प्रतिषेधात्मक दूसरा विध्यात्मक (प्रतिषेधात्मक उसे कहते हैं कि जो काम करना चाहिये उसके न करने पर कोई अभियोक्ता बनै जैसे किसी ने यह कहकर नालिश करी कि मुझ से अमुक ने हिरण्य आदि अमुक पदार्थ लिया अब देता नहीं या यह कहकर कि अमुक वस्तु जो न्याय पूर्व्वक इसको मुझे देदेनी चाहिये देता नहीं यह दशा दीवानी से सम्बन्ध रखतीहै) विध्यात्मक उसेकहते हैं कि जो बात न करनी चाहिये उसके करतेहुये कोई अभियोक्ता बनै जैसे किसीने यह कहकर अभियोग किया कि मेरा क्षेत्र आदि अमुक पदार्थ यह छीनताहै या अमुक भाँतिका अन्याय करताहै अथवा किया तो यह दशा फ़ौजदारीसे संबंध रखतीहै) यही प्रमाण कात्यायनजी ने कहाहै-यथा (न्यायंस्वंनेच्छतेकर्तुमन्याय्यंवाकरोतियः) अर्थात्-अपने न्यायनाम कर्तव्य कामकरनेको इच्छानहीं करता अथवा जो अन्याय करताहै इनदोनों पर अभियोग नाम नालिश करीजावे तो यथा क्रमसे प्रतिषेधाभियोग और विध्याभियोग अर्थात् (नालिश) दीवानी और नालिश फ़ौजदारी कहलावै-वही अभियोग जिसके यह दोभेद कियेगये तिसके इन्हीं दोभेदोंसे अठारह भेद होतेहैं किजो मनुजीनेकहेथे-यथा (तेषामाद्यमृणादानंनिःक्षेपोऽस्वामिविक्रयः। संभूयचसमुत्थानंदत्तस्यानपकर्मच॥ वेतनस्यैवचादानंसंविदश्चव्यतिक्रमः।क्रयविक्रयानुशयोविवादःस्वामिपालयोः॥सीमाविवादधर्मश्चपारुष्येदंडवाचिके। स्तेयंचसाहसंचैवस्त्रीसंग्रहणमेवच॥स्त्रीपुंधर्मोविभागश्चद्यूतमाह्वयएवच। पदान्यष्टादशैतानिव्यवहारस्थिताविह)अर्थात्-उनमें सबसे पहला (ऋणादान) पद अर्थात् ऋणके देनेलेनेका अभियोग२ (निःक्षेप) अर्थात् अपने धनका औरोंकेपास विश्वासतासे धरोहर सौंपना इसीको भाषान्तर से अमानत कहते हैं चाहै किसी कामके लिये सौंपाजाय तोभी यही बातहै ३ (अस्वामिविक्रय) जो किसी बस्तुको उस बस्तुके स्वामी ने न बेंचाहो किसी अनधिकारीने बिक्रयकियाहो तिसकी नालिश ४(संभूयसमुत्थान) अर्थात् वह विवाद जो वणिक् आदि अनेक साझी होकर किसी व्यापारको करैं और उसमें झगड़ा उठै ५(दत्तानपकर्म) अर्थात् जो बस्तु किसीको योग्यरीतिसे वचनद्वारा या पत्रद्वारा देनीकही वह पीछे किसी अयोग्यरीतिसे न देनीचाहै या देचुके पीछेही अपात्रबुद्धि वा क्रोधादिहेतुसेलेलेनी तिसकाबिवाद और इसीका द्वितीयस्वरूप यहहै किजो बस्तु किसीके देनेके निमित्तसे विश्वासपात्रको सौंपीजाय और वह उसको नहीं देवै या कुछ कमकरके देवै इसीको भाषांतर से ख़यानत कहतेहैं ६ (वेतनादान) अर्थात् कर्म्मकरोंकी भृति मजूरी आदिका न देना तिसका झगड़ा७ (संविद्व्यतिक्रम) अर्थात् जिस वार्तामें परस्पर यह संमतिहोगईहो कि अमुक अवधिपर ऐसाकरैंगे उस

वाअदह का पूरा नकरना किन्तु व्यवस्थित नियम का अतिक्रम करदेना तिसकी नालिश ८ (क्रयविक्रयानुशय) अर्थात् क्रय अथवा विक्रय करीहुई बस्तुको न्यूनाधिक मूल्य आदि या बस्तुको बदल कर देदेने आदि से पश्चात्ताप करके जो कोई उसके फेरने फिरवाने की नालिश करै तिस व्यवहार पदको क्रय विक्रयका अनुशय कहतेहैं इसीको भाषांतर से बैअ और ख़रीदकी तन्सीख़ कहते हैं ९ (स्वामिपालविवाद)अर्थात् स्वामी और सेवक नौकर आदि का परस्पर झगड़ा १० (सीमाविवाद) अर्थात् धरती ग्राम क्षेत्र स्थान आदिकी सीमा पर झगड़ा होकर जो नालिश दायर हो ११ (वाक्-पारुष्य) विवाद जो गाली गुफ़्तार कोसाकरीहोनेपर नालिश करीजाय १२ (दण्डपा-रुष्य) विवाद ताड़ना पीटना आदि (यहदोनोंग्यारहवें बारहवेंविवादभाषांतरसे (हम लह) और (इज़ालय हैसियत उर्फ़ी के) नामसे अदालतों में प्रसिद्धहैं) १३ (स्तेय विवाद) अर्थात् चोरी का मुक़द्दमह १४ (साहस) अर्थात् किसीपर प्रबलता करनी या प्रबलता से धनछीनलेना आदि इसीको भाषांतरमें (सरक़हबिल्जब्र) और (अमूर जब्र) कहते हैं १५ (स्त्रीसंग्रहण) परस्त्री का संग्रह आदि इसीको (मुक़द्दमहज़िना) कहते हैं १६ (स्त्रीपुंधर्म) विवाद अर्थात् स्त्री और पति के परस्पर जो उनके उचित धर्मोंके मध्ये झगड़ा होकर नालिश करीजाय १७(विभाग)पद अर्थात् पैतृकादि धनोंके बिभाग मध्ये जो विवादहो इसीको (आईनविरासत) कहते हैं १८(द्यूत)और(समाह्वय) अर्थात् जुएका खेलना जो पाँसोंसेहोताहै सोतौद्यूत और समाह्वय उसप्रकारके जुआको कहतेहैं जो पशुपक्षी आदिजीवोंकी लड़ाईद्वारा बाज़ीबदीजाती हैं-संसारके सारेमुकद्दमात इनअठारह भेदोंके आश्रयभूतहैं-ये अठारह भी साध्यकर्मके भेदसे बहुतहोजाते हैं जैसानारदजीनेकहाहै कि(एषामेवप्रभेदोऽन्यःशतमष्टोत्तरंशतम्।क्रियाभेदान्मनुष्याणांशतशाखोनिगद्यते)अर्थात्-इनअठारहभेदोंका औरभी प्रभेदप्रथम१०८फिरइनमें से भी एकएकके सैकरों भेदहोतेहैं क्योंकि मनुष्योंकी क्रियाभेदकेहेतुसे व्यवहारपदका अभियोग सैकरोंशाखावाला कहलाताहै (किंतु क्रियाभेदकी अपेक्षामें इसकी शाखा-ओंका संख्यानियमभी नहींहोसक्ता) और यहबात जो मूलश्लोकमें योगीश्वरनेकही कि (आवेदयति)अर्थात् राजापासजाकर कहताहै इस्से यह आशयभी दर्शायाहै कि वह अभियोक्ता आपहीजाकर विज्ञापनकरै अर्थात् राजप्रेरितनहीं या राजाके हाकिम आदि किसी अन्यपुरुषकी प्रेरणासे नहींनालिशकरै-राजाकी अपेक्षामें मनुने यहकहा है-यथा(नोत्पादयेत्स्वयंकार्यंराजाचाप्यस्यपूरुषः । नचप्रापितमन्येनग्रसेतार्थंकथंचन) अर्थात्-राजा या राजाकाकोई अधिकारी पुरुष आपही किसीअर्थी या प्रत्यर्थीसे अभियोगरूप कार्य न खड़ाकरवावै और यहभी कि जो आपही वे कुछ मुकद्दमालावैं तो उसकेन्यायकी उपेक्षाभी न करनीचाहिये-और भी मूलश्लोकमें (आधर्षितःपरैः)

यह परजनोंका वहुवचन जो किया इस्से यह सिद्धांत दर्शाया किएक अभियोक्ताका व्यवहार प्रतिपक्षी एक या दो या कईकेभी साथहोताहै इसीप्रकार एक प्रतिपक्षीपर भी अभियोक्ता एक या दो या कईकीभी नालिशहोतीहै किन्तु कुछ यही नियमनहीं है कि दोनोंतरफ़ एकही एकप्रतिपक्षीहो तब नालिशहो अन्यथा न हो अर्थात् जिस अभियोक्ताने तीन चार साझियोंकेनामसे एकसाथ धनदियाहोगा तौ अवश्य उनके नामसे एकसाथ नालिशकरैगा-या-जिसको तीन चारने मिलकर माराहो वह अवश्य उन सबकेनामसे एकसाथ अभियोगकरैगा-यह योगीश्वरने सामान्य मूलमर्यादा कही है ऐसेही जिन कईसाझियोंने अपने साझेकेधनमेंसे जिस किसी एकहीको ऋणदि-याहोगा तौ अवश्य उस एकहीकेनामसे वे कईसाझीमिलकर नालिशकरैंगे इसलिये यहसामान्य मूलमर्यादा योगीश्वरने (परैर्द्वर्पितः) इसपदसे प्रकटकरीहै (अभियोक्ता-मुद्दई) (अभियुक्त-मुद्दाअलेह) (अभियोग-मुद्दा) यहनाम सबलोकमें प्रसिद्धहैं-और जोकि नारदजीकेवाक्यसे एक अभियोक्ताकाविवादपद वहुतोंकेसाथहो तौ राजद्वारमें अनादेयकहाहै सो वहवात भिन्नकार्योंकेविषयपर कहीहै इसलिये वहवार्त्ता यहाँपर योगीश्वरकी कहीहुई सामान्य मूलमर्यादासे अपेक्षानहींरखतीहै-यथा (एकस्यवहुभिः सार्द्धस्त्रीणांप्रेष्यजनस्यच। अनादेयोभवेद्वादोधर्मविद्भिरुदाहृतः)अर्थात्-नारदने यह कहाहै कि एकअर्थीकाअभियोग अनेकप्रत्यर्थीकेसाथ या स्त्रियोंका परस्परवादहो या प्रेष्यजनकावादहो तौ ये वादअनादेयहैं धर्मज्ञोंने यहकहाहै-सो इसबचनका यह सिद्धांतहै कि जिसअभियोक्ताका देनलेन भिन्न २ कईपुरुषोंकेसाथहो और वह सबके नाम इकट्ठीनालिश एकसाथकरै तब राजाको नामंजूरकरनीचाहिये (दूसरादृष्टांत) इसी का जैसे किसीस्त्रीने अपनेपतिआदिकाधन स्थावर जिसपर वह पतिआदिके अभावमें परिग्रहवतीहुईहो परन्तु स्त्रीत्वसे दानयाविक्रयकरनेकाअधिकार उसकोनहींथा उसी स्थावरधनको उसने भिन्न भिन्न अनेकमनुष्योंकेहाथ बिक्रय अथवा दान करदिया इसपीछे कोईउसधनका अधिकारीहोनेसे अयोग्य क्रय बिक्रयकी नालिश या अयोग्य दानकीनालिशकरनाचाहै और उनसबकेनाम एकसाथनालिशकरै जिनकेपास वह धनपहुँचाहो तौ यह अनादेय व्यवहारहै इसको राजा अस्वीकारकरै पर जो जुदी२ नालिशकरै तौ फिर आदेयहै अनादेयनहीं (तीसरादृष्टांत) इसीका जैसे किसीक्रेताने अनेकविक्रेताओंसे भिन्नवस्तु मोललीहों और सबकेनाम अनुशयका अभियोग एक साथकरै तौ अनादेयहै भिन्न२करै तौ आदेयहै-इसीप्रकार फ़ौजदारीकेभीद्वंद्वमें (दृष्टांत) समुझलेना जैसे एकअभियोक्ता कईमनुष्योंसे भिन्न२समयपर और भिन्न२हेतुसे लड़ाहो वह सबकेनाम एकसाथ नालिशकरै तौ अनादेयहै भिन्न२करै तौ आदेयहै (एकस्यवहुभिस्सार्द्धम्)इसपदके ऊपरयह सबदृष्टांत कहेगये उसदशामें किजब अ-

भियोक्ता एकहो-और यदि अभियोक्ता कईहों अभियुक्त प्रतिपक्षी एकहो इसदशामें यह(दृष्टांत)हैकि जैसे किसीसाहूकारका देवालानिकलाउसपर भिन्न २अनेक मनुष्यों कारुपयालेनाथा वेसभीमिलकर एकसाथ उसकेनाम नालिश करैंतौ अनादेयव्यवहार है यदि अपनी२भिन्न२करैंतौ फिर(आदेय)है स्त्रियोंका परस्परवाद इसहेतुसे अनादेय कहाकि स्त्रियोंको बिशेषकर कुलस्त्रीको जैसे और बहुधाबातों का अधिकार नहींतैसे-ही अदालत में जाकरलड़ने झगड़ने काभी निषेधहै किंतु उनकेज्ञाती वारिसोंद्वारा अभियोग हो तौ वहभी आदेयहै परजोकोई बिष साहसआदि विकटदशा उत्पन्नहो तौ वह जुदीबातहै-ऐसेही प्रेष्यजनधावक आदिका वादभी एकव्यर्थ बातमें गिनती है परन्तु यदि साधारण भावोंसेहो क्योंकि इसमेंभी जब साहस चौर्य्यादि उपद्रवोंका संपर्कहो तौ वहबात जुदीहै अन्यथा कुछ यह सिद्धांत नहींहै कि स्वामी और सेवक-मात्रका विवादराजा सुनै नहीं क्योंकि स्वामिपालका बिवादभी पूर्वोक्त अष्टादशपदों में गिनती होचुकाहै इस लिये यह प्रेष्यजन का चर्चा एक भिन्नदशापर आरूढ़ है इसपांचवीं अधिकोक्तिका शेष आशय नीचे तृतीय परिच्छेदमें भिन्नवर्णनहोगा ५॥

अथाह्वानविषयोनाम तृतीयःपरिच्छेदः॥

इस परिच्छेदमें हुकुमनामा और तलबीकीप्रक्रिया कहते हैं॥

यद्यपि इस परिच्छेदमें योगीश्वरका मूल श्लोक नहीं है क्योंकि द्वितीय परिच्छेद-मध्ये पंचम अधिकोक्ति का शेष आशयइसमें लिखैंगे इस हेतुसे कि यह बार्त्ताउस्से भिन्नहै तथापि समस्या उसीअधिकोक्तिके मूलपंचमश्लोक तीसरेचरणसे लीजायगी सो देखौ नीचेके लेखसे (आवेदयति-राज्ञे) यह तीसरा चरण पांचवें श्लोकमें जो कहाथा इसीके ध्वन्यर्थ लक्षणसे यहभी दर्शायाहै कि आवेदन के समय राजा करके पूंछा हुआ अर्थी विनीत वेषहोकरआधीनीसाथ निवेदन करै किंतु विकृत आकारसे नहीं-इस पीछे जो उसका आवेदन कियाहुआ राजाठीक समुझै तौ मुद्रा (अर्थात मुहरपरवानाआदि भेजकर समयोचित रीति)से प्रत्यर्थीका आह्वानकरै परअकल्पादि कोंको नहीं बुलावै इत्यादि कई बातों का प्रकार योगीश्वर ने नहीं कहा सो इसलिये कि यहबातैं इसकामके प्रयोजन सेही सिद्ध होकर आपसे आप जानी जाती हैं क्योंकि जब आगे छठे श्लोकमें प्रत्यर्थी के सन्मुख अर्थी का निवेदन दूसरा कर लिखवाना कहा तौ इस्से प्रत्यक्ष प्रतीत हुआ कि प्रत्यर्थी का बुलाना आवश्यकहै और बुलाना भी उसी दशामें आवश्यक होसक्ताहै कि जब अर्थी का निवेदन ठीक समुझा जाकर प्रत्यर्थी पर बुलाने की योग्यता पाईजावे ऐसेही अकल्पआदि सबों के लक्षणसे उनकीयोग्यता जानीजाती है यहाँ (अकल्प) रोगी को कहते हैं-परंतु स्मृत्यंतर में इनबातों का व्यवहार स्पष्टरूप से कहा है-यथा (कालेकार्यार्थिनंपृच्छेद्गृणंतंपुर

तःस्थितम्। किंकार्यंकाचतेपीडामाभैषीर्ब्रूहिमानव ॥ केनकस्मिन्कदाकस्मात्पृच्छेदेवं सभागतम्। एवंपृष्टःसयद्ब्रूयात्तत्सभ्यैर्ब्राह्मणैःसह ॥ विमृश्यकार्यंन्याय्यंचेदाह्वानार्थमतःपरम्। मुद्रांवानिःक्षिपेत्तस्मिन्पुरुषंवासमादिशेत् ॥ अकल्पबालस्थविरविषमस्थक्रियाकुलान्। कार्यातिपातिव्यसनिनृपकार्योत्सवाकुलान् ॥ मत्तोन्मत्तप्रमत्तार्तान्भृत्यान्नाह्वानयेन्नृपः। नहीनपक्षांयुवतिंकुलेजातांप्रसूतिकाम् ॥ सर्ववर्णोत्तमांकन्यांताज्ञातिप्रभुकाःस्मृताः। तदधीनकुटुंबिन्यःस्वैरिण्योगणिकाश्चयाः॥ निष्कुलायाश्चपतितास्तासामाह्वानमिष्यते। कालंदेशंचविज्ञायकार्याणांचबलाबले ॥ अकल्पादीनपिशनैर्यानैराह्वानयेन्नृपः। ज्ञात्वाभियोगंयेपिस्युर्वनेप्रव्रजितादयः ॥ तानप्याह्वानयेद्राजागुरुकार्येष्वकोपयन्) अर्थात्-सूचितकालपरआयेहुये पुकारूकार्यार्थीको सभामें पहुँचेहुये सन्मुखस्थितहुये अपनीदशा कहतेहुयेको इसप्रकारपूँछै क्या तेराकार्यहै क्या तुमको पीड़ाहुई हे मनुष्य तू डरौमत अपनावृत्तांतकहो किसने तुमको दुःखदिया और किस दिन या किसवक्त ऐसाकिया और किसहेतुसे तेरेसाथ ऐसाकिया-ऐसे पूँछाहुआ वह अर्थी जोकुछकहे सोसबसभ्यजनों और ब्राह्मणोंसहितराजा अथवा प्राड्विवाकशोचि विचारिकै यदि उसवार्त्ताको न्यायकरनेयोग्यसमुझै तौ इसकेपीछे प्रत्यर्थीके आह्वानके निमित्तसे एकमुद्रा अर्थात् इत्तलाअनामामुहरी उसअर्थीकेहवालेकरै अथवा उचित समुझैतौ किसी उहदेदार पुरुषको उसकेसाथ जानेकी आज्ञादेवे-तहाँइतने पुरुषोंको राजा नहीं बुलावै-एकतौ (अकल्प) जो अतिरोगीहो (बालक) जो असमर्थ वा अज्ञानहो (स्थविर) जो अतिबूढ़ाहो-विषमस्थ जो किसीप्रकारकी विषमदशा या दारुण संकटमें फँसाहो (क्रियाकुल) जोधन संबंधी यजन पूजन आदिमें तत्परहो या किसी प्रबल हानिलाभ संबंधीकार्यकी क्रियामें व्याकुलफँसाहो (कार्यातिपाती) जिसकाहाज़िर नहोना उसीके निमित्तमें हानिकारकहो (व्यसनी) जिसके कोईमौतका व्यसन या अग्निदाह आदि दैवकृत उपद्रवहो (नृपकार्याकुल) जो राजाके किसीउत्कृष्ट कार्यमें व्यग्र होरहाहो (उत्सवाकुल) जो तेउहार आदि या बिवाह आदि किसी बड़ेउत्सवमेंसंव्यग्र होरहाहो (मत्त)जो मदसे युक्तहो-इसको भाषांतरमें बदमुस्तभी कहतेहैं (उन्मत्त) जिसको भूतादि बाधाते चित्तविकृति लक्षणवाले उन्मादकी बीमारीहो किन्तु सिड़ीदीवान जो प्रसिद्ध है (प्रमत्त) जिसको चित्त विभ्रमरूप असावधानीका रोगहो यथा जोकाम कर्तव्यहै तिसकोअकर्तव्य समुझकर नकरै और अकर्तव्यको कर्तव्यसमुझकरकरने लगै किन्तु आधा सिड़ी यहभी होताहै इसीको सैवहटभी भाषामें कहतेहैं (आर्त) जो किसी तीव्ररोग या बुढ़ापा यद्वापुत्र वियोग आदिसे अतिशोक संयुक्त पीड़ामें बिवश हो (भृत्य) जो सेवकआदि भरणीय वर्गमें गिनतीहों अर्थात् किसीके आधीनहोंइतने लोगोंको राजानहीं बुलावै-और (हीनपक्षायुवती) युवा अवस्थाकी स्त्री जिसकेपति य

कोईपक्षी न हो उसकोभी नहींबुलावे (कुलेजाता) जोबड़ेप्रतिष्ठित कुलकी होचाहे किसी अवस्थावालीहो उसको नहींबुलावे (प्रसूतिका) जिसकेहाल संतान प्रसूतहुआहोचाहे वह किसी कुलकीहो उसकोभी नहीं (सर्ववर्णोत्तमांकन्यां) सभीवर्णों में किसीवर्णकी जो उत्तम कन्यारूप यौवन आदिसे संपन्नहो उसकोभी नहींबुलावे क्योंकि ये सब स्त्रियां ज्ञातिप्रभुका कहलातीहैं अर्थात् इनके ज्ञातीलोग पुरुष जो वारिसहों वेहीप्रभु और वेही इनके बदले उत्तरदेनेके अधिकारी होतेहैं (अथवा) जो इसप्रकारके पुरुषभीनहों तौ अभी वर्णन करीहुई स्त्रियोंके आधीन जो कुटुंबिनी बड़ीबूढ़ीहों जिनके अवलंबसे उनकी रक्षाहोतीहो या वे स्त्रियाँ जो निजकुटुंबमें मुखियाहों जिनके ऊपर उस कुटुंबका भारहो तिनका आह्वान करना उचितहै और उनकाभी किजो (स्वैरिणी) अर्थात् स्वेच्छाचारमें दुर्नामहों-और (गणिका) वेश्याआदि (निष्कुला) जो कुलहीन अर्थात् कुलमेंसे निकाली गईहों-और (पतिता) जो जातिसे परिच्युत करीगईहों इनस्त्रियोंका आह्वान होसक्ताहै इसके सिवाय कालकी आवश्यकता या देशकी परिपाटी या कार्योंका बलाबल विशेषतासे जानकर कि वहउपद्रव और दोष कितनागाढ़है जिसमेंविना बुलाये काम नहींचलता तब सवारीद्वारा धीरेधीरेले आनेकी आज्ञापूर्वक उनबीमारों आदिको भी राजा बुलवालेवे-इसके सिवाय नालिशका अभियोग जानिकर जोकोई प्रत्यर्थी संन्यासी आदि बनिकर भी वनमें जारमेहों उनको भी राजा बड़े२ कार्य्योंमें अभियोगकी आवश्यकता जानिकर बुलवावे पर ऐसीरीतिसे बुलवावे जिस्से उनको कोपनहीं दिलवावे और न आपउनपर कोपकरे (बड़े२कार्योंमें) यह बड़ेका विशेषण देनेसे यहसिद्धांतहै किजो प्रत्यर्थी तुच्छ कार्योंके अभियोगसे भयकरके संन्यासीआदि भेषलेकर वनमें छिपाहो उसके बुलवानेसे उपेक्षाकरै क्योंकि जिसने थोड़ीबातपर घरछोड़कर वनसेवनकिया उसने आपहीदंड पालिया इसलिये उसका बुलवानाव्यर्थ है-इसीकार्यके संबंधसे आसेध व्यवस्थाभी नारदजीने स्पष्टरूपसे कही और उसमें मुदईको निज आप अपनी स्वाधीनता प्रकटकरीहै कि वह मुद्दाअलेहको गिरफ़्तार करसक्ताहै आसेध घेरने रोकनेको कहतेहैं-यथा(वक्तव्येर्थे ह्यतिष्ठंतमुत्क्रामंतंचतद्वचः। आसेधयेद्विवादार्थी यावदाह्वानदर्शनम्॥ स्थानासेधःकालकृतः प्रवासात्कर्मणस्तथा। चतुर्विधःस्यादासेधोनासिद्धस्तंविलंघयेत्॥ आसेधकालआसिद्धआसेधंयोतिवर्तते। सविनेयोन्यथाकुर्वन्नासेद्धादंडभाग्भवेत्॥ नदीसंतारकांतारदुर्देशोपप्लवादिषु। आसिद्धस्तंपरासेधमुत्क्रामन्नापराध्नुयात॥ निर्वेष्टुकामोरोगार्तोयियक्षुर्व्यसनेस्थितः। अभियुक्तस्तथान्येनराजकार्योद्यतस्तथा॥ गवांप्रचारेगोपालाःसस्याचायेकृषीवलाः। शिल्पिनश्चापितत्कालमायुधीयाश्चविग्रहे) अर्थात् नालिशहोनेपर जबतक मुद्दाअलेह अदालतमें इज़हारोंको नहींबुलायागया इसबीचमें मुदईकेसन्मुख जो कहनेयोग्य अर्थ प्रयोजन

की बातमें खड़ा न होताहो और भागनेका विचारकरताहो या मुदईकीबातकोउछालता वा उलाँघताहो तो ऐसेप्रत्यर्थीको अर्थी अपनेआपरोके या राजद्वारसेआसेधकरवादेवै क्योंकिउसकेभगजाने वा लुकजानेकीशंकाहै-आसेधभी चारप्रकारकाहोताहैकिंतुएकतो (स्थानासेध) अर्थात् प्रत्यर्थीकास्थान घेरकर चौकसाई करीजाय जिस्से वह निकलने नहींपावै दूसरा (कालकृत-आसेध) जो कालकेसंयोगसे किसी जघे पकड़जाय या जिस्से वह इतनी अवधिताई कि जबतक विवादका निपटारा होजाय हवालातमें रक्खा जाय या उतने दिनोंकी जमानतलेकर जानेका निषेध कियाजाय-तीसरा (प्रवासासेध) अर्थात् विदेशकोजानेनहींपावै-चौथा (कर्मकाआसेध) अर्थात् मुकदमेके निपटारा भीतर निज उद्यमका कोई ऐसा कर्म न करनेपावै जिसके प्रारंभसे अदालतकी उपस्थिति न करसके इन चार भाँतिके आसेधोंमेंसे किसी आसेधसे जो प्रत्यर्थी उचित समय पर (आसिद्ध) अर्थात् घिराहो तो उस आसेधको विलाँघै नहीं क्योंकि आसेधके समयपर आसिद्धहुआ प्रत्यर्थी यदि आसेधको उलाँघताहै किंतु छोड़ भागताहै वह उस मुख्य मुक़द्दमाके सिवाय दण्ड देने योग्य होता है-और अन्यथा करताहुआ आसेद्धा भी दण्डभागी होताहै अर्थात् आसेध करवानेवाला यदि अनुचित रीतिसे आसेधकरै या करवावै तौ वह भी दण्डपावै-परन्तु-जो कोई नदी के उतरतेहुये घेरा जाय जहां प्राणोंका सन्देहहो या वनमें घेराजाय जहां पहुँचना दुर्ग्गमहो या किसी दुर्देशस्थानपरघेराजाय जहां कुछअधिक पीड़ाकीसम्भावनाहो या किसीप्रबलउपद्रव आदिमें फँसाहुआ घेराजाय जहां अधिक विपत्तिका सम्भवहै इनस्थानोंमेंघिराहुआ उस पराये आसेधको उलाँघताहुआ अपराधी नहीं होसक्ता अर्थात् ऐसे भगोड़ा को दण्ड न देनाचाहिये केवल गिरफ़्तारीमात्र इनदशाओं के पश्चात् युक्तिसे करलेनी चाहिये-और भी (निर्वेष्टुकामः) अर्थात् जो बिवाह करनेपर उद्यतहुआ बरातलिये जाताहो या (रोगार्त्त) जो रोगों से अति पीड़ितहो या (यियक्षु) जो यजन पूजन यज्ञादि कुछ करनेपर उद्यतहो या किसी व्यसन विपत्ति में फँसाहो तथैव जो और किसीकी नालिशकरके पहलेसे अभियुक्तहो और उस्से निपटारा नहीं पायाहो तथैव जो राजसेवकहोनेसे या और किसी हेतुसे राजकार्यमें समुद्यतहो या गौओं के चराते समय गोपालहों या किसानलोग जो खेती बोने आदि क्रियामें तत्परहों या शिल्पी अर्थात् कारीगरलोग जो अपने शिल्पकार्य्य में तत्परहों और जो लोग सिपाही आदि विग्रह समय शस्त्र बाँधेहों इनका भी ऐसे समयपर तत्काल उन कामोंकीहानि करिके गिरफ़्तार करना अनुचितहै और यदि ऐसे समयपर आसेध करतेहुये वे भागैं या आसेधकारियोंकोही मारभगावैं तौ इसके पलटे दण्डयोग्य नहींहैं अर्थात् इतने लोगोंकी गिरफ़्तारी ऐसे समयपर न मुदईकीओरसे होसक्ती है न राजा वा हाकिम

उनको तलबकरसक्ताहै-गिरफ़्तारी अर्थात् राजाकीआज्ञासे अवरोध हवालात हिरासतमें रहना इसीको इसग्रन्थमें (आसेध) कहा अकल्प आदि जिनके बुलानेका निषेध पहलेकियाथा वे अपने पुत्र भ्रातृ आदि किसीको भेजेंगे या और किसी सुहृद् सम्बन्धी नातेदार मित्र आदिको भेजसक्ते हैं सो पुत्रादिक सुहृद परार्त्थवादी नहीं कहलाते हैं-तथाच नारदः (योनभ्रातानचपितानपुत्रोननियोगकृत्। परार्थवादीदंड्यः स्याद्व्यवहारेषुविब्रुवन्) अर्थात् जो पुरुष अर्थी वा प्रत्यर्थीका न भाईहै न पिता है न पुत्रहै और न उनका नियोगी अर्थात् वकील मुख़्तार भी नहींहै ऐसा पुरुष पराये व्यवहारोंमें यदि बोलता या विरुद्ध कुछ कहता है वह परार्त्थवादी कहलाता और इसीअपराधसे दण्ड देने योग्य होताहै-इसलिये उन अकल्पादिकों के भेजेहुये उनके पुत्रादिक या और कोई सुहृद जो अदालत में आवैं तौ उन्हीं के प्रति स्थानी समुझकर परार्त्थवादियोंमें गिनती उन्हें न करनाचाहिये (अथ प्रत्यर्थिनि मुद्रालेख्य पुरुषाणामन्यतमेनानीते किंकुर्य्यादित्यतआह) अर्थात् प्रत्यर्थीको चपरासियों में से किसी करके लेआनेपर क्या करना चाहिये इसलिये नीचेके श्लोक वा परिच्छेद से भाषापादकी व्यवस्था कहतेहैं भाषापाद (अर्थात् इज़हार मुदई) ५॥

अथभाषापादोनाम चतुर्थःपरिच्छेदः ४॥

इस परिच्छेदमें मुदई के इज़हारदावेकी प्रक्रियाकहतेहैं॥

प्रत्यर्थिनोऽग्रतोलेख्यंयथावेदितमर्थिना। समामासतदर्द्धाहर्नामजात्यादिचिह्नितम् ६॥

भक्ष०-प्रत्यर्थी के आगे भी लिखवाना चाहिये (जैसा) अर्थीने आवेदित किया संवत्, मास, पक्ष, वार, नाम, जाति आदिसे चिह्नित ६॥

आभि०-जब कि आवेदन समय पहिलेही अर्थीके वचन लिखचुकेथे तौ फिर दुसराकर प्रत्यर्थीके सन्मुख लिखवानाव्यर्थ है इस पिष्टपेषणसे क्या सिद्धि इसका अभिप्राय उत्तरार्द्ध से प्रकट करतेहैं कि पहले आवेदन समय केवल कार्य्यमात्र साधारण भावसे लिखाथा इसलिये प्रत्यर्थीके सन्मुख संवत्सर केनामसे वर्षोंका प्रमाण महीने का नाम पक्षकानाम वारादिन संयुक्त जिसमें उसदावे की विनाय प्रारम्भ हुई हो तबसे लेकर दावेके दिनतक मध्य अवधि सहित लिखवानाचाहिये इसीकर्मको इज़हार लेना कहतेहैं इस इज़हार पत्रमें अर्थी प्रत्यर्थी दोनोंके नाम जाति और आदि शब्दसे उनके विशेषण विख्याति प्रसिद्धि उपनाम और वह द्रव्य जिसपर विवादहुआ हो द्रव्यकी संख्यामान परिमाण स्थान वेला क्षमालिंग आदि सबलक्षणोंके चिह्न देनेचाहिये इसकीविशेष व्यवस्था नीचे अधिकोक्तिमें देखौ ६॥

मधि०-(जैसा) आवेदन समय अर्थीने पहिले जो कुछ कहाहो (तैसाही) अर्थात् उससे कुछ अन्यथा नहीं प्रत्यर्थीके सन्मुखलिखवावै क्योंकि अन्यथा वादित्वसे व्य-

वहारका भंग संभाव्य होता और वह अन्यथा वादीभी पाँचप्रकारके हीनों में गिनती होताहै-यथाह नारदः(अन्यवादीक्रियाद्वेषीनोपस्थातानिरुत्तरः। आहूतव्यपलायी चहीनःपंचविधःस्मृतः) अर्थात्-एकतौ (अन्यवादी) या अन्यथावादी जो पहलेकुछ और कहै पीछे या बीचमें कुछ और कहनेलगे-दूसरा (क्रियाद्वेषी) जो साक्षीलोगोंके लिखवायेहुये साक्ष्य मध्येभुक्ति युक्ति शपथ आदिक्रियाओंकोदोष लगावै और इसी हेतुसे उनके साथ या सभ्यजनों केही साथ द्वेषप्रकटकरे और वहभी क्रियाद्वेषी कहलावताहै जो अपने मुक़द्दमहकी क्रियाको अपनेआप किसीप्रकारसे दूषितकरै अर्थात् जानिबूझकर अपनेमुक़द्दमहको बिगाड़े-तीसरा (अनुपस्थाता) जो अपने मुक़द्दमाके निर्णय सम्बन्धीउचित समयपर उपस्थित नहो तौ इसी गैरहाजिरीसेहीन कहलावै-चौथा (निरुत्तर) जो अपने व्यवहार वादमें प्रयोजन सिद्धिका उत्तर न देवै या निपट चुपकाखड़ा रहै वह लाजवाब होनेसेहीन कहलावै-पाँचवाँ आहूत (प्रपलायी) या आहूत व्यपलायी कहीजो उचित समयपर बुलानेसेभी भागा फिरै आवै नहीं या निपट रूपोश होजावै तौ यह भी इसदोषके हेतुसेहीन कहलावै (हीन) अर्थात् मंद नीच अधम निंद्य चाहै अर्थी या प्रत्यर्थी दोमेंसे कोई हीन हो वह किसीदशामें हीनताकी अधिकतासे संभव हो तौ अपने व्यवहार पदसेभी च्युतहोजाताहै किंतु जो (अर्थी) हीनहो तौ उसका दावा ख़ारिज होकर पराजय होजाती है कदाचित् (प्रत्यर्थी) हीन हुआ तौ उसपर विना प्रमाण वा सबूतके दावा डिगरी होकर पराजय रूढ़ होतीहै-यद्यपि ये पाँचौ एकसेएक अधिकहैं तथापि (अन्यवादी) जो पहलाहीनगिना गया वह सबसे अधिकतर हीन होताहै-तद्यथा-पूर्ववादंपरित्यज्ययोऽन्यमालंबतेपुनः वादसंक्रमणाज्ज्ञेयोहीनवादीसवैनरः) अर्थात्-अपने पहले वादको निपट छोड़कर पीछे जो कोई अन्यकथन पर आरूढ़ होजाताहै वह मनुष्यवादके बदलनेसे निश्चयात्मक हीनवादी जानना चाहिये-इसीलिये बाचक पुरुषकी भाषा ऐसीहोनीचाहिये सो कहतेहैं-यथा(अर्थवद्धर्मसंयुक्तंपरिपूर्णमनाकुलम्। साध्यवद्वाचकपदंप्रकृतार्थानुबंधिच। प्रसिद्धमविरुद्धंचनिश्चितंसाधनेक्षमम्। संक्षिप्तंनिखिलार्थंचदेशकालाविरोधिच। वर्षर्तुमासपक्षाहोवेलादेशप्रदेशवत्। स्थानावसथसाध्याख्यजात्याकारवयोयुतम्। साध्यप्रमाणसंख्यावदात्मप्रत्यर्थिनामवत्। परात्मपूर्वजानेकराजनामभिरंकितम्। क्षमालिंगात्मपीडावत्कथिताहर्तृदायकम्। यदावेदयतेराज्ञेतद्भाषेत्यभिधीयते)अर्थात्-इनश्लोकों में कहीहुई इतनी बातोंके लक्षणसे संयुक्त जो कुछ वार्तापद अर्थी अपने मुख राजापर इज़हारों समय आवेदन करैहै सो भाषा पाद कहलाताहै (भाषा पक्ष इत्यर्थांतरं) इसी भाषा पादको (इज़हारदावे) कहते हैं इस भाषा पादके लक्षण यथाक्रमसे समुझौ कि-वाचक पुरुषका वार्त्तापद प्रथम तो अर्थवालाहो कि

निरर्थ वा निष्प्रयोजन पद न हो-(धर्मसंयुक्त) हो किंतु कोईबात अधर्म मार्गसे छल प्रपंचकी न हो-(परिपूर्ण) हो किंतु अधकच्ची न हो-अनाकुलहो किंतु जिसके पूर्वापर कथनमें विरोध न हो-(साध्यवत्) हो किंतु मुख्य प्रयोजनकी साध्यता जिसमें प्रकट होतीहो-(प्रकृतार्थानुबन्धी) हो किंतु जिसमें पूर्व वर्णित अर्थ प्रयोजनसे अनुवंधपाया जाताहो-(प्रसिद्ध) हो किंतु गूलरका फूल जैसा अप्रसिद्धहोता है तैसा पद न हो-(अविरुद्ध) हो किंतु द्रव्य संख्या नामजाति समय आदि चिह्नोंसे विरुद्ध न हो-(निश्चित) हो किंतु अनिश्चित संदिग्ध पद न हो-(साधनमेंक्षम) हो किंतु मुख्य प्रयोजनका साधन करनेमें वह पद समर्थहो अर्थात् ऐसा न हो जिसकी साधना राजा या किसीकी भी सत्तासे न होसक्तीहो सिद्धांत यह कि वहबात असली सबूतको पहुँच सक्तीहो-(संक्षिप्त) हो किंतु असंक्षेप अतिविस्तारवान् इतिहासवत्नहो (निखिलार्थ) भीहो किंतुजिसमें निःशेषप्रयोजन पायाजावै ऐसाहो अर्थात् ऐसापदनहो जिसका प्रयोजन सुननेवालोंकी समुझमें कुछआवै कुछनआवै-देशकालका अविरोधीभी हो किंतु जिसदेशमें या जिसकालमें नालिशका अभियोगहुआ उसदेश या उसकालका विरोधीपदनहो-वर्ष ऋतु मास पक्ष दिन बेरा देश प्रदेश स्थान आवसथ साध्याख्या जाति आकार वयस् इनसेयुक्तहो साध्यकाप्रमाण साध्यकीसंख्या अपनेनामसे प्रत्यर्थीकेनामसेभी बापदादे परदादेकेनामों तथा वर्त्तमानसे पहले कईराजोंके नामोंसे अंकितहो-(क्षमालिंग) सेभीयुक्तहो किंतु इतनी या इतने कालतक मैंनेक्षमा या धीरज किया-(आत्मपीडावत्)अर्थात् इतनीपीड़ा या इतनीहानि मुझकोपहुँची-(कथितआहर्तृदायकंभी) हो अर्थात् उसवस्तुके मुख्यसंग्रहीता या प्रतिग्रहीता और दाता इनकेनामों का कथन जिसमेंसंयुक्तहो-इत्यादि यथोचित सर्वलक्षण संपन्नवचन जो कुछअर्थीराजा पर प्रत्यर्थीके सन्मुख आवेदन करताहै सो सब उसकी भाषा कहलातीहै इसी भाषा को अर्थांतरसे प्रतिज्ञापक्ष भी कहतेहैं इसीको या बन भाषासे लौकिक प्रचारमें इज्हारदावी-या-फ़ौजदारीका अभियोगहो तौ इज़्हार इल्जाम् भी कहतेहैं परंतु प्रत्यर्थी के इज़्हारोंको भाषा पाद नहीं कहते (उत्तरपाद) कहतेहैं-इस बार्त्तामें बहुधा नामों की समस्या मात्र जो लिखीगई उनमें किसी २ का विशेष बोधहोना आवश्यक है-तथाच-(देश-के शब्दसे एक मुल्क यथा मध्यदेश या पंजाब आदि यह पता लिखवानाचाहिये) (प्रदेश-उसके अंतर्गत जिलअका नाम) यथा जिले बनारस) (स्थान-उस ज़िलाके अंतर्गत जिस नगरमें स्थानहो तिसका नाम यथा निवासी विजया नगरका) (आवसथ-ठेठ उसटोला या मुहल्ला या पुर आदि लघु ग्राम नाम जहाँ उस नगरके अंतर्गत या उसके समीपया संबंधमें अर्थी वा प्रत्यर्थी का गृह क्षेत्र आदि प्रसिद्धहो) (साध्याख्या-साध्यकर्मका नाम जिसपर नालिशका अभियोग कियाहो

यथा अमुकनामकाखेत या भैंस घोड़ाआदि जो कुछधनहो)जाति और आकार-कहिये शरीरकाडौल लघुदीर्घभेद वा गौरवर्णादि वा एकाक्षआदि लक्षणोंसे और वयस् कहिये बालकयुवाआदि वा वर्षोंकेपरिमाणसे यहसबलिखना चाहिये इसीकोलौकिक में हुलियाकहतेहैं)(साध्यकर्मका प्रमाण-जैसे इतनीमापकाखेत या मकान या दुशाला आदि जो कुछहो)साध्यकर्मकीसंख्या-यथा दोदुशाले वा चारघोड़े वा पाँचकितेखेतके वा तीनहवेली इत्यादि और उसकेमूल्यकीभी संख्या लिखवानीचाहिये)-संवत्सर का विशेषण लिखवाना यद्यपि सभीव्यवहारों में नहीं आवश्यकहोता तथापि आधि प्रतिग्रह क्रयइत्यादि व्यवहारों अर्थात् रहेन् हिबेह बैअ या कुबूलियत शरैय आदि स्थावरव्यवहारोंके निर्णयमें विशेषकर आवश्यकहोता है-यथा (आधौप्रतिग्रहक्रीते पूर्वातु बलवत्तरा)अर्थात्(आधि)नामरहेन्(प्रतियह)नामदानपत्र हिबेहनामा (क्रय) नाम बैअ स्थावरधनकी इनदशाओंमें पहिली व्यवस्था अधिकतर बलवान् समुझीजाती है अर्थात् जिसकेपास वहस्थावरधन पहले पहुँचाहो वहपिछलेकी अपेक्षा बलवान्है सो यहपहली पिछलीदशाभी संवत्सरकीसंख्या विना नहीं निश्चितहोसक्तीहै-व्यापारादि अर्थके व्यवहारमें भी इसलिये आवश्यकहोता है कि जबकिसी ने एकसंबत्सर मेंजितनी संख्याका द्रव्य जोकुछ किसीसेलिया और उसीसंवत्सरके भीतर उद्धारकर दिया-फिर-अन्य संवत्सरमें वही द्रव्य उसीसंख्यासे उसी ग्रहीताने उसीसेलिया पर अबकीबार उद्धार नहींकिया वरनमाँगनेपरभी कहनेलगे कि हाँठीक तुम्हसेलिया पर वहद्रव्यमैंने उद्धार करदिया और अमुकामुक मनुष्यों के सन्मुख प्रत्यर्पण किया वे साक्षी हैं तब ऐसे संदिग्ध स्थलपर संवत्सरके विशेषणोंसे व्यवहार निर्णयहोताहै कि वहद्रव्यतूने अमुक संवत्सरमेंलिया और प्रत्यर्पणभी उसीसंबत्सरमें देवदत्त यज्ञदत्त के सन्मुख करदियापर यहद्रव्य जो तूने द्वितीय संबत्सरमें लिया वह किसके सन्मुख प्रत्यर्पण किया इत्यादि व्यवहारोंकेहेतुसे संबत्सरके साथ मासादिक लक्षणभी जोड़ने चाहिये-देश वा स्थानआदि लक्षण विशेषकर स्थावर धनोंकेव्यवहारमें उपयुक्त होतेहैं किंतु यहस्मृति इसमें प्रमाणहै कहते हैं-यथा(देशश्चैवतथास्थानंसंनिवेशस्तथैवच। जातिःसंज्ञाधिवासश्च प्रमाणंक्षेत्रनामच। पितृपैतामहंचैवपूर्वराजानुकीर्त्तनम्। स्थावरेषु बिवादेषुदशैतानिनिवेशयेत्) अर्थात्-स्थावरधनोंके विवादोंमें यह दशलक्षण विशेष करप्रवेश करै एक तौ (देशलक्षण) यथा मध्यदेश आदि पूर्वोक्तरीतिसे-दूसरा स्थान लक्षण यथा बनारस आदि पत्तन यद्वा जनपदमें वहस्थावरहो तौ विजयानगरआदि कसबा परन्तु इसके साथमें बनारसआदि प्रदेश अर्थात् ज़िलअकाभी नाम होना चाहिये-तीसरा (सन्निवेशलक्षण)वह कि जहां ठेठ उसस्थावर धनकी स्थितिहो उसभूमिका प्रसिद्धनामचाहै मुहल्लाकी या ग्रामकी या वाह्यभूमिकी विख्यातिसे प्रकटहोसक्ता

या नदीनालाआदि चिह्नोंसे या इसप्रकारसे कि उसअपेक्षितस्थावर धनकेपूर्वपश्चिमादि अमुकामुक दिशामें अमुकामुकस्थावर जो अमुक नामोंसे प्रसिद्धहैं यद्वा अमुकामुक प्रतिवासियोंके गृह क्षेत्र आदि उसकेओर पासमें प्रसिद्धहैं-चौथा (जातिलक्षण) ब्राह्मण वैश्य आदि अर्थी प्रत्यर्थी दोनोंकी अपेक्षामें पाँचमा (संज्ञालक्षण) यथा देवदत्त यज्ञदत्त आदि नाम दोनोंके-छठा (अधिवासलक्षण) अर्थात् दोनों के निवासस्थानों के नाम जहाँ वे रहते हों और जहाँके पूर्वकाल में रहनेवाले प्रसिद्धहों सोभी लिखना चाहिये किंतु यह अधिवास लक्षणभी उसीरीति से लिखना चाहिये जैसे स्थावरकी अपेक्षासे देश स्थानआदि ऊपर कहचुकेहैं-सातमा(प्रमाणलक्षण) अर्थात् उसभूमिके निवर्त्तनोंकी संख्यासे परिमाण यथा बीघे विस्वे आदि लौकिकमें तथा निवर्त्तनभीवीसवासदोनों ओरसे मपीहुई धरतीका नाम है-आठमा (क्षेत्रनामलक्षण) अर्थात् जिस खेतका जो नाम प्रसिद्धहो सोभी लिखना चाहिये-यथा-(शालिक्षेत्र) धानकाखेत या (क्र) मुकक्षेत्र सुपारी के वृक्षोंवालाखेत (कृष्णभूमं) कालीमट्टीवाली वा दलदलवाली धरती पांडुभूम पिंडोरवाली धरती इत्यादि औरभी जानो- नवमा (पितृपैतामहनाम) किन्तु अर्थी प्रत्यर्थी दोनों के पिता और पितामहकानाम लिखना चाहिये-दशमा लक्षण (पूर्वराजानुकीर्त्तन) अर्थात् वर्त्तमान से पहले तीन राजाओंका बर्णन इसप्रकारसे कि यही स्थावर धनपहले अमुकराजाके समयमें अमुकदातासे अमुकमनुष्य को मिला या उसने अमुकसे खरीदा या उसके बापदादे से चलाआया उसवक्तभी उसीके परिग्रह में वर्त्तमानथा तिस पीछे अमुकराजाके भी समयमें उसीके परिग्रह मेंवर्त्तमानथा या उसके परिग्रहसे दूसरे के परिग्रहमें अमुकहेतुसे होगयाथा इत्यादि व्यवस्था सव लिखनीचाहिये-इस अधिकोक्तिमें उपलक्षित किये हुये बर्ष मास आदि यहांतक सभीलक्षण जो २ बर्णन कियेगये तिनकायह सिद्धांत नहीं है किसभी व्यवहारों में सभी बातें लिखीजावें अर्थात् जिसव्यवहारमें जितनीबातोंके लिखनेसेप्रयोजन की सिद्धिसंभवहो उतनी बातें लिखनी चाहिये यहतात्पर्यहै ६ ॥

ऊपर जो पक्षलक्षण निश्चित कियेगये वे सब इज़्हारदावे अर्थात् भाषा पाद में आवश्यक हैं परन्तु यदि उनमें से कोई लक्षणजो आवश्यक होने परभी न संयुक्त हो तो वह भाषापाद अर्थात् इज़्हारदावा इज़्हारदावेकी केवल (तक़लीद) है-अर्थात् केवल पक्षवत् अव भासमान अनुकरणकीसीभांति प्रतीतहोता है-इसलिये उसमें आपही (पक्षाभासत्व) सिद्धहोजाताहै इसी हेतुसे योगीश्वरने पक्षाभासों की प्रशंसा पिष्टपेषण समझकर भिन्नभावसे नहींलिखी-परन्तु-अन्यआचार्यों ने बिशेष कर स्पष्टरूपसे कहीहैं सोसवनीचेके अभिप्रायार्थवा अधिकोक्ति मेंदेखो ॥

अब अनादेय व्यवहारोंका बोधकराते हैं॥

अप्रसिद्धंनिराबाधंनिरर्थंनिष्प्रयोजनम्। असाध्यंवाविरुद्धंवापक्षाभासंविवर्जयेत् ७॥

अक्ष०—अप्रसिद्ध-निराबाध-निरर्थ-निष्प्रयोजन-असाध्य-विरुद्ध-पक्षाभास-इनको अवश्य वर्जितकरै ७॥

अभि०—अनादेय व्यवहार वहकि जो मुकद्दमा कोईपेशकरै और उसकी अयोग्यता समुझकर राजा नहीं लेवे किंतु उसीसमय न लेनेके लक्षण पहिंचानकर ना मंजूर करै इसलिये (अनादेय) के लक्षणकहते हैं कि एकतौ (अप्रसिद्ध) वस्तुका अभियोग जैसेकिसीने यह नालिशकरी कि मेरा शशविषाण खरहाका सींगउसने लिया अब देतानहीं तौ यह नालिश राजाको न लेनीचाहिये क्योंकि खरगोशका सींग संसारमें किसीनेदेखा और सुनाभीनहीं फिर उसका क्यासबूत और किस लिये उसकेसाधनमें उपायकरना चाहिये इत्यादि और भी अप्रसिद्धमात्र का अनुमान करलेना ऐसेही (निराबाध)का दृष्टांत जैसे किसीने यह नालिशकरी कि मेरे घरके दीपके फैलेहुये उजीतेसे वह अपनेघरमें कामधंधा करताहै उसको निषेधकिया जावै तौयहभी बात असंगत है क्योंकि दीपका प्रकाश राजा नहीं रोकसक्ता या उसको निजघरमें चलने फिरनेका निषेधनहीं करसक्ता और न इसबातसे दीपकवालेकी कुछहानिहै इसलिये यह अभियोग भी अनादेयमें गिनतीकरै-ऐसेही (निरर्थ) का दृष्टांत यथा क. च. ट. त. प. ज. ड. द. ग. व. इत्यादि समस्यामात्र से बिना नामकी वस्तुका अभियोग प्रवेश करै कि मेरीएक तकारादि वा ककारादि वस्तुउसनेछीनली दिलवानी चाहिये तौ यह भी अनादेयहै-ऐसेही (निष्प्रयोजन) का दृष्टांत जैसे यह देवदत्त मेरे घरके निकट उच्चस्वरसे पढ़ताहै यामिष्ट स्वरसेगाता है निषेध कियाजावै तौयहबात भी निष्प्रयोजन होनेसे अनादेय है (असाध्य)का दृष्टांत यथा देवदत्तने मुझपर भौंह मटकाकर उपहासकिया या अभिमानकी दृष्टिसे देखकर मुझको न्यूनसमुझा उसपर दंड कियाजावै इत्यादि और बातैंभी असाध्य जानकर अनादेय व्यवहारमें समुझनी क्योंकि भौंहका मटकाना यद्यपि सत्यभाव उसने कियाहोगा और एकप्रकारके अपराधोंमें गिनती भी है तथापि अति अल्पकाल में मटकजाने से उसकाकोई साक्षीभी नहीं होसक्ता किंतुदूरसे मटकाने और स्वल्पकालके हेतुसे कोईसाक्षी नहीं देखसक्ता फिर साक्षियोंके प्रमाण वा सबूतविना क्योंकर उसव्यवहारकी साधनाकरी जावै किउसने भ्रूभंग इसपरकिया या अभिमान दृष्टिमारी इसलिये साधना के अभावसे असाध्य जानिकर अनादेयमें गिनतीकरै- (विरुद्ध) का दृष्टांत जैसे इसगूँगाने मुझेगालियांदीं वा अभिशाप किया तौ यह इसलिये विरुद्धनालिशहै कि जब गूँगा बोल नहीं सक्ता फिर क्योंकर उसने गालीदीहोंगी इत्यादि और बातैंभी विरुद्धअथवा पुरराष्ट्र आदि

से विरुद्ध अनुमान करके अनादेयमें गिनतीकरनी (पक्षाभास) कोभी वर्जितकरै इ-सके लक्षणपहले लिखचुके हैं औ जहांतक अनादेयत्वके लक्षण पायेजायँ वे भीसव दृशायें पक्षाभासमें गिनतीहैं ७ ॥

अधि०- ऊपर कहेहुये अनादेयोंका निषेधकुछ ब्यवहार मार्गसेनहीं कियागया किं-तु आपही उनके स्वाभाविक लक्षणसे निराकरण संसिद्धहै-अर्थात्- ब्यवहार मार्गसे अनादेयों का निषेध अबकरतेहैं यथा(राज्ञाविवर्जितोयश्चयश्चपौरविरोधकृत् । राष्ट्र-स्यवासमस्तस्यप्रकृतीनांतथैवच ॥ अन्येवायेपुरग्राममहाजनबिरोधकाः।अनादेयास्तु तेसर्वेव्यवहाराःप्रकीर्तिताः)अर्थात् जो ब्यवहारपद पहले किसीराजाने अपनी सभासे अनादेय निश्चित करिकै बिवर्जित नामनामंजूर या ख़ारिजकियाहो या जिसमें और किसी भाँतिकीरुकावट वा निषेध राजद्वारसे हुआहो वह प्रत्येकराजाके सन्मुख अना-देयहै-औरवहभी कि जो सारे पौरजनों का बिरोध कारकहो-अथवा समस्त राज्यका विरोधीहो-या राज्यकी प्रकृतियों का बिरोधीहो-अथवा अन्यब्यवहार येपुर ग्राममहा-जनोंके विरोधकहों वे सभी अनादेय कहलाते हैं-सिद्धांत यहकि यद्यपि ये ब्यवहार सच्चे और श्रवण करने योग्यहों तथापि जिनसे प्रबल बिरोधकी उत्पत्ति संभवहो या पहले से विरोधी कहलातेहों तौ नहीं लेनै और सुन्ने चाहिये इसका नाम निषेधहै (अना-देय ब्यवहार-मुक़द्दमा नाक़ाबिलसमाअ़त) परंतु इनके उपलक्षण से अनेक पद सं-कीर्ण ब्यवहारों को अनादेयत्व नहीं सिद्धहोता और यद्यपि (अनेकपदसंकीर्णः पूर्व पक्षोन सिद्ध्यति)अर्थात्-इस वाक्यने यहकहाहै कि अनेक पदोंसे घिराहुआ पूर्व पक्ष सिद्धनहीं होता-तिसमें जो अनेक पदका अर्थ अनेक बस्तुसे आरोपित समुझाजाय सोभी नहीं संभवहै क्योंकि अनेक बस्तुसे संकीर्ण ब्यवहार लेने और सुन्ने में दोष नहीं बल्कि योग्यता पाईजातीहै (दृष्टांत) जैसे इसने मेरा हिरण्य बस्त्र रूपया आदि हरलिया तौ यह ब्यवहार अनेक बस्तुसे भराहुआ होनेपरभी पूर्वापर के सिद्धांतसे कोई भाँति अनादेय नहीं होसक्ता-कदाचित् ऋणादान आदि कई भाँति के ब्यवहार पदोंका संकर संकीर्णत्व मानिकर पक्षाभास ब्यवस्था समुझीजाय सोभी नहीं क्योंकि ऋणादानादि पदोंके भी संकीर्ण ब्यवहार आगे वर्णन किये जायँगे (दृष्टांत) यथा इसनेमेरे रूपये ब्याजू लिये और सुवर्ण इसके हाथमें मैंने निःक्षेपकिया किन्तु धरोहर से सौंपा औरमेरा खेत यहअन्यायसे छीनताहै या छीनलियाये तीनमुक़द्दमे एकसाथ मिलेहुये प्रवेशहुये तौ संकीर्ण होनेसे पक्षाभासमें गिनती नहीं होसक्ते इत्यादि और भी इसी लक्षण के संकरवाले जो मुक़द्दमे दायरहों उनकेलिये पक्षत्व सिद्धहोताहै-अर्थात्-उस पूर्वोक्त वाक्यसे सिद्धांत यह निकलताहै कि अनेक पदोंके संकरवाले मुक़द्दमह का निर्णय तहक़ीकात एक समय नहीं होती (सिद्धांत) यह मालूम होजाय

कि इस व्यवहार में कई वस्तुका दावाहै तब ऐसे स्थलपर सबका साधन एकसाथ नहीं कियाजाता किन्तु क्रियाभेदके हेतुसे व्यवहार यथा क्रमसे आगे पीछे निर्णयहोताहै— इसीकी दृढ़ता और प्रमाणता कात्यायनजी के वाक्यसे होती है- यथा (बहुप्रतिज्ञंय त्कार्यंव्यवहारेसुनिश्चितम्। कामंतदपिगृह्णीयाद्राजातत्त्वबुभुत्सया) अर्थात् जिस हेतुसे यह सिद्धांत ऊपर प्रकट होचुका कि अनेक मुक़द्दमे जिस व्यवहारमें मिश्रितहों उसका पूर्व पक्ष(युगपत्) एक साथ नहीं सिद्ध होसक्ता इसलिये राजा उस व्यवहार को कि जिसके कार्यमें बहुतसी प्रतिज्ञाहों अर्थात् कई मुक़द्दमातका संकरहो तौ उसका तत्त्व जानने और निपटाराकरने की अपेक्षासे अपनी इच्छाके अनुसार ग्रहण करै (इच्छाके अनुसार अर्थात् जैसा क्रमआगे पीछे मध्ये राजाकी इच्छामें आवै तैसेही क्रमके अनुसार उसका साधन करै) परंतु उसी अवस्थामें कि जो व्यवहारमें सुनिश्चित कहिये व्यवहार मार्गसे आदेय भी हो किन्तु जो अनादेय वादमें गिनतीहो तौ नहीं— अनादेयके लक्षण यद्यपि ऊपर कहेगये परंतु यहाँपर नारदजी के वाक्यसे कुछ विशेष लक्षण कहते हैं - यथा (एकस्यबहुभिः सार्द्धंस्त्रीणांप्रेष्यजनस्यच। अनादेयोभवेद्वादो धर्मविद्भिरुदाहृतः) अर्थात्- एक पक्षका वाद बहुतों के साथहो या परस्पर स्त्रियों का विवादहो या प्रेष्यजन का बादहो तौ वह बादराजाको अनादेयहै यह धर्मज्ञोंने कहा था-इसलिये ऐसे२ व्यवहार पदोंको लेना अस्वीकार करै-इस वार्ताकी विशेष व्यवस्था दृष्टांत सहित पाँचवीं अधिकोक्तिके मध्यमें लिखचुके हैं देखलो(अर्थी) के उपलक्षणमें कदाचित् किसी हेतुसे उसकेपुत्र पौत्रादि भी अर्थीवत् अंगीकारहैं परस्पर एकार्थत्वकी मुख्यतासे-अथवा किसीहेतुसे नियुक्त कियाहुआ नियोगी भी तद्वत् अंगीकारहै क्योंकि जब नियोगी उचित मर्यादासे किसी कार्यकेअभियोगमें नियुक्त कियाजाताहै तबअर्थी के प्रतिरूप होजाताहै इसीलिये नियोगीको प्रतिनिधि भीकहतेहैं (नियोगी-प्रतिनिधि अर्थात्-मुख्तारकार) तथाचधर्मः (अर्थिनासंनियुक्तोवाप्रत्यर्थिप्रहितोपिवा। योयस्यार्थेविवदतेतयोर्जयपराजयौ)अर्थात्-अर्थीकानियुक्त कियाहुआ मुख्तार अथवा प्रत्यर्थीका लगायाहुआ नियोगी यहदोनों प्रतिनिधि जो जिसकेलिये विवादकरताहै उन्हीं दोनोंकी जयपराजय होती है किन्तु प्रतिनिधियोंकी जय अथवा पराजय जो कुछ राजसभामें धर्मकेअनुसार होजावै वही जयपराजय उनके मूलस्वामियोंकी निश्चित है-अन्यच्च(दैवेपित्र्येचवाणिज्येराजद्वारेविशेषतः। यद्विदध्यात्प्रतिनिधिस्तन्नियंतुःकृतिर्भवेत्)अर्थात् देवकर्म पूजापाठ तीर्थव्रत यज्ञादिमें और पित्र्यकर्म श्राद्धादिमें वाणिज्यकर्म व्यापारादिमें और राजद्वारमें विशेषतासे यहधर्महै कि जो कुछ मूलस्वामीकी ओरसे उसका प्रतिनिधिकरै सो सबकराधरा उसकेनियंता मूलस्वामीका करनाधरना ठहरै और उसीके हानिलाभमें गिनतीहो-इसलिये यह प्रतिज्ञाभी उनदोनोंके परस्पर

पहले लिखीजाकर प्रमाणहोजानी उचितहै कि मैंइसनियोगीको अपनीओरसे अमुक अभियोगमें नियुक्तकरताहूँ इसकेकरेधरे को सवअपना कृत्यस्वीकार करूँगा-ऊपर व्यवहारोंका अनादेयत्व न लेना जो वर्णनकियाथा सो आवेदन समयपरनहीं किन्तु आवेदनप्रवेश होजानेपीछे अर्थीके इज़हारोंसमय अनादेयत्वके लक्षणसमुझकर अस्वीकार करनाकहाहै-और यद्यपि आवेदनसमयभी राजाको यह स्वाधीनताहै कि शशविषाण वा दीपकप्रकाशआदि प्रत्यक्षअनादेयोंको तत्काल वर्जितकरै कुछ इज़्हारोंकी आवश्यकतानहीं है तथापि इसलिये इज़्हारोंकेपीछे अस्वीकार करनाकहा है कि न जानैकोई अधिकहेतु उसमेंपायाजाय-इसीलिये भाषापादनामक अर्थीकेइज़्हार लिखनेमध्ये कात्यायनजीने यह विशेषमर्यादाकहीहै-यथा(पूर्वपक्षंस्वभावोक्तंप्राड्विवाकोऽभिलेखयेत्। पांडुलेखेनफलकेततःपत्रेविशोधितम्) अर्थात्-पूर्वपक्षके इज़्हारअर्थीकी स्वाभाविक बोलचालमें उच्चारणकियेहुये जैसा वह मुखसे कहताजावे तैसाही काष्ठआदिकी पट्टीपरखड़ियाकी लेखनीसे प्राड्विवाक साधारणभाव सव लिखवावे या अपनेहाथसेलिखै तिसपीछे बिशोधितकरिकैकागदपरचढ़ावै किन्तु यदि शोधनसमय अनादेयत्वके लक्षण पायेजायँ तौ फिर शोधनकरने या पत्रारूढ़करने की कुछ आवश्यकतानहीं तत्कालनालिशनामंजूरकरै और जो आदेयत्वसमुझाजाय तौ फिर शोधनकरना केवल इतना आवश्यकहै कि जो अर्थीने उलटीटेढ़ीबाणीसे लिखवाया हो तौ लिखनेपढ़नेकीरीतिसे शब्दोंकीशृंखलाबाँधकर क्रमसेलिखलेना जिस्से निर्णय और विचारकेसमय अच्छासमुझमें आवे परन्तु यह सिद्धांतनहीं है कि उसकेकथन में से कोई वातन्यूनाधिक अपनीओरसेकरै-अथवा किसी विरले अभियोगमें उस भाषापादके पूर्वलेखमें कोईबार्त्ता निपटअसंगतहो और सभापतिकी शुभसंमतिमें आवश्यक उचितसमुझाजाय तौ अर्थीसे फिर उच्चारणकरवाकर शोधनकरदेवै तब कागदपरलिखै इसमें अर्थीको भी अधिकारपायाजाताहै कि वह अपने इज़्हारदावे में भूलीचूकीवातकीतरमीम् फिर करवासक्ताहै (तरमीम्) अर्थात् न्यूनाधिकरीतिसे शोधन-पर शोधनकरना या करवाना कुछ निर्विकल्पनियम नहींहै-और आवश्यकताकीदशामेंभी यहशोधन तभीतक संभाव्यहै कि जवतकउत्तरनालिखाजावै-तथा चनारदः (शोधयेत्पूर्ववादंतुयावन्नोत्तरदर्शनम्। अवष्टब्धस्योत्तरेणनिवृत्तंशोधनंभवेत्) अर्थात्-पूर्ववादभी तवतक शोधनकरासक्ताहै जवतक उत्तरपत्रकादर्शननहो किन्तु उत्तरसेआक्रांत प्रतिरुद्धकाशोधन वंदहो क्योंकि फिर पीछेकेशोधनसे अनवस्था प्रकटहोती है-कदाचित् पूर्वपक्ष के शोधनहुये विना उत्तर दिलवाने अथवा और किसी असावधानी आदि प्रवलहेतुसे यदि कोई साअन्याय प्रत्यक्षप्रकटहुआहो तौ फिर भी राजाको अधिकारहै कि जिन सभासदोंका दोष इसवार्त्तामें पायाजाय तिन

को वह दंड जो राग लोभ आदि दशाओंमें चौथे श्लोक मूलसे कहचुकेहैं सो देकर और फिर दुसराकर प्रतिज्ञा पूर्व नयेसिरेसे उस व्यवहारका प्रवर्त्तनकरवावै ७॥

अबनीचेके परिच्छेदमें यहबात प्रकटहोगी कि अत्रोक्तरीतिसे शोधनकिया हुआ इज़्हारदावा जब कागद पर लिखजावे तिस पीछे क्या करनाचाहिये ॥

अथ उत्तर पाद नाम पंचमः परिच्छेदः ॥

इस परिच्छेदमें प्रत्यर्थीके इज़्हार अर्थात् जवाबदावे की प्रक्रिया कहीजायगी ॥

श्रुतार्थस्योत्तरंलेख्यं पूर्वावेदकसन्निधौ ८॥ अष्टमस्यपूर्वार्द्धोयम्॥

मक्ष०–(श्रुतार्थ) नाम प्रत्यर्थी तिसका उत्तर लिखवानाचाहिये प्रथम आवेदन कर्त्ताके समीप सन्मुख ८॥

अभि०–प्रत्यर्थीको श्रुतार्थ इस्से कहा कि उसने भाषा पादका अर्थ कहिये प्रयोजन लिखतेहुये अपने सन्मुख सुनाहै अब अपना उत्तर यथावत् लिखवासकैगा-इसके इज़्हारोंको उत्तर इसलिये कहा कि पूर्व पक्षवालेसे उत्तर कालमें इसको कहनापरता है-यथार्थ भावसे उत्तर उस वार्त्ताका नामहै कि जो पूर्व पक्षका निराकरण करसकै (इसका आशय समुझो नीचे अधिकोक्तिमें) ८॥

अधि०–अत्रोत्तरलक्षणं यथा (पक्षस्यव्यापकंसारमसंदिग्धमनाकुलम्। अव्याख्यागम्य मित्ये तदुत्तरंत द्विदोविदुः) अर्थात्-उत्तरके जाननेवाले चतुरलोग उत्तर इसको कहतेहैं कि जो पूर्व पक्षका (व्यापक) हो किंतु भाषा पादका निराकरणकरदेनेमें समर्थहो-सारहो किंतु न्याय करनेयोग्यहो न्यायसे बाह्य न हो (असंदिग्ध) हो किंतु जिसमें कोईसा संदेह न उठसक्ताहो अथवा संदेहरूपसे कहाजावै-(अनाकुल) हो किंतु पूर्वापरके जोड़तोड़से विरुद्ध न हो-(अव्याख्यागम्य)हो किंतुसमुझनेमें अप्रसिद्ध पदोंके प्रयोगसे या दुश्लिष्ट विभक्तियोंके समास अध्याहारसे अथवा अन्यदेशी बोलीके अभिधानसे व्याख्या करनी न परै तत्काल बिना व्याख्याकेही बोध जिसका होसकै वह उत्तर श्रेष्ठहोताहै-वही उत्तर चार प्रकारकाहोता है यदि यथार्थ सच्चे भावसे दियाजाय-तथाचकात्यायनः(सत्यंमिथ्योत्तरंचैवप्रत्यवस्कंदनंतथा। पूर्वन्यायविधिश्चैव मुत्तरंस्याच्चतुर्विधम्) अर्थात्-उनचारोंके ये चारनाम और उपनाम हैं॥

सत्यउत्तर १	मिथ्याउत्तर २	प्रत्यवस्कंदन ३	पूर्वन्यायविधि ४
संप्रतिपत्ति।	अपह्नवोत्तर।	कारणोत्तर।	प्राङ्न्याय।
स्वीकारता।	निह्नवकरना।	कारण।	पूर्वजितः।
इक़बाल।	इनकार।	उज़्रख़ास।	उज़्रफ़ैसलेसाबिक़।

इनचारोंके भिन्न २ लक्षणयथा (साध्यस्यसत्यवचनं प्रतिपत्तिरुदाहृता) अर्थात् साध्यकार्यके निमित्तमें प्रत्यर्थीका सत्यवचन उत्तरहो तौ वही संप्रतिपत्ति या प्रति-

पत्ति उत्तर कहलाता है इसीको लौकिकमें (इक़बालदावी) कहते हैं (दृष्टांत) यथा किसीने नालिशकरी कि मेरे सौरूपया यह धरावताहै उसने उत्तरदिया कि सत्यहै मैं इसके सौरूपया धरावताहूं १-दूसरामिथ्या उत्तर उसे कहते हैं जहां प्रत्यर्थी उत्तर देवै कि मुझपर कुछनहीं इसका चाहिये यह झूंठाहै इस उत्तरमें दोनोंबात हैं चाहै अर्थी सच्चाथा और इसने झूंठा कहदिया अथवा यथार्थ में उसके रूपये नहीं थे झूँठी नालिश करनेसे झूँठाथा और प्रत्यर्थीने अपने सच्चापनसे उसको झूँठा कहा तौ १ इस उत्तरकानाम मिथ्या यद्वानिह्नव या अपह्नव कहलाताहै इसीको (इनकार दावी)कहते हैं-तथाचकात्यायनः (अभियुक्तोऽभियोगस्ययदिकुर्यादपह्नवम् ।मिथ्यातत्तुविजानीयादुत्तरंव्यवहारतः) अर्थात्-अभियुक्त जो प्रत्यर्थीहै सो यदि अपने ऊपर किये गये अभियोगका अपह्नव अपलापकरै सच्चनहीं बतावै तौ उस उत्तरको व्यवहार मार्गसे मिथ्यारूपमें जानै-यह मिथ्योत्तर भी चार प्रकारका होताहै-यथा (मिथ्यैतन्नाभिजानामितदातत्रनसान्निधिः । अजातश्चास्मितत्कालइतिमिथ्याचतुर्विधम्) अर्थात्-एकतौ यह कि जबसाफ़झूंठ बतावै-एक यह कि मैं इसवातको निपट जानताहीनहीं कैसे रूपये क्याबातहै एकयह कि उसवक्त जबका यहचर्चा करताहै या उस जघे जहाँ रूपये दियेलिये बतलाताहै मेरीसमीपताभी नहींथी मैंउसदिन थाहीनहीं अमुकदेशांतरको गयाथा उसजघे जानेआनेकाभी मेरावास्तानहीं एकयह कि मैंउस कालमें पैदाही न हुआथा मेराजन्मही तब नथा या तबतक मैंइसदेशमें वसताभी न था पीछेआकर बसाहूँ यहचारभेद केवल एक मिथ्योत्तरके कहे २-तीसराप्रत्यवस्कंदनउत्तर-यथाहनारदः (अर्थिनालिखितोयोर्थःप्रत्यर्थीयदितंतथा । प्रपद्यकारणंब्रूयात्प्रत्यवस्कंदनंस्मृतम्) अर्थात्-अर्थी ने जोकुछ अर्थ अपना लिखा वा लिखवाया उसपरयादि प्रत्यर्थी पहुँचकर उसीतरहका कोईसा कारण बतलावै तब उसकारणोत्तरकोही प्रत्यवस्कंदन भी कहते हैं दृष्टांत यथा हाँ सत्य है यह बात सौरूपया मैंने इससे लिये थे परन्तु उद्धार कर दिये अब कुछ नहीं चाहिये दूसरा (दृष्टांत)जैसे प्रत्यर्थी ने उत्तर दिया कि हाँ ठीक है यह अमुकधन इसके पिताने मुझको दियाथा परन्तु प्रतिग्रहद्वारा दिया था यह कारणहै इसीको(उज़रख़ास) कहते हैं ३-चौथा प्राङ्न्यायोत्तरउसे कहते हैं जहाँ मुद्दाअलेह ऐसा कहे कि जिसप्रयोजन से इसने मुझपर नालिशकरी तिसमें यह पहलेही व्यवहारमार्गसे पराजित होचुका है-सोई कात्यायनजी ने इसका प्रकारभी कह दिया है-यथा (आचारेणावसन्नोपिपुनर्लेखयते यदि । सोभिधेयोजितःपूर्वंप्राङ्न्यायस्तुसउच्यते) अर्थात्-जो मुदई अपने आचार कहिये अदालतके कर्त्तव्य अमलसे विकृत हुआ अवसन्न होकर परिच्युत हुआहो और वही फिरकभी उसवार्त्ताको लिखवावै तौ वहमुदई पूर्वजित कहलाता है और

उसीको प्राङ् न्यायभी कहतेहैं सिद्धांत इसका यह कि जिसअर्थी ने एक अभियोग पहले कभीराजद्वारमें प्रवेश कियाहो और वह खारिजहो चुकाहो अथवा उसकेविपरीत फैसल होचुकाहो उसीवार्त्ताको फिर अदालतमें प्रवेशकरै तब उसके प्रत्यर्थीको उत्तर पादनामक जवाब दावेमें यही उत्तर लिखवाना चाहिये कि इसवार्त्तामध्येपहले अमुक समयपर न्यायहोचुकाहै इसीलिये इसउत्तरको पूर्वन्यायविधि कहते हैं और इसीको (उज्रफैसलेसाबिक़) भी भाषांतरसे कहतेहैं-इसप्रकार उत्तरदेनेके लक्षण स्थित होनेमें जो जो प्रत्यर्थी जहाँकहीं उत्तरके लक्षणोंसे रहित होतेहैं वे सब उत्तरवत् अवभासमान होनेसे उत्तराभास कहलानेलगतेहैं अर्थात् प्रयोजनके अभिप्राय से आपही उनकाउत्तराभासत्व सिद्धहोजाताहै इसलिये योगीश्वरने उत्तराभासोंऔर पक्षाभासोंके भिन्न लक्षण नहीं दर्शाये-परन्तु-स्मृत्यंतरमेंस्पष्टरूपसेकहेहैं-यथा (संदिग्धमन्यत्प्रकृतादत्यल्पमतिभूरिच। पक्षैकदेशव्याप्यन्यत्तथानैवोत्तरंभवेत् ॥ यद्व्यस्तपदमव्यापिनिगूढार्थंतथाकुलम्। व्याख्यागम्यमसारंचनोत्तरंस्वार्थसिद्धये)अर्थात्-एकतौ (संदिग्ध) उत्तर संदेहका भराहुआ यथा सौ सुवर्ण इसने लिये यहकहने पर सच्चहै मैंनेलिये पर जानै सौ सुवर्ण या सौमापलिये अथवा यों कहे कि हाँ सौसुवर्ण अर्थात् सौमाषसुवर्ण मुझपर चाहिये इस व्यंगतासे कहे तौभी संदिग्ध उत्तरमें गिनतीहै-दूसरा (प्रकृतान्यत्) उत्तर जो प्रकृत प्रयोजनसे भिन्नहो जैसे सौसुवर्णके अभियोग में उत्तर देवै कि इसके सौ पण धराताहूँ-तीसरा (अत्यल्प) उत्तर जो अति स्वल्प होने से प्रयोजनका आशय प्रकट न करता हो अथवा इसप्रकारसे कि सौकी नालिश में पंचाश या पांच धराताहूँ-चौथा (अतिभूरि) उत्तर जो अति लम्बी चौड़ी कथाके प्रकार से कहाजाय अथवा इसप्रकारसे कि सौकी नालिश में सौ क्या इसके दोसौ धराताहूँ—पाँचवां (पक्षैकदेशव्यापी) उत्तर जो अभियोग सम्बन्धी पक्षमात्रकी दशबातों में से किसी एक देश व्यापिनी बातका उत्तर दियाजाय जैसे हिरण्य वस्त्र पशु आदि अनेक वस्तुकी मिलीहुई नालिश में उत्तर देवै कि सोना मैंने लिया है और कुछ उत्तरनहीं छठा (व्यस्तपद) उत्तर जैसे ऋणदानके अभियोग में पदांतर से उत्तर देना दृष्टांत यथा किसीने सौसुवर्णकी नालिश करी वहउत्तर देवै कि इस ने मुझेपीटाहै-सातवां (अव्यापी)उत्तर जिसमें देशस्थानआदि लक्षणोंका विशेषणव्याप्त नहो दृष्टांत जैसे मुद्दईने लिखवाया किमध्यदेश सम्बंधिनी बाराणसीपुरीमें पूर्व दिशा में अमुकनामका खेत इसने हरलिया वह उत्तर देवै कि हां खेतमैंनेहरा पर औरकुछ पता नहीं बतावै-आठवां (निगूढार्थ) उत्तर जैसे किसीने सौसुवर्णकी नालिश करी वह उत्तर देवै क्यामैंही ऋणधराताहूं इस निगूढवचनकी अर्थध्वनि यह सूचना करतीहै कि प्राड्विवाक वाअर्थी वा सभ्यजनभी औरोंका ऋणधराते हैं-नववां (आकुल) उत्तर

जो पूर्वापर संबंधसे विरुद्धहो जैसे सौसुवर्णके अभियोग में उत्तर देवै किसत्य मैंनेसौ सुवर्ण इसके लिये पर धरावतानहीं-दशवां (व्याख्यागम्य) उत्तर जो दुश्लिष्ट विभक्ति समास अध्याहार के अभिधानसे कहाजाय अथवा अदेशभाषाके अभिधानसे कहा जाय-जैसे-किसीपर सौसुवर्णकी नालिश उसके बापके ऋणमध्येहुईहो और मुद्दाअ- लेह जवाबदावेमें उत्तर लिखवावै जिसकोयथार्थ यहउत्तर लिखवाना चाहिये था कि मुझे मेरे बापने सौ सुवर्णका ऋणलेने मध्येसंबोध नहींकिया इसउत्तर के प्रतिस्थान बनावटके साथ ऐसा लिखवावै कि (गृहीतशतवचनात्सुवर्णानांपितुर्नजानामि) अत्रगृ हीतशतस्यापितुर्वचनात्सुवर्णानांशतंगृहीतमितिनजानामीत्यर्थः-अर्थात् ऋणसंबोधन के अनुसार लेनेवाले सौके मेरेबापके मैं सुवर्णोंकी अपेक्षा कुछनहीं जानता-इसबना- वटका सिद्धांत यह कि सौ सुवर्णलेनेवाले पिताके बचनद्वारा मैंयह नहींजानता कि सौ सुवर्णपिताने लियेथे या नहीं-ग्यारहवां (असार) उत्तर जोन्यायसे विरुद्धहोजैसे किसीने नालिश करी कि इसने सौ सुवर्ण मुझसे व्याज लिये उनका व्याज तौ देदिया पर मूल नहीं दिया इसके मध्येवहउत्तरदेवै कि सत्य मैंने व्याज दियापरमूल इस्से नहीं लिया तौ यहवाक्य न्यायसे बिरुद्ध है क्योंकि जो मूलनहीं लेता तौ ब्याज क्यों देता इन ग्यारहप्रकारकेउत्तरोंमेंसे कोईसाभीउत्तर उसकोस्वार्थसिद्धि योग्यनहीं है अर्थात् इसप्रकारके औरभी अनेकउत्तर सबअनुत्तरमें गिनतीहैं-औरभी इनउत्तरोंके श्लोकों के अंतमें (नोत्तरंस्वार्थसिद्धये) इसमें उत्तरशब्द यह एकबचनके निर्देशपूर्वकहनेसे कईउत्तरोंका संकरभावदूरकियाहै तहाँ सत्य १ मिथ्या २ कारण ३ पूर्वन्याय ४ इन पूर्वोक्त चारो या तीनिहीकासंकरभावसमुझना (संकर अर्थात् उत्तरोंकामिलाप) सोई कात्यायनजीनेकहाहै-यथा(पक्षैकदेशेयत्सत्यमेकदेशेचकारणम् । मिथ्याचैवैकदेशेचसं करात्तदनुत्तरम्) अर्थात्-पक्षमात्रके एकदेशकहिये एकभागमें सत्यउत्तरकादेना कि हाँ यहवस्तुमैंने लीहै-और उसीपक्षमात्रके एकभागमें कारणोत्तरकादेना कि हाँ यह वस्तु मैंनेलीथी पर देदी अथवा ऋणकी रीति से नहींली प्रतिग्रहद्वारापाईथी-पुनि उसीपक्षमात्रके एकओर मिथ्योत्तरका देना कियह वस्तु निपटझूँठहै मैंने नहींली- यह तीन उत्तरों का संकरहोने से अनुत्तर में गिनती है-तथापि-उन्हीं कात्यायनजी ने अनुत्तरत्व मध्ये कुछ विशेष हेतु कहाहै-तथा (नचैकस्मिन्विवादेतुक्रियास्याद्वादिनो र्द्वयोः । नचार्थसिद्धिरुभयोर्नचैकत्रक्रियाद्वयम्) अर्थात्-एक विवाद में दोनों बा- दियों की (क्रिया) न होवे अर्थात् दोनों के प्रमाण वा सबूत मध्ये व्यवहार क्रिया न करीजावे(किन्तु एकही से कि जिसपर उचित हो सबूत मांगाजाय) और दोनों की अर्थ सिद्धि भी नहीं किन्तु एकही की उचित है और (यदि दोनों की क्रिया अवश्यही करनी परे तौ) एकत्र एकजघे नहीं (अर्थात् एकसाथ नहीं किन्तु आगे

पीछे कर्त्तव्यहैं-इसीलिये अब संकरोत्तरोंकीक्रिया साधनमध्ये दृष्टान्तोंसहित व्यवस्था कहते हैं और यह भी प्रकट करते हैं कि अमुकामुक सूरतोंमें संकरोत्तर भी उत्तरत्व में गिनती हैं अनुत्तरत्वमें नहीं-क्योंकि-मिथ्योत्तर कारणोत्तर इनदोनोंका संकर मिश्री भावहोनेमें अर्थी प्रत्यर्थी दोनोंकोही क्रिया पहुंचती है अर्थात् यह आग्रह करसक्ते हैं कि ऐसी दशामें दोनोंका सबूतलेना चाहिये-तद्यथा (मिथ्याक्रियापूर्ववादेकारणेप्रतिवादिनि)अर्थात्-जो प्रत्यर्थी मिथ्याउत्तरदेवै तो उसमिथ्योत्तरका सबूत प्रमाण पूर्ववादीसे लेना चाहिये और जो उसने कारण उत्तरदिया होवै तो उसकारणोत्तरका सबूत प्रमाण उसी प्रतिवादीसे लेना चाहिये-सो यह दोनों बातें एकही व्यवहारमें विरुद्ध हैं क्योंकि अभी ऊपर कात्यायनजी के वाक्यसे कहचुके हैं कि एकविवादमें दोनां वादियोंकी क्रिया न होवे इसलिये इसकासिद्धांत केवल इतनाहै कि जिस अभियोग में प्रतिवादी मिथ्योत्तर देवै तिसमें पूर्ववादीका सबूतलेवै जिसमुक़द्दमेमें कारणोत्तर देवै तिसमें उसी प्रतिवादीका सबूतलेवे किंतु यह भिन्न व्यवहारकी व्यवस्थाकही है-और ऊर्द्धोक्त एकही व्यवहारमें दोनों के विरुद्ध भावका दृष्टांत यथा इसने सुबर्ण और सौरूपयेभी लिये इस एकही अभियोगमें यदि प्रत्यर्थी उत्तर दोभांतिके देवै कि सोना मैंने नहीं लिया यह मिथ्योत्तरहुआ और सौरूपये मैंने लिये थे पर उद्धारकर दियेयह कारणोत्तरहुआ सो यह दोनों विरुद्धहैं और इसीसेअनुत्तरमें गिनती हैं-जहां कारणोत्तर पूर्वन्यायोत्तर इनदोनोंका मिश्रीभावहो तहां प्रत्यर्थीकीही दोनों क्रिया हो सक्ती हैं अर्थात् मुद्दाअलेहकोही दोनों बातका सबूत प्रवेश करनाचाहिये इसवार्त्ता में यह वाक्यभी प्रमाणहै कि (प्राङ्न्यायकारणोक्तौतु प्रत्यर्थीनिर्दिशेत्क्रियाम्) अर्थात्-जो प्रत्यर्थी प्राङ्न्यायोत्तर और कारणोत्तर प्रवास करै तौ वही इन दोनों की प्रमाण क्रियाभी दर्शावै-दृष्टांत जैसे प्रत्यर्थी कहे कि सोना मैंने लिया परन्तु देदिया और चाँदी वा रूपेके मध्ये इसने पहले भी मुझपर नालिशकरीथी उसमें अर्थीका अभियोग ख़ारिज होचुका है परन्तु यह बात इसलिये विरुद्ध है कि प्राङ्न्याय का प्रमाण जयपत्रसे अथवा पहलान्याय करने वालोंसेहोगा और कारणोत्तरका प्रमाण उसको साक्षियों से अथवा दस्तावेज़ आदि लेख्य पत्रों से देनाहोगा-ऐसेही जिस उत्तरपादमें तीनि उत्तरोंका संकरहो उसका कथन करते हैं जैसे किसीने नालिशकरी कि इसनेसौसुवर्ण और सौरूपये और वस्त्रभीलियेहैं इसअभियोगमें प्रत्यर्थीउत्तरदेवै कि सोना मैंने नहींलिया और चांदीलीथी परन्तु देदीथी और वस्त्रों मध्येपहलेइसने नालिशकरीथी उसमें हारचुकाहै तौ यह उत्तरभी अनुत्तरत्वमें गिनतीहै-ऐसेही जहां चारौ भांतिका संकरहो तहांभी अनुत्तरत्व समझलेना-परन्तु इनका अनुत्तरत्व उस दशामें समुझना चाहिये कि जो एकसाथ एकसमय सब उत्तरोंका संकर भाव कर-

दियाजावै और जबतक उन उत्तरोंका प्रमाण प्रत्यर्थी के कथनानुसार पूरी सिद्धिको न पहुँचलेवै अर्थात् जिस २ उत्तरका प्रमाण प्रत्यर्थी देताजावे उसीको उत्तर में गिनती करनाचाहिये क्योंकि जो निपट अनुत्तरमें गिनती कियेजायँ तौ फिर संकर भावकी नालिशमें उत्तरोंकाभी संकरभाव हुये बिना उत्तरपाद सिद्धहोना दुर्लभ होजाय इसलिये यह सिद्धान्त है कि क्रमसे उनको कहना चाहिये क्रमसे कथन करने में उत्तरत्वमेंही गिनती होसक्ते हैं क्रमकीसंस्था अर्थी या प्रत्यर्थी या दोनों या सभासदों वा हाकिमोंकी भी इच्छाके अनुसार होसक्तीहै-जिसदशामें दोकारण अर्थात् दो उज़्र मिलेहों उनदोमेंसे जो एकप्रभूतार्थ विषयहो उसकानिर्णय प्रथम करनाचाहिये तिसपीछे उसका कि जो पहलेकी अपेक्षा तुच्छहो-परन्तु जिस उत्तरपादके लेख में संप्रतिपत्ति अर्थात् दावेकी स्वीकारताहो और उसकेसाथ किसी कारणभूत उत्तरांतर का भी संकरहो तब ऐसी दशामें उस उत्तरांतरकेही आश्रयभूत व्यवहारका निर्णय नियतहोगा क्योंकि संप्रतिपत्तिमें निर्णयकी अपेक्षा नहीं है-यही प्रमाण हारीतने भी कहाहै-यथा (मिथ्योत्तरंकारणंचस्यातामेकत्रचेदुभे। सत्यंचापिसहान्येनतत्रग्राह्यं किमुत्तरम्) अर्थात्-यह प्रश्नहै कि यदि मिथ्योत्तर और कारणोत्तर दोनों इकट्ठे प्रवेश कियेजायँ अथवा सत्योत्तर के साथ कोई दूसरा कारण प्रवेश किया जाय तिनमें किसकी क्रिया प्रथम होनीचाहिये इसमें क्या उत्तरहै यहकहकर उन्हीं हारीत ने यह कहा कि ऐसा पूँछाजाय तौ यह उत्तर देना चाहिये कि (यत्प्रभूतार्थविषयं यत्रवास्यात्क्रियाफलं। उत्तरंतत्रतज्ज्ञेयमसंकीर्णमतोन्यथा) संकीर्णे भवतीतिशेषः ऐच्छिकःक्रमो भवतीत्यर्थः-अर्थात् इसका यह उत्तरहै कि उन दोमें से जो एक विषय प्रभूतार्थ हो किंतु उसवादमें प्रबल समुझाजाय अथवा जिसके आधीन क्रियाका फल प्रकट होसक्ताहो उसीका निर्णय प्रथम भिन्नवत् करनाचाहिये और जो उनदोनों बातोंके परस्पर इसकथनके अनुसार अन्तर नहो किंतु कोई और भांतिका डौल प्रतीत होताहो तौ फिर किसीअन्यप्रकारसे अर्थी प्रत्यर्थी आदिकिसीकी इच्छाकेअनुरूप क्रम नियतकरनाचाहिये-(प्रभूतार्थ) काद्दष्टांत जैसे किसीनेनालिशकरी कि इसने मुझसे सौसुवर्ण और सौरूपये और वस्त्रभी लियेथे इस अभियोगमें यदि प्रत्यर्थी तीनि भांतिके ऐसेउत्तरदेवे सुवर्ण मैंने लियेथे रूपयेनहींलिये कपड़ेलियेथे पर उद्धारकर दिये तौ इसदशामें मिथ्योत्तर जो सौरूपयेका न लेना उसनेकहा सो प्रभूतार्थ विषय निश्चित हुआ क्योंकि सुवर्णोंका सत्योत्तर दिया उसमें निर्णयकी अपेक्षा नहीं रही और वस्त्रोंका लेना तथा उद्धार करदेना कहताहै इसालिये यह थोड़ीबात है इसका निर्णय पीछे से उद्धारकरदेने मध्ये होनाचाहिये क्योंकि लेना तौ वह आपही कहचुका परन्तु रूपये मध्ये जो निपट इनकारकरी यह बहुत बड़ीबातहै चाहे झूँठ हो या सच

हो पर इसीका निर्णय पहले कर्त्तव्यहै और इसके निर्णयमें अर्थीका प्रमाण वा सबूत सब लेनाचाहिये कि तूने किसप्रकारसे या किसकेसन्मुख दियेथे क्योंकि (मिथ्याक्रिया पूर्ववादे) इसन्यायसे पूर्ववादीपर क्रिया आवश्यकहै-इस पीछे वस्त्र विषयका निर्णय जो कर्त्तव्यहै तिसमें उसनेकारण उत्तर दियाथा इसलिये (कारणे प्रतिवादिनि) इस न्यायसे प्रतिवादीका प्रमाण वा सबूत सबलेनाचाहिये कि तूने किसप्रकारसे और किसके सन्मुख उद्धार करादियेथे-ऐसेही जहां मिथ्योत्तर और प्राङ्न्यायोत्तर इनदोनों का संकर भाव हो अथवा कारणोत्तर और प्राङ्न्यायोत्तर इनदोनोंका संकर हो उसमें भी समुझलेना दृष्टांत-यथा-उसी पूर्वोक्त अभियोग में जिसमें तीन वस्तुका दावा ऊपरकहाथा उसमें प्रत्यर्थी दोप्रकारके उत्तरदेवे कि सोना और चाँदी ये दोनों मैंने लियेथे देऊँगा परन्तु वस्त्रमैंने नहीं लिये अथवा लियेथे देदिये यह कारण बतलावै अथवा पूर्व न्याय बतलावै कि उन वस्त्रों मध्ये पहलेभी मुझपर इसने नालिश करीथी उसमें हारचुका इसदशामें यद्यपि संप्रतिपत्ति अर्थात् स्वीकारता उत्तरका विषय बहुत बड़ाहै क्योंकि सोना चाँदी दो वस्तुमें सत्योत्तर उसनेदिया तथापि इस प्रभूतार्थका निर्णय आवश्यक नहीं क्योंकि स्वीकारतामें प्रमाण और सबूतकी तहक़ीक़ात करना व्यर्थ है इसलिये पहले मिथ्योत्तरका निर्णय अथवा कारणोत्तरका या पूर्वन्यायका जैसा मुक़द्दमे काडौल हो उसके अनुसार करनाचाहिये-जहाँ मिथ्योत्तर और कारणोत्तर दोनों एकही पक्षसे अर्थात् एकही इल्ज़ामसे सम्बन्धित कियेजायँ-दृष्टांत जैसे कोई मुद्दईसींगा बनिकर किसीको यह दोष लगावै कि यह गायमेरी है अमुक समयपर खोइगई थी अबइसके घरमें देखपाई मुद्दआअलेह यहउत्तरदेवै कि इसका कथन झूँठहै क्योंकि जिसकालमें खोगई बतलाताहै उससे पहले मेरेघरउपस्थितथी या यहकहे कि मेरेघर उत्पन्नहुई इसहेतुसे यह झूँठाहै तो यहउत्तरपादअनुत्तर मेंगिनती नहींहोसक्ता क्योंकि यहउत्तरदावेदारका पक्षनिराकरण करनेमेंसमर्थ है और यहकेवलमिथ्योत्तरनहींहै क्योंकि इसमेंकारणोत्तरका उपन्यासहुआहै परन्तुयहकारणोत्तरभीनहींहै क्योंकि इसमें प्रत्यर्थीने दावेकाकोईअंश अपनेऊपर स्वीकार नहींकिया जिसकेसाथ कारणका लक्षणपायाजाय इसलिये इसको सकारण मिथ्योत्तर अर्थात् कारणकरकेसहित मिथ्योत्तरकहनाचाहिये और इसमेंप्रमाण वा सबूतमध्येक्रियापहले प्रतिवादीकी चाहिये क्योंकि जब प्रतिवादी कोईसा कारणबतलावै तब (कारणेप्रतिवादिनि)इसन्यायसे उसीपर तहक़ीक़ात उचितहोतीहै-शंका-क्योंजी (मिथ्याक्रियापूर्ववादे) इसन्यायसे पूर्ववादीकीही तहक़ीक़ात क्योंनहोनीचाहिये क्योंकि उसनेमिथ्योत्तरभी इसप्रकारसेदिया था कि यहसींगा अपनीगाय बतलाताहै सो यहकथनइसका मिथ्याहै तहां इसशंकाका यह समाधान है कि वह मिथ्योत्तरकी मर्यादा केवल शुद्ध-

मिथ्योत्तरसे सम्बन्धितहै और यहांपर सकारण मिथ्योत्तरहै-इससमाधानके खण्डन करनेको कदाचित् यहतर्कना खड़ीकरीजाय कि जैसे वहमर्यादा केवल शुद्धमिथ्योत्तर से अपेक्षारखतीहै तैसेही (कारणेप्रातिवादिनि)यहमर्यादाभी शुद्धकारणसे सम्बन्धित होनीचाहिये क्योंकि यहांपर मिथ्योत्तरसहित कारणोत्तरहै इसमेंक्योंकर प्रतिवादीके ज़िम्मेतहक़ीक़ात रक्खीगई तौ इसखण्डनका यहमंडनहै कि यहखण्डन इसहेतुसे व्यर्थहै कि कोईभी कारणोत्तर ऐसानहींहोता जिसको शुद्धकारणोत्तर कहसकैं क्योंकि कारणोत्तर प्रत्येकअवस्थामें मिथ्यासहचरित रूपसेआताहै किन्तु सदैवही कारणके साथमें मिथ्याका संसर्गबनारहताहै-अर्थात् कारणोत्तरका यहस्वरूपहै कि उसमेंसाधारणभावसे कुछस्वीकारताहोतीहै और कुछअस्वीकारता जिसेमिथ्योत्तर या इन्कारभी कहतेहैं-दृष्टांत-जैसे सौरूपयेकेलेनेमध्ये स्वीकारकिया कि सत्य मैंनेलियेथे सौ रूपये परन्तु अबधरावतानहीं इसके क्योंकि उद्धारकरचुका यह अस्वीकारके लक्षणसे मिथ्योत्तरभी स्वीकारताके साथहीमें लगादियाजाय तौ यह उद्धारकरदेना उसनेकारण प्रकटकिया परन्तु स्वीकार और अस्वीकार दोनोंमिलकर कारणबना इसलिये शुद्ध कारण किसीदशामें भी नहीं होसक्ता और जो कि इसदृष्टांतमें किसी अंशकी पूरी स्वीकारतानहीं अर्थात् स्वीकारकियेपछि उसमेंकारण प्रकटकरिकै अस्वीकारकरदिया इसलिये यह अस्वीकार शुद्धमिथ्योत्तरमें गिनती नहींहोसक्ता जो (मिथ्याक्रियापूर्ववादे) इसन्यायसे पूर्ववादीसींगा पुरुषकीक्रिया साधनकरीजाय-अर्थात् उसपूर्ववादी सींगाके प्रतिवादीने गऊअपनीहोने का कारण प्रकट किया कि मेरेघरकी बछियाथी अबगायहुई या यह कि इसके बतलायेहुये समयसे पहलेमेरेघर विद्यमानथी इसलिये यहझूँठाहै तौ इसप्रकारसे यह सकारण मिथ्योत्तरकहलाया इसलिये पूर्ववादी की तहक़ीक़ात अयोग्यहै-अगर वहशुद्ध मिथ्योत्तर इसप्रकारसे कहदेता कि यहझूँठा है और कुछकारण उसमेंनहींलगाता तौ फिर (मिथ्याक्रिया पूर्ववादे)इसन्यायसेउस पूर्ववादीसींगाकी तहक़ीक़ात करीजाती कि तूक्योंकरअपनीबतलाताहै इसबातकाप्रमाण वा सबूत अपना प्रवेशकर यहविशेषता इसमेंप्रत्यक्षहै इसलिये शंकाकरनेकाअवसर नहीं है-इसवार्त्ताको हारीतने स्पष्टभावसेकहाहै-यथामिथ्याकारणयोर्वापिग्राह्यंकारणमुत्तरम्-अर्थात् मिथ्योत्तर और कारणोत्तर ये दोनों जहांइकट्ठेहों तबदोनोंमेंसे कारणोत्तर ग्राह्यहै किंतु कारणोत्तरका निर्णय जिसपरन्यायसे पहुँचताहो उसकीतहक़ीक़ात पहले करनीचाहिये-जहाँ मिथ्योत्तर और प्राङ्न्यायोत्तर ये दोनों एकपक्षमें व्याप्तहों अर्थात् दावेकी संपूर्णवस्तुसे सम्बन्धित कियेजायँ दृष्टांतजैसे सौरूपयेकी नालिशमें प्रत्यर्थी उत्तरदेवै कि यह अर्थी झूँठकहताहै इसवार्त्ता में पहले इसने नालिशकरी थी उसमें हारचुकाहै तब ऐसीदशामेंभी पहले प्रतिवादीकीही क्रियासाधनहोगी क्योंकि(प्राङ्-

न्यायकारणोक्तौतु प्रत्यर्थी निर्दिशेत् क्रियाम्)-अर्थात्-पूर्वन्यायोत्तर और कारणोत्तर दोनों के मिलाप में प्रत्यर्थी अपना सबूतदेवे यहमर्याद कईबारपहलेभी निश्चित होचुकी है और यथार्थआशय इसका यह कि जो किसी जवाबदावेमें मिथ्योत्तर के साथकारणोत्तर या पूर्वन्यायोत्तर भी प्रवेशकियाजाय तौ मुद्दाअलेह को सबूत दाखिल करना चाहिये और हाकिमों कोभी उसी की तहक़ीक़ात पहले करनाचाहिये-क्योंकि-कोई अवस्था ऐसी नहीं जिसमें केवल शुद्धपूर्वन्यायकी तर्कना होसकै अर्थात् शुद्ध पूर्वन्याय प्रवेशहोही नहींसक्ता और न उसको उत्तर कहसक्तेहैं किंतुवह प्रवेशकरभी दियाजाय तौ अनुत्तरमें गिनतीहै-संप्रतिपत्ति अर्थात् सत्योत्तरका होना यहएक यथार्थ उत्तर पादहोताहै क्योंकि जोवस्तु प्रमाणोंसे सिद्ध करनेकेलिये नालिशके दावे में लिखीगई उसकी ठीक स्वीकारता करलेनेसे उसके प्रमाण वा सबूतकी आवश्यकता नहींरहती है-जब कदाचित् किसी अभियोगमें कारण और प्राङ्न्याय इनदोनोंका संकर अर्थात् मिश्रीभावहो (दृष्टांत) यथा सौरुपये इसने लियेथे यह नालिश करीजाय और प्रतिवादी अपने उत्तरमें रुपये लेनेकी स्वीकारताकरै कि हाँ सत्य मैंनेलियेथे सौरुपये इस्से परन्तु उद्धारभी करदिये थे यह कारणोत्तर हुआ और यह भी कहे कि इन रुपयों की नालिश इसने पहलेभी मुझपर करीथी तहाँ इसीकारण से मुदई हारचुका कि मैंरुपये इसकेउद्धार करचुका था यहप्राङ्न्यायोत्तर हुआ इसप्रकारसे जब दोनोंउत्तरका संकरभावहो तबउस प्रतिवादीको यहस्वाधीनता है कि वहअपनी रुचिके अनुकूल इनदोमें से चाहै तिसउत्तरका प्रमाण वा सबूत पहले देवै चाहैतिसका पीछे देवै-परन्तु-कदाचित्भी किसी अवस्थामें ऐसा नहीं हो सक्ता कि एकहीव्यवहारमें वादी और प्रतिवादी दोनों एकसाथ एकसमयपरअपने २ कारणोंकी क्रियासाधन करवावैं यह सिद्धांतरूप निर्णय निश्चित है ८॥ आठवें मूल श्लोकका पहला अर्द्धापूराहुआ दूसरा अर्द्धा निचले परिच्छेदमें समुझो ८॥

अथक्रियापादवासाध्यसिद्धपादनामकयोर्द्वयोर्विषयेषष्ठःपरिच्छेदः॥

इसछठेपरिच्छेदमें मुक़दमहका सबूतऔर तजवीज़काप्रकार बर्णन कियाजायगा॥

ततोर्थीलेखयेत्सद्यः प्रतिज्ञातार्थसाधनम् ८॥

अक्ष०-तिसपीछे अर्थी प्रतिज्ञात अर्थकासाधन शीघ्र लिखवावे ८॥

अभि०-तिस पीछे अर्थात् पूर्वोक्तरीतोंसे उत्तर पत्र प्रवेश होजाने पीछे शीघ्रही विलंबको न करताहुआ (अर्थी-अर्थसाधनकरवानेवाला) अर्थात् जिसपर उसझगडालू वस्तुका प्रमाण देनाउचित ठहराहो वहीअपने प्रतिज्ञातअर्थका साधन लिखवावै अर्थात् जिस अर्थकी अपेक्षा में प्रतिज्ञा पहले दृढ़ करचुकाहो तिसका साधन

कहिये प्रमाण किंतु सबूत जोकुछउसकेपास विद्यमानहो चाहे लिखावटसे या साक्षियोंसे या और किसीरीतिसे देसक्ताहो सो लिखवावै ८॥

अधि०–ऊपर अभिप्रायार्थ में और मूलमेंभी इस वार्त्तामध्ये यह कहागया कि शीघ्रही लिखवावै इस्से यह प्रमाण पायागया कि उत्तर पाद नामक जवाब दावेके दाखिल करनेमें काल बिलंबभी बिरले अवसरपर अंगीकार किया है सोभी आगे वर्णन होगा-क्योंकि-जवाबदावे की अपेक्षा में इतनी प्रेरणा नहीं है कि वह सौगन्ध्य बिना प्रवेश कियाजाय-जैसा कि इसजगह प्रमाण वासबूत लिखवाने की दशामें प्रेरणा प्रत्यक्ष है-इसलिये-इस वार्त्ता का अभिप्राय यह प्रतीतहोताहै कि बिरले समय पर इसरीतिके अनुसार कि (जब कोई बार्त्ता एकप्रकारपरकही गईहो तो अनुकरण उसका दूसरेप्रकारपर नहीं होसक्ता है) दावेका जवाबदाखिल करनेमें किसीआवश्यकता से कुछ विलंबभी उचित है-यह शिक्षा जो ऊपरमूल और अर्थोंमेंभी कही गई कि अर्थीही प्रतिज्ञातार्थ का साधन लिखवावै तो इसकथनसे अर्थी उसीको नहीं समुझना कि जिसने पहले अर्थ का अभियोग प्रत्यर्थीपर कियाहो अर्थात् यहांपर इस कथनसे दोनोंमें से कोई एक अर्थी या प्रत्यर्थीही अर्थीसमुझाजासक्ताहै क्योंकि इस दशामें जिस किसीका (अर्थ) कहिये साध्य प्रयोजन प्रबल हो वही अर्थी है और वही अपने प्रतिज्ञात अर्थका साधन कहिये प्रमाण लिखवावै-इसलिये- जब किसी अभियोगमें पूर्वन्याय उत्तर प्रवेश किया जाय तब उसी पूर्वन्यायका प्रमाण वा सबूत देनाउचितहै और इसीहेतुसे वह पूर्वन्याय जो है सोई साध्यकर्म निश्चित हुआ इसलिये इस दशामें प्रत्यर्थी अर्थी ठहरा क्योंकि वह अपने हानि लाभकी दृष्टिसे पूर्वन्यायका सबूत देना चाहताहै इसलिये वही अपने पूर्वन्यायरूप प्रतिज्ञातार्थका प्रमाण देवै-ऐसेही जहां-कारणोत्तर प्रवेशहुआ हो तहांवह कारणोत्तरही साध्य अर्थ कहलाताहै क्योंकि उसकी साधना वा सबूत बिना मुक़द्दमेका निपटारा नहीं होसक्ता इसलिये उस कारणोत्तरका वादी जो प्रत्यर्थी है सोई अर्थी कहलाताहै और उसीको अपने कारणोत्तर रूप प्रतिज्ञात अर्थका प्रमाण लिखवाकर क्रिया साधन करवानी चाहिये-ऐसेही मिथ्योत्तर जहां प्रवेश हुआहो तहां पूर्ववादी जो है सोई अर्थी निश्चितहै और वही अपने अर्थका साधन रूप प्रमाण लिखवावै क्योंकि (मिथ्या क्रिया पूर्ववादे) यहन्याय निश्चित होचुकाहै-तथैव (अर्थीही लिखवावै) इस कथन से निर्विकल्प यह सिद्धांतहै कि जिसकिसीको अपनी किसी वार्त्ताका निश्चित करना याकरवाना अभिवांछितहै वही अर्थी कहलावैगा और वही उसका सबूत भी लिखवावैगा कोई औरदूसरा नहीं-इसीहेतुसे-जहाँ संप्रतिपत्ति उत्तर प्रवेश हुआहो तहाँ किसी वार्त्ताका प्रमाणों से दृढ़करना आवश्यक नहीं रहता और न दोनों पक्षियों में

से किसीको कुछदावा शेष रहताहै वरन किसीको किसी प्रमाणके प्रवेश करनेकी भी अपेक्षा नहीं रहतीहै और इतनेमेंही वह व्यवहारभी सिद्धहोकर समाप्त होजाताहै- इसवार्त्ताको (हारीतने) स्पष्टभाव से कहाहै-यथा-प्राङ्न्यायकारणोक्तौतु प्रत्यर्थी निर्दि- शेत् क्रियाम्। मिथ्योक्तौ पूर्ववादीतु प्रतिपत्तौनसाभवेत) अर्थात् जिस व्यवहारके उत्तरमें कारण अथवा पूर्वन्याय प्रवेशहुआहो उसमें क्रियाका निर्देश प्रत्यर्थी करवा- वै जिसमें मिथ्योत्तर प्रवेश हुआहो उसमें पूर्ववादीही क्रियाका निर्देश करवावे परवह क्रिया प्रतिपत्तिमें अर्थात् दावे के इक़बाल में न होनी चाहिये क्योंकि उसमें किसी बातका निर्णय करना आवश्यक नहीं रहता ८ तौ फिर क्याहोना या करना चाहिये अब यह कहते हैं ८॥

तत्सिद्धौसिद्धिमाप्नोतिविपरीतमतोऽन्यथा ९ नवमस्यपूर्वार्द्धोयं

अक्ष०-उसकी सिद्धिमें सिद्धिको पावताहै इससे अन्यथा हो तौ विपरीतहै ९॥

अभि०-(तत्सिद्धौ) अर्थात् पूर्वोक्त प्रमाण चाहे कोई सनद लिखावटसे हो चाहे मुखाग्र किसी साक्षी आदि के द्वारा प्रवेश किया हो तिसकी सिद्धि में किन्तु उसकी सचावट करदेने में (सिद्धिं-आप्नोति) सचावट पहुँचानेवाला कोई एक पक्षी सिद्धिको पावताहै अर्थात् जय लक्षणा सिद्धि जिस्से उसकी अपेक्षा के अनुकूल मुक़द्दमेका निपटारा होताहै और जो वह ऐसी सचावट न देसके अपने प्रयोजन मध्ये तौ फिर पराजयको पहुँचता किंतु नालिशके अभियोगसे हारजाताहै कि जिस्से उसका दावा झूठ होजाताहै ९ नवमेका पहला अर्द्धा इसपरिच्छेदमें आया दूसरा अर्द्धा नीचेके परिच्छेदमें समुझौ ९॥

अथव्यवहारमातृकाप्रदर्शनोनामसप्तमःपरिच्छेदः ७॥

इस परिच्छेदमें पूर्ववर्णित आशयों का तत्त्वसार वर्णन होगा॥

चतुष्पाद्व्यवहारोयंविवादेषुप्रदर्शितः ९ नवमस्योत्तरार्द्धोयं॥

अक्ष०-यह पूर्वोक्त व्यवहार विवादों मध्ये चारपादका प्रदर्शित कियाहै ९॥

अभि०-मुक़द्दमह के व्यवहार का रूप डौल जैसा कुछ होताहै सो सब छठे परि- च्छेद तकवर्णन होचुका अब उसीका उपसंहार संक्षेप रूपसे दर्शाते हैं कि (व्यवहारों को राजादेखै) यह बात आचाराध्याय संबंधी राजधर्म प्रकरण में कहीथी सोई यह व्यवहार इस प्रकारसे जैसा २ अवतक वर्णन कियागया चार पादवाला होता है अर्थात् उस व्यवहार के चार अंश कल्पना भिन्न२ करिकै ऋणादानादि विवादों में प्रदर्शित कियाहै ९॥

धर्म०-यहाँपर पूर्वोक्त व्यवहार के चार पाद बतलाये तिनका यह लक्षणहै कि छठाश्लोक चतुर्थ परिच्छेदमें यहकहाथा कि अर्थीकी भाषाप्रत्यर्थी के सन्मुख लिख-

वानी चाहिये उस भाषाके लिखने या लिखवाने मध्ये जो२ कुछ मर्यादें वहाँपर कही गईं बस वही भाषा व्यवहारका पहलापाद कहलाताहै १-पूर्वार्द्ध आठवांश्लोक पांचवें परिच्छेद में यहकहाथा कि प्रत्यर्थी से उत्तर लिखवानाचाहिये उस उत्तर के लिखने या लिखवाने मध्ये जो २ कुछ मर्यादें वहांपर कही गईं बसवही उत्तर व्यवहार का दूसरापाद कहलाता है २-उत्तरार्द्ध आठवांश्लोक छठेपरिच्छेदमें यह कहागयाथा कि अर्थी शीघ्रही अपने प्रतिज्ञात अर्थका साधन लिखवावै बस वही क्रिया व्यवहारका तीसरापाद कहलाता है ३-पूर्वार्द्धनववां श्लोकछठे परिच्छेद में यह कहागया कि उसतीसरे पादवाली क्रियाकी सिद्धिमें मुक़द्दमहकीजयहोतीहै और असिद्धिमें पराजयवस इसीको साध्यसिद्धनाम चौथापाद कहतेहैं४ - तथैव इनके नाम और उपनाम सवयहांपर दर्शातेहैं ॥

पहलापाद।	दूसरापाद।	तीसरापाद।	चौथापाद।
भाषापाद।	उत्तरपाद।	क्रियापाद।	साध्यसिद्धपाद।
इज़्हारदावी।	जवाबदावी।	सबूतदावी।	तजवीज़दावी।
दर्जेइज़्हार।	दर्जेजवाब।	दर्जेसबूत।	दर्जेतजवीज़।

इसवार्त्तामध्ये यहबाक्यभी प्रमाणहै-यथा(परस्परंमनुष्याणांस्वार्थविप्रतिपत्तिषु।वाक्यान्न्यायाद्व्यवस्थानंव्यवहारउदाहृतः॥भाषोत्तरक्रियासाध्यसिद्धिभिःक्रमवृत्तिभिः। आक्षिप्तचतुरंशस्तुचतुष्पादभिधीयते)अर्थात्-व्यवहार नाम मुक़द्दमा उसको कहतेहैं जिसकेद्वारा-वाक्य और न्यायके अनुकूल उनझगड़ाओं का व्यवस्थान नाम निपटारा निश्चित कियाजाय जो परस्पर मनुष्यों के स्वार्थ विप्रत्तिपत्तिमें अर्थात् अपने अर्थकी असिद्धिमें उठखड़े होतेहैं-इस व्यवहारके चारपाद अर्थात् भाषा १ उत्तर २ क्रिया३ साध्यसिद्धि ४ इनके यथाक्रमकी आवृत्तियों से आक्षिप्त कियाहुआ चारअंश वाला व्यवहार चतुष्पात् कहलाताहै-परन्तु-संप्रतिपत्ति उत्तर अर्थात् दावेकी स्वीकारता रूपउत्तर प्रवेशहोनेमें प्रमाण वा सबूत पेशकरनेकी आवश्यकता नहींहै और न दावेका साधनकहिये साबित करनाहोताहै इसलिये क्रियापाद नामक तीसरापाद नहीं रहताहै वरन इसी हेतुसे साध्यसिद्धि नामक चौथापाद भी नहींहोसक्ता इसलिये इस अवस्थामें व्यवहारके दोहीपाद होतेहैं अर्थात् एकतो भाषापाद दूसरा उत्तरपाद यहदोनों रहजानेहैं और इन्हींदोनोंसे व्यवहारकी संपूर्ण सिद्धि होजातीहै-उत्तरपाद अर्थात् जवाबदावा दाखिलहोजाने पीछे सभ्यजनों अर्थात् हाकिमोंका इसवार्त्तामध्ये परामर्श लक्षणमें विचारकरना और निर्णयपूर्वक निश्चय करना कि प्रमाण वा सबूत का प्रवेशकरना अर्थीप्रत्यर्थी इनदोनोंमें से यथार्थ किसकेऊपर आरूढ़है-सोयह विचार और निर्णयका करना कोईऐसी वार्त्तानहीं है कि व्यवहारका यहभी एक भिन्नपाद

समुझाजाय क्योंकि योगीश्वरने ऐसा नहींकहा और इसहेतुसे भी नहीं कि इस वार्त्ताके निर्णय वा निश्चित करनेमें दोनोंमेंसे किसीपक्षी को अधिकार नहीं है कि वे आपही निश्चित करलेवैं किन्तु हाकिमोंको अधिकारहै किवे जिसपर उचितसमुझैं न्यायके अनुकूल उसीपक्षीसे (वजेहसबूत) दाखिल करवावैं तिसपीछे चतुर्थपाद संवन्धी मर्यादोंसे मुक़द्दमह की जय पराजय परदृष्टिकरैं यह सिद्धांतहै-मुक़द्दमहका वृत्तांत इसप्रकारसे पूर्णहुआ-यहांतक जोजो कुछकई परिच्छेदोंसे वर्णनहुआ इसका नाम (व्यवहारमातृका) कहतेहैं क्योंकि इनमातृकाओंके विना व्यवहारकी सिद्धि नहीं होसक्ती है इसलिये इनकाजिज्ञाथ याद राखना फलदायक है॥

इतिव्यवहारमातृका ९॥

अथप्रत्यभियोगनिषेधानिषेधोनामअष्टमःपरिच्छेदः

इसआठवें परिच्छेद में तआरुज़ इल्ज़ाम्का निषेध और अनिषेध वर्णनहोगा अर्थात् जो कोई मुद्दाअलेह अपनेपर लगायेगये अपराधका-निपटारा कियेविना मुद्दई पर अपराध उसके वदलेमें लगाकर खड़ाकरै तिसका निषेध और अनिषेध भीइस परिच्छेदमें कहाजायगा॥

अभियोगमनिस्तीर्य्यनैनंप्रत्यभियोजयेत्। अभियुक्तंचनान्येननोक्तंविप्रकृतिंनयेत् १०॥

अक्ष०- अभियोगको न पारउतरकर नइसको प्रत्यभियोजनकरै-अभियुक्तको भी और करकेनहीं-कहेहुये को विप्रकृतितक न पहुँचावै १०॥

अभि०- यहविशेष वार्त्ता प्रत्यर्थी के प्रतिकही जातीहै कि (अभियोग) नाम अपराध जो अपनेपर किसीने लगायाहो अर्थात् किसी अर्थीने किसीबातकी नालिश अपने पर करीहो तिसको पार न उतरकर अर्थात् निपटारा न करवाकर इस अपने अभियोक्ता कहिये मुद्दईको (न प्रत्यभियोजयेत्) अर्थात् नालिशकेबदले में उसपरभी किसी बातका अपराध लगाकर न खड़ाकरै किंतु इसबातका अधिकारहीइसको नहींहै-अब अभियोक्ताके प्रतिकहतेहैं कि (अभियुक्त) जो किसीअभियोक्ताके अभियोगमें फँसा हो तिसकोभी किसी और अभियोक्ता करके न फँसानाचाहिये अर्थात् जबतक एक मुद्दईसे मुद्दाअलेह अपना छुटकारा न करिपावै तबतक दूसरा मुद्दई उसपर कोई नालिश न करै और इसीसे यह सिद्धांतभीहै कि वही मुद्दई जिसने एक नालिश पहलेसे किसी अपराधीपर लगारक्खीहो वह दूसरा अपराध उसीअपराधीपरनहीं लगासक्ता-और अभियोक्ता अर्थात् मुद्दई इसवातकाअधिकारी नहींहै कि अपनीनालिशमें जो कुछवार्त्ता लिखचुका या कहचुका उसमेंसे कोई बात मिटावै या बदलै किंतु किसी और प्रकारसे कहनेलगै १०॥

अधि०-ऊपर यह कहागया कि मुद्दाअलेह जबतक अपनेऊपर लगेहुये अपराध

से छुटकारा न करसकै तबतक मुद्दईपर कोई अपराध न लगावै अर्थात् लगाने का अधिकार उसको नहींहै-इसवार्त्ताकी अपेक्षा प्रत्यर्थीकी ओरसे यद्यपि प्रत्यवस्कंदन अर्थात् कारणोत्तर का प्रवेश करना या पूर्वन्यायोत्तरका कि जिसका चर्चा पंचम परिच्छेदमें बहुधा आचुकाहै वह भी एकप्रकारसे (प्रत्यभियोग) रूपनिश्चित है और वहांपर उसका प्रवेश करना उचित समुझागया है बरन यहां पर प्रत्यभियोग करने का निषेध लिखागया परन्तु वहबात दूसरीहै और यहबात कुछ औरहै क्योंकि वहां पर अपने अपराधका प्रहार करना संभव समुझकर प्रत्यवस्कंदन का प्रवेशकरना उचितहै-इसहेतुसे-निश्चितहुआ कि यहांपर उसप्रकारके प्रत्यभियोगका निषेध है कि जिसके करने से अपने ऊपर लगेहुये अपराधकी निर्मलता न होसक्ती हो-और भी चौथे चरणमें यहबात जो कहीगई कि (नोक्तंविप्रकृतिंनयेत्) अर्थात् अभियोक्ताने पहले अपने आवेदन समय जो कुछ लिखवाया अथवा कहाहो उसको भाषाकालमें अर्थात् इज़्हारदावे में किसी तरह विपरीत न उच्चारणकरै और न उसमें कोई वात घटावै या छिपावै किंतु इसवार्त्ता मध्ये यह प्रमाणहै कि जो बस्तु जिसरूप से आवेदन समय निवेदनकरी हो वह बस्तु उसीरूपसेभाषाकालमें भी लिखवानी चाहिये अन्यथा नहीं (शंका) भला जब छठे मूल श्लोकमें कहचुकेथे कि प्रत्यर्थीके सन्मुख भी लिखवानाचाहिये जैसाउसने आवेदन समय पहलेकहाहो तौ फिर किस लिये यहां दशवें श्लोक चौथेपादमें दुसराकर पिसेहुयेकोपीसा कि अपनेपहले कहे हुयेको बदलै नहीं या घटावैनहीं अर्थात् यह पिष्टपेषण व्यर्थहै (समाधान) सुनो व्यर्थ नहींहै छठे श्लोकमें यह सिद्धांत कहाथा कि आवेदन समय जो बस्तु जैसेरूप से कहीहो भाषाकालमें भी उसीप्रकार कहनी चाहिये अर्थात् एकहीपदमें बस्त्वंतरन करदेवै (दृष्टांत) जैसे आवेदन समय यह कहाथा कि इसने सौरूपयेव्याजूलियेऔर भाषाकालमें प्रत्यर्थीके सन्मुख यह कहनेलगै कि इसने सौ कपड़े व्याजूलिये अथवा सौ रूपयेके कपड़े व्याजूलिये तौ यह वस्त्वंतर होगया क्योंकि सौ १०० कापद यहां भाषाकालमें भी बनारहा परन्तु वस्तु जो रूपयेथे उनके बदले सौ कपड़े कहदिये यह बस्तुका अन्तर हुआ ऐसा न कहनाचाहिये यहनिषेध वहांपर कियाथा कदाचित्मुद्दई ऐसाकरै तौ वह हीनवादी निश्चित होकर मुक़द्दमा ख़ारिज होजावै अथवा दण्डयोग्य होताहै-और यहां दशवें श्लोक चौथेपादमें यह सिद्धांतहै कि एकवस्तुमें भी पदांतर न होनेपावै (दृष्टांत) जैसेआवेदन समय यह कहाथा कि इसनेसौरूपये मुझसे व्याजू लिये अब देतानहीं परन्तु भाषाकालमें प्रत्यर्थी के सन्मुखयह कहनेलगै कि इसने सौ रूपये प्रबलतासे हरलिये तौ यह एकबस्तुमें पदांतरहोगया क्योंकि वस्तुजो सौ रूपये कहेथे वही भाषाकालमें भी उच्चारणकिये परन्तु आवेदन समय व्याजू कहेथे

यहांपर प्रबलतासे हरलिये कहनेलगा यह पदांतरहै कदाचित् ऐसा करे तो यह हीनवादी होकर दण्डयोग्य होगा-इसलिये यह पुनरुक्ति नहीं है क्योंकि वहांपर वस्त्वंतर गमनका निषेधकियाथा यहांपर पदांतर गमनका निषेधहै-इसवार्त्ताको नारदने स्पष्टरूपसे कहदियाहै-यथा (पूर्ववादंपरित्यज्ययोऽन्यमालंबतेपुनः। वादसंक्रमणाज्ज्ञेयोहीनवादीसवैनरः) अर्थात्-पहले आवेदन समयके उच्चारण किये वादको छोड़कर जो कोईवादी भाषाकालमें अन्य वादपर आरूढ़ होजाताहै वह अपनेवादके बदलने से हीनवादी कहलाता-और हीनवादी का मुक़दमा खारिजहोना चाहिये और उसपर दंड अर्थात् जुरमानाभी होनाचाहिये-परन्तु-इसकथनसे हीनवादीअपने नालिश कियेहुये मुख्य धनसेभी निर्विकल्प हानिनहीं पासक्ता-इसलिये सिद्धांत इस वार्तासे केवल इतनाहै कि अर्थीप्रत्यर्थी दोनोंकाप्रमाद शोधन करनेकेलिये यहदशवें श्लोकमात्रका सारा उपदेश लिखागया कुछमुख्यधनकी सिद्धि या असिद्धिका विषय यहनहीं-इसीलिये एकआज्ञा यहभी बीसवें श्लोकमें आगेकहेंगे कि राजा सर्ववस्तुके तत्त्वरूप निर्णयसे भूलचूक आदि प्रमादसे उत्पन्नहुये छलोंको निकालकर दीवानी व फौजदारी व्यवहारोंका ठीकठीक निपटाराकरै-सो यहवार्ताभी अर्थ व्यवहारमेंअर्थात् दीवानी संबंधी धनकी नालिशोंमें समुझनी चाहिये कि भूलचूक आदि होजानेसे मुद्दईपर केवल जुर्माना करनाचाहिये परमुख्य मुक़द्दमा उसका न्यायकेअनुसार फैसल करै किन्तु खारिज न करदेना चाहिये -परन्तु क्रोधसे उत्पन्नहुये व्यवहारों अर्थात् फ़ौजदारीके मुकद्दमात प्रमाद गफलत आदि होजानेमें मुख्य मुक़द्दमाभी खारिजहो जाताहै-यही नारदने कहाहै-यथा(सर्वेष्वर्थविवादेषुवाक्छलेनावसीदति। परस्त्रीभूम्यृणादानेशास्योप्यर्थान्नहीयते)अर्थात्क्रोधादिव्यवहारोंको छोड़कर और सभीप्रकारके धनके विवाद व्यवहारोंमें वाणीमात्रके छल उत्पन्नहोने और प्रमादनाम गफलतकेभी उत्पन्नहोनेपर अपने मुक़द्दमासे पराजयनहींहोता किंतु मुक़द्दमा फैसल होनेपरन्याय के अनुसार जोकुछहोनाहो सोहोगा इसवाक्छलके अपराधमें केवल दंडमात्र उचित है इसलिये पिछले आधेश्लोकसे उदाहरण इसका कहतेहैं कि परस्त्रीका वहकानाया संग्रह करलेना इस मुक़द्दमहमें और भूमि अर्थात् मिलकियतके मुक़द्दमहमें और ऋणके मुक़द्दमहमें वाक्छल अथवा प्रमाद आदि अपराध करनेवाला अर्थी जैसे दंड्य होताहै परन्तु मुख्य धनसे परिच्युत नहीं किया जासक्ता ऐसेही औरभी धन सम्बन्धी विवादोंमें समुझलेना केवल धन विवाद कहनेसे यह सिद्धांत प्रकट हुआ किंतु क्रोधादि विवाद अर्थात् फ़ौजदारीके व्यवहारमें प्रमाद अथवा वाक्छल करने वाला दंडके सिवाय अपने प्रयोजनसे भी परिच्युत कियाजाताहै (दृष्टांत) जैसे इसने मेरे शिरपर लात मारी यह आवेदन समय लिखवाया और भाषाकालमें प्रत्यर्थीके

सन्मुखयों कहनेलगै कि मेरे पैरोंपर चोटमारी अथवा ऐसे कहे कि हाथसे या पांवसे माराथा इत्यादि प्रमादरूपसे कहनेवाला मुद्दई केवल दंडकेही योग्य नहीं किंतु मुक़द्दमहको भी बिना फैसल किये हारगया १०॥ इसी दशवें श्लोक दूसरे पादमें जो यह कहाथा कि अपने अपराधका निपटारा किये बिना अभियोक्तापर किसी बातका अपराध न खड़ा करै इस बातका (अपवाद) नीचे ११ श्लोकमें कहते हैं इसलिये कि विष शस्त्रादि विकट दशाओंमें प्रत्यभियोगभी मुद्दाअलेह करसक्ताहै १०॥

कुर्यात्प्रत्यभियोगंचकलहेसाहसेषुच ११ (एकादशस्यपूर्वार्द्धोयम्)

अक्ष०—प्रत्यभियोगभी कलहमें और साहस कर्मोंमें करै ११॥

अभि०—(कलह) में अर्थात् कलह दो प्रकारकी होती है एक तौ बाणीसे दुर्वचन कहना जिसको वाक्पारुष्य कहते हैं दूसरी कलह जो कर्मद्वारा करीजाय यथा ताड़न पीटन आदि जिसको दंड पारुष्य कहते हैं (इनमें पहली कलहको भाषांतरसे अमलवेजाक़ौली और दूसरीको अमलबेजा फ़ेअली कहते हैं) इन दोनों मेंसे कोई कलह उठीहो तिस दशामें अथवा (साहसेषु) अर्थात् विषदेना शस्त्र मारना आदि कर्म जिनसे प्राणोंकी हानि होगई या होजानी संभव हो तिनके होनेमें या होनेकी संभवतामें यदि प्रत्यभियोग करनेका संभव हो तौ अपने ऊपर कियेगये अभियोगका निपटारा हुये विना भी अपने अभियोक्तापर (प्रत्यभियोग) करै अर्थात् दोषके बदलेमें दोष लगावै ११॥ यह ग्यारहवें श्लोकका पूर्वार्द्ध है॥

अधि०—(शंका) भला यहांपर कलह और साहस कर्मोंकी दशामें प्रत्यभियोग लगानाभी उचित समुझागया कि जिसका निषेध पहले दशवें श्लोक में होचुकाथा परन्तु वहांपर दशवीं अधिकोक्तिमें प्रत्यवस्कंदन उत्तरकीअपेक्षासे नीचेयह निर्वाहभी करदियाहै कि उसप्रकारके प्रत्यभियोगकानिषेधहै जिसके करनेसे अपनेऊपरलगेहुये अपराधकी निर्मलता न होसक्तीहो-इसलिये यहांपरभी शंकारूपआग्रहंखड़ा होताहै कि जब यहांपर दोषके बदले में दोषलगाना कहातौ यहभी एक दूसरीनालिश उसके बदलेमें निश्चित हुई और इसके प्रभावसे अपने ऊपर लगेहुये दोषकी निर्मलताभी नहींहोसक्ती और इसीहेतुसे यह प्रत्यभियोग अनुत्तरमेंभी गिनतीहोसक्ताकिन्तु अपने ऊपर लगेहुयेदोषका उत्तर नहींकहलासक्ता और इसकेसिवाय जब दूसरी नालिश निश्चितहुई तब दोनालिशोंका व्यवहार समाश्रत एकसाथ एकसमयहोना निपट असंभवहै-इसलिये यहाँपरभी प्रत्यभियोग अनुचित देखपरताहै (समाधान) ठीकहै जो शंकाकरी वहभी यथार्थहै परन्तु यहाँपर एकसाथ एकसमय व्यवहार प्रवृत्तहोनेकेलिये प्रत्यभियोगका उपदेशनहीं है-हाँ-इसलिये है कि अपनेको होनेवाले दण्डमें न्यूनताहोजाय अथवा अधिक दण्डकी निवृत्ति होजाय-दृष्टांत-जैसे किसीपर यह

नालिशहुईहो कि इसनेमुझेमारा अथवा दुर्वचनकहे इसकेबदले मुद्दाअलेह इसप्रकार से प्रत्यभियोग लगावे कि इसने मुझेपहलेमारा या पहले दुर्वचनकहे तिसपीछे मैंने और यहीबातउसकी प्रमाण वा सबूतको पहुँचजावे तो प्रत्यभियोग करनेवालेको दण्डथोड़ाहो इसवार्तामें नारदजीका यहवाक्यप्रमाणहै कि (पूर्वमाक्षारमेद्यस्तुनियतं स्यात्सदोषभाक्। पश्चाद्यःसोप्यसत्कारीपूर्वेतुविनयोगुरुः) अर्थात्-जो पहलेवारकरता है वह अधिक अपराधीहोताहै और जो पीछेकरताहै वहभी दोषी है परन्तु जिससे पहलेआरम्भहुआ वह अधिक दण्डकाभागीहोगा-औरजो दोनोंका परस्पर एकसाथ द्वन्द्वहुआहो तिसव्यवहारमें इसअगले वाक्यसे वर्तावाकियाजायगा-यथा (पारुष्ये साहसेवापियुगपत्संप्रवृत्तयोः। विशेषश्चेन्नलभ्येतविनयःस्यात्समस्तयोः) अर्थात्-(पारुष्य) दोप्रकारका वाक्पारुष्य और दण्डपारुष्य इनदोनोंप्रकारकी कलहमें और (साहस) नाम विषशस्त्रआदिके उपद्रवमें दोनोंपरस्पर एकसाथ प्रवृत्तहुयेहों अर्थात् उसने उसको और उसने उसको मारापीटाहो उनदोनोंकेदोषमें विशेषता नहींपाई जाय कि किसने किसको अधिकमारा या किसने पहलेवाराकियाथा तव ऐसी दशामें दोनोंको बराबर दंडहोनाचाहिये-इसलिये इसमें यह सिद्धांतहै कि यद्यपि अदालतमें एकसाथ दो व्यवहारोंकी प्रवृत्ति असंभवहै तथापि कलह और साहसआदि विवादों में प्रत्यभियोगहोनाउचितहै परंतु वही प्रत्यभियोग ऋणादि धन संबंधी विवादोंमें अनुचितहै इसलिये शंका करनेका कोई अवसरही नहींहै ११॥

यह ग्यारहवेंका पहला अद्धा पूराहुआ दूसरा अद्धानीचेके परिच्छेदमें॥

अथससभ्यसभानांकर्त्तव्यतयाद्वयोःप्रतिभूर्ग्राह्यइत्याज्ञाविषयोनामनवमःपरिच्छेदः९।

इस नववें परिच्छेदमें सभासदों वा हाकिमों और पंचोंको बर्तावा जो-मुक़द्दमहकी मध्यदशामें ज़मानत मध्ये कर्तव्यहै सो वर्णनहोगा॥

उभयो प्रतिभूर्ग्राह्यः समर्थःकार्यनिर्णये ११॥

अक्ष०-दोनोंका प्रतिभूलेना चाहिये जो कार्य निर्णयमें समर्थहो॥

अभि०-कार्यनिर्णयमें समर्थहो अर्थात् निर्णयके कार्यमें समर्थहो इसका अभिप्राय यह कि अर्थी प्रत्यर्थी दोनोंके सर्व विवादोंमें जो कुछ निर्णय पीछेसे कियाजाय और उस निर्णयकी अपेक्षासे जो कुछकार्य कर्त्तव्यहो अर्थात् दोमेंसे किसीपर मुख्य धन या दंडधन राजद्वारमें देना निर्णयहुआहो जिसको वह न देसक्ताहो तिसकेबदले जो कोई देसकनेमें समर्थ विख्यातहो ऐसा (प्रतिभू) अर्थात् ज़ामिन् एक एक दोनोंकी ओरसे या एकही दोनोंकीओरसे अथवा एकहीपर संभवहो तो एकहीकी ओरसे हाकिमों या पंचोंको कि जिनके आधीन वह मुक़द्दमहहो लेनाचाहिये कि जिसके हेतुसे

प्रतिभूदेनेवालेको किसी तरहकी रोक टोक तबतक न रहे और हाकिमों या पंचोंको उनके चलेजाने आदिका खटका न रहे ११॥

अधि०-कदाचित् ऐसा ज़ामिन् वे न देसक्तेहों तो अर्थी और प्रत्यर्थी दोनोंकी रखवालीके लिये आदिमी तैनातकरनेचाहिये और उन आदिमियों की वेतन मज़दूरी रोज़ रोज़ उन दोनोंसे दिलवानीचाहिये-इस वार्त्तामध्ये कात्यायनजीका यहवाक्य भी प्रमाणहै-यथा(अथचेत्प्रतिभूर्नास्तिकार्ययोग्यस्तुवादिनोः। संरक्षितोदिनस्थांतेदद्याद्भृत्यायवेतनम्)अर्थात्-जो वादीका या प्रतिवादीका कार्यके योग्य प्रतिभू न हो तौ वह हवालातमें संरक्षित रहकर सायंकालमें उस रक्षाकरनेवाले भृत्यको मज़दूरी देवै-(प्रतिभूःप्रतिभवतितत्कार्येचतद्वद्भवतीतिप्रतिभूः) ११॥ इस परिच्छेदमें केवल ग्यारहका उत्तरार्द्ध पूराहुआ जिसमें ज़मानतकी मर्याद कही गई अब उस निर्णयकार्यकाचर्चा निचले परिच्छेदमें कहतेहैं जिसकेमध्य प्रतिभूलेनाचाहिये ११॥

अथऋणादानविषयिकविवादेक्रियापादसंबन्धिविचारोनामदशमःपरिच्छेदः १०॥

इस दशवें परिच्छेदमें ऋणसंबंधी मुक़द्दमातकी तजवीज़ जो हाकिमों को करनी चाहिये बर्णन होगी॥

निह्नवेभावितोदद्याद्धनंराज्ञेचतत्समम्। मिथ्याभियोगीद्विगुणमभियोगाद्धनंवहेत् १२॥

अक्ष०-निह्नव केहोनेमें भावित करायाहुआ प्रत्यर्थी प्रकृतधन अर्थीको देवै और उसीके समान राजाकोभी-मिथ्याभियोगी अर्थी अभियोग धनसे दूना भरै १२॥

अभि०-यदि प्रत्यर्थी निह्नव अर्थात् अपह्नवकरै किंतु अर्थीकरके निवेदन किये हुये धनसे मिथ्योत्तर द्वारा इनकार प्रवेशकरै और इसदशामें अर्थी अपनेसाक्षियों अथावा लिखापढ़ी आदिकी सनदोंद्वारा वहीधन प्रमाणको पहुंचाकर प्रत्यर्थीसे अंगीकार करावै तौ प्रत्यर्थीवहधन अर्थीकोदेवै और उसीधन के समान अपह्नव का दंडभीराजाको देवै-और जो अर्थीही प्रमाण वा सबूत न पहुंचासकै तौ वह मिथ्याभियोगी अर्थात् झूंठी नालिश करनेवालाकहलावै और इसीहेतु से यह मिथ्याभियोगीअर्थी (अभियोग)से अर्थात् जितनेकी नालिशकरीहोउसधनसे दूनाधनमिथ्याभियोगके अपराधसे राजाको भरै-और यही न्यायउसदशामेंभी युक्तकरना चाहिये कि जब मुद्दाअलेहने कारणोत्तर अथवा पूर्वन्यायोत्तर प्रवेश कियाहो सो इसका व्यौरा नीचे अधिकोक्तिमें देखो १२॥

अधि०- जहां मुद्दई अपने दावेमें किसीयथार्थवार्त्ताको छिपावै और मुद्दाअलेह उसके जवाबदावेमें कारणोत्तर अथवापूर्वन्यायोत्तर प्रवेश करिकै प्रमाणको पहुंचादेवै तौ इसदशामेंभी मुद्दई अपह्नववादी या मिथ्याभियोगी ठहरा और इसीहेतुसे राजाको उसधनसे दूना दंडदेवै जितनेकी झूंठी नालिशउसने करीथी-अथवा-जो प्रत्यर्थी

अपने प्रवेश कियेहुये कारणोत्तर का पूर्वन्यायोत्तरका प्रमाण वा सबूत न पहुँचासके तौ वही अपह्नववादी या मिथ्याभियोगी कहलावै और मुदईका वहरूपया उद्धार करै कि जितनेकी नालिश मुदईने करीथी इस पीछे उसीरूपयेसे दूना दंड राजाको भी मिथ्याभियोग या अपह्नववादके अपराधसे देवे-परन्तु-जहांप्रत्यर्थीने (सं प्रतिपत्ति) उत्तर दिया अर्थात् इक़बालदावेका कियाहो उसदशामें राजदंडकी अपेक्षा नहीं है केवल वहीधन मुदईका उद्धार करै जिसकी नालिश उसपर हुईहो-इस परिच्छेद में कहीहुई मर्याद जुर्माने मध्ये केवल ऋण सम्बन्धी अभियोगों से सम्बन्ध रखती है क्योंकि अन्यप्रकारके व्यवहार पदोंका जहां जहां वर्णन आगेहोगा तहां उनके साथही उन अपराधोंका दण्डभी कहदियाहै दूसरे यह बात कि अन्य व्यवहारोंमें जहां धनकी नालिश नहीं तहां यह मर्याद इसप्रकारसे भी असंभवहै कि जब धनकी नालिश नहीं तौ फिर किस धनसे या कितनी संख्यासे दूना दण्डदिया अथवा लिया जाय इसलिये यह मर्याद सभी अभियोगोंसे अपेक्षा नहींरखती किंतु केवल ऋणादानके अभियोगोंसे संबन्धितहै-यद्यपि (राज्ञाधर्मणिकोदाप्यः) इत्यादि पाठवाला ४३ का श्लोक जो आगे आवेगा उसमें यह आशय है कि राजा ऋणी से जुर्माने मध्ये इतना रूपयालेवै और वह दशा ऋणादानके अभियोगसे संबन्ध भी रखती है परंतु उसमें इतना अन्तरहै कि उसका वर्णन विशेषतासे उसी जघेपीछे किया जायगा उसबातसे अपेक्षा इसमेंनहींहै-अथवा इस परिच्छेदकीऊर्ध्वोक्त मर्याद अर्थांतर अनुवादसे सर्व व्यवहारों में भी संबन्धित होसक्ती है अर्थात् इसीबारहवें श्लोकका अर्थ जो ऊपर अक्षरार्थ आदिमें कहागया उसके आशयसे केवल ऋणादानके व्यवहारोंसे वह मर्याद संबन्धितभी होचुकी परन्तु जो सभी व्यवहारोंसे संबन्धित किया चाहै तौ इसप्रकारसे अर्थ लगानाचाहिये-कि-प्रत्यर्थी के अपह्नव उत्तर देने में यदि अर्थी अपने साक्षी आदि प्रमाणोंसे उसपर अपने दावेका सबूत पहुँचादेवे जिससे प्रत्यर्थी अपह्नव वादीठहरै (यहांतकतौ अर्थीवहीहै जो पहले लिखागयाथा अबइस्से आगे योंसमझना चाहिये) कि प्रत्यर्थी यदि अपह्नववादी ठहरै और वहअभियोगधन संबंधी नहींहै तौ राजाको (तत्समं-धनंदद्यात्) अर्थात् उसके समान धनदंडदेवै जो उसीव्यवहारपदकी व्यवस्थामें उस अपराधकी अपेक्षासे जहाँतहां अपने २ स्थलमें कहाहै (राज्ञेच) इस पदके अंतमें जो (च) शब्दहै सो अब धारण अर्थमें समुझना चाहिये-इसीप्रकार उत्तरार्द्धमें लगाना चाहिये कि यदि अभियोक्ता अभियोगका प्रमाण वा सबूत कुछ न देसकै तौ वह मिथ्याभियोगी ठहरकर इसअपराधसे राजाको (धनंदंडंद्विगुणंदद्यात्) अर्थात् धन कहिये नगद रूपया दंडमध्ये दूनादेवै उस परिमाणसे दूना कि जिसद्वन्द्वकी वहनालिशहो और उसीद्वन्द्वके व्यवहारपदकी पराजय

होनेमें जितना दंड जहाँकहीं अपनेस्थानपरलिखाहो-ऐसेही इस अर्थांतरअनुवाद में भी कारणोत्तर और पूर्वन्यायोत्तर उसीप्रकार अपनी बुद्धिसे युक्तकरलेनेचाहिये जैसे इसी अधिकोक्ति के प्रारम्भ में ऋणादानकी अपेक्षा से लिखचुके हैं क्योंकि बारबार लिखने से विस्तार होताहै १२॥

अथसाहसादिविवादेषु तत्कालएवोत्तर पादप्रवेशोनाम एकादशः परिच्छेदः ११॥

इसग्यारहवेंपरिच्छेदमें यहमर्यादकहीजायगी कि साहसआदि विशेष विवादों में प्रत्यर्थी की ओर से तत्कालउत्तर प्रविष्टहोनाचाहिये अर्थात् बिलम्बसेनहीं॥

साहसस्तेयपारुष्यगोऽभिशापात्ययेस्त्रियाम्। विवादयेत्सद्य एवकालोऽन्यत्रेच्छयास्मृतः १३॥

मक्ष०-साहस स्तेय पारुष्य गऊ अभिशाप अत्यय इनमें और स्त्रियोंके मुक़द्दमहमें शीघ्रहीविवादकरावै अन्यत्रइच्छासे कालभी कहाहै १३॥

अभि०-जोकि छठेपरिच्छेदमें उत्तरार्द्धआठवें मूलश्लोकसे यहआज्ञादीथी कि मुद्दाअलेहकीओरसे जवाबदावी दाख़िलहोजानेपर मुद्दई अपने (प्रतिज्ञात) नाम प्रतिज्ञाकियेहुये अर्थकासाधन अर्थात् प्रमाण वा सबूत जोकुछदेनाचाहताहो सो सबशीघ्रही दाख़िलकरै किन्तु लिखवाने या दाखिलकरने में बिलम्बनकरै-तौ-इस आज्ञासे यहसिद्धांतपायागया कि मुद्दाअलेहकीओरसे जवाबदावी दाख़िलकरने में कुछेकबिलम्बभी किसीआवश्यकतासे उचितहै अर्थात् तत्कालकीप्रेरणा उसकेलिये नहींहै-क्योंकि-पाँचवेंपरिच्छेदमें पूर्वार्द्ध अष्टमश्लोकसे जवाबदावेकी प्रक्रियाकहीगई तहाँपर मुद्दाअलेहकेलिये शीघ्रदाख़िलकरनेकी आज्ञानहींलिखी किन्तु सामान्य भावसे यहकहाहै कि (श्रुतार्थस्योत्तरंलेख्यं) इसलिये अब उससिद्धांतरूप आज्ञामें (अपवाद) अर्थात् छूटभी इसी १३ के श्लोकसे कहतेहैं-कि-एकतौ साहसकर्मोंकाअभियोग जिसमें विषदेने या शस्त्रमारनेआदिकाझगड़ाहो-२ स्तेय चोरीकामुक़द्दमा-३ पारुष्यस्थान वाक्पारुष्य अथवा दण्डपारुष्यकामुक़द्दमा इसबाक्पारुष्य और दण्डपारुष्यमें वहमुक़द्दमाभीसमुझनेचाहिये जो किसीकीजाति अथवा प्रतिष्ठातक हानिपहुँचाईगईहो-४ (गो) अर्थात् दूधवालीगौकाझगड़ा-५ (अभिशाप) अर्थात् कलंक दोष पातक जो किसीपरलगायागयाहो जिस्से उसकीजाति अथवा धर्ममेंविरोधआवे तिसकाअभियोग-६ (अत्यय) अर्थात् किसीकेप्राण अथवा धनकाबिनाशकरनेपर केवल उद्यतहोना तिसकीनालिश (इस अत्ययपदको भाषान्तरसेतक़दीम हमलह) कहतेहैं इसलिये कि अबतक वह बिनाशकियानहींगया किन्तु करनेपरउद्यत होकर कदमरक्खागया-७ (स्त्रियां) अर्थात् स्त्रीसम्बन्धीझगड़ोंकामुक़द्दमा इसके दो भेदहैं एकतौ कुलवतीकी दूसरा दासीका-तहाँ कुलस्त्रीकामुक़द्दमा उसके चारित्र वा प्रतिष्ठामध्ये और दासियोंकेमुक़द्दमे माल या मालकियतके-इन अभियोगों में (सद्यः)

नाम शीघ्रही प्रत्यर्थीसे उत्तर दिलवावै किन्तु इनमें कालविलम्ब अनुचित है और अन्यत्र नाम अन्य विवादों में किजो इनसेभिन्नहों उनमें मुद्दाअलेहकीओरसे उत्तर देनेका काल इच्छाके आधीन अर्थात् अर्थी या प्रत्यर्थी या सभासद या सभापति इनकी इच्छाके अनुसार आवश्यकतासे विलम्बितहोसक्ताहै १३॥

अथ असत्यवादित्वादिदुष्टलक्षणप्रदर्शनोनामद्वादशःपरिच्छेदः १२॥

इसबारहवेंपरिच्छेदमें वे लक्षणकहेजायँगे जिनसे मुद्दाअलेह और गवाहोंका झूँठापन पहिंचानाजाय॥

देशाद्देशांतरंयातिसृक्किणीपरिलेढिच। ललाटंस्विद्यतेचास्यमुखंवैवर्ण्यमेतिच १४॥
परिशुष्यत्स्खलद्वाक्योविरुद्धंबहुभाषते। वाक्चक्षुःपूजयतिनोतथोष्ठौनिर्भुजत्यपि १५॥
स्वभावाद्विकृतिंगच्छेन्मनोवाक्कायकर्मभिः। अभियोगेचसाक्ष्येवादुष्टःसपरिकीर्त्तितः १६॥

ऐक्यार्थस्त्रयाणांसह—अभियोगमें या गवाहीमें मुद्दाअलेह अथवा कोई गवाह इससे जब अदालत कोई बात बूझै उस समय मनसे या वाणीसे या कायासे या कर्मसे विकृतिको प्राप्त होजाय परन्तु वह विकृतिभी स्वभाव से उत्पन्न हुईहो अर्थात् भय आदि हेतुओं से न उत्पन्न हुईहो तौ वहमुद्दाअलेह अथवा गवाह अभियोग में या गवाही में दुष्ट कहलाता और दुष्ट कहने से सिद्धांतहै मिथ्याभियोगी और झूँठी साक्षी देनेवाला-इसलिये इनकी (विकृति) नाम विकारके सर्वलक्षण भिन्न२ चौदहवें और पंद्रहवें दो श्लोकों से कहते हैं और यह पहला आशययहाँतक सोलहवेंसे कहागया-एकयह लक्षणहैकि (देशाद्देशांतरंयाति) अर्थात् जो मनुष्यकहीं एक ठिकाने थँभता नहीं विचला फिरताहै २ (सृक्किणी-परिलेढी) अर्थात् ओष्ठोंपर्यंत जीभसे चाटनेवाला या रगड़नेवाला (यह दोनों बातें कर्मविकारमें गिनती हैं) ३ (अस्य-ललाटं स्विद्यते) अर्थात् माथेपर पसीना जिसके आवै ४ (मुखंवैवर्ण्यंएति) अर्थात् मुखजिसका विवर्णत्व नाम पांडुत्व सुफेदीले आवै अथवा सूखासा होजाय(यह दोनों बातें कायाके बिकार में गिनती हैं) ५ (परिशुष्यत्स्खलद्वाक्यः) अर्थात् गद्गद वाणी से गलापकड़ते हुयेउलटे सुलटे वाक्य जिसके मुहँसे निकलैं ६ (विरुद्धं-बहुभाषते) अर्थात् बहुधा पूर्वापर से विरुद्ध वचन बोलै किन्तु जिसकी पहली कहीहुई बातसे पिछली बातका जोड़ तोड़न मिलसकै (यह दोनोंबातें वाणीके बिकारमें गिनतीहैं) ७ (वाक्चक्षुःपूजयतिनो) अर्थात् जो विरानी कही या पूँछीहुई बातका प्रति वचन उत्तर न देसकै और जब कोई उसके सन्मुख निहारै तौ उसके सन्मुख आंख न मिलासकै-(यह दोनों बातें मनके विकारका रूपहैं)-८ (ओष्ठौनिर्भुजति) अर्थात् जो मनुष्य ओठोंको टेढ़े करके तोड़ै मरोरै-(यह बातभी कायाके विकारमें गिनी है जिसके दो लक्षण ऊपर कहचुके हैं)१४।१५।१६॥

अधिकोक्तिस्त्रयाणांसह–ऊपर जो लक्षणकहेगये सो केवल दोषकी संभावनामात्र समुझलेनेके लियेकहे हैं अर्थात् कुछयही नियम नहीं है कि जिसमें वे लक्षण पायेजायँ वह निर्विकल्पदोषीठहरै क्योंकि वे विकारदोप्रकारकेहोते हैं एकतो नैमित्तिक जो भय आदिहेतुसे अर्थात् हाकिमआदिके घुड़कने या अपने गार्हस्थ्यसंबंधी गुप्त शोकमोहसे अथवा ये कुलक्षण जिसकी प्रकृतिमें बालपनसे पड़ेचलेआतेहों तो इनप्रकारों के विकारप्रकाशहोने में दोषीनहींठहरसक्ता और-दूसरेविकार जो स्वभावसेउत्पन्नहों अर्थात् मुक़दमासंबंधी अपराधकेस्वभावसेघबड़ाकर तत्कालउत्पन्नहोजायँ उनसेउसका दोष प्रकट होसक्ता है परन्तु यह क्योंकर जानाजाय कि इसमें ये कुलक्षण स्वाभाविक या नैमित्तिकहुये किंतु इसबातका पहिंचानना बहुत कठिनहै-अथवा-कोईविवेकी यथार्थ भावसे पहिंचानभी सकै कि ये विकार इसमें स्वाभाविक पैदाहुये-तथापि उसकी पराजय संबंधी कार्य नहीं करना चाहिये किन्तु जय पराजय जोकुछ न्यायके अनुकूलहोनाहो सोईहोगा क्योंकि मरतेहुये रोगीके असाध्य लक्षण देखकर कोईभी उसके मृतकार्य संबंधी क्रिया कर्मनहीं करने लगताहै-हाँ-केवल इतना समुझलेते हैं कि इसके अब असाध्य लक्षण प्रकट होनेलगे अवश्य मरनेहारहै फिरचाहै बचभी जावै-ऐसेही-इस मुद्दाअलेह अथवा गवाहके विकार देखकर केवल इतना अनुमान होजाता है कि इसकी पराजय होनेवालीहै फिर चाहै उसकी पराजयके पलटे जयहो जावै परन्तु हाकिम आदि किसीको यहयोग्यता नहीं है कि उनविकारोंकोही देखकर उसकी पराजयवाला कामकरैं वरन जहाँतक संभवताहो जैसे रोगीकी असाध्यता प्रकट होनेपरभी चिकित्सा किये जातेहैं तैसेही उसकी यथार्थ निर्मलतापर दृष्टि बनी रक्खैं १४।१५।१६॥

संदिग्धार्थंस्वतंत्रोयःसाधयेद्यश्चनिःपतेत्। नवाहूतोवदेत्किंचिद्धीनोदंड्यश्चसस्मृतः १७॥

मक्ष०–जोकोई संदिग्ध अर्थको स्वतंत्र साधनकरै-और जोभागै या जो बुलाया हुआ कुछ न कहै-वह पुरुषहीन और दंड्यभी कहाहै १७॥

अभि०–(संदिग्धअर्थ) वह कि जिसधनको ऋणी अपने ऊपर देना अंगीकार न करताहो तिसको विना सबूत जोकोई धनी आदि स्वतंत्र आपही अपने अख्तियार से ऋणीको घेर बाँधकर साधनकरै अर्थात् प्रबलतासेअंगीकार करावै तो वह धनी इसअपराध में अदालतसे हीन और दंड्यभी होताहै अर्थात् फिरचाहै यह मुक़द्दमा उसका सच्चाहोतोभी वह उसधनकी ओरसे पराजयपावै और जुर्मानाभी अपराधके समान देनेका अधिकारीहोगा-और जोकोई ऋणी जिसपर नालिश दायरहुईहो और उसने आपही संप्रतिपत्ति उत्तर देकर मुद्दईकादावा अपने ऊपरदेनाअंगीकार करलिया हो-अथवा उसनेसंप्रतिपत्ति उत्तर तोनहींदियापर मुद्दईके प्रमाणोंसे उसपरदावा सच्चा

होगयाहो इसदशा में मुद्दईका धन उद्धार करना या उद्धार करनेका मार्ग निकालना उसपर योग्यथा परन्तु वह (निःपतेत्) अर्थात् ऐसाकिये विना भागजावे या छिपजावे तौवहभी पूर्ववत् हीन औरदंड्यभीहोता है-और जोकोई प्रत्यर्थी जिसपर नालिशहोनेके हेतुसे राजाने बुलायाहो वह अदालत में जाकर कुछभी नहीं बोले निपट गूंगा वनिजाय तौवह भी पूर्ववत् हीन और दंड्यभी होताहै १७॥

अधि०- इसी परिच्छेदमें पहले तीनश्लोकोंद्वारा जो पुरुष अभियोग और साक्ष्य में बिकारोंकरके दुष्ट बतलायेगये और पीछेसे अधिकोक्तिमें उनके निर्विकल्प दोषी होनेका निषेधभी कियागया किन्तु उनके लिये कुछ हीनता अथवा दंड भी नहींकहा इसलिये कहीं उनकेसमान इनकोभी हीन परिज्ञान मात्रमें गिनतीनहीं करना किंतुये दंड्यभी कहेहैं-कदाचित् दंड्यकहनेसे भी यह समुझाजाय किजैसा दशवेंमूल श्लोक की अधिकोक्तिमें नारदका वाक्यहै कि सभीअर्थ विवादों अर्थात् धनके अभियोगों में मुद्दई किसीवाक् छलरूप भूलचूकसे यद्यपि दंडपानेका भागीहोता है पर अपने मुख्यधनसे जहांतक सबूत पहुँचासके हानिनहीं पासक्ता-तैसाही यहांभी १७ के श्लोकमें सिद्धांतहोगा सोनहीं क्योंकि यहांपर दंड्यकेसिवायहीनभी कहदियाहै (हीन) अर्थात् अपने मुख्यधनसे भी हाथधोबैठना किंतु मुक़दमह से पराजय होजानी यह सिद्धांतहै और दंड जुर्माना इसके उपरांत होगा १७॥

अथयुगपत्पारस्पर्याभियोगविषयोनामत्रयोदशःपरिच्छेदः १३॥

इसतेरहवें परिच्छेदमें उस नालिशका बर्णनहोगा जिसमें दोनोंअर्थी और दोनोंप्रत्यर्थी निश्चित हों अर्थात् जो दोनोंवादी परस्पर दोनोंओरसे एकहीवस्तु पर और एकहीकालमें अभियोग लगावें तिनका विशेष इसमें कहेंगे॥

साक्षिषूभयतःसत्सुसाक्षिणःपूर्ववादिनः। पूर्वपक्षेऽधरीभूतेभवंत्युत्तरवादिन. १८॥

भक्ष०-दोनोंओरसे साक्षियोंके होनेमें साक्षीपूर्ववादीके-पूर्वपक्षके गिरजानेमें उत्तर वादीके होतेहैं १८॥

अभि०-जहांएकही कालमें दोनों झगड़ालू भाषावादी बनकर किसी धर्माधिकारी यद्वाराजाके पासजाकर आवेदन करैं तिसका (उदाहरण) जैसे किसीने कोईखेत प्रतिग्रह द्वारापाया और कुछकाल उसपर परिग्रहवान् बनारहकर पीछे किसी आवश्यकता से कुटुंबसहित देशांतरको चलागया-तिसपीछे किसीदूसरेनेभी उसीखेतको प्रतिग्रह द्वारापाया और कुछकाल परिग्रहवान् होकर देशांतरको चलागया-और पीछेकिसी कालांतरमें दोनों एकसाथ या कुछ आगेपीछे आपहुँचे औरपरस्पर दोनों में झगड़ाउठा किमेराखेत वह कहतातेरानहीं मेराहै ऐसाविवादकरतेहुये दोनों किसी धर्माधिकारी पासपहुँचे इनमें किसकीक्रिया पहलेसाधन करनी चाहिये इसअपेक्षासे

१८ के श्लोकमें कहतेहैं कि-यदिदोनों दावीदारोंके साक्षीसाक्ष्य देनेपर उद्यतहों तौ पूर्वबादीके साक्षियोंका इज़्हार लेनाचाहिये-परन्तु-जो पूर्वबादीका पक्षही अधरीभूत होजाय अर्थात् उसकापक्ष गिरजानेसे दावाउसका नामञ्जूर होजाय तौ वहीगवाह द्वितीय भाषाबादी के होजायँगे (यहांपर पूर्वबादी अथवा पूर्वदावीदार उसको नहीं समुझना जिसने राजद्वारमें पहलेजाकर दावा पेशकियाहो अर्थात् पूर्वबादी या पूर्व दावीदार उसको कहनाचाहिये जोअपना (परिग्रह)नाम क़ब्ज़ा उसखेतपर प्रतिग्रह द्वारा पहलेसे बतलाता हो और जिसका क़ब्ज़ा पीछेहुआ हो सोउत्तरबादी कहलाताहै तिसकेसाक्षी पहलेनहीं पूँछने यहसिद्धांत है-पूर्वपक्ष अधरहोजानेका अभिप्राय यहकि-जब उत्तरबादी अपने इज़्हारोंसे पूर्वबादी की भाषाको इसप्रकारसे प्रमाण करै कि सत्यहै यहबात इसनेइसखेतका प्रतिग्रह पहलेपाया और इसीका परिग्रहभी पहले उसपर हुआथा परन्तुयहीखेत राजानेइससे मोललेकर मुझको दानकरदिया या उसराजासे किसी और ने प्रतिग्रह द्वारापाया फिर उस्से मैंनेलिया-इसदशामें यदि पूर्ववादी अपना सबूतदेने में ढीलापरजाय जिस्सेउत्तरबादी का यह कथनसच्चा प्रतीतहोनेलगै तौ फिर पूर्वबादीका दावा नामञ्जूर होगा और गवाह उसकेनहीं सुनेजायँगे क्योंकि उसकापक्षअधरीभूतहोकरगिरगयाकिन्तुसाधनकरनेयोग्यनहींरहा-इसलियेअबउत्तरवादीके गवाहसुनेजायँगे(यहव्यिाख्यानइसआशयकाठीकरहै)१८

अधि०-यद्यपि सर्व साधारण व्यवहारोंमें सर्वत्र यह मर्यादाहै और बहुधा पहलेसे वर्णन भी होताचलाआताहै कि प्रत्यर्थी मिथ्योत्तर प्रवेशकरै तब तौ पूर्ववादीके साक्षी सुननेचाहिये-और जो पूर्वन्यायअथवा कारणोत्तर प्रवेशकरै तिसके हेतुसे पूर्वपक्षअधरहोजानेमें पूर्ववादीका दावानामञ्जूरहोकर उसी उत्तर बादीके गवाह सुनेजायँ-परंतु-यह मर्याद इस पारस्पर्यव्यवहारसे संबंधितकरना ठीक नहींहै (इसलियेकदाचित् कोई यह शंकाकरनाचाहै कि इन दोनों वादियोंमेंसे यह निश्चितहोजानेपर भी कि उसखेतपर जिसका कब्ज़ापहलेहुआहो उसको पूर्वबादी अर्थात् मुद्दई कल्पितकरिके दूसरेसे उत्तरलेनाचाहियेफिर क्या हेतुहै कि इस व्यवहारसे वह मर्याद संबंधित नहींहोसक्ती) इसका यह हेतुहै कि उस मर्यादके लिये यहभी आवश्यकहै जैसापीछे कहीं उसके साथमें चर्चाहोचुकाहै कि उत्तर प्रवेशहोजाने पीछे अर्थी शीघ्रही अपने प्रतिज्ञात अर्थका साधन अर्थात् प्रमाण लिखवावै अगर यहाँपर उस मर्यादसे अपेक्षाहोती तो इसकाभी कुछचर्चाकियाजाता-परतु पूर्ववादी के साक्षी पहले सुने जाने मध्ये नारदने भी स्पष्टभावसे कहाहै-यथा (मिथ्याक्रियापूर्ववादेकारणेप्रतिवादिनि । प्राङ्न्यायविधिसिद्धौतुजयपत्रंक्रियाभवेत) अर्थात्-मिथ्या उत्तरमें पूर्ववादीके गवाहों आदि क्रियाहोनीचाहिये-कारणोत्तर में प्रतिवादीके-प्राङ्न्यायोत्तरमें उसी प्राङ्न्याय

का जयपत्र जो प्रत्यर्थी के पासहो तिसका प्रवेशकरना क्रिया है कुछ गवाहों की भी ज़रूरत नहीं रहती-यह साधारणव्यवहारोंकी मर्याद कहकर पीछे से इस व्यवहारमध्ये यह कहाहै नारदने कि(द्वयोर्विवदतोरर्थेद्वयोःसत्सुचसाक्षिषु। पूर्वपक्षोभवेद्यस्यभवेयुस्त स्यसाक्षिणः)अर्थात्-जिस एकही अर्थमें दोनोंके झगड़तेहुये और दोनोंकेसाक्षी होते हुये जिसका पूर्वपक्षहो उसीके गवाह सुनेजावैं-इस कथनसे नारदने इस व्यवहारको अन्य व्यवहारोंसे विलक्षण जानिकर भिन्नरूपसे वर्णनकिया और इसीसे जुदीमर्यादा इसकी नियतकरीगई १८ ॥

अथ सपण व्यवहार विषयोनाम चतुर्दशःपरिच्छेदः १४॥

इस चौदहवें परिच्छेदमें पणसहितव्यवहार अर्थात् जिसमें हारजीतकी होड़ वदीगईहो तिसका वर्णनहोगा ॥

सपणश्चेद्विवादःस्यात्तत्रहीनंतुदापयेत्। दंडंचस्वपणंचैवधनिनेधनमेवच १९ ॥

अक्ष०-यदि विवाद सपणहोवै तिसमें हारेहुये पक्षीपर दंड और अपना पण और धनीको धन भी दिलवावै १९ ॥

अभि०-जब कोई विवाद नाम व्यवहार सपण अर्थात् पणसहितहो किंतु जिसमें होड़वदीगईहो तिसमें जब होड़वदनेवाला व्यवहार हारै तब हीनदोषका दंड जो कुछ पूर्वोक्तरीतोंसे उसपर उचितहोकर ठहरै सो और अपना पण भी अर्थात् जो कुछ होड़वदीहो सो भी उसहीनपर दिलवावै अर्थात् राजा आप लेवै और जो वह पराजित पुरुष प्रत्यर्थीहो तौ उस्से धनीनाम अर्थीका धन भी अर्थीको दिलवावै १९ ॥

अधि०-जिस व्यवहारमें एकपक्षीकोपमें भरकर यह प्रतिज्ञाकरै कि जो इस विवाद में दूसरा पक्षी अथवा कोई मुझे पराजितकरसकै तौ मैं एकसौ पण व्यवहार धनसे अधिकभरोंगा और दूसरा पक्षी कुछ भी होड़ नहीं बदै तहाँ भी व्यवहार प्रवर्तित होताहै अर्थात् यही नियम नहींहै कि दोनोंपक्षी होड़बदैं तभी उस व्यवहारकी प्रक्रिया साधनकरीजाय-परंतु-इसमें उसमें इतनाभेदहै कि जो ऐसे व्यवहारमें पणप्रतिज्ञावादी जिसने होड़वदीथी वही हीनहोजावै तौ वहदंडकेसिवायअपना पणभीदेवै-और जो उसकादूसरा पक्षीहारै जिसने होड़नहींवदीथी तौ वह केवल हीनदोषका दंडदेवै किंतु होड़नहीं क्योंकि होड़वाचक पणशब्दमें यह विशेषणहै कि अपनापणदेवै अर्थात् उसने अपने मुखसे पणकियाहो सोईदे कुछ दूसरेका कहना इसमें नहीं अपेक्षितहै-इसीहेतु से-जिसव्यवहारमें एकपक्षी सौपणकी होड़बदै दूसरा केवल पचासपणकीवदै तिसमें भी जो कोई मुक़द्दमाहारै सो अपने मुखसे बदाहुआदेवै अर्थात् पचासवाला पचास और सौवालाहारै तौ सौपणदेवै (सपणश्चेद्विवादःस्यात्) अर्थात् जो (पणसहित विवादहो) इस प्रतिज्ञासे यहसिद्धांत निश्चितहुआ कि पणके विनाभी व्यवहार सिद्ध

होताहै किन्तु यही नियम नहीं है कि प्रत्येक व्यवहारमें पणहुये विना व्यवहारकी सिद्धि न होसकै १९ ॥

अथ सभापत्यादिधर्माधिकारिणामधिकारविषयोनामपंचदशःपरिच्छेदः १५ ॥

इसपंद्रहवेंपरिच्छेदमें वे मर्यादें कहीजायँगी जिनमें ठेठअदालतकी काररवाईमध्ये राजाअथवासभापति आदि धर्माधिकारियों का अधिकार जानाजाय कि उनको क्या आचरण करना चाहिये ॥

छलंनिरस्यभूतेनव्यवहारान्नयेन्नृपः। भूतमप्यनुपन्यस्तंहीयतेव्यवहारतः २० ॥

अक्ष०—राजा छल निकालकर भूतरूपसे व्यवहारोंको देखै- अनुपन्यस्त भूतभी व्यवहारसेहीन होताहै २० ॥

अभि०—राजाआदि धर्माधिकारी को यहकर्तव्य है कि प्रमाद आदि से उत्पन्नहुये छलप्रपञ्चोंको (निरस्य) नामनिकालकर अर्थात् उनपर विशेष दृष्टि न रखकर(भूतेन) वस्तुतत्वानुसारेण अर्थात् वास्तवसे यथार्थ दशाकेअनुसार अपनी धर्मज्ञता साथ आचरणकरताहुआ व्यवहारोंको देखभालकर (नयेदन्त) अर्थात् पारलगावे किन्तु निपटारातक पहुँचावे -परन्तु- अनुपन्यस्त भूतभी अर्थात् जो वास्तवसे ठीकठीक यथार्थ दशा जिसव्यवहार की निश्चित न होसकै अथवा राजसभाकी मर्यादोंसे भी प्रमाणको न पहुँचै तो परिणाम इसकायहीहै कि वहअर्थीहो चाहे प्रत्यर्थीहो व्यवहार मार्ग अर्थात् साक्षीआदि प्रकारोंसे हीनहोजाता किन्तु जोअर्थीहुआ तो अपनेअर्थ की सिद्धिको न पहुँचा और प्रत्यर्थी हुआ तो पराजय को पहुँचा- इसलिये राजाको उचितहै कि मुक़द्दमाके वास्तवसे यथार्थ दशाओंके अनुकूल फैसलाकरै २० ॥

अधि० — ऊपरकहीहुई वार्ताकी सिद्धिकेलिये ससभ्यसभापतिको सामआदि उपायों सेऐसायत्न करनाचाहिये जिस्से अर्थीप्रत्यर्थी दोनोंसत्यबोलैं जो यथार्थ वास्तवजाना जाय और इसदशामें यहभीयोग्य है कि साक्षियोंकी अपेक्षा विनाभी और अन्यप्रमाणोंके पहुँचेविनाभी मुक़द्दमाका निर्णयहोकर फैसलाकरदियाजाय -परन्तु- यह बात कि सभीव्यवहारोंमें भूतानुसरण की रीतिसे फैसलानहींहोसक्ता क्योंकि सभीअर्थीप्रत्यर्थी सत्यनहींबोलसक्ते और न वास्तवसे यथार्थ दशापरदृष्टि पहुँचसक्तीहै इसलिये जब यहवास्तवदशा असम्भवहो तब साक्षी आदि प्रमाणों के प्रकारसे निर्णयकरना चाहिये यह(अनुकल्पहै)औरवह वास्तवदशा तत्त्वरूपहै सो मुख्यहै-सोई यहशास्त्रसे भी प्रमाणहै कि(भूतच्छलानुसारित्वात् द्विगतिःसमुदाहृतः। भूतंतत्त्वार्थयुक्तंयत्प्रमाणाभिहितंछलम्) अर्थात् भूतानुसारित्व से और छलानुसारित्वसे व्यवहार दोगति वालाकहलाता जैसापहलेसे दोनोंप्रकार वर्णनहोचुकेहैं तिनमें भूतानुसारीव्यवहारवह कहलाता जिसमें वास्तवसे तत्त्ववार्ता प्रकटकरीजाय और उसीकेअनुसार फैसलाभी

कियाजाय और दूसरा छलानुसारी व्यवहार वह कि जिसमें तत्त्ववार्ताके प्रकट न होने से साक्षीआदि प्रमाणों द्वारानिर्णयकियाजाय- इनमेंभूतानुसारी व्यवहारमुख्य और छलानुसारी उसकाअनुकल्पहै क्योंकि छलानुसारीमें जवसाक्षीआदि प्रमाणोंसेनिर्णय कियाजाता तबकभीतौ यथार्थ निर्णयहोसक्ता और कभीकभीसाक्षी आदिप्रमाणोंके व्यभिचारसे यथार्थनिर्णय नहींहोसक्ता २० ॥ अवनीचेके श्लोकमें इसीवीसवेंश्लोक उत्तरार्द्धका उदाहरण स्पष्टभावसे कहतेहैं ॥

निह्नुतेलिखितंनैकमेकदेशेविभावितः। दाप्यःसर्वंनृपेणार्थंनग्राह्यस्त्वनिवेदितः २१ ॥

अक्ष०-लिखेहुये अनेकअर्थके निह्नवकरनेसे एकदेशमें विभावितकिया हुआ राजा करकेसबधन दिलवानेयोग्यहै -पर अनिवेदित ग्राह्यनहींहै २१ ॥

अभि०-इसकेपहले बीसकेश्लोकमें उत्तरार्द्धसे यहकहाथा कि (भूतमप्यनुपन्यस्तं हीयतेव्यवहारतः)अर्थात् जो यथार्थवार्तासभाकी आचरणसम्बन्धी मर्यादोंसे प्रमाण को न पहुँचै तौमुक़द्दमा सिद्ध न होगा- सो इसवार्ताका उदाहरण अब कहतेहैं-कि- जिस व्यवहारके दावेमें अर्थीने अनेक अर्थ सोनाचाँदी वस्त्र आदि लिखेहों और प्रत्यर्थी उसके उत्तरमें निह्नव नाम अपह्नव करै अर्थात् इनकारी उत्तर देवै कि मुझ पर कुछ भी इसका नहीं चाहिये और इसदशामें अर्थी उसपरकोई एकदेश कहिये एक वस्तु उनमेंसे सोना या जो कुछ अपने साक्षी आदि प्रमाणोंद्वारा सबूतको पहुँ- चावै या किसीप्रकार उस्से अंगीकार करावै तौ फिर उसका सभीधन चाँदी आदि जो कुछ उसने पहले लिखवाया हो राजा प्रत्यर्थीसे दिलावै परन्तु अनिवेदित नहीं दिलावै अर्थात् जो पीछे अर्थी यह कहनेलगै कि एक अमुक वस्तु और भी लिख- वानी रहगई जो पहले मैं भूलगया था तौ यह नहीं दिलानी २१ ॥

अधि०-यह बात भी कुछ निर्विकल्प नियमसे निर्णीत नहीं करीगई है कि सब अनेक धनोंमेंसे किसी एकधनकी अपेक्षा प्रत्यर्थीका झूँठानिश्चित होना अन्यधनों की अपेक्षा भी वह झूँठा निर्विकल्पहै-और यहभी-कि अर्थी एकधनकी अपेक्षा सच्चा निकला इससे सभीधनोंकी अपेक्षा वह सच्चाहै-बरन-योगीश्वरने इस कथन से यह सिद्धांत रक्खाहै कि तर्कापर नाम संभावना प्रत्ययके आश्रय होताहुआ राजा उसे सबधन दिलवावै क्योंकि उस व्यवहारका यथार्थ रूप तौ जानानहीं जाता और इस हेतुसे किसी विवादका निपटारा न करना यह भी कोई धर्म नहींहै इसलिये इसन्याय से निपटारा करै कि यदि एक बातमें अर्थी सच्चाहै तौ दूसरीबातमें भी उसके सच्चे होनेकी संभावना देख परतीहै ऐसेही प्रत्यर्थी यदि एकबातमें झूँठा ठहरा तौ दूसरी में भी झूँठा होना संभवितहै-इसप्रकार-धर्मशास्त्रके आशयसे तर्कवाक्यके अनुसार निर्णय करनेमें यथार्थ से अन्यथा भी व्यवहार का निपटारा होजाय तौ भी व्यवहार

दर्शी अर्थात् हाकिमअदालत किसीप्रकार दोषभागी नहीं होसक्तेहैं-क्योंकि-इसमें गौतम का वाक्यभी प्रमाणहै कि-यथार्थ वस्तु या यथार्थ वार्ता जो प्रपंचोंसे गूढ़हो तिसको साक्षात् प्रकाश करनेकेलिये तर्कवाक्य जो है सो एकपूरा उपायनियत किया गयाहै तिसका आश्रय लेकर जहां जैसा अवरहो तैसा निपटारा करै-यह कहकर पीछेसे गौतमने यह भी कहाहै कि ऐसी दशाओंमें राजा और आचार्यभी यद्यपि कोई व्यवहार विपरीत निर्णय को पहुँचे पर यह दोनों अनिंद्यहैं इनको कोई दोष नहीं लगता-और ऊपर कहीहुई यह मर्याद कि अनेक वस्तुओंकी नालिशमें साफ़ इनकार करनेवाले प्रत्यर्थीपर एक अंश कोईसा उन वस्तुओंमेंसे प्रमाणको पहुँचा-याजाय जिस्से वह उस अंशकीअपेक्षा झूँठाठहरे तौ इससे यहसिद्धांत नहीं समुझ-नाचाहिये कि उस्से प्रत्यर्थीका केवल वचन अस्वीकार कियाजाय क्योंकि उसमेंस्पष्ट यह लिखाहै कि एक अंश उसपर प्रमाणको पहुँचै तौ सभी धन राजा उसपर दिल-वावै-और यद्यपि कात्यायन का यह वाक्यहै कि(अनेकार्थाभियोगोपियावत्संसाधयेद्ध नी। साक्षिभिस्तावदेवासौलभतेसाधितंधनम्)अर्थात्-जिसनालिशमें अनेकअर्थोंका अभियोग हो उसमें अर्थी वहीधन पावैगा कि जो २ वस्तु साक्षियों अथवा और किसी प्रमाणसे सम्यक् साधन करसकै-सो यह मर्याद उस व्यवहारसे सम्बन्ध रखती है कि जिसमें पिता आदि किसी स्वर्यातने ऋण लियाहो और पुत्रादिकोंपर नालिश करीजाय-तहां ऐसी दशामें यह मर्यादभी निर्विकल्पहै जब किसी पुत्रादिक पर पिता आदिके लियेहुये ऋण मध्ये अनेक अर्थोंका अभियोगहो और पुत्रादिक प्रत्यर्थी उसके उत्तरमें यह कहै कि मैं जानता नहीं मेरे पिता या पितामहने यह धन इससे लियाथा या नहीं तौ ऐसी इनकारसे वह अपह्नववादी नहीं ठहरसक्ता-और जो उस प्रत्यर्थीपर पूर्वोक्त रीतिके अनुसार एक अंश कोई सा किसी प्रमाणसे साबित होजा-वै जिस्से वह झूँठाठहरे तथापि झूँठा नहीं कहलासक्ता और झूँठबोलनेका अप-राधी भी निश्चित नहीं होसक्ता क्योंकि वह ऋणठेठ उसके हाथका लिया नहींहै इस से नहीं मालूम कि वह उसएक अंशकाभी भेदूथा या नहीं-इसहेतुसे सर्वथा निश्चित हुआ कि जो मर्यादा इस २१के मूल श्लोकमें कहीगई सो इसकात्यायनजीके वाक्य से अपेक्षा नहीं रखती क्योंकि यहकात्यायनजी का वाक्य अपह्नववादमें गिनती नहीं है और इसीहेतुसे इसमें तर्कापर नाम संभावना प्रत्यय भी नहीं संबंधितहोसक्तीजो अपह्नववादमें कहीगई-इसलिये यहकात्यायनजीका वाक्य सामान्यविषयपर आरूढ़ और अज्ञानोत्तरमें वर्त्तमान है और निह्नवोत्तर संबंधी मर्याद जो इसी २१ के मूल श्लोकमें कहीगई वह विशेष शास्त्रमें गिनती और मिथ्योत्तर में वर्त्तमानहै (शंका) कात्यायनजीने यह भी कहाहै कि (ऋणादिषुविवादेषुस्थिरप्रायेषुनिश्चितम्। ऊनेवा

प्यधिकेवार्थेप्रोक्तेसाध्यंनसिद्ध्यति) अर्थात्-ऋणादि व्यवहार जो स्थिरप्रायहों उनमें यह मर्यादहै कि दावेके मुख्य धनसे न्यून अथवा अधिकधन कहाजाय अर्थात् साक्षियों अथवा और किसी प्रकारसे कोई एक अंश प्रमाण को पहुँचै या उससे कुछ अधिक प्रमाण को पहुँचै जितने का दावा अर्थीने कियाथा तौ वह दावा यथावत् प्रमाणको पहुँचा निश्चिंत नहींहोता अर्थात् वह कुलदावा असिद्ध समुझा जायगा-तौ फिर किसी प्रकारसे भी एक अंशके प्रमाण होजानेपर सबधन सिद्धहुआ नहीं समुझा जासक्ता जैसा इसी २१ के श्लोक में वर्णन होचुका है (समाधान) यद्यपि कात्यायनके उक्त वाक्यका अभिप्राय यहयथार्थ है कि जब कुलदावेकी सिद्धिकी आवश्यकता में उस दावेका एकही अंशगवाहों या और किसी प्रकारसे सिद्धिको पहुँचै अथवा दावेसे अधिक सिद्धिको पहुँचै तौ इसबातके कुलदावेका सिद्धहोना योग्यता में नहीं आसक्ता-तौभी-इस कथनकी विशेषता से कि वह दावा निश्चितरूपसे सिद्ध हुआ नहींसमुझाजाता अर्थात् अनिश्चितरूपसे समुझाजाता किंतु उसमें संदेह शेष रहजाताहै इसलिये उसके और भी प्रमाण वा सबूतोंपर ध्यान धरना चाहिये (पुनः शंका) कात्यायनजीका वाक्य जो ऊपर शंकाके हेतुसे लिखागया उसमें कहीं भी इस बातकी समस्या नहीं है कि उसके और भी प्रमाण वा सबूतोंपर ध्यान करनाचाहिये. (समाधान) ठीकहै उस वाक्यमें यह सिद्धांत नहीं पायाजाता परन्तु अभी योगीश्वर के बीसवें मूल श्लोकमें पूर्वार्द्धसे कहचुके हैं कि छलके ऊपरसे दृष्टिको निवृत्त करिकै वास्तव रूपसे राजा निपटाराकरै इसलिये राजा को यह उचित है कि यद्यपि इसमें न्यून अथवा अधिक धन साबित होजाने का छल भी देखपरा तथापि उसछलकी ओर ध्यान न रखकर उस विवाद व्यवहारके अन्य प्रमाणोंको ढूँढ़ै-परन्तु यह मर्याद साहस आदि फ़ौजदारी के विवादोंमें नहीं है अर्थात् फ़ौजदारीके मुक़द्दमातमें अगर उस दोषका एक अंशभी उन गवाहोंसे प्रमाणको पहुँचै कि जो गवाह संपूर्ण दोषके प्रमाणहेतु से प्रविष्टहुयेहों तौ इसदशामें वह संपूर्ण दोष प्रमाण को पहुँचा समुझा जायगा-क्योंकि साहस आदि फौजदारीके विवादोंकी सिद्धि उतनेही प्रमाणसे होजातीहै ॥ इसीवार्त्तामें कात्यायनका यह वाक्यभी प्रमाणहै कि (साध्यार्थांशेपिगादितेसाक्षिभिःसकलंभवेत्। स्त्रीसंगेसाहसेचौर्येयत्साध्यंपरिकीर्तितम्) अर्थात्-एकतौ परस्त्री संग और साहस विषशस्त्र आदि और चोरी इन मुक़द्दमातमें जो गवाह दिये गये हों उनके द्वारा उसीसाध्य दोषका कोई एक अंशभी कहकर सिद्ध कियाजाय तौ वह सकलसाध्य दोष सिद्धहुआ समुझाजाना उचितहै (शंका) भला यह सब सिद्धांत ठीकहैं और समुझेगये परन्तु एक यह बड़ी शंका खड़ीहोतीहै कि एक तौ योगीश्वर का यही इक्कीसवां मूलश्लोक जिसमें अनेक अर्थोंकी लिखीहुई नालिशमें एक अंश

के सिद्ध होजानेपर सबधन दिलवाना धर्म मर्यादा कही-दूसरा इसी अधिकोक्ति में कात्यायन ऋषिकावाक्य जिसमें अनेक अर्थोंकी नालिशमें जितना अर्थ अर्थीसिद्ध करवासकै उतनाही दिलवायाजाय किन्तु सब नहीं यह भी धर्ममर्यादा कही-तौ फिर इन दोनोंके होनेमें परस्पर विरोधहुआ और उससे उसकाबाध उस्सेउसका बाध उत्पन्नहोनेसे दोनोंकी अप्रमाणता क्यों न होजानी चाहिये अर्थात् यह दोनों वाक्य प्रमाणकरिबे योग्यनहींरहे फिर विषय व्यवस्था क्याचीजहै जिसका सहारा लेकर निर्वाह करतेहो कि वह वाक्य उस दशामें और यह अमुकदशामें प्रामाण्य होसक्ता है इस निर्वाहके सहारासे दोनोंका विरोध नहीं शांत होसक्ता-इसका समाधान आगे २२ के श्लोकमें यथावत् और विस्तार सहित उसकी अधिकोक्ति पर्यंत देखो२१॥

स्मृत्योर्विरोधेन्यायस्तुबलवान्व्यवहारतः । अर्थशास्त्रात्तुबलवद्धर्मशास्त्रमितिस्थितिः २२ ॥

मक्ष०-दो स्मृतियों के विरोधमें व्यवहार करके न्याय बलवान्है (परन्तु) अर्थशास्त्रसे धर्मशास्त्र बलवान् यह मर्यादाहै २२ ॥

मभि०- जहां धर्मशास्त्रकी दो स्मृतियों अर्थात् दो वाक्यों में परस्पर विरोध आताहो तहां उस विरोधके परिहार के लिये विषय व्यवस्थापन आदि में उत्सर्ग और अपवाद आदि लक्षणवाला न्याय जो है सोई बलवान् कहिये अतिसमर्थ है अर्थात् जब धर्मसंबंधी दो वाक्यों के परस्पर विरोध हों तब उन प्रत्येकपर भिन्न भिन्न ध्यान लगाकर विरोध उनका शांत करना चाहिये और जो वाक्य उन में से सामान्यशास्त्र या विशेषशास्त्रकी तर्कना से अथवा और किसी यथावत् हेतुसे अधिकतर अपेक्षा रखताहो सर्वथा वहीप्रमाण करिबे योग्य होताहै (कदाचित् यह पूंछाजाय कि वह न्याय जिसकी चर्चाहोरही है अथवा यह अधिकतर अपेक्षा जिस का चर्चा इसी ऊपरली पंक्तिमें हुआ किस रीतिसे जानाजाय इसका प्रत्यय कहना चाहिये) सो कहते हैं-कि व्यवहारतः व्यवहारसे और वृद्धव्यवहारसे अर्थात् वर्त्तमान व्यवहारके स्वरूपसे और पूर्वकालीन वृद्धों के सुपरीक्षित व्यवहार मार्गसे अन्वय और व्यतिरेक लक्षणके द्वारा समुझा जाताहै-इस हेतुसे जिस विरोध दशाका चर्चा चलाआताहै उसमें विषय व्यवस्थाही ठीकहै अर्थात् उस विरोधमें मर्यादोंको भिन्न भिन्न एक एक पर संबंधित करना चाहिये जैसा पहले कहचुके हैं और इसीप्रकार औरभी सब दशाओंमें अधिकारहै कि जिन विशेष दशाओंसे वे विषय व्यवस्था विकल्प आदिकी मर्यादें संबंधित होसक्तीहों उनसे संबंधित करीजायँ-परन्तु इसीप्रकारसे सर्वत्र इसबातका प्रसंग करनेमें एक अपवादभी कहते हैं-अर्थात्-दो वाक्योंके विरोध मध्ये जो मर्याद सर्व साधारण भावसे यहांपर कही गई तिसमें एक छूटभी कियेदेते हैं क्योंकि सर्वत्र ऐसा नियम नहीं होसक्ता (अपवाद-छूट-)अर्थात्

(इस्तरस्नाय) सो यह बात इसी श्लोकमूलके दूसरे अर्द्धासे कहते हैं कि-अर्थशास्त्र की अपेक्षा धर्मशास्त्र वलवान्है यह एक मर्यादा परिनियमित है-अर्थात्-धर्मशास्त्र के अंतर्गत आचाराध्यायमें राजनीति प्रकरणभी आयाथा उसीको अर्थशास्त्र कहते हैं और अर्थशास्त्र धर्मशास्त्रकी अपेक्षामें तुच्छ समुझागयाहै उशनानेभी अर्थशास्त्र को तुच्छ वर्णन कियाहै यद्यपि उन्हीं आचार्योंने धर्मशास्त्र कहा उन्हीं ने अर्थशास्त्र भी कहा इसलिये दोनोंके स्वरूपमें कुछ भेद नहीं प्रतीत होता क्योंकि आचाराध्यायके अंतमें राजनीति प्रकरणके देखनेवाले सिद्धांतको समुझे विना यही जानसक्ते हैं कि यहभी धर्मशास्त्रहै तथापि धर्मशास्त्रकी प्रधानता और अर्थशास्त्रकी अप्रधानतासे धर्मशास्त्र वलवान्है क्योंकि धर्मशास्त्रकी प्रधानता इस व्यवहाराध्यायके प्रारम्भमें पहलेही श्लोकसे प्रदर्शित होचुकी है कि राजा व्यवहारोंको धर्मशास्त्रके अनुसार देखै किंतु अर्थशास्त्रके अनुसार नहीं-इस हेतुसे जिस किसी वार्त्तामें ऐसे दो वाक्योंसे विरोध आवै कि उनमें एक धर्मशास्त्रका और एक अर्थशास्त्रका हो तहां धर्मशास्त्रकी प्रधानतासे अर्थशास्त्रका वाध होजाताहै अर्थात् नतौ उसके लिये विषय व्यवस्था और न उसमें कुछ विकल्प होसक्ताहै २२॥

अधि०-कोई पूँछे कि इस वार्त्तामें क्या उदाहरणहै तिसका (दृष्टांत) कहते हैं-यथा गुरुंवावालवृद्धौवाब्राह्मणंवाबहुश्रुतम्। आततायिनमायांतंहन्यादेवाविचारयन्॥नाततायिवधेदोषो हंतुर्भवतिकश्चन। प्रच्छन्नंवाप्रकाशंवामन्युस्तंमन्युमृच्छति(तथा)आततायिनमायांतमपिवेदांतगंरणे। जिघांसंतंजिघांसीयान्नतत्रब्रह्महाभवेत्) इत्यादि अर्थशास्त्रके अनेक वाक्यहैं-अर्थात्-अर्थशास्त्रमें इन वाक्योंसे यह आज्ञाहै कि गुरु या बालक या बूढ़ा या बहुश्रुत ब्राह्मणभी आततायी वनिकर किसीको मारनेपर उद्यत होकर सन्मुख आवै तौ उसको शोच विचार किये बिनाभीमारडालै तौ वह दोषीनहीं ठहर सक्ता-क्योंकि आततायीके वध करने में हंताको कोई दोष नहीं होता-बरन यह विशेषता कि उस आततायीका वह क्रोध जिसके द्वारा मारने आयाथा चाहे प्रच्छन्न अर्थात् गुप्तहो चाहे प्रकाशमान प्रत्यक्षहो परन्तु क्रोधका प्रतिकारक्रोध होताहैतथा-कदाचित्-रणमें कोई आततायी वनिकर सन्मुख आवै चाहे वह वेदांतपारगभी हो पर मारनेकी इच्छाकरते हुयेको मारनेका उपाय आपभीकरै तौ इसकर्मसेब्रह्महत्याका दोषी नहीं होता-इत्यादि औरभी अनेक वाक्य जानो सो यहसव दृष्टांत अर्थशास्त्र के हैं-और-धर्मशास्त्रमें ब्रह्मवधके प्रायश्चित्तको रूपडौल कहकर पीछे यह कहाहै कि-इयंविशुद्धिरुदिताप्रमाप्याकामतोद्विजम् । कामतोब्राह्मणवधेनिष्कृतिर्नविधीयते) अर्थात्-यह (विशुद्धि) नामप्रायश्चित्त जोकहा सो उसदशामें किजो कामनाविना किसी धोखेसे ब्राह्मणकोमारडालै क्योंकि कामनासेचाहकर ब्राह्मणकावधकरनेमें (निष्कृति)

नामप्रायश्चित्तनहींकहा अर्थात् इसपातकसे वहपातकी किसीप्रकारसेभी शुद्धनहीं होसक्ता-इत्यादि औरभी नानाभाँतिके अनेकवाक्य धर्मशास्त्रमेंप्रसिद्धहैं-तो प्रत्यक्ष इनदोनोंप्रकारोंमें परस्परविरोधहै परंतु इनमेंधर्मशास्त्रकी आज्ञाबलवान्है और अर्थशास्त्रकी उसकेआगे निर्बलहै यहमर्यादाठीक-परन्तु-पहलेसे जिसबलाबल के विचारकाचर्चा यहाँपर बिरोधमध्ये चलाआताहै कि भिन्न२ दोनोंपरध्यानकरै और अन्वय तथा व्यतिरेकद्वारासमुझै सो इनदोनोंकेविरोधमें उसअन्वय और व्यतिरेक की अपेक्षानहींहै-यही उस (अपवादनामझूठ) कास्वरूपहै-क्योंकि-यह दोनोंप्रकारके वाक्य जो ऊपरदृष्टांतसेकेहगये कुछएकहीप्रयोजनसे सम्बन्धितनहींहैं किन्तु विषय दोनोंकाभिन्नहै इसलिये विरोधभी इनमेंनहींकहसक्ते और बिरोधकेअभावसे इनके परस्पर बलाबलकेविचारकीभी आवश्यकतानहींहै कि इनमें अन्वय और व्यतिरेक लगाजाय(शंका)भलाफिरक्याइसबातसे सिद्धिपाईगई किन्तु इनदोनोंदृष्टांतोंका लिखनाभी इसजगहपर तुषकण्डनवत्होगया जबकि यहाँपर धर्मशास्त्रकाचर्चाहै और उसीके दोवाक्योंमें बिरोधआवै तहाँअन्यय और व्यतिरेकलगानाचाहिये तो फिर उसकेसाथमें अर्थशास्त्रकादृष्टांतभी न देनाचाहिये औरभी यहशंकाहै कि जबदोनों काविषय भिन्नसमुझागया तौफिर अपनेअवसरपर अर्थशास्त्रभीबलवान्होगा और इसीअधिकोक्तिकेप्रारम्भमें दो तीनकेश्लोक जो अर्थशास्त्रकेदृष्टांतसे लिखचुकेहैं वे भी अपनेअवसरमेंबलवान्हैं अर्थात् जोकुछ भावार्थउनमेंकहागयाहै सो सबसच्चाहै और उसीप्रकारबर्तावाभी कर्तव्यहोगा तौफिर धर्मशास्त्रकीबलवान्ता कहाँरही क्योंकि जहाँ केवल धर्मशास्त्रकोविषयपरचर्चाहोगा तहाँ उसकीबलवान्तासमुझीजायगी अन्यथा अपने २ घरकेसभीराजाहैं किन्तु जैसा यहअपनेविषयपरबलवान्है-तैसा वह अर्थशास्त्रभी अपनेविषयपरबलवान्है फिरविशेषताइसमें क्यारही(समाधान)सुनो अपने२घरकेसभीराजानहीं और धर्मशास्त्रमेंयहविशेषताहै कि इसी अधिकोक्तिकेप्रारम्भमें दो तीनकवाक्य अर्थशास्त्रके (गुरुं वा बालवृद्धौ वा) इत्यादि लिखे गये सो इसलियेनहींहै कि गुरु अथवा बालकवृद्धआदि जो अत्यंतअवध्यप्रसिद्धहैं तिनकावधकरडाले किन्तु इसलियेहैं कि जोवातों अबआगेलिखकरदर्शातेहैं तिसका अर्थवाद अर्थात् दृढ़ता उनवाक्योंसेपाईजाय यहसिद्धांतहै-यथा(शस्त्रंद्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मोयत्रोपरुध्यते)अर्थात्-जहाँधर्मकाउपरोधनामअनुरोधआततायियोंकरकेहोताहो तहाँ उसधर्मकीरक्षाहेतुसे ब्राह्मणोंकोभी शस्त्रबांधने उचित हैं (यहसम्पूर्णवार्ताकह कर पीछेयहभीकहागयाहै कि) आत्मनश्चपरित्राणेदक्षिणानांचसंगरे । स्त्रीविप्राभ्युपत्तौचघ्नन्धर्मेणनदण्डभाक्-अर्थात्-जो मनुष्य अपनेशरीरकी रक्षा अथवा दक्षिणा आदि सामग्री जो यज्ञ पूजन आदिकेलिये संग्रहकरीहुई विनाशहुई जातीहो तिस

की रक्षा या युद्ध में या स्त्री और ब्राह्मणों के प्राणबचाने में उचित मर्यादा से आततायीकावध करडालै तौ वह दंडभागी नहीं होसक्ता-सो-इस बातकी प्रमाणता के निमित्त से वह पूर्वोक्त वाक्य कहे हैं कि जब गुरु आदि जो निपट अवध्य हैं उनका भी आततायी होजानेपर सन्मुख आनेसे वधकरना कहाहै तौ फिर अन्य साधारण आततायियों के वध करने में क्या संदेह अर्थात् अवश्यही उनका वध उचित है (यह सिद्धांत है) परन्तु यह सिद्धांत नहीं है कि वे गुरु आदि उनवाक्यों के अनुसार निर्विकल्प मारडालेजायँ-और इस सिद्धांतका प्रमाण जो कोई ढूँढ़ाचाहै तौ कहीं दूरजाकर ढूँढ़नेकी अपेक्षा नहीं किंतु उन्हीं वाक्यों से यह सिद्धांत प्रत्यक्ष है अर्थात् उनतीनश्लोकों मेंसे पहला वाक्य जो दो श्लोकोंका है उसमें (गुरुंवा बालवृद्धौवाब्राह्मणंवाबहुश्रुतम्) इसप्रकार (वा) शब्दका प्रयोग जो बारम्बार सब के साथकियाहै) और (आततायिनमायांतमपिवेदांतगंरणे) इस दूसरे वाक्य में (अपि) शब्दका प्रयोग वेदांतगपुरुष के साथ किया है तिसके अभिप्राय से प्रत्यक्ष वह सिद्धांत प्रतीत होताहै कि गुरु आदिका निर्विकल्प वध करना नहीं कहा किंतु केवल साधारण आततायी के बधकरनेमध्ये दृढ़ता करीहै-औरयहीदृढ़ता सुमंतु के वाक्यसे भी दृढ़तर प्रत्यक्ष है-यथा-(नाततायिवधेदोषोऽन्यत्रगोब्राह्मणात्) अर्थात्-आततायीके वधकरने में दोष नहीं है परन्तु गोब्राह्मण से अन्यत्र किंतु जो गऊ आततायी पनकरै दृष्टांत जैसे किसीके पेटमेंसींग मारै तौ उसगऊका बधकरने में दोष लगताहै ऐसेही ब्राह्मणकेभी-जब कि साधारण ब्राह्मण मात्रके लिये सुमंतुने निषेध करदिया तौ फिर गुरुआदि और वेदांत पारग आदिका बधक्योंकर संभव है-और मनुकेभी इसवाक्यसे इनका वधनहीं निश्चित होता-यथा (आचार्यंचप्रवक्तारंमातरंपितरंगुरुम्। नहिंस्याद्ब्राह्मणान्गाश्चसर्वांश्चैवतपस्विनः)अर्थात्-मनुनेयहकहा है कि-आचार्यको वक्ताको माताको पिताको गुरुको ब्राह्मणोंको और सभीप्रकार के तपस्वियों कोभी इनकोकभी नहीं मारै और न किसीप्रकारकी पीड़ादेवै-कदाचित्-इस वाक्यमें यह (शंका)करीजाय कि मनुने यह नहीं इसमें कहा कि वे आचार्यआदि आततायी बनिकर सन्मुख अपनेको मारनेआवें तब न मारै किंतु सामान्यभावसे यह कहाहै कि उनको मारै नहीं तौ इससामान्यता से यह सिद्धांत प्रकट होताहै कि जो आततायी बनिकर मारनेआवें तौ फिर मार देवै सो इसशंका का (समाधान) यहीहै कि मनुका यह वाक्य उसदशामें अर्थवान् होसक्ताहै कि यद्यपि इसमें आततायी बनिकर चढ़आनेकी चर्चानहीं है तथापि उसका अर्थ उसीदशासे सम्बन्धित कियाजाय जो दशागुरु आदिके आततायी होजानेपर उनकावध करनेमें निषेधकरीगई हो-क्यों कि-जो ऐसानहीं कियाजाय तौ फिर मनुकायह वाक्यही निरर्थक होजाय अर्थात् जब

धर्मशास्त्रोंमें सामान्यभावसे हिंसामात्रका प्रतिषेध घंटाघोषवत् प्रसिद्धहै चाहै किसी प्राणीकी हिंसाहो उसमें दोष अवश्य होताहै परन्तु जो वेही प्राणीआततायी बनिकर आवैं तब उनकी हिंसाकरनेसे दोष अपनेको नहींलगता यह सिद्धांतठीकहै-तौ फिर आचार्यआदि जो देवकल्पहोतेहैं तिनकेलिये यह कथन अनुचितहै कि सामान्यभाव की दशामें उनको न मारै पर आततायी बनिकर चढ़िआवैं तौ उनकोभी मारडालै किंतु इस कथनसे उनका गुरुत्व यद्वा देवकल्पत्वभी फिर कहांरहा जैसे अन्यप्राणी तैसे वे भी ठहरगये और जबसबके समान ठहरे तौ फिर उनकेलिये जुदावाक्य भी कहनेकी आवश्यकता नहीं थी जोकि सामान्यभावसे हिंसामात्र का प्रतिषेध सबके लिये होचुकाथा वहीवाक्य इनके लियेभी ठीक था क्योंकि जुदा वाक्य सामान्य और विशेष व्यवस्था पर कहाजाताहै इसलिये मनुकेभी वाक्यमें सिद्धांतरूप अर्थ यहीहै कि जो आचार्यआदि कोई आततायी भी होजायँ तौ भी उनकी हिंसा न करनीचाहिये-और भी-उन्हीं पूर्वोक्त तीनों श्लोकमेंसे बीचका श्लोक जिसका पहला अर्द्धायह कहा था कि (नाततायिवधेदोषोहंतुर्भवतिकश्चन) अर्थात् आततायीके वधकरनेमें हंता को कुछदोष नहीं होता-सो यह वाक्यभी ब्राह्मणआदि देवकल्प शरीरोंके सिवाय अन्य साधारण प्राणियों के विषयपर घटताहै-क्योंकि-इसमें केवल आततायीका चर्चाकियाहै और आततायीमुख्यतासे छःप्रकारके प्रसिद्धहैं-यथा(अग्निदोगरदश्चैवशस्त्र पाणिर्धनापहः।क्षेत्रदारहरश्चैवषडेतेआततायिनः)अर्थात्-आगलगानेवाला-बिषदेने वाला-हाथमेंशस्त्र लेकर मारनेवाला-धरतीछीनलेनेवाला-स्त्री हरलेनेवाला-यह छःप्रकारके आततायी कहलाते हैं-इनके सिवाय और प्रकारकेभी आततायी होतेहैं और उनमें कोई २ इनमेंकाभी गिनती आजाता है-यथा (उद्यतासिर्विषाग्निश्चशापोद्यत करस्तथा।आथर्वणेनहंताचापिशुनश्चापिराजनि ॥ भार्यातिक्रमकारीचरंध्रान्वेषणतत्परः।एवमाद्यान्विजानीयात्सर्वानेवाततायिनः) अर्थात्-एकतौ-तलवारउद्यतकरनेवाला-विषदेनेवाला-अग्नि देनेवाला-ऊँचाहाथ उठाकर शाप देनेवाला-अथर्व वेदोक्त मंत्र यंत्रादिकोंकेअभिचारया इन्द्रजाल आदि कर्मसे मारनेवाला-राजामें पिशुनता अर्थात् उसकी जासूसी करके भेद उड़ानेवाला-भार्याऽतिक्रमकारी अर्थात् छिनरापुरुष-सभी सज्जनोंके छिद्र ढूंढ़ने में तत्पर होनेवाला-ऐसेही इनको आदि लेकर और भी इस प्रकारके कुमार्गी जो संसारमें प्रसिद्ध हों तिनसभी को आततायी समुझौ यह सब सामान्यता से आततायी दर्शाये गये और इन्हीं के निमित्त में वहबात कही गई है कि आततायी का वध करनेवाला दोषी नहीं ठहर सक्ता-तौ फिर-पूर्वोक्त गुरु या आचार्य और ब्राह्मण आदि जो देव कल्प शरीर होते हैं कदाचित् आततायी भी होजायें तब उस दशामें जिसके मारने पर उद्यत हुयेहों वह अपने प्राण आदि की

रक्षाके लिये उनका सामना अर्थात् मुक़ाबिला करिकै उन्हें निवारण करै हटावै या शांत करै तब तौ दोषी नहीं होता क्योंकि इतना करने का अधिकारहै इसलिये कि इतना किये विना वे नजानैं क्या कुछ अनर्थ कर डालैं परंतु हिंसा उनकी नहीं करै और न करने का विचारमनमें करै यह सिद्धांतहै-कदाचित् इसपरभी- वे ब्राह्मण आदि अवध्य आततायी जिनके मारने का विचार अपने मनमें नहीं था परंतु निवारण करते हुये प्रमाद् गफ़लत आदि से विपत्ति को प्राप्तहोजायँ अर्थात् निवारण करनेवाले के हाथसे हिंसित हो जायँ तौ फिर इसका वहुत वड़ा प्रायश्चित्त नहीं किन्तु थोड़ा प्रायश्चित्त करनेमें इस अपराध का शोधन होजाताहै परंतु राजदंड थोड़ाभी उसके लिये नहीं कहा यह सर्व था निश्चितहै-जबकि सर्वथा यह सिद्धांत निश्चित हुआ जो इसी २२ की अधिकोक्तिके प्रारंभसे यहाँ तक वर्णन कियागया जिसके उदाहरण के दृष्टांत मध्ये धर्मशास्त्र और अर्थ शास्त्रके वाक्य जो विरोधता की दृष्टिसे कथन कियेगये परंतु उनमें परस्पर विरोधता नहीं पाईगई अर्थात् दोनों का एकही आशय ठहरा-तौफिर-इस अधिकोक्तिके लेखसे यहाँतक कोईसी सिद्धि अबतक न पाईगई अर्थात्इस उदाहरणका इतना सबलेख यहाँतक व्यर्थ सा प्रतीत होनेलगा-इसलियेयह आवश्यकहै कि अबदूसरा उदाहरण इसमें कहना चाहिये जिस्से उसपूर्वोक्तविरोधता का दृष्टांत समुझाजाय-सोअब कहते हैं-यथा (हिरण्यभूमिलाभेभ्योमित्रलब्धिर्वराय तः। अतोयतेततत्प्राप्तौ-इत्यर्थशास्त्रे) अर्थात्-हिरण्य सुवर्ण आदि धन और धरती इन दोलाभोंसे भी मित्र लाभ अधिक श्रेष्ठ होताहै इसलिये नवीन मित्रकी प्राप्तिमें यत्न करै-यह वाक्य अर्थ शास्त्रकाहै अर्थात् आचाराध्यायके अंतमें राजनीति प्रकरण संबंधी ३५१ श्लोकमें कहाहै-और-दूसरा यह वाक्य धर्मशास्त्रका कि जो इसी व्यवहाराध्याय के प्रारंभमें प्रथम श्लोक जिसका भावार्थ यह कहाहै कि-राजा व्यवहारों को धर्मशास्त्रके अनुसार क्रोध लोभसे वचता हुआ देखै-सो इन दोनों वाक्योंमें परस्पर कहीं २ किसी विषय पर विरोध होताहै (दृष्टांत) जैसे पूर्वोक्त समस्त रीतोंके अनुसार चारपादवाला व्यवहार अदालत में प्रवर्त्त मान होनेपर जब राजा अथवा हाकिम अदालत अर्थशास्त्रके अनुसार यह वात शोचै कि इन दोबादियों में से एक पक्षी जो समर्थ और मित्र बनाने के योग्यहै तिसको मित्र बनावे तौ एक नवीन मित्र की प्राप्ति होजाय क्योंकि मित्रकी प्राप्तिधन और धरती के भी लाभसे अधिक श्रेष्ठ होतीहै और उसके लिये यत्न करना भी कहाहै-परंतु-वह उसीदशामें मित्र बनसक्ता है कि जब उसको इस मुकद्दमह में दुर्लभ जय सुलभ कर दीजावै तौ फिर जिताना उसका धर्मशास्त्रके अनुसार नहीं ठहरा क्योंकि जब न्यायके अनुकूल उसकी पराजय होनेवाली थी और वही पराजय उसकी धर्मशास्त्रके अनुसार ठहर सक्तीथी तिसके

बदले अपने स्वार्थ से उपायों द्वारा उसे जिताना ठहरा तौ दूसरे की व्यर्थ पराजय धर्मसे विपरीत करीगई-औरजो-दूसरे की जयकराना शोचाजिसकी न्यायके अनुकूल अवश्यही जयहोनेवालीहो तौ इस दशामें धर्मशास्त्र का अनुसरणहुआ परंतु मित्रलाभ नहोसका क्योंकि वह दूसरा पक्षी प्रथम तौ मित्र बनाने योग्य नहीं और दूसरे जब उसने अपना सच्चा व्यवहार न्यायके अनुकूल जीता तौ फिर राजापर मित्रता किस हेतुसे पालन करैगा-तब-ऐसे स्थल पर अर्थशास्त्रकी अपेक्षा धर्मशास्त्र वलवान्है अर्थात् यद्यपि उस पक्षीको मित्र बनालेने से अपना परम कल्याण संभवहै तथापि इस बातपर दृष्टि अर्थशास्त्रके अनुसार न करनी चाहिये क्योंकि धर्मशास्त्र उस्से बलवान्है तिसके अनुसार दृष्टि करनी चाहिये जिस्से न्यायके अनुकूल जिस किसीकी जय पराजय होनेवालीहो सोई हो अन्यथा कुछ न होसकै-इसीलिये-जहाँ धर्मऔर अर्थ का सन्निपात होने में जोकोई धर्मशास्त्रकी उपेक्षा करिकै अर्थशास्त्रपर आरूढ़ होजावै तिसके लिये आपस्तम्ब ऋषिने एक बड़ा क्लिष्ट प्रायश्चित्त प्रदर्शित कियाहै जिसकी अवधि द्वादश १२ वर्षोंकी कहीहै २२ ॥

अथचात्राभियोगसंसाधनकार्येसर्वसाधारणप्रमाणनिदर्शनोनामषोडशःपरिच्छेदः १६

इहसोलहवें परिच्छेदमें छठेपरिच्छेदकी अपेक्षासे मुक़दमहके साधनमध्ये सर्वसाधारण प्रमाण जोआवश्यकहैं उनकेभेदकहे जायँगे ॥

प्रमाणंलिखितंभुक्तिःसाक्षिणश्चेतिकीर्तितम्। एषामन्यतमाभावेदिव्यान्यतममुच्यते २३ ॥

अक्ष०—लिखितं १ भुक्तिः २ साक्षिणः ३ यहतीन प्रमाण कहेहैं इनमेंसेकिसी केभी नहोनेमें दिव्योंमेंसे किसीएकको कहतेहैं २३ ॥

अभि० —जोकि छठेपरिच्छेदमें (ततोऽर्थीलेखयेत्सद्यः) इत्यादिवाक्यसे यहकहचुके हैं कि मुदई अपने प्रतिज्ञातअर्थ कासाधन अर्थात् प्रमाण शीघ्रहीलिखवावै तहांपर यहआग्रह करसक्तेहैं कि वहप्रमाण किसप्रकारकाहोगा -इसलिये अबउसकास्वरूप कथनकरते हैं कि-(प्रमाण) वहकहाता है जिसके ज्ञानमात्रके सम्बन्धसे कोई बात या पदार्थ या व्यवहार अपनीमुख्यप्रमाणताकोपहुँचै अथवा फैसलकियाजाय-सोवह प्रमाणदोप्रकार काहोताहै एक(मानुषी)दूसरा(दैवी)फिरइनमेंसे मानुषी प्रमाणभी तीन भाँतिकाहोताहै एकतौ (लिखितं) लिखावटसे कोईदस्तावेज़ सनदजो उसकेपासहोदूसरा(भुक्ति)भोग अर्थात् परिग्रह या क़ब्ज़ा जिसको कहतेहैं तीसराप्रमाण(साक्षी) लोग जिन्होंने उसदशाकोदेखा अथवासुनाहो यहतीनों प्रकारकाप्रमाणप्राचीनमहर्षियोंकरके कहागयाहै-इनमेंसे लिखित प्रमाणभी दो भाँतिकाहोताहै किन्तुएकतौ(शासन)अर्थात् सरकारीसनद जिनके लक्षण पहलेकहेगयेहैं दूसरे(चीरक)अर्थात् घरूदस्तावेज़ातजो परस्पर मनुष्य अपनेहितहेतु से लिखवालेतेहैं इनकेलक्षण आगेकहे जायँगे -दूसरा

(भुक्ति)नामकाप्रमाण इसका लक्षणकेवल उपभोगसे अपेक्षित है-तीसरा साक्षियोंका प्रमाणहै सो साक्षियोंके लक्षण आगेकहे जायँगे -वितर्क- यदि लिखित और साक्षी इनदोनोंका प्रमाण इसअभिप्रायसे ठीकसमुझाजाय कि दस्तावेजें अर्थात् लिखावटें इसहेतुसेठीकहैं कि उनकालिखाहुआ आशयजिह्वासे उच्चारणहोसक्ताहै और गवाहों की शहादत इसहेतुसे यथार्थ है कि उनकाकथन औरोंके कान में सुनपरताहै परन्तु (भुक्ति)अर्थात् कब्ज़ामेंयहकोई विशेषण नहींदेखपरता तौफिर क़ब्ज़ेका प्रमाण व्यर्थहै -समज्ञा-सुनो (भुक्ति) भी कितनेही विशेषणोंकरके युक्तहोतीहुई प्रमाणमेंगिनती है क्योंकि(क्रय)और उसमिलकियत कीयथार्थ(दशा)जिसपर झगड़ा है और योग्यताका (सम्बन्ध)इत्यादि लक्षणजो(स्वत्व)हेतुक प्रसिद्धहोतेहैं तिनको व्याभिचारसे रहितअर्थात् असत्य प्रपञ्चकेविना अनुमानकरतीहुई वहभुक्ति प्रमाणमें गिनतीहोतीहै अथवाअ-नुपपद्यमानहो तो अनुमानसे कल्पनाकरतीहुई अर्थापत्तिमें अन्तर्भाव होनेसे प्रमाण मेंआजातीहै (अर्थापत्ति-अर्थात्उक्तसे अनुक्तका आक्षेपकरलाना)-अबश्लोक मूलके उत्तरार्द्धका आशयकहाजाताहै कि- इनतीनोंकेहहुये लिखित आदिप्रमाणोंमें से जब कोईभीप्रमाण उपस्थितनहोसके तब(दिव्य)प्रमाणोंमेंसे किजिनके स्वरूपभेद आगेक हेंगे कोईएकप्रमाण जोजाति यादेश या काल अथवाद्रव्य आदिकारणोंसे अपेक्षारख ताहो अङ्गीकार करनाचाहिये परन्तुइस वाक्यसे यहसिद्धान्तहै कि जबमानुष्य प्रमा-णोंका निपटअभावहोजाय तबदिव्य प्रमाणोंपर दृष्टिकरनी चाहिये क्योंकि दिव्यप्र-माणोंका स्वरूप और उनकी प्रमाणता केवल शास्त्रसेही जानीजाती है किन्तु लोक प्रत्यय उनमेंनहीं २३॥

अधि०-इस वार्त्तामें इसीलिये यह मर्याद भी निश्चितहै कि जहाँ तेरहवें परिच्छेद के अनुसार दो झगड़ालू परस्पर विवादसे एकसाथ और एकही कालमें किसी धर्मा-धिकारी के पास नालशी हुयेहों उनमें एक तो मानुषी प्रमाणों को देसक्ता हो दूसरा दैवी प्रमाणोंका अवलंबलेताहो तहाँ मानुषीवाले का प्रमाण हाकिम स्वीकारकरै और उसीकी क्रियाभी पहले साधनकरै-इस वार्त्तामें कात्यायन का वाक्य यह प्रमाणहै कि (यद्येकोमानुषींब्रूयादन्योब्रूयात्तुदैविकीम्।मानुषींतत्रगृह्णीयान्नातुदैवींक्रियांनृपः) अर्था त् जब एक तो मानुषी क्रियाबोलै दूसरा दैवीकहे तहाँ राजामानुषीको ग्रहणकरै दैवीको अस्वीकार करै-इसकेसिवाय जिस मुक़द्दमहमें पूरानहीं परथोड़ाबहुतभी मानुषी प्र माण उपस्थितहो तिसमेंभीदैवी प्रमाणोंपरदृष्टिनहीं करनीचाहिये(दृष्टान्त)यथाकिसी नेनालिश करीकि सौरुपयाइसवृद्धिसे अर्थात् इतनेब्याजकी स्वीकारतासे इसनेलिये अबदेतानहींइसकेउत्तर पादमेंमुद्दाअलेह अपह्नवकरै किन्तु निपट नकारखींचै और इसदशामें रूपयालेनेदेनेकी अपेक्षासे गवाहमौजूदहों परन्तु बेगवाह या और कोई

रूपयेकीसंख्याऔर वृद्धिकापरिमाण नहींजानतेहों इसीहेतुसेकोईपक्षी यहकहनेलगे कि इसवार्ताकोदिव्य प्रमाणोंसे साबितकरूँगा तबऐसीदशापर पन्द्रहवें परिच्छेद में इक्कीसकेश्लोकद्वाराकहीहुई इसमर्यादाके अनुसार कि यदिएकसे अधिकअनेक दावे लिखेहुयोंसेअपह्नवहो-इत्यादि-(एकदेशविभावितन्याय)सेसंख्या और वृद्धिभी जोकुछ मुद्दईनेलिखवाईहो सबसिद्धसमुझीजाती है इसलिये इसदशामें भी दिव्यप्रमाणोंका अवकाशनहींहै-यहीकात्यायनजीनेकहाहै कि (यद्येकदेशव्याप्तापिक्रियाविद्येतमानुषी । साग्राह्यानतुपूर्णापिदैविकींवदतांनृणाम्)अर्थात्-जो मानुषी क्रिया एकदेशव्यापिनीभी विद्यमान हो तो वहीग्राह्यहोतीहै और दैविकी क्रियाकहनेवाले मनुष्योंकी परिपूर्णभी नहीं ग्राह्य होती अर्थात् जो कोई पक्षी यहकहे कि इसविवादका संपूर्ण अंगदैवी क्रियासे साधनकरना मैं चाहताहूं तोभी हाकिम अंगीकार न करै-और जो कि यहवाक्य है कि (गूढ़साहसिकानांतुप्राप्तंदिव्यैःपरीक्षणम्) अर्थात् जब कदाचित् गूढ़ साहसिक जो छिपकर कोई क्रूरकर्म साहस भावसेकरें तिनकी परीक्षा दिव्यप्रमाणों से करनी हो-सोभी उसदशामें कि जब मानुष प्रमाणोंका निपट अभावहो-और यद्यपि नारदने यह मर्याद कहीहै कि(अरण्येनिर्जनेरात्रावंतर्वेश्मनिसाहसे।न्यासापह्नवनेचैव दिव्यासंभवातिक्रिया)अर्थात्-बनमेंया निर्जन स्थान शून्यभूमि जहां कोई मनुष्यनहो अथवा रात्रिमें या घरके भीतर कोई साहस कर्महुआ हो कि जिसका मुक़द्दमा फौजदारी से सम्बन्धितहो तिसमें और न्यासधनके अपह्नवमें अर्थात् धरोहर या सौंपे हुये धनके अभियोगमें मुद्दाअलेह नकारखींचे तिसमें भी दिव्य प्रमाणोंवाली क्रिया होनी संभावितहै-सोभी मानुष प्रमाणोंके अभावमें संभवितहै-इसलिये निश्चितहुआ कि यह मर्याद सर्वसाधारण भावसे नियतहै कि जबतक मानुषी प्रमाण मिलसक्ता हो तबतक दैवी प्रमाणपर दृष्टि न करै क्योंकि इसके मध्ये जो अपवाद अर्थात् छूट भी निश्चितहुई है तिसका चर्चा आगे किया जायगा (अपबाद अर्थात् इस्तसनाय) साहसवाद जो विष शस्त्रादि उपद्रवोंसे होतेहैं और दण्डपारुष्यवाद जो दण्डादि से ताड़न करनेपर होतेहैं बलिक सभी उनकार्यों में कि जो प्रबलतासे उत्पन्न होतेहैं तिनके उपद्रव उठने पश्चात् जो कुछ काल भी प्रक्रांत होगयाहो जिस्से उनकी तहक़ीक़ात यथार्थ में कठिनता देख परतीहो तब उसदशामें साक्षियोंसेभी दिव्यप्रमाण का आचरण करवानाचाहिये यह नियम इसका कहागया-तथैव-कहीं लेख्यादिकों काभी नियमदेखपरताहै-यथा(पूगश्रेणीगणादीनांयास्थितिःपरिकीर्तिता । तस्यास्तुसा धनंलेख्यंनदिव्यंनचसाक्षिणः)-अर्थात्-(पूग)नाम थोक और (श्रेणी) अर्थात् वे जातें जो हलवाई आदि पेशेवालोंकी अपने २ कामकेनामसे प्रसिद्धहों और (गण) अर्थात् समूह उन मनुष्यों के कि जो एकही किसीकामको अनेक जातों के मनुष्य करते हों

इत्यादि और भी सब समुझलेने इनकी जो (स्थिति) कहिये दृढ़मर्यादा अपने काम की अपेक्षा चलीआती और विख्यात है तिसका साधन अर्थात् प्रमाण जब किसी विवाद में लेनापरे तो लेख्यपत्र जोहैं सोईठीकहैं न तो इसमें दिव्य प्रमाण की आवश्यकता और न साक्षियोंकी-इसीप्रकार-जो विवादएकद्वार अथवामार्ग सड़कआदि के बनाने या निकसा पैठीमध्येहो या जलवाहमोरी आदि के बनाने मध्ये हो तिसमें (भुक्ति)नामका प्रमाण जोहै सोई बड़ा और बलवान् है नतो दिव्य और न साक्षीदो मेंसे कोईकाम नहींआता-तथाहि- (द्वारमार्गक्रियाभोगजलवाहादिषुक्रिया ।भुक्तिर्बलवतीस्यान्नदिव्यंनचसाक्षिणः)-अर्थइसका ऊपरहोचुका-अब साक्षियोंकी बलवत्ता प्रकट करतेहैं-यथा(दत्तादत्तेऽथभृत्यानांस्वामिनांनिर्णयेसति । विक्रयादानसंबंधेक्रीत्वाधनमनिच्छति। द्यूतेसमाह्वयेचैवविवादेसमुपस्थिते । साक्षिणःसाधनंप्रोक्तंनदिव्यंनच लेख्यकम्)-अर्थात्-जब कदाचित् उन अभियोगों का निर्णय करना हो जिनमें सेवकों और स्वामियोंके परस्पर झगड़ा मासिक आदिके देने या नदेने मध्ये उठाहो या विक्रय करीहुई वस्तुका मूल्य उससे लेनेके संबंधसे कि जो वस्तुको खरीद कर मूल्य देनेकी इच्छा नहीं करता हो तिस विवाद में या द्यूतकर्म जो पाशों से होता है और समाह्वय कर्म जो पशुपक्षी आदि जीवों द्वारा बाजीबदी जाती है इनमें झगड़ा उठाहो-इन सभी अभियोगों में केवल साक्षी लोगों का प्रमाण मुख्य कहा है नतो इनमें दिव्य और न लेख्य पत्रोंसे कुछ कामहै २३ ॥

अथद्वयोःप्रमाणसद्भावेकस्यजयपराजयौ-इतिहेतुनापूर्वापरयोःकार्ययोः कस्यबलीयस्त्वमितिविवेकोनामसप्तदशः परिच्छेदः १७ ॥

इहसत्रहवें १७ परिच्छेदमें यहव्यवस्था वर्णन होगी कि जबदोनों पक्षियों का प्रमाण सच्चा हो तब किसकी जय और किसकी पराजय होनी चाहिये इसलिये उन के पहलेपीछे कामकी अपेक्षासे बलवत्ता समुझी चाहिये॥

सर्वेष्वर्थविवादेषुबलवत्युत्तराक्रिया । आधौप्रतिग्रहेक्रीतेपूर्वातुबलवत्तरा २४ ॥

भक्ष०—सभी अर्थ विवादों में बलवत्ता होतीहै उत्तर क्रिया पर (आधि)में(प्रतिग्रह) में (क्रीत) में पूर्व क्रिया अधिक बलवान् होतीहै २४ ॥

अभि०—यहाँपर पहले यह प्रश्नहै कि जब साक्षी आदि प्रमाणके आधीन व्यवहार की जय पराजय ठहरी जैसा ऊपरसे कहते चले आतेहैं तो फिर जहाँ ऐसी दशा उपस्थित हो कि दोनों पक्षी अपना २ प्रमाण देवैं और वह दोनों के प्रमाण ऐसे दृढ़ प्रतीत होतेहों जिनके परस्पर बलाबल का विवेक भी नहोसक्ता हो कि इनमें किसका प्रमाण प्रबल या किसका निर्बलहै तब किसकी जय और किसकी पराजय होनी चाहिये यह वार्त्ता अब कहते हैं कि-ऋण संबंधी आदि सभी धन विवादों में इन दोमें

जिसे सकी काल भेदसे उत्तर क्रिया निश्चित हो सो बलवान्है (क्रिया) अर्थात् काम जो पीछे हुआ हो तिसका वादी जय पावै और पहला काम यद्यपि प्रमाणों से सिद्ध भी हुआ हो पर उसका वादी पराजित होजाताहै (दृष्टांत) यथा दो बिवादियोंमें से एकने यह प्रमाण पहुँचाया कि इसने ऋणकी रीतिसे रूपया लिया और धरावताहै दूसरेने यह प्रमाण पहुँचाया कि वह रूपया उद्धार करदिया गया इसलिये अब नहीं धरावता तब इन दोनोंमें से उद्धार करदेने के प्रमाण वाला जीतैगा क्योंकि उसका उद्धार करना उत्तर कालमें निश्चितहै और देनेवाले का प्रमाण इसलिये निर्बलहै कि वह देना पूर्वकालमें निश्चितहै इस्से वह पराजित होगा-ऐसेही दूसरा (दृष्टांत) यथा किसीने सौरूपये किसीसे ऋण लिये और लेते समय एक रूपया सैकरा का ब्याज ठहरा परंतु कुछ दिनों पीछे किसी हेतुसे दोरूपया सैकरा का ब्याज उसने देना स्वीकार किया और दोनों पक्षी अपना २ प्रमाण इस प्रकारसे प्रविष्ट करैं कि ऋणी उस पहली स्वीकारतासे १) सैकराका साधन करवावै और धनी उसकी पिछली स्वीकारतासे २) सैकराकी साधना सिद्ध करदेवै तहां २) सैकरा नियम बलवान् है क्योंकि वह उत्तर कालमें ठहराथा और वह १) सैकराका नियम इसलिये निर्बलहै कि पूर्वकालमें ठहराथा-क्योंकि इस वार्त्ताके लिये यह नियमहै कि उत्तरकाल संबंधी काम यदि पूर्वकाल संबंधी कामका बाधक न हो तो वह आपही अनुप पन्न होताहै-इस मर्यादकी अपेक्षासे एक (अपवाद) भी उत्तरार्द्ध मूलश्लोक से कहतेहैं कि यद्यपिसभी अर्थ बिवादोंमें उत्तरक्रिया बलवान् कहीगई-परन्तु-(आधि) नाम गहनेधरीहुई के बिवाद में और (प्रतिग्रह) नामदान करीहुईके बिवादमें और (क्रीत) नाम ख़रीदीहुईके बिवाद में पूर्वकाल कीहीक्रिया अधिकतर बलवान् होती है (दृष्टांत) यथा किसी ने एक खेत किसीके पास कुछरूपया लेकर गहनेरक्खा और पीछे उसीखेतको किसीदूसरे धनीकेपास कुछरूपया लेकर रेहन्किया और कदाचित् यही बिवाद अदालत में पहुँचा तहांदोनोंने अपने २ प्रमाणका साधनकरादिया किंतुयह निश्चितहोगया कि सत्यभाव इसकेपास गिरवीहै और इसकेपासभी यहखेत गिरवी है और उसखेतकी मालियत इतनी है कि विक्रय करनेसेभी एकहीके रूपये उद्धारहोसक्ते हैं तहां जिस के पास पहले रक्खागया उसीकी जय होगी यहतो (आधि) विषयका दृष्टांतहै इसी के अनुसार (प्रतिग्रह) और (क्रय) के विषयमें समुझना अर्थात् इन तीनोंबातके बिवादोंमें उत्तर क्रिया नहीं बलवान्है यह (अपवाद) उस पूर्वोक्त मर्यादाका कहागया (अपवाद-अर्थात्-इस्तसनाय) २४॥

भाषि०—(वितर्क) भला जब एकके पास जो धरती गिरवी होचुकी तो फिर गिरवी धरनेवालेका (स्वत्व) अर्थात् मालियत तबतक असत्य है कि जबतक छूटकर उसके

पास नहीं आवै फिर क्योंकर वह दूसरेके पास रेहन् करसक्ताहै इसीप्रकार दानकरी हुई और बेंचीहुईभी वस्तुका पुनर्दान या पुनर्विक्रय नहीं होसक्ता इसलिये यह मर्यादही कहनी व्यर्थ है-सोनहीं-किंतु यहांपर यह सिद्धांत अभिप्रेतहै कि जब कोई मनुष्य अस्वत्वकी दशामेंभी ऐसा व्यर्थ पुनराधान या पुनर्दान या पुनर्विक्रय करता है तहां पहला बलवान्होता इसलिये यह वाक्य न्याय मूलहै अनर्थक नहीं किंतु इसमें वितर्कही अनुचितहै २४॥

अथ भूमेर्भोगपरिग्रह विषयिक प्रभाव विवेके नाम अष्टादशः परिच्छेदः १८॥

इस अठारहवें परिच्छेदमें धरतीके भोग अर्थात् परिग्रहका विवेक वर्णनहोगा जिस्से यह जानाजाय कि वह क़ब्जा उसका धरतीपर अपनी तासीर अर्थात् प्रभावमें सच्चाहै या नहीं॥

पश्यतोऽब्रुवतोभूमेर्हानिर्विंशतिवार्षिकी। परेणभुज्यमानायाधनस्यदशवार्षिकी २५॥

अक्ष०—देखतेहुये न कहतेहुये पराये करके भुज्यमान भूमिकी विंशति वार्षिकी हानिधनकी दश वार्षिकी २५॥

अभि०—सोलहवें परिच्छेदमें चर्चा कियेहुयेके अनुसार-कितनेही विशेषणों करके युक्त भुक्तिकी अप्रमाणता दर्शातेहुये किसी एक भुक्तिमें कार्यांतर कहते हैं अर्थात् क़ब्ज़ाका एक और भी प्रभाव प्रकट करते हैं-कि-जिस मनुष्यसे कोई भी संबंध जिस धरतीसे या धरतीके स्वामीसे न हो ऐसे किसी अन्य पुरुषको जो कोई स्वामी अपनी धरतीपर बीसवर्षतक भोग परिग्रहवान् बनारखकर आप देखते हुये भी इस अवधिके भीतर कभी स्वामित्व अपना प्रकट न करै कि यह धरती मेरी है तुझे इस प्रकारसे न भोगनी चाहिये तो उस धरतीसे स्वामित्व उसका जाता रहताहै इसीको विंशति वार्षिकी हानि उपभोग निमित्तसे कहते हैं-इसीप्रकार हाथी घोड़ा आदि अन्य अस्थावर धनोंको यदि बिना टोके बखोरे दश बर्षोंतक भोगने देवै तो उनसेभी स्वामित्व जाता रहताहै यह दशवार्षिकी हानि कहलाती है-और इस वार्त्तामध्ये कुछ इस बातका नियम नहीं है कि वह उपभोक्ता पुरुष स्वामीके देखतेहुये अपनाभी स्वामित्व प्रकट करै या न करै २५॥

अधि०—ऊपर कहीहुई मर्यादामें यह आग्रह खड़ाहोताहै कि यह नियम इस हेतुसे ठीक नहीं देखपरता कि देखतेहुये निषेध न करनेसे स्वामीका स्वामित्व नहीं जासक्ता क्योंकि दानकरी हुई या विक्रय करीहुई वस्तुसे स्वामीका स्वामित्व जातारहताहै तब यह बात लोकमेंभी संविदित होजाती है कि अमुकवस्तु अमुक उसके धनीने विक्रय करडाली अथवा दान कर दीन्हीं-परन्तु-दान और विक्रय के समान उस अन्यके उपभोगवाली वस्तुसे स्वामित्व उसका निषेध न करनेसेभी नहीं निवृत्त हो

सक्ता क्योंकि उसका कोई चिह्न लोकमें भी नहीं विदित होसक्ता कि अमुक धनीका परिग्रह अमुक हेतुसे उसके अमुक धनसे जातारहा और अमुक उपभोक्तासे संबंधित होगया इसीप्रकार शास्त्रमेंभी भोग परिग्रहका नियम कुछ अनुमानसे या उपभोग मात्रसे नहीं निश्चित है-तो फिर निश्चितहुआ कि बीसवर्ष के उपभोग से मिल्कियतका हक़ उपभोक्ताको नहीं प्राप्तहुआ और इससेभी कि वह उपभोग केवल स्वामित्वका प्रमाण है इसलिये उस्से वह वार्त्ता उत्पन्न नहीं होती कि जिस प्रमेय वस्तु का प्रमाण देना अभिबांछित है-इसके सिवाय विरासत बपौती आदि हेतु जिनसे स्वत्व वा स्वामित्व पैदा होता है उनमें उपभोग अर्थात् क़ब्ज़ा गिनती में नहीं है किंतु उन हेतुओंकी परिसंख्याभी इसप्रकारसे गौतमने कही है-कि—एकतौ बपौती (रिक्थ) अर्थात् दाय मिलनेसे-दूसरे मूल्यदेकर (क्रय) करनेसे-तीसरे (संविभाग) अर्थात् हिस्साबाँटमेंपानेसे-चौथे (परिग्रह) अर्थात् शूरत्वकी प्रवलतासे अपने परिग्रहनाम क़ब्ज़ेमें करिपानेसे-पाँचवें (अधिगम) अर्थात् साक्षात्कार किसी दैवयोगसे प्राप्तहोजानेमें स्वामीकहलाताहै-इन पाँचप्रकारोंके सिवाय तीनप्रकारवर्ण भेदसे और हैं अर्थात् ब्राह्मणको प्रतिष्ठा आदिकेद्वारा किसीसे लाभहुआहो और क्षत्रीको विजयद्वारा लाभहुआहो और वैश्य तथा शूद्रको अपने परिश्रम आदि किसी व्यापारमें लाभहुआहो-यह आठकारणधनोंके स्वत्व प्रकटकरनेमें हेतुरूप गौतमजीने कहे परंतु इनमें गौतमने भोग या उपभोगका चर्चा नहींकिया कि वह उपभोगभी स्वत्वका हेतुजानाजाता-इसलिये यह कथन अयुक्तहै कि यह पच्चीसवाँ मूलवाक्य योगीश्वरका बीसबर्षके उपभोगसे स्वत्व या स्वामित्वकाहेतु प्रकटकरताहै-और जो कि स्वत्वके और स्वत्वके हेतुओंके भी कारण सबलोकहीमें प्रसिद्धहोते हैं क्योंकि यह सब संसारीवार्ता हैं इसलिये इनका अनुमानकरना केवल शास्त्रसेही अयुक्तहै-यह वार्ता विभाग प्रकरणमें अच्छे निर्णयपूर्वक वर्णनकरीजायगी परंतु गौतमका यह बचन जिसमें आठहेतु स्वत्व या स्वामित्वके कहेगये केवल शिक्षामात्रके नियमसे कहाहै-और भीयह बड़ाविरोधहै सो इसअगलेवाक्यपरध्यानकरनाचाहिये-यथा (अनागमंच योभुंक्तेवहून्यब्दशतान्यपि। चौरदंडेनतंपापंदंडयेत्पृथिवीपतिः)अर्थात्-जो कोई पुरुष (अनागम) अर्थात् विनालेख्यपत्र आदि किसी सनदके या अपने यथार्थ स्वामित्व विना भोगताहै चाहै अनेकसैकरों वर्षतक भोगिचुकाहो तथापि उसपापीको पृथिवीपाल वह दंडदेवै जो चोरोंको दियाजाताहै-तो फिर बीसवर्षके अनागम भोगवाला क्योंकर अपना स्वामित्व सिद्धकरसक्ताहै क्योंकि यहाँ तौ शतधावर्षोंके भी उपभोग से स्वामित्व नहीं पैदाहुआ बलिक चौरदंड इसकेलिये कहागया तौ फिर केवल बीस बर्षके उपभोक्ताको अवश्यही चौरदंडहोनाउचितहै-और इसमें यह आग्रह भी खड़ा

करना व्यर्थहै कि वह बीसवर्षोंका अनागम उपभोग धनीके देखतहुये और निषेधके न करतेहुये प्रत्यक्षभावमें कहागया-और यह शतधावर्षोंका अनागम उपभोग धनीके परोक्षभावमें समुझकर दोनोंवाक्योंमें परस्पर विरोध नहीं आसक्ता सो नहीं क्योंकि यह शतधावर्षोंके अनागम भोगवाला वाक्य दोनोंदशापर आरूढ़है किंतु चाहै उसने धनीके प्रत्यक्षभोगकियाहो चाहै परोक्षभावमें कियाहो दोनोंदशामें दंडहोसक्ताहै सो यह दोनोंदशा इसहेतुसे निश्चितहुई कि (अनागमंतुयोभुंक्ते) इत्यादि इस वाक्यमें कोईसी विशेषता नहीं कही कि प्रत्यक्षभोगे या परोक्षभोगे और इस पच्चीसवें मूल श्लोकमें स्पष्ट विशेषताकहीहै कि (पश्यतोऽब्रुवतः) अर्थात् देखतेहुये विनाटोकेव-खेरे भोगनेदेवै तौ इस दशामेंविरोध इनमें अवश्य निश्चितहुआ क्योंकि इसवाक्य ने बीसहीवर्षके उपभोगसे बिराना स्वामित्वपैदाकरदिया और उस वाक्यने शतधा वर्षोंके उपभोगमें भी दंडदेना बतलाया-और-कात्यायनके भी इस अग्रोक्तवाक्यसे यही मर्यादपाईजातीहै-यथा (नोपभोगेबलंकार्यमाहर्त्रातत्सुतेनवा । पशुस्त्रीपुरुषा दीनामितिधर्मोव्यवस्थितः) अर्थात्-पशु और स्त्री दासी आदि और पुरुष गुलाम आदि इनको जो कोई अपने परिग्रहमें अयोग्यरीतिसे लायाहो तौ उस आहर्ता या आहर्ताके पुत्रको इनके उपभोग मध्ये बल न करनाचाहिये किंतु यह परिग्रह उसका निर्मूल है यह सनातनधर्मकी दृढ़ मर्याद है-इसके सिवाय (समक्ष) प्रत्यक्ष भोगकी दशा में भी जबतक उपभोक्ता कोईसी हानि न करताहो तबतक हानिसमुझलेनी असंभव है-अर्थात्-यदि कोई शतधावर्षों के समक्षभोग या विंशतिबर्ष के समक्षभो-गसे यह समुझै कि उस धरती से निपटहानि मुख्य स्वामी की होजायगी सो नहीं और यहभी एक व्यर्थ कल्पना न करनी चाहिये कि इस्से पहले सत्रहवें परिच्छेद में आधि १ प्रतिग्रह २ क्रय ३ इन तीनों प्रकारके व्यवहारों में पूर्व क्रियाकी प्रबल-तासे (अपवाद) नाम छूट करीगईथी कि इन तीनों में पूर्वकालकी ही क्रिया प्रधान है कदाचित् इस आशयसे अत्रोक्त धरती के विषयमें बीसवर्ष के उपभोगवाली और धनकेविषयमें दशवर्षकेउपभोगवाली उत्तरकाल क्रियाकीप्रबलतादर्शाते हैं—क्योंकि-उनतीनोंमेंयथार्थभावसे उत्तरकालक्रियाउत्पन्नहोही नहींसक्ती अर्थात् वे काम-हीफिरदुसराकरनहींहोसक्ते कारणइसकायह कि यद्यपि अपनाधन (आधि) नामरेहन् करदेने या दानकरदेने या विक्रयकरदेनेमें प्रत्येकमनुष्यकोस्वाधीनताहै परन्तु जो धनएकवारगिरवीरक्खागया या दानकरदियागया या बेंचदियागया उनमें उसका स्वामित्वनहींपहुँचता कि वह फिर दुसराकरऐसाकरसकै इसलिये इनमें पूर्वकाल कीही क्रियाबलवान् और प्रधानभी उसपरिच्छेदमेंहोचुकीहै-कदाचित्-कोईउसवस्तु कोदेवै या लेवै कि जिसमें दाताकास्वामित्व न हो तौ इसदशामें दोनोंकोहीदण्डहोना

कहाहै-यथा(अदेयंयश्चगृह्णातियश्चादेयंप्रयच्छति। उभौतौचौरवच्छास्यौदाप्यौचोत्तमसाहसम्)अर्थात्-जोवस्तुदेनेयोग्यनहीं उसको जोकोईकिसीसेलेताहै और जोकोई अदेयकोदेताहै यहदोनोंपुरुष चोरोंकेसमानशासनीय और उत्तमसाहसनामका जुर्मानादिलवानेयोग्यहोते हैं-औरभी-कदाचित् इसबिंशतिबर्षवाले मूलबचनको (आधि) प्रतिग्रह क्रय इनतीनोंकीमर्यादसे असम्वन्धितरखनाअभिप्रेतहोता तौ वह अपवाद जो इस्सेअगले २६ केश्लोकमूलमें (आधिसीमोपनिक्षेप) इत्यादि कहाहै और इसीमूलबाक्यसेसम्बन्धित है असम्बान्धितहोजाता-इसलिये-इसपच्चीसवेंमूलश्लोकसे यहसिद्धांतप्रकटहोताहै कि बीसबर्षोंवालीभूमि अथवा दशवर्षोंवाले अन्यधनों से मुख्यस्वामीकास्वामित्व नहींजासक्ता अर्थात् हानिकहना यहठीकनहीं और न उस भूमि अथवा धनकेमध्ये अदालत में ब्यवहार खड़ाकरनेका हक़नष्टहोता है-किन्तु इसवार्तामध्ये नारदकाभीयहवाक्यहै कि(उपेक्षांकुर्वतस्तस्यतूष्णींभूतस्यतिष्ठतः। कालेविपन्नेपूर्वोक्तेव्यवहारोनासिद्ध्यति) अर्थात्-टोकनेबखोरनेकीउपेक्षाकरतेहुये चुपके होकरबैठेरहतेहुये पूर्वोक्तकालकेबितीतहोजानेपर उसकाव्यवहारसिद्धनहींहोता-इस कथनसेनारदने (उपेक्षाकेलिंगाभावमें ब्यवहारहानिकही कुछबस्तुकेअभावमेंनहीं) अर्थात्-जब उपेक्षाकरनेकाकोईहेतुरूप (लिंग) नामाचिह्नपायाजाय तबतौ उसउपेक्षासे ब्यवहारकीहानिहोसक्तीहै पर जायदादके अपनेक़ब्ज़ेमेंनरहनेसे ब्यवहारकी हानिनहींहोती-ऐसेही-मनुनेभी केवल ब्यवहारद्वाराभंगहोनादर्शायाहै पर बस्तुद्वारा नहीं-यथा(अजड़श्चेदपौगंडोविषयश्चास्यभुंज्यते।भग्नंतद्व्योहारेणभोक्तातद्धनमर्हति) अर्थात्-जबधनकामालिक (अजड़) अर्थात् सिड़ीआदिलक्षणोंसे बिकलबुद्धि न हो किन्तु सावधानहो और (अपौगण्ड) अर्थात् १५ बर्षसेन्यूनअवस्थाकानहो ऐसी दशापर उसकीधरतीआदि कोईधन बिरानेपरिग्रहमें ऐसेस्थलपरहो जहाँवहदेखभी सक्ताहो और ऐसी यथोचितव्यवस्थापर वह देखने या टोकनेआदिसे उपेक्षाकरै तौ उसधनकास्वामी ब्यवहारमार्गसे पराजयपाताहै और वह द्वितीय उपभोक्तापुरुष उसधनकेयोग्यहोता अर्थात् उसीकेक़ब्ज़ेमेंरहेगा-यथार्थमें मनुनेभी ब्यवहारमार्गसे पराजयबतलाई कुछवास्तवसेपराजयनहींकही-सोयहव्यवहारभंगभी उसदशामेंहोता है कि जब अभियुक्तमुद्दाअलेह जोउपभोक्ताहै वह अदालतमेंऐसेकहनेलगै कि यह मुद्दईमेरा न तौ विकलबुद्धिहै न बालकहै अपौगण्डभीनहीं अर्थात् तरुणादिअवस्था सम्पन्न सर्वथासावधानहै सन्मुखइसके बीसवर्षसेबराबरमैंपरिग्रहवान्चलाआताहूँ यदि इसकीजायदाद मेरेपरिग्रहमें अयोग्यरीतिसेआगईथी तौफिरइतनीबड़ीअवधि तक यह क्योंकरचुपकारहा या रहसक्ता इसलिये यहझूँठा है जायदाद इसकी नहीं अगर इसकीहोती तो कभी तो कुछकहता या निषेध करता और मैं इसबातकी

प्रमाण तामें बहुतसे साक्षी देसक्ताहूं इसदशा में यद्यपि वहुधालोग जानते हैं कि मुद्दई झूठा नहीं सच्चामालिक है तथापि इसकथनसे यह निरुत्तर होजाताहै परन्तु इसप्रकार प्रत्युत्तरनदेमकनेपर भी मुद्दईका मुक़द्दमा तत्त्वानुसरण की रीतिसेवास्तव द्वारा निर्णीत होसक्ता है क्योंकि ऐसे संदिग्ध व्यवहारके निर्णय मध्ये योगीश्वर याज्ञवल्क्यजी बीसवेंमूल श्लोकद्वारा मर्यादा कहचुके हैं कि राजा छलको दूरकरिके वस्तुके स्वरूपसे निपटारा करे-और भी यहकलपना नहीं करनी चाहिये कि जब न वस्तुकी हानिठहरी न अदालत में जाकर व्यवहारकी हानिठहरी तौ फिर केवल इतनी बात आवश्यकहै कि दूसरेकीउपभोगदशामें चुपकारहना अनुचितहै अर्थात् कुछ न कुछ उसको रोकटोक कियेजावै क्योंकि इतनाकिये विना केवल व्यवहार हानि होजानेकी शंकाहै तिसके निवारणकेहेतुसे चुपका न रहै यह उपदेश किया होगा सो भी नहीं क्योंकि जो यहीउपदेश अभिप्रेत होता तौ फिर बीसवर्षोंकी अवधि नियत करना निरर्थकथा किसलिये कि यदि कोई मनुष्य किसीऐसेकाल विलंब तककेवल परिग्रहवान् बनारहे जो विलंबअन्य मनुष्योंको यादरहसक्ताहो तौ इसबात से कोई कारणऐसा नहीं दिखाई देता कि जिस्से हानि होसक्तीहो-कदाचित्-यह कथन आरोपित कियाजाय कि यह वीस वर्षोंकी अवधि केवल इसअग्रोक्त कात्यायनके वचनानुसार इसलिये नियत हुईहोगी कि बीसवर्षों के उपरांत बीस वर्षोंकी अवधिवाले दस्तावेज़िक पत्रोंकी निर्दोषता होजाती है-तथाचकात्यायनः (शक्तस्यसन्निधावर्थोय स्यलेख्येनभुज्यते। विंशतिवर्षाण्यतिक्रांतंतत्पत्रंदोषवर्जितम्) अर्थात्-जो मनुष्य किसीसमर्थ और यथार्थ धनीके सन्मुख उसकी जायदादपर उसीकी लिखित दस्तावेज़ यथोचित के द्वारा बीस वर्षोंतक परिग्रहवान् बनारहे तौ इस अवधिके उपरांत वह दस्तावेज़िकपत्र उसका दोष वर्जितकहलाता अर्थात् फिर उसपत्रमें कोई दोष नाम एतराज़ पकड़नहीं आरोपित होसक्ती और इसीहेतु से उपभोक्ता का हक़ साबित होजाता है-इसप्रयोजन से बीस वर्षें नियत हुईहोंगी कि जोकोई दस्तावेज़बीस वर्षोंकी अवधिपूर्वक लिखीगईहो उसकेमध्ये कोई पकड़ बीस वर्षोंके उपरांत नहीं सुनीजायगी सो यह कथनभी व्यर्थ है-क्योंकि-जब यहीप्रमाण सामान्य भावसेमाना जाय तौ फिर आधि और सीमाआदिके विवादों में भी बीसके उपरांत पत्रोंकी निर्दोषता कहनी चाहिये और इसके सिवाय वहअपवादभी व्यर्थ हुआ जाताहै कि- जो अग्रोक्त कात्यायन के वचनोंसे प्रकट है-यथा(अथविंशतिवर्षाणिआधिर्भुक्तःसुनिश्चितः। तेनलेख्येनतत्सिद्धिर्लेख्यदोषविवर्जिता)तथा(सीमाविवादेनिर्णीतेसीमापत्रं विधीयते। तस्यदोषाःप्रवक्तव्यायावद्वर्षाणिविंशतिः)अर्थात्- कात्यायन यह कहते हैं कि-जब रेहनकरी हुई वस्तु यथार्थ आधिपत्रके द्वारा सुनिश्चित बीसवर्षोंतकभोगी

तौ उसीलेख्यपत्रसे उस आधिकी सिद्धिहोजाती है अर्थात् ऐसाभोग आगे को
ी व्यवस्थित रहना चाहिये परन्तु यह प्रतिज्ञाहै कि यदि लेख्यदोषोंसे रहित हो
अर्थात् उस दस्तावेजकी अपेक्षा कोईपकड़ आरोपित न होसक्ती हो-बस यहीप्रतिज्ञा
समें (अपबाद) अर्थात् छूट इस्तस्नाय कहीगई और (सुनिश्चित) अर्थात् उसले-
ख्यपत्रमें बीस बर्षोंका नियमभी निश्चित कियागयाहो-तथा-सीमाका विवाद निर्णय
होजाने पीछे एकसीमापत्र जिसमें सरहद्दोंका ब्योराहो लिखदेनाचाहिये और जोकुछ
अशुद्धता के दोष उसमें रहगये हों उनकी अपेक्षा बीसबरसके भीतरपकड़ प्रवेशहो
सक्तीहै किंतु बीसवर्षं पूरी होजानेपर वह अशुद्धताही शुद्धतामें गिनतीहोगी-और
यही मर्याद उसभोगसे भी ठीक संबंधित है किजो दशबर्षोंका परिग्रह अस्थावरधनों
की अपेक्षासे कहाहै इसलिये-अबइस पच्चीसवें मूलश्लोक का अर्थही अन्यप्रकारसे
कि जो सत्यार्थ और सिद्धांतरूपहो सो कहतेहैं कि-उक्तभूमि और उक्तअस्थावरधनों
की फलहानि कहीहै नतौ मुख्यवस्तुकी हानि और न अदालतमें ब्यवहारकी हानि
अभिप्रेतहै अर्थात् उसभूमिआदि स्थावरसे या हाथी घोड़ा आदि अन्यअस्थावर
धनोंसे जोकुछलाभ या बढ़वारी किसीप्रकारसे उसअवधिमें फलहुआ हो उसके मि-
लनेका अधिकार जातारहता है पर नालिशकरने का अधिकार नहींजाता और न
मुख्यधनसे स्वामित्व जातारहताहै-यथार्थसिद्धांत इसकायह है कि यदिमुख्यस्वामी
बीसवरसके उपरांत अपना क्षेत्र उपभोक्तासे लेलेनाचाहै तबक्षेत्र तौ न्यायानुसार
उस्से पासक्ताहै परन्तुयदि उस अवधिके भीतरकभी लाभकी अपेक्षासे मांगना या
कोईतरह की कहासुनी करने में निरन्तर उपेक्षाकरतारहा हो तौ अपने इसअप्रति-
षेधरूप अपराधसे और इसवचनके प्रमाणसे लाभादिकफलोंकोनहीं पासक्ताहै-ऐसे
ही-यदिस्वामीके परोक्षमें उसकाउपभोग रहाहो तौबीसबर्षोंके उपरांतभी लाभादिक
फलोंको पासक्ताहै क्योंकि न पासकनेकी ब्यवस्थामें (पश्यतः) यहबचन प्रमाणहो
चुकाहै-ऐसेही-यदि उसका उपभोग तौस्वामीके प्रत्यक्षभावमें रहाहो पर लाभादिक
फलोंकी अपेक्षासे बहुधा कहासुनी आदि आक्रोश भी होतारहा हो तौ बीसबर्षोंके
उपरांत भी लाभादिक फल पासक्ताहै क्योंकि न पानेकी व्यवस्थामें (अब्रुवतः)
यहबचनप्रमाण होचुकाहै-ऐसेही-बीसवर्षों के भीतरप्रत्यक्ष भोगहोने और कहा सुनी
आदि आक्रोशके न होनेपर भी लाभादिक फल पासक्ता है क्योंकि न पासकने की
व्यवस्था में विंशति वर्षोंका ध्रुवा निश्चित होचुकाहै-जो कि अपने धनसे उत्पन्नहुये
लाभकी अपेक्षामें स्वामीका यथार्थ स्वत्वहोता है क्योंकि जो वस्तु अपने धनसे उ-
त्पन्न वहभी अपनी है इसहेतु से यह कहना या लिखना अनुचित है कि वह लाभ
उसको न मिले तथापि वहलाभ केवल उसदशा में मिलसक्ता है कि जब लाभकी

वस्तु अपने मुख्य स्वरूपके अविनाश पूर्वक यथावस्थित मौजूद हो (दृष्टांत यथा) सुपारी या कटहल आदिके वृक्ष जो उस भूमिपर फलोंसहित विद्यमानहों तौ उन विद्यमान फलों की अपेक्षा मात्रसे मुख्य स्वामी उनके पाने या उनके विक्रयद्वारा लाभधनके पानेका यथार्थ अधिकारीहै तथापि यदि विक्रय आदिकी रीतिसे महासिल उनका तहसीलागया और उसमेंसे राजकर देनेके सिवाय शेषभाग जो लाभ में गिनती है उपभोक्ताने उपभोग द्वारा व्यय करदियाहो अथवा राजकर का भाग उपभोक्तासे व्यय हो चुकाहो तौ वह लाभही राजकरदेने की अपेक्षा से नष्ट समुझा गया तौ इसदशामें वे फलभी नष्ट समुझेगये किंतु इस उपस्थितिसे कुछ प्रयोजन की सिद्धि नहीं होसक्ती तौ इसदशामें लाभका स्वरूप नाश होजाने से स्वामी का स्वत्वभी उसके पाने मध्ये नष्टहोगया (अनागमंतुयोभुंक्तेबहून्यब्दशतान्यपि। चौरदंडेनतंपापंदंडयेत्पृथिवीपतिः) अर्थात्-(अनागम) कहिये आगमरहित किंतु जिस धनके आगमकी यथार्थता विना जो कोई शतधा वर्षों पर्यंतभी भोगै तिस पापात्मा को राजा चौरदण्डसे दण्डदेवै अर्थात् जैसा दण्ड चोरोंको चोरीकी दशामें होताहै वही बर्त्तावा इसके साथ कियाजाय-इस बचनके सिद्धांतसे यह कल्पना होसक्ती है कि जितनी जायदाद उपभोक्ताने विक्रय आदिसे विनष्ट करीहो उसके समान द्रव्य उससे लेना चाहिये और जो कुछ उसधरतीसे लाभ होतारहाहो सोभी सब हिसाव करिके लेनाचाहिये परन्तु इस वचनकी अपेक्षामें यह अपवादभी उपस्थितहै जैसा ऊपर कहचुके हैं कि (हानिर्विंशतिवार्षिकी) अर्थात् वीसवर्षोंके उपरान्त लाभादिक हक़जाते रहते हैं इसहेतु से यह कल्पना ठीकनहीं-इसलिये यह सिद्धांत निश्चित हुआ कि उपभोक्ताका परिग्रह यदि (अनागम) अर्थात् लेख्य पत्रोंकी यथार्थता बिना हुआहो तौ वीसवर्षोंके भीतर और उपरांतभी शतधा वर्षोंतक राजा दण्ड देसक्ता है क्योंकि इस चौरदण्डवाले अनागमभोगकी अपेक्षामें कोई अपवादरूप वाक्य शास्त्र में नहीं कहागया कि वह अमुकदशामें अदंड्यहोगा-इसलिये यथार्थ सिद्धांत यह पायागया कि यदि मुख्यस्वामी अपने धनकी ओरसे अनुचित उपेक्षा करता रहाहो तौ इस उपेक्षारूप अपने अपराधसे और इस वचनके प्रमाणसे भी उस धरती के लाभादिक जो उपभोक्तासे व्यय होचुके हों उनको नहीं पासक्ता-और-यही मर्यादा अस्थावर धनोंसे संवन्धितहै कि जिनपर दशवर्षोंतक उपभोग परिग्रह रहाहो २५॥

अवनीचे ऊर्ध्वोक्त मर्यादका (अपवाद) अर्थात् इस्तसनाय जिसे भाषा में छूट कहसक्ते हैं तिसका वर्णन कियाजाता है॥

आधिसीमोपनिक्षेपजड़वालधनैर्विना। तथोपनिधिराजस्त्रीश्रोत्रियाणांधनैरपि २६॥

अक्ष०—आधिः सीमा उपनिक्षेप जड़धन बालधनोंके विना तथा उपनिधि राजधन स्त्रीधन श्रोत्रिय धनोंकेभी २६॥

अभि०—समुझना चाहिये कि ऊपर २५ के श्लोकमें जो जो वार्त्ता वर्णन करीगई उनका मुख्य प्रयोजन एकयहीथा कि जो कोईबीस वर्षोंतक देखतेहुये अपनी स्थावर जायदाद पर या दशवर्षोंतक अस्थावर धनोंपर किसीको उपेक्षापूर्वक भोगवान् बनारक्खै तौ उसके लाभादिक फलोंका हक़ जातारहता है-सो-उस वार्त्ता मध्ये यह (अपवाद) कहते हैं कि इस २६ के श्लोकमें लिखेहुये धनोंकी अपेक्षामें यदि उपेक्षा हुईहो तौ वह उपेक्षा नहीं कहाती और उसउपेक्षासे बीस बर्षों या दशबर्षोंके पीछेभी लाभादिक फलोंका हक़ नहीं माराजासक्ता-इसलिये अब इन्हीं अत्रोक्त धनों का स्वरूपज्ञानऔर होनाचाहिये-यथा-एक तौ १(आधि)जिसका पर्यायसंस्कृतमें विनिमय और बंधक धनभी कहते हैं भाषामें गहनेरक्खी कहते हैं फारसीमें रेहन और गिरवी रक्खी भी कहते हैं कदाचित् बीस वर्षतक बिराने क़ब्ज़े में रही आई हो-२ सीमा जिसे भाषा में सीम या सिमाणाभी कहते और फारसी में सरहद्द कहते हैं कदाचित् वीस वर्षोंतक बिराने क०-३ (उपनिक्षेप) अर्थात् (निक्षेप) जिसे भाषा में धरोहर और फारसीमें अमानत कहते हैं इसके लक्षणनीचे अधिकोक्ति में देखौ कदाचित् वीस वर्षोंतक०-(जड़धन) अर्थात् जड़ पुरुषका धन कदाचित् बीस वर्षोंतक बिराने परिग्रहमें रहाहो-जड़ पुरुषके लक्षण अधिकोक्तिमें-५ (बालधन) अर्थात् बालक पुरुषकाधन कदाचित् बीसवर्षोंतक-बालक प्रसिद्धहै जो बुद्धि और उपायसे असमर्थ हो जिसे फारसी में नाबालिग़ कहते हैं-(उपनिधि) यहभी एक प्रकारकी धरोहर है परन्तु निक्षेपकी अपेक्षा इस उपनिधिमें कुछ अन्तरहै इसलिये इसको धरोहर नहीं पर सौंप कहसक्तेहैं फारसीमें इसको अमानतमुहरी कहते हैं कदाचित् बीसवर्षोंतक रहीहो-विशेष लक्षण इसके भी अधिकोक्तिमें-७ (राजधन) अर्थात् जो धन किसी राजाकाहो और वीसवर्षोंतक विराने परिग्रहमें रहाहो-८ (स्त्रीधन) अर्थात् किसी स्त्रीमात्रका जो कुछ धनहो और वीस वर्षोंतक-९ (श्रोत्रियधन) अर्थात् कोई उत्तम विद्वान् जो निरन्तर विद्यादान और विद्या संग्रहमें तत्पर बनारहाहो और इसी हेतुसे उसकाधन किसी के परिग्रहमें वीस वर्षोंतक या दश बर्षोंतक-तौ इन धनोंके लाभमें हानि नहीं होसक्ती २६॥

अधि०—ऊर्ध्वोक्त निक्षेपका लक्षण(यथाहनारदः)स्वंद्रव्यंयदिविश्वासान्निक्षिपत्यविशङ्कितः। निक्षेपोनामतत्प्रोक्तंव्यवहारपदंबुधैः) अर्थात्-जो किसी अविशंकित पुरुष के विश्वासपूर्वक अपनाधन उसके पास दिखला समुझाकर गिनती या तोल परिमाणपूर्वक धरोहरमें रक्खाजाय तिसकानाम निक्षेप कहते हैं-और यदि इसी धनके

मध्ये झगड़ा होकर अभियोग लगायाजाय तौ फिर निःक्षेप नामका व्यवहार पद ज्ञानी पुरुष कहतेहैं-उपनिधिका यह लक्षणहै कि जो वस्तु किसीपात्र संदूक आदिमें धरीहुई मुखमुद्रित बिनादिखलाये और समुझाये विना किसीके विश्वासपूर्वक उसके पास धरोहर सौंपीजाय सो उपनिधि कहलाताहै-यथा (वासनस्थमनाख्यायहस्तेन्य स्ययदर्पितम्। द्रव्यंतूपनिधिःप्रोक्तोव्यवहारार्थवेदिभिः) अर्थात्-वासनमें धराहुआ द्रव्य उसका व्यौरा न कहकर किसी अपने विश्वास पात्रके हाथमें सौंपकर दियाहो वही द्रव्य व्यवहारका प्रयोजन जाननेवालों करके उपनिधि कहलाताहै-यहांपर यह (अपवाद) जो कहागया कि (आधि) नाम रेहनको आदिलेकर इसी २६ श्लोकमें कहे हुये विवादों मध्ये देखतेहुये और न कहतेहुयेभी बीसवर्षोंके उपरान्त धरतीके लाभ और अन्य अस्थावर धनोंकेलाभ दशवर्षोंके उपरांतभी नष्टनहीं होसक्ते किन्तु उन के मिलनेका स्वत्व बनारहता है सो इसहेतुसे कहागया कि ऐसी उक्तदशाओं में उस उपेक्षा करनेवाले धनीका कुछ अपराध निश्चित नहींहोता क्योंकि वह उपेक्षा उचितप्रकारसे प्रकटतामें आती है बल्कि (आधि) अर्थात् रेहन ठेठकर इसीलिये होतीहै कि उसधरतीका या अन्यधनका परिग्रह दूसरेको दियाजाय तौ फिर धनीपर उपेक्षाका अपराध नहीं आरूढ़ होसक्ताहै-ऐसेही (सीमा) सरहद्दोंका शोधन करना उन प्राचीन चिह्नोंसे सुसाध्य और सुगमहोता है कि जो भूसा या राखकोइले आदि बहुधा चीजों से नियत कियेजाते हैं इसलिये इसमें भी उपेक्षाका होना संभवितहै और अपराधमें गिनती नहीं होसक्ता-ऐसेही-उपनिःक्षेप और उपनिधि इन दोनोंमें इसलिये उपेक्षा उचित होसक्तीहै कि जिसकेपास धरोहर या सौंप रक्खीजातीहै उसके लिये धर्म्मशास्त्रमें यहनिषेधहै कि उसधनको वह भोगैनहीं अर्थात् बर्तावेमें नलावे किन्तु रक्षापूर्वक ज्योंकात्यों तद्रूप रखछोड़े तौ फिरइसप्रतिषेध और शिक्षापरभी वह अतिक्रमकरे अर्थात् बर्तावेमेंलावे तौ उसधनसे जो कुछलाभहुआहो सो सबब्याज सहित उससे मिलनाचाहिये इसलिये धनीउसके भोगप्रतिषेधके विश्वासपर उपेक्षा करसक्ताहै-ऐसेही-जड़ और बालकोंकीओरसे उपेक्षाहोनाठीकहै क्योंकि जो बालकहै उसकोअपनेविराने या हानिलाभकी समुझनहीं और जो जड़बुद्धिहै उसकीदशाबालक सेभी असंख्यगुण अधिक विख्यातहै तौ फिर यहउपेक्षा कुछउपेक्षामें गिननीनहींहो सक्ती-जड़पुरुषके लक्षण-यथा (इष्टंवाऽनिष्टंवासुखंदुःखंवानवेत्तियोमोहात्। परवशगः सभवेदिहनाम्नाजडसंज्ञकःपुरुषः)अर्थात्-जो कोई अपने प्रारब्धोंके अनुसार मोहरूप अज्ञानसे परवश हुआ ऐसा विकल बुद्धि होजाय अथवा जन्मकालमेंही ऐसाहो कि प्रिय यद्वाअप्रिय और सुख यद्वा दुःखकोभी न पहिंचानै वहीपुरुष इससंसारमें जड़नाम से विख्यातहोता है (यहांपर जड़के उपलक्षणसे औरभी गूंग और मूर्खआदि गि...

में आजाते हैं)-ऐसेही-राजाको अपने धनसे उपेक्षाहोनी इसहेतुसे उचित होसक्तीहै कि राजा राज्यसंबंधी आदि असंख्य कार्योंमें व्याकुलरहताहै-ऐसेही-स्त्रियों को विशेष ज्ञान और प्रगल्भता नहींहोती इसलिये उनकीभी उपेक्षा कुछ उपेक्षामें गिनतीनहीं-ऐसेही- श्रोत्रियकी उपेक्षा इसहेतुसे उपेक्षानहीं कहलाती कि वह पढ़ने और पढ़ाने आदि दशाओंमें व्यग्रहोता है-इनसभी यथोचित कारणों से (आधि) आदि विवादों में यद्यपि धनीके देखतेहुये समस्तभोग निराक्रोशकी दशामेंभी हुआहो पर कदाचित् भी फल हानि नहींहोसक्ती २६॥

अथाऽऽध्यादिविहर्त्तॄणांधनदंडादिविवेकोनामैकोनविंशःपरिच्छेदः १९॥

इस उन्नीसवें-१९-परिच्छेदमें आध्यादिक धनों के अपहर्त्ताओंको जुर्मानाआदि दंडोंका विवेक वर्णन होगा॥

आध्यादीनांविहर्त्तारंधनिनेदापयेद्धनम्। दंडंचतत्समंराज्ञेशक्त्यपेक्षमथापिवा २७॥

अक्ष०-आध्यादिक धनोंके निपट हरनेवाले परधनीको धन दिलवावे और राजा को भी उसीके समान दंड अथवा शक्तिकीअपेक्षा २७॥

अभि०-२६ के श्लोकमें कहेहुये (आधि)आदि विवादोंमें दंड विशेष बतलाते हैं कि (आधि)को आदिलेकर श्रोत्रियधन पर्यंत जो जो धन अपवाद रूपमें कहे गये उनको जो कोई चिरकाल के उपभोग बलसे निपट अपहरण करलेवे इन विवादोंके अभियोगमें जो कुछ धनलिखवाया गया और निश्चित हुआहो उतना धनमुख्यधनी को उस विहर्त्तासे राजा फिरवादेवै (यहउसीपूर्वोक्त अपवादका (अनुवाद) अर्थात् सिद्ध हुये अपवादका उपन्यास कियाहै)-और दूसरे अद्धासे यह विधि निर्विकल्प कहतेहैं कि दंडभी उसी विवादास्पदीभूत धनके समान द्रव्य उस विहर्तासे राजाको लेना चाहिये-यदि मकान खेत आदि पृथ्वीसंबंधी कोई धनहरागयाहो उस अभियोग में यद्यपि मुख्य धनके समान दंड सर्वत्र नहीं संभव है तथापि जहां उसधनके समान जुर्माना मिलसकना संभवनहो तहां उस वक्ष्यमाण दंडकी रीतिसे दंड करनाचाहिये जो आगे कहीं (मर्यादायाःप्रभेदेचसीमातिक्रमणेतथा)इत्यादि वाक्योंसे-धरतीकी मर्यादवाले चिह्नों के तोड़ने या सीमाके दवालेने आदि अपराधों पर कहा जायगा-कदाचित् जिस अपहर्ताका दर्पनाम घमंड धनवान् होनेके हेतुसेउसके तुल्यजुर्माना देनेपरभी नीचा न होसक्तीहो तव उस्से उसकी शक्तिके अनुरूप धनदंड दिलवावै उस परिमाणसे कि जितनादेनेसे उसकादमन अर्थात् दर्पकाउपशमन होसके-क्योंकि शास्त्रमें यह सिद्धांत कहाहै कि धनदंड दमनके निमित्तसे कियाजाताहै और दमन का प्रयोजन केवल यहीहै कि उस्से दर्प उसकाशांत होजाय-इसलिये-यह सिद्धांतभी निश्चित हुआ कि जब दंड केवल दमनकेही निमित्तसे होताहै तो फिर जिसकेपास

उसकेसमान भी द्रव्य देनेका ठिकाना नहीं तो उस्सेभी उसकी शक्तिकेसमान थोड़ा जुर्मानालेनाचाहिये उस परिमाणसे कि जितनादेनेसे उसकोपीड़ा पहुंचे-अथवा-जिसके पास कुछभी देनेको नहो वह घुड़की और धिग्दंड आदि प्रकारों वाशारीरक दंडसे दमनीयहै २७॥

मधि०-ऊर्ध्वोक्त दंडोंकी व्यवस्थाकहतेहैं-यथाहमनुः(वाग्दंडंप्रथमंकुर्याद्धिग्दंडंतदनंतरम्।तृतीयंधनदंडंतुवधदंडमतःपरम्)अर्थात्-मनुनेयहकहाहै कि प्रथमतो(वाग्दंड) किंतु कोमल वाणीकी शिक्षा पूर्वक दमनउसका करदेना चाहिये कदाचित् जिसमुकद्दमहमें यह दंड संभव नहो तो दूसरा (धिग्दंड) किंतु बहुतसी धिक्कार मलामत देकर दमन करनाचाहिये कदाचित् इस्सेभीदर्पउसकाशांत नहोसक्ताहो तो तीसरा (धनदण्ड) अर्थात् उसका साराधन छीनलेने द्वारा दर्प शांतकरना चाहिये इस पीछे जहाँ ये वातें संभव नहीं याइनके होनेपर भी दर्पकी उपशांति संभव नहो तहाँचौथा (वधदंड) अर्थात् शारीरदंड होना चाहियेसोवह शारीरदंड दशप्रकारका होताहै पर ब्राह्मणोंको विहाय और सबकेलिये कहाहै यथाहमनुः(दशस्थानानिदंडस्यमनुःस्वायंभुवोऽब्रवीत्। त्रिषुवर्णेषुयानिस्युरक्षतोब्राह्मणोव्रजेत्॥ उपस्थमुदरंजिह्वाहस्तौपादौचपंचमम्। चक्षुर्नासाचकर्णौचधनंदेहस्तथैवच)अर्थात्-दंडके दशस्थान स्वायंभुवमनुने कहे थे जोकि तीनों वर्णमें होनेचाहिये और ब्राह्मण अक्षत अर्थात् विना पीड़ादिया हुआ निकालाजाय किन्तु उसकेलिये देहदंड नहीं-वे दशस्थानदंडके यहहैंलिङ्ग,उदर,जीभ,दोनों हाथ,दोनोंपैर,नेत्र,नाक,कान,देह अर्थात् शरीरके अन्य स्थान जो शेषहों-धन अर्थात् कुलजायदादउसकी-प्रकटहोवे कि इनस्थानोंमें जिसअंगसे अपराधहुआहो उसीअंग परपीड़ा दंडहोनाचाहिये-यद्यपि धनकाहरलेना पूर्वोक्त चारप्रकारोंके भी साथकहागया और यहाँ उसके चौथे भेद वध दंडके दशस्थानोंमें भी गिनती कियागया परंतु वह चार प्रकार मूल रूपसे कहेहैं और यह दशभेद भिन्नरूपसे इसमें धनका हरना शारीर दंडमें गिनती इसलियेहै कि धनके हरेजानेसे भी शरीरको पीड़ाहोतीहै-इनके सिवाय और भी दंडके प्रकारहोते हैं किन्तु काम करवाना या बंधनागारमें प्रवेशकरवाना-सो भी कात्यायन का यहवाक्यहै कि(धनदानासहंबुद्ध्वास्वाधीनंकर्मकारयेत्। अशक्तौबंधनागारंप्रवेश्योब्राह्मणादृते) अर्थात् जो मनुष्य धनदेने योग्य नहीं निश्चित हो उस्से उसी का जातीकर्म अर्थात् जो कुछ पेशा वह करताहो या करना जानताहो वही काम उस्से लेनाचाहिये कदाचित् किसी हेतुसे कुछकाम उस्से न होसक्ताहो तो बंधनमें राखनाचाहिये परंतु ब्राह्मण इसदशामें गिनती नहीं-जिस ब्राह्मणके पास कुछ धन नहो उसका दंड पदच्युत करना आदि उचित्तहै-इसवार्त्तामें गौतम का यह वाक्यहै कि(कर्म वियोग विख्यापन निर्वासनांक करणान्यवृत्तौ)अर्थात्-ब्राह्मणसे कुछ अपराध

हो तब यातौ कर्म वियोग अर्थात् जिस कामका पद उसके आधीन हो उस्से रहित कियाजाय और (विख्यापन) अर्थात् या तौ उसको कठिन शिक्षा या उसके अपराध की प्रसिद्धि करनी और (निर्वासन) अर्थात् देशसेनिकाल देना अथवा शरीरपरकोई कलंक रूप चिह्न करदेना-नारदने भी यही कहा-यथा (वधःसर्वस्वहरणंपुरान्निर्वास नांकने। तदंगच्छेदइत्युक्तोदंडउत्तमसाहसः॥ अविशेषेणसर्वेषामेषदंडविधिःस्मृतः) अर्थात्-एक तौ (वध)जिसको शारीरदंड कहते हैं (सर्वस्वहरण)किन्तु जायदादका छीन लेना देशनिकाला करना (अंकन) अर्थात् शरीरपर दाग देना और उसी अंगका छेदनकर देना जिस्से अपराध हुआ हो यहदंड उत्तम साहस कर्मके अपराधों में कहीं सो यह विधि अविशेषतासे सभी साधारण मनुष्यों के लिये कहीहै यह प्रबंध कहे पीछे नारदने यह कहाहै कि (वधादृतेब्राह्मणस्यनवधंब्राह्मणोऽर्हति। शिरसोमुंडनंदंडस्त स्यनिर्वासनंपुरात्॥ ललाटेचाभिशस्तांकः प्रयाणंगर्दभेनच) अर्थात्-यह सभीदंड जो इस वाक्यमें कहगये ब्राह्मणसे भी संबंधित हैं परंतु बधदंड के विना क्योंकि ब्राह्मण शारीर दंडोंके योग्य नहीं है-किन्तु- उसके लिये उत्तम साहस अपराधों में यह दंड होसक्ते हैं कि अप्रतिष्ठा साथ शिरमुड़वादेना-पुरसे बाहर काढ़देना-माथेपर निंद्यचिह्न का दाग लगादेना-गधेपर चढ़ाकर यात्रा करवाना-मस्तकपर अंकन करने मध्ये भी व्यवस्था मनुने कहीहै-यथा (गुरुतल्पेभगः कार्यः सुरापानेसुराध्वजः। स्तेयेतुश्वपदं कार्यंब्रह्महण्यशिराः पुमान्) अर्थात्- गुरुतल्पग जिसने माता आदि गमन करीहों तिसके मस्तकपर भगाकार मुद्रातपाकर दागदेना-जिस ब्राह्मणने सुरापान किया हो उसके माथेपर सुराध्वज का चिह्न अर्थात् सुराखींचने की डेगभभका नल इनके आकार वाली तपीहुई मुद्रासे दाग दिलवाना-वह चोर जिस ने ब्राह्मण का सोरह मासे सोना या इस्से अधिक चुराय हो उसके मत्थेपर कुत्ताके पंजाका आकार दगवादेना-जिसने ब्राह्मण का शिरकाटा या किसी प्रकारसे मारा हो तिसके मत्थेपर शिरहीन पुरुषकाआकार दागदेना-परंतु-आपस्तम्बके वाक्यमेंजोकि यहआज्ञाहैकि(चक्षुर्निरोधो ब्राह्मस्य) अर्थात् ब्राह्मणके नेत्रोंका निरोध कियाजाय-तिसका यह सिद्धांतहै कि उस कोदेश निकाला करते समय वस्त्रकीपट्टी आदिसे आँखैंबाँधदीजायँ किन्तु यह सिद्धार्थ नहीहै कि उसकी आँख निकाल डारीजायँ-क्योंकि यह सिद्धांत नारदके उसवाक्यसे विपरीतहोगा जो नारदने कहाहै कि ब्राह्मण शारीर दंडोंके योग्य नहीं-और मनुकेभी इसवाक्य कि (अक्षतो ब्राह्मणो ब्रजेत्) अर्थात् ब्राह्मणविना किसी चोटचपेटके लगे निकालाजाय इसवार्त्तामें यहीप्रमाणपूराहै कुछ और लिखनेकी आवश्यकतानहीं २७

अथ निरागम भोग परिग्रह विषय व्यवस्थाप्रदर्शनोनामविंशतितमःपरिच्छेदः २०॥

इस बीसवें परिच्छेदमें वह व्यवस्था दर्शायी जायगी जिस्से-आगम रहित भोग

- र्थात् क़ब्ज़ेह बिला इस्तेहक़ाक़ जानाजाय और उसकी निर्बलता आदि प्रकटहों निरागम या आगम रहित इसलिये कहा कि जिसधरती आदि किसी धनकाभोग परिग्रहतौ स्वाधीनहै परंतु आगमनहीं अर्थात् यहवार्त्ता निश्चित नहीं है कि यह धरती या कोई अन्यधनस्थावर जिस पर इसका क़ब्ज़ामात्रहै इसकेपास कहांसेआया और किसप्रकारसेआया किन्तु किसकेद्वारा इसकोमिला या मिलनेकाहक़पहुँचताहै॥

आगमोऽभ्यधिकोभोगाद्विनापूर्वक्रमागतात् २८ ॥ (अष्टाविंशस्यपूर्वार्द्धोऽयम्)

अक्ष०–भोगसे आगम अभ्यधिकहै परन्तु पूर्वक्रमागत भोगसे बिना २८ ॥

अभि०–आगम नाम इस्तेहक़ाक़ जोहै सो भोगसे अधिक बलवान्है-परंतु-पूर्वक्रमागत भोगसे बिना अर्थात् जिस जायदादपर पूर्वके तीनपुरुषोंसे क्रमसहित भोग चला आयाहो उसभोगसे आगमनहीं बलवान् है ॥ २८ ॥ यह अट्ठाईसका पहला अर्द्ध ॥

अधि०–जोकि १८ परिच्छेदके अनुकूल यहवार्त्ता निश्चित होचुकीहै कि स्वत्वके अव्यभिचारित्व पूर्वक जो भोग होताहै वहीभोग स्वत्वकी प्रमाणतामें आताहै-कदाचित् स्वत्वके व्यभिचारित्वसे केवल भोगमात्रहोतौ वहभोग क्योंकर प्रमाणतामें आसक्ताहै (इस अपेक्षामें कहतेहैं कि) स्वत्वका हेतु आगम होताहै वह आगम या तौ प्रतिग्रह नाम दान द्वारा मिलताहै या दामदेकर क्रयकरनेसे मिलता है अथवा कहीं अन्य प्रकारोंसेभी मिलता (आगम) अर्थात् आगमनहोना किसी यथार्थ योग्यता के अनुसार यह आगम भोगसेभी अधिक और सर्वथा बलवान् होताहै क्योंकि स्वत्व जाननेकी अपेक्षामें भोगजोहै सोभी आगमसे अपेक्षा रखताहै किन्तु आगम सहित जोभोगहो वही स्वत्वका बोधकरता है-इस वार्त्तामें नारदने यह प्रमाण कहाहै कि – (आगमेनविशुद्धेनभोगोयातिप्रमाणताम्। अविशुद्धागमोभोगःप्रामाण्यंनैवगच्छति) अर्थात्-जो विशुद्धनाम दोषरहित यथार्थ आगमकेद्वारा भोगहोताहै वहीभोग प्रमाणताको पहुँचताहै और जो अविशुद्धनाम सदोष या अयथार्थ आगमकेद्वारा भोगहोताहै वहप्रमाणताको नहींपहुँचता-इसके सिवाय केवल भोगमात्रसेभी स्वत्वकीप्रमाणता नहींहोती क्योंकि जो केवल भोगसेही स्वत्वकी प्रमाणता मानीजाती तौ संभव था कि चाहै तिसकी बिरानी जायदादपर भोगकोई अन्यायसेही हरणकरिकैया और किसीअयोग्य मार्गसे अपहार करिके करलेता और उसभोगद्वारा बिरानी जायदाद स्वत्वकी प्रमाणताको पहुँचाता-इसीलिये यहस्मृति प्रमाण करीगईहै कि(भोगंकेवलतोयस्तुकीर्तयेन्नागमंक्वचित्। भोगच्छलापदेशेनविज्ञेयःसतुतस्करः)अर्थात्- जोकोई बिना किसी आगमके दिखलाये केवल अपने भोगका प्रमाण बतलावै कि मैं इतने दिनोंसे भोगताहूंतौ इसझूँठे भोगके बहानेसे वह उपभोक्ताचोर समुझाजाय (और

इसीउपलक्षणसे जोकुछ चोरकी सज़ाहोतीहो सोभी उसकेलियेउचितहै) इसीहेतुसे-वहभोग यदि पाँचविशेषणोंसे संयुक्तहो तब स्वत्वकी प्रमाणतामें आताहै अर्थात् वह (भोग)१-आगम सहितहो-२ बहुत कालसे चलाआताहो-३ निरन्तर अविच्छेद चला आयाहो-४ निराक्रोश जिसकी मध्यदशाओंमें किसीने टोका बखोरी या निषेध आदि कोईबाधा न करीहो-५ प्रत्यर्थीसे सन्मुख अर्थात् प्रतिपक्षी उसका यह जानताहो कि इसकाभोग इसप्रकार और इतने कालसे चलाआताहै-सोई यह स्मृति भी प्रमाण है कि (सागमोदीर्घकालश्चाविच्छेदोऽपरवाधितः । प्रत्यर्थिसन्निधानोपिपरिभोगोपिपंचधा) अर्थात्—परिभोग निश्चित पांचप्रकारका होताहै-किंतु-१सागम-२ दीर्घकाल-३ अविच्छेद-४ अवाध-५ प्रत्यर्थिसंनिधान (यह सिद्धांत यहांतक मूलश्लोक पहले चरणका पूराहुआ) (अब द्वितीय चरणसे इसीमें कुछ अपवादभी कहते हैं-यह अपवाद उस भोगकी अपेक्षामें होगा कि जो पितृ पैतामह धनकी विरासतसे मिलाहो) क्योंकि-कहीं आगम रहित भोगभी प्रमाणतामें आसक्ताहै सोई मूलवाक्यमें दूसरापाद यह कहाहै कि (विनापूर्वक्रमागतात्) अर्थात् पूर्वके तीनपुरुष पिता पितामह प्रपितामह इनके क्रमसे जो (भोग) नाम क़ब्ज़ा मिलता चला आयाहो उस क़ब्ज़ेमें विशेषतर आगमकी अपेक्षा नहीं है अर्थात् उस क़ब्ज़ेके सन्मुख आगम कुछ अधिक बलवान् नहीं होसक्ता बरन यह इसप्रकारका क़ब्ज़ाही आगमके सन्मुख अधिक बलवान्है क्योंकि इसमें आगमकी अपेक्षा नहीं यही प्रमाण पूराहै-तथापि-इसका आशय यह समुझना चाहिये कि वह भोगआगमके ज्ञानमात्रकी अपेक्षा केवल इतनी नहीं रखता कि उस आगमका मूलहेतु निर्णय किया जाय कि यहआगम कबहुआ या किस हेतुसे इत्यादि-अर्थात् आगमकी सत्तासे निरपेक्ष नहीं है किंतु आगमकी सत्तानाम होना उस आगमका फिरभी आवश्यक है-और-वह आगमकी सत्ताभी उसी भोगद्वारा निश्चित होती है (विनापूर्वक्रमागतात्) इस पदके द्वारा जो कि (त्रैपुरुषभोग) का (अपवाद) ऊपर लिखागया सोभी उसदशामें प्रामाण्यहै कि जब त्रैपुरुष व्यतीतकाल वर्त्तमानोंकी मानुषी यादसे विहीनहो तो वह भोग आगमसे बलवान्है-और इस्से पहले पदमें जो (आगम) की (प्रबलता) दर्शायी गई वह ठेठ स्मार्त्तकालसे संबंध रखती है अर्थात् उसका सिद्धांत यही है कि आगमकी उत्पत्ति वर्त्तमानोंकी मानुषी यादके भीतर हो तो वह आगम भोगसे बलवान्है-क्योंकि जिस वार्त्ताकी उत्पत्ति मानुषी स्मृतिके भीतर हुई होगी उसमें संभव है कि उस आगमके झूंठेहोनेकी शंकामें उसकी दृढ़ताभी प्रवेश करी जाय (दृढ़ता) यह कि यह आगम अमुक समयपर अमुक हेतुसे अमुकामुक मनुष्योंकी स्मृतिमें उत्पन्न हुआथा वे मनुष्य अबतक जीते हैं बुलाकर उनसे पूंछाजाय अथवा औरको-

ई प्रकारकी दृढ़ता जो यादके अनुकूल प्रविष्ट होसक्ती हो) कदाचित् ऐसी दृढ़ता उस आगमकी अपेक्षामें प्रविष्ट नहो सकैगी तौ यथार्थसे यह निश्चित होगा कि इस आगमकी सत्ता कुछ नहीं अर्थात् यह आगम न होनेमें गिनती है इसलिये ऐसी दशामें भोगका प्रमाण आगमकी उत्पत्तिज्ञानके आधीन है अर्थात् मानुषी स्मृतिके भीतर आगमकी उत्पत्तिके ज्ञान पूर्वक जो भोग होगा वही प्रमाणमें आवेगा-परन्तु- त्रैपुरुष उपलक्षित व्यतीतकाल जो मानुषी स्मृतिसे विहीन होगया हो जिसमें किसी आगम की उत्पत्ति हुई हो जो वर्त्तमानोंकी मानुषी स्मृतिमें नहीं आसक्ती है तौ ऐसी दशामें आगमके झूंठ होनेकी शंकामें उस आगमकी उत्पत्ति मध्येदृढ़ताके प्रविष्ट नहोनेपर भी यह बात असंभवहै कि उस आगमका न होना समुझा जाय अर्थात् आगमकी उत्पत्तिका हेतु प्रकट न होनेपरभी वह आगम सच्चा समुझा जायगा क्योंकि निरंतर तीन पीढ़ी पूर्वसे भोग चला आताहै-इसलिये सिद्धांत यह निश्चित हुआ कि वह भोग जो त्रैपुरुष क्रमागत प्राप्त हुआहो सो आगमका हेतु प्रकट न होनेपरभी प्रमाणमें आवेगा-इस वार्त्ताको कात्यायन ऋषिने स्पष्ट भावसे लिखाहै-यथा(स्मार्तेकाले क्रियाभूमेःसागमाभुक्तिरिष्यते। अस्मार्त्तेत्वागमाभावात्क्रमात्त्रिपुरुषागता) अर्थात्-भूमि संबंधी प्रयोजनोंकी क्रिया जो स्मार्तकालके भीतर प्रकट हुईहो तिसमें आगम सहित भोग प्रमाणहै और जिन क्रियाओंकी प्रकटता स्मार्त्तकालसे पहले हुईहो तिनमें तीनपीढ़ी पहलीका क्रमागत भोग आगमके न होनेपरभी प्रमाण माना जायगा-यद्यपि स्मार्त्तकाल यद्वा मानुषीस्मृतिका अर्थ यही है कि आवश्यकताके समयपर वर्त्तमानोंमेंसे कोई बूढ़ेसे बूढ़ा पुरुष अबसे लेकर अपनी बाल्य अवस्था पर्यंत पहली देखी सुनीबात याद रखकर कहसकै तथापि इस व्यवहार विषयकी सिद्धि के लिये स्मार्त्तकालकी एक अवधि नियत करी गई है (शतायुर्वैपुरुषः) इसश्रुति के आशयसे कि मनुष्यकी अवस्था हद्दसौ वर्षतक होती है इसलिये सौ वर्षोंका काल विलंब मानुषीस्मृतिके भीतर कहलाताहै अनन्तरोक्त कात्यायनके वाक्यमें यह बात जो कही गई कि (आगमके न होनेपरभी) तिस न होनेका यह अभिप्राय है कि जब जबआगमका मूलहेतु प्रवेशनहोने या नमिलनेके कारणसे आगमका निपटअभाव निश्चयात्मक निश्चितनहो तौ फिरऐसी सन्दिग्ध दशामें जो भोग सौवर्षोंसे अधिक अवधिकाहो-और निरन्तर त्रैपुरुष क्रमागतभीहो-और(अप्रतिरव) अर्थात् अबाधभी हो- और प्रत्यर्थीके प्रत्यक्षहुआहो ऐसाभोग स्वत्वके प्रमाणमेंआताहै क्योंकियद्यपि स्वत्वकीसत्ता सन्दिग्धहै परन्तुयह सबसामग्री आगमकी दृढ़ताकारकहैं- तथापि सौवर्षोंसे पहले स्मार्तकालसे भी जिसका अनागमभोग चलाआताहो किन्तु उसके पासनिपट आगमनहो और उसआगमकी यथार्थ(सत्ता)परम्परासे सन्तान प्रतिसंतान

अन्यमनुष्योंकी दन्तकथा द्वाराभी नसिद्धहोतीहो तो वहअनागमभोग प्रमाणकोनहीं पहुँचसक्ता- इसीदशापर यह मर्याद भी आरूढ़हैकि (अनागमन्तुयोभुंक्ते बहून्यब्द शतान्यपि। चौरदण्डेनतंपापं दण्डयेत्पृथिवीपतिः) अर्थात्-जो कोई शतधावर्षांतक भी अनागम धरतीभोगै उसपापात्माको चोरोंके समान दण्डराजादेवै- परन्तु- इसी वाक्यमें (योभुंक्ते) यहएक वचनका निर्देशजो कियागया और (शतान्यपि) इसमें शतवर्षोंकेपीछे (अपि) शब्दका प्रयोगजो कियागया इस्सेयह कल्पना नकरनीचाहिये कि दण्डकेवल वहीमनुष्यपावै जो पहला पुरुषविना आगमके उपभोक्ता हुआथा क्योंकि इसकल्पनासे यहअनुमानभी उत्पन्नहोताहै कि उस्से दूसरेतथा तीसरेउपभोक्ताक़ब्ज़ा विनाआगमकेभी स्वत्वकी प्रमाणतामें आजावेगा सो यहअनुमान अङ्गीकार नहींहोसक्ता क्योंकि अग्रोक्त इसनारदके वाक्यसेबिरोध पावैगा-तथाहि(आदौ तुकारणंदानं मध्येभुक्तिस्तुसागमा)अर्थात्- पहले पुरुषकेलिये दानजोहै सो आगम काहेतुहोताहै और बीचवालेकेलिये आगमसहित भुक्ति- इस्सेनिश्चतहोताहै कि (अनागमन्तुयोभुंक्ते) इत्यादि वाक्य जिसमेंशतधावर्षांके भोगपरभी चोरदण्डालिखा है यहसर्वत्रनिरागम भोगकीदशाओंपर सम्बन्धितहै- (निरागम) अर्थात् आगमसेरहित भोगजो अयोग्यरीतिसे कियागयाहो और (आगम) शब्दका भावार्थ यद्यपि आशयकी सुगमताकेलिये पच्चीसवीं अधिकोक्ति आदि कहीं२ लेख्यपत्रोंसेभी दर्शायागयाक्योंकि पत्रलेख्यभी आगमके कार्यमात्रहोतेहैं इसीसे लेख्यपत्रोंकीभी आगमउपसंज्ञाहैतथापि आगमकहनेकाअर्थकेवलयह कि कोईऐसाचिह्न या प्रत्यय या योग्यतासद्भाव उपस्थितहो जो देखने या सुननेसे तत्कालबोधहोसकै कि अमुकधन इसकाहक़है अन्यथा आगमकेवल आगमनमात्रकानामहै और लिखितपत्रोंको उस आगमके एकप्रमाणविशेषमेंगिनतेहैं देखोश्लोकमूल२३का (आगम्यतेज्ञायतेऽनेनआगमः) और जोकि एकयहवाक्यहै कि(अन्यायेनापियद्भुक्तंपित्रापूर्वैनरैस्त्रिभिः। नतच्छक्यमपाहर्तुंक्रमात्त्रिपुरुषागतम्) अर्थात्-जो धनअन्यायसेभी विनाकिसी प्रसिद्ध आगमकेतीन पुरुषपहले और पिताने भोगाहो उसकेनिवर्तित होनेकादावानहीं होसक्ता क्योंकि वहवस्तु उपभोक्ताके परिग्रहमें निरन्तर तीनपीढ़ीके क्रमसेचलीआई सो-इसवाक्यमें यहभाव समुझनाचाहिये कि उन्हींतीनपीढ़ीमें आपभीगिनतीहै किन्तुपिताके सिवायतीन पीढ़ी पहलीनहीं तिसमेंभीयह कारणजोकहा कि निरन्तरतीन पीढ़ीसेचलीआईहै सोयह स्मार्त कालका उपलक्षण दर्शायाहै कि इसकथनसे मानुषी स्मृतिसे विहीन काल जानाजाय -क्योंकि-जो इसवचनसे केवलतीन पुरुषोंका निरन्तर क्रमागत भोगही अङ्गीकारकियाजाय तोफिर कदाचित् एकहीवर्षके अन्तरसे दूसरेवर्षमें निरागमभोग प्रमाणताको पहुँचसकै क्योंकिजब दो२चार२मासकेअन्तरसे एकहीवर्षमें तीनपुरुषों

का देहान्त लगातारहोतागया और अगिलोंके क़ब्ज़ेमें धन आतागया-तबउस कात्यायनके वाक्यसे इसमें प्रत्यक्षविरोधहोजावे यथा (स्मार्तकालेक्रियाभूमेः सागमा भुक्तिरिष्यते) अर्थात्-जिसभूमिके प्रयोजन सम्बन्धी क्रियामानुषी स्मृतिके भीतर प्रकटहुईहो उसका भोगजो आगमसहितहोगा तौ प्रमाणमानाजायगा निरागमनहीं और मानुषी स्मृतिकी अवधिसौ वर्षांतकनियतहै फिर एकवर्षके अन्तरसे निरागम भोग क्योंकर प्रमाणहोसक्ताहै और (अन्यायेनापियद्भुक्तं) इत्यादि इसीउक्तवाक्यमें जोधन अन्यायसेभीइस (भी)शब्दकीयोजनासे यहआशयअङ्गीकारहै कि यदिकिसी दशामें अन्यायसे भीहरेहुये निरागमभोगकाधन उलटा नहींफिरसकै-तौ-फिर यह औचित्य प्रकटहोताहै कि जिसभोगमें आगमकीदृढ़ता रूपयोग्यताओंके न मिलने पर उपभोक्ताका अन्यायतद्रूप निश्चितनहुआहो किन्तु संदिग्धहोतौ अवश्यहीउस त्रैपुरुष उपलक्षित स्मार्तकालसे भोगेहुयेधनका उलटाफिरना उचितनहीं-और यह वाक्य जो कहाहै कि (यद्विनागममत्यन्तंभुक्तंपूर्वैस्त्रिभिर्भवेत् । नतच्छक्यमपाहर्तुंक्रमात्त्रिपुरुषागतम्)अर्थात्-जो धनअत्यन्त निश्चयात्मक आगमकेविना किंतुकिसी संदिग्धरूप किंचित् आगमके अनुकूल पहले तीनपुरुषोंकरके भोगागया हो उस अवधितक जो मानुषीस्मृतिसे विहीनहो वहधन फिरउलटा लौटिसकने योग्यनहीं क्योंकि निरन्तरक्रमसे तीनपुरुषोंके परिग्रहसे चलाआयाहै-इसवाक्यमें यह सिद्धान्त समुझनाचाहिये कि वह संदिग्धरूप किञ्चित् आगम कुछऐसाहो जो मानुषीस्मृति कीअवधिसे विहीनहो और उसकीदृढ़ता नहोसक्तीहो परन्तु यह सिद्धांतनहीं है कि निपटआगमका स्वरूपहीनहो-क्योंकि- वहुधा यहमर्याद वर्णनहोचुकीहै कि शतधा वर्षोंकेभोगसेभी आगमकीसत्ताविना उसभोगेहुये धनकेऊपर स्वत्वनहीं पहुँचता-(सर्वथा यहसिद्धांतहै कि क्रमसे तीनपीढ़ीका भोगाहुआ धन जिसकेक़ब्ज़ेमें आया उसभोक्ताकी अपेक्षा जो कुछवाद विवादहो तिसका आशय इसऊर्ध्वोक्तके अनुसार देखाजाय)॥

संभ्रम-ऊर्ध्वोक्त मर्यादमें यह वितर्कहोसक्ताहै कि यहमर्यादही नियतकरना अनुचितहै कि जिनवार्ताओंकी प्रकटता मानुषीस्मृतिके भीतरहुई उनमें आगम सहित भोगप्रामाण्यहोगा यह इसलिये अयुक्तकहसक्तेहैं कि जब आगमकिसी औरप्रमाणांतरसे दृष्टांतयथा क्रयपत्रआदिसेही निश्चितहोसकै तौ केवलयहीबात स्वत्वके जानने मध्ये प्रमाणपूराहै किन्तु ऐसीदशामेंभोगसे न तौ स्वत्वनिश्चितहोगा और न आगम निश्चितहोगा और कदाचित् आगमकिसी और क्रयादि प्रमाणांतरसे निश्चितनहो सकै तौ प्रत्यक्षहै कि उसदशामें आगमविशिष्ट भोग (अर्थातक़ब्ज़ह मुस्तहक़ानह)से कुछ (हक़ीयत) अर्थात् स्वत्वकी प्रमाणता नहींप्राप्तहोसक्ती-इसकायह समाधानहै कि-

प्रमाणांतरसेपायेहुये आगमसहित जो निरन्तर भोगहोता है वह कालांतरमें जाकर स्वत्वकोपहुँचाताहै-अर्थात्-(क़ब्ज़े मुस्तहक़्क़ानहः जोमुसलसिल औरकिसी और सबूत से निश्चितहो वह ज़मानेमाबादमें सबूत हक़ीयत मुत्सव्विरहोताहै) परन्तु जो आगम क्रयादिप्रमाणांतरसे जानाभीजाय और भोगसेरहितहो तौ कालांतरमेंस्वत्वको पहु-चानेमेंसमर्थनहीं-अर्थात्-(जो इस्तेहक़ाक़ मिसिल इश्तिरा वग़ैरःके साबितभीहो वह बिलाक़ब्ज़ेःकेज़मानेमाबादमें सबूत हक़ीयत मुत्सव्विरनहोगा) क्योंकि संभवहै कि क्रयलेख्यकी प्रकटतापीछे बीचमें दानविक्रयआदिके द्वारासत्वकी यथार्थतासे निष्फलहोगयाहो-अर्थात्-(मुमकिनहै कि बाद वक़ूअ इश्तिराकेहक़ मिल्कियत बज़रीअह हिबेः या बैअ या अज़रूयकिसी और इन्तकालके ज़ायलहोगयाहो) इसलिये यह मर्याद अनवद्य अर्थात् (ग़ैरमुमकिनुल्तर्दीदहै)इसकाखंडन कोईनहींकरसक्ता २८ ॥ यहअट्ठाईसका पूर्वार्ध पूराहुआ अब उत्तरार्द्ध नीचेकेपरिच्छेदमें ॥

अथभोग निरपेक्षस्यागमस्यविषयविवेकोनाम एकविंशतितमःपरिच्छेदः २१ ॥

इसइक्कीसवें परिच्छेद में वहआशय वर्णनहोगा जिस्से भोगरहित आगमका विवेकजानाजाय अर्थात् (इस्तेहक़ाक़ जो बिलाक़ब्ज़ेकेहो) तिसकाचर्चा ॥

आगमेपिवलंनैवभुक्तिःस्तोकापियत्रनो २८ ॥

अक्ष०—आगममेंभी वलनहींहै जहाँ भुक्तिथोड़ीभीहो २८ ॥

अभि०—आगम सापेक्ष भोगप्रमाण बतलाया अर्थात् ऊपरले परिच्छेदमें यह मर्यादाकहीगई कि यदि भोगआगमके अनुकूलहो तौ उस्से संपत्तिका स्वत्वप्रमाण-तामें आताहै परन्तुइस्से (यह अनुमानहोताहै कि आगमजोहै सो भोगसे निरपेक्ष है) अर्थात् भोगके न होनेपरभी केवलआगमसे स्वत्वकीप्रमाणता होसक्तीहोगी-इसलियेअब उत्तरार्द्ध मूलश्लोकमेंयहकहतेहैं कि जिसआगमके होनेमें स्वल्पभुक्तिभी नहो तौ ऐसा आगम प्रमाणकेयोग्यनहीं है-सिद्धांतइसकायह कि जो आगमकेसाथ निपटभोगनहो तौ ऐसाआगमवलवान्‌नहीं किन्तु पूरीप्रमाणताउस्से नहींप्राप्तहोस-क्ती उसमें सन्देहरहता है-इसवार्त्ताकाजोड़ इसप्रकारसे समुझनाचाहिये कि अपना स्वत्वनिवृत्तकरिके परायास्वत्व जिसकिसी वस्तुमेंउत्पन्नकरादियाजाय सोदानकहला-ताहै किन्तु परायास्वत्वभी यथार्थउसीदशामेंउत्पन्नहोसक्ताहै कि पर मनुष्य जबउस दानकास्वीकारकरै अन्यथा ऐसानहीं-स्वीकारभीतीनविधिकाहोताहै मानस १ वाचि-क २ कायिक ३ इनमेंमानसका यहलक्षणहै कि यहअमुकवस्तु उसकेकथनसे मेरीहो-चुकी ऐसामनसेही संकल्पकरिलेना १ वाचिकभी इसलक्षणसेकहलाता है कि यह वस्तुमेरीहै इत्यादि मुँहसेकहना या इसकेसमानकोई और भाँतिसेप्रकटकरना इसको सविकल्पकप्रत्ययभीकहते हैं २ तीसरा कायिकस्वीकार (उपादान) ग्रहणकरना (अभि-

मर्पण) क़ुबनाइत्यादिरूपसे अनेकभाँतिकाहोताहै-इसतीसरेस्वीकारकीअपेक्षा यह नियमहोतेहैं-यथा(दद्यात्कृष्णाजिनंपृष्ठेगांपुच्छेकरिणंकरे । केसरेषुतथैवाश्वंदासींशिरसिदापयेत्) अर्थात्(कृष्णाजिन) मृगछालादानकरै तो पीठकाभागथाँभकरदेवै गऊको पूँछथाँभकरहाथीकोसूँड़िथाँभकर घोड़ाको कंधेपरकेवालथाँभकर दासीदानकरै तो शिरपरहाथरखकर या शिरकेबालथाँभकर-आश्वलायनकाभीवाक्य इसमेंप्रमाणहै-यथा—(अनुमंत्रयेत्प्राण्यभिमृशेदप्राणिंकन्यांचेति)अर्थात्-प्राणीसेअनुमंत्रणकरैऔरअप्राणि तथा लौंड़ीको दानसमयहाथसेस्पर्शकरै-और-हिरण्य तथा वस्त्रआदिकेस्वीकारमें संकल्परूप उदकदानकेअनन्तर उपादानआदिसंभवहोतेहैं इसहेतुसे यहस्वीकारभी उन्हींतीनस्वीकारोंमें किसीसेसम्बान्धितहोसक्ताहै इसलिये स्वीकार केवल तीनभाँति कानिश्चितहै-परन्तु-जहाँ क्षेत्रादि पृथ्वी धनका कायिकस्वीकारहो वह फलभोगविना असंभवहै-इसलिये-यह आवश्यकहो कि ऐसास्वीकार कुछेकवहुत या थोड़ेही (भोग) अर्थात् क़ब्ज़ेकेसाथ आचरणकियाजाय तौ वहस्वीकार आगमकीप्रमाणतामेंआवै अन्यथा दान या विक्रय आदिकीपूर्णता संभव न होगी इसलिये निश्चितहै कि फल भोगलक्षणवान् कायिकस्वीकारकेविना अथवा जो आगम किसीअन्यदोप्रकारके स्वीकारोंकेअनुकूलहो वह आगम उसआगमकीअपेक्षादुर्बलहै कि जो फलभोगलक्षणसेसंयुक्तकायिकस्वीकारहो सो यहवातभी दोनोंकेपूर्वापरकालकेअपरिज्ञानमेंसंभवहै अर्थात् वह भोग लक्षणसेहीनआगमउसीदशामें दुर्बलसमुझाजायगा कि जब इसवातकाविबेकनहोसकै कि पहलेभोगप्राप्तहुआ अथवा आगम और जब यहबात यथार्थनिश्चितहोजाय कि पहलाकालकिसका और पिछलाकिसका तब उसदशामें केवल पूर्वकालकाआगमचाहे विगुणभीहो परवहीवलवान्है-अथवा-इसप्रकारसेइसकासिद्धांतहोसक्ताहै कि सोरहवेंपरिच्छेद श्लोक २२ मूलमें यहकथनहोचुकाहै कि-प्रमाणजोहै सो तीनप्रकारकाहोताहै लिखितं १ भुक्तिः २ साक्षिणः ३ अर्थात् दस्तावेज़ १ और क़ब्ज़ा २ और गवाहों ३ से आगमकीप्रमाणतामिलतीहै यह साधारणभावसेकहा- यदि इसमेंयहसंकल्पाबिकल्पकियाजाय कि जहाँ यहतीनोंप्रमाण उपस्थितहों तहाँ किसकोअधिकप्रवलता और किसअवसरपरहोसक्तीहै सो यह वार्त्ता-इसीइक्कीसवें और इससेपहले बीसवेंपरिच्छेदसेनिर्णीतहै-किन्तु दोनोंमें यहमूलश्लोकहै कि(आगमोभ्यधिकोभोगात्विनापूर्वक्रमागतात् । आगमेपिवलंनैवभुक्तिःस्तोकापियत्रनो) अर्थात्-इसमें यहभावकहा कि जोभोगपूर्वकेत्रैपुरुष क्रमसेनहींप्राप्तहुआ हो तौ ऐसेभोगसे-आगमहीअधिकतरबलवान् है और जवकिञ्चिन्मात्रभी भोगनहो तौ उसदशामें आगमदुर्बल है अर्थात् पूरीप्रमाणताउसआगमकोनहींहै-इनवाक्यों कासिद्धांतरूप अर्थयह कि पहलापुरुषभोक्ता जिसने आगमउत्पन्न किया कदाचित

उसीसेविवादहो और इसपहलेभोक्ताकाआगम यदि गवाहोंसेप्रमाणहोजाय तौ यह आगमउसभोगसेअधिकतरबलवान्है जो भोगपूर्वसे त्रैपुरुषक्रमागतनहो-और वह पूर्वक्रमागतभोग चतुर्थभोक्तामेंजाकर उसआगमसेभी अधिकबलवान्है कि जिस आगमकाप्रमाण लिखितदस्तावेजोंसेनिश्चितहो-और बीचवालेदावीदारकीअपेक्षा में भोगरहितआगमसे वह आगमबलवान्है जिसकेसाथ किंचिन्मात्रभीभोगहो-यह वार्त्तानारदनेस्पष्टभावसेकहीहै- यथा(आदौतुकारणंदानंमध्येभुक्तिस्तुसागमा। कारणं भुक्तिरेवैकासंततायाचिरंतनी)अर्थात्-आदिपुरुषमें कारणहोताहै दान और मध्यपुरुषमें आगमसहित भुक्ति परन्तुकेवल एकभुक्ति उसदशामें स्वत्वका कारणहोसक्ती है कि यदिनिरंतर त्रैपुरुष क्रमागत और चिरंतनकालकी भी हो (ध्यानकरौ(आगम) का स्वरूप यद्यपि बोधकी सुगमताके लिये बहुधालेख्य पत्रोंसेभी जहांतहां दर्शाया गया परन्तुलेख्य पत्र उसकामुख्य स्वरूपनहीं क्योंकि लेख्यपत्र झूठे बनावटकेभी होसक्तेहैं कदाचित् सच्चेभी हों तौभी आगमका कार्यमात्र समुझेजासक्तेहैं इसलिये वेभी एकप्रकारके प्रमाणमें गिनतीहैं अर्थात् आगम केवल आगमनमात्र का नामहै जिस्से यह जानाजाय कि अमुकधन अमुकद्वारा अमुकयथार्थरीतिसे इसकेपास आया और यथार्थ इसकेपास आगमन होना उसधनका योग्यथा बसयही उसका (इस्तेहक़ाक़ प्रसिद्धहोता है) २८

आगमस्तुकृतोयेनसोऽभियुक्तस्तमुद्धरेत्। नतत्सुतस्तत्सुतोवाभुक्तिस्तत्रगरीयसी २९॥

अक्ष०— जिसने आगमकिया वह अभियुक्त होकर उसको उद्धारकरै नहीं उसका पुत्र या उसकापुत्र भी नहीं (क्योंकि)यहांभुक्तिगरीयसीहै २९॥

अभि०— यह उनतीसवांश्लोक इसलिये कहाजाताहै कि पहले (१८) परिच्छेद में पच्चीसवें श्लोकसे कहचुकेहैं कि बीसवर्षोंका पराया उपभोग भूमिका और दशवर्षोंका उपभोग अन्यधनोंका जोकोई अपनी आँखों देखतेहुये विनाटोके बखोरेबना रक्खे तौ उसको बीसवर्षोंके उपरांत पृथ्वीका उपलाभ और दशवर्षोंके उपरांत धनोंका उपलाभ लौटकर नहीं दिलायाजायगा-कदाचित् इस्सेयह समुझाजाय कि लाभ उसको नहीं मिलता इसलिये दंडभी न होगा-इसअपेक्षामें दंडकी व्यवस्था दर्शातेहैं और वहदंडपुरुषकी व्यवस्था तथा प्रामाण्य व्यवस्थाके अनुकूल कहाजायगासो अधिकोक्तिमें देखो-जिस पुरुषने अपने आप आगमका स्वीकार प्राप्तकियाहो और वहीपुरुष किसी अभियोक्ता करके अभियुक्त कियाजाय और अभियोक्ता यहकहे कि यह क्षेत्रादिक धनतेरे पासकहांसे आया अर्थात् तेरानहीं मेराहै और जोतेराहै तौ स्पष्टकर कहांसे आगमहुआ तबऐसी दशामेंउसको उचितहै कि प्रतिग्रह आदि निरूपणमें आगमहुआ हो अपने लिखित आदि प्रमाणोंसे प्रमाणताको पहुँचावै

परन्तु यह औचित्य उसके पुत्र अथवापौत्र पर आवश्यक नहींहै क्योंकि उनकेलिये भुक्तिजोहै सो अधिकतर प्रमाण और बलवान् है २९ ॥

अधि०— जिसपुरुषको पृथ्वी विषय अथवा औरकिसी अस्थावर धनकी अपेक्षा प्रारंभसे क़ब्ज़ामिलाहो अर्थात् उसीपुरुषको उचितहै कि जबउसके ऊपर अभियोग द्वारा कोईसा आग्रह प्रवेशकिया जाय जैसा अभिप्रायार्थ में प्रकटहोचुकाहै तबउस संपत्तिके आगमकी प्रमाणता प्रतिग्रह आदिके लिखितादि प्रमाणोंसे दृढ़करदेवे-इस्से यह आशय प्रकटहुआ कि अगरवह अपने आगमकी प्रमाणता यथोक्तरीतिसे दृढ़ताको न पहुँचावै वह आद्यपुरुष दंडके भी योग्यहै-परन्तु- द्वितीयभोक्ता अर्थात् उसके पुत्रपर नालिशकरीजाय तौफिर पुत्रको आगमका प्रमाण पहुँचाना आवश्यकनहीं बरन पुत्रको केवल यहप्रमाण पहुँचानाचाहिये कि भोगउसका निरन्तरअविच्छिन्न और अप्रतिरव अर्थात् किसीकी टोकबखोरके विना और प्रतिपक्षीके समक्ष भावमेंरहा-इस्से यहआशय प्रकटहुआ कि यदिबेटा आगमकी प्रमाणता न पहुँचावैतौ उसको दंडनहीं परजो ऊर्ध्वोक्त मर्यादोंके अनुकूल बिशेषणोंवाले अपनेभोगकी प्रमाणता न पहुँचावै तोउसकोभी दंडहोना योग्यहै-और-तृतीयभोक्ता अर्थात् पोता पर जब नालिशहो तौ उसको न तौ आगमकी प्रमाणता पहुँचानी आवश्यकहै न उस प्रकारके विशेषणोंवाले भोगकी जिसका चर्चाऊपर होचुकाहै बरन वह तीसरा भोक्ता केवल क्रमागत भोगमात्रकी प्रमाणता पहुँचावै अर्थात् उसको सिर्फ अपनी कायममुक़ामी मौरूसी साबितकरनी उचितहै-इस्से यहआशय प्रकटहुआ कि तीसराभोक्ता क्रमागतभोग औरअर्थात् अपनी कायममुक़ामी मौरूसीका क़ब्ज़ासाबितनकरसकनेमें दण्डदेनेयोग्यहै परआगमकी प्रमाणता न पहुँचानेमेंनहीं और न उस विशेषणों वाले भोगकीप्रमाणता न पहुँचानेमें जिसकावर्णन ऊपरहुआथा-सर्वथा यहनिश्चित हुआ कि दूसरे और तीसरे भोक्ताकीअपेक्षा भुक्तिजोहै सोई गरीयसी कहीगई पर इनदोनोंमेंभी यहअन्तरहै कि वहभुक्तिदूसरेतक पहुंचनेमें गुरुकहलाती और तीसरे तक पहुँचनेमें गरीयसीहोजाती अर्थात् गुरुतर कहलानेलगती यहविवेक इसवार्तामें सुनिश्चितहै -तथापि-इसकायथार्थ सिद्धांतयहहै कि आगमकी प्रमाणतानहीं पहुँच सकनेमें अर्थहानि तीनोंकेसमानहोगी अर्थात् तीनोंपीढ़ीके पुरुषोंमेंसे जो कोई आगमकी प्रमाणतानहींदेवैगा निस्संदेह उसकी अर्थहानिहोगी किंतु संपत्तिका क़ब्ज़ा उसकेहाथसे जातारहेगा परन्तु तीनोंकेदण्डमध्ये अन्तर दर्शायागया जैसा ऊपर कथनहोचुकाहै-औरइसअर्थकी हानिमध्येभी वाक्य यहप्रमाणहै कि(आगमस्तुकृतोयेनसदंड्यस्तमनुद्धरन्। नतत्सुतस्तत्सुतोवाभोग्यहानिस्तयोरपि)अर्थात्-जिसने आगमउत्पन्नकिया वह उसकीप्रमाणता न पहुंचानेमें अर्थहानिके सिवायदंड्यहोता है

और उसकापुत्र औरउसपुत्रकाभीपुत्र दंड्यनहीं परअर्थहानि इनदोनोंकीभीहोतीहै २९

योभियुक्तःपरेतःस्यात्तस्यरिक्थीतमुद्धरेत्। नतत्रकारणंभुक्तिरागमेनविनाकृता ३०॥

अक्ष०—जो कोई अभियुक्तहोकर परलोकगत होजाय तिसकारिक्थी उसको उद्धार करै-तहाँ भुक्तिकारणनहीं जो आगमके विनाकरी ३०॥

अभि०—यह ३० काश्लोक बीसवें परिच्छेदकी अपेक्षा अपवादरूप इसलिये कहा-जाताहै कि उसपरिच्छेदमें (विनापूर्वक्रमागतात्) इसपदकेद्वारा-मानुषी स्मृतिसे पहलेकाभोग आगमके ज्ञानविनाभी प्रामाण्यकहचुकेहैं अर्थात् उसप्राचीन भोगमें कदाचित् आगमकी तहक़ीक़ात न होसकै तौभी वह भोगसंपत्तिके स्वत्वमध्ये प्रमाणपूरा निश्चितहै यह कहचुकेहैं-परन्तु-इसमर्यादाकी अपेक्षाअब ३० के श्लोकद्वारा कुछअपवादनाम छूटभी दर्शाते हैं-कि-जबकिसीपर किसीव्यवहर्ताका अभियोग लगाहो और वह अंत्यफ़ैसलाहुये विना व्यवहार निर्णयकी मध्यदशामें परलोक सिधारै तब स्वर्यातके रिक्थी अर्थात् पुत्रादिक जोकोई उसकेधनका वारिसहो तिस कोयहचाहिये कि वह अपनेपिताके आगमका प्रमाणपहुंचावै-क्योंकि-ऐसी दशामें भुक्तियद्यपि गवाहोंआदिसे साबितहो तौभी आगमकाहेतु प्रकटहुये बिना संपत्तिके स्वत्वमें प्रामाण्यनहींहोसक्ती-इसलिये कि यहदशा पूर्वाभियोगमें गिनतीहै अर्थात् यह नालिश उसीआद्यपुरुषपर होरहीहै जिसकेलिये भोगकाअपवाद और आगम का सबूतकरनायोग्यथा -इसविषयमें नारदनेभीकहाहै-यथा(नवाऽऽरूढविवादस्यप्रेतस्यव्यवहारिणः। पुत्रेणसोऽर्थःसंशोध्योनतंभोगोनिवर्तयेत्) अर्थात्-नवीन आरूढ हुआ विवादवाला यदि कोईमरजाय तिसके व्यवहर्ताका वह (अर्थ) नाम मुक़द्दमा उसकेपुत्रको संशोधनकरना योग्यहै और फ़ैसला इसमुक़द्दमेका भोगकी प्रमाणतासे नहोगा क्योंकि भोग उसको निवर्तित नहींकरसक्ता-इसीकेसिद्धांतसे यहभी निश्चितहुआ कि- यदिअनिर्णीत व्यवहारकी मध्यदशामें व्यवहर्ता अर्थात् मुद्दई मरजाय तौभी उसकेमरनेके हेतुसे व्यवहार निवर्तित नहोसकैगा किंतु उसकारिक्थी उसकी ओरसे व्यवहर्ताबनैगा यह मर्यादानियतहै ३०॥

अथचात्रनिर्णीतस्यापिव्यवहारस्यपुनर्दर्शनादिविषयाविवेकोनाम द्वाविंशतितमःपरिच्छेदः २२

इसबाईसवें परिच्छेदमें वह विवेकवर्णनहोगा जिस्से निपटाराकियेहुये व्यवहारों को फिर अवलोकन वा निर्णीतकरनेआदिकी व्यवस्था जानीजाय (पुनर्दर्शन अर्थात् मुराफ़अह यद्वाअपील)

नृपेणाधिकृताःपूगाःश्रेणयोऽथकुलानिच। पूर्वंपूर्वंगुरुज्ञेयंव्यवहारविधौनृणाम् ३१॥

अभि०-राजा करके अधिकृत १ पूग २ श्रेणी ३ कुल ४ यह पहला पहला गुरु जानना मनुष्योंकी व्यवहार विधिमें ३१ ॥

भक्ष०-व्यवहर्त्ता मनुष्योंके व्यवहारकी विधिमध्ये अर्थात् व्यवहार दर्शनके कार्य में ऊर्ध्वोक्त चारोंमें से पिछले २ की अपेक्षा पहला २ नामपद गुरु अधिकारवाला होताहै-और-इनका स्वरूपज्ञान यह कि-एक तौ (अधिकृताः) १ अर्थात् वे लोग जो राजाकी ओरसे व्यवहार दर्शन में हाकिम आदि नियुक्तहों जैसे व्यवहाराध्याय के प्रारम्भमें दूसरे श्लोकसे कहचुके हैं कि (राज्ञासभासदःकार्यारिपौमित्रेचयेसमाः) दूसरे (पूगाः) २ अर्थात् समूह उनलोगोंके कि जो भिन्नजाती या भिन्नवृत्ती एकही स्थलपर निवास रखतेहों जैसे ग्राम नगर मुहल्ला आदि-तीसरे (श्रेणयः) ३ अर्थात् श्रेणीनाम पंक्तियां उन मनुष्योंकी कि जो नानाजातिके लोग अथवा एकही जातिके लोग एक जातीय कर्मसे उपजीवन करतेहों तिनका संघात जैसे हेड़ावुकादि और तांबूलिक कुविंद चर्मकार आदि पेशेवालों की श्रेणियां-इनमें नानाजातिके दृष्टांतसे बजाज सराफ अश्वविक्रयी आदि व्यापारीभी गिनती हैं-चौथे (कुलानि) ४ अर्थात् ज्ञातिसंबन्धी और बांधवों के समूह-इन चारों थोकमें पहला पहला थोक पिछले पिछलेसे बलवान् है-और येही चार महक्मे समझेजाते हैं-इनके गुरुलघु भावकी विशेषता देखो नीचे अधिकोक्तिमें ३१ ॥

अधि०-व्यवहारके निर्णीत होजानेपर और व्यवहर्त्ता के जीवनमें व्यवहार किसी दशामें फिर प्रवर्तित होता और किसी दशामें फिर नहींभी होता इस व्यवस्थाकी सिद्धिकेलिये व्यवहारदर्शी अधिकारियोंका बलाबल दर्शाते हुये व्यवहारके पुनर्दर्शन का अधिकार इस परिच्छेदमें कहते हैं-कि-यद्यपि कोई मुक़द्दमा फ़ैसल होगयाहो तौ भी संभवहै कि विरली दशाओं में दोनों पक्षियों के जीवतेहुये बड़ी अदालतोंतक अपील पहुँचै-परन्तु-विरली अवस्थाओंमें पहला निर्णय अभंगहोगा किंतु पुनर्दर्शन के योग्यनहीं-इसलिये यह व्यवस्था इसमें कहीहै कि-यदि राजाके नियुक्त कियेहुये अधिकारियोंने व्यवहारका निर्णयकियाहो और उसमें हाराहुआ पक्षी यद्यपि कुदृष्टि निर्णय समुझकर संतोष न करसक्ताहो तथापि उस व्यवहारका पुनर्दर्शन पूगादिक तीनोंमें न होगा-ऐसेही-पूगोंका निर्णीत व्यवहार श्रेणी और कुलों में नहीं जासक्ता-तथैव-श्रेणीका निर्णीत व्यवहार कुलोंमें नहीं-परन्तु-कुलों करके निर्णय कियाहुआ ऊपरके श्रेण्यादिक तीनोंमें जासक्ताहै-एवम्-श्रेणीका निर्णीत ऊपरले पूग और अधिकृतोंमें जासक्ता-और-पूगोंका निर्णीत अधिकृतोंमें जाता है-अधिकृतोंकी अपेक्षा में नारदने यह कहाहै कि यदि राजाके नियुक्तकिये अधिकारियों ने फ़ैसला कियाहो तो उसफ़ैसलह की अप्रसन्नतासे पराजित पक्षीठेठ राजाके सन्मुख अपील करसक्ताहै-

यथा (कुलानिश्रेणयश्चैवगणाश्चाधिकृतानृपाः। प्रतिष्ठाव्यवहाराणांगुर्वेषामुत्तरोत्तरम्) अर्थात्-पुनर्दर्शनयोग्य व्यवहारोंकी यह प्रतिष्ठा नियतहै कि कुल १ श्रेणी २ गण ३ अधिकृत ४ राजा ५ इनपाँचोंमें पिछला पिछला बलवान्है पहलेकीअपेक्षा-सिद्धांतयह कि चौथेपदपर जो राजाके अधिकृतहैं उनकाभी निर्णीत व्यवहार ठेठ राजाके सन्मुख पुनर्दर्शनके निमित्तसे जासक्ताहै-तहां यह मर्यादा है कि-जब राजाकी हजूरमें किसी ऐसेफ़ैसलेका मुराफ़ा पहुँचै जिसमें जय पराजयकीअपेक्षासे चौदहवेंपरिच्छेदके आशय अनुकूल कुछ होड़ बदीगईहो तब राजा उसको अपने सभासदों सहित उन सभ्योंकी उपस्थितिपूर्वक निर्णयकरै जिन्होंने पहले उस मुक़दमह का फ़ैसलाकिया हो-इसदशामें यदि अपील करनेवाला पहले कुदृष्टबादसे हाराहो किंतु पुनर्दर्शन करवाना उसका अनुचित ठहरै तो वह दंडयोग्य होगा अथवा यदि पुनर्दर्शनकरवाने में जीत जावै तो वे अधिकृत लोग दंड्यहोंगे जिन्होंने विपरीत निर्णय कियाथा-इसकेसिवाय-जो मुक़द्दमह दुर्बलव्यवहार दर्शिआ अर्थात् नीचेके महक्मोंने फ़ैसल कियाहो वह पुनर्दर्शनमें उच्च सर्वोच्च महक्मेहतक पहुँचसक्ता है परंतु प्रबल अर्थात् उच्च अदालतोंके फ़ैसले पुनर्दर्शनके योग्य नहीं ३१ अब उसदशाका चर्चा कियाजावेगा जिसमें निर्बलसे लेकर प्रबलपर्यंत किंतु सभी हाकिमों के निर्णीत व्यवहार अनिर्णीत समुझेजासक्तेहैं ॥

बलोपाधिविनिर्वृत्तान्व्यवहारान्निवर्तयेत्। स्त्रीनक्तमंतरागारबहिःशत्रुकृतांस्तथा ३२ ॥

अक्ष०—बल और उपाधिसे निर्वृत्त व्यवहारोंको निवर्तितकरै-तथा-स्त्री रात्रि अंतरागार बाहर शत्रु इनके करेहुओंको भी ३२॥

अभि०—(बल) से अर्थात् प्रबलतासे-और-(उपाधि) से अर्थात् भयहेतुसे जो कोई व्यवहार (निर्वृत्त) नाम सिद्धहुयेहों तिनको राजा (निवर्तित) अर्थात् मन्सूखकरै—तथैव-जो स्त्रियोंने फैसलकियेहों-या-रातमें चाहै पुरुषोंने भी निपटायेहों-(अंतरागार) जो घरकेभीतर बैठकर किसीनेभी निर्णयकियेहों-(बहिः) जो ग्रामनगर आदिसे बाहर जाकर निर्णीतकियेहों-(शत्रुकृत) व्यवहार जो शत्रुओंने फ़ैसलकियेहों-इनको भी मन्सूखकरै और फिर नयेसिरसे विचार इनका कियाजाय ३२ ॥

मत्तोन्मत्तार्तव्यसनिबालभीतादियोजितः। असंबंधकृतश्चैवव्यवहारोनसिद्ध्यति ३३ ॥

अक्ष०—मत्त उन्मत्त आर्तव्यसनी बालक भयभीत आदिसे योजित और असंबंध कृतव्यवहारभी सिद्धनहींहोता ३३ ॥

अभि०—(उन्मत्त) जो मदिराआदि तीव्र नशापीकर व्याकुलरहताहो (उन्मत्त) जो पाँचप्रकारके उन्मादमेंसे किसी एक उन्मादकरके विकलबुद्धिहो (वातोन्माद, पित्तोन्माद, कफोन्माद, सन्निपातोन्माद, ग्रहभूताद्युन्माद) यह पांचप्रकारके उन्मादहोतेहैं

(आर्त्त) जो रोगोंसे पीड़ितहो (व्यसनी) जो इष्ट वस्तुके वियोगसे या अनिष्ट वस्तु की प्राप्तिसे दुःखमें विमोहितरहताहो (बालक) जिसने लघु अवस्थाके हेतुसे अपने घरके मुख्यकामोंमें स्वाधीनता नहींपाईहो (भयभीत) जो किसी प्रबल शत्रु आदिके भयसे व्याकुलहो इनको आदिलेकर और भी इसभाँतिके समुझने इनकरके (योजित) नाम लगायाहुआ व्यवहारका अभियोग और असंबंधी पुरुषकाभी कियाहुआ व्यवहार सिद्धनहींहोता ३३ ॥

अधि०-ऊर्ध्वोक्त आदि शब्दके तात्पर्यसे किसी शहर या देशकीरीतिसे अथवा इसीभाँतिकी और किसीरीतिसे विरुद्ध जो व्यवहारहो सो भी इसीमें गिनतीहै-यथाहमनुः(पुरराष्ट्रविरुद्धश्चयश्चराज्ञाविवर्जितः । अनादेयोभवेद्वादोधर्मविद्भिरुदाहृतः) अर्थात्-जो काम किसीपुरसे यद्वाराज्यसे विरुद्धहो या जिसकामकी अपेक्षा राजासे निषेधहो उसकार्यका जो वादहै सो धर्मज्ञोंने अनादेय कहा किंतु उसकामके करनेकी अपेक्षापूर्व जो नालिशकरीजाय वह सुनिवे योग्य नहींहोतीहै-ऊर्ध्वोक्त-असंबंध पुरुष वह कि जिसको उस मुक़द्दमहसे किसीप्रकारका संबंध न हो बरन असालतन् या वकालतन् या और किसीहेतुसे भी नहो(भ्रांति)यहतेंतीसवें श्लोकका आशय यहाँतक जो वर्णनहुआ यद्वा इसीभांति कुछनीचे कियाजाय इसकाहोना द्वितीय परिच्छेद में योग्यथा क्योंकि यह अनादेय व्यवहारकालक्षणहै और इसबाईसवें परिच्छेदमेंपुनर्दर्शनकाप्रकरणहै(समाधान)इसकेयहां कथनकरनेसे सिद्धांत यहकि जो व्यवहार अनादेयहैं कदाचित् वेहीसमुझकी अशुद्धिसे स्वीकारकरिके निर्णय कियेगयेहोंऔर पुनर्दर्शनके निमित्तसे उँच्चअदालतोंतकपहुँचें तौउनकेपूर्व निर्णीतफ़ैसलेइसमर्यादासे निवर्तित अर्थात् मन्सूख़कियेजायँ)और जो किइसीअपेक्षामें मनुकायहबाक्यहै कि(गुरोःशिष्येपितुःपुत्रेदंपत्योःस्वामिभृत्ययोः।विरोधेहिमिथस्तेषांव्यवहारोनसिद्ध्यति)अर्थात्-परस्परगुरु और शिष्यके झगड़ाहो या पिता और पुत्रकेयापति और पत्नीके या स्वामी और दासकेहो तौ यहनालिश नहींसुनीजाय क्योंकिये भी अनादेयव्यवहार हैं परन्तु इसका सिद्धांत यह नहीं कि निपट इनकीनालिशकिसीदशा में भी न सुनीजाय अर्थात्आत्यंतिक व्यवहारकी दशामें इनकाभी अभियोग आदेयहै-सोयहबात गौतम औरमनुके वाक्योंसे स्पष्ट होतीहै-यथा-गौतमने यहकहाकि (शिष्यादिशिष्टिरवधेनाशक्तौरज्जुवेणु विदलाभ्यांतनुभ्यामन्येनघ्नन्राज्ञाशास्यः) अर्थात्-शिष्य आदि जिन की नालिश न सुननेका चर्चा ऊपर कियाथा वे अनुचित करतेहों तौ ताड़ना विनाही चितावनी शिक्षा करै यदि इसमें न मानैं तौ पतली रस्सी चाबुक आदि या पतली बांसकी खरपची आदिसे ताड़न करै परन्तु इन दो चीजोंके सिवाय किसी और हथियार आदिसे जो कोई मारै तौ वह राजा करके दंड पावै यह गौतमकी स्मृति है-

और मनुनेभी यह कहा है कि (नोत्तमांगेकथंचन) अर्थात् इनको उत्तमांग नाम शिरके ऊपर कदाचित् और कैसेहू न मारै-इन दोनों वाक्यसे यहसिद्धांत प्रकटहुआ कि यदि गुरु अति क्रोपावेशके वश होकर बड़ी लाठी आदिसे अधिक चोट लगावै या शिरपर मारै और शिष्य मूल पंचम श्लोक अनुकूल स्मृतिव्यपेत मार्गसे आधर्षित हुआ उसकी नालिश करै तो ऐसी दशाका व्यवहार आदेयहै अनादेय नहीं-ऐसेही पिता पुत्रका दृष्टांत यह कि-(भूर्यापितामहोपात्ता) इत्यादि पाठवाले १२४ के श्लोकमें जो मर्यादा आगे कहेंगे तिसके अनुसार पितामहकी उत्पन्न करीहुई धरती आदि स्थावरकी संपत्तिमें पिता पुत्र दोनोंका स्वामित्व बराबर होताहै इस दशापर यदि कोई पिता उसधनको विक्रय आदिसे नाश करताहो और उसका पुत्र किसी धर्माधिकारीके सन्मुख इस विषयका अभियोग लगावै तब ऐसी दशामें पिता पुत्रकाभी व्यवहार आदेय है अनादेय नहीं-ऐसेही पतिपत्नीके व्यवहारका दृष्टांत जैसे १५२के श्लोक मूलसे यहमर्यादा कही जायगी कि यदिपातिने पत्नीकाधन दुर्भिक्षमें कुटुंब भरणार्थ लेलियाहो या किसी आवश्यक धर्मकार्य के निमित्तमें या रोग व्याधिकी दशामें या किसी मुक़द्दमहकी फँसावटमें लियाहो तौ उसधनका लौटिकर उद्धार करना पति पर योग्यता नहीं-इस वाक्यसे यह सिद्धांत इस स्थलपर पायागया कि दुर्भिक्ष आदि उक्त दशाओंसे भिन्न यदि स्त्रीकाधन पातिने लियाहो और उसपातिके पास धन होते हुये स्त्री अपनाधन मांगै और मांगनेपर वह देनानहीं चाहै तब ऐसीदशामें यदि स्त्री अपने धनकी नालिश पतिपर लगावै तौ यहव्यवहार आदेयहै अनादेयनहीं-ऐसेही स्वामी और भृत्यका दृष्टांतकहते हैं-तहां भृत्य यद्यपि नौकरभी कहलाताहै परन्तु जिन अवस्थाओंमें नौकरकी ओरसे स्वामीपर नालिशहोसक्ती है उनकाचर्चा आगेकिया जायगा-यहांपर भृत्यसे अपेक्षा केवल दासमात्रकी कि जिसको गुलाम कहते हैं-नारद ने दासोंके लक्षण कहे पीछे यह वाक्यभी लिखाहै-यथा(यश्चैषांस्वामिनंकश्चिन्मोचयेत्प्राणसंशयात्। दासत्वात्सविमुच्येतपुत्रभागंलभेतच) अर्थात्-इन दासोंमें से जो कोई दास अपने स्वामीको प्राण संशयरूप अवसरपर संकटसे बचाकर उसके प्राणों की रक्षा करै वहदास दासकर्मसे विमुक्त किया जाय और स्वामीके धनमें उसके पुत्रों के साथ बराबर पुत्रभागभी पावै किंतु उस दिनसे पुत्रोंकेही तुल्य दायभाग पानेका अधिकारी हुआ-इस मर्यादासे यह सिद्धांत पायागया कि यदि ऐसी दशापरभी स्वामी उसको दासत्वसे विमुक्त नहीं करै या पुत्रोंके साथ उसको धनका भाग न देवै तौ कोई हेतु ऐसा नहीं है कि जिस्से गुलाम अपने स्वामीपर अभियोग न करसकै या उसकी नालिश अनादेय ठहरै किंतु यह व्यवहारभी आदेयहै-यह चारों दृष्टांत आदेयत्वकी अपेक्षासे मनुके उस वाक्यपर घटायेगये जो (गुरोःशिष्येपितुःपुत्रे) इत्यादि

ऊपर लिखचुके जिसमें इन्हीं चारोंका विवाद अनादेय कहा गयाथा-इस व्यवस्थासे सर्व सिद्धांतरूप आशय यह निश्चितहै कि जब शिष्यआदि कोई गुरुआदि किसी पर नालिश दायर करै तब सभासदों सहित राजाकोभी यहउचितहै कि पहले उनको चितावनी और शिक्षापूर्वक निवारणकरैं किऐसे विवादोंका अभियोग लगानासर्वथा अनुचितहै तथापि यदिशिष्य आदिजो नालिशीहुयेहों उनपर शिक्षाका प्रभाव नहीं पहुँचै किंतु वे अत्यन्त निर्बन्धरूप आग्रह करैं तब उसदशामें राजाकोभी निःसंदेह उक्तरीतोंके अनुसारव्यवहार प्रवर्तनीय होगा-जो कि नारदकावहवचन जोदूसरे परिच्छेदगत अधिकोक्तिमें अनादेयत्वके संबंधसे लिखचुकाहै यहांभी पुनर्दर्शन के संबंध से लिखतेहैं यद्यपि वहांभी कुछदृष्टांत उसकेसाथ लिखगये तथापि उसकीनिःशेषव्यवस्था दृष्टांतों सहित यहांपर लिखीजायगी इसलिये कि जोकुछसंदेह उसकेदृष्टांतोंसे वहांपर शेष रहाहो वहयहांसे निःशेषहोजाय-तथाच(एकस्यबहुभिःसार्द्धंस्त्रीणांप्रेष्यजनस्यच। अनादेयो भवेद्वादो धर्मविद्भिरुदाहृतः)अर्थात्-व्यवहारांग धर्मशास्त्रके जाननेवालोंने यह नियम कथन कियाहै कि जो (वाद) नामनालिशका अभियोग एकपुरुष का अनेक मनुष्योंके साथहो किन्तु चाहे अभियोक्ता अनेकहों तौभी या जो वाद स्त्रियोंकीतरफ़सेहो अथवा प्रेष्यजन अर्थात् नौकरकी ओरसेहो सो अनादेय होवै किन्तु राजाको ऐसी नालिश नामञ्जूर करनीचाहिये-परन्तु इस में यह आशय हेतु गर्भितहै कि यदि अनेक मनुष्योंपर एकही झगड़ाके मध्ये नालिशकरीजाय तौवह स्वीकार होगी-यथा(गणद्रव्यंहरेद्यस्तुसंविदंलंघयेच्चयः) इत्यादि वाक्यसे प्रमाण है कि जो मनुष्य अनेक मनुष्योंके समूह का धनहरै या जो कोई उस संविद का नियम उलांघै किन्तु उस्से विपरीत करै जो एकसमय अनेकोंके साथ निबंधित हुआ हो तौ इस दशामें वे अनेक मनुष्य इस एकहीपर एकसाथ नालिश करसकेंगे और नालिश अनादेय न होगी-तैसेही (एकंघ्नंतंबहूनांच) इत्यादि वाक्यसे यह प्रमाण है कि जबएकहीको अनेक मिलकर एकसाथ मारेंगे तब उन अनेकोंपरभी यह एकही पुरुष नालिश करसकैगा और यह नालिश अनादेय न होगी-सिद्धांत इसका यह कि भिन्न प्रयोजनवाले अनेकों का व्यवहार एकसाथ एकहीप्रतिपक्षीके साथ नहीं होसक्ता-ऐसेही-स्त्रियोंका व्यवहार जो नारदने अनादेय कहा तिसमें यह हेतु है कि गोप कलाल आदि जातोंकी स्त्रियां जो कमाने खाने आदि में स्वाधीनहोती हैं तिन का वादअनादेय नहीं किंतु आदेय है परन्तु जो स्त्रियोंकी अपेक्षा में अपवाद नारद ने कहा सो उतम कुलोंकी स्त्रियां जिनकेपतिभी जीवतेहों उनकेपारतंत्र्य के हेतु से व्यवहारअनादेय होगा किन्तु यदि पतिसाथ यद्वापतिके द्वारानालिश करैं तबउनका भी व्यवहार आदेय होगा-ऐसेही-प्रेष्यजन के लिये जो अपवाद नारदने कहा तिस

में केवल इतना हेतुहै कि वहपराधीन समुझाजाता है तथापि उस अपवादका यह सिद्धांतनहींहै कि वह अपनेकिसी यथार्थस्वत्वकी अपेक्षामेंभी नालिश नहीं करसक्ता या अपने स्वामीकी अनुज्ञासे किसीअन्य परभी नालिश नहींकरसक्ताहै किंतुअपने निजव्यवहारमेंभी स्वामीकी अनुज्ञासे अभियोग करसक्ताहै और वहीदशाआदेयत्व कीसमुझी चाहिये-और जो परस्परस्वामी औरसेवकोंके विवादहो तिसकी मर्यादावह समुझनी चाहिये जो आगे अष्टादश विवादोंमें स्वामिपालके विवादपर कहीजायगी इसालिये वहभी निर्विकल्प अनादेय नहीं कहसक्ते यहसिद्धांत है ३३॥परावर्त्यव्यवहारों का वर्णन होचुका अब नीचेके परिच्छेद में परावर्त्य धन का चर्चाहोगा॥

अथपरावर्त्यधनविषयविवेकोनाम त्रयोविंशतितमःपरिच्छेदः॥

(परावर्त्य-अर्थात्-वापस होने योग्य) इस (२३) के परिच्छेदमें वह व्यवस्था जानीजायगी कि जो कुछ धनकिसीका परागिरा राहघाट या धरतीमें दबाहुआकिसी को पावै तौ वह इसरीतिसे धनीको वापस करदिलायाजावै या चोरोंआदिने हराहो तौ इस रीतिसे राजा देवै (वापस करना अर्थात् लौटार देना)॥

प्रनष्टाधिगतंदेयंनृपेणधनिनेधनम्। विभावयेन्नचेल्लिंगैस्तत्समंदंडमर्हति ३४॥

अक्ष०—प्रनष्टहुआ पायाहुआ धन राजा करके धनीको देयहै यदि लिंगोंसे विभावित न करै तौ उसीकेसमान दंडयोग्य है ३४॥

अभि०—(प्रनष्ट)नामखोयाहुआ किसीकाधन सोनाचांदी आदियदि कोई(शौल्किक) नाम तहसीली अमला या (स्थानपाल) नाम थानेदार आदि फ़ौजदारी का नौकर पावै पुनि राजामें समर्पित करै तौ राजाउसधनको जो कोई उसका मुख्यधनी ठहरै तिसकोलौटारदेवै इस प्रतिज्ञासे कि जो वहधनी अपनेधनकी संख्यारूपचिह्नठीक२ प्रकटकरसकै-परन्तु-यदिकोई ऐसाधनी वनिकर धनमांगने आवै कि नामरूप चिह्न आदि लिंगोंके लक्षणनसमुझायसकै तौ उसीधनके तुल्यजुर्माना उसपरकरनाचाहिये जितनेकादावा उसनेकियाहो क्योंकिउसपर असत्यवादित्वकाहेतु प्रकटहुआ३४॥

भाधि०—धनका (आधिगम) नामकहींसेपराहुआआदि पाजाना और उसीधनकी (परावृत्ति)नाम वापसकरदेना इसकीमर्यादें इसस्थलपर इसहेतुसे कहीगईं कि जहाँ धनका आगमवर्णनकियागया उस आगमकेअनेकलक्षणहोतेहैं किन्तु कुछआगम किसी एकहीप्रकारसेनहींहोता अर्थात् उनप्रकारोंमें(आधिगम)भी गिनतीहै सिद्धांतयह कि (आधिगम)जोहै सोभी एकप्रकारकाआगमहै क्योंकि जब अधिगमकाकोईमुख्यमालिकनहींठहरता तब उसपानेवालेकास्वत्व उसमेंप्राप्तहोजाताहै अर्थात् वहीमालिक होताहै प्रमाणइसकादेखो पच्चीसवींअधिकोक्तिमें गौतमजीकेवाक्यसे वपौती रिक्थ आदि पांचप्रकारमुख्यभावसे आगमकहेहैं उनमेंपांचवांसाक्षात्कार किसी दैवयोग

से धनका मिलजाना लिखाहै सो वह बात यहीहै जो यहाँपर कहरहे हैं-पायेहुये धनको धरोहर की रीतिसे रख छोड़ने मध्ये एक अवधि नियतहुई है-यथा (शौल्किकैःस्थानपालैर्वानष्टापहृतमाहृतम्। अर्वाक्संवत्सरात्स्वामीहरेतपरतोनृपः) अर्थात्-अमलह तहसीली या फ़ौजदारी के नौकर वह धनले आवैं जो किसी का खोयागया होया चोरों आदिसे हरागयाहो तौ एक संवत्सरके भीतर २ उस धनका मुख्यस्वामी पासक्ताहै और वर्ष पीछे वह धन राजा का होगा-मनुने इस अवधि को तीन वर्षके विलंबतक निदेश कियाहै-यथा (प्रनष्टस्वामिकंरिक्थंराजात्र्यब्दनिधापयेत्। अर्वाक्त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामीपरतोनृपतिर्हरेत्) अर्थात्-जिस धनका स्वामी प्रसिद्धि प्रचलित होजानेपर भी उपस्थित नहो तब ऐसे प्रनष्टस्वामिक धनको राजा तीन वर्षों तक धरोहर किये रक्खै तीन वर्षोंके भीतर२ स्वामी हाज़िर होकर पासक्ताहै उपरांत तीन वर्षोंके राजा अपने अधिकार में लासक्ता है-इस वाक्यसे निश्चित है कि तीन वर्षों तक अवश्य रक्षा करनी चाहिये-इन दोनों वाक्योंसे यह व्यवस्थाहै कि यदि एकवर्ष के भीतर स्वामी हाज़िरहो तौ संपूर्ण धन देदेवै और जो संवत्सरके उपरांत आवै तौ कुछ भाग उसमें से रक्षामूल्य की रीतिसे लेकर शेष धन स्वामीको देवै-सोई इस अग्रोक्त वाक्यसे निश्चितहै-यथा-(आददीताथषड्भागंप्रनष्टाधिगतान्नृपः। दशमंद्वादशंवापिसतांधर्ममनुस्मरन्)अर्थात्-राजाको इसमेंस्वाधीनताहै कि खोयेहुयेऔर पाये हुयेधनकी धरोहरमें से चाहै छठा भागलेवै यद्वा सद्धर्मकोयाद करताहुआ दशवाँ या बारहवां भाग लेवै-इस वार्त्तासे यहव्यवस्था निश्चितहुई कि यदि एकसालके भीतर लेने आयाहो तौ उसमें से किंचित् भी राजा नलेवै किन्तु संपूर्ण उसीको देदेवै यदि दूसरे वर्षमें आवै तौ बारहवाँ भाग लेकर शेषदेवै यदि तीसरे वर्षमें आवै तौ दशवाँ भाग लेकर शेषदेवै यदि तीन वर्षोंके उपरांत चौथे आदि किसी वर्षमें आवै तौ छठा भाग लेकर शेषदेवै-राजाने जितना भाग उसमेंसे लियाहो उसका चतुर्थांश(अधिगंता) कोदेवै कि जो उस धनको लायाहो-यदि परम अवधि पर्यंत स्वामी निपट नहीं आवै तौ संपूर्ण धनका चतुर्थांश अधिगंता को देकर शेष तीन भाग राजा आपलेवै-इस अपेक्षामें गौतम का यह वाक्यहै कि (प्रनष्टस्वामिकमधिगम्यसंवत्सरं राज्ञारक्ष्यमूर्ध्वमधिगंतुश्चतुर्थांशोराज्ञःशेषम्) -अर्थात्-लावारसीमाल आकर एक सालतक राजा करके रक्षणीयहै उपरांत उसमें से चतुर्थांश अधिगंता का और शेष राजाको पहुँचैगा-ध्यान करौ यहाँपर (अधिगंता) को राजासे चतुर्थांशका मिलना जोहै सोभी (अधिगम)है क्योंकि यथार्थ में उस (अधिगंता) कोही धनका अधिगम हुआ था और यही अधिगम एकप्रकारके आगम का पाँचवाँ लक्षणहै-इस वाक्यमें केवल विधिसे अपेक्षा है किन्तु (संवत्सर)का शब्द जोएक वचनसे इसमें आया उस्से कुछअपेक्षानहींक्योंकि

२४

ऊपर मनुके वाक्यसेकहचुके हैं कि राजा तीनवर्षौंतक धरोहर बनारक्खै औरउसीमनुके वाक्यमें यह बात जो कहचुके हैं कि तीनबर्षों के उपरांत राजा उसलावारसी धनको ज़ब्त करसक्ताहै तिसका भी सिद्धांत केवल इतना है कि यदिस्वामी परम अवधितक न आवै तौ अवधिके उपरांत राजा को उस धनके बर्त्तावा मध्ये अधिकार है-परंतु-यदिस्वामी परम अवधि के पीछे भी आजावै तौ राजा को यह उचितहै कि जो धन उस का विक्रय आदि से व्यय होगया हो उसके तुल्य रोक रुपया अपना भाग लेकर देदेवै-यह मर्यादा इस ३४ के श्लोकमें केवल सोने चाँदी आदि धनोंकी कही गई किन्तु गवादि पशुजीवों का विषय आगे उस स्थलपर कहेंगे जहाँ (पणानेकशफेद-द्यात्) इत्यादि मूल श्लोक आवैगा ३४ ॥

राजालब्ध्वानिधिंदद्याद्द्विजेभ्योऽर्द्धंद्विजःपुनः । विद्वानशेमाषदद्यात्ससर्वस्यप्रभुर्यतः ३५ ॥

भक्ष०—राजा निधि पायकर आधा द्विजोंकोदेवै-और विद्वान् द्विज अशेषलेवै क्योंकि वह सबका स्वामीहै ३५ ॥

अभि०—ऊपर ३४ के श्लोकमें जो विधि कहीगई वह उस धनके अधिगमसे संबंधितहै जोसोना चांदी आदिकहीं मार्गमें या थाने तहसील आदिस्थानों में परा गिरा हाथ लगजाय-अबयहां उसधनके अधिगमकी मर्यादा कहीजातीहै कि जोसोना सांचीआदि अतिकालसे धरतीमें गड़ाहुआ मिलै जिसको (निधि)कहतेहैं-कदाचित्निधि किसीधरतीमें अतिकाल का गड़ाहुआ प्रजामें से किसीको मिले या राजाकोही मिलैतौ राजाको अधिकारहै कि आधा उसमेंसे ब्राह्मणोंको बांटदेवै आधा अपने कोशमें संचितकरै यदि विद्वान् ब्राह्मणकोही निधिमिलै तौवह राजभाग दियेबिना सबधनको अपनेपास रक्खै क्योंकिवह सभीकास्वामीहै परन्तु इसमें यहआशयइतनाअधिक है कि यदि राजानेआपही पायाहो तबतौ सभीमेंसे आधाब्राह्मणोंको और आधाअपने कोशमेंधरै पर जो प्रजामेंसे किसीनेपाया हो तब षष्ठांश पानेवाले को पहलेदेकर पीछेआधाकरै सोईनीचेके श्लोकमेंदेखो ३५ ॥

इतरेणनिधौलब्धेराजाषष्ठांशमाहरेत् । अनिवेदितविज्ञातोदाप्यस्तंदंडमेवच ३६ ॥

भक्ष०—इतरकरके निधिपावनेमें राजा षष्ठांशदेकर हरै-अनिवेदित जानाजाय वह देदेनेयोग्यहै और दंडभी ३६ ॥

भनि०—विद्वान् ब्राह्मण या राजाकेसिवाय यदि कोईइतर अर्थात् अविद्वान् ब्राह्मण या क्षत्रियआदि निधिपावै तबराजा उसमेंसे छठाभाग पावनेवाले कोदेकर शेषनिधि आपलेवै-और यदिकोई (अनिवेदितविज्ञात) हो अर्थात् निधिपाकर राजाकोनहीं बतावै और पीछेजानाजाय तो उससेराजा सबलेलेवै और दंडनाम जुर्मानाभी उसकी शक्तिकी अपेक्षा अनुसारलेवै क्योंकि उसनिधिके तुल्यदंड देसकना संभवनहींहै ३६

प्रधि०-इस विषयमें वसिष्ठजीका भी यहवाक्य है-यथा (अप्रज्ञायमानंवित्तंयोधिगच्छेद्राजातद्धरेत् षष्ठमंशमधिगंत्रेदद्यात्)अर्थात्-(अप्रज्ञायमान) धन जिसकास्वामीनहीं जानाजाय ऐसाधनकोई पावै तौराजा उसकोहरलेवे परछठाभाग अधिगंताको भीदेवै-गौतमकाभी यहीकथनहै-यथा (निध्यधिगमेराजधनंभवतिनब्राह्मणस्याभिरूपस्य अब्राह्मणोव्याख्याताषष्ठमंशंलभेतेत्येके) अर्थात्-सिवायउस निधिके जो विद्वान् ब्राह्मणको मिलै अन्य प्रजालोगोंका पायाहुआ निधिराजाका धनहोता है परन्तुयदि विद्वान् ब्राह्मणके सिवाय अन्यप्रजा लोगोंमेंसे किसीको मिलै और वह मिलनेका वृत्तान्त राजापर निवेदनकरै तौवह छठाभाग राजासे पावैगा अर्थात् यदि संबोधित नकरै तौ नहींपावै-और यदि-निधिकास्वामी आकर रुपयेकीसंख्या आदिसत्य लक्षणोंसे अपनास्वत्व उसमें भावितकरावै तौराजा उसको निधिदेदेवैपरछठाअथवा बारहवांभाग आपलेलेवै-मनुनेभीयहीकहा-यथा (ममायमितियोब्रूयान्निधिस्सत्येनमानव। तस्याददीतषड्भागंराजाद्वादशमेववा) अर्थात्-यदिकोईमानव सत्यतासे यहकहे कि यह निधिजो राजामें धरोहर हुआ मेराहै तबराजा उसका निश्चयकियेपीछे छठाभाग या बारहवांभाग उसमेंरक्षा मूल्यकीरीतिसे लेलेवै और शेष उसको अर्पणकरै-छठा या बारहवां यहअंशका विकल्प इसलिये है कि दावीदारका वर्णजाति और कालका बलाबल देखकर राजा अपनाअंश लेवै ३६॥ अबनीचेके श्लोकमें उसधनकाचर्चा होगा जो लुटगया या चोरीगयाहो ॥

देयंचौरहृतंद्रव्यंराज्ञाजानपदायतु। अददद्धिसमाप्नोतिकिल्बिषंयस्यतस्यतत् ३७॥

अक्ष०-चोरोंकरके हराहुआ धन जिसकाहो उसीजानपदकेलिये राजाकरके दातव्य है क्योंकि वह न देताहुआ उसके अपराधको पहुँचताहै ३७॥

अभि०-जिस किसी (जानपद) अर्थात् अपने देशनिवासीकाधन चोरों या बटमारों करके हरागया या लुटगयाहो उसधनको राजा चोरों या बटमारोंको जीतकर उसी जानपदकोदेवै जिसकाहो (हि) क्योंकि जो राजा ऐसा नहींकरै तौ उसका अपराधी होताहै कि जिसकाधन चोरोंने हराहो ३७॥

प्रधि०-(अददद्धिसमाप्नोति किल्बिषंयस्यतस्यतत्) इस उत्तरार्द्धका द्वितीयभाव यहभीहै कि यदि राजा चोरोंसे धनछीनलावै पर उसको नहींदेवै जिसका हरागयातब न देताहुआ दोनोंका किल्बिषभागीहोताहै अर्थात् (यस्य) इसपदके आशयसेजिसका हरागया तिसका और(तस्य) इसपदके आशयसे चोरकाभी और चोरकिल्बिषभागी होना यहबात कि जो अपराध चोरको धनके हरनेसे हुआथा वहीअपराध राजाको भी लगा अर्थात् राजा आप चोरठहरा-तथाचमनुः (दातव्यंसर्ववर्णेभ्योराज्ञाचौरैर्हृतंधनम्। राजातदुपयुंजानश्चौरस्याप्नोतिकिल्बिषम्) अर्थात्-चोरोंकरके हराहुआ धन

जातिभेदके विचार विना सभी वर्णोंको राजाकरके दातव्यहै क्योंकि यदि राजा चोर से छीनकर उसधनको आप भोगताहै तब चोरवत् अपराधी आपहोताहै-और यदि राजा चोरोंकरके हरेहुये धनके छीनलानेमें उपेक्षाकरताहै तब केवल उसीजानपदका अपराधीहोताहै जिसकाधनहराजाय-कदाचित् राजा चोरोंसे छीनलानेमें यत्नकरता हुआभी धनको न लासकै तब उतनाधनअपनेकोशमेंसेदेवै जितनाहरागयाहो-तथाच गौतमः(चौरहृतमवजित्ययथास्थानंगमयेत् कोशाद्वादद्यात्)अर्थात्-चोरोंका हराहुआ धनछीनकर यथा स्थानतकपहुँचावै किंतु जिसकाहो तिसको परावृत्तकरदेवै अथवा अपनेकोशमेंसे धनकेतुल्य रुपयेदेवै-कृष्णद्वैपायनकाभी यहीकथनहै-यथा(प्रत्याहर्तुंन शक्तस्तुधनंचौरहृतंयदि । स्वकोशात्तद्धिदेयंस्यादशक्तेनमहीक्षिता)अर्थात्-यदि राजा चोरोंका हराहुआधनछीनलानेमें लाचारहो तौ असमर्थ राजाको अपनेकोशमेंसे उतनाधनदेनाहोगा ३७ यहाँतक साधारणरूप और असाधारणरूप व्यवहार मातृका ओंकावर्ण न होचुका-अर्थात्-(मुक़द्दमातकी तमहीदआम और ख़ास ऊपर बयान हुई)-अब आगे ऋणादानपदका वर्णनहोगा जो अष्टादश भाँतिके व्यवहार पादोंमें पहला ऋणादानपदकहलाताहै जिसको भाषांतरसे (क़र्ज़े दस्तगर्दां) का मुक़द्दमा कहतेहैं-यह ऋणादानपदका प्रकरण नीचे अड़तीस ३८ के श्लोकसे लेकर ६६ के श्लोक पर्यंत सातपरिच्छेदमें उन तीसश्लोकोंसे कहाजायगा इसके बहुतबड़ेहोनेका, यहकारणहै कि इसप्रकरणमें और भी अनेकवार्ता मिश्रितहैं कि जिनका भिन्नहोना योग्यथा-वरन-केवल हथउधारे ऋणमात्रकाचर्चा तौ सिर्फ़ ५२ के श्लोकतकहोगा पुनि उस्से आगे ५८ के श्लोकतक ऋणके संवंधहेतुसे प्रातिभाव्य नाम ज़मानतका वर्णनहै पुनि उस्से आगे ६६ के श्लोकतक (आधि) नामगिरवीरक्खेहुयेका वर्णनहोगा यद्यपि प्रकार उसका भिन्नहै तथापि उसकोभी एकप्रकारकाऋण मानिकर ऋणादानके प्रकरणमें मिश्रितकरलियाहै-परंतु-मर्यादापरिपाटीमें परिच्छेद सबके भिन्न२हैं वलिक सुगमताकेलिये एक ऋणकेभी ४ परिच्छेदकियेहैं ३७ ॥

अथऋणादानसंबंधेवृद्धिविभागाविवेकोनामचतुर्विंशतितमःपरिच्छेदः २४ ॥

इस चौवीसवेंपरिच्छेदमें वह व्यवस्थाजानीजायगी कि इतने ऋणपर इतनाब्याज अमुकामुकरीतोंसे वृद्धिहोती और अमुकामुक द्रव्योंपर वृद्धिनहींहोतीहै ॥

अशीतिभागोवृद्धिःस्यान्मासिमासिसबंधके । वर्णक्रमाच्छतंद्वित्रिचतुःपंचकमन्यथा ३८ ॥

भ०स०—वंधकसहित धनपर मास मासमें अस्सीका भाग वृद्धिहोवै-अन्यथा-वर्णक्रम से सैकरापीछे दो तीन चार पांचभागतक ३८ ॥

भ०नि०—वंधक वह वस्तुहोती है जो ऋणी अपने विश्वास के निमित्त से धनी पास गहने रखदेता है इसको (आधि) भी कहते हैं-जहां वन्धक वस्तु लेकर किसी

को ऋण दियाजाय तब उसके व्याज में (अशीतिभाग) अर्थात् १।) सैकरा वृद्धि प्रतिमास लेनी चाहिये यह धर्म के अनुसारहै किंतु इससे अधिक नहीं और इसमें जाति भेदकी चर्चानहीं-अन्यथा यदि बन्धक वस्तुके विनाही ऋणदेना हो तब जाति भेदसे वर्णक्रमके अनुसार लेवै अर्थात् यदि ऋणी पुरुष ब्राह्मणहो तौ २) सैकरा वृद्धि क्षत्रियहोतौ ३) सैकरा वैश्यहो तौ ४) सैकरा शूद्रहोतौ ५) सैकरा वृद्धि प्रतिमास लेनीचाहिये-परन्तु इसका सिद्धांत यहनहींहै कि निर्विकल्प इतनाही व्याज वर्णक्रमसे अवश्य लेना चाहिये किंतु यह परम अवधि कही है कि इससे अधिक किसी दशामेंभी न लेना चाहिये और परम अवधिका यह आशयहै कि न्यून वृद्धिलेनेमें यहांतक स्वाधीनताहै कि चाहै शूद्रसेभी केवल १) सैकरालेवै पर अधिक लेनेकी अपेक्षा में ५) सैकरा के हिसाबसे विशेष कपर्दिकाभी न लेवै सो यह पांच रुपये सैकराके हिसावसे लेनाभी केवल किसी २ दशामें संभवहै दृष्टांत जैसे दोचार या दशवीस रुपयेतक थोड़ाही ऋणदेनाहो और उसथोड़े ऋणकेलेने से ऋणीको अपने किसी व्यापारद्वारा अधिकलाभ होनाभी संभवहो-अथवा-लाभहोना संभवनहीं पर किसी ऐसी कठिनदशामें ऋण दियाजाय कि जिस ऋणीको उसवक्त कोई भी नहींदेता परन्तु यदि ऋणभी ऐसी दशामें केवल दश रुपयेके भीतरहो अन्यथा यदि सौ दोसौ रुपयेके लेनदेनमें ऐसा व्याज लियाजाय या उसके लाभकी संभवता विना केवल वीस रुपयेपरभी ऐसा व्याज लियाजाय तौ फिर शूद्र क्योंकर धरती पर निवास करसक्ताहै और वह व्याजभी लेनेवाले धनीको क्योंकर धर्म्या वृद्धिमें गिनती होसक्ताहै-जैसे यहशूद्रकी व्यवस्था कहीगई ऐसेही वैश्य और क्षत्रिय और ब्राह्मणकी भी अपने अपने नियमानुसार समुझलेनी ३८॥

अधि०-संज्ञा भेदसे (ऋणी) को अधमर्ण और धनीको उत्तमर्ण भी कहते हैं-यहां पर (ऋणादान) अर्थात् ऋणका लेना जिसका नामहै वह ऋणादान सात विधिका होताहै-सातवें से पांच लक्षण (अधमर्ण) की अपेक्षा और दो लक्षण (उत्तमर्ण) की अपेक्षामें होते हैं-उत्तमर्ण के दो लक्षण यह कि १ इसविधि से ऋणदेना चाहिये-२ इसविधिसे फिर लेनाचाहिये-अधमर्णकी अपेक्षामें पांचविधि यह कि एकतौ १ ऐसा ऋणहो तौ उद्धार करदेना चाहिये-२ ऐसाहो तौ उद्धार नहीं करना-३ असुक अधिकारी पर उद्धार करना उचित है-४ ऐसे समयपर उद्धार करना उचित-५ इसरीतिसे उद्धार करना उचितहै-यह वार्त्ता नारदने स्पष्टभावसे कहीहै-यथा (ऋणंदेयमदेयंचयेनयत्रयथाचतत्। दानग्रहणधर्माश्च ऋणादानमितिस्मृतम्) अर्थात्-यहऋणदेयहै १-यह अदेय है२-जिस अधिकारी करके देयहै३-जिस समयपर देयहै ४-जिसप्रकारसे देय है५-इन पांचवातों की मर्यादें ऋणीसे सम्वन्ध रखती हैं-तथैव-ऋणीलोगों को

ऋणकादेना १ और फिर उनसे लौटकर लेना २ इनबातों मध्ये जोजो धर्म कहे हैं सो सब धनीसे संबंधितहैं सातों लक्षण मिलकर इसको ऋणादान कहते हैं-इनसात लक्षणोंमें से पहले दानविधि उत्तमर्णकी अपेक्षामें इसी ३८ के श्लोकद्वारा ऊपर कहीगई-दानविधि इसलिये पहले कहीगई कि सबसेपहले ऋणदेनेकाही काम पड़ताहै किन्तु और बातें इस्से पीछेहोती हैं इसलिये उनका चर्चापीछे यथाक्रमसेहोगा-(यहांपर व्याजसूदको (वृद्धि) कहते हैं-और-मूल धनको संज्ञाभेदसे (पण) भी कहते हैं) वृद्धिभी अनेक प्रकारकी होतीहै और उन प्रकारोंके हेतुसे उसके संज्ञाभेद भी अनेक होजाते हैं उनके लक्षण और नामभी अग्रोक्त श्लोकोंसे कहते हैं-यथा (वृद्धेर्वृद्धिश्चक्रवृद्धिः प्रतिमासंतुकालिका॥इच्छाकृताकारितास्यात्कायिकाकायकर्मणा॥ इयंच वृद्धिर्मासिमासिगृह्यतेइतिकालिका) अर्थात्-जो वृद्धिपर वृद्धिलीजाय वह चक्रवृद्धि कहलातीहै यह चक्रवृद्धि उसीदशामें होतीहै कि जबऋणीसे चढ़ाहुआ व्याज नहीं दियाजाय और वह व्याजपर व्याजदेना स्वीकारकरै-जहां प्रतिमास वृद्धिदेनी ठहरी हो और अपने कालपरउद्धार होतीरहै वह (कालिकावृद्धि) कहलाती है-जहां ऋणी की इच्छासे नियमोंसेभी अधिकव्याजलेना ठहरै वह (कारितावृद्धि)कहलातीहै-जहां कायाके कर्मद्वारा वृद्धिलेनी ठहरै वह (कायिकावृद्धि)कहलाती है-उत्तरोक्त दोनों कारिता और कायिका वृद्धिभी कालिकाकहलाती हैं इस लिये कि यहभी प्रतिमास उद्धार होतीहैं-यदि कोई वृद्धिमास और दिवसोंके हिसाब से भागलगाकर रोजीना कीरीतिसे नित्यंप्रति उद्धार होतीरहे वह नित्यकालिक होजातीहै-इनमें से कायिका वृद्धिका कुछ औरभी लक्षण विशेषहै-यथा(कायाविरोधिनीशश्वत्पणपादादिकायिका) अर्थात्-मूलधनकी (काया)नाम स्वरूप तिसके अविरोधपूर्वक (शश्वत्) निरंतर शतधा वर्षोतक मूलधनका स्वरूप नाश नहींहोवे और (पण) जोमूलधन उसनेलिया हो तिसका चतुर्थांश यद्वा अर्द्धांश प्रतिवर्ष या छमाही पीछेजैसाठहराहो वृद्धिहोती रहे सो (कायिकावृद्धि) कहलाती हे यह नारदजी का कथन है और लोक में भी-यह वृद्धिवहुधा धान्यादि पदार्थोंपर सवाये ड्योढ़ेकी रीतिसे प्रसिद्धहै-इसी कायिका नाम वृद्धिकालक्षण कायाके कर्मद्वारा जो ऊपर कहाथा तिसका आशय व्यासजीने स्पष्ट कहाहै-यथा(दोह्यवाह्यकर्मयुक्ताकायिकासमुदाहृता)अर्थात्-जहांव्याज वृद्धिके बदले गऊआदिका दोहन कर्मकायासेठहराहो या बैल गाड़ीआदिसे कोईबोझ वाहनकर देना आदि किंतु कायासंबंधी परिश्रममें कोईकाम ठहराहो सोभी(कायिका)कहलाती है-यहसभी वृद्धीलोकमेंप्रसिद्धहै-और कारितावृद्धि यद्यपि परमावधि आदिपरिमाणों से अधिकभी ठहरीहो तथापि वह अधर्म्या नहीं किंतु उसकाभी उद्धारहोना कात्यायन ऋषिने उचित कहाहै-यथा(ऋणिकेनतुयावृद्धिरधिकासंप्रकीर्तिता । आपत्काल

कृतानित्यंदातव्यासातुकारिता)अर्थात्-यदि आपत्कालके हेतुसे ऋणीने जो वृद्धि अधिक देनी कहीहो वह आपत्कालकी ठहरीहुई वृद्धिसदाही उद्धारकरने योग्य है और कारिता उसकानाम होताहै-(सर्वनिर्णयसारेमहानिर्वाणतंत्रेपिसदाशिवः - ऋणे कृषौचवाणिज्येतथासर्वेषुकर्मसु। यद्यदंगीकृतंलोकैस्तत्कार्यंधर्मसंमतम्)अर्थात्- सर्व निर्णयसार महानिर्वाण तंत्रमेंभी सदाशिवजीने साधारण सभी व्यवहारोंकीअपेक्षा से यहप्रमाण उच्चारण कियाहै कि-ऋणसंबंधीकामोंमें औरखेतीपातीमें और वणिज व्यापार के कामों में तथैवसभी संसारीकामों में मनुष्यों ने धर्मसंमत के अनुसार जो जो अंगीकार कियाहो सोसब करणीयहै-अर्थात् यदि करनेका अधिकारी अपनेअं-गीकारसे नकारखींचै तब राजाउस्से न्याययद्वा दंडनीतिद्वारा संसिद्धिकरवावै ३८॥
अब गृहीतापुरुषकी विशेषतापूर्वक वृद्धिमें प्रकारांतर कहते हैं॥

कांतारगास्तुदशकंसामुद्राविंशकंशतम्। दद्युर्वास्वकृतांवृद्धिंसर्वेसर्वासुजातिषु ३९॥

अक्ष०-कांतारगमन करनेवालेदशऔर समुद्र गमनकरनेवाले वीस रुपयासैकरा-यद्वा-अपनी करीहुई वृद्धिसभी सबजातोंमें देवें ३९॥

अभि०- कांतारमें गमनकरनेवाले अर्थात् वनिजारे आदि जो अधिकलाभ की अपेक्षासे ऋणलेकर मालकी भर्तीकरें और प्राणधन विनाशहोजानेकी शंकावाले स्थान (कांतार)नाम गहन वनमें लेजायँ वे प्रतिमास दशरुपया सैकराकी वृद्धि दे-वें और (सामुद्रा) अर्थात् जो समुद्रोंके जलमार्गसे जहाजों आदिकेद्वारा माल भरें वे अपने धनीको प्रतिमास वीसरुपया सैकरा व्याज देवें क्योंकि समुद्रमें कांतारकी अपेक्षा अधिक शंका होतीहै न जानें धनी मूलधनसेभी हाथ धोबैठे इसलिये यह धर्म्या वृद्धि है अधर्म्यानहीं (और) वे ऐसे शंकित स्थानोंके लेजानेवालेभी यही शो-चि कर लेजाते हैं कि यातो मूलधनसे दशगुणलाभ करलावैंगे या अपनेप्राण और धनीका धन खोवैंगे यहपूर्वार्द्धका आशय हुआ-अब उत्तरार्द्ध मूलश्लोक से(कारिता) नाम वृद्धिकी अपेक्षासे एक साधारण मर्यादा कहते हैं कि-यद्वा पूर्वोक्त किसी नियमसे कुछकाम नहीं किंतु सभीब्राह्मण आदि वर्ण जो अधमर्ण बनें चाहै किसी जातिका उत्तमर्णहो और चाहै तहांलेजावें अपनी २ स्वीकार करी वृद्धिदेवें अर्थात् सबजातें सब जातोंसे वहीव्याज लेसक्तीहैं जो ऋणलेतेसमय परस्परदोनोंकी इच्छासे ठहरा और ऋणी ने स्वीकार कियाहो चाहै बंधक वस्तुधरिके लियाहो चाहै बिना बंधक इसका नियमनहीं तथापि यह सिद्धांत है कि वह स्वीकारताभी न्यायके अनुकूल संभवहो ३९॥

अधि०-पूर्वार्द्ध मूल श्लोकसे जो कुछ आशय गृहीताकी अपेक्षामें कहागया वही शिक्षा दातापरभी कहीहै-यथा(कांतारगेभ्योदशकंसामुद्रेभ्यश्चविंशकम्)अर्थात्-कांता-

रगोंको दशरुपया सैकरा और सामुद्रोंको वीसरुपया सैकरा की मासिक मितिसे ऋण देवै-कारण इसका यहीहै कि यातौ छेमहीना पीछे सौके दोसौबीस लौटिआवैंगे या मूल सौसे भी हाथ धोवैंगे-किसीदशामें वृद्धिबिना ठहरीहुईभी होती है-तथाच नारदः (नवृद्धिःप्रीतिदत्तानांस्यादनाकारिताक्वचित् । अनाकारितमप्यूर्ध्वंवत्सरार्द्धाद्विवर्द्धते) अर्थात्-(प्रीतिदत्त) जिनको केवल प्रीतिसे ऋणबिना ब्याजूदियाहो उनकी वृद्धिनहीं होती किंतु नहींठहरती पर कहीं बिनाठहरीहुई भी वृद्धिहोसक्तीहै उसका यह नियम है कि ठहरेविना छेमासके उपरांत वहधनवढ़ताहै किंतु षड्मासतक प्रीतिकेहेतुसे ब्याजनहींलियाजासक्ता उपरांत जो धनीकी इच्छाहो तो उस्से भी लेसक्ताहै परंतु ऐसीदशाकी अपेक्षामें उन्हीं नियमोंके तुल्य वृद्धिहोसक्तीहै जो पहले कहेगये अर्थात् उनसेविशेषनहीं-यदिकोई प्रीतिआदिकी रीतिसे मगैतू द्रव्यलेकर देशांतरको चलाजा-य उसकेलिये कात्यायनजीने नियम कियाहै-यथा (योयाचितकमादायतमदत्वादिशंव्र जेत् । ऊर्ध्वंसंवत्सरात्तस्यतद्धनंवृद्धिमाप्नुयात्)अर्थात् जो कोई (याचितक) नाम मगैतू धनलेकरउसको विनादिये किसीदिशा देशांतरको चलाजाय और वृद्धि उसपरठहरी नहींथी तब ऐसीदशामें वहधन उसके ऊपर संवत्सरके उपरांत वृद्धिको पहुँचै -और वृद्धि पूर्वोक्त यथोचित नियमोंके अनुसार समुझनी यदिकोई मगैतू धनलेकर तगादा होनेपरभी विनादिये विदेशको चलाजाय उसके लियेभी कात्यायनजीने कहाहै—यथा (कृत्वोद्धारमदत्वायोयाचितस्तुदिशंव्रजेत् । ऊर्ध्वंमासत्रयात्तस्यतद्धनंवृद्धिमाप्नुयात्)॥ अर्थात् जोकोई किसीसे कुछलेकर और तक्काजाय होनेपरभी बिनादिये विदेश चला जायतौ चलेजानेसे तीनमासके उपरांत वहधन वृद्धिको पहुँचै यदिकोई बिना ब्याजू याचितक धन लेकर निजदेशमें बैठाहुआ माँगनेपरभी नहीं देवै तब राजा उसपर माँगने अर्थात् तगादा होने के समयके लेकर वृद्धिभी दिलावै-तथाच(स्वदेशेऽपिस्थि तोयस्तुनदद्याद्याचितःक्वचित् । तंततोऽकारितांवृद्धिमनिच्छंतंचदापयेत्)अर्थात्-यदि कोई अपने देशमें बैठाहुआभी याचितक धन माँगनेपर भी कभी न देवै तब उसदेने की अनिच्छा करतेहुये पर पूर्वोक्त नियमोंके अनुसार विना ठहरीहुई भी वृद्धि राजा दिलवावै-इस बिनाठहरी वृद्धिकी अपेक्षामें कुछ अपवाद भी अब कहते हैं इसलिये कि सर्वत्रही ऐसा नहीं होसका-यथा(पण्यमूल्यंभृतिर्न्यासोदंडोयश्चप्रकल्पितः। वृथा दानाक्षिकपणाबर्द्धतेनाविवक्षिताः) अर्थात् (पण्यमूल्य) जो खरीदीहुई वस्तुकामोल किसी पर लेना हो या (भृति) जो नौकरी आदिका वेतन हो या (न्यास) जो किसी पर धरोहरका धन लेनाहो यद्वा किसीपर कुछ दंड कल्पित हुआ हो जिसके लेने में कुछ काल न वृद्धि योग्य विलम्ब हुआहो यद्वा (वृथादान) जो देव पितर आदि नैमि-त्तिक शास्त्रोक्त दानोंसे भिन्न कोई निष्फल रुपदान देने कहाहो कि इतना द्रव्य देवैंगे

और कदाचित् उसमें वृद्धिहोने योग्यकाल विलम्ब देनेमें होगयाहो यद्वा (अक्षिकधन) जो द्यूतक्रीड़ामें हारा हुआ देनालेना हो यद्वा (पण) जो किसी बातपर शर्त नाम होड़ बदनेके हेतुसे देनालेनाहो तौ इतनेप्रकारके धन अविवक्षित नहीं वढ़ते अर्थात् यदि ऐसेधनों पर किसीने किसी आवश्यक हेतुसे वृद्धि देनी स्वीकार करी हो तौ यह जुदी बातहै किन्तु देनीचाहिये अन्यथा बिनास्वीकारताके ऐसे धनोंपर कदाचित् भी वृद्धिनहीं होसक्तीहै चाहै कितनाहीं काल विलम्ब हुआहो यह (अपवाद)है ३९॥

अब नीचेके श्लोकमें द्रव्य विशेषके प्रयोगमें वृद्धि विशेषके लक्षण कहते हैं॥

संततिस्तुपशुस्त्रीणांरसस्याष्टगुणापरा। वस्त्रधान्यहिरण्यानांचतुस्त्रिद्विगुणापरा ४०॥

अक्ष०–पशुओं की स्त्रियोंकी संतति वृद्धि-रसकी अठगुनी परावृद्धि वस्त्र धान्य हिरण्य इनकी यथा संख्य परावृद्धि चौगुनी तिगुनी द्विगुणी ४०॥

अभि०–पशुजीवों की स्त्रियाँ गऊ भैंस आदि जिनका धनी उनके पोषणमें असमर्थ होकर उनकी पुष्टि और संतति की कामनासे किसी ऐसे अपने ऋणीको या अन्य किसीको देवै जो उनका पोषण करसकै यह प्रयोग दोनों की अपेक्षापूर्वक होताहै इसकी यह मर्यादाहै कि जो संतानैं उनके होती जायँ सो धनीकी वृद्धि कहलातीहै और दुग्ध आदि जो कुछ हो वह सेवाकरनेवाले का भागहै (इसकथनसे यह बात पाई जातीहै कि वह मुख्यगऊ भैंस जबतक बच्चादेती जाय तबतक या जीवन अवधितक लौटिकर धनीको नहीं मिलै) परंतु यही नियम नहींहै किन्तु जैसा बर्त्तावा परस्पर दोनों के ठहरा हो सो होसक्ताहै किन्तु यह मर्यादा इसलिये बाँधीगई कि जहाँ कोई नियमठहरे विनादीगईहो या और किसी व्यतिक्रमकेहेतुसे झगड़ाउठै तहाँ फैसला उसका अंत्यदशापर इस नियमसे होसक्ताहै-और यहबार्त्ता यद्यपि ऋणादान के प्रकरणमें होनेसे एकप्रकारका ऋण प्रतीतहोताहै पर इसको ऋणनहींकहसक्ते अर्थात् यहभी एकप्रकारका साझाहै क्योंकि बहुधा दुर्बलता आदि दशाओंमें एकही बेतके नियमसे आधासाझाठहरजाता है कि पोषणकिये पीछे जिससमय यह ब्यावैगी या गाभिनहोजावैगी उसीसमय बच्चा और माता दोनोंका मूल्य निर्णीतहोकर आधामूल्य वह पुरुष दूसरेकोदेवै जो उसगऊका लेना स्वीकारकरै परंतु जब तक धनी उसका अर्ध मूल्यदेकरलेना राखना स्वीकारकरै तबतक पोषणकर्त्ता नहीं लेसक्ता इत्यादि और भी अनेकरीतैं इस विषयकी प्रसिद्धहैं और उसदशामें इस प्रयोगको ऋणकेही समान कहसक्तेहैं कि यदिपोषणकर्त्ता लौटिकर धनीको कुछ न देवै निपट पचानाचाहै और इसीहेतुसे विवाद इसमें खड़ाहो (यह एक चरणकाभाव कहागया) अब-दूसरेपादसे लेकर चौथेतक वह व्यवस्था कथनहोगी कि जो कोई वस्तु रसादिक या धनादिक वृद्धिके निमित्तसे दीजाय और बहुतकालतक वृद्धि उस्से न मिलसकै

और मुख्य वस्तु उसके ऋणीपर बनीरहे तब किसबस्तुपर कितनीबृद्धि अंत्यपरि-
माणतक होनीचाहिये-यथा(रसस्याष्टगुणापरा)अर्थात् तेल घृत आदि रस बस्तु जो
तुलाद्वारा तौलकर किसीकोसवाये ड्यौढ़े आदि किसीबृद्धिके नियमसे दीहो और बहु-
तकालतक बृद्धि उस्से न मिलसकै तौ अपनेकियेहुये नियमकी वृद्धिके हिसाबसे जोड़
कर आठगुणसे अधिकनहींबढ़सक्ती अर्थात् जो रसादिक बस्तु एकमनभरदीहो आ-
ठमनसे अधिकराजानहीं दिलासक्ता चाहैउसपर बारहमनहोगईहो-ऐसेही बस्त्रधान्य
हिरण्य इनकी यथाक्रमसे वृद्धि चौगुनी तिगुनी द्विगुणीसे अधिकनहींहोसक्ती अर्थात्
यदि बीसगजकपड़ा किसीको किसी परिमाणकी बृद्धिसेदियाहो और बृद्धि उसकी न
मिलनेकेहेतुसे बढ़ती२ दोसौगजतकहोगईहो परंतु चतुर्गुणके नियमानुसार ८० गज
से अधिकनहींमिलसक्ता-एवं-धान्यादिक बस्तुकी परमावृद्धि तिगुनीतकहोसक्तीहै-
और-हिरण्य सोना चाँदी आदिकी बृद्धिदूनेसे अधिकनहींचलसक्ती-और पशु स्त्रियों
की जो सामान्य बृद्धि ऊपर कहचुकेहैं वही उनकीपराबृद्धिभी (तु) शब्दके अभिप्राय
से समझीचाहिये अर्थात् जो संतानैं उसकी उपस्थितहों अथवा संख्यामें जितनी
होचुकीहों यथा संभव समयके अनुकूल वेही संतानैं उसकी पराबृद्धिके भी समयतक
मिलसक्तीहैं और कुछ नहीं ४० ॥

भाषि०—यद्यपि याज्ञवल्क्यीय मतसे आठगुणी वृद्धिरसपरकहीगई पर बशिष्ठजीने
तीनगुणसे अधिकनहींकही अर्थात् बशिष्ठजीनेभी योगीश्वरकेही समान हिरण्यकी
द्विगुणबृद्धि और धान्यकी त्रिगुणवृद्धिकही और धान्यकेहीसाथ रसभी समझलिये
किंतु जैसे धान्यकी त्रिगुणवृद्धि तैसेही रसोंकीभी त्रिगुणवृद्धिहोसक्तीहै और पुष्प
मूलफल इत्यादि बस्तु आठगुणीतक बढ़तीहै यह बशिष्ठजीनेकहा-और-मनुने धान्य
पुष्प मूलफल इत्यादि चीजोंकी वृद्धि पँचगुनी कही-यथा (धान्येशदेलवेवाह्येनाति
क्रामति पंचताम्)अर्थात्-(धान्य) जिसे नाज कहते हैं और (शद) नाम क्षेत्रफल इस
में पुष्पमूल फलादिक सभी गिनतीमें आगये तहां पुष्प कहनेसे कुसुंभा आदि वस्तु
जो सवाये ड्यौढ़े आदिकी वृद्धिपर देने योग्यहों समुझी चाहिये मूल कहनेसे हरिद्रा
शुंठी आदि समुझनी फल कहनेसे सुपारी आदि नानाभांतिके और आदि शब्दके
योगसे इसप्रकारकी औरभी अनेक वस्तु समझलेनी और (लव) नाम भेड़की ऊन
या चमरीकेश आदि अनेक वस्तु और (वाह्य) नाम वाहन बैल घोड़ा आदि इनसभी
चीजोंकी वृद्धि पांचगुणसे अधिक नहीं चलसक्ती यह मनुजीने कहा-मनु वशिष्ठ या-
ज्ञवल्क्य इनके वाक्योंमें कईप्रकार इसमें पाये गये इनमें किसका प्रमाण अधिक इस
अपेक्षामें यह नियमहै कि ऋणीकी शक्ति और योग्यताके अनुसार यद्वादुर्भिक्षादि
कालके अनुसार जैसा संभवहो तैसीही व्यवस्था इनमेंसे अंगीकार करनी चाहिये-

सो यह परमाबृद्धिकी वार्त्ताभी उस दशाके निमित्तमें कही है कि जबएकही वारके या एकही पुरुषके प्रयोगमें दियाहुआ द्रव्य एकहीवार लियाजाय-अन्यथा-जब एकपुरुषको दियेहुये द्रव्यमें उसके मरजाने या और किसी हेतुसे उसके पुत्रादिक द्वितीय पुरुषके द्वारा वही प्रयोग फिर नये सिरेसे नियमित कियाजाय यद्वाउसी पुरुषकेद्वारा और एकही वस्तुमें दाता और गृहीता दोनोंकी परस्पर संमतिसे फिरनये सिरेसे प्रयोग नियमित किया जाय तब सुवर्णादि वस्तु द्विगुणी आदि जैसे२ उनके नियम ऊपर कहेगये तैसे२ पराबृद्धि होनेपरभी पूर्ववत् वृद्धिको पहुँचते हैं अर्थात् जो परस्पर दोनोंकी प्रसन्नतासे यह नियम नये सिरेसे ठहरै कि यह सोना जो मूलधनसे दूना होगया तिसके द्विगुणत्वका लेना देना छूटजाय और मूलधनपर जैसे पहलेसे वृद्धि होतीरही तैसेही अब आगेको होतीरहै और निरन्तर दीलीजावै तौ यहबात होसक्ती है-अथवा-दोनोंकी परस्पर प्रीतिसे यहबात जहां नयेसिरेसेठहरै कियह सोना जो वृद्धि के उद्धार न होनेसे मूलधनसे त्रिगुण होचुकाहै परन्तु त्रिगुणलेनेकी मर्यादा नहींइसलिये पराबृद्धिके नियमानुसार द्विगुणदेना मुझको स्वीकारहै और आजसे वह द्विगुणत्वभी मूलधनमें समझाजाय किंतु अबतक जैसे सौपर वृद्धि होतीथी तैसेही अब आगेको दोसौपर वृद्धिदेनी मुझको स्वीकार और निरन्तर दिया करोंगा तौ यहभी होसक्ताहै-इस अपेक्षामें कहीं ऐसाभी होताहै कि जब एकही प्रयोगमें जो कुछ वृद्धि देनी लेनी ठहरीहो वह ठहरनेके अनुसार प्रतिदिवस या प्रतिमास या प्रतिवर्ष उद्धार होतीरही परन्तु कुछ अवधि पीछे वृद्धि देने लेनेसे रुकरही तब इस दशामें जो कुछ वृद्धि पहले मिलचुकीहो सोसब जोड़कर और आगेकी रुकीहुई वृद्धिभी उसीमें जोड़कर द्विगुणताको पहुँचे पीछेभी आगेको पूर्ववत् बृद्धि होती रहेगी अर्थात् इस दशामें पराबृद्धिसे आगे न वढ़नेका नियम नहीं रहसक्ता किंतु न बढ़नेका नियम उसीदशा में होताहै कि जब एकबार इकट्ठी बृद्धि लीजाय-यही आशय मनुकेभी बचनसे सिद्ध है-यथा-(कुसीदवृद्धिर्द्वैगुण्यान्नात्येतिसकृदाहृता) अर्थात्-व्याजकी वृद्धि एकहीवार इकट्ठी लेनेमें मूलधनकी द्विगुणतासे आगे नहीं मिलसक्ती-एकहीबार कहनेसे सिद्धांत यह कि जो प्रतिमास वृद्धिमिलती रहीहो तौ फिरचाहे तिगुनी चौगुनीतक भरीजाय इसमें कुछ नियम नहीं है-गौतमनेभी यही कहाहै-यथा-(चिरस्थानेद्वैगुण्यंप्रयोगस्य) अर्थात्-बहुत कालतक वृद्धि देनेसे रही आवै तौ प्रयोगमें दियेहुये मूलधनसे द्वैगुण्य लेना चाहिये (द्वैगुण्य) अर्थात् जितना मूलधन दिया हो उतनीही वृद्धिलीजाय किंतु उस्से अधिक नहीं (प्रयोगस्य) यह एक वचनका निर्देश करनेसे सिद्धांत यह दर्शाया कि यदि वारवार प्रयोगांतर होताजाय तौ फिर दूनेसे अधिकलेना दोषनहीं ऐसेही (चिरस्थान) यह बहुत कालका निर्देश करनेसेभी यही अभिप्राय दर्शायाहै

कि यदि थोड़े२ कालमें क्रम२से वृद्धि मिलती रहीहो तौ फिर दूनेसे अधिक आजा-ना कुछ कुरीति नहीं है ४० उत्तमर्णके दो धर्मोंमें एक पहला धर्म अर्थात् (ऋणप्रयोग) नाम ऋणकादेना कि इस विधिसे ऋणदेना चाहिये सो सब यहांतक मूलके तीन श्लोकों द्वारा वर्णन होचुका-अब-दियेहुये धनकेलेनेकी विधि नीचेके परिच्छेदमें कहेंगे॥

अथऋणादानसंबंधेधनिकेनदत्तस्यधनस्यादानविधिविवेकोनाम पंचविंशतिमःपरिच्छेदः २५॥

इस पच्चीसवें परिच्छेदमें वहव्यवस्था जानीजायगी कि धनी अपना दिया हुआ धनअधमर्णोंसे अमुकामुक प्रकारोंसे निकाले॥

प्रपन्नंसाधयन्नर्थंनवाच्योनृपतेर्भवेत्। साध्यमानोनृपंगच्छन्दंडोदाप्यश्चतद्धनम् ४१॥

अक्ष०-प्रपन्न अर्थको साधन करताहुआ नृपति का बाच्यनहोवे-साध्यमान राजा पास जाताहुआ दंड और वहधनभी दिलवाने योग्यहै ४१॥

अभि०-(प्रपन्न) अर्थात् ऋणीकरकेठीक २ स्वीकारकियाहुआ यद्वा गवाहोंआदिसे स्वीकारकरायाहुआ सच्चाजोकुछ धनीका धनहो तिसको यदि धनीधर्मादि उपायोंसेसाधन करै अर्थात् ऋणीसे अपनाधनलेता मांगताहो तौ वहधनी राजाकरके बाच्यनहीं होता अर्थात् राजाउसको निषेधन करै-और-जोधर्मादि उपायोंसे(साध्यमान) अर्थात् याच्यमान ऋणी जिस्से प्रपन्न अर्थ धनीमांगताहो ऐसाऋणीयदि राजापास जाकर फिरयादीहो कि मुझको धनी पीड़ादेताहै तौ उस ऋणीसे राजादंडलेवै और धनीका धनभी यथाशक्ति अनुसार दिलवावै-यहांपर साध्यमान या याच्यमानऋणी राजापास जावै तव राजाको नालिश सुन्ने या सुन्नेमें वहबात ध्यान करनी चाहिये जो व्यवहाराध्यायके पांचवें श्लोक में (स्मृत्याचारव्यपेतेन) इत्यादि मर्यादा कहीहै वह वार्त्ता यहांपर दोनोंभांतिसे संभवितहै ४१॥

अधि०- दिलाने मध्ये राजाके लिये यहप्रकारभी कहेहैं यथा(राजातुस्वामिनंविप्रं सांत्वेनैवप्रदापयेत्। देशाचारेणचान्यांस्तुदुष्टान्संपीड्यदापयेत्)अर्थात्-धनीकाधन विप्रके प्रतिकेवल (सांत्व)भावसे अर्थात् क्रोधोपशमनरूप प्रियबचनोंसे दिलावै और यदि क्षत्रियादि और कोई ऋणीहो तौ उनसे वहांके देशाचारकी रीतों अनुसार दिलवावै जहांके वह निवासीहों और यदि ऋणीकोई दुष्टहो जो संपन्न होनेपरभीदेना नहींचाहै तौ उसकोपीड़ादेकर धनीकाधन दिलावै-राजाके विनाभी धनीको धर्मादि उपायोंमें अपना अर्थलेनाकहा और वे उपाय मनुने प्रदर्शित किये हैं-यथा-(धर्मेण व्यवहारेणछलेनाचरितेनच। प्रयुक्तंसाधयेदर्थंपंचमेनबलेनच)अर्थात्-ऋणीमेंलगाया हुआ अपनाधन इनउपायोंसे लेवै किंतु प्रथम तौ धर्मसेही लेवै १ (धर्म) से अर्थात् प्रीति युक्तादि सत्यवचनोंमें- २ (व्यवहार) ने अर्थात् थोड़ा थोड़ा किस्तोंद्वारा वा

लिखावट आदि मार्गोंसे जैसासंभवहो-३(छल)से अर्थात् उत्सवआदिकेबहानेसेभूषण आदि कोईवस्तुमांगलाना और अपने लेनेमें दाबराखना इत्यादिछलों से निकासना उस दशामें कि जब पूर्वोक्त दोरीतोंसे न मिलसक्काहो-४ (आचरित) से अर्थात्नहाना खाना छोड़ उसके दरवाजे धन्नादेना आदि-५ (बल) से अर्थात् पांचवांउपाय प्रबलताहै कि ऋणीको निगड़बंधन आदिसेअपना दियाहुआ प्रपन्न अर्थलेलेवै (प्रपन्न अर्थका साधनकरताहुआ राजाकरके वाच्यनहीं होता)इस कथनसे यह सिद्धांत है कि (अप्रतिपन्न) अर्थका साधन करै तौ वहधनीभी राजाकरके निवारणीय है-यहवार्त्ता कात्यायनजीने स्पष्टभावसे कहीहै-यथा- (पीडियेद्योधनीकश्चिदृणिकंन्यायवादिनम्। तस्मादर्थात्सहीयेततत्समंचाप्नुयाद्दमम्) अर्थात्-जोकोई धनी किसीयथार्थबादी ऋणी को पीड़ादेवै सो उसधनसेभी हीन कियाजावै कि जिसधन के लिये पीड़ादान किया और उसीधनकेसमान दंडराजाभी उसधनी से लेवै क्योंकि उसने अन्याय किया-(अपवाद)-पूर्वकालीन रीतों के अनुसार धर्मादि पांच उपायों से धनीको अपना धन ऋणीसे निकालना कहा उनमें प्रथमके दो उपायोंवाली मर्यादें अद्यापि प्रदीप्ताग्निवत् प्रकाशमान हैं-परन्तु-अत्योक्त तीनउपायोंकीमर्यादें संप्रति नष्टाग्निसंज्ञक होकर लोप होगईं अर्थात् अँगरेजी कानूनके आशयसे उनकेआचरण का अधिकार अब नहींहै यह अपवाद इसमें कहागया ४१॥ अब यह बात नीचे कहेंगे कि जब एक ऋणीकोअनेक धनीअपने२ धनकेलिये एकसाथ आकरघेरैं यद्वाराजद्वारमेंअभियुक्त करैं तव राजा किस किसक्रमसे उन्हें दिलावै॥

गृहीतानुक्रमाद्दाप्योधनिनामधमर्णिकः। दत्वातुब्राह्मणायैवनृपतेस्तदनंतरम् ४२॥

अक्ष०-ऋणीलेनेके अनुक्रम से दिलानेयोग्यहै धनीलोगोंको-ब्राह्मणकोही देकर तदनन्तर नृपतिका ४२॥

अभि०-जो सबधनी लोग एकहीजातिकेहों तौ जिसक्रमसे पहलेपीछे ऋणलिया हो उसीक्रमसे राजा पहलेवालेका पहले औरपीछेवालेका पीछे दिलवावै और जोकईजातिके धनीलोग हों तौ पहले ब्राह्मणका धन दिलवावै फिर क्षत्रियका इत्यादिक्रम से सबकासच्चा धन दिलवावै ४२॥ अब यहबात नीचेकहेंगे कि यदिराजा दिलवावे तौ दोनोंसे अपनाभाग इस प्रकारसे लेवै॥

राज्ञाधमर्णिकोदाप्यःसाधितादशकंशतम्।पंचकंचशतंदाप्यःप्राप्तार्थोह्युत्तमर्णिकः४३॥

अक्ष०-राजाकरके ऋणीदिलानेयोग्यहै साधितकिये धनसे दशरुपया सैकरा-पांच रुपया सैकरा देनेयोग्यहै धनी जिसने धनपाया ४३॥

अभि०-जिसदशामें उत्तमर्ण अर्थात् धनी दुर्बलहो जो ४१ श्लोकमें कहेहुये उपायोंसे अपना प्रतिपन्न धन न पासकै और नालिशद्वारा ऋणीको अभियुक्त करै और

राजा उसधनका साधनकरवावै तबराजा उसधनके दशांशके तुल्यदंड ऋणीसेलेवै और बीसवांभाग धनीसे सरकारी नौकरोंकी भृतिरूपसे लेवै यहव्यवस्था प्रतिपन्न अर्थके साधनमें कहीगई-और अप्रतिपन्न अर्थकी अपेक्षामें जो कुछदंड बिभागउचित है सोदेखौ दशवें परिच्छेद बारहवें श्लोकमें कहचुके हैं परन्तु वह व्यवस्था और अत्रोक्तभी धनवान् ऋणीकी अपेक्षामें समझनी ४३॥ अवनीचे निर्द्धन ऋणीकी अपेक्षामें कहेंगे॥

हीनजातिंपरिक्षीणमृणार्थंकर्मकारयेत्। ब्राह्मणस्तुपरिक्षीणःशनैर्दाप्योयथोदयम् ४४॥

अक्ष०-हीनजाति परिक्षीणसे ऋणकेअर्थ कर्मकरवावे-ब्राह्मणपरिक्षीण होतौशनैः२ जैसा उदयहोता जाय देनेयोग्यहै ४४॥

मभि०-ब्राह्मणआदि उत्तमजातिका धनीजिसकाऋणी उससेहीनजाति क्षत्रियआदिऐसा निर्द्धनहोजाय कि उसमेंऋण उद्धारकरदेनेकी समर्थ शेष न हो तबउस्सेअपना ऋणनामक धनानिवृत्त करिपानेके अर्थसेकाम करवावै जबतक ऋणउद्धार होना संभवहो परञ्च वहीकाम जो ऋणीकीजातिमें करनायोग्यहो अथवा जिसकामको वह करना जानता और करसक्ताहो अर्थात् जिसकामसे उसनेअपनी आजीवनवृत्ति पहलेकरी हो या करनेका औचित्यरखता हो सोकाम उस्से लेवै और ऐसेप्रकारसे कि जिस्सेउसके कुटुंबमें कोईसाविरोध इसहेतुसे न उत्पन्नहो-और यदिऋणी ब्राह्मणहो तौवह (परिक्षीण) अर्थात् निर्द्धनहोनेपर भी कामकरनेयोग्य नहीं पर धीरे२यथाक्रमसे उसका भाग्योदय होताजाय तैसेही ऋणभीथोड़ा २ उद्धारकरने योग्य है-इसवार्त्तामें हीनजातिके कथनसे समजातिका भी उपलक्षण स्वीकारहै अर्थात् जब ऋणी और धनीदोनों एकहीवर्णके हों तौभी यथोचित कर्मका करना करवाना संभवहै-और उत्तरार्द्ध मूलश्लोक में निर्द्धनब्राह्मण केवलकहा सोभीश्रेष्ठ जातिका उपलक्षणहै इसलिये क्षत्रियादि ऋणीभी परिक्षीण होनेपर वैश्यादि अपनेधनी को उसीरीतिसे देसक्ता है जैसा ब्राह्मणकी अपेक्षासे कहाहै कि (शनैर्दाप्योयथोदयम्) ४४॥

मयि०-हीन और समजातिको कर्मकरना और श्रेष्ठजातिको यथाक्रमसे भाग्योदयके अनुसार उद्धारकरना यही मनुजीने स्पष्टभावसे कहा है-यथा(कर्मणापिसमंकुर्याद्धनिकेनाधमर्णिकःसमोऽपकृष्टजातिश्चदद्याच्छ्रेयांस्तुतच्छनैः)अर्थात्-मनुनेऋणी कोशिक्षादेकर यहकहाहै कि ऋणीचाहे धनीका समजाती या हीनजातीहो वहधनी साधकर्म करनेसेभी अपनाऋणउद्धार करिकै समता अर्थात् निर्मलताप्राप्तकरै और जो ऋणी अपने धनीसे श्रेष्ठवर्ण होतौ उसधनको वहशनैः२यथाभाग्योदयके अनुसार देतारहै ४४॥ अबनीचे वह व्यवस्था कहेंगे कि जब देतेहुये भी धनी अपना धन ब्याज बढ़ने के लालचसे न लेवै॥

दीयमानंनगृह्णातिप्रयुक्तंयःस्वकंधनम्। मध्यस्थस्थापितंचेत्स्याद्वर्द्धतेनततःपरम् ४५॥

भक्ष०-प्रयुक्त कियेहुये दीयमान अपने धनको नहींलेताहै उसमेंजो मध्यस्थ स्थापित कियोहोतौ उसदिनसे पीछे व्याजनहीं वढ़ताहै ४५॥

भभि०-ऋणीको दियेहुये धनमेंसे जबकुछ ऋणीदेनेलगै और धनी उसको व्याज वढ़नेके लालच या और किसीहेतुसे देतेहुयेभी न लेवे और उसदशामें ऋणीकिसी विश्वासपात्र मध्यस्थके हाथमें सौंपदेवे तौफिर उस दिनसे उतने धनपर व्याज नहीं मिलसक्ता और जोपीछे उसी स्थापितकियेधनको धनीमांगै और वहऋणी फिर न देवै तौ पुर्ववत् वृद्धिभी होतीरहैगी४५॥यहां तक उत्तमर्णके दोनोंधर्म्म अर्थात् ऋणकादेना और निकालना भी कहागया कि इन प्रकारोंसे निकालै-अवनीचेके परिच्छेदमें अधमर्णके पांचौ लक्षण कहे जायँगे तिनमें पहले वह व्यवस्था कहतेहैं कि उद्धारकरदेने योग्य जोऋणहै सो कब और किसको उद्धार करना चाहिये ४५॥

भथऋणादानसम्बन्धेऽधमार्णिकैर्गृहीतस्य ऋणस्योद्धरणविधिविवेकोनामषड्विंशतिमःपरिच्छेदः।

(२६)इस छब्बीसवें परिच्छेदमें ऋणीके वह पांच अधिकार जाने जायँगे कि ऐसाऋण हो तौ अवश्य उद्धार करना १ ऐसा हो तौ नहीं देना २ अमुक पुरुषपर देनेकाभार है ३ अमुक समय पर देना उचित है ४ अमुक रीतिसे देना चाहिये ५॥

भविभक्तैःकुटुंबार्थेयदृणंतत्कृतंभवेत्। दद्युस्तद्रिक्थिनःप्रेतेप्रोषितेवाकुटुंबिनि ४६॥

भक्ष०-अविभक्तों करके कुटुम्बके अर्थ जो ऋणकिया गया वह कुटुम्बी काही किया होवै उस कुटुम्बीके प्रेत या प्रोषित होजानेमें भी उसके रिक्थी देवें ४६॥

भभि०-जिसघरमें अविभक्त नाम साझे मिलेमें रहतेहुये मनुष्योंने कुटुम्बके पोषण केलिये जो कुछ ऋण चाहैं कई मनुष्योंने मिलकर लिया हो चाहैं भिन्न २ कोई लाया हो वहसर्व ऋणउसघरके कुटुम्बी काही किया कहलाताहै क्योंकि यह औचित्य उसीपर था कि वह ऋणलाकर पालन करता इसालिये उसकी अनुपस्थिति या और किसी उचित हेतुसे यदि कोई रिक्थी कुटुम्बीके औचित्यका साधनकर लाया तौ वह कुटुम्बीकेही नाम ऋण कहलाता और उसीको उद्धार करना योग्यहै-यदि कुटुम्बी मरजाय अथवा वहुतकालतक विदेशस्थ होजाय तौ उसके वे सभी रिक्थीमिल करदेवैं जो खानपान में साझी थे और उसके मरे पीछे रिक्थ भागलेनेके साझी होंगे यह देय ऋणकी व्यवस्था कही४६॥अव अदेय ऋणकी व्यवस्था नीचे कहेंगे ४६॥

नयोषित्पतिपुत्राभ्यांनपुत्रेणकृतंपिता। दद्याद्दतेकुटुम्बार्थान्नपतिःस्त्रीकृतंतथा ४७॥

भक्ष०-पति पुत्र दोनोंका किया योषित्न देवै पुत्रकाकिया पिता नहीं तथास्त्रीका किया पति नहीं देवै-कुटुम्बार्थ कियेहुयेसे विना ४७॥

भभि०-पतिने जो ऋण किया हो उसकी (योषित्) नाम भार्यापर उद्धारकरनेकी

योग्यता नहीं है एवं पुत्रने जो ऋण कियाहो उसकी (योषित्) नाम मातापर उद्धार करनेका औचित्य नहीं एवं पुत्रने ऋण कियाहोतौ पितापर उद्धार करनेका औचित्य नहीं एवं स्त्रीके कियेहुये ऋण उद्धार करनेकी योग्यता उसकेपति पर नहींहै किंतु जिसने लियाहो वही अपने आपदे-परन्तु-इस मर्यादामें थी इतनायह (अपवाद) विशेष है कि सभी ऋण ऐसे नहीं होसक्के जो किसीकाकिया कोई उद्धार न करै किन्तु कुटुंव के अर्थकियेहुये ऋणके सिवाय जो आत्मीय प्रकारसे लियाहो तिसकी यह व्यवस्था है-अन्यथा जो कुटुम्ब पोषणके निमित्तसे ऋण हो वह चाहैं जिसकिसीने किया हो घरके कुटुम्बीपर उद्धारकरना उसका उचितहै यदि कुटुम्बीका अभाव होजाय तौ उस के दाय हरनेवाले देवैं इस अपवादका स्वरूप पूर्वोक्त ४६ के श्लोकमें उत्पन्नहो चुका था उसीकी दृढ़ता यहांपर करीगई कि उस दशामें सबका किया ऋणसब कोई देनेका अधिकारीहै कि जो कोई ऋणकर्त्ताका मुख्य स्वामी यद्वा मुख्य अधिकारीहो ४७ ॥

अधि०—यह भी विदित हो कि यद्यपि यहांपर (परन्तु) इत्यादि लेकर अपवाद के नामसे आशय समुझाया गया तथापि यह अपवादका रूप नहीं है किंतु विधि और निषेधकारूपहै अर्थात् इस आशय द्वारा देय ऋणकी विधि और अदेय ऋण का निषेधदर्शायाहै और (नपतिःस्त्रीकृतंतथा) इस चौथे चरणकी अपेक्षामें जो कुछ अपवाद यथार्थ भावसे उचितहै सोयहांसे तीसरे मूलवाक्यमें अर्थात् ४९ केश्लोकमें कहेंगे-और-इसी-४७ के मूलश्लोक पहले चरणमें यह जो कहा कि पतिका ऋणभार्या नहीं देवै तिसका अपवाद पंचाशके श्लोक मूलमें कहेंगे-इसी ४७ के श्लोकमें और सबके ऋणोंका निषेध भिन्न २ किया यहांतक कि पुत्रके ऋणको पिता नहींदेवै परन्तु यह निषेध नहीं किया कि पिताके ऋणको पुत्र नहीं देवै इस्से प्रतीत हुआ कि पिताके कियेहुये ऋण का उद्धार करना पुत्रपर आवश्यक है और यथार्थ भावसे इस बातकी विधिभी आगे ५१ के श्लोकमें कहेंगे कि पिताका ऋण उद्धारकरना पुत्रपर आवश्यकहै तथापि सभी प्रकारके ऋण उद्धारकरना पुत्रपर आवश्यक नहीं इसलिये उस ५१ के श्लोकमें वक्ष्यमाण विधिका अपवाद पहलेसे पहलेही नीचे ४८ श्लोक में कहेदेते हैं ४७ ॥

सुराकामद्यूतकृतंदंडशुल्कावशिष्टकम् । वृथादानंतथैवेहपुत्रोदद्यान्नपैतृकम् ४८ ॥

भक्ष०—सुरापान काम क्रीड़ा द्यूतक्रीड़ा से किया हुआ ऋण दण्ड और मूल्य का अवशेष तैसेही वृथादान यह पैतृकऋण पुत्रनहींदेवै ४८ ॥

अनि०—पितोकेऋणोंका उद्धारकरना पुत्रपर और पुत्रके उपलक्षसे पौत्रोंपरभी आवश्यकहै तथापि इसप्रकारकेऋण जो पितापरहों तिनको पुत्रनहींदेवै यहअपवाद कहतेहैं अर्थात् पिताने मद्यपानकरके जो ऋणकियाहो और कामक्रीड़ानाम स्त्रीसंबंधी

व्यसनकीअपेक्षासे जो ऋणकियाहो और द्यूतनाम जूआखेलकर हाराहो ऐसा देना अथवा जूआकी हारि में किसी से ऋणलेकर दियाहो सोभी और पिता पर किसी अपराधमें राज्यसे दण्डबोलागयाहो उसमेंदेकर कुछदेनाशेषरहाहो और (शुल्कावशिष्ट) अर्थात् पिताने कोईवस्तुखरीदीहो उसके मूल्यमें से कुछदेनाशेषरहाहो सोभी और (वृथादान) अर्थात् धूर्त्तबंदीमल्लआदि याचकोंको पिताने जो कुछ मुखसे देनाकहाहो और वहदेनेमें रहगयाहो सोभी इसव्यवहारमार्गमें पुत्रनहींदेवै यहमर्यादाहै ४८॥

अधि०—जोकिदंड और शुल्क इनदोनोंका अवशेषदेनेका निषेधाकिया इस्से यह बातपाईगई कि जो इनमेंसे देतेदेते शेषरहाहो सो न देवै परन्तु जो सभीदेनारहा हो तौ पुत्रपर उद्धारकरना आवश्यकहै सोनहीं क्योंकिइसमें उशनाकी यहअग्रोक्तस्मृति समस्तकाभी निषेधकरतीहै-यथा (दंडंवादण्डशेषंवाशुल्कंतच्छेषमेववा। नदातव्यंतु पुत्रेणयच्चनव्यवहारिकम्) अर्थात्- उशनाने यहकहाहै कि चाहै दण्डनामजुर्माने का संपूर्णअंगयद्वा उसकाकुछ शेषपिताकोदेनाहो ऐसेही शुल्कनाम खरीदी हुई वस्तुका संपूर्णमूल्य यद्वाउसमेंसे कुछ अवशेषदेनारहाहो सो पुत्रकरकेनहीं दातव्यहै किन्तु पुत्रऐसेऋणकोनहीं देवै और वह भी कि जो ऋणपुत्रके पितापर व्यवहारिकनहो अर्थात् जो व्यवहारमार्गसे देनलेनद्वारा पितापर कुछऋणहो सो पुत्रकोदेनाचाहिये क्योंकि वहव्यवहारजोहै सो पुत्रादिकोंकेही कल्याणहेतुसे कियागयाथा और पिताके मरेपरभी उसव्यवहारके फलभागी पुत्रहीहोतेहैं (देखो) उशनाने व्यवहारिक ऋणका उद्धारकरना कल्पितकरिकै अव्यवहारिक ऋणके देने में स्पष्टभावसे निषेधकरदिया तौ अव्यवहारिक ऋणकहनेसे उनसभीऋणोंका निषेधहोगया जो मूलश्लोकमें सुरापानआदिसे कहेहैं क्योंकि वे ऋण व्यवहारिक नहीं हैं-गौतमनेभी कहाहै-यथा (मद्यशुल्कद्यूतकामदण्डान्नपुत्रानध्यावेहयुः) अर्थात् मद्यपान मूल्य द्यूत कामकृतदंड यह इतनेऋण पिताकेकियेहुये पुत्रोंपर उद्धारकरने योग्यनहीं-योगीश्वरनेदण्ड औरशुल्क-इनदोनोंकाअवशेष इसलियेकहा कि संपूर्णकीतौ क्याचर्चाहै किंतु कुछथोड़ाभी अवशेषरहाहो सोभी पुत्रनहींदेवै-यद्यपि योगीश्वर औरउशनाऔर गौतम इनसबकेवाक्यों से खरीदीहुईवस्तुका शुल्कदेनेकेलिये संपूर्ण और उसके अवशेषपर्यन्तका निषेध सामान्यभावसेहै तथापि इसनिषेधका यह सिद्धांतनहींहै कि दोरुपये या दशरुपयेकी खाने पहिरनेवालीवस्तु बाज़ारसेयदि पिताअभीहालमें पुत्रोंकेसमक्ष सबघरकी आरामके निमित्तसेलाया और हालही पितामरगया या विदेशवासी होगयाहोतौ यहमूल्यभी नदेवैंकिंतुऐसा मूल्यअवश्यभावसे पुत्रोंपरदेना उचित और शीघ्रदेना उचितहै-अर्थात्-वहनिषेध ऐसीदशाओंपर आरूढ़है कि यदि पितानेआत्मीय व्यसनरूप सौख्योंके हेतुसे हाथी घोड़ाआदि या पीनसपालकीआदि किसीकालांतरमें खरीदेहों और

कामूल्यउसपर शेषचलाआताहो तौ ऐसामूल्य उनपुत्रोंपर देनेकाभारनहीं है कि जिन्होंने अधिकतासे कुछ पैतृक रिक्थ न पायाहो किन्तु जिन्होंने अधिकतासे पिताका छोड़ाहुआ धनपायाहो उनकी सत्पात्रता यहीहै कि वे ऐसेमूल्यकोभी अपनेपिताकी दुष्कीर्ति निवारणकरनेकेलिये यथाक्रमसे और यथा अवसरके अनुकूल उद्धारकरैं-इसकेसिवाय-ऐसे शुल्कभी उद्धारकरने योग्यअवश्यहैं कि यदि पिताने किसीस्थावर इमारतमें ईंटचूना आदि या कोई अन्यकबाड़ लेलेकरलगाया और लगाते लगाते बीचहीमें मरगया और पुत्रसमर्थ संप्राप्त व्यवहारकालहै कि जिसके सन्मुख यहसब कामहुआ तौ उन कबाड़ियोंके शुल्कदेने योग्यहैं अन्यथा वे उसइमारतके नामनालिशकरसक्तेहैं जिसमें उनकामाल आकरलगा-परन्तु-यादि पिता किसी अज्ञात दूर देशका निवासीहोजाय तौ यहबातभी असंभवहै क्योंकि ऐसी दशामें बीसवर्षोंतकपुत्रों पर ठेठऋणकाभी दावा कोईनहींकरसक्ता फिर यह तौ मूल्यहै कि जिसकेदेनेकानिपट निषेध होचुकाहै-परन्तु-ऊर्ध्वोक्त ऋषीश्वरोंके वाक्योंका सिद्धांत यहपरमहै कि अप्राप्त पैतृकरिक्थ पुत्रोंपर मूल्यकादावा कोई नहींकरसक्ताहै कि जैसे ऋणकादावा अप्राप्त पैतृकरिक्थोंपरभीकहा-वृथादान की अपेक्षामें भी यह स्मृति प्रमाण है-यथा-(धूर्तेवंदिनिमल्लेचकुवैद्येकितवेशठे। चारचारणचौरेषुदत्तंभवतिनिष्फलम्) अर्थात्-(धूर्त) जो मायावीहो(वंदी) वंदीजन वंशप्रशंसक आदि-(मल्ल)कुश्तीबाज़ आदि बाहु युद्धकरने वाले(कुवैद्य) जो वैद्यक विद्यामें निपुण मति नहो(कितव)जो खल या वंचकहो(शठ) जड़ बुद्धि जिसको अपने बिराने भले बुरेके विवेकमें अज्ञानताहो (चार वा चरण) जो नट आदि याचक वृत्ति वाले प्रसिद्ध हैं (चौर) जो चोरों वाली वृत्ति रखताहो जिसके चरित्र विना जाने कुछ देना कहा हो-इन धूर्त आदि सबोंको जो कुछ मुखसे देना कहा हो धोखेसे या और किसी गूढ़हेतुसे सो वह दिया हुआ निष्फल होताहै अर्थात् दाताही जिसने देने कहाहो वह नदेवै तो दोषभागी नहीं फिर पुत्रादिक कहाँ और यदि इनको कहाहुआ अपनी जिह्वा पूरी करने के निमित्त से देवै भी तौभी कुछफल सिद्धि नहीं किन्तु वृथा दान इनको इसालिये कहते हैं कि स्मृतियों में कहेहुये देव पित्रादि निमित्तक नाना भांति के जो दान हैं तिनमें इनकी गिन्ती नहीं ४८ यह अपवाद जो ५१ के श्लोकमें कहागया यही अपवाद आगे ५० के श्लोकमें चौथे चरणके द्वारा स्त्री पक्षपर भी सम्बंधितहै कि और कोई प्रकार का ऋण देने योग्यभार्या नहीं है ४८ ऊपर ४७ के श्लोकमें यह कहा था कि भार्या का कियाहुआ ऋण पति नहीं देवे तिसका अपवाद नीचे ४९ के श्लोकमें कहते हैं-और उसी ४७ के श्लोक में यहभी कहाथा कि पति का कियाहुआ ऋण भार्या नहीं देवै तिसका अपवाद आगे ५२ के श्लोकमें कहेंगे ४८॥

गोपशौंडिकशैलूषरजकव्याधयोषिताम्। ऋणंदद्यात्पतिस्तासांयस्माद्वृत्तिस्तदाश्रया ४९॥

अक्ष०-गोप शौंडिक शैलूष रजक व्याध इनकी स्त्रियोंका ऋण उनका पति देवै जिस्से कि वृत्ति उनके आश्रयभूतहै ४९॥

अभि०-(गोप) गोपाल अहीर आदि (शौंडिक) सुराकार जो मदिरा बनावै कलाल (शैलूष) नटजाती (रजक) रँगरेज़ और धोबी (व्याध) अहेड़ी चिड़ीमार जाती आदि इन जातोंकी स्त्रियों का किया हुआ ऋण उनके पति देवैं क्योंकि उन स्त्रियोंके आधीन उनके घरकी आजीवन वृत्ति भी होतीहै- (वृत्ति उनके आधीन होतीहै) इस हेतु व्यप देश कथनसे यह भाव निश्चितहुआ कि और भी जो कोई जातैं ऐसीहों कि जिनके घरकी आजीवन वृत्ति स्त्रियोंके भी आधीनहो वेभी अपनी भार्याके कियेहुये ऋणको उद्धारकरैं ४९॥ ऊपर ४७ के श्लोकमें यह कहाथा कि पतिके ऋणको भार्या नहीं देवै तिसमें कुछ अपवाद भी नीचे ५० के श्लोकसे कहते हैं ४९॥

प्रतिपन्नंस्त्रियादेयंपत्यावासहयत्कृतम्। स्वयंकृतंवायदृणंनान्यत्स्त्रीदातुमर्हति ५०॥

अक्ष०-प्रति पन्न ऋणस्त्री करके देयहै यद्वा जो पतिके साथ कियाहो यद्वा जो ऋण आपही कियाहो-और कोई ऋण स्त्री देनेके योग्य नहींहै ५०॥

अभि०-प्रति पन्नऋण उसे कहते हैं कि जब कोई मरने लगै अथवा कहीं विदेश जाने लगै और उस समय की ज़रूरत से अपनी भार्याको भेजकर किसी से ऋण मँगावै इसका नाम प्रतिपन्नहै और यह पतिकाही किया ऋण कहाताहै क्योंकि भार्या केवल उसकी आज्ञासे लेआने वालीहै परंतु ऐसे ऋणको उस पतिके अभाव और पुत्रके भी अभावमें वही भार्या उद्धार करै अर्थात् जो पति अथवा पुत्र विद्यमानहो तौ उस भार्या परइस प्रतिपन्न ऋणके भी उद्धार करने का भार नहींहै-और जो ऐसा ऋणहो कि पति और भार्या दोनोंने साथ मिल कर लियाहो तौ भी उस पतिके अभाव और पुत्रके भी अभावमें वही भार्या उद्धार करै-अथवा ऐसा ऋणहो कि भार्याने आपही कियाहो तौ भी उसऋणको वह लेने वाली भार्या देवै-इसके सिवाय (अन्यत्) नाम और कोईप्रकारका ऋणजो ४८ के श्लोकमें पुत्रकी अपेक्षासे कहचुकेहैं चाहैवह प्रतिपन्नरूपसेभी आयाहो यद्वापतिकेसाथ मिलकर भार्यानेभीकियाहो तथा-पि भार्यादेने योग्य नहींहै किन्तु ऐसे ऋणका दावा भार्यापर नहींकोई करसक्ता यह सिद्धांतहै ५०॥

अवि०-संभ्रम-क्योंजी इस ५० के श्लोकमें प्रतिपन्न आदि तीन भाँतिके ऋण स्त्री करके देय कहे इनके कहने की क्या आवश्यकता थी क्योंकि जिसवार्त्ता में कुछ संदेह नहीं उसका कथन भी व्यर्थ है- सुनो-इसलिये व्यर्थ नहीं है कि (भार्यापुत्रश्च दासश्चत्रयएवाधनाःस्मृताः। यत्तेसमधिगच्छंतियस्यैतेतस्यतद्धनम्) अर्थात्-

भार्या १ पुत्र २ दास नामगुलाम ३ यह तीनों अधनकहलाते किंतु धनके स्वामी नहीं होते इसलिये इनको ऋण मिलनाभी असंभव होता-यह तीनों जिस किसी स्वामी का जो कुछ धन दायभाग रीति से पातेभी हैं वह धनभी उसी स्वामीका कहलाताहै-इस बचनके आशयसे इन तीनोंको निर्धनत्व निश्चित होनेके हेतुसे प्रतिपन्न आदि तीनों ऋणोंके न देनेकी आशंका मध्ये यह ५०का श्लोक यहांपर कहा गया क्योंकि न जानिये शास्त्रप्रमाणके न होनेसे भार्या पुत्रादिक यही कहनेलगें कि हम नहीं जानते इस ऋणका देना हमारेपर भारनहीं-और जोकि-(भार्यापुत्रश्चदासश्च) इत्यादि वाक्य जो अभी ऊपर लिखचुके हैं-उस्से कुछ भार्या पुत्र दास इनका निपट निर्धनत्व नहीं अभिधान करते हैं किंतु उस वाक्यसे केवल पारतंत्र्य मात्रप्रतिपादन कियाहै कि यह तीनों पराधीन अर्थात् अपने स्वामीके आधीनहोते हैं सो यह वार्त्ता आगे विभाग प्रकरणमें अच्छीतरह स्पष्ट करीजायगी-(पुनःसंभ्रम) भला यह शंका तौ निवृत्त होगई कि इस हेतुसे वह तीनों ऋण यहांपर लिखेगये-तौ फिर इसबात के लिखनेकी क्या आवश्यकताथी कि और कोई प्रकारका ऋण स्त्री देने योग्य नहीं क्योंकि जब उस बातका प्रतिषेध विधान पूर्वक अन्यत्र ४७। ४८ आदि श्लोकोंसे सिद्धहोता चलाआया फिर इसजगह पिष्टपेषण करनेसे क्यासिद्धि(सुनो)यह सिद्धिहै किएकतो प्रतिपन्न ऋण१दूसरा जो पतिकेसाथ स्त्रीने कियाहो२यह दोनोंऋण स्त्रीपर उद्धार करने कहेगये-कदाचित्-इन्हीं दोप्रकारोंसे वे ऋणभी लियेजायँ जिनकेउद्धार करनेका निषेध ४८के श्लोकमें पुत्रपरभी होचुकाहै फिर भार्या कहांरही-और इन्हीं प्रकारों से लियेजानेके हेतुसे कदाचित् कोई उत्तमर्ण भार्यापर दावा करनेलगै इस लिये इन दोप्रकारोंका अपवाद यह कहागया कि और कोई प्रकारका ऋण उद्धार करने योग्य भार्या नहीं ५० ॥ फिरभी नीचे ५१ ॥ के श्लोक में जो ऋण दातव्यहै और जिस पुरुषकरके दातव्यहै और जिसकालमें दातव्यहै यह तीनोंबात एकसाथ कहते हैं ५० ॥

पितरिप्रोषितेप्रेतेव्यसनाभिप्लुतेपिवा। पुत्रपौत्रैऋणंदेयंनिह्नवेसाक्षिभावितम् ५१ ॥

भ०स०—पिताके प्रोषित होनेमें या प्रेत होनेमें या व्यसनसे अभिप्लुत होनेमें पुत्रपौत्रे करके ऋण देयहै-निह्नवमें साक्षि भावित ५१ ॥

भनि०—यदि पिता दातव्य ऋणको न देकर मरजावै याकिसी दूरदेशका निवासी हो जावै यद्वा अचिकित्सनीय असाध्य व्याधिसे ग्रसित होजावै तबउस पिताका किय हुआ ऋण मांगनेपर या विना मांगेभी पुत्रको अथवा पौत्रको पितृ धनाभावमेंभ पुत्रत्व या पौत्रत्व करके उद्धार करना उचितहै-यदि पुत्र अथवा पौत्र निह्नवकरै अ र्थात् निपट नकार खींचे कि मेरापिता किसीका धरावता नहीं तबसाक्षि भावित ऋ

देयहै अर्थात् अर्थी अपने गवाहों या और किसी प्रमाणसे साबितकरावै तौभी देयहै किंतु ऐसी दशामें राजा दिलवावै ५१॥

अधि०—पिताका प्रोषित होजाना अर्थात् विदेशवासी बहुत कालतक होजाना यह सामान्य वार्त्ता कही कुछ इस्से नियम नहीं पायागया कि पिता कितने कालतक विदेशमें रहे तौ पुत्रोंको ऋणदेना चाहिये इसवार्त्तामें कालकी अवधिभी नारदने कही है (अवधि अर्थात्-मीआद)-यथा(नार्वाक्संवत्सराद्विंशात्पितरिप्रोषितेसुतः। ऋणंदद्यात्पितृव्येवाज्येष्ठेभ्रातर्यथापिवा) अर्थात्-पिता अथवा चचा ताऊ या ज्येष्ठभ्राता के विदेशवासी होजानेमें पुत्र अथवा पुत्रके उपलक्षणसे भतीजा या छोटाभाई यह उन विदेश वासियोंके कियेहुये ऋणको बीसवर्षोंसे पहले नहीं देवें क्योंकि बीसवर्षों तक उनके लौटि आने की एकप्रकारकी आशा शेष है परन्तु वीसवर्षं बीतजाने पर उन का कियाहुआ ऋण उद्धार करैं-ऐसेही-पिता के मरजाने परभी उसका ऋण उद्धारकरने मध्ये काल अवधि नारदने कही है-यथा (गर्भस्थैःसदृशोज्ञेयआष्टमाद्वत्सराच्छिशुः। बालआषोडशाद्वर्षात्पौगंडश्चेतिशब्यते॥ परतोव्यवहारज्ञःस्वतंत्रःपितरावृते)अर्थात्-आठ वर्षसे पहले वालक ऐसाशिशु समुझा चाहिये जैसा गर्भस्थों के समान किंतु जैसे गर्भमें बैठे हुये शिशु कुछ नहीं करसक्ते तैसेही वेभी-आठ के उपरान्त और सोलह वर्ष से पहले बालक भी कहलाता और पौगंड भी-इस्से परे सत्रहवीं वर्ष से व्यवहारज्ञ कहलाता किन्तु लिखपढ़ संसारी व्यवहारोंको जानताहै और पिता माता इनदोनों के विना स्वतंत्र कहलाता अर्थात् जब पितामाता मरजातेहैं तब स्वाधीन खुदमुख़तार होजाताहै यद्यपि इसकथनसे पिताके मरनेउपरांत बालकभी स्वतंत्र होताहै तथापि अप्राप्त व्यवहारकाल ऋणदेनेका अधिकारी नहीं अर्थात् पिताका ऋणदेना उसपर तभीयोग्य होताहै कि जबसोलह वर्षकी अवस्था उपरांत घरके व्यवहारोंका कामधंधा उसको उचितरीतिसे समर्थ अधिकारियों द्वारासौंपाजाय-प्रमाणंतु(अप्राप्तव्यवहारश्चेत्स्वतंत्रोपिहिनर्णभाक्। स्वातंत्र्यंहिस्मृतंज्येष्ठेज्यैष्ठ्यंगुणवयःकृतम्)अर्थात्- जोकोई पुत्र अप्राप्त व्यवहारहो अर्थात् जिसको शास्त्रोक्तकाल और मर्यादोंसे घरके व्यवहार नहींसौंपेगये वहचाहै स्वतंत्रभीहो किंतु पिताउसका मरभीगयाहो परंतु वह तबतक ऋणदेनेका भागीनहींहै-और यहस्वातंत्र्यभी उसीदशामें होसक्ता है कि यदि पुत्रएकहीहो अन्यथा जब कई पुत्रहोंतौ वह स्वातंत्र्यभाव ज्येष्ठपुत्रमें होताहै-और वहजेठापनभी केवल अवस्थासेही नहीं अर्थात् जहाँ ज्येष्ठपुत्र सर्वलक्षण संपन्नहो तबतौ केवल अवस्थासे जेठापन होताहै अन्यथा जहाँ ज्येष्ठपुत्र अनेक गुणहीन किसीव्यवहारकी साधना योग्य नहो और उस्से छोटों में से कोई ऐसाहो जो सर्वलक्षण संपन्न गुणवान् संसारी व्यवहारोंकी साधनापूर्वक

उसघरका प्रबंध करसकनेमें योग्यहोतौ फिर उसीपर वह ज्यैष्ठ्यभाव रक्खा जाताहै-पिताकेमरे पीछे ज्येष्ठपुत्रपर जैसे स्वातंत्र्यभाव और ऋणउद्धारकरना आदि अप्राप्त व्यवहार कालतक नहींहोता तैसेही (आसेध) और (आह्वान)भी उसकेलिये अप्राप्त व्यवहार कालतक नहींहोसक्ता यह निषेध तीसरे परिच्छेदमें यद्यपि होचुकाहै(अकल्पवालस्थविर) इत्यादि वाक्यसे परयहां इसके मुख्यप्रसंगसे फिर दर्शाते हैं-तथाच-(अप्राप्तव्यवहारश्चदूतोदानोन्मुखोव्रती । विषमस्थाश्चनासेध्यानचैतानाह्वयेन्नृपः) अर्थात् इतने पुरुषोंको राजा किसी आवश्यकता परभी नहीं बुलावै और ये पुरुष आसेध्यभी नहीं हैं अर्थात् कोई अर्थी किसी हेतुसे इनको घेरा पकड़ा चाहैतौ ऐसे निम्नोक्त समयपर नहींघेरै पकड़े-वेसमय और पुरुष यहहैं कि एकतौ(अप्राप्तव्यवहार) बालक जिसको घरकाभारन सौंपागयाहोचाहै वहकईपुत्रोंमेंसे ज्येष्ठपुत्रहो तौभीनहीं दूसरे(दूत)जो किसीकीओरसे वकीलबनके आयाहो यद्वा किसीका सँदेशा चिट्ठी आदि लियेजाताहो या किसीकी गवाही देनेजाताहो वा गयाहोतौ उसकोभी ऐसे समयपर नहीं तीसरे(दानोन्मुख) मनुष्य जोकुछ दानकरनेपर समुद्यतहोतौ ऐसेसमयपर उसको भीनहीं-चौथा(व्रती पुरुष किसीप्रकारके व्रतमें समाश्रित हो-पाँचवें (विषमस्थ) पुरुष जिनकाचर्चा तीसरे परिच्छेदमें बहुधा आचुकाहै उनकोभी वैसेकठिन समयपर नहीं घेरै पकड़े और न राजद्वारमें बुलावै किंतु उनदशाओंके पश्चात् जोकुछ उचितहो सो करै (यहाँयहवार्त्ता केवल अप्राप्त व्यवहार बालकके संबंधसे कही अन्यथा कुछ यहाँ इसका प्रयोजन नहींथा)-ऋणका चर्चाहै कि पुत्रपर पिताके ऋणका उद्धारकरनाभार है पर उससमय कि जबसंप्राप्त व्यवहारहो अर्थात् उसको घरकाभारमर्यादा पूर्वकसमर्थोंद्वारा सौंपाजाय-तथाहि(अतःपुत्रेणजातेनस्वार्थमुत्सृज्ययत्नतः। ऋणात्पितामोचनीयोयथाननरकंव्रजेत्)अर्थात्-इसीहेतुसे कि जो२बातें पुत्रकी अपेक्षामें ऊपरकहचुके हैं पुत्रको अपना पिताऋण हत्यासे छुड़ाना चाहिये कि जिससे वह नरकको न जाने पावै सो किससमय छुड़ानाचाहये(पुत्रेणजातेनाकिंतु-व्यवहारज्ञतयाजातेननिष्पन्नेन) अर्थात् पुत्र जिस समय व्यवहारज्ञतासे संपन्नहो सोलहवर्षों उपरांत जैसा ऊपरसे कहते चले आये उससमय छुड़ाना चाहिये सो किसप्रकारसे कि (यत्नतःस्वार्थमुत्सृज्य) अर्थात् बड़े यत्नपूर्वक अपने आत्मीय प्रयोजनोंको रोककर पहले पिता ऋणसे छुड़ाना उचितहै-यद्यपि ऊर्ध्वोक्त बातोंमें बालक जो अप्राप्तव्यवहारहो उसकाअधिकार नहीं परंतु श्राद्धविषयिक कर्मोंमें ऐसेबालकोंकाभी अधिकारहै किन्तु अप्राप्तव्यवहारों कोभी करना चाहिये इसवार्त्तामें गौतमका यह वाक्यहै कि(नब्रह्माभिव्याहरेदन्यत्रस्वधानिनयनात्) अर्थात्-पिंडदानादिकस्वधाकर्मकरनेकेसिवायअन्यत्रअसंस्कृतबालक ब्रह्मओंकार वेदनउच्चारण करै-इसी५१के मूलश्लोक दूसरे अर्द्धमें (पुत्रपौत्रैऋणंदेयं)

ह पुत्र पौत्रोंका वहुबचन जो कियाहै उस्से यह आशय दर्शाया है कि जिस पिता के बहुत अर्थात् कईपुत्रहों और वे जुदेभी होगयेहों तौभीअपने २ अंशकेअनुरूप पिताका ऋणउद्धार करें-और यदि जुदे न हुयेहों सबसाझेमेंहों तौभी सब संमति-पूर्वक मिलकर पिताका ऋण देवें-अथवा-कहीं ऐसाभी उचित है कि उन कई पुत्रोंमें से जो २ कोई अयोग्यहों किंतु किसीप्रकार की पुरुषार्थसंबंधिनी योग्यता न रखते हों उनको छोड़कर शेष वे पुत्र जो गुणप्रधान भावसेयोग्यतावान्हों वेही उद्धारकरें—यद्वा-उन सबोंमें कोई एकही जो सर्वसंपन्न और प्रधानभूत गिनाजाताहो वहउद्धार करे-यही बार्ता नारदनेभी कहीहै-यथा(अतऊर्ध्वंपितुःपुत्राऋणंदद्युर्यथांशतः। अविभक्ताविभक्तावायस्तावद्वहतेधुरम्)अर्थात्-इसके उपरांत सभी पुत्र अपने २ अंशके अनुरूप पिताकाऋण देवेंचाहे अविभक्तनाम मिलेझुले सब साझेमें रहतेहों यद्वा विभक्त नाम जुदे २ होगयेहों इसका नियम नहीं अथवा जो कोई एक उनसबों का धुरभार अपने ऊपर लियेहो वहउद्धार करे-यह व्यवस्था उसदशामें कहीहै कि यदि पुत्रोंने पिताका छोड़ाहुआ कुछधन नहींपाया हो और यदि पिताकाधन पुत्रोंने पाया हो तौ उसधनका विभाग तबतक उचित नहीं है कि जबतक पिताकाऋण उसमें से उद्धार न करलेवें तथाच (सर्वनिर्णयसारेमहानिर्वाणतन्त्रेसदाशिवः-ऋणंयत्पैतृकं तच्चशोधयेत्पैतृकैर्धनैः। तस्मिंस्थितेविभागार्हं नभवेत्पैतृकंवसु॥ विभज्ययदि गृह्णीयुर्वै भवंपैतृकंनराः। तेभ्यस्तद्धनमाहृत्य पितृणंदापयेन्नृपः॥ यथास्वकृतपापेन निरयंयांतिमानवाः। ऋणेनापितथाबद्धः स्वयमेवनचापरः)अर्थात्-सदाशिवजीने यहकहाहै किपिताकेमरेपीछेजो कुछपिताकाऋणहो वहउसपिताके छोड़ेहुये धनोंमेंसेशोधनकरे तबउस धनकाविभागपीछे करे क्योंकिउसऋणके उपस्थित होतेहुये पिताकाछोड़ाहुआ धन विभागकरनेयोग्यनहींहोता और यदिपुत्रादिक मनुष्य ऋणकेदिये बिना उसपिताके ऐश्वर्य्यधनको बाँटिलेवेंतौ राजाउनसे वहधनपरावृत्तकरिके उनकेपिताकाणऋउद्धार करावेक्योंकि मनुष्यजैसे अपनेकियेहुये पापसेनरकमेंजातेहैं तैसेहीऋणसेभी यमद्वार में आपही बाँधाजाता कोईदूसरा उसकेपलटेनहीं(राजाको यह अधिकारजो अभीकहा गयाउसीदशामें होताहै किजब उत्तमर्णजाकर आवेदनकरे अन्यथानहीं क्योंकियदि विना नालिशहुये राजाआपही किसीकार्य का उत्पादनकरे इसअपेक्षामध्ये द्वितीयपरिच्छेदमें अष्टादश व्यवहार पदोंके पश्चात् निषेधहोचुकाहै कि (नोत्पादयेत्स्वयंकार्यं राजावाप्यस्यपूरुषः) इत्यादिमनुवाक्य वहांपर अर्थसहितलिखाहै यद्यपिइसी ५१ के श्लोकमूलमें (पुत्रपौत्रैऋणंदेयं) यहबात सामान्यभावसेकही कुछविशेषता वा न्यूनाधिक्य इसमेंनहीं पायागया तथापि इसबार्तामें वृहस्पतिकायह अग्रोक्तवाक्यसंग्रहीतहै यथा (ऋणमात्मीयवत्पित्र्यंदेयंपुत्रैर्विभावितम् । पैतामहंसमंदेयमदेयंतत्सुत

स्यतु) अर्थात्-पिताका विभावित ऋणपुत्रोंको आत्मीय ऋणकी भाँति देनाचाहिये किन्तुजैसे अपनेकिये ऋणको वृद्धिसहित दियाकरतेहैं तैसेही पिताके ऋणकोमूल और व्याजदोनों उद्धारकर्तव्यहैं परन्तुपितामहऋण अर्थात् दादेका कियाहुआऋण कदाचित् पौत्रकोदेनापरै तौवृद्धिनहीं देनीचाहिये किन्तु(समं-मूलमात्रं)अर्थात्-जितना मूलधन दादानेलियाहो उतनाही पोताउद्धारकरै और (तत्सुतस्य) अर्थात्-पौत्रकापुत्र प्रपौत्र परपोतातिसको मूलभी अदेयहै किन्तुपरदादाकाकियाहुआ ऋणपरपोतानहीं देवे परन्तुकौनसा परपोता कि जिसने बपौती द्वारापूर्व पुरुषोंकाकुछधन नहींपायाहो क्योंकि पुत्र और पौत्रपरधनके न पानेपर भी ऋणदेनाभारहै परन्तुप्रपौत्र परदादा काऋणदेना उसदशामें योग्यहै कि यदिबपौतीद्वारा पूर्वपुरुषोंका छोड़ाहुआ धनपावै यहवार्ताआगे ५२ के श्लोकमें अच्छीतरह निर्णय होजायगी अभीइस बृहस्पति केवाक्यमें ऊपरयह कहाहै कि पिताका विभावित ऋणदेना चाहिये सो विभावितसे यह सिद्धान्त है कि यदि पुत्र अथवा पौत्र अपने पिता या दादा के ऋण से नकार खींचै कि मेरे।पिता को कुछ नहीं देना था तब साक्षियोंसे या और किसी प्रमाण से जो कुछठीक२ ऋण सावितहोकर उनसे स्वीकार करायाजाय सो विभावितकहलाताहै उतनाही देनाचाहिये किंतु अधिकनहीं-यद्यपि बालकोंके अप्राप्तव्यवहारत्व काल जो इसग्रंथमें कहागया कि सोलहवर्षकी अवस्थापूरीहोनेतक अप्राप्तव्यवहारतारहती अर्थात् तबतकबालक या पौगंडकहलाताहै तिसपीछे संप्राप्तव्यवहारकाल कहलाताहै यहीप्रमाण मिथिला वाराणसी आदि इन सब देशोंमें प्रवर्तितहै-परंतु-बंगालेमें वहाँके प्रवर्तितग्रंथों या परिपाटीके अनुकूल इतना अंतरहै कि पंद्रहवर्षकी अवस्थापूरीहोनेतक पौगंडत्वमानाजाताहै-यावन भाषामें इस अवस्थातक (नाबालिगी) कहलातीहै इसके उपरांत (बालिग) अर्थात् तरुणकहलाताहै ५१ यहाँ ऋणके उद्धारकरने में मुख्य ऋणी और उसकापुत्र और पौत्र यह तीनकर्ता दर्शाये गये और उनसबोंके इकट्ठेहोनेमें क्रमभीकहागया-अब नीचेकेपरिच्छेदमें इन्हेंछोड़ अन्यकर्ताओंके समवायमें ऋणउद्धारकरनेका क्रमकहेंगे कि किसकेहोतेहुये किसको ऋण देनाचाहिये ५१ ॥

अथऋणादानसम्बन्धेकर्त्रंतराधिकारतयाऋणापाकरणविधिविवेकोनाम
सप्तविंशतितमःपरिच्छेदः २७॥

इस सत्ताईसवेंपरिच्छेदमें यहव्यवस्थाजानीजायगी कि पूर्वोक्त मुख्यअधिकारियोंकेअभावमें अमुख्यअधिकारीभी अमुकामुकरीतोंसे ऋणदेनेयोग्य हैं ॥

रिक्थग्राहऋणंदाप्योयोषिद्ग्राहस्तथैवच। पुत्रोऽनन्याश्रितद्रव्यःपुत्रहीनस्यरिक्थिनः ५२॥

अक्ष०-पुत्रहीनारिक्थीका रिक्थग्राहीऋण दिलवानेयोग्यहै तैसेही योषिद्ग्राही या नन्याश्रित द्रव्यपुत्र ५२ ॥

अभि०-जब किसीधनीकेमरेपीछे या जीवतेहुयेभी किसीहेतुसे उसकाधन और कसीको क्रयादिप्रकारोंसे भिन्न दायभागरीतिद्वारा मिलता है तब उसधनकानाम रिक्थ) कह नाताहै और वह मराहुआ या जीवता धनी (रिक्थी) कहलाताहै और उस के (रिक्थ) का पानेवालापुरुष (रिक्थग्राह) या रिक्थग्राहीकहलाताहै-ऐसेही-जो कोई किसीकीभार्यापावै या संग्रहकरिलेवै तौ वह (योषिद्ग्राह) या योषिद्ग्राही कहलाताहै-इनमेंसे प्रथम (रिक्थग्राही) उस पुत्रहीनारिक्थीकाऋण दिलवानेयोग्यहै कि जो कोई धनी पुत्रहीनमरगयाहो और उसपर किसीकाकुछऋणभीदेनाहो यदि रिक्थग्राही कोई नहो तौ (योषिद्ग्राही) पर दिलवानाचाहिये यदि योषिद्ग्राहीभीनहो तौ (अनन्याश्रित द्रव्यपुत्र) पर दिलवानाचाहिये (अनन्याश्रितद्रव्यपुत्र) वहकहलाताहै जिसके माता पिताओंकाद्रव्य किसी और के आश्रय नहोगयाहो किन्तु उसीकोमिलाहो ऐसेपुत्र परभी पुत्रहीनारिक्थीकाऋण दिलानाचाहिये उसदशामें कि यदि पूर्वोक्त दोनोंअधिकारीनहों- और जो-यहतीनोंहीउपस्थितहों तौ इनतीनोंकेसमवायमेंभी वहीक्रमसमुझाचाहिये जो मूलश्लोकोंसे यहाँ तकवर्णितहुआ अर्थात् तीनोंके होतेहुये भी पहले रिक्थग्राहऋणदेनेकाअधिकारीहै यदि रिक्थग्राहनहो तौ शेषदोनोंकेहोतेहुये योषिद्ग्राह ऋणदेनेकाअधिकारी है किन्तु इसकेभीनहोनेमें पुत्रपरादिलावै इसप्रकारसे यह तीन अधिकारी ऋणदेनेके निश्चितकिये हैं ५२ ॥

अधि०-इनअधिकारियोंकेप्रमाणभी ग्रंथांतरसे संसिद्धहैं-यथा-योयदीयंद्रव्यंरिक्थरूपेणगृह्णातिसतत्कृतमृणंदाप्योनचौरादिः)अर्थात्-जोकोई जिसकाद्रव्य रिक्थरूपसे लेताहै वही उसकाकियाहुआऋणभी दिलवानेयोग्यहै किन्तु और कोई चोर बटमार आदि नहीं-अन्यच्चय-दीयांयोषितंयोगृह्णातिसतत्कृतमृणंदाप्यः-अर्थात्-जिसकी योषिता जोकोईलेलेताहै वही उसकाकियाहुआऋण दिलानेयोग्यहै-यद्यपि भार्याभी एकप्रकारकाधनकहातीहैं परन्तु यहधनऐसाहै कि इसका विभागनामहिस्साबाँट नहीं होसक्ता इसीलिये योषिताओंकानिर्देश रिक्थसेभिन्नभेदकरकेलिखागया कि स्त्रियां अविभाज्यधनमेंसमझीजायँ और इनकाहिस्साबाँट कोईनकरसकै बरन इसीहेतुसे इनकी रिक्थसंज्ञाभीनहींहोसक्तीहै यदि स्त्रियोंकीरिक्थसंज्ञाहोसक्ती तौफिर यहभी उचितहोता कि जोकोई जिसका (रिक्थ) पानेमेंअधिकारीहो वहीउसकीस्त्रियांपावै इसलिये यह आशंकाविरुद्धहै कि रिक्थग्राह और योषिद्ग्राह एकहीक्योंनसमुझागया-अत्रमहतीशंका-भला यहसबसिद्धांतसमुझागया तथापि इसमें एकबड़ीप्रबल शंकाउत्पन्नहोतीहै किअत्रोक्त तीनोंअधिकारियोंका(समवाय)नामइकट्ठाहोनाकदाचित्

होहीनहींसक्ता औरभी कईप्रकारकेबिरोधदेखपड़ते हैं क्योंकि-नभ्रातरोन पितरःपुत्रा रिक्थहराःपितुः-अर्थात्-पुत्रोंकेहोतेहुये उनकेपिताकारिक्थनतौपिताकेभाईपासकैंनउस पिताकेपिताआदिकोईऊपरलेपुरुषपासकैंकेवलपुत्रहीरिक्थहरनेवालेप्रसिद्धहैं-तौफिर पुत्रकेहोतेहुये और कोई रिक्थग्राह कहांसे आसक्ताहै जिसकेलिये ऋणउद्धार करनेका अधिकार सबसेपहले बतलातेहो- इसके सिवाय-योषिद्ग्राहकाभी होना असङ्गतहै क्योंकि- नद्वितीयश्चसाध्वीनांक्वचिद्भर्त्तोपदिश्यते - इतिस्मरणं घण्टाघोषवत्प्रसिद्धम्- अर्थात्- यहस्मृति घण्टाके शब्दवत् प्रकाशमानहै कि साध्वी सत्कुलवती स्त्रियोंको कहींभी दूसरेभर्त्ताका उपदेश नहींपायाजाता- फिरवह योषिद्ग्राह कहांसे होसक्ताहै जिसकेलिये ऋणउद्धारकरनेका अधिकार पुत्रकेहोतेहुयेभी बतलातेहो-इसकेसिवाय- यहकथनभी अयुक्तहै कि पूर्वोक्तदो अधिकारियोंके नहोनेमें पुत्रपर दिलानाचाहिये- क्योंकि पहले५१ केश्लोकमें (पुत्रपौत्रैऋणंदेयं) इसतीसरे चरणसे सर्वथानिश्चितहो चुकाहै कि ऋणदेनेके अधिकारीपुत्रहोतेहैं और सबसेपहले पुत्रहीपर अधिकार वि- शेषहै तौ फिरयहांपर पिष्टपेषण करना या दोनोंकेहोने पीछे पुत्रकाअधिकार बताना व्यर्थहै- इसकेसिवाय- पुत्रकेसाथमें (अनन्याश्रितद्रव्य) यहविशेषण अधिकलगाना भी अनर्थकहै क्योंकिपुत्रकेहोतेहुये उसकेपितामाताकाद्रव्य किसीअन्यके आश्रयभूत होहीनहींसक्ता फिरवहक्योंकर(अनन्याश्रितद्रव्य)कहलावेगाकिन्तुपुत्रतौ सदैवही(अनन्या श्रितद्रव्य) समुझाचाहिये इसलिये कुछविशेषणकी अपेक्षानहींथी-और जो-कदाचित किसीदशामें एसाहोभी सक्ताहो कि पुत्रकेहोतेहुये उसकेपिताकाधन किसीअन्यकेआ- श्रयहोजाताहो तौभी इस विशेषणका लगाना इसस्थलपर अयोग्यहै क्योंकि यदि पहलाअधिकारी(रिक्थग्राह)बतलाया तौफिरपुत्रनिःसन्देह(अनन्याश्रितद्रव्य) होगयाकिं- तुउसके पिताकाधन द्वितीयरिक्थग्राहीने पाया अब क्योंकर उसको (अनन्याश्रितद्रव्य) कहसकैं जो यह विशेषण सार्थक समुझाजाय-इसकेसिवाय-इसी५२के श्लोकमूलके अन्तमें यह जो कहा कि (पुत्रहीनस्यरिक्थिनः) अर्थात् पुत्रहीनरिक्थी जो मरैतिसका ऋण यह तीनोंअधिकारी इसक्रमसेदेवैं सो यह पुत्रहीनत्वका विशेषण प्रत्यक्षविरुद्ध है क्योंकि जबयहमर्यादा दृढ़होचुकी कि पुत्रकेहोतेहुयेभी सबसेपहले रिक्थग्राहीऋ- णदेवै और इसीकेआशयसे यह सिद्धांतभी पायागया कि यदिपुत्रनहो तौ अवश्यही निःसंदेह रिक्थग्राहसे दिलानाचाहिये यद्वारिक्थग्राहनहो और योषिद्ग्राह उपस्थित होतौ उसीसेदिलावै तौ फिर पुत्रकेहोतेहुयेभी मरेहुयेरिक्थीको पुत्रहीनता क्योंकरका सक्तेहैं-इत्यादि विरोधभावोंका पूर्वापर आलोचनकरनेसे प्रत्यक्षप्रतीत होताहै कि य ५२काश्लोकही व्यर्थोक्तिवाक्यहै इस्सेकुछफल सिद्धिनहीं-समाधान-सुनौ यहव्यर्थोि नहीं है किंतु इसीसे परमसिद्धिसंभवहै क्योंकि पुत्रके होतेहुयेभी अन्यजन रिक्थग्रा

होताहै उसदशामें कि जबक्लीव अंध बाधिर मूकआदि अंगभंगपुत्रोंको पुत्रत्वपरभी रिक्थग्राह पदनहींमिलसक्ता-तब कोईअन्यपुरुष जो उचितहो वहीदायभागी किया जाताहै और वहदायभागी रिक्थपानेपीछे उनक्लीवों या अंधवधिरादिकोंका यथोचित रीतिसेपालनकरताहै-तथाच(क्लीवादीननुक्रम्यभर्त्तव्यास्तुनिरंशकाः)अर्थात्-क्लीवादिकोंको दाबकर जोकोई उनकेपिताआदिका रिक्थपावै तिसकरके वे सभीभरनेयोग्य हैं कि जो (निरंशक) रहेहों अर्थात् जिन्हों ने पैतृकधनका भागनहींपाया वे उनकरके पालनीयेहैं कि जिन्होंने धनभागपायाहो यहबातआगेकहेंगे-इसके सिवाय क्लीवअंध बधिरआदि अंगभंगनहोनेपरभी किसीदशामें पैतृकधनकाभागी पुत्रनहींहोसक्ता-तथाचगौतमः (सवर्णापुत्रोऽन्यायवृत्तिर्नलभेतैकेषाम्)अर्थात् गौतमने यहकहाहै कि किन्हींएक आचार्योंकायहभी सम्मतहै कि चाहै सवर्णाभार्याकाभी पुत्रहो परन्तु यदि अन्यायरूपवृत्तिमें तत्परहो जिस्सेअनेकोंको पीड़ामिलतीहोतौ वह पैतृकरिक्थनहीं पावै-इनकारणोंसेक्लीवांधवधिरादि पुत्रोंकेहोनेपर तथा अन्यायवृत्तिवान् सवर्णापुत्रकेहोनेपरभी रिक्थग्राही उनपुत्रोंका चचाताऊयद्वा चचाताऊके पुत्रादिकहोतेहैं और वेहीइनकापालनकरतेहैं-योविद्ग्राही यद्यपिशास्त्रके अविरोधपूर्वक तौनहींसंभवहै तथापि जो कोई शास्त्रके निषेधको उल्लांघकर परस्त्रीसंग्रहकरै वहीउसस्त्रीके पूर्वपतिका कियाहुआ ऋणउद्धारकरनेका अधिकारी होताहै-और-वार्त्तामें एकतौ यहनियमहै कि चारप्रकारकी स्वैरिणीस्त्रियोंमेंसे पिछली और तीनप्रकारकी पुनर्भूस्त्रियोंमेंसे पहिली इनदोस्त्रियोंको जो कोईसंग्रहकरै वह उनकेपूर्वपतिका कियाहुआ ऋणदेवै-यहनारदजीने कहाहै-यथा (परपूर्वाःस्त्रियस्त्वन्याःसप्तप्रोक्तायथाक्रमम्।पुनर्भूस्त्रिविधातासांस्वैरिणीतुचतुर्विधा। कन्यैवाक्षतयोनिर्यापाणिग्रहणदूषिता। पुनर्भूःप्रथमानामपुनःसंस्कारकर्मणा। देशधर्मानवेक्ष्यस्त्रीगुरुभिर्याप्रदीयते। उत्पन्नसाहसान्यस्मैसाद्वितीयाप्रकीर्त्तिता। असत्सुदेवरेषु स्त्रीबांधवैर्याप्रदीयते। सवर्णायसपिंडायसातृतीयाप्रकीर्त्तिता ॥ स्त्रीप्रसूताऽप्रसूतावापत्यावेवतुजीवति। कामात्समाश्रयेदन्यंप्रथमास्वैरिणीतुसा। कौमारंपतिमुत्सृज्ययात्वन्यंपुरुषंश्रिता। पुनःपत्युर्गृहंयायात्साद्वितीयाप्रकीर्त्तिता। मृतेभर्त्तरितुप्राप्तान्देवरादीनपास्यया। उपगच्छेत्परंकामात्सातृतीयाप्रकीर्त्तिता। प्राप्तादेशाद्धनक्रीताक्षुत्पिपासातुराचया। तवाहमित्युपगतासाचतुर्थीप्रकीर्त्तिता । अंतिमास्वैरिणीनांयाप्रथमाचपुनर्भुवाम्। ऋणंतयोःपतिकृतंदद्याद्यस्तउपाश्रिते)अर्थात्-नारदने यहकहाहै किपूर्ववर्णित स्त्रियोंके सिवाय सातस्त्रियां और भी यथाक्रमसे कही हैं सो वहसातौ (परपूर्वा) कहलाती हैं इसलिये कि वे सातौ पिछला पाहिला दोपतिवाली होती हैं उनमें दो भेद हैं अर्थात् सातमेंसे तीनप्रकारकी पुनर्भूकहलातीं और चारप्रकारकी स्वैरिणी होती हैं तिनकेभेद लक्षणोंसहित अब कहते हैं कि-जो कन्या अक्षतयोनि पाणि-

ग्रहणमात्रसे दूषितहो अर्थात् केवल विवाहमात्रहोकर पतिसे संग जिसका एकरात्रि भी न हुआहो वरन अन्यभी किसीपुरुषका संसर्ग यदि न हुआहो सो अक्षतयोनि या अक्षताकहलातीहै वही कन्या यदिपतिका अभावहोजानेमें किसीको फिर विवाही जाय तौ पुनःसंस्कारहोनेकेहेतुसे पुनर्भूकहलाती और तीनोंभाँतिकी पुनर्भूमें यह प्रथम होतीहै-जो विवाहितास्त्री उत्पन्न साहसाहोजाय अर्थात् व्यभिचारवतीहोजाय और उसके माता पिता या श्वशुरआदि कोई गुरुजन अपने देशके धर्मों को विचारकर और किसीको योग्यसमझकर देदेतेहैं वह द्वितीया पुनर्भूकहलाती (देशधर्मोंका विचारकरना यह कि जिसके देश या जाति कुलकीमर्यादा अनुसार ऐसी उत्पन्नसाहसास्त्रीकाघरमें रखछोड़ना कोई भाँति स्वीकारनहींहोसक्ता वह किसी दूसरेको प्रदान करदेताहै परंतु ऐसेपुरुषको देनाउचितहोताहै कि जो कोई उसके लेने मिलनेकी अभिलाषारखनेके सिवाय सत्पात्रभीहो किंतु कुपात्रको नहीं) इस द्वितीया पुनर्भूका एक दूसराभेदभी (क्षतापुनर्भू) होतीहै उसका यह लक्षणहै कि अविवाहिता कन्या यदि उत्पन्न साहसा अर्थात् व्यभिचारवतीहोजाय और उसे उसके गुरुजन अपने देश धर्मोंपर दृष्टिकरिके किसीऔरको विवाहिदेतेहैं सो भी द्वितीया पुनर्भूहोतीहै-इसकी अपेक्षामें (देशधर्मोंका विचार यह कि जिसकेसाथ उस कन्याका व्यभिचारहुआ वह पुरुष अपनेदेशकी परिपाटी या कुल जातिके अनुसार यदि कन्यादान योग्यनहीं है कि उसीको विवाहि देवैं तब किसीयोग्य पुरुषको देना (और) यदि वही पुरुष कन्या देने योग्यहो जिस्से उसका व्यभिचार हुआ तौ फिर अन्य पुरुष को देना अनुचित है किन्तु उसीको विवाहिदेनी चाहिये जिस्से वह पुनर्भूनहीं कहलासक्ती है) पतिका अभाव होनेपर देवरोंके न होनेमें स्त्री के बान्धवलोग जब सवर्ण और सपिंडदेवरको स्त्री देदेते हैं वह तृतीया पुनर्भू कहलातीहै-ऊपर पुनर्भू के प्रदान मध्ये जो यह कहा गया कि (पतिका अभाव होजाने में) सोयहपतिका अभाव पांचप्रकारकाहोता और उसपक्षसे अपेक्षा रखताहै जो पराशरमुनिका वचन प्रसिद्धहै कि (नष्टेमृतेचप्रव्रजिते क्लीबेचपतितेपतौ। पञ्चस्वापत्सुनारीणांपतिरन्योविधीयते) अर्थात्-स्त्रियों को द्वितीय पतिका विधान जो कियाजाताहै सो वह पांचप्रकारकी आपत्तियोंपर होने की दशामें होताहै किन्तु उन पांचप्रकारोंमें से कोई एक आपत्कालके आपरनेमें अन्यपतिका विधानहोना चाहिये (यथा) एकतो विवाहकियेपीछे पतिके (नष्ट) होजाने अर्थात् खोजाने किन्तु ऐसे देशान्तरको चलेजानेमें कि फिर कभी ढूँढ़नेसेभी पता जिसका न लगसके १-दूसरे (मृते) मरजाने में २- तीसरे (प्रव्रजिते) संन्यासी आदि होजाने में ३- चौथे (क्लीबे) नपुंसक निकलनेमें ४-पांचवें (पतिते) जातिसे पतित होजाने में अर्थात् किसी तीव्र पापके करने या किसीके (दीन) में मिलजाने आदि कारणोंसे यदि सजाती

लोगों में सहभोज्यता योग्य न रहे सो पतित है (यह तीनों पुनर्भू कहीगई अब चारौंस्वैरिणी कहीजायँगी) (पुनर्भू) पुनःपतिविधानहोनेसे कहातीहै और (स्वैरिणी) भी द्वितीयपति करिलेतीहै परंतु इन दोनोंके बीच उच्च नीच यह अंतरहै कि पुनर्भू तौ पतिके अभावमें शास्त्रोक्त मर्यादासे गुरुजनोंकेद्वारा सत्सम्मतिसे सत्कारपूर्वक प्रदानकरीजातीहै और (स्वैरिणी) अपनी इच्छासे पतिकेअभाव और अनभावमें भी चाहै तिसको करिलेतीहै और इसीहेतुसे स्वैरिणी अधमतरहोतीहै कि उसकी इच्छाकी स्वाधीनतामें कुछ यह भी नियमनहीं रहसक्ता कि जिसका आश्रयलिया सो लेचुकी किन्तु जैसे पहलोंको छोड़कर औरका आश्रयलिया तैसेही जब चाहै तब उसकोभी छोड़कर अन्यका आश्रयलेलेतीहै इसदशामें कुछ सवर्ण वा सजातीकाभी नियमनहीं रहताइसीसे स्वैरिणी जातिच्युत करदीजातीहै-अब चारभाँतिकी स्वैरिणीकहतेहैं कि–जिसस्त्रीके संतानहुईहो या न हुईहो ऐसी स्त्री यदिपतिके जीवतेहुयेआपही कामहेतुसे और किसीके आश्रयभूतहोजाय वह प्रथमास्वैरिणी कहातीहै-जो स्त्री संतानबिनाहुये कुमारअवस्थाकेपतिको छोड़कर किसी अन्यपुरुषके आश्रयहोजाय यद्वा संसर्गवती होजाय और कुछकालवीते फिर अपनेपतिके घरजावसै वह द्वितीयास्वैरिणीहोतीहै–जो स्त्री भर्त्ताकेमरेपीछे (प्राप्त) नाम उपस्थित देवरादिकोंको कि जिनका उसपर औचित्यहो तिन्हें छोड़कर कामहेतुसे परायेपासजाबैठे वह तृतीयास्वैरिणी कहलातीहै–जो किसीकी बिवाहिता यद्वाधनक्रीताभीहो और वही किसीदेश विभागमें भूली भटकी किसीनेपाईहो अथवा यहभावहै कि किसीकी बिवाहिता और किसीने किसीदेशविभाग मेंभूलीभटकीपाई उस पानेवालेसे कुछ धनदेकर मोललीहो-और-एक-वहकि जो कहीं भूलीभटकी आदि दशाओंमें भूखीप्यासी व्याकुलहोकर आपही आकर शरणहुईहो यहकहकर किमैं तुम्हारीहोके रहूंगी यह दोनोंतीनों स्त्रियां चौथीस्वैरिणी कहलातीहैं-इन कहीहुई स्त्रियोंमेंसे चौथी स्वैरिणी और पहली पुनर्भू यह दोनों जिसके आश्रय होजायँ वह पुरुष इनदोनों के पूर्वपतिका कियाहुआ ऋणदेवै यह व्यवस्था नारदने कही-उन्हीं नारदने इसकहे हुये अधिकारी के सिवाय एक औरभी योषिद्ग्राह ऋण देनेका अधिकारी कहाहै यथा(यातुसप्रधनैवस्त्रीसापत्यावान्यमाश्रयेत्। सोस्यादद्यादृणंभर्त्तुरुत्सृजेद्वातथैवताम्) (प्रकृष्टेनधनेनसहवर्त्ततेइतिसप्रधनाबहुधनेनेतियावत) अर्थात्-जो स्त्री वहुतसे धनके साथ यद्वा सन्तान सहित या दोनों वस्तुलेकर किसी अन्य पुरुषके आश्रयभूत होजाय वह पुरुष इसके पूर्वभर्त्ता का ऋण देवै अथवा उसस्त्री को वैसेहीधन सहित छोड़देवै (इसवाक्यमें पूर्वपतिके मरने या न मरनेका कुछ नियमनहींहै)इसके सिवाय निर्धनस्त्री का संग्रह करनेवाला भी ऋणदेनेकाअधिकारीहोता है-तथाच-(अधनस्यह्यपुत्रस्यमृतस्योपैतियत्स्त्रियम् । ऋणंवोढुःसभज

तेसैवचास्यधनंस्मृतम्)-अर्थात्-निर्धन और अपुत्र पुरुष मरेहुये की स्त्रीकासंग्रहजो कोई करताहै वही उसस्त्रीके विवाहनेवाले पतिकाऋणभजता है क्योंकि मृतपुरुषके छोड़ेहुये धनकेऊपर ऋणकाउद्धारहोना मुख्यतासे आरूढ़है और इस निर्धनकेवही एकस्त्रीमात्रधन है सो उसने लिया तो वही इसके ऋणको देवै-इसलिये ऊर्द्धोक्त इन सर्वकारणोंसे योषिद्ग्राहभी असंभवनहींहै-और पुत्रका चर्चा यद्यपि ५१ के श्लोक में सर्वथा होचुकाहै परन्तुयहांपर ऋणदेनेके अधिकारियोंका क्रमपूराकरनेके निमित्त से फिर चर्चा कियागया और इसचर्चाका सिद्धांत यहहै कि ऋणदेनेका अधिकारी पुत्रही निश्चितहोचुकाहै ५१ के श्लोकमें उस बार्त्तासेयहबात प्रत्यक्षपाईजाती है कि पुत्रके होतेहुये ऋणदेनेका अधिकारी कोई और नहीं(तथापि)दो एकदशायहऐसीभी हैं किपुत्रके होतेहुये कोईदूसरापुरुष ऋणदेनेका अधिकारी होसक्ताहै अर्थात् रिक्थग्राह औ योषिद्ग्राह इस्सेइसमेंभी कुछदोष नहीं-और पुत्रकेसाथमें अनन्याश्रित द्रव्ययह विशेषण जो दियागया सो इस निमित्तसे कि जब कई पुत्रहों औरपितानेकंगालीसे कुछ रिक्थनछोड़ाहो वरनऋणकरिगयाहो जिसकाउद्धार करनारिक्थकेन मिलनेपरभी पुत्रोंपर सामान्यभावसे ५१के श्लोकमें कहचुकेहैं कदाचित् उसमर्यादाके अनुसारश्रेष्ठ पुत्र हयकहनेलगें कि हम अपने अंशोंके समान ऋणउद्धार करैंगे किंतु येक्लीबादि हमारेभाईभी उसीपिताके संतानहैं इनकोभी निजअंशोंकेसमान ऋणदेनाचाहियेसो इसविवादकी शांतिके निमित्तसे यहचर्चायहांपर फिर कियागया कि जबकईपुत्रोंमेंसे कोई क्लीबांधवधिरादि दोषोंसे संयुक्तहों जिनको इनदोषोंकेप्रभावसेपैतृक रिक्थका विभाग अगरधन होतातौभी नहीं मिलता और कुछ ऐसेहों जो सर्वलक्षण संपन्नहोनेसे पैतृक रिक्थअगरधन होतातौ निःसंदेहपाते-तब-ऐसी निर्धनतामेंभीवेहीपुत्रऋण देवैं जिनकोधन मिलनेकाअधिकारथा अर्थात्वेक्लीव अंधबधिरआदि नहींदेनेकेअधिकारी हैं जिनकोरिक्थभाग मिलनेकाअधिकार धनहोनेपरभी नहींथा किन्तु केवल पुत्रत्वसेही क्लीबादिकोंपर किसीउत्तमर्णका दावानहीं पहुँचसक्ता और यहव्यवस्था विशेषकर इस लियेकहीगई कि यदिश्रेष्ठपुत्र यहकहनेलगैंकि हमअपने हिस्साके अनुसार ऋणउद्धार करैंगे तब उनके इस कथनको अप्रामाण्य करिकै सब ऋणउन्हींसे दिलाना चाहिये क्योंकि यहाँपर (अनन्याश्रितद्रव्य) यह विशेषण उन्हींपुत्रोंकी अपेक्षा में वर्त्तमानहै किजो शुभलक्षण होनेसे धनपाने योग्यहों और वेक्लीवादिक पुत्रसदाही(अनन्याश्रित द्रव्य) कहातेहैं इसलिये कि उनके पिताकाधन अन्यभाइयोंके आश्रयहुआ करताहै और जोकि मूलश्लोक चौथेचरणमें यह कहागया कि(पुत्रहीनस्यरिक्थिनः) अर्थात्-पुत्रहीन रिक्थी जोमरै तिसकाऋण येतीनों अधिकारी यथा क्रमसेदेवैं सोयह (पुत्रही नस्य)इसनिमित्तमेंकहाहै किजिममरनेवाले केपुत्र और पौत्रभी नहींहोंतौ वहनिःसंदेह

(पुत्रहीन) कहलाया और इहदशामें प्रपौत्र आदि जब उसकाधनपावैं तबवेभी ऋण देनेके अधिकारीहों अन्यथा जो वेरिक्थ नहींपावैंतौ ऋणदेनेके अधिकारी नहींहैं इस बातका निषेध ५१ की अधिकोक्तिमेंभी होचुकाहै और पुत्रपौत्र यहदोनों पैतृकरिक्थ के नहोनेपरभी ऋणदेनेके अधिकारी होतेहैं इसबातका निर्णय ५१की अधिकोक्तिमें होचुकाहै और नारदजीका वाक्यभी इसवार्त्तामें प्रमाणहै-यथा-(क्रमादव्याहतंप्राप्तंपुत्रैर्यन्नर्णमुद्धृतम्। दद्युःपैतामहंपौत्रास्तच्चतुर्थान्निवर्त्तते)अर्थात्-पिताका कियाहुआ ऋण क्रमसे (अव्याहत)नाम व्याघात रहित किन्तु जिसका(उपघात)नाम नाशकभी किसी प्रकारसे न कियागया हो ऐसा ठीक२ ऋण निरन्तर चलाआया न तौ पितासे उद्धा रहोसका और न उसकेपुत्रोंने उद्धारकिया ऐसा अपने पितामहका कियाहुआ ऋण पौत्र उद्धारकरैं चाहैं उन्होंने पैतृक धनपाया हो या न पायाहो इसका नियमनहीं परन्तु जोपौत्रोंसे भी उद्धार न होसके तौ फिरवह ऋण चौथे पुरुषते निवृत्तहोजाता अर्थात् प्रपौत्रोंको उसकेदेनेका भारनहींहै पर उसीदशामें कि जो उन्होंने कुछबपौतीरिक्थन पायाहो किंतुजो बपौती रिक्थपाया हो तौ फिर उन प्रपौत्रों परभी ऋणदेने का भारहै-और यदि प्रपौत्रोंआदि के अभावसे मृतपुरुषके भाई या भतीजोंआदिने धनपाया हो तौवेभी ऋणदेनेके अधिकारी हैं इसहेतुसे (पुत्रहीनस्यरिक्थिनः) यहपद कहागया है-इसप्रकारसे जोकुछ इस ५२ के श्लोकमें कहागया सोसब निरवद्य है उसमेंकोई किन्तु नहीं लगसक्ता यह समाधान हुआ-अथवा-उन्हींतीनों अधिकारियोंका अधिकार क्रम इसप्रकारसे भी होसक्ता है कि पहला पुरुषधनग्राहीतौ प्रत्यक्ष है कि जो कोई जिसका धनहरै वहीउसका ऋणदेवै परन्तु जबधनकेन होने आदिकारणोंसे धनग्राही कोई नहीं है तब योषिद्ग्राही और पुत्र इनदोनोंका परस्पर अधिकार है अर्थात् यदिकोई योषिद्ग्राही नहींहै तबतौ पुत्रदेवै और पुत्रनहीं है तो योषिद्ग्राही देवै और यहपुत्रका न होना उसीमूल श्लोक चौथेचरणसे सांसिद्धहै कि (पुत्रहीनस्य रिक्थिनः)अर्थात् जो पुत्रहीन रिक्थीमरै तिसकाऋणयोषिद्ग्राहदेवै-रिक्थशब्दधन कावाचकहै और इसीसे(रिक्थी) वहाकि जो कुछधन छोड़करमराहो और यहांपर रिक्थ नामधन उसमरेहुयेकी भार्य्याहै किन्तुभार्य्यारूपी रिक्थछोड़कर जोकोई रिक्थीपुत्रहीनमरा हो उसकीभार्य्या जोकोई संग्रहकरै वहीउसका ऋणभीदेवै-क्योंकि-अभीथोड़ी दूरऊपर यहवाक्य लिखचुकेहैं कि(अधनस्यह्यपुत्रस्यमृतस्योपैतियस्त्रियम्। ऋणं वोढुःसभजतेसैवचास्यधनंस्मृतम्)अर्थात्-निर्धन और अपुत्र पुरुष मरेहुये की स्त्री जोकोई संग्रहकरता है वही उसका ऋणभजताहै क्योंकि वहस्त्रीही उसकाधनहै-अन्यच्च-योयस्यहरतेदारान्सतस्यहरतेधनम्) अर्थात् जोपुरुष जिसकीस्त्रियां हरताहै वह उसका धन हरनेवाला कहलाता है किन्तु स्त्रियोंका हरना और धनकाहरना यहदो-

त एकसीहैं इसलिये उसकाऋण देना उसपर वैसाहीभार है किजैसे धनग्राहीप-
ा है (अत्रापिशंका)क्योंजी योषिद्ग्राह के नहोने में पुत्रदेवै पुत्रके न होनेमें योषि
हदेवै यह परस्पर संबंधभी विरुद्धहै क्योंकि जबदोनों विद्यमानहों तबकोई भी न
ाहआशय इस्से पायागया किन्तु जबदोमेंसे एक न हो तब दूसरादेवै(समाधान)
। इसबात में दोषनहीं है क्योंकि अंतिम स्वैरिणीग्राही और प्रथम पुनर्भू ग्राही
् सप्रधनस्त्रीग्राही इनतीनोंके न होनेमें पुत्रदेवै और पुत्रके नहोनेमेंवह योषिद्ग्रा
वे कि जिसने निर्धन या निःसंतानी स्त्रीभी संग्रहकरी हो यह सिद्धांत है-यही
। नारदजी ने स्पष्ट भावसे कहीहै-यथा-(धनस्त्रीहारिपुत्राणामृणभाग्योधनंहरेत्।
ोऽसतोः स्त्रीधनिनोः स्त्रीहारीधनिपुत्रयोः)-अर्थात्-धनग्राही योषिद्ग्राही पुत्र इन
नों के समवाय नाम इकट्ठे होतेहुये भी ऋणभाक् वही है जिसने धन हराहो और
। उस दशामें ऋण भाक्है कि यदि धनहारी और स्त्रीहारी यह दोनों नहों और
दि धनग्राही तथा पुत्र यह दोनों नहों तो स्त्री हारी ऋण देवै जैसा अभी ऊपर कह
के हैं (पुत्रके अभावमें स्त्री हारी देवै इस कथनसे जो कुछ विरोध प्रतिभास होता
। तिस का परिहार उसी प्रकारसे समुझना जैसा पहले वर्णनकर चुके हैं-मूलश्लोक
ौथे चरण में जो यह कहा है कि (पुत्रहीनस्यरिक्थिनः) इसकी व्याख्या पूर्वोक्त
; सिवाय अन्यप्रकार से भी होती है-अर्थात्-धनग्राह योषिद्ग्राह पुत्र यह तीन
अधिकारी जो ऋणदेने के वहाँपर कहे हैं सो यह तीनों जो मृत पुरुष का ऋण देना
चाहैं तौ किसको देने योग्य हैं यह बात अगर कहनी चाहैं तो उत्तमर्ण को देने
योग्यहैं कि जिसने अपना धन मृत पुरुष को ऋण की रीति से दिया था कदाचित्
उस उत्तमर्ण का अभाव हो गयाहो तो उस के पुत्रादिकों को देने योग्य हैं कदाचित्
उसकेपुत्रादिक भी नहों तो किसको देने योग्य हैं-इसअपेक्षा में वह पदवर्त्तमानहै कि
(पुत्रहीनस्य) अर्थात् ऐसेपुत्रहीन उत्तमर्ण के (रिक्थिनः-दाप्याः) किंतु उसपुत्रहीन
या पुत्रादिवंशहीन उत्तमर्ण का जो कोई सापिण्डआदि रिक्थीबने अर्थात् उसकाधन
पावै तिसरिक्थीकोदेनेयोग्यहैं यहव्याख्या सिद्धहोतीहै- और इसकीदृढ़ताभी नारद
जीके वाक्यसेहोतीहै- यथाहनारदः(ब्राह्मणस्यतुयद्देयं सान्वयस्यचनास्तिचेत्। निर्व
पेत्तत्सकुल्येषु तदभावेऽस्यबन्धुषु। यदातुनसकुल्याःस्युर्नचसम्बन्धिबान्धवाः। तदाद
द्याद्द्विजेभ्यस्तुतेष्वसत्स्वप्सुनिक्षिपेत्)-अर्थात्-ब्राह्मणका जोकुछऋण अपनेकोदेना
हो और उसके अन्वयसाहितकोईनहो तो उसके सकुल्य जो ठेठघरानेमें प्रधानहों
तिनकोदेवे और जो वेभीनहींहों तो उसब्राह्मणके बान्धवोंकोदेवे और बान्धवशब्दसे
उसकेसम्बन्धी नातेदारसमुझने- जबउसके कोई सकुल्य भी नहों और न कोईसम्ब
न्धी बान्धवजनहों तबअन्यब्राह्मणोंको बांटदेवे यदि ब्राह्मणभी न मिलसक्तेहों तब

किसीउत्तम तीर्थकेजल में छोड़देवे- कदाचित् यहसंदेह कियाजाय कि उसकेसकुल्य अथवा बांधवों के समवाय में किसको देना चाहिये तहाँपर दाय भागकी रीतिसे जिसको उसका रिक्थ पहुँचने का अधिकार हो तिसको देना चाहिये-यद्यपि यह वार्त्ता ब्राह्मण संबंधी ऋण की प्रधानाता से कही गई तथापि औरों के भी ऋण विषय में यही व्यवस्था समुझलेनी ५२ ॥

अथऋणादानसंबंधितयाऽत्रैवचावश्यकत्वात्प्रातिभाव्यविधि
बिवेकोनाम अष्टाविंशतिमः परिच्छेदः २८ ॥

इस अट्ठाईसवें परिच्छेदमें ऋणके संबंध मात्र हेतुसे (प्रातिभाव्य) नामज़मानत का प्रकार और ज़मानत कियेहुये ऋण का उद्धार ज़ामिनपर और उसकेनिषेधआदि भी वर्णन होंगे और इसी प्रसंगमें कुछ गवाही आदि अन्य बातों का भीचर्चाहोगा॥

भ्रातृणामथदंपत्योः पितुः पुत्रस्यचैवहि। प्रातिभाव्यमृणंसाक्ष्यमविभक्तेनतुस्मृतम् ५३ ॥

अक्ष० भाइयोंका और दम्पत्यों का और पितापुत्रका प्रातिभाव्य-ऋण- साक्ष्य-अविभक्तमेंनहींकहा ५३ ॥

अभि० परस्परभाई भाइयोंके तथापरस्पर स्त्रीपुरुष इनदोनोंके तथैव पिता औरपुत्र इनदोनोंके परस्पर यहतीनबातें नहींहोसक्तीहैं एकतौ(प्रातिभाव्य)नाम ज़मानत दूसरे (ऋण)कादेनालेना तीसरे (साक्ष्य) नामगवाही क्योंकि अविभक्तधनकी दशामें कि जबतकयेधनवांटकरजुदेनहोगयेहों तबतक मन्वादिकोंने यहतीनबातें इनके परस्पर होनानहींकही किंतु होनेकानिषेधकियाहै इसलिये कि जबएकही घरमेंउनकाधनमिला झुला दोनोंकाएकहै तौफिर एकदूसरेकी ज़ामिनी क्योंकर देसक्ता है या परस्पर एक दूसरेसे ऋणकैसेलेसक्ताहै या गवाही एकदूसरेकी क्योंकरदेसक्ताहै किंतु प्रातिभाव्य और साक्षित्व की अपेक्षासे इनमें जो कुछद्रव्यहानि या व्ययएकका होनासम्भव है वही उसके दूसरे संबंधीका संभवहै तीसराऋणजोहै सोभी अवश्य(प्रतिदेय)अर्थात् किसीसे लियाहुआ अवश्यही उद्धारकरनाहोताहै इनकारणोंसे यहतीनों कामउक्त सम्बन्धियोंके परस्पर होनेकानिषेधहै ५३ ॥

अवि० परन्तु यहनिषेधभी तभीतकहै कि जबतक उक्तसम्बन्धियोंके परस्पर अनुमतिका अभावहो किंतु जो उनदोनों सम्बन्धियोंके परस्पर प्रसन्नता पूर्वक इनकामों केकरनेकी सम्मति समयके अनुकूल ठहरजाय तौफिर बिनाबँटे धनकीदशामेंभी यह तीनोंकामहोसक्तेहैं वरनहोतेहैं- और-धनकेविभाग उपरान्त परस्पर अनुमतिकेविना भी यहतीनों काम उक्तसम्बन्धियों में होते हैं (दृष्टान्त) यथा अविभक्त धनकीदशा में किसीउत्तमर्ण आदिने किसीपर नालिशकरी और वह नालिश करनेवाला अभियोक्ता अर्थात् मुदई अपने अभियुक्त मुदआअलेहकी अविश्वासतासे ज़ामिनीचाहै

या गवाहीचाहै और यहकहनेलगे कि इसमुद्दआअलेह काभाई ज़मानतदेदेवे यास्त्री देदेवे या पितादेदेवे या पुत्रदेदेवे या पतिदेवे ज़मानत अथवा गवाही जोकुछ वहचाहता हो तिसकेमध्ये राजदरबार मेंभी प्रार्थनाकरै कि उनसे ज़मानत या गवाहीदिलवाई जाय तौवहांभी यहप्रार्थना उसकीनहीं सुनीजासक्ती-परन्तु जोवेही सम्बन्धी जनयह सुनकर या और किसी हेतुसे अपनेघरमें परस्पर दोनों अनुमति से प्रसन्नता पूर्वक ज़मानत या गवाही देनास्वीकारकरैं तौहोसक्ता है और जो उनकेपरस्पर इसवातकी अनुमतिनहो तौ किसीकीप्रेरणासे नहींहोसक्ताहै-परस्परअनुमति-का दूसरा सिद्धान्त यहभीहैकि चाहै उनसम्वन्धियोंके परस्पर इसवातकीअनुमति स्वतः भी होरहीहोकि एकअपने दूसरेसम्बन्धी की गवाही या प्रातिभाव्य करनेपरउद्यतहै और उत्साहपूर्वक चाहताहै कि ऐसाकरैं परन्तु जबतक मुद्दई और मुद्दआअलेह इनदोनों के परस्पर इसवातकी अनुमति और स्वीकारतानहो तबतक अविभक्तधनकी दशामेंऐसानहीं होसक्ता अर्थात् जोमुदई उनकेपरस्पर सम्वन्धियोंकी गवाही या जामिनी स्वीकार न करै तौ राजाभी ऐसाकरनेकी आज्ञानहीं देसक्ता और जो मुद्दईअपने मुद्दआअलेह की अपेक्षाअनुकूल यहवातें स्वीकारकरै तौ होसक्तीहैं-और-जिसदशामें कि वे उक्त सम्वन्धीजन अपना २ साधारणधनवाँटकर जुदेहोरहेहों तवतौ विशेषतर किसीकी भी परस्पर अनुमतिकी आवश्यकतानहीं अर्थात् कार्यके और अवसरकेअनुसार जैसा उचितहो तैसाही वर्त्तावाहोसक्ताहै-तीसरे ऋणकीअपेक्षामें परस्परअनुमति केवल उन्हींदोनोंसम्वन्धियोंकी समुभीचाहिये अर्थात् अविभक्त धनकीदशामें कि जब घरमें दोनोंकाधनएकहै तब दोनोंकेपरस्पर ऋणदेनेलेनेकाव्यवहार ऐसाहोताहै कि घरकेसाधारण धनकेसिवाय जो मनुष्यअपनेपास किसीप्रकारकीजुदीपूँजीराखताहै कि जिसमें हिस्सावाँटकेसमय उसकेदूसरेसम्वन्धीका विभागनहींपहुँचसक्ता वह मनुष्य अपने ऐसेधनमेंसे दूसरेसम्वन्धीको परस्परअनुमतिपूर्वकऋणदेताहै और दूसरा उससेलेताहै और व्याजभीदेताहै इसरीतिसे अविभक्तधनकीदशामें भाई भाई और स्त्रीपुरुष और पितापुत्रकाभी देनलेनहोताहै-(संशय)-क्योंजी दम्पती इनदोनोंकेधन विभागसे पहलेजो प्रातिभाव्यआदिका निषेधकिया सो तौ अयुक्तहै क्योंकि स्त्रीपुरुषका विभागहीनहींहोता तो फिर यहविशेषण भीअनर्थकहै-और इनकाविभागनहोना भी आपस्तंबऋषिनेदर्शायाहै-तथाच-जायापत्योर्नविभागोविद्यते-अर्थात्-भार्या और पतिका विभागनहींपहुँचता-(समाधान)-सत्यहै यहवात जो संशयरूपसेकही परन्तु इसमें यहविशेषताहै कि श्रौत और स्मार्त्त इनअग्नियोंमें जो कर्मसाध्यहोते हैं तिन कर्मोंमें और उनकेफलोंमेंभी भार्यापतिकाविभागनहीं है पर सभीकर्मोंमें या द्रव्योंमें विभागका अभावनहींहै-तथाच-जायापत्योर्नविभागोविद्यते-अर्थात्-भार्यापतिका वि-

भागनहींपहुँचता यहकहकर आपस्तंबने (क्योंनहींपहुँचता) इस अपेक्षामें हेतुभी वर्णनकियाहै-यथा-पाणिग्रहणाद्धिसहत्वंकर्मसुतथापुण्यफलेषुच-अर्थात्-स्त्री पुरुष के पाणिग्रहणसे लेकर पीछे (हि) जिसहेतुसे कर्मों में और पुण्यफलों में (सहत्व) नाम साझाहोजाताहै इसलिये उनकर्मों यद्वा पुण्यफलोंका विभागनहीं होसक्ता-इस्से यह निश्चितहै कि अग्निके आधान में दोनोंका सहअधिकारहोनेसे उस आधानसिद्ध अग्निमें जो कर्मसाध्यहोते हैं कि तिनमें भी दोनोंका सहाधिकार है तथैव-योगी श्वरभी आचाराध्याय के ९७ श्लोक में (कर्मस्मार्त्तंविवाहाग्नौ) इत्यादि वाक्य से कहचुकेहैं कि गृहस्थी नित्यंप्रति विवाह सिद्ध अग्निमें स्मार्त्त कर्मोंकोकरै—इस्से यह निश्चित है कि विवाह सिद्ध अग्निमें जो २ कर्मसाध्यहोते हैं उनमेंभी दोनोंका सह अधिकारहै-इस्से यह सिद्धांतप्रकटहुआ कि अत्रोक्त दोनों भाँतिकी अग्नियोंसे जो२कर्म भिन्नहैं अर्थात् इन अग्नियोंसे कुछ अपेक्षानहींरखते (दृष्टांत) जैसे (पूर्त्त-कर्म) अर्थात् तड़ागवनवाना कूपबावड़ी आदि या बागरखवाना इत्यादि नानाकर्म जो इन अग्नियोंसे अपेक्षानहींरखते तिनमें भार्या और पतिका अधिकार जुदा २ भीहोताहै अर्थात् स्त्री चाहै अपने पतिसे भिन्न एक तड़ाग या बाग आदि अपने नामसे पतिकी आज्ञा पूर्वक बनवालेवै तौ कुछ उसमेंपतिका साझानहींहै-और-जोकि पतिकेकियेहुये पुण्यकर्मों के फलोंमें तथैव स्वर्गादिकी प्राप्तिमें स्त्रीका साझा (दिवि-ज्योतिरजरमारभेथाताम्) इत्यादि वेदवाक्योंसेप्रसिद्धहै तिसमेंभी सिद्धांतयहीहै कि जिन २ पुण्यकर्मोंमें कर्त्तव्यतारूपसे सहअधिकारहै जैसे किसीपर्व और तीर्थमें गो दान यद्वा शय्यादानआदि गँठिबन्धनपूर्वककियाजाय या कोई यज्ञ जिसमें स्त्रीपुरुष दोनोंकोसाथमिलकर कुछकर्मकरनेकाअधिकारहो ऐसेपुण्यकर्मोंकेफलोंमें निःसंदेह स्त्रीकासाझाहोताहै-परन्तु-पूर्त्तादिकर्म जो पतिकीआज्ञापूर्वक स्त्रीनेभिन्नअनुष्ठितकिये हों उनकेफलोंमें कुछपतिकासाझानहींहोसक्ता (तर्क) भला यहसमाधानतौठीक है परन्तु घरकीसम्पत्ति और स्वामित्वमेंभी स्त्रीपुरुषदोनोंकासहत्व शास्त्र और लोकमें भी प्रसिद्धहै एवं द्रव्यकेपरिग्रहमेंभी दोनोंकास्वामित्व एकसाहोताहै (परिग्रह) अर्थात् बाहरसेआयेहुयेधनका धरनाउठाना यह बिशेषतर स्त्रीकेआधीन इसीलियेहोताहै कि स्त्रीकाभी स्वामित्व उसधनपर उसीसमानहोताहै कि जैसापतिकाहोताहै सोई इस अग्रोक्तवाक्यसेभी संसिद्धहै-यथा-द्रव्यपरिग्रहेषुचनहिभर्त्तुर्विप्रवासेनैमित्तिकेदानेस्तेय मुपदिशंति-अर्थात्-द्रव्योंके परिग्रहनामधरना सैंतना आदि भार्याकेआधीनहोनेमें भर्त्ता यद्वि बहुत कालतक विदेशमें रहेतबघरमें यदिस्त्री नैमित्तिक दानमें स्वाधीनता सेकुछधन खर्चकरेतौ इसखर्चको भर्त्ताकी चोरीनहीं कहतेहैं(समाधान) सत्यहै यहवा क्यभी क्योंकि इसवाक्यने द्रव्योंमें स्त्रीकाभी स्वामित्व दर्शाया सो यह ठीकहै परन्तु

ऋणहोतौ उसकेपौत्रदेवैं परन्तु (समं) अर्थात् मूलमात्र जितनादादाने लियाहोवहीदेवैं किंतु व्याज वृद्धिनहीं-और-पुत्र अपनेपिताका प्रातिभाव्य ऋणभी देवै अर्थात् पिताने किसीकीज़मानत करीहो तौ उसकेमरनेपर वहऋणपुत्रदेवै परन्तु (समं) अर्थात् जितने कीज़मानतपितानेकरीहो उतनाहीदेवै किंतु कालविलंबका व्याजनहीं देवै-इसके सिवाय-इनदोनोंकेपुत्रनहीं देनेयोग्यहैं यह सर्वथा निश्चितहै अर्थात् ऋणखानेवाले दादा केपौत्रका पुत्र औरज़मानतकरनेवाले पिताके पुत्रकापुत्र यहदोनों नहींदेवैं यहव्यासजीने कहा तथापि यदिइन्हींदोनोंनेपैतृक रिक्थपायाहो तौ यहभी देवैं अर्थात् जोपैतृक रिक्थनहींपायाहो तौ उसदशामें न देनेयोग्यहैं जैसा ५२ की अधिकोक्ति और ५३ कीअधिकोक्तिमें चर्चा होचुकाहै उसीसे यहव्यवस्थाभी समुझनी-और-जो कि एक यह स्मृतिहै कि (खादकोवित्तहीनःस्याल्लग्नकोवित्तवान्यदि। मूलंतस्यभवेद्देयंनवृद्धिंदातुमर्हति)-अर्थात्-(खादक) नाम ऋणखानेवाला यदि निर्द्धनहो और इसीहेतुसे उसपरऋण टूटा और उसका (लग्नक) नाम प्रतिभू अर्थात् ज़ामिन यदि सधनहो तौ उसऋणीके बदले उत्तमर्णका मूलमात्र धनदेयहै वृद्धिदेनेको योग्य नहीं-सो-इस कीभी व्याख्या इसीप्रकारसे समझनी कि प्रतिभू यदि धनवान्हो औरवहमरजाय तौ उसका पुत्रमूलमात्र देवै वृद्धि नहींदेवै अर्थात् साक्षात् प्रतिभू के जीवतेहुये उस पर वृद्धि देनाभी संभवित है यहदानप्रतिभूका चर्चा है-और-जहांदर्शनप्रतिभू या प्रत्ययप्रतिभू जिसकी ज़ामिनी करै उस्से अपने संतोषके लिये कुछधन बंधकरूपसे लेकर उसका प्रतिभू बनै औरमरजाय तब इसके पुत्रभी उसबंधकधनसेअपने पिता का प्रातिभाव्यऋण देवैं-तथाहकात्यायनः(गृहीत्वाबंधकंयत्रदर्शनेऽस्यस्थितोभवेत्। विनापित्राधनात्तस्माद्दाप्यःस्यात्तदृणंसुतः) -अर्थात्-जहांबंधक धनलेकर इसके हाज़िर करनेमें प्रतिभू खड़ाहुआहो तहां पित्राविनाभी अर्थात् उसज़ामिनी करनेवालेपिता के मरजाने या दूर देश चलेजानेपरभी वह ऋण उसकापुत्र उस बंधक धन से दिलवाने योग्यहै ५५॥ अबनीचेकेश्लोकमें यहबातकहेंगे कि जिस प्रयोगमेंअनेकप्रतिभू हुयेहों और उन्हींको ऋणीकेबदलेधन देनापरै तहाँ किसरीतिसे देनालेनाउचितहै॥

बहवःस्युर्यदिस्वांशैर्दद्युःप्रतिभुवोधनम्। एकच्छायाश्रितेष्वेषुधनिकस्ययथारुचि ५६॥

भक्ष०-यदि बहुतप्रतिभूहोवें तौ अपने अंशोंसे धनदेवें-इन्होंके एकछायाश्रितहोने में धनीकी जैसीरुचिहो ५६॥

मभि०-जिसप्रयोगमें बहुतसेप्रतिभू अर्थात् मुक़दमाबहुतबड़ाहो जिसमें दो या तीन वा अनेक प्रतिभूखड़ेहुयेहों तौ वे सभी अपनेअंशोंकेअनुरूप धनीकाधनदेवैं और अंशोंकेअनुरूपका यहसिद्धांतनहींहै कि यदि चार४प्रतिभूहुयेहों तौ चौथाई२ बराबरसबदेवें किन्तु यहसिद्धांत है कि उन्होंने जितने २ की ज़ामिनीकरीहो उतना

अपनेअंशोंकेअनुरूपदेवैं (दृष्टांत) यथा एकमुक़द्दमा एकसहस्ररुपयेका तिसमें एक प्रतिभूने केवल १००) की ज़मानतकरी शेष तीनोंने तीनतीन ३००) सौकी ऐसी दशामें अपने२ अंशोंकालेखा देखाचाहिये-यद्वा-यह अनेकप्रतिभू इसरीतिसेनहुयेहों किन्तु सभीमिलकर (एकछायाश्रित) हुयेहों अर्थात् अंशोंकानियमकियेबिना सभी मिलकर साधारण भावसेज़ामिन हुये हों और इसदशामें ऋणीनेउनको धोखादिया हो तब कुछ अंशोंकी आवश्यकता नहींहै किंतु उत्तमर्णकी जैसीरुचि हो उस रुचिके अनुकूल उनसे लेसक्ताहै अर्थात् ऐसे प्रातिभाव्यकी दशामें धनीचाहै उन चारो या पांचों जो कुछहों तिनसे तुल्यांश लेवै अथवा उनमेंसे किसीएकहीको समर्थ समुझै कियह साराधन देसक्ताहै तो उसएकहीसे भरिलेवै इसप्रकारसे कि जानो इसएकही ने ज़ामिनीकरीथी कोई और ज़ामिन इस अभियोग में नहीं है या दोसेउचित समुझै तो दोसे लेवै औरों से न मांगै किंतु जैसा अवसरदेखै तैसा अपनी रुचिके अनुसार करसक्ता है यहव्यवस्था केवल दानप्रतिभूकी अपेक्षा में कहीगई परइसी के अनुसार पूर्वापर आलोचनपूर्वक (दर्शनप्रतिभू) और (प्रत्ययप्रतिभू) इन दोनोंमें भी मुक़द्दमाके स्वरूप के अनुरूप युक्त करलेनी चाहिये ५६॥

भधि०—एकछायाश्रिताः-(एकस्यअधमर्णस्यछायासादृश्यंतामाश्रिताः) अर्थात् (एकछायाश्रित) इनको इसलिये कहते हैं कि एकही जो ऋणीहै तिसकी (छाया) नाम समान भावको आश्रित होजाते हैं क्योंकि जैसे ऋणी अपने समस्त ऋण के देनेका अधिकारी होताहै तैसेही यह अनेक प्रतिभू भी धनी के सन्मुख भिन्न२ प्रत्येक अपनी छाती ठोंक कर स्वीकार करलेते हैं कि यदि यह नहीं देवै तो हम तुमको देन दार हैं इसहेतुसे प्रत्येक प्रतिभू ऋणीका समस्त ऋण उद्धार करने में अधिकारी होजाताहै पुनि इसीहेतुसे धनी अपनी रुचि और अवसरके अनुकूल किसी एकसे भी साराधन लेसक्ताहै-और (धनी) शब्दसे उत्तमर्ण केवल वही नहींहै कि जिसने अपने हाथसे धन दियाथा अर्थात् वहभी धनीहै कि जो कोई धनी का रिक्थाधिकारी आदि उसकी ओरसे धन संबंधीकामोंकी साधनामें तत्परहो (एकछायाश्रित) अनेक प्रतिभू पुरुषों में से यदि कोई एक देशांतरको गयाहो और पुत्र उसका घर उपस्थितहो तौभी धनी की रुचिमें यदि वही एक देने योग्य समुझा जाताहो तो उसके पुत्रसे सब दिलवाना चाहिये-और-यदि कोई प्रतिभू इनमेंसे मरगयाहो तो उसके पुत्रपर पिताके देने योग्य अंश विना व्याज मूलमात्र दिलवाना चाहिये यथाहकात्यायनः (एकच्छायांप्रविष्टा नांदाप्योयस्तत्रदृश्यते। प्रोषितेतत्सुतःसर्वं पित्रंशंतुमृतेसमम्) अर्थात्-कात्यायनजी नेयह कहाहैकि (एकछायारूप) ज़ामिनी में प्रविष्टहुये लोगोंमेंसे वह दिलवाने योग्य है जो वहाँपर देखपरता हो अर्थात् देसकने योग्य समर्थ संभावित होता हो और यदि

वही विदेशवासी होजाय तौ उसका पुत्र अपने पिताके देनेयोग्य सारा अंश दिलवाने योग्यहै परन्तु यदि मरजाय तौ उसका पुत्र विनाब्याजू केवल मूलमात्र दिलवाने योग्य है ५६ ॥ (दर्शनप्रतिभू) जिसने हाज़िर ज़ामिनी करी हो कदाचित् वह यथोचित समय पर ऋणीके उपस्थित कर देनेमें असमर्थ हो तब ऋणीको ढूँढ़लानेके निमित्त से डेढ़ मासकी अवधि और भी देनी चाहिये जो उस डेढ़ मासकी मीआद में ऋणीको लाकर उपस्थित करै तौ प्रतिभू को छोड़देना चाहिये यदि नहीं हाज़िर करै तौ ऋणीकेपलटे उसी प्रतिभू से धन दिलवाना चाहिये तथाच कात्यायनः (नष्टस्यान्वेषणार्थंतुदाप्यं पक्षत्रयंपरम्। यद्यसौदर्शयेत्तत्रमोक्तव्यःप्रतिभूर्भवेत् ॥ कालेव्यतीतेप्रतिभूर्यदितंनैव दर्शयेत् । निबंधंदापयेत्तत्तुप्रेतेचैषविधिःस्मृतः) अर्थात्-भगे या लुकेहुये ऋणीके ढूँढ़ने को तीन पक्षकी अवधि और भी देनी चाहिये जो यह प्रतिभू तीनपक्षमें लाकर दिखलावे तौ प्रतिभू छोड़दिया जावे और जो तीन पक्षके काल व्यतीत होनेपर भी उसको नहीं दिखलावै तौ वही प्रतिभू उसके पलटे निबंधरूप धन देवै औरयही विधि ऋणीके मरजानेपर भी कहीहै-कात्यायनजी ने लग्नक विशेष निषेध भी किया है अर्थात् अमुकामुक मनुष्यों को प्रतिभू नहीं बनावै यह निषेध कियाहै-यथा (नस्वामीनचवैशत्रुः स्वामिनाधिकृतस्तथा । निरुद्धोदंडितश्चैवसंदिग्धश्चैवनक्वचित् ॥ नैवरिक्थीनमित्रंचनचैवात्यंतवासिनः। राजकार्यनियुक्तश्चयेचप्रव्रजितानराः ॥ नाशक्तोधनिनेदातुंदंडंराज्ञेचतत्समम्। नाविज्ञातोग्रहीतव्यःप्रातिभूश्चक्रियांप्राति) अर्थात्-जो ऋणीका स्वामी हो १ या शत्रु हो २ या स्वामी करके अधिकृत अर्थात् स्वामी का मुख़तारकार आदि कोई अधिकारी हो३ या कोई पुरुषनिरुद्धजो आप किसी के बंधनमें पराहो ४ या (दंडित) जिसने किसी अपराध में अदालत से दंडक भी पायाहो ५ या (संदिग्ध) जिसमें किसी प्रकारका संदेह पायाजाता हो अथवा ब्रह्महत्या आदि कोईसा कलंक जाति बिरादरी में लगा हो ६ या उसका (रिक्थी) जो उसके बाद उसका धनपानेका अधिकारी हो७ या उसका मित्रहो८ या (अत्यंतवासी) अर्थात् नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो९ या(राजकार्यनियुक्त)जो सरकारी ओहदेदारहो१०या(प्रव्रजित)नाम संन्यासी आदि किसी पंथवालाहो११ या कोई ऐसा पुरुषहो जो ऋणीके बदले धनीको धनदेने और उस मुक़द्दमे के समान राजाको आवश्यक दंडदेने में अशक्तहो १२ या कोई ऐसा (अविज्ञात) पुरुष हो जिसका निवास और धन प्रतिष्ठाआदि लक्षण न मालूमहों १३ इन तेरह पुरुषों का प्रातिभाव्य किसी क्रियामें स्वीकार न करना चाहिये क्योंकि इस प्रकारके ज़ामिनों का ज़मानत लेनेमें पीछे और प्रकारके विघ्न होजातेहैं-परंतु-इनमेंसे दोचारपुरुष ऐसेभीहैं कि उनकी ज़ामिनी इसनिषेध के होनेपर भी कभी किसी आवश्यकता और अन्य ज़ामिनके न मिलनेपर मुक़द्दमे

डौल सुडौलदेखकर लेलेनी संभवहै सो भी उसदशामें कि यदि राजाकेद्वारा ज्ञा- लीजाय-अर्थात्-एकतौ (स्वामी) जिसका वह ऋणी नौकरहो किसीदशामें ज्ञा- नी उसकी राजा उचितसमुझै तौ होसक्तीहै ऐसेही स्वामीके अधिकृतोंकीभी यदि योग्यतासमुझीजाय तौ राजाकी इच्छासे होसक्तीहै ऐसेही किसीदशामें ऋणीके मि- त्रपर योग्यतापाईजातीहो तौ सत्पुरुषोंकी सम्मतिसे होसक्तीहै-ऐसेही कदाचित् राज- कार्याधिकारियों कीभी ज़मानत किसी मुक़द्दमह में औचित्यपाकर होजातीहै सोभी यदि उसीअदालतके अधिकारीहों जिसमें वह अभियोगहै तौ फिर निपट नहींहोस- क्तीहै-इनके सिवाय उन तेरहमें और कोई ऐसा नहीं है कि जिसकी ज़ामिनी किसी दशामें स्वीकारकरिलेनीचाहिये ५६ ॥ इतिप्रतिभूविधिः ॥

अथऋणादानसंबंधेप्रतिभूदत्तस्यप्रतिक्रियाविधिविवेकोनामैकोनत्रिंशःपरिच्छेदः २९

इस उनतीसवें परिच्छेदमें ऋणके संबंधसे उसधनका चर्चाहोगा जो प्रतिभूने ऋणीकेपलटेदियाहो जिसका ऋणीसेलेलेनाउचितहै अमुकामुक नियमोंसेलियाजावै॥

प्रतिभूर्दापितोयत्तुप्रकाशंधनिनांधनम्। द्विगुणंप्रतिदातव्यमृणिकैस्तस्यतद्भवेत् ५७॥

मक्ष०-धनीलोगोंका जो धन प्रकाशमान प्रतिभूसे दिलवायागयाहो वह धन उ- सका ऋणीलोगोंकरके दूना प्रतिदातव्यहोवै ५७॥

अभि०-ऋणीके विश्वासघातसे जो कुछधन ज़ामिनीमध्ये प्रतिभूने या उसके अ- भावमें पुत्रोंने धनीसे उपपीड़ितहोनेपर सबजनोंके सन्मुखभाव राजाकरके दिलवाया हुआ दियाहोवै वह उसका ऋणीसे दूनादिलवायाजावै ५७॥

मधि०-प्रकाशमान सबजनोंके सन्मुख और धनीसे उपपीड़ितहोने अर्थात् क्लिष्ट तगादाहोनेपर तथा राजाकरके दिलवायाहुआ जो धन प्रतिभूदेवै सो दूनाकरके पा- सक्ताहै इनबातोंका यह सिद्धांतहै कि जो कोई प्रतिभू कदाचित् इसलोभके विचारसे कि ज़ामिनीमध्ये ऋणीके पलटेदियाहुआ धन दूना मिलताहै आपही जाकर बिना माँगे या राजाके दिलवायेविनाचुपचाप ऐसादेआवै कि जिसका देना लेना प्रकट न होसकै तौ यह धन ऋणीसे दिलवानेयोग्य नहीं और यदि देनालेना सिद्धभीहोजाय तौ भी यह देना द्विगुणनहींमिलसक्ता-तगादा आदि उपपीड़ाहोनेपर दियाहुआधन द्विगुणमिलनेकी अपेक्षामें नारदजीका वचन प्रमाणहै-यथा (यंचार्थंप्रतिभूर्दद्यात्धनि केनोपपीडितः। ऋणिकस्तंप्रतिभुवेद्विगुणंप्रतिदापयेत्)अर्थात्-धनीसे उपपीड़ितकि- या प्रतिभूऋणीके पलटे जो कुछधनदेवै वह धन ऋणी प्रतिभूकोदूनाकरकेदेवै-द्विगुण भी इसवचनके आरंभ सामर्थ्यहेतुसे काल विशेषके विलंबहुये विनाशीघ्रही दातव्यहै सो भी यह द्विगुण परिमाण केवल (हिरण्य) अर्थात् सोना चाँदी आदि द्रव्योंके विषयपर कहाहै किंतु अन्य पश्वादि द्रव्योंका विषय अगले ५८ के श्लोकमें देखो-

कदाचित् कोई-यह (शंका) खड़ीकरनाचाहै कि यह प्रतिभू संबंधी वचन अर्थात् ५७ का श्लोक केवल द्वैगुण्यमात्रका प्रतिपादनकरताहै किंतु शीघ्रदेनेकी समस्या इसमें नहींपाईजातीहै सो वह द्विगुणहोजाना भी पूर्वोक्तरीति जो ३८ के श्लोकमें कहचुकेथे उसरीतिके अबाधसेही सिद्धहोसक्ताथा (जैसे) जातेष्टिकर्मका विधान शुचित्वके अबाधमें होताहै अर्थात् नांदीमुख श्राद्ध आदिकर्म जबतक नालच्छेदनके न होनेतक सूतक नहींलगता तभीतकहोसक्ताहै तैसेही यहाँ भी कालके बिलंबसे व्याज वृद्धिके नियमानुसार जब दूनादेनेकी अवधि पूर्वोक्तरीतिसे आजाती तब आपही दूनादियाजाता-औरभी यहतर्क है कि यदि इसबचनको ४० श्लोक में कहीहुई मर्यादाअनुसार परावृद्धि जो है सोई इसमें तत्काल ब्याजदेनेका नियम समुझाजाय तौ भी ठीकनहींलगता है क्योंकि यहाँपर अगले ५८ के श्लोक में पशु स्त्रियोंकी संतति देना कहेंगे तौ फिर यह असंभवहै कि तत्कालही पशु स्त्रियों के यदिसन्तति नहो तौ सन्तातिका मूल्य देना चाहिये सो यहबात असत् है-और-जबकि ४० केश्लोकमें(वस्त्रधान्याहिरण्यानां चतुस्त्रिद्विगुणापरा)इसीवाक्यसे दूना तिगुनाआदि सब नियमसिद्ध होचुकाथा तौ फिर यहद्वैगुण्यमात्र के विधानका वचनही यहांपर अनर्थकहै(समाधान)सुनो अनर्थकनहींहै यहवचनकेवलप्रतिभूकेही विषयपरआरम्भ कियागया और पशुस्त्रियोंकी तत्कालसन्ततिका अभावतौ एकओर परन्तु जहाँकाल क्रमकीवृद्धिसे पशुस्त्रियोंकी सन्ततिदेनीकहीहै उसपक्षमें भी जबसन्ततिका अभाव होताहै तबकेवल उनपशुस्त्रियोंका स्वरूपहीदियाजाताहै ऐसेहीयहांभी सन्ततिके न होनेमें केवलस्वरूप दानहोसक्ताहै इसकेसिवाय यदिप्रतिभू ऋणीके पलटेद्रव्यदेनेके अनन्तर थोड़ेहीकालमें ऋणीसे तगादाकरने को भिड़जाय तौभीकहीं इसदशामें सन्ततिकाहोना सम्भव है क्योंकि जब कोईसीपशु स्त्री प्रतिभूने उत्तमर्णको गर्भिणी दीहोगी तौ अवश्यउसके घरजाकर व्यावैगी तौफिर प्रतिभूभी ऋणीसे सवत्सालेने का अधिकारीहै यद्वाइतनाकाल व्यतीतहोगया होकिवहपशुस्त्री उत्तमर्णकेघरजाकर गर्भिणीहुईहो तौभीवह सवत्सालेनेका अधिकारीहै यद्वा पूर्वसिद्ध सन्ततिजो उसपशु स्त्रीकेसाथ अतिबालकदीगईहो और वहकुछकालमें उत्तमर्णके घरसमर्थहुईहोतौ उसीके समान सन्ततिपानेका अधिकारी प्रतिभू होसक्ताहै इसलिये यहतर्क भी कुछतर्कोंमेंगिनतीनहीं-औरजो- ऐसेही तर्कोंसे अन्यथाभाव होसक्ताहो तौफिर कदाचित् प्रतिभूने किसीकेसाथ प्रीतिमेंही प्रातिभाव्य कियाहो और दैवयोगसे प्रतिभूकोही ऋणदेनापरे तौफिर क्याइसमें जबकि प्रीतिदत्त प्रातिभाव्य ठहरा तौ कदाचित् दूना नहींलेसक्ताहै क्योंकिप्रीतिदत्त ऋणके ऊपरतबतक व्याजही नहींचढ़सक्ता किजब तक यह अपनीप्रीतिसे उसपर न मांगै-तथाच (प्रीतिदत्तन्तुयत्किञ्चिद्वर्द्धतेनत्वयाचि

तम् । याच्यमानमदत्तश्चेद्वर्द्धतेपञ्चकंशतम्) अर्थात्-जो कुछ ऋण प्रीतिद्वारादिया गयाहो वह जबतक धनमाँगानहींजाय तबतकब्याज वृद्धिउसपर नहींमिलसक्ती और जोमाँगनेपर भी वह न देवे तौधनीको स्वाधीनताहै कि यदिपाँचरुपया सैकड़ातक ब्याजलेनाचाहै तौ लेसक्ताहै-इसलिये जो प्रतिभूके दियेहुये धनकोइसी ५७के मूल श्लोकद्वारायह भावार्थसमुझलेवें कि पूर्वोक्त ऋणकीरीतिसे यहांभी जबदूनादेनेयोग्य कालव्यतीतहो तभीदूनादेना चाहिये किंतुतत्कालही दूनानहीं-तौफिर-जहांपूर्वोक्त ऋणकी रीतोंमें प्रीतिदत्त ऋणकाचर्चा लिखागयाहै उसपरभी ऋणदेनेके दिनसेही विनामांगेभी ब्याजवृद्धिहोनी चाहिये और जबद्विगुणदेने योग्यकाल व्यतीतहो तब उसाप्रियतम सेभीचाहै कभीबीचमें तगादाकियाहो या न कियाहो परदूनालेलेनाचाहिये यहबातऐसी तर्कोंसेपाईजातीहै सो सर्वथा अनुचित और लोकशास्त्रदोनोंसे विरुद्धहै इनकारणोंसेयहसूखीतर्कें सर्वथाव्यर्थहैं और५७के मूलवाक्यमें कहेहुये प्रमाण सेप्रतिभूदत्त धनकीबातोंमें उसवचनकी प्रतीति नहींहोसक्ती है कि जिसमें कालक्रम सेदूना देनाकहाहै अर्थात् सर्वथायह सिद्धान्तहै कि जैसा ५७ केमूलवाक्यमें लिखाहै (द्विगुणम्प्रतिदातव्यमृणिकैस्तस्यतद्भवेत्) इसकथनके अनुसार प्रतिभूदत्त धनशीघ्रहीदूनादेनेका प्रमाणठीकहै इसमेंकिंचित्भी अपेक्षा कालक्रमसे दूनाहोनेकीनहींहै क्योंकि यहवचन केवलइसी विषयके निमित्तमें आरम्भकियागया और इसमें कोई सा विशेषणभी ऐसानहींहै कि जिस्से कालक्रमसे वृद्धिहोनेका सम्बन्ध पायाजाय इसलिये कालक्रमकी यहांपरउपेक्षाहै और मूलवाक्यमें जो कुछकहासो सबयथोचित कहा ॥ ५७ ॥

सन्ततिःस्त्रीपशुष्वेवधान्यन्त्रिगुणमेवच । वस्त्रंचतुर्गुणंप्रोक्तंरसस्याष्टगुणस्तथा ५८ ॥

पक्ष०-पशुस्त्रियोंमेंसन्ततिही और धान्यत्रिगुनावस्त्रचौगुनेकहेतथारसकाअष्टगुण५८

भि०-पशुस्त्री गऊभैंसआदि जो प्रतिभूकोऋणीके बदलेदेनीपरीहोतौ उसकीवृद्धि में केवलसन्तानमात्र प्रतिभूपासक्ताहै और कुछनहीं- यदिप्रतिभूको नाजआदि कोई धान्यदेनापराहो तौ ऋणीसे त्रिगुण पानेका अधिकारी है-यदि प्रतिभूको वस्त्र देनपरे हों तौ चौगुने पानेका अधिकारी है-यदिप्रतिभूको तैल घृतआदि कोईरसदेनापराहो तौ आठगुणातक पानेकाअधिकारीहै ५८ ॥

भावि०-ऊर्ध्वोक्त अभिप्रायार्थमें कहेहुये नियमोंका सिद्धांत ४० के श्लोक मूलसे संबंध रखताहै अर्थात् सोना चांदीआदिके द्विगुणवत् परावृद्धिजैसे ४० के श्लोकमें भिन्न वस्तुओंपर कहचुकेहैं वही परावृद्धि यहां प्रतिभूदत्त वस्तुओंपर कालविशेषकी उपेक्षापूर्वक शीघ्रहीदेनेयोग्य है-यद्यपि-यह व्यवस्था किसीप्राचीनसमयकेअनुसार यथार्थ कहीगईथी तथापि प्रत्येकसमय इसकासंभव नहींसमुझना किंतु यहव्यवस्था

ऐसी दशाओंपर संभव है कि जब धान्यवस्तु प्रतिभूको देनीपरी तब तौ एकरुपये की एकमन विकतीथी और जब ऋणीसेलेनीपरी तब दोमन बिकनेलगी तौ इसदशा में अवश्यही त्रिगुणपासक्ताहै ऐसेहीवस्त्र वा रसकेमध्ये समुझलेना ५८ ॥ इतिप्रतिभूद्त्तस्य प्रतिक्रियाविधिः॥ ज्ञातव्य है कि धन के प्रयोगोंमें धनीलोगोंको दो प्रकार से विश्वास होताहै अर्थात् या तौ (प्रतिभू) खड़ाहोने से विश्वासआताहै यद्वा (आधि) रखलेनेसे सोई नारदने कहाहै-यथा(विस्रंभहेतूद्वावत्रप्रतिभूराधिरेवच)-अर्थात् इस संसारमें धनकेप्रयोगों मध्ये (विस्रंभ) नाम विश्वासके दोहेतु होतेहैं एक तौ (प्रतिभू) और दूसरा (आधि) नाम गिरवीरखलेना इनमेंसेप्रतिभूका निरूपण यहांतक दो परिच्छेदोंमें होचुका अब नीचे के परिच्छेदमें (आधि)का निरूपण कियाजायगा ५८ ॥

अथऋणादानसम्बंधे-आधिनिरूपणविवेकोनामात्रिंशःपरिच्छेदः ३० ॥

इस तीसवें परिच्छेद में वह वार्ता वर्णन होगी जिस्से गिरवी रखने की मर्यादें जानी जायँ ॥

आधिःप्रणश्येद्द्विगुणेधनेयदिनमोक्ष्यते। कालेकालकृतोनश्येत्फलभोग्योननश्यति ५९ ॥

अक्ष०-द्विगुणधनमें जो (आधि) नहीं छुड़ाइये तौ प्रणाशहोजावे-कालकृत काल में नाशहोवै-फलभोग्य नहीं नाश होताहै ५९ ॥

अभि०-(आधि)उसवस्तुको कहते हैं कि जो ऋणी अपने धनीसे लियेहुये धन के ऊपर विश्वासकेलिये धनी पासरखदेताहै सो वह (आधि)दो भाँतिकाहोताहै एकतौ (कृतकाल) १ दूसरा(अकृतकाल) २ कृतकाल उसेकहतेहैं जिसमें छुड़ानेमध्ये काल का नियमकियाहो जैसे दीपमालिकातक या होलिकातक छुड़ालेजाऊँगा यदि नहीं छुड़ाऊँ तौ यह आधि तुम्हाराहीहोजायगा अकृतकाल वह कहाताहै जिसमें कालका नियमनहींकियाहो-फिर इनके भी एक एकके दोदोभेदहैं अर्थात् गोप्य १ और भोग्य २ यह दोनोंभेद उन्हीं दोनोंमें होतेहैं (गोप्यआदि) उसेकहतेहैं कि जबतक वह छुटायाजाय तबतक उसकी रक्षामात्र धनीको करनीचाहिये किंतु वस्तुको भोगैनहीं और (भोग्यआधि) वह कहाताहै जिसका व्याजनहींठहराहो व्याजके बदले वस्तुका भोग ठहराहो इसहेतुसे वह उसवस्तुके उपलाभरूपी फलोंको भोगताहै इस अभिप्रायार्थ का शेष अभिप्राय अधिकोक्तिके अंतमें देखो ५९ ॥

अधि०-इन भेदोंको नारदजीने स्पष्टरूपमें कहाहै-यथा(अधिक्रियतइत्याधिस्सविज्ञेयोद्विलक्षणः। कृतकालोपनेयश्चयावद्देयोद्यतस्तथा॥ सपुनर्द्विविधःप्रोक्तोगोप्योभोग्यस्तथैवच)अर्थात्-धनीको आधारबनाकर उसमें वस्तुका आधानकरतेहैं इसलिये इसको आधिकहतेहैं वही आधि दो लक्षणोंवाला विज्ञेयहै कि जैसा२ ऊपर कहचुके हैं एकतौ (कृतकाल) वह कि जो उपनेयहो अर्थात कियेहुयेकालके समयपर छुड़ाकर

अपनेसमीपलेलेनेयोग्यहो दूसरा (अकृतकाल)वह कि जो यावद्देयोद्यतहो अर्थात् जिस में कालका नियमनहीं पर यहनियमहै कि जबतक व्याजदियेजावें और जबतक मूलधन उद्धारकरसकें तबतक यह आधिरक्खारहै-वही आधि फिर एकएक दोदो भाँतिकाहोता है अर्थात् गोप्य और भोग्यभेदसे दोनोंके दोदोभेदहोजानेसे (आधि)चारप्रकारका होता है अर्थात् कृतकालगोप्य १ कृतकालभोग्य २ अकृतकालगोप्य ३ अकृतकालभोग्य ४ इनमें सबसे पहला आधिकृतकालगोप्य इसलिये कहलाता है कि कियेहुये कालके नियमतक ऋणीको व्याज देना होताहै और धनीको उसवस्तुकी रक्षाकरनी होती है फिर उसीसमयपर छुड़ाया जाताहै और यदि नहींछुड़ायाजाय तौफिर वस्तु धनीकी होजातीहै पीछेवह छुटानेसे नहीं पासक्ताहै-१-दूसरा आधि कृतकालभोग्य इस हेतुसे कहाताहै कि जब कोईवस्तु ऐसीहो जिसमें कुछ उपलाभ होताहो जैसे खेतका पोत या बागके फलफूल आदि या मकानकाभाड़ा इत्यादि कोईवस्तु आधिकरीजावै और यहबातभी ठहरीहो कि इसका व्याज नहींदिया जायगा फलभोगही इसका व्याजहै और यहभी नियम ठहराहो कि अमुक समयतक छुड़ालूँगा तौ यह आधि कृतकाल भोग्य कहलावैगा २-तीसरा आधि अकृतकालगोप्य इसहेतुसे कहाताहै कि उसमें कालका कुछ नियम नहीं होता किंतु जबतक व्याज और मूलधन उद्धार करसकें तबतक धनी को रक्षाकरनी होती है ऋणीको व्याजदेना होता है ३-चौथा आधि अकृतकालभोग्य इस हेतु से कहाता है कि उसमें भी जब उपलाभोंवाली वस्तु आधिरक्खीजावै और कालका कुछ नियमनहींहोवै और यह भी नियमठहराहो कि इसका व्याजनहीं देवैंगे किंतु फल भोगही इसका व्याजहै और कालका जो नियम इसमें नहींहै इसलिये जबतक मैं मूलधन उद्धारकरसकौं तबतक इसवस्तुके उपलाभरूपी फलभोगतेरहो सो यह अकृतकाल भोग्य आधिकहलाताहै ४-ये चारोंभाँति के (आधि) निश्चितहोचुके अब योगीश्वरोक्त इसी ५९ के मूल श्लोकद्वारा (अभिप्रायार्थकी शेष व्यवस्थाकहतेहैं) कि (आधि) रखकर लियेहुये ऋणपर जो कुछवृद्धि ठहरीहो वही वृद्धि निरंतर प्रतिमास उद्धार न होने और कालके विलंबसे जब उस मूलधनकी बराबरहोजाय तब उसमूलधनके द्विगुणहोजानेपरभी यदि ऋणी उसको धनदेकर नहींछुड़ावै तौ वह (आधि) नाशहोजाता अर्थात् धनीकाहोजाताहै चाहै यह बात रखतेसमय ठहरीहो या न ठहरीहो परन्तु इसमर्यादाके प्रमाणसेही वह (आधि) धनीका धनहोजाता किंतु फिरपीछे नहींछूटसक्ताहै(पूर्वार्द्ध मूल श्लोकसे यह एकविधि केवल (अकृतकालगोप्य) आधिकेमध्ये कहीगई-अब-तीसरे पादसे द्वितीय विधिकहते हैं) कि (कालेकालकृतोनश्येत्) अर्थात् यदि (कृतकाल) आधिहो जिसमें कालका इसप्रकारसे नियमठहराहो कि इतने दिनोंकी अवधितक छुड़ालेजाऊँगा तौ फिर इ-

समें द्विगुण धनहोनेकी अपेक्षानहीं किंतु यह आधि अपने निरूपितकालपर यदि नहींछुड़ायाजाय तौ यह नाशहोजावै अर्थात् उत्तमर्णकाधनहोजावै यह मर्यादा इसमें अमिटहै चाहे उस निरूपितकालपर ब्याजवृद्धिके हेतुसे मूलधन दूनाहुआहो या न हुआहो अथवा दूनेसे भी अधिकहोगयाहो परंतु अपेक्षा इसमें केवल उसी निरूपितकालसे होतीहै (यह द्वितीय विधि (कृतकालगोप्य) और (कृतकालभोग्य) इन दोनों भाँतिके आधिमध्ये कहीगई-अब-चौथेपादमूल श्लोकसे तृतीय विधिकहते हैं) कि (फलभोग्योननश्यति) अर्थात् यदि (अकृतकालभोग्य) आधिहो जिसमें छुड़ाने मध्ये कालका कुछ नियमनहींकियाहो और वह (आधि)रूपी वस्तुभी खेत बागीचा आदि ऐसीहो जिसके ब्याजमें उपलाभरूपी फलभोगने धनीके निमित्तमें ठहरेहों तौ इसीको (फलभोग्यमाधि)भी कहतेहैं सो इसफलभोग्य आधिकानाश कदाचित्‌भी नहींहोसक्ता अर्थात् इसआधिकारखनेवाला जब चाहे तब शतधावर्षोंतक मूलधनदेकरछुड़ासक्ता है-यह चारोंभांतिके आधिमध्ये तीनविधिकी मर्यादा कहीगई-परन्तु आधिका विनाश चाहे द्विगुणधन होने से हुआ हो यद्वा निरूपितकालके अतिक्रमसे हुआहो किन्तु दोनोंदशामें ऋणीको चौदह १४ दिनकी अवधि और भी देदीजातीहै सोई बृहस्पति का यह वचन है-यथा(हिरण्येद्विगुणीभूतेपूर्णेकालेकृतावधेः। बंधकस्यधनीस्वामीद्विः सप्ताहंप्रतीक्ष्यच॥तदंतराधनंदत्वाऋणीबंधमवाप्नुयात्)अर्थात् हिरण्यनामधनके दूने होजानेपर यद्वा करीहुई अवधिका काल पूर्णहोजानेपर (बंधक) नाम आधिवस्तुका स्वामी वहीधनीहोजाताहै जिसकेपास बंधक रक्खाहो-परन्तु-दो सप्ताहनाम १४ दिन पर्यंत प्रतीक्षाकिये पीछे स्वामीहोताहै क्योंकि जो ऋणी इन१४दिनके बीचभीआकर अपना बंधछुड़ावै तौ धनदेकर बंधक पासक्ताहै-(अथतर्कवादः) क्योंजी यहजो कहागया कि (आधि)का नाशहोजावै सो यह कथन तौ इसबार्त्तामें अनुपपन्नहै क्योंकि वह आधिरूपी वस्तु ऋणी जबतक किसीको न देडालै या बेंचैनहीं तबतक ऋणीका स्वत्व वा स्वामित्व उसमेंसे नहींजासक्ता किंतु सर्वसाधारण यहमर्यादा नियत है कि दान या विक्रय विना किसीवस्तुमें से स्वामीके स्वामित्वकी निवृत्ति नहींहोती और इधर वहधनी जिसकेपास (बंधक)धरागया प्रतिग्रह या क्रयके द्वारा स्वीकार नकरै तबतक उसकास्वत्व उसमेंनहीं पहुँचसक्ता किंतु सर्वसाधारण यहमर्यादानियत है किकोई वस्तु प्रतिग्रह या क्रयकेविना अपनीनहीं होसक्ती-और-तीसरे मनुके भी इस वचनसे विरोधआता है कि (नचाधेःकालसंरोधान्निसर्गोऽस्तिनविक्रयः)अर्थात्-कालके (संरोध)नाम अतिकाल तकरक्खा रहनेसे आधिका निस्सर्ग और विक्रयनहीं होता किंतु उत्तमर्ण अपनेपास धरेहुये आधिको न तौ किसी दूसरेधनी के पासबंध रखसक्ताहै और न उसकाविक्रय करसक्ताहै यह मनुजीने कहाहै जबकिउसको अन्य-

(आधीकरण) और विक्रय इनदोनों बातमें अधिकारही नहीं तौ फिर उसकास्वत्व में क्योंकर होसक्ताहै कि १४ दिनकी अवधितक बाट निहारे पीछेवहउस आधि का मालिक होजावै-(अस्योत्तरम्)सुनौ आधीकरण अर्थात् गहनेधरना यहलोकमें प्रसिद्धहै कि यद्यपि रखनेके समयसेही धरनेवाले ऋणीकास्वत्व उसमेंसे जातारहता है परन्तु यहस्वत्वकी निवृत्ति सोपाधिकहुआ करतीहै किन्तुइसमें ऋणीको यह (उपाधि)नाम अभिमान लगारहताहै किकव रुपये उसकेदेवैं और कबचीज़ हाथआवै या जबदेवैंगे तभी अपनीचीज़ उस्से लेलेवैंगे-ऐसेही-धनीकाभी स्वत्वउसमें अपनेपास रखलेने के समयसेही उत्पन्न होजाताहै परन्तु यह सोपाधिक स्वत्वप्रसिद्धहै क्योंकि इसमें यह(उपाधि)नाम चिन्तायाा झगड़ालगा रहताहै कि न जानिये ऋणी किसबेरा द्रव्यदेकर अपनी चीज़ मांगनेलगै तब देदेनीहोगी-तहां-जब मूलधनके दूने होजाने पर यद्वा निरूपित कालकी अवधि प्राप्तहोनेपर भी ऋणीसे निपटउसका द्रव्य नहीं दियाजावै तब इस वचनके प्रमाणसे निपट उसकीस्वत्व निवृत्ति उसबंधक वस्तुसे होजातीहै तभी उस उत्तमर्णका स्वत्व उसबंधकमें निपट आरोपित होजाताहै अर्थात् फिरवह उपाधि शेषनहीं रहती जिसकाचर्चा अभीकियाथा किन्तु दोनोंओरसे निःशेष उपाधिनष्ट होजाती है-और मनुकेभी वचनसे विरोध इनमेंनहीं है-क्योंकि(न त्वेवाधौसोपकारेकौसीदींवृद्धिमाप्नुयात्)अर्थात्-कुसीदनाम ब्याजका व्यवहार तिसकी जो वृद्धिदेनी होती है सोकौसीदी वृद्धि कहाती वह कौसीदी वृद्धि व्यवहारी पुरुष सोपकार आधिपर नहींपावै यह मर्यादानियत है अर्थात् जोकोई वस्तु गहने धरी-जाय और वह ऐसी वस्तुहो जिसके वर्त्तावेसे व्यवहारी का कुछकाम निकलताहो जैसे वृषभ या तँमेड़ी या कराहीआदि तौफिर उसपर ब्याजनहीं पावै-इसवार्त्ताके संबन्ध में मनुजीने यह वचनकहा है कि(नचाधेःकालसंरोधान्निसर्गोस्तिनविक्रयः) अर्थात्-वही सोपकार आधि जिसका चर्चा अभी कियागया उसको फलभोग्य आधिभी निर्णय पूर्वक पहले कहचुकेहैं तिस आधिका यदि बहुतकालतक संरोध होजाय तौ उत्तमर्ण उसको नतौ किसी दूसरेकेपास आधि करसक्ताहै न आप उसको बेंचसक्ताहै क्योंकि बहुत कालतक संरोधहोनेसे भी कुछ उसकी हानिनहीं है किन्तु निरन्तर वृद्धिके पलटे फल भोगरूप उपकार होतारहता है फिर क्योंकर उसको बेंचने या गिरवी रखदेनेका अधिकार होसकै-इसहेतुसे फलभोग्य आधिमें बहुतकाल तकरक्खा रहनेपर भी उत्तमर्णका स्वत्वनहीं उत्पन्नहोता है इसीसे उसको अन्यत्र आधीकरण और विक्रयमें स्वाधीनता नहींहै-सोयहवात इस ग्रंथमें भी योगीश्वर ने इसी ५९के श्लोकमें चौथेपादसे कहदी है कि (फलभोग्योननश्यति) अर्थात् फलभोग्य आधि कभी नहीं नाशहोता और न उत्तमर्ण का स्वत्वउसमें पहुँचता है-और (गोप्यनामक)

आधिकेविषयपर मनुने भिन्न वचनकहाहै-यथा(नभोक्तव्योबलादाधिर्भुंजानोवृद्धिमुत्सृजेत्)अर्थात्-किसीउत्तमर्ण करके(गोप्य)नामकआधि न भोगनाचाहिये यदिकोई प्रबलतासे भोगताहो तौ वह वृद्धिलेना छोड़दे अर्थात् ऐसेभोक्ताको वृद्धि न दिलवानी चाहिये-सोयहवात इसग्रंथमें भी योगीश्वर अगले ६० के श्लोकमें पहलेपादसे कहेंगे कि (गोप्याधिभोगेनोवृद्धिः)अर्थात् गोप्यनामक आधिके भोगनेपर वृद्धिनहीं देनीचाहिये-और-इसी ५९ के श्लोकमें पूर्वार्द्ध जो यहकहा है कि (आधिःप्रणश्येद्विगुणेधनेयदिनमोक्ष्यते) अर्थात् आधि यदि दूनाधन होजानेपर भी नहीं छुड़ायाजाय तौवह आधिनाश होजावै किंतु उत्तमर्णका स्वत्व उसमें निरुपाधिक पैदाहोजावै सो यहबात प्रत्यक्षहै कि (गोप्य)आधिके निमित्तमें कहीहै-इसलिये जो कुछकहासो सबठीकहै इसमें कोई तर्कवाद नहीं आरोपित होसक्ताहै ५९ ॥ अबअगले साठिके श्लोकमें वह व्यवस्था वर्णनहोगी कि जो किसीने किसीप्रकारकी गोप्य आधिकाभोग कियाहो यद्वा किसीप्रकारकी भोग्य आधि अयथावत् करडालीहो या नष्टकरीहो या विनष्टहुई हो तिसके झगड़ामें जोकुछ न्याय वा इन्साफ़ उचितहो ५९॥

गोप्याधिभोगेनोवृद्धिःसोपकारेथहापिते। नष्टोदेयोविनष्टश्चदैवराजकृताहते ६०॥

अक्ष०—गोप्यआधि के भोगमें वृद्धिनहीं और सोपकार आधिको हापित करनेमें नष्टहुआ देय है और विनष्टभी दैवराजकृत के विना ६० ॥

अभि०—(गोप्यआधि)दो प्रकारका जो पहले कथनहोचुकाहै चाहे कृतकाल होचाहे अकृतकाल हो उसका(भोग)नाम वर्त्तावायदि किसीधनीने कियाहो अर्थात् ताम्रआदि किसी धातुका पात्र तँमेड़ी आदि या कराहीआदि जिसकाब्याज ठहरकर गोप्य आधि हुईहो धनी यदि उसको वर्त्तावेमें भी लायाहो तौ कुछभी ब्याजनहीं पावै किन्तु चाहेउसने थोड़ाही उपभोग कियाहो और व्याजवृद्धि उसकी वहुतसी होचुकीहो तौ कपर्दिका भी न पावै वरनउसमेंसे कुछपहले पाचुकाहो सोभी मूलधनमें से काटा जाय यहसिद्धांत है क्योंकि उसने समयसंमति के नियमको उलांघकर भिन्नमर्यादिक बातकरी-तथैव-(सोपकार) (आधि)अर्थात् जिनचीजों से कुछ उपकार होसक्ताहै जैसे वृषभ या तँमेड़ी या कराही आदि जो भोग्यआधि कहलासक्ते हैं परन्तु इनकी ब्याजवृद्धि ठहरकर गोप्यआधिकी रीतिसेरक्खेगयेहों और धनीनेयदिइनको(हापित) कियाहो अर्थात् वर्त्तावे द्वारा या और किसीप्रकारसे इनचीजोंको ऐसीहानि पहुँचाई हो जिससेयह कामकरने योग्यन रहीहों तौभी यथोक्त मर्यादाके अनुकूल वृद्धिनहीं पावै-तथैव-(नष्ट)हुआ आधिदेना चाहिये अर्थात् तँमेड़ी कराहीआदि कोईवस्तु जिसमें छिद्रकरदेने वा तोड़ने फोड़नेआदि कोईप्रकारसे विकृति पहुँचाकर ऐसीनाश कर

डाली हो जो पूर्ववत् न रहीहो तौ पूर्ववत् करवाकर देनीचाहिये-तिसमें भी यहविशेषता समुझनीचाहिये कि यदि(गोप्यआधि) केवल अरक्षण सेही विकृतकिया हो तौ पूर्ववत् निर्विकार करिकै देना चाहिये और जो बर्त्तावे में भी लायाहो तौवृद्धिभी छोड़नीचाहिये और जो भोग्यआधि विकृताकिया हो तौभी पूर्ववत् निर्विकार करिकैदेनाचाहिये परन्तु जो इसभोग्यआधि पर वृद्धिनहीं ठहरीहो तौ केवल वृद्धिहीछोड़नी चाहिये तथापि इसवार्त्तामें समय और वस्तुके अनुकूल व्यवस्थादेखनीचाहिये क्योंकिसर्वत्र और सभीवस्तु में एकहीसा प्रकार नहीं संभव है-और-(विनष्ट) भीदेय है किन्तु जो अत्यंतही विनाशको प्राप्तहुआ जैसे जातारहा खोयागयाहो सोभी उसवस्तुके मूल्य दान आदि प्रकारोंसेदेनाचाहिये यदिउसविनष्टहुई वस्तुको मूल्यद्वारा या और किसी प्रकारसे धनी देदेवै तौ ऋणीसेभी अपना मूलधन वृद्धिसहितपावै यदिन देवैतौ मूल धनभी नहींपावै-परन्तु दैव या राजकृत विनाशके विना किन्तुदैवकृत विनाश या राजकृत विनाशद्वारा विनष्टहुई वस्तु धनीसे नहीं दिलवानी चाहिये और इस दशामें ऋणीसे उसका धन दिलवाना चाहिये ६० ॥

भाधि०-इस वार्त्तामें नारदका यह वचन प्रमाणहै-यथा (विनष्टेमूलनाशःस्याद्दैव राजकृताहते)अर्थात्-यदि धनीसे किसी ऋणीकी आधिवस्तु विनाश होजावै तौ धनीका मूल धनभी विनाशहोवै-परन्तु-दैव या राजकृत विनाशके विना अर्थात् दैवकृत विनाश जैसे अग्निदाहसे जलिगईहो या जलके प्रबाह वा चढ़ावसे गलिगई या बहिगई हो अथवा सारे देशमें कोईसा उपद्रव उठने और भाजर परने आदि कारणोंसे विनष्टहुईहो तौ यह दैवकृत विनाशहै इसमें विनष्टहुई वस्तु धनीसे नहीं दिलवानी चाहिये बरन इस दशामें ऋणीसे उसकाधन दिलवाना चाहिये-एवं-यदि राज विध्वंस यद्वा राजयुद्धादि कारणों से विनाशहुईहो तौ यह राजकृत विनाश है ऐसी वस्तु धनीसे नहीं दिलवानी चाहिये बरन इसदशामें ऋणीसे उसकाधन वृद्धि सहित दिलवाना चाहिये तथापि यदि राजकृत विनाश ऐसेहेतुसे उत्पन्नहुआहो कि धनीने कुछराजाका अपराध कियाहो तौ फिरयह विनाश राजकृत विनाशकी पदवी को नहीं पहुँचसक्ता अर्थात् इसदशामें धनीसेही ऋणीकी वस्तु दिलवानी चाहिये यद्वा वस्तु न देसकै तौ मूलधनसेही हाथधो बैठे-परन्तु-यदि धनीके अपराध विना राजकृत विनाश उठाहोतौ फिर ऋणी उसकाधनदेवै अथवाकोई द्वितीयवस्तु उसके पास फिर (आधि) रखिदेवै-तथाच (स्रोतसापहृतेक्षेत्रेराज्ञाचैवापहारिते। आधिरन्योथकर्त्तव्योदेयंवाधनिनेधनम्) अर्थात्-यदि (आधि) कियाहुआ खेत किसी नदी आदिके प्रवाहसे अपहृत होजावै यद्वा राजा करके अपहरण कियाजाय तब ऋणी करकेउस खेतके बदले कोई अन्यखेत या कोई वस्तु धनीकेपास आधिकर

में देनी चाहिये यद्वा धनीकाधन देदेना चाहिये-इस वचनमें (स्रोतसापहृते) यह पदसमस्तदैवकृत विनाशोंका उपलक्षण है ६० ॥

अब नीचे परिग्रहद्वारा (आधि) का प्रमाण कहाजायगा ॥

आधेःस्वीकरणात्सिद्धीरक्ष्यमाणोप्यसारताम्। यातश्चेदन्यआधेयोधनभाग्वाधनीभवेत् ६१ ॥

अक्ष०-आधिके स्वीकरणसे सिद्धिहोतीहै-यदि रक्षाहोतेहुये भी असारताको पहुंचेतव अन्य आधि कर्त्तव्यहै यद्वा धनी अपना धनपावै ६१ ॥

अभि०-(आधि) चाहे भोग्यहो चाहे गोप्यहो परउसके (स्वीकरण) कहिये उपभोग विना सिद्धिनहीं होसक्ती अर्थात् जो कोई वस्तु अपने पासबन्धक रीतिसे रक्खीहो उसका थोड़ा वहुत कुछ उपभोग अपने स्वाधीनहो तब यह सिद्धि प्रकटहोतीहै कि निःसंदेह यह वस्तु इसकेपास वन्धकहै अन्यथा नहीं और (उपभोग) नाम यहां केवल वर्त्तावकाही नहीं किंतु कुछमें कुछ परिग्रह किन्तु क़ब्ज़ा अपने हाथमें चाहिये (दृष्टांत)जैसे एक मकान अपने पास(आधि) रक्खागया वह अपने निजस्थानसे दूर है तौ तालाकुंजी अपने हाथहोना यही उसका उपभोग है और इसीको स्वीकरण भी कहते हैं इत्यादिसर्वत्र यथा संभव ऊहा करलेनी चाहिये और जो किञ्चिन्मात्र भी क़ब्ज़ा अपने हाथमें नहो तौ फिर केवल साक्षियोंसे या लेख्यपत्रोंसेही आधिरख पानेकी सिद्धि नहीं निश्चितहोती और न केवल अपने मुखसे ब्योरा कहनेसे (यह पहले पादका अभिप्रायकहा)अबदूसरे पादसे चौथेतक यह कहते हैं कि यदि रक्खा हुआ (आधि) प्रयत्न पूर्वक रक्षा करतेहुये भी काल के बाहुल्य यद्वा वर्षाऋत्वादि कारणोंके वश होकर असारताको पहुँचे किन्तु ऐसा निकम्मा होजाय जिसके विक्रय द्वारा मूलधन वृद्धिसहित निकल आने की योग्यता उसमें न रहै तब इस दशा में ऋणीको यह उचितहै कि उसके पलटे कोई अन्यवस्तु (आधि) करदेवै अथवा धनी काधनउद्धार करदेवै ६१ ॥

आधि०-पहले पादसे कहीहुई मर्यादा मध्ये नारदका यह वचन प्रमाण है-यथा (आधिस्तुद्विविधःप्रोक्तोजंगमःस्थावरस्तथा। सिद्धिरस्योभयस्यापिभोगोयद्यस्थिनान्यथा)अर्थात्-नारदऋषि कहतेहैं कि (आधि) दो प्रकारका होताहै एकस्थावर दूसरा जंगम इनमें फिर चाहे भोग्यहो यद्वा गोप्यहो परंतु इन दोनोंकेही आधीकरणकी सिद्धि तभी जानीजाती है कि यदि भोग परिग्रह धनीके हाथहो अन्यथा नहीं-कदाचित् कोई यह (आशंका) आरोपितकरै कि इस तुपकंडनमें क्याफलसिद्धि निकसी किंतु यहबात प्रत्यक्षहै कि जो कोई किसीवस्तुको अपनेपास बंधकरक्खैगा वह अवश्य किसीप्रकारका परिग्रह अपनेहाथमेंरक्खैगा यद्वा किसीहेतुसे नहींभी रखसकाहो तौ [illegible] अनुसार न्यायकरसक्तेहैं अर्थात् पंद्रहवें परिच्छेद

बीसके मूलश्लोकसे कहचुकेहैं कि राजा छलोंको निकालकर वास्तवरूपसे व्यवहारों को फैसलकरै तौ फिरऐसाअन्याय क्योंकरहोसक्ताहै कि जोवस्तु किसीधनीने धनदेकर अपनेपास बंधकरक्खी वह केवल परिग्रहके न होनेसे (आधि) उसका नहींठहरै तहाँ पर यह (समाधान) है कि वह वास्तवकी मर्यादा इसमें नहींलगसक्ती किंतु इसमें सत्रहवें परिच्छेदगत चौबीसवें मूल श्लोक से कहीहुई मर्यादा घटितहोतीहै क्योंकि जब किसीधारणिकने कोईवस्तु किसीधनीकेपास बंधकरक्खी और उसधनीने धनदिये पीछे उस वस्तुपर परिग्रह अपना नहींरक्खा और उसधारणिकने ऐसा अवसर देखि अपनी दुर्वृत्तिसे उसीवस्तुको किसी द्वितीयधनीके पास फिर (आधि) करदिया और उस द्वितीयधनीने धनदिये पीछे यथोचितप्रकारसे परिग्रह अपनाकरलिया इसपीछे किसी कालांतरमें यह प्रपंच उसका प्रकटहुआ और विवादका अभियोग राजद्वार आदि किसीन्यायाधिकारी के सन्मुखपहुँचा तब चौबीसवें मूल श्लोकसेही न्यायकी प्रवृत्ति यद्यपिहोसक्तीहै किंतु उसमें यह मर्यादा नियतहै कि यद्यपि सभीअर्थ विवादों में उत्तरक्रिया बलवतीहोतीहै परंतु (आधि) रखलेनेमें (प्रतिग्रह) केपानेमें किसीवस्तुका (क्रय) करनेमें पूर्वक्रिया बलवतीहोतीहै अर्थात् जिसने पहले गिरवीरक्खीहोया पहले दानपायाहो या पहले चीज़ख़रीदीहो उसीकी जयहोनीचाहिये और पीछे वाले की पराजयहोनीचाहिये परंतु यह पहले पुरुषकीजय उसीदशामेंहोसक्तीथी कि यदि उसने परिग्रह अपनेहाथमेंरक्खाहो तो जिस्से उसका (आधि) रखलेना सच्चाजाना जाता इसलिये पूर्वक्रियाभी स्वीकारांतहो तौ बलवती समुझनीचाहिये स्वीकारहीनहो तौ निर्बल समुझनीचाहिये इस्से यह (सिद्धांत) पायागया कि उत्तर क्रियावाला यदि परिग्रहवान्हो तौ फिर उसीकी जयहोनीचाहिये (अत्रन्यायस्वरूपं) यद्यपि यह सिद्धांतभी पायागया और वीसवें श्लोकवाली मर्यादा इसमें संगतनहींहोसक्ती तथापि उस मर्यादाकी हानि नहींकहीजासक्ती किंतु वह मर्यादा सर्वत्र बलवतीहोसक्तीहै परंतु यह ६१ के श्लोकवाला पहलापाद इस निमित्तसे कहागयाहै कि जब छलोंका शोधन और वास्तवका परिज्ञान यथावत् न होसकै तब ऐसी संदिग्धदशामें अत्रोक्त मर्यादाके अनुसार मुक़द्दमेहका फ़ैसलाहोनाचाहिये (दृष्टांत) जैसे पहलाधनी धनदियेपीछे बंधक वस्तुपर परिग्रह अपनारखतारहाहो और ऐसीदशापर भी धारणिकने दुर्वृत्तिसे किसी द्वितीय धनीसे धनलेकर उसीवस्तुको उसके नाम (आधि) लिखदियाहो चाहे वह द्वितीय धनी पहले धनीपर बंधकहोनेकी व्यवस्थाको जानताहो या न जानताहो परंतु उस दूसरेधनीका क़ब्ज़ा उसपर न होसका और कदाचित् उसीवस्तुपर विवाद खड़ाहो तब तौ प्रत्यक्षहै कि चोवीसके श्लोक द्वारा पूर्वधनीकी जयलिखीजाय क्योंकि उसको पूर्वक्रियाके सिवाय परिग्रह भी उसीके हाथमें प्रत्यक्षहै-परंतु-जहाँ पूर्वधनी तौ

परिग्रहरहितहो और द्वितीयधनी परिग्रहवान्हो तहाँभी जबतक वास्तवद्वारा यह निश्चितहोसकै कि यद्यपि क़ब्ज़ा उसकेपास नहीं पर यहवस्तु यथार्थमें उस पूर्वधनी केही पास पहले बंधकहुईथी और अबतक छूटीनहींथी कि बीचमें दूसरेने दुर्वृत्तिसे यद्वा अज्ञानतासे अपनेपास आधि करवाकर क़ब्ज़ा उसपरकरलियाहै तब तौ पूर्व-धनीकीही जयलिखीजावै-और-जो यहबात अच्छीतरह यथार्थ निश्चित न होसकै तौ फिर उत्तर धनीकीजयहोनीचाहिये क्योंकि प्रत्यक्ष उसकेहाथमें परिग्रहदेखपरता है-अथवा-जहाँ ऐसीदशा उपस्थितहो कि पूर्वधनी और उत्तरधनी दोनोंकेही पास कुछ क़ब्ज़ा (आधि) का नहीं परंतु धन दोनोंनेही दिया और बंधक अपने पासकिया था तव कुछ परिग्रह के अनुसार जय पराजयका चर्चानहीं किन्तु केवल चौबीसके श्लोक द्वारा पहले पीछे धरने के अनुसार पूर्वधनी की जय लिखीजावै-परंतु-जहाँ ऐसीदशा उपस्थित होकि दोनोंमेंसे एकसच्चाधनी और एक झूँठाधनी बनकरऋणी के प्रपंच संमतसे यह कहताहो कि वस्तु मेरेपास बंधक है और इस प्रपंचमें उसके झूँठापनकी परीक्षा न होसक्तीहो तौफिर पूर्वक्रिया और उत्तरक्रियाके सिवाय परिग्रह भी अवश्य देखाजायगा किंतु परिग्रहवान्की जयहोसकैगी-औरजो-प्रपंचकी परीक्षा होसकने से झूँठापन उसका जानाजाय तौ फिर झूँठेका परिग्रह होने परभी उसकी पराजय होनीचाहिये इस निमित्तसे यह ६१के श्लोकमें पहलापाद कहागया जिसकी अधिकोक्ति यहांतक पूरीहुई-और शेष तीनोंपादसे जो मर्यादा ऊपर अभिप्रायार्थमें कहचुकेहैं उसमें यहवार्ता जो कहीहै कि रक्षाकरतेहुयेभी यदि असारताको पहुँचैइस कथनसे यह शिक्षा विज्ञापित करीहै कि जोकोई धनी किसीकी वस्तुको अपने पास गिरवी रक्खै तौ वहयत्नपूर्वक उसकी रक्षावनीरक्खै किंतु रक्षासे उपेक्षान करै ६१॥ अबनीचेके श्लोकमें उसमर्यादाका अपवाद कहैंगे किजो५९के श्लोकके पहलेअर्द्धमें कहचुकेहैं कि आधि यदि दूनाधन होजानेपरभी नहींछुटायाजाय तौ प्रणाश होजावै किन्तु फिर पीछेनहीं छूटसकै इसके अपवादरूपसे यहकहेंगे कि विरली दशामेंधनके द्विगुण होजानेपरभी आधिनहीं नाशहोता ६१॥

चरित्रबंधककृतंसवृद्ध्यादापयेद्धनम्। सत्यंकारकृतंद्रव्यंद्विगुणंप्रतिदापयेत् ६२॥

भ्रष०-चरित्र बंधक कियाहोतौ राजा वह धन वृद्धि सहित दिलावै-सत्यकारसे कियाहुआ द्रव्यदूना दिलवावै ६२॥

भनि०-चरित्र बंधक उसेकहतेहैं कि जोमनुष्यके चरित्रोंका शोधनकिये पीछेन्यू-नाधिक मूल्यकीवस्तुभी निःशंक आधिकरण होजातीहै अर्थात् धनीका आशयस्वच्छ जानिकर अधमर्णचाहे बहुमूल्यवस्तु आधि करिकै थोड़ाद्रव्य लेजावैतौ इसकानाम चरित्र बंधक होता है यद्वा अधमर्णका अंतःकरण शुद्धजानिकर धनी उसको थोड़े

मूल्यकी बंधकवस्तु रखकर अधिक ऋण देदेवैतौभी इसकानाम चरित्रबंधक होताहै ऐसे चरित्रबंधक प्रकारसे जहाँकहीं आधि रक्खागयाहो और उसमेंकभी द्विगुणधन होजानेपर विवाद खड़ाहोनेसे निर्णयकी अपेक्षाहो तव निर्णय करनेवाला राजा निःसंदेह ऐसेधनको वृद्धिसहित दिलावै और वृद्धिसहित कहनेका यहआशयहै कि यदि दूनाधन होनेके भीतरही विवादहो तवतौ काल बिलंबके अनुसार वृद्धि जोड़कर दिलानी चाहिये और जो ब्याजके बढ़नेसे मूलधन दूनाहोगयाहो तौफिर व्याजवृद्धिसे द्विगुणताको पहुँचाहुआ धनही दूनादिलवाकर बंधक वस्तुछुड़वादेवै किन्तु ५९ के श्लोक पूर्वार्द्धमें कहीहुई मर्यादा अनुसार यह फ़ैसला न करनाचाहिये कि यह बंधक वस्तु अबनहीं छूटसक्ती इसमें हिरण्यकी द्विगुणताहुये पीछेदोसप्ताह औरभी व्यतीत होकर अतिकाल होगया-क्योंकि यहमर्यादा उस ५९के श्लोकमें कहीहुई उसीदशापर आरूढ़है कि जवमूलधनसे द्विगुण मूल्यके अनुमानवाली वस्तु रक्खीगईहो-और-जो-वही मर्यादा इस (चरित्रबंधक) मेंभी संबंधित करीजायतौ फिर यहअन्यायशंका प्रकट होतीहै कि यदि थोड़ेमूल्यकी वस्तु बंधक धरिकै ऋणीउस्सेकुछ अधिक द्रव्यलेचुका होतौ इसदशामें धनीकी हानिहोगी यद्वा ऋणी अपनी बहुगुणमूल्यकीवस्तु धरिकै थोड़ा ऋणलेगयाहो तौ उस ऋणीको हानि पहुँचेगी इसहेतुसे चरित्र बंधकमें(आधि) काप्रणाश नहीं होसक्ता यह (अपवाद) उसी ५९के श्लोक मूल पहले अद्धापर कहागया यह इसी ६२के श्लोक मूल पूर्वार्द्धका अभिप्राय हुआ-अब इसीके उत्तरार्द्धसे दूसरी बात कहतेहैं कि यदिबंधक (सत्यंकार) लक्षणसे कियाहोतौ फिर अवश्यहीदूना दिलवावै (सत्यंकार) सत्यवचनको कहतेहैं यहाँपर इसका यहभावार्थहै कि यदि बंधकरखते समय परस्पर दोनोंने सत्यभावसे यहभाषा उच्चारण करीहो कि चाहै व्याजके उद्धार न होनेसे मूलधन दूना होजाय और उसके पीछे दो सप्ताहकी अवधि भी व्यतीत होजाय परहमतुम दोनोंके वीच उसद्विगुण धनकादेना लेना मुख्यबना रहेगा अर्थात् बन्धकवस्तु का नाश न होसकेगा ऐसीदृढ़प्रतिज्ञाके होनेपरभी कदाचित् उनमें विवादहोकर राजद्वारतक अभियोग पहुँचै तव राजाऐसी दशामें अवश्यही उस प्रतिज्ञाकेअनुसार दूनादिलवावै और आधिकानाश न होनेदेवै चाहैकितनाही काल व्यतीत हुआहो इसबातसे कुछअपेक्षानहीं ६२ ॥

अधि०-इसी ६२ के श्लोकपूर्वार्द्धका दूसरा अर्थभी होताहै इसप्रकारसे कि यहांपर चरित्रशब्दसे गङ्गास्नान अग्निहोत्र आदि जो कुछपुण्य कर्मअपना नियमोंसेसाधन कियाहुआ सञ्चितहो और अपनेपास अन्यवस्तु के अभावसे वहीपुण्य (आधि)कर देनापरै तवयहआधि (चरित्रबन्धक) नामकहाताहै-इसप्रकारके बन्धकमें यदिव्याजके उद्धार न होनेसे मूलधनदूना होजावे चाहैदोसप्ताहके सिवायकितनाही बिलम्बहोजा-

वै तौ भी राजा दूनाद्रव्यदिलावे किंतुऐसे (आधि) कानाशनहीं होसक्ता-इसी ६२ के श्लोक उत्तरार्द्धसेभी एकदूसरा अर्थांतर अङ्गीकार करिकै(आधि)केप्रसङ्गसे तद्वत् अन्य वार्ताकहतेहैं कि राजा (सत्यंकारकृत) द्रव्यद्विगुणता बिनाहुयेभी दूनादिलवावै अर्थात् जबकोई साधारणभावसे क्रयबिक्रय आदिव्यवस्था के निर्वाह निमित्तमें अपनेहाथ कीअँगूठी मालाआदि कुछभूषण वस्तु यद्वा इसप्रकारकी कोईबस्तु किसीके हाथमेंदे दीहो उसव्यवस्थाका अतिक्रमहोजानेपर दूनादिलवावै अर्थात् यदि अँगूठी आदि कादेनेवालाही व्यवस्थाका अतिक्रमकरै तौ उसीसेदूनादिलवावै यद्वाअँगूठी आदि कालेनेवाला इसव्यवस्थाका अतिक्रमकरै तौ उससेदूना दिलवावै(दृष्टान्त) जैसेकिसी मेलामें या कहींकी पैंठमें किसीमनुष्यने घोड़ाखरीदा या और कोई बस्तुली परउस वेराउसकामोल पूरादेनेयोग्य द्रव्यपासनहीं इसअपेक्षामें अपनेहाथकी अँगूठीलेकर किसीजानकारके हाथरक्खी और कहाकि यहइतने का मालहै और इतनेआवश्यक मुद्राआपदेदीजिये इसघोड़ेको घरले चलकर आपकेरुपये दियेजायँगे यद्वाऐसा नियमकरदेवे कि एकअठवारेमें या पखवारेमेंदेदेवेंगे तौ यहबात उनदोनोंके बीचएक व्यवस्था ठहरी और अँगूठीके विश्वासपर लियेहुये रुपये तथा वह अँगूठीभी सत्यङ्कारकृतद्रव्यकहलाया और घोड़ेकाखरीदना तथाउसके मोलकापूरा भर्तकरदेना यही क्रयविक्रयका निर्व्वाह ठहरा जिसकेलिये तत्कालऐसा करनापरा-परन्तु-इसनिर्व्वाह केहोचुकेपीछे उसठहरीहुई व्यवस्थाकी अवधितक वहसत्यङ्कारकृतद्रव्य उसकादेकर निजअँगूठीनहींलेवे और अँगूठीयदिऐसीहो किउसकेविश्वासपर बीसरुपये दियेगये और बेचीजाय तौ पन्द्रहको बिकसकै तौ इसदशामें कहसक्तेहैं कि उसअँगूठीकेदेने वालेने व्यवस्थाका अतिक्रमकिया तबउस्से उन्हींरुपयोंसे दूनादिलवावै-अथवा-वह अपनीनियत अवधितक रुपयेउसके लेजाकर अँगूठी अपनीमाँगै और कदाचित् वहअँगूठी इसकीदेनेमें किसीलालचसे झमेलकरै और अँगूठी इसकी बीसकीमालियतहै जिसकेबदले पाँच या दश रुपयेइसनेलियेथे तब ऐसीदशामें कहसक्तेहैंकि उस अँगूठीके लेनेवालेने व्यवस्थाकाअतिक्रमकिया तबइसपुरुषपर उसीअँगूठीकी मालियतसेदूना दिलवावै-जैसायहघोड़ेके क्रयकरनेपर दृष्टान्त कहा तैसेहीविक्रयपरभी यहीव्यवस्थाहोतीहै(यथा)किसीनेयहकहकर अपनीमाला किसीकेहाथमेंरक्खी कि मैं अपना अमुकधन विक्रयकरनेको अमुकमेलेमें जायाचाहताहूँ परइतनेखर्चबिनाजानानहींहोसक्ता और न मालविकसक्ताहै इसनिर्व्वाहकेलिये यहरुपया मैं चाहताहूँ वहाँसे मालबेंचकर आतेपर देकरमाला लेजाऊँगा-यहविक्रयका दृष्टान्त हुआ-ऐसेही क्रयविक्रय (आदि) इसआदिशब्दमें और भी बहुधादशाओंपर यहीव्यवस्था होतीहै जैसे बरातकरिआनेतक ऐसा करेंगाइत्यादिअनेकभेदोंकी ऊहा करिलेनी चाहिये

इसको आधि नहीं कहते किन्तु यह आधिके प्रसंगमात्रसे सत्यंकार कृत कहलाताहै ६२॥

अब नीचे के श्लोकमें यहबात कहेंगे कि जब अधमर्ण आधिको छुड़ाना चाहै उत्तमर्ण उसमें झमेलकरै या अपने घर मौजूदनहो तबक्या करनाचाहियेइ२॥

उपस्थितस्यमोक्तव्यआधिःस्तेनोऽन्यथाभवेत्। प्रयोजकेऽसतिधनंकुलेऽन्यस्याधिमाप्नुयात् ६३॥

प्रक्ष०–उपस्थित ऋणीका आधि मोक्तव्यहै अन्यथा स्तेनहोवै-प्रयोजकके नहोने में धन अन्यके हाथ कुलमें देकर आधिपावै ६३॥

अभि०–उपस्थित नाम आधिके छुड़ानेपर मौजूदहुये ऋणी का आधि तत्काल छोड़देना चाहिये किन्तु वृद्धिके लोभसे छोड़नेमें झमेला नहीं करै यदि ऐसे समय पर न छोड़ै तौ धनी चोरहोवै अर्थात् चोरों के समान दंड्य निश्चित कियाजावै–कदाचित् ऐसे समयपर (प्रयोजक) नाम धनी अपनेघर मौजूद न हो तब उसके कुल में जो कोई उसकी ओरसे प्रमाणीक अधिकारीहो तिसके हाथमें वृद्धि सहित धन देकर अधमर्ण अपना आधिपावै ६३॥

अधि०–इस आज्ञासे यहबात पाईगई कि यदि प्रयोक्ताके मौजूद न होनेपर उस के कुलमें उसकीओरसे कोई पूर्ण अधिकारी भी विश्वासपात्र ऐसानहो जिसके हाथ में धनदेकर आधि छूटसकै तब ऐसी दशामें यह योग्यता पाईजातीहै कि उसग्राम का कोई मुखिया या पूर्ण अधिकारी जो विश्वासपात्र हो तिसको भी धन सौंपकर (आधि) छूट सक्ताहै यद्वा उसग्रामका संवन्धी कोई नगर जिसमें राजधानीकास्थान या उपकल्पहो ऐसे विख्यात राजद्वार में भी धन सौंपकर आधि छूटसक्ताहै-परन्तु-यहबात उसदशामें संभव होसक्तीहै कि यदि आधि (स्थावरधन) जैसा खेतबगीचा मकान आदिहो और उस विदेशवासी प्रयोक्ताधनीके शीघ्र लौटिआनेका भरोसा भी नहो किन्तु यदि एकमासके भीतर २ धनीके आजानेका विश्वासहो तौ फिर इस वातकी आवश्यकता नहीं-और-उसदशामें भी इसबातका संभवनहींहै कि यदि आधि (अस्थावर) नाम जंगमधनहो जैसा आभूषण या वस्त्रादिक जो उसधनीके आयेविना किसीके हाथ नहीं आसक्ता-इन कारणोंके अनुसार उसी पूर्वोक्त आज्ञासे यहवात भी पाईगई कि यदि प्रयोक्ताधनी किसी ऐसे लंवे देशांतर को तीर्थाटन आदि निमित्तोंसे जानाचाहै कि अतिविलम्बमें परिवर्त्तनका संभवहो तौ अपने कुलमें किसी विश्वासपात्र अधिकारीको (आधि) सौंपजावै चाहै स्थावरहो यद्वा अस्थावरहो-और जो उसके कुलमें कोई ऐसा नहो तौ यथा संभव अपने ग्राम नगर आदिके अधिकारी या मुखियाकोही सौंपजावै-कदाचित्-अभियोक्ता धनी अपने प्रमाद वा अज्ञानतासेही आधि किसीको सौंपेविना चलागया और उसके लौटि आने में विलम्ब

का संभवहो और इसी अन्तरमें अधमर्ण उसका धनदेकर अपना आधिलेना चाहै तौभी ऊर्द्धोक्त मर्यादासे आधिछूटसक्ताहै परन्तु यदि आधिवस्तु कोई ऐसा अस्थावर धनहो जो अभियोक्ता धनीके आयेविना किसीके हाथनहीं आसक्ताहो तब अधमर्णकी इच्छासे ऐसा होसक्ताहै कि वह किसी विख्यात विश्वासपात्र को धनसौंप देवै तिसदिनसे व्याजवृद्धि चढ़नीबन्दहो और वहजंगम आधि अभियोक्ताके आने पर दिलायाजाय ६३ अब नीचेके श्लोकमें यहबात कहेंगे कि जब आधिको बेंचकर धनीका धन उद्धार होनेका समय प्रवर्तितहो और दोनोंमेंसे कोई एक उपस्थित न हो तब इसदशामें क्या कर्त्तव्यहै ६३॥

तत्कालकृतमूल्योवातत्रातिष्ठेदवृद्धिकः। विनाधारणिकाद्वापिविक्रीणीतससाक्षिकम् ६४॥

भाभि०-तत्काल मूल्य निश्चय कियाहुआ आधि-तत्रैव-अवृद्धिक धरारहै धारणिक विनाभी साक्षियों सहित बेंचदेवै ६४॥

मक्ष०-कदाचित् ऋणीयहबात चाहै कि मैं अपनेआधिको बेंचकर धनीकाधनउद्धार करों और धनी ऐसे समयपर अपनेघर मौजूदनहो बरन उसका कोई विश्वासपात्र अधिकारी भी मौजूद न हो-यद्वा-धनी या धनीके विश्वासपात्र अधिकारीकेहोतेहुये भी ऋणीअपना आधिबेंचकर धनदेनाचाहै तब इन दोनोंदशामें यहबातहोनीचाहिये कि उसऋणीकी इच्छानुसार तत्कालही(आधि) का मूल्य निश्चयकियाजावै और मूल्य निश्चितहुये पीछे वह आधि उसीधनीपास अवृद्धिकहोकर तबतक धरारहै कि जब तक उसके विक्रयद्वारा धनी अपनाधनलेकर आधिछोड़देवै और जो कुछमूल्य उसकी चढ़ीहुईवृद्धिसेभी अधिकमिलाहो सो उसऋणीको वापिसकरदेवै या तबतक वह अवृद्धिकरक्खारहै कि जब कोई क्रेता उसका क्रय न करसकै और धनी आप उसका क्रय स्वीकारकरिकै पूर्वनिश्चित मूल्य अपने ऋणमें जमाख़र्चकरिलेवै यहाँपर अवृद्धिक इसलिये कहागया कि जिसदिनसे मूल्य कल्पितहोजावै तिसपीछे जबतक उसके भलेदले न होजायँ तबतक व्याजवृद्धि फिर नहींचढ़सक्तीहै-जोकि इसवार्त्तामें दोदशा ऊपरकहीगईं उनमें जब धनी या धनीके अधिकारी अपनेघर विद्यमानहों तब तौ उनको स्वाधीनताहै कि वे आपही दशमनुष्योंके समक्ष ऐसाकरसक्तेहैं-परंतु-दूसरी दशा धनी या धनीके अधिकारियोंके भी न होनेमें यदि ऐसाहोना कहागया तौ इस बातसे यह सिद्धांतपायागया कि जैसे ६३ की अधिकोक्तिमें कहचुकेहैं कि ग्रामनगरके अधिकारियोंकोभी धनसौंपकर आधि छूटसक्ताहै तैसेही यहाँभी ग्रामनगरके अधिकारी (आधि) का मूल्य निश्चय यद्वा विक्रयभी ऋणीकी इच्छानुसार करवासक्ते हैं-यह अभिप्राय पूर्वार्द्ध मूल श्लोकमें कहागया-अब उत्तरार्द्धसे दूसरीबातकहतेहैं कि यदि (आधि) के रखनेसमय परस्पर दोनोंके यहबातठहरीहो कि व्याजवृद्धिके उद्धार

न होनेसे कदाचित् मूलधन दूनाहोजावै तौ धनही दूनादिया लियाजायगा अर्थात् ५९ के श्लोकमूल पूर्वार्द्धमेंकहीहुई मर्यादासे (आधि) का नाश न होगा ऐसे नियम के ठहरनेपर कदाचित् मूलधन दूनाहोजाय और उससमयपर अधमर्ण अपनेघर मौजूद न हो और शीघ्र उसके आनेका भरोसाभी न हो तब उत्तमर्णको क्या कर्तव्य है-तहाँ-वह अपनी इच्छासे यह करसक्ताहै कि (धारणिक) नाम ऋणीकेहोने और और न होनेपरभी ऋणीके विश्वासपात्र साक्षियोंके सन्मुख अर्थात् उनकी संमति सहित उस आधिको बेंचदेवै और बेंचकर अपनाधन दूनालिये पीछे जो कुछमूल्य अधिकबचाहो वह उन्हींको सौंपदेवै परंतु यहप्रकार उसीदशापर आरूढ़है कि यदि बंधकरखतेसमय परस्परदूनालेने देनेकी प्रतिज्ञाठहरीहो किन्तु यदि ऐसी प्रतिज्ञा नहींठहरीहो तौ निस्संदेह दूनाधनहोजानेपर ५८ के श्लोक मूल पूर्वार्द्धकी मर्यादा से आधिकानाशहोजावै यह सिद्धांतहै-और यहभी यादरक्खो कि यह ६३ और ६४ इन दोनों श्लोकमें कहीहुई समस्त मर्यादें केवल गोप्य आधिसे संबंधितहैं ६४॥

अब नीचेके श्लोकमें भोग्य आधिकी विशेषता प्रकटकरैंगे ६४॥

यदातुद्विगुणीभूतमृणमाधौतदाखलु। मोच्यआधिस्तदुत्पन्नेप्रविष्टेद्विगुणेधने ६५॥

अक्ष०-जबकि आधिमें ऋण द्विगुणीभूतहो तब उस्से उत्पन्नहुये द्विगुणधनके प्रविष्टहोनेपर तत्काल आधि मोच्यहै ६५॥

अभि०-यह एक प्रकारांतर वर्णनकियाहै कि-जब कोई ऐसा (भोग्यआधि) जिसमें कुछ उपलाभनाम पैदावारीभीहोतीहो धनीको क़ब्ज़ामिले पीछे इतनेदिनोंतक बंधक बनारहे कि धनीकाधन व्याजवृद्धि चढ़ते चढ़ते दूनाहोजाय और उसीसमयतक (आधि) का उपलाभद्रव्य धनीको इतनापहुँचलियाहो जो उस द्विगुणधनके तुल्य समुझाजाय तब तत्कालही आधिछोड़देनाचाहिये-और-यदि पैदावारीका उपलाभ उसमें थोड़ाहोताहो जिसकेहेतुसे द्विगुणधनहोजानेकेसमयतक द्विगुणताके तुल्य प्राप्तिधनीको न पहुँचीहो और वह ऋणी इसन्यूनताको अपनेघरसे देकर पूरा न कर सक्ताहो जिस्से तत्काल उसका (आधि) छूटसकै तौ फिर इस्से आगे इतनेकालतक और भी उत्तमर्णका क़ब्ज़ा उसपर बना रहना चाहिये जिस्से उस आधिके उपलाभ द्वाराधनी अपना दूनाधन पूराकरिकै लेसकै पर इसदशामें भी दूनेसे अधिकनहीं ले सक्ता क्योंकि इस मर्यादापर ४० के श्लोक मूलमें वर्णनकरी मर्यादें यथासंभव सब आरूढ़हैं-और जो-इसीप्रकार का (आधि) बंधकधरते समय परस्पर दोनोंके यह परिभाषा नामइक़रार ठहराहोकिमैं ठहरीहुई वृद्धिदेतारहूँगा परइस(आधि)का परियह अपनेपास रक्खोंगा और जो कदाचित् इतनेकाल विलंबतक व्याजवृद्धिमें उद्धार न करसकौं जिस्से मूलधन दूनाहोजावै तौफिर तत्काल इसआधिका क़ब्ज़ा तुम्हें

समर्पण करौंगा इस परिभाषा के हेतुसे यदि (आधि) धरतेसमय प्रयोक्ताने परिग्रह नहींपाया हो या और ही किसी यथोचित हेतुसे परिग्रहकाअभाव चलाआयाहो और इसदशामें ब्याजवृद्धि चढ़ते २ मूलधन दूनाहोजावै तौफिर तत्काल प्रयोक्ता के भोगमें उस (आधि) का प्रवेशहोना चाहिये अर्थात् क़ब्ज़ाधनीको मिलनाचाहियेइस निमित्तसे कि वहअपने उसदूनेधन को आधिके उपलाभद्वारासंग्रह करसकै और यह क़ब्ज़ा तवतक उसके हाथमें रहनाचाहिये जबतक वह दूनाधन पैदावारसे पूराहोकर मिलसके अर्थात् दूनाधन प्राप्तहोजाने परतत्काल क़ब्ज़ाछोड़ दियाजावै किन्तुइस दशामें भी अभियोक्ता उस दूनेधनसे अधिकभोग नहीं करसक्ता और जो अधिक भोगहोजावै किसीहेतुसे तौउस दूनेधनसे अधिकलाभ जो धनीपर पहुँचाहो सोसब ऋणीको परिवर्त्तन करिदेनाचाहिये ६५ ॥

भाधि०—ऊर्ध्वोक्त मर्यादाका सिद्धांत सर्वथायही है कि वृद्धिसहित मूलधनकाअपाकरण होजावै इसप्रकार को लौकिकमें (क्षयाधि) भी कहतेहैं इसलिये उतनेही काल तक आधिका उपभोगधनीको मिलनाचाहिये जिस्सेउसका मूलधन वृद्धिसहित परिशोधन होसकै-इसबातका निश्चयात्मक सिद्धांत यहाकि यदि कदाचित् मूलधन के द्विगुणहोनेसे पूर्वहीऋणी (आदि) को छुड़ायाचाहै और धनीपर (आधि) का क़ब्ज़ाबने रहनेसे तथैव (आधि) में पैदावार अधिकहोनेसे इतनाधन उसपर पहुँचलियाहो कि उससमय तक वृद्धिके हिसाबसे वृद्धिसहित मूलधन उद्धारहोसक्ताहो तौफिरयहां तक द्विगुणत्व का चर्चाकरना वृथा है-अथवा-इसी अत्रोक्तदशामें कदाचित् वृद्धि और मूलधनके तुल्यनहीं परकुछ न्यूनप्राप्ति अभियोक्ता धनीको होचुकीहो तौ फिर इसीन्यूनताके पूरेहोजाने योग्य अवधितक (आधि) अभियोक्ताके क़ब्ज़ेमें रहसक्ती है किन्तु यहांतक द्विगुणत्वका चर्चाकरना वृथाहै-और-जहां इस परिभाषासे इक़रार ठहराहो किमेरा उपलाभ नहीं तुम्हारी वृद्धिनहीं (दृष्टांत) जैसे एकमकानको (आधि) रक्खा जिसमें भाड़ेका उपलाभ पैदावार है परइसका कुछ परिमाणनहीं कि किसवक्त कितनी पैदावारी होसक्तीहै और धनीसे २००) दोसौ रुपये ऋणीने उसमकानको (आधि) रखकर लिये तबयह परिभाषा दोनोंने स्वीकारकरी कि जो कुछभाड़ा धनीके भाग्यसे मिलसके सोई २००) का व्याजहै किन्तुजब चाहौं तबदोसौ मुद्रादेकर अपने मकानको छुड़ालकौं इसइक़ रारसे क़ब्ज़ाउसका धनीको सौंपदिया फिर वहधनी चाहै भाड़ेलू किसीको रक्खै या न रक्खै चाहै अपनेव्यापरहै अथवानरहै इस्सेकुछ अपेक्षा नहींहै इसप्रकार को (वृद्धयर्थभोग) कहतेहैं सो इसवृद्धयर्थ भोगकेआधिमें ४० के श्लोकवाली मर्यादै संबंधित नहीं है अर्थात् इसदशामेंधनीको द्विगुणधनसे अधिक भी उपलाभ चाहै होजाय अथवा न होजाय परन्तु जबतकऋणी केवल मूलधन उ-

करसकै तबतक(आधि)उसके भोगमें उपस्थित रहेगी-यहवार्त्ता बृहस्पतिनेस्पष्ट कहीहै-यथा (ऋणीबंधमवाप्नुयात्। फलभोग्यंपूर्णकालंदत्त्वाद्रव्यंतुसामकम्॥ यदितुप्रकर्षितंतत्स्यात्तदा नधनभाग्धनी। ऋणीचनलभेद्बंधंपरस्परमतंविना) अर्थात्-ऋणीअपने(बंध)कियेहुये फलभोग्य लक्षणके(आधि)को इसप्रकारसेपावै कि(फलभोग्यआधि)में दोभेदहोतेहैं किन्तु एक तौ(फलभोग्यपूर्णकालआधि)वहकहाताहै जिसकाभोगपरिग्रह धनीकोइस निमित्तसे दियाजावै कि वृद्धिसहित मूलधन जबतक इसकेउपलाभसे उद्धारहोसकै तबतकतुम क़ाबिज़इसपर बनेरहो जिससमयमूल और वृद्धिदोनों निश्शेष होजायँ उस बेरा तत्काल आधिसे क़ब्ज़ा छूटजायगा क्योंकि इसकायही पूर्णकालहै सो यह पूर्णकालका लक्षणऊपर अभिप्रायार्थ में कहचुके हैं और यह उसीदशा में होसक्ताहै कि जबकिसी परिभाषा आदिकारणों से धनीको क़ब्ज़ा पहलेनमिलसकाहो और मूलधनके द्विगुणहोजानेपर क़ब्ज़ाउसको दियाजावै इसीको (सवृद्धिमूल्यापाकरणार्थ) आधिभीकहते हैं-दूसरा फलभोग्यद्रव्यसामक आधि वहकहाताहै जिसको वृद्ध्यर्थ भोगकेनामसे अभी थोड़ीदूर ऊपर यथाविधिसे लिखचुके हैं अर्थात् केवल वृद्धिके निमित्तसेभोग धनीपाताहै और अधमर्ण जबचाहै तब मूलद्रव्य समानही देकर बंधछुड़ासक्ताहै इसीलिये इसका द्रव्यसामक नाम कहाताहै इसीको (वृद्धिमात्रापाकरणार्थ) आधिभीकहते हैं-यहइतना भावार्थ यहाँतक बृहस्पतिके पौनश्लोक से कहागया-अब-इन्हीं मर्यादोंका (अपवाद) बृहस्पतिके द्वितीय श्लोकसे कहते हैं कि-यदि वहीद्रव्य सामक आधि अतिप्रकर्षित होजाय अर्थात् अतिशय करके बहुकालतक भोगाजाय जिसमें वृद्धिसे भी अधिकलाभ अभियोक्ता धनीपर पहुँचाहो तब इसदशा में वहधनी धनभाक् न होवै अर्थात् अपना मूलधन द्रव्यसामक नपावै किन्तु जितना उपलाभ उसने वृद्धिसे अधिक पायाहो उतनामूलधनमें काटिकर धन पावै और जो यही अधिक भोग प्रबलता से हुआहो तौ फिरनिपट उसको मूलधन दियेविना ऋणी अपना आधि पासक्ताहै यह अपवाद बृहस्पतिके द्वितीय श्लोक पूर्वार्धसे धनीकी अपेक्षामें कहागया -अब-उत्तरार्द्ध एकपादसे ऋणीकी अपेक्षामें अपवाद कहते हैं कि-यदि कदाचित्-वही द्रव्यसामक लक्षण का आधि अप्रकर्षित रह जाय अर्थात् धनीने उसके उपलाभसे अपनी संपूर्ण वृद्धिनहीं वसूलकरिपाईहो तौ इसदशामें ऋणी द्रव्यसामक देकर आधि नहींपावै किन्तु धनीकी जितनी वृद्धिशेष रहीहो उतनी वृद्धिभी द्रव्यसामक मूलधनके उपरांत देकर आधिपावै यह अपवाद तीसरेपादसे कहागया-अब-चौथे पादसे इन्हीं दोनों अपवादों का अपवाद परस्पर दोनों ओरसे कहते हैं कि (परस्परमतंविना) अर्थात् यही दोनों मर्यादें जो अपवादरूपसे बृहस्पतिने कहींसो उसदशामें संभाव्य समुझीचाहिये कि जब उत्तमर्ण और

अधमर्ण दोनोंके परस्पर कोईसा इक़रार न ठहराहो-किन्तु-जबदोनोंने परस्पर निज निजमतके अनुरूप कोईसी परिभाषा पहले ठहरालीहो तौ फिर उसपरिभाषाके अनुकूल मुक़द्दमा फ़ैसलहोना चाहिये अर्थात् इस परस्पर मतकी दशामें उत्कृष्ट बंधक भी जिसमें वृद्धिसे अधिक पैदावार हो धनीभोगि सक्ताहै कि जबतक ऋणी उसका मूलधन उद्धारकरै-एवं-निकृष्ट बंधक भी जिसमें पैदावार थोड़ी अर्थात् वृद्धिके अनुमानपर न होतीहो केवल मूलमात्र धनदेकर उससे ऋणीलेसक्ताहै ६५ ॥

इतिऋणादानप्रकरणम् ॥

अथचाष्टादशविवादान्तर्गतद्वितीयविवादविशेषेनिक्षेपोपनिध्योर्विधिविवेकोनामैकत्रिंशःपरिच्छेदः ३१ ॥

इसइकतीसवें परिच्छेदमें वह मर्यादें जानीजायँगी कि जो निक्षेप या उपनिधिनाम कीधरोहरसे संबन्धित हैं अर्थात् दोनोंभाँतिकी धरोहरका विवाद यह अठारहभाँति के विवादोंमें दूसरापद गिनतीहै तिसका वर्णनहोगा ॥

वासनस्थमनाख्यायहस्तेन्यस्ययदर्प्यते। द्रव्यंतदौपनिधिकंप्रतिदेयंतथैवतु ६६ ॥

प्रक्ष०-वासनमेंधराहुआ न कहकर जो हाथमेंधरिकै अर्पितकियाजाता वहद्रव्य उपनिधिकहाता और तैसाही प्रतिदेयहोताहै ६६ ॥

मभि०-(वासन)पात्र किन्तुकरंडी पिटारी संदूकआदि जो कुछहो तिसमें धराहुआ द्रव्यमुखमुद्रित जिसकारूप और गिनतीआदि लक्षण बिनादिखलाये समुझायेकिसी अपने विश्वास्यजनकेहाथमें रक्षाकेनिमित्तसे जो कुछद्रव्य सौंपदियाकरते हैं सो वह उपनिधिनाम सौंपका धनकहलाताहै यह उपनिधिज्योंकात्यों यथावत्मुखमुद्रितपरावृत्य अर्थात् वापिसकरिदेने योग्यहोताहै कब कि जब सौंपनेवाला आकर माँगै-और-इसउपनिधिका दूसराभेद (निक्षेप) अर्थात् धरोहरकहलाताहै उसदशामें कि जब सौंपनेवालेने द्रव्यको गिनकर संख्यापूर्वकरूपलक्षण सब दिखलासमुझाकर अपने विश्वासपात्रकोसौंपाहो ६६ ॥

मधि०-इसवार्त्ता में नारदजी ने दोनों भेद स्पष्टरूपसे कहे हैं-यथा-(असंख्यातमविज्ञातंसमुद्रंयन्निधीयते, तज्जानीयादुपनिधिंनिक्षेपंगणितंविदुः) अर्थात्-जो कुछ द्रव्य किसीपास विना गिना और विना जानाहुआ मुखमुद्रित रक्खाजाताहै उसको उपनिधि समुझाचाहिये और गिनेहुये को निक्षेप कहते हैं-जब कदाचित् ऐसेद्रव्यके वापिसहोने में झगड़ा उठिकर अभियोग इसका राजद्वारतक पहुँचै या स्वतः पंचों आदिके सन्मुख पहुँचै तब यह निक्षेप नामका विवाद कहलाताहै ६६ ॥ अबनीचे इसके इन्साफ़ के निमित्तसे यथोचित इसका अपवाद भी कहेंगे ६६ ॥

नदाप्योपहृतंतंतुराजदैविकतस्करैः। भ्रेषश्चेन्मार्गितेऽदत्तेदाप्योदंडंचतत्समम् ६७ ॥

भक्ष०—राजदैविक तस्करों करके अपहृत उस उपनिधि को दिलाने योग्य नहीं-चाहनेपर न देनेमें यदि नाशहोतो दिलाने योग्यहै औरदंडभी उसीके समान ६७॥

भभि०—ऊपर ६६ के श्लोक चौथे पादसे यहकहाथा कि उपनिधि या निक्षेप जैसा उसने सौंपाहो तैसाही चिह्नों सहित ज्यों का त्यों वापिस करदेना चाहिये अर्थात् यदि ग्रहीता नहीं देवै तौ उस्से दिलवाना चाहिये-सो-इस मर्यादा में एक अपवाद ६७ के पूर्वार्द्ध मूल श्लोकसे कहते हैं-कि-यह ग्रहीता उस उपनिधिको दिलाने योग्य नहीं है जो उपनिधि या निक्षेप राजाकरके अपहृत हुआहो अर्थात् राजयुद्धादि उत्पातों से विनाश होगयाहो या दैविक उत्पात अग्निदाह जल प्रवाह आदिसे विनाश हुआहो या चोरोंने हरलिया हो यह (अपवाद) नाम छूट इसमें करीगई-अब इस अपवादका भी अपवाद दूसरे अर्द्धासे कहते हैं-कि-यदि सौंपनेवाले धनीने अपना निक्षेपया उपनिधि कभी ज़रूरतमें मार्गित किया अर्थात् लेना चाहाहो और उसकी चाहनापर ग्रहीताने परावृत्त न करदिया हो तिसपीछे उक्तउत्पातोंसे यदि (भ्रेष) नाम विनाशहुआ हो तौ इस दशामें दिलाना चाहिये किंतु विनाशहुई वस्तुका मूल्य कल्पित करिकै दिलावै और उस धरोहर यद्वा सौंपके समान उसपर धनदंडभी दिलाना चाहिये ६७॥

आधि०—जोकि इसके पूर्वार्द्धमें यह कहागया कि राज दैविक तस्करों करके हराहुआ निक्षेप या उपनिधि ग्रहीतासे नहीं दिलावै तिसमेंभी यह विशेषता है कि यदि जिह्मकारित विनाश ठहरै तौ फिरनहीं दिलाना न्यायनहीं अर्थात् जो सद्भावही उक्त उत्पातोंसे विनाश निश्चयात्मक हुआहो तब उस न्यायका संभव होसक्ताहै-अन्यथा यदि ग्रहीताने (जिह्म) नाम कुटिलता अर्थात् कपट फ़रेबसे कहदिया हो कि तेरा निक्षेप अमुक उत्पातमें जातारहा-और-यथार्थसे वह उत्पात प्रत्यक्ष सबके देखते हुआ था परन्तु निक्षेपका विनाश कहदेना उसको एक अवसर मिला किंतु विनाश हुआ नहीं था तब इस दशामें अवश्यही उस्से दिलवाना चाहिये और दंडभी लेना चाहिये-इस बातकी प्रमाणता मध्ये यहभी देखा चाहिये कि उस उत्पातमें ग्रहीता काभी कुछ धन विनाशहुआ या केवल निक्षेपहीका विनाश बतलाताहै यदि ग्रहीता काभी बहुतसा धन विनाश प्रत्यक्षसबके देखतेहुआहो तौ निस्संदेहसमुझाचाहिये कि उसके साथमें निक्षेप काभी विनाश हुआ होगा अन्यथा नहीं-नारदने इसबातको स्पष्ट कहदियाहै-यथा(ग्रहीतुःसहियोर्थेननष्टोनष्टःसदायिनः। दैवराजकृतेतद्वन्नचेत्तज्जिह्मकारितम्) अर्थात्-ग्रहीताके धनके साथ जो उपनिधि चोरी आदिके द्वारा नाशहुआहो सो तौ सौंपनेवालेका गया यह समुझा चाहिये तैसेही दैवकृत विनाश यद्वा राजकृत विनाशमें यद्यपि केवल उपनिधिकाही विनाशहुआहो सोभी देनेवालेका गया समुझा चाहिये परन्तु यदि जिह्मकारित नहो ६७॥ अब नीचे ६८ के पूर्वार्द्ध में उपनिधि

भोक्ताका दंड्यभाव और नकार आदिकी दशामें धरोहर दिलवाये जाने के प्रकार कहे जायँगे ॥

आजीवंश्चेच्छयादंड्योदाप्यस्तंचापिसोदयम् ६८॥ अष्टषष्टितमस्यपूर्वार्द्धोऽयम् ॥

अक्ष०–निज इच्छासे भोगतेहुयेदंड्य और उदयसहित उसके दिलवानेयोग्यहै ६८॥

आभि०–जो कोई अपने पास किसीकी धरीहुई धरोहरका द्रव्य उसके स्वामीकी अनुज्ञा विना अपनी इच्छासेही आजीवन करता किंतु भोगता या उस्से कुछ व्यवहार करताहै वह मनुष्य भोगके अनुसार दंडनीय होता और उस धरोहरको उदय पूर्वक दिलवाने योग्य होताहै-उदय पूर्वक अर्थात् यदि उस द्रव्यसे उपभोगमात्र किया हो तौ व्याज वृद्धिसहित दिलाना यद्वा अपने लाभकेनिमित्तसे कुछ व्यवहार उस्से किया होतौउसव्यवहारकाउपलाभहुआ धनभी उसधरोहरकेस्वामीको दिलानाचाहिये६८॥

अधि०–यद्यपि दंडरूप लक्षणसे सभी दिलाना कहागया तथापि इन्साफ़का यह दर्जा है कि यदि व्यवहारमें उपलाभ कुछ अधिकताके साथहुआ हो तौ फिर व्यवहर्त्ता के परिश्रम अनुसार उसको भी कुछअंशछोड़कर दिलानाचाहिये सो उसदशामें कि जो व्यवहर्त्ताने कपटविना सत्यवाणी उच्चारणकरीहो-परन्तु व्यवहारमें लाभ और हानिभीहोजाती है किंतु कदाचित् व्यवहर्त्ताको टोटाहुआहो तब केवल ब्याजवृद्धि सहित उपनिधि दिलवायाजाय-और जोकि उपनिधिनाम धरोहरमें ठहरीहुई ब्याज वृद्धिका परिमाणरूप नियमहोना असंगतहै इसलिये चौबीसवें परिच्छेदकी मर्यादो अनुसार विनाठहरीहुई वृद्धिकालेखा देखाचाहिये सोभीवहलेखा उसदशातक समुझाचाहिये कि यदि भोग या व्यवहार करतेहुयेभी उपनिधि मांगनेकेसमयपर तत्काल देनेको उपस्थितहोजाय-और जो-चाहनाके समयपर न देवै तिसकी वृद्धिकाप्रमाण कात्यायनजीने कईचीज़ोंके साथमेंकहाहै-यथा-(निक्षेपंवृद्धिशेषंचक्रयंविक्रयमेवच । याच्यमानोनचेद्दद्याद्वर्द्धतेपंचकंशतम्) अर्थात्-धरोहर और किसीके लेन देनकी वृद्धि का शेष जो कुछ रहगयाहो और क्रय अर्थात् ख़रीदी हुई वस्तुका मूल्य जो देना रहाहो और विक्रय अर्थात् बेंचाहुआ पदार्थ जो मूल्य पाचुकने पर भी नहीं दिया हो यदि मांगतेहुये न देवै तौ मांगनेके दिनसे उसपर व्याजवृद्धि पाँच रुपया सैकरा की चढ़ती है अर्थात् यथा संभव इतनीतक दिलवाना कुछ अन्यायनहींहै परन्तु यहप्रमाण उपनिधिमध्ये उसदशामें समुझाचाहिये कि यदि धरोहरका धन खागयाहो-किंतु-यदिरक्षामें उपेक्षाकरनेमें विनाशहुईहो या अज्ञातभावसे विनाशहुईहो तिस दशामें इन्हीं कात्यायनजीने द्वितीयमर्यादा नियत करीहै-यथा (भक्षितंसोदयंदाप्यः समंदाप्यउपेक्षितम् । किंचिन्न्यूनंप्रदाप्यःस्याद्द्रव्यमज्ञाननाशितम्) अर्थात्–खाडाला हुआ धरोहर व्याजसहितदिलावें और जोउपेक्षानाम लापरवाहीसे खोदियाहो वहविना

ब्याज उतनाहीदिलावै और जो अज्ञानतासे दैवयोगसे विनाशहुआहो तौ वहद्रव्य किञ्चित् मूलमेंसेभी कमकरके दिलवायाजाय (किञ्चित् अर्थात् चतुर्थांश हीनकरिकै तीनअंश दिलवायेजायँ)-देनेकीनकारमें जो दण्डहोना मूलश्लोकआदि ऊपरकहचुकेहैं यद्यपि उसकानियम कोईसानहीं कहा पर जैसाभोग और अपराध उसकापाया जाय उसीकेसमान जोकुछ उचितहो सो होसक्ताहै यहअड़सठका पूर्वार्द्धहुआ६८अब नीचेके उत्तरार्द्धमें उपनिधिके प्रसंगसे मँगैतू आदिचीज़ोंकी विधिकही जायगी तिसमें भी अतिदेशलक्षणसे सब यहीमर्यादें समुझलेनी॥

याचितान्वाहितन्यासनिक्षेपादिष्वयंविधिः ६८॥

अक्ष०-याचित, अन्वाहित, न्यास, निक्षेपआदिकोंमें यहविधि ६८॥

अभि०-याचित जो मगनई कीरीति से विवाहादि उत्सवों में बस्त्र अलङ्कार आदि कुछ मँगैतूबस्तुआईहो-(अन्वाहित)उसेकहतेहैं कि यदि वही मँगैतू चीज़लानेवालेने या मुख्य मँगवानेवालेने किसीअन्य विश्वास्यजनके हाथमेंसौंपी पुनि उसनेभी किसीद्वितीय जनके हाथरक्खी कि यहवस्तुलेकर धनीकोदेदेना-(न्यास)वहकहाताहै कि आईहुई वस्तु घरधनीको दिखलाकर उस्से पीछेघरके किसीअन्यजनके हाथमेंसौंपदी कि यह वस्तुधनीको समर्पणकरदेना-(निक्षेप) केलक्षणजैसे ६६ की अधिकोक्तिमें कहचुके हैं यहाँभी वहीसमुझलेने अर्थात् जो वस्तु समक्षभाव दिखलाकर गिनतीसहित सौंपी जाय सो निक्षेपहै-और (आदि) शब्दसे ऐसीवहबातेंभी समुझलेनी जो मूलश्लोकमें नहींकहीं (दृष्टांत)जैसे स्वर्णकारआदि किसी कारीगरकेहाथमेंकंकणआदि कुछबनवानेकेलिये सोनाचाँदीआदि कुछसौंपाहो-या-परस्पर(प्रतिन्यास) कीरीतिसेकोईवस्तुदोनोंने दोनोंकोसौंपीहो किन्तु प्रतिन्यास उसदशामें कहाताहै कि जब इसप्रकारकी परिभाषा ठहरै कि हम तुम्हारी यहवस्तु इसभांति रक्षाकरैंगे तुम हमारी यहबस्तु इसभांति रक्षाकिये रहना या जबतक मैं तुम्हारी यहचीज़ बनाकर लाऊँतबतक मेरीयह वस्तु अपने विश्वासके निमित्तमें रखछोड़ो इत्यादि अनेक वार्त्ता उसी आदिशब्दसे ऊहा करलेनी कि जो सौंपसे संबंधरखती हों-इनसभी प्रकारके विवादोंमें वहीन्याय होसक्ताहै जो ऊपर धरोहरमध्ये वर्णनहोचुका ६८॥

अधि०-यहीप्रमाण नारदजीने कियाहै-यथा (एषएवविधिर्दृष्टोयाचितान्वाहितादिषु शिल्पिषूपनिधौन्यासेप्रतिन्यासेतथैवच)अर्थात्-नारदकहते हैं कि यहीविधि प्रत्यक्षदेखागयाहै याचित और अन्वाहित आदिमें और (शिल्पी) नाम कारीगरोंमे उपनिधिमें न्यासमें तैसेही प्रतिन्यासमें भी-समुझा चाहियेकियह अष्टादश विवादोंमे (निक्षेपः) नामका विवादभी द्वितीयपद पूराहुआ सोयह विवाद यथासंभव यथा अवसर के आधीन दीवानी फौजदारी दोनोंसे संबन्ध रखताहै ६८॥ इतिनिक्षेपप्रकरणम्॥

अथचोपनिध्यादीनांप्रपंचविवादप्रसंगेनात्रैवावश्यकत्वात्साक्षिलक्षणपूर्वकसाक्ष्यप्रमाणनिरूपणोनामद्वात्रिंशः परिच्छेदः ३२॥

इसवत्तीसवें परिच्छेद में गवाहीके प्रयोजनसे गवाहोंके स्वरूप लक्षण कहेजायँगे क्योंकि जव उपनिधि आदि बिवादोंमें अर्थी प्रत्यर्थी दोमेंसे कोईएक प्रपंचभाषा उच्चारणकरै तव साक्षियोंविना मुक़द्दमह की संसिद्धि नहींहोसक्तीहै-(साक्ष्यप्रमाण-अर्थात्-शहादत जवानी)

अथसाक्षिस्वरूपमाह॥

जोकि सोरहवें परिच्छेदगत श्लोकमूल२३के द्वारामुक़द्दमहकी साधनामें प्रमाणतीन भांतिके वतलायेथे अर्थात् लिखितं१ भुक्तिः२ साक्षिणः३ इनमेंसे(भुक्ति)नाम क़ब्ज़ेका प्रमाण वीसवें और इक्कीसवें दो परिच्छेदोंसे निरूपण होचुका बरन उसका किंचित् प्रभाव अठारहवें परिच्छेद में भी प्रदर्शित कियागयाथा-अब-इस बत्तीसवें परिच्छेद में(साक्षिओं)का निरूपण करते हैं कि(साक्षी)साक्षात्कार दर्शनमात्रसे कहाताहै परञ्च दर्शनके अभावमें श्रवणमात्रसे भी साक्षीहोता है-यथाहमनुः(समक्षदर्शनात्साक्ष्यंश्रवणाच्चैवसिद्ध्यति)अर्थात्(साक्ष्य)नामगवाहीसमक्षदर्शनसेहोतीहैपरवहीश्रवणकरनेसेभी सिद्धहोती है-वहीसाक्षी दोप्रकारके होतेहैं (कृत)१(अकृत)२ अर्थात् किया १ और न किया-२ इनमें(कृतसाक्षी)वहकहाता है जो साक्षित्वमें निरूपितनाम बदिकर खड़ाकिया जाय १ (अकृतसाक्षी)वहकि जो अनिरूपित नाम बिनाबदे करलियाजाय २ इनमें कृतसाक्षी पांचविधका और अकृतसाक्षी छेविधका होता है इसप्रकारसे साक्षीग्यारह भांतिकेहोते हैं-यथाहनारदः (एकादशविधःसाक्षीशास्त्रेदृष्टोमनीषिभिः। कृतःपंचविधोज्ञेयःषड्विधोऽकृतउच्यते)अर्थात्-शास्त्रमें मनीषीलोगोंने एकादशविधका साक्षीनिश्चितकियाहै उनमेंकियाहुआ पांचविधका जानना और छेविधका न कियाहुआ कहतेहैं उनकाभेद भी उन्हींनारदने कहा है-यथा(अर्थात्लिखितःस्मारितश्चैवयदृच्छाभिज्ञएवच। गूढश्चोत्तरसाक्षीचसाक्षीपंचविधःस्मृतः)लिखित १ स्मारित २ यदृच्छाभिज्ञ३ गूढ़ ४ उत्तरसाक्षी ५ यह पांचप्रकारके साक्षी(कृत)अर्थात् कियेहुये कहलातेहैं-इनपांचोंके स्वरूप लक्षणकात्यायनजी ने कहे हैं-यथा(अर्थिनास्वयमानीतोयोलेख्येसंनिवेश्यते। ससाक्षीलिखितोनामस्मारितोपत्रकादृते)अर्थात्-जिसगवाहकानाम किसी लेख्यपत्र दस्तावेज़पर गवाहीमें लिखा चलाआता किन्तु लिखिरहा हो और उसीगवाहको लाकरअर्थी अपनेआप अदालतमें उपस्थितकरै सो वहगवाहलिखित (साक्षी)कहलाताहै१ और स्मारितनाम यादकरायाहुआ वहकि जिसकानामदस्तावेज़ पर न लिखाहो सो इसगवाहका भी लक्षण उन्हींकात्यायनजीने कहाहै -यथा(यस्तुकार्य्यप्रसिद्ध्यर्थं दृष्ट्वाकार्यंपुनःपुनः। स्मार्यतेह्यर्थिनासाक्षीसस्मारितइहोच्यते)

अर्थात्-जिस मनुष्यको किसी अपने अपेक्षितकामसे सम्बन्धित जानिकर उसकाम की प्रसिद्धि होजानेकेलिये अर्थी बारम्बार स्मरण कराताहै कि देखो तुमइसबातके साक्षीहौ-यदि ऐसे मनुष्यको उसकामकी गवाहीमें जानापरै तौवह(स्मारितसाक्षी)कहलाताहै २ तीसरा(यदृच्छाभिज्ञ)साक्षी वह कि जो किसीकार्यके प्रकटहोनेसमय आपही दैवयोगसे आजावे और अर्थी उसको भी साक्षीनियत करिलेवे और उसीको गवाहीमें जानापरै ३ यद्यपि यहदोनों गवाहदूसरा और तीसराभी(अलिखित)कहलाते हैं क्योंकि इनकानाम हस्ताक्षर किसी दस्तावेज़पर लिखाहुआ नहींहोता इसलिये इनदोनोंका एकहीलक्षण कहसक्तेथे तथापि कात्यायनजीने इनदोनोंकेबीच यहीभेद वर्णनकियाहै कि दूसरा तौ उसकार्यमें पहलेसे सम्बन्ध रखताथा जिसको बारम्बार याददिलाईगईथी और तीसरेको उसकार्यसे कुछ सम्बन्ध नहींथा परन्तु दैवयोगसे तत्काल सन्मुख आजानेकेहेतुसे उसनेभी उसदशाकोदेखा तबसाक्षी ठहरायागया इसलिये दोनोंको भिन्नभिन्न समुझ्नाचाहिये तथाचकात्यायनः (प्रयोजनार्थमानीतःप्रसङ्गादागतश्चयः। द्वौसाक्षिणौत्वलिखितौ पूर्वपक्षस्यसाधकौ) अर्थात्-पूर्वपक्षके साधकनाम अर्थीकादावा सिद्धकरनेवाले दोनोंसाक्षी अलिखितहोतेहैं किंतुएकतौ दूसरा जिसकेलक्षण कहचुकेहैं कि वहप्रयोजन केलिये प्रथमसेही विख्यातकरिकै बुलाया जाय सो और एकतीसरा जोदैवयोगसे आगयाथा इसप्रसङ्गसे वहभीखैंचबुलायागया यहतीन गवाहोंके लक्षणहोचुके ३ चौथा(गूढ़साक्षी)वह कि जिसकोअर्थीवचनकी सचावटकरनेको गुप्तभावसे एकान्त इसलिये खड़ाकरै कि वहमेरे प्रत्यर्थीकी भाषा यथावत् सुनसकै और उसकेसुननेसे मेरीभाषाजोसच्चीहै सो प्रामाण्यहोजाय यदिऐसा गवाह छिपकर उसके प्रत्यर्थीकी भाषास्फुट सुनेपीछे गवाहीदेनेजाय तौ वहगूढ़साक्षी कहलाताहै-तथाच (अर्थिनास्वार्थसिद्ध्यर्थं प्रत्यार्थिवचनंस्फुटम्। यःश्राव्यतेस्थितो गूढ़ो गूढ़साक्षीसउच्यते) अर्थात्- अपनी अर्थसिद्धिकेलिये गूढ़स्थित कियाहुआजो मनुष्य अर्थीकरके प्रत्यर्थीकास्फुट वचनसुनायाजाता है वह चौथागवाह गूढ़साक्षी कहलाताहै ४ पाँचवाँ (उत्तरसाक्षी) वह कि जो अन्य साक्षियों के साक्ष्यकोप्रमाणकरै यद्वा अप्रमाणकरै-तथाच(साक्षिणामपियःसाक्ष्यमुपर्य्युपरिभाषते। श्रवणाच्छ्रावणाद्वापिससाक्ष्युत्तरसंज्ञितः)अर्थात्-जो साक्षियोंकेभी संभाषणकासाक्ष्य ऊपर २ भाषण करताहै वह गवाह (उत्तरसाक्षी) कहलाताहै और वह उत्तरसाक्ष्य उसकाचाहे श्रवण करनेसे यद्वा श्रवणकरानेसेहो इसकानियमनहीं-सिद्धांत इसका यह कि एकमनुष्यतौ ऐसाहै कि वह गवाहोंके इजहार होतेसमयजाकर अपनेआप उनकी भाषासुने और तत्काल उसकाप्रमाणकरै कि हाँ यहकथन इनकासच्चाहै यद्वा अप्रमाणकरै कि यह कथनइनका अमुकहेतुसे असत्यहै तौ यहउत्तरसाक्ष्य उसकाश्रवणकरनेसे कहलाया-

परन्तु यदि कोई मनुष्यऐसाहो जो प्रतिष्ठाकेहेतु यद्वा रोगादिकारणोंसे अदालतमें बुलाने योग्यनहीं और उत्तरसाक्ष्य उसके ऊपर आरूढ़ कियागया कि जो इनगवाहोंकी इज़हारभाषा वहप्रमाणीक सज्जनप्रमाणकरै तौ इसमुक़द्दमहकी दृढ़ता हो अन्यथानहीं ऐसीदशामें इज़हारभाषा उसकेपास घरबैठेभेजकर सुनाईजाय कि अमुकामुक साक्षियों ने यहकहा आप इसमें क्याजानतेहो तब जो कुछ वह प्रमाण यद्वा अप्रमाण उच्चारणकरै तौ यह उत्तर साक्ष्यउसका श्रवणकराने से ठहरा ५ ये पाँचों साक्षी (कृतसंज्ञक) अर्थात् नियत कियेहुये कहलाते हैं-इनके सिवाय छेप्रकार के अकृतसंज्ञक अर्थात् अनियतसाक्षी जो होतेहैं तिनकाभेद लक्षण सब नारद जीने कहा है-यथा-ग्रामश्चप्राड्विवाकश्चराजाचव्यवहारिणाम् ॥ कार्येष्वधिकृतोयः स्यादर्थिनाप्रहितश्चयः । कुल्याःकुलविवादेषुविज्ञेयास्तेपिसाक्षिणः) अर्थात्-ग्राम १ प्राड्विवाक २ राजा ३ व्यवहारियोंकाअधिकृत ४ अर्थिप्रहित ५ कुल्यजन ६ ये भी छःप्रकारके मनुष्य यथा अवसरके आधीन आवश्यकता जानिकर साक्षी समुझेचाहिये अर्थात् यद्यपि यहलोग अनियतसाक्षी हैं तथापि किसी कार्यकी आवश्यकता में इनसेभी साक्ष्यालियाजाता है- (ग्राम) अर्थात् नगर का अधिकारी रईस ग्रामाधीश आदि या कोई विख्यातप्रातिष्ठितलोग जो उसग्रामकी दशाओंसे अभिज्ञहों यद्वा सारेग्रामकेनिवासीलोग १-(प्राड्विवाक) अर्थात् हाकिम जो उस नगरमें राजाकीओरसे अधिष्ठितहो या पहले कभी अधिष्ठितरहाहो-सो इसहाकिम के उपलक्षणमें लेखक और सभ्यजनभी समुझेचाहिये-तथाहि-(लेखकःप्राड्विवाकश्च सभ्याश्चैवानुपूर्वशः । नृपेऽपश्यतितत्कार्येसाक्षिणःसमुदाहृताः) अर्थात्-जबराजा आपही किसीमुक़द्दमहकी तहक़ीक़ातपरसमुद्यतहो और वहकार्य ऐसेअंतरपर दूरस्थहै कि राजा उसको देखनहींसक्ता तब इसदशामें राजाकासमाधानकरनेको लेखक और प्राड्विवाक और सभ्यजनभी यथाक्रमसेसाक्षीकियेजाते हैं कि राजाउनसेपूँछकर निश्चितकरै और दूरस्थकार्यको (नहींदेखसक्ताहो) इसप्रातिज्ञासे यहसिद्धांतदर्शाया है कि जहाँतक राजाअपनेनेत्रसे उसदशाकोदेखसकनेमेंसमर्थहो तहाँतक विनादेखे किसीमुक़द्दमेका तोड़ न करे औरभी यहाँपर राजाकेउपलक्षण में प्राड्विवाकभीसमुझा चाहिये किन्तु जैसे राजाकिसी दशाको न देखसकने में हाकिम आदि से पूँछकर निश्चित करता है तैसेही जिस देश विभागमें हाकिम स्वाधीन किसी मुक़द्दमे का फैसलाकरनेसमय यदि कदाचित् किसीदशाको न देखसक्ताहो तब अपनेलेखक और सभ्योंसेपूँछकरदृढ़ताकरै लेखकनाममुहर्रिरलोग (सभ्यजन) अर्थात् महान्मुन्शी सरिश्तेदार आदि २ (राजा) अर्थात् राजाकासाक्षीहोना केवलयहीहै कि यदि कदाचित् शिकार विहारआदिप्रसंगसे या जिस किसीप्रसंगसे जिसवार्ताकीकोईदशा राजाने

और उसीबार्ताकेअभियोगमें किसीदुर्जनकी प्रपंचरचनासे यथार्थ तब ऐसेअवसरमें राजाकोस्मृतिदिलाईजातीहै कि अमुकामुक प्रसंगसे हज़ूरनेभी इसबार्ताकी अमुकामुकदशादेखीसुनीथी-यहाँभी राजाकेउपलक्षण में प्राड्विवाकसंग्रहीतहै ३-चौथा जो व्यवहारियोंकेकार्योंमें (अधिकृत)हो अर्थात् मुनीम गुमाश्ते आदि जो पूर्णअधिकारीहोते हैं क्योंकि यहलोग व्यवहारकेसम्बन्धसे परस्परउनकामोंमें सबकेभेदूहोते हैं इसलिये यद्यपि यहकोई कृतसाक्षियोंमें न हों परन्तु तात्कालिक आवश्यकताजानिकर इनसेभी उसदशाकातत्त्वबूझाजाताहै-और-इसीका दूसरा अर्थयहभीहै कि वेहीदोनों व्यवहारी जो अर्थी प्रत्यर्थीहों तिनकेकार्योंमें जो लोग अधिकृतनाम अधिकारीहों जैसे मुनीम या मुख़तारआम आदि उनसेभीसाक्ष्य बूझाजाताहै ४-पाँचवां (अर्थिप्रहित) अर्थात् जिसको अर्थीनेठेठ उसकामकेहीलिये नियतकियाहो जैसे मुख़तारख़ास या और कोई जो इसप्रकारकाहोकर अर्थीकीओर से उसकामके उद्योगमें तत्परहो यहाँअर्थीके उपलक्षणमें प्रत्यर्थीभी समुझना किंतु जिसको प्रत्यर्थीने नियतकियाहो सोभी अर्थिप्रहित कहलाताहै यद्वानाम भेदकरनेके लिये उसको प्रत्यर्थिप्रहित कहिलेना यह सिद्धांतहै ५-छठेगवाह(कुल्याः) कुलविवादेषु अर्थात् जहाँ कुलविवादनाम घरूजाति बिरादरीके झगड़ासे नालिशहुईहो तहाँ जो उसकुलमें प्रधानभूत समुझेजातेहों वेही साक्षीहोसक्तेहैं ६ ये ११ प्रकारके साक्षी वर्णनहोचुके-परन्तु-अब यहबात समुझीचाहिये कि जहाँ जिसकामकी दशाके अनुरूप जिसप्रकार के साक्षियोंसे कामचलसक्ताहो उसीप्रकारके साक्षी आवश्यकहोते हैं तथापि यदि आवश्यक प्रकारके साक्षीभी बहुताइतसे उपस्थितहों उनमें किसको छाँटिकर लेनाचाहिये और संख्यामें भी कितने कियेजायँ यहबात नीचे योगीश्वर के मूलवाक्यसे संसिद्ध होगी ॥ इतिसाक्षिस्वरूपम् ॥ अथसाक्षियोग्यता ॥

तपस्विनोदानशीलाः कुलीनाः सत्यवादिनः। धर्मप्रधानाऋजवः पुत्रवंतोधनान्विताः ६९॥
त्र्यवराः साक्षिणोज्ञेयाः श्रौतस्मार्तक्रियापराः। यथाजातियथावर्णंसर्वेसर्वेषुवास्मृताः ७०॥

अक्ष०-सहहृयोःतपस्वी, दानशील,कुलीन, सत्यवादी,धर्म प्रधान,ऋजु, पुत्रवान्, धनान्वित, श्रौतस्मार्त क्रियापर त्र्यवर साक्षी ज्ञातव्य हैं-यद्वा-यथा जाति यथावर्णके सबसबों में कहे हैं ६९। ७०॥

अभि०-(तपस्वी) किंचतपः स्वभाववाले (दानशील) किंच दानमें निरत स्वभाव उदार चित्तवाले (कुलीन) जो महान् कुलमें जन्मेहों (सत्यवादी) जो सत्यार्थ संभाषण में तत्परहों-(धर्मप्रधान) जो धर्महीको प्रधानभूत जानते या मानतेहों किंच अर्थकाम इनकी प्रधानता जिनके नहीं अर्थात् अर्थ और कामको भी धर्म मार्गोंसेही उपार्जन करतेहों धर्मातिरिक्त मार्गोंसे नहीं (ऋजु) जो अकुटिलहों (पुत्रवंत) पुत्रोंवाले(धनान्वित)

परन्तु यदि कोई मनुष्यऐसाहो जो प्रतिष्ठाकेहेतु यद्वा रोगादिकारणोंसे अदालतमें बुलाने योग्यनहीं और उत्तरसाक्ष्य उसके ऊपर आरूढ़ कियागया कि जो इनगवाहोंकी इज़्हारभाषा वहप्रमाणीक सज्जनप्रमाणकरै तौ इसमुक़द्दमहकी दृढ़ता हो अन्यथानहीं ऐसीदशामें इज़्हारभाषा उसकेपास घरबैठभेजकर सुनाईजाय कि अमुकामुक साक्षियों ने यहकहा आप इसमें क्याजानतेहौ तब जो कुछ वह प्रमाण यद्वा अप्रमाण उच्चारणकरै तौ यह उत्तर साक्ष्यउसका श्रवणकराने से ठहरा ५ ये पाँचों साक्षी (कृतसंज्ञक) अर्थात् नियत कियेहुये कहलाते हैं-इनके सिवाय छःप्रकार के अकृतसंज्ञक अर्थात् अनियतसाक्षी जो होतेहैं तिनकाभेद लक्षण सब नारद जीने कहा है-यथा-ग्रामश्चप्राड्विवाकश्चराजाचव्यवहारिणाम् ॥ कार्य्येष्वधिकृतोयः स्यादर्थिनाप्रहितश्चयः । कुल्याःकुलविवादेषुविज्ञेयास्तेपिसाक्षिणः) अर्थात्-ग्राम १ प्राड्विवाक २ राजा ३ व्यवहारियोंकाअधिकृत ४ अर्थिप्रहित ५ कुल्यजन ६ ये भी छःप्रकारके मनुष्य यथा अवसरके आधीन आवश्यकता जानिकर साक्षी समुझेचाहिये अर्थात् यद्यपि यहलोग अनियतसाक्षी हैं तथापि किसी कार्य्यकी आवश्यकता में इनसेभी साक्ष्यालियाजाता है- (ग्राम) अर्थात् नगर का अधिकारी रईस ग्रामाधीश आदि या कोई विख्यातप्रतिष्ठितलोग जो उसग्रामकी दशाओंसे अभिज्ञहों यद्वा सारेग्रामकेनिवासीलोग १-(प्राड्विवाक) अर्थात् हाकिम जो उस नगरमें राजाकीओरसे अधिष्ठितहो या पहले कभी अधिष्ठितरहाहो-सो इसहाकिम के उपलक्षणमें लेखक और सभ्यजनभी समुझेचाहिये-तथाहि-(लेखकःप्राड्विवाकश्च सभ्याश्चैवानुपूर्वशः । नृपेऽपश्यतितत्कार्य्येसाक्षिणःसमुदाहृताः) अर्थात्-जबराजा आपही किसीमुक़द्दमहकी तहक़ीक़ातपरसमुद्यतहो और वहकार्य्य ऐसेअंतरपर दूरस्थहै कि राजा उसको देखनहींसक्ता तब इसदशामें राजाकासमाधानकरनेको लेखक और प्राड्विवाक और सभ्यजनभी यथाक्रमसेसाक्षीकियेजाते हैं कि राजाउनसेपूँछकर निश्चितकरै और दूरस्थकार्य्यको (नहींदेखसक्ताहो) इसप्रातिज्ञासे यहसिद्धांतदर्शाया है कि जहाँतक राजाअपनेनेत्रसे उसदशाकोदेखसकनेमेंसमर्थहो तहाँतक विनादेखे किसीमुक़द्दमेका तोड़ न करे औरभी यहाँपर राजाकेउपलक्षण में प्राड्विवाकभीसमुझा चाहिये किन्तु जैसे राजाकिसी दशाको न देखसकने में हाकिम आदि से पूँछकर निश्चिन करता है तैसेही जिस देश विभागमें हाकिम स्वाधीन किसी मुक़द्दमे का फ़ैसलाकरनेसमय यदि कदाचित् किसीदशाको न देखसक्ताहो तब अपनेलेखक और सभ्योंसेपूँछकरदृढ़ताकरै लेखकनाममुहर्रिरलोग (सभ्यजन) अर्थात् महान्मुन्शी सरिश्तेदार आदि २ (राजा) अर्थात् राजाकासाक्षीहोना केवलयहीहै कि यदि कदाचित् आखेट विहारआदिप्रसंगसे या जिस किसीप्रसंगसे जिसवार्ताकीकोईदशा राजाने

पदेखीसुनीहो और उसीबार्ताकेअभियोगमें किसीदुर्जनकी प्रपंचरचनासे यथार्थ सिद्धिदुर्घटहोजाय तब ऐसेअवसरमें राजाकोस्मृतिदिलाईजातीहै कि अमुकामुक प्रसंगसे हज़ूरनेभी इसवार्ताकी अमुकामुकदशादेखीसुनीथीं-यहाँभी राजाकेउपलक्षण में प्राड्विवाकसंग्रहीतहै ३-चौथा जो व्यवहारियोंकेकार्योंमें (अधिकृत)हो अर्थात् मुनीम गुमाश्ते आदि जो पूर्णअधिकारीहोते हैं क्योंकि यहलोग व्यवहारकेसम्बन्धसे परस्परउनकामोंमें सबकेभेदूहोते हैं इसलिये यद्यपि यहकोई कृतसाक्षियोंमें न हों परन्तु तात्कालिक आवश्यकताजानिकर इनसेभी उसदशाकातत्त्वबूझाजाताहै-और-इसीका दूसरा अर्थयहभीहै कि वेहीदोनों व्यवहारी जो अर्थी प्रत्यर्थीहों तिनकेकार्योंमें जो लोग अधिकृतनाम अधिकारीहों जैसे मुनीम या मुख़्तारआम आदि उनसेभीसाक्ष्य बूझाजाताहै ४-पाँचवां (अर्थिप्रहित) अर्थात् जिसको अर्थीनेठठ उसकामकेहीलिये नियतकियाहो जैसे मुख़्तारख़ास या और कोई जो इसप्रकारकाहोकर अर्थीकीओर से उसकामके उद्योगमें तत्परहो यहाँअर्थीके उपलक्षणमें प्रत्यर्थीभी समुझना किंतु जिसको प्रत्यर्थीने नियतकियाहो सोभी अर्थिप्रहित कहलाताहै यद्वानाम भेदकरनेके लिये उसको प्रत्यर्थिप्रहित कहिलेना यह सिद्धांतहै ५-छठेगवाह(कुल्याः) कुलविवादेषु अर्थात् जहाँ कुलविवादनाम घरूजाति बिरादरीके झगड़ासे नालिशहुईहो तहाँ जो उसकुलमें प्रधानभूत समुझेजातेहों वेही साक्षीहोसक्तेहैं ६ ये ११ प्रकारके साक्षी वर्णनहोचुके-परन्तु-अब यहबात समुझीचाहिये कि जहाँ जिसकामकी दशाके अनुरूप जिसप्रकार के साक्षियोंसे कामचलसक्ताहो उसीप्रकारके साक्षी आवश्यकहोते हैं तथापि यदि आवश्यक प्रकारके साक्षीभी बहुताइतसे उपस्थितहों उनमें किसको छाँटिकर लेनाचाहिये और संख्यामें भी कितने कियेजायँ यहबात नीचे योगीश्वर के मूलवाक्यसे संसिद्ध होगी ॥ इतिसाक्षिस्वरूपम् ॥ अथसाक्षियोग्यता ॥

तपस्विनोदानशीलाः कुलीनाः सत्यवादिनः। धर्मप्रधानाऋजवः पुत्रवंतोधनान्विताः ६९ ॥
त्र्यवराः साक्षिणोज्ञेयाः श्रौतस्मार्तक्रियापराः। यथाजातियथावर्णंसर्वेसर्वेषुवास्मृताः ७० ॥

भक्ष०-सहहृद्योःतपस्वी, दानशील,कुलीन, सत्यवादी,धर्म प्रधान,ऋजु, पुत्रवान्, धनान्वित, श्रौतस्मार्त क्रियापर त्र्यवर साक्षी ज्ञातव्य हैं-यद्वा-यथा जाति यथावर्णके सबसबों में कहे हैं ६९। ७०॥

मभि०-(तपस्वी) किंचतपः स्वभाववाले (दानशील) किंच दानमें निरत स्वभाव उदार चित्तवाले (कुलीन) जो महान् कुलमें जन्मेहों (सत्यवादी) जो सत्यार्थ संभाषण में तत्परहों-(धर्मप्रधान) जो धर्महीं को प्रधानभूत जानते या मानतेहों किंच अर्थकाम इनकी प्रधानता जिनके नहीं अर्थात् अर्थ और कामको भी धर्म मार्गोंसेही उपार्जन करतेहों धर्मातिरिक्त मार्गोंसे नहीं (ऋजु) जो अकुटिलहों (पुत्रवंत) पुत्रोंवाले(धनान्वित)

जो सुवर्ण आदि वहुसंपत्तिमान् (श्रौतस्मार्तक्रियापर) अर्थात् नैत्तिक और नैमित्तिक अनुष्ठानों में रतहों-ऐसे पुरुषसाक्षी होते हैं(त्र्यवर) अर्थात् तीनसे घाटिनहीं पर तीनसे अधिक चाहें तितने संख्यामें अपेक्षाके अनुसार कियेजायँ सोभी जातिके अतिक्रम से नहीं किन्तु यथा जातिकेही साक्षी कियेजायँ अर्थात् मूर्द्धावसिक्त आदि अनुलोमज प्रतिलोमज जातोंके अभियोगमें वेही जातें साक्षी होसक्ती हैं (दृष्टांत) जैसे किसी मूर्द्धावसिक्त जातिके मनुष्यका मुक़दमाहो तौ उसमें उसीजातिके मनुष्य चुनिकर साक्षी कियेजायँ जिनमें ऊर्ध्वोक्त लक्षण पायेजाते हों और संख्यामें तीनसे कमनहों ऐसेही अंबष्ट आदि सबजातों को समुझना-इसीप्रकार-वर्णके अतिक्रमसे नहीं किन्तु यथा वर्णकेही साक्षीकिये जायँ अर्थात् ब्राह्मण आदि वर्णोंके अभियोगमें वेही वर्णसाक्षी होसक्ते हैं जैसे ब्राह्मणके मुक़दमहमें ब्राह्मणही चुनिकर कियेजायँ जिनमें ऊर्ध्वोक्त लक्षण पायेजातेहों और संख्यामें भी तीनसे न्यूनसाक्षी न कियेजायँ यह सर्वत्रजानना और ऐसेही क्षत्रिय आदि वर्णोंको समुझना और इसीमर्यादासे स्त्रियोंके मुक़दमातमें स्त्रियाँ साक्षीहोंगी (स्त्रीणांसाक्ष्यंस्त्रियःकुर्युरितिमनुः) और ऊर्ध्वोक्त लक्षणोंका होना यद्यपि सर्वथा निर्देश कियाहै तथापि यह आग्रह नहींहै कि ये सभी लक्षण प्रत्येक साक्षीमें हों क्योंकि सर्वत्र प्रत्येकमें सब लक्षणों का होना दुर्घटहै इसलिये तात्पर्य केवल इतनाहै कि जहाँतक अधिक लक्षणों के साक्षीमिलसकैं सो अंगीकार कियेजायँ और यथार्थभावसे कोई एकदो लक्षण भी जिसमें पायेजायँ जो कृत्रिम नहों तौ वह साक्षी सर्वलक्षणसंपन्न समुझाचाहिये ६९। ७०॥

अधि०-जिसदशामें तीन या इस्से अधिकजो अपेक्षितहों उतने सभी गवाह एक जातिके या एकही वर्णके न होसकैं अर्थात् उसनगरमें चाहैतितने मनुष्य उसप्रकारके हों परंतु निजअपेक्षितकार्यसे सम्बन्ध उनका कुछनहीं जिस्से उनको साक्षीकियाजाय इत्यादि कारणोंसे एकही जाति या एकहीवर्णके साक्षीसव न होसक्तेहों तव सभीजातों और सभीवर्णोंके लोग सबजातों और वर्णोंके साक्षी परस्पर होसक्ते हैं-ऐसेही-जब कदाचित् ऊर्ध्वोक्त शुभलक्षणोंवाले साक्षीमिलने असंभव हों तब अन्य साधारण मनुष्य भी साक्षीकियेजासक्ते हैं परंतु वेही कि जिनकेलिये साक्षीहोनेका निषेध शास्त्रमें नहो-इसलिये-अब असाक्षियोंके भी लक्षण समुझे चाहिये जिनके साक्षित्वका प्रतिषेध शास्त्रमें नियतहै वह पाँचप्रकारके असाक्षी नारदने प्रदर्शित कियेहैं-यथा(असाक्ष्यपिहिशास्त्रेषुदृष्टः पंचविधोबुधैः । वचनाद्दोषतोभेदात्स्वयमुक्तेर्मृतांतरात्) अर्थात्-नारदकहते हैं कि शास्त्रके विद्वानों ने असाक्षी भी पाँचविधके निश्चितकिये हैं किन्तु वचनसे १ दोषसे २ भेदसे ३ स्वयमुक्तिकारणसे ४ मृतांतर हेतुसे ५-अर्थात्-एकतो वे कि जिनकेलिये शास्त्रके वचनमात्रमेंही साक्षित्वका निषेधहै इनके लक्षण ७१ के

मूलश्लोकमें देखो-दूसरे जो अपने आचरणों के दोष हेतु से साक्षी होने योग्य न रहैं-तीसरे जो गवाही देतेसमय भेद वाक्य उच्चारणकरैं-चौथे स्वयं उक्ति अर्थात् जो विनाबुलाये और विनाबदे जाकर साक्षी देनेलगै-पाँचवें मृतांतर जो साक्षी देने से प्रथम अर्थी या प्रत्यर्थीके मरजानेसे गवाहीदेनेयोग्य नहीं-इन पाँचोंके यथार्थ लक्षण नीचे मूल श्लोक और उसकी अधिकोक्तितक जानेजायँगे ६९-७० अब असाक्षियों के स्वरूप कथनकरतेहैं ६९।७०॥

श्रोत्रियास्तापसावृद्धायेचप्रव्रजितादयः। असाक्षिणस्तेवचनान्नात्रहेतुरुदाहृतः ७१॥

अक्ष०-श्रोत्रिय तापस वृद्ध और जो प्रव्रजित आदिहोतेहैं वे सब असाक्षीहैं वचन सेही इसमें हेतु नहींकहा ७१॥

अभि०-ऊर्ध्वोक्त नारदके प्रदर्शितकियेहुये पाँच विधके असाक्षियोंमें प्रथम जो वचनमात्रसे प्रतिषिद्धबतायेथे तिनके लक्षण योगीश्वरके इसमूलवाक्यमें पायेगये-यथा-एक तो (श्रोत्रिय) अर्थात् पूर्णविद्वान् और उत्तम विद्यार्थीचाहै किसी विद्यामें परिनिष्ठितहों इसका नियमनहीं-(तापस) अर्थात् वानप्रस्थ जो भार्यासहित बनमें तपकरतेहैं और इनके उपलक्षणमें वे भी समुझनेचाहिये जो अन्यप्रकारसे बनमें बास करतेहों-(वृद्ध) अतिबूढ़ा जिसके इंद्रियगण विकल या शिथिलहों-(प्रव्रजित) संन्यासी और-(प्रव्रजितआदि) इस आदिशब्दसे पितुराज्ञाभंगकारी आदि अनेक समुझने चाहिये और इनसबोंका प्रमाणनीचे अधिकोक्तिमें शंखमुनिके वाक्यसे देखो-योगीश्वर कहतेहैं वेमनुष्य वचनके प्रतिषेधमात्रसेही असाक्षीहैं इसमें कोईसाहेतु नहीं कथन कियाहै कि वे किसहेतुसे साक्षीनहींहोसक्ते ७१॥

अधि०-शंखवचनं-यथा-पित्राविवदमान गुरुकुलवासि परिव्राजक वानप्रस्थ निर्ग्रन्था असाक्षिणः-अर्थात्-जो पितासे विवादरखतेहों या उसकी आज्ञाभंगकरतेहों-और-गुरुकुलवासी जो विद्यासंग्रहकरनेके निमित्तसे किसी गुरुशाला या पाठशाला में घरछोड़कर निवासीहुयेहों और इन्हींके उपलक्षणमें वे भी समुझनेचाहिये जो बावाजीकेपेटपालू चेले बहुतसेहोतेहैं-और-(परिव्राजक) यती संन्यासी-और-(वानप्रस्थ) इसके लक्षण ऊपरकहेगये-और-(निर्ग्रंथ) इसनिर्ग्रंथशब्दसे अनेक समुझनेचाहिये अर्थात् नागे जो नग्न रहतेहैं-दिगम्बर-निर्लज्जपुरुष-निस्थ जो स्थान बांधकर कहीं नहीं रहते-निष्किंचन जिसके पास फटाचीथड़ाभी न हो-बालिश नासमुझ-मूर्ख जिसको अपने शरीर के नैत्तिक संस्कारभी करसकने की प्रज्ञा न हो-विकृतबुद्धिजो सर्वकाल असावधान रहतेहों-निःसहाय एकाकी मुनिजो शिलोञ्छादि वृत्तियोंसे अहिंसापूर्वक निर्वाहकरनेमें तत्परहों-इत्यादि अनेकजन इसीएकनिर्ग्रंथ शब्दसेसमुझने

चाहिये यहसब लोग साक्षी नियत करनेयोग्य नहीं इसलिये असाक्षी कहलातेहैंयह शंखजीने कहा-और-इसीकी अपेक्षामें ऊपर योगीश्वरने उत्तरार्ध मूलश्लोकसे यह वार्त्ताजोकही कि इनकेनिषेधमें कोईसाहेतु नहींहै तिसका यहसिद्धांतहै कियदिकोईअर्थी या प्रत्यर्थी इनमेंसे किसीकोभी साक्षी नियतकरै या करनाचाहै और वहकोईसी दलीलखड़ीकरै कि बतलावो इसकेसाक्षीहोनेमें क्याबिगाड़है या किसहेतुसे यहसाक्षीनहींहोसक्ता तौयहतर्क उसकीसुनीनहींजावे और न कुछउत्तर देनेकी आवश्यकतासमुझीजाय किंतुकेवल यहीउत्तरहै कि इसमेंकोई हेतुनहीं क्योंकि प्रतिषेधइनका शास्त्रकी आज्ञारूपी वचनसेही नियतहै-अन्यथा-यह न समुझनाचाहिये कि इसमें निपटहेतुहैहीनहीं क्योंकिकारण विनाकार्यकीउत्पत्तिनहींहोसक्ती कार्य औरकारणकानैत्तिक सम्बन्धहै जहांकुछकार्यहोगा तहांकारणभी अवश्यभावलगाहोगा किन्तुयहांभी दोचार हेतुसबकेसाथ प्रत्येकभिन्न २ हैं (दृष्टान्त) यथापूर्णविद्वान्कोयदिकिसीकीगवाहीमें खिंचा२फिरनापरै तौ उसकीप्रतिष्ठामें अन्तरआताहै क्योंकिप्रथमतौयहबात किसाक्षीदेते समयनजानिये कोईवार्ता मुखसेविरुद्धउच्चारणहोजायतौ राजद्वारका कलङ्कीठहरै दूसरेजिसकेहक्कमेंगवाही उसकोहानिकारकहोगी वहीउसकाशत्रुहोजायगाइत्यादि औरभी कईकारण इसमेंगुप्तहैं-मुनिजो अहिंसा पालनकरनेकेलिये कोईसी आजीवन वृत्तिनहींकरते केवल शिलोंछसे निर्वाहकरते हैं उनसेयहबात क्योंकरसहीजायगी कि दोमेंसे किसीएककोहानि अपने वचनसेपहुँचावैं किंतु वे लोग इसकोभी हिंसासमुझा करते हैं कि यदि अपने सत्यबोलनेसे किसीको पीड़ापहुँचै इसीलिये कोईसी धर्म्यावृत्तिभी नहींकरते क्योंकि वृत्तिचाहे धर्म्याभीहो परकिसीको पीड़ापहुँचायेविना सिद्ध नहींहोसक्ती केवल इतनाअंतरहै कि धर्म्यावृत्तिमें धर्ममार्गसेही पीड़ापहुँचाईजाती जिसको देवताभी सहिसक्तेहैं और अधर्म्यावृत्ति करनेवाले अधर्मसे दुःखदेते जो किसीसेभी सहानहींजाता-गुरुकुलवासी यदिसाक्षीकियाजाय आजयहांहै दशदिन पीछे अपनेदेशमें तब उसको कहांढूंढतेफिरैं यद्वा आवश्यकतापर वहाँसेभी खैंचबुलानाहुआतौभी एकउपद्रवहै यद्वाउसको विद्यासंग्रहकी दशामेंहीकहीं साक्षीभरनेजाना परा तौ उसके विद्यासंग्रहमें विघ्नहोगा इसकेसिवाय कुछविदेशीहोनेपर यहबातनहीं किंतु गुरुकुलवासी यह विद्यार्थीमात्रकी संज्ञाहै कि जबतक वह विद्यासंग्रहकरैचाहे निजघरमेंही निवासकरनाहो और अवस्थासे कुछनियमनहीं इत्यादि औरभी अनेक हेतु-निर्लज्ज जो आपही लज्जानहींरखता वह किसीकी यथार्थसाक्षी क्यादेसकैगा इत्यादि कोईऐसानहीं कि जिसकेसाथ दोचारहेतुनहीं हैं परन्तु इनके जानने या निर्णयकरनेका विस्तार व्यर्थजानिकर यहवचनप्रमाण इसमेंदियागया कि (नात्रहेतुरुदाहृतः) यहांतक नारदोक्त पांचप्रकारोंमेंसे एकप्रकारके असाक्षी निश्चितहोचुके

जिनका प्रतिषेध वचनमात्रसे नारदने बतलायाथा-अब द्वितीयप्रकारके असाक्षी जो अपनेकर्मदोषोंसे साक्षीदेने योग्यनहीं उनके लक्षणकहते हैं-यथा(स्तेनाःसाहसिकाश्चंडाःकितवावंचकास्तथा । असाक्षिणस्तेदुष्टत्वात्तेषुसत्यंनविद्यते)-अर्थात्-स्तेनचोर-(साहसिक) जो विख्यात उपद्रवीहों जो प्रत्येकसे प्रबलताकरतेहों-चंडजोक्रोधीहों कोपावेशबनेरहतेहों-(कितव) छलियाप्रपंची और जुआरी-(वंचक) ठगिया-वेसब अपनेदुष्टत्वसे असाक्षी समुझनेचाहिये क्योंकि उनमें सत्यताका निवासनहींहोता इसलिये साक्षीदेनेयोग्यनहीं-अब तृतीयप्रकारके असाक्षी जो भेदवाक्यसे नारदनेबताये थे उनके लक्षणभी नारदकेही वाक्यसेकहते हैं-यथा-(साक्षिणांलिखितानांचनिर्दिष्टानांच वादिना। तेषामेकोन्यथावादीभेदात्सर्वेनसाक्षिणः)-अर्थात्-किसीवादीअर्थी या प्रत्यर्थीकीओरसे जो साक्षी लिखेजायँ और निर्देशपूर्वक बुलाये जायँ तिनमें कोई एक भी यदि अन्यथावादी हो जाय तौ उसपक्षके सभीगवाह इसभेदके होनेसे साक्षीनहीं होसक्ते अर्थात् वादी या प्रतिवादीने जो कुछदशा अपने अभियोग में लिखवाई और उसीकी प्रमाणतामध्ये अपने साक्षी लिखवाये कि अमुकामुक मनुष्य इसबात के साक्षीहैं परन्तु वेहीसाक्षीदशा बूझीजानेके समयपर सबकेसभी या कोई एकभी उनमेंसे इसप्रकारका अन्यथावादीहोजावै कि जो दशाअर्थीने पूर्वलिखवाई या वर्णन करीथी उस्से इतर कुछउच्चारणकरै तौ यह भेदहुआ इसभेदके होजानेसे उसपक्षीके सभीगवाह सुनेजाने योग्यनहींरहे-परन्तु-इसवार्तामें यहसिद्धांतहै कि वेशेषगवाह जो इसभेदकेहेतुसे नहींसुनेगये सोतो केवल इसीमुक़दमहमें असाक्षीठहरे किंतु अन्यत्र वे सभी मुक़द्दमातमें असाक्षीनहीं कहलासक्ते और वहएक जो अन्यथावादीहुआ सो अन्यत्रभीकिसीके अभियोगमें साक्षीठहरानेयोग्यनहींरहा अर्थात् ऐसे मनुष्यकोयदि कोई औरभी साक्षीवदिकर कभीलावै तौ स्वीकारनहो-और अन्यथावादित्वकायथार्थ यहलक्षणहै कि जो बात उस्सेबूझीगई तिसकाउत्तर छोड़कर कुछ और बातहबड़ाते हुये कहनेलगे जो उसदशासे संबन्धनरखतीहो-अब चतुर्थभाँतिके असाक्षीस्वयमुक्ति जो नारदनेबतायेथे तिनकारूपकहतेहैं-यथा(स्वयमुक्तिरनिर्दिष्टःस्वयमेवै त्ययोवदेत्। सूचीत्युक्तःसशास्त्रेषुनससाक्षित्वमर्हति)अर्थात्-स्वयंउक्ति वहकि जो विना बदे बुलाये आपहीजाकर गवाहीदेने लगै वह (सूची) इसनामसे विख्यात है शास्त्रोंमें और वह साक्षीदेने योग्य नहींहोता-अब पंचमप्रकार के असाक्षीमृतांतर जो नारदने वतायेथे उनकालक्षण कहते हैं-यथा (योऽर्थःश्रावयितव्यःस्यात्तस्मिन्नसतिचार्थिनि। क्वतद्वदतु साक्षित्वमित्यसाक्षीमृतांतरः)अर्थात्-जो कुछ अर्थ सुनानेयोग्यहो उसके विनासुनाये समुझाये अर्थी या प्रत्यर्थी के मरजानेपर कहां साक्षीदेसक्ताहै इस हेतुसे वहगवाह मृतांतर कहलाकर असाक्षीनिश्चित होताहै-सिद्धांत इसकायह कि यदि कोई पुरुष

किसीकार्यमें अर्थीका साक्षीहो या प्रत्यर्थी का और वही अर्थी याप्रत्यर्थी ऐसीदशा में मरजावै कि उस कार्यका अभियोग राजद्वारतक न पहुंचाहो और उस मरनेवाले ने अपने दावेकी यथार्थदशाभी मरते समय या पहले कभी साक्षियोंको संबोधित न करीहो और न उनसे यह कहदियाहो कि तुमको इस अभियोगमें गवाही देनीहोगी तौ प्रत्यक्षहै कि वह साक्षी किस अर्थमें या किसपक्षीकी ओरसे प्रमाण कर सकैगा इसलिये इसप्रकार मृतांतर साक्षीभी असाक्षी कहलाते किंतु इनसे साक्ष्यनहींलिया जासक्ता-परन्तु मरते समय या पहले कभी साक्षियोंका यथार्थ वृत्तांत से संबोधित करिके माराहोगा तहां वह मृतांतर साक्षीभी स्वीकार होंगे-यद्वा-साक्षियोंको समुझा नेकाअवसर नहींवना परन्तुपिताने मरतेसमय या पहलेकभीअपने पुत्रोंकोयाअपने अन्य अधिकारियोंको वृत्तांतसे संबोधित कियाहोगा तहांभी मृतांतर साक्षीस्वीकार होसक्तेहैं-यथाहनारदः (मृतांतरोऽर्थिनिप्रेतेमुमूर्षुश्राविताहते)-अर्थात्-अर्थी या प्रत्यर्थीके मरजाने पर मृतांतर असाक्षी उसको छोड़कर समुझना जिसको अर्थी या प्रत्यर्थीने मरतेसमय समुझायाहो किंतु वहअसाक्षियोंकी संख्यामें नहींहै-अन्यच्च-(श्रावितोऽनातुरेणापियस्त्वर्थोधर्मसंहितः। मृतेपितत्रसाक्षीस्यात्षट्सुचान्वाहितादिषु) अर्थात् जो कुछ अर्थ धर्म संहिता सच्चासच्चाहो और वह अरोगताकी दशामेंभी अर्थी या प्रत्यर्थीने किसीदूसरेको सुनायाहो तौ वह श्रवणकरनेवाला उसकेमरजाने परभी साक्षी होसक्ताहै उसदशामेंकि यदि मुक़दमा अन्वाहित आदि किसीछःप्रकारके धरोहरमेंभी हो-धरोहरमें(भी)हो इस(भी) शब्दके प्रत्ययसे यह आशय पायागया कि यहमर्यादा ऋणादिकसभी विवादोंमें होसक्तीहै यथाऋणादिवादोंके सिवायछःप्रकारके धरोहरमेंभी मृतांतर साक्षी जो मुमूर्षुश्रावित हो साक्ष्य देसक्ता है-परन्तु-यह सिद्धांत इस्से प्रत्यक्षपायागया कि साहसआदि अन्यविवाद जो फ़ौजदारीसे संबंधितहोंउन में यह मर्याद कदाचित्भी न होसकैगी-छःप्रकार की धरोहरोंके नाम-यथा-याचित १ अन्वाहित २ शिल्पिदत्त ३ उपनिधि ४ न्यास ५ प्रतिन्यास ६-यथाहनारदः(एषएवविधिर्दृष्टोयाचितान्वाहितादिषु। शिल्पिषूपनिधौन्यासेप्रतिन्यासेतथैवच) अर्थइसका ६८ की अधिकोक्तिमें कहचुके हैं उपनिधिके प्रसंगसे देखलो-यह पांचोंभांतिके असाक्षीवर्णन कियेगये इसलिये कि जिनके साक्षीहोनेका निपट प्रतिषेध है तिनकोछोड़ कर उसदशामें अन्यसाधारण मनुष्यभी साक्षीकियेजासक्ते हैं कि यदि ६९ और ७० श्लोक मूलके प्रदर्शित कियेसाक्षी मिलने दुर्लभहों ७१ यह संदेह न करना चाहिये कि योगीश्वरने इस ७१ के मूल श्लोकमें असाक्षीकेवल एक विधिके कहे अन्यचार भांति के असाक्षी अधिकोक्तिमें अन्यस्मृतियोंसे संसिद्धहुये योगीश्वर ने क्यों छोड़ दिये-क्योंकि योगीश्वरनेछोड़े नहीं किन्तु निचलेदो श्लोकोंमे इनसभी का प्रतिषेध

धारण भावसे करेंगे और उनकेसाथ औरभी कईभांतिके असाक्षी अधिकदर्शावेंगे देखो ७१ अब आगे साधारणअसाक्षी दर्शाते हैं ७१ ॥

स्त्रीबालवृद्धकितवमत्तोन्मत्ताभिशस्तकाः। रंगावतारिपाखंडिकूटकृद्विकलेंद्रियाः ७२ ॥
पतिताप्तार्थसंबंधिसहायरिपुतस्कराः। साहसीदृष्टदोषश्चनिर्धूताद्यास्त्वसाक्षिणः ७३ ॥

मक्ष०—सहृद्वयोः स्त्री बालक वृद्ध कितव मत्त उन्मत्त अभिशस्त रंगावतारी पाखंडी कूटकृत् विकलेंद्रिय पतित आप्त अर्थसंबंधी सहाय रिपु तस्कर साहसी दृष्टदोष धूर्त आदि भी असाक्षी होतेहैं ७२। ७३ ॥

अभि०—सहृद्वयोः (स्त्री) प्रसिद्ध है कि नारीमात्र कोई हो (बालक) जो अप्राप्त व्यवहार काल हो (वृद्ध) बूढ़ा जो अस्सीवर्षकी अवस्थासे ऊपर हो (कितव) जुआरीजो पांसोंसे खेलै (मत्त) जो मद्यपानादिकसे मतवारा हो (उन्मत्त) जो ग्रहाविष्ट होनेसे विक्षिप्तहो (अभिशस्त) जो ब्रह्महत्यादि महापातकोंसे अभियुक्त होकर दुर्नामताको पहुँचाहो(रंगावतारी) नटको आदि लेकर अनेक जो तमाशेगर होतेहैं (पाखंडी) जो किसी मत में स्थिर नहोपर लालचसे अनेक मतके रूप धारणकरै (कूटकृत) कपटलेख्य आदि बनानेवाला जालसाज़ किन्तु झूँठे पत्र या कृत्रिम मुद्रा आदि संपादक (विकलेंद्रिय) जिसकी कोई इन्द्रिय हीन हो जैसे बहिरा आदि (पतित) जो ब्रह्महत्या आदि प्रवल पातकोंके हेतुसे निपटजाति बाह्य कियाजाय-(आप्त) स्वकीयमित्र अर्थात् अर्थी या प्रत्यर्थीका परमहितू (अर्थसंबंधी) जिसको ठेठ उसीविवादसे कुछ संबंध हो (सहाय) जो ठेठ उसी अर्थी या प्रत्यर्थीका साझीचाहै किसी कार्यमें साझीहो इसका नियम नहीं (रिपु) जो अर्थी या प्रत्यर्थीसे किसीप्रकारकी अदावत वैरभाव रखताहो (तस्कर) चोरचाहै किसीप्रकारके चोरोंमें गिनतीहो-(साहसी) उपद्रवी अर्थात् जो बहुधा जनोंपर प्रवलता आदि उपद्रव कियाकरताहो-(दृष्टदोष) जो असत्यादि दोषोंसे कदाचित्भी दोषी निश्चित होचुकाहो-(निर्धूत) जोठेठ अपने गोत्र या बांधवों से वहिष्कृत किसीअपराध करके हुआहो-(आद्या) इसआद्य शब्दसे वे भी समुझलेनेचाहिये जिन का चर्चा ७१की अधिकोक्तिमें अन्य स्मृतियोंके वाक्योंसे होचुकाहै अर्थात् पूर्वोक्त पांच प्रकारोंमेंसे द्वितीय तृतीय चतुर्थ पंचमप्रकारके असाक्षी जो२ यहांपर कथनसे रहगये हों वेभी इनके साथमें इस आद्यशब्दके भावार्थ से संग्रहीत करिलेने चाहिये इसरीतिसे योगीश्वरने कोईभी न छोड़ा वलिक उनसेभी कुछ अधिक इसमें दर्शाये-यह सव लोग असाक्षी किन्तु साक्षीहोनेयोग्य नहींहोते इसलिये इनको छोड़कर साधारणों का संग्रह किसी आवश्यक दशामें करनाचाहिये जैसा ऊपरली अधिकोक्तिके अंतमें लिखचुके हैं ७२ । ७३॥ अव निचले श्लोकमें त्र्यवर साक्षियोंका अपवाद कहते हैं अर्थात् ७० के श्लोकमें यह मर्यादा जो नियत करीथी कि तीनसे अधिक

चाहे तितने हों पर तीनसे कमनहों तिसकी छूट नीचे कहीजायगी कि ऐसे पुरुषको छोड़कर वह मर्यादा समुझनी चाहिये ७२। ७३॥

उभयानुमतः साक्षीभवत्येकोपिधर्मवित् ७४ पूर्वार्द्धः॥

अक्ष०—दोनों का अनुमत धर्मवित् साक्षी एक भी होताहै ७४॥

अभि०—नित्य नैमित्तिक धर्मोंको यथाविधि जानतेहुये साधन करनेवाला सो वह धर्मवित् कहाताहै ऐसापुरुष एकभी साक्षीकार्य साधक होसक्ताहै पर उसदशामें कि यदि अर्थी प्रत्यर्थी दोनों उसके साक्ष्यका स्वीकार करैं (एक-भी) इसभी शब्दके बल प्रभावसे ऐसे दोसाक्षियोंकाभी होना संसिद्धहै-यद्यपि-धर्मवित् यह विशेषण जो यहां पर एक या दोकेलिये कहागया यहीविशेषण तीन या तीनसे अधिकों परभी निश्चित होचुकाहै क्योंकि ७०के श्लोकमें कहचुकेहैं कि (श्रौतस्मार्तक्रियापराः)इस्से यह और वह दोनों एकसे ठहरे किंतु कोईसी विशेषता यहांपर न पाईगई जिसके हेतुसे एक या दोके मध्ये जुदी मर्यादा समुझी जाय-तथापि- यह विशेषता यहाँपर पाईगई कि तत्रोक्त पूरेतीन या उस्से अधिक साक्षी दोनोंकी अनुमति और स्वीकारता विनाभी होसक्ते हैं-परंतु-अत्रोक्त मर्यादासे केवल एक या दो साक्षी अर्थी प्रत्यर्थी दोनोंकी अनुमति और स्वीकारताविना कदाचित् नहींहोसक्ते इसलिये वहांपर पूरेतीन या इस्से अधिक साक्षियोंकी आज्ञा कुछ निरर्थक नहींथी ७४॥

अधि०—इस अभिप्रायिक आशयसे यह सिद्धांतभी पायागया कि दोनोंकी परस्पर अनुमतिसे दोनोंबीच दोनोंओरसे एकही या दोसाक्षी उन्हीं अभियोगोंमें कियेजासक्तेहैं कि जिनमें विशेषकर दोनोंओरसे जुदेसाक्षीहोनेकी आवश्यकता नहींपाईजाय-जो कि तीन या उस्सेअधिक साक्षी अर्थीप्रत्यर्थीकी अनुमति और स्वीकारता विना भीहोसकने निश्चितहुये तौ इस्सेभी यह आशयपायागया कि यहबात उन्हीं अभियोगोंमेंहोसक्तीहै जिनमें दोनोंओरसे जुदेसाक्षीहोनेकी आवश्यकता नहींपाईजाय-और उनमेंभी कि जिन अभियोगोंमें सरकार मुद्दईहोतीहो क्योंकि जिनअभियोगोंमें अपने जुदेगवाहलानेकी आवश्यकताहोगी उनमें अर्थी या प्रत्यर्थी कोईभी तीनगवाहलाने का उज्जरनहींकरसक्ता जिसपरउसकी अस्वीकारता आरोपित करीजाय बल्किजिसके पूरे तीनगवाहमिलसकने दुर्लभहोंगे उस्से कुछप्रेरणाकाभी अधिकअवसरनहींहै इन कारणोंसे सर्वथानिश्चितहोताहै कि वहपूरेतीनगवाहोंकीआज्ञा केवलउसीदशापर आरूढ़है कि जब अर्थी प्रत्यर्थी दोनोंकेगवाह एकहों-या-सरकार मुद्दईहो-और-इन्हींदोनों दशाके संबंधपर ७४ का पूर्वार्द्धहै कि यदिऐसीदशामें अर्थीप्रत्यर्थी इसबातपर प्रसन्न हो स्वीकार करें कि हम एकही यादोही अमुक साक्षियोंकी गवाहीसे मुकद्दमह की हारजीत जो कुछहो अंगीकार करेंगे तौ फिर उस एकही या दोहीका साक्ष्य लेक

विवादका निर्णय होजायगा और जोइसबातपर प्रसन्नताउनकी नहो तौतीनगवाहों का साक्ष्य लियाजायगा और जो तीन गवाहोंके साक्ष्यपरभी प्रसन्नता अपनी आरोपित न करैं तौभी इस विवाद का फ़ैसल होना नहींरुकसक्ता-हांयहबात होसक्ती है कि हाकिम चाहे उनकी प्रसन्नताके लिये कुछ और गवाहोंको बुलावै या उन्हींको लेआनेकी आज्ञादेवै परइसदशामेंभी अधिकोंके न मिलनेपर विवादका निर्णयहोना नहीं रुकसक्ता चाहे कोईवादी और प्रतिवादीप्रसन्नहो या न हो इसपरकुछ आरूढ़ नहीं ७४ अवनिचले उत्तरार्द्ध मूलश्लोकमें पूर्वोक्तपाँचश्लोकोंका अपवाद एकसाथ कहते हैं अर्थात् ६९।७०।७१।७२। ७३ इनपाँचश्लोकोंसे जो २ कुछमर्यादें कहचुकेहैं तिनकी छूटकियेदेते हैं कि अमुकामुक अभियोगोंको छोड़करशेष अभियोगोंमें उनमर्यादोंको संबन्धित समुझनाचाहिये ७४॥

सर्वःसाक्षीसंग्रहणेचौर्यपारुष्यसाहसे ७४ उत्तरार्द्धः॥

अक्ष०–स्त्रीसंग्रहणमें १ चोरीमें २ पारुष्यमें ३ साहसमें ४ सभीसाक्षीहोतेहैं ७४॥

अभि०–स्त्रीसंग्रहणआदि चारोंभाँतिके विवादोंके लक्षण आगे जहाँ तहाँ निज२ स्थलपर भिन्न२कहेजायँगे तिनके अभियोगोंमें सबलोग साक्षीहोसक्ते हैं अर्थात् जो ७१ के श्लोकमूलमें वचनमात्रसे निषेधकियेगये वेभी साक्षीहोते हैं और ६९। ७० दोश्लोकोंमें तपोविशिष्टआदि गुणसंयुक्त जो होनेकहेथे वेही सब उनगुणोंसे रहित होनेपरभी साक्षीहोसक्तेहैं बरन जो ७२ और ७३ श्लोकोंमें निषेधकियेगये उनकाभी साक्ष्यहोना किसीतीव्र आवश्यकतापर संभवहै-परन्तु-यह विवेक इसमें भी कर्तव्य है कि जहांतक होसकै उनचारि भांतिके असाक्षियों का साक्ष्यलेनेसे हाथखींचै जिन के लक्षण और निषेध ७१ की अधिकोक्तिमें द्वितीयप्रकारसे लेकर पंचमप्रकार तक लिखागयाथा क्योंकि उनमें सत्यका निवास नहीं होता यहकारण यहांभी विद्यमान है-किंतु उनपांचमेंसे प्रथमप्रकार जो वचनमात्रसे ७१ के मूलवाक्यमें निषेध हुआ था उनसे निःसंदेहसाक्ष्य लियाजाय ७४॥

अधि०–आशंका (मनुष्यमारणंचौर्यंपरदाराभिमर्शनम्। पारुष्यमुभयंचेतिसाहसं स्याच्चतुर्विधम्)अर्थात् मनुष्यकामारडालना १ चोरीकरना २ पराई स्त्रीपर हाथडालना ३ किसीके साथवाक्पारुष्य यद्वा दंडपारुष्य का अपराध करना ४ यह चारों काम साहस कहलाते हैं क्योंकि जो कामसहसा अधिक वलसे प्रवलहोकर किया जाय सो साहसकहाताहै इसकारणसे साहस जो है सोई चार विध का होताहै-जब कि एक साहसकेहीनामसे यह चारोंनाम समुझे जातेहैं तौफिर ऊपर मूल श्लोकमें जुदे २ तीनोंनाम कहनेपरभी चौथानाम साहसका क्यों कहागया इस आशंका में यह निर्णय कर्तव्यहै कि येही सवऊर्ध्वोक्त अपराध यदि प्रत्यक्ष मनुष्योंके देखतेहुये

प्रवलता रूपसे कियेजायँ तौ उसदशामें साहसनाम कहाजाता और जोवेही काम गुप्तभावसे एकांतमें कियेजायँ तौफिर अपने २ नामसे विख्यात होतेहैं इसीलिये उनसवोंकी व्यवस्थाभी जुदी२ निज २ स्थलपर कही जायगी और साहसके यथार्थ चारोंरूप यहहोतेहैं॥

मनुष्यमारण १	चोरीजोप्रवलतासे २	परस्त्रीसंग्रहप्रवलतासे ३	वाक्पारुष्यदंड-पारुष्य ४
क़तलइन्सान	सरक़ह्बिल्जब्र	परस्त्रीकाभगालेजानाया लेबैठनाज़बरदस्तीसे	हमलह-अमलबेजा

इनचारोंको संस्कृतमें साहस और यावनके भाषा अनुसार जुरायम संगीन कहते अर्थात् कोईकाम इनमेंसे कियाजाय तौ वह जुरम संगीन या साहस कहाता है और साहसरूप होजानेपर दंड विधानभी अधिक होताहै ७४ अबनिचले अर्द्धामें साक्षि श्रावण विधि कहते हैं और उस्से नीचे सार्द्धद्वय श्लोकों में शपथ आदि जो साक्षियों को सुनानाचाहिये सो सब कहाजायगा ७४॥

साक्षिणःश्रावयेद्वादिप्रतिवादिसमीपगान् ७५ पूर्वार्द्धः॥

अक्ष०—वादी प्रतिवादी के समीप वैठेहुये साक्षी सुनवावे ७५॥

अभि०—अर्थी प्रत्यर्थी दोनोंके सन्मुख सव साक्षियोंको इकट्ठे करके सुनवावै अर्थात् उन्हें प्रतिज्ञारूपी अग्रोक्त वचनों को सुनाकर व्यवस्था जो अपेक्षितहो सो बूझै ७५॥

भावि०—सवोंको इकट्ठे करिकैवूझै अर्थात् जितने साक्षी ठहरेहों उनसबोंको इकट्ठे एक साथ वैठारिकर अर्थी प्रत्यर्थी दोनोंके सन्मुख दशा बूझै किन्तु आगे पीछे कालांतरसे नहीं इसमें गौतमने यह विशेषता कहीहै कि(नासमवेताः पृष्टाः प्रब्रूयुः)अर्थात् जबतक सब इकट्ठे होकर न बूझे जायँ तबतक कुछ उत्तर बूझनेपरभी न देवैं यह गवाहों पर योग्यता है-जोकि-निचले अढ़ाई श्लोकोंमेंकहेहुये वाक्य उनगवाहोंको सुनायेजाने उचितहैं सो पहलेही वैंठते सार सुनावै तिसमें भी कात्यायनजीने कुछ विशेषता करी है-यथा(सभांतःसाक्षिणःसर्वानर्थिप्रत्यार्थिसन्निधौ । प्राड्विवाकोनियुंजीतविधिनानेनसांत्वयन्—देवब्राह्मणसान्निध्येसाक्ष्यंपृच्छेदृतंद्विजान् । उदङ्मुखान्प्राङ्मुखान्वापूर्वाह्णेवैशुचिःशुचीन्-आहूयसाक्षिणःपृच्छेन्नियम्यशपथैर्भृशम्।समस्तान्विदिताचारानविज्ञातार्थान्पृथक्पृथक्) अर्थात् प्राड्विवाकनामसभापतिहाकिम सभामें सव साक्षियोंको अर्थी प्रत्यर्थीकेसन्मुख मधुरवाणीसेवोलताहुआ इसविधिसे नियुक्त करै कि-देवताकी मूर्त्ति या सर्वगुणासंपन्न ब्राह्मणोंकेनिकट द्विजातियोंसे सच्ची दशा बूझै उनको उत्तरमुख अथवा पूर्वाभिमुख वैठारिकर मध्याह्नसे पहले स्नान आदि नित्यक्रिया कियेहुयोंको और आप भी स्नानादिकोंसे पवित्र सावधान होकर

बूझै-इसभाँति उनकेइज़हारलिये पीछेभी सबगवाहोंकोबुलाकर जो जो उनमेंशुभआ-चारवान्‌जानेहुये और मुक़द्दमेकी दशाओंसे अभिज्ञजानेजातेहों तिनसेप्रत्येकजुदे२ को बारंबार परमेश्वरसंबंधी भयदर्शक शपथेंदिलवाताहुआ एकांतमें बूझै-इसबूझनेके प्रसंगमें शपथों का प्रकारभी ब्राह्मण आदिवर्णोंके अनुरूप मनुने प्रदर्शित कियाहै-यथा (सत्येनशापयेद्विप्रंक्षत्रियंवाहनायुधैः। गोबीजकांचनैर्वैश्यंशूद्रंसर्वैस्तुपातकैः) अर्थात्-ब्राह्मणको इसभाँति शापदेताहुआ बूझै कि यदि अन्यथा इसमें कुछ कहोगे तो तुम्हारा सत्यधर्म्म नाश होजायगा-क्षत्रियको इसप्रकारसे कि तुम्हें तुम्हारे बाहन सवारी आदि और शस्त्र जो हैं सो विफल होजायँगे-और वैश्यको इसप्रकार से कि गऊ आदि समृद्धि और अन्नादि बीज और सुवर्णआदि धन सम्पत्ति तुम्हें फलीभूत न रहेंगे-शूद्र को इसप्रकारसे कि यदि अन्यथा कुछ कहेगा तो तेरेमाथे सबअपराधों का पातक चढ़ैगा कि जैसे अपराध करनेवाले को पातक सद्भाव होता है-और यहशूद्रका उपलक्षण यहांपर कारूक जातों या पेशेकारों आदि छोटे मनुष्यपर समुझाचाहिये किंतु जो शूद्रजाति होनेपरभी क्षत्रिय या वैश्यके समान वृत्ति रखता हो उसको क्षत्रिय और वैश्यके समान शपथदेनी चाहिये-क्योंकि-जिस मनुनेयहशपथ का प्रकार कहा उसीने इस वार्तामें अपवाद भी कहा है-यथा-(गोरक्षकान्वाणिजकांस्तथाकारुकुशीलवान्। प्रेष्यान्वार्धुषिकांश्चैवद्विजान्शूद्रवदाचरेत्) अर्थात्-जोकोई द्विजातीलोग ब्राह्मण आदि गोरक्षक वृत्ति गऊ आदि पशुचराना या उनसे दुग्धवि-क्रय आदि जीवन वृत्ति गोपालोंवत् करतेहों-या-ब्राह्मणक्षत्रिय पचूनियां की दूकान-या-तीनों जातें शूद्रोंवाली कारूकवृत्ति कारीगरी शिलपकर्म चटाई आदि बनाते वा राज वढ़ईआदि का पेशारखतेहों-या-गायनआदि वृत्तिकरते हों-या-प्रेष्यनाम धावक आदि सेवकवृत्ति-या-वार्धुषिक जो व्याजसे आजीवन करतेहों उनको वही शपथदेनी चाहिये जो शूद्रों के निमित्त में ऊपर लिखचुके हैं अर्थात् ऊर्ध्वोक्त वर्णोंकी विशेष व्यवस्था उन वर्णोंके स्वकीय कर्ममात्रसे अपेक्षित है जातिमात्रसे नहीं-और-छूटका स्वरूप इसमेंयहीहै कि स्वकीय वृत्ति व्यतिरिक्तों को छोड़कर निज वृत्तिमान् वर्णोंके निमित्तमें ऊर्ध्वोक्तशपथका प्रकारजानो यदि कदाचित् गवाहोंके उपस्थितहोतेसमय प्रतिवादी उनमेंकोईसा दूषण आरोपितकरै कि यह गवाह अमुकशास्त्रोक्त दोषके हेतु से गवाहीदेने योग्यनहीं है (दृष्टांत) यथाबालक अप्राप्त व्यवहारकाल है इत्यादि कोईसा दूषण आरोपित करै और वहदूषण उसके योग्य प्रत्यक्षप्रतीत होताहो तो उस दूषणकी मर्यादा अनुसार निर्णय होनाचाहिये अथवा यदि प्रत्यक्षउसमें उसदूषण की योग्यतानहीं पाईजातीहो तो प्रतिवादीके वचनानुसार अन्यलोगों से भी बूझकर निश्चयात्मक निर्णय करिलेना चाहिये कि इसदूषणकी प्रसिद्धि या विख्याति इसमें

है या नहीं पर इसबातके निर्णयमध्ये अन्य गवाहोंका नियतहोना कुछ आवश्यक नहीं है क्योंकि यदि ऐसा कियाजाय तौ बिवादकी शांतिभी कदाचित् न होसकै-परन्तु जो प्रतिवादी कुछ साक्षियोंमें दूषण खड़ाकिये पीछेउसकी दृढ़ता न करसकै तौइस अपराधके अनुसार उसपर दंडहोना चाहिये-और जो प्रतिबादी उसीदोषकी दृढ़ता सिद्धकरि दैवे तौ वह गवाह फिर गवाहीदेने योग्यनहीं अर्थात् शेषगवाहों का साक्ष्य लेनाचाहिये और जो सभीऐसेहों तौ सभीका विसर्जन कियाजाय-तथाच (अभावयन्दमंदाप्योदूषणंसाक्षिणांस्फुटम्। भावितेसाक्षिणोवर्ज्याःसाक्षिधर्मनिराकृताः)अर्थात् साक्षियोंका दूषणस्पष्ट दृढ़ताको न पहुँचातेहुये जुर्माना दिलवाने योग्यहै दृढ़ताहो जानेमें साक्षीही साक्षिधर्मसे निकालेहुये विसर्जन होनेयोग्य हैं-इसप्रकारसे जबसभी गवाहअर्थीके बुलायेहुये दूषितहोजायँ और वहकोई और प्रमाण इनगवाहोंके सिवाय न देसक्ताहो तौवह अपनेदावेसे पराजित होगा-तथाहि (जितःसविनयंदाप्यःशास्त्रदृष्टेनकर्मणा। यदिवादीनिराकांक्षःसाक्षिसत्येष्ववस्थितः) अर्थात्-यदिबादी अपने साक्षीकेहीप्रमाणसे मुक़द्दमह की जय विजयपर भरोसाकिये बैठाहो और इसदशामें अत्रोक्त रीतिके अनुसार यद्वा अन्यत्रोक्त शास्त्रमार्ग से वह जीताजाय तौ निजदावे की पराजयके सिवाय जुर्मानाभी दिलवानेयोग्यहै-सिद्धांतइसका यहकि यदि अर्थी किसी और प्रकारका प्रमाणहेतु रखताहो तौ इसदशामें भी स्वाधीनहै कि उसविशेष हेतुकोप्रवेशकरै ७५॥ अवनीचे सार्द्धद्वयश्लोकोंमें वह विधि कहते हैं कि शपथलेते समय साक्षियोंको साधारण भाव क्या२ वचनसुनायेजायँ ७५॥

येपातककृतांलोकामहापातकिनांतथा ७५ अग्निदानांचयेलोकायेचस्त्रीबालघातिनाम्। सतान्सर्वानवाप्नोतियःसाक्ष्यमनृतंवदेत् ७६ सुकृतंयत्त्वयाकिंचिज्जन्मांतरशतैःकृतम्। तत्सर्वंतस्यजानीहियंपराजयसेमृषा ७७॥

ए०-सहसार्द्धद्वयोः-साक्षियोंको यह वचन सुनावै कि-परलोकमें जो जो लोकनरकस्थान पातक और उपपातक और महापातक करनेवालोंकेलिये नियतहैं-और जो२ नरकस्थान आग लगानेवालों के और बालवधकारियों के और स्त्रीघाती लोगोंके लिये नियतहैं कि जिनमें उन्हें जाना परता और नाना विधके नरक भोगनेहोते हैं उन्हीं सब स्थानोंका निवास वहपाताहै कि जो कोईसाक्षी असत्य साक्ष्यबोलै-इसलिये यह समझो कि तुमने जो कुछ पुण्यकर्म्म सैकरों जन्मान्तर पहलेसे किया है उन सबका श्रेष्ठ फल उसको प्राप्तहोगा कि जिसको इस अभियोग में तुम झूँठा साक्ष्य देकर वृथा पराजय करवावोगे और तुम्हें उनस्थानों में निवास करनाहोगा इसलिये जो कुछ तुम जानतेहो सो सत्यकहो ७५। ७६। ७७॥

भा०:-यह साधारण प्रकार जो इन अढ़ाई श्लोकोंमें कहागया सो भी शूद्रजाती

अधि०—दशबंधक जो अधिकलेना ऊपर कहा सो यह दशमांश राजभागहै जैसा ४३ के श्लोकमें कहाथा कि राजा ऋणीसे दशरुपया सैकराका राजभागलेवै जितने का जयपत्र उसपर सिद्धहुआहो तिसके लेखेसे सो वह राजभाग इसदशामें उसी साक्षीपर लेनाठहरा कि जिस्से अर्थीका ऋणदिलवायागया-और-यह तीनपक्षके पश्चात् भी गवाहसे उसदशामें अर्थीका अर्थ दिलवाना योग्यहै कि यदि गवाह महा रोगादि उपद्रवोंसे रहितहोतेहुये साक्ष्यदेनेसे हटै या बुलायाहुआ आवै नहीं-यथाह मनुः(त्रिपक्षादब्रुवन्साक्ष्यमृणादिषुनरोऽगदः। तदृणंप्राप्नुयात्सर्वंदशबंधंचसर्वशः)-अर्थात्-निर्विघ्न आदमी ऋणादि व्यवहारों के विवाद में तीनपक्षकी अवधि ताईं साक्ष्यनहींदेताहुआ वह सर्व ऋण वृद्धिसहित देनेकी दशाको पहुँचायाजाय और दशबंधकभी सर्वथा उस्से लियाजावै (सर्वशः) सर्वथा अर्थात् कुर्की आदि जिसप्रकार उस्से वसूलहोसक्ताहो उन्हीं प्रकारोंसे अवश्यभावलियाजावै-(अगद) अर्थात् निर्विघ्न यह विशेषण उसका इस निमित्तपर आरूढ़है कि यदि उसपर कोई दैवी संकटकी विपत्ति यद्वा राजकृत उपद्रवकी विपत्तिपरीहो तौ फिर उसका हाज़िर न होना कुछ अपराधकी गिनतीमें नहींहै और जो हाज़िरहोकर बूझाहुआ न बोलै उसके साथ यथा संभव शारीरकबाधा देखीचाहिये-और-ऋणादि विवादोंमें तीनपक्षकी अवधि देनेसे यह सिद्धांतपायागया कि साहस आदि विवादोंमें तीनपक्षकी अवधिभी न देनीचाहिये किंतु शीघ्रही तत्काल साक्ष्यलियाजावै और इसदशामें साक्ष्यनहींदेनेवालेपर कोई अन्य दण्ड कियाजावै जैसे ऋणादि व्यवहारों में ऋणका दिलवाना दण्डकहा गया ७८॥ अब नीचे उसका चर्चा होगा जो व्यवस्था से भेदू होते हुये भी अपने दौरात्म्य से साक्ष्य अंगीकार न करै ७८॥

नददातिहियःसाक्ष्यंजानन्नपिनराधमः। सकूटसाक्षिणांपापैस्तुल्योदंडेनचैवहि ७९॥

अक्ष०—जो कोई जानताहुआ भी साक्ष्यनहींदेताहै सो नराधम कूटसाक्षियों के पापोंसे और दंडसेभी तुल्यहोताहै ७९॥

अभि०—जो कोई विवादकी दशाओंसे अभिज्ञहोतेहुये भी साक्ष्यदेना अंगीकार नहींकरताहै वह पुरुष मनुष्योंमें नीचसमुझाजाता और उसको वेही पाप और अपराधलगतेहैं जो कूटसाक्ष्यदेनेवाले साक्षियोंकोहोते हैं और इस अपराधमें उसको दंडभी वहीदियाजाता जो कूटसाक्षियोंके निमित्तसे ८३ के श्लोकमें आगेकहेंगे ७९॥

अधि०—कूटसाक्षियोंको दंडकिये पीछे वह व्यवहार फिर नये सिरेसे प्रवर्तितकिया जाय जानो पहले इसका कुछभीकाम अवतक न हुआथा-और-जो व्यवहारका अंत्यनिर्णयभीहोगयाहो और पीछे विदितहोवै कि यह व्यवहार कौटसाक्ष्यके अनुसार फैसलहुआ तौभी उस निर्णयका निवर्तन कर्तव्यहै और तहक़ीक़ात उसकी नयेसिरे

से फिर करीजावै-यथाहमनुः (यस्मिन्यस्मिन्विवादेतुकौटसाक्ष्यंकृतंभवेत्। तत्तत्कार्यं निवर्तेतकृतंचाप्यकृतंभवेत्)अर्थात्-जिस जिस विवादमें कौट साक्ष्यसे क्रिया साधन हुईहो सो सो निर्णयकार्य सब(निवर्तित) अर्थात् मन्सूखकरै और जो कुछ क्रिया साधनहोचुकीहो सो निरर्थकसमुझीजाय ७९ अब नीचे वह मर्यादाकहीजायगी कि जब साक्षियोंमें विरुद्धवचनपायाजाय तब कैसे निर्णयकरनाचाहिये ७९॥

द्वैधेबहूनांवचनंसमेषुगुणिनांतथा। गुणिद्वैधेतुवचनंग्राह्यंयेगुणवत्तमाः ८०॥

अक्ष०-द्वैधमें बहुतोंका वचन ग्राह्य तथा समानोंमें गुणियोंका और गुणियोंके भी (द्वैध) में जो कोई गुणवत्तमहों तिनकावचन ८०॥

अभि०-जब कदाचित् साक्षियोंके साक्ष्यमें (द्वैध) नाम विप्रतिपत्तिहो अर्थात् पूँछेहुये गवाहों से दो भांतिका उत्तर मिलै तब जो बात बहुतसे गवाहोंनेकहीहो तिनकावचन प्रमाण करनाचाहिये थोड़ोंकानहीं-और जो दोनों भाँतिबराबरहों जैसे चारगवाहोंमेंदोने कुछ अन्यथाकहा दोनेकुछ और तब ऐसीदो भाँतिमें जोबात गुणवालोंनेकही हो सोई ग्रहणकरनी निर्गुणियोंकीनहीं और जो गुणवालों में भी वचन का बिरोधहो तौ फिर जो कोई उनमें (गुणवत्तम) अर्थात् अधिक श्रेष्ठगुणवान्हों तिनके वचनपर विश्वासलाना चाहिये ८०॥

अधि०-निर्गुण १ गुण २ गुणवत्तम ३ यहतीनभाँतिके मनुष्योंका चर्चाऊपरकिया गयातिनमें(निर्गुण) पुरुषवहीहै जिसमेंविद्या वा प्रतिष्ठाधन सम्पत्तिआदि कोईभीगुण नहीं १ और (गुणवान्) वे कहातेहैं जो ६९ केश्लोकमूलमें कथनाकिये गुणोंसेसम्पन्न प्रतिष्ठितहों२ उनसेभीअधिकश्रेष्ठ(गुणवत्तम)वेलोगसमुझेचाहिये जोउनगुणोंकेसिवाय श्रुताध्ययनसे और उसके अर्थानुष्ठानोंसेभी संयुक्तहों जैसा ७० केश्लोक दूसरेपाद में यहकहाथा कि(श्रौतस्मार्तक्रियापराः) ३-परन्तु-जहाँसाक्षियोंके वचनमें इसप्रकारसे विरुद्धपावे कि गुणवान् या गुणवत्तमसाक्षी थोड़ेहों जिन्होंने कुछएकप्रकारका साक्ष्य दियाहो और निर्गुणसाक्षी अधिकहों जिन्होंने कुछअन्यप्रकारका साक्ष्यदियाहो तौ इसदशामें भी गुणियोंकाही वचनविश्वास करनेयोग्यहै क्योंकि उनकेथोड़े होनेपर कुछमुख्यतानहीं किंतुगुणोंके आधिक्यपर मुख्यतालेनीचाहिये जैसा ७४के पूर्वार्द्धमूलश्लोकमें कहचुकेहैं कि (उभयानुमितःसाक्षी भवत्येकोपिधर्मवित्) -अथानुवादः- जोकिनारदोक्त पाँचप्रकारके असाक्षियोंमें तृतीयप्रकारके असाक्षीजो भेदवाक्यसेही साक्ष्यदेनेयोग्यनहींरहते जिनकाचर्चापहले ७० की अधिकोक्तिमेंआया और लक्षण उनके ७१ की अधिकोक्तिमें दर्शायेगये और यहभी कहागयाकि एकहीके वचनभेदमात्रसेउनकेसाथीसभी असाक्षी निश्चितकियेजायँ तहाँ उसवचनभेदकाआशय यद्यपि कुछ और है सोउसी ७१ की अधिकोक्तिमें प्रदर्शितहोचुकाहै तथापि यदि उसमें

यह (तर्क) आरोपित करिजाय कि जैसा द्वैधभाव साक्षियोंकेवचन का यहांपर ८० के श्लोकमेंकहागया तैसाही वहभीदेखपरताहै क्योंकिवहांपर नारदकेहीवचनमें यहकहा है कि (तेषामेकोऽन्यथावादी) तो फिर वहांका अन्यथावादित्व और यहांकाद्वैधभाव कोईजुदीबातनहींहै किन्तुइसका और उसका आशय एकसाप्रतीतहै इसलियेयातो वहांभी एकहीके अन्यथावादमें इसआशयके अनुसार शेषगुणवानोंके वचनप्रमाण कियेजाते यद्वाउस आशयके अनुसार यहांभी एकहीदोके द्वैधभावसे सभीअसाक्षी निश्चित कियेजायँ-तहां-इसमें यहसिद्धान्त मुख्यभावसेनिश्चितहुआहै कि उसपूर्वोक्त स्थलपर एकहीकेवचनभेदसे सभीअसाक्षी उसदशामें निराकृत होसक्तेहैं किजब सभीसाक्षीएकसे लक्षणोंवाले नियतहुयेहों अन्यथानहीं अर्थात् जब अनेक लक्षणके गवाह नियतहुयेहों तबअत्रोक्त मर्यादाकेअनुसार कामकरनाचाहिये ८० ॥ अबनीचे उनसाक्षियोंकी व्यवस्थाकही जायगी कि जिनके वचनोंपर वादीप्रतिवादी की जय पराजय होसक्तीहै ८० ॥

यस्योचुःसाक्षिणःसत्यांप्रतिज्ञांसजयीभवेत्। अन्यथावादिनोयस्यध्रुवस्तस्यपराजयः ८१ ॥

अक्ष०-जिसवादीकी प्रतिज्ञाको साक्षीसत्यकहें सो जयीहोवे जिसकी अन्यथा कहें तिसकी पराजय ध्रुवहोतीहै ८० ॥

अभि०-जिस अर्थीकी (प्रतिज्ञा) अर्थात् दावे संबंधी द्रव्यकी जाति संख्या आदि लक्षण जोउसने लिखवायेहों और गवाहोंसे पूंछेजायँ तिनको सबसाक्षीसत्य बतलावैं कि हाँ ठीकहै इस विषयको हमजानतेहैं तिस अर्थीकी जय होतीहै या जिसअर्थीकी लिखवाई हुई प्रतिज्ञाको अन्यथा नाम उलटी बतलावें कि यह बात झूँठहै तिसकी पराजय (ध्रुव) नाम निश्चयात्मक हुआ करतीहै इसमें कुछ संदेह नहीं ८१ ॥

मधि०-जिस अभियोगमें सभी साक्षीलोग विस्मरणादि कारणों से अर्थीके प्रतिज्ञात अर्थमें किंचित् चिह्न उच्चारणकरिकै या विना उच्चारण कियेभी उस अर्थका होना या न होना सच्चाझूँठा दोनों में कुछभी नहीं प्रतिपादन करैं या करिसकैं तब साक्षियों के प्रमाणको छोड़कर किसी अन्य प्रमाणके द्वारा निर्णयकरना चाहिये कि जोकुछ प्रमाण साक्षियों से जुदा वादीरखता हो परंतु साक्षियोंसे राजा अथवा प्राड्विवाक कुछ बारम्बार न बूझै अर्थात् जोकुछ वचन साक्षियोंने शोचेविना निज स्वभावसे उच्चारण किया हो वही लिखलेना चाहिये-तथाह (स्वभावोक्तंवचस्तेषांग्राह्यंय द्दोषवर्जितम्। उक्तेतुसाक्षिणोराज्ञानप्रष्टव्याःपुनःपुनः) अर्थात्-गवाहोंका स्वभावोक्त वचन जो दोषों करके वर्जितहो सो ग्राह्यहै और साक्षियों के कहचुकने पीछे राजाको बारम्बार उनसे न बूझना चाहिये (स्वभावोक्त) वचन अर्थात् जो बात बिलंबरहित शोचेविना तत्काल कहिदेवैं सो अंगीकार करनी चाहिये ८१ इसी इक्यासी के उत्तरार्द्ध

मूलश्लोकमें यहकहाथा कि जिसकेगवाह अन्यथाबादीहों तिसकी पराजय निश्चित होगी तिसके मध्ये एक अपवाद भी अब नीचे कहते हैं ८१॥

उक्तेपिसाक्षिभिःसाक्ष्येयद्यन्येगुणवत्तमाः। द्विगुणावाऽन्यथाब्रूयुःकूटाः स्युःपूर्वसाक्षिणः ८२॥

भक्ष०—साक्षियों करके साक्ष्य कहनेपर भी यदि अन्य साक्षीगुणवत्तम यद्वा द्विगुण अन्यथा बोलैं तौ पूर्व साक्षी कूटहोवें ८२॥

अभि०—जिस अभियोगमें पूर्वोक्त लक्षणों के नियत हुये साक्षीलोग सबके सब एक सूत अपने किसी अभिप्राय से इच्छापूर्वक अर्थी के प्रतिज्ञात अर्थ में विपरीत साक्ष्य देवैं जिस्से उसका पराजय होना संभव है तथापि जो इसदशामें अर्थी अन्य साक्षियोंको लाकर प्रवेशकरै और ये साक्षी उन पहलोंकी अपेक्षा अधिक प्रतिष्ठित अपने गुणोंकेअनुसारहों चाहैसंख्यामें उनकेतुल्य या कुछन्यूनहों-अथवा-गुणप्रतिष्ठा में उन्हींकी बराबर हों पर संख्यामें उनसे दूनेहों और पहलोंकी अपेक्षा कुछ अन्यथा साक्ष्यदेवैं अर्थात् अर्थीके प्रतिज्ञात अर्थमें दावेकी दृढ़ता करैं जिस्से उसकी धर्म्याजय संभव होजाय तौ फिर पहले साक्षी कूट नाम झूँठे निश्चित कियेजायँगे और इस मिथ्यावादित्वसे ८३ के श्लोक वक्ष्यमाणद्वारा दंडभागीहोंगे (अपवाद) नामछूट का स्वरूप इसमें यही है कि ८१ के उत्तरार्द्ध मूल श्लोकसे पराजय जो निश्चित होचुकीहै सो इसदशाकोछोड़कर अन्य साधारण दशाओंमें होसक्तीहै किंजव अर्थीसे इसप्रकारके और गवाहनहींआसक्तेहों या यथार्थ उसकादावाझूँठप्रतीतहोताहो ८२॥

आधि०(आग्रहवादः) इस वार्त्तामें यह आग्रह खड़ा होसक्ताहै कि ऊर्ध्वोक्त मर्यादाठीक नहीं क्योंकि अर्थी प्रत्यर्थी सभ्य लोग सभापति इनसबों करके परीक्षित और प्रमाण भूत साक्षी कि जिनके वचनपर मुक़द्दमहकी जय पराजय स्वीकार करीगई तिनके कहनेपर भी यदि अन्य प्रमाण ढूँढ़ाजाय तौ फिर अनवस्था दोष खड़ाहोताहै अर्थात् यदि ऐसा कियाजाय तौ सभी अर्थी वारम्वार गवाहोंको झूँठे करिके अन्य गवाह लाया करैं और इस प्रकारसे कदाचित् भी विवादकी शांति न होसके वरन इसवार्त्ताका निषेधभी नारदजीके वचनसेपायाजाताहै-यथा (निर्णिक्तेव्यवहारेतुप्रमाणमफलंभवेत्। लिखितंसाक्षिणोवापि पूर्वमावेदितंनचेत्॥ यथापक्वेषुधान्येषुनिष्फलाःप्रावृषोगुणाः। निर्णिक्तव्यवहाराणांप्रमाणमफलंतथा) अर्थात्-व्यवहारके निर्णय होजानेपीछे दिया हुआ प्रमाण फलदायक नहो किंतु स्वीकार न करना चाहिये चाहै लिखित प्रमाण हो यद्वा साक्षियों का पर उस दशा में कि यदि अर्थी ने आवेदन उसका पहिले न कियाहो अर्थात् यह प्रतिज्ञा है कि यदि पहले प्रकटकर चुकाहो तौ निर्णय होजाने पर भी लियाजासक्ता है-अन्यथा-जैसे धान्यों के पकिजाने पर अति वर्षारूपी प्रावृष् ऋतुके गुण सभी निष्फलहोते हैं तैसेही निर्णीत व्यवहारों में पीछेदिया प्रमाण भी

नेरर्थक है (शान्तिः) इस आग्रह में यह शान्तिरूप उत्तर है यदि मुक़द्दमह की हक़ीक़ात अर्थात् गवाहों के इज़्हार होते समय उनगवाहों के साक्षित्वपरस्वीकारताको न करताहुआ अर्थी उनमें दोष लगावे जिनके दोषों को वह पहले इस हेतुसे न जानताथा कि ये मेरे साक्षीहोकर चलेहैं अनर्थक नहीं बोलैंगे और उन्हींने उसके अभियोगमें अर्थविसंबाद किया अर्थात् विपरीत गवाही दीहो तौ इस दशामें निर्णीत होजानेपर भी अन्य प्रमाणोंका प्रवेशहोना किसी कारणसे भी नहीं रुकसक्ताहै-सो इस वार्त्ता में यहवाक्य भी प्रमाणभूतहै-यथा (यस्यचदुष्टंकरणंयत्रच मिथ्येतिप्रत्ययःसएवासमीचीनः) अर्थात्-जिस किसीकी कोई करणभूत इन्द्रिय दुष्ट अर्थात् विकृतहो जैसे अंधा, वहिरा, तुतुला आदि यद्वा ऐसी विकृति प्रत्यक्षभावमें तौ नहीं पर वह इन्द्रियझूँठीहो जो अपनेविषयभूत कामको न करसक्तीहो यहप्रत्यय विश्वासरूप जिसका विदितहो सो वह असमीचीनहै अर्थात् श्रेष्ठ नहीं तौ फिर उस दशामें साक्षीहोनेकोभी श्रेष्ठ नहीं कि जब साक्ष्यमेंभी उसी इन्द्रियसे संबन्धहो यथा नेत्र,कान,मुख,बुद्धि आदि क्योंकि इस दशामें उसी इन्द्रियवाले कामकेज्ञानमध्ये विश्वास नहीं आसक्ता कि इसने यहबात अच्छीभांति समुझीहोगी सो गवाहीदेताहै- औरभी-जिस किसी मनुष्यके चक्षु या और किसी इन्द्रियमें कोईदोष यद्यपि यथार्थ भावसे निश्चितनहो पर वह मनुष्य जिसइन्द्रियसंबन्धी वार्त्तामें अर्थ विसंवादकिया करताहो अर्थात् जिसइन्द्रियकेविषयभूत अर्थमें वैपरीत्य प्रकटकरताहो तिसइन्द्रिय संबन्धी ज्ञानके अप्रामाण्यसेही उसमें करणदोष कल्पना हुआ करतीहै तैसेही यहां भी इसमर्यादामें यहकल्पना घटिसक्तीहै-करण दोष वा कारणदोष कल्पनाका (दृष्टांत) यथा देखतेहुये किसी वस्तुको जानिबूझकर घोड़ेका गदहा सद्भाव कहिदेने का अभ्यास रखताहो तौ ऐसे समयपर उस्से यही कहाजाताहै कि तू तौ अंधाहै या इस प्रकारसे कि आँखोंके अन्धे और नाम नयनसुख इत्यादि उसपर आक्षेप करने को करणदोष कल्पना या कारणदोष कल्पना कहते हैं इसीका दूसरा (दृष्टांत) यथा स्पष्ट सुनतेहुयेभी किसीबातकाउत्तर या स्वीकारसद्भाव किसी अन्यवस्तुकेअनुसार देनेका अभ्यासरखताहो तौ तत्काल यही आक्षेप कियाजाताहै कि तुमक्यावहिरहौ क्या तेरे कानफूटेहैं इत्यादि कारणदोष कल्पना सबइन्द्रियोंपर लोकहीमेंप्रसिद्धहैं और(सद्भाव) इसलिये कहागया कि यदिकोई वाग्विनोद हास्यरूपसे ऐसाकरै तौ वह बात अर्थ विसंवादकी पदवीतकनहीं पहुँचसक्ती और न उसकेसाथ कियाहुआ आक्षेपभी किसी करण दोषकल्पनाकी पदवीतक पहुँचताहै-यहदोषकल्पना जैसे साधारण दशाओं में प्रत्येक समयहुआ करतीहै तैसेही यहाँभी इसमर्यादामें यह कल्पना घटिसक्तीहै कि जब साक्षीलोग अपने इज़्हारोंमें अर्थ विसंवाद करतेहों तब अर्थीको स्वाधीनताहै

कि वह उनमें सच्चे दोष लगावै और उनकेवचनोंपर प्रसन्नता अपनी न रक्खै तौ मुक़द्दमा फ़ैसल होजानेपरभी अन्य प्रमाण उसप्रकारकेभी लियेजासक्के हैं कि जिनका चर्च्चा उसने पहले नहीं कियाथा(करणदोष अर्थात् (करण) जो इन्द्रियाँ तिनके दोष और कारणदोष अर्थात् करणके जोदोषहैं सोई कारणदोषभी कहाते क्योंकि करणोंसे उत्पन्नहुये तिससे भावलक्षणकहागया)औरभी-साक्षियोंकी गुण प्रतिष्ठाआदि परीक्षा का उपदेश अतिशयकरके होचुकाहै इसीसे उनकी वाक्परीक्षाभी कर्त्तव्यहै यद्वा उनके गुणोंकी परीक्षा पहले न होसकी हो तौ इज़हार भाषाके ही समय उनके वाक्यों की परीक्षा अतिशय भावसे कर्त्तव्यहै तथाहि (साक्षिभिर्भाषितंवाक्यं सहसभ्यैःपरीक्षयेत्) अत्थीत्-प्राड्विवाक यद्वा राजाको यह उचितहै कि अपने सभ्यों सहित आपही साक्षियों के इज़हारों समय उनका भाषित वाक्य अच्छीभाँति परीक्षा करै किंतु निजबुद्धिके सिवाय औरोंसेभी बूझै कि यह वाक्य इसने सत्य या असत्य बोला-और-कात्यायननेभी कहा है-यथा (यदाशुद्धाक्रियान्यायात्तदातद्वाक्यशोधनम्। शुद्धाच्चवाक्याद्यःशुद्धःसशुद्धोऽर्थइतिस्थितिः)अर्थात्-जब क्रिया न्यायपूर्वक शुद्ध समुझीजाय तब उसके वाक्योंका शोधनहो और शुद्धवाक्योंसे भी जो शुद्धहो सो वह (अर्थशुद्ध)है यहमर्यादा इसमें नियतहै (यहअक्षरार्थमात्र सामान्यभाव कहागयापरंतु इसवचनके अभिप्रायरूप अर्थ दो भाँतिके होते हैं) तिनमें पहले मुख्यार्थ तौ यही है कि जव अभियोग प्रविष्ट होते समय पूर्वोक्त आदेयत्व और अनादेयत्वके लक्षणों वाले न्यायसे यदि क्रिया उसकी शुद्ध ठहरै कि यह अभियोग अनादेय नहीं किन्तु आदेयहै क्रिया इसकी साधन करनी चाहिये तव उस अर्थीके वाक्य जो अभियोग में प्रमाणकी अपेक्षासे लिखे गयेहों कि उसके पास दावेकी प्रमाणतामें अमुकामुक प्रमाण मोजूदहैं तिनका शोधन करना चाहिये यदि प्रमाण उसके ठीकपाये जायँतौ उसका वाक्य शुद्धकहलावै इसप्रकार उसके शुद्धवाक्यसेभी जो शुद्धहोजावै सो अभियोग संवंधी अर्थ उसका शुद्ध कहलाता अर्थात् सच्चा अभियोग ठहरताहै तिस पीछे उसका निर्णय यथाक्रमसे मर्यादा अनुसार होनेलगताहै यह मर्यादा नालिश के प्रारंभमें अपेक्षितहै-परंतु-यहाँपर साक्षियोंके प्रसंगसे दूसराअर्थ कुछअंतरसे होताहै अर्थात् यहाँपर यह अभिप्राय समुझा चाहिये कि अभियोगमें कईप्रकारके प्रमाणों की क्रियायें जो भिन्न२ साधन होतीहैं जिनकी तहक़ीक़ात नालिशके प्रारंभमें पहले होजाती है कि इसके पास कौन२सा प्रमाणहै तिसकी क्रिया साधन करीजाय तिनमें साक्षिलक्षणा क्रिया यदि उसन्यायसे शुद्ध समुझीजाय कि इन साक्षियोंमें कोई अर्थ संवंधीतौ नहीहै या अर्थीका मित्रादिकतौ नहींहै इत्यादि वातोंके विवेकसे साधनकरनेयोग्य जानीजाय तब उनसाक्षियोंके वाक्य शोधनकरने चाहिये और उनकी वाक्य

शुद्धिभी उसदशामें समुझी चाहिये कि यदि वे अपने वाक्यसे सच्चेअर्थका प्रतिपादन करें और सबकोई उनकेसत्यवक्तृत्वकी प्रशंसाप्रकटकरैं क्योंकि(सत्येनशुद्ध्यतेवाक्यम्) अर्थात् वाक्यजो है सोसत्य बोलनेसेही शुद्धहोता यह स्मृतियोंमें लिखाहै इसप्रकार जब शुद्धहुई क्रियाके और साक्षियोंकी वाक्य शुद्धिसेभी अर्थीका जो अर्थ शुद्धहोवै अर्थात् जैसा उसने लिखवाया या मुखसे उच्चारण कियाहो तैसाही तद्रूप ज्योंका त्यों प्रतीत होनेलगै सोवह अर्थशुद्ध कहलाता किंतु यहकहनेमें आताहै कि दावा उसका सच्चाहै इसकी तहक़ीक़ात और अंतिम निर्णयभी सुगमतासे होजायगा यह मर्यादा इसमें उनप्राचीन न्यायज्ञों करके नियत हुईहै कि जोलोग राजद्वारके अदालती ज़ाबितोंसे अभिज्ञ पहले हुयेथे-इसकेसाथ यहभीहै कि जब अर्थी अपने साक्षियोंमेंकोई दोष लगावै और उसकारण दोषका नहोना निश्चित नहो किन्तु वहदोष उनमेंपाया जाय तब उसदशामें अर्थीके(अर्थ) नाम दावेकोसच्चाभूँठासमुझौ अर्थात् नतौ निपट सच्चासमुझौ और न अवतक निपट भूँठा समुझौ क्योंकि इसमें द्विविधा लक्षण हो गया न जानिये इसमें निर्णय के समय तक सच्चापन या भूँठापन सिद्धहो इसलिये इसका नाम (सत्यवितथ) अर्थ कहना चाहिये-तथाच (कारणदोषबाधक प्रत्ययाभावे सत्यवितथएवार्थ इत्यर्थः) अर्थात्-कारणदोषके बाधक प्रत्ययका अभाव होनेमें सत्य वितथही अर्थजानो यह सिद्धांतहै यद्यपि-इसवचनका अन्वय इसप्रकारसेभी ठीकहै कि (प्रत्ययाभावेसति अवितथ एवार्थः) अर्थात् उनमें दोष निश्चित होनेकी दशामें ठीकही होगा दावा इसका भूँठानहींहोगा यह अनुमानकरना चाहिये क्योंकि इसने जोदोषलगाये उनमेंसोसच्चे पायेगये-परंतु-यहऐसा अन्वय मुक़द्दमाके डौलके अनुसार उस दशामें संभव होसक्ता है कि यदिसद्भावही उनके दोष निश्चयात्मक और सार्वजन प्रसिद्धिपूर्वक पाये जायँ अन्यथा ऊपरला अर्थ ठीकहै क्योंकि यहांभी अब तक अनुमानमात्रहै अर्थात् ऐसी दशामें प्रमाण उसको औरभी देनेहोंगे किंतु कुछ गवाहोंके दोषही दृढ़ करदेने मात्रसे जयपत्र उसको नहीं मिलसक्ता इसलिये द्विविधा खड़ीहुई समुझी चाहिये और जो दोषोंकेही दृढ़ करदेने मात्रसे जयहोसकै तौ फिर सबसे पहिले परमदोष यह उसीमें उत्पन्नहुआ कि जिन गवाहोंको विश्वास या परीक्षा करिकेलाया वे सभीदोषी निकले इसदशामें प्रत्यक्ष द्विविधा समुझी चाहिये इसलिये ऊपरला अन्वय मुख्य जानो और निचलाभी किसी २ दशामें अमुख्यरूपसे जानो (पुनःशंका)क्योंजी अर्थीको इसबातमें स्वाधीनता क्योंकर होसक्ती है कि वह अपने प्रमाण कियेहुये साक्षियोंका अतिक्रम करै और कोई दूसरी क्रिया प्रवेश करै किंतु उसको अधिकारही इसमेंनहींहै कि अपने दियेहुये पहलेप्रमाणको उलांघकर कोई अन्य प्रमाण देवै-तहां यह उत्तरहै कि ऐसी शंकाही सर्वथा वृथाहै क्योंकि कात्यायनजीके

वचनपर दृष्टि करनीचाहिये-तद्यथा (क्रियाम्बलवतींमुक्त्वादुर्ब्बलांयोऽवलम्बते।सज येऽवधृतेसभ्यैःपुनस्तांनाप्नुयात्क्रियाम्)अर्थात्-जो कोई अर्थी बलवान्प्रमाणकेहोते हुये उसकी क्रियाको छोड़कर किसी दुर्बल प्रमाणकी क्रियाका सहारा लेता किंतु प्रवेश करिकै साधन करवाताहै सो वह अर्थी सभ्यों करके जयपर धराहुआ फिर उस क्रिया को न पावै अर्थात् यदि उसी दुर्ब्बल क्रियासे हारे तौ फिर पीछे उस बलवती क्रियाके प्रवेश करनेका अधिकारी नहीं है-परन्तु-इस कात्यायनजीके वचनका सिद्धांत यही है कि जबतक अन्त्य विचारके अनुसार हारे नहीं तबतक निर्णयसे पहले पहले अन्य प्रमाणभी प्रवेश करसक्ताहै-और-यही बात उस पूर्वोक्त नारदकेभी वचनसे संसिद्धहै कि मुक़द्दमहका फ़ैसला होजाने पीछे दियाहुआ प्रमाण व्यर्थ होवै परइस कथन में फ़ैसलासे पहले अन्य प्रमाण देनेका निषेध नहीं किया-यथा (निर्णिक्तेव्यवहारेतु प्रमाणमफलंभवेत्) इन कारणोंसे सर्वथा यह मर्यादा निश्चितहै कि साक्षियोंके इज़हार होजाने परभी यदि अर्थीका परितोष न हो तौ उसको अधिकारहै कि वह अन्य प्रमाणकी क्रिया साधन करवावै (अन्यप्रमाण) कहनेका सिद्धांत यही है कि पहले साक्षियोंका प्रमाण उसने दियाथा सो तौ व्यर्थगया अबके (लिखित) आदि प्रमाण कुछ देवै-परन्तु- इस मर्यादाके स्थित होनेसे यह सिद्धांतभी पायागया कि यदि उसकेपास लिखित आदि प्रमाणही ऐसा नहीं जिसको देसकै और यथार्थमें दावा उसका सच्चा है तौ फिर क्या कर्तव्यहै इस अपेक्षामें कहते हैं कि जब ऊर्ध्वोक्त न्यायके अनुसार अन्य प्रमाण प्रविष्ट होसक्नेकी मर्यादही निश्चित होचुकी तौ फिर इसी ८२के ठेठ मूल श्लोकमें जो बातकही उसके अनुसार उनपहलेसाक्षियोंकी अपेक्षा विशेषगुणवत्तम या उनसे दूनेसाक्षी जिनको अर्थी पहलेभी निर्देश करचुकाहो कि मेरेअमुकामुक मनुष्यभी साक्षी हैं परन्तु वे इनदिनों उपस्थित नहीं इत्यादि कारणोंसे जिनके इज़हार होने शेषरहेहों तिनको ढूंढ़कर बुलवावै और प्रवेश करै तौ यहभी एकअन्य प्रमाणकीही क्रिया कहलाती है-सो यहबात नारदके पूर्वोक्त वचनसे संसिद्धहै-यथा (निर्णिक्तेव्यवहारेतुप्रमाणमफलंभवेत् । लिखितंसाक्षिणोवापिपूर्वमावेदितंनचेत्) अर्थात्-व्यवहारके निर्णय होजानेपर पीछेदिया प्रमाण वृथाहोता है चाहे लिखित प्रमाण हो यद्वा साक्षियोंका परन्तु उसदशामें वृथाहोताहै कि यदि अर्थीने पहले उस प्रमाणका चर्चा नहीं कियाहो-इस हेतुसे पहले निर्देश चर्चा कियेहुये साक्षियोंके ऊर्ध्वोक्त न्यायके अनुसार पीछे प्रवेश करसक्ताहै-इसके सिवाय-यदि अर्थीके निर्देश कियेहुये साक्षियोंका निपट आसकनाही दुर्घटहो तौ इस दशामें वे साक्षीभी लिये जासक्ते हैं कि जिनकी निर्देश चर्चा अर्थीने पहले नहीं करी परन्तु प्रतिष्ठा आदि गुण बाहुल्य में और संख्या में भी उन्हीं के समान हों जिनका निर्देश वह

रचुकाथा और आसकना दुर्घट हुआ-अर्थात् जहांतक होसकै विशेषकर मानुष्य
माणों पर दृष्टि करनी चाहिये परन्तु राजा दिव्य प्रमाणोंको न लेवै-यतः (सम्भवे
ाक्षिणांप्राज्ञोवर्जयेद्दैविकींक्रियामितिस्मरणम्)-अर्थात्-जबतक साक्षियोंका प्रमाण
मेलसकना संभव हो तबतक राजा अथवा प्राड्विवाक आदि विज्ञाता पुरुष दैवी
क्रियाको अस्वीकार करै यह स्मृति प्रसिद्धहै-परन्तु-मानुष्य प्रमाणोंके न मिलनेपर
दिव्यप्रमाणभी स्वीकार करै-इसके उपरांतभी यदि अर्थी का परितोष नहो तौ फिर
कोईभी प्रमाणांतर नहींढूंढ़ै क्योंकि यम और मन्वादि स्मृतियोंसे यहबात सिद्धहै कि
दैवीप्रमाणके आगे उसव्यवहारकी सर्वथाही परिसमाप्तिकरिदेनीचाहिये चाहै अर्थी
की प्रसन्नता उसमेंहो या नहो परइसकेआगे और कोई मर्यादाइसमें नहींहै-परन्तु-
जो प्रत्यर्थी अपने साक्षियों का साक्ष्य सुनकर अपने निमित्त में हानिकारक समुझै
और अप्रामाण्य मानिकर साक्षियोंमें कुछ दोषारोपण करताहुआ परितोष नहींपावै
तौ इसदशामें साक्षियोंकी निर्म्मलताके ध्यानसे उस दिनसेलेकर एक सप्ताहकी अ-
वधिताईं उसके साक्षियोंकी परीक्षा इसप्रकारसे कर्तव्य है कि सात दिनके भीतर २
कोईदैवीव्यसन या राजकोपकी विपत्ति कुछअचानक उनपरपरीअथवा नहीं-क्योंकि-
जो मर्यादा अन्यप्रमाणके प्रवेश होनेमध्ये ऊपरकहीगई उसमें यह अवकाश नहींहै
कि वह प्रत्यर्थीसेभी संबांधित समुझीजाय-इसलिये-यदि उसके साक्षियोंपर अर्थ-
विसंवादका लाञ्छनपक्काहोजाय तौ वहऋणभी उन्हींसे दिलायाजावै जिसकाझूँठा
दावा उनके वचनोंसे प्रत्यर्थीपर पक्काहुआ और उनके सारकेअनुसार उनपरदंडभी
होना चाहिये-और-जो लाञ्छन उनपर पक्का न होसकै तौ प्रत्यर्थीको संतोष करलेना
चाहियेक्योंकि जगदीशकी इच्छाबलवान्है-यथाहमनुः(यस्यदृश्येतसप्ताहादुक्तवाक्य
स्यसाक्षिणः । रोगोऽग्निर्ज्ञातिमरणमृणंदाप्योधनंचसः)अर्थात्-जिसगवाही दियेहुये
साक्षीके सप्ताहभीतर कुछ अचानक महारोग या अग्निदाह या प्रियतमकी मृत्युहो
वह साक्षी उसीदावेकाऋण और धनदंडभी दिलानेयोग्यहै-यही अत्रोक्तमर्यादा जो
प्रत्यर्थीकी अप्रसन्नता में विशेष कहीगई सो उस पूर्वोक्त सर्व साधारण मर्यादा के
(अपवादवत्) समुझीचाहिये जो ८१ के मूलश्लोकसे कहचुकेहैं कि जिसके साक्षीउस
की सत्यप्रतिज्ञा बोलैं सो जयवान् होगा-(अथनिरर्थकव्याख्या)-यह मर्यादाजोइसी ८२
के मूलश्लोकसे यहांतक निपट अर्थीके प्रयोजनमें संसिद्धहुई तिसको विरले विद्वान्
प्रत्यर्थीके प्रयोजनमें दृढ़करतेहैं-यथा(उक्तेपिसाक्षिभिःसाक्ष्येयद्यन्येगुणवत्तमाः। द्विगु
णावाऽन्यथाब्रूयुःकूटाःस्युःपूर्वसाक्षिणः)-अर्थात्-इसकाऐसा अर्थ लगातेहैं कि जब
अर्थीकेसाक्षी उसके अर्थकी दृढ़ता में साक्ष्यउच्चारण करैं तौ उनके साक्ष्य देचुकने
परभी यदि प्रत्यर्थीउनसे अधिक प्रतिष्ठित या संख्या में दूने साक्षी उनसे विपरीत

उच्चारण करवावे तबइसदशामें अर्थी के साक्षीकूट कहलावेंगे-सो-यहव्याख्या इसकी सर्वथाअसत्हे-क्योंकि-प्रत्यर्थीके प्रमाणोंमध्ये क्रिया पहले साधनहोनेकीमर्यादहीनहीं है-और-अर्थी वहीकहलाताहै जो ठेठ अपने किसीसाध्य अर्थके निर्देश पूर्वक अभियोग लगाता और उसीसाध्य अर्थकी सचावट करनी चाहता है-तिसका प्रतिपक्षी जो उस अर्थ का निषेध और अभाव कथनकरताहै वहीप्रत्यर्थी कहलाताहै-तिसमें यह मर्यादाहै कि अभावकी प्रमाण क्रिया भावकी सिद्धिहुये पीछे हुआकरती है पर भावकी प्रमाण क्रियाअभावकीसिद्धि पीछेनहींहोती इसकारणसे उसीका सबूतपहले लियाजाना उचितहै कि जो अर्थ अपना अर्थीनेदावेमें लिखवायाहो क्योंकि अभाव या निषेध का स्वरूप साक्षियों से या और किसी लेख्यादि प्रमाण से अप्रमेय है अर्थात् प्रमाणताको नहीं पहुँचसक्ता और इसीहेतुसे यह मर्यादा ठीकहै कि सिर्फ़ अर्थी अपनेअर्थकाप्रमाण पहलेप्रवेशकरै और उसीकी प्रक्रिया साधनकरी जाय-औरभी-प्रमाण क्रियाके प्रविष्टहोनेमें आचार सदैवही और सर्वत्र उत्तरपादकी मर्यादांअनुसारहोताहै (उत्तरपाद अर्थात्) जवाबदावेकीमर्यादें जो पंचमपरिच्छेदमें चारप्रकारसे नियतहोचुकीहैं तिनकेआशयके आधीन प्रमाणक्रियाप्रवेश करवाईजातीहै-यथा (प्राङ्न्यायकारणोक्तौतुप्रत्यर्थीनिर्दिशेत्क्रियाम् । मिथ्योक्तौपूर्ववादीतुप्रतिपत्तौनसाभवेत्)-अर्थात्-प्रत्यर्थी यदि अर्थीकादावासुनिकर जवाबदावेमें प्राङ्न्याय उत्तरदेवे कि इसव्यवहारमें फ़ैसलापहलेहोचुकाहै या कोई निजकारण भूतउत्तरदेवे तौ इनदोप्रकारकीदशाओंमें उसीप्रत्यर्थीसे प्रमाणमाँगाजाय और उसीकीक्रियासाधनकरीजाय और जो प्रत्यर्थी निपटनकारखींचे कि मुझपर इसकादावाझूँठहै तौ इस दशामें अर्थीसे प्रमाणमाँगाजाय और उसीकीक्रियासाधनकरीजाय और जो प्रतिपत्तिउत्तर अर्थात् प्रत्यर्थी उसकेदावेकाअक़बालकरै कि हाँ मुझकोदेनाहै तौ फिर वह प्रक्रियाप्रमाणलियेजानेकी किसीसे भी कुछअपेक्षानहींरखती किन्तु इसदशामें प्रत्यर्थी पर अर्थीकाजयपत्रलिखाजाताहै-औरभी-एकही अभियोगमें अर्थीप्रत्यर्थीदोनोंसे प्रमाणमाँगाजाना उचितनहींहै-यथा (नचैकस्मिन्विवादेतुक्रियास्याद्वादिनोर्द्वयोः) अर्थात्-यह स्मृतियोंकावाक्यहै किएकही किसीविवादमें वादीप्रतिवादीदोनोंकी क्रिया नहींसाधनहो किन्तु ऊर्ध्वोक्त उत्तरपादकेअनुसार एकहीकीहो जिसपरहोनेका औचित्यपायाजाय-इनकारणोंसे यहव्याख्याठीकनहीं है कि प्रतिवादीकेसाक्षी गुणवत्तम या संख्यामेंदूनेहोकर वादीकेसाक्षियोंका साक्ष्यखण्डनकरें (अथनिरर्थकमतं)इसी निरर्थकव्याख्याकीदृढ़तामें विरलेविद्वान् कुछऔरभी मतउत्पन्नकरतेहैं इसप्रकारसे कि यह व्याख्या जो ८२ के मूलश्लोकपर पीछेसेकहीगई निरर्थकनहीं है-क्योंकि-यहव्याख्या उसविवादसेसम्बन्धितहै कि जो तेरहवेंपरिच्छेदमें १८ के श्लोकसेकहचुकेहैं कि जो

कहींवस्तुकीअपेक्षामें दोदावीदारखड़ेहों और दोनों अर्थीसाक्षियोंका प्रमाण रख-
हों तौ पूर्वअर्थीकेसाक्षी सुनेजायँगे अर्थात् जिसनेपहले दावाप्रवेश कियाहो तिसके
साक्षी पहले सुनेजायँ क्योंकि जिसदशामें दोनों अर्थी यही कहते हों कि यह अर्थ
मेराहै मुझको दायादक्रमसे मिलाहै परपहले पीछे प्राप्तहोनेका कालक्रम कोईभी न
कहताहो जिसको पूर्वप्राप्तिके अनुसार पूर्वपक्षी निश्चित कियाजाय तब इसदशामें
निम्नोक्त वचनके आशयसे उसीको पूर्वपक्षी निश्चितकरना चाहिये जिसनेपहले जा-
कर अभियोग निवेदन कियाहो-यथा(द्वयोर्विवदतोरर्थेद्वयोःसत्सुचसाक्षिषु । पूर्वपक्षो
भवेद्यस्यभवेयुस्तस्यसाक्षिणः) अर्थात्-परस्पर दोनोंके विवादकरतेहुये और दोनोंके
ही साक्षियोंकेहोतेहुये मुक़द्दमहमें जिसकापूर्वपक्षहोवे अर्थात्पहिले जिसनेआवेदन
कियाहोउसीके साक्षीसुनेजावें-और-जब यही मर्यादा (निश्चितहुई) कि पहिलेवालेके
गवाहपहिले सुनेजायँ तौ फिर इस ८२ के श्लोकवाली पिछली व्याख्याको निरर्थक
नहींकहनाचाहिये किंतुइसीं अत्रोक्त (निश्चितहुई) मर्यादाके अपवाद रूपमें समुझा
चाहिये कि पहले पक्षवाले के गवाहों का साक्ष्यहोचुकनेपर भी पिछलापक्षी उनसे
अधिक प्रतिष्ठित या संख्या में दूनेसाक्षी सुनवावे तौ पहले पक्षीके साक्षी सुनेहुये
भी न सुनेहुयेवत् होजायँ यहछूटका स्वरूप इसमें संभव है-और-इसीकल्पनासे यह
अनुकल्पभी लेनाचाहिये कि पूर्वउत्तर दोनों आवेदन कर्त्तावादियों के गवाह यदि
संख्यामेंबराबरहों और गुणप्रतिष्ठामेंभी दोनों ओरतुल्यहों तबतौ पूर्ववादीकेहीगवाह
पूँछेजायँ और जो पूर्ववादीके गवाहोंसे उत्तरवादीके गवाहगुण प्रतिष्ठामें श्रेष्ठअथवा
संख्यामेंदूनेहों तौफिर प्रतिवादीकेही साक्षीपूँछे जानेचाहिये-इसरीतिसे पूर्वोक्तअभा-
वकीसाध्यताका प्रसङ्गनहीं आसक्ताहै क्योंकि इसप्रकार के अभियोगमें दोनोंपक्षी
भाववादी हुआकरते अर्थात् दोनोंही उसअर्थका अपनेनिमित्तमेंहोना सिद्धकरवातेहैं-
और- यहदशा उनचार भाँतिके उत्तरोंसे विलक्षणहै इसलिये उत्तरपाद सम्बन्धी
मर्यादें इसविलक्षण विवादसे सम्बन्धित नहींहोसक्तीहैं-और भी इसमतके वादीकह-
तेहैं कि -जैसे- एकमुक़द्दमहमें एकपक्षी को दोवार प्रमाणक्रिया प्रवेशकरनेका अधि-
कारहै तैसेहीदोनोंपक्षियोंकी दोक्रियासाधनहोना कुछविरुद्धनहींहै इसलिये उसव्या-
ख्याको निरर्थकनहीं कहनाचाहिये -सो- यहकथन और मतिकीरीतिभी सर्वथाउनकी
वृथाहै-किन्तु-योगीश्वरका सिद्धान्त यह नहींहै-क्योंकि (उक्तेऽपिसाक्षिभिःसाक्ष्ये)इत्या-
दि यहवचनउस व्याख्यामें किसीप्रकारसेभीनहींघटता अर्थात् न तौ शब्दोंकीयोजना
से न अर्थसे न उसवार्ताके प्रकरणसे भी इसलिये वहव्याख्या और यहमतभी निप-
ट निरर्थकजानो केवलप्रसङ्गमात्रसे लिखदियागया यहसिद्धान्तहै ८२ ॥ ऊपर प्रद-
र्शितकिये कूटसाक्षियोंकेदण्ड नीचेकहतेहैं ८२ ॥

अथकूटादिसाक्षिदण्डविवेचनासत्यादिप्रतिषेधापवादयोर्विधिविषयिकोनामचतुस्त्रिंशःपरिच्छेदः ३४ ॥

इस चौंतीसवें परिच्छेदमें दो बातोंका विषय जानाजायगा अर्थात् झूँठी आदि गवाही देनेवालों या बनानेवालोंके दण्ड विवेक और दूसरे असत्य बचन वा अवचनके प्रतिषेध जो पहले वर्णनहुये तिनका अपवाद भी ॥

पृथक्पृथक्दण्डनीयाःकूटकृत्साक्षिणस्तथा। विवादाद्द्विगुणंदंडंविवास्योब्राह्मणःस्मृतः ८३ ॥

अक्ष०–कूटकृत् तथा साक्षी जुदेजुदे विवादसे द्विगुण दण्डके दण्डनीय हैं-ब्राह्मण विवास्य कहाहै ८३ ॥

अभि०–(कूटकृत्) कूट करनेवाला जो धनदेकर या और किसी युक्तिसे गवाहोंको असत्यसाक्ष्य देनेका उत्साह दिलावे तथैव कूटसाक्ष्य देनेवाले साक्षी भी सबलोग जुदे २ सज़ा करनेयोग्य हैं और सज़ा उनकी यह कि जितनाधन विवादपर आरूढ़ होकर कोई उनके कौटसाक्ष्यसे हाराहो उस्से दूना जुर्माना एक एकसे लेना चाहिये अथवा वह दण्ड जो निज २ स्थलपर विवादोंकी पराजय मध्येलिखाहो उस्सेदूना उस विवाद के स्थलके अनुरूप करना चाहिये और जो उनमें कोई ब्राह्मणहो तौ वह राज्यसे निकाल दियाजावे उसको और दण्ड नहीं ८३ ॥

अधि०–ऊर्ध्वोक्त दण्डोंका प्रकार उसदशामें समुझा चाहिये कि जब उन कूटकारियों वा साक्षियोंके लोभ आदि कारणोंका विशेष परिज्ञान राजाको न होसके और उनका वहकुलक्षण अभ्यासिक नहीं निश्चितहो कि ये सदैवही ऐसाकिया करते हैं–अर्थात्-जिसकी लोभादिकारण विशेषता अच्छीतरह निश्चित होजाय और उसका अभ्यास निश्चित होजाय कि यह सदैवही ऐसा करताहै तब मनुजीका कहा दण्ड विचार करना चाहिये-यथाहमनुः (लोभात्सहस्रंदण्ड्यःस्यान्मोहात्पूर्व्वन्तुसाहसम्। भयाद्वौमध्यमोदण्डोमैत्र्यात्पूर्व्वञ्चतुर्ग्गुणम् ॥ कामाद्दशगुणंपूर्व्वंक्रोधात्तुत्रिगुणंपरम्। अज्ञानाद्द्वेशतेपूर्णेबालिश्याच्छतमेवतु)अर्थात्-जबकोईगवाह कूटसाक्ष्य लोभलालच से बोलाहो तब एक सहस्र पण जुर्माना उसपर लियाजाय-और जो मोहसे अर्थात् अपने ज्ञानकेविपर्ययसे असत्यबोलाहो तौ (पूर्वसाहस) नामदण्ड अर्थात् २५० पण जुर्मानाकियाजाय-और जो किसीकेभयहेतु आदि कारणोंसे असत्यबोलाहो तौ(मध्यमसाहस) दण्ड अर्थात् ५००पण जुर्मानालिया-और जो किसीकी मैत्रीनाम स्नेहके बाहुल्यसेअसत्यबोलाहो तौ चतुर्गुण (पूर्वसाहस) दंड अर्थात् एकसहस्रपणजुर्माना लियाजाय-और जो स्त्री विषय कामहेतुसे असत्य बोला हो तो दशगुण पूर्व साहस दण्ड अर्थात् १२५०पण जुर्माना कियेजायँ-और जो क्रोध करके कूटसाक्ष्य दिया हो तौ त्रिगुणा (परसाहस) दण्ड अर्थात् ३००० पण जुर्माना कियेजायँ-औरजो अज्ञा-

एकहीवस्तुकीअपेक्षामें दोदावीदारखड़ेहों और दोनों अर्थीसाक्षियोंका प्रमाण रखतेहों तो पूर्वअर्थीकेसाक्षी सुनेजायँगे अर्थात् जिसनेपहले दावाप्रवेश कियाहो तिसके साक्षी पहले सुनेजायँ क्योंकि जिसदशामें दोनों अर्थी यही कहते हों कि यह अर्थ मेराहै मुझको दायादक्रमसे मिलाहै परपहले पीछे प्राप्तहोनेका कालक्रम कोईभी न कहताहो जिसको पूर्वप्राप्तिके अनुसार पूर्वपक्षी निश्चित कियाजाय तब इसदशामें निम्नोक्त बचनके आशयसे उसीको पूर्वपक्षी निश्चितकरना चाहिये जिसनेपहले जाकर अभियोग निवेदन कियाहो-यथा(द्वयोर्विवदतोरर्थेद्वयोःसत्सुचसाक्षिषु । पूर्वपक्षो भवेद्यस्यभवेयुस्तस्यसाक्षिणः) अर्थात्-परस्पर दोनोंके विवादकरतेहुये और दोनोंके ही साक्षियोंकेहोतेहुये मुक़द्दमहमें जिसकापूर्वपक्षहोवे अर्थात्पहिले जिसनेआवेदन कियाहोउसीके साक्षीसुनेजावें-और-जब यही मर्यादा (निश्चितहुई) कि पहिलेवालेके गवाहपहिले सुनेजायँ तो फिर इस ८२ के श्लोकवाली पिछली व्याख्याको निरर्थक नहींकहनाचाहिये किंतुइसी अत्रोक्त (निश्चितहुई) मर्यादाके अपवाद रूपमें समुझा चाहिये कि पहले पक्षवाले के गवाहों का साक्ष्यहोचुकनेपर भी पिछलापक्षी उनसे अधिक प्रतिष्ठित या संख्या में दूनेसाक्षी सुनवावे तो पहले पक्षीके साक्षी सुनेहुये भी न सुनेहुयेवत् होजायँ यहकूटका स्वरूप इसमें संभव है-और-इसीकल्पनासे यह अनुकल्पभी लेनाचाहिये कि पूर्वउत्तर दोनों आवेदन कर्तावादियों के गवाह यदि संख्यामेंबराबरहों और गुणप्रतिष्ठामेंभी दोनों ओरतुल्यहों तबतो पूर्ववादीकेहीगवाह पूँछेजायँ और जो पूर्ववादीके गवाहोंसे उत्तरबादीके गवाहगुण प्रतिष्ठामें श्रेष्ठअथवा संख्यामेंदूनेहों तोफिर प्रतिबादीकेही साक्षीपूँछे जानेचाहिये-इसरीतिसे पूर्वोक्तअभावकीसाध्यताका प्रसङ्गनहीं आसक्ताहै क्योंकि इसप्रकार के अभियोगमें दोनोंपक्षी भाववादी हुआकरते अर्थात् दोनोंही उसअर्थका अपनेनिमित्तमेंहोना सिद्धकरवातेहैं-और- यहदशा उनचार भाँतिके उत्तरोंसे विलक्षणहै इसलिये उत्तरपाद सम्बन्धी मर्यादें इसविलक्षण विवादसे सम्बन्धित नहींहोसक्तीहैं-और भी इसमतके बादीकहतेहैं कि -जैसे- एकमुक़द्दमहमें एकपक्षी को दोबार प्रमाणक्रिया प्रवेशकरनेका अधिकारहै तैसेहीदोनोंपक्षियोंकी दोक्रियासाधनहोना कुछविरुद्धनहींहै इसलिये उसव्याख्याको निरर्थकनहीं कहनाचाहिये -सो- यहकथन और मतिकीरीतिभी सर्वथाउनकी वृथाहै-किन्तु-योगीश्वरका सिद्धान्त यह नहींहै-क्योंकि (उक्तेऽपिसाक्षिभिःसाक्ष्ये)इत्यादि यहवचनउस व्याख्यामें किसीप्रकारसेभीनहींघटता अर्थात् न तो शब्दोंकीयोजना से न अर्थसे न उसवार्ताके प्रकरणसे भी इसलिये वहव्याख्या और यहमतभी निपट निरर्थकजानो केवलप्रसङ्गमात्रसे लिखदियागया यहसिद्धान्तहै ८२ ॥ ऊपर प्रदर्शितकिये कूटसाक्षियोंकेदण्ड नीचेकहतेहैं ८२ ॥

अथकूटादिसाक्षिदण्डविवेचनासत्यादिप्रतिषेधापवादयोर्विधिविषयिकोनामचतुस्त्रिंशःपरिच्छेदः ३४॥

इस चौंतीसवें परिच्छेदमें दो बातोंका विषय जानाजायगा अर्थात् झूँठी आदि गवाही देनेवालों या बनानेवालोंके दण्ड विवेक और दूसरे असत्य बचन वा अवचनके प्रतिषेध जो पहले बर्णनहुये तिनका अपवाद भी॥

पृथक्पृथक्दण्डनीयाःकूटकृत्साक्षिणस्तथा। विवादाद्विगुणंदंडंविवास्योब्राह्मणःस्मृतः ८३॥

मक्ष०-कूटकृत् तथा साक्षी जुदेजुदे विवादसे द्विगुण दण्डके दण्डनीय हैं-ब्राह्मण विवास्य कहाहै ८३॥

अभि०-(कूटकृत्) कूट करनेवाला जो धनदेकर या और किसी युक्तिसे गवाहोंको असत्यसाक्ष्य देनेका उत्साह दिलावै तथैव कूटसाक्ष्य देनेवाले साक्षी भी सबलोग जुदे २ सज़ा करनेयोग्य हैं और सज़ा उनकी यह कि जितनाधन विवादपर आरूढ़ होकर कोई उनके कौटसाक्ष्यसे हाराहो उस्से दूना जुर्माना एक एकसे लेना चाहिये अथवा वह दण्ड जो निज २ स्थलपर विवादोंकी पराजय मध्येलिखाहो उस्सेदूना उस विवाद के स्थलके अनुरूप करना चाहिये और जो उनमें कोई ब्राह्मणहो तो वह राज्यसे निकाल दियाजावै उसको और दण्ड नहीं ८३॥

अधि०-ऊर्ध्वोक्त दण्डोंका प्रकार उसदशामें समुझा चाहिये कि जब उन कूटकारियों वा साक्षियोंके लोभ आदि कारणोंका विशेष परिज्ञान राजाको न होसके और उनका वहकुलक्षण अभ्यासिक नहीं निश्चितहो कि ये सदैवही ऐसाकिया करते हैं-अर्थात्-जिसकी लोभादिकारण विशेषता अच्छीतरह निश्चित होजाय और उसका अभ्यास निश्चित होजाय कि यह सदैवही ऐसा करताहै तब मनुजीका कहा दण्ड विचार करना चाहिये-यथाहमनुः (लोभात्सहस्रंदण्ड्यःस्यान्मोहात्पूर्व्वन्तुसाहसम्। भयाद्वौमध्यमोदण्डोमैत्र्यात्पूर्व्वञ्चतुर्ग्गुणम्॥ कामाद्दशगुणंपूर्व्वंक्रोधात्तुत्रिगुणंपरम्। अज्ञानाद्वेशतेपूर्णेवालिश्याच्छतमेवतु)अर्थात्-जबकोईगवाह कूटसाक्ष्य लोभलालच से बोलाहो तब एक सहस्र पण जुर्माना उसपर लियाजाय-और जो मोहसे अर्थात् अपने ज्ञानकेविपर्ययसे असत्यबोलाहो तो (पूर्वसाहस) नामदण्ड अर्थात् २५० पण जुर्मानाकियाजाय-और जो किसीकेभयहेतु आदिकारणोंसे असत्यबोलाहो तो(मध्यमसाहस) दण्ड अर्थात् ५००पण जुर्मानालिया-और जो किसीकी मैत्रीनाम स्नेहके बाहुल्यसेअसत्यबोलाहो तो चतुर्गुण (पूर्वसाहस) दंड अर्थात् एकसहस्रपणजुर्माना लियाजाय-और जो स्त्री विषय कामहेतुसे असत्य बोला हो तो दशगुण पूर्व साहस दण्ड अर्थात् १२५०पण जुर्माना कियेजायँ-और जो क्रोध करके कूटसाक्ष्य दिया हो तो त्रिगुणा (परसाहस) दण्ड अर्थात् ३००० पण जुर्माना कियेजायँ-और जो अज्ञा-

नतासे अर्थात् मुक़द्दमेकी असलियत जाने विना असत्य बोलाहो तौ पूरे २०० दो सौ पण जुर्माना कियेजायँ-और जो बालिश्य नाम छछोरपन प्रमाद गफ़लत आदि सामान्य भावोंसे असत्य बोला हो तौ एक १०० सौ पण जुर्माना कियेजायँ-यहांपर सहस्र आदि सब संख्याओंमें (ताम्रिकपण) अर्थात् तांबेका पैसा समुझा चाहिये-तैसेही-एक यह बाक्यहै कि (कूटसाक्ष्यंतुकुर्वाणांस्त्रीन्वर्णान्धार्मिकोनृपः। प्रवासयेद्दंडयित्वाब्राह्मणंतुविवासयेत्) अर्थात् धार्मिकराजाकोचाहिये कि वह क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंको कूटसाक्ष्यका अभ्यासकरते हुये जुर्मानालेकर (प्रवासित) करै अर्थात् अपने देशते निकालदेवै और ब्राह्मणको ऐसा अभ्यास जानिकर (विवासित) करै अर्थात् जुर्माना लिये बिना देश निकालाकरै-सो यह दंड उसीदशामें करनाचाहिये कि जब सदैवही ऐसाकरनेका अभ्यास कोई रखताहो किंतु एकबारके करनेमें नहीं-और सिद्धांत इसका यह कि यदि अन्य तीनोंबर्णकेलोग ऐसाकरैं तौ एकबार या दोबारजैसा संभवहो पहिले जुर्मानाही ऊर्ध्वोक्तमर्यादासे करै पर जो बारंबार ऐसाकरैं तौ जुर्माना लेकर देशनिकालादेवै और ब्राह्मणको पहिले एकदोबारमें किंचित् अप्रतिष्ठा आदि दंड जैसा दंडविधिके परिच्छेदमें वर्णनहोचुकाहै सो करै पर बारंबारके अभ्यासमें अप्रतिष्ठापूर्वक देशनिकालाकरै-ऊर्ध्वोक्त इसीबाक्यमें तीनोंबर्णके लोगोंको (प्रवासित) करना जो कहागया तिसका अर्थशास्त्रके आशयसे (मारण) अर्थभी होताहै अर्थात् यदि वारंवारके अभ्यासमें अपराधकी विशेषता पाईजाय तौ जुर्मानालेकर (देहदंड) भीदेवै और देहदंडका यह आशयहै कि ओंठकटाना या जीभकटाना या प्राणांतिक दंड इत्यादि ये शारीरक दंडोंमें गिनती हैं सो उस कौटसाक्ष्यके अनुसार व्यवस्था देखीचाहिये अर्थात् जैसा छोटा वड़ा कौटसाक्ष्यहो तैसाही दंड विचारहोनाचाहिये-ब्राह्मणके निमित्तमें यद्यपि जुर्मानाहोना नहीं कहागया तथापि यह आशय निश्चित होताहै कि ब्राह्मणकोभी पहिले एकदोवार में जुर्मानेकाही दंडकरै फिर अभ्यासकी वहुताइतमें (विवासन)करै और इसविवासन शब्दका अर्थ केवल देशनिकालाहीनहीं किंतु वस्त्रलेकर नंगाकरना और गृहफोड़कर भग्नस्थानकरना ये भी अर्थहोतेहैं इनमें से जैसा अवसर और जैसा अपराधपायाजाय तैसा दंडहोनाचाहिये-अर्थात्-ब्राह्मणकोभी लोभादिकारणों के विशेप अपरिज्ञानकी दशामें और वारंवारका अभ्यास निश्चित न होनेकी दशामें वहीदंडहोनाचाहिये जो जहाँ तहाँ विवादोंके निज२ स्थलों पर लिखाहो-और वारंवारके अभ्यासमें धनदंड और (विवासन) दंडभीहोनाचाहिये-तिसमेंभी—यह व्यवस्थादेखीचाहिये कि इस विवासन शब्दकेअर्थ जो नग्नीकरना और गृहफोड़ना और देशनिकाला देना ये तीनों निश्चितहुयेहैं तिनमेंसे वहीप्रकार होनाचाहिये जो पराजित पक्षीकी जाति या प्रतिष्ठा या हारेहुये द्रव्यकी उत्तमता

मध्यमता या इसीप्रकारके और किसीकारणके अनुसार संभवहो-औरजो-उस ब्राह्मण के लोभादिकारणोंकी विशेषता अच्छीभांति निश्चित नहोसके या बारम्बारका अभ्यास निश्चितनहो और पराजित पक्षीकी जाति आदि पूर्वोक्त लक्षणों का विषय स्वल्पहो जिसमें उसने कौटसाक्ष्य कियाथा तौ फिर इन दशाओंमें ब्राह्मण को भी अन्य तीनों बर्णके समान केवल अर्थ दण्डहोना चाहिये-पर जो-विषय बहुत बड़ा हो तौ केवल देश निकाला करना चाहिये और जो विषय बड़ा होनेपर भी बारम्बार का अभ्यास निश्चितहो तौ फिर मनुका बचन सभी बर्णोंपर एकसा विचारना योग्यहै-किंतु-इसदशामें वहबात नहीं मानीजासक्ती है कि ब्राह्मणको धन दंडका निषेध है क्योंकि जब धन दंडका अभाव ठहरा तौ शारीरक दंडका निषेध निःसंदेह रहा और जब दोनोंका अभावहुआ तौ फिर थोड़े भी अपराध में नग्नीकरण या गृहभंजन या अंकनकर्म अर्थात् मस्तकआदिपर किसी चिह्नका दाग देना या देश निकाला देना दंडउसपर संभव होगा सो ये थोड़ेसे अपराधमें असंगत हैं और जो यह भी नहीं कियाजाय तौ फिर दंडका न होना एकलक्षणप्रकट होताहै सोवह धर्मसेविरुद्ध है सोयह विरोध इस निम्नोक्त वाक्य सेभी संसिद्धहै-यथाह (चतुर्णामपिवर्णानांप्रायश्चित्तमकुर्वताम्। शारीरंधनसंयुक्तंदंडंधर्म्यंप्रकल्पयेत्) अर्थात्-प्रायश्चित्त न करतेहुये चारोंबर्णोंको अपराधोंकीदशामें धर्मविचारके अनुसार दंडशारीरक और धनदंडभी एकहीसाप्रकल्पितकरै अर्थात् वर्णभेदसेनहीं-अन्यच्च(सहस्रंब्राह्मणो दंड्योगुप्तांविप्रांबलाद्व्रजन्) -अर्थात्-उस ब्राह्मणसे एकसहस्र पणरूप्यकाधन दण्ड लेनाचाहिये जो (गुप्ता)नाम पर्देकीरक्षामें रहतीहुई ब्राह्मणी या तल्लक्षणा क्षत्राणी वैश्यानीसाथ बलसे गमनकरताहुआ पकड़ाजाय-और-शंखका यहवाक्य है कि-त्रयाणांवर्णानांधनापहारवधबंधक्रिया विवासनांककरणंब्राह्मणस्य)-अर्थात्-अन्य तीनों वर्णोंको धनापहार दण्डवध दण्डबन्धक्रिया दण्ड यहनियतहैं परब्राह्मणको देशनिकाला और अंककरण ये दोदण्ड हैं-सो इसवचनमें धनापहारदंड सर्वस्वापहारसेअपेक्षितहै क्योंकिमृत्युदंडकेसाथमें कहागया और यहीआशय निम्नोक्तवाक्यसेभी सिद्ध है-यथा-(शारीरस्त्ववरोधादिर्जीवितांतःप्रकीर्त्तितः। काकिन्यादिस्त्वर्थदंडःसर्वस्वांतस्तथैवच)-अर्थात्-शरीर दण्डक़ैदिको आदिलेकर प्राणांतिक पर्यंत और धनदण्डएक कौड़ीकोआदिलेकर सर्वस्वहरण पर्यंतकहाताहै-सिद्धांत इसकायह कि शास्त्रोक्त प्रायश्चित्तोंके न करनेवाले ब्राह्मणोंपर उग्रअपराधोंकी दशामें धनदण्डभी सर्वस्वापहार तक होसक्ताहै-और-जोकि एकयहवाक्यहै कि (राष्ट्रादेनंबहिःकुर्यात्समग्रधनमक्षतम्) अर्थात्-इसको सर्वधनसहित राज्यसे बाहरकरिदेवै किंतुकुछभी नहींछीने और शरीर से अक्षतजानेदेवै-सो यह सर्वधनसहित जानेदेनेका वाक्य उसदशापर संबन्धित है

कि यदि ब्राह्मण प्रथमसाहस विषयिक अपराध अर्थात् जुर्मखफ़ीफ़का मुजरिमहो किंतु सभीअपराधोंमेंनहीं और (प्रथमसाहस)अपराध वे कहातेहैं जो फौजदारीसे संबन्धितहों और ऐसेछोटेहों जिनमें २५० पणसे अधिक दण्डहोनेका ठिकानानहो-परंतु-यहयथार्थ है कि शारीरदंड कदाचित्भी न होनाचाहिये-यथाहमनुः-(नजातुब्राह्मणंहन्यात्सर्वपापेष्वपिस्थितम् (इतिसामान्यवचनं) अर्थात्-मनुने सर्वधारणभी अपराधोंपर ब्राह्मणके निमित्तमें लिखाहै कि ब्राह्मणको कदाचित्भी न मारैचाहै किसीभी तीव्रपापमें स्थितहो और स्थितहोनेका यहआशय है कि चाहै तैसे पापके करनेपर समुद्यतहुआहो किंतु जबतक उसकर्मको न कियाहो यद्यपि यहबात उसमेंसम्भवहो कि यदि पकरानहीं जाता तो अवश्यही यहकाम अबतकहोजाता-इसबातसे यह आशय सिद्धहोताहै कि यदि कोईउत्तम साहसकर्म निपट उत्पन्नहोचुकाहो तो शारीर दंडभीहोसक्ताहै और यद्यपि सभीउत्तम साहसोंमें शारीरदंडकाहोना योग्यन होसकै परन्तु लोभादि कारणोंसे इच्छापूर्वक जानबूझकर बालबधादि महापाप करने में अवश्यही शारीरदंडके सिवाय कोई अन्यप्रतिकार दृष्टिमेंनहींआता तहाँयहबातराजाके आधीनहै कि वह अपने धर्माधर्मकी दृष्टिसे जैसाउचित समुझै सोकरै-यथाह मनुः-(नब्राह्मणवधाद्भूयानधर्मोविद्यतेभुवि। तस्मादस्यवधंराजामनसापिनाचिंतयेत्) अर्थात्-पृथ्वीपर ब्राह्मण बधकेसिवाय और कोई अधिक अधर्मनहीं है इसलियेराजा इसकावध अपनेमनसेभी कदाचित् नहींसोचै सो यह सोचना या न सोचनाउसका देशकालवस्तुकी विलक्षणदशाके आधीनहै इसका शेषप्रकार कुछनीचे ८४ केभीअभिप्रायार्थमें पिछले देशदेखो ८३ ॥ कूटसाक्षियोंके दण्डनिश्चित होचुके और इसी प्रसंगसे औरभी अनेक बातेंकहीगईं अबनीचे साक्ष्य निह्नवका दंडकहाजायगा॥

यःसाक्ष्यंश्रावितोऽन्येभ्योनिह्नुतेतत्तमोवृतः। सदाप्योऽष्टगुणंदंडंब्राह्मणंतुविवासयेत् ८४

प्रक्ष०-जो कोई साक्ष्य सुनाया हुआ तमोवृत होकर औरौं से निह्नव करता हो सो अठगुणादंड दिलाने योग्य है और ब्राह्मण को विवासित करै ८४ ॥

भभि०-जो कोई साक्षी साक्ष्य अंगीकार करै और इसीहेतुसे नाम उसका प्रसिद्ध होजावै और अन्य सब साक्षियों के साथ उसका आह्वान किया जाकर साथही उनके साक्ष्य बचन सुनायेजायँ तिस पीछे या सुनायेजाने से पहलेही कि जबतक साक्षियों मे कुछ पूँछा नहीं गयाहो किसी अपने गूढ़ अभिप्रायके हेतुसे (तमोवृत) अर्थात् रागादि कारणों से आक्रांत चित्त होकर अन्य साक्षियोंसे विपरीत गवाही मनमें जोरि गाँठि उनसेछिपी रक्खे और प्रत्यक्षउनकेयह (निह्नव)नामनकार खींचै कि मैं इसवार्त्ता में साक्षी नहींहूँ किन्तु मुझसे बूझाजायगा तो यही उत्तरदूँगा किमैं इसमें कुछभी नहीं जानता-और-साक्ष्य पूँछा जानेके समयपर उन सबसे विपरीत उत्तर देवे जिस्से अर्थी

को प्रत्यक्ष हानि होसक्तीहो या होहीजाय तौ उस गवाहसे अठगुणा दंडलियाजावै उस परिमाणसे कि जो कुछ धनहानि उस विवाद के दावेमें हुईहो या होसक्तीहो-वही गवाह यदि ब्राह्मणहो तौ उस्से भी यह दंडलेना चाहिये जैसा ८३ की अधिकोक्ति में धनदंडलेना पक्काहोचुकाहै परंतु जो देसकने में असमर्थ हो तौ विवासित कियाजाय किन्तु इसमें भी (विवासयेत्) इस क्रियापदके कई अर्थहोने से पराजय का विषय देखा चाहिये अर्थात् जैसे विषय की पराजय हुईहो उसीके अनुसार नग्नीकरण या गृहभंजन या देश निर्वासन कोई एकदंड कियाजाय-परंतु इतरवर्णों के लोग जो अठगुणा दंडदेनेमें असमर्थ हों तौ उनसे उनके जातीकर्मों का उचित कामकरवाना या निगड़ बंधनमें राखना कारागृहमें भेजदेना आदि कोई दंड पराजयके विषयानुसार किया जाय-सो यह प्रकार ऊपर ८३ की भी अधिकोक्तिमें संबंधित कारलेना चाहिये जहाँ तीनों वर्ण और ब्राह्मणके निमित्त में दंडभेद निर्णय होचुकाहै ८४॥

अधि०—यदि कदाचित् सभी साक्षी ऐसानिह्नव करैं जिसका चर्चाएकके उद्देशकर के ऊपर आया तौ वे सभी दोषी उसएकहीके समान समुझेजायँ और सभीपर समान दंडहोना चाहिये-जब कदाचित् कोई एक या सब साक्षीलोग ऐसा निह्नव करैं कि पहले साक्ष्यठीक देकरपीछे कुछअन्यथा कहनेलगैंतौभी उस अनुबंधकीअपेक्षा से पृथक् २ सभीदंडनीय हैं-यथाहकात्यायनः-(उक्त्वाऽन्यथाब्रुवाणाश्चदंड्याःस्युर्वाक्छलान्विताः)-अर्थात्-जोकोई किसीवार्त्ताका इजहार दिये उस्से कुछ विपरीत कहने लगैं वे लोग अपने (वाक्छल) अर्थात् फ़रेबसेसंयुक्त हुये उसव्यवहारके विषयानुसार जुदे २ दंडनीय हैं-औरभी-जो गवाह एकपक्षीकी ओरसे नियतहुये हों उनसे दूसरे पक्षीको गुप्तभाव संभाषण आदि कुछ संसर्गनकरनाचाहिये-यथाहनारदः(नपरेणसमुद्दिष्टमुपेयात्साक्षिणंरहः। भेदयेन्नैवचान्येनहीयेतैवंसमाचरन्) अर्थात्-और के बुलायेहुये साक्षी पास एकांतमें न जावै और न किसी अन्य पुरुषके द्वारा उसके साक्षियोंमें कुछभेद करावै किन्तु यह आचरण करतेहुये विना पराजय भी पराजितहोवै (भेद)का स्वरूप यह कि मेरे साक्षियोंके अनुसार उसके साक्षीबोलैं या मेरे अभिप्रायके अनुसारबोलैं या उसीके परस्पर भेदसे बोलैं जिस्से मेरीजयहोसके इत्यादि यदि कोई बात ऐसी करै तौनिःसंदेह इसके दंडमें पराजित कियाजावै ८४ जो कि साक्षियों को इस प्रकरणमात्रमें सर्वत्र कुछनबोलने और असत्य वचन बोलनेकाभी निपट निषेध कियागया तिसमें कुछ अपवाद भी योगीश्वर याज्ञवल्क्यजी ने धर्मके सिद्धांतरूपसे प्रदर्शित कियाहै तिसकारूप नीचेके श्लोकमें देखो ८४॥

वर्णिनांहिवधोयत्रतत्रसाक्ष्यनृतंवदेत् ८५। पूर्वार्द्धः॥

मक्ष०—जहाँ वर्णियों का वध हो तहाँ साक्षी अनृत बोलै ८५॥

अभि०-इस अपवाद रूप वाक्यसे अवचन और असत्य वचनकीभी आज्ञादी जातीहै कि जिनकेलिये पहले प्रतिषेधहोचुका है-अर्थात्-जहांकहीं शङ्काभियोग-आदि किसीदशा में यहसम्भव हो कि यहांपर सत्यबोलने से किसी शूद्र या वैश्य या क्षत्री या ब्राह्मण का वधहोजायगा- और असत्य बोलनेसे किसीकाभी बध नहोगा तहांपर असत्यबोलने की आज्ञाहै-जहांकहीं यहसंयोग सम्भवहो कि मेरेस-त्यबोलनेसे अर्थी प्रत्यर्थी दोनोंमेंसेएकमाराजाताहै परअसत्यसेभी उसकादूसरा पक्षी माराजायगा तबऐसीदशामें चुपकेहोजानेकीआज्ञाहै किंतुसत्यअनृत कुछभीनहींबोलै परजोराजाइसको मानै और जो राजाकिसी प्रकार चुपकेरहनेसे न मानै किन्तुप्रबल-तासेकहलायाचाहै तौसाक्षियोंको यहउचितहै कि अपनेवचनोंमेंअस्तव्यस्तका बिप-रीतभेद डालकर प्रमाणतायोग्य साक्ष्यनहींदेवैं कदाचित् यहभीनहोसकै तौफिरनिः-सन्देह सत्यबोलना उचितहै क्योंकि सत्यबोलनेसे केवल एकमनुष्यकेही बधकादोष होगा और असत्य वचनकहनेसे दोदोषकिंतु एकतौमनुष्यबध और दूसराअसत्यबा-दित्वका इसलिये असत्यनहीं बोले ८५॥ अबनिचले श्लोकमें इसकी प्रायश्चित्त बिधि कहीजायगी॥

तत्पावनायनिर्वाप्यश्चरुःसारस्वतोद्विजैः ८५॥

अक्ष०-तिसकेपावनके लिये द्विजातियों को सारस्वतचरु निर्वाप्यहै ८५॥

अभि०- ऊर्ध्वोक्त अवचन और असत्यवचनसे जो कुछप्रत्यवाय नामदोषमनुष्य को लगताहै तिसके(पावन)अर्थात्उनदोषोंकेपरिहारकेलियेद्विजातीलोगोंको(सारस्वत) नामचरु कर्त्तव्यहै अर्थात् सरस्वती देवताकेनामसे याज्ञिक बिधिके अनुसार ओदनका दानकरना चाहिये जिस्सेवहदोष उनकाधोयाजाय- और-यहचरु उनप्रत्येक मनुष्यों को भिन्न२ करना चाहिये जो इसप्रकारकी गवाहीमें बुलायेगयेहों ८५॥

अधि०-सिद्धान्त इसका यहकि साक्षियोंको साक्ष्यपूछाजानेके समयपर असत्यव-चनकहने और निपट न बोलनेकाभी निषेधकियागयाथा अबइसदशामें साक्षियोंको उन्हींदोनों बातोंकी आज्ञादीगई-और-साक्षियोंके सिवाय सर्वसामान्य मर्यादासे भी इनबातोंका निषेध नियत है-तद्यथा(अब्रुवन्विब्रुवन्वापिनरोभवतिकिल्विषी)अर्थात न कहने और और विशेष उक्तिपूर्व कहने से मनुष्य निःसंदेह किल्विषीनाम अपरा-धी और पातकी हुआकरता है-जबकि-निपट इनदोनों बातका निषेधहै और यहांकी आज्ञानुसार कदाचित् ऐसाकरना परा तो प्रत्यक्ष उस निषेधका अतिक्रम किया गया जोबात साक्षियोंके अपराध में गिनतीहोकर निषेधकी गईथी तिस अतिक्रमसे उत्पन्नहुये दोषोंकी शांतिमें यह प्रायश्चित्त कहागया कि सारस्वत नाम चरुकरना चाहिये-परन्तु-साधारण प्रतिषेधके अतिक्रमका संबंध इसमेंनहीं समुझना और यह

तर्क इसमें असंगतहै कि साक्षियोंको यहांपर चुपके रहने या अनृतवचन बोलने की शास्त्रोक्त आज्ञा होनेपर भी वह अपराध क्या यथावस्थित बनारहसक्ताहै जोसाधारण मर्यादाके अतिक्रमसे उत्पन्न होताहै जिसके लिये प्रायश्चित्त बतलातेहो और जोइस आज्ञाके होनेपरभी वह अपराधलगसक्ताहै तो फिर यह आज्ञारूपी वचनभी निरर्थक समुझा चाहिये-सो यह तर्कअसंगतहै-क्योंकि-साक्षियोंको असत्य बोलने या निपट नहीं बोलने के प्रतिषेध जो पहले अपने स्थलपर होचुके हैं तिन दोनों के अतिक्रम होनेमें बहुतबड़ा अपराध अर्थात् जुर्मसंगीन होताहै -और-अन्यत्र साधारण दशाओंमें असत्य बोलने या चुपके रहनेसे अपराध अल्प अर्थात् जुर्मखफ़ीफ़ समुझा जाता है इसलिये यह आज्ञारूपी बचन सार्थक है निरर्थक नहीं-और-यद्यपि अन्यत्र बहुधा दशाओंमें यह मर्यादाहै कि बहुत बड़े अपराधकी निवृत्ति नामकिसी प्रकारसे शांति होजाने पर उसके संबंधी छोटे अपराधकी निवृत्ति आपसे आप उसके साथ होजाती है-तथापि-इस गवाहीकी प्रक्रियामें यहाँपर अतिक्रमकी आज्ञा और प्रायश्चित्तकी प्रेरणाके हेतुसे यह विलक्षण मर्यादा है कि बहुतबड़ा अपराध निवृत्त होताहै पर उसीप्रकारका आनुषंगिक अपराध छोटानहीं निवृत्त होसक्ता यह निश्चय पायाजाता है-यही मर्यादा जो असत्य बोलने या न बोलने मध्ये ऊपर कही गई चारौवर्णोंके वध संबंधी प्रश्नोंमें साक्षियोंके सिवाय बटोहीआदि अन्य साधारणों सेभी संबंधित समुझी चाहिये अर्थात् यदि ऐसे किसी अभियोगमें पांथादिकोंसे कुछ पूँछाजाय जिसमें किसीमनुष्यके प्राणजातेरहनेका संकोचहोतौ उनकोभी इसीप्रकार से स्वाधीनताहै-परंतु-उनकेलिये इसप्रायश्चित्तकी आवश्यकता नहींजानीजाती क्यों कि इसवार्त्तामें कोई और प्रतिषेध नहीं पायागया यदि किसी निमित्तांतरसे अर्थात् अन्य अभियोगोंके द्वारा कालांतरमें साक्षियों यद्वा अन्यमनुष्योंका असत्यसंभाषण आदि कुछ अपराध पहिला किया प्रकाशितहो जिसकादंड उसने पहिले प्रकट नहोनेके हेतुसे न पायाहोतौ इसदशामें निःसंदेह अदंड्यहोगा किन्तु उससे कुछ अपेक्षा नहीं क्योंकि इसका प्रतिकार वहपरलोकमें जाकर अपनेआप भोगैगा यह सिद्धांत इसीवचनके आशयसे निश्चयात्मक पायाजाताहै ॥ ८५ ॥ इतिसाक्षिप्रकरणम्-तीन विधके प्रमाणोंमें से भुक्ति और साक्षियोंका निरूपण होचुका अब नीचे केवल एक परिच्छेदमें लेख्यपत्रोंका प्रमाण यथा विधिसे निरूपण कियाजायगा ॥

अथलेख्यप्रमाणापेक्षायांपत्रलेख्याविधिविवेकोनामपंचत्रिंशःपरिच्छेदः (३५)

इस पैंतीसवें परिच्छेदमें लिखित प्रमाणकी अपेक्षासे लेख्यपत्रोंकीविधि प्रदर्शित करी जायगी-लेख्यपत्र दोप्रकारकेहोतेहैं तिनमें एकतौ (शासन) अर्थात् राजदत्त लेख्य सरकारी तहरीर जिनका चर्चा आचाराध्याय गत राजधर्म प्रकरणमें ३१७ के

श्लोकसे लेकर निरंतर तीनश्लोकोंमें होचुकाहै उन्हींके उपलक्षणसे और भी सरकारी लेख्य जो जो होतेहों सबको (शासन) संज्ञासे समुझना-और-दूसरे (जानपदलेख्य) अर्थात् घरू दस्तावेज तहरीर ख़ानगी जिनको कहतेहैं तिनकीविधि इसपरिच्छेदमें अब कहतेहैं ॥

यःकश्चिदर्थोनिष्णातःस्वरुच्यातुपरस्परम्। लेख्यंतुसाक्षिमत्कार्यंतस्मिन्धनिकपूर्वकम् ८६ ॥

अक्ष०-जोकोई अर्थ परस्पर अपनी रुचिसे निष्णातहो तिसमें धनिक पूर्वक साक्षिमान् लेख्य कर्त्तव्यहै ८६ ॥

अभि०-(जानपदलेख्य)नामघरू लिखावटभी दोप्रकारसे होतीहैं एकतो(स्वहस्तकृत) वह कि जो निज अपने हाथसेही लिखीजाय दूसरी(अन्यकृत)वह कि जो औरोंके हाथसे लिखवाई जाय तिनमें पहलीकी संसिद्धिमें साक्षी लिखेजानेकी आवश्यकता नहींहै-पर-दूसरीमें साक्षीहोने आवश्यकहैं (इनदोनोंमेंसेद्वितीय (अन्यकृत) लिखावटकीविधि पहले कहते हैं कि) जब कदाचित् उत्तमर्ण और अधमर्ण इनदोनोंकी परस्पर अपनी रुचिके अनुसार जोकोई अर्थ सोना चाँदी आदि (निष्णात) नाम व्यवस्थित अर्थात् निश्चितहोजाय कि इतनेकालमें इसप्रकारसे इतनादियाजायगा और प्रतिमास इतनीवृद्धिहोगी तिसअर्थमें इस निश्चितहुई व्यवस्थासे लेख्यपत्रकरनाचाहिये सो यह लेख्यधनिकपूर्वक और साक्षिमान् अर्थात् धनीके नामसे और साक्षियोंके प्रमाणसे लिखवानाचाहिये ८६ ॥

अधि०-इस लेख्यपत्रमें जो साक्षी अपना साक्ष्यलिखाकरतेहैं वे सब लिखित साक्षीकहलातेहैं कि जैसा बत्तीसवें परिच्छेदमें चर्चाहोचुकाहै और उसीपरिच्छेदमें वर्णनकिये लक्षणोंवाले साक्षीहोनेचाहिये किंतु अन्यथा नहीं क्योंकि यदि कदाचित् इसीपत्रकी अपेक्षासे विवाद खड़ाहोगा तब उस दशा में साक्षियों के भी गुणों का परीक्षण कियाजायगा-तथाहि-(कर्त्रातुयत्कृतंकार्यंसिद्ध्यर्थंतस्यसाक्षिणः। प्रवर्त्तंते विवादेषुस्वकृतंवाऽथलेख्यकम्) अर्थात्-कर्त्ताने जो कुछकार्य पत्रलेखन आदिसे कियाहो तिसकी सिद्धिके लिये विवादों में सब साक्षीलोग प्रमाण में आते हैं अथवा अपने हाथकाही लेख्यहो किंतु निज अपनेहाथ की लिखावटमें साक्षियोंकी विशेषतर अपेक्षा नहीं है-और इनदोनों भांतिकी लिखावटों के प्रमाणमध्ये मर्यादा ठेठ निज २ देशोंकी परिपाटीपर आरूढ़ है-यथाहनारदः (लेख्यंतुद्विविधंज्ञेयं स्वहस्तान्यकृतंतथा। असाक्षिमत्साक्षिमच्चसिद्धिर्देशस्थितेस्तयोः)-अर्थात्-जानपदलेख्य दोप्रकारका समुझना चाहिये स्वहस्तकृत १ अन्यहस्तकृत २ इनमें पहिला विना गवाहों के भी और दूसरा साक्षियोंसेही होता है पर दोनों की सिद्धि देश परिपाटीके आधीनहै ८६ ॥

समामासतदर्द्धाहर्नामजातिस्वगोत्रकैः। सब्रह्मचारिकात्मीयपितृनामादिचिह्नितम् ८७॥

अक्ष०- बर्ष मास तदर्द्ध दिननामजाति स्वगोत्र ब्रह्मचारिक आत्मीय पितृनाम आदिसे चिह्नितकरै ८७॥

अभि०-(बर्ष) अर्थात् सम्बत्सरकानाम जो जिसदेशमें तत्कालसंचरितहो-(मास) महीनेकानाम यथा चैत्रआदि जैसा जहाँकाप्रचारहो-(तदर्द्ध) पक्षकानाम यथा शुक्ल या कृष्ण-(दिन) तिथिकानाम प्रतिपदाआदि- (नाम) धनीऋणी दोनोंका-(जाति) ब्राह्मणआदि जो जिसकीहो-(स्वगोत्र) यथा वसिष्ठगोत्र या कश्यपगोत्रइत्यादि जो कोईसी प्रसिद्धि जिसकेबंशकी बिख्यातहो-(आत्मीयपितृनाम) अर्थात् धनीऋणी दोनोंके पिताकानाम उनकेनामोंकेसाथमें-(आदि)शब्दसे औरभी आवश्यक बातैंसमुझीचाहिये जैसे उसद्रब्यकीजाति और संख्या या तिथिकेसाथमें रविबारआदि बारोंकानाम या उनदोनोंकी उहदेदारीआदि कोईअधिकविशेषण जोकुछहो सो सबलिखनाचाहिये (एतैःसर्वैश्चिह्नितंलेख्यं(कार्यं) यह क्रियापद पहिलेश्लोकमें सम्बन्धितहै) ८७॥

अब इसीकीविशेषता नीचे अगले श्लोकमेंकहतेहैं कि लिखेपीछेभी प्रमाणकरै॥

समाप्तेतुऋणीनामस्वहस्तेननिवेशयेत्। मतंमेऽमुकपुत्रस्ययदत्रोपरिलेखितम् ८८॥

अक्ष०-समाप्तहोनेमें नाम ऋणी फिरभी निजहाथसे निवेशित करै कि जो इसके ऊपर लिखागया मुझ अमुक पुत्रका सम्मतहै ८८॥

अभि०-जब कदाचित् कोईपत्र किसी ऋणीकीओरसे लिखवायाजाय तब लिख चुके पीछेफिरभी ऋणीनिज हस्ताक्षरोंसे अपनेनाम सहित लिखदेवै कि इसमेंजोकुछ ब्योरा निश्चितहोकर लिखागया सोसब अमुकपिताके मुझपुत्र को स्वीकारहै ८८॥

इसीमेंकुछ और भी विशेषता नीचेकहते हैं॥

साक्षिणश्चस्वहस्तेनपितृनामकपूर्वकम्। अत्राहममुकःसाक्षीलिखेयुरितितेसमाः ८९॥

अक्ष०-समसाक्षी भी निजहाथसे पितृनाम सहित लिखें कि इसमें मैं अमुकनामा साक्षीहूं ८९॥

अभि०-जिन मनुष्योंकी गवाही लेख्यपत्र के आशयमें प्रदर्शित कीगईहो कि अमुकामुक साक्षियोंके सन्मुखलेख्य बनवायागया तिन गवाहोंके भी उसदशामें किजब ऋणी अपने हस्ताक्षरनामलिखचुकै तब उसपत्रकीआयुपर अपना२नाम पितृनाम सहित इसरीतिसे निजहाथसेही लिखनाचाहिये कि इसवार्त्ता में विष्णुदत्तकापुत्र मैं देवदत्तनामासाक्षीहूँ-सो यहसाक्षीलोग (सम)हों अर्थात् संख्यासे और [illegible] गुणोंसेभी तुल्यहोनेचाहिये और सब जुदे२ अपनेहाथसे लिखें ८९॥

भाषि०-यदि कदाचित् ऋणी या कोईसाक्षी लिखनानहीं[illegible] तब ऋ-सी ओरसे और वहसाक्षीभी किसीद्वितीयसाक्षीसे सबसा[illegible]

क्ष्यलिखवादेवै-यथाहनारदः-(अलिप्यज्ञऋणीयःस्यात्स्वमतंतुसलेखयेत् । साक्षीवा साक्षिणाऽन्येनसर्वसाक्षिसमीपतः)अर्थात्-जोकोईऋणी अलिपिज्ञहो वह अपना सम्मत औरसे लिखवावै यद्वा साक्षी जो निरक्षरहो सो दूसरेसाक्षीसे सबसाक्षियों के समीपही लिखवावै (इन्हीं साक्षियोंको गवाह तहरीरी या हाशियाकेगवाह यावन भाषामें कहते हैं) ८९ ॥ इसीमें कुछ औरभी विशेषता नीचेकहतेहैं ॥

उभयाभ्यार्थितेनैतन्मयाह्यमुकसूनुना । लिखितंह्यमुकेनेतिलेखकोंऽततोलिखेत् ९० ॥

अक्ष०—तिसके पीछे लेखक अंतमें यह लिखै कि मुझअमुकसूनु अमुकनामाने यह दोनोंकी प्रार्थनासे लिखा ९० ॥

अभि०—जब गवाहोंकेभी हस्ताक्षर होजावैं तबसबसे पीछे पत्रकेनीचे जाकर वह लेखकभी कि जिसने दोनोंपाक्षियों की आज्ञासेही कागदकियाहो इसरीतिसे अपना प्रमाण लिखदेवै कि मुझ विष्णुदत्त के बेटा यज्ञदत्तने अमुकामुक दोनों पक्षियों के कहने से यह लेख्यपत्र लिखा ९० यह व्यवस्था यहांतक (अन्यकृतपत्रों) मध्ये कही गई-अब नीचेसे (स्वकृतलेख्यों) की मर्यादा-कथन होतीहै जिसमें साक्षियों का होना कुछ विशेषकर आवश्यकनहीं ९० ॥

विनातुसाक्षिभिर्लेख्यंस्वहस्तलिखितंतुयत् । तत्प्रमाणंस्मृतंलेख्यंबलोपाधिकृतादृते ९१ ॥

अक्ष०—जो लेख्य निजहाथकाही लिखाहो सो विनासाक्षियोंके भी प्रमाण कहा-पर-बलोपाधि कृतसे रहित ९१ ॥

अभि०—यदि कोई लेख्य निजऋणीके हाथकाही लिखाहो तौ वहलिखितगवाहों के नहोनेपरभी वैसाही प्रमाणमें आताहै कि जैसासाक्षी लिखेहोनेपर पक्का समुझा जाता यह मन्वादिकोंने कहाहै -परन्तु- यह प्रतिज्ञा है कि यदि किसीने उस लिखने वालेपर (बल) प्रबलतासे या (उपाधि) नाम किसीछल प्रपंच रचना फ़रेब आदि से न लिखवाई हो-किंतु-यदिऐसीहो तौ निजहाथकीभी लिखीप्रमाणतामें नहींआसक्ती-और सिद्धांत इसका यह कि वह निपट निष्फल होजायगी ९१ ॥

अवि०—यहांपर (उपाधि) शब्द छल प्रपंचोंका वाचक सामान्य भावसे कहाहै तिस के अनेक रूप समुझे चाहिये अर्थात् यदि किसी कच्चीबुद्धिवाले के हाथसे कुछलोभ कर लिखवायाहो या क्रोधके दबावसे या कोईसा भय दिखलाकर या मदपीकर मत्त होनेकी दशामें यद्वा ग्रहोन्मादसे प्रमत्त होनेकीदशामें या बुद्धिभ्रंशहोजानेकी दशामें लिखवाया हो तौ वहकागद झूँठा समुझाजाकर प्रमाणतामें न आवैगा-तथाचनारदः-(मत्ताभियुक्तस्त्रीबालबलात्कारकृतंचयत् । तदप्रमाणंलिखितंभयोपाधिकृतंतथा) अर्थात्-नारदने यह कहाहै कि जो कोई दस्तावेज़ किसीमतवारेने या औरोंकर के घिरे

हुयेने या स्त्रीने या बालकअप्राप्त व्यवहार ने या ज़बरदस्तीमेंदबेहुयेने लिखीहो तथैव जोभयभीत मनुष्यनेलिखीहो या (उपाधि) नामछलप्रपंचकेलक्षणोंद्वारा उस्सेलिखवाईगईहो सोये सभी लिखितं (अप्रमाण)अर्थात् झूँठीहैं-यह दोनोंभांतिकी लिखितं किंतु चाहै अपनेहाथकी लिखी या परायेहाथकीहो पर व्यौरा उसमें बंधक सहित या अबंधक ऋणकाव्यवहार होतौ उसकाही स्पष्टव्यौरा लिखाजाना चाहियेऔरयहव्यौरा निज २ देशोंकी परिपाटी के अनुकूलहोना चाहिये-और-उस लिखावट के जोड़तोड़ अर्थक्रमकी शृंखलासेगँठेहुये ऐसेशुभलेख और सुवाच्यहोने चाहिये जिसकेप्रयोजन अथवा पाठमें कोईसा कलंक नहीं लगनेपावै-परन्तु-इसबातका होना कुछ आवश्यक नहीं है कि वह कोईलिखितं साधुशब्दोंके अनुसारहो अर्थात् व्याकरणादि विद्वत्ताकी गँठावटसे नहोनी चाहिये और सर्वसाधारण देश भाषाकी गँठावट में नहीं-बरन-ठेठ उसीस्थान विशेषकी प्रचरित बोलीमें होनी चाहिये जहां उसव्यवहारसे-लिखितंकी संसिद्धिकीगईहो-यथाहनारदः(देशाचाराविरुद्धंयद्व्यक्ताधिविधिलक्षणम्।तत्प्रमाणंस्मृतंलेख्यमविलुप्तक्रमाक्षरम्) अर्थात्-नारद कहते हैं जो दस्तावेज़ अपने स्थानविशेषकी आचारपरिपाटीसे विपरीत नहो और जिसमें (आधिविधि)के लक्षण प्रकटपाये जातेहों और जिसकेपाठका अनुक्रमतथा शब्दों वा अक्षरोंके भावार्थ लुप्तनहों और अभ्यासिक बोली जो प्रचरित हो तिसमें लिखाहो सो वह लेख्यपत्र प्रमाणके योग्य है अन्यथा नहीं (आधिविधि) के लक्षण जैसे तीसवें परिच्छेद गत श्लोक ५९ की अधिकोक्ति आदि स्थलोंपर (आधि) के विधान मध्ये लक्षण कथन होचुके हैं तिनके अनुसार जिस भाँति का (आधि) बंधक धरागयाहो तिसका नाम लक्षण और काल अवधि सब इसलेख्यपत्रमें प्रदर्शित करना चाहियेकियह बंधक वस्तु भोग्याधि अथवा गोप्याधि और कृतकाल अथवा अकृतकाल कियागया इत्यादि [illegible] जिसमें स्पष्टरूपसे पायेजाँय सोवह लिखितं प्रमाणमें आवै इसका यह [illegible] कि जैसापाठ राजशासनपत्रों में व्याकरणादि विद्वत्ताकी गँठावट अनुसार [illegible] तिसका वर्त्तावा इसभाँति की लिखावटों में न होनाचाहिये [illegible] लिख चुकेहैं कि साधुशब्दोंके अनुसार न हो ९१ अब इसलेख्यपत्रके [illegible] लिखना आवश्यकहुआ कि यह पत्रारूढ़भीऋण तीनपुरुषोंको [illegible] है इसी निमित्तसे निचले अर्द्धामें कहते हैं ९१ ॥

ऋणंलेख्यकृतंदेयंपुरुषैस्त्रिभिरेवतु ९२ ॥ [illegible] ॥

मक्ष०—लेख्यसेभी कियाहुआ ऋण तीनपुरुषों [illegible] ॥

मभि०—जैसे केवल साक्षियों के सन्मुख [illegible] पुरुषों को [illegible] तैसेही लिखितंसे भी लिखवाकर लियाहुआ [illegible] अर्थात् [illegible]

देवै यदि उस्से नहीं दियाजाय तो पुत्रदेवै यदि पुत्रसे भी न दियागयाहो तो पौत्रदेवै परंतु चौथे पुरुष प्रपौत्र आदि किसीपर दावाकिसी धनी का नहीं चल सक्ताहै यह नियम इसमें कियागया ६२॥

आभि०—(अत्रवितर्कः)भला जब तीन पुरुषोंको ऋणमात्रका उद्धार करना सामान्य-भाव अविशेषता से ५१ के श्लोकमें नियतहै तो फिर लिखित या विना लिखित का चर्चाकरना यहाँपर वृथा है (सुनो) वृथा नहीं क्योंकि उसी ५१ के श्लोकमेंसामान्य-भाव कहीहुई मर्यादा में लिखित ऋणके विषयपर अन्यस्मृतियों के वाक्य से अप-वाद शंका खड़ीहोतीहै तिसके दूर करने को इस बचनका आरंभ कियागया सो वह शंकाभी निम्नोक्त कात्यायन और हारीतके वाक्यों द्वारा समुझौ-यथाह कात्यायनः (एवङ्कालमतिक्रांत पितॄणांदाप्यतेऋणम्) अर्थात्-कात्यायनजी ने जिसस्थलपर ले-ख्यपत्रों के लक्षण कथन किये हैं तहाँ उन लक्षणों के पश्चात् यह भी कहाहै कि इस प्रकारसे पत्रोंपर लिखाहुआ ऋण बहुकाल के अतिक्रांत होजानेपर भी पितृओं के सम्बन्धी पुत्रपौत्रादिकोंपर दिलानायोग्यहै-इसमें (पितृओं) इस वचनके निर्देशते और वहुकालके (अतिक्रांत) होने इसकथनसे भी यहबात पाईजातीहै कि उन पुत्रोंको चाहै तितना काल व्यतीतहोजाय किन्तु प्रपौत्रआदि चौथे पाँचवेंसे भी दिलवानाचाहिये इस आशयसे कदाचित् कोई धनी ऋणीके परपोता आदिपर भी दावा करनेलगै हारीतवचनं-यथा (लेख्यंयस्यभवेद्धस्तेलाभंतस्यविनिर्दिशेत्) अर्थात्-जिस उत्तमर्ण के हाथमें ऋणके मध्ये लेख्यपत्रहो वह ऋणीके चतुर्थ पुरुष परपोता आदिसे भी ऋणकालाभ करसक्ताहै-सो इस आशंका की निवृत्तिके अर्थ से यह ६२ का अद्धा योगीश्वरने आदेश किया इसलिये इसको वृथामत समुझौ-और इसी योगीश्वरके वचनानुसार उन दोनों वचनों की अर्थयोजना न्यायसे करिलेनी चाहिये कि लेख्य हाथमें होनेपर त्रैपुरुषअवधि पर्य्यन्त ऋणका लाभ होसक्ताहै ६२ अब इसी अद्धाकी अपेक्षामें निचले अद्धासे अपवाद कहाजायगा ६२॥

आधिस्तुभुज्यतेतावद्यावत्तन्नप्रदीयते ९२॥

अक्ष०—किन्तु आधि तवतक भोगाजाताहै जवतक ऋण नहीं दियाजावै ९२॥

अभि०—यह अपवादरूप उत्तरार्द्ध इसलिये कहाजाता है कि जैसे पूर्वार्द्ध में पत्रा-रूढ़ अवंधक ऋणका देना तीन पुरुषों से आगे निश्चित न हुआ तैसेही यदि सवं-धक ऋणभी पत्रारूढ़ होनेकी दशामें त्रैपुरुष देय समुझाजाय तव चौथेको न देनेके अधिकारसे वंधकभी छुड़ाने का अधिकार नहीं पायाजाता-इसलिये योगीश्वरने यह आज्ञादीहै कि-जवतक चौथी वा पाँचवीं पीढ़ीके अधिकारी से जिस (आधि) का ऋण उद्धार नहीं होता तवतक वह (आधि) धनी भोगिसक्ताहै-सिद्धांत इसका यह कि चौथी

और पाँचवीं आदि पीढ़ियों के अधिकर्त्ता भी प्राचीन आधि के छुड़ाने में ऊर्ध्वोक्त मर्यादों अनुसार वैसेही अधिकारी हैं कि जैसे पूर्वपुरुषोंको अधिकारथा-छूटका स्वरूप इसमें यहीहै कि पहिले अद्धामें दस्तावेज़ी ऋणपर तीन पुरुषोंका नियम जो बाँधा गयाथा वह त्रैपूरुष नियम इस दस्तावेज़ी बंधकऋणसे सम्बन्धित नहींहै (वितर्कः) क्यों जीअब क्यों पिष्टपेषण करतेहो यहबात पहिले आधिके प्रकरणमें कथन होचुकी है कि (फलभोग्योननश्यति) अर्थात् जो फलभोग्य लक्षणसे आधिबंधक धराजाता है उसका नाश कदाचित् नहीं होसक्ताहै किन्तु सभी पीढ़ियों को छुड़ाने में अधिकार है तो फिर यहाँपर चौथी पाँचवीं आदि कहनेसे क्या फल सिद्धि (सुनो) सत्यहै यह बातपर तो भी इस्से फलसिद्धि यह कि यदि यहाँपर अपवाद नहीं कहाजाता तो वह ५९ के श्लोक वाली सामान्य मर्यादा भी त्रैपूरुष विषयपर सम्बन्धित होजाती–क्योंकि (फलभोग्योननश्यति) यह मर्य्यादा सामान्य वाक्यसे कही है और त्रैपूरुष विषयकी मर्य्यादा जो है सो बिशेष वाक्यहै इसहेतु वहसामान्य पर प्रबल होजाता-तथाहि(सामान्यशास्त्रतोनूनंविशेषोबलवान्भवेत्) अर्थात्-यहसर्वत्रनियमहोताहै कि सामान्य वचनकेऊपर विशेषवचन बलवान्होताहै इसप्रकारसे यह मर्यादा सर्वथा अनवद्य है कोई किंतु इसमें नहींलगसक्ता ९२ इसबानबेके श्लोकवाले दोनोंअद्धा एकप्रसंगसे आवश्यक जानिकर बीचमेंकहेगये सो यह प्रसंगबीचका पूराहुआ अब नीचेकेश्लोकमें फिर उसी प्रकृतवर्णनका चर्चाहोगा जैसा लेख्यपत्रोंका होरहाथा–अर्थात्-यहबात नीचेकहेंगे कि यदि लिखाहुआ पत्र किसीहेतुसे निकम्माहोजाय तो दूसरा कियाजावै ९२॥

देशांतरस्थेदुर्लेख्येनष्टोन्मृष्टेहृतेतथा। भिन्नेदग्धेऽथवाछिन्नेलेख्यमन्यत्तुकारयेत् ९३॥

मक्ष०–लेख्यदेशांतरस्थहो या दुर्लेख्यहो नष्टहो उन्मृष्टहो हृतहोजाय भिन्नहोय दग्धहोय छिन्नहोय तो अन्यलेख्य करवावे ९३॥

भभि०–कोई लेख्यपत्र जो अभी लिखागया या पुरानाहो यदि किसीकारणसेऐसा होजाय जिस्से व्यवहारकीसिद्धिनहोसके तो दूसरा उसका प्रतिपत्र लिखवानाचाहिये इसमें लेख्यपत्रकेस्वामीको अधिकारहै और व्यवहारकी सिद्धि उस्से इतने कारणों से नहींहोसक्तीहै कि वह दस्तावेज़ किसी दूसरे देशमें उपस्थितहो जहाँमे आसकना उसका दुर्घटहो-या (दुर्लेख्य) लिखागयाहो अर्थात् (दुष्ट) नाम संदेहमय अक्षर यद्वा शब्द जिसमें लिखेगयेहों जो अन्यथापढ़ेजातेहों या बाँचनेमें न आतेहों-या–(नष्ट) होजानेकीदशामें अर्थात् नष्टहोना उसे कहते हैं जो अतिशय प्राचीनहोनेके हेतुसे कालवशहोकर जीर्णहोजाय किंतुगलिजाय-या-(उन्मृष्ट) अर्थात् उन्मृष्टहोना उसे कहेंगे कि यदि स्याही उसकीउड़गई वा चटगईहो वा मलीगईहो किंतु किसी

प्रकारसे दुर्बलहोगईहो-या-(हृत) होजाने अर्थात् चोरों आदिसे हरीजानेकी दशा में-या-(भिन्न) होजाने किंतु बीचसे दो फाड़होजानेकीदशामें-या-(दग्ध) होने अर्थात् अग्निसे जलिजानेकीदशामें-या-(छिन्न) होने अर्थात् कटिजाने फटिजानेकी दशामें उसपत्रकी और प्रतिलिखवानीचाहिये यह अधिकार पत्रके स्वामी पर समाश्रित है परकेवल स्वामीही नहीं लिखासक्ता किन्तु अर्थी प्रत्यर्थी दोनों की अनुमतिहोने की दशामें संसिद्धिहोसक्तीहै-यदि कदाचित् उनदोनोंके परस्पर विमतिहो अनुमति न हो तो अधिकोक्तिके अनुसार व्यवस्था देखीचाहिये ९३ ॥

अधि०—दोनोंकेपरस्पर जब अनुमतिनहो और इसीदशामें अर्थीने प्रत्यर्थी पर अभियोग लगायाहो जिसमें उसीलेख्यपत्रका प्रमाणदेना आवश्यकहै जो पत्रकिसी देशांतरमें उपस्थितहो तब उसपत्रकोलाकर प्रवेशकरनेकी अपेक्षासे मार्गकेअंतर अनुसार अर्थीको कालअवधि दीजावै-औरजो-दस्तावेज़ किसीऐसे दुर्गदेशमें उपस्थितहो जिसका लासकना सत्तासेबाहरहो या निपटखोईगईहो तो इसदशामें उन्हीं साक्षियों से मुक़द्दमहका निर्णय करिलेनाचाहिये जो उसपत्रकी आयुपर निवेशितहुये थे यद्वाउनकेभी अभावमें वे साक्षीलियेजावैं जिन्होंने उसदस्तावेज़को देखाहो अर्थात मुक़द्दमहका प्रमाण और फ़ैसला साक्षियोंसे भी वैसाही यथार्थ समुझाजायगा कि जैसा असल दस्तावेज़ से होसक्ताथा-यथाहनारदः (लेख्ये देशांतरन्यस्तेशीर्णेदुर्लिखितेहृते । सतस्तत्कालकरणमसतोद्रष्टृदर्शनम्) अर्थात्-नारदने यह कहाहै कि जब लेख्य किसी द्वितीयदेशमें धराहो या फटजाने आदिसे बिगड़ाहो या बुरा लिखागयाहो या चोरी आदिसे खोयागयाहो और मुक़द्दमहमें ज़रूरत उसकी आनिपरै तब होतेहुये लेआनेकी अवधिकरीजाय और न होनेमें उसपत्रके द्रष्टालोगों को लाकर उपस्थितकरै तिनके इज़हारलेकर उस विवादका फ़ैसलहोनायोग्यहै-इस वचनकायहभावनहींहै किजोसाक्षी दस्तावेज़की आयुपरनिवेशितहोनेसे लिखितगवाहकहलातेहैं उन्हींका इज़हारलियाजाय-किंतु-यहसिद्धांतहै कि मरजानेआदिकारणोंसे वे लिखित गवाह यदि उपस्थित न हों अथवा दस्तावेज़ प्रत्यर्थीकी स्वहस्तलिखितहोनेकेहेतुसे लिखितगवाह निपटहोंहींनहीं तो वेभीसाक्षी उन्हींकेसमानसमुझेजाकरस्वीकारकिये जायँ जिन्होंनेपहले कभी उसलेख्यपत्रकोदेखाहो-जबकदाचित्-ऐसेभी साक्षी निपट न हों तब उस व्यवहारका निर्णय दिव्यप्रमाणोंसे करनाचाहिये-तथाच(अलेख्य साक्षिकेदैवींव्यवहारेविनिर्दिशेत)अर्थात्-(अलेख्यसाक्षिक) व्यवहार जिसमें कोईलेख्य और साक्षीभी प्रमाण देनेवाले नहों उसमेंराजादैवी क्रियाका निर्देश करै औरउसीके अनुसार विवादफ़ैसल करिदेवै-यहीव्यवस्था जो अधिकोक्तिके प्रारंभसे यहांताईलिखीगई सोदोनों दशापर सम्बन्धितहै अर्थात् यदि साधारण किसीअन्य व्यवहार की

प्रमाणतामें खोईहुई दस्तावेज़ की ज़रूरत हो तौ भी यहप्रकार साक्षियों आदि से होसक्ताहै जैसाऊपरकहागया-और उसदशामेंभी होताहै कि यदि खोईहुई दस्तावेज़ को दुसराकर बनाना अर्थीचाहै और प्रत्यर्थी उसकी सिद्धिमें विमत होकर पासनहीं आवै तब अर्थीठेठ इसीहेतुसे अभियोग लगावै कि उस प्रत्यर्थीसे लिखवादीजावै- यह व्यवस्था यद्यपि (जानपदलेख्य) नाम घरूदस्तावेज़ों के अनुसार बर्णनकी गई तथापि यहीमर्यादा राजकीय पत्रों अर्थात् सरकारी दस्तावेज़ों से भी संबंधित है- आर विशेषता उसमेंइतनीहै कि साधारण सब दशाओंमें राजकीय लेख्यवहकहाताहै जिसके ऊपरउसकी सचावट और प्रमाणकेनिमित्तसे राजाकेनिज हस्ताक्षरऔरमुहर कीगईहो चाहैकैसाही कुछकागदहो-यथा (राज्ञस्स्वहस्तसंयुक्तं स्वमुद्राचिह्नितन्तथा। राजकीयंस्मृतंलेख्यं सर्वेष्वर्थेषुसाक्षिमत्) अर्थात्-जोकोईपत्रराजाके निजहस्ताक्षरों सेसंयुक्तहो या राजमुद्रासे चिह्नित कियागयाहो अथवा दोनों भाँतिसे सुलक्षितहो सो वहपत्र राजकीय लेख्यकहलाताहै और सभीअर्थ प्रयोजनोंमें साक्षीमानहोता है अभिप्रायइसकायह कि ठेठराजदत्तपत्रोंके सिवायजोकोई दस्तावेज़ घरूलिखावटसेहो वहभी राजाकेहस्ताक्षरों तथामुहरकेहोनेसे राजकीयलेख्यमें गिनती और विशेष प्रामाण्यहोजातीहै(दृष्टान्त)जैसे किसीअर्थीने प्रत्यर्थीसे ऋणपत्र लिखवाकर सरकारमें रजिष्टरी उसकीकरवाई तो इसहेतुसे राजाअथवा प्राड्विवाकहीके हस्ताक्षर और सरकारीमुद्राउसपर चिह्नित होआई तो यहऋणपत्रभी सरकारी दस्तावेज़ोंमें गिनती होगया वरनअन्य अभियोगोंमेंभी सम्बन्धपायकर अधिकप्रमाणताकेयोग्यहुआ -ऐसेही वृद्धवासिष्ठग्रन्थमें एक और प्रकारकी सरकारीदस्तावेज़केलक्षणकहे औरयथार्थसे जयपत्र उसकानाम है-तथाह(यथोपन्यस्तसाध्यार्थसंयुक्तंसोत्तरक्रियम्। सावधारणकं चैवजयपत्रकमिष्यते॥प्राड्विवाकादिहस्तांकंमुद्रितंराजमुद्रया।सिद्धेऽर्थेवादिनेदद्याज्जयिनेजयपत्रकम्)अर्थात्-जिस राजकीय लेख्यमें अर्थी का निवेदन कियाहुआ वही अर्थ जिसकोवह प्रमाणों से साधन करवायाचाहताथा यथाक्रम से सर्वलक्षण संपन्न लिखाजाकर उसकी उत्तरक्रियाके भी लक्षण अर्थात् जैसाउत्तर प्रत्यर्थीने जवावदावे में लिखायाहो सोभी उसमें संक्षेप करके लिखाजावे तिस पीछे उसका (अवधारण) अर्थात् न्याय के अनुसार शुभतर्कोंसे खंडनमंडनपूर्वक प्रमाणीभूत और निश्चयात्मक अंत्यनिर्णय लिखाजावै सो वहलेख्य (जयपत्रक) नाम कहाता है इसीको यावन भाषामें (तजवीज़अखीरभी) कहते हैं-राजाको यह उचित है कि अर्थी का अर्थ सिद्धनाम सच्चा निश्चित होजानेपर यही (जयपत्रक) नामका लेख्य यथोक्त विधिसे तैयार करिके और प्राड्विवाक आदि सभासदों के हस्ताक्षरों तथा राजमुद्रा से भी मुद्रितकरवाकर जीतेहुये वादी को देदेवे-इसी निमित्त से राजा को यह उचित

है कि इस जयपत्रक नाम अन्त्य निर्णय को संसिद्ध करिकै पहिले प्राड्विवाक आदि सभासदों को समर्पितकरै कि जिसमें वे अपनासम्मत भी हस्ताक्षरों से निवेशित करैं इसरीतिसे कि (हमअमुक-पुत्रअमुकपिता-हमारीदृष्टिसे यह अन्त्यनिर्णययथा योग्यहै) यथाहमनुः (सभासदश्चयेतत्र स्मृतिशास्त्रविदःस्थिताः। यथालेख्यविधौ तद्वत्स्वहस्तंदद्युरेवते) अर्थात्-जोजोसभासद स्मृतियोंके जाननेवाले वहांउपस्थितहों वेभी अपने हस्ताक्षर उसके अनुसारकरैं कि जैसीमर्यादें लेख्यविधिमें नियतहों-क्यों कि जबतक सभासदोंके परस्पर अनुमतिका ब्यतिरेक रहता है तबतकव्यवहारों में काँटाशेषरहताहै -यथाहनारदः (यत्रसभ्योजनःसर्वःसाध्वेतदितिमन्यते। सनिःशल्यो विवादः स्यात्सशल्यस्त्वन्यथाभवेत्) अर्थात्-जिसबिवादके अन्त्यनिर्णय की दशामें सबही सभ्यजन एकसूतसे ऐसाकहनेलगैं कि यह निर्णय बहुत अच्छा किन्तुजैसा योग्यथा सोईहुआ सो वहनिर्णय निःशल्यनाम अकण्टक समुझा जाताहै यद्वा ऐ-सी अनुमतिसब सभ्योंकी न पाईजाय किंतु कोई उसको अच्छामाने कोई बुरा तो वह निर्णय (सशल्य) नाम सकंटक रहाकरताहै-सोभी-इस अंत्यनिर्णयकी जयपत्र संज्ञा होना केवल उसदशासे संबंध रखतीहै कि यदि सप्तम परिच्छेदके आशय से उस्से पहिले परिच्छेदोंके अनुसार चतुष्पाद व्यवहार की रीतिसे मुक़द्दमहका साधन चारोंपादकी प्रक्रिया साथ हुआहो और अर्थीने विवाद जीताहो-तथाहि (साधये त्साध्यमर्थंयच्चतुष्पादान्वितंचयत्। राजमुद्रांकितंचैवजयपत्रकमिष्यते) अर्थात्-जो लेख्य चारोंपाद की प्रक्रियासे समन्वित हुआ (साध्यअर्थ) की सिद्धि प्रकट करताहो और सरकारी मुहरसेभी अंकितहो तिसका नाम जयपत्र कहाजाताहै (मुहरसे-भी-इस भी शब्द के आशयसे) यह सिद्धांत पायाजाताहै कि जयपत्र नामक अंत्य निर्णय यद्यपि लिखागयाहो पर जबतक राजमुद्रा उस पर नहीं की जाय तबतक प्र-माणतामें नहीं आसक्ता-और-इसीहेतुसे यह सिद्धांत भी पायागया कि राजमुद्रा सब से पीछे होनीचाहिये अर्थात् जबतक ऊर्ध्वोक्त सभ्योंके हस्ताक्षर सबकी अनुमतिसे न होजायँ तबतक राजमुद्राभी न होनीचाहिये-यहाँपर यह संदेह न करनाचाहिये कि-ऊपर इसी अधिकोक्तिमें वृद्धवासिष्ठके वचनोंसे जिस जयपत्रके लक्षणकहेगये वह अत्रोक्त जयपत्रकी अपेक्षासे कुछ और भाँतिकाहोगा-क्योंकि-इसमें और उसमें कुछ दूसरा भेद नहीं -वरन-यह और वह एकहीबातहै परंतु केवल यह अंतरहै कि वहाँपर सर्व साधारण अंत्यनिर्णयमात्रकी मर्यादाप्रकटकरीगईथी कि इसरीतिसे लि-खनाचाहिये-और-यहाँपर केवल जयपत्रकी विशेषता चारोंपादके लक्षणोंसे दर्शाईगई कि उस पूर्वोक्त अंत्यनिर्णयकी जयपत्र संज्ञा इन्हीं लक्षणोंसे होसक्तीहै क्योंकि अंत्य निर्णय कईभाँतिकेहोतेहैं और सबकानाम जयपत्रक नहींहोसक्ता-सिद्धांत इसका यह

कि जब अर्थीको निम्नोक्त पाँचप्रकारोंमेंसे कोईसा हीनतादोषलगताहै तब अर्थी निज आप हीनकहलाकर अपनेअर्थसे भी हीनहोजाता अर्थात् मुक़द्दमा हारजाताहै तब उस दशा में जो कुछ अंत्यनिर्णय लिखाजाता तिसका नाम जयपत्रक नहीं कह सक्ते किंतु उसकानाम (हीनपत्रक) होता है-पाँचों हीनलक्षणों को दर्शाते हैं-यथा (अन्यवादीक्रियाद्वेषी नोपस्थातानिरुत्तरः । आहूतव्यपलायीच हीनःपंचविधः स्मृतः) अर्थात् (अन्यवादी) वह कि जिस्से जो बातबूझीगई तिसकाउत्तर छोड़कर और कुछकहनेलगै या कहेपीछे बातबदलै (क्रियाद्वेषी) जो कार्यकर्ता सभ्योंपर वृथा दोषारोपणकरै (नोपस्थाता)जो समयपर उपस्थित न हो (निरुत्तर) जो उत्तरनहींदेवै या किसीसुतर्कसे निरुत्तरहोजाय-और (आहूतव्यपलायी)जो बुलानेपरभी नहींआवै छिप-जाय या भगजाय-यहपाँचविध के हीनबादीकहलाते हैं इनकेलियेजयपत्र के स्थान हीनपत्र लिखाजाताहै हीनपत्रकी नकल यद्यपि अर्थी प्रत्यर्थी दोनोंकोही दियेजाने का सिद्धांत पायाजाताहै पर विशेषतर प्रत्यर्थीकी योग्यता इसमेंसंभवहै-क्योंकि-यह हीनपत्र केवलइसलिये लिखाजाताहै कि उसकेद्वारा राजाउसपर दण्डलेवै औरकभी कालांतरमें यदि फिरभी उसीअर्थकी नालिशअर्थी दायरकरै तौ उससमयभी उस हीनपत्रकेद्वारा उसपर दण्डकियाजावै-और-जयपत्रलिखाजानेसे यह प्रयोजन है कि जब कदाचित् किसी अभियोगमें उसी अर्थके संबन्धसे प्रत्यर्थी प्राङ्न्याय नामक उत्तरदेवै तब उसकीसिद्धि में कामआवै ९३ अब निचलेश्लोक में संदिग्धपत्रोंका शोधनप्रकार कहाजायगा ९३॥

संदिग्धलेख्यशुद्धिःस्यात्स्वहस्तलिखितादिभिः। युक्तिप्राप्तिक्रियाचिह्नसंबंधागमहेतुभिः ९४॥

अक्ष०-संदिग्धपत्रकी शुद्धि निजहस्त लिखितादिकोंसेहोवै १ या युक्तिप्राप्तिसे २ क्रियासे ३ चिह्नसे ४ संबंधसे ५ आगमसे ६ इनहेतुओंसेभी ९४॥

अभि०-जब किसीदस्तावेज़ की अपेक्षामें यह संदेह खड़ाहो कि यह सच्चीहै या झूँठीहै तब संदेहकेहोनेसे संदिग्धकहलाती और इसदशामेंसच्चे या झूठेपनकीशुद्धि उसके लिखनेवालोंके हस्ताक्षर आदिप्रकारोंसे होसक्तीहै अर्थात् जिसका लिखा वह क़ागदहै जिसपर संदेहखड़ा कियागया उसीमनुष्य के हाथकी कोई और दस्तावेज़ लेकर दोनोंका मिलानकरना चाहिये यदि मिलानकरनेकीविवेचनासे दोनोंपत्रोंकाअ क्षरलेख्यसदृशपायाजायतौवहसंदिग्धपत्रभी उसीकेहाथकीलिखावटसमुझीजायऔर इसीसेसच्चाया झूँठापनभी निश्चितहोसक्ताहै-संदेहदूरहोनेका जैसायहएकउपाय कहा गया तैसेही (आदि) शब्दके आशयसे इसीप्रकारके कोई और उपाय भी करनेचा-हिये अर्थात् उसी पत्रके आयुलिखितसाक्षी और लेखकभी कि जिनके हस्ताक्षर उस पर लिखेहों उनकेभी हाथोंके द्वितीयलेखलेकर उसीसे मिलान कियेजावें १ और

सिद्धांत इसका यह कि जहाँतक उसके सच्चे या भूँठेपनका संदेह दूरहोसकै तहांतक उपाय जो होसकने संभवहों सो करनेचाहिये इसीलिये अब और उपाय भी दर्शाते हैं कि (युक्तिप्राप्ति) से भी निर्णय कर्तव्यहै अर्थात् (युक्ति) नाम अनुमान यद्वा(युक्ति) नाम न्याय तिसते अनुमानपूर्वक बुद्धिसे आकर्षणकरिके (प्राप्ति) नाम पहुँच देखी चाहिये कि निज अपेक्षित देशकाल पुरुष इनका संबंध उस वस्तुपर पहुँचताहै या नहीं अर्थात्(वस्तु)कहिये वही द्रव्य जिसपर विवाद होरहाहो सो किसदेश वा स्थान में है और किसमें उसका होना योग्य था तथैव (काल) अर्थात् अमुकभूतकाल या वर्त्तमानकाल में वह द्रव्य किसपुरुषसे संबंध रखताथा या अब रखताहै और किसकिस पुरुषसे संबंध होना योग्य था इत्यादि अनुमानोंको (युक्तिप्राप्ति) कहतेहैं- इस युक्तिप्राप्तिसे भी लेख्यपत्र का संदेहदूरहोसक्ताहै २-तथैव (क्रिया)से भी अर्थात् उसपत्रके आयु लिखित गवाहोंकी प्रमाणतामध्ये क्रियासाधनकरीजाय किंतु इज़हार उनकेलियेजायँ ३-(चिह्न) से भी अर्थात् (श्री) आदि जो कोई चिह्न उसकागद पर बनरहाहो उसके हाथके अन्य क़ागदपरभी देखाचाहिये कि तद्रूपहै या नहीं क्योंकि ऐसे चिह्नोंका प्रकार या हथेवट अभ्यासिक बहुधा अपनी अपनी जुदी हुआकर- तीहै ४ (संबंध) सेभी अर्थात् यह देखाचाहिये कि अर्थी प्रत्यर्थी दोनोंके परस्पर कभी पहिलेभी विश्वासपूर्वक ऐसादेने लेनेका संबंध कुछ हुआथा या नहीं ५ (आगम) सेभी अर्थात् ऊर्ध्वोक्त युक्तिप्राप्तिके अनुमान और न्यायसे यह भी देखाचाहिये कि वह जायदाद जिसके झगड़ामध्ये लेख्यपत्रमें संदेह खड़ाहुआ दायभाग आदि प्र- कारों यद्वा और किसी न्यायसे उनमनुष्योंको पानेकी योग्यता पाईजातीहै या नहीं ६-इसके सिवाय-यह देखाचाहिये कि सभ्यजनोंके भी निकट उसपत्र का सच्चा या भूँठापन कैसा निश्चितहोताहै अर्थात् उनसेभी अनुमति लेनी योग्यहै-इनऊर्ध्वोक्त सर्वप्रकारों मेंसे जोजो हेतु प्रत्यक्षसंभवहों तिनकी तहक़ीक़ात करनीचाहिये इस प्र- कार की तहक़ीक़ात से उसपत्रके सच्चे या भूँठेपनका संदेह दूरहोसक्ताहै ९४ ॥

भधि०—जब कदाचित् किसीदस्तावेज़का सन्देह ऊर्ध्वोक्तरीतोंसे निर्णीतनहोसकै तब केवल साक्षियोंसेही निर्णय कर्तव्य है-यथाहकात्यायनः-(दूषितेपत्रकेवादीतदाऽऽरूढांस्तान्निर्दिशेत्) अर्थात्-जब किसीपत्रकी अपेक्षामें कुछआग्रह खड़ा कियाजाय तब अर्थीको यहउचित है कि उसके लिखितगवाहोंको प्रवेशकरै-परन्तु-यहवचनभी उसदशासे सम्बन्धरखताहै कियदि साक्षियों का उपस्थित होसकनासंभवहो-अर्थात् साक्षियों की असम्भवदशामें (हारीत)कावचन अंगीकारहै-यथाहहारीतः(नमयैतत्कृतं पत्रंकूटमेतेनकारितम्। अधरीकृत्यतत्पत्रमर्थादिव्येननिर्णयः) अर्थात्-यदिकोई पक्षी यह आग्रहकरै कि यह कागदमैंने नहींलिखा या औरसेभी नहींलिखाया वरन वह

भीकहे कि यह कागज़ अमुकमनुष्यने मेरेनामसे कूटबनवायाहै (तब) उसपत्रको लेकर झगड़ेका निपटारा दिव्यप्रमाणोंसे करणीयहै ६४ इनप्रकारोंसे जब कोईभाँतिपत्रका शोधनहोजाय औरउसऋणकादेनाउसपर सच्चाठहरै और वहऋणी सबऋणदेनेमें असमर्थहो तब क्या करनाचाहिये यहबात नीचेकहेंगे ६४॥

लेख्यस्यपृष्ठेऽभिलिखेद्दत्त्वादत्त्वार्णिकोधनम्। धनीवोपगतंदद्यात्स्वहस्तपरिचिह्नितम् ९५॥

भक्ष०—ऋणी धनदेदेकर लेख्यकेही पृष्ठपरअभिलेखन करै धनी भी लिखै या निजहस्त परिचिह्नित उपगत देवै ९५॥

अभि०—यदिऋणीइकट्ठा ऋणउद्धार न करसक्ताहो तब अपनी शक्तिकेअनुसार जो कुछ बारम्बारदेताहै सोदेदेकर मुख्यदस्तावेज़की पीठिपर अभिलेखनकरताहै (भभि) अर्थात् बारम्बार जवजब देवै तब सर्वप्रकारसे यह लिखदिया करै कि अमुक दिवस मैंने इतनाद्रव्यदिया औरधनीभीनिजअपनेहाथसे (उपगत)नाम वसूलउसपर देदेवै अर्थात्लिखदेवै कि इतनाधन आजवसूलहुआ अथवा दूसराअर्थयहभीहै कि धनीअपने हाथसे परिचिह्नित हस्ताक्षरसंयुक्त (उपगत) नाम रसीद लिखदेवै ९५॥

अधि०—सिद्धांत इसका यह कि यदिकोई ऐसाप्रश्नकरै कि धनके प्राप्त होनेकी लिखावटकिसरीतिसेहोती है तौउत्तरइसकायही है कि धनी रुपयालेकर तत्काल उसके मुख्यऋणपत्रकीपीठिपर अपने हाथसे ऋणीके सन्मुख यहलिखदेवै कि आज इतना द्रव्यजमाहुआ और उसीसाथ उसकाकोई अन्यलक्षणभीलिखदेवै (दृष्टान्त)जैसे अमुकऋणीकेजमाहुये अमुकपुरुषकी दिवाईद्वारा या नाजद्वारा या निजउसके हाथसेही रोक इत्यादि-अथवा-यदि असली पत्रकी पीठिपर लिखनेकाअवसर नहींपायाजाय तव अन्य कोरेकागज़पर अपने हस्ताक्षरोंसे परिचिह्नित और संख्याआदि आवश्यक लक्षणसम्पन्न रसीदलिखकर उसको देदेवै-इसीप्रकार अन्य साधारण सबदशाओं पर धनकी प्राप्तिमें कि जब असली ऋणपत्रादिकों का अभावहो तहाँभी यह रसीद कोरेकागज़पर लिखदीजातीहै ९५॥

अब यहवातनीचेकहेंगे कि जब साराऋणउद्धारहोजाय तव असली ऋणपत्रकी अपेक्षामें क्या कर्तव्यहै ९५॥

दत्त्वर्णंपाटयेल्लेख्यंशुद्ध्यैवाऽन्यत्तुकारयेत् ९६॥ षट्नवतितमस्यपूर्वार्द्धोऽयम्॥

भक्ष०—ऋणदेकर लेख्यफाड़डालै या शुद्धिकेलिये औरही करवावै ९६॥

भभि०—जबकि सबऋणएकबारमें या कई बारमें उद्धारहोचुकै तव ऋणीको यह उचितहै कि अपनेधनीसे असलीऋणपत्रलेकरफाड़डालै कदाचित् ऋणपत्र किसी ऐसे दुर्गदेशमेंअवस्थितहो जहाँसे तत्कालआसकना दुर्घटहो यद्वा निपट खोयागयाहो तौ अपने ऋणित्वकी निवृत्तिकेलिये एक और लेख्य जिसको ऋणशुद्धिपत्रनाम

और परिभाषामें उपनामउसका फारखतीभी कहतेहैं लिखवालेवै और उसधनीकोभी यही उचितहै कि ऐसीदशामें तत्कालउसको ऋणशुद्धिलेख्य लिखदेवै और यह कागज़ उसीक्रमसे लिखाजाना उचितहै कि जिसक्रमसे पहिले ऋणपत्र लिखा गयाहो ९६ ॥

अब निचलेअर्द्धमें यहबात कहीजायगी कि यदि ऋणका लेनदेन साक्षियों के सन्मुखहुआहो तौ उद्धारकरतेसमय क्या कर्तव्यहै ९६ ॥

साक्षिमच्चभवेद्यद्दातद्दातव्यंससाक्षिकम् ९६ ॥

अक्ष०-जो ऋणसाक्षीमान्हो सो ससाक्षिक दातव्यहै ९६ ॥

अभि०-ऋणीने जिसऋणकाद्रव्य पहिले लेते समय साक्षियोंके सन्मुखपायाहो किन्तु ऋणपत्र जिसकानहो तौ उद्धार करते समय भी उन्हीं साक्षियों के सन्मुखदेवै और जो ऐसे समयपर वे साक्षी अनुपस्थितहों तौ अन्यसाक्षियों के सन्मुखदेवै जो प्रतिष्ठा आदिगुणों में और संख्या में भी उन्हीं के समान समुझेजातेहों ९६ ॥

इतिलेख्यप्रकरणम् ॥

यहाँतक लिखित १ साक्षी २ भुक्ति ३ ये तीनों भाँतिके लक्षण जो मानुषप्रमाण कहलातेहैं सो सब निरूपणाकियेगये-अब-इसीजगह अवसरजानिकर दिव्यप्रमाणोंका निरूपणकरते हैं और इनसभी साधारणप्रमाणोंका चर्चा पहिले सोरहवें परिच्छेदमें निदर्शनमात्रसेहोचुकाहै ॥

अथ दिव्यप्रमाणापेक्षायां दिव्यमातृकालाक्षणिकः सर्वदिव्यगुणागुण विचारोनामषट्त्रिंशःपरिच्छेदः ३६ ॥

इस छत्तीसवेंपरिच्छेदमें वहव्यवस्थावर्णनहोगी जिस्सेदिव्यप्रमाणोंकी अपेक्षामें दिव्यमातृका रूपलक्षणजानाजाय जिसके विचारकरनेसे सभीदिव्यों और उपदिव्योंकेगुणागुण पायेजायँगे-यहपरिच्छेद बहुतबड़ाहै इसहेतुसे १०१ मूलश्लोकतक पूराहोगा क्योंकि इसमें सभीलक्षण इसविषयके मिलसक्तेहैं ॥

तुलाग्न्यापोविषंकोशोदिव्यानीहविशुद्धये ९७ ॥ सप्तनवतितमस्यपूर्वार्द्धोऽयम् ॥

अक्ष०-विशुद्धिकेलिये इसमें तुला.१ अग्नि,२ आप,३ विष,४ कोश ५ येदिव्यहैं ९७॥

अभि०-किसीसंदिग्धअर्थकी सन्देहनिवृत्तिकेलिये (इह) धर्मशास्त्रमें पाँचवस्तु दिव्य हैं सो देनीचाहिये अर्थात् तराजू १ अग्नि २ जल ३ विष ४ (कोश) नाम पवित्रजलकी पानविधि जिसकालक्षण आगे सबकेसाथकहेंगे ५ तात्पर्य्यइसका यह कि इनपाँच वस्तुओं के प्रकार द्वारा सच्चे झूँठेकी परीक्षाकरनी चाहिये जैसा प्रकारयथाक्रमसे आगे कहाजायगा ९७ ॥

भपि०-(पक्ष) क्योंजी पाँचही दिव्यबतलाते हो किन्तु तंडुल विधि आदि और भी

दिव्य हुआ करते हैं-यथाहपितामहः (धटोऽग्निरुदकंचैवविषंकोशस्तथैवच । डुलाश्चैवदिव्यानिसप्तमस्तप्तमाषकः)अर्थात्- पितामहने कहाहै कि तुला, १ अग्न, २ उदक,३ बिष,४ कोश, ५ तण्डुल ६ ये छःप्रकारके दिव्यहोते हैं और सातवाँ प्तधातु का प्रकारहोताहै इसलिये पाँचही क्योंकर होसक्ते हैं-इस पकड़का उत्तर नीतृतीय पादमें देखो ९७ ॥

महाभियोगेष्वेतानि ९७ ॥ तृतीयपादः

. ऐ०-ऊपरली पकड़ का उत्तर यह कि ये तराजू आदि पाँच दिव्य महाऽभियोगों होते हैं अर्थात् बहुत बड़े अपराधोंकी नकार आदि विपरीततामें इनमें से कोई क प्रकार होनाचाहिये किन्तु छोटे अभियोगों में नहीं इस नियमके निमित्तसे पाँचही ले कहेगये इस्से यह न समुझाचाहिये कि इनपाँचके सिवाय और कोई दिव्यनहीं -और-अत्रोक्त महाभियोगों के महत्त्वकी भी अवधि आगे १०१ मूलश्लोक से हेंगे कि अमुकामुक लक्षण का मुक़द्दमा संगीन कहलाता है उसीमें इनका वर्त्तावा चित है ९७ ॥

मधि०-दूसरी (पकड़) क्योंजी छोटे अभियोगोंमें भी (कोश) नामक दिव्यका प्रचार कियाजाताहै-तथाच (कोशमल्पेऽपिदापयेत्) अर्थात्-यह भी स्मृतियों का वाक्यहै कि (कोश) छोटे भी अपराधोंपर देनाचाहिये (उत्तर) सत्यहै यह बातपर कोशविधि की गणना तुलादिकों के साथमें इस नियमके निमित्तसे नहींहै कि वहभी केवल महाभियोगों मेंही समुझाजाय बरन सिद्धांत इसका यहहै कि उसका आचरण उन अभियोगों मेंभी होनाचाहिये जो (सावष्टंभ) हों अर्थात् जिनकी दशाके अनुसार अर्थी अपने विश्वासपूर्वक उच्चारणकरताहो वे अभियोग सावष्टम्भ कहलातेहैं-अन्यथा-वहकोशविधिका प्रकारकेवल शंकाभियोगोंसे सम्बन्धित कियाजाता अर्थात् अर्थी कीऐसी भाषापर अङ्गीकार उसकाहोताहै जो भाषाउसकी नालिशकी अपेक्षामेंशंकारूपसे उच्चारणहुईहो(शंकाभियोगोंकेलक्षण भी द्वितीय परिच्छेदगत पाँचवीं अधिःकोक्तिमें कहचुकेहैं) इसउत्तरकायथार्थ निश्चयभी इसअग्रोक्त वाक्यसे करिलेनाचाहिये-यथा(अवष्टम्भाभियुक्तानांधटादीनिविनिर्दिशेत्। तण्डुलाश्चैवकोशश्चशंकास्वेव नसंशयः)अर्थात्- अवष्टम्भरूप अभियोगसे अभियुक्तहुये लोगोंकी अपेक्षामेंतुला आदिप्रकारोंका विनिर्देश कियाजाय परन्तुतण्डुलविधि और कोशविधि यहदोनोंप्रकार केवलशंकाभियोगोंमें होसक्ते हैं इसमेंसंशयनहीं-अभिप्रायइसकायह कि जिन मनुष्योंपर विश्वासिक नालिशहुईहो तिनकेमध्ये वहपूर्वोक्त पाँचोंप्रकार होसक्तेहैं उन मेंभी (कोश)गिनतीहोचुकाहै -परन्तु- जिनपर शंकामात्रमें नालिशहुईहो तिनकेमध्ये तण्डुलविधि और कोशविधि केवल दोहीप्रकारहोसक्तेहैं यहव्यवस्था निःसन्देहकि

और परिभाषामें उपनामउसका फारख़तीभी कहतेहैं लिखवालेवै और उसधनीकोभी यही उचितहै कि ऐसीदशामें तत्कालउसको ऋणशुद्धिलेख्य लिखदेवै और यह काग़ज़ उसीक्रमसे लिखाजाना उचितहै कि जिसक्रमसे पहिले ऋणपत्र लिखा गयाहो ९६ ॥

अब निचलेअर्द्धमें यहबात कहीजायगी कि यदि ऋणका लेनदेन साक्षियों के सन्मुखहुआहो तौ उद्धारकरतेसमय क्या कर्तव्यहै ९६ ॥

साक्षिमच्चभवेद्यद्दातद्दातव्यंससाक्षिकम् ९६ ॥

अक्ष०-जो ऋणसाक्षीमान्हो सो ससाक्षिक दातव्यहै ९६ ॥

अभि०-ऋणीने जिसऋणकाद्रव्य पहिले लेते समय साक्षियोंके सन्मुखपायाहो किन्तु ऋणपत्र जिसकानहो तौ उद्धार करते समय भी उन्हीं साक्षियों के सन्मुखदेवै और जो ऐसे समयपर वे साक्षी अनुपस्थितहों तौ अन्यसाक्षियों के सन्मुखदेवै जो प्रतिष्ठा आदिगुणों में और संख्या में भी उन्हीं के समान समुझेजातेहों ९६ ॥

इतिलेख्यप्रकरणम् ॥

यहाँतक लिखित १ साक्षी २ भुक्ति ३ ये तीनों भाँतिके लक्षण जो मानुषप्रमाण कहलातेहैं सो सब निरूपणाकियेगये-अब-इसीजगह अवसरजानिकर दिव्यप्रमाणोंका निरूपणकरते हैं और इनसभी साधारणप्रमाणोंका चर्चा पहिले सोरहवें परिच्छेदमें निदर्शनमात्रसेहोचुकाहै ॥

अथ दिव्यप्रमाणापेक्षायां दिव्यमातृकालाक्षणिकः सर्वदिव्यगुणागुण विचारोनामषट्त्रिंशःपरिच्छेदः ३६ ॥

इस छत्तीसवेंपरिच्छेदमें वहव्यवस्थावर्णनहोगी जिस्सेदिव्यप्रमाणोंकी अपेक्षामें दिव्यमातृका रूपलक्षणजानाजाय जिसके विचारकरनेसे सभीदिव्यों और उपदिव्योंकेगुणागुण पायेजायँगे-यहपरिच्छेद वहुतवड़ाहै इसहेतुसे १०१ मूलश्लोकतक पूराहोगा क्योंकि इसमें सभीलक्षण इसाविषयके मिलसक्तेहैं ॥

तुलाग्न्यापोविषंकोशोदिव्यानीहविशुद्धये ९७ ॥ सप्तनवतितमस्यपूर्वार्द्धोऽयम् ॥

अक्ष०-विशुद्धिकेलिये इसमें तुला,१ अग्नि,२ आप,३ विष,४ कोश५ येदिव्यहैं ९७॥

अभि०-किसीसंदिग्धअर्थकी सन्देहनिवृत्तिकेलिये (इह) धर्मशास्त्रमें पाँचवस्तु दिव्य हैं सो देनीचाहिये अर्थात् तराजू १ अग्नि २ जल ३ विष ४ (कोश) नाम पवित्रजलकी पानविधि जिसकालक्षण आगे सबकेसाथकहेंगे५ तात्पर्य्यइसका यह कि इनपाँच वस्तुओं के प्रकार द्वारा सच्चे झूँठेकी परीक्षाकरनी चाहिये जैसा प्रकारयथाक्रमसे आगे कहाजायगा ९७ ॥

मधि०-(पक्ष)क्योंजी पाँचही दिव्यवतलाते हो किन्तु तंडुल विधि आदि और भी

दिव्य हुआ करते हैं-यथाहपितामहः (धटोऽग्निरुदकंचैवविषंकोशस्तथैवच । डुलाश्चैवदिव्यानिसप्तमस्तप्तमाषकः) अर्थात्- पितामहने कहाहै कि तुला, १ अग्न, २ उदक, ३ विष, ४ कोश, ५ तण्डुल ६ ये छःप्रकारके दिव्यहोते हैं और सातवाँ प्तधातु का प्रकारहोताहै इसलिये पाँचही क्योंकर होसक्ते हैं-इस पकड़का उत्तर नीचे तृतीय पादमें देखो ९७॥

महाभियोगेष्वेतानि ९७॥ तृतीयपादः

ऐ०—ऊपरली पकड़ का उत्तर यह कि ये तराजू आदि पाँच दिव्य महाऽभियोगों होते हैं अर्थात् बहुत बड़े अपराधोंकी नकार आदि विपरीततामें इनमें से कोई क प्रकार होनाचाहिये किन्तु छोटे अभियोगों में नहीं इस नियमके निमित्तसे पाँचही पहले कहेगये इस्से यह न समुझाचाहिये कि इनपाँचके सिवाय और कोई दिव्यनहीं है-और-अत्रोक्त महाभियोगों के महत्त्वकी भी अवधि आगे १०१ मूलश्लोक से कहेंगे कि अमुकामुक लक्षण का मुक़द्दमा संगीन कहलाता है उसीमें इनका वर्त्तावा उचित है ९७॥

अधि०—दूसरी (पकड़) क्योंजी छोटे अभियोगोंमें भी (कोश) नामक दिव्यका प्रचार कियाजाताहै-तथाच (कोशमल्पेऽपिदापयेत्) अर्थात्-यह भी स्मृतियों का वाक्यहै कि (कोश) छोटे भी अपराधोंपर देनाचाहिये (उत्तर) सत्यहै यह बातपर कोशविधि की गणना तुलादिकों के साथमें इस नियमके निमित्तसे नहींहै कि वहभी केवल महाभियोगों मेंही समुझाजाय बरन सिद्धांत इसका यहहै कि उसका आचरण उन अभियोगों मेंभी होनाचाहिये जो (सावष्टंभ) हों अर्थात् जिनकी दशाके अनुसार अर्थी अपने विश्वासपूर्वक उच्चारणकरताहो वे अभियोग सावष्टम्भ कहलातेहैं-अन्यथा-वहकोशविधिका प्रकारकेवल शंकाभियोगोंसे सम्बन्धित कियाजाता अर्थात् अर्थी कीऐसी भाषापर अङ्गीकार उसकाहोताहै जो भाषाउसकी नालिशकी अपेक्षामेंशंकारूपसे उच्चारणहुईहो(शंकाभियोगोंकेलक्षण भी द्वितीय परिच्छेदगत पाँचवीं अधिकोक्तिमें कहचुकेहैं) इसउत्तरकायथार्थ निश्चयभी इसअग्रोक्त वाक्यसे करिलेनाचाहिये-यथा(अवष्टम्भाभियुक्तानांधटादीनिविनिर्दिशेत्। तण्डुलाश्चैवकोशश्चशंकास्वेव नसंशयः)अर्थात्- अवष्टम्भरूप अभियोगसे अभियुक्तहुये लोगोंकी अपेक्षामेंतुला आदिप्रकारोंका विनिर्देश कियाजाय परन्तुतण्डुलविधि और कोशविधि यहदोनोंप्रकार केवलशंकाभियोगोंमें होसक्ते हैं इसमेंसंशयनहीं—अभिप्रायइसकायह कि जिन मनुष्योंपर विश्वासिक नालिशहुईहो तिनकेमध्ये वहपूर्वोक्त पाँचोंप्रकार होसक्तेहैं उन मेंभी (कोश)गिनतीहोचुकाहै -परन्तु- जिनपर शंकामात्रमें नालिशहुईहो तिनकेमध्ये तण्डुलविधि और कोशविधि केवल दोहीप्रकारहोसक्तेहैं यहव्यवस्था निःसन्देहिक

जानो ९७॥ जो कि इस मर्यादासे (महाभियोगों) की अपेक्षामें शंका या विश्वासिक भेदकीकुछ विशेषता नहीं पाई गई इसलिये इसमर्यादाका एकअपवादभी नीचे चतुर्थ पादसे कहतेहैं ९७॥

शीर्षकस्थेऽभियोक्तरि ९७॥ चतुर्थपादः

ऐ०—अभियोक्ता के शीर्षकस्थहोने में यहमर्यादा समुझीचाहिये जो ऊपरतृतीय पादसेकहीगई -अर्थात् मुद्दईके शीर्षकस्थनहोनेमें नहोसकेगी यहअपवादका स्वरूप इसमें कहागया और स्पष्टरूपसे भावार्थ इसकायहहै कि जोमुद्दई महाभियोगोंकीदशामेंशीर्षकस्थहोकर मुद्दआअलेहसे ऊर्ध्वोक्तदिव्य प्रमाणकालेनाचाहै तौ मुद्दआअलेहसेऊर्ध्वोक्त तुलाआदि कोईसादिव्यप्रमाणलियाजासक्ताहै अन्यथानहीं-और-मुद्दईकाशीर्षकस्थहोना यहबातहै कि (शीर्षक) नामाशिर अर्थात् व्यवहारका चतुर्थपाद चौथादर्जा जिसकेविचारसे जयपराजय हुआकरतीहै और उसी जयपराजयके अनुसार उसमेंदण्डभी निरूपण हुआकरताहै तिसदण्डको स्वीकारकरै तौ शीर्षकस्थ कहलावे -सिद्धान्तइसकायहकि अर्थीइसप्रकारसे स्वीकारकरै कि यदिमेरा प्रत्यर्थी दिव्यप्रमाणदेनेपर शुद्धहोकरसच्चानिकलै तौमैंहारूँऔरव्यवहारके चौथेदर्जाकीमर्यादों अनुसार जो कुछदण्डमेरे निमित्तमें ठहरैगा सो भरोंगा इसलिये मेरेप्रत्यर्थी से दिव्यप्रमाणका आचरण करायाजाय तौ होसक्ताहै अन्यथानहीं-व्यवहारका चौथा पादवहीहै कि जिसकीमर्यादें पहिलेछठे परिच्छेदमें होचुकीं बलिकतीसरे पादकीमर्यादें भी उसीचौथेकेसाथ वर्णनहुईथीं ९७ जबकि उसचौथे पादकीमर्यादोंसे इसजगह अपेक्षाठहरी और उन्हींमर्यादोंमध्ये छठेपरिच्छेदगत उत्तरार्द्ध अष्टमश्लोकसे यह मर्यादा नियतहोचुकीहै कि अर्थी अपने प्रतिज्ञात अर्थकासाधन शीघ्रही लिखवावै सोयहमर्यादा वहांपर केवलभावप्रतिज्ञा करनेवाले वादीकेही निमित्तमें दर्शाईगई कि वहअपनी क्रियासाधन करवावे किंतुप्रतिवादीके निमित्तमेंनहीं-इसलियेउसमर्यादाकाकुछ अपवाद भी इसीस्थलके निमित्तसे कहतेहैं सोदेखो निचलेश्लोकमें ९७॥

रुच्यावाऽन्यतरःकुर्यादितरोवर्त्तयेच्छिरः ९८॥ अष्टनवतितमस्यपूर्वार्द्धोऽयम्॥

मक्ष०—कोईएक निजरुचिसे दिव्यप्रमाणकरै दूसरापक्षी (शिरः)नाम अन्त्यविचार लाक्षणिक दण्डदेना स्वीकारकरै ९८॥

अभि०—वादीप्रतिवादी दोनोंकी सम्मतिमें कोईएकदोमेंसे अपनीरुचिकेअनुसार वादी या प्रतिवादीही दिव्यप्रमाणका आचरण करसक्ताहै और दूसरा उसकाप्रतिपक्षी इसबातमें स्वाधीनहै कि इसदिव्यक्रियासेही अपनी हारिजीति के अनुसारदण्ड चाहै शारीरकअथवा धनदण्डदेनाअङ्गीकारकरै कि यदिइसके दिव्यप्रमाणसेमैंहारूँतौ इतनादण्ड इसप्रकारसेभरूँ-और-इसीआशयसे उसदिव्यप्रमाणके दाताकोभी स्वा-

धीनताहै कि वहअपनीहारिकी प्रतिज्ञासे अन्त्यनिर्णयरूपदण्डचाहै शारीरक याधन दण्डदेनास्वीकारकरै-किंतु आशयइसकायह कि यहदिव्यप्रमाण मानुषप्रमाणों की भाँतिकेवलभावकी प्रमाणताहीनहीं किन्तुसाध्यवस्तुकाभाव या अभावभीविना विवेक सिद्धकरसक्ताहै इसलिये मुद्दई या मुद्दआअलेह परस्परदोनों अपनीरुचिके अनुसार स्वाधीनहैं कि मिथ्याउत्तरकी दशामें या कारणोत्तरकी दशामें अथवाकभीपूर्व न्यायोत्तरकीभी दशामें आवश्यकताजानकर किसीएकयोग्य दिव्यकाआचरणकरैं और उसकेसाथ पहिलेही जयपराजय मध्येदण्ड कीप्रतिज्ञारोपि देवें (यहांपर(शिरो)नाम दण्डकीप्रतिज्ञा कोहीऊपरकहचुकेहैं) और अपवाद नामछूटका स्वरूप इसमेंयहीहै कि जैसेछठे परिच्छेदमें उत्तरार्द्ध अष्टमश्लोकसे केवल अर्थीकोही अपना प्रमाणदेने की स्वाधीनताहै तैसायहांपर नहींहोसक्ता अर्थात् यहांपर अर्थी या प्रत्यर्थी दोनोंको स्वाधीनताहै कि वहकोईएक अपनीइच्छाके अनुसार दिव्यप्रमाण देसक्ताहै यहव्यवस्थामहाभियोगोंमध्येविश्वासिकनालिशपरतुलाआदिदिव्योंकीअपेक्षामेंकहीगई-और पाँचवाँ कोशपान का जोप्रकारहै उसपर विनाविवेक सबदशाओंमें आचरणहोसक्ता है अर्थात् मुक़द्दमाचाहै सङ्गीनहो चाहै ख़फ़ीफ़ और नालिशचाहै शङ्कारूपसेहुईहो या विश्वासिक नालिशहो सबहीमेंहोसक्ताहै-परन्तु- तुलाआदि विषपर्यंत चारोंदिव्यों काप्रमाण केवल महाभियोगोंमें भी विश्वासिक नालिशपर होसक्ताहै अन्यत्रनहीं यह नियमइसमें दर्शायागया -सो- इसविश्वासिकपरभी कुछअपवाद नीचेकहतेहैंकिसर्वत्र हीऐसानहीं होसक्ताहै अर्थात् किसी२ दशानिम्नोक्तको छोड़कर विश्वासिक नालिश पर यहनियम समुझौ ९८॥

विनापिशीर्षकात्कुर्यान्नृपद्रोहेऽथपातके ९८॥

अक्ष०—नृपद्रोहमें और पातकमें शीर्षक विनाभीकरै ९८॥

अभि०—राजद्रोह की अभिशंकामें अर्थात् जबकोई किसी ऐसेअपराध की शंकासे अभियुक्त कियाजाय कि इसनेराजाकेसाथ यहअपराधकिया या कियाथा तो ऐसेकलंककी शुद्धिकेलिये शिरःस्थायी होनेविनाभी तुलाआदि विषपर्यंत चारोंमेंसे कोईएक दिव्यकरनेका अधिकारीहै -एवं- ब्रह्महत्याआदि महापातकोंकी अभिशंका लगनेमें भीशिरःस्थायी होनेविना करनेकाअधिकारहै(शिरःस्थायीहोनेविना) अर्थात्अन्त्यविचार कादण्डस्वीकार कियेविना किन्तुदण्डकी प्रतिज्ञाकरनेका बन्धनइसदशामेंनहींहै और-(अपवादका) स्वरूप इसमें यह समुझनाचाहिये कि चारोंदिव्योंका आचारऊपर विश्वासिक नालिशमें बतायाथा पर इसअद्धामें प्रदर्शितकिये अपराधोंपर विश्वासिक से अपेक्षानहींहै किंतु इनअपराधोंके नामसेयदि शंकारूपसेही निंदाहुईहो तोभीचारों

दिव्योंमेंसे कोईदिव्य होसक्ताहै परइतना अंतरहै कि वहांतौ दंडकीप्रतिज्ञापूर्वकहाथा यहां शीर्षक विनाभीकरसक्ता है ९८॥

अधि०—यही प्रकार वहुतवड़ी चोरीकाभीशंका दोषलगनेमें कर्त्तव्यहै तथाच(राजभिःशंकितानांचनिर्दिष्टानांचदस्युभिः।आत्मशुद्धिपराणांचदिव्यंदेयंशिरोविना)अर्थात् जिन मनुष्योंको राज्योंकी ओरसे कुछशंका दोषलगाहो कि ये भी अमुकवार्त्तामें राजासे विपरीतहुये थे या बहुत वड़ी चोरीवाले चोरोंने यह निर्देशजिनको कियाहो कि ये भी अमुकचोरीमें हमारे साथीहुये थे इसप्रकारका शंका दोषलगनेमें जो कोई अपनी आत्मशुद्धि निर्मलता किंतु सचावटको चाहिकर दिव्यदेना कहतेहों तिनकोभी शिरोविना दिव्यदेयहै (शिरोविना) अर्थात् दंडकीप्रतिज्ञा आरोपित कियेविना-परन्तु तंडुलोंका प्रकार छोटीचोरीकी शंकामात्रमें होताहै-यथाहपितामहः(चौर्येतुतंडुलादेयानान्यत्रेतिविनिश्चयः)अर्थात् चावरजोहैंसोछोटी चोरीकीशंकामेंचबानेयोग्यहैं अन्यत्र नहीं यह मर्याद सुनिश्चित है-और तप्तमाष जो है सो महाचौर्यकीही शंकामें दातव्यहै अन्यत्रनहीं-तथाहि(चौर्य्यशंकाभियुक्तानांतप्तमाषोविधीयते) अर्थात्-तप्तधातुका विधानउनके लियेयोग्य है जिनपर चोरी संगीनका इल्ज़ाम लगायाजाय-इनके सिवाय-और भी अनेकभांतिके शपथहोते हैं पर वे वहुतछोटे विषयोंपर आरूढ़हैं-यथा(सत्यवाहनशस्त्राणिगोबीजकनकानिच। देवतापितृपादांश्चदत्तानिसुकृतानिच॥ स्पृशेच्छिरांसिपुत्राणांदाराणांसुहृदांस्तथा।अभियोगेषुसर्वेषुकोशपानमथापिवा॥ इत्येतेशपथाःप्रोक्तामनुनास्वल्पकारणे। इतिचनारदादिस्मरणात्)अर्थात्-कोईअपनेसत्य धर्मकी सौगन्ध देवै-या अपने वाहन हाथी घोड़ा वैलगाड़ी आदिकी सौगन्ध देवै-या निज अमोघशस्त्रोंकी-या गऊ वा धरतीकी-या धान्यादि अन्नोंकी-या सोनाचांदी आदि द्रव्योंकी-या निजइष्टदेव आदि किसीदेवताकी-या वापदादा आदि गुरुओंकी चरण स्पर्शकरै-या अपने दियेहुये दान और कियेहुये सुकृत पुण्योंकी शपथ इसप्रकारसे देवै कि यदि मैं झूंठ इसमेंबोलूं तौमेरे अमुकपुण्यका फल जातारहै-या अपने पुत्रों वा भार्य्याओं वा प्रियतमसुहृदोंके शिरपर हाथरक्खे-अथवासभी साधारण अभियोगों में कोशपान विधिकरनी चाहिये-इसप्रकार ये इतने शपथ मनुजी ने छोटे अभियोगों में निर्देश किये हैं यहवात नारद आदि ऋषीश्वरोंने निजनिज स्मृतियों में लिखीहै यद्यपि-इस मर्यादा मध्ये यह (आयह) खड़ा होसक्ताहै कि ऊर्ध्वोक्त वहुधा परिच्छेदों की व्यवस्था अनुसार यहवात निश्चितहोचुकीहै कि इस दिव्य प्रमाणसे क्रियासाधन करना उसदशामें उचितहोताहै कि यदि मानुष प्रमाणोंका अभावहो या मानुष प्रमाणोंसे निर्णय निपटहोही नहीं सक्ताहो-दूसरे यहवात भी प्रसिद्धहै कि जो वातमानुष प्रमाणों से निर्णय न होसक्तीहो और उसीका निर्णय जिस्से होसके तिसको दिव्यप्र-

ण कहेंगे-और यह शपथें भी उसीदशामें होती हैं किजब अन्यप्रकारोंसेकोई बात
श्चित नहीं होतीहै तो फिर ये सौगंधें भी दिव्यों में गिनती होनीचाहिये थीं इस
शापर भी इनका नाम शपथ और उनका नाम दिव्यप्रमाण ऐसा भिन्न२ किसलिये
हागया सोकहो-इस (आग्रह) का यह (उत्तर) है कि यह आग्रह बहुत ठीकहै तथापि
दोनों में ब्राह्मण परिव्राजकवत् भेद इसलिये कियागयाहै कि उन तुलाआदिचारों
व्यों में इतनी बड़ी शक्तिहै कि उनके प्रभावसे तत्कालही सत्यासत्यका विवेकहो-
ताहै-और इन शपथोंसे मुक़द्दमह का सत्यासत्यरूपी प्रतिफल किसी कालांतरमें
कर जानाजाताहै इसलिये दोनों के नामसे भी शब्दबोध वैसाही करिलेनाचाहिये
साबोध ब्राह्मण और संन्यासी शब्दसे होताहै दृष्टांत इसका ब्यौरेवार इसी अधि-
ोक्तिके अंतमें देखो-और कोशपान का प्रकार यद्यपि शपथों में गिनतीहै परंतु वह
लाआदिचारों दिव्योंकेभीसाथमेंपाँचवां गिनतीहुआहै तिसकायहसिद्धांत नहींहै कि
तुलादिकोंके समान प्रतिफल उसका भी तत्कालही प्रकटहोता होगाया होनाचा-
हये वरन इसलिये उनकेसाथ गिनती कियाहै कि वर्त्ताव उसका उन्हींके समानविश्वा-
सक महाभियोगोंमें भी समुझाजाय-और-यद्यपि तंडुल प्रकार तथा माषप्रकार इन
ोनोंसे भी सत्यासत्यका प्रतिफल तत्कालहीप्रकटहोताहै तथापि यहदोनों प्रकारउन
ाजू आदि चारों दिव्यों के साथमें इसलिये गिनती नहीं कियेगये कि ये दोनोंप्रकार
वल छोटे विषयके अभियोगों तथाशंका विषयिक अभियोगोंमें वर्त्ताव कियेजाते हैं
ौर उन तुलादि चारों दिव्योंका वर्त्ताव केवल महाभियोगों और विश्वासिकअभि-
ोगोंपर आरूढ़है अर्थात् उनसे इनकाप्रकारही कुछ विलक्षणहै-यहसबसंतोषलक्षण
सी ऊर्ध्वोक्तआग्रहके उत्तरमेंसमुझने-और इनदिव्यों तथा सबशपथोंकाभी वर्त्ताव
णादिकसभीविवादोंमें जैसाअर्थ जैसाअवसर हो उसकीदशाके अनुसार व्यवस्था
खभालकर प्रयुक्तकरनाचाहिये-और जो कि पितामहका यह वचनहै कि-(स्थावरेषुवि
वादेषुदिव्यानिपरिवर्जयेत्) अर्थात् स्थावर धनके विवादोंमें दिव्योंकाप्रमाणलेना अ-
तिशय करबचावे-सो इसवचन के आशय से यह व्याख्या सिद्धहोतीहै कि दिव्यों का
प्रमाण उसदशामें न लेना जबस्थावर धनकीअपेक्षा कोईलिखित दस्तावेज़ उपस्थित
हो या उस धनके निकट निवासीआदि साक्षीही उपस्थितहों सिद्धांत इसका यह कि
स्थावर के विवादमेंभी जो लिखित प्रमाण और प्रतिवासी आदि साक्षियोंका प्रमाण
कुछ न हो तो निःसंदेह दिव्योंकाप्रमाण अंगीकार कर्तव्यहै (पकड़)इसवार्त्तामेंभीयह
पकड़होसक्तीहै कि इसपितामहके वचनमें कुछ विशेषता नहींपाईगई क्योंकिस्थावर
के सिवाय और विवादोंमेंभी मानुषप्रमाणके होतेहुये दिव्योंको अवकाश नहींहै किंतु
यह मर्यादा सर्वसाधारणभाव ऊपरसे निश्चित होती चलीआती है कि जबतक लि-

खित प्रमाण या साक्षियोंका प्रमाण या भुक्तिकाप्रमाण इनतीनोंमेंसे कोईसाभीमानुष प्रमाण मिलसक्ता हो तबतक दिव्योंका प्रमाण अंगीकार न करना चाहिये तौ फिर स्थावर धनका चर्चा यहांपर (निरर्थक) ठहरा-इस (पकड़) का यहउत्तरहै कियहपकड़ बहुत ठीकहै परन्तु इसमें यह हेतुपरमगूढ़है कि जबऋणादिक साधारण अन्यविवादोंमें अर्थीने उसप्रकारके साक्षीलाकर प्रवेश कियेहों जिनके शुभलक्षण साक्षियों के प्रकरणमें प्रदर्शित होचुकेहैं और प्रत्यर्थी उसके साक्षियोंको झूँठे ठहराकर दिव्यप्रमाण का देना इस प्रतिज्ञासे स्वीकार करै कि जो इस दिव्यप्रमाणके द्वारा मैं झूँठा होजाऊँ तौ इतनादंड इसप्रकारसे भरौंतौ फिरइसदशामें प्रत्यर्थीकी प्रतिज्ञाअनुसार इनविवादोंमें साक्षियोंके होनेपरभी दिव्यप्रमाण का लेना स्वीकार होसक्ताहै क्योंकि इसमें एक संभव है कि जानैं साक्षीलोग अर्थी का पक्षलेकर अपने आशयभीतर कुछ प्रपंच रखतेहों और दिव्यप्रमाणकी अपेक्षामें कोईसी दोषकल्पना नहींहोसक्ती क्योंकि वह प्रकार एकसत्यधर्म का प्रकाश कहै कि जिससे उस वस्तुकाभी न्यायतत्त्व निश्चितहोजाताहै-यथाहनारदः (तत्रसत्येस्थितोधर्मोव्यवहारस्तुसाक्षिणि। दैवसाध्येपौरुषेयींनलेख्यंवाप्रयोजयेत्) अर्थात्-नारद कहते हैं कि ऐसी दशामें (धर्म)नाम न्याय जो है सो सत्यपर आरूढ़ है और व्यवहार की रीतिसे झगड़े का निपटारा होना साक्षियोंके आधीनहै इसलिये जो कोई व्यवहार दैवसाध्य ठहराया जाय अर्थात् जिसमें दिव्य प्रमाणोंके आधीन हारि जीति बदी जाय तिसमें साक्षी या लेख्य प्रमाण कुछ लेना आवश्य नहींहै-सिद्धांत उस पकड़ का निश्चयात्मक यह उत्तरहै कि पितामहके उस वचन का अभिप्राय यह नहीं है कि स्थावर सम्बन्धी विवादों में दिव्य प्रमाण का लेना निपट अंगीकार न हो बरन अभिप्राय उसकायहहै कि जो कोईप्रत्यर्थी स्थावरधनकेविवादमें दण्डकी प्रतिज्ञापूर्वक दिव्यप्रमाणके देनेपर समुद्यतहोजाय तौ लिखितप्रमाणके होतेहुये या निकटवासी साक्षियों केहोतेहुये उसकी यह प्रतिज्ञा राजाको न स्वीकारकरनीचाहिये किन्तु ऐसी दशामें दिव्यप्रमाणदेनेका अधिकार प्रत्यर्थीकोनहीं है-और जो पितामहके उसवचनका यह अभिप्रायनहोता तो फिर लिखितप्रमाण या समीपवासी साक्षियों आदिके नहोने पर स्थावरधनकेविवादमें निपट कुछभीनिर्णयनहोसक्ता यहदोषापत्ति प्रकटहोती है॥

अब उसबातपरदृष्टिकरनीचाहिये कि इसपकड़से पहिले जो आग्रहखड़ाहुआथा जिसकेउत्तरमें ब्राह्मण और संन्यासीकादृष्टांत जो समस्यामात्र लिखागयाहै तिसको ब्यौरेवारअबलिखतेहैं यहाँसेदेखकरउसीस्थलपरसमुझौ-अर्थात्-दिव्यप्रमाणमात्रका प्रकरण सबएकहीहै और उसीमें शपथोंकाभी रूपकहागया इसलिये शपथेंभी दिव्य प्रमाणमेंगिनतीहैं तथापि पूर्वोक्त चारोंतुलाआदिकीअपेक्षा शपथोंमें इतना अन्तरहै

कि जैसे ब्राह्मण और संन्यासी में अन्तर प्रसिद्ध है-इस कथन का सिद्धांत यह कि यद्यपि संन्यासीभी ब्राह्मणों में से होतेहैं और इसी हेतुसे ब्राह्मण और संन्यासी में कुछ अन्तर न होना चाहिये था परन्तु कर्मन्यास लक्षणके हेतुसे उनकी संज्ञा (संन्यासी) यह जुदी ठहराई गई और जुदी संज्ञाहोनेसे भी यहप्रतीत होनेलगा कि संन्यासी वस्तुब्राह्मणोंसे कुछ भिन्न है ऐसेही शपथैंभी तराजूआदि मुख्य दिव्यों से कुछ भिन्नहैं और इसीलिये शपथोंको मुख्य दिव्योंके साथ में गिनती नहींकिया अर्थात् मुख्य दिव्यों से भिन्न कुछ पीछे आकर दर्शाया है-क्योंकि-शपथों का प्रभाव ही उनके तुल्यनहीं होता अर्थात् सौगंध खातेके साथही तत्काल उसका इष्टानिष्ट फल भी नहींप्रकटहोता किन्तुकालान्तरमें जाकर प्रकटहोता है औरमुख्यदिव्यों का इष्टानिष्ट फल तत्काल प्रकटहोताहै इसलिये सर्वथा यहसिद्धान्तसमझनाचाहिये कि दोनोंके परस्पर अन्तर है भी और नहीं भी ९८ ॥ अब निचले वाक्यमें इनसभी दिव्योंके आचरणकाप्रकार कहाजायगा ९८ ॥

सचैलंस्नातमाहूयसूर्योदयउपोषितम् । कारयेत्सर्वदिव्यानिनृपब्राह्मणसन्निधौ ९९ ॥

अक्ष०-वस्त्रोंसहित स्नानाकियेहुये उपोषितको सूर्योदयमें बुलाकर नृपब्राह्मणोंके समीपं सबदिव्य करवावै ९९ ॥

अभि०-जबकिसी मनुष्यने दिव्योंका प्रमाण या शपथोंकाप्रमाण आपहीदेनास्वीकारकियाहो या उससेऔरोंने स्वीकारकरायाहो तबएकदिन पहले उसको ब्रतकराकर दूसरेदिन प्रातःकाल सूर्यउदय होनेपर वस्त्रोंसहित स्नानकराकर हाकिम उसेबुलावे और सर्वप्रकार के दिव्योंमेंसे या शपथोंमेंसे जोकोईबात उसपर ठहरीहो सो राजाके सभ्योंतथा ब्राह्मणोंके सन्मुख आचरण करवावै ९९ ॥

अधि०-पितामह ने उपवास में विकल्प दर्शाया है-यथा(त्रिरात्रोपोषितायस्युरेक रात्रोषितायवा । नित्यंदिव्यानिदेयानिशुचयेचार्द्रवाससे) अर्थात्-दिव्यों के प्रकार जो मनुष्यकी निर्म्मलताके लिये नियत हैं वे सब सदैवही तीन दिन राति उपवास कियेहुयेको यद्वा एकहीदिनराति उपवासकियेहुये और भीगेवस्त्रपहनेहुये शुद्धशरीर को देयहैं-यह दोभाँतिसे उपवासका विकल्प जो पितामहनेकिया सो भी महाकार्य और अल्पकार्य अर्थात् मुक़द्दमात संगीन और खफ़ीफ़के भेदसे संबंधित समुझना चाहिये यद्वा किसीदशामें मनुष्यकेशरीरशक्तिका बलाबलदेखनाचाहिये-उपवासकरने का नियम जोहै सो उसप्राड्विवाकसेभी संबंधितहै कि जो हाकिम दिव्यप्रमाणका आचरणकरवावै सो यहबात पितामहके इसवचनसे संसिद्धहोतीहै-यथा (अध्वरेषुयथा ध्वर्य्युः सोपवासोनृपाज्ञया) अर्थात्-जैसे अध्वरनाम यज्ञों में अध्वर्यु ब्राह्मण उपवास रखकर यज्ञोंका प्रबंधकरवाताहै तैसेही इसकार्यमें भी राजाकी आज्ञापूर्वक हाकिमको

यह उचितहै कि निज आपभी व्रतकेनियमोंको धारणकरिकै दिव्योंका आचरणकरावै-यद्यपि यहाँपर सूर्योदयकासमय यह सामान्यभाव अविशेषतासे कहाहै तथापि शिष्ट समाचारकेहेतुसे रविवारके दिन दिव्योंका आचरणकराना चाहिये तिसमेंभी पितामह ने कुछ और विशेषताकहीहै-यथा (पूर्वाह्णेऽग्निपरीक्षास्यात्पूर्वाह्णेचधटोभवेत्। मध्याह्ने तुजलंदेयंधर्मतत्त्वमभीप्सता॥ दिवसस्यतुपूर्वार्द्धेकोशासिद्धिर्विधीयते। रात्रौतुपश्चिमे यामेविषंदेयंसुशीतले) अर्थात्-पितामहनेयहकहाहै कि धर्मतत्त्वनाम सत्यासत्यकेढूंढ़-नेवालेको अग्निकी परीक्षापूर्वाह्णकालमें और (धट) नाम तुलाकाभी प्रकारपूर्वाह्णका-लमें करनाचाहिये और जलकी परीक्षा मध्याह्नकालमें करनीचाहिये-और कोशकाल में विधिकी सिद्धिदिनके पूर्वार्धकालमें दोपहरकेभीतर और विषपरीक्षाका प्रकाररात्रि में पिछलेपहर शीतलकालमें कर्तव्यहै-परंतु-जिनप्रकारोंके निमित्तमें कोईसा काल विशेषनहीं कहा वे सवतंडुल या तप्तमाष आदि पूर्वाह्णकालमें करनेचाहिये सो यह बात नारद के अग्रोक्त सामान्य वाक्यसे पाईजाती है-यथा (पूर्वाह्णेसर्व्वदिव्यानां प्र-दानंपरिकीर्त्तितम्) अर्थात्-सभी दिव्योंका प्रदान पूर्वाह्णकालमें कहाहै-और यही पूर्वाह्णकालका आशय योगीश्वरके भी सूर्योदयकालसे संसिद्धहोताहै क्योंकि सूर्योदय कहनेसे निपट यह सिद्धांत नहीं है कि सूर्य उदयहोतेके साथही करिकै निपटिजायँ किंतु दिनमानमात्रका तृतीयभाग पहिला पूर्वाह्णकाल कहाताहै जैसे २७ घड़ीके दि-नमानमें ९ घड़ीका पूर्वाह्णकालहोताहै तिसके भीतर भीतर जो कुछ कियाजाय सो पूर्वाह्णकालकाकरना और वही सूर्योदयकालकाकरना कहलाताहै इसहेतुसे योगीश्वर ने सूर्योदयकाल सामान्यभावसेकहा और इसी सूर्योदयपद आधारभूतसे रविवारभी दर्शाया इसमें शंकाकरनेका अवकाशनहींहै-और पूर्वाह्ण अथवा मध्याह्न या अपराह्न का अर्थांश दिनके तीनभागोंपर समुझना अर्थात् दिनका तृतीयभाग पहिला पूर्वाह्णकहलाता और दूसराभाग तृतीयांश बीचका मध्याह्न कहलाता और तीसरा भाग तृतीयांश पिछला अपराह्न कहाजाताहै सो सर्वत्रसमुझना-दिव्यों के आचरण मध्ये जैसा यहतात्कालिककाल विशेषकहागया तैसेही औरभी मासात्मक या ऋत्वा-त्मककालविशेष (विधि) और (प्रतिषेध) मुखसेदर्शायाहै-तिसमेंपहिलेविधिमुख वर्णन करतेहैं कि अमुकामुक ऋतुकालमें अमुकामुकदिव्योंका आचारकरनाचाहिये-यथा-(अग्नेःशिशिरहेमंतौवर्षाश्चैवप्रकीर्त्तिताः। शरद्ग्रीष्मेषुसलिलंहेमंतेशिशिरेविषम्॥ चैत्रोमार्गशिराश्चैव वैशाखश्चतथैवच। एतेसाधारणामासा दिव्यानामविरोधिनः) कोशस्तुसर्वदादेयस्तुलास्यात्सार्वकालिकी-कोशग्रहणंसर्वशपथानामुपलक्षणं। तंडुला नांपुनर्विशेषानभिधानात्सार्वकालिकत्वम्)-अर्थात्-(अग्नि) नामक दिव्यकाप्रमाण देने को शिशिरऋतु जिसमेंबहुधाकुहुर भड़ताहै और हेमंतऋतु यह दोनों श्रेष्ठहैं और

ऋतुके महीनेअर्थात् जबजब कभीबर्षाहोतीहो याहोनेलगे तबही अग्निकाआ-
ण करनाचाहिये-और-(जल) नामक दिव्यप्रमाण देनेको ग्रीष्मऋतु औरशरद्
तुग्राह्य कहीहै-और(विष)नाम दिव्यका प्रमाणदेनेको हेमन्त और शिशिर यहदोनों
तु श्रेष्ठहैं-और-चैत्र अगहन वैशाख यहतीनों महीने साधारण भावसे सभी दिव्यों
अविरोधी हैं किन्तु इनमें सभी दिव्योंका आचरण होताहै-और-(कोशपान) विधि
अर्थात् सभी ऋतुओं में कर्त्तव्यहै जब चाहो तब करो-ऐसेही (तुला) नामक
० भी सर्वकालमें होताहै उसके लिये कोई ऋतु या महीना वर्जित नहींहै-यहांपर
कोश) के कहनेसे सर्व शपथोंकाभी उपलक्षण समुझना चाहिये अर्थात् अन्य सब
ाधारण शपथ भी सर्वकालमें होते हैं किन्तु उनके लिये कोईकाल विशेषनहीं कहा-
ौर (तंडुल) विधिकेभी निमित्तमें कोईसाकाल विशेषनहीं कहागया इसलिये उसको
ी सर्वकालमें कर्त्तव्यसमुझनाचाहिये-यहतो इनका विधिमुख दर्शायागया अब आ-
प्रतिषेधमुखभीदर्शातेहैं-यथा(नशीतेतोयसिद्धिःस्यान्नोष्णकालेऽग्निशोधनम्। नप्रा-
षिविषंदद्यात्प्रवातेनतुलांतथा॥ नापराह्णेनसंध्यायांनमध्याह्नेकदाचन । नशीतेतोय
सिद्धिः स्यादित्यत्रशीतशब्देनहेमन्ताशिशिरवर्षाणांग्रहणम् ॥ नोष्णकालेऽग्निशोधन
मित्यत्रोष्णकालशब्देनचग्रीष्मशरदोर्ग्रहणम्)अर्थात् (जल) नामक दिव्य प्रमाणकी-
सिद्धि शीतकालमें न करनीचाहिये और इसी शीतकालके आशयसे हेमन्त शिशिर
वर्षा इन सभीकालोंका निषेधसमुझना चाहिये-और (अग्नि) नामक दिव्यप्रमाणके
द्वारा जो लांछनों का शोधन करनाहो तो उष्णकालमें न करना चाहिये और इसी
उष्णकालके शब्दसे ग्रीष्मऋतु और शरद्ऋतु संग्रहीतहैं-और(विष) नामक दिव्य
का प्रमाण देनाहो तो प्रावृष् ऋतुमें न करना चाहिये-और(तुला)नामक दिव्य का
प्रमाण जो देनाहो तो प्रवात नाम आंधीके समयपर न करनाचाहिये और अपराह्ण
काल नाम दिनके तीसरे भागमें न करनाचाहिये और निपट संध्याकालमें न करना
चाहिये और मध्याह्नकाल नाम दिनके विचले भागमें न करना चाहिये-यद्यपि ऊपर
विधानकेही महीने या ऋतुकालकेकहने से निषेधकाल आपसे आपही पायागयाथा
तथापि उस निषेधके आत्यंतिक आदरकेलिये दुसराकर निषेध वर्णन कियागया कि
जिस्से कोई भूलिके भी इन महीनों में ऐसा न करे-पर इसवार्त्ता का मुख्य प्रयोजन
आगे कहेंगे ९९ अब इन दिव्योंके अधिकारियों की व्यवस्था नीचे कहते हैं कि
अमुकामुक दिव्य करनेको अमुकामुक मनुष्य अधिकारी होते हैं ९९ ॥

तुलास्त्रीबालवृद्धांधपंगुब्राह्मणरोगिणाम् । अग्निर्जलंवाशूद्रस्ययवाःसप्तविषस्यवा १०० ॥

पक्ष०—स्त्री बालक वृद्ध अंध पंगु ब्राह्मण रोगी इनकेलिये तुला-शूद्रको अग्नि या
जल या विषके सातयव १०० ॥

अभि०-(स्त्री) नारीमात्र कोईहो इसमें जाति या अवस्था आदिका नियम नहीं-(बालक) जबतक सोलहवर्षका न हो इसमें जाति आदिका नियम नहीं (वृद्ध) जो अस्सी वर्षसे ऊपरहो (अंधा)जिसके नेत्रों में कोईसा विकारहो (पंगु) लंगड़ा जिसके गोड़ों में कोईसा विकारहो (ब्राह्मण) जातिमात्रसे किसी प्रकारकाहो (रोगी) जो किसी प्रकारके रोगसे पीड़ितहो इनके कलंक शुद्धिके लिये केवल तुला विधिका प्रकार नियतकियाहै-ऊपर मूल श्लोक दूसरे अद्धाके अक्षरार्थ में यद्यपि केवल शूद्र काही अर्थ कियागया तथापि उस अद्धा में क्षत्रिय आदि तीनोंवर्ण की व्यवस्था सिद्धहोतीहै अर्थात् अग्निनाम तपायाहुआहलका लोहफाल और तप्तमाष अर्थात् धातुपात्रमें तपायेहुये स्नेहमेंसे सोनेकामासा चुटकीसे निकासना यह दोनोंक्षत्रियके निमित्तमें (वा) शब्दकी शक्तिसे समुझने एवं वैश्यके निमित्तमें जलका दिव्यसमुझना और विषके सात यव अर्थात् सातयवोंके परिमाणसे विषका दिव्य शूद्रके निमित्तमें कहागया और यही व्यवस्था ठीकहै क्योंकि यहवार्ता पितामहने स्पष्टरूपसे कहदीहै सो देखो नीचे अधिकोक्तिमें १०० ॥

अधि०-पितामहवचनं-यथा (ब्राह्मणस्यघटोदेयःक्षत्रियस्यहुताशनः । वैश्यस्यसलिलंप्रोक्तंविषंशूद्रस्यदापयेत्)अर्थात्-ब्राह्मणकी कलंक शुद्धिमें तुलाकाप्रकारदेना चाहिये क्षत्रियको अग्निका और वैश्यको जलका दिव्यकहा है शूद्रको विषका दिव्य दिलावे-और-जोकि स्त्रियादिकों के लिये दिव्यों का देनाही निषेध लिखाहै-यथा (सव्रतानांभृशार्तानां व्याधितानांतपस्विनाम् । स्त्रीणांचनभवेद्दिव्यं यदिधर्मस्त्वपेक्षितः) अर्त्थात् जहाँ सत्य धर्म्मकी परीक्षा लेनी आवश्यक हो तहाँ इतने लोगोंसे दिव्योंका प्रमाण नहीं लेनाचाहिये एक तो जो मनुष्य शास्त्रोक्त नियमों के व्रत आचरण करताहो या निरंतर किसी पीड़ासे पीड़ितहो या रोगीहो या तपस्वीहो और स्त्रियोंको भी दिव्य का प्रकार नहीं करायाजाय सो-यह निषेध वाक्य इसलिये नियत हुआहै कि पहिले ९८ के पूर्वार्द्ध मूलश्लोकमें वह मर्यादा जो विकल्परूपसे निश्चित होचुकीथी कि अपनी रुचिके अनुकूल चाहै अर्थी या प्रत्यर्थी दोमें कोई एक दिव्योंका आचार करसक्ताहै सो वह विकल्प इस अत्रोक्त दशामें निवृत्तहुआ समुझा जाय अर्थात् जिनकेलिये यहाँपर निषेध लिखागया कदाचित् वेही किसी मुक़द्दमह में अर्थी या प्रत्यर्थी हुयेहों तो उनके दूसरे प्रति पक्षीको अधिकार शेष रहेगा कि वह अपनी इच्छासे दिव्यों का आचरण करै किन्तु स्त्रियादिकों को अधिकार नहीं और इसवार्त्ताका उदाहरण भी यथावत् रूपसे कहाहै-यथा (अवष्टंभाभियोगेषुस्त्र्यादीनामभियोक्तृत्वेऽभियोज्यानामेव दिव्यमेतेपामभियोज्यत्वेऽप्यभियोक्तृणामेवदिव्यम् परस्पराभियोगेतुविकल्पएव) अर्थात्-यह दृष्टांत इसमें कहाहै कि ऊपर (सव्रतानां)

इत्यादि वचनसे स्त्रियादिक जो छूटमें दर्शायेगये कदाचित् कोई उन्हींमें से अभियोक्ता बनैं अर्थात् किसीपर कलंक लगाकर नालिश खड़ी करे और वह नालिश विश्वासिक रूपसे हुईहो जिसमें दिव्योंकी आवश्यकता समुझीजाय तौ इसदशामें अभियोज्यों से अर्थात् प्रत्यर्थियों से उन दिव्यों का आचरण कराया जाय किन्तु स्त्रियादिक अभियोक्ताओंसेनहीं -औरजो- स्त्रियादिक अभियोज्य हुयेहों अर्थात् उन्हींपर कुछकलङ्क लगायागया और नालिश खड़ीहुईहो तौ इसदशामें अभियोक्ताओंसे अर्थात् मुद्दइयोंसे आचरण करानायोग्यहोगा किन्तु स्त्रियादिक मुद्दआअलेहसे नहीं-परन्तु जहांदोनों पक्षीएकसेही हों जैसे स्त्रीमुद्दई और स्त्रीही मुद्दाअलेहहो तो इसपरस्पर अभियोगमें दिव्योंका आचरण कराने या नहींकराने का बिकल्पहै अर्थात् आद्योपान्त सभीमर्यादोंके अनुकूल योग्यतापाईजाय तौ करायाजाय अथवानहीं परन्तु इस दशामें पूर्वोक्त ९८ के श्लोक वालाभी विकल्प सम्बन्धित होसक्ताहै क्योंकि यदिपरस्पर दोनों ओर स्त्रियाँही अर्थी प्रत्यर्थीहों और उनमेंसे कोईएक अपनी रुचिकेअनुसार दिव्योंकाप्रमाण देनाचाहै तौ कुछ दोष या प्रतिषेदनहीहै-पर-इसमें भीकेवल तुलाकेही प्रकारका नियम जो पायाजाताहै-यथा (महापातकादिशंकाभियोगेस्त्र्यादीनांतुलैवेति)अर्थात्-स्त्रियादिकोंके लियेकेवल तुलानामक दिव्यका प्रकारउसदशामें योग्य होताहै जबकिमहापातक आदिकलङ्कोंकी विश्वासिक शङ्कामात्रसे अभियोग लगायागयाहो अर्थात् महापातक आदि कलङ्कोंकी विश्वासिक नालिशहो तौ फिर केवलतुलाकाही नियमनहीं समुझना यहसिद्धान्त इस्सेपायागया-सोयहबातभी-उस दशामें संभवहोसक्तीहै कि जबयहनियम निश्चितकियाजाय कि स्त्रियादिकों को तुला नामक दिव्यकाप्रकार केवलचैत्र अगहन वैशाख इनमहीनोंमेंही करवायाजाय क्योंकि यहतीनोंमास साधारणभावसे सभीदिव्योंकेनिमित्तमें श्रेष्ठलिखे हैं-औरजो (तुलास्यात्सार्वकालिकी) इसपूर्वोक्तवचनकेआधीन यहव्याख्यासिद्धकरीजाय कि स्त्रियादिकोंको सभीऋतुकालोंमें केवलतुलाकाहीप्रकारउचितहोताहै तौ यहबात ऊर्ध्वोक्तवचनवाली यथार्थ नहीं देखपरती है-क्योंकि-इसअग्रोक्त वचनसे तुलाके सिवायकुछ और प्रकारों काभी अधिकार पायाजाताहै-यथा(स्त्रीणांनविषंप्रोक्तं नचापिसलिलंस्मृतम्। धटकोशादिभिस्तासा मन्तस्तत्त्वंविचारयेत्)अर्थात्-स्त्रियोंकेलिये विषभीनहीं और जलकाप्रकारभी नहींकहा किन्तुसत्यासत्य काविवेक जोकोईकियाचाहै तौतुला और कोशपान आदिप्रकारोंसे उनकेअन्तस्तत्त्व कोविचारे अर्थात् छिपेहुये पाप या पुण्योंकी परीक्षा करे-सो-इस(आदि)शब्दसेअग्निआदिभीपायेगये और सिद्धान्त इसकायह कि स्त्रियादिकोंकी सचावट शुद्धिकरनेमध्ये विष और जलकाप्रकार छोड़कर शेपतराज़ू और कोश और अग्नि और और भी जो कुछप्रकार होने हों सो सभी कियेजासक्ते हैं—

इसलिये ऊर्ध्वोक्त केवल तुलाविधिकी आज्ञामध्ये वहीव्याख्या ठीकहै कि यदि महापातक आदि कलङ्कोंकी शंकामात्रसे अभियोग लगायागयाहो और चैत्र अगहन वैशाख इन तीनोंमें से किसीमासमें दिव्यकादेनाठहरै तो फिरकेवल तुलासेही परीक्षा करनी चाहिये-यही व्यवस्था बालकों और उनकेलिये भी सम्बन्धित करनी चाहिये जिसका चर्चा ऊपर स्त्रियादिकों के साथ में होचुकाहै-जो कि ऊपरइसी अधिकोक्तिमें पितामहके वचनसे यहमर्यादा नियतहुईहै कि ब्राह्मणआदि वर्णोंकेलोग तुलाआदि दिव्योंको भिन्न २ वर्त्ताव अपने वर्णोंके अनुसार करैं तिसका भी यह सिद्धांत नहीं है कि उनकेलिये सर्व कालिक वही नियम समुझाजाय-सो-यह बात अग्रोक्त इस पितामह केही दूसरे वचनसे संसिद्ध होतीहै-यथा (सर्वेषामेववर्णानांकोशशुद्धिर्विधीयते। सर्वाण्येतानिसर्वेषांब्राह्मणस्यविषंविना) अर्थात्-उन्हीं पितामहने यह भी कहा है कि सभी वर्णोंकी कलंक शुद्धि सार्वकालिक कोशपान विधिसे करनीचाहिये और बाक़ी सभीदिव्य सर्ववर्णोंके निमित्तमें उचितहैं पर केवल एक ब्राह्मण कोविष देना उचित नहींहै-जब कि एकपितामहनेही दो वचनोंसे दो प्रकारकी आज्ञा नियतकरीं तो सिद्धांत इनका यह समुझाचाहिये कि यह दूसरा वचन इसहेतुसे सुनायाहै कि इस्से यह निर्णय प्रकट होजावे कि उन तुलाआदि प्रकारोंका आचरण जो ब्राह्मण आदि वर्णोंके अनुसार भिन्नरीतिसे दर्शाया गया था सो उसरीतिसेभी केवल उसी साधारण कालमें करनाचाहिये जो तीन महीने सर्वसाधारण दिव्योंके आचारमें श्रेष्ठ कहेगये थे जिनमें वहुधादिव्योंका आचरण होना उचितहै-परन्तु-जब सिवाय उन तीनों मासके किसी और कालांतरमें आचार करनेकी आवश्यकता पाईजाय तब साधारण सभी वर्णोंके निमित्तमें उसी दिव्यकी योग्यता समुझीजायगी कि जो कोई एक दिव्य ठेठ उसी ऋतु के लिये योग्यहो-इसलिये-अब इन सभी वाक्यों और प्रकारोंकी सिद्धांतरूप व्यवस्था दर्शाते हैं कि जिस्से विचार करनेवालोंको सुगमता बनीरहै (अथसिद्धांतरूपव्यवस्था) यथा (वर्षास्वग्निरेवसर्वेषां-हेमंतशिशिरयोस्तुक्षात्रियाणामग्निविषयोर्विकल्पः-ब्राह्मणस्यतुअग्निरेवनकदाचिद्विषम्-ब्राह्मणस्यविषं विनेतिप्रतिषेधात्-ग्रीष्मशरदोस्तुसलिलमेव) अर्थात्-जब जब कभी विशेषकर वर्षा होनेलगैचाहै किसी ऋतुमें हो तबतब सभी वर्षा कालोंमें साधारण भाव सभीवर्णों के मनुष्योंको केवल अग्निका आचरण करानाचाहिये-और-हेमंत या शिशिर इन दोनों ऋतुओंमें क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंको चाहे अग्नि अथवा विषका आचरण करायाजाय परन्तु ब्राह्मण को इन ऋतुओंमें भी केवल अग्निका आचरण कराया जाय अर्थात् विषका नहीं-क्योंकि-पहले भी निषेधहोचुकाहै कि ब्राह्मणको विष छोड़ कर दिव्योंका आचरणकराना योग्यहै-और-ग्रीष्मया शरद इनदोनों ऋतुओंमें केवल

जलका आचरण साधारणसभीवर्णोंको कराना योग्यहै-परन्तु-इस व्यवस्थामेंभी विशेषकर इसबातपर दृष्टि करनीचाहिये कि जिनजिनरोगों के हेतुसे जिनरोगियोंको अग्नि या जल या विषके सेवनका निषेध वैद्यक शास्त्रके अनुसार हो तिनकेलिये इहोक्तअग्न्यादिक दिव्योंके सूचित ऋतुकालमें भी तुला अथवा अन्य साधारण दिव्योंका आचरण करानाचाहिये जो सब ऋतुओंमें करने उचित होतेहैं अर्थात् अग्न्यादि अपने ऋतुकालमें भी उनकेलिये वर्जितहैं-तद्यथा (कुष्ठिनांवर्जयेदग्निं सलिलंश्वासकासिनाम्। पित्तश्लेष्मवतांनित्यंविषंतुपरिवर्जयेत्) अर्थात्-कोढ़ियोंको सदैवही अग्निसे बचावे-एवं-श्वास अथवा कासनाम खांसी रोगवालोंको सदैवही जलके सेवनसे बचावे-एवं-पित्त और कफके रोगवालोंको सदैवही विषके सेवनसे बचावे-और इसी अपेक्षामें एक यह वाक्यहै-यथा(तोयमग्निर्विषंचैवदातव्यंबलिनां नृणाम्)अर्थात्-जल अग्नि विष यह तीनोंप्रकार बलवान् मनुष्योंको देनेचाहिये-इस वचनके सिद्धांतसे यह आशय प्रकट होताहै कि जल अग्निविष इनको छोड़करशेष और दिव्योंका आचार यदि दुर्बलदेहोंकोभी उन मर्यादोंसे करायाजाय जो सर्वथा विधि और प्रतिषेधके अनुसार संसूचित ऋतुकालोंके विपरीत उनकी जातिऔर अवस्था और दशाओंके अनुकूल हो तौ इसदशामें उन मर्यादोंका अतिक्रम नहीं समुझाजासक्ता जो ऋतुकालों मध्येविधि और प्रतिषेधसे अपेक्षारखतीहैं १०० ॥

जोकि ९७ मूलश्लोक तीसरे पादमें यहकहाथा कि इनतुला आदि पांचोंदिव्यों का आचार केवल महाभियोगों मेंही कियाजाताहै सोउन महाभियोगों काभी लक्षण यहांनिचले अर्द्धसे दर्शाते हैं ॥

नासहस्राद्धरेत्फालंनविषंनतुलांतथा १०१ ॥ एकशततमस्यपूर्वार्द्धेऽयम्।

अक्ष०—सहस्रके भीतर फाल विषतुला इनकोनकरै तथाजलको भी १०१ ॥

अभि०—(असहस्रात्)सहस्रके भीतर अर्थात् जोकोई मुक़द्दमा एक सहस्रपणकी मालियतसे न्यून मालियतका हो उसमें (फाल) नाम हलकी फाली अर्थात् अग्निसे तपायाहुआ लोहफाल उठानानहीं चाहिये सिद्धांत इसकायह कि ऐसेछोटे अभियोग में अग्निका आचरण कराना अनुचित है इसलिये उसका प्रतिषेध कियागया-एवं-विषकाभी निषेधहै और तुलाकाभी निषेधहै तथाइनके मध्यवर्ती जलकाभी निषेधजानो-अर्थात् पूरेएक सहस्रपणकी मालियत का मुक़द्दमा हो या इस्से अधिकचाहे तितनावड़ाहो तौ उस मुकद्दमहकी महाभियोग संज्ञाजानो और उसीमें इनदिव्योंका आचरणकरानायोग्यहै-परंतु-कोशपान विधिकानिषेध इनमें नहींसमुझना १०१ ॥

अधि०—(संदेहः) क्योंजी मूल अर्द्धमें जलकाचर्चानहींआया तिसजलको तौ अक्षरार्थमेंभी (तथा) के संयोगसेही जोड़लिया और कोशपानकी योजना इनमें

नहींमानी तिसका क्याहेतुहै (सुनो) ९७ के श्लोकमूलमें यह पहलापादहै कि (तुलाग्न्यापोविषंकोशः)इसमें पाँचौनाम इसक्रमसे कहेगयेहैं कि तुला १ अग्नि २ जल ३ विष ४ कोश ५ इनमेंसेपाँचवाँकोश तौ इसस्थलपर इसलिये संग्रहनहींकिया कि उसका होना छोटे अभियोगोंमेंभी उचितहै-यथा(कोशमल्पेपिदापयेत)अर्थात्-कोशको छोटे भी अभियोगमेंदेवै यह आज्ञाऊपरभी कईस्थलपर लिखचुकेहैं इसबाक्यसे यह आशय संसिद्धहै कि एकसहस्रपणकेभीतरभी कोशपान विधिहोतीहै तौ फिर उसका निषेध यहाँपर क्योंकर संग्रहकियाजाय-और-जलकेनिषेधका संग्रह जो(तथा)शब्दके संयोग से करिलियागया तिसकाहेतु यह प्रत्यक्षहै कि जल जो है सो उनशेषचारों दिव्योंके बीचमें गिनतीकियागया जैसा अभी ऊपर पाँचौनाम यथाक्रमसे लिखेगये और उसके बीचमें गिनती होने मात्रसेही संग्रह करलेने की प्रमाणतामें एक वाक्यभी घंटा घोष है-यथा (तुलादीनिविषांतानिगुर्वर्थेषुप्रदापयेत) अर्थात्-तुलाको आदि लेकर विषपर्यंत अर्थात् जल सहित चारों दिव्यजो हैं सो बड़े मुक़द्दमातमें करावै किन्तु एक सहस्रके भीतरमें नहीं करावै इसलिये संदेह करना वृथाहै (द्वितीय संदेह) क्योंजी यह सिद्धांत निश्चित रूपसे दर्शायागया कि इनको सहस्रके भीतरनहीं करावै सहस्र के उपरान्त होना योग्यहै और पितामहने सहस्रके भीतर भी अग्न्यादिक दिव्यों का होना दर्शितकिया तिसमें क्या कारण है-यथाहपितामहः (सहस्रेतुधटंदद्यात्सहस्रार्द्धे तथायसम्। अर्धस्यार्धेतुसलिलंतस्यार्द्धेतुविषंस्मृतम्) अर्थात्-हजारपणके मुक़द्दमह में तुलाका विधान और हजारके आधेमें तप्त लोहका विधान और हजारके चौथाई में जलका विधान और अष्टमांशनाम १२५ की मालियतमें विषका बिधान करना कहाहै-इस बचनकी दृष्टिसे यह संदेह खड़ाहोताहै कि एक तुलाहीकोही छोड़कर शेष अग्नि जल विष कोश यह चारों दिव्यों के प्रकार पितामह ने उन अभियोगों से संवन्धित किये हैं जो पूरे एकसहस्र पणकी मालियतके नहों और ऊपरली व्यवस्था जो संसिद्धहोचुकी उसमें सहस्रकेभीतर इनका निषेधकियागया सो इस प्रत्यक्ष विरोधकाहेतु कहिनाचाहिये (उत्तर) सत्यहै पितामहकाबचन इसमें कुछ संदेहनहीं परन्तु इसमें इसप्रकारसे व्यवस्थायुक्तहोती है कि जिसद्रव्यका अपहरणकरनेसे पातित्यप्राप्तहो अर्थात् जातिमें कलंकआताहो तिसद्रव्यके संबंधसे यदि मुक़द्दमा खड़ाहो और उसीमें कदाचित् दिव्योंका प्रमाणदेनाहो तौ सहस्रके भीतरभी पितामहके इसीवचनके आधीन व्यवस्थादेखीजाय-अन्यत्र साधारण द्रव्योंके अपहारमें योगीश्वर वाक्यसे व्यवस्था जैसी ऊपरसिद्धिहुईथी सो देखनीचाहिये-तिसपरभी-यह दोनोंभाँतिकी व्यवस्था केवल उन्हीं अभियोगोंसे संबंधितसमुझनीचाहिये जो चोरी और साहसकेहेतुसे मुक़द्दमाखड़ेहुयेहों अर्थात् सभी अभियोगोंमेंनहीं-क्योंकि-इस

वार्तामें कात्यायनने कुछ विशेषभेद प्रकट कियाहै-यथा (दत्तस्यापह्नवोयत्रप्रमाणंतत्र कल्पयेत्। स्तेयसाहसयोर्दिव्यंस्वल्पेऽप्यर्थेप्रदापयेत्॥ सर्वद्रव्यप्रमाणंतुज्ञात्वाहेमप्रकल्पयेत्। हेमप्रमाणयुक्तंतुतदादिव्यंनियोजयेत्॥ ज्ञात्वासंख्यांसुवर्णानांशतनाशोविषं स्मृतम्। अशीतेस्तुविनाशेवैदद्यादेवहुताशनम् ॥ षष्ट्यानाशेजलंदेयंचत्वारिंशतिवैधटम् । विंशद्दशविनाशेतुकोशपानंविधीयते ॥ पञ्चाधिकस्यवानाशेततोऽर्धार्धस्यतंडुलाः। ततोऽर्धार्धविनाशेतुस्पृशेत्पुत्रादिमस्तकान् ॥ ततोऽर्धार्धविनाशेहिलौकिकाश्च क्रियाःस्मृताः। एवंविचारयन्राजाधर्मार्थाभ्यांनहीयते) अर्थात्-कात्यायनने यह भेद प्रकटकियाहै कि जिस मुक़द्दमहमें दियेलिये द्रव्यके अपह्नव नाम नकार खींचे जाने के हेतुसे दिव्योंका आचार करनापरै तिसमें तौ निम्नोक्त रीतिसे सबद्रव्योंका प्रमाण कल्पित करना चाहिये और उसीप्रमाणकेअनुसार दिव्योंका आचार करानाचाहिये-परन्तु जिस मुक़द्दमहमें चोरी और साहसका अपह्नव होनेके हेतुसे दिव्यों का आचार करना आवश्यक समुझाजाय तिसमें अति छोटे भी अभियोगमें बिना विवेक दिव्य प्रमाणके दिव्योंका आचार कराना योग्यहै-जिन द्रव्योंकी नालिशहुईहो उन सभीका प्रमाणलेखे जोखेकीरीतिसेजानकर(हेम)की कल्पनाकरनीचाहिये कियहमाल कितनेहेमकी मालियतहोगा (हेम) अर्थात् सोलहमासे सुवर्णकीअशरफ़ी-जव हेमोंकी प्रमाण संख्या ठीकहोजावै तव उसीके अनुसार दिव्यका नियोगकरनाचाहिये-अर्थात् उस मालियतके सुवर्णोंकी संख्या जाने पीछे यदि यहवात जानी जाय कि सौ सुवर्णका धन जातारहा तौ विषका दिव्य देना चाहिये औरअस्सी सुवर्णकेविनाशमें अग्निकाही दिव्य देनाचाहिये-साठि सुवर्णका धनजातारहने में जलका दिव्य देयहै चालीस के विनाशमें तुलाकाही दिव्यदेनाकहा है वीस या दश सुवर्णोंकेमूल्यवाला धन जातारहा हो तौ कोशपानविधिका आचरण करायाजाय-पांच सुवर्ण या इस्से अधिक दशके भीतर तक विनाश हुयेहों या इसका आधा वा चौथाई भाग जाता रहाहो तौ केवल तण्डुल विधि करनीचाहिये-कदाचित् इस्से भी आधे या चौथाई धनकीहानिहुईहो तौ पुत्रादिकों के शिरपर हाथ रखकर शपथका आचारकरै-और जो इसका भी आधा या चौथाई धन जातारहाहो तौ इनवातोंकी आवश्यकता नहीं किन्तु ऐसे छोटेमुक़दमात में लौकिक मनुष्यों के आचार व्यवहार जो हैं सोई क्रिया मुख्य है अर्थात् ऐसे छोटे झगड़ोंकी अपेक्षामें जैसी कुछ परिपाटी जहां प्रचारितहो तैसेही पंचों आदिके द्वारा निपटारा होजाना योग्य और विस्तार वढ़ाना अनुचितहै-इसप्रकार जो कोई राजा इनमर्य्यादोंके विवेकसे झगड़ालुओंका निपटाराकरै उसके धर्म्म अथवाअर्थमें हानि नहीं होती अर्थात् यहलोक औरपरलोक उसकेदोनों शुद्ध रहते हैं कोईसाकलंक नहीं लगता-इसव्यवस्था में जहां२सुवर्णका चर्चाआया हो तिसकोमोलहमासेसुवर्णकीअ-

शरफी समुझना और जहां२ धनकानाश कहागया सो उसनाशके शब्दसे अपह्नव अर्थात् लियेदिये की इन्कार समुझनी-और जो इसी १०१ वाले मूलश्लोकपूर्वार्द्ध से यह कहागया कि सहस्रपण के भीतर ऐसानहीं करना सो उसवार्त्ता में सहस्रपण तांबेके समुझने किंतु सोनेचांदीके नहीं १०१ जोकि ९८ के उत्तरार्द्ध मूलश्लोकसे यह कहाथा कि इनदिव्योंका आचार महाभियोगों के सिवाय उन अभियोगों में भी करनाचाहिये जो राजद्रोहसे उत्पन्नहुयेहों या महापातकरूप अपराधोंसे हुये हों-सो-उस आज्ञामें यह (शंका) खड़ीहोती है किजब अन्य साधारण धनसंबंधी अभियोगोंकेलिये सहस्रपणके भीतर या उपरांतकी मर्यादा नियतहुई तौफिर नृपद्रोह या महापातक में किस हिसावसे करना चाहिये क्योंकि इसमें धनकाकुछ संबंधनहीं जिस्से सहस्रकी अवधि देखीजाय-सो-इसशंकाकी निवृत्तिनीचे उत्तरार्द्ध मूलश्लोक से कहते हैं १०१॥

नृपार्थेष्वभिशापेचवहेयुःशुचयःसदा१०१॥

ऐ०-(नृपार्थेषु) अर्थात् नृपद्रोहके मुक़द्दमातमें और (अभिशाप) नाम महापातक सम्बन्धी अभियोगोंमें भी (सदा) सर्व्वदा यह मर्य्यादाहै कि द्रव्य संख्याकी अवधि आदि विवेक विनाही उपवासादिकोंकी प्रक्रियासे (शुचयः) पवित्र होतेहुये सबलोग उन्हीं दिव्योंका आचार करैं १०१॥

अधि०-इस विषयमें नारदने देश विशेष भी दर्शायाहै कि अमुकाऽमुक स्थानोंपर आचार कियाजाय-यथा (सभाराजकुलद्वारे देवायतनचत्वरे । निधेयोनिश्चलःपूज्यो धूपमाल्यानुलेपनैः) अर्थात्-राजसभा अथवा किसी साधारण सभाके आगे-या-राजकुलद्वार अर्थात् ठेठराजाके प्रासादद्वार सन्मुख-या-किसीप्रसिद्ध देवस्थानपर-या-(चत्वर)नाम चौक चौराहा आदि मैदानमें(निधेय) नाम तुलानिश्चल खड़ीकरके धूप चंदन पुष्पादिकोंसे पूजाकरनी चाहिये-इसस्थान की अपेक्षा में कात्यायनजी ने कुछ विशेषव्यवस्था दर्शाईहै-यथा(इन्द्रस्थानेऽभिशस्तानांमहापातकिनांनृणाम् । नृपद्रोहे प्रवृत्तानांराजद्वारेप्रयोजयेत्॥प्रातिलोम्यप्रसूतानांदिव्यंदेयंचतुष्पथे। अतोऽन्येषुतुकार्येषुसभामध्येविदुर्बुधाः॥ अस्पृश्याधमदासानांम्लेच्छानांपापकारिणाम् । प्रातिलोम्यप्रसूतानांनिश्चयोऽत्रतुराजनि ॥ तत्प्रसिद्धानिदिव्यानिसंशयेतेपुनिर्दिशेत्)-अर्थात् (अभिशस्त)जिसके अपराधकासच्चा झूँठा निर्णय कुछ न होसका परकलंकउसमें लगने सेदूषित वा निंदितहोगयाहो और एकवह किजोनिर्णयविना हुयेहीमहापातकी प्रसिद्ध होजाय ऐसेमनुष्योंकी कलंकशुद्धिकेलिये तुलाआदि दिव्योंका आचार उसस्थानपर करानाचाहिये जहांइन्द्रकी पूजाआदि कुछप्रधानहो-जोमनुष्य राजद्रोहकीप्रवृत्तिआदि से दुर्नामहुये हों उनकेलिये राजद्वारके सन्मुखहोनाचाहिये-जिनको (प्रातिलोम्यप्रसूत)

अर्थात् इसप्रकारका कलंक लगा हो कि इनकीमाता ऊंची जाति औरपितानीचीजातिकासुनाहै तौ इनकलंकोंकी शुद्धिकेलिये दिव्योंकाआचार चौराहेपर होनाचाहिये—और सब साधारण अभियोगोंमें कि जिनकी चर्चाऊपरसे होतीआई तिनकेलिये दिव्योंका आचार बीचसभाके कर्तव्यहै-और पंडितलोगों को यहभी समुझनाचाहिये कि यदि झगड़ालू अपराधी ऐसी अधमजातिकेहों जिनकाछूना उचितनहीं या ऐसी जातोंका दास्यकर्म करतेहों या म्लेच्छहों या प्रातिलोम्यप्रसूतहों अर्थात् ऊंचीजाति की माता और नीचीजातिका पिता जिनकाहो तौ ऐसे पापकारियोंको दिव्योंकाआचारराजा आप नहीं करावै और न उनको इनदिव्योंके करनेकी आज्ञादेवै परन्तु झगड़ाके निपटारा की दृष्टिसे उसप्रकार के दिव्योंका आचारकरावै जो उनलोगोंमें संचरितहों (दृष्टांत) जैसे चमारोंको रैदासकीशपथ इत्यादि जो कोई बात जिसकी जाति में परलोकभयकी दृष्टिसे प्रधान समुझीजातीहो १०१ ॥ इतिदिव्यमातृका ॥

इस प्रकार इस छत्तीसवें परिच्छेदमेंसर्वदिव्योंकी उपयोगिनीमातृका कथन करिकै अब निचले परिच्छेदों में तुलाआदि सब दिव्योंके प्रयोग दर्शावेंगे कि इसरीति से आचार उनका होताहै १०१ ॥

अथ दिव्यप्रमाणापेक्षायांतुलाधारणविधिमुखेनधटप्रकारप्रदर्शनोनामसप्तत्रिंशःपरिच्छेदः ३७ ॥

इस सैंतीसवें परिच्छेदमें धटनामक दिव्यप्रकारको तुलाधारण विधिके द्वाराकथन करतेहैं कि इसरीतिसे वर्त्तावा उसका होना चाहिये ॥

तुलाधारणविद्वद्भिरभियुक्तस्तुलाश्रितः। प्रतिमानसमीभूतोरेखांकृत्वाऽवतारितः १०२ ॥
त्वंतुलेसत्यधामासिपुरादेवैर्विनिर्मिता। ततस्सत्यंवदकल्याणिसंशयान्मांविमोचय १०३ ॥
यद्यस्मिपापकृन्मातस्ततोमांत्वमधोनय। शुद्धश्चेद्गमयोर्ध्वंमांतुलामित्यभिमंत्रयेत् १०४॥

ऐ०—त्रयाणांसह-तुलानाम तखरी तराजूको बांटोंसहित बनाने या तोलनेमें विद्वान् ऐसे सुनार या कसेरे आदि तोला पुरुषों करके वह कलंकी जो मुद्दई या मुदआअलेह कोई तुलाकरनेपर समुद्यत हुआहो पहिले तुलापर बैठाराजाय और दूसरे पल्लापर मट्टी आदि कोई धातु या उपधातु जो उसके प्रतिमान बराबर तोलकर होजावै तब जिसपल्लामें वहबैठाहो या खड़ाहो तिसमें एकरेखा चिह्न खड़ियामट्टीसेकरिकै तुलासे उतारिलिया जावै फिर वह तुलाके सन्मुख खड़ा होकर हाथजोड़ इन मंत्रोंसे प्रार्थनाकरै जो अगले दो श्लोकोंमें कहतेहैं-१०२-हे तुले! तू सत्यका स्थानहै तुझको सृष्टिकेप्रारम्भमें ब्रह्माआदि देवताओंने उत्पन्न कियाहै हे कल्याणि! इसहेतुसे तू सत्य कहिदे अर्थात् इस संदिग्ध वार्ताका यथार्थ रूप प्रकट करदे और मुझको इस संशय से छुडायदे १०३ हे मातः। यदि मैं पापकारी अर्थात असत्यवादी होऊँ तो तू

मुझे पल्लासहित नीचाकरदे और जो मैं सच्चा होउँ तौ मुझको ऊंचाकर जिस्से सब का संदेह दूरहो और मेरा मुँह उजियालाहो इसप्रकार तुलाको अभिमंत्रितकरै १०४॥

अधि०-त्रयाणांसह-खड़िया मट्टीसे रेखा चिह्न करना जो ऊपर कहागया तिसका सिद्धांत केवल यही है कि जिसजगह पैरोंको जोड़कर कलंकी खड़ाहुआहो उसी जगह रेखाचिह्न इसनिमित्तसे करदेना चाहिये कि जब दुसराकर चढ़ायाजाय तौ भी उसी स्थलपर खड़ा हो जिस्से तोलमें कुछ अंतर न पड़जाय-अन्यस्मृतियोंमें प्राड्विवाकोंके लिये भी उसप्रकारके मंत्रोंकाचर्चा लिखाहै जो उससमयपर तुला सन्मुख प्राड्विवाक उच्चारण करै तिनका व्यौरा आगे इसी अधिकोक्तिमें यथा स्थान कहाजायगा परन्तु जो मंत्र इसमें ऊपर वर्णन होचुके सो केवल दिव्यकारीसेही संबंधितहैं-जय पराजयके निमित्तमें कोई वाक्य इसलिये जुदानहीं कहाकि ऊर्ध्वोक्त मंत्रके स्वरूपसे ही जय पराजय का लक्षण पायागया-तुलाका निर्माण करना और तुलापर दुसराकर चढ़ाना यह दोनों बात भी ऊपर के पाठसे संसिद्ध हैं क्योंकि जब तुलापर चढ़ाना कहा तौ अवश्यही पहिले तुलाका बनाना पायागया और तुलासे उतरे पीछे मंत्रोंसे प्रार्थनाहुई तो दुसराकर चढ़नाभी आपही समुझागया इसलिये योगीश्वरने कुछनहींकहा-परन्तु-पितामह और नारदआदिनेउसकोभीस्पष्टवर्णनकियाहै-तद्यथा-(छित्वातुयज्ञियंवृक्षंयूपवन्मन्त्रपूर्वकम्। प्रणम्यलोकपालेभ्यस्तुलाकार्या मनीषिभिः॥ मंत्रःसौम्योवानस्पत्यच्छेदनेजप्यएवच। चतुरस्रातुलाकार्या दृढाऋज्वीतथैवच॥ कटकानिचदेयानित्रिषुस्थानेषुचार्थवत्। चतुर्हस्तातुलाकार्यापादौचोपरितत्समौ॥ प्रान्तरंतुतयोर्हस्तौभवेदध्यर्द्धएववा। हस्तद्वयंनिधेयन्तु पादयोरुभयोरपि) (इनकेशेषश्लोक नीचेफिरभीलिखेजायँगे)अर्थात्-यूपवालेमंत्रसे यज्ञीयवृक्षकोकाटै किन्तुवड़कावृक्ष या औरकोईवृक्षजो वहुधायज्ञोंमें कामआताहो तिसकोउसीमंत्रसेकाटै जो यज्ञोंमें यूपके निमित्तसेकाटनेपर वैदिकमंत्रपढ़ाजाताहै (यूपनामउसस्तम्भकोकहतेहैं जोयागसमाप्तहोनेपरससमाप्तिकासूचक चिह्नमानिकर खम्भगाड़ाजाताहै) (यद्वाविजयस्तम्भकोभी यूपकहाकरतेहैं) उक्तवृक्षकोकाटै पीछे लोकपालोंको प्रणामकरिकै वुद्धिमान् मनुष्य उसतुलाकोवनावैं और वनातेसमयउसवृक्षके टुकड़ाटुकड़ाकरनेमें (सौम्यमंत्र) अर्थात् चंद्रमाकामंत्र वारम्वारजपतेजानाउचितहै और उस तुलाकी डंडी चौकोरहो किंतु गोलानहीं और (दृढ़ा) नाम पुष्टपोढ़ी किंतु इतनीमोटीहो जिसके टूटनेकी चिंता शेष न रहै और (ऋज्वी) नाम सूधा किंतु टेढ़ीनहीं वरन सर्वथा एकसारहो जिस्से तोलमें कुछ एर फेर न होसके सिद्धांत यह कि माप तोलके खरादपर सुधारीजाय और लोहेके तीनकड़े चिरैयादार टेढ़ेकाँटकेसमान उसडंडीके आदि अंत मध्य तीनोंस्थानमें प्रयोजनके अनुरूपलगायेजायँ पर आदिअंत दोनोंओरके दो कड़े परस्पर तोल

में बराबरहों और वह डंडी चारहाथलंबी करनीचाहिये और उस डंडीकेही समान चारहाथलंबे दोपायेभी बनानेचाहिये पर यह चारहाथकालंबाव उनका धरतीसे ऊपरखड़ाहोनाचाहिये किंतु इस्से अधिक दोहाथधरतीकेनीचे उनमें निधेयभी गड़िजाने योग्य कुछ स्थूलहोनाचाहिये और दोनोंपादोंके गाड़नेमें दोहाथ या डेढ़हाथकाअंतर हो-ध्यानकरनाचाहिये कि जब दोनोंपायोंके बीचमें दोहाथ या डेढ़हाथका (प्रांतर) होनाकहागया तौ अवश्यही दोनोंपायोंका ऊपरलाधुराभी दोहाथ या डेढ़हाथकालंबा होनाचाहिये जिसमें वह डंडीटाँगीजायगी परंतु यह निश्चयजानो कि वह ऊपरलाधुरा अर्थात् बलैंड़ा दो डेढ़हाथकालंबा न होसकैगा बरनउसडंडीकेही समान चारहाथका लंबाहोना उसकाभी उचितहै क्योंकि इसबातका सिद्धांत अब निचलेआशयसे जाना जायगा और यहभीध्यानकरना चाहिये कि जिनश्लोकोंका यहअर्थ लिखाजाताहै वे श्लोकभी पितामह और नारदआदि महर्षियोंकेकहेहुये अभी ऊपर लिखचुकेहैं उनमें कहीं इसधुरेका चर्चातक नहींदेख परता है-यद्यपि इसबार्ताको दृढ़करनेके निमित्तसे मिताक्षराकी चारपुस्तक एकसाथ मिलाईगईं उनचारोंमें एकहीपाठ पायागया किन्तु किसीमेंभी धुराका चर्चा नहींपाया फिर उसके लंबावका परिमाण क्योंकर मानाजाय तथापि यह विश्वास करना अनुचितहै कि इसतुलामें धुराका अभावहै क्योंकि प्रथम तौयह विश्वास प्रकृत कर्मसे असंगतहै दूसरे इसधुराका चर्चाभी आगेबढ़कर अन्य प्रसंगसे आवेगा उस्से धुराका होनातौ अवश्यभाव निश्चितहै परवहांभी इसकेलंबावका परिमाण नहीं पाया जासक्ता केवल अत्रोक्त प्रांतरके अनुकूल दो डेढ़हाथका लंबाधुरा समुझा गया सोभी एक निम्नोक्त विशेष प्रक्रियासे विरोध पाताहै इसलिये सर्वथा निश्चितहै कि वह ऊपरला अक्षभी चारहाथकालंबाहोनाचाहिये-अथविशेष प्रक्रिया-यथा-(तोरणेचतथाकार्येपार्श्वयोरुभयोरपि । घटादुच्चतरेस्यातांनित्यंदशभिरंगुलैः॥ अवलम्बौचकर्त्तव्यौतोरणाभ्यामधोमुखौ। मृन्मयौसूत्रसंबद्धौघटमस्तकचुम्बिनौ) इनके शेष श्लोक नीचे फिरभी लिखेजायँगे)-अर्थात्-जब दो डेढ़हाथकेअंतरसे दोनोंपाये गाड़ेजायँ और उनके ऊपरचारहाथकालम्बा(अक्ष)नाम धुराभी रक्खाजाय तब उसकेदोनोंओर पार्श्वभागमें दो तोरण करनेचाहिये (तोरण) अर्थात् कंधरा कुछ कैंचीकेआकारसे छोटी दो लकड़ियोंकीबनाकर ऊपरले धुराके दोनोंछोरपर गाड़िदेनी चाहिये सो उसधुराके वहछोर समुझेचाहिये जो दोनों खड़ेपादोंमे एकएकहाथबाहर को निकलते रहजायँगे और यह दोनों तोरणभी धुरा के दोनोंछोरोंपर)ऐसीयुक्ति से गाड़नेचाहिये जो सदैव डंडीसे दशअंगुल ऊंचेरहा करें और ऐसीयुक्ति के सोचकर बनाये जायँ जिनमें एकहाथ या पौनहाथ की लंबी डोरी बँधकर धुराके छोरों में बनी हुई कैंची के बीचों बीच निकलती हुई डंडी के मस्तकपर जा लटके सो इन दोनों

डोरियों का प्रयोजन आगे अब कहते हैं कि) तिस पीछे उन्हीं दोनों तोरणों से डोरी बाँधकर दो अवलंब मट्टी के बनेहुये जिनका नीचे को मुखहो उसी डोरीमें बाँधकर दोनोंओर ऐसीयुक्तिसे लटकायेजायँ जो सदैव डंडी का मस्तकचूमतेरहैं (अवलंब) अर्थात् मट्टीके दोगोले जिनके बीचौ बीच छिद्रहो कुम्हारसे बनवाकर आवामें पकायेजायँ और ऐसागुणी कुम्हार बनावे जो परस्पर दोनोंतौल औरनाप और आकारमेंभी तुल्यहों-कुम्हारके अभावमें पत्थरकेभी खरादसे बनसक्तेहैं और ऊर्ध्वोक्तदश वारह अंगुलकी लंबीसूत्र डोरीमें ऐसीसीध बांधकर लटकायेजायँ जो परस्पर दोनों एकसूत आकारलटकैं जिनमें कागजकी मुटाईभरभी ऊँचनीचका बट्टानहो और डंडी केछोरदोनों ऊपरलेभाग किंचित् २ स्पर्शकरनेपावें किंतु डंडीपर सहारा उनका नहो और दोनोंकी तुल्यता समुझी जानेकेलिये यह युक्तिहै कि पहले डंडीको लटकाकर सीधीथँभे और ऊपर उसके पानीके वड़ेवड़े बूंदडालै जबतक एकओरको पानी ढल जावेतो वरावरनहींसमुझै जवडंडीपर पानीथँभजाय तवडंडीसीधी समुझकर तत्काल दोनों अवलंबकी डोरी एकसी करदीजावे यह उसतुलाकी शुद्धि या अशुद्धि समझी जानेका प्रकारहै-ध्यान करना चाहिये कि यदि ऊपरला धुरा चारहाथका लंबा नहीं कियाजाता तो उसके दोनों ओरके तोरण भी दोही डेढ़ हाथके अन्तरसे लगायेजाते तो फिर दोनों अवलंब डंडीके छोरोंतक नहीं पहुँचसक्ते-जो कि दोनों पायोंके बीच दोहीडेढ़हाथकाअन्तर नियतकियागया सो इसलियेहै कि दोनोंओरकेपलड़े आकर पायोंसे न भिड़नेपावें-एकवार्त्ता औरभी अनुक्तइसमें ज्ञातव्यहै कि वह दोनोंपाये जो धरती में खड़े कियेजाते हैं सो निपट सीधे नहीं रहसक्ते वरन एकओरको झुँकतेहुये इतना ढालदेकर गाड़ेजायँगे कि जिनपर ऊपरला धुरा रखने और धुराके बीचोबीच लगेहुये कड़ेमें डंडीकाविचलाकांटा जोड़कर डंडीलटकानेसे डंडी दोनोंपायोंमें स्पर्श न करनेपावै किन्तु यदिपाये सीधेगड़ेंगे तो निःसंदेह डंडी पायोंसे भिड़जायगी इसलिये पाये दोनों झुकतेहुये गाड़िकर उनकी कंधियोंपर ऊपरला धुरा अच्छी दृढ़ताकेसाथ जमादेवे और उसधुराके मस्तकपर सन्मुख बीचोंबीच गोलकड़ेदार एकलोहेकापोढ़ा कुंडाइसप्रकारसेजड़िदेनाचाहिये जैसा केवाड़ोंकीचौकठिमें ऊपरजड़ाजाताहै इसीकड़े मेंडंडीकाविचला काँटाजोडाजायगा-यहाँतकदिव्यतुला तो वनिचुकी अवकलङ्कीकेप्रथमनो लेजानेका प्रकारकहाजाताहै-यथा (प्राङ्मुखोनिश्चलःकार्यःशुचौदेशेधटस्तथा। शिक्यद्वयेसमासज्यपार्श्वयोरुभयोरपि॥ प्राङ्मुखान्कल्पयेद्दर्भान् शिक्ययोरुभयोरपि। पश्चिमेतोलयेत्कर्तृनन्यस्मिन्मृत्तिकांशुभाम्॥ पिटकम्पूरयेत्तस्मिन्निष्टकायावपांशुभिः (अत्रचमृत्तिकेष्टकाग्रावपांशूनांविकल्पः) (परीक्षकानियोक्तव्यास्तुलामानविशारदाः॥ वणिजोहेमकाराश्चकांस्यकारास्तथैवच। कार्यःपरीक्षकैर्नित्यमवलंबसमोधटः॥ उदकञ्च

टस्योपरिपण्डितैः। यस्मिन्नप्लवतेतोयंसविज्ञेयःसमोघटः॥ तोलयित्वानरंपूर्वं मवतार्यतु। घटंतुकारयेन्नित्यं पताकाध्वजशोभितम्)(इनकेशेषश्लोकनीचेफिर भीलिखेजायँगे) अर्थात्-जिसतुलाका बनाना ऊपरकहागया उसको पूर्वमुखस्थापित ,रै और पवित्रस्थानमें ऐसीनिश्चलगाड़ै जो कहींसेभी हलतीचलतीनहो तिसपीछे दोनोंओर दो सींकें अच्छीयुक्तिसे बाँधकरदोनों शिक्यों के भीतरप्राड्विवाक अपने हाथसेकुशाबिछावै तिनकाअग्रभागपूर्वकोरक्खे तिसपीछे वे कर्त्तालोग जिसकेनिमित्त में दिव्य क्रियाठहरीहो तिनको पश्चिमओरके पल्लेमें बैठारै और दूसरेपल्लामेंपवित्र माटीरक्खे यद्वाउसीपल्लाका(पिटक)नामटोकरा आदिजो कुछपात्रहो तिसकोईंटोंसे या कङ्करपत्थरसे या धूलिसेहीभरदेवे(भरिदेनायहकि जितनेमें उसमनुष्यकी बराबरतोल होसके उतनाभरै और मट्टी या ईंट या कङ्कड़ या रेत इनमेंसे कोईएकवस्तु जो शुद्ध हाथआवै सो लेनीचाहिये यहविकल्प जतलायाहै कुछ सभी चीज़ों से अपेक्षा नहीं) (किसीनेइसवार्त्ताकाउलथाकहींऐसाभीकियाहै कि तोलनेमें केवलएकपवित्रमाटीगिनी और यह लिखाहै किउसपात्रमें जोछेदहों तिनको ईंटोंकी सुरखी से या कङ्कड़ोंसे या मिट्टीसे बन्दकरै सोयहअर्थव्यर्थहै किंतुसमुझनेकीबातहै किआचार्यों को ऐसीतुच्छ और असंगतविधि कहनेसे क्या अपेक्षाथी इस्सेतौ यहीसीधीबातकहिदेते कि वहपात्र जिसमेंमट्टीप्रतिमानकरनेकोभरीजाय बिनाछिद्रोंकाहोनाचाहिये या टोकराहो तौ लिपा हुआहोनाचाहिये अचंभेकीबातहै कि जिसराजद्वारमें इतनेबड़ेउपायकीरचनारचीजा- यगी तिसमेंटूटेफूटेपात्रलाकर तुलापरचढ़ायेजायँगे दूसरायहअचंभाहै किजबईंटोंकी सुरखीकूटकर भरीजायगी तब छिद्रपूरेहोसकेंगे या कङ्कड़ोंसेरूँधिसकेंगे और कोईव- स्तुवस्त्रादिक ऐसीनहींथी जिस्सेछिद्ररूँधे जासक्ते इसकेसिवाय जिसमट्टीसे वहतोल होगी क्यावही मट्टीबँधीहुई डलेदारनमिलसकेगी जो छिद्रोंद्वाराभरनेनहींपावै अथवा जोऐसाही रेतीकादेशहो जहाँऐसीमट्टी हाथ न आतीहो तहाँक्यारेतीको थैलामेंबाँध करन धरसक्ते परन्तु यह बातें सबएक ओर प्रथमतौ वहउलथक लिखताहै कि ईंटों की सुरखी से-भलाजिन छिद्रों से प्रतिमानवाली मट्टी भरजायगी तिनमें कुटीहुई ईंटों की सुरखी कैसे थँभी रहेगी जिस्से छेद बन्द होजावें और (पांशु) शब्द जोधूलि अ- थवा गोमयकी खातिकावाचक है तिसको उसने मिट्टी लिखापर सच्ची यहबात है कि श्लोकों का यथार्थ भाव उसकी समुझ में नहीं आया इस्मे लाचारथा) अब अपने प्रकृत वर्णन को ध्यान करो कि ऊर्ध्वोक्त रीति से तुलापर बैठारे पीछे परीक्षक लोग भी नियुक्त करने चाहिये जो तुलाकी मान विधिमें विशारदहों अर्थात् बनियां लोग और सुनार और कसेरे यह सब उसी जगह उपस्थितकरने चाहिये और इनपरी- क्षक लोगोंको इसप्रकारसे परीक्षाकरनी चाहिये कि जिस समयउसतुलाकेदोनोंपल्ला

तोलेजायँ तब दोनोंओरसे डंडीको पूर्वोक्त दोनों अवलंबोंके समान करिलेवें अर्थात् जो पुरुषवाले पल्लाकी डंडी अपने अवलंबको छोड़कर कुछ नीचीदेख परतीहो तौ मट्टीवाले पल्लामें किंचित्मट्टी और भी चढ़ादेवें जिस्सेदोनों ओर तुल्यहोजावें और जो मट्टीवाले पल्लाकीडंडीअपने अवलंबको छोड़कर कुछनीचीदेख परतीहो तौउसमें से थोड़ीमट्टीनिकालकरदोनों अवलंबोंके तुल्यकरलेवें और पंडितोंकोयहकरनाचाहिये कि दोनों अवलंबोंके तुल्यहोजानेपर धटके ऊपर जलकेबड़े २ बूँदछोड़ें जिसडंडीपर छोड़ाहुआ जल किसीतरफ़को बहिकरढलके नहीं उसडंडीको ठीक २ बराबरसमुझे सिद्धांत इसका यह कि जबतक डंडीपर छोड़ाहुआ जल किसीएकओरको ढलकतारहे तब तक उस प्रतिमानवाली मट्टीके पल्लाको हलकाभारी करनेकाअधिकारहै अर्थात् कार्यसिद्धिकेअनुकूल कुछमट्टीउसमेंसेनिकालें या अधिकचढ़ावेंइसरीतिसे डंडीकोबराबरकरलेवें किंतु केवल अवलंबोंकेही विश्वासपर बराबरनहीं समुझै बल्कि अवलंबोंको भी जलकेहीआधीन बराबरकरलेवें इसरीतिसे उसमनुष्यको पहिलेठीक २ तोलिकर उतारिलेवें तिसपीछे उसतुलाको शोभाके निमित्त में ध्वजापताका आदिसे अलंकृत करें यद्वा इस तोलनेसे पहिलेही अलंकृतकरिलेवें तौ कुछ निषेधनहीं बल्कि (नित्यं) शब्दकी विशेषतासे अभिप्राय इसकायही है कि उस तुलाकाअलंकृत होनायोग्य है कुछ पहिले पीछेके नियमसे अपेक्षा नहीं-परन्तु-इसमें यहभी ध्यानकरना चाहिये कि यद्यपि धटको अलंकृत करना कहा और धटनामहै डंडीकातथापिडंडीके आधार भूत ऊपरले धुरापरपताका आदिका लगाना उचितहै क्योंकि डंडीपर लगानेसे यदि किसीएक पक्ष में हलकीभारी झंडीलागिजायगी तौ उसडंडीसे तोलनेमें कुछ फेरपर सक्ताहै अथवा जो डंडीमें लगाईजायँ तौ फिर झंडियांभीऐसी तोलनापकी प्रक्रिया से बनानीऔर लगानी चाहिये जिस्से तौलमेंबट्टा आनेका संदेह शेषनरहै-यह विधि मनुष्यको पहिलीबार तौलनेमध्ये कहीगई अब नीचेके श्लोकोंसे द्वितीयबार चढ़ने की विधिकहीजायगी जिसमें चढ़नेसे पहिले धटकीपूजा विधिकी आवश्यक है सो कहतेहैं-यथा (ततआवाहयेद्देवान्विधिनानेनमंत्रवित्। वादित्रतूर्यघोषैश्चगंधमाल्यानुलेपनैः ॥ प्राङ्मुखःप्रांजलिर्भूत्वाप्राड्विवाकस्ततोवदेत्। एह्येहिभगवन्धर्मअस्मिन्दिव्येसमाविश ॥ सहितोलोकपालैश्चवस्वादित्यमरुद्गणैः। आवाह्यतुधटेधर्मंपश्चादंगानिविन्यसेत् ॥ इंद्रंपूर्वेतुसंस्थाप्यप्रेतेशंदक्षिणेतथा। वरुणंपश्चिमेभागेकुबेरंचोत्तरे तथा॥अग्न्यादिलोकपालांश्चकोणभागेपुविन्यसेत्। इंद्रःपीतोयमःश्यामोवरुणःस्फटिकप्रभः ॥ कुबेरस्तुसुवर्णाभोवह्निश्चापिसुवर्णभः। तथैवनिर्ऋतिःश्यामोवायुर्धूम्रःप्रशस्यते ॥ ईशानस्तुभवेद्रक्तःएवंध्यायेत्क्रमादिमान् (इनकेशेपठलोक नीचेलिख जायँगे) अर्थात्-दिव्यकारी मनुष्यको एकबार ठीकठीक तोलिकर उतारनेपीछे कर्मकांडकेमंत्रों

जाननेवाला विद्वान् इसविधिसे देवताओं का आवाहन करै कि बाजन तूर्यघोष बजातेहुये गंध सुगंध पुष्पमाला अनुलेपन आदि पूजनवस्तु हाथ में लेकर हाथजोड़ेहुये पूर्वमुख होकर यह अग्रोक्तमंत्र बोले कि-हे भगवन् धर्मदेव आवो यहां आवो इस दिव्य प्रमाणकी क्रियामें तुम लोकपालों सहित वसुओं आदित्यों सहित मरुद्गणों सहित आयकर प्रवेशकरो यहमंत्र पढ़िकर हाथकी डंडीके बिचले काँटेपर चढ़ादेवै इसप्रकार धर्मराजको तुलामें स्थापित किये अंगोंकोभीआवाहन और स्थापनकरै-तहाँ-इन्द्रको पूर्वदिशामें स्थापै यम-दक्षिणमें-वरुणको पश्चिम भागमें-कुबेरको उत्तरमें-ऐसेही अग्नि आदिलोक-लोंको चारोंकोण भागमें स्थापै अर्थात् अग्निको आग्नेय कोणमें-निर्ऋतिको नैर्ऋ-में वायुको वायव्यकोणमें-ईशानको ईशान कोणमेंस्थापै फिर इनसबके स्वरू-पका ध्यानकरै अर्थात्-इन्द्रका पीतरूप ध्यानकरै-यमका श्यामरूप-वरुणका स्फटिक के समान श्वेतवर्ण-कुबेरकी सोनेकीसी आभा-अग्निभी सुवर्ण कीसी आभा—निर्ऋति श्यामरूप-वायुधूम्रवर्ण-ईशानरक्तवर्ण-इसीक्रमसे भिन्न२इनकाध्यान अंजली में पुष्पादिक लेकरकरै-अब नीचेके श्लोकोंसे वसू और आदित्योंका आवाहन और स्थापन कहतेहैं-यथा(इंद्रस्यदक्षिणेपार्श्वेवसूनाराधयेद्बुधः। धरोध्रुवस्तथासोमआपश्चैवानिलोऽनलः॥ प्रत्यूषश्चप्रभातश्चवसवोऽष्टौप्रकीर्तिताः। देवेशेशानयोर्मध्येआदित्यानांतथायनम्॥ धाताऽर्यमाचमित्रश्चवरुणोंऽशोभगस्तथा। इंद्रोविवस्वान्पूषाच पर्जन्योदशमःस्मृतः॥ ततस्त्वष्टाततोविष्णुरजघन्योऽजघन्यजः। इत्येतेद्वादशादित्यानामभिःपरिकीर्तिताः) (इनके शेषश्लोक नीचे लिखेजायँगे) अर्थात् पहिले जहाँ इन्द्रकास्थापन होचुकाहो उसके दाहिने ओर वसुओंका आराधन पंडित करैअर्थात् धर १ ध्रुव २ सोम ३ आपः ४ अनिल ५ अनल ६ प्रत्यूष ७ प्रभात ८ इनआठ वसुओंको इन्द्रके दक्षिण पार्श्वमें स्थापित करै इन्द्र और ईशान इन दोनोंके बीचमें आदित्योंका स्थापन करै अर्थात् धाता १ अर्यमा २ मित्र ३ वरुण४ अंश ५ भग६ इन्द्र ७ विवस्वान् ८ पूषा ९ पर्जन्य १० त्वष्टा ११ अजघन्या जघन्यज विष्णु १२ येद्वादश नामों के आदित्यहैं तिनको इन्द्रऔर ईशानके बीच में स्थापै-अब नीचे के श्लोकोंसे रुद्रों तथा मातृयों की स्थापनाकहते हैं-यथा (अग्नेःपश्चिमभागेतुरुद्राणामयनंविदुः। वीरभद्रश्चशंभुश्चगिरीशश्चमहायशाः॥ अजेकपादहिर्बुध्नःपिनाकीचापराजितः। भुवनाधीश्वरश्चैवकपालीचविशांपतिः॥स्थाणुर्भवश्चभगवान्रुद्रास्त्वेकादशस्मृताः॥प्रेतेशरक्षोमध्येतुमातृस्थानंप्रकल्पयेत्॥ ब्राह्मीमाहेश्वरीचैवकौमारीवैष्णवी तथा।वाराहीचैवमाहेंद्रीचामुंडागणसंयुताः) (इनकेशेषश्लोकनीचेकहेजायँगे)अर्थात—जहां अग्निकास्थापन होचुकाहोतिसकेपश्चिमओरग्यारहरुद्रोंकास्थानजानो-वीरभद्र १

शम्भु २ गिरीश जो महायशा विख्यातहै ३ अजैकपात् ४ अहिर्बुध्न ५ पिनाकी ६ अपराजित ७ भुवनाधीश्वर ८ कपाली जोविशाम्पति नामलोकोंका पतिविख्यातहै ९ स्थाणु १० भव जो अतिशय ऐश्वर्य शक्तिवान् है ११ ये एकादश रुद्रकहाते हैं तिनको अग्निके पश्चिम भागमेंस्थापै-ऐसेही यमराज और निर्ऋति इनदोनोंकेबीचमें मातृयेंकास्थानकील्पतकैर-ब्राह्मी १ माहेश्वरी २ कौमारी ३ वैष्णवी ४ वाराही ५ माहेन्द्री ६ चामुण्डा ७ ये सातो अपने २ गणों सहित स्थापितकरै-अबनिचले श्लोकोंसे गणेश और मरुतों औरदुर्गाकी स्थापनाकहतेहैं-यथा(निर्ऋतेरुत्तरेभागेगणेशायतनंविदुः। वरुणस्योत्तरेभागेमरुतांस्थानमुच्यते॥ पवनःस्पर्शनोवायुरनिलोमारुतस्तथा। प्राणः प्राणेशजीवौचमरुतोऽष्टौप्रकीर्तिताः॥ धटस्योत्तरभागेतुदुर्गामावाहयेद्बुधः। एतासां देवतानांतुस्वनाम्नापूजनंविदुः) (इनश्लोकोंका शेष नीचे और कहाजायगा) अर्थात् जहाँनैर्ऋत्यकोण में निर्ऋति देवताका स्थापनहोचुका है उसकेउत्तरभागमें गणेशका स्थानजानो-औरवरुणके उत्तरभागमें मरुतोंका स्थान कहाताहै-पवन १ स्पर्शन २ वायु ३ अनिल ४ मारुत ५ प्राण ६ प्राणेश ७ जीव ८ यहआठमरुतोंकागणकहाताहै तुलाके उत्तरभागमें दुर्गाका आवाहन वा स्थापन पंडितकरै- ये सब देवता जो स्थापित कियेगये तिनका आवाहन या स्थापन या पूजनका प्रकार जो कुछ होताहै सो सब उनकेनाम सेहीजानौ अर्थात् जो जो उनकानामहै सोई पूजनका मंत्रहै परचतुर्थ्यंतकरनेसे मंत्रत्वकोपहुंचताहै तिसकी विधि नीचे लिखीहै-(अथानुक्रमः)-अब निचले श्लोकोंसे सर्वशेषविधि वर्णनकरते हैं-यथा (भूषावसानंधर्मायदत्वाचार्घ्यादिकंक्रमात्। अर्घ्यादिपश्चादंगानांभूपांतमुपकल्पयेत्॥ गंधादिकांनैवेद्यांतांपरिचर्यांप्रकल्पयेत्-अत्र च-तुलांपताकाध्वजालंकृतांविधायतस्यामेह्येहीतिमंत्रेण धर्ममावाह्यधर्मायार्घ्यंकल्पयामिनम इतिनमइत्यादिनाप्रयोगेणार्घ्यपाद्याचमनीयस्नानवस्त्रयज्ञोपवीताचमनीयमुकुटकटकादिभूषांतंदत्वा इन्द्रादीनांदुर्गांतानांप्रणवाद्यैः स्वनामभिश्चतुर्थ्यंतैर्नमोंतैरर्घ्यादिभूपांतंपदार्थानुसमयेनदत्त्वाधर्मायगन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यानिदत्त्वा इन्द्रादीनांगंधादीनिपूर्ववद्दद्यात्)अर्थात्-धर्मकेलिये अर्घकोआदिलेकर भूषणदानकेअंततांई यथाक्रमसे देकर पीछे धर्मकेअङ्गोंकोभी अर्घ्यआदिभूषाकेअन्ततक उपकल्पितकरै तिसपीछेइन्हीं सबकेनिमित्तमें गन्धकोंको आदिलेकर नैवेद्यपर्यंत जोपरिचर्याहोतीहै सोप्रकल्पितकरै (यह समस्तपूजाकास्थूलक्रमदर्शाया) इसकाव्यौरेवारयहभावार्थहै किपूर्वोक्तरीतिसे प्रथमतुलाको पताका और ध्वजाओं से अलंकृतकरिके उसीतुलामें धर्मकाआवाहनइस पूर्वोक्तमंत्रसे करैकि(एह्येहि भगवन्धर्मह्यस्मिन्दिव्येसमाविश। सहितोलोकपालैश्च वस्वादित्यमरुद्गणैः) फिरइन्हींधर्मदेवकेनिमित्तमें पहिलेअर्घ १ पाद्य २ आचमनीय ३ मधुपर्क ४ आचमनीय ५ स्नान ६ वस्त्र ७ यज्ञोपवीत ८ आचमनीय ९ मुकुटकटक

१० यहसबचढ़ावै सोइनपदार्थोंके चढ़ानेकायहमंत्रहै यथा (धर्माय
:धर्मायपाद्यंसमर्पयामिनमः) इत्यादि प्रयोगरीतिसे सभीअत्रोक्त
पीछेइन्द्रादिक दुर्गापर्यंतजोधर्मराजके अङ्गभूतदेवताऊपर आवाह-
भीअर्घ्यादिभूषान्त पूजाकल्पितकरैअर्थात्पहिलेअर्घ्य १पाद्य २
३ मधुपर्क४ आचमनीय५ स्नान६ वस्त्र ७ यज्ञोपवीत ८ आचमनीय ९
और कटकनाम कड़ेआदि भूषणपर्यंत १० यहसबचढ़ावै सो इनपदार्थोंकेचढ़ाने
कामंत्र सबदेवताओंके अपनेअपनेनामोंसहित ओंकारआदिमें और अन्तमें चतुर्थी विभक्तिका चिह्न देकर तिसके अन्त में नमः शब्द जोड़कर उच्चारण करै और उस पदार्थका भी योग उसी मन्त्रमें करिलेवै जैसे (इन्द्रायनमःअर्घ्यंकल्पयामि) (इन्द्राय नमःपाद्यंकल्पयामि) इत्यादि प्रकारसे सभी देवताओं को अर्घ्यादि भूषापर्यंत सब चढ़ायकर तिस पीछे धर्म देवके निमित्तमें गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य यह सब उसी पूर्वोक्तरीतिके मन्त्रसे चढ़ावै-फिर-धर्मदेवके अंगभूत पूर्वोक्त सब इन्द्रादि देवताओं कोभी गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य यह सब उसी पूर्व्वोक्त रीतिके मन्त्रसे चढ़ावै-गन्ध और पुष्प यह दोनों वस्तु तुलाकी पूजामें रक्तवर्णके मँगावै-यथाहनारदः (रक्तैर्गन्धैश्चमाल्यैश्चदध्यपूपाक्षतादिभिः । अर्चयेत्तुघटंपूर्व्वंततःशिष्टांस्तुपूजयेत्) अर्त्थात्—लालगन्ध और लालफूल मालाओं से और अपूप अक्षत आदि वस्तुओं से प्रथम घटकी पूजा करै फिर और और देवताओं को पूजै (घट के ऊपर लाल गन्ध या पुष्पमाला के उपलक्षण से पूर्व्वोक्त वस्त्रादिक भी रक्तवर्ण के चढ़ावै) व अन्य इन्द्रादिक देवताओं की पूजामें पदार्थोंका वर्ण भेद कुछ विशेषता से नहीं कहा इसलिये लाल पीले आदि जैसे प्राप्तहोसकैं तैसे सभी चढ़ाने चाहियें यह पूजाका अनुक्रम कथनहुआ सो यह सबपूजनविधि प्राड्विवाक आपकरै यह शास्त्रकी आज्ञाहै—तथाच (प्राड्विवाकस्ततोविप्रोवेदवेदांगपारगः । श्रुतवृत्तोपसंपन्नःशांतचित्तोविमत्सरः ॥ सत्यसंधःशुचिर्दक्षः सर्वप्राणिहितेरतः । उपोषितःशुद्धवासाःकृतदंतानुधावनः ॥ सर्वासांदेवतानांचपूजांकुर्याद्यथाविधि) अर्थात्-प्राड्विवाकजो जातित्वसे ब्राह्मणहो वेद और वेदांगोंके पारको पहुँचा हो श्रुति और स्मृति के अनुसार जिसका आचार हो शान्तचित्त हो मत्सरता से रहित हो सत्यप्रतिज्ञ हो शुद्ध अन्तःकरणहो यद्वा उपधा शुचि हो चतुर हो सर्व्वप्राणीमात्र के हितमें तत्पर हो ऐसा प्राड्विवाक उस दिन व्रती होकर दन्तधावन आदि नित्य क्रियायें साधन करिकै शुद्ध वस्त्र धारण करै और घटसंबंधी सब देवताओं की पूजा यथा विधिसे करै (प्राड्विवाक जातित्वसे ब्राह्मण हो इस आज्ञा का यह आशय है यदि प्राड्विवाक क्षत्रिय आदि हो तो उसकी ओरसे एक विद्वान ब्राह्मण आचार्य्य नियत होकर उसीके सन्मुख उसके

शम्भु २ गिरीश जो महायशा विख्यातहै ३ अजैकपात् ४ अहिर्बुध्न ५ पिनाकी ६ अपराजित ७ भुवनाधीश्वर ८ कपाली जोविशाम्पति नामलोकोंका पतिविख्यातहै ९ स्थाणु १० भव जो अतिशय ऐश्वर्य शक्तिवान् है ११ ये एकादश रुद्रकहाते हैं तिनको अग्निके पश्चिम भागमेंस्थापै-ऐसेही यमराज और निर्ऋति इनदोनोंकेबीचमें मातृयोंकास्थानकीलपतकरै-ब्राह्मी १ माहेश्वरी २ कौमारी ३ वैष्णवी ४ वाराही ५ माहेन्द्री ६ चामुण्डा ७ ये सातो अपने २ गणों सहित स्थापितकरै-अबनिचले श्लोकोंसे गणेश और मरुतों औरदुर्गाकी स्थापनाकहतेहैं-यथा(निर्ऋतेरुत्तरेभागेगणेशायतनंविदुः। वरुणस्योत्तरेभागेमरुतांस्थानमुच्यते॥ पवनःस्पर्शनोवायुरनिलोमारुतस्तथा। प्राणःप्राणेशजीवौचमरुतोऽष्टौप्रकीर्तिताः॥ धटस्योत्तरभागेतुदुर्गामावाहयेद्बुधः। एतासांदेवतानांतुस्वनाम्नापूजनंविदुः) (इनश्लोकोंका शेष नीचे और कहाजायगा) अर्थात् जहाँनैर्ऋत्यकोण में निर्ऋति देवताका स्थापनहोचुका है उसकेउत्तरभागमें गणेशका स्थानजानो-औरवरुणके उत्तरभागमें मरुतोंका स्थान कहाताहै-पवन १ स्पर्शन २ वायु ३ अनिल ४ मारुत ५ प्राण ६ प्राणेश ७ जीव ८ यहआठमरुतोंकागणकहाताहै तुलाके उत्तरभागमें दुर्गाका आवाहन वा स्थापन पंडितकरै- ये सब देवता जो स्थापित कियेगये तिनका आवाहन या स्थापन या पूजनका प्रकार जो कुछ होताहै सो सब उनकेनाम सेहीजानो अर्थात् जो जो उनकानामहै सोई पूजनका मंत्रहै परचतुर्थ्यंतकरनेसे मंत्रत्वकोपहुंचताहै तिसकी विधि नीचे लिखीहै-(अथानुक्रमः)-अब निचले श्लोकोंसे सर्वशेषविधि वर्णनकरते हैं-यथा (भूषावसानंधर्मायदत्त्वाचार्घ्यादिकंक्रमात्। अर्घ्यादिपश्चाद्दंगानांभूषांतमुपकल्पयेत्॥ गंधादिकांनैवेद्यांतांपरिचर्यांप्रकल्पयेत्-अत्र च-तुलांपताकाध्वजालंकृतांविधायतस्यामेह्येहीतिमंत्रेण धर्ममावाह्यधर्मायार्घ्यंकल्पयामिनम इतिनमइत्यादिनाप्रयोगेणार्घ्यपाद्याचमनीयस्नानवस्त्रयज्ञोपवीताचमनीयमुकुटकटकादिभूषांतंदत्वा इन्द्रादीनांदुर्गांतानांप्रणवाद्यैः स्वनामभिश्चतुर्थ्यंतैर्नमोंतैरर्घ्यादिभूषांतंपदार्थानुसमयेनदत्त्वाधर्मायगन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यानिदत्त्वाइन्द्रादीनांगंधादीनिपूर्ववद्दद्यात्)अर्थात्-धर्मकेलिये अर्घकोआदिलेकर भूषणदानकेअंततांई यथाक्रमसे देकर पीछे धर्मकेअङ्गोंकोभी अर्घ्यआदिभूषाकेअन्ततक उपकल्पितकरै तिसपीछेइन्हीं सबकेनिमित्तमें गन्धकोंको आदिलेकर नैवेद्यपर्यंत जोपरिचर्याहोतीहै सोप्रकल्पितकरै (यहसमस्तपूजाकास्थूलक्रमदर्शाया) इसकाव्यौरेवारयहभावार्थहै किपूर्वोक्तरीतिसे प्रथमतुलाको पताका और ध्वजाओंसे अलंकृतकरिकै उसीतुलामें धर्मकाआवाहनइस पूर्वोक्तमंत्रसेकरैकि(एह्येहि भगवन्धर्मह्यस्मिन्दिव्येसमाविश। सहितोलोकपालैश्च वस्वादित्यमरुद्गणैः) फिरउन्हींधर्मदेवकेनिमित्तमें पहिलेअर्घ १ पाद्य २ आचमनीय ३ मधुपर्क ४ आचमनीय ५ स्नान ६ वस्त्र ७ यज्ञोपवीत ८ आचमनीय ९ मुकुटकटक

आदिभूषणपर्यंत १० यहसबचढ़ावै सोइनपदार्थोंके चढ़ानेकायहमंत्रहै यथा (धर्माय अर्घ्यंकल्पयामिनमः धर्मायपाद्यंसमर्पयामिनमः) इत्यादि प्रयोगरीतिसे सभीअत्रोक्त वस्तुकल्पिताकिये पीछेइन्द्रादिक दुर्गापर्यंतजोधर्मराजके अङ्गभूतदेवताऊपर आवाहनकरनेकहेगयेतिनकोभी अर्घ्यादिभूषान्त पूजाकल्पितकरैअर्थात्पहिलेअर्घ्य १पाद्य २ आचमनीय ३ मधुपर्क४ आचमनीय५ स्नान६ वस्त्र ७ यज्ञोपवीत ८ आचमनीय ९ मुकुट और कटकनाम कड़ेआदि भूषणपर्यंत १० यहसबचढ़ावै सो इनपदार्थोंकेचढ़ाने कामंत्र सबदेवताओंके अपनेअपनेनामोंसहित ओंकारआदिमें और अन्तमें चतुर्थी विभक्तिका चिह्न देकर तिसके अन्त में नमः शब्द जोड़कर उच्चारण करै और उस पदार्थका भी योग उसी मन्त्रमें करिलेवे जैसे (इन्द्रायनमःअर्घ्यंकल्पयामि) (इन्द्राय नमःपाद्यंकल्पयामि) इत्यादि प्रकारसे सभी देवताओं को अर्घ्यादि भूषापर्यंत सब चढ़ायकर तिस पीछे धर्म देवके निमित्तमें गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य यह सब उसी पूर्वोक्तरीतिके मन्त्रसे चढ़ावै-फिर-धर्मदेवके अंगभूत पूर्वोक्त सब इन्द्रादि देवताओं कोभी गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य यह सब उसी पूर्व्वोक्त रीतिके मन्त्रसे चढ़ावै-गन्ध और पुष्प यह दोनों वस्तु तुलाकी पूजामें रक्तवर्णके मँगावै-यथाहनारदः (रक्तैर्गन्धैश्चमाल्यैश्चदध्यपूपाक्षतादिभिः । अर्चयेत्तुधटंपूर्व्वंततःशिष्टांस्तुपूजयेत्) अर्थात्—लालगन्ध और लालफूल मालाओं से और अपूप अक्षत आदि वस्तुओं से प्रथम धटकी पूजा करै फिर और और देवताओं को पूजै (धट के ऊपर लाल गन्ध या पुष्पमाला के उपलक्षण से पूर्व्वोक्त वस्त्रादिक भी रक्तवर्ण के चढ़ावै) व अन्य इन्द्रादिक देवताओं की पूजामें पदार्थोंका वर्ण भेद कुछ विशेषता से नहीं कहा इसलिये लाल पीले आदि जैसे प्राप्तहोसकें तैसे सभी चढ़ाने चाहिये यह पूजाका अनुक्रम कथनहुआ सो यह सवपूजनविधि प्राड्विवाक आपकरै यह शास्त्रकी आज्ञाहै—तथाच (प्राड्विवाकस्ततोविप्रोवेदवेदांगपारगः । श्रुतवृत्तोपसंपन्नःशांतचित्तोविमत्सरः ॥ सत्यसंधःशुचिर्दक्षः सर्वप्राणिहितेरतः । उपोषितःशुद्धवासाःकृतदंतानुधावनः ॥ सर्वासांदेवतानांचपूजांकुर्याद्यथाविधि) अर्थात्-प्राड्विवाकजो जातित्वसे ब्राह्मणहो वेद और वेदांगोंके पारको पहुँचा हो श्रुति और स्मृति के अनुसार जिसका आचार हो शान्तचित्त हो मत्सरता से रहित हो सत्यप्रतिज्ञ हो शुद्ध अन्तःकरणहो यद्वा उपधा शुचि हो चतुर हो सर्व्वप्राणीमात्र के हितमें तत्पर हो ऐसा प्राड्विवाक उस दिन व्रती होकर दन्तधावन आदि नित्य क्रियायें साधन करिके शुद्ध वस्त्र धारण करै और धटसंबंधी सब देवताओं की पूजा यथा विधिमें करै (प्राड्विवाक जातित्वमें ब्राह्मण हो इस आज्ञा का यह आशय है यदि प्राड्विवाक क्षत्रिय आदि हो तो उसकी ओरसे एक विद्वान ब्राह्मण आचार्य्य नियत होकर उसीके सन्मुख उसके

कर्त्तव्यों को करै (इसके सिवाय) ऋत्विक् लोग जो संख्यामें चारहों प्रत्येक धटकी चारों दिशा में बैठकर लौकिक अग्निमें होम करें-यथाह (चतुर्दिक्षुतथाहोमःकर्त्तव्योवेदपारगैः । आज्येनहविषाचैवसमिद्धिर्होमसाधनैः ॥ सावित्र्याप्रणवेनाथस्वाहांतेनैवहोमयेत्) अर्थात्-वेदके ज्ञाताओं करके चारों दिशामें होम करना चाहिये घृत और हविष्यान्नसे और उन वृक्षोंकी समिधोंसे जो होम साधन करनेमें होती हैं और इसहोमका मंत्र भी (प्रणवादिस्वाहांतसावित्री) से कर्त्तव्यहै अर्थात् प्रणवनाम ओंकार आदिमें देकर गायत्रीको उच्चारणकरै तिसके अंत में फिर ओंकार उच्चारण करिकै पश्चात् स्वाहाशब्द उच्चारणकरै सो यह एक मन्त्रहै ऐसे एकएक मंत्रसे १०८ आहुतीं एकएक समिध और घृत और चरुसे होमै इतना होम चारों दिशामें कर्त्तव्यहै-इसप्रकारसे हवनपर्यंत सब देवताओंकी पूजाकिये पीछेएक पत्र लिखना चाहिये जिसमें दिव्यकारी कलङ्कीका कलंक या जो कुछ और प्रयोजनहो सो सब अर्थ इह निम्नोक्त मंत्रसहित लिखना चाहिये पुनि उसपत्रका शोधन करिकै उसीके शिर पर धरना चाहिये-यथाह (यंचार्थमभियुक्तःस्याल्लिखित्वातंतुपत्रके । मंत्रेणानेनसहितंतत्कार्यंतुशिरोगतम्) अर्थात्-दिव्यकारी पुरुष जिस कलङ्क में अभियुक्त कियागया हो वही कलंक एक पत्रपर लिखकर उसके नीचे यह अग्रोक्त मंत्रभी लिखकर वही पत्र उसके शिरपर धरना चाहिये-जिसमंत्रका चर्चा इसमें कियागया सो अब लिखते हैं -यथा (आदित्यचंद्रावनिलोऽनलश्चद्यौर्भूमिरापोहृदयंयमश्च ।अहश्च रात्रिश्चउभेचसंध्येधर्मश्चजानातिनरस्यवृत्तिम्) अर्थइनकासुगम है -ध्यान करो धर्म देवके आवाहनसे इस पत्रकी प्रक्रियाताई जो कुछ अनुष्ठान कांड कहागया सो केवल धटकी विधिमें नहीं समुझना किन्तु अन्य भी अग्नि आदि चारों दिव्यों में होना इसका उचितहै -तथाहि (इमंमंत्रविधिंकृत्स्नंसर्वादिव्येषुयोजयेत् । आवाहनंच देवानांतथैवपरिकल्पयेत्) अर्थात्-यह संपूर्णमंत्र विधिसभी दिव्यों में कर्तव्यहै और देवताओं का आवाहन भी उसी क्रमसे करै जैसा धटके प्रसंग से कहागया-जब दिव्यकारी के शिरपर पत्र लिखकर धराजाय तब प्राड्विवाक हाथजोड़कर तुला से प्रार्थनाकरै-उक्तंच (धटमामंत्रयेच्चैवविधिनानेनशास्त्रवित्) अर्थात्-शास्त्रका जानने वाला प्राड्विवाक इस अग्रोक्त विधिसे तुलाको आमंत्रित करै तिसके मंत्र अब कहते हैं-यथा (त्वंधटब्रह्मणासृष्टः परीक्षार्थंदुरात्मनाम् । धकाराद्धर्ममूर्तिस्त्वटंकारात्कुटिलंनरम् ॥ धृतोभावयसेयस्माद्धटस्तेनाभिधीयसे । त्वंवेत्सिसर्वजंतूनांपापानिसुकृतानिच ॥ त्वमेवदेवजानीषेनविदुर्यानिमानवाः । व्यवहाराभिशस्तोयंमानुषः शुद्धिमिच्छति ॥ तदेनंसंशयादस्माद्धर्मतस्त्रातुमर्हसि) अर्थात्-प्राड्विवाक यह प्रार्थनाकरै कि हेधट हेतुले तुम्हे ब्रह्माने दुरात्माओंकी परीक्षाकेलिये निर्मित कियाहै और

जोकि (ध) (ट) यह दोअक्षर तेरे नामके विख्यातहैं सोभी इसीहेतुसे कि (ध) कारके अर्थसे तू धर्मकी मूर्तिहै और (ट)कारके अर्थसे तू कुटिल नरकोबतलानेवालीहै इसी से धटसंज्ञा तेरीविख्यातहै तुम सभीप्राणियोंके पाप और पुण्योंकोभी जानतेहो हेदेव तुमहीं उनगूढ़ भेदोंको जानतेहो कि जिनको मनुष्य नहींजानिसक्ता और यहअमुक नामा मानुष जो कलंकी ठहरायागया तेरेद्वारा अपनी लाञ्छन शुद्धिचाहताहै इसलिये इसको इससंशयसे धर्मपूर्वक रक्षाकरने योग्यहो किंतु सत्य या असत्य इसमें जोकुछ हो सो यथार्थ प्रकट करो-इसपीछे वह दिव्यकारी भी पूर्वोक्त मंत्रोंको पढ़कर तुलासे प्रार्थनाकरै (पूर्वोक्तमंत्र जो १०३ और १०४ मूल श्लोकोंसे कहचुकेहैं तिनका काम अबतक नहींआयाथा यहाँपर उनमंत्रोंका प्रयोजन आया) जबदिव्यकारीभी प्रार्थना करिचुकै तब प्राड्विवाक वहपत्र जिसकी चर्चा ऊपरहुईथी कलंकीके शिरपर धरिकै यथा स्थानपर जैसे पहिले धटपर चढ़ाहो तैसेही उसीस्थलपर फिर उसेचढ़ावे किंतु खड़ियामट्टीसे खिचीहुई पहिली रेखाके तुल्य उसको बैठारे इसीलिये वहरेखा पहिलेहुई थी-यथाह (पुनरारोपयेत्तस्मिन्स्थित्यावस्थितपत्रकम्) अर्थात्-अवस्थितपत्रकलंकी जिसके शिरपर पत्ररक्खागया तिसे पूर्वस्थितिकेही तुल्य उसमें पुनरारोपितकरै-पुनरारोपित करनेमें उतने कालतक आरोपित रखना चाहिये जो पाँच विनाडीकालहोताहै सो उसकालकी परीक्षाभी ज्योतिश्शास्त्रका जाननेवाला करै-यथाह (ज्योतिर्विद्ब्राह्मणःश्रेष्ठःकुर्यात्कालपरीक्षणम्। विनाड्यःपंचविज्ञेयाःपरीक्ष्याःकालकोविदैः) अर्थात्– ज्योतिश्शास्त्रका विज्ञाता श्रेष्ठब्राह्मण कालकी परीक्षाकरै और उसपरीक्षामें कालज्ञों करके केवल पाँचविनाडीही परीक्ष्य समुझी चाहिये (विनाडी) नाम पल जो घटीमात्रमें साठि होतेहैं ऐसे पांचपलतक उसपुरुषको तुलापर संस्थित वनारक्खे अर्थात् न्यून अथवा अधिक विलंब तकनहीं-पलोंके पहिंचाननेका यह प्रकारहै कि जितने कालमें दीर्घदश अक्षर उच्चारणहोसकैं तिसको प्राणसंज्ञाकहतेहैं ऐसे छः प्राणोंकी एकविनाडी अर्थात् एकपल कहाताहै ऐसेपांच पलतक उसको तुलापर संस्थित वनारखकरउसी कालमें शुद्धि और अशुद्धिकी परीक्षा करनी चाहिये सो इसपरीक्षाके निमित्तसे राजा शुद्ध पुरुषोंको नियुक्तकरै वे उसकार्यकी शुद्धि वा अशुद्धि कथनकरैं-यथाहपितामहः– (साक्षिणोब्राह्मणाःश्रेष्ठायथादृष्टार्थवादिनः। ज्ञानिनःशुचयोऽलुब्धानियोक्तव्यानृपेणतु॥ शंसंतिसाक्षिणःसर्वेशुद्ध्यशुद्धीनृपेतदा) अर्थात्-पितामहने कहाहै कि इसवार्त्ताकेसाक्षी जोपरीक्षाके निमित्तमेंहोनेचाहिये तिनकोराजाआप नियतकरै औरउचितहै कि इसमें साक्ष्यदेने वा परीक्षा करनेको ब्राह्मण श्रेष्ठ समुझेजायँ परंतु ऐसेब्राह्मण होने चाहिये जो सत्यवादीहों किन्तु जैसादेखें तैसाही राजाको प्रमाण देवें और ज्ञानीहों जिनको उस परीक्षामें योग्यताहो निर्मल अंतःकरणहों अलुब्धहों ऐसे सबसाक्षीलोग उनने

कालमें शुद्धि या अशुद्धि जोकुछहो सो राजासे कहतेरहैं-शुद्धि या अशुद्धि कैसे जानी जाय इसके निर्णय मध्ये कारण भी कहेहैं-यथा (तुलितोयदिवर्द्धेतसशुद्धःस्यान्नसंशयः। समोवाहीयमानोवानसशुद्धोभवेन्नरः) अर्थात्-तौलाहुआ पुरुष यदिबढ़े किन्तु ऊपर को ऊँचाहोजाय तौ निःसंदेह उसकी शुद्धिनाम सच्चापन जानाजाय और जो दोनों पल्ले बराबर बनेरहैं या कलंकी का पल्ला हीयमान किन्तु नीचा होजाय तौ वह पुरुष शुद्ध नहीं अर्थात् झूंठा समुझाजाय-इसवार्त्ता में पितामह का यह वचनहै कि (अल्पदोषःसमोज्ञेयोबहुदोषस्तुहीयते) अर्थात्-जो अल्पदोषी होता है तिसका पल्लादोनोंओर बराबरबना रहता है इसलिये बराबर पल्लावालेको अल्पदोषी जानना और जिसका पल्लानीचाहोजाय तिसको बहुदोषी जानना-सो-इसवचन का यह सिद्धांत है कि यद्यपि दिव्य क्रियाके आचरण करने से यह बात निश्चित नहीं होसक्ती है कि जिस अपराध का कलंक उसको लगायागया वह थोड़ा है या बहुत है तथापि इसमें यह गूढ़ व्यवस्था है कि जो अपराध एकहीबार और अमति पूर्व होने का कलंक लगाहो और तौलने में दोनों पल्ले एकसे बराबर बने रहें तौ उस पुरुष को अल्पदोषी जानना और उसके ऊपर दण्ड तथा प्रायश्चित्तभी थोड़ाही समुझना चाहिये और जो अपराध वारम्बार और मतिपूर्वक जानि बूझकर इच्छासहितहोने का कलंकलगाहो तौ बराबरपल्लाहोनेमेंभी वहदोषीसमुझाजाय और उसपरदंडतथा प्रायश्चित्त का महत्त्वसमुझा चाहिये अन्यथासाधारण सबदशाओं में इस्से पहिला वचन प्रमाणहै-कदाचित् ऐसाअवसर होजाय जो किसी बस्तुके टूटजानेकाप्रत्यक्ष कोईसाकारण संभवनहो और परीक्षाके होतेसमय (कक्ष) आदि कोई अंगतुलाका टूट जावै तौभी उसपुरुषकी अशुद्धिसमुझीचाहिये-तथाचोक्तं(कक्ष्यच्छेदेतुलाभंगेधटकर्कटयोस्तथा। रज्जुच्छेदेऽक्षभंगेवातथैवाशुद्धिमादिशेत्)अर्थात्-यदि परीक्षाकेहोतेसमय (कक्ष्य)नाम कोईसींका टूटजाय जिनमें पलड़े या टोकरा आदि कोई पात्ररक्खाजाता है या (तुला)नाम डंडीफटजाय या (धट)नाम डंडीके दोनों(कर्कट) अर्थात् टेढ़ेकांटेदार कड़े जो मेढ़ाके सींगोंसमान वनिकर लगतेहैं कोईएक टूटजाय या (रज्जु)नाम रस्सी जो सींकेमें यद्वा किसीऔरमें बाँधीहुई टूटजाय या (अक्ष) नाम ऊपरलाधुरा जिसमें डंडीटांगी जातीहैवहीटूटजाय तौभी उसकलंकीकी अशुद्धि कहनीचाहिये-और जो-इन्हींवस्तुओंके टूटनेका प्रत्यक्षकोई कारण ऐसा देखपरताहो जिसके हेतुसे ये टूटेहों तो फिर उसटूटेहुये अंगको जोड़कर फिर भी उसेचढ़ावे और परीक्षाउसकी करै-तथाच-(शिक्यादिच्छेदभंगेषुपुनरारोपयेन्नरम्) अर्थात्-शिक्यादिकों का टूटना फटना जैसाऊपर कहाथा उसके होनेमें मनुष्यको धटपर फिर आरोपितकरै-इसप्रकारउसकी परीक्षासे निवृत्ति हुये पीछे ऋत्विक् और पुरोहित और आचार्य आदि जिन्होंने यह

कर्मसाधन किया और करवायाहो उन को परिश्रमके अनुकूल राजा दक्षिणाओं से सन्तुष्टकरै ऐसीविधिसे अदृष्टअपराधोंका फैसलाकरने या करवानेवाला राजा नानाभाँतिके मनोवाञ्छित भोगोंको भोगता और उत्कृष्ट कीर्तिको पहुँचता और पश्चात् ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माकासमीपी होताहै-तथाच (ऋत्विक्पुरोहिताचार्यान् दक्षिणाभिश्चतोषयेत् । एवंकारयिताराजा भुक्ताभोगान्मनोरमान् ॥ महतींकीर्तिमाप्नोति ब्रह्मभूयायकल्पते) (अर्थऊपरहोचुका) यदिकोईराजा ऐसेधटको सदैवस्थापित बना रक्खाचाहै तो काकादि उपघातका निरासकरनेके निमित्तसे कपाटादि सहितशाला वनवावै-यथाह (विशालामुन्नतांशुभ्रांधटशालांतुकारयेत् । यत्रस्थोनोपहन्येतश्वभिश्चांडालवायसैः ॥ तत्रैवलोकपालादीन्सर्वादिक्षुनिवेशयेत्। त्रिसंध्यंपूजयेच्चैनान्गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥ कपाटबीजसंयुक्तांपरिचारकरक्षिताम्। मृत्पानीयाग्निसंयुक्तामशून्यांकारयेन्नृपः) (बीजानियवव्रीह्यादीनां) अर्थात्-तुलाकी स्थापनाबनीरखनेके निमित्तसे एकस्थान धटशालानामसेबनवावै वहशालाबहुतबिस्तृतहो बहुतऊँचीहो श्वेतवर्णकी वनाईजाय जिसमें रक्खाहुआ धटकुत्ताओं या काकों या चांडालोंके उपघातसेबिगड़े नहीं उसी स्थानकी दीवारों में सब दिशाओं में लोकपाल आदि देवताओं को उक्त विधिसे निवेशित करवावै और इनसबकापूजन भी गंधमाल्य अनुलेपन आदि से त्रिसंध्यनाम त्रिकाल होतारहै और वह धटशाला केवाड़ों से संयुक्त और वीजों के संचय से संयुक्त होनी चाहिये और परिचारक उसकी रक्षा नाम रखवाली करतेरहैं और उसमें शुद्ध मृत्तिका तथा जल और अग्नि ये सब उपस्थित रहाकरैं और शूनी नहीं रहनेपावै ऐसी शाला राजा वनवावै (वीज अर्थात् यवधान आदि जिन वस्तुओं से काम परनेकी संभावनाहो) और जल अग्नि आदि के उपस्थित होनेसे यह सिद्धांतहै कि इसी शालामें और भी सब दिव्योंका संग्रह रहाकरै जिनका चर्चा आगे आवेगा १०२।१०३।१०४॥ इतिधटविधिः ॥ अब इस्से आगे अग्निविधि वर्णन होगी १०२।१०३।१०४॥

अथदिव्यप्रमाणापेक्षायांतप्तलोहविधिमुखेनाग्निप्रकारे
प्रदर्शनोनामाष्टात्रिंशःपरिच्छेदः ३८॥

इस अड़तीसवें परिच्छेदमें अग्नि नामक दिव्यप्रकारको तप्तलोह की विधि के द्वारा कथन करतेहैं कि इसरीतिसे वर्त्तावा उसका होनाचाहिये ॥

करौविमृदितव्रीहेर्लक्षयित्वाततोन्यसेत् । सप्ताश्वत्थस्यपत्राणितावत्सूत्राणिवेष्टयेत् १०५॥

अक्ष०-विमृदितव्रीहीके हाथोंको लक्षितकरिके तिनपर सातपत्र अश्वत्थके रक्खै और उतनेही सूत्रभी आवेष्टन करे १०५॥

मभि०-(व्रीहि) नाम धानके तंडुल तिनके पिसेहुये और घुलेहुये पनेले ऐपनसे

दिव्यकारी दोनों हाथ मलै अर्थात् हाथोंपर फीका लेपसा करि देवै तिसदिव्य-
कारी पुरुषकी संज्ञा (विमृदितव्रीही) होजातीहै-और-दूसरा मुख्यार्थ इसका यहीहै
कि मुट्ठीभर धान लेकर दोनोंहाथोंसे मीड़ै जिस्से उसके हाथ शुद्ध निर्मल होजायँ
और कदाचित् कोई चिह्न हाथोंमें होतौ वहभी चमकि आवै ऐसे पुरुषकी संज्ञा वि-
मृदित व्रीही कहलातीहै परन्तु अपने २ देश भेदस्थानकी परिपाटीसे व्यवस्था स-
मुझलेनी चाहिये-सो-उस विमृदित व्रीहीके दोनोंहाथ (लक्षित) करै अर्थात् हाथोंमें
जोमस्सा या तिलव्रणकी गाँठि या खुरचीहुई खाल या लहसन या क्षतइत्यादिकोई
चिह्न हों तिनमें महावर आदि किसी मंगलीक रंगसे रेखा चिह्न करदियाजाय तिस
पीछे पीपलके सातपत्ते दोनोंहाथकी बँधीहुई अंजलीपर हाथोंभर फैलाकर धरेजायँ
उन पत्तोंको हाथों समेत सूत्रके सात आवेष्टनसे लपेट देवै १०५॥

अधि०—हाथके व्रणादिक चिह्नों पर महावर आदिसे रेखा चिह्न भी हंसपदके आ-
कारहोने चाहिये-यथाहनारदः (हस्तक्षतेषुसर्वेषुकुर्याद्धंसपदानितु) अर्थात्-हाथके
सभी छिद्रादिकोंपर हंसपदके चिह्नकरै-और-सातों पत्तोंका बराबर होना उचितहै-
तथाच (पत्रैरंजलिमापूर्य्यआश्वत्थैःसप्तभिःसमैः) अर्थात् पीपरके बराबर सातपत्रों
से अंजली भरनी चाहिये-और-सूत्र जो पत्तोंसे लपेटाजाय वह श्वेतवर्ण का होनाचा-
हिये (तथाचनारदः) (वेष्टयेतसितैर्हस्तौसप्तभिःसूत्रतंतुभिः (अर्थात्-शुक्लवर्णके सात
सूत्र धागों से दोनोंहाथ आवेष्टितकरै-इसके सिवाय-सातपत्ते शमीनाम छिंउकरिके
जिसे कहीं जाँड़ या जंडभी कहते हैं और सातही पत्ते दूबके अर्थात् हरी दूर्वाके
सातनाल और अक्षत और दधिमिश्रित अक्षत भी उन्ही पीपरके पत्तोंपर सबधरा
जाय-तथाहि (सप्तपिप्पलपत्राणिशमीपत्राण्यथाक्षतान्। दूर्वायाःसप्तपत्राणि दध्य
क्तांश्चाक्षतान्न्यसेत्) अर्थात्-पीपरके सातपत्ते और शमी के सातपत्ते और अक्षत
और दूर्वाके सातनाल और दही लगाये हुये भी अक्षत हाथोंपर धरै-फूलभी धरने
चाहिये-यथाहपितामहः(सप्तपिप्पलपत्राणिअक्षतंसुमनोदधि।हस्तयोर्निक्षिपेत्तत्रसूत्रे
णावेष्टनंतथा)अर्थात्-पीपरके सातपत्ते-अक्षत-पुष्प-दधि-दोनों हाथोंमें रक्खै औरसूत्र
से लपेटै-और जोकि इस अग्रोक्त वाक्यसे (अर्क)नामअँकोआके पत्तोंकी आज्ञा पाई
जातीहै-यथा(अयस्तप्तंतुपाणिभ्यामर्कपत्रैस्तुसप्तभिः। अंतर्हितंहरन्शुद्धमदग्धःसप्त
मेपदे)अर्थात्-तपाया लोहेका गोला या हलकीफाल सातअर्कपत्रोंमें धराहुआ हाथों
से लेजातेहुये सातवेंपदतक जलेनहीं सो शुद्धहै अपराधी नहीं-सो-यह अर्कपत्रोंकी
आज्ञा केवल अश्वत्थ पत्रोंके अभावमें समुझीचाहिये क्योंकि-अश्वत्थपत्रोंकीप्रशंसा
पितामहने लिखीहै उस्से अश्वत्थकी मुख्यता पाईजाती है-यथाहपितामहः (पिप्प
लाज्जायतेवह्निः पिप्पलोवृक्षराट्स्मृतः। अतस्तस्यतुपत्राणिहस्तयोर्विन्यसेद्बुधः)

अर्थात्-अग्निपीपरसे उत्पन्न होताहै और पीपर सभी वृक्षोंका राजा कहलाताहै इस हेतुसे बुद्धिमान् उसीकेपत्ते हाथों में रक्खै १०५॥

अब नीचे कर्त्ताकीओरसे अग्निका अभिमंत्रण कहाजायगा॥

त्वमग्नेसर्वभूतानामंतश्चरसिपावक। साक्षिवत्पुण्यपापेभ्योब्रूहिसत्यंकवेमम १०६॥

मक्ष०--हे अग्ने हे पावक तू सर्बभूतोंके अंतर्गत फिरताहै (तिसते) हेकवे तूमेरे साक्षियोंके समान पुण्य पापों से सत्य कहिदे १०६॥

अभि०--हेअग्निदेव तू सर्वभूतोंके भीतर अर्थात् जरायुज १ अंडज २ स्वेदज ३ उद्भिज ४ यह चारि भाँतिके जीव जो ८४ लक्ष योनिमें होतेहैं तिन सबकेही भीतर वर्त्तमान बनारहताहै क्योंकि तेरे बिना उनके अन्नोंका पचानेवाला और कोईनहीं है पावक तू सर्वदृश्य मात्रकी शुद्धिका हेतु है-हे कवे तू क्रांतदर्शी अर्थात् भूत भविष्य वर्त्तमान सब दशाओंका जाननेवालाहै-इन कारणोंसे तू सर्वकाल सर्वजीवोंका साक्षी है किंतु जो वार्त्ता पुण्य अथवा पापरूपी मनुष्योंके विज्ञानमें नहींआसक्ती तिसको तू जानता है-इसलिये-तू उसप्रकार से मेरे पुण्य अथवा पापको सत्य सत्य कहिदे जैसे करतेहुये देखनेवाले साक्षीलोग कहिदेतेहैं १०६॥

अभि०--जब लोहेका पिण्डनाम गोलातीन आँचसे तपायाहुआ संडासीसे थाँभकर सन्मुख आवै तबकर्त्ता सबसे पिछले मण्डलमें पूर्वाभिमुखखड़ा होकर इसीमंत्रसे अग्निकी प्रार्थना करै-यथाह नारदः (अग्निवर्णमयःपिण्डंसस्फुलिङ्गंसुरंजितम्। तापे तृतीयेसन्ताप्यब्रूयात्सत्यपुरस्कृतम्) अर्थात्-अग्निवर्ण के समान रँग बदला हुआ लोहेकापिण्ड स्फुलिङ्गों सहित तीसरे तापमें सन्तप्त करिकै (सत्यपुरस्कृत) लक्षणका मन्त्रबोलै (और) अभिप्राय इसका यह कि लोहा शुद्धकरने के निमित्त से तपाये हुये लोहेको पानीमें बुझाकर फेरतपावै और फिर बुझाकर तीसरे तापमें यहांतक तपावै जो अग्निके समान रक्तपीतवर्ण होजावे जिसमें (स्फुलिंग) नाम अग्निके चिटकारे उड़तेजायँ तिसकोसंडासीसे लेकर जबकर्त्ताके सन्मुख प्राड्विवाकआवै तब कर्त्ताको (सत्यपुरस्कृत) लक्षणकामन्त्र पढ़ना चाहिये सत्यपुरस्कृत अर्थात् सत्य शब्दसंयुक्त ऐसामन्त्रवहीहै जोऊपर १०६मूलश्लोकका (त्वमग्नेसर्वभूतानां) इत्यादि पाठवाला लिखचुकेहैं तिसको कर्त्ताबोलै-परन्तुयह प्रक्रिया पीछेहोनीचाहिये किन्तु पहले प्राड्विवाक अग्निमें होमकरै तब उसीअग्निमें लोहेकापिण्डतपायाजाय सो अब कहतेहैं कि प्राड्विवाकभी-मण्डलोंके दक्षिण ओर लौकिक अग्निस्थापित करिके १०८ आहुति घृतकी इस अग्रोक्त मंत्रसे होमै (अग्नयेपावकायस्वाहा)-तथाचोक्तम्-(शांत्यर्थंजुहुयादग्नौघृतमष्टोत्तरंशतम्) अर्थात्-शांतिके निमित्तसे अग्निमें १०८वारघृत होमै-होमकिये पीछे उसी अग्निमें लोहेका गोला छोड़कर तपनेदेवे उसके तपनेहुये

हुये तिनमें सातअन्तर और आठमण्डल होते हैं-परन्तु-यह सोलहअंगुलके मण्डल वर्त्तुलाकारनहींसमुझने किन्तु सोलहअंगुलका सीधालम्बसमुझना क्योंकि इतनाही मनुष्यकापगहोताहै तथापि उसमण्डलका चौड़ाव यदि पूंछाजाय तौ उसीमनुष्यका पगभरचौड़ाहोनाचाहिये जिस्से शीघ्रपगफेंकनेकाअवकाश न पावै यह भी उन्हीं नारद ने दर्शाया है-यथा (मंडलस्यप्रमाणंतुकुर्यात्तत्पदसंमितम्) अर्थात्-मंडलका प्रमाण उतनाही बनाना चाहिये जो गंताके पगसमान हो किन्तु अधिकनहीं (यद्यपि इस वाक्यमें कोईसी विशेषता पैरकेलंबाव या चौड़ावमध्ये नहीं कही-किन्तु (तत्पदसंमितं) और (मंडलस्यप्रमाणंतु) इनदोनोंवचनोंसे पैरकालंबावभी समुझाजाताहै तथापि उसके पैरके समान केवल चौड़ावको समुझना क्योंकि लंबावका चर्चा ऊपर सोलहअंगुल के कथनसे निपटाचुके) उसमें भी (यद्यपि यह संदेह शेष रहताहै कि सभी पुरुषों के पग सोलह अंगुर नहीं होते भला जवकिसी मनुष्यका चौदह या तेरह अंगुर का लंबापग हो तौ फिर मंडलभी सोलह अंगुरसे घटाकर बनाना चाहिये सो यह संदेह वृथाहै क्योंकि जवउसकी परिसंख्या २४० अंगुर कहिचुके तौ फिर संदेहको अवकाश नहींहै अर्थात् अधिकतर सवसे ऊँचे नरकापग १६अंगुलहोताहै इसलिये वही मंडल सवकेकाम आसक्ताहै घटानेकी आवश्यकतानहीं-जो कि पितामहके अग्रोक्त वाक्यसे इसवार्त्तामें कुछविरोध दृष्टिआताहै सोभी ध्यान धरने से विरोधमें गिनती नहीं होसक्ता इसलिये आगे ध्यान धरनाचाहिये—यथाहपितामहः-(कारयेन्मंडलान्यष्टौपुरस्तान्नवमंतथा। आग्नेयंमंडलंचाद्यंद्वितीयंवारुणंस्मृतम्। तृतीयंवायुदैवत्यंचतुर्थंयमदैवतं। पंचमंत्विंद्रदैवत्यंसावित्रंत्वष्टमंतथा। नवमंसर्वदैवत्यमितिदिव्यविदोविदुः। द्वात्रिंशदंगुलंप्राहुर्मंडलान्मंडलान्तरम्। अष्टाभिर्मंडलैरेवमंगुलानांशतद्वयम्। षट्पंचाशत्समधिकंभूमेस्तुपरिकल्पना। कर्त्तुःपदसमंकार्यंमंडलंतुप्रमाणतः। मंडलेमण्डलेदेयाःकुशाः शास्त्रप्रचोदिताः) अर्थात्-पितामहने यह विधि वर्णन करी है किआठमंडल बनवावै तथा उनकेआगे नवमाभी तिनकेवीच अधिकारीदेवताओंका आवाहनकरै और उन्हीं केअधिकारसे ये नामरक्खै कि पहिला मण्डल आग्नेयनाम जिसमें अग्निदेव काआवाहनकरै १ दूसरा वरुणकाहोताहै २ तीसरावायुदेवताका ३ चौथायमदेवका ४ पाँचवांइन्द्रका ५ छठाकुबेरकाहोताहै ६ सातवांसोमदेवताका ७ आठवांसावित्रनाम सूर्यदेवका ८ (नवां सवदेवताओंकेनामसे ९) यहविधिदिव्योंके जाननेवालेजानैं-मण्डल से मण्डल अपने अन्तरसहित ३२ अंगुलकाकहतेहैं परन्तुभूमिकी आद्यन्तपरिकल्पना आठमण्डलोंमें २५६ दोसौछप्पन अंगुलहोतीहै तथापि मण्डलकाप्रमाण चौडाईमें कर्त्ताके पगसमान करनाचाहिये प्रत्येकमण्डलमें शास्त्रोक्तरीतिसे कुशाविछानेचाहिये-ध्यानकरो कि पहिलीविधिसे इसमें कुछ भी विरोधनहीं क्योंकि ततगोलालेकर गमन

करनेयोग्य सातहीमण्डल सर्वत्रकहे आठवांसबसे पहलाखड़े होनेकोबतलाया और इसविधिमें नवांएक अधिक जोसर्वदैवत्य नामकामण्डलकहा तिसमेंवहगोला छोड़ दियाजाताहै किन्तुउसमें पगधरनेकी आज्ञानहीं और उसके अंगुलोंकाभी कुछपरिमाणया संख्यानियमनहींहै कि वहनवांमण्डल कैअंगुलकाबनायाजाय-इसी-हेतुसेइस विधिमें २५६ अंगुल भूमिका परिमाणकहागया क्योंकि पहिलीविधिमें आठमण्डल और सातहीउनके अन्तरजोड़िकर पन्द्रहको सोलहअंगुलसे गुणाकियातौ २४० हुयेथे-इसविधिमें नवांएकमण्डल और एकइसका अन्तरयह और बढ़ेतिनमें नवांमण्डल तौसबदेवोंके नामकाछूटगया उसकेअन्तरमात्रसे सोलहअंगुल और लियेतब २५६ हुयेयदि उसकेभी अंगुलगिनेजातेतौ २७२ होजातेसोनहींकहेकेवल २५६ की आज्ञादीहै-अंगुलप्रमाणञ्च-यथा(तिर्यग्यवोदराण्यष्टावूर्ध्वावाव्रीहयस्त्रयः। प्रमाणमंगुलस्योक्तंवितस्तिर्द्वादशांगुलैः॥हस्तोवितस्तिद्वितयंदण्डोहस्तचतुष्टयम्। तत्सहस्रद्वयं क्रोशोयोजनंतच्चतुष्टयम्) अर्थात्-बेंड़ेआठ यव बराबरकरके आठोंपेटकाअंगुलएक यद्वाखड़े तीनधानोंका लम्बावयहअंगुल काप्रमाणकहा ऐसेद्वादश अंगुलोंसे एकबिलाँदहोताहै दोबिलाँदकाएकहाथ चारहाथकाएक दण्डकहाताहै दोसहस्रदण्डकाएक कोशचारकोशकाएक योजनप्रसिद्धहै १०८॥

अबनिश्चयात्मक यहबातनीचेकहतेहैंकिसातमण्डलोंमें चलेपीछे क्याकर्त्तव्यहै॥

मुक्त्वाग्निंमृदितव्रीहिरदग्धःशुद्धिमाप्नुयात् १०९ पूर्वार्द्धः॥

मक्ष०-अग्निको छोड़कर मृदित व्रीही अदग्धहुआ शुद्धिपावै १०९॥

मभि०-आठवें मंडलमें थँभकर लोहमय अग्निको नवयें मंडलमें डालकर हाथोंसे धानमलै यदि हाथोंपर अग्निका छालानहीं आयाहो तौवह कर्त्ताशुद्धिको पावै अर्थात् सच्चाठहरै इसीसेयह आशय पायागया कियदि हाथजलेहों तौझूँठाहै १०९॥

मांध०-जिसने अग्निके संत्रासते गोलेको उछाला या झकोलादियाहो और इसी हेतुसे हाथोंसेभिन्न पहुँचा आदि किसीजगह अग्निके स्पर्शते जल्जिजाय पर हाथोंमें अदग्धरहाहोतौवहअशुद्धनहीं-यथाहकात्यायनः(प्रस्खलन्नभिशस्तश्चेत्स्थानादन्यत्र दह्यते। अदग्धंतंविदुर्देवास्तस्यभूयोपिदापयेत्) अर्थात-जो कलंकी झिझकताहुआ मुख्यस्थान हथेली के सिवाय अन्यकहीं जलिजावै है उसको राजान्लोग अदग्धममुझैं इसलिये प्राड्विवाक ऐसेकर्त्ताको फिरभीगोला दिलवावै १०९ यदि बीचमेंगोला गिरजावै तिसकीरीति नीचे कहतेहैं १०९॥

अंतरापतितेपिंडेसंदेहेवापुनर्हरेत् १०९॥

ऐ०-कदाचित् जानेहुवे बीचहीमें आठवें मंडलमें इधर किसीमंडल या अंतरमें गोला गिरजावे-अथवा-ठिकानेपर पहुँचे पर जलने या न जलनेकासंदेह रहजावेतब

ऐसीदशामें फिरभी यथाक्रमसे लेजावै-यहबात यद्यपि ऊपरले अद्धाके आशयसे भी स्वतःसिद्ध होचुकीथी तथापि योगीश्वरने अर्थसिद्धा वार्त्ताको स्पष्टकियाहै १०६॥

आधि०—यद्यपि इसअद्धापर अधिकोक्तिका आशय निर्मूलहै तथापि उसकेस्थानापन्न अनुक्रम सर्वविधि का लिखतेहैं जिस्से जिज्ञासुओंको सुगमता होजाय १०६॥

अथा०—मुहूर्त्तसे पहिलेदिवस भूशुद्धिनाम पृथ्वीका शोधनकरिकै फिर मुहूर्त्तके दिन मंडलोंको यथाविधिसे रचिकर मंडलोंके अधिदेवताभी निज२ मंत्रोंसे पूजिकर अग्निका स्थापनकरै फिर घीसे शांतिहवन करै पुनि अग्निमें लोहेका पिंडरखिकर (पूर्वोक्त धर्मके आवाहन से लेकर सब देवताओं की पूजा हवनपर्यंत जो सैंतीसवें परिच्छेद में तुलाके प्रसंगसे कहचुके हैं सोसब यथोक्तविधिसे करिकै उपोषित पुरुष को स्नान कराइकै भीजे वस्त्रों सहित पश्चिम मंडल में खड़ाकरिकै धानों का मर्दन आदि कर संस्कार करावै पुनि प्रतिज्ञा पत्र पूर्वोक्त रीति से लिखा हुआ मंत्रसहित उसके शिरपर बाँधे तबतक दो ताव उसगोलामें लागिचुकै और तीसरे तावमें तपतेहुये गोलाके अग्निको प्राड्विवाक उक्त मंत्रोंसे अभिमंत्रित करिकै गोलेको संडासीसे उठालेवै उसवक्त सन्मुख लायेहुये गोलेको कर्ता पुरुष अपने पूर्वोक्त मंत्रसे अभिमंत्रित करै करचुकने पर प्राड्विवाक उसके हाथोंकी अंजली में रख देवै तब सात मंडलों में जायकर नवयें मंडल में छोड़देवै यदि अदग्ध हाथरहें तौ शुद्धहुआ समुझाजाय इतिक्रमः—इत्यग्निविधिः १०६॥

अथ जलप्रकारमाह॥

अथदिव्यप्रमाणापेक्षायांजलनिमज्जनविधिमुखेनोदकप्रकार-
प्रदर्शनोनामऊनचत्वारिंशः परिच्छेदः ३६ ॥

इस उनतालीसवें परिच्छेदमें वहप्रकार कहाजायगा जिस्से जलकेद्वारा दिव्यहोताहै॥

सत्येनमाभिरक्षत्वंवरुणेत्यभिशाप्यकम्। नाभिदघ्नोदकस्थस्यगृहीत्वोरूजलंविशेत् ११०॥

भक्ष०—हे वरुण तू मुझे सत्यसेही रक्षा करो-इस भाँतिजलको अभिशापन करिकै नाभिपालित जलमें स्थित हुयेकी जंघा दोनों लेकर जलमें प्रविष्ट होजावै ११०॥

भभि०—कर्त्ता पुरुष कलंकी जो शोधनकरने योग्यहै सो जलके सन्मुख जाकर पहिले वरुणदेवको अभिशापन कहिये अभिमंत्रित करै इसमंत्रसे कि (हे वरुण तू मुझको मेरे सत्य आचारसेही सर्वथा रक्षाकरो) तिसपीछे एक दूसरा कोई बलवान् पुरुष जो नाभिमात्र जलमें खड़ा हो तिसकी जंघा दोनों थाँभकर कलंकी जलमें घुसजावै ११०॥

भधि०—ऊर्ध्वोक्त कर्म उसदशा में होनाचाहिये कि जब वरुणकी पूजाहोचुकै-तथाच नारदस्मरणम् (गंधमाल्यैः सुरभिभिर्मधुक्षीरघृतादिभिः। वरुणायप्रकुर्वीतपूजामा-

दौसमाहितः) अर्थात्-नारदने यह कहाहै कि गंध माल्य सुगंध मधुक्षीर घृतादि वस्तुओं से वरुणकी पूजा पहिले समाहित नाम सावधान होकर करै-तथैव-सैंतीसवें परिच्छेदमें तुलाके प्रसंग से जो धर्मके आवाहन आदि सब देवताओं की पूजा होमके होनेतक प्रदर्शित होचुकीहै सो भी सब करनाचाहिये और उसके किये पीछे मंत्रसहित प्रतिज्ञापत्रका बाँधना जो कलंकीके मस्तकपर उसी जगह प्रदर्शितहुआ था सोभी करिलेनाचाहिये तिसपीछे प्राड्विवाक पहिले जलके सन्मुख वरुण को अभिमंत्रणकरै तबसबसे पीछेशोध्यपुरुषसो कलङ्कीहोसो अपनेऊर्ध्वोक्त मंत्रकोपढ़िकर जलमेंडूबै और प्राड्विवाक जिनमंत्रोंको उच्चारणकरैगा तिनकोअबकहतेहैं-यथा (तोयत्वंप्राणिनांप्राणंसृष्टेराद्यन्तुनिर्मितम्। शुद्धेश्चकारणंप्रोक्तंद्रव्यानांदेहिनांतथा॥ अतस्त्वंदर्शयात्मानंशुभाशुभपरीक्षणे)अर्थात्-प्राड्विवाक जलकेसन्मुखयहप्रार्थनापहिले आपकरैकि-हेतोयत् सृष्टिकी आदिमेंप्राणियोंका प्राणरूप निर्मितहुआ और सभीद्रव्यों तथा देहियोंकी अशुद्धदशामें शुद्धिकाकारणभी तूहीकहागया इसलिये तू इसभले बुरेकीपरीक्षामें अपनेमुख्यस्वरूपकोदर्शावे-नारदनेइसकर्मके स्थानभी प्रदर्शितकिये हैं-यथा(नदीषुतनुवेगासुसागरेषुवहेषुच। ह्रदेषुदेवखातेषुतडागेषुसरस्सुच) अर्थात्-धीमेवेगवाली नदियोंमें या मन्दवेगी समुद्रोंमें या मध्यमझरनाओंमें अथवाकिसी और अगाधजलाशयमें या देवस्थानके कुण्डोंमें या तालावमें या सरोवरोंमेंकर्तव्यहै इसवार्तामेंपितामहकी एकसाधारणभावयहआज्ञाहैकि(स्थिरेतोयेनिमज्जेत्तुनग्राहिणिनचाल्पके। तृणशैवालरहितेजलौकामत्स्यवर्जिते॥ देवखातेषुयत्तोयन्तास्मिन्कुर्याद्विशोधनम्। आहार्यंवर्जयेन्नित्यंशीघ्रगासुनदीषुच॥ आविशेत्सलिलेनित्यमूर्मिपङ्कविवर्जयेत्) -अर्थात्- पितामहने यहकहाहै कि ऐसेजलाशयमें कलङ्की डुब्बीमारै जिसका जलस्थिरनामथँभाहुआहो किन्तुवह जलाशयचाहे किसीनामकाहो कुछइसकानियमनहीं परन्तुग्राही जलमेंनहीं और अतिशयथोड़ेजलमेंभी नहीं यहनियमइसमें आवश्यकहै तृणघाससिवार आदिसे सम्पन्नजलके स्थलपरनहीं जोंक या मच्छीआदि जीवोंकेस्थलपरनहीं-और विशेषकर(देवखात)नामपर्वतीकुंडजोस्वयंभूतकिसीकेबनाये हुये न हों उनकेजल में कलंकीका शोधन राजाकरै-परन्तु-(आहार्य)नाम संग्रहीत जल सदैवही वर्जितकरै और तीव्रवेगा नदियोंमें भी न करै और सदैवही इसवात का भी नियम आवश्यक है कि उसजलमें प्रवेशकरै जिसमें भ्रमर तरंग या कीचड़ यह न हों (आहार्य) नाम संग्रहीत जलउसेकहतेहैं जो किसी जलाशयसे लाकर तांबे या लोहेआदि पात्र या छोटेकुंडमें भर लियाजाय) (इसवातमें ग्राहीजल का निषेध जो अभी ऊपर कहागया सो ग्राहीजल उसे कहतेहैं जिस स्थलपर फैलाववाला या दहप्रसिद्ध होरहाहो जिसमें घुसनेवाले मनुष्यका ढूँढ़े भी पता न लगै-और यह

निषेधभी इसहेतुसे प्रदर्शित कियाहै कि पितामह ने साधारण भावसे स्थिरजल में करनेकी आज्ञा नियतकरी और बहुधा स्थिरजल ऐसेखोलों में भी होतेहैं जिनका चर्चा अभीग्राही नामसे होचुका इसलिये उक्तमर्यादाके साथही उसका (अपवाद) भी कहदिया जिस्से इसभांतिके स्थिरोंको छोड़कर सामान्य स्थिरजलमेंकरना समुझाजाय) (.दूसरा निषेधजो अल्पजलका कियाथा सो इसहेतुसे कि अत्यंत उथले जलमें भी परीक्षा होसकनी दुर्घटहै और कदाचित् कोई यहसमुझा हो कि पितामह ने स्थिरजलकेनामसे थोड़ेजलकी आज्ञादीहोगी क्योंकि बहुधाउथलेमें भी स्थिरजलहोते हैं)-ऐसेही-तृणशैवाल जोंक मत्स्य कीच आदि जो वर्जितकिये सोभी इसहेतुसे कि बहुधा स्थिरजल में यहसब होतेहैं और इनकेहोने से परीक्षामें उपघात आदि अनेक विघ्नहोसक्तेहैं इसलिये ऐसे स्थिरमें न करनाचाहिये जहांइनका संसर्ग हो-अब-यहबात ध्यान करनीचाहिये कि पहलेनारदके वचनोंमें जुदे२नाम सबजलाशयोंके कहेथे और पितामहने किसीका भी नामनहीं कहा केवल स्थिरजल बतलाया चाहे किसी जलाशयका हो सो इसकी तो तुल्यता इसप्रकारसे निश्चित होगई कि नारदने भी मंदवेगा नदीआदि सबकहेथे मंदवेगमें कुछ स्थिर जलहोता है-परन्तु पितामहने पीछेसे यहभीनियम निश्चित करादियाहैकि विशेषकर देवखातनाम पर्वती बड़े खड्डोंमेंकरे क्योंकि उनमें बहुधाकीचड़ आदि नहींभीहोते हैं-सो-इस कथनमें यह न समुझनाचाहिये कि पितामहने देवखात की आज्ञासे अन्य जलाशयों का निषेध दर्शायाहै-क्योंकि जो पितामहका यहआशयहोता तौफिर उन्हींदेशोंमें जलकादिव्यहो सक्ता जिनमें देवखातहोते किन्तुपर्वत सभी देशोंकेनिकटनहीं होते हैं-अर्थात्-पितामह का आशय केवल इतनाहै कि जिसदेशमें अन्य जलाशयोंके होतेहुये पर्वती देवखात भी उपस्थितहों तबऔरोंको छोड़कर विशेषतासे उसीमें कर्त्तव्यहै और जो देवखात उसनगरके उपस्थित नहींहो तबचाहे तिस जलाशयका स्थिरतोय देखलेवे जोनिज नगरके समीपहो-अथवा-देवखात का यहभी अर्थहोता है कि कोईसा जलाशय तालाव कुंड आदि जो देवताके नामसे बनायागया हो या नदी आदि वा कोई उसका घाट जो देवताके संबन्धसे प्रसिद्धहो विशेषकर उसीमें करनाचाहिये क्योंकि अन्य स्थानोंकी अपेक्षा देवस्थान सिद्धपीठ होताहै-अबयहांसे पूर्वोक्त प्रकृतवार्त्ताका ध्यान करनाचाहिये जिसकी जंघाथांभकर कलंकीजलमें घुसेगा वहपुरुष जो नाभिमात्रजल में खड़ाहोना कहाथा तिसको यज्ञीयवृक्षकी शाखामेंबनाईहुई धर्मस्थूणा नामकीवल्ली जलमें गाड़कर उसीके सहारेसे पूर्वमुखहोकर खड़ाहोना चाहिये-तथाचोक्तं(उदकेप्राङ्मुखस्तिष्ठेद्धर्मस्थूणांप्रगृह्यच)अर्थऊपरहोचुका ११० ॥ अबइसके पीछे जो करना चाहिये सो निचले श्लोकमें कहेंगे ११० ॥

समकालमिपुंमुक्तमानीयान्योजवीनरः। गतेतस्मिन्निमग्नांगंपश्येच्चेच्छुद्धिमाप्नुयात् १११॥

भक्ष०—समकाल उसके जानेपर दूसराशीघ्रगामी नरछूटेहुये बाणको लाकरयदि डूबे अंगको देखै तो शुद्धिपावै १११॥

भभि०—(समकालं)नाम कलंकीके डूबते समय वेगवान् एक पुरुष उसलक्ष्यस्थान पर भागाजावै जहां पहिले बाणफेंकागयाहो उसके जानेपर दूसरा शीघ्रगामीनर उस बाणकोलैदौड़ा आवै और जलके बीच कलंकीको डूबादेखै तो कलंकी निजकलंकसे शुद्धि पावै-इस्से यह सिद्धांत पायागया कि यदि बाणका ले आनेवाला जलके बीच कलंकी को डूबानहीं पावै तो कलंकीभी निज कलंकसे छुट्टी नहीं पावै १११॥

भधि०—ऊर्ध्वोक्त वार्ता का यथार्थ यह नियम है-कि-पहिले तीन बाणलगातारछोड़ जायँ तिनमें दूसरा बिचलाबाण मध्यमशर कहाता है जहांउस मध्यमशरका पतन हुआहो उसस्थानपर एक वेगवान् पुरुष कुछ पहलेसे उपस्थित हो वही उसमध्यम शरको उठाकर लियेहुये उसीठिकाने खड़ारहे औरदूसराएक वैसाही वेगवान् शीघ्रगामीनर यहांभी तोरण मूलपर खड़ाहो जहांसे तीरछोड़ागयाथा इसभांति दोनोंके खड़े होते हुये प्राड्विवाक निजहाथ से तीन तालैं तरऊपर पटकावै उनमें तीसरी तालके बजतेसार कलंकी जलमें घुसजावै तब उसी के (समकाल)में तत्कालही वह पुरुष भी अत्यंतही भागाजावै जो तोरणमूलमें खड़ाहै दौड़कर शरपातस्थानपर पहुँचै जहां वह दूसरा शरलिये हुये खड़ाहै इसके जा पहुँचतेसार तत्काल वह शरग्राही भी यहां को दौड़ाआवै और तोरणमूलतक पहुँचकर जलके बीच कलंकी को यदि डूबानहीं देखै तो कलंकी शुद्ध नहोगा औरप्रतिपक्षी से हारैगा-पितामहने इस नियमको स्पष्टकरिके कहाहै-यथा(गंतुश्चापिचकर्तुश्चसमंगमनमज्जनम्। गच्छेत्तोरणमूलात्तुलक्ष्यस्थानंजवीनरः॥ तस्मिन्गतेद्वितीयोपिवेगादादायसायकम्। गच्छेत्तोरणमूलंतुयतःसपुरुषोगतः॥ आगतस्तुशरग्राहीनपश्यतियदाजले। अंतर्जलगतंसम्यक्तदाऽशुद्धिंविनिर्दिशेत्)अर्थात्-पितामह ने उसी नियमको इसप्रकार सुगमरीति से कहाहै कि जानेवालेका गमन और करनेवाले कलंकीका निमज्जन यह दोनों एक साथहों-तिसकायह ब्योरासमुझो कि वहजानेवाला जवीनरतोरणमूलसे लक्ष्यस्थान कोजावै-उसके जा पहुँचने पर दूसराभी सायक लेकर अतिवेगसे तोरणमूलको जावै कि जहांसे वहपुरुष उसके पासगया-और जो आयाहुआ शरग्राही जलकेबीच उस कोभलीभांतिसे डूबानहीं देखै तो अशुद्धि निश्चित करीजाय-नारदने दोनों जवीपुरुषों का भी निर्धारण कियाहै कि वे ऐसे होने चाहिये-यथा(पंचाशतोधावकानांयेोन्यातामधिकोजवे। तौचतत्रनियोक्तव्यौशरानयनकारणात्)-अर्थात्-पंचाश धावक पुरुषोंमें जे

छांटिकर दो धावक जो सबसे अधिक दौड़नेमें प्रसिद्धहों वेहीदोनों इसकार्यमेंबाणले आनेके निमित्तसे नियुक्तकरने चाहियें-(तोरण)जिसका चर्चाबहुधाऊपर आया है वह एकस्तंभरूप काष्ठ जोकलंकीके कानतकमापकर ऊँचाखड़ाकियाजाय औरडुब्बीलगनेकेसमीपही समभूमितट स्थानपर होनाचाहिये-तथाचनारदः-(गत्वातुतज्जलस्थानं तटेतोरणमुच्छ्रितम्। कुर्वीतकर्णमात्रंतुभूमिभागेसमेशुचौ)अर्थात्-उक्तजलके स्थानपर जायकर तटकेऊपरउज्ज्वल और समान भूमिभागमें कानकेप्रमाण ऊँचातोरणगाड़े-तीन बाण और धनुषभी बांसकाबानिकर मंगल द्रव्यों तथाश्वेत पुष्पादिकोंसे प्रथम संपूज्यहैं-तथाचपितामहः(शरान्संपूजयेत्पूर्वंवैणवंचधनुस्तथा। मंगलैर्धूपपुष्पैश्चततः कर्मसमाचरेत्) अर्थात्-पहले बाणों को और बांसके धनुष कोभी धूप और पुष्पोंसे पूजे तथा चीरभव्वा गुच्छाआदि मंगल द्रव्योंसे सुशोभित करै तिसपीछे उक्तकर्म कोआचरै-नारदने धनुषका प्रमाण और निशानेकास्थान भी दर्शायाहै-यथा(क्रूरंधनुः सप्तशतंमध्यमंषट्शतंस्मृतम्। मंदंपंचशतंज्ञेयमेषज्ञेयोधनुर्विधिः॥ मध्यमेनतुचापेन प्रक्षिपेच्चशरत्रयम्। हस्तानांतुशतेसार्द्धेलक्ष्यंकृत्वाविचक्षणः॥ न्यूनाधिकेतुदोषःस्यात् क्षिपतःसायकांस्तथा) अर्थात्-एकसौ सात अंगुल किंतु चारहाथ ग्यारह अंगुलका क्रूर धनुष होता है १ एकसौछे अंगुल किंतु चारहाथ दशअंगुल का मध्यम धनुष प्रसिद्धहै २ एकसौपांच अंगुल किंतु चारहाथ नवअंगुलका मंदधनुष जानो यहधनुष के बनानेकी विधिकही-अब लक्ष्यस्थान बतातेहैं कि दोसौपचास हाथपर लक्ष्यबना कर विचक्षण पुरुष मध्यमचापसे तीनशरफेंकै-क्योंकि-इसकार्यमें न्यूनाधिक लक्ष्यपर शरफेंकतेहुये दोष होताहै-तीरभी इसकार्यमें वाँसके और विनागाँसीके रखने चाहिये तथाच(शरांश्चानायसाग्रांस्तुप्रकुर्वीतविशुद्धये।वेणुकांडमयांश्चैवक्षेप्तातुसुदृढंक्षिपेत्) अर्थात् कलंक शोधनके निमित्तमें बाणऐसे निर्मितकरै जिनमें लोहेका अग्रभागनहो और पर्वती वाँसीकेबनावे जिसका सूधाकांड विनागाँठिका होताहो-और उनबाणोंका चलानेवाला धनुषको सुदृढ़ अर्थात् अतिशय खींचकर शरफेंकै जिस्से अपने शरीर कीसंपूर्ण शक्ति उसमें अर्पित होजाय-फेंकनेवाला क्षत्रिय अथवा क्षत्रियका वेषरखने वाला ब्राह्मणही व्रतीनियुक्त करनाचाहिये-यथाह(क्षेप्ताचक्षत्रियःप्रोक्तस्तद्वृत्तिर्ब्राह्मणो पिवा। अक्रूरहृदयःशांतःसोपवासस्तथाक्षिपेत्)अर्थात्-बाण फेंकनेवाला जो तीरंदाज पक्काहो क्षत्रिय इसमें कहाहै यद्वा वैसाही क्षत्रियकी वृत्तिवाला ब्राह्मणहो कोमल हृदय और शांतस्वभावहो उपवास रहिकर बाणफेंकै-पूर्वोक्त छोड़ेहुये तीनबाणोंमेंसे बीचका शरलेनाचाहिये-यथाह(तेषांचप्रेषितानांचशराणांशास्त्रचोदनात्। मध्यमस्तुशरोग्राह्यः पुरुषेणबलीयसा)अर्थात्-उनप्रेषित कियेबाणोंमेंसे शास्त्रकी आज्ञासेही बिचलाशर उठायाजाय और उठानेवाला पुरुष अति बलवान्हो जो झपटकर तत्काल उसठिकाने

पर जासकै परंतु यहपुरुष उन्हींदोमेंसेहोताहै जो पचासमेंसे चुगेहुये पहले कहचुकेहैं और यहाँ दुसराकर बलवत्ता जो कहीगई तिसका सिद्धांत निचले वचन सेसमुझा जायगावाण अपने गिरनेके स्थानसे उठानाचाहिये किंतुउछलकर जापरनेके ठिकानेसे नहीं-तथाच(शरस्यापतनंग्राह्यंसर्पणंतुविवर्जयेत्।सर्पन्सर्पन्शरोयायाद्दूराद्दूरतरंयतः) अर्थात्-बाणकापतनस्थान ग्राह्य होताहै उसकेसर्पणको विवर्जितकरै क्योंकि बाणसरप तेसरपतेदूरसेभी दूरतरचलाजाताहै इसलिये जहांपहलीबार भूमिपर टक्करलेवै तहां से पकरनाचाहिये इसीलिये ऊपर बलवान् पुरुष कहाथा क्योंकि निर्बल जबतक दौड़ेगा वहउछलकर सरपिजावैगा (यद्यपि इसबाणसे कुछभी कार्यनहीं किंतु दोनों ओरसे मनुष्यके दौड़ने योग्य भूमिकी अवधि और उस दौड़नेमात्र कालसे अपेक्षा मुख्य होती है इसलिये कदाचित् बाणयदि सरपिजानेके हेतुसे हाथनहीं आवै तब इतनाहीआवश्यकहै कि वहबलवान् पुरुषबाणको आता देखिदौड़े और पहली टक्करके स्थानपर जा खड़ाहो जब कि जल और तोरणकेमुख्यस्थानसे दूसरापुरुष दौड़ाआवै तब उसको उसीठिकाने पर अपने निकटआया देखकर आपभी तोरणके स्थानको भगिआवै (तथापि) बाणका ले आनाभी इसलिये श्रेयस्कर समुझाहै कि ऐसे धावक आदि मनुष्योंके सत्यासत्यबोलने का भी कुछ प्रत्ययनहींमिलसक्ता इस्से बाणकाले आना एकचिह्नहै)इसीलिये अनंतरोक्त वचनमें ऊपरकहचुकेहैं कि (शास्त्रचोदनात्) अर्थात् शास्त्रकी आज्ञामात्रसेही ऐसाकर्त्तव्य है इसमें कुछ तर्कणाखड़ीकरनी अनुचित है (दृष्टांत) यथाकोई यह तर्कणा करै कि तीनमेंसे बीच काही बाणउठाने में क्या विशेषताहै तहां सिवाय इसके और कोईउत्तर नहीं कि शास्त्रकी आज्ञाही प्रधानहै— ऊँचानीचा आदि विषम भूमिभाग और अतिशय प्रबलवायु में भी बाणका फेंकना वर्जित किया है-यथाहपितामहः (इषुंनप्रक्षिपेद्विद्वान्मारुतेचातिवायति। विषमेभूप्रदेशे चवृक्षस्थानसमाकुले॥ तृणगुल्मलतावल्लीपंकपाषाणसंयुते) अर्थात्-ज्ञानी पुरुष को चाहिये कि बाणकोअत्यंत वायुमें न फेंकै और विषम भूमिभागमेंभी नहीं औरवृक्ष या ठूँठे या हूले या लंबीखड़ीघास या झाड़ी या बेलि या पत्थर इनवस्तुओं से संयुक्त भूमिपर नहींफेंकै क्योंकि इनमें बाणकारुकजाना या बिदजाना संभवहै-योगीश्वरने इसी १११ श्लोकके चौथे पादसे जो यह नियमकहा कि धावक पुरुषके बाणलेआने तक जलमें यदि कलंकी छिपारहे तो वहशुद्ध ठहरै सो इस नियमसे यहभावदर्शाया है कि उसके आनेसे पहिलेभी यदि उसके कोई अंगजलके ऊपर देखि परै तो वह अपराधी ठहरै-और-पितामह ने स्थानांतर गमनसेभी अशुद्धि उसकीकहीहै-यथा— (अन्यथानविशुद्धिःस्यादेकांगस्यापिदर्शनात्। स्थानाद्वान्यत्रगमनाद्यस्मिन्पूर्वंनिवेशितः) अर्थात्-उसका एकभी अंगदेख पड़नेसे यहा उस ठिकानेसे हटजाने से भी

जहां वह पहिले घुसाथा कोईभांति विशुद्धि उसकी नहीं समुझी जासक्तीहै-एक भी अङ्गदेखपड़नेसे यहकथन जोऊपरआयाहै तिसकायहआशयहै किकानकोआदिलेकरकोईअङ्गदिखाई नहींदेवे किन्तुकेवल चाँदिकेदिखाई देनेतक अशुद्धिनहींकहसक्के सोइसविषयपर विशेषवाक्यभीदर्शायाहै-यथा (शिरोमात्रंतुदृश्येतनकर्णौनापिनासिका। अप्सुप्रवेशनेयस्यशुद्धंतमपिनिर्दिशेत्) अर्थात्-जलप्रवेशन कालमात्र में जिसका केवलशिरही देखपड़नेलगे परकान और नासानहींदीखे तिसकर्ताकोभी शुद्धहुआसमुझनाचाहिये (इसप्रक्रियामें प्रथमयहचर्चा आयाथा किवहकर्ता पुरुषउसकी दोनों जंघाथाँभकर जलमेंघुसे जो नाभिमात्रजलमें धर्मस्थूणाके सहारेसेखड़ाहो यद्यपिउसकाखड़ाहोना तो निरन्तरपायाजाताहै परइसबातका कोईनियमनहीं पायागया किवह निरन्तरजंघाथाँभेरहै क्योंकिइसबातकाचर्चा फिरकुछनहींआया बरनपितामहने ठिकानेसे हटजानेतक दर्शायापर घूँटोंछोड़देने मध्ये कुछ किसीनेभीनकहा इसलियेसर्वथा निश्चितहोताहै कि यहघूँटोंकाथाँभना एकसाधारणबात इसलियेहै कि यदिकोईमनुष्य जलकेघुसनेमेंकच्चाहो तोउसकोइसके घूँटोंकाथाँभना एकअवलम्बहै जिस्सेवह भिझकैनहीं और दूसरेइस्सेयह परीक्षा भी होसक्तीहै किवहजलके भीतरइसीजगहहैया नहीं परन्तुकुछ घूँटोंकाछोड़देना जयपराजयकाहेतुनहींहै अर्थात् यदिकर्ता पुरुषआपही जलविद्यामें निपुणगोतेखोरहो तो उसेस्वाधीनताहै कि चाहेघूँटे छोड़देवे परउसी जगहउपस्थित बनारहे यहसिद्धान्तहै-कदाचित्कोई यहतर्क आरोपितकरै किजबकर्ता आपगोतेखोरहोगा तोपाप और पुण्यकी परीक्षाहोनीदुर्घटहै क्योंकिजो दशबीसहाथ जलमें गोतालेसक्ता उसको नाभिमात्र जलमें कुछकालथँभारहना क्यादुष्कर है सो यहतर्क उसकीवृथाहै क्योंकिइसमें शरीरकीशक्ति या जलविद्याका प्रभावकार्यसाधकनहीं किन्तुवरुण देवकाप्रभाव उसके पुण्यया पापके अनुरूप कार्यकरसक्ता है कदाचित्गोताखोरी के प्रभावसे पाप छिपसक्ताहोता तो क्या कोई भी मुनीश्वर आचार्य इस बात परदृष्टि नहीं करसक्के और गोताखोर की अपेक्षामें कोई विशेष वाक्य नहीं लिखसक्के कि ऐसे पुरुषको जलका दिव्य देनाही न चाहिये-बल्कि-इसवार्त्ता के लिखते समय एक देखीसुनी वार्ता यादहोआई और (दृष्टांत) मात्रसे लिखनीपरी हमअपने बालपन की चर्चाकरते हैं कि उनदिनों लक्ष्मणापुरी की राज्यमें एकछोटेसे देशपालताल्लुकदार की बस्तीमें चोरीके विषयपर मनुष्यों में परस्पर विवाद था ठाकुरतक बात पहुँची पर निपटारा उसका न होसका क्योंकि चोरको लेतेहुये नहीं देखा और मालका मालिक अपने दृढ़विश्वासपूर्वक उसीको पकड़ता था निदान जलका दिव्य देना ठहरा तब उसचोरने पहिली रात्रिको उसीग्रामके बड़े सरोवरमें कि जिसमें गोता लगाना ठहरा था एक बड़ी चक्कीके दोपाट बाँधकर चुपके रखदिये किमैं इनको थाँभ

कर भीतर थँभारहूँगा वहाँ ठकुराने की बास्तियों में कुछ इतने बड़े शास्त्रोक्त विस्तार से इनकामों की प्रक्रिया नहीं होती क्योंकि बहुधा ऐसे आचरणकरनेहों छोटे मोटेकामों के विवाद में फिर प्रत्येकमें संपूर्णविधि क्योंकर हो और विधिके बताने वालेभी कहाँ से मिलसकैं केवल साधारण भाव यह परिपाटीथी कि ग्रामके ठाकुर और और भी सब इकट्ठेहुये काँधेतक जलमें एक मनुष्य जाखड़ाहुआ उसके सन्मुख सात पैगजल नाप कर कलंकी को गोता लगवाया यदि कलंकी के समीपतक वह सातपैगजलको धीरे २ चलकर आजावै तबतक जलमें डूबारहे तो सच्चाठहरै यही प्रक्रिया उसके साथकरी गई उसने गोतामारकर अपनी धरीहुई चक्कीको जापकड़ा परंतु वरुणदेवके प्रभावने हाथों सहित चक्कीको उसके मूड़पर धरिकै उसे जलके ऊपर ऐसा ऊँचा उछालदिया कि आधीदेह कमरसे जलमें रही आधीऊपर खड़ीहोगई तब ग्रामाधीश ठाकुरने पकड़ा और अर्थीका अर्थ दिलवाया सब यथावत् चीज़ें उसीने लालाकर देदीं तब ठाकुरने कुछ राजदंड भी यथोचित रीतिसे लिया) यहाँ तक सब निर्णय इसका होचुका अब उक्त विधिका प्रयोगक्रम कहतेहैं जिस्से कर्मकांडी लोगों को विचार में सुगमता होजाय (अथप्रयोगक्रमः) पहले उक्तलक्षण के जलाशयपर जाकर उक्त लक्षणका तोरण बनावै फिर २५० हाथके अंतरपर शरपात योग्य लक्ष्य बनावै पुनि तोरण के निकट बैठिकर धनुषबाण का पूजनकरै पुनि जलाशयमें वरुणका आवाहन और पूजन करै पुनि उसीकिनारे धर्म और धर्म्मादि सब देवताओंका आवाहन पूजन हवन पर्यंत जैसा तुलाके प्रसंगसे सैंतीसवें परिच्छेद में कहचुके हैं सो सब करै पुनि कर्ताके मस्तकपर प्रतिज्ञापत्र यथा विधिसे बाँधै पुनि प्राड्विवाक निज पूर्वोक्त मंत्रोंसे जलको अभिमंत्रित करै इसके मंत्र (तोयत्वंप्राणिनांप्राण) इत्यादि ११० की अधिकोक्तिमें कहे थे इसपीछे कर्तापुरुष आपभी (सत्येनमाभिरक्षत्वंवरुण) इसमंत्रसे जैसा पहिले कहचुकेहैं अपनी भाषामें जलका अभिमंत्रण करिकै उसपुरुषके समीप को चलै जो नाभिमात्र जलमें धर्मस्थूणालिये खड़ाहो और अति बलवान् हो इसी अवसरमें तीनों बाण लगातारछोडेजायँ उनमें बिचले बाणको गिरनेके स्थानसे उठाकर उसीस्थलपर एक पुरुष लिये खड़ारहे और यहाँ बाणोंके छूटे पीछे प्राड्विवाक तीनतालबजावै तीसरीतालीके साथही इधर कलंकी जलमें डूबै और उधर को वह पुरुष दूसरा भागे जो शरपात स्थानपर जायगा इसके पहुँचनेपर वह शरग्राही इधर को बाणलेकर भागाआवै उसके आने पर परीक्षाकरीजाय और जबतक इनदोनों का जाना आनानिपटै तबतक बीचकेभी समयमें परीक्षाहोनीरहै कि इनका कोई अंग तो जलके ऊपर नहीं निकला-इत्यनुक्रमः १११ ॥

इत्युदकविधिः॥

अथविषविधिमाह ॥

अथदिव्यप्रमाणापेक्षायांविषभक्षणविधिमुखेनविषादिव्य
प्रकारप्रदर्शनोनामचत्वारिंशः परिच्छेदः ४० ॥

इसचालीसवें परिच्छेदमें वह प्रकार कहाजायगा जिस्से विषभक्षण द्वारा दिव्य क्रियाहोतीहै ॥

त्वंविषब्रह्मणःपुत्रःसत्यधर्मेव्यवस्थितः। त्रायस्वास्मादभीशापात्सत्येनभवमेऽमृतम् ११२ ॥
एवमुक्त्वाविषंशार्ङ्गंभक्षयेद्धिमशैलजम्। यस्यवेगैर्विनाजीर्येच्छुद्धिंतस्यविनिर्दिशेत् ११३ ॥

ऐ०-सहृद्वयोः-हे विष तू ब्रह्माका पुत्र और सत्य धर्मपरव्यवस्थित है मुझे इस (अभिशाप) नाम कलंकसे रक्षाकर मेरे लिये मेरे सच्चापनसे तू अमृतहोजा ११२ ऐसे कहकर शार्ङ्गनामक विष जो हिमालय पर्वतसे उत्पन्नहो ताहि भक्षणकर जावै जिसको विष वेगोंविना पचिजावै तिसकी कलंकसे शुद्धिकहनी चाहिये ११३ ॥

मधि०-जिसे विषके वेगनहीं आवैं यहबात जो ऐक्यार्थमें कही सो विषके वेगोंका यह स्वरूप है कि शरीरकी एकधातुसे दूसरी तीसरी आदि धातुओंमें प्रवेश करता चलाजावै-यथा(धातोर्द्धात्वंतरप्राप्तिर्विषवेगइतिस्मृतः)अर्थात्-धातुसे धात्वंतरमें पहुँचना सो विषवेग कहाता है-जिन धातुओंमें विष प्रविष्ट होजाता है वे धातु शरीरमें सातहोतीहैं-यथा (रसासृङ्मांसमेदोस्थिमज्जाशुक्राणिधातवः) अर्थात्-रस १ रक्त २ मांस३ मेदा ४ अस्थि ५ मज्जा ६ शुक्र७ यह शरीरकी धातुहैं सात धातुओंके अनुसार विषके वेगभी सातही होतेहैं उन सातोंके भिन्नभिन्न लक्षण विषके तंत्रमें कहेहैं-यथा-(वेगोरोमांचमाद्योरचयतिविषजःस्वेदवक्रोपशोषौतस्योर्ध्वस्तत्परौद्वौवपुषिजनयतोव र्णभेदप्रवेपौ । योवेगःपंचमोसौनयतिविवशतांकंठभंगंचहिक्कांषष्ठोनिश्वासमोहौवित रतिचमृतिंसप्तमोभक्ष्यकस्य)अर्थात्-मनुष्यको विषका पहिला वेग जब आताहै तब रोमांच कियाकरता अर्थात् कुछ प्रसन्नताको लियेहुये रोमाखड़े होजातेहैं इसीसेरोमहर्षभी रोमांचको कहते हैं यहरोमांचरूप पहिलावेग उसदशामें आताहै कि जब भक्षणहुआ विषरस धातुमें पहुंचता किन्तु विषहीकारस बनने लगताहै १-दूसरा वेग तब आता है कि जब रस धातुमेंसे बढ़कर विषरक्त धातुमें जाताहै इस दूसरे वेगसे मनुष्यको पसीना आजाता और भीतर मुख घाँटी सूखजाती है २-तीसरा वेग तब आताहै कि जबरक्तमेंसेबढ़कर विषमांसमेंघुसताहै इसवेगसे मनुष्यकावर्णभेदहोजाताहै ३-चौथावेग तबआताहै कि जब मांसमेंसेबढ़कर मेदामेंजाताहै इस चौथेवेगसे प्रवेप अर्थात् शरीरकंपउठिआनाहै ४-पाँचवाँवेग तबआताहै जब मेदामेंसे बढ़कर हाड़मेंजाताहै इसवेगसे विवशताहोजाती किन्तु मनुष्य अपने वशमेंनहीं रहता और कण्ठकाभङ्गहोजाता और हुचकीआनेलगतीहै ५-छठावेग तब आताहै जबहाड़ोंमेंसे

बढ़कर मज्जामेंजाताहै यह छठावेग मनुष्यको (निश्वास) नाम निरन्तर लम्बीसाँस और(मोह)नाम आखों तथा ज्ञानकेभीसन्मुख अँधेरासाकरदेता जिस्से जीवकोपीड़ा होनेलगतीहै ६-सातवाँवेग तबआताहै जबमज्जामेंसेबढ़कर विष शुक्रमेंघुसताहै यह वेग मनुष्यको मृत्युदानकरदेताहै ७-यह विषवेगोंके लक्षण बीचमें प्रसङ्गमात्रसे कहे गये अब मुख्यबार्तापर ध्यानकर्त्तव्यहै कि विषका दिव्यकरानेमें शिवजीकापूजनभी यथासम्भव करणीयहै-तथाचनारदः (दद्याद्विषंसोपवासेदेवब्राह्मणसन्निधौ। धूपोपहारमंत्रैश्चपूजयित्वामहेश्वरम्) अर्थात्-धूप नैवेद्यआदि सामग्री निजमंत्रोंसे महेश्वरको पूजिकर व्रतकियेहुये कलंकीको देवता और ब्राह्मणोंके समीप विषदेवै-प्राड्विवाक भी व्रतरखकर महादेवकोपूजिकर उनकेसन्मुखविषरखकर धर्मदेव और धर्मादि सब देवताओंका आवाहन पूजन हवनपर्यंत जैसा सैंतीसवेंपरिच्छेदमेंकहचुकेहैं सो सबकरिकै प्रतिज्ञापत्र यथाविधिसेलिखकर उसके शिरसेबाँधै तिसपीछे विषको अभिमंत्रित करै सो अब उसकेमंत्रभी कहते हैं-यथा (त्वंविषब्रह्मणासृष्टंपरीक्षार्थंदुरात्मनाम्। पापानांदर्शयात्मानंशुद्धानामसृतंभव॥ मृत्युमूर्तेविषत्वंहिब्रह्मणापरिनिर्मितम्। त्रायस्वैनंनरंपापात्सत्येनास्यामृतंभव) अर्थात्-प्राड्विवाक विषकी यहप्रार्थनाकरै कि हे विष तुझे ब्रह्माने दुर्जनोंकी परीक्षाकेहीलिये बनाया है इसलिये पापियोंको अपना मुख्य स्वरूपदर्शावै शुद्धोंको तू अमृतहोजा-हेविष तुझेब्रह्माने मृत्युकीमूर्त्तिकरकेरचाहै इसलिये इसमनुष्यको पापसेबचा और इसकेसत्यसे अमृतहोजा-यहमंत्रपढ़कर दक्षिण मुख बैठेहुये कर्त्ताको खवादे-नारदने यह नियमकहाहै-यथा (द्विजानांसन्निधावेवदक्षिणाभिमुखेस्थिते। उदङ्मुखःप्राङ्मुखोवाविषंदद्यात्समाहितः) अर्थात्-सावधानहुआ प्राड्विवाक उत्तर या पूर्वमुख बैठिकर दक्षिणमुख बैठेहुये कर्त्ताको ब्राह्मणोंके समीप विषदेवै विषभी वत्सनाभआदि मुख्यविषलेना चाहिये-यथाहपितामहः (शृंगिणोवत्सनाभस्य हैमजस्याविषस्यवा) अर्थात्-शृङ्गीविषकादेना या वत्सनाभ विषकादेना या हैमजविषका देना इससें योग्य है-वर्जित विषभी दर्शाये गये हैं-यथा (चारितानिचजीर्णानिकृत्रिमानितथैवच। भूमिजानिचसर्वाणिविषाणिपरिवर्जयेत्) अर्थात्-उस प्रकार के विष न देने चाहिये जो चारित अर्थात् किसी खानी पीनी वस्तुमें चरायेगयेहों यद्वाशोधे मारेगये हों और वेभी नहीं जो सड़ेगले या बीभेहों और वेभीनहीं जो कृत्रिम अर्थात् किसी दो वस्तुके योगसे नकली विषबनतेहों-एवं-नारदनेभी वर्जितविषदर्शाये हैं-यथा (भ्रष्टञ्चचारितञ्चैवधूपितम्मिश्रितन्तथा। कालकूटमलाबुञ्च विषंयत्नेनवर्जयेत्) अर्थात्-एकतो भुनाहुआ विषनदेवै और चारित-जिसकाचर्चा ऊपरहुआहै सोभीनहीं और धूपितविष अर्थात् वहवस्तुभी न देवैजो विषकेधूमसे धूपितकरीगईहो और(मिश्रितविष)अर्थात् जैसेमिठाई लड्डूआदिमें मिला

करदेतेहैं सोभीनहीं और(कालकूट)विषजोअतिशयतीव्रहोतो जिसकीउत्पत्तिएक पी-परकेसमानवनवृक्षकागोंदहोताहै तिसकोभीनदेवेऔर(अलाबू) अर्थात् कटुतुम्बी आदि केविषकोभीनहीं-नारदने विषदेनेकेकालभी बतलायेहैं-यथा(तोलयित्वेप्सितङ्कालेदेयं तद्धिहिमागमे। नापराह्णेनमध्याह्नेनसन्ध्यायान्तुधर्मवित्) अर्थात्-पूर्वोक्तमात्राओं के अनुकूलजो वाञ्छितमात्राहो सोतोलकर हिमागमकालमें देनाचाहिये परन्तुअपराह्णमें यामध्याह्नमें या सन्ध्याकालमें नदेवे यहधर्मज्ञोंको उचितहै अर्थात् केवलपूर्वाह्णकाल मेंसवापहर दिनकेभीतर २ दियाजाय-कदाचित्उक्तकालको छोड़कर संसूचितकाला-न्तरमें विषदेनापरै तवउक्तमात्रासे थोड़ादेनाचाहिये-तथाह (वर्षेचतुर्यवामात्राग्रीष्मे पञ्चयवाःस्मृताः। हेमन्तेस्युःसप्तयवाःशरद्यल्पाततोपिहि) अर्थात्-वर्षाऋतुमेंचारजौ की मात्रालेनीचाहिये ग्रीष्मऋतुमें पाँचजौभरकहाहै पूरेसातजौभर हेमन्तऋतुमेंलेवे और शरद्ऋतुमें उस्सेन्यूनमात्रा किन्तुछःजौ के प्रमाण सेलेवे(इसमेंहेमन्तकहने से शिशिरभीसंग्रहीहै अर्थात् सातजौ हेमन्तमें कहेगये वहीसातजौ शिशिरकाल मेंभी समुझलेने क्योंकिविषकादेना हेमन्त और शिशिरमेंभी विशेषता और योग्यतासाथ पहिलेकहचुकेहैं)वसन्तऋतुका चर्चायद्यपि यहाँपरनहींआया परवसन्तऋतुसाधार-णभावसभी दिव्योंको हितकारी पहले कहचुके हैं इसलियेउसमें भी वहीसातजौकी मात्रालेनीचाहिये जोहेमन्त और शिशिर को वतलाईगई-विषभीघृत मिलाकरदेना कहाहै-यथाहनारदः(विषस्यपलषड्भागाद्भागोविंशतिमस्तुयः। तमष्टभागहीनंतुशो ध्यैदद्यात्घृतप्लुतम्) अर्थात्-एकपल तुलेहुये विपके छठेभागका बीसवांभागअष्ट-मांशहीनकरिके शोध्यपुरुषकोघीमिलाकर देनाचाहिये तात्पर्यइसकायहकिसातजौभर विषतुलाहुआ देवेयहविषकी मुख्यमात्राकहीगई सोयहपूरीमात्रा विषकेमुख्यकालों मेंहीदेवे किन्तुकालान्तरसे देनापरै तवऊर्ध्वोक्तरीतिसे चारपाँचछःजौ भी नियतकरै (और नारदके इसीवचनका अर्थ व्यौरेवार इसप्रकारसे समुझना कि तीनजौका एक कृष्णल और पांचकृष्णल अर्थात् १५ जौकाएक मासाहोताहै ऐसे सोलहमासेका एक सुवर्ण अर्थात् अशर्फीऐसेचार सुवर्णोंका एकपलकहाता जिसके ६४ मासेहोतेहैं तिस का छठाभागदशमासे और दशजौहुये तिनका बीसवांभाग आठ जौरहगये तिन में से भी अष्टमांशकाएक और घटायावेही सात जौ शेषरहे सो यह विपकीमात्राकही-घीकेसाथ जो देनाकहा सो विपसे तीसगुणाघीलेना चाहिये-यथाहकात्यायनः(पूर्वाह्णे शीतलेदेशेविषंदेयंतुदेहिनाम्। घृतेनियोजितंश्लक्ष्णंपिष्टंत्रिंशद्गुणान्वितम्)अर्थात्-अच्छा चिकनाबारीक पिसाविष तीस गुणेघीसे नियुक्त कियाघी में मिलाकर देहियों को शीतल स्थान और पूर्वाह्णकालमें देना चाहिये-कुहक आदिकपट विद्यावान् किंतु इन्द्रजालिक आदि जो टोनाआदि से विषदूरिकरते हैं तिनसेभी शोध्यजनकी रक्षा

कर्तव्यहै अर्थात्कोई ऐसापुरुष उसके पासतकजानेनहींपावै-तथाचपितामहवचनम्-यथा(त्रिरात्रंपंचरात्रंवापुरुषैःस्वैरधिष्ठितम्। कुहकादिभयाद्राजाधारयेद्दिव्यकारिणम्॥ औषधीर्मंत्रयोगांश्चमणीनथविषापहान्। कर्तुःशरीरसंस्थांस्तुगूढोत्पन्नान्परीक्षयेत्) अर्थात्-राजाको यह उचित है कि दिव्यकारीपुरुष को कुहकादि मायावी पुरुषोंकेभय से तीनि राति या पांच रातितक अपने पुरुषों से अधिष्ठित किया रखवाली में रक्खै और विषके हरनेवाली औषधीतथा मंत्रके योगों वा मणियों को जो कर्ता के शरीर में छिपीहुई संस्थित हों परीक्षाकरवावै (यहांपर तीनिराति या पांच राति पहिलेसे रक्षा वा परीक्षा करनीसमुझी चाहिये किंतु विषके दिये पीछेनहीं क्योंकि विषके दिये पीछे तो इनबातों का करनाही आवश्यक है बरन पांचसौ ताली के कालतकपरीक्षा करीजातीहै फिरविष दूरिकरने के उपायकरने नीचे लिखेंगे इसलिये पीछे का सिद्धांत पांचरात्रि तक असंगत है सो इसवचनसे तीसरे वचन में नीचे देखो) जैसे कर्त्ता की रक्षा और परीक्षा करनी कही गई तैसेही विषकी भी अनेक भांति रक्षा और परीक्षा पहले से कर्त्तव्य है- यथाहनारदः (शार्ङ्गंहैमवतंशस्त्रंगंधवर्णरसान्वितम्। अकृत्रिममसंमूढममंत्रोपहतंचयत्) अर्थात्-शार्ङ्गनाम का विषजो पशुओं के सींगों से उत्पन्नहोता है और हैमवतनाम (जो) हिमालयसे उत्पन्नहोता है उनमें भी उत्तम छांटै जो अपनी मुख्यगंध और मुख्य रंगरूपसे और असली रसकरिके संयुक्तहो और (अकृत्रिम) हो किन्तु बनायाहुआ नकली या शोधाहुआ असलीभी न हो और (असंमूढ) हो अर्थात् ऐसा थोथाविष न हो जिसकाखानेसे वेग नहींचढ़ता हो और मंत्रोंसे उपहतकिया हुआ भी न हो जिसकाप्रभाव झूठाहोजाय (ऐसाविष पहलेसे परीक्षा करिकै राजारक्खाकरै अर्थात् अपनी धटशाला वा दिव्यशाला नामकेस्थानमें संचितकरै क्योंकि तत्काल ढूंढ़े परकोई वस्तु श्रेष्ठनहीं मिलसक्ती है) अब इसकर्म की अंत्यचर्य्या कहतेहैं कि विषपिलाने पीछे इतनेकालतकपरीक्षा करनीचाहिये जितनी देरमें पांचसौताली लगातार किसीकेहाथसे बजसक्ती हों तिसपीछे फिर चिकित्सा करनीयोग्य है (तथाचनारदः) पंचतालिशतंकालंनिर्विकारोयदाभवेत्। तदाभवति संशुद्धस्ततःकुर्याच्चिकित्सितम्)अर्थात्-यदि पांचसौताली के कालतक निर्विकार बना रहे किन्तु विषकावेग नहींआवै तौ उसकलंकीको शुद्धहुआ जानो और इसकाल पीछे वह चिकित्सा उसकी करनीचाहिये जिस्से विषकीगरमी और प्रभाव दूरिहोजावै सो यह चिकित्साउसकी पांचसौताली पीछे विषकावेग आने या न आनेपरभी कर्तव्यहै पितामह ने अढ़ाईपहर तकभी परीक्षाकरनी कही और उनकेमतमें सायंकाल को चिकित्साकरनी निश्चितहोतीहै-यथा(भक्षितेतुयदाम्भस्योर्मूर्च्छाछर्द्दिविवर्जितः। निर्विकारोदिनस्यांतेशुद्धंतमपिनिर्द्दिशेत्)अर्थात्-विष भक्षणकरनेपर यदिस्वस्थ सावधान

बनारहे और मूर्च्छा अथवा छर्दिनाम वमन उसकोनहीं आवै और वहदिनके अस्त होनेतक ऐसाही निर्विकार बनारहे तौ उसको निश्चयात्मक शुद्धकहना योग्यहै(अ-र्थात् जो इसअवधिके बीतजाने पीछेकोईसा विकार उसकोहो आवै तौभी निरपराधी समुझाजाय और वैद्यकशास्त्र के उपायोंसे चिकित्साकरीजाय जिस्से मरनेनहीं पावै इसमें अढ़ाईपहर इसप्रकारसे समुझने कि पूजनादि विधिसे निपटे पीछेपूर्वाह्न काल केभीतर भीतर सवापहर दिन चढ़ेतक विषभक्षण कियागया और उधरभी दो डेढ़ घटीदिन शेषरहने पर सायंकाल का प्रवेशहोजाता और सायंकालसे कुछ पहलेहीं दिनकाअंत इसमें मानाचाहिये किन्तुदिनका अष्टमांश शेषरहजानेसेही दिनकाअंत समुझना इसकारण अढ़ाईपहरसे अधिक अवधि नहीं समुझनी सोभी यह अढ़ाई पहर पितामहने उस दशापर दर्शाये हैं कि जब कदाचित् विषकी मात्रा सात जौके परिमाणसे न्यून कल्पित करीगईहो अन्यथानहीं (अथप्रयोगक्रमः) प्राड्विवाक व्रतरख-कर महादेवकी पूजाकरै और महादेवके सन्मुख विषरखकरपुनि पूर्वोक्त धर्मादि देव-ताओंको यथाक्रमसे पूजिकर शोध्यपुरुष के मस्तकपर प्रतिज्ञापत्र लिखकर बांधै पुनिविषको अभिमंत्रितकरै पुनिदक्षिणमुखबैठहुये शोध्यकोदेदेवै वहशोध्यभीविषको अभिमंत्रित करिके भक्षण करिजावे (इत्यनुक्रमः) ११२।११३॥ इतिविषविधानम्॥

अथकोशविधिमाह॥

अथदिव्यप्रमाणापेक्षायामुग्रदेवस्नानोदकपानप्रकारेणकोशविधिप्रदर्शनोनाम एकचत्वारिंशःपरिच्छेदः ४१॥

इस इकतालीसवें परिच्छेद में कोशविधि वर्णन होगी जिसका प्रकार उग्र देवों के स्नान जलपान द्वाराहोता है॥

देवानुग्रान्समभ्यर्च्यतत्स्नानोदकमाहरेत्। संश्राव्यपाययेत्तस्माज्जलात्सप्रसृतित्रयम्॥ ११४॥

अक्ष०–उग्रदेवोंको सम्यक् अभ्यर्चन करिकै उनका स्नानोदक लेलेवै अभिमंत्रित करिकै उसजलमें से तीन प्रसृतिवह पिलावै ११४॥

अभि०–दुर्गाआदि किसी उग्रदेवता को सम्यक् यथाविधि गंध पुष्पादि सामग्री से पूजिकर स्नानका जल पात्र में लेलेवे तिसजल को पहले प्राड्विवाक उसमंत्र से अभिमन्त्रितकरै जो उनतालीसवें परिच्छेद ११० की अधिकोक्ति में (तोयत्वं प्राणिनांप्राण) इत्यादिजलके प्रसङ्गसे कहचुके हैं तिसपीछे शोध्यपुरुषभी उसजल कोअन्यपात्रमें लेकरनिज आपढसमंत्रसे अभिमंत्रितकरै जोउसी ११० केमूलश्लोक पहलेपादसे कहचुकेहैं कि(सत्येनमाभिरक्षत्वंवरुण) ऐसेतीनवार पढ़िकर उसजलमें से तीनप्रसृतिनामतीन चुल्लूपीजावे ११४॥

अधि०–ऊर्ध्वोक्तकर्म तब होनाचाहिये कि जबसैंतीसवें परिच्छेद में प्रदर्शितकिये

धर्मादि सब देवताओं का आवाहन पूजनहोम समन्त्रक प्रतिज्ञापत्रका मस्तकपर बाँधना यह सबहोजावें-कोशविधिमें जिसदेवताको स्नानकरानाचाहिये तिसकानियम और कार्य काभी नियमतथा अधिकारियोंका भी नियमपितामह आदि धर्मकारकोंने जैसा जैसा कहा सो सब कहते हैं-यथा (भक्तोयोयस्यदेवस्यपाययेत्तस्यतज्जलम् । समभावेतुदेवानामादित्यस्यतुदापयेत् ॥ दुर्गायाःपाययेच्चौरान्येचशस्त्रोपजीविनः। भास्करस्यतुयत्तोयंब्राह्मणंतन्नपाययेत् ॥ दुर्गायाःस्नापयेच्छूलमादित्यस्यतुमंडलम् । अन्येषामपिदेवानांस्नापयेदायुधानितु) इति देवतानियमः—अर्थात्—देवता का यहनियम है कि प्राड्विवाक प्रथम तौ जो पुरुष जिस देवताका भक्तहो उसको उसीके इष्टदेवका स्नानजल पिलावे और जिसपुरुषकी सभी देवताओंमें समदृष्टिहो तौ उसको सूर्यकीमूर्तिका स्नानोदक देवै और चोरोंतथा शस्त्रोपजीवी नाम सिपाहियोंको दुर्गादेवीका स्नान जलपिलावे परंच ब्राह्मणको सूर्यका स्नानोदक न देवै-दुर्गा देवीकाशूलनाम बर्छीजो है तिसकोभी स्नानकरावे और आदित्यके मंडलनाम किरणों कोभी तथैवअन्य सब देवताओं के शस्त्रोंको भी धोलेवै-इतिदेवतानियमः (अथकार्यनियमः) यथा (विस्रंभेसर्वशंकासुसंधिकार्येतथैवच । एषुकोशःप्रदातव्योनित्यंचित्तविशुद्धये) अर्थात्-सर्वकार्यों में शंकामात्र उठनेपर विश्वासके निमित्तमें तथा संधिकार्य अर्थात् किसीका विरुद्धहुये पीछे मिलापकरने की अपेक्षामें चित्तकी शुद्धिहोजाने के लिये सदैवही कोशपान विधिकर्तव्य है यह कार्योंका नियमहै(अथाधिकारिनियमः) यथा(पूर्वाह्णेसोपवासस्यस्नातस्यार्द्रपटस्यच।सशूकस्याव्यसनिनःकोशपानंविधीयते) अर्थात्-कोशपानविधि उपवासकिये पुरुषको पूर्वाह्णकाल में स्नानकियेहुये भीगेवस्त्र पहनेहुये कराईजातीहै परन्तुउसीको करानीचाहिये जो(सशूक)अर्थात् आस्तिकहो और व्यसनीनहो यहअधिकारीकानियमहै(अथानधिकारिनियमः)यथा(मद्यपस्त्रीव्यसनिनांकितवानांतथैवच । कोशःप्राज्ञैर्नदातव्योयेचनास्तिकवृत्तयः॥ महापराधेनिर्द्धर्मेकृतघ्नेक्लीबकुत्सिते । नास्तिकव्रात्यदासेषुकोशपानंविवर्जयेत्)अर्थात्-प्राज्ञप्राड्विवाक वा अन्योंकोभी यहउचितहै कि इतने अपराधियोंको कोशविधिनहींकरावें किन्तु एकतौ (मद्यप) जो शराबीहो (स्त्री) व्यभिचारिणीहो(व्यसनी)जोकुकर्मोंमेंरतहो तैसेही (कितव)जोछलियाहो या नास्तिक वृत्तिमानहो तिनकोनहीं और (महापराधी)जिसने बहुतबड़ा अपराध या महापापकियाहो तिसको नहीं और (निर्द्धर्म) जोअपने मुख्य धर्म पर न चलताहो और (कृतघ्न) जो किसी के किये हुये उपकारको मेटताहो और(क्लीब) जो परमनपुंसक हो और(कुत्सित)जिसकी जातिपांति या आचरणोंका ठिकाना कुछ न हो और इसी हेतुसे बहुनिंद्य प्रसिद्धहो और नास्तिक जो शास्त्रोक्त मर्यादाको न मानताहो और(व्रात्य)जिसका यज्ञोपवीत या और संस्कार जो कर्तव्य

थे न हुयेहों और दास अर्थात् कैवर्तादि जातोंके लोग इनसबसे कोशपान विधिको बचावै किन्तु इनसेकोई और प्रक्रियाजो शपथों या दिव्योंमध्ये उचितहोसो करवाईजाय और सिद्धांत इसकायह कि यह कोशपान विधिसज्जन और धर्मात्मा पुरुषों से करवानी चाहिये(इत्यधिकारिनियमः)एकयह विधि इसमें अधिकहै कि गायकेगोबरसे मंडल बनाकर उसमें शोध्यको सूर्य सन्मुखखड़ा कराकर पिलावै-यथाहनारदः-(तमाहूयाभिशस्तंतुमंडलाभ्यंतरेस्थितम्।आदित्याभिमुखंकृत्वापाययेत्प्रसृतित्रयम्) अर्थात्-उसकलंकी को बुलाकर मंडलकेबीचमें आदित्यके अभिमुख खड़ाकरके तीन प्रसृती पिलवावै ११४ तुलासेविष पर्यंतचारों दिव्योंकी साधनाके साथही तत्काल पीछे शुद्धि या अशुद्धि उसमनुष्यकी जानीजाती है यहवर्णन होचुका पर इसकोश पान के विधानसे तत्काल नहीं किन्तु कुछ दिनों के अंतरसे परीक्षापाई जाती है सो निचले वाक्यमें कहेंगे ११४॥

अर्वाक्चतुर्दशादह्नोयस्यनोराजदैविकम्। व्यसनंजायतेघोरंसशुद्धःस्यान्नसंशयः ११५॥

अक्ष०—जिसको चौदह दिनके इधर नहोवै घोरव्यसन राजदैविक सो शुद्ध होवै संशयनहीं ११५॥

अभि०—जिसने कोशपान कियाहो उसको चौदहदिनकी अवधि भीतर कोई महाघोर व्यसन विपत्तिनतो राजाके सकाशते नदेवों के कोपसे उत्पन्नहोवै उसको निरपराधी निःसंदेह जानो किन्तु इस्से विपरीतमें अपराधी होगा ११५॥

अधि०—जो कि चौदहदिनकी अवधि नियत हुईहै उस्से उपरांत जिसको राजकृत विपत्ति अथवा देवकृत विपत्ति आनि परै वह अपराधी नहीं समुझाजाय-यथाहनारदः(ऊर्ध्वंयस्यद्विसप्ताहाद्वैकृतंतुमहद्भवेत्।नाभियोज्यःसविदुषाकृतकालव्यतिक्रमात्) अर्थात्-जिसको दो सप्ताहके उपरांत कोई महावैकृतनाम राज दैविक दुःख होजावै उसको ज्ञानीलोग अपराधी नहीं ठहरावैं क्योंकि नियतकरी अवधिका व्यतिक्रम हुये पीछे उसका इस अभियोगमें अपराध नहींहै यहवात जो उक्तअवधिके आशय सेही पाईजातीथी तिसको नारदनेकहा—परन्तु-यह चौदह दिन के भीतरवाली अवधिकेवल महाभियोगोंमें अर्थात् जुरायम् संगीनमें समुझनी क्योंकि पहले ९७ के मूलश्लोकमें कहचुकेहैं कि (महाभियोगेष्वेतानि) अर्थात् तुलाआदि कोशपान पर्यंतयहपांचोंदिव्य महाभियोगों में करानेचाहिये और अभियोगों का महत्त्वभी १०१ वाले पूर्वार्द्ध में कहचुके हैं कि सहस्रपण की मालियत से लेकर उपरांतसंगीन मुकद्दमाजानो किंतु भीतर नहीं इसलिये यह चौदह दिनकी अवधि भी महाभियोगों मध्ये समुझौ और यह विशेषता इसलिये वर्णन हुई कि कोशविधिछोटे भी अभियोगों में होतीहै यथा (कोशमल्पेपिदापयेत्) यह वाक्य पहले प्रदर्शित होचुका है

इसलिये सिद्धांत इसका यह जब कदाचित् कोशपानविधि सहस्रपणके भीतर छोटे अभियोगों में कराईगई हो तब केवल चौदह दिन भीतरहीपरीक्षा नहीं किन्तु कुछ अधिक अवधितक परीक्षा कर्त्तव्यहै-(यथाहपितामहः-(त्रिरात्रात्सप्तरात्राद्वाद्वादशाहा तृद्विसप्तकात्। वैकृतंयस्यदृश्येतपापकृत्सउदाहृतः) अर्थात्-दोसप्ताहों के उपरांतभी तीनरात्रि या सातरात्रि या बारहरात्रितक जिसकिसी कोशपान करनेवालेकोवैकृतनाम विगाड़ कोईसा उत्पात दुःखरूप देखपरै तौ वह अपराधी ठहरै (पितामहने इसमें तीन सातबारह का विकल्प इसलिये रक्खाहै कि जब सहस्रके भीतर सातसौतक या पाँच सौतक या तीनसौतक मालपर झूँठी शपथ खाकर कोशपान कियाहो तब यथाक्रमसे बुद्धिमानोंको व्यवस्थादेखनीचाहिये अर्थात् यदि तीनसौतक पणपचायेहों तौ छब्बीस २६ दिनतक उसके पुण्यपाप को देखै यदि पाँचसौतक पणपचायेहों तौ २१ इक्कीस दिनतक यदि सातसौतक पणपचायेहों तौ सत्रह १७ दिनतक यदि पूरे एक सहस्र या इस्से उपरांत का अभियोगहो तौ फिर केवल दो सप्ताहतक परीक्षा कर्त्तव्य है)(प्रकट कियेदेते हैं कि यद्यपि इस व्याख्याको विरले विद्वान् उलटी समुझैंगे क्योंकि पितामहके अनंतरोक्तजिस वचनकी यह व्याख्याहै उसकाअर्थ वहुधाज्ञाताओंनेभी सीधा२यथाक्रमसे यहीमानरक्खाहै कितीन या सात यावारह या चौदहदिनतकपरीक्षा लेनीचाहिये अर्थात् जो मुक़द्दमा निपट खफीफ हो तौ तीनदिनतक पुनि इस्सेआगे जैसा २ अधिक मुक़द्दमाहो तैसी २ अवधिभी अधिकवढ़तीजावै और संगीन मुक़द्दमाके विषयपर पूरे चौदहदिनतक उसके पापकीपरीक्षा करीजाय-परन्तु-हमारी दृष्टि से यह सीधा अर्थथोथासा प्रतीतहोताहैकिंतु इसदशापर कि यद्यपि क्रियापदविभक्ति आदिके अन्वयसेभी सर्वथा शुद्धहै तथापि गूढ़किसी हेतुसे निःसारजानाजाताहै इस लिये उसवचनका ऐसाअन्वय सारार्थ विदित होताहै कि (द्विसप्तकात्परतःत्रिरात्रात् सप्तरात्राद्वाद्वादशाहाद्वायस्यकर्त्तुः वैकृतंदृश्येतसपापकृदुदाहृतः) (इसीअन्वयके अनुसार ऊपरली व्याख्याहुईथी और उसके लेखक ने शास्त्रसिद्धांत निश्चयके सिवाय वहुधा लौकिक व्यवहारोंमें झूँठीशपथ करनेवालोंकी परीक्षाभी उसीव्याख्याकेअनुकूल देखनेको पाई यद्यपि किसीगूढ़हेतुका लिखना यहांअति विस्तारभयसेअब अपेक्षित नहीं है तथापि यदि कोईविज्ञाता उसका खण्डनकरिके बूझाचाहै तौ उसदशा में उस गूढ़हेतुको प्रकाशकरनेकाउत्साह शेषहै) और इस्सेआगे फिरभी सबको अधिकार है कि दोभाँतिकीव्याख्यामेंसे जिसकिसीकीपरीक्षा लौकिकव्यवहारोंसे ठीकपावैं उसी को प्रमाणमानें और इसन्यायपर दृष्टिजमीरक्खैं कि स्वल्पपापमें इतनीवड़ीशक्तिनहीं है कि अतिशीघ्र अपनाचिह्नदिखावनेके किन्तु यह चमत्कारशक्ति महापापमेंहोतीहै ११५॥

इतिकोशपानविधिः॥ इति पञ्चमहादिव्यानि॥

यहाँताईं तुला आदि कोशपानतक पाँचमहादिव्य योगीश्वर याज्ञवल्क्यजी के कथनानुसार अन्य स्मृतियोंकेप्रमाणसे वर्णनहुये-अब-निचलेपरिच्छेद में उपदिव्यों का वर्णन केवल अन्य स्मृतियोंसेही कियाजायगा किन्तु योगीश्वरने उनका चर्चा स्वल्पविषयिकजानिकर नहींकिया इसलिये इसनिचले परिच्छेदमें योगीश्वरका मूल वाक्यभी न आवैगा-और उसीमें यहभी ध्यानकरणीयहै कि यद्यपि यथार्थ मर्यादासे उपदिव्योंकेभी चारिपरिच्छेद होनेयोग्यथे परंच निर्माताकीइच्छासे सर्व उपदिव्योंका जातित्व एकमानिकर चारों परिच्छेदोंका एकही निर्मितहुआहै इसलिये इस निचले परिच्छेदमें जुदे जुदे भिन्नविषयिक चारोंचरण समुझनेयोग्यहैं॥

अथोपदिव्यान्याह॥

अथदिव्यप्रमाणापेक्षायांस्वल्पाभियोगविषयेषुतंदुलाद्युपदिव्यानांविधि प्रदर्शनोनामद्विचत्वारिंशःपरिच्छेदः ४२॥

इस बयालीसवें परिच्छेद में सभी उपदिव्यों का प्रकारबर्णन होगा इसके (पहिलेचरणमें तंदुलविधि) और (दूसरे चरणमें तप्तमाष विधि) और (तीसरे चरण में धर्माधर्म विधि) और (चौथेचरणमें सर्व सामान्य शपथों का विधान) जानाजायगा तिनमें पहलेतंदुल विधिकहते हैं॥ अथतंदुल विधिविज्ञानापेक्षायां पितामहवचनं-यथा-(तंदुलानांप्रवक्ष्यामिविधिंभक्षणनोदितम्। चौरेतुतंदुलादेयानान्यस्येतिविनिश्चयः। तंदुलान्कारयेच्छुक्लान्शालेर्नान्यस्यकस्यचित्। मृण्मयेभाजनेकृत्वाआदित्यस्याग्रतःशुचिः। स्नानोदकेनसंमिश्रान्रात्रौतत्रैववासयेत्। प्राङ्मुखोपोषितंस्नातंशिरोरोपितपत्रकम्॥ तंदुलान्भक्षयित्वातुपत्रेनिष्ठीवयेत्ततः। पिप्पलस्यतुनान्यस्यअभावे भूर्जएवतु। लोहितंयस्यदृश्येतहनुस्तालुचशीर्यते। गात्रंचकंपतेयस्यतमशुद्धंविनिर्दिशेत्) अर्थात्-पितामहने यह कहा है कि तंदुलोंकी विधि जो चावल चबाने द्वारा विहितहै सो मैं कहूँगा-किंतु-छोटे अभियोगों में चोर कोहीचावल चबवाने उचित हैं किसीऔर अपराधीको नहीं यह निश्चय जानो-तहां-सुपेद चावलोंसे यह विधिकरनी चाहिये और तंदुलकेवल धानकेही लियेजायँ किसी और धान्य के नहीं-एक पवित्र आदमी जो इसकामके प्रबंधपर नियतहो आदित्यके सन्मुख उनकी मूर्त्तिको स्नान कराकर उसीस्नानोदक से मिलाकर मिट्टीके पात्र में रखकर उसरात्रिभर उसीजगहर क्खारहिनेदे जहांपरबैठिकर परीक्षाकरनी ठहरीहो-दूसरे दिनपूर्वाह्णकालमें प्राड्विवाक उस कलंकीकोजिस ने व्रतकियाहो और स्नान करिके पूर्वमुखखड़ा हुआहो और प्रतिज्ञा पत्रभी जिसके शिरपर बांधागयाहो तंदुलभक्षण कराकर एक पत्तेपर थुकवाइ देवै-परन्तु वहपत्ताभी पीपलका हो किसीऔर वृक्षकानहीं कदाचित् पीपलका नमिल सकै तो भोजपत्रपर थुकवावै-जिस के चर्वित चावलों में रक्तकी लाली देख परै और

ठोढ़ी या चौहरि या तालूसूखकर चिपटने लगैं अथवा जिसकाशरीर कांपै तिस को दोषीजानौ (इस विधिमेंभी धर्मका आवाहन पूजनहवनपर्यंत जैसा सैंतीसवेंपरिच्छेद में कहचुकेहैं सब यथासंभव कर्त्तव्यहै)॥

इत्युपादिव्यानांतंदुलविधिविषयिकःप्रथमश्चरणः १॥

अथतप्तमाषविधिविज्ञानापेक्षायां पितामहवचनम्-यथा(सौवर्णंराजतंवापिताम्रंवा षोडशांगुलम्। चतुरंगुलखातंतुमृण्मयंवाथमंडलम्। पूरयेद्घृततैलाभ्यांविंशत्यातुपलैस्तुतत्। सुवर्णमाषकंतस्मिन्सुतप्तेनिक्षिपेत्ततः। अंगुष्ठांगुलियोगेनउद्धरंस्तप्तमाषकम्। कराग्रंयोनधुनुयाद्विस्फोटोवानजायते। शुद्धोभवतिधर्मेणनिर्विकारकरांगुलिः) अर्थात्-पितामह ने यह कहा है कि एकगोल प्यालीदार कटोरा जो सोने या चाँदी या ताँबे या मिट्टी का बनाहो जिसका चार अंगुल गहिरापन और सोरह अंगुलघेर मंडलाकारहो उसको बीसपल तुलेहुये घृत और तैलसे भरै और अग्निपर चढ़ाकर पकावै पुनिअतीव तप्तहोजानेपर उसमें एकमासे सोना जो गुटिकावत् गोलहो डाल देवै और अँगूठा तथा तर्जनी अँगुलीकी चुटकीसे कलंकीपर निकलावै यदि कलंकी उस तप्तमाषको निकालतेहुये हाथका अग्रभाग कँपावै नहीं या छालेहाथमें न आवैं तौ वह हाथ और अँगुलियों सेभी निर्विकार बचा कर्त्ता अपने धर्म से निष्कलंक सच्चाहोता है (जोकि उसतप्तमाषका निकालना कहागया तिसका यह आशय नहीं है कि निकालकर शीघ्र किसी ओर को लंबाफेंक देवै किन्तु पात्रमेंसे सामान्य भाव निकालकर सब उपस्थितों को दिखावै परन्तु यह भी आशय नहीं है कि कुछ कालतक थाँभेरहै किंतु दिखलाकर शीघ्र छोड़देवै यह सिद्धांतहै) (अस्यैवापरःकल्पः) किंच इसी तप्तमाष विधिका एक और प्रकारभी होता है सो कहते हैं-यथा (सौवर्णेराजतेताम्रेआयसेवाथमृण्मये। गव्यंघृतमुपादायतदग्नौतापयेच्छुचिः। सौवर्णींराजतींताम्रीमायसींवासुशोभिताम्। सलिलेनसकृद्धौतांप्रक्षिपेत्तत्रमुद्रिकाम्। भ्रमद्वीचितरंगाढ्येह्यनखस्पर्शगोचरे। परीक्षेतार्कपर्णेनचुरुकारंसुघोषकम्। ततश्चानेनमंत्रेण सकृत्तदभिमंत्रयेत्। परंपवित्रममृतंघृतत्वंयज्ञकर्मसु। दहपावकपापंत्वंहिमशीतंशुचोभव। उपोषितंततःस्नातमार्द्रवाससमागतम्। ग्राहयेन्मुद्रिकांतांतुघृतमध्यगतां तथा। प्रदेशिनींचतस्याथपरीक्षेयुःपरीक्षकाः। यस्यविस्फोटकानस्युःशुद्धोऽसावन्यथाऽशुचिः) अर्थात्-दूसरा यहप्रकार है किएक पूर्वोक्त परिमाणका पात्र जोसोनेयाचांदी या तांबे या लोहे या मिट्टीकाबना हो उसमें गायका घृतभरिकै एक पवित्रनर उसको आगनपर तपावै तिसमें एकसुन्दर अतिनिर्मल मुद्रिका जो मासेभर सोने या चांदी या तांबे या लोहेकेबनीहो एकबार जलमें धोयकरडालदेवै-पर मुद्रिका उसमें तब डालीजाय कि जब घी में खौलिकर तरंगें उठनेलगैं और देखनेमेंही वृतगर्मा प्रतीत

होनेलगै कि इसपर नखभीनहीं छूसकैगा-बलिक उसघीकी परीक्षाभी करनीचाहियें हरे अँकौआके पत्तेसेकिन्तु पत्ताघृतमें डालनेसे चुरचुराहटका शब्ददेने लगै तवइस अग्रोक्तमंत्रसे घीकोअभिमंत्रित करैकि-हेघृततू यज्ञकर्मोंके विषयमें परमपवित्र और अमृतरूपहै हेअग्ने तू पापीको जलायदे और सत्वपुरुषको पालाकेसमान शीतल होजा-इसमंत्रसे प्राड्विवाक उसघी और अग्निकी प्रार्थनाकरै तिसपीछे व्रत कियेहुये और स्नानकरिकै भीगेवस्त्र पहिनकर आयेहुये कलंकीसे उस मुद्रिकाको उठवावै जो घृतमें डालरक्खीथी-तिसपीछे परीक्षक लोग उसकर्त्ता पुरुषकी प्रदेशिनी अँगुली की परीक्षाकरै किन्तु जिसकी प्रदेशिनीमें छालेनहींपड़ें सो शुद्धहुआठहरै और अन्यथा जिसकेछाले पड़ेहों वह नर अपराधी है(इसविधिमें भी धर्म और धर्मादिक देवताओंका आवाहन पूजनहवन पर्यंत और प्रतिज्ञापत्रका बांधना उसकेशिरपर कर्त्तव्य है जैसा सैंतीसवें परिच्छेदमें वर्णनहोचुका है इसविधिमें घृतरूप अग्निका अभिमंत्रण प्राड्विवाक की ओरसे ऊपरले मंत्रमें कहागया पर शोध्यपुरुषभीघृतकेसन्मुख आनेपर उसमंत्रसे प्रार्थनाकरै जो अग्निके विधानमध्ये १०६ कामूलश्लोक (त्वमग्ने सर्वभूतानां) इत्यादि योगीश्वर वाक्य अड़तीसवें ३८ परिच्छेदमेंआचुकाहै॥

इत्युपदिव्यानांतप्तमाषविधिविषयिकोद्वितीयश्चरणः २॥

अथचधर्माधर्माख्यविधिविज्ञानापेक्षायांपितामहवचनम्-यथा(अधुनासंप्रवक्ष्यामिधर्माधर्मपरीक्षणम्। हंतॄणांयाचमानानांप्रायश्चित्तार्थिनांनृणाम्) (हंतॄणामितिसाहसाभियोगेषु) (याचमानानामितिअर्थाभियोगेषु) (प्रायश्चित्तार्थिनामितिपातकाभियोगेषु) तत्र-राजतंकारयेद्धर्मसधर्मंसीसकायसम् (सीसकंवाआयसंवेतिप्रतिमाविधानम्) अर्थात्-पितामहका यहवाक्य है कि उपदिव्योंमध्येधर्माधर्म के नामसे परीक्षाका प्रकारजो होताहै तिसकोभी अब मैं यथाविधि से वर्णनकरूंगा सो यहप्रकार(हंतृयों) अर्थात् साहसिकों के लिये नियत है जो किसीकाप्राण बधकरने से (क़ातिल) कहलाते हैं-और-यहीप्रकार (अर्थाभियोगियों) अर्थातृदीवानीमें नालिशकरने वालों के लिये नियत है कि जोपुरुष धनसंपत्तिकी अपेक्षासे अभियोग लगावें-और-यही प्रकार (प्रायश्चित्तार्थियों) के निमित्त में अर्थात् जिनपर कुछ पातकरूप अभियोग लगाहो जिसमें प्रायश्चित्तकी अपेक्षाहो-तहां-धर्मदेवकी मूर्त्तिचाँदीकी और अधर्म की सीसे या लोहेकी बनावै यहप्रतिमा का विधानकहा-अथवा-अग्रोक्त पक्षान्तर के प्रकारसेवनावै सोअवकहते हैं और पूजनादि विधिदोनों प्रकारमेंएकही समुझलेनी-यथा (लिखेद्भूर्जेपटेवापिधर्माधर्मौसितासितौ। अभ्युक्ष्यपञ्चगव्येनगन्धमाल्यैःसमर्चयेत्। सितपुष्पस्तुधर्मःस्यादधर्मोऽसितपुष्पधृक्। एवंविधायोपलिख्यपिण्डयोस्तौ निधापयेत्। गोमयेनमृदावापिपिण्डौकार्यौसमन्ततः। मृद्भाण्डकेऽनुपहतेस्थाप्यौचानु

पलक्षितौ ॥ उपलिप्तेशुचौदेशेदेवब्राह्मणसन्निधौ । आवाहयेत्ततोदेवान्लोकपालांश्च पूर्ववत् ॥ धर्मावाहनपूर्वंतुप्रतिज्ञापत्रकंलिखेत्)(यदिपापविमुक्तोहंधर्मस्त्वायातुमेकरे । अशुद्धश्चेन्ममकरेपापमायातुधर्मतः ॥ इत्यभिशंस्तोभिमन्त्रयते) अभियुक्तस्तयोश्चैकंप्रगृह्णीताविलम्बितः । धर्मेगृहीतेशुद्धःस्यादधर्मेतुसहीयते ॥ एवंसमासतःप्रोक्तंधर्माधर्मपरीक्षणम्(इतिधर्माधर्म दिव्यविधिः) अर्थात्-यदिउस प्रकारकी मूर्त्तिनहोसके तौभोजपत्रयागाढ़वस्त्रपर धर्मकीशुक्लामूर्ति और अधर्मकीकालीमूर्तिलिखेउनकोपञ्चगव्यसे छींटादेकर गंधमाल्यादिकौं से विधिवत् पूजै-पुनिधर्मके मस्तकपर श्वेतपुष्प और अधर्मके मस्तकपर काला फूल धरै-इसप्रकारसे चाहे लिखकर या पूर्वोक्त रीतिसे बनाइकर दोनों मूर्तोंको दो पिंडबनाकर उनमें जुदी२ गुप्तभावसे थोपिदेवै-और वहदोनों पिंडचाहे गोवरके बनायेजायँ अथवा मिट्टीके फिर एक साजे मिट्टीके हंडेमें दोनों गोले कर्त्ता पुरुषसे छिपाइकर धरै जिस्से वह देखनहीं पावै-तिसपीछे लिपेहुये शुचिस्थान में देवता और ब्राह्मणोंके सन्मुख बैठिकर धर्मदेवका आवाहन और धर्मादिक और सब देवताओं लोकपालों का आवाहन पूजन हवन पर्यंत सबकरै जैसा सैंतीसवें परिच्छेद में वर्णन होचुकाहै तिसपीछे प्रतिज्ञापत्र लिखकर कर्त्ताके मस्तकपर बाँधै यह सबकर्म प्राड्विवाक द्वारा कियाजाय-तिसपीछे वह कलंकी इस अग्रोक्त मंत्रसे धर्माधर्म दोनों को अभिमंत्रित करै कि (यदिमैं पापसे रहित नाम सच्चाहोउँ तौ मेरे हाथमें धर्म आवै और जो मैं असत्यवादी होउँ तौ न्यायानुसार मेरे हाथ में अधर्म आवै)ऐसे पढ़िकर वह कलंकी उस हाँडीमें हाथडालकर शीघ्रही विनाशोचे एक मूर्तिके गोलेको निकासिलावै-यदिउसके हाथमें धर्मकागोला आयाहो तौवहसच्चाहै यदिअधर्म आयाहो तौ वह झूँठाहोकरहारैगा-यहसंक्षेप विधिधर्माधर्मकी परीक्षामध्ये कहीगई॥

इत्युपदिव्यानां धर्माधर्म विधि विषयिकस्तृतीय श्चरणः ३ ॥

अथान्येषांसामान्यशपथानांविधिविज्ञानापेक्षायांमन्वादिनिरुक्तवचनानि ॥ यथा (निष्केतुसत्यवचनंद्विनिष्के पादलम्भनम् । त्रिकादर्वाक्तु पुण्यंस्यात्कोशपानमतः परम् ॥ सत्येनशापयेद्विप्रंक्षत्रियंवाहनायुधैः । गोबीजकांचनैर्वैश्यंशूद्रंसर्वैस्तुपातकैः) इत्यादयः (अत्रचशुद्धिविभावनामनुनोक्ता) यथा (नचार्तिमृच्छतिक्षिप्रंसज्ञेयःशपथेशुचिः)अर्थात्-मन्वादि प्राचीनोंनेही औरभी सामान्य(शपथ)सौगन्धवर्णन कियेहैं जिनकावर्त्ताव बहुधाथोड़े द्रव्यके विषयोंपर आरूढ़ है सोकहतेहैं कि (निष्क) मात्र की चोरीआदि कुकर्मकहमाहो तौ केवल उसके सत्यभावसे सत्यवचनकी सौगन्धलेनीचाहिये जब दो निष्कों का अभियोगहो तौ निजपूज्य गुरुवों या निज इष्टदेवों के पाद छूकर सौगंध खावै या पुत्रादिकोंकेशिरपरहाथरक्खै और तीननिष्कोंकेभीतर भे अर्थात् एकसे लेकर या दोसे उपरान्त तीनतक निष्कों का अभियोगहो

अपने कियेहुये संचित पुण्यकर्मों की सौगंध देवै कि यदि मैंने ऐसाकियाहो तौ अमुकामुक पुण्योंका फल जातारहै (पर) इस्से उपरांतका अभियोगहो तौ कोशपान करवाया जाय-और-कहीं किसीदेशकालके अनुकूल इन्हीं शपथों में जाति भेदका प्रकार दर्शाया है कि ब्राह्मण को उसकी सत्यता से सौगंध देनीचाहिये क्योंकि ब्राह्मण को सत्यता अतिशय प्रियहोतीहै और क्षत्रियकोबाहन वाशस्त्र अतिशय प्रियहोते हैं इसलियेउस को इन्हींकीसौगंध दिलावै और वैश्यकोगाय तथा अन्न सोना चाँदीकीसौगंधदेवै और शूद्रको या शूद्रकापेशाकरने वालेको सभीपातकोंकी शपथदेनीचाहिये कियदि ऐसाकियाहोगा और झूँठीशपथ उठावैगा तौ सच्चापन जातारहेगा बाहनादिक अन्नादिक धन संतान पुण्यकर्मसब निष्फल होजायँगे और सभीपातकजो अनर्थरूपहोतेहैं मस्तकपर आरूढ़होंगे इसप्रकार प्राड्विवाकभी कहकरउसेसुनावै और उसकेभी मुखसे उच्चरित करावै सो उसभांतिसे कि जिसके कथनको सब उपस्थित लोग स्पष्टसुनिसकें-इत्यादि और भी अनेकभांतिके शपथलौकिक परिपाटीसे समुझने (और इसलिखित वार्त्तामें यहनियम समुझिलेना कि यहसामान्यशपथ या जातिभेदसे जैसाअभी ऊपर कहचुकेहैं सोभी सबसज्जन और धर्मात्मापुरुषोंके निमित्त में कहागया चाहै किसी जातिकेहों किन्तु असज्जन या अधर्मीके निमित्तमें उन्हीं प्रकारोंका दिव्यदेना चाहिये जिनकाचर्चा कईपरिच्छेदोंसे चलाआताहै चाहैकिसीजातिकेहों(और) सज्जन याअसज्जनका विवेक जो ४१ इकतालीसवें परिच्छेदमें कोशपानके प्रसंगसेलिखचुके हैं सोई इसजगहपरभी समुझिलेना)और इसप्रकारमें झूँठी सच्चीशपथ उठानेकी परीक्षामध्ये मनुजीने यहनियमदर्शायाहै कि जोकोईशपथउठाने पीछेशीघ्रहीपीड़ाको न पहुँचै उस कीसच्ची शपथजानो अर्थात् जिसको शीघ्रहीकुष्ठराज दैविकव्यसन विपत्ति आनिघेरै उसका झूँठी शपथ उठाना समुझौ (अथात्रक्षिप्रकालावधिनिर्णयः) अर्थात्-यद्यपि इसवचनमें मनुजीने(क्षिप्रं)यह शीघ्रवाचक पदक्रियाके विशेषणमें दियाहै कि जो कोई शपथउठानेवाला शीघ्रही पीड़ाको पहुँचै या न पहुँचै सो इस शीघ्रता का कोई सा नियम नहीं होसक्ताहै कि कितना शीघ्रहो और यद्यपि क्षिप्र या शीघ्रसे तत्कालका भी अर्थहोसक्ताहै परन्तु सामान्य शपथोंके प्रभावसेतत्काल असंगत है क्योंकि यदि ऐसाहीतत्काल इसका फलहोता तौ इनकोभी महादिव्योंमें गिनतीकरसक्ते उपदिव्य संज्ञा क्यों होती परंच फलहोता है अवश्यभाव इसमेंकुछ संदेहनहीं इसीलियेमनुजी ने साधारणभावसे अनियतकाल कहदियाहै-तथापि-इस क्षिप्रकालकी अपेक्षामेंपितामहका जो वचन पहले कोशपानके प्रसंग से वर्णनहोचुकाहै उसीकेअनुसार अवधि इसमें भी प्रयुक्तकरी जातीहै कि दो सप्ताहों के उपरांतभी तीन या पांच या सात या द्वादश रात्रितक परीक्षा कर्त्तव्य है कि कोईमहाघोर दुःख तो नहींउठा-और-दोसप्ताहों

के उपरांत कहने का यह सिद्धांत नहीं है कि दो सप्ताहों के भीतर दुःख उठै तौ झूठा नहीं समुझना किंतु चाहे शपथ से दूसरे दिनही फलप्रकट होजाय या परम अवधितक प्रकटहो तौ वह दोषी ठहरै यह सिद्धांत है और वह परम अवधि इसीलिये नियतहुई है कि शीघ्रकाल का नियम जानाजाय (और) तीन या पांच या सात याद्वादशदिन जो कहे गये तिनको द्रव्यकी गुरुतालघुता के अनुसार समुझना किन्तु जैसा अभियोग अधिकधनका हो तैसीही थोड़ी अवधिन्यूनतर तीनरात्रिसे लेकर समुझलेनी और जैसाअभियोग थोड़ेधनका हो तैसी अवधि अधिकतर द्वादश दिनतक यथाक्रमसे समुझलेनी-यद्यपि प्राचीनज्ञाता पुरुषों ने इसी क्षिप्रकाल के आशयसे उसीशपथ के दिनसे लेकर द्रव्यकी लघुतागुरुता अनुसार केवल एक या तीन या पांच दिनतक दुःखोत्पत्ति होनेसे शपथकर्त्ताको झूठामाना है इस्सेउपरांतहो तौ सच्चा परंच हमनहीं कहसक्तेहैं कि उस प्राचीनकाल में ऐसाहीप्रभाव इन सामान्य शपथोंका हो या न हो तथापि ऐसा होनेपर भी यहकहसक्ते हैं कि कालके अतिक्रमसे प्रथमतौ कालहीका प्रभावकुछ परिणामको पहुँचता है पुनि उसकी संसर्गी वातोंका प्रभाव तौ घंटाघोष है कि निस्संदेह परिणामको पहुँचता है- और यद्यपि किसीके विचारसे मनुका अनियतक्षिप्रकाल दोसप्ताहों के उपरांत अवधितकतुल्यता नहींपासक्ताहो परसिद्धांत उसकायह कि पुण्य और पापोंका फलप्रकट होनेमध्येशास्त्र में एकवाक्य यह प्रसिद्ध है कि तीनवर्षों या तीनमासों या तीनपक्षों या तीनदिवसों की अवधिमेंअत्युग्र पुण्य या अत्युग्रपाप का फल इसीदेहसे कर्त्ता पुरुष भोगता है— तद्यथा(त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः। अत्युग्रपुण्यपापानामिहैवफलमश्नुते)इसमें जैसा २ उग्रकर्महो तैसा२ शीघ्रतीनादिवस तक फलमिलताहै यहकहागया परंच इसमेंसामान्य कर्महोनेपर अधिकसेअधिक तीनवर्षोंतक अवधि परिनियामितहै इसीहेतुसे मनुनेअपनेवचनमें क्षिप्रकालका विशेषणदेदिया है कि यद्यपिइनशपथोंका झूठाहोना भी एकसामान्यपापहै क्योंकि थोड़ेविषयपर यहशपथें हुआकरती हैं इस्से कोई यह न समुझै कि इनकाफल तीनपक्ष या तीनमास या तीनवर्षों तकप्रकटहोगा किंतु क्षिप्रहीप्रकट होगा क्योंकि एकसत्यधर्मकी प्रतिज्ञासाथशपथ हुआकरतेहैं उसी सत्यधर्मके प्रभावसे इनकाफल शीघ्रहोसक्ताहै सोउस अनियतशीघ्रताका यहीआशय है किएक मासकेभी अंततक नही जासक्ता किन्तु अंत्य अवधि उसकी वही है जो दो सप्ताहोंके पीछेतकपितामहके वचनानुसार नियतहुई या दोसप्ताहोंके भीतरहो तौभी कुछ अचंभा नहींक्योंकि यदिपापउसका प्रबलहोगा तो क्योंकर दोसप्ताह उलाँघेगा हाँ यदि निर्बलहोगा तो परम अवधितक प्रदर्शितहोगा-परंतु-उस अनियतक्षिप्रकालके आशय से एक यातीन या पाँचदिनतक ऐसे तुच्छ पापका चिन्ह प्रदर्शित होजाना हमनहींनि-

श्चयकरसक्तेहैं जो थोड़ेसे विषयपर सौगंधमात्रखानेसे उत्पन्नहोताहै किन्तु यदिऐसा हीशीघ्रतर इनकाफल उत्पन्न होसक्ता होता तौ फिर महाभियोगोंमें भी महादिव्योंके स्थानपर निपट इन्हींका आचरण होना योग्य लिखाजाता ऐसी क्या आवश्यकताथी कि ऐसेसूधे सुगमउपायों को छोड़कर तुलाआदि बड़े विस्तारों के झगड़े में मनुष्य पड़ते जिनमें बहुतसी लागति और सामग्रीकी अपेक्षाहै-परंतु-इसबादानुवाद से यदि कदाचित् कोई यहभाव आरोपितकरै कि अबकलियुग में एसे सामान्य शपथों का निपट फल होताही नहोगा सोयह मंदबुद्धियों का अविवेक है अर्थात् निःसंदेह फल होता है पर ऐसी गूढ़ग्रंथियों का अभ्यंतर बहुधा शास्त्रावलोकनके सिवाय लोकव्यवहारों के प्रत्यक्ष देखनेसे भी मिलसक्ताहै (अथात्रप्रासंगिकवार्त्ता) यद्यपि लेखकने परीक्षा तौ अनेकधाही इस विषयपर करीहोंगी परएक (दृष्टांत) उनमें से आजही का लिखते हैं अर्थात् आज संवत् १९३२ यम द्वितीया का यहलेखहै और आजसे दो डेढ़ महीना पहिले एक अभियोग इसडौलसे हमारे निकट बेलनगंज में खड़ा हुआ किएकहमारे सत्कुल मित्रके कुछरुपये एक यवनजाती व्यवहारी पर कईवर्षोंसे चाहते थे पहले एक दोवार तौ कुछ उसने दिया भी पर पीछेपीछे निपट न देना ठहराकिसी प्रकारकी सनद उनकेपास नहींथी परउस ऋणकेलेनेवाले दोभ्राताथेउनमें एकदूसरे के नामसे लेगयाथा वह यह बात सदैव तगादा होनेपर कहता था कि अगर उसके नाम नालिशकरौ तौ मैं साक्षीहोसक्ताहूँ कि मैंने लेजाकर उसकोदिये हैं दैव योगसे ऐसाही बानक बना कि उसके नाम खफीफाकी अदालत में नालिशहुई तब उसने ऋणकेलेने से अपह्नव किया और यह कहा कि अगर धनी अपने धर्मकी कसम खावै कि हमने इसको दियेतौ मैं देसक्ताहूं हाकिमने धनीसे बूझा कि यह क्याबातहै धनीने यहउत्तरदिया कि यथार्थसे इसके हाथमें हमने नहींदिये किन्तु इसकायहभाई हमसे लेगया और इसको जाकरदिये और यहीहमारा ऋणीहै परंतु जैसे यहहमसे कसम चाहता है तैसे यही अगर मस्जिदमें बैठकर कसम खाजाय तौ इसपर दावा छोड़कर उसीपर दावा अपना रक्खेंगे जिसके हाथमें दियेहैं तबहाकिमने यहआज्ञा दी कि अगर यहकसमदेना स्वीकार करैतौ मस्जिदमें लेजाकर इस्से कसम लेलोतौ दूसरेभाईकेनाम तुम्हारादावा रहेगा अगरयहक़सम न खावैगातौ इसीकेनामडिगरी होगी क्योंकि रुपयेका देनालेना तौ सर्वथा सच्चा है इस दशापरभी उसने मस्जिदमें जाकर झूँठी कुरान उठाली कि मुझको इनका कुछ नहींदेना और भाईने जो रुपये मुझकोदिये सोमेरा आपसका झगड़ा है मैंनेचाहे तिसराहसे इस्सेलिये इसक़समके होजानेपर दूसरेकेनामसे डिगरीहुई जो आपलेजाना स्वीकारकरताथा परंतु सौपचास आदमी जो इसदशाको सच्चीरीतिसे ठीक२ जानतेथे उनसबने उसकी परम निन्दा

करी कि इसने भरापूरा होकर ऐसीझूँठी शपथ उठाई इसका अब कल्याण नहींइस बातको बीसहीदिन बीतेथे कि एकदिन उसीने अपने सन्मुख मकानके बनियाँसे कुछ सौदालेतेहुये गाली गलौझकिया निदान बनियाँकोमारा और मुँहमें थूकदियाबल्कि कोलाहल सुनकर दूसरा भाईभी मददको आगया तब दोनों ने मिलकर बनियाँको बहुतपीटा वहएकल्लाथा जबतक और दूकानदार जोवहांसे दूरथे सुनिकरदौड़ेंतबतक दोनों भाजिगये निदान वहझूँठी शपथका उठानेवाला जो मुख्य अपराधी उसबनियांकाभी हुआसोतौ अपने अपराधके भयसे निपट घरबार और मालटाल छोड़कर तत्काल देशांतरको भजिगया और दूसराभी रूपोश होकर दो दिवसोंतक छिपारहा पर तीसरे दिवस पकड़ागया-और बनियाँ जो जातिसे पतितहुआ सो यद्यपि निष्पक्ष एकल्ला और निर्धनभीथा परउसके पक्षमें सारेबेलनगंजके साहूकार और ब्राह्मणआदि सभीहिन्दू एकमतिहोकर अदालतके उपायपर समुद्यतहुये एकबाबू बंगाली साहब इसअभियोगमें प्रबन्धकेमुख्तार खड़ेकियेगये तत्काल एकसहस्त्ररुपया चन्देकीरीति से उगाहीकिया इसमें गरीबोंनेभी अपनी यथाशक्ति कुछदेनेसे नकारनहींकिया और दियेपीछेभी उत्साहसे यहकहा कि जोचाहिये सो फिरभी लेजावो निदान उसअपराधीका सहायक जो पकड़ागया उसकोतौ अभी दीपमालिकाकेसमीप केवल छैमहीने को कारागार और सौरुपयादण्डहुआ सो इसपरभी हिन्दू अभी नाराज और विलायततक अपीलकरनेपर उद्यतहैं और मुख्यअपराधीकापता अभी हालमें बड़ीढूँढ़ाढाँढ़ी से मिलाहै कि वह धौलपुरकेराज्यमें छिपाहै उसको देखआने और पीछे चिह्न देकर पकड़ानेकेनिमित्त एकहरकारेको २५) रुपयेदेकर हिन्दुओंनेभेजा विश्वासहै कि पकड़ाजावे और जहाँतकहोसकै जैसे यह बनियाँ अपनेशुभजन्मसे निष्फलहुआ है तैसे वहभी अपने जीवनांत सबसौख्योंसे रहित कियाजाय आगे जोकुछप्रभुकरें सो ठीक है पर इसमें तौ सन्देह नहीं कि उस झूँठीकुरान उठाने के प्रभावसे निज आप अपने सब ऐश्वर्योंको छोड़भागा और केवल चालीसरुपयेके बचावपर कुरानउठाई थी जिससे पन्द्रह बीसदिनकेमध्यगत यह घोरव्यसनपाया जिसे कदाचित् भी ऐसा दुःख न मिलाथा-अब क्योंकर कहें कि यह उस झूँठीशपथका प्रतिफलनहींहै केवल पाँचदिनके भीतरहोता तौ उसका प्रतिफलहोता-परंच-अब यहभी प्रकटकियेदेते हैं कि जिन प्राचीनज्ञाताओंने केवल पाँच दिनतक मानेथे उनका मृषा २ यह सिद्धांत है कि दुःख तौ संसारी जीवोंपर सदैवही कुछनकुछ होनेरहाकरते हैं इसलिये अति छोटेअभियोगोंकी शपथ में अधिकअवधितक उसका पीछा न करनाचाहिये किन्तु अधिकअवधि बड़ेअभियोगोंकी शपथमें लेनीचाहिये-तथापि इसमें यहध्यानकर्तव्य है कि कुछनकुछ साधारण दुःखोंकाचर्चा इसमेंनहींहै किन्तु (व्यसनंजायतेघोरंयस्य

नोराजदैवकम्) अर्थात् राजदैविक सम्बन्धी महाघोर और अपूर्व दुःखोंकाप्रसंग इसमें कहाहै (इतिप्रासंगिकवार्ता) अब उसपूर्वोक्तवार्तापर दृष्टिकरनीचाहिये कि इस चौथेचरणके प्रारम्भमें एकानिष्क या दोनिष्क आदि चर्चाआयाहै तहाँपर निष्कमान केवल उसप्रमाणसे समुझना जोआचाराध्यायके ३६३ और ३६४मूलश्लोकमें चाँदी संबंधी निष्क वर्णनहोचुकाहै उसका ठीक यह ब्यौराहै कि पंद्रहयवका एकमासा ऐसे ६४ चौसाठिमासेका एक निष्कहोताहै-सो-यह पता इसलिये दियागया कि (निष्क) शब्दके अनेकअर्थहोतेहैं किंतु प्रथम तो निष्कही ग्रंथभेद और मतभेदसे कईप्रमाण का होताहै इसके सिवाय विषयभेदकी परिभाषासे १०८ तक सुवर्णोंका एक निष्क मान विशेषहोताहै और इसके सिवाय निष्कसंज्ञा व्यवहारिक मुद्रामात्रकीभी वाचक है कि जो जिसके देशमें प्रचरितहो चाहै सोने या चाँदी या ताँबेकाही पैसातकहो जिसपर किसीराज्यकी राजमुद्रा खुदीहो वही निष्कहै चाहै कितनाही तौलमेंहो इससे कुछ अपेक्षानहीं पुनि विनातुले सोनेमात्रकासी वाचकहै इत्यादि और भी अनेकअर्थ होतेहैं पर उन किसीसेभी कुछ अपेक्षा यहाँनहीं-किंतु चार४सुवर्णोंभर तुलीहुई चाँदी जिसके चौसठि६४मासे होतेहैं उसीसे प्रयोजनहै-तथाच(चतुःसौवर्णिकोनिष्कोविज्ञे यस्तुप्रमाणतः) अर्थात्-बाँटोंकेप्रमाणमें चारसुवर्णोंका एक निष्कसमुझनाचाहिये-परंतु-यह भी ध्यानकर्तव्यहै कि यहाँपर साक्षात् चाँदीसे अपेक्षानहींहै कि इतनी चाँदीहीचुराईहो अर्थात् इतनी चाँदीकी मालियतसे चाहे तिसवस्तुका झगड़ाहो चाहे इतनीचाँदीके मोलका सोनाहीचुरायाहो तौ उस दशामें ऊर्ध्वोक्त शपथों का प्रचार उसीरीतिसेहोगा जैसा ऊपर एक दो निष्कोंकेनामसे कहागया-इसप्रकार पूर्वोक्त सर्व दिव्योंमेंसे किसी दिव्यकेद्वारा जब जय पराजय निश्चितहोजाय तब उसप्रकारकी विपरीतदशाओंमें कि जिनमें झूठेपुरुषके आग्रहसे किसी सद्वादी पक्षी को निरर्थक दिव्याचारकरनापराहो तौ पराजित पक्षीसे जयवान्को सौका आधाअंश ५०दिलावै और पराजित पक्षी राजदंडभी देवेगा यह दोनों दंडविशेष उसद्रव्यसे उपरांत समुझनेचाहिये जिसके झगड़ासे अभियोगथा यहवात कात्यायनके अग्रोक्तवाक्यसे निश्चित है-यथा (शतार्द्धंदापयेच्छुद्धमशुद्धोदंडभाग्भवेत्) अर्थात्-शुद्धको सौका आधा दिलवावै और अशुद्ध पक्षीराज दंडका भागीहोवै-यह राजदंडभी दिव्यों के अनुरूप लेनाचाहिये-यथाह (विषेतोयेहुताशेचतुलाकोशेचतंडुले। तप्तमाषकदिव्येचक्रमाद्दंडं प्रकल्पयेत्॥सहस्रंषट्शतंचैवतथापंचशतानिच।चतुस्त्रिद्व्येकमेवंचहीनंहीनेषुकल्पयेत्) अर्थात्–विष जल अग्नि तुला कोश तंडुल तप्तमाष इनसातों दिव्योंमें यथाक्रम से दंडकी कल्पना राजाकरै अर्थात् यदि विषका दिव्यहुआहो तौ हारेहुये पक्षीसे एक सहस्रतक दंड राजालेसक्ता है पर जैसी उस अभियोगकी दशाहो तिसकी उत्तमता

मध्यमताके अनुकूल इसी एक सहस्रकी परमावधि भीतर दंड कर्तव्य है१-ऐसेही जलका दिव्यहुआहो तौ छसौतक परम अवधिजानो २-ऐसेही अग्निके दिव्यमें पाँचसौकी परम अवधि३-एवं तुलाके दिव्यमें चारसौकी४-कोशपानके दिव्यमें तीनसौ ५-तंडुल विधिके दिव्यमें दोसौ६-तप्तमाष उठानेके दिव्यमें एकसौतक दंडहोसक्ताहै ७-इसके सिवाय यदि सामान्य शपथोंका दिव्यहुआहो तौ दंडभी थोड़ा जो पचास के भीतर२हो और मुक़द्दमहकी लघुता गुरुताके अनुसारहो सो लेनाचाहिये-इसके सिवाय (निह्नवेभावितोदद्याद्धनंराज्ञेचतत्समम्। मिथ्याभियोगीद्विगुणमभियोगाद्धनं वहेत् १२) यह बारहवाँमूल श्लोक योगीश्वरका कि जिसकी व्याख्या दशवें परिच्छेदमें होचुकी है जिसके भी अनुसार जो दंड जिसपर उचितहो सो भी कर्तव्य है परंतु इन दोनोंदंडका समुच्चयकरने में प्रत्येक मुक़द्दमहकी दशा अनुसार प्राड्विवाक को यह विचार भी कर्तव्य है कि इस अभियोगमें अत्रोक्त और तत्रोक्त दोनों दंडकी योग्यतापाईजातीहै या अत्रोक्त केवल एकहीकी ॥ इत्युपदिव्यानांसामान्यशपथविषयिकश्चतुर्थश्चरणः-इतिदिव्यप्रकरणम् ॥

छत्तीसवें परिच्छेदसेलेकर यहांतक सात परिच्छेदों में दिव्यप्रमाणकाभी वर्णन होचुका-अबनिचले परिच्छेदसे लेकर कई परिच्छेदोंमें दायभाग कहाजायगा ॥

अथदायभागमाह ॥

अथात्रदायविभागापेक्षायांतावद्दायविभागस्यरूपनिर्णयप्रसंगात् (स्वत्व) निरूपणोनामत्रिचत्वारिंशःपरिच्छेदः ४३ ॥

इस तेंतालीसवेंपरिच्छेदमें प्रथम दायविभागका स्वरूप निर्णयकरनेके प्रसंग से (स्वत्व) निरूपणकियाजायगा ॥

प्रमाणंमानुषंदैवमितिभेदेनवर्णितम्। अधुनावर्ण्यतेदायविभागोयोगमूर्तिना ११६ ॥

ऐ०-योगीश्वर याज्ञवल्क्य जी कहते हैं कि-मानुषप्रमाण और दिव्यप्रमाण यह दोनों निज २ भेदसे वर्णन किये अब (योगमूर्तिनामयादायविभागोवर्ण्यते) [illegible] अब योगोंकी मूर्तिमुझकरके दायविभाग वर्णनकिया जाता है-यद्वा-उनकारि[illegible]न कहताहै कि-योगोंकी मूर्ति याज्ञवल्क्य योगीश्वरकरके दायविभाग [illegible]होताहै-अथवा-ऐसाअर्थ लगाना श्रेष्ठ है कि (योगमूर्त्तिना-किन्तु-संबंध[illegible]सबन्ध स्वरूपेण) अर्थात् रिक्थियों की सबन्धमूर्ति के द्वारा दाय विभाग[illegible]करते हैं सिद्धांत इसकायह किजैसा जिसकेसंबन्धोंका योगपाया जायगा [illegible] सम्ब[illegible] की मूर्त्तिके अनुसार दायभाग वर्णनकरेंगे ११६ ॥

मधि०-(योगोऽत्रसंबंधः)अर्थात् यहांपर योगशब्द संब[illegible] है [illegible] ध शारीरिक नातेरिश्ते तथा वास्तेकोभी कहतेहैं कि [illegible]

होताहै-संबन्धका स्वरूपनिचले ग्रंथांतर पांचश्लोकोंसे यथावत् जानाजायगा किन्तु साक्षात् सदाशिवजीने निर्वाण तांत्रिक दायभागकी उत्थानिकामें प्रकाशित किया तिसको सौगम्यके प्रयोजनसे इसस्थल पर दर्शातेहैं-यथा (संबन्धोद्विविधोज्ञेयोविवाहाज्जन्मनस्तथा। तत्रौद्वाहिकसंबन्धादपरोबलवत्तरः १) अर्थात्-संबन्धजोहै सो दोभांतिकाहोता है एकतौ विवाहके योगसे दूसराजन्मके हेतुसे इनमें वैवाहिक संवन्धकी अपेक्षाजन्मका संबन्ध अतिशय बलवान् है-सिद्धांतइसका यहकिजब किसीमृतपुरुषका दायधन हरनेको ऐसे दोपुरुष उद्यतहोकर झगड़ाकरैं कि उनमें एकतौ विवाहके संबन्धियों में सेहो और एक जन्मका संबंधीहो तबजन्महीका संबंधीधनपावै किन्तु वैवाहिक संबन्धीनहीं १॥ तिसमेंभी (दायेतूर्ध्वतनाज्ज्यायान्संबन्धोऽधस्तनःशिवोऽध ऊर्ध्वक्रमादत्रपुमान्मुख्यतरःस्मृतः २) अर्थात्-इस दायधनके हरने से ऊपरले संबन्ध से निचला संवन्धश्रेष्ठ होता और इसऊपरे निचलेक्रम से भी पुरुषही मुख्यतर स्त्रियोंके सन्मुखप्रधान है-सिद्धांत इसकायह कि जब ऐसे दोसंबन्धी झगड़ा करतेहों जो दोनोंही जन्मके संबंधीहों तब किसको दायधन मिलनाचाहिये इस अपेक्षा में यह बात समुझनी चाहिये कि ऊपरलेके सन्मुख निचला संबंधीहीधन पावैगा दृष्टांत जैसे स्वर्यातू धनीका पुत्र और पिता भी जीवताहो तौ निचला संबंधी जो पुत्र है सोई अपने दादेके सन्मुख निज पिताका धन पावैगा क्योंकि ऊपरले संबंधमें निर्बलताहै (और) इस ऊपरले निचले क्रमसेभी पुरुषही मुख्यतर अर्थात् जब ऐसे दो संबंधीझगड़ा करतेहों जो दोनोंही ऊपरले या दोनोंही निचले संबंधीहों तब किस को धन मिलसक्ताहै इस अपेक्षामें यह बात दर्शाई है कि यदि उनमें एक स्त्री और एक पुरुषहो तौ वह पुरुषहीदायधन पावैगा-परन्तु-जब दोनोंपुरुष होवें और दोनोंहीऊपरले यद्वा निचले संबंधीहों तब किसको धन मिलना योग्य होगा इस अपेक्षा में अगला वचन कहतेहैं २ कि (तत्रापिसान्निकर्षेणसंबंधीदायमर्हति। अनेनविधिनाधीराविभजेयुःक्रमाद्धनम् ३) अर्थात्-ऐसेझगड़ेमें भी समीपतासे संबंधी दायधन के योग्यहै इसविधिसेही सब धीर संबंधीलोग यथाक्रमसे धनको बाँटलेवें-सिद्धांत इसका यह कि संबंधोंकी प्रबलतामध्ये ऊपरसे तीन योग जो उत्तमता की उत्कर्षा में समुझाये गये कदाचित् ऐसाबानक होजावे कि उनतीनोंकी विशेषता वाले दो पुरुष या कई पुरुषोंका समवायहोवै या परस्पर उनके झगड़ाहो तब किसको वह धन मिलनाचाहिये इस अपेक्षामें यह चौथा नियम दर्शायागया कि इसप्रकारके समवाय या झगड़ेमें अति समीपीही संबंधीदायपावै-इसलिये शिवजीकी यह निश्चित आज्ञा होतीहै कि ऊर्ध्वोक्त इन चारोंबीजभूत योगोंकी विधिसेही सर्वत्र सबधीर संबंधीलोग यथाक्रम से दायधन पावें किंतु मर्यादाका अतिक्रम नहीं करें वा करनेपावें ३॥ अत्र

इस्से अगले वचनमें इन्हीं चारो कारण भूतयोगोंका एकउदाहरणभी अनेक संबंधियों के समवाय साथ कहते हैं यथा (मृतस्यपुत्रेपौत्रेचकन्यासुपितरिस्थिते। भार्यायामपिदायार्हःपुत्रएवनचापरः ४)अर्थात्-अपनाधन छोड़कर मरेहुये धनीका पुत्र और पौत्र और बेटियाँ और पिताभी और भार्याभी सबजीतेहों तब इन सबके समवाय नाम इकट्ठे होनेमें केवल एक पुत्रही उसकी अतिसमीपतासे और पुरुषत्वकी मुख्यतासे और अधोभव तथा जन्मकी श्रेष्ठतासे भी धन पानेका अधिकारी होगा किन्तु और कोई संबंधी उनमें से नहीं-ध्यानकरो कि ऊर्ध्वोक्त चारोंयोग एक साथ इस उदाहरणमें संयुक्त होगये अर्थात् मृतधनी की भार्या तो वैवाहिक संबन्धकी निर्बलता से धनभागिनी न होसकी (और) बाकी सब संबन्धी यद्यपि जन्मके संबन्ध हेतुसे बलवान्हैं परन्तु उनमें भी मृत धनीका पिताजोहै सो ऊपरले तनुका संबन्धी होने से निर्बल ठहरा इस्से उसनेभी निज पुत्रके धनको नहीं पाया (और) पिताके भी सिवाय अन्यसब संबन्धी यद्यपि अधोभव नाम निचले तनुकी श्रेष्ठता से बलवान् होसक्ते थे परन्तु पुत्रियोंने भी स्त्रीत्वकी अमुख्यता से निज पिताके धनको नहीं पाया क्योंकि अभी बेटा और पोता यह दोपुरुष उपस्थित हैं परन्तु इन दोपुरुषोंमें भी पोताने इस हेतुसे निजदादाके धनको नहींपाया कि अतिसमीपी नहीं ठहरा किन्तु पोताकी अपेक्षा मृत पुरुषका बेटाही समीपीहै इसलिये यह बेटाही धनभागी हुआ अन्य सब रोटीखाने वस्त्र पहिरनेके अधिकारी रहेंगे (परन्तु) यदि कई बेटाहों तो उन सभीका बराबर भाग या इकट्ठा रहने में सभीका धनीत्वहुआ करताहै यहबात इस्से निचले वाक्यमें कहते हैं ४(बहवस्तनयायत्रसर्वेतत्रसमांशिनः। ज्येष्ठेराज्याधिकारित्वंतत्तुवंशानुसारतः ५ अर्थात्-जहां बहुतसे बेटेहों तहां वे सभी बेटे उसधनमें बराबर अंश पावें सो यह मर्याद सब साधारण मनुष्योंकी होतीहै-परन्तु-यदि किसी राजाके अनेक पुत्रहों और वह राजा स्वर्गवासी होजायतो उस राज्यमेंभी यद्यपि राजाके सभी बेटे समभागके अधिकारी होते हैं तथापि राज्यका विभाग होना शास्त्रसे निषेध है इसलिये राजगद्दीका अधिकार जेठे पुत्रको योग्यहै सोभी निज २ वंशके अनुसार व्यवस्था देखीजाय-सिद्धान्त इसकायहहै कि जब जेठा पुत्र निर्गुणहोने आदि किसी हेतुसे राज्यशासन करने योग्य नहीहोताहै तब शास्त्रकी यहभी एकआज्ञा है कि जो कोई पुत्र राज्यशासन करने योग्य गुणसम्पन्न समुझाजाय उसीको जेठा मानिकर ज्येष्ठकी पदवी और अधिकार देनाचाहिये परन्तु यदिकिसीके वंशमें ऐसी कुछ परिपाटी चली आतीहो कि निर्गुण होने परभी राज्यपदवी ज्येष्ठकोही दीजावे और उस्से छोटे गुण संपन्नको उसकी ओरसे प्रबन्धोंका मुन्तज़िम ठहरायाजाय इत्यादि और भी जैसी कुछ परिपाटी जिसके वंशमें प्रचलितहो तिसके अनुसार व्यवस्था देखी

जाय परंतु राज्यका विभाग नहीं होताहै ५॥ यहाँतक योगमूर्तिके आशयपर संबंधका स्वरूप ग्रंथांतरसे दर्शाया गया-अब मिताक्षरा के अनुसार दायविभागका रूपकहा जायगा (अथदायविभागस्वरूपदर्शनम्) जो कि अब दायविभागका वर्णन कियाचाहते हैं और दायविभाग इस प्रकरणमात्रका नाम है जिसमें अनुमान से दश बारह परिच्छेद काल्पितहोंगे इसलिये प्रथम इसनामका लक्षणभी समुझाजाना आवश्यकहै कि (दाय) और (विभाग) दो शब्दोंके योगसे यह संज्ञा बनी तिनमें एक दाय शब्द उस धनका वाचकहै जो स्वामीके संबंध मात्रसे किसीनिमित्त करके अन्यपुरुषका (स्वत्व) होजाता या होसक्ताहै सोभी (उसधनकावाचक) यहकथन एक मोटी रीतिसे दर्शायागया किंतु यथार्थसे उस धनकाही वाचक नहीं बल्कि उसधनके प्राप्त होसकने या होजाने वाले कर्मरूप स्वत्वकाभी वाचक होताहै-और (स्वत्व) शब्दका पर्याय यावन भाषामें (हक़) प्रसिद्धहै (दृष्टान्त) जैसे अमुक वस्तु उसका हक़है या अमुकधनपर उसकाहक़ पहुँचताहै उसका स्वत्व पहुँचताहै-यथार्थ सिद्धांतसेउस (दायरूपी) धनको यावन भाषामें (विरसह) या (विरासत) भीकहतेहैं और उसकेप्राप्तहोनेवाले (सम्बन्धरूपी) स्वत्वको हक़कहतेहैं इसीलिये यहदोनों शब्दमिलकर एक (हक़विरासत) यहनाम दायस्वत्वकाप्रसिद्धहै अबयहबात समुझनीचाहिये यहदायरूपी स्वत्वकिस मार्गसे उत्पन्नहोताहै किजिसके द्वाराकिसी का धनकोई पासक्ताहै-तहां-इसके मुख्यदो कारण हैं जिनका अभीऊपर चर्चा होचुकाहै (किएकतौ स्वामीके सम्बन्धमार्गसे औरदूसरेकिसी निमित्तकेमार्गसे भी) अर्थात् इन्हींमुख्य दोकारणोंका समवाय होनेविना दायरूपस्वत्वकी उत्पत्तिनहीं होती किन्तुइन दोनोंकेइकट्ठे होनेसे उसदायरूप स्वत्वकी परिसिद्धि हुआकरतीहै-और इनदोनोंका यथार्थ यहलक्षणहै किएकतौधनके स्वामीसे कुछसम्बन्ध उसप्रकार का होना चाहिये जिसका लक्षण पहले ग्रन्थान्तरसे प्रदर्शित होचुकाहै कि जन्मका सम्बन्ध अथवा उसके अभावमें वैवाहिक सम्बन्धभी स्वीकारहोताहै कुछनकुछ सम्बन्धहोना आवश्यकहै क्योंकि सम्बन्धके होनेविना दायस्वत्वकी उत्पत्तिनहींहोती इस्से एकयह कारणहै और दूसरा कारण कुछ निमित्त भी होनाचाहिये क्योंकि निमित्तके होनेविना केवल संबंधमात्रसे पूरास्वत्व उपस्थित नहींहोसक्ता अर्थात् निमित्त के होनेविना संबंधभी अपने फलको प्रकट नहींकरता-सो उसनिमित्तकाभी यहरूपहै कि धनका स्वामी जो वर्तमान कालमें धनीकहाताहो सो उसधनसे निःसंबंध होजाय चाहेमृत्युसे या और किसीकारणसे तौ उसका निःसंबंध होजानाही निमित्तका रूपहै चाहेवह किसीप्रकारसे निःसंबंध हुआहो अर्थात् यातो मरजाय या धर्मानुसार धनसे दुर्भागी होजाय या अपनी इच्छासेही निजस्वत्वको त्यागिदेवै तव उसधनपर किसी निकटवर्ती संबंधीका पूरास्वत्व पहुँचता और तभी उसके स्वत्वकी परिसिद्धि होती है

इसवार्त्ताका यहसिद्धांतहै कि जबतक अवरोधरूप कारण विद्यमानहो तबतक दाय-रूप स्वत्वकी परिसिद्धि नहीं होसक्ती यहसब केवल (दाय) शब्दका सामान्य लक्षण दर्शायागया विशेषता उसकी अबकहते हैं कि-यह दायभी दोभाँतिका होता है एक (अप्रतिबंध) दूसरा (सप्रतिबंध) तहाँजोपुत्रत्व और पौत्रत्व के संबंध से पुत्रोंका और पौत्रों का स्वत्व अपने पिताके धनपर और पितामहके भी धनपरहुआ करता है सो तौ (अप्रतिबंधदाय) कहाता है क्योंकि इसमें कुछ प्रतिबंध नाम अवरोध ऐसा नहीं है कि जिस्से वहधन पिता और पितामहके जीतेहुये भी उनका नहीं कहावै अर्थात् ऐसाधन जिस किसी के स्वामित्व परिग्रह में होता है उसके जीते हुयेभी उसधनपर उसकेबेटों और पोतों और परपोतोंकाभी स्वत्वउसी प्रकार हुआकरताहै कि जैसानिज अधिकारी स्वामीको सम्प्राप्तहै केवलउन पुत्रादिकोंको छोड़कर कि जिनमें कोईसा दोष शारीरिक या बुद्धिसम्बन्धी उसभाँतिका प्रत्यक्षहो जिनकेहोनेसे पैतृक धनका स्वत्वजाता रहताहै आगेवर्णनहोंगे -यहाँ पोता के उपलक्षणसे परपोताभी समुझना और दादाके उपलक्षणसे परदादाभी-यहलक्षण एक अप्रबन्धदायका दर्शायागया-और(सप्रतिवन्धदाय)वहकहाता है जिसमें कोई प्रतिवन्धनाम अवरोधभीहो अर्थात् चचा और भ्राता आदिकाभी स्वत्व उसीधनपर उसदशा में होता है कि जवकदाचित् पुत्रादिक और धनके स्वामीकाभी अभावहोजाय इसलिये पुत्रादिकोंकाहोना और धनके स्वामीकाभी विद्यमान होनायह दोनोंवात उनचचा और भाईआदि के लिये वड़ा एकप्रतिवन्ध है कि इनदोनों में से एकहूके होतेहुये वहधन उनकानहीं कहाय सक्ता है परन्तु जबइस प्रतिवन्धका अभाव होजाता है कि नतो पुत्रादिक हों और धनका स्वामीभी नरहे तव उनकाभी स्वत्व उसीधनपर पितृव्यत्व या भ्रातृत्वके हेतुसे पहुँचता है इसीसे उनके स्वत्वको सप्रातिवंधदाय कहते हैं ऐसेही उनके पुत्रादिकोंमें भी ऊहा करलेनी चाहिये यह द्विविधदायकी विशेषताभी कहीगई अव दायकेसाथमें विभाग शब्द जो लगाहै तिसका आशय कहतेहैं कि जब अनेकभाँतिके द्रव्योंका समुदायहो और उनमें अनेक पुरुषोंका स्वामित्वहो ऐसे द्रव्योंको एकत्र करिके निजनिज खूँट लगानेको विभाग कहतेहैं अर्थात् ऊर्ध्वोक्तदायके अनुसार जो द्रव्योंका विभाग कियाजाय तिसको दायविभागनाम कहते हैं-इसी अभिप्रायसे नारद नेकहाहै कि(विभागोऽर्थस्यपैत्र्यस्यतनयैर्यत्रकल्प्यते। दायभागइतिप्रोक्तंव्यवहारपदंबुधैः) अर्थात्-जहाँ पुत्रोंकरके पैत्र्यधनका विभाग कियाजाताहै सोवह व्यवहार पद दायभाग इसनामसे पंडितोंने कहाहै और कदाचित उनमें विवाद उठकर अभियोग लगायाजाय तव अष्टादश विवाद पदोंमें एकयहभी गिनाजाताहै (इसवचनमें पैत्र्य धन जो कहागया तिसके उपलक्षणसे औरभी सब धनके स्वामी समुझलेने जिनका

धनबाँट लेनेकाकाम रिक्थियोंकोपरताहै)(इसीवचनमेंपुत्रोंकरके जो बांटना कहागया सोभी निकटवर्तीपुत्रके उपलक्षणसेपुत्रादिक और वे सभीसमुझ्झेचाहिये जो किसीस्वामीका धनबांटकर लेसक्तेहों और आशयइसकायह कि दायविभाग केवलउसीको नहीं कहते जो पिताकाधन पुत्रबांटि लेतेहैं) अबयहांपर यहबात निरूपणकरनीचाहिये कि यहविभाग किसकालमें और किसधनका और किसप्रकारसे और किनकिन पुरुषोंको कर्तव्यहोताहै-सोइनचारोंमेंसेतीन बातोंकानिरूपण तो जहांतहां योगीश्वरकेमूलश्लोकोंकीव्याख्यापरही इस्सेअगले चवालीस पैंतालीस आदिकई परिच्छेदोंमेंकियाजायगा-यहांकेवलएक यहबात चिन्तितकरीजातीहै कि किसका विभागहोनाचाहिये किन्तु इसमेंयहतर्कणाहै कि विभागहोजानेपर उसमेंकिसी दायादका स्वत्वउत्पन्न होताहै या प्रथमसेही स्वत्वके होतेहुयेविभागहोताहै-इसतर्कणाकी शान्तिकेलिये यहांपहलेस्वत्वकाही निरूपणकरना आवश्यक ठहरा-क्योंकि जबस्वत्वका स्वरूप निश्चयात्मक जानाजाय तबउसबातका पहिलापीछाभी निर्णीत होसक्ताहै जिसपरयह तर्कणाउठी-परञ्च अब स्वत्वके निरूपण होनेमेंभीयहतर्कणाहै कि क्याशास्त्रसेही स्वत्वजानाजाताहैयाप्रमाणांतरसे अच्छा जानाजाताहै तहाँप्रथमतो यहीउत्तर ठीकहै कि शास्त्रसेही अच्छा जानाजाताहै क्योंकि इसविषयपरगौतमजीका वचनप्रसिद्धहै-तद्यथा(स्वामीरिक्थक्रय संविभागपरिग्रहाधिगमेषुब्राह्मणस्याधिकंलब्धं।क्षत्रियस्यविजितंनिर्विष्टंवैश्यशूद्रयोः) अर्थात् स्वामी होताहै रिक्थ मिलनेमें १ क्रयकरने में २ संविभाग पानेमें ३ परिग्रह करिलेनेमें ४ अधिगमके होनेमें ५ और ब्राह्मणका प्रतिग्रह आदिसे लाभहोना एक अधिक है क्षत्रियका विजयसे प्राप्तहोना यह अधिकहै वैश्य और शूद्रका निर्विष्ट धन अधिकहै-इसवचनसे शास्त्रगम्य स्वत्व ठहरा-परंतु-स्वत्वके प्रमाणांतर गम्य होने में यहवचन अनर्थक होसक्ता है क्योंकि चोरोंके अतिदेश लक्षणके विषयपर मनुनेकहा है कि (योऽदत्ताऽऽदायिनोहस्ताल्लिप्सेतब्राह्मणोधनम्। याजनाध्यापनेनापियथास्तेनस्तथैवसः)अर्थात्- जोकोई ब्राह्मण होकरभी चाहे किसी अन्य प्रकारसे यद्वा याजन और अध्यापन मार्गसेभी किसी ऐसेमनुष्यके हाथसे धनलेनेमें लिप्सावान् होवै जो अदत्तआदायीहो अर्थात् विनादिये किसीकाधन जिसनेलियाहोतो ऐसेमनुष्यसेअपने कर्मकेद्वाराभी लेनेमें उसब्राह्मणको भी वैसाहीतस्कर समुझो जैसानिज आपचोरदोषी होताहै-इस्सेयहसिद्धान्त पायागया कि जैसादण्ड चोरकोहोताहै तैसाहीउसकोभीहोना चाहिये और तात्पर्य इसकायहकि यदिस्वत्व केवल(अलौकिक)अर्थात् शास्त्रगम्य होसक्ताहो तो यहदण्डभी अयोग्यसमुझाजाय-औरजो-यहबात कहीजाय कि स्वत्वजोहै सो अलौकिक नहीं लौकिकहै तो फिर किसीकोधन हरनेपर ऐसानहीं कहनाचाहिये किइसने मेराधन हरिलिया क्योंकि जबलौकिक प्रमाणमें स्वत्वका होनाठहरा तोवह

भी उसहरनेवाले काधन होसक्ताहो जिसकेहाथमें देखागया-कदाचित् इसमेंयहतर्कणा करीजाय कि जबकिसीने और हीकाधन हरा तौ क्योंकर अपहर्ताका धनहोसक्ता या कहसक्तेहैं क़िन्तु जो वस्तुअपनी सो अपनी और बिरानी सो बिरानीही यहलोकमें प्रसिद्धहै-तौइसतर्कणा कायहउत्तरहै कि जोलोकमें यहविदितहै तौफिर किसीकेहाथमें सोनेचाँदी आदि रूपवाला धनदेखिकर यहसंशयभी न करनाचाहिये कियहधन इसीकाया और किसीकाहरलाया है क्योंकि ऐसे धनोंपर बहुधाकिसी कानामनहींलिखा होताहै इनकारणोंसे स्वत्वजोहै सोशास्त्रैक समधिगम्यहोसक्ताहै क्योंकिऐसे संशय के समयपर शास्त्रके निर्णयविना अपना या पराया स्वत्वनहीं निश्चित्त होसक्ताहै-परन्तु इसमेंभी यहएकसंभ्रम खड़ाहोताहै कि(स्वत्व) केवल शास्त्रसे या लोकसेभी जानाजाताहै-इसलिये इसमें कहते हैं कि-लौकिकस्वत्व जोहै सो तौ लौकिक अर्थोंकी क्रिया साधनत्वसेही जानाजाताहै जैसेव्रीही आदिके सदृश अर्थात् जैसे अन्नादि पदार्थोंकी उत्पादन क्रियाकरनेसे उनमेंउसका स्वत्व जानाजाताहै सोयह लौकिकस्वत्व समुझनाचाहियेपरंतु आहवनीय आदि जो केवल शास्त्रगम्यहैं उनकोलौकिक क्रियाओंका साधनत्व नहीं है कोई प्रवादीइसमें तर्कदेताहै किक्योंनहीं किन्तु आहवनीयादिकोंकोभी पाकादिसाधनत्वका क्रियासंवन्ध है-इसमें पूर्वपक्षी निषेधकरता है किऐसानहींकहना क्योंकि पाकादि साधनत्व जोहै सो आहवनीय आदिरूपसे नहींहोता है किन्तु प्रत्यक्षादि परिदृश्यमान् अग्न्यादि रूपसेहोता है और यहांभी जिसवातका यहदृष्टांत है उसमें सोने चांदीआदि रूपसे नहीं क्रियादिकोंकासाधन होता किन्तु कर्त्तापुरुषके स्वत्वसेही क्रियासाधन होसक्ती हैं अर्थात् जो धन जिसकाहक़नहीं होता वहउसके क्रयविक्रय आदि क्रियादिक अर्थोंकासाधन नहींकरता-और इसीप्रकार उन प्रत्यंत वासियोंका भी स्वत्व व्यवहार क्रय विक्रयआदिसे दिखाई देता है जो अदृष्टशास्त्र व्यवहार होतेहैं इसलिये न्यायज्ञोंने यह सिद्धांतमानाहै कि नियत उपायोंसे उत्पन्नहुयेद्रव्य जोलोकसेभी सिद्धहोजावें कि हांठीक अमुकामुक उपायोंसे उसने संपादन कियातो इसप्रकारका स्वत्वजोहै सो (लोकसिद्धही) अर्थात् लौकिकस्वत्व कहाताहै इसीको प्रमाणांतर गम्यजानो-ऐसेही-लिप्सासूत्र नामग्रंथकेतृतीय वर्णकमें द्रव्योपार्जनके नियमों को क्रत्वर्थत्वमें स्वत्वहीनहींहोना क्योंकि(स्वत्व)जोहै सो लौकिक ठहरा और इससे पूर्व पक्ष जो शास्त्रगम्य कहा गयाथा उसके अभावकी आशंका खड़ीहुई क्योंकि जबलोकसिद्ध ठहरायागया तौफिर शास्त्रगम्य क्योंकर कहसके-इसी से द्रव्यसंग्रह करनेमध्ये प्रतिग्रह आदिकेद्वारा स्वत्वके साधनत्वकालोक सिद्धनिश्चय किया इसप्रकारसे बड़े आचार्योंने पूर्वपक्षकोभी समर्थन किया (इस अत्रोक्तवार्ताका अर्थ ब्योरेवार कुछ आगे बढ़कर कहेंगे) पर असंदिग्धमें यह विरोधरूप उक्ति खटी।

होतीहै किजो द्रव्यार्जनको क्रत्वर्थत्व में स्वत्वही नहींहोता तौफिर यागही नहीं संवर्तितहोवै क्योंकि स्वत्वविना कोईकाम नहींवनसक्ता फिर क्योंकर यज्ञोंका साधनहोगा यदि कोईऐसा विनाशोचेमुखसे बकिडारै और वहयेंभी कहनेलगे कि इसपूर्वोक्त नियमके कहनेवालेने यह प्रतिषेधकिया मालूम होताहै कि द्रव्योंका उपार्जनकर्म जो है सोस्वत्वको नहींपैदा करताहै-तौयह उत्तरहै कि (तैसेसिद्धांतमेंभी)स्वत्वका लौकिकत्व अंगीकार करिकै विचारका यहप्रयोजन कहाहै कि इसविरोधपर दृष्टिनहीं लेजानी किंतु इस्से केवल पुरुषकोही नियमातिक्रम होसक्ताहै कुछ यज्ञका अतिक्रम नहींसमुझना और इसबातकाभी यहअर्थहै कि जबद्रव्यसंग्रहके नियमोंको क्रत्वर्थत्व समुझा जाय तव तौ केवल नियमार्जित द्रव्योंसेही क्रतुकी सिद्धिहोती है किंतु जो नियमोंके अतिक्रमसे द्रव्यार्जन कियाहोगातौ उस्सेक्रतुसिद्धि नहींहोसक्ती और पुरुषतौ नियमातिक्रमका दोषीहोहीगा अर्थात् केवल पुरुषकोही नियमातिक्रमका दोषनहीं किन्तु उसके दोषी होनेके सिवाय उसधनसे कियेहुये यज्ञोंकीभी सिद्धिनहीं यह तात्पर्य है इसीलिये पूर्वोक्त पक्षसे द्रव्यसंग्रहके नियमोंको क्रत्वर्थत्व नहींकहसक्ते और यहीपूर्व पक्षथा सोउस (पूर्वपक्षकेसिद्धांतमें) यहविशेषताहै कि द्रव्य संग्रहके नियमोंकापुरुषार्थ रूपतौ प्रसिद्धहीहै जवकिसीने पुरुषार्थ रूपानियत नियमोंसे द्रव्यार्जन कियाहो तव तौ प्रत्यक्षहै कि वहपुरुषभी दोषीनहीं और यज्ञोंकीभी सिद्धिहोगी परन्तुउस विशेषताका वृत्तान्त समुझना चाहिये कि जवकिसीने पुरुषार्थ हीनहोकर नियमातिक्रम सेद्रव्यार्जन कियाहो तौ उसधनसेभी क्रतुसिद्धिहोतीहै किन्तु केवलपुरुषकोही नियम के अतिक्रमका दोषलगताहै यहविशेषता उसमेंजानो (वरन)इसीविशेषताके प्रयोजन सेउस पूर्वपक्षी सिद्धान्तमें नियमातिक्रमसेभी संग्रहाकिये द्रव्योंपर अर्जयिता कास्वत्व ठहरायाहै चाहे किसीप्रकारसे उपार्जितकियेहों क्योंकियदि ऐसा अङ्गीकारनहोवे तौनिपटक्रतु कर्मोंकेसाधनका अभावहोजावे इसहेतुसे कि द्रव्यादिकोंमेंकर्ताका स्वत्वनहोने से यज्ञादिकनहींहोसक्तेहैं-परन्तु-इसनियमातिक्रमके अङ्गीकारसेयह सिद्धान्तनहींहै कि चोरीआदिप्रकारोंसेभी प्राप्तकियेधनमें(स्वत्व)होजाताहोगा क्योंकि ऐसेधनपर लोकमें भी (स्वत्व)कीप्रसिद्धिनहीं और व्यवहारोंमें विसंवाद खड़ेहोतेहैं-इसलिये-इसवातोंका मुख्यसिद्धांत इसरीतिसे समुझनाचाहिये कि ब्राह्मणआदि वर्णोंको प्रतिग्रहआदि उपायोंसे प्राप्तहुये धनपर स्वत्व जो लोकमें प्रसिद्धहै और लौकिकस्वत्वकहाताहै वेही उनके द्रव्योपार्जन मध्येनियमहैं तिनका भिन्नभिन्न यह ब्यौराहै कि यहाँपर प्रतिग्रह शब्दका अर्थ केवल (दान) कालेना वा मिलनामात्रजानो और आदि शब्दके अर्थसे वे सभी प्रकारजानो जो गौतमजीके वचनमें साधारणभूत पाँचप्रकारोंके उपरांत वर्णोंके भेद से पहले कही कहचुकेहैं और फिर भी नीचेकहेंगे) ध्यानकरौ कि यदि प्रतिग्रह आ

दि उपायोंको लौकिक स्वत्व ठहराया तौ प्रतिग्रह याजन अध्यापन इत्यादि ब्राह्मण के उपाय लौकिक स्वत्व कहलाये और क्षत्रियके विजयदंड आदि लौकिक उपाय और वैश्यके खेती गोरक्ष आदि लौकिक उपाय और शूद्रके सेवा शुश्रूषा आदि लौकिक उपाय-सो यह चारोंवर्णोंके लौकिक उपाय (अदृष्टार्थनियम) कहातेहैं अर्थात् विनादेखे अर्थोंका नियम नाम सचावटकियाकरतेहैं(दृष्टांत)जैसे एक ब्राह्मण या क्षत्रिय या वैश्य या शूद्रकोईहो जिसकेपास कुछधन एकप्रकार वा कईप्रकारका संचितहै किंचउनद्रव्यों परकोई ऐसा चिह्ननहीं जिस्से यह जानाजाय कियह धन इसनेअमुक प्रकारसे पायाथा परंतु जो वह पुरुष अपने ऊर्ध्वोक्त उपायोंमें सदैव तत्परबनारहताहो तौ फिर यहशंका उसपरनहीं पहुँचसक्तीहै कि यह धन इसने कहाँसेपायाथा चाहे किसीने उस धनको उसकेपासआतेसमय पर देखाहो या न देखाहो इसलिये इन उपायोंकी अदृष्टार्थ नियम संज्ञाहै और उसी गौतमके वाक्यमें रिक्थादिक पाँचप्रकार जो धनके आगम हेतु प्रसिद्धहैं सो वह पाँचो (सर्वसाधारण) हैं अर्थात् सभीजातोंको ऐसेधनमिलतेहैं और मिलतेहुये बहुधा औरोंको भी विदितहोजातेहैं-तद्यथा(स्वामीरिक्थक्रयसंविभाग परिग्रहाधिगमेषु भवति)अर्थात्-हर कोई स्वामीहोताहै (रिक्थ) के मिलनेमें १(क्रय) करनेमें २ (संविभाग) पानेमें ३ (परिग्रह) करिलेनेमें ४ (अधिगम) के होनेमें ५-इसवचन में यहशंकानहींकरनी कि रिक्थ और संविभाग यह दोनों एकबातहै क्योंकि दोनोंका अर्थ केवल दायहोसक्ताहै और दायवस्तुवहीहै जो किसीधनीकेधनको कोई निजहक्क से पावै फिर गौतमजीने दोनाम क्यों रक्खे इसका यहकारणहै कि वहदाय जोहै सोई दोभाँतिका अप्रतिबन्ध और सप्रतिबन्धके भेदसेहोताहै जैसा पहिले उसकालक्षण वर्णनहोचुकाहै-इसलिये इन ऊर्ध्वोक्त पाँचधनागमोंका यहब्योरा समुझनाचाहिये कि यहाँ (रिक्थ) संज्ञा केवल उसीदायकोकहतेहैं जो अप्रतिबंधदाय वर्णनहोचुका जिसमें बाप दादेके जीतेहुयेभी बेटा पोता रिक्थी कहलाते हैं और (संविभाग) यद्यपि हिस्सा बाँटकानामहै पर यहाँ उसको सप्रतिबन्धदाय समुझना जिसमें धनी या धनीके पुत्रादिकोंकेही होनेहुये चचा भाई आदि रिक्थी नहीं कहलाते पर इस प्रतिबन्ध के दूर होजानेमें वेभी रिक्थी होते हैं इसलिये गौतमने संज्ञा उसकी जुदी रक्खी (इसमें भी कदाचित् कोई यह थोथी शंकाकरे कि विरलेधनी अपने जीतेहुये या पुत्रादिकों के होतेहुये भी अपने धनमें से कुछभाग चचा भाइयोंको देदेते हैं इस्से कुछ प्रतिबन्ध का पकाहट नहीं पायागया सो यह थोथी शंका निपटवृथा है अर्थात् इस देदेने को रिक्थ या संविभाग नाम नहीं होसक्ता किन्तु इसकी दान प्रतिग्रह संज्ञाहोतीहै धनी ने दानकिया उसके चचाभाइयोंने प्रतिग्रहपाया) यह पांचमेंसे दो भांतिके धनागमों का ब्योरा होचुका २-निमित्त (स्व) स्वर जोष नामसहै सो प्रसिद्धहै कि जिसने जो

वस्तु मोलदेकर आप ख़रीदीहो उसका वही स्वामी है ३-चौथा (परिग्रह) रूप जो धनागमहै तिसका यह लक्षणहै कि जल तृणकाष्ठ आदि कोई वस्तु जो अस्वामिक हो किन्तु पहलेसे किसीके परिग्रह स्वामित्वमें न आईहो तिसको जिसने प्रथम स्वीकारकियाहो अर्थात् अपने परिग्रहनाम क़ब्ज़ेमें करलियाहो वही उसकास्वामी होगा यहांपर तृण जलकाष्ठ आदिकहनेसे केवल चरवस्तुही नहीं समुझनी किंतु अचरका परिग्रहभी समुझना जैसे अनन्यपूर्व कोईसा जलाशय जिसने निजपरिग्रहमें किया हो या अनन्य पूर्व तृणोत्पत्ति स्थानको घेराहो या अनन्य पूर्व काष्ठोत्पत्ति स्थान वन बाग़ आदि घेरिलिया हो या अनन्यपूर्वा शून्य पृथ्वीही घेरीहो तौ वही उसका स्वामी है (कदाचित्) यह संदेह इसमें कियाजाय कि धरती क्योंकर अस्वामिक हो सक्ती हैजिसेकोई घेरै सर्वत्र कोई राजामालिक होताहै सो यह अपक्व बुद्धीका संदेह निपट वृथा है किन्तु राजा अपना राज करलेने का अधिकारी होता है और यही चाहाकरताहै कि शून्य धरतीपर आबादी या चमनहोजाय क्योंकि यदिराजा के स्वामित्वसे धरती शून्य रहीआवै तौ राजकर किस्से लियाजावै इसके सिवाय यह परिग्रहकी मर्यादा कुछ केवलप्रजाकेही लिये नहीं किन्तु सर्वसाधारण पांच धनागमोंकी संख्यामें होनेसे यही मर्यादा राजाकोभी मुख्यात्मक प्रसिद्धहै अर्थात् जब कोई देश देशांतर ऐसाशून्य और अस्वामिकपराहो जिसमेंअतिभयानक दुर्गमताके हेतुसे किसी राजाका परिग्रह न होसकाहो और उसी देशान्तरमें कोई शूरवीर भूपजाकर अपने शूरत्वकी प्रवलतासे वनमानुषों वा सिंहादिकोंको वश करिकै निज परिग्रह करिलेवै तौ यह अनन्यपूर्वा धरतीकाआगमउसने परिग्रहद्वारा किया समुझौ (यद्यपि) शूरत्वके लक्षणसे यहभी एक विजयरूप लक्षणमें गिनती होसक्ता परन्तु विजय उसको कहना चाहिये जो देश किसीके स्वामित्वमें से जीतकर लियाजाय सो वह विजय का धनागम क्षत्रियके वर्णात्मक असाधारण उपायमेंगिनतीहै किन्तु इन सर्वसाधारण उपायोंमें नहीं इसलिये यह परिग्रहमात्र कहलाता है इसीप्रकार जब कभी अनादि काल वा आदिकाल में यह धरती बहुधा अस्वामिक देख परतीथी तब जहां जहां सूर्यवंशी और चन्द्रवंशियों ने परिग्रह किया तहांके वेही प्रथमस्वामीहुये पुनि उनके संतानों ने उनका रिक्थ पाया ऐसेही सर्वत्र जानो (यद्यपि) परिग्रहकी सिद्धिमें कुछ शूरत्व से अपेक्षा नहीं क्योंकि अस्वामिक धनके घेरने में एक निर्बल या दीन पुरुषभी अधिकारीहै कि यदिपहिले क़ब्ज़ाकरिलेवै तौ वहीउसका स्वामीइसमें कुछ संदेह नहीं तथापि अभी राजाके प्रसंगसे शूरत्वकी समस्या जो प्रदर्शित करीगई उसका प्रयोजन केवल इतनाहै कि यह शूरत्व यहां हिम्मत वा पराक्रमसे संबन्ध रखताहै क्योंकि जब अस्वामिक वस्तु किसी ऐसे स्थलपरहोगी जहां कोई भी अव-

रोधीनहीं तब तौ उस दीनको भी बड़ी सुगमताहै परंतु जब ऐसेस्थलपरहोगी जहाँ सिंहादिक आनिकरसतातेहों या कोई मनुष्यही निष्कारण उसके परिग्रहका न होना चाहिकर यद्वा उसकी हिस्सेमें आपहीलेनाचाहिकर परिग्रह कर्त्ताको उठाता या सताता हो तब अवश्यही कुछ थोड़े बहुत पराक्रमसे अपेक्षाआजातीहै अर्थात् यदि निपट निर्बलहोगा तौ दूसरेके तेजसेही छोड़भागैगा या कुछ पराक्रमीहोगा तौ बाधकोंकी बाधासे डिगाये न डिगसकैगा इसलिये शूरत्वकी समस्या कुछअनर्थकनहींसमुझनी–यहाँतक साधारण पाँच आगमोंमेंसे चारिका व्योरा कथनहोचुका ४-पाँचवां(अधिगम) रूप जो धनागमहै तिसका व्योरा तेईसवें परिच्छेदमें-३४-३५-३६-इन तीन श्लोकों से वर्णनहोचुकाहै५-इन पाँचनिमित्तोंके उत्पन्नहोनेमें और निश्चयात्मक अन्यलोगों को भी विदितहोजानेमें स्वामीहोताहै तब उन द्रव्योंपर उसका स्वामित्वहोजाता और उसीकास्वत्वकहलाताहै सो यह सब साधारण सबजातोंके स्वत्वका व्योरा दर्शायागया-अब-असाधारण भिन्नजाती स्वत्वोंकाव्योरा उसीगौतमजीके शेष वाक्यसे दर्शातेहैं कि (ब्राह्मणस्याधिकंलब्धं) अर्थात् ब्राह्मणका एक अधिक स्वत्व उसधनमें भीहोताहै जो उसने याजन अध्यापन आदि प्रतिग्रहोंद्वारापायाहो-एवं (क्षत्रियस्य विजितं) अर्थात् क्षत्रीका एक उसधनमें अधिक स्वत्वहोताहै जो उसने विजय या दंड आदि अपने वर्णात्मिक उपायोंसे पायाहो- एवं(वैश्यस्यनिर्विष्टं) अर्थात् वैश्यका अधिक उसधनमें स्वत्वहोताहै जो कृषी गौरक्ष्यादि अपने वर्णात्मिक उपायोंसेपैदाकियाहो–एवं (शूद्रस्यापिनिर्विष्टं) अर्थात् शूद्रका उसधनमें अधिक स्वत्वहोताहै जो उसने द्विजातियोंकीसेवा शुश्रूषा आदि उपायोंद्वारा भृतिरूपसे अर्थात् वेतनमें पायाहो-ऐसेही अनुलोमज और प्रतिलोमज जातोंकोभी लोक प्रसिद्ध स्वत्वोंमें जो जो असाधारण कहागया सो सबलोकसे समुझना अर्थात् जैसे सूतजातियों को अश्वसारथ्यनाम रथवानी या कोचवानी यह लोकमें प्रसिद्धहै तैसे और भी इसप्रकारकी अनुलोमज प्रतिलोमज जातोंके निजनिजकर्म जो जो लोकमें प्रसिद्धहों सो सब असाधारणउपाय कहलातेहैं और उनकर्मोंद्वारा जो वेतनपैदाकियाहो सो सब (निर्विष्ट) धनकहलाता और उसधनमें उनका अधिक स्वत्वकहलाताहै (इसप्रकारके पैदाहुये धनोंको निर्विष्ट इसलिये कहतेहैं कि निर्विष्ट वेतनकानामहै और इसप्रकारके सभीउपाय वेतन रूपमें गिनतेहैं)(निर्वेशोभृतियोगयोरितित्रिकांडीस्मरणम्)(यद्यपि ऊपर वैश्यकेभी असाधारणउपायोंको निर्विष्टबतलायाथा और उनकेवाणिज्यादि उपाय कुछ वेतनरूप में गिननेनहीं हैं परन्तु वैश्यकेपक्षमें निर्वेश केवल प्रवेशकेहीअर्थमें समुझना किन्तु वहाँपर कुछ वेतनकी विशेषता नहीं) यह असाधारण स्वत्वोंका व्योरा दर्शायागया और समस्त व्याख्यानोंसे सिद्धान्त यहदर्शायागया कि स्वत्व जोहै सो यद्यपि

शास्त्रसेहीजानाजाताहै परन्तु लोकप्रसिद्धिबिना उसकी यथार्थसिद्धि नहींहोसक्ती इस्से लोक शास्त्र दोनोंसेही स्वत्व जानाजाताहै-इसी प्रसंगमें नियमातिक्रमका चर्चा जो ऊपर होरहाथा तिसका यह प्रयोजन है कि जो जो नियम द्रव्योपार्जन के यहांपर गौतमजीके वाक्यसे दर्शायेगये तिनहींके अतिक्रमसे भी जो किसीने उपार्जन किया हो दृष्टांत जैसे ब्राह्मणको याजनअध्यापन आदि नियम कहेहैं कदाचित् वहीक्षत्रीके नियमोंसे या वैश्यकेनियमोंसे या शूद्रकेनियमोंसेउपार्जनकरै तौयह नहींकहाजासक्ताहै कि इसधनमें उसकास्वत्वनहीं या इस्से क्रतुकर्मों की सिद्धिनहोसकैगी इत्यादि सर्वत्र ऊहाकरलेनी(पर)नियमातिक्रमके आशयसेयहअपेक्षा नहींहै कि चोरी आदि प्रकारों से उत्पन्नकिये धनमें स्वत्व होजावै-यद्यपि नियमातिक्रमके स्वरूप इसके उपरांत और भी अनेकभाँतिके असंख्यहैं कि जिनका दृष्टांतदेना विस्तारहेतुसे दुर्घटहै जैसे ब्राह्मणको अग्राह्यदानकालेना आदि सर्वत्र सबजातों में नानाभाँतिसे ऊहाकरलेनी और यहभी समुझलेना कि इसभाँतिके नियमातिक्रम यद्यपि निंद्य हैं परइनसे प्राप्तकिये धनमें उसका स्वत्वहोता है इसकासंक्षेपचर्चा नीचेफिरभी कियाजायगा-और-यद्यपि लौकिक स्वत्वके निषेध रूपसे एकयह वाक्यजोपहले लिखागयाथा कि (यदिलौकिक स्वत्व होताहो तौ किसीको धन हरनेपर ऐसानहीं कहना चाहिये कि इसने मेराधन हरलिया इत्यादि) सोयह तन्त्रोक्त वाक्यभी वृथा समुझना क्योंकि स्वत्वमेंसंदेह तभी खड़ाहोता है कि जब स्वत्व हेतु भूतक्रयादिकों में संदेह पैदाहो अन्यथा नहींइस्से तन्त्रोक्त वह वचन केवल तर्करूप से लिखागया समुझना कुछ प्रयोजन उसका नहीं था-और-उसके उपरांत कई वाक्यों से पीछे जो (स्वत्वकालौकिकत्वअंगीकार करिकै विचार का प्रयोजन) कहागया था जिसमें नियमाति क्रम की निंदा दर्शाई गई तिसकाभी यह सिद्धांत है कि (यद्गर्हितेनार्जयंतिकर्मणाब्राह्मणाधनम्। तस्योत्सर्गेणशुद्ध्यंतिजपेनतपसैवच) अर्थात्-ब्राह्मण जो कुछ धन गर्हितकर्म से पैदाकरते हैं तिनके उत्सर्गनामदान करदेने सेही शुद्धहोते हैं या जप और तपकरने से भी (इस वचनमें ब्राह्मणके उपलक्षणसे औरोंको भी समुझिलेना किंतु जैसे ब्राह्मण को निंद्यप्रतिग्रह आदिका लेना अनिष्ट दर्शाया तैसेक्षत्रीकोभी निंद्यविजय या निंद्य दंडादि समुझने और वैश्यको भी निंद्यवाणिज्यादि समुझने) इत्यादि प्रकारोंसे जो कुछ धन जिसने गर्हित कर्मसे जोड़ाहो वहधन उसकेपुत्रोंको (शास्त्रैकसमधिगम्यस्वत्व) के होनेमें अविभाज्य अर्थात् बांटिलेना योग्य नहीं होसक्ता क्योंकि स्वत्वके शास्त्रैक समधिगम्य होने में गर्हितकर्मसे पैदा किये धनपर पैदाकरनेवाले का भी स्वत्वनहीं होसक्ता-परन्तु-जब(स्वत्वकोलौकिकत्व)मानाजायतबअसत्कर्मसेभीप्राप्तहुयेधनपरस्वत्व पहुँचता है इसलिये उसके पुत्रोंको वहीधन बाँटिलेने योग्य होसक्ता है तौ फिर इस

विरोधरूप द्विविधाके लक्षणमें शांति क्योंकर होसके इसलिये कहतेहैं कि (तस्योत्सर्गेणशुद्ध्यंतिजपेनतपसैवच) यहप्रायश्चित्त जो अभी ऊपर कहागया सोकेवल उसी अर्जयिता पुरुषके निमित्तमें होताहै जिसने जोधन आप उपार्जन कियाहो परउसके पुत्रोंपर प्रायश्चित्तकी प्राप्तिनहीं है अर्थात् उसके पुत्रोंको दायत्वकी योग्यतासे स्वत्व होताहै किन्तु उनको दोषका संबंध इसमें कुछ नहींहै जिस्से प्रायश्चित्त उनपरभी पहुँचै और दायत्वकी योग्यता जो है तिसकी सिद्धि गौतमजी के वचनकी व्याख्या जो व्योरेवार ऊपर लिखी उस्सेभी प्रदर्शित होचुकी और मनुके भी इस प्रमाणांतर वचन से संसिद्ध होती है-यथा(सप्तवित्तागमाधर्म्या दायोलाभःक्रयोजयः। प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रहएवच) अर्थात्-मनुजी ने यह कहा है कि सातधनके आगम जो हैं सो धर्म्य गिनेजाते किन्तु उनमें कुछअधर्मका संसर्गनहीं अर्थात् एकतौधनी के अभाव आदि कारणों से (दाय) का मिलना-दूसरा (लाभ) जो निधि द्वारा हुआहो जिसकी मर्यादें अधिगम के नामसे तेईसवें परिच्छेद में कहचुके हैं—तीसरा (क्रय) अर्थात् जो वस्तु शास्त्रोक्त मर्यादों से खरीदीहो-चौथा (जय) जो किसी प्रकारकी उचित मर्यादासे धनजीताहो-पाँचवां (प्रयोग) अर्थात् किसी व्यापारद्वारा जो धन पैदाहुआहो-छठा(कर्मयोग)अर्थात् हस्तक्रियाआदि विद्याओं से जो धनपैदा कियाहो-सातवां (सत्प्रतिग्रह) अर्थात् जो धनदेने लेने की शास्त्रोक्त मर्यादोंसेही देनेवाले ने दिया और लेनेवालेने प्रतिग्रह कियाहो-यहाँतक (स्वत्व) के निश्चय मध्ये सर्वथा व्याख्या होचुकी-अब-उस प्रकृत वार्त्ता परदृष्टिकरनी चाहिये किजिसके निमित्तसे यह स्वत्व निरूपण कियागया अर्थात् यहबात विचारनी योग्यहै कि यह स्वत्व विभागके होनेपर उसधनमें उत्पन्नहोताहै या स्वत्वकेहोते हुये विभाग कियाजाताहै-तहाँ-पहले यही उत्तर ठीकहै कि विभागके होनेपर धनमें स्वत्व ठहरताहै क्योंकि पैदाहुये पुत्रके आधानादि संस्कार कर्मोंकाविधानकेवल पिताके आधीन दिखाईदेताहै किन्तु यदि जन्मकेसाथही धनमेंस्वत्वहोवे तौफिर तत्काल पैदाहुये पुत्रकाभी धनसाधारण समझाजाय और यदियही व्यवस्था ठीकहोवे तौफिर द्रव्यसाध्य आधानादि संस्कारोंमें पिताका अधिकारही नहींपहुँचताहै क्योंकि जोवस्तुपुत्रके साझेकीठहरी उसकोबिना पुत्रकी सम्मति पिताक्योंकर व्ययकरसक्ताहै और भी दूसरायह लाञ्छन इसमेंआताहै कि विभागसे पहले पितृप्रसाद लब्धवस्तुके विभागमें प्रतिषेध जो ठहरायागया वहप्रतिषेधही व्यर्थहुआ जाताहै-तद्यथा(शौर्यभार्याधनेचोभेयच्चविद्याधनम्भवेत्। त्रीण्येतान्यविभाज्यानिप्रसादोयश्चपैतृकः) अर्थात्-यह निषेध कियागयाहै किशूरत्वसे पैदाहुआधन और भार्याधन और निजविद्या द्वारापैदा कियाधन यहतीनधन हिस्सा बांट करनेयोग्यनहीं किन्तु ऐसेधन जिस किसी भ्राताकेहों उनपरउसीका सर्वस्व प्रा

है और उस धनपरभी कि जो पिताने विभाग होनेसे पहले किसीएक पुत्रकोप्रसाद इवदेदियाहो-इसमें यह तर्कणाहै कि यदि जन्ममात्रसेही पिताके धनमें पुत्रोंकास्वत्व साधारण मिला झुलाहोता तो कोई वस्तु किसी एक पुत्रको प्रसादइव देदेनेकाअधिकारी पिता क्योंकर होता इसलिये यही निश्चित होताहै कि विभागहुये पीछे पुत्रोंका स्वत्व निज निज भागमें होताहै इसीलिये उस वस्तुका विभागहोना प्रतिषेध कियागया जो विभागहोने से पहिले पिताने प्रसादइव देदीहो-कदाचित् यह समाधान इसमें प्रवेश कियाजाय कि अन्य पुत्रोंकी अनुमति पूर्वक देदेनेके सिद्धांतमें यह वचनहोगा इसप्रकारसे जन्महीसाथ पुत्रोंका स्वत्वहोना पायाजाताहै (तौभी) यह उत्तर होसक्ता है कि यदि सभी पुत्रोंकी अनुमति से देना सच्चाहोता तो फिरवे सभी पुत्र निज अनुमति से दिलाईहुई वस्तुका विभागनहीं मांगिसक्के जिसका प्रतिषेध कियाजाता किन्तु इस दशामें विभागकी प्राप्तिही असंगत हुईजातीहै फिर प्रतिषेध उसका क्योंकर सूचित होसक्ताथा इसलिये यहीनिश्चितहोताहै कि विभागके होनेपरही स्वत्वठहरताहै किन्तु जन्महीसेनहीं-इसकेसिवाय इसहेतुसेभीलाञ्छन इसमेंआताहै कि यदिजन्महीसेस्वत्व होसक्ताहोता तौफिर भार्याको भी जोप्रीतिसे कुछदेना शास्त्रमेंकहाहै वहवचन अनर्थक हुआजाताहै-तद्यथा(भर्त्राप्रीतेनयदत्तंस्त्रियैतस्मिन्मृतेपितत्। सायथाकाममश्नीयात्दद्याद्वास्थावरादृते)अर्थात्(प्रीतिदान) कीआज्ञामध्ये विष्णुका यहवचनहै किभर्त्ताने जोकुछधन अपनी भार्याको प्रसन्नहोकर प्रीतिसेदेदियाहै उसभर्त्ताके मरजानेपरभी उसधनको वही भार्या अपनीइच्छाकेअनुसारभोगे या दानपुण्यमें लगावे(पर)स्थावर धनसेरहित अर्थात् यदिभर्त्ताने कुछस्थावर धनभी प्रीतिसेदेदियाहो तो स्थावरधनको दानपुण्यमें लगानेकी अधिकारिणी नहीं है-सिद्धान्त इसकायह किइसविष्णुके वचनसे भर्त्ताकोजङ्गम और स्थावरधनभी प्रीतिसे देदेनेमें अधिकारहै यदिपिताके धनमेंउसके पुत्रोंका भी स्वत्वजन्महीसे होसक्ताहोता तो फिर पिता अपनी भार्याको उसधनमेंसे प्रीतिदान क्योंकर देसक्ताइसलिये जन्ममात्रसेस्वत्वकी उत्पत्तिनहींपाई जातीहै(और) जो जन्महीसे स्वत्वठहरायाजाय और इस प्रीतिदानवाले वचनकाअर्थ इसप्रकारसे लगायाजाय कि(स्थावरादृतेयदत्तं)अर्थात् स्थावर धनके विनाअन्य जो कुछ दियाहो तिसको अपनीइच्छाकेअनुसार व्ययकरसक्तीहै और सिद्धान्त इसयोजनाका यहमाना जाय कि स्थावर धनका प्रीतिदानही नहींहोसक्ताहै इसलिये स्थावरधनमें पुत्रोंका जन्म सेही स्वत्वहोताहै सो यह ऐसे अर्थकी योजनाही अयुक्तहै क्योंकि इतनेवड़े कोमल प्रयोजनके स्थलपर ऐसी ढँकीहुई व्यवहित योजनाका वचनही ऋषिलोग नहीं कहने-भला-कदाचित् इसी व्यवहित योजनाकी दृढ़तामें यह अग्रोक्त वचन प्रमाणदिया जाय-कि (मणिमुक्ताप्रवालानांसर्वस्यैवपिताप्रभुः। स्थावरस्यतुसर्वस्यनपितानपिता

महः) अर्थात्-मणि मोती मूंगा आदि जो जंगम धनहैं तिन सभीका मालिक पिताहै परन्तु सभी प्रकारके स्थावर धनोंका मालिक नतौ पिताहै न दादाहै-तथैव एक यह वचनभी इसीमें प्रमाण दियाजावे कि (पितृप्रसादाद्भुज्यंतेवस्त्राण्याभरणानिच। स्थावरंतुनभुज्येतप्रसादेसतिपैतृके) अर्थात्-वस्त्र आभूषण आदि पिताका दियाहुआ पुत्र भोगतेहैं किन्तु स्थावर धनको पिताके प्रसादकरदेने परभी नहींभोगै अर्थात् जो पिताने किसी पुत्रको देदिया हो तौ भी उस्से लेलियाजाय-या भांति इसवचनसे स्थावर धन का प्रसादरूपी दानकरदेना प्रतिषिद्धहै इसलिये उस ऊर्ध्वोक्त विष्णुके वचनमें वही योजनाठीक प्रतीत होतीहै कि स्थावरधन के विना जो कुछ भर्त्ताने भार्याको प्रसाद इवदेदियाहो तिसको भोगि सक्ती है इसहेतुसे स्थावरधनमें पुत्रोंकाजन्महीसे स्वत्व होजाना निश्चितहोताहै-इसकथनमें यह समाधान होसक्ताहै कि इनदोनों अनंतरोक्त वचनोंका अर्थ सिद्धांत केवल पितामहके उपार्जितकिये स्थावर धनके विषयपरआरूढ़है अर्थात् पितामहके मरजाने पीछे वहधन पिता पुत्र दोनोंका साधारण होताहै तौ भी इतनीविशेषता उसमें वचनमात्रसे दर्शाई गई कि मणिमुक्ताआदि जंगमधन केवल पिताकेही समुझेजाते और स्थावरधनमें पिता पुत्र दोनोंकासामान्य साझाहै यहबात पाईजातीहै और ठेठपिताकेउपार्जितकियेधनका इसमेंप्रसंग नहींपायाजाता इसलिये जन्मसेही स्वत्वकी उत्पत्ति निश्चित नहीं होसक्ती किन्तु स्वामीके नाश होजाने या विभाग होजानेपर स्वत्व पैदाहोताहै-परन्तु-इस दशामें भी एक प्रश्नरूप तर्कणाको अवकाश मिलसक्ताहै कि यदि विभागके होनेविना स्वत्वकी प्रहीणतारही तौ फिर पिताके मरने पीछे विभागसे पहले पहले यदि कोई ऐसे धनको तिसरैतभी लेनेलगै तौ लेतेहुये को रोकना अनुचितहै क्योंकि जब किसीका स्वत्वही अबतक नहीं तौ रोकनेवाला भी कौन होसक्ताहै-तैसेही-यहभी एक तर्कणाहै कि यदि एकही पुत्र होवे तौ पिताके मरणान्तसेही पुत्रका धन होचुका फिर यह नियम क्योंकर होसक्ताहै कि विभागके होनेविना स्वत्वही नहीं-इसलिये-अब इन सभीबातोंका निश्चयात्मक सिद्धान्त मुख्यरूपसे कहते हैं कि-स्वत्वजो है सो लोक प्रसिद्धही पहले कह चुके हैं और लोकमें पुत्रादिकों का स्वत्वजो है सो जन्महीसे प्रसिद्धतर विख्यातहै उसमें कोई भी नकारका प्रवेश नहीं करसक्ता-और विभाग शब्दभी बहुस्वामिक धन के विषयपर लोकमें प्रसिद्धहै वरन एक स्वामिक धनके विषयपर नहीं और स्वत्वकी प्रहीणताके भी विषय परनहीहै किजिस्मेकोई अंशी किसीनिसरैतके दायलेतहुयेरोकने का अधिकारी न होनेके वरन प्रत्येक अंशी रोकनेका अधिकारीहोताहै चाहे विभाग हुआहो या न हुआहो-और-गौतमजीका वचनभी प्रमाण है-यथा (तंतथोत्पन्नस्यैवार्थ स्वामित्वंलभेतेत्याचार्याः) अर्थात्-गौतमजी ने यह कहा है कि-उस अर्थ स्वामित्वको

है और उस धनपरभी कि जो पिताने विभाग होनेसे पहले किसीएक पुत्रकोप्रसाद इवदेदियाहो-इसमें यह तर्कणाहै कि यदि जन्ममात्रसेही पिताके धनमें पुत्रोंकास्वत्व साधारण मिला भुलाहोता तो कोई वस्तु किसी एक पुत्रको प्रसादइव देदेनेकाअधिकारी पिता क्योंकर होता इसलिये यही निश्चित होताहै कि विभागहुये पीछे पुत्रोंका स्वत्व निज निज भागमें होताहै इसीलिये उस वस्तुका विभागहोना प्रतिषेध कियागया जो विभागहोने से पहिले पिताने प्रसादइव देदीहो-कदाचित् यह समाधान इसमें प्रवेश कियाजाय कि अन्य पुत्रोंकी अनुमति पूर्वक देदेनेके सिद्धांतमें यह वचनहोगा इसप्रकारसे जन्महीसाथ पुत्रोंका स्वत्वहोना पायाजाताहै (तौभी) यह उत्तर होसक्ता है कि यदि सभी पुत्रोंकी अनुमति से देना सच्चाहोता तो फिरवे सभी पुत्र निज अनुमति से दिलाईहुई वस्तुका विभागनहीं मांगिसक्के जिसका प्रतिषेध कियाजाता किन्तु इस दशामें विभागकी प्राप्तिही असंगत हुईजातीहै फिर प्रतिषेध उसका क्योंकर सूचित होसक्ताथा इसलिये यहीनिश्चितहोताहै कि विभागके होनेपरही स्वत्वठहरताहै किन्तु जन्महीसेनहीं-इसकेसिवाय इसहेतुसेभीलाञ्छन इसमेंआताहै कि यदिजन्महीसेस्वत्व होसक्ताहोता तोफिर भार्याको भी जोप्रीतिसे कुछदेना शास्त्रमेंकहाहै वहवचन अनर्थक हुआजाताहै-तद्यथा(भर्त्राप्रीतेनयद्दत्तंस्त्रियैतस्मिन्मृतेपितत्। सायथाकाममश्नीयात्दद्याद्वास्थावरादृते)अर्थात्(प्रीतिदान) कीआज्ञामध्ये विष्णुका यहवचनहै किभर्त्ताने जोकुछधन अपनी भार्याको प्रसन्नहोकर प्रीतिसेदेदियाहै उसभर्त्ताके मरजानेपरभी उसधनको वही भार्या अपनीइच्छाकेअनुसारभोगै या दानपुण्यमें लगावे(पर)स्थावर धनसेरहित अर्थात् यदिभर्त्ताने कुछस्थावर धनभी प्रीतिसेदेदियाहो तो स्थावरधनको दानपुण्यमें लगानेकी अधिकारिणी नहीं है-सिद्धान्त इसकायह कि इसविष्णुके वचनसे भर्त्ताको जङ्गम और स्थावरधनभी प्रीतिसे देदेनेमें अधिकारहै यदिपिताके धनमेंउसके पुत्रोंका भी स्वत्वजन्महीसे होसक्ताहोता तो फिर पिता अपनी भार्याको उसधनमेंसे प्रीतिदान क्योंकर देसक्ताइसलिये जन्ममात्रसे स्वत्वकी उत्पत्तिनहींपाई जातीहै(और) जो जन्महीसे स्वत्वठहरायाजाय और इस प्रीतिदानवाले वचनकाअर्थ इसप्रकारसे लगायाजाय कि(स्थावरादृतेयदत्तं)अर्थात् स्थावर धनके विनाअन्य जो कुछ दियाहो तिसको अपनी इच्छाकेअनुसार व्ययकरसक्ती है और सिद्धान्त इसयोजनाका यहमाना जाय कि स्थावर धनका प्रीतिदानही नहींहोसक्ताहै इसलिये स्थावरधनमें पुत्रोंका जन्मसेही स्वत्वहोताहै सो यह ऐसे अर्थकी योजनाही अयुक्तहै क्योंकि इतनेबड़े कोमल प्रयोजनके स्थलपर ऐसी ढँकीहुई व्यवहित योजनाका वचनही ऋषिलोग नहीं कहते-भला-कदाचित् इसी व्यवहित योजनाकी दृढ़तामें यह अग्रोक्त वचन प्रमाणदिया जाय-कि (मणिमुक्ताप्रवालानांसर्वस्यैवपिताप्रभुः। स्थावरस्यतुसर्वस्यनपितानपिता

महः) अर्थात्-मणि मोती मूंगा आदि जो जंगम धनहैं तिन सभीका मालिक पिताहै परन्तु सभी प्रकारके स्थावर धनोंका मालिक नतौ पिताहै न दादाहै-तथैव एक यह वचनभी इसीमें प्रमाण दियाजावे कि (पितृप्रसादाद्भुज्यंतेवस्त्राण्याभरणानिच। स्थावरंतुनभुज्येतप्रसादेसतिपैतृके) अर्थात्-वस्त्र आभूषण आदि पिताका दियाहुआ पुत्र भोगतेहैं किन्तु स्थावर धनको पिताके प्रसादकरदेने परभी नहींभोगे अर्थात् जो पिताने किसी पुत्रको देदिया हो तौ भी उस्से लेलियाजाय-या भांति इसवचनसे स्थावर धन का प्रसादरूपी दानकरदेना प्रतिषिद्धहै इसलिये उस ऊर्ध्वोक्त विष्णुके वचनमें वही योजनाठीक प्रतीत होतीहै कि स्थावरधन के विना जो कुछ भर्त्ताने भार्याको प्रसाद इवदेदियाहो तिसको भोगि सक्ती है इसहेतुसे स्थावरधनमें पुत्रोंकाजन्महीसे स्वत्व होजाना निश्चितहोताहै-इसकथनमें यह समाधान होसक्ताहै कि इनदोनों अनंतरोक्त वचनोंका अर्थ सिद्धांत केवल पितामहके उपार्जितकिये स्थावर धनके विषयपरआरूढ़है अर्थात् पितामहके मरजाने पीछे वहधन पिता पुत्र दोनोंका साधारण होताहै तौ भी इतनीविशेषता उसमें वचनमात्रसे दर्शाई गई कि मणिमुक्ताआदि जंगमधन केवल पिताकेही समुझेजाते और स्थावरधनमें पिता पुत्र दोनोंकासामान्य साझाहै यहबात पाईजातीहै और ठेठपिताकेउपार्जितकियेधनका इसमेंप्रसंग नहींपायाजाता इसलिये जन्मसेही स्वत्वकी उत्पत्ति निश्चित नहीं होसक्ती किन्तु स्वामीके नाश होजाने या विभाग होजानेपर स्वत्व पैदाहोताहै-परन्तु-इस दशामें भी एक प्रश्नरूप तर्कणाको अवकाश मिलसक्ताहै कि यदि विभागके होनेविना स्वत्वकी प्रहीणतारही तौ फिर पिताके मरने पीछे विभागसे पहले पहले यदि कोई ऐसे धनको तिसरैतभी लेनेलगे तौ लेतेहुये को रोकना अनुचितहै क्योंकि जब किसीका स्वत्वही अबतक नहीं तौ रोकनेवाला भी कौन होसक्ताहै-तैसेही-यहभी एक तर्कणाहै कि यदि एकही पुत्र होवे तौ पिताके मरणान्तसेही पुत्रका धन होचुका फिर यह नियम क्योंकर होसक्ताहै कि विभागके होनेविना स्वत्वही नहीं-इसलिये-अब इन सभीबातोंका निश्चयात्मक सिद्धान्त मुख्यरूपसे कहते हैं कि-स्वत्वजो है सो लोक प्रसिद्धही पहले कह चुके हैं और लोकमें पुत्रादिकों का स्वत्वजो है सो जन्महीसे प्रसिद्धतर विख्यातहै उसमें कोई भी नकारका प्रवेश नहीं करसक्ता-और विभाग शब्दभी बहुस्वामिक धन के विषयपर लोकमें प्रसिद्धहै वरन एक स्वामिक धनके विषयपर नहीं और स्वत्वकी प्रहीणताके भी विषय परनहींहै किजिस्सेकोई अंशी किसीतिसरैतके दाबतेहुयेरोकने का अधिकारी न होसके वरन प्रत्येक अंशी रोकनेका अधिकारीहोताहै चाहै विभाग हुआहो या न हुआहो-और—गौतमजीका वचनभी प्रमाण है-यथा (तंतथोत्पत्त्यैवार्थस्वामित्वंलभेतेत्याचार्याः) अर्थात्-गौतमजी ने यह कहा है कि-उस अर्थ स्वामित्वको

जन्मके साथही प्राप्तहोवे उसप्रकारसे कि जैसे पिताके मरने या विभागकेहोनेपरस्वामित्व प्रकट होताहै यहसभी आचार्योंका संमतहै-इसके सिवाय(मणिमुक्ताप्रबालानां) इत्यादि वचन जोऊपरप्रदर्शित कियागया और व्याख्या उसकी कुछअर्थांतरसेदर्शाईगई सो वहवचनभीजन्महीसे स्वत्व पैदाहोनेके पक्षमेंघटताहै किंतु पितामहके उपार्जित किये स्थावरविषयपर कहना ठीक नहीं है क्योंकिउसबचनके अंतमें (नपितान पितामहः) ये दोनाम निषेध रूपसे दर्शित किये हैं तिनकायह तात्पर्यहै कि पितामह ठेठ अपनाभी उपार्जितकिया स्थावरधन पौत्रकेभीहोतेहुये निजपुत्रको न देवै क्योंकि उनदोनोंका साधारण स्वत्व उसधनमें होताहै सोइस तात्पर्यके अनुकूल वहवचनभी जन्महीसे स्वत्वको पहुँचाताहै-और जो (मणिमुक्ताप्रबालानां) इत्यादि वचन मात्रसे मणि मुक्ता वस्त्र आभरणादि जो पितामहके उपार्जितहों तिनमें भी पिताकाही स्वत्व जैसे पूर्व व्याख्यामें परायेमतसे ठहरायागया तैसेही हमारे मतसेभी यही मणिमुक्ता वस्त्र आभरणादि जोपिताके स्वोपार्जितहों तिनमेंभी पिताकाही अधिकार देदेनेमध्ये वचनमात्रसे संसिद्ध होताहै इसलिये कुछ विशेषता उस व्याख्यामें न रही-और जो (भर्त्रांप्रीतेनयद्दत्तं) इत्यादि विष्णुका वचन जोस्थावर धनका प्रीतिदान जतलानेवाला दर्शित कियागयाथा तिसकीभी व्याख्या इस रीतिसे कर्तव्य है कि स्थावरधन अपना स्वोपार्जितभी पुत्रादिकोंकीदृढ़ अनुज्ञासेही दियाजाताहै अन्यथानहीं क्योंकि पूर्वोक्त मणिमुक्तादि वचनोंसेभी जो प्रीतिदानकी योग्यता पाईगई सो सर्वथा स्थावर धनसे व्यतिरिक्त द्रव्योंकी निश्चितहै इसलिये यदि पुत्रादिकोंकी निश्चयात्मक अनुमतिलेकर जो स्थावर धन भार्याको प्रीतिदानके मार्गसेदेदियाहो तिसको भी भार्या अपनेदाताके मरेपीछे आत्मपोषणकेसिवाय दान या विक्रयनहींकरसक्तीहै परंतु जो जंगमधन मुक्ता आभरणादि कुछपुत्रादिकोंकी अनुज्ञाविनाभी देदियाहो तिसकोचाहै तैसे भोगै या देदेवै यह सिद्धांतहै-ध्यानकरो कि यदि पुत्रोंकी अनुज्ञाविना पिता अपने स्वोपार्जितभी धनको नहींदेसक्ताहै तौ निस्संदेह जन्मकेसाथही पुत्रोंकास्वत्वउसकेधनमें पैदाहोचुका-और-जो कि पूर्वोक्त उसवार्त्तामेंविरोधता शेषरही कि यदि जन्मसेहीस्वत्वठहरा तौ उसपुत्रकेअर्थ साध्य आधानादि वेदोक्तसंस्कारकर्म क्योंकरहोसक्तेहैं क्योंकि पुत्रका साधारण स्वत्वहोजानेसे उसकी अनुमतिविना पिताकोतौ द्रव्यकाव्ययकरनेमें अधिकारनहीं और पुत्र अपने वाल्यभावकी अज्ञानतासे अनुमतिदेनेमें समर्थ नहीं-तहाँ यह उत्तरहै कि उनकर्मोंके विधानकेही वलवत्त्वसे व्ययकरनेका अधिकार निश्चितहोताहै अर्थात् पिताकोही उनकर्मोंकीसाधनामें शास्त्रकी आज्ञाहै इसलिये पुत्र की अनुमतिसे अपेक्षा नहींसमुझीचाहिये पुत्रकेसाथ आदि शब्दसेपौत्र और प्रपौत्र भी समुझना-इत्यादि पूर्वोक्त सर्वकारणोंसे पैतृकधनमें और पैतामह धनमेंभी जन्मसे

साथही स्वत्व होजाताहै-तथापि-यह मर्यादाहै कि पिताको आत्मीय आवश्यकताओं में और धर्मसंबंधी कृत्योंमें वाचनिकप्रक्रियाओंमें प्रसाददान कुटुंबभरण आपद्विमोक्षण आदि आवश्यकताओं में स्थावर धनको छोड़कर जंगम धनोंके विनियोगपर स्वातंत्र्यभावहै अर्थात् पुत्रोंकी अनुमतिसे अपेक्षानहीं-परंतु स्थावर धनमेंचाहैं वह स्वार्जितहो या पित्रादिकोंसे पायाहो पुत्रादिकोंका पारतंत्र्यबापकोआवश्यकहै कि पुत्रादिकोंकी अनुमतिविना स्थावर धन बहावे नहीं-तथाचोक्तम् (स्थावरंद्विपदंचैवयद्यपि स्वयमार्जितम्। असंभूयसुतान्सर्वान्नदानंनचविक्रयः॥ येजातायेप्यजाताश्चयेचगर्भे व्यवस्थिताः। वृत्तिंचतेऽभिकांक्षंतिनदानंनचविक्रयः-इत्यादिस्मरणात्) अर्थात्-स्थावर और द्विपदनाम दास दासीआदि ऐसा दो भाँतिकाधन यद्यपि आपहीने उपार्जितकिया हो पर सभीपुत्रोंको इकट्ठाकरि उनकीसंमतिपाये विना उसकादान या विक्रयनहींहोसक्ताहै-क्योंकि-जो कोई उसकेवीर्यसे जन्मे या अबतकनहींजन्मेहैं आगे कभी उसीसे या उसके पुत्रादिकों द्वारा जन्मैंगे और वे भी जो संप्रतिमाताके गर्भोंमें व्यवस्थितहैं वे सभी उसके आत्मज अपनी वृत्तिकी अभिकांक्षारखतेहैं इसलिये ऐसे धनकादान या विक्रय नहीं योग्यहै कि जिस्से उनकी जीवन वृत्ति नष्टहोजावै-इत्यादि और भी अनेक स्मृतियोंके वाक्य इस विषयपर घंटाघोषहैं (यहांतक यह मर्यादा तौ सर्वथा दृढ़ होचुकीपर एक इसमें विरोध खड़ाहोताहै कि यदिपिताको कोईसी विपत्तिआनि घेरै और उसकेपास स्थावर धनके सिवायतत्काल और कोई धन ऐसानहीं जिस्से उस विपत्ति का निवारणकरै या प्रतिष्ठाको बचावै और पुत्र उसके असमर्थ वा अज्ञान अनुमति देसकने योग्य नहीं तब क्यास्थावर धनकी रक्षाके लिये प्रतिष्ठा भंग होने देवै या विपत्तिमें मरजावै और कुटुम्बको भी मरने देवै यह क्योंकर हो सक्ता है क्या शास्त्रमें अकल्याणकी भी मर्यादें नियतहोती हैं) इसलिये अब उसी निश्चित मर्यादामें कुछ अपवाद नाम छूट कियेदेते हैं-यथा (एकोपिस्थावरेकुर्याद्दानाधमनविक्रयम्। आपत्कालेकुटुंबार्थेधर्मार्थेचविशेषतः) अर्थात्-कोई एकभी स्थावरधन का दान या आधमन कहिये वंधक या विक्रय भी उस अवस्थामें आचरै कि यदि कोईसा आपत्काल उपस्थितहो या कुटुंबके पालन में आवश्यकताहो और धर्म कार्यों में विशेषकर अधिकारहै-सिद्धांत इसका यह कि यदि कुटुंबीके पुत्र वा पौत्र वा भ्राताही अप्राप्तव्यवहार या अप्राप्तव्यवहारकालहों जो अनुज्ञा देने में या अपने हानि लाभ के समुझनेमें असमर्थ चाहै अविभक्त धनभी हों और ऐसीदशामें यदि कुटुम्वी को सकल कुटुंब व्यापिनी आपत्ति आनिघेरे या उसके पोषणमें अतिशय आवश्यकता देखि परै या अवश्य करणीय पितृश्राद्ध आदि धर्म कृत्यों की हानि हुईजाती हो तब स्थावर धनका भी कोई खंड देदेने वा वंधक धर देने वा विक्रय करदेने में एक ए-

कल्ला उनकी अनुमति विनाभी अधिकारी है परन्तु यदि समर्थ होवै अर्थात् अपने गार्हस्थ्य व्यवहारों में निपुण और हानिलाभ के समुझने में चैतन्यहो-भला इस छूटके दर्शाने से वह विरोधतौ निस्संदेह जातारहा जो निर्णीत मुख्य मर्यादामें खड़ा हुआ था परन्तु अब इस छूटके स्वरूपसेभी एकनया विरोध इस अग्रोक्त वचनके आशयसे दिखाई देताहै-यथा (अविभक्ताविभक्तावासपिंडाःस्थावरेसमाः । एकोह्यनीशःसर्वत्रदानाधमनविक्रये) अर्थात्-सपिंड जे हैं ते चाहैं अविभक्तहों या विभक्तहों पर स्थावर धनमें सभी तुल्य अधिकारी समुझेजाते हैं इसहेतुसेही स्थावरके दान या बंधक या विक्रयमें (सर्वत्र) एकल्ला पुरुष अनीशहै अर्थात् करसकनेका अधिकारी नहीं-यहाँ सर्वत्रके कथनसे स्थावरधन चाहै एकहीके स्वामित्वमें हो चाहै कई भागियोंका साधारण हो तथैव चाहै स्वार्जितहो चाहै पितृ पितामहसे पायाहो समुझना और उस विरोधका स्वरूप इसमें यह है कि जब अविभक्तोंके सिवाय विभक्त सपिंडभी वास्तेदारठहरे कि उनके विना कोई मुख्य अधिकारी ऐसे धन का दान या बंधक या विक्रय एकाकी नहीं करसक्ता तौ फिर इस अनंतरोक्त अपवादके अनुसार वह क्योंकर ऐसा करसक्ताहै-इसलिये-अब इसविरोधकी शांति दर्शाते हैं कि इस अग्रोक्त वचन में अविभक्तों का होना जो आवश्यक बतलायासो तौ प्रत्यक्षही ठीकहै कि अविभक्तों में जैसे और भागी तैसा एक वहभी भागीहै इस्से एकाकी ऐसा करने में अनीश्वरहै इसीलिये जब कदाचित् उस अपवादके अनुसार ऐसा करना परै तब यद्यपि कुटुंब का भारउसके आधीन होनेके हेतुसे कर्त्तव्यता तौ उस एकहीके आधीन है पर तौ भी अपने सभी अविभक्त भागियों को बैठारिकर उनके सन्मुख ऐसा करै परोक्षमें नहीं चाहै वे अविभक्त भागी उसके कुछ सज्ञान हों या नहों और जो कोई उनमें अनुमति देसकने योग्यहों तिनसे अनुमति भी यथा अवसरके अनुसार लेनी चाहिये-परंतु-विभक्त सपिंडों का होना जो इसी वचन में बतलाया गया तिसका तात्पर्य्य केवल इतना है कि जो जो सपिंड पहले से विभक्त होहोकर अपनेअपने जुदे व्यवहारों में तत्पर होचुके कदाचित् किसी हेतु से उनमें कोई ऐसा अविभक्त भी रहगया चला आताहो जिसका भाग इस धनमें अबतक शेषहो और न जानिये वह इस कामके हुये पीछे कोई भाँति का झगड़ा खड़ा कर बैठे-इसलिये बँटे विन बँटेका ऐसा संशय दूरकरनेके निमित्तसे विभक्तों काभी कार्य के समय पर होना और उनसे सम्मतिले लेना दर्शायागया जिस्से अपने व्यवहार में सौकर्य होजावे और कोईसा किन्तु खड़ा होनेकी शंकादूर होजावे यह सिद्धांतहै अर्थात् कुछ इसलिये इनका होना नहीं बतलायागया कि इनके होने विना या अनुमतिके देने विना वह एकाकी पुरुष अपना कार्य करनेमें अधिकारी न होसके और सिद्धांत इसकायह

कि उन विभक्त सपिंडोंकी अनुमति बिना भी व्यवहार सिद्ध होताहै-इसलिये उस अनंतरोक्त अपवादकी मर्यादामें कुछ विरोधकी संभावना नहीं है यह समुझनाचाहिये-इस व्यवस्थापरभी-कदाचित् यह शंका आरोपित करीजाय कि पृथ्वीका निर्गम इस प्रकारसे होही नहींसक्ता किन्तु पृथ्वी के निर्गमको छः बात इकट्ठीहोनी चाहिये तब किसी से किसीपर जासक्ती है अन्यथानहीं-तद्यथाह (स्वग्रामज्ञातिसामंतदायादानुमतेनच । हिरण्योदकदानेनषड्भिर्गच्छतिमेदिनी) अर्थात्-एकतो अपनेग्राम का अनुमत १ ज्ञातीलोगों का अनुमत २ सामंतों का अनुमत ३ दायादोंका अनुमत ४ हिरण्य ५ और जल ६ इनके साथ दानकाहोना-इनछःबातों के साथ पृथ्वी जाती है अन्यथानहीं-सो- इसभांतिकी शंकामें भी यहव्याख्या समुझनीचाहिये कि (ग्राम)की अनुमति केवल इसलिये कहीगई कि प्रतिग्रह नामधरती आदिका लेना सबके सन्मुख प्रकाशरूपसे करनाकहाहै चाहैकिसी मार्गसेलेनीहो पर प्रच्छन्नरूपसे न लेनीचाहिये-तद्यथा (प्रतिग्रहःप्रकाशःस्यात्स्थावरस्यविशेषतः) अर्थात्-यहस्मृतिप्रमाणहै कि प्रतिग्रहमात्रसभी प्रकाशरूपसे होवैपर स्थावरका प्रतिग्रह तौ विशेषकर प्रकाशहोना उचितहै क्योंकि न जानिये पीछे किसीहेतुसे अयोग्य ठहरै और प्रतिग्रहीताको झूँठा बनिकर छोड़देनापरै इसलिये प्रकाशहोना आवश्यकहै-सोयह प्रकाश भी उन मनुष्योंके सन्मुख अधिकतर आवश्यकहै जोदाताके संबंधीहों इसीलियेउसकेग्रामकी अनुमतिकहीगई परन्तु इसकथनका यह सिद्धांतनहींहै कि यदिग्राम अपनी अनुमति नहींदेवै तौ व्यवहारही सिद्ध न हो १ (सामंतों)की अनुमतिसे यहअपेक्षा है कि पीछेउस दीहुई धरतीकीसीमामें झगड़ाउठना दूरहोजाय अर्थात् सामंतोंकेसन्मुख उसकी मुख्यसीमाभी प्रदर्शित होजावै(यहांपरसामंत उनको कहतेहैं जिनकीधरतीका धुराउस दातव्यधरतीसे मिलाहो)२(ज्ञाती)लोगों की अनुमतिका प्रयोजन वहीहै जो ऊपर कथनहोचुका है कि विभक्त सपिंडोंकी भी अनुमतिलेनी अमुकहेतुसेउचितहै ३ (दायादों)की भी अनुमतिका प्रयोजन उसीसाथ अविभक्त सपिंडोंके नामसेवर्णन होचुकाहै कि उनकाहोना अतिशय आवश्यकहै क्योंकि उनकाभाग उसधनमें विद्यमानहै४-पांचवां हिरण्यदान और छठा उदकदान जोधरतीके साथ बतलाया तिसका यहकारण है कि स्थावरधनका विक्रयकरना वर्जितहै-तद्यथा(स्थावरेविक्रयोनास्तिकुर्यादाधिमनुज्ञया)अर्थात्-स्थावर धनमें विक्रयका अभावहै यदि बड़ीसी आवश्यकता हो तौ सबकी संमतिलेकर बंधकरखदेवै-इसप्रकारसे विक्रयका निषेधहै परन्तु धरती केदान और प्रतिग्रहकी भी अतिप्रशंसा शास्त्रमें कही है-यथा (भूमिंयःप्रतिगृह्णातियश्चभूमिंप्रयच्छति । उभौतौपुण्यकर्त्तारौनियतौस्वर्गगामिनौ)अर्थात्-भू के कोई प्रतिग्रहण करताहै और जोकोई भूमिका दानकरता है वे दोनोंपुरुष

और निश्चय स्वर्गको जानेवाले होतेहैं-इन दोभांतिकी आज्ञाओंके होनेपर भी यदि कोई अपनी जरूरतसे स्थावरका विक्रयभी करनाचाहै और कोई उसका क्रयकर्त्ता उद्यतहो तौ इसदशामें भी विक्रयका दोष निवारण करनेके निमित्तसे किंचित्सोना जलकेसाथ देकर दानरूपसेही विक्रयकरै-इसमेंभी कदाचित् यहशंका खड़ीकरीजाय कि उस विक्रयीने तौ अपना विक्रयदोष निवारणकिया परक्रयी जिसने दामदेकरक्रय किया वह क्योंकर इसव्यर्थ प्रतिग्रहका लेना स्वीकारकरैगा सो यहशंकाही निर्मूलहै क्योंकि प्रथमतौ इस प्रतिग्रहका सद्भाव लेनेवालाभी पुण्य कर्त्ता और स्वर्गगामी कहा गया और यहप्रतिग्रह उसका उपकल्परूप नक़ली नियतहुआहै इसलिये इसमेंदोष कीसंभावना तौ कोईभांतिसेभी नहींहै(परन्तु)यदिइसप्रकारसे तर्कणाकरीजाय किवह सद्भाव प्रतिग्रहभी केवल ब्राह्मणकेही पक्षमें प्रसिद्धहै अथवा अपनी २ जातिमें मान्य पक्षके संबंधी ये हैं ते भी दानलेनेके अधिकारी हैं तौफिर यह सद्भावका उपकल्पजोहै सोभी उसदशामें क्योंकर ठीक होसक्ताहै कियदि ब्राह्मण विक्रयकर्त्ताहो और क्रयकर्त्ता क्षत्रियआदि हो क्योंकि यद्यपि यहबात सर्वथा शास्त्रसिद्धहै परलोक विरुद्ध होनेसे कोईभी क्षत्रिय आदिजल और सोनालेने को ऊंचाकर नहीं करसक्ता है इसदशापर कि दामदेवै और प्रतिग्रहलेवै-तहां-इस वार्त्तापर सूक्ष्मदृष्टिसे ध्यान कर्त्तव्य है कि यद्यपि यहप्रकार एकदान और प्रतिग्रह के लक्षण में गिनती किया गया पर यथार्थसे कुछदान या प्रतिग्रह नहीं है किंतु क्रय विक्रयही निश्चित है इसलिये यदि हाथमेंभी लेलेवे तौ कुछदोष नहीं क्योंकि यहधरतीके साथसोना और जलकाहाथ में लेनादेना ऐसा है कि जैसाघोड़े के क्रयविक्रय होने में उसकी बाग या लगाम या कोड़ा हाथमें देदेते हैं इत्यादि और भी चतुष्पदजीवों यद्वा अन्य पदार्थों की निज निज मर्यादा जैसी लोकमें प्रसिद्ध हैं इसलिये कुछहाथ में लेलेने से दानपात्रत्व की लक्षणा सिद्धनहीं होती परतौभी यदि किसी का मन उसबातपर आरूढ़ न होताहो तब यहप्रकार करनायोग्य है कि देनेवाला उसधरती के किसी उत्तमअङ्ग पर धरि देवे और लेनेवाला अपनी आज्ञासे किसीदानपात्रको कहदेवे कि तू लेलेतौ इसमें भी कुछशास्त्रकी विधिका अतिक्रम नहीं है किन्तु विशेषतर कुछयह भी नियमनहीं है कि हाथही में देनालेना सच्चाठहरे क्योंकि यहविधि जोहै सो केवल उसधरतीको परस्थानदेनेमें वियोगकाल के सत्कारमें गिनतीहै कि उसके जातेसमय वियोगकालिक पूजाकर देनीचाहिये जिससे उसकावियोग और संयोग भी देनेलेनेवाले दोनोंको ही फलीभूतहो-पैतृक धनमें और पैतामह धनमेंभी पुत्र या पौत्रका स्वत्व उसकेजन्महीसे उत्पन्नहोजाताहै यहसर्वथा निश्चितहोचुका इसमेंकुछ सन्देहनहीं परन्तुइसमें एकविशेषता अभी और भी शेष है जिसका व्योराआगे(भूर्यापितामहोपात्ता) इत्या-

दि १२४ वालेमूलश्लोक और उसीकीअधिकोक्तिमें विस्तार साथवर्णनहोगा११६॥
(अत्रवैशेषिकस्वत्वव्यवस्थज्ञानम्) इसीमें यहवार्त्ता यादरखने योग्य है कि यद्यपि धर्मशास्त्र के सभीग्रंथ हिन्दुस्तान के सबदेश विभागों में यथायोग्य कार्यसाधक होसक्ते हैं क्योंकि उनमें परस्पर कुछवहुतबड़ा अन्तरनहीं है तथापि निजनिज देश विभागों की परिपाटियोंमें कुछअन्तरहै इसहेतुसे निजनिज देशीग्रन्थकारोंने नवतर ग्रन्थोंमेंभी कुछकुछ किसीवार्त्तामें अन्तरदर्शाया अर्थात् जैसी अपनेदेशकी परिपाटी देखी तैसाही नवकल्पित ग्रन्थोंमें लावण्यदर्शाया और इसीहेतुसे उनकेदेशी लोगों ने उनग्रन्थों को मनोज्ञ जानिकर स्वीकारकिया जबएक दोपर विश्वासिक स्वीकार पायागया तब औरोंकी उपेक्षाठहरी सिद्धान्त इसकायह कि यह मिताक्षरानाम ग्रन्थ एक और भी अनेक ग्रन्थोंकी सहायतासाथ अपने वाराणसी सम्बन्धी अनेकदेश विभागोंमें विशेषतर स्वीकारहै(तथैव) अन्यग्रन्थान्तरके मतमतान्तर की सहायतासे कुछमिथिलामेंभी स्वीकारहै ऐसेही मिथिला और बङ्गाल और विहार और उड़ीसा और दक्षिण आदिदेशोंमें जुदेजुदे ग्रन्थोंका स्वीकार प्रसिद्धहै कि जिनमें प्रायःकुछ मिताक्षरासे अपेक्षानहीं और बहुधालौकिक परिपाटी उनकीभिन्नहैं तिसभिन्नताका चर्चा आगेसंक्षेप यथास्थल के अनुसार अवसर पाइकर प्रदर्शित होतारहेगा-तथापि-जिज्ञासू लोगोंका भ्रमदूर करनेके निमित्तसे इसस्थलपरभी एकदो नमूने उसीभिन्नताके अन्तरमध्ये दर्शातेहैं कि-विरलेकाम यद्यपि धर्ममर्यादासेकरने प्रतिषिद्धहैं पर जो कर्त्ताउनकी क्रियापूरी करचुकाहो तौ फिर बांगदेशी धर्ममर्यादोंकी परिपाटीसे अनुचितनहीं समुझेजासक्ते बल्कियह विशेषताहै कि यद्यपिकरना उनका शिष्टाचारात्मकमर्यादासे प्रत्यक्षअनुचितठहरै और हेतुगर्भित सिद्धान्त में न्यायात्मक मर्यादासेभी विपरीतमाना जासक्ताहो परन्तु उसदेशकी प्रचलित परिपाटीसे अयोग्यता निश्चितनहीं होसक्ती अर्थात् कर्त्ताका कियाहुआ निवर्त्तित नहींहोताहै इसका (दृष्टान्त) जैसे न्यायात्मकमर्यादा से बापको अपने स्वोपार्जित धनमें पूरास्वत्वहोनेके हेतुसे सर्वथा यह अधिकारहै कि वह अपने धनकोचाहै तिसेथोडादे या वहुत परन्तु शिष्टाचारात्मक मर्यादासे ऐसा करना उसको प्रतिषिद्ध है कि वह ऐसे धनका भाग अपने पुत्रोंमें न्यूनाधिक देवै या किसी एक वेटेको निष्कारण भी दुर्भागीरक्खे-इस दृष्टांतसे प्रयोजन यह दर्शायाहै कि यदि एक वंगाली पुरुष ऐसाकरै चाहै अपने निज देशमें या देशान्तरमें सुखवासीहो तौ परलोक दोषी यद्यपिहोगा परतौभी उसकी देशी परिपाटी के अनुसार यह करना कुछ अनर्थक नहींहोगा क्योंकि उसके देशमें केवल उसी न्यायात्मक मर्यादाकी परिपाटी सबको स्वीकारहै जो आगे ११७ वाले मूल श्लोकमेंयोगीश्वर दर्शावेंगे कि पिताअपनेपुत्रोंकोनिज कमाईके धनमेंसे न्यू-

नाधिक भागभी निजइच्छासे देसक्ताहै किन्तु इसविषयपर शिष्टाचारात्मकमर्यादाका प्रचार वंगालेमें नहींहै-जिसअन्तरका चर्चा ऊपरकियाथा वह अन्तरइसमेंयहीहै कि वाराणस्यादिजिन देशोंमें मिताक्षराआदिग्रन्थोंकी प्रधानताहै तिनमेंन्यायात्मकमर्यादाको लोक विद्वेषी होनेके हेतुसे छोड़कर शिष्टाचारात्मक मर्यादाकी प्रधानतामानी गई (जैसा) पहले निर्णयहोचुकाहै तिनदेशोंमें यदि कोई ऐसाकरै तौ उसकाकिया निवर्त्तित होसक्ताहै क्योंकि जहां जिसबातकी परिपाटीही नहीं तहां उसका बर्त्तावा करना केवल पारलौकिकही अपराधनहीं बरन अन्यायभी प्रत्यक्षहै यह एक दृष्टांत हुआ-दूसरा(दृष्टांत)जैसे अनेक भागियोंके साधारणधनमेंसे जोबपौतीरिक्थकाहो किसीएक अंशीको अपने अंशका वियोग करनाबहुधा धर्मशास्त्रोंसे प्रतिषिद्ध है और इसग्रंथ में भी आगे १८० वालेमूल श्लोककी व्याख्यापर यह चर्चा आवेगा कि यदि ऐसा काम कोई अंशीकर बैठाहोनिःसंदेह उसकाकियानिवर्त्तितहोजावे क्योंकि वाराणस्यादिएतद्देशीशिष्टाचारिक मर्यादोंसे विपरीतहै अर्थात् इसग्रंथके अनुसार जबतक प्रत्येक अंशीका अंशबँटकर जुदा न होवे तबतक स्वत्वकी भिन्नता योग्य नहीं समुझीजातीहै इसीहेतुसे कोई अंशी अपने बिनाबँटे अंशको यदि बेंचैयाबंधकरक्खै या दानदेवैतौनिःसंदेह वह वियोगकर्त्ता और उस अंशकाग्रहीता भी झूँठाहोगा क्योंकि इसवार्त्ताकी अपेक्षासे इनदेशोंमें न्यायात्मक मर्यादाकी प्रवृत्ति नहींहै-परन्तु-इसी वार्त्ताकी अपेक्षासे वंगालेमें न्यायात्मक मर्यादाकी प्रवृत्ति और उसीकी परिपाटीभी विशेषतर स्वीकारहै अर्थात् उसदेशके प्रवर्त्तित दायभाग आदिग्रंथों के अनुसार प्रत्येक अंशी अपने अंशकावियोग करदेनेमें अधिकारीहै बल्कि इसविशेषतासे कि वह बपौतीरिक्थ चाहै स्थावर भीहो और उसके संभावी अंशोंका निरूपणमात्रभी न होचुकाहो पहलेसेही प्रत्येकोंको भिन्नात्मक स्वत्व जैसाभिन्न होनेपर संप्राप्त होगा प्राप्तहै इसीहेतुसे यदि कोई अंशी वंगाली अपने विनाबँटे अंशको बेंचैयाबंधकरक्खै या जिसको चाहै दानदेवे तौ यह करनाउसका न्यायात्मक मर्यादोंसे विपरीत नहीं है न कोई उसकेकियेको निवर्त्तितकरसक्ता है-और-बिहार नामकदेशमें इसीवार्त्ताकी अपेक्षासे उसी शिष्टाचारिक मर्यादाकी परिपाटी प्रचलित है कि जैसी वाराणस्यादि देशोंमें मिताक्षरा आदिग्रंथोंके अनुसार ऊपरवर्णन हुई (बल्कि) इसविशेषतासे कि वह साधारण पैतृकरिक्थका अंशचाहै स्थावर होया जंगमहो कोई अंशीअपने अंश का वियोग नहीं करसक्ता जबतक भिन्ननहोवै-इत्यादि और भी अनेकबातोंमें देशांतर और ग्रंथांतर भेदसे परिपाटी कुछ विलक्षणहै यथा अवसरके अनुसार उनका चर्चा आगेहोगा ११६ अबनिचले ११७ वाले मूल श्लोकसे लेकर आगे दूरतक उनबातोंका वर्णनहोगा कि वह (विभाग) जिसका चर्चा इतने विस्तारसे प्रदर्शितहुआ

किसकाल में और किस प्रकारसे होगा और किसको उसके करनेका अधिकारहै ॥

अथतावद्दायविभागापेक्षायांजीवत्पितरिविभागप्रकारोनाम चतुश्चत्वारिंशःपरिच्छेदः ४४ ॥

इस चवालीसवें परिच्छेद में पहले वहदाय वर्णन होगा जिसका विभाग पिताके जीतेहुये और पिताकेही अधिकार वा इच्छाके अनुसार होताहै-पीछे इसके प्रसंग से इसीमें वह विभागभी प्रदर्शित होगा जो पिताके जीतेहुये पुत्रोंकी अपेक्षासे भी होसक्ता है ॥

विभागंचेत्पिताकुर्यादिच्छयाविभजेत्सुतान्। ज्येष्ठंवाश्रेष्ठभागेनसर्वेवास्युःसमांशिनः ११७॥

अक्ष०—यदि पिताही विभागको करै तौ इच्छासे पुत्रोंको बांटदेवै या तौ ज्येष्ठको श्रेष्ठ भागसे या सबही सम भागीहोवें ११७॥

अभि०—यदि कदाचित् पिता आपही अपनी इच्छासे विभाग करदेना चाहै तौ उसको स्वाधीनताहै कि वह अपनी इच्छाके अनुसार अपने धनमें से विभागों की कल्पना करिकै निज पुत्रोंको बांटिदेवै (यहांपर निज इच्छाके अनुसार कहना एक निरंकुशत्वका लक्षण प्रकट होताहै कि यदि विभाग उसकी इच्छाके अधीन ठहिरा तौ फिर चाहै तितनाचाहै तिस एकही पुत्रको देसक्ताहै या चाहै तिसको दुर्भागी भी रखसक्ताहै किंतु उसकी इच्छामें कोईसाभीनियम नहींरहसक्ता) इसलिये अबदूसरे अर्द्धासे नियम दर्शाते हैं कि यातौ इसरीति से भागलगावै कि जेठे पुत्रको श्रेष्ठभाग और बिचलेपुत्रको मध्यमभाग और छोटेपुत्र को छोटाभागदेवै या इसरीतिसे भाग लगावै कि अपने सभीपुत्रोंको बराबर भागदेवै इस दोभाँति के विकलप में पिताकी इच्छाको स्वाधीनताहै अन्यथा नहीं ११७॥

भाषि०—श्रेष्ठ आदि विभागोंका व्यौरामनुने स्पष्ट दर्शित कियाहै-यथा(ज्येष्ठस्यविंशउद्धारःसर्वद्रव्याच्चयद्वरम्। ततोऽर्द्धंमध्यमस्यस्यात्तुरीयंतुयवीयसः)-अर्थात्-जेठेको सब धनका बीसवाँ अंश जो सबधनोंमें उत्तम धनहो उस्से आधा चालीसवां भाग मँझिलेको और चौथाई किन्तु अस्सीवाँभाग छोटेको उद्धारदेकर शेषधनमबहीको बराबरबाँट दियाजावै (इसवचनकी व्यौरेवार व्याख्या १२० मूलश्लोक पूर्वार्द्धकी अधिकोक्तिमें देखौ) यहउद्धार विभाग जो विषम लक्षणकी रीतिसे मनुने दर्शाया तिसको योगीश्वरकी आज्ञा अनुसार पिताकरसक्ता है परंतु केवल अपने उत्पादनकिये धनका करसक्ताहै सोभी केवल जंगम द्रव्योंका करसक्ताहै अर्थात् स्थावरधन अपने भीपैदा कियेहोंतौ उनकासमभागहोगा और पिताभीपुत्रोंकी बराबर भागपावैगा विशेषनहीं और इसके सिवाय जोधन बापने अपने बापदादा आदिसे क्रमागत पायाहो चाहे

स्थावरहो या जंगम उसका विषम विभाग करनेमें अधिकारी नहीं(और)भी यहविशेषताहै कि स्थावर धन चाहै अपना स्वार्जितहो या पैतृक पायाहो कदाचित् उसका विषम विभाग करदेवै तो वह दोषीहोगा और११९के उत्तरार्द्धवाली मर्यादासे विपरीत समुझाजाकर उसका कियाहुआ निवर्त्तित होसक्ताहै क्योंकि ऐसेधनमें पितापुत्र दोनों कास्वामित्व बराबरहोताहै आगेवर्णनहोगा-और-पिता अपनेपैदाकिये धनमेंसेपुत्रोंको न्यूनाधिक अंशभीदेसक्ताहै इसविषयकी व्यवस्था यद्यपि ठीकहोचुकी और बहुधाही विधिनिषेध इसके आगेभी दर्शायेजायँगे तथापि एकन्यायात्मक प्रकार यहसंसूचित है कि यदि कोईसा विशेष कारण पायाजायतो निःसंदेह ऐसा करसक्ताहै (दृष्टांत) जैसे किसीबेटेकी कोईभाँति योग्यता और प्रवीणता निश्चित होनेसे योग्यताके सत्कारमें कुछदेवै या विशेष आज्ञाकारीको उसके सेवाफलकी अधिकाईमें कुछ अधिकदेवै यद्वा असमर्थको निजदयादृष्टिसे कुछ अधिकदेवै या बहुसंततिवान्को संततिपालनकीदृष्टि सेकुछ अधिकदेवै या कन्यादान आदि कोईनिमित्त आवश्यक जानिकर किसीकोकुछ अधिकदेवै इत्यादि सबन्यायात्मकहैं यहसमस्त मर्यादें वाराणसी संबंधी आदि देश विभागोंकी सुनिश्चित हैं परंतु-इस व्यवस्थामें बांगदेशी धर्ममर्यादोंके अनुसार जो कुछ विशेषहै सोसबदेखो इसीअधिकोक्तिके अंतमें-जब कदाचित् पिताअपनी इच्छासे पुत्रोंको निजधनका विभाग करिदेना चाहैतभी होसक्ताहै इसलिये वहीएक यहीइस काकालहै-दूसराकाल वहभीहै कि यद्यपि पितातौविभाग करदेनेकी इच्छानहीं करता हो परंतु यदिपिताको वृद्धापन आदिके हेतुसे धनकेभोगमें स्पृहानिःशेषहोगईहोतथा स्त्रीके रमणसेभी निपट निवृत्ति होचुकीहो (और) माताके मासिक रजोदर्शनभी निपट शांतहो चुकेहों जिस्से आगेको गर्भ या संतानकी उत्पत्ति संभव नहो तो इस दशामें पिताकी अनिच्छापरभी केवल पुत्रोंकीही इच्छासे विभाग होसक्ता है-यथाहनारदः-(व्यतऊर्ध्वंपितुःपुत्राविभजेयुर्धनंसमम् । मातुर्निवृत्तेरजसिप्रत्तासुभगिनीषुच॥ निवृत्ते चापिरमणेपितर्युपरतस्पृहे)अर्थात्-नारदने यहकहाहै कि पितामाताके मरने उपरांत उनकेबेटे मिलकर पिताका धन सभी बराबर बांटिलेवैं यद्वा उनके जीतेहुये भी उस अवस्थामें कि यदि माताकी रजोनिवृत्ति होजावे और सभीभगनी व्याहीजावैं और पिताभी भार्यारमणसे निवृत्त होजावे तथा धनकी स्पृहासेभी विरक्त होजावेतौ सभी बेटे धनकाभाग बराबर बांटिलेवैं-इसीप्रकार-गौतमनेभी तीनभांतिके काल दर्शाये हैं यथा-ऊर्ध्वंपितुःपुत्रारिक्थंभजेरन्१ निवृत्तेचापिरजसि २ जीवतिचेच्छति ३-अर्थइनका भी वहीहै जो ऊपरहोचुका इसकेसिवाय-माताकी रजोनिवृत्ति बिनाभी एकचौथाकाल यहहोताहै कि यदि पिता अधर्मवर्त्तीहो या दीर्घरोगी महारोगोंसे ग्रस्तहो तौ माताके सरजस्काहोनेपरभी और पिताकीअनिच्छामेंभी केवल पुत्रोंकीही इच्छासेविभाग होता

है-यथाहशंखः-अकामेपितरिरिक्थविभागोवृद्धेविपरीतचेतसिरोगिणिच-अर्थात्- शंख मुनिने यहकहाहै कि-यदिपिताको धनकेभोगमें कामना न रहेतौउसदशामें रिक्थका विभाग उसीपिताकी इच्छासेहोताहै परंतु यदि पिताकी विरक्तिवा उपरतिधनसेनिश्चयात्मक प्रकटहोजाय जिस्से उसकेधनमें हानिहोजाना संभवहो और अपनी इच्छासे विभागकरदेनेपर समुद्यतनहो तौफिर केवल पुत्रोंकीहीइच्छासेविभाग होसक्ताहै(या)यदि पिता अतिशयवृद्धहोजाय जिसको भार्याके रमणमात्रकीशक्ति न रहे चाहैमाताकारजो धर्मशेष हो या न हो तौ उसदशामें भी रिक्थविभाग केवल पुत्रोंकीही इच्छासे होसक्ताहै(या)यदि पिताको वृद्धत्व न होनेपरभी किसीप्रकारसे उसकेचित्त वा बुद्धिमेंऐसी विपरीतता होजाय जोशास्त्र और लोकसेभी विरुद्धहो अर्थात् जिसविपरीतता के प्रभावसे अधर्ममार्ग में प्रवृत्तिहोजाय तौ उसदशा में भी केवल पुत्रोंकीइच्छासे विभागहोसक्ता है (या) इसप्रकारकी विपरीतता के न होनेपरभी यदि पिताकोऐसा कोई दीर्घरोग ग्रसिलेवै जो महारोगोंमेंप्रसिद्धहो जिसकेप्रभावसे सांसारिक आचार व्यवहारोंकी साधना न होसके तो उसदशामें भी केवलपुत्रोंकी इच्छासे विभाग होसक्ताहै तथापि-अत्रोक्त मर्यादोंकी अपेक्षामें यह नियमयाद रखनेयोग्यहै कि जहांतक पुत्रों की इच्छासे विभागहोसकना दर्शायागया सोसबकेवल पैतामह धनकेविषय पर समुझनाइसका न्यायकहीं आगेदर्शावेंगे किंतुपिताके उपार्जित कियेधनपर पुत्रोंकीइच्छा मात्र अतिवलवती नहीं है (अथवंगालदेशव्यवस्थारूपम्) यहसब अनन्तरोक्त मर्यादें इसीशास्त्रके अनुसार जो वर्णनहुई तिनकी परिपाटी वाराणसी संबन्धी देशविभागों में विशेषतर स्वीकारहै (या) मिथिलाआदि जिनदेशोंमें इसग्रन्थकी प्रधानता मानीजातीहो तिनमेंभी ज्ञातव्य है-परन्तु- बांगदेशी धर्मशास्त्रोंके अनुसार उन्हीं देशों में इन मर्यादोंकी अपेक्षासे यह परिपाटी स्वीकार है कि-धनका विभागहोने में पिताकी इच्छाही आवश्यक बलवान्है किन्तु जवतक पिताजीताहो तत्रत्य धर्ममर्यादोंसेपुत्रों को अधिकार नहींहैकि उसको इच्छाभी प्रवलतासे करावें-केवल उसअवस्थामें पुत्रों को अधिकार है किवापकास्वत्व धनमेंसे नष्टहोजावे (दृष्टांत) जैसे धर्म च्युत होकर किसी पतितजाति में मिलजाय वा संन्यासी होजाय तौ पुत्रोंको विभागकरनेका अधिकारहै अन्यथानहीं-परन्तु आधुनिकों में से किसीकायह अनुमत भी कल्पित हुआहै कि जिनपुत्रोंको विमातासे पीड़ा मिलतीहोवै अपने देशाधिपसे आवेदन करिकै केवल पितामह धनका विभाग करवासक्ते हैं किंच निज पैतृकधनका तौभी नहीं-और-तत्रत्य धर्म मर्यादों से पैतामहधनका विभाग करदेनेकी अपेक्षामें भी पिताको केवल एकयह प्रतिज्ञाहै कि जवउसकी भार्याके आगेको संतान होसकनासंभव न हो तौ करसक्ता है अर्थात् जो होसकना संभव हो तौ अपने पितृपैतामह धनको बांटि

कर निजपुत्रोंको देसकने में अधिकारी नहींहै क्योंकि ऐसाकरदेने पीछे जो बेटा पैदा-होय तौउसका हक्क माराजाय (सो)यह प्रतिज्ञाकेवल पितृपैतामह स्थावर धनकी है-किंच-अपना स्वोपार्जित धनचाहै स्थावरहो या जंगमहो और वहभीकि जोप्राचीनों केहाथसे डूबाहुआ धन उसनेफिर उद्धारकिया हो चाहै जंगम या स्थावरहो सोसब उसकी इच्छासे तत्कालवँटि सक्ताहै-इसबांगदेशी मर्यादासे पूर्वोक्त वाराणसी संवन्धी मर्यादोंमें यह अंतर पायागया किमाताकी रजोनिवृत्ति आदि कारणोंके उपस्थित होनेमें पुत्रोंको तीव्र अधिकार है कि पिताकी अनिच्छापर भी पैतामह धनको बँट-वाय सक्तेहैं चाहै पिताकी स्पृहाधनसे दूरहुई हो यानहीं-इसके सिवाय-विषमविभा-गका चर्चाजोऊपर कहकर छोड़ाथा तिसकेमध्ये बांगदेशी धर्मशास्त्रोंसे उसदेश में यह परिपाटीहैं कि यदिपिता अपनीइच्छासे विषमविभाग करनाचाहै तौ स्थावर जं-गम दोनोंभांति का जोधनउसका स्वार्जितहो और केवल जंगमधन पैतृकभी अपने पुत्रोंमें न्यूनाधिक अंशदेसक्ता है तथैव उसधनको भी जो उसने अपनेबड़ोंका डूबा-हुआ फिर उद्धारकियाहो चाहै जंगमया स्थावरहो (और)उसपिताको यह स्वाधीनता है किपुत्रोंको विभाग करतेसमय जितनाधनवह उचितसमुझै अपनेपासरक्खै-(और) यह विशेषताहै कि यदिपिताऐसे धनोंको विषमविभागकीरीतिसे निजइच्छाके अनु-सार बांटै या एकबेटेको उसकाभाग देनेसे निष्कारण भी दुर्भागीरक्खै तौ उसदेश की मर्यादासे यह अनुचित नहीं केवल पितादोषीही कहलासक्ता है अर्थात् पारलौकिक अपराधोंका दोषीवहीहोगा पर अदालतसे उसका कियाहुआ मन्सूख या अनर्थक नहीं होता है-परन्तु जो बड़ोंका डूबाहुआ धन इसरीति से उद्धार किया हो जिस के उद्धार होने में पुत्रों ने सहायता करीहो तौ इस धन में वहस्वाधीनता नहीं है अर्थात् इसमें पुत्रोंका बराबर हक्कहोताहै तथापि इसमें बापको यह अधिकारहै कि वहऐसेधनसें आपदोभाग लेसक्ताहै औरउसमेंसेभी दोभागलेसक्ताहै जो उसकेपुत्रों का स्वोपार्जित हो-११७ (इतिबांगदेशविशेषः) इसी ११७ वाले मूलश्लोकमें यो-गीश्वरके वचनानुसार केवल पिताकीइच्छासे दो भांति का विभाग दर्शायागया किंतु एक सम विभाग दूसरा विषमविभाग तिनमें सम विभागमध्ये कुछ विशेषतानिचले श्लोकसे कहते हैं ॥

यदिकुर्यात्समानंशान्पत्न्यःकार्याःसमांशिकाः । नदत्तंस्त्रीधनंयासांभर्त्रावाश्वशुरेणवा ११८ ॥

मक्ष०—यदि समान अंश करे तौ पत्नियां भी समांशिका कर्त्तव्यहैं नदियाहो स्त्री धन जिन्होंको भर्त्ताने वा श्वशुरने १०८ ॥

अभि०—जबकदाचित् पिताअपनी इच्छासे अपने सभीपुत्रों को समभाग अर्थात् बराबर अंशदेदे तबअपनी भार्याओंकोभी पुत्रोंकी बराबर भागदेनाचाहिये परउन्हीं

को कि जिनको पतिने या ससुराने कुछ स्त्रीधनसंज्ञक पूँजीपहलेसे न दीहो किंतु जिनको भर्तासे या ससुरासे कुछपूँजीपहले मिलचुकीहो तिनको आधाभाग देनाचाहिये इसआधेका प्रमाणआगे १५३ वालामूल श्लोकदेखो भार्याओंका बहुवचन केवल इसलियेहै कि यदिपिताके अनेक भार्याहों तौसभीको धन भागदेना चाहिये-जबकि पिता अपनी इच्छासे पुत्रोंको विषम विभाग अर्थात् ज्येष्ठ आदिको श्रेष्ठआदिभाग देवे तबपत्नियाँभी श्रेष्ठआदि भागनहीं पासक्तीहैं किन्तुपहले उद्धृतकिये उद्धारकेशेष धनसमुदायसे समानही अंशपावेंगी और(स्वोद्धार)नाम अपना उद्धारभी लेवेंगी अर्थात् जो कुछ घरमेंबासन भँड़वा या अलङ्कार आदि पहलेसे जुदाजिसके वर्तावामें चलाआताहो सो सब उसीकाहोताहै उसमें हिस्सा बाँटनहीं होसक्ता इसलिये उस कीभी(उद्धार)संज्ञाकहलातीहै किन्तु अपना अपनाउद्धार सभीपत्नियाँ जो जिसकेपास होसो अपने समभागके उपरांत पायाकरती हैं इस मर्यादाकी प्रमाणता मध्ये आपस्तंबकायह वाक्यहै कि(परीभांडंचगृहेअलंकारोभार्यायाः)अर्थात्-इन वस्तुओंमें पति के सन्मुखभी भार्याकाही अधिकार वा स्वामित्व हुआ करताहै-अन्यच्च (द्वावंशौप्रतिपद्येतविभजन्नात्मनःपिता)अर्थात्-पिता अपना धन बांटतेहुये अपने लिये दो अंश रखलेवै किन्तु दो पुत्रोंकी बराबरभाग आपलेवै इसबातमें स्वाधीनहै ११८॥

अधि०-इस अधिकोक्तिमें निपटमिताक्षरासे भिन्नचर्चा लिखाजाताहै किंतु ऊपर अभिप्रायार्थ में मिताक्षरा की व्यवस्था जो वर्णन हुई सो सर्वथा वाराणसी और मिथिला आदि देशोंमें प्रवर्त्तित और प्राधान्यहै तथापि इन्हींदेशोंमें औरभी अनेक ग्रंथोंका स्वीकारहै और उनमेंकोईअधिक विरोध यद्यपिनहीं है बरन मिताक्षराआदि बहुधा ग्रंथोंसे यही मर्यादा निश्चित होतीहै कि पिताचाहेजीताहो या मरगयाहो उस की प्रत्येक पत्नियाँ पुत्रोंकेतुल्य भागपानेकी अधिकारिणी हैं तौभी एकदो(दीपकलेख) आदि ग्रन्थोंसे वङ्गाले के समानयह भेदपाया जाता है कि यदिपिताअपनी इच्छासे सभी पुत्रोंको बराबर भागदेवे तो इसदशामें यहयोग्यहै कि प्रत्येक ऐसीपत्नीको कि जोनिपूतीहों पुत्रोंकेबराबर भागदेवे किन्तु सपूतीकोनहीं(किसीएकने)यहभी निर्णयकियाहै कि यदिपिता अपनेधनमें से अधिक धनअपने पासरखलेवे और थोड़ासाधन पुत्रोंको बाँटिदेवे या इसरीतिसे कि सबधन पुत्रों को बराबर बाँटदेवे और दो पुत्रोंकी बराबरभाग आपलेवे तो इसदशामें यहयोग्यहै कि वहठेठअपने भागमेंसे पत्नियोंको देवे-इत्यादि बहुधाभेदों की व्यवस्थासे सिद्धान्तयहीनिश्चित होसक्ताहै कि यदिपिता अपने धनकोसभी पुत्रोंमें बराबरबाँटै तो उसकी वे पत्नियाँ भी कि जोनिपूतीहों पुत्रों केसमान भागपानेकी अधिकारिणी हैं परन्तु जोपिता अपने निमित्तमें धन अधिक रखलेवे तो उनको किसीप्रधान भागपानेकी योग्यतानहींहै किन्तु पतिअपने रक्खेहु-

ये धनमेंसे निज इच्छा के अनुसार उनका पालनकरै (ऐसेही) सपूती पत्नियोंको यद्यपि पुत्रोंकेसमान भागपाने की मुख्यता निश्चितनहींहोसक्ती पर पिता अपनी न्यायात्मक इच्छाकेअनुसार जो कुछ देनाचाहै और पूर्वोक्त किसीनियमका विरोधी यदि न हो तो इसबातका निषेधभी कुछ नहीं है क्योंकि योगीश्वरकेवचनानुसार वर्त्ताव ऐसा लोकमें भी देखा और (कमलाकर)आदि आधुनिकोंका दृढ़ संमत उनकेग्रंथों से सुनिश्चितहै-और जो कदाचित् पितान्यूनाधिकरीतिसे विषम विभाग पुत्रोंको देवै तौ इसदशामें पत्नियोंको उसरीतिकामध्यभागदेनायोग्यहोगा जो सब पुत्रों के भागजोड़कर तुल्यात्मक एकपुत्रका औसतभाग होसक्ताहो-येमर्यादें केवल पैतृकधनके संबंध से वर्णनहुई पर कदाचित् यहीविभाग पैतामहधनमें कियाजावै तो उसदशामेंदादीकी अपेक्षाभी येहीमर्यादें सवसंबंधितहैं-मूलश्लोकसे लेकर यहाँतक जो कुछ वर्णनहुआ सो वाराणसी और मिथिलाआदि देशोंकी अपेक्षा में समुझना-अब इस्से नीचे वंगालेका चर्चाकियाजाताहै (अथवंगालव्यवस्थारूपं) जी मूतवाहन आदि बहुधा ग्रंथोंके अनुसार वंगदेशीलोगों में यह परिपाटीहै कि पिता जब संपत्तिका विभाग करनेलगै तब एक भाग जो पुत्रोंकी वरावरसे कमनहो अपनी निःसंतानी भार्याको देवै परउस भार्याको न देवै जिसके वेटाहो-इसमें भी किसी एकग्रंथकारकायह अनुमतहै कि यदि पिता अपनी स्वाधीनता के अनुसार दो भाग या दोसे अधिक निज अपनेलिये रखलेवै तौ इसदशामें भार्याओंको भागदेना कुछ आवश्यक नहीं है क्योंकि उस रखलिये हुये धनसेही पालन उनका होसकैगा-किसीग्रंथका यह भी अनुमतहै कि यदि पिता अपने पुत्रोंको धनका समभाग करिकै देवै तबउन भागोंकी बरावर एकभाग अपनी भार्याके निमित्त का रहनेदे परंतु यदि पिता अपनी स्वाधीनताके अनुसार पुत्रोंको विषम भाग देवै और अपनेलिये अधिक भाग रखलेवै तव उसदशामें यह योग्यहै कि अपनी प्रत्येक पत्नियों को निज अपने भागमें से उसरीति का मध्यभाग देवै जो सव पुत्रों के भागजोड़कर तुल्यात्मक एक पुत्रका औसतभागहोसक्ताहो-परंतु-ऊर्ध्वोक्त सर्वथा पत्नियोंकेभाग जो प्रदर्शितहुये केवल उस अवस्थामें दियेजातेहैं जव किसी तरहकाधन उन्हें पहले कभी न दियाहो-इसमें भी विरले विज्ञानियोंकी यह अनुमति है कि जो पत्नियोंको पहले कुछधनप्राप्तहोचुकाहो तौ पुत्रोंके भागसे आधाभागदेवै-इसीमें विरलोंका यह विचारहै कि पत्नीने जो धन पहलेपायाहो और वह पुत्रोंकेभागसे कुछ न्यूनहो तो वह न्यूनतापूरीकरदेनीचाहिये-किसी एकने यह भी अनुमत दियाहै कि पत्नीको कहींसे ऐसाधन संप्राप्तहोवै जिसपर अंत्य अवस्थामें उसके भर्ताकाहो स्वत्वपहुँचनेवालाहो तो निःसंदेह यहधन उसीभागमें जोड़ाजाय जो पत्नीको विभाग कालमें देनाकहागया परन्तु जो पत्नीको उसके वापसे या वापके संबंधियोंसे धन

मिलाहो यद्वा भर्त्ताके मातुल आदि किसीसंबंधीसेमिलाहो तो यहधन उसकेभागमें नहींजोड़ाजासक्ताहै क्योंकि इसधनपर उसके भर्त्ताका कुछ संबंधनहींहै (इतिबंगदेश विशेषः) ११८ जोकि इसके पहले ११७ वाले मूल श्लोक उत्तरार्ध से दोबातें कही थीं कि यातो ज्येष्ठ आदि पुत्रोंको श्रेष्ठआदि विषम विभागदेवै या सभीको समभाग देवै सो उन दोनों पक्षोंमें कुछ (अपवाद) भी निचलेमूलश्लोकसे कहते हैं ११८॥

शक्तस्यानीहमानस्यकिंचिद्दत्त्वापृथक्क्रियाम्। न्यूनाधिकविभक्तानांधर्म्यःपितृकृतःस्मृतः ११९॥

अक्ष०—समर्थ अनपेक्षूको कुछेक देकर जुदी क्रियाहो-न्यूनाधिकबँटेहुओं का विभाग-पिताका कियाहुआ धर्म्यहो सो ठीकहै ११९॥

अभि०—इसमें पूर्वार्ध से सम विभागका यह अपवादहै कि पिताका जो कोई बेटा (शक्त) नाम शक्तिमान् अर्थात् आपही बहु द्रव्यके उपार्जनमें समर्थहो औरअनीह-वान् भी हो अर्थात् पिताके धनमेंसे विभाग पानेकी इच्छाभी न रखताहो तिसको सम भागदेनेकी आवश्यकता नहींहै किन्तु उसको कुछेक धन जो कुछ पिताके ध्यानमें समावै चाहैअसारवस्तुभीहो पहिलेदेकरतिस पीछे सर्वधनकी पृथक् क्रिया अर्थात् समवि-भाग शेषपुत्रोंको करदेना योग्यहै(अपवादकास्वरूप इसमेंयहीहै कि ऐसेसमर्थ और अनपेक्षू बेटाकोछोड़कर समभाग सबकोदेनाचाहिये जिसकी विधिइस्से पहले श्लोक मेंकहीथी)और कुछेक धन जो ऐसे बेटाकोदेदेना इसअपवादमें कहागया सो उसहेतु से कि पीछेकभी इस बेटाके पुत्रादिकोंको निज पिताकादाय माँगने मध्ये झगड़ाटंटा शेष न रहजावै-अब दूसरे अर्द्धासे दूसराअपवाद उस विषम विभागके पक्षमेंकहते हैं जो ज्येष्ठआदिपुत्रों को श्रेष्ठआदिभागदेनेकहे थे तहां न्यूनाधिकअंशों से बँटेहुये पुत्रोंका विषमविभाग यदि पिताका कियाहुआ (धर्म्य)हो अर्थात् धर्मानुसार जो शा-स्त्रोक्त उद्धारआदि प्रकारोंसेही नियत कियागयाहो तब तो वही कियाहुआ ठीक मन्वादिकोंने कहाहै कि वह निवर्तित होने योग्यनहींहै और सिद्धांत इसका यह कि यदि पिताने शास्त्रोक्त मर्यादासे अन्यथा कुछ अपनी मनमौजी आदि रीतोंसेविषम विभाग कियाहो तो फिर पिताका कियाहुआभी (निवर्तित) अर्थात् मन्सूखहोजाताहै (और यही इसमें छूटकास्वरूपभी हेतुगर्भितदर्शायाहै कि मनमौजी आदि रीतोंसे कियेहुयेको छोड़के)पिताका कियाहुआ करनेकेप्रमाणमें आसक्ताहै कि जिसकी आज्ञा इस्से पहले मूलश्लोकमेंहुईथी ११९॥

अधि०—यह पिछला अपवाद जो अभी ऊपरहेतु गर्भितलक्षणसे दर्शायागया ति-सकीप्रमाणतामें नारदका यहवचन प्रमाणहै-यथा-(व्याधितःकुपितश्चैवविषयासक्त मानसः। अन्यथाशास्त्रकारीचनविभागेपिताप्रभुः) अर्थात्-यदिपिता अतिशय व्या-धिमान्हो या अतिशय कोपसे कुपितहो या कामादि विषयोंपर आसक्तमानसहो या

मनमौजी बनिकर शास्त्रोक्तमर्यादासे विपरीतकरताहो ऐसापिता विभागकरसकने में अधिकारीनहीं अर्थात् जो करभीचुकाहो और उस विभागमेंकोई किंतु प्रकटहोजाय तौ फिर उसका किया निवर्तितहोजाता है ११९ (अथ अन्त्यकालिकशिक्षा) यह एक अधिकव्यवस्था यहाँ इसलिये दर्शातेहैं कि अंत्यकालिक शिक्षा संबंधी मर्यादें यद्यपि किसी धर्मशास्त्रमें प्राचीन वा आधुनिकोंमेंभी नहीं निरूपित हुईहैं तथापि उसअंत्यकालिक शिक्षाका वर्तावा बहुधालोकमें दिखाई देताहै इस्सेवहबात कुछ निर्मूलनहीं समुझीजासक्ती अर्थात् उसीअंत्यकालिक शिक्षासंबंधीझगड़ोंके अभियोगभीअदालतोंमें पहुँचते देखे गये इसीसे निश्चितहै कि बहुतेरेलोग अपने मरतेसमय वर्तावा उसकाकरतेहैं(और) अंत्यकालिक शिक्षावही कहातीहै जो कोई धनी अपने अंतकाल में ऐसी शिक्षाकरजावै जिसके अनुसार उसके मरने पीछे उनकामोंका आचरण किया जावै जिनकाहोना उसे अपने मरने पीछे स्वीकारथा या उनकामोंका कि जिनकोवह जीतेजी करनेका मनोरथ रखताथा पर शीघ्रमृत्यु आजानेसे करने का अवकाशनहीं पायाइसहेतुसे अपने विश्वासपात्र संबंधियों को या पंचोंको शिक्षाकर जावै या ऐसी शिक्षा राजद्वार में प्रवेशित करिकै प्राणछोड़ै कि मेरे अमुकामुक धनसे अमुकामुक सत्कर्मोंकी साधना अमुकामुक पुरुषोंकेहाथसे कराईजाय-इस अंत्यकालिक शिक्षाको यावन भाषामें वसीयत और इसकेलिखेहुये पत्रोंको वसीयतनामाकहते हैं-यावनशास्त्रग्रंथोंमें इस विषयकीमर्यादेंभी निरूपित और प्रसिद्धहैं (पर) एतद्देशीयग्रंथकारोंने अपने धर्मशास्त्रोंमें इसहेतुसे इसविषयकीमर्यादेंनहींकल्पितकरीं कि उनके कल्पित करनेकी आवश्यकतानहींसमुझी क्योंकि ऐसीशिक्षाभी वह अपने जीतेजीही प्राण वियोगसे पहले२करताहै किंतु मरनेपीछेनहीं इस्से निश्चितहै कि जो२ मर्यादें ऐसे धनीकोजीतेजी संबंधरखतीहैं जिनकानानाभाँतिसे निरूपणकियागया वेही उसके अंतकालपरभी आरूढ़हैं अर्थात् जो२ कुछकाम धर्मशास्त्रके अनुकूल जिनमर्यादोंसे उसको अपनेआपकरसकनेका अधिकारथा उसीकी शिक्षाभी करसक्ताहै और जिसकामकेकरनेका अधिकार उसकोनहींथा तिसको अपनीमृत्युके पश्चात्भी करवासकनेका अधिकारीनहींहै (दृष्टांत) जैसे पुत्रादिक वंशकेहोतेहुये निजस्वोपार्जित धनका भी सर्वस्वदानकरदेनेमें अधिकारी नहींथा (दृष्टांत) दूसरा जैसे पितृ पैतामह रिक्थ में स्थावरधनका कोई अंशभी पुत्रादिकोंकी अनुमति विनादान करसकनेका अधिकारी नहींथा यद्वा ऐसेधनका विषमविभाग करसकनेका अधिकारी नहींथा इत्यादि और भी सर्वत्रजानो ऐसेकामोंको मरनेपीछे भी करवानेका अधिकारी नहीं है-सिद्धांत इस कायह कि यदिऐसे विपरीत कामोंको अपनी लिखितरूपी शिक्षाद्वारा कर भीगया हो तो पीछे राजद्वारसे निर्वार्तितकियेजावें अर्थात् होननहीपावें (इतिअंतकालविशे

व्यवस्था) अब निचले परिच्छेद में विभागहोने का कालान्तर और कर्त्रंतर और प्रकारकाभी नियम दर्शायाजायगा ॥

अथस्वर्यातेपितरिविभागोनामपंचचत्वारिंशःपरिच्छेदः ४५ ॥

इस पैंतालीसवें परिच्छेद में उस विभागकी मर्यादा वर्णनहोगी।जो पिताके मरने पीछे पुत्रोंके अधिकार से होताहै

विभजेरन्सुताःपित्रोरूर्ध्वंरिक्थमृणंसमम् १२० पूर्वार्द्धोऽयम्

ऐ० मातापिता दोनोंके मरने उपरांत बेटे सभीमिलकर उनका रिक्थ और ऋणभी समभाग करके बाँटिलेवें-इसमें दोनोंके मरने (उपरांत) यहतौ विभागका कालांतर दर्शायागया क्योंकि एक वह कालपहले पिताकेजीतेजी बतायाथा कि जब पिताअपनी इच्छासे बाँटदेना चाहै तभी बिभागकालहै (या) पिताकी अनिच्छामें भी अमुकामुक हेतु प्रकट होनेपर यदि पुत्रोंकी इच्छाहोतौ भी वही कालहै उस्से दूसरा यह कालांतर दोनोंकेमरनेपर ठहरायागया और इसमें बेटे (आपही) बाँटिलेवें यह कर्त्ताओंकाभी कर्त्रंतर दर्शायागया कि उसपूर्वोक्त कालमें पिता कर्त्ताथा इसकालमें पुत्रही आप कर्त्ताहै और (बराबर) बाँटिलेवें यह प्रकारकाभी नियम निश्चित कियाहै कि वहाँतौ पिताकी इच्छामें सम और विषमदोनों प्रकारके विभाग होसक्तेथेपर इसकाल में समानही भागहोगा परन्तु इसप्रकारके साथ एकयहभी नियमहै कि जैसेपिता माताका धन बराबर बाँटिलेवें तैसेही दोनोंकाऋणभी एकसा बराबर बाँटिलेवें १२०॥

अधि०—कात्यायनके संमतसे यह मर्यादाहै कि धनकाविभाग होतेसमय जो कोई भागी बालक अज्ञान वा असमर्थ अप्राप्त व्यवहार कालहो तिसकाभाग उसकेनिज पालयिता रक्षक अधिकारीको यद्वा ऐसेके अभावमें औरही किसीहित कर्त्तामित्रको सौंपाजाताहै-एवं जो कोई भागीभाग होतेसमय विदेशमें उपस्थितहो तिसकाभी (अत्रसंप्रश्नः) क्योंजी पितामाताके मरने उपरांत क्योंकर एकसाबराबर बाँटिसक्ते हैं मनुने पितामाताके उपरांतभी विषम विभागलेना दोभाँतिसे दर्शायाहै किन्तु एक तौ उद्धार निकालनेकी रीतिसे दूसरा उद्धार निकालने विनाभीएकादि अंश अधिकलेने की रीतिसे (और) यद्यपि इनदो भाँतिके विषमविभागोंसे पहलेही एकतीसरा प्रकार भी मनुने सभी भाइयोंका स्वामित्व पितामाताके उपरांत एकसादर्शायाहै परन्तु वह प्रकार कुछ विभागमें गिनतीनहीं किन्तु एकसाथ मिलके रहिनेकीरीतिमें नियतहै-सो उनतीनों भाँतिके प्रकारोंको अवयथाक्रमसे यहांपर लिखते हैं-यथाहमनुः (ऊर्ध्वं पितुश्चमातुश्चसमेत्यभ्रातरःसमम् । भजेरन्पैतृकंरिक्थमनीशास्तेहिजीवतोः ॥ ज्येष्ठएवतुगृह्णीयात्पित्र्यंधनमशेषतः। शेषास्तमुपजीवेयुर्यथैवपितरंतथा ॥ पितेवपालयेत्पुत्रान्ज्येष्ठोभ्रातॄन्यवीयसः। पुत्रवच्चापिवर्तेरन्ज्येष्ठेभ्रातरिधर्मतः ॥ ज्येष्ठःकुलंवर्द्धयति

विनाशयतिवापुनः। ज्येष्ठःपूज्यतमोलोकेज्येष्ठःसद्भिरगर्हितः॥ योज्येष्ठोज्येष्ठवृत्तिःस्यान्मातेवसपितेवसः। अज्येष्ठवृत्तिर्यस्तुस्यात्ससंपूज्यस्तुबंधुवत्॥ एवंसहवसेयुर्वापृथग्वाधर्म्मकाम्यया) अर्थात्-पहिला प्रकार तो मनुनेयहकहाहै कि-पिताके और माताके भी मरने उपरांत सभी भ्राता मिलकर एकसाथ पैतृक धनकोभोगें किन्तु पितामाताके जीवतेहुये वे सबअस्वतंत्रहैं स्वातंत्र्य उनको नहीं था (तहां) सभी मिलकर भोगनेकी यहरीति है कि पिताके अशेषधनका स्वामी एक ज्येष्ठही भ्राता होवे और शेष भ्राता सब उसके आधीन उपजीवन वैसेही पावें जैसे पितासेपातेथे और वहजेठाभाईभीछोटे भाइयोंको उसीभाँति पालनकरै जैसे पुत्रोंको पिता पालनकरताथा (और) वेछोटेभाई भी जेठे भ्रातामें धर्मानुसार पुत्रोंकीसी भाँति शिष्टाचारीबर्तैं (किन्तु) जेठाही कुल बढ़ाताहै या विनाशकरताहै तौ भी सज्जनलोगोंमें जेठाही पूज्यतमहोता और जेठेकी निंदा कोईनहींकरसक्ता चाहेघरबनावे या विगाड़े पर इतनाअंतरहोताहै कि यदि जेठापनके आचरणउसमेंहों तो वहसभीभाइयोंकीमाता और पिताकेसमानपूज्यतमहोताहै यद्वा जेठापन की वृत्तिउसमें नहो तो भी ज्येष्ठबंधुवत् संपूज्यहै (ऐसे) उक्त प्रकारकी रीतिसे चाहैं सभी भ्राता साथ मिलकर बसैं यद्वा निजनिज धर्मसाधन करनेकी कामनासे जुदे होजावैं-तिसका प्रकार अबउद्धार निकालनेकी रीतिसे कहतेहैं-यथा (पृथग्विवर्द्धतेधर्मस्तस्माद्धर्म्यापृथक्क्रिया। ज्येष्ठस्यविंशउद्धारःसर्वद्रव्याच्चयद्वरम्॥ ततोऽर्द्धंमध्यमस्यस्यात्तुरीयंतुयवीयसः। ज्येष्ठश्चैवकनिष्ठश्चसंहरेतांयथोदितम्॥ येन्येज्येष्ठकनिष्ठाभ्यांतेषांस्यान्मध्यमंधनम्। सर्वेषांधनजातानामाददीताग्र्यमग्रजः॥ यच्चसातिशयंकिंचिद्दशतश्चाप्नुयाद्वरम्। उद्धारोनदशस्वास्तिसम्पन्नानांस्वकर्मसु॥ यत्किंचिदेवदेयंतुज्यायसेमानवर्द्धनम्। एवंसमुद्धृतोद्धारेसमानंशान्प्रकल्पयेत्) अर्थात्-मनुने यहकहाहै कि मनुष्योंकी जुदी२ देहली बसजाने से भी धर्मकी अनेकधा वृद्धिहुआ करतीहै इसलिये अपनी २ धर्म्या क्रिया जुदी करनेके निमित्तसे जुदेभी होजावें तब इसप्रकारसे धनको बाँटैं फिर पहले सब धनोंमें से कोई एक द्रव्य जो सर्व्व द्रव्योंमें उत्तम गिनाजाताहो सो जेठे भाईको उद्धार निकालदेवें परंतु उतनेही परिमाणसे कि जो सब धनका बीसवां भाग ठहिरै (और) उसका अधिआई अर्थात् सबधन का चालीसवां भागविचले भाईको उद्धार निकालदेवें सो ऐसाधन कि जो सब द्रव्योंमें मध्यम द्रव्य कहाताहो और उसीकी चौथाई अर्थात् अस्सीवांभाग तीसरे छोटेभाईको उद्धार निकालदेवें सो ऐसाधन किजो तुच्छ द्रव्योंमें गिनतीहो (परन्तु यह प्रकार उसीदशातक ठीक आता है कि जबतक तीनही भाई हों किंतु यदि अधिक भाईहों तो उस दशाके निमित्तमें कहते हैं कि) जेठा और छोटा यह दोनों तो जैसा जैसा कहागया तैसाही धन उद्धारमेंलेवें और शेषजो विचले भ्राता अनेकहों तो वे सभी मध्यमधन उद्धारमेंपावें और

वही चालीसवां भाग जैसा एक बिचले के निमित्तमें कहागया तथापि उसमें इतना अंतर होजाताहै कि चालीसवां भाग यथा क्रमसे बचतेहुये धनमेंसे भाईयोंकी यथाक्रम लघुताके अनुसार निकलताहै (और) ज्येष्ठ भ्राता सभी धनजात पदार्थोंमें जोजो श्रेष्ठ वस्तुहो सो उसदशामेंभी लेवे कि जब शेष धनका समभाग उद्धार निकाले पीछे किया जाय (औरजो) पिताके धनमें कोई उस प्रकारका उत्तम धनहोही नहीं जो सर्व धनके बिसवांश तुल्य जेठेको देनाकहाथा तबइसरीतिसे उद्धारदेना चाहिये कि पशु आदि जो कुछ मध्यमधन बहुताइतसेहो तिसमेंसे श्रेष्ठरूप ढूंढ़कर दशवांभाग पहले जेठाभाई ले लेवे और शेष भ्राता पूर्वोक्त रीतिसे उद्धार पावें तिसपीछे भागलगाया जाय (परन्तु) यदिसभी भ्राता निज२ कर्मोंमें सम्पन्नहों तब यह दशमांशका उद्धार नहीं होता किंतु जो कुछ वस्तु बड़ी या छोटीही देनेयोग्य समुझीजाय सो जेठेको मानरखनेके निमित्तसे दे दीजावे इसप्रकारसे उद्धार समुद्धृत किये पीछे जो धन शेषरहे तिसके उतनेही बराबर भागकिये जायँ जितने भ्राताहों सब एक एक भाग निज निज उद्धारके लिये पीछे लेलेवें (अथवा) यदि उद्धार नहीं निकालें तौ फिर अग्रोक्त रीतिसे भाग लगावें सो अब कहते हैं-यथा (उद्धारेऽनुद्धृतेत्वेषामियंस्यादंशकल्पना। एकाधिकंहरेज्ज्येष्ठःपुत्रोऽध्यर्द्धंततोऽनुजः ॥ अंशमंशंयवीयांसइतिधर्मोव्यवस्थितः। अजाविकंसैकशफंनजातुविषमंभजेत् ॥ अजाविकंतुविषमंज्येष्ठस्यैवविधीयते) अर्थात्-मनुने यहभीकहाहै कि यदि उद्धार नहीं निकालें तौफिर इसरीतिसे अंश कल्पना होनी चाहिये कि सब धनके ऐसी युक्तिसे बराबर भागकियेजायँ जिनमें दोभाग तौ जेठाभाई लेलेवे और डेढ़भाग उस्से छोटाभाई पावे और उस्से छोटेसभी भ्राता एकएक भाग पावें यह मर्यादा नियतहै (परन्तु) बकरी भेड़ और एक खुरवाले चौपाये किंतु घोड़ा आदि इनमें जो विषमहों तौ कदाचित्भी समभागसे न बांटैं किंतु यह चीजें जोविषमरूपसे बढ़ें सो ज्येष्ठकोही दीजावें (दृष्टांत) तथा पांचभ्राताहों सात भेड़हों दोवढीं उनमेंसे एक तौ जेठेभाईकी उस रीतिसे होचुकी कि उसको दोभागलेने कहेथे अब एकवची उसमेंसे आधी उस्से छोटेभाईकी होती आधीशेष फालतू वचती (पर)ऐसी सूरतमें विषम भागके निषेध पूर्वक वचीहुई जेठेभाईको वताई इस्सेवहभी जेठेकोठीक ठीकदीजावे इसप्रकारसे जेठेभाईको तीन भेड़मिलीं(औरजो)छही होतीं तौ जेठेभाईको अपने दो भागोंकी दो मिलतीं(और) जोकेवल पाँचहोतीं तौफिर जेठाभी उत्तमसीछाँटकरएकहीलेता (कदाचित) पाँचभाई और तेरह भेड़होतीं तौ जेठाभाई दो भागोंकी चारलेता और उस्से निचलाभी अपनेडेढ़ भागकी तीनभेड़ें पासक्ता और शेषभ्रातादोदोपाते (परन्तुजहाँडेढ़ भागवाला एकही भेड़पाता तहाँवहएक उत्तमसी छाँट करलेसक्ताहै जो डेढ़की वरावरहो)ध्यानकरो अबसंप्रश्नकर्त्ता कहताहै कि जो मनुजी

ने उद्धारकीरीतिसे विभाग बतलाया सोभी विषम ठहरा क्योंकि एकसे समभागसब को न मिले (और) उन्हीं मनुनेउद्धारविना भी जोरीति पीछेसे कहीसोभी विषमठहरी सो यहदोनों रीतेंपिता माताके उपरान्तही बतलाई(और)पिताके जीवतेहुयेभी निज आप योगीश्वरनेही विषमविभाग ११७केमूलश्लोक द्वारादर्शाया इस्सेनिश्चितभया किपिताके जीवते और मरेपीछेभी सबकालमें विषमविभागहोताहै तौफिरइस१२०के पूर्वार्द्ध मूलश्लोकसे क्योंकर योगेश्वरानियमकरतेहैं किमातापिताकेमरनेपीछेसमभाग करिलेवें(अस्यसमाधानम्)सुनोयह संप्रश्न यद्यपिसच्चाहै क्योंकिन्यायात्मकमर्यादाकेअनुसारइसमें कुछसन्देहनहीं परतौभी शिष्टाचारात्मकमर्यादासे यहविषमविभाग (संप्रति) लोकनिंद्यहै अर्थात् लोकविद्विष्टत्वके लक्षणसे संश्लिष्टहैइसहेतुसे इसकाअनुष्ठानभी अयोग्यहै-यथाह(अस्वर्ग्यंलोकविद्विष्टंधर्ममप्याचरेन्नतु) अर्थात्-इसवचनमें शिष्टाचारात्मक मर्यादासे यहनिषेध कियागया है कि विरलाधर्म यद्यपिशास्त्रोक्तभीहो परउसमें कोईलक्षण अस्वर्ग्य या लोकविद्विष्टत्वकाही पायाजायतौ उसभाँतिके धर्मकोभीन आचरै-इसकादृष्टान्त जैसे आचार विषयिक यहवचन एकशास्त्रोक्तहै कि (महोक्षंवा महाजंवाश्रोत्रियायोपकल्पयेत्)अर्थात्-आचारमेंयहकहाहै कि जबकोईश्रोत्रियपुरुष अपने घरआवे तबउसके सत्कार के लिये चाहै बड़ा बैल बछराहो यावड़ा बकराहो उपकल्पितकरै यहांपर वड़ेका विशेषण इसउत्कर्षापर आरोपितहै कि यद्यपि किसी वड़ेकार्य या दर्शनीयशोभाके निमित्तसेभी पालाहो पर ऐसे समयपर उपकल्पितकरै-यद्यपि किसीदेश विशेषकी अपेक्षासे यहआचारशास्त्रकाविधान वाक्यहै और श्रोत्रियके सत्कारमध्ये उत्कर्षा दर्शाईगई तथापि यहवार्ता लोकाचारसे प्रत्यक्ष विरुद्ध है भला सर्व लोक निन्दा और दोषादिक तौ एकओरहैं प्रथम उसकेघर और जाती लोगोंमेंही तत्काल महाद्वन्द्व और द्वेषादिउपद्रव खड़ेहोजायँ यदि कोईऐसाकरै इस्से इसविधिका आचार कोई नहींकरसक्ता इत्यादि औरभी अनेक निन्दावाक्यहैं-इसी प्रकार अब कलियुगमें उद्धारविभाग या कोईभाँतिका विषमविभागकरना योग्यनहीं है- सर्वथा इसव्यवस्थाका यह सिद्धान्तहै कि पिताको अपनेस्वोपार्जित आदि द्रव्यों का विषमविभागकरनेमें न्यायात्मकमर्यादासे यद्यपि अधिकारप्राप्तहै तथापि शिष्टाचारात्मकमर्यादासे ऐसाकरना उसको योग्यनहीं क्योंकि न्यूनाधिक अंशदेनेसे पुत्रों में विद्वेषखड़ाहोगा जिसकेहेतुसे वहपिता पापीनिश्चितहोगा-यहीव्यवस्था आपस्तंब ने भी रक्खी है-यथा(जीवन्पुत्रेभ्योदायंविभजेत्समं-ज्येष्ठोदायादइत्येके)अर्थात्-पिता अपनेजीवतेहुये भी पुत्रोंको समानहीभाग देवै-यह अपनामत कहकर पीछेसे यहभी आपस्तंबनेकहाहै कि जेठापुत्र सबधनका दायादकियाजाय यह किन्हींएक विरलोंका अनुमतहै(अर्थात्)विरले प्राचीनोंका कथनमात्रहै कुछ परिपाटी इस मर्यादाकी नहीं

और आदरकरनेयोग्य भी यहबात नहीं है-इसकेउपरान्त आपस्तंबने फिरभी बिरले प्राचीनोंके मतसे उद्धारबिभाग दर्शाया और साथहीउसका निराकरणभी लिखदिया है-यथा(देशविशेषेसुवर्णंकृष्णागावःकृष्णंभौमंज्येष्ठस्यरथःपितुःपरीभांडंचगृहेऽलंकारो भार्यायाज्ञातिधनंचेत्येके-तच्छास्त्रैर्विप्रतिषिद्धम्) अर्थात्-जोकि बिरलेप्राचीनोंके मत से किसी देशबिशेषमें ऐसाभी उद्धारविभाग सुनाजाताहै कि उस देशमें सोना और कृष्णागौवें तथा कृष्णवृषभ यहसब जेठेपुत्रकाउद्धारहै और घरकाबासनभंड़वा तथा आभूषण और स्त्री धन भी यह सब पिताकीघरिणीका उद्धारहै इसउद्धारके निकाले पीछे जो कुछबचै तिसमें सबके अंशबराबर कियेजायँ-सो-वहशास्त्र बिप्रतिषिद्ध किये देते हैं अर्थात् उसकी आज्ञाका आदर कोई मतकरना यह आपस्तंबने मन्सूखी उसकी लिखीहै-इसके सिवाय एक यह अग्रोक्तवचन जो प्रसिद्धहै तिस्सेभी मन्सूखी निश्चितहोती है-यथा (पुत्रेभ्योदायंविभजेदित्यविशेषेणश्रूयते) अर्थात्-पिता अपने पुत्रोंको धन का भाग अविशेषतासेहीदेवै किन्तु न्यूनाधिकरीतिसे विशेषता कल्पित न करै यह सर्वथा श्रवण करनेमें आता है इत्यादि शास्त्रवचनोंसे सर्वथा यही निश्चित है कि उद्धार आदि प्रकारोंवाला विषम विभाग यद्यपि शास्त्रोक्त है परतौ भी लोकविरोधी और श्रुतिविरोधी होनेके हेतुसे अनुष्ठान करनेयोग्य नहीं है क्योंकि ये मर्यादें अब कलियुगमें भस्माग्नि कल्पसमुझी जाती हैं-इसके सिवाय वहमनुका कहा सबसे पहिलाप्रकार जिसमें जेठाभाई सबधनका मालिकहोना कहागयासो तौ प्रत्यक्ष समभागहीके प्रकारमें गिनती है क्योंकि निपट सब धनका मालिक होजाना कुछ सिद्धान्तनहींहै केवल यह आशयहै कि यदि भाइयोंमें परस्पर प्रीतिभावहो या जेठेके सिवाय अन्यसबभाई असमर्थहों तौ इसदशामें विभाग करनेकी आवश्यकता नहींहै अर्थात् जेठाभाई पितृस्थानी होकर धनकी रक्षाकरै और छोटे भाइयोंका पालन आदि सब उसीप्रकारकरै जैसे पिताकरताथा परन्तु विना बँटे धनमें भाग सब भाइयोंके बराबर समुझेजायँगे क्योंकि पिताके मरनेपीछे सबका स्वत्व बराबर पैदाहोजाताहै और जब कदाचित् उनमें मनमैली खड़ीहोगी या समर्थहोजानेपर इच्छासेही जुदे होनाचाहेंगे तब सभी अपना समभाग बाँटिलेवेंगे सो यह परिपाटी अद्यापिसारे लोकमें कि जहाँ भाइयोंमें परस्पर प्रीतिभाव चलाजाताहै तहाँ सर्वत्र चलीआतीहै परन्तु पैतृकधनमें स्वत्व बराबर सबका होताहै इसहेतुसे योगीश्वरने इसी १२० वाले पूर्वार्द्धमूल श्लोकसे यह नियमनिश्चितकियाहै कि सब भाई मिलकर समभाग बाँटिलेवें इसमें कुछ तर्कणा करनेका अवकाश नहींहै (पुनरपिप्रश्नः) क्यों जी क्योंकर तर्कणाकरनेका अवकाश नहीं है जब कि योगीश्वरने इतने सिद्धांतों कोदेखभालकर समभागकी व्यवस्थाकल्पितकरी तौ फिर उन्ही योगीश्वरने ११७

के मूल श्लोकमें पिताके जीवतेहुये (ज्येष्ठंवा श्रेष्ठभागेन) इस वचनसे क्यों उद्धार विभागका विकल्पदर्शायाहै कि चाहे पिता अपनीइच्छा अनुसार अपने जेठेपुत्रको श्रेष्ठ भाग देवै इसकथनके स्थलपर कलियुग कहां जातारहा (और) भस्माग्नि कल्प समुझीजानेका यह आशय नहीं होताहै कि निपट वह मर्यादा मिटजावे क्योंकि भस्माग्नि संज्ञा उसी अग्निकी होतीहै जो राखमें दबरहीहो और किसी अवसर पर काम आजावे (समाधान) सुनो इस द्विविधा में यह कारण है कि योगीश्वर ने ११७ वाले मूलश्लोक से विषम विभागकी मर्यादा न्यायात्मक जो बापके जीतेजी दर्शाई तिसकी परिपाटी बंगदेशमें विशेषकर अबताईं भी चलीआतीहै जिसका वृत्तांत ब्योरेवार उसी ११७ वाली अधिकोक्तिके अंतमें बंगाल व्यवस्थाके रूपसे प्रदर्शित होचुकाहै-परंच-वाराणस्यादि वा मिथिला आदि अन्यदेशों में सर्वत्र उस न्यायात्मक मर्यादाकी प्रधानता अब कुछनहींहै क्योंकि संप्रति इनदेशोंमें शिष्टाचारात्मक मर्यादा की प्रधानता अतिशय भावसे मानीगई इस्से इनदेशोंमें पिता अपने जीतेभी ऐसा करनेका अधिकारी नहींहै (पर) भस्माग्नि कल्पके विशेषणसे इतनाचिह्न उसमर्यादा की परिपाटी का इनदेशोंमें भीशेषहै कि जब कदाचित् कोई बिरला पिता प्राचीन परिपाटी और अपने न्यायात्मक अधिकारके ध्यानसे ऐसा करताहै कि अपने धनको अपने पुत्रोंमें विषम विभागकी रीतिसे देताहै तब जो उसकादेना ११६ वाले उत्तरार्द्ध मूलश्लोकसे विरुद्धनहीं ठहरै तो अद्यापि जातीलोग और पंचप्रधान आदि उसकी निंदा नहीं करते हैं (सो) उस अवस्थातक कि जो उसके पुत्रोंमें सुसंमति हो और परस्पर कोई किसीका विरोधी खड़ानहो अर्थात् जो विरोधखड़ा होताहो और दशा इसकी राजद्वारतक पहुंचै तो राजानिस्संदेह उसी शिष्टाचारात्मक मर्यादाकी प्रधान- ता अनुसार समभाग करने की आज्ञादेसक्ताहै क्योंकि भस्माग्नि का यह आशय ठीक नहींहै कि वह अग्नि राखमें दाबीगई हो किन्तु भस्माग्नि का यह आशयहै कि वह आपही राखहोतीहोती किंचित् रहकरअपनीही भस्मसे दबिगईहो तौ ऐसीअग्नि का प्रताप मंदहोताहै इस्से इनदेशोंमें पिता अपने जीतेभी ऐसा करनेका अधिकारी नहींहै-और पिताकेमरने पीछे जो पुत्रोंको दाय प्राप्तहोताहै तिसके मध्ये संप्रति बंगाले सहित सबदेशोंमें एकसी मर्यादाहै कि सब भाई मिलकर समभागके अधिकारीहोते हैं अर्थात् पिताके मरने पीछे पैतृक धनमें सब भाइयों का बराबर स्वत्वहोताहै चाहे सब सुसंमतिसे साझेरहैं या जुदेहोकर समभाग करलेवें (अत्रचन्यायविशेषः) इसीसं- वर्णितस्वत्वकी अपेक्षामें कहीं साधारण भाव यहवाक्यभी प्रदर्शितहुआहै कि (सभी समजाती बेटे जो बापके मरतेसमय उसके साथ सुसम्मतिसे मिश्रीभूत रहतेहों वे उस बाप और दादाका भी धन स्थावर जंगम दोनों भाँति का बराबर बाँटलेने के

अधिकारी हैं) इसवाक्यमें कोई बात धर्मशास्त्र से विपरीत यद्यपि नहीं है (पर) बिरलेलोग निजबुद्धिभ्रमसे एक थोड़ीसी यह शंका इसमें करते हैं कि जो कोई बेटे बापके मरते समय उसके साथ किसी कारणसे न रहतेहों या दूरस्थहों क्या उनको अपनाभाग न मिलनाचाहिये-सो-यहशंका निपटथोथी है क्योंकि भाग किसी काभी जो सच्चा है सो किसी दशामेंभी नहीं लोपहोसक्ता बल्कि इसी प्रयोजनके विषय पर अग्रोक्त शिवजीका यहवाक्य है कि-(अविभक्तेविभक्तेवायस्ययादृग्विभागिता। मृते पितस्यदायादास्तादृग्विभवभागिनः) अर्थात् बिना बँटेधनमें या बँटचुकेधनमें भी जिसकिसीका जितनाभागसच्चाहै वह उसकेजीते और मरनेपरभी लोप नहींहोता किंतु मरजानेपर भी उसके पुत्रादिक दायादउतने भागके भागी बनेरहते हैं-तौ फिर क्योंकर यह शंकासंभवहोसक्तीहै-परन्तु जिसवाक्यमें यह शंकाकोईकरताहो तिसमें सिद्धांत केवल इतनाहै कि जो कोई बेटेअपने बापसे प्रत्यक्षविरोधी होकर या उस की राजीसे कुछ लेदेकर पहले भिन्नहोचुकेहों वे उनकेसाथ बराबर भागपाने के अधिकारी नहीं हैं जो बापकेमरते समय सर्वथामिश्रीभूतहों-यहांपर प्रत्यक्ष विरोधीबेटे का दुर्भागीरहना जो दर्शायागया तिसकाप्रामाण्य ब्यौरा आगे १४४की अधिकोक्ति में नारदके इस निम्नोक्त वचनको ढूँढ़करदेखौ-तद्यथा (पितृद्विट्पतितःषंढोयश्चस्या दौपपातिकः। औरसाअपिनैतेंशंलभेरन्क्षेत्रजाःकुतः) अर्थ इसका उसी स्थलपर व्याख्यासहित कहाजायगायहांकेवल (पितृद्विट्) अर्थात् पिताका विरोधी बेटादर्शाना आवश्यक था और दूसरा (औपपातिक) वेटा जो इसीवचनमें दर्शितहुआ सो उपपातकी यद्यपि अनेक भांतिकेहोते हैं परन्तु यहांपर उपपातकी विशेषकर उसीको समुझना जिसनेमाता पिताआदि गुरुजनकापरित्याग या उनको उचित शुश्रूषाका त्यागाकियाहो-इस बातांपर शिवजीने भी यहन्याय वर्णनकिया है-यथा (मातरंपितरं देविगुरुंचैवपितामहान्। मातामहान्करेणापिप्रहरन्नैवदायभाक्॥ निघ्नन्नन्यानपिप्राणै र्नैतेषांधनमाप्नुयात्। हतानामन्यदायादाभवेयुर्धनभागिनः) अर्थात्-हे पार्वति जो कोई दायाद अपनी माता या पिताया गुरु या दादादादीआदि या नानानानीआदि किसी को हाथसेभी मारै तौ उसका दायभागी वह न होवै-और-इनके सिवाय अपने भाई आदि किन्हीं औरोंकोभी प्राणोंसेविनाशै तौ उनका रिक्थ न पावै किंतु उन प्राणोंसे विनशेहुयोंका भाग उनके अन्यदायाद जो जीतेहों सो पावैं-इनदोनों वाक्य में यह अंतरहै कि ऊपरलेमाताआदि को केवल हाथसे थपेड़ाआदि लगानेपरभी रिक्थ न पावैऔर इस निचलेवाक्यमें औरोंको प्राणोंसेविनाश करदेनेपरउनकाभाग न पावै-और इन सबसेऊपर नारदकेवाक्यमें पितासे प्रत्यक्ष विरोधीहोनेपर या पिता आदि की सेवात्याग करदेनेपर भी रिक्थ न पावै यह सिद्धांतहै-परन्तु (मरतेसमय सुमंमाति

से मिश्रीभूतरहतेहों)इस सामान्य कथनका यहआशयभी प्रत्यक्षहै कि जो कोईबेटा अपने बापसे विरोधी अथवा जुदाहोकर और पीछे कभी फिर उसीमें उस भांति से संसृष्टहोजावै जैसे अन्यसबभाई अबतक पिताकेसाथहैं तौ इसदशामें चाहै थोड़ेही कालांतरसे पिता मृत्युपावै तौ यहबेटाभी उनभाइयोंकेसाथ पितृ पैतामह धनमें सम भागका अधिकारी होगा इसमें कुछ संदेह नहीं-परन्तु-ऐसी शंकावाले बाक्य में यह सिद्धांतनहींहै कि जो कोईबेटेसाधारण भाव किसीआजीवनआदि हेतुसे विदेशबासी होजाने या नारीजन के कलकलआदि साधारण भाव किसी हेतुसे पिताकाधन पाये विना जुदीदेहली बाँधिलेवैं तौ वेभी जुदेसमुझेजायँ और वे भाईउनकाभागनदेवैं जो बापके मरतेसमय मिश्रीभूतहों-अर्थात् जो कदाचित् वे भाई इनकाभागन देकरपैतृक धनवाँटिलेवैं और यथार्थसे सच्चाभाग लोपहुआ तौ बँटजानेपीछेभी राजाउनसेछीन कर दिलवानेका अधिकारीहै-यथाहसदाशिवः(विभक्तेपिधनेयस्तुस्वीयांशंप्रतिपादयेत्।पुनर्विभज्यतद्द्रव्यमप्राप्तांशायदापयेत्)अर्थात्-सदाशिवजीकहतेहैं कि धनकेबँटजानेपरभी जो कोईअंशी अपनाअंश प्रतिपादनकरै अर्थात् साक्ष्यादि प्रमाणोंसे सबूत करदेवै कि मैंनेअपना सच्चाभाग नहींपाया तौ राजाऐसे बँटेधनका फेर विभागकरिके उसकाअंश दिवावै जिसने नहींपायाथा-अविभाज्यके दिलवाने का प्रकारभी शिवजी ने कहाहै-यथा(स्थावरस्यचरस्यापिविभागानर्हवस्तुनः । मूल्यंवातदुपस्वत्वमंशिनाविभजेन्नृपः)अर्थात्-जो स्थावर या जंगमकोईधन ऐसाही अविभाज्यहो जिसकाविभाग खंडात्मकहोनासंभव नहींहै तौ उसवस्तुकामूल्य उसअंशीसे कि जो कोई उसकालेना स्वीकारकरै सब अंशियोंको बँटवादेवै अथवा जो वस्तु कोई ऐसीहो जिस्से कुछ उपलाभ भी सर्वदाहोताहो तौ उपलाभकेहीअंश उनकेनामसे प्रकल्पितकरै-परन्तु राजा को उसीदशामें अधिकार होताहै कि जबअंशियोंके परस्पर झगड़ानहीं निपटै और कोईउनमेंसे अर्थी बनिकेराजद्वारमें पुकारकरै यहभी नियम शिवजीके अगले वाक्य सेसंसिद्धहै-यथा(अंशिनांसंमतावेवविभागःपरिसिद्ध्यति । तेषामसंमतौराजासमदृष्ट्यांशमाचरेत्)अर्थात्-शिवजी कहते हैं कि विभागोंकी कल्पना जो है सो अंशियोंकीही सम्मतिसे संसिद्धहोती है परन्तु जो कदाचित् उनमें सम्मति नहीं हो तब राजाही समदृष्टिहोकर अंशकरावै-ऊपरली इसी व्यवस्था में (सभी समजाती भ्राताकहनेका यह आशयहै कि जहां कुछभाई सौतेलेभी जो पिताकी सवर्णा भार्यासे पैदा हों तौ वेभी सबसहोदरकेसमान समभागीहैं-परन्तु-यदि कोई सौतेलाभ्राता पिताकी असवर्णासे पैदाहो तो उसकाभाग पचासवें परिच्छेदमें १२८ वाले मूलश्लोकसे निर्णीत होगा-कदाचित् ऐसे धनके साथ उसीपिताके भतीजेभी पैतामह धनमें या निजबापकेहीमिश्रीभूत धनमेंभागपानेके अधिकारीहों तौ इनचचेरेभाइयोंकी व्यवस्था आगे

सैंतालीसवें परिच्छेदमें १२३ के उत्तरार्द्ध मूलश्लोकसे निर्णीत होगी-औरजो-कदाचित् कोई भ्राताधनके विभागसे पहलेही मरजावे या विरक्त होजावे तौ उसकाभाग उसके बेटेनिज पितृव्योंके साथमें लेतेहैं यह व्यवस्थाभी उसी १२३ के उत्तरार्द्ध से संसिद्धहोगी पर उसका संक्षेप ब्योरा यहांभी शिवजीके वाक्यसे प्रदर्शित कियेदेते हैं-यथाह(अजीवत्पितृकःपौत्रःपितृव्यैःसहपार्वति। पितामहस्यद्रविणात्स्वपितुर्दायमर्हति)अर्थात्-हे पार्वति मरगया वा संन्यासी हुआ जिसका पिताऐसा पोता भी निज पितृव्योंके साथ अपनेदादाके धनमेंसे स्वकीय बापकाभाग पानेयोग्य है यदि उसपोताके कोई और भ्राताहों तौ उसभागको सबभाई मिलकर बांटिलेवैं १२०अब निचले मूल अर्द्धासे कुछ मातृधनका चर्चा इसी प्रसंगमें करते हैं १२० ॥

मातुर्दुहितरःशेषमृणात्ताभ्यऋतेऽन्वयः १२० ॥

अक्ष०-माताका धन बेटियां बांटिलेवैं जो ऋणसे शेषरहै-बेटियोंके न होनेमें पुत्रादिक वंशलेवै १२० ॥

अभि०-यदि माताको किसीका ऋणदेनाहो तौ उस धनमेंसे ऋणदेकर जो कुछ वचै सो बेटियां बांटिलेवैं इस कथनसे यह आशय दर्शायाहै कि यदि माताका धन ऋणकेही बराबरहो या ऋणसेभी थोड़ाहो तौ फिर माताकाभी धन बेटेही लेसक्ते हैं क्योंकि माताके ऋणकादेना पुत्रोंकोही कहाहै पुत्रियों को नहीं-इसीलिये १२० के पूर्वार्द्ध मूल श्लोकमें साधारण भावसे यह कहाथा कि मातापिता के मरनेपीछे दोनों काधन और दोनोंका ऋणभी बेटे बांटिलेवैं किन्तु बेटियोंका चर्चा वहां नहीं आया पर यथार्थसे माताकाधन बेटियोंकोही पहुँचसक्ताहै इसलिये उस पूर्वोक्त मर्यादा के अपवाद रूपसे इस अर्द्धामें बेटियों काभी चर्चा आवश्यक ठहरायागया कि यदि माताको ऋणदेना किसीका नहो तौ फिर माताका धन बेटियांही लेसक्ती हैं (और) इसी आशयसे यह सिद्धान्तभी निर्मलहै कि जो धनसे ऋणथोड़ाहो तौ पहले ऋण देकर जो कुछबचै सो लेसक्ती हैं-परन्तु जो बेटियां और बेटियों के सन्तानभी नहों तौ फिर माताकाभी धनपुत्रही बांटिलेवैं १२० ॥

प्रथि०-माताके धनमें जो पुत्रियोंका अधिकार विशेष ठहरायागया तिसका मुख्य यह कारणहै सो अग्रोक्त वचनमें समुझो-यथा (पुमान्पुंसोऽधिकेशुक्रे स्त्रीभवत्यधिके स्त्रियाः)अर्थात्-मैथुन समय पुरुषकावीर्य अधिक होनेसे पुत्र पैदाहोताहै यदि स्त्रीका वीर्य अधिकहो तौ पुत्री पैदाहोतीहै-जो कि पुत्रियों में माताकेही अधिक अंगहोते हैं इसहेतुसे माताका धन पुत्रियोंमेंही जासक्ताहै एवं पिताके अंगोंकी अधिकता उसके पुत्रोंमें होतीहै इसहेतुसे उसकाधन पुत्रोंमेंही जासक्ता है (यहांपर पुत्रियां बांटिलेवैं यह सामान्य भावसे दर्शायागया किन्तु इसवार्त्ता में विशेषता जो गोतमजीने कही

है तिसका ब्यौरा आगे स्त्रीधनके प्रसंगमें १५० वाले मूलश्लोककी अधिकोक्ति में विस्तारसे प्रदर्शितहोगा तहां देखो)(यहांपर सामान्य भावसे यहबात जो कहदीहै कि पुत्रियोंके न होनेमें पुत्रादिक वंशलेवै तिसकाभी ब्यौरा अतिविस्तारसे उसी अधिकोक्तिमें प्रदर्शितहोगा तहांदेखो) क्योंकि यहां केवल अभीपैतृक धनका प्रसंग है और उसीके प्रसंगसे मातृधनके चर्चाकी समस्यामात्र करीगई कुछप्रसंग उसका नहींहै तथापि रिक्थ विभागकी साधारण मर्यादा के अनुसार उसका दर्शितहोना यहांभी योग्यथा इसलिये दर्शायागयापर विस्तार उसकी विशेष मर्यादासाथ कहैंगे-एक यह विशेषता याद रखनीचाहिये कि यदि मातामरीनहो किन्तु केवल पिताकेही मरनेपर पुत्रोंने विभागकियाहो तो फिर माताभी पुत्रोंके समान भाग पावैगी यह मर्यादा १२६ के उत्तरार्द्ध मूल श्लोकसे कहैंगे १२० ॥

अथकदाचिद्दायविभागापेक्षायां- अविभाज्यधनविभागनिषेधो नामषट्चत्वारिंशःपरिच्छेदः ४६ ॥

इसछियालीसवें परिच्छेदमें वह व्यवस्थाजानी जायगी कि पैतृक आदि रिक्थोंका विभाग होतेसमय किसं२ धनका भाग न होनाचाहिये-वे अविभाज्यधन भी दो तीन भाँतिके होते हैं (एकवह) कि जिसमें एकही दायादकास्वत्व पायाजाने से किसी का अंश उसमें नहींहै (दूसरा) वह कि जिसमें स्वत्व सब दायादों का सदैवरहा आता पर उस वस्तुका खंडात्मक भागनहीं होता और मूल्यदान के द्वाराभी कोई एक नहीं पासक्ताहै (तीसरा) वह कि जिसमें सबदायादों का स्वत्वहोने के हेतु मूल्य दानके द्वारा कोई एक पासक्ताहै पर स्वरूप मात्र अविभाज्यहै ॥

पितृद्रव्याविरोधेनयदन्यत्स्वयमर्जितम्। मैत्रमौद्वाहिकंचैवदायादानान्नतद्भवेत् १२१ ॥
क्रमादभ्यागतंद्रव्यंहृतमप्युद्धरेत्तुयः। दायादेभ्योनतदद्याद्विद्ययालब्धमेवच १२२ ॥

भक्ष०सहृद्वयोः—पितृ द्रव्यके अविरोधसे जो अन्यत् आपही अर्जितकिया हो-मैत्र धन-और जो औद्वाहिक धनहो-सो दायादों का नहोवै १२१ और जो धन कभी हरा हुआ क्रमसे अभ्यागत जो कोई उद्धरै सो दायादोंको न देवै-और जो विद्यासे पाया हो सोभी १२२ ॥

अभि०सहृद्वयोः—विभागहोनेमे पहिलेही जो धन किसी भाईने आपही एकले पैदा कियाहो पर जिसके पैदाकरनेमें पिता माताका धन कुछ न खोयाहो ऐसाधन रिक्थियों के विभागमें न आवैगा किंतु उसका स्वामी वही है परन्तु यदि ऐसे मार्गसे उपार्जन कियाहो कि जिसमें पिता माताकाभी धन खोया होतो उसधनकोभी सब भाई बांटि लेवें (मैत्रधन) अर्थात् जो अपने निज मित्रादिकसे किसी भाईने पायाहो सोभी सब दायादोंका नहींहै (औद्वाहिकधन) अर्थात् जिस किसी भाईने अपने विवाहमें पायाहो

सोभी सब भाइयोंका नहीं है १२१ (क्रमादभ्यागतहृतं) अर्थात् बाप या दादाआदिका जो धन किसीने उनके हाथसे हरलियाहो कि जिसको बाप दादा आदिने निज अशक्ति आदि कारणोंसे निकासि नहींपायाहो ऐसे डूबेहुये के धनको जो कोई अपनी शक्तिसे निकाले सो दायादोंको न देवै (विद्ययालब्धं) अर्थात् जो किसी भ्राताने अपनी विद्याद्वारा पायाहो किंतु चाहैविद्याके पढ़तेसमय या पढ़ातेहुये यद्वा उसका व्याख्यान आदि करनेमें पायाहो सोभी सब दायादोंको न देवै १२२ ॥

भाषि० सहद्वयोः। ऊपर जोयह कहागया कि पिता दादाके हरेहुये धनको निकासने वालाहीलेवै सो केवलअस्थावर धनकी मर्यादाहै कि वहसबधन लेलेवै-किन्तु-स्थावर धनको यदि निकाले तौ केवल चौथाई भाग निज परिश्रमका लेकर शेष तीन भाग सब दायादोंको वराबर बांटिदेवै और उनके साथ एक अपनाभी सम भागलेवै-यथा हशंखः(पूर्वंनष्टांतुयोभूमिमेकश्चेदुद्धरेत्क्रमात्। यथाभागंलभंतेऽन्येदत्त्वांशंतुतुरीयकम्) अर्थात्-शंखने यह कहाहै कि पहले वड़ोंके हाथसे खोई भूमि जो क्रमसे आज तक न निकली हो कोई एक निकाले तौ उसमेंसे चौथाई भाग उद्धर्ताको देकर शेष तीन भाग सभी भ्राता यथाभागसे पाते हैं-निर्वाणतांत्रिक दाय भागमें शिवजी ने स्थावर जंगम दोनोंमेंसे उद्धर्त्ताको दो अंशलेने कहे हैं-यथा(पैतृकानिचवित्तानिनष्टेप्युद्धारयेत्तुयः। दायादानांतद्धनेभ्यउद्धर्त्ताद्व्यंशमर्हति) अर्थात्-बाप दादाके डूबेहुये धनोंको यदि कोई एक निकालै चाहै स्थावर या जंगमही धनहों या दोनों भांतिके निकालै तौ उद्धर्त्ता उनमेंसे अन्यदायादोंकी अपेक्षा दोअंशलेनेके योग्यहै-ध्यान करोकि इन वाक्योंमें परस्पर कोई सा विरोध संभव नहीं है क्योंकि योगीश्वरके वचनानुसार जो उद्धारकिये जंगम धनका सर्वस्व लेलेना उद्धर्ताकोही कहागया सो तौ स्वल्पधन विषयिक मर्यादाहै कि जब किसीने डूबाहुआ थोड़ा जंगमधन उद्धार किया हो जो उसके उस परिश्रमकेही तुल्य या परिश्रमसेभी न्यून प्रतीत होताहो तब तौ किसी दायादको न देना चाहिये (और) शिवजीके वचनानुसार जंगमधनके दो भाग लेकर वांटिदेना उस दशामें संसूचितहै कि यदि पुष्कल धन उद्धार किया हो जिसमें थोड़ाही आयास करनाहुआ हो-और-स्थावरधनमें यहसंतोषहै कि चाहै थोड़ाहो या वहुत हो शिवजीने दो अंशलेने कहे और शंखजीने चौथाई लेकर फिरभी एकभाग सब दायादोंकी वरावर लेना कहा सो इनदोनों मर्यादोंमें यद्यपि किंचित् अन्तरप्रकट होसक्ताहै परकुछविशेष अन्तरनहीं और वहअन्तर दायादोंकी संख्याके आधीनसर्वत्र एकहीसाकुछनहीं किन्तु जहाँजैसीदायादोंकी संख्याहो तैसाविदित होसक्ताहै(दृष्टान्त) जहाँदोही भ्राताहों और वीसाविस्वा भूमिकिसीने उद्धारकरी और उद्धर्ताने चौथाईतक परिश्रमका लेकर शेषपन्द्रह मेंसेआधा वाँटिदिया तौ उद्धर्ताने साढ़ेवारह विस्वेपाये

और दूसरेभ्राताने साढ़ेसात बिस्वेपाये-एवं-शिवजीके वचनानुसार उद्धर्ताने दोभाग लिये और दूसरेको एकहीभागदिया तौभी उसने पौनेसात बिस्वेपाये और उद्धर्ताने साढ़ेतेरह बिस्वेपाये तौ कुछबहुत बड़ाअन्तरनहींहै कि अन्तरकी गिनतीमें आसके और जो तीनभ्राताहों तौ यहइतना अन्तरभी नहींरहसक्ताहै(दृष्टान्त)उद्धर्तानेचौथाईके पाँचबिस्वे लेकर पन्द्रहकेतीन भागकिये तिनमें एकभाग और पायातौ उद्धर्ताने दशबिस्वेपाये उनदोनों भाइयोंने पाँचपाँच-एवं-शिवजीकेवचनानुसार भी तीनभाइयोंमें चारभागकियेगये उद्धर्ताने दोभागोंके दशबिस्वेपाये उनदोनोंने पाँचपाँच यहाँ बालभरका भी अन्तरनहीं आया ऐसेहीचार भाइयोंके(दृष्टान्तमें)शङ्खकेवचनानुसार उद्धर्ताको पौनेनौबिस्वे और शेषतीन भाइयोंको पौनेचारचार बिस्वेमिलेंगे-शिवजीके वचनानुसार उद्धर्ताको आठबिस्वे और शेषतीन भ्राताओंकोचारचार बिस्वेमिलेंगेसो यह अन्तरकुछ अन्तरमें गिनतीनहींहैचाहे तिसएकरीतिसे विभाग कियाजाय(परन्तु) विभागके होतेसमय प्रधानोंको इसन्यायपरभी दृष्टिकर्तव्यहै कि पहलेदोनों मर्यादोंसे कल्पना करिकेदेखैं कि किसरीतिसे उद्धर्ताको कुछ अधिक मिलसक्ता है या किसरीतिसे कुछन्यून मिलसक्ताहै इसहिसावके लगानेपीछे यहभी ध्यानकरैं कि इसभूमिके उद्धारकरनेमें उसकाअधिक परिश्रमहुआहै या थोड़ाही आयासकरनापड़ा है यदिथोड़ाही आयास करनापड़ाहो तौ फिर उसरीतिके विभागको सच्चारावैंजिसमें कुछ न्यून मिलनेकी सम्भावनाहो यद्वा अधिकपरिश्रम से वहभूमि हाथआईहो तौ विभागभी उसरीतिका सच्चा रखना चाहिये जिसमें कुछ अधिक हिसावआताहो(अथानुवादः)जो कि यह बातऊपर अभिप्रायार्थमें कहीथी कि पिताकाधन खोयेविना आपहीपैदाकिया हो सो मैत्रादिक सभीद्रव्योंपर घटतीहै इसलिये उसीशङ्खजीकेवचनकी यहव्याख्या समुझी चाहिये कि-पिताका धनखोयेविना मैत्रधन पायाहो-पिताकाधन उठे विनावैवाहिक धनपायाहो-पिताकाधन खर्चेविना पहिला डूबाहुआधन उद्धारकियाहो-पिता का धन उठेविना विद्याद्वारा पायाहो तौनिज भाईआदि भागियोंको न देवे-अब सिद्धान्त इस्से यहउत्पन्नभया कि पिताकाधन प्रत्युपकारआदि प्रकारोंमेंदेकर यदिउन्हींमित्रोंसे कुछमैत्रधन पायाहो अथवा पिताकाधनप्रत्युपकार या उपायोंमें लगाकर(आसुर)आदि विवाहकियाहो और उसीविवाहके द्वारातत्काल या कालान्तर मेंभीकुछ धनमिलाहो एवं पिताकाधनखर्चिकर पहिला डूबाहुआ धनसमुद्धृत कियाहो-एवं पिताकाधन खर्चिकर विद्यासंग्रहकरीहो और उसीविद्यामें धनपायाहो-सो वह सवधन सभीभ्राताओं और पिताकोभी बाँटिदेना योग्यहै-एवं-जब कि यहनियम सभीमें संघटित हुआ कि पिताकाधन खर्चेविना पैदाकियाहो वहीधनसव दायादोंका नहींहै (तौफिर) पिताके धनकी हानिपूर्वक जो प्रतिग्रह पायाहो सोभी सवको बाँटिदेना योग्यहै(औरजो)यहनियमसभी

में संघटितनहीं कियाजाय किंतु (पितृद्रव्याविरोधेनयदन्यत्स्वयमर्जितम्) यहपूर्वार्द्ध १२१ केमूलश्लोकमेंसे जुदासमुझाजाय और यहनियम केवल इसकाइसीमें रखालियाजाय(तौभिर)यहलाञ्छन खड़ाहोताहै कि मैत्र वा औद्वाहिक आदि द्रव्योंकी प्राप्ति चाहै पिताकाधन विनाश करकेभी हुईहो तौभीउसमें सबकाभाग न होनाचाहिये सो यहबात समाचार से विरोध पावैगी (और)विद्याद्वारा प्राप्तहुयेधनके विषयपर नारदके भी वचनसे विरोध पावैगी-यथाहनारदः(कुटुम्बम्बिभृयाद्भ्रतुर्योविद्यामधिगच्छति। भागंविद्याधनात्तस्मात्संलभेताश्रुतोपिसन्) अर्थात्-नारदने यहमर्यादा नियतकरी है कि जोकोई भ्राताविद्यावान् होजाय वहअपने भाईके कुटुम्बकोपालै और इसीहेतुसे उसके विद्याद्वारा पैदाकियेधनमेंसे अपण्डित भ्राताभी यथावत् भागपावै(नारदकायह वचनउस विद्याकी अपेक्षामें समुझाचाहिये कि यदिकोई भ्रातापिताकाही अन्नखाने या उसीके पढ़ाने या परिश्रम करने या द्रव्यलगाने से विद्यावान् हुआहो) क्योंकि जिसविद्याके धनमेंसे भाग न देनाचाहिये तिसका लक्षण कात्यायनके अग्रोक्तवचन से संसिद्धहै-यथा(परभक्तोपयोगेनविद्याप्राप्तान्यतस्तुया। तयालब्धंधनंयत्तुविद्याप्राप्तं तदुच्यते) अर्थात्- परायाअन्न खाकर या परायेउपयोगसे औरहीसे जो विद्याप्राप्त करीहो तिसविद्यासे जो कुछधन पैदाहोसो धनविद्या प्राप्तकहलाताहै और उसीमेंसे अन्यदायादोंको भागनदेना होसक्ताहै-इसलिये उसवार्त्ताने नारदकेभी वचनसे प्रत्यक्ष विरोधपाया-इसके सिवाय-उसीवार्त्ताकेअनुसारयहभीलाञ्छनआताहैकिमिलेझुलेसब के साथमें रहतेहुये और पिताका धन खातेखोतेहुयेभी यदि कहींसे प्रतिग्रहपायाहो तो अन्य भ्राताओं या पिताको भी उसमेंसे न देनाचाहिये सो यह लांछनभी शिष्टाचार से विरुद्ध है-किन्तु मनुने भी इसवार्त्ता को स्पष्ट करिके कहाहै-यथा (अनुपघ्नन्पितृद्रव्यंश्रमेणयदुपार्जयेत्। दायादेभ्योनतद्दद्याद्विद्ययालब्धमेवच)अर्थात्-सर्वथा यही निश्चितहै कि पिताके धनकाविनाश न करतेहुये निजपरिश्रमसे जो कुछ पैदाकरे सो निजभाइयोंको न देवै और विद्यासेभी प्राप्तहुयेको नहीं (इसमें भी विद्यासे प्राप्तहोना वहीहै कि जैसा कात्यायनके वचन में ऊपर कहचुके और परिश्रमसे उपार्जन करना यह कि नौकरीआदिसेवासे या युद्धादि पराक्रमसे कि जिसमें पिताकाधन खर्च न हो) क्योंजी यहसब निर्णय तौ ठीकहै पर एकइसमें वड़ा संभ्रम देखपड़ता है कि पिताका धन खोये विना जो मैत्रीआदि से धन पायाहो सो भाइयों को न वांटिदेवै यह न कहनाचाहिये क्योंकि ऐसे धनमें विभागकी प्राप्तिही नहीं तो फिर निषेधकरनाभी व्यर्थ है किन्तु लोकमें यहबात अच्छीतरह प्रसिद्धहै कि जो वस्तु जिसने प्राप्त करी वह उसीकाधनहै किसी औरका साझा उसमें नहीं तो फिर वृथा निषेध की क्याआवश्यकता थी क्योंकि निषेधभी उसीके निमित्तमें कियाजाताहै जिसकी कोई भांति से प्राप्ति देख

परे-यद्वा कदाचित् यहउत्तर दियाचाहो कि इसमें किसीने इसप्रकारसे प्राप्तिभी सूचित करीहै सो इसअग्रोक्तवचनसे प्रदर्शितहोगी -यथा (यत्किंचित्पितरिप्रेतेधनंज्येष्ठोधिगच्छति। भागोयवीयसांतत्रयदिविद्यानुपालिनः) अर्थात्-पिताके मरनेपीछे ज्येष्ठ भ्राता जोकुछधन उत्पन्नकरै उसमें छोटोंकाभीभागहै परंतु यदि विद्यानुपालीहों-और सिद्धांतरूपा व्याख्या इसकी यह कि पिताकेजीवतेहुये और मरजाने में भी जबतक सभीभ्रातामिलेरहतेहों जोकुछधनजेठेने या छोटेने या बिचलेनेही पैदाकियाहो उसमें बड़े छोटेसबकाभागयोग्यहै (परंतु)यदि विद्यानुपालीहों-इसव्याख्याकेअनुसार पिताके जीवते और मरेपरभी मैत्रादिकधनोंमें विभागकी प्राप्तिनिश्चितहोतीहै तिसप्राप्तिका निषेधयोगीश्वरने कियाहोगा यहउत्तर देनाचाहो सो यह उत्तर असत्है-क्योंकि-यहां कुछ प्राप्तका प्रतिषेधनहींहै किन्तु यह संसिद्ध निषेधका अनुवादहै बरन इसप्रकरणमात्र में प्रायः वेही वचनप्रदर्शितहुयेहैं जो लोक सिद्धवार्त्ताके अनुवादरूपहैं-अथवा एक यह वचनहै कि(समवेतैस्तुयत्प्राप्तंसर्वैतत्रसमांशिनः) अर्थात्-सबोंने इकट्ठेमिलकर जोकुछपाया वा उपार्जनकियाहो तिसमें सभी समभागीहोंगे-इसप्राप्तविधिका वह अपवादहै कि यदि एकहीनेपाया वा उपार्जनकियाहो तौ उसमें सबकाभाग न होगा-इसप्रकारसे यदि आपसंतोषकियाचाहै तौ फिर (यत्किंचित्पितरिप्रेतेधनंज्येष्ठोधिगच्छति)इत्यादि यहवचन जो ऊपरअभीकहचुके जिसमेंजेठे और छोटेआदिके नामसे जुदी२ व्याख्यादर्शाईगई सो वहकथन बड़ीभूलहै क्योंकि जबइस अग्रोक्तवचनसे सभीमिलकर पैदाकरैं तिसमेंसबका भागठहरा तौ उस वचनसे एकहीके उपार्जन कियेधनमें क्योंकर सबकाभागपहुंचताहै-इसलिये-अब सिद्धार्थरूपा व्याख्या यहसमुझीचाहिये कि योगीश्वर ने मूल श्लोक १२१ वाले उत्तरार्द्धसे लेकर १२२ के अन्त ताईं मैत्र आदि वचनोंसे उसपूर्वोक्त विधिका अपवाद दर्शाया है कि जो जो धन पहले पिताके जीवतेहुये और मरेपीछे भी विभागयोग्य बतलायेथे (और) यहीअपवाद उस वचन काभी ठीकहै कि जो अभी थोड़ीदूरऊपर (यत्किञ्चित्पितरिप्रेते) इत्यादि लिखचुकेहैं (इत्यनुवादः) (ध्यानकरो कि यहअनुवादमात्रकीव्याख्या जो अधिकोक्तिके प्रारम्भ में शंखजीके वचनसे उपरान्तलेकर यहाँतक दर्शाईगई सो कुछ प्रत्येकसमय विचार करनेको आवश्यकनहींहै किन्तु इसे समुझलेनेभरकीधारणा आवश्यकहै क्योंकि जो वार्त्ता पहले अभिप्रायार्थ में वर्णनहोचुकीथी उसीकीदृढ़ता में अर्थवादकीरीतिसे यह अनुवादकहागया-यहअनुवाद ऐसेसमयपर काम आताहै कि जबकोई संसिद्धमर्यादामें कुतर्क या सुतर्क आरोपितकरे अन्यथा जो संसिद्धमर्यादाहै सो सदैवही कार्यसाधकहै-परन्तु-जो कदाचित कोई यहशंका इसमेंकरनेलगे कि सबके साझेमें रहतेहुये बिनबँटे बेटे या भाईकीकमाई केवल उनकाहीधन क्योंकर होसक्ताहै कि जिसके हाथसेउपार्जन

हुआ किन्तु यहविशेषता अगर जुदेबेटे या भाईकीअपेक्षालेकर कहीजाती तौ संभव थी-तहाँ-ऐसीशंकाके निवारणमध्ये यहध्यानकरना योग्यहै कि जो जुदाहै तिसकेलिये विशेषताकहनेकी आवश्यकताक्याथी किन्तु विशेषताउसीकानामहै जोएकप्रकारकी सामान्यवार्त्तामें कुछ विशेषदर्शायाजाय इसकेसिवाय ऐसीशंकामें अग्रोक्त शिवजीके बचनोंपरभी दृष्टिकरनीचाहिये-यथा (पुण्यंवित्तंचविद्याचनाश्रयेदशरीरिणम्। शरीरंतु पितुर्यस्मात्किन्नस्यात्पैतृकंवसु॥ पृथगन्नैःपृथग्वित्तैर्मनुजैर्यदुपार्जितम्।सर्वंतत्पितृसंक्रांतंतदास्वोपार्जितंकुतः॥ अतोमहेशिस्वायासैर्येनयद्धनमार्जितम्। स्वोपार्जितंतदेवस्यात्सतत्स्वामीनचापरः)अर्थात्-शिवजीकहतेहैं किपुण्य और धनऔर विद्याभी यहतीनों वस्तु अशरीरीको नहींआश्रयहोसक्ते किंतुशरीरवान्केही आश्रयरहसक्तेहैं औरशरीरीका शरीरजोहै सोपिताका उत्पन्न कियाहोता इस्से पिताकाही विख्यातहै तौफिर ऐसे शरीरसे उपार्जित कियाधन क्योंकर पिताका न होवे-इसलिये-यहन्यायात्मक निश्चित होताहै किजुदे भोजन वस्त्रोंका व्यवहार जिनकाऐसे पृथक् मनुष्योंसेजोधन पैदाहोसो सबबापकरके संक्रांतहै अर्थात् बेटाचाहै मिलाहो चाहैजुदाहो उसके शरीरसे कमाया हुआधन सर्वथापिताकाहोताहै और जोवस्तुन्यायात्मकरीतिसे पिताकीठहरी वह उसकेअन्य पुत्रोंकोभी सामान्यहै तौ फिर किस धनको स्वोपार्जित कहसक्तेहैं परन्तु इस्से लौकिक व्यवहारोंकीसिद्धि दुर्घटहोजानासंभवहै-इसहेतुसे-हे महेशि यहनियमनिश्चित कियेदेते हैं कि जिसकिसीने जुदे अथवा मिलेमेंभी औरोंकी सहायता विनाकेवल अपनेही आयासों से जोधन आर्जितकियाहो वहीउसका स्वोपार्जित कहलावे किन्तु उसका स्वामी वहीहोता है दूसरा कोईनहीं इसलिये अब इसको छोड़कर फिरभी संसिद्ध मर्यादाका वर्णनकरते हैं)-कोईकोई और वस्तुभी अविभाज्य हुआकरती हैं तिनकोमनुने दर्शायाहै-यथा(वस्त्रम्पत्रमलंकारंकृतान्नमुदकंस्त्रियः। योगक्षेमंप्रचारंचन विभाज्यंप्रचक्षते) अर्थात्-वस्त्र और पत्रनाम वाहन और आभूषण और कराहुआ अन्न और जल और स्त्रियां और योगक्षेम और प्रचारनामद्वारमार्ग इनकोभी न वांटनेयोग्य कहतेहैं-यह अक्षरार्थमात्रकहागया-अब इसीवचनकी व्याख्या अभिप्रायरूप से भिन्न२वचनांतरोंके प्रमाणपूर्वक दर्शाईजातीहै कि (वस्त्र) जो जिसनेपहिरेओढ़ेहों सो उसीकेहोतेहैं चाहै किसीभ्रातापरथोड़ेहों या किसीपर वहुतहों परऐसे धारणकिये वस्त्रोंकाविभाग शिष्टाचारसेभी निंद्य और मुख्यमर्यादासे निषिद्धहै (और) अभिप्राय इसकायह कि जो नवीनवस्त्र घरमेंसंचितहों या दुशालाआदि जो साधारण सभीके वर्त्तावेमें आतेहों तिनका वाँटहोताहै (और) पिताके धारणाकिये कपड़ेयदि पिताकेमरे पीछे विभागहोतो उसके एकादशाह आदि किसी श्राद्धभोक्ता को देदेनचाहिये यह बात अग्रोक्त वृहस्पतिके वचनसे निश्चितहै-यथा(वस्त्रालंकारशय्यादिपितुर्यद्वाहना

दिकम्। गंधमाल्यैःसमभ्यर्चश्राद्धभोक्तेसमर्पयेत्) अर्थात्-पिताकेकपड़े आभूषण पलँगआदि और सवारीआदि जो उसके वर्त्तावेमें रहताहो सोसब उसके श्राद्धभोक्ता को गंधमाल्योंसे अर्चितकरिकै श्रद्धासे समर्पणकरै-एवं-(पत्र) अर्थात् वाहन घोड़ापालकीआदि सवारियोंका विभाग न होना चाहिये यहबात जोमनुके वचनमें दर्शितहुई तिसकाभी अभिप्राय यहीहै कि जोसवारी जिसकेवर्त्तावेमें आती रहीहो सोईउसकेपास रहनीचाहिये चाहैं किसीपर थोड़ेमूल्य की हो या किसीपरबहुत मूल्यकीहो किंतुमूल्य के न्यूनाधिक भावसे विभागन करनाचाहिये परन्तुमूल्यसे उसदशामें विभागहोताहै कि जब एकही दो सवारी साधारण सभीके बर्त्तावेयोग्य हो और उसदशामें भी भाग होताहै कि जबघोड़ा आदि पदार्थोंकी बहुताइतहो या उनघोड़ाआदि पदार्थोंकी सौदागरी व्यापार जिसके होताहो-ऊर्ध्वोक्त और अत्रोक्त ये मर्यादें सबकेवल समविभागकी कल्पनापर होरहींहैं परन्तु यहांपर इतनी विशेषता यह और भी प्रासंगिक दर्शितकरनी आवश्यक ठहरी कि (यदिकदाचित् किसीने विषमविभाग या उद्धार विभाग कल्पित कियाहो तौ उसदशामें एकहीसवारी जो साधारण सबके वर्त्तावेकी होतिसकाभी विभाग मूल्यद्वारा होना आवश्यक नहींहै क्योंकि वहपदार्थ जेठेभाईको उद्धारकी मर्यादासे देदेनाचाहिये यद्वा घोड़े आदि वहुताइतके होनेपर विषम संख्या के हेतुसे भाइयोंके विभागसे जो अधिकवचैं सो जेठेभाईको देनेचाहिये क्योंकि पूर्वार्द्धमूलश्लोक १२० की अधिकोक्तिमें इसविषयकी मर्यादा कथनहोचुकी है किऐसी दशामें भेड़ वकरी और घोड़ाआदि एकखुरवाले पशु जोविषम शेषरहैं सो जेठेभाई को मिलनेचाहिये-तद्यथा(अजाविकंसैकशफंनजातुविषमंभजेत्। अजाविकंसैकशफं ज्येष्ठस्यैवविधीयते)यह मनुजीका वचनउसी अधिकोक्तिमें ब्यौरेवार व्याख्यासहित लिखचुके हैं देखलो) यहवीचमें प्रासंगिक विशेषता कथनकरीगई अवउसी प्रकृत व्याख्यापर दृष्टि करनीचाहिये कि-एवं-(अलंकार) आभूषणका विभागहोना मनुने निषेधकिया तिसकाभी अभिप्राय यहीहै कि जो जिसके शरीरमें या जिसकी भार्याके शरीरमें धृतहो सो उसीकाहोता है-तथाह(पत्यौजीवतियःस्त्रीभिरलंकारोधृतोभवेत्। नतंभजेरन्दायादाभजमानाःपतंतिते) अर्थात् पति के जीवतेहुये जोकुछ अलंकार गहना स्त्रियों करके पहिनाहुआ हो तिसकोदायाद लोगबांटैं नहीं किन्तु उसकाबांट करते हुये दायाद पतित अर्थात् अधर्म्मी होजाते हैं-इस वचन में पहिनाहुआ न बांटै इस नियम से यह आशय पायागया कि जो कुछ अलंकार विना पहिराघरमें रक्खा भिन्न भिन्न भी संचितवन् ममुभ्काजाना हो तिसका भाग होजाना चाहिये और उसका तौ अवश्यही भाग होना कि जो सभी के वर्त्तावे योग्य साधारणहो-एवं-(कृतान्न) अर्थात् कराहुआ अन्न जैसे तण्डुल या लड्डुआ सतुआ आदि जो

थोड़े दिनके खर्चकोसंसिद्ध कियागयाहो सो भी अविभाज्यहै किन्तु ऐसी वस्तुका हिस्साबाँट करना एकतुच्छ वार्त्ताहै इसालिये यथासंभव अवसर के अनुकूल मिलकर सभीको या बिरलोंकोही भोगिलेनायोग्यहै-एवं-(उदक) अर्थात् इस उदक शब्दसे सामान्य जलजो भरेहुये रक्खेहों तिनके बाँटकानिषेधहै और इसीउदक शब्दसे उदकाधार कूप तालाब आदि जलाधारोंका भी भाग लगाना मनुने निषेध किया तिसका यह अभिप्रायहै कि यदि जलाधार दायादोंकी संख्याके समानहों जैसे दोदायाद और दोही कुयेंहों तबतौ एक एक या चारहों तौ दोदोलेलेना कुछ निषेधनहीं है परंतु यदि विषमहों जैसे दोदायाद और कुवां एकहै तब मूल्यदानके द्वाराऐसी वस्तुका विभागहोना परम अनुचितहै किन्तु ऐसी विषमदशामें यथासंभव सभीकाभोग उस पर होनाचाहिये-एवं-(स्त्रियां) अर्थात् दासियां यदि विषमसंख्याहों तौ मूल्यदान के द्वारा उनका बाँट न करनाचाहिये जैसे दोदायाद और दासी एकहै तब ऐसाकरना अनुचित है कि एक दायाद आधामूल्यदेकर दासीलेवे किन्तु ऐसी विषमदशामें यह नियम होसक्ताहै कि एकएक महीना उस्से काम निज २ ओसरेसे लेलेवें यद्वा पखवारा अठवारा आदि जैसा नियम निश्चितहोजाय तैसे कामलेलेना (और जो) दासी भी दायादोंके समानहों तौ एकएक सबके भागमें आजावे (यद्वा) समान भागहोजानेपर भी एकबचे तौ वह जेठेकी भान्यतामें उद्धारसे देदेनी योग्यहै पर मूल्यद्वारा भाग न होगा (परन्तु) यदि ऐसी अवरुद्धादासीहों जो स्वैरिणी व्यभिचारिणी आदि पिताने निजघरमें घेरीहों तौ फिर दायादोंके समान संख्याहोनेपरभी पुत्रोंको विभागमें नलेनीचाहिये किन्तु ऐसी दासी निपट अविभाज्यहैं और उनके पालनमात्र का नियम जैसा किसीमर्यादामें लिखाहोसो कर्त्तव्यहै-इनके विभागका प्रतिषेधगोतम के अग्रोक्त स्मरणसे संसिद्धहै-यथा-स्त्रीपुचसंयुक्तास्ववविभागः-अर्थात्-संयोगवती स्त्रियोंमें विभागनहीं है यह गौतमनेकहा-एवं-(योग) (क्षेम) भी बाँटने योग्यनहीं अर्थात् योग और क्षेम यह दो बातहैं तिनमें योग उनबातोंको समुझना जो अलब्ध लाभ के देनेवाले कारणहों और (क्षेम) उनबातोंको समुझना जो लब्धके परिरक्षण हेतु भूतहों सो इनदोनों बातों के कारण कुछ एकही भाँति के नहीं किन्तु अनेक भाँति के होते हैं इसलिये उनके एक दो स्वरूपभी दर्शाते हैं कि प्रथम तो बिरलोंका यह संमत है कि राजमंत्री आदि महामात्रजन जिनसे अनेक भाँतिके अलब्धलाभ और लब्धका परिरक्षणभी गृहस्थीको उपकारीहोताहै इसलिये इन्हींमें (योग) (क्षेम) यह दोनोंशब्द घटतेहैं कदाचित् ऐसे दोचार या दशपांचहों जिनमें पिताको संबंध रहिता था तो दायादोंको इनका भागलगाना वर्जितहै किन्तु साधारण सभीके उपकारी बने रहें ऐसेही पुरोहित या श्रोत्रिय या वैद्य आदि भी योगक्षेमके कारण कहलातेहैं तिन-

काभी भागलगाना बार्जित है किन्तु साधारण भाव सभीके सब रहेंगे-इसके उपरांत विरलोंका यह भी संमत है कि-छत्र चामर शस्त्र पादत्राण आदि चीजें योगक्षेम कहलाती हैं तिनकाभाग लगाना बार्जितहै किन्तु जो जिसके बर्त्तावे में रहती थी उसीको वह मिलैगी चाहै किसी एक दो भ्रातापर ऐसी वस्तु न हो तौ भी जो जिसकी हो तिसकेपास रहसक्तीहै सोयहबातभी ठीकहै क्योंकि न्यायसेभी दृष्टिकरनी चाहिये कि यदि अभीजुदे होनेका अवसर नहोता मिलेरहे आतेतो उसदशामें जोवस्तु जिसके पास नहींथी सो तिसके भोगमें नहींआती किंतु जिसके नाम से बनीथी उसीके भोग द्वारा जीर्णहोकर विनाशको पहुँचती इसलिये उसमें पूरात्वत्व उसीका निश्चितहोकर अविभाज्य ठहराईगई परंतु इसमेंभी पूर्वोक्त वस्त्रोंके समान मर्यादा सिद्धहोतीहै किंतु यदि शारीरिक वर्त्तावेके सिवाय इनचीजोंकी बहुताइत घरमेंहो जैसेपादत्राण खड़ाऊं जूता आदिके कईजोड़े नवतर संचितहों तौफिर भागलगाना बर्जित नहींहै यहअपवादनाम छूटभी अविभाज्यतापर संसिद्धहै(और)ऐसीदशामें यहभी नियम संभवहैकि यदि संचित वस्तु दायादोंकी संख्यासे थोड़ीहों तौफिर उन्हीं दायादोंको मिलनीचाहिये जिनपर उसवस्तुका अभावहो(यद्वा)सभीपर सद्भावहो और संचित बस्तुदायादों की संख्यासे थोड़ीहों तौ फिर उसभाँतिकी दूसरी किसी ऐसी बस्तुसे समाहारकरके भागलगाना चाहिये जो वहभीदायादोंकी संख्यासे थोड़ीहो अथवा अधिकहोनेके हेतु से समभागहोकर कुछबचरहीहो-इसकेसिवाय उसीयोगक्षेम शब्दका यहभावार्थहै कि-(योग)(क्षेम)अर्थात् इष्टापूर्त्त कर्मतहाँ(योग)तौ इष्टकर्मोंका और(क्षेम)नामहै पूर्त्तकर्मोंका इसलिये अब(इष्ट)और(पूर्त्त)कर्मोंका लक्षण कहना आवश्यकहै तिनमेंपहले इष्टकर्म दर्शातेहैं-यथा(अग्निहोत्रंतपःसत्यंवेदानांचात्र्थपालनम्। आतिथ्यंवैश्वदेवश्चइष्टमित्यभिधीयते)अर्थात्-अग्निहोत्र तपसत्य वेदोंकाअनुपालनआतिथ्यकर्म्म वैश्वदेवकर्म्म यह सब इष्टकर्म्म कहलाते हैं इन्हींको (योग) शब्दके भावार्थमें समुझना सो सब अविभाज्यहैं अर्थात् ऐसेकर्म्म यद्यपिपिताकेही अर्ज्जितकियेहों या पिताकाधन खर्चिकर अर्ज्जित कियेगयेहों तोभी इनकाभाग लगाना वर्ज्जित है-ध्यानकरो कि यद्यपि सुगमतासे यहबात नहीं समुझीजासक्ती है कि इनकर्म्मोंका विभाग किसरीतिसे होसक्ताहोगा जिसका यह प्रतिषेध कियागया परन्तु सूक्ष्मदृष्टिसे विचारकरना चाहिये कि इनसब कर्म्मोंमें से यथार्थभाव जो श्रौत और स्मार्त्त अग्निकेद्वारा साध्यकर्म्महैं तिनका भाग लगाना वर्ज्जितकिया है कुछ इन सभी कर्म्मोंपर यह बात नहीं घटिसक्तीहै (और) आशय इसका यह कि ऐसे श्रौत स्मार्त्त अग्निसाध्यकर्म्मों के भावी फलमेंभी विभागपत्र लिखवानेकामनोरथ कोई न करे और इनकर्म्मोंकी साधनायोग्य जो उपकरणादि सामग्री घरमें हो तिसका भी विभाग नहीं कियाजाय क्योंकि उन

भावीफलोंका मुख्य अधिकारी तो स्वय्यांत् पिताहै और पिताके प्रभावद्वारा उसके सभी पुत्र साधारणफलके अधिकारीहैं और उपस्थित सामग्रीका भाग लगानेसे उस कर्म्मकी साधनामें अतिक्रम खड़ाहोसक्ताहै और अतिक्रमकेहेतुसे निपट उस कर्म्म की निर्म्मलता होजायगी इसलिये उसकी मुख्य साधनाका अधिकारी जेठा पुत्र है और इसीहेतुसे वह सामग्री उसकेपास रहनी चाहिये आगे जो कुछ उसमें लागति की आवश्यकता हो सो सभी भ्राता यथा भाग यथा अवसर के अनुसार दिया करैं और जेठेके अधीन सब समाजीभूत होकर ऐसे कर्म्मकी साधना कियाकरैं और उस कर्म्मकी भी कि जो निजकुलके इष्टदेवकी पूज्यता कहलातीहो तो उनसबका कल्याण है-इसके सिवाय यदि अतिशय सूक्ष्मदृष्टि से विचार कियाजाय तो ऊर्ध्वोक्त सभी कर्म्मोंमें यहबातघटतीहै किन्तु तप सत्य आदि सभी ऊर्ध्वोक्त इष्टकर्म्म ऐसे हैं कि जिनका संग्रह पिताने अधिकता से कियाहो और कदाचित् कोई पुत्रों में से एक या सभी पुत्र यह मनोरथकरैं कि यह भी एक पैतृकधनहै इसके फलादेश रूपसे विभाग पत्र में लिखित करवानी चाहिये सो यह मनोरथ करना पिताके जीवते और मरेपर भी अनुचित और बर्ज्जितहै यह तो (योग) शब्दके वाच्य इष्टकर्म्मोंका स्वरूप अविभाज्यतामें दर्शायागया-अब क्षेम शब्दके वाच्यपूर्त्तकर्म्मों का स्वरूप दर्शाते हैं-यथा— (वापीकूपतडागादिदेवतायतनानिच। अन्नप्रदानमारामःपूर्त्तमित्यभिधीयते) अर्थात् वावली कुवां तालाब आदिका बनाना और देवताओं के नामसे मन्दिर आदि का बनाना और अन्नप्रदान अर्थात् सदावर्त्त आदिका नियत करना और आरामनाम बाग बागीचाओंका लगाना ये सब पूर्त्तकर्म्म कहलातेहैं-तिनको (क्षेम) शब्दके भावार्थमें समुझना और सिद्धान्त इसका यह कि यद्यपि यह चीजें पितानेही निर्म्मित करीहों या पिताका धन खर्चकर पुत्रोंने उपार्ज्जन करीहों तो भी इनका भाग लगाना वर्ज्जित है किन्तु साधारणभाव सभी इनके फलभागी बनेरहैं और ये वस्तु जिनके नामसे बनीहों उसीकेनामसे विख्यात रहीआवैं-यहांतक (योग) (क्षेम) दोनोंशब्दोंकी अविभाज्यता कईभांतिसे प्रदर्शित करीगई सो सबठीक है-परन्तु-इसमें एक थोथी शंका खड़ीहोती है कि अभी ऊपर इष्टकर्मोंकी अविभाज्यता दर्शाईगई सो वेसबही कर्मधर्म्याक्रियामें गिनतीहैं और मनुके वचनानुसार व्याख्याहोती चलीआतीहैऔर १२० वाले मूलश्लोक पूर्वार्द्धकी अधिकोक्तिमें मनुकायह वचनभी प्रदर्शित हुआथा कि(पृथक्विवर्द्धतेधर्मस्ततोधर्म्यापृथक्क्रिया)अर्थात्-जुदे२ रहनेसे धर्मकीवृद्धि हुआ करतीहै इसलिये जुदे रहकर धर्म्याक्रिया जुदीसाधैं (और) इष्टकर्मोंमध्ये श्रौतस्मार्त्त अग्निसाध्य आदि कर्मोंका विभागहोना वर्जितहोकर यहनियम कहागया कि जेठेके अधीनहोकर सबसमाजीभूत भाईकर्मोंकीसाधनाकरैं यह प्रत्यक्षविरोध क्योंकर शांत

होसक्ता है जब कि उनकर्मोंका विभागही नहींपाया तौ धर्म्याक्रिया क्योंकर जुदी हो सक्तीहै और क्योंकर धर्मकी वृद्धिहोगी-सो-इसशंकामें केवल समुझकाही अंतर है कुछनियमोंका विरोध नहीं है क्योंकि यहांपर उन्हीं इष्टकर्मोंका विभागहोना वर्जित कियागया जो पिता के उपार्जित हों या पिताकाधन खर्चकर उपार्जन किये गये हों जिनको पैतृक धनमेंकोई गिनती करसक्ताहो और मनुके उसबचनका सिद्धांतयहीहै कि जुदेहोकर निज उद्योगसे यदि अपनीधर्म्याक्रियानवीन कल्पितकरैं तौ अधिक श्रेष्ठबात है कि उस्से जुदी२ धर्मकी वृद्धिहोगी क्योंकि धर्म्याक्रिया कुछ केवलइन्हीं कर्मोंकानाम नहीं है जिनकी अविभाज्यता परयह शंकाखड़ी करीगई अर्थात् धर्म्या क्रिया गृहस्थीके शतधा हुआकरती हैं तिनकी और इनकीभी साधना निजउद्योगसे जुदी कल्पितकरैं और जेठेभाईके अधीन उसअविभाज्य पैतृकधर्म्याक्रियामें भी कुल पूज्यताकी रीतिसे समयानुकूल साथी बनेरहैं अन्यथा जो जुदी कल्पित करनेमें अ-समर्थहोंवे उसमें तौ अवश्यही साथी बनेरहैं जैसे पिताके अनुगामीहोकर साथीहोते थे क्योंकि उसजेठेको पिताकी धर्म्यादिक्रियासाधन करनेके निमित्तसे उसीकी पगड़ी सौंपीगई और उसीके स्थानीभूत प्रधानता अर्पित करीगई है-इसके सिवाय- यदि किसीको यह शंका शेषरहीहो कि यह व्याख्यातौ सबठीकहै पर(योग)१और(क्षेम) २ का भावार्थ (इष्ट) १ और (पूर्त्त) २ कर्मोंपर किसहेतुसे घटायागया सो इसबातमें लौगाक्षिका यह अग्रोक्त वचन प्रमाणहै-यथाहलौगाक्षिः (क्षेमंपूर्त्तंयोगमिष्टमित्याहु स्तत्त्वदर्शिनः । अविभाज्येचतेप्रोक्तेशयनासनमेवचेति) अर्थात्-इसबचनमें लौगाक्षि ने यह कहाहै कि-क्षेमतौ पूर्त्त कर्मोंकानामहै और योगनामहै इष्टकर्मोंका यहनिश्चया-त्मक तत्त्वदर्शीलोग कहते हैं इसमें संशय नहीं करना यह दोनोंही अविभाज्य कहे गये और शयनासनभी अर्थात् शयन शब्दसे पलँग आदि और आसन शब्दसेवि-छाने वा बैठनेकी चीजें चौकी पीढ़ा आदि समुझना जो जिसके भोगमें रहतीहो उसी को मिलसक्तीहै विभाग उसमेंनहीं(पर) वस्त्रादिकोंके समान शयनासनभी जैसा ऊपर सब कहचुकेहैं कि वर्त्तावेके सिवाय जो नवीन घरमें संचितहो सो अविभाज्य नहींहै (यहछूटजैसी वस्त्रादिकोंमें सर्वत्र दर्शाईगई तिसको इष्टापूर्त्तमें संयुक्त न करनीचाहिये वरन उसमें इसछूटकी प्राप्ति निपट असंगतहै) योगक्षेमकी व्याख्यासे अब निपटे-एवं-(प्रचार)भी अविभाज्यहै अर्थात् घरबाग बड़ा नौहरा आदि स्थानोंके निकासको प्रचारनाम कहतेहैं जिसमेंहोकर सबसाधारणोंका प्रवेश निर्गमहोसक्ताहो अभिप्राय इसका यह कि ऐसे बड़े स्थानोंका खंडात्मक विभाग होजानेपरभी यह आवश्यकता नहींहै कि उनके प्रधानद्वारोंकेभी खंडकियेजायँ किंतु एकहीमुख्य मार्गसे सबसाधार-णोंका आनाजाना होसक्ताहै (यद्यपि प्रधान द्वारकेनाममें यहव्याख्या लिखीगई परंत

यथार्थसे (प्रचार) उसनिकासको समुझना जो प्रधान द्वारकेआगे मार्गसहित आँगन होता जिसे सहनभी यावनभाषासे कहते हैं (पूर्वोक्त मनुके वचनमें जोकोई २ वस्तु अविभाज्य कहीथीं तिनकी व्याख्या अब निश्शेषहोचुकी और इसव्याख्यामें क्षेत्रका विभागहोना कुछ निषेध नहींकियागया बरन योगीश्वरकेभी मूलवाक्योंसे क्षेत्रका विभागहोना संसूचित है-परंतु-एक उशनाके वाक्यमें क्षेत्रभी अविभाज्य पायाजाता है तिसका कारण प्रकट करनेकेनिमित्तसे वहवाक्यभी दर्शातेहैं-तद्यथा(अविभाज्यंसगोत्राणामासहस्रकुलादपि। याज्यंक्षेत्रंचपत्रंचकृतान्नमुदकंस्त्रियः) अर्थात्-उशनाने यह कहा है कि गोत्रोंकी सहस्र पीढ़ीतक सहस्रों कुलहोजानेपरभी (याज्य) और (क्षेत्र) ये अविभाज्यहैं तथैव सवारी और कराहुआअन्न और उदक और स्त्रियाँभीअविभाज्य हैं-इन सभीचीज़ोंका व्याख्यान ऊपर होचुकाहै केवल (याज्य) और (क्षेत्र) इनदोहींसे अपेक्षा यहाँपर शेषहै तिनमें याज्यशब्दका भावार्थ यागस्थान और देवताकी प्रतिमापरभी आरोपितहै-यहीवार्ता स्मृति व्याख्यानामा ग्रंथके दाय भागमें लिखीहै कि (याज्यंयागस्थानंदेवतावा) अर्थात् याज्यशब्दसे यागस्थानकीभूमि अविभाज्यहै और देवताकी प्रतिमाभी मूल्यादि प्रकारोंसे अविभाज्य है चाहे केवल प्रतिमाहो या मूर्ति सहित मंदिरहो-सो-यह दोनों वस्तू इसी अधिकोक्तिमें इष्ट कर्मोंकी व्याख्यासे अविभाज्य सूचित होचुकी हैं इसलिये केवल (क्षेत्र) कीही चर्चा करनी आवश्यकहै कि यद्यपि उशनाने क्षेत्रभी अविभाज्य दर्शितकिया और कोईसा विशेषण उन्होंने नहीं प्रदर्शितकिया कि वह किसप्रकारका क्षेत्र अविभाज्य होसक्ताहै इस्से यहबात जानी जाती है कि अवश्यही किसी कालांतर प्राक्तन कालमें इसबंधनकी परिपाटी प्रचरित होगी कि सहस्रोंकुल पर्यंत सगोत्री सब साधारण फलके भागी वनेरहें पर भूमिका खंडात्मक विभाग न होनेदेवें परन्तु वर्तमानमें इसबंधकी परिपाटी अब नहीं है यद्वा अद्यापि किसी देशविशेष या वर्णविशेषमें प्रवृत्ति इसकीहो या न हो केवल भूमिका स्वरूप यथावस्थित बनारहनेकी अपेक्षासे उसकी महिमाकी प्रशंसामें उत्कर्षमात्रहो किंतु यथार्थसे इसकालमें किंचित् भूमिभी दायादोंमें विभक्तहो जाती है और यही आशय मनु वा योगीश्वरसे भी संसिद्धहै-इसीलिये श्रीमद्विज्ञानेश्वर मिताक्षराकार ने यह लिखा है कि उशना के वाक्यमें क्षेत्रकी अविभाज्यता जो दर्शित हुई है सो वह सर्व साधारण क्षेत्रोंकी अपेक्षा में नहीं समुझनी किंतु प्रतिग्रहसे पाईहुई भूमि और ब्राह्मण से उत्पन्नहुये क्षत्रियाणी आदिके पुत्रोंपर समुझनी क्योंकि इस वार्तामें यह अग्रोक्त स्मरणभी प्रमाण है-यथा (नप्रतिग्रहभूर्देयाक्षत्रियादिसुतायवै। यद्यप्येषांपितादद्यान्मृतेविप्रासुतोहरेत्) अर्थात्-प्रतिग्रहसे पाईहुई भूमि क्षत्रियाणी या वैश्यानी आदि से पैदाहुये पुत्रों को न देनी चाहिये यद्यपि पिता इनको प्यार के

हेतु से देदेवै तौ पिता के मरने पीछे ब्राह्मणीका बेटा उनसे छीनलेवै यह मर्य्यादा निश्चित है-(प्रतिग्रह) से पायाहुआ क्षेत्र यह इस बचनका विशेषण लेकर उशना के वचन में संयुक्त करनेके निमित्त से विज्ञानेश्वरने (याज्य) शब्दको क्षेत्रका विशेषण माना और इसप्रकारसे अर्थान्वय कियाहै कि (याज्यंयाजनकर्म्मलब्धंक्षेत्रं) अर्थात् याजन कर्मकरानेसे प्रतिग्रहमें पायाहुआ क्षेत्र सो क्षत्रियाणी आदिके पुत्रोंको नदेवै यद्यपि यह अर्थान्वय तौ सर्वथा ठीकहै और आधुनिक लेखकभी इसीको प्रमाणकर सक्ताहै क्योंकि इस प्रतिग्रह भूमिको छोड़कर अन्य सबसाधारण क्षेत्रोंका विभाग होना संप्रतिलोकमें भी देखपरताहै और मनु वा योगीश्वरकेभी वाक्योंसे विभागहोनाहीसंसूचितहै तौ फिर क्योंकरएकउशनाके वचनानुसार सबसाधारण खेतोंकी अविभाज्यता मानीजाय जिसमें लोकविरोधी मर्यादा प्रकट होती है इसलिये उसवचनकाभी अर्थान्वय इन्हीं वचनोंके आधीन कियागया-परन्तु- यथार्थसे जिस ध्वनिके साथ उशनाने वह वचन उच्चारण किया उस्से प्रत्यक्ष प्रतीत होताहै कि सर्व सामान्यखेतोंकी अविभाज्यता किसीगूढ़हेतुसे दर्शाईहै क्योंकि (याज्य) शब्दका मुख्यात्मक अर्थ वहीहै जो स्मृतिव्याख्यानामा ग्रंथकेअनुसार पहिले यागस्थान और देवताकी प्रतिमापर आरोपितहोचुका तौ फिर केवल (क्षेत्र) शब्द जो विशेषण विनाशेषहै वह प्रतिग्रहलब्धाभूमिके भावार्थमें क्योंकरमानाजाय-और जो यहकल्पना आरोपितकरी जावै कि निजउशनानेभी वहीभावार्थरक्खाहोगा जो विज्ञानेश्वरके अर्थान्वयसे घटाया गया कि(याज्यकर्मसे पायाहुआक्षेत्र)अविभाज्यहै तो फिर इसकेसाथ क्षत्रियाणी आदि केपुत्रोंकी योजनाभी आवश्यकथी कि जिसका कोई चिह्न उसवचनमें नहींहै-यदि इस में भी यह व्यर्थकल्पनाकरीजावै कि उसप्रतिग्रहलब्धाभूमिकी समस्यामात्रसेही उन पुत्रोंकी योजना मानसक्तेहैं चिह्न होने या न होनेकी आवश्यकतानहीं-तौ फिर उशना का यह सारावचन सबजातोंके निरादर सहित केवल ब्राह्मणकेही पक्षमें रहाजाताहै और सहस्रकुलकी अवधिभी निरर्थकहुईजातीहै इसकेसिवाय उशना प्रत्यक्ष अपने वचनमेंकहतेहैं कि(अविभाज्यंसगोत्राणां)अर्थात् सगोत्रीलोगोंको अविभाज्य है यह सगोत्रशब्द केवल सजातीपुत्रोंका बोधकहै कुछ इस्से भिन्नजातीपुत्रोंकाभाव निश्चित नहींहोसक्ता और उशनाकी कविता ऐसीनहीं है जिसमें कोईभी असंगतवाक्य होनेकी संभावनाहो उशनालोकप्रसिद्धहै-किन्तु-उशनाकेवचनोंमें क्षत्रियाणीआदिपुत्रोंका निपट कुछ सम्बन्ध या संसर्गतक नहीं है और प्रतिग्रहलब्धा भूमिकाभी प्रयोजन उसमें नहीं है (याज्य) शब्दजुदाहै और (क्षेत्र) शब्द जुदाहै और साफ़ उशनाने सामान्य भूमिकी अविभाज्यता किसी परमगूढ़ हेतुसे दर्शाईहै जिसहेतुका कथन बड़ादुर्घट और विस्तारवानहै परन्तु उनकेतात्पर्यका संक्षेपआशयइतनाहै कि पिताकी उपार्जन

करी क्षेत्रआदि भूमि यह ऐसा उत्तम रत्नहै जिस्से नर जातीमात्र सबजातोंको नाना भाँतिके फलप्राप्तहोते और होसक्तेहैं तिसको सब दायादामिलकर निजनिज स्वत्वके अनुसारभोगें किन्तु सहस्रोंपीढ़ीतक भी चाहै वंशकेविस्तारसे अनेकधाकुलहोजावें तौभी उसके उत्पन्नहुयेफलमेंसे निज निज अंशके अनुसार भागीरहैं पर उसभूमिके टुकड़ेटुकड़े न करडालें तौ उसकुलकाकल्याणहै और भूमि यथावस्थित बनीरहसक्तीहै अन्यथा खंड खंड होजानेसे यथावकाश भूमि नष्ट होती चलीजातीहै-(सो) इस प्रतिषेधकी चोटको हेतुगर्भित आशय से उशना ने उस ध्रुवातक पहुँचायाहै कि जब खेतमात्र भूमितक अविभाज्यहै तौ जिसके घरमें छोटे मोटे भी कुछराज्यकी भूमिहो उन दायादोंको अवश्यही ऐसा करना अनुचित और प्रतिषिद्धहै किंतु उनको मनुकी कही उस मर्यादापर आरूढ़ होनायोग्यहै कि जेठाभाई राज्यका मुखियाहो और सब छोटेभाई उसके पुत्रोंवत् अनुगामी रहकर निजनिज स्वत्वकोभोगें-इसी आशयपर शिवजी का वाक्य भी पहले दर्शितहुआथा कि (बहवस्तनयायत्रसर्वेतत्रसमांशिनः। ज्येष्ठेराज्याधिकारित्वंतत्तुवंशानुसारतः) इसप्रकार से यह मर्यादा भी कुछ प्राक्तन कालकेहीलिये नहीं किन्तु त्रैकालिकहै बरन अद्यापिबहुधा संचरितहै कि जहांदायादों में सुसंमतिहो परन्तु मनु या योगीश्वरने प्रायः दायादोंकी विरुद्धाप्रकृतिके ध्यान से सामान्य क्षेत्रोंकी अविभाज्यतापर आग्रह नहीं रक्खाहै किन्तु दायादोंकी इच्छा पर आरूढ़ करिके छोड़दिया-परन्तु-(न प्रतिग्रहभूर्देया) इत्यादि वचनके आशय को खैंचकर उशनाके निरपेक्ष वचनमें समर्पितकरना यहआधुनिकलेखककेविचारसे असंगतहै चाहै उस्से कोईसी हानिकीसंभावनाहो या न हो-यहांतक अविभाज्य द्रव्यों के स्वरूप लक्षण सब दर्शायेगये (परन्तु) एक पितृप्रसादवस्तुभी अविभाज्यहोतीहै तिसकाव्यौरा आगे १२६वाले पूर्वार्द्धमूलश्लोकसेदेखो-इसकेसिवाय-नियमातिक्रमसे उपार्जित कियाधन अविभाज्यनहींहोता तिसकाव्यौरा अभीअनंतर वर्णनहोचुकाहै अर्थात् यहांसे छःसातपृष्ठ पहले इसीअधिकोक्तिकेप्रारंभमें जो अनुवादवर्णनहोचुका तिस अनुवादमें यह आशय दर्शायागयाथा कि पिताकाधन खर्चिकर या उसके आगमकी हानिकरिके जोकुछ किसीने पैदाकियाहो सो सबको बांटिदेनाहोगा क्योंकि वह नियमोंके अतिक्रमसे उपार्जनहुआ है-यहांपर नियमोंके अतिक्रमका रूप इसरीति से समुझनायोग्य है कि केवल अपनेही आयासों से उपार्जन करना आदि अनेक नियम होतेहैं जिनसे पैदा किया धनकोई और नहींलेसक्ता परन्तु जब ऐसे निर्मल नियमोंको उलांघिकर धन पैदाकियाजाय दृष्टांत जैसा ऊपर कहाथा कि पिताकाधन खोइकर कुछ पैदाकरै तौ यह नियमका अतिक्रमहुआ दूसरा दृष्टांत जैसे पिता की पुरोहिताई यजमानीमें से जो धन अवश्यही आनेवालाथा किसीएक पुत्रने उसी को

उपार्जन किया तौ निस्संदेह पिताके आगमकीहानि उसनेकरी और नियमके अति-क्रमसे धन पैदा किया इस्से यहधन सबको बाँटिदेना होगा इत्यादि और भी अनेक दृष्टांत समुझिलेने और प्रयोजन इसका यह कि ऐसे नियमातिक्रमसे उपार्जितकिये द्रव्योंकी अविभाज्यता नहींहोती है इस्से उस अविभाज्यताका निराकरणभी उसी अनुवादमें संसिद्धहोचुकाहै संशय नहींकरना-यहांतक अविभाज्य द्रव्योंकी व्यवस्था सिद्धहोचुकी उसमें अविभाज्यता का यथार्थ लक्षण समुझेजानेके निमित्तसे एक यह वार्ताभी यादरखने योग्यहै कि अविभाज्यता दो भांतिकी होतीहै पहली (एकात्मक) और दूसरी (सर्वात्मक)-तिनमें एक पहलीका यह लक्षणहै कि अविभाज्य वस्तु एक-हीदायादकी होजाती है उसमें किसीको विभाग नहींमिलता और आगेकोभी किसी का साझा उसमें नहीं रहताहै (जैसे) निज अपनी कमाईका द्रव्य या पिताका दिया हुआ प्रसाद आभूषण आदि या पहनेहुये कपड़े आदि अनेक चीज़ें ऐसी होतीहैं-दूसरी का यह लक्षणहै कि अविभाज्यवस्तुका विभाग नहींहोता और मूल्यदान के द्वारा कोई एकनहींपासक्ताहै पर आगेको वहसभीका धनकहाता और साधारण उस-के सभीस्वामी गिनेजाते और उसवस्तुके उत्पन्नहुये फलों में सब दायादों का भोग भाग या तो जुदाबाँटिकर या मिलाझुला सबहीके भोगनेमें आताहै (जैसे) बाग या क्षेत्रकाउत्पन्न हुआ फलजुदा २ बाँटिकर भोगते हैं या कूपकाफल उदकहै सो सभी मिलकरभरते पीतेहैं या यदि क्षेत्रसंबंधी कूपहो तौ आगे पीछे अवसरसे सब निज२ खेत सींचतेहैं या दासीहो तौ ओसरोंअनुसार कामलेते हैं या (याज्य) वस्तुचाहै या-गस्थानकी भूमिहो या देवताकी प्रतिमाहो या मंदिरहो सभीकेवर्तावमें आतीहै ऐसेही (योग क्षेम) के भावार्थवाली इष्टापूर्त संबंधी सभीचीज़ें सब दायाद मिलकर वर्त्तावमें लातेहैं-इसप्रकारसे सभी अविभाज्यमात्रद्रव्योंमें यथार्थसे दो भांति समुझलेनी-और यद्यपि इसीका तीसराभेद एकमूल्यात्मक अविभाज्यता भी कथनमात्रमें आतीहै कि उस वस्तुका स्वरूप तौ खंडात्मक नहींहोता पर मूल्यदान के द्वारा कोई एक पासक्ता है दृष्टांत जैसे पशुएक और अंशीदोतीनहों या स्थावरधनमेंदूकान एक औरदायाद अनेकहों-परन्तु-यथार्थसे इसकानाम अविभाज्य नहीं कहसक्ते किंतु अविभाज्य वस्तु वहीहै कि जिसकोस्वरूप का खंडात्मक विभाग होसकनेका अवकाशनहोते औरहोते हुयेभी विभाग होनेकानिषेध और मूल्यदानके द्वाराभी विभाग होनेका प्रतिषेधपाया जाय(अन्यथा)जिसवस्तु का विभाग मूल्यदानकेद्वारा होसकना संभवहै ऐसीसभीवस्तु उसदशामें होसक्तीहै कि जब अनेक दायादों में वस्तुएकहो इस्से उसदशाको अवि-भाज्यनामसे गिननी नहींकरना किन्तु अविभाज्यधन दोहीभांतिकेहोते हैं जिनकाचर्चा ऊपरहोचुकाहै-और-जो यहअग्रोक्त शिवजीकावाक्य पहलेभी कहीं प्रदर्शितहोचुकाहै

कि-(स्थावरस्यचरस्यापिविभागानर्हवस्तुनः। मूल्यंवातदुपस्वत्वमंशिनाविभजेन्नृपः) अर्थात्-ऐसी स्थावर या चरवस्तुका कि जो विभागकरनेयोग्य न हो तिसका मूल्य अथवा उपस्वत्वनाम उपलाभ उसमें जो कुछ होताहो सो राजासब अंशियोंपरबँटवा देवै-सो-इसवचनकाभी सिद्धांत यहीहै कि जो वस्तु अविभाज्य धनमें गिनती न हो किंतु विभाग लगानेयोग्यहो परन्तु स्वरूप उसका खंडात्मक न होसक्ताहो जैसाअनेक दायादोंमें एक पशुका होना तो इसदशामें निस्संदेहराजा उसका मूल्य कल्पित करिकै किसीएक दायादसे सब दायादोंको दिवावैअथवा कोई उपलाभदायकस्थावर वस्तुहो जैसेअनेक दायादोंमें एक दूकानहै कि उसके खंडखंडहोनेसे किसीकेभीकाम नहीं आसक्तीहै तब उसका उपस्वत्वनाम भाड़ा जो आताहैतिसके अंश कल्पितकर देवै कदाचित् उपलाभउसमें नहीं आताहो तो उसकाभी मूल्यदानकेद्वाराभागहोजावे या दायादोंमें सुसंमति हो तो सबकीसाझेरही आवै परन्तु यहवार्ता कुछ अविभाज्य लक्षणमें गिनती नहींहै-अब इस अविभाज्यताके प्रसंगमात्र से आवश्यक जानिकर एक विशेषवार्त्ताभी इसीस्थलपर दर्शातेहैं कि ऊर्ध्वोक्त अविभाज्यताकी मर्यादोंसे सर्वथा यह सिद्धांत निश्चितभया कि यदि पिताकाधन बिनाशिकर जो कुछ किसीपुत्रने उपार्जन कियाहो सो अवश्यही सब दायादोंमें विभक्त होजाना चाहिये परन्तु वह उपार्जन करनेवाला उसमेंसे दोभागपावैगा यहबात वासिष्ठके अग्रोक्त वचनसे संसिद्ध है-यथा(येनचैषांस्वयमुपार्जितंस्यात्सद्व्यंशमेवलभेत)अर्थात्-जिसने पिताकाधनखर्चि कर आपहीएकल्ले पैदाकियाहो वहदायाद इनदायादोंके साथउस पैदाकिये धनमेंसेदो अंशपावे अन्यसब दायाद एकही एक-और-जोकि निर्व्वाणतांत्रिकदायभागमें सदाशिवजीके वचनानुसार ऐसेधन की निपट अविभाज्यता कहीगई तिसकाकारण कुछ और है सो अग्रोक्त वचनसे प्रतीतहोगा-यथा (एकेनपितृवित्तेनयत्रवित्तमुपार्जितम्। पित्र्येसमांशादायादानलाभार्हाविनार्जकम्)अर्थात्-शिवजीने यहकहा है किजहां एक ही किसी दायादने पिताका धनलगाय कर एकल्ले कुछधन पैदाकियाहो तहांउसपिता के धनमें तो सभीदायाद समभागी होंगे पर उसलाभमेंसे लाभकर्त्ताके सिवाय और कोईभी न पावैगा-सो-इसवचनमें यहआशय प्रत्यक्षहै कियदि पिताकाधन यथावत् वनारखकर लाभकियाहो तो लाभमेंसे किसीको न देवै(और)ऊर्ध्वोक्तवचनोंका वहआशय प्रत्यक्षथा कियदि पिताके धनका निपट स्वरूपनाश करिकै उस्सेकुछ अधिक पैदा किया हो तो वह सभीदायादों को बांटिदेवैपर आप उसमें दोअंशपावे १२१।१२२॥

अब निचले मूलश्लोक से वह विशेषता दर्शावेंगे कि जब सभी मिलकर पैदाकरें तब कैसा भागहोना चाहिये-सो-उस निचली वक्ष्यमाण विशेषता को अग्रोक्त दो अंशोंके (अपवाद) में समुझना १२१। १२२॥

सामान्यार्थसमुत्थानेविभागस्तुसमःस्मृतः १२३ पूर्वार्द्धोऽयम्॥

ऐ०—सामान्य धनके समुत्थानमें विभागभी समानहोना कहाहै अर्थात् जब ऐसी दशा उपस्थित हो कि जबतक भाइयोंका धन बँटानहीं हो ऐसे साधारण धनका समुत्थान कहिये बढ़ाना किन्तुखेती या बाणिज्यादि व्यवहार उसीपैतृक धनसेयदिसभी भ्राता मिलभुल करतेहों फिर चाहै किसीएक भ्राताका उद्योग या परिश्रम या चतुराई कुछ अधिकतर भी हो कि मानों यह एकहीसब कुछकरताहै और इसीकी कर्तूतिसे धन पैदाहुआ तौफिर ऐसीदशामें उसप्रधानअर्जयिताके दो अंश न होंगे किन्तुउसको भीसब दायादोंकी बराबर भागमिलै ऊर्ध्वोक्त दोअंशोंकी अपेक्षासे(अपवाद)कास्वरूप इसमें यहीहै कि ऐसीदशाको छोड़कर अन्यत्र दोअंशोंका भागीहोसक्ताहै जैसा वसिष्ठ के वचनानुसार कहाथा किवह एकल्लाठेठ अपने ढँगसे पैदाकरै किंतु और कोई दायाद उसकेव्यापारमें सहायक न हो केवल पिताका धन खर्चकियाहो १२३॥ यहांतक पैतृक धनमें पुत्रोंकाविभाग जैसा होनाचाहिये सो दर्शायागया और उसीकी अपेक्षासे अविभाज्य धनभी इस परिच्छेदमें दर्शायेगये और साथहीउनके अपवाद भी यथायोग्य यत्रतत्र दर्शायेगये सोसब केवल पिताके उपार्जित कियेधन संबंधमें समुझना और जहांकहीं पैतामह धनका प्रसंगहो तहांभी अविभाज्यताके लक्षण सबयेही समुझिलेने (और) पुस्तकरूपी विद्याधन चाहैबाप या दादाका उपार्जितहो उसमें मूर्ख पुत्रोंकाभाग नहीं होता केवल पण्डित बेटेपावेंगे-अब-नीचे के परिच्छेद से पैतामह धनमें पौत्रोंका विभाग वर्णनहोगा १२३॥

अथ पैतामहधनविषयिकविभागविशेषविवेकोनामसप्तचत्वारिंशःपरिच्छेदः ४७॥

इस सैंतालीसवें परिच्छेद में पितामहके छोड़ेहुये धनका विभाग जो पौत्रों के सम्वन्धसे होताहै तिसकाकुछ विशेष प्रकार जानाजायगा॥

अनेकपितृकाणांतुपितृतोभागकल्पना १२३ उत्तरार्द्धोऽयम्॥

अक्ष०—अनेकपितृक पौत्रोंकी भाग कल्पना निज पितासेही १२३॥

अभि०—यदि अनेक बापवाले पोते बहुतहों तौ दादाकेधनमें उनके भागोंकी कल्पना उनके बापोंकेही द्वारा करणीयहै किन्तु पौत्रोंकी स्वरूप संख्या द्वारानहीं-आशय इसकायह है किजब ऐसेकई पोतेहों जो एकहीबापसे पैदाहों तब तौ निस्संदेह उन्हीं पौत्रोंकी स्वरूपसंख्या से विभागहोता है परन्तु जबकई बापोंसे बहुतेरे पोतेहों तब उनपोतोंकी स्वरूपसंख्यासे अपेक्षानहीं किन्तु केवलउनके बापोंकी स्वरूप संख्यासे विभागहोगा फिर चाहै किसी पोतेका बापऐसे अवसरमें जीताहो या न हो कुछ इस बातपर तर्कणानहीं है १२३॥

भाषि०—ऊर्ध्वोक्त मर्यादा मध्ये उदाहरण दर्शाते हैं कि जैसे एक दादाके चारबेटे

वह चारोंभ्राता जुदे न हुयेहों और चारों निजनिज भार्या में पुत्र उत्पादन करिकै स्वर्वासी होजायँ उनमें एकभाईके चारबेटे दूसरेके तीन और तीसरेकेदो और चौथे के एकहीहो इसरीतिसे दशपोते जिनके चारबापथे सो मरगये उनके मरेपीछे दादा के धनमें दशपौत्रोंने विभाग करनाचाहा तब दशभाग न होंगे किन्तु चारभागहोंगे जिनमें एकभाग उनचार पोताओंको और एकभाग तीनपोताओंको और एकभाग दो पौत्रोंको और एकभाग एकहीपोतेको मिलैगा-यहीन्याय उसदशामें भी स्वीकार है कि जब दादाके कोईपुत्र मरजायँ और कोई बहिजायँ किन्तु विदेशमें जाकर जिनकापता न लागै या संन्यासीहोजायँ तौ उनके बेटे भी बापहीका भाग पायाकरते और आपसमें फिर बँटकरलेते हैं-यही विधान शिवजीने कहाहै-यथा (अजीवत्पितृकःपौत्रःपितृव्यैःसहपार्वति । पितामहस्यद्रविणात्स्वपितुर्दायमर्हति) अर्थात्-शिवजी ने कहाहै कि हे पार्वति जिसपोताका पितानहो वह पोताभी अपने दादाके धनमें से पितृव्योंके साथ निज पिताका विभाग पानेयोग्यहै-इत्यादि प्रमाणोंसे यह व्यवस्था वाचनिकी नियतहुई समुझो क्योंकि इसमें और कोई नियम नहीं घटिसक्ताहै वाचनिकी व्यवस्था वही कहलाती है जो किसी पूर्वोक्त या उत्तरोक्त नियमके होतेहुयेभी उस मुख्य नियमको छोड़कर औरही किसीनवतर वचनसे संसिद्धकरीजाय(दृष्टांत) जैसे यहीव्यवस्था वाचनिकी इसहेतुसे कहलाईहै कि पूर्वोक्त मुख्य वह नियम जो (बाप और दादाकेभी धनमेंस्वत्व जन्महीसे) कहाथा तिसको छोड़कर (और) उत्तरोक्त वक्ष्यमाण मूल श्लोकवाला नियम जो (बाप बेटा दोनोंकातुल्यात्मक स्वामित्व दादा के धनमें) बतलावैंगे तिसकीभी उपेक्षाकरिकै केवल अत्रोक्त (पितृतोभागकल्पना) इस नवतर वचनसे संसिद्धकरीगई कि पिताकेही द्वारा उनके भाग मिलसक्तेहैं-वाचनिकी अर्थात् एक वचनमात्रसे संसिद्धकरीगई १२३ अब निचले मूल श्लोकसे पैतामह धनका विभाग उसदशामें प्रदर्शितकरैंगे कि यदि पौत्रोंकापिता जीताहो और अपने भाइयोंसे भी जुदाहोचुकाहो अथवा उसके भ्राता कोई न हों १२३ ॥

भूर्यापितामहोपात्तानिबंधोद्रव्यमेवच । तत्रस्यात्सदृशंस्वाम्यंपितुःपुत्रस्यचैवहि १२४ ॥

मक्ष०—जो पितामहकी उपात्तकरी भूमि या निबंध या द्रव्यहो तिसमें पिता और पुत्रकाभी स्वाम्य सदृशहै १२४ ॥

अभि०—यहवचन उसअपेक्षामें प्रदर्शितकियाहै कि यदि कोई यह संदेहसेपूछे कि-जिन पौत्रोंका बाप अपने भाइयोंसे निजपिताका धन बाँटिकर विभक्त होचुकाहो या जिसबापके भ्राता निपटनहों इसहेतुसे निजपिताकाधन सभी उसनेपायाहो तौ इस प्रकारके पैतामह धनमें पौत्रोंका विभाग उनके बापके जीतेजी क्या न होना चाहिये क्योंकि इस्से पहले ऊपरले वाक्यमें बापोंके मरेपीछे (पितृतोभागकल्पना) यह कह-

चुके हैं कि मरेहुये बापोंकेहीद्वारा भाग मिलसक्ता है (अथवा) इसप्रकारके पैतामह धनमें पौत्रोंका विभाग उनकेबापके जीतेहुये क्या बापहीकी इच्छासे होसक्ताहै क्योंकि जो धन बापके हाथमें आचुका सो यदि स्वार्जितके समान समुझाजाय तो उस बापहीके आधीन उसकाबांटभी संभवहोसक्ताहै-इसआशंकारूपी प्रश्नोंकी निवृत्तिमें यह वाक्य योगीश्वर ने प्रदर्शित कियाहै कि (धरती) जो दादाने प्रतिग्रह या विजयादि प्रकारोंसे उपार्जन करीहो और (निबन्ध) नाम कोईसा बन्धान बसौंड़ी वा छमाही वा मासिक आदि जो दादाके नामसे किसी राजद्वारादिमें मिलताहो और (द्रव्य) नाम सोनाचांदी आदि जो कुछ दादाने निजपरिश्रमद्वारा कोईभाँतिसे जोड़ा हो इन सबधनोंमें (पितापुत्र दोनोंका) अर्थात् अर्जयिता दादाकेबेटा और पोताका भी स्वामित्व जिसहेतुसे लोकमें प्रसिद्धहै कि (सदृश) ही अर्थात् एकसा तुल्यात्मक होताहै किंतु दोनों में न्यूनाधिकभावनहीं-तिसहेतुसे ऐसे पैतामह धनमें पोताओंका विभाग केवल बापके मरनेपरही नहीं किन्तु बापके जीतेजी भी होताहै और केवल बापकी इच्छासेही नहीं किन्तु पुत्रोंकी भी इच्छासे होताहै और ऐसे धनमें बापके दो भाग भी नहीं किन्तु पुत्रों के समानभागहोताहै १२४ ॥

अधि०—इसी अत्रोक्तमर्यादाकेहेतुसे इस्से पहलेमूलश्लोकमें (पितृतोभागकल्पना) इस नियमको वाचनिकठहरायाथा कि समस्वामित्वके होनेपर भी इस व्यवस्थाको वाचनिकी समुझो-और-जो कि चवालीसवेंपरिच्छेदमें ११७ वाले मूल श्लोकसे यह कहाथा कि (यदि पिताही अपनी इच्छासे विभागकरे) यह पिताकी इच्छा जो प्रधान रक्खीगईथी सो भी अत्रोक्त मर्यादाकेहेतुसे निज पिताकेही स्वोपार्जित धन संबंधी जानो क्योंकि पैतामह धनमें केवल पिताकी इच्छाकी प्रधानता नहीं है—ऐसेही-पिताको पुत्रों से दूनाभाग लेनेके मध्ये जो यह वाक्य नियत हुआहै कि (द्वावंशौप्रतिपद्येतविभजन्नात्मनःपिता) अर्थात् पिता अपने पुत्रोंको विभागदेनेसमय अपने लिये (दोअंश) कहिये दो पुत्रोंके समान भाग रखिलेवे-सो यह नियमभी निजस्वोपार्जित धनसंबंधी जानो क्योंकि पैतृक धनमें उसका और उसके पुत्रोंकाभी स्वत्व समान इस अत्रोक्त मर्यादामे निश्चितहै-ऐसेही-पुत्रोंके पारतंत्र्य मध्ये जो यह वाक्य नियत हुआहै कि (जीवतोरस्वतंत्रःस्याज्जरयापिसमन्वितः) अर्थात् बेटा चाहै बूढ़ा भी होजाय पर माता पिताके जीवतेहुये वह स्वतंत्र नहीं है किंतु धनके व्ययविभाग आदि विषयोंमें माता पिताके आधीनहै (सो) यह आधीनताभी माता पिताके उपार्जित किये धनका नियमहै कि उनके धनमें बेटा उन्हींके परतंत्रहै किंतु पैतामह धन में इतना बड़ा पारतंत्र्य नहीं-तथैव-एक यह वाक्यहै कि (अनीशास्तेहिजीवतोः) अर्थात् सभी बेटे माता पिताके जीवतेहुये असमर्थहैं (सो) यह असामर्थ्यभी उन्हींके

धनका नियम जानो किन्तु पैतामह धनका नहीं-अब इन सभी वाक्योंका सुसिद्धफल दर्शाते हैं कि-यतः-(सरजस्कायांमातरिसस्पृहेचपितरिविभाग मनिच्छत्यपिपुत्रेच्छयापैतामह द्रव्य विभागो भवति)-अर्थात्-जिस हेतुसे कि लोकमें पैतामह धन का विभाग पुत्रोंकी इच्छासे उस अवस्थामेंभी होताहै कि यद्यपि माताभी सरजस्का बनीहो और पिताकोभी धनके भोगमें स्पृहा बनीहो और पिता अपने पैतृक धनका विभाग करनेकी इच्छाभी न करताहो-इसके सिवाय-यद्यपि बेटे बांटकराना तौ नहीं चाहैं पर उनके दादाका धन यदि बाप किसीको देताहो या बेंचताहो तौ निषेध करनेकेभी अधिकारी पुत्रहोते हैं परन्तु बाप यदि अपना स्वार्जितधन किसीको देताहो या बेंचताहो तौ निषेधके अधिकारी बेटे नहीं हैंतथाहि-(पैतृके पैतामहे चस्वाम्यं यद्यपि जन्मनैवतथापिपैतृकेपरतंत्रत्वात्पितुः स्वार्जकत्वेनप्राधान्याच्चपित्राविनियुज्यमाने स्वार्जितेद्रव्येपुत्रेणानुमतिः कर्त्तव्या-पैतामहेतुद्वयोःस्वाम्यमविशिष्टमितिनिषेधाधिकारोऽप्यस्तीतिविशेषः)-अर्थात्-पिताके औरदादाकेभी धनमें स्वामित्व यद्यपिजन्महीसे होताहै तौ भी पिताके धनमें पराधीनत्वसे और पिताकी निज कमाई होनेके हेतुसे उसीके प्रधानत्वसेभी यदि पिता अपने द्रव्यको किसी मार्गमें लगानाचाहै तौ पुत्रको अनुमति देनी योग्यहै निषेधका अधिकार नहीं-परन्तु-दादाके धनमें दोनोंका स्वामित्वएकहीसा अविशिष्टहै इसलियेनिषेधकाभी अधिकारहै यह विशेषता समुझलेनी मनुकेभी इसअग्रोक्त वचनकासिद्धांत यहीहै-तद्यथा-(पैतृकंतुपिताद्रव्यमनवास्तंयदाप्नुयात्। नतत्पुत्रैर्भजेत्सार्द्धमकामःस्वयमर्जितम्)-अर्थात्-पिताजो अपने पिताका डूबाहुआ धनउभारै तिसको निज पुत्रोंसाथ अपनी इच्छाविना विभागमें नबाँटै किन्तु अपनी इच्छासेही जैसे निज पैदाकिये धनका भागदेता तैसे देनाचाहै तौ बाँटिदेवै क्योंकि यहधन उसने नये सिरेसे निज आप अर्जित किया अर्थात् उसके पुत्रोंके निकट अबयह पैतामह धनमें गिनती नहीं रहा सिद्धांत इसका यहीहै कि जो पैतामह धनमें गिनती होता तौ निज इच्छाविना भी पुत्रोंकी इच्छासे विभागकरिदेना परता यह मर्यादा मनुने हेतु गर्भित ध्वन्यर्थसे दर्शाई है-(अत्रचवांगदेश विशेषः) यहव्यवस्था जो ऊपर वर्णन हुई सो वाराणसी संबंधी देश विभागों में विशेषतर स्वीकार है-किन्तु-बंगाले में इस विषयकी परिपाटी कुछ कुछ इस्से विपरीतहै-अर्थात्-बंगालेमें यह मर्यादाहै कि जबतक बापजीतारहै पुत्रोंको अधिकार नहीं है कि निज पैतामह धनका विभागकरवाने के निमित्तमें बापको प्रबलतासे इच्छाकरवावें केवल उसदशा में अधिकार होताहै कि जो बापका (स्वत्व) ही अपने बापके धनमें से मिटजाय दृष्टांत जैसे संन्यासी होजावे या जातिच्युत होजाय-इसके सिवाय कुछ आधुनिक धर्मकारोंने **यह मर्यादा** लिखकर दर्शाईहै कि जिन पुत्रोंको विमाता से पीड़ा मिलतीहो सिर्फ वेही

पुत्र राजद्वारमें प्रार्थना रखकर अपने दादाके धनमें से निजपितासे विभागलेसक्ते हैं परंतु पिताके धनमेंसे इसदशामें भी नहीं लेसक्ते जबतक पिताजीताहो (इतिबंगालदेशविशेषः)-(अथप्रासंगिकव्यवस्था) यद्यपि यहाँ पोताओंकी अपेक्षासे उस पैतामह धनका विभाग वर्णन होरहाहै जो दादाके हाथसे बापमें आचुकाहो परंतु उसीधनके प्रसंगसे कुछ पैतृक धनका भी चर्चा इसमें आयाहै कि यदि पिता अपने धनको किसी मार्गमें लगावै या देनाचाहै तौ पुत्रोंको अनुज्ञा देनीयोग्यहै निषेधका अधिकार उनको नहींहै (सो) इसबचन में धनशब्द सामान्य भावसे कहागया कुछ विशेषता उसकी नहीं जानीगई इस्से यहआशय पायाजाताहै कि पिता अपनीकमाईकाचाहै जंगमया स्थावर धनभी देदेना या वेंचनाचाहै तौ पुत्रोंको निषेधका अधिकार नहींहै-और-यही आशय अग्रोक्त शिवजीके वचनमें स्पष्टभावसे प्रदर्शितहै-यथा-(स्थितेपुत्रेऽथवापत्न्यां कन्यायांतत्सुतेपिवा। जनकेचजनन्यांवाभ्रातर्येवंस्वसर्यपि। स्वार्जितंस्थावरधनमस्थावरधनंचयत्अस्थावरंपैतृकंचदातुंसर्वक्षमोभवेत्) अर्थात्-शिवजीने यहकहाहै कि धनी अपनेपुत्रके मौजूदहोतेहुये और पत्नीकेभीहोतेहुये और बेटीके या धेवतेकेभीहोते हुयेएवंअपने पितामाताके होतेहुये और भाई या बहिनकेभी होतेहुये अपनी कमाईका जंगमतथास्थावर धनभी और पैतृक धनकेवल जंगम जो अपनेहाथमें आचुका हो यहसब तरहकाधन देदेनेको समर्थहै अर्थात देतेहुये इनमेंसे कोईभी निषेधकाअधिकारीनहींहै-सो-यहवात उस व्यवस्था से विरोध पाती है जो तेंतालीसवें परिच्छेद में स्वत्व निरूपणके स्थलपर निर्णीत होचुकीहै कि स्थावर धनका दान या विक्रय पुत्रादिकदायदोंकी अनुमति विनासिद्ध नहीं होता चाहै अपनी कमाई का हो या पैतृक हो-और शिवजीके अग्रोक्त दो और वचनोंसेभी यही आशय पायाजाताहै कि पैतृक धनकेवलस्थावर को छोड़कर अन्यसव धनोंके दान या विक्रयमें पुत्रादिकों की अनुमतिसे अपेक्षा नहींहै-तथाच-(नसमर्थःपुमान्दातुंपैतृकंस्थावरंचयत्। स्वजनायाथवान्यस्मैदायादानुमतिंविना॥यत्तुस्वोपार्जितंरिक्थंस्थावरंस्थावरेतरत्। अस्थावरंपैतृकंचस्वेच्छयादातुमर्हति)-अर्थात्-जो पैतृक धनस्थावरहै सो तौ पुरुषकिसीअपने घरूजनको या परायेकोभी दायादोंकी अनुमति विनाअर्थात्पुत्रादिकोंसे बूझे विना देनेको समर्थ नहीहै-परन्तु-जो अपना पैदाकिया धनचाहै जंगम या स्थावर हो और जंगम धन पैतृकभी कि जोअपनेहाथमेंआचुकाहो अपनी इच्छासेही देदेनेके योग्य है इसमें किसीकी अनुमति लेनाआवश्यक नहीं-और योगीश्वरने इसी १२१ वाले मूलश्लोकमें सोना चांदीआदि जंगमधन भी जो निज पितासे पायेहोंतिनमें उसके पुत्रोंकाभी तुल्यात्मक स्वामित्व दर्शाया और इसीहेतुसे ऐसे जंगम धनोंके दान या विक्रयमें पुत्रोंको निषेध का अधिकार पायागया तो यह प्रत्यक्ष विरोध क्योंकरशांत

होसकै-इसलिये-इस विरोधपर व्यवस्था दीजातीहै कि योगीश्वरने यहवचन केवल विभागकी अपेक्षा में प्रदर्शित कियाहै कि ऐसेधनोंका विभाग बेटेपिताकी अनिच्छा परभी करवाइसक्ते हैं और दान या विक्रयकाचर्चा उसके प्रसङ्गमात्र से दर्शायागया कुछयहांपर अवसरउनकानहींथा(और)उसीकेप्रसङ्गमात्रसे शिवजीकेजोदोचारवाक्य लिखेगये तिनकाभाव उसदशापर संसूचितहै कि जबविभागका कुछ प्रसङ्गनहो किसी साधारणभावके अवसरमें यदिपिताऐसे उक्तधनोंका दान या विक्रय करनेलगै तौ उसपिताको स्वाधीनताहै कोई रोक नहीं सक्ता-यथाहसदाशिवः-(धनमेवंविधाने नदत्तम्वाधर्मसात्कृतम्। पुंसातदन्यथाकर्तुंपुत्राद्यैर्नैवशक्यते)-अर्थात्(एवं)कहिये इस विधानसे कि जैसीमर्यादा पहलेकहचुके हैं पुरुषने जो धन किसीको देदियाहो या धर्मकार्य्यमें लगायाहो तिसको पुत्रादिकमेंसे कोईभी अन्यथा नहींकरसक्ता-सो-यह साधारणभावकी मर्यादाभी सर्वस्वदान या सर्वस्वविक्रय की स्वाधीनतामें न समझनी चाहिये क्योंकि यदिऐसाकरनेपर समुद्यतहोगा तौ तत्काल पुत्रादिक रोकसक्तेहैंक्यों कि रोकसकनेकी मर्यादाआगे १८० वालेमूलश्लोक से वर्णनहोगी(और)सबका यह सिद्धान्तहै कि पिताकीइच्छा और स्वाधीनताभी केवलउन्हीं दशाओंपर संसूचितहै कि जबउसको आत्मीय उचितखर्चोंकी परम आवश्यकताहो या बिवाहादि धर्म कृत्योंमें या वाचनिक प्रक्रियाओंमें प्रसाद दानमें कुटुम्ब भरणमें आपद्विमोक्षणआदि कामोंमें जैसी कुछयोग्यता पाईजाय तैसाही कार्यसाधन मात्रकादान या कार्यमात्रका विक्रयभी निजकमाईके द्रव्योंमेंसे पुत्रादिकोंकी अनुमति विनाभी करसक्ताहै १२४॥

इतिप्रासङ्गिकव्यवस्था ॥

अथ विभक्तजसुतविभागविशेषापेक्षायां-विभक्तयोर्मातापित्रोर्धनविभागोनाम अष्टचत्वारिंशःपरिच्छेदः ४८॥

इस अड़तालीसवें परिच्छेद में उस पुत्रका विभाग मिलनेकी अपेक्षासे कि जो विभाग होनेके पीछे पैदाहुआहो उस पिताकाधन बँटनेकी व्यवस्थाजानीजायगी जो अपनेपुत्रोंको धन विभागदेकर जुदाकरचुकाहो ॥

विभक्तेषुसुतोजातःसवर्णायांविभागभाक् १२५॥ पूर्वार्द्धोयं॥

अक्ष०—विभक्तोंपर सवर्णामेंसुत पैदाभया विभागभागीहो १२५॥

अभि०—यदि पुत्रोंका विभाग होजाने पीछे सवर्णापत्नीमें कोई बेटाऔरभी उत्पन्न हो तौ वह पितामाता का विभाग पावै जो पितानै अपने लिये और अपनी भार्या के लिये निजपुत्रोंके साथमें दो भाग या एकहीभाग लियाथा अर्थात् दोनोंकेमरनेपर वहपुत्र उनके अंशोंका भागीहुआ करता है पर माताका भाग तब पाताहै कि यदि बेटियां माताके नहों-और जो असवर्णा पत्नीमें उत्पन्न होतो वह १२८वाले वक्ष्यमाण

मूल श्लोकमें कहीहुई मर्यादाके अनुसार अपनाही भागपिताके भागमेंसेपाताहै और निजमाताका सभीअंश लेताहै १२५॥

अधि०-मनुनेभीइसबातको कहाहै-यथा-(ऊर्ध्वंविभागाज्जातस्तुपित्र्यमेवहरेद्धनम्) अर्थात्-विभाग होनेसे उपरांत पैदाभया पुत्र(पित्र्य)नाम पितामाता दोनोंका धनहरै-इसनियमका यहप्रमाणहै-यथा(अनीशःपूर्वजःपित्रोर्भ्रातुर्भागेविभक्तजः)अर्थात् विभागसे पहले जन्मा पुत्रतौ माता पिताका भागपानेमें अधिकारी नहीं क्योंकि वहअपना भागलेचुका और विभागसे पीछेजन्मापुत्र उसभाईके भागमें अधिकारीनहीं जोपहले भागलेकर जुदाहोचुका-इसके सिवाय-जोकुछ पिताने विभाग होजानेपीछे धन पैदा कियाहो सोसब उसीपुत्रका होताहै जोपीछेपैदाहो-तथाच(पुत्रैःसहविभक्तेनपित्रायत्स्वयमर्जितम्। विभक्तजस्यतत्सर्वमनीशाःपूर्वजाःस्मृताः)अर्थात्-पुत्रोंसेविभक्तहोजानेपर जो पिताने आपही धनकमायाहो सोसब विभागसेपीछे जन्मेकाहोताहै उसके मालिक पूर्वजबेटेनहींहोते-परंतु-जुदेहुयेबेटे यदि कोईउनमेंसे पितामेंफिर मिलगयेहोंतौ विभागसेपीछे जन्माबेटा बापके मरजानेपर उनभाइयोंकेसाथ अपना सम विभागकरै-यथाह मनुः(संसृष्टास्तेनवायेस्युर्विभजेतसतैःसह)अर्थात्-जोकोई भ्राता उसके साथ मिलेहों तिनकेसाथ वहविभाग अपनाकरै॥ १२५॥ यहव्यवस्था उसदशाके निमित्तमें कही गई कि यदि पिताकेजीते विभाग पहिला हुआहो-अब निचले अर्द्धसे उसदशाकी व्यवस्था कहीजायगी कि यदि पिताके मरनेपीछे बेटेबाँटकरैंतो विभक्तज बेटेका भाग कैसे मिलना चाहिये १२५॥

दृश्याद्वातद्विभागःस्यादायव्ययविशोधितात् १२५॥

ऐ०-यद्वा उसका विभाग आयव्यय विशोधित कियेदृश्य धनमेंसेहो अर्थात् जो पिताके मरनेपीछे तत्कालही पुत्रोंने विभाग कियाहो कि जब तत्काल माताके गर्भ नहीं प्रतीत होसक्ताथा और विभाग होजानेपीछे उनकेभ्राता पैदाहोतो उसभ्राताका विभाग कहाँसेआवे क्योंकि पितातो मरचुकाथा इससे पिताका विभाग नहींहै जिसको वहपावे इसलिये यहनियम दर्शातेहैं कि ऐसे पुत्रका विभाग उन्हीं भ्राताओंके विभक्त धनमेंसे मिलना चाहिये सो किसरीतिसे कि आयव्यय विशोधित कियेधनमेंसे-आशय इसका यह कि जो उसघरमें साहूकारा आदि कोई व्यापार होताहोतो विभाग हुये पीछे जबतक उसका जन्महो या जन्महुये पीछेभी जबतक दूसरा करविभाग कल्पित कियाजाय तबतक जो कुछ उसबँटेहुये धनकेद्वारा व्याजबट्टा आदि लाभकी वृद्धिहुई हो सोभी उसमें जोड़लेना चाहिये सोतो आय विशोधन कहलाता है और (व्यय) विशोधन इसकानामहै कि उसधनमें से जो पिताका ऋण उद्धार पुत्रोंने कियाहो या पिताके नाम से औरहीकुछ खर्चापराहो सो सब धनमेंसे हीनकरिकै शेषधनमेंसे उस

भ्राताकाभाग निकालकर उतना देनाहोगा जो सभी भ्राताओंके तुल्य होजाय१२५॥

अधि०—यही नियम शास्त्रमें कहाहै-यथा (प्रातिस्विकेषुभागेषुतदुत्थमायंप्रवेश्य पितृकृतंचर्णमपनीयावशिष्टेभ्यःस्वेभ्यःस्वेभ्योभागेभ्यःकिंचित्किंचिदुद्धृत्यविभक्तजस्यभागःस्वभागसमःकर्त्तव्यः) अर्थात्-प्रातिस्विक भागोंमें उनका बढ़ाहुआ लाभ उन्हीं में जोड़कर पिताकाऋणभी उनमेंसे निकालकर बचेहुये निजनिज भागोंमेंसे थोड़ाथोड़ा निकालकर विभक्तज भाईकाभाग अपने भागोंके समान कर्त्तव्यहै (प्रातिस्विकभागवे कहलातेहैं जो बँटिकर निजनिज धर्मोंका जुदावर्त्तावा करने लगेहों) यहीमर्यादा-उस भतीजेकीभी समुझलेनी जो निःसंतान भाई मरचुकाहो और उसकी भार्याका गर्भ यदि विभागहोते समय प्रतीत न हुआहो और विभाग होजानेपीछे संतान पैदाहो—संतान शब्द कहनेसे पुत्रीकीभी व्यवस्था यथायोग्य समुझलेनी-और-जो विभागकाल में माता या भ्रातृ भार्या गर्भवती देख परतीहो तौ फिर तबतक विभाग नहीं करना चाहिये जबतक उसके प्रसवहो किन्तु प्रसवके होनेपीछे कर्त्तव्यहै-यथाहवसिष्ठः(अथ भ्रातृणांदायविभागोयाश्चानपत्याः स्त्रियस्तासामापुत्रलाभात्) अर्थात्-पिताकेमरेपीछे भाइयोंका विभाग तबहोना चाहिये कि जो स्त्रियाँ निःसंतानी सगर्भाहों तिनकेपुत्र जब उत्पन्नहों १२५॥ अब निचलेमूल श्लोकमें यहकहेंगे कि यदि पिता अपने जुदेहुये पुत्रोंको कुछप्रसाद इवदेदेवै उसमें विभक्तज पुत्रका दावानहींहै १२५॥

पितृभ्यांयस्ययद्दत्तंतत्तस्यैवधनंभवेत् १२६॥ पूर्वार्द्धोऽयम्

ऐ०—माता पिताओंने जो जिसको दिया सोवह उसीका धनहोवै अर्थात् १२५ के पूर्वार्द्धमें यद्यपि यहमर्यादा नियत होचुकी है कि विभागसे पीछे जन्मापुत्र अपने पिता और माताकाभी संपूर्ण अंशलेता है तथापि यह शिष्टाचारिक मर्यादा है कि यदि पिता अपनेजुदेहुये पुत्रोंमेंसे किसीको आभूषण आदि कुछ प्रसाद इवस्नेह करके देवै तौ विभक्तज पुत्रको देनेका प्रतिषेध न करनाचाहिये और जो पिता पहलेदेही चुकाहो तौ उसमें झूठादावाभी न करनाचाहिये क्योंकि वह धन उसीका होचुका जिसको दियागया और इसमें उसन्यायकी समता भी प्रसिद्ध है कि विभाग से पहले पिता जो जिसको देदेताहै तिसका फिर विभाग नहीं कियाजाता किन्तु पितृ प्रसादकी अविभाज्यता भी छियालीस ४६ के परिच्छेदमें प्रदर्शित होचुकीहै-परन्तु यह स्मृति भी आवश्यकहै कि यह प्रसाद केवल आभूषण आदि जंगम धनोंकाहोताहै किन्तु स्थावर धनके प्रसाद दानका प्रतिषेधहै इसलिये यदि पिताने स्थावरका प्रसाददान कियाहोगा तौ विभक्तज भाई प्रत्याहरण करलेनेका अधिकारी होगा-एवं-यदि विभक्तज पुत्रनहो तौ मातापिताका भाग उनकेमरने पीछे वेही पुत्र बाँटि लेवेंगे जो पहले जुदेहोचुके थे पर इसदशामें भी ऊर्ध्वोक्त मर्यादा मानीजायगी कि उनपुत्रों

में से जिसकिसी को जो कुछ पिता माताने प्रसाद इवदेदियाहो सो वह उसीका धन होचुका अर्थात् उसमेंसे विभाग सबका नहींहै और उस प्रसाद पानेवालेका विभाग इसमें उसी समान होगा जैसा और सबको मिलै किंतु प्रसादके हेतुसे विभाग उस का कमतर नहीं होसक्ता १२६ ॥ अब निचले अर्द्धमें माताको समभाग मिलना कहते हैं १२६ ॥

पितुरूर्ध्वंविभजतांमाताप्यंशंसमंहरेत् १२६ ॥

ऐ०—पिताके उपरांत भागकरतेहुये पुत्रोंकी माताभी समान अंश हरे-अर्थात् यदि पिताके मरने पीछे माताके जीवतेहुये पुत्रोंने विभाग किया हो तौ माताभी निज पुत्रोंके समान भाग पातीहै सो उसदशामें कि यदि माताने निज भर्त्तासे या ससुरा आदि से (स्त्रीधन) संज्ञक पूँजी नहीं पाई हो किंतु यदि ऐसी पूँजी पहले पाचुकी हो तो फिर पुत्रोंसे आधाभाग पावेगी सो यह आधेकी मर्यादा आगेस्त्रीधनके परिच्छेद में १५३ वाले मूलश्लोकसे प्रदर्शित होगी-माताको पुत्रों के समान अंशपाने की मर्यादा पहले उसदशामें भी वर्णन होचुकीहै कि यदि पिता अपने जीतेजी पुत्रोंको विभक्त करदेवै सो यह देखो ११८ का मूल श्लोकचवालीसके परिच्छेदमें १२६ ॥

अधि०—इस मिताक्षरा आदि वहुधाग्रंथ जो वाराणस्यादिदेशविभागोंमें स्वीकारहैं और वे ग्रंथभी जो दक्षिणदेशी देश विभागोंमें स्वीकारहैं तिन सब ग्रंथोंके अनुसार यह मर्यादाहै कि पिताकी निपूती पत्नियांभी पुत्रोंके समान भाग पानेको अधिकारिणी हैं क्योंकिइनग्रंथोंमें माताशब्दसामान्यभावके आशयसे पुत्रोंकी स्वकीय माता और विमाताभीअपेक्षितहैं-इसकेसिवाय-देश विशेषोंकी अपेक्षासे सामान्य भाव यहमर्यादा भी सुनिश्चित है कि पिताको सपूतीपत्नियोंको पुत्रोंके समान भागमिलनाचाहिये और पिताकी निपूती पत्नियोंको उनके यथोचित आजीवनमात्रका नियतकरदेना योग्य है १२६॥ अबनिचले परिच्छेदमेंअसंस्कृत भाईवहिनोंकी व्यवस्थाकहीजायगी १२६॥

अथासंस्कृतभ्रातृभगिनीनांसंस्कारधर्मविवेकोनामऊनपंचाशत्परिच्छेदः ४९ ॥

इस उनचासवें परिच्छेद में वह धर्म जानाजायगा कि जो कोईभ्राता या वहिनें संस्कारसे विहीन हों तिनके संस्कारकरनेका अधिकार किसकोहै ॥

असंस्कृतास्तुसंस्कार्याभ्रातृभिःपूर्वसंस्कृतैः १२७॥ पूर्वार्द्धोऽयम्

ऐ०—पूर्वसंस्कृत भ्राताओं करके असंस्कृत भी संस्कार करनेयोग्यहैं-अर्थात् पिता के मरनेपीछे यदि कोई भ्राता असंस्कृत रहे हों तिनके संस्कारकरने में किसका अधिकारहै इसआशंकाकीअपेक्षामें कहतेहैं कि जिनभाइयोंके संस्कार पहले होचुकेहों उन्हींका अधिकारहै कि सब साधारणधनमेंसे असंस्कृतोंकेभी संस्कार अर्थात् मुंडन कर्णछेदन यज्ञोपवीत पाणिपीडन आदि सब यथोचितविधिसे करिदेवें-सिद्धांत इस

कायह कि यदिपिताके मरनेपीछे शीघ्रही पुत्रोंका विभाग होनेलगै तौ उसदशामेंभी असंस्कृत भाइयोंके संस्कारों योग्यधन पहले सबधनमेंसे निकासि दियाजाय तब सबके भाग कल्पित कियेजायँ १२७॥ अबनिचले अर्द्धासे बहिनोंकी संस्कार व्यवस्था कहतेहैं १२७॥

भगिन्यश्चनिजादंशा द्दत्वाशन्तुतुरीयकम् १२७॥

अक्ष०—बहिनैंभी निज अंशमेंसे चौथाई देकर विवाहि देनेयोग्यहैं १२७॥

अभि०—इसकथनसे यह बात पाईजाती है कि पिताके मरने पीछे भाइयोंके विभाग साथ बहिनैंभी अंश भागिनी होने योग्यहैं पर यहबात परिपाटीसे असंगतहै किन्तु अभिप्राय केवल यही है कि बहिनोंके विवाह यथा विधिसे कियेजायँ या विवाहों योग्य धन काढ़िकर जुदा कियाजाय-तहां-ऊपरले अक्षरार्थका यह आशय नहीं है कि प्रत्येक भाइयोंके अंशोंमेंसे चौथाई लेलेकर बहिनोंको दिया जाय किन्तु यदि यही आशय होता तौ किसी दशामें बहिनोंको भाइयोंसेभी अधिक मिलसक्ता(दृष्टांत) जैसे आठ भाई और एक बहिन इस दशामें भाइयोंसे चौथाईभाग लिये गये तौ आठ चौथाई के पूरे दोभाग एक बहिनको मिले और भाइयोंको पूरा एक एकभी न मिला केवल पौन पौन भाग पल्लेपरा सो यह क्योंकर न्यायात्मक समुझाजाय-इसीप्रकार जहां भाई थोड़े बहिनैं बहुतहों तहां भाइयोंको निपट निर्द्धनता होसक्ती है (दृष्टांत)जैसे एकभाई चारबहिन इस दशामें भाई यद्यपि सभीधनका मालिक हुआ परन्तु चार बहिनोंको एक एक चौथाई देनेसे खाली हाथ रहगया इसके सिवाय यदि पांचवीं छठी बहिन एकदो औरभी हों तौ फिर भाईको अपना पीछा छुड़ानाभी दुर्घट होजाय इस अनर्थक नियमसे वही वार्त्ता उत्तमथी कि बहिनोंकोभी भाइयोंकी बराबर दायमिलना कहा जाता इसलिये इस व्याख्याकोही निपट निरर्थक जानो-किन्तु यह व्याख्या सिद्धहोती है कि एकभाईको जितना भाग मिलाहो तिसकी चौथाईकी बराबर बहिनैं पावैं परंतु यह व्याख्याभी अक्षरार्थसे असंगतहै और न्यायसेभी विरुद्धहै-इसलिये अक्षरार्थके अनुकूल यह व्याख्या करनी चाहिये कि (भगिन्यःनिजात्अंशात्) अर्थात् बहिनैं निज निज अपनेही अंशोंमेंसे चौथाई अंश पावैं और उनके तीन पाद बचेहुयेभी भ्रातालेवैं(दृष्टांत)जैसे एकभाई और एकही बहिन होतो सबधनके दो भाग पहलेकिये जायँ एकभाग भाईनेलिया और दूसरा उसकीबहिनकेनामका ठहरा क्योंकिजो दूसरा भाई होता तौ अवश्यही दूसरे भागको लेता परन्तु दूसरे भाईके स्थानपर बहिन है जिसको भाईके समान भागमिलने का अधिकार नहीं इसलिये बहिन अपनेपूरे भाग मेंसे चौथाई पावै और उसके तीनपाद जो शेषरहे तिनको भी भाईलेलेवे इसरीतिसे भाईने सात चौथाई पाई और एकचौथाई बहिनको मिली(ऐसेही)जब दो भाईहों एक

चौथाई बहिनपावै और शेषग्यारह चौ-
बहिन हो तब तीन भागलगाकर एकमें से
थाइयांदोनों भाई साढ़ेपांचपांच बाँटिलेवैं ऐसेही जब एकभाई और दो बहिनैंहों तौ
भी तीनभागलगाकर एक भागकी चारचौथाई करिकै एकएक बहिनोंको दीगई शेष
दशचौथाइयोंको एकभाईनेपाया यहीव्यवस्था ठीकहै १२७॥

अथि०—व्यवस्था यद्यपि ठीकहै पर इसमें अभीकुछभेद कहना शेषहै क्योंकि यह
व्यवस्था केवल सजाती भाईबहिनोंमें ठीकहै-अर्थात् यदि पिताके स्त्रियां कईजातिकी
हों और किसीजातिकी भार्याके बेटे और किसीजाति से बेटीहों तब इसरीतिसे भाग
नहींलगता-क्योंकि-बहिनोंका अपना भाग जो अक्षरार्थ में कहागया कि अपनेभाग
की चौथाईपावैं सो वह अपना भागभी भाईकाही कहलाताहै इसलिये जिसजाति की
मातासे वहपैदाहुईहो उसीजातिके भाईको जो भाग मिलसक्ता तिसकी चौथाई उसको
मिलसक्तीहै तात्पर्य इसकायह कि इस्से अगले १२८ वालेमूलश्लोकसे जो मर्यादा
कहीजायगी तिसके अनुसार ब्राह्मणीका बेटा तो पूरा अंशपाताहै क्षत्राणीका बेटा पौना
अंशपाताहै वैश्यानीकाबेटा आधाअंश पाताहै शूद्राका बेटा पावअंश पाताहै-वेहीअंश
उनजातों वाली कन्याओं के हिसाबमें जोड़ेजाते हैं (दृष्टांत) जैसे एक ब्राह्मण के दो
भार्याथीं एकब्राह्मणी एक क्षत्राणी तहाँ ब्राह्मणीका एकबेटा और क्षत्राणीकी एकबेटी
इनदोनों का विभागऐसे होनाचाहिये कि पिताके धनके सात भागकिये गये चार भागों
का एक पूराभाग मानकर ब्राह्मणीके बेटेको दियागया तीनभागोंका पौनभागहुआ सो
क्षत्राणीके बेटा अगरहोता तो सबका सभीपाता परंतु उसके बेटा नहीं बेटीहै इसलिये
उस पौनभागके चारअंशकल्पित करिकै चौथाई बेटीको पूर्वोक्त रीतिके अनुसार देकर
शेषतीनपाद वेभी उस ब्राह्मणीके बेटेकोही दियेगये (जहाँ) ब्राह्मणीके दो बेटेहों क्ष-
त्राणीके एकही कन्या तहाँ सब धनके ग्यारहपाद कल्पितकरिकै चार चार पाद ब्रा-
ह्मणीके दोनों पुत्रोंको दियेगये शेषतीनपाद जो क्षत्राणीके बेटेके कहातेहैं तिनकेचार
अंश करिकै चौथाई क्षत्राणीकी कन्याको मिली शेष तीनअंश वेभी दोनों भाइयोंने
डेढ़ डेढ़ बाँटिलिये-ऐसेही जहाँ ब्राह्मणीके दो बेटे और वैश्यानीकी एकबेटी तहाँ सब
धनके दशभागकरिकै दोभागोंका आधामानकर उस आधेकी चौथाई कन्याको देकर
और बचाहुआ सबधन दोनोंभाई बाँटिलें इत्यादि प्रकारों से सर्वत्र अपनी बुद्धिसे
ऊहाकरलेनी-इसकेसिवाय-मनुके भी अग्रोक्त वचनका सिद्धांत यही है कि जो इस
व्याख्या में कहचुके-तथाच (स्वेभ्योंशेभ्यस्तुकन्याभ्यःप्रदद्युर्भ्रातरःपृथक् । स्वा
त्स्वादंशाच्चतुर्भागंपतिताःस्युरदित्सवः) अर्थात् (ब्राह्मणादयोभ्रातरोब्राह्मणीप्रभृति
भ्योभगिनीभ्यः स्वेभ्यःस्वजातिविहितेभ्योंशेभ्यः चतुरांशान्हरेदिप्रइत्यादिवक्ष्यमा
णेभ्यः स्वात्स्वादंशादात्मीयभागाच्चतुर्थभागंदद्युःनचात्मीयभागादुद्धृत्यचतुर्थांशोद

किन्तुस्वजातिविहितादेकस्मादंशात्पृथक् पृथगेकैकस्यैकन्यायैचतुर्थौंशोदेयइति जातिवैषम्येसंख्यावैषम्येचविभागक्लृप्तिरुक्तैव पतिताःस्युरदित्सवइत्यकरणेप्रत्यवायश्रवणादवश्यदातव्यताप्रतीयते) अत्रोक्त संस्कृत व्याख्या और ऊर्ध्वोक्त भाषा व्याख्या दोनोंका एकहीअर्थ है कुछ अंतर नहीं परंतु अत्रोक्त व्याख्या में मनुके वचनानुसार इतना अधिक है कि (पतिताःस्युरदित्सवः) अर्थात् भाई यदि बहिनोंको देना नहीं चाहैं तौ पतितहुये ठहरैं यह पाप उनको होता है-मनु और योगीश्वरके भी वाक्य से सर्वथा यही निश्चित होता है कि यद्यपि बापके जीतेजी तौ नहीं पर बापके मरेपीछे बेटियाँ भी भाइयों के साथ दायपाने की अधिकारिणी होतीहोंगी-परंतु-लोक में परिपाटी इसकी कहीं भी दिखाई नहींदेती है और जो कि यहबातपाईजाती है कि संस्कारों के प्रसंगसे बहिनोंका प्रासंगिक चर्चाकिया है इस्से उनके संस्कारोंको उपयोगीधनदेना आवश्यकहै (परन्तु) श्रीमद्विज्ञानेश्वर इसमें बड़ा आग्रहखड़ाकरतेहैं कि संस्कारोंमात्र उपयोगी धनदेनेका सिद्धांत इसमें नहींहै क्योंकि मनु और योगीश्वरकेदोनोंवाक्योंमें चतुर्थांशदेनेकीअविवक्षामध्येकोईसा प्रमाणऔर नहींहै कि जिस्से उसविवक्षितचौथाईका देनानहींमानाजाय और पीछेसेयोंभी दृढ़ता करतेहैं कि हमारे अनुमतके सहायक मेधातिथि आदि आचार्योंकाही व्याख्यान इस में चौकसहै इसलिये बापके मरनेपीछे कन्याभी ऊर्ध्वोक्त रीतिसे अंशभागिनी होनी चाहिये और बापकेजीतेजी विभागमें जो कुछबाप अपनी इच्छासेदेदेवै सोई पावैगी क्योंकि इसमेंकोईसा विशेषवाक्य ऐसानहीं है जिस्सेबापके जीतेजीभी अंशभागिनी कहीजायँ-विज्ञानेश्वरकी यह आग्रहरूपी व्याख्या यद्यपि एकहिसाबसे सच्चीहै क्योंकि जो शास्त्रोक्त मर्यादाहै उसमें किन्तु क्योंकर दियाजाय इस्से उन्होंने कन्याओंकी दीनतापर दृष्टिदेकर उनके पक्षसे दोबड़े मुनीश्वरोंके वाक्यों को यथार्थ माना और कुमारी व्याहीसभी बहिनोंको अंशदेना ठहराया-तथापि उनवाक्योंका हमारी दृष्टिसे यह आशयनहींहै कि बापके मरनेपीछे बहिनेंभी अंशभागिनी करीजायँ क्योंकि जिसबातकी परिपाटीलोकमें नहीं हैं न कभी पहलेथी तिसकी व्याख्याचाहे शास्त्रमर्यादा से कितनीही संसिद्धकरो तौ क्याप्रचार उसकाहोसक्ता है (और) जो मनु या योगीश्वर का सिद्धांत वहीहोता जैसाउनके वचनोंमें प्रत्यक्ष देखपरताहै तौ फिर संस्कारकेप्रसंग से क्यों कहते किंतु संस्कार के प्रसंगसेकेवल कुमारी बहिनें दर्शाई हैं और जो कुमारी व्याहीदोनोंभांतिको देना अभिवांछितहोता तौ फिर जहां माताका समानभागहोना पिताकेजीवते औरमरेपर भी दोस्थलोंपर दर्शाया उसन्यायात्मक मर्यादाकेसाथ पुत्रियोंको भी चतुर्थांशदेना कहदेते इसके सिवाय जो बहिनोंको चतुर्थांश देनेकी मर्यादा न्यायात्मकहोती तौ फिर मनु अपनेवचनमें यह नहींकहने कि (भाई यदिबहिनोंको

न देनाचाहें तौ पतितहोवें)अर्थात् इस कथनसे यह आशयपायाजाताहै कि भाइयों को न देनेमें भी स्वाधीनताहै किंतु केवल पतित या पापीमात्र कहलावेंगे कुछराजाको अधिकारनहीं है कि यदि भाई निपट न देवें तौ न्यायात्मकमर्यादासे राजा दिलवावे सिद्धांत यह कि चौथाई देनेकी मर्यादा केवल शिष्टाचारात्मक रीति से विवाहकेप्रसंगमें कहदीहै कि भाइयोंको अपनी विना विवाही वहिनोंका विवाहकरना यहांतकआवश्यक है कि चाहै उनको चतुर्थांशभी ऊर्ध्वोक्त रीति से व्ययकरदेना परै-कदाचित् यह तर्कणा करीजाय कि जब दोनों बड़े मुनीश्वरोंने प्रत्यक्षभावसे चतुर्थांशका देना लिखाहै तौ फिर उनके वचनोंके प्रभावसे वैसाही आचारभी कर्त्तव्यहै क्योंकि विवाह तौ चतुर्थांशके मिलनेपरभी होसक्ता है-सो-इसतर्कणामें इतनाबड़ा विरोधहै कि जहां पिताकाधन अतिशय थोड़ाहो और भाई वहिनैं बहुतहों तब इस चतुर्थांशके प्रकार से वहिनोंको इतनाभी मिलसकना दुर्घटहै कि विवाहका कोई अंगसगाई आदिभी साधनहोसके और भाईइस चौथाई को देकर अपनेभारसे उद्धारहोचुके तब क्याउन वहिनोंको विना विवाही रखनाचाहिये (अथवा) पिताकाधन ऐसाढेरहै कि इसचतुर्थांशकी रीतिसेभी वहिनोंको इतना मिलसक्ताहै जिस्से एकछोड़ चारब्याहोंकी सामग्री होसक्ती है और इतना अधिक धन देना वहिनोंको किसीरीतिसेभी योग्य नहीं समुझाजाताहै क्योंकि जो विवाहसे वचाहुआ धन अंशदानकी रीतिसे उन्हींको समर्पण करै तौ फिर वे वहिनैंभी अंशपानेकी हक़दार ठहरती हैं कि जिनकाव्याह पहले होचुका और उन्होंने अंशदानके प्रकारसे कुछनहीं पायाथा-इसकेसिवाय-पिताका धन चाहै अतिशय थोड़ाहो या अतिशय ढेरहो दोनोंदशामें यहकठिनाई बड़ीदुर्घटताके साथप्रकटहोतीहै कि क्षेत्र आदि जो जो धन अविभाज्य पहलेकहेगये या कोईबहुत बड़ास्थावरहै कि जो भाइयोंकासदैव साधारणभाव रहिसक्ताहै उसमेंभी चौथाईचौथाई यदि वहिनोंकी कल्पित करीगई तहाँ प्रथम तौ कल्पनाही दुर्घट होजायगीदूसरेयदि खण्डात्मक नहीं कियाजाय तौ सदासर्वदाको उसस्थावर में वहिनोंकाभीसाझाचलाजायगा और उसकी पैदावारी उनको मिलतीरहेगी सो यहवात लोकऔर शास्त्रसेभी प्रत्यक्ष विरोधवालीहै कि नतौकभी लोकमें यहवातहुई और न आगेको होसके और शास्त्रमेंभी इसवातकी आज्ञानहीहै तौ फिर क्योंकर उसआग्रहकोयथार्थमानें जिसके अनुसार वहिनैंभी अंशभागिनी ठहराईगई जिसमें नारद गौतम कात्यायन वसिष्ठादिकोंमेंसे किसीकाभी सम्मतनहीहै सर्व निर्णयमार निर्वाणतंत्रजो प्राचीनग्रन्थहै तिसके दायभागमें शिवजीने भी सर्वत्र केवल भाइयोंकाही दायवर्णनकिया और विनाव्याही वहिनोंका विवाह उनपर आवश्यक रक्खा क्योंकि भाइयों को वहिनों के विवाह उस दशामें भी कर्त्तव्यहोंगेकि यदि भाइयोंने पिताका धनकिंचित् भी न पायाहो यहमर्यादा

है-शिवजीने निपटभाइयों के न-होनेमें पिताका धन बहिनों को बाँटिलेना कहाहै-यथा (विभजेयुर्दुहितरःपुत्राभावेपितुर्वसु। उद्वाहयंत्योऽनूढांतुपितुःसाधारणैर्धनैः) अर्थात्-निपूते पिताकेमरनेपर पुत्रोंके न होने में पिताका धनबेटियाँ बाँटिलेवें परंतु बाँट तब करनाचाहिये कि विवाही बहिनें पहलेपिताकेविनाबँटे धनमेंसे कुमारी बहिनोंकेविवाह करिलेवें और पीछेउनकोभी अपनी बराबर भागदेवें-सिद्धान्त इसकायह कि भाइयोंके होतेहुये बहिनोंको अंशभागिता सिद्धनहीं है-इसपरभीकदाचित्यहसंदेहउच्चारणकिया जाय कि जब इसबातकी निपट मर्यादानहींहै तो फिर मनु और योगीश्वरनेभी एक सीधेमार्गसे यह कहदियाहोता कि भाइयोंको अनूढाबहिनोंके विवाहकरने आवश्यक हैं किन्तु इतनेबड़े एंचपेंचसे चतुर्थांशकी वृथा पखलगाकर कहनेमें क्या सिद्धिहुई जिसपर लम्बाचौड़ा वादविवाद खड़ाकरनापरा-इसका यहउत्तरहै कि यह चतुर्थांश की पख वृथानहीं किन्तु उसदशामें सार्थकहोसक्ती है कि जब उनबहिनोंके दो चार भाई सबकेसभी कुमार्गी वा संसारी शिष्टाचारोंसेविमुखहों जिनमें एकभी शिरधरा वा सुपात्र नहींसमुझाजाय और इसदशामें उसवंशके प्रधानोंको विश्वासनहींहै कि धन का बाँट होजानेपीछे अपने अपने भागोंको यथावस्थित बनारक्खें और बहिनों का ठिकाना भाईकरसकैंगे तब उनप्रधानोंकेही विचारसे इसरीतिका विभागहोनायोग्यहै जिस्से उनकेवंशकी प्रतिष्ठा आदि मर्यादोंमें अन्तर नहीं आनेपावे सिद्धान्त इसका यह कि मनु और योगीश्वरकाभी वाक्य वृथानहींहै १२७॥ यहाँतक चवालीसवें परिच्छेदसेलेकर जोकुछ वर्णनकियागया सो सब एकजाती सन्तानोंकी व्यवस्थाहै-अब नीचेके परिच्छेदमें भिन्नजातियोंकी व्यवस्था कहीजायगी १२७॥

अथभिन्नजातीयपुत्राणांविभागविशेषविवेकोनामपंचाशत्तमःपरिच्छेदः ५०॥

इस पचासवें परिच्छेदमें वहव्यवस्था जानीजायगी कि जब एकबाप के कईजातों की पत्नियाँहों तिनकेपुत्रोंको धनकाभाग क्योंकर मिलताहै॥

चतुस्त्रिद्व्येकभागाःस्युर्वर्णशोब्राह्मणात्मजाः। क्षत्रजास्त्रिद्व्येकभागाविड्जास्तुद्व्येकभागिनः १२८॥

भक्ष०-ब्राह्मणकेबेटे चार तीन दो एक भाग वर्ण क्रमसे पावें -एवं क्षत्रिय के बेटे तीन दो एकभाग-वैश्यके बेटे दो एकभाग पावें १२८॥

भभि०-आचाराध्याय में कहचुके हैं कि ब्राह्मण के चारों वर्ण की भार्या और क्षत्रिय के तीनवर्णोंकी भार्या और वैश्यके दोवर्णोंकी भार्या और शूद्रके एकही वर्ण की होसक्ती हैं तिनमें यदि सभी भार्याओं के बेटे पैदाहों यद्यपि सबका बाप एक है तौभी वे परस्पर भिन्न जाती कहलाते हैं तिनका दायभाग जिसरीति से बाँटना चाहिये तिसका यह ब्योरा है कि-ब्राह्मण के बेटे जो ब्राह्मणी में पैदाहुये हों सो तो पूरे चारचार खूंटपावें जो क्षत्रियाणीमें हुयेहों सो तीनतीन खूंटपावें जो वैश्यानीमें

हुयेहों सो दोदो खूंटपावें जो शूद्राभार्या में हुयेहों सो एकएकपावें-ऐसेही क्षत्रिय पुरुष के बेटे जोक्षत्रियाणी भार्यामें हुयेहों सो प्रत्येक बेटा तीनतीनभागपावें जो वैश्यानीमेंहुये हों सो प्रत्येक बेटा दोदो भागपावें जो शूद्रामें उत्पन्नहुयेहों सो प्रत्येक बेटा एकएक भागपावें-ऐसेही-वैश्यबापके बेटे जो वैश्यानी भार्यामेंहुयेहों सो प्रत्येकबेटादोदो भाग पावें जो शूद्रासे उत्पन्नहुयेहों सो प्रत्येक बेटा एकएक भागपावें-शूद्र पुरुषको केवल एक शूद्राभार्या कहीहै इस्से उसके भिन्नजाती पुत्रोंका अभावहै और इसीसे उसका ब्यौरा मूल श्लोकमें कुछ नहींकहा इसहेतु से शूद्रबापके पुत्रोंका विभाग वहीहै जो इस्से पहिले कई परिच्छेदोंमें समान जातियोंकी व्यवस्था वर्णन होचुकी १२८ ॥

अधि०—यद्यपि इस वचनमें चारतीन दोएकभाग सामान्य रीतिसे कहेगये इस्से कोईसी विशेषतानहीं पाईगई कि किसधनमेंसे ऐसा होसक्ताहै और किसमें से नहीं तथापि जो ब्राह्मणबापने प्रतिग्रहसे कुछ भूमिपाईहो तिससे इतर द्रव्योंका विषय इस ऊर्ध्वोक्त मर्यादामें समुझना क्योंकि इसअग्रोक्त वचनमें ऐसी भूमिका प्रतिषेध है-यथा (नप्रतिग्रहभूर्देयाक्षत्रियादिसुतायवै। यद्यप्येषांपितादद्यान्मृतेविप्रासुतोहरेत्) अर्थात्-प्रतिग्रहसे पाईहुईभूमि क्षत्रियाणीआदिके पुत्रोंको न बाँटिदेनी चाहियेयद्यपि इनको पिताने स्नेहसे देदीहो तौभी पिताके मरनेपर ब्राह्मणीका बेटा छीनलेवै-इस वचनमें प्रतिग्रहकी विशेषता प्रकटहोनेसे यह आशय निश्चितहुआ कि अन्यधरती जो क्रयादिप्रकारोंसे उपार्जनहुईहो वह क्षत्रियाणी और वैश्यानी के भी पुत्रोंको बांटि देनी चाहिये (और) यही आशय अग्रोक्त वचन में जो शूद्रापुत्रकी अपेक्षासे विशेष प्रतिषेधहै उस्से भी दृढ़होता है-तद्यथा (शूद्र्यांद्विजातिभिर्जातोनभूमेर्भागमर्हति) अर्थात्-ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इनतीनों द्विजाती पुरुषों से जो शूद्रामेंउत्पन्नहुआ बेटाहो सो धरती में से भागपाने योग्य नहीं है-इस वचनमें सामान्य धरती अर्थात् सभी प्रकारकी धरतीमात्रका प्रतिषेधकेवल शूद्रापुत्रके निमित्तसे विशेषकर दर्शायागया-इस्से प्रत्यक्ष प्रतीत होताहै कि एक प्रतिग्रहकी धरतीको छोड़कर अन्य धरती जो क्रयादिप्रकारोंसे उपार्जितहुईहो उसकाभाग क्षत्रियाणी और वैश्यानीकाभी बेटा पासक्ताहै परन्तु शूद्राका बेटा साधारण किसी भी धरतीमें से नहीं-सिद्धान्त इसका यह कि धरतीके सिवाय अन्यसाधारण धनोंका विभाग उसरीतिसे शूद्रापुत्र भी पासक्ता है कि जैसा ब्यौरा अभिप्रायार्थमें प्रदर्शित होचुका-और-जो अग्रोक्त वचनमें निपट शूद्रापुत्रको विभागही देना नहींकहा तिसका आशय कुछभिन्नहै-तद्यथा (ब्राह्मणक्षत्रियविशांशूद्रापुत्रोनरिक्थभाक्। यदेवास्यपितादद्यात्तदेवास्यधनंभवेत्) अर्थात्-ब्राह्मणक्षत्रिय वैश्य इनमे उत्पन्नहुआ शूद्राका बेटा रिक्थभागी नहीं किन्तु उसको जो कुछ पिता अपने हाथमेदेदेवे सो वही उसका धनहोवे-सो-यहभाग मिलनेका निपट

निषेध केवल उसीदशासे संबन्ध रखताहै कि यदि पिताने अपने हाथसे उसके निर्वाहयोग्य या अपनेधनके अनुसार कुछप्रसादइव देदियाहोतौ फिर निस्संदेह सवर्णा के बेटे उसको भाग न देवैंगे-परन्तु-यदि पिताने अपने धनके अनुसार या उसके निर्वाहमात्रका प्रसाद अपनेहाथसे न दीन्हाहो तौ सवर्णाकेपुत्रोंसे एकांशभाग उसरीति से अवश्य वह लेवैगा कि जैसा ब्यौरा अभिप्रायार्थमें प्रदर्शित होचुका १२८ ॥

अथसर्वविभागशेषधनविषयिकविभागविशेषविवेकोनाम
एकपञ्चाशत्तमःपरिच्छेदः ५१ ॥

इस इक्यावनके परिच्छेद में उस धनकाभाग जानाजायगा जोसबधनका विभाग होजानेपर भी किसीपर तत्काल या कालान्तर में छिपायाहुआ निकसै (और)इसीके प्रसंगमें बिरली अन्य व्यवस्थाभी प्रदर्शितहोगी ॥

अन्योन्यापहृतंद्रव्यंविभक्तेयत्तुदृश्यते। तत्पुनस्तेसमैरंशैर्विभजेरन्नितिस्थितिः १२९ ॥

अक्ष०—अन्योन्य अपहार किया द्रव्य जो विभागहुये पीछे कभी देखाजाय वह फिर भी वे सम अंशोंसे बाँटिलेवें यह मर्यादाहै १२९ ॥

अभि०—परस्पर जो भाइयोंने या और किसीने साधारणधन विभागसे पहले कभी छिपायाहो और विभागके समयतक जानानहींगयाहो यदि ऐसाधन विभागहोजाने पर भी कभी देखनेमेंआवै तौ फिर सभीअंशीमिलकर उसको समअंशोंसे बाँटिलेवें यहीमर्यादाहै-यहाँपर समअंशोंके कथनका यह आशयहै कि यदि भाइयोंका विभाग पहले उद्धार निकालनेकीरीतिसे हुआहो तौ भी इसधनको सभी बराबर बाँटिलेवें किंतु इसमें अब उद्धारका प्रसंगनहीं बाँटिलें इस कथनसे भी यह आशय दर्शाया है कि जिसाकिसीने देखिपायाहो सब उसीको न लेनाचाहिये किंतु उसमें सबकाभाग होगा १२९ ॥

अधि०—(अत्रप्रासंगिकचर्चा) इस वचनकेअर्थमात्रसे यह न समुझाचाहिये कि अपहारकिया धन देखनेमें आवै तौ केवल बाँटिदेनाहोसक्ता पर समुदायधनके हरनेसे कुछदोष न होताहोगा किंतु जैसादोष परायाधनहरनेसेहोताहै तैसाही अपना सब साझियोंकाभी हरनेमेंहोताहै-कदाचित् यहकहो कि मनुने समुदायद्रव्यके हरनेमें केवल जेठेभाईको दोषवतायाहै किंतु छोटेभाई यदि छिपावें तौ उनको दोषनहीं सो यह बातभीनहींहै-यथा (योज्येष्ठोविनिकुर्वीतलोभाद्भ्रातॄन्यवीयसः। सज्येष्ठःस्यादभागश्च नियंतव्यश्चराजभिः)अर्थात्-जो जेठाहोकर लोभसे छोटेभ्राताओंको भाग न देवै तौ वह जेठाभी जेठाईका भाग न पावै और राजाओंसे वह दंडकेभी योग्यहै-इसका यह सिद्धांतनहींहै कि यदिछोटेभाई ऐसाकरें तो उनको दोषनहीं किंतु यहसिद्धांतहैकि जेठा भाई जो सबकेऊपर स्वतंत्र और पूज्य और पितृस्थानीकहलाताहै तिसकोभी ऐसा

करनेसे इतनावड़ादोषहै तौ छोटोंको अवश्यही इस्से अधिकदोषहोगा यहभावदर्शित कियाहै क्योंकि छोटेभाई जेठके आधीन और सेवक और पुत्रस्थानीहोकर बड़ेकेसाथ ऐसाकरें यह अत्यंत अयोग्यहै-इसकेसिवाय-छोटे बड़ेकी अविशेषतासेभी सब साधारणोंको यहदोष सुननेमेंआताहै-यथा (योवैभागिनंभागान्नुदतेचयतेचैनंसयदिचैनंन चयतेऽथपुत्रमथपौत्रंचयते) अर्थात्-जो कोई भ्राता प्रबलहोकर अपनेभागीको उसके भागसे मेटताहै तिस मेटनेवालेको वह मेटाहुआभी विनाशकरता वा दोषीठहराताहै यदि उसको नहीं विनाशिपावै तौ बेटे वा पोतेको विनाशताहै-भलायह तौ आँख छिपाकर अपहरणका करना या भागीका भाग न देना दोनों बहुतबड़ीबातहैं किंतु साझियोंके बूझे विना साझेकेधनसे कोईकामकरनेकी अपेक्षामें यहाँतक बंधनहै कि निजअपनेभागमात्रसे भी विना बूझेनहींकरसक्ता-यथाहसदाशिवः (धनानामविभक्तानामंशिनांसंमतिंविना । तथाऽनिर्णीतवित्तानामसिद्धौन्यासविक्रयौ) अर्थात्-विना बँटे साधारणधनों कान्यास और विक्रय सबकीसंमतिपायेविना नहींहोसक्ता तद्वत अनिर्णीतद्रव्योंका कि जिनकेमान या संख्याओं या विभागोंकेस्वरूप निश्चय न हो चुकेहों तिनका न्यास और विक्रय अर्थात् धरोहरिकरदेना या बेंचदेना यह दोनोंकाम सबअंशियोंकी संमतिपायेविना असिद्धहोतेहैं-सिद्धांत यह कि प्रथम तो करनेवालाही अधिकारीनहीं दूसरे यदि बूझेविना करिभीचुकाहो तौ निवर्तितकियेजायँगे-इसके सिवाय-किसीप्रकारकेलाभ नाम नफ़ाकीदृष्टिसेभी साधारणधनको विनाबूझे नहींलगावै-तथाचसदाशिवः(साधारणानिवस्तूनिलाभार्थंनैवयोजयेत् । मृतेपितरिसर्वेषामंशिनांसंमतिंविना)अर्थात्-पिताकेमरनेपीछे साझेकी वस्तुओंको अंशियोंकी संमति बूझेविना सबकेलाभकीदृष्टिसेभी नहींलगावै (क्योंकि) ऐसाकरनेमें जो नफ़ाहोगा तौ सभीबाँटिलेवेंगे पर टोटाहोगा तौ कोईभी न देगा और यह झगड़ा सब आरोपित करेंगे कि हमने कब कहाथा अब यह टोटा तुम्हींभरो वलिक नफ़ाकेहोनेपरभी यदि कोईभांतिसे दोषलगावैं या झगड़ाखड़ाकरें तौ अचंभानहीं और उसका कोई उत्तर भी नहींहै १२६ अब निचले परिच्छेदमें द्व्यामुष्यायण पुत्र विशेषकाभाग विशेषदर्शानेहुये स्वरूपज्ञानकहकर दायका अधिकारभी दर्शावेंगे. १२६ ॥

अथद्व्यामुष्यायणपुत्रविशेषस्यदायविशेषविवेकोनामद्विपंचाशत्तमःपरिच्छेदः ५२ ॥

इस बावनके परिच्छेदमें उसबेटेका दाय वर्णनहोगा जो दो बापोंका इकलौता बेटा द्व्यामुष्यायणकहलाताहै ॥

अपुत्रेणपरक्षेत्रेनियोगोत्पादितःसुतः । उभयोरप्यसावृक्थीपिंडदाताचधर्मतः१२० ॥

मक्ष०-निपुत्रेने पराये क्षेत्रमें नियोगमें उत्पादनकिया जो पुत्र सो वह दोनोंकाही रिक्थी और पिंड देनेवालाभी धर्मानुसारहै १२० ॥

भभि०-जब कि देवर आदि कोई आप भी निपूता हो और नियोगकी मर्य्यादा अनुसार गुरुओं से नियुक्त कियाहुआ पराये क्षेत्र में अर्थात् पराई भार्य्या में बेटा पैदा करे तो ऐसा बेटा दोनों बापका रिक्थी नामदाय हरनेवाला और दोनों को ही पिण्डदान करनेवाला धर्म्मानुसार हुआकरता अर्थात् इसमें कोई अधर्म्म की मर्य्यादा नहीं है १३० ॥

आधि०-दोनोंकाही इस (ही) शब्दकी योजनाका अभिप्राय यहकि ऐसाबेटा यद्यपि क्षेत्रज कहाताहै और उसीकाहोताहै कि जिसकेखेतमें पैदाहुआहो और उसीका धनपाताहै और उसीको पिण्डदेनेका अधिकारीहोताहै तथापि जो उत्पन्नकरनेवाला आपभी निपूताहो और इस प्रतिज्ञासे नियोगकियाहो कि इस नियोगसे उत्पन्नहुआ बेटा क्षेत्रपतिका और मेराभी कहावेगा तो फिर दोनोंकाकहाता और दोनोंकाहीधन पाता और दोनोंकोही पिण्डभी देताहै और इसीहेतुसे (द्व्यामुष्यायण) भी कहाता किंतु दो बापोंका पूत अर्थात् जो ऐसी प्रतिज्ञाठहराये बिना पैदाकियाहो और नियोगी आपसपूताहो तो केवल क्षेत्रपतिकाहीक्षेत्रजबेटा कहलाताहै-जिसनियोगसेएकहीका बेटाकहलाताहै तिसकीविधि आचाराध्याय में प्रदर्शितहोचुकी है-यथा(अपुत्रांगुर्वनुज्ञातोदेवरःपुत्रकाम्यया। सपिण्डोवासगोत्रोवाघृताभ्यक्तऋतावियात्)अर्थात्-मरेहुये भाईकी या नपुंसक भाईकी या महारोगी भाईकी निपूतीभार्य्या में देवर निज अपना या सपिण्ड देवर या सगोत्री देवर माता पिताआदि गुरुओं से पुत्रकी कामनाकरके आज्ञापायाहुआ अपने सर्वशरीर में घृतकालेपकरिके ऋतुकाल में गमनकरै-परन्तु जो इस विधि से विपरीतकरैतौपातकी होताहै-यथा(आगर्भसंभवाद्गच्छेत्पतितस्त्वन्यथाभवेत्। अनेनविधिनाजातःक्षेत्रजोऽस्यभवेत्सुतः)अर्थात्-गर्भका संभवहोनेतकही गमनकरै क्योंकि इस्से आगे या अन्यप्रकारसे भी गमनकरने से पतितहोताहै इस विधिसे जो पुत्र पैदाहोय सो उसभाईकाही क्षेत्रजबेटाहोता है कि जिसकी वहभार्य्याहै जिसनियोगसे दोनों का बेटा गिनाजाताहै तिसकी विधिमनुने स्पष्टकरिके कहीहै-यथा (क्रियाभ्युपगमात्क्षेत्रंबीजार्थंयत्प्रदीयते । तस्येहभागिनौदृष्टौबीजीक्षेत्रिकएवच) अर्थात्-क्रियाके (अभ्युपगमसे) किंतु पहलेही प्रतिज्ञा ठहरायके जो खेतबीज बोने के निमित्तसे दियाजाताहै तिसके उत्पन्नहुये फलमेंबीजी और क्षेत्री दोनोंही फलभागी होते हैं यह नियम इसमें महर्षियोंने निर्णीत कियाहै-जिस प्रकारसे केवल क्षेत्रपति कोही फल मिलताहै तिसकोभी मनुनेस्पष्ट करकेकहाहै-यथा (फलंत्वनभिसंधायक्षेत्रिणां बीजिनांतथा । प्रत्यक्षंक्षेत्रिणामर्थोबीजाद्योनिर्बलीयसी) अर्थात्-जहां क्षेत्री और बीजीदोनोंके परस्पर फलकाभाग ठहराये बिनाबीज बोयाजाताहै तहांजो कुछ फल सन्तानरूपी अर्थ पैदाहोसो सब केवल क्षेत्रपतिकोही मिलताहै क्योंकि बीजसे योनि

बलवतीहै और यह न्यायप्रत्यक्ष देखनेमें आताहै कि गऊ या भैंस, घोड़ी, बकरी आदि क्षेत्रोंकेही स्वामीको बच्चे मिलाकरते हैं चाहै बैल बकरा आदि किसीकेहों पर उनके स्वामियोंको बच्चे नहीं मिलते हैं परन्तु जो ऊर्ध्वोक्त रीतिसे प्रतिज्ञा ठहरीहो तौ वह बातजुदीहै-यहांतक द्व्यामुष्यायण पुत्रकी व्यवस्था सिद्धहोचुकी परन्तु अब इससे आगे केवल मनुके वचनोंद्वारा फिरभी इसीवार्त्ताको लिखते हैं किन्तु इसकेसाथ दो बातैं अधिक दर्शाईजायँगी जिसमें विधिके सिवाय कुछ प्रतिषेधकाभी लक्षणपाया जाताहै-यथाहमनुः(देवराद्वासपिंडाद्वास्त्रियासम्यङ्नियुक्तया । प्रजेप्सिताधिगन्तव्या संतानस्यपरिक्षये ॥ विधवायांनियुक्तस्तुघृताक्तोवाग्यतोनिशि । एकमुत्पादयेत्पुत्रंनद्वितीयंकथंचन ॥ द्वितीयमेकेप्रजनंमन्यंतेस्त्रीषुतद्विदः । अनिर्वृत्तंनियोगार्थंपश्यन्तोधर्मतस्तयोः) इतिनियोगविधिः (अथपशुधर्मविवेकः). (नान्यस्मिन्विधवानारीनियोक्तव्या द्विजातिभिः । अन्यस्मिन्हिनियुंजानाधर्मंहन्युःसनातनम्॥ अयंद्विजैर्हिविद्वद्भिःपशुधर्मोविगर्हितः । मनुष्याणामपिप्रोक्तोवेनेराज्यंप्रशासति ॥ समहीमखिलांभुंजन्राजर्षिप्रवरःपुरा । वर्णानांसंकरंचक्रेकामोपहतचेतनः ॥ ततःप्रभृतियोमोहात्प्रमीतपतिकांस्त्रियम् । नियोजयत्यपत्यार्थेतंविरहन्तिसाधवः) इतिपशुधर्मविवेकः (अथनियोगप्रसंगेवाग्दत्तामृतवरायाविषयमप्याह) । यस्याम्रियेतकन्यायावाचासत्येकृतेपतिः । तामनेनविधानेननिजोविंदेतदेवरः ॥ यथाविध्यधिगम्यैनांशुक्लवस्त्रांशुचिव्रताम् । मिथोभजेताप्रसवात्सकृत्सकृदृतावृतौ) अर्थात्-मनुकहतेहैं कि सन्तानकी बांछामें सगेदेवर से या सपिण्डदेवरसे या सगोत्रीदेवरसे सम्यग्विधिसे नियुक्तकरीहुई स्त्री गमनकरने योग्यहै सो यहविधिकव कर्तव्यहै कि जवनिपट सन्तानका परिक्षयसम्भवहोअन्यथा नहीं-परन्तु-विधवामें नियुक्त कियाहुआ पुरुष अपनी देह से घृतका लेप किये हो रात्रिमें निपट मौनहोकर सङ्गमकरै यहनियम इसके साथ है और यहभी एक नियम है कि एकही पुत्र पैदाकरै दूसराकैसेहू न करै-इसमेंभी-कितनेही महर्षीलोग जो इस नियोग धर्मके लाभोंके विज्ञाताहैं स्त्रियोंमें दूसरा प्रजनभी श्रेयस्कर मानतेहैं किन्तु वे इसबातको सोचतेहुये कहतेहैं कि धर्ममार्ग से उनदोनों स्त्री पुरुषोंका नियोगसे जो प्रयोजन कल्पितहुआथा सो उसदशामें निर्वृत्तनहींहै कि जोवहएकपुत्रमरजाय-इति नियोगधर्मविधिः (अथपशुधर्मविवेकः) मनुकहतेहैं द्विजाती लोगोंको विधवानारी अन्य पुरुष में नियुक्त न करनी चाहिये अर्थात् देवर या सपिण्ड या सगोत्रके सिवायकिसी गैरपुरुषमें नियुक्त करनेवाले निज सनातन धर्मको मेटतेहैं-क्योंकि-यह नियोग धर्मजो गैरमें करवायाजाय तो पशुओंके समान चर्या होजातीहै इसीलिये विद्वान द्विजातियोंने पशुधर्मरूपी नियोग की निन्दा ठहराईहै-किन्तु-मनुष्योंमें भी राजावेन के राज्यमें पशुधर्मरूपी नियोग प्रचरित हुआथा अर्थात् वह राजर्षियों में सत्तम

राजावेन पूर्वकालमें अशेष धरतीका राज्यशासनकरते हुये सभी वर्णोंका वर्णसंकर कर देताभया क्योंकि वह राजर्षि निज आपभी कामोपहत बुद्धिथा इस्से उसने सभी वर्णोंका पारस्पर्य नियोगधर्म अपनी आज्ञासे प्रचरितकरवाया जो पशुधर्मके समान है कि जिस्से बहुधा वर्णसंकरजातें होनेलगीं तबसे लेकर जो कोई विनासमुझे बूझे विधवास्त्रीको संतानकेहेतुसे नियुक्तकरताहै तिसकोअच्छेलोग निंदाकरतेहैं अन्यथा निंदाकाभीकारण कोई नहींथा-क्योंकि-यह निंदा जो राजावेनके समयसे प्रसिद्ध करी गई सो शास्त्रोक्तसे विहीन केवल लौकिक निंदा नियतहै और लोकमेंभी सार्वदेशी निंदानहीं-किंतु विरलेदेशों में अद्यापि निंदारहित इसमर्यादाकी परिपाटीचलीआती है-उड़ीसामें कोईभी निर्वंशनहीं रहता किंतु जब कोई पुरुष निस्संतान मरजाय या जीताहीनपुंसकहो या पुंसत्वके होनेपरभी चिरकालतक प्रवासीहोजाय तब इनतीनों दशामें उसपुरुषका वंशबनारहने की अपेक्षासे शास्त्रमर्यादाके अनुसार किसी भ्राता को उसकी पत्नीमें नियोगकी आज्ञादीजाती है-चूडूदेशमें यही मर्यादा कुछ कुछ ढँकी हुई चलतीहै अर्थात् मृतपुरुषकी पत्नीको छोड़कर नपुंसक आदि जीतेपुरुषकी पत्नी अपने देवरसे वीज लेलेती बल्कि भानजे और पुरोहित आदिसेभी लेतीसुनीजाती है इत्यादि और भी अनेकदेशोंमें निज निज देशीपरिपाटी कुछ कुछ भिन्नहै यह त्रै-वर्णिकमात्रका चर्चाहै शूद्रादिजातोंमें सार्वदेशी यह परिपाटी लोकविदितहै (इतिपशु धर्मविवेकः(अथवाग्दत्तामृतवरायाविषयः) किन्तु जिसकन्याका पति अपने विवाहकी वाचा सत्यकिये पीछे मरजाय तिसकन्याको इस विधानसे स्वकीय देवरव्याहिलेवै अर्थात् जैसी कुछ विवाहकी विधि हुआकरतीहै तैसेही विधि विधानसे वह देवर ऐसीकन्या को कि जो शरीर मनवाणीसे निर्मलहोकर श्वेतवस्त्रधारण करे अपनी भार्याकियेपीछे सभीऋतुकालोंमें दोनों एकत्र होकर एक एकवार संगमकरें जबतक गर्भधारणहोय (लोकमें देवर यद्यपि छोटाभ्राता विख्यातहै पर इस विधिमध्ये देवरशब्दपतिसे छोटे वड़ेसब भाइयों पर आरूढ़ है इस्सेहरकोई भ्राता ऐसीकन्या व्याहिसक्ता है) और (वाग्दत्ताकन्यावह कहातीहै जो वचनमात्रसे देनी कहीगईहो अर्थात् जिसकीसगाई आदि पूर्वनियम सबहोचुकेहों)परन्तु(वाचासत्येकृतेपतिःम्रियेत)इसवाक्यमेंजोअर्थहै कि जिसकन्याका पति अपनी वाचासत्याकिये पीछेमरजाय सो यथार्थसे यहभावहै कि सप्तपदी संबंधीवाग्दानाकिये पीछे मरजाय तौ दूसराभ्राता इसीविधानसे उसकन्याको व्याहिलेवै और (इसी)से कहनेका यह तात्पर्यहै कि जिसविधानसे उसपहिलेभ्राताको वहकन्या व्याहीगईथी उसीविधानसे व्याहिलेनी चाहिये और यहांपर विधान कहने का यह तात्पर्यहै कि(वर्णोवश्यंतथातारायोनिश्चग्रहमैत्रकम। गणमैत्रंभ तिगुणाधिकाः) इत्यादि ज्योतिःशास्त्रके विधानों से पहिले भ्राता

कन्याकी जन्मपत्रीसाथ मिलाईथीतैसे अब दूसरेभ्राताका जन्मपत्र मिलानेसे अपेक्षा नहींहै तथैव और भी जो कोईबात प्रथमआवश्यक जानिकरविचारी और मानीगईहो जो शास्त्र अथवा लोकरीतिके विधानों में गिनतीहो तिसकाविचारकरना अब दूसरे भ्राताके परिग्रहमें अपेक्षा नहींरखताहै-और-इनसभी बातोंका सिद्धांतकेवल इतना है कि वैवाहिक समयकी सप्तपदीनाम कर्मकांडिक मर्यादाके उद्धारहो चुकने ताईं भी यदिकोई वर मरजाय तौ उसवरका कोईयोग्य भ्राताविद्यमान होतेहुये वह कन्याकिसी गैरवरको नहीं दीजासक्ती यह अदालतका व्यवहार है क्योंकिउस मरेहुये वरका द्रव्य व्ययहोचुका इस्से उसीके भ्राताकास्वत्व उसकन्यामें पहुँचताहै (और)यहमर्यादा इसहेतुसे विनिर्मित करीगईहै कि यदि कोई कन्यादाता ऐसेसमय परयह आग्रह करनाचाहै कि यहकन्या अबमैं ऐसेवरको व्याहौंगा कि जिसकी जन्मपत्री आदि विधानोंकायोग भी इसकन्यासे मिलजाय तौवह कन्यादाता राजद्वारसे हारैगा किन्तुउस दशा ताईं भी कि जो मरेहुये वरका कोई सगाभ्राता उसकन्याके योग्य नहींठहरै तौ चचेरेभ्राता देखेजायँगे-इस मर्यादामें (इसी)विधानसे कहनेका तात्पर्य जोऊपर वर्णनहुआ सो यहांतक विशेषता रखताहै कि अवसर बनिआवै तौउसी पहिले मंडपमें उसीबरातके द्वारा मृतवरके भ्राताको वहकन्या व्याहीजाय-संप्रति-यहमर्यादाबहुधा लोकमें इसरीतिसे प्रचरित है किजब केवलएक सगाईके होने पीछेवर मरजाताहै तब दूसरेभाई को वहकन्या दीजातीहै या वरकेभ्राता का अभावहो तौ अन्यवरको भी देदी जातीहै और बिरले देशविभागोंके निवासीलोग सप्तपदीसे पहलेपहले यदि वरमरै तौ वहकन्या उसीवरके भ्राताको या भ्राताके अभावमें अन्यवरको भी देदेतेहैं परन्तु जो सप्तपदीका सप्तमपद पूरा होजानेपर वरमरै तौफिर कन्या किसीवरको नहींदेते हैं क्योंकि (यावत्सप्तपदीनास्तितावत्कन्याकुमारिका) अर्थात् जबताईं सप्तपदीका सप्तमपद पूरा नहोजाय तबतक छठेपदकी अवधि पर्यंत कन्याकारी कहलाती है इसवचनके आशयसे सप्तमपदके पीछे पुनर्वैवाहिकशंका आरोपित करतेहैं-विरलेलोग छठेपदकी अवधिसे पहलेही कन्याको तैलस्पर्श होनेके पश्चात् यहशंका खड़ीकरतेहैं कि कन्याको द्वितीयवार तैल स्पर्शहोनेका निषेधहै इससे तैलस्पर्शके पहले पहले जोवरमरै तौ अन्यवरको देतेहैं अन्यथानहीं-विरलोंका यहसंमतहै कि यावत्काल चतुर्थी कर्म न होवे तबतक व्याह पूरानही होता पर यथार्थसेजिन मुनिवर्योंने जो सप्तमपद का वाग्दान होजानेपरभी द्वितीयभ्राताको वह कन्यादेनी कहीहै तिन्होंने जैसाऊपर वर्णनहोचुका तैसायह आशय निश्चित रक्खाहै कि (इसी)पहले विधानमें वहकन्या द्वितीय भ्राताको देदेनी चाहिये अर्थात् जो तैलस्पर्श उसको होचुकाहो तौ द्वितीयवार तैलस्पर्शकी अपेक्षा शेषनहींहै(इतिवाग्दत्तामृतवरायाविषयः)अत्रोक्त वाग्दत्ताकी व्यवस्थामें यह सि-

द्धांत किसीप्रकारसे भीनहीं है कि इसकन्याकेनियोगमें जो देवरसेसंतानहो सो मृतवर की संतान ठहरै और यह सिद्धांतभीनहींहै किवहकन्या किसीदूसरे भ्राताको व्याही नहीं जाय और व्याहेविना कोईदेवर अपने मरेभाईको संतानपैदा करदेनेके निमित्तसे पराई कन्याके साथ संगम करनेको बिरानेघर भेजाजाय ऐसीनिपट अनर्थक व्याख्या विद्वत्तासे दूर बल्कि मूर्खभी इसबातको समुझते होंगे-प्राचीन टीकाकारोंने सुबोध और निर्दोषिल भी इसव्यवस्थापर निरर्थक धूलिउड़ाई परयह धूलि इसपर कोईभांति जमतीनहीं दिखाती किंतुशास्त्र और लोकसेभी विपरीतहै इसबातका यदिकोई जिज्ञासु होकर निश्चय करनाचाहे तो (यस्याम्रियेतकन्यायाः) इत्यादि दोश्लोक मनुस्मृति केमूल जो मनुस्मृति के नववें अध्यायमें ६९।७० की संख्यापर उपस्थित हैं तिनकी संस्कृत मुक्तावली टीकादेखो (और) साथही इसकेयाज्ञवल्कीय व्यवहाराध्यायमें (अपुत्रेणपरक्षेत्रे)इत्यादि मूलश्लोकपर मिताक्षरामें संस्कृतटीकादेखो क्योंकिवेही दोमनुस्मृतिके श्लोकउसमें पावैंगे और व्याख्याउनकी निपट असंगत पाईजायगी(औरभी) साथही इसके आचाराध्यायकेभी दोश्लोक जो(अपुत्रांगुर्वनुज्ञातो)इत्यादि ६८।६९ की संख्यापर उपस्थितहैं तिनकीभी मिताक्षरामें संस्कृतटीकादेखो इनतीनों स्थलकी व्याख्या विकृतीजानी जायगी किजिसबातकी समस्यामूल वाक्यमें कुछनहीं तिसको खैंचखैंचकर जोड़ा और जोमूलवाक्यों में न्यायात्मक धर्म निरूपितहैं तिनपर जानि बूझकर ऐसे अर्वकर फेंके जो कोई भांति प्रमाणतामें नहीं आसक्के-किंतुयह क्योंकर मानाजासक्ताहै कि जोकन्या किसीवरको वाणीमात्रसे देनीठहरीहो अबतक कोईरीति भांति न होनेपाई इसबिचमें वर मरजाय तोवह वाग्दत्ताकन्या उस बिनाव्याहे वरकी पत्नी कहलानेलगै और किसी दूसरे वरको व्याही नहींजाय और उसमरेहुये वरका कोईभ्राता उस बिनाव्याही कन्याके साथजाकर प्रत्येक ऋतुकालों में गमनकरिआया करै और जो उसके गमनसे कुमारीकन्यामें संतानपैदाहोय सो उसमरे वरकी संतान कहावै और वहकन्या भी उसी मरेवरकी पत्नी कहलावै यहव्याख्या श्रीमद्विज्ञानेश्वर मिताक्षराकार और कुल्लूक भट्टकी विख्यातहै बल्कि इसीव्याख्या के पकाहटकी कामनासे मनुस्मृति नववें अध्यायमें ७१ के भी मूल श्लोककी व्याख्या निपट असंगत करीगई परंतु मनु या याज्ञवल्क्य योगीश्वरके मूलवचनों में ऐसा असंगत भावनहीं है जिसका जीचाहे प्रत्यक्षर सोचिकर देखिलो—धर्मशास्त्र कोईऐसी वस्तुनहींहै कि जैसा कुल्हियामें गुड़फोडनाहो अर्थात् केवल ग्रंथकारलोग अपने मनमौजीढंगोंको समुझैं या नसमुझैं पर और कोईनिपट उनमर्यादोंकोनजानें या नसमुझैं-किन्तु धर्मशास्त्र वह वस्तु लोकदर्पणहै कि जिसकी मर्यादें सर्वशास्त्र और संसारके प्रचारोंमेंभी तुल्यात्मक पाईजायँ और सर्वसाधारणभी मनुष्योंकेमुखसे जिनकाप्रमाण पायाजाय और बहुधा

जिनका वर्तावा लोक व्यवहारोंसे देखनेमेंभी आवै-इसी संवर्णित मर्यादाकी अपेक्षामें दोवड़े ग्रंथकारोंकी व्याख्या जैसीअभी अनंतरोक्त लिखीगई तैसालोकविरोधी प्रचार कभी संसार में किसी ने देखा और सुना भी नहोगा (पर) जैसी व्याख्या मनु और योगीश्वर के मूल वचनों के अनुसार इसी अधिकोक्ति में थोड़ी दूर ऊपर दर्शाई गईथी तैसाही तुल्यात्मक प्रचार संप्रतिलोक में अद्यापि देखाजाता है किन्तु बहुधाही विवाहोंके वीचमें वरमरतेहुये देखने औरसुननेमें भी आये तहाँ वे सभीकन्या या तो उसवरके किसी भ्राताको विवाही गईं या भ्राताके अभावमें औरही किसी योग्य वरको व्याहीगईं वलिक इस्से भी अधिक एक अद्भुत प्रकार निज मनुष्योंसे यहसुनने में आया और दोहीचार वर्षोंकी यह वातहै कि एक त्रिवेदी कान्यकुब्ज पूर्वदेशी अपने देशमें मृत भार्य होकर द्वितीय व्याहकरनेको वरातलेकर पहुँचे और हँसीखुशी सवनेगदस्तूरों से विवाह भी होगया और सप्तपदी के होने पीछे कन्याके चढ़ावे की सामग्री उनसे मांगीगई त्रिवेदीजी कुछ गहना कपड़ालेकर नहीं गयेथे अवस्थासे वृढ़े तथा स्वभावसे क्रोधी भी अवश्यथे इसी वातपर तकरार बढ़ती बढ़ती कुछ द्वंद्व भी करने लगे तव कन्याकी माताने कन्या का हाथलेकरखैंचा और घरमें जावैठारी तव त्रिवेदी भी खोटीशपथैं खातेहुये वरातलेकर घर भागगये निदान उनकी शपथैं और वुढ़ापा और क्रोध और कृपणताआदि दोषोंके ध्यानसे उसकन्याका भी जन्म निरर्थक विगड़ा जानिकर कन्यापक्षी सव सत्पुरुषोंका यही संमत निश्चय ठहरा कि इस निर्दोपिलकन्या का विवाह आवश्यक होजाना योग्यहै ऐसाविचार होजाने पीछे किसीअन्य योग्यवरको वहीकन्या व्याहिदीगई क्योंकि जैसामरजाना एकहेतु निश्चित ठहरायागया जिसमेंद्वितीय भ्राताको वहकन्या देनीकहीगई और मरजानेकेवाददूसरे भ्रातासे विवाह करनेमध्ये इतना चिह्नभी विशेष रक्खागया है कि श्वेतवस्त्र धारण करके द्वितीय भ्राताको विवाहीजाय तैसेही न मरनेकी दशामेंभी उसी वरके जीतेजी वह कन्या अन्यवरको देनीकही है किजो पहिले वरमें कोईदोष पायेजायँ और कन्या दाताको उस्से अधिक श्रेष्ठवर मिलजावे तो निस्संदेह सप्तमपदकी अवधिताईं भी देदेवे परंतु यदि कोईदोष वरमें दुर्वृत्ति या पातक योगनपावेतो निष्कारण अन्यवरको देदेनेवाला कन्यादाता वह दंड राजद्वारसेपावे जो चोरोंको चोरीकरनेमें होताहो यह दोनोंवातें योगीश्वरने आचाराध्यायमें ६५की संख्यावाले मूलश्लोकसे दर्शाईहैं-यथा (सकृत्प्रदीयतेकन्याहरंस्तांचोरदंडभाक्। दत्तामपिहरेत्पूर्वाच्छ्रेयांश्चेद्वरआव्रजेत्)इसी ऋषिप्रोक्त मर्यादाके आशयसे त्रिवेदीके जीतेभी उनमेंदोष पायेजानेसे अन्यवरको कन्यादीगई-परंतु यह वात अद्यापिकहीं देखने और सुननेमें भी नहीं आई कि ऐसी कन्याका देवर विना विवाहे उसके आधान करने को भेजाजाय १३० अव इस्से

नीचे कई परिच्छेदों में द्वादश भाँति के पुत्रोंका विभागधर्म वर्णन होगा १३० ॥

अथात्रदायविभागप्रसंगेपुत्रप्रातिनिधीनामपेक्षयामुख्यगौणभेदेनद्वादश पुत्रस्वरूपविवेकोनामत्रिपंचाशत्तमःपरिच्छेदः ५३ ॥

इसत्रेपन संख्याके परिच्छेदमें द्वादश भाँतिके पुत्रोंका स्वरूप लक्षण जानाजायगा ॥

औरसोधर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः। क्षेत्रजः क्षेत्रजातस्तुसगोत्रेणेतरेणवा १३१ ॥
गृहेप्रच्छन्नउत्पन्नोगूढजस्तुसुतःस्मृतः। कानीनःकन्यकाजातोमातामहसुतोमतः १३२ ॥
अक्षतायांक्षतायांवाजातःपौनर्भवःसुतः। दद्यान्मातापितावायंसपुत्रोदत्तकोभवेत् १३३ ॥
क्रीतश्चताभ्यांविक्रीतःकृत्रिमःस्यात्स्वयंकृतः। दत्तात्मातुस्वयंदत्तोगर्भेविन्नःसहोढजः १३४ ॥
उत्सृष्टोगृह्यतेयस्तुसोऽपविद्धोभवेत्सुतः १३४ ॥

ऐ० --सहसर्वेषां–सबसे मुख्यतौ (औरस) पुत्र जो धर्मपत्नीमें अपनेही वीर्यसे उत्पन्नहुआहो किंतु धर्मपत्नी वहीहै जो सवर्णाहो और धर्मविवाहसे व्याहीहो १ दूसरा (पुत्रिकासुत) भी उसीकेसमान गिनाजाताहै पुत्रिकासुत धेवतेकोनहींसमुझना किंतु उसका लक्षण कुछ औरहै सो अधिकोक्तिमेंदेखो२तीसरापुत्र (क्षेत्रज) होता है जो अपनेवीर्यसे तौ नहीं पर अपने क्षेत्रमें सगोत्रकेवीर्यसे या इतर नाम सपिंड वा देवर के वीर्यसे उत्पन्नहो इसके लक्षण पहलेभी कथनहोचुकेहैं परंतु जब क्षेत्रजपुत्र द्व्यामुष्यायणहो अर्थात् ऊपरले परिच्छेदकीविधि अनुसार दो बापोंकापूत गिनाजाताहो तब जिसके क्षेत्रमें पैदाहुआ उसका तौ द्व्यामुष्यायण क्षेत्रजकहावैगा और जिसके वीजसे उत्पन्नहुआ तिसका द्व्यामुष्यायण परक्षेत्रजकहावैगा किंतु औरसनहींगिना जाता अर्थात् मुख्य औरसकी अपेक्षा यह मध्यमहै क्योंकि मुख्य औरस निज अपने क्षेत्रसेहोताहै यह विरानेक्षेत्रमें उत्पन्नभयाहै ३।१३१चौथा(गूढज)वेटा वह कहाताहै जो वापके वीजसे नहीं पर वापहीके घरमें गुप्तभावसे उत्पन्नहुआहो इसकाव्यौरा कुछ अधिकोक्तिमेंभीदेखो ४ पाँचवां (कानीन) वेटा वह कि जो कुमारीकन्यामें सवर्णपुरुष के वीजसेपैदाहो वह वेटा अपने नानाकाही पुत्रगिनाजाताहै पर उसदशामें यदि नाना निपट निपूताहो और वह कन्याविना विवाहीरहिकर वापकेघरजन्मकाटै अर्थात् यदि ऐसेपुत्रकेहोनेपीछे कन्याका विवाहकियाजाय तौ वह कानीनवेटा नानाका न होगा किंतु कन्याके भर्ताकोमिलैगा देखो मनुकावचन अधिकोक्तिमें ५। १३२ छठा (पौनर्भव) वेटा वह कहाताहै जो अपनेवापकेही वीजसे अक्षतापुनर्भू या क्षतापुनर्भू भार्या में उत्पन्नहो पुनर्भूके लक्षण पहले सत्ताईसवें परिच्छेदगत श्लोक ५२ की अधिकोक्तिमें प्रदर्शितहोचुकेहैं ६ सातवां (दत्तक) वेटा वह कहाताहै जिसको माता पिता समर्पित करैं अर्थात् जिस किसीअपने सजातीका वेटागोदलेनायोग्यहो तिस वेटाके

मातापिता दोनों अपनी प्रसन्नतासे समर्पण करैं या केवलपितादेवै या केवल माताही अपने पतिकी आज्ञासे उसके मरे पीछे या विदेशमें रहतेहुयेदेवै तौ जिसकोदियागया तिसकावहदत्तक पुत्रकहाताहै इसकी विशेष व्यवस्था अधिकोक्तिमें देखो ७। १३३ आठवां (क्रीत) वेटावहकहाताहै जो मातापिता दोनोंने या पिताने या माताने ही अपने सजाती हाथवेंच दियाहो तौ जिसनेमोल लियाहोउसीकावह क्रीतपुत्रहुआ ८ नववां (कृत्रिम)वेटाउसे कहते हैं जो आपही कियाहो अर्थात् मातापिताने दिया नहीं और वेंचानहीं केवल पुत्रार्थी पुरुष ने धन धरती बाहनआदि पदार्थोंका लोभ दिखाकर किसीऐसे लड़केको वेटा अपना बनालिया जो मातापितासे विहीनहो या मातापिता ऐसा करतेहुये रोंके नहीं ९ दशवां (दत्तात्मा) बेटा जो मातापितासे विहीन या त्यागा हुआ आपही यहकहकर प्राप्तहोवै कि मैं वेटा बनकेरहूँगा १० ग्यारहवाँ (सहोढज)पुत्र उसे कहतेहैं जो सगर्भा कन्याको व्याहिलावै और व्याहसे अनंतर पैदाहोय तौवह व्याहनेवालेका पुत्रहै और सहोढज उसका नामहै ११ ॥ १३४ ॥ बारहवाँ(अपविद्ध) वेटा उसेकहतेहैं जो मातापितानेपैदा होतेसार या कुछदिनोंपीछे किसीहेतुसे फेंकदिया तिसको जोकोई लेआकर पालै उसीका वहवेटाहै १३४ ॥

अधि०सहस्रवेंपां—एक यहबातभी यादरखनी चाहिये कि जैसेयोगीश्वरनेये १२ भाँति के पुत्र प्रदर्शित किये तैसेही मनुनेभी बारहपुत्र कहे हैं परदोनोंके कथनमें निज निज संमतसे इतना अंतरहै कि योगीश्वरने औरसकेपीछे पुत्रिकासुत प्रदर्शित किया और औरसके समान वतलाया (और) मनुनेभी औरसके समान उसकोकहा पर बारहपुत्रों सेभिन्न वर्णनकिया किंतु पुत्रिकासुतके स्थानपर क्षेत्रजकोही दूसरा नियतकिया (सो) उस पुत्रिकासुतके भिन्नरखनेसे एक जो कमतीहुआ तिसके पलटे एक शूद्रापुत्रभी मनुने बारहवाँ सबसेपीछे गिनती करलियाहै योगीश्वरने शूद्रा पुत्रको बारहसे जुदा रक्खा (सो) इसअंतरके होने से कोईसी हानि नहीं है परंतु यथार्थ से योगीश्वरका बांधा हुआक्रम अत्यंत श्रेष्ठ है-इसके सिवाय-इतना अंतर औरहै जिसक्रमसे योगीश्वरने १२ पुत्रगिनाये उसक्रमके सन्मुख मनुकी बाँधी हुई पंक्तिमें कुछ व्यतिक्रम सा प्रतीतहोताहै (दृष्टांत) जैसे योगीश्वरने अपविद्ध वेटेको सबसे पीछे कहा सो यह न्यायात्मकहै और मनुने अपविद्धको छठी संख्यापर गिनती किया सो यह न्यायात्मक नहींहै इत्यादि बहुधा औरोंमें भी आगेपीछेका व्यतिक्रमहै (सो) इन बातोंका व्योरा आगे १३५ वाली अधिकोक्तिमें जहांपर मनुजीके वाक्य इसवार्त्ता संबन्धी लिखे जावेंगे प्रत्यक्ष जानाजायगा-अब उन्हीं उक्तद्वादशपुत्रोंके स्वरूप निर्णय करते हैं कि औरसके सिवाय दूसरापुत्र (पुत्रिकासुत) जो औरसके समान कहागया तिसका यह लक्षणहै कि जिसके पुत्रनहो और वह अपनीकन्या जिसको देनेलगे उससे

यह प्रतिज्ञा दृढ़ करिलेवै कि इस कन्याका पहिला पुत्र हमलेलेवैंगे-यथाहवसिष्ठः (अभ्रातृकांप्रदास्यामितुभ्यंकन्यामलंकृताम्। अस्यांयोजायतेपुत्रःसमेपुत्रोभवेदिति) अर्थात्-यह प्रतिज्ञाहै कि तुम्हें बिना भ्राताकी कन्या अलंकृतकरी देताहूं इसमें जो पुत्र पैदाहो वह मेरापुत्र होवै-इसी हेतुसे वह पुत्रिका सुत कहाताहै कि पुत्रिका जो बेटीहै तिसकासुत अपना पुत्र बनायागया पर इसकेउपरान्त जो उस कन्याके पुत्रहोंगे वे सब धेवते कहलावेंगे और सिद्धान्त इसका यह कि वह पुत्रिकासुत अपने नाना का सभी धन उसप्रकारसे पावैगा कि जैसे एक औरस पुत्रहोता तौ वह सबधनका मालिकहोता किन्तु इसकेसन्मुख वे धेवते नहींपावैंगे जो इस्से पीछेपैदाहुयेहों-पुत्रिका सुतका एक दूसरा अर्थभी होताहै कि पुत्रिकाही पुत्रकेसमानहै सिद्धान्त इसका यह कि यदि पुत्रियोंकेभी पुत्र नहों तौ बाप अपनी एकपुत्रीकोही पुत्रकरिकेमानै और जमाई सहित अपनेपास बसावै तौ वही औरसपुत्रके समान गिनीजाकर निजपिताका सब रिक्थ पावैगी और शेषबहिनें जो बिनाबिवाही पिताछोड़ै तिनकाब्याह उसीन्यायसे वह करैगी कि जैसे भाईहोता तौ करता सो यहबातभी वसिष्ठनेहीकहीहै-यथा (द्वितीयःपुत्रिकैवेति) किन्तु (द्वितीयःपुत्रःपुत्रिकैवकन्यैवेत्यर्थः) अर्थ ऊपरहोचुकाहै २-तीसरे (क्षेत्रज) पुत्रकीव्यवस्था ऐक्यार्थमें प्रदर्शितहोचुकी और इस्से पहिलेपरिच्छेदमें द्व्यामुष्यायणकेभीसाथ निर्णय होचुकाहै तथापि यहाँ मनुकावाक्य लिखते हैं कि जिस्से सीधामार्ग समुझाजाय-यथा(यस्तल्पजःप्रमीतस्यक्लीवस्यव्याधितस्यवा। स्वधर्मेण नियुक्तायांसपुत्रःक्षेत्रजःस्मृतः) अर्थात्-मरेहुये या नपुंसक बीजरहित जीवतेकी या दीर्घरोगीकी सेजसेउत्पन्न जो नियुक्तकरीस्त्रीमें स्वधर्मसेही देवर आदिके द्वाराहो वह क्षेत्रजकहलाताहै ३-चौथे (गूढजपुत्र) कालक्षण मनुनेभी यहकहाहै-कि (उत्पद्यतेगृहेयस्यनचज्ञायेतकस्यसः। सगृहेगूढउत्पन्नस्तस्यस्याद्यस्यतल्पजः) अर्थात्-जिसके घरमें जो उपजै और यह नहीं जानाजाय कि यह किसके बीजसे पैदाहुआ तौ यह घरमें छिपापैदाहुआ पुत्रउसीका कहावै जिसकीसेजमें अर्थात् जिसकी भार्यामें हुआ हो-यद्यपि इसवचनका प्रत्यक्षभाव तौ यही प्रतीतहोताहै कि चाहै किसी नीचकेभी बीजसे हुआहो तथापि योगीश्वरकी विवक्षासे सिद्धान्त यही है कि यद्यपि बीजवालामनुष्य तौ नहीं जानाजाय पर इतना निश्चयहोनाचाहिये कि अवश्य किसी सवर्णपुरुषका बीजहै अन्यथा यदि भिन्नजाती बीजकानिश्चयहोजाय तौ फिर इसमर्यादामें गिनती नहीं किन्तु उसका त्यागयोग्यहोगा ४-पाँचवां (कानीन) बेटा यद्यपि एकदशामें नाना का होताहै पर जो पैदाकरनेवालीकन्याका विवाहभी होजाय तौ फिर साथही उसके कानीनबेटा पतिउसका पावैगा-यथाहमनुः (पितृवेश्मनिकन्यातुयंपुत्रंजनयेद्रहः। तंकानीनंवदेन्नाम्नावोढुःकन्यासमुद्भवम्)अर्थात्-जिसपुत्रको कुमारी कन्या पिताकेघर एका-

न्तमेंजनै तिसको कानीन इसनामसेकहिये और वह कन्याके ब्याहनेवालेका होगा अर्थात् कन्याकेसाथ ब्याहनेवालेको देदियाजायगा और उसीकेपुत्रोंमें जो आगेहोगा वह कानीनकहावैगा ५-छठा (पौनर्भव) इसकालक्षण मनुने यह कहाहै कि (यापत्यावा परित्यक्ताविधवावास्वयेच्छया । उत्पादयेत्पुनर्भूत्वासपौनर्भवउच्यते) अर्थात्-जो पति करके त्यागीहुई या विधवा स्त्री निजइच्छासे फिर किसीकीहोकर उस्से पुत्रपैदाकरै सो पौनर्भवकहाताहै ६-सातवें (दत्तक) पुत्रकेलक्षण मनुने भी कहेहैं कि (मातापितावादद्या तांयमद्भिःपुत्रमापदि।सदृशंप्रीतिसंयुक्तंसज्ञेयोदत्त्रिमःसुतः) अर्थात्-मातापिता अपनी प्रीतिसे या आपत्कालमें जिसपुत्रको जलसे संकल्पसहित निजसजातीको देदेवैं सोवह गोदलेनेवालेकादत्त्रिमसुतकहावे-सजातीकहनेसे यहनिषेधपायागया कि भिन्नजातीको न देनाचाहिये औरभिन्नजातीसे नलेनाचाहिये-तैसेही एकपुत्र न देना और न लेनाचाहिये-यथाह वसिष्ठः(नत्वेवैकंपुत्रंप्रतिगृह्णीयाद्दद्याद्वा)अर्थात्-जिसके एकहीपुत्रहो उस्से किसीकोनलेनाचाहिये औरवहभी अपना एकलौता पुत्रनदेवै तैसेही अनेकपुत्रवालाभी जेठासुतनदेवै क्योंकि(ज्येष्ठेनजातमात्रेणपुत्रीभवतिमानवः)अर्थात्-जेठपुत्रके पैदाहोतेसार पुरुष पुत्रवाला कहलाता और पुत्रोंके जो धर्म हैं सोसब जेठेपरही मुख्यभावसे आरूढ़हैं यद्यपि सगोत्रीसेही लेनाउचितहै पर कदाचित् सगोत्रीका न मिलनेमेंसवर्णमात्रमेंसे भिन्नगोत्रीकाही लियाजाय तौ फिर गोदलेने वालेकाहीगोत्र उसकाहोजाता है-यथाहमनुः(गोत्ररिक्थेजनयितुर्नहरेद्दत्त्रिमःक्वचित् । गोत्ररिक्थानुगःपिंडोव्यपैतिददतःस्वधा) अर्थात्-दत्तकबेटा जो देदियाजाय सो अपने जन्मदाताकागोत्र और धन भीकहीं नपावै किन्तु ग्रहीताकाधन और गोत्रपावै और ग्रहीताकोही पिंड देवै क्योंकि पिंडजोहै सोगोत्र और धनकालागू सदारहताहै इस्से पुत्र देदेनेवालेका श्राद्ध आदि स्वधाकर्मभी दत्तकमेंसे जाता रहताहै इसीदत्तक पुत्रकीअपेक्षामें सदाशिवजीने जैसा नियम दर्शाया सो अब लिखते हैं-यथा(विवाहानंतरंनारीपतिगोत्रेणगोत्रिणी। तथाग्रहीतृगोत्रेणदत्तपुत्रस्यगोत्रिता ॥ सुतमादायसंमत्याजनन्याजनकस्यच । स्वगोत्रनामान्युल्लिख्यसंस्कुर्यात्स्वजनैःसह ॥ औरसेपियथापित्रोर्धनेपिंडेऽधिकारिता । आदात्रोर्दत्तकेतद्वद्यतोऽस्यापितरौहितौ॥ आपंचाब्दांशिशुंगृह्णन्नुसरणात्परिपालयेत्।पंचवर्षाधिकोबालोदत्तकोनप्रशस्यते॥भ्रातृपुत्रोपिदत्तश्चेद्ग्रहीतैवभवेत्पिता। उत्पादकःपितृव्यस्स्यात्सर्वकर्मसुकालिके)अर्थात्-शिवजी कहतेहैं कि हेकालिके जैसे विवाह कियेपीछे कन्या अपने पिताका गोत्रछोड़कर पतिके गोत्रमें गोत्रिणी होजातीहै तैसेही ग्रहीता नाम गोदलेनेवालेके गोत्रमें दत्तक पुत्रकी गोत्रिता होजातीहै किन्तु जिसनेपैदाकिया तिसकोगोत्रमें अपेक्षानहीं रहती-इसलिये-माता पिता दोनोंकी संमति और प्रसन्नता से उनकाबेटा गोदमेंलेकर अपने बांधवोंसहित बैठिकर अपनेगोत्रकेनामोंको कागज

पर संकलपकीरीतिसे लिखवाइकर पीछे संस्कार उसका करै-तौ-इसप्रकारके दत्तकपुत्र में लेनेवाले माता पिताओंकेधन और पिंडदानमें भी वैसाही अधिकारहुआ करताहै कि जैसा औरसपुत्रको अपनेमाता पिताओंकेधन पिंडमेंहोताहै क्योंकि अब येहीमाता पिता उसकेहुये-परंतु-पाँचबरसकीअवस्था पर्यंतका बालक अपने सवर्णोंसेही लेकर भलेप्रकार पालनकरै जिस्से वह बालक अपनोंको भूलिकर इन्हींमें हितकरै किंतु पाँचबर्षसे अधिकअवस्थाका दत्तक अच्छानहीं-औरभी-चाहै भाईकाही बेटालियाहो पर आचार व्यवहार आदि सबकामोंमें लेनेवालाही बापहोगा और पैदाकरनेवाला जो बापथा सो चचाकहावैगा अर्थात् उसबालकसे ऐसाही अभ्यासकरानायोग्यहै— वासिष्ठजीनेभी इसकीविधि अच्छीरीतिसे कहीहै-यथा (पुत्रप्रतिग्रहकारकश्चपुत्रंप्र तिग्रहीष्यन्बंधूनाहूयराजानिचावेद्यनिवेशनमध्येव्याहृतिभिर्हुत्वा अदूरबांधवंबंधुसन्नि कृष्टएवप्रतिगृह्णीयात्) अर्थात्-पुत्रकाप्रतिग्रहलेनेवाला गोदलेनेकी तैयारीकरते हुये अपने बांधवोंको बुलायकर पुनि उनके सन्मुखराजा परभी आवेदन देकर अर्थात् रजिस्टर आदि प्रकारोंसे जिसराज्यकी जैसीपरिपाटीहो राजकीय पत्रों में प्रवेशकर-वायकर पीछे अपनीबाहरली बैठकवाले स्थानमें व्याहृतियोंसे होमकरिकै अदूरबांध-व लड़केको उसके बंधुओंके समीपहीगोदलेवै जिस्से पीछे कोईझगड़ा टंटा शेष न रहै (अदूरबांधव) यह विशेषण जो लड़केमें लगाया सो इसहेतुसे कि वह लड़का अपने बांधवोंसे अतिदूरदेशमें न हो जिसकी बोली निज अपनी वा ग्रहीताकी बोली से कुछ अन्यप्रकार किसीदेश भाषासे पलटीहुईहो ऐसेको न लेनाचाहिये) यहीन्याय (क्रीत) और (दत्तात्मा) और (कृत्रिम) इन तीनोंमेंभी समुझलेना अर्थात् वसिष्ठजीके दर्शायेहुये नियमोंमेंसे जो जो नियमसंभवहों सो इनतीनोंमेंभी संयुक्तकरनायोग्यहै ७ (इसदत्तक पुत्रकी व्यवस्था अभी औरभी निचले परिच्छेदमें विशेषकरप्रदर्शितहोगी और उसीसाथ क्रीत कृत्रिम आदिकईपुत्रोंकी कुछ देशभेदकी परिपाटीसे मर्यादादर्शि तहोगी) आठवाँ (क्रीत) पुत्र जो है तिसकेलेनेवालेको तौ वसिष्ठजीके कहेहुये पूर्वोक्त नियमोंकावर्त्तावा दत्तकपुत्रकेसमान करनायोग्यहै और देनेवालेकोभी यह योग्यहै कि नतौ एकलौताको बेंचै और न जेठे पुत्रको बेंचै और आपत्ति विना भी न बेंचै ८ (क्रीत पुत्रबनाने की परिपाटी संप्रति विशेषकर गुसाईं आदिपंथवालों में प्रवर्तितहै) नवयां (कृत्रिम) अर्थात् वनायाहुआ पुत्र यह अवस्थामें चाहैतितनाहो किन्तु इसकेलिये पाँच वर्षोंसे भीतरका कुछ नियम नहींहै-यथाहमनुः(सदृशंतुप्रकुर्याद्यंगुणदोषविचक्षणम्।पुत्रं पुत्र गुणैर्युक्तंसविज्ञेयश्चकृत्रिमः)अर्थात्-गुण और दोषोंका जाननेवाला जातिमें सदृश और पुत्रोंमें जो जो गुणहोने चाहिये तिनसे संयुक्त ऐसे जिस किसीको धनादिकोंका लोभ दिलाकर पुत्रार्थी अपना पुत्रबनावै तिसे कृत्रिमजानो ९ (इस कृत्रिम पुत्रके

वर्तावे की परिपाटी संप्रति मैथिलदेशमें विशेषकरके प्रचरितहै) दशवां (स्वयंदत्त) जिसको (दत्तात्मा) भी कहते हैं तिसके लक्षण मनुने प्रदर्शित किये हैं-यथा (मातापितृविहीनोयस्त्यक्तोवास्यादकारणात्। आत्मानंस्पर्शयेद्यस्मैस्वयंदत्तस्तुसस्मृतः) अर्थात्-जिसके माता पिता मरगये या विपत्ति आदि किसीहेतुसे छूटगये या उन्हींने अकारण अपने पुत्रको त्यागिदिया ऐसा पुत्र आपही आकर अपने आत्माको जिसके अर्थ पुत्रभावसे समर्पितकरै तिसका स्वयंदत्त बेटा कहलाताहै १०-ग्यारहवां (सहोढज) के भी लक्षण मनुनेकहे हैं-यथा (यागर्भिणीसंस्क्रियतेज्ञाताऽज्ञातापिवासती। वोढुःसगर्भोभवतिसहोढइतिचोच्यते) अर्थात्-जो गर्भिणी कन्या जानिकर या बेजानीहुई भी व्याहिली जातीहै वहगर्भ उसका पैदा होकर व्याहनेवाले का सहोढ पुत्र कहलाताहै ११-बारहवां (अपविद्ध) बेटा कहचुके हैं कि जो पैदाहोते सार फेंका जाय और कोई उसेले आकर अपने पुत्रवत् पालै-परंतु इसमें भी यह नियम आवश्यक है कि वह सजाती का ही बीजहो अर्थात् ऊर्ध्वोक्त सभी प्रकारके पुत्रोंमें यह नियम आवश्यकहै क्योंकि आगे १३६ के श्लोकमूलसे यह नियम निश्चित होगा-इन बारह पुत्रोंमें उत्तरोत्तरकी अपेक्षा पूर्वपूर्व श्रेष्ठहै और पूर्व पूर्वकी अपेक्षा पिछला पिछला निकृष्टहै १३१।१३२।१३३।१३४ जिस प्रयोजनके निमित्त से यह बारह पुत्र प्रदर्शितहुयेसो उस प्रयोजनको अब निचले परिच्छेदमें दूसरे अर्द्धासे कहते हैं १३४॥

अथमुख्यगौणद्वादशपुत्राणांदायक्रमविवेको नामचतुःपंचाशत्तमःपरिच्छेदः ५४॥

इस चौवन के परिच्छेदमें वह व्यवस्था जानीजायगी कि औरस आदि बारहपुत्रों को किसक्रमसे दाय मिलनाचाहिये॥

पिंडदोंऽशहरश्चैवपूर्वाभावेपरःपरः १३५॥

ऐ०-पूर्वके अभावमें पिछला पिछला पिंडदाता और अंश हर्ता होताहै अर्थात् इनबारह पुत्रोंमें पहिला पहिला जब नहो तब उत्तरोत्तर यथाक्रमसे उस्से अगिला अगिला जो मंदहै सो भी अपने बापको श्राद्ध पिंड देवै और उसका छोड़ाहुआ सबधनहरै १३५॥

म०भि०-बारह पुत्रोंमें यथाक्रमसे धनका अधिकार निश्चित हुआ तौ आशय इसका यह उत्पन्न भया कि जब औरस बेटा और पुत्रिका सुत ये दोनोंहों तब औरसही धन पावे पुत्रिकासुत अधिकारी उसके होतेहुये नहीं रहा क्योंकि पहला पहला के होतेहुये पिछला पिछला नहीं पासक्ताहै परंतु योगीश्वर इस पुत्रिकासुतको भी औरसकेही समान कहचुके हैं इसलिये यह यथाक्रम की मर्यादा इस पुत्रिकासुतके साथ नहीं जोड़नी किन्तु इसको छोड़कर शेष दशपुत्रों में समुझनी वरन इसी निमित्तसे मनुने इस यथाक्रमकी मर्यादा में अपवाद दर्शायाहै-यथा (पुत्रिकायांकृतायांतुयदि

पुत्रोऽनुजायते। समस्तत्रविभागः स्याज्ज्येष्ठतानास्तिहिस्त्रियाः) अर्थात्-पुत्ररहित पुरुषके पुत्रिका धर्म किये पीछेयदि और सबेटा पैदाहोय तब उन दोनोंका समान भाग होगा और ऐसीदशामें स्त्रीकी जेठाईनहीं मानीजाती इस्से जेठाईका अधिकांश जैसा मनुने दर्शायाहै सो नहीं देना(अपवादनाम छूटका स्वरूप इसमें यही है कि उत्तरोत्तर यथाक्रमकी मर्यादा इस पुत्रिकासुतको छोड़कर औरोंमें समुझनी) क्योंकि यह औरस की अपेक्षा मंदनहींहै(यहाँपर बारहपुत्रोंके प्रसंगसे केवल पुत्रिकासुतका चर्चाहै किन्तु धेवतोंका चर्चा कुछ विस्तारसहित आगे वर्णनहोगा)इसपुत्रिका सुतकेसिवाय यद्यपि शेषदश पुत्रोंको पहिला पहिलाके होतेहुये धनभागित्व नहींहै तथापि दशपुत्रोंमेंसे दत्तकादिक दोचार पुत्रोंको वसिष्ठने पहिला पहिला के होतेहुये भी चतुर्थांश देनाकहाहै-यथा (यस्मिंश्चेत्प्रतिगृहीतेऔरसउत्पद्येतसचतुर्भागभागीस्याद्दत्तकः) अर्थात्-जिसके गोदलिये उपरांत औरस पैदाहोय वहदत्तक चौथाई धनका भागीकिया जाय किन्तु तीनभाग औरस पावै-जबकि सबसेप्रबल औरसहै तिसीको चौथाई बाँटिदेनापरा तो औरभी जो जिस्से पूर्वहोसो अपनेसे उत्तरवालेको चतुर्थांश भागनदेनेका अधिकारीनहीं है-यहाँपर दत्तकयागोद कहनेसे यहनहीं समुझना कि एकउसीकाचर्चाहै जिसकोमाता पिताने इच्छासाथ समर्पितकियाहो अर्थात् दत्तकपुत्रके उपलक्षणसे क्रीत और कृत्रिम आदिभी चौथाईपानेके अधिकारी समुझलेने क्योंकि वेभी सबअविशेषता पूर्वकउसी रीतिसे पुत्रबनायेगयेहैं जैसा दत्तक तैसे वेभीहैं सो यहबात अग्रोक्त कात्यायनके वाक्य से यथावत् समुझीजायगी-यथाहकात्यायनः(उत्पन्नेत्वौरसेपुत्रेचतुर्थांशहराःसुताः।सवर्णाअसवर्णास्तुग्रासाच्छादनभाजनाः) अर्थात्-किसीप्रकार का प्रतिनिधिपुत्र बनाये पीछे औरसके उत्पन्न होनेमें दत्तकादिक बेटे चौथाई भागपावैं परवेही जो सवर्णहों किन्तु असवर्णोंको रोटीकपड़ामात्र औरसदेवै-इसवाक्यमें सवर्णके विशेषणसे क्षेत्रज दत्तक क्रीत कृत्रिम आदि समुझने क्योंकि इनमें निस्सन्देह सजाती होनेका निश्चय पहलेहोजाताहै इसलिये यहसब औरस के होनेपरभी चौथाई भागपावैंगे(और)असवर्णके विशेषणसे कानीन गूढ़ोत्पन्न सहोढज आदि समुझने क्योंकि इनमें सजातित्व का निश्चय होसकना दुर्घटहै इसलिये ये औरस के होतेहुये केवल भोजन वस्त्रपावैंगे चौथाई भागपानेके अधिकारी नहीं हैं पर औरसके न होनेमें येभी उग्रक्रमसे सबधन पावेंगे कि जैसानियम ऊपर निश्चितहोचुका-जोकि अग्रोक्त विष्णुके वचनसे इनको निपट धनका भागीहोनाही नहीं पायाजाताहै तिसकाभी सिद्धान्त यहीहै जो अबकह चुके-यथा(अप्रशस्तास्तुकानीनगूढोत्पन्नसहोढजाः। पौनर्भवश्चनैवैतेपिंडरिक्थांशभागिनः)अर्थात् विष्णुने यहकहाहै कि कानीन गूढ़ोत्पन्न सहोढज पौनर्भव यहसब अच्छे नहीं और पिंडदान वा रिक्थांश भागीहोनेमें भी अधिकारीनहीं(सो)इनमेंभी सिद्धान्त

यहीहै कि औरसके होनेमें इनको चौथाईभी न मिलना चाहिये केवल अन्नवस्त्रपावेंगे अर्थात् जब औरस पुत्रनहो तौ फिर येभी सबधन हरेंगे और यहीबात योगीश्वरके मूलवाक्यसेभी संसिद्धहै कि(पूर्वाभावेपरःपरः)अर्थात् पहिलेके नहोनेमें पिछलापिछलापावै-इसकेसिवायजो-एकमनुका वचनकुछ इसनियम से विरुद्धहै तिसका तात्पर्य कुछ औरहै-यथा(एकएवौरसःपुत्रःपित्र्यस्यवसुनःप्रभुः। शेषाणामानृशंस्यार्थंप्रदद्यात्तु प्रजीवनम्) अर्थात्-एक औरस बेटाही पिताके धनका मालिक होताहै शेष उपभाइयोंको कृपाभावसे अच्छेनिर्वाह योग्य आजीवन मात्र देदेवे-इसवचनसे यह विरोध पैदाहोताहै कि दत्त, क्रीत, कृत्रिम आदि जो चौथाई अंशकेभागी निश्चित हुयेथेतिनको भी भोजनमात्रकी आज्ञापाईगई-परन्तु-इसवचन का आशय केवल इतनाहै कि दत्तक आदि जो औरस भाईसे प्रतिकूल और निर्गुणभीहों तबतौकेवल भोजनवस्त्र अच्छेनिर्वाह योग्यदेना चाहिये अन्यथा जबकेवल प्रतिकूलहों परगुणवान्हों याकेवल निर्गुणहों पर औरस भाईके अनुकूलहों तब चौथाईभाग अवश्य उनको देनाचाहिये इसव्याख्यासे यहवचन भी ऊपरले वाक्योंसे विरुद्धनहींहै-क्योंकि-इसी प्रकारकी विशेषता निजमनुनेही उसीस्थलपर क्षेत्रज पुत्रकी अपेक्षासे दर्शाईहै-यथा(षष्ठंतुक्षेत्रजस्यांशंप्रदद्यात्पैतृकाद्धनात्। औरसोविभजन्दायंपित्र्यंपञ्चममेववा)अर्थात्-औरस बेटापिताके दायको हरतेहुये पैतृक धनमेंसे अपने क्षेत्रज भ्राताको छठाअंश या पाँचवाँअंश ज़रूरदेदेवे-ध्यानकरो कि यहछठे या पाँचवेंका विकल्प केवल इसलिये है कि जब क्षेत्रजभाई अपनेसे प्रतिकूल और निर्गुणभीहो तबतौ छठाअंशदेना और जो दोमेंसे एकही लक्षण बुराहो एकअच्छाहो तौ पाँचवाँअंशदेना इसलिये यह विकल्पभी न्यायात्मक है कुछवृथानहीं(अथचात्रापिशंकाशांतिः)कदाचित् कोई मनुस्मृतिके आशयसे यहशङ्का इसी स्थलपर आरोपितकरै कि सभी द्वादश पुत्रोंको क्योंकरदाय मिलसक्ताहै मनुनेकेवल छःपुत्रोंको दायाद बतलाया और शेष छःपुत्रोंको नहीं इसलिये इसी शंकाकी शान्ति रूप व्यवस्था आगे लिखतेहैं-जोकि मनुने द्वादश पुत्रों के दो छके भिन्नभिन्न कहिकर पहिलेछका को दायादबांधवत्व और पिछले छकाको अदायादबांधवत्व बतलाया है तिसका भी यह आशय नहींहै कि पिछलेछकावाले छः बेटे निपट औरस के न होनेपरभी पैतृक रिक्थ न पावेंगे अर्थात् जोलोग ऐसीअसंगत व्याख्यामनुकेनिम्नोक्त वचनोंकी लगातेहैं वे पूर्व्वापर के सोचेविना और मनुके विवक्षाको समुझेविना लगातेहैं-इसलिये अब दोचार वाक्यभी जो मनुने इसबात्तकी अपेक्षामें दर्शायेहैं सो लिखतेहैं-यथा (पुत्रान्द्वादशयानाहनृणांस्वायंभुवोमनुः। तेषांषड्बन्धुदायादाःषडदायादबांधवाः) अर्थात्-मनुष्योंके जिनबारह पुत्रोंकोस्वायंभुव मनुने कहातिनमें प्रथमके छः पुत्र तौ बंधुओंकेभी दायादनाम धनहरनेवाले और बंधु

भीकहातेहैं (और) पीछेके छे पुत्र जेहैं ते बंधुओंके (अदायादबांधव) अर्थात् धनहरनेवालेनहीं पर बांधवहोते हैं (बिरलेलोग इस वचनकी ऐसीव्याख्याकरते हैं कि पिछले छे पुत्र निजग्रहीतापिता के अदायादनाम धनहरनेवाले नहीं और बंधुभीनहीं सो यह निपट असंगतहै) मनुजीने इनको फिर जुदाजुदा करके समुझायाहै-यथा—(औरसः क्षेत्रजश्चैवदत्तःकृत्रिमएवच । गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्चदायादाबांधवाश्चषट् ॥ कानीनश्चसहोढश्चक्रीतःपौनर्भवस्तथा। स्वयंदत्तश्चशौद्रश्चषडदायादबांधवाः)अर्थात्-औरस १ क्षेत्रज २ दत्तक ३ कृत्रिम ४ गूढज ५ अपविद्ध ६ यह छे पुत्र दायाद भी और बांधवभी होते हैं -एवं-कानीन१ सहोढज २ क्रीत ३ पौनर्भव४ स्वयंदत्त ५ शौद्र ६ यह छे पुत्र दायाद तो नहीं पर बांधव येभीहैं (इसमें जो बिरलेलोग ऐसा अर्थ लगाते हैं कि निजग्रहीतापिताके दायादभी नहीं और बांधवभीनहीं सो असंगत है क्योंकि यद्यपि काव्यकी रीति से दोनों अर्थठीक अर्थात् ऐसाअर्थभी लगसक्ता है तथापि यदि पूर्व्वापर के विचारसे न्यायात्मक नहीं है तो फिर यह योजना क्योंकर मानीजाय इसलिये वही योजना ठीक और न्यायात्मक है कि पिछले छे बेटे निजबांधवोंके दायाद नहीं परबांधव उनके हैं(सो) इस बातका यह आशयनहींहै कि पिताकाभी धन औरस आदिके न होनेपरभी नहींपावें-किंतु-मनुकी यह विवक्षाहै कि औरसआदि पहलेछक्काके नहोनेपर पिताकाधन पावें परन्तु पिताके सपिंडों और समानोदकों और सगोत्रों में जो किसी निपूतेकाधन ऐसा लावारिसहो जिसकालेनेवाला अधिकारी कोई उसनिपूतेका निकटवर्ती सम्बन्धीनहींहो (तौ) ऐसे लावारिसधनको भी यह पिछलाछक्कानहींपावे क्योंकि यह बंधुओंका दायाद नहीं केवल अपने पिताका दायादहै (और) वह पहिलाछक्का पिताके सिवाय उसके बंधुओंकाभी दायादहै इसलिये ऐसे बंधुओंके भी लावारिस धनको वह पावेगा (परन्तु) बंधुओंके बांधव दोनों छक्के कहेगये हैं सो यह बांधवत्व केवल तिलांजली जलदान क्षौरकर्म आदि कार्यों में समुझना किंतु इनकामों के करनेमें दोनोंछक्के बांधव अर्थात् गोत्री गिनेजातेहैं—सिद्धांत इसका यहीहै कि मनुने दोछक्के जो कल्पित किये सो बांधवोंका धनपाने और न पानेमध्ये कियेहैं कुछपिता के धनका चर्चा इन वाक्यों में नहींहै-किंतु-पिताकाधन पानेमध्ये मनुने जुदावाक्य दर्शाया औरसभीपुत्रोंका अधिकार उसमें कहाहै-तद्यथा श्रेयसःश्रेयसोऽलाभेपापीयान्रिक्थमर्हति। बहवश्चेत्तुसदृशाःसर्वेरिक्थस्यभागिनः)अर्थात्-मनु कहते हैं कि बारह पुत्रोंमें पूर्वपूर्व जो श्रेष्ठहै तिसके न होनेमें उत्तरउत्तर जो नीच है सो पैतृकधन पानेयोग्य है कदाचित् एकहीसे अनेकहों तो वे सभीमिलकर समभागपावें (दृष्टांत) जैसे एक पिताके क्रीत पुत्र दोहों या तीनहों तो सभी बराबर बाँटलें ऐसेही पौनर्भवबेटे दोतीनहों तो सभी बराबरबाँटलें ऐसेही औरोंकोभीजानो—

और ध्यानकरो कि इसवचनमें पिताके धनके मध्ये पहिले या पिछले छक्केका कुछभी चर्चानहींहै जैसा योगीश्वर ने कहाथातैसाहीमनुसे भी ठीकहै (परन्तु) मनुकीबाँधीहुई पंक्तिमें उसप्रकारका अंतर है कि जिसका चर्चा १३४ वाली अधिकोक्तिके प्रारंभमें होचुकाहै इसलिये योगीश्वरका बांधाहुआ क्रम अतीव उत्तम जानो-इसके सिवाय-इसीअनन्तरोक्तमर्यादा में यह न समुझनाचाहिये कि ये बारहपुत्र जो गिनायेगये सो अपने पिताकाधन उसदशामें पातेहोंगे जब उनके पिता के भाई या बाप आदि कोई न हो-किंतु-पिताकेभाई और बापकेभी होतेहुये पुत्रहीपायाकरतेहैं चाहे किसप्रिकार के हों-तथाहमनुः(नभ्रातरोनपितरःपुत्रारिक्थहराःपितुः। पिताहरेदपुत्रस्यरिक्थंभ्रातर एवच) अर्थात्-नतो भाई और न पिता आदि कोईपावैं किंतु बेटेही अपनेबापकाधन हरनेवालेहोतेहैं चाहे किसीप्रकारकेहों परंतु जो निपट निपूताधनको छोड़िमरै तौ फिर बाप और भाई ये पासक्तेहैं (निपट निपूता वहीकहाता जिसके बारहमेंसे कोईभाँतिका पुत्र न हो) कदाचित् कोई इसपरभी यहशंकाकरै कि मनुकेइसवचनमें कुछबारहपुत्रोंका चर्चानहीं है इसलिये शायद मनुने भाई और पिताकेहोतेहुये औरस पुत्रका अधिकार कहाहोगा और उसीके न होनेमें निपूता समुझिकर पिता या भ्राताओंको धन हरना बतलायाहोगा (सो) यह शंका उसकीइसहेतुसे थोथीहै कि मनुकेइसमूलवाक्यमेंबारह पुत्रोंकाचर्चा यद्यपि नहींहै परन्तुबारह पुत्रोंकेही स्थलपरउन्हींकेप्रसंगसेयहवाक्य मनु ने कहा अर्थात् (श्रेयसःश्रेयसोऽलाभे) इत्यादि वाक्य जोअभीऊपर लिखचुके हैं तिसके साथही मनुने लिखाहै कुछ औरसका चर्चा इसमें नहीं है (किंतु) औरसका अधिकार इन वाक्योंसे पहले मनु कहचुके हैं-तद्यथा (एकएवौरसःपुत्रःपित्र्यस्यवसुनः प्रभुः। शेषाणामानृशंस्यार्थंप्रदद्यात्तुप्रजीवनम्) अर्थात् पिताके यद्यपि कई भांतिके बेटेहों परन्तु पैतृकधनका मालिक एक औरस बेटाही होताहै शेष भाइयोंको वहदया भावसे उपजीवनमात्र देवे-और (दायाद) शब्दभी केवल पुत्रकेही दायभागित्वका वाचक नहीं है किंतु सपिंडमात्र या सपिंडोंके उपरान्तभी सोदकआदि जो कोई जिसका धनहरनेमें अधिकारी समुझा जाताहो वहभी दायाद गिनाजाताहै क्योंकि (दाय) तो मृतपुरुष का रिक्थहै तिसको (भाद) कहिये खानेवाला जो कोई सच्चा अधिकारी हो सो (दायाद) कहावै (दायस्यभादः) विशेषकर पुत्रको इसलिये दायाद कहाजाताहै कि सबसे पहले वही पूरा अधिकारी किंतु उसके होतेहुये और कोई नहीं किसीका धन खायसक्ताहै-यद्यपि वासिष्ठादि स्मृतियोंमेंभी मनुकेही समान बारह पुत्रोंके दोवर्ग कल्पित हुये हैंपरन्तु यथाक्रमकी पंक्ति उसमेंमनुके या योगीश्वरकेभी तुल्य नहींहै किंतु कोई कोई पुत्र उनमें आगे पीछेभी उलटा पलटीके साथ नियत हुआहै सो उन पुत्रों के गुण अवगुणके अनुसार व्यत्यय समुझि लेना (सो) यह बात केवल ज्ञानमात्रके

निमित्तसे दर्शाई गई किंतु यहांउस्से कुछ कामनहीं है-गौतमकी स्मृतिमें पुत्रिकासुत जो सर्वथा औरसके समानहै वह दशवीं संख्यापर नियत कियागया पर उसमें वह विजाती कन्याका पुत्र आचार्योंने समुझाहै क्योंकि निज अपनी पुत्रीका पुत्र जो सर्वत्र औरसके समानहै सो क्योंकर दशवीं नीच संख्यापर जासक्ता या जो कुछहो सो सही पर यहां उस क्रमसेभी कुछकाम नहीं है केवल संबुद्धिमात्रके लिये उसका भाव यहांपर प्रकट किया गया-इत्यादि पूर्वोक्त सर्व कारणोंसे सर्वथा वह मर्यादा ठीकहै कि पहिले पहिले पुत्रके अभावमें पिछला पिछला पुत्र अपने ग्रहीता बापकाधन पाताहै सो यह बात केवल योगीश्वरनेही नहीं किंतु मनुनेभी कही है-यथा (औरसक्षेत्रजौ पुत्रौपितृरिक्थस्यभागिनौ । दशापरेतुक्रमशोगोत्ररिक्थांशभागिनः) अर्थात्-औरस और क्षेत्रज यह दोनों पुत्र तो पिताके धनके मालिकही कहाते हैं और बाक़ी दशपुत्र जे हैं ते पूर्व पूर्वके न होनेमें क्रमसे धन और गोत्रपाते हैं-अब क्योंकर वह बातसच्ची मानीजाय कि मनुने पिछले छे पुत्रोंको पिताकेभी अदायाद और अबांधव कहाहोगा इस वचनके सिवाय एकवचन औरभी निज मनुकाही ऊपर आचुकाहै कि (श्रेयसः श्रेयसोऽलाभेपापीयान्रिक्थमर्हति) इतिशंकाशांतिः—इस बार्ता में शंकातो सर्वथा शांत होचुकी पर एकवाक्य मनुका औरहै जिस्से बिरले लोग यह समुझा करते हैं किएक भाईके बेटेको अनेक भाई गोद लेसक्ते हैं सोभी उनकी समुझका अंतरहै-तद्यथा (भ्रातृणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्भवेत् । सर्वैतेतेनपुत्रेणपुत्रिणोमनुरब्रवीत्) अर्थात्-मनुने यह कहाहै कि एक बापके बेटे यदि अनेक भाईहों और उनमें एकभी पुत्र वालाहो तौ उस पुत्रसे वे सभी भ्राता पुत्रवान् होते हैं (सो) यह मनुने इसलिये दर्शायाहै कि जबतक भाईका बेटा गोद मिलसक्ताहो तबतक औरका न लेना चाहिये पर यह भाव इनका नहीं है कि उस एकही पुत्रको सभी भाई मिलकर गोद लेवें या विनालियेभी वह सबका पुत्र होजावे-क्योंकि-जो सबका पुत्र होसक्ताहो तौ फिर सब का धनभी वही हरसक्ता और जो यही बात न्यायात्मक होती कि वह एकही सबका धनहरै तौ फिर १३९ वाला मूलश्लोक जो योगीश्वर आगे कहेंगे कि (पत्नीदुहितरश्चैवपितरौभ्रातरस्तथा । तत्सुतागोत्रजोबंधुःशिष्यःसब्रह्मचारिकः) सो यह वाक्य निपट वृथा होजाता किंतु यह वचन कहनाभी न चाहियेथा अर्थ इसका उसीजगह देखो और भावार्थ इसका यहहै कि जिसके कोई भांतिका पुत्र नहो और वह निपट निपूता धनको छोड़िमरै तौ पहिले उसकी भार्याधनकोले फिर बेटियां फिर माता पिता फिर भाई फिर भाईके बेटे अर्थात् जब इननोंमेंसे कोईभी नहो तबउस निपूतेकाधन भतीजा पावै-ध्यान करो जब कि वह भतीजा सबका बेटा समुझाजाता तौ फिर कोई भी निपूता नहीं था किंतु वही भतीजा पुत्रकी गिनतीमें आकर सबका दायहरना तो

फिर भतीजेसे पहिले जो पांच अधिकारी धनके हर्ता कहेगये तिन सबका हक़ मारा जाता निपूते भाइयोंकी स्त्रियांभी क्योंकर अपने पतिकाधन पाइसक्तीं बेटियांभी क्योंकर पातीं बेटियोंके बेटेभी धेवते जो निज माताके अभावमें अधिकारी होते हैं वेभी दुर्भागी रहते इसलिये एक भतीजा सबका बेटा नहीं है अर्थात् वे निपूते भाई भी दसग्यारह भांतिके पुत्रोंमेंसे जिसको चाहें अपना पुत्रबनावें तौ वही उनकाधन हरैगा यदि उन्होंने कोई भांतिका बेटा नहीं बनायाहो तौ निपटनिपूते कहेजायँगे और मरने पीछे भार्या बेटी आदि अधिकारी भी यथाक्रमसे धनपावेंगे१३५ ॥ पुत्र प्रतिनिधियों की व्यवस्था जो यहांतक दो परिच्छेदोंमें वर्णन हुईतिसका निश्चयात्मक नियम अब निचले मूल श्लोकसे कहते हैं १३५ ॥

सजातीयेष्वयंप्रोक्तस्तनयेषुमयाविधिः १३६ इत्यर्द्धमेव ॥

ऐ०—यह विधि मैंने सजाती तनयोंमें कहा-अर्थात्-योगीश्वर कहते हैं कि (पूर्वाभावेपरःपरः) यह पूर्वोक्त विधि जिसमें द्वादश पुत्रोंको पूर्वके अभावमें पिछलाधनभागी होना कहागया सो सब सजातीपुत्रोंकी व्यवस्था कहीहै किंतु भिन्नजातियों की नहीं (दृष्टांत) जैसे कानीन पुत्र कुमारी कन्यासे उत्पन्न होताहै सो जिस जातिकी कन्याहो उसी जातिके पुरुष करके गर्भवती हुईहो जैसे किसी ब्राह्मणकी कन्या और किसीप्रकारके ब्राह्मण मात्रसे आधानवती होगई और पीछे किसी अन्य ब्राह्मणको विवाहीगई तौ वह पुत्र जो उसकेघर जाकर पैदा हुआ सोनिःसंदेह उसका सवर्ण वासजाती है परन्तु जो गर्भकिसी अन्य जातीसे हुआहो तौ सजाती नहीं किंतु भिन्नजाती वा असवर्ण कहलावेगा सो यह भिन्नजाती बेटा उस पूर्वोक्त रीतिसे दायहरने का अधिकारी नहींहै किंतु केवल भोजन वस्त्रपानेका अधिकारी वह भी है जैसा यह कानीनका दृष्टांत लिखागया तैसेही औरोंको भी समुझलेना १३६ ॥

मधि०—द्वादश पुत्रोंमें से क्षेत्रज आदि दशपुत्र धनके अधिकारी तब होसकेंगेकि जब औरस और पुत्रिकासुतके न होनेमें मूर्द्धावसिक्त आदि अनुलोमजपुत्रभी नहीं जिनका दाय भागित्व पहले पचासके परिच्छेदमें १२८ वाले मूलश्लोकसे वर्णन हो चुकाहै किन्तु वेभी एक प्रकारके मध्यम औरसगिने जातेहैं क्योंकि यद्यपि सवर्णाभार्या से तो नहींपर वे भी क्षत्राणी आदि विवाहितामें अपनेही बीजसे उत्पन्न होते हैं इसलिये इन क्षेत्रज आदि दशपुत्रोंकी अपेक्षा वे अनुलोमज बेटे उत्तम समुझेजाते हैं और इसीहेतुसे औरस पुत्रके होनेपर भी औरसके साथही उनको कुछ न्यून भाग मिलताहै व्यवस्था देखो १२८ वाले मूल श्लोकमें (परंच) उस व्यवस्थामें इतना भेद और है कि वहांपरशूद्राके बेटे को पावभाग अर्थात् ब्राह्मणसे चौथाई क्षत्रियसे तिहाई वैश्या पुत्रसे आधियाई मिलना कहाहै सो तो अनेक भाइयों के साथमें वह

भाग कल्पना नियतहै और एक हिसाबसे वह शूद्रापुत्र भी औरसपुत्रोंमें गिनती अर्थात् नीच औरसगिनाजाताहै क्योंकि विवाहिता शूद्रामें अपने बीजसे उत्पन्न होताहै परन्तु पिताके सबधनका मालिक वह किसीदशामें नहीं होताहै सिद्धांत यह कि यदि और कोईभाँतिके पुत्रनहोंवह केवल शूद्राकाही बेटाहोतौभी सबधनका मालिक जैसे अन्यपुत्र होसक्ते तैसे नहींहोसक्ताहै किन्तु सबधनमेंसे दशवांभाग पाताहै-तथाहमनुः(यद्यपिस्यात्तुसत्पुत्रोयद्यपुत्रोपिवाभवेत्।नाधिकंदशमाद्द्याच्छूद्रापुत्रायधर्मतः) अर्थात्-मराहुआ पुरुष चाहे उत्तम जातिके पुत्रोंवालाहो या उत्तम जातिके पुत्र उसके न हों केवल शूद्राकाही बेटा मौजूदहोतौ उसमरेहुयेकाधन क्षेत्रज आदि कोईबेटा अगरहो तो वही अथवा और कोई सपिंडोंमेंसे भाई आदि जो अधिकारी होकरहैं सो उसधनमेंसे मौजूद शूद्रापुत्रको दशवाँभागदेवै दशमांशके सिवाय किंचित्भी अधिक न देवै यहधर्मानुसार नियम जानो-इसनियमसे यहसिद्धांतभी पायाजाताहै कि क्षत्रिया और वैश्या भार्याकेबेटे अगर सवर्णाकाबेटा न होतौ सबधनके मालिक होसकैंगे किंतु इनके सन्मुख और कोईसपिंड आदि अधिकारी न होसकैगा जैसे शूद्रापुत्रके सन्मुख होगयाथा १३६॥ यहाँतक यह मर्यादें सब चारो वर्णकी सामान्य भावसे कहीगई पर विशेषकर द्विजातीमात्रमें समुझनी किन्तु अगले दोश्लोकोंसे शूद्रकाधन विभाग होनेमें कुछ विशेषता प्रकट करतेहैं १३६॥

जातोपिदास्यांशूद्रेणकामतोंशहरोभवेत् १३७॥
मृतेपितरिकुर्युस्तंभ्रातरस्त्वर्द्धभागिकम्। अभ्रातृकोहरेत्सर्वंदुहितॄणांसुताद्दते १३८॥

ऐ०-सहद्वयोः-शूद्रजाती पुरुषकाबेटा चाहै दासीमेंभी हुआहो वह अपने पिताकी इच्छासे भागपासक्ता है अर्थात् पिता अपने जीते जी पुत्रोंको विभाग करते समय विवाहितासे उत्पन्नहुये पुत्रोंकेसाथ उस दासीपुत्रको बराबर भाग देनाचाहै तौ कोई भी निषेध नहीं करसक्ता है १३७॥ परंतु पिताके मरनेपीछे जो विवाहिताकेभीपुत्र हों तो वे अपने से अधिआईभाग उस दासीपुत्रको देवैं किन्तु अपनी बराबर नहीं (औरजो) विवाहिताके बेटे कोई न हों तौ साराधन वह दासीपुत्रलेवै (यदि) कई दासी पुत्रहों तौ सभी बराबर बांटि लेवैं पर उसदशामें कि जो विवाहिता की बेटियां या बेटियांके बेटे निपट न हों किन्तु इनकेभी होनेमें दासी पुत्र अधिआई भागपावेंगे-इस वचन में शूद्रके बेटे जो दासी से उत्पन्नहों पिताकी इच्छासे भाग पासक्ते और पिताके पीछे भाइयों से आधाभाग पासक्ते हैं तो शूद्रपर विशेषता आरोपित करने से यह सिद्धांत पायागया कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन द्विजातियों मे जो दासी में सन्तान हो सो पिताकी इच्छा से भी भागपानेका अधिकारी नहीं है अर्थात् पितादेना चाहै तो विवाहिता के बेटे आदि प्रतिषेध करसक्ते हैं एवं पिताके पीछे भी आधाभाग पाने

का अधिकारी नहींहै फिर साराधन हरना तौबड़ीदूर है (हां) यदि अधिकारियों के अनुकूल हो तौ जीवनमात्र पावैगा १३८॥

अत्रचपुत्रप्रतिनिधीनांदायक्रमप्रसंगेकेषांचिद्दत्तादीनामुपपुत्राणां
विशेषविवेकोनामपंचपंचाशत्तमःपरिच्छेदः ५५॥

इस पचपन के परिच्छेद में विशेषकर दत्तक आदि केचित् उपपुत्रों के दायादत्व की विशेष व्यवस्था वर्णन होगी जिसमें कुछ पुत्रों के प्रतिनिधित्वकी निवृत्ति और कुळपुत्रोंकी विलक्षण परिपाटी जैसी देशांतर भेद या ग्रंथांतर भेदसे प्रचरित है सब जानीजायगी यद्यपि ऊपरले दो परिच्छेदोंमें द्वादशभांतिके पुत्रोंकी व्यवस्था जोकुछ मिताक्षरा के अनुसार व्योरेवार वर्णनहुई सो सबठीकहै किन्तु उसमेंकोई भांतिका संदेह शेषनहीं है तथापि इस विशेष परिच्छेदका संग्रह इसकारणसे कर्त्तव्य ठहरा कि आधुनिक पूर्व्वकालिक विरले ग्रंथों के संग्रहीता विद्वानोंने लोकमें संप्रति सांसारिक आचार व्यवहारोंकी वहुधा मर्यादोंका परिणाम होतादेखकर अपने नवकल्पित ग्रंथोंमें प्राचीन आर्षग्रंथेंाके ऋषिप्रोक्त नियमोंको उलांघिकर औरस पुत्रके स्थानीभूत दशपुत्रोंकी प्रतिनिधितामें निवृत्ति दर्शाईहै (निवृत्ति अर्थात् मन्सूखी) किन्तु औरस के अभाव में केवलदत्तक पुत्रकी प्रतिनिधिता यथा वस्थित रखकर शेष दशपुत्रों को मन्सूख किया-यद्यपि उनविद्वानोंने अपनी शक्तिके अनुमान केवल नवग्रंथसंग्रहकरने का व्यसन पैदा किया परन्तु उनकी वुद्धिका विचार न्यायात्मक नहीं लोकाचारात्मक था क्योंकि यद्यपि उन्होंने छोटीमोटी एकआधी तर्कणाभी दशपुत्रोंकी मन्सूखीमध्ये प्रकटकरी पर वह तर्कणा केवलवालक्रीड़ा के समान समुझीजाती है कि जिसका लिखना यहांपर विस्तारहेतुसे अपेक्षितनहींहै (किन्तु)एकसूधीसी तर्कणाउनकी यहवहुत प्रवल समुझीजाती है किदशपुत्रोंकी प्रतिनिधिता मध्ये परिपाटी लोकमें मिटतीजातीहै इस्से हमभी उनकी मन्सूखी दर्शातेहैं सोयह तर्कणाभी उनकी ऐसी समुझी चाहिये कि जैसेभीतिको गिराऊ देखकर और भी दोधक्केदे उसकेसाथ आपभी गिरताचलाजावे क्योंकि विद्वानोंका यह कामहोताहै किजव कोई ऋषिप्रोक्त लाभकारी मर्यादाका व्यतिक्रम होतादेखें तव अपनी विद्वत्तासे न्यायात्मक विचारकेसाथ उसमें ऐसी दृढ़ताकरैं जिस्सेमनुष्यों कापग विचलने नहींपावै-जोकि विरली मर्यादोंकी निवृत्ति और न्यूनाधिक भावसे परिशोधन भी कदाचित् कियाजाताहै सो उस अवस्थामें किजव किसीपहली मर्यादासे गरीयसी हानिपाई जाय-परन्तु-अव इसकथनसे भी कुछ अपेक्षा शेषनहीं है क्योंकि जवकोई दीर्घ वृक्षधरती में गिरकर वड़ामार्ग रोकदेताहै तव जहांतक वनिआवै उसको छांट छांटकरमार्ग सीधाकरनाहोताहै यद्दा अतिशय दुर्गमता होजानेसे उसमार्गको छोड़कर द्वितीयरस्ता खोजिलेते हैं इसन्यायसे

संप्रति उनकी मन्सूखीपर भी ध्यानकरना आवश्यकहै क्योंकि जिसबातकी परिपाटी दीर्घकालसे मारीगई और जिसबातको सर्व साधारणोंने स्वीकारकिया चाहे निर्मूल होवही समूलसमुझी चाहिये-संप्रति पूर्वकालके आधुनिक पंडितलोगोंने केवलदत्तक पुत्रकी प्रतिनिधिता में प्रधानता रक्खीहै इसीहेतुसे बहुधालोक में भी केवल दत्तक पुत्रप्रतिनिधि कियाजाताहै इसीप्रयोजनसे इसपरिच्छेदमेंपहलेदत्तक पुत्रकीव्यवस्था वर्णन करते हैं ॥ (अथगृहीतृप्रशंसा) दत्तपुत्रको कौन गोदलेसक्ता है इसप्रश्नका यह नियमहै कि जिसपुरुषके कोईबेटा और पोता और परोताभी न हो वही गोदलेसक्ताहै और कोई नहीं और जो पहिलादत्तक संतान पैदा किये बिन मरजाय तौ फिर पुनर्दत्तकभी लेसक्ताहै कदाचित् ऐसीही निपूती स्त्रीलेना चाहै तौ पतिकी आज्ञासे लेसक्ती है यद्वा पतिके मरे पीछे लेतौभी जो पतिके जीतेजी आज्ञाप्राप्त करली होगी तौ लेसक्ती है अन्यथा नहीं-परन्तु पतिभी केवल एकपत्नी को आज्ञा देसक्ताहै कुछ अनेक पत्नियोंको आज्ञानहीं दे सक्ताहै कि तुम जुदे जुदे बेटे गोदलेना (एवं) जहां ऐसी पत्नीएकभी गोदलेनेकी आज्ञामांगे जिसकी सौतिसे पैदा हुआ पतिका औरस बेटा विद्यमान हो तौ उस एकहू को आज्ञादेनेका अधिकारी पति नहीं है चाहै उस पत्नीका विरोधभी सौतेले बेटेसे रहता हो या न हो (परंच) इस भांतिसे निस्सन्देह आज्ञा देसक्ता है कि मेरे मरने पीछे यदि मेरा औरस बेटामरजाय तौ फिर दत्तक पुत्रको गोदलेलेना (वरन) यह भी आज्ञादेसक्ता है कि जो दत्तकपुत्रमरजावै तौ अन्यदत्तक लेलेना ऐसी आज्ञाकी पानेवाली स्त्रीभी इन्हीं नियमों के अधीन गोद लेसक्तीहै (और) विरले लोग इसबातपर कुछ आग्रह खड़ाकरते हैं कि जिसविधवा ने साधारणभावसे पतिकी आज्ञा पहिले पाकर उसके मरनेपीछे दत्तक गोदलियाहो और वह दत्तक मरजाय तौ वह स्त्री अन्यदत्तक गोद लेसकनेमें अधिकारसे विहीन होगी क्योंकि उसको साधारणभावकी आज्ञासे द्वितीय दत्तक लेनेका अधिकार निश्चितनहीं है यद्यपि इसआग्रहकी दृढ़तामें केचित् नव कल्पित संग्रह ग्रन्थोंका प्रमाण भी आरूढ़है कि ऐसा करनेमें अधिकार उसको नहींहै तथापि न्यायात्मक विचारके सिद्धान्तसे ऐसाहोना कुछ अनर्थक निश्चित नहीं है क्योंकि जिस फल सिद्धिके निमित्तसे साधारणभावकी आज्ञा उसको अनियतामिली थी उसफलका जबतक परिपाक नहीं होनेपाया तबतक आज्ञाभी निःसंदेह यथा वस्थितहै और अनियतका आशय यह प्रत्यक्षहै कि जिस आज्ञामें द्वितीय दत्तक होना नियतनहीं था तिसमें उसीका न होनाभी कुछ नियतनहीं था-यद्यपिबंगाल और वाराणस्यादि देश विभागोंमें यह नियम निश्चितहै कि जिस स्त्रीकेपतिने अपनेजीतेजी पत्नीको आज्ञानहींदीहो वहस्त्री पतिके मरने पीछे दत्तकनहीं लेसक्ती है परन्तु पाश्चात्य देश विभागों में यह परिपाटी एक

विशेषहै कि ऐसीस्त्री पतिके मरनेपीछे पतिके बान्धव लोगोंकीही आज्ञासे गोदलेसक्ती है बल्कि तत्रत्य ग्रन्थविशेषों में इसबातपर तर्कबाद आरोपित हुआहै कि यद्यपि दत्तक पुत्र गोदलेनेकी रीतोंका उद्धार करनास्त्रीके बशका नहींहो तौभी जो विद्वान् विप्रोंके द्वाराकार्यसाधन करै तौ फिर कुछ तर्कणारूपआग्रहको अवकाश नहींहै-और इसीवार्त्ताकीअपेक्षा से मैथिल देशके भूभागमें यह विशेषताहै कि जिसस्त्रीने पतिके जीतेजी उसकी आज्ञाभी संप्राप्तकरलीहो तौभी पति के मरनेपीछे वाचस्पति मिश्रकृत ग्रंथ विशेषकीप्रधानतासें दत्तकपुत्र नहीं लेसक्तीहै परन्तु इस प्रतिषेधके पलटे एक यह विशेषताभी उस देशमें अधिकहै कि यद्यपि दत्तकपुत्र तौ पतिकी आज्ञासे भी नहींलेसक्ती पर कृत्रिम पुत्र पतिकी आज्ञाबिनाभी लेसक्तीहै बल्कि पतिकेबांधव जनोंकीभी आज्ञासे अपेक्षाइसमेंनहींहै॥(अथदातृप्रशंसा) दत्तक पुत्रकादानकरनेमें अधिकारी कौनहै इसप्रश्नका यह नियमहै कि प्रथम तौ माता पिता दोनों मिलकर या माताके अभावमें केवल पिताभी देसक्ताहै परन्तु केवल माता पतिकेदूरस्थ होने में उसकी आज्ञासेही देसक्ती किंतु आज्ञाविना नहींदेसक्ती और पतिकेमरजाने पीछेभी केवलमातातभीदेसक्तीहै जोउसनेपतिकेजीतेजी इसबातकी आज्ञापाईहोअन्यथापति के मरजानेपीछे विधवाको पुत्रदानका अधिकार नहींहै पर केवल एकप्रकारसे कि जो उसपरकोई कठिनविपत्ति अन्नाकालआदि उपस्थितहोतौ विधवाभीदेसक्तीहै तथापि जिसके एक पुत्रहो या जेठापुत्र दोके होनेपर भी नहीं दानकरसक्ती है और इसदान में स्त्री पुरुषदोनोंकोही यह नियमहै कि अपनेही सजाती या सवर्ण पुरुष निपूतेको देसक्ते हैं अन्यथा नहीं-यहांपर यद्यपि दानकरने मध्ये केवल माता पिताका अधिकार वर्णनहुआहै पर इसमें एक विलक्षणवात जो वहुधा लोकमें दिखाईदेतीहै चर्चा उसका कर्त्तव्यहै कि जिन पुत्रोंके मातापिता नहीं रहते उनका पालन बड़ीबहिनें या भ्राता चचा ताऊ आदिकरते और वेभी किसी अवसरमें दत्तकदान करदेतेहैं यद्यपि पालयिता पितृस्थानी पितामाताकेही तुल्यहुआ करताहै इसन्यायसे उसदानको भी भिन्न मर्यादिक नहीं कहसक्तेथे परजव पिताके मरजानपीछे विधवा माताभी स्त्रीत्व सेही पिताकी अनुज्ञासे विहीनदान करनेमें समर्थ नहीं है तौ फिर वहिनैंभी स्त्रीत्व के लक्षणसे क्योंकर ऐसाकरसक्ती हैं यद्यपि इसभांतिके झगड़ेवाला व्यवहार किसी राजद्वारमें कदाचित् पहुँचा या न पहुँचाहो पर देखनेमें इसप्रकारसे भी आयाहै कि वहिनोंने भाईको और अनाज्ञता विधवामाताने वेटेको दत्तक छोड़ि क्रीतकी रीतिसे देदिया वल्कि विरलेस्थलपर इस अविवेकसे कि सवर्ण छोड़ि असवर्णोंमें स्वाश्रम छोड़ि पराश्रमको देदियाहै तौभी उनके जातीलोगोंने कोईसा दण्ड या प्रतिषेध उन पर नहीं पहुँचाया इन कारणोंसे वहुतेरेलोग यह जानते हैं कि यहभी एक मर्यादिक

बातहै इसीसे औरोंकोभी ऐसाकरनेका उत्साह बढ़ताहै-एवं-बड़े भ्राता या चचाताऊ आदि यद्यपि पुंसत्वके हेतुसेभी पितृस्थानी पालयिताहोकर ऐसा करनेके अधिकारी समुझे जासक्ते हैं तथापि इनपर इसहेतुसे प्रतिषेध पहुँचता है कि मन्वादि ऋषियों ने केवल मातापिताकोही दानका अधिकार दर्शाया है क्योंकि पिता अपने वीर्य्य से पत्नीद्वारा पुत्ररूप होकर आपही जन्मलेता है इससे पुत्रमें और पितामातामें कुछ विशेष अन्तरनहीं है इसीहेतुसे पिता अपने आत्मरूपी पुत्रके हानिलाभोंका विचार आगापीछा सोचिकर अच्छीभांति करसक्ताहै अर्थात् अपने पुत्रका कुछ अधिकतर कल्याण जानिकर किसीको दत्तक रीतिसे देताहै-यथाहमनुः (मातापितावादद्यातां यमद्भिःपुत्रमापदि। सदृशंप्रीतिसंयुक्तंसज्ञेयोदत्त्रिमःसुतः) अस्यार्थः (शुक्रशोणित संभवःपुरुषोमातापितृनिमित्तकःतस्यप्रदानविक्रयपरित्यागेषुमातापितरौप्रभवतः इ-तिवासिष्ठस्मरणात् मातापितावापरस्परानुज्ञया यंपुत्रंपरिग्रहीतुः समानजातीयंतस्यैव पुत्राभावनिमित्तायामापदिप्रीतियुक्तं नतुभयादिना उदकपूर्वंदद्यात्सदत्त्रिमाख्यःपुत्रो विज्ञेयः)कदाचित् पिता माताके अभावमें बड़े भ्राताचचा ताऊ आदि भीदान करदेने के अधिकारी न्यायात्मक निश्चित होजाते तौफिर बहुधाही इसभाँति के उपद्रवखड़े होजायाकरते किन्तु बड़ा भ्राता छोटेभाई को इस वांछासे भी दान करदेता कि यह अपने रिक्थ भागसे निःस्वत्वहोजावे तौ वहमुझको मिलेएवंचचाताऊभी इसवांछा से कि इसका रिक्थभाग मेरे पुत्रों को या मुझकोही इत्यादि अनेकधा व्यवहारों में विरोध आजाता इससे निश्चितहै ये लोग ऐसाकरनेके अधिकारी नहीं हैं(परन्तु)लोकमें कदाचित् इन्हीं पुरुषोंके द्वारा दत्तकदानहोताहै और निन्दाकी पदवीकोभी नहीं पहुँचता बल्कि श्लाघ्य समुझा जाताहै तिसकाभी कारण केवल यहीहै कि उसदान का अवसर देखाजाताहै अर्थात् न्यायात्मक मर्यादासे ये लोग ऐसाकरनेके अधिकारी यद्यपिनहीं हैं तौभी जहाँ दत्तकलड़के का कुछ अधिकतर कल्याण पायाजावे तहाँ सत्पुरुषोंके सन्मन्त्र द्वारा ये लोगभी सामयिक धर्मसे अधिकारी होजातेहैं (दृष्टान्त) जहाँ माता पितासे विहीन किसी लड़केका स्वत्व अपने बापके रिक्थमेंसे अनुमान केवल दशहीपाँच सहस्रतक उपस्थितहै कदाचित् उसीलड़के को दत्तक रीतिसेकोई लक्षाधीश या भूपालमांगे जिसको उसलड़केके सिवाय किसी परजनका लड़कालेना अस्वीकार या अयोग्यहो तौ सत्पुरुषोंके सन्मन्त्रसे जेठा भाई या चचा ताऊ आदि भी देसक्तेहैं अन्यथानहीं॥ (अथदत्तकस्यसम्बन्धविशेषः) जिस दत्तक पुत्रके गोदलेनेकी यथोचितरीतें यथाशास्त्रके अनुसार साधनहोकर उसकादान होजाता है तबतत्काल सेही उसके जन्मदाता पितामातामेंसे गोत्र आदि सम्बन्ध जाता रहताहै और उनके धनमेंसे जोरिक्थभाग उसका थाअन्यथा सो भी मिटजाताहै और श्राद्ध आदिस्वधा

कर्मोंका अधिकार भी उसपितामेंसे हटजाता है (और) दत्तकचाहै अन्य गोत्रसे भी आयाहो पर धर्मानुसार गोदलेनेवाले कल्पित बापकेधन गोत्रआदि में अधिकार उसकावैसाही दृढ़होजाताहै कि जैसा औरसपुत्रका विख्यातहै-यथाहमनुः (गोत्ररिक्थे जनयितुर्नहरेद्दत्त्रिमःक्वचित् । गोत्ररिक्थानुगःपिण्डोव्यपैतिददतःस्वधा) अस्यार्थः- (गोत्रधनेजनकसम्बन्धिनीदत्तकोनकदाचित्प्राप्नुयात्पिंडश्चगोत्ररिक्थानुगामीयस्य गोत्ररिक्थेभजतेतस्यैवसपिंडोदीयतेतस्मात्पुत्रंददतोजनकस्यस्वधापिंडश्राद्धादि तत्पुत्रकर्तृकंनिवर्तते)यद्यपि इसी संवर्णित मर्यादाके न्यायसे यहसिद्धान्त संसूचित होता है कि जिन गोत्रोंकी कन्या उसके औरसपुत्रोंको विवाही जासक्तीथीं उनगोत्रों में वह दत्तकभी जो अन्यगोत्रसे आयाहो विवाहा जासक्ताहै परतौभी शिष्टाचारात्मक मर्यादासे यह परिपाटी लोकमें प्रचरितहै कि दत्तकपुत्रके सहोदर भ्राता जिनगोत्रोंमें विवाहे नहीं जासक्तेहों तिनमें दत्तकभी विवाहा नहीं जासक्ता और उन गोत्रोंमें भी नहीं विवाहाजासक्ता जिनकी कन्या उसके कल्पित बापके गोत्रमें आनेका प्रतिषेध हो अर्थात् दत्तकबेटा उन्हीं गोत्रोंमें विवाहाजाताहै कि जिनकी कन्या उसके जन्म दाता और कल्पितबाप दोनोंके गोत्रमें आसक्तीहों-इसी विरोधके हेतुसे यह प्रतिज्ञा भी सब ग्रन्थोंमें प्रधान रक्खीगई है कि जहांतक बनिआवै अपने आसन्नतर सपिंड भाईका बेटा यद्वा अन्य सपिंडोंका बेटा या सगोत्रीकाही बेटा गोदलेना उत्तम है कि जिस्सेवैवाहिक सम्बन्ध आदिकामोंमें विरोध नहींआवे बलिक लोकमेंभी जो विज्ञानी हैं सो ऐसाही विवेकसे आचारकरतेहैं परंतु जिनको ऐसा दत्तकामिलसकना दुर्लभहोताहै वे लाचारी अवसरमें अन्यगोत्रसेभी लेतेहैं-यद्यपि न्यायात्मक मर्यादासे यहबात संसूचितहै कि दत्तकदान करनेवाले पिता मातासे उस पुत्रका कुछ संसर्गनहींरक्खे और ऐसी बालअवस्थासेलेवै जो ग्रहीता कोही मोहसे हिल मिल पिता मातासमुझै (पर) लोकमें यह बंधन बहुधानहीं बनिआता किंतु जब समीपी मित्रादिक अपना पुत्रदेतेहैं और मोहादिकहेतुसे परस्पर दोनोंका समागम चलाजाता बलिक लौकिक शिष्टाचारसे उत्सव आदि मंगल कामों और विपत्ति आदि शोक स्थानोंमें उसभाँतिसे समागमका प्रचार बनारहता है कि मानों दत्तक अपने जन्म दाता मा बापोंसे अबतक जुदानहींहै (और) विशेषतर यहबातभी दिखाईदेतीहै कि यदि कोई ग्रहीता अपने घरका सर्वसंपन्न लक्षाधीश या राज्याधीशहै और दाता असंपन्न चाहै सहवासी या ग्रामान्तरवासीहो तो वह दाता और दाताके बेटे तथा भाई और भतीजे आदि सब ग्रहीताकेही पास उपस्थित रहकर अपना पालन और निर्वाहकिया करते हैं इस विशेषतासे कि गोद लेनेवालाभी मरगया और वह दत्तकभी एक पुत्रको जन्म देकर मरगया पीछे वही दाता ऐसे पोताका दादाकहलाता और वहपोताभी निज

कल्पित बाबाको न जानिकर उसी असली दादाको बाबा और उसके पुत्रोंको चचा कहाकरता और प्रत्येक क्षणभी उसकी गोदसे जुदा नहीं रहसक्ता (पर) इस भांतिके वर्त्तावेसेभी न्यायात्मक मर्यादाके अनुसार कोई भांति दाताका स्वत्व ऐसेपोताके धन पर या पोताके बाप और कल्पित बाबाके धनपर नहीं पहुँचताहै चाहै दत्तक एकबेटे कोभी जन्म न देकर आप निपूता माराहो या जीताहो-तौभी केवल शारीरिक पालन-मात्रका उपकार जो कुछऐसे दाताकेसाथ लौकिक शिष्टाचारीके अनुसार कियाजाता हैतिसका प्रत्युद्धारभी शारीरिक सहायके उपरान्त और नहींहै (अथदत्तकस्यभागविशेष:) यद्यपि चौवनके परिच्छेदमें दत्तक (और) औरभी दश पुत्रोंका भाग विशेष औरसके उत्पन्न होने पीछे मनु और विष्णु और कात्यायनके वचनोंसे निर्णीत होचुका सो सब ठीकहै तौभी यहां विशेषकर दत्तकपुत्रकी अपेक्षासे कुछ देशभेदकी परिपाटी दर्शित होनी योग्यहै अर्थात् वाराणसी संबंधी देश विभागों में जो दत्तक गोद लेलेने पीछे औरस पैदाहोय तौ दोनों बेटे पैतृक धनकेरिक्थी होते हैं परन्तु कात्यायनके वचनानुसार यह परिपाटी है कि औरस बेटा तीनभाग और दत्तक बेटा एकभाग पाताहै कदाचित् गोद लेने पीछे दोऔरस पैदाहोयँ तौभी इसीप्रकारसे सबधनके सातभाग होकर एकभाग दत्तक और तीन तीन भाग दो औरसबेटे पावैंगे ऐसेही कदाचित् तीन औरसहोजावैं तौ सब धनके दशभाग करनेहोंगे इत्यादि औरभीसमुझने-पर—वंगाले संबंधी देश विभागोंमें यदि गोद लेनेपीछे औरस पैदाहोय तौ उस देशके प्रधान ग्रंथोंके अनुसार यह परिपाटी है कि औरस बेटा दोभाग और दत्तक एकभाग पाताहै कदाचित् गोद लेनेपीछे दोऔरस पैदाहोयँ तौभी इसीप्रमाणसे सब धनके पांचभाग होकर एकभाग दत्तक और दो दो भाग दोनों औरस बेटे पावैंगे कदाचित् तीन औरस होजायँ तौ फिर सब धनके सातभागहोंगे इत्यादि यथावृद्धिके अनुसार जानो-पर सर्वत्र जो कदाचित् दोदत्तकोंका समवाय होजावै तौ फिर धनका मालिक वही होगा जो शास्त्रकी विधि द्वारा पुत्र बनायागयाहो किंतु जो विधिसे विहीनहो तिसको धनभागित्वका निषेधहै (और) यथार्थसे दोदत्तक होनेकी आज्ञा नियत नहीं है इसलिये दोनोंदत्तक शास्त्रके विधान पूर्वहोने निपट असंभवहै (पर) ऐसी दशामें शास्त्र की विधिसेभी दोदत्तक होनेसंभवहैं कि जबएक पहिला दत्तक अंधवधिर क्लीव आदि होजावै किन्तु जिन दोषोंके हेतुसे और सभी निज दायसे दुर्भागी होजाताहै तिनके प्रत्यक्ष प्रकट होजानेसे यदि एक दत्तक निपट न होनेकी गिनतीमें आकर द्वितीय दत्तक लियाजावे तब यह पिछलादत्तक धनभागीहोगा और वह पहिला दत्तक भोजन वस्त्रोंका अधिकारी-इसके सिवाय-यदिकदाचित् किसीग्रहीताने एक दत्तकभी सवर्णके सिवाय असवर्ण अर्थात् भिन्नजातिका लड़काचाहै शास्त्रकी विधिसेभी गोदलियाहो तौ

वृद्धदत्तकवृद्ध गौतम और शौनक और कात्यायनके वचनोंसे ग्रहीताका रिक्थीनहीं हो सक्ता केवल भोजन वस्त्र पावैगा(यदिस्यादन्यजातीयोगृहीतोवासुतःक्वचित्।अंशभाजं नतंकुर्याच्छौनकस्यमतंहितादितिवृद्धगौतमः)एवं जिसकिसी प्रकारकादत्तक लेनेकाप्रतिषेध शास्त्रमें पायाजाय औरवैसाही प्रतिषिद्ध दत्तक जिसनेलियाहो तौ वहभी उसका रिक्थी नहीं होगा पर जेठापुत्र और इकलौता इसकी छूटमेंसमुझने (अथस्त्रीकृतदत्तक विषये)जहां किसी विधवाने निजपतिकी आज्ञानुसार उसके मरने पीछे दत्तक लिया हो तौ वह दत्तकभी सर्वथा उसीप्रकारका अधिकारी होताहै कि जैसे बापकेमरनेपीछे औरस पैदाहोकर अपने बापके धनादिक में अधिकार पाताहै इस उत्कर्षसे कि जो कदाचित् ऐसी विधवाने उसकेगोदलेनेसे पीछे या पहले भी निजपतिके स्थावरधनका निष्कारण विक्रयकियाहो तौ उसदत्तकपुत्रके स्वत्वानुसार उसकीहानि संभवहोनेसेही ऐसा विक्रय निपट अयोग्यहोता किन्तु निर्वर्त्तित होसक्ताहै-इसमर्य्यादा के विवेचक धीरों ने संदृष्ट वांग परिपाटी मध्ये यहाँतक विशेषता सूचितकरी है कि यद्यपि किसी निपूतेकी विधवाका श्वशुर भी जीताहो और वहविधवा निजपतिकी पूर्वदत्त अनुज्ञाके अनुसार अपने ससुरकी सम्मति से दत्तक पुत्र लेलेवै उसके लेने पीछे ससुरा के धेवता पैदाहोजाय जो पौत्रोंके अभावमें पोताकेसमान पौत्रस्थानी गिनाजाताहै परंतु अब इसधेवतेको पौत्रत्वकीपदवी नहीं मिलसक्ती क्योंकि इस्से पहले उसके पुत्रवधूकी गोदद्वारा दत्तकपोता पौत्रस्थानी कल्पित होचुकाहै इसलिये ऐसे धेवतेके होजानेपर भी उक्तदत्तक अपने दायत्वसे दुर्भागी नहीं रहसक्ता (पर) यह आशय इसका प्रत्यक्ष है कि गोदलेने का आचार जबतक होनेनहीं पाया और इस बीचमेंही ससुराके धेवता पैदा होजाय तौ फिर गोदलेना देना भी श्वशुरकी इच्छापर आरूढ़है-इसके सिवाय यद्यपि धेवता तौ न पैदा होय पर गोदलेने का आचार सिद्ध होचुकने पीछे विधवा का ससुरा अर्थात् दत्तक पुत्रका कल्पित बाबा यदि स्थावर धनका (वियोग) दान विक्रय आदिसे करदेवै जिस्से दत्तक पोताके निमित्तमें गरीयसी हानि संभवहो तौ इस वियोगसे भी दत्तक पोता का दायस्वत्व नहीं मिटसक्ता-परंतु-जिस विधवाने कदाचित पतिकी आज्ञासे विहीन अपनी इच्छासेही दत्तक लियाहो तौ यह दत्तक विधवाके पति का दायनहीं पासक्ता और न पतिके बांधव लोगोंका दाय हरसक्ताहै केवल उसी विधवा माताकाही स्त्री धन पासक्ता-इसके सिवाय-जिस स्त्रीने अपने निपूते पिताके मरनेसे पैतृक रिक्थ पायाहो और वह आपभी निपूती होनेके हेतुसे दत्तकलेवेचाहै अपने भर्त्ताकी पूर्वदत्त आज्ञासे भी लियाहो तौभी यहदत्तक अपनी गोद लेनेवाली माताके मरनेसे उसका पैतृकरिक्थ धेवताके अधिकारवत् पासकनेका अधिकारीनहीं है और इस कथनका यहसिद्धान्त भी नहींहै कि जो ऐसीस्त्रीके भर्त्ताने आपही दत्तक

लियाहो तो वहदत्तक अपने ग्रहीताके ससुराकादाय पासक्ताहोगा किन्तु बेटी या जमाई का बनायाहुआ दत्तक बेटा नानाकेनातेसे रिक्थी नहींहोता अर्थात् ऐसीबेटी के मरनेपीछे वहधन लौटिकर पिताके सपिण्ड आदि पातेहैं-और-मैथिलदेशमें विशेष कर कृत्रिम पुत्र गोदलेनेकी परिपाटीहै और उसके दाय भागित्व और सम्बन्धमेंभी अन्तर है वहअन्तर आगे कृत्रिम पुत्रकी व्यवस्था साथ समुझा जायगा (अत्रच-द्व्यामुष्यायणसंज्ञकदत्तविशेषस्यसम्बन्धविशेषोभागविशेषश्च) यद्यपि दत्तक पुत्रका दान होजाते सार उसका कोईभाँति का सम्वन्ध जन्मदाता के कुलमें नहींरहताहै तथापि जो दत्तक द्व्यामुष्यायणकी रीतिसे दियाजावे तौफिर निज कुलमें भीसबसम्वन्ध यथा वत् बनेरहतेहैं और वेहीसबसम्वन्ध ग्रहीताके भी कुलमें आरोपितहोजाते हैं अर्थात् वहदोनों बापका पुत्र कहाता और दोनोंबाप मिलकर उसके संस्कार करते हैं और दोनों बापके पिण्डभी वहदेताहै और दोनोंका धन हरता है और दोनोंका ऋणभी वही देताहै-ऐसा दत्तकदान होनेमें एकलौताका प्रतिषेधनहीं बल्कि विशेषकर एक लौताही ऐसा दत्तक होताहै-और-प्रायः निजभाई या सगोतीकाही बेटाहुआ करता है परगोतीका नहीं-यद्यपि पारिजात नामग्रन्थ (और) और विरलेग्रन्थ में क्रीतकृत्रिमभी द्व्यामुष्यायणहोते लिखे इस्से परगोती काभीहोता समुझा जाता है तथापि अबलोकमें परिपाटी ऐसीनहींहै इसलिये लोकाचार परही ध्यानकरणीय और यथार्थसे ऐसाहोना भी असङ्गतहै-इसी द्व्यामुष्यायण पुत्रकी व्यवस्थायद्यपि ५२ संख्या के परिच्छेदमें १३० वाले मूलश्लोक से वर्णन होचुकी है परउसमें आर्ष वचनों से नियोगधर्म की विधिद्वारा क्षेत्रजरूपी द्व्यामुष्यायण दर्शायाथा अब इस स्थलपर दत्तकपुत्र के प्रसङ्गसे दत्तक रूपी द्व्यामुष्यायण दर्शायागया-क्योंकि सम्प्रति एतद्देशी लोकमें क्षेत्रजकी परिपाटी छूटजानेसे वहनियोग धर्मा द्व्यामुष्यायण पुत्रनहीं कियाजाता किन्तु उसके पलटदत्तक रूपी द्व्यामुष्यायण पुत्रका प्रचार सम्प्रतिलोक में प्रवर्तितहै उसकेभी (नित्य)(अनित्य)के भेदसे दोप्रकार हुआकरते हैं अर्थात् नित्यद्व्यामुष्यायण नामकादत्तक वही कहाता है जिसको गर्भ में उपस्थित जानिकर परस्पर दो निपूते पुरुष मैत्रीभावसे यह प्रतिज्ञा निश्चित करलेवें कि जो अबके गर्भसे बेटा होगातौ हमतुमदोनोंका कहावैगा इसभाँतिकी प्रतिज्ञा कियेपीछे उसके जन्मकालसे ही दोनोंबाप मिलकर (पुत्रेष्टि)नामयज्ञ और जातकर्म आदि सबसंस्कार कियाकरतेहैं यहतो मुख्यप्रकारहै-पर-बहुधालोग जिनको गर्भमेंहोतेहुये प्रतिज्ञाका बानक नहींबन आताहै तो उसपुत्रका जन्म होजाने परभी चूड़ाकर्मके पहले पहले किसीकाल तक यही विधान करतेहैं तौयह दत्तक नित्य द्व्यामुष्यायण होता और सदासर्वदाको उन दोनों बापोंसे संबंध इसका बनारहता अर्थात् जोयह दत्तकबेटे पैदाकरके मरजाय तो

इसमरेहुयेके बेटेभी दोदादाकेपोता कहेजातेहैं और दोनोंदादाओंका धनपाते हैं दूसरा अनित्यद्व्यामुष्यायण पुत्रवहकहाताहै जो अपनेजन्मदाताकेघर चौलकर्म होजानेतक दूसरेकाबेटा नहींठहरै किंतु मूँड़न होजानेपीछे दोबापोंका पूतबनायाजाय तौयहबेटा अनित्यके लक्षणसे निज अपनेही जीवनताईं दोकापूत कहाता किंतु इसकेबेटे केवल अपनेही दादाके पोतेगिनेजाते और उसीकाधन पातेहैं द्वितीयकल्पित दादाका नहीं पासक्ते इसीहेतुसे उन दोनोंबापोंमें यह संबंधभी तबतक मानाजाता है कि जबतक यह अनित्यद्व्यामुष्यायण पुत्र जीतारहै दोनोंबापका सबधन तभीपाताहै कि जो उनके कोई द्वितीय बेटा न हो अथवा इसके पीछे पैदाहोकर मरजाय-कदाचित् ग्रहीता ने ऐसीदशामें इसको पुत्र बनायाहो जो पहलेसेही औरस पुत्र उपस्थितहो तौ यह पुत्र ग्रहीताबाप का धनभाग पानेमें अधिकारी निपटनहोगा क्योंकि औरसपुत्रके होतेहुये सर्वथागोद लेने और देनेकाभी निषेधहै परन्तु जो द्व्यामुष्यायण करदेने पीछे जन्म दाता बापके औरस बेटापैदाहो तौ उसबापके सबधनमें से दोभाग औरस के और एक भाग द्व्यामुष्यायणका होगा अर्थात् चाहै कितनेही औरस पैदाहोजायँ उनको दो दो भाग और द्व्यामुष्यायणको एकभाग मिलताहै-एवं-यदि ग्रहीता बापके एक औरस द्व्यामुष्यायण किये पीछे पैदा होतौ उसबापके भी सबधनमें से औरस के दो भाग और द्व्यामुष्यायणका एक भाग होताहै अर्थात् चाहै कितनेही औरस पैदा होजायँ वे सब दोदो भाग पावेंगे और उनके सन्मुख द्व्यामुष्यायण केवल एकभाग यही व्यवस्थाठीकहै पर किसी एकदेश विशेषकी अपेक्षासे ग्रन्थ विशेषका यह संमत है कि जो ग्रहीता बापके औरस पैदा होजायँ तौ फिर द्व्यामुष्यायण को उस भागसे आधा भाग मिलनाचाहिये जो सामान्यदत्तक पुत्रको औरसके उत्पन्न होजाने पीछे मिलना कहाहै-बीचमें प्रसंगसे इसदत्तक विशेषका स्वरूप ज्ञान और संबंध विशेष और भाग विशेष भी दर्शायागया अब आगे उसीसामान्य दत्तक पुत्रकी व्यवस्था वर्णन होतीहै (अथदत्तके प्रतिषेध विशेषः) अब इसबातका विचार वर्णन होताहै कि कैसा लड़का और कौन दत्तक होसक्ताहै तहां पहले यह प्रतिषेध उसका दर्शाते हैं कि वह लड़का दत्तक होने योग्य नहींहै जो ग्रहीताका नाती अर्थात् बेटी या भर्ती- जीका लड़काहो (और) वह भी नहीं जो ग्रहीताका भानजा अर्थात् चाहे सगी बहिन का बेटा या सौतेली या चचेरी आदि किसी बहिनकाहो और वह भी नहीं जो ग्रहीता का फुफेरा भाई अर्थात् चाहे सगी फूफूका बेटा या सौतेली या चचेरी आदि किसी काहो दत्तक लेने योग्य नहीं है (और) जैसा यह फुफेरेभाई का प्रतिषेध कियागया तैसेही मामामात्र कोई भी दत्तक लेना योग्यनहीं अर्थात् जो ग्रहीता पुरुषका नाते से भाई लगताहो चाहे सगा या ममेरा या चचेरा आदि कोई हो (और) वह भी नहीं

जो ग्रहीसे ऊँचापिंड गिनाजाताहो अर्थात् जैसे चचा या मामा आदि (और) जैसे पुरुषको भानजेका प्रतिषेध कियागया तैसेही कदाचित् कोई स्त्री दत्तक लेती हो तौ वह भी अपने भाईका बेटागोद नहीं लेसक्तीचाहै किसीप्रकारकाभाईहो (शंका) इस निषेधमें फुफेरे या ममेरे आदि भाईका प्रतिषेध तौ तुल्यात्मक पिंड होनेके हेतुसेभी ठीक माना जासक्ता है कि भाईभाईका बेटा या बाप नहीं बनसक्ता परंच नाती और भानजेका पिंडभी तुल्यात्मक नहीं किन्तु ग्रहीतासे प्रत्यक्ष नीचा पिंड है तौ फिर इन-के प्रतिषेधमें क्याकारण है (समाधान) इसमें यह कारण है कि बहिन और बेटीको दान देनेकी मर्यादा लोक विदितहै पर इनसे दानलेना सूचित नहींहै-इसालिये यह प्रतिषेध केवल त्रैवर्णिक उत्तम जातोंपर आरूढ़है अर्थात् शूद्रजातिमें नाती और भानजाभी गोद लियाजासक्ताहै क्योंकि शूद्रजातोंमें बेटी या बहिन देकर उसकामूल्य भी लेलियाजाता किन्तु केवल दानकेही प्रकारसे बहिन बेटी नहीं दीजातीहै इसलिये शूद्र लोग उस्से बेटाकाभी दान लेसक्तेहैं (पुनरपिशंकाप्राप्तिः) इसवार्तामें फिरभी शंका पहुँचसक्तीहै कि जो त्रैवर्णिक जातोंमें बेटीसे दानलेनेका प्रतिषेधहै तौफिर नातीजो द्वादशपुत्र प्रतिनिधियोंमें पुत्रिकासुत नामसे गिनती कियागया और औरस पुत्रकेही तुल्य ठहरायागया जिसकी व्यवस्था त्रेपन ५३ के परिच्छेद में आचुकी है उसस्थ-लपर क्योंकर बेटीका बेटा पुत्र बनायागया बलिक इसबातकी दृढ़तामें प्रमाणभीउसी जगह वसिष्ठ का यह वाक्यलिखागया है कि (अभ्रातृकांप्रदास्यामि तुभ्यंकन्यामलंकृताम्। अस्यांयोजायतेपुत्रःसमेपुत्रोभवेदिति)क्योंजी वहांपरयहविधि वर्णनहुई और यहांपर प्रतिषेध उसका दर्शाया गया तौ यह प्रत्यक्ष विरोध क्योंकर शांत होसके (अस्यसमाधानं)इसमें किंचित्भी विरोधकी संभावना नहींहै क्योंकि वहांपर कुछदान का प्रसंगनहीं और दत्तकपुत्रका दान जलकेसाथ संकल्पकी रीतिसेहोताहै इसलिये दत्तक पुत्र उसीसे लेनायोग्यहै कि जिसकादिया दानलेसक्तेहों और इस वसिष्ठमुनि के वाक्यमें जो जामातृसे यह प्रतिज्ञाठहरानी लिखीहै कि इसकन्यामें जो पुत्रहो वह मेरापुत्र कहावे सो यहपुत्रत्वभी पौत्रत्वसे अपेक्षारखताहै अर्थात् इसप्रतिज्ञाका यह भावहै कि वह मेरापोता कहलावे और वहपोताही पुत्रके अभावमें पुत्रस्थानी होकर मेरेधन पिंडकाअधिकारी होवै किन्तु यथार्थसे पुत्रकेअभावमें वह पुत्रीही पुत्रके स-मान समुझीगई इसलिये उसके पेटसेपैदाहुआ पुत्रअपने नानाकापोताठहरा इसी-लिये मनुने उस पुत्रिकासुतको (स्वधाकर) कहकर जामातृसे प्रतिज्ञाठहरानी लिखी है-यथा(अपुत्रोऽनेनविधिनासुतांकुर्वीतपुत्रिकाम्। यदपत्यंभवेदस्यांतन्ममस्यात्स्वधाकरम्)अर्थात्-मनुने यह आज्ञादीहै कि जो कोईपुरुष निपूताहो वह इस विधि से अपनीबेटीको (पुत्रिका) करे अर्थात् पुत्रकेसमान उसको माने सो इसविधिमें कि उस

का दानकरतेसमय जामातृसे यहवचन पक्काकरलेवे कि यह मेरीकन्या जो है सोपुत्रिकाहै अर्थात् यहीमेरे पुत्रकेसमान है इसलिये इसमें जो पहिलापुत्र पैदाहोय वह मेरा (स्वधाकर) अर्थात् मुझे पिंडदान करनेवालाठहरै तौ इसस्वधाकर नामसे कुछ पुत्र या पोताका नियम निश्चित नहींरहा क्योंकि स्वधाकर्म पुत्रभी करताहै इसलिये जव कि वेटीअपने वेटाके समान समुझीगई तौ निःसंदेह उसकापुत्र नानाका पोता निश्चित होगया-और-योगीश्वरने जो त्रेपनके परिच्छेदमें १३१ मूलश्लोक पूर्वार्द्ध से यह कहा है कि (औरसोधर्मपत्नीजस्तत्समःपुत्रिकासुतः) अर्थात् पुत्रिकासुतकोभी औरसके समान जानो सोयह औरसके समान कहना रिक्थीत्वके निमित्तमें दर्शाया है कि जिस्से औरसके समान भागपावे कुछ इसआशयसे यह कहना नहींहै कि वह वेटीकापुत्रभी अपना पुत्रहोजावे और यथार्थ से जो पोताठहरा सो निस्संदेह पुत्रहै कुछ पुत्र और पोतामें विशेष अंतरनहीं परन्तु उस पुत्रिकापुत्रसे और दत्तकसेवहुत वड़ा अंतरहै क्योंकि दत्तक दानमार्गसे आताहै और मुख्यपुत्रत्वकी पदवी उसकी होतीहै इसलिये ऐसीशंकाको अवकाश इसमें नहीं है और भानजेके प्रतिषेध मध्ये वृद्धगौतमके वचनानुसार दानमार्गके सिवाय एक यह औरभी प्रतिवंधहै कि जहां अपने संवंधीमात्रका लड़का लियाजाताहै तहां वहजन्मका संबंध जो परस्परपुंभाव से उत्पन्नहुआहो तौ उसकालड़का लियाजासक्ता है दृष्टांत जैसे भाई अपने भाई का लड़का गोदलेसक्ता है चाहै किसीप्रकार का भाईहो अथवा वही जन्मका संवंध जो परस्पर स्त्रीत्वसे उत्पन्नहुआहो तौभी लड़कालियाजासक्ताहै (दृष्टांत) जैसे वहिनअपनी वहिनोंकालड़का लेसक्तीहै चाहै किसीप्रकारकी वहिनैंहों (परन्तु) इस्से विपरीतता में कोई किसीका लड़का गोदनहीं लेसक्ता अर्थात नतौ वहिनैं अपने भाई का न भाई अपनी वहिनोंकालड़का गोदलेसक्ते हैं वलिक इस प्रतिषेधमें यह प्रावल्य है कि यदि शास्त्रकी आज्ञाको उल्लांघिकर कोईऐसाकरै तौ उसपर प्रायश्चित्त और ज्ञातिदंडभी संसूचित है-जिनवाक्यों की विस्तारवती व्याख्याके अनुसार यहप्रतिषेध यहांदर्शाया गया वे वाक्यभी अवनीचे लिखे जातेहैं-यथाहशाकलमुनिः (सपिण्डपत्यकंचैवसगोत्रजमथापिवा। अपुत्रकोद्विजोयत्स्यात्पुत्रत्वेपरिकल्पयेत्॥ समानगोत्रजाभावेपालयेदन्यगोत्रजम्। दौहित्रंभागिनेयंचपित्रोः स्वमृसुतंविना) अन्यच्च (दौहित्रोभागिनेयश्च शूद्रैस्तुक्रियतेसुतः।ब्राह्मणादित्रयेनास्तिभागिनेयस्सुतःक्वचित्) अर्थ इनकाऊपर सव होचुका है -इसकेसिवाय–जो लड़काअपने मातापिताके मुख्य औरस पुत्रों में न गिनतीहो तिसके भी लेलेनेका प्रतिषेध है अर्थात् जन्ममात्रसे जो लड़का अपनेपिता माता दोनोंका सजाती होनेपरभी परिणीतासे उत्पन्नहुआहो वहीदत्तक रीतिसे गोद लियाजासक्ता है (इस परिच्छेद में विस्तार भयसे जो वातें मूलवाक्य छोड़िकर द-

शोईगई उनके मूलवाक्य भी संक्षेप कहीं पीछे से प्रदर्शित होंगे (अथकोदत्तकोयोग्यः) कैसालड़का दत्तकहोनायोग्यहै इसबातके निर्णयमध्ये इनअग्रोक्त वचनोंकाप्रमाणहै-यथा-(पुत्रःपौत्रःप्रपौत्रश्चतद्वद्वाभ्रातृसंततिः। सपिंडसंततिर्वापिक्रियाभाङ्नृपजायते॥ इतिपिंडादि क्रियाधिकारमात्रंनतुऋक्थीत्वप्रतिपादनपरत्वम्-बृहत्पराशरस्तु-अपुत्रस्यपितृव्यस्यतत्पुत्रोभ्रातृजोभवेत्। सएवतस्यकुर्वीतश्राद्धपिंडोदकक्रियाम्॥ इत्यपिश्राद्धाद्यधिकारपरत्वात्पुत्रत्वप्रतिपादनपरत्वं नतुभ्रातृव्यस्याकृतस्यैवरिक्थीत्वप्रतिपादनपरम्-अन्यच्च (भ्रातॄणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्भवेत्। सर्वेतेतेनपुत्रेणपुत्रिणोमनुरब्रवीत्-इति मनुवाक्यंतुदत्तकत्वस्वीकारेभ्रातृपुत्रस्यैवसंप्राप्तिसंभवेहिप्राशस्त्यप्रदर्शनमात्रम्-शौनकस्तु(ब्राह्मणानांसपिंडेषुकर्तव्यःपुत्रसंग्रहः। तदभावेऽसपिण्डोवाअन्यत्रतुनकारयेत्॥ इत्यप्यन्यत्रतुनकार्येदितिब्राह्मणवर्णमात्रस्यैवनियमोदर्शितः। नतुब्राह्मणादित्रयाणामपितच्च ब्राह्मणत्वेपिनियमानुसारसंप्राप्त्यसंभवोहितदभावएवज्ञातव्यः) इत्यादि और भी बहुधा वाक्योंकी विस्तारवान्व्याख्या खण्डन मण्डनके प्रकार से आरोपितकरिकै दत्तकमीमांसाके संग्रहीता पण्डितश्रीनन्दने स्वकीय सिद्धान्तसे यह भाव दर्शायाहै कि सगेभतीजे के होतेहुये और किसीलड़केको गोदलेना अनुचित है किन्तु भतीजेकोही लेनाचाहिये पर यथार्थसे यहबात केवल शिक्षाकेप्रकारसे भतीजे की उत्तमतादर्शानेके निमित्तमें समुझीजाती है इसका आशय निपट यह नहींहै कि भतीजेके होतेहुये कोई और लड़का दत्तकनहींलियाजाय अथवा लियाजाय तो वह अनुचितठहरकर ग्रहीताका रिक्थी नहीं ठहरे (क्योंकि) लोकमें प्रत्यक्ष परिपाटी ऐसी नहींहै अर्थात् लोकमें यहाँतक ग्रहीताकीस्वाधीनता देखनेमेंआतीहै कि सगाभतीजा विद्यमान होतेहुये सजातीमात्रमें निःसम्वन्ध परगोत्रीकाभी लड़का किसी दरिद्रीसे क्रीतकेअनुसार लेकर दत्तकरीतिसे यथावत् विधिद्वारा पुत्रबनाते हैं और वहीलड़का सच्चादत्तक मानाजाताहै कोई भी निषेध उसमें नहींकरसक्ता क्योंकि यथार्थसे किसी प्राचीन आर्षग्रंथमें भी इसबातका निषेध नहीं पायाजाताहै केवल परजातीहोनेका निषेध सर्वत्रहै-और जो यहीनिषेध आवश्यकहोता कि भाईकालड़का होतेहुये और कालड़का नहींलेवै तो फिर बहुधा लोगोंको दत्तकलेना भी दुर्घटहोजाता उस्से हाथ खींचनापरता क्योंकि यातो भाईके एकहीलड़काहै जिसकेदानका प्रतिषेधहै अथवा दोतीनके होनेपर भी भाई अपनालड़का उसेदेना नहीं चाहताहै यद्वा उसको देनेसे नकारनहीं है पर ग्रहीता उस्सेलेना नहींचाहता क्योंकि प्रायः भाइयोंमें विरुद्ध भी होजाताहै तब निजभाईको भाई निपट शत्रुअपना जानिकर औरोंसे भैयापन जोड़ लेताहै क्योंकि (परोपिहितवान्बन्धुर्बन्धुरप्यहितःपरः। अहितोदेहजोव्याधिर्हितमारण्यमौषधम्) यह नीति बहुतसच्ची है-परन्तु-इनबातनसें यह आशय पायाजाताहै कि

ग्रहीता अपनीइच्छा और प्रसन्नताकेअनुसार जहाँतक बनिआवै तहाँतक भतीजे के होतेहुये और मिलसक्तेहुये औरको दत्तक नहींबनावै-अब इसबातका क्रमभी यहां दर्शाते हैं कि यदि कोईग्रहीता इसीविवेकसे दत्तकलेनाचाहै तौ किसक्रमसे वह लेस-क्ताहै-तहाँ इसवातकाजानना पहिले आवश्यकहै कि इसविधिमध्ये दोप्रकारके सपिंड मानेजाते हैं एकतौ निजअपनेगोत्रके सपिण्ड जो सातपीढ़ीके भीतरहों और दूसरे परगोत्रमेंभी सातपीढ़ीतक सपिण्डमानेजाते हैं परगोत्रसे नानाआदि बांधवोंकागोत्र लियाजाताहै और (गोत्रोंकाव्यौरा जैसा शास्त्रमेंनिर्णीत वही लोकमेंभी विदितहै कि ब्राह्मणजातिमें ऋषिगोत्रकाप्रमाण और क्षत्रिय तथा वैश्यजातिमें उन्हींके पुरोहितका ऋषिगोत्र उनकागोत्र गिनाजाताहै) (सपिण्ड) कहनेका यह अर्थहै कि जिनका (पिण्ड) नामशरीर जोहै सो समीपही जिनके शरीरसेमिलाहुआ समुझाजाताहो वेही उनके सपिण्ड गिनेजाते हैं इसलिये सातपीढ़ीकी अवधितकभी जिसकाशरीर जिसकेशरीर से दूरसमुझाजाय सो वह उसका दूरका सपिण्ड और जिसकाशरीर जिसकेशरीरसे जैसा जैसा निकटसमुझाजाय तैसा तैसा निकटकासपिण्ड कहलाताहै (दृष्टांत) जैसे पितापुत्रकी सपिंडता बहुत नगीचकी कहलातीहै क्योंकि निज उसके शरीरमेंसे पुत्र निकसा इस्से कुछभी दूरनहींहै परंतु सगेभाईका पिंडनाम देहएक देहके अंतरसे हो जाताहै क्योंकि मुख्यसपिंड जोपिताहै तिसकी देहमेंसे दूसराभाई निकसाहै-इसलिये परस्पर सगेभाइयोंकी सपिंडता एकदेहके अंतरसे मानीजातीहै और ऊपरले पिंडोंमें दादेका शरीर भाईके समान गिनाजाताहै क्योंकि जैसे भाईका शरीर पिताके समीप था तैसेही दादाकाभी शरीर पिताके समीपहै इसलिये दादा और पोताकी सपिंडता भी एक पिंडके अंतरसे समुझी जाती है इत्यादि औरभी समुझने और इसीप्रकार माताकेद्वारा अपने नाना आदि परगोत्रकी सपिंडता आदि समुझलेनी और इसी प्रकार अन्य बांधवलोगोंमेंभी शरीरोंके संबंध मात्रसे सपिंड आदिका निर्णय समुझ लेना-इसके सिवाय सातपीढ़ीके उपरांतमें चौदह पीढ़ीतक निज अपने गोत्रवालेभी समानोदक समुझे जातेहैं और परगोत्री बांधवलोगभी चौदह पीढ़ीतक समानोदक समुझे जातेहैं अथवा जहाँतक मरेहुओंकेनाम याद बनेरहें केवल तहाँतक दोनोंकुल समानोदक समुझे जातेहैं तिसके उपरांत इकीस पीढ़ीकी अवधितक निजअपनेगोत्र को सगोत्री और नाना आदि बांधवोंको परगोत्री कहतेहैं(यहाँपर सपिंडताका नमूना-मात्र जो दर्शायागया इस्से अच्छीभाँति सपिंडताका स्वरूप नहीं जाना जासक्ता है क्योंकि सपिंडताका सिद्धांत यद्यपि सर्वत्र एकहै तथापि इसदत्तक पुत्रके लेनेमध्ये और प्रकारसे लगाई जातीहै और पिंडदानकी विधिमध्ये और भाँतिसे और रिक्था-त्वकी प्रतिनिधिनामध्ये और भाँतिसे और विवाहादि संबंधों के विचारमध्ये अन्य

प्रकारसे लगाई जाती किन्तु सपिण्डता कई प्रकारकी होती है इसलिये मर्य्यादा परिपाटी का अंगभूत सापिंड दर्पण ग्रन्थ देखो उसमें सभी प्रकारकी सपिण्डता जानीजायँगी क्योंकि वहग्रन्थ इसीविरोध के परिहार निमित्तसे जुदा निर्मित हुआ है) अबउसबात परभी ध्यान करना चाहिये कि जिसके लियेयह ब्यौरा दर्शित कियागया अर्थात् परगोत्रियों में नानाके भी वंशकी सातपीढ़ी सपिंड और सात के उपरान्त चौदह पीढ़ीतक सोदक या समानोदकजानो पुनिइनके भी उपरान्त २१ पीढ़ीतक नानाका गोत्रमात्रजानो-अब-दत्तक लेनेका क्रमदर्शातेहैं कि यद्यपि किसी आधुनिक पूर्वकालके संग्रहीताने निजकल्पित ग्रन्थमें अपने सम्मतसे ऐसाचढ़ाउतारभी दर्शायाहै कि पहले अपने गोत्रके सपिण्डोंमें भतीजा आदि लियाजावे पर जो अपने गोत्रके सपिण्डों का अभावहो तौ फिर अपने गोत्रके सोदकोंको छोड़कर परायेगोत्र नानाके सपिण्डोंमेंसे लियाजाय कदाचित् नानाके सपिण्डोंका अभावहो तौफिर अपने गोत्रके सोदकोंमेंसे लियाजाय कदाचित् अपने गोत्रके सोदकभी नहों तौफिर नानाके सोदकोंमेंसे लियाजाय कदाचित् वेभी नहींहों तौ फिर अपने गोत्रके सगोत्रीमात्रका लड़का जो २१ पीढ़ी के भीतरहो सो लियाजाय और जो उनकाभी अभावहो तौ फिर नानाके सगोत्री जो २१ पीढ़ीके भीतरहों उनका दत्तकलियाजाय परन्तु यहचढ़ा उतारकाक्रम कुछ प्रशंसायोग्य नहीं है क्योंकि यद्यपि दूर नगीचके आशयसे यहचढ़ाउतार सूचित होसक्ताहै तथापि निज अपने सगोत्री का लड़का होतेहुये और मिलसक्तेहुये छोड़कर परगोत्रीसे लेना निपट असङ्गतहै क्योंकिउसके लेनेमें प्रथम तौ विवाहादि सम्बन्धोंकाही विरोध आनि परताहै कि जैसा दत्तकपुत्र के सम्बन्ध विशेषकी व्यवस्थामें वर्णन होचुकाहै इत्यादि और भी विरोध हुआकरतेहैं इसीलिये परगोत्रीका लड़का लाचारी दशामें लियाजाताहै कि जब अपनेगोत्र का न मिलसक्ताहो-इसलिये-दत्तकलेनेकी योग्यता जो वसिष्ठने प्रदर्शितकरी सोसर्वथा उत्तमहै और उसीको दर्शातेहैं कि वसिष्ठ मुनिके वचनानुसार पहले अपने गोत्र के सपिण्डोंमेंसे लेना उचितहै-सपिण्डोंके अभावमें अपने सोदकों मेंसे जो निकटतम समुझा जाताहो उसका लेनायोग्यहै-सोदकों केभी अभाव में या उनका लड़का न मिलसकनेकी दशामें २१ पीढ़ीके भीतर अपने गोत्रमेंसे लेनायोग्यहै-जब निपटअपने गोत्रका अभाव होजाय अथवा उनमेंसे कोईदत्तक लेनेयोग्य नहींठहरे तब नाना आदि परगोत्रके सपिण्डोंमेंसे लेनायोग्यहै-जबकि परगोत्रके सपिण्डों मेंसे कोई नहो या होतेहुये न मिलसके या लेने योग्य नहींठहरे तब उसगोत्रके सोदकों मेंसे जो आसन्नतम समुझाजाय तिसका लेनायोग्य है-जब उस वंशमें सोदक भी नहों या होतेहुये उनका लड़का न मिलसके या लेनेयोग्य नहींठहरे तबउस वंशकी १४ पी-

ढ़ी उपरांत जो २१ पीढ़ीके भीतर केवल उसीवंशकेगोत्री समझे जातेहैं तिनमेंसे जो कोईलड़का आसन्नतर समुझाजाय तिसकालेना योग्यहै (यहांपर नानाकावंशमुख्य जानिकर परगोत्रियोंमेंसे दर्शायागया किंतु इसीप्रकार औरभी संबंधी जो परगोत्रीहों तिनकाभी लड़का लियाजासक्ताहै केवल उसको छोड़कर कि जिसके लेनेका प्रतिषेध हुआहो) जब किसीभी संबंधीमात्रका लड़का न मिलसकै तब अपनी जातिमात्रमें से चाहे तिसगोत्रका लड़का गोद लेसक्ताहै (यहांपर जातिमात्र कहनेसे सारस्वतकी जाति सारस्वत और कान्यकुब्जकीजाति कान्यकुब्ज और गौड़कीगौड़जाति समुझनी इत्यादि औरोंमेंभीजानो) और यहीकल्पना क्षत्रिय तथा वैश्यमेंभीकरलेनी जैसेचौहान की चौहानजाति पँवारकी पँवारजाति भुजेलेकी भुजेलेजाति या अगरवालकी अगर वालजाति रस्तोगीकी रस्तोगी जाति इत्यादि जातिमात्रमें से जब कोई लड़का न मिलसकै तब सवर्णमात्रका लड़काभी लाचारीदशामें लेसक्ताहै (यहांपर सवर्णकहने से अपना वर्णमात्र जैसे ब्राह्मणचाहे दशप्रकारमेंसे कोईप्रकारकाहो वहदशो प्रकारके ब्राह्मणमात्रका सवर्णहै ऐसेहीक्षत्रिय और वैश्यकोभी समुझलेना)(इसीप्रकार शूद्रभी निज अपनी जातिमात्रमेंसे दत्तकलेसक्ताहै अथवा लाचारी अवसर अपने वर्णमात्र मेंसे लेसक्ताहै पर अन्यवर्णका लड़का गोदनहीं लेसक्ता) (सर्वेषामेववर्णानांज्ञातिष्वे वनचान्यतः) (इसीप्रकार औरभी प्रत्येकजातें अपनी अपनी जातिका लड़का गोद लेसक्तीहैं पराईजातिका नहीं) और सिद्धांत इसका यहीहै कि जोकिसी जातिनेपराई जातिका लड़का गोदलेभीलियाहो तो वह दत्तक शास्त्रकी मर्यादासे विपरीत ठहरकर पुत्रत्वकी पदवीको न पहुँचे केवल भोजन वस्त्रका अधिकारी कियाजाय-जो कि-ग्र-न्थान्तरों में किसी किसीने खैंचतानिकर यह आशयभी दर्शायाहै कि लाचारी अव-सर में ऊँची जातें अपने से नीचे वर्णका लड़का गोदले सकैंगे (दृष्टांत) जैसे ब्राह्मण होकर क्षत्रिय का लड़का लेले या क्षत्रिय होकर वैश्य का परन्तु ऐसे दत्तक भो-जनवस्त्रके सिवाय अपने ग्रहीताका रिक्थी न होसकैगा (सो) इस खैंचतान का आ-शय निपटयह नहींहै कि ऐसाही करसकै या करनेपर उतारूहोजाय किन्तु इसकथन से यह आवश्यकता दर्शाई गईहै कि निपूतेको किसीप्रकार का बेटा नियत करना आवश्यकहै कि जिस्से दोनोंलोक सुधरैं और सर्वथायह प्रत्यक्षहै कि इस भाँतिके दत्तकबनानेसे दोनोंमेंसे एकलोकभीनहींसुधर सक्ताहै इसलिये उसबातकोप्रेरणामात्र समुझो बलिक इसबातके प्रतिषेधमध्ये यहाँतक उत्कर्षा समुझो कि यद्यपि लाचारी दशामें अपने वर्णमात्रमेंसे असापिण्ड और असगोत्रीकाभी लेनायोग्यहै परन्तु अ-सवर्ण होकर चाहे अपना सपिण्डहो तो भी उसका दत्तकलेना प्रतिषिद्धहै (यहाँपर असवर्ण होकर अपना सपिण्ड कहनेका यहतात्पर्यहै कि जैसे एकही वर्णके पुरुषकी

स्त्रियाँ कईवर्णकीहों तौ उनसबकी सन्तानैं परस्पर सपिण्ड यद्यपि कहलावेंगे परन्तु असवर्ण होनेकेहेतुसे उनकालड़का दत्तकरीतिसे लेना निपट अयोग्यहै (अथदत्तकस्य अवस्थायानिर्णयः)यहव्यवस्था यद्यपि नानाग्रन्थों से निजनिजदेशभेदकी परिपाटियोंपर संसिद्धहोतीहै तथापि दत्तक मीमांसा जो विशेषकर वाराणसी सम्बन्धी कुछ भूभागमें स्वीकार है उसके निर्म्माता पण्डितश्रीनन्दजी ने अग्रोक्त कुछ पौराणिक वचनों का आशयलेकर दत्तकपुत्रकीअवस्थापर ऐसाकुछ प्रतिबन्धलगायाहै कि जिसके पक्षपर समाश्रित होनेसे और भी ग्रन्थान्तर नाना वाक्योंकी व्याख्या खैंच तानिकर उन्हीं पौराणिक वचनोंके समान उनको करनीपरी महाशयको बहुतकुछ आयासहुआहोगा (यद्यपि) इसग्रन्थमें आद्योपान्त उसव्याख्याके दर्शानेको अवकाश नहींहै पर संक्षेप उसका यहाँपर दर्शाते हैं-तथाचकालिकापुराणम् (दत्ताद्याअपितनयानिजगोत्रेणसंस्कृताः। आयांतिपुत्रतांसम्यगन्यबीजसमुद्भवाः॥ पितुर्गोत्रेणयःपुत्रःसंस्कृतःपृथिवीपते। आचूडांतंनपुत्रःसपुत्रतांयातिवान्यतः॥ चूडाद्यायदिसंस्कारानिजगोत्रेणवैकृताः। दत्ताद्यास्तनयास्तेस्युरन्यथादासतोच्यते॥ऊर्ध्वंतुपंचमाद्वर्षान्नदत्ताद्याःसुतानृप। गृहीत्वापंचवर्षीयंपुत्रेष्टिंप्रथमंचरेत्॥ पौनर्भवंतुतनयंजातमात्रंसमानयेत्। कृत्वापौनर्भवष्टोमंजातमात्रस्यतस्यच॥ सर्वांस्तुकुर्यात्संस्कारान्जातकर्मादिकान्नरः।कृतेपौनर्भवष्टोमेसुतःपौनर्भवस्ततः) अर्थात्-इन छःश्लोकोंद्वारा दोपुत्रों की व्यवस्था कही (किन्तु) पहले चार श्लोकोंसे दत्तक पुत्रका और पिछले दो श्लोकोंमें पौनर्भव पुत्रका व्योरा दर्शाया (और) अर्थ इसका यहहै कि हे पृथिवीपते राजन् पराये बीजसे उत्पन्नहुये दत्तक पुत्र को आदिलेकर क्रीत कृत्रिम भी ये पुत्रजो ग्रहीताके निजगोत्रमें आनिकर संस्कार कियेजायँ तौ निःसंदेह उस ग्रहीताके पुत्रहोजाते हैं-परंतु जो कोई पुत्र अपने जन्म दाताकेही घर उसके गोत्रकीरीतोंसे चूड़ासंस्कारतक संस्कृत होचुकाहो वह ग्रहीता की पुत्रताको नहीं पहुँचता-और यह विशेषता समुझौ कि चूड़ासंस्कारको आदिलेकर अन्यसंस्कार भी जनेऊ व्याह पर्यंत जो ग्रहीता अपने गोत्रद्वारा करे तब तो वे दत्तक आदि उसके पुत्रकहावें और जो चूड़ा आदिकोई संस्कार होचुकने पीछे गोद लेवै तो वह पुत्र उसका दासकहावे-और हेनृपते पाँचवींवर्ष के उपरांत भी गोदलिये हुये दत्तक आदि उसके पुत्रनहीं होसक्ते इसलिये जो पूरीपाँचवर्षों का बालक चूड़ा हुये विना भी कदाचित् लियाजावै तौ उसको लेकर पहले पुत्रेष्टियाग करिलेवै तब उसके गोदलेनेकी रीतें तथा अन्य संस्कारकरे तो यह दासताका दोष दूर होसक्ताहै परंतु पाँचवर्षोंसे उपरांत पुत्रेष्टियाग करने परभी दासता नहीं जासक्तीहै (यहाँतक चारश्लोकों का अर्थ होचुका शेष दोश्लोक निपट असंगत हैं इसलिये व्यर्थ जानकर व्याख्यानसे उपेक्षाहुई) अब यह ध्यानकरनाचाहिये कि दत्तक मीमांसाके संग्र-

हीता पंडित श्रीनंदजीने इन पुराणोक्त चारश्लोकों का मंडन पक्षलेकर इनके साथ और भी अनेक ग्रंथांतर वाक्य जोड़कर खंडन मंडनके प्रकारसे वड़ा एक लंबाचौड़ा अपार व्याख्या सागर कल्पित कियाहै जिसकी थाह मिलनी बड़े बड़े गोताखोरों को दुर्लभ होजातीहै-और उस व्याख्या सागरका मथन सिद्धांत यह रक्खाहै कि जन्म कालसेही जातकर्म आदि संस्कारों के हुये बिना गोदलेने का मुख्य कालहै परंतु जो जातकर्म आदि संस्कार उसके चूड़ाकर्मसे पहले पहले कुछ होचुकेहों तौभी कुछविरोध नहींहै पर उस मुख्य कालका अनुकल्प कहावैगा सो यह केवल तीनवर्षों के भीतर जवतक चूड़ाकर्म न होनेपावे तवतक जानो अथवा जिसका चूड़ाकर्म तीनवर्षोंके उपरांत पाँचवर्षोंतक न हुआ हो तौ यह मध्यम कालहै परंतु इस मध्यमकाल पर गोदलेने से वह दत्तक अपने ग्रहीताका दास ठहरैगा इसलिये दासत्वका दोषदूरकरने के निमित्तसे पुत्रेष्टिनाम यज्ञकरिकै इस मध्यमकाल परभी गोदलेसक्ताहै परंतु पाँचवर्षों के पूरे होजाने पीछे चाहे चूड़ाकर्म न होचुकाहो तौ भी नहीं लेसक्ताहै अर्थात् उसदशामें पुत्रेष्टियागं करनेसेभी दासत्वका दोष नहीं मिटसक्ताहै और सिद्धांत इसका यह दर्शायाहै कि जवदास निश्चितहोचुका तौ फिर दासोंकोधन पिंडका अधिकारनहींहै(उनके इस कथनऔर मथनकी ऐसीध्वनि उत्पन्नहोतीहै कि यद्यपि ग्रहीताने चाहे तैसी अधिक अवस्थाका दत्तकअपनी अभिलाषा साथलियाहोगा वहतौ निःसन्देह अपनेपिंडदान और धनहरणका मालिक उसेवनावहीगा पर कदाचित् ऐसेदत्तकपुत्रके झगड़ेवाला व्यवहार किसीराजद्वारमें ग्रहीताके मरनेपीछे पहुँचै तौ राजा निःसन्देह ऐसे दत्तक पुत्रका पुत्रत्व निवर्त्तितकरदेवै किन्तु दासोंकीसी भाँति उसे भोजन वस्त्र मिलनेकी आज्ञादेकर उसके रिक्थीत्वकी प्रतिनिधिता मेटिदेवै और उसमरेहुये ग्रहीता बापकी दाहादि क्रियाकर्मभी न करनेदेवै-सो-यहवात कोई भाँतिसेभी न्यायात्मक नहींहै क्योंकि प्रथम तौ पौराणिक वाक्योंका प्रमाण खैंचकर धर्मशास्त्रमें आरोपितकरना यही असंगतहै किन्तु धर्मशास्त्रकेवाक्यलेकर पुराणमें प्रामाण्यहोसक्तेहैं दूसरे यह कि जो प्रशंसित पंडितने वसिष्ठजीका वाक्य इसीवार्त्तापर प्रमाणदिया सो भी मुख्यआशय से असंगतहै क्योंकि उसवाक्यमें वसिष्ठजीने यहप्रतिषेधनहींकियाहै कि चूड़ाकर्मके उपरांतयापांचवर्षोंके उपरान्त गोदनलेवै या लेलेवै तौ वहदासकहावै-तथाहवसिष्ठः(अन्यशाखोद्भवोदत्तःपुत्रश्चैवोपनायितः। स्वगोत्रेणस्वशास्त्रोक्तविधिनासस्वशाखभाक्) अर्थात्-वसिष्ठने यह कहाहै कि अन्यगोत्रकी शाखामें उत्पन्नहुआ दत्तकपुत्र जिसने लेकर अपने गोत्र और शाखाकी गृह्योक्त विधिसे उपनायित कियाहो उसकी शाखा का भागी दत्तकहोताहै-ध्यानकरो कि इसवाक्यमें वसिष्ठजीने उपनायित करनाही अर्थात् गोद लेकर दत्तकपुत्रका उपनयनमात्र करनेसे पुत्रत्वपक्का होजानेका नियम

दर्शाया इस्से चूड़ाकर्मका या पांचवर्षोंका कुछ नियम नहीं पायागया-अब इसप्रसंग में चूड़ा कर्मकी अवधिभी समुझनी चाहिये-तथाच (चूडाकर्मद्विजतीनांसर्वेषामेवध र्मतः।प्रथमेब्देतृतीयेवाकर्त्तव्यंश्रुतिचोदनात् इतिस्मृतिः)अर्थात्-सभी त्रैवर्णिकमात्र जातोंका चूड़ाकर्म पहली या तीसरीबर्षमें श्रुतिवचनोंकी प्रेरणासे कर्त्तब्यहैयह स्मृति एकसामान्य धर्मसे प्रसिद्ध हैं और विशेषधर्म इसका योगीश्वरने आचाराध्यायगत बारहवें श्लोक मूलके चौथेचरणसे कहाहै कि (चूडाकार्यायथाकुलम्)अर्थात् अपने अपने कुलकेअनुसार जैसीरीति जिसकीहो तैसाकरनाचाहिये तो इस विशेषधर्मके सन्मुख उस पहली या तीसरीकाभी कुछ नियमनहीं बल्कि इसबार्त्ताका प्रचारभी प्रत्यक्ष यहीहै कि बिरलोंके सातवींवर्षतक चूड़ाकर्महोताहै इसनियमसे कि उस अवधि से पहले करनेका प्रतिषेधसमुझतेहैं बिरलोंके चूड़ा और उपनयनभी दोनों एकसाथ हुआकरतेहैं-उपनयन अर्थात् जनेऊ गर्भाधान या जन्मकालसे आठवींवर्षमें ब्राह्मण का और ग्यारहवींबर्षमें क्षत्रीका और बारहवींबर्षमें वैश्यका नियतहै परंतु इस्से द्वि-गुणवर्षोंतक गौणकालभी परिनियमितहै तो फिर ऊर्ध्वोक्त बसिष्ठमुनिके बचनानुसार दत्तक पुत्र गोदलेनेको बहुत बड़ा अवकाश निश्चितहोताहै क्योंकि केवल उपनयन मात्र जो ग्रहीता बापकेघर आकर उसकीशाखाके अनुसारहोसकै तो उस दत्तकपुत्रमें दासता आदि कोईभी कलंकनहींहै और प्रत्यक्षभावसे लोकमेंभी बहुधा यहीपरिपाटी देखी जातीहै तो फिर क्योंकर श्रीनंदपंडितके उस बंधनकास्वीकारकियाजाय जिस्से ग्रहीताजनोंको हानिकेसिवाय कोईलाभ निश्चितनहींहै-यहाँपर-एक दृष्टांत यादकरने योग्य है कि वृन्दावन पंडित ने विवाह वृन्दावन ग्रंथ ज्योतिष विषयका कल्पित किया ज्योतिषके ग्रंथों में जैसे और बातों के जुदे जुदे प्रकरणहोते हैं तैसे विवाह के विचारका भी एक प्रकरणमात्र होताहै वृन्दावन पण्डितने उसका एकबड़ा ग्रन्थ निर्मितकिया जिसमें शतधा विचार ऐसे कल्पितकिये कि जिनके अनुसार यदिकोई किसी विवाहका बनावन्त या लग्न शोधाचाहे तो विचार करते २ बूढ़ाहोके मरजाय पर इसजन्ममें विवाह न होसकै क्योंकि जो दशबातोंमें शुभयोगमिलें तो बारहबातोंमें अशुभ योग कदाचित्भी विवाहका निर्विघ्नयोग उसग्रन्थके अनुसार नहीं मिलसक्ता इस्सेलोगोंने उस ग्रन्थका विचार और पढ़नाभी परित्याग किया क्योंकि संसारमें रहिकर विवाहकिये विनाभी कामनहीं चलसक्ता (और) पुराने लोगोंके द्वारा यहबात सुनीजातीहै कि वृन्दावन पण्डितका विवाह किसीहेतुसे न होसका और पण्डित काव्य शक्तिमान्थे इसलिये उसविवाह वृन्दावन ग्रन्थमें नानाभाँतिके कुयोग निर्मित किये और ग्रन्थमें यहभाव दर्शायाहै कि इन्हीं कुयोगोंके हेतुसे विवाहमेंन नहीं किया हमारी दृष्टिसे यदिकोई दत्तक मीमांसाके आद्योपांत सबयोगोंका विचारकरके दत्तक

लेना चाहै तौ बिरलेयोग ऐसेहैं कि उनकेअनुसार शायद बिरलोंकोही दत्तकलेसकनेका अवसरमिलै-जब कि पण्डित श्रीनन्दजीके पूर्व सिद्धान्तके अनुसार केवल भतीजेके होतेहुये औरकालेना निपट अयोग्यठहरा और दैवयोगसे एकहीभतीजा ऐसायोग्यहै कि जिसको लेसक्ते हैं उसकेलेनेका विचार इसद्विविधासे कि शायद अबकीसाल हमारे पुत्र पैदाहोजाय कुछ विलंबित किया इतनेमें उसकेलेनेकी अवधिबीतगई और अपने भी पुत्र पैदानहुआ अब जो उसको गोदलेवें तौफिर वह दासवत् होजानेसे धनपिंड का अधिकारी नहींरहेगा और उसभतीजेके होतेहुये और का लड़का गोदलेनेका निषेधहै तौइसभांतिकी कैंचीमें यही सूझिपरता है किगोदलेनेसे हाथ धोबैठे-कुछ इसकथनका यह सिद्धांतनहीं है कि उसबंधनके अनुसार विचारकरनेसे ग्रहीताभी निजहाथ खींचै क्योंकि प्रत्येक धर्मोंमें जहांतक होसकै विचार करनाही अत्युत्तम है-किन्तु-पांच वर्षोंकी अवस्थाका बंधन यद्यपिबहुधा धर्मशास्त्रके ग्रंथोंमें दिखाईनहींदेताहै परन्तुसर्व निर्णयसार निर्वाणतांत्रिक दायभागमें सदाशिवजीने भी यह नियमदर्शायाहै-तद्यथाह (आपंचाब्दंशिशुंगृह्णन्सवर्णात्परिपालयेत्। पंचवर्षाधिकोबालोदत्तकोनप्रशस्यते) सो इसवचनमें शिवजीने ऐसा प्रतिबंध नहीं लगायाहै किजो पांचबर्षोंसे अधिक अवस्था कादत्तक लियागया हो तौवह दास निश्चित कियाजाय और ग्रहीताकाधनभी नहींपावै अर्थात् शिवजीने केवल सामान्यभावसे यह समस्या दर्शितकरी है कि पांचबर्षोंसेउपरांतलेना कुछप्रशंसा योग्यनहीं इसलिये जहांतक अवसर बनिआवै तहांतक ग्रहीता अपने कल्याणके ध्यानसे आपंचाब्द शिशुकोही गोदलेवै-तौफिर इसप्रकार की शिक्षा का आशय केवलयही है कि इसकेआगे जैसाअवसर बनिआवै तैसाकरो (सो)यह शिक्षाभी प्रशंसा का अभाव दर्शानेसे इसहेतुमें प्रत्यक्षहै कि पांचवर्षके भीतरका शिशु कच्चीमाटी में गिनतीहै और यहबातभी प्रसिद्धहै कि कच्चीमाटी जिधरको मोरो तौरो फिरसक्ती है और संस्कारोंकी आवश्यकता भी इसी निमित्तपर आरूढ़ है किजब अपनी शैशवदशासे ग्रहीता बापकेद्वारा संस्कार और पालन पोषणअध्यापन आदि होते देखैगा तौ निःसंदेह अपनोंको भूलिकर ग्रहीताको ही पितामाता समुझैगा और जब ऐसामोह उसकेध्यानमें जमिजायगा तौफिर निःसंदेह सौशील्य आदि उन आचरणोंमें भी तत्परहोजावेगा कि जो और सपुत्रोंके आचरणहोते हैं तौ इसदशामें ग्रहीताको भीऐसेदत्तक पुत्रकेहोने से वहीप्रशंसा प्राप्त होसक्तीहै कि जो सुशील औरसके होने में संभाव्यथी-अन्यथा-जब ऐसी अधिक अवस्थामें दत्तक लियागया कि आधे संस्कार इसके बापने करलियेथे इस्से उसकामोह भी उसीमें उत्पन्न होचुकाथा और कुछ अवस्थाकी अधिकाईसे ज्ञानभी उत्पन्नहुआ जिस्से अपने और बिरानेमें भेदभी समुझनेलगा तौयह दत्तक जो सौशील्यआदि गुणोंसे सुपात्रहोगा तबतौनिज

ग्रहीता में भी मोह बढ़ावेगापरजो ऐसेगुणों से विहीन और कुपात्रहुआ तो प्रत्यक्ष है कि औरसके समान आचरणोंमें तत्पर न होसकैगा और जब यहीबात निश्चित हुई कि वह औरस के समान आचरणों में तत्पर नहींहै तो इसदशामें ग्रहीताको भी दत्तकलेने से वह प्रशंसा प्राप्तनहोसकी जिसकाचर्चा ऊपर शिवजी के वाक्यमें आया था बल्कि प्रशंसाहोनी एकओरहै उसदत्तकसे वहसुखभी न मिलसका जो सुशील औ-रसके होनेमें संभाव्यथा परंचतौभी धन और पिण्डकाअधिकारी वहीहोगा-इनकारणों सेउसपांचवर्षकी अवधि औरचूड़ादि संस्कारोंका ध्यानरखकर दत्तकलेनेमेंग्रहीताको ही अपने शुभ अशुभके विचारसे अधिकार है कुछनिपट निषेधका प्रसंगउसमें नहीं है-बल्कि लोकमें प्रत्यक्षउस बन्धनसे विपरीत यहबर्त्तावाभीदिखाईदेता है कि बहुतेरे ग्रहीतालोग जो विज्ञानियों में गिनतीहैं विशेषकर निज अपनेही विवेकसे लघुबालक दत्तकलेने में उपेक्षाभाव रखते हैं क्योंकि बारेपूतहरेरे खेतों के चमत्कारसे भविष्यत् फलादेश प्रायः जानेनहींजासक्ते हैं इसहेतुसे उपनयन कालतक भी दत्तकलेकर उप-नयन आदि करतेहैं क्योंकि उस अवस्थातक विशेषकर गुण दोषोंका प्रकाशहोजाता है और चूड़ाआदि जो २ संस्कार उसके घरहोचुके हों उनकोभी दुसराकर यथाक्रमसे फिर उद्धार करतेहैं क्योंकि अपने कुलकीरीतिके अनुसार करने योग्यहैं-यहांपर जिन ग्रहीताजनों का चर्चा कियागया तिनमें बिरलेलोग ऐसाभी बर्त्तावा करतेहैं कि जिस लड़केका लेना निश्चितहुआ तिसके लेनेकी प्रतिज्ञा शैशव दशामें ठहराकर पहले कई वर्षोंतक साधारण भावके पालन पोषण आदि प्रकारोंसे हित करतेकरते मोह बढ़ाते रहते हैं और संस्कार आदि कर्म उसके मा बाप करतेरहते हैं क्योंकि अब तक उसे ग्रहीताने गोद नहींलिया सिर्फ लेनेका मनोरथकिये रहताहै इसप्रकारका जब उसको पूरामोह अपनेमें समुझताहै तब उपनयन कालसे पहिले गोदलेने की रीतोंकाउद्धार करताहै इस प्रकारके ग्रहीतालोग अपने इसढंगसे यहगुंजायश मानि लेतेहैं कि जो कदाचित् इनवर्षोंके विलंबमें हमारे औरस पुत्र पैदाहुआ तो फिरइस के गोदलेनेकी रीतोंकाउद्धारकरना कुछ आवश्यक न होगा अथवा जो औरस पैदा न हुआ तो फिर मोहइसमें पुत्रवत् बढ़ाहीचुके जनेऊके समय उनरीतोंकोभी उद्धारकर देवैंगे अथवा औरसके न होनेपरभी भावइसबालक ने इनवर्षोंके विलंबमें कुछ मोह मुझपर न किया तो फिर अन्यबालक लेलेनेका विचार कियाजायगा क्योंकि रीतोंके उद्धार होचुकने पीछे अन्यबालक नहींलियाजासक्ता है इसलिये पहलेसेही वि-चारके साथ कामकरनाचाहिये जो पीछे पछतावे का अवसर नहीं आवे-श्रीनंद पंडितने-इस दशाको पंचवार्षिक प्रतिबंधकेसाथही ऐसाकहाहै कि जो कदाचित् चूड़ा संस्कारकियाहुआ लड़का गोदले भी लियाजाय यद्यपि पाँचवर्षोंकेभीतरभी अवस्था

उसकीहो पर तौ भी ऐसा लड़का शुद्ध दत्तकनहींहोसक्ता इस्से उसको द्व्यामुष्यायण कहनाचाहिये और वह दोनोंबापकेगोत्रका अधिकारीरहैगा क्योंकि दोनोंगोत्रमें संस्कार उसकेहुये अर्थात् चौलकर्मतक अपनेबापके घरहोचुकाथा और शेष जनेऊ आदि ग्रहीता बापकरैगा-बड़े अचंभेकी यहबातहै कि अभी उस दत्तक पुत्रको दासों के समान जिसका चूड़ातक होचुकनेपीछे लियाहो बतलातेथे इस उत्कर्षसे कि वह दासोंकी गिनतीमें आकर ग्रहीताका धनभागी नहींहोगा उसीको अब थोड़ीदेरमें द्व्यामुष्यायण कहकर दोनोंकुलकापुत्र बनानेलगे तौ यह केवल विद्वत्ताका आनंदमात्र सूचितहै कि जिसके प्राबल्यसेहीचाहे तब चाहे तिसको ऊँच या नीच दर्शित करदेना अपने स्वाधीनहै (या) यहबातहै कि उक्त निर्माताके विचारसे द्व्यामुष्यायण पुत्र कुछ दत्तकसे नीचगिनाजाताहो सो भी निपट असंगत है क्योंकि द्व्यामुष्यायण दोनोंकुलका लाड़ लड़ैता और दोनोंकाधनहर्ता पिंडभर्त्ताहुआ करताहै इसलिये कोई भाँति दत्तकसे मंद उसको नहींकहसक्के यद्वा किसीहेतुसे कहभीसकें तौ फिर दोनों कुलकेधन हरनेमें दासतासे महान् अंतरपायागया-इसके सिवाय जो निर्माताने यह कहाहै कि चौलहोजानेपीछे लेनेसे वह दत्तकनहींकहाता द्व्यामुष्यायणहोजाताहै सो भी निपट असंगतहै क्योंकि दत्तकत्व और द्व्यामुष्यायणत्व कुछ क्रियाभेदसे आपही संभवनहींहोसक्ता किन्तु दाता और ग्रहीतामिलकर दोनोंके परस्पर स्वीकार वचन भेदकी प्रतिज्ञाके अनुसार संभवहोताहै और उसी प्रतिज्ञाके अनुसार संस्कार आदि क्रियायें भी आरंभ करीजातीहैं अर्थात् जो दत्तकरीतिसे दान प्रतिग्रहका स्वीकारठहरा होगा तबतौ सिर्फ़ग्रहीता उसको लेकर संस्कारकरैगा और जो द्व्यामुष्यायणके प्रकार सेलेना देना स्वीकार हुआ होगा तब दोनों बाप मिलकर संस्कार करते हैं-अथवा उक्त निर्माताने यह आशय उसका दर्शायाहो कि जिसलड़के का चौलकर्मतक होचुकाहो उसको दत्तकमार्गसे लेनाही नचाहिये किन्तु द्व्यामुष्यायण मार्गसेलेनाचाहिये सोभी लोकाचारसेविरुद्धहै किजिनको द्व्यामुष्यायणमार्गसेलेना देनास्वीकारही नहीं वहक्यों कर दत्तक मार्गसेमिलसक्केहुये ऐसाकरें या दाता अपने कईपुत्रोंके होतेहुये द्व्यामुष्यायणमार्गसेदेकर इच्छाबिनाभी अनेकधा बातोंका साझाखड़ाकरके एकनिरर्थक झगड़ा पैदाकरे क्योंकि द्व्यामुष्यायण कभी लाचारी अवसरमें कियाजाताहै (और) इस दशामें उक्त निर्माताने जैसा आधासाझादर्शायाहैकि चौलकर्मतक आधेसंस्कारउसके मुख्य पिताने करदियेथे अब आधे संस्कारजो जनेऊ आदि शेष रहेसो सब दूसरा पिताकरैगा (सोभी) यह नियमात्मक बातनहीं है अर्थात् इसका यह नियमात्मक प्रकारहै कि जन्मकालसेहीद्व्यामुष्यायणत्वकी प्रतिज्ञानिश्चितकरिकेपीछेयथाक्रमसे प्रत्येकसबसंस्कारों को दोनोंबाप मिलकरकिया करते हैं तबतौ नित्यद्व्यामुष्यायणकहलाता है अथवा

जिसने चौलकर्मतक हो जाने पीछे द्व्यामुष्यायणत्व की प्रतिज्ञा निश्चितकरी होगी तौ वह अनित्य द्व्यामुष्यायण होगा पर इसदशामें भी शेषरहे संस्कारों को दोनों बाप मिलकर कियाकरते हैं और यही बात योग्यहै इसका वर्णन पहले होचुकाहै परयहाँ पर प्रसंगमात्रसे फिर व्याख्या करीगई-इस व्याख्या का सिद्धांतसार यही है कि द्व्यामुष्यायण पुत्र दत्तकसे भी उत्तम होताहै पर उसदशामें कि जो नित्यलक्षणका द्व्यामुष्यायण हुआ हो (और) जो उक्त निर्माताने अपने वर्णन हुये आधे साझे के प्रकार में एक यह विशेषता भी दर्शाईहै कि आधे संस्कार जो उसके मुख्य पिताने कर लियेथे सो तौ उसीकी शाखा प्रवर गोत्रके अनुसार हुयेथे और आधे संस्कार जो कल्पित पिता करैगा सो उसकी शाखा प्रवर गोत्रोंके समान किये जायँगे इसलिये ऐसे पुत्रको दत्तक नहीं कहसक्ते किन्तु द्व्यामुष्यायण कहनाचाहिये क्योंकि दोगोत्रों के अनुसार उसके संस्कार हुये (सो) यह कथन भी केवल तुषकंडनहै अर्थात् यहांपर दोगोत्रोंसे कुछ अपेक्षा नहीं भिन्न दोगोत्र केवल उस दत्तक में होसक्ते हैं जो पराये गोत्रसे लेलियाजाय किन्तु यह द्व्यामुष्यायण पुत्र निज अपने गोत्रसे भाई आदिका लड़का कियाजाताहै तौ फिर क्योंकर दोगोत्रोंके अनुसार संस्कार हुये यद्यपि आधे आधेकाम दोघरमें हुये परंतु वही गोत्र वही शाखा और वही प्रवर जो उस भाईके सो उसके भी समान हैं-अर्थात् जैसे दत्तक पुत्र लाचारी में पर गोत्रसे भी लेलेते हैं तैसे द्व्यामुष्यायण कभी लाचारी में भी भिन्नगोत्री का लड़का नहीं लिया जासक्ता-वल्कि-द्व्यामुष्यायण पुत्र वनाने की विनाय यहीहै कि जिसको किसी परगोत्रीका लड़का लेना अपनी इच्छामें अंगीकार नहीं होता और अपने गोत्रमें कोई लड़का ऐसा नहींहै कि जिसको दत्तक पुत्र वनाने के निमित्तसे मांगें और इसदशा में अपने एक भाई के एकही लड़का पैदाहुआ मौजूद है या हाल होनेवाला है परंतु उस एकलौता के दान करदेने का प्रतिषेध है इसलिये नतौ वह भाईइसे देसकेगा न यहउस्से मांगसक्ता है तथापि यहरूपक सम्भव है कि वहसपूना भाई इस निपूते भाईका सुहृद होनेके हेतुसे अपुत्रत्वका दोष और दुखदूर करदेनेपर समुद्यत है तब इसदशा में परस्पर दोनों के प्रेमसे यह प्रतिज्ञा निश्चित होजाती है कि यहीएक लड़का जो मौजूद है या पैदाहोनेवाला है हमतुम दोनोंका द्व्यामुष्यायणहोजायगा क्योंकि जो दो तीन होते तौ एक दत्तकमार्ग से देदिया जाता अवलाचारी दशामें एकही से निर्वाह दोनोंको करना आवश्यकहै इसलिये द्व्यामुष्यायण करलेना चाहिये-यहीप्रकार इसका न्यायात्मक और निश्चयात्मक और लोकाचारात्मक है परन्तु उक्तनिर्माताकी कल्पनासे कोईभाँति यहनहीं सम्भवहै कि यद्यपि दत्तकमार्ग सेही लियाहो परचूडाकर्म होजानेपीछे लियेजानेके हेतुसे द्व्यामुष्यायण मार्गमें समुझा

जाय तिसपरभी ग्रहीताका वहदासकहावै या जो चूड़ाकर्मके न होनेपरभी पाँचवर्षोंसे उपरान्त लियाजाय सोभीदासकहावै-क्योंकर दासकहसक्तेहैं वसिष्ठजीका वाक्यऊपर आचुकाहै कि जिसमें उपनयनकालतक त्रैवर्णिक जातोंमें दत्तक लियेजानेकी अवधि नियमितहुई है-शूद्रजातोंमें विवाहसे पहले पहले गोदलेकर जो ग्रहीता उसकाव्याह करै तौ वह दत्तक प्रामाण्यहोताहै क्योंकि शूद्रजातिमें उपनयनकाअभावहै उपनयन-स्थानी पहिलाव्याहमानाजाताहै चाहे किसीअवस्थातकहो यहीमर्यादा सर्व सामान्य देशोंकी प्रधानहै-परन्तु-जिसाकिसी देशविभागमें किसी ग्रंथविशेषकेआशयसे परिपाटीमें कुछविशेषतापाईजाय तिसकानिर्णय उसीग्रंथ और उन्हींमनुष्योंकेद्वारा प्राधान्य हुआकरताहै क्योंकि (सामान्यशास्त्रतोनूनंविशेषोबलवान्भवेत्) इसन्यायसे सामान्य मर्यादाके सन्मुख विशेषपरिपाटीभी बलवान्होती है (दृष्टांत) जैसे दाक्षिणात्यलोगों में व्यवहारमयूखनामग्रंथ बहुतप्रधानहै और उसग्रंथका यहसम्मतहै कि जबतक अपने सगोत्रीकालड़का दत्तकलियाजाय तबतक अवस्था और संस्कारोंकाभी कुछ नियम आवश्यक नहीं है किन्तु ग्रहीताकी इच्छापर आरूढ़है कि वह चाहे उपनयन और विवाहके होचुकने बलिक सन्तानके होजानेपरभी दत्तकलेवै तो यह भिन्न मर्यादिक नहीं है-यथार्थसे यहसम्मत बड़ेदूरदर्शी ने मनुष्योंका कल्याणसोचिकर उत्पन्नकियाहै क्योंकि बहुतेरे निःसन्तानेलोग नानाभाँतिके संकल्पविकल्पोंके सोचविचारमें अपनी अवस्था काटेचलेजाते और दत्तकपुत्र लेनेकाविचार बारम्बारकरतेहुये भी उसकाम से बिलम्बितरहेआते हैं परन्तु अपनेवृद्धापनआदि कारणोंके उपस्थितहोनेपर दत्तक लेनेकामनोरथ खड़ाकरते हैं तो फिर ऐसेसमयपर जो दत्तक मीमांसाका आराधनकरैं तौ अवश्य निःसन्तानामरनापरै यद्वा त्रैवार्षिकअवस्थाका शिशु दत्तकलेवैं तो जब-तक उसको पालैंगे तबतक आपचलते होजायँगे तौ यहऐसादत्तक निपटउसग्रहीता का कुछ कार्यसाधक नहोसका क्योंकि त्रैवार्षिक पंचवार्षिक शिशुउसका और्द्ध्वदैहिक श्राद्धभी नकरसकैगा और मरणांतिक समयकीसेवा आदि तौ बड़ीदूरहैइसलियेउस मयूखनिर्माता दूरदर्शी का संमत बड़ा निर्मलहै कि ऐसा लड़का अपनीइच्छाके अ-नुसार दत्तकलेवै जो आतेसार सबकार्य साधन करसकै और तत्काल ग्रहीताकाघर बसिजाय-इसदशामें उस पूर्वोक्त आशयकाध्यान करना कि लघु अवस्थाका शिशुगोद लेनेमे ग्रहीताको हिलमिलकर अपना पितामाता समुझसक्ताहै कुछ आवश्यक नहीं है क्योंकि जब ग्रहीताकी इच्छापर आरूढ़है कि वह चाहे तैसीअधिक अवस्थातक लेसक्ताहै तो ग्रहीताभीऐसादत्तक लेनेपर इच्छा खड़ीकरैगा कि जिसको वहसुपात्र समुझैगा अर्थात् सौशील्यादि गुण संयुक्तदेखभालकर दत्तक पुत्र बनावेगा कि जो लड़का पितापुत्रके धर्मोंकोजानताहो और यथार्थ से जब ऐसी अधिक अवस्था के

लड़का अपने सपिंड या सगोत्रमेंसे लेना नियमितहुआ तौ फिर अपने सपिंड और-सगोत्रके बहुधालड़के जो सुपात्र होतेहैं सो प्रथमसेही अपने चचा ताऊ आदिवृद्ध संबंधी पुरुषोंको पितामाताकेसमान समुझाकरते और सेवाटहल में तत्पर बनेरहते हैं इसीसे यहनियम निश्चित कियाहै कि ऐसीअधिक अवस्थाका लड़काअपनेसपिंड या सगोत्रकाही लियाजाय (परन्तु) जो पर गोत्रमेंसे लियाजाय तौ फिर उसी सामान्य मर्यादाके अनुसार अवस्थाआदि नियमोंपरभी ध्यानरखकर उपनयनसे पहले लेना चाहिये और उपनयन अपनेआप ग्रहीताकोही करनाचाहिये-जिसबातपर यहचर्चा कियागया उसबातपर अवध्यानकरनाचाहिये कि व्यवहारमयूख में यह विशेषता दर्शित हुई और वहग्रंथ विशेषकर दाक्षिणात्योंमें प्रधानहै तौ फिर केवलग्रंथके अनुसारही निर्णय नहीं किंतु इसभांतिके व्यवहार कालमें तत्रत्य मनुष्योंसेभीनिश्चित करनाहोताहै कि इसविशेषताकाआचार तुम्हारेहै यानहीं क्योंकि(देशाचाराःपरिग्राह्या स्तत्तद्देशीयजैर्नरैः। अन्यथापतितोज्ञेयःसर्वधर्मबहिष्कृतः)यहनियमइसपरआरूढ़है-इसकेसिवाय-पुत्रेष्टि यज्ञका चर्चा जो पहलेप्रसंगमें आचुकाहै उसको केवल श्रीनंदपंडितने पौराणिक मतसे लिखाहै किसी धर्मशास्त्र में प्रसंगउसकानहीं पायाजाता और उक्तपंडितने उसपुत्रेष्टिको एकप्रायश्चित्तके प्रकारसेदर्शायाहै कि जो तीनवर्षोंकी अवस्थासे उपरांतका बालकचूड़ाकर्म होजानेपीछेलियाजाय तौफिरग्रहीताकोपहिले पुत्रेष्टि करनीचाहिये तिसपीछेगोदलेनेकापरिग्रहकर्मकरिकै उसेद्व्यामुष्यायणमार्गसे लेनाचाहिये और जोऐसानहींकरै तौवहदत्तकउसकादासकहावै-सो इसद्व्यामुख्यायणकाव्योरा ऊपर वर्णनहोचुकाहै यहाँकेवल पुत्रेष्टिका व्योरादर्शित करतेहैं कि यहपुत्रेष्टियाग किसी ऐसे कर्मों में गिनतीनहीं है कि जैसे उपनयनकेहोनेविना ब्राह्मणत्वकी सिद्धिनहींहोतीहै किन्तु यह वेदोक्तकर्म एकऐसायागहै कि इसको पुत्रेष्टि और पुत्रकामेष्टि भी कहते हैं निस्संदेह इसकाआराधन प्रत्येक ऐसेसमयपर होताहै कि जहाँ कुछ पुत्रकीकामना अधिकहो जैसेराजादशरथकेपुत्र कोईनहींथा इसहेतुसेउदासहोनेपर वसिष्ठजीने राजाको आज्ञादेकर शृंगीऋषिको बुलवाया और उनकेद्वारा पुत्रकामेष्टियाग राजादशरथसे करवाया तव उसकर्मकेप्रभावसे रामचंद्रआदि ४ पुत्रहुये-ऐसेही उसदशामेंभी यह पुत्रेष्टियाग कियाजासक्ता है कि जिसपुरुषके पुत्रपैदाहोहोकर मरजातेहों ऐसा मृतवत्सपुरुष जो किसी एकपुत्रकेजन्मकालपर पुत्रेष्टिकरै तो वहपुत्र उसकाजीनारहै-ऐसेहीउसदशामेंभी कियाजासक्ताहै कि जिसके पुत्रहोतेहुयेभी कुमार्गीहों जिनसे पुत्रत्वका सुख बापको न मिलताहो तो इसकर्मके करनेमेंपुत्रोंमें सुमार्गता संभव होजायजिस्से पुत्रत्वकाफल बापकोप्राप्तहो-ऐसेही साधारणमें भी जो कोई अपने पुत्रको गर्भस्थजानिकर पुत्रेष्टि करै तो इसकर्मके प्रभावसे सुपुत्र पैदाहोसक्ताहै-इस न्यायसे उसदशा

कि सबसे पीछे वीर मित्रोदयके संमत साहित उसको दर्शावेंगे जिस्से दोनोंका अंतर एकसाथ समुझाजाय-परंतु उसके छोड़जानेका यहकारणभी प्रधानहै किजो सभीवातोंके सर्वत्र मूलवाक्य लिखेजाते और उनकी व्याख्या करीजाती तौ निस्संदेह पढ़नेवालोंको समुझना दुर्घट होजाता क्योंकि प्रायः ग्रंथकारोंने बिरली छोटीबातपर व्यर्थ विस्तारोंका मट्ठाफेरिक भूल भुलैयाके बाज़ार कल्पित कियेहैं उनमें से प्रयोजनमात्र थोड़ाथोड़ासार चुनिकर लिखना यहांअपेक्षितहै कि जिस्से सर्वसाधारणोंको समुझने में सुगमता बनी रहै–तत्रसंक्षेपेणश्रीनन्दपण्डितोक्तिः–यथा (अपुत्रेणसुतःकार्योयादृक्तादृक्प्रयत्नतः। पिंडदानक्रियाहेतोर्नामसंकीर्तनायचेतिमन्वादिवाक्येषुअपुत्रेणेतिपुंस्त्वश्रवणान्नस्त्रियाअधिकार इतिगम्यते–अतएववसिष्ठः (नतुस्त्रीपुत्रंदद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वा अन्यत्रानुज्ञानाद्भर्त्तुरिति-अनेन विधवायाभर्त्रनुज्ञानासंभवादनधिकारोगम्यते नच सधवायाएवभर्त्रनुज्ञापेक्षापारतंत्र्यान्न विधवाया इतिवाच्यं स्त्रीसामान्योपादानेन पारतंत्र्यस्याप्रयोजकत्वात् अभावेज्ञातयस्तेषामिति ज्ञातिपारतंत्र्यप्रसंगाच्च तर्हिज्ञात्यनुज्ञयैवतस्याःपुत्रीकरणमस्त्विातिचेन्न भर्तृपदस्यापलक्षणतापत्तेःप्रयोजनासिद्धेश्च प्रयोजनंतु भर्त्रनुज्ञानस्य स्त्रीकृतपरिग्रहेणापिभर्तृपुत्रत्वासिद्धिः अतएवसत्याषाढसूत्रेस्त्रीद्वारजस्यगोत्रद्वयसंबंधोभिहितोमातुरुत्तरंपितुःप्रथममितिसूत्रेणेति पितृगोत्रसंबंधश्च पितुःपुत्रत्वेन पुत्रत्वंचपित्रनुज्ञानेनैव नपरिग्रहमात्रेणस्त्रीकत्वात् स्त्रीद्वारजःस्त्रियायाचितःस्त्रीसत्ताकः इतिशबरस्वामिनः अत्रच स्त्रियाद्वारताभिधानेनतद्वारीपुरुषोलक्ष्यते अन्यथा स्त्रीपरिगृहीतस्य तन्मात्रपुत्रत्वेनतद्भर्तृगोत्रसंबंधाभावात्तद्भर्तृ क्रियायामनधिकारापातात्तद्विवाहादौचपित्रभावेन पितृगोत्राद्यनुल्लेखप्रसंगाच्चभर्तृपरिगृहीतेतुभर्तृपरिगृहीतवस्त्वंतरस्वत्ववत् स्त्रियाअपितस्मिन्पुत्रत्वासिद्धिः किंच व्याहृतिभिर्हुत्वाप्रतिगृह्णीयादितिहोमकर्तुरेवप्रतिग्रहासिद्धेः स्त्रीणांहोमानाधिकारित्वात् प्रतिग्रहानाधिकारइतिवाचस्पतिः नचशौनकीयेआचार्यवरणात्तद्वाराहोमासिद्धिरितिवाच्यं होमसिद्धावपि प्रतिग्रहमंत्रानधिकारेण प्रतिग्रहासिद्धेः प्रतिग्रहानाधिकारइतिवा प्रतिग्रहमंत्रस्तुयदाह शौनकः देवस्यत्वेतिमंत्रेणहस्ताभ्यांपरिगृह्यच अंगादंगेत्यृचंजप्त्वाआघ्रायशिशुमूर्द्धनीति-नचैवंशूद्राणामप्यनधिकारप्रसंगः शूद्राणांशूद्रजातिष्विातिव्यवस्थापकलिङ्गेन तदधिकारकल्पनात् एतेनशूद्राणांहोमप्रतिग्रहमंत्रानधिकारेणैव पुत्रपरिग्रहाधिकार इतिसिद्धम्- नचैवंसधवानामप्यनधिकारापातोहोममंत्राद्यनधिकारादितिवाच्यं-अन्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुरिति प्रतिप्रसवेन प्रधानाधिकारसिद्धावधिकृताधिकाराद्धोममंत्रादिप्राप्तौस्त्री शूद्राणाममंत्रकामिति मंत्रपर्य्युदासासिद्धेरमंत्रकप्रतिग्रहासिद्धिः वस्त्वंतरप्रतिग्रहवत्-किंच नस्त्रीपुत्रंप्रतिगृह्णीयादित्यौत्सर्गिकनिषेधस्य अन्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुरित्यपवादकः प्रतिप्रसवः-तत्रचनिमित्तंभर्त्रनुज्ञानं तनअविधवायाभर्त्रभावेनानुज्ञानासंभवा

मित्तकप्रतिप्रसवाप्रवृत्त्या प्रापकांतराभावाच्चानधिकार इतिसर्वेषामादिसंप्रतिपन्नमेव)
अर्थात्-श्रीनन्द पण्डित कहते हैं कि (अपुत्रेणमुतःकार्यो) इत्यादि ऊपरले सबसे पहले मनुवाक्यमें और औरभी इसप्रकारके बहुधा वाक्योंमें (अपुत्रेण) यह पुल्लिंग वाचक शब्द देखि परताहै इसलिये अपुत्रास्त्री को दत्तक पुत्र गोदलेनेका अधिकार नहीं पायाजाताहै इसीहेतुसे वसिष्ठने भी यह कहाहै कि स्त्री नतौ अपनापुत्र किसी को देवै और न किसीसे आप दत्तकलेवै पर यह नियम भर्त्ताकी अनुज्ञासे अन्यत्र जानो अर्थात् भर्त्ताकी अनुज्ञासे देसक्तीहै और लेभीसक्तीहै सो इसनियमसे विधवा स्त्रीका अनधिकार समुझाजाताहै क्योंकि उसके भर्त्ताका अभावहोनेसे भर्त्ताकी आज्ञाभी कहांसे होसक्तीहै और उस वसिष्ठजी के वचनका ऐसा अर्थभी न समुझा चाहिये कि यह निषेध केवल सधवास्त्रीके निमित्तमें पतिके परतन्त्रहोनेसे होसक्ताहै किन्तु विधवास्त्री परतन्त्र नहीं वह स्वतन्त्रहै (सो) यह अर्थ इसहेतुसे नहीं मानाजासक्ताहै कि वसिष्ठने स्त्रीशब्दसामान्य भावसेकहाहै उसमें पारतंत्र्यका प्रयोजन संभव नहीं किया और जो पारतंत्र्यका हेतु उसमें मानाजाय तौ कुछ विधवाकोभी स्वतंत्र नहीं कहसक्ते किन्तु विधवाभी पतिकेजाती लोगोंके परतन्त्र होतीहै-और जो इस हेतुसेही आग्रह कोईकरै कि जो पतिके जातीलोगोंके आधीनहोतीहै तौ फिरउन्हीं जातीलोगोंकी अनुज्ञासे विधवास्त्री दत्तक लेसकेगी क्योंकि जैसे पतिकेहोनेमें सधवा स्त्रीको पतिके पारतन्त्र्य हेतुसे उसीकी अनुज्ञासे दत्तकलेना होसक्ताथा तैसे पतिके अभावमें बन्धुजनोंकी अनुज्ञासेलेना सूचितहोताहै (सो) यह आग्रहभी नहींमान सक्तेहैं क्योंकि वसिष्ठजीके वचनमें बान्धवजनोंका कुछ प्रसङ्गनहीं है केवल भर्ताकी अनुज्ञाका प्रसङ्ग उसमें लिखाहै-और जो बान्धवजनोंका प्रसङ्गभी मानाजाय तौफिर मुख्य प्रयोजनकी सिद्धिनहीं होसक्तीहै और वहप्रयोजन इसमेंयहहै कि भर्ताकी अनुज्ञासे जिसपुत्रको स्त्रीगोदलेतीहै तौवहपुत्र स्त्रीद्वारा लियेजानेपरभी भर्ताकापुत्र मानाजाताहै-इसीहेतुसे सत्याषाढ़ सूत्रनाम ग्रन्थमेंस्त्रीद्वारा लियेहुयेपुत्रको (स्त्रीद्वारज) कहाहै और उसका दोनोंगोत्रसे सम्बन्ध निश्चितकियाहै अर्थात् (माताकागोत्रपीछे और पिताकागोत्र पहले) यहसूत्र उसमें लिखाहै और आशय इसका यहहै कि जो पिताकी आज्ञासेही माताने गोदलियाहो तौवह पिताका पुत्र निश्चितहोने के हेतुसे पिताकेही गोत्रका भागीहोगा यद्यपिताकी आज्ञाविना माताने गोदलियाहोगा तौवह माताकाही पुत्र निश्चित होकर उसीमाता के गोत्रियोंमें गिननीहोगा (माताका गोत्र अर्थात् नानाका गोत्र) क्योंकि उसको स्त्रीने याचना करकेलियाहै इसलिये स्त्रीद्वारज उसेकहना चाहिये और स्त्रीत्वकी सत्ताउसमें प्रविष्टहोने से स्त्रीकाहीगोत्री कियाजाय यहव्याख्या शवर स्वामीनेकरीहै-यहाँपर स्त्रीकी द्वारता दर्शित होनेसे स्त्रीद्वारी पुरुष

समुझा जाताहै-अन्यथा जो यहभी नहींमानो तौफिर स्त्रीका लियाहुआ दत्तकउसी काही पुत्र समुझा जानेके हेतुसे उसके भर्त्ताके गोत्रका सम्बन्ध उसपत्रमें न होनेसे भर्त्ताके क्रियाकर्मोंमें उसपुत्रका अनधिकार पायेजानेसे और उसके विवाहादि कामों मेंभी पिताके अभावसे पिताका गोत्रआदि न उच्चारण होसकेगा-इसलिये हमारी समुझसे यह कोई भाँति सूचित नहींहोताहै कि विधवा स्त्री दत्तकलेवे यहकहकर फिर श्रीनन्दपण्डित कहतेहैं कि भर्त्ताके परिग्रह कियेहुये दत्तकमें स्त्रीकाभी स्वत्व उसन्याय से होताहै कि जैसे भर्त्ताकी संग्रह करीहुई अन्य वस्तुओंमें स्त्रीकास्वत्वहोताहै-इसके सिवाय-वाचस्पतिके इसवचनसेभी स्त्रियोंको अधिकारनहीं पायाजाताहै कि व्याहृतियोंसे होमकरिकै दत्तक लेनाकहाहै और स्त्रियोंको होमकरनेका अधिकार नहींहै और होमकियेविना लेनेसे प्रतिग्रह सिद्धनहीं होसक्ता- कदाचित् कोईशौनकके वचनानुसार यहकहे कि आचार्यवरण करिकै आचार्य्यके द्वारा होमकरायकर स्त्रीदत्तक लेसकेगी (तो) वहपराये हाथका होमसिद्ध नहींहोता और जो होमसिद्ध होभीसकै तौफिर प्रतिग्रहका मन्त्रबोलने में स्त्रियों को अधिकार नहीं है इस्से विनामन्त्रके प्रतिग्रह लेने काभी अधिकार नहीं होसक्ता और प्रतिग्रह मन्त्र भी (अङ्गादङ्ग) इत्यादि ऋचा जो शौनक ने बतलाई सो प्रसिद्ध है-अब कहते हैं कि जो कदाचित् इसमें यह तर्कणा कोई करै कि मन्त्रका अधिकार जैसे स्त्रियों को नहीं तैसे शूद्रोंको भी नहीं है तौफिर शूद्रजातिको भी दत्तकलेनेका प्रतिषेध निश्चितहुआ सोयह तर्क न करनीचाहिये क्योंकि शूद्रोंकी व्यवस्था शूद्रजातिके अनुसार निश्चित होचुकीहै पर यहां के प्रतिषेधसे इतना औरभी विशेष पायागया कि शूद्रोंको होम और प्रतिग्रह मंत्रकेविनाही दत्तक लेनेका अधिकारहै-और जो कदाचित् कोईयह तर्कणा करै कि स्त्रियोंकोहोम और प्रतिग्रह मंत्रका अधिकार नहींतौफिर सधवा स्त्रीभीपतिकी आज्ञासे क्योंकर पुत्रलेसक्तीहै क्योंकि होम और प्रतिग्रहके मंत्रविना परिग्रह सिद्धि न होसकैगी सोयह तर्कभी न करनी चाहिये क्योंकि (भर्त्ताके अनुज्ञानसे अन्यत्र) इसप्रतिप्रसवरूप वचनमे प्रधान कार्यका अधिकार सिद्धहोने में उसके अंगभूत अधिकृत कामोंका अधिकार पायाजानेसे होम मंत्रादिकभी करसकनेका अधिकार यद्यपि सधवा स्त्रीको पायागया परंतु स्त्री और शूद्रोंको अमंत्रकर्म करनेकीआज्ञा जो सुनिश्चित है तिस हेतुसे सधवाको भी मंत्रोंका पर्य्युदास पायाजानेसे यह निश्चित हुआ कि सधवास्त्री जो पतिकी आज्ञासे दत्तक पुत्रका प्रतिग्रह करैतो विनामंत्रकेही करै जैसे अन्यवस्तुओंका प्रतिग्रह विनामंत्रोंके करसक्तीहै-क्योंकि(नस्त्रीपुत्रंप्रतिगृह्णीयात्) यह औत्सर्गिक निषेध जो सामान्य विधिमें वसिष्ठने दर्शाया तिसका (अन्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुः) यह अपवादरूप प्रतिप्रसवभी पीछेसेकहा तिसमें भर्त्ताकी अनुज्ञाही

निमित्त ठहरी इसी कारण विधवाको भर्ताके अभावमें अनुज्ञानका असंभव होनेसे निमित्तक प्रतिप्रसवकी अप्रवृत्ति करके दत्तक लेनेका अधिकार नहीं है और इसमें कोई और प्रमाणभी ऐसानहींहै कि जिस्से लेसकनेमें अधिकार पहुँचै इस्सेहमने जो कुछकहा सोसब ठीकहै (अस्यैवफलादेशः) इस व्याख्यानका पूर्वमूलपाठ और इसको भी प्रत्यक्षर सोचिकर पढ़नेवालोंका विज्ञातहोगा कि इसका सर्वसिद्धांत उसनिर्माता नेयहीरक्खाहै कि विधवाका बनायाहुआ दत्तकपुत्र किसीप्रकारसेभी पिताकेधनपिंडों का अधिकारी न होसकै अर्थात् ऐसाकोई अक्षर उक्त निर्माताके मुखसे स्पष्टनिकसा नहीं प्रतीतहोता है कि जिस्से विधवाका अधिकार पतिकी पूर्वदत्त अनुज्ञासेही पाया जाय-तथापि-बहुधा विज्ञानी व्यवहारज्ञोंने ऐसे व्याख्यान के होनेपर भी उसी वसिष्ठ के वाक्यद्वारा निज न्यायात्मक दृष्टिसे सिद्धांतफल संसूचित कियाहै कि जिस विधवा को भर्त्ताके जीतेजी इसबातकी अनुज्ञा प्राप्तहोचुकी हो तिसको भर्त्ताके पीछेभी अधिकारहै किजो दत्तकपुत्र लेलेवै तौवहदत्तक निस्संदेह ऐसे स्ववासी कल्पित पिताकेधन पिंडोंका अधिकार पावै क्योंकि जिसकार्यके करनेमध्ये भर्त्ताकी अनुज्ञा मूलकारण है कि जिसके अभावमें विधवाको अधिकार नहीं था वहकारण उसको पहलेसेही संप्राप्तहो तौफिर अनधिकारका प्रसंगनहीं-इसी फलादेशके अनुकूल संप्रति बहुधादेश विभागोंमें दत्तकसम्बंधी व्यवहारोंका निर्णय कियाजाता है पर उनदेशोंको छोड़कर कि जिनमें विशेषकर वीर मित्रोदय आदि ग्रंथोंका प्रधानता मानीजाती हो क्योंकि उन ग्रंथोंमें निस्स्वार्थ पक्षछोड़कर यथार्थभावसे व्यवस्था सिद्धहुईहै कि विधवापति के पीछे दत्तकलेसक्ती है चाहै उसको आज्ञा पहिले मिलीहो या न हो(तथाचवीरमित्रोदयपाठः मातापितरौप्रत्येकंमिलितौवादद्यातां एकःपुत्रश्चनदेयोनप्रतिग्राह्यः-यथाहवसिष्ठः-(शुक्रशोणितसंभवःपुरुषोमातापितृनिमित्तकस्तस्यप्रदानविक्रयपरित्यागेषुमातापितरौप्रभवतःनत्वेकंपुत्रंदद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वा सहिसन्तानायपूर्वेषांनतुस्त्रीपुत्रंदद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वाऽन्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुरिति -अत्र भर्त्रनुज्ञांविनास्त्रियाःपुत्रप्रतिग्रहनिषेधात् अदत्तानुज्ञे भर्तरिमृतेविधवयाकृतःपुत्रोदत्तकोनभवतीत्याहुस्तन्न अपुत्रस्यगत्यभावात्पुत्रकरणस्यावश्यकत्वश्रवणाच्छास्त्रमूलकतदनुज्ञायास्तत्राप्यक्षतेः-नचैवमनुज्ञानादन्यत्रेति व्यर्थम् व्यावर्त्याभावाच्छास्त्रीयानुमतेःसर्वत्रावश्यकत्वादितिवाच्यम्-मुमुक्षोःपत्न्यंतरे पुत्रवतोवाऽनुज्ञाया असंभवाद्भार्यायादिस्वपुत्रार्थमेवतंप्रतिनिषेधस्य-सर्वासामेकपत्नीनामेकाचेत्पुत्रिणीभवेत्।सर्वास्तास्तेनपुत्रेणप्राहपुत्रवतीर्मनुरिति-पुत्रकार्यश्राद्धादेःसपत्नीपुत्रेणसिद्धेर्भर्त्रनुज्ञांविनानादृश्यापुत्रोनकार्यःउभयोरपितत्रकार्यस्यतेननिष्पत्तेः-भर्तुर्हिसऔरसएवमुख्यः तस्याअपिदत्तकवद्गौणइतिनादृश्याभर्त्रनुमतिनिमन्तरेणेतरेनप्रातिग्राह्यः इतितात्पर्यार्थः-वस्तुतस्तु-भ्रातॄणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्भवेत्। सर्वांस्तां

स्तेनपुत्रेणपुत्रिणोमनुरब्रवीदिति वचनवदेतस्यापिभ्रातृपुत्रस्यगौणदत्तकपुत्रत्वादिसं भवेऽन्यःपुत्रप्रतिनिधिर्नकार्यइत्यर्थकतयामिताक्षरास्मृति चंद्रिकादौव्याख्यातत्वाद्भर्त रिजीवति भार्ययास्वातंत्र्येणतदननुमतोनपुत्रीकरणीय इतिभर्तुरनुज्ञानादन्यत्रेत्यस्या र्थः-मृतेतुतस्मिन्यत्पारतंत्र्यंतदनुमतेतु तस्मिन्पारतंत्र्यात्तदनुमतिरेवापेक्षिता-एवंस तिदृष्टार्थताभवतिप्रतिषेधस्य- तस्माददत्तानुज्ञेमृतेपिभर्तरि भार्यायादत्तकादिकरणम विरुद्धम्) (अथास्यसंक्षेपार्थः)-वीर मित्रोदयने इसपाठ में उसी वसिष्ठके वाक्यसे ठीकठीक वहव्याख्या लिखी है जो निज वसिष्ठजी के अभिप्रायसे और न्यायात्मक मर्यादासे भी तुल्यात्मक पाईजाती है–किंतु–वीर मित्रोदय कहते हैं कि (भर्ता की अनुज्ञाविना स्त्रीको दत्तकलेनेका निषेध जो वसिष्ठजीने कियाहै) तिसका आशय जो बहुधापंडित ऐसाकहतेहैं कि जिसकाभर्त्ता दत्तकलेनेकी अनुज्ञादिये विना मरजा य तिस विधवाका लियाहुआ दत्तकसच्चा नहीं होता-सोयह आशय नहीं है क्योंकि शास्त्रोंमें निर्विकल्प यहआज्ञा लिखीहै कि निपूतेकीगतिनहींहोती इस्सेकैसेहूपुत्रकरना आवश्यक है तौफिर इसआज्ञाके सन्मुख उसदशामें भी कुछ हानिनहींहै जो विधवा अपने भर्त्ताकी गतिकेलिये पुत्रबनावै पर इसबातसे यह तर्कणा न करनीचाहिये कि वसिष्ठका वहवाक्यही व्यर्थहुआ जाताहै जो उन्होंने निषेधकिया है कि (भर्त्ताकी अनुज्ञा विना न लेवै) क्योंकि शास्त्रीय अनुमत कुछ व्यावर्त्य नहींहोसक्ता इस्से वसिष्ठका यहनिषेध बहुतठीकहै पर सधवास्त्रीके निमित्तमें दर्शायाहै किवह भर्त्ताके परतन्त्रहोती है उसकोभर्त्ताकेविदेशस्थ होनेआदि दशाओंमें भर्त्ताकी अनुज्ञाविना नलेनाचाहिये कदाचित् भर्त्ताने मुमुक्षुभाव लेकर संसारके बन्धनमें फँसनेसे उपेक्षा धारण करीहो इस्से दत्तकलेनेकी आज्ञादेनेमें उत्साह उसको न हो तौ इसदशामें पत्नीकेवल अपनेही उत्साहसे दत्तक न लेसकैगी अर्थात् जो ऐसीदशा में भर्त्ताकी आज्ञा विना दत्तकलेभी लियाहो तौवहदत्तक सच्चानहींहै निवर्तित होसक्ताहै यद्वाभर्त्ताकी द्वितीय पत्नीकेही पुत्र होतेहुये निपूती पत्नीनिज अपनेही मनोरथसे दत्तकलेनाचाहै तौइसभांतिकी स्त्रीको निषेधहै कि भर्त्ताकी अनुज्ञाविना न लेवै अर्थात् ऐसीदशामें भर्त्ताकी अनुज्ञा संभवनहीं है क्योंकि भर्त्ताके जब औरस पुत्रहै तो उसके होतेहुये द्वितीय पत्नीको दत्तक लेनेकी आज्ञा नहीं देसक्ता किंतु सौतेला पुत्रभी दत्तक पुत्रके समानहै उसीद्वारा उस विमाताकाभी श्राद्धकर्म्म आदि सब होसकैगा मनुका वचन प्रमाणहै इसकेसिवाय औरभी सिद्धान्तहै कि जिसनिपूते भर्त्ताने अपने प्रवासआदि अनवकाशोंके हेतुसे पत्नीको यद्यपि आज्ञाभी देदीहो परन्तु जिस पुत्रके लेनेकी अनुज्ञानहींदीहो तिसको पत्नी निज इच्छासेही दत्तक नहीं बनावे किन्तु जिस पुत्रके लेनेका विचार और अनुज्ञा पतिनेकरीहो तिसकोही सधवा स्त्री लेसक्ती है-अर्थात

भर्त्ताके जीवतेहुये पारतंत्र्यके हेतुसे सधवास्त्रीको सर्वथा भर्त्ताकीअनुज्ञाविना दत्तक लेनेका निषेध वचन वसिष्ठने कहाहै-और भर्त्ताके मरजाने पीछे भर्त्ताके बन्धुओंमेंसे मुख्यभावसे जिसका पारतंत्र्य उसकोहो उसीकी अनुमति लेलेनेसे अपेक्षा शेषहै-इसहेतुसे भर्त्ता यदि अनुज्ञादिये विनाभी मरगयाहो तौभी पत्नीको दत्तक आदिपुत्र बनानाकुछ विरुद्धनहींहै(इतिवीरमित्रोदयस्यनिर्मलव्याख्यानं-अत्रतुनंदपंडितोक्तिपरिहारःसंभवति)ध्यानकरनेकी यहबातहै किजैसा नन्दपंडित एकसामान्य शब्दोंकेवर्त्तावेमें लिङ्गोक्तिकी तर्कणासे मन्वादि महर्षिप्रवरोंकीभी जीभथांभते हैंकि(अपुत्रेणसुतःकार्यो-अपुत्रेणैवकर्तव्यःपुत्रप्रतिनिधिःसदा)इत्यादिवाक्योंमें सर्वत्रनिपूतेकी समस्या देखीजाती हैनिपूतीकाचर्चा कहींनहींहै इसलिये निपूतीको पुत्रनलेना चाहिये-सोकुछ महर्षियोंने इसबातमें स्त्री पुरुषकाभेद खड़ाकरनेके निमित्तसे पुल्लिंगत्व नहींकहा किन्तुयहां पुरुषकी समस्यामात्रसे सहचरी स्त्रीकाभी बोधहोता है क्योंकि स्त्रीपुरुष दोनोंकायुग्म यह सदाही सहचर हुआकरता है यहभी एक न्यायात्मक नियमहै कि जिसकिसी प्रधानवस्तुका उच्चारणविना विशेषण कियाजाय तिसकी नैरन्तर्य सहचर वस्तुओंकाभी बोध लियाजाता है (दृष्टांत) जैसेदिनोंके उच्चारणमें सहचरा रातेंभीआजातीहैं यथा दसादिन वहांठहरेंगे इसकथनका यहन्यायनहीं है कि दसरात्रोंकोन ठहरेंगे-इसग्रामके मनुष्य बड़ेसुखी रहते हैं इसकथनका यहन्यायनहींहै कि इसग्रामकी मानुषी वड़ी दुखी होंगी-ज्ञानीपुरुषको किसीका वुरा न चीतनाचाहिये इस उच्चारणका यह न्यायनहीं है कि ज्ञानवान् स्त्रीको पराया वुरा चीतना चाहिये-इन दृष्टान्तोंके पकाहटका प्रमाणभी वासिष्ठके इसवचनसे विचारो-यथा(शुक्रशोणितसंभवःपुरुषोमातापितृनिमित्तकस्तस्य प्रदानविक्रयपरित्यागेषुमातापितरौप्रभवतः) अर्थात् वसिष्ठने यह कहाहै कि (पुरुष) नाम लड़का लड़की दोनोंही पितामाताका शुक्र शोणित मिलकर पैदाहोतेहैं इसलिये माता पिताकाही (निमित्त) नाम स्वत्व उनमेंहोताहै और इसीहेतुसे उनकेदान करदेने या विक्रय करदेने यद्वात्याग देनेमेंभी माता पिताही समर्थहोते किन्तु किसी तिसरैतका अधिकार ऐसानहीं है-ध्यानकरो कि इसवाक्य में केवलएक (पुरुष) शब्द जो ठेठकर पुल्लिङ्गमात्र और एकत्वका बोधक नियतहुआहै उसीमें स्त्रीलिङ्गवाचक लड़कीभी समुझीगई और उसीके संयुक्तकरनेसे द्विवचन मानागया वल्किदोनोंकी अनेकता से बहुत्वभीस्वीकारहै-कदाचित् नन्दपण्डितकी कल्पनाइसमें मानीजाय तौफिरनिपट असङ्गत व्याख्याकरनीपरै कि इसवाक्यमें पुरुषकी समस्या होनेमात्रसे पुत्रही पितामाताके वीर्यसे उत्पन्नहोते हैं पुत्रियाँ अपने आप पैदाहोजातीहोंगी क्योंकि उनकाचर्चा इसमें नहीं है और इसीसे पुत्रियोंका प्रदान या विक्रय आदि हरकोई करसक्ताहोगा क्योंकि मातापिताकानिमित्त और अधिकारपुत्रोंपरही दर्शायागया-और-यहव्याख्याभी प्रत्यक्ष

उलटीहै कि(नस्त्रीपुत्रंप्रतिगृह्णीयादन्यत्रानुज्ञानात्)इसवचनसे केवल विधवाका निषेध कल्पितकिया-इसके सिवाय जो-यहउक्ति प्रकटकरी है कि बन्धुजनोंकी अनुज्ञाका प्रसंग उसवचनमें नहीं है केवल भर्त्ताकी अनुज्ञामात्रलिखीहै(तौफिर)इसउक्तिसे औरभी निर्मलता पाईजाती है कि जो भर्त्ताकी अनुज्ञामात्रलिखीहै तौ निस्सन्देह सधवाका निमित्त उसमें समुझो बल्किइसीहेतुसे बन्धुओंकाप्रसंग उसमेंनहीं है क्योंकि सधवाको बन्धुओंकी अनुमतिसे क्याअपेक्षा उसकाभर्त्ता विद्यमानहै उसीकी अनुज्ञालेनीचाहिये-इसकेभी उपरान्त-जो यहउक्तिदर्शाते हैं कि जो बान्धवलोगोंकी अनुमतिकाप्रसंग मानाजाय तौ फिर मुख्यप्रयोजनकी सिद्धि नहोसकैगी अर्थात् हमारा यह मुख्यप्रयोजनहै कि भर्त्ताकी अनुज्ञाविना जिसलड़केको स्त्री गोदलेवै वह लड़का अपने नानाकेगोत्रसे प्रसिद्धकियाजाय(सो)यहमुख्यप्रयोजन उनका किसीभाँतिसे भी लोकमें स्वीकारनहीं होसक्ता बल्कि इसको मुख्यनहीं विरुद्ध प्रयोजन कहसक्ते हैं लोकमें कहींभी ऐसी विरुद्ध परिपाटीनहींहै कि इसघरकालड़का नानाकागोत्री कियाजाय किन्तु ग्रहीताकेही गोत्रसे प्रसिद्धहोसक्ता चाहे स्त्री ले या पुरुषले-और-यहबात जो दर्शाते हैं कि विधवामाता अपनेपिताकेगोत्रमें पतिकेमरनेपीछे मिलजायगी इसलिये उसकादत्तक भी उसीगोत्रमें (सो) इसबातके प्रमाणमध्ये गोत्रपलटजानेका कोईवचन किसी प्रवर्तित ग्रंथमें इसप्रकार का नहीं पायाजाता कि भर्ताके मरनेपीछे भार्या अपनेपिताके गोत्रमें मिलजाती हो या भार्याकादत्तक अपनेनानाके गोत्रमें मिलसक्ताहो बल्किइन दोनोंबातकी विपरीततामध्ये शास्त्रमें यहवचन प्रमाणहै कि(विवाहानंतरंनारीपतिगोत्रेणगोत्रिणी। तथाग्रहीतृगोत्रेणदत्तपुत्रस्यगोत्रिता)इसीवचनके अनुसार संप्रतिलोकमें भी सर्वत्रप्रथादेखी जातीहै इसवचनकेसन्मुख नतौ माता अपनेबापकेगोत्रमें गिनती होसक्तीहै न दत्तक अपने नाना या माताका गोत्री कहाजासक्ताहै-हाँ निस्संदेह माताका गोत्री दत्तक होताहै परन्तु माताकाभी गोत्र वहीहै जो माताकेपतिका गोत्रहो तौ फिर यहकहना निपट असंगतहै कि माताका लिया हुआ दत्तकउस माताकाही गोत्री या नानाका गोत्री होजायगा-और भी-यह बहुत बड़ा उत्तरहै।कि जो योंहीं उक्तनिर्माताकी उक्ति अनुसार पिताकीअनुज्ञासेही लियाहुआ दत्तक पिताका गोत्री होसक्ताहो तौफिर पिताके बंधुओंकीभी अनुमतिसे लियाहुआ दत्तकबंधुओंका गोत्रीहोगाइसमें कोईसीहानि संभव नहींहै क्योंकि पिता और पिताके बंधुओंका गोत्रकुछ दोगोत्रजुदे नहीं बल्कि वहीठेठ गोत्रहै क्योंकि यहांपर बंधुशब्दसे ठेठ अपने ज्ञातिलोगोंकाचर्चा है-औरजो-यहउक्ति प्रकटकरीहै कि स्त्रीकालियाहुआ दत्तक उसके भर्ताकी क्रियाकर्मका अधिकारी न होसकेगा सोभी निपट असंगतहै क्योंकि जो उसकी भार्याकाहीपुत्र निश्चित करोतौभी निस्संदेहक्रिया करनेका अधिकारी निश्चितहुआ क्योंकि जिसका

क्रियाकर्म करनेवाला कोई नहीं होताहै तिसके शिष्य और मित्रादिकोंकोभी करनेका अधिकारहै तिनसे पहले जो उसके कोई संबंधीजन उपस्थित हों तो उनकाभी अधिकार उनसे अधिकतर प्रसिद्ध है फिर इसके आगे जो कदाचित् अपनी निजभार्या वामांगी अर्द्धांगीका बेटा मिलजावे तो फिर बहुत बड़ापुण्योदय उसभर्ताका समुझा चाहिये कि यद्यपि अपनी भूलसे वहपुत्र बनायेविना मरापर उसकी अर्द्धांगीने उसके पीछेभी क्रियाकर्ता नियत करदिया-इसके सिवाय-जो यह उक्ति प्रकट करीहै कि होम करनेका अधिकार स्त्रियोंको नहीं और होम कियेविना दत्तक नहीं लिया जासक्ता है इस्से विधवाको न लेनाचाहिये और शौनकने जो आचार्यसे होमकराइकर स्त्रियोंको दत्तकलेनाकहासो पराये हाथकाहोम झूँठासमुझाचाहिये और जो होमसच्चाभी पराये हाथका होसक्ता हो तो फिर स्त्रियोंको प्रतिग्रह लेनेका मंत्रबोलनेमें अधिकारनहीं और फिर आपही यहकहते हैं किजो सधवास्त्री पतिकी आज्ञासे दत्तकलेवे तो वहहोम भी न करे और प्रतिग्रह कामंत्रभी नबोलै वैसेही उठाकर गोदमें रखलेवे जैसेअन्य बस्तु मूली गाजर आदि लेकर घरमें धरलेती है और वे चीज़ें पतिकी होजाती हैं तैसेही यह लड़काभी पतिकाहोजायगा-अब यहांपर ध्यान करनाचाहिये बड़े अचंभेकी ये तर्कें हैं कि जैसे लड़के आपसमें गिल्लीडंडा खेलतेहुये आगापीछा सोचे बिना कह डारतेहैं जब कि निज भर्ताका लियाहुआ दत्तक होमकिये बिना भी झूँठाकहचुके और मंत्र बोले बिनाभी झूँठा कहचुके तो फिर भर्ताकी ओरसे प्रतिनिधि अर्थात् मुख्तार जो नियतहुई सधवा स्त्री तिसका लिया दत्तक बिना होम और मंत्रोंके क्योंकर सच्चा मानाजाय और पराये हाथ से होमकरवाना या मंत्र उच्चारण करवाना भी निषेध करचुके तो फिर यह बड़ा दूषणप्रकट होताहै कि भला स्त्रियोंको तो बोलनेका अधिकार नहींथा पर पुरुषोंको अधिकार होतेहुये जो पुरुष निरक्षर बहुधा होते हैं वे क्योंकर मंत्र बोलेंगे कर्त्ताके बदले आचार्य का बोलना निपट झूँठा निश्चितकरचुके तो फिर यह सिद्धांत उनका पायागया कि दत्तक पुत्र लेनेका अधिकार त्रैवर्णिक मेंसे केवल उन्हींका समुझनाचाहिये जो वेदोक्त मंत्रोंकोभी पढ़े पण्डितहों अन्यथा जो मूर्ख हों तिनका लियादत्तक झूँठा होजाय कदाचित् यह उत्तर करो कि जिसेदत्तक लेना होगा वह मंत्रोंकोभी सीखलेगा सो वेदोक्त ऋचा ऐसी सूधी नहीं हैं जो हर कोई सीखसके बड़ेबड़े पण्डितोंके मुखसे शुद्धनहीं निकसती वेदपाठी काही वह काम है जो शुद्ध उच्चारणका अभ्यासरखते हैं इसीलिये कर्मकांडके कामोंमें आचार्य वेदज्ञ ढूंढ़ाजाता है और सर्वत्र सब कर्मोंके विधानमें यही लोक परिपाटीहै कि जो जो मंत्र निज कर्ताकोही उच्चारण कर्त्तव्यहों तिनकोभी आचार्य उसकी ओर से उच्चारण करदेताहै इसीलिये सबसे पहले आचार्य के वरणी बाँधीजातीहै कि वह कर्त्ताकी ओर से

उच्चारण आदि सबकामों का मुख्तार होजाय और यही प्रकार सब शास्त्रोंमें प्रमाण है (दैवेपित्र्येचवाणिज्येराजद्वारेविशेषतः।यद्विदध्यात्प्रतिनिधिस्तन्नियंतुःकृतिर्भवेत्) इस वचनमें निपट यह कुछ भेद नहीं कियाहै कि प्रतिनिधि किसकी ओर से नियत हो तिसका किया कर्मनियंता काही ठहरै अर्थात् नतो इसमें पुरुषका संकेतहै न स्त्री का इस्से यह प्रत्यक्ष प्रतीतहै कि चाहे पुरुषने प्रतिनिधि कियाहो चाहे स्त्रीने सिद्धांत यह कि जो कोई अपने आप किसी कामको न करसक्ता हो वह अपनी ओरसे किसीको प्रतिनिधि नियत करिकै उसके द्वारा कार्य साधन करवावै तौ यह उसीका करना निश्चित होगा जिसने नियत कियाहो इस्से यह बातभी यथार्थ निश्चित हुई कि विधवा भी अपनी ओरसे आचार्यको प्रतिनिधि नियत करके उस्से होमकरवाइकर और उसी से प्रतिग्रह का मंत्र उच्चारण करवाइकर दत्तक पुत्रलेवे अर्थात् विना होमके न लेवे चाहे विधवाहो या सधवाहो दत्तक लेनेकी विधिमात्र सबहीको कर्तव्यहै क्योंकि विधि विना लेलेनेसे दत्तक झूँठा होसक्ताहै-यही प्रकार बहुधा पाश्चात्य देशोंमें संचरितहै॰ वलिक-इसदत्तक प्रक्रियाके सिवाय और भी सब काम जो देव पितर संबंधी दोनों भाँतिके निज कुटुंबीकोही कर्त्तव्य हुआ करते हैं जिनका करना बापवाले लड़कोंको और भर्ता वाली स्त्री को निषेध कहाजाताहै तिनकोभी विधवा स्त्री निज अपनेआप उस दशापर सर्वत्र किया करती हैं कि जब कोई पुरुषकरनेवाला नहीं रहता सोयह बातभी कुछ लोक या शास्त्रसे विपरीतनहीं समुझीजाती है इनकामोंके सन्मुखदत्तक पुत्रका लेनाबहुत छोटीबातहै क्योंकि यद्यपि उसमें देवताओंका पूजनमात्र होता है तथापि वहकाम न तो देवकर्मकी गिनती में न पितरोंकी प्रक्रियामें परन्तु वहीदत्तक पुत्रका लेना आवश्यकताकी अपेक्षामें पर्वतकेसमान एक ऐसा बड़ाकामहै कि उसके आगे देवपितर संबंधी काम जो अभीचर्चा कियेथे एकराई के समानहैं क्योंकि उस एकहीकामकेहोनेसे ये सब काम आगेकोबने रहसक्ते और होसक्तेहैं और विधवाके मृतभर्ताका वंश और नामशेष रहसक्ताहै फिर इसदशापरभी विधवास्त्रीसे न जाने उनका क्या कुछपूरा बैरथा कि जिसके हेतुसे सब ग्रंथोंसे विपरीत व्याख्या खैंचतानि कर बनाई और विधवास्त्रीको किसीमेंभी गिनतीनहींरक्खा इष्टापूर्त्त कर्म जिनका विशेष लक्षणअविभाज्य धनके परिच्छेद में दर्शायागया तिनमेंसे पूर्तकर्म साधनकरने का अधिकार स्त्रीमात्रको सामान्यभावसे अट्ठाईसवें परिच्छेदमें प्रदर्शित हुआ था और विधवा पूर्तकर्मोंके सिवाय विरलेइष्टकर्मोंकाभी साधनकियाकरतीहैं कि जिनका करनास्त्रियोंको असंगत समुझाजाताहै-पूर्त्तकर्मभी नानाभाँति के होते हैं उनका यह नमूनामात्रजानो-यथा(वापीकूपतडागादिदेवतायतनानिच । अन्नप्रदानमाराम पूर्तमित्यभिधीयते) इनसभीकर्मोंके सिद्धकरनेकाअधिकार स्त्रीमात्रकोहोता है सोइन

कर्मोंमेंभी होमहुये विनाकामनहीं चलसक्ता और सर्वत्र आचार्यद्वारा होम होते हैं और विधवास्त्रीवहुधा ऐसी ऐसी ज्ञानसंपन्न होती हैं कि यद्यपि भर्तासे ये काम न होसकेहों तौभी उसके मरने पीछे उसीके संचित किये द्रव्योंसे इनकामों को अपने नामसे और मरेहुये भर्ताकेभी नामसे संसाधन करतीहैं कि जिस्से भर्ताकानामजगत्में वनारहे तो क्याऐसी दशापर इसप्रकारकी विधवास्त्री एक दत्तक लेनेसे लाचारकरी जायँ जिसके लेनेसे इष्टकर्मों कीभी संसिद्धि उसी पुत्रके द्वारा घर में होसकनी आगे को संभव है कि जिनका करना स्त्रीमात्रको असंगत समुभ्काजाता है इष्टकर्म इस अग्रोक्तवचनसे जानेजाते हैं-यथा(अग्निहोत्रंतपस्सत्यंवेदानांचानुपालनम्। आतिथ्यं वैश्वदेवश्चइष्टमित्याभिधीयते) इत्यादि सर्वशास्त्रोंके सिद्धान्तसे विधवाको भी पति के बांधवजनोंकी अनुज्ञालेकर दत्तकलेना न्यायात्मकहै सो यह बन्धुओंकी अनुज्ञा केवल अनुमतिसे अपेक्षारखतीहै कि जिसके पुत्रकोलेनेकी अनुमति बान्धवकरैं उसी को लेनाचाहिये जिसकेलेनेकी अयोग्यताप्रकटकरैं तिसको न लेसकैं उसप्रकारसे कि जैसे पुत्र या पुत्रीकाविवाह बन्धुओंकी अनुमतिविना न करनाचाहिये परन्तु यह सिद्धान्तनहींहै कि बन्धुलोग निपट लेनेकाप्रतिषेधकरदेवैं क्योंकि निपट प्रतिषेधका अधिकार केवल भर्त्ताकोही सधवास्त्री के निमित्तमें वसिष्ठ के वचनानुसार सूचितहै और उसीकेसिद्धान्तसे विधवाकोभी भर्त्ताकी ओरसे यह बन्धनहै किजो भर्त्ता अपने जीतेजी पत्नीको प्रतिषेधकरगयाहो कि मेरेपीछे दत्तकमतलेना तो निस्सन्देह उसको लेनेकाअधिकार नहीं है-परन्तु जो भर्त्ता ऐसानिषेध आपनकरगयाहो तौफिर अनन्तरोक्तमार्ग सर्वश्रेष्ठहै-और-बन्धुओंकी ओरसे जो उन्हींके परतन्त्रहोने के हेतुसे निपट प्रतिषेधका कुछ आग्रहकियाजाय तो वह केवल ऐसीदशामें सम्भव होसक्ता है कि जो भर्त्ता अपने वन्धुजनों में संसृष्ट रहतेमराहो क्योंकि जैसे संसृष्टी भर्त्ताका धनपानेमें पत्नीकोअधिकार नहीं है यह आगे वर्णनहोगा तैसेही संसृष्टी भर्त्ताकी पत्नीको दत्तकलेने का अधिकार भी उसी दशामें समुभ्काचाहिये जो भर्त्ता आज्ञा देगयाहो यद्वाभर्ताके आसन्नतर बंधुलोग मातापिताआदि आज्ञादेवें-पर इस्से विपरीत जो भर्ता असंसृष्टी होकरमराहो तो कुछ बंधुलोगोंको निषेध करनेका अधिकार नहीं पायाजाता केवल योग्यायोग्यकी अपेक्षा अनुमति देनेका अधिकार सिद्ध है—दत्तक चंद्रिकाके निर्माताने-यह लिखाहै कि सधवा स्त्री भर्ताके उपस्थित होनेमेंउसी की अनुज्ञासे दत्तक लेसके या अपना पुत्र किसीको देसकेगी और भर्ताके मरजाने या विदेशमें होनेकीदशापर अनुज्ञाविनाभी लेसके या देसकेगी तथापि जो भर्तानेप्रतिषेध किया हो तो फिर नहीं (लो) इस निर्माताका विचार यद्यपि निर्विकार है परन्तु विदेशमेंहोनेकी जो दशा इसने दर्शित करी तिनको साधारण प्रवासके भावार्थमेंनहीं

समुझनी किंतु जिसभर्ताका चिरप्रवास होकर पता न मालूमहो कि वह किस भूमि-भागमें उपस्थित है अर्थात् मृतप्रायसमुझा जासक्ता हो तिसकानियमसमुझना॥ (अथदत्तकौरसयोस्समवायेभागविशेषवाक्यानि) तत्रवसिष्ठः-तस्मिंश्चेत्प्रतिगृहीते औरसउत्पद्येतचतुर्थभागभागीस्याद्दत्तकः-अर्थात्-तस्मिन्दत्तकेप्रतिगृहीतेयद्यौरसः उत्पद्येतत दासदत्तकश्चतुर्थांशंलभतेनसमांशमित्यर्थः तदभावेतुसर्वहरोदत्तकएव- अत्रनंदपंडितोप्याह-अयमेवविधिःक्रीतादिपुत्रेष्वप्यनुसंधेयः-बौधायनस्तु- यदित्वौरसःपुत्रउत्पद्येततुरीयभागीसभवति इत्याहस्मबौधायनः-अर्थात्-दत्तकपरिग्रहात्परतोयदाऔरसोपिसंजायतेतदा सदत्तकश्चतुर्थमंशंलभते-वृद्धगौतमेनद्वयोःसमभागितापिनिरूपिता यथा-दत्तपुत्रेयथाजातेकदाचित्त्वौरसोभवेत्। पितुर्वित्तस्यसर्वस्यभवेतांसमभागिनौ-यदत्रसमभागित्वमनंतरोक्ततुरीयभागनियमेनविरुद्धंतदपि यथाजातइतिविशेषणात् दत्तकस्य गुणवत्त्वेऔरसस्यचानिर्गुणत्वेनविरुद्धम्-किञ्च यथागुणानांजातंसमूहोयस्मिन्निति यथाजातोगुणसमूहवानित्यर्थः यथाशब्दस्यगुणयोगेसादृश्येशक्तत्वात्-अतएव मनुः-उपपन्नोगुणैःसर्वैःपुत्रोयस्यतुदत्त्रिमः।सहरेतैवतद्रिक्थंसंप्राप्तोप्यन्यगोत्रत इत्यौरसाभावेसर्वरिक्थग्रहणमुक्तवान् तद्युक्तमेवऔरसेसत्यर्द्धांशहरत्वम्॥ इतिपूर्वोक्तनियमानामनुवादसमाप्तिः (अथक्रीतकपुत्रव्यवस्थासंक्षेपः) क्रीतपुत्रकी व्यवस्था यद्यपि ऊपर लेदो परिच्छेदोंमें मिताक्षराके अनुसार वर्णन होचुकीहै परंतु यहांपर इसहेतुसे संक्षेप करना आवश्यक ठहरा कि दत्तक मीमांसा आदिके आधुनिक ग्रंथकारोंने इसकी संदिग्ध निवृत्ति दर्शाईहै अर्थात् कहींतो दत्तकद्व्यामुष्यायण और कृत्रिमकेसिवायएकादश पुत्रोंमेंसे किसीकीभी प्रतिनिधिता नहींमानी और किसीकिसी स्थलपर क्रीतादिकोंकाभी स्वीकार कियाहै इससे इसकी संदिग्ध निवृत्ति पाईजातीहै कुछनिपट निवृत्ति निश्चित नहींहोती और लोकमें ग्रहीतालोग यद्यपि इसभाँतिसे पुत्रोंका अद्यापिसंग्रह करतेहैं पर कदाचित् जो इसभाँतिका व्यवहार राजद्वारोंतक पहुँचताहै तव ग्रहीताके संबंधी लोग धनके हेतुसे इसपुत्रकी प्रतिनिधिता में संदिग्ध नियमोंकी सहायतासे दृढ़ता नहींहोनेदेते(सो)इसबातमें संदिग्धताका परमहेतु एकयहीहै कि प्राचीन महर्षियोंने बहुधा स्मृतियोंमें परिग्रह कालकी विधिकेवल दत्तक पुत्रकी अपेक्षासे दर्शाईथी और क्रीत कृत्रिमादिकोंका पुत्रत्व उर्सासंज्ञाके शब्दार्थमात्रसे प्रकाशित कियाथातथापि टीकाकारोंने पीछेपीछे लोकयात्राका आशय देखभालकर इनपुत्रोंकेभी निमित्तमेंदत्तक पुत्रके समान विधि दर्शितकरी ऐसेही किसी विरले मूलग्रंथमें भी यहबातप्रकटहोने लगी तिस पीछे संग्रहग्रंथों ने इसबातकाअतिशय नियम कल्पित किया तिनमें भी कहींपर विधि और कहींपर प्रतिषेध पाया जानेसे अधिकतर संदेह खड़ेहुये-उन संदेहोंकी द्विविधामें निर्मलता का व्यौरा आगे इसीपाठ के पिछले अंत उन वाक्यों का

प्रमाण देकर वर्णन होगा जिनके अनुसार इसपर संदेहपायेजाते हैं-इसलिये-ऐसे व्यवहारों की अपेक्षामें राजद्वारों के निकट इस अग्रोक्त न्यायपर योग्यता पाईजाती है कि जिन पुत्रोंकी अपेक्षासे प्रतिपक्षी उनका क्रीतत्व या कृत्रिमत्व प्रकटकरै तिनके मध्ये भी वही प्रमाण अन्वेषण कियाजाय जो दत्तक पुत्रकी अपेक्षासे परिग्रह विधि का आवश्यक है इसीलिये पुत्र प्रतिनिधियों के ग्रहीताको भी यह संसूचित है कि यद्यपि उसने क्रीत या कृत्रिम मार्गसेही संग्रह कियाहो तो भी उसको दत्तक पुत्रके समान परिग्रह विधिकरना आवश्यकहै-अर्थात जिसकिसी क्रीत पुत्र या कृत्रिम पुत्र की परिग्रह विधि दत्तक पुत्रके समानहुई हो तिसको दत्तक पुत्रकी गिनतीमें समुझ-नाचाहिये और जो जो प्रतिषेध दत्तक पुत्रकी अपेक्षामें प्रदर्शित हुये हों वे सबइनमें भी समुझनेचाहिये-आशय इसका यहहै कि क्रीतत्व की निंदा एकऐसी दशामें मानी जासक्तीहै कि जब किसी अज्ञात पुरुषके हाथसे अज्ञात लड़का घोड़ा बकरी आदि अन्य जीवोंके समान सबके प्रत्यक्ष मूल्य देकर मोल लियाजाय और सामान्य भाव अन्यदासादिकों के समान पालन कियाजाय कदाचित वही लड़का निज पुत्रत्व का दावाकरने लगै तौ निस्संदेह ऐसा क्रीत पुत्रत्वकी पदवी योग्य नहीं है-कदाचित्-शब्दोंकी उक्ति युक्तिसे यह आग्रह कियाजाय कि (दद्यान्माता पितावायं) इत्यादि वाक्यों के अनुसार दत्तक पुत्र माता पिता के देनेसे संप्राप्त होताहै तहाँपर यह उत्तर है कि क्रीत भी माता पिताकेही देनेसे संप्राप्त होताहै-यथाहयाज्ञवल्क्यः (क्रीतश्चता भ्यांविक्रीतः) मनुरपि (क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थंमातापित्रोर्यमन्तिकात्) तौ इन वाक्योंके अनुसार कुछ दत्तक या क्रीतमें बहुत बड़ाभेदनहीं पायागया-और-यहबात जो प्रसिद्धहै कि मूल्यसे खरीदा हुआ पुत्रनहीं होता सो इस अपेक्षासे प्रसिद्धहै कि शायद किसी और के हाथसे खरीदा जाय और पीछे उसके माता पिता अयोग्य विक्रय प्रकट करैं तौ क्रेता का स्वत्व उसमें प्रतिषिद्ध क्रय करने से नपहुँचैगा इसी-लिये मनु और योगीश्वर आदि महर्षियों ने यह नियम निश्चित कियाहै कि माता पितासेही क्रय करिके पुत्र बनावै-इसपरभी-महर्षियोंकी जो कोई जीभथाँभे कि संप्रति मूल्यसे क्रय किया हुआ पुत्रनहीं होता केवल दान मार्ग से दियाहुआ होसक्ताहै तौ फिर लोकमें आधुनिक प्रवृत्ति देखी चाहिये कि संप्रतिसौ में से पाँच दत्तक ठेठ दान मार्गसे और पंचानबे क्रीत मार्गसे सर्वत्र लियेजाते हैं और सब दत्तक एक समान सच्चे समुझे जातेहैं कोई भी उनको क्रीतनहीं कहसक्ता न उन पुत्रोंके ग्रहीता पिता पर कुछ ज्ञाति दंड आरोपित करसक्ताहै क्योंकि वे ग्रहीता लोग यद्यपि मूल्य देकर माता पितासे क्रय करते हैं परंतु उसके क्रीतत्व का लोकापवाद शांतकरने के निमित्त से प्रत्यक्ष भावमें जैसीविधि दत्तक पुत्रकी अपेक्षा वर्णन होचुकी सोसबकरतेहैं-अबजो

इसमें-यहतर्क आरोपित करीजाय कि (यमद्भिःपुत्रमापदि) इसवचनमें दत्तक पुत्रकी अपेक्षासे मनुने यहभाव दर्शित कियाहै कि जिस पुत्रको जलकेसाथ संकल्पित करके मातापितादेवें और ग्रहीता के आपत्कालमेंदेवें तौ वह दत्तक समुझाजाय क्योंकर ये पंचानबेपुत्र दत्तक समुझे जातेहोंगे(सो)इसवचनमें ग्रहीताका आपत्काल केवल इस- लिये दर्शायाहै कि जो ग्रहीताके औरस पुत्रहों तौफिर आपत्काल नहींहै ऐसीदशामें देनेसे वहदत्तक पुत्रपुत्रत्वकी पदवीको नहींपहुँच सक्ताहै क्योंकि उसके औरसपुत्र उप- स्थित है इसलिये जब औरस पुत्र नहों तौ फिर आपत्काल समुझाजाय और उसी आपत्काल में दत्तक दियाजाय (और) जलके साथ संकल्प केवल इसलिये दर्शित किया है कि सबके सन्मुख संकल्प करदेनेसे ग्रहीताका स्वत्वउसमें निश्चितहोगा और दाताकास्वत्व उसमें से निवृत्त होजायगा किंतु दाताको उस पुत्रके निवर्तित करलेने का दावा शेषनरहे सो यह ऐसासंकल्प मूल्यके लेलेने परभी कुछ असंगत नहीं है क्योंकि संकल्प से दूसरे का स्वत्व सावित करदेना एक प्रयोजन है जैसे धरतीमूल्य लेकर वेंचीजायतौ भी जल और सुवर्णकेसाथ दानमार्ग सेही दीजाय यह नियम नि- श्चित होचुकाहै उसी प्रकार पुत्रभी वेंचदेने की दशापरभी संकल्पद्वारा दियाजाता है अर्थात् ऐसी दशामें संकल्पभी एक लेख्यपत्रों का उपकल्पहै कि जैसे धरतीदान करनेपरभी दानपत्र लिख देनाहोगा और धरती वेंचदेनेपरभी विक्रयपत्रकर देनाहो- गा किन्तु दोनोंभांतिसे न्यायात्मक है-भला-पुत्रका तौ ऐसीदशामें क्रय और विक्रय भीशास्त्रोक्त निश्चित होचुकाहै इससे क्रीतके मार्गसेभीलेकर दत्तकपुत्रवनाना अनु- चित नहींसमुझाजासक्ताहै-परन्तु-कन्याका विक्रयकरना या क्रयकरनाभीभार्यात्वके निमित्तसे जो शास्त्रमें सर्वथा निंद्य और प्रतिषिद्धहै तिसकी अतिशयभावसे प्रवृत्ति देखी जातीहै कि नतौशुल्कदाता अपने ज्ञातियोंसे कुछ दंडपावे और न कोई शुल्क ग्राही अपने बंधुओंसे न वह कन्या अपने वोढ़ाके भार्यात्व से व्यतिरिक्तसमुझीजाय जो सशुल्क व्याहीगईहो(सो)इसदशामें परम कारण एक यहीहै कि यद्यपि लाचारी अवसरमें शुल्क दियाजाताहै तथापि परिणयन-विधिब्राह्म विवाहकी रीतिसेहीहोती है-अव यहांपर यहवात कहनी संभव नहींहै कि जव कन्याके पितानेकन्याका शुल्क लिया तौ फिर संकल्पद्वारा उसकन्याका दानकरना निपट असंगत है क्योंकिसंकल्प आदि प्रकारोंका प्रचारनहीं करे तौ फिर सद्भावकन्याका विक्रय ठहरे और कन्याभी निज वोढ़ाके भार्यात्वसे विहीन समुझी जाकर क्रीताभार्याकहलावै इसलिये संकल्प जो है सो कन्या में वोढ़ाकाभार्यात्वरूपस्वत्व निरूपण करनेवाला मुख्यहेतुहै उसका त्यागनहीं होसक्ता (मन्त्रपूर्वांकदेविष्यनमेल्यंतु)-यथाहश्रीनंदपंडितःयेनकेनापिप्रयत्नेनपु- त्रप्रतिनिधिः कार्यइतिसिद्धम् नत्रप्रयत्नसामान्यश्रुतावपिएकादशपुत्रश्रवणादकादशै

चप्रयतैनाअभ्यनुज्ञायन्ते तत्रापि (अनेकधाकृताःपुत्राऋषिभिर्येपुरातनैः। नशक्यास्ते ऽधुनाकर्त्तुंशक्तिहीनतयानरैरिति बृहन्मनुस्मरणात्-दत्तौरसेतरेषांतुपुत्रत्वेनपरिग्रह इति च शौनकेनपुत्रांतरानिषेधात् दत्तौरसावेवाभ्यनुज्ञायेते) तत्रदत्तपदंकृत्रिमस्याप्युप लक्षणंकुतः (औरसःक्षेत्रजश्चैवदत्त कृत्रिमकःसुतः) इतिधर्मप्रस्तावेपराशरस्मरणा त्-नचैवंक्षेत्रजोपिपुत्रःकलौग्राह्यादितिवाच्यं किन्तु नियोगानिषेधेनैवतन्निषेधात् अथत- योर्दत्तकृत्रिमयोर्मध्येदत्तविधिरभिधीयते इत्येवमत्रकृत्रिमपुत्रस्यस्वीकारोऽव्यक्तएवकृ तः श्रीनंदपंडितैः द्व्यामुष्यायणस्यतुदत्तकावान्तर्भावःप्रसिद्धएव-पुनस्तएवाहुर्नन्दाः गोत्रपक्षे (स्वगोत्रेपुकृतायेस्युर्दत्तक्रीतादयःसुताः । विधिनागोत्रतांयांतिनसापिंड्यं विधीयते) इतिवृद्धगौतमीयवचनं प्रमाणंतेनस्वगोत्रेष्वपिपुत्रीकरणेनतस्यसाहजिक तयाविधानायोगः-अत्रवृद्धगौतमवचनेनक्रीतस्यापिस्वीकारःकृतः-नसापिंड्यंविधीयते इत्यत्रसापिंड्यपक्षेतुतएवाहुः (दत्तक्रीतादिपुत्राणांबीजवप्तुःसपिंडता। पंचमीसप्तमीत द्वद्गोत्रतत्पालकस्यच)इतिबृहन्मानववचनंप्रमाणं-पुनरपिवसिष्ठोक्तपरिग्रहविधिमार भ्यदत्तकौरससमवायिभागाविशेषावसानेतएवाहुः (अयमेवविधिःक्रीतादिपुत्रेष्वप्यनु संधेयः) अत्रापिपरिग्रहविधिकरणविभागदानानुज्ञया क्रीतादिपुत्राणां स्वीकारोदर्शि तः-ग्रंथनियमसमाप्तावप्याहुस्त एवबौधायनवचः (अविधायाविधानंयःपरिगृह्णाति पुत्रकम्।विवाहविधिभाजंतंकुर्यान्नधनभाजनम्)इतिपरिग्रहविधिंविनापरिगृहीतस्य वि वाहमात्रंकार्यं नधनदानमित्यर्थः किन्तुतत्पत्न्यादयएवधनभाजः विधिंविनातस्यपुत्र त्वानुत्पादात् अतएववृद्धगौतमः (स्वगोत्रेषुकृतायेस्युर्दत्तक्रीतादयःसुताः । विधिना गोत्रतांयांतिनसापिंड्यंविधीयते)विधिनैवगोत्रतांयांतीतिनियमः दानादिविधीनांदत्त कादिपुत्रलक्षणांतर्गतत्वेन स्वरूपनिर्वाहकत्वात्-यथोक्तं-यमाद्भिःपुत्रमापदीत्यत्रअब्ग्र हणंसकलदानविधेरुपलक्षणम् तेनच प्रतिग्रहविधिरप्याक्षिप्तोभवति संप्राप्तोप्यन्यगो त्रत इतिमानवात् सम्यग्विधिनाप्राप्तइत्यर्थः-अनंतरोक्त वृद्धगौतमीये (क्रीतादयः) इत्यादि शब्देनकृत्रिमापविद्धस्वयंदत्तानांग्रहणंतु विधिनैवभवति-कुतः (क्षेत्रजादीन्सु तानेतानेकादशयथोदितान् । पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीषिणः) इतिमनुना (यथोदितान्)इत्यनेनैवतत्तल्लक्ष्यसूचितविधिविशिष्टानामेवपुत्रप्रतिनिधित्वाभिधाना त्-अतएव-कृत्रिमलक्षणेसदृशंतु प्रकुर्याद्यमितिप्रशब्देनैव-अपविद्धलक्षणेयंपुत्रं परिगृ ह्णीयादिति परिशब्देनैव-स्वयंदत्तलक्षणे आत्मानंस्पर्शयेद्यस्मै इतिदानापरपर्यायस्पर्श नशब्देनैव विधिपरिग्रहएवकृतः--तदभिप्रेत्यैवच--वसिष्ठेनापि तस्यदानविक्रयपरित्या गेषु मातापितरौप्रभवत इत्युपक्रम्यपरिग्रहविधिरभिहितः पुत्रंपरिग्रहीष्यन्नितिपरिग्र हवचनेनच कृत्रिमस्वयंदत्तपरिग्रहेप्येषविधिरनुसंधेयः मनुना तत्तदुपसर्गेणसूचना त्-अस्यफलमाहुस्तएवनन्दाः-तस्मादेषां पंचानांपुत्राणां दत्तक्रीतकृत्रिमापविद्धस्व-

यंदत्तानां शौनकवासिष्ठान्यतमविधि परिग्रहेऐवपुत्रत्वंनान्यथेति-इतिपूर्वोक्तद्वैवध्यिस देहानिर्मलतायांमीमांसाग्रंथसंदर्भः-(अथास्यभाषोक्त्याफलप्रकाशः) अर्थात्-इसपाठ के सन्दर्भ से उन पण्डितने यह सिद्धान्त प्रकटकिया है कि दत्तक पुत्र के सिवाय क्रीत, कृत्रिम, स्वयंदत्त, अपविद्ध ये भी चारोंपुत्रत्व की पदवी को पहुँच सक्ते हैं परउस दशामें कि जो दत्तकपुत्र के समान इनकी भी परिग्रह विधिकरी जाय क्योंकि विधिके हुये विना यहबात नहीं जानी जासक्ती है कि उसग्रहीता पिताने इसको अपना पुत्र बनायाथा या नहीं किन्तु परिग्रह विधिके उद्धारकरने से ज्ञाति बन्धुपंच परमेश्वर ग्रामाधीश राजद्वार तक सबको विदित होजाताहै कि उसने अमुक लड़केको अपना पुत्र प्रतिनिधि कियाथा इसलिये उसका रिक्थभागी होना न्यायात्मकहै-परन्तु-जिसपुत्रकी परिग्रह विधि न उद्धार हुईहो चाहेठेठ दत्तकहो तौभी निज ग्रहीताके पास रहनेमात्र से धनभागी न होसकै और ऐसी दशामें उसपुत्र के उपस्थित होनेपरभी ग्रहीताकी पत्नी आदि अधिकारी जो आगे वर्णन होंगे वे सब यथाक्रमसे ऋक्थी कियेजायँ-इन्हीं चारपुत्रोंमें दत्तकपुत्रका अतिदेश धर्मदृढ़ करनेके निमित्तसे सबसे पहले शौनक और बृहस्पतिके दो वचनों अनुसार केवल दत्तकपुत्र की विधि और निषेध जो कुछ आवश्यकथे दर्शाये और दत्तकपदको कृत्रिमके उपलक्षणमें लेकर क्रीत स्वयंदत्त अपविद्धोंमें भी कृत्रिम का उपलक्षण दर्शाया क्योंकि जो चीज़ बनानेसे बनसकै सो सबकृत्रिम कहलातीहै-इत्यादि प्रकारोंसे उन पण्डितने इनपुत्रोंकी निपटनिवृत्तिनहीं निश्चितकरी केवलविधिके अभावमेंनिवृत्ति निश्चितकरी है और मेधातिथि पण्डितने भी निजग्रन्थमें यहीनियम निश्चित कियाहै तिनकाभी प्रमाण नन्द पण्डितने प्रदर्शितकिया और दत्तक आदि पाँचों पुत्रोंका उद्देश व्यक्तभाव सेदेकर ऐसाकहाहै कि शौनक या वसिष्ठजीके कहेहुये विधानों मेंसे कोईएक प्रकार इनपुत्रों के परिग्रह में अवश्य होना चाहिये-सोउस विधान के होनेमध्ये यह भावार्थनहीं है कि पुत्रके परिग्रह कालमें तत्कालही ऐसा कियाजाय किन्तु ग्रहीताको स्वातन्त्र्यहै कि चाहे तितने कालके पीछे विधिका उद्धारकरै और चाहे तितने काल तकउसपुत्रको विधिके उद्धार कियेविना पासरखकर उसके गुण दोषोंकी परीक्षा करै यह स्वातन्त्र्यभी वसिष्ठकेही वाक्यसे सुनिश्चितहै-यथार्थसे जिसपुत्रकी परिग्रहविधि दत्तकके समान हुईहो तिसके फिर कुछ नामभेदकी आवश्यकता शेषनहीं किन्तुउस को भी दत्तक समुझनाचाहिये इसीलिये शौनकने एक दत्तकही की प्रधानता दर्शित करीहै कि उसीके समान अन्य पुत्रोंकी भी विधि कर्तव्यहै-और बृहस्पतिके भी उक्त वचन का यह भावहै कि अबके समयमें परिग्रहविधिरूप शक्तिकी हीनतासे मनुष्योंको वे पुत्रनहीं करने होंगे जो मनु और याज्ञवल्क्यादि प्राचीन महर्षियों ने

विना विधिकेही करने लिखे थे अर्थात् जिसको अब उन पुत्रोंमें से कोई पुत्र करना अंगीकारहो तिसको उसकी विधिभी कर्तव्यहै बस यही उनकी मन्सूखी का स्वरूप है कि नतौ विधि करने का अवसर बहुधा बनिआवैगा न उन पुत्रों की प्रतिनिधिता मानीजायगी (इतिसन्देहनिराकरणम्) यह सब नियम जो कुछ क्रीत पुत्रकी अपेक्षामें प्रदर्शित हुआ सो गृहस्थियों के निमित्त में समुझना किन्तु अन्याश्रमी गोस्वामी आदि गद्दीदारों के जो विशेष कर केवल एक इसी पुत्रकेहोने का प्रचारहै तिनके कुछ गृहस्थी के प्रकार से दत्तकों के सम तुल्य परिग्रह विधि नहीं होती किन्तु शिष्यों के प्रकारसे जैसी परिपाटी उनकी लोकमें प्रसिद्धहै तैसाही प्रचार कियाकरते हैं इसलिये उनमें कुछ क्रीत या दत्तक पुत्रके नामसे प्रसिद्धि उसकी नहींहोती पर यथार्थसे चर्चा उसका यहाँपर क्रीतकेही नामसे इसलिये दर्शित कियागया कि प्रायः ऐसे गद्दीदार लड़कोंका क्रयकरके शिष्य बनाते हैं और वेही शिष्य उनके पुत्रोंके समान पालेजाते और महांतके देहांत पीछे गद्दीदार कियेजाते हैं और उनके भी व्यवहार राजद्वारोंतक पहुंचते हैं इसलिये उनकी प्रतिनिधिता आदि प्रयोजनों में उन्हीं की परिपाटी का निर्णय वा अन्वेषण करना योग्यहै कि जैसी परंपराचली आतीहो (अथकृत्रिमपुत्रव्यवस्थासंक्षेपः)यद्यपि इनदेशोंमें इसपुत्रकी प्रतिनिधिता मानीजानेका प्रचारसंप्रतिनहीं है और इसीहेतु से प्रायः ऐसा पुत्रबनाते पर समुद्यत कोई नहीं होता तौ भी विरले निस्संतानेलोगअपने धन धामके रक्षादिक हेतु समुझकर ऐसा पुत्रबनाते हैं-इस पुत्र केबनाने मध्ये कुछ माता पिताके समीपसे माँगने या क्रयकरने का प्रकार नियतनहीं है किन्तु योगीश्वरने यह कहाहै कि पुत्रार्थी पुरुष आपही जिसको पुत्र बनावै सो कृत्रिम कहलावै यथा(कृत्रिमःस्यात्स्वयंकृतः)विज्ञानेश्वरने भी इसका अर्थ यह दर्शायाहै कि जिसलड़केको पुत्रार्थीपुरुष आपही धनधरतीआदि पदार्थोंकालोभदेकरपुत्र बनावै सो कृत्रिमहोता है यहीप्रकार मनुके वचनसे प्रतीतहै-यथा(सदृशंतुप्रकुर्याद्यंगुणदोषविचक्षणम्। पुत्रंपुत्रगुणैर्युक्तंसविज्ञेयश्चकृत्रिमः)अर्थात्-मनुने यहकहाहै कि(सदृश) अपनी समान जातिवाले जिसकिसीको प्रकर्षसहित पुत्रबनावै और वह इसभांतिका विचक्षण हो जो पिताकी शुश्रूषाआदि धर्मोंके गुणदोष जानताहोकि अमुकामुकआचरणोंके करने या न करनेसे पुण्यपाप होताहै तौ इसपुत्रको कृत्रिम समुझाचाहिये-आशय इसकायह कि जो ऐसा विवेक उसमेंनहो तौफिर कृत्रिमपुत्रकी गिनतीमें न समुझाचाहिये किन्तु एकदासके समान समुझाजाय-यद्यपि इन वचनोंसे यहबात निश्चित नहींहोती कि इसपुत्रके बनानेमें परिग्रह विधि करनीचाहिये यानहीं बल्कि यहआशय इनकाप्रत्यक्ष है कि विधिसेकुछ कामनहीं है तथापि जो इसीमनु के वचन में (प्रकुर्यात्) इस क्रियापदसे पहले जो (प्र) उपसर्ग आयाहै तिसके उत्कर्ष से

तीनबातें समुझीजाती हैं सर्वतोभाव १ ख्याति २ व्यवहार ३ अर्थात् जो ग्रहीता ऐसे पुत्र को सर्वथा इसभांति से विख्यात करिदेवै कि मैंने इसको पुत्र बनाया और पुत्रोंकेही तुल्य सांसारिक आचार व्यवहारोंका वर्त्तावा भी उसकेद्वारा आरंभकरदेवै अर्थात् पुत्रोंकेजो अधिकार हुआकरतेहैं सोउसको सौंपदेवै और गुणदोषोंका विवेकभी जैसा ऊपर कहागया सो उसपुत्रमें हो तौफिर निस्संदेह वह कृत्रिम पुत्रकी पदवीको पहुंचैगा अन्यथानहीं-जबकिमनुके इसवचनसे उसपुत्रका विख्यात करना निश्चितहुआ तौफिर निस्संदेहदत्तकपुत्रके समान उसकी विधिभी कर्तव्य ठहरी क्योंकि परिग्रह विधिकेहुये विना विख्यातिभी असंभव है(और) यदि पुत्रोंकेही तुल्य वर्त्तावा निश्चितहुआ तौफिर पुत्रोंके संस्कार आदि जो कुछकर्म होतेहैं तिनका करना आपसे संसिद्धहै और लोकमेंभी जो विवेकी हैं सो ऐसाही प्रचार करतेहैं क्योंकि संप्रतिएक दत्तकपुत्रपर प्रधानता मानीगईहै इसलिये ऐसा करनेसे यहभीदत्तक पुत्रकी गिनतीमें आजाताहै-यद्यपि-किसीकिसी व्याख्याकार ने इसी मनुके वचनमें (गुणदोषविचक्षणम्) इसपदका आशय खैंचकर उस दशातक पहुँचाया है कि यह क्रीतक पुत्रभी पाँचवर्षोंकी अवस्थासे भीतर गोदलेना चाहिये अर्थात् गुण और दोषोंका समुझनेवाला कहनेसे अधिक अवस्थाका लड़का नहींसमुझना किन्तु पाँचही वर्षकेभीतरमें जो बालक चतुर प्रतीतहोताहो तिसकाभाव समुझना(सो)यह व्याख्या निपट वृथा और विपरीतहै क्योंकि प्रथमतौ अवस्थाका बंधन कुछ दत्तकमेंभी विशेष कर नियमात्मक नहीं—दूसरे यहप्रत्यय विरोध पायाजाताहै कि तीनचार वर्षोंके शिशु को धनधरती आदि पदार्थोंका ज्ञानभी उत्पन्न नहींहोताहै फिर लोभलालच क्योंकर कहसक्तेहैं-तीसरे यह पांचवर्षोंके भीतरकी चतुराई जो विरलेशिशुमें प्रतीत होनेलगतीहै सोउस नियमसे अपेक्षित नहींहै कि पुण्यात्मक या पापात्मक गुणदोषोंका विचक्षण समुझाजाय अर्थात् इसभाँतिका विवेकही तीनचार वर्षोंके शिशुमें निपट असंगतहै इससेमनुने साफयहीकहाहै कि ऐसालड़का अधिक अवस्थामें मिलसकेगा और यही बात निम्नोक्त मैथिल देशकी परिपाटीसे सुनिश्चित है—(अत्रचमैथिलदेशविशेषः) कृत्रिम पुत्रकी अपेक्षासे यहांतक जो जो नियम दर्शायेगये सो सब सामान्य देशोंकी अपेक्षामें समुझने किन्तु मैथिलदेशमें प्रकारांतरसे वर्तावा इसकाहोताहै संप्रति मैथिलदेशमें विशेषकर इसीपुत्रका प्रचार प्रायःशेषहै और दत्तक पुत्रका प्रचार क्रमक्रमसे जातारहा क्योंकि तत्रत्य प्रधान ग्रंथोंके अनुसार यद्यपि सधवास्त्रीको पतिकी आज्ञामें और ठेठकर पुरुषोंको अधिकार है कि दत्तक मार्गसे गोदलें परंतु उसमें अधिकतर कठिनाई होनेके हेतुसे उसमार्गपर उपेक्षा और इसमार्गपर अपेक्षा ठहरी-तत्रत्यग्रंथकारोंनेइसमार्ग में यहाँतक सुगमता नियत करीहै कि नतो दत्तक पुत्रके समान इसमें

विधि या परिग्रहमे कुछ कामहै न उनबातोंके विचारमे कुछकामहै कि किसका लड़का कौनले सक्ताहै और न अवस्थाके विचारमे प्रयोजनहै न किसीकी अनुज्ञासे प्रयोजन है-केवल एकजातिकी तुल्यताहोनी आवश्यकहै और ग्राह्यग्राहक दोनोंके परस्परऐसा स्वीकार होना आवश्यक है कि ग्राहकके जीतेजी तक ग्राह्य उसका कृत्रिमपुत्र वनिके रहेगा-परंतु-इस सुगमतासे कियेहुये कृत्रिम पुत्रका संबंधभी ग्रहीताकी जीवन अवधि तकही रहताहै और ठेठ उसग्रहीताका पुत्रही समुझाजाता किंतु ग्रहीताके भ्राता वाप दादा आदि संबंधियोंसे कुछ संबंध नतो ऐसेपुत्रका न उसके पुत्रादिक संतानोंकाटह-रताहै और इसीहेतुसे केवल उसीग्रहीताका धनपाताहै और उसीके श्राद्धआदि पिंड क्रियामें अधिकारीहुआ करताहै ग्रहीताके बंधुओंके धनपिंडमें अधिकार उसको नहीं कदाचित्-स्त्रीनेपतिके मरनेपीछे या जीतेजीभी कृत्रिमपुत्र कियाहोतो यहपुत्रउसी स्त्रीका स्त्रीधनपाताहै और क्रियाकर्मकरता है परउसस्त्रीके पतिके धन में अधिकार उसका नहींपहुँचता-इनबातोंके उपरान्त एकयह विशेषताहै कि तत्रत्यप्रधान ग्रन्थों से और प्रचरित परिपाटीसेभी यहीकृत्रिम पुत्रअनित्य द्व्यामुष्यायणके अनुसार अपने जन्म दाताकेभी धनका भागपाताहै और उसीकेकुलमेंइसकेसबसम्बन्ध बन्धुवों से यथावत् बनेरहतेहैं और इसीहेतुसे ग्रहीताकेकुलमें इसकेसम्बन्ध किसीवन्धु मात्रसे नहीं माने जाते केवल ग्रहीताकापुत्र समुझाजाता और ग्रहीताकेमरने पीछे फिर अपनेही निज वंशमें मिलजाताहै॥ इतिकृत्रिमपुत्रव्यवस्थामूलम्॥ (अथ सामान्येनशेषपुत्राणांविनिर्णयः)

दत्तकआदि पाँचपुत्र जो मीमांसाके निर्माता ने स्वीकार कियेथे तिन में स्वयन्दत्त और अपविद्ध काभी प्रमाण ऊपर क्रीत पुत्रके प्रसङ्गमें आचुकाहै छठा औरस पुत्र सबसे मुख्यहै इसप्रकार छेपुत्रोंका स्वीकार होनेसे शेष छेपुत्रोंका अस्वीकार पाया गया-इसी आशयको समुझकर श्रीनन्द पण्डितने और भी ग्रन्थान्तर वाक्यदर्शित कियेहैं-तथाच (औरसःक्षेत्रजश्चैवदत्तःकृत्रिमएवच। गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्चभागार्हास्त नयाइमे॥ कानीनश्चसहोढश्चक्रीतःपौनर्भवस्तथा। स्वयंदत्तश्चदासश्चषडिमेपुत्रपां सनाः॥ अभावेपूर्वपूर्वेषांपरान्समभिषेचयेत्। पौनर्भवंस्वयंदत्तंदासंराज्येनयोजयेत्) अर्थात्-पूर्व श्लोकमें गिनायेहुये छःप्रकार के पुत्र भागपाने योग्यहैं और दूसरे मेंके छःपुत्र निन्दित होतेहैं और तृतीय श्लोकसे मनुकेही तुल्य यहकहाहै कि इनबारह मेंसे पहिले पहिले के न होनेमें पिछले पिछलेको अभिषेककरै परन्तु पौनर्भव स्वयं-दत्त दासीपुत्र इनतीनोंको राज्यनहींदेवे अर्थात् पहिलोंके अभावसे इनके अधिकार कालमेंभी राज्यका अधिकारी इन्हेंनकरै यह पूर्वोक्त क्रमकेमध्ये छूट दर्शाई-यद्यपि-इन श्लोकोंसे यहबात पाईगई कि यहनियम केवलराजाके निमित्तमें समुझाचाहिये जिसके कुलमें राज्यहो किन्तु साधारण गृहस्थी का यहनियम नहीं है-यद्वा-एकरीति

से राजा प्रजा सबहीका यहनियम समुझा जासक्ताहै कि साधारण कुटुम्बीभी निज अपने घरका राजाहोताहै-और-इसहेतुसेभी यह नियम सबहीका कहसक्ते हैं कि ये तीनों श्लोक तद्रूपमनुके बचनोंका उपकल्पहैं और मनुने राजा या प्रजाका कुछभेद नहींकिया सर्वसाधारण भावसे सबका एकनियम कहाहै तहाँपर मनुने इनतीन पुत्रों का अपवाद नहींकिया बल्कि पिछले छकाके छे पुत्रोंमें यहभी तीनगिनतीहैं उसछके कोही बन्धुवोंका धनपानेमें निषेध कियाहै (पर) पिताका धनपाने मध्ये यथाक्रमसे बारह पुत्रोंको एकसी मर्यादा दर्शितकरीहै कि पहिलेके न होनेमें पिछला मालिकहो यथार्थसे यहतीनों श्लोक निज गँठावटसे असङ्गत हैं क्योंकि जबतीन पुत्रोंको राज- गद्दीका निषेधकिया तौफिर यहआशय सिद्धहुआ कि शेषपुत्र कानीन सहोढज क्रीत इनतीनोंको राजगद्दीका अधिकारहै-भला क्रीतको इसलिये मानिसक्तेहैं कि वहपाँच पुत्रोंके स्वीकारमें दत्तकाही अनुकल्प मानागयाहै अथवा सहोढजकोभी इसहेतु से ठीकमानि सक्तेहैं कि जबगर्भिणी स्त्रीको व्याहिलाया तौ स्त्रीके साथमें उसगर्भसेभी फेरेबोढाके परेथे इस्से अब यहपुत्र उसका सच्चाहै-परन्तु कानीन पुत्रजो पहले अपने नानाके घर क्वारीमातासे पैदाहोचुकाथा ऐसीस्त्रीव्याहिलाने के हेतुसे वहसाथआया क्योंकर उसको राजगद्दीका अधिकार समुझाजाय और जो इसहेतुसे वहभी सच्चा मानाजाय कि जबजानि बूझिकर ऐसीभार्या व्याहिलाया तौफिर उसकेसाथ आये कानीनमें क्यादोषहै बल्कि उस निपूतेको ऐसा पुत्रभी बड़ीवस्तुहै कि जिसने जानि बूझिकर ऐसीभार्या व्याहिलई तौभी यहदूषण खड़ाहोताहै कि जबइस भाँतिकापराये बीजसे पैदाहुआ पुत्र राजगद्दीकेयोग्य समुझागया तौफिर पौनर्भव जोपुनर्भूभार्यामें निज अपनेबीजसे उत्पन्नहुआ तिसकेलिये क्यों अपवादकिया बल्किपौनर्भवकानीनसे अतिउत्तमहै क्योंकि निजअपने बीजसे पैदाहुआ-इसके सिवाय यहदूषणप्रकट होता है कि पूर्वके श्लोकमें छेपुत्रोंको दायभागी कहकर द्वितीय श्लोकमें छेपुत्रोंको अरिक्थ निश्चितकिया फिर उन्हींमेंसे तीनिको राज्यका अनधिकारी कहकरशेषतीनि पुत्रोंको राज्यका अधिकारी ठहराया यहबात सबसे अधिक असङ्गत है कि आपही जिनको दायका निषेधकिया तिनको राज्यका अधिकारी कहा-इनकारणोंसे ये श्लोकही निरा असङ्गत और क्षेपतेहैं बल्किमीमांसामें ऐसे वचन लिखनेभी न चाहियेथे किन्तुइनके पलटे मनुके वचन लिखने योग्यथे कि जिनका एकउपसर्गभी निरर्थक नहीं जाता।

(अथैषांन्यायविधिः) ऊर्ध्वोक्त वाद विवादका सारांश तोड़निचोड़ यहन्यायात्मक ५ गयाहै जिन पूर्वोक्त पांचपुत्रोंके परिग्रहमें परिग्रह विधिकरना निश्चितहुआ तो निपूता संसृष्टी पुत्रभी निज बन्धुओंके समक्ष उसीविधिका उद्धार करिके करसक्ता है-बन्धुओंके समक्ष करनेका सिद्धांतयही है कि इसनिषेधके अभिप्राय

संसृष्ट बंधुजनही मुख्यहैं जोकुछ निषेधका आग्रहउन्हें करना होगातो ऐसे समयपर वह आग्रह प्रकटकरेंगे तो निपटाग उसका होजायगा यहाऐसी विधिके होने समय आग्रह उनका प्रकट न हो तो उसग्रहीताके मरजानेपरभी उन बन्धुओंकी संमति समुभीजाय और उनपुत्रोंकी प्रतिनिधिना यथावस्थितरहै क्योंकि विधिद्वारा संग्रहाकिये थे-इनकेसिवाय और बहुधा पुत्रजिनके स्वीकारमें परिग्रह विधिसे कुछ अपेक्षानहीं है क्योंकि उनमें पितामाता या केवलमाताके सम्बन्धमात्रसेही पुत्रत्व न्यायात्मक हुआ करताहै इस्से औरस पुत्रोंकेसमान जातकर्म आदि संस्कारोंका करनाही परिग्रह विधिरूप उनमें चिह्न समुभाजासक्ता है और (उन्हींकी निवृत्ति दर्शितहोनेसे प्रतिनिधिता का त्याग निश्चितहुआ है) तथापि उनमें निपट निवृत्ति नहीं समुभीजासक्तीहै क्योंकि सर्वत्र देशकाल और वस्तुके अनुरूप व्यवहारोंकीसिद्धि संभवहोती है किन्तुउनमें विरलेपुत्र ऐसे हैं कि जिनके मुख्यस्वरूपका ज्ञानहोना दुर्घटहै जैसा एक गूढ़ोत्पन्न इसमें सिवाय उसदशाके कि जो पिता बहुत कालतक प्रवासीरहाहो और कोईचिह्न प्रत्यक्ष ऐसा नहींहै कि जिस्सेकोई किसीको गूढ़ज कहसके और इस पितृप्रवास दशाका जो चर्चाकिया तिसमें गूढ़जनहीं किन्तु जारज कहते हैं गूढ़ज केवल पिताकी उपस्थिति में कहलासक्ता है जिसका कोईचिह्न सम्प्रति इसहेतुसे असंभवहै कि यद्यपि गूढ़जदेखने में बहुधाआते हैं पर संज्ञामात्र गूढ़जनहीं कहीजासक्ती इस्से इसनामका व्यवहारही खड़ाहोना निपट निर्मूलहै-और जो मनुने इसनामको पहिले छकामें पांचवेंपदपर गिनतीकिया बल्कि योगीश्वरने चौथेपद पर गिनतीरक्खा सो इस निमित्तसे कि जहां ऐसे पुत्रको निजपिताही गूढ़ज कहकर विदितकरै तो सजातीका बीजनिश्चित होनेपर चौथे पांचवेंपदकी दशामें निपूते पिताकापुत्र प्रतिनिधि कियाजाय परन्तु जोपिताने भिन्नजातीका बीज ऐसा कहकर जातकर्म आदि संस्कारोंका अभावरखकर ऐसेपुत्रसे उपेक्षारूप त्यागभाव रक्खाहो तौफिर ऐसे पिताकारिक्थी न होसकै अर्थात् गूढ़जत्व का लक्षण केवल पिताकेप्रकाश कियेबिना बन्धुजन केकहनेमात्रसे संसिद्ध नहींहोता-क्षेत्रजका निपटहोनाही असंगतहै इसलिये उसका चर्चाभी आवश्यक यहांनहीं है तथापि जिसकिसी देशविशेष में या जाति विशेषमें उसका स्वीकार समुभाजाता हो तिसकेलिये जोकुछ मर्यादें पहले वर्णनहोचुकीं सो सबठीक हैं-दासीपुत्रका सर्वथा त्यागभावहै पर शूद्रजातिको छोड़कर-पौनर्भव सहोढ़ज कानीन इनतीनोंका पिता जो अपने बन्धुओं में संसृष्ट न हो और इनपुत्रोंको औरस केही समान उसनेमाना हो और जातकर्म आदि संस्कार भी यथा संभवइन के करता रहाहो जिस्से पुत्रत्वके स्वीकारमें उपेक्षाभाव न समुभाजाय तौफिर निःसंदेह ऐसे असंसृष्टी पिताके पुत्र प्रतिनिधि अपने अवसर परहोसक्ते हैं (पर) पिताके

वन्धुओंका दाय किसी अवसरमें भी नहीं पासक्तेहैं-परन्तु जो पिता इनका निजबंधुओं में संसृष्टी हो तौफिर पौनर्भव अपनेपिताके मरनेपीछे उसके संसृष्टधनके भाग में से यथाधनके अनुसार भोजन वस्त्रादिक पानेका अधिकारी केवलहोगा और जो पिता अपनेजीतेजी कुछप्रसाद इव देचुकाहो सो इसभोजन वस्त्रादिकमें गिनती नहीं और पौनर्भव इसकेसिवाय अपने संसृष्टी पिताकाधन भागीन होसकैगा (तथापि) जो संसृष्टीवन्धु सबएकसे हीहों तौफिर पौनर्भवको भी पिताकाधन भागपानेमें अधिकार पूराहै दृष्टांत जहां दो या तीनभ्राता संसृष्टीहोनेपर दोनोंतीनोंही पुनर्भू पत्नीवान् हों तहांफिरपौनर्भव उनकेऔरसकेसमानपूरा अधिकारी हुआकरताहै यहलोकशास्त्र दोनोंसे सुसिद्धहै-शेषरहे सहोढ़ और कानीनतिनके असंसृष्टी पिताका चर्चा ऊपर आचुकापर कदाचित् जो इनकापिता अपनेबंधुओंमें संसृष्टहो तौ फिर इसबातका निर्णय होनाचाहिये कि जबउसपिताने इनकीमातासे विवाहकिया तब ये बंधुलोग उसविवाह में साथी और सहायक उसके हुयेथे या नहीं कदाचित् उनका साथी और वराती होना निश्चित होजाय तौ यह दोनों भांतिके पुत्रभी मंद औरसके समान समुझे जाकर मनु और योगीश्वरके वचना नुसार अपने अवसरमें निपूते संसृष्टी पिताका धन भाग उन बंधुओंसे लेसक्ते हैं क्योंकि मुख्यात्मक इनकी मातासे विवाह निश्चित हुआ और बंधुओंका साथी होना निश्चितहुआ(परंचबंधुओंका लावारिस दाय नहीं पासक्ते हैं क्योंकि मुख्य औरस नहीं हैं) और यहवात संभवहै कि जो बंधुओं में संसृष्टी पिताने इसभाँतिका विवाहकियाहोगा तौ निःसंदेह बंधुलोग उसके साथीहुये होंगे यद्वा विवाहके होते समयकदाचित् साथी उसके हुये या न हुयेहों पर उसपीछे वे संसृष्ट बंधु उसके खानपानमेंसाथी अवतकहैं या नहीं कदाचित् अवतकसाथीहों तौ उस विवाहमें भी साथी होना निश्चित है-इसके सिवाय जैसा पौनर्भवके वर्णनमें यह कहाथा कि जो (संसृष्टी बंधुसबएकसेहीहों) सो सर्वत्र समुझिलेना और इसके लिये यह आवश्यक नहींहै कि उन बंधुओंकेभी तद्रूपवही पुत्रहो किंतु बहुताइतमेंसेकिसी प्रकारकालांक्षन होना आवश्यकहै दृष्टांत जैसे दो संसृष्टी भ्राताओंमें-एकके पौनर्भव पुत्र और एककेकानीन या सहोढ़ज हो (यद्वा) एकके सहोढ़ज पुत्रहै और एकके पुनर्भू पत्नी विद्यमानहै और औरस पुत्र उसकेभी नहींहै-इत्यादि सर्वत्र देशकालऔर वस्तुके अनुरूप व्यवस्था संभवहोतीहै-वस्तुकी अनुरूपतामें कुछ लक्षण और भी समुझनेयोग्यहैं अर्थात् वस्तुकरके पुरुषमात्रका स्वरूपज्ञान किंतु उन्हींपूर्वोक्त पुत्रों तथा बांधव जानों का परस्पर योग्यायोग्य भाव उनके विद्यादिगुण संपन्न होने यद्वा सौशील्यादि शिष्टाचारों सम्पन्न होने या न होनेकाभी विवेककरना आवश्यकहै और इस भांतिके पुत्रोंमें इसबातकाभी निर्णयकरना विशेषतर आवश्यकहै कि उन्हों ने

उस निपूतेपिताके उपस्थित रहकर किसभांतिसे शुश्रूषा और अनुज्ञाआदि साधन करी या नहीं और किसभांतिसे प्रसन्नरक्खा या नहीं क्योंकि (सवर्णापुत्रोऽप्यन्यायवृत्तोनलभेतैकेषाम्)यह गौतमजीका वाक्य भी सर्वत्र ऐसे व्यवहारोंपर अपेक्षित है (इतिदत्तकादिपुत्रप्रकरणम) विदित हो कि यहींदत्तक प्रकरण जो ३५४ पृष्ठसेप्रारंभहोकर यहांतक एकही परिच्छेदके नामसे पूराहुआ निपट मिताक्षरासे भिन्न ग्रंथों का वर्णनहै कि जो ग्रंथप्रायः वर्त्ताव में प्रवर्त्तित हैं-यद्यपि इसकामुख्य प्रयोजन थोड़े से पृष्ठोंमें आसक्ताथा परंच जिनबातोंका संदेहदूर होना आवश्यकथा सो उसप्रकारसे असंभवथा इसीलिये बिरले नियमोंको दोदोबार वर्णन कियागया किंतु परिच्छेदके प्रारंभ में सूधे सूधेमार्गसे वेही नियम जो सम्प्रति उनग्रंथोंकेअनुसार वर्त्तावेमें आते हैं तद्रूप दर्शायेगये जिस्से द्रष्टालोगोंको सुगमतावनी रहे (और) पीछेउन्हींनियमोंमें जिस किसी बिरले नियमकी आशंका शांतकरनी योग्यथी तिसका निर्णय जिज्ञासु लोगोंके हितके लिये खंडन मंडनके प्रकारसे लिखनापरा इसीसेविस्तार हुआ-यद्यपि इसकी जुदी जुदी बातोंके कई परिच्छेद होनेयोग्यथे सोउसदशामें कि जोइसकाग्रंथ एकजुदारक्खाजाता-और यहांपर मर्यादा परिपाटीमें मिश्रित होजानेसे यहसिद्धि है कि इससे पहले दो परिच्छेद जो मिताक्षराके अनुसार वर्णनहुये तिनकेसाथ इसका अवलोकन करनेसे दोनोंका अंतर जिज्ञासुलोगोंको प्रत्यक्षहोजायगा॥

अत्रचदायविभागापेक्षायामपुत्रस्यस्वर्यातस्यधनविभागोनाम
षट्पञ्चाशत्तमःपरिच्छेदः ५६॥

इसछप्पन संख्याके परिच्छेदमें निपट निपूते मरेधनीका धनभाग प्रतिनिधिताके अनुसार जानाजायगा कि ऐसेधनीके मरनेपीछे कौनकौन किसक्रमसे रिक्थी होताहै

पत्नीदुहितरश्चैवपितरौभ्रातरस्तथा। तत्सुतागोत्रजाबन्धुःशिष्यःसब्रह्मचारिकः॥ १३९॥
एषामभावेपूर्वस्यधनभागुत्तरोत्तरः। स्वर्यातस्यह्यपुत्रस्यसर्ववर्णेष्वयंविधिः॥ १४०॥

अक्ष०सहद्वयोः—भार्या १ बेटियां २ मातापिता ३ भैये ४ भतीजे ५ गोत्रजलोग ६ बंधुलोग ७ शिष्य ८ सब्रह्मचारिक ९—निपूते स्वर्यातूका धनभागीइनमें पूर्वकेअभावमें उत्तर उत्तरहोवै यहविधि सभीवर्णोंमें जानो १३९। १४०॥

अभि०—सहद्वयोः इसीऊपरले श्लोकमें भार्या आदिनौ अधिकारी जैसे क्रमसेनियत हुयेहैं तैसेही पूर्व अधिकारीके अभावमें उस्से अगलाअगला अधिकारी निपटनिपूते मरेहुयेका सर्वधनहरताहै सोयह मर्यादा सभीवर्णोंमें समुझनी अर्थात् ब्राह्मणआदि चारोंवर्णोंमें और मूर्द्धावसिक्त आदि वर्णसंकर अनुलोम जातोंमें और सूत वैदेहिक आदि वर्णसंकर प्रतिलोम जातोंमें कि जिनकी उत्पत्ति आचाराध्यायके चौथेप्रकरण में प्रदर्शित होचुकी है तिनसभीमें यहविधि प्रवर्तित है और निपट निपूता उसीको

समुझना जिसके औरसपुत्रों वा पौत्रों के न होनेपर अनुलोमज बेटेभी नहों और उनकेबाद दश ग्यारह भांति के पुत्र प्रतिनिधि बेटेभी नहों जिनकान्याय सब ऊपरले तीनपरिच्छेदोंमें होचुकाहै १३९। १४०॥ अब अधिकोक्तिमें इनप्रत्येक अधिकारियों की जुदीजुदी व्यवस्था यथाक्रमसे निर्णयपूर्वक दर्शाई जायगी १३९। १४०॥

अधि०-सहद्वयोः निपटानिपूतेस्वर्यातू का सर्वधन हरनेको सबसेपहले उसकी पत्नी-ही अधिकारिणी होतीहै अर्थात्पत्नीकेहोतेहुये उत्तरवर्ती आठ अधिकारी चाहे सबके सभी उपस्थितहों कोई भीधनको नहींपाताहै परंतु वही पत्नी जो विवाहिताहो सोसब धनकी मालिक होती है किन्तु अविवाहिता भार्या केवल भोजन वस्त्र पावैगी और धनका मालिक उत्तरवर्ती अधिकारीहोगा-जिसपुरुषके विवाहिता और धृताभी दोनों भाँतिकी भार्याहों तिसके भी धृता केवल भोजन वस्त्र धनके अनुसार पावैगी और विवाहिता धनकी मालिकहोगी-यथाहसदाशिवः (औद्वाहिके पिसंबंधेब्राह्मीभार्यावरीयसी।अपुत्रस्यहरेद्वित्थंपत्युर्देहार्द्धहारिणी) अर्थात्-बैवाहिक संबंधमें भी ब्राह्मी भार्या किन्तु विवाहितापत्नी श्रेष्ठहोती और वहीपतिका आधाअङ्ग हरनेवाली किन्तुयज्ञादि कर्मोंमें गँठिबंधन पूर्वक साथ बैठने वाली प्रसिद्धहै इसलिये निपूते पतिका धन वही भार्याहरै औरैं धृताआदि जो भार्याहों सो सब उस्से आजीवनमात्र पावैं जिसपुरुषके विवाहिताही अनेक भार्याहों तौ फिर सभी मिलकर समभाग बांटिलेवैं-यथाह सदाशिवः (बह्वयश्चेद्वनितास्तस्यस्वर्यातुर्धर्मतत्पराः। भजेरन्स्वामिनोवित्तंसमांशेनशुचिस्मिते) अर्थात्-हे पार्वति जिस मरेहुये के बहुतसी स्त्रियां हों तौ जोजो अपने धर्म पर आरूढ़हों सो सबस्त्रियां अपने स्वामीके धनको सम अंशोंसे संसृष्ट रहिकर भोगें या भिन्नात्मक बांटिलेवैं और जो कोई अपने धर्मको छोड़िकर व्यभिचारिणी हुई हो सो केवल आजीवनमात्र पावैं-यथा (शंकितव्यभिचारापि नपत्युर्दायभागिनी। लभतेजीवनंमात्रंभर्तुर्विभवहारिणः) अर्थात्-व्यभिचारसे शंकितहुई पतिकादाय नहीं पाती किंतु भर्ताका ऐश्वर्य हरने वालेसे जीवनमात्र पावैहै-अन्यच्च (मृतेपत्यौस्वधर्मेणपतिबंधुवशेस्थिता। तदभावेपितृबंधोस्तिष्ठंतीदायमर्हति) अर्थात्-पतिके मरने पर उसीके बांधव जनोंके वशमें रहती हुई या उसके बांधव न होनेमें निज पिताके बांधवोंमें रहती हुई दाय पाने योग्य होती है-विवाहिता पत्नियों को समान भाग जो ऊपर कहागया सो सवर्णामात्रमें समुझना किंतु जहां विवाहिताभी सवर्णा असवर्णा दो भांतिकी हों तहां उस रीतिका विभाग होताहै जैसा ५० केपरिच्छेदमें १२८वाले मूल श्लोकसे सजाती और विजाती पत्नियोंके उत्पन्न हुये पुत्रोंका विभाग वर्णन हो चुकाहै कि पूरा और पौना और आधा और पौआ भागजाति क्रमसे पावैं-परंतु-यह सब नियम यद्यपि न्यायात्मक हैं और अन्य सामान्य धन चर स्थावर दोनों भाँति

के इन्हीं नियमोंसे बँटसक्ते हैं तथापि जो कुछ राज्यका प्रकारहो तो उस राज्यका विभाग नहींहोताहै अर्थात् सबसेबड़ी पत्नी जो गुणसे या जातिके अधिकारसे या जेठाईसेही जेठी और प्रधान समुझीजातीहो सो उस राज्यकी मालिक होकर अन्य पत्नियोंका पालन पोषण उसी राज्यके अनुरूप करती रहेगी और जब कदाचित् वही पत्नी मरजावै तब द्वितीया उसकी प्रतिनिधि होकर शेष पत्नियोंका पालन उसी प्रकार उनके समअंशों के अनुरूप करतीरहै और उसकेभी मरजानेपर तृतीया प्रतिनिधि होवै इत्यादि पत्नियोंकी बहुताइत में जबतक एकभीपत्नी कोई जीतीरहे तबतकभर्ता के सपिंड बंधुओंका स्वत्व किसीधनमें नहींपहुँचताहै(यहां पत्नियोंकी बहुताइतमें चर स्थावर दोनोंभाँतिका धनविभक्तहोसकनेके न्यायपरभी राज्यकेप्रकारमें विशेषताप्रकट होनेका यहभावहै कि) जहांकहीं थोड़ेसे स्थावरधन ऐसेहों जिनसे कोई अधिकलाभ संभवनहीं तबतौ राज्यके प्रकारमें गिनतीनहीं होसक्ते और बँटसक्तेहैं परंतु जबउस भाँतिके स्थावर धनोंकी बहुताइतहो जिनसे संततलाभ होतेहैं तो यहस्थावर निस्संदेह राज्यके प्रकारोंमें गिनती और अविभाज्य ऐसीपत्नियोंकी अपेक्षासे न्यायात्मक है-और जो विवाहिता पत्नीभर्ताकी सवर्णा या विवर्णा केवल एकहोतौ सबधनकी मालिकहोगी-परंच-ऐसे धनमेंसे निज आत्मपोषण आदि और भर्ताके भृत्यादि वर्गोंका यथोचित पोषण आदि और गृहस्थीके धर्मार्थ साधन कर्मोंका आवश्यक व्ययकरनेके सिवाय किसीस्थावर धनकादान या विक्रय करनेकी अधिकारिणी नहीं होतीहै-यथाहसदाशिवः (पतिपुत्रविहीनातुसंप्राप्यस्वामिनोधनम्। नैवदातुंनविक्रेतुंसमर्थास्वधनंविना)अर्थात्-पति और पुत्रसेभी रहितस्त्री अपने स्वामीकाधन पाइकर नतौदान करदेनेको समर्थहै न विक्रय करडालनेको (सो) यह नियम निज अपनेधनको छोड़कर समुझना किन्तु अपने स्त्रीधनको दान और विक्रयभी करसक्तीहै (स्त्रीधनका लक्षण आगे स्त्रीधनके परिच्छेदमें प्रदर्शितहोगा)स्त्रीको जिनबातोंमें व्ययकर सकनेका अधिकारहै कदाचित् उन्हींकामोंकी आवश्यकतासे किंचिन्मात्र स्थावरका वियोगविक्रय करनापरैतोयहनिषेधकेअपवादमेंसमुझना-अब-यहाँपरस्मृत्यंतरवाक्यइसहेतुसेदर्शाये जाते हैं कि बहुधा लोग इसबातपर आग्रह खड़ाकरते हैं कि पत्नीको धन हरनेका अधिकार नहीं हैसो यह आशंका दूरहोजाय-वृद्धमनुकेवाक्यसेभी पत्नीको सब धनका अधिकार सिद्धहै-यथा (अपुत्राशयनंभर्तुःपालयन्तीव्रतेस्थिता। पत्न्येवदद्यात्तत्पिंडं कृत्स्नमंशंलभेतच) अर्थात्-अपुत्रा भार्या जो एकहै वह पतिकी शय्या पालन करती हुई और अपने योग्य व्रतसे रहतीहुई ऐसी पत्नीही पतिको पिंडदेवै और सबधन की मालिक होवै-वृहद्विष्णुनेभी यही दर्शायाहै-यथा (अपुत्रधनंपत्न्यभिगामितदभावे दुहितृगामितदभावेपितृगामितदभावेमातृगामि) अर्थात्-निपूतेका धन पत्नी में

जावै उसके न होनेसे बेटीमें जावै उसके न होनेपर पितामें जावै उसके न होनेपर माता में जावै-कात्यायन काभी यही तात्पर्य है-यथा (पत्नीपत्युर्द्धनहरायास्यादव्यभिचारिणी। तदभावेतुदुहितायद्यनूढाभवेत्तदा) अर्थात्-पत्नी जो व्यभिचारिणी नहीं हो तौ पतिका धन हरै पत्नीके अभावमें वह बेटी हरै जो कुमारी हो-तथैव (अपुत्रस्यार्यकुलजापत्नीदुहितरोपिवा । तदभावेपितामाताभ्रातापुत्राश्चकीर्तिताः) अर्थात्-निपूतेकी पत्नी जो अच्छेकुलकी पैदाहो सो धनपावै या उसके न होनेमें बेटियां पावैं उनकेभी न होनेमें पिता माताही अधिकारी हैं उनकेभी न होनेमें भैये और भैयोंके न होने में भतीजे भागी कहे हैं यहभी कात्यायनका वचनहै-वृहस्पति काभी सिद्धांत यही है यथा (कुल्येषुविद्यमानेषुपितृभ्रातृसनाभिषु। असुतस्यप्रमीतस्यपत्नीतद्भागहारिणी) अर्थात्-कुलके लोगोंके विद्यमान होतेहुये और पिता या भाई तथा सजातियोंके होते हुये भार्याहीनिपूते मरे भर्ताका भाग हरनेवालीहै—इसप्रकार योगीश्वरआदि छःसात आचार्योंके संमतसे पत्नीही धनभाक् पहले ठहरी और यही संमत ठीकहै परन्तु दो चार वाक्य औरभी इस व्यवस्थासे विरुद्ध देख परते हैं-यद्यपि उन वाक्योंसे प्रयोजन यहां कुछभी नहीं तौभी सिर्फ़ इसहेतुसे कि बहुधा झगड़ालू लोग बिरले अवसर में उन्हीं वचनोंको लेकर पेशकरते हैं इसलिये उनके खंडन मंडनके प्रकारसे एक व्यवस्था नियत हुई है पर लिखना उसका यहांसे इसलिये छोड़े देते हैं कि बहुधा उसमें वाद विवादके मार्गसे विस्तारहै और उसके लिखे जानेसे बहुधा मुख्य प्रयोजनकी बातें ऐसी दूर जापरतीं जो द्रष्टाओंको ढूँढ़नी दुर्घट होजातीं इससे इस अधिकोक्तिके पूरे होजाने पीछे(शेषपाठ)में प्रदर्शित करीजायगी-यहांपर आवश्यक बातें दर्शित करते हैं कि अबतक पत्नीका अधिकार जोकुछ वर्णन हुआ सो सामान्य मर्यादा है-क्योंकि आगे १४२वाले मूलश्लोकसे ५८ संख्याके परिच्छेदमें इसमर्यादाका अपवादवर्णन होगा उसका यहसिद्धांतहै कि पत्नी आदि नौ अधिकारी जोधनपाने के सुनिश्चितहुये वे उसधनीका धनभाग न पावैंगे जो अपने निजवंधुओंमें संसृष्ट रहते मराहो-इसमें अब यहबातभी सुनिश्चितहुई कि पत्नी केवल उसी भर्ताकाधन पावैगी जो अपने निजवंधुओंसे जुदाहोकर मराहो किंतु संसृष्टी भर्ताके धनमेंसे उन्हींवंधुओंसे आजीवनमात्र पावैगी जो उसधनके अधिकारी निश्चित होंगे (यहांपर निजवंधु कहनेमें केवल पिता या भ्राता और पितृव्योंके सिवाय कोई और वंधुनहीं समुझना) (यह अपवादभी यद्यपि सर्वसामान्य देशोंकी अपेक्षापर आरूढ़है-तथापि केवल बंगदेश को छोड़कर सार्वदेशी नियम समुझना अर्थात् वंगालेमें इस अपवादसे अपेक्षानहीं क्योंकि तत्रत्य प्रधान ग्रंथोंके संमतसे और लोक परिपाटीसेभी पत्नीका अधिकार दोनोंदशामें सुनिश्चितहै किन्तु भर्ताचाहै निजवंधुओंमें संसृष्ट रहते मराहोचाहै अलग

सृष्टीहोकर मराहो पत्नीदोनों दशामें धनपाती हैं नथैव पत्नीके नहोने या धन पाइकर मरजाने पीछे वे पुत्रियाँ प्रतिनिधि होतीहैं जिनको उसी देशकी परिपाटीसे ऐसा धन पहुँचनेका अधिकार निश्चितहो) (ऊर्ध्वोक्त सार्वदेशी अपवाद के उपरांत दक्षिण देशोंमें तत्रत्य प्रधान ग्रंथ स्मृतिचंद्रिकाके अनुसार इतनी और विशेषता पाईजाती है कि जो पत्नी निपट निस्संतानी हो अर्थात् जिसके पुत्रियाँ भी नहों तो वह पत्नी अपने असंसृष्टी पतिके जंगम धनका सर्वस्वपावे और स्थावर का अधिकार उसको नहींहै परंतु जो पत्नीके पुत्रियाँ हों तो वह अपने असंसृष्टी भर्ताका स्थावर जंगम दोनों भाँतिका धन पावे-और जो कदाचित् ऐसी दोनों भाँतिकी पत्नियाँ हों तो इसदशामें पुत्रीवाली पत्नियाँ कुल्ल स्थावर धनकी मालिकहों और जंगम धन परस्पर सभी दोनों भाँतिकी पत्नियोंको समभागहोकर मिलै) वीर मित्रोदयने इसी विशेषता पर स्मृति-चंद्रिकाकारके अनुमतकाखंडन बड़ी उत्तमरीतिसे लिखाहै और मदनरत्नाकरनेनिपट उसको निर्मूल कहकर बहुतसा निरादर कियाहै इसतर्कणासे कि वह व्यवस्थास्मृति-चंद्रिकाकारने बृहस्पति और प्रजापतिके दोवचनोंके विरोधसे बनाई है बृहस्पतिका वह वचन किसी मिताक्षरा आदि वृद्धग्रंथमें नहीं लिखागया और प्रजापतिका वहवचन सब ग्रंथोंमें स्वीकारहुआहै कि जिसके अनुसार पत्नीको स्थावर जंगम दोनोंभांतिका धन मिलना निश्चित हुआ है-परन्तु-इनसबके सन्मुख एकबात परदृष्टिकरनी आ-वश्यकहै कि उनदेशोंकी प्रवर्तित परिपाटी देखी चाहिये जिनमें स्मृतिचंद्रिका का स्वीकार समुझाजाताहो(ऊर्ध्वोक्त संसृष्टधनका अपवाद जो पत्नीआदि अधिकारि-योंकी अपेक्षा लेकर चर्चा कियागया तिसके मध्ये यहन्यायभी सर्वत्र संभवहोसक्ता है कि जबधनी अपने बन्धुओंमें संसृष्ट धन छोड़कर ऐसीदशामें मरगया होकि जो कुछकालतक वह और जीतारहता तो निस्संदेह धनके भिन्नात्मक भागहोजातेक्यों-कि संसृष्ट बन्धुओंके परस्पर ऐसा करनेका विरोध और उपाय संभवहोचुकाथा तो इसदशामें संसृष्टधन भी असंसृष्ट पदवीको पहुँचा समुझाजासक्ता है) (स्त्रियोंको स्थावरका वियोग या विनियोग या निरर्थक व्ययकरने आदि निषेध जो शिवजीके वाक्यसे प्रदर्शित हुयेथे तिनकीभी विशेष व्याख्या उनके अधिकारों की अपेक्षामें अधिकोक्तिके पीछे (शेषपाठ)में प्रदर्शित होगी-ऊर्ध्वोक्त मर्यादोंके अनुसार पत्नीको पतिका रिक्थ मिलजाने पीछेभी वेही पुरुष उसपत्नीके और धनकेभी शरण्य रक्षक नियतहोते हैं कि जिनमें धन संसृष्टथा यद्वा जिन बन्धुओंको उसधनके प्राप्तहोनेका अधिकार यथाक्रमसे कभीआगेको पहुँचताहो-यथाहनारदः (मृतेभर्तर्यपुत्रायाःपति पक्षःप्रभुःस्त्रियाः। विनियोगेषुरक्षासुभरणेषुसईश्वरः॥ परिक्षीणेपतिकुलेनिर्मनुष्येनिरा श्रये। तत्सपिंडेषुचासत्सुपितृपक्षःप्रभुःस्त्रियाः)अर्थात्-भर्ताके मरजानेमें निपूती स्त्रीके

पतिपक्षी जो आसन्नतर शरण्य समुझेजातेहों वे सवयथा अवसरके अनुसार उसके प्रभुहोतेहैं और वेहीउसके कर्त्तव्यकार्य विनियोगोंमें तथैव रक्षाओंमें और भरणपोषणकी आवश्यकताओं में भी अधिकारी हुआ करतेहैं परन्तु जो पतिकाकुल ऐसा परिक्षीण होजाय जिसमें कोई भी मनुष्य आश्रयभूत ऐसा न हो जिसके आधारसे रहसक्तीथी वल्कि उसकुलके कोई सपिंडभी जब नहों तौफिर स्त्रीके पितृपक्षीलोग प्रभुहोतेहैं और वेभी पतिपक्षियोंके समान विनियोगादिक सब कामोंमें अधिकारीहुआ करते हैं-कदाचित् पितृगोत्र भी निराश्रय होजाय तौफिर मातृपक्षीलोग जो नानाके आसन्नतर सपिंडोंमें शरण्य समुझेजाते हों वेभी यथा अवसरके अनुसार प्रभुहोकर उन्हीं कामों के अधिकारी हुआकरते हैं किजैसा चर्चा ऊपरहोचुका-कदाचित्-कोई वन्धु उन्हींप्रभुओंमेंसे ऐसीस्त्रीका धन हरनेकी अपेक्षा पीड़ादेता हो तबराजा रक्षकहोताहैयथाहप्रजापतिः(सपिंडावांधवायेतुतस्याःस्युःपरिपन्थिनः।हिंस्युर्धनानितान्राजा चौरदंडेनशासयेत्)अर्थात्-ऐसीस्त्रीके परिपंथी होकर जे कोई सपिण्ड या वंधुलोग उसकेधनछीनें तिनकोराजा चोरोंकेसमान दंडदेकर शिक्षाकरै(परिपन्थी-शत्रु या कुमार्गी) किन्तु जिसकाकोई रक्षकनहीं वनिसक्ता तिसकाराजा रक्षकहोता है-यथाहसदाशिवः (नकोपिरक्षितायस्यदीनस्यापद्गतस्यच। तस्यैवनृपतिःपातायतोभूपःप्रजाप्रभुः)अर्थात्-जिस किसी विपत्तिमें फँसेहुये दीनदुखियाका कोईभी रक्षा करनेवालानहीं ठहरता तिसकाराजाही रक्षा करनेवाला है इसहेतुसे कि राजा जगतीपाल संपूर्ण प्रजामात्र का रक्षक प्रभुहोताहै-किंतु राजाउन प्रभुओंपर भी सवका प्रभुहोताहैकि जिनका चर्चा ऊपरहोचुका और इसका केवल यहसिद्धांत नहींहै किजव निपट अधिकारीलोग छीनतेहों तभी राजा रक्षाकरै किंतु राजा प्रथमसेभी ऐसेधनोंकी रक्षाविधि करने या उन प्रभुओंसे करवानेमें सदाही अधिकारीहै कि जिसकेद्वारा रक्षाहोती समुझे उसीको अधिकारी उन्हींलोगोंमेंसे नियतकरे (जेसा यह स्त्रियोंके प्रसंगमें धनरक्षाका विधान राजाके आधीन सविकल्प निश्चितहुआ तैसाउन अप्राप्त व्यवहारों के भी निमित्तमें सविकल्प निर्विकल्प दोनोंभांति यथा अवसरके अनुकूल जहांधनमें हानि होजाना संभवहो जगतीपालोंके आधीनहुआ करताहै जो स्वतंत्र अपने धनकीरक्षा और परिग्रह योग्यनहींहोते यहइतना प्रासंगिक चर्चाजानो और इसचर्चाका यथार्थ व्यौरा नीचे दुहिताके अधिकारमें देखो) यहांतक पत्नीका अधिकार जोकुछ वर्णन हुआ सो मृतभर्त्ताकेही नामसे प्रदर्शित हुआहै तथापि उसकामरना कहनेमात्रमें विदेशमें जाकर खोयाजाना आदि और घर छोडकर परिव्राजक होजाना आदि या महापराधों केहेतुसे स्वत्व रहितहोजाना आदि और भी दशायें समुझलेनी जिनमें धनका प्रतिनिधि पुत्रादिकवंश उसकेपीछे होसक्ताथा (इतिपत्न्यधिकारविचारः) पत्नी

के अभाव में दुहिताओंका अधिकार होताहै अर्थात् निपट निपूते मरेहुये पुरुषके जो पत्नी भी न हो तो फिर पुत्रियां धनको पाती हैं अथवा पत्नी के होने पर भी मरेहुये भर्त्ता का धन पत्नीनेपाया और जीवन अवधितांई भोगिकर मरगई हो तो उसपत्नी के भोग से जो कुछ बचाहो सो धन पिताकी पुत्रियों का होता है-पिताकी पुत्रियां कहनेका यह भाव है कि केवल उसी पत्नी की पुत्रियां नहीं मालिक होसक्तीं किंतु पिताके सवर्णा और विवर्णा आदि कईपत्नी जो मरचुकी हो तिनकीभी पुत्रियां निज निज जातिके समानअंश १२८ वाले मूलश्लोककी मर्यादाके अनुसारपावेंगी-एवंचसदाशिवः(विभजेयुर्दुहितरःपुत्राभावेपितुर्वसु। उद्वाहयंत्योऽनूढांतुपितुःसाधारणै र्धनैः)अर्थात्-सदाशिवजी कहते हैं कि पुत्रोंकेअभावमें पुत्रियां सभीमिलकर पिताका धनबाँटिलेवैं परन्तुपहलेसाधारण धनमेंसेकुमारी बहिनोंका विवाहकरिलेवैं या विवाहों योग्यधन उन बहिनोंको निकालकर देलेवें तिस पीछेभागकरें और उन बहिनोंको भी अंशदेवैं-परन्तु-पत्नियोंकी बहुताइतमें से जबतक एक पत्नीभी जीतीरहकरभर्ता के धनपर अपना भोग परिग्रह रखतीहो तबतक पुत्रियोंको अधिकार नहींपहुंचैगा क्योंकि दुहिताका अधिकार निपटपत्नीके अभावमें कहचुकेहैं (और) पत्नीके अभावमें भी ऐसी दशाको छोड़कर कि जो पुत्रियों के भ्राता पैदा होजाय अर्थात् यदि भर्ता अपनी पत्नीकोसगर्भा छोड़कर मरगयाहो जिसकागर्भ तबतक समुझा नहींजासक्ता था और पत्नीभी निजभर्ताकेधनपर कब्जापानेपीछे पुत्रपैदाकरकेमरजाय तौ उसपुत्र-के रहतेहुये पुत्रियोंका अधिकार जातारहेगा क्योंकि (पत्नीदुहितरः) इत्यादि मूल-श्लोकमें माताके पीछे जो पुत्रियोंका अधिकार क्रम दर्शायाथा सो निपटनिपूतेपिता माताओंके मरनेपर सुनिश्चितहै-इसलिये ऐसीमाताके मरजानेपरभी वहधन ऐसेपुत्र कोपहुंचैगा औरउसधनकी रक्षा बालअवस्थातक वे बंधुलोग जिनको उसकीप्रभुता का अधिकार राजासमुझै करतेरहेंगे कि जबतक वह संप्राप्त व्यवहारकालहोकर निज तंत्रहो-कदाचित् ऐसापुत्र विवाहके होनेपहलेमरजावै तौ निस्संदेह वेहीपुत्रियां धनकी मालिक होंगी जिनका अधिकार माताकेपीछे निश्चितहुआहै अथवा ऐसापुत्रविवाह के होनेपरभी निपट कुछ संतान पैदाकिये विन मरजाय जिस्से पैतृक धनकी मालिक उसकीबधू होगीपर वहबधूभी निस्संतानी शीघ्र मरजाय तौ इसदशामेंभी वे पुत्रियां पैतृक धनकी मालिक होंगी जिनका अधिकार माताके पीछे निश्चित हुआहै-यथाह सदाशिवः(एवंस्थितायांकन्यायामृतथंपुत्रबधूगतम्। तन्मृतेस्वामिनंप्राप्यश्वशुरात्तत्सुतामियात्)अर्थात्-इसीप्रकार कन्याके जीतेहुये पिताका धन बेटेकी बधूमें जो पहुँचा हो तौ उसबधूके मरजानेपर वहधन जैसे क्रमसे ऊपरसे उतराथा तैसेहीमृतभर्ताके पदको पहले चढ़कर उसकेद्वारा ऊपरमरे ससुरामेंचढ़जावै पुनिससुरामेंसे नीचेगिर-

कर उसकी जीतीपुत्रीमें जावै अर्थात् मरीभावजमेंसे लौटिकर जीती ननँदको पहुँचै जिसका अधिकार माताके पीछे निश्चित हुआहै (यहांपरमाता चाहे सगीहो या सौतेलीहो इसकानियम नहीं है इसीलिये पुत्री अपने पिताकी कहातीहै) यथाहसदाशिवः(पत्युर्द्धनहरायाश्चमृतौभर्त्तृसुतास्थितौ। पुनःस्वामिपदंगत्वाधनंदुहितरंव्रजेत्)अर्थात्-पतिकाधन हरनेवालीके मरजानेपर भर्ताकी बेटीजीती होनेमें वहधन फेर स्वामीकेपदको पहुँचा समुझायकर उसी स्वामीकीदुहितापावे-ऊर्ध्वोक्त सब नियमोंसेदुहिताओंका अधिकार अवतक सामान्य भावसे विनिश्चित हुआहै कि सब दुहितामिलकर बाँटिलें(परन्तु)कात्यायनके वचनानुसारकेवल कुमारीकन्याओंका अधिकारपाया जाताहै-यथा(पत्नीभर्तुर्द्धनहरीयास्यादव्यभिचारिणी । तदभावेतुदुहितायद्यनूढाभवेत्तदा-)अर्थात्-भर्ताका धन हरनेवाली शुभाचारा पत्नी होतीहै और ऐसीपत्नीकेअभावमें दुहिता मालिक हो परउस दशामें कि जो विनाव्याही हो (इसकथन से यह भाव पायागया कि व्याही दुहितानहीं पावें) वल्कि इसीभावकी दृढ़ता मध्ये नारदके अग्रोक्त वाक्यसे यहआशय प्रकटहोताहै कि कुमारीकन्याभी तभीतक धनकीमालिक रहैं जवतकउनकाव्याह नहो-यथाहनारदः-(स्यात्तुचेद्दुहितातस्याःपित्रंशोभरणेमतः। आसंस्काराद्धरेद्भागंपरतोविभृयात्पतिः)अर्थात्-जो उस विधवा पत्नीके दुहिताहो तौ उस दुहिताके पिताका जो अंशहै सो उसके भरणमात्रमें कहाताहै इसलिये जवतक उसकाव्याह नहो तवतक अपनेपिताके धनपरमालिक रहै और व्याहके होजानेपीछे उसका भर्ता पालन करै-तौ इसकथनसे प्रत्यक्षहै कि व्याहकेपीछे ऐसे धनकेमालिक पिताके बंधुलोग जो सपिंडोंमें समीपहों वे होसक्ते हैं-सोयह दोनों वचनोंका नियमकेवल संसृष्टी पिताके धनभागमें समुझनाजिसका धन बंधुओंमें संसृष्ट हो किंतु ऐसेनियम से यह अधिक प्रेरणा पाईजातीहै कि यद्यपि संसृष्टीपुरुष का धन वेहीबंधुलोग हरसक्तेहैं जिनमें वहसंसृष्ट था उसमें पत्नी या दुहिता का अधिकार नहीं है तथापि जो दुहिताकुमारी हों तौ उसदुहिताके विवाहतक धनकीमालिक वेहीसमुझी जायँगीइसलिये उन बंधुओं का पूरास्वत्वपकाहटको नहीं तवतक पहुँचसक्ताहै कि जवतक सभी कुमारी कन्याओंकेविवाहसे छुटकारा नहोजाय केवलप्रभुताके अनुसारधनके रक्षकवेही रहेंगे औरमाताचाहे मरचुकी हो या जीतीहो दोनों दशामेंयहसंभवहै-सो-यहनियम केवलबांग देशको छोड़कर सर्व सामान्य देशोंकी अपेक्षामें समुझना जहाँ संसृष्टी पुरुषका धनभागउसकीपत्नी औरपुत्रियाँ नहींपासक्तीहैं क्योंकि बांगदेशमेंसंसृष्टीकाभी धनभाग उसकीपत्नी और पुत्रियाँ पायाकरती हैं (इनदो वचनोंके प्रसंगसे जोव्यवस्था वर्णन हुई पुत्रियोंके यथेष्ट मालिक होजानेके अधिकारमध्ये नहींहै किन्तु यथेष्ट मालिक होजाने का अधिकार इनसे ऊपर वर्णन हुआथा और उसीकी विशेषतानीचे फिरभी वर्णन

करतेहैंकि) वाराणसी संबंधी आदि सबदेशोंमें असंसृष्टी पुरुषके धनकेमध्ये गोतमके वचनानुसार यहपरिपाटी है कि पुत्रियोंकी बहुताइतमें कुमारीकन्या मालिक होती है कुमारियोंके न होनेसें विवाहियोंका अधिकारहै पर उनमेंभी बहुताइतके होनेपर जो निर्धन हो वेही मालिक होती हैं निर्धनके न होनेसें धनवती बेटी पाती हैं चाहे कोई विधवा या वंध्या या सपुत्रा उनमेंहो या नहोकुछ इसका नियम नहीं-यथाहगोतमः(स्त्री धनंदुहितॄणामप्रत्तानामप्रतिष्ठितानांच) अर्थात-स्त्री धन बेटियोंमें कुमारियोंका होता है या विवाहियोंमें निर्धनोंका (यह नियम यद्यपि स्त्री धनके निर्देश करके मातृधनमें कहा गयाहै तथापि माता पितामें कुछ भेद नहीं इस्से पिताकेभी धनमें युक्त कियागया और यथार्थसे पैतृक धनभी माताके द्वारा बेटी पाती है)-मैथिल देशमें इस नियमकी अपेक्षा किंचित अंतरहै कि प्रथम तो कुमारीका अधिकार होताहै पर कुमारियों के अभावमें विवाही मात्र सब सामान्यभावसे अधिकार पाती हैं चाहे कोई उन्हींमें धनवती या दरिद्रा या वंध्या या सपूती या निपूती विधवा हो वा नहो कुछ इन बातों का विवेक नहीं है यथार्थसे उसदेशमें पराशरके अग्रोक्त वाक्यसे सामान्य तात्पर्य माना गयाहै कि अनूढ़ाके अभावमें ऊढ़ाबेटी पावे-यथा (अपुत्रस्यमृतस्यकुमारीरिक्थंगृह्णीयात्तदभावेचोढा) किंतु (विभजेयुर्दुहितरः) इत्यादि शिवका वाक्य जिसकी व्याख्या ऊपरहोचुकीहै तिसनियमसेभी यहीमिथिलाकी परिपाटी कुछ कुछ मिलती है-बांगदेश में इस नियमकी अपेक्षा बहुत अंतरहै कि प्रथम तो कुमारीका अधिकार होताहै पर कुमारीके अभावमें ऊढ़ा पुत्रियों में से उन दोभांतिकी पुत्रियोंका सहाधिकारहै जिन के पुत्रका सद्भाव हो या जिनके होनेका आकार संभवहो फिर चाहे कोई इन्हींमें धनवती या दरिद्राहो तौ कुछ तर्क नहीं है परन्तु वंध्या और कन्यावती और विधवा जो निपूती हो ऐसे धनको किसी दशामेंभी नहीं पासक्ती चाहे निपट दरिद्राहो तौ कुछ दयाभावसे अपेक्षा इसमें नहीं-सो-यह परिपाटी जिस्से ऐसी पुत्री पैतृक रिक्थ नहीं पासक्ती बांग देशमें जीमूत वाहनकी व्यवस्थाके अनुकूलहै किंतु जीमूत वाहनने इस व्यवस्थापर यज्ञदत्त दीक्षितका मत अंगीकार करिकै दर्शायाहै-श्रीकृष्णतर्कालंकार नेभी निज दाय क्रम संग्रहनाम ग्रंथमें कुछ फीके मनसे उसी मतको दायभाग ग्रंथ कर्त्ताका उद्देश देकर दर्शायाहै कि (वंध्यापुत्रहीनविधवयोस्तुपुत्रवतीसंभावितपुत्रयोरसत्वेऽपि नाधिकारइतिदीक्षितमतंदायभागकृताप्याद्दतामितिबोध्यम्) वीर मित्रोदय ने उस मतका सुष्टु निरादर कियाहै-रघुनन्दन भट्टाचार्य ने निज दाय तत्त्वनाम ग्रंथमें उस मतका निपट चर्चाभी न रक्खाहै इस दशापर कि वह ग्रंथ ठेठ बंगालेमें प्रधान है-दायक्रम संग्रह ग्रंथ यद्यपि वाराणसीमें स्वीकारहै तौभी उतना लेख जो इन पुत्रियोंका भाग मिटानेवाला दीक्षित मत विख्यात वहस्वीकार नहीं है क्योंकि श्रीकृष्ण-

तर्कालंकारने इस ग्रंथमें कुछ फीके मनसे चर्चा उसका कियाहै-इन बातोंका अनुवाद कुछ अधिकोक्तिके पीछे शेषपाठमें भी आवैगा-अत्रवैशेष्यंतु-कात्यायनः (देशस्यजातेःसंघस्यधर्मोग्रामस्ययोभृगुः। उदितःस्यात्सतेनैवदायभागंप्रकल्पयेत्) अर्थात्-भृगुका उद्देश देकर कात्यायन आप कहते हैं कि जिसदेशका जिसजातिका या जिस किसी समूहका जो धर्महो अर्थात् उनकी मर्यादा विशेषका जोकोई धर्मग्रंथ जुदाहो और इसीप्रकार किसी ग्राममात्रका जो धर्म कहाहो सो वह अपने उसी नियमके अनुसार दायभागका वर्तावा करै यह भृगुजीने कहा किंतु यहभी एक धर्म विशेषलक्षणहै-इसमें (संघ) शब्द जो समूहका बोधकहै तिसका (दृष्टांत) जैसे गोसाईं वैरागी आदि पन्थवालोंके समूह इत्यादि और भी समुझने-इस वैशेष्य धर्मकी मर्यादा से अपने अपने स्थलपर प्रचारकी विशेषतामें ऊर्ध्वोक्त सभीरीतैं यद्यपिठीकहैं इसबात पर तर्कणानहीं है तथापि जिज्ञासुताकी अपेक्षा बांगदेशकी परिपाटी से पूर्वोक्त दोनों उत्तमहैं और उनमें भी परस्पर वाराणसीकी परिपाटी उत्तमतर विज्ञेयहै-परन्तु बांग देशमें इसबातके पलटे एकदूसरीबातकी अपेक्षा जो मर्यादा उसीदेशकी नियमात्मक समुझी जातीहै वहसर्वथा वाराणसी और मिथिला आदि सब देशोंकी अपेक्षावहुत उत्तमहै किदुहिता अपनेसंसृष्टीपिताकाधन भाग भी वन्धुओंसे पासक्ती हैं-इसके सिवाय (विभजेयुर्दुहितरः) इत्यादि शिवका वाक्य जिसकी व्याख्या पहलेहुईथी इनसब के सन्मुखअधिकतर न्यायात्मक देखपरताहै क्योंकि (यथैवात्मातथापुत्रः पुत्रेणदुहिता समा) यहमनुका वचन और (अंगादंगात्संभवतिपुत्रवद्दुहितानृणाम्) यहबृहस्पति का जो वचनहै इनमें यह कुछ भेद नहीं रक्खा गयाहै कि कौनसी दुहिता पुत्रोंके समानहै या कौनसी नहीं किन्तु सर्वसामान्यभावसे सब दुहिता एकसी प्रदर्शितकरी हैं (और) इसी आशय के हेतुसे शिवके वचनमें सब दुहिताओं को मिलकर समभागलेना कहाहै-तथापि जो कुमारी की विशेषता सभी देशों में सुनिश्चित हुई तिसकेलिये शिव जी ने भी विशेषता दर्शित करीहै कि पहले उनका व्याह करिलेवें तिसपीछे धनको बाँटै और उनको भी फिर भागदेवें (किन्तु) यथार्थ से कुमारी का अधिकार विशेष भी विवाहकेही हेतुसे सुनिश्चित हुआ तो फिर शिवने भी कात्यायनके समान आशय रक्खाहै कि जो पिताका धनऐसा थोड़ाहो जिस्से कुमारियों के विवाह केवल होसक्ते हैं तब ऊढ़ाओं को नदेना चाहिये जबकि धन कुछ अधिकहो तब ऊढ़ाओंमें जो निर्द्धनहों तिनको भी विवाहों से बचाहुआ भाग देनाचाहिये यह सिद्धांतहै-तथापि जो गोतमने विशेषता इसी विषयपर दर्शाई है कि अनूढ़ाके होते हुये ऊढ़ानहीं पावै या दरिद्राके होनेहुये सधना नहीं पावै और पिछले आँक सधना भी पासक्ती है-सो इसविशेषता को शिवजीके कहे नियमसे तुल्यता और अविरोध करने के हेतुसे यह

न्याय सूचित होताहै कि जंगमधनकी दशामेंजबधनभी अतिशय ढेरहो तौ कुमारि-यों के विवाह निपट कियेपीछे सभी बहिनें मिलकर अंशहरें पर निर्द्धना को दोअंश और धनवतीको एकअंश मिलना चाहिये किन्तु धनकी मध्यमतामें धनवतीको कुछ भी नहीं-इसी प्रकार में यहभीलक्षण स्वयंसिद्धहै कि जो हालकी विवाहियोंमेंसे कोई पुत्री निर्द्धन घरमें व्याहीगईहो तौ उसको भी दोभाग विवाहसे ऊपर मिलने चाहिये एवं जहाँहालकी विवाही अच्छे धनपात्र घरमेंजावे तौ इसकोभी धनकी बहुताइतमें एकअंश विवाहसे ऊपरमिले और धनकी मध्यमतामें कुछनहीं-अथवा जो विवाहोंसे पहले भागकिये जानेके हेतुसे विवाहोंके अनुमानका धनकाढ़िकर देदियाजाय तौइस दशामें इनकोभी निर्द्धना समुझना और ढेरधन के होने में दोभाग उसधनके उप-रान्तदेना उचितहै जो उन्हें उनके व्याहों योग्य मिलाहो-यहसब लक्षण केवल जंग-म धनके रिक्थमें सम्भाव्यहै अर्थात् स्थावर धनकी प्रतिनिधिता जैसी नियमात्मक देशभेदों के अनुसार ऊपर निश्चितहुई सो सबठीकहै (यहाँपर दुहिताओंका निर्ण-य जो कुछ कियागया सो उस दुहिताके निमित्तमें न समुझा चाहिये जो (पुत्रिका) कल्पित हुईहो क्योंकि वह बारह पुत्रोंके प्रसङ्ग में औरस पुत्रके समान कहीगईथी इसलिये ऐसीपुत्री माताके जीतेहुयेभी सबधनकी मालिकहोतीहै और उसकेसन्मुख अन्य दुहिता केवल ब्याहोंके सिवाय धनकाभाग नहीं पातीहैं पुत्रिका का व्यौराशेष पाठमें भी आवेगा)-दुहिता जो स्थावरधनकी मालिकहुईहो आत्मपोषणआदिनियत प्रकारोंके सिवाय उसका व्यर्थवियोगनहीं करसक्तीहैं-यथाहसदाशिवः (प्रेतलब्धधनै र्नारीविदध्यादात्मपोषणम्। पुण्यन्तुतदुपस्वत्वैर्नशक्तादानविक्रये) अर्थात्-प्रेतकेद्वारा जोधन किसी नारी ने पायाहो तिससे आत्मपोषण आदि आवश्यक व्यय तौ करै और जो पुण्य करनाचाहे तौ उसधनके उपस्वत्वनाम वृद्धयादिक लाभोंकी पैदावार मेंसे पुण्यभी करसक्तीहै पर मुख्यधनकादान या विक्रयआदि प्रकारोंसे वियोगकरदेने में समर्थनहीं किन्तु उपस्वत्वों की न्यूनतासे कदाचित् मुख्यधन मेंसे भी यत्किंचित् स्वल्पांशका विक्रय वा आधान करसक्तीहै तिसकाब्यौरा इस अधिकोक्तिके पीछेशेष पाठमेंविचारो-इसकेसिवाय-जब कदाचित् किसीऐसी दुहिताको कुछधन कहींसे पहुँ-चाहो जो बालक अप्राप्त व्यवहारकाल समुझी जातीहो तौ उसधनपर उसे परिग्रह तबतकनहीं मिलसक्ता जबतकवह सम्प्राप्त व्यवहारहोगी अर्थात् वेलोग ऐसेधनके और उसदुहिताकेभी रक्षक नियतहोंगे जिनको अवसरके अनुकूल उसकी प्रभुताका अधिकार पहुँचताहो(सो)यह अधिकार इनअग्रोक्तवचनोंसे समुझना-यथा-(पितारक्ष तिकौमारेभर्तारक्षतियौवने।रक्षन्तिस्थाविरेपुत्रा नस्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति) अर्थात्-कुमार अवस्था और कुमारीरहनेकी दशामें पिता या पिताके बन्धुरक्षक होतेहैं और यौवन

के उपलक्षण मात्रसे ब्याही होनेकीदशामें भर्त्ता या भर्त्ताके बन्धुरक्षकहोतेहैं और स्थाविर अवस्थाके उपलक्षणमात्रसे भर्त्ताके अभाव या अनुपस्थितमें पुत्र या पुत्रोंके बन्धु लोग रक्षकहोतेहैं-इनमेंसे जिस किसीका अधिकार उसकी बालअवस्थाके अवसरमें होसकना सम्भवहो वहीरक्षकहोसक्ताहै-परन्तु इतनाभेद अभीशेषहै कि जो वहदुहिता अबतक कुमारीहो चाहे वाग्दत्ताभी होचुकीहो तबतौ केवल पिताकेही पक्षीलोगरक्षक होंगे तिनकेअवसरका अनुक्रमइसअग्रोक्तवचनसेसंसिद्धहै-यथा(पितापितामहोभ्राता सकुल्योजननीतथा।कन्याप्रदः पूर्वनाशेप्रकृतिस्थःपरःपरः)अर्थात्-इसवचनकेअनुसार जिनको कन्याकादान करनेमें अधिकारहै वेहीअपने अवसरके अनुकूल ऐसी कन्या तथा कन्याके धनके रक्षक होसक्ते हैं-औरजो-ऐसाधन पानेवाली कन्याऊढ़ाहो चाहे विधवाभी होगईहो या नहीं तौफिर पतिके पक्षीलोग रक्षकहोंगे औरउनमेंभी जिनको उसके पतिका व्याह करने आदि कामों में अधिकार हो वेही निज निज अवसर के अनुकूल नियत होंगे-पर कदाचित् ऐशी दशा में पतिकाकुल ही क्षीण होजाय तौ फिर वेही पितृपक्षी लोग रक्षक होंगे जो कुमारी होनेकीदशामें अधिकारीथे-तद्यथा-(परिक्षीणेपतिकुले निर्मनुष्येनिराश्रये। तत्सपिंडेषुचासत्सु पितृपक्षःप्रभुःस्मृतः)इतिदुहितॄणामधिकारविचारः) कदाचित् ऐसे धनके पानेवाली दुहिता मरजाय तौ इसधन का मालिक कौन होसक्ता है-तदाहसदाशिवः (असन्तत्यामृतायाश्चस्त्रीधनंस्वामिनं भजेत्। अन्यत्तुद्रविणंयस्मादाप्तंतत्पदमाश्रयेत्) अर्थात्-जो दुहितानिस्सन्तानी मर जाय तौ जो कुछ उसका स्त्रीधन कहलाताहो सो तौ उसके स्वामीकोही भजे अर्थात् जीतेहुये भर्त्ताको या मरेहुये भर्त्ता के दायादोंको मिलै जिनमें सबसे पहले भर्त्ता की दुहिताही दायादहोगी जो इसपत्नी के सिवाय किसी और पत्नीसेहो इसकी मर्यादा देखो स्त्रीधनके प्रकरणमें (परंच) और धन जिसकिसी के द्वाराउसको पहुँचाथा उसी के पदको जाकर टिकै अर्थात् माताके द्वारा उसको पिता का धन मिलाथा इसलिये माताकेही द्वारा उलटा चढ़िकर उसके पिताकाधन विख्यात होकर पिताके दायादों को मिलै बरन इसीप्रकार जिसकिसीका धन जिसके द्वारा पहले उतरकर पहुँचाहो उसीद्वारा चढ़कर उसके निजदायादों को मिलै-परन्तु-जो दुहिताकुछ सन्तान छोड़ मरै तौफिर ऐसानियम नहींहै अर्थात् जो दुहिताने निजमाताकाही स्त्रीधनकुछपाया हो और वह दुहिता अपनी सन्तानमें पुत्रियाँ छोड़मरै तौ वेपुत्रियाँ अपनी नानीका धन माताद्वारा पावेंगी सोइसबातका यथार्थ ब्यौरा आगे स्त्रीधनके प्रकरणमें आवेगा-किन्तु यहाँअभी पैतृक धनका चर्चाहै इसलिये जो दुहिताने सन्तानमध्ये लड़के छोड़ेहों तौफिर वेहीलड़के अपने नानाकाधन माताद्वारापातेहैं-यथाहबृहस्पतिः(यथा पितृधनेस्वाम्यन्तस्याःसत्स्वपिबन्धुषु । तथैवतत्सुतोऽपीष्टेमातुर्मातामहेधने)-अर्थात्

जैसा उसदुहिताका अधिकार अपनेपैतृक धनमेंपैतृक बन्धुओंके होनेपरभी निश्चित हुआ तैसेही उस दुहिताका निज औरसपुत्रभी निजमाता के मरजानेपर नानाकेधन में अधिकारीहै-यहीबात शिवजी के भी अग्रोक्त वाक्यसे सुनिश्चितहै किधनीकेबन्धुओंके होतेहुयेभी दुहिताकाबेटा भागीहो-यथा (स्थितेऽप्यपत्येदुहितुःप्रेतस्यपितरिस्थिते। दुहित्रपत्यंधनभाग्धनंयस्मादधोमुखम्) अर्थात्-शिवजी कहते हैं कि प्रेतके पिता के जीतेहुयेभी दुहिताका सन्तान होनेमें दौहित्र जोहै सोई धनकोपावै क्योंकि धनजो है सो अधोमुख हुआकरता इस्से नीचेको ठिकाना मिलतेहुये ऊपरनहीं चढ़सक्ता (सो) यहनियम सब सामान्य देशोंकी अपेक्षा में साधारण मर्यादाहै-परन्तु-बृहस्पति के ऊर्ध्वोक्त वचनमें यहबातभी प्रत्यक्ष निश्चित हुईहै कि जो कोई दुहिता धनकेपाने वालीमरै तो केवल उसीदुहिता के बेटे धनकोपावें किन्तु बहिनौताका भाव सूचित नहीं है (सो) यहनियम एकमिथिला छोड़कर सबदेशोंकी अपेक्षा केवल ऐसीदशापर घटसक्ताहै कि जहाँ केवल एक दुहिताहो जिसके बहिनें और न हों (और) बङ्गाले में उस दशापरभी घटताहै कि यद्यपि दुहिताभी अनेकहों पर उनमें सिर्फ़ कुमारीकन्या चाहे एक यद्वा कईहों जो पैतृक धनपर मालिक होचुकीथी उनके मरनेपर केवलउनके पुत्र निज निज माताओंके उसधनपर अधिकारी नियतहोंगे जो निज माताको इन पुत्रोंके नानाका धनभाग मिलाथा-अर्थात् ऐसी दुहिताके सपूती मरनेपर बङ्गाले में यहधन उसकी बहिनें या बहिनौते नहींपातेहैं (परन्तु) जो इन्हीं दुहिताओं में से कोईभी निपूतीमरै तिसका यहधनभाग वे बहिनें पाया करती हैं जिनके पुत्रउपस्थित हों या पुत्र होनेका आकार सम्भवहो किन्तु इनदोनों भाँतिकी बहिनोंका अधिकार ऐसे धनपर तुल्यात्मक और युगपत् हुआकरताहै और परस्पर एकके अभावमेंभी दुसरीका अधिकार वहाँहोताहै-तथाच (दायक्रमसंग्रहेश्रीकृष्णतर्कालङ्कारोक्तविशेषः-कन्याजाताधिकारा पश्चात्परिणीतसतीअविद्यमानपुत्रायदिम्रियेततदाततपितृदाये सपुत्रायाःसंभावितपुत्रायाश्चभगिन्योःस्तुल्योऽधिकारःनतुतद्भर्त्रादीनां—स्त्रीधनएवतेषामाधिकारात्—कुमार्य्यभवेचोढायाः पुत्रवत्याः संभावितपुत्रायाश्चतुल्योऽधिकारः तयोरेकतराभावे एकतराधिकारः उक्तपराशरवचनादिति) अर्थ इसका ऊपर सब होचुका है (पर) इसी विशेष पाठमें यह बात भी निर्णीत है कि जब कुमारियों के अभावसे विवाही दुहितायें प्रतिनिधि हुईहों और उनमें कोई मरजाय तब यद्यपि उसके पुत्रभी उपस्थितहों और बहिनौं ते भी कि जिनकी माता चाहे मरी या जीती हो उपस्थितहों उसका पैतृक भाग कोई नहीं पासक्ते किन्तु इनके होते हुये भी वे बहिनें प्रतिनिधि होवेंगी कि जिनके पुत्र उपस्थितहों या होने का आकार संभवहो (और) जब ये बहिनें भी मरजायँगी या पहलेसेही निपटनहों तो इन बहिनों के बेटे

और उस पहले मरीबहिन के बेटे मिलकर सब तुल्यात्मक भाग पाते हैं यद्वा और बहिनों के बेटे निपट नहीं और किसी के भी होने का आकार संभव न हो तौ फिर ऐसी बंध्या और निपूती विधवा के जीतेहुये भी उस पहिली मरी बहिन के बेटे अपनी माता के मरने पीछे नानाका धन भाग उतना पासक्ते हैं कि जितने पर अधिकार उनकी माताको हुआ था और वेही बेटे किसी ऐसी मावसी का धन भाग उतना पासक्ते हैं कि जितना उसने पैतृक भाग पाया और पाने पीछे आप निपूती मरीहो- इस व्यवस्था का सिद्धांत यहीहै कि यद्यपि दुहिताओंमें से एकके भी जीतेतक दौहित्रों का अधिकार नहींहै तथापि बंगाले में निपूती विधवा और बंध्या सधवाके होतेहुये दौहित्रों का अधिकार खड़ाहोताहै क्योंकि यह दोनों दुहिता निपट अभागिनि होनेके हेतु जीतीहुई भी मरगई समुझीजाती हैं (इतिबांगदेशविशेषः) वाराणस्यादि अन्य सब देशोंमें दौहित्रों का अधिकार जबतक कोई एक भी दुहिता जीतीरहै नहीं होता है- यथाहसदाशिवः (कन्यायांजीवितायांचतदपत्यंनदायभाक्। यत्रयद्बाधितंवित्तंतन्मृतावपरंव्रजेत्) अर्थात्-कन्या के जीवते रहने में उसका संतान दायभागी नहीं होता किन्तु जो धन जिसमें रोकागया तिस रोकनेहारे के मरजाने परही और में जाता है (अत्रचाव्ययस्यावधारणार्थत्वात् कन्यायामित्येकस्यामपिजीवितायां-तदपत्यंतासामपत्यं कस्याश्चिदपिपुत्रोनतावन्मातामहस्यधनंलभेदित्याशयः) अर्थात् वाराणसी आदि सब देशोंमें जब कोई दुहिता निपट न हो तब दौहित्रों का अधिकार होताहै तथापि सब दौहित्र मिलकर एकसा तुल्यात्मक भाग पातेहैं अर्थात् जैसा पैतामहधन का भाग पहिले पौत्रोंकी अपेक्षा वर्णन हुआ था उसरीतिसे इनको नहीं मिलताहै- और मिलने पीछे यह धन इनका पुत्रादिक वंशनहीं पासक्ता किन्तु इनके मरजाने पीछे यह धन इनके परनाना और परनानी आदि हरते हैं एवं बंगालेमें भी (इतिवाराणस्यादिदेशव्यवस्था) मैथिल देशमें दौहित्रों का अधिकार ऐसे धन परनहीं पहुँचता किन्तु दुहिताओं के न होने या धन पाइकर मरजाने पीछे दौहित्रों के होनेपर भी यह धन लौटिकर उस धनीकेही माता पिता आदि बंधु पातेहैं कि जिनको दौहित्रों के पश्चात् मिलना योग्यथा-क्योंकि तत्रत्य ग्रंथकारोंने (पत्नीदुहितरश्चैवपितरौभ्रातरस्तथा।तत्सुतागोत्रजोबंधुःशिष्यस्सब्रह्मचारिकः) इस वचन का सूधा क्रम स्वीकार कियाहै कि जैसा प्रत्यक्ष इसमें दुहिताके उपरांत पिता माता काही बोध पायाजाता है इसी हेतुसे उन ग्रंथकारोंने दौहित्रोंको इनसबके पीछे देना लिखाहै जो नौदश अधिकारी इसी वचनमें योगीश्वरने प्रदर्शित किये किन्तु इन अधिकारियों में स्पष्टभाव से दौहित्रों का चर्चा नहीं पायागया-सच सबसे पीछे उनका अधिकार कल्पित करनेसे सिद्धांत में फल यही प्रकटहोताहै कि नानाका धन पाने वाला अवसर कभी दौ-

हित्रोंको न आवेगा क्योंकि चौदश अधिकारियों में से किसी न किसी का सद्भाव तो अवश्यही बनारहताहै-यद्यपि एक इसहेतुसे कि ठेठ मिथिलामेंही बैठकर योगीश्वरने स्मृति वर्णन करीथी और उसीका यहवचनहै इसलिये मैथिलदेशी ग्रंथकारों टीकाकारोंका अभिप्राय केवल इतनाहै कि इसवचनके मध्ये क्रमके अनुसार इन्हीं चौदश अधिकारियोंमेंसे कोई जब नहो तब दौहित्र पावे किन्तु राजाका प्रसंग इन अधिकारियोंमें कुछ संश्रित नहीं है तथापि श्रीकृष्णतर्कालंकार ने इस तर्क से कि सबसे पीछे देना कहते हैं राजाकाभी भाव तर्कित कियाहै-तथाच (मैथिलास्तुपत्नीदुहितरश्चैव इत्यादिनावचनबोध्याधिकारिणां सर्वेषांपश्चाद्दौहित्राधिकारमाहुः तदसत्राज्ञोऽप्य धिकारितयापरिगणितत्वात् तदभावस्यकदाप्यसंभवात् फलतोदौहित्रस्याधिकाराभा वएवपर्यवसानेदौहित्रस्याधिकार प्रतिपादकवचनानांनिर्विषयत्वापत्तेः) अर्थ इसका ऊपर सब होचुका है (इतिमैथिलदेशविशेषः) यही वचन योगीश्वरका सब ग्रंथों में सर्वत्र संग्रह हुआहै क्योंकि बहुधा स्मृतियोंकी अपेक्षा यह योगीश्वरका बांधाहुआ क्रम न्यायात्मक समुझा जाताहै इसलिये संग्रह ग्रंथों के कर्ताओंनेभी इसीको मनोज्ञ जानकर स्वीकार कियाहै और इसीमेंसे दौहित्रोंकाभी अधिकार निश्चित कियाहै कि (दुहितरःच) इसमें अंत्यशब्द जो (च)कारहै तिसकोअनुक्तसापेक्ष समुच्चयके अर्थमें घटाकर दौहित्रोंकोभी दुहिताओंके अंतर्भावमें लेलियाहै क्योंकि जो ऐसी व्याख्या नहीं मानें तो फिर बहुधा स्मृतियोंसे विरोध आजावे जिनमें घंटा घोषके समान सब देशोंकी अपेक्षामें दौहित्रोंका अधिकार कहा जाता और वैसाही सर्वत्र वर्तमान है (और) मिथिलाके निवासी टीका कारोंने निज देशकी परिपाटी अनुसार इसी (च) कार को उक्त समुच्चयभाव यद्वा इतरेतर योग में माना इस्से दौहित्रों का अधिकार उनके नहीं है-मुख्य प्रयोजन का चर्चा अभी फिर भी शेषपाठमें कुछ आवैगा (इति दुहितृदौहित्रयोरधिकारविचारः) दौहित्रों के भी निपट न होने या धनपाइकर निपूते मर जानेमें निज धनीकेही पितामाता भागीहोतेहैं परन्तु इनदोनोंके अधिकार मध्ये बड़ी लम्बीचौड़ी और अनेकभांतिकीव्यवस्था कल्पितहुईहैं क्योंकि मनु-याज्ञवल्क्य-विष्णु बृहस्पति ये प्राचीन स्मृतियां और नवीनसंग्रहग्रन्थ मिताक्षरा-जीमूतवाहन-स्मृतिचंद्रिका-पारिजात-श्रीकरकृत-मदनरत्न-कल्पतरु-रत्नाकर-वीरमित्रोदय-मैथिलवाचस्पति मिश्रकृत-इत्यादि और बहुधाग्रंथोंके कर्त्ताओंने नैयायिकमतकेअवलंबसे परस्पर एकनेदूसरेका खंडन और स्वकीयउक्तियुक्तिका मंडन सिद्धकियाहै-किसीने पहलेपिता और किसीने पहलेमाताकाअधिकारसिद्धकियाहै किसीनेइनसबसेविपरीत पितामाता दोनोंको बराबर बांटिलेना सिद्धकिया-इन्हीं तर्कवादोंके प्रभावसे यहभेद प्रकटहुआ है कि जिनदेशोंमें जिनग्रंथोंकास्वीकार संभवहुआ उनमेंउन्हींकी व्यवस्थाभी प्रामाण्य

ठहरी-बंगालेमें अद्यापि उन्हींग्रंथोंकी व्यवस्थासे वर्त्तावाकियाजाताहै कि जिनमें पहले पिताकाअधिकारहै-बंगालेकेसिवाय अन्यदेशोंमें उनग्रंथोंकी प्रधानता समुझीजातीहै कि जिनमेंमाता का अधिकार पहले मानागया इसीहेतुसे इनवाराणसी आदिदेशों में कथनमात्रकी अपेक्षा पहलेमाताका अधिकार समुझाजाताहै परन्तु वर्तावा ऐसाइन देशोंमेंभी नहीं है कि माता पहलेधन पातीहो किंतु पिताही अधिकारीपहलेहोताहै और यहीवात न्यायात्मक है इसलिये इस मर्यादा परिपाटी में भी पहले पिताकाही अधिकार कल्पितहोगा-तथाच सदाशिवः(मृतस्योर्ध्वगतंवित्तंयथाप्राप्नोतितत्पिता। जनन्यपितथाप्नोतिपतिहीनाभवेद्यदि-स्वःप्रयातुःस्थितेतातेतथामातरिकालिके।पुंसोमुख्यतरत्वेनधनहारीभवेत्पिता)अर्थात्-शिवजीकहते हैं कि मृतपुरुषका धनजो ऊपरको चढ़गयाहो तिसको जैसे उसकापिता पायाकरता है तैसेही जननी भी पाती है परन्तु जोपतिसेहीन विधवाहो तौपासक्तीहै-एवंजहां स्वर्यातूका पितामाता दोनोंजीतेहों तौ फिर पुरुषकी मुख्यता विशेष होने के हेतुसे पिताही धन हरे-किंतु-यद्यपि विज्ञानेश्वर ने मिताक्षरा में कुछ पक्षलेकर माताका अधिकार पहलेकहा है तथापि नैरन्तर्य भावसे माताका अधिकार पहलेहोना निपटअसंगतहै पर किसीएक विरलीदशामें कहसक्तेहैं कि माता पहलेपावे और वह दशा वीरमित्रोदय के अनुसार लेनीयोग्य है अर्थात् वीर मित्रोदय ने मातापिता दोनोंके गुणागुणसे परस्पर एक विकल्प बड़ी उत्तमतासे दर्शायाहै और उसीको न्यायात्मकजानकर आधुनिक लेखकने स्वीकारकियाहै-यद्यपि यहां क्रम उच्छिन्नहोजाने के भयसे कुछ निदर्शन उसकानहीं रक्खाजासक्ताहै (पर) व्याख्या उसकी व्यौरेवार इस अधिकोक्तिके पीछे शेषपाठ में दर्शाईजायगी विचार उसका यहां भी आवश्यकहै-मर्यादापरिपाटी संपादकने स्वकीयसंमत यही माना है कि जैसा योगीश्वर याज्ञवल्क्यने (पितरौ)यहपद सामान्यभावसे उच्चारणकिया इसमें पहलेपीछेका कुछ नियमनहीं है न दोनोंको विभागकर लेनेका कुछ नियमहै इसलिये मातापिता दोनों एकसाथ मालिकहोते हैं परन्तु इसकायह सिद्धांतनहीं है कि साझियां किसी भांति दोनोंकानाम राजपत्रों में चढ़ायाजाय किन्तु पुरुषकी प्रधानता मात्र से नाम केवल पिताकाही सूचितहै और माता उसकेअर्द्धांगित्वसे स्वतःमालिकसमुझी गई(और) इसीसे पहिला पिछलाक्रमभी स्वतःसिद्धहै किपिताके मरजाने पीछे माताका नाम भी प्रवेशितहोना आवश्यकहोगा इससेपिताका अधिकार पहले निश्चितहुआ और यही बात अग्रोक्त वृहद्विष्णुके वचनसे प्रत्यक्षहै यथा (अपुत्रधनंपत्न्यभिगामि, तदभावेदुहितृगामि: तदभावेदौहित्रगामि, तदभावेपितृगामि; तदभावेमातृगामि, तदभावेभ्रातृगामि; तदभावेतत्पुत्रगामीत्यादि) अर्थ इसका सुगमहै (इस वचन में दौहित्रोंका अधिकार यद्यपि विष्णुने स्पष्टनहीं लिखाथा परन्तु क्रम उच्छिन्न होजाने

के भयसे ग्रन्थकारों ने मिलादिया इस्मे भी कुछ दूषणनहीं समुझना क्योंकि विष्णु ने भी दुहिताओं के अन्तर्भाव में दौहित्रों को रखलिया है)—इस वचनका अनुक्रम उनसब ग्रन्थों ने स्वीकार किया है कि जिनमें पिताका अधिकार पहले मानागया-इत्यादि बहुधा नियमों के प्रावल्य से पिताके मरजाने पीछे यद्यानिपट न होनेमें भी माता धनकोपावै (इतिपितुर्मातुश्चाधिकारविचारः) पितामाता दोनों के न होने यद्वा धन पायकर मरजाने में उस धनीके भैये धनको पातेहैं और भाइयों के भी अधिकार की व्यवस्था यद्यपि बहुधाउलटी सुलटीनियत हुईहैं अर्थात् मनु, देवल, वृहस्पति, शंख पैठीनसि आदि स्मृतियोंमें परस्पर बड़ाविरोध पायाजाताहै किंतु किसीने पितामाता सेभी पहले भाइयोंका अधिकार कहाहै; किसीने बड़ीदूरजाकर दादी, दादाके पीछेउन-का नियम दर्शायाहै, किसी किसीने बीचमेंभी रक्खाहै इसभांतिके प्रत्यक्ष विरोधों की शांतिभी कल्पतरुकार, वीरमित्रोदय आदि संग्रह ग्रंथकर्ताओंने प्रकल्पित करी है—यद्यपि उनबातोंकी व्याख्यासे अपेक्षा संप्रति नहींहै क्योंकि उनसे अनवस्था संभव होनेके हेतुसे उनवचनोंका त्यागभाव निश्चितहोकर केवल योगीश्वर याज्ञवल्क्य और बृहद्विष्णुकेहीदोवाक्यों से व्यवस्था सिद्धहोतीहै इन्हीं के दर्शायेहुये क्रमके अनुसार पिता माताकेपीछे भैयेपातेहैं और यहीक्रम न्यायात्मक समुझाजाकर सर्वत्रसंग्रहग्रंथों में स्वीकार हुआ है कि जिसकी परिपाटी सभीदेशों में समानहै और यही व्यवस्था नीचे वर्णन होगी (पर) तौभी अनंतरोक्त पैठीनसि आदि वचनोंका विरोध शांत होनेके प्रकारसे व्यवस्था शेषपाठ में इसहेतु से दर्शाईजायगी कि विरले अवसर में उन वचनोंसेही न्यायसंभवहोताहै अर्थात् उन वचनोंकोभी निपट निरर्थक नहींसमुझना-पिता माताके नहोनेमें-मृतधनीके भ्राता जो धनपातेहैं तिनमेंपहले सोदरभ्राता पातेहैं और सोदरके न होनेमें वे असहोदरभी कि जो उसधनीके सजातीहों भाईका धनपातेहैं और जितने एकप्रकारके अधिकारी भ्राताहों उतनेही समभागकरिकेबांटि लेतेहैं-कदाचित् सगे और सौतेले भाई दोनों भांतिके उपस्थित हों तब सौतेलेनहीं पातेहैं क्योंकि सौतेलेभाई धनीके उनतीन पुरुषोंकोही पिंडदान करैंगे कि जो धनी के और इनकेभी बाप दादा परदादामात्र एक हैं अर्थात् नाना, परनाना; सरनाना इनके भिन्नहैं इसलिये ये सौतेले भाई निज अपने नाना, परनाना, सरनानाको भिन्नात्मक पिंडदेवेंगे और सगेभ्राता जो उसधनीका धन पावेंगे तौ उसके छः पुरुषोंको अर्थात् बाप, दादा, परदादा और नाना, परनाना, सरनाना इनसबकोंपिंड देवेंगे किन्तु सहोदर होनेके हेतुसे जिनपुरुषोंको वह आपपिंड देसक्ताथा उन सबही में सहोदर का अधिकार उसके तुल्यहै इसहेतुसे सहोदर के होनेमेंअसहोदर नहींपातेहैं (सो) यहबातएक निदर्शनमात्रसे दर्शाईगई क्योंकि बिरले ग्रंथकारोंने ग्रंथका वैचित्र्य औ सुखबोध्य

नहींपाते क्योंकि निपटभ्राताओं के अभावमें भतीजोंका अधिकारकहागयाहै-तथापि एक उसप्रकारके भतीजेभी भ्राताओंके होतेहुये अपने पिताका अंश ऐसेधन में से पातेहैं कि जिनकाबाप ऐसे धनमें स्वत्व पहुँचनेकेपीछे और धनकाभाग होनेसेपहले मध्यमकालमें मरजाय या संन्यासी होजाय-आशय इसका यहहै कि उस निपूतेभाई के मरनेपर उसके धनमें जितनेभाइयों का स्वत्वऊपरली मर्यादों के अनुसार पहुँचा हो और जबतक धनका भागनहीं होनेपाया उन्हींअधिकारी भ्राताओंमेंसे एक और भ्रातामरजाय या संन्यासी आदि होजाय तौ उसभ्राताके बेटे ऐसे धनमेंसेनिज पिता काही भागउसदशामें पासक्तेहैं जबउसधनका भाग उनके चचाकरना चाहैं या सामान्य मिश्रीभूत रखनाचाहैं तबतक उनका भी सामान्य मिश्रीभूत भाग रहेगा (पर) ऐसे किसीभाईके बेटे अपने बापकाभी भाग नहीं पाते हैं कि जिनका बापनिजनिपूते भाईसे पहलेही मरचुकाहो क्योंकि उसका स्वत्व ऐसेधन में नहींपहुँचने पायाथा इसलिये उसके बेटे भी अधिकारी नहीं हैं-अन्यथा-जोभाई निपट न हों तौ भतीजे सभी मिलकर तुल्यात्मक भागपातेहैं अर्थात् फिर चाहे किसीभ्राताका एकही और किसी के दोतीन बेटेहों तौ इस दशामें पैतामह धनके तुल्य इनको बापोंका विभाग नहीं मिलता किन्तु यहां चचाके धनमें सभी भतीजेमात्र एकसे अधिकारी हुआकरतेहैं-परन्तु-सगे और सौतेलेकाभेद या संसृष्टी असंसृष्टीका भेद जैसा भाइयों में प्रदर्शित हुआ तैसाही भतीजोंमें भी होताहै अर्थात् जो सगे और सौतेले कोई दोनोंभाँतिके भाई निपट न हों तौफिर सोदर भाईकेबेटे पहलेपावेंगे और उनमेंभीजे कोईऐसेधनी में संसृष्टीहों वेहीपहले पावेंगे संसृष्टी सोदर भ्रातृपुत्रोंके न होनेमें असंसृष्टीभी पावेंगे जो सोदर भ्राताके बेटेहों उनकेभी न होनेमें असोदर भाईके बेटे धनको पावेंगे जो धनीमें संसृष्टी रहतेहों इनकेभी नहोनेमें असोदर भाईके बेटे जो धनीमें संसृष्टनहीं रहतेथे वे पावेंगे-कदाचित् सौतेलेभाईके बेटे उसमें संसृष्ट और सगेभाईकेबेटे उससे भिन्न रहतेहों तौ इसदशामें परस्पर दोनों भाँतिके भतीजे रिक्थी होते हैं और सभी को तुल्यात्मक भाग मिलता है (इतिभ्रातृपुत्राणामधिकारविचारः) यहांतक भाई और भतीजोंकी व्यवस्थाजो कुछ कहीगई सो मिताक्षरा वीरमित्रोदय आदि बहुधा ग्रन्थों के अनुसार वाराणसी मिथिला आदि और भी सर्व्वत्र सम्प्रति एकसी नियमात्मकवर्त्ती जाती है और इसीके अनुसार इन सब देशों में भतीजों के अभाव में दादा दादीको आदि लेकर गोत्रज पर्य्यन्त निज निज अवसर के अनुसार धनको पाते हैं कि जिनका ब्योरा नीचे लिखेंगे अर्थात् भतीजों के न होने में भतीजों के पुत्रों का अधिकार नहीं माना गया क्योंकि (पितरौभ्रातरस्तथातत्सुतागोत्रजाबन्धुः) योगीश्वर के इस मूलवाक्य में भतीजों के पश्चात् उनके पुत्रों का कुछ चर्चा नहीं

आयाहै और यही, कारण इन सब देशों तथा ग्रंथों में प्रामाण्य समुझागया है और आशय इसका यहहै कि भाइयोंके अभावमें भतीजोंने जो भाग अपना ऐसे धनमें से पायाहो तिसको निस्संदेह उनके बेटे बल्कि पोते आदि अपने पिता द्वारा पावेंगे परन्तु जो उस धनीकेही मरते समय भतीजा कोई एकभी न हो तौ फिर उनके पुत्र यद्यपि विद्यमान हों पर ऐसे धनको नहीं पाते हैं-यह नियम केवल बांगदेश छोड़कर सर्वत्र सबसामान्य देशोंमें समुझना-किंतु-बंगालेमें यह और विशेषता है कि दायक्रम संग्रह आदि कुछ ग्रंथोंके अनुसार भतीजोंके न होने में उनके पुत्रभी इसधनको पाया करते हैं और उसी ढंगसे पाते हैं कि जैसा ऊपरभाई और भतीजोंका ब्यौरा सगे सौतेलेके भेदसे दर्शायागया किंतु इस्से आगे फिरभतीजोंके पोता उसबंगालेमेंभी नहींपाते हैं-तथाच-दायक्रमसंग्रहग्रंथोक्तविशेषतेयम् (भ्रातृपुत्रस्याभावेभ्रातृपौत्रस्याधिकारः धनिपितृमातृपिंडदातृत्वात्सापिण्डत्वाच्च-भ्रातृप्रपौत्रास्तुनाधिकारिणः धनिपितुःपंचमत्वेनउपकारकत्वाभावात्) अर्थात् श्रीकृष्णतर्कालंकारने यहलिखाहै कि भाइयोंके बेटे यदि न हों तौ उनभाइयोंके पोतेपावें क्योंकि धनीके पितामाताको पिंड देनेके अधिकारी वेभीहैं सिद्धांतइसका यह कि भाईकेपोते अपनेपरदादा परदादीका श्राद्धतौ अवश्यही किया करैंगे और वेही मरे धनीके निज पिता माता थे तौ इस्से उसी धनीका उपकार ठहरा और इनकेभी न होनेमें भानजे धनको पाते हैं भानजोंके न होनेमें भाईके दौहित्र धनको पाते हैं यह बांगदेशकी मर्यादाहै अर्थात् भाईके पोता और बापके दौहित्र और भ्राताकेभी दौहित्र जो नहों तब उस दशामें दादा दादी पासक्ते हैंसो यह व्यवस्था आगे बढ़कर लिखी जायगी-यहांपर-यह बात विदित करदेनी योग्यहै कि श्रीकृष्ण तर्कालंकारआदि जिनआचार्योंने भाईकेपौत्रोंका अधिकार सिद्धकिया तिनका संमत और विचार बहुत उत्तम और श्लाघ्य और न्यायात्मक है इसीलिये बांगदेशी विद्वानों ने उसका स्वीकार और प्रचार अंगीकार किया(किन्तु) हमारेवाराणसी संबंधी आदि देशोंके विद्वानों ने उसबातका यथार्थ निर्णय कियेविना भतीजेतक अधिकारमाना तिसकेपीछे उलटेलौटिकर विनाहेतु सूत्रकेही दादादादीमें चढ़गयेइतने बड़े गालित्यका हेतु केवल प्रमाद कहना सूचित नहीं बल्कि पहले किसी अवसरमें निरंकुश विद्वानों के स्पर्द्धारूप लक्षणके प्रभावसे यह ऐसा नियम निरक्षर लोगोंके ध्यानमें दृढ़तातक पहुँचाया गयाहोगा फिर जोबात प्रचारमें आगई उसका पक्षसबको करनापरा इसीहेतुसे अत्रत्य ग्रंथकारोंनेभी वहीनियम सच्चासमुझा जिसमें भाईके पोतेनहींपावें (और) सच्चासमुझि लेनेका प्रमाण उनके ध्यानमें यह आयाहै कि जैसे योगीश्वरने (तत्सुतागोत्रजाबंधुः) इसपदमें कुछ भतीजोंके पुत्रोंका स्पष्ट नाम नहीं रक्खाहै-परंतु जोऐसी बातोंकी तर्कणाके किसीयोग्य अधिकारीका अधिकार दूरकरना

कुछ न्यायात्मकहोतो इसप्रकारके औरभी वहुतेरेतर्क उपस्थितहैं(दृष्टांत)जैसे (पत्नी दुहितरश्चैवपितरौ) इसमेंभी योगीश्वरने दौहित्रोंका कुछनाम नहींरक्खा है इसलिये दुहिताओंके अभावमें पितरोंका अधिकार पहुँचताहै दौहित्रोंको नदेना खड़ाहोताहै बल्कि इसवचनकी अपेक्षा मैथिलदेशियोंने स्पर्द्धाके प्रयोजनसे दौहित्रोंका अधिकार नहींमाना है-कदाचित् मूलआशय वही ठीकहोता जैसामूल शब्दोंसे प्रतीत होताहै तौफिर एतद्देशी टीकाकारभी दौहित्रोंका अधिकार दूरकरते-ऐसेही भ्रातृपौत्रोंकी अ-पेक्षामें यदि मूलआशय यहीठीकहोता जैसा मूलशब्दोंसे प्रतीतहोताहै तौफिर बांग-देशी टीकाकारभी भ्रातृपौत्रोंका अधिकार दूरकरते-यद्यपि (देशाचाराः परिग्राह्याः) इत्यादि नियमके अनुसार निजनिज देशकी परिपाटी एकबड़ा प्रबलहेतुहै किजिसके आगे और कुछतर्कणाको अवकाश नहींमिलताहै परंतु देशाचारकी परिपाटीभी वही शुद्धहोती है जो किसीन्यायात्मक मर्यादाके अनुसारठीक पाईजाय-यहांपर-दायादोंका अधिकार सिद्धहोनेकी अपेक्षा एकगुरु लक्ष्यरूप यहीन्याय प्रबल है कि आसन्नतर सपिंड पहले यथाक्रमसे धनको पावैं और उनके निपट अभावमें सपिंडोंके सपिंड यथाक्रमसे पातेचलेजावैं सोइस प्रतिज्ञाके अवलंबसे कि जोधनीके समानोदकसमुझे जातेहों और इनसे पहले जो उस धनीके सपिंड समुझे जातेहैं तिनमेंभी यह बहुत बड़ाएक गुरुलक्ष्यरूप न्यायहै कि जबतक नीचेके सपिंड मिलसक्तेहों तबतकऊपर के सपिंडों को अधिकार नहीं पहुँचता है-यतः (अधोगामिषुवित्तेषुपुमान्ज्यायानध स्तनः। ऊर्द्ध्वगामिधनेश्रेष्ठःपुमानूर्ध्वोद्भवोभवेत्) इत्यादि बहुधा नियमों के अनुसार जबतक नीचेका सपिंड भाईकापोता विद्यमानहो तबतक ऊपरला सपिंड दादादादी क्योंकर अधिकारी समुझाजाय-और योगीश्वरने भी (तत्सुताः) इसबहुत्वके आ-शय सेही यह भाव दर्शित किया है कि भाईका पुत्रादिक बंश जो धनी का सपिंड समुझा जाताहो वह धनभागी कियाजाय तिसकेपीछे गोत्रजलोग यथाक्रमसे धनको पावैं (सो)यहगोत्रज शब्दभी सामान्यभाव से उच्चारण कियाहै और इसकी व्याख्या व्यौरासहित आगेआवैगी तब इसका आशय समुझा जायगा क्योंकि दादा और परदादातक ऊपरले वृद्धपुरुषभी उसधनी के सपिंड हैं परन्तु निचले सपिंडों में से भाईका पौत्र जबतक विद्यमानहो तवतक ऊपरले सपिंडदादा दादीका अधिकार कुछ न्यायात्मक नहीं है (इतिभ्रातृपौत्राणामधिकारविचारः) भगिनी पुत्रोंका अधिकार तथा भतीजीके पुत्रोंका अधिकार जैसा बांगदेशकीअपेक्षा ऊपर वर्णन हुआ सो इन देशोंमें अपेक्षा नहींरखताहै न रखनेकी योग्यतापाई जाती है(इतिपितृदौहित्राणांभ्रातृदौहित्राणांचाधिकारविचारः) वाराणसी, मिथिलाआदि इनसव देशोंकी अपेक्षा जो भतीजे के अभावमें गोत्रज लोगोंका अधिकार जैसायोगीश्वरके ही वाक्यसे मिताक्षरा कार-

मित्रोदय आदि कुछ ग्रंथोंने संक्षेपकर दर्शाया तिसका यथावत् यहीरूप है-कि-गोत्री कौन दादी और दादा आदि सपिंड और समानोदकभी.तिनमेंपहले दादीकोही धन मिलै तिस पीछे दादाको.दादाके अभावमें चचाओंको उनके अभावमें चचरे भाईभी यथाक्रमसे धनभागीहों-जबदादाकी संतानका अभावहो तौ फिर परदादी पावैंफिरपर-दादापावै. फिर उसके पुत्रपावैं.फिर उनपुत्रोंके पुत्रपावैं.जब इनकाभी अभावहोतौफिर इसीप्रकार सरदादीसरदादा को आदिलेकर एकएक पीढ़ी ऊपरको चढ़तेजाकरसात पीढ़ी तक सपिंडमानिकर धनका अधिकार समुझिलेना-कदाचित् ऊपरलीसातपीढ़ी काभी अभाव होतौ फिर उनके वादि चौदहपीढ़ी तक समानोदकसंज्ञा समुझकर इसी क्रमसे एक एक पीढ़ी ऊपरको चढ़तेहुये धनका अधिकार समुझलेना और इस चौ-दहका अनुकल्प एक यहभी है कि जहां तक ऊपरली पीढ़ियोंके जन्म संवंध औरनाम उनके यादहों तहांतक समानोदक समुझलेना अर्थात् किसीके चौदहके भीतरमेंही जन्मनामों की विस्मृति प्रकटहुई हो या किसीके चौदहसे अधिकभी कोईपीढ़ीके जन्म यादि चलेआतेहों तौ उसयादकीही अवधितक समानोदक समुझे चाहिये-यथाह वृ-हन्मनुः(सपिंडतातुपुरुषेसप्तमेविनिवर्तते। समानोदकभावस्तुनिवर्तैताचतुर्दशात्॥ज-न्मनाम्नोःस्मृतेरेकेतत्परंगोत्रमुच्यतेइति)जब-इनसमानोदकोंमें भी कोईधनका अधि-कारी नहीं पायाजाय तौफिर बन्धुलोग धनकोपावैं बन्धुकई प्रकारकेहोतेहैं तिनकीव्या-ख्या आगे वढ़कर लिखीजायगी-परन्तु-अपनेगोत्रियोंकी व्यवस्था जो यहइसीजगह लिखचुके तिसपर अच्छीतरह ध्यानरखकर निर्णय कर्त्तव्यहै कि जितना दायविभाग अवतक वर्णनहुआ यद्यपिसमुझने या समुझानेमें दुर्बोधवहभी था परयह गोत्रियोंकी व्यवस्था दायभागमात्रकीनाभिहै इसलिये सबसेकठिन व्यवस्था एकयहीहै और बहु-धा इसीव्यवस्थाकी अपेक्षाझगड़ेशीग्घ्रनहीं निपटतेहैं और इसीके निपटाराममध्येकभी न्याय और कभी घुणाक्षरन्याय और अन्यायभी होजाताहै-क्योंकि-इसव्यवस्था का वीजमात्र योगीश्वरने (गोत्रजाः) यह इतना पद उच्चारण किया और विज्ञानेश्वर आदि आचार्यवर्य्य व्याख्याकारोंने दादीदादासेलेकर चौदहपीढ़ीतक इसपदकाव्या-ख्यानकिया जैसा अभीऊपर लिखचुकेहैं परइतने व्याख्यानसे भी आद्योपांत इसकी सिद्धिनहींहोती है क्योंकि उक्तआचार्योंने केवल उदाहरणमात्रसे नमूना दर्शितकिया हैकुछ सांगोपांग उसकारूप नहींदर्शायाहै कि जिस्से द्रष्टालोगोंका भ्रमदूरहो इसीक-ठिनाईके हेतुसे उनग्रंथों के व्यवहर्त्ता विद्वानोंनेप्रायःउक्ताचार्यों के उच्चारणमात्रपरही आग्रहकिया कि उनकेमुखसे यहीनिकसाथा अव इस्से अधिकहमकुछ नहीं मानिसक्ते हैंइत्यादि प्रकारोंसे जोवात वहुधा प्रामाण्यलोगों के आरूढ़बुद्धिहोजानेसे प्रमाणमें आगई तिसको हाथकीसीरेखा समुझिलेते हैं-इन्हींकारणोंसे संप्रति देशांतरभाषामें

जो ग्रंथ धर्मशास्त्रके अनुवादरूप संग्रहकियेगये उनमेंभी वहबात नियमात्मक समुभीजाकर लिखीगई है किजैसा अभी ऊपरगोत्री लोगोंका क्रम दर्शितकिया गयाथा क्योंकि भाषांतरके संग्रहीता विद्वज्जनोंकी जिज्ञासुता मध्ये यातो एतद्देशी ग्रंथोंकालेख या एतद्देशी विद्वानोंका संदर्भमात्र दोही बात प्रमाणकारक थीं तिनसे जैसादेखा जैसासुना संग्रह कियाहोगा-यथार्थसे -गोत्रीलोगोंकी व्यवस्था तद्रूपतबतक नहींजानी जासक्तीहै कि जबतक सपिंडताका आकार आद्योपांत प्रत्यक्षनहीं देखाजाय इसलिये पहलेउसीका आकार दर्शितकरते हैं-(अथसापिंड्योदाहरणं) दायादोंका न्यायविस्थत्वसिद्ध होनेकी सपिंडता सात पुरुषोंकी अवधितक जोविख्यातहै वह शारीरिक जन्मसूत्रके अनुसार नीचे ऊपरमिलकर सातदेही मानेजाते हैं (दृष्टांत) जैसे धनी के बापदादा परदादातक ऊपरलेतीन और बेटा, पोता, परोतातक निचले तीनपुरुष और बीचमें सातवांधनी आपहै-इनमेंसे उसधनीकेतीनपुरुष ऊपरलेसपिंड और तीनपुरुषनिचले सपिंडहोते हैंऔर जबतक उसके निचलेतीन सपिंडोंमेंसे कोईएकभी जीताहो तबतक ऊपरले सपिंडउसकाधनहरनेके अधिकारी नहींहोतेहैं-यथाहसदाशिवः(दायेतूर्ध्वतना ज्ज्यायान्संबन्धोऽधस्तनःशिवे। अधऊर्ध्वक्रमादत्रपुमान्मुख्यतरः स्मृतः॥तत्रापिसन्निकर्षेणसंबन्धीदायमर्हति) अर्थइसका दायभागकेप्रारम्भमेंहोचुकाहै देखो परिच्छेद ४३ में (परन्तु) जबनिचले सपिंडोंका अभावहोजाय तौफिर ऊपरले सपिंड धनकोपाते हैंकि जैसाब्यौरा (पत्नीदुहितरः)इत्यादि दो श्लोकोंसे यहांतक वर्णनहोता चलाआता है कि बेटापोता परोताकेन होनेमें ऊपरला सपिंड जो पिता जीताहो तो उसकोधन का अधिकार है और उसकेद्वारा उसकी द्वितीय संतान भी अर्थात् धनीकेभाई भतीजे आदि पावें जैसा ऊपरवर्णनहोचुकाहै कि (पितरौभ्रातरस्तथा-तत्सुताः) और इसी की सर्वथा व्याख्याअबतक होतीरही तौ इसहिसाबसे ऊपरले तीन सपिंडोंमेंसे एक सपिंडका निपटारा सब होचुका किंतु दादा परदादा यह दोसपिंड अभीशेषहैं तिनका ब्यौरा इसी (गोत्रज) शब्दकी व्याख्या द्वारा वर्णनहोगा क्योंकि गोत्रशब्द सामान्यहै उसके उच्चारणमें सपिंडभी समुझे जासक्ते हैं कि जिनका ब्यौरा कहना शेषरहाहो इसीलिये पिताकी द्वितीय संतानकेभी निपट न होनेमें दादाका अधिकार और उसकेद्वारा उसकी संतानभी अर्थात् धनीके चचा और चचेरे भाई आदि पावें-इसीप्रकार दादा की संतानका अभाव होनेमें परदादाका अधिकार और उसके द्वारा उसकी संतानभी अर्थात् धनीके चचेरे दादा आदि गोत्री लोगधन पावें यह व्याख्या उसी (गोत्रज)शब्दसे संसिद्ध होती है जो मूलवाक्यमें योगीश्वरने उच्चारण कियाथा-परदादा तक सपिंड कहेगये तिनके उपरांत सरदादाको आदि लेकर तीनपुरुष ऊपरले धनीकेसमानोदक होते हैं इसीप्रकार धनीके निचले तीनपुरुष परपोताके उपरांत सरपोताको

आदि लेकर समानोदक होते हैं समानोदकोंको मतांतर संज्ञा भेदसे (सकुल्य) भी कहते हैं यहांपर यह बातभी प्रत्यक्षहै और याद रखने योग्यहै कि जो लोग धनीके समानोदक होंगे वेही धनीके सपिंडोंके सपिंड होंगे-और-सपिंडभी सरल सपिंड वक्रसपिंड के भेदसे दोभांतिके होतेहैं (दृष्टांत) जैसे सातपुरुषोंकी अवधितक सपिंडताका लक्षण ऊपर अभी जो लिखचुके सो सामान्यभावसे सूधाजन्मसूत्र क्रम दर्शाया गया वेही लोग परस्पर सरलसपिंड होते हैं और वक्रसपिंड वे कहलाते जिनका तिर्यग्जन्मसूत्रहो (दृष्टांत) जैसे धनी और धनीका बाप भाई भतीजा आदिभी परस्पर सब सपिंड यथाक्रमसे समुझे जाते हैं इसीमें द्वितीय (दृष्टांत) जैसे धनी और धनीका बाप दादा चचा चचेरेभाई आदिभी परस्पर सबसपिंड यथाक्रमसे समुझे जाते हैं इसीमें तृतीय(दृष्टांत)जैसे धनी और धनीका बाप दादापरदादा चचेरादादा पचेराचचा पचेराभाई आदि परस्पर सातपुरुषोंकी अवधितक सपिंड होते हैं और सातके उपरांत वाले धनीके समानोदकहोजायँगे-यहांपर विशेषता यादकरनी योग्यहै कि जैसे सरल सपिंड नीचे ऊपर मिलकर सातहुये थे तैसा डौल वक्र सपिंडोंमें नहीं है अर्थात् वक्र सपिंड धनीको आदि लेकर जहां तक सातपुरुषोंकी अवधि पहुँचै तहांतक परस्पर जन्मसूत्रके अनुसार सब सपिंड समुझे जाते हैं कुछ नीचे ऊपरका भेद इनमें नहीं रहता इस व्याख्याके तद्रूप समुझे जानेको सापिंड्य यंत्र कहीं आगे बनकर दर्शित होगा- इतिसापिंड्योदाहरणम् (अथगोत्रजशब्दव्याख्यानुसारेणपितामहादीनांसपिंडानामधिकारः) पिताकी संतानमेंसे भाईका पोतातक न हो तब इनदेशों में दादाका अधिकार योग्यहै और दादाके न होनेमें दादीका और दादी के अभावमें चचा पावैं चचाके न होनेमें चचेरेभाई फिर उन भाइयोंके बेटे और बेटाओंके अभावमें पोते पावैं-इनकेभी नहोने में धनीके परदादाका अधिकारहै परदादाके अभावमें परदादी का उसके भी अभावमें चचेरे दादाका अधिकारहै उसकेभी नहोनेमें पचेरे चचाका अधिकार है फिर उन चचाओं के बेटे पोते परपोतेतक अधिकारी यथाक्रमसे होंगे यद्यपि ऐसे चचाके पोते और परपोते ठेठ धनीसे आठवें नववें पदपर हुये और सपिंड केवल सात पद तक होतेहैं परंतु सपिंडोंके नहोनेमें समानोदक भागी निश्चित हैं इसलिये ऐसे चचा के पोते और परपोते उसी धनीके समानोदक होकर अधिकारी हुये किन्तु यहाँसे सपिंडोंकीअवधि निपटव्यतीतहुई और समानोदकोंकाप्रारंभहुआ जिसका ब्यौरेवार विस्तार यहाँनीचे वर्णन करेंगे (इतिपितामहादीनांसपिंडानामधिकारविचारः) उक्तव्यवस्थामें यह द्विविधारही जातीहै कि अभी ऊपर सगेभाई के पोतातक अधिकार कहकर छोडदिया और वह पोता ठेठ धनीसे पाँचवें पदपर गिनतीहै तो फिर छठा सातवां दो सपिंड क्योंकर छोड़गये अर्थात् सपिंडता के हिसाबसे सगेभाईका परपोता

सरपोतातक अधिकारी होना संभवथा बल्कि एतद्देशी बिरले ग्रंथकारों ने सगे भाईके बेटातकही अधिकार निश्चित रखकर सगेभाईके पोताको भी दूरकिया तिनके मतसे तीन सपिंड दुर्भागी ठहरे तिसका क्या हेतुहै-समाधान इसका यहीहै कि रिक्थित्वके अधिकार मध्ये जैसे एक सपिंडता परम कारकहै और उसके बीच फिर आसन्नतरता भी अभिव्यञ्जकविख्यातहै तैसेही उपकाराधिक्य भी विशेषकारकहै और उसकाकोई नियम निश्चयात्मक एक नहीं है कि अमुक प्रकारका उपकारहो और यह भी नियम नहीं है कि पहले या पीछेहो किन्तु इसमें यह सिद्धांतहै कि या तौ धनहर्तासे धनीका उपकार कुछ आगे को संभाव्य समुझाजावै कि यह उसका धनपाने पीछे अमुकामुक भाँतिका उपकार किया करैगा सो यहबात बहुधा नीचेके सपिंडों में संभाव्य होतीहै अथवा कहीं यहबात देखीजातीहै कि पहलेसेही धनीका उपकार बहुधा धनहर्ता करतारहाथा इसलिये उसको धनहरनेका अधिकार अब यथोचित प्राप्तहुआहै यहबात प्रायः ऊपरले सपिंडों में समुझी जातीहै-इसीलिये यद्यपि सपिंडताके अनुक्रमसे भाई के पोता उपरांत परपोता सरपोता तक भी अधिकारी होसक्तेथे क्योंकि वेभी निचले सपिंड हैं कि जो ऊपरलोंकी अपेक्षा उत्तम समुझेजाते हैं परंतु धनीसे लेकर छठेसातवें पदपर जाटिकनेसे बहुत दूरी अंतर होकर आसन्नतरता उनमें नहींपाई गई और नकोई ऐसा उपकार उनसे समुझागया कि वे आगेकोही धनीका उपकार कुछ करसकेंगे इसलिये उनके सन्मुख धनीके दादामें अधिकार इसहेतुसे पहुँचायागया कि यद्यपि दादा ऊपरला सपिंडहै तथापि उसमें दो तीन गुण यह उत्तम समुझेगये हैं कि प्रथम तौ तीसरे पदका सपिण्ड इस्से धनीका आसन्नवर्ती है दूसरे उसने धनीका पालन पोषण आदि बहुत कुछ उपकार पहले बाल्यभावसेही कियाथा तीसरे दादा का धन भी पिताद्वारा होकर धनीको मिलताहै यह सबसेबड़ा उपकारहै इसलिये द्विविधाखड़ीहोनेका अवकाश इसमेंनहींहै-परदादाकी सन्तानवाले सपिण्डोंकाअधिकार ऊपर कथनहोचुकाहै उनकेसाथ अधोवर्त्ती दो समानोदक भी आचुकेहैं अब उनकेउपरान्त ऊपरले समानोदकोंमें से परदादाका बाप सरदादा धनकाअधिकारी पहले होसक्ताहै परन्तु यहकहना निपट असंगतहै कि सरदादा धनकोहरै क्योंकि किसी मरेधनीका सरदादा जीताहोना सम्भव नहींहै बल्कि परदादा जिसका अधिकार ऊपरकहागया वहभी प्रायः धनहरनेके समयतक जीतानहीं रहताहै पर उसके अधिकारका सम्पादन करना केवल इसहेतुसे कि जन्मसूत्रके अनुसार जिस जिस पुरुषकेद्वारा धन उतरताहै उसी उसकेद्वारा ऊपरको चढ़कर उसकी सन्तानोंमें पहुँचताहै अर्थात् अब सरदादाकी सन्तानवाले समानोदक यथाक्रमसे धनकोहरेंगे कि जो जो उनमें जीतेहों-समानोदकभी सातऊपर सात नीचे मिलकर चौदह पदीतक

विख्यातहैं और यद्यपि धनी बीचमें होनेसेपंद्रह संख्या होजातीहैं याविरले लोगधनी

नरदादा,
तरदादा,
करदादा,
सरदादा,
परदादा,
दादा,
बाप,

धनी

बेटा,
पोता,
परोता,
सरोता,
करोता,
तरोता,
नरोता,

को मिलाकर तेरह संख्या निश्चित करतेहैं परकहनेमें चतुर्दशमात्र आतेहैं और इनमेंभी सपिंडोंकीसीभांति सरलजन्मसूत्र और बक्रजन्म सूत्रके भेद से दोभांति हुआकरती हैं अर्थात् सूधेजन्मसूत्र के समानोदक जो इस यंत्र में उपस्थितहों वेहीहुआकरतेहैं औरवक्रीजन्म सूत्रके समानोदक सरदादा आदि ऊपरले तीनचार पुरुषोंको भिन्न भिन्न आदि लेकर निजनिज उन्हीं की संतान वाले चौदह २ पुरुषकी अवधि तक समानोदक मानेजाते हैं— तिनके अधिकारका(दृष्टांत)जैसे प्रथमसरदादाका अधिकारहै उसके न होने में उसीके बेटेका अर्थात् धनीके परदादाके भाईका फिर उसके बेटापोता परोता आदि चौदह शाखातक सूधेक्रमसे नीचे गिनते चलेजाओ जहां तक चौदह पीढ़ी पूरीहोजायँ तहांतक धनका अधिकार बनारहताहै इसीप्रकार फिर ऊपरको जाकर सरदादाके बापसे प्रारंभकिया और एकके अभाव में दूसरेका अधिकार निश्चितकरतेहुये चौदह शाखातक अवधिपूरीकरी और फिर उलटे ऊपरको जाकर सरदादाके दादासे प्रारंभ किया और उसीक्रम से चौदहशाखा तक अधिकारकी अवधि पूरीकरी और फिर उलटेऊपरको आकर सरदादाके परदादासे प्रारंभकिया और उसीक्रमसे चौदहशाखा तक नीचेको उतरतेहुये अंत्यसमानोदकोंका अधिकार पूराकर दिया तिनकेउपरांत केवल गोत्रीमात्र कहलातेहैं अर्थात् चाहेइन्हींकी संतानमेंसे निचलेहों या ऊपरले उक्तपुरुषोंके उपरांत सरदादाके दादाकावाप आदि कोई और तिनकी संतानमें से जे कोईहों तिनका अधिकार धनसे हटजाताहै किंतु ऐसे गोत्रियोंके होतेहुये भी बंधु लोगोंकाअधिकार खड़ाहोजाताहै यह नियम केवल वाराणसी संबंधीआदि देश विभागोंकी अपेक्षामें संसूचित है-यद्यपि-योगीश्वर के उच्चारण कियेहुये (गोत्रज)शब्द का सामान्य अर्थ लगानेसे चौदहपीढ़ीके उपरांतहो तौभी उसीगोत्रका सगोत्रीहुआ करताहै तथापि ऐसे गोत्रियोंमें से सपिंडता और सोदकता निकलजानेसेबहुत दूरी अंतर होकर प्रायः उपकारोंका श्लेष जातारहा इस्से इनके सन्मुख धनीके बंधुलोग यद्यपि अन्यगोत्री हुआकरते हैं परउनमें उसी धनीकी सपिंडता और आसन्नतरता बनी रहने से उपकाराधिक्य समुझाजाताहै इसलिये वेहीबंधुलोग अवधनभागीहोंगे (इसव्यवस्था की निर्मलता और दृढ़तापर ध्यानरखकर जिज्ञासु लोग इसअधिकोक्ति पीछे शेषपाठमें भी इसीके न्यूनांग लक्षण देखें ॥ इति गोत्रजशब्दव्याख्यान संदर्भेणवृद्धप्रपितामहादिसमानोदकानामाधिकारविचारः (अथबंधूनामधिकारः) बंधु या बांधव शब्द यद्यपि पिता माता भ्राताआदि अपने ज्ञाती और गोत्रियों का भी

वाचकहै परन्तु इनसबका दायऊपर वर्णन होचुकाहै इसालिये अब इसबंधु शब्द से वे बान्धव लिये जायँगे कि जो कोई अपने सगोत्रीके उपरांतभिन्न गोत्रीलोगसंबंधी होकर दायके अधिकारी समुझे जातेहों-सो यह बंधु तीन प्रकारके होतेहैं १ अपने बंधु२ पिताकेबंधु३ माताके बंधुयथाक्रमसे पूर्व पूर्वके अभावमें पिछले पिछले अधिकारी किये जायँगे अर्थात् प्रथम तौ निज धनीकेही बंधु किन्तु फुफेरे भ्रातामौसेरेभ्राता ममेरे भ्राताधनके अधिकारीहैं परइनमेंभी प्रथम फुफेरा फिर मौसेरा फिर ममेराभाई यथाक्रमसे पूर्वपूर्वके अभावसे पासकेंगे-इन तीनोंके न होने में धनीके पिताके फुफेरे मौसेरे ममेरे भाई यथाक्रमसे पूर्व पूर्वके अभावसे पासकेंगे-इनके भी न होने में धनी की माताके फुफेरे मौसेरे ममेरे भाई यथाक्रमसे पूर्व पूर्व के अभावसे धनभागी किये जायँगे-यथोक्तम् (आत्मपितृष्वसुःपुत्राआत्ममातृष्वसुःसुताः । आत्ममातुल पुत्रा श्चविज्ञेयाआत्मबान्धवाः १ पितुःपितृष्वसुःपुत्राः पितुर्मातृष्वसुःसुताः । पितुर्मातुलपुत्राश्चविज्ञेयाःपितृबान्धवाः २ मातुःपितृष्वसुःपुत्रामातुर्मातृष्वसुःसुताः । मातुर्मातुलपुत्राश्चविज्ञेयामातृबान्धवाः ३) अर्थ इनका यही है जो अभी ऊपर लिखा गया-यह वन्धुओंकीव्यवस्था वाराणसी सम्वन्धी आदि देशोंकी विख्यात है किन्तु बंगालेकीव्यवस्था आगेबढ़कर वर्णनहोगी(इतिबंधूनामधिकारविचारः) वाराणसीसंबंधी आदि देशोंकी अपेक्षासे बन्धुओंके नहोनेमें धनीके आचार्यका अधिकारहै आचार्य के न होनेमें धनीके शिष्यका अधिकारहै उसकेभी नहोनेमें सब्रह्मचारीका अधिकारहै अर्थात्धनीकासहपाठी जिसकेसाथ धनीनेमिलकर किसी एकहीपाठशालामें एकही गुरुआचार्यसे कुछप्रसिद्धविद्या संग्रहकरीहो और संग्रहसिद्धहोजानेके पश्चात्भी परस्पर मैत्रीभाव चलाआयाहो तिसको धनमिलसक्ताहै अन्यथा सहपाठी बहुतहोते हैं कुछ सबकानियम नहीं है-इसीप्रकार शिष्यका अधिकार जो इस व्यवस्थामें दर्शाया गया सोभी केवल ऐसे शिष्यकी अपेक्षामें संसूचितहै कि जिसने शिष्यहोजाने के समयसेही गुरुके निकटस्थरहनेकी अवधितक निरन्तर उसकी योग्यसेवासे उपराम नहींकियाहो और विना गुरुकीआज्ञा यद्वा किसी परमकारणके उपस्थित होनेविना वियोगभी न रक्खाहो-यद्यपि-मूलवाक्यमें योगीश्वरने वन्धुओंके उपरान्तमें शिष्यका अधिकारदर्शितकियाहै आचार्यके अधिकारका उद्देश नहीं उच्चारणकिया तौभी (आपस्तंब) के वचनानुसार उसका अधिकार सिद्धहोताहै-तथाच(पुत्राभावेयःप्रत्यासन्नःसपिण्डस्तदभावेआचार्यःआचार्याभावे अन्तेवासी इत्यापस्तंबः) अर्थात्-आपस्तम्बने यह स्मृतिकही है कि पुत्रकेअभावमें जोकोई उसका निकटतर सपिण्डहो सो धनपावे पर जब सभीसपिण्डोंका अभावहो किन्तु वन्धुओंमें भी कोईसा सपिण्ड जिसका न हो तौ फिर आचार्यका अधिकारहै क्योंकि रिक्थत्वके अधिकारमध्ये उपकाराधिक्य

बड़ाहेतुहै और धनीकाउपकार बहुधा आचार्यसेभी होताथा क्योंकि (उपनीयददद्वेद माचार्य्यःसउदाहृतः) इसलिये पहले आचार्यका अधिकारहै तिसपीछे अंतेवासी नाम शिष्य पावै(और) मनुनेभी यहीअनुक्रम कहाहै कि (आचार्य्यःशिष्यएववा)इस में पहला पीछाभी प्रत्यक्षजानाजाताहै परन्तु इसीपदके अन्त्यस्थ (वा) शब्दको विकल्पार्थमें लेलेनेसे पहले पीछेका कुछनियम नहींरहता किन्तु चाहे दोमेंसे कोई पहले पावै सो इस विकल्पसे यह ध्वन्यर्थ पायाजाताहै कि जिसधनीका शिष्य और आचार्य दोनोंही उपस्थितहों तो इसबातकानिर्णयकरना आवश्यकहै कि उसधनीके जीतेजी तक अधिकतरउपकार उसका शिष्य या आचार्यसे होतारहाथा उसीको धनभागी करना योग्यहै क्योंकि ऐसे निर्णयके करनेविना यद्यपि आचार्यका अधिकार पहले गौरवतासे संसिद्धहोताहै तथापि इसविकल्पकाहेतु एकयही है कि शुश्रूषाआदि जो उपकार बहुधा शिष्योंसे बनिआते हैं तिनके सन्मुख ऐसेअवसरमें आचार्य्यकृत उपकार बहुधा तुल्यात्मक नहीं पायेजासक्ते हैं बल्कि इस गंभीरआशयके हेतुसेही योगीश्वरने आचार्यका अधिकार नहींरक्खा किन्तु बन्धुओंसे अनन्तर केवल शिष्य का अधिकार दर्शितकियाहै-यथा (गोत्रजोबन्धुःशिष्यः) क्योंकि शिष्योंकेउपकार और लक्षण प्रायश्पुत्रों के ही तुल्य हुआकरते हैं इसी से धनपाने के पश्चात् भी उपकार उनसे संभवहै अर्थात् शिष्योंकोभी पिंडदान करनेका अधिकार और अवकाश ठेठपुत्रोंके समान घंटाघोषहै (पर)विरला शिष्यबिरले अवसरमें कुपात्र समुझा जानेपर यदि उसके सन्मुख धनीके आचार्य्यका उपकार उत्तम समुझाजाय तौ फिर आपस्तंबके वचनानुसार पहिले उसीका अधिकार निश्चितहोगा इस्से मनुने निज वाक्यमें इनदोनोंकी अपेक्षा एक विकल्प दर्शित कियाहै कि जैसा अवसर देखाजाय उसी अवसरके अनुकूल व्यवस्था मानीजाय अन्यथा दोनों के उपकाराधिक्योंकी तुल्यता पाईजानेपरभी शिष्यमें स्वाभाविक एकउत्तमताहै कि(सांदृष्टिकन्याय)के अनुसार धनीका आचार्य्य पितृस्थानी समुझा जानेके हेतुसे ऊपरले तनका संबंधी है और शिष्य पुत्रस्थानी समुझा जानेके हेतुसे निचलेतनका संबंधी है और दायके अधिकारमध्ये ऊपरलोंसे निचले तनवालेलोग उत्तम समुझे जाते हैं-यथोक्तं (दाये तूर्ध्वतनाज्ज्यायान्संबंधोऽधस्तनःशिवे) (इत्याचार्यादीनामधिकारविचारः)इनकेभी न होने में उस भाँतिके सगोत्रीलोग अधिकारी होसक्ते हैं कि जोउस धनीके पूर्वोक्त चौदह पीढ़ीसे उपरांतमें सगोत्रमात्र समुझेजातेहों परंतु उनमें वेहीधनको पासक्तेहैं कि जो उसधनीके समीप अथवा ग्रामके निवासीहों और उसधनीसे कुछमैत्री आदि संसर्ग रखतेहों-इनकेभी न होनेमें उसभाँतिके सजातीलोग जो उसधनी के समान प्रवरहैं और उसकेही समीप अथवा ग्राम के निवासी होकर धनी से कुछ मैत्री आदि

संसर्ग रखतेहों धनको पासक्ते हैं सोयह नियम गौतमके अग्रोक्त वाक्यसे संसिद्ध है-यथा(पिण्डगोत्रार्षसम्बन्धा ऋक्थंहरेयुरितिगौतमः) इनसबलोगों के नहोने में उस भाँतिके श्रोत्रिय ब्राह्मणभी अधिकारी हैं कि जो उसधनीके ग्रामस्थ या संसर्गीहों सो यह नियम केवल ब्राह्मणकेही धनमें इस अग्रोक्त गौतमके वचनानुसार घंटाघोषहै-तथाच (श्रोत्रियाब्राह्मणस्यानपत्यस्यरिक्थंभजेरन्नितिगौतमः) श्रोत्रियोंके अभाव में औरभी विद्वान् और सामान्यविप्र यह धन हरनेके अधिकारी हैं-यथाहमनुः(सर्वेषामप्यभावेतुब्राह्मणाधनहारिणः। त्रैविद्याःशुचयोदांताएवंधर्मोनहीयते) अर्थात् मनु ने यहकहाहै कि पूर्वोक्त सबअधिकारियोंके नहोनेमें उसग्रामके त्रैविद्यविप्र जो जो दांत और शुचिहों धनकोपावें और वेही पिण्डदेवें तौ इसभाँतिसेभी धनीके श्राद्धादिक धर्मकी हानि नहीं होसक्ती है श्राद्धआदि कर्मकरनेका अधिकार धनभागी होनेके हेतुसे सामान्यभाव सबकोहुआकरताहै-यथाहसदाशिवः (येयस्यधनहर्तारोभवेयुर्जीवनावधि। दद्युःपिंडंतएवास्यशैवभार्य्यासुतंविना) अर्थात्-जे कोईलोग जिस के धनहारी हों वेही अपनी जीवन अवधिताईं उसके पिण्डदेवें पर जो शैवीपत्नी या शैवीपत्नीके पुत्रोंने धनपायाहो तौभी उनको पिण्ड देनेका अधिकारनहीं है-ऊर्ध्वोक्त सव अधिकारियोंके अभावमें उसदेशका राजाही धनहरनेका अधिकारीहै परन्तु ब्राह्मणका धन छोड़कर हरसक्ताहै-यथाहमनुः (अहार्य्यंब्राह्मणद्रव्यंराज्ञानित्यमितिस्थितिः। इतरेषांतुवर्णानांसर्वाभावेहरेन्नृपः) नारदनेभी ब्राह्मण धनका अपवाद दर्शित कियाहै-यथा(ब्राह्मणार्थस्यतन्नाशेदायादश्चेन्नकश्चन। ब्राह्मणायैवदातव्यमेनस्वीस्यान्नृपोऽन्यथा) परन्तु ब्राह्मण धनके सिवाय अन्य क्षत्रियादि सभी लोगोंकाधन इसदशामें केवल राजाही लेसक्ताहै अर्थात् उसमें ब्राह्मणका अधिकार नहींहै क्योंकि (इतरेषांतुवर्णानांसर्वाभावेहरेन्नृपः) यह मनुवाक्य इसमें प्रमाणहै-यद्यपि-पिंडदानका अधिकार उसकाधन हरनेके हेतुसे कुछ राजापर संसूचित नहींहै परतौभी उसकेधन में से वेतन देकर और्ध्वदेहिक आदिकर्म राजा कर्त्रन्तरसे करवानेका अधिकारीहै और पीछेभी उसधनीके अभ्यस्तवा कर्त्तव्य धर्म कर्मोका संरक्षण उसीधनकी वहुतायतके अनुसार करना सभीको सामान्यहै-यथाहसदाशिवः-(योयस्यधनहर्त्तास्यात्सतद्धर्म्माणिपालयेत्। संरक्षेन्नियमांस्तस्यतद्वन्धून्परितोषयेत्)-अर्थात्-जोकोईजिसका धनपावै किन्तुचाहे जीतेका या मरेकाधनपावै सो धनहर्त्ता उसके धर्मोका परिपालन करै और उसधनीके सव नियमोंका संरक्षण यथासम्भव यथा अवसर के अनुकूल सदाकरतारहै और उसधनीके वन्धुओंका भी पालन और परितोषकरै तौ धनहरने वालाभी धनपानेका फलपाताहै सिद्धान्त इसका यहकि जो जो काम धनीको जीतेजी कर्त्तव्यथे या जिन उत्तम कामोंका अभ्यास वह उत्कर्षा साथरखताथा यथासम्भव

उसके पीछेभी उनधर्मों तथा नियमोंकी हानिनहीं होनेपावै तो मृतधनीके धन पाने वालेको फलदायक होताहै (इतिवाराणस्यादिदेशानांव्यवहारविचारः) यहीव्यवस्था मैथिल देशमें भी समुझौ परउस देशकी परिपाटीवाले ग्रन्थोंसे बिरले नियमोंमें कुछअन्तरहै (दृष्टांत)जैसे पहलेभी लिख चुके हैंकि दौहित्रोंका अधिकार उनके नहींहै और पिता के अधिकार स्थलपर पहिले माताका अधिकार सच्चारखते हैं या दादाके अधिकार स्थलपर पहिले दादीका इत्यादि बिरले और भी कुछ अन्तरहैं कि जिनका ब्यौरा लिखना यहाँकुछ आवश्यक नहींहै क्योंकि मिथिलानाम नगरीमें मिताक्षराके सिवाय ग्रन्थ कुछ और भी विवाद रत्नाकर विवाद चिन्तामणि विवाद चन्द्रादि जो वर्त्तावेमें आतेहैं तिनके कर्त्ताओंने जो सम्मत अपना रक्खा सो उसदेशमें स्वीकारहै-दक्षिण देशोंमेंभी- बिरले ग्रन्थोंके अनुसार बिरले नियमोंमें कुछअन्तर यद्यपि आताहै पर और व्यवस्था आद्योपान्त जोकुछ वाराणसी सम्बन्धी देशविभागोंकी अपेक्षा ऊपर वर्णनहुई सो सब उनदेशोंमेंभी तद्रूपैहै (अथबांगदेशस्यविशेषव्यवस्थासंक्षेपः) बांगदेशियों की व्यवस्थामें-कुछ बहुतबड़ा अन्तरहै वहअन्तर यहाँसमस्त ब्यौरा लिखाजानेसेही विदितहोगा और उस अन्तरका यहडौलहै कि ऊपरले तनमें सपिण्डमात्र बापदादा परदादा तकही तीनपीढ़ीमें धनजाताहै फिर लौटिकर परगोत्रमें नानाआदि ऊपरले तीन सपिण्ड निज निज सन्तानों सहित पायाकरतेहैं और बन्धुओंमेंसे कुछबन्धूपहले अपने गोत्रके सपिण्डों साथ गिनतीमें आजातेहैं और कुछ बन्धू परगोत्रके सपिण्डों साथ अधिकारी हुआकरतेहैं और कुछबन्धू छूटजातेहैं वे किसीकेभी साथनहींपाते बल्कि उनके बदले धनीकी ननसारवाले बहुतसे अधिकारी हुआकरते हैं तिनसबके पीछे लौटिकर फिर अपने गोत्रके समानोदकलोग अर्थात् धनीके सरपोताको आदि लेकर निचली तीनशाखा और धनीके सरदादाको आदिलेकर ऊपरली तीनपीढ़ी धनको पातीहैं तिसपीछे आचार्य शिष्य सहपाठी क्रमसे पायकर फिरअपनेही अना- सन्न सगोत्री और समानप्रवर और त्रैविद्य विप्रआदि अधिकारी होते हैं-तिनका स्पष्टब्यौरा दायक्रम संग्रह ग्रन्थके अनुसार यहाँदेखो-यथा-प्रथम पुत्रादिक सन्तानमें परपोतातक अभाव होजानेसे धनीकीपत्नी मालिकहोतीहै तिसपीछे पुत्रियां फिरदौहि त्र फिरउस धनीकाबाप और माता फिर भाई फिर भतीजे फिर भतीजों के पुत्र फिर भानजे अर्थात् बापके दौहित्र फिर भ्राताके दौहित्र अर्थात् भतीजीकेपुत्र चचेरेनाना काधनपाते हैं इतनेसब अधिकारियोंकी व्यवस्था पहले निज निज स्थलपर भी ब्यौरे- वार वर्णन होचुकीहै अबइन से उपरान्त के अधिकारियों का क्रम दर्शाया जाताहै कि भतीजीके पुत्रोंका अभाव होजानेपर उस धनीका दादा धनको पावै दादाके नहोने में दादीका अधिकारहै दादीके न होनेमें उसधनीके काका चाचा अर्थात् दादी दादाके

पुत्र धनको पावें उनके भी अभावमें दादी दादाके पोता धनको पावें उनके भी अभाव में दादी दादाके परपोता धनको पावें उनके भी अभावमें दादी दादाके दौहित्र किन्तु धनीके फुफेर भाई धनको पावें उनके भी न होने में काका चाचाके दौहित्र किन्तु धनी के चचेरे भानजे धनको पावें उनके भी न होनेमें धनीका परदादा फिर परदादी धनको पावें उनके भी न होने में परदादा परदादी के पुत्र अर्थात् धनीका चचेरादादा धनको पावै तिस पीछे उसी चचेरे दादाके पुत्र धनको पावें उनके भी न होने में चचेरे दादाके पोता धनको पावें उनके भी न होने में परदादा परदादी के दौहित्र किन्तु बापके फुफेरे भाई धनको पावें उनके भी न होने में चचेरे दादाके दौहित्र किन्तु चचेरी फूफू के बेटा धनको पावें-इनसब लोगों के अभाव में-फिर उसी क्रम से धनी का नाना और नाना के बेटा पोता परपोता तक न होने में दौहित्र किन्तु धनी के मौसेरेभाई पावैं इनकेभी न होनेमें परनाना और परनानाके बेटापोता परोता दौहित्र तक अधिकारहै इनकेभी न होनेमें सरनाना और सरनानाके बेटापोता परोतादौहित्र तक धनभागी होतेहैं-इनकेभी न होनेमें-फिर लौटिकर अपने कुलमें सकुल्य मात्र जो समानोदक संज्ञासे विख्यात हैं वेलोग यथाक्रमसे धनकोहरें सोयह सकुल्य अर्थात् समानोदकलोग पूर्वोक्त सात पीढ़ियोंसे नीचे ऊपरके भेदसे दोभाँतिके होतेहैं अर्थात् धनीके बेटापोता परपोतातक सपिंडोंका अधिकार पहले कहागया तिनकेनीचे प्रथम सरपोताको आदिलेकर यथाक्रमसे तीनपीढ़ीतक जोकोई जीताहो वही धनको पावै इनतीनोंके नहोनेमें ऊपरले सकुल्य अर्थात् सरदादाको आदिलेकर तीनपीढ़ी ऊपरली यथाक्रमसे निजनिज संतानों सहित पूर्वपूर्वके अभावमें पिछला पिछलापावै (संतानों सहित कहनेका यहभावहै कि उनके दौहित्रभी पूर्वोक्त रीतिके अनुसार भागी होंगे-इन सकुल्योंके न होनेमें-आचार्यका अधिकारहै तिसपीछे शिष्यका फिर सब्रह्मचारीनाम सहपाठीका फिर इनकेभी न होनेमें निजअपनेही सगोत्रजलोग जोऊर्ध्वोक्त चौदह पीढ़ीके उपरांत चाहेनीचे अथवा ऊपर वालोंकी संतानमेंसेहों और धनीकेही ग्रामके निवासीहों तिनकाभी आसन्नतरतासे अधिकारहै सगोत्रोंके न होनेमें समान प्रवर जो निजग्राम के निवासीहों धनकोपावें फिर विद्वान् विप्रोंका अधिकार केवल ब्राह्मणकेही धनमेंहुआ करताहै प्रथमअपने ग्रामके निवासी विप्रपावैं तिनकेभी अभावमें परग्रामके निवासीपावें (परंतु) जोब्राह्मणसे व्यतिरिक्त किसी और जातिकाधन होतो फिर सगोत्र और समान प्रवरोंके अभावमें उसदेशका राजा धनकोहरे किन्तु विप्रोंका अधिकार उसमें नहीं है ॥

इतिवांगदेशीयानांदायक्रमव्यवहारविचारः ॥

अथकेषांचित्पूर्वोक्ताधिकारविशिष्टानामधिकारिणामनुवादविशेषप्रदर्शनहेतुत्वादाधिकोक्तेः(शेषपाठ)नामकःसप्तपंचाशत्तमःपरिच्छेदः ५७॥

इससत्तावन संख्याके परिच्छेद शेषपाठनामकमें बिरलेउन्हीं अधिकारियोंके अधिकारमध्ये कुछअनुवाद वर्णनहोगा जिसके अवलोकनसे ऊपरले परिच्छेदमें निर्मलता पाईजाय केवल इसीप्रयोजनसे यह शेषपाठ कल्पितहुआ अन्यथा कल्पित होनेकी अपेक्षा शेषनहींथी (तत्रप्रथमंपत्न्यनुवादः) निपूतेका धन पत्नीकोही मिलताहै और मिलनेका अधिकार सच्चीरीतिसे संसिद्ध ऊपर हुआहै-तथापि बिरले वाक्योंसे प्रत्यक्ष विरोध आता है और बिरले ग्रंथकारोंका सिद्धांत समुझा जानेविना द्रष्टा लोगोंको निरर्थक भ्रमउत्पन्न होताहै इत्यादि शंका शांतिके प्रयोजनसे उनवाक्योंको दर्शातेहैं— यथा (भ्रातॄणामप्रजाःप्रेयात्कश्चिच्चेत्प्रव्रजेतवा। विभजेरन्धनंतस्यशेषास्तेस्त्रीधनंविना ॥ भरणंचास्यकुर्वीरन्स्त्रीणामाजीवनक्षयात्। रक्षंतिशय्यांभर्तुश्चेदाच्छिद्युरितरासुतु इतिनारदः)अर्थात्-नारदका यहकथनहै कि भाइयोंमेंसे यदिकोई एकनिपूतामरजाय या संन्यासी होजाय तौ उसभाईकाधन शेषभ्राता बाँटिलेवैं परउसकी स्त्रियोंका धनछोड़दें और उसकी स्त्रियोंका भरण पोषण जीवन अवधिताईं करें परंतु उन्हीं स्त्रियोंकाकरें जो अपनेभर्ताकी सेजको दुर्नामता नहीं पहुँचावें किंतु जो व्यभिचारिणी हों तिनका भरण करने से उपेक्षाकरैं-नारदके इसकथनसे पत्नीका अधिकारही नहीं पायागया किन्तु पत्नीके होतेहुये भाइयोंका अधिकार ठहरा-मनुवचनंतु(पिताहरेदपुत्रस्यरिक्थंभ्रातरएववा)इसमेंभी पत्नीकाअधिकार नहींठहरा किन्तु निपूतेका धनपिता हरे या भैयेहरैं यहविकल्प बापबेटोंमें दर्शायागया-पुनरपिमनुः(अनपत्यस्यपुत्रस्यमातादायमवाप्नुयात्। मातर्य्यपिचवृत्तायांपितुर्माताहरेद्धनम्)इसवचनमें मनु यहकहते हैं कि निपूते पुत्रकाधन मातापावे और जो माताभी मरगईहो तौफिर पिताकी माता किन्तु दादी धनकोहरै-शंखवचनम् (अपुत्रस्यस्वर्यातस्यभ्रातृगामिद्रव्यंतदभावेपितरौहरेयातां ज्येष्ठावापत्नी) इसवचनमें शंखजीने सबसे पहलेभाईका दाय फिर पिता माता फिरबड़ीपत्नीका अधिकारकहा जोकुछ शंखने क्रमकहा वहीउनकेभाई लिखितनेभी और पैठीनासि और यमनेभीयथावत् यहीकहाहै-कात्यायनवचनम्(विभक्तेसंस्थितेद्रव्यंपुत्राभावेपिताहरेत्।भ्राताजननीवाथमातावातत्पितुःक्रमात्)इसमेंकात्यायनजीने पत्नीका नामतकभी नहींरक्खा किन्तु ऐसाक्रम दर्शाया है कि जोपुरुष अपना धन बाँटिकर जुदाहोचुकनेपीछेमरै और पुत्रादिक सन्तान उसकेनहो तो फिर पिता धनकोहरे या भ्राताहरै या जननीहरै या उसकेपिताकीमाता धनकोहरे इनमें पूर्वके नहोनेमें पिछला यथाक्रमसे दायपावै-देवलवचनम् (ततोदायमपुत्रस्याविभजेयुःसहोदराः। तुल्यादुहितरोवापिध्रियमाणःपितापिवा ॥ सवर्णाभ्रातरोमाताभार्याचेतियथाक्र

मम्) इसमें देवलजीने यहक्रमरक्खाहै कि पुत्रादिकोंके अभावमें निपूतेकाधन सहोदर भाईबाँटिलेवैं या उनकेभी अभावमें सजातीपुत्रियाँ बाँटिलें या यदि पिताजीता हो तौ वहलेवै अथवा सौतेलेभाई जो सजातीहों वेहीपावैं इनकेभी न होनेमें धनी की माता पावै माताभी नहो तब सबसे पीछे भार्य्यापावै-इत्यादि और भी अनेकवाक्य हैं कि जो उस पूर्वोक्त ठीक व्यवस्थासे विपरीत और परस्पर भी सब एकसे एक विरुद्ध हैं तिन सबका एकीभाव करिकै धारेश्वरग्रंथकारने व्यवस्था अपनी समुझसे सुडौल करिके दर्शाईहै (अथधारेश्वरोक्तिः) धारेश्वर कहते हैं कि पत्नीको धनपानेका अधिकार जो योगीश्वर आदि बहुधा आचार्य्योंने संसिद्ध किया सो उसदशामें योग्य होसक्ता है कि जो स्वर्यातू अपने बाप भाइयों से धनबाँटिकर जुदाहोचुकाहो और धनबँटेपीछेभी उनमें न मिलगयाहो और पत्नी उसकेमरेपीछे नियोग करनाचाहे किन्तु देवरआदिसे बीजलेनाचाहे अर्थात् जो पत्नी उसकेमरेपीछे बीजलेना न चाहे तौ उसपत्नीको केवल भरण पोषणमात्र उसीप्रकार मिलनाचाहिये जैसे अविभक्त या संसृष्टीपतिकीपत्नी पायाकरतीहैं-और जो कदाचित् कोई ऐसेतर्कसेबूझै कि यह बात कहाँसे सचावटपासक्ती है कि नियोगकी इच्छासेही धनमिलै क्योंकि स्वतंत्रा पत्नीको धनभागित्व कहीं लोक और शास्त्रमेंभी नहीं है तौ यह उत्तर देनाचाहिये कि (निपूतेकाधन पिताहरै या भ्राताहरै) इसवचनके अभिप्रायसे यहबात पाईजातीहै-तहाँ कुछव्यवस्थाका कारणभी कहनाचाहिये यदि ऐसा कोई बूझै तौ यहउत्तरहै कि और कोईभी व्यवस्थाकाकारण इसमें नहीं है इस्से वहबात जो उसवचनके अभिप्रायसे पाईगई सो सबठीकहै और गौतमजीकेवचनसेभी ठीकहै तद्यथा(पिण्डगोत्रर्षिसम्बन्धारिक्थंभजेरन् स्त्रीवानपत्यस्यबीजंलिप्सेत) अर्थात्-गौतमने कहा है कि निपूतेका धनउसके सपिंडलेवें या सगोत्रीलेवें या ऋषिप्रवर संबंधीजनपावें या स्त्रीही धनकोलेवै पर जो नियोग द्वारा बीजलेवै-और यहभावमनुने दर्शाया है कि(धनंयो विभृयाद्भ्रातुर्मृतस्यस्त्रियमेववा। सोऽपत्यंभ्रातुरुत्पाद्यदद्यात्तस्यैवतद्धनम्) अर्थात्-जोकोई अपनेमरे भाईका धन और भार्यारक्खै सो भाईकेही निमित्तकी संतान उत्पादनकरिकै वह धन उसीको देदेवै-धारेश्वर कहते हैं कि मनुने इसवचनसे यह भाव दर्शायाहै कि सबोंका धन बँटे पीछे भी किसीभाई के मरजाने में उसका धन पत्नीको संतानकेही द्वारा पहुँचसक्ताहै अन्यथानहीं (यवीयान्ज्येष्ठभार्यायांपुत्रमुत्पादयेद्यदि। समस्तत्रविभागःस्यादितिधर्मोव्यवस्थितः) अर्थात्-जहाँछोटाभाई बड़ेभाईकी भार्या में पुत्रपैदाकरै तहाँ उसभतीजे और चचाका बराबर भागहोवै यह धर्म सर्वथा निश्चित है-अभिप्रायइसका यह कि निपूते भाईकी पत्नीको नियोगद्वारा पुत्रपैदाकिये विना धनका प्राप्तहोना दोनों दशामें नहीं है चाहे धनका बाँट होचुकाहो या साझाहो

यहसबधारेश्वर अपनीयुक्ति व्यवस्थामें कहतेजाते हैं कि-तैसेही-वसिष्ठने भी कहाहै कि (रिक्थलोभान्नास्तिनियोगः) अर्थात्-पतिकादाय पानेकेलोभसे नियोगनहीं है-अभिप्राय इसका धारेश्वर कहते हैं कि नियोगका निषेध करतेहुये वसिष्ठने यहभाव इसमें दर्शायाहै कि पत्नीको पतिकादाय नियोगकेहीद्वारा मिलसक्ताहै अन्यथा नहीं-और-नियोगकेअभावमें पत्नीको भरणमात्र मिलसक्ताहै जैसा नारदनेकहाहै-तथाच(भरणं चास्यकुर्वीरन्स्त्रीणामाजीवनक्षयात्)अर्थात्-उसकी स्त्रियोंकाभरणभी जीवनपर्यंत वे सभी भ्राताकरैं जिन्होंने धनहराहो-और-आगे योगीश्वर याज्ञवल्क्यभी १४६ वाले श्लोकसे कहेंगे कि-इनकी निपूती योषितायें जो सुमार्गवालीहों भरने योग्य हैं किंतु व्यभिचारिणी और प्रतिकूला निर्वास्य हैं-इस्से कोई भांति निपूती स्त्रीको धनभाग देना नहीं निश्चित है-इसके सिवाय-द्विजाती लोगों का धन यज्ञार्थ कहलाता और स्त्रियोंका अधिकार यज्ञ करनेमें नहीं है इसहेतुसे भी धन हरना उन को अयुक्त है-तथाचकेनापिस्मृतम् (यज्ञार्थंधनमुत्पन्नंतत्रानधिकृतास्तुये। अरिक्थभाजस्तेसर्वेग्रासाच्छादनभाजनाः। यज्ञार्थंविहितंवित्तंतस्मात्तद्विनियोजयेत्॥ स्थानेषुधर्मजुष्टेषुनस्त्रीमूर्खविधर्मिषु)अर्थात्-किसीने ऐसा नियम स्मृतकिया है कि द्रव्य यज्ञार्थ पैदा हुआ है इसलिये जे कोई प्राणी यज्ञोंके अधिकारी नहीं हों वे सभी प्राणी अरिक्थभाक् अर्थात् दाय पानेके अधिकारी नहीं हैं केवल अन्नवस्त्रपाने के अधिकारी हैं जब कि धन जो है सो यज्ञकेही निमित्त कहागया है इसहेतु से उसको धर्मजुष्ट स्थानों में लगावै किन्तु स्त्री और मूर्ख या विधर्मियोंको नदेवै-इत्यादि सबकारणों से कोईभाँति स्त्रीको धनभाग मिलनेका अधिकार नहीं पायाजाता (इतिधारेश्वरोक्तिः) यह व्यवस्था धारेश्वरने अपनी युक्तिसाथ खैंचतानिकर पक्कीकरी पर तौ भी निपट निरर्थक जानो किन्तु कोई भाँतिसे न्यायात्मक नहीं है-क्योंकि-जो समस्त स्त्रीमात्रकोही यज्ञादिका अधिकार न होनेसे धनभागित्व नहीं मानाजाय तौ फिर माताको भी पुत्रोंके साथमें पिताके जीवते और मरेपीछे भी पुत्रोंके समान अंश जो देना कहागया सोभी झूँठा होजावै क्योंकि माता भी स्त्रीजाति और यज्ञकरने की अधिकारी नहींहै इस्से उसको भी क्योंदेनाचाहिये-कदाचित् धारेश्वरकी ओरसे यह उत्तर दियाजावे कि वह केवल अंशमात्रकी मर्यादाहै यहाँ पत्नीको सब धनका दाय हरनेकी चर्चाहै इसलिये वह नियोग धर्म के चाहे विना नहीं पासक्ती है (तौभी) यह उत्तर है कि यहाँ पर (पत्नीदुहितरश्चैव) इत्यादि मूलश्लोक जिनपर इतनीव्याख्या चलीआती है तिनमें नियोग का चर्चा नही प्रतीत होसक्ता किन्तु नियोगका प्रसंगही यहाँ नहीं है-और भी -यह बात बूझी चाहिये कि जब नियोगही आपकहते हैं तौ फिर पत्नीको धनहरने मध्ये केवल नियोग मात्र बड़ाकारण है या उस नियोगसे पैदाहुई संतान बड़ाका-

रणहै किन्तु जो नियोगही को निमित्त बड़ामानोगे तबतो प्रत्यक्षहै कि पुत्र पैदाहुये विनाही धन मिलना चाहिये क्योंकि जब देवर से सङ्गमहोगया तब तत्कालही धनका अधिकार पैदाहुआ फिर चाहे उस नियोगसे पुत्रपैदाहो या नहो परधन उसके हाथ में आगया तौफिर क्योंकर आप कहते हैं कि स्त्रीको धनभागित्व नही है या पुत्रकेही द्वारा हुआ करताहै (अथवा) जो नियोग शब्दके उपलक्षण मात्रसे यहकहोगे कि पुत्र पैदा होनेपरही धन मिलना चाहिये किन्तु जो नियोग के होनेपरभी पुत्रकी उत्पत्ति निपट नहो तौधनभी नहीं मिलना चाहिये क्योंकि पुत्रही धनका अधिकारीहै तौफिर आपको यहभी उत्तर देना चाहिये कि जब सर्वथा पुत्रही धनका अधिकारी ठहरातौ योगीश्वर याज्ञवल्क्यने (पत्नीदुहितरः) इत्यादि वचनमें सबसे पहले पत्नीकाही नाम क्यों उच्चारण किया पुत्रहीकानाम रखना चाहियेथा परन्तु क्योंकर पुत्रकानाम रक्खा जासक्ताथा प्रथम औरसपुत्र और पोता और परपोतातक अभावहोजानेपीछे द्वादश गौण पुत्रोंका अधिकारठहरा गौणपुत्रोंके भी निपट न होनेमें यहपत्नीका अधिकार खड़ाहुआ तिसमें आप अपत्यद्वारक अधिकार कल्पित करतेहो यहबात निपटवृथा और तुषकण्डनहै-इसपरभी कदाचित् ऐसा आग्रह खड़ा करोगे कि हमारी दृष्टिसे स्त्रियोंको धनका सम्बन्ध या तौ पतिकेद्वारा या पुत्रकेद्वारा होसक्ताहै अन्यथानहीं (तो) यहबातभी असङ्गतहै क्योंकि एकपत्नीके सिवाय और भी सबसाधारण स्त्रीमात्रको छःप्रकारका धनसम्बन्ध तौ नियमसेही निश्चित है-तद्यथा-अध्यग्न्यध्यावाहनिकंदत्तञ्चप्रीतिकर्मणि। भ्रातृमातृपितृप्राप्तंषड्विधंस्त्रीधनंस्मृतम्) अर्थ इसका आगेवढ़ करदेखो स्त्रीधनके परिच्छेदमें यहछःप्रकारके स्त्रीधन मनुनेकहे और और भी कईप्रकारके स्त्रीधनहोतेहैं सबकाब्यौरा विस्तारसहित स्त्रीधनके परिच्छेदमें आवैगाध्यानकरो कि इस मर्यादिक वार्ताका विरोधी बात क्योंकर मानीजासक्ती है कि स्त्रीमात्रको धन का अधिकार नहीं वलिक पत्नीके पश्चात् दुहिताओंकाभी अधिकार इसउत्कर्षासाथ कहा गयाहै किजबतक एक दुहिताभी जीती रहै दौहित्रोंका अधिकार तबतक नहीं है फिर क्योंकर पुत्रद्वारक अधिकार माना जाय-और सबसे पहले एक इसबात पर दृष्टि करनी चाहिये कि सभी प्रकारके पुत्रोंका अभाव हुये पीछे यह (पत्नी दुहितरः) इत्यादि वचन उच्चारण कियागयाहै तिसमें जो नियुक्तानाम नियोगवती पत्नीको धन संबंध कहा होता तौ यह क्षेत्रज पुत्रका धन संबंध ठहरता सो क्या दो दो वार कहते किंतु क्षेत्रज पुत्रका धन संबंध पहलेही बारह पुत्रोंके साथमें कहचुके हैं यहाँपर निपट निपूतेका धन संबंध पत्नी को ठहराया गया तिसमें फिर नियोग या क्षेत्रजपुत्रसे अपेक्षा कहां रही-और जो-गौतमके वचनानुसार धारेश्वर कहते हैं कि नियोगके करनेसेही स्त्रीको धन सम्बन्ध होसक्ताहै अन्यथानहीं सो यहकथनभी असंगतहै क्योंकि

उसीवचनके आशयसे नियोगबिनाभी धन सम्बन्धपत्नीको पायाजाताहै-यथा(पिंड गोत्रर्षिसम्बन्धा रिक्थंभजेरन् स्त्रीवाऽनपत्यस्य बीजंवालिप्स्येत्) अर्थात्-गौतम के इसवचनका यह अर्थान्वयहोता है कि-पिंडसंबंधी गोत्रसंबंधी ऋषि प्रवरसंबंधीलोग निपूतेका धनभोगें या यदि स्त्रीउसकी मौजूदहो तो स्त्रीही धनभोगे और वह स्त्री जो मुनासिबसमुझै तो देवरआदिसे बीजभीलेलेवै यद्वा नहीं मुनासिबसमुझै तो उसको अख़तियारहै-परंतु यह आशय इसमें नहींहै कि बीज नहींलेवै तो धनभी नहींपावै-और मुनासिब समुझे जानेका यहभावहै कि आगेको अपनी बंशनाठि होजाने और पतिकाधन बिराना होजानेके शोचसे अगर ऐसासंभवहो कि बीजलेने से संतान हो सकैगी तो बीजलेलेवै या ऐसासंभवहोवे कि बीजके लेने से भी संतानहोनी दुर्घट है तौ फिर बीजका लेनाभी मुनासिब नहीं है यह आशय गौतमने दर्शाया है परंतु बीज के लेनेबिना धनहरनेका निषेध नहीं किया-और मनुकेभी बचन से नियोगबिना सर्व धन हरनेकी अधिकारिणी पत्नी होती है-तद्यथा (अपुत्राशयनंभर्तुःपालयंतीव्रते स्थिता। पत्न्येवदद्यात्तत्पिंडंकृत्स्नमंशंलभेतच) अर्थात्-निपूतीपत्नी भर्त्ताकी सेज पालन करतीहुई नियमसे रहनेवाली पत्नीही उसको पिंडदेवै और सबधनभी उसका पावै-जो कि एक वसिष्ठके इसवचनसे कि (रिक्थलोभान्नास्तिनियोगः) यहबात पाई जातीहै कि रिक्थके लोभसे नियोग नहींकरना चाहिये (सो) यह प्रतिषेध केवल उसके लिये कियाहै कि जिसका भर्ता अपने भाइयोंसे जुदानहो या जुदाहुये पीछे फिर मिलगया हो और वहसाझे में धन छोड़कर मरजावै तौ ऐसे धनमेंसे भाग अगर पुत्र होता तो पासक्ता पर निपूती भार्याको ऐसे धनका भागपानेमें अधिकारनहींहै इसलिये उसको ऐसेरिक्थके लोभसे नियोगभी न करना चाहिये-जोकि धारेश्वरने नारदकावह बचन दर्शायाथा कि उसनिपूतेकी स्त्रियोंका पालनमात्र उनकीआयुभर करनाचाहिये (सोभी) उसीकी स्त्रियोंका चर्चाहै जो अपने भाइयों के साझेमें धनछोड़ मराहो-यथा (संसृष्टानांतुयोभागस्तेषामेवसइष्यते)अर्थात्-निपूते साझियोंका जोभागहै सो उनके बिनाबांटे मरजानेपर उन्हीं सब साझियोंका समुझा जाता है जो जीतेहों-यह नियम नारदने कहकर पीछेवहभी दर्शायाहै कि उसकी निपूती स्त्रियोंका पालन उसके धनमें से करनाहोगा (यहांपर यहसंदेह न करना चाहिये कि नारदने एकही बातको दोबार कहा क्योंकि पहलेभी इसीवार्ताके विषयपर यह वचन आचुका है कि(भ्रातृणामप्रजः प्रेयात्कश्चिच्चेत्प्रव्रजेतवा। विभजेरन्धनंतस्यशेषास्तेस्त्रीधनंविना॥ भरणंचास्यकुर्वीरन् स्त्रीणामाजीवनक्षयात्) इसपूर्वोक्त वचनमें यहविशेषता अधिकदर्शाईहै कि स्त्रियोंका धन छोड़देना और पालन उनका भर्ताके धनमेंसे कर्तव्यहै इस्से दोबार कहना पुनरुक्तिमें गिनती नहीं है)जो कि धारेश्वरने अपनी व्यवस्था के प्रमाणमें योगीश्वरका

भी यह वाक्य दर्शायाथा कि (अपुत्रायोषितश्चैषांभर्तव्याःसाधुवृत्तयः) सो यहबात जो कोई समुझाचाहो सो आगे बढ़कर १४४ मूलश्लोकसे लेकर १४६ ताईं आलोचनकरौ कि योगीश्वरने नपुंसक पतित पंगु आदि निरंशक लोगोंकी स्त्रियोंका वृत्तांत लिखाहै कि उनका पालन करनाचाहिये किन्तु धन छोड़कर मरनेवाले का चर्चा नहींहै और यहाँ केवल उसका चर्चाहै किजो अपना धन छोड़कर निपूता मराहो या संन्यासी हुआहो-जो कि धारेश्वरने द्विजातियों का धन यज्ञार्थ बतलाया था और स्त्रियोंको यज्ञादिके अधिकार विनादाय हरनाही अयुक्त ठहराया सो अयुक्त नहीं पर यहविचारही उनका अयुक्तहै क्योंकि यज्ञके उपलक्षणमें पुण्य दान होमआदि यहसब समुझेजाते हैं परंतु किसी भी द्विजाती का सबधनस्थावर या जंगमआदि इनकामोंमें नहीं लगसक्ताहै और जो इन्हीं केवल धर्म संबंधी कामोंमें सबधन अर्पितकियाजावे तो फिर अर्थ और कामसंबंधी कामोंकी सिद्धि जो धनसेही होसक्तीहै सोक्योंकरहोगी और शास्त्रकी यथार्थ आज्ञायही है कि धर्म अर्थ काम इनतीनों काहीसेवन यथा विधिसे करना चाहिये यथाहयाज्ञवल्क्यः(धर्ममर्थंचकामंचयथाशक्तिनहापयेत्)अर्थात् याज्ञवल्क्यजी आचाराध्यायमें कहचुके हैं कि धर्मअर्थ काम इनकोयथाशक्तिकेअनुसार निपट नागा नहींरक्खै-गौतमस्तु (नपूर्वाह्णमध्यंदिनापराह्णानफलान्कुर्यात् यथा शक्तिधर्मार्थकामेभ्यः)अर्थात्-गौतमनेभी कहाहै कि अपनी शक्तिकेअनुसार धर्म अर्थ काम इनसे पूर्वाह्ण मध्याह्न अपराह्ण तीनोंकालोंको निपट शून्यनकरै- तौफिर क्योंकर सबधन यज्ञोंमें लगाना योग्य होसक्ता है औरभी यह बातहै कि धन शब्दसे स्थावर जंगम सभीवस्तु होतीहैं परयज्ञोंमें स्थावरधन आदिसे अपेक्षा नहींहै अर्थात् सोना चाँदी आदिसे यज्ञोंकी सिद्धि होसक्तीहै सोभी घरभरका सोना चाँदी सबयज्ञोंमें लगाना किसीरीतिसेभी योग्यनहीं अर्थात् यज्ञकी साधनामात्र जितना उचित समुझा जाताहै उतनाही निकालकर जुदारक्खा जाताहै फिर क्योंकर धारेश्वर सबधनकोठी और मकानातभी ग्रामोंसहित यज्ञोंमें लगाना सिद्ध करसक्ते हैं-इसके सिवाय यद्यपि स्त्रियोंको मुख्य सबयज्ञोंमें अधिकारहो या नहो परंतु यज्ञशब्द सबधर्मोंका उपलक्षण है उन्हीं धर्मोंमें पूर्तकर्म भी गिनती हैं अर्थात् बावड़ी कूप तड़ाग आदि और देवताके मंदिर आदि अन्नप्रदान सदावरत आदि और आराम नाम बाग बागीचा इनका करना यह सबपूर्त धर्मरूपी यज्ञ कहलाते हैं इनके करने में स्त्रियोंको भी अधिकार सर्व शास्त्रोंसे प्रसिद्धहै—तौ फिरनिःसंदेह स्त्रियोंको धनपानेका भी अधिकारहै इससे अपने निपट निपूतेभर्ताका दाय पहले पत्नीही हरसक्ती है इसमें कोई किन्तु शेष नहीं-और जो-स्त्रियोंकेपारतंत्र्यकी तर्कना करीगईथी कि (नस्त्रीस्वातंत्र्यमर्हति) अर्थात् कभी स्वतंत्रहोने योग्यनहीं है सो कुछ धनके स्वीकारसे नत्तौ स्वातंत्र्य सिद्ध होसक्ता है न

पारतंत्र्यमेंहानि प्रकट होसक्तीहै किन्तु स्त्रियोंकी मर्यादें जैसी उचितहैं सो सबधनके होनेपर भी उसीप्रकार कुल प्रधानोंके अधीन बनीरहती हैं बल्कि निर्धनतासे मर्यादों का अतिक्रम होजाताहै (तच्चित्रंयदिनिर्द्धनोहिपुरुषःपापंनकुर्यात्काचित्) इस्से पत्नी कोही धनका अधिकार पहिले ठीकहै-कदाचित् अब यह शंकाकरी जाय कि यह व्य-वस्था तौ सर्वथा निर्मलहै परंतु (यज्ञार्थंधनमुत्पन्नं) इत्यादि वाक्य जो दो श्लोकों द्वारा दर्शित होचुके हैं वे किस हेतुसे निरूपित कियेगये क्योंकि यज्ञोंमें सब धनका लगजाना निश्चित नहीं ठहरा इस अपेक्षा में कहते हैं कि उन वाक्यों का अर्थही वैसा नहीं है जैसा पहिले समुझागया था किन्तु उनका यह भावार्थ है कि जो धन विशेषकर यज्ञकेही नाम और निमित्तसे उत्पादन वा संचित कियागया हो तिसको अर्जयिता के पीछे उसके पुत्रादिकों कोभी धर्म्म कार्यमें लगाना योग्य है किंतु ऐसे धनका हिस्सा बांट न करना चाहिये क्योंकि इसपरयोगीश्वरने भी दोष बर्णन किया है कि यज्ञके निमित्तसे पायेहुये धनको उसमें नहींलगानेसे भासपक्षी या काकपक्षीका जन्म होताहै कदाचित् उसअर्जयिताके पुत्रादिकनहींहों तब और कोईदूरवर्तीदायाद जो सबधनहरै सोवहभी ऐसेधनको छोड़करधनहरै यद्वा निपट किसीदायादके न होने में यदि राजा धनकोहरै तौवहभी ऐसाधन छोड़देवै और छोड़ेपीछे धर्मयुक्त स्थानों में लगादेवे किंतु स्त्री मूर्ख और विधर्मियों को नदेवे यहाँपर धर्मयुक्त स्थान कहने से धर्म युक्त मनुष्योंकोभी देवै यह सिद्धांतहै और(स्त्री)कहनेसे उसपुरुषकी धृता आदिको न देवै किंतु बिवाहिताका निषेधनहीं है तौभी यदिअर्जयिता मृतपुरुषके और कुछनहो केवल वहीयज्ञार्थ धन संचितहो तौ उसीमेंसे उनको भोजन वस्त्र भरदेना चाहिये जो उसपुरुषके संबंधी वा संसर्गीलोग ऐसेहों जिनको यज्ञका अधिकार न होनेसे उसधन का रिक्थभाग नहीं मिला-इसबातसे यहसिद्धांतभीपाया जाताहै कि यदिअर्जयिताके इसधनके सिवाय और कुछनहो और संबंधी वा संसर्गी उसके ऐसेहों जिनको यज्ञका अधिकार होताहै तो फिर इसीधनको वे लेसक्ते हैं फिर चाहे उनसे यज्ञ में लगाया जाय या नहीं इस्से कुछ राजा आदिको अपेक्षा नहीं है-जिनवाक्यों का यह भावार्थ विस्तारसे दर्शायागया तिनका मूलरूप भी लिखदेनायोग्यहै-तद्यथा (यज्ञार्थंधनमुत्पन्नंतत्रानधिकृतास्तुये।अरिक्थभाजस्तेसर्वेग्रासाच्छादनभाजनाः॥ यज्ञार्थंविहितंवित्तंतस्मात्तद्विनियोजयेत्। स्थानेषुधर्मजुष्टेषुनस्त्रीमूर्खविधर्मिषु) अर्थऊपरहोहीचुका-जोकि अग्रोक्तकात्यायनके वचनसे यहवात पाईजाती है कि स्त्रीके होनेहुयेभी यदि और को-ईदायादन हो तो राजालेलेवे सो बिवाहिता पत्नीका चर्चानहीं है किंतु धृताआदियो-षिताओंका वहनियमहै-तद्यथा(अदायिकंराजगामियोषिद्भृत्यौर्ध्वदैहिकम्।अपास्यश्रोत्रियद्रव्यंश्रोत्रियेभ्यस्तदर्पयेत्)अर्थात्-जोकिमीमृत पुरुषकाधन अदायिकनाम लावा

रसीहो जिसका लेनेवाला कोईभी हक़दारनहो सो धन राजाको मिलै परंतु उसकी घेरीहुई योषिता यदि हों तो उनके पालनमात्र का छोड़कर और उसधनीके क्रियाकर्म और श्राद्धआदि खर्चोंकेभी योग्य छोड़कर शेष राजालेवै-और जो मृतपुरुष कोई श्रोत्रियहोतो उसके धनका पूर्ववत् शेषजो राजाका हक़होता सोअन्य उत्तम श्रोत्रियोंको समर्पण करदेवै किंतु श्रोत्रियका धन राजानहीं लेवै यहपूर्वोक्त नियमका अपवाद है-इस कात्यायनकेबचनमें घेरीहुईस्त्रियां प्रथमतो योषित्‌शब्दसेही निश्चितहैं दूसरे लावारसी धन कहनेसेभी क्योंकि जबतक बिवाहिता पत्नी मौजूदहो तब तकधनभी लावारसी नहींहोसक्ता और राजामेंभी नहींजासक्ता किंतु सबसेपहिलावारिसतो बिवाहिता पत्नीही योगीश्वर कहिचुकेहैं जिसके ऊपरयह व्याख्याहोती चली जातीहै-यहीनियम नारदनेभी दर्शायाहै-यथा(अन्यत्रब्राह्मणात्‌किंतुराजाधर्मपरायणः। तत्स्त्रीणांजीवनंदद्यादेषदायविधिःस्मृतः)अर्थात्-जो राजा धर्म परायणहो तिसको यह योग्यहै कि एक ब्राह्मण के धनको छोड़कर अन्यलावारसी धनको आपलेवै परउसमें से उसकी घेरीहुई स्त्रियोंको जीवनके निर्वाह मात्र देवै यहदायका विधानहै-इसमेंभी यह सिद्धांत नहींहै कि घेरी हुई स्त्रियोंको भोजन वस्त्रदेवै और बिवाहिता को न देवै अर्थात् जो विवाहिताही मौजूद हो तो फिर राजाको इसबातसे कुछ संबंध नहीं किंतु वहीधनकी वारिसहोगी और वही उन स्त्रियोंकोभोजन वस्त्रदेगी(इतिधारेश्वरोक्तिनिराकरणम्‌)यहांतकधारेश्वरकी बांधीहुई बिपरीतव्यवस्थाका खंडन होकरयहमर्यादा निश्चित हुई कि जोकोईअपने मातापिता और भाइयोंसे जुदाहोचुकाहो और उनमेंफिर नमिला हो और वही निपूतामरै तो उसका सबधन पहलेधर्मपत्नीपावे (सो)इसमर्यादाके निश्चितहोनेका यहकारणहै,कि योगीश्वरने विभागवर्णन कियेपीछेयहमर्यादा कही और साझियोंकीमर्यादा इससे आगे कहेंगे तिसमें पत्नीका अधिकारनहोगा (अथश्रीकराद्याचार्याणांचर्चा)विदित होजाना चाहिये कि इसी संसिद्ध मर्यादामें श्रीकर आदि विरले आचार्योंने अपना अनुमत यहप्रवेश किया है कि पत्नीको धन मिलनाचाहिये परन्तु उसदशामें कि जब थोड़ाहीधनहो किन्तु जहां धनकी बहुताइतहो तहां भोजन वस्त्रके अनुमान पावै सो यह अनुमत उनका निपट वृथा जानो-क्योंकि (यदिकुर्यात्समानंशान्‌पत्न्यःकार्याःसमांशिकाः) (पितुरूर्ध्वंविभजतांमाताप्यंशंसमंहरेत्‌) इन दोनों वाक्योंसे पत्नीको औरस पुत्रोंके होनेपर भी भर्त्ताके जीवते और मरे पीछे भी पुत्रों की बराबर भाग देना कहागया तो फिर पुत्रोंके न होने और भर्त्ताके मरनेपर क्या हेतुहै जिससे निर्वाहके सिवाय कुछ अधिक नहींपावै इसलिये यह अनुमत भी केवल व्यामोह मात्र अर्थात् नासमुझवाली बातहै स्वीकार करनेयोग्य नहीं-बिरलोंने-इस में भी यह बुद्धि अपनी दौड़ाईहै कि (यदिकुर्यात्समानंशान्‌पत्न्यःकार्याःसमांशिकाः)

और (पितुरूर्ध्वंविभजतांमाताप्यंशंसमंहरेत्) इन वाक्योंमें भी वही आशय होगा कि जीवन के अनुमान पत्नीपावे (सो) यह प्रत्यक्ष विरोधी बुद्धिसे अनर्थक व्याख्या क्योंकर मानी जासक्ती है कि कहांतो अंश शब्द कहां सम शब्द और कहां जीवनके अनुमान पावे यह बुद्धि दौड़ाईगई-यद्वा-इसी बुद्धिके अनुसार उनका यहमत समुझागयाहो कि बहुतसा धन होनेपर तौ जीवनके अनुमान पावे और थोड़ासा धन होने में पुत्रों के समान अंशपाती है (सोभी) नहीं होसक्ता है क्योंकि ऐसा आशय होने से शास्त्रोक्त विधिमें वैषम्य दोष खड़ा होता है-तथाहि (पत्न्यःकार्याःसमांशिकाः) (माताप्यंशंसमंहरेत्) यह दोनों वाक्य तौ किसी अन्य वाक्यान्तरकी अपेक्षा रखकर बहुते धन में जीवनमात्र देने के निमित्त में दर्शाते (और) थोड़े धन में पुत्रों के समान अंश केवल इन्हीं वाक्यों से दर्शाते भला ऐसा गड़बड़झाला योगीश्वर भी करसक्ते थे-और जो कोई-इसमतका अवलंबलेकर ऐसा कहेभी कि (निपूतेका धन पिता हरे या भैये हरें यह मनुने कहा) और निपूते मरेका धन भाईमें जावे उसके अभावमें माता पिता हरें उनके अभावमें जेठी पत्नी हरे यह शंखने कहा और (भाई धन लेवें और धनीकी स्त्रियों का भरणभी जीवन अवधिताईं करें इत्यादि नारदने भी कहा है) इसलिये निपूतेका धन भाइयों को पहुँचता है और पत्नीको आजीवनमात्र मिलसक्ता है इसहेतुसे विधि वैषम्यदोष भी नहीं खड़ा होसक्ता है क्योंकि इन अत्रोक्तवाक्यों के आशय से योगीश्वरके भी ऊर्ध्वोक्त वाक्यों में यह व्यवस्था कल्पित होसक्ती है कि जब बहुतसा धन छोड़कर निपूता मरे तबतो आजीवनमात्र पत्नी पावे बाकी बचाहुआ भाई पावें (और) जो पत्नीकेही आजीवनयोग्य धन होवे या इस्से भी थोड़ाहो तब यह विरोध जो उत्पन्न होसक्ताहै कि क्या पत्नीही लेलेवे या भाईभी इस थोड़े में से लेसक्ते हैं सो इसविरोधशांति के निमित्तसे पूर्व पूर्वका बलवत्त्वदर्शानेके लिये योगीश्वरने (पत्नीदुहितरश्चैव) इत्यादि वाक्यप्रतिपादन किया होगा-सो-इसउक्तिको भी भगवान् योगीश्वर याज्ञवल्क्य नहीं मनोज्ञ करते हैं क्योंकि (मनुके वचनानुसार पिता लेवै या भाई लेवें इस विकल्पसे कुछ निश्चित क्रम नहीं पायाजाताहै कि पहले कौन हरसक्ताहै केवल इतना भाव जानाजाता है कि पिता और भाईको भी धनका अधिकारहै सो यहबात पत्नी आदिके न होनेपर भी संभव है और यहाँ चर्चा पत्नीके सद्भावका होरहाहै-इसके सिवाय शंखका जो वचनहै सो वहसाभी भाइयों के विषय पर निश्चित है इसलिये थोड़े धनका विषय इसमें किसी भाँतिके विचार या प्रकरणके लक्षणसे भी नहीं सिद्ध होसक्ता है—औरभी—यह समुझा चाहिये कि योगीश्वरने (पत्नीदुहितरइत्यादि-धन भागुत्तरोत्तर इत्यंतवान्) दोश्लोक जो कहे तिनमें पत्नी और बेटियाँ इन दोके लिये तो वाक्यांतरकी अपेक्षा रखकर थोड़े धनका

विषय दर्शाया और शेष पिता आदि सात अधिकारियों को वाक्यांतरकी अपेक्षा विना सर्वधनमात्रका विषय दर्शाया होगा यह असंगत आशय क्योंकर होसक्ता किन्तु इसमें भी विधि वैषम्यका दोषखड़ा होताहै कि एकही वाक्य में दो भाँतिका आशय गुप्तभाव से रक्खा होगा इसलिये यहसब उक्ती निपट उपेक्षा योग्य हैं इसकेसिवाय-एक हारीत का जो वचन है कि (विधवायौवनस्थावा नारीभवति कर्कशा। आयुषःक्षपणार्थंतुदातव्यंजीवनंतदा) अर्थात्-हारीत ने कहा है कि जब कोई विधवा नारी चाहे युवती हो या वृद्धा परन्तु कर्कशाभी हो तब उसकी आयुतीर होने योग्य आजीवन दातव्य है-सो इसवचनका यह तात्पर्य है कि जो स्त्री शंकितव्यभिचारा होकर दुःशीलावनी हो तिसको सर्वधन हरने का अधिकार नहीं परन्तु इसी तात्पर्य से यह सिद्धांत भी प्रत्यक्ष है कि जो स्त्री अनाशंकित व्यभिचारा हो सो निःसंदेह सर्वधन पावै-और-इसी नियमका अभिप्राय लेकर शंखनेभी कहा है कि (ज्येष्ठावापत्नी)अर्थात् ज्येष्ठानाम गुणसे जो जेठीहो किन्तु जिसमें व्यभिचार की शंका नहो ऐसे बड़ेगुण वाली पत्नीचाहे छोटीहो चाहे मझिली हो वही सबधन पावै और औरें जोकर्कशाहों तिनका पालन वहीकरतीरहै-इसप्रकार सर्वगुण दोषोंकी विवेचना सेयहमर्यादा निश्चित हुईहैकि अपनेभाईबापसे जुदाहोकर फिरउनमेंसाझीहुयेविना निपूता मरजावै तौ उसकी परिणीता पत्नी जो शुभाचारवती हो सो सबधनकी मालिक होतीहै-तथाचकात्यायनः(भर्तृदायंमृतेपत्यौविन्यसेत्स्त्रीयथेष्टतः। विद्यमानेतुसंरक्षेतूक्षपयेत्तत्कुलेऽन्यथा)अर्थात्-पति के मरने पीछे भर्ताका दाय पत्नी (यथेष्ट) भाव से रक्खै और भर्ताके विद्यमान होनेमें भली भाँति उसके धनकी रक्षाकरै अन्यथा धनके अभावमें अपना जीवन उसके कुलही में गमावै (यथेष्टतः) यथेष्टभाव कहनेसे यह प्रयोजनहै कि जैसी उसी कुलकी या उसदेशकी मर्यादा इष्टतम शास्त्रोक्त अथवा लोक परिपाटी से प्रसिद्धहो उसीके अनुसार अपने भर्ताका दाय पत्नी आप रक्खै किसी और को नदेवै –प्रजापतिरप्याह (पूर्वंमृतात्वग्निहोत्रंमृतेभर्त्तरितद्धनम्। लभेत्पतिव्रतानारीधर्मएषसनातनः) अर्थात्-प्रजापति का यह वचन है कि जो कोईनारी पतिव्रता होकरपतिसे पहलेमरै तौ उसका अग्निहोत्र पावै किन्तु (आचाराध्यायगत ८९ मूलश्लोकमें वर्णन करी विधिद्वारा अग्निहोत्रसे जलाईजाय) और जो उसके जीते हुये पहले पति मरजाय तौ उसपतिका सबधनपावै यही धर्म सनातन चलाआताहै पुनरपिस्पष्टमाहप्रजापतिः (जङ्गमंस्थावरंहेमंकुप्यंधान्यंरसाम्बरम् । आदायदापयेच्छ्राद्धंमासषाण्मासिकादिकम्) अर्थात्-प्रजापति ने ब्यौरेवार ऐसा कहा है कि पत्नी अपने भर्ताका सबधन स्थावर जंगम दोनों भाँतिका सोना चाँदी ताँबा सीसा आदि सहित और अन्नादिक रसादिक वस्त्रादिक सहित उसके मरने पीछे लेकर मासिक

श्राद्ध और षाण्मासिक वार्षिक आदि सब श्राद्ध उसके करै करावै (करै या करावै ऐसा विकल्प कहने से कदाचित् स्त्रीत्वसे कोई दशा ऐसीही उपस्थितहो जिस्सेपत्नी अपने आप न करसक्तीहो तो भर्ताके भाई आदि सपिंडोंसेभी करवावै तो कुछदोषन-हीं परन्तु धनका लेना(आदाय)क्रियाके अनुसार उसी पत्नीपर आरूढ़है (प्रजापतिके इसवचनकी व्याख्या वृद्धमनुके उस वचन का संदेह शांतकरती है जिसमें यहनियम निश्चितहुआ है कि पत्नीही पति के पिंड देवै और वही अपनेपतिकासबराअंशहरै) यथा (अपुत्राशयनंभर्तुःपालयंतीव्रतेस्थिता। पत्न्येवदद्यात्तत्पिंडंकृत्स्नमंशंलभेतच) इसमें यह संदेह खड़ा होताथा कि पत्नीही पिंड देवै किन्तु जो पत्नी पिंडनदेसकै तो भर्ताका अंशभी वहीपावै जो कोई उसकाभ्राता आदि पिंड क्रियाकरै सो यह संदेह ऊर्ध्वोक्त प्रजापति के वचनसे निवृत्तहोगया अर्थात् अवसरके अनुकूल आवश्यक जानिकर पिंडक्रियाचाहे औरही किसीयोग्य से करवावै परधनकी मालिक वहीपत्नी होगी-इसकेसिवाय-ऊपरले परिच्छेदमें मुख्यस्थलपर पत्नीके अधिकार मध्ये यहप्र-तिषेध कियागया था कि पति और पुत्रसे विहीनपत्नी स्वामीका धन पाइकर आत्म-पोषणके सिवाय उसकादान या विक्रय यद्वाआधानभी न करसकै तिसका आशय ऐसा नहीं है कि निपट निर्विकल्प और सर्वथा न करसकैगी-यद्यपि—तत्रोक्तवचनों के सिवाय अत्रोक्त कात्यायनके भी वचनका आशय वहीप्रतीत होता है कि निपट न करसकैगी-यथाहकात्यायनः—मृतेभर्तरिभर्त्रंशंलभेतकुलपालिका । यावज्जीवन्नहि स्वाम्यंदानाधमनविक्रये)अर्थात्-कुलका पालन करनेवाली यद्वा कुलकी लाजकानि पालन करनेवाली पत्नी भर्ताकाअंश उसके मरने पीछेपावै और निजजीवन अवधि ताईं मालिकरहै परन्तु दानकरदेने या आधीकरण करदेने यद्वा विक्रय करदेने मध्ये स्वामित्व उसका नहींहै-सो-यह प्रतिषेध केवल दृष्टार्थ वृथा दाननट नर्तकादि क्रीड़ा मार्गसे देदेनेमध्ये नियतहुआहै किंतु अदृष्टार्थ रूप सत्कर्मोंके दानमध्ये स्त्रीको धनके आधीकरण और विक्रयमेंभी अधिकार उन्हीं कात्यायनके द्वितीय वाक्यसे संसिद्धहै-यथा(व्रतोपवासनिरताब्रह्मचर्य्येव्यवस्थिता । दमदानरतानित्यमपुत्रापिदिवंव्रजेत्—अर्थात्-कात्यायनही यह कहतेहैं कि नित्यप्रति व्रत उपवासोंमें तत्परहुई ब्रह्मचर्यकी साधनामें उपस्थित और दमदानमें निरतहोके रहेतो निपूतीभी स्वर्गहीको जातीहै-जबकि इसमेंस्वर्गप्राप्ति हेतुसे काम्यदान करनेका अधिकार सूचित कियागयातोफिर नित्य और नैमित्तिक दानादिकोंकी चर्चाक्या करनी जिनका करनासभी गृहस्थीमात्र को आवश्यकहो यही नियम वृहस्पति और प्रजापतिके वचनसे संसिद्धहोताहै-यथा (पितृव्यगुरुदौहित्रान्भर्त्तुःस्वस्रीयमातुलान् । पूजयेत्कव्यपूर्ताभ्यांवृद्धांश्चाप्यतिथीन् स्त्रियः)अर्थात्-भर्त्ताका सबधन पत्नीलेकर उसके पितृव्यपदवाचक चचाताऊआदि

सपिंडोंकोऔर गुरुओंको तथैव दौहित्रोंको और स्वस्त्रीयनाम भानजेआदि मान्यपक्षियोंको और मातुलआदि मातामह पक्षियोंको और जे कोईबूढ़े अतिथिहों तिनको भी औरसामान्य उसके पक्षियोंमेंसे जे कोईस्त्रीजन भर्तव्यहों तिनकोभी कव्यान्न और पूर्त्तान्नआदि पदार्थोंसे पूजै अर्थात् भर्त्ताकेयथोक्त संबन्धियोंकी पालनपोषण रूपदानों सेसंतुष्टिकरती रहै तिसकाप्रकार ब्योरेवार दर्शायाहै कि इनमेंसे जोकोईप्राणी नित्यंप्रति भर्तव्यहों तिनकानित्य पालनकरै और सबसामान्योंको यथाअवसर के अनुसार कव्यान्न पूर्तान्नोंसे संतुष्ट करतीरहै(कव्यान्न)कहने से श्राद्धादिकमें पित्रर्थ संकल्पितकिये अन्नादिक और (पूर्तान्न) कहनेसे खातादि पूर्तकर्मोंके यज्ञादि भोजन वस्त्रादिक दानमान सत्कारोंको समुझना (यहांपर सांसारिक बुद्धिसे यह शंकानहीं करना कि मातुल या मातामह आदिक्योंकर मान्यपक्षियों के अन्नादिक दानलेतेहोंगे किंतु शास्त्रकेसिद्धांतसे समर्थधनवानोंकेसन्मुख मान्यामान्यसबजनपालनीयहोतेहैं इसबात पर व्यवस्था बहुत लंबीहै कि ऐसे संकुचित स्थलपर दर्शाना बशका नहीं) (यहांपर पूर्तकर्मोंकी अनुज्ञा पाईजानेसे काम्य यज्ञोंका अधिकार सिद्धहोता है) और उसीसे यह आशयभी संसिद्ध होताहै कि ऐसे आवश्यक नियम धर्मोंके निमित्तमें कदाचित् कोई अंशपातिके धनमेंसे पत्नीवेंचे या आधानरक्खे तोयह अनुचित नहींहै—अत्रमदनपारिजातग्रंथधृतास्मृतिः (यद्यदिष्टतमंलोकेयद्यत्पत्युःसमीहितम्। तत्तद्गुणवते देयंपतिप्रीणनकाम्यया) अर्थात्—लोक में जो जोवस्तु प्रिय कहलातीं उनमें जो जो वस्तु पतिको अतिशय प्रियहों सोसोवस्तु पतिकी तृप्तिअर्थ किसी उत्तम दानपात्र को दातव्य हैं-क्योंकि (लोकान्तरस्थंभर्तारमात्मानंचवरानने। तारयत्युभयंनारीनित्यंधर्मपरायणा-इतिव्यासः) अर्थात्-व्यासका यह वाक्य है कि हे वरानने जो कोई नारी भर्ताके मरनेपछि नित्यंप्रति धर्मपरायण होती है वहपरलोकमें बैठेहुये भर्ताको और अपने कोभी दोनों को तारती है-इत्यादि वचनों से धर्मपरायण होनाभी व्यय करनेविना संभवनहीं इस्से यदि सत्कर्मों के निमित्तमें कोईअंश धनकावेंचे या गहने रक्खे तो कुछअनुचित नहीं-तथापि—सर्वस्वदानयासर्वस्व विक्रय करदेनेका प्रतिषेध पूरा है क्योंकि दान यज्ञादिक धन के लाभों सेही होते हैं-यथाहसदाशिवः (प्रेतलब्धधनैर्न्नारी विदध्यादात्मपोषणम्। पुण्यंतुतदुपस्वत्वैर्नशक्तादानविक्रये) परन्तु यहभी शिवजीका कहा नियमकेवल अभिरुचिसे उत्पन्नहुये सामान्य पुण्यदानों के विषयपर आरूढ़है कि धनकी पैदावारीमें से करै किंतुजब गृहस्थीके आवश्यक धर्मकर्म नित्य नैमित्तिक आदि अटकतेहैं और हिरण्यादिक जंगमधन कुछनहींहोताहै तब ऐसे धर्मकर्मोंकी सहायतामें कुछमूलधन भी बन्धक धरदेना या विक्रय करदेना पराकरताहै तिन अवसरोंका यहप्रतिषेध नहीं-बलिक उनअवसरोंमें यदिभर्त्ताकाधन

थोड़ा किंतु उन्हींकामोंकी साधना होसकनेमात्र हो तौ फिर सबधन विक्रय करदेने या बन्धक रखदेनेका अधिकार शुभाचारा पत्नीकोहोताहै क्योंकि मन्वादि शतधावचनों से जिसपत्नीको निजभर्त्ताके सबधनमें पूरास्वत्व पहुँचताहै तिसपत्नीकोयथार्थ अपने स्वामित्वसेही बन्धकरखदेने या विक्रयकरदेने यद्वा दानकरदेनेका अधिकारकुछ निर्मूल नहींसमूलहै-परन्तु(पुण्यंतुतदुपस्वत्वैर्नशक्तादानविक्रये)(नैवदातुंनविक्रेतुंसमर्थास्वधनंविना) इत्यादि जिन वचनोंकासूधाअर्थ लेकरयहप्रतिषेध कहनेमेंआताहै कि पत्नी को भर्त्ताका दाय मिलजानेपर भी विक्रय आदि प्रकारों से वियोगकरदेनेका अधिकार नहीं तिसका आशय केवल इतनाहै कियदि कोई दुश्शीला पत्नी अपने अधिकार के अभिमानसेही अगले दायादोंको दुःखदेनेके निमित्त से कि इनके भोगयोग्य धनको नहींछोड़ोंगीदानादिप्रकारोंसे वियोगकरनेपर उतारूहो यद्वाकोईअतिमूढ़ापत्नी अपने अज्ञानसेही आगापीछा सोचेविना नटनर्तकआदि मायावी क्रीड़ा कामोंमें वृथाबखेर करनेपर खर्चीलीहो जिस्से स्थावरधनकास्वरूप भंगहोजाना सम्भवहो यद्वा धनका अधिकार हाथआनेमें स्वातंत्र्यसे उन्मत्तहोकर भर्त्ताके सपिण्डोंसे निरंकुश होजायतौ इसअवसरमें यदि कोई उसे नरोकेगा अधर्मभागी होगा-पर उसअवसरमें कि यदि पत्नी शुभाचारा होकर ऊर्ध्वोक्त धर्मकार्योंकी आवश्यकता यद्वा अपनेही निर्वाहकी ज़रूरतसे स्थावरधनकोवेंचै या बन्धकरक्खै तौ प्रतिषेधकर्त्ताभी अधर्मभागी होगा-परन्तु यह अधिकार सिद्धहोनेपरभी (नस्त्रीस्वातंत्र्यमर्हति) इत्यादि वचनोंकी रिआयतसे शुभाचारा पत्नीभी निजभर्त्ताके दायादसापिण्डोंसे अनुमतिलेकर निजआवश्यकता राजद्वारमें प्रवेशकरतीहुई स्थावरके वियोग में समर्थहोगी क्योंकि इसव्यवस्था कासिद्धान्त केवल यहीहै कि निष्कारण किसीस्थावरका आकार भंगनहोने पावै-अत्र कात्यायनः (अपुत्राशयनंभर्तुःपालयंतीगुरौस्थिता। भुंजीतामरणात्क्षान्तादायादाऊर्ध्वमाप्नुयुः) अर्थात्-अपुत्रानाम निपूतकीपत्नी पतिकेमरनेपीछे भर्त्ताकीशय्या पालन करतीहुई कुलके गुरुओंवीच रहतीहुई अपने मरणान्तसमयतक भर्त्ताकाधन क्षांता होकर भोगै किन्तु लोकशास्त्र दोनोंकी मर्यादोंसे निज इन्द्रियगणको वशमें रखतीहुई धनसम्बन्धी नियमोंसेही धनकोभोगै क्योंकि उसकेभोगसे अवशिष्टदाय उसकेमरने पीछे भर्त्ताकेदायादपावैं यह कात्यायनजीने कहा यद्यपिइसमें(क्षांता)शब्दके विशेषण मात्र से वहुधा ग्रंथकारों ने नानाभाँतिकी विस्तरित व्यवस्था कल्पितकरी हैं परन्तु कात्यायनका तात्पर्य्य केवल इतनाहै कि वृथाव्यय करतीहुई न भोगै जिस्से निष्कारणभी स्थावरके आकारभंग करनेपरै इसीसे यहनियम रक्खागयाहै कि पतिपक्षियों के आगे रखकर उनकी संमति और सत्कार सहित कामकरै-एतदप्युक्तंभवति(स्थावरेणापिसहितंसर्वंभर्तृधनमधिगत्य धनसाध्यंस्त्र्यधिकारिकंपत्युरात्मनश्चश्रेयः सा

धनकर्मपतिपक्षीयपुरस्कारेणपत्न्याकार्य्यम्) अर्थ इसका सूधा सुगमहै इत्यादि सभी नियमोंसे सवर्णा शुभाचारापत्नीका अधिकार पहले होता है तिसपीछे अन्यदायादों का अधिकार यथाक्रमसे चलाकरता है-अत्रबृहस्पतिः(आम्नायेस्मृतितंत्रेचलोकाचारेचसूरिभिः। शरीरार्द्धंस्मृताजायापुण्यापुण्यफलेसमा॥ यस्यनोपरताभार्य्यादेहार्द्धंतस्यजीवति। जीवत्यर्द्धशरीरेतुकथमन्योधनंहरेत्॥ सकुल्यैर्विद्यमानैस्तुपितृमातृसनाभिभिः।असुतस्यप्रमीतस्यपत्नीतद्भागहारिणी)अर्थात्-बृहस्पतिने यह उच्च प्रकारसे उच्चारण कियाहै कि पुरुषोंकी जायानाम पत्नीको पण्डितलोगोंने अर्द्धशरीर और निज पतिके पुण्य पाप दोनोंफलमेंभी समान ऐसाकहाहै और कहनेके ठिकानेभी दर्शाये हैं कि आम्नायनाम वेदमें संप्रदायमें गुरुओंके उपदेशमें कुलोंकीपरिपाटीमेंतथैव स्मृतियोंमें और तंत्रोंमें और लोकाचारमें प्रसिद्ध है कि जिसकी भार्या जीतीहो तिसका आधादेह जीताहै तौफिर अर्धशरीर जीतेहुये अन्यदायादकोई क्योंकर धनको हरै किन्तु पिता माता भ्राताओं सहित सकुल्योंकेभी विद्यमान होतेहुये निपूते मरेपतिकी पत्नीही उसकाभाग हरनेवालीहै न कोई और-बृहस्पतिके इनवचनोंमें(तद्भागहारिणी) ऐसाकहनेसे मुख्यसिद्धान्त यद्यपि यही है कि उक्त सकुल्यों आदिके होतेहुये पत्नी अपने पतिकाभाग अविभक्तधनमेंसे भी लेसक्तीहै एवं विभक्तहुये पीछे संसृष्ट जो धनहुआहो तिसमेंसेभी बँटवाइकर लेसक्ती है परन्तु यह मुख्यात्मक सिद्धान्तवाला नियम केवल बांगदेशमें समुझना क्योंकि बंगालेमें इनवचनोंके अनुकूल यही परिपाटी चलीआतीहै कि पत्नी अपनेपतिका जितनाभाग उचितहो सो बँटवाइकर लेसक्ती और निरन्तर पायाकरती है कोई उसमें बाधकनहीं होसक्ता-तथापि-और सवसामान्य देशोंमें इनवचनोंसेभी वहीव्यवस्था मानीजायगी कि जैसा एतद्देशी भूभागोंका वर्त्तावाहै अर्थात् वंगालामात्र छोड़कर सबदेशोंमें पत्नी केवल धनविभक्त असंसृष्टीभर्त्ताका दायमात्रपातीहै और संसृष्ट यद्वा अविभक्तधन भर्त्ताकाभाग बँटवाइ नहींसक्ती है अर्थात् उसकेअंशमेंसे केवल अपने आजीवनके निर्वाहमात्र धन की वहुताइतके अनुसार उत्तम मध्यम रीतिसेपाती है इसहेतुसे वंगालेकेसिवाय सव सामान्य देशों की अपेक्षा से (तद्भागहारिणी) यह भाग शब्द भी रिक्थ शब्द के पर्याय में समुझना-परंतु-एक विलक्षणदशा उपस्थित होने पर सव देशों की अपेक्षासेभी भागशब्द भागही के पर्यायमें समुझा जा सक्ताहै कि जिसभर्ताके पैतृक रिक्थों मेंसे अंशकल्पना निश्चित होकर उन भिन्नात्मक अंशोंका सामान्य भावमें संसर्गमात्र चलाआता हो और भर्ता अपने खानपान आदि व्यवहार जुदेरखताहो तोइस भागको सर्वत्र पत्नी हरसक्तीहै और देशविशेषोंका कुछभेद इसमेंनहीं-क्योंकि यह विलक्षणदशा कुछ संसर्ग पदमें गिनतीनहीं होसक्ती किन्तु संसृष्टीभर्ता वहीकहा

ताहै कि जिन दायादोंसे विभाग परस्पर उसका हुआहो और फिर उन्हींमें से किसी दायादसे परस्पर उसकी प्रीति और संमति ऐसीरीतिसे ठहरीहो कि यह पायाहुआ विभागधन हमारा सो तुम्हारा और तुम्हारा सोहमाराहै और हमतुम बीच परस्पर कोईभेदनहीं इस्से फिर मिलकर एकीभूत होजावें ऐसाठहरे पीछे धनको मिश्रीभूत करके खानपानभी सब एकहोजावैंतौ संसृष्टि ठीक समुझीजावैगी-अन्यथा जहाँ ऐसे नियमोंके अभावमें यद्यपि कोईदायादभी अपना धनसाधारणभाव वणिज व्यापारकी रीतिसेकिसी दायादके धनमेंमिश्रित करदेवै यद्वा पहलेसेहीभाग होचुकने पीछेकिसी सुगमताकेहेतुसे संलग्नवनारहनेदेवै और निजघरके देहल्यादिव्यवहार जुदेरखताहो जिनकेहेतुसे घरभिन्नात्मक समुझाजायतौ यहसंसर्ग नहींमाना जासक्ताहै-क्योंकि यदि ऐसेही सबलोगोंसे संसृष्टि सिद्ध होसक्तीहो तौ फिर बहुधाही व्यवहारोंमें अन्यायहोवै-इसलियेजबतक भर्ताकीसंसृष्टिठीक न ठहरै तबतक मुख्य पत्नी भर्ताका धनभागउसके दायादोंसे इनदेशोंमें भी लेसक्तीहै और लेकर अन्य पत्नियोंका यथोक्त पालन करती है(परंतु) संसृष्टिपाई जाने यद्वा पहलेसेही भाग न होनेसे अविभक्तधनकी दशामें वह मुख्या पत्नी भी इनदेशों में आजीवनमात्रपाती है तथाहकात्यायनः (स्वर्यातेस्वामिनिस्त्रीतुग्रासाच्छादनभागिनी । अविभक्तेधनांशंतुप्राप्नोत्यामरणान्तिकम्) अर्थात्-अविभक्त धन स्वामी के स्वर्वासी होनेमें अविभक्त धनके अंशमें से भोजन वस्त्रोंकी भागिनी पत्नीहोतीहै यद्वा ऐसा भी प्रकार नियत होताहै कि आमरणांतिक अंश धनकापातीहै अर्थात् उसके जीवन कालका अनुमान करिके जितने धनसे जीवनका निर्वाह उसके आवश्यक धर्म कर्मोंकी संसिद्धि सहित समुझाजाय उतना अंशपति के अंशमें से एकबार भिन्नात्मक भी मिलजाताहै कि जिस्से उसको अतिशय पराधीनीकी पीड़ा नहीं पहुँचे (अत्रग्रासाच्छादनभागिन्येवपत्नी आमरणांतिकधनांशंयावताधनेनजीवनंस्त्र्यधिकारिकमावश्यकंचकर्मसिद्ध्यति । तावत्तंधनांशंवाभिन्नात्मकंप्राप्नोतीत्यन्वयेनव्याख्यानंभवति)—इसकेसिवाय—यदिभर्त्ताका विभक्त होजाना और असंसृष्टी वनारहना निश्चित होवै जिसमें मुख्या पत्नीको सबधन पाना निश्चित हुआहै ऐसीदशा में अमुख्या स्त्री भी निपूती होनेपर भी जीवनमात्र पाती है यदि शुभाचाराहो क्योंकि (आच्छिद्युरितरासु) यह नारदवचन प्रमाणहै—उक्त अमुख्या स्त्रीको निर्वाह मात्र पाने मध्ये स्मृतिचंद्रिकाकारने वृहस्पति का अग्रोक्त वचन अंगीकारकरिकै व्याख्या कल्पित करी है-यथा-(प्रदद्यात्स्वेवपिंडचक्षेत्रांशंवायदीच्छति इतिवृहस्पतिः —अस्यव्याख्यानंतु—पिंडग्रहणमशनाच्छादनोपलक्षणार्थं तत्पर्य्याप्तंधनंतत्साम्यादेकंक्षेत्रांशंवास्वरुच्याभर्त्रंशाहपत्नीव्यतिरिक्तविधवायै भ्रात्रादिस्तद्धनग्राहीप्रदद्यात्एवकारः प्रदानस्यावश्यकत्वार्थः) अर्थात्-वृहस्पति ने यहकहा है

कि यद्यपि उपस्त्रीमात्र भर्ताका धनपाय नहीं सक्ती है तथापि जिसने भर्ताका धन हराहो सो धनहारी ऐसी विधवाको निर्वाह योग्य (पिंड) नाम भोजन वस्त्रदेवै यद्वा उसी भोजन वस्त्रके अनुमान मात्र धनदेवै यद्वा अपनीरुचि के अनुकूल उसी धनके अनुमान वाला एकक्षेत्रकाही अंश देदेवै जिस्से उतनेधनकी प्राप्तिहोसक्ती हो-यहव्याख्या स्मृतिचंद्रिकाकारने दर्शाई है और पीछेसे यहकहा है कि (एव) शब्दके आशयसे देनेमेंभी अधिक आवश्यकता समुझो-नारदने भी इस आशयको दर्शायाहै-यथा(यावत्योविधवाःसाध्व्योज्येष्ठेनश्वशुरेणवा। गोत्रजेनापिवान्येनभर्तव्या उछादनाशनैः)अर्थात्-जितनी विधवा स्त्रीहों सोसबस्त्रियां उनके जेठ या श्वशुर या गोत्रजमात्र या और ही किसीकरके भोजनवस्त्रोंसे भर्तव्यहैं कि जिसने उनकेपतिका रिक्थपाया हो क्योंकि (योयस्यधनहर्तास्यात्सतद्धर्माणिपालयेत् । संरक्षेन्नियमांस्तस्यतद्वंधून्परिपालयेदितिधर्मः) ऊर्ध्वोक्त नारदके वाक्यमें (साध्वी) यह विशेषण जो संयुक्तहै उस्से सर्वत्र साध्वियोंकाही पालन एकधर्महै पर और असाध्वी कुलटाआदि चाहे मुख्यपत्नियां यद्वा उपपत्नियां हों उनकेपालनका कुछ नियमनहीं परंच नारदने असाध्वियोंका पालनभी प्रतिषिद्धकिया है-यथा (रक्षंतिशय्यांभर्तुश्चेदाच्छियुरितरासुतु) बृहस्पतिने इसनियमको भी कहा है कि साध्वियोंको देकर कोई छीनैनहीं यथा(स्थावरादि धनंस्त्रीभ्योयद्दत्तंश्वशुरेणतु। नतच्छक्यमपाहर्तुंदायादैरिहकर्हिचित्) अर्थात्-श्वशुरादिक में से किसी अधिकारी ने स्त्रियोंको स्थावर आदि जो कुछ धन निर्वाह योग्य दियाहो तिस धनको इह संसारमें कदाचित् भी कोई दायाद नहीं छीन सक्ता-कात्यायनने इस नियमको भी कहाहै कि दुःशीला स्त्रियोंसे देकर भी छिनसक्ता है-यथा (भोक्तुमर्हतिकॢप्तांशंगुरुशुश्रूषणेरता।नकुर्याद्यदिशुश्रूषांचैलपिंडेनियोजयेत्॥ अपकारक्रियायुक्तानिर्लज्जाचार्थनाशिका। व्यभिचाररतायाचस्त्रीधनंनचसार्हति)अर्थात्-जो कुछ अंश उन स्त्रियोंके निमित्त में प्रकल्पित कियागयाहो तिस प्रकल्पित अंशकोवही भोगनेयोग्यहै किजो गुरुओंकीसंसूचितसेवामेंतत्परहो किन्तु जोधनहाथ में आजाने के अभिमानसे शुश्रूषा नहीं करती हो उसको फिर भी केवल रोटी कपड़े मिलें और वह धनका अंश निवर्तित कियाजाय इसके सिवाय जो कोईस्त्री गुरुओंके अपकार वाले काम करती हो यद्वा निर्लज्जाहो या अर्थोंका विनाशकरतीहो या व्यभिचारमें रतहो सो उस धनके योग्य नहींहै और (च) कारके अभिप्रायसे यदि अधिक उसमें अवगुणहों तो फिर भोजन वस्त्रभी अदेयहै और दियाहुआ धनभी उस्से हरणीयहै-इत्यादि विधि प्रतिषेध रूप सर्व नियमों के अनुसार स्त्रियोंको भी धनपाने का अधिकार सिद्धहै इस बात में संदेहकरने का अवकाश कहींनहीं-परन्तु-जो उस बातका आग्रहलेकर कोई शंका खड़ीकरे किजब ऐसाही अधिकार सबानियत है

तौ पहले जोकुछ वाक्यलिखेगये जिनमें नारद,मनु,शंख,लिखित,पैठीनसि,यम,कात्यायन,देवल,गौतम, बसिष्ठ आदि बहुधा वाक्योंसे अन्याय खड़ाहोता है कि पत्नी का अधिकार पहले नहींरक्खा तिसका क्याहेतु है यहशंका क्योंकर शांतहोगी-तहां-यह उत्तर है कि धारेश्वरकी कल्पितकरी व्यवस्थाका निराकरण मात्र पढ़िकरदेखो-उसमें बहुधाइन्हीं विरुद्धवचनोंका समाधान कियागया है और जोकोई वाक्य शेषभी रह गयाहो तिसकीशांति ऐसीरीति से होसक्ती है कि कात्यायनवाले वचनका विरोधकात्यायन के ही द्वितीयवाक्यसे मिटजाता है जैसे (पत्नीपत्युर्धनहरीयास्यादव्यभिचारिणी। तदभावेतुदुहितायद्यनूढाभवेत्तदा) इस वचनमें कात्यायनजी स्पष्टपहले पत्नीकाही अधिकार दर्शितकरचुके तौ फिर दूसरा वचन यह उच्चारणकिया कि (विभक्तेसंस्थितेद्रव्यंपुत्राभावेपिताहरेत् । भ्राताबाजननीवाथमातावातत्पितुःक्रमात्) यद्यपि इसमें पत्नीका चर्चानहीं आनेसे प्रत्यक्ष विरोध पाया जाता है परन्तु पत्नीका नाम इसमें रखनेकी ज़रूरत नहींरक्खी किंतु पत्नीका अधिकार उसी वचनसे कहचुके इस्से अब इस वचनका अनुक्रम केवल पत्नीके अभावमें समुझना और पत्नी के अभावमध्ये दुहिताकाभी अंतर्भाव समुझना किन्तुजहांपत्नी और दुहिताभीनहों तहाँ इस अत्रोक्त वचन का न्याय कात्यायनजीने दर्शायाहै कुछ न्याय विरुद्ध इसको नहीं समुझना क्योंकि पत्नी और अनूढ़ा दुहिता का अधिकार पूर्ववचनमें कहचुके इस्से केवल द्रष्टा लोगोंकी समुझकाही अंतरजानो-इसीप्रकार-मनुने जो कहाहै कि निपूतेका धन पिताहरै या भैयेहरें-दूसरी जगह मनुने यहकहाहै कि निपूतका धनमाता पावै या दादीपावै सो इनवचनोंकोभी पत्नी और दुहिताके अभावमें समुझना किन्तुपत्नी और दुहिता बल्कि दौहित्र भी नहों तौ फिर पिता या भैयेहरें एवं जहाँ पिता और भैये भी नहों तहाँ माता या दादी पावै यह सिद्धांतहै कुछ पत्नी या दुहिता के होतेहुये इनका चर्चानहींहै (बल्कि) यथार्थसे जिस वाक्यमें माता और दादीका अधिकार दर्शित हुआ सो यह वाक्य केवल ऐसे अवसरपर आरूढ़ है कि जब किसी बालक भ्राताने निजपैतृक धनका भाग भ्राताओं साथपायाहो जिसकी रक्षा अबतक माताके आधीनथी और वह बालक बिना विवाहा आपनिपूता मरजाय तौ उसके संचित दाय पर यह शंका खड़ीहोतीहै कि उसकादाय भाईलेवैंया कौनपावै ऐसे झगड़ाके निपटारा का यहन्यायहै कि(अनपत्यस्यपुत्रस्यमातादायमवाप्नुयात्। मातर्यपिचवृत्तायांपितुर्माताहरेद्धनम्) अर्थात्-इसभाँतिके निपूतेका दायउसकी मातालेवै या माताकेनहोने में दादी लेवै क्योंकि माताके अभावमें दादीभीमाताके समान पालनकरतीहै-कदाचित्-ऐसेबालक मरे निपूतेकी अज्ञानवाला पत्नीभी उपस्थित हो तौ भी माताऐसी पत्नी के संप्राप्त व्यवहारकाल होनेतक उसधनकी रक्षकहोकर उसको सौंपेगी या दादीही

अर्थात् ऐसेदायके हरनेमध्ये भ्राताओंका अधिकार मातादादी पत्नीके होतेहुये नहीं है-कदाचित् जहांबाला पत्नीनिपट न हो तौ इसबातका ऐसाभी सिद्धांतनहीं है कि पुत्रद्वारा पायाहुआ दायमाता के मरजाने पीछे माताकी पुत्रियां या दौहित्रपावें-किन्तु वेहीभ्राता पावेंगे कि जिनमेंसे वहपैतृक रिक्थ बँटकर भिन्नहुआ-एवं-जिसपुत्रने पैतामह धनकाभाग पितृव्यों साथपायाहो और वह आप निपूता पत्नीहीन मरजावै तौ उसभाग कोभी मातालेवै और माताके मरजानेसे फिरवेही दायादक्रमसे पावेंगे कि जिनमें से धन बँटिकर भिन्नहुआ था (इतिमनुवाक्यविरोधशांतिः) इसीप्रकार-शंखलिखित, पैठीनसि,यमइनचारोंका जो वचनएकही है कि (अपुत्रस्यस्वर्यातस्यभ्रातृगामिद्रव्यंतदभावेपितरौहरेयातांज्येष्ठावापत्नी) सो इसवचनका विरोध दोभांतिसे शांत कियाजाता है किन्तु एकतौ सूधेमार्गसे जो अर्थ इसका प्रत्यक्षहै कि भाईमेंउस निपूतेका धन जानेयोग्य होताहै भाईके न होनेमें मातापिता हरें अथवा ज्येष्ठापत्नी सोयहन्याय उसदशामें संभाव्यहै कि जो निपूता अपने भाइयोंसे धन बांटकर जुदा न होचुकाहो यद्वा जुदा होचुकने परभी फिर मिलगया हो तौ निस्संदेह संसृष्टी धर्मके न्यायसे उसका अंश उन्हीं भाइयों में रहसक्ता है कि जो उसके संसर्गीहों और जो संसर्गी भाई भी मरचुकाहो या तत्काल उसके पीछेमरे और वहभाई भी निपूता हो तौ फिर माता पिता हरें माता पिता भी नहों तौ फिर ज्येष्ठपत्नी जो शास्त्रोक्त गुणसे जेठीहो मालिकहोगी-सो यह समाधान एकस्वल्प और सुगमरीतिसे कहदिया है अन्यथा इसपर बड़ेबड़े वादविवाद और निरर्थक सार्थक दोनों भाँतिकी व्याख्या कल्पितहोती हैं - इसलिये - इसीवचन का दूसरा अर्थ व्यवहित योजना मार्गसे यह सिद्धहोताहै किजेठीपत्नी सबसे पहले मालिकहोगी और तदभावे अर्थात् ऐसी पत्नीके अभाव में और पत्नीकेही अंतर्भावलक्षणसे दुहिता और दौहित्रों के भी अभावमें निपूतेके पिता माता भागीहोंगे यद्वा उनके भी अभावमें धन भ्रातृगामी होवैगा-यतः (तदभावइतिमध्यपठितंपूर्वोत्तराभ्यामविरोधान्न्यायस्य पूर्वमुक्तत्वाच्चसम्बध्यते-इति वीरमित्रोदयः)इसीप्रकार औरभी जे कोई वचनविरोधी शेषहों तिनसबकी शंका दूर होसक्तीहै इसहेतुसे यह ध्यानभी सर्वत्ररखना योग्यहै कि यद्यपिकहीं वचनोंमें विरोध पायाजाताहो परंतु न्यायका अविरोधी नियम अंगीकार करनायोग्यहै क्योंकि न्यायसे विपरीतनियम अंगीकारकरनेमें वचनोंका अविरोधभी दुर्दूषणहै और न्यायके अविरोधमें वचनोंका विरोधकिसीदूषणका उत्पादक नहीं(अथाप्राप्तधनायाअपिपत्न्याधर्मः)(मृते भर्तरिसाध्वीस्त्रीब्रह्मचर्य्येव्यवस्थिता। स्नाताप्रतिदिनंभक्त्याभर्त्रेदद्याज्जलाञ्जलिं॥ कुर्य्याच्चानुदिनंभक्त्यादेवतातिथिपूजनम्॥ विष्णोराराधनंचैवकुर्यान्नित्यमनुव्रता॥दानानिविप्रमुख्येभ्योदद्यात्पुण्यविवृद्धये ॥ उपवासांश्चविविधान्कुर्याच्छास्त्रोदिताञ्छुभे।

लोकान्तरस्थंभर्तारमात्मानंचवरानने।तारयत्युभयंनारीनित्यंधर्मपरायणा-इतिव्यासः) इतिपत्न्यधिकारविचारशेषपाठः(अथदुहितॄणामधिकारस्यानुवादः)पत्नीकेअभावमेंदुहिता-ओंका अधिकार ऊपरलेपरिच्छेदगत संसिद्धहुआथा कि जो कोईधनी निजसपिण्डोंसे विभक्तहोकर असंसृष्टीही निपूता मरजाय तो पत्नीके नहोनेमें पुत्रियाँ दायपावें-उसमें कोई किन्तु यद्यपि नहीं है पर तौभी एक दोवचनोंके अनुसार बिरले अवसरमें निर्मूल शंका खड़ीकरते हैं कि (यथैवात्मातथापुत्रःपुत्रेणदुहितासमा। तस्यामात्मनितिष्ठंत्यां कथमन्योधनंहरेत्) मनुने इसवचनका यहभाव दर्शायाहै कि जैसा अपनादेह तैसाही उसदेहसे पैदाहुआ पुत्रहै और पुत्रहीकेसमान उसकीपुत्रीभी होतीहै क्योंकि दोनों उसीदेहसे उत्पन्नहुये तिस ऐसीपुत्रीके निजआत्मतुल्य उपस्थित होतेहुये कैसे कोई और धनको हरसक्ता है अर्थात् पुत्रीही धनपावै (आत्मनि–आत्मावै जायते पुत्र इत्यात्मभूतपुत्रतुल्यायामित्यर्थः तिष्ठंत्यामित्यनादरे सप्तमी तामनादृत्येतिभावः) और (अंगादंगात्संभवति पुत्रवद्दुहितानृणाम्। तस्मात्पितृधनंत्वन्यःकथंगृह्णीतमानवः) बृहस्पतिने इसवचन का यहभाव दर्शायाहै कि पिता माताके देह देह से उत्पन्न होवैहै इस हेतुसे दुहिता भी पुत्रही के समानहै और इसीकारण से पिताका धनभी कोई अन्य मनुष्य क्योंकर लेवै-इसमें दुहिता को पुत्रके समान कहनेके हेतु से और निज देहसे उत्पन्न होनेके हेतुसेभी यहन्याय संभवहोसक्ता था कि पुत्र और पुत्रियाँ भी सभीमिलकर भाग पाते परंतु पुत्रोंमें पिताके अंगों की अधिकता और पुत्रियों में माताके अंगों की अधिकता सर्वशास्त्रोंमें प्रसिद्ध है कि (पुमान्पुंसोऽधिकेशुक्रे स्त्रीभवत्यधिकेस्त्रियाः) सो इस परमकारणके प्रभावसे पुत्रों की उत्तमता और पुत्रियों की मध्यमता पाईगई इस्से इन्हीं दोनों वचनों के अनुसार ऐसा न्याय होना योग्य था कि औरस पुत्रों के न होनेमें पुत्रियोंका अधिकार निश्चितबना रहता पर यह न्याय जो सुनिश्चित हुआहै कि औरस पुत्रोंके उपरांत गौणपुत्र और पत्नियां भी न हों तब उसमरे निपूतेकी पुत्रियाँ पावैं सो यह कैसान्याय जो अन्याय सा प्रतीत होता है क्योंकि अग्रोक्त नारदके वाक्यसे भी वही न्याय संभव होताहै कि पुत्रों के अभाव में पुत्रियाँ मालिक होवैं-यथाहनारदः(पुत्राभावेतुदुहितातुल्यसंतानदर्शनात्। पुत्रश्चदुहिता चोभौ पितृसंतानकारकौ)अर्थात्-नारदकहते हैं कि तुल्यसंतान दर्शन हेतुसे पुत्रों के अभावमें दुहिता दायपावै क्योंकि पुत्रभी और दुहिताभी यह दोनों अपनेपिताके संतानकारकहैं अर्थात् पुत्र अपनेपिताको पौत्ररूप संतान दियाकरता है और दुहिताभी दौहित्रकी संतान दियाकरतीहै फिर क्योंकर उसका अधिकार पत्नी के पीछे योग्य होसक्ताहै-ऐसीशंकामें-यह उत्तरहै कि पौत्र और दौहित्रकास्वरूप नहीं तुल्य होसक्ता किन्तु दोनोंकीतुल्यता केवल कार्यमात्रमे अभिप्राय रखतीहै सो कार्य

भी कुछ पुत्र और दौहित्रके तुल्यात्मक नहीं किन्तु पौत्र अपनेदादाका श्राद्ध पिण्ड देनेकेसिवाय उसका दायहरता और ऋणदेताहै बल्कि रिक्थके न होनेपरभी दादाका ऋणदेना उसपर भारहै परन्तु दौहित्र केवल श्राद्धकाअधिकारी किन्तु नानाका ऋण देना उसपर तबतक भारनहींहै कि जबतक उसको नानाका धनभाग न पहुंचै (पुत्रपौत्रैऋणंदेयं) यह बाक्य ऋणप्रकरणमें आचुका सो इसस्थलपर प्रमाणहै और (पूर्वेषांतुस्वधाकारेपौत्रादौहित्रकामताः)विष्णुके इसबाक्यसे दौहित्रोंको अदृष्टकार्य श्राद्ध आदिका अधिकारपायागया तो इसकारणसे प्रत्यक्षहै कि पुत्रतो दृष्ट अदृष्ट दोनों भाँतिके उपकार करनेवाला पौत्रपैदाकरनेसे अधिकतर उपकारीठहरा और पुत्रीकेवल अदृष्टकार्य करनेवाली दौहित्र पैदाकरने से उपकारमें कुछन्यून ठहरी-कदाचित्-इसपरभी यहतर्क आरोपितकरीजाय कि यदिपुत्रोंसेदुहिता न्यूनठहरीतौभी पुत्रोंसेपश्चात् धनके योग्य है क्योंकि पत्नीकी अपेक्षा दुहिता प्रत्यासन्न ठहरी इस्से दुहिता पहलेपावै और पत्नी उससे पीछेपावै—ऐसे तर्कमें-यह उत्तम समाधान है कि जैसा पत्नी से उपकार होसक्ता तैसा दुहितासे उपकार नहींहोताहै क्योंकि पत्नीपतिके सहाधिकारसे अग्निहोत्र आदि वैदिक कर्मोंका उपकार साधन करती है और पतिके काम दानसे पुरुषार्थ की साधनता और संतानकी उत्पत्ति द्वारा दृष्टादृष्ट दोनोंभांतिके उपकार करनेवाली और देहार्द्धरूपा भी विख्यातहै इसलिये दुहिताओंकी अपेक्षा पहले पत्नीही धनभाक् होगी बल्कि इसी हेतुसे नारद आदि जिन वचनोंमें (पुत्राभावेतुदुहिता) यह ऐसानियम दर्शितहुआहोवै कि पुत्रोंकेअभावमें दुहितापावै तहाँ सर्वत्र पुत्राभावके उपलक्षणसे पत्नीकाभी अभावसमुझाजाना न्यायात्मकहै और इसीहेतुसे योगीश्वर तथा विष्णुनेभी निजवचनोंमें स्पष्ट पहले पत्नीकाअधिकार कहकर पीछे दुहिताको दर्शायाहै-यद्यपि-दुहिताकी अपेक्षा एकप्रकारसे उसधनीका पिताही कुछ प्रत्यासन्न समुझाजासक्ता है क्योंकि जब कदाचित् धनी अपने पिताको पिण्डदानकरता तब धनी के कर्तृत्वका संप्रदानभूत पिताही अदृष्टोपकारक ठहरसक्ता इस्से दुहिताकी अपेक्षा पिता प्रत्यासन्न समुझाजाकर पुत्रकाधन हरने में पोतीसे पहलेही अधिकारी होसक्ताहै और इसीतर्कके आशयसे पूर्वोक्त मनुकावाक्यभी सच्चाहोसक्ता है कि (पिताहरेदपुत्रस्यरिक्थं) तौभी ऐसाकहना निपट अयोग्यहै क्योंकि (तस्यामात्मनितिष्ठंत्यांकथमन्योधनंहरेत्) इसमनुकेही स्पष्टद्वितीय वाक्यसे शारीर प्रत्यासत्तिका प्राबल्य पहले दुहिताका अधिकार घंटाघोषवद्विख्यात करताहै इसलिये दुहिताके अभावमें वह मनुका पहला वाक्य अवसर पावैगा-इसकेसिवाय-बंगालेकी अपेक्षासे जीमूतवाहनने निजग्रंथ में दुहिताओं के अधिकार मध्ये दुहितासे संतान पैदाहोना एकहेतु निश्चित कियाहै कि दुहिता अपनी संतानसे निजपिताका उपकार

श्राद्धपिंड आदि करती है परवही संतानजो नानाको पिंड देनेवाला हो अर्थात् सवर्णपुत्रकी संतानइस में हेतु है अपिंडदसंतान पुत्रियां या असवर्ण पुत्रभी उपकारक हेतुनहीं क्योंकेउनसे नानाका पिंडादि उपकारनहीं होसक्ता इसीहेतुसे बंगालेमें केवल दोप्रकारकी दुहितायें रिक्थपावें किन्तुसपुत्रा और संभावित पुत्राभी कि जिसके पुत्र होनेका आकार संभवहो परंच (विधवात्वबंध्यात्वदुहितृप्रसूत्वादिना विपर्य्यस्तपुत्रापुनर्नाधिकारिण्येवेतिदीक्षितमतमादरणीयमित्यप्याहान्तेजीमूतवाहनः) अर्थात् पीछेसे जीमूतवाहन यहभी कहतेहैं कि विधवाहोने या बन्ध्याहोने या पुत्रियां पैदाकरने या आदिशब्दके आशयसे अपिंडद असवर्णादि पुत्रपैदाकरने आदि हेतुओंसेअपुत्रा या विपरीत पुत्रा बेटी धनाधिकार नहींपावे यह (कांपिल्लनगरनिवासी यज्ञदत्तनामकदीक्षित) का मत आदर करने योग्यहै-जीमूतवाहनकी इसीव्यवस्थाके अनुसार बंगालेमें अद्यापि यह परिपाटी वर्तमानहै-यद्यपि देशाचारसे कुछ किन्तु करने का अवकाश नहीं है तथापि चिंताकरनेका अवकाश बहुत बड़ाहै कि भाव तत्रत्य यह परिपाटी पूर्वकालमें नहो बल्कि जीमूतवाहन केही समयसे प्रवर्तित हुईहो या कुछपहले से-परंतु चिंता इसमें यहहै कि पुत्रवतीके सिवाय संभावित पुत्राके अधिकारमें उपकार क्योंकर समुझाजाय क्योंकि दैवीगातिमें यह निश्चित होसकना परम दुर्घटहै कि संभावित पुत्राके अवश्यही पुत्रहोगा या होकर जीतारहेगा इस्से इसको धन मिलना चाहिये क्या अचंभाहै कि ऐसीदशामें धन मिलनेपर भी पुत्री पैदाहोय तबक्या उस्से धन छीनकर सपुत्रा भगिनीको देदेना चाहिये जो पहले आधा पाचुकी है-दूसरी चिंता यह कि बंध्याका निषेध करना वृथा है क्योंकि विरली वंध्या के अतिकालमें संतान होतीहै क्या अचंभाहै कि धनके भाग होजाने पीछे वंध्याके भी पुत्र पैदाहोय-इसी प्रकार पुत्री पैदाकरनेवाली का निषेध वृथा जानो क्योंकि न जाने धनके भाग होजाने पीछे उसके पुत्रपैदाहोवे इत्यादि वहुधा चिंता और भी अवशेष हैं तिसकारणसे दुहिताओं के अधिकार में पिंडद संतानका अवलंवरूपेहतुही निर्मूल है (अन्यथा) जो पिंडद संतानका अवलंवरूपहेतु कुछ समूल समुझाजाता तो फिर सवसे पहले क्वारीकन्याका अधिकार जो सवग्रंथोंसे नियमात्मक निश्चितहुआ सो वह क्योंकर सच्चाहोता क्योंकि कोई भांति यह विश्वास आना संभवनहीं है कि इस क्वारीका विवाह करदेने पीछे निस्संदेह पुत्र पैदाहोगा या यह वन्ध्यानहीं निकसेगी या पुत्रियां नहींसूतैगी या विधवाभी न होवैगी-वल्कि इस क्वारीकन्याके प्रथमाधिकार की यहाँतक विशेषता निश्चितहुई है कि जवतक क्वारीकन्या विद्यमान हो कोई और सपूतीतक भी नहीपावे-यथा (अपुत्रस्यमृतस्यकुमारीरिक्थंगृह्णीयात् तदभावेचोढा) जवकि निपट अनूढ़ाके अभावमें ऊढा और सपूतीका अधिकार ठहरा तोफिर सपुत्रा

या संभावित पुत्राकीमुख्यता क्योंकरशेषरही और जबइन्हींकी मुख्यताजातीरही तौ फिरपिंडद संतानका अवलंबरूपहेतुभी निर्मूलहुआ-बलिक इसीकारणसे इसऊर्ध्वोक्त मुनि वाक्यमें पिंडदसंतानका प्रसंगनहीं आया किन्तु यहआशय इस्से प्रत्यक्षहै कि (अतिशय प्रत्यासत्ति)अर्थात् परम समीपताही अवलंबरूपहेतु है किजिसकेहोनेसे धनका अधिकार पहुँचसक्ताहै इसीलियेक्वारीकन्याका अधिकारपहले रक्खागयाक्यों· कि अन्य दुहिताओं की अपेक्षा क्वारीकन्या अपने पिताकेसमीप समुझीजाती और उसीकरके भर्तव्य हुआकरती है-बलिक जीमूतवाहनने निज आपभी यहकहा है कि (कन्यायाअसंभवेसंभावितपुत्रायाःपुत्रवत्याश्चयुगपदधिकारः)अर्थात् कन्याकेअभावमेंसंभावितपुत्रा औरसपुत्रादोनोंकाअधिकार एकसाथही तुल्यात्मकहो-सोइसअत्रोक्त और पूर्वोक्त उनके द्विविधकथनोंसे भी हेतुव्यभिचार खड़ाहोताहै कि उन्होंने उसभाँति कहकर ऐसाकहा परंच ऐसाकहनेसे उसभाँतिमें निस्संदेह निर्मूलतापाईगई-जीमूतवाहनके सिवाय—देवशत, धारेश्वर, देवस्वामी आदि बिरले ग्रंथकारोंने (पिताहरेद पुत्रस्यरिक्थं)इसमनुवाक्य का विरोधदूरकरना चाहकर दुहिताओंके अधिकारसाधक जोजो वाक्य घंटाघोषहैं तिनसबहीको निजबुद्धिके अनुसार(पुत्रिका) बेटीकेअधिकारवान् कहकर यहसिद्धांत मानाहै कि पत्नीके पश्चात्(पुत्रिका)बेटी मालिकहोवै अर्थात् सामान्यदुहिताओंका अधिकार निपटझूँठाहै (पुत्रिका) के नहोने याधनपाइकर निपूती मरजाने में धनीका बाप धनको हरै तिसपीछे भ्राता आदि सबअधिकारी यथाक्रमसे धनकोपावें तौ अत्रोक्त मनुका वाक्यभी अविरोधीठहरै औरदुहिताओंके अधिकारवाले वाक्यभी सब सच्चे ठहरें क्योंकि दुहिताके उद्देशमात्रसे(पुत्रिका) हीअपेक्षितहै-सो-यह सिद्धांतउनका निपट थोथी युक्तिके बंधानोंवाली धोखेकीटट्टीहै क्योंकि प्रथमतौ दुहिताओंका अधिकार जो हाथोंकीसीरेखा विख्यात उसकेमिटजानेका उपाय रचनाकिया और (पुत्रिका) का अधिकार जो पत्नीके भी होतेहुये गौण पुत्रोंके समान सर्वशास्त्रसे निर्णीत उसको पत्नीके पश्चात् ठहिराया-किन्तु पुत्रिका बेटी द्वादश गौण पुत्रोंके प्रकरणमें पुत्रोंकेसमान गिनतीहुईथी (औरसोधर्मपत्नीजस्तत्समःपुत्रिकासुतः-पुत्रिकायाःसुतःपुत्रिकासुतः) इतियोगीश्वरोक्तिः (तृतीयःपुत्रःपुत्रिकैव-कन्यैवेत्यर्थः) इतिवसिष्ठोक्तिः-अर्थात्-योगीश्वर ने औरस के उपरांत (पुत्रिका) बेटीकासुत औरस के समान बतलाया और वासिष्ठने पुत्रिकासुत केभी उपरांत वही(पुत्रिका)एक तृतीयपुत्र के समानकरके कहीतिसको दाय हरनेका अधिकार इसअग्रोक्त मनुके वाक्यद्वारा निश्चित होचुका है कि (नभ्रातरोनापितरःपुत्रारिक्थहरापितुः) अर्थात् जिसनिपूते धनीकेक्षेत्रजआदिकोई गौणपुत्रहों तिसकारिक्थनतोभैये और न पितामाता आदिकोई हरसक्ते किंतु वेही गौणपुत्र अपने बापकाधन हरनेवाले हैं कि जिनमें एक (पुत्रिका)

था पुत्रीकासुत भी गिनतीसमुभो-ऐसे दृढ़तर पूर्व अधिकार वाली (पुत्रिका) को क्योंकर पत्नीके पश्चात् कहसकने का उत्साहउनको आयाहोगा-और भी इनतर्कों के सिवाय यह अग्रोक्तवाक्य क्योंकरजीतीमक्खीसी पचायाहोगा जिसमेंप्रत्यक्ष (पुत्रिका) और दुहिताओंका भेद वर्णनहुआ है यथा(सदृशीसदृशेनोढासाध्वीशुश्रूषणेरता। कृताऽकृतावाऽपुत्रस्यपितुर्द्धनहरीतुसा)अर्थात्-जोकोई दुहिता सदृशीनाम अपने माता पिता दोनोंकी सवर्णाहो और सदृशनाम सवर्णकोही व्याहीजाय और साध्वीनाम शुभाचारा हो और अपनेयोग्य शुश्रूषामेंभी तत्परहोऐसी दुहिताचाहे कृतायद्वा अकृताहो निपूते अपनेपिताका धन हरनेवाली वहीहोती है (कृता) जो पुत्रस्थानी पुत्रिका कल्पितहुई हो (अकृता)जो सामान्यभाव दुहिताहो इनमें केवल इतनाअंतर है कि अकृता अपनीमाता के अभावमें और कृतामाताके जीतेही धनहरती है-इसी विशेष वाक्यसे यह प्रतिषेध भी दर्शायागयाहै कि ये चारोंउक्त विशेषण जिसमें नहों याविपरीत हों ऐसी दुहिताचाहे अकृता यद्वा कृताहो तौभी पैतृक रिक्थहरनेका अधिकारनहींपावै इसीहेतुसे यहवचन विशेष कल्पितहुआ है-इत्यादि सर्वकारणों से यहसब चर्चाऊपर जो कुछ वर्णनहुआ सो सामान्य दुहितामात्रकी व्यवस्था है-किन्तु-पुत्रीका पत्नीके जीतेभी पुत्रोंकीसी भांति धनकोहरती है-तथाहमनुः(पुत्रिकायांकृतायांतुयदिपुत्रोऽनुजायते। समस्तत्रविभागःस्याज्ज्येष्ठतानास्तिहिस्त्रियाःइतिमानवेनवमेऽध्याये १३४ श्लोकः)अर्थात्-दुहिताकोपुत्रिका करचुकनेमें यदिउसी निपूतेकेनिजपत्नीद्वारा पुत्र पैदाहोवै तौ इसदशामें उन दोनोंका समानभाग होवै किन्तु पुत्रिकाकोजेठाईका उद्धार न देवै क्योंकि पुत्रिका यद्यपिज्येष्ठपुत्रस्थानी होनेकेहेतुसे जेठाईका उद्धारपानेयोग्य है परतौभी स्त्रीजाति होने के हेतुसे उद्धारनहीं पावैगी अर्थात् उसउद्धारकी मर्यादामें स्त्रियोंकीजेठाईपुरुषोंके सन्मुखनहीं मानीजाती(अस्मादनन्तरमप्याहमनुः-अपुत्रायांमृतायांतुपुत्रिकायांकथंचन। धनंतत्पुत्रिकाभर्त्ताहरेतैवाविचारयन् इत्यपिनवमेऽध्याये १३५ श्लोकः) अर्थात-उससे निचलेवाक्य में यहकहते हैं कि-कैसेहूपुत्रिकाके निपूती मरजानेमें उसपुत्रिका का भर्त्ताधनको वेखटके हरे-इसअर्थ से यहआशय पायाजाता है कि पुत्रिका के बापकाधन जो पुत्रिकाको पुत्रिकाधर्म के हेतुसे पुत्रोंकीसी भांति पहुँचाथा कि जो सपूतीमरनेमें पुत्रिकाके पुत्रोंको मिलसक्ताथा वहधन पुत्रिकाकेनिपूती मरजानेमें पुत्रिकाकाभर्त्तापावै और विनाविचार वेखटके कहनेसे यह भाव सिद्धहोता है कि सामान्य दुहिताको पहुँचाहुआ धनउस दुहिता के निपूतीमर जानेमें दुहिताका भर्त्ता नहींपाता किंतु दुहिताके दादादादी हरते हैं पर इसपुत्रिका हुई दुहिताके निपूती मरने में निस्संदेह उसकाभर्त्ता हरे (और) इसन्यायसेभी दृढ़ता पाईजाती है कि जैसे साक्षात्कार पुत्रहीके निपूते मरने में उसपुत्रकी पत्नीधनको

हरसक्तीथी तद्वत् पुत्रिकाकेनिपूती मरनेमें पुत्रिकाका भर्त्ताही हरसक्ताहै न कोई और-और कथंचन अव्ययके योगसे यहबात निश्चितहोती है कि वह पुत्रिकाचाहे कैसेहू अर्थात् किसीप्रकारसे निपूतीहोकर मरै किंतु या तौ बन्ध्याहोनेके हेतुसे या मृतवत्सा होनेके हेतुसे या कन्यासूती होनेकेहेतुसे निपूतीमरजाय यद्वाकैसेहू इस अव्ययसेयह भाव सिद्धहोता है कि पुत्रिकाचाहे पितामाताके मरनेपीछे या जीतेजी मरजाय तौभी धनकोभर्त्ताही हरसक्ता है-परन्तु-यहव्याख्या बहुधा ग्रंथकार टीकाकारोंने मनोज्ञनहीं रक्खी और जैसीव्याख्या इसीमनुके वाक्यसे प्रकल्पित करीसो अबलिखते हैं कि-कथंचन अव्ययके भावसे कैसेहू अर्थात् पितामाताके मरनेपीछे या जीतेही पुत्रिका आप निपूतीमरै तौउस पुत्रिकाकाही ठेठ स्त्रीधन पुत्रिकाका भर्त्ता विनाविचारे वेखट-केहरै-और सिद्धांत इसकायह दर्शाया है कि पुत्रिकापुत्रोंके समान कल्पितहुई इसी हेतुसे कदाचित् ऐसाआग्रह खड़ाहोवै किजब निपूतापुत्र पत्नीहीन मरजाता है तब उसका ठेठधनभी पिताहरता है या पिताके नहोनेमें भाईआदि सपिंड रिक्थीहोतेहैं इसन्यायसे पुत्रिकाकाभी ठेठस्त्रीधन यदि पिताजीता होतौ वहलेवै यद्वा भाईआदि सपिंडसो इस न्यायरूप आग्रहके निवारण हेतुसे यहवचन १३५ वाला मनुने उच्चारण किया यह कुल्लूकभट्टका अनुवाद है-तथाचमनुमुक्तावल्यांकुल्लूकभट्टाः (अपुत्रायां पुत्रिकायांकथञ्चनमृतायांतदीयधनंतद्भर्तैवाविचारयन् गृह्णीयात्पुत्रिकायाः पुत्रसमत्वेनानपत्यस्यपत्नीरहितस्यमृतपुत्रस्य पितुर्धनग्रहणप्रसक्तौतन्निवारणार्थमिदंवचनम् १३५) यहाँपर ध्यानकरनेकी यहबातहै कि यद्यपि इस अंत्योक्त युक्ति से कि अमुकामुक आग्रह दूरकरने के निमित्तमें यहवचन निर्मितहुआ स्वप्नवत् विश्वास आताहै कि जो कुल्लूक भट्टोंने उच्चारण किया शायदसच्चाहो क्योंकि उनकी युक्तिसे अविरोध प्रतीतहोताहै-तथापि ऐसी व्याख्या न्याय विरोधको जल तैल बिंदु न्याय-वत् प्रत्यक्ष खड़ाकरतीहै क्योंकि प्रथम तौ प्रकृत प्रकरण से भिन्नात्मक आशय प्रकट करतीहै अर्थात् मनुके नववें अध्यायमें १०४ मूल श्लोकसे लेकर १८९ मूल श्लोक पर्यंत समस्त ८६ श्लोकोंमें मृत पुरुषके छोड़ेहुये रिक्थका विभाग वा रिक्थीत्वकी प्रतिनिधिता वर्णन हुईहै तिसमें भी १२७ मूल श्लोकसे लेकर निपूते मृत पुरुषके द्वादश पुत्र प्रतिनिधियों का चर्चा छेड़ागयाहै कि वे इसभाँति रिक्थग्राही होसक्ते हैं तिस चर्चामें सबसे पहले पुत्रिकाकी प्रतिनिधिता १२७ मूल श्लोकसे लेकर १४० मूल श्लोकतक निरंतर वर्णनहुईहै कि जिसमें केवल मृत पुरुषके छोड़ेहुये धनमें रिक्थग्राहित्व की प्रधानताके सिवाय कहीं स्त्रीधनका प्रसंग नहीं आयाहै नउसके आनेको अवकाश पायाजाताहै फिर क्योंकर ऐसी व्याख्या न्यायात्मक मानीजाय जिसमें प्रकृत प्रकरणसे भिन्नात्मक युक्ति जोड़ीजाने के सिवाय मूलपाठसे भी अन्वय

व्यतिरिक्तहै क्योंकि (धनंतत्पुत्रिकाभर्ताहरेतैवाविचारयन्) इसमें धन शब्दके साथ कोई ऐसा विशेषण युक्त नहींहै कि जिस्से स्त्रीधनका बोधमानाजाय जो कि उक्तभट्टोंने मध्यस्थ (तत्) शब्दको धन शब्दकेपूर्व अन्वय देकरऐसा अर्थलगायाहै कि (तद्धनं तस्याएवधनं तदीयधनंस्त्रीधनमात्रं) सो यह विपरीत योजना भी असंगतहै किन्तु तत् शब्दका षष्ठी समासहै पुत्रिका भर्तामें और उस्से यही अर्थ होसक्ताहै कि (तत् तस्याः पुत्रिकायाभर्ताधनंहरेत) और सामान्य धन शब्द जो विशेषण हीनहै वह अवश्य किसी विशेषणकी अपेक्षा रखताहै तौ इसलिये उसमें वही विशेषण जुड़सक्ता है जोकार्यसे संबन्धरखताहो-तस्मात्(कथंभूतंधनंहरेतप्रकृतप्रकरणोक्तंरिक्थरूपंभार्यायास्वपितृतःप्राप्तं त्यक्तंभर्तैवहरेतनतुस्त्रीधनमात्रमित्यर्थः सिद्ध्यति) इसके सिवाय यहभी ध्यान कर्तव्यहै कि जो केवल स्त्री धनकी आज्ञा अभिप्रेत होती तौ फिर (बेखटकेहरै)इसनिर्भयत्वकी प्रेरणासे कुछकाम नहींथा क्योंकि जोवस्तु अपनी भार्याकेही स्त्रीधनमें गिनती है सो निस्संदेह अपनी और लोकशास्त्र दोनोंमें प्रसिद्धहै कि भार्या का शरीरभी पतिका एकधनहै उसकेलिये खटका या संदेह या बिचारका कोई हेतुही उपस्थितनहीं जिसका उद्वेग दूरकरनेमें यह तीव्रतरउत्साह दिलायाजाता किन्तु यह उत्साहदिलाना उसधनपर सूचितहोताहै कि जो उसभर्ताकी भार्याने निज पैतृक रिक्थ पायाथा क्योंकि उसमेंयहखटका और संदेहखड़ाहोनाभी सम्भाव्यथा कि शायद पुत्रिकाके दादा दादी या चचा आदि धनके ग्राहकठहरैं जैसा सामान्य दुहिता के पक्षमें निर्णीतहुआथा सो यह खटका शांतकियागया-इसपरभी-कदाचित् ऐसा आग्रह कियाजावै कि यह व्याख्याही निर्मूलहै क्योंकि जामातृ अपनेससुरेका धन कोईभाँति नहींपासक्ता बल्कि संप्रतिपुत्रिकाधर्मकी रीतिका प्रतिषेधहै फिर क्योंकर ऐसान्याय सम्भवहोगा-तौफिर लोकमें साधारणजन परिपाटी देखीजाय और प्रत्येक निपूतेसे यहबूझाजाय कि तुम दुहिता और पुत्रिकासे जामातृको कितनातुच्छ समुझतेहौ और पुत्रिका धर्मकी रीतिका वर्तावा संप्रति करतेहौ या नहीं-पुत्रिकाधर्मकी रीतिका प्रतिषेध यद्यपि दत्तकमीमांसाके निर्माताने प्रायः कल्पितकिया तौभी लोकमें विशेषता वर्तमानहै कि बहुधा जो निपूतेलोग पुत्रीसेभी हीनहुआकरते और दत्तकलेना नहींचाहते वे निरंतर यहीकामना रक्खाकरतेहैं कि एकपुत्रीही यदि पैदाहोकर जीती रहै तौ हम अपनावंश सपूतासमुझैं बल्कि जिनको पुत्री प्राप्तहोजातीहै निरंतर उस में पुत्रभाव मानाकरते और जामातृसहित अपने निकट बासादेकर उसकेपुत्रोंको निज पौत्रकेसमान सेवनकरतेहैं और अपना धनभी उसकेअर्थ प्रकल्पितकरतेहैं कि जो कुछहो सो सब इसकाहै बल्कि इसीआशयसे वे दत्तकलेनेपर आरूढ़नहींहोते और यह कहतेहैं कि अपनी आत्मज पुत्रीको छोड़कर परायापुत्र धनका स्वामीकरैं यह

स्वीकार नहीं (सो) इसभाँतिकी पुत्रीका मानिलेनेका यहतात्पर्य नहीं है कि वहपुत्रीही कुछ पुत्रोंकेसमान होजावे यद्वा पुत्रोंवालेकार्य साधनकरैगी अर्थात् इसमें दो सिद्धान्त समुझिलेते हैं कि प्रथम तौ पुत्रीका बिवाह करतेसार तत्कालही जामातृरूपपुत्र प्राप्त हुआ जिसको गृहबासदेनेके हेतुसे उनसभी कामोंमें सहायता मिलनेलगी जो पुत्रों सेहोसक्तेथे दूसरे जब दौहित्र पैदाहोंगे तब निस्संदेह पौत्रोंके अनुरूप उनसे संसारी काम और पिण्डप्रदानकाभी अवलंब निश्चितहोजावेगा-ऐसापुरुष अपनी पुत्रीकेहित हेतुसे जामातृपर कुछ अधिक मोहरखताहै और उसीको निजपुत्रस्थानी समुझिलेता है अर्थात् वहपुत्री केवल अवलंबमात्र पुत्रिका मानीजातीहै कि उसकाप्रतिनिधिहो कर जामातृ कामआवे-यद्यपि एक शिष्टाचारमार्गसे पुत्रिकाके जीतेजी तक जामातृको धनपर कब्जानहींमिलताहै तथापि जिसधनपर उसकीअर्द्धांगी काबिज़हुई तिसपरशेष आधेअंगका भोग परिग्रह अप्राप्तभी संप्राप्तसमुझाजाताहै तिसऐसीपुत्रिकाके निपूती मरजानेपरभी वह धन भर्ताकोही मिलताहै कोई उस्से छीनलेनेका मनोरथनहींकरता है औरकथंचन अन्ययके आशयसे पुत्रिका चाहे पिताके जीतेहीनिपूती मरीहो तौभी पिताअपनी जीवन अवधिपीछे उसजामातृकोही देताहै बल्कि सामान्य वा निरक्षर स्त्री जनभी एक साधारण बात चीतके प्रसंगमें भी ऐसा उच्चारणकरने का अभ्यासरखते हैं कि अमुक पुरुषके बेटी जमाई विद्यमान हैं क्योंकर कोई उसके धनकी आशकरसक्ता हैसो यह कथन पुत्रिकाकेही पक्षमें उपलक्षितहै सामान्य दुहिता का यह चर्चा नहीं-कदाचित् कोई इस पुत्रिकाकेही पक्षमें यह बुद्धिरखताहो कि पुत्री पुत्र बनाई उसीके गुनगाने चाहिये जामातृसे कुछकाम नहीं इस्से उसका चर्चाकरना वृथाहैसो यह बुद्धि निपट मूर्खता प्रकट करतीहै क्योंकि इसका उत्तर अभी ऊपर लिखागयाहै कि पुत्रीके-वल अवलंबमात्र पुत्रिका मानीजातीहै अन्यथा जो यह ऐसाभाव नहो तौ फिर पुत्रिका भी निजभर्ताहीन दोकौड़ीकी पितृवंश विनाशक ठहरै और जो यहकहने में आसक्ता हो कि भर्ताका सहवास होना योग्यहै परधनकी पहुँचउसतक होनी योग्यनहीं-तौ यह उत्तर इसमें ठीकहै कि जब इतना भी सहारा निपटनहो तौ फिर ऐसाकोई तुच्छ जामातृ मिलसकना संभवनहींहै कि जबतक उसकी भार्या जीतीरहै तबतक ससुरे के घर दास बनिकर भोजनमात्रसे दिनकाटै जन्म गमावै आगे भार्याकेमरजातेसार उसके शरीर वस्त्र आदिक लेकर घरकीराह थाँभै (सर्वेजनाःस्वार्थवशात्प्रियाश्चस्वार्थोगरीयान्नप्रियोस्तिकश्चिन्) कदाचित् यहतर्कणा प्रवेशकरीजावे कियहचर्चा जोकुछ लोक परिपाटी मध्येऊपर कियागया सो उसदशाका प्रसंगहै कि जोपिता अपने जीतेजीनिज इच्छासाथ पुत्रिका और जामातृको अधिकार सौंपदेताहै या मरतेसमय सबके सन्मुख प्रत्ययकर देताहै सोवह दानरूपमें देदेनाकुछ इसप्रकृत व्यवस्थामें दृष्टांतदेने

का संबन्ध नहींरखता है क्योंकि धनीचाहे परजनको भी अपना धनदेडारै तौकुछ झगड़ा कोई नहीं करसक्ता फिर जामातृतौ स्वकीयजनहै-परंतु जामातृके अधिकार मध्ये भावाभाव चर्चा यहांउस दशापर कर्तव्यहै कि जबधनी अपनेआप दिये सौंपे विना मरजाय और पुत्रिका पुत्रस्थानी होनेके हेतुसे रिक्थीत्वका अधिकार पावे तौ पुत्रिका के निपूतीमरने पर जामातृका अधिकार क्योंकरहोगा-इसकाउत्तर उन्हींप्रकारोंसे अधिकार उसकाहोगा जैसाऊपरली पहलीव्याख्यामें कथंचन अन्वयकेअनुरूप दर्शितहुआथा बल्कि ऐसीदशामें उसभर्त्ताको न देनाही अधर्म निश्चितहोता है कि जिसकोउसकेश्वशुराने सौशील्यगुणसंयुक्त देखभालकर निजपुत्रिकाके हितहेतुसे पुत्रस्थानी मानिरक्खाथा और धनभीउसके अर्थमेंसबसमुझाथा पर केवल अंतकालिक भूलकेहेतुसे कुछप्रत्यय करजानेका अवकाश नहीं पाया ऐसे जामातृकी अर्द्धांगी मर जानेसे यदि कोई उसकोदुर्भागी रक्खैनिस्संदेह अधर्मभागी होगा क्योंकि अनधिकार केवल उस जामातृ पर संसूचित हुआहै कि जो सामान्य दुहिता का भर्ताहो-परंच पुत्रिका का भर्ता ऐसा धन पाइकर यदि आप निपूता मरै तौ उस भर्ताके सपिंडों का अधिकार नहोगा किन्तु पुत्रिका के निज पैतृक सपिंड धनको पावेंगे उस भाँतिसे कि जैसे सामान्य दुहिताके धन पाइकर निपूती मरनेमें अधिकारी निश्चितहुयेहैं -इसके सिवाय- यहतर्क इसमेंशेषहै कि भला जामातृको तौ पुत्रीके अवलंब मात्रसे यहसमुझिसक्तेहैं कि पुत्रस्थानी मानागया होगा क्योंकिजहां पुत्रिका पुत्रस्थानी कल्पित हुई होगी तहाँ उस पुत्रिका का भर्ता भी अवश्य उसके साथहोगा-परंच पुत्रीको (पुत्रिका) समुझाजाने वाला प्रत्यय कौनहै क्योंकि विना चिह्न कोई बात समुझी नहींजाती और ऊपर जो कुछलोक वर्तावा वर्णन किया उसमें कोई चिह्न ऐसा नहीं जिस्से पुत्रीको (पुत्रिका) समुझें और पिता करकेमनसे मानिलेना यहकुछ प्रमाणमें आसकने योग्य नहींहै बल्कि (पुत्रिका) के यथार्थ लक्षण मनुने यहकहेहैं (अपुत्रोऽनेनाविधिनासुतांकुर्वीतपुत्रिकाम्। यदपत्यंभवेदस्यांतन्ममस्यात्स्वधाकरम्)अर्थात्-निपूतापुरुषअपनीपुत्रीको इसविधिसे पुत्रिका कल्पितकरै कि उसके दानकालमें जामातासेयहवचनपक्का करि लेवे कि यह कन्यामें पुत्रिका कल्पितकरिकै तुम्हें देताहूं इसमेंजो सन्तान पैदाहोय सो वहमेरा पिंडश्राद्ध आदि स्वधाकर्मकरनेवाला पोताठहरे अर्थात् मैं उसको अपनेपास रखकरपोता कल्पितकरोंगा-सो-यहमनुकेकहे कोईलक्षणउसपुत्रिकामें न पायेगयेजिसका चर्चा ऊपर कियागयाबल्किपुत्रिका और जामातृकाभी पासरहना निश्चित न हुआ केवल दौहित्रको लेलेनेवाला वचनरूप चिह्नपायागया इसका उत्तरक्या देसक्तेहो! सुनो-पुत्रिकाभी कृता अकृताके भेदसे दोभांतिकी होतीहैं तिनमें कृता पुत्रिका यहीहै कि जिसके लक्षण इसीमनुके वाक्यमें दर्शायेगये क्योंकि यह पुत्रिका वरकी अनुमति

लेकर बचन बन्धनसेही करीजाती है और इसका केवल पुत्रलेकर द्वादश पुत्रों में निज पौत्रस्थानी कियाजाता है कुछपास रखनेमध्ये इसका नियमनहीं और अधुना जो पुत्रिका धर्मकी रीतिका प्रतिषेध कल्पित हुआ सोभी इसीपुत्रिका पक्षपर आरूढ़ है-और जिसपुत्रिकाकी व्यवस्था ऊपरलोक बर्त्तावासे दर्शाईगई वहीदूसरी (अकृतानामपुत्रिका) होतीहै क्योंकि वह पुत्रीकावचन बन्धनके विनाही सामान्यभाव करीजातीहै तथापि उस अकृता में इस कृताकी अपेक्षा यह विशेषता वर्तमान है कि उसका बहुधाही वर्तावा कियाजाताहै और पिता माताके मनोरथमात्रसे होसकना उसका सुगमहै और सर्वकाल भर्तासहित निवास उसका पिताकेघर होताहै और संतान उसके जितनी हों पिताकेहीपोता पोतीके समान समुझेजाते हैं और कृतापुत्रिकाकी संतान केवल एक नानाको मिलतीहै कि जैसा वचन बंधहुआ हो इस्से कोई शंकाकरनी व्यर्थहै-कृता और अकृतादोनोंका भेदनिश्चित होनेमध्ये मनुका अग्रोक्त वचन प्रमाण है—यथा (अकृतावाकृतावापियंविन्देत्सदृशात्सुतम्। पौत्रीमातामहस्तेनदद्यात्पिंडंहरेद्धनम् इतिमानवेनवमेऽध्याये १३६ श्लोकः)-अर्थात्-१३५ में निपूती पुत्रिकाके भर्ताका अधिकार सूचन किया था अब १३६ में सपूती के पुत्रोंका अधिकार सूचन करतेहुये पुत्रिका का द्वैविध्यप्रकट करते हैं कि पुत्रिका चाहे अकृता यद्वा कृता हो वह जिस पुत्रको समान जाती बोढ़ासे उत्पन्नकरै तिसपुत्रसे नाना उसका पोतेवाला निश्चित होताहै इसहेतुसे वह पुत्र अपने नानाका पिंडदेवै और धनहरै-गौतमोपिद्वैविध्यलक्षणमाह-यथा (अभिसंधिमात्रात्पुत्रिकावेत्येकेषाम्) अर्थात् पुत्रिका अभिसंधिमात्रसेभी हुआ करतीहै यहएकोंका संदृष्टप्रत्ययजानो-यहाँ (अभिसंधि मात्र कहनेका यह भाव है कि पिताके मनोरथ साथ पुत्री और जामातृके समीप रहने मात्रसे पुत्रीकाधर्म सिद्धहोताहै) इत्यादि सर्वकारणोंसे इसपक्षमें कुछ शंकाकरनी व्यर्थ है-सर्वथा पुत्रिका यद्यपि पुत्रोंकेसमान कल्पितहोकर मानीजाती है तथापि उसको स्थावरधनके दान या विक्रय आदि वियोगोंमें अधिकार पूरानहींहोता किन्तु जैसा ऊपरले परिच्छेदमें सामान्य दुहिताओंकी अपेक्षा निर्णयहुआथा तद्वत् इसपुत्रिका कोभी समुझो और (पूरानहींहोता) इस्से यह आशयभी दर्शायाहै कि जैसा पत्नीके अनुवादस्थलपर इसी परिच्छेदमें पत्नीको यत्किञ्चित् ऐसा करसकनेका अधिकार सूचितहुआथा तैसाउन्हींप्रकारोंसे पुत्रिका और दुहिताओंकोभी समुझिलेना-परंच-पुत्रिका और दुहिताओंको अपने निज स्त्रीधनपर पूराही अधिकार होताहै और उस परभी कि जोकुछ स्थावर उनकोदानद्वारामिलाहो चाहे अपनेपितासे या और किसी पितृपक्षीसे कुछ इसका नियमनहीं क्योंकि यहभी एक स्त्रीधनमें गिनतीहै-किन्तु जो कदाचित् अपनेभर्तासेही दानद्वारा पायाहो तिसकाव्यौरा आगे स्त्रीधनके परिच्छेदमें

अवलोकन करो-इतिदुहितॄणामधिकारविचारशेषपाठः (अथदौहित्राणामधिकारस्यानुवादः) दौहित्रोंका अधिकार जैसा ऊपरले ५६ के परिच्छेद में देशांतर भेद ब्यौरेवार वर्णनहोचुका सो सब ठीक है पर यहां उस दौहित्र विशेषकी अपेक्षासे अनुवादकरना होगा जो (पौत्रिकेय)कहलाता किंतु (पुत्रिका) हुई बेटीसे जन्माहो और उसकेही प्रसंगसे सामान्य दौहित्रोंका भी चर्चाकरनाहोगा क्योंकि उसका अधिकार अन्य सामान्य सब दौहित्रों के सन्मुख बड़ी विशेषता रखताहै कि उसके सद्भाव में दौहित्रोंका अधिकार नहींहोता क्योंकि वह पोता के समान कल्पित हुआ है और इसी हेतुसे निजमाता के अभाव में वह नानी के जीतेभी मृत नानाका धनहरताहै-तदाहमनुः (दौहित्रएवचहरेदपुत्रस्याखिलंधनम् १३१ दौहित्रोह्यखिलंरिक्थमपुत्रस्य पितुर्हरेत्। सएवदद्यात्द्वौपिंडौपित्रेमातामहायच १३२ – इतिनवमेऽध्याये)अर्थात नवयेंअध्याय में पुत्रिका का अधिकार निश्चित किये पीछे मनुकहते हैं कि यदि पुत्रिका पुत्रपैदाकरके अपने पिता के जीतेजी मरचुकी हो तो दौहित्र ही निपूते नाना का सब धन हरै १३१ इससे निचले वाक्य में फिर कहते हैं कि दौहित्रही निजनिपूते पिताकाभी सब धनहरै और वही अपने वाप तथा नाना को भी पिंडदेवे १३२ (आशयइसका यह है कि ऊपरले अद्धामें दौहित्र विशेष पौत्रिकेयको नानाका धन हरना कहा उसमें यह चिंताखड़ीहोतीथी कि वह अपने नानाका पोता कल्पितहुआ कदाचित् उसकेभ्राताकोई और न होतो फिरबाप निपूता ठहरेगा उसबापकेधनपिंडों में अधिकार किसकाहोगा) सोइस चिंताको द्वितीयवाक्यसे मिटायाहै कि भ्रातारहित पुत्रिकासुत निजबापके भी धन पिंडोंका अधिकारी है पर जिसकेकोई सामान्य भ्राता ऐसाहो जो नानाका पौत्रिकेय नहींठहरे तो उसभ्राताके होतेहुये पौत्रिकेयकोनिजवाप के धन पिंडोंमें अधिकार नहीं-पुनरपिदार्ढ्यमाहमनुः (पौत्रदौहित्रयोर्लोके नविशेषोऽस्तिधर्मतः। तयोर्हिमातापितरौसंभूतौतस्यदेहतः१३३–अर्थात्–ऊपरले नियमों से बुद्धिमें चंचलता खड़ीहोती थी कि दौहित्र पोता क्योंकरवनसक्ता किंतु दौहित्रतोजामात से और पोताअपने पुत्रसे उत्पन्नहोताहै इसकी दृढ़ता मनुतृतीयवाक्यसे फिर कहते हैं कि–पौत्र और दौहित्र दोनों वीच कुछ न्यूनाधिक्य विशेपता न तो लोकमें विख्यातहै न धर्म कृत्योंमें संभाव्यहै क्योंकि दोनों केहीमाता पिताउसकी देहसे उत्पन्न हुये हैं अर्थात् दौहित्र की माता और पौत्र का पिता दोनों एकदेह से उत्पन्नहुये-जव कि पौत्र और दौहित्र दोनों तुल्य ठहरे तो फिर यहभी न्यायस्वयंसिद्ध ठहरा कि जैसे पुत्रके अभावमें पौत्र धनको पाता है तथैव पुत्री के अभाव में दौहित्र धनको पावें किंतु पुत्री के जीते जीतक नहीं-मनुने-इस दौहित्र विशेष पुत्रिकासुत को श्राद्ध करने का भी उचित प्रकार दर्शाया है-यथा (मातुःप्रथमतःपिंडं निर्वपेत्पुत्रि

कासुतः। द्वितीयंतुपितुस्तस्यास्तृतीयंतत्पितुःपितुः १४०—इति नवमेऽध्यायेमनुः) अर्थात्—मनु कहते हैं कि पौत्रिकेय दौहित्र इस क्रमसे पार्व्वण श्राद्ध करसक्ता है कि पहला पिण्ड अपनी माता को दूसरा माता के बाप को तीसरा माता के दादे को उद्देश करके देवै-कदाचित्-पौत्रिकेय को निज पिताका भी पार्व्वण करनाहो तौ उस दशा में यथोक्त क्रमसे अपने बापदादा परदादा को तीनों पिंड देवै इसकी आज्ञा ऊपर १३२ वाले मनुके वाक्यमें होचुकी है-यहसब चर्चा मनुके वचनों द्वारा सर्वत्र एक वचनके वाचित्वसेही केवल पौत्रिकेय दौहित्र विशेष का दर्शाया गया-अब-अग्रोक्त विष्णुवाक्यसे सामान्य दौहित्रोंकोभी पौत्रोंके समान श्राद्ध करने का अधिकार दर्शित करते हैं-यथा (अपुत्रपौत्रसंतानेदौहित्राधनमाप्नुयुः। पूर्वेषांतुस्वधाकारेपौत्रादौहित्रकामताः) अर्थात्-विष्णुने सामान्य दौहित्रों को बहुवचन का उद्देश देकर ऐसा धर्म दर्शायाहै कि-पुत्रपौत्र प्रपौत्रतक संतानके न होने में धेवते धन को पावें क्योंकि उसदशामें पूर्वमरे त्रिपूरुषके पिंडादि स्वधाकार्य करसकने को धेवतेही पोते समुझे जाते हैं-यद्यपि इस विष्णूक्त वचनके अक्षरार्थ मात्रसे बेटा पोता परोता तक न होनेमें धेवते मालिक समुझेजाते हैं तथापि न्यायसाम्य सिद्धान्त से इन तीनोंके उपरांत धनीकीपत्नी और दुहिताओंकाभी अभाव समुझिलेना क्योंकि इस वचनमें दौहित्रों का अधिकारमात्र निश्चित कियागया कुछ आगे पीछे का क्रम संदर्शित नहीं किया इस्से जो क्रम नियमात्मक चला आता वही यहां भी सम्भाव्यहै कि पत्नीके होतेहुये दुहिता नहीं पासक्ती और दुहिताके होतेहुये दौहित्र नहीं पासक्ते-ऊर्द्धोक्त सर्व मर्यादों से दौहित्र अपने नानाका धन पाइकर निरन्तर निज संतान प्रतिसंतान द्वारा भोगाकरते हैं परन्तु ऐसानानाका धनपाने पीछे जो दौहित्र कोई निपट निपूते मरें और कोई उनमें जीतेरहें तौ वह निपट निपूते दौहित्रों का भाग उनकेजीते भ्राताओंको उसक्रमसे पहुँचसक्ताहै कि जैसा न्याय दुहिताओं और दौहित्रोंके मुख्यस्थलपर वर्णनहुआथा-पर उसदशामें कि जो नानाकाधन हरनेवाले सब दौहित्र निपटनिपूतेमरें तौ जो धन उनके भोगसे बचरहाहो सो उसनानाकेही पिता माता भ्राता आदि हरसक्तेहैं अर्थात् दौहित्रोंके निजपैतृक सपिंडों का अधिकार उसमेंनहीं-परन्तु जो उन्हीं मृत दौहित्रोंने कुछ नानाके कुलसे दानमार्गसे धन पायाहो तो उसधनमें दौहित्रोंके निजपैतृक सपिण्डोंका अधिकारहै-इति दौहित्राणामधिकारविचारशेषपाठः (अथ पित्रोरधिकारस्यानुवादः) पिता माताका अधिकार जैसा न्यायात्मकथा मुख्यस्थलपर प्रदर्शितहोचुकाहै कि दौहित्रोंके नहोने या धन पाइकर निपूतेमरजानेमें धनीकापिताधनकोहरे और पिताकेपश्चात्माताहरे-तथापि-यहअनुवाद इसहेतुसे प्रदर्शित कियाजाता है कि विरलेअवसर में विपरीतक्रमका

न्यायभी अविरोधी सम्भवहोताहै-यद्यपि-स्मृतिचन्द्रिका , मदनरत्न,कल्पतरु,रत्नाकर पारिजात, मर्यादापरिपाटी आदि बहुधा ग्रन्थकर्त्ता और जीमूतवाहनआदि बहुधा बांगदेशी ग्रन्थकारों का सिद्धांत यही है कि पहले पिता पीछे माताका अधिकारहो और यही सिद्धांत उनका सर्व साधारणभावसे न्यायात्मक है कुछ देश विशेषका चर्चा इसमें नहीं करसक्ते-परन्तु-मिताक्षराआदि विरले ग्रन्थोंमें इस्सेविपरीत पहले माताका अधिकार मानागया बल्किमैथिल वाचस्पतिमिश्रने विपरीत क्रमका पक्ष लेकर अपने संग्रहकिये ग्रंथमें प्राचीनग्रन्थ वृहद्विष्णुके वचनका प्राचीनपाठ भी कुछ उलटा करके लिखाहै अर्थात्(अपुत्रस्यधनंपत्न्यभिगामि तदभावेदुहितृगामि तदभ वेपितृगामि तदभावेमातृगामि) यह तो विष्णुका वाक्यहै और वाचस्पतिने इसीमें (तदभावेमातृगामि तदभावेपितृगामि) इतना पाठ उलटाकिया सो यहउलटापाठ केवल मिथिलाकेही ग्रन्थोंमें स्वीकार होतारहा औरसर्वत्र सबग्रन्थोंमें प्राचीन पाठ लिखाजाताहै-विज्ञानेश्वरने विपरीत क्रमका पक्षलेकर अपने ग्रन्थ मिताक्षरामें इस वचनको लिखनेसेही छोड़दिया क्योंकि पाठका उलटाकरना अनुचित समुझा और सूधापाठ लिखनेसे विपरीत क्रमका भंगहुआ जाताथा-विरले ग्रन्थकारोंने विपरीत क्रमका पक्षलेकर यह निरपेक्ष वचनभी प्रमाण दियाहै कि (सहस्रंतुपितुर्मातागौरवे णातिरिच्यते) अर्थात् गौरवता मध्ये पितासे सहस्रगुणी माता बड़ीहोती है क्योंकि नौ महीना गर्भमें राखती और पालन पोषण आदि अतिशय उपकार वही करती है इसलिये धनभी पहले वहीपावै सो यहप्रमाण उनका अतिशय तुच्छ और निरर्थकजानो क्योंकि यहबड़प्पन जैसा माताका दर्शाया तैसा पिताकाभी माताकी अपेक्षाबहुधा वचनों से संसिद्ध होताहै क्योंकि पिताही पुत्रोंके संस्कारकरता और उनके लिये वृत्ति नियतकरताहै कि जोबातें मातासे होसकनी दुर्घटहोती हैं इसीलिये एक वाक्यमें यहकहाहै कि(तयोरपिपिताश्रेयान्बीजप्राधान्यदर्शनात्)अर्थात्यद्यपिमाता पिता दोनोंपूज्यतमहैं तौभी दोनोंके बीच पिताश्रेष्ठजानो क्योंकि पितामें सबसे बड़ी प्रधानता बीजदानकी प्रसिद्धहै कि जबतक पिता बीज नहींदेवै पुत्रक्योंकर पैदाहोय (सो)इसप्रकारके वचन केवलपितामाता की पूज्यता सिद्धकरनेवालेहोते हैं इनवचनों से व्यवहारशास्त्रमें कुछ धनका अधिकार सिद्धनहींहोता इस्से इनवचनोंका प्रमाण दायभागमें निरर्थकजानो क्योंकि जो इसीबड़प्पनके अनुसार धनका अधिकारमाना जाय तौ फिर पितासेपहले विद्यादाता आचार्यकाअधिकार खड़ाहोता है (उत्पादक ब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदःपिता)अर्थात् शरीरउत्पन्नकरनेवाले और विद्यादेनेवाले दोनोंकेबीच विद्यादाताबड़ाहै और वही पिताहै इसवचनके अनुसारविद्यादाता पितासे भीबड़ा निश्चितहुआ इस्से उसीको धनमिलना चाहिये जन्मदातापिताको उसकेपीछे

मिलना चाहिये यह दोष खड़ाहोताहै (औरजो) इसवचनकी ऐसी व्याख्या करीजाय कि एक सामान्य उत्पन्नकर्त्ता पितादूसरा उत्पन्नकरिकै वेदपढ़ानेवालापिता तिनमें वही पितावड़ाहै जोब्रह्मदहो तौभीयही दोषापत्ति होतीहै किपुत्रकोजिसपिताने उत्पन्नकिये पीछे विद्यादानभी आपहीकियाहो सोतौ ऐसेपुत्रकाधन हरसकै अन्यथा जिसनेजन्म-मात्रदियाहो सोवहपिता अनुत्तमहै इसलिये जिसने उसकेपुत्रको विद्यादान कियाहो वही आचार्य धनकोहरै उस आचार्यके न होनेमें अनुत्तम पिता भागीहोगा औरभी वड़प्पनके अनुसार वहुधादोष खड़ेहोतेहैं किभाई या भतीजेके होतेहुये दादा या च-चा धनकोपावै क्योंकि इनदोनोंसे वहदोनों बड़ेहोते हैं इत्यादि प्रकारोंसे सर्वत्र दाय-भागकी मर्यादाही विपरीत करनीपरै-इसकेसिवाय-पितामाताके बड़प्पन दर्शाने वाले वचनभी परस्पर एकदूसरेसे विपरीत देखपरता है-यथा (उपाध्यायाद्दशाचार्यआचा र्य्याणांशतंपिता। सहस्रंतुपितुर्मातागौरवेणातिरिच्यते। गर्भधारणपोषाभ्यांतेनमाता गरीयसी) अन्यच्च (सगुरुर्यःक्रियाःकृत्वावेदमस्मैप्रयच्छति। उपनीयददद्वेदमाचार्य्यः सउदाहृतः॥ एकदेशमुपाध्यायऋत्विग्यज्ञकृदुच्यते। एतेमान्यायथापूर्वमेभ्योमाताग रीयसी-इत्याचाराध्याये) इत्यादि वहुधा और बाक्यभी माताकी पूज्यता प्रकटकरते हैं और(तयोरापिपिताश्रेयान्बीजप्राधान्यदर्शनात्)इत्यादि और बहुधा स्मृतिवाक्यों से पिताकीपूज्यता अधिक निश्चित है-और प्रत्यक्षबर्त्तावेका प्रमाणबहुधा यहकि पि-ताकीआज्ञाको प्रधान मानिकर परशुरामने निजमाताका शिर काटिदिया रामचंद्रने कौशल्यामाता के प्रतिषेध वचनोंको उलांघकर पिताकी आज्ञासे बनबास अंगीकार किया इस्सेपिताकी पूज्यतामें विशेषता पाईजातीहै-यहतौ केवल पूज्यताका व्यवहार है और इसीप्रकारदायभागके व्यवहारमें भी मातापिताके अधिकार साधकवचनोंका विरोध जैसा पहलेवर्णन हुआथा प्राचीन स्मृतियोंसे भी पायाजाता है-यथा (अन पत्यस्यपुत्रस्यमातादायमवाप्नुयादितिमनुः) (भार्य्यासुतविहीनस्यतनयस्यमृतस्यच। मातारिक्थहरीज्ञेयाभ्रातावातदनुज्ञया इतिवृहस्पतिः) इत्यादि विरलेमाता के अ-धिकार साधकवाक्य हैं-यद्यपि इसीमनुके वाक्यसे पत्नीके अनुवाद स्थलपर एकव्य-वस्था नियतहोचुकी है कि माता या दादीका अधिकार केवल ऐसे धनपर समुझो जो किसीबालक भ्राताने भ्राताओंसाथ पैतृक रिक्थपाया हो ऐसापुत्र निपुतामरै और वहमाता या दादी आपविधवाहो इत्यादि उसीस्थलपर सवदेखो इत्यादि(और) वहीव्यवस्था इस अत्रोक्त वृहस्पतिके भी वचनसे संसूचित है तथापि वहुधालोग आग्रह खड़ाकरते हैं कि सामान्य और भांतिकभी पुत्रकाधन समुझैंगे और माता चाहै विधवाहो या न हो-परन्तुयह आग्रहउनका निम्नोक्त शिवकेवाक्यसे मिटजाता है क्योंकि शिवजीने स्पष्ट विधवामाता का अधिकार दर्शितकिया है-यथा (मृतस्यो

र्ध्वगतंवित्तंयथाप्राप्नोतिततपिता। जनन्यपितथाप्नोतिपतिहीनाभवेद्यदि) इसवाक्यसे स्पष्टजीते पिताका अधिकार सिद्धहुआ और इसीप्रकार जीतेपिताके अधिकार साधक और भी बहुतेरेवाक्य हैं-यथा (पिताहरेदपुत्रस्यरिक्थंभ्रातरएववा इतिमनुः)(तदभावेपितातदभावेमाताइतिविष्णुः) योगीश्वरने (पितरौ)यह पदएक साथ उच्चारण किया और सूधापुगम न्यायात्मक इसकाभावहै कि पितामाता दोनोंएकसाथ मालिकहों इसकेऊपर ग्रंथकारोंने नैयायिक उक्तियुक्तिक अवलंबसे उलटेसूधे दोनों भांति के अर्थखैंच तानकिये बल्कि बिरलोंने यहांतक प्रगलभता प्रकटकरी है कि पितामाता दोनों आधाआधा बाँटिलें-इसमेंइतना उन्हें और भी लिखदेना योग्यथा कि तब यह बात योग्यहै जबदोनों जुदे होनेलगें-इत्यादि द्विविध विरोधोंके हेतुसे जब कदाचित् वाद विवादकी सर्वथा शांति करनाही अभिवांछित हो तो अत्रोक्त अधिकार साधक वचनोंके विरोधको ऊर्ध्वोक्त पितामाताकी पूज्यता दर्शकवचनों के विरोधसे तुल्यता करनीयोग्य है कि जिसकेकरनेसे अधिकारमें विकल्पक्रम उत्पन्नहोता है अर्थात् जहांपिता साक्षात्कार महागुरु लक्षणोंसे संयुक्तहो जिसनेजन्मदेने और संस्कारकियाकरनेके सिवाय विद्यादानभी आपहीकियाहो यद्वा करसकनेयोग्य पंडित और विज्ञानी सत्त्वगुण संपन्नहो या पुत्रोंकी वृत्तिकल्पित करनेमेंसमर्थहो और माताउनसब गुणोंसे विहीनहो जो पतिकीआज्ञा वशवर्तित्व आदिपातिव्रत्य प्रयोजक और संसार के व्यवहार साधकस्त्रीधर्म होनेयोग्यथे तब उनदोनोंमें प्रत्यक्ष पिता उत्तमहै इसलिये जोजोवाक्य पिताके पक्षमें अधिकार साधक दर्शितहुये तिनके अनुसार पहलेपिताहीअधिकारी ठहरे-और-जहांमाताही अरुंधती आदिकेसमान पातिव्रत्य गुणसंयुक्त और संसारी लोकव्यवहारोंके संसाधनमें,समर्थहो और पिताकेवल जन्मदेनेके सिवाय सर्वथा निर्गुणहो जिस्सेपुत्रकी वृत्तितक न कल्पितहुई हो या तामसयुक्त जड़बुद्धिहो (इष्टंवाऽनिष्टंवासुखंदुःखंवानवेत्तियोमोहात्। परवशगःसभवेदिहनाम्नाजडसंज्ञकःपुरुषः)तब इसपिताके सन्मुखऐसी माताही मान्यतम होने के हेतुसे निपूतेपुत्रके धनपर पहले अधिकारपावे तो इसन्यायसे सबग्रंथोंके वचनोंका विरोधशांतहोताहै-अन्यथा जहांमाता पिता दोनोंही समानगुण के निश्चितहों अर्थात् किसीगुणसे माताकीउत्तमता और किसीगुणसे पिताकी उत्तमता पाईजानेपर दोनोंकी तुल्यतामानी जासक्ती हो तोफिर माताका अधिकार न होगाकिन्तु पुरुषोंकी प्रधानता हेतुसेपिताही अधिकारीहोगा जैसाऊपरले ५६ केपरिच्छेदमें मुख्यस्थलपर निर्णयहोचुकाहै(स्वःप्रयातुःस्थितेतातेतथामातरिकालिके। पुंसोमुख्यतरत्वेनधनहारीभवेत्पिता) मातानेकदाचित् ऐसे मृतपुत्रोंका स्थावर धन कुछपायाहो तो उसधनसे आत्मपोषण आदि नियत प्रकारों का व्ययकरने के सिवाय दान विक्रय आदि व्यर्थ वियोग करनेमें अधिकार

उसको नहींहै-यथाहसदाशिवः (प्रेतलब्धधनैर्नारीविदध्यादात्मपोषणम्। पुण्यंतुतदुपस्वत्वैर्नशक्तादानविक्रये) (उपस्वत्व) नाम भाड़ा पोता आदि उपलाभोंसे कुछ पुण्य भी यथोचित रीतिसे करसक्ती है और आत्मपोषण आदि आवश्यक व्यय उस मूलधन के विक्रय वा आधानसे भी उसीप्रकार करनेमें समर्थहै कि जैसा निर्णयपत्नी के अनुवाद स्थलपर स्त्रियोंके अधिकार मध्ये हुआ था (इतिपितुर्मातुश्चाधिकारविचारशेषपाठः) (अथभ्रातॄणामधिकारस्यानुवादः) भाइयोंका अधिकार जैसा मुख्यस्थल पर वर्णनहुआ सो सब ठीकहै-यहां केवल ग्रन्थ भेद वचनोंका विरोध दर्शित करने के हेतुसे अनुवाद कियाजाताहै कि (अपुत्रधनंभ्रातृगामि)अपुत्रस्यस्वर्यातस्यभ्रातृगामिद्रव्यंतदभावेपितरौहरेयाताम्) इत्यादि शंख पैठीनसिआदि वचनोंकरके पहले भाइयोंका अधिकार समुझा जाताहै-और (पिताहरेदपुत्रस्यरिक्थंभ्रातरएववा) मनु के इस वचनमें (वा) शब्दकी योजना से विकल्प समुझाजाता है कि यातौ पहले पितापावै या भाई पहले-और (ततोदायमपुत्रस्यविभजेरन्सहोदराः। तुल्यादुहितरो वापिध्रियमाणःपितापिवा॥ सवर्णाभ्रातरोमाता भार्य्यावेतियथाक्रमम्। तेषामभावे गृह्णीयुःकुल्यानांसहवासिनः इतिदेवलकथनम्) और (विभक्तेसंस्थितेद्रव्यंपुत्राभावे पिताहरेत्। भ्रातावाजननीवाथमातावातत्पितुःक्रमात् इतिकात्यायनवचनं) इत्यादि बहुधा और भी विरोधीवाक्य हैं जो पहलेभी अनेक अवसरमें लिखचुके इस्से लिखना और कुछ व्याख्याकरना यहाँ आवश्यकनहीं है क्योंकि उनमें प्रायः पहले भाईका अधिकार यद्वा कहीं विकल्पसे बापकाभी लिखाहै और पत्नी दुहिता दौहित्रोंका अधिकार उनमें उलटा सुलटा आता है-इत्यादि विरोधोंको शांतकरनेकी अपेक्षासे कल्पतरुकारने पत्नी और भाईके अधिकार स्थलपर ऐसा लिखाहै कि श्राद्धादि कर्मोंके अधिकारवाली साध्वीपत्नी पहले मालिकहोगी और उससे इतर सामान्यपत्नी भाई और पिताके पीछे मालिकहोगी-उन्हींने पिता और भाई के अधिकारस्थलपर ऐसालिखाहै कि जिसधनीने पिता दादाआदिके धनमेंसे निजभागपायाहो और वह आप निपूतामरै तौ उसधनमें पहले पितामाताका अधिकार होवै परन्तु जो उसने पितामाताकाधन खर्चेंविना अपनेआप अर्जितकियाहोतौ उसधनमें पितामाताके होते भी भाइयोंका अधिकारपहुँचे ऐसीरीतिसे उनवचनोंकाविरोधशांत होसक्ताहै-यद्यपि ऐसा लिखना उनका एक प्रकारसे न्यायात्मकहै परतौभी ऐसा नियम निश्चित कर लेनेमें यह दोष खड़ाहोता है कि जिस धनीने दोनों भांतिके धन मिश्रीभूत छोड़ेहों तब उनधनोंका पृथक्त्व होसकनाभी उपद्रवकी मूलहोगा-विरलोंने यह शांति कल्पित करी है कि योगीश्वर और वृहद्विष्णुके जो वचनहैं सो तो क्रम निर्माण पूर्वक होगये और अन्यस्मृतियों के जो वाक्यहैं सो कुछ क्रम निर्माणकी अपेक्षा लेकर नहीं कहे

गयेइस्से नतौ उनमेंकुछविरोधहै न उसविरोधके होनेसे कुछहानिहै क्योंकि जिसजिस अधिकारीका जैसा चर्चा जिसजिस वचनमें आया सो सब अपने अपने केवल अवसरमें अविरोधी होसक्ताहै (सो) यहशांति भी कुछ सार्थक नहीं समुझनी क्योंकि देवल कात्यायन आदि वचनों में स्पष्ट क्रमका चिह्नहै—परन्तु-बिरले अवसर में यह शान्ति एक सार्थक समुझीजासक्ती है कि जब कईएक अधिकारी विद्यमान हैं और उनमें किसी वचनसे भ्राताका अधिकार और किसी वचनसे पिताका इत्यादि वैपरीत्य पायाजाय तब इस बातका निर्णय करना आवश्यकहै कि इनमेंसे कौन मनुष्य मरेधनीके जीतेजीतक अनुकूल और कौन उसके प्रतिकूल रहाथा—जो कोई उसके अनुकूल रहाहो उसीके अधिकारवाला वचन भी व्यवस्था में प्रमाण करना योग्य है—जब कई ऐसे पुरुष उपस्थितहों जो सभी उसके अनुकूल रहे हों तब उनमें से जो कोई पुरुष अधिकतर गुणवान् हो उसी के अधिकारवाले वचनों का स्वीकार हो-जब गुणवान्भी अनेकठहरें तबउनमें जिसकिसीसे उसधनीका उपकाराधिक्य समुझाजावै कि वहधन हरनेपीछे धनीके अमुकामुक उपकारोंका संसाधनकरैगा तौ उसीके अधिकारवाले वचनोंका स्वीकार कियाजाय तौ उन वचनोंका विरोध ऐसी विषय व्यवस्थासे उपशांत होसक्ता है-इसके सिवाय-एकप्रकार यह भी है कि जहाँ पिता और माता अतिशयबूढ़े या असमर्थ अंगभंग आदि किसी हेतुसे इन्द्रिय विकलहों और धनीके भ्राता सर्व समर्थ संसारी व्यवहारों के साधयिताहों तहाँ निस्संदेह वेहीवचन सच्चे हैं कि जिनमें भाइयोंका अधिकार पितासे पहले कहागयाहो इसीप्रकार दादा दादी आदि औरोंको भी समुझिलेना अर्थात् जिस किसीका अधिकार जिसके पीछे निश्चितहुआहो तिसकाभी उसपूर्वनिश्चित अधिकारी की असमर्थतासे पहले होसक्ता है क्योंकि भोग्यवस्तु योग्य भोक्ताके भोगमें लगाना एक नियमात्मक न्यायसमुझाजाता है (भोग्यंयोग्यायदातव्य मितिन्यायविदोविदुः) (कनकभूषणसंग्रहणोचितोयदिमणिस्त्रपुणिप्रणिधीयते। नसविरौतिनचापिसुशोभते भवतियोजयितुर्वचनीयता) इत्थंक्रमविपर्य्यासन्यायसे निपटारा कियेजानेपर भी मातापित्रादि असमर्थ अधिकारियोंका अधिकार निपटजाता नहींरहता अर्थात् उनका पालन पोषण धनके हरनेवालोंसे करवाया जाना यह सर्वत्र नियमात्मक है (यो यस्यधनहर्त्तास्यात्सतद्धर्माणिपालयेत्। संरक्षेन्नियमांस्तस्य तद्वन्धून्परिपालयेत्॥ इतिवचनात्तेषामधिकाराधिक्यसम्बन्धाच्च) इतिभ्रातॄणामधिकारविचारशेषपाठः॥ (अथभ्रातृपुत्राणांपौत्राणामपिचर्चामात्रम्) निपट किसी भाई के न होने में भतीजों का अधिकार निश्चित होचुकाहै तिनकेलिये कुछ अनुवाद आवश्यक यहांनहींहै क्योंकि उनके अधिकारमध्ये कोई वचन विशेष बाधक नहींहै जिसकी शान्ति करनी पड़े—

तथापि यदि कोई अपनी बुद्धिभ्रमसे योगीश्वरकेही मूलवाक्यमें यह युक्ति उपस्थित करै कि (पितरौभ्रातरस्तथा-तत्सुताः) इसमें पिता माताकेपश्चात् भाई और भतीजे भी मिलकर एकसाथ भागी होने समुझेजाते हैं क्योंकि(तथा)शब्दकी योजनासेयथा भाई तथा भतीजे भी परस्पर सदृश मानेजासक्ते हैं इस हेतुसे मृतधनी के भाई और भतीजेभी परस्पर निज निज मूर्त्तिका प्रत्येक अंश पावैं तौ कुछ दोष नहीं यद्वा ऐसा होनासम्भव न हो तौ फिर(अनेकापितृकाणान्तु पितृतोभागकल्पना) यहयोगीश्वरका हीवचन पहले पैतामह धनके भागस्थलपर आचुका है और इसका अर्थ भी यह निश्चित पहले होचुकाहै कि अनेक बापोंके पोता अपने दादाके धनमेंसे निज निज बापोंकाही भागपावैं इसन्यायके अनुसार यहांचचाके भी धनमेंसे निज बापोंकाभाग भतीजे जीते हुये पितृव्यों साथ पावैं तौ अन्याय नहीं है-सो-इन दोनों भ्रामिक युक्तियों का यह उत्तरहै कि यह निचला नियम केवल पैतामह धनका विषय नियत हुआहै पितृव्य धनमें ऐसा नहीं होसक्ता किन्तु पितृव्यके धनमें जैसा होना योग्यथा सो नियम ऊपर ५६ के परिच्छेदमें भतीजों के अधिकार स्थलपर निश्चित होचुका वहींदेखो(और)ऊपरली युक्तिमेंयहउत्तरहै कि वह तथाशब्द केवल(च)शब्दार्थयहांमाना जाताहै जिसका अर्थ(पुनः)शब्दके भावपर आरूढ़है और जो ऐसा नहीं मानाजाय तौ फिर वही तथा शब्द पितरौ केभी पूर्व अन्वय देसक्ता है कि जिस्से पिता माता भ्राता सबको मिलकर बाँटिलेनाखड़ाहोताहै सो यदिवैसाही न्यायात्मक मानाजायतौ फिर बृहद्विष्णुने जो स्पष्ट क्रम उच्चारण किया तिससे बड़ा विरोध खड़ाहोवै-तथाच विष्णूक्तक्रमः(तदभावे पितृगामि तदभावे मातृगामि तदभावे भ्रातृगामितद्भावेभ्रातृ-पुत्रगामि)तौ इसक्रमके आगेकोई भ्रामिक युक्ति काम नहीं आसक्तीहै—भाई के पौत्रों का अधिकार जो न्यायात्मक होनेपरभी संप्रति इन देशोंमें प्रवर्तित नहीं है तिसका व्यौरा आगे गोत्रज लोगोंके अनुवाद से दृढ़ होगा(अथगोत्रजानामधिकारस्यानुवादः) गोत्रजों की व्यवस्था जैसी मुख्य स्थलपर व्यौरेवारवर्णन होचुकी सो सवठीकहै-पर यहाँउसके न्यूनांग लक्षणदर्शानेके निमित्तसे अनुवाद कियाजाताहै कि जिस्सेद्रष्टालो-गोंका भ्रम दूरहो-क्योंकि वह मुख्यस्थलपर दर्शित हुई व्यवस्था विरले उन्हीं द्रष्टा-लोगोंको कुछ अन्तरवती प्रतीत होगी जो मिताक्षरा वीरमित्रोदयकी स्वल्पपंक्तियों के स्थूल आशयपर निज बुद्धिको संकुचित करके छोड़देते हैं—प्रथम उन पंक्तियों को ही लिखते हैं कि जिज्ञासु द्रष्टालोगोंको न्यूनांगलक्षण पायेजायँ—यथा (तत्रच पितृ-सन्तानाभावेपितामहीप्रथमंधनभाक्पितामह्याऽचाभावेपितामहः पितृव्यास्तत्पुत्राश्च क्रमेणधनभाजः—पितामहसन्तानाभावे प्रपितामहीप्रपितामहस्तत्पुत्रास्तत्सूनवश्चेत्ये वमासप्तमात्समानगोत्राणांसपिण्डानामपुत्रधनग्रहणंवेदितव्यं- सपिण्डानामभावेसमा

नोदकानांधनग्रहणसम्बन्धः तेचसपिण्डानामुपरिसप्तवेदितव्याः जन्मनामज्ञानावधि कावा) यहां पर अतिशय ध्यान देकर निर्म्मल बुद्धिसे विचारकरना योग्य है कि प्रत्यक्ष इनपंक्तियोंका सूधाभाव यही प्रतीतहोताहै और प्रायःद्रष्टालोगोंने आद्योपान्त सब स्वीकार भी करलिया है कि मृत धनीके पिताकी द्वितीय सन्तानमें से कोई योग्य अधिकारी निपट न हो तौ फिर दादी दादा पावैं उनके भी न होनेमें फिर उनके पुत्र भागीहों अर्थात् धनी के चाचा ताऊ पावैं उनके भी न होनेमें (तत्पुत्राश्चक्रमेणधन भाजः) अर्थात् चचा ताऊके पुत्र भी क्रमसे धनकोहरें तौ इस कथनसे चचेरे भाई तक अधिकार नीचे उतरा–भला यहांतक तौ धनीकी समान कक्षा वर्त्तमान है इस-लिये किसी तर्कणाका प्रवेशभाव न होसकै परन्तु जब इन्हीं पंक्तियों ने चचेरे भाई तकही दादा की सन्तान का अभाव निश्चित करके परदादी परदादा में अधिकार उलटा ऊपर को पहुँचाया फिर (तत्पुत्राः तत्सूनवश्च) इस पंक्ति से उनके पुत्रों तथा पुत्रों के अभाव में पौत्रों तक पहुँचाया जो मृतधनी के चचेरे चचाठहरे तो अब धनी की समान कक्षातकभी नीचे को न पहुँचा क्योंकि चचालोग धनी से एक पीढ़ी ऊपर प्रत्यक्ष हैं तिनहीं तक परदादा की संतानका अभाव निश्चित करिके (इत्येवमासप्तमात्) इस पंक्ति से सरदादा आदि तीन पीढ़ी ऊपर को चढ़जानेका मार्ग दिखलाया और इस पंक्ति का यह अर्थ है कि (इतिएवंआसप्त-मात्) अर्थात् यह क्रम इसीप्रकार सातपीढ़ीतक अपनी बुद्धि से समुझना-तो इस उदाहरण से प्रत्यक्ष यही अनुक्रम सिद्ध होता है कि जैसे पिताकी द्वितीयसंतानका अधिकार पिता के पोतातक पहुँचाया था जो धनीका भतीजा ठहरा-और दादाकी भी संतान का अधिकार दादाके पोतातक पहुँचायाथा जो एकपीढ़ीचढ़कर धनीकी समान कक्षातक चचेरे भाई में रहगया-और परदादाकी भी संतानका अधिकार उसके पोतातकही पहुँचायाथा जो धनीसे ऊपर एक पीढ़ीचढ़कर चचेरे चचातकही रुका–तैसेही (इतिएवंआसप्तमात्) इस वतलायेहुये मार्ग से चचेरे चचा के न होनेमें सरदादा पावै फिर उसका वेटा फिर पोता–तौ यह पोताठेठ धनीका पचेरा दादा ठहरा तिसते नीचे फिर अधिकारका उतरना रुका भला यहांतक भी परवश होकर सन्तोष धारण करसक्ते हैं कि जैसे अपना सगा दादा कभी जीतारहजाता है तथैव यह पचेरादादा भी कदाचित् जीताहोगा तौ धन हरैगा–तिसके भी न होनेमें छठी पीढ़ी सरदादाकावाप धनका अधिकारीहोगा उसके न होनेमें उसका वेटा फिर पोता–अबके यह पोता ठेठ धनीका पचेरा परदादा ठहरा क्या अचम्भाहै कि अति कालका स्वर्वासी भी उस धनके लोभसे सदेह लौटआवै पर उसने नीचे पुत्रादिकमें अधिकार नहीं पहुँचसक्ता–किन्तु इस पचेरे परदादाके न होनेमें सातवीं पीढ़ीसगे

सरदादाका दादा धनको हरै उसके न होनेमें उसका बेटा फिर पोता—अबके यह पोता ठेठ धनीका पचेरा सरदादा ठहरा इसते भी नीचे इसके पुत्रादिक में अधिकार नहीं जासक्ताहै पर शायद किसी बहुज्ञकी उक्तिसे यह ऐसा पुरुष भी निज आप धनहरने को इस लोकमें आजाताहो—यह सब सातवीं पीढ़ी तक सपिण्डमात्र उन पंक्तियों के अनुसार समुझेगये (तौभी) अभी तुषकण्डनरूपसे अति दुर्गम सफ़र काटना शेष है कि इनके ऊपर चढ़कर सातपीढ़ी और भी समानोदक उन्हीं पंक्तियोंके अनुसार मानेजायँगे और वे भी ऊर्ध्वोक्त उदाहरणकेअनुसार उसीक्रमसे ऊपरली एक२ पीढ़ी का पुरुष अपने बेटा पोतातकही अधिकार को पासकेंगे—अब जो यहां उनका भी वृत्तांत ब्यौरेवार सब दर्शावें तो निरर्थक भूसी कूटकर कुछ हाथनहीं आसक्ता है कि जोजो लोग तीनके उपरांत सातवीं पीढ़ीतकही केवल जन्मसूत्र के अनुसार सोदक अवधिताईं निजसंतानों को अधिकार पहुँचने का मार्गदेदेनेवाले एक निमित्तमात्र निश्चित करने योग्य थे क्योंकि उनका अधिकार केवल मार्ग रोधक होने के प्राबल्यसे क्रमसूचक हुआकरता है तिनहीका अधिकार असंगत केवल बेटा पोतातक संसूचित करिके छोड़ा जिस्से निचले मुख्य ध्रुवगत लोग सब नष्टाधिकार समुझेगये तो फिर सातसे ऊपरले सातक्या फल प्राप्त करसक्ते हैं कि उनका ब्यौरा वर्णन करें—किंतु यथार्थ से उनसातपीढ़ीको कुछ अबतक दायभाग से संबन्ध नहीं पहुँचता क्योंकि जो सूधेसूधे ऊपर कोही चौदह पुरुष गिनकर मानेजायँ तो फिर चौदह पुरुष निचलेभी स्वीकारकरने होंगे तब अट्ठाइस पीढ़ी होजायँगी—पर यहबात सर्वथा निश्चित और नियमात्मक है कि सपिंडो या समानोदकों या सगोत्रों की जो संख्या जिसकी विख्यात है सो नीचे ऊपर दोनों ओर मिलकर मानीजाती है और उसी से सब न्याय ठीक होते हैं इसलिये ऊपरले सात पुरुषों के उपरांत सातपुरुषों की अपेक्षा शेष नहीं है अर्थात् वेही सातपुरुष जो परदादाके परदादातकनिज धनीसमेतऊपरहोते हैं और निचले भी परपोता के परपोतातक निज धनीसमेत सात होतेहैं और इनहीमें सपिण्ड तथा समानोदक दोनों सिद्धहोजाते हैं-इन तेरहके उपरान्त नीचे ऊपर चार चार पीढ़ी और भी सगोत्री मानेजाकर सब इक्कीसपीढ़ीहोती हैं-तो फिर कोईभाँतिसे यह नहींमानिसक्ते हैं कि सूधेसूधेऊपरकोही चौदहपुरुष धनके भागी हों और केवल उन प्रत्येकों के बेटा पोता तकही नीचेको धन उतराकरै और नीचे के सापेक्ष्य अधिकारी सब दुर्भागी रहाकरें-किसीकीभी बुद्धिमें यहबात समातीहो निःसंदेह अपनीयुक्ति प्रकटकरो या उनग्रंथोंका परिशोधन करो जिनमें ऐसा क्रम स्वीकार हुआहो-धनीसे चौदहवाँ या तेरहवाँ या बारहवाँ या ग्यारहवाँ या दशवाँ नववां आदि ऊपरला अतिदूरस्थ पुरुष आप या उसका सिर्फ बेटा पोता क्योंकर

ऐसे निचले धनीका धन हरनेकेसमयतक उपस्थित रहसक्ते हैं बलिक ऐसे पुरुषोंको सौ दोसौ बर्ष मरेभी होचुकीहोंगी-यहसब तर्कवितर्क द्रष्टालोगोंको न्यूनांगलक्षण समुझेजानेके निमित्तसे दर्शायेगये अन्यथा जोकुछ मुख्यस्थलपर ५६ संख्याके परिच्छेदमें व्यवस्था दर्शितहुई सो सब ठीकहै-यहाँ एक पोताके पोताका चर्चाकरना कुछ अपेक्षित और आवश्यकथा पर उसचर्चाका परिच्छेद सबसे भिन्न कल्पित होकर आगे नियतहोगा तहाँ देखो ५९ संख्याके परिच्छेद में इतिसपिण्डसमानोदकयोरधिकारविचार शेषपाठः॥

अथपूर्वोक्तपुत्रादीनां वा पत्न्यादीनांचसमग्राणां क्वचिद्भिन्नानांच केषांचिदप्यन्येषामपि धनग्रहणस्यापवाद विशेषविवेकोनामाष्टपंचाशत्तमःपरिच्छेदः ५८॥

इस अट्ठावन संख्याके परिच्छेदमें १४१ मूलश्लोकसे लेकर १४६ मूलश्लोकतक कतिपय अपवादनाम छूटैंवर्णनहोंगी तिनसे यहबात पाईजायगी कि जिनको धनका अधिकार पहले ठहरायागया तिनका निज निज ठहराहुआ भी अधिकार किस किस दशापर मिट जावैगा॥

वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिणांरिक्थभागिनः। क्रमेणाचार्यसच्छिष्यधर्मभ्रात्रेकतीर्थिनः १४१॥

अक्ष०–वानप्रस्थ यती ब्रह्मचारियोंके रिक्थभागी क्रमसे होतेहैं आचार्य्य सच्छिष्य धर्मभ्रात्रेक तीर्थी १४१॥

अभि०–जोकि ४५। ४७। ५१। ५२। ५४ इतने परिच्छेदों में पुत्र पौत्र प्रपौत्र उपपुत्रों का अधिकार वर्णन हुआ था कि अपने मरेहुये बाप दादा परदादाका धन हरैंगे (और) ५६ संख्याके परिच्छेदमें पत्नी आदिनव अधिकारी कहेगये थे कि पुत्र पौत्र प्रपौत्र उपपुत्रोंके न होनेमें पत्नी आदिनव अधिकारी यथा क्रमसे धनको पावैंगे और उन्हींनवके प्रसंगमें कुछ और भी अधिकारी दर्शितहुये थे कि अमुकामुक हेतु से अमुकामुक भी धन हरने का अधिकारी होगा-सो उन सबहीका अपवाद यहां कहते हैं कि वे अधिकारी वानप्रस्थ यती ब्रह्मचारीका दायनहीं पावैंगे अर्थात् जो मृतधनी वानप्रस्थहो या यतीनाम संन्यासी आदिहो या ब्रह्मचारीहो तौ प्रतिलोम क्रमसे प्रत्येक पुरुष का दाय आचार्य सच्छिष्य धर्म भ्रात्रेक तीर्थीही पासक्ते हैं–प्रतिलोम क्रमसे तात्पर्ययहहै कि अक्षरार्थमें नियतहुये क्रमसे विपरीत युक्ति करनी जैसे कोई नैष्ठिक ब्रह्मचारी स्वर्गवासी हुआहो तौ उसका रिक्थ आचार्यलेवै जिसने विद्या देकर अपने पास बसायाहो (और) यतीनाम संन्यासी यदि कलेवर छोड़िगयाहो तौ उसका रिक्थ उसकेशिष्योंमें जो कोई सत्तमहो सोईपावै सत्तमशिष्य उसे समुझना जिसने वेदांत शास्त्रसुना और यादिकियाहो और उसीके अनुसार अनुष्ठानभी करताहो (और)वानप्रस्थने जोदेहछोडाहो तौउसका द्रव्य धर्मभ्रात्रेक तीर्थीहीलेसक्ताहै अर्थात्

उसका समीपी धर्मभ्राता जो कोई वानप्रस्थाश्रम धारणकिये हो वही धर्मभ्रात्रेक ती-र्थीसमुभ्रौ-ऊपरनैष्ठिक ब्रह्मचारी इसलिये कहागयाहै कि ब्रह्मचारी दूसरा उपकुर्वाण भीहोताहै जो नियमित अवधि मात्रकाही ब्रह्मचर्य धारणकरताहै कि जिसको विद्या संग्रहकिये पीछे पाणिग्रहणभी आवश्यकहै तिसका जोकुछ धनहोसो उसब्रह्मचारीके मरजाने में पितामाता आदि हरते हैं आचार्यका अधिकार उसमें नहीं क्योंकि यह ब्रह्मचारी एक गृहस्थीमात्र होताहै और वहनैष्ठिक ब्रह्मचारीकभी गृहस्थाश्रम नहीं लेता इस्से उसका धन आचार्यपावे उसमें पितामाता आदि किसीका अधिकारनहीं एवंयतीकाभी धन केवलशिष्य इसहेतुसे हरसक्ताहै कि संन्यस्तधर्म लेतेसार उसका स्वत्व अपने वापदादेके धनसे जातारहा और और भी गृहस्थीमात्र किसीसंबन्धीके धनमें उसकास्वत्व नहींरहता है इसलिये ऐसी संन्यस्तदशामें अर्जित किये धनपर उसके पुत्रपत्न्यादिकों काभी स्वत्वनहीं चलसक्ता है कि जिस्सेकोई अपना संबन्धी कहिकर उसकेधन परदावा करसकै किंतु उसके धनपर उसके सच्छिष्यका अधिकार है-इसीप्रकार वानप्रस्थ कोभीजानो १४१ ॥

अधि०-वसिष्ठवचनं-यथा(एतेषामाचार्यादीनामभावेपुत्रादिषुसत्स्वप्येकतीर्थ्येवग्रह्णातिनत्वन्यशास्त्राश्रमांतरगताः) अर्थात्-वानप्रस्थ यती ब्रह्मचारी इनतीनोंके धन हरनेवाले आचार्यादिक जब न हों तो पुत्रादिकों के होनेपरभी एक तीर्थीही धनहरै पर अन्यशास्त्र या अन्य आश्रमके लोग नहींपासक्ते हैं-यह मर्यादा तो सर्वथा ठीक है-परन्तु-इस के आशयसे एक तर्कणा खड़ीहोती है कि जिनको किसीका रिक्थ पाने में अधिकार नहीं तिनकेपास धन कहांसे होसक्ताहै जिसका यह विभाग वर्णनकिया गया किंतु यह विभाग मर्यादा केवल गृहस्थाश्रमके निमित्तमें संभवहै बल्कि नैष्ठिक ब्रह्मचारीको प्रतिग्रह आदिकालेना भी प्रतिषिद्ध है इस्से उसपर स्वोपार्जित धनभी नहीं होसक्ता (और) यतीनाम संन्यासीके निमित्तमें गौतमका यहवाक्यहै कि (अनिचयोभिक्षुः) अर्थात् संन्यासीको धन संग्रह न करना चाहिये-इस्से उसपरभी अपनी कमाईका धनहोना संभव नहीं है-सो-इसतर्कणा मध्येकहते हैं कि वानप्रस्थके अग्रोक्त नियमों से उसको धन संबन्धहोता है-तद्यथा (अह्नोमासस्यषण्णांवातथासंवत्सरस्यवा। अर्थस्यानिचयंकुर्यात्कृतमाश्वयुजेत्यजेत्) अर्थात्-वानप्रस्थका यह धर्म है कि एक दिनका सप्ताह मात्रका या पक्षमात्रका मास मात्रका छेमासका यद्वा एक संवत्सर के निर्वाह योग्य अर्थका संचयकरै और किये हुये को बरसात पीछे आसोजके महीनामें वर्त्ताई देवै-और यतीको यद्यपि अन्नादि अर्थोंका संग्रह नहीं तथापि उसका यह धर्म है-कौपीनाच्छादनार्थंवावासोपिबिभृयात्तथा। योगसंभारभेदांश्चगृह्णीयात्पादुकेसदा-अर्थात्-कौपीन और ओढ़नाके निमित्तसे वस्त्रभीरक्खै

तथा अपनेयोग संभारनाम दंड कमंडलु आदि और वेदोंको और खड़ाऊँभी सदास वेदा साथरक्खै-तौ यहवस्त्र और पुस्तकआदि उसकाधन है-एवंनैष्ठिक ब्रह्मचारीके भी शरीरके वस्त्रादिक धनहोतेहैं-तिनका दायभाग यह कहागया सोसबठीक है १४१ यहतौ पूर्वोक्तसब अधिकारियों का अपवादकहागया-अबनिचले मूलश्लोक में केवल पत्नीआदि अधिकारियोंका अपवाद कहाजावेगा किजिनके अधिकारकेवल ५६ संख्याके परिच्छेद में निर्णीत हुयेथे १४१ ॥

संसृष्टिनस्तुसंसृष्टी सोदरस्यतुसोदरः। दद्यादपहरेच्चांशंजातस्यचमृतस्यच १४२ ॥

भक्ष०—मरेहुये संसृष्टी का संसृष्टीपर सोदरका सोदरही धनहरै और पैदा हुये कोदेभी देवै १४२ ॥

भभि०—मूलश्लोक में केवल पहलेपादसे यहकहते हैं किजोकोई जिसका (संसृष्टी) अर्थात् धनमें साझी हो वही अपने (संसृष्टी) नाम साझी के मर जानेपर उसका धन हरै-किंतु पत्नी और दुहिता पिता माता आदि जो धन भागी पहले १३९ मूल श्लोकसे निश्चितहुये थे वे कोई भी न पावैं और यही इसमें (अपवाद) का स्वरूप है कि संसृष्ट नाम साझेका धन छोड़कर पत्नी या दुहिता पिता माताआदि पूर्वोक्त मर्यादा से निपूतेका धन पावैंगे इस प्रकार से यह पहला पाद १३९ मूल श्लोकवाली पूर्वोक्त मर्यादाके अपवादमें दर्शायागया-अब-दूसरे पादसे इस अपवाद में भी कुछ अपवाद प्रकटकरतेहैं कि (सोदरस्यतुसोदरः) अर्थात् सगे भ्राताकाधन सगाहीपावै किंतु सौतेला नहीं-आशय इसका यह कि जो सोदर और भिन्नोदर दो भाँतिके भाइयोंमें संसर्ग उस निपूतेका होरहाहो तौ फिर सोदर संसृष्टी धनको हरै भिन्नोदर संसृष्टी नहींपावै और यही इसमें (छूट) का स्वरूपहै कि पहले पादसे साझी का अधिकार जो धनहरने मध्ये कहागया सो उस दशाको छोड़कर समुझना जिस में सगा भ्राता भी साझीहो अर्थात् सगे भ्राता की संसृष्टिहोते हुये सौतेले की संसृष्टि निपट निकम्मीजानो परंतु जहाँ सगे भ्रातासे संसर्ग न हो तहाँ सौतेले की भी संसृष्टि उस निपूतेकीपत्नी या पिताआदिके होतेहुये भी मानीजायगी (और) संसृष्टि का यह लक्षण है कि जो पुरुष अपना धन बांटिकर सबसे जुदाहोचुकाहो और पीछे प्यार प्रीति आदि हेतुओंसे फिर भी अपनाधन किसीके धनमें मिलायकर एकसाथ होजावे इसके यथार्थ लक्षण अधिकोक्तिमें देखो-यह तो संसृष्टीकाधन हरनेकी मर्यादा कहीगई परंतु इसीमें कुछ विशेषता और भी उत्तरार्द्ध मूल श्लोकमें दर्शाते हैं कि (पीछे पैदाहुयेको दे भी देवै) अर्थात् उसकी पत्नी जो सगर्भा हो पर उस निपूते के मरतेसमय गर्भका आकार नहींपायाजाय इसीहेतुसे यदि कोई भी संसृष्टी धनको हरै तिस पीछे वही निपूता पुत्ररूप होकर अपनी पत्नीमें उत्पन्नहो तो फिर उसका सब

धन वापिसकरदेवै क्योंकि निपूता मरनेकेहेतुसे संसृष्टी ने धन हराथा वह स्ववासी अब सपूता हुआ-परंतु जो ऐसा पुत्र पैदाहोकर मरजाय तौ फिर भी वही संसृष्टी उतने धनको हरै जितना वापिसकरके दियाथा और पैदाहोकर मरजानेवालेके भोग में व्ययहोकर शेषरहाहो १४२॥

आधि०—धनका संसर्ग जो ऊपर वर्णनकियागया तिसका यह आशय नहीं है कि चाहे तिसके साथ मिलजावै तौ हर कोई उसका संसृष्टी होकर धनको पासक्ताहो किंतु पिता या भाई या चचा आदि निज मनुष्योंकी संसृष्टी मर्यादामें आसक्ती है-तथाच बृहस्पतिः (विभक्तोयःपुनःपित्राभ्रात्रावैकत्रसंस्थितः। पितृव्येणाथवाप्रीत्यासतत्संसृष्टउच्यते) अर्थात्-धनबाँटिकर जुदाहुआ पुरुष फिर पिता या भाई या चचा आदि में निज प्रीतिसे एक साथ मिलजावै तौ वह उस में संसृष्ट कहलाता है—यह भी ध्यान रखनाचाहिये कि यद्यपि याज्ञवल्कीय मूलवाक्य में विशेषकर सगे और सौतेले दो भाँतिके भाइयों काही चर्चा आया है परंतु सर्वत्र ऐसा नियम नहीं रहसक्ता है कि भाइयोंके सिवाय किसी और में नहींमिलै क्योंकि यहबात मिलजाने वाले की इच्छा के आधीन है कि जिसपर उसकी अधिक प्रीतिहो या जिसमें कुछ आराम तकता है तिसमें मिलजाताहै बिरले लोग भतीजेतकमें मिलजाते हैं परंतु बहुधा करके भाइयों में मिलजानेका बानक आपरता है इस्से योगीश्वरने भी उन्हीं की समस्या दर्शित करीहै कुछ नियम निश्चित नहीं किया कि भाइयों के सिवाय औरोंकी संसृष्टि झूँठी हो परंतु इतना नियम निस्संदेह निश्चितहै कि निज आसन्न सपिंडोंके सिवाय गैरों की संसृष्टि झूँठीहो अन्यथा बाप या चचा आदिकी संसृष्टिइस्से झूँठी नहीं है कि इनको संसृष्टिके न होनेमें भी धनका अधिकार यथा अवसरके आधीनहोता है इसी लिये इनकी संसृष्टि बृहस्पतिने नियमानुसार दर्शितकरी बल्कि भतीजोंकी संसृष्टि भी चचाओंकी समस्यामात्रसेही स्वतः सिद्ध दर्शाईहै यथा (पितृव्येणाथवाप्रीत्या) इसमें चचा कहने से भतीजे भी समुझे गये-और योगीश्वरने विशेष चर्चा भाइयोंका इसहेतुसे भी रक्खा है कि जुदेहुये पीछे बहुधा कई भ्राता एकसाथ मिलजातेहैं इसी लिये ऊपर कहचुकेहैं कि जब दो भाँति के भाइयों में मिलापहो तौ सगेही धन पावै सौतेले नहींपावैं १४२ अब इस्से निचले श्लोकमें यहव्यवस्था कहीजायगी कि जब सगाभ्राताजुदाहो और सौतेला उसमें मिलाहो तब उसके मरजाने पीछे ऐसे दो भाइयों में से किसको धन मिलनाचाहिये १४२॥

अन्योदर्यस्तुसंसृष्टीनान्योदर्योधनंहरेत्। असंसृष्ट्यपिवाऽऽदद्यात्संसृष्टोनान्यमातृजः १४३॥

मक्ष०—अन्योदर भाई धनको नहींपावै अन्योदर भी संसृष्टी हरै-असंसृष्टी भी संसृष्ट भ्राता लेवै अन्य माता जात संसृष्टी भी नहीं १४३॥

आभि०—निपूतमरेका छोड़ाहुआ धन अन्योदर नाम सौतेलाभाई नहींपावै (पर) सौतेलाभी जो उसमें मिला रहताहो तौ धनहरै- (संसृष्ट) नाम सहोदरभ्राता असंसृष्टीभी अर्थात् जुदाहोनेपर भीलेवै और विमाताका बेटा सौतेलाभाई मिलाहोनेपर भीनहीं-अब-इसबार्त्ताका अभिप्राय ध्यान करनाचाहिये कि मूलश्लोकमें चारोंपादसे चारबातें जो कहीगई तिनमें तीसरेपादसे सहोदरभ्राता का अधिकार विशेषदर्शाया है कि वहजुदाहो तौ भी सगेभ्राताका छोड़ाहुआ धनपाने में अधिकारी है-और-शेष तीनोंपादमें भिन्नोदर भाईकाचर्चाहै तिनमें पहलेएकपादसे उसकायह अधिकारदर्शाया है कि जो अपने सौतेले भ्रातामें मिला रहता होतौ वहभी उसका धन हरसक्ता है दूसरे पादसे यह नियमदार्शित किया गया कि जो उस्से जुदाहो तौ कुछदावा उसका नहीं है चौथे पादसे उसीका निर्बलत्व दर्शाया गया कि मिला होनेपर भी सौतेले भाईके धनमें उसका पूराहक्क नहीं है-जब कि पहले पादमें उसका हक्क ठहराया और चौथे पाद में आकर हक्क उड़ाया तौ इस अवधारण और निषेध के लक्षणसे हक्क उसका निर्बल होकर आधा निश्चित रहा (और) सिद्धांत इसका यह कि जब सगाभ्राता जुदाहो और सौतेला उसमें मिला होतौ उसमरेहुये निपूतेका धन सगा और सौतेला दोनों मिलकर आधाबाँटिलेवैं-इसी सिद्धांतके अनुसार जब सौतेला भाई एक उसमें मिला हो और सगे दो भाई जुदेहों तब तीनोंभाग बराबर करलेवैं इसी प्रकार जब सौतेले दो भाई उसमें मिलेहों और सगाभाई एक जुदा रहता हो तौ भी तीनों के तीन भाग बराबर होंगे-परंतु-जहाँ सगे और सौतेले भी दोनों भाँति के सभी भ्राता मिले हों तहाँ केवल सगेही धन पावेंगे सौतेले नहीं सो यह मर्यादा इस्से पहले १४२ के श्लोक में वर्णन होचुकी है उसी जगह देखो १४३॥

भाषि—जो मर्यादा ऊपरले अभिप्रायके सिद्धांत में निश्चितकरी यही मर्यादा मनु ने स्पष्टरूपसे दर्शाई है-यथा(येषांज्येष्ठःकनिष्ठोवा हीयेतांशप्रदानतः। म्रियेतान्यतरोवापितस्यभागोनलुप्यते॥ सोदर्याविभजेयुस्तंसमेत्यसहिताःसमम्। भ्रातरोयेचसंसृष्टाभगिन्यश्चसनाभयः) अर्थात्-मनुने यहकहाहै कि जो जुदेहुयेभाइयोंका धन फेर उनकीप्रीतिसे मिलगयाहो और कदाचित् फिरभी उसका हिस्साबाँट होनेलगे तब इस अंशप्रदानके कालसे पहलेही यदि कोईभ्राता बड़ा या छोटा या बिचलाही अपना अंशलियेविना हीनहोजावे अर्थात् संन्यास आदि कोई और आश्रम लेलेवे या ब्रह्महत्या आदि पातकोंसे जातिबाह्य होजावे अथवा मरजाय तो उसकाभाग नहीं मिटसक्ता किन्तु पृथक् निकालकर धरनाचाहिये-फिर-उसअंशको क्याकरना चाहिये इस अपेक्षामें द्वितीय वचन कहतेहैं कि उसकेपुत्रादिक लेनेवाले यदि नहों तो उस अंशको उसीके सहोदरभ्राता जो उस्से जुदेरहतेहों वेभी मिलकट्ठेहोकर अर्थात् जो

देशान्तरमें गयेहों वेभी आजावैं तब सभीमिलकर समभाग बाँटिलेवैं और वेभी इन के साथ भागपावैं जो उसके सौतेलेभ्राता उसमें मिलेरहतेहों और इसधनमेंसे वे बहिनैंभी समभागपावैं जो (सनाभि) नाम उसकीसगीबहिनें एकमाजाईहों-यहीआशय अग्रोक्त शिवजीकेवाक्यसे संसिद्धहै-यथा (अविभक्तेविभक्तेवायस्ययादृग्विभागिता। मृतेपितस्यदायादास्तादृग्विभवभागिनः) अर्थात्-विनाबँटेधनमें या बँटेपीछे फिर मिश्रितहुये धनमें भी जिस पुरुष का जितना या जैसाभाग उसके जीतेहुये योग्यहो तैसा उसके मरजाने पर भी बनारहता और उसके जो कोई सच्चे दायाद रिक्थग्राही ठहरैं वे उस अंशको हरते हैं (इस परिच्छेदमें जो व्यवस्था वर्णनहुई सो सबकेवल ऐसी दशापर आरूढ़ है कि जो (संसृष्ट) धनको बिनाबाँटे छोड़कर कोई एक संसृष्टी उनमें से निपूता मरजाय या संन्यासी आदि होज़ानेके हेतुसे धर्मानुसार अपना अंशपाने में दुर्भागी होजाय) अर्थात् (योगीश्वरने वह व्यवस्था जुदी नहीं दर्शाई है कि जो धन जदाहुये पीछे मिलजावे और फिर भी सबके जीतेही सब अंशी भाग लगाना चाहें) क्योंकि योगीश्वर की इसीव्यवस्था की ध्वनिमात्रसे वह व्यवस्था सिद्ध हो जातीहै इसलिये जुदाकहना आवश्यक नहीं समुझा-परंतु मनुने उस व्यवस्था को भी स्पष्टकरके दर्शायाहै-यथा(विभक्ताःसहजीवंतोविभजेरन्पुनर्यदि । समस्तत्रविभागःस्याज्ज्यैष्ठ्यंतत्रनविद्यते) अर्थात्- जुदे हुये भ्राता फिर मिलकर जो जीविकाआदि धन संसर्ग मिश्रीभूत रखते हों और फिर भी जुदे होवैं तौ सबही का समभाग होवै और भी बड़ाई या छोटाईकाकुछभेद यहाँनहींहै सिद्धांतइसका यह कि यदिपहलाबाँट उस प्राचीन मर्यादासे भी हुआहो जिसमें जेठेको जेठाई का उद्धारभागअधिक और मझिले को मध्यम उद्धारसहितभाग मिलाहो तौभी अबदुसराकरउसनियमका वर्त्तावाकरना प्रतिषिद्धहै (और) ऊपर जो समभागहोनेका नियम दर्शितकिया तिसकायह सिद्धान्तहै कि उन भाइयोंकेन्यूनाधिकउद्योग परिश्रमकीदृष्टिसे न्यूनाधिकअंशविभाग होनाप्रतिषिद्धहै (तथापि) यह पिछला प्रतिषेधकेवल उसीधनके आश्रयभूत समुझना जो मिश्रीभूतहोकर सबके साधारण उद्योगोंसे समृद्ध होतारहताहो-अर्थात् यदि कोई उनसंसृष्टीलोगोंमेंसे ठेठ अपनी विद्या या शौर्य आदि उपायोंसे कुछ भिन्नात्मकद्रव्य विशेष पैदाकरै तिसका निस्संदेह न्यूनाधिकभाग होताहै-तथाहबृहस्पतिः (संसृष्टिनांतुयःकश्चिद्विद्याशौर्यादिनाधिकम् । प्राप्नोतितस्यदातव्योद्व्यंशःशेषाःसमांशिनः) अर्थात्-संसृष्टियोंमेंसे जो कोई अपनी विद्या या शौर्य्य आदि उपायोंसे धन अधिक पैदाकरै तिसको दो अंशदेने योग्यहैं और शेष अंशीलोग सब एक एक अंशपावैं (इस नियमके अनुसार केवलभाइयोंकाही संसर्गधर्मनहीं समुझनाकिन्तु चाहे केवल भ्राताहों या दो तीनभ्राता एकपितामिलकर या उनमें कोई चचाभी संसृष्टीहुआहो

तौ सर्वत्रयहीनियम सामान्यहै कि उनमेंसे जिसकिसीने निजविद्याशौर्य आदिसेकुछ भिन्न पैदाकियाहो तिसको दोभाग मिलकरशेष औरोंको एकैक भाग) इसकेसिवाय (विभक्तोयःपुनःपित्राभ्रात्रावैकत्रसंस्थितः। पितृव्येणाथवाप्रीत्यासतत्संसृष्टउच्यते) इसवचनकी व्याख्या जोऊपरली १४२ की अधिकोक्तिमें प्रदर्शितहोचुकी तिसकायह सिद्धान्तहै कि पिता या भ्राता या चचाकासंसर्ग दर्शाना केवलउपलक्षणमात्र समुझो किंतुइन्हींके उपलक्षण मात्रसे तहांतक आसन्न सपिंडोंका संसर्ग सच्चा समुझि लेना जिनमेंसे अविभक्त धन पैतृक या पैतामह आदि बँटिकर जुदा होसक्ताहो तिनके उपरांत की पीढ़ीं जोसकुल्य कहलातीहों तिनमेंसंसर्गहोना झूँठ समुझो अर्थात् ऐसा संसर्गी अपने संसृष्टीका धन पानेमें अधिकारी नहीं होगा इसका ब्यौरा अगले ५६ के परिच्छेदमें सब देखो-और-यह भी यादरक्खो कि यहांपर १४२ और १४३ मूल श्लोकोंसे व्यवस्था जो कुछ वर्णनहुई तिसको यद्यपि योगीश्वरने क्रमसौन्दर्य्यके हेतु से (पत्नीदुहितरइत्यादि) पूर्वोक्त दोश्लोकोंके (अपवादरूप)में दर्शायाहै कि जैसा चर्चा इसका ऊपरभी करचुके हैं पर यथार्थ यही व्यवस्था एकविशेष अपने नामसे(संसृष्टि विभाग) कहलातीहै और इसी हेतुसे वीर मित्रोदय आदि बहुधा ग्रन्थोंने विस्तार से भिन्नात्मक इसको रक्खाहै उसप्रकारसे भी कुछहानि संभव नहीं-तौभी योगीश्वर का बाँधाहुआ क्रम अपवादरूपसे सुखबोधक समुझाजाताहै अन्यथा दोनोंका सिद्धान्त एकहै-इसलिये इस व्यवस्थाको संसृष्टि विभागकी मर्यादा मानिकर समवाय भेदभी समुझनेयोग्यहैं कि-जब कदाचित् सगेसौतेले दोनोंभांतिके भाई और पितामें भी संसृष्टिहुई हो तबतौ निपट निपूतमरे धनीकाधनभाग पत्नी के होते भी पहले पिताहीले सकैगा और दोनोंभांति के भाईनहीं पावेंगे क्योंकि असंसृष्ट होनेकी दशा में भी पत्नीके पश्चात् पहले पितामाताही अधिकारी निश्चितहुये हैं तिसपीछे भाई-जब कदाचित् दोनों भाँतिके भाई और दादामें संसृष्टिहुईहो तब उस निपट निपूते मरे धनीका धनभाग पहले दोनों भाँतिके भ्राताही पूर्वोक्त नियमों के अनुसार क्रमसे पावेंगे और दादा सबसे पीछे-एवं जहाँ दोनों भाँतिके भ्राता और चचामें संसृष्टिहुई हो तहाँ भी चचा सबसे पीछे-परंतु जब चचा और सहोदर भाई से संसृष्टि हुईहो और असहोदर तथा सहोदर भी कुछ भाई जुदे रहतेहों तो फिर प्रथम सहोदरही अधिकारी है जो मृतधनी में संसृष्टथा और उसके निपट अभाव में संसृष्टी चचा ऐसे चचाके भी निपट अभावमें निजधनीकी पत्नीपावै जिसका अधिकार संसृष्टिहोने केहेतुसे अबतक रुकिरहाथा-पत्नीके अभावमें असंसृष्टी पिता माता पूर्वरीतिके अनुसार भागीहोंगे-फिर उनके भी अभावमें असंसृष्टीसोदरभ्राता-फिर उसके भी अभाव में असंसृष्टी असहोदर भ्राता-फिर उसके भी अभावमें असंसृष्टी सोदर भ्रातृपुत्र-

फिर उसके भी अभावमें असंसृष्टी असहोदरभ्रातृपुत्र इत्यादि पूर्वरीतिकेअनुसारयथा क्रमसे सबको जानो-जहाँकहीं दोनों अथवाएक भाँतिकेभ्राताओं से और उसभांतिके भतीजोंसे भी संसृष्टिहुईहो जिनके बाप संसृष्टि होनेसेपहलेही मरचुकेहों तहां पहले दोनों अथवा एकभाँतिके संसृष्टी भ्राताओं का अधिकार उसी क्रमसे होगा जैसा पहले निर्णय होचुकाहै परउनके निपट न रहनेमें संसृष्टभतीजोंका अधिकारहै संसृष्ट भतीजों केभी निपट न रहनेमें फिर पत्नी आदि पूर्वरीतिके अनुसार यथाक्रमसे सभी लोग भागीहोंगे जो जो ५६ परिच्छेदमें निर्णीतहुये थे–कदाचित् कोई धनी केवल ऐसे किसी भतीजे में संसृष्ट हुआहो जिसकाबाप इनकी संसृष्टिसे पहले यद्वा पीछे मराहो और उस धनीके कुछ भ्राता असंसृष्टी रहिकर जुदे रहतेहों तो इसदशामेंउस धनी के मरजानेपर संसृष्ट भतीजाही भ्रातृस्थानी मानाजाकर धनभागी होगा और वे भ्रातानहीं पावेंगे जो उस धनीसे असंसृष्टी रहते थे पर यह नियम केवल ऐसी दशामेंस्वीकारहै कि यदि भाई और भतीजेभी सबसोदर या असहोदरहीहों अर्थात् जब संसृष्ट भतीजा उस मृतधनीके असहोदरका बेटाहो और असंसृष्टी भ्राता धनी के सब सोदरहों तब इस दशामें उन चचा भतीजोंका परस्पर मिलकर समभाग होगा और कदाचित् कोई इन्हीं भाइयोंमें असहोदर होतौ वह उनके साथ भागी नहीं हैं १४३ (इतिसंसृष्टधनविभागः) १४२ । १४३ मूल श्लोकों से लेकर यहांतक यह व्यवस्था केवल पत्नी आदि पूर्वोक्त अधिकारियों के अपवादमें दर्शाई गई अब निचले मूलश्लोकसे पूर्वोक्त सब अधिकारियों का अपवादवर्णन होगा अर्थात् जो जो अधिकारी पहले पुत्रादिक वंशमें से और जो जो अधिकारी पत्न्यादिक यथाक्रम से ५६ संख्याके परिच्छेद में निर्णीतहुये और जे कोई अनन्तरोक्त दो श्लोकों से संसृष्ट धनके हरनेवाले निश्चितहुये तिन सबही के अधिकार में अब छूट दर्शित करतेहैं कि अमुकामुक प्राणियोंके निर्वाहयोग्य छोड़कर धनहरना उनकोहोगा १४३

क्लीवोथपतितस्तज्जःपंगुरुन्मत्तकोजडः । अंधोऽचिकित्स्यरोगाद्याभर्तव्यास्स्युर्निरंशकाः १४४॥

मक्ष०–क्लीव, पतित, पतितज, पंगु,उन्मत्तक, जड़, अन्ध, अचिकित्स्य रोगी जो निरंशकहों भर्तव्यहोवें १४४॥

भभि०–(क्लीव) नपुंसक जोपुरुष और स्त्रीमें भी गिनतीनहीं (पतित) जो आदि या अपने मुख्यधर्मसे विपरीतहोजाने आदि कारणोंसे जातिवाहरहो (तज्ज॰) जो पतितसे पैदाहो (पंगु) जो लूला, लँगड़ाहो (उन्मत्तक) ये पांचप्रकारके होते हैं एक तो वातोन्मादसे दूसरा पित्तोन्मादसे तीसरा कफोन्मादसे चौथा नाम तीनोंदोषोंसे उन्मत्तहोजाताहै पांचवाँ ग्रहदोषोंसे उन्मत्त होता अर्थात् प्रकृति के मनुष्य जो सिड़ी दीवाने आदि कई भाँतिके होते हैं वे सब

क हैं-(जड़) जो अंतःकरण विकल होने के हेतु से हित अहित समुझने में असमर्थहो-(अंध) अंधा जो नेत्रोंसे विकल हो (अचिकित्स्यरोगी) जो किसी ऐसे महा असाध्य रोग क्षयी आदि से ग्रस्तहो जिसकादूरहोना वैद्योंकी सत्ता से बाहरहो और वह रोगीभी उस रोगकी प्रबलता से संसारी व्यापारों की साधनायोग्य नहींहो-इन को (आदि) लेकर और भी इस (आदि) शब्द के अभिप्राय से वे भी समुझेचाहिये जो गृहस्थ छोड़कर संन्यास आदि किसी और आश्रम को पहुँचेहों (या) पितासे पराद्वेष रखते हों(या) उपपातकी निश्चित हुये हों (या) कानोंसे बहिरेहों (या) जीभ से गूंगे तुतलेहों (या) और ही किसी इन्द्रिय से हीनहों तो ये सब लोग (निरंशक) हुआकरते अर्थात् अपने पिता या पितामह या भाई आदि किसी का भी दायनहीं पाते हैं-परंतु-जो कोई अधिकारी इनके बाप या दादा या भाई आदिका धन पावे वही इनका पालन पोषण अन्न वस्त्रादिक से करतारहे जबतक ये जीते रहें किंतु न करनेवाला पतित होजाताहै १४४॥

मधि०-जोलोग ऊपर (आदि)शब्दके आशयसे संग्रह कियेगये तिनकाप्रमाण भी अन्यस्मृतियोंसे देते हैं-यथाहवसिष्ठः(अनंशास्त्वाश्रमांतरगताः) अर्थात्-जोकोई अपने गृहस्थ आश्रमको छोड़कर किसीअन्य आश्रमको पहुँचेहों वे सबलोग दायभागीनहींहैं यह वसिष्ठजीने कहा-नारदस्तु(पितृद्विट्पतितःषंढोयश्चस्यादौपपातिकः। औरसाअपिनैतेंशंलभेरन्नूक्षेत्रजाःकुतः)अर्थात्-पिताकाद्वेषीऔर पतित और नपुंसक और उपपातकी ये लोग अपने पिताकेचाहे औरसपुत्रभी हों तौभी दायनहीं पासक्ते हैं फिर क्षेत्रजआदि क्योंकर यह नारदनेकहा-मनुरपि(अनंशौक्लीवपतितौजात्यंध वधिरौतथा। उन्मत्तजड़मूकाश्चयेचकेचिन्निरिंद्रियाः)अर्थात्-क्लीव और जातिसे पतित यहदोनों अपना अंशनहीं पासक्ते तथा जात्यंधनाम जन्मसेही जो अंधापैदा हो और कानोंसेवहिरा संठ और उन्मत्त जड़मूक और और भी जेकोई निरिंद्रिय नाम किसी इंद्रियसे हीनहोंसो सब निरंशक जानो किंतु केवल भोजनवस्त्र आदि शरीरयात्रा के निर्वाह से पोषण करने योग्यहोते हैं इनका पोषण जो कोई नहीं करता तिसको पतितत्व दोष होताहै-यथाहमनुः (सर्वेषामपितुन्याय्यंदातुंशक्त्यामनीषिणा। ग्रासाच्छादनमत्यंतंपतितोह्यददद्भवेत्) अर्थात्-दायहरनेवाले बुद्धिमान् कर के इन सबकोही निजशक्तिके अनुसार और (न्याय्य) कहिये उसपायेहुये धनके भी अनुरूप भोजन वस्त्र अत्यंत नाम उनके जीनेतक देनायोग्य है किंतु न देनेवाला अन्यायी निस्संदेह पतितहोवै अर्थात् दोषी ठहराया जाकर निन्दापूर्वक उस्से दिलवाया जाय यह सिद्धान्तहै केवल दोषीही नहीं ऐसा मनुनेकहा-सदाशिवस्तु-योयस्य धनहर्त्तास्यात्सतद्दर्माणिपालयेत्। संरक्षेन्नियमांस्तस्यतद्बंधून्परिपालयेत) अर्थात्-

जोकोई जिसकाधनमरनेपर या जीतेकाहीपावै वहधन हर्त्ताही उसमृतक या जीवतके धर्मोंकोपाल और उसके नियमोंकी रक्षा बनीराखै और उसके बन्धुओंका परिपालन करै-उसकेधर्मोका (दृष्टांत) जैसे उसधनीका यहधर्मथा किएकअभ्यागतके जिमायेविना आपनहीं भोजनकरताथा या महिमानोंकी पहुनाईमध्ये शुश्रूषा अधिकरखताथा या यहधर्मथा किजबकिसी बांधव यामित्रकेघर वैवाहिक यज्ञहोतातबभातया न्यौतेकी रीतिसे अवश्यही विना बुलायेजाकर कुछदेताथा या दीन पुरुषोंकी कन्याओंके विवाहोंमें या हरिचर्चा आदि धर्मस्थानोंमें अवश्यही कुछदेदेताथा एवंतीज त्योहार आदि मेलकपर्व स्थानोंमेंप्रपादान आदिजो कुछ उसकाधर्मथा सोसबउसके धनहर्त्ताकोभी करनाचाहिये(सो)यह उसीमृत पुरुषया जीवतकेनामसे कर्त्तव्यहै कुछ अपनेनामसेनहीं एवं उसके नियमों का (दृष्टांत) जैसे प्रत्येक दिवस या अठवारा या पखवारा या मासिक नियमसे वह किसी देवालय में दीपक या प्रसाद भेजा करताथा या तोता बंदर आदि जीवोंको कुछ चारादियाकरताथा या अंजनकी पुड़ियाँ बाँटाकरता यद्वा किसी व्रतका नियमरखताथा इत्यादि सब उसकेधन हर्तापर यह भार है-बंधुओंका पालनभी जिस रीतिसे वह करताथा उसीरीतिसे कर्तव्यहै बरन उस्से भी कुछ अधिकहोना योग्यहै-जोकि-इसमर्यादामें नपुंसक आदि निरंशक निश्चितहुये हैं तिनका वह निरंशत्व भी केवल उसीदशामें ठीकहै कि जो धनका बाँटहोनेसे पहले पहले उन दोषोंका प्रकाश हो अर्थात् जो धनका बाँटहोते समयतक उनमें कोई दोष नहींथा इसहेतुसे अपना अंश उन्होंने पाया और पाचुकने पीछे कुछ दोष पैदाहोजाय तौफिर वे अनंशी नहीं होसक्ते किंतु पीछे उनका अंश छीना नहींजासक्ता-इसकेसिवाय-यदि अपने दोषों के होनेसे निरंशक रहेहों और कदाचित् विभागहोजाने पीछे औषध आदिके उपायोंसे उनका दोष दूरहोजावै तौ फिर भी अपनाभाग उसी बँटेहुये धनमेंसे पासक्ते हैं सो उस न्यायकी तुल्यतासे कि जैसे मा बापके जीतेहुये पुत्रोंका विभाग होजानेपीछे यदिकोई और भ्राता पैदाहोय तौ वह अपना भाग उस बँटेहुये धनमेंसे लेताहै-क्लीब या पतित आदि जोजो लोग अपनेदोषोंसे निरंशक ठहरायेगये सो सब केवल पुरुषवाचक शब्दों से प्रदर्शितहुये हैं इस्से यह न समुझ्नाचाहिये कि पुरुषोंकाही नियमहोगा किन्तु वेही दोष जो पत्नी या बेटी या माता आदि स्त्रियोंमें प्रत्यक्षहों तौ स्त्रियाँभी निरंशक होती हैं १४४ इस मर्यादामें नपुंसक आदि जो निरंशक ठहरायेगये तिनके अभागित्वसे यह बात पाईजातीथी कि इनके पुत्रोंकोभी भागनमिलता होगा इसलिये इनके पुत्रों और पुत्रियों तथा पत्नियोंकी व्यवस्था निचले दो श्लोकोंसे कहते हैं १४४॥

औरसक्षेत्रजास्त्वेषांनिर्दोषाभागहारिणः। सुताश्चैषांप्रभर्तव्यायावद्वैभर्तृसात्कृताः १४५

अपुत्रायोषितश्चैषांभर्तव्याःसाधुवृत्तयः। निर्वास्याव्यभिचारिण्यःप्रतिकूलास्तथैवच १४६

ऐ०-सहृद्वयोः क्लीब आदि जो जो अपने दोषों के प्रभावसे अभागी ठहरायेगये तिनके औरस तथा क्षेत्रज पुत्र जो हों और निर्दोषहों तौ वे अपने बापोंका भाग हरते हैं अर्थात् वही भाग जो उनकेबापको निर्दोषहोनेमें मिलसक्ताथा पर दोषी होने के हेतुसे नहींमिला सो उन बापोंके जीतेही और मरेपीछे भी जब उस बातका अवसरहो तब औरस या क्षेत्रज पुत्र जो निर्दोषीहों तौ उनको मिलनाचाहिये (परंतु) औरस या क्षेत्रजके सिवाय किसी अन्यप्रकारका पुत्र ऐसे दोषीपुरुषोंका भाग नहीं पासक्ताहै (और) क्लीबादिकोंमेंसे एकपतितका वह औरस भी नहीं पासक्ताहै जो उसके पतितत्वकी दशामें उत्पन्नहो क्योंकि उसका निषेध उसीगणके साथमें (तज्जः) इस नामसे होचुकाहै परन्तु जो पतितहोजानेसे पहले जन्माहो सो पासक्ताहै-इन्हींक्लीबादिकोंके यदि बेटीहों तौ तबतक उनका पालनमात्र उसपुरुषको कर्तव्यहै कि जिसने उनका पितृभाग हराहो जबतक वे लड़कियाँ निज २ भर्ताओंको सौंपीजायँ और पालनके सिवाय उनका विवाह द्विरागमनभी च शब्दकी आज्ञासे उसीको कर्तव्यहै १४५ इन्हीं क्लीबादिकोंकी निपूती योषितायें,भी भर्तव्यहैं कि जो शुभाचाराहों और जो व्यभिचारिणीहों तौ निर्वास्यहैं तथैव जो प्रतिकूला नाम कर्कशाहों तौभी भर्तव्य हैं अर्थात् प्रातिकूल्यमात्रसे भरणका अवरोध नहींहोसक्ता परन्तु जो कर्कशाभी व्यभिचारयुक्तहो तौ निर्वास्यहै १४६ यहाँतक समस्त दायभाग जोकुछ कहागया सो सब पुरुषोंके संबन्धमात्र से वर्णनहुआ अर्थात् पुरुषके छोड़े हुये धनपर ये मर्यादें सब आरूढ़हैं कि जोकुछ अबतक वर्णनहुई किन्तु स्त्रियों के छोड़ेहुये धनका दायविभाग आगे स्त्रीधनके प्रकरणमें प्रदर्शितहोगा-परन्तु अभी पुरुषोंके छोड़ेहुये धनकाचर्चा सरपोताकी अपेक्षालेकर वर्णनकरना शेषहै सो निचले परिच्छेदमें दर्शाते हैं-सरपोता अर्थात् पोताका पोता १४६ ॥

अथमृतधनिनःप्रपौत्रसुतदायाधिकारविशेषविवेकोनामैकोनषष्टितमःपरिच्छेदः ५९ ॥

इस उनसठि संख्याके परिच्छेदमें मृतधनीके सरपोताका दायाधिकार ब्यौरेवार वर्णनहोगा ॥

सरपोताकी व्यवस्था यह भिन्नात्मक इसहेतुसे प्रदर्शितकरनी हुई है कि बहुधा प्राचीन ग्रन्थोंके हेतु गर्भात्मक अभिप्रायोंको समुझेबिना भी नैयायिक तर्कवितर्कोंने सरपोताके अधिकारपर असंगत पांशुपातकरिकर यह सिद्धान्त प्रकटकियाहै कि परपोता तकही अधिकार नीचेउतरै और परपोताके अभावमें सरपोता नहींपावै किन्तु सरपोताके होतेहुये भी मृतधनीकी पत्नी मालिकहोवै और पत्नीके अभावमें दुहिता आदि जो जो अधिकारी छप्पन संख्याके परिच्छेदमें निर्णीतहुये सो सब क्रममें धन को पावें-इसवार्तामें यह ध्यानकरना योग्यहै कि यद्यपि सरपोताके होतेहुये पत्नी का

अधिकार तौ इसहेतुसे न्यायात्मकहै कि जो कोई धनी सरपोताके उत्पन्नहोनेपीछे देह छोड़ैगा निस्संदेह अतिशयवृद्धहोगा क्योंकि सत्तरि अस्सी वर्षोंके निकटतक सरपोता होना सम्भव है और ऐसेवृद्धके मरणान्तकालतक सरपोताका समर्थ होजाना सम्भव नहींहै कि जिसकेलिये धनका अधिकार खड़ाकियाजावै इस्से पत्नीका अधिकार श्रेष्ठहै कि वह भर्ताकी आसन्नवर्ती होनेके हेतु तथा पिण्डक्रिया साधनकरसकने आदि अनेकहेतुसे अधिकार पावै-परंच इसकेसाथ-यहभी एक नियमहोना योग्यथा कि यदि थोड़ेकालमें वह पत्नीभी मरजाय यद्वा पत्नी निपट नहो तौ सरपोताही अधिकारी होवै क्योंकि निजधनीका पुत्रादिक वंशबीजहै सो इस नियमका सब ग्रंथों में अभाव पायाजाताहै और इसीहेतुसे यह दूषण खड़े होतेहैं कि (पत्नीदुहितरश्चैव) इत्यादि पूर्ववाक्यसे जब दुहिताद्वारा दौहित्रोंमें धनपहुँचा औरदौहित्रोंके सपूतेहोनेसे फिर आनाउसका दुर्घटहुआ तौ निजधनीका पुत्रादिक वंशबीज सरपोता दुर्भागीरहकर धनकापरघरजानाभी अन्यायठहरा-भला दुहिताभी निजधनीकी आसन्नवर्ती आत्माहै इसलिये उसकावंश जो इसधनको भोगै तौभी कुछ संतोष आजानेका आधारहै एवं पिता माता भ्राताआदि सपिण्डोंमेंभी धनजानेसे संतोषका कुछअवसरहै परजब दुहिता पिता भ्राता आदि सभीसापिंडोंका अभाव होजानेपर चतुर्दशपुरुषोंकी पंक्तिमेंअतिदूरवर्तीकोधनपहुंचैगा या उनसेभी अतिदूरवर्ती परगोत्री बन्धु लोगोंको या निपटइन सबहीके अभावमें आचार्य और शिष्यादिक धनको लूटैंगे तबक्योंकर सरपोताका दुर्भागी रहना न्यायसे विपरीत न होगा जोनिज धनीकापुत्रादिक वंशबीज है (क्योंकि) यदिकोई भी सरपोताकी अपेक्षासे पत्न्यादि पंक्ति बद्धक्रम पर्याप्त पिता, माता, भ्राता आदिको समीपी कहकर उत्तर देनाचाहै तौ यह उत्तर यद्यपिठीकहै पर इसके आगे उसी बद्धक्रमकी पंक्तिमें समानोदक और बन्धु और आचार्य शिष्यादिक जो अति दूरहैं तिनसबके ध्यानसे निरुत्तरभी होजानाहोगा-विरलेलोग विनासोचेही तत्काल यह रूक्ष उत्तरदेतेहैं कि नियमात्मक मर्यादा में कुछ किसीका दावानहीं पहुँचता जो प्राचीनवाक्य सो सबठीकहै (पर) यह उत्तर उनका निपट लाचारी अवसरका जानो जब कुछ कहने का अवकाश नहीं पाते हो क्योंकि कोई नियमात्मक मर्यादा ऐसी नहीं होसक्ती जो कुविचार पर आरूढ़हो-विरले लोग यह उत्तर खड़ा करते हैं कि प्रायःदायभाग रूप ग्रन्थोंमें सरपोताका चर्चा नहीं आया केवल पुत्र, पौत्र, प्रपौत्रतक अधिकारकी मर्यादा बंटायोग्यहै और इसकाहेतु एकयहीहै कि सरपोता किसीकेजीतेजीतक पैदा होनेसकना संभवनहीं इस्से ग्रन्थोंमें कुछ निर्णय करना उसका आवश्यक नथा और जो दैवाधीन विरलोंके जीनेजीतक पैदाहोजाता है वह कुछ होनेकी गिनती में नहीं आसक्ता क्योंकि जो बात बहुतायत से प्रवृत्तहो वह नियमात्मक मानी

जातीहै इस्से जहांतक संतान प्रतिसंतान पैदा होसकनेकी अवधिसंभवथी तहांतक-हीदायभागमें मर्यादा नियतहुई (इसका) यह प्रत्युत्तरहै कि तौभी यावच्छक्ति व्यापिनी मर्यादा नियतहोनी योग्य थी कि जहांतक संतान प्रतिसंतान पैदाहोतीजाय तहांतक अधिकार कोई और न पावै क्योंकि (होसकनासंभव) की अपेक्षासेभी यह बात पाईजातीहै कि जिस किसीके पन्द्रह वर्ष अवस्थामें संतानहो और इसीप्रकार आगेभी पन्द्रहपन्द्रह वर्षमें संतान प्रतिसंतान पैदा होतीजाय तौ फिरक्या अचंभा है कि सरपोताका भी पुत्रपौत्र देखनेमें आजाय-बिरलेलोग ऐसीदृढ़तासे यह उत्तर देते हैं कि इसवार्त्ता में विशेष खोदखाद कुछ आवश्यक नहीं क्योंकि प्रायःनिरक्षर यद्वा नारीजनोंके भी जिह्वाग्रसे यहचर्चा ऐसे अवसरमें सुनाईदेताहै जबकिसी बुढ़ेरा के जीतेजी सरपोता जन्मलेवै बहुतेरे जन उच्चारण किया करते हैं कि दुर्भागी पैदा हुआ और उसबूढ़ेसरदादाकोभी दूषणदिया करतेहैं कि यहकम्बख्तअमरौती खाकर आया अबतकजीताहै (तौ) इस प्रमाण से इसवार्त्ताका निर्मूल होना नहींकहसक्ते क्योंकि जो कोई बात लोकमें ऐतिह्य मार्गसे विख्यातहोती है समूल होने में संदेहनहीं (सो) यह उत्तरभी यथार्थ आशयसे व्यतिरिक्त है क्योंकि अबतक उत्तर दाताको भी यह मालूमनहीं कि सरदादाको किस अवसरमें यह दूषण पहुँचसक्ता होगा या सरपोताको किसअवसरमें दुर्भागीकहसक्तेहोंगे किन्तु निरक्षर यद्वानारीजन कुछ तत्वोंके अभिज्ञनहींहोते बल्किथोड़ा सुनिकर बहुतसा विनतालमेल कहनेलगते हैं-अर्थात् सामान्यभाव नतौ सरदादा निज सरपोताके पैदा होनेमात्रसे कुछ दूषित होसक्ताहै न सरदादा के जीतेजी सरपोता जन्ममात्रसे दुर्भागी ठहरसक्ता है किन्तु सरपोताका दुर्भागीहोना या सरदादाका दूषितहोना एकविशेष अवसरमें संसूचित है कि जबकेवल एकसरदादाजीतारहै और सरदादाके बेटा पोता परपोतातक सब क्रमसे संतान पैदा करिकरि आप मरतेजायँ और सरदादाने निजधनसे अपना स्वत्व अबतक त्यागा नहींहो तब यह सरपोता नाममात्र को दुर्भागी समुझाजाता है (नाममात्रको) इस कथनका यह आशय है कि जो सरदादाके पुत्रादिक संतान केवल एक एक पैदाहोती और मरती चली आईहो जिसके सरपोतामात्र जन्म लेकर जीतारहै तबतो यद्यपि सरदादाके मरनेपीछे धनका अधिकारी वहीहोगा पर तौभी एक पंचम पुरुष व्यापक प्रतिषेधकी मर्यादा से दुर्भागी उसको नाममात्र इस हेतुसे ठहराते हैं कि जोसरदादाके द्वितीय पुत्रादिक संतानमेंसे कोई और सरपोताका चचा या चचेरादादा आदि जीता होता और सरदादाका धन अबतक जैसा अविभक्त चला आताहै तथैव सबको बँटा न होता तौफिर निस्संदेह ऐसे पितृ पितामह रहित सरपोता को निज पैतृक या पैतामह भाग न मिलना तब तद्रूप यह दुर्भागी

ही होजाता इससे अबतक दुर्भागी यद्यपि नहीं है परतौभी उसी किनारेतक आपहुंचा था इस हेतुसे अब नाममात्र का दुर्भागी है-इसका आशय आगेबढ़कर अच्छा समुझोगे-इसके सिवाय-जिस किसी सरदादाने अपने जीते जी निज इच्छामात्र से धनका अधिकार अपने पुत्रों को समर्पण किया हो या उन पुत्रोंनेही पैतामह धनके हेतुसे झगड़ालू बनकर धनकाबाँट कराया हो जिनकी संतान प्रतिसंतान में से यह सरपोता पैदा होजाय तौ इसभाँतिका सरपोता नाममात्रको भी दुर्भागी नहींमाना जा सक्ता है, क्योंकि यद्यपि सरदादा के सन्मुख इसने पंचमपुरुष व्यापक जन्मपाया तौ भी सरदादाके द्वारा धनका मार्ग शेष नहीं है कि जिसके अवरोधका कुछ हेतु खड़ा होवे (क्योंकि) सरदादाके पुत्र इसके परदादा और चचेरेपरदादा ठहरे तिनमें धनका स्वत्व उपस्थित है तौफिर सरपोता को सरदादासे अपेक्षा शेष नहींहै अर्थात् चतुर्थ पुरुषवर्ती अपने परदादा का भाग चचेरे परदादा से बँटवाइकर लेसक्ता है यदिदोनोंही संसृष्टीहों यद्वा दोनोंअसंसृष्टीही धन बाँटि जुदे रहते होंतौ निजदादाका हीभाग चचेरे दादासे बँटवाइकर परदादाके धनमेंसे लेसक्ता है यदिबापभी मरचुका हो, क्योंकि जबतक बापजीताहो पूर्व पुरुषोंका धनभाग पुत्रादिक नहीं पासक्के इसमें यहभी यादिरक्खो कि सरदादाचाहे इस दशातक भी जीताबैठाहो ऐसे सरपोता के होनेसे वह दूषित नहींहोसक्ता-इसकोसिवाय-उसदशामें भी दूषितनहीं होसक्ता है कि जिसकेएकाकीसंतानरहजानेमें निजबेटापोता परपोता बिचलेतीनों यद्वादोही एकजीते रहें और सरपोता पैदाहोकर चिरजीवी होजाय और सरदादाने निजधनसे अबतक स्वत्वभी न छोड़ाहो तौ सरदादाभी निर्दोष और सरपोताभी सभागी है क्योंकिजहां बिचले कोई पुरुष उपस्थित होंगे तहां सरपोता और सरदादासे कुछदोषा दोषका संबन्धनहीं होताहै अर्थात् सरदादाके मरनेपर उन बिचलेतीन पुरुषोंमें जो कोईजीतेहोंगे तिनमें धनकास्वत्व उतरता चलाआवेगा और उनकेद्वारा सरपोताभी निर्द्वंद्व अपने अवसरमें अधिकारी होगा तब किसभांति से दुर्भागी उसको कहसक्ते हैं-(भस्यफलादेशः) सर्व सिद्धांत इसका यही है कि सरपोता केवल एक ऐसी दशा में दुर्भागी रहजाता है कि जो सरदादाका धन अविभक्त चलाआता हो और सरदादाचाहे धन का भाग होते समय जीताहो या न हो उसके होने या न होने से प्रयोजन इसमें नहीं है और सरपोता चाहे सरदादा के जीते पैदाहोजाय यद्वामरनेपीछे होय कुछ इसबातसे भी अधिक अपेक्षा इसमें नहींहै (सोयह) अविभक्त चलाआना भी तबतक नहीं होसक्ता जबतक सरदादाके आत्मज संतान केवल एकहो अर्थात् जिस किसी सरदादाके कईपुत्रहुयेहोंगे औरउन पुत्रों में निजपैतृकधनअविभक्तरहा आयाहोगा फिर उन पुत्रों के पुत्रों मेंभी अविभक्त चलाआयाहोगा फिर उन पुत्रों

के भी पुत्रोंमें कि जो सरपोता के पिता पितृव्यकहलावैंगे अविभक्तरहाहोगा और दैवाधीन सरपोताका बाप पहलेमरजाय तिसपीछे बापके भैये और चचाओं में परस्पर धनका बाँटहोनेलगे तो इसभाँति निरंतर चौथी पीढ़ीतक अविभक्तरहे धनमें से सरपोता अपने मृत बापका भागनहींपाता है परंतु जो बापकेही जीते जीउस धन के भागहुये होते तो बाप निस्संदेह अपने भागको पाता औरपाचुकने पीछे जोवह मरता तो सरपोता भी अवश्य अपनेबापके इसभागकोहरसक्ता जैसापैतृक रिक्थविभाग प्रायः पहले वर्णनहोचुकाहै-इसी फल सिद्धांत का प्रमाण बहुधा ग्रंथों में उपस्थित और सरदादा के पुत्रादिक संतानों की अनेकता में अविभक्त धनकी दशापर सर्वत्र सूचितहुआ है-यथाहश्रीकृष्णतर्कालंकारः (पितृमरणानंतरंपुत्रस्य स्वत्वज्ञापनात्। तदभावेपौत्रस्यतदभावे प्रपौत्रस्याधिकारः मृतपितृकपौत्र मृत पितृपितामहकप्रपौत्रयोः पुत्रेण सह तुल्याधिकारः तेषांपार्वणपिंडदातृत्वेन उपकाराविशेषात् जीवत्पितृकयोस्तुपौत्रप्रपौत्रयोर्नाधिकारः पार्वणपिंडदानाभावेनउपकाराभावात् – इतिदायक्रमसंग्रहे) अर्थात्-इनपंक्तियों से यह भाव दर्शितकिया है कि पिताके मरनेपीछे प्रथम पुत्रहीका अधिकार जतलानेसे यह आशय सिद्धहोताहै कि अधिकारी पुत्रके अभावमें पौत्रका अधिकारहोवे एवं पौत्रके अभावमें प्रपौत्रको अधिकारी करै-इसका यहसिद्धांत है किजहां एकबाप के दोपुत्रहों और उनपुत्रों के पुत्रफिर उनपुत्रोंकेभी पुत्र पैदाहोजायँ अबतकधन अविभक्त चलाआताहो और इस चौथी पीढ़ीमें विभागउसका होनेलगै तब कदाचित् इसीअवसरसे पहलेकिसीपोता का बापयदि मरचुकाहो तथैव किसी परपोताका बाप दादा दोनोंही मरचुकेहोंतौयह पोता और परपोताभी उनसबके साथबराबर भागपावै जोइसपोता और परपोताके चचा वा चचेरेदादा लगतेहों अर्थात् उनसे न्यून अंश नहींलेसक्ते क्योंकि मुख्यधनीका उपकार पार्वण पिंडरूप जैसाउनसे तद्वत् इनसेभी तुल्यात्मक हुआकरता है फिरक्योंकर न्यूनअंशपावैं-परन्तु उन्हींपोता और परपोताको कि जिसकाबापजीताहोतो फिर उक्तभागपानेका अधिकारनहीं क्योंकि अबतकदादा और परदादाको पार्वण पिंडदेनेका अधिकार नहींपाया इस्से उनकाउपकार भी कुछ इनसे नहीं होगा किंतु जीता बाप अपने आप अपना भाग लेकर बाप दादा का उपकारीहोगा-इन पंक्तियोंके आशयसे प्रत्यक्ष भान होताहै कि यदि इनसे आगे सरपोता भी धन भाग होनेसे पहलेही उत्पन्न होजाता और दैवाधीन उसके बाप दादा परदादा तीनों धन भागहोने से पहलेही मरचुकते तो इस भाँतिके अविभक्त धनमें से वह अपने मरे बाप दादापरदादा का भाग नहींपाता केवल पोता परपोतातकही अविभक्त धन में स्वत्व पहुंचताहै-(दायतत्त्वग्रंथेपि-रघुनन्दनभट्टाचार्योक्तिर्यथा) अपुत्रस्यधनंपत्न्यभिगामी

त्यादिविष्णुवचने अपुत्रपदंपुत्रपौत्रप्रपौत्राभावपरंतेषांपार्व्वणपिण्डदातृत्वाद्विशेषात्-अतएवबौधायनवचनेपुत्रपौत्रप्रपौत्रानुपक्रम्य सत्स्वंगजेषुतद्गामीह्यर्थोभवतीत्युक्तं-तद्यथा-प्रपितामहः पितामहः पितास्वयंसोदर्य्याभ्रातरः सवर्णायाः पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रः एतानविभक्तदायादान्सपिण्डानाचक्षते विभक्तदायादान्सकुल्यानाचक्षते-सत्स्वंगजेषु तद्गामीह्यर्थोभवतीत्यस्यार्थः पित्रादिपिण्डत्रयेषु सपिण्डनेनभोक्तृत्वात् पुत्रादिभिस्त्रिभिस्तत्पिण्डस्यैवदानात् यश्चजीवन् यत्पिण्डदातासमृतःसन् सपिण्डनेनतत्पिण्डभोक्ता–एवंमध्यस्थितः पुरुषः पूर्व्वेषांजीवन् पिण्डदातामृतश्च तत्पिण्डभोक्तापरेषांजीवतां पिण्डसंप्रदानभूत आसीत् मृतैश्चतैःसहदौहित्रादिदेयपिण्डभोक्ता–अतोयेषामयं पिण्डदातायेवातत्पिण्डदातारस्तेअविभक्तं पिण्डरूपं दायंअश्नन्तीति अविभक्तदायादाः सपिण्डाः–पञ्चमस्यपूर्व्वस्यमध्यमः पञ्चमोनपिण्डदाता नचतत्पिण्डभोक्ता–एवमधस्तनोऽपि पंचमोनमध्यमस्य पिण्डदातानापितत्पिण्डभोक्तातेनवृद्धप्रपितामहात्प्रभृतित्रयःपूर्व्वपुरुषाः प्रतिनप्तृतः प्रभृत्यधस्तनास्त्रयःपुरुषाएकपिण्डभोक्तृत्वाभावात् विभक्तदायादाःसकुल्याइत्याचक्षते–पुत्रादिविभागक्रमंचव्यक्तमाह रत्नाकरधृतकात्यायनः अविभक्तेमृतेपुत्रे तत्सुतंरिक्थभागिनम्। कुर्वीतजीवनंयेन लब्धंनैवपितामहात् ॥ लभेतांशंसपित्र्यन्तु पितृव्यात्तस्यवासुतात्। सएवांशस्तुसर्व्वेषां भ्रातृणांन्यायतोभवेत् ॥ लभेततत्सुतोवापि निवृत्तिःपरतोभवेत् (जीवनंजीवनोचितद्रव्यम्) यदाभ्रातृणांकश्चिदेकोनाविद्यते तदातत्सुतस्यपित्रंशोदातव्यः यदाविपन्नस्याप्यनेकपुत्रास्तदाएकःपित्रंशस्तेषांविभज्यदातव्यःएवंतत्सुतोऽप्यंशंलभेत तत्सुतस्यभागोनिवर्त्ततेइत्यर्थःएतच्चसहवासविषयं(यथाहदेवलः–अविभक्तविभक्तानांकुल्यानांवसतांसह। भूयोदायविभागःस्यादाचतुर्थादितिस्थितिः)अविभक्तानांविभक्तानांसहवसतांसंसृष्टानांवा पुनर्विभागोभ्रातृतत्सुततत्सुतपर्यंतमेवतत्सुताच्चतुर्थान्निवर्त्तते इतिप्रागुक्तसप्तमपुरुषपर्यंतं विभागदानन्तु भिन्नदेशादागतानामितिनविरोधः तेनप्रपौत्रपर्यंतानामभावेपत्नीधनाधिकारिणी)अर्थात्-दायतत्त्वनाम ग्रन्थमें भी रघुनन्दन भट्टाचार्य ऐसाकहते हैं कि-निपूतेका धनपत्नीमेंजावे इत्यादि वृहद्विष्णुकेवाक्यमें (निपूता) पदजो आया तिसकेआशयसे निपूता उसको समुझाजाता है कि जिसके बेटा,पोता, परपोतातक न हो क्योंकि पार्वण पिंडदेनेका अधिकार जैसा बेटाको तथैव पोता परपोताकोभीहोताहै इसीलिये बौधायनजी के वाक्यमें बेटा पोता परपोताओंको आरम्भकरके आत्मजोंके होनेमें धन उन्हीं में जाताहै यहकहा-तिसकायह आशय है कि परदादा,दादा,बाप,आप,सहोदरभैये, धर्मपत्नीकापुत्र,पोता,परपोता इतनोंको सपिंड और अविभक्त दायादभी कहतेहैं फिर तीनतीन इनके ऽ नीचेऊपर दोनोंओरके छः पुरुषोंको सकुल्य और विभक्त दायादभी कहते हैं औ

(सत्स्वंगजेषुतद्गामीह्यर्थोभवति) इसका रघुनन्दनजी यह अर्थकहतेहैं पिताआदिके तीनोंपिंडोंमें निचले चौथेपुरुषका सपिंडीकरणहोनेसे भोक्तृत्वहेतु पैदाहोताहै तिससे और पुत्रादिक निचले तीनोंकरके उसका पिंडदान करनेके हेतुसे परस्पर यह संबन्ध पैदाहोता है किइनमेंसे जोकोई अपनेजीतेजी तक जिसका पिंडदाता कहलाताहै वही पुरुष मराहुआ सपिंडन कर्मके द्वारा उसका पिंडभोक्ता होजाताहै इन्हीं नियमों के अनुसार बिचला पुरुष अपने जीते जी ऊपरले तीनों पुरुषोंका पिण्डदाता और मरनेपीछे उनका पिण्डभोक्ता कहलाता है—एवं वही बिचलापुरुष मराहुआ निचले तीनों जीतेहुये पुरुषोंका पिण्ड सम्प्रदानभूत अर्थात् उनसे पिण्डलेनेवाला होताहै और जो वे भी तीनों मरें तो उन मरे निचले तीनों पुरुषों के साथ वह आप भी दौहित्रादिकोंकरके दियेहुयेपिण्डोंका भोक्ता होजाताहै—इन्हीं सबअघोक्त कारणोंसे जे कोई इसकेपिंडदाता या जिनकापिंडदाता यहआपहोवे सबअविभक्त पिंडरूपदायको खातेहैं औरइसीसेपरस्परसबअविभक्तदायादसपिंडसमुभ्केजातेहैं(सो)यहनियमचौथे सेआगेनहींबढ़ता किंतु ऊपरलेपंचमपुरुषकाबिचलापंचमपुरुष न तो पिंडदाता न उसका पिंडभोक्ता हुआकरता है इसी प्रकार निचला पंचम पुरुष भी बिचले पंचम पुरुषका न पिंडदाता और न उसका पिंडभोक्ता होसक्ता है इसी कारणसे सरदादा को आदि लेकर ऊपरले तीन पुरुष और सरपोता को आदि लेकर निचले तीन पुरुष एकसाथ एकपिंडके भोक्ता नहीं होते किन्तु पृथक् पिंडके भोक्ताहुआकरते हैं और इसीसे बिभक्तदायाद सकुल्य कहलाते हैं-इसपीछे रघुनन्दनजी फिरकहते हैं कि इसीव्यवस्थाके हेतुसे पुत्रादिकों का विभाग क्रमभी कात्यायनजीने स्पष्टकरके कहा सो सब रत्नाकरनामग्रंथ में लिखाहै कि अविभक्तपुत्र मरजाने में उसके सुत को रिक्थभागी करै पर उसीको कि जिसने अपने दादासे जीवनयोग्य धन पहले कभी न पायाहो यद्वा वहीसुत निजपिताकाभाग अपनेचचासे या चचाके बेटेसे भी अवसरके अनुसार पावे औरजोकईभ्राता हों तोफिर वही भाग उसकेसब भाइयोंका न्यायानुसार बँटकर होवे अथवा उसपोता के भी अविभक्त मरजाने में उसका सुत अर्थात् धनीका परपोता भी निजपैतृक या पैतामह भागपावे पर इससे आगे भाग पाने की निवृत्ति होवे अर्थात् सरपोता ऐसे अविभक्त धनमेंसे भाग नहीं पावे-रघुनंदनजी सिद्धांत इसका फिर कहते हैं कि जहाँ कहीं अनेक भ्राताओंमेंसे कोई एक नष्ट हो तब उसके सुतको पैतृकभाग दातव्य है परंतु जो उस नष्ट हुये भ्राता के अनेक पुत्रहों तोफिर वही एक पैतृक अंश उनसब पुत्रोंको विभाग करके देनायोग्य है-फिर इसीरीतिसे उसएक वा अनेक पुत्रोंके सुतभी अंशपावें परइनसुतोंके सुतका भाग निवृत्तहोजाताहै क्योंकि वह पंचमपुरुष धनीका सरपोता ठहरा ऐसे अविभक्त

धनमें भाग उसकानहींहै (और) फिरभी दृढ़ताकरतेहैं कि (एतच्चसहवासविषयं) अर्थात् सरपोताको यहभाग का न मिलनाभी सहवासमें समुझना किन्तुजब चौथीशाखा तक धन अविभक्त चलाआयाहो-तिसपीछे देवल वचनों का प्रमाण देते हैं कि इसमें देवल नेयह कहा (अविभक्तेविभक्तानांकुल्यानांवसतांसह। भूयोदायविभागःस्यादाचतुर्थादितिस्थितिः) अर्थात् देवलकहतेहैं कि अविभक्तेकहिये विनाबँटे धनकी दशामें (विभक्त) नामविभक्तदायाद सकुल्य चौथीपीढ़ीके उपरांतवालेजिनके लक्षण ऊपरलिखेगये तिनके सहित मिलकरवसतेहुये सपिंडोंका फिर दायविभागहोवे तौ यह मर्यादाहै कि चौथी पीढ़ीके पुरुषोंतकही भागपहुँचे-यद्वा देवल के श्लोक में (अविभक्त) ऐसा पाठ वना रहनेसे भी यही अर्थहोताहै कि (अविभक्तानां विभक्तानां सहवसतां) अर्थात् अविभक्त कहिये अविभक्त दायाद सपिंड और विभक्त कहिये सकुल्य चौथीपीढ़ीके उपरांतवाले यदि सहित मिलकर वसतेहों तौ फिर दायविभाग उनका इस मर्यादा साथहोवै जैसा अभी ऊपर कहागया (और) यही व्यवस्था उन संसर्गियोंकी समुझनी जो धन वँटे पीछे फिर संसृष्ट करिके वसेहों-इत्यादि नियमों के हेतुसे पूर्वोक्त सप्तमपुरुष पर्यंत विभागदेना भी भिन्न देशोंसे आयेहुये दायादोंका विरोधनहीं-इसी व्यवस्थाकेहेतुसे पर पोतातक न होनेमें पत्नीका अधिकारहोताहै-परंतु-अवइनऊपरके सव नियमोंसे निर्णयरूप सिद्धांत भी विचारकरनेयोग्य है कि जब केवल अविभक्त धनकी दशामें सरपोताको विभागका न मिलना निश्चितहुआ तौ फिर साधारणभाव क्योंकर ऐसा कहसक्तेहैं कि सरपोतामात्र सभी और सर्वत्र रिक्थी न होसकैं-ध्यान करो कि जहाँ किसी धनीके एकही वेटाहो जिसने अपने धनी वापसे धनका स्वत्व नहींपाया और आप एकपुत्र यद्वा कईपुत्र पैदाकरके बाप के जीते जी मरगया तिस पीछे उसका एक यद्वा कई पुत्र भी संतान पैदाकरिकै अपने दादाके सन्मुखही मरगये अवतक दादाने निज धनका स्वत्व अपनेहाथ से न छोड़ा-तिस पीछे ये परपोते भी संतान पैदाकरिकर अपने परदादाके सन्मुखही मरगये अवतक परदादाने निज धनका स्वत्व अपने हाथसे न छोड़ा अव सरपोतोंका सरदादा वनिकर आप भी वह मरा जिसके एक वा अनेक सरपोते विद्यमान हैं निस्संदेह येही सरपोते रिक्थी होनेयोग्य हैं और लोकमें भी शिष्टाचारसे इन सरपोतोंका रिक्थीत्व कोई मेटि नहींसक्ता और उस मरे धनी सरदादाको निर्वंश नहींकहसक्ता तौ फिर क्योंकर पुत्रादिक वंशवीजके होतेहुये धनका रिक्थी कोई और हो इससे ऐसे अवसर में कुछ शंकाको अवकाश नहीं है-यद्यपि-शंकाकरनेको अवकाश नहींपायाजाता तौ भी वादी तर्क वितर्कोंसे कुछ आग्रह खड़ाकरताहै कि यदि ऐसाही नियमात्मक न्याय मानाजाय तो फिर (पत्नीदुहितरश्चैव) इत्यादि पूर्वव्याख्यात योगीश्वरकेही वाक्यसे

जो पत्नी आदि नौ दश अधिकारियोंका अधिकार सिद्धिको पहुँचाथा कि जिन में सबसे पहले पत्नीका अधिकार अतिशय बलवान् दर्शितहुआ है वह क्योंकर सच्चा ठहरैगा कि जिसकेलिये बेटा पोता परपोता तकही अवधि सूचित होतीहै यह प्रत्यक्ष विरोध क्योंकर शांतहोगा किंतु यदि बेटा पोता परपोता तक अभावहोजाने में पत्नी जीती रहनेपर सरपोता विद्यमानहो तब धन किसको मिलना योग्य होगा यद्वा पत्नी के नहोनेपर भी दुहिता पिता माता आदि जो जो अधिकारी क्रम पर्याप्त निश्चित हुये तिनका अवसर क्योंकर आवैगा (अत्रविवेकः) सुनौ यह आग्रह केवल बुद्धि भ्रमसे खड़ाहोताहै अन्यथाऐसे आग्रह का प्रयोजन इसमें नहीं क्योंकि पत्नीका अधिकार सर्वथा प्रबल और न्यायात्मक यद्यपिहै परंतु निपट निपूतेका धनहरने मध्ये नियतहै सोउस निपट निपूतेका भी धन अविभक्तया संसृष्ट होनेकी दशामें वह पत्नी नहीं पातीहै तौ फिर प्रबल या न्यायात्मक होना कुछ इस भावका प्रदर्शक नहीं होसक्ता है कि पुत्रादिक वंशबीजका अधिकार पत्नीरोकै-हाँयदि सरपोता के उत्पन्न होनेसे उस धनीको निर्वंश कोई लोकमें कहसक्ताहो तौ वह बात भी स्वीकार करने योग्य ठहरै सो इसबातका विश्वासहै कि कोई भी निर्वंश नहीं कहसक्ताहै क्योंकि जो सरपोताके उत्पन्न होजानेसे निर्वंश कहना चाहै तौ फिर वंशकी अखंड वृद्धिहोना किसके द्वारा ठहरावैगा-सर्वत्र निपूतेका धनहरना पत्नी आदि अधिकारियोंको दर्शायागया सो उस निपूते शब्दका सूधा अर्थ यह होताथा कि पुत्रके नहोनेमें पत्नी धनकोपावै तिसमें यह संदेह खड़ाहोताथा कि पुत्रके नहोनेमें पोता परपोता आदि के होतेहुये भी पत्नीधनको पासक्तीहोगी-और उनवचनोंकायहआशयथा कि पुत्रका न होना कहनेमात्रसेपुत्रादिक वंशबीजमात्रका नहोना समुझाजाय क्योंकि जो पुत्रही नहीं तौ फिर पोताआदि कहाँ होसक्ते हैं-इसीका सिद्धांत लेकर बहुधा टीकाकारोंने यह व्याख्या नियतकरी कि पुत्र पौत्र प्रपौत्रतक न होनेमें पत्नीको अधिकार मिले तिसका भी प्रयोजन यही समुझा जासक्ताहै कि शायद केवल पुत्रोंके नहोनेमें पोता परपोता आदिके होतेहुये पत्नीअपने अधिकार मध्ये झगड़ा खड़ाकरने लगती तिसका यह संदेह मिटायाहै कि बेटा पोता परपोतातक होतेहुये पत्नीको अधिकारही नहीं पहुँचता (और) आशय इसका यहहै कि यदि परपोता तक भी पत्नीनहीं पासक्ती तौ फिर सरपोता किसनेदेखाहै अर्थात् प्रायः परपोता भी वृद्धापनमें दिखाईदेताहै तिसतक पत्नीका अधिकार मिटाया तौ फिर सरपोता का चर्चानाम लेकर करना वृथाहै-इसकेसिवाय-रघुनन्दन भट्टाचार्य आदि ग्रंथकारोंने जो स्पष्ट करके कहाहै कि (अत्रापुत्रपदंपुत्रपौत्रप्रपौत्राभावपरं) और इसपर एक बौधायनका भी वचन प्रमाण देकर लिखा जिसका आशय निःसंदेह यह नियमात्मकहै कि सरपोता के होतेहुये भी परपोतातक अभाव होजाने

मेंपत्नी धनको पावै (सो) वह नियम बांगदेशी परिपाटीसे विशेषकर अविभक्त धनपर आरूढ़ है क्योंकि बांग देशी पत्नी अविभक्त धनमें से भी अपने पतिकाभाग पाती है कि जिसमें सरपोताका अधिकारनहींहोता-और यद्यपिवही नियम उसदेशमेंपिंडाधिकार मार्गसे विभक्तधन परभी आरूढ़है कि सरपोताके होतेभी पत्नीआदि अधिकारी धनकोपावैं(सो)तत्रत्य परिपाटीसे विरोधनहीं मानाजासक्ताहै किंतु(देशस्य जातेःसंघस्यधर्मोग्रामस्ययोभृगुःउदितःस्यात्सतेनैवदायभागंप्रकल्पयेत्) वलिकइसी लिये वांगदेशियोंने निजग्रंथोंमें सरपोताके अधिकारको कुछअंतरसे द्वितीय अवसर कल्पितकिया है कि वीचमें मातामह वंशीलोगोंका अधिकार होजानेके पश्चात् उसका अवसरआवे-परंच-एतद्देशीग्रंथ मिताक्षरा वीर मित्रोदयसे यह आशयनहीं निकलताहै कि सरपोता कहीं अंतरसेभी धनकोपावे क्योंकि इनग्रंथोंने ऊपरली चौदह पीढ़ी वापदादा परदादा सरदादा आदि यथाक्रमसे रिक्थी बर्णनकरिके बन्धु और शिष्यादिक में अधिकारको पहुँचायाहै तिनमें सरपोताका अवसर कोईभांतिसे भी नहीं पायाजाता वलिक सरपोताआदि निचलेकोई औरभी अधिकारीनहीं निश्चितहोसक्के तौ इसवातसे प्रत्यक्षनिश्चितहोताहै किउसकाअधिकार पहलेवेटा पोता परपोताकेही आगे यथाक्रमसे हेतुगर्भित आशयके अनुसार मानाजावैगा क्योंकि यदिऐसा आशय निपट न होता तौफिर यह अन्यायभी प्रत्यक्षक्योंकर सहाजाता किन्तुनिचले तीन पुरुषोंके उपरांत वंशरक्षक सरपोता आदिकोई और नपावैवलिकउनकेसन्मुख वन्धु और शिष्यादिकमें धनवहता फिरैक्याइसभांतिके अन्यायको उनग्रंथोंके निर्माता नहीं समझतेथे परहेतुकेवल यहीहै किउन्होंने इसवातका चर्चाकरना कुछआवश्यक नहींसमुझा इस्से गड़वड़ झालासा प्रतीतहोताहै-और अवधिका जोतर्कहै किवीरमित्रोदय और मिताक्षराने भी वही तीन पुरुषोंकीअवधि दर्शितकरीहै किवेटापोता परपोतातक न होनेमें धनपत्नी आदिसव अधिकारी यथाक्रमसेपावें तिसका उत्तरऊपर भी लिखचुकेहैं कि वेटापोता परपोताके उपलक्षणमें सरपोता आदिभी सवसमझेजासक्ते हैं-कदाचित्इसीतर्कणासे सरपोताअनधिकारी निश्चित कियाजाय तौफिरग्रंथांतरसे परपोताकाभी अनधिकारखड़ाहोताहै अर्थात् शिवकृत दायभागमें केवलपोतातकही अधिकार कहकरधनीको निपूता कहनेलगेहैं तो उनवचनोंकेअनुसार आग्रह खड़ा करनेसे परपोताके भी होतेहुये पत्नीका अधिकार मानाजासक्ता है परन्तुउन वचनोंका आशय ऐसानहीहै इसलिये उसमेंपोताकेही उपलक्षणसे यथोचित अवधि मानीजायगी-इसकेसिवाय-कोईवचन किसीप्राक्तन ग्रंथमेंऐसाभी उपस्थित नहींहैकि जिसमें सरपोताको धन मिलनेका निषेधकियागया हो केवलसंग्रह ग्रंथकारोंकी कल्पनामात्रसे यहतर्क विनके खड़ीहोतीहैं-उसीकल्पनामें जोविरले ग्रन्थकारोंने धनहरने

मध्ये पिंडदातृत्व का हेतु खड़ाकिया और उसहेतुकेही अवलंब से सरपोताको अनधिकारी निश्चित किया क्योंकि सरपोताको कुछ पिंडदानमें सम्बन्धनहीं पहुंचता सो यहहेतुभी निरर्थक है क्योंकि दायहरत्वमें कुछ पिंडदातृत्वका हेतु कामनहींआता बल्किदायका अधिकार निश्चितहोजाने पीछेपिंडदानका अधिकार खड़ाहोताहै तौइस न्यायसेभी सरपोता यद्यपि पिंडदानका अधिकारीनहीं है परतौभी अपनेसरदादाका धनहरने पीछे पिंडदानका अधिकारी वहभी होजायगा-धनकाहरना किसीविशेषदशा में धृताभार्याके भी पुत्रौंयद्वा उसीभार्याको शिवजीने कहाहै कि जिनकोधन हरनेपर भी पिंडदानका प्रतिषेध कियाहै-तद्यथा-येयस्यधनहर्त्तारोभवेयुर्जीवनावधि । दद्युःपिंडंतएवास्यशैवभार्यासुतंविना-अर्थात्-जेकोईपुरुष पिंडदेनेके अधिकारी यद्वा अनधिकारीभी जिसकिसीके धनहर्त्ताहोवैं वेहीअपनी जीवन अवधितक उसधनीके पिंडदेवैं परएक शैवीभार्या या उसभार्य्याका पुत्रजो धनहर्त्ताहुआहो तौवह पिंडनदेवै किंतुइन कोधन हरनेपरभी पिंडदानका अधिकार नहींहोता-द्वादशपुत्र प्रतिनिधियोंके प्रकरण में सब निर्णयहुआ था कि उत्तमके अभावमें मध्यम और मध्यमकेअभाव में मंदपुत्रौंकाभी अधिकार पत्नीके होतेहुये होवै और पुत्रौंके उपलक्षण मात्रसेही पोता परपोताभी सबसमझेजाते हैं तथैवपोता परपोताके उपलक्षणसे सरपोता आदिभीसब समुझेजासक्ते हैं कि उनकेहोतेहुये पत्नीआदि कोई और धनकोनहींपावै-इसकेसिवाय-पत्नीके अधिकारका प्राबल्य कुछ सरपोताके होजानेमात्रसे नहींमिटसक्ता क्योंकि जोधनी सरदादाके मरतेसमय सरपोता अतिशयशिशुहोगा और पत्नीभी कदाचित् जीती तथासमर्थहुई तौ वाचानिक व्यवस्थाके अनुसारउसके बाल्यभावतक वहपत्नी ही अधिकारयुत रहसक्तीहै यद्वाधनी सरदादाके मरतेसमय सरपोता आपसमर्थहो और वहपत्नीजो सरपोताकी सरदादीहै अतिवृद्धा अपनेअंगोंसे असमर्थहोतौप्रत्यक्ष ऐसीदशामें वहपत्नी धनकेयोग्य नहीं है सरपोताही अधिकारीहोकर उसकापालयिताहोगा यद्वा सरपोताभी असमर्थ अतिशय शिशुहो और वहपत्नी निपट न हो या असमर्थ विकलांगहोतो सरपोताही अधिकारीहै और धनकारक्षककोई बाल्यभावतक होसक्ता है-बालकोंका धनभानरक्षाकरने मध्ये कात्यायनका यहवाक्यहै-यथा-अप्राप्तव्यवहाराणांधनंव्ययविवर्जितम्।न्यसेयुर्बन्धुमित्रेषुप्रोषितानान्तथैवच-अर्थात् अप्राप्त व्यवहार बालकोंको पहुँचाहुआ धनबन्धुयामित्रोंमें सम्बन्धीलोग धरोहरमात्रसौंपें जिसकोकोईव्ययनकरै और इसीप्रकार उनकाभीकिजोउसकालमें विदेशवासी हों विष्णुरपि-तथारक्ष्यंबालधनसाव्यवहारप्राप्तेः-अर्थात्-संप्राप्त व्यवहारहोने तक बालकोंका धन रक्षाकरने योग्यहै यह विष्णुनेभी कहा-सो यह नियम सर्वत्र बालकों के धन सम्बन्ध मात्रमें समझना किन्तु यहां केवल प्रसंग मात्रसे दर्शायागया-इसके

सिवाय-जो पत्नी निपट न होतौ दुहिताका अधिकार जो पत्नीके पश्चात् सूचितहुआ सोभी इस अवसरमें सरपोता के होतेहुये असत् जानौ क्योंकि पुत्रादि बंश बीजके होतेहुये परघरमें धनजाना कोई न्याय नहींहै-इसकेसिवाय-दुहिताके अभावमें पिता माताका सामीप्य अधिकार खड़ाहोताहै सो उसका चर्चा करनाव्यथाहै क्योंकि जिस धनीके सरपोता तक उत्पन्नहुये तिसके पिता माताजीते नहीं रहसक्ते हैं परन्तु उन के अभावमें भ्राताओं या भतीजोंका अधिकार खड़ाहोताहै और यद्यपि जीताहोना भी सुसंगत है तथापि उनको अधिकार उसीदशामें मिलसक्ता था कि पहले वर्णन हुई व्यवस्थाके अनुसार अबतक धनीका धन अविभक्त रहाहोता किंतु जिस धनी के निज भाइयोंसे विभक्त होजानेपीछे सरपोतातक उत्पन्नहुआहो और धनी अपने भाइयोंमें संसृष्ट न होगयाहो तौ इसअवसरमें सरपोताके होतेहुये भाई या भतीजों का अधिकार निपट व्यर्थहै क्योंकि लोकमें कोई ऐसा नहीं करसक्ता कि अपने घर के पैदाकिये और पालेहुये सरपोताको दुर्भागी रखकर जुदे बिरोधीभाई या भतीजों को धनभागी करै और जब लोकमेंही नहीं करसक्ता तौ फिर शास्त्रमेंभी लोक विरोधी नियमका होना केवल भ्रान्तस्वांता चार्योंका कुछवाद विवाद मात्रहोगा-यहांपर क-दाचित् कोई पिण्डदानका अधिकार चर्चा करनाचाहै सो वह निपट थोथा तुष कंडनहै क्योंकि सरपोता जो सुपात्रहो और कुछ करनाचाहै या करै तो धनके प्राप्तहोनेमात्र सेही पिण्डोंका अधिकार पैदा होजाताहै कुछ करनेमें प्रतिषेध बचन कोई उसकेलिये नियतनहीं है और भाई या भतीजे जो भ्रातृ पितृ द्वेषी या कुपात्रहों तौ धनहरनेके सिवाय कभी जलदानकाभी नाम नहीं लेसक्ते हैं फिर पिण्डोंका देनातौ कुछ कठिन है-इसपरभी-कदाचित् कोई धर्म शास्त्रित्व के अभिमानसे उपरालूउक्ति युक्तियों का अवलंब लेकर उक्तलक्षण सरपोताके सन्मुख धनीके भाई या भतीजोंका अधिकार सिद्ध करदेवे और वहसच्चासम भाजाय तौभी(अस्वर्ग्यंलोकविद्विष्टंधर्ममप्याचरेन्नतु) यह प्रतिषेध उसपर आरूढ़है (परंच) इस प्रतिषेधका अन्वेषण प्रायः आवश्यक नहीं होगा क्योंकि उस प्रकारकी सिद्धि दर्शित करनेवालेको प्रथम यह उत्तरभी नि-र्मलता साथ देनाहोगा कि एतद्देशी ग्रन्थ मिताक्षरा वीर मित्रोदयने जो केवल पर-पोता तकही अधिकार कहकर पत्नी आदि अधिकारियोंका प्रारंभकिया तिनकेपीछे केवल ऊपरको चढ़तेहुये चौदह पीढ़ीतक समानोदक मानकर स्वीकारकिये परन्तु भी उनके बाँधे क्रमके अनुसार सरपोता और सरपोता का बेटा तथा पोताभी यह तीनों निचले सप्तम पुरुषकी अवधि तकही किसी गिनतीमें न ठहरे जो सपिंड उसी क्रमके अनुसार समझे जासक्तेथे और इनतीनों के उपरान्त सात और भी चौदहवें पुरुषकी अवधितक जो उन्हींके दर्शायेहुये अनुक्रमके अनुसार सोदक

समुझे जासक्ते थे वेभी किसी गिनतीमें न ठहरे जिनके होनेसे निज धनीकेही बंश का अखंडपाद पहरा रहिताहै-तिसकाहेतु बड़ी निर्मलता और न्यायानुसार कहना योग्य है-इसहेतु को मर्यादा परिपाटी ऊपर न्यायात्मक शिष्टाचारात्मक दोनों रीति से प्रदर्शित करचुकी हैं जिज्ञासु पढ़िकर समुझेंगे ॥ इति प्रपौत्र पुत्रादीनामधिकार विचारः ॥ इति मृतपुरुषमात्र धनदायविभागः ॥ जो कि ४५ के परिच्छेद में १२० मूल श्लोक पूर्वार्द्धसे संक्षेप स्त्री पुरुष दोनोंका धन विभाग पहले दर्शितकिया तिस में पुरुषमात्रका धनविभाग बहुविस्तार सहित १५ परिच्छेदोंमें सब यहांतक प्रदर्शित हुआ अब स्त्री धनका विभाग भी विस्तारसे प्रदर्शित करना चाहिकर उस धनका मुख्य स्वरूप नीचे कहते हैं ॥

अथस्त्रीधनसंज्ञकद्रव्यविवेकोनामषष्टितमःपरिच्छेदः ६० ॥

इस परिच्छेद साठि संख्यामें स्त्रीधनका वर्णनहोगा जिस्से यहबात जानीजायगी कि स्त्रियोंका स्वत्व किस धनमें हुआ करताहै ॥

पितृमातृपतिभ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम् । आधिवेदनिकाद्यंचस्त्रीधनंतत्प्रकीर्तितम् १४७ ॥
वन्धुदत्तंतथाशुल्कमन्वाधेयकमेवच १४८ ॥

अक्ष०—सहृदयोः पिता,माता,पति, भ्राता इनका दिया और अध्यग्नि उपागत और आधिवेदनिक आदिभी यह सब स्त्रीधन कहाते हैं १४७ ॥ और बन्धुओंका दियाहुआ तथा शुल्क और अन्वाधेयक भी स्त्रीधन हैं १४८ ॥

अभि०—विवाहसे पहले या पीछेभी पिता या माता या भर्त्ता या भाईआदि किसी ने सत्कार आदि किसी हेतुसे जो कुछ अपनाहाथ उठाकरदियाहो तौ यहधन स्त्रियों के जुदे धनमें गिनती होताहै और वहभी किजो स्त्रीने अपनेविवाहके समयपर अग्नि की वेदी के निकट मामा नाना आदि किसी से पायाहो और आधिवेदानिक नामका धन भी जो अधिविन्ना स्त्री को दियागया हो जिसका व्योरा आगे १५३ के मूल श्लोक से कहेंगे वहभी स्त्री धन होताहै इन छः प्रकारों के सिवाय औरभी (आदि) शब्द के अभिप्राय से (रिक्थ) जो अपनी माता या नानी आदि के मरने से पाया हो तथा (क्रय) जो अपनादाम देकर कुछ खरीदाहो तथा (संविभाग) जो हिस्सा बांट की रीति से बहिनों या भाइयों के साथ में कुछ पायाहो तथा (परिग्रह) जो कोई वस्तु कब्ज़ाकरि पाने के मार्ग सेही प्राप्तहुई हो तथा (अधिगम) जो दैवयोग से भांड़ा आदि कुछ मिलगया हो यह सबतरह के धन स्त्री धन कहाते हैं १४७ ॥ और वह भी कि जो माता पिता के बंधुओं ने कन्याको दियाहो और (शुल्क) नामकन्या का मोल जो लेकर कन्यादीजाती है और(अन्वाधेयक)द्रव्य जो विवाहसे पीछे उसका पति उसे पूंजीकी रीतिसे देवे यह सब स्त्रीधनहोते हैं इनमें पुरुषोंका अधिकार नहीं १४८ ॥

अधि०-नारद ने छः प्रकार नियत किये हैं-यथा (अधग्न्यध्यावाहनिकंभर्तृदाय स्तथैवच। भ्रातृदत्तंपितृभ्यांचषड्विधंस्त्रीधनंस्मृतम्)अर्थात्-अग्निके समीप पायाहुआ आवाहन हेतु से पायाहुआ और भर्तृदाय कहिये अन्वाधेय द्रव्य जो पूँजी के निमित्त से पति ने दियाहो भाईकादियाहुआ पितामाताका दियाहुआ ये छः प्रकार के स्त्रीधनहैं॥ मनुने भी छः सात भेद स्त्रीधन के कहे हैं-यथा(अध्यग्न्य ध्यावाहनिकं दत्तंचप्रीतिकर्मणि।भ्रातृमातृपितृप्राप्तंषड्विधंस्त्रीधनंस्मृतम्॥अन्वाधेयंचयद्दत्तंपत्याप्रीतेनचैवयत्)अर्थात्-अध्यग्नि१ अध्यावाहनिक२ प्रीतिकामोंमें दियाहुआ३ भाईसे४ माता से ५ पिता से ६ पायाहुआ यह छः प्रकार के स्त्रीधन कहाते हैं(और) सातवां अन्वाधेय भी स्त्रीधन है जो पित्रादिक या पतिने अपनी प्रीतिसे पूंजीसमुझकर देदियाहो यह तो मनुने दर्शाया-और-कात्यायनजी ने इन्हीं द्रव्योंको भिन्नभिन्नलक्षण दर्शाते हुये कुछ अधिक भेदोंसे कहा है-यथा (विवाहकालेयत्स्त्रीभ्योदीयतेवाह्निसंन्निधौ । तदध्यग्निकृतंसद्भिःस्त्रीधनंपरिकीर्तितम्-यत्पुनर्लभतेनारीनीयमानापितुर्गृहात् अध्यावाहनिकं नामस्त्री धनंतदुदाहृतम्-प्रीत्यादत्तंतुयत्किंचित्श्वश्र्वावाश्वशुरेणवा पादवंदनिकंचैवप्रीतिदत्तंतदुच्यते-ऊढयाकन्ययावापिपत्युःपितृगृहेपिवा भ्रातुःसकाशात्पित्रोर्वालब्धंसौदायिकंस्मृतम्-विवाहात्परतोयच्चलब्धंभर्तृकुलात्स्त्रिया- अन्वाधेयं तुतद्द्रव्यंलब्धं पितृकुलात्तथा) अर्थात्-जो कुछ विवाह के समयपर स्त्रियोंको अग्नि वेदी के समीप दिया जाता है सो अध्यग्निक नाम स्त्रीधन कहाता है फिर कभी बुलाईहुई स्त्री अपने पिता के घरसे जो कुछ पाती है सो वह अध्यावाहनिक स्त्रीधन कहाताहै क्योंकि वह आवाहन हेतु से पाया-ससुरा या सासूने जो कुछ प्रीतिसे दियाहो या पैंलगौआ की रीतिसे कुछपाया हो सो वह प्रीतिदत्तनाम का स्त्रीधन कहाता है-विवाही या कुमारी कन्याने पति के या पिता के घर भाई से या माता पिता से कुछपायाहो वह सौदायिक नाम स्त्रीधन कहाताहै-विवाहसे पीछे जो पति के कुल से स्त्रीने पाया हो या पिताके कुलसे पाया हो परंतु पूंजी की रीति से यदि पाया हो तो वह अन्वाधेय नाम स्त्रीधनकहाता है-सदाशिवजीने इसको संक्षेप से कहदियाहै तथापि उनकेवाक्य से यह सभी लक्षण कुछविशेषता साथपायेजातेहैं-तद्यथा (पितृभिः श्वशुरैर्वापिदत्तंयद्धर्मसंमतम्। स्वकृत्योपार्जितंयच्चस्त्रीधनंतत्प्रकीर्तितम्) अर्थात् पिताको आदिलेकर उसके कुलमात्र में किसी ने या उसके बंधुओं में से किसीने अथवा श्वशुरा को आदिलेकर उसके कुलमात्र में किसीने धर्मसे सन्मान करके जो कुछ दिया हो एवं स्त्रीने आप अपनी कृतिसे अर्थात् व्याजबट्टा वा शिल्पादिप्रकारों से उपार्जन कियाहो सो सब स्त्रीधन कहाता है-नारद या मनुके वचन में जो षड्विध शब्द आया तिसका कुछ नियमात्मक भाव नहीं है कि इनसेअधिक न हों क्योंकि

उन्हों ने स्थूल संख्या कही है और इसीसे योगीश्वर ने भी छः कहकर पीछे आदि शब्द के आशय से कुछ अधिक प्रकार सूचितकिये हैं-विष्णुके भी वचन में छः से अधिक संख्याकही हैं-यथा (पितृ मातृ सुत भ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतं आधिवेदनिकं बंधुदत्तंशुल्कमन्वाधेयकमितिस्त्रीधनम्) अर्थात्-पिता,माता,पुत्र, भ्राता इनका दिया हुआ और अग्नि के समीप पायाहुआ और अधिवेदन के निमित्त से पायाहुआ बंधुलोगों का दियाहुआ और शुल्क नामका पायाहुआ और अन्वाधेयकनामपूंजी के निमित्त से पायाहुआ ये इतने स्त्री धन हैं-कात्यायनजी ने निज पूर्वोक्त लक्षणके सिवाय विरले और भी स्त्रीधनके लक्षण शुल्कनामसे दर्शाये हैं-यथा (गृहोपस्करवाह्यानांदोह्याभरणकर्मणाम्। मूल्यंलब्धंतुयत्किंचित्तच्छुल्कंपरिकीर्तितम्)अर्थात्-ग्रंथकारोंने इसवचनके अनेकअर्थ निजनिज बुद्धिके अनुसारकिये हैं-यद्यपि मुख्यात्मक अर्थ इसका यही होना योग्यहै कि गृहोपस्कर नाम घरकी सामग्री सूप,चालनी, मूसल,चाकी,बर्तन आदि और बाह्यकहिये वृषभ आदि भारवाह और दोह्यनाम गाय भैंस आदि इन सब के भरणकर्मोंका मूल्य जो कुछ पायाहो सोई शुल्क कहाताहै सिद्धांत इसका यह कि कन्याका समर्पण करतेसमय वरको या उसके पक्षियोंकेहाथ में इन चीज़ों का मूल्य जो उस कन्याकी आराम समुझकर समर्पण कियाजाता है तिसमें कन्याकाही स्वत्वहोनेसे वह शुल्कनाम स्त्रीधन कहलावै-परंच-मदनरत्नग्रंथ में विपरीत व्याख्या हुईहै कि कन्याअर्पणकरनेकेहेतु से गृहोपस्कर आदि उक्त चीज़ों का मूल्य जो वरसे या उसके पक्षियोंसे कन्याभरण निमित्तक लियाजाताहै वही शुल्क होताहै और वही शुल्कनामक स्त्रीधनहै-यद्यपि मिताक्षराने इस वचनका तो संग्रह नहींकिया पर तौभी (शुल्क) शब्दका यहअर्थ उसमें लिखाहै कि जोकुछलेकर कन्या दीजातीहै उसीधनको शुल्कसमुझो सो यहअर्थभी मदनरत्नकी व्याख्याके समानहै-और इन दोनोंअर्थोंसे यहवितर्क खड़ाहोताहै कि शास्त्रमें कन्याका शुल्कलेना प्रतिषिद्धहै फिर क्योंकर न्यायसमुझाजाय-इसकेसिवाय यद्यपि यहबात संभवहै कि बहुधा लोग इसप्रतिषेधको उल्लंघकर जोकन्या शुल्कलेते हैं तिनहीका यहन्याय समुझो (तौभी) बडाविरोधहै कि ऐसेलोभी लोग जोकुछ मूल्य कन्यादेकर लेते हैं सो प्रायः आत्मपोषण आदि निजव्यापारोंका हेतु नियतकरके लेते हैं कुछ कन्याका स्वत्व उसमें नहीं नियतकरते तो फिर क्योंकर ऐसाद्रव्य स्त्रीधन कहलावैगा इसलिये ऐसे अवसरमें यहभी नियम समुझना योग्यहै कि यदि कदाचित् किसी कन्या दाताने ठठ कन्याकेही नामसे जो शुल्क वरसेलियाहो तो निस्संदेह ऐसाशुल्क स्त्रीधनमें गिननाहै अन्यथा जबतक लोभीपिताने कन्याकाउद्देशकरिके नहींलिया किंतु सामान्य भाव अपनेनाममेंही लियाहो तबतक स्त्रीधनमें गिननी नहीं है-इसकेसिवाय-ठठकन्याके

नामसेभी प्रायः ऐसीदशामें यहशुल्क लियाजाताहै कि जबकोई सस्त्रीक पुरुष किसी हेतुसे द्वितीयभार्या संग्रहकरताहै तब कन्यादाता आगापीछा सोचिकर कि शायद मेरी कन्याको यह कुछदिनपीछे त्यागिकर तृतीयभार्या संग्रहकरै या पहलीपत्नी के विरोधसे निरादरकरै यद्वा पालनमें असमर्थहोजाय इस्से अपनीकन्याके भरणार्थ वरसे शुल्कलेकर कन्यादेताहै सो यहशुल्क निस्संदेह स्त्रीधनहै और इसीसे अत्रोक्त दोनोंअर्थभी अविरोधहैं अर्थात् इनसे पहले जोसामग्रीरूप मूल्य वरकोदेना वर्णन हुआ सोभी शुल्कजानो और अत्रोक्त दोनोंअर्थ जो मिताक्षरा मदनरत्नके अनुसार वर्णनहुये सोभी ठीकहैं कुछ संशयनहीं-परंच-श्रीकृष्णतर्कालंकार ने (गृहोपस्कर) इत्यादि कात्यायनके ऊर्ध्वोक्तवाक्य चौथे पादमें (कर्म्मिणाम्) ऐसापाठ लिखकर अर्थभी कुछ और कल्पित कियाहै कि-गृहोपस्कर कहिये सिर्फ़ मार्जनी अर्थात् घर बुहारनेकी भाड़ू और बाह्य वृषभ आदि दोह्य गौवें और निधि आदिका लाभ इन कामूल्य किन्तु गृहादि कर्मीणरूप शिल्पी अपने भर्ताकेद्वारा औरों के गृहादि कर्म निष्पादन करनेसे स्त्रीने जो घूसकी रीतिसेधन औरोंसे लियाहो सो वह शुल्कहै और वही मूल्यहै क्योंकि भर्तासे प्रेरणाहोनेके अर्थसे-उनके इसी कथनका यह आशय पायाजाताहै कि जिस स्त्रीकाभर्ता अपने आपभी गृहादि शिल्पकर्म करनेका कर्मीण कारीगरहो जैसे राज वढ़ई आदि कोई पेशाकरताहो और वह किसी दूसरेकारीगर का धंधा लगवानाचाहिकर उस्से अपनी स्त्रीको कुछरिसबत घूस दिलवावै जिस्से वह औरोंके घरजाकर स्त्रियोंद्वारा जोड़तोड़से उनकारीगरोंका शिल्पादिधंधा खड़ा-करै तौ यहघूसकाधनमूल्यहै और यही शुल्कनामका स्त्रीधनहै-इसव्याख्यानका कोई अंग सुसंगत नहीं प्रतीतहोताहै-परंच जिनपंक्तियोंका यहउल्थाहै वे पंक्ती भी स्थापित कियेदेतेहैं-यथा (शुल्कमाहकात्यायनः-गृहोपस्करवाह्यानांदोह्याभरणकर्मिणाम्। मूल्यंलब्धंतुयत्किंचिच्छुल्कंतत्परिकीर्तितम्) अस्यार्थः-स्त्रिया गृहादिकर्मिरूपशिल्पि स्वभर्तृद्वारेणान्येषां गृहादिकर्मनिष्पादनात् उत्कोचविधया अन्येभ्योयद्धनंगृहीतं त च्छुल्कंतदेवमूल्यं भर्तृप्रेरणार्थत्वात्। उपस्करोमार्जनी वाह्यावलीवर्दादयःदोह्याधेन वः लाभोनिध्यादेः) यह सबसे अधिकविलक्षणहै कि कहाँ निधिकालाभ कहाँ शुल्क शब्द की व्याख्या कहाँ घरझारने की बुहारी कहाँ बैल कहाँ गौवें पर यह अपनी अपनी समुझका लावण्यहै-इसीप्रकार (कर्मिणाम्) यहपाठ लिखकर जीमूत वाहन ने कुछ औरभी लावण्य कल्पित कियाहै कि-गृहादि कर्म्म करनेवाले शिल्पियों ने अपना शिल्पकाम खड़ा करवानेके निमित्तसे भर्त्ता या देवर ससुरा आदि किसी स्वाधीन को युक्ति सहित प्रेरणा करदेनेके लालचमें जो स्त्रियोंको उत्कोचनाम घूस रिसवतदीहो सो धन शुल्क कहाताहै और वही मूल्यजानो-सिद्धांत इसका यह कि

रिसब्रत लेकर स्त्री अपने घरवालोंको सुझादेवे कि अमुकामुक मकानके बनाने या मरम्मतकिये विना कामनहीं चलता सो यह व्याख्याभी कुछमनकी मौजसी प्रतीत होतीहै अन्यथा मूलवाक्यसे इसभाँतिका आशय नहींनिकलता बल्कि ऐसेआशयसे प्रयोजन भी संसिद्धनहींहोताहै कि जिस्से शुल्क शब्दका भावार्थ जानाजाय (अथस्वातंत्र्यविवेकः) सौदायिकनाम स्त्रीधनकेलक्षण ऊपरभीकहचुके हैं और उसीएकनाममात्रसे अनेकभाँतिके स्त्रीधन विज्ञातहोतेहैं कि जिनकेलक्षण १४७वाले मूलश्लोकसे या उसकी इसीअधिकोक्तिसे प्रदर्शितहुये तिनमें स्त्रियोंका स्वातंत्र्य विशेषहोताहै-यथाह कात्यायनः(ऊढयाकन्ययावापिपत्युःपितृगृहेपिवा।भ्रातुःसकाशात्पित्रोर्वालब्धंसौदायिकंस्मृतम्॥सौदायिकंधनंप्राप्यस्त्रीणांस्वातंत्र्यमिष्यते।यस्मात्तदानृशंस्यार्थंतैर्दत्तमुपजीवनम्॥सौदायिकेसदास्त्रीणांस्वातंत्र्यंपरिकीर्तितम्।विक्रयेचैवदानेचयथेष्टंस्थावरेष्वपि) अर्थात्-विवाही या कुमारीनेही पतिके या पिताकेघर भाई या माता पितासे जो कुछ किसी रीतिसे पायाहो सो सब सौदायिक नाम स्त्रीधन कहाताहै-ऐसे सौदायिक धनको पायकर स्त्रियोंका स्वातंत्र्य प्रसिद्धहै-जिसहेतुसे कि वहधन उनको अनुकंपाके निमित्तसेही पिता माता आदिने उपजीवन समुझिकर दिया इस्से सौदायिक नामके धनमें सदाही स्त्रियोंका स्वातंत्र्य हुआ करता है कि चाहे अपनी इच्छामात्रसे बेंचें यद्वा दान करदेवें (सो) यह स्वातंत्र्य उनको स्थावरमें भी होताहै-परंच-भर्ताके दियेहुये स्थावर धनमें यह स्वातंत्र्य नहीं है-तथाचनारदः(भर्त्राप्रीतेनयद्दत्तंस्त्रियैतस्मिन्मृतेपितत्।सायथाकाममश्नीयाद्दद्याद्वास्थावरादृते) अर्थात्-प्रसन्नहुये भर्ताने निजपत्नीको जो कुछ धन प्रसाद इव देदिया हो वह धन भर्ताके मरजानेपर भी वही स्त्री अपनी इच्छाके अनुसार भोगै यद्वा किसीको देदेवे परन्तु देदेना यह स्थावरसे व्यतिरिक्त है अर्थात् जो भर्ताने स्थावर धन कुछ दियाहो तो स्त्री उसमें वास करने आदि भोगोंका अधिकार अपनेजीतेजी तक पातीहै पर दान अथवा विक्रय आदिमें स्वातंत्र्य उसपर नहीं-इस वचनके अत्रोक्त आशयसे यह बात भी प्रत्यक्ष है कि भर्ताके भी दियेहुये जंगम धनपर स्त्रियोंका स्वातंत्र्य है यदि प्रीति मार्गसेही पायाहो-अन्यथा-प्रीतिमार्गके सिवाय विरली भांति से यदि भर्ता अथवा पिता आदि किसीने कुछ दियाहो तौ भी स्त्रीधनमें गिनती नहीं होसक्ता-यथाहकात्यायनः (तत्रसोपाधियद्दत्तंयच्चयोगवशेनवा। पित्राभ्रात्राऽथवापत्यानतत्स्त्रीधनमुच्यते) अर्थात्-तत्र कहिये तहां स्त्रीधनके विषयमें यह कारण चिंतनीयहै कि पिताने या भाईने याभर्तानेही जोकुछ उपधिसहितदियाहो यद्वा योगवशहोकरदियाहो सो सबस्त्री धनमें गिनतीनहीं है-तात्पर्य इसका यह कि (उपधि) नाम कपटकाहै कपटसे निज बहिन बेटीको किसीकाधन भाई या बापने दानरूपसे देदियाहो यद्वा पतिने निजभार्याको प्रसादरूपसे दे-

दियाहो तौ इसधनमें स्त्रीधनकेनियमोंसे स्त्रियोंका कुछस्वत्व नहींपहुँचता चाहे दाता काभी अंश उसीधनमें पहलेसे हो या न हो इसीप्रकार और भी अनेकअर्थ हैं कि जैसे यह आभूषण आदि कोईचीज़ जो इसको दीगईहै तुम्हें सिर्फ़ उत्सव आदि मंगल कामोंमें वर्तनीयोग्यहै और कभीनहीं ऐसेनियमोंकी प्रतिज्ञासे जो दियाजाय सो सब सोपधिदत्त समुझना तिसमें स्त्रीधनकालक्षण खड़ा नहीं होता-दूसरा योगवशहोकर दियेजानेका यहतात्पर्य है कि निज अपनीवस्तु किसीभय हेतुकरके कभीछलसेदान या विक्रय वा आधानकरीजाती है कदाचित् कोई बहिन वेटी या भार्य्या के ही नामसे छलदान या छलविक्रय या छलवंधक द्वारा दानदेवै या बेंचै वा गिरवी रक्खै तौउस धनमें ऐसी स्त्रियोंका स्वत्व न होनेके हेतुसे स्त्रीधनका लक्षण नहीं आसक्ता क्योंकि ऐसे धनका दाता अपना भय निर्वृत्त होजाने पीछे पुनर्निर्व्वर्तन करताहै और इसीसे विश्वास पात्रकेहीं नामसे छलविक्रय आदि करताहै-तद्यथाहमनुः (योगाऽऽधमनविक्रीतंयोगदानप्रतिग्रहम् । यत्रचाप्युपधिंपश्येत्तत्सर्वंविनिवर्तयेत्) अर्थात्-यहांयोग शब्द छलका वाचकहै और आधमन गिरवी रखना कहलाताहै तिन दोनों शब्दोंके मिलापसे (योगाधमन) कहिये छलवंधक तथा (योगविक्रीत) कहिये छलविक्रय तद्वत (योगदान) कहिये छलकादान एवं (योगप्रतिग्रह) नाम छलसे इन्हीं प्रकारोंका स्वीकार करना-औरभी सिवाय इनके जहां कहीं राजा छलको देखै किंतु धरोहर आदि जिस किसी व्यवहारमें छलकियागया समुझै तिनसवकाही विनिवर्तन करै अर्थात् धनीका धन वापिस करवावै क्योंकि तत्त्वसे इन कामोंको यथार्थ सिद्धितक पहुँचाना अभिप्रेत नहींथा-इसके सिवाय-विरले स्त्रीधनोंमें स्त्रीको स्वातंत्र्य नहीं होता बल्कि पतिकाही स्वातंत्र्य उनमें होताहै-यथाहकात्यायनः (प्राप्तंशिल्पैस्तुयद्वित्तंप्रीत्याचैवयदन्यतः । भर्तुःस्वाम्यंभवेत्तत्रशेषंतुस्त्रीधनंस्मृतम्) अर्थात्-शिल्पकर्म चित्रकारी आदि सूत्रकर्तन आदि कामों से शारीरिक परिश्रमका जो द्रव्य पायाहो यद्वा पिता माता भर्ता तीनों कुलोंसे व्यतिरिक्त किसी और केही घरसे जो कुछ मिलाहो तिसमें भर्ताका स्वातंत्र्य होवै शेष और सबधन जोजो पहले वर्णन हुये स्त्रीधन कहलाते हैं अर्थात् उनमें दान विक्रय आदि यथेष्ट व्यय करनेका स्वातंत्र्य स्त्रियों को होता है परंच अत्रोक्त दोनों भांति के धन यद्यपि स्त्रीधनमें गिनतीहैं तथापि स्त्रियोंको पतिकीआज्ञासे विहीन दान विक्रय आदि व्ययकरनेका स्वातंत्र्य नहीं होता बल्किभर्ता का स्वातंत्र्य इनमें आपत्काल से व्यतिरिक्त भी संसूचित है-क्योंकि (भार्यापुत्रश्चदासश्चत्रयएवाधनाःस्मृताः । यत्तेसमधिगच्छंतियस्यतेतस्यतद्धनम्) यह वाक्य इसमें आरूढ़है-परंच-यह भर्ताका स्वातंत्र्य शिल्पादिक धनमें उन्हींजातोंपर न्यायात्मक समुझाजाता है कि जिनजातों में स्त्री पुरुष दोनोंही शिल्पादिकर्म से आजीवन कि-

या करते और तुल्यात्मक दोनों मिलकर घरका भारउठाते हों-क्योंकि-शिवजीने ऐसे धनमें भी स्त्रियोंका स्वातंत्र्य दर्शित कियाहै-यथा (पतिपुत्रविहीनातुसंप्राप्यस्वामिनोधनम् । नैवदातुंनविक्रेतुंसमर्थास्वधनंविना ॥ पित्राभिःश्वशुरैर्व्वापिदत्तंयद्धर्म्मसम्मतम् । स्वकृत्योपार्ज्जितंयच्चस्त्रीधनंतत्प्रकीर्तितम्) अर्थात्-पति पुत्रसे विहीन हुई पत्नी स्वामीका धन पाइकर दानकरने या बेंचने में समर्थ नहीं है पर अपने धन के विना किन्तु अपने स्त्री धनको दान या विक्रय करसक्ती है यह कहिकर उसी स्त्री धन का रूप दर्शित किया है कि पिता आदि किसी पितृ पक्षी ने या श्वशुरादि किसी भर्तृ कुलपक्षीने जो कुछ धर्ममार्गसे दे दियाहो और जो कुछ अपने कृत्य से शिल्यादि कर्मोंद्वारा पैदाकिया सो सब स्त्रीधन कहलाताहै-यद्यपि-शिवका वाक्ययह सामान्य शास्त्रहै और कात्यायनका वहवचन विशेषहै (सामान्यशास्त्रतोनूनंविशेषो वलवान्भवेत्) तथाप्यल्पव्यापकोविशेषः-इसन्यायके प्राबल्यसे और उत्तमजाती शिष्टाचारसेभी सभीजातोंपर सुव्यापक सूचित नहींहोसक्ताहै कि शिल्पादि वा सख्यादि प्राप्तधनमें स्त्रियोंका स्वातंत्र्य नहोवे—क्योंकि—उन्हीं कात्यायनजीने सामान्यभाव ऐसानियम दर्शायाहै कि कोईपुरुष किसीस्त्रीधनको उसकी इच्छाविना नभोगे-तद्यथा (नभर्त्तानैवचसुतोनपिताभ्रातरस्तथा। आदानेवाविसर्गेवास्त्रीधनेप्रभविष्णवः ॥ यदित्वेकतरोऽप्येषांस्त्रीधनम्भक्षयेद्‌वलात् । सवृद्धिकंसदाप्यःस्याद्दण्डञ्चैवसमाप्नुयात् ॥ तदेवयद्यनुज्ञाप्यभक्षयेत्प्रीतिपूर्वकम्। मूलमेवतदादाप्योयदासधनवान्भवेत् ॥ अथ चेत्सद्विभार्य्यःस्यान्नचताम्भजतेपुनः। प्रीत्याविसृष्टमपिचेत्प्रतिदाप्यःसतद्‌वलात्॥ ग्रासाच्छादनवासानामुच्छेदोयत्रयोषितः। तत्रस्वमाददीतस्त्रीविभागंरिक्थिनस्तथा) अर्थात्-कात्यायनजी यहकहते हैं कि-स्त्रीधनको आपलेलेने यद्वाकिसी औरकोदेदेने मध्ये नतौ स्त्रीकाभर्त्ता और न पुत्रादिक और नपिता या भैये भी समर्थ नहीं होसक्ते वलिक जो कोई इनमें एकभी प्रबलतासे स्त्रीधनको खाजाय सो वह वृद्धिसहित दिलाने योग्यहै और इस अपराधका यथोचित दंडभी वहपावे और जो वही अनुज्ञा कहकर प्रीतिपूर्व ऐसे धनको खाय तौ भी व्याज विनामूलमात्र उसअवसरमें दिलानायोग्यहै कि जव खादक धनवान् हो और जो उसकाभर्ताही ऐसा प्रीतिपूर्व ऋणरूप स्त्रीधनलेकर अन्य भार्यासाथ रहतेहुये इसका अवमानकरनेलगे तौ फिर प्रीतिसहित दियाहुआ भी धन राजा उसपर वड़ी प्रबलतासे दिलावै जहाँ स्त्रीको भोजन वस्त्र निवास तक भी भर्ता नहीं देताहो और स्त्री आपनिर्दोषा और धनहीनहो तौ यहचीजें भी प्रबलतासे पासक्ती है या इनके अनुमान योग्य धनपासक्तीहै कि जैसा भर्ताका वित्तहो-इसीप्रकार भर्ताके नहोनेमें उस भर्ताके रिक्थियोंसे भी भोजन वस्त्र निवास आदि लेसक्तीहै-अर्थात् इतना परहस्तोपस्थित धनमें भी सदैव निर्दोषा शुभाचारा स्त्रियोंका स्वत्वरूप स्त्रीधन

विज्ञेयहै—अस्यप्रमाणंयथाहदेवलः (वृत्तिराभरणंशुल्कंलाभश्चस्त्रीधनंभवेत्। भोक्त्री तत्स्वयमेवेदंपतिर्नार्हत्यनापदि) अर्थात्-यहांपर प्रमाण होने योग्य इसमें केवल (वृत्ति) पदही सूचितहै कि अन्नाच्छादन आदि वृत्ति जो स्त्रियोंको अवश्य देनी योग्य हो सो भी एक अलब्ध स्त्री धन में गिनती है शेष इसी वचन की व्याख्या आगे १५२ की अधिकोक्ति में देखना क्योंकि अभी और भी अनेक भाव स्त्री धनके मध्ये वर्णन करनेशेषहैं सो सब उसीजगह प्रदर्शित होंगे-इसके सिवाय जो जो स्त्री-धन स्त्रियोंको अवश्य देनेयोग्यठहरे सोसब निर्दोषा होनेकी दशापर आरूढ़हैं-यथाह कात्यायनः(अपकारक्रियायुक्तानिर्लज्जाचार्थनाशिनी। व्यभिचाररतायाचस्त्रीधनन्नच सार्हति) अर्थात्-जो सदाहीपतिकेप्रतिकूलआचरणोंमें तत्परहो और लज्जारहित वा मर्यादारहितहो और बहुधा घरके अर्थोंका विनाश करतीहो या व्यभिचार में रतहो सो स्त्रीधन संज्ञक द्रव्यपानेयोग्य नहीं है-अभिप्राय इसका यहभीहै कि बिरलीदशा के अनुसार उस्सेदियाभी लेलियाजावे परजो देनेयोग्यहो सोतो सदाही अदेय है-इत्यादि कारणोंके आशयसे कात्यायनजीने स्त्रियोंको धनदेनेका परिमाणभी कुछनि-यतकियाहै-यथा (पितृमातृपतिभ्रातृज्ञातिभिःस्त्रीधनंस्त्रियै। यथाशक्त्याद्विसाहस्राद्दात व्यंस्थावरादृते) अर्थात्-पिता माता पति भ्राता या जातीबन्धुओंकरके किसीस्त्रीकोस्त्री-धन जोदेनाहो तौनिजशक्तिके अनुसार दोसहस्र व्यवहारिक मुद्रातकदेवे इस्सेअधिक नहीं सोभी स्थावरसे व्यतिरिक्तदेवे-व्यासोपि-(द्विसहस्रःपरोदायःस्त्रियैदेयोधनस्यतु) अर्थात्-स्त्रीको स्त्रीधनसंज्ञक दायपरेसेपरे सिर्फ़दोसहस्रतक दातव्यहै-सो-यहनियमएक ऐसी दशामें संभाव्य समुझा जाताहै कि जब स्त्रीको वसौंड़ी यद्वा मासिक रीतिसे नि-बन्ध पूर्व दिया जाय क्योंकि प्रथम तौ दो सहस्रकी निर्विकल्प अवधि नहीं किंतु सिर्फ़ दो मुद्रासे लेकर दोसहस्रतक अपनी शक्ति या निजधनकी बहुताइतके अनुरूपदेना योग्य ठहरा तौ इस देनेसे कुछ जन्मपार नहीं होसक्ता इस्से यहभी आशय सूचितहै कि जब अनेक वर्षोंका इकट्ठा एकबार दिया जाय तौ कुछ दोसहस्र परभी नियम नहीं है (परंच) दोसहस्रका कथन केवल इसलिये है कि शायद किसी धनकी बहुताइतके अनुसार पांचसात सहस्रतक वसौंड़ी देसकनेकी गुंजायशहो तौभी इस्से अधिक न पावैगी (सो) इसविवादका (दृष्टान्त) जैसे किसीधनीके मरनेपीछे या जीतेही कोईस्त्री किसी तकरारके हेतु अपना जुदा निबंध चाहै और उस धनके अनुसार यद्यपि पांच सहस्रकी वसौंड़ी देना कुछ दुस्साध्य नहीं है तथापि निज पुत्रों यद्वा पति आदि अधि-कारी दातासे दोसहस्रसे अधिक निबंध पानेमध्ये कुछ दावानहीं करसक्ती आगे दाता को अख़्तियारहै कि वह निजइच्छाकेअनुसार चाहै अधिक दे या न दे-और ऊपर जो यह कहा गया कि (वसौंड़ी यद्वा मासिक रीतिसे) सो इस द्विविध चर्चाका यह भाव

है कि स्त्रियों के घराने का गुरुत्व और धनादि व्यवहारों का वर्तावा जैसा विदित हो तिसके अनुकूल बसौंड़ी या मासिक भी अविरोध है अर्थात् यथा स्थल के अनुसार जिसघरका जैसा डौलहो तैसाही निबंध परिमाणोंमेंभी भावकरनायोग्यहै-अब निचले परिच्छेदमें स्त्रीधनका विभाग वर्णन होगा १४७। १४८॥

अथकदाचिद्दायविभागापेक्षायांस्त्रीधनसंज्ञकस्यविभाग विवेकोनामैकषष्टितमः परिच्छेदः ६१॥

इस एकसठि संख्याके परिच्छेदमें सर्वथा स्त्रीधनका दायविभाग जानाजायगा॥

स्त्रीधनका दायविभाग जो अब नीचे वर्णन करेंगे तिसमें एक यौतुक तथा यौतक नामका स्त्रीधन भी आवैगा और उसके लक्षण कुछ ऊपरले परिच्छेदमें दर्शाये नहीं गयेथे इसहेतुसे यह भ्रांति खड़ी होतीहै कि जिसके लक्षण ब्यौरेवार नहीं दर्शितहुये तिसकादाय विभाग क्योंकर समुझाजाय इस्सेउसका ब्यौराभी दर्शायेदेतेहैं कि (अध्यग्नि) संज्ञक स्त्रीधन जो पहले कात्यायनके वचनानुसार दर्शितहुआथा वही (यौतक) यद्वा यौतुक भी समुझना-सो इसनाम भेदका यह अर्थ है कि अध्यग्नि धन भी वही कहाताहै जो विवाह कालमें अग्निके समीप दियाजाय और यौतकभी इसहेतुसे कहाताहै कि (यु) धातु मिश्रण अर्थात् मिलनेका अर्थ प्रकट करतीहै कि वर और वधू दोनों मिलकर विवाह कालमें एकही आसन बैठेहुयोंको कन्या पक्षी बांधव लोग जो कुछ भेंट पूजा देते हैं सो युत होनेके समयकाधन यौतक स्त्रीधन कहाताहै-विरलोंने इस भांति निरुक्तिकरीहै कि वेद मंत्रोंसे विवाह कालमें स्त्रीपुरुष दोनोंके शरीरोंकी एकता जो उत्पन्नकरी जातीहै वही मिलाप रूप उनका युतकाल है इसहेतुसे विवाह कालमात्रमें जो कुछ किसी रीतिसेमिलै सो सबयौतुकनाम स्त्रीधनहै-विरलोंने-विवाह कालकी कुछ अवधि भी निरूपितकरीहै कि (वृद्धिश्राद्धारंभात्पत्यभिवादनान्तःकाल एव विवाहकालःतत्काललब्धमेवधनंयौतुकम्) अर्थात् वृद्धि श्राद्धके प्रारंभसे लेकर जबतक पतिसे अभिवादन कर्म समाप्तहो इतनेकालकेबीचमें जो कुछ किसी रीति से पायाहो सो सब यौतुक नाम स्त्रीधनहै किंतु इतनेकाल से पहले या पीछे चाहे विवाह में भी पायाहो तो वह यौतुक नहीं है-अब इसबातपर भी ध्यान करना योग्य है कि यद्यपि स्त्रीधनके बहुधा लक्षण प्रकटहुये हैं तथापि आगे दाय विभाग वर्णन होने के निमित्तमें उन सबहीका स्थूलरूप केवल दोही चार भेद मुख्य मानिकर उन सब को इनके अन्तर्गत में जानिलेना किन्तु सबसे मुख्य यौतक १ और उसके बाद सौदायिक २ अन्वाधेय ३ शुल्क ४ सर्वसामान्य ५ (अथैषांविभागोनिरूप्यते) तत्रमनुः (जनन्यांसंस्थितायांतुसमंसर्वेसहोदराः। भजेरन्मातृकंरिक्थंभगिन्यश्चसनाभयः) अर्थात्-मनुकहतेहैं कि माताके मरजानेमें सभी सहोदरभ्राता और सब सगी बहिनें

भी निज माताका स्त्री धनसंज्ञक रिक्थभोगें यद्वा बाँटिलेवें-इसवचनमें सहोदरभाई बहिन कहने से सौतेले भाई बहिनोंका भाग उसमें नहीं है-देवलका भी यही तात्पर्य है कि भाई बहिन मिलकर बाँटिलेवें-यथा(सामान्यंपुत्रकन्यानांमृतायांस्त्रीधनंस्त्रियाम्) अर्थात्-किसी स्त्रीके मरजानेमें उसका सामान्य स्त्रीधनसंज्ञक द्रव्य पुत्रों तथा कन्याओंका भागहोवै-देवलके इस वचनमें कुमारी कन्यामात्रकही हैं तथैव मनु के वाक्यमें भी बहिनें सिर्फ़ कुमारी समुझिलेना-क्योंकि-इस वार्तामें बृहस्पतिका अग्रोक्त वचन प्रमाण और सुव्यक्तहै–तथा (स्त्रीधनंस्यादपत्यानांदुहिताचतदंशिनी। अप्रत्ताचेत्समूढातुलभतेमानमात्रकम्) अर्थात्-स्त्रीधन उस स्त्री के अपत्य कहिये पुत्रोंका होवै और दुहिता भी उन पुत्रोंके समान अंशवाली है पर यदि विना विवाहीहो किन्तु व्याही दुहिता अंश न पावे केवल शिष्टाचारके सत्कार से कुछ मानमात्र उसको देना योग्यहै-कुमारी के न होनेमें विवाही दुहिता जो सधवाहो तिसको भी कात्यायनजीने भाइयों के समान अंश देना कहाहै-यथा (भगिन्यो बांधवैःसार्द्धंविभजेरन्सभर्तृकाः)अर्थात्-बहिनें भी जो भर्तावाली हों भ्राताओं साथ भाग पावें-मनुने विभागकालमें दुहिता की पुत्रियोंको भी कुछ सत्कारमात्र देना कहाहै-यथा (यास्तासांस्युर्दुहितरस्तासामपियथार्हतः। मातामह्याधनात्किंचित्प्रदेयंप्रीतिपूर्वकम्)अर्थात् जे कोई उनदुहिताओंकी दुहिताहों तिनकोभी उसनानीकेधनमेंसे यथार्हशिष्टाचारसे सत्कारमात्र प्रीतिपूर्वकुछकुछदेनायोग्यहै-यथार्हयथायोग्य ऐसेकथनसे दरिद्रआदि उपयोगोंके अनुसारयद्वा धनकीबहुताइतकेअनुसारजोकोईवस्तु या जितनीजिसदौहित्रीकेयोग्य समुझीजाय सो दातव्यहै-यहांतक जोभागविधिकहीगई सो एकअन्वाधेय और पतिप्रीतिदत्तधन पर पंडित मित्रमिश्रजी संतर्कितकरतेहैं और अग्रोक्तमनुकावचनप्रमाण देतेहैं-यथा(अन्वाधेयंचयद्दत्तंपत्याप्रीतेनचैवयत्। पत्यौजीवतिवृत्तायाःप्रजायास्तद्धनंभवेत्)अर्थात्-अन्वाधेयनामद्रव्य और पतिने जो प्रीतिकरके दियाहो स्त्रीके मरजानेपीछे पतिके जीते रहने में भी प्रजा नाम पुत्र पुत्री दोनों का हो–और सर्व्वत्र इसमें पुत्री केवल कन्यासमुझो चाहे एक वा अनेकहों–परंच–मनुने इनदोही धनका नियमनहीं दर्शाया वलिक पूर्वोक्त षड्विध अन्यधनभी पुत्रपुत्री दोनोंको दर्शायेहैं और यही अर्थ कुल्लूकभट्टने मनुमुक्तावलीमें दृढ़कियाहै कि सभीप्रकारके स्त्रीधन संतानोंको मिलें तथैव विज्ञानेश्वरनेभी सब सामान्यधनका नियमदर्शायाहै और यही व्यवस्था ठीकहै क्योंकि सबधनका नियम न होनेसे व्यवस्थामें दुस्साध्य अनवस्था खड़ीहोतीहै-तथापि- सबधनमें एक यौतुक तथा परिच्छदकी व्यवस्था जुदी समुझनी किंतु उसमें पुत्रोंका कुछभागनहींहोता केवल कुमारीकन्यापातीहै-यथाहमनुः(मातुस्तुयौतकंयत्स्यात्कुमारीभागएवसः) अर्थात्-यौतकनामका स्त्रीधन जो माताछोड़मरीहो सो

वह सिर्फ़ कुमारी कन्याकाभागहै-जबकन्या निपटनहो तौ फिर व्याही दुहितापावैंगी या दुहिताभी नहोंतौ दौहित्रीका वहभागहै दौहित्रीभीनहो तौफिर पुत्रोंका अधिकार है परउसमें जोकुछ माताका परिच्छदहो अर्थात् कंगी दर्पण आदि स्त्रियोंकी सामग्री जैसीहोतीहै सो स्त्रियोंकाही भाग सर्वदाहोताहै इस हेतुसे उनपुत्रोंकी बधूटी उसको पावैं-इसीप्रकार पुत्रोंके न होनेमें उन पुत्रोंका पुत्रादिक वंशपावै-इसके सिवाय (मातुर्दुहितरःशेषमृणात्ताभ्यऋतेऽन्वयः) यह १२० वाला मूलवाक्य योगीश्वर का ४५ के परिच्छेदगत सामान्य मर्यादा से आचुकाहै सो व्याख्या इसकी उसी जगह देखो और यहबातभी विचारो कि उस व्याख्यामें पुत्रियों तथा पुत्रोंका विकल्प ऋणकेहेतु से प्रदर्शित हुआथा परञ्च ऐसाभाव उसमें नहींपायागया कि पुत्र और कन्या मिलकर बांटिलेवैं बल्कि यहभाव निश्चितहुआथा कि माताकाधन बेटियां बांटिलेवैं या बेटियों के न होनेमें पुत्रादिक वंशपावै तौ अत्रोक्त विशेष मर्यादामें तत्रोक्त सामान्य मर्यादासे विरोधसा प्रतीतहोताहै कि इस द्विविधा में किसभाँतिसे यहन्याय निपटै- बल्कि विज्ञानेश्वरने तत्रोक्त सामान्य मर्यादाकाही पक्षलेकर यहांभी यहभाव दर्शित कियाहै कि कोईभाँतिकी पुत्रियोंके या उनकी सन्तानोंके होतेहुये पुत्रोंका अधिकार नहोवे किंतु दुहिता दौहित्री दौहित्रोंके नहोनेमें पुत्रादिक वंशपावै-इसमें नारदकायह वचन प्रमाणदेकर लिखाहै कि-(मातुर्दुहितरोऽभावेदुहितॄणान्तदन्वयः) अर्थात्-माता काधन दुहितापावैं दुहिताओंके अभावमें दौहित्रीपावैं उनके भी अभावमें दुहिताका वंशकहिये दौहित्रपावै इनसबहीके अभावमें उसमरीमाता के पुत्रादिकपावैं-सो यह नियम सर्वसामान्य धनपर सूचित कियाहै अर्थात् यौतुक आदिका भेदभी कुछनहीं रक्खा-और जीमूतवाहन,मदनरत्न,स्मार्तभट्टाचार्य,स्मृतिचन्द्रिकाकार आदि ग्रंथकारों ने कुछ और और भाँतिसे निर्वाह इसकालिखाहै तथापि बहुधा अनवस्था पाईजाती हैं इसलिये उसका खंडन मंडन अति विस्तारभयसे छोड़कर एकन्यायात्मक शिष्टाचारात्मकदोनों मर्यादाकेयोगसे निर्वाह विदित करतेहैं कि जहां पिता निर्द्धन होनेके हेतुसे पुत्रोंने कुछ रिक्थ न पायाहो या आगेबढ़कर पानेका संयोगनहो और वे पुत्र अपने आपभी असमर्थहों तहाँ तौ इस विशेष मर्यादासेही मातृधनका भागहोना योग्यहै कि जैसा पुत्रकन्या मिलकर ऊपर मन्वादि वचनों के प्रमाणमें व्यवस्था निश्चितकरीगई (परंतु) जहाँपुत्र अपने पिताकाधन भागमिलनेके हेतुसे संपन्नहों यद्वा स्वतःसमर्थ होनेकेहेतुसे संपन्नहों तहाँपर योगीश्वरकी सामान्य मर्यादा तथा विज्ञानेश्वरके अत्रोक्त पक्षसेभी नारद आदि वचनों के अनुकूलधनका भागपुत्रियों या पुत्रियोंकी संतानहोनेहुये पुत्रोंको न पहुँचै पर जब दुहिता या दुहिताओंकी संतान भी नहो तौफिर उनसंपन्न पुत्रोंकोभी माताकाधन भाग मिलै-तथाचकात्यायनः-दुहि-

तॄणामभावेतुरिक्थंपुत्रस्यतद्भवेत्) अर्थात्-दुहिताओंके अभावमें वह रिक्थ माताके पुत्रलेवैं-इसकेसिवाय-जहाँ पुत्रोंके अभावमें दुहिताही अनेकहों तौ उसमातृ धनका भाग इस अग्रोक्तरीतिसे कर्तव्यहै-यथाहगौतमः(स्त्रीधनंदुहितॄणामप्रत्तानामप्रतिष्ठितानांच)अर्थात्-स्त्रीधनदुहिताओं में अप्रत्ताओंको या प्रत्ताओंमें अप्रतिष्ठिताओंको मिलै- आशय इसका यहकि दुहिता जबअनेकहों तौ उनमें जो अनूढ़ाहों वेहीधनको बांटिलें और जोसभी दुहिता ऊढ़ाहों तौ उनमें जेकोई अप्रतिष्ठिताहों वेहीधनको बांटिलें, अप्रतिष्ठिताके नहोनेमें प्रतिष्ठिताबेटी सभीमिलकर बांटिलें (अप्रतिष्ठितायद्यपि निधना दुर्भगा विधवा और बन्ध्याकोभी कहते हैं तथापि इसप्रयोजन में बन्ध्या जबतकसधनाहो गिनतीनहींहै) जबदुहिता निपटनहों तौ दौहित्री धनकोबांटिलें परन्तु जो अनेक दुहिताओंकी पुत्रियाँ तौफिर निजनिज माताओंकाही भागलेकर आपस में उसभाँति से फिरबांटै जैसे पौत्र अपनेदादाके धनमेंसे निजबापोंका भागपाया करतेहैं उसीप्रकार दौहित्री अपनी नानीके धनमेंसे-तथाचगौतमः-(प्रतिमातृवास्ववर्गोभागः) अर्थात्-निजनिज माताओंकेप्रति अपना अपना वर्गरूप भागहो (यहांपर दुहिताओं के अभावमें दौहित्रीका रिक्थित्व कहागयाहै और पहले दुहिताओंकेसाथ में दौहित्रीको प्रसादमात्र देनाकहाथा कुछवहांपर रिक्थित्वसे अधिकार उसकानहींथा) जब दौहित्री निपटनहों तबदौहित्र धनको बाँटिलें परदौहित्रोंके अभावमें दौहित्रोंकी सन्तानका अधिकारनहीं-किंतु दौहित्रोंके अभावमें उसमाताकेही पुत्र या पौत्रादिक यथाक्रमसे भागीहोंगे जैसे पैतृक धनमेंहोतेहैं-सरपोता तक नहोनेमें उसस्त्रीकेसौतेले पुत्रपाते हैं उनके भी न होने में सौतेले पोते उनके भी न होने में सौतेले परपोते भागीहोंगे (अत्रवांगदेशीयानांक्रमः) वांगदेशी ग्रंथों के अनुसार वांगदेशमें ऐसाक्रम स्वीकारहै कि सबसे पहले क्वारीकन्या धनको पावै तिस पीछे वाग्दत्ता कन्यापावै जिसका व्याह अवतक नहीं है सगाईमात्रहुईहो तिसपीछे ऊढ़ा दुहिता और वह दुहिता जो सपूती या संभावितपुत्राहो सभी मिलकर एक साथ बाँटिलें इनकेभी न होने में वंध्या विधवा दोनों मिलकर बाँटिलें-परंच कुमारी यद्वा वाग्दत्ता कन्या जिनका अधिकार पहले सूचित हुआ माताका धन पाइकर पश्चात् विवाही जायँ और उनमें कोई वंध्या निकसै या निपूती रहिकर विधवा होजाय तौ उसके कभी मरनेमें वह मातृ धनका पाया भाग वे बहिनें पावें जो सपूती यद्वा संभावितपुत्रा हों या ऐसी बहिनोंके न होनेमें वे बहिनैंभी कि जो वंध्या यद्वा पुत्रहीन विधवाहों ऐसे धनको पावें पर उसमाताका भर्ता नहीं पावै क्योंकि भर्ताका अधिकार निःसंतानी स्त्री के धनमें होगा और यह कारण भी बलवान्है कि (जब) क्वारी यद्वा वाग्दत्ताने निजमाताका धन रिक्थ भागसे पाया और वह आपभी मरगई तौ अब उसके छोड़े रिक्थमें कुछ स्त्रीधनका भाव

शषनहीं रहा जिस्से भर्ताका अधिकार पहुँचै और बहिनोंका यथोक्त क्रमके अनुसार अबतक अधिकार उसपर आरूढ़है (दौहित्रीका प्रसंग इसमें नहींहै) सभी प्रकार की दुहिता निपट नहों तौ फिर पुत्रोंका अधिकारहै सो इसमें भी योगीश्वरका यह वचन प्रमाण रक्खागयाहै कि (मातुर्दुहितरःशेषमृणात्ताभ्यऋतेऽन्वयः) और इसी के सामान्य सूधे अर्थसे यह क्रम निश्चित कियाहै कि दुहिताके अभावमें पुत्रोंका अधिकार होवै-पुत्रोंके अभावमें दौहित्रोंका अधिकार होवै-दौहित्रोंके अभावमें फिरपौत्रों का अधिकार होवै-पौत्रोंके अभावमें प्रपौत्रोंका अधिकार होवै-प्रपौत्रोंके अभावमें सौतेला पुत्रपावै-उसकेभी अभावमें सौतेला पोता पावै-उसकेभी अभावमें सौतेला परपोता पावै(इतिबांगदेशविशेषक्रमः) जब इतनी संतानोंमेंसे कोईभी न हो तब उसस्त्री को सब देशोंकी अपेक्षा निःसंतानी जानो तिसके धनके दायग्राहक नीचे वर्णन होंगे परंच-ऊर्ध्वोक्त सर्व मर्यादोंमें यह इतना और विशेषहै कि यद्यपि सौतेली दुहिताका अधिकार सौतेली माताके धनमें नहीं होताहै तथापि जो दुहिता उत्तमजाती और माता मध्यमजाती हो तौ सौतेली दुहिता या उस दुहिताकी संतानभी हरसक्ती है-यथाहमनुः (स्त्रियांतुयद्भवेद्वित्तंपित्रादत्तंकथंचन। ब्राह्मणीतद्धरेत्कन्यातदपत्यस्यवाभवेत्) अर्थात्-कथंचन कहिये कैसेहू किसी प्रकार या किसी काल में जो पिताने धन दिया हो तिसको छोड़कर निःसंतानी स्त्रीमरजानेमें ब्राह्मणी कन्या सौतेलीभी हरलेवै या उसकन्याकी संतान पावै यहांब्राह्मणीका उपलक्षणमात्र उत्तमवर्णा मातासे उत्पन्न हुई समुझना-आशय इसका यहहै कि सौतेले पुत्र सौतेले पोता सौतेले परपोता तक तौ अभीऊपर सामान्य मर्यादासेअधिकार वर्णनहुआथा और इनकेभी न होनेमें निःसंतानी स्त्रीठहरी थी कि जिसके दायग्राहक नीचे वर्णन होंगे और वे सभी दायग्राहक सौतेली दुहिता या उस दुहिताकी संतानके होतेहुये धनको हरेंगे इसलिये इतनी और विशेषता दर्शित करीगई कि जो सौतेली दुहिता अपनी सौतेली मातासे कुछ उत्तम वर्णकी हो तौफिर उसके होतेहुये या उसकी संतानके होतेहुये निम्नोक्त दायग्राहक नहींपावेंगे (सो) यह दशा ऐसेस्थलपर आसक्ती है कि जहां किसी पुरुषके दो या कई वर्णोंकी स्त्रियांहों १४८॥

(अथानपत्यायाधनाधिकारिणः)

वन्धुदत्तंतथाशुल्कमन्वाधेयकमेवच। अतीतायामप्रजसिवान्धवास्तदवाप्नुयुः १४९॥

भक्ष०—बंधुदत्त तथा शुल्क और अन्वाधेयभी निः संतानी मरनेमें उसके वान्धव पावें १४९॥

मभि०—जब कोई स्त्री निपट निःसंतानी मरै अर्थात् ऊर्ध्वोक्त मर्यादों के अनुसार जिसके सौतेले वेटा पोता परपोता तक नहों तो फिर एक तो वंधुओंका दिया हुआ

धन जो कुछ उसने छोड़ा हो जो पहले कभी माता या पिता के सम्बन्धी मात्रसे कुछ पायाथा दूसरा शुल्क नामक धन तीसरा अन्वाधेय नामक धन जितना छोड़ मरीहो सो उस स्त्रीका भर्ता विद्यमानहोते भी निज बंधुपावें १४९ ॥

अधि०-यहाँ निजबंधु कहनेसे उस स्त्रीके भ्राता और माता पिता निश्चितहोते हैं तथैव धनभी केवल स्थावर समुझाजाता है-यथाह कात्यायनः(पितृभ्यांचैवयद्दत्तं दुहितुःस्थावरंधनम् ॥ अप्रजायामतीतायांभ्रातृगामितुसर्वदा) अर्थात्-पिता माताने जो दुहिता को स्थावर धन कुछ दियाहो तौ उस दुहिताके निःसंतानी मरजानेमें सदाही धन भ्रातृगामीहो-सदा कहनेका यहभावहै कि आठ भाँतिके विवाहों मेंसे चाहे कोई भाँतिका विवाह उसका हुआहो और भर्ता चाहे जीताहो या नहो ऐसा तीनि भाँतिका स्थावरधन उस स्त्रीके भाईपावें भाईके न होनेमें माता और माताके न होनेमें पितापावे-तीनों धनमें शुल्क जो दर्शाया तिसको गौतमजी भी कहते हैं-यथा(भगिनी शुल्कंसोदर्य्याणामूर्ध्वंमातुः) अर्थात्-निःसंतानी भगिनी का शुल्क सोदर भ्राताओंका भागहै भ्राताओंके उपरांत माताका और माताके उपलक्षणसे उपरांत उसके पिताका अधिकारहै-और जो भ्राता माता पिता इनमेंकोईभी नहो तौ फिर भर्त्ताका अधिकारहै; यथाहकात्यायनः(बन्धुदत्तंतुबन्धूनामभावेभर्तृगामितत्)अर्थात्-निःसंतानीस्त्रीमरनेमें बन्धुओंका दियाहुआ स्थावरधन बन्धुओंके न होनेमें भर्त्ताकोपहुँचै-यहाँ स्थावरका विशेषणदेनेसे यहभावहै कि जोयेही अत्रोक्त तीनोंभाँतिके धन जंगम हों तौ फिर बन्धुओंके होतेहुये पहले भर्त्तापावै चाहे ब्याह आठोंभाँतिमेंसे किसी प्रकारकाहुआ हो-यहांपर शुल्कधनमें जो भर्त्ताके होतेहुये भाईका अधिकार दर्शितहुआ तिसमें इतना निर्णय औरभी कर्तव्यहै कि (शुल्क) शब्दके भावार्थ पहले कईभाँतिसे प्रदर्शितहुयेथे उनमें जो कोईशुल्क पितामाताकी ओरसेपाया निश्चितहोवै और स्थावरहो केवल उसीमें भ्राताओंका अधिकार पहलेसमुझो परजो कोई शुल्कस्त्रीने पतिकी ओरसे पायाहो तिसमें पहले भर्त्ताका अधिकारहोगा किंतु भ्राताओंका सम्बन्ध उसमेंनहीं-एवं-अन्वाधेयभी दोभाँतिका कहचुकेहैं कि स्त्री जोकुछ ब्याहके होजानेपीछे पतिकेकुलसे या निजपिताकेही कुलसे पूँजीरूप आजीवन समुझाजाकरपावै-तो इस लक्षणसे यहनिर्णयभी कर्तव्यहै कि जो पतिके कुलसेपायाहोभ्राताओंका अधिकार न पहुँचै किंतुभर्त्तापहलेपावै पर जो पिताकेही कुलसेपायाहो और धनभी वह स्थावरहो तौ भ्राताओंका अधिकार निःसंदेह पहलेजानो १४९ ॥

अबनीचे अष्टविवाहों के दोभेदमे दायाधिकार वर्णनहोगा १४९ ॥

अप्रजास्त्रीधनंभर्तुर्ब्राह्मादिषुचतुर्ष्वपि । दुहितॄणांप्रसूताचेच्छेषेषुपितृगामितत् १५० ॥

मस०-निःप्रजास्त्रीका धन ब्राह्मआदि चार विवाहोंमें भर्त्ताका-शेष विवाहोंमें वह

पितृकुल गामीहो- प्रसूताही यदिमरै तौ दुहिताओं का अधिकारहोवै १५० ॥

अभि०-आठोंमेंसे कोईभाँतिके विवाहवाली स्त्री जो प्रसूता कहिये संतानोंके होते मरै तौ उसका सभीप्रकारका धन पुत्रियोंका भागहोवै सो यह तृतीय चरणका अर्थांश अति विस्तरित व्यवस्था सहित ऊपर वर्णनहुआ था इसलिये इस्से यहाँ प्रयोजन शेषनहींहै-परन्तु-जो स्त्री निपट निःसंतानी होकरमरै जिसके सौतेले बेटे पोते परपोतेतकनहों तिसकेधनका दाय कहते हैं कि ब्राह्मआदि चार यद्वा पांचविवाहोंमेंसे कोई भाँतिका विवाह जिसकाहुआहो ऐसीस्त्रीका धनभर्त्ताहरै याभर्त्ताके नहोने में उसभर्त्ताकेही प्रत्यासन्न सपिंडपावैं जैसे निजभर्त्ताका धनपाना उनको पुरुषधनके स्थलपर विस्तारसे विवेचन हुआथा (अथवा) शेष चार यद्वा तीन विवाहों मेंसे कोई भाँतिका विवाह जिसकाहुआहो तौ उसस्त्रीका धनभर्त्ताके होतेहुयेभी पितृ कुलमें जावै-यहाँपर स्थावर या जंगमका कुछभेद नहींहोगा परइतनाभेद तौभीहै किजोस्त्री नेपतिकुलसे द्रव्यपायाहो सो पितृकुलमें भर्त्ताकेहोते नहींजासक्ता-आठ विवाहों का ब्यौरादेखो अधिकोक्तिमें १५०॥

अधि०-योगीश्वरके इस १५० वाले मूलश्लोकमें सामान्य अर्थलगानेसे प्रत्यक्ष प्रतीत होता है कि भर्त्ता के अधिकार मध्ये उत्तम चारविवाह और पितृकुल के अधिकार में भी शेपअनुत्तम चार विवाह मानेजायँ वल्कि ऐसाही मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर ने स्वीकारकिया और योगीश्वरका यथार्थ आशय यहीथा कि सूधे चारचार मानेजायँ-परञ्च मनुने इसवार्त्ता मध्ये पाँचतीनिकाभेद निर्मितकिया है- तद्यथा-(ब्राह्मदैवार्षगान्धर्वप्राजापत्येषुयद्वसु। अप्रजायामतीतायांभर्तुरेवतदिष्यते॥ यत्त्वस्याःस्याद्धनंदत्तंविवाहेष्वासुरादिषु। अप्रजायामतीतायांमातापित्रोस्तदिष्यते) अर्थात्-ब्राह्म १ दैव २ आर्ष ३ प्राजापत्य ४ गांधर्व ५ इनपाँचों भाँतिके विवाहोंमें जो स्त्रीकाधनहो वह निःसंतानी मरजानेमें भर्त्ताकाहीहो परजोधन जिसको आसुर १ राक्षस २ पैशाच ३ तीन विवाहोंमध्ये दियाहो सो उसस्त्रीके निःसंतानी मरनेमें माता पिताका कहाताहै-वीर मित्रोदयने इसतीन पाँचकेहीभेदको स्वीकारकिया वल्किइसी हेतुसे योगीश्वरके भी वाक्यमें अर्थान्तरसे इसभेदको दृढकिया है कि ब्राह्मनाम १ विवाह जिनकीआदिमें ऐसे चारविवाह जो उस ब्राह्मसहित पाँचहोतेहैं तिनमेंभर्त्ताका अधिकार और इनसे शेष तीन विवाहोंमें पितृकुलका अधिकारहो-इसीप्रकार वांग-देशियोंनेभी पाँच तीनकोही निश्चितमाना-सो यहअर्थभी यथोचितहै क्योंकि पंचम गान्धर्व विवाह इसहेतुसे कुछमध्यमहै कि उसकी सिद्धिमें प्रायः दुराचरणोंका संसर्ग नहींहोताहै-तथापि योगीश्वरने वरकन्याका स्वातंत्र्य शिष्टाचारका विरोधी मानिकर विवक्षा अपनी चारचारपर आरूढ़करी-इत्यादि द्विविधशास्त्रके अनुसार मर्यादापरि-

पाटीने दोनोंका यहविकल्प दर्शितकिया है कि (ब्राह्मआदि चारयद्वापाँच) एवं (शेष चारयद्वा तीन) सो इसविकल्पसे यह प्रयोजनहै कि (अथोविचार्याः कुलकालदेशाः) इत्यादि गूढ़विवेकोंसेभी जैसादेश जैसाकाल या कुलहो तिसके अनुसार दोमेंसे एक भेदकोईसा स्वीकार करनायोग्य है-यद्यपि-शास्त्रका जो नियम है सोतौ उसी प्रकार कहनेमें आता है परन्तु लोकदृष्टिके अनुसार एकझगड़ा अभी विवेचन करनाशेष है कि ऊर्ध्वोक्त मर्यादामध्ये वीर मित्रोदयआदि बिरले ग्रंथोंका यह अनुमत है कि आसुर राक्षस पैशाच विवाहोंद्वारा ब्याहीस्त्रीका सबधन मातापिताको पहुँचै अर्थात् चाहे पिता से या पति से पायाहो या शिल्पादि कर्मों से उपार्जन कियाहो तौ कुछ भेद नहीं है और यही आशय योगीश्वरकेभी १५० वाले मूलश्लोकसे सुनिश्चित होताहै-परञ्च-जीमूतवाहन आदिबहुधा बांगदेशियोंने यहव्यवसाय रक्खाहै किआसुर राक्षस पैशाच विवाहोंमें यौतकमात्र पितृकुलसे जो कुछपायाहो सोई धनपितृकुलमें जावे किंतु सबधननहीं और यहीआशय ऊर्ध्वोक्त मनुके दोवचनोंसेभी समुझाजाता है-तथापि-लोकदृष्टिसे विरोध पायाजाताहै कि यद्यपि एकआसुर विवाह जोधनलेकर कन्यादीजाती है उसमें इतना सम्भवहै कि मातापिता कुछसत्कारकी रीतिसे उसकन्याकोभी देतेहों परयहभाव सिद्धनहींहोताहै कि ऐसेधनपर या इसकेसाथ और सभी धनोंपर उनमातापिताका अधिकार भर्त्ताके होतेहुये किसहेतुसे पहुँचा क्योंकि उन्होंने धनलेकर कन्यावेचीथी-इसके सिवाय यद्यपि राक्षस और पैशाच विवाह में मातापिताने कुछवेचीनहीं क्योंकि राक्षस विवाहयुद्धमें हरणेसे और पैशाच विवाहकन्याको छलिकर लेजानेसे वरहीके घरहोताहै इसलिये इनमें माता पिताका दातृत्वकिसी धनपर कुछ नियमात्मक नहींप्रतीतहोताहै हाँयहबात सम्भवहै कि बिरलेमातापिता ऐसेविवाह के होनेपरभी कन्याके मोहसे यौतक दानादि विधि करतेहैं या कन्याके साथ जो कुछद्रव्य कन्याहरते समय पहुँचाहो इस्से ऐसेधनोंपर उसकन्याके मातापिताका अधिकार पहुँच सक्ताहै परन्तु भर्त्ता अपने जीतेहुये निजइच्छासे क्योंकर ऐसाकरनेपर मनोरथ रखसक्ताहै कि ऐसी निःसन्तानी भार्याका धनवहभी कि जो अपने आप घरसे दियाहो उसके माता पिताको देदे-हाँ-यदि मर्यादा कुछ न्यायात्मक सिद्धहोजाय तौफिर अभियोगोंको गुञ्जायश बहुतहै-इत्यादि सङ्कोचोंके ध्यानमें सर्वथा यहीनिश्चित होताहै कि भर्त्ताके जीतेहुये निःसन्तानी स्त्रीकाधन केवलवही पितृकुलको जासक्ताहै जो पिताके कुलसे आयाहो और वहदान प्रतिग्रहमार्गसे उपरालू आयाहो-जबकोईभाँतिका धन ऊर्ध्वोक्त मर्यादोंके अनुसार पिताके कुलमें पहुँचै तबसबसे पहले मातापावै और माताके अभावमें पिता और पिताके अभावमेंभ्राता पावैं भ्राताओं केभी अभावमें फिरवहीभर्त्ता मालिक होताहै कि जिसके सन्मुखऐसा

धनपितृकुलमेंजानाकहाथा-यथाहकात्यायनः(बन्धुदत्तन्तुबन्धूनामभावेभर्तृगामितत्) अर्थात्-स्त्रीके बन्धुओंकाभी दियाहुआधन बन्धुओंके न होने में भर्त्तापावै-और भर्त्ता केअभावमें उसभर्त्ताकेही प्रत्यासन्न सपिंडभागीहोतेहैं-इसीप्रकार-जोधन पाँचविवाहों की मर्यादा से निजभर्त्ताकेही कुलमें रहना कहाथा उसमेंभी यदिभर्त्ता यद्वाभर्त्ता के आसन्न सपिंडोंका अभावहो तौ पितृकुलका अधिकार खड़ा होताहै परइसमें इतना अन्तरहै कि पहले भ्राता फिर माता फिर पिताका अधिकार होगा-जब-इन कहेहुये अधिकारियों में से कोई निपटनहो तबनिम्नोक्त अधिकारी धनकोपातेहैं-यथाहबृहस्पतिः-(मातृस्वसामातुलानीपितृव्यस्त्रीपितृस्वसा। श्वश्रूःपूर्वजपत्नीचमातृतुल्याःप्रकीर्तिताः॥ यदासामौरसोनस्यात्सुतोदौहित्रएववा। तत्सुतोवाधनन्तासांस्वस्त्रीयाद्याःसमाप्नुयुः)-अर्थात्-मातृस्वसा माउसी १ मातुलानी मामी २ पितृव्यस्त्री चाची ३ पितृस्वसा फूफी ४ श्वश्रू सासू ५ पूर्वजपत्नी जेठीभावज ६ इतनी छःस्त्रियां माताकेतुल्य समुझीजातीहैं-सिद्धान्त इसकायह कि ऊर्ध्वोक्त निःसन्तानी मरीस्त्री जिसकी मौसी या मामी या चाची या फूफी या सासू या जेठीभावज लगतीहो वहीपुरुष धनकोहरै क्योंकि उसकी मातातुल्य ठहरी-सो यहपुरुषभी उसदशामें हरसक्ताहै कि जबइनके औरस पुत्रनहो और (सुत)कहिये सौतेला पुत्र नहो और (तत्सुत) कहिये औरसपुत्र का बेटा पोता और तद्वत् सौतेले पुत्रकाबेटा पोता जबनहो और दौहित्री या दौहित्र भी नहो जैसा सबका ब्यौरा ऊपर वर्णन हुआथा उनसबहीके अभाव में ऐसी स्त्रियों काधन (स्वस्त्रीय) कहिये बहिनौता आदि पुरुषपावैं-परन्तु-बहिनौता आदि पुरुषोंका क्रम जैसा उनकी मौसी आदि मातृतुल्याओं का इसवचन में दर्शायागया तैसानहीं समुझना क्योंकि बृहस्पतिका यहवचन क्रमका सूचक नहीं है अर्थात् केवल अधिकारमात्र सूचनकर्त्ता है (औरजो)पाठके अनुसार क्रम स्वीकार कियाजावे तौफिर सब से पहले बहिनौताका अधिकार और सबसेपीछे देवरका अधिकारआवै सोयह लोकविरोधी क्रम सुव्यक्त अनादि व्यवहारोंका अवरोधक ठहरै-किंतु अभी अनन्तर कई वार सूचित हुआथा कि भर्त्ताके अभाव में उस भर्त्ताकेही प्रत्यासन्न सपिण्डभागी होतेहैं (और) देवर या उसदेवर के बेटेभी आसन्न सपिंडोंमें गिनतीहैं तथैव देवर से पहले स्त्रीके सासू ससुरा पतिके अतिशय प्रत्यासन्न सपिंडहैं तिनके सन्मुख बहिनौता का अधिकार लोकविरोधी होगा-बल्कि शास्त्रमेंभी यहमर्यादा परिनियमितहै कि(पाठ क्रम से अर्थक्रम बलवान्जानो) अर्थात् जहांपाठमें दर्शायेहुये क्रममें कार्यसिद्धनहोताहोतहां प्रयोजन के अनुसार अर्थक्रम स्वीकार करना योग्य है इत्यादि नियमों के आशयसे उसस्त्रीके सासू ससुरा पहलेहरैं-उनदोनोंके नहोनेमें देवर जेठ दोनोंमिलकर भ्रातृपत्नीका धन बांटिलें-क्योंकि जैसे देवरकी वहमातातुल्यठहरी तैसे जेठकी भी पुत्र-

बधू समानहोती है इसलिये जैसे मुख्य ससुरा पहले अधिकारीहुआ तैसे उसके अभाव में अमुख्य ससुरा जेठभी देवरोंके साथ भागीहोगा क्योंकि देवरजेठ परस्पर दोनों सगे भ्राताहैं कुछउनमें भेदनहीं माना जासक्ता-बल्कि धर्मशास्त्रमें देवर शब्दमात्रसेभी देवर जेठ दोनोंकाही बोधहोता और दोनों लियेजातेहैं-जब देवरजेठ दोनोंका अभावहो तौ फिर उन्हीं दोनोंके पुत्र मिलकर समभाग अपनी चाचीकाधन बांटिलें(यह सबअधिकारी पतिकेप्रत्यासन्न सपिंडहैं)इन सबहीके अभावमें उस स्त्रीके बहिनौते अपनी मौसीकाधन बांटिलें इनके भी न होनेमें भर्ताके भागिनेय अपनी मामीकाधन पावें-उनकेभी अभावमें उसस्त्री के भतीजे अपनी फूफीका धनपावें उनके भी न होनेमें जमाई अपनी सासूका धनहरे क्योंकि जामातृ भी निज ससुर सासु दोनोंके पिंडदान का अधिकारी है-यथाहशातातपः(मातुलोभागिनेयस्यस्वस्रीयोमातुलस्यच । श्वशुरस्यगुरोश्चैवसख्युर्मातामहस्यच ॥ एतेषांचैवभार्याभ्यःस्वसुर्मातुःपितुस्तथा। पिंडदानंतुकर्तव्यमितिवेदविदांस्थितिः)अर्थात्-शातातपजी यह कहते हैं कि मामा तौ भानजेको और भानजा मामा को तथैव ससुरको जमाई और मित्रको मित्र और नानाको धेवता पिंड देवै और इन्हीं सबकी भार्य्याओंको भी पिंडदान कर्तव्य है तथैव अपनी बहिनको भाई पिंडदेवै और माता पिता का पिंडदान पुत्रको कर्तव्य यह वेदज्ञोंकी मर्यादाहै समस्त यह व्यवस्था इन्हीं वृहस्पतिके दो वचनोंमें पूर्व मर्यादोंकी रिआयतसे संसिद्धहुईहै-पर इस्से आगे जब जामातृ भी न हो तौ फिर उसी स्त्रीके ससुरा का भाई अर्थात् पतिके काका चाचा धनको पावेंगे किन्तु ये भी उसी भर्ताके सपिंडहैं पर अतिशय प्रत्यासन्न सपिंडोंमें न होनेसे इनका अधिकार इतनी दूर आकर माना गया-इनके भी न होनेमें इनके पुत्रादिक यथाक्रम से रिक्थी होंगे जो जो भर्ताके दूरस्थ सपिंड माने जाते हों-उनके भी न होनेमें समानोदक या सगोत्री आदि जो जो पुरुष धनके अधिकारी निश्चित हुयेथे सब राजा पर्य्यंत स्त्रीधनके मालिक होंगे-परंच जो कोई धनका मालिक बनै उसका ऋण भी देवै-तथाचगौतमः (ऋक्थभाजऋणंप्रतिकुर्य्युः) (अत्रवांगदेशविशेषोविज्ञेयः) जिज्ञासु लोगोंको विज्ञेयहै कि इन्हीं वृहस्पति के दो वचनोंमें बांगदेशीय ग्रन्थकारोंने विपरीत व्यवस्था कल्पितकरी है कि ऊर्ध्वोक्त सर्व मर्यादोंके अनुसार दोनोंकुलमें भ्राता माता पिता भर्तातक न होनेमें सासू ससुरा जेठ इनतीनोंके होते भी सबसे पहले देवर पावै फिर देवर जेठदोनोंके बेटे पावें फिर बहिनौता फिर पतिका भागिनेय फिर स्त्रीका भतीजा फिरजमाई-जब जमाई तक न हो तौ फिर भर्ताके आसन्नसपिंड पावें अर्थात् उसी स्त्री का ससुरा और जेठक्रममें पावें उनके भी अभावमें फिर ससुराका भाई और उसभाईके पुत्रादिक यथाक्रमसे जो जो भर्ताके सपिंडानन्तर समुझेजातेहों धनको पावें-बांगदेशकी इस व्यवस्थामें यही

बड़ा अंतर है कि पतिका एक सपिंड देवर सबसे पहले और ससुरा तथा जेठ सबसे पीछे तिनकेबीचमें बहिनौता आदि अनेकरिक्थी ठहरे और इसजेठके बेटे पहले देवर केही पुत्रोंसाथ-यह अंतर केवल ग्रंथकारोंके विचारके आधीनहै कुछ बचन वोध्य भाव नहीं है-इसकेसिवाय-विरले और स्थलोंपरभी बांगदेशीयोंने स्त्रीधनके अनपेक्षित भेद बढ़ाकर उनके बारबार अधिकार क्रम भी कल्पित किये हैं कि यद्यपि उनमें सर्वत्र वेही अधिकारी दर्शित हुये तो भी किसी भेद के स्थलपर बन्ध्या बिधवा पुत्रियों में यह अन्तर प्रकटकियाहै कि ये दोनोंपुत्री निपट पोता परपोता और दौहित्रों तथा सपत्नी केभी बेटा पोता परपोतातक नहोनेमें धनपावेंगी-और बिरलेधनके स्थलपर इस भाँति न्यायरक्खाहै कि पहले कन्या तिसपीछे वाग्दत्ताकन्या तिसपीछे व्याही दुहिता और सपूती और सम्भावितपुत्रा तीनों एकसाथपावें और इनके निपट न होने में बन्ध्या विधवाभी धनपावें-तिसपीछे फिर पुत्रादिक पुंसन्तानका अधिकारहै-तिसमेंभी यह अन्तर दर्शितकियाहै कि कहीं तो पुत्रोंकेअभावमें दौहित्रोंका अधिकार तिसपीछे पोतेपावें-फिर परपोतेपावें-तिसपीछे फिर सौतेलाबेटा पोता परपोता क्रमसे पावे (और) किसीधनके स्थलपर यह न्याय निश्चितकियाहै कि पुत्र और कुमारी कन्या दोनों एकसाथ अधिकारीहों या इन दोमें किसी एकके अभावसे एकहीधनको हरै पर जब दोनोंका अभावहो तो फिर व्याहीमें से जो सपूती और सम्भावितपुत्राहों दोनों एक साथ मालिक होंगी या इन दो में किसी एक के अभाव से एकही धनको हरे (और सामान्य व्याही दुहिता का अधिकार नहीं) जब इन दोनों का अभावहो तो फिर पोता पावे (पुत्रका अधिकार पहले क्वारी साथ कहाथा) पोताके न होनेमें दौहित्र पावे-फिर दौहित्रके न होनेमें परपोतापावे उसकेभी अभावमें सौतेला बेटा पोता पर-पोता क्रमसे पावे और इनके भी अभावमें फिर वंध्या विधवा बेटीमिलकर एक साथ धनको हरें जो पहले त्यागिदीथीं (पर) सामान्य व्याही दुहिताका अधिकार कहीं अबतक नहीं आया—यद्यपि उनदेशों के ये सब समाचार हैं-तथापि इस व्यवस्था कोही एतद्देशी अस्मदादि अनवस्था कहा करते हैं॥ इति स्त्रीधन विभागः १५०॥

(अथकन्याधनविभागमाह)

दत्त्वाकन्यांहरन्दंड्योव्ययंदद्याच्चसोदयम्। मृतायांदत्तमादद्यात्परिशोध्योभयव्ययम् १५१॥

भ० ०—कन्या देकर हरतेहुये दंड्य है और सोदय व्यय भी देवे-मरी हुई में दोनों का व्यय शोधन करके दिया हुआले लेवे १५१॥

मभि०—यहां पहले कन्या धनकेप्रसंगसे पूर्वार्द्ध मूलश्लोकद्वारा वाग्दत्ताकन्या हर-लेनेकाव्यवहार सूचितकरतेहैं कि-फलदानादि सगाईरूपवचनोंसे कन्यादेना स्वीकार करके जो न देवे सो राजा करके दोषके अनुसार दंडपावे और वरपक्षी लोगों का व्यय

भी व्याजवृद्धि सहितदेवै-यह दण्डकन्याके हर्त्तापर उसदोषके अनुसार होगा जैसी ढेर थोड़ी हानिवरको पहुंचीहो (पर) उसदशामें होसक्ताहै कि जबदेनीकही कन्याके न देनेका कुछ कारणभी नहो-किन्तु जो न देनेवाला कोईकारणवरमें पायाजाय तौ फिर दण्ड न होगा क्योंकि पहले भी आचाराध्यायगत इसबातकी आज्ञाहुई थी कि यदि पूर्वनिश्चित वरमें कोई दूषण जानाजाय और उस वरसे श्रेष्ठवरभी हाथ आवै तौ सप्तम पदसे पहलेपहले औरको देसक्ताहै अर्थात् सप्तपदीके सातोंअंग पूर्णहोजाने पीछेवरमें दोष पायेजानेपर भी कन्याका अपहर्त्ता दण्डभागीहोगा-इस वार्त्ताका यह आशयनहीं है कि केवल वाग्दत्ताकाही अपहर्त्ता दंडपावै बल्कि वाग्दत्ता कहने से यह आशयभी सुव्यक्तहै कि निस्संदेह समूढ़ाकाअपहार करनेवाला अतिशय तीव्र दण्डपावै-और वरपक्षका व्ययदेना उसपर सदाही आरूढ़है कि यद्यपि वरमें दोष होनेके हेतुसे कदाचित् कन्या औरको देसक्ताहो तौभी बरका खर्चा जो वरने निज संबन्धी जनके सत्कारमें या कन्यापक्षी भाट पुरोहित आदि नेगियों के उपचारमें लगायाहो यद्वाकन्याके निमित्तमें कुछ अर्पणकियाहो सो सब देनाहोगा-अब द्वितीय अर्द्ध श्लोकसे यहकहतेहैं कि यदि कन्याका अपहार न होवै किंतु ऐसा व्ययकरचुकने पीछे व्याहसे पहलेही वह वाग्दत्ता कन्यामरजाय तौ यहखर्चा किसको भरनाहोगा ऐसे अवसरका यहन्यायहै कि वरने जो अँगूठीआदि भूषण किसीरीतिके उद्धारकरनेमें उसकन्याको समर्पण कियाहो या कुछ शुल्क मूल्यकीरीतिसेहीदियाहो (या) कुछकन्यादातानेही वरकोदियाहो तौ फलदानादि सगाई रूपरीतें होजानेपीछे वाग्दत्ताके मरजानेमें धनदाता अपना धनफेरिलेवै अर्थात् जो जिसनेदियाहो सो सब निज निज दिया निवर्तनकरै परन्तु दोनोंओरका खर्चा ऐसी रीतिसे परिशोधन पहिले करै कि जिस्से किसीएकहूको कुछ अधिकहानि नहींपहुँचै १५१ ॥

भाषि०-वरके दियेधनमें सदावरकाही अधिकारहै-तथाचपैठीनासिः(स्वंचशुल्कंवरो गृह्णीयात्)अर्थात्-अपना दियाधन और शुल्कभी वर आपलेलेवै-और-पिताके घर विवाहीकन्या मरजानेपरभी वरअपना दियालेसक्ताहै-तथाचनारदः(अथागच्छेत्समूढायांदत्तंपूर्ववरोहरेत्। मृतायांपुनरादद्यात्परिशोध्योभयव्ययम्)अर्थात्-जोपहलेदिया हुआ धनसमूढ़ामें आजाय तौ वरहरै और उसव्याहीके मरजानेमेंभी दोनोंओरका व्ययशोधन करिके दियाहुआ लेलेवै-परइसव्याही के मरजानेमें पूर्वोक्त वह मर्यादै भी अवसर के अनुकूल सब आरूढ़होंगी जिनका व्यौराऊपर स्त्रीधनके प्रसंग में विस्तरित वर्णनहुआथा-ऊर्ध्वोक्त कन्याधनके मध्ये कुछ अपवादरूपसे विशेषता दर्शित करते हैं कि जो कुछ कन्याका रिक्थ स्त्रीधनरूप भूषण आदि पूर्व्वकालसेही चलाआताहो यद्वा नाना मामा आदि ने परिणयनकेही हेतुसे कुछ शीश फूल आदि

भूषण या साधारण भाव कभी समर्पण कियाहो तो इसरिक्थको दाता नहीं लेसक्ता किंतु सहोदरभ्राताका यहभागहै-यथाहबौधायनः (ऋक्थंकन्यायाम्मृतायागृह्णीयुःसोदरास्तदभावेमातुस्तदभावेपितुः-नारदोपि-रिक्थंमृतायाःकन्यायागृह्णीयुः सोदराःस्वयम्। तदभावेभवेन्मातुस्तदभावेभवेत्पितुः)अर्थात्-दोनोंवचनोंका यहभावहै कि मरीहुई कन्याका धन सगेभाईलेवैं भाईके न होनेमें धन माताकाहो माताके न होनेमें धनपिताका होजाय-सो-यहमर्यादा भ्राता माता पिताके अधिकारमध्ये उसीदशामें संसूचित है कि जो उसकन्या के कुमारी बहिनें और न हों १५१॥ अब निचले मूल श्लोक में जीवती और संतानवाली स्त्री के धनपर किंचित् भर्त्ताका अधिकार सूचित होगा॥

(अथजीवत्याः सप्रजाया अपि स्त्रिया धनग्रहणे क्वचिद्भर्तुरधिकारः)

दुर्भिक्षेधर्म्मकार्य्येचव्याधौसंप्रतिरोधके। गृहीतंस्त्रीधनंभर्त्तानस्त्रियैदातुमर्हति १५२॥

अक्ष०-दुर्भिक्षमें, धर्मकार्य्यमें,व्याधिमें, संप्रतिरोधकमें, लियाहुआ स्त्रीधन भर्त्ता स्त्रीको देनेयोग्य नहीं है १५२॥

अभि०-(दुर्भिक्ष)अन्नाकालमें कुटुम्बके पालनअर्थसे लियाहो या (धर्मकार्य)नाम जो अवश्यही करनेयोग्य कामहो जैसे कन्याका विवाहआदि या (व्याधि)नाम रोगादि हेतुसेलियाहो या (संप्रतिरोधकमें)अर्थात् राजदंडआदि कारणोंमें अवरोधहोनेसे यद्वा धनिक उत्तमर्णादि किसी तगादगीरकरके स्नानादि कर्मोंका अवरोधहोनेमें अन्यधनके अभावसे यदि स्त्रीकाही धनखर्च करनापराहो तो पीछे भर्त्ता ऋणकीरीतिसे स्त्रीको उद्धार करनेयोग्यनहींहै-किंतु इनकारणों के सिवाय किसी अन्यप्रकारसे यदि स्त्रीकाधनहराहो तो वह भर्त्ता देनेयोग्यहै १५२॥

अधि०-यह नियम इसहेतुसे दर्शाया है कि ऊपरसाठि ६० संख्याके परिच्छेदमें स्त्रीधनपर स्त्रियोंका स्वातंत्र्यविशेष यहाँतक दर्शायाथा कि पिता,भ्राता,भर्ता,पुत्र इनमें कोईभी स्त्रियोंकाधन लेलेने यद्वा व्यर्थवियोग करदेनेको समर्थनहींहोता और जो कोईऐसाकरे तो वह दंडपानेके सिवाय व्याजवृद्धि सहित ऐसाधन दिलवाने योग्यहै इत्यादि बहुधा और वन्धन वर्णनहुयेथे-तिनमें केवलभर्ताकी अपेक्षा यहां १५२मूल श्लोकद्वारा कुछअपवादभीदर्शायाहै कि यदिभर्ता इन्हींकारणोंमे निजपत्नीकाधनभोगे यद्वा व्ययकरदेवे तो वह ऋणकीरीतिसे उद्धारकराने यद्वा दंडपानेयोग्य नहीं है-हाँयदि भर्ताही समर्थपीछे हो तो निज इच्छापूर्व शिष्टाचार मार्गमें देदेनेयोग्यहै-परंतु-आपत्कालके सिवाय किसी साधारण दशामें यह भर्तासी निज पत्नीकी अनुज्ञा विना ऐसाकरनेको समर्थ नहीहै-तथाचदेवलः (वृत्तिराभरणंशुल्कंलाभश्चस्त्रीधनंविदुः। भोक्तीनत्स्वयंमेवेदंपतिर्नार्हत्यनापदि। वृथामोक्षेच भोगेचस्त्रियैदद्यात्सवृद्धिकम्)अर्थात्-(वृत्ति)कहिये अन्न वस्त्रादिक निर्वाहके निमित्तसे पिता आदि किन्होंने जो दिया यद्वा देना नियत

कियाहो—अथवा ग्रंथांतरमें (वृद्धि) भी इस वचनका प्रारंभ पायाजाताहै और ऐसा व्याख्यान कियागयाहै कि व्याज वृद्धिके निमित्तसे जो पिताआदि किसीने समर्पित किया हो (सो) इस व्याख्यासे भी कोई हानि नहींहै और (आभरण) भूषण आदि प्रसिद्धहै और (शुल्क) जो पतिने अपने पुनर्विवाहके हेतुसे आधिवेदनिक द्रव्यदियाहो जिसका ब्यौरा आगे १५३ मूल श्लोकसे यथार्थ वर्णन होगा यद्वा शुल्क और भाँतिकेभीहोतेहैंसो यथा प्रसंग समुझिलेना और (लाभ) जो कुछपरीगिरी बस्तु या दानादि प्रकारोंसे कुछकहींसेभी मिलाहो यह सबस्त्रीधन धर्मज्ञजानो-सो इसधनको स्त्री आप अपनी इच्छासहित भोगनेवालीहै और आपत्कालसे विहीन भर्त्तालेनेयोग्यनहींहै-इस हेतुसेयदि भर्त्ताऐसेधनको निष्कारण वृथाभोगै या यदि औरकोदेदेवै तौ फिर व्याजवृद्धि सहित पत्नीकोदेवे-सो यहदेनाभी इसवचनके आशयसे दोदशामें संसूचितहै कि यातौ भर्त्ताने ऋणकी रीतिसे ठहराकर लियाहो या पत्नीकी अनुज्ञाविना आपही व्ययकर डालाहो (अन्यथा) जो पत्नीकी अनुज्ञासेही भोगै या व्ययकरै तौ अनापत्काल में भी दोषनहींहै और आपत्कालकी मर्यादा ऊपर योगीश्वर केभी १५२ मूलश्लोक से जो वर्णनहुई सो इसदेवल के वचनानुसार उसकाभी सिद्धान्त यहीहै कि भर्त्ता अपनी पत्नी काधन सूचित आपत्कालोंमें अनुज्ञाविनाभी लेसक्ताहै किंतु अनुज्ञासे अनापत्कालमें भी दोषीनहीं यहकारण इसमें बलवान्है-और-आपत्काल कहनेसे केवल वेहीलक्षण नहीं समुझने जो इस १५२ मूलश्लोक में योगीश्वरने उच्चारणकिये किंतु उनकोएक निदर्शनमात्र जानिकर अन्यत्रभी लक्षणा उसकी सूचित करनी यहसिद्धान्तहै (दृष्टान्त) जैसे पुत्रकी पीड़ा दूरकरनेका हेतु एक आपत्काल है क्योंकि (पुत्ररूपःस्वयम्पिता) द्वितीय (दृष्टान्त) यथा समस्तकुटुम्बव्यापिनी भक्ष्याद्यभावनिमित्तकपीड़ा हरनेका हेतु एक आपत्कालहै क्योंकि स्वाश्रित कुटुम्बका भरनाही कुटुम्बीपर आवश्यकभार है कि जिसके भरनेमें उपेक्षाकरनेसे कुटुंबी पतितहोताहै (एषएवपरोधर्मःकुटुंबपरिपालनम्। तमुपेक्ष्यनरोयातिपातित्यंशीघ्रतस्स्वयम्) (अत्रमहतीशंकाजायते) क्योंजी ये सब शास्त्र यद्यपि ठीक हैं पर स्वामी की अनुज्ञा विना पराये धनका भोग या व्ययकरना क्योंकर योग्य होगा इस्से यही प्रतीत होताहै कि स्वामीकी अनुज्ञासे अनापत्कालमें भी व्ययकरना अविरोधहै और स्वामीकी अनुज्ञा हीन आपत्कालमें भी धर्म विरोधहै क्योंकि स्त्रीधनमें स्त्रियोंके स्वातंत्र्यसेही भर्त्ताका स्वामित्व नहीं होता है-सुनो-भर्त्ताका स्वत्व यद्यपि नहींहै पर तौ भी शास्त्र वचनोंके बलसे केवल संसूचित आपत्कालोंमें स्त्रीके धनपर पतिका स्वत्व पहुँचताहै इसलिये ऐसे अवसरमें कुछपति को दोषनहीं (सो) यह नियम सर्वथा सब सामान्य स्त्रीधनके मध्ये समुझो-इसकेसिवाय-जो धन स्त्रीने घरकी काट कपट द्वारा संचय कियाहो तिसमें स्त्रीधनका लक्षण

भी संसिद्ध नहीं होता—तद्यथाहमनुः(ननिर्हारंस्त्रियःकुर्य्युःकुटुम्बाद्बहुमध्यगात्। स्वकादपिचवित्ताद्धिस्वस्यभर्तुरनाज्ञया) अर्थात्—अनेकोंके मिलेभुले कुटुंबके धनमें से स्त्रियोंको आभूषण आदिबनानेके लालचसे अपहार न करनाचाहिये एवंअपने भर्ता के भी जुदे धनमें से उस भर्ताकी अनुज्ञा विना नहरना चाहिये—आशय इसका यही है कि यद्यपि ऐसे मार्गसे स्त्रियों ने अपहार करके भूषण आदि धनका संचय किया हो तौ भी भर्ता ऐसे धनको सामान्य किसी दशापर लेलेनेसे कुछ दोषी नहींहोता क्योंकि उसमें निपट स्त्रीधनका लक्षण सिद्ध न होने से स्त्रियों का यथार्थ स्वत्वभी असाध्यहै-परन्तु-पतिके सिवाय कोईभ्राता पिता पुत्रादिकमेंसे आपत्कालमेंभी ऐसाकरनेका अधिकारी नहीं (बल्कि) पतिने जोकुछ स्त्रीधनके प्रकार पत्नी कोदेनाकहाहो और दियेविना मरजाय तौ उसपतिके पुत्रादिक उसको ऋणकीभाँति देवें अर्थात् जैसे बापकाऋणदेना उनपरभारहै तथैव इसऋणकोभी उद्धारकरैं तिस पीछे पैतृक धनको बांटिसक्तेहैं-आशय इसकायह कि जो देनेसे उपेक्षाकरैं तौभीराजद्वारसे दिलवायाजाना न्यायात्मकहै-तथाच(भर्त्राप्रतिश्रुतंदेयमृणवत्स्त्रीधनंसुतैः) इस से यहभी ध्वनि उत्पन्न होतीहै कि यद्यपि ४३ संख्यावाले परिच्छेद में दर्शायेहुयेनियमोंसे पितामाता दोनोंके धनमें पुत्रोंका स्वत्व जन्ममात्रसेही खड़ा होताहै तथापि मातृधनका विभाग माताकेजीते नहींहोसक्ताहै-तथाचोक्तं(जीवतीनांतुतासांयेतद्धरेयुः स्वबान्धवाः। ताञ्छिष्याच्चौरदण्डेनधार्मिकःपृथिवीपतिः) अर्थात्—स्त्रियों के जीवते उनका स्त्रीधन जेकोई अपने बान्धवलोगछीनैं तिनको धार्मिक भूपाल चोरोंके तुल्य दण्डदेकर शिक्षाकरै—मनुस्त्वाह (पत्यौजीवतियःस्त्रीभिरलङ्कारोधृतोभवेत्। नतम्भजेरन्दायादाभजमानाःपतन्तिते) अर्थात्—पति के जीते जो स्त्रियों ने कुछ गहना आदि उसके अधिकारसे या अपनेही निज धनसे पहिराहो सो उसपति के मरजाने परभी पुत्रादिक दायाद पैतृक धनके विभाग साथ उसको बाँटे नहीं क्योंकि ऐसे धन का विभाग करनेवाले दायाद पापीहोते हैं १५२॥

(अथाधिवेदनधनमाह)

अधिविन्नस्त्रियैदद्यादाधिवेदनिकंसमम्। नदत्तंस्त्रीधनंयासांदत्तेत्वर्धंप्रकल्पयेत् १५३॥

अक्ष०—अधिविन्नास्त्री को आधिवेदनिक धनके तुल्य देवै जिसको नहीं दिया स्त्री धन-दियेहुये में आधा कहाहै १५३॥

अभि०—जिसस्त्रीके जीतेहुये भर्त्ता अपना द्वितीय व्याहकरै तो वहपहली स्त्री अधिविन्ना कहलाती है तिसको भर्त्ता उसीधनके समतुल्य द्रव्यदेवै जितना द्वितीय भार्या संग्रहकरनेमें व्ययहुआहो तो यह दियाहुआधन(आधिवेदनिक) नाम स्त्रीधन कहलाताहै कि जिसका चर्चा प्रायः स्त्री धनके वर्णन में आचुका है-परंच-समतुल्य

देना उसीस्त्रीके निमित्तमें संसूचितहै कि जिसको कभी पहले उसके ससुरा या भर्त्ता ने कुछ स्त्रीधनसंज्ञक पूँजी नहीं समर्पणकरीहो (किन्तु) जिसको पहले स्त्रीधन कुछ मिलाहो तिसकोआधा देवै-तथापि यहां आधेका यह आशयनहींहै कि आधमआध बराबर भाग समुझाजाय किन्तु यहआशयहै कि जितना उसको पहले मिलाहो तिसमें जितना द्रव्य मिलानेसे वैवाहिक उठे धनके तुल्यहोजावै सोई दियाजाय १५३॥

अधि०-यहाँ अधिविन्नापत्नीको जोकुछ देनाकहागया सो उसदशाका व्यवहारहै कि जब उस पहलीपत्नीकी प्रसन्नतासाथ अनुमतिलेकर द्वितीयभार्या संग्रहकरीजाय तौ यह देना उसके परितोषमें संसूचितहै और इसीसे यह देना स्त्रीधनमें गिनतीहै-अन्यथा-इससे विपरीत जहाँ पहलीपत्नीको अप्रसन्नरक्खाजाकर द्वितीयभार्या संग्रह कियाजाय तहाँ विशेषभावसे आचाराध्यायगत ७६ संख्यावाले मूलश्लोकद्वारा निपटाराहोगा-तद्यथा(आज्ञासंपादिनींदक्षांवीरसूंप्रियवादिनीम्। त्यजन्दाप्यस्तृतीयांशम द्रव्योभरणांस्त्रियाः)अर्थात्-आज्ञासाधनकरनेवालीको और (दक्षा) कहिये अतिचतुरा को और (वीरसू) कहिये पुत्रवतीको और प्रियसंभाषणके अभ्यासवालीको जो कोई पुरुष निष्कारण त्यागै यद्वा अप्रसन्नराखिकर द्वितीयभार्या संग्रहकरै तौ वह अपने धनका तृतीयभाग ऐसी त्यक्ताको दिलवानेयोग्यहै-परञ्च-जिसमें आचाराध्यायके ७३ मूलश्लोकवाले अवगुणहों तिसका केवल पोषणमात्रयोग्यहै और भर्ता उसकी अनुमतिसे विहीनभी द्वितीयभार्या संग्रहकरनेका अधिकारीहै-तद्यथा (सुरापीव्याधिताधूर्तावन्ध्यार्थघ्न्यप्रियंवदा। स्त्रीप्रसूश्चाधिवेत्तव्यापुरुषद्वेषिणीतथा॥ अधिविन्नातुभर्तव्या महदेनोऽन्यथाभवेत्) अर्थात्-मद्यपान करनेवाली-रोगादि व्याधिमती-सदैव छल करनेवाली-निपट बांझ-धन या महत्कार्योंका विनाश करने हारी-शस्त्रसम कटुभाषण करनेहारी-बहुतसी पुत्रियां पैदा करनेहारी-भर्तासे विरोध रखनेवाली-इन सब स्त्रियोंकी अनुमति पाये विनाभी अधिवेदनका अधिकार पतिकोहोताहै परन्तु अधिविन्ना पत्नी स्त्रीभी यथोचित सत्कारोंसे भरणीयहै नभरनेसे महान् पाप होताहै-इसके सिवाय अनन्तरोक्त जिस मर्यादा मध्ये सबधनका तृतीयभाग दिलवाना योग्यठहराया गया सो उस बातको सर्वथाही नियमात्मकनहीं समुझनी किंतु कुल जाति देशके अनुसार व्यवस्था जंगम धनमें कल्पित करनी यह सिद्धांत है (दृष्टांत) जैसे प्रायः राजसंबंधी कुलमें जहां अनेक भार्या संग्रह करनेकी परिपाटी चलीआती हो तहां इस मर्यादाको नियमात्मक समुझिलेना लोक विरोधी होगा किंतु राज्यादिक स्थावर धनका तृतीय भाग ऐसी किस किस अधिविन्नाको दिलवाया जाय जिसका विभागहोना निज पुत्रादिक में भी प्रतिषिद्ध है इत्यादि देश जातिके भी अनुसार ऊहा करनी १५३॥

इतिस्त्रीधनविभागः॥

अथपूर्वोक्तसमस्तदायविभागशेषव्यवहारविवेकोनामद्विषष्टितमःपरिच्छेदः ६२ ॥

इस बासठि संख्याके परिच्छेदमें उन व्यवहारोंकी विशेषता दर्शित होगी
जो प्रायः दायभाग मात्रकेबिरले स्थलपर विवेचन करनेयोग्यहैं ॥

चवालिसके परिच्छेदमें जो पिताकी इच्छासे निज पुत्रोंको विभाग करदेना बर्णन हुआ तिसके मध्ये एक यह व्यवहार विशेषहै कि जो पीछे पिता निर्धन होजाय यद्वा कोई और प्रबलहेतु खड़ा होजाय इसका (दृष्टांत) जैसे धनके भाग होजाने पीछे कोई और बेटा पैदाहोय जिसका अंश कल्पित नहीं है तौ उन पुत्रोंसे निवर्त्तन करलेनेकाभी अधिकारी है-तथाचहारीतः (जीवन्नेववाविभज्यवनमाश्रयेत्वृद्धाश्रमंवागच्छेत् स्वल्पंवासम्बिभज्यभूयिष्ठमादायवसेत् यद्युपदस्येत्पुनस्तेभ्योगृह्णीयात) अर्थात्-पिता अपनी इच्छासे जीवता हुआही पुत्रोंको धन बांटकर बनवासी होजाय किंतु बानप्रस्थ आश्रम लेलेवै यद्वा वृद्धाश्रम कहिये संन्यासाश्रम लेवे अथवा अपनी इच्छाके अनुसार उनको थोड़ाही धन बांटिकर अवशेष ढेर अपने आपलेकर गार्हस्थ्यमेंहीरहै (औरजो) अपने आप थोड़ा धन रखनेके हेतुसे कदाचित् धनसे क्षीण होकर पीड़ित होवै तौ उन पुत्रोंसे फिर भी लेलेवै-अर्थात् यदि बेटे ऐसे अवसरमें प्रसन्नतासे न देवें तौ फिर बाप अपने अधिकार की प्रबलतासे लेसक्ताहै-परंच-इस व्यवहारका यह आशय नहीं है कि बाप उतना सर्वधन परिवर्त्तनकरै जो कुछ पहले उनको दिया हो या उस धनके भोगशेषका परिवर्त्तनकरै किन्तु उतनाही लेसक्ताहै कि जितनेकी जरूरत पाई जाय-बल्कि-ऐसाधन मौजूद न रहने यद्वा निपट न होनेकी दशाओंमें पिता अपने पुत्रोंकी उस कमाईसे भी पासक्ताहै किजो कुछ पुत्रोंने विभक्त होजाने पीछे पैदा कियाहो —तद्यथाहसदाशिवः (पुण्यंवित्तंचविद्याचनाश्रयेदशरीरिणम् । शरीरंतुपितुर्यस्मात्किन्नस्यात्पैतृकंवसु॥पृथगन्नैःपृथग्वित्तैर्मनुजैर्यदुपार्जितम्। सर्वंतत्पितृसंक्रान्तं तदास्वोपार्जितंकुतः ॥ अतोमहेशिस्वायासैर्येनयद्धनमार्जितम् । स्वोपार्जितंतदेवस्यात्सतत्स्वामीनचापरः) अर्थात्-हे महेशि पुण्य धन विद्या ये चीजें विना देहीके आश्रय नहीं होसक्तीं किन्तु शरीरीकोही प्राप्तहोती हैं और शरीर जो है सो पिताकाही दिया होता इस्से उनशरीरोंका कमायाधन क्यों न पैतृकहोवै किन्तु अवश्य पैतृक होताहै क्योंकि (पुत्ररूपःस्वयंपिता) तौ फिर पृथगन्न कहिये जिन पुत्रोंका केवल भोजन मात्र जुदाहोता हो और पृथग्वित्त कहिये जिन पुत्रोंने पितृ पैतामह धनका भाग लेकर जुदी देहली बाँधीहो ऐसे दोनों भाँतिके मनुष्योंने जो कुछ द्रव्यअर्जित कियाहो सो सब पिता करके (संक्रान्त) नाम दबा समुझाजाताहै इसलिये पिता ऐसे धनमेंसे भी पुत्रोंसे जरूरतके अनुमान शिष्टाचार द्वारा पानेयोग्यहै-परंच (तदास्वोपार्जितंकुतः) यहतर्क यदि आरोपित कियाजाय कि जबऐसा धनभी पितासे संक्रांत

समुझागया तौ फिर अपना अर्जित क्योंकर कहलावैगा इसलिये ऐसा दूषणखड़ा होताहै कि पुत्रोंका कमाया धनभी पिताकाही स्वत्व ठहिरा-तहां-ऐसे तर्कपर यह उत्तरहै कि हे महेशि इसी तर्कके हेतुसे यह नियम निर्विकल्प दृढ़तर जानौ कि जिस किसीने जो कुछ द्रव्य अपने आयासों से उत्पन्न करिकै जोड़ाहो सो सब उसीका स्वोपार्जितहै और उसका स्वामी वही कहाता है न कोई और-आशय इसका यह कि यद्यपि न्यायात्मक मर्यादासे पिता ऐसे धनका स्वामी नहीं होसक्ता तौभी शिष्टाचार मार्गसे पिताकी आवश्यकता शान्त करनेका भार पुत्रोंपर आरूढ़है (पर) यह भारभी उसदशामें निर्विलप नियमात्मक सुस्थिरनहींहै कि उन पुत्रोंपर कुछ पिताका अन्याय पूर्वकालिक पायाजाय-याद रखनायोग्यहै-कि ऊर्ध्वोक्त हारीतके वाक्यमें यह विशेषता एक आईथी कि (पिता अपनी इच्छाके अनुसार चाहै थोड़ाही धन पुत्रों को बाँटिकर अब शेषढेर अपने पासरक्खै) सो यह विशेषता केवल बांग देशियोंने निज ग्रन्थोंमें प्रमाणवत् स्वीकार करी इसीहेतुसे उसदेशमें अद्यापि यह परिपाटी चली आतीहै कि पिता अपने स्वोपार्जित धनमें अपनी इच्छा के अनुसार भाग देसक्ताहै-परंच-एतद्देशी ग्रन्थकारोंने इस बातपर महान् आग्रहरूप खण्डनकी व्यवस्था निर्मित करीहै (सो) इस विरोधके स्थलपर इस बातका विवेचन करना योग्य है कि जिस इच्छाका प्रमाण बांग देशियोंने माना तिसका तात्पर्य्य यहहै कि पिता अपनी इच्छाके अनुसार न्यूनाधिक धनभी पुत्रोंको देसक्ताहै और एतद्देशी ग्रन्थकारोंने जो खण्डनकिया सोभी इसी आशयपर आरूढ़है कि पिता अपनी इच्छा के अनुसार निरंकुशहोकर न्यूनाधिकभागदेनेका अधिकारी नहीं-इसीहेतुसे इनदेशों में न्यूनाधिकरूप विषमविभागहोनेकीपरिपाटी नहींप्रवर्त्तितहै-परंच हारीतके उसवाक्य में (स्वल्पंवासंविभज्यभूयिष्ठमादायवसेत्) यह कथन कुछ उसबातसे सम्बन्ध नहीं रखताहै कि पुत्रोंको न्यूनाधिक भागदेवै किन्तु हारीतके इसकथनका आशय केवल इतनाहै कि पिता अपने सबधनमेंसे चाहैतितना आपरखकर शेष जितनाचाहै भिन्न करिकै सभीपुत्रोंको विभागकरिदेवै (सो)यह कथनकुछ अन्यायपर आरूढ़नहीं है इसलिये इसको सभीदेशोंमें अविरोध समुझना क्योंकि (संविभज्य) सम्यक्रीतिसे विभाग करनाकहा है कि जैसी शास्त्रकी मर्यादाहो-और ढेरसारखलेना अपने पास यह इसहेतुसे अन्यायनहीं है कि निज स्वोपार्जित धनको अपनी जीवन अवधितांई निपटनदेनेमेंभी पिताको स्वातंत्र्यहै-कदाचित् इसमें यहशंका कल्पितकरी जावै कि (अनीशः पूर्वजःपित्रोर्भ्रातुर्भागे विभक्तजः)इसवचनके अनुसार कभीविरोध खड़ाहोना संभवहोगा (सो) यहवचन केवल ऐसीदशापर आरूढ़है कि जहाँ पुत्रोंके समान अंशपितानेभी लियाहो-इसकी मर्यादादेखो ९८ केपरिच्छेदमें- किंतु विभागोंकी

ल्पना देशकाल अवसरके अनुकूल होनीयोग्य हुआकरतीहै-इसीलिये हारीतके उस वाक्यमें यहकहाहै कि पिता सम्यक्रीति से विभागकरै अर्थात् यद्यपि थोराही धन बाँटै तौ भी सम्यक्बुद्धि से कुछ नियम उसमें लगारक्खै कि आगेको इस ढेरधनमें ऐसा विभाग होना योग्य होगा॥

(अथचैकमातृक विभिन्न पितृकयोर्विभागविशेषः)

यथाहाविष्णुः(एकामाताद्वयोर्यत्रपितरौद्वौचकुत्रचित्। तयोर्यद्यस्यपित्र्यंस्यात्सतद्गृह्णीतनेतरः) अर्थात्-जहांकहींदोपुत्रोंकी माता एक औरपिता दोनोंकेदोजुदेहों तहां जो धन जिसके पिताका कमायाहो तिसको वही पुत्र लेवै किंतु दूसरा उसमेंसे न पावै पर जिस बापके कई बेटेहों वे सब आपसमें निज बापका धन समअंशोंसे बांटिलें-इसी प्रकार मातृधनका भाग होते समय व्यवस्था सूचित कर्त्तव्यहै कि जिन पुत्रोंके बापने जो धन उनकी माताको दियाहो वेही पुत्र उसको बांटिलें-यथाहमनुः (द्वौतुयौविवदेयातांद्वाभ्यांजातौस्त्रियाधने। तयोर्यद्यस्यपित्र्यंस्यात्सतद्गृह्णीतनेतरः) अर्थात्-जे कोई दोबापेंसे पैदाहुये दो बेटे एकमाताके धनमें झगड़ा करतेहों तिनमें जो धन जिसके पिताका दियाहो उसको वहीपावै और दूसरा नहीं-परन्तु जितनाधन माताने आपही अर्जित कियाहो तिसमें दोनोंका बराबर भागहोगा॥

(अथदेशांतरगतपुनरागतस्यविभागप्राप्तिः)

तत्रबृहस्पतिः(कृतेऽकृतेविभागेवाऋक्थीयत्रप्रवर्त्तते। सामान्यंतुभवेद्यत्तुतत्रभागहरस्तुसः॥ ऋणंलेख्यंगृहंक्षेत्रंयस्यपैतामहंभवेत्। चिरकालप्रोषितोऽपिभागभागागतस्तुसः॥ गोत्रसाधारणंत्यक्त्वायोऽन्यदेशंसमाश्रितः। तद्वंशस्यागतस्यांशःप्रदातव्योनसंशयः॥ तृतीयःपंचमोवापिसप्तमोवापियोभवेत्। जन्मनामपरिज्ञानेलभेत्तांशंक्रमागतम्॥ यंपरंपरयामौलाःसामन्ताःस्वामिनंविदुः। तदन्वयस्यागतस्यदातव्यागोत्रजैर्मही॥ भुक्तिस्त्रैपुरुषीसिध्येदपरेषांनसंशयः। अनिवृत्तेसापिंडत्वेसकुल्यानांनासिद्ध्यति॥ अस्वामिनातुयद्भुक्तंगृहक्षेत्रापणादिकम्। सुहृद्बंधुसकुल्यस्यनतद्भोगेनहीयते॥ विवाह्यश्रोत्रियैर्भुक्तंराज्ञामात्यैस्तथैवच। सुदीर्घेणापिकालेननतेषांसिद्ध्यतितत्तुन) अर्थात्-बृहस्पतिने यह कहाहै कि जब धनका विभाग होजाने यद्वा विना हुयेमेंही कोई रिक्थी अपना भाग बताता हुआ झगड़ा करताहै तब जिस धनमें उसका सामान्य स्वत्व पायाजाय तिसमें अंश हरनेका अधिकारी होताहै (गो) इसबातका प्रमाणभी अग्रोक्त शिवके वाक्यसे संसिद्ध होताहै-यथा- (विभक्तेपिधनेयस्तुस्वीयांशंप्रतिपादयेत्। पुनर्विभज्यतद्द्रव्यमप्राप्तांशायदापयेत्) बृहस्पतिजी दूसरे वाक्यमे फिर कहते हैं कि उस झगडालू भागीको निजभाग पाने मध्ये यहांतक अधिकारहै कि (ऋण)भी जोकुछ उस धनके मध्ये लेनाहो या देनाहो और लेख्यपत्र जोकुछ गज

शासन आदि सनदेंहों और घर और क्षेत्र जोकुछ जिसका पैतामह ठहरै अर्थात् दादाका उपार्जन कियाहो तिसमें भागी चाहै चिरकालतक प्रवासीहोकर आयाहो अपने स्वत्वके समान भागहारीहोगा-केवल वही पुरुष भागपानेका अधिकारी नहीं वलिक सप्तम पुरुष पर्यन्त उसकी संतानैंभी इसभागको पासक्ती हैं सो अगले वचन से कहते हैं कि जो कोई पुरुष अपने गोत्रमें साधारण धनको छोड़कर देशान्तर में जावसाहो तिसके आयेहुये वंशकाभी अंशदेना योग्यहै कुछ संशयखड़ा करनेका अवकाश इसमेंनहीं किन्तु वह आयाहुआ पुरुष चाहै देशत्यागी पुरुषका तीसरा वंशहो या पञ्चमहो या सप्तमहो तौभी उनके जन्म तथा नामोंका परिज्ञान होजाने में क्रमागत धनकाभाग अपनापावै (सो) इसपरिज्ञानका प्रकारभी दर्शाते हैं कि जिसके कुलके नामतथा जन्मोंका सम्वन्ध निरन्तर परम्पराद्वारा जानाहुआ मौल और सामन्त ऐसी दृढ़ता साथ कहतेहों कि निःसन्देह वह इसधनका स्वामीहै तिसके आये हुये वंशको धरित्री गोत्रजलोगोंको दातव्यहै यहां(मौल)अपने बन्धूआदि घरानेके पुरानेपुरुष और (सामन्त) अपने प्रातिवासी परोसी जिनकीसीमा अपनीसीमासेमिलीहो) (धरतीके उपलक्षणसे और भी सामान्यधन समुझने जिनमें उसका अंशहो) अव यहांपर यह शङ्काखड़ी होतीथी कि जबतक छठा सातवां पुरुष ऐसेधनका भाग लेने आवैगा तवतक यहांतीन पीढ़ीकाभोग सिद्ध होजानेसे कब्जा पक्का होजावेगा फिर क्योंकर भाग पासक्ताहै-इस आशंका मध्ये फिरभी कहतेहैं कि त्रैपुरुष भोगनिःसन्देह गैरपुरुषोंकासंसिद्धहोताहै जो अपने गोत्रके न हों परञ्च अपनेही सकुल्योंका भोग सिद्धनहींहोता जवतक सपिंडत्वकी अवधि वनीरहे सो (इसविषयका सपिंडत्व भी सूधेक्रमसे सातपीढ़ीतक समुझना जैसा अभी ऊपर कहाथा कि पाँचवां सातवां पुरुषतक यहभाग पासक्ताहै) अव इसवातका व्यौरा प्रकट करते हैं कि इसधनमें तौ सामान्य वेभी लोग स्वामीहैं कि जिनका क़ब्ज़ा धनपर वर्त्तमानहै वलिक अस्वामी काभी भोग परिग्रह किसी मकान यद्वा खेत या दूकान आदि ऐसेधनपर चला आताहो जो धन उसके मित्रों या वन्धुओं या सकुल्यों का विख्यातहो तौ इसभोगसे भी स्वामीका स्वत्वनहीं मिटसक्ताहै अर्थात् केवल गैरोंकेही भोगसे त्रैपुरुष भोग परिग्रह सिद्धहोताहै-इसके सिवाय जिसधनपर किसी (विवाह्य) नाम जामाताका परिग्रह रहा आयाहो यद्वा राजाका या राजाके अमात्योंका परिग्रह चाहै अतिशय दीर्घ कालसे भी चलाआताहो तौ इसक़ब्ज़ासे इनलोगोंका कुछ भोग परिग्रह सिद्धनहीं होता इससे ऐसी आशंका खड़ीकरनेका कुछ अवसर इसमें नहींहै-यह अत्रोक्त भोग परिग्रहकी विशेषता जो बृहस्पतिजीके वचनोंसे व्यवस्थितहुई तिसको रघुनन्दन भट्टाचार्य ने व्यवहार चिन्तामणिके पतेसे दर्शायाहै-इसव्यवस्था में जो सप्तम पुरु

की अवधितक सामान्य धनका भागदेना निश्चितहुआ तिसको दायक्रम संग्रहनाम ग्रन्थमें श्रीकृष्ण तर्कालङ्कार ने स्थापित किये पीछे अपने किसी पूर्वपक्ष को विरोध आतादेखिकर दोतीनपंक्ती और भी लिखदीहैं-तथाहि(एषाचव्यवस्थाविदेशगतविषयिण्येव-देशस्थविषयेतुधनिनश्चतुर्थपुरुषपर्यंतएवतद्धनभागार्हतापञ्चमादेः पार्वणपिंडदातृत्वाभावेनानुपकारकत्वादितिप्रागेवोक्तं) अर्थात्-श्रीकृष्णजी यहकहतेहैं कि यह व्यवस्था सप्तम पुरुषतक विभाग देनेवाली केवल उन्हीं पुरुषों के निमित्तमें समुझना जो विदेश जाकर बसेहों किन्तु स्वदेशस्थोंकी अपेक्षा में यहनहीं समुझना क्योंकि उनकेलिये पहले नियम कहचुकेहैं कि धनीसे लेकर सिर्फ़ चौथा पुरुषतक साधारण धनका भागपावे फिर उस्सेआगे पञ्चम पुरुषको आदिलेकर कोईपुरुष न पावै क्योंकि उनको पार्वण पिंड दातृत्वका अधिकार नहोनेसे धनीका उपकार उनसे कुछभी नहीं होता-सो- इसबातका यथार्थभेद ५६ का परिच्छेद पढ़नेसे जिज्ञासु लोगोंपर प्रतीत होसक्ताहै-हाँ इसबात में सन्देह नहीं है कि बांगदेश में सरपोता आदि कोई पुरुष निजसरदादा आदि के साधारण धनमेंसे विभाग नहींपाताहै-परन्तु-आश्चर्य केवल इतनी बातपर आरूढ़है कि उन्होंने इतनेबड़े विरोधका कोईहेतु प्रकट न किया और यद्यपि एकइतना हेतु लिखाहै कि पञ्चम आदि पुरुषोंसेकुछधनीका उपकार नहींहोताहै (सो)इसहेतु में यह विवेचन करनायोग्यहै कि यद्यपि पार्वण पिंडदानका अधिकार चाहे हो या नहो कुछ इसबात से प्रयोजन अधिक नहीं है परन्तु समीपस्थ और सहभोज्य होनेके हेतुसे सम्पत्ति और विपात्तिमें भी साथीहोना आदि अनेकधा उपकार जो जो इनसे होनेमें सम्भवहैं तिनमेंसे एकहू उपकार उन दूरस्थ विदेशी वन्धुओं से होना सम्भव नहीं है कि जिनको सातपुरुषोंकी अवधितक विभागदेना सिद्धहुआ और भी उक्त सांसारिक उपकाराभाव के सिवाय वही अवगुण उनमेंभी प्रत्यक्षहै कि पंचम आदि कोईपुरुष पिंडदानका अधिकारी नहीं और न कोई ऐसा वचन पायाजाताहै कि पंचम आदि विदेशवासी पुरुष पिंडदेनेके अधिकारी होजाते हों-परन्तु-अपना भागपानेका अधिकार उनको केवल अपने गोत्रके सापिण्ड्यमात्रसेही वनारहताहै उपकारोंका प्रयोजन अधिकनहीं-तोफिर ऐसा कौनसा वहन्यायहै कि दूरस्थ जिनसे कोईभी उपकारहोना सम्भवनहीं सो तो सप्तम पुरुषतकभी पावैं और सरपोता आदि समीपस्थ सहवासीजो शववाहकर्म करने करनेथकें तिनको अपना भाग न पहुँचे (सोयह) वैपरीत्य केवल वांगदेशी प्राचीन संग्रहकारोंकी आनन्दलहरी काप्रभावहै कि जिस्से आधुनिकों को (वचनात्प्रवृत्तिर्वचनान्निवृत्तिः) यह बहुत बड़ा प्रतिबन्ध है कि जिसमें कोई भांति चंचु प्रवेश होने का अवकाश नहीं मिलता है तथापि उस आनन्दलहरीका अत्युत्तमहेतु गर्भित फलादेश पायाजाताहै कि उक्त-

दुर्भागित्वरूप नियमोंकी प्रेरणा से कोई धनी अपने मोह प्रमाद लक्षणकी भूल से पुत्रादिकवंशको अविभक्त धनके जाल में न रक्खै किन्तु वंशकी बढ़वारी होती देखि कै आपही अपने सन्मुख निज पुत्रादिकवंशको धन बांटिकर उस धनके स्वत्वसे निज हाथ खींचै तौ इस क्रमसे वे सरपोता आदि भी निजभागोंको यथावत् पासक्तेहैं इस भांतिसे वह धनी भी कलंकी नहीं ठहरैगा—यद्वा कोई अपने अविवेकसे इसदशापर भी धनसे स्वत्व न छोड़ै तब गुरु सज्जन पंक्तिके लोग शिक्षा करतेहुये इन्हीं नियमों के अनुसार विरक्ति उसको देवेंगे बल्कि शायद इसीहेतुसे उस देशमें कुछ हरीबुलाने की परिपाटी भी प्रसिद्धहै—यथार्त्थसे अति वृद्धावस्थामें निरर्त्थक धनका मोह छुड़ाने को उस देशमें यह मार्ग कल्पितहुआहै कि सरपोता आदि कोई अपनाभाग न पावै इस्से उन प्राचीनों की आनन्दलहरी व्यर्त्थ नहीं ॥

अथस्वस्वदेशजात्यादिव्यवहृतनियमप्राधान्यम् ॥

कात्यायनः—देशस्यजातेःसंघस्य धर्म्मोग्रामस्ययोभृगुः । उदितःस्यात्सतेनैव दाय भागंप्रकल्पयेत्—अर्त्थात्—भृगुका उद्देश देकर कात्यायन आप कहते हैं कि अपनेर देशका या ग्रामका या जातिका या संघ कहिये समूहका जैसा धर्म्म तत्रत्य ग्रन्थाचार्य्यों ने विनिर्म्मित कियाहो सो वह देश या ग्रामादि उसीधर्म्मके अनुकूल अपना दायविभाग कल्पितकरै—यहां (संघ) नाम समूहसे वह परिकर समुझलेना जिसमें प्रायः जातिका कुछ नियम नहो (दृष्टांत) जैसे गोस्वामी आदि अनेक पन्थवालों के समूह और (ग्राम) यद्यपि छोटापुरवाही विख्यात बल्कि शास्त्रमें भी निर्णीतहै तथापि यहां जन पद अर्त्थात् एक ज़िलेको समुझना क्योंकि प्रत्येक छोटेग्रामोंका दायधर्म्म जुदा नहींहोता और (देश) यद्यपि थोड़ेबहुत दोनोंभांतिके स्थानोंकानामहै तथापि यहां बड़ेबड़ेदेशविभागोंको समुझना—यथा (भूगोलवेत्तृभिःपंचमहाभागाभुवोमताः) अर्त्थात् भूगोलविद्याके वेत्ताओंने जो पांच महाभाग धरतीकेकहे तिनको देश जानो तिनमें प्रचरितग्रन्थों के अनुसार जो जो धर्म्म उनकाहो तिसही को तत्रत्य निवासी वर्त्तैं—फिर इन महादेशों में भी एक एकमें अनेक बड़े देशप्रसिद्धहोतेहैं (दृष्टांत) जैसे एतद्देशी एक महाभागमध्ये वंग कुरु पांचाल आदि बहुधा देश प्रसिद्धहैं तिनमेंभी देशान्तरसम्बन्धी दायमर्य्यादा जैसी पाईजाय सो वर्त्तावेयोग्यहै—देशान्तरलक्षणंतु वृद्धमनुः (वाचोयत्राविभिद्यन्ते गिरिर्व्वाव्यवधायकः । महानद्यन्तरंयच्चतद्देशान्तरमुच्यते ॥ देशनामनदीभेदान्निकटोऽपिभवेद्यदि । तत्तुदेशान्तरंप्रोक्तंस्वयमेवस्वयम्भुवा ॥ दशरात्रेणयावार्त्ता यत्रनश्रूयनेऽथवा—बृहस्पतिस्तु—देशान्तरंवदंत्येके षष्टियोजनमायतम् । चत्वारिंशद्वदंत्येकेत्रिंशदेकेतथैवच) इस वार्त्ताका प्रयोजन केवल इतनाहै कि जिस देशकी मर्यादा जुदी नियतहो तिसमें तैसा वर्त्तावा भी कर्तव्य है या जिसदेश-

की मर्यादा कोई नियतनहो तौवहदेश जिसविख्यात बड़ेदेशके आधीन समुझाजाता हो तिसहीकी मर्यादा उसमेंवर्तीजाय (यद्यदाचरतिश्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः।सयत्प्रमाणं कुरुतेलोकस्तदनुवर्त्तते) इसवार्त्ताका प्रयोजनएक यहभीहै कि जबकोई पुरुष अपना देशत्यागकरिकै और देशान्तरमें वसिजाय जिसकी मर्यादा अपने देशसे विपरीतहो तौ यहपुरुष उस देशान्तरमेंरहते भी निजदेशी दाय ग्रंथोंकी मर्यादासेही दाय पानेका अधिकारी होगा पर उस दशातक कि जबतक अपने देशके आचारोंको न छोड़ाहो (किन्तु) जिसने अपने कुल या देशके आचारोंकी उपेक्षासे उस देशके आचारोंका स्वीकार कियाहो तिसको उस देशान्तरवर्ती दायग्रंथोंकी मर्यादासे रिक्थित्वका अधिकार होगा-यतः (सर्वागमानामाचारःप्रथमंपरिकल्पते। आचारप्रभवोधर्मोधर्मस्य प्रभुरच्युतः) (इतिमहाभारतं) यह व्यवहारप्रायः ऐसे अवसर में उत्पन्न होताहै कि जब कोई धनी निपूता होकर अपने धनको छोड़मरै और उस धनपर कोई दो दायाद झगड़ा करतेहों (दृष्टांत) जैसे कोई एतद्देशी पुरुष जाकर बांगदेश में वसि जाय और पीछे वही निपूता मरै जिसके औरभी संबंधी वहाँरहतेहों तिनमें दोदायाद उसकाधन हरनेमध्ये दावाकरैं और वे ऐसेहों कि एकतौ उसमरेधनीका ममेरा या मौसेरा भाईलगताहो दूसरा उसकेगोत्रमेंसे ऐसाहो कि बापदादा परदादाकी संतान में तौनहीं परइनतीनों उक्तसपिंडोंके उपरांतवाले निचले सरपोताआदि किसीसोदक मेंसेहो या ऊपरले सरदादाआदि किसी सोदककी संतानमेंसेहो जिसको बांगदेशी लोग सकुल्य मानाकरतेहैं-सो इनदो दायादोंके झगड़ामें देशान्तरभेदी मर्यादोंसेयह इतनावड़ा विरोधखड़ा होताहै कि जो इसदेशकी मर्यादासे निपटारा कियाजाय तब तौ सोदकही धनपानेका अधिकारीहै क्योंकि एतद्देशी ग्रंथोंकी मर्यादासे सातपीढ़ीतक सपिंड और चौदह पीढ़ीतक समानोदक रिक्थीहोते हैं तिसपीछे बन्धुलोग जो ममेरे या मौसेरेआदिहों-परन्तु-जो उनलोगोंकी आधुनिक बसायतके यथार्थ हेतुसे उसबांगदेशकी मर्यादासे निपटारा कियाजाय तौ फिरवही ममेरा या मौसेराभाई रिक्थीहोगा और वह सोदकनहींपावैगा-इसलिये ऐसे अवसरमें यहन्याय देखाजाताहै कि जो उनलोगोंने निजदेशी रीतिभाँति नहींछोड़ीहो तौ निजदेशकी मर्यादासे व्यवहार निर्णयहोवे-इत्यादि इस दृष्टांतके अनुसार प्रायः और भी व्यवहार खड़ेहोते हैं (दृष्टांत) जैसे औरस दत्तक दोरिक्थीधनके बाँट मध्ये झगड़ाकरते हों तौ बंगाले की आधुनिक बसायतके अनुसार यद्यपि दत्तक एक तिहाई पानेका अधिकारी होसक्ता था परंतु उनकी एतद्देशी निज प्राचीन बसायतके अनुसार दत्तक चौथा भाग पावैगा इत्यादि बहुधा और भी सर्वत्र विवेचन करना योग्य है-परंतु-जहाँ ऐसा अवसर आनि उपस्थित हो कि धनका मालिक अपने देश या विदेशमें धन छोड़िमरै और

दो ऐसे पुरुष उसके हरने मध्ये झगड़ाकरतेहों कि दोनों भिन्न भिन्न देशान्तरमें निवासी हुयेहों जिनकी दोनोंकी मर्यादें कुछ विपरीतहों तब निज धनी केही देशकी मर्यादों से निपटारा होना योग्यहै ॥

(अथाविभक्तभ्रात्रादिप्रधानकृताधिकभोगनैरपेक्ष्यं)

सर्वत्र दायविभागोंके अवसरमें यह प्रतिषेध विशेषहै कि जब तक दायविभागहोनेसे पहले ज्येष्ठ भ्राता आदि कोई एक दायाद सबके पालन कार्य हेतुसे साधारण धनका प्रधान होकर निज स्वातंत्र्य प्रभावसे विशेष भोगी हुआ हो तौ इस अधिक भोग या व्ययकरने का लेखा नहीं मांगाजाय किन्तु कोई दायाद ऐसा झगड़ा खड़ा करने का अधिकारी नहींहै कि इसने जो कुछ अधिक भोगा या व्यय कियाहो सो भी इसके भागमें से मुजरे हो—तथाचनारदः (बन्धूनामविभक्तानां भोगंनैवप्रदापयेत्। दृश्याद्वातद्विभागःस्यादायव्ययविशोधितात्) अर्थात्-नारद कहते हैं कि अविभक्त दायादोंकाभोग राजानहीं दिलावै किंतु लाभ और व्ययहुयेसे विशोधित मूलधनके दृश्यमात्रका विभागहोवै (अत्रवाशब्द एवार्थेज्ञेयः)आशय इसकायहहै कि साधारण धनके व्यापारमें जो कुछ उसने लाभकिया या निजभोगमें व्ययकिया सो इनदोनों बातके निवृत्तहुये पीछे जो कुछ दृश्यभावमें मौजूदहो उसीका विभागहोना योग्यहै पर जो कुछ किसीने काटिकर छिपायाहो तिसका निस्सन्देह भागहोता है कि जब कदाचित् भेद खुलै ॥

(अथ विभक्तभ्रात्रादिकृत्यस्याधिकारः)

तत्रबृहस्पतिः(एकपाकेनवसतांपितृदेवद्विजार्चनम् । एकंभवेद्विभक्तानांतदेवस्याद्गृहेगृहे)अर्थात्-बृहस्पतिजी यहकहते हैं कि जे कोईभ्राताआदि मिलकर एकरसोईसेवसतेहों तिनसबका पितृकर्म देवकर्म विप्रपूजाआदि एकधर्महोवै परजो वेहीभ्राता बँटिकर जुदेरहतेहों तौ वह उक्तधर्म घरघर जुदाहोवै -नारदस्तु (यद्येकजातावहवः पृथग्धर्माःपृथक्क्रियाः। पृथक्कर्म्मगुणोपेतानचेत्कार्य्येषुसंमताः॥ स्वभागान्यदिदद्युस्तेविक्रीणीयुरथापिवा। कुर्युर्यथेष्टंतत्सर्वमीशास्तेस्वधनस्यहि) अर्थात्-नारदकहते हैं कि एकहीकी संतान होकर अनेक भाई भतीजे जो विभक्त होजाने पीछे जुदे जुदे धर्मोंका वर्त्ताव करतेहों जैसा अभी बृहस्पतिके वचनानुसार दर्शितहुआ था और खेती आदि क्रियायेंभी सब जुदीजुदी करतेहों और जुदेजुदे कर्मोंके गुणोंसेभी युक्त हों अर्थात् झारने कूटने पीसने आदि कर्मोंके गुणकहिये मूसलगाली सिलबट्टा सूप चाकी आदि जुदे रखतेहों और वेही यदि परस्पर किसीएक या सबकेकार्योंमेंसंमति नहीं करतेहों तौभी जे कोई उनमें अपने स्थावर धनके भागोंको दान या विक्रयकरें चहा बन्धक आदि प्रकारोंसे ऋणलेवें या इसभाँतिका कोई और काम करना चाहै

जिसमें वे सब जुदेभ्राता आदि अनुमति नहींदेतेहों तो वे अपनी इच्छाके अनुसार यह सबकरैं क्योंकि वे अपने धनके स्वामीहैं-आशय इसकायहींहै कि जब किसी धन में सबका साधारण स्वत्व मिलाभुलाहो तब तौ निस्संदेह सबकी अनुमति विना कार्यसिद्धि नहींहोती परजब अपना अपना जुदा स्वत्वहो तब उनसबकी अनुमति से उसकार्यमें सुगमता बनीरहती है परन्तु कुछ सबकी अनुमति विना कामकाहोना वन्द नहीं रहसक्ता क्योंकि अपनेअपने धनके सभी जुदे मालिकहैं-और-बृहस्पतिके निम्नोक्त वचनका कुछ आशय और है-तद्यथा (विभक्तावाऽविभक्तावासपिंडाःस्थाव रेसमाः। एकोह्यनीशःसर्वत्रदानाधमनविक्रये) अर्थात्-जुदेहों चाहे मिलेहों स्थावर धनमें सभी सपिंड एक समानहैं इसलिये दान बन्धक विक्रय इनमें सर्वत्र एकला पुरुष मुख्तामिला करनेको समर्थ नहींहै (सो) इसबातका आशय विज्ञानेश्वर आदि अनेकोने यह रक्खाहै कि विभक्त दायादोंकी अनुमतिलेनी केवल ऐसीहै कि जैसे ग्रामपति आदि औरोंकी सामान्य अनुमति लीजातीहै (और) स्मृतिचंद्रिकाकारने यह आशय प्रकटकियाहै कि बृहस्पतिका यह कथन किसी ऐसे अवसरमें समुझना जहां विभक्त दायादोंने स्थावर धनका खण्डात्मक विभाग करना कठिन समुझिकर जंगम धनको बाँटि लियाहो और स्थावरको इस नियमसे साधारण बना रक्खा हो कि इसके उपलाभरूपी फल उत्पन्न होनेके समयपर विभागकरिके भोगा करैंगे (सो) यह आशय यद्यपि ठीक प्रतीतहोताहै पर पण्डित मित्रमिश्रने इस आशयको भी व्यर्थ कल्पना कहकर इसका परिहार दर्शित कियाहै तथापि वह परिहार उत्तमनहीं न इसमें उसका जोड़ तोड़ खाताहै इसलिये व्यर्थ कल्पना कहना योग्यनहीं-इसके सिवाय-एक यह आशयभी बृहस्पति के उस कथनपर आरूढ़है कि जबकोई सपिंड या असपिंड निज दायादोंसे विभक्त होनेपर भी अपने स्थावर धनका विक्रय आदि करनेको समुद्यतहोताहै तब जबतक उसके सहवासी आदि योग्य अधिकारी आप लेवें या ग्रहीताकी योग्यता जानेबूझे विना देनेकी अनुमति नहीं देवें तबतक दाता भी देदेने को अधिकारी नहींहोताहै एवं प्रतिग्रहीता भी-इसहेतुसे सहवासी आदि अवश्य पहले बूझेजाते हैं तिनमें भी सपिंडोंका अधिकार विशेष है क्योंकि पहले वहधन उन्हींका साधारण था (सो) इस न्यायसे भी विज्ञानेश्वर आदि अनेकों का ऊर्ध्वोक्त आशय दृढ़ता पाताहै कि (विभक्त दायादोंकी अनुमति लेनी केवल ऐसीहै कि जैसे ग्रामपति आदि औरोंकी सामान्य अनुमति लीजातीहै) सो इनबातों का यथार्थ ब्योरा निम्नोक्त शिवके वचनों से स्पष्ट विवेचन करते हैं-यथाहसदाशिवः- (स्थावरंधनमन्यस्मै स्थितेसान्निध्यवर्तिनि। योग्येक्रेतरिविक्रेतुं नशक्यःस्थावराधिपः॥ सान्निध्यवर्तिनांज्ञातिः सवर्णोवाविशिष्यते। तयोरभावेसुहृदो विक्रेतृच्छागरी-

यसी ॥ निर्णीतमूल्येप्यन्येन स्थावरस्यक्रयोद्यमे । तन्मूल्यंचेत्समीपस्थो रातिक्रेता नचापरः ॥ मूल्यंदातुमशक्तश्चेत्संमतोविक्रयेपिवा । सन्निधिस्थस्तदान्यस्मै गृहीशक्तोतिविक्रये ॥ क्रीतंचेत्स्थावरंदेवि परोक्षेप्रतिवासिनः । श्रवणादेवतन्मूल्यं दत्त्वासौ प्राप्तुमर्हति ॥ क्रेतातत्रगृहारामान् विनिर्मातिभनक्तिवा । मूल्यंदत्त्वापिनाप्नोति स्थावरंसन्निधिस्थितः) अर्थात्—सदाशिवजी कहते हैं कि सान्निध्यवर्त्ती सहवासी योग्य क्रेताके होतेहुये स्थावर धनका स्वामी अपना स्थावर किसी और के हाथ विक्रयनहीं करसक्ताहै अर्थात् समीपवासी जबतक लेनाकहे तबतक दूरवासी को देसकनेमें अधिकारी नहींहै और इसीसे विशेष उनकी सम्मति लेनेमें ज़रूरतहै (पर)इसबात में प्रतिज्ञा यहप्रत्यक्षहै कि वह प्रतिवासी भी यदियोग्यहो जिसके हाथ विक्रय करनेको सब और प्रतिवासी सम्मति देसक्तेहों-अब उस अवसरकी अपेक्षा में कि जब एक स्थावरको अनेक प्रतिवासी योग्य होकर लेनेवाले उद्यतहोजायँ तब किसकोदेना योग्यहोगा द्वितीय वचनकहतेहैं कि। अनेक प्रतिवासी योग्य लोगोंमें जोकोई विक्रेताकी जातिवालाहो वहीपावै परजब अनेक जातीलोगहों तिनमें पहलेउन्हीं सपिंडों का अधिकार समुझिलेना जो उसधनको बाँटिकर विभक्त पहलेहुयेथे अर्थात् उन आसन्न सपिंडोंके अभावमें सामान्यगोत्री लोग और सामान्यगोत्री लोगोंके अभावमें सामान्य जातीलोग पासक्तेहैं-सामान्य जातीलोगोंके अभावमें सवर्णमात्रभी लेसक्ताहै कदाचित् सवर्णमात्रभी अनेकयोग्य होकर लेनेवाले उद्यतहोजायँ तबउनमें जो विक्रेता का मित्रहो वह पासक्ता है यद्वा किसी ज्ञाति सवर्ण दोनों का अभाव होकर अन्यजाती लोग अनेक प्रतिवासी होने के हेतुसे क्रयकरने पर समुद्यतहोजायँ तौभी जोजो उस विक्रेता के मित्र हों उन्हीं का अधिकार है और मित्रोंकी बहुताइतमें से विक्रेता जिसको चाहे तिसको देसक्ताहै इसलिये ऐसे अवसर में विक्रेता की इच्छाही बलवान् है क्योंकि जिसपर उसकी अधिक मैत्री होगी उसी को वह चाहेगा—कदाचित् ऐसे नियमों को उल्लांघिकर विक्रेता ने दूरस्थको देदेनाचाहाहो तिसके मध्ये तृतीय वचन कहते हैं कि अन्य दूरस्थने स्थावरका क्रयकरनाचाहिकर मूल्यभी ठहरायाहो यह सुनकर जो समीपस्थ प्रतिवासी वही ठहरा मूल्य देदेवे तौभी प्रतिवासी के लेते हुये कोई दूरस्थ क्रेता नहीं होसक्ता। परंतु जो प्रतिवासी मूल्य नहीं देसक्ताहो या देनेकी सामर्थ्यहोतेहुये स्थावर का लेनानहीं चाहकर विक्रय करनेकी अनुमति निज हस्ताक्षर आदि उचित प्रकारों से देदेवे तब दूरस्थ के हाथ विक्रय करदेने में घरका मालिक समर्थ होनाहै यहां घरका मालिक ऐसा कहने में यह भाव दर्शित किया है कि यदि कोई और बेंचे तो वह विक्रय अनुचितठहरकर निवर्तित होगा हे देवि कदाचित् प्रतिवासी के पीछे उसके बूझेबिना स्थावर धनको

दूरस्थने क्रय करके मूल्यदान भी करदिया हो तो भी यह प्रतिवासी नाम पड़ोसी सुनते के साथ उतना मूल्य देकर स्थावर पानेयोग्य है-परंतु ऐसी दशा में सुनिपाने पीछे मूल्य देनेमें विलंब करने का अधिकारी नहीं है तत्काल मूल्य राजद्वार आदि उचित स्थानमें उपस्थित करै तथापि इतने काल में क्रेताने खरीदे हुये स्थावर में मकानयावागीचा आदि विनिर्मित कियाहो यद्वा पहला बना मकान या बागीचा आदि तोड़ फोड़ डालाहो तौ फिर ऐसे स्थावर को प्रतिवासी मूल्यदेकर भी न पावैगा- (इतिसर्वनिर्णयसारनिर्वाणतंत्रोक्तदायभागव्यवस्थितः) इसीआशयसे योगीश्वर याज्ञवल्क्य आगे १८१ मूल श्लोक पूर्वार्द्ध से यह कहेंगे कि स्थावर आदि धनों का प्रतिग्रह सबको कहि सुनिकर प्रत्यक्ष होना योग्यहै कि जिस्से पीछे कोई झगड़ा खड़ा नहो॥

(अथविभक्ताविभक्तसंदेहस्थलानिर्णयकरणम्)

विभागनिह्नवेज्ञातिबन्धुसाक्ष्यभिलेखितैः। विभागभावनाज्ञेयागृहक्षेत्रैश्चयौतकैः १५४॥

भक्ष०—विभाग के निह्नवमें ज्ञाति बंधुसाक्षी अभिलेखितों से विभागकी भावना ज्ञातव्यहै और यौतकी कृत गृहक्षेत्रोंसे भी १५४॥

मभि०—कदाचित् किसी झगड़ालू दायादकरके विभागका निह्नवकहिये अपलाप किन्तु इन्कार खड़ीहोनेमें उस विभागकी (भावना) कहिये ठीकहोजाने या न होनेका निर्णय इन आकारों से कर्तव्य है कि पहले उनके (ज्ञाती) लोग पिता माता भ्राता आदि सपिंड बूझेजायँ और (बन्धु) कहिये मामा आदि संबंधी लोग जो उस विभाग के होतेसमय सहायक हुये हों बूझेजायँ और (साक्षी) नाम गवाह जो बत्तीस संख्यावाले परिच्छेद के अनुसार साक्ष्य लक्षण से संपन्न विभागकाल में प्रमाण कारक हुये हों बूझेजायँ इनके सिवाय और भी सामान्य द्रष्टा लोग जो उस ग्राम के निवासी या प्रतिवासी हों अवसरके अनुकूल बूझेजायँ अथवा (अभिलेखित) कहिये विभाग पत्र जो उसकाल में पैंतीस संख्यावाले परिच्छेद के अनुसार कल्पित हुआ हो देखाजाय अथवा घर और खेत आदि जो यौतकरूप भिन्नभिन्न किये गयेहों देखेजायँ (युधातुर्मिश्रणामिश्रणयोरित्यर्थतः) १५४॥

मधि०—शंखः(गोत्रभागविभागार्थेसंदेहसमुपस्थिते।गोत्रजैश्चापरिज्ञातेकुलंसाक्षित्वमर्हति)अर्थात्-शंखने यह कहा है कि (गोत्र) नाम दायादोंका समूह तिनके भाग विभाग रूपी अर्थ में संदेह खड़ाहोनेपर स्वकीय गोत्रजलोगोंको उसबातका विवेक निपट न होने में कुलका साक्ष्य लेना योग्य है यहां पर कुल शब्द भी उस ग्रामके निवासी मात्रका वाचक है अर्थात् और सब सामान्य द्रष्टामात्रकिर्मी अवसरके अनुकूल बूझेजासक्ते हैं-अत्रबृहस्पति (भ्रातरःसंविभक्तायेस्वरूच्यानुपरस्परम्। विभागपत्रंकुर्वन्तिभागलेख्यंतदुच्यते) अर्थात्-भ्राता जो धनबाँटि जुदे होतेहैं परस्पर

अपनी रुचिके अनुसार कहीं विभाग पत्रभी लिखलेते हैं वह कर्गल भागलेख्यनाम कहा जाताहै—इसमें अपनी रुचिके अनुसार कहीं भाग पत्र लिखाजाना दर्शितहुआ इस्से यह भी निश्चित होताहै कि प्रायः भागलेख्य बिना भी विभागहुआ करताहै· तौ इस बातसे यह आशय प्रकट हुआ कि जहाँ विभाग पत्र या उस भाँतिका कोई और प्रमाण दृढ़होजाता होगा तहाँ उसके संदेहों का निर्णय होना सुगमहै पर जहाँ लेख्य पत्र आदि कोई दृढ़ता नहीं उपस्थितहो तहाँ क्योंकर निर्णय होसक्ताहै—क्यों· कि जो केवल उनके जुदे रहने मात्रसे विभाग होजाना समुझाजाय तौ भी यह दुर्ग· मताहै कि बहुधा जुदे भ्राता भी प्रत्यक्ष मिश्री भूत रहे आतेहैं और धनके व्यवहारों में प्रत्येक जुदा होताहै या विरले स्थल इस्से बिपरीत वे प्रत्यक्ष जुदे रहते हैं तथापि धन सबहीका साधारण चला आताहै—इसलिये ऐसे संदिग्ध स्थलका निर्णय करने मध्ये औरभी आकार दर्शितकरते हैं—यथाहनारदः (विभागधर्मसंदेहेदायादानांवि निर्णयः। ज्ञातिभिर्भागलेख्येनपृथक्कार्यप्रवर्तनात्—भ्रातृणामविभक्तानामेकोधर्मःप्र वर्तते॥ विभागेसतिधर्मोऽपिभवेत्तेषांपृथकपृथक्—दानग्रहणपश्वन्नगृहक्षेत्रपरिग्रहाः। विभक्तानांपृथग्ज्ञेयाः पाकधर्म्मागमव्ययाः-साक्षित्वंप्रातिभाव्यंच दानंग्रहणमेवच। विभक्ताभ्रातरःकुर्य्युर्नाविभक्ताःपरस्परम्॥ येषामेताःक्रियालोकेप्रवर्त्तन्तेस्वऋक्थतः। विभक्तानवगच्छेयुर्लेख्यमप्यन्तरेणतान्) अर्थात्—नारद ने ये विशेष चिह्न दर्शित किये हैं कि दायादों के विभाग धर्म्मका सन्देह पैदा होने में ज्ञातिबन्धु आदि साक्षी· लोगों से और भाग लेख्यनामक पत्र से और जुदे कार्य्यों के वर्त्ताव से भी निर्णय करना योग्यहै कि इनके खेती आदि आजीवनकार्य्य कबसे जुदेहोते हैं तथैव पंचम· हायज्ञादि धर्म्म कार्य्य इनके कबसे जुदेहोतेहैं तथैव लोकाचार बाइने भाजीका व्यव· हार धर्म्म या उत्सव आदि बुलावे का व्यवहारधर्म्म इनका कबसे जुदा होताहै या मिश्रीभूत चलाआताहै-क्योंकि-अविभक्त भ्राताओंका सबएक धर्म्म वर्त्ताजाताहै वि· भागहोजानेपीछे उनकाधर्म्म भी सब जुदा जुदा होजाताहै (दृष्टान्त) जैसे किसी दीनके धर्म्मार्थ उपकारमें अनेकोंको कुछ देनापरै तब अविभक्त भ्राताओंके एकत्रघरसे या साधारण धन में से सब एक दान होताहै और जुदे हुये भ्राताओं के प्रत्येक घरसे या प्रत्येक भिन्न धनमेंसे प्रत्येक दान भिन्न भिन्न होनेलगताहै-इसीप्रकार देना और लेना भी तथैव पशुओं का पालना और अन्नों का संग्रह करना आदि वर्त्ताव और घर खेत आदि स्थानोंके परिग्रह तथा रसोईका पकाना और आगम कहिये धनकी प्राप्ति और व्यय कहिये धनके खर्च यह सब काम विभक्त भ्राताओंके अलग हुआ करतेहैं-इन के सिवाय-परस्परसाक्षित्व गवाहीकादेना और प्रातिभाव्य कहिये जमा· नत करदेना तथा ऋणका लेना देना भी विभक्त भये कियाकरतेहैं अविभक्तोंका पर

धर्म्म नहीं है कि एक दूसरेकी ज़मानतकरै या गवाहीदे या उसको ऋणकी रीति से धनदे अथवा आपले—इसआशयपर योगीश्वरका ५३ वाला मूल श्लोक जो २८ के परिच्छेदमें आचुका सो आरूढ़ है—ऊर्ध्वोक्त आकारों का विवेक नारद कहते हैं कि यद्यपि वे प्रत्यक्षमें मिलरहे समुझेजाते हों तथापि जिन भ्राताओं के ये इतने काम निज निज द्रव्योंसे अलग होतेहों तिनको भाग लेख्य पत्रों के न होनेपर भी राजा-लोग विभक्त समुझैं क्योंकि येही सब तत्त्वार्थ निर्णय करने के अनुमान चिह्न हैं—बृहस्पतिः (साहसंस्थावरंन्यासः प्राग्विभागश्चरिक्थिनाम्। अनुमानेनविज्ञेयं नस्यातांपत्रसाक्षिणौ) अर्थात्—साहसकर्म्मोंका विवाद और स्थावर धनका झगड़ा और न्यास नाम सौंपीहुई धरोहरका झगड़ा और दायादों का संदिग्ध विभाग भी यदि लेख्य पत्र तथा साक्षी निपट न हों तो अनुमानसे निपटानेयोग्यहै-अन्यच्च(पृथगायव्ययधनाःकुसीदञ्चपरस्परम्।वणिक्पथञ्चयेकुर्य्युर्विभक्तास्तेनसंशयः)अर्थात्—और भी बृहस्पतिजी यह कहते हैं कि जिन भाइयोंकेधन और लाभ और खर्च सब के जुदे होते हों और कुसीद कहिये ब्याजबट्टे का व्यवहार परस्पर करतेहों अर्थात् एक भाई ऋणी और एक भाई धनी बनकर ब्याज लेते देतेहों अथवा दोनोंही परस्पर मिलकर लाभहेतुसे इसबातकी दूकानदारी करते हों एवं कोई और भांति का वाणिज्य भी परस्पर दोनों मिलकर करतेहों या इसभांति से कि एक भ्राता बेंचै एक दाम देकर उससे मोललेताहो तो इन भाइयोंको विभक्त समुझो इसमें कुछ सन्देह नहीं-इसके सिवाय और भी अनुमान यथा अवसरके अनुसार विचार करनेयोग्यहैं कि ऐसे सभी भ्राता मिलकर इनव्यवहारों का वर्त्ताव एकसमान रखते हैं या उनमें कोई भिन्न प्रकारसे भी-जब अनुमानसे भी कार्य्य सिद्ध न होताहो तो फिर दिव्यशपथोंद्वारा निर्णय कियाजाय (युक्तिष्वप्यसमर्थासु शपथैरेनमर्दयेत) अर्थात् मानुष प्रमाणों के अभावमें युक्तियां भी जब काम न आतीहों तब उस थोड़े बहुत विषयके अनुसार दिव्यशपथोंकाप्रमाणमांगाजाय-जहां-दिव्यशपथोंसेभी निर्णयदुर्घटहो तहां पुनर्विभागहोनायोग्यहै-यथाहमनुः(विभागेयत्रसंदेहोदायादानांपरस्परम्।पुनर्विभागः कर्त्तव्यःपृथक्स्थानास्थितैरपि)अर्थात्-जहां विभागमेंसन्देहप्रबलहो तहां पुनर्विभाग करना योग्यहै फिर चाहे वे दायाद जुदे स्थानोंमें भी रहतेहों-परंतु जहां पुनर्विभाग करना परे तहां उनके लाभ खर्चोंका भी परिशोधन अच्छीरीतिसे कर्तव्यहै कि जिस से न्याय विरोधी दोष खडा न हो और यह विभाग उस मर्यादामें कर्तव्य है कि जैसी संसृष्टी दायादों की मर्यादा पुनर्विभाग नच्योनियतहो-जोकि एक यह प्रतिषेध उन्हीं मनुने दर्शायाहै कि (सकृदंशोनिपतातिसकृत्कन्याप्रदीयते। सकृदाहददामीतित्रीण्येतानिसकृत्सकृत) सो यह प्रतिषेध केवल ऐसे अवसर पर आरूढ़ है कि जहां हिस्से

यवार करनेका कारण कोई निपट न हो किंतु कारणके उपस्थित होनेमें यह तीनोंकाम फेरकियेजातेहैं तिनमें कन्याका पुनर्दान होना आचाराध्यायमें भी ६५ संख्यामूल श्लोकसे आचुकाहै कि (सकृत्प्रदीयतेकन्याहरस्तांचोरदंडभाक्। दत्तामपिहरेत्पूर्वात् श्रेयांश्चेद्वरआव्रजेत्) एवं व्यवहाराध्यायगत भी ५२ संख्यावाले परिच्छेदमें १३० मूल श्लोककी अधिकोक्तिदेखो-तैसे पुनर्विभाग होना यहां वर्णन हुआ-पुनर्दानका आशय आगे १८०।१८१ मूल श्लोकोंसे संसिद्ध होगा-इसके सिवाय-जो कदाचित् उन दायादोंमें कुछ भोग परिग्रहकी तकरारसे स्थावर धनका झगड़ा हो (दृष्टांत) जैसे एक दायादने स्थावर धनके भागपाने पीछेउनपर भोग परिग्रहका अवकाश नहीं पाया यद्वा थोड़ाभोग होनेका अवकाश पायेपीछे औरोंका परिग्रह चलाआयाहो तहाँ पहले सामान्यभुक्ति प्रकरणकी मर्यादोंसे विवेचन होना योग्यहै और पीछे उसके विशेष नियमोंका वर्तावाभी आवश्यकहै-अत्रबृहस्पतिः (यद्येकशासनेग्रामक्षेत्रारामाश्चलेखिताः।एकदेशोपभोगेपिसर्वेभुक्ताभवन्तिते)अर्थात्-शासन कहिये कोईभाँतिका लेख्यपत्र ऐसे एकशासनमें अनेक स्थावरग्राम क्षेत्रबागआदि जोजो लिखेहों तिनमें कोईएकभी यदि भोगागयाहो अर्थात् थोड़ाभी परिग्रह क़ब्ज़ा उनपर किसीएक जगह हुआहो तौ उनसबका भोगहुआ समुझाजाय-पर जो किंचित्भी उपभोग नहो तौ फिरसबकी हानिहोती है फिर चाहे वहधन द्रव्यसेखरीदाहो या दानादि प्रकारोंसे भी पायाहो-तथाचबृहस्पतिः (संविभागक्रयप्राप्तंपित्र्यंलब्धंचराजतः। स्थावरंसिद्धिमाप्नोतिभुक्त्याहानिमुपेक्षया॥ प्राप्तमात्रंयेनभुक्तंस्वीकृत्यापरिपंथितम्। तस्यतत्सिद्धिमाप्नोतिहानिंचोपेक्षयातथा) अर्थात्-स्थावरचाहे किसी विभागमें से पायाहो या दामदेकर मोललियाहो या पैतृकपायाहो यद्वा राज से दानादि प्रकारों द्वारापायाहो तौ भी उसका प्राप्तहोना भुक्तिसेही सिद्धिको पहुँचता है उपेक्षाकरके हानिको-इस हेतुसे फिरकहतेहैं कि-जिसने उक्तस्थावर धनको मिलतेसार रोकटोक वर्जितक़ब्ज़ा करिके भोगाहो तिसका प्राप्तहोनेका आगम सिद्धहोजाताहै पर जिसने ऐसे भोग परिग्रह में उपेक्षा रक्खीहो तिसके उक्तआगमकी भी हानि होती है-इत्यादि भुक्ति की अवधितक सामान्य मर्यादोंको अपवादों सहित विवेचन करनेपीछे विशेषवचनों का विचार करनायोग्य है-यथा (भुक्तिस्त्रैपुरुषीसिद्ध्येदपरेषांनसंशयः। अनिवृत्तेसपिण्डत्वेसकुल्यानांनसिद्ध्यति॥ अस्वामिनातुयद्भुक्तंगृहक्षेत्रापणादिकम्। सुहृद्बन्धुसकुल्यस्यनतद्भोगेनहीयते॥ विवाह्यश्रोत्रियैर्भुक्तंराज्ञाऽमान्यैस्तथैवच। सुदीर्घेणापिकालेन तेषांसिद्ध्यतितत्तुन) १५४ दायभागका यह प्रकरण पूरे बीस परिच्छेदोंमें पूर्णहुआ किन्तु ४३ से प्रारंभ होकर यहां ६२ तक समाप्तिहुई-अब अगिला प्रकरण सीमाविवादका इस प्रसंगसे प्रारम्भ करते हैं कि दायादोंने कदाचित् पायेहुये स्थावरधन

की सीमापर न्यूनाधिक भावका कुछ झगड़ा कियाहो या सामान्य इतरेतर वासी लोगोंने-तिस झगड़ेका निपटारा भी कर्त्तव्य है १५४ ॥

इति दायविभागप्रकरणम्

अथसीमाविवादनिर्णायक चिह्नप्रदर्शनोनाम त्रिषष्टितमःपरिच्छेदः ६३ ॥

इसतिरेसठि संख्याके परिच्छेदमें उनचिह्नों का विवेक वर्णन होगा जिनसे सीमाका झगड़ा निपटिसक्ताहै ॥

सम्मिनोविवादेक्षेत्रस्यसामंताःस्थविरादयः। गोपाःसीमाकृषाणाश्चसर्वेचवनगोचराः १५५ ॥

नयेयुरेनंसीमानंस्थलांगारतुषद्रुमैः। सेतुवल्मीकनिम्नास्थिचैत्याद्यैरुपलक्षिताम् १५६ ॥

अक्ष०—सहद्वयोः क्षेत्रकीसीमा विवाद में सामंत स्थविर आदि गोपसीमा कृषाण और सभी वनगोचरलोग- १५५ -राजाको सीमापास लेजावें जो स्थल अँगार तुष वृक्षइनसे या सेतु बल्मीक निम्नअस्थि चैत्यादिकोंसे उपलक्षितहो १५६ ॥

अधि०—सीमा सीम सिमाणा लोकमें प्रसिद्धहैं कि दो ग्रामोंकी अवधिका मिलाप सीमा कहलातीहै तथैव एकग्रामके भीतर भी दो खेतोंकी मर्यादाका मिलाप सीमा कहलातीहै एवं दो घरकी संधिभी सीमा समुझीजातीहै और इसीहेतुसे यह सीमा चार भाँतिकी विख्यातहै कि जनपदसीमा १ ग्रामसीमा २ क्षेत्रसीमा ३ गृहसीमा ४ इनमें सबसे पहली जनपदसीमा उसे कहते हैं जो दो राज्योंकी अवधि भिड़ी हो अथवा परिगणासे परिगणा मिलाहो-दूसरी ग्रामसीमा जहां दो ग्रामोंका अंतामिला हो-तीसरी क्षेत्रसीमा जहां दो खेतोंकी मेड़ भिड़ीहो-चौथीगृहसीमा जहांदो स्थानों की भीति आदि-फिर इनचारोंके उपलक्षणमात्रसे अनेक स्थान औरभी संग्रहण कियेजाते हैं इसका (दृष्टांत) जैसे नारदका यह वचनहै कि (सेतुकेदारमर्यादाविकृष्टाकृष्टनिश्चयः। क्षेत्राधिकारोयत्रस्याद्विवादःक्षेत्रजस्तुसः) अर्थात् (सेतु) नाम यद्यपि नदीकेपुलकाहै परन्तु यहांसेतुउसकोभीसमुझना जो खेतोंमें जलपहुंचानेकेनिमित्तसे नाली या थाउले आदि निर्मित कियेजाते हैं और (केदार)नाम क्यारी जो लवणादि उत्पत्तिके हेतुसे विनिर्मित करीजाती हैं तथैव खेतकोभी केदार कहा करते हैं इत्यादि इनकी मर्यादा कहिये अवधिका चिह्न-और (विकृष्ट) कहिये जुताहुआखेत या (अकृष्ट) कहिये विना जुती धरती इनमें किसीका भी निर्णय किसी विवादमें जो करनापरै सो सब क्षेत्रसीमाका विवाद कहाजाताहै क्योंकि क्षेत्रमात्रसेही झगड़ा यह उत्पन्नहुआ इसीप्रकार औरोंमेंभी समुझिलेना-सो-यह धरतीका विवाद प्रायः छःप्रकारसे उत्पन्न होताहै—यथाहकात्यायनः(आधिक्यंन्यूनताचांशेअस्तिनास्तित्वमेवच। अभोगभुक्तिःसीमाचषड्भूवादस्यहेतवः) अर्थात्—आधिक्यविवाद१ न्यूनताविवाद २ अस्तित्व विवाद ३ नास्तित्वविवाद ४ अभोगभुक्तिविवाद ५ सीमाविवाद ६, येही षट्प्रकार

के हेतु एकभूमिके विवादमध्ये होतेहैं—किन्तु—जहांकोई ऐसा कहकर दावापेशकरै कि मेरी यहां पाँच निवर्तनसे कुछ अधिक भूमिहै और प्रत्यर्थी कहे कि अधिक नहीं केवल पाँचहैं तो यह धरतीका आधिक्य विवाद कहाजाताहै (निवर्तन अर्थात् जरीव या बीघा) १ जहाँ कोई ऐसा कहकर दावाकरै कि यहाँ इसकी पाँच बीघा से कुछ न्यून भूमि है और प्रत्यर्थी कहे कि मेरी न्यून नहीं पूरी पाँच है तो यह न्यूनताका विवाद कहाजाताहै २ जहाँकोई ऐसा कहकर अर्थी बनै कि इस धरती में से इतना अंश मेरा है और प्रत्यर्थी कहे कि इसका अंश इसमें नहीं तो यह अस्तित्व का विवाद जानो ३ जहां कोई ऐसा कहकर नालिश करै कि इसका अंश इसमें नहीं है यह वृथाटंटाकरताहै और प्रत्यर्थी अपना अंश बतावै तो यह नास्तित्वका विवाद जानो ४ जहाँकोई अभियोक्ता ऐसा कहकर किसीको अभियुक्त करै कि यह इसधरती को अयोग्य भोगिरहा किन्तु इसका क़ब्ज़ा इसपर झूँठाहै और वह अभियुक्त प्रत्यर्थी ऐसा उत्तर देवै कि यद्यपि संतत निरंतर मेरा भोग परिग्रह इसपर नहींरहा पर चिरंतन मेरा कब्ज़ा इसपर सच्चाहै तो यह अभोगभुक्ति का विवाद जानो ५ जहाँ कोई ऐसा कहकर अर्थी बनै कि मेरी भूमिकी अवधि यहाँतकहै अथवा होनी चाहिये दूसरा कहे कि ऐसा नहीं सिर्फ़ यहाँतक होसक्ती है तो यह ठेठसीमाका विवादजानो६—यद्यपि छःभाँति के भूवादों मध्ये सीमा एक भाँतिका विवाद निश्चित हुआ तो भी सीमाही सर्वत्र एक हेतुहै क्योंकि उन पाँचोंमें भी पहले सीमा देखी जायगी इसलिये सीमा सबसेमुख्यजानो—ऊर्ध्वोक्त चारोंभाँतिकीसीमापर सर्वत्रही निम्नोक्त पाँचप्रकारों में से कोई चिह्नहोते हैं—यथाहनारदः(ध्वजिनीमत्सिनीचैवनैधानीभयवर्जिता। राजशासननीताचसीमापंचविधास्मृता) अर्थात्-जो वृक्षादिक चिह्नोंसे सीमा निर्मितहुई हो तो वह सीमा ध्वजिनी नाम इसहेतुसे कहलातीहै कि वृक्षादिक ऊँचे चिह्नभी ध्वजाके समान देखिपरते हैं १ मत्सिनी उसे कहते हैं जो नदी आदि प्रवाहरूप जलकी सीमा नियतहुईहो क्योंकि जलमें मत्स्य वहुधा होते हैं नैधानी उसे कहते हैं जो धरती खोदिकर कुछ हाड़ कोयला भूसा आदि निधिके तुल्य गाड़ाहो ३ भयवर्जित सीमा उसे कहतेहैं जो अर्थी प्रत्यर्थी दोनों आप सुसम्मति से कुछसीमा चिह्न मानिलें ४ राजशासननीता सीमा वही कहाती जहाँ कोई चिह्न पहलसे नहो और उस देशकाराजा अथवा प्राड्विवाक सीमा नियत करावै (यहाँ यह निश्चित नहीं होता है कि टीकाकारों ने भयवर्जिताका यह अर्थ क्योंकर निश्चित किया कि अर्थीप्रत्यर्थी दोनों की सुसम्मति से जो निर्मित हो—क्योंकि प्रायःसभी सीमा दोनोंकी सु॰ से विनिर्मित होतीहैं इस्से इसको परिभाषा में भी नहीं लेसक्ते और इसभाँतिसे यहभी निश्चित नहीं होसक्ताहै कि नारदने निज वाक्यमें भयवर्जिता किसको

किंतु प्रत्यक्ष यौगिक संज्ञाहै और इसका यही अर्थ होसक्ताहै कि जिससीमा चिह्नके होनेसे कोईसा खटका कभी नहो सो यह ऐसी सीमा वहीहोती है कि जो जिसकिसी ग्रामकी सरहद्दतक सब ओर चौतरफा शहर पनाहके डौलसे अति सघन विस्तृत बाँसी या बबूरआदि खड़ेहों या मट्टीकीरैनी उठीहो इसकेहोनेसे कदाचित् भी कुछभय अर्थात् झगड़ाआदि खटकानहींरहताहै जोऐसा अर्थलगाते तो सन्देहका कुछअवसर सम्भवनहींथा) ध्वजिनी मत्सिनीनैधानी तीनसीमाके रूपव्यासजीनेभी स्पष्टदर्शितकि-येहैं-यथा(ग्रामयोरुभयोः सीम्निवृक्षायत्रसमुन्नताः। समुच्छ्रिताध्वजाकाराध्वजिनीसाप्र कीर्तिता। स्वच्छन्दगाबहुजलाझषकूर्मसमन्विता। नित्यप्रवाहिणीयत्रसीमासामत्सिनी मता॥ तुषांगारकपालैस्तुकुम्भैरायतनैस्तथा। सीमाप्रचिह्निताकार्य्यानैधानीसानिगद्य ते) अर्थात्-जहाँ दोग्रामोंकी सीमा बीच ध्वजाकार बड़े ऊँचे झमड़े वृक्ष लगायेहों वही सीमा ध्वजिनी नाम कहातीहै-जहाँ कहीं दो देशों अथवा ग्रामोंके बीच कोई बहुत जलकी नदी जो स्वच्छंद और हमेशा बहिने वाली जलजीवों से संपन्न सीमारूप मानीगईहो उसीको मत्सिनी सीमाजानो जहाँ कहीं कोद्रव नाजकीभूसी आदि अजर तुष यद्वा अंगार कहिये कोइले लोहकीट आदि यद्वा मनुष्यादि जीवों की खोपड़ी आदि हाड़ अथवा बहुत बड़ेबड़े कुंभनाम मट्टीकेमाट जो ऊर्ध्वोक्त भूसी आदि चीज़ों से भरे यद्वा निम्नोक्त भस्म बाल बालू आदिसे भरेहुये गाड़े जायँ तो इन चिह्नोंको नै-धानीसीमा कहते हैं–इन वचनों में नित्य प्रवाहिणी यह विशेषण जो नदीमें दर्शाया तिसके आशयसे बड़ेबड़े तालाब कूप बावड़ीआदि और भी जलाशय समुझेजाते हैं जो नित्यवहिनेवालेहों तिनको भी बृहस्पतिने स्पष्टकरके कहाहै-यथा(बापीकूपतडागा निचैत्यारामसुरालयाः। स्थलंनिम्नंनदीस्रोतःशरगुल्मनगादयः॥ प्रकाशचिह्नान्येतानि सीमायांकारयेत्सदा। निहितानितथान्यानियानिभूमिर्नभक्षयेत्॥ अश्मनोस्थीनिगोबा-लांस्तुषान्भस्मकपालिकाः। करीषमिष्टकांगारशर्करावालुकास्तथा॥ तानिसंधिषुसीमा याअप्रकाशानिकारयेत्। ततयोगंतुबालानांप्रयत्नेनप्रदर्शयेत्॥ बार्द्धकेचशिशूनांतेद र्शयेयुस्तथैवच। एवंपरंपराज्ञानेसीमाभ्रान्तिर्नजायते) अर्थात्-बावड़ी कूँआ तड़ाग और (चैत्य) नाम ईंट पत्थर आदिसे चिना चबूतरा ढूला आदि कोई चिह्न और बड़े ऊँचे सर्ववृक्षोंकोभी चैत्यनाम कहते हैं (आराम) कोई प्रसिद्धिबाग़ बागीचाआदि और (सुरालय) किसीदेवताका स्थान और (स्थल) कोई ऊँचाखेड़ा आदि और (निम्न)कोई घटिया नाराआदि निचान (नदी) प्रसिद्धहै (स्रोतस्) कोई विख्यात झरनाआदि जो आपही जल निस्सरणहोताहै (शर) शरपता नरसलआदि अनेक प्रसिद्धहैं जो एक समूह बाँधिकर झमड़तेहैं (गुल्म)उसप्रकारके वृक्षोंकानाम है जो सूधे गोलाकार ऊपर कोजायँ जिनमें बहुत शाखानहींफैलैं जैसे सरोआदि और गुल्मनाम उनवृक्षोंकी झा-

ड़ीकाभी होताहै जो अनेक मिलकर एकझाड़ी बाँधिलेतेहैं कँटीलेहोनेके हेतुसे यह भावहै और (नगाः) पर्वताः अर्थात् जहाँकहीं बड़े देशोंकी सीमामध्ये संभवहो तहाँ पहाड़ों कोभी सीमा नियतकरै यद्वा-नगाअश्वत्थादयोवृक्षाश्च-पीपर आदि बड़ेवृक्ष भी समुझने और इसभांतिके अनेकचिह्न और भी जोसम्भवहों समुझने यहसवचिह्न प्रकाश रूप सदा रखावै-इनके सिवाय और भी कुछ गुप्त गड़ाऊ चिह्न रक्खे जिनको धरती नहीं गलासक्ती हो तिनके नाम दर्शित करते हैं कि बड़े बड़े पत्थरों के चिह्न गाड़े या हाड़ों के गऊके बालोंके कोद्रव आदि अन्नोंकी भूसी या पजावेकीराख या खोपड़ी या फूटे मृत्पात्रोंकेठीकरे यद्वा (करीष) कहिये करसी किन्तु गोवरकी सूखीहुई बरसाती मांदि यद्वा (इष्टका) ईंट कोइला यद्वा (शर्करा) नन्हीं कँकरियां या (बालुका) नाम दर्दरारेत और और भी झामाखङ्गर आदि अजरवस्तु समुझिलेनी यहसब चीजें यथासम्भव सीमाकी संधियोंवीच गहिरी गुप्तभावसे गड़वावै—और निजसन्तति के विस्तार योगमें प्रयत्न से पुत्रादि बालक लोगोंको प्रदर्शितकरै किन्तु अच्छी भाँति समुझादेवे और वे बालक अपनी वड़ीअवस्था में निज शिशुओं कोभी उसीप्रकार यत्नसे दिखलावें तो इसभाँति परम्परासेही सीमा ज्ञान चला आनेमें कुछसीमा मध्ये भ्रांतिनहींहोतीहै (यहाँ प्रयत्नसे दिखलावो इससे कहागया कि जो कुछ गुप्त चिह्नहों तिनको वारंवार खोदिकर दिखलानेकी ज़रूरतनहीं किंतु लिखेहुयेपत्रोंद्वारा यद्वा और किसी युक्तिसे उस भूमिका परिमाण आदि समुझाते हुये यह सब ज्ञान उन्हेंकरादेवें कि इतनी गहिरी यहांपर अमुकामुक वस्तुगड़ीहै और जो प्रत्यक्ष चिह्न वृक्षादिकहों तिनको भी समक्षलेजाकर उन्हें दिखावें-यहाँ बालक या शिशु कहनेका यहभाव है कि संप्राप्त व्यवहार कालहोनेसे पहले सीमा दिखलाईजाय क्योंकि यह संसार अनित्य है न जानै सीमा स्वामी अपने आप कवचलिबसें)-इसीप्रकार- मनुने दोभाँतिके सब चिह्न किंतु प्रकाश और प्रच्छन्नरूप कहे हैं-यथा (सीमावृक्षांस्तुकुर्वीतन्यग्रोधाश्वत्थ किंशुकान्। शाल्मलीशालतालांश्चक्षीरिणश्चैवपादपान्॥ गुल्मान्वेणूंश्चविविधानश मीवल्लीस्थलानिच। शरान्कुब्जकगुल्मांश्चतथासीमाननश्यति॥ तडागान्युदपाना निवाप्यःप्रश्रवणानिच। सीमासंधिषुकार्य्याणिदेवतायतनानिच॥ उपच्छन्नानि चान्या निसीमालिंगानिकारयेत्। सीमाज्ञानेनृणांवीक्ष्यनित्यंलोकेविपर्य्ययम्॥ अश्मनोऽस्थी निगोवालांस्तुषान्भस्मकपालिकाः। करीषमिष्टकांगाराञ्छर्करावालुकास्तथा॥ यानि चैवंप्रकाराणिकालाद्भूमिर्नभक्षयेत्। तानिसंधिषुसीमायामप्रकाशानिकारयेत्॥ एतै र्लिंगैर्नयेत्सीमांराजाविवदमानयोः)-अर्थात्- मनुकहते हैं कि सीमापर सर्वत्र सीमावृक्ष लगावै प्रायः (न्यग्रोध) नाम वट यद्वगदाके (अश्वत्थ) कहनेसे पीपर पीलण वृक्ष पाकरि निर्गोणी गंदभांट आदि जो जो नामप्रसिद्धहों सभी समुझने (किंशुक) पलाश

ढाखा (शाल्मली) शिंबुल सेमर (शाल) जो निजनामसे प्रसिद्ध बनमेंहोताहै (ताल)जिसे ताड़वृक्ष कहतेहैं (क्षीरिणः) जोजो दूधवाले वृक्षकोई और होतेहों औरभी इसभांति के अनेक पादप जोजो होतेहों और (गुल्म)गोलाकार ऊँचेवृक्ष और नानाजाति की बांसी और (शमी)छिंउकरि और (वल्ली) नाम लताबेलि अनेकभाँतिकी और (स्थल) ऊँचे कल्पितटीले आदि (शर)नरसल आदि और (कुब्जक) नाम पुष्पजातिके वृक्ष तथा कुब्जक नाम कँटीले वृक्षोंकी सघन गुल्में अर्थात् झाड़ियाँ कल्पितकरे क्योंकि ऐसा करनेसे सीमा नष्टनहीं होसक्ती और भी उपाय इसमें कहतेहैं कि तड़ाग कूप क्षुद्र जलाशय बावड़ी झरने या देवता के स्थल आदि जो कुछ कभी बनावै सो सब सीमा सन्धियों में करवावे (और) योगीश्वर के भी वर्तमान १५६ वाले मूल श्लोकमें दर्शायेहुये (सेतु) नामपुल और बल्मीक सर्पकी वँबई आदि चिह्न समुझने यहां सब चिह्न प्रकाशरूपहोतेहैं—पर इसलोकमें मनुष्योंको सदैवसीमा ज्ञानमध्ये किसीविपर्ययसे भ्रमउत्पन्नहोजाना सोचिकर कुछऔर भी प्रच्छन्नचिह्नराखै किंतु पत्थरोंको या हाड़ोंको गोबालोंको कोद्रवआदिभूसीको राखको ठीकरोंको करसी कंडीको ईंटोंको कोइलोंको कंकरियोंको बालूको इसीप्रकार औरभी जे कोई चीज़ें ऐसीहों जिनको कालव्यतीत होनेसे मट्टीनहींखासक्तीहो जैसे चीनी लोहकीट कालाञ्जन झामा कपासकेबीजआदि बड़ेमटकोंमें भरिभरि सीमा संधियोंपर अतिगहिरी गाड़िदे इतने येदो भांतिके सीमालिंग पहले सामंतादि समूह राजाको दिखलाकर निश्चय करवावें तिनके अनुसार अर्थी प्रत्यर्थी दोनोंकी सीमाको राजानिर्णय करै (अत्रसामंतादिसमूहलक्षणं) सामंत स्थविर आदि और गोपसीमाकृषाण और सभी बनचारी लोग इनका समूह ऊपर अक्षरार्थमें संकेतित हुआथा तिनके पृथक् पृथक् लक्षण यहां समुझौ (सामंताः समंताद्भवाःचतसृषुदिक्ष्वनंतरग्रामादयः तेचप्रातिसीमंव्यवस्थिताः) अर्थात्-समंतात् कहिये सब ओर को ग्राम बसते होते हैं किंतु प्रत्येक सीमासे मिलाहुआ कोई ग्राम होताहै तौ वेही ग्राम उसके सामंत कहेजातेहैं इसीप्रकार खेतके चौतरफ़ाजो खेतहैं सो उसखेतके सामंत हैं इसीप्रकार मकानके मकान भी सामंत हुआकरतेहैं-तथाच कात्यायनः(ग्रामोग्रामस्यसामंतःक्षेत्रंक्षेत्रस्यकीर्तितम्। गृहंगृहस्यनिर्दिष्टंसमंतात्परिरभ्यहि)इनके सिवाय (स्थविर) वृद्धको कहतेहैं पर यहां अवस्थासे कुछ नियम नहीं है-यथाहकात्यायनः(निष्पाद्यमानंयैर्दृष्टंतत्कार्यंतद्गुणान्वितैः।वृद्धावायदिवाऽवृद्धास्तेतुवृद्धाःप्रकीर्तिताः) अर्थात्-जिनलोगोंने वह काम कभी बनातेहुये देखाहो और वे आप भी उस कामके विज्ञाताहों किंतु वे भी किसी स्वकीय सीमाके अधिकारी होने के उस कामको समुझतेहों तौ यह लोग वृद्धकहातेहैं अवस्था चाहे बहुत अथवा थोड़ीहो-इनके सिवाय-स्थविर (आदि) शब्द के आशय से मौल और उद्धृत

यह दोनों भी सामन्तादि समूहमें होने योग्य हैं और इनके लक्षण कात्यायनजी ने कहेहैं—यथा (येतत्रपूर्वंसामन्ताः पश्चाद्देशान्तरंगताः । तन्मूलत्वात्तुतेमौलाऋषिभिःपरिकीर्तिताः । उपश्रवणसंभोगकार्याख्यानोपचिह्निताः । उद्धरन्तिपुनर्यस्मादुद्धृतास्तेततः स्मृताः) अर्थात्-जे कोई कभी पहले उसी सीमा के समीप वासीसामंतकहेजातेथे और वेही पीछे देशान्तरमें रमिगये हों तौ वे लोग उसी स्थलके मूलभूत होनेकेहेतुसे अब (मौल) कहलावेंगे यदि ऐसे अवसरमें मिलसकना उनकासंभव हो यह ऋषियोंने सब कहा और जे कोई लोगऐसेहों कि उस सीमाका वृत्तांत परंपराद्वारा सुनतेचले आये और संभोग नाम क़ब्ज़ा उसपर उनका भी कुछ हो यद्वाजिनका क़ब्ज़ा रहता आयाहो तिनकेकार्योंका आख्यानकाहियेकहावति उन्हें मालूमहो तौऐसे लोग फिरभी नष्ट या संदिग्ध सीमाका उद्धार करसक्ते हैं इसलिये वेही (उद्धृत)कहलाते हैं-यह सबलोग सामन्तादि समूहमें होनेयोग्यहैं-और उनकेसाथ (गोप) भी कि जोजो उसी सीमाके गोचारकहों-और (सीमाकृषाण) जोजो उसीसीमाकेसमीपखेत जोतेहोंसो सबकिसान उसीसमूह साथहोनेयोग्यहैं-और भी (वनचारी) लोग जोजो बनमें व्याध आदि बहुधाजाते आते यद्वा रहतेहों तिनके नामरूप मनुने दर्शाये हैं-यथा-व्याधाञ्छाकुनिकान्गोपान्कैवर्तान्मूलखातकान् । व्यालग्राहानुञ्छवृत्तीनन्यांश्चवनचारिणः) अर्थात्- (व्याध) जोजो बनजीवोंको मारिकर जीवन वृत्ति करतेहों (शाकुनिक) चिड़ीमार (गोप) अहीर आदि (कैवर्त) मत्स्यघाती लोग (मूलखातक) खस आदि मूलखोदनेवाले (व्यालग्राह)सर्प पकड़नेवाले (उञ्छवृत्ती)सिल्लाआदि चुगनेवाले(अन्यांश्च) और भी फलपुष्प ईंधन आदिलाने का व्यवहार करनेवाले बनचारी उसी सामन्तादि समूह साथ होने योग्यहैं क्योंकि यह सब लोग सदा बनकोजाते आते मार्ग में उस ग्रामकी सीमसे भेदूरहा करते हैं-यह समूह सामंतादि अबतक सामान्य भाव से दर्शायागया कि जहांतक मिलसकें इनका होना योग्यहै क्योंकि मिश्रीभूत यही समूह जाकर सीमा चिह्नराजाको दिखलावैगा (सो) यह नियम तबतकहै कि जबतक सीमा चिह्न असंदिग्ध बनेहों अर्थात् जहाँ सीमाचिह्न निपट न हों अथवा कुछ संदिग्धहों तहाँ येही लोग यथा क्रमसे पहले पीछे बूझे जायँगे सो उस क्रमका रूप सीमाके निर्णय सहित निचले परिच्छेदमें निर्णीत होगा और उसदशा में इन सबमें पहले साक्षी लोग ढूँढ़े जायँगे १५५ । १५६ ॥

अथसीमा चिह्नाभावे संदिग्धेवा तन्निर्णयकरणप्रकार विवेको नाम चतुःषष्टितमः परिच्छेदः ६४ ॥

इस चौसठि संख्या के परिच्छेदमें संदिग्ध सीमाके चिह्न निर्णय करने वाला प्रकार जाना जायगा ॥

सामंतावासमग्रामा चत्वारोष्टौदशापिवा। रक्तस्रग्वसनाःसीमांनयेयुः क्षितिधारिणः १५७ ॥

भक्ष०—सामंतही वा समग्रामों के निवासी चारि आठ यद्वा दशहों रक्त पुष्पमाला रक्तवस्त्र धारण किये हुये राजाको निश्चय करवावें १५७ ॥

अभि०—सामंतही वा ऐसा कहने का यह अभिप्राय है कि जब सीमाके चिह्न कोई न हों अथवा संदिग्ध हों तौ फिर पहले साक्षियों द्वारा निर्णय करना चाहिये जब कि साक्षी भी न हों तौ फिर सामन्तही लालमाला लालवस्त्र धारण करिकै निश्चयकरवावैं तिनकी संख्याका यहनियमहै या तौ बहुतअच्छे चारिहों यद्वा आठहों या दश हों-सामंतोंकेलक्षण पहले कहचुकेहैं परन्तुयहां समग्रामा यह विशेषण जो सामंतोंमें लगायागया तिसका यह अभिप्राय है कि सम कहते हैं तुल्यको और अच्छेको भी अर्थात् अर्थी प्रत्यर्थीके समतुल्य ग्रामोंके निवासी हों यद्वा बहुतअच्छे ग्रामों के हों किन्तु तुच्छग्रामों के न हों १५७ ॥

अधि०—इस १५७ वाले मूलश्लोक में दर्शायेहुये सामंतोंका कर्त्तव्य भी उसदशा में प्रारंभ होनेयोग्य है कि जब साक्षीलोग न हों यह आशय ऊपर अभिप्रायार्थ से प्रदर्शित हुआ तौफिर उनसे पहले साक्षीलोगों से अपेक्षाठहरी यहीआशय मनुने स्पष्ट करिकै कहाहै-यथा (यदिसंशयएवस्याल्लिंगानामपिदर्शने। साक्षिप्रत्ययएवस्यात्सीमावादविनिर्णयः) अर्थात्-पूर्वोक्तसामंतादि समूहकरके सीमालिंगों के दिखलाते हुये भी यदि संशय खड़ाहोवै किन्तु या तौ सीमालिंग न हों या संदिग्धहों तौ फिर साक्षीलोगों के प्रमाण द्वारा सीमावाद निर्णय कियाजावै-इन साक्षियों के लक्षण भी बृहस्पतिने दर्शाये हैं-यथा (आगमंचप्रमाणंचभोगकालंचनामच। भूभागलक्षणंचैव येविदुस्तेऽत्रसाक्षिणः) अर्थात्-सीमावाद के निर्णय मध्ये साक्षीलोग ऐसे होने चाहिये जो उसग्राम भूमि के आगमको इसभांति जानते हों कि अमुकामुक प्रकार से यह भूमि अमुक पुरुषों को संप्राप्त हुईथी तथैव उसका प्रमाण भी कि इतनी भूमि मिलीथी और इसभांति भोगकालको कि अमुकामुक समयसे क़ब्ज़ा उनको मिलाथा और उस दाता तथा ग्रहीताका नाम भी सब साक्षीलोग जानतेहों (तात्पर्य्य इसका यह कि चाहै उन्हीं सामंतादि समूहों में से जे कोई पुरुष इतना भेद जानतेहों वेही साक्षी कियेजायँ) साक्षीलोग यद्वा सामंतादि जे कोई पुरुष निर्णय करनेपर समुद्यतहों और कदाचित् सीमा चिह्नोंका अभावहो या संदिग्ध चिह्नहों तौ निर्णेतृ लोगोंको अग्रोक्त नारदके वचनानुसार निर्णयकरना चाहिये-यथा (निम्नगापहृतोत्सृष्टनष्टचिह्नासुभूमिषु। तत्प्रदेशानुमानैश्चप्रमाणैर्भोगदर्शनैः) अर्थात्-जो नदी के प्रवाहसे कुछ चिह्न चल विचल होगये अथवा निपट नष्ट होगयेहों ऐसी संशयकी

पृथ्वीओंपर उस प्रदेशमात्रके अनुमानोंसे अथवा नियतप्रमाणोंसे कि इसग्रामकीभूमि ठेठ ग्रामसे प्रारंभ लेकर एकसहस्र दंडकी माप दक्षिण सीमातक प्रसिद्धहै इसीप्रकार पश्चिम आदि चारों दिशाके प्रमाणों से तथैव उसके भोगोंसे कि अमुकामुक टीलेतक या कूप बावड़ी तक सामन्त ग्रामका परिग्रह सबको विदित है तो इस ग्रामका अमुकामुक ध्रुवातक होसक्ता है अथवा भोगदर्शन कहने से उसग्रामकी समस्त धरती का रक़बा १२८८ बीघेप्रसिद्ध है और उसकेसमीपवर्त्ती सामंतग्रामका इतनारक़बा प्रसिद्धहै कि जिसके सीमा चिह्नभी उपस्थितहों या न हों तो उनग्रामों के रक़बे माप तौल कियेजायँ इस्सेसीमा निश्चितहोजायगी अथवा स्मार्त्तकालकी अवधि भीतरके प्राचीनभोग चिह्नों को यादिकरके प्रमाण करना तो भी कार्यसिद्ध होसक्ताहै-साक्षी अथवा सामंतादि जे कोई बूझेजायँ तिसकीयह अग्रोक्तरीतिहै-यथाहमनुः (ग्रामेयककुलानांतुसमक्षंसीम्निसाक्षिणः। पृष्टव्याःसीमलिंगानितयोश्चैवचवादिनोः॥तेपृष्टातु यथाब्रूयुःसमस्ताःसीम्निनिर्णयम्) अर्थात्-सीमाकेपासजाकर दोनोंग्रामोंके सामंतादि समूह और वादी प्रतिवादी दोनों के सन्मुख साक्षी लोग सीमा चिह्न बूझने योग्य हैं-और वे बूझेहुये समस्त साक्षी मिलकर जैसा निश्चय बर्णन करें सो सब उनके वचनानुसार कर्गलपत्र पर उस सीमा का नक्शा डौल खींचकर लिख लेना योग्यहै कि जिस्सेभूलैनहीं और उनवक्ता साक्षीलोगोंकेनामभी-कदाचित् सीमाचिह्न कुछ संदिग्ध होने के हेतुसे साक्षियोंकेही वचनों पर बिश्वास रखनाहो तब साक्षी लोगों से बूझते हुये पहले शपथें देनी योग्यहैं-यथाहबृहस्पतिः(शपथैःशापिताःस्वैःस्वैर्ब्रूयुःसीमाविनिर्णयम्। दर्शयेयुश्चलिंगानितत्प्रमाणमितिस्थितिः) अर्थात्-निज निज शपथोंसे शापित किये साक्षी सीमाका निर्णय कहैं और निज कहनेके अनुसार सीमा लिंगभी दिखलावें यद्वा सीमा लिंगोंके अभावमें निज कथनकाही प्रमाण कुछ पहुँचावें जिस्से दृढ़ता पाईजाय यह मर्यादाहै (निज निज शपथोंसे इस कथनका सिद्धांत यहहै कि अपनी अपनी जातिके अनुकूल जो जो शपथ उनके योग्यहो वहीदी जावे) यथा (सत्येनशापयेद्विप्रंक्षत्रियंवाहनायुधैः। गोवीजकांचनैर्वैश्यंशूद्रंसर्वैस्तुपातकैः) औरभी संदिग्ध चिह्नोंके वक्ता साक्षीलोग इसअग्रोक्त रीतिसे बूझेजाने योग्यहैं-यथाहमनुः (शिरोभिस्तेगृहीत्वोर्वींस्रग्विणोरक्तवाससः। सुकृतैःशापिताःस्वैःस्वैर्नयेयुस्तेसमञ्जसम्) अर्थात्-लाल पुष्पोंकी माला रक्तवस्त्र पहिरे ओढ़हुये मट्टीके ढेले अपने शिरपर धरिके निज निज मुखसे अपने सुकृतों करके शापितहुये ठीक ठीक निश्चय करावैं किंतु पक्षपातमें असत्य नहीं बोलें-निज सुकृतोंसे शापित होना इस रीतिसे कि यह धरित्री रूप मट्टी शिरपर धरी है जो कुछ जानि बूझिकर असत्य बोलैं तो सब सुकृत मट्टी हो जायँ यहां मूलवाक्यमें (नयेयुः) अर्थात् निश्चय करावैं

यह साक्षियोंका बहु वचन केवल दो साक्षीका प्रतिषेधकहै कि सिर्फ दोही साक्षी नियत न करने चाहिये परन्तु एकका प्रतिषेधक नहीं समझना क्योंकि नारदने एकहूपर विशेषता दर्शितकरी है-यथा (एकश्चेदुन्नयेत्सीमांसोपवासःसमुन्नयेत् । रक्तमाल्यांवरधरोभूमिमादायमूर्द्धनि) अर्थात्-जहांएकही साक्षी नियतहोकर सीमाको निर्णयकरना चाहै तो वह एकसाक्षी एकदिन मात्रकाउपवास नाम निराहारव्रत लेकर सीमा निश्चयकरै परलाल पुष्पोंकी मालारक्तवस्त्र धारणाकिये धरित्रीको शिर पर धरिकै सीमा पासजावै-इसमें एक संशयखड़ाहोता है कि इसअग्रोक्त वाक्यमेंएक साक्षीका प्रतिषेधहै-तद्यथा(नैकःसमुन्नयेत्सीमांनरःप्रत्ययवानपि । गुरुत्वादस्यकार्यस्यक्रियैषावहुषुस्थिता)अर्थात्-एकला एक पुरुषचाहै वह प्रामाणिकभी प्रसिद्धहोतो भी सीमाका निर्णयनहीं करै क्योंकि यहकार्य वहुतबड़ाहै इसहेतुसे यहसीमा निर्णय करनेवाली क्रियाबहुल पुरुषोंपर आरूढ़ करीगई तौफिर क्योंकरएकपुरुष व्रतलेकर सीमानिर्णय करसक्ता होगा-इसमेंयह परितोषहै किजहां अर्थी प्रत्यर्थीमेंसे कोईएक पक्षी उसकोमानै और एकनहीं मानै तहांएकले साक्षीका प्रतिषेधहै परजब दोनोंमिलकर किसी एकपर प्रधानता रक्खैं और वहसाक्षीभी धर्मज्ञ हो तो प्रतिषेध नहीं-प्रयोजन इसका देखो परिच्छेद बत्तीस में ७४ मूलश्लोकसे कि (उभयानुमतःसाक्षी भवत्येकोपिधर्मवित्) जहां साक्षीलोग निपट नहीं तहां राजासामंतों द्वारा निर्णयकरै-यथाहमनुः(साक्ष्यभावेतुचत्वारोग्रामःसामन्तवासिनः । सीमाविनिर्णयंकुर्य्युःप्रयताराजसन्निधौ) अर्थात्-साक्षियोंके अभावमें सामंत वासी किंतु चारों सीमाके निकट निवासी चारोंग्राम अर्थात् उनग्रामों के प्रधान पुरुष मिलकर साक्ष्य धर्मसेही राजाके सन्मुख सीमानिर्णय करैं-(साक्ष्यधर्म) सेही करनेका यह भावहै रक्तपुष्प वस्त्रादिक जो जो विधि उनमें कहीगई सो सव १५७वाले योगीश्वरके बचनानुसार इनमेंभी समुझनी-जब इनचारों सीमाके सामंत ऐसे नहों जिनके द्वारा निर्णय होसक्ता तबसामंतोंके संसक्त ग्रामवासी जो उनसे भिड़ेवसते हों अर्थात् सामंतोंके सामंत चारौग्राम तिनके वासी प्रधान पुरुष लेकर निर्णय कर्त्तव्यहै-इसीप्रकार उनकेभी अभावमें या दूषितहो जानेमें फिर उनके सामंत लेकर निर्णय करै-तथाचकात्यायनः (स्वार्थसिद्धौप्रदुष्टेषु सामन्तेष्वर्थगौरवात् । तत्संसक्तैस्तुकर्त्तव्यउद्धारोनात्रसंशयः ॥ संसक्तसक्तदोषेतुतत्संसक्ताःप्रकीर्त्तिताः। कर्त्तव्यानप्रदुष्टास्तुराज्ञाधर्मंविजानता॥त्यक्त्वादुष्टांस्तुसामंतानन्यान्मौलादिभिःसह । संमिश्रत्र्यकारयेत्सीमामेवंधर्मविदोविदुः)अर्थात्-अपने कार्य की सिद्धिमध्ये सामंतोंके दूषित होजानेमें उस कार्यकी गौरवतासे उन सामंतोंके सामंतों द्वारा सीमाका उद्धार करना योग्यहै कुछ चिंता इसमें नहीं इसीप्रकार उनके दूषितहो जानेमें उनके सामन्त लेनेकहे हैं अर्थात् मुख्य झगड़ालू सीमाके ग्रामसे

परली ओरवाले यथाक्रमसे तीनग्रामतक चौतरफा लेनेयोग्य ठहरे इस्से धर्मज्ञ राजा कभी दूषित निर्णेता नियत न करै किंतु दूषितहुये सामंतोंको तथैव उनकेभी सामंतों को इत्यादि सबको छोड़ि छोड़िकर अन्य जे कोई सीमा लिंगोंके विज्ञाताहों तिनको मौलादिकोंमें मिलाकर सीमा निर्णय करवावैं यह सब नियम धर्मज्ञोंने कहा-इनका क्रम कात्यायननेभी कहाहै-यथा (तेषानभावेसामंतमौलवृद्धोद्धृतादयः। स्थावरेषट्प्रकारेपिकार्यानात्रविचारणा) अर्थात्-उन पूर्वोक्त साक्षियोंके अभावमें यथोक्त क्रमसे तीनोंभांतिके सामंत और तीनों सामंतोंके अभावमें मौल और मौलों के अभावमें वृद्ध और वृद्धोंके अभावमें उद्धृत आदि निर्णेता किये जासक्ते हैं यह नियम स्थावरके छे भांति विवाद जो ऊपरले परिच्छेदमें कहचुके तिनमें सभीमें समुझना- मौल वृद्ध उद्धृत आदि इनके लक्षण ऊपर६३के परिच्छेदमें आचुके हैं-जब अर्थी या प्रत्यर्थी कोई सामंतोंमें कुछ गूढ़ दोष कल्पित करै और वह दोष कुछ प्रत्यक्ष न पायाजाय और इसी हेतुसे ऊर्ध्वोक्त रीति अनुसार सामंतोंका अतिक्रम किया जाय तौ फिर उनमें संख्या गुणभी करने योग्यहैं-यथाहवृद्धमनुः(सामन्ताःसाधनंपूर्वंनिर्दोषाःस्युर्गुणान्विताः। द्विगुणास्तूत्तराज्ञेयास्ततोऽन्येत्रिगुणामताः) अर्थात्-प्रथम जो सामंत नियत किये जायँ वे सर्वथा निर्दोष और साक्षियों वाले गुणोंसे संयुक्त होने चाहिये पर जब किसी हेतुसे उन्हें छोड़ि उनके प्रति सामंत लिये जायँ तब उन पहिलोंकी अपेक्षा पिछले दूनेलिये जाने चाहिये एवं उन्हैं छोड़ि उनके प्रतिसामंत उनसे तिगुनी संख्या होने चाहिये इसी आशयसे योगीश्वरकेभी मूलवाक्यमें चार आठ दशतक संख्या गुण दर्शायेगये इनकी शपथोंका प्रकार जैसा ऊपरवर्णन हुआ सो सर्वत्र समझना- जहां कहीं मौलतकभी कोई निर्णेता न मिलसकै तहां वनचारी लोगभी बूझे जासक्ते हैं-यथाहमनुः -(सामन्तानामभावेतुमौलानांसीम्निसाक्षिणाम्। इमानप्यनुयुंजीतपुरुषान्वनगोचरान् ॥ व्याधान्शाकुनिकान्गोपान्कैवर्त्तान्मूलखानकान्। व्यालग्राहानुञ्छवृत्तीनन्यांश्चवनगोचरान्) अर्थात्-जहां सीमाके आरंभकालिक साक्षी और सामंत और मौलोंका भी अभावहो तद्वत् ऊपर कात्यायनके दर्शाये हुये क्रम में मौलों के पश्चात् वृद्ध उद्धृतभी नहों और इनके पीछे निम्नोक्त नारदके वचनानुसार सीमा कृषाण भी जब न हों तौ अग्रोक्त इन वनचारी लोगों को भी युक्त करि बूझै किंतु व्याध चिड़ीमार गोप कैवर्त्त मूलखनक सर्पग्राही उञ्छवृत्ती और और भी यह सबसे पीछे बूझेजायँ-क्योंकि इनसे पहले किसान लोगोंका अ... नारदने कहाहै-यथा-(सीमामुचवहिर्येस्युर्येचतत्कृपिजीविनः। गोपाः... ...धायेचान्येवनगोचराः) अर्थात्-ठेठ सीमाओंपर या बाहर उनके जे कोईहों पर... स्थलके कृषिजीवी नाम किसानहों तौ यह भेद उनसे बूझाजाय यद्वा गोप चिड़...

व्याध आदि और कोई वनचारी लोग जोजो सीमाके समीपजाने आनेका कुछ कार्य सदा रखतेहोंवे भी बूझेजायँ-अब इन सबहीका यथोक्त पहले पीछेके अनुसार क्रम यह जानो-प्रथम साक्षीलोग १ तीनों भाँतिके सामंत २ मौल ३ वृद्ध ४ उद्धृत ५ सीमा कृषाण ६ वनचारीलोग ७-इनमेंसे जिसकिसीने जिसदिन सीमाका निर्णय शपथ उठाकर कियाहो तिसदिनसे लेकर पूरे तीन पक्षकी अवधितक जो कोई राज-दैविक व्यसन उनको न उत्पन्नहो तौ उस कियेहुये निर्णयसे सीमा निश्चितहुई जानो-यही अवधि इस अर्थोक्त कात्यायनके बचनानुसार पाईजातीहै-यथा (सीमासंक्रमणे कोशेपादस्पर्शेतथैवच। त्रिपक्षपक्षसप्ताहंदैवराजिकमिष्यते) अर्थात्-सीमाके निर्णय मध्ये तीन पक्षतक और कोशपान विधिहोने मध्ये एक पक्षतक और गुरुवोंके पाद छूकर शपथ उठाने मध्ये सात दिनतक दैवराजिक व्यसन देखाजाताहै १५७ कदाचित् उक्त अवधिके भीतर कुछ रोगादि व्यसन उनपर आनिपरै अथवा अन्यसाक्षियोंके कथनानुसार उनके पूर्व कथनों में कुछ मृषा दोषपाया जाय तौ फिर उनको दंड होना नीचे कहते हैं १५७॥

अथसाक्ष्यादिदुष्टनिर्णेतॄणांदंडकरणम्॥

अनृतेतुपृथग्दंड्याराज्ञामध्यमसाहसम् १५८ पूर्वार्द्धः॥

मक्ष०-असत्यमें मध्यम साहस दंडसे राजा करके पृथक् पृथक् दंडनीय हैं १५८॥

अभि०-मध्यम साहस दंड ५४० पण कहाते हैं इतना दंड जुदा जुदा प्रत्येक असद्वादी सामंतोंसे राजालेवै-(पर) इस न्यायसे कि जितना जिसका अपराधहो तिसही के अनुसार लेवै किन्तु २७० पणके ऊपर ५४० पणतक जो कुछ लियाजाय सो सब मध्यम साहस दंड गिनाजाता है कुछ पूरेकाही नियम नहीं यद्यपि यहाँ मूलश्लोकमें सामंतोंका कुछ नाम चिह्न नहींहै तथापि इसहेतुसे सामंत समुझेजाते हैं कि पहले १५७ मूलश्लोकमें योगीश्वरने विशेषकर सामंतही चार आठ दशतक निर्णेता होने कहेथे-दूसरा हेतु इसीका अधिकोक्तिमें भी देखौ १५८॥

अधि०-दूसरे इसहेतुसे भी सामंत निश्चित होते हैं कि साक्षी और मौलादिकोंका दंडभी ग्रंथांतरमें कुछ औरहै कि जैसा जैसा नीचेलिखैंगे -तथाचमनुः (यथोक्तेन नयंतस्तेपूयंतेसत्यसाक्षिणः। विपरीतंनयन्तस्तुदाप्याः स्युर्द्विशतंदमम्) अर्थात्-साक्षियों के असत्य बोलने मध्ये मनुने केवल दोसौ पणका धन दंडलेना कहाहै-और नारदने सामंतोंका नाम कहकर मध्यमसाहस दंडउनको लिखाहै-यथा(अथचेदनृतं ब्रूयुःसामन्ताःसीमनिर्णये। सर्वेपृथक्पृथग्दण्ड्याराज्ञामध्यमसाहसम्) अर्थात्-नारद कहते हैं कि जो सामन्त लोगसीमाके निर्णयमें कुछ अनृत बोले हों तौ वे अनृतवादी सब सामन्त मध्यम साहस धनदण्ड से राजाकरके दंडनीयहोंगे-कदाचित

सामन्तोंके संसक्त सामन्तोंने कुछ अनृतबोलाहो तिनको पूर्वसाहस दंडकिंतु २७० पणतक यथायोग्य जुर्माना नारदनेकहाहै-यथा(शेषाश्चेदनृतंब्रूयुर्नियुक्ताभूमिकर्मणि। प्रत्येकंतुजघन्यास्तेविनेयाःपूर्वसाहसम्)-अर्थात्-सीमाकार्यमें लगायेहुये मुख्यसामंतों केशेषकहिये संसक्त प्रतिसामंत यद्वाउनकेभी प्रतिसामंत झूठबोलैं तौ यह प्रत्येक जघन्य कक्षावर्तीलोग प्रथम साहसदंडसेही दंडनीयहैं-यही दंडनारदने मौल और वृद्धादिकोंकोभी कहाहै-यथा-(मौलवृद्धादयश्चान्येदंडगत्यापृथक्पृथक्। विनेयाःप्रथमेनैवसाहसेनानृतेस्थिताः) अर्थात्-मौलवृद्धादिकभी जे कोई और झूठबोलेहों वेभी पूर्वसाहसनाम दंडसेही भिन्न भिन्न प्रत्येक दंडनीयहैं परदंड विधिके मार्गसेही जितना जिसपर योग्यहो-इसवचनमें आयेहुये आदिशब्दके आशयसे गोप, शाकुनिक व्याध, वनगोचर आदि समुझने-यद्यपि-शाकुनिकादि मनुष्य बहुधा पापबुद्धि होनेके हेतुसे साक्षात्कार सीमाके निर्णयमध्ये नहींनियुक्तहोसक्ते तौभी पहलेदेखेहुये सीमाके चिह्नमात्र राजाको जतलानेमध्ये वेभी नियतहोते हैं कदाचित् उन्हीं चिह्नोंके जतलातेहुये असत्यबोलैं तिसका दण्डयह दर्शायागया-यद्यपि साक्षी आदि अन्यसबों की अपेक्षा सामन्तोंपर अधिकदण्ड दर्शायागया परन्तु सामन्त सबसे प्रधान हुआ करतेहैं इसलिये ऐसे लोगोंके मिथ्या भाषित्व में दण्डाधिक्य होना कुछ अयोग्यनहीं है-यहसब दण्ड केवल अज्ञानसेही अनृत बोलेजाने मध्ये समुझा जाताहै क्योंकि जानिबूझिकर असत्य बोलाजानेमध्ये कात्यायनजीने सबको अधिकदण्ड दर्शायाहै यथा(बहूनान्तुगृहीतानांनसर्वेनिर्णयंयदि।कुर्युर्भयाद्वालोभाद्वादण्ड्यास्तूत्तमसाहसम्) अर्थात्-पूर्वोक्त बहुतसे सामन्त आदि साक्षियों में से नियत करिकै लियेहुये निर्णेता लोग जानि बूझि कर यदि सबही निर्णय करनेसे उपरामकरैं चाहे लोभसे या भयसे कुछ सङ्कोच करतेहों तौभी उत्तम साहस नाम दण्डसे सब दण्ड्य होंगे किन्तु १०८० पणतक धनदंड उन प्रत्येकोंसे अपराधोंके अनुसार जितना जिसपर योग्य समुझाजाय भिन्न भिन्नलिया जासक्ता है-तात्पर्य इसका यह कि ५४० पणके ऊपर १०८० पण पर्यंत जितनेपण जिसकिसीके अपराधों अनुसार योग्य समुझे जाकर दंडालियेजायँ वेही उत्तम साहसनाम दण्डमें कहलावैंगे कुछ १०८० पणतक पूरेकी ही नियमनहीं-यही दण्ड निर्णेता लोगोंके वचनभेदमेंभी कात्यायनजीने कहा है-यथा-(कीर्त्तिनेयदिभेदःस्याद्दंड्यास्तूत्तमसाहसम्)अर्थात्-जो निर्णेतालोगोंके कथनोंमें परस्परभेदपायाजाय या आगे पीछे उनहींके स्वकीय वचनों में दोभाँतिपाई जायँ जिस्से निर्णयहोना दुर्घट समुझाजाय तौभी उत्तम साहसकरके दण्डनीयहोंगे निर्णेतालोगोंको अज्ञान यद्वा ज्ञानसहित अनृत बोलनेमध्ये यथायोग्य दण्ड फिरसीमाका विचारकरनेको प्रारम्भकरे-तथाचकात्यायनः(

सीमांविचारयेत् -अपिच-त्यक्त्वादुष्टांस्तुसामन्तानन्यान्मौलादिभिःसह ॥ संमिश्र्यका रयेत्सीमामेवंधर्मविदोविदुः)-अर्थात्- अज्ञानादि उक्तियों में राजा दंडदेकर फिरभी सीमाको निर्णयकरै-किंतु-दुष्टसामंतादि निर्णेतालोगोंको दंडपूर्वक छोड़िकर पुनि और सज्जनलोगोंको मौलादिकमें मिलाकर सीमानिर्णय करवावै यह धर्मज्ञोंका विचारहै-यद्वा-निर्णेतालोगोंके वचन विरोधमें यदि संभवहो राजा लेख्यपत्रोंसेही निर्णय करवावै-तथाचशंख लिखितौ (सामन्तविरोधेलेख्यप्रत्ययः) १५८ ॥

अथज्ञातृलिङ्गयोरप्यभावेसीमानिर्णयप्रकारविवेकोनामपञ्चषष्टितमःपरिच्छेदः ६५ ॥

इस पैंसठि संख्याके परिच्छेदमें उसभाँतिकी सीमाओंका निर्णय प्रकार समुझाजा वेगा कि जिनके निपट कोई चिह्न और उन चिह्नों के विज्ञाता द्रष्टा लोग भी नहों ॥

अभावेज्ञातृचिह्नानांराजासीम्नःप्रवर्तिता १५८ ॥

अक्ष०-ज्ञाता और चिह्नोंके अभावमें राजाही सीमाका प्रवर्तितकरनेवालाहै १५८॥

अधि०-यद्यपि ऐसी दशामें स्वाधीनताहै कि राजा आप अपने विचार के अनुसार सीमानिर्णयकरै तौभी प्रथम बृहस्पतिका दर्शायाहुआ उपाय नियतकरना योग्य है कि वादी प्रतिवादीको समुझाकर किसी एकपर विश्वास रखनेका उत्साहदिलावै-यथाहबृहस्पतिः (ज्ञातृचिह्नैर्विनासाधुरेकोप्युभयसंमतः। रक्तमाल्यांबरधरोमृदमादायमूर्द्धनि ॥ सत्यव्रतःसोपवासःसीमांतांदर्शयेन्नरः) अर्थात्-जहाँ सर्वथा सीमालिंगोंके जाननेवालोंका अभावहो और निपट कोई सीमा चिह्न भी न हों और वे दोनों अर्थी प्रत्यर्थी धरणीपालके समुझाने यद्वा स्वतः परस्पर संमति के होजानेसेही किसी एक धर्मज्ञपर विश्वास रखिकर अपनी सीमाका निपटाराचाहैं तहाँ एकही सत्यसंध पुरुष दोनोंका स्वीकार कियाहुआ व्रतोपवास लेकर लालपुष्पोंकी माला रक्तवस्त्र धारणकिये मट्टीकाढीम शिरपरधारिकै दोनोंकीसीमा कल्पितकरैतौ यहप्रकारभी निपटारामध्येश्रेष्ठ है-परंच-जहाँवादी प्रतिवादी ऐसा करनेको उत्साह न लावैं यद्वा ऐसाकरनेयोग्य कोई सत्यसंधही विश्वासपात्र हाथ न आवै तहाँ राजा आपसीमाकल्पितकरै-तथाचनारदः-(यदाचनस्युर्ज्ञातारःसीमायानचलक्षणम्। तदाराजाद्वयोःसीमामुन्नयेदिष्टतःस्वयम्) अर्थात्-जब सीमाके विज्ञातासाक्षी सामंतादि और वृक्षादिकचिह्नभीनहों तौ फिर दोनों कीसीमा राजा आप अपनीइच्छाकेअनुसार कल्पितकरै-किंतु जितनीभूमि दोनोंग्रामोंके बीचमें झगड़ेपर आरुढ़हुईहो तिसकोचाहे दोनोंग्रामको आधीआधी बाँटिदे अथवा जैसा अवसर सम्भवजानै तिसके अनुकूल अपनी इच्छाके अनुसार चाहेएकग्रामको थोड़ीऔर दूसरे को कुछ अधिक देकर दोनोंकेबीच सीमा चिह्नकल्पित करवावै-कदाचित्-उतनी सभी भूमि देदेनेसे द्वितीयकी अपेक्षा एकग्रामका उपकाराधिक्य राजासमुझै और यहबातभी प्रत्यक्ष समुझी जातीहो कि इतनी भूमिके न मिलनेसे इसतु-

च्छ ग्रामका निर्वाह दुर्घटहोगा तौफिर दोनोंको न बांटै किन्तु उसही में लगादेवे-यथाहमनुः-(सीमायामविषह्यायांस्वयंराजैवधर्मवित्। प्रदिशेद्भूमिमेकेषामुपकारादितिस्थितिः)अर्थात्-सीमा चिह्न और उन चिह्नोंके विज्ञाता भी न होनेसे जो ठीक सीमा निश्चित न होसक्तीहो तिसमें राजा आपही धर्मज्ञ समदर्शीहोकर किसीएकको उपकार हेतुसे वहसारीभूमि समर्पणकरै यहमर्यादा है-(अथनिर्णयावसरः) सर्वत्र सीमाका निर्णयराजा ऐसे अवसरमें करवावै जब धरतीके चिह्नकिसी तृणादिकसे आच्छादित न होरहेहों -यथाहमनुः (सीमांप्रतिसमुत्पन्नेविवादेग्रामयोर्द्वयोः। ज्येष्ठेमासिनयेत्सीमांसुप्रकाशेषुसेतुषु)अर्थात्-दो ग्रामों की सीमापरविवाद खड़ाहोनेसे ज्येष्ठमासमेंजब ग्रीष्म सूर्य्यकेआतापसे तृणादिक तथा जलादिक सूखे होनेपर सबसीमा चिह्नदिखाई देते हौंतवहीं सीमा निर्णय करै-ज्येष्ठमासके उपलक्षणसे जब कभी ऐसा सूखा अवसर मिलैतभी सर्व्वदा सीमानिर्णय होसक्ताहै-ग्राम शब्दके उपलक्षणसे नगरादिकभी सब समुझेजातेहैं-अतएवकात्यायनः (सामन्ताश्चेत्तुसामन्तैः कुर्य्यात्क्षेत्रादिनिर्णयम्। ग्रामसीमादिषुतथा तद्वन्नगरदेशयोः) अर्थात्-यदि ग्रामादिक सीमाओंपर या तद्वत् नगर देशों की सीमाओंपर सामन्त परस्पर झगड़ारोपैं तौ सामन्तोंसेही क्षेत्र आदि निर्णय राजा करै-ग्रामादिक सीमा कहने से गृहादि सीमा भी सब समुझीजाती हैं-एवं क्षेत्र आदि निर्णय कहने से सब सीमा निर्णय समुझेजाते हैं किन्तु जहां जैसी सीमाका झगड़ाहो उसीके सामन्त भी आवश्यकहैं (अथनद्यादिदत्तभूमेर्विचारः) तदाह वृहस्पतिः (ग्रामयोरुभयोर्य्यत्र मर्य्यादाकल्पितानदी। कुरुतेदानहरणं भाग्याभाग्यवशान्नृणाम्॥ एकत्रकूलपातन्तु भूमेरन्यत्रसंस्थितिम्। नदीतीरेप्रकुरुते तस्यतान्नविचालयेत् (तस्यभाग्याभाग्यवशकृतस्येतिसम्बन्धः यद्वा तस्यसंप्राप्तभूमिकपुरुषस्यतांप्राप्तांभूमिंनविचालयेद्राजेतिसाधुः) अर्थात्-जहां कहीं दो ग्रामों या दो नगरों या दो देशों के बीच कोई नदीही मर्य्यादा नाम सीमा कल्पित होतीहै तौ वह नदी मनुष्योंके भाग्य तथा अभाग्य से वश होकर कभी धरती का दान तथा हरण किया करती है कि एकओर धरती में कूलपात करके नदी दूसरीओर आप जाटिकती है अर्थात् वर्षाकी वहुताइतसे निज तीरोंपर यह भाव प्रकट करती है सो इसाकियेहुये को राजा कभी विचालै नहीं किन्तु जिसको नदीने भूमिदानकियाहो तिसकी पाईहुई भूमि कभी पूर्व्वस्वामीको न देवै (सो) यह न्याय केवल विना वोईधरतीका समुझना क्योंकि उन्हीं वृहस्पतिने वोईहुई धरती का न्यायान्तर वर्णनाकियाहै-यथा (क्षेत्रंसस्यमुक्तंध्यभूमिश्छिन्नायदाभवेत्। नदीश्रोतःप्रवाहेणपूर्वस्वामीलभेततताम्) अर्थात्-वृहस्पति कहते हैं कि जब नदी अपने वेगप्रवाहसे धान्यसहित खेतको उलांघिजावै जिससे वोईहुई धरती कटिकर सीमासे वाहरहोजाय तौ यह पूर्व्वस्वामीही उसधरती

को पावै-अर्थात् जबतक वही बोईहुई खेती पकिकर कुछ अन्नादिकफल देदेवै तबतक पूर्व्वस्वामी उसका मालिकरहै तत्पश्चात् ऊर्ध्ववचनों के अनुसार वही मालिकहोगा जिसकी सीमामें मिलगईहो-कदाचित्-कटी धरतीका परिमाण समुझाजानेकी आवश्यकता पाईजाय तौ अग्रोक्तरीतिसे मालूम होसक्ताहै-तद्यथा (सार्द्धहस्तशतंयावद्गर्भतस्तीरमुच्यते। भाद्रकृष्णचतुर्द्दश्यां यावदाक्रमतेजलम् ॥ तावद्गर्भंविजानीयात् तदन्यत्तीरमुच्यते) अर्थात्-नदीके गर्भस्थानसे प्रारम्भलेकर १५० डेढ़सौहाथभूमि जहांतक होसक्तीहो उतनी धरती नदीके(तीर)नाम कूल गिनाजाताहै-और गर्भस्थान का यह लक्षणहै कि अच्छी वर्षा होनेसे भाद्रकृष्णा चौदसिका नदी में बाढ़ि आकर जलका चढ़ाउ जहांतक जापहुंचै उतना गर्ब्भस्थान कहाताहै फिर उसके उपरान्त १५० हाथ भूमि नदीकातीर समुझाजाताहै (अथराजदत्तभूमेर्विचारः) जैसे नदी तैसे राजाकी भी दीहुईभूमि फिर वापिस नहीं होतीहै-तदाहबृहस्पतिः (अन्यग्रामात्समाहृत्य दत्तान्यस्ययदामही। महानद्याथराज्ञाच कथंतत्रविचारणा॥ नद्योत्सृष्टाराजदत्ता यस्यतस्यैवसामही। अन्यथानभवेल्लाभो नराणांराजदैविकः॥ क्षयोदयौजीवनंच दैव राजवशान्नृणाम्। तस्मात्सर्व्वेषुकार्य्येषु तत्कृतंनविचालयेत् (दैवशब्दस्यभाग्यवाचित्वान्नदीदत्तमपिदैवकृतंभवत्येव)अर्थात्-जहां किसी सीमारूप नदीने या राजानेही अन्य ग्रामकी धरती लेकर अन्यको देदीहो तहां क्योंकर निर्णय कियाजाय ऐसी चिन्तामध्ये कहते हैं कि नदीकी छोड़ीहुई या राजाकी दीहुई जिसको मिलीहो उसीकी वह धरती जानो क्योंकि राज दैविक दोनोंभांतिका लाभ जो मनुष्योंको कुछ हुआहो सो अन्यथा विपरीत नहीं कियाजासक्ता किन्तु क्षय और उदय तथैव जीवन भी मनुष्यों के दैव अथवा राजके वशहोते हैं तिसहेतुसे सबकामों में उस दैव अथवा राजनेही जो कुछ कियाहो तिसको राजा आदि कोई पुरुष विचालै नहीं (यहाँ दैव शब्द भाग्य वाचकहोनेसे नदीका जो करनाहै सो उस पुरुषकेही भाग्यका कर्तृत्वजानो)-(यहाँ राजाकरके दीहुई धरतीके वापिसहोने मध्ये जो प्रतिषेध अभी दर्शाया तिसका किंचित् प्रतिप्रसव भी निज उन्हीं बृहस्पतिने दर्शायाहै) कि अमुकामुक धरती वापिस होनेका प्रतिषेध मत समुझौ-तद्यथा (याराज्ञाक्रोधलोभेनछलन्यायेनवा हृता। प्रदत्तान्यस्यदुष्टेननसासिद्धिमवाप्नुयात्) अर्थात्-जो कोई धरती किसी दुर्जन राजा ने कुछ क्रोध लोभ या छल न्यायसेही हरिकर और को देदीहो सो वह धरती दान सिद्धिको न पहुँचै किन्तु कोई धार्म्मिक राजा ऐसी धरती वापिस लेकर पूर्व्वस्वामी को देसक्ताहै-परंच-ऐसा करना केवल उसी अवस्था में संसूचितहै जो पूर्व्व स्वामी की वह धरती स्वत्व हेतु भूत प्रतिग्रह आदि प्रकारों द्वारा पाई हुई प्रमाण पावै-क्योंकि-स्वत्व हेतु भूत प्रतिग्रह आदि प्रमाणों के न होने में निज उन्हीं बृहस्प-

ति ने वह न्याय भी दर्शाया है कि जिस्से कोई राजा ऐसी धरती पूर्व्व स्वामीको न वापिसकरवावै-तद्यथा(प्रमाणरहितांभूमिंभुञ्जानोयस्ययाहृता।गुणाधिकायवैदत्तातस्य तांनविचालयेत) अर्थात्-धरती प्राप्तहोनेके प्रमाणोंसे विहीन धरती भोगतेहुये जिस किसीकी जो धरती हरीजाकर किसी गुणाधिक पुरुषको देदीगईहो सोउसपानेवाले-काहीधनहै इस्से ऐसीधरतीको राजा नहींविचालै किन्तु पूर्वस्वामीकोनदेवे-क्योंकिउस का स्वत्व उसमें सच्चानहींथा-स्वत्वकी सचावट करनेवाले अग्रोक्त स्वत्वहेतुभूत आगमोंके मार्गभी सर्वत्र गौतम और मनुकेकहे समुझने-यथाहगौतमः(स्वामीरिक्थक्रय संविभागपरिग्रहाधिगमेषु–भवति-ब्राह्मणस्याधिकंलब्धंक्षत्रियस्यविजितंनिर्विष्टंवैश्य शूद्रयोः-मनुस्तु-सप्तवित्तागमाधर्म्यादायोलाभःक्रयोजयः।प्रयोगःकर्मयोगश्चसत्प्रतिग्रहएवच) अर्थ इनका देखो ४३ के परिच्छेदमें विस्तार सहित १५८॥

अथगृहादिस्थानानांसीमादिविवादेष्वपिपूर्वोक्तन्यायमूलतयाऽतिदेशधर्मविवेकोनाम षट्षष्टितमःपरिच्छेदः ६६॥

इस छांछठि संख्या के परिच्छेदमें गृहादिक स्थानोंकेभी सीमाआदि विवादोंमें पूर्वोक्त न्यायकी तुल्यता पाईजानेसे उसन्यायका अतिदेश धर्मजतलातेहैं (और) जो कुछ अधिक विशेषता होगी सोभी जानीजायगी॥

आरामायतनग्रामनिपानोद्यानवेश्मसु। एषएवविधिर्ज्ञेयोवर्षाम्बुप्रवहादिषु १५९॥

अक्ष०–आराम, आयतन, ग्राम, निपान, उद्यान, वेश्म इनमें औरवर्षाम्बु प्रवहादिमेंभी यहीविधि ज्ञातव्यहै जो पहले वर्णन हुईथी १५९॥

अभि०–(आराम) वागीचा आदि जो फलपुष्प आदि अपेक्षा से विनिर्मित हुआ हो (आयतन) एकस्थान विशेष जो सर्व साधारणों की वैठक हेतुसे या तृणादिसंचय हेतुसे कोईजगहजुदीसमुझीगईहो (ग्राम) प्रसिद्धहै और उसीके उपलक्षण करकेनगरादिकभी समुझने (निपान) वापी कूप आदि पानीयका स्थान (उद्यान) क्रीड़ाभूमि आदि कोई प्रयोजनवाली जगह (वेश्म) घर हवेली आदि इनसबके वादविवाद मध्य निर्णयका प्रकार जैसा सीमाके सामन्त आदि साक्षियोंद्वारा करनाकहा अथवा उन के निपट अभाव में निज राजाही निर्णेता दर्शित हुआ तैसा इनमें भी सबयथासम्भव समुझिलेना और (वर्षाम्बुप्रवहा) नाम बरसाती जलके वहनेवाली मोरी आदि में भी यहीविधान और (आदि) शब्दके आशयसे प्रासाद आदि अर्थात् बड़ेबड़ेदेवमन्दिर या राजमन्दिर आदि महल और गढ़कोट आदि सभी समुझने १५९॥

अपि०–प्रासाद आदि स्थानोंकी गणना कात्यायनने स्पष्टभावसे करीहै-यथा-(क्षेत्रकूपतड़ागानांकेदारारामयोरपि। गृहप्रासादावसथनृपदेवगृहेषुच) अर्थात्-खेत कूप तालाब और (केदार) नाम थोड़े जलकी क्यारी थाउला आदि (आराम) वागीचे

आदि(गृह) छोटेमकान (प्रासाद) बड़ेमहल और कोट आदि तद्वत् राजमन्दिर देवमन्दिर इनसबहीके विवादों मध्ये निर्णयका प्रकार वहीसमुझना जो कुछ पहलेवर्णन हुआथा-यहसब सीमा निर्णय विधिके अतिदेशधर्मद्वारा एकसामान्य प्रकार दर्शित कियागया परन्तु इनके निर्णयका जो विशेष प्रकारहै सो बृहस्पति ने दर्शायाहै-यथा-(निवेशकालादारभ्यगृहचर्यापणादिकम्। येनयावद्यथाभुक्तंतस्यतन्नविचालयेत्)अर्थात्-गृहादिकों के निवेशकाल कहिये निर्मित होनेके समयसे यद्वापहले किसीस्वामी के परिग्रह में आजानेकेही कालसे लेकर उसकी (गृहचर्या) नाम घरकाडौल प्रचार भूमिनिकास द्वार आदि यद्वा हाट दूकान आदि जैसाडौल जितनी भूमितक जिस पहले स्वामीने भोगाहो तिसके उतने डौल युक्तभोग को राजा नहींविचाले किन्तु उससेपीछे बसनेवाली किसी परोसी झगड़ालूके सुखहेतु से अन्यथा न करदेवे(इसमें निवेशकालके आरम्भसे लेकर जैसाडौल कहने से मध्यकालकृत व्यवस्थाका निवर्त्यत्व सूचित हुआ है अर्थात् बीचमें जो कोई बात नवीन कल्पित हुईहो तिसको राजा मेटिसक्ताहै यदि किसीपूर्ववासी को उसबातसे दुःखसमुझाजाय) यहाँपूर्वकाल अथवा मध्यकालका यह निर्णय है कि सबसे पहले किसी भूमिपर किसी स्वामी ने कुछस्थान कल्पितकिया तौ उस कल्पित होने का समय यद्यपि एकप्रकारका निवेश काल है और इस कथन से यहबात सिद्धहोती है कि जैसाडौल उसी निवेश कालमें बनिचुकाहो वही रहना चाहिये किन्तु उससे पीछे बीच में जो कोई बात कल्पितहो सो मिटसक्ती है तथापि यह नियम उसी अवस्था तक समुझा जा सक्ता है कि उसके निवेशकाल से पीछे कोई और भी स्थान किसी प्रतिवासीने कुछ कल्पित कियाहो अर्थात् जबतक कोई और प्रतिवासी नहीं बसताहो तबतक जो कुछ उसने वारम्बार कल्पित कियाहो सो सब निवेशकालके आरंभमेंही गिनतीहै-एवं जहाँ पूर्वस्थान का निर्माता कुछ दिन बसिकर छोड़िजाय और वह स्थान किसी द्वितीय स्वामीके परिग्रहमें धर्मानुसार आवै जबतक कोई और प्रतिवासी उसके लगाहटमें न बसताहो और वह द्वितीय स्वामी जो कुछ बीचमें भी कल्पित करै सो सब निवेशकालके प्रारंभसेही कल्पितहुआ समुझा जासक्ताहै (पर) जब उसके छोड़जाने से पहले या पीछे कोई और प्रतिवासी भी बसिचुकाहो तिसके पीछे किसी द्वितीय स्वामीके परिग्रहमें यदिवही पहला स्थानकभी आवै तौ अब उसका कल्पित करना मध्य व्यवस्था समुझी जायगी यदि किसी प्रतिवासीको दुःखमिलना समुझाजाय अन्यथा जो प्रतिवासी आदि उपस्थित किसी मनुष्यको कुछ पीड़ा अथवा हानिसंभव नहीं समुझाजाय तौ यह नवीन कल्पन भी राजा अपने विचारसे सुस्थिर बना रख सक्ताहै या न्यूनाधिक भाव शोधन करनेकी आज्ञा भी देसक्ताहै—अत्रोक्त जोजोडौल

निवेशकालके आरंभसेही कल्पितहुये निश्चितहों यद्यपि उनसे प्रतिवासी आदि किसी उपस्थित जनको अनिष्टहेतु भी कुछ समुझाजाय तौभी वेनिवर्तितनहीं किये जासक्ते हैं- यथाहबृहस्पतिः (वातायनंप्रणालींचतथानिर्व्यूहवेदिका। चतुःशालस्यन्दनिका प्राङ्निविष्टान्नचालयेत्) अर्थात्-(वातायन) गवाक्ष जाल झरोखा रोशनदान आदि (प्रणाली)पनाला,पतनाला,मोरी आदि जिस्से घर आँगणका जलकीचड़आदि निकसे (निर्व्यूहवेदिका) नाम द्वार आगे छज्जा या चबूतराआदि और द्वार सन्मुखप्रांगणभूमि भी (चतुःशालस्यन्दनिका)नामचौवाड़ा अटारीमेंसे जो पतनाला या खिड़कीआदि निकालेगये हों इनसबको राजा पहले बने विचालै नहीं—कात्यायनोपि (मेखलाभ्रमनिष्काशगवाक्षान्नोपरोधयेत्। प्रणालींगृहवास्तुञ्चपीड़यन्दंडभाग्भवेत्)अर्थात्-(मेखला) जो भीतका सहारा पुस्ता बाँधागयाहो यद्वा ऊपरकी कँगनी जो चौतरफा छोटीछज्जी के अनुरूप भीतकीरक्षा अथवा शोभा रक्खीजातीहै (भ्रम) अर्थात् जलका निकास जिसमें घरकी मोरी जाकर मिलती हैं (निष्काश) नाम द्वार ऊपर छज्जा (गवाक्ष) नाम वायु प्रवेश होनेके झरोखे आदि (प्रणाली) घरकी मोरी पतनाला आदि (गृहवास्तु) गृहसंबंधी वास भूमि जो बैठने बसने योग्य हो इनको रोकैनहीं और जो कोई इनको व्यर्थ पीड़ित करता हो तिसको राजा दंडदेवै—परंतुयेही उक्तचीजें जोजो पहलेसे नहों तौ फिर पीछे निर्मित करने में यदि औरोंको अनिष्ट खड़ाहोता हो तिनके करने का प्रतिषेधहै—यथाहकात्यायनः(निवेशनमयादूर्ध्वंनैतेयोज्याः कदाचन। दृष्टिपातंप्रणालींचनकुर्यात्परवेश्मसु) अर्थात्-ये सब ऊपर कहे पदार्थकभी निवेशकाल से उपरांत नहीं लगाने योग्य हैं कि जिनसे किसी औरको अनिष्ट खड़ा होताहो और भी (दृष्टिपात) नाम झरोखा आदि या प्रणालीको पराये घरोंकेबीच अथवा द्वार सन्मुखनहींबनावै॥ (अत्रसीमाशुद्धिप्रसंगात् अवस्करादीनामप्यकरणंवेदितव्यम्) अर्थात् सीमा शुद्धि के प्रसंगसे इसी स्थलपर यह मर्यादा भी ज्ञातव्य है कि औरोंकेघर दीवार समीप कूग कर्कट आदि मलीनताकरनेका प्रतिषेधहै-यथाहबृहस्पतिः (वर्चःस्थानंवह्निचयंगर्तोच्छिष्टाम्बुसेचनम्। अत्यारात्परकुड्यस्यनकर्तव्यंकथञ्चन) अर्थात् (वर्चःस्थानं) छाछोवी आदि हगने मूतनेका स्थान (वह्निचयः) पोर अलाउभट्ठी आदि अग्निका समूह (गर्त) गड़हिला (उच्छिष्ट) जूठी पत्तल आदि फेंकना (अंबुसेचन) कीचड़करना इन बातोंको पराईभीतके अत्यंत समीप कभी कैसेहू न करनाचाहिये अत्यंत समीप की यह अवधिहै कि दो हाथ जगह छोड़िकर कर्तव्यहै और दो हाथोंका परिमाण इमारती गजभरलेनायोग्य है-तथाहकात्यायनः (विण्मूत्रोदकमेवञ्चवह्निश्वभ्रनिवेशनम्। अरत्निद्वयमुत्सृज्यपरकुड्यान्निवेशयेत) अर्थात्-विष्टामूत्र जल प्रक्षेप अग्निसमूह (श्वभ्र) छिद्र गड़हिला (निवेशन) बैठना यह सब काम पराईभीतसे दो अरत्निनाम

दोहाथ जगह छोड़िकरके करै-अरत्नि-यद्यपि-एक बिलाँद मात्र पहुँचाकी गाँठितक भी कही जातीहै परयहाँ मुट्ठीबँधा हाथ कुहनी की गाँठितक अपेक्षितहै कि जितना एक इमारती गजका अद्धालाक विदितहै ऐसी दो अरत्नि नाम इमारती गजभर जगह बचानी योग्यहै अर्थात् इसके भीतर करना अत्याचार किया कहाताहै-इसके सिवाय—संसरण अर्थात् सर्व साधारणों का दगड़ा भी रोकना या बिगाड़ना प्रतिषिद्ध है यथाह बृहस्पतिः-(यांत्यायान्तिजनायेनपशवश्चानिवारिताः । तदुच्यतेसंसरणंनरोद्धव्यंतुकेनचित्) अर्थात्—जिसमें मनुष्य और पशुभी अनिवारित बिनारोक टोक जाते आतेहों सो संसरण मार्ग कहिलाता है वह किसी करके रोधना या बिगाड़ना चाहिये—एवं—चौराहा आदि भी रूँधने योग्य नहीं—यथाहनारदः—(अवस्करस्थलश्वभ्रभ्रमस्यन्दनिकादिभिः । चतुष्पथसुरस्थानराजमार्गान्नरोधयेत्) अर्थात्—(अवस्कर) कूरा कर्कट घूरा विष्ठा मूत्र आदि (स्थल) टीला चबूतराआदि (श्वभ्र) गड़हिला (भ्रम) जलका निकास नाली आदि (स्यन्दनिका) जो अटारी की छतों से जलकी मोरी गिरतीहों यद्वा झमड़े वृक्षादिक जिनकी शाखालम्बी फैलीहों यह भी अर्थ समुझना और (आदि) शब्दके आशय से जे कोई और चीज़ें इसीप्रकार कीहों-दृष्टान्त-जैसे किसी छप्परका कोना लम्बा फैलजाय इत्यादि बहुधाबातें ऊहा करनी इनसे कोई चौराहा यद्वा देवस्थान तथैव राजमार्ग बड़ी सड़कों को रूँधे तथा बिगाड़ेनहीं-यद्यपि-राजमार्ग बड़ी सड़कों को सामान्यभाव कहते हैं परञ्च उसमें एक विशेषताहै और चौराहा यद्यपि चारमार्गों के संघातकोही कहतेहैं तथापि उसकीएक विशेषता से सामान्य सड़कैंभी चौराहा तुल्य मानीजातीहैं-तथाचकात्यायनः-(सर्वेजनाःसदायेनप्रयान्तिसचतुष्पथः । अनिषिद्धायथाकालंराजमार्गःसउच्यते)-अर्थात्-अनिषिद्धानाम बिनारोके टोके साधारण सभी मनुष्य हरवक्त जिसमें जातेफिरतेहों वह सामान्य मार्गभी चतुष्पथ समुझाजाताहै और जिसमें नियतकाल परही सबजा सक्तेहों किंतु कुसमयका जाना जहाँ राजपुरुषोंकरके रोकाजाय सो वहराजमार्ग माना जाता है-इसके सिवाय-जहाँ खेतके समीप अथवा बीचमें सर्वदामार्ग चलाआताहो तहाँ क्षेत्रपति अथवा क्षेत्रकर्षक ऐसे मार्गका निरोधनकरै-तथाचशङ्खलिखितौ-(मार्गे क्षेत्रेपथिविसर्गोराजमार्गेरथस्यपरिवर्त्तनम्)-अर्थात्-राहवाले खेतमें राहछोड़िकर जोतनाबोना योग्यहै और उसमें रूँधि लगाना अनुचित एवं राजमार्गमें रथका परिवर्त्तन कहिये घुमाव छोड़िदेना योग्यहै कि जितनी भूमिसे रथादिक यान परस्पर भिड़ने बिना घूँमिसक्ते हों उतनी भूमि कोई निकट वासी अपने स्थानादि किसीहेतु करके रूँधैंनहीं या कोई और बटोही आदि किसी गाड़ी और पशवादि के संघात करके रोपै नहीं किन्तु ऐसा करनेवाले यथा पराध दंडनीय हैं —तथाहबृहस्पतिः-(यस्तत्रसंकरं

निवेशकालके आरंभसेही कल्पितहुये निश्चितहों यद्यपि उनसे प्रतिवासी आदि किसी उपस्थित जनको अनिष्टहेतु भी कुछ समुझाजाय तौभी वेनिवर्तितनहीं किये जासक्ते हैं- यथाहबृहस्पतिः (वातायनंप्रणालीचतथानिर्व्यूहवेदिका। चतुःशालस्यन्दनिका प्राङ्‌निविष्टान्नचालयेत्) अर्थात्-(वातायन) गवाक्ष जालझरोखा रोशनदान आदि (प्रणाली) पनाला, पतनाला, मोरी आदि जिस्से घर आँगणका जलकीचड़ आदि निकसै (निर्व्यूहवेदिका) नाम द्वार आगे छज्जा या चबूतराआदि और द्वार सन्मुखप्रांगणभूमि भी (चतुःशालस्यन्दनिका) नामचौवाड़ा अटारीमेंसे जो पतनाला या खिड़कीआदि निकालेगये हों इनसबको राजा पहले बने विचालै नहीं-कात्यायनोपि (मेखलाभ्रमनिष्काशगवाक्षान्नोपरोधयेत्। प्रणालींगृहवास्तुञ्चपीड़यन्दंडभाग्भवेत्) अर्थात्-(मेखला) जो भीतका सहारा पुस्ता बाँधागयाहो यद्वा ऊपरकी कँगनी जो चौतरफा छोटीछज्जी के अनुरूप भीतकीरक्षा अथवा शोभा रक्खीजातीहै (भ्रम) अर्थात् जलका निकास जिसमें घरकी मोरी जाकर मिलती हैं (निष्काश) नाम द्वार ऊपर छज्जा (गवाक्ष) नाम वायु प्रवेश होनेके झरोखे आदि (प्रणाली) घरकी मोरी पतनाला आदि (गृहवास्तु) गृहसंबंधी वास भूमि जो बैठने बसने योग्य हो इनको रोकैनहीं और जो कोई इनको व्यर्थ पीड़ित करता हो तिसको राजा दंडदेवै-परंतुयेही उक्तचीज़ें जोजो पहलेसे नहीं तौ फिर पीछे निर्मित करने में यदि औरोंको अनिष्ट खड़ाहोता हो तिनके करने का प्रतिषेधहै-यथाहकात्यायनः(निवेशनमयादूर्ध्वंनैतेयोज्याः कदाचन। दृष्टिपातंप्रणालींचनकुर्यात्परवेश्मसु) अर्थात्-ये सब ऊपर कहे पदार्थकभी निवेशकाल से उपरांत नहीं लगाने योग्यहैं कि जिनसे किसी औरको अनिष्ट खड़ा होताहो और भी (दृष्टिपात) नाम झरोखा आदि या प्रणालीको पराये घरोंकेबीच अथवा द्वार सन्मुखनहींबनावै॥ (अत्रसीमाशुद्धिप्रसंगात् अवस्करादीनामप्यकरणंवेदितव्यम्) अर्थात् सीमा शुद्धि के प्रसंगसे इसी स्थलपर यह मर्यादा भी ज्ञातव्य है कि औरोंकेघर दीवार समीप कूरा कर्कट आदि मलीनताकरनेका प्रतिषेधहै-यथाहबृहस्पतिः (बर्चःस्थानंवह्निचयंगर्तोच्छिष्टाम्बुसेचनम्। अत्यारातपरकुड्यस्यनकर्तव्यंकथञ्चन) अर्थात् (बर्चःस्थानं) छार छोवी आदि हगने मूतनेका स्थान (वह्निचयः) पोर अलाउभट्ठी आदि अग्निका समूह (गर्त) गड़हिला (उच्छिष्ट) जूठी पत्तल आदि फेंकना (अंबुसेचन) कीचड़करना इन बातोंको पराईभीतके अत्यंत समीप कभी कैसेहू न करनाचाहिये अत्यंत समीप की यह अवधिहै कि दो हाथ जगह छोड़िकर कर्तव्यहै और दो हाथोंका परिमाण इमारती गजभरलेनायोग्य है-तथाहकात्यायनः (विण्मूत्रोदकमेवञ्चवह्निश्श्वभ्रनिवेशनम्। अरत्निद्वयमुत्सृज्यपरकुड्यान्निवेशयेत) अर्थात्-विष्ठामूत्र जल प्रक्षेप अग्निसमूह (श्वभ्रं) छिद्र गड़हिला (निवेशन) बैठना यह सब काम पराईभीतसे दो अरत्निनाम

दोहाथ जगह छोड़िकरके करै-अरत्नि-यद्यपि-एक बिलाँद मात्र पहुँचाकी गाँठितक भी कही जातीहै परयहाँ मुट्ठीबँधा हाथ कुहनी की गाँठितक अपेक्षितहै कि जितना एक इमारती गजका अद्धालाक विदितहै ऐसी दो अरत्नि नाम इमारती गजभर जगह बचानी योग्यहै अर्थात् इसके भीतर करना अत्याचार किया कहाताहै-इसके सिवाय—संसरण अर्थात् सर्व साधारणों का दगड़ा भी रोकना या बिगाड़ना प्रतिषिद्ध है यथाह बृहस्पतिः-(यांत्यायान्तिजनायेनपशवश्चानिवारिताः । तदुच्यतेसंसरणंनरो द्धव्यंतुकेनचित्) अर्थात्—जिसमें मनुष्य और पशुभी अनिवारित बिनारोक टोक जाते आतेहों सो संसरण मार्ग कहिलाता है वह किसी करके रोधना या बिगाड़ना चाहिये—एवं—चौराहा आदि भी रूँधने योग्य नहीं—यथाहनारदः—(अवस्करस्थल श्वभ्रभ्रमस्यन्दनिकादिभिः । चतुष्पथसुरस्थानराजमार्गान्नरोधयेत्) अर्थात्—(अवस्कर) कूरा कर्कट घूरा विष्ठा मूत्र आदि (स्थल) टीला चबूतराआदि (श्वभ्र) गड़हिला (भ्रम) जलका निकास नाली आदि (स्यन्दनिका) जो अटारी की छतों से जलकी मोरी गिरतीहों यद्वा झमड़े वृक्षादिक जिनकी शाखालम्वी फैलीहों यह भी अर्थ समुझना और (आदि) शब्दके आशय से जे कोई और चीज़ें इसीप्रकार कीहों-दृष्टान्त-जैसे किसी छप्परका कोना लम्बा फैलजाय इत्यादि बहुधाबातें ऊहा करनी इनसे कोई चौराहा यद्वा देवस्थान तथैव राजमार्ग बड़ी सड़कों को रूँधे तथा बिगाड़ेनहीं-यद्यपि-राजमार्ग बड़ी सड़कों को सामान्यभाव कहते हैं परञ्च उसमें एक विशेषताहै और चौराहा यद्यपि चारमार्गों के संघातकोही कहतेहैं तथापि उसकीएक विशेषता से सामान्य सड़केंभी चौराहा तुल्य मानीजातीहैं-तथाचकात्यायनः-(सर्वेज नाःसदायेनप्रयान्तिसचतुष्पथः । अनिषिद्धायथाकालंराजमार्गःसउच्यते)-अर्थात्-अनिषिद्धानाम बिनारोके टोके साधारण सभी मनुष्य हरवक्त जिसमें जातेफिरतेहों वह सामान्य मार्गभी चतुष्पथ समुझाजाताहै और जिसमें नियतकाल परही सबजा सक्तेहों किंतु कुसमयका जाना जहाँ राजपुरुषोंकरके रोकाजाय सो वहराजमार्ग माना जाता है-इसके सिवाय-जहाँ खेतके समीप अथवा बीचमें सर्वदामार्ग चलाआताहो तहाँ क्षेत्रपति अथवा क्षेत्रकर्षक ऐसे मार्गका निरोधनकरै-तथाचशङ्खलिखितौ-(मार्गे क्षेत्रपथिविसर्गोराजमार्गेरथस्यपरिवर्त्तनम्)-अर्थात्-राहवाले खेतमें राहछोड़िकर जोतनाबोना योग्यहै और उसमें रूँधि लगाना अनुचित एवं राजमार्गमें रथका परिवर्त्तन कहिये घुमाव छोड़िदेना योग्यहै कि जितनी भूमिसे रथादिक यान परस्पर भिड़ने बिना घूँमिसक्ते हों उतनी भूमि कोई निकट वासी अपने स्थानादि किसीहेतु करके रूँधेंनहीं या कोई और बटोही आदि किसी गाड़ी और पश्वादि के संघात करके रोपै नहीं किन्तु ऐसा करनेवाले यथा पराध दंडनीय हैं —तथाहबृहस्पतिः-(यस्तत्रसंकरं

श्वभ्रंवृक्षारोपणमेवच। कामात्पुरीषंकुर्याच्चतस्यदंडस्तुमाषकः) अर्थात्-जो कोई ऊपर कहेहुये संसरणोंमें कुछ (संकर) नाम गाड़ी और पश्वादिकसे अति संघटकरै यद्वाकोई भाँति गड़हिला यद्वा वृक्षारोपणकरै अथवा इच्छा पूर्व हगिदेवै तिसपर एक माषक जुर्मानादंड है (अपराधाल्पत्वान्माषोत्रताम्रिकः) इसके सिवाय जे कोई ठेठ राज मार्ग में कुछ हगने आदि मलीनताकरें तिनपर अधिक दंड कहा है-यथाहमनुः-(समुत्सजेद्राजमार्गेयस्त्वमेध्यमनापदि। सद्वौकार्षापणौदद्यादमेध्यंचाशुशोधयेत्) अर्थात्-जो कोई राजमार्ग में कुछ आपत्काल बिना मलीनता छोड़े वह दो कार्षापण दण्ड देवे और उस मलीनता कोभी शीघ्र शोधनकरै-विपत्ति युक्तादिक ऐसा करनेवालोंपर यहदण्डनहीं किंतु उनका दण्ड और है-यथाहमनुः(आपद्गतस्तथावृद्धागर्भिणीबालएवच। परिभाषणमर्हंतितच्चशोधमितिस्थितिः)-अर्थात्-आपत्ति में फँसाहुआ तथा वृद्ध गर्भिणी बालक इनमें से यदिकोई मैलाकरैं तौ यह केवल क्रूर वाक्य सुनिबे योग्यहैं और मैलाभी संशोधनकरैं यह मर्यादाहै-तड़ागादिकमें मलीन करनेमध्ये राजमार्ग से भी अधिक दण्डहै-तथाहकात्यायनः-(तड़ागोद्यानतीर्थानियोऽमेध्येनविनाशयेत्। अमेध्यंशोधयित्वातुदण्डयेत्पूर्वसाहसम्)-अर्थात्-तालाब क्रीड़ा भूमि तीर्थ इनको जोकोई अशुचि वस्तुओं से विनाशै वहउस मलीनताके शोधवाने पीछे पूर्वसाहस नामदण्ड २७० पणतक दिलवाने योग्यहै-और-जे कोई मलीन वस्त्र धोने आदि से प्रसिद्ध तीर्थोंको बिगाड़ैं वेभी यही दण्डपावैं-यथाहकात्यायनः-(दूषयेत्सिद्धतीर्थानिस्थापितानिमहात्मनि। पुण्यानिपावनीयानिप्राप्नुयात्पूर्वसाहसम्)-अर्थात्-महात्मालोगों के स्थापितकिये पवित्र करनेवाले पुण्यरूप सिद्धतीर्थोंको यदि कोई दूषितकरै पूर्वसाहस दण्डपावै १५९॥

(अथसीमाप्रभेदनादौदण्डः)

मर्यादायाःप्रभेदेतुसीमातिक्रमणेतथा। क्षेत्रस्यहरणेदण्डाअधमोत्तममध्यमाः १६०॥

भक्ष०-मर्यादाके तोड़नेमें तथैव सीमाके अतिक्रम करने में और खेतके हरने में क्रमसे अधम उत्तम मध्यम दंडहोंगे १६०॥

मि०-यहाँ सीमा और मर्यादा दोनोंका एकही भाव समुझना किन्तु अनेकखेतों का भिन्नत्व दर्शानेवाली छोड़ीहुई साधारण धरती मर्यादा कही जातीहै अर्थात् वह भी क्षेत्रसीमाहै यदिकोई कर्षक जोता आदि ऐसी मर्यादाको कुछ तोड़िडालै तौ उस पर अधमदंडनाम पूर्वसाहसदंड २७० पणातक होसक्ताहै और जिसने उसी मर्यादा नाम सीमाको उलाँघि अथवा तोड़िकर कुछ धरती दावीहो तिसपर उत्तम साहस दंड १०८० पणतक होसक्ताहै क्योंकि उसने निपट सीमा चिहन मिटाया और जिसने कोई खेत किसीको भयादिक दिखराइकर हरिलियाहो या हरनेके मनोरथ से कुछ

उद्यम कियाहो तिसपर मध्यम साहस दंड ५४० पणतक होसक्ताहै कि जितना उसका अपराध समुझाजाय-यहाँ क्षेत्रमात्र कहिनेसे घर बागीचा आदि सबकी सीमा समुझिलेनी जिनका चर्चाऊपर हुआ हो १६०॥

अधि०—ऊर्ध्वोक्त दंडनियमोंमें अग्रोक्तविष्णुके वचनसे कुछ विरोधनहीं समुझना यथाहविष्णुः-सीमाभेत्तारमुत्तमसाहसंदंडवित्वापुनःसीमांकारयेत् -अर्थात्- सीमाभेद करनेवालेको उत्तम साहस दंडदेकर उस्से सीमाफिर बनवावै बलिक ऐसेस्थलपर फिर उसको खेतजोतने नहींदे-इसवचनमें सीमाका भेत्ताकहिनेसेभी तात्पर्य यहीहै कि जिसने सीमा तोड़िकर कुछधरती दाबीहो किंतु अन्यथाइतना दंडकहिना विपरीतहोता-कदाचित् कोई अपनाखेत आदि समुझिकर बिराना भ्रांतिमात्रसेही हरताहो तौभी दोसौपणका दंडहोनायोग्यहै-यथाहमनुः-(गृहंतडागमारामंक्षेत्रंवाभीषयाहरन्। शतानिपंचदंड्यःस्यादज्ञानाद्द्विशतोदमः)-अर्थात्-घर तालाब बागीचा अथवाखेत कोई भय दिखराकर जो हरताहो तौ वह पांचसौ तक दंड देनेयोग्यहै और जोबिनाजाने धोखेमात्रसेही हरताहो तौ वह दोसौ पणतक देनेयोग्य है-वृद्धमनुस्तु- (स्थापितांचैवमर्यादामुभयोर्ग्रामयोस्तथा। अतिक्रामंतियेपापास्तेदंड्याद्विशतंदमम्)-अर्थात्—जेकोई दोनों ग्रामबीच स्थापितहुई मर्यादाको तथैव क्षेत्रआदि और किसी मर्यादाको अतिक्रम करतेहैं वे पापीलोग दोसौपणसे दंडनीय हैं-इसमेंयोगीश्वरकी अपेक्षा दंडथोड़ा कहागया-शंखलिखितौतु-सीमाव्यतिक्रमेत्वष्टसहस्रम्-अर्थात्-सीमाका व्यतिक्रम करनेमें आठ सहस्र पणतक दण्डयोग्य है-इसमें सबसे अधिक दण्ड दर्शाया गया-परन्तु मनु और योगीश्वर शंखलिखित वृहन्मनु इनके बचनोंमें जो दण्ड की आधिकता वा न्यूनतासे विरोध पायाजाताहो सो यह विरोध सीमाकी गुरुता लघुता के अनुसार तथा कर्त्ताके अपराधोंकी गुरुता लघुताके अनुसार और नुक्सानोंकीभी गुरुता लघुताके अनुसार यथा संभवयथा अवसरके अधीन सब अविरोधहै क्योंकि दंड विधानोंकी मर्यादें दंडप्रकरणमें बहुभाँति बर्णनहुईथीं उन सबका योग विचार करनेयोग्यहै॥(अथसीमासंधिज वृक्षादिफलन्यायः)यथाहकात्यायनः-(सीमामध्येतुजातानांवृक्षाणांक्षेत्रयोर्द्वयोः। फलंपुष्पंचसामान्यंक्षेत्रस्वामिषुनिर्दिशेत)-अर्थात्-दोनों खेतकी सीमाबीचलगे वृक्षोंमें फल पुष्पआदि जो कुछपैदाहोताहो सो सबसामान्यभाव दोनों खेतके स्वामियोंको मिलनेकी आज्ञादेवै जिनकी जमीदारीहो-किंतु कोई और जो उनवृक्षोंके फलादिक तोड़ै तिसके अपराधानुसार दंडसूचितहै-जहाँकहीं- ऐसाडौल संभवहो कि वृक्षादि किसी एककेखेतमें उत्पन्नहो और शाखाउनकी दूसरेके खेतमेंजा फैलीहों तिसका न्यायभी कात्यायनजीने कहाहै-यथा-(अन्यक्षेत्रेतुजातानांशाखायत्रान्यसंस्थिताः। स्वामिनंतंविजानीयात्यस्यक्षेत्रस्यसंश्रिताः)-अर्थात्-जहाँ अन्यखेतके

पैदाहुये वृक्षोंकी शाखा अन्यखेतमेंभी फैलीहों तहांमालिक उसे समुझना जिसके खेतमें उत्पन्नहुये १६० ॥

(अथ परभूमौसेतु कूपादि करण नियमाः)

ननिषेध्योल्पबाधस्तुसेतुःकल्याणकारकः। परभूमिंहरन्कूपःस्वल्पक्षेत्रोबहूदकः १६१ ॥

अक्ष०—पराई भूमि हरतेहुये थोड़ाबाधक सेतु जो कल्याणकारकहो निषेध करने योग्यनहीं एवंकूपभी जो थोड़ा खेतघेरनेवाला बहुत जलकाहो १६१ ॥

अभि०—जहाँ पराई भूमिका भी यद्यपि नाशहोना संभवहो जिसमें कोई सेतु अथवा कूप बावड़ी आदि जलाशय निर्मितकरनेकी इच्छा खड़ीकरताहो और उस भूमिके स्वामी से इसकामकी आज्ञा मिलनी किसी प्रकारसेभी इच्छा रखताहो तौ उस भूमि स्वामी को निषेधकरना योग्य नहीं और सिद्धांत इसका यह कि जो वह उसको मूल्य आदि प्रकारोंसे भी देने में अनुरोधकरै तौ फिर राजाके विचार से होसक्ताहै पर उस विचार में इनबातोंकी प्रतिज्ञा है कि वहसेतु अथवा कूप तड़ाग आदि थोड़ी हानिकारक होकर बहुतसा उपकार करनेवाला संभव हो तौ बनिसक्ता है अन्यथा जब नद्यादि समीपता आदि कारणों से या और भांति के ही किसी कारणसे कुछ थोड़ालाभ हानि बहुत समुझि परती हो तौ बनिसकने का प्रतिषेध होगा अथवा जहांहानि लाभ बराबर हों तौभी नहीं बनिसक्ता क्योंकि जितनालाभ अनेकोंको मिलकर समुझागया उतनी हानि केवलएक भूमि स्वामीपर आरूढ़ हुई सो यह न्याय विरुद्ध है १६१ ॥

अधि०—अत्रनारदवचन प्रमाणं-यथा-(परक्षेत्रस्यमध्येतुसेतुर्नप्रतिषिध्यते। महागुणोल्पदोषश्चेद्वृद्धिरिष्टाक्षयेसति)अर्थात्-पराये खेतमेंभी सेतुनहीं रुकता है पर जो बहुतसा गुण देनेवाला थोड़ा दोषिल हो क्योंकि अतिशय वृद्धि थोड़ीहानि होनेपर भी प्रियहोतीहै-सेतुभी दोभांति का होताहै-तथाचनारदः-(सेतुश्चद्विविधोज्ञेयःखेयोबंध्यस्तथैवच। तोयप्रवर्त्तनात्खेयोबंध्यःस्यात्तन्निवर्त्तनात्)अर्थात्-सेतु दोभांति कासमुझनापहिला खेयदूसराबंध्य किंतु जलकीप्रवृत्ति जारीकरनेवाला खेयकहिलाताजैसे नालीआदि दूसराबंध्य पुलकी जाति उसे कहते हैं कि जलपर बांधलगानेसे मनुष्यादिक पारहोसकें यद्वा किसी और कामकी सिद्धि समुझीजाय-यह सब नियम क्षेत्र स्वामीके प्रतिकहेगये अब निचले मूलश्लोकसे बनानेवालेको उपदेशहोगा १६१ ॥

स्वामिनेयोऽनिवेद्यैवक्षेत्रेसेतुंप्रवर्त्तयेत्। उत्पन्नेस्वामिनोभोगस्तदभावेमहीपतेः १६२ ॥

अक्ष०—जो स्वामीको निवेदन करनेविनासेतु उसके खेतमें प्रवार्त्तत करै तौ संसिद्ध होजानेपर स्वामीका भोगहो उसके अभावमें महीपतिका १६२ ॥

अभि०—सेतु अथवा कूप तड़ागआदि बनाने वालेको यह योग्यहै कि जिस धरती

में बनाना सोचे उसके स्वामीसे या स्वामीके अधिष्ठित वंशियोंसे इसबातकी आज्ञा चाहै पुण्य अर्थ यद्वादाम देकर पहलेलेले अथवा स्वामी आदिके अभावहोने में उस देशके राजासेही आज्ञा लेकर निर्मित करै तौ उसबस्तुका वह आपस्वामी है-पर जो स्वामी या स्वामीके वंशियोंको जतलाये विना अथवा उसके अभावमें राजा की भी आज्ञालिये बिनापराये खेत में जलाशय आदि निर्मित करै तौ उसकाम के बनिजानेपर क्षेत्रस्वामी काही भोगहोगा किंतु क्षेत्रस्वामी उसका मालिकहोकर लाभ उठावै अथवास्वामीके नहोनेमें उसदेशकाराजा मालिकहो यहीउसपरदंड है १६२॥

अधि०-अत्रसदाशिवः-(वापीकूपतड़ागानांखननंवृक्षरोपणम्। परानिष्टकरेदेशेनगृहं कर्त्तुमर्हति)अर्थात्-जहां पराया अप्रिय होना समुझाजाय ऐसी भूमिपर वापी कूप तड़ागोंका खोदना तथा वृक्षोंका लगाना और स्थानका बनाना कर्त्ता करसकने यो-ग्य नहीं-सेतु कूप तड़ाग आदि जो पहिलेबने बिगड़े परेहों और उनका संस्कार मर-म्मत आदि कोई करनाचाहै तौ भी यही व्यवस्थाहै जो अभीऊपरकही-तदाहनारदः-(पूर्वप्रवृत्तमुत्पन्नमपृष्ट्वास्वामिनंतुयः। सेतुंप्रवर्त्तयेत्कश्चिन्नसतत्फलभाग्भवेत् ॥ मृतेतु-स्वामिनिपुनस्तद्वंश्येवापिमानवे। राजानमामंत्र्यततःकुर्यात्सेतुप्रवर्त्तनम्)अर्थात्-पहि लाजारी हुआ बिगड़ा खारिज पराहो या गुप्त धरतीमेंसे खुलिकर उत्पन्न हुआहो ऐसा कोई सेतु जलाशय जो स्वामीके बूझे बिना मरम्मति करिकै जारीकरै सो वहजारी करनेवाला उसके लाभादिक फलका मालिक नहीं होगा-इसलिये उसके स्वामीसेही बूझिकर मरम्मतकरै यद्वा स्वामीके मरजानेमें उसके बंशके अधिकर्त्ता लोगोंसे या उनके भी अभाव में उसदेशके राजासे निवेदन करिकै सेतुजारीकरै-कात्यायनोपि-(अस्वाम्यनुमतेनैवसंस्कारंकुरुतेतुयः । गृहोद्यानतड़ागानांसंस्कर्त्तालभतेनतु ॥ देयं स्वामिनिचायातेतन्निवेद्यनृपेयदि । अथावेद्यप्रयुक्तस्तुतद्गतंलभतेव्ययम्)अर्थात्-कात्यायन भी यह कहतेहैं कि जो कोईपुरुष गृहदेवादि मंदिर या उद्यानतड़ागवापी कूप आदि किसी पहलीबनी चीजोंकी मरम्मत स्वामीके अनुमत बिनाकरताहै वह उन चीजोंका मालिक नहींहोता परन्तु इतनान्याय विशेषहै कि जो स्वामीके अनु-पस्थित होनेमेंराजासे निवेदन करिकै संस्कार कियाहो और उसवस्तुका स्वामीकभी विदेशते आजाय और वहदावाकरै तब तौ राजादावाकरनेवाले स्वामीसे वहखर्चाउसे दिलासक्ता है जो वस्तुकी मरम्मतमध्ये उठाहो और उसवस्तुके लाभों द्वारावसूल अबतक नहोसकाहो किंतु जहांराजाकीभी आज्ञाविनास्वतः मरम्मतकरीहो तहांउस का खर्चाराजानहीं दिलावै और वहवस्तु दावाकरनेवाले सच्चेस्वामीको मिलैगी जब स्वामी निपट नहो तौ फिर धरणीपाल मालिकहै कि जैसानियम ऊपर कहा गया॥

(अथजलग्रहणाधिकारः)-तदाहसदाशिवः(देवार्थंदत्तकूपादौतथास्रोतस्वतीजले। पानाधि

कारिणःसर्वेसेचनेऽन्तिकवासिनः ॥ यत्तोयसेचनाल्लोकाभवेयुर्जलकातराः। नासिंचेयुर्जलंतस्मादपिसन्निधिवर्त्तिनः)अर्थात्-देव निमित्त बनाये हुये यद्वापुण्यहेतु बनाकर छोड़ेहुये कूप बावड़ी आदिमें तथैव स्रोतस्वती नामनदियोंके जलमें भी स्नान पान करने के अधिकारी सब साधारण होते हैं और खेत बागीचा आदि सींचनेमें अधिकारी केवल जलके समीप वासी लोग चाहै उसके स्वामी वा अस्वामीहों होते हैं परंच जिस थोड़े जलमें खेत सींचनेसे पीनेवाले लोगजलसे व्याकुलहों तिसमें से समीपवासीभी न सींचैं किंतु सींचनेका अधिकारनहीं १६२॥

(अथस्वीकृतक्षेत्रस्याकर्षणादिनियमाः)

फालाहनमपिक्षेत्रंयोनकुर्यान्नकारयेत्। सप्रदाप्यःकृष्टफलंक्षेत्रमन्येनकारयेत् १६३॥

अक्ष०-फाल विदारित भी जो खेतको न करै न करवावै सो कृष्टफल दिलवाने योग्यहै और खेत किसी और से करवावे १६३॥

अभि०-यदि कोई क्षेत्र कर्षक क्षेत्र स्वामीके पास जाकर ऐसा अंगीकार करै कि यह अमुक नामा खेत अबकी मैं जोतोंगा और पीछे उसे उपेक्षाकरके छोड़दे किंतु किसी औरसेभी नहीं करवावै तौ इसदशामें वह खेत यद्यपि फालाहतहो किन्तु थोड़ाही हलफेरागया हो जिस्से बीजबोने योग्य तकभी नहीं तौ भी उस्से कृष्टफल अर्थात् जोत होनेकी भेज दिलाईजाय और वह खेत उस्से लेकर किसी और जोताको देदियाजाय-यदि उस खेतकी कुछ भेज नियत न हो तौ उस खेतके सामंत कृषाणों द्वारा पैदावारके अनुमानसे कल्पितहोकरलीजाय १६३॥

अधि०-व्यासजीने व्यौरेवार इसको कहाहै-यथा-(क्षेत्रंगृहीत्वायःकश्चिन्नकुर्यान्नच कारयेत्। स्वामिनेसशदंदाप्योराज्ञेदंडंचतत्समम्॥ चिरावसन्नेदशमंकृष्यमाणेतथाष्टकम्। सुसंस्कृतेऽपिषष्टंस्यात्परिकल्प्ययथास्थितिः)-अर्थात्-जो कोईखेत लेकर नतौ आपकरै न किसी औरसे करवावै सो वह क्षेत्रस्वामीको (शद) नाम पैदावारीकाफल दिलवाने योग्यहै और राजाको भी उस अपराधके समान दंड-पर जिसखेतकी कुछ भेज नियत न हो किंतु पैदावारीहोनेपर फलभागलियाजाताहो तिसका कृष्टफल बिन देखे स्वामीको कितना दिलवायाजाय ऐसी आशंका मध्ये फिर भी नियमकरतेहैं कि-जो उस जोता ने (चिरावसन्न) खेत अंगीकार करिकै छोड़ाहो तौ उसखेतकी पैदावारी सामंतों द्वारा निर्णयकरीजावै कि जो यह खेत जोता बोयाजाता तौ अनुमान पैदावारी इतनी होसक्ती तिसका दशवाँभाग स्वामीको दिलवायाजाय (चिरावसन्न) खेत उसको समुझो जो अतिकालसे जुतने विना बिगड़ा पराहो-एवं जो कोई खेतसिर्फ पहिलीसाल या दो सालही जुतिचुकाहो ऐसा खेत लेकर छोड़िदेवै तौ उस जोतासे सामन्तों द्वारा निर्णयकरी पैदावारी का आठवाँ भाग स्वामीको दिलवायाजाय-एवं

जो कोई खेत सुसंस्कृत हो किन्तु अनेकवर्षों से जुतिकर सिद्धहुआहो ऐसाखेत लेकर छोड़िदेनेसे आनुमानिक पैदावारीका छठाभागदिलवायाजाय(अथ अनाज्ञप्तकर्षकनियमः) यदि कोई खेतस्वामी की सामर्थ्य विकलता आदि किसीदुर्हेतुसे गिरकर नीच अवस्था पहुंचाहो किंतु बंजर तुल्य होजाय और इसदशा में यदि कोई जोतास्वामी के प्रतिषेधबिना अनुज्ञाहीन भी आपही उसको जोतै बोवै तौ उसखेतका फलस्वामी को दिलायानहीं जासक्ता किन्तु जोता आप सर्वथाभोगै-तदाहनारदः-(अशक्तप्रेतनष्टेषुक्षेत्रिकेष्वनिवारितः। क्षेत्रंचेद्विकृषेत्कश्चिदश्नुवीतसतत्फलम्॥ विकृष्यमाणेक्षेत्रेतु क्षेत्रिकःपुनराव्रजेत्। खिलोपचारंतत्सर्वंदत्वाक्षेत्रमवाप्नुयात्॥ संवत्सरेणार्द्धखिलमितःस्याद्वत्सरैस्त्रिभिः। पंचवर्षावसन्नात्तुक्षेत्रंस्यादटवीसमम्) अर्थात्-क्षेत्रस्वामियों के असमर्थ होजाने या मरजाने या देशान्तर को बहिजाने में उनका बिगड़ा खेत यदि कोई अनिवारित जोता जोतै तौ उसखेत का फल.पैदावारी आप भोगै (यहाँ अनिवारितके विशेषणसे यह भावहै कि जोवह जोता जोत करतेसमय किसी अधिकारी करके रोकागयाहो तौ उसखेतको बोलेनेसे पैदावारी का फल देना होगा-कदाचित् अनिवारित नेही ऐसाखेत जोताहो और दैवाधीन विदेशमें बहिजानेवाला वा असमर्थ उपस्थित स्वामी या मृतस्वामीके पुत्रादिकही जुतिजाने पीछे आकर ऐसा कहैं कि खेत हमारा छोड़दे तौ उसखेतका यथोचित (खिलउपचार) देकर स्वामी पासक्ता है अर्थात् बिगड़े खेतकी दुरुस्तीमें जुताई आदि जो कुछ खर्चहुआहो सो सब देकर स्वामी खेतको लेसक्ताहै थोड़ा अथवा बहुत बिगड़े खेतकी अवस्था समुझीजानेके निमित्तसे (खिल) का लक्षण भी अब कहितेहैं कि-एकबर्षमात्र बिना जुता खेत परा रहिनेसे (अर्द्धखिल) कहिलाता है अर्थात् अर्द्ध विकृतसमुझाजाता क्योंकि यत्नकरनेसे वह शीघ्र सुधरिसक्ता है-एवं तीन बर्षोंका बिनजुताखेत पूरा (खिल) अर्थात् बहुतबिगड़ा समुझाजाता क्योंकि ऐसाखेत बड़े यत्नोंसेफिर ठीक होताहै-एवं पाँच बर्षोंका बिन जुता खेत (अटवीतुल्य) बंजर जैसी बनकी भूमि शक्तिहीनहोजाता है पुनि बड़ी कठिनतासे अतिकाल में संसिद्ध होताहै (यहाँ (खिल) के रूप दर्शित करने से यह सारहै कि इनमेंसे जिस भाँतिका खिलखेत उस अनिवारित जोता ने जोतिकर सम्पन्न कियाहो उसी भाँतिकी लागति उसे दिलाईजाय) कदाचित् उस खिल भंजन की लागति स्वामी देनेमें असमर्थहो तौ उस जोतासे पैदावारीका आठवाँ अंश क्षेत्रस्वामी को आठ वर्षोंतक दिलवायाजाय तबतक खेत नहीं छुटिसक्ता है-तदाह कात्यायनः-(अशक्तितोनदद्याच्चखिलार्थंयःकृतोव्ययः। तदष्टभागहीनन्तु कर्षकःफलमाप्नुयात्॥ वर्षाण्यष्टौसभोक्तास्यात्परतःस्वामिनेतुतत्)अर्थात्-खिलभंजन में जो लागति वा परिश्रम का व्ययकियाहो सोभी यदि असमर्थ होनेसे स्वामीनहीं

देवै तो यह न्यायहोना योग्यहै किजोता उसकी पैदावारीको आठवांभाग हीन पाया करै किन्तु आठवाँ भाग स्वामीको देदेतारहे इसभाँति आठ वर्षोंतक वह जोताखेत भोगै तिसके पीछे खेत स्वामी को देदेवै-बिरलीभूमि-औरभी इस भाँतिहोती हैं कि जिनको हरकोई जोता बिना बूझे जोतिसक्ताहै-तदाहसदाशिवः-(करहीनाऽप्रतिहता वन्याऽऽरण्यातिदुर्गमा। अनादिष्टोऽपितांभूमिंसंपन्नांकर्त्तुमर्हति॥ बहुप्रयाससाध्यायास्तस्याभूमेर्महीभृते। दत्वादशांशंभुंजीतभूमिस्वामीयतोनृपः)-अर्थात्-यदिकोई भूमि राजकरसे हीनपरी चाहै (बन्या) नाम जलकीहो या (आरण्या) नाम बनकीहो या अति दुर्गम स्थानकी पर (अप्रतिहत) रोक टोकसे निर्विघ्नहो तिसको राजाकी अनुज्ञामांगे बिना भी हरकोई चैन चियारसे सम्पन्न करने योग्यहै-परन्तु ऐसी बहुत परिश्रमसे संसिद्ध होसकनेवाली उक्त धरतीकी पैदावारीका दशांश धरणीपालको देकर शेष भोगै क्योंकि राजा धरतीका स्वामीहै १६३॥ इतिसीमा विवादप्रकरणम्॥

यहाँतक यह सीमा विवादका प्रकरण चारिपरिच्छेदों में अर्थात् ६३ से लेकर ६६ संख्याके परिच्छेदतकसमाप्तहुआ॥

अथपशुव्यतिक्रमवादपदधर्मविशेषेस्वामिपालानांदण्डविधिविवेकोनाम सप्तषष्टितमःपरिच्छेदः ६७॥

इस सरसठि संख्या के परिच्छेद में गवादि पशुओं के व्यतिक्रमसे स्वामी तथा गोरक्षक आदि पशुपालों के विवादधर्म्म जानेजायँगे कि खेत खाने वाले आदि पशुओंकी अपेक्षा किसपर कितना दंड होना योग्य है (या) छूटमें जो गिनतीहों तिनके अपवाद भी सब जाने जायँगे॥

माषानष्टौतुमहिषीसस्यघातस्यकारिणी। दंडनीयातदर्द्धंतुगौस्तदर्द्धमजाविकम् १६४॥
भक्षयित्वोपविष्टानांयथोक्ताद्द्विगुणोदमः। सममेषांविवीतेऽपिखरोष्ट्रंमहिषीसमम् १६५॥
यावत्सस्यंविनश्येत्तुतावत्स्यात्क्षेत्रिणःफलम्। गोपस्ताड्यस्तुगोमीतुपूर्वोक्तंदंडमर्हति १६६॥

अक्ष०—पराया सस्य विनाश करनेवाली भैंस आठ माष दंड योग्य है एवं चार माष दंडगायकोदो माष दंड बकरी तथा भेड़को कर्त्तव्यहै १६४ खूबचरिकर खेतमें जो बैठेहों तिन पर इसते दूना दंड-इन्हीं सब का दंड जो कुछ (सस्य) खड़ी खेती मध्ये कहा तिसके तुल्य (विवीत) चरनेपरभी योग्यहै-और-गधव तथा ऊँटकोभी भैंस के बराबर दंड १६५ जितना सस्य बिनाशहोवै उतनी पैदावारी खेतवालेको दिलाई जाय और गोपाल ताड़नीयहै गोस्वामी उक्तदण्डके भी योग्यहै १६६॥

अभि०—सहत्रयाणां (सस्य) नाम खड़ीखेती और वृक्षादिकमें जोलगेहुये फलपुष्पादिकहों तिनकाहै (विवीत) नाम रखाईहुईघास आदिका विभक्तभूप्रदेश या बँधाहुआ वाड़ा तिनदोनोंका दण्डदोनों दशामें तुल्यात्मकहै अर्थात् साधारण चरनेमात्रमें इक

हिरा दण्ड जो कुछ पहलेकहा तिससे दूना चरिकर बैठिरहने मध्ये जानो-इसीप्रकार भैंसका जोदण्ड जहाँइकहिराहो सोई गर्दभ ऊँटको इकहिरा समुझो अथवा जहाँदूना हो तहाँ गर्दभ ऊँटकोभी दूना समुझिलेना-इकहिरा अथवा दूनादण्डजो कुछ पशुओं का नामलेकरकहा सो उन पशुओंके रक्षक या स्वामियोंपर समुझना किंतु पशुओंका नामलेना केवल प्रत्येक जीवपर वहउक्तदण्ड दर्शाना अभिप्रेतहै १६४। १६५ कदा-चित् ऐसीभाँतिसे चरिलियाहो जिस्से पैदावारी मारीजानी समुझीजाय तबयह उक्त दण्ड और वहपैदावारी दोनोंही स्वामियोंसे दिलवाई जाय-पैदावारीका अनुमान जो कुछ खेतके सामन्त कृषाणोंद्वारा निश्चयहो सो दिलवाने योग्य है कि इतने खेतमें इतना फल उत्पन्न होसक्ताथा और वहगोप जो उन पशुओंका रखवालाहो सोभी ताड़न पीटन योग्यहै पर पैदावारी देनेयोग्य नहीं १६६॥

अधि०—इसवार्तामें यह निर्णय भी कर्तव्यहै कि जहाँ गोपकेही अपराधसे उन पशु-ओंने विनाशकियाहो तहाँ ताड़न पीटन सहित ऊर्ध्वोक्त धन दंड उसी गोपसे दिल वायाजाय-तथाचोक्तं (यानष्टापालदोषेणगोस्तुसस्यानिनाशयेत्। नतत्रगोमिनांदंडः पालस्तंदंडमर्हति) अर्थात्-जो कोई गऊ भैंस आदि गोपालके अपराधसे खोईहुई सस्य विनाशै तहाँ गोस्वामियोंको दंडहोना योग्य नहीं किन्तु कहेहुये दंडयोग्य गोपा-लहै-और जहाँ स्वामीके अपराधसे उनपशुओंने विनाश कियाहो तहाँ स्वामी उक्त दंड के योग्य है-परंतु (जो कुछ खेतीका नुकसान देनापरै सो सर्वत्र स्वामीको देनाहोगा उसमें अपराध चाहे तिसकाहो क्योंकि क्षेत्रफलको खाइकर पुष्टहुई भैंस आदि दूध केवल स्वामीकोही देती है) तथापि यह न्याय केवल ऐसे स्थलपर समुझना जहाँ गोप केवल भोजन वस्त्र पाइकर दासत्वके प्रकारोंके बेतन बिना चराताहो किंतु कृत बेतन गोप निज अपराधोंसे नुकसान भी दिलाने योग्यहै-भक्षण करिके खेतमें जो सोये बैठेहों तिनका दूना दंड मूल वाक्य में कहचुके हैं पर जो बच्चा सहितहों तिन पर वही दंड चौगुना समुझो—तथाचस्मृत्यंतरं (वसतांद्विगुणःप्रोक्तोसवत्सानांच-तुर्गुणः) यह वचन भी प्रत्येक पशू पीछे उक्त दंड दर्शाता है—सर्वत्र यहां दण्डका परिमाण ताम्रमाष समुझो किंतु राजत या सौ वर्णिकमाषनहीं-मनुने रूँधे खेतों-पर सौपण का दण्ड कहकर सामान्य खेतों के भी चरने से (सपादपण) अर्थात् एक और चौथाई पणका दण्ड देनालिखा है और खेतीका नुकसानदेना सर्वत्र सभीखेतों की अपेक्षासे-यथा (क्षेत्रेष्वन्येषुतुपशुःसपादंपणमर्हति । सर्वत्रतुसदोदेयःक्षेत्रिकस्ये-तिधारणा) इसको यहां लिखनेका यह प्रयोजन है कि मनुने योगीश्वरकी अपेक्षा दण्ड अधिक लिखा तिसमें संग्रहकारों का यह विचार है कि मनुकावह अधिक दण्ड इच्छासहित चरादेने मध्ये और योगीश्वरवाला थोड़ा दंड दैवाधीन स्वतःचारि

जाने मध्ये जानो क्योंकि इच्छासहित चरानेमें योगीश्वरने भी चोरोंके समान दंड कहाहै अथवा जैसा जहां देशकाल वस्तुके अनुरूप डौल समुझाजाय उस्से एकभी विरोध नहीं है-इसके सिवाय और भी स्मृत्यंतर वाक्यहै कि(पणस्यपादौद्वौगांतुद्विगुणंमाहिषींतथा। तथाऽजाऽविकवत्सानांपादोदंडःप्रकीर्तितः)अर्थात्-एक पणके दोपाद किंतु आधापण गऊपीछे तथाभैंसपीछे पूरा एकपण तथैव भेड़बकरी और बड़े पशुओंके बच्चाओं पर चौथाई पणका दण्ड होना योग्यहै-सो यह दंडभी योगीश्वरकी अपेक्षा बहुतबड़ाहै इसलिये इसको चरिकर खेतमें निवासकरनेके अपराध मध्ये संग्रहकार कहते हैं इसके सिवाय नारदने अति स्वल्प दंडलिखा है-यथा (माषंगां दापयेद्दंडंद्वौमाषौमहिषींतथा । तथाऽजाऽविकवत्सानांदंडःस्यादर्द्धमाषिकः) अर्थात्-गायपीछे एकमाष भैंसपीछे दो माषदंड एवंभेड़बकरी और बड़े पशुओंके बच्चाओं पीछे आधा माषदंड होवै-संग्रहकारोंने इसदंडको न्यायानुसार सिर्फ़ मुहूर्त्तमात्र चरने मध्ये माना है-यतःशंखलिखितौतु(रात्रौचरन्तीगौःपंचमाषान्दिवात्रीन्मुहूर्तेमाषंग्रासे त्वदंडम्)अर्थात्-रात्रिमें चरनेवाली एकगऊपीछे पांच माष दण्ड दिनमें तीनमाषपर जो एक मुहूर्तमात्रचरी हो तौफिर सिर्फ़ एक माष दण्डचाहे राति अथवा दिनहो और जो केवलग्रासमात्रलेभागीहो तौफिर किसीकोभी दण्डनहीं-अतएवाहबृहस्पतिः (सस्यान्निवारयेद्गांतुचीर्णेदोषोद्वयोर्भवेत् । स्वामीसदद्मंदाप्यःपालस्ताडनमर्हति) अर्थात्-पशुचाहे गऊतकभीहो खेतसे पहुँचते सारहटावै अधिक थँभनेमें दोनों दोषी होंगे और गोस्वामी क्षेत्रफलका नुकसान तथा जुर्मानाभी दिलाने योग्यहोगा और गोपाल ताड़न योग्यहै-आशय इसका यह कि जो गोस्वामी के अपराधसे कुछसस्य विनाशहुआ समुझाजाय तो गोस्वामी दोनों बातके योग्य है और जो स्वामी तथा गोप दोनोंका अपराधहो तो यह कथन दोनोंका भिन्न भिन्नजानो-और खेतीका नुकसान दिलाना उसीदशामें संसूचितहै कि जहाँ मूल सहित खेतीचरीहो-तथाहनारदः (समूलसस्यनाशेतुतत्स्वामीप्राप्नुयात्सदम् । बधेनगोपोमुच्येतदंडंस्वामिनिपातयेत) अर्थात्-जड़से खेती नाशहोनेमें खेतीका मालिक अपने क्षेत्रफलकी हानिपावै गोपाल देहदंड पाकर छूटिजावै और क्षेत्रफलकी हानिरूप धनदंड पशुके स्वामी में डालाजाय क्योंकि खेती खानेसे पशू उसका पुष्ट हुआ-यह न्याय केवल ऐसे स्थलपर संसूचित है कि जहाँ गोप केवल भोजन वस्त्र पाइकर दासत्वके प्रकारों से पशुपालन आदि स्वामिसेवा करताहो किन्तु जहाँ जहाँ गोपाल कृत वेतन होकर पशू चराताहो तहाँ तहाँ सर्वत्र निज अपराधों से विनाशे हुये सस्योंकानुकसान भी दिलाने योग्य है (वल्कि) इसकी दृढ़ताकीअपेक्षा १६९ तथा १७० वाले मूल श्लोकोंको भी अर्थों सहित विचारो तब संदेह दूरहोगा-क्षेत्र फल भी वही दिलायाजाय जो कछ खेतके सामन्त

कि सानों के अनुमान द्वारा निश्चितहो –यथाहनारदः(गवादिनाशितंधान्यं योनरः प्रतियाचते। सामंतानुमतंदेयं धान्यंयत्तत्रवापितम्)अर्थात्-गवादि पशुओंका विनाश किया धान्य जोकोई पुरुषमांगे तौ सामन्तोंका अनुमान किया उतनाधान्य जो उस चरीहुई भूमिपर उत्पन्नहोना आँकैं कूतैं वही दिलायाजाय जो कुछ बोयागयाथा (इस वचनमें(सस्य)के स्थानधान्य शब्दलिखनेसे यहआशयहै कि खड़ेहुये सस्योंकेसिवाय कटाहुआ धान्यभी यदि खायाहो तौभी देनाहोगा) जबकि सामन्तों के अनुमानसे जितने खेतकी फलहानि कृषाणको दिलवाईजाय तबउसधान्यका पलाल नरईआदि जोकुछ पशुओंके चरनेसे बचिगयाहो सो उन पशुओंके स्वामियों को दिलायाजाय क्योंकि मध्यस्थोंका कल्पितकिया मूल्यदेनेसे खरीदके तुल्य ठहरा तथाहनारदः(पलालङ्कोमिनान्देयन्धान्यंवैकर्षकस्यतु) इसविषयपर एक उशनाका यहवचनहैकि (गोभिस्तुभक्षितन्धान्यंयोनरःप्रतियाचते।पितरस्तस्यनाश्नन्तिनवापित्रिदिवौकसः) अर्थात् उशना कहतेहैं कि गौओंका भक्षणकिया धान्यजोकोई पुरुष मांगताहै तिसके पितर और देवताभी भोजन उसके घरमें नहींकरतेहैं-सो-इसवचनके आशयसे सर्वत्रखेती कीहानि मांगनेका प्रतिषेध नहीं समुझाजासक्ता क्योंकि उशनाका यहवचनभीअग्रोक्तहै कि (अदण्ड्याश्चोत्सवेगावःश्राद्धकालेतथैवच)अर्थात् सभी गौवें केवलगोवर्द्धन पूजा आदिउत्सव कालोंमें तथैव श्राद्धकालमें अदंड्य हैं अर्थात् सब गौओंके उत्सव कालमें जोकुछ उनसे हानिहुई हो सोभी नहीं दिलाईजाय यह अपवाद केवल उत्सव कालकादर्शायाहै और श्राद्धकालका यहआशयहै कि जो कोई श्राद्ध करनेपर समुद्यत होउसीका यदिखेत आदि कोई सस्य अथवा धान्य किसी अन्यकी गौओंने चरिलिया हो तौ यह ऐसे अवसरकी हानि श्राद्धकर्त्ता उस्से माँगै नहीं क्योंकि उसके पितरोंकी तृप्ति में कुछ अन्तरहोना संभवहै वलिक अदंड्य कहनेका यथार्थ आशय यही है कि श्राद्धकर्त्ता गौओंको उसकालमें मारेपीटै नहीं-क्योंकि ऐसे कालकी हानिसेभी इस का कल्याणहोना व्यासजीने सूचनकियाहै-यथा (आक्रम्यचद्विजैर्भुक्तंपरिक्षीणंचबांधवैः। गोभिश्चनरशार्दूलवाजपेयाद्विशिष्यते) अर्थात्-व्यास कहते हैं कि हे नरदेव किसी गृहस्थीके उत्सव मंगल आदि में द्विजोत्तम लोगोंने आपही आकर भोजन कियाहो अथवा वन्धु लोगों के खानेसे भक्ष्यादिक चुकेहों इसीप्रकार गौओं के चरि लेनेसे कुछ हानिहुईहो तौ यह तीनों वातें वाजपेय नामक यज्ञसेभी उत्तम हैं इस हेतुसे अपशोच करना व्यर्थ है-सो-इसवातका भी आशय केवल गौओंसे अपेक्षा रखताहै किन्तु सब सामान्य पशुओंका संबन्ध इसमें नहीं है-औरभी ऊपरले वाक्य में जो देव अथवा पितरोंकी अतृप्ति सूचितहुई सोभी केवल श्रद्धावान् समर्थों के हित शिक्षामात्रहै किंतु सब सामान्य पुरुषोंका संबंध उस्सेनहींहै १६४।१६५।१६६

(अथ अपवादप्रसंगः)

पथिग्रामविवीतांतेक्षेत्रेदोषोनविद्यते। अकामतःकामचारेचौरवद्दंडमर्हति १६७॥
महोक्षोत्सृष्टपशवःसूतिकागंतुकादयः। पालोयेषांचतेमोच्यादैवराजपरिप्लुताः १६८॥

ऐ०—मार्गमें जो खेत हो या ग्रामके समीपहो (विवीत) के निकटहो तिस को विना चाहे दैवयोग से चरिलेनेमें अपराध नहींहै किंतु नतौ पैदावारी का नुकसान कुछ दिलवायाजाय और न स्वामी अथवा गोपको कुछ दंड हो परन्तु इच्छा पूर्व चाहिकर चरानेसे चोरोंके समान दंडयोग्यहै और हानिभी दिलाईजाय १६७॥ (महोक्ष)नाम सेक्तावृषभ जो गौओंके बीज निमित्त रक्खाजाता है (उत्सृष्टपशू) कोईजातिके जो देवनिमित्त या पितृकर्म निमित्त छोड़े गयेहों (सूतिका)ब्याईहुई गऊभैंसआदि जोदश दिनके भीतर ब्याई हो (आगंतुकपशु) कोईसा जो अपने यूथ समूह से छूटाहुआभूलि भटकि दूरपहुंचा हो आदि शब्दके आशय से औरभी इसभांतिकेसमुझने जैसेमृतवत्साआदि जो हाल बच्चामरनेसे विकलहो या अतिवृद्ध दुर्बलआदि या जे कोईइस की अधिकोक्तिमेंभी आवैंगे समुझने (दैवपरिप्लुत) जोदैवी पीड़ाके मारेहुये या (राजपरिप्लुत)राजपीड़ासे पीड़ितहोकर भगेहों इनमें जिनका पालक विद्यमानहो वेभी मोचनीय किन्तुस्वामी पालकसहित अदंड्य हैं और इसकथनसे यहबातभी स्पष्टहै कि इनमें कहेहुये साँड़आदि जिस किसीका पालक पुरुष न होताहो वेतौ स्वतः सदैव निःसंदेह अदंड्यहोतेहैं चाहे कितनाही नुकसानकियाहो १६८॥

अधि०—यहाँ पहले मूलश्लोकमें (विवीत) के नगीचखेत कहनेका यह आशयहै कि जहाँ कोई घासआदि तृणकी भूमिकेवल पशुओंके चरानेहेतु छोड़ीजाकर सदाचरायेजातेहों तिसहीके नगीचमें यदि कोईखेतहो अथवा मार्गमें या ग्रामके समीपहो तौ इनखेत विशेषोंको दैवयोगसे चरिजानेवाले सब सामान्य पशु कोई भी अपराधीनहीं हैं परंच ऐसी छूटकेवल उसी अवस्थातक होसक्ती है यदिखेत अनावृतहो किन्तु रूँधेहुये खेतको विनाश करनेवाले इन स्थानोंपरभी दंडभागीहोंगे-तथाचमनुः(यत्रापरिवृतंधान्यंविहिंस्युःपशवोयदि। नतत्रप्रणयेद्दंडंनृपतिःपशुरक्षिणाम्॥ पथिक्षेत्रेपरिवृतेग्रामान्तीयेऽथवापुनः। सपालःशतदण्डार्होविपालान्वारयेत्पशून्) अर्थात्-जहाँ विना रूँधाखेत पशुविनाशैं तहाँ राजा उनके रक्षक लोगोंको कुछ दण्ड न देवे-परंच यदिकोई रूँधाखेत यद्यपि मार्ग अथवा ग्रामके समीपहो तौ उसखेतको विनाशकरने मध्ये एकसौ १०० पणदण्ड उस प्रत्येक पशूपर कर्तव्य है कि जिनका गोप अथवा स्वामी विद्यमानहो और वह अवसर होते हुये बचावैनहीं किंतुयह सौपणका दण्ड उसी गोरक्षकपर कर्तव्यहै और जेकोई पशू (विपाल) ऐसेहों कि जिनका कोईस्वामी अथवा रक्षक नियतनहो जैसे देव निमित्त छोड़ेहुये पशू आदि तिनको खेतवाला

आप हटावै क्योंकि अस्वामिकहोनेके हेतुसे उनपर दंडका अभाव है (सपाल) और (विपाल) शब्दोंका भावार्थ मनु मुक्तावली टीकामें यह रक्खागया है कि जिनके पालक साथहों उन्हीं पशुओंको सपालजानो एवं जिन पशुओंके पालक साथ न हों तिन्हें विपालजानो) पर इस अर्थसे यह दूषण खड़ाहोताहै कि जो जो पालक लोग ठेठ इसी निमित्त छोड़िदेतेहों कि चाहै तिसका रूँधाखेत भी चरिआवै और निजपेट भरनेपछि घरको आप चलीआवै तौ भी पालक दंड न पावै बल्कि इसमें क्रूर चारक लोगोंको भी बड़ेसहारेका यह उत्तर है कि मैं इन पशुओंकेसाथ नहीं किंतु पीछेथा) इत्यादि गूढ़ कारणोंसे सस्वामिक पशुओंको अस्वामिक तुल्य छोड़ि देनाही अपराध विशेषहै इसहेतुसे (विपाल) वेही पशूजानो जिनका व्योरा १६८ वाले मूल श्लोकसे ऐक्यार्थमें आचुकाहै और आगे उसकी अधिकोक्तिमें भी आवैगा तिनसे खेतवाला आप रखावै यह सिद्धान्तहै-इसीहेतुसे उन खेतोंके चौतरफा रूंधिलगानेकी भी आज्ञाहै-तथाहमनुः-(वृत्तिंचतत्रकुर्वीतयामुष्ट्रोनावलोकयेत्। छिद्रंनिवारयेत्सर्वंश्वशूकरमुखानुगम्) अर्थात्-जहां खेत बोयाजाय तहां रूंधनी वृत्तिभी वही खेतवाला ऐसी ऊँचीकरै जिस्सेऊँटभी न देखिसकै और उस रूँधिमध्ये काँटे आदि लगाकर ऐसे छिद्रभी न रहिनेदे जिनमें श्वानसूकर आदि किसीका मुँहजासकै-कात्यायनोपि-(अजातेष्वेवसस्येषुकुर्य्यादावरणंमहत्। दुःखेनविनिवार्यंतेलब्धस्वादुरसामृगाः) अर्थात्-खेतजमनेसे पहले बड़ीभारी रूँधिलगावै क्योंकि हरेफरे सस्योंका स्वादुरस चाखेहुये मृगादिक बड़े दुःखोंसे भी नहीं निवारणहोते हैं-बाँधीहुई रूँधिमें घुसिकर चरिजाने मध्ये नारदने भी दण्ड दर्शितकियाहै-यथा-(वृत्तिमुत्क्रम्ययःस्यात्तुसस्यघातोगवादिभिः। पालःसास्योभवेत्तत्रनचेच्छक्तोनिवारयेत्) अर्थात्-गवादि पशुओंसे जो सस्य विनाश रूँधन वृत्तिको उलांघि करके हो तौ उन पशुओंका पालक दण्डनीय है पर उस दशामें कि जो उन पशुओंको निवारण करनेमें समर्थ यद्वा अवसर के होतेहुये बचावै नहीं किंतु दैवाधीन विपत्ति आदि कारणसे बचाय नहीं सकनेमें घुसिजाने या चरिजानेसेभी दंड न होगा-यहाँ (समर्थके होतेहुये) ऐसा कहिनेसे ऊपरले मनुके वाक्य वाली ध्वनि संसिद्धहोतीहै कि जानि बूझिकर सस्वामिकपशुओंको अस्वामिक तुल्य गोचारक विना छोड़ै नहीं और गोचारकभी कदाचित् पशुओंका साथ नहीं छोड़ै-हाँ यदि कोई दैवाधीन विपत्तिही प्रत्यक्षहो तौ वह दोष छूटमें गणनीयहै-इसमें यह निर्णय भी कर्त्तव्यहै कि विना रूँधेखेतके चरिजाने मध्ये दंडका प्रतिषेध यद्यपि कियागया परंतु वह प्रतिषेध केवल स्वल्पकालके मुँहमारजाने मध्ये समुझौ किंतु बहुत कालतक चरिजाने मध्ये गोपालक दंडनीयहै-तथाचविष्णुः-(पथिग्रामविवीतान्तेनदोषोस्वल्पकालकम्)-अर्थात्-मार्ग या ग्राम या विवीतके समीप खेतहोनेसे स्वल्प

कालमात्र चरनेका अपराध नहीं है आशय इसका यह कि बहुतकालमें अपराधहै- यहाँतक अधिकोक्तिका यह पाठ केवल एकसौ सरसठिवाले मूलश्लोक मध्ये समुझो सो यह खेत विशेषोंका अपवाद धर्महै १६७ अब आगे एकसौ अड़सठिमूलश्लोक मध्ये विरले पशू विशेषोंका अपवाद धर्म लिखते हैं कि पहले जो जो दंड पशुओंके व्यतिक्रमसे प्रदर्शित हुये सो अत्रोक्त पशुओंकी अपेक्षामें न समुझेजायँ-तदाहना रदः-(राजगृहग्रहीतोवावज्राशनिहतोऽपिवा । अथसर्पेणदंष्ट्रोवावृक्षाद्वापतितोभवेत्॥ व्याघ्रादिभिर्हतोवापिव्याधिभिर्वाप्युपद्रुतः । नतत्रदोषःपालस्यनचदोषोस्तिगोमिना मू) अर्थात्-राजपीड़ा राजविघ्नपीड़ा ग्रहपीड़ासे पीड़ितपशू या (वज्र) लोह शस्त्रादिसे घायल अथवा (अशनि)नाम बिजलीसे हताहुआ या साँपका काटाहुआ या वृक्षादि ऊँचाईसे गिराहुआ चुटहिलपशूहो या व्याघ्रआदिका माराहुआ या कोईरोग जो पशुओं का दुखदाई होताहो तिसते पीड़ित पशू-इतने आतुर पशुओं से चाहे कितनाही कुछ खेती आदिका नुक्सान बिना रूँधे अथवा रूँधिमें भी हुआहो कोई दण्डभागी इस में नहींहै क्योंकि ऐसे आतुर पशुओंका तत्काल निवारण होसकना यद्वा बन्धन आदि रीतोंसे चौकसी करीजानी भी सुसंगत नहीं समुझी जासक्ती है इसलिये इन के रक्षक अथवा स्वामियोंका भी दोष नहीं माना जासक्ताहै (पर) वह दशा इसमें गिनती नहीं समुझनी जो कि रक्षक अथवा मालिक साथ होकर कोई खेती आदि इनको इच्छा सहित चरावें-किन्तु ऐसे पशुओं को अस्वामिक तुल्य छोड़देने तक अपराध नहीं है-इनके सिवाय विरले पशू अनातुरभी अदंड्य होते हैं-यथाह नारदः-(गौःप्रसूतादशाहात्तुमहोक्षावाजिकुंजराः । निर्धार्याःस्युःप्रयत्नेनतेषांस्वा मीनदंडभाक्)-अर्थात्-दशादिन भीतरकी व्याईगऊ महोक्ष वाजि कुंजर येचारों पशू प्रयत्नसे निर्धार्यहोतेहैं अर्थात् किसीके रोके नहीं रुकिसक्ते इस्से इनका स्वामी दंड भागी नहीं और स्वामीके उपलक्षणसे पालक भी अदंड्यहै चाहै कितनाही नुक्सान दैवाधीन हुआहो-इनमें व्याईगऊ क्षुधा क्षामहोनेसे हरेरीखेती देखि रोके रुकतीनहीं (महोक्ष) जो सब गौवोंके गर्भाधानहेतुसे विमुक्त बंधन छुटारहिताहै गोपालके भी वशका नहीं घोड़ा हाथी भी प्रत्यक्ष वशके नहीं हैं और उशनाने इन दोनों के अदंड्यहोनेका कुछहेतु भी विशेष दर्शितकियाहै-यथा-(अदंड्याहस्तिनोह्यश्वाःप्रजा पालाहितेस्मृताः । अदंड्याःकाणकुब्जाश्चयेशश्वत्कृतलक्षणाः॥ अदंड्यागन्तुकागौ श्चसूतिकावाऽभिसारिणी । अदंड्याश्चोत्सवेगावःश्राद्धकालेतथैवच)-अर्थात्-हाथी और घोड़ेभी इसहेतुसे अदंड्यहैं कि ये दोनों प्रजापाल कहिलातेहैं और जे कोई पशू काने कुबड़ेहों या जिनमें कोई चिह्न त्रिशूल आदि दाग देनेसे या जन्मसेही जीभ पूँछ आदि कोईचिह्न ईश्वरदत्त विलक्षणहो अदंड्यहैं एवंमार्गमें एकाकी चलेजानेवाले पशू

अदंड्यहैं और गऊभी जो व्याईहो या (अभिसारिणी)नाम अपने यूथसे परिच्युतहुई फिरभी उसीयूथका अन्वेषण करती जातीहो अदण्ड्य है–मनुरपि–(अनिर्दशाहांगां सूतांवृषान्देवपशूंस्तथा। सपालान्वाविपालान्वाअदण्ड्यान्मनुरब्रवीत्)-अर्थात्–दश दिन भीतर व्याईगऊको और चक्रशूलआदि अङ्कित वृषभ या विनआँकेभी जोगर्भा-धान हेतु छोड़ेजायँ तिनको और(देवपशू)जे कोई पशूदेवकर्म निमित्त सेहीपाले अथवा छोड़ेजायँ तिनकोभी सपाल या विपाल होने दोनोंदशामें अदण्ड्य मनु कहितेहुये-आ शय इसका यह कि ऐसे पशुओंसे निज खेतवाला अपना खेतरखावै-इसी आशयसे मनुने यह और भी अग्रोक्त नियमकहाहै-यथा-)क्षेत्रियस्यात्ययेदण्ड्योभागाद्दशगुणो भवेत्। ततोऽर्द्धदंडोभृत्यानामज्ञानात्क्षेत्रियस्यतु)-अर्थात्-जो निज खेतवालेकेही पशु ओंने या उसकी गफ़लत होनेमात्रसे अदण्ड्य पशुओं ने कुछ बहुत विनाश कियाहो तौ उस हानिमें से जितना राजभागका नुक्सान समुझाजाय तिसते दशगुण दण्ड किसानभरे परजो उसके भृत्यों के अपराध से यह हानिहुईहो तौ फिर इसते आधा दंड वही किसान देवे १६८॥

अथपशूनांनष्टेमृतेवास्वामिपालकयोर्विवादपदधर्मविवेकोनामाष्ट षष्टितमः परिच्छेदः ६८॥

इस अरसाठिसंख्याके परिच्छेदमें पशुओंके बहिजाने या मरजाने मध्ये स्वामी और गोपालक में परस्पर झगड़ाहो तिसके धर्मजाने जायँगे॥

यथार्पितान्पशून्गोपः सायंप्रत्यर्पयेत्तथा। प्रमादमृतनष्टांश्चप्रदाप्यःकृतवेतनः १६९॥
पालदोषविनाशेतुपालेदंडोविधीयते। अर्द्धत्रयोदशपणःस्वामिनोद्रव्यमेवच १७०॥

ए०–जैसे अर्पितहुये तैसे पशुओंको गोपाल सायंकाल में प्रत्यर्पण करै-प्रमादसे मरगये यद्वा खोयेगये पशुओंको कृतवेतन गोप दिलानेयोग्य है-अर्थात् जेसीरीतिसे गनिकर स्वामीने प्रातःकाल इसको सौंपेहों तैसेही यह गोपभी सायंकाल स्वामीको गिनाइकर सब सौंपिदेवै-औरजे कोई इसके प्रमादरूप अपराधोंसे मरगये या बहि-गयेहों सो यह मूल्यआदि प्रकारों से दिलवायाजाय पर उसदशामें कि जो यह गोप स्वामी से कुछनियत वेतन पाताहो १६९ गोपालके अपराधोंसे विनाश होनेमें ताम्रिक साढ़ेतेरहपणका राजदण्डभी गोपालपर कर्त्तव्यहै यद्वा विरले संग्रहकारों ने (अर्द्धत्रयोदशपण) का अर्थ साढ़ेबारहपणही मानाहै सो ठीकसमुझौ और स्वामीका जो द्रव्यहो सो मध्यस्थों द्वारा कल्पित हुआ दिलायाजाय जैसा ऊपरले वाक्यमें कहचुके १७०॥

मधि०–स्वामी पालक दोनोंका कर्त्तव्य नारद कहतेहैं–यथा–(उपानयेद्गागोपाय प्रत्यहंरजनीक्षये। चीर्णाःपीताश्चतागोपःसायाह्नेप्रत्युपानयेत्)-अर्थात्-रात्रि व्यतीत

कालमात्र चरनेका अपराध नहीं है आशय इसका यह कि बहुतकालमें अपराधहै- यहाँतक अधिकोक्तिका यह पाठ केवल एकसौ सरसठिवाले मूलश्लोक मध्ये समुझो सो यह खेत विशेषोंका अपवाद धर्महै १६७ अब आगे एकसौ अड़सठिमूलश्लोक मध्ये विरले पशू विशेषोंका अपवाद धर्म लिखते हैं कि पहले जो जो दंड पशुओंके व्यतिक्रमसे प्रदर्शित हुये सो अत्रोक्त पशुओंकी अपेक्षामें न समुझेजायँ-तदाहना रदः-(राजगृहग्रहीतोवावज्राशनिहतोऽपिवा । अथसर्पेणदंष्ट्रोवावृक्षाद्वापतितोभवेत्॥ व्याघ्रादिभिर्हतोवापिव्याधिभिर्वाप्युपद्रुतः । नतत्रदोषःपालस्यनचदोषोस्तिगोमिना म्) अर्थात्-राजपीड़ा राजविघ्नपीड़ा ग्रहपीड़ासे पीड़ितपशू या (वज्र) लोह शस्त्रादिसे घायल अथवा (अशनि)नाम बिजलीसे हताहुआ या साँपका काटाहुआ या वृक्षादि ऊँचाईसे गिराहुआ चुटहिलपशूहो या व्याघ्रआदिका माराहुआ या कोईरोग जो पशुओं का दुखदाई होताहो तिसते पीड़ित पशू-इतने आतुर पशुओं से चाहे कितनाही कुछ खेती आदिका नुक्सान बिना रूँधे अथवा रूँधिमें भी हुआहो कोई दण्डभागी इस में नहींहै क्योंकि ऐसे आतुर पशुओंका तत्काल निवारण होसकना यद्वा बन्धन आदि रीतोंसे चौकसी करीजानी भी सुसंगत नहीं समुझी जासक्ती है इसलिये इन के रक्षक अथवा स्वामियोंका भी दोष नहीं माना जासक्ताहै (पर) वह दशा इसमें गिनती नहीं समुझनी जो कि रक्षक अथवा मालिक साथ होकर कोई खेती आदि इनको इच्छा सहित चरावैं-किन्तु ऐसे पशुओं को अस्वामिक तुल्य छोड़देने तक अपराध नहीं है—इनके सिवाय विरले पशू अनातुरभी अदंड्य होते हैं—यथाह नारदः—(गौःप्रसूतादशाहात्तुमहोक्षावाजिकुंजराः । निर्धार्याःस्युःप्रयत्नेनतेषांस्वामीनदंडभाक्)-अर्थात्-दशादिन भीतरकी व्याईगऊ महोक्ष वाजि कुंजर येचारों पशू प्रयत्नसे निर्धार्यहोतेहैं अर्थात् किसीके रोके नहीं रुकिसक्ते इस्से इनका स्वामी दंड भागी नहीं और स्वामीके उपलक्षणसे पालक भी अदंड्यहै चाहै कितनाही नुक्सान दैवाधीन हुआहो-इनमें व्याईगऊ क्षुधा क्षामहोनेसे हरेरीखेती देखि रोके रुकतीनहीं (महोक्ष) जो सब गौवोंके गर्भाधानहेतुसे विमुक्त बंधन छुटारहिताहै गोपालके भी वशका नहीं घोड़ा हाथी भी प्रत्यक्ष वशके नहीं हैं और उशनाने इन दोनों के अदंड्यहोनेका कुछहेतु भी विशेष दर्शितकियाहै-यथा-(अदंड्याहस्तिनोह्यश्वाःप्रजापालाहितेस्मृताः । अदंड्याःकाणकुब्जाश्चयेशश्वत्कृतलक्षणाः॥ अदंड्यागन्तुकागोश्चसूतिकावाऽभिसारिणी । अदंड्याश्चोत्सवेगावःश्राद्धकालेतथैवच)-अर्थात्-हाथी और घोड़ेभी इसहेतुसे अदंड्यहैं कि ये दोनों प्रजापाल कहिलातेहैं और जे कोई पशू काने कुबड़ेहों या जिनमें कोई चिह्न त्रिशूल आदि दाग देनेसे या जन्मसेही जीभ पूँछ आदि कोईचिह्न ईश्वरदत्त विलक्षणहो अदंड्यहैं एवंमार्गमें एकाकी चलेजानेवाले पशू

अदंड्यहैं और गऊभी जो व्याईहो या (अभिसारिणी)नाम अपने यूथसे परिच्युतहुई फिरभी उसीयूथका अन्वेषण करती जातीहो अदण्ड्य है-मनुरपि-(अनिर्दशाहांगां सूतांवृषान्देवपशूंस्तथा। सपालान्वाविपालान्वाअदण्ड्यान्मनुरब्रवीत्)-अर्थात्-दश दिन भीतर व्याईगऊको और चक्रशूलआदि अङ्कित वृषभ या बिनआँकेभी जोगर्भा-धान हेतु छोड़ेजायँ तिनको और(देवपशू)जे कोई पशूदेवकर्म निमित्त सेहीपाले अथवा छोड़ेजायँ तिनकोभी सपाल या विपाल होने दोनोंदशामें अदण्ड्य मनु कहितेहुये-आ शय इसका यह कि ऐसे पशुओंसे निज खेतवाला अपना खेतरखावे-इसी आशयसे मनुने यह और भी अग्रोक्त नियमकहाहै-यथा-)क्षेत्रियस्यात्ययेदण्डोभागाद्दशगुणो भवेत्। ततोऽर्द्धदंडोभृत्यानामज्ञानात्क्षेत्रियस्यतु)-अर्थात्-जो निज खेतवालेकेही पशु ओंने या उसकी गफ़लत होनेमात्रसे अदण्ड्य पशुओं ने कुछ बहुत विनाश कियाहो तो उस हानिमें से जितना राजभागका नुक्सान समुझाजाय तिसते दशगुण दण्ड किसानभरे परजो उसके भृत्यों के अपराध से यह हानिहुईहो तो फिर इसते आधा दंड वही किसान देवे १६८॥

अथपशूनांनष्टेमृतेवास्वामिपालकयोर्विवादपदधर्मविवेकोनामाष्ट षष्टितमः परिच्छेदः ६८॥

इस अरसाठिसंख्याके परिच्छेदमें पशुओंके बहिजाने या मरजाने मध्ये स्वामी और गोपालक में परस्पर झगड़ाहो तिसके धर्मजाने जायँगे॥

यथार्पितान्पशून्गोपः सायंप्रत्यर्पयेत्तथा। प्रमादमृतनष्टांश्चप्रदाप्यःकृतवेतनः १६९॥
पालदोषविनाशेतुपालेदंडोविधीयते। अर्द्धत्रयोदशपणःस्वामिनोद्रव्यमेवच १७०॥

ए०-जैसे अर्पितहुये तैसे पशुओंको गोपाल सायंकाल में प्रत्यर्पण करै-प्रमादसे मरगये यद्वा खोयेगये पशुओंको कृतवेतन गोप दिलानेयोग्य है-अर्थात् जैसीरीतिसे गनिकर स्वामीने प्रातःकाल इसको सौंपेहों तैसेही यह गोपभी सायंकाल स्वामीको गिनाइकर सब सौंपिदेवै-औरजे कोई इसके प्रमादरूप अपराधोंसे मरगये या वहि-गयेहों सो यह मूल्यआदि प्रकारों से दिलवायाजाय पर उसदशामें कि जो यह गोप स्वामी से कुछनियत वेतन पाताहो १६९ गोपालके अपराधोंसे विनाश होनेमें तात्त्विक साढ़ेतेरहपणका राजदण्डभी गोपालपर कर्त्तव्यहै यद्वा विरले संग्रहकारों ने (अर्द्धत्रयोदशपण) का अर्थ साढ़ेबारहपणही मानाहै सो ठीकसमुझो और स्वामीका जो द्रव्यहो सो मध्यस्थों द्वारा कल्पित हुआ दिलायाजाय जैसा ऊपरले वाक्यमें कहचुके १७०॥

अधि०-स्वामी पालक दोनोंका कर्त्तव्य नारद कहतेहैं-यथा-(उपानयेद्गागोपाय प्रत्यहंरजनीक्षये। चीर्णाःपीताश्चतागोपःसायाह्नेप्रत्युपानयेत्)-अर्थात्-रात्रि व्यतीत

होनेपर स्वामी अपनी गौवें नितउठि प्रातःकाल गोपके समीप लाकर (परीणाह) नामक नियत स्थलपर सब सौंपिजावे तिनको गोप सायङ्काल चरीहुई और पानी पीकरतृप्तहुई स्वामी के घरजाकर प्रत्यर्पणकरै किंतु भूखीप्यासी भी न लावै-रात्रि दिनके भेदसे अपराधभेद मनु कहते हैं-यथा-(दिवावक्तव्यतापालेरात्रौस्वामिनितद्गृहे । योगक्षेमेऽन्यथाचेत्तुपालोवक्तव्यतामियात्)–अर्थात्–जो दिनमें गोप को सौंपै पशुओंकी अपेक्षा योगक्षेमका उत्पातहो तौ यह दोष उसगोपालकेही जिम्मे है पर जो रात्रि में गोपाल करके स्वामी के घरसौंपै पशुओं में कुछ विघ्नहो तौ वह दोष स्वामीकेही जिम्मे है अथवा जहाँ रात्रिमें भी गोपके अधीन पशू रहितेहों जिनमें कोईसा उत्पातहो तौं गोपालकाही दोष है परजो गोप अपने स्वामीसे कुछ नियत वेतन पाताहो-कृतवेतन गोपों के भृति परिमाण भी नारदने दर्शाये हैं-यथा (गवांशताद्वत्सतरीधेनुः स्याद्द्विशताद्भृतिः । प्रतिसंवत्सरंगोपेसंदोहश्चाष्टमेऽहनि) अर्थात्-एकसौ गौवोंको चरानेवाले गोपको बरसोंड़ी हरसाल एक(वत्सतरी) अर्थात् दोबरसी कलोरि बछिया भृतिरूपसे दातव्य है एवं दोसौ गऊ चरानेवाले गोपको हरसाल एक (धेनु) सबत्सा दूधदेती हुई भृतिरूपसे दातव्य है (भृति अर्थात्वेतन-उजरत) और इस वेतनके सिवाय वह (संदोह) भी दुहाई मध्ये प्रति सप्ताह आठवें दिवस देना योग्य है कि जो कुछ नियतहो (परंच नियतहोने का परिमाण इसमें नहीं पायागया कि कितना नियतहो इसी आशयसे यह बात पाई जाती है कि जितनी गौवें दूधदेतीहों उतनी सभी आठवें दिवस दुहिले जाया करै बल्कि यही आशय इस अग्रोक्त बचन वृहस्पतिसे भी निश्चित होता है) यथाह वृहस्पतिः(तथाधेनुभृतःक्षीरंलभेताष्टमेहनि) अर्थात् (धेनुभृत) गोपाल जिसको भृति वरसोंड़ी धेनु मिलती हो या बछिया मिलतीहो ऐसा गोपाल आठवें दिवस दूधपावे (इसमें भी परिमाण नहीं रक्खागया इस्से विनिश्चितहुआ कि सबरा दूध जितना होताहो पायाकरै सो यहबातभी कुछ देशकाल बस्तुके अनुरूप असंगतनहीं समुझीजासक्ती है क्योंकि जहांगोकुलकी वहुताइतसे सैकरोंगाय चराताहो तहां उस की भृतिका ऐसानियम सुसंगत समुझाजाता है-परंच- मनुने इसबात को कुछ और भांति दर्शायाहै-यथा-(गोपःक्षीरभृतोयस्तुसदुह्याद्दशतोवराम् । गोस्वाम्यनुमतोभृत्यः सास्यात्पालेऽभृतेभृतिः)अर्थात्-यदि कोई गोपकेवल (क्षीरभृत) हो किंतु दुग्धहीउस की भृति कल्पित हुईहो जिसको और कुछ न मिलताहो तौ वहस्वामी की अनुज्ञासे दशमें श्रेष्ठ गऊदुहिलेवै किंतु दशगौवें दूध देती हों तिनमें एक सबसे दुधार जाने सो दुहिलेवै एवं वीस में से दो गौवें-यद्यपि-इस में ऊपरले नियमों से कुछ अंतरभी प्रत्यक्षहै तौभी निपट विरोध नहीं समुझना क्योंकि जिन वचनोंमें सब दूध लेजाना

निश्चित हुआ तिनमें सिर्फ आठवें दिन का नियम है और मनुने जो दशवां उत्तमभाग रक्खा सो यह दिनप्रतिका निरंतर नियम है इसलिये उसीके तुल्यात्मक ठहरा-ऊपरले नियमों में सालपीछे एक बड़ी बछिया या दूधवाली गऊ देनीकही सो वह नियम उसी स्थलपर होसक्ताहै कि जहां सौ दोसौआदि अधिकपशू हों मनुका यह नियम साधारण भाव थोड़े या बहुत पशूहों तौ सर्वत्र सूचित होता है और इसके साथ यहभी न्याय समुझना योग्यहै कि सभी गौवें सर्वकाल व्याई नहीं होती हैं न ऐसा नियम होना संभवहै कि बिनाब्याई गौवें कोई और गोपचरावे अर्थात् गौवें चाहे तितनी अधिक चराताहो उनमें जितनी दूधवालीहों तिनमेंसे दहाई पीछे एक वह दुहिलेवैगा यही बात ऊपरले नियमोंसे तुल्यात्मकहै कि एकसौ चराने वाले की सौ में से जितनी दूधवालीहों उन्हींको प्रत्येक अठवारे पीछे दुहिलेजावेगा—गायके उपलक्षणमात्र से भैंस आदि और भी सब समुझिलेने-भृतिके परिमाण यह सब इसहेतुसे प्रकल्पित हुये हैं कि जहां बिनाठहराये कोई गोपभृत्यभाव द्वारा पशू चरावे पीछे देनेलेने मध्ये झगड़ाहोकर किसी राजद्वारतक वह पहुँचै तहां राजा इन्हीं नियमोंके अनुसार उसका निपटारा करै अन्यथा जहां जो कुछ भृति ठहिरीहो सोई नियम ठीकहै कुछ इन्हीं नियमोंपर आवश्यकनहीं-किसी प्रकारके नियमोंसे कुछ वेतन पाताहो ऐसा कृतवेतनगोप अपने अपराधोंसे यदि कोई पशूखोवै अथवा मार डालै तौ वह पशू उस्से स्वामीको दिलवायाजाय-यह बात क्योंकर जानी जासक्ती है कि ऐसे गोपके प्रमादसेही पशूविनाशहुआ इसीलिये प्रमादकृत नाशकाभी रूप मनुनें स्पष्टव्यौरेवारदर्शितकियाहै-यथा(नष्टंजग्धंचकृमिभिःश्वहतंविषमेमृतम्।हीनंपुरुषकारेणप्रदद्यात्पालएवतु)अर्थात्-जो खोया जाय या कीड़ेपरिकै विनाशहो या कुत्ताआदि काटने से या ऊंचेनीचेगिरकर मरै यद्वा कोई और प्रकार से कि जिनमें पुरुषकारके करनेसे बचिसक्ता था मरजाय अथवा खोयाजाय तौ यह गोपके प्रमादसे विनाश हुआ जानो इससे वही गोप ऐसा पशूदेवे किंतु इन विघ्नों से रक्षा उसको सदाही कर्तव्य है (पुरुषकार अर्थात् पुरुषके करसकनेवाला रक्षाका प्रयत्न)यथाहबृहस्पतिः (कृमिचोरव्याघ्रभयाद्दरीश्वभ्राच्चपालयेत्। व्यायच्छेच्छक्तितःक्रोशेत्स्वामिनेवानिवेदयेत्)अर्थात्-कीड़े चोर व्याघ्रआदि भयउत्पन्नहोनेसे और (दरी) नाम पहाड़ों की कंदरा से (श्वभ्र) नाम गड़हिला आदि से सदैव रक्षाकरे किसीप्रकार पशुओं या पशुपालोंका उत्कटशब्द होनेपर तत्काल आपही अपनी शक्तिके अनुसार यत्न करे अथवाशीघ्र गोस्वामी को आकरखबर देवे तौ यह गोप सदा निर्दोषहै—जहां चोरों ने प्रबलतासे हरलियाहो तौ गोपाल दोषी नहीं—यथाहमनुः (विघुष्यतुहृतंचौरैर्नपालो दातुमर्हति। यदिदेशेचकालेचस्वामिनः स्वस्यशंसति)अर्थात्-यदि चोरोंने ढोलकतुर-

हीआदि बजातेहुये डांका डालिकर प्रत्यक्ष पशू बेढ़ेहों तौ गोपाल देने योग्यनहीं पर उस दशा तक कि जो निजस्वामीको नगीच होतेहुये शीघ्रजाकर बोधितकरै किंतु बोधित करनेमें विलंब होनेसे अपराधी होगा (यहां बाजे गाजे सहित डांकाकहने से चोरोंकाबाहुल्य और प्राबल्य सूचित किया है कुछ बाजाबजनेसेही नियमनहीं) पशुओंको निर्जनछोड़ि आनेमें भी गोपदंडनीयहै-यथाहव्यासः(गृहीतमूल्योगोपाल स्तांस्त्यक्त्वानिर्जनेवने। ग्रामचारीनृपैर्बाध्यःशलाकीचवनेचरः)अर्थात्-वेतन मूल्यलेने वाला गोपाल पशुओंको निर्जनबनमें चरते छोड़िकर यदि ग्रामचारीहोवै किन्तु दैवाधीन उनको छोड़िकर यदि आपबस्तीमें आजाताहो ऐसागोपकुलक्षण हेतुसे राजाओं करके दंडनीयहै एवं इससे विपरीत जो (शलाकी) नाम नापित बनकी सैरसपाटा करनेका अभ्यास रखताहो दंडनीयहै-गोपालके निरुद्यम होनेसे यदि पशुओंको विपत्तिहो तिसका दण्ड नारद कहते हैं-यथा (स्याच्चेद्गोव्यसनंगोपोव्यायच्छेत्तत्रशक्तितः । अशक्तस्तूर्णमागम्यस्वामिनेचानिवेदयेत् ॥ अव्यायच्छेतविक्रोशन्स्वामिनेच निवेदयन् । बोढुमर्हतिगोपस्तंविनयंचैवराजनि) अर्थात्-यदि पशुओंको विपत्ति खड़ी होवै तौ गोपाल अपनी शक्तिके अनुसार उसीस्थलपर प्रयत्न पहलेकरै और जोआप अशक्तहोतौ अति शीघ्रभागा आकरस्वामीको संबोधित करे तौ निर्दोषहै-पर-जो गोप उपद्रव शांतिका उपाय अपनेआपभी न करै और उस उपद्रवको पुकारताहुआ आकर स्वामीकोभी खबर न दे तौउस विनशेपशूको वहगोप आपही मूल्य द्वारा भरनेयोग्यहै और राजाकोभी राजदंड देनेयोग्य-कदाचित्-कोईपशू दैवयोगसे मरजाय जिसकाब्यौरा मरनेसे पहले दूरहोनेके हेतुसे स्वामीको पहुँचाने में अशक्ति समुझीजाय तौउस गोपके निर्दोषी होनेका उपाय व्यासकहते हैं-यथा (मृतेषुचविशुद्धःस्याद्वालशृंगादिदर्शनात्) अर्थात्-दैवयोगसे अचानक पशुमरजाने में गोपाल उसके वालसींग आदि चिह्नस्वामी को दिखलाने से निर्दोषहोवै-यहांआदि शब्द के आशयसे कानआदि अंगभी समुझने-तदाहमनुः(कर्णौचर्म्मच वालांश्चवस्तिंस्नायुं चरोचनाम्।पशुस्वामिषुदद्यात्तुमृतेष्वंगानिदर्शयेत्)-अर्थात्-अचानक पशुमरजानेमें गोपाल दोनोंकान चमड़ाबाल पूँछ और(वस्ति) नाम मूत्राधारकास्थान कोश और स्नायुनाम एकप्रकारकीनाड़ीनसैं जिनसे वाद्यबंधन आदि कार्यसाधनहोते हैं और(रोचना)गोरोचन यह सबचीजें पशुकेस्वामीको लादेवै तथा और अंग खुरसींगआदि जो जिसपशुके विलक्षण चिह्नहोतेहों सो दिखलादेवै(और)आदिशब्द यद्वा दर्शन शब्दके आशयसे तत्रत्य साक्षीलोगभी प्रमाणदेवैं तौ निर्दोषी ठहरै-अत्रापि दोषनिर्णयमाह विष्णुः-यथा (वृकेकोवापशूनांवृकाद्युपघातेपालेत्वनायतिपालकदोषोविनष्टपशूनांमूल्यं स्वामिनेदद्यात् (अनायति-अनागच्छति) अर्थात्-जहाँभेड़िया आदिसे पशुओंका

उपघातहुआहो और उपघातक जीव भेड़ियाआदि एक यद्वा दोतकहों और गोपाल उनपर धावाकरनेसे उपेक्षारक्खै तौ वह दोषीहै विनाशहुये पशुओंका मूल्य स्वामीको देवै-मनुरपि पालदोषनिर्णयमाह-यथा (अजाऽविकेतुसंरुद्धेवृकैःपालेत्वनायति। यांप्रसह्यवृकोहन्यात्पालेतत्किल्बिषंभवेत्) अर्थात्- बकरी भेड़ और तुशब्दके आशयसे गाय घोड़ाआदिभी समुझौ तिनके वृकादि हिंसकजीवोंसे घिरनेमें यदिगोप नहींदौड़ै तौ जिसपशूको वृक हिंसक मारडालै तिसकादोष उसगोपाल परहीहोगा-परंतु-यह दोष उसपर ऐसेस्थलमें समुझना जहाँ धावाकरनेका अवकाश होनेसे सुगमता समुझीजाय-किंतु-दुर्गमआदि स्थलपर गोपालभी निर्दोषहै-यथाहमनुः-(तासाञ्चेदवरुद्धानांचरंतीनांमिथोवने । यामुत्प्लुत्यवृकोहन्यान्नपालस्तत्रकिल्बिषी) अर्थात्-पूर्वोक्त भेड़ बकरीआदि यदि गोपालकरके घेरीहुई इकट्ठी बनमें चरतेहुये थोकमेंसे जिसको कोई भिड़हाकुत्ता विना देखाहुआ अचानक कूदकरलेजाय यद्वा मारडालै तौइसअवसरमें गोपाल दोषीनहीं-यह दृष्टांतमात्र समुझौकिंतु इसीप्रकार और भी यदिकोई अवसर दैवाधीन अचानक हो तिसमेंभी गोपाल दोषीनहीं १६९ ॥ १७० ॥

(गवादि पशुप्रचारणभूमिकल्पः)

ग्रामेच्छयागोप्रचारोभूमिराजवशेनवा । द्विजस्तृणैधपुष्पाणिसर्वतःसर्वदाहरेत् १७१ ॥
धनुःशतंपरीणाहोग्रामक्षेत्रांतरंभवेत् । द्वेशतेखर्वटस्यस्यान्नगरस्यचतुःशतम् १७२ ॥

ऐ०—ग्रामजनकी इच्छासे पशुप्रचार भूमिहोवै यद्वा देशाधिप राजाके प्रबन्ध से अर्थात् ग्रामसंबन्धी धरतीकी बहुताइत आदिके अनुसार थोड़ी बहुत जैसी योग्य हो विना जोतीधरती पशुओंके चरने हेतु जहां समुझीजाय छोड़देनी योग्य है-द्विजवर मात्र तृण ईंधन फूल ये सर्वत्र सर्वदाहरै अर्थात् गोसेवा देवपूजन अग्निकर्मका अवरोध जोइन चीज़ोंके अभावसेही संभवहो तौ कुश,कांश, घास, फूस,गोबर,लकड़ी, फूल, पत्र आदि स्वल्पकार्य साधनमात्र द्विजवर विना बूझेभी सर्वत्र सबदिनलेसक्ताहै (सर्वतः)सर्वत्र लेसकनेका आशय यह प्रत्यक्षहै कि इनचीज़ोंको वागीचा आदि रखाई घेरीभी लेसक्ताहै तथापि यह अधिकार तबतकहै कि यदि वहवस्तू विना रखाई कहींसमीप न मिलसक्तीहो और पुष्पोंके उपलक्षणमें देवनिमित्तक फल भी समुझलेने-इसका आशय कुछ अधिकोक्तिमें भी देखो १७१ ग्राम और खेतों के बीच अंतरदेकर एकसौ धनुषके अनुमान परीणाहनाम परिहार विना बोई जोतीधरती चाहेकिसीप्रकारकीहो पशुओंके बैठनेफिरनेआदि सुखहेतुसे चहुँओर छोड़ीहुई कल्पित करनेयोग्यहै और जो ग्रामकोई बड़ा(खर्वट)नाम(कर्वट)किंतु क़सबाहो तिसमेंदोसौधनुष के अनुमानका परिहार करनायोग्यहै एवं बड़े नगरोंनाम शहरोंके सबओर चारसौतक धनुषके अनुमानका परिणाह छोड़देनायोग्यहै(एकधनुषचारहाथ लंबाहोताहै)१७२॥

आधि०—ब्राह्मणको सर्वत्र तृण,घास, ईंधन, फूलफलके लेनेका अधिकार ब्यौरेवार गौतमने स्पष्ट दर्शितकियाहै-यथा (देवगोग्न्यर्थंतृणमेधांसिवीरुधवनस्पतीनांपुष्पाणिस्ववदाददीतफलानिचापरिवृतानाम्)अर्थात्-देवता, गऊ,अग्नि इनकेअर्थ आवश्यक तृण घासआदि और ईंधन लकड़ी तद्वत् फूल फल भी प्रायःउन्हीं वृक्षोंके जो (वीरुध)नाम बड़ीझमड़ी घुमड़ी लतावालेआप पैदाहोते हों और (बनस्पति) नाम दीर्घवृक्ष जिनमें पुष्पोंविना फल उत्पन्नहोतेहों इत्यादि इसी निदर्शन मात्रसे इनके तुल्य औरभी जेकोई वृक्षादिक बनमेंहोतेहों तिनमें से सर्वत्र ब्राह्मण अपनी वस्तुके समान विना रोकाटोका लेनेपावैं(पर) फलकालेनासिर्फ़ ऐसेस्थलसे कि जिनमें रूँधि घेरा बँधानहो-बल्कि स्वत्व परिग्रह उनपर चाहे तिसकाहो या न हो इसका नियम नहींहै क्योंकि बिना परिग्रहकी इनचीज़ोंको और भीसब सामान्य जनलेसक्ते हैं-तद्यथाहगौतमएव (स्वामीरिक्थक्रयसंविभागपरिग्रहाधिगमेषुभवति)इस बचनमें पांच भांतिके स्वत्वोंमें से यहां केवल दृष्टांतमें परिग्रह मात्रसे अपेक्षा है कि विना परिग्रह वाली वस्तूमें परिग्रहकरिलेने से सभी कोई स्वामी होजाता है इस्से ब्राह्मणका यह नियम बिशेषरक्खा है कि आवश्यक अवसरमें इनउक्तचीज़ों के न होने से यदि देव गऊ अग्निइनकाकार्य सिद्ध न होताहोतौ विनरूँधेघेरेस्थलसे इनचीज़ोंको विनमाँगे भी लेसक्ताहै एवंरूँधे स्थलसेभी बूझिकर विन रोकाटोका लेनेपावै-परन्तु (अपनी वस्तूकेसमान लेसक्ताहै)इसनियमका यहआशयनहींहै किजैसे अपनी वस्तूकोजड़ मूलसे विध्वंसभी करसक्ता होगा किंतु यह सिद्धांत है कि जैसे अपनी बस्तूसे अति सोचबिचार पूर्व रक्षा सहित काम निकाला जाताहै कि जिससे उसकी शोभा या कुछ पैदावारी आदि कुंठितभी न होनेपावै ऐसी रीतिसे लेसक्ताहै-और जो-पराई हानि करनेमध्ये दण्डका यह वाक्य है कि (तृणंवायदिवाकाष्ठंपुष्पंवायादिवाफलम्। अनाप्रच्छन्हिगृह्णानोहस्तच्छेदनमर्हति) सो यह दण्डइस अत्रोक्त विधिको छोड़कर अन्यत्र समुझना किन्तु जहां द्विजवर भी अत्रोक्त नियमोंके अतिक्रमसे अयोग्य हानि करनेपर सन्नद्ध हो तो वह रोकाजाय १७१ ऊपर मूल श्लोकमें जो ग्राम कर्वटनगर कहेतिनके लक्षण यहां लिखते हैं कि छोटी बस्तीग्राम कहातीहै पर उसदशातक कि जबतक उसमें कुछ प्राकार परिखा यद्वा पक्की हाट बाज़ार भी न हो-यथोक्तम्(विप्राश्च विप्रभृत्याश्चयत्रचैववसंतिहि। सतुग्रामइतिप्रोक्तःशूद्राणांवासएववा— तथाशूद्रजनप्रायासुसमृद्धकृषीवला। क्षेत्रोपयोगभूमध्येवसतिर्ग्रामसंज्ञिका-इतिग्रामलक्षणं) अर्थ इनकासुगम है-(अथखर्वटकर्वटयोर्लक्षणानि)-यथा (एकतोयत्रतुग्रामोनगरंचैकतःस्थितम्। मिश्रन्तुखर्वटोनामनदीगिरिसमाश्रयः) अर्थात्-जहांएक ओर ऊर्ध्वोक्त लक्षण के समान ग्राम वसता हो और एक ओर हाटबाज़ार सहित नगरवसताहो ऐसी

मिली बसापत को खर्वट नामकहतेहैं फिरचाहै उसमेंनदी पहाड़ोंकाभी योग मिलापहो या न हो परंच दोसौ के अनुमान छोटेग्राम जिसके अवलम्बसे क्रय विक्रय आदि व्यापारोंका व्यवहार साधन करसक्तेहों तो वह (खर्वट) नाम कहाताहै अर्थात् छोटा क़सबा–किन्तु–बड़ा क़सबा (कर्वट) नामहोताहै कि जिसमें कमसेकम अनुमानचार-सौतक ग्रामोंकी तहसील संग्रह करीजातीहो यद्वा वह क़सबाही अतिसुन्दर और व्यापारों से विख्यातहो जिसमें ग्रामों तुल्य बसापत का कुछ मिश्रीभाव न हो-(अथ नगरस्यलक्षणम्)-यथा–(पण्यक्रियादिनिपुणैश्चातुर्वर्ण्यजनैर्युतम्। अनेकजातिसम्बद्धनैकशिल्पिसमाकुलम्॥ सर्वदैवतसम्बन्धम्नगरन्त्वभिधीयते)–अर्थात्–पण्यक्रिया क्रय विक्रय आदि नानाभाँति के व्यापार जाननेवाले बड़ेचतुर उद्यम करनेवाले ऐसे चारोंवर्णोंके मनुष्योंसे संयुक्त अनेकजातोंसे (सम्बद्ध) नाम सघन बसापतवाला शहर जो नानाभाँति के (शिल्पी) नाम कारीगर लोगोंसेभी भराहो और सब तरहके देवादि मन्दिर स्थानोंकाभी सम्बन्ध जिसमेंहो ऐसेबड़ेपुरको नगर कहतेहैं कि जिस में राज्यका स्थानभी अवश्यभावहो यद्वा कमसेकम अनुमान आठसौतक बड़े छोटे बहुधा ग्रामोंके सबलोग अपने जीवनका प्रबन्ध साधन करसक्तेहों तिसको नगर जानो क्योंकि (नग) नाम है बड़े बड़े वृक्षों तथा पहाड़ोंकाभी तिनके तुल्य ऊँचे ऊँचे गढ़ कोट और स्थान महल आदिहों तिसको नगर कहिये (नगाइवप्रासादाद यःसन्तियस्मिन्) १७२॥

इतिपशुव्यतिक्रमवादप्रकरणम्॥

यहां तक यह ६७ तथा ६८ वाले दो परिच्छेदोंसे पशुव्यतिक्रमवादपदकाप्रकरण पूरा हुआ कि जिसका नाम स्वामिपाल विवाद भी प्राचीन ग्रन्थ कहते हैं॥

अथ अस्वामिविक्रयाख्यविवादपदव्यवहारविवेकोनामैको-
नसप्ततितमःपरिच्छेदः ६९॥

इस उनहत्तरि संख्याके परिच्छेदमें उस मुक़द्दमेका व्यवहार जानाजायगा जो कोई अस्वामी होकर किसी का कुछ द्रव्य किसी अनुचित मार्ग से धनी स्वामीके परोक्षमें यदि बेचै या क्रय करै॥

(अस्वामिविक्रय)का यथावत्रूप नारदजीने कहाहै-यथा-(निक्षिप्तंवापरद्रव्यंनष्टंलब्ध्वाऽपहृत्यवा। विक्रीयतेऽसमक्षंयत्सज्ञेयोऽस्वामिविक्रयः)अर्थात्-परायाद्रव्य जो अपनेपास धरोहर सौंपीहो तिसकोस्वामीके असमक्षबेचै या खोयाहुआ परायाद्रव्य कहीं पायकर असमक्षबेचै या कोई और भाँतिसे परायाद्रव्य हरिकर मुख्यधनीके असमक्ष बेचै तो यहबातें सब अस्वामिविक्रय जानो क्योंकि ऐसे पुरुषने विक्रयकिया जो उस धनका स्वामीनहींथा -इसीलिये योगीश्वर मूलवाक्यसे धनीको अबकहतेहैं सोदेखो॥

स्वंलभेतान्यविक्रीतंक्रेतुर्दोषोऽप्रकाशिते। हीनाद्रहोहीनमूल्येवेलाहीनेचतस्करः १७३॥

ऐ०-औरका बेचाहुआ अपनाद्रव्य स्वामीपावै और छिपाहुआ क्रयकरने वाला क्रेता दोषीठहिरै क्योंकि उसधनमें क्रेताका स्वत्व इसहेतुसे दृढ़नहींहै कि उसने मालिकाबिना बेचनेवालेसे क्रयकिया कि जिसका स्वत्व धनमेंनहींथा अर्थात् धनके आगमरूप नियत उपायोंसे विक्रेताने वहनहीं कमायाथा इसहेतुसे विक्रेताधनकेआगम सेभी हीनथा उस आगमहीनसे इसक्रेताने क्रयकिया इस्सेयहभी चोरहै (क्योंकि)जो कोई हीनविक्रेतासे खरीदै या एकांतमें छिपकरलेवै यद्वा हीनमूल्यसे कि जितनेकी वहबस्तुहो तिसतेथोड़ा मूल्यदेकर या अतिस्वल्प मूल्यदेकर (बेलाहीन)कालमेंखरीदै किंतु रात्रिआदि कुसमयमें गुपतौअर सौदाकरै तौ इनबातोंसे यहक्रेता चोरहोता है अर्थात् चोरोंकेही तुल्यदंडपावै १७३॥

अधि०-परंतु जो प्रत्यक्ष सबको प्रकाशकरिकै बस्तु खरीदीहो तौ यह क्रेतादण्ड नहीं पासक्ता है-यथोक्तम्-(द्रव्यमस्वामिविक्रीतंप्राप्यस्वामीतदाप्नुयात्। प्रकाशक्रयतःशुद्धिःक्रेतुःस्तेयंरहःक्रयात्)अर्थात्-स्वामी बिना विक्रयहुआ द्रव्य मिलकर उसके स्वामीको पहुंचै पर प्रत्यक्ष खरीदनेवाला क्रेता शुद्ध ठहिरै किन्तु गुपतौअर क्रय होनेसे क्रेताचोरहोताहै-यहां विक्रयके उपलक्षण मात्रसे दानकरदेना या बन्धक रखिदेना या धरोहरि मात्र सौंपिदेना आदि सभीलक्षण समुझिलेने-अतश्चोक्तं-(अस्वामिविक्रयंदानमाधिंचविनिवर्त्तयेत्)अर्थात्-बिना मालिक बिकना या दानहोना या बंधक धराजाना पुनर्निवर्त्तन कियाजाय १७३॥

(नाष्टिकःक्रेतारंप्राप्यकिंकुर्यात्)

नष्टापहृतमासाद्यहर्त्तारंग्राहयेन्नरम्। देशकालातिपत्तौचगृहीत्वास्वयमर्पयेत् १७४॥

ऐ०-(नाष्टिक) नाम जिसकी कोई चीज नाशहुई वही धनी कहाताहै सो निजबस्तुके क्रेताको यदिपावै तौ फिर क्या कर्त्तव्यहै सो कहिते हैं कि-नष्ट नाम खोई या (अपहृत) हरीहुई अपनी किसी चीजको क्रेताके हाथमें उपस्थित देखिजानिकर उसी (हर्त्ता) नाम क्रेताको पकड़ादेवै किन्तु स्थलपाल थानेदार आदि किसी राजपुरुषको माल मुजारिम दोनों पकड़वादेवै-पर जो देशकालकी (अतिपत्ति) नाम अतिक्रम हो किन्तु दूरहोने के हेतुसे तत्काल उनको विदित या विज्ञापन करने से पहले दोषी पुरुषका भागिजाना संभवहो तौ निज आप उसको पकड़कर उन राजपुरुषोंके प्रत्यर्पणकरै पकड़ेजाने पीछे जो कर्त्तव्यहै सो नीचे कहिते हैं १७४॥

विक्रेतुर्दर्शनाच्छुद्धिः स्वामीद्रव्यंनृपोदमम्। क्रेतामूल्यमवाप्नोतितस्माद्यस्तस्यविक्रयी १७५॥

ऐ०-विक्रेताके दिखानेसे क्रेताकी शुद्धि हो मालिक अपनी वस्तुपावै राजा राजदंड लेवै क्रेता अपना दियाहुआ मूल्य पावै उसी से कि जिसने बस्तु बेची थी

अर्थात् जो पकड़ाहुआ क्रेता पुरुष ऐसाकहै कि यह वस्तु मैंने और से क्रयकरी किंतु चोरी करिकै हरी नहीं तौ यह क्रेता उस विक्रेताको उपस्थित करदेनेसे निर्दोषी ठहरकर छुटि जावै और विक्रेता साथ नाष्टिक स्वामीका विवाद खड़ा होकर जो अ-स्वामि विक्रय उसपर निश्चित होजाय तौ उस हरीहुई या खोईहुई पाकर बेची वस्तु गऊ आदिका मूल्य जो कुछवह लेगयाथासो मूल्य उस्सेक्रेताकोनिवार्त्तित करवायाजाय और उस गऊ आदिवस्तुका मालिक अपनी वस्तुपावै एवं राजाभी अपराधके अ-नुसार दण्डलेवै १७५॥

अधि०-विक्रेताको हाजिर करदेने पीछे क्रेता नहीं फँसायाजाय-यथाहबृहस्पतिः-(मूलेसमाहृतेक्रेतानाभियोज्यःकथंचन। मूलेनसहवादस्तुनाष्टिकस्यविधीयते)अर्थात्-मूल पुरुष विक्रेताके लेआनेमें क्रेताकेसेहू फँसाने योग्यनहींहै किन्तु मूल पुरुषकेही साथ नाष्टिक स्वामीका विवाद खड़ाहोताहै-परन्तु-जो विक्रेता विक्रयकरिकै कहीं वि-देशमें जाटिकाहो तौ उसमार्गकी योजन संख्याके अनुसार एक अवधिदेकर उसको लेआनेके अर्थकाल विलंबदेना योग्यहै-यथोक्तं-(प्रकाशंवाक्रयंकुर्यान्मूलंवापिसमर्पयेत्। मूलानयनकालश्चदेयस्तत्राध्वसंख्यया)-अर्थात्-यातौ चीज प्रकाशभावसेख-रीदैयद्वा मूल पुरुषकोपकड़ादेवै इसीनिमित्त उसको मूलके ले आने योग्यकाल अवधि भी उस मार्गके हिसाबसे दातव्यहै-मूल विक्रेताकोले आनेपर यहनिर्णय होना योग्यहै कि बस्तु इसने गुप्तभावसे खरीदी या सबलोगों के प्रत्यक्षमें-यथाहमनुः-(विक्रयाद्यो धनंकिंचिद्गृह्णीयात्कुलसन्निधौ। क्रयेणसविशुद्धंहिन्यायतोलभतेधनम्) अर्थात्-जो कुछ वस्तु विक्रयके स्थानपेंठ आदि हाटसे व्यापारी लोगोंके सन्मुख मूल्यदेकरलीहो यद्यपि वह अस्वामीने भी बेची पीछे ठहिरै तौ भी क्रेताका क्रय शुद्ध कहाताहै और दियाहुआ मूल्यभी विक्रेतासे वापिस करिपानेका अधिकारी होताहै-परंतुजो-विक्रेता किसी अविज्ञात देशमें जाटिकाहो जिस्से लेआनेमें असमर्थहो तौ यह क्रेता अपना सच्चाक्रय संशुद्धकरदेनेसे भी निर्दोषी होताहै-यथोक्तं-(असमाहार्य्यमूलस्तुक्रयमेवविशोधयेत्) अर्थात्-(असमाहार्य्यमूल) क्रेता जो उस मूल पुरुषको लेआनेमें अशक्त हो सो अपना सच्चाक्रय संशोधनकरवावै अर्थात् सबके सन्मुख लिया निश्चय कर वावै-यथाहमनुः-(अथमूलमनाहार्य्यंप्रकाशक्रयशोधितः। अदंड्योमुच्यतेराज्ञानाष्टिकोलभतेधनम्) अर्थात्-जो मूल विक्रेता पुरुष मरजाने या अविज्ञात देशको चलि जाने आदि हेतुओंसे नमिलसक्ताहो तौ यह क्रेता अपना क्रय प्रकाशरूप सबके स-न्मुख किया सबूत करादेवै तौ भी दंड पाये विना छूटिजावै और वह नाष्टिक स्वामी अपनी वस्तु क्रेतासे पावै किन्तु क्रेता अपना दियाहुआ मूल्यपानेसे दुर्भागीरहै यह संसिद्ध हुआ क्योंकि जिस्से मूल्य वापिस होनेकी आशथी वह लोपहुआ-परंतु-जो

इस क्रेताने कदाचित् राजपुरुषों को संबुद्धि देकर बस्तु खरीदीहो तौ उस नाष्टिक स्वामीसेही आधामूल्यपानेका अधिकारीहै-तदाहबृहस्पतिः-(वणिग्वीथीपरिगतंविज्ञातंराजपूरुषैः। अविज्ञातंचयत्क्रीतंविक्रेतायत्रवामृतः॥स्वामीदत्वार्द्धमूल्यंतुप्रगृह्णीयात्स्वकंधनम्। अर्द्धंद्वयोरपहृतंतत्रस्याद्व्यवहारतः)अर्थात्-(वणिग्वीथी) नाम पैंठआदि हाटोंमें पहुँची हुई जो कुछ बस्तु राजपुरुषों को विज्ञात करिकै जो क्रयकरै फ़िर वह बस्तु यद्यपि बिनाजानी किसी अस्वामीके भी हाथसे क्रयकरीजाय और विक्रेता भी मरजाय या बहिजाय तौभी बस्तुका स्वामी आधामूल्य देकर अपनी बस्तुपावै किन्तु ऐसे व्यवहारमें क्रेता तथा नाष्टिक स्वामी इन दोनोंकी आधी आधी हानि होवै यह मर्यादाहै क्योंकिजो विक्रेता प्राप्तहोसक्ता तौ इन दोनोंकी अर्द्धहानि न होसक्ती किन्तु पूरा मूल्य विक्रेतासे निवर्त्तित करवायाजाता-कदाचित् यह क्रेता उक्तरीतोंमें से कोई बातपर आरूढ़ नहो किन्तु नतौ साक्षियोंसे क्रय शोधनकरै यद्वा दिव्य प्रमाणोंसे भी नहीं और उस मूल विक्रेताको भी लेआनेमें संकोचकरै तौ यह आप दंडभागीहोवै- यथोक्तं-(अनुपस्थापयन्मूलंक्रयंवाप्यविशोधयन्। यथाभियोगंधनिनेधनंदाप्योदमंचसः) अर्थात्-मूल विक्रेताको उपस्थित नहीं करतेहुये या निजसच्चे क्रयकी शुद्धिको न देतेहुये मुक़द्दमेकी गुरुता लघुताके अनुरूप नाष्टिक स्वामीका धनभी इससे दिलवायाजाय एवं राजदंड भी अपराधों के अनुसार १७५॥

(नाष्टिकःस्वंप्राप्त्यर्थंकिंकुर्यात्)

आगमेनोपभोगेननष्टंभाव्यमतोऽन्यथा। पंचबंधोदमस्तस्यराज्ञेतेनाविभाविते १७६॥

ऐ०-आगम से उपभोगसे भी नष्टबस्तु तिसकरके भावनीय है इस नियमसे विपरीत वा अविभावित होनेमें उसका पंचबंधो दम राजाको दातव्यहै-अर्थात्-नाष्टिक स्वामी जो अपना स्वत्वरूप धन मिलना चाहै तिसको यह आवश्यक है कि अपनी नष्ट हुई बस्तुको शास्त्रोक्त रिक्थ क्रयादिलक्षणवान् आगमसे संभावित करवावै किंतु अपने आगमका प्रमाण साधन करवावै जिस्से जानाजाय कि यहवस्तु इसको अमुक प्रकारसे सम्प्राप्तहुईथी और आगमके सिवाय उसका (उपभोग) नामवर्त्तावा भी साक्षियों से संसाधन करवावै कि इतने कालसे यहवस्तु इसेभोगते देखीथी इस अग्रोक्त नियमसे अन्यथा कुछ विपरीत साधन करवानेमें यद्वानिपट प्रमाणों के न देने में उस वस्तुकी मालियतसे पाँचवांभाग दण्डराजमें वहनाष्टिक स्वामीदेवे १७६॥

अधि०-आगम और उपभोगका साधन करवाना केवल इसी आशयसे आवश्यकहै कि शायदकोई नाष्टिक धूर्त्तवृत्तिसे असत्य अपनीवस्तु कहकर झूँठादोष लगाताहो तौ इसआशयसे यहबातभी संसिद्धहै कि जबनाष्टिक ऐसासाधन करवानेसे गिरजावै और विक्रेता अपनास्वत्व बताताहोतौ विक्रेताही निजआगम औरउपभोगका प्रमाण

देवे अतएवाहमनुः-(संभोगोदृश्यतेयत्रनदृश्येतागमःक्वचित्। आगमःकारणन्तत्रनसम्भोगइतिस्थितिः) अर्थात्-इसीहेतुसे मनुनेयहकहाहै कि जिसवस्तुमें यद्यपि सम्भोग नाम वर्त्तावाभी दिखाई देताहो परउस वस्तुका कुछ आगमनिश्चित नहोसकै कि इस को किसमार्गसे संप्राप्त हुईथी तहाँराजाको यहयोग्यहै किआगमही प्रमाणमानैकिन्तु बर्तावा इसमें हेतु नहीं यहमर्यादाहै-सिद्धान्त इसकायहकि जहाँ बिक्रेताअपनाआगम और भोगदोमेंसे एकभी न देवै तहाँ नाष्टिकस्वामीका आगम सिद्ध न होनेपरभी भोग मात्रसेही स्वत्वमाना जासक्ता है परजो विक्रेताकेवल भोगअपना निश्चितकरवावै तौ फिर नाष्टिकस्वामीका भोग और आगम दोनोंसाधन होनेयोग्य हैं अथवा जहाँ नाष्टिकस्वामी केवल भोगप्रमाण देवै और विक्रेता अपनाभोग और आगम दोनों सिद्धकरावे तहाँ आगमही प्रमाणमुख्यहै अर्थात् ऐसेअवसरमें वह नाष्टिक स्वामी धूर्त्त निश्चितहोताहै क्योंकि उपभोग कहीं कारणांतरसे पराईवस्तुमेंभी होजाताहै परन्तु जहाँनाष्टिक और विक्रेतादोनों निजानिजभोग प्रमाण देनेकेसिवाय आगम कोईभी न देसक्ताहो तहाँ उसव्यवहारको तत्त्वानुसार राजा निर्णयकरै कि इनमेंकिस काभोग झूंठा किसका सच्चाजानाजाताहै (अस्यक्रमः)पूर्वोक्त सबनियमोंका यह अनुक्रमहै कि जबनाष्टिक स्वामी अपनीचीज़ पहिचानकर उसक्रेताको फँसावै तबसब से पहले सिर्फ नाष्टिकसेही आगम और उपभोगका प्रमाण मागाँजाय और जो नाष्टिक अपनीवस्तुका आगम या उपभोगभी न देसकै तौ उसवस्तुकी मालियतसे पाँचवां अंशदण्ड उस्से लियाजाकर दोनोंछूटिजायँ और जो नाष्टिक अपना आगम या उपभोगदोमें कुछभी एकप्रमाणदेवै तो फिरक्रेता अपनेआप चोरनबननेके निमित्त और दियाहुआ मूल्य वापिसकरवानेकेनिमित्त मूलविक्रेताको लेआवै पर जो उसे न लासकै तौ अपनादोष दूरकरनेके निमित्त सच्चाक्रय संशोधनकरवावै और वहवस्तु नाष्टिकस्वामीको ऊर्ध्वोक्त नियमोंके अनुसारदेदेवै और जो क्रेतामूल विक्रेताको ले आयाहो तौफिर ऊर्ध्वोक्त सबनियमों के अनुकूल उसविक्रेता साथ नाष्टिक स्वामीका विवाद खड़ाहोकर फिर इनदोनोंसे आगम और उपभोगोंके प्रमाणमाँगे जायँ जैसा अभीऊपर चर्चाहुआथा परन्तु दोनोंमेंसे प्रथमनाष्टिक स्वामीसे प्रमाण मागाँजाय उसके गिरजानेमें विक्रेतासे १७६॥

(राजन्यनिवेद्यग्रहीतादंड्यः)

हृतंप्रनष्टंयोद्रव्यंपरहस्तादवाप्नुयात्। अनिवेद्यनृपेदंड्यःसतुषण्णवतिंपणान् १७७॥

ऐ०—चोरीगया या खोयाहुआ द्रव्यअपना जो कोई किसी चोरआदिके हाथसे राजामें निवेदन कियेविना आपही अपनेदर्पसे लेलेवै तिसपरवस्तु और अपराधके

अनुरूप ९६ छानवे पणतक दंडहोनायोग्यहै क्योंकि उसनेचोरको चौर्य्य दण्डहोनेसे बचाया इस्से आप दुष्टहुआ १७७॥

(राजपुरुषप्राप्तद्रव्यविषयः)

शौल्किकैःस्थानपालैर्वानष्टापहृतमाहृतम्। अर्वाक्संवत्सरात्स्वामिहिरेतपरतोनृपः १७८॥

ऐ०—जहाँकहीं (शौल्किक) नाम तहसीली उहदेदारोंने या (स्थानपाल)थानेदारी उहदेदारोंने किसीका कुछखोयाहुआ द्रव्य या चोरीगया कहींसे पायाहो जिसका तत्काल कोईस्वामी निश्चित न होसकै तौ यहद्रव्य रक्षासहित राजकोशोंमें रखवाया जाय-प्राप्तहोनेके दिनसे एक संवत्सरकेभीतर जो उसद्रव्यका नाष्टिकस्वामी आकर अपने आगम और उपभोगोंका प्रमाणदेवै तौ वहपावै पर जो अवधिपूरी होजावै तो राजा मालिकहो १७८॥

अधि०—राजा अपने पुरुषोंकरके लायेहुये अस्वामिक धनको नागरलोगोंकेसमूह सन्मुखडौंडी पिटवाकर धरवावे-यथाहगौतमः(प्रनष्टस्वामिकमधिगम्यराज्ञे प्रब्रूयुःविख्याप्यसंवत्सरंराज्ञारक्ष्यं) अर्थात्- अज्ञात स्वामिकधनको पानेवाले पुरुष राजा में निवेदनकरैं राजाउसे प्रसिद्धकरिकै बर्षमात्र रक्षाकरै-गौतमकी यह अवधिएक सामान्यभावहै किंतु मनुने विशेष व्योरेवार अवधिकही है-यथा (प्रनष्टस्वामिकंद्रव्यंराजा त्र्यब्दंनिधापयेत्। अर्वाक्त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामीपरतोनृपतिर्हरेत्) अर्थात्-अज्ञातस्वामिक धनको राजा तीनबर्षोंतक रखवावे तीनबर्षोंसे पहलेआया स्वामीहरै उपरांत राजा आपहरै-विज्ञानेश्वरने इसअवधिका आशय यहदर्शायाहै कि (इतनीवड़ीअवधि केवल श्रुतवृत्त संपन्न ब्राह्मणके धनकेमध्ये समुझो)मनु मुक्तावली टीकामें इस आशयका कुछ चर्चा और संसर्गतकभी नहींहै औरभी इस आशयका यह उत्तरहै कि अज्ञातस्वामिक धनको राजाक्योंकर जानिसक्ताहै कि यहधन ऐसेब्राह्मणकाहै या नहीं इसको तीनबर्षोंतक रखावै यद्वा सालपीछे ज़ब्तकरै इस्से सब सामान्य जनके धनपर यही तीनवर्षोंकी अवधि मुख्यजानो क्योंकि जहाँ जहाँ योगीश्वरआदि वचनोंके अनुसार एकबर्ष भीतरदेना कहागया तहाँ तहाँ राजाउसमें से कुछ रक्षाभागनहीं लेसक्ताहै और बर्षपीछे राजाका स्वत्व उसमें होजाताहै पर तौभी तीन वर्षोंतक निज वस्तुके समान रक्षाकरनी योग्यहै पर जो कोईवस्तु एकसालपीछे गतसार होकरगलिजानी संभवहो तिसको विक्रय आदि प्रकारोंसे व्ययकरनेका प्रतिषेधनहीं किंतु साल भीतर ऐसा करनेकाभी प्रतिषेध यह सिद्धांतहै-और दूसरा यह सिद्धांत है कि जहाँ जहां संवत्सरके उपरान्त तीन वर्षोंतक जैसी अधिक रक्षा करनीपरै तहां उसके अनुसार रक्षा वेतन भी लेना मनुने कहा है-यथा (आददीताथषड्भागंप्रनष्टाधिगतान्नृपः। दशमंद्वादशंवापिसतांधर्ममनुस्मरन्) अर्थ इसका देखो तेईसके परिच्छेद में

चौंतीसकी अधिकोक्तिसे विस्तरित ब्योरेवार जिसका यह सिद्धान्तहै कि तीनवर्षोंके पीछे भी यदि मुख्यस्वामी आवै तौभी राजा उसका द्रव्यदेवै बल्कि अवधिपीछे विक्रय आदिसे उठिगयाहो तौभी मूल्यदान द्वारा तृप्ति उसकीकरै-क्योंकि तीनवर्षों के उपरान्त राजाको उसद्रव्यके व्यय करनेका अधिकार केवल इस लाचारी आशयसे दर्शायाहै कि जो अबतक कोई अन्वेषण कर्त्ता नहीं आया तौ अब आगेभी कुछ आनेका विश्वास नहीं और विरले द्रव्य ऐसेहोते हैं कि जिनको अधिक धरे रहनेसे काल भक्षणकर जाताहै फिर किसीके भी कामनहीं आसक्ते इस्से राजाको अधिकार है कि जिस वस्तुको जितनी थोड़ी बहुत अवधिमें निर्जीव होजानी समुझै उस्से पहिले विक्रय आदि प्रकारोंसे व्ययकरै और जब स्वामीआवै तभी उसकी तृप्तिकरै (किंतु) जिन वस्तुओंकी आयु अधिक होने से अति कालतक रहसकना सम्भवहो तिनकी रक्षा बारहवर्ष भर कर्त्तव्यहै कुछ एक या दो तीनवर्षोंका भी नियम नहीं-यथाह सदाशिवः (नृणामुद्देशहीनानांपरिवारान्धनानपि। पालयेद्रक्षयेद्राजा यावद्द्वादशवत्सरम्) १७८॥

(द्रव्यविशेषेरक्षणभागविशेषः)

पणानेकशफेदद्याच्चतुरःपंचमानुषे। माहिषोष्ट्रगवांद्वौद्वौपादंपादमजाविके १७९॥

ऐ०-एक शफ में चारपण देवै मानुष जातिमें पांच पण भैंस ऊँट गौवोंमध्ये दो दो पण बकरी भेड़में पाव पाव पण दातव्यहै-अर्थात् (एकशफ) नाम एकखुरवाले पशू घोड़ा आदि जिसके खोयेजाकर राज्यमें पहुंचे हों तिनकी रक्षा हेतुसे प्रत्येक प्राणी पीछे चारपण द्रव्य देकर स्वामीपावै एवं मानुष जाति लड़का लड़की आदि खोया जाकर पहुंचाहो तिसको प्रत्येक प्राणी पीछे पांचपण देकर स्वामीपावै एवं जिसकी भैंस ऊंट गाय खोई जाकर पहुंचे सो प्रत्येक प्राणी पीछे दो पण देकर लेजावे जिसकी बकरी भेड़ खोई जाकर पहुँचै सो प्रत्येक प्राणी पीछे चौथाई पण द्रव्य देकर लेजावै १७९॥

अधि०-ऊपर १७८ की अधिकोक्ति वाले वर्णन में सोना चाँदी वस्त्र वर्तन आदि सब सामान्य द्रव्योंका रक्षणभाग मूल धनसे छठा दशवाँ बारहवाँ अंश यथा विलंब गौरव लाघवके अनुसार मनुके वाक्यसे दर्शायाथा तिसहीके अपवाद रूपमें यह १७९ वाला वर्णन है कि चैतन्य जीवधारी द्रव्यों को अत्रोक्त नियमों के अनुसार भिन्न छोड़िकर उसनियमको अन्यत्र सब सामान्य द्रव्योंकी अपेक्षामें समुझना क्योंकि यह सबजीव खाऊ धन विख्यातहैं और इनका रक्षणभी कुछ क्लिष्टहै-इसमें-एक बड़ी द्विविधाका यह स्थलहै कि नतो मूलकारोंने न टीकाकारोंने इस ग्रन्थिको निर्वारण किया कि ये प्रत्येकप्राणी पीछे रक्षणहेतुक पांच या चार आदिपण जो देने

कहे सो किस अवधितक दातव्य हैं क्योंकि यद्यपि ऐसे द्रव्यों के स्वामियों का वर्षों पीछे आना संगतनहीं समुझा जासक्ता किन्तु थोड़ेकालमें आजाना संभवहै तथापि थोड़े कालमें भी यदि सामान्य सभी अवधी मानीजायँ तौ यह दोष खड़ाहोताहै कि यदि कोई नाष्टिक स्वामी केवल एक यद्वादोही दिनमें लेजावै या बिरलास्वामी एक मास पीछे भेद पाकर लेने आवै तौ इनदोनों से बराबर लियाजाना क्योंकर न्याय ठहरै और पणमें भी यह भेद है कि ताम्रिक अथवा चान्द्रिक में से क्या स्वीकार हो चान्द्रिक पण स्वीकार करने से एक दिनवाले पर अन्याय पहुंचता है और ताम्रिक पण स्वीकार होने से एकमास वाले से तुल्यात्मक नहीं आताहै क्योंकि घोड़ा आदि कोई पशु ताम्रिक चार पणसे एक मासमात्र रक्षित नहीं रहसक्ता एवं भैंस आदि ताम्रिक दो पणसे नहीं-इत्यादि पर्य्यालोचन से यह न्याय निश्चित होता है कि चांद्रिक पणका चर्चा इसमें नहीं समुझना किन्तु ताम्रिकपण प्रत्येक दिन पीछे उतने दातव्य हैं कि जिस प्राणी पीछे जितनी संख्याकही हो इसके आगे जैसादेश जैसाकाल जैसी वस्तुके अनुरूप व्यवस्था देखीजाय १७९ ॥

अब इसवर्णनकिये विवादका विशेषब्योरानीचे फिर संक्षिप्तरूपसेदर्शातेहैं क्योंकि मुख्यस्थलपरशीघ्रसमुझेजानेकेसौगम्यहेतुसे अधिकोक्तोंमें विस्तारनहींबढ़ायाथा ॥

(अथऊर्ध्वोक्तसमस्तविक्रयविवादस्यविशेषविवेकः)

इस परिच्छेदके प्रारंभमें निक्षेपका विक्रयकरना नारदने अस्वामि विक्रयकहाथा सो उस निक्षेपके उपलक्षण मात्रसे याचित आदि और भी समुझने-यथाहव्यासः (याचितान्वाहितन्यासंहृत्त्वावाऽन्यस्ययद्धनम् । विक्रीयतेस्वाम्यभावेसज्ञेयोऽस्वामिविक्रयः) अर्थात्-याचित मांगेहुचीज़ अन्वाहित जो बीचमें दूसरे को सौंपीगई हो न्यास धरोहर यद्वा और कोई भाँतिसे हरिकर जो धन स्वामीके परोक्ष बेचाजाता है सो यह सब अस्वामि विक्रय गिनाजाता है-इसीभाँति-विक्रय कहने से दान बंधक भी समुझने-यथाहकात्यायनः (अस्वामिविक्रयंदानमाधिंचविनिवर्तयेत्) इसीभाँति-अस्वामी का भी रूप बृहस्पति ने दर्शायाहै-यथा (निक्षेपान्वाहितन्यासंहृतयाचितबन्धकम् । उपांशुयेनविक्रीतमस्वामीसोऽभिधीयते) अर्थात्- जिस किसीने निक्षेप या अन्वाहित या न्यास या हृतद्रव्य या याचित वस्तु या बन्धक धरीहुईचीज़ उपांशु रूपसे गुपतौअर बेचीहो वही अस्वामी कहाजाता है-इसवचनमें उपांशुनाम गुपतौअर बेचना कहनेसेसिर्फ किसीकी खोईहुई गिरकरमिली आदि चीज़ोंकाभाव दर्शित कियाहै अन्यथा बिरले अवसरमें प्रत्यक्ष बेचनेवाला भी अस्वामी होता है-मनुनेयहकहाहै कि (विक्रीणीतेपरस्यस्वंयोऽस्वामीस्वाम्यसंमतः) अर्थात्-जो वस्तुका विक्रय आदि वियोग करने में अधिकारी नहीं है वहउस पराई वस्तुको

स्वामी की अनुज्ञा विनावेंचे चाहे औरों के प्रत्यक्ष या गुप्तौर वेंचे दोनों भाँतिसे अस्वामि विक्रय दोष उसको लगता है (और) वह द्रव्य निवर्तित कियाजाता है— तदाहनारदः (अस्वामिनाकृतोयस्तुक्रयोविक्रयएववा। अकृतःसतुविज्ञेयोव्यवहारेषु नित्यशः) अर्थात्—किसी अस्वामी ने जो क्रय अथवा विक्रय कियाहो सो न करने में समुझना किंतु वापिस कियाजावेगा व्यवहारों की यह सदाही मर्यादा है वेंचने के उपलक्षणसे दानकरदेना भी संसिद्धहै-यथाहमनुः (अस्वामिनाकृतोयस्तुदायोविक्रयएववा। अकृतःसतुविज्ञेयोव्यवहारेयथास्थितिः) अर्थात्-किसी अस्वामीने जो दायनाम दानकियाहो या विक्रय अथवाक्रयभी कियाहो सो सब नहींकिया समुझौ किंतु जैसीइसकी व्यवहारमें मर्यादाहै तैसाकिया नहींहै-प्रकटभावमें क्रयकरने मध्ये बृहस्पतिने यहकहाहै कि (येनक्रीतंतुमूल्येनप्राग्राज्ञेविनिवेदितम्। नतत्रविद्यतेदोषः स्तेनःस्यादुपधिक्रयात्) अर्थात्-जिसनेपहले राजापरविज्ञातकरिके वस्तुखरीदीहो तिसमें उसका दोषनहींहै पर उपधिनाम छलसे क्रयकरनेवाला चोरहोताहै-छलसेक्रय होनेवाले रूपभी बृहस्पतिने दर्शाये हैं-यथा(अन्तर्गृहेवाहिर्ग्रामान्निशायामसतोजनात्। हीनमूल्यञ्चयत्क्रीतंज्ञेयोऽसावुपधिक्रयः) अर्थात्-घरके भीतर बैठिकर या ग्रामकेबाहर जाकर जङ्गलमें या रातिमें असज्जन चाण्डाल आदि से या थोड़ा मूल्य देकर जो खरीदाहो सो सब उपधिक्रय समुझना-असज्जनके उपलक्षण से दास आदि भी समुझने-तथाचनारदः (अस्वाम्यनुमताद्दासादसतश्चजनाद्रहः। हीनमूल्यमवेलाय क्रीणंस्तद्दोषभाग्भवेत्) अर्थात्-जिसको स्वामीने विक्रय करनेकी आज्ञानहींदीहोऐसे दाससे खरीदै या दुर्जीवी आदि असज्जन से एकान्त में खरीदै एवंस्वल्पमूल्य देकर लेवे या कुसमय रात्रि आदिमें तौ वहीदोष इसको लगताहै जिसभाँतिसे बेंचनेवाला हरकर लायाथा-दास कहने से और भी समान न्यायकरके बालक आदि समुझने जो जो परतन्त्र होतेहों-अत्रविष्णुश्च(अज्ञानतःप्रकाशंयत्परद्रव्यंक्रीणीयात्तत्रास्यादोषस्स्वामीद्रव्यमवाप्नुयात्. यद्यप्रकाशंहीनमूल्यंवाक्रीणीयात् तदाक्रेताविक्रेताचचोरवच्छास्यः) यहसब इतनापाठ १७३ की अधिकोक्तितक सम्बन्धितजानो १७३॥

१७५ मूलश्लोक से अधिकोक्ति मध्ये यहाँ बृहस्पतिजी विशेषता दर्शित करतेहैं यथा (पूर्वस्वामीतुयद्द्रव्यंतदागत्यविचारयेत्। तत्रमूलंदर्शनीयंक्रेतुःशुद्धिस्ततोभवेत्) अर्थात् पहले स्वामी अपना जो द्रव्यहो तिसको आयकर विचार करवावै तिस में क्रेता करके मूल विक्रेताभी दिखलायाजाय तिसपीछे क्रेताकी शुद्धिनाम रिहाईहोवे-तथाचबृहस्पतिः(मूलेसमाहृतेक्रेतानाभियोज्यःकथंचन। मूलेनसहवादस्तुनाष्टिकस्य विधीयते)और(विक्रताके आजानेमें मुद्दई अपना द्रव्यपावै) यहयोगीश्वरने जोकहाथा तिसका यह सिद्धान्तहै कि यदि विक्रेता आकर नाष्टिक स्वामीसे कुछउत्तरयुक्तविवाद

नहींरोपै यद्वा रोपिकर भी हारै तौवहवस्तु नाष्टिक स्वामीको निर्णयहोकरदिलवाईजाय-तथाचबृहस्पतिः(विक्रेतादर्शितोयत्रहीयतेव्यवहारतः। क्रेत्रेराज्ञेमूल्यदण्डौप्रदद्यात्स्वामिनेधनम्)कदाचित् विक्रेता न मिलसक्ताहोतौ वहक्रेता अपना सच्चा क्रय संशोधन करवादेवै तौभी दंडपाये विना छूटिजावै-यथाहनारदः(असमाहार्यमूलस्तु क्रयमेवविशोधयेत् ।विशोधितेक्रये राज्ञा वक्तव्यःसनाकिंचन)कदाचित् वस्तुराजपुरुषोंके सन्मुख उन्हेंलिखाकरके लीगईहो तौ विक्रेताके नमिलने परभी क्रेता अपना दियाहुआ आधा मूल्यनाष्टिकस्वामीसे पासक्ताहै-यथाहवीरमित्रोदयधृतकात्यायनो. मनुमुक्तावलिटीकालिखितबृहस्पतिर्वा(वणिग्वीथीपरिगतंविज्ञातंराजपूरुषैः । अविज्ञाताश्रयात्क्रीतंविक्रेतायत्रवामृतः । स्वामीदत्त्वार्द्धमूल्यंतुप्रगृह्णीयात्स्वकंधनम् ॥ अर्द्धंद्वयोरपहृतंतत्रस्याद्व्यवहारतः । अविज्ञातक्रयोदोषस्तथाचापरिपालनम् ॥ एतद्द्वयंसमाख्यातमर्द्धहानिकरंबुधैः) अर्थात्-खुल्लम जो बाज़ारमेंसे राजपुरुषोंको लिखाकर कोईचीज़ बिनाठौर ठिकानाजाने विक्रेतासे लीजाय और बिक्रेता पीछे हाथनआवै तौ उसबस्तुकास्वामी आधामूल्य क्रेताको देकर अपनीबस्तुपावै क्योंकि इसमें दोनोंकी आधीहानि होना इसव्यवहारसे विनिश्चितकियागयाहै कि बिनाजानीचीज़का ख़रीदना एकदोषहै पर प्रत्यक्ष ख़रीदनेसे वहदोष आधारहा एवं स्वामी अपनेस्वत्वसे वहबस्तु पानेकाअधिकारी यद्यपि है पर निजवस्तुकी रक्षा नहींकरनेका यह अर्द्ध दोष उसकोलगा इस्से आधीहानि दोनोंकी होजाय (कदाचित् इसमें यहतर्कणा प्रकल्पितकरीजाय कि जब क्रेताने प्रत्यक्ष राजपुरुषों को जतलाकर सौदाकिया तौ किसहेतु से वहआधीहानि उठावै तौ यह उत्तरहै कि विनाजानी वस्तू बहुतसस्ती हाथआतीहै इसबातसे यह सम्भवहै कि शायद विक्रेता चोरीकरके लायाहो ऐसा सम्भव होतेहुये ख़रीदना फिर भी दोषहै पर सस्ती मिलनेके लालचसे ख़रीदीथी कदाचित् स्वामीको यह भेद न मिलतातौ इसलाभकाभी भागी वहीक्रेताथा इसहेतुसे अबआधीहानि उठानीहोगी।-इसमें मरीचिकाभी वचनप्रमाणहै-यथा(अविज्ञातनिवेशत्वात्यत्रमूलन्नलभ्यते।हानिस्तत्रार्द्धकल्पास्यात्क्रेतृनाष्टिकयोर्द्वयोः-मूलंविक्रेतारं)जहाँकहीं क्रेतापहले विक्रेताको लादेना कहकर पीछे क्रयका शोधन करवानाकहै तहाँ विक्रेताकाही बुलवाना उस्से मानाजाय क्रयका शोधन करनानहीं यह कात्यायनजीने कहाहै-यथा (यदामूलमुपन्यस्यपुनर्वादीक्रयंवदेत् । अहरेन्मूलमेवासौनक्रयेणप्रयोजनम् -अत्रवादीक्रेतैवज्ञेयः) जबकोई क्रेता मूल दर्शन या क्रयशोधन दोमेंएकभी न करै तब अपराधके अनुसार दण्डहो-और जो-अग्रोक्तएक मरीचि मुनिके वाक्यसे प्रकाश क्रयहोनेमध्ये क्रेताकाही स्वत्व प्रतीतहोताहै तिसका आशय और है-यथाहमरीचिः (वणिग्वीथीपरिगतंविज्ञातंराजपूरुषैः । दिवाग्रहीतंयत्क्रेत्रासशुद्धोलभतेधनम्) अर्थात्-जो बाज़ार में से राज

पुरुषोंको जतलाकर किसी केताने दिनमें लियाहो तो वहकेता शुद्धहुआ आपही धनको पाताहै अर्थात् नाष्टिकस्वामी नहींपावै-एवंमनुस्तु (विक्रयाद्योधनंकिंचिद्गृह्णीयात्कुलसन्निधौ। क्रयेणसविशुद्धोहिन्यायतोलभतेधनम्) अर्थात्-ऐसीदशामेंवहकेताही उसवस्तुकोपावै नाष्टिक स्वामी नहींपावै-सो इनदोनों वचनोंका आशय केवल इतनाहै कि जबउस धनमें नाष्टिक स्वामीका स्वत्व सचावटको न पहुँचै तबयह उक्त न्यायहोना योग्यहै-परन्तु जहाँ-केता अपनी खरीदारीकी सचावटको साक्षीआदि प्रमाणोंसे न साधनकरवावै और वहनाष्टिक भी निजस्वत्वकी संसिद्धिनहीं करवावै तहाँ राजा अपनी बुद्धिसे विचार करिकै झगड़ा निपटावै-तदाहबृहस्पतिः (प्रमाणहीनेवादेतुपुरुषापेक्षयान्नृपः।समन्यूनाधिकत्वेचस्वयंकुर्याद्विनिर्णयम्) अर्थात्-जिस मुक़द्दमेमें दोनोंओर निपट प्रमाण नहींमिलताहो या न्यूनाधिक दोनोंओर से कुछ मिलताहो या दोनोंओर तुल्यप्रमाण मिलताहो तहाँ राजा आपदोनों पुरुषोंकी योग्यता आदि से यहनिर्णयकरै कि इनमेंकोई एकदुर्जनभी विख्यातहै यानहीं॥ इतनापाठसिर्फ़१७५ की अधिकोक्ति से सम्बन्धित जानो १७५॥ १७६ वाले मूलश्लोक से लेकर उसकी अधिकोक्ति में जो आगम तथाभोगका प्रसङ्गमात्र आया तिसका ब्यौरा यहाँ विशेष करके कहतेहैं कि-नाष्टिक स्वामी उसी पकड़ेहुये धनमें अपना स्वत्व ऐसी रीतिसे सुझावै जिस्से विक्रेता अथवाकेता आदिकिसी औरकाभी स्वत्वउसमें सिद्ध न होने पावैऔर जो ऐसान करसकै तौवहदण्डनीयहै-यथाहकात्यायनः (अभियोक्ताधनंकुर्यात्प्रथमंज्ञातिभिःस्वकम्। पश्चादात्मविशुद्ध्यर्थंक्रयंकेताविशोधयेत्॥ यदिस्वंनैवकुरुतेज्ञातिभिर्नाष्टिकोधनम्। प्रसङ्गविनिवृत्त्यर्थंचौरवद्दण्डमर्हति)अर्थात्-मुद्दई पहलेधन को अपने ज्ञाती आदि साक्षियों के प्रमाणद्वारा अपना निश्चित करवावै पीछेकेता भी निज अपना दोष निवारण करनेके हेतुसे सच्चाक्रय प्रकाशरूपसेही कियाहुआ निश्चित करवावै (सो) यह निश्चित करवाना इसका ऐसीदशामें संसूचितहै कि जो विक्रेताको न लासकाहो-परन्तु जो मुद्दई अपने ज्ञाती आदि साक्षियों से स्वत्व सिद्धि नहींकरावै तो फिर (प्रसंग) नाम झूँठादोष लगानेका मार्ग मेटिदेने के अर्थ उसको चोरोंके समान दण्डमिलै जिस्से आगेको फिर और कोई झूँठी पकड़ न पकड़ै यह सिद्धान्तहै और पकड़ीहुई वस्तु वहीकेतापावै-तथाचव्यासः (वादीचेन्मार्गितंद्रव्यंसाक्षिभिर्नविभावयेत्। दाप्यःस्याद्द्विगुणंदण्डं केतातद्द्रव्यमर्हति) यहाँपर साक्षियों के उपलक्षणसे और भी प्रमाण लेख्यपत्र यद्वा दिव्य आदि जो कुछ सम्भवहो सो हो सक्ताहै अर्थात् साक्षियोंके अभावमें लेख्यऔर लेख्यकेअभावमें दिव्यप्रमाणभीआवश्यक समुझेजाकर लियेजातेहैं-परजब कोईभाँति के प्रमाणोंसे वादी अपना स्वत्व सिद्धकरिदेवै तौभी अपनेस्वत्वका अवियोग सिद्धकरनाहोगा अर्थात् इसवस्तुकोमैंने

नहींरोपै यद्वा रोपिकर भी हारै तौवहवस्तु नाष्टिक स्वामीको निर्णयहोकरदिलवाईजाय-तथाचबृहस्पतिः(विक्रेतादर्शितोयत्रहीयतेव्यवहारतः। क्रेत्रेराज्ञेमूल्यदण्डौप्रदद्यात्स्वामिनेधनम्)कदाचित् विक्रेता न मिलसक्ताहोतौ वहक्रेता अपना सच्चा क्रय संशोधन करवादेवै तौभी दंडपाये विना छूटिजावै-यथाहनारदः(असमाहार्यमूलस्तु क्रयमेवविशोधयेत्।विशोधितेक्रये राज्ञा वक्तव्यःसनाकिंचन)कदाचित् वस्तुराजपुरुषोंके सन्मुख उन्हेंलिखाकरके लीगईहो तौ विक्रेताके नमिलने परभी क्रेता अपना दियाहुआ आधा मूल्यनाष्टिकस्वामीसे पासक्ताहै-यथाहवीरमित्रोदयधृतकात्यायनो. मनुमुक्तावलिटीका लिखितबृहस्पतिर्वा(वणिग्वीथीपरिगतंविज्ञातंराजपूरुषैः। अविज्ञाताश्रयात्क्रीतंविक्रेतायत्रवामृतः। स्वामीदत्त्वार्द्धमूल्यंतुप्रगृह्णीयात्स्वकंधनम्॥ अर्द्धंद्वयोरपहृतंतत्रस्याद्व्यवहारतः। अविज्ञातक्रयोदोषस्तथाचापरिपालनम्॥ एतद्द्वयंसमाख्यातमर्द्धहानिकरंबुधैः) अर्थात्-खुल्लम जो बाज़ारमेंसे राजपुरुषोंको लिखाकर कोईचीज़ बिनाठौर ठिकानाजाने विक्रेतासे लीजाय और बिक्रेता पीछे हाथनआवै तौ उसबस्तुकास्वामी आधामूल्य क्रेताको देकर अपनीवस्तुपावै क्योंकि इसमें दोनोंकी आधीहानि होना इसव्यवहारसे विनिश्चितकियागयाहै कि बिनाजानीचीज़का ख़रीदना एकदोषहै पर प्रत्यक्ष ख़रीदनेसे वहदोष आधारहा एवं स्वामी अपनेस्वत्वसे वहबस्तु पानेकाअधिकारी यद्यपि है पर निजवस्तुकी रक्षा नहींकरनेका यह अर्द्ध दोष उसकोलगा इस्से आधीहानि दोनोंकी होजाय(कदाचित् इसमें यहतर्कणा प्रकल्पितकरीजाय कि जब क्रेताने प्रत्यक्ष राजपुरुषों को जतलाकर सौदाकिया तौ किसहेतु से वहआधीहानि उठावे तौ यह उत्तरहै कि विनाजानी वस्तू बहुतसस्ती हाथआतीहै इसबातसे यह सम्भवहै कि शायद विक्रेता चोरीकरके लायाहो ऐसा सम्भव होतेहुये ख़रीदना फिर भी दोषहै पर सस्ती मिलनेके लालचसे ख़रीदीथी कदाचित् स्वामीको यह भेद न मिलतातौ इसलाभकाभी भागी वहीक्रेताथा इसहेतुसे अबआधीहानि उठानीहोगी(-इसमें मरीचिकाभी वचनप्रमाणहै-यथा(अविज्ञातनिवेशत्वात्यत्रमूलन्नलभ्यते।हानिस्तत्रार्द्धकल्पास्यात्क्रेतृनाष्टिकयोर्द्वयोः-मूलंविक्रेतारं)जहाँकहीं क्रेतापहले विक्रेताको लादेना कहकर पीछे क्रयका शोधन करवानाकहै तहाँ विक्रेताकाही बुलवाना उसमे मानाजाय क्रयका शोधन करनानहीं यह कात्यायनजीने कहाहै-यथा (यदामूलमुपन्यस्यपुनर्वादीक्रयंवदेत्। अहरेन्मूलमेवासौनक्रयेणप्रयोजनम् -अत्रवादीक्रेतेवज्ञेयः) जबकोई क्रेता मूल दर्शन या क्रयशोधन दोमेंएकभी न करै तब अपराधके अनुसार दण्डहो-और जो-अप्रोक्तएक मरीचि मुनिके वाक्यसे प्रकाश क्रयहोनेमध्ये क्रेताकाही स्वत्व प्रतीतहोताहै तिसका आशय और है-यथाहमरीचिः (वणिग्वीथीपरिगतंविज्ञातंराजपूरुषैः। दिवाग्रहीतंयत्क्रेत्रासशुद्धोलभतेधनम्) अर्थात्-जो बाज़ार में से राज

पुरुषोंको जतलाकर किसी क्रेताने दिनमें लियाहो तो वहक्रेता शुद्धहुआ आपही धनको पाताहै अर्थात नाष्टिकस्वामी नहींपावे-एवंमनुस्तु (विक्रयाद्योधनंकिंचिद्गृह्णीयात्कुलसन्निधौ। क्रयेणसविशुद्धोहिन्यायतोलभतेधनम्) अर्थात्-ऐसीदशामेंवहक्रेताही उसवस्तुकोपावे नाष्टिक स्वामी नहींपावे-सो इनदोनों वचनोंका आशय केवल इतनाहै कि जबउस धनमें नाष्टिक स्वामीका स्वत्व सचावटको न पहुँचै तबयह उक्त न्यायहोना योग्यहै-परन्तु जहाँ-क्रेता अपनी खरीदारीकी सचावटको साक्षीआदि प्रमाणोंसे न साधनकरवावै और वहनाष्टिक भी निजस्वत्वकी संसिद्धिनहीं करवावै तहाँ राजा अपनी बुद्धिसे विचार करिके झगड़ा निपटावे-तदाहबृहस्पतिः (प्रमाणहीनेवादेतुपुरुषापेक्षयान्नृपः।समन्यूनाधिकत्वेचस्वयंकुर्याद्विनिर्णयम्) अर्थात्-जिस मुक़द्दमेमें दोनोंओर निपट प्रमाण नहींमिलताहो या न्यूनाधिक दोनोंओर से कुछ मिलताहो या दोनोंओर तुल्यप्रमाण मिलताहो तहाँ राजा आपदोनों पुरुषोंकी योग्यता आदि से यहनिर्णयकरै कि इनमेंकोई एकदुर्जनभी विख्यातहै यानहीं॥ इतनापाठसिर्फ़१७५ की अधिकोक्ति से सम्बन्धित जानो १७५॥ १७६ वाले मूलश्लोक से लेकर उसकी अधिकोक्ति में जो आगम तथाभोगका प्रसङ्गमात्र आया तिसका ब्यौरा यहाँ विशेष करके कहतेहैं कि-नाष्टिक स्वामी उसी पकड़ेहुये धनमें अपना स्वत्व ऐसी रीतिसे सुझावे जिस्से विक्रेता अथवाक्रेता आदिकिसी औरकाभी स्वत्वउसमें सिद्ध न होने पावैऔर जो ऐसान करसकै तौवहदण्डनीयहै-यथाहकात्यायनः (अभियोक्ताधनंकुर्यात्प्रथमंज्ञातिभिःस्वकम्। पश्चादात्मविशुद्ध्यर्थंक्रयंक्रेताविशोधयेत्॥ यदिस्वंनैवकुरुतेज्ञातिभिर्नाष्टिकोधनम्। प्रसङ्गविनिवृत्त्यर्थंचौरवद्दण्डमर्हति) अर्थात्-मुद्दई पहलेधनको अपने ज्ञाती आदि साक्षियों के प्रमाणद्वारा अपना निश्चित करवावे पीछेक्रेता भी निज अपना दोष निवारण करनेके हेतुसे सच्चाक्रय प्रकाशरूपसेही कियाहुआ निश्चित करवावे (सो) यह निश्चित करवाना इसका ऐसीदशामें संसूचितहै कि जो विक्रेताको न लासकाहो-परन्तु जो मुद्दई अपने ज्ञाती आदि साक्षियों से स्वत्व सिद्धि नहींकरावै तो फिर (प्रसंग) नाम झूँठादोष लगानेका मार्ग मेटिदेने के अर्थ उसको चोरोंके समान दण्डमिलै जिस्से आगेको फिर और कोई झूँठी पकड़ न पकड़ै यह सिद्धान्तहै और पकड़ीहुई वस्तु वहीक्रेतापावे-तथाचव्यासः(वादीचेन्मार्गितंद्रव्यंसाक्षिभिर्नविभावयेत्। दाप्यःस्याद्द्विगुणंदण्डं क्रेतातद्द्रव्यमर्हति) यहाँपर साक्षियों के उपलक्षणसे और भी प्रमाण लेख्यपत्र यद्वा दिव्य आदि जो कुछ सम्भवहो सो हो सक्ताहै अर्थात् साक्षियोंके अभावमें लेख्यऔर लेख्यकेअभावमें दिव्यप्रमाणभीआवश्यक समुझेजाकर लियेजातेहैं-परजब कोईभाँति के प्रमाणोंसे वादी अपना स्वत्व सिद्धकरिदेव तौभी अपनेस्वत्वका अवियोग सिद्धकरनाहोगा अर्थात् इसवस्तुकोमैंने

अपने हाथसे न बेंचाहै न दानमें देदिया इतना औरभी प्रमाण देनाहोगा-तथाहकात्या यनः (नाष्टिकस्तुप्रकुर्वीततद्धनंज्ञातिभिःस्वकम् । अदत्तत्यक्तविक्रीतंकृत्वास्वंलभते धनम्) अर्थात्-पहले नाष्टिकही उसधनको ज्ञातीलोगोंके प्रमाणद्वारा अपना ठहरावै परउसधनको फिरअदत्त और अत्यक्त अविक्रीत करिकै पाताहै-क्योंकि जहाँमुद्दआ अलेह ऐसाउज़र करनेलगै कि हाँ यहवस्तु इसकी ठीकथी परइसने ठेठमुझको या अमुकामुक दानपात्रोंको देदीथी या त्यागी यद्वाबेंचीथी तिनसे मैंनेपाई-तबइनबातों काभी निर्णय मांगाजाताहै कि इसने कोईभाँति अपनी वस्तुका वियोग पहलेकिया यद्वानहीं ॥ इतनापाठ सिर्फ़ १७६ की अधिकोक्ति में सम्बन्धित जानो १७६ ॥

अबजोनीचेवर्णनकरतेहैं सोसब अधिकोक्तों से उपरालूपाठजानो किंतु-ऊपरजैसेअ स्वामि विक्रेताआदिके अपराध दर्शायेगये तद्वत् अस्वामि दत्तवस्तू जोस्वामीकी अनु- ज्ञाविनाभोगै तिसकोदंड होनायोग्यहै-यथाहनारदः उद्दिष्टमेवभोक्तव्यंस्त्रीपशुर्वसुधापि वा । अनर्पितंतुयोभुंक्तेभुक्तभोगंप्रदापयेत् । अनुद्दिष्टंतुयोद्रव्यंदासक्षेत्रगृहादिकम्।स्व वलेनैवभुंजानश्चौरवद्दंडमर्हति। अनड्वाहंतथाधेनुंनावंवासन्तथैवच॥अनिर्दिष्टंतुभुंजा नोदद्यात्पणचतुष्टयम्।दासीनौकातथाधुर्योवंधकंनोपभुज्यते।उपभोक्तातुयद्द्रव्यंपण्येनै वविशोधयेत्।दिवसेद्विपणंदासींधेनुमष्टपणंतथा।त्रयोदशंत्वनड्वाहमश्वंभूमिंचषोडशः नौकामश्वांचधेनुंचलांगलंकार्मिकस्यच। बलात्कारेणयोभुंक्तेदाप्यश्चाष्टगुणंदिने॥उलू खलेपणार्द्धंतुमुसलस्यपणद्वयम्।शूर्पस्यचपणार्द्धंतुजैमिनिर्मुनिरब्रवीत्(पण्येनपणसमू हेन-अत्रैकोधेनुशब्दोगामाभिधत्ते- अपरोधेनुशब्दोदोग्ध्रीमाहिष्यादिकंसूचयति.कार्मि कस्यकर्मोपजीविनः-इतिवीरमित्रोदयः)इत्यस्वामिविक्रयादौविशेषविवेकः ॥

इत्यस्वामिविक्रयप्रकरणम्

यह अस्वामिविक्रय नामका प्रकरणएक इसी ६९ संख्याके परिच्छेदसे समाप्तहुआ

अथदानविवादप्रसङ्गेतावद्देयादेयादिभेदैर्विधिनिषेधविचारविवेकोनाम७० परिच्छेदः

इससत्तरि संख्याके परिच्छेदमें समस्त दानमात्रके विवादोंका प्रसंगलेकर देय तथ।अदेय आदि दानोंकीविधि और निषेध निर्णय सहित जानेजायँगे ॥

समस्त दानमात्रके विवादोंका यहप्रकरणहै इसभांतिके विवादोंका नाम(दत्तानपक र्म)या(दत्ताप्रदानिक)भी विख्यातहै और दोनोंनामोंका अर्थकेवल एकहैकिदियाहुआ दानफिर लौटायाजाय-यथाहनारदः(दत्त्वाद्रव्यमसम्यग्यःपुनरादातुमिच्छति।दत्ताप्र दानिकंनामव्यवहारपदंहितत्)अर्थात्-यदिकोई पुरुष असम्यक् नामअनुचित मार्ग सेकुछ द्रव्यदेकर फिर लौटारलेना चाहै तिसझगड़ेके व्यवहारपदको दत्ताप्रदानिक नामजानो-इसीको-दत्तानप कर्मनाम मनुने अष्टादश वादनामोंकी संख्या में कहकर उसकारूपभी ठहरक्खाहै कि(धर्मार्थंयेनदत्तंस्यात्कस्मैचिद्याचतेधनम् । पश्चाच्चनत

थातत्स्यान्नदेयंतस्यनद्भवेत्)अर्थात्-जिसने किसीयज्ञादि उत्तमकामोंके नामसे माँगने वालेको धनदिया यद्वा देनेकहाहो और पश्चातलेने वाला वैसा करनेपर आरूढ़ न हो या उसधनसे कोई और काम करनेलगे तो फिर उसकोदिया न जावै किंतु पूर्वदत्त भी लेलियाजावै-यद्यपि-सभीग्रंथोंमें निर्णीत है कि दोनोंनामोंका आशय केवल एक है परन्तु विज्ञानेश्वरने इनदोनोंको दो आशयपर दर्शायाहै कि जहां कहीं अनुचित रीतिसे धनदेकर फिर लौटारलेनेका झगड़ाहो तिसहीको दत्ताप्रदानिक नामजानो क्योंकि उसमें दियेका न देना यहभावार्थहै-दूसरा-दत्तानपाकर्म नाम तहांसमुझौ जहां उचितमार्गसे धन देकरअभी ऊपरकहे प्रकारसे विपरीत झगड़ाहो अर्थात् उचितमार्गसे देना कहकर फिर न दे यद्वादेकर फिर लौटारलेना चाहै और वहलेनेवाला सच्चा दावाकरै यह सिद्धांतहै-तद्यथाहुर्विज्ञानेश्वराचार्याः (अधुनाविहिताविहितमार्गद्वयाश्रयतयादत्तानपाकर्मदत्ताप्रदानिकमितिचलब्धाभिधानद्वयंदानाख्यंव्यवहारपदं अभिधीयते-तस्यस्वरूपंचनारदेनोक्तं-दत्त्वाद्रव्यमसम्यग्यः पुनरादातुमिच्छति। दत्ताप्रदानिकंनामव्यवहारपदंहितादिति असम्यगविहितमार्गाश्रयेणद्रव्यंदत्त्वापुनरादातुमिच्छति यस्मिन्विवादपदेतद्दत्ताप्रदानिकंदत्तस्याप्रदानंपुनर्हरणं यस्मिन्दानाख्येतद्दत्ताप्रदानिकंनामव्यवहारपदमित्येकंनाम -विहितमार्गाश्रयत्वेनतत्प्रतिपक्षभूतंतदेवव्यवहारपदंदत्तानपाकर्मेत्यर्थादुक्तंभवति दत्तस्यानपाकर्मअपुनरादानंयत्रदानाख्येविवादपदेतद्दत्तानपाकर्मेत्यपरंनाम)इति मिताक्षरायां (अत्रयद्यपिनामलक्षणद्वैधेप्राचीनस्मृतिवचनप्रमाणाभावस्तथाप्यतिसूक्ष्मधियाविविक्तकार्यरूप द्वैधत्वेसिद्धेऽस्मदादीनामप्यनुमतिर्दृढतराज्ञेयायस्माद्त्रव्यवहारसौगम्यमप्यनुवर्ततेनकश्चिद्दोषः) ऊर्ध्वोक्तमनुके वचनमें सिर्फ़यह आशय पायागयाथा कि देतेसमय विहितमार्गसेही उचित जानिकर धनदियाहो किंतु लेनेवालेके दोषपीछे प्रकटहोनेसे दाताफिर लौटारना चाहै-और-नारदके ऊर्ध्वोक्त वचनका यह आशयथा कि ठेठ देतेसमय देनेवालेने अयोग्यरीतोंसे देदियाहो तिसका फिर लौटारलेना हो-और-विज्ञानेश्वरके उस द्विविध लक्षणमें इनदोबातोंके सिवाय एकतीसरा भेद पायागया कि उचितमार्गसे सुपात्रकोहीदेना कहकर फिर न दे यद्वादेकर छीनलेना चाहे ठेठदाता यद्वादाताका दायाद आदिकोई और प्रतिनिधि होकरछीने और प्रतिग्रहीता अपना सच्चादावा खड़ाकरै तौइस विवादको दत्तानपाकर्म जानो-सोइन अनेकभेदोंपर कुछ शंकाकरनेकी जरूरत नहींहैं क्योंकि प्रत्येक व्यवहारोंमें मनुष्योंकेही क्रियाभेदोंसे अनेकरूप होतेहैं कुछ आश्चर्य इसमेंनहीं-वरन इसीलिये व्यवहारोंकेनामरूप लक्षणोंका आनंत्यकहागया है कि(पदान्यष्टादशैतानिव्यवहारस्थिताविह। तेषामेवप्रभेदोऽन्यःशतमष्टोत्तरंभवेत्॥ क्रियाभेदान्मनुष्याणांशतशाखोनिगद्यते) इस्सेचाहे तितनेभेदहों सोसब सच्चेहैं पर

तौभी इसका मुख्यनाम सिर्फ़ (दत्ताप्रदानिक)एकजानो जो विख्यातहै और इसही एकनामसे सबरूपोंका बोध कियाजाताहै कि जैसेएकदिन कहने से सिर्फ़ दिवसमात्र काभी बोधयथा प्रयोजनके अनुसार और वही एकदिन कहनेसे दिनराति दोनोंका बोध एक साथ किया जाता है इन बातों का संदेह आगे आपसे आप जाता रहेगा इसलिये मुख्य प्रयोजन पर अब ध्यान करना योग्य है कि देना चारभांति का नारद ने निरूपित किया है--यथा (अथदेयमदेयंचदत्तंवादत्तमेवच । व्यवहारेषुविज्ञेयोदानमार्गश्चतुर्विधः) अर्थात्-इस विवाद के व्यवहारों में दान मार्ग चार भाँति का विज्ञेय है कि (देय)(अदेय)(दत्त)(अदत्त) अब इनचारों के विशेष लक्षण कहते हैं कि इनमें देयरूप देना वह कि जिसबस्तुमें देनेवाले का पूरास्वत्वहो और जिसबस्तुके दानकरने का प्रतिषेधन हो-अदेयरूप देना इस्से विपरीत होता है कि जिसबस्तुमें देनेवाले का पूरास्वत्व न हो यद्वा पूरास्वत्व होनेपर जिसबस्तुको दान करदेने का प्रतिषेधहो-दत्तरूप देना वह कि जो सर्वथा सावधान प्रकृतस्थ मनुष्यने निज ज्ञान पूर्व दान कियाहो सो वह दत्तनाम दियेहुये में गिनतीहै इसलिये कि फिर वह लौटि नहीं सक्ता-अदत्तरूप देना वह कि जोबस्तु फेरलेने योग्यहो किन्तु यद्यपि किसी दुर्हेतुसे या धोखे आदि औरही किसी हेतुसे कुछदेभी दियागया पर देदेने में वह गिनती नहीं होसक्ता इस्से उसे अदत्त दान कहते हैं-इन्हीं चारों भेदका यथार्थ ब्यौरा नाना भाँतिसे अधिकोक्तिमें दर्शाया जायगा-और इन्हीं चारों भेदोंका संक्षेप आशयलेकर यहाँ योगीश्वर याज्ञवल्क्य जी निजमूल भूत बाक्य कहते हैं सोदेखो॥

स्वंकुटुंबाविरोधेनदेयंदारसुताद्दते। नान्वयेसतिसर्वस्वंयच्चान्यस्मैप्रतिश्रुतम् १८०॥

ऐ०-कुटुंबके अविरोधसे स्वंदेयहै (पर) दार सुतके विना-अन्वयके होनेमें सर्वस्व देय नहीं और जो और को प्रतिश्रुत कियाहो सोभी नहीं-अर्थात्-स्वंकहिये अपना द्रव्य देयनाम देने योग्यहै पर उतना देना योग्यहै कि जितना देनेसे कुटुंबमें बिरोध पालनआदिसे नहोनेपावै(और)अपना धन देदेनेमें अधिकार यद्यपिहै परंतु स्त्री पुत्रभी निज अपनाही धन होतेहैं तिनको छोड़ि अन्यधन दातव्यहै यह अपवाद इतना दान विधिमध्ये जानो-और दातव्य धनभी पुत्रादिक वंशरूप अपना अन्वय विद्यमानहोते हुये सर्वस्व दान करदेनेका प्रतिषेध जानो किन्तु जो निर्वंशहो वह सर्वस्व दान भी करसक्ताहै (और) सर्वस्वभी या थोड़ाही धन जो कुछ किसी और को यथार्थ मार्गसे धर्मानुसार देने कहाहो सो फिर औरको देदेने में उस दाताका अधिकार नहीं किन्तु ऐसा करने में विवाद रूपसे व्यवहार खड़ेहोते हैं १८०॥

मधि०-कुटुंबके अविरोधसे अपना द्रव्य देयहै इस कथनसे योगीश्वरने एक विधि देयमात्रकी प्रदर्शितकरी और इसीसे प्रतिषेधकी दूसरी विधि ध्वन्यर्थमय दर्शाईहै

कि अपना द्रव्यदेवे अर्थात् जिनमें अपना स्वत्व नहो वेही द्रव्य अदेयहैं किन्तु अपने स्वत्वसे रहित द्रव्य पाँचप्रकारके होतेहैं अन्वाहित १ याचित २ आधि ३ साधारण ४ निक्षेप ५ इनकेरूप लक्षण व्योरे वार्देखो सब इकतीसके परिच्छेदमें ६८ वाले मूल श्लोकसे-यह पांचोंद्रव्य कोई अपना स्वत्व न होने यद्वा कोई पूरा स्वत्व न होने से अदेय होतेहैं और इनपांचके सिवायतीन और भी अदेय द्रव्य होतेहैं कि जिनमें अपना पूरा स्वत्व होनेपर भी दानकरनेका प्रतिषेधहै यह दोनों भांति मिलकर आठ भाँतिके अदेय द्रव्य होते हैं-तदाहबृहस्पतिः (सामान्यंपुत्रदाराधिसर्वस्वंन्यासयाचितम्। प्रतिश्रुतमथान्यस्यनदेयंत्वष्टधास्मृतम्)-अर्थात्-एक तो सामान्य जो अनेकों के साझेका धनहो १ पुत्र २ दारा ३ आधिजो बंधकरूप गिरवीका धनहो ४ सर्वस्व नाम सबधन अपना वंशहोतेहुये ५ न्यासधरोहरि ६ याचित मँगतू आई चीज़ ७ अन्यप्रतिश्रुत जो और को कुछ देना कहागयाहो ८ यही आठ भांतिके अदेय द्रव्य कहे-यही प्रकार नारदने भी कहाहै-यथा (अन्वाहितंयाचितकमाधिःसाधारणंचयत्। निक्षेपःपुत्रदारांश्चसर्वस्वंचान्वयेसति ॥ आपत्स्वपिहिकष्टासुवर्तमानेनदेहिना। अदेयान्याहुराचार्यायच्चान्यस्मैप्रतिश्रुतम्) अर्थात्-अन्वाहित १ याचित २ आधि ३ साधारण अनेकोंके साझेवाला सामान्य धन ४ निक्षेप नाम न्यास धरोहरि ५ पुत्रदारदोनों ६ सर्वस्व ७ अन्यप्रतिश्रुत ८ यही आठ भांतिके धन आचार्योंने अदेय कहे इनको वही कष्ट दायक आपत्ति में फँसि जानेपर भी दानकरने का प्रतिषेधहै-नारदके इस वचनमें सबसे पहिलाएक अन्वाहित भेद अधिकहै इसीलिये नारदने पुत्रदारा दोनोंको इकट्ठा एकसाथ कहा क्योंकि इन दोनोंके धनत्वमें कुछ अंतर नहीं है और मुख्य प्रसिद्ध आठ भाँतिके सिवाय नववांभेद गिनती करना भी असंगतहै-इसीप्रकार बृहस्पति ने अन्वाहित का नाम जुदा इस्से नहीं रक्खा है कि याचित कहिनेसे अन्वाहित स्वतःसमुझाजाताहै किन्तु याचित और अन्वाहितमें कुछ बहुत बड़ा अंतर नहीं इस्से पुत्रदाराकोही जुदा जुदा गिनकर आठों संख्यापूरी करीं-और-यद्यपि दक्षने नौबस्तु नाम सहित जुदीकही हैं पर उनमें एक स्त्री धन गणि लेनेसे नौ संख्याहुई हैं और अन्य प्रतिश्रुत उनमें नहीं कहा इस्से केवल आठसंख्या रहिजानी संभवथी परंतु दक्षने निक्षेप न्यास दोनों जुदे रखिकर याचित अन्वाहित को भी जुदा जुदा रक्खाहै इस हेतुसे नौसंख्यापूरी हुई तथापि पुत्र उनमें गिनती नहीं रक्खा तिसका हेतु संग्रहकारों ने यह मानाहै कि दत्तक दान करने की अनुज्ञा शास्त्र विहित है फिर पुत्रदान को अदेय दानों में किस लिये गिनती करते सो यह ब्यौरा इसी अगले बचन में सब सोचो-यथाहदक्षः-(सामान्यंयाचितंन्यास आधिर्दाराश्च तद्धनम्। अन्वाहितंचनिःक्षेपःसर्वस्वंचान्वयेसति ॥ आपत्स्वपिनदेयानिनववस्तूनि

पण्डितैः । योददातिसमूढात्माप्रायश्चित्तीयतेनरः) (तद्धनंस्त्रीधनं) योगीश्वर ने कुटुंब के अविरोध से जो देना कहा तिसका हेतु केवल यही है कि निज कुटुंब का भरण पोषण करसकने से अधिक जो कुछ समुझाजाय उसमें से कुटुंबी दान करने का अधिकारीहै-तदाहनारदः (कुटुंबभरणाद्द्रव्यंयत्किंचिदतिरिच्यते । तद्देयमुपहत्या न्यन्नतद्दोषमवाप्नुयात्-अन्यदुपहत्यभर्तव्यकुटुंबमनवरुध्येत्यर्थः) कुटुंब का भरना एक बहुत बड़ी आवश्यक मर्यादाहै-यथाहमनुः(वृद्धौचमातापितरौसाध्वीभार्यासुतः शिशुः । अप्यकार्यशतंकृत्वाभर्तव्यामनुरब्रवीत्) और-पुत्रपौत्रादि बंशके होतेहुये जो सर्वस्व दान करनेका प्रतिषेधकिया तिसकाहेतु यहीहै कि गार्हस्थ्य धर्मापुरुषपरनिज वंशकी आजीवन वृत्तिकल्पित करनेकाभार है-यथोक्तं (पुत्रानुत्पाद्यसंस्कृत्यवृत्तिंचै षांप्रकल्पयेत्) योगीश्वरने और नारदने बृहस्पतिने भी सुतकादान अदेय कहा किंतु एक दक्षने सुतदानको अदेय नहीं कहा यद्यपि इसमें समाधानको अवकाशहै कि दक्षनेयदि देनेका प्रतिषेध नहीं किया तौ कुछ देनेकी अनुज्ञाभी तौ नहीं लिखी इससे शंकाकरनी व्यर्थ है तथापि इसमें वादीको अवकाश पूरा है कि (अप्रतिषिद्धमनुमतं भवति) अर्थात् जिसकाम का प्रतिषेध नहीं कियाजाताहै उसकामके करनेमें अनुज्ञा समुझिली जातीहै और शंकाभी इसहेतुसे कुछ व्यर्थ नहींहै कि एकने प्रतिषेध नहीं किया अनेकोंने प्रतिषेधकिया-इसी द्विविधाके हेतुसे ग्रन्थांतर संग्रहकारोंने इसबात कायह निर्णय नियत कियाहै कि पुत्रका न देना जो अनेकोंने दर्शाया सो वह एक पुत्रकेही स्थलमें समुझना जहां केवल एक पुत्रइकलौताहो क्योंकि इकलौताके देदेने से बंशनाशहोनी संभव है और यही आशय विष्णु बसिष्ठ दोनोंके अग्रोक्तवाक्यसे प्रत्यक्ष पायाजाताहै-यथाहतुर्विष्णुवसिष्ठौ (शुक्रशोणितसंभवः पुरुषोमातापितृनिमि त्तकः तस्यप्रदानविक्रयपरित्यागेषुमातापितरौप्रभवतः नत्वेकंपुत्रंदद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वा सहिसंतानायपूर्वेषाम्) इसीप्रकार आगिला जो यह वाक्यहै कि(सुतस्यसुतदाराणांव शित्वंत्वनुशासने । विक्रयेचैवदानेचवशित्वंनसुतेपितुः) अर्थात्-पुत्रतथापुत्रकीदारा-ओंका भी पिताके बशमें रहिना शास्त्रसे जो नियत है सो केवल उसकी आज्ञाकेवश वर्तीरहिने मध्ये नियतहै कुछ विक्रय यद्वादान करदेने मध्ये नहीं-इत्यादिबहुधा और भी ग्रन्थांतर वाक्य जो सुतके देदेनेका प्रतिषेधकरतेहों सो सब इकलौताके कजानो किंतु अनेक पुत्रहोनेपर प्रतिषेध ऐसा नहींहै-परंच अनेक पुत्रोंके होने पर जो कोई पुत्र अपने माता पिताका वियोग सहसक्ताहो वही देना योग्य है-कात्यायनः(विक्रयश्चैवदानञ्चननेयाःस्युरनिच्छवः । दाराःपुत्राश्चेत्यादिः) परइस का भी नियम अनापत्काल में समुझना क्योंकि (
वा । अन्यथानप्रवर्त्तेतइतिशास्त्रविनिश्चयः) यहभी एक आपद्धर्म रूप नियमहै

साधारण काल में भी पुत्रदान पतिकी सम्मतिसे सातातक निज ज्ञातिमात्रको कर सक्तीहै-यथाहतुर्विष्णुवसिष्ठौ-(नतुर्स्त्रीपुत्रंदद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वाऽन्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुः)-(अथस्थावरस्यदेयत्व)-यथाहवृहस्पतिःप्रजापतिश्च-(सप्तागमाद्गृहक्षेत्रात्पैत्र्यक्षेत्रंप्र दीयते। पित्र्यंवाथस्वयंप्राप्तंतद्दातव्यंविवक्षितम्)-अर्थात्-पूर्वोक्त सातभाँतिके आगम से उत्पन्नहुआ गृहक्षेत्र आदि जो कुछहो चाहे(पित्र्य) कहिये पैतृक पैतामह वंशपर-म्परासेही चलाआयाहो यद्वा अपने आप अर्जितकियाहो तिसमें से जो थोड़ाबहुत दीजिये सो दातव्य नाम देयधन कहलाताहै-उसदशामें कि जो निज कुटुम्ब के पाल-नहेतुसे कुछ अधिकहो अन्यथा नहीं-इसीमध्ये-कात्यायनका यह कथनहै कि-(सर्वस्व गृहवर्जंतुकुटुम्बभरणाधिकम् । यद्द्रव्यंतत्स्वकंदेयमदेयंस्यात्ततोऽन्यथा)-अर्थात्-निज अपना द्रव्यजो कुछ कुटुम्ब के भरने से अधिक समुझाजाय वह सर्वस्व और गृहको छोड़कर दातव्यहै इसते और भाँति जो कुछहो उसे अदेयजानो-इसका यह आशय पायागया कि ऐसा स्थावरभी कि जिसकी पैदावारी से कुटुम्बका पालनहोता हो यदि वह पालन करसकनेसेभी अधिकहो तौ दातव्यहै परन्तु जितना अधिक समुझाजाय उतना सब दातव्य नहीं क्योंकि जितना कुटुम्ब के पालनहेतु समुझा गया वहतौ किसी दानयोग्य धनमें गिनती नहीं रहा और जो उस ते शेष अधिक समुझागया तिसको सब देदेनेसे सर्वस्वदान ठहरैगा सर्वस्वदान करदेनेका प्रतिषेधहै इसके सिवाय गृहभी छोड़देना कहा तिसका आशय सिर्फ इतनाहै कि जिसके केवल एकहीघर निज कुटुम्ब के रहने योग्यहो तौ वहदान करने योग्यनहीं-औरजो-उन्हीं कात्यायन का यहएक वाक्य और है कि- (विभक्ताअविभक्तावादायादाःस्थावरेस माः । एकोप्यनीशःसर्वत्रदानाधमनविक्रये)-अर्थात्-दायाद चाहै जुदे हों या मिले हों स्थावर धनमें सभी बराबर हैं इसलिये कोई एक एकला दान करदेने या गि-रवी रखदेने या विक्रय करदेने में सर्वत्र अनीश है-सो इसवाक्यमें ऊपरले वाक्यसे विरोधनहीं समुझना क्योंकि उसमें तौ निजतन्त्र कुटुम्बी का चर्चा था और इसमें दोनोंभाँति के कुटुम्बी का यह चर्चा है कि चाहै अपने भ्राता आदि दायादों से वह जुदा होकर निजतन्त्रहो यद्वा मिलाझुलाहो तौ भी स्थावर धनको वियोग सभी दायादों की अनुमति लेकर करै-इसमें जो इस बात का विरोध पायाजाता है कि अभी ऊपर अपना द्रव्य जो सातमें से किसी एक आगम द्वारा मिलाहो देना कहाथा फिर जब जुदाहोकर अपने पैतृक या पैतामह धनको बाँटिचुका तौ यह एक भाँतिका आगम हुआ इसमें उन दायादोंका क्या संबंधरहा जो बूझे बिना न देवै (सो) इस द्विविधामें यह शंका शांतिहै कि अपनी जुदीहुई वस्तुके देदेनेमें स्वातंत्र्य यद्यपिहै तौ भी यह स्थावर धनका नियमहै कि चाहै वेचै या गिरवीरक्खै या दान

देवै तौ भी सबको अपने और बिरानोंको भी प्रकटकरके ऐसाकरै जब इसबातका बिरानोंको भी प्रकटकरना आवश्यक ठहिरा तौ फिर दायाद तौ निज अपनेही सपिंड हैं जुदेहैं तौ क्या हुआ विक्रयकरने मध्ये उनका एकप्रकारका स्वत्व इसमें अबतक चलाआताहै कि शायद वे आपही ऐसे स्थावरका क्रयकरें इसके मध्ये देखो शिवके वचन ६२ संख्याके परिच्छेदमें (विभक्त भ्रातादि कृत्यके अधिकार) में और विक्रय केही तुल्य बंधकरखनेमें भी उनका स्वत्व समुझो और दानके जो प्रकटकरने का हेतु हो सो योगीश्वरकेही अगिले १८१ वाले मूल श्लोकसे विचारो (और) अविभक्त दायादोंसे जो संमतिलेना कहा सो प्रत्यक्षहै कि जिन (का) धन संसृष्टहै उनके बूझेविना क्योंकर कोई एक अपने अंशका वियोग करसकने में ईश्वरहोगा किंतु निःसंदेह अनीश्वर है कि जबतक वे दायादइसको अनुमति नहींदें-इसीहेतुसे ऊपर ले वहुधा वाक्योंमें साधारण धनको अदेयकहाथा (तथापि) इसवारीकी परभीध्यान करनायोग्य है कि लिपट सर्वत्रही ऐसा नियमनहीं समुझना किंतु किसीकिसी आवश्यक और सुयोग्य अवसरमें एकला पुरुषभी दानविक्रयआधि इनतीनोंको करसक्ता है फिर चाहै धन संसृष्टहो यद्वा असंसृष्ट कुछ इसका नियमनहीं इसीलिये कात्यायन जीने इसी संवर्णित वाक्यमें यहकहाहै कि (एकोप्यनीशःसर्वत्र) अर्थात्-सर्वत्रनाम सभी अवसरमें नियमात्मक ऐसा करसकनेमें एकला पुरुष अनीशहै ध्वन्यर्थइसका यहकि बिरलेयोग्य अवसरमें कहींकहीं एकला पुरुषभी करसकनेमें ईशहै यहीआशय इसअग्रोक्त वाक्यसे संसिद्धहै-यथास्मृत्यंतरे-(एकोपिस्थावरेकुर्याद्दानाधमनविक्रयम्। आपत्कालेकुटुंबार्थेधर्मार्थेचविशेषतः)-बृहस्पतिस्तु-(स्वेच्छादेयंस्वयंप्राप्तंबन्धाचारेण बन्धकम्) अर्थात्-(स्वयंप्राप्त) द्रव्य जो आपही किसी आगमद्वारा पायाहो सोनिज इच्छासे हीदेयहै अर्थात् यद्यपि अविभक्त भाइयोंके साझेमेंभी कोई भ्राताराहितहो अपनेकिसी भिन्नआगमसे उत्पन्नकिये धनको उनकी इच्छाविना भी देसक्ताहै पर जो कोईधन स्थावर अपनावंधकहो यद्वा अपनेपास किसी और काहीवंधकहोतौ वहआधिप्रकरणकी मर्यादोंसेहीदेयहै-भला-यह सब अत्रोक्त नियम भ्राता या भतीजा आदि दायादोंकेसाथ सूचितहुयेपर जब पिताही इनकामोंको करनाचा है जिसके दायाद पुत्रादिक अज्ञान यद्वा किंचित्प्राप्त व्यवहारहों तिसकेमध्ये व्यासजीने कहाहैकि-(स्थावरंद्विपदंचैवयद्यपि स्वयमर्जितम्। असंभूयसुतान्सर्वान्नदानंनचविक्रयः॥ येजातायेप्यजाताश्चयेचगर्भे व्यवस्थिताः। वृत्तिंचतेऽभिकांक्षंतिनदानंनचविक्रयः)-अर्थात्-स्थावर और द्विपद नाम दास दासी आदि ऐसा धन यद्यपि किसीपिताने आपही पैदाकियाहो तौ भी उसकादान या विक्रयकरना सभी पुत्रोंकी संमतिलिये विना नहींकरना क्योंकि पुत्र या पौत्रादिक जे कोई जन्मलेचुके और जे कोई जन्मलेवेंगे या जे कोई हाल गर्भमें उप-

स्थितहैं वे सभी अपनी जीवन वृत्तिकी आकांक्षारक्खाकरते हैं इसलिये उनसे बूझे विना द्विपद और स्थावर धनका नतोदान है न विक्रय-सो इस नियमकाभी निपट यही आशयनहींहै कि जो पुत्र कुछ अज्ञान संमतिदेने लायक न हों तो इनकामोंका अवरोध रहे किंतु जहाँ पुत्र बालक हो तिसका नियम ४३ के परिच्छेद में पिछले आंकपृथ्वी निर्गमकी विधिसे पहलेदेखो और जोपुत्र कुछव्यवहार परहोचुकेहों तो उनपुत्रोंकी इनकामोंमें अनुमति लेनीयोग्यहै और पुत्रोंकोभी योग्यहैकि जोवहपिता उचितमार्गसेही करताहो तो अवरोधक उसके न हों किंतु अनुमतिदेवें इसकाब्योरा ४७ के परिच्छेदमें १२४ की अधिकोक्तिमें विचारो परयह अनुमतिका लेना केवल इसहेतुसे आवश्यक रक्खागया है कि पीछेपिता पुत्रोंमें विरोध खड़ाहोनेका कुछअवसरनहींआवे और वहपिता भी स्वातंत्र्यभावसे सर्वस्वदान करनेआदि अनुचित मार्गोंपर आरूढ़ न हो-और इसीवाक्यमें (यद्यपि अपनाही कमायाहो) इसकहनेसे यहआशयभी प्रत्यक्षहै कि जो कोईधन स्थावर यद्वा द्विपद पैतामह परंपरासेहीचला आयाहो तिसकादान विक्रयआदि करनेमें अवश्यभावसे निजपुत्रोंकी अनुमतिलेनी योग्यहै क्योंकि उसधनमें पितापुत्र दोनोंका तुल्यात्मक स्वत्वहै-इसीआशयसे-शिवजी नेभी यहकहाहैकि-(नसमर्थःपुमान्दातुंपैतृकंस्थावरंचयत्। स्वजनायाथवान्यस्मैदायादानुमतिंविना) अर्थसुगमहै कि पैतृक धन स्थावर विना पुत्रादि संमतिकेनहींदिया जासक्ताहै-अर्थात् जंगमधन पैतृकभी पुत्रादि संमतिविना दियाजाताहै और निजअपनाही कमाया दोनोंभांतिका यह बात अगलेवाक्यसे सुनिश्चित है-तथाचसदाशिवः-(यत्तुस्वोपार्जितंरिक्थंस्थावरंस्थावरेतरत्। अस्थावरंपैतृकंचस्वेच्छयादातुमर्हति)इस वचनमें स्थावरभी अपना पैदाकिया विनाबूझे अपनी इच्छामात्रसे जो देना कहासो यह आधेधनका विषय समुझना क्योंकि यहभी नियम कहीं आगे बढ़कर शिवके वचन कहेंगे-इन्हींदोनों अद्योक्त वचनोंकेतुल्य आशयवाले दोश्लोक औरभी शिव जीनेकहेहैं तिनसे यहभी नियम सिद्धहोताहै कि अमुकामुक पुरुषोंके होतेहुये धनी ऐसा करसक्ताहै-यथा-(स्थितेपुत्रेऽथवापत्न्यांकन्यायांतत्सुतेऽपिवा। जनकेचजनन्यांवा भ्रातर्य्येवंस्वसर्यपि। स्वार्जितंस्थावरधनमस्थावरधनंचयत्॥ अस्थावरंपैतृकंचसर्वदातुंक्षमोभवेत्)इसवचनमें (सर्वदातुं) इसकथनसे सर्वस्वदानकी कुछ आज्ञानहीं किंतु दर्शायेहुये सबतरहके द्रव्योंका भावार्थहै-इन्हीं चारोंवचनोंसे ऊपर छोड़ेहुये चर्चा मध्ये ध्यानकरो कि जहां धन अपनाही कमायाहुआ न हो किन्तु पैतृक पैतामह आदि परम्परा काही चलाआयाहो और अपने पुत्र कुछ अज्ञान बालक हों तिनका वही नियम ४३ के परिच्छेद पिछले अंत पृथ्वी निर्गम की विधिसे पहले देखो यहाँ अज्ञान बालकपुत्रोंके उपलक्षणमें छोटेभ्राता और भतीजे पोताआदि सभी समुझने

(परजो)पुत्र या पौत्र कुछ सज्ञान प्राप्तव्यवहार कालहों तौ इनदोनोंका व्योराउसी४७ के परिच्छेदमें १२४ की अधिकोक्तिसे विचारौ-इन सब नियमोंके सिवाय-अब इस बातपर भी ध्यान धरनायोग्यहै कि निःसंदेह अपना स्वत्वदान करने में अर्जयिता का अधिकार निश्चित कियागया और पुत्रादिक अपने पिता माताके अधीन होने कहे हैं-यथा-(जीवतोरस्वतंत्रःस्याज्जरयापिसमन्वितः) अर्थात् जबतक माता पिता जीवते रहैं तबतक पुत्र चाहै बूढ़ाभी होजाय उनके सन्मुख वहस्वतंत्र नहीं-अन्यच्च-(अनीशास्तेहिजीवतोः) यही आशय इसकाहै कि मातापिताके जीवतेहुये पुत्रसभी अनीशहैं अर्थात् पितामाताके धनमें उनका कुछ अख्तियार नहीं (सो) यह नियम ठेठ पिता माताके उपार्जित किये धनपर कहागया है कदाचित् इन्हीं दोनों बातके आशयसे यदि कोई पिता अपने अर्जितकिये धनका दान करदेनेपर समुद्यत होतौ वह कितना धन देदेनेसे पुत्रादिक दायादों करके रोका नहीं जासक्ताहै यह नियम आगे शिवके वाक्यों से संसिद्ध है-तदाहसदाशिवः-(स्वोपार्जितधनस्यार्द्धंदायादाया पिचेद्धनी। दद्यात्स्नेहेनतच्चान्योनान्यथाकर्तुमर्हति ॥ यदिस्वोपार्जितस्यार्द्धमेकस्मैध नहारिणाम्। ददात्यन्यैश्चदायादैःप्रतिरोद्धुंनशक्यते)अर्थात्-अपनी कमाईके धनमेंसे आधा धन अर्जयिता धनी कुछ स्नेह करके किसी दायादको भी देदेवे तौ इसबात में कोई और अन्यथा करनेको समर्थ नहींहै (दायादको-भी) देदेवै इस (भी)शब्द के योगसे यहबात सिद्धहुई कि चाहै गैर को देदेवै या निज किसी एक दायाद कोभी देदेवै तौ फिर शेष दायादों को उसदाता धनी के मरजाने या संन्यासी आदि होजाने या देश त्यागीहोजाने पीछे यह अधिकार नहींहै कि उसगैरसे वहदान हुआ द्रव्य छीनले या दायादसे कि जिसको आधाधन प्रसादइव देदिया गयाथा छीनकर सब दायादोंके हिस्साबाँटमें शामिलकरैं-आधाधन कहनेका यहआशयहै कि चाहै आधे से थोड़ा या आधातक देदे तौ कुछदोषनहींहै परआधेसे अधिकदेदेना भी सर्वस्वदा नकी गिनतीमें आकर वही अदेयठहिरेगा और उसकेमध्ये फिरदायादोंकोभी झगड़ा करनेका अवकाशहै सो यहमर्यादा पूर्वदत्तमध्ये कहीगई किंतु इस्से अगले वचन में तात्कालिक नियमकहतेहैं कि-जो अपने अर्जित कियेधनका आधाभाग सबदायादों मेंसे किसीएकको अर्जयिता धनीदेनेलगै तौ उसदानकालमें भी अन्यदायादों करके दाताधनी रोकानहींजासक्ता है-इसकाभी सिद्धांतवहीहै कि जो सर्वस्वदान करनेलगै या आधेसे अधिक देनेलगै तौफिर पुत्रादिक दायादोंकरके रोकाजासक्ताहै-इसकेसि-वाय-विरले धनका औरभी कुछ नियम वृहस्पतिने दर्शायाहै-यथा-(सौदायिकंक्रमायातं शौर्यप्राप्तंचयद्भवेत्। स्त्रीज्ञातिस्वाम्यनुज्ञातंदत्तंसिद्धिमवाप्नुयात्) अर्थात्-सौदायिक द्रव्य जो विवाहद्वारा मिलाहो क्रमायात द्रव्यमौरूसी जोपितृ पितामहआदिसे चला

आयाहो शौर्य प्राप्त द्रव्य जो किसी ने शस्त्रसे कमायाहो यह तीनोंद्रव्य इस भाँति दिये जासक्ते हैं कि जिसस्त्रीके विवाहद्वारा मिलाहो उसीस्त्रीसे बूझिकर भर्त्तादानकर सक्ताहै किन्तु जो वह स्त्री अनुमति नहींदे तौ फिर नहीं एवं क्रमायात धन को ज्ञाती लोग जो उस धनके मुख्य दायादहों तिनसे बूझिकर जो दियाजाय एवं शौर्यप्राप्त धन जो कोई एक छोटाभ्राता जीतिलायाहो तिसको मुख्यभ्राता जिसपर घरकाभार हो या पिता आदि कोई औरभी लेआनेवाले स्वामीकी अनुमति लेकर जो कुछदान करै सो वह दत्तदानमें गिनती होकर दानसिद्धिको पहुंचताहै किन्तु इनतीनोंके बूझे विनाकोई घरका मुखिया भी देदेतौ वहदान फिरलौटारलेने योग्यहोताहै-और बूझि करकेदेना भी उसवस्तुका सर्वस्व नहीं दिया जासक्ताहै-तथाचबृहस्पतिः-(वैवाहिके क्रमायातेसर्वदानंनविद्यते) १८० ॥

अब इसदेय और अदेयके प्रसंग मात्रसे प्रतिग्रह लेनेकी विधिभी नीचे कहते हैं और उसीमें दत्तअदत्त दोनोंभाँतिकेदानभी निर्णीतहोंगे अर्थात् दानोंके४लक्षण जो इस प्रकरणके प्रारम्भमें दर्शायेगये तिनमें दोकानिर्णय यहांतक होचुका शेष दो का निर्णय नीचे करेंगे ॥

(अथदानस्यप्रतिग्रहप्रकारः)

प्रतिग्रहःप्रकाशःस्यात्स्थावरस्यविशेपतः। देयंप्रतिश्रुतंचैवदत्वानापहरेत्पुनः १८१ ॥

मक्ष०-प्रतिग्रह प्रकाशरूप किया जावै स्थावरका विशेषतासे-प्रतिश्रुतवस्तु देय है देकर फिर नछीनै १८१ ॥

अभि०-प्रतिग्रह नाम दूसरेसे दानका लेना यद्यपि स्त्री पुत्रादिक अदेय वस्तुभी कोई अपनी इच्छा और उत्साह साथ दानकरै तौ इन अदेय चीज़ोंका प्रतिग्रह लेने वाले को यह उचितहै कि उस देनेवाले के संबंधीजनों को और अन्यभी साधारण ग्रामाधीश आदि पंचजनोंको विख्यातकरिकै लेवै जिस्से जो कुछ उसमें हेतुपरावर्त्य रूप हो या किसीको कुछ उज्ररहो सोसब तर्क बितर्क उसकी पहले शाँतहोजायँ जिस्से पीछे उसमें विवाद खड़ाकरने का अवकाश किसीको भी शेष नरहै एवं स्थावर धनको अधिकतर विख्यात करिके लेवै चाहै वह स्थावर कुछ अदेय यद्वा देय धनमें गिनती हो इसका नियम नहीं तौ इसभाँतिसे अदेय वस्तुकाभी दान होना दत्तपदवीको पहुँचताहै और पीछे लौटि नहीं सक्ता यह सिद्धांतहै-प्रतिश्रुतवस्तु जो किसी को धर्मार्थ देनी कही गई सो अवश्य देयहै अर्थात् देनीहोगी पर उसदशामें कि जो वह पुरुष अपने धर्मोंसे प्रच्युत न होजाय जिसको देनी कही गई किन्तु जो वह अपने सूचित धर्मोंसे प्रच्युत होजाय तौ फिर देना कहा न देनायोग्यहै देखौ बचन गौतमजी का अधिकोक्तिमें-और जो वस्तु किसी ग्रहीताको न्यायमार्ग से देदीगईहो चाहै देय अथवा

अदेय हो तौ वह वक्ष्यमाण सात प्रकारोंमें से एक भी फिर हरने योग्य नहीं किन्तु दत्तपदवी को पहुँची मानीजाय यह सिद्धांतहै और इसी के ध्वन्यर्थसे यह सिद्धांत भी प्रत्यक्षहै कि जो कुछ वस्तु अन्याय मार्गसे देदीगई हो सो वह वक्ष्यमाण सोरह भाँतिमें से सभी अदत्त पदवी में गिनती होकर फिर हरलेने योग्य हैं-सात सोरहके रूप देखौ अधिकोक्तिमें १८१ ॥

अधि०-(प्रतिश्रुत्याप्यधर्मसंयुक्ताय नदद्यादितिगौतमः) अर्थात् गौतमने यह कहाहै कि देना कहिकर भी अधर्म युक्तको नदे तौ कुछ दोषनहीं है-परंच-धर्मयुक्तको नदेने यद्वा देकर छीनलेनेसे भी दोषहै-तथाचहारीतः-(प्रतिश्रुतार्थादानेनदत्तस्यच्छेदनेनच। विविधान्नरकान्यातितिर्यग्योनौचजायते। वाचैवयत्प्रतिज्ञातंकर्मणानोपपादितम्। ऋणंतद्धर्मसंयुक्तमिहलोकेपरत्रच) अर्थात्-धर्मयुक्तको कुछ अर्थ देना कहिकर उसे नदेनेसे और दिया हुआ छीनलेनेसे भी नाना भाँतिके नरकों को जाता है और तिर्यक्योनिमेंभी बहुधाजन्म पाताहै-जिसने बहुधामुखसेही प्रतिज्ञा रोपणकरी किअमुकामुक धर्मसाधनकरेंगेपर कर्मद्वारासाध्य सिद्धिनहीं करी हो तौ यह धर्मकार्य काऋण दोनोंलोकमें सदैव उसके ऊपरसे उतरता नहीं किन्तु कालबिलंबके अनुसार व्याज वृद्धिको पहुँचताहै-कात्यायनजीने इसको ऋणके तुल्य दण्ड पूर्व दिलवाना कहाहै-यथा-(स्वेच्छयायःप्रतिश्रुत्यब्राह्मणायप्रतिग्रहम्। नदद्याद्दणवद्दाप्यःप्राप्नुयात्पूर्वसाहसम्)अर्थात्-यदि कोई अपनीइच्छासेही ब्राह्मणको प्रतिग्रह देना कहकर पीछे नहीं दे तौ यह ऋणके तुल्य दिलाने योग्यहै और उत्तमसाहस नामक दण्डभी अपराधके अनुसारपावे-ऊपर चर्चाकियेसात सोरहकेरूप नारदजीने ब्योरेवार दर्शितकिये हैं-यथा-(दत्तंसप्तविधंज्ञेयमदत्तंषोडशात्मकम्। पण्यमूल्यंभृतिस्तुष्ट्यास्नेहात्प्रत्युपकारतः॥ स्त्रीशुल्कानुग्रहार्थंचदत्तंदानविदोविदुः। अदत्तंतुभयक्रोधशोकवेगरुगान्वितैः॥ तथोत्कोचपरीहासव्यत्यासछलयोगतः। बालमूढास्वतंत्रार्त्तमत्तोन्मत्तापवर्जितम्॥ कर्त्ताममेदंकर्मेतिप्रतिलाभेच्छयाचयत्। अपात्रेपात्रमित्युक्तेकार्येवाऽधर्मसंयुते॥ यद्दत्तंस्याद्विज्ञानाददत्तमितितत्स्मृतम्)-अर्थात्-नारद कहते हैं कि सात विधिकादान (दत्त) और सोरह दान अदत्त जानो किंतु एक (पण्यमूल्य) जो खरीदी हुई चीजका मोलदियागयाहो १ (भृतिदान) जो कुछ काम करनेका वेतन दियागयाहो २ (तुष्टिदान) जो वंदीचारण आदि किसीपर संतुष्ट होकर दियाहो ३ (स्नेहदान) जो बेटा बेटीआदि किसी अपने अधीन को स्नेहकरके दिया हो ४ (प्रत्युपकारदान) जो किसीने प्रथम अपने साथ कुछ उपकार कियाहो तिसके पलटे प्रत्युपकार मार्गमें कुछ दियाजाय ५ (स्त्रीशुल्कदान) जो विवाह करने के हेतुसे कन्या पक्षियोंको कुछ मूल्य दियाहो ६ (अनुग्रहार्थदान) जो सदा अनुग्रहभाव औरोंका अपने ऊपर बनारहने के

निमित्त यद्वा दैवीयोगसे अदृष्ट फल संप्राप्त होनेके निमित्तसे चाहे तिसको जो कुछ दियागयाहो ७ सो यह सातों भाँतिका दियाहुआ दत्तदान कहिलाता है यहदान विधिके ज्ञाता लोग जानते हैं इसहेतुसे कि फिर यह लौटि नहीं सक्ताहै पर उसदशा तक किजो अन्याय मार्गसे न दिया लियागयाहो किन्तु जो अन्यायमार्ग इनमें प्रकट हो तौ फिर कहीं इनकाभी निवर्तन कियाजाता है- अवसोहर दान अदत्तरूप कहिते हैं कि-किसी भाँतिके भय हेतुसे घवड़ाकर जो देदिया हो १ (क्रोध) से पुत्रादि कुटुंब साथ बैरका प्रतिकार दिखाते हुये औरको देदिया हो २ (शोक) से पुत्रादि वियोग जनित शोक वेगसे उपतप्त मनुष्य ने तत्काल ऐसी बुद्धि पलटि जाने से देदियाहो कि धनको रखकर क्याकरना है ३ (उत्कोच)घूँस रिसवत जो काम का प्रतिबन्धहोता देखिकर अधिकारियों को देदियाहो ४ (परिहासदान) हाँसी ठट्ठाकी रीति से कुछ माला मुँदरी आदि उठाकर देदियाहो ५ (व्यत्यासदान) जैसे किसीने कुछ वैपरीत्य कल्पित कियाहो कि एकजना अपनाद्रव्य और को देता है और और भी बहुतेरे लोग अपनाद्रव्य उसको देते हैं अवश्य देदेना इसमें सार है इसभाँतिका धोखाखाकरदेदेना यह व्यत्यासदानहै ६ (छलयोगतः) जैसे सौकादेना गुपतौअर नियत कर के सहस्र ऐसा कहकर दियाहो यद्वा और कोईभाँतिका छल पायाजाय जिस्से किसी को कुछ व्यर्थहानि पहुँचै ७ (बालक) जो अप्राप्त व्यवहार सोरहवर्ष न्यूनहो तिसने जो देदियाहो ८ (मूढ़) जो कुछ लोक वेदके व्यवहारोंको न जानताहो तिसने जो देदियाहो ९ (अस्वतन्त्र) स्त्री पुत्रादिक जो निज पिता आदिके अधीनहो तिसने जो देदियाहो १० (आर्त्त) जो किसी उत्कट रोगसे विक्षिप्तहो तिसने अपनी बेहोशी में देदियाहो ११ (मत्त) जो धतूरा आदि खानेसे व्याकुलहो और उस व्याकुलताकी दशामें देदियाहो १२ (उन्मत्त) जो बात पित्तादिक कृत उन्मादों से ग्रस्तहो तिसने कुछ देदियाहो १३ (प्रतिलाभेच्छा) से इसभाँति जो कुछ दियाहो कि यह पुरुषमेरा अमुककाम करैगा और वह लेकर उसके कामको न साधै १४ (अपात्र) को पात्रकहने से इसभाँति जो कुछदियाहो कि जैसेकोई किसीबहुरूपियाको बड़ेमहात्माकहकर कुछ अज्ञानभावमें दिलादेवै इत्यादि बहुधा और भी समुझने १५ एवं (अधर्मसंयुत कार्य) में इस भांतिसे कि कोई यज्ञादि उत्तमकामोंके नामसे धनमांगै उसको वही बात समुझिकर देदियाजाय पीछे वह द्यूतादि अधर्मकामोंमें लगानेलगै १६ सो यह सोरह भांतिका दिया हुआ नहीं दिया कहलाता किन्तु फिरभी छीनाजासक्ताहै-अब-इनसात सोरह तेईसमेंसे किसी किसी का फिरभी वर्णन करतेहैं कि जिस्से उन की शंकाभी मिटजाय-किन्तु सातमेंसे द्वितीयरूप भृति वेतनका दत्तत्व कहना कुछ आवश्यक नहींथा क्योंकि प्रत्यक्षमें प्रमाणदेना व्यर्थ होताहै पर इसालिये कहागया

अदेय हो तौ वह वक्ष्यमाण सात प्रकारोंमें से एक भी फिर हरने योग्य नहीं किन्तु दत्तपदवी को पहुँची मानीजाय यह सिद्धांतहै और इसी के ध्वन्यर्थसे यह सिद्धांत भी प्रत्यक्षहै कि जो कुछ बस्तु अन्याय मार्गसे देदीगई हो सो वह वक्ष्यमाण सोरह भाँतिमें से सभी अदत्त पदवी में गिनती होकर फिर हरलेने योग्य हैं-सात सोरहके रूप देखौ अधिकोक्तिमें १८१ ॥

आधि०-(प्रतिश्रुत्याप्यधर्मसंयुक्ताय नदद्यादितिगौतमः) अर्थात् गौतमने यह कहाहै कि देना कहिकर भी अधर्म युक्तको नदे तौ कुछ दोषनहीं है-परंच-धर्मयुक्तको नदेने यद्वा देकर छीनलेनेसे भी दोषहै-तथाचहारीतः-(प्रतिश्रुतार्थादानेनदत्तस्यच्छेदनेनच। विविधान्नरकान्यातितिर्यग्योनौचजायते। वाचैवयत्प्रतिज्ञातंकर्मणानोपपादितम्। ऋणंतद्धर्मसंयुक्तमिहलोकेपरत्रच) अर्थात्-धर्मयुक्तको कुछ अर्थ देना कहिकर उसे नदेनेसे और दिया हुआ छीनलेनेसे भी नाना भाँतिके नरकों को जाता है और तिर्यक्योनिमेंभी बहुधाजन्म पाताहै-जिसने बहुधामुखसेही प्रतिज्ञा रोपणकरी किअमुकामुक धर्मसाधनकरेंगेपर कर्मद्वारासाध्य सिद्धिनहीं करी हो तौ यह धर्मकार्य काऋण दोनोंलोकमें सदैव उसके ऊपरसे उतरता नहीं किन्तु कालबिलंबके अनुसार व्याज वृद्धिको पहुँचताहै-कात्यायनजीने इसको ऋणके तुल्य दण्ड पूर्व दिलवाना कहाहै-यथा-(स्वेच्छयायःप्रतिश्रुत्यब्राह्मणायप्रतिग्रहम्। नदद्यादृणवद्दाप्यःप्राप्नुयात्पूर्वसाहसम्)अर्थात्-यदि कोई अपनीइच्छासेही ब्राह्मणको प्रतिग्रह देना कहकर पीछे नहीं दे तौ यह ऋणके तुल्य दिलाने योग्यहै और उत्तमसाहस नामक दण्डभी अपराधके अनुसारपावै-ऊपर चर्चाकियेसात सोरहकेरूप नारदजीने व्योरेवार दर्शितकिये हैं-यथा-(दत्तंसप्तविधंज्ञेयमदत्तंषोडशात्मकम्। पण्यमूल्यंभृतिस्तुष्ट्यास्नेहात्प्रत्युपकारतः॥ स्त्रीशुल्कानुग्रहार्थंचदत्तंदानविदोविदुः। अदत्तंतुभयक्रोधशोकवेगरुगान्वितैः॥ तथोत्कोचपरीहासव्यत्यासछलयोगतः। बालमूढास्वतंत्रार्त्तमत्तोन्मत्तापवर्जितम्॥ कर्त्तामभेदंकर्मेतिप्रतिलाभेच्छयाचयत्। अपात्रेपात्रमित्युक्तेकार्येवाऽधर्मसंयुते॥ यद्दत्तंस्यादविज्ञानाददत्तमितितत्स्मृतम्)-अर्थात्-नारद कहते हैं कि सात विधिकादान (दत्त) और सोरह दान अदत्त जानो किंतु एक (पण्यमूल्य) जो खरीदी हुई चीजका मोलादियागयाहो १ (भृतिदान) जो कुछ काम करनेका वेतन दियागयाहो २ (तुष्टिदान) जो वंदीचारण आदि किसीपर संतुष्ट होकर दियाहो ३ (स्नेहदान) जो बेटा बेटीआदि किसी अपने अधीन को स्नेहकरके दिया हो ४ (प्रत्युपकारदान) जो किसीने प्रथम अपने साथ कुछ उपकार कियाहो तिसके पलटे प्रत्युपकार मागंसे कुछ दियाजाय ५ (स्त्रीशुल्कदान) जो विवाह करने के हेतुसे कन्या पक्षियोंको कुछ मूल्य दियाहो ६ (अनुग्रहार्थदान) जो सदा अनुग्रहभाव औरोंका अपने ऊपर बनारहने के

निमित्त यद्वा दैवीयोगसे अदृष्ट फल संप्राप्त होनेके निमित्तसे चाहै तिसको जो कुछ दियागयाहो ७ सो यह सातों भाँतिका दियाहुआ दत्तदान कहिलाता है यहदान विधिके ज्ञाता लोग जानते हैं इसहेतुसे कि फिर यह लौटि नहीं सक्ताहै पर उसदशा तक किजो अन्याय मार्गसे न दिया लियागयाहो किन्तु जो अन्यायमार्ग इनमें प्रकट हो तो फिर कहीं इनकाभी निवर्तन कियाजाता है- अबसोहर दान अदत्तरूप कहिते हैं कि-किसी भाँतिके भय हेतुसे घबड़ाकर जो देदिया हो १ (क्रोध) से पुत्रादि कुटुंब साथ बैरका प्रतिकार दिखाते हुये गैरको देदिया हो २ (शोक) से पुत्रादि वियोग जनित शोक वेगसे उपतप्त मनुष्य ने तत्काल ऐसी बुद्धि पलटि जाने से देदियाहो कि धनको रखकर क्याकरना है ३ (उत्कोच)घूँस रिसवत जो काम का प्रतिबन्धहोता देखिकर अधिकारियों को देदियाहो ४ (परिहासदान) हाँसी ठट्ठाकी रीति से कुछ माला मुँदरी आदि उठाकर देदियाहो ५ (व्यत्यासदान) जैसे किसीने कुछ वैपरीत्य कल्पित कियाहो कि एकजना अपनाद्रव्य और को देता है और और भी बहुतेरे लोग अपनाद्रव्य उसको देते हैं अवश्य देदेना इसमें सार है इसभाँतिका धोखाखाकरदेदेना यह व्यत्यासदानहै ६ (छलयोगतः) जैसे सौकादेना गुपतौअर नियत करके सहस्र ऐसा कहकर दियाहो यद्वा और कोईभाँतिका छल पायाजाय जिस्से किसी को कुछ व्यर्थहानि पहुँचै ७ (बालक) जो अप्राप्त व्यवहार सोरहवर्ष न्यूनहो तिसने जो देदियाहो ८ (मूढ़) जो कुछ लोक वेदके व्यवहारोंको न जानताहो तिसने जो देदियाहो ९ (अस्वतन्त्र) स्त्री पुत्रादिक जो निज पिता आदिके अधीनहो तिसने जो देदियाहो १० (आर्त्त) जो किसी उत्कट रोगसे विक्षिप्तहो तिसने अपनी बेहोशी में देदियाहो ११ (मत्त) जो धतूरा आदि खानेसे व्याकुलहो और उस व्याकुलताकी दशामें देदियाहो १२ (उन्मत्त) जो वात पित्तादिक कृत उन्मादों से ग्रस्तहो तिसने कुछ देदियाहो १३ (प्रतिलाभेच्छा) से इसभाँति जो कुछ दियाहो कि यह पुरुषमेरा अमुककाम करैगा और वह लेकर उसके कामको न साधै १४ (अपात्र) को पात्रकहने से इसभाँति जो कुछदियाहो कि जैसेकोई किसीबहुरूपियाको बड़ेमहात्माकहकर कुछ अज्ञानभावमें दिलादेवै इत्यादि बहुधा और भी समुझने १५ एवं (अधर्मसंयुत कार्य) में इस भांतिसे कि कोई यज्ञादि उत्तमकामोंके नामसे धनमांगै उसको वही बात समुझिकर देदियाजाय पीछे वह द्यूतादि अधर्मकामोंमें लगानेलगै १६ सो यह सोरह भांतिका दिया हुआ नहीं दिया कहलाता किन्तु फिरभी छीनाजासक्ताहै- अब-इनसात सोरह तेईसमेंसे किसी किसी का फिरभी वर्णन करतेहैं कि जिस्से उन की शंकाभी मिटजाय-किन्तु सातमेंसे द्वितीयरूप भृति वेतनका दत्तत्व कहना कुछ आवश्यक नहींथा क्योंकि प्रत्यक्षमें प्रमाणदेना व्यर्थ होताहै पर इसलिये कहागया

है कि जहांकोई काम भृति नियतकिये बिना या ठहराकरके भी करवाया जाय और भृतिका देनेवाला पीछे यह कहनेलगे कि यह भृति इतनेकामकी धोखेसे देदीगई या धोखेसे ठहराई गईथी न देवेंगे या देकरफेरलेना चाहै तो यह नहीं वापिस होसक्ती है चाहै काम एक पैसेकाभीहो और उससमय दाताके ध्यानमें वह एक रुपयेका जचिगया सोई ठीकहै और यहीबात कात्यायनके अर्थोक्तबचनसे संसिद्ध है-यथा-(अविज्ञातोपलब्ध्यर्थंदानंयत्रनिरूपितम्। उपलब्धिक्रियालब्धंसाभृतिःपरिकीर्त्तिता) पांचमेंप्रत्युपकारका भी रूप कुछ कुछ कात्यायनजीने स्वत्व निरूपणके अवलम्बसे प्रदर्शित कियाहै-यथा-(भयत्राणोपरक्षार्थात्तथाकार्यप्रसाधनात्। अनेनविधिनालब्धं भयत्राणादिकंधनम्) अर्थात्-किसीको भयसे रक्षाकरने या और कोई भाँतिसे सामान्य रक्षा करने से जो कुछ पायाहो एवं कोई काम किसी का साधन करिकै जो कुछ पायाहो सो सब द्रव्य भयत्राणादिक धन कहलाताहै और उसमें उसका स्वत्व भी होजाताहै अर्थात् फिर वह लौटि नहींसक्ता-सातवां अनुग्रहार्थ दान ब्योरेवार नारद ने दर्शायाहै-यथा-(मातापित्रोर्गुरौमित्रेविनीतेचोपकारिणि। दीनानाथविशिष्टेभ्योदत्तं तुसफलंभवेत्) अर्थात्-माता, पिता, गुरु, मित्र, बिनीत, नम्र, नीतिमान्, आज्ञाकारी, उपकारी, जिस्से अपना कुछ उपकार हुआहो, दीन, गरीब, अनाथ जिसका कोई रक्षक नहो और भी इसभाँति के जे कोई होतेहों इनको अपनी इच्छामात्रसे प्रसाद तुल्य दियाहुआ द्रव्य अतिशय सफल होताहै क्योंकि ये सभी फिर उस दातापर अनुग्रह रखने लगते हैं यद्वा कोई इनमें क्रूरहोनेसे अनुग्रह नहीं रक्खै तौ परलोकमें अदृष्ट फल उत्पन्नहोताहै इत्यादि धर्मोंको सोचिकर जो कुछ इनमें किसीको भी दियाहो सो फिर उनके क्रूरत्वसे भी लौटिनहींसक्ताहै-इन्हीं उक्तसातौंका दत्तत्व बृहस्पतिने भीकहा है-यथा-(भृतिस्तुष्ट्यापण्यमूल्यंस्त्रीशुल्कमुपकारिणे। श्रद्धाऽनुग्रहसंप्रीत्यादत्तंसप्तविधंविदुः) अब सोरहका वृत्तांतकहते हैं कि सोरहमेंसे ग्यारहवां(आर्त्त)रोगीका जो दिया हुआ अदत्त कहा तिसका हेतुकेवल इतना है कि उसने अपनेरोग प्रमादसे किसी धर्म रहितकार्य में देदियाहो किन्तु जो बीमारीमें कुछ धर्म हेतुक दियाहो तौ वहदत्त मेंही गिनतीहै-यथाहकात्यायनः-(स्वस्थेनार्त्तेनवादत्तंश्रावितंधर्मकारणात्। अदत्वातु मृतेदाप्यस्तत्सुतोनात्रसंशयः)-अर्थात्-चाहै अच्छे सावधान या रोगीनेभी जो कुछ धर्महेतुसे देदिया यद्वा देना कहाहो तौ दातव्यहै और जो वह आप विनादिये मर जाय तौ फिर निःसंदेह उसके पुत्रसे दिलानायोग्यहै-इसीभांति-कात्यायनजीने यद्यपि सोरह नाम जुदे नहीं कहे परन्तु बहुधा ऐसा दियाहुआ निवर्त्तित करना लिखा है-यथा-(कामक्रोधास्वतंत्रार्त्तक्लीवोन्मत्तप्रमोहितैः। व्यत्यासपरिहासाद्यद्दत्तंतत्पुनर्हरेत्॥ यातुकार्यप्रसिद्ध्यर्थमत्कोचास्यात्प्रतिक्रिया। तस्मिन्नापिप्रसिद्धेर्थेनदेयास्यात्

कथंचन ॥ अथप्रागेवदत्तास्यात्प्रतिदाप्यस्ततोबलात्। दंडंचैकादशगुणमाहुर्गार्गीयमानवाः) यद्यपि इसमें संख्यापूरी नहीं है परइसीमें से प्रायः समुभीजाती हैं जैसे एक अस्वतंत्र कहनेसे स्त्री बालक दास आदि समुझेगये-इसमें उत्कोचाक्रिया रिसवत वाला काम जो दर्शाया तिसका स्वरूपभी निज उन्हीं कात्यायनजी ने लिखाहै-यथा (स्तेयसाहसिकोद्वृत्तपारदारिकशंसनात्। दर्शनाद्वृत्तनष्टस्यतथासत्यप्रवर्तनात्॥ प्राप्तमेतैस्तुयत्किंचिदुत्कोचाख्यंतदुच्यते। नदातातत्रदंड्यःस्यान्मध्यस्थश्चैवदोषभाक्) अर्थात् चोर-साहसिक-(उद्वृत्त) नाम दुर्जन बदमाश, पारदारिक परस्त्रीगमनकारी, इनको भय दिखलाकर और (वृत्तनष्ट) जिसका काम बिगड़ाहो तिसको जालसाजीसे बनता दिखलाकर या किसीको सत्यासत्यकाभय उत्पन्नकरिके जो कुछ द्रव्य इनसे लियाजाय सो उत्कोच कहाताहै (दृष्टांत) जैसे जो तू मुझे न देवैगा तौ तेरा चोरी आदि कियाहुआ कुकर्म कहिकर प्रकटकरोंगा यद्वा तुझे भागतेहुये राजपुरुषों को बतलाऊँगा अथवा यद्यपि तू सच्चाहै पर जो तू मुझे न देवैगा तौ स्वामीके समीप तुझे झूँठा साबितकरोंगा ऐसाभय दिखलाकर जो कुछ द्रव्य लियागयाहो सो सब देनेवालेको राजा वापिस करवादेवै यह सिद्धांत है और देनेवाला पुरुष अदंड्य है परंतु ऐसे उत्कोचका लेनेवाला और मध्यस्थ दलाल जिसने बीचमें पड़िकर यहउत्कोच दिलायाहो दोनों दंडनीयहैं क्योंकि वह मध्यस्थ इसमें चौथि खायाकरताहै-तथोक्तम् (उत्कोचापादकग्राहकौचदंडनीयाविति) ऊपर जो कुछ सात सोरह तेईस का वृत्तांत भिन्न भिन्न वर्णनकियागया तिसको मनुने संक्षेपकर सब एक बचनसे निपटायाहै-यथा (योगाधमनविक्रीतं योगदानप्रतिग्रहम्। यस्यवाप्युपधिंपश्येत्तत्सर्वं विनिवर्तयेत्) अर्थ इसका पहले कहीं ब्यौरेवार बर्णन होचुका है सो ढूंढ़लेओ-किंतु (योगउपाधिःयेनागामिनोपाधिविशेषेणाधिविक्रयादानप्रतिग्रहाः कृतास्तदुपाधिविगमेतंसर्वंपिनिवर्तेरन्नित्यर्थभावंतुविवेचयतिवीरमित्रोदयः) (अथदेशांतरपरिपाटीभेदविशेषः) इसपरिच्छेदकी व्यवस्था जो कुछबर्णनहुई सो इन बाराणसी सम्बन्धी आदि बहुधा देशोंसे सम्बन्ध विशेष रखतीहै(पर)बांगदेशआदि बिरलेदेशोंकी अपेक्षा जो कुछ बिरलीबातोंकी परिपाटी मध्ये अंतरहै उसअंतरका संक्षेपचर्चा कुछ दृष्टांतमात्र पहले ४३ के परिच्छेदमें लिखचुकेतिसमें देखौ पिछले आंक पृथ्वीनिर्गमकी विधि सम्पूर्णहोनेके पश्चात् जितनापाठहो उसीप्रकार बिरली औरबातों में भी कुछ कुछ अन्तरहै सो उन्हीं ग्रन्थोंसे विचारकरनेयोग्यहै कि जो उन देशों में प्रधानहों॥

इति दानविवादप्रकरणम्॥

यह दत्ताप्रदानिक नाम दानविवादकाप्रकरण केवल इसी ७० संख्याके परिच्छेदसे समाप्त हुआ॥

अथक्रीतानुशयनामकव्यवहारपदविधानविवेकोनामैकसप्ततितमःपरिच्छेदः ७१ ॥

इस एकहत्तरि संख्याके परिच्छेदमें खरीदीहुई बस्तुका अनुशय नाम पछितावे से लौटारदेनेके झगड़ेवाली नालिशका निपटारा जानाजायगा और उसहीके प्रसंग से कुछ और भी उपराल्लू झगड़े समुझेजायँगे ॥

क्रीतानुशयनामक व्यवहार पदकारूप नारदने दर्शायाहै-यथा (क्रीत्वामूल्येनयः पण्यंक्रेतानबहुमन्यते। क्रीतानुशयइत्येतद्विवादपदमुच्यते) अर्थात्-जो कोई क्रेतामोल देकर पण्य बस्तुको खरीदलिये पीछे बहुत नहीं मानता है अर्थात् वह पछिताता है कि पहले भली बुरी देखकर न लीगई इस्से अब मैं फेरोंगा-तब इस झगड़े के विवाद को क्रीतानुशय नाम कहते हैं—तहाँ—सिर्फ़ उसी दिन में वह फिर सक्ती है-तथाचनारदः-(क्रीत्वामूल्येनयत्पण्यं दुःक्रीतंमन्यतेक्रयी। विक्रेतुःप्रतिदेयन्तत्तस्मिन्नेवाह्न्याविक्षतम्) अर्थात्-जिस किसी पण्यवस्तुको मूल्यसे ख़रीदकर ख़रीदनेवाला पुरुष दुष्क्रीत ऐसा मानै है कि इसमें मैंने धोखाखाया तब विक्रेताको वह उसी दिन में मली दली बिना वापिस होनेयोग्य होती है-सो-इसबातमें (मन्यते) इस क्रिया के अनुकूल यह सिद्धान्त है कि वह बस्तु यद्यपि निर्दोषहो तौ भी जो वह क्रेता पुरुष अपनी बुद्धिके अनुसार बुरी समुझै तौ फिरसक्ती है पर केवल उसी दिनमें फेरीजासक्ती है और क्रेता अपना दियाहुआ मूल्य भी सब सबियाँ पाइसक्ताहै अर्थात् जो दूसरे या तीसरे दिनमें फेरै तिसका नियम और है-तथाच नारदः (द्वितीयेह्निददत्क्रेता मूल्यात्त्रिंशांशमावहेत्। द्विगुणन्तुतृतीयेह्नि परतःक्रेतुरेवतत्) अर्थात्- दूसरे दिवस फेरता हुआ क्रेता अपने दिये हुये मूल्यका तीसवां भाग हानि भरै तीसरे दिवस फेरता हुआ इस्से दूनी हानि किन्तु ठहरे हुये मूल्य का पन्द्रहवां भाग देकर बस्तु फेरसक्ता है पर चौथे दिवस निपट क्रेता की वह बस्तु है अर्थात् हानि देकर भी फिर अनुशय नहीं होसक्ता—सो यह नियम केवल ऐसे अवसर में समुझना जहां क्रेता ने विक्रेता से फिराऊ करने का इक़रार नहीं करलिया हो और वह चीज़ अच्छी हो—कात्यायनजी ने खोंटी खरी दोनों भांति की चीज़ों मध्ये जुदा जुदा नियम किया है—यथा (अविज्ञातन्तुयत्क्रीतं दुष्टंपश्चाद्विभावितम्। क्रीतन्तत्स्वामिने देयंपण्यकालेऽन्यथानतु) अर्थात्-विनाजानीहुई खोंटी वस्तु जो परीक्षा विना खरीदलीहो और वह पीछे बुरी समुझीजाय तौ फिर (पण्यकाल) में अर्थात् नियत अवधि जो जिसवस्तुका परीक्षाकालकहा हो तिसके भीतर फेरिदेवै फिर उपरान्त नहीं-और सिद्धान्त इसका यह कि जो कुछवस्तु परीक्षा करिकै लीगईहो सो फिर नियत कालमें भी नहीं लौटै-और जो कोई वस्तु यथार्थ में कुछ खोंटी नहीं ठहरै पर निज क्रेताकी पसंद नहीं आवै या वह लेनेसे संकोचकरै तिसके वापिस होनेका अवांतर

नियमहै-तथाचकात्यायनः (क्रीत्वाचानुशयंपश्चात्तत्यजेद्दोषादृतेनरः। अजुष्टमेवकाले तुसमूल्याद्दशमंवहेत्) अर्थात्-मोललेकर पीछे वस्तूमें कुछ दोष न होनेपर भी जो पछितावै सो उस बस्तुका वर्त्तावा किये विना परीक्षा कालमें भी फेरै तौ निजमूल्य मेंसे दशवाँभाग हानिभरै-सो इस नियमको भी ऐसे अवसरमें समुझना जहां क्रेता ने विक्रेतासे कुछ फेरि देनेका इक़रार नहीं ठहराया हो और नारदोक्त तीन दिवसों के उपरान्त चौथे दिनको आदि लेकरमोल लेनेके दिनसे दशदिनके भीतर वापिस करनेलगै-यह सब नियम यहांतक परीक्षाके प्रसंग रहित वर्णनहुये अब जो नीचे मूल श्लोक योगीश्वर को आदिलेकर वर्णन होगा सो वह चीज़ोंकी परीक्षा करनेके इक़रार मध्ये होगा॥

दशैकपंचसप्ताहमासत्र्यहार्धमासिकम्। वीजायोवाह्यरत्नस्त्रीदोह्यपुंसांपरीक्षणम् १८२॥

ऐ०-जो जो चीज़ परीक्षा करिकै रखने अथवा फेरिदेनेके एक़रारसे ख़रीदीहों तिन में व्रीही आदि बीजोंकी परीक्षा हेतुसे दशदिनकी अवधिहै. लोहाआदि धातु चीजों की परीक्षा केवल एक दिनमें.बलीवर्दादि वाह्य पशुओंका परीक्षाकाल पाँचदिनतक मूँगा मोती आदि रत्नोंका परीक्षाकाल सातदिनतक दासीआदि स्त्रियोंकी परीक्षामास मात्र किन्तु पूरेतीस दिनतक गायभैंस आदि दोह्य पशुओंकी परीक्षा सिर्फ़ तीनदिन तक दास आदि पुरुषोंकी परीक्षा एकपक्ष पूरेपन्द्रह दिनतक होसक्तीहै-अर्थात् परीक्षा करनेसे जो वस्तू इनमें कार्यसाधक नहीं ठहरै या निजक्रेताकी पसन्द नहींआवै तौ इसउक्त अवधितक फिरसक्तीहै अर्थात् उक्त अवधि बीतजानेपर फिराउ ठहरीचीज़ काभी अनुशय नहीं होताहै १८२॥

अधि०-नारदने भी योगीश्वरकेही तुल्य अवधि कही है-यथा (त्र्यहाद्दोह्यंपरीक्षेत पंचाहाद्बाह्यमेवतु। मुक्तावज्रप्रबालानां सप्ताहंस्यात्परीक्षणम्॥ द्विपदामर्धमास न्तु पुंसांतद्द्विगुणंस्त्रियाः। दशाहःसर्व्वबीजानामेकाहोलोहवाससाम्॥ अतोर्व्वाक् पण्यदोषस्तुयदिसंजायतेक्वचित्। विक्रेतुःप्रतिदेयंतत्क्रेतामूल्यमवाप्नुयात्) अर्थात्-जहाँ परीक्षाकरनी ठहरीहो तहाँ तीन दिनकेबीच (दोह्य) भैंस आदिकी परीक्षाकरै-पाँचदिनकेभीतर (वाह्य) बैल भैंसा आदि जाँचेजायँ.मोती हीरा मूँगा आदि रत्नोंकी पहिंचान सातदिनतकहो-द्विपदमेंसे पुरुषोंकी परीक्षा आधेमासतक-इससे दूने काल एकमासतक स्त्रियोंकी जाँचहोवै-दशदिन सभीबीजोंका गुण दोष देखाजाय- लोहा तथा वस्त्रोंका परीक्षाकाल केवल उसी एकदिनमें- इनसब कहीहुई अवधौं के भीतर जोकुछ दोष किसी पण्यवस्तुमें पहिंचानाजाय तौ विक्रेताको वह वापिस करनेयोग्य है और क्रेता अपनापूरामूल्य फेरिलेवै-और-चमड़ा आदि बिरली चीज़ोंकी परीक्षामें यहइतनी अवधि नहींमिलसक्ती किन्तु शीघ्रजाँचिलेना कहाहै-तदाहव्यासः (चर्मका

ष्ठेष्टकासूत्रधान्यासवरसस्यच । बसुकुप्यहिरण्यानांसद्यएवपरीक्षणम्) अर्थात्-चमड़ा, काठ, ईंट, सूत, धान्य, आसवनाम मद्य और खिंचेहुये अरकभी समुझने, रस प्रत्येकभाँतिके जो लोकमें प्रसिद्धहों परन्तु बैद्यकमतके रसोंको इनमें नहींसमुझना-बसुनाम रुपया चाँदी, कुप्यनाम राँग सीसा जसदआदि, हिरण्यसोना इतनी चीजों की परीक्षा बहुतशीघ्रही करलेनीकही किंतु इनमें कुछभी अवधिनहींहै यदिकोई इन्हें परीक्षा के बहाने एक दिनभी रोकिरक्खे तो फिर अनुशयनहींहोताहै-इसवचनमें जो धान्यकी परीक्षा शीघ्र नियामितहुई तिसका यह सिद्धान्तहै कि जोकुछ नाजखाने आदि खर्चोंके निमित्तसे ख़रीदेजायँ तिनकेलिये अवधि नहींहै (परजो) बीजबोनेके निमित्त से कुछधान्य आदि लियाजाय तिसकेलिये दशदिनकी अवधि जो योगीश्वरने दर्शाई सो अविरुद्धहै और इसीआशयसे नारदनेभी सभीबीजोंकी अवधिमध्ये दशदिन कहे-पुराने वस्त्रजो प्रत्यक्ष जानिबूझिकर ख़रीदेजायँ तिनके वापिस होजानेमध्ये कोई अवधि नियत नहीं है-तदाहनारदः-(परिभुक्तंतुयद्वासःकृष्णरूपंमलीमसम् । सदोषमपितत्क्रीतंविक्रेतुर्नभवेत्पुनः)अर्थात्-भोगाहुआबस्त्र जो काला मैला जानिकर ख़रीदा हो यद्यपि उसमें कोईदोष पीछे और भी पहिंचानाजाय तौभी वह बिक्रेताका फिर नहीं है अर्थात् क्रेताकोही रखनाहोगा-इसकेमध्ये मदनरत्ननामाग्रंथमें यह लिखा है कि बस्त्रोंके उपलक्षणमात्रसे और भी सबचीज़ोंमध्ये यही नियम समुझना-परंच माधवीयग्रंथमें इसबचनके अक्षरार्थ परही दृढ़तामानीगई है कि केवल वस्त्रोंकाही नियम समुझना॥ इति क्रयपरीक्षा नियमः॥ (अथन्यूनाधिकमूल्यंक्रयविक्रयनियमाः)-मनुने सामान्यभाव निर्विशेषरूपसे दशदिनकी अवधिरक्खीहै पर उसका आशयभी कुछ औरहै-तद्यथा(क्रीत्वाविक्रीयवाकिंचित्यस्येहानुशयोभवेत् । सोऽतर्दशाहात्तद्द्रव्यंदद्याच्चैवाददीतवा)अर्थात्-मोललेकर क्रेता या बेंचपीछेविक्रेता ही पछिताकर अनुशय करनाचाहै सोवहचीज दशदिनके भीतरही देदेवे या लेलेवे आगेनहीं-मनुकेइसवचनका आशय बहुधा संग्रह ग्रंथकारोंने कुछ और और भांतिसे लिखकर उसकायह सिद्धांतमाना है कि जहां (अवगुण प्रकटहोनेमें प्रत्यर्पण करदेनेका इक़रार परीक्षाकरनेके अनुसार ठहराहो) तिसहीकी यह अवधिजानो किंतुविना ठहरे का यहनियम नहीं-तौभी ध्यान करनेका यहस्थलहै कि मनुने क्रेता और विक्रेता दोनोंको अधिकार अनुशय करनेमध्ये लिखाहै कि जो विक्रेताभी निजवस्तु वेंचे पीछेकुछ पछितावाकरै तौवह दशदिन भीतरवापिस लेसक्ताहै सोइसकथनसे इक़रार ठहराने वालाआशय व्यर्थ प्रतीतहोता है क्योंकि लोकाचार दृष्टिसेक्रेतातौ इक़रार ठहराने का अधिकारी देखिपरता पर विक्रेता ऐसा इक़रार ठहरानेका अधिकारी कहींलोक में भी नहींदेखा जाताहै कि जोइस थोड़ेमूल्यसे नाराजी मुझकोहोगी तौमैं चीजवापिसले जाऊँगा-

इस्से यहप्रत्यक्ष आशय पायाजाताहै किमनुने इक़रार ठहिरानेका कुछ आशय नहीं रक्खाहै (और) द्रव्योंका कुछनामभेदनहींरक्खा इस्सेसब सामान्य द्रव्योंकी यहदशदिन वाली एक अवधि है इसलिये इसका निज मुख्यात्मक आशय समुझाजाना योग्यहै कि जहाँकहीं दलाल आदि कपटी मध्यस्थोंके प्रपंचसे या उनके विनाभी जब किसी क्रेता या विक्रेताने अज्ञानभावसे कुछ धोखाखायाहो जिस्से बहुत हानि होने का पछितावा उठै तब इक़रार ठहरै विनाभी दशदिनके भीतर उसको वापिस करदेनेकी मर्यादाहै यदि कोई उनमें धूर्त्त वृत्तिसे परस्पर यह निपटारा करनेपर आरूढ़ नहो तौ फिर राजा को अधिकारहै कि ऐसे हानिकारक पण्यको नियमानुसारवापिस करवादेवे-नियम के अनुसारका यह भावहै कि जो इस दशदिनकी अवधि भीतर वह अभियोग लगायाजाय तौ निपटारा करना योग्यहै पर अवधिवीतेनहीं-जो कुछआशय इसका कहागया सोईशिवके वचनसेभी सिद्धहै-यथा(क्रमव्यत्ययमूल्येनद्रव्याणां विक्रयेसति। नृपस्तदन्यथाकर्तुंक्षमोभवतिपार्वति)ऊर्ध्वोक्त मनुके वचनमें पदार्थ परतामध्ये पण्डित मित्र मिश्र और विज्ञानेश्वरने भी ऐसाभाव मानाहै कि गृह,क्षेत्र, यान रथगाड़ी पीनस आदि, शयन मशहरी पलँगआदि, आसन तख्त कुर्शी होदाआदि, और इसीभाँतिकी और चीज़ैंभी समुझनी जोजो वर्तावा से तत्काल बिगड़जानेवाली नहों तिनकेमध्ये दश दिनकी यह अवधिजानो किन्तु सभीचीज़ों मध्येनहीं क्योंकि लोहा आदि अन्यचीज़ोंकी अवधि पहले ग्रन्थ भेदसे कहचुके हैं सो यह कथन उनका इसध्यानसे उत्पन्न हुआहै कि उन्होंने इस अवधिको परीक्षाकाल मध्ये समुझी सो यहनही किंतु परीक्षाकाल दूसरी बातहै कि जहाँ परीक्षा करनेका कुछचर्चाहो या उसबातका परस्पर कौलकरार कियागयाहो और उसबस्तुका क्रेता अवधिबीते पीछेवापिस करनेलगै या अवधि भीतर विक्रेता उसको फेरिलेने से इनकारकरै तिसके लिये परीक्षा कालकी वह अवधि नियतहुई-अन्यथा मनुने यह अवधि केवल कपट प्रकारोंसे अत्यन्त मूल्य घटिबढ़िजानेका धोखा खाजाने या वस्तु जैसी कहकर दीहो तैसीनहीं निकलनेका नुकसान उठानेमध्ये कहीहै इसलिये इसका सच्चाभाव यहीहै कि चाहे कोईवस्तुहो बिनाकरारकेभी दशदिनतक फिरसकैगी परन्तु जहाँ परीक्षा करने का इक़रार ठहराहो तहाँ जो कुछ अवधि नारद और योगीश्वर आदिने दर्शाई सोई ठीकहै कुछ उसमें दशदिनसे अपेक्षानहीं-मनुमुक्तावलीटीकामें-कुल्लूक भट्टनेयहअर्थ रक्खाहै कि (किंचिद्द्रव्यमविनश्वररूपंस्थिरार्घ्यंभूमिताम्रपट्टादि) अर्थात् कोईद्रव्य जो शीघ्र नाशहोनेवाला नहो बल्कि जिसका मूल्य दीर्घ कालतक एकसार बनारहताहो जैसे धरती या ताँबेकी चद्दर आदि बहुधाचीज़ैं-तौ इसकथनसे लोहा पीतल आदि भी सब समुझेगये जिनकेलिये ऊपरले संग्रह कारोंने यहकहाथा कि लोहा आदि

इनमें नहीं समुझने क्योंकि उसकी अवधि सिर्फ़ एकदिनकी नारद और योगीश्वरने कहदीहै-इसमें भी यहध्यान करना योग्यहै कि नारद और योगीश्वरने वहएकदिन परीक्षा कालमध्ये कहाथा और मनुका यहवचन दूसरे आशयपर आरूढ़है इसलिये सबसामान्य चीज़ोंकी यह अवधि जानो-परंच न्यायके अनुकूल इसमें इतना और विवेक भी निजबुद्धिसे कर्तव्यहै कि जो जो चीजें खानीपीनी आदि दशदिन पर्यंत रुकी रहनेसे कुछ विकृतभी होसक्तीहों या बाज़ारमें कुछभाव उनका शीघ्र घटिबढ़ि जाताहो तिनके मध्ये दशदिनका कुछ नियम नहीं है अर्थात् वैसी चीज़ोंको छोड़िकर उपरान्त उनकेसभी उत्तमचीज़ें समुझिलेनी चाहे जङ्गम या स्थावरहों कपटरूपसे जो विक्रीहों तिनहींका यहनियमहै परीक्षासे अपेक्षा इसमें नहींहै इसीसे कुल्लूकभट्ट ने परीक्षा और इक़रारका कुछचर्चा नहींकिया-कात्यायनजीने-ठेठभूमिके नामसे दश दिनका अनुशय कहाहै-यथा-(भूमेर्दशाहोऽनुशयःक्रेतुर्विक्रेतुरेवच)अर्थात्-जहाँभूमिके ख़रीदने या बेंचनेमें कुछक्रेता या विक्रेताने अत्यंत दगा धोखाखाकर उसके पछितावेसे निवर्तन होजानेकी नालिश करीहो तौवह नालिश दशदिन भीतरदायर होनेमें स्वीकार करनेयोग्यहै उपरांतनहीं-इसमेंभी परीक्षाका कुछ चर्चानहीं समुझना क्योंकि पृथ्वी वा गृहक्षेत्र आदियह कुछ ऐसीचीज़ेंनहीं हैं जो अपनेपास रखकर दशदिनतक पहिंचानि करीजावै बल्कि ऐसीचीज़ोंकी परीक्षा जो कुछकरनी हो सोक्रय करनेसे पहलेही कर्तव्यहै लेचुकनेपीछे नहीं और यद्यपि (पंडितमित्र मिश्रने,परीक्षाकाल इति यावत्, ऐसा इसमेंभी लिखदियाहै)परउस लिखनेको इसहेतुसे भी नहीं मानिसक्तेहैं कि विक्रेता बेंचेपीछे किसभांतिसे किसबस्तुकी परीक्षाकरैगा निजभूमितौ वहक्रेताको देकरउसके क़ब्जेमें करचुका और कात्यायनजीने मनुकेतुल्य दोनोंकोही अनुशयकरनाकहा तौयह अनुशय केवल दगाधोखा होनेमें अत्यंतहानिके अवसरपर समुझना क्योंकि राजाका यहधर्महै कि जबकोई किसी व्यवहारमें कुछव्यर्थ हानिछलसे किसी कोपहुँचावै तिसकातत्त्व निर्णयकरै और अत्यंत हानिकहने का यहभावहै किजबतक मूलधनमें एकरूपया पीछेचार आनेतक सवाई पौनीहानि पहुँचीसमुझीजाय तबतक ऐसे व्यवहारोंमें कुछअनुशयभी आवश्यक नहीं क्योंकि यहांतक यहउसकी ग़फ़लत का फलहै परजो इससेआगे मूलधनमें ड्यौढ़ीआदि अधिकहानि पहुँचै तौफिर अनुशयका विवाद खड़ाहोनायोग्यहै क्योंकियहअत्यंत हानि हुई-इतिक्रमव्यत्ययमूल्यानियमः(अथपण्यपरीक्षानियमाः) तदाहबृहस्पतिः (परीक्षेतस्वयंक्रीतमन्येषांचप्रदर्शयेत्।परीक्षितंबहुमतंगृहीतंनपुनस्त्यजेत्)अर्थात्-किसीवस्तु का ख़रीदनेवाला पहले आप परीक्षाकरै यद्वा औरोंको दिखलावै जो उसचीज़के गुणदोष जाननेवालेहों ऐसी रीति मे परीक्षाकरिके अच्छीसमुझीहुई चीज़को लेचुकने पीछेफिरन छोड़ै-नारदोपि (क्रीत

पण्यंपरीक्षेतप्राक्स्वयंगुणदोषतः।परीक्ष्याभिमतंक्रीतंविक्रेतु[illegible]थ। चेतु[illegible]ताव। [illegible]ति-पहले क्रेता अपने आपपण्य वस्तुको गुणदोषांमें विचारे और पुनि[illegible]-इनसव [illegible]त लेलेवै ऐसीरीतिसे परीक्षा तथा पसंद करिकेलीहुई फिर विक्रेता[illegible]जिसे कुछकमती[illegible] सोयह दोनों वचनोंकी मर्यादासब सामान्यलोगोंकी शिक्षापर आरूढ़है अ[illegible]न्य क्ष[illegible] इ-सका यहकुछ आशयनहीं है कि जिसनेवस्तु परीक्षा करनेविना खरीदीहो और वह वस्तु कल्पित आदिकूट दोषोंवाली होनेपरभी उसकी नालिशराजा न सुनै-परंच-व णिक्,व्यापारी आदि मनुष्योंके क्रयकर्मकी मर्यादामें कुछअंतर हैसोकहते हैं-यथाह नारदः(क्रीत्वानानुशयंकुर्याद्वणिक्पण्यविचक्षणः। क्षयंवृद्धिंचजानीयात्पण्यानामागमं तथा)अर्थात्-वणिक्पेशे वालोंमें जोपण्य विचक्षणहो किंतुक्रय विक्रय आदिकामोंमें अति चतुरसभी चीज़ोंके गुणदोष जाननेवाला ख्यातहो तिसको योग्यनहीं है कि कोईचीज़ खरीदे या बेंचेपीछे अनुशय करनेलगै अर्थात् चाहें धोखागप्पाभी कुछखा-याहो तौभी सौदाभुगते पीछेअनुशय नहींकरै-किंतुउसको योग्यथाकि पण्यचीज़ोंकी क्षय वृद्धितथा आगम पहले जानिलेवै तवकुछ सौदाकरै क्षय और वृद्धिकाजानना यहाकि घोड़ाआदि पण्यवस्तु जो कुछलेनीहो तिसकायह व्यौरा पहले निश्चितकरै कि यहीघोड़ा जो अमुकामुक देशमेंइतने महँगेमूल्यसे मिलसक्ताथा कदाचित् यहां विदेशमें कुछसस्ता विकताहो क्योंकियहां इसकी पैदायश वालीखानिहैइसलियेइस केमूल्यकी क्षयवृद्धि निश्चितकरिके घोड़ालेवैं जिस्सेगप्पा नहींखाना परै इत्यादिस-भीचीज़ोंकी क्षय वृद्धिकाविचार पहलेकरै कि अमुकचीज़ अमुक समयपर अमुकामुक बड़ेकारणोंसे अतिसस्ती विकनेलगी थी अब इसकालमें इसदेशमें अमुकामुक हेतु इसकेमहँगी होनेकेभी संभवहैं इसलिये पहले भाव निश्चय करके माल बेंचैं किंतु अंधेवनिके नहीं यहव्यापारी लोगोंकाधर्म है और इसीप्रकार उसका आगमभी कि यहघोड़ा कैसीजाति कौनदेशका विख्यातहै और इसकीमाता तथा पितादोनों किस किसगुणसे नामीथे-एवंयह विक्रेताकोई सच्चानामी व्यापारीहै या ठगचोर आदि पेटा-र्थू कल्पित कपटीहो ऐसाआगम पहले सोचिसमुझि लेवै तबकुछ सौदाकरै यहव्या-परी जनकाधर्म है-क्योंकि सौदाकिये पीछे बदलिपरनेसे षष्ठांश छोड़िदेनेकी प्रतिज्ञा है-यथाहकात्यायनः (क्रीत्वागच्छन्ननुशयंक्रयीहस्तमुपागते। षड्भागंतस्यमूल्यस्यद-त्वाक्रीतंत्यजेन्नरः) अर्थात्-जो क्रेता चीज़खरीदे पीछे हाथमें आजानेपर भी अनुशय करनेलगै तौ निजमूल्यका षष्ठांशउस विक्रेताको देकर वस्तु छोड़िसक्ताहै-इसीप्रकार जो विक्रेता अनुशय करनेलगै तौ निजवस्तुका षष्ठांश छोड़कर पासक्ताहै-सो यह नियम परस्पर अनुशय करनेमध्ये जानो-किंतु-जहाँ राजातक यहझगड़ा पहुँचैतहां राजाभी षष्ठांश दण्डलेनेका अधिकारीहै-इसीलिये-याज्ञवल्क्यजीइसभाँतिके व्यापा-

री जनको समुक्तय क्योंहुये दण्डआगे २६३ दोसौतिरसठवाले मूलश्लोकसे दर्शा-वेंगे दाह-इसमें भी (यथावणिजापण्यानामविजानता । क्रीत्वानानुशयः कार्यःकुर्वन्षड्भागदम् परीक्षा कालमध्ये अर्थात्-जिस व्यापारी ने सौदाकरते समय पहले पण्यचीजोंकीक्षय असमृद्धि नहीं समुझिलीहो तिसको सौदाकाभुगतान कियेपीछे अनुशय करनायोग्यनहीं है क्योंकि(अनुशय करना ऐसे सब सामान्य लोगोंका वहधर्महै कि जिनको बहुधा क्रय विक्रयसे कुछकाम न परतारहाहो और वे धोखा खायँ) किन्तु जो इस भाँतिके व्यापारीलोग सौदाका भुगतान कियेपीछे अनुशय करनेपर उतारूहों तौ निजमूलधनका छठाभाग दण्ड राजाकोदेवें अर्थात् जहाँ क्रेता अनुशयकरै तौनिज दियेहुये मूल्यका छठवाँभागदे और जो विक्रेता अनुशयकरै तौ वह अपनी बेंचीहुई वस्तुकी मालियतका षष्ठांशदेवे (इतिवणिक्कर्माभिज्ञानांनियमविशेषः) मनुका जो वचन ऊपर वर्णन हुआथा जिसमें दशदिन भीतर अनुशय होसकनेकी अवधि कहीगई तिसके बीतेपीछे अनुशय करनेवाले को दण्ड मनुकहतेहैं-यथा (परेणतुदशाहस्यनदद्यान्नापिदापयेत् । आददानोददच्चैवराज्ञादण्ड्यःशतानिषट्)अर्थात्-दशादिनके पीछे नतौ क्रेता वस्तुत्यागै न विक्रेता उस्सेछीनै किन्तु प्रबलतासे छीननेवाला विक्रेता यद्वा छोड़िदेनेवाला क्रेता निज अपराध के अनुसार छःसौपणतक राजाकरके दण्ड-नीयहै-यहदण्ड सब सामान्यलोगोंकी अपेक्षामें समुझना कुछव्यापारी जनका सम्बन्ध इसमेंनहीं किंतु उनकादण्ड उनके नियमोंसाथ मूलधनसे छठाअंश ऊपर कहा गया-यद्यपि-इसीएक प्रकरणसे क्रय और विक्रय दोनोंभाँतिका अनुशय क्रेता विक्रेता दोनोंकी अपेक्षामध्ये समुझाजासक्ताहै तथापि इसकानाम केवलक्रीतानुशय इसहेतु करकेकहागयाहैकि यहाँसे छःसात प्रकरणोंके पश्चात् एक (विक्रीयासंप्रदान) नामक प्रकरण अभी और वर्णन होगा तिसमें उसको ब्यौरेवार सर्वथा निर्णयसे दर्शावेंगे कि बेंचीहुई वस्तुजो अमुकामुक ढंगोंसे नदेवै तौ यह न्याय कियाजावै १८२ इस परिच्छेदमें पण्यवस्तुओं की सत् असत् परीक्षा वर्णन होनेकेप्रसंगसे स्वर्णादि बहुधा चीज़ोंमें कुछघाटा वाढ़ा होजानेकी परीक्षा भी योगीश्वर नीचे कहते हैं १८२ ॥

अग्नौसुवर्णमक्षीणंरजतेद्विपलंशते। अष्टौत्रपुणिसीसेचताम्रेपंचदशायसि १८३ ॥

ऐ०—अग्निमें तपाया सोना किंचित् भी छीजतानहीं किन्तु जितनी तौलसुनारको सौंपाहो उतनाही आभूषण लियाजाय अन्यथा घाटा उस्से लेकर दंड योग्यहै रजत नाम चाँदी सौपलमें से दोपल घटिजातीहै (यहाँ शास्त्रोक्त मान (पल) परिभाषाके उपलक्षणसे तोला तथा रुपया आदि समुझना दृष्टांत जैसे १०० तोले चाँदीको गलानेसे दोतोले उसकामैल विकार भर जलजाताहै) इसी प्रकार सौतोले रँग तथैव सीसे में से आठतोले उड़जातेहैं, सौतोले ताँवा गलने से पाँचतोले घटतेहैं,सौतोले

लोहा तपनेसे दशतोलेमैल जलता है, काँसादो चीजों से अर्थात् राँगताँवा मिलकर पैदाहोताहै इसहेतुसे इनदोनोंके अनुसार काँसेकीछीज समुभीजाय-इनसव नियमों का यहसारहै कि चीजोंकी उत्तमताके अनुरूप कभी निजनिज कहीछीजसे कुछकमती छीजभी बैठतीहै पर निज नियमोंसे कुछ अधिक नहीं-किंतु इससे अधिकद्रव्य क्षय करनेवाले शिल्पी कारुकलोग दण्डनीयहैं १८३॥

(क्वचित्कम्वलादौवृद्धिर्भवति)

शतेदशपलावृद्धिरौर्णकार्पाससौत्रिके। मध्येपंचपलावृद्धिःसूक्ष्मेतुत्रिपलामता १८४॥

ऐ०—ऊन तथा कपासके भी वहुत मोटेसूतसे जो कम्वल मोटीगजी दुसूती आदि बुनेजातेहैं तिनमें सौतोला सूत लगनेसे ११० एकसौ दशतोले कपड़ा होजाताहै-पर जो वहीसूत मध्यम जातिका अत्यन्त मोटानहींहो जिस्से हलकी लोई यद्वाधोती गाढ़ा महमूदी आदि बुनेजावें तौफिर सौतोले सूत लगनेसे १०५ एकसौपाँचतोले कपड़ाहोताहै-इसीप्रकार जो अतिसूक्ष्म सूतहो जिस्से पगड़ीभोला आदि या वारीक लोई बुनीजावें तब सौतोलेपीछे तीनतोले वृद्धिहोतीहै-सो यहनियम विनाधोये कोरे वस्त्रोंका समुझना क्योंकि उनमें माड़ी आदि लगनेसे यह वृद्धिहोतीहै १८४॥

(वस्त्रभेदविशेषः)

कार्मिकेरोमबद्धेचत्रिंशद्भागः क्षयोमतः। नक्षयोनचवृद्धिश्चकौशेयेवल्कलेषुच १८५॥

ऐ०—कार्मिक नाम कामदार वस्त्रजिसमें बुनतेसमय अनेक भाँतिके बेलिबूटाआदि अन्य सूत्रोंसे बनायेजाते हैं अर्थात् दोशाला आदि या नैनू सैनू आदि-एवं रोमबद्ध नाम गालीचा आदि जिनमें बीच बीच रोमा बाँधेजाते हों तीसवाँभाग छीजहोतीहै अर्थात् तीस तोले सूत लगनेसे २९ तोले कपड़ा होताहै-कौशेय नाम रेशमीकपड़ा तथा बलकल वस्त्रजो प्रायःवृक्षोंके बक्कलसेही बुनेजाते हों तिनमें नतौ छीजहै नवृद्धि है अर्थात् जितना तार कुविंद आदि कारुक लोगोंको दिया हो तितना कपड़ा लेना योग्यहै १८५॥

(अनियतद्रव्याणांह्रासवृद्धिज्ञानोपायः)

देशंकालंचभोगंचज्ञात्वानष्टेवलावलम्। द्रव्याणांकुशलाब्रूयुर्यत्तद्दाप्यमसंशयम् १८६॥

ऐ०—लोकमें जो द्रव्योंके अनंत भेदहोनेसे सब द्रव्योंकी क्षयवृद्धि नहीं वर्णनहोसक्ती इस्से यह सामान्यभाव उनका ज्ञानोपाय कहते हैं कि-जहाँ शाण,क्षौम आदि किसी अन्यद्रव्योंमें कुछ घाटाबैठे जिसका नियम नहींलिखाहो तिसके मध्ये जो कुछ नियम उन्हीं द्रव्योंकी क्षय वृद्धिके विज्ञाता चातुरलोग निःसंदेह बतावें तिसके अनुसार जो कुछ अधिकहानिहुईहो सो उन शिल्पीलोगोंसे दिलाईजाय-निःसंदेह बताने का यह रूपहै कि जिस्से राजाको उस ब्यौराके समुझनेमें संदेह न रहै ऐसी रीतिसे

समुझावें बल्कि निजबतलानेवालोंको भी कुछ संदेह न पायाजाय तब उसकहनेके अनुसारदिलाना योग्यहै कि जिस्से कुछ अन्यायभी न हो-इसीलिये मूलश्लोकके प्रारंभमें यहकहाहै कि वे बतलानेवाले लोग पहले देशकालभोगोंकोभी सोचिकरसमुझावें और उसवस्तुका बलाबलभी सब सोचिलेवें-आशय इसका यह कि बहुधाचीजें ऐसीहोतीहैं जो किसी एक पनिहादेश में उपस्थितहोनेसे या गीलेघरमें धरीरहने से सिहलाकर मनकी नौपँसेरी होजाती हैं या खर आतप देश में उपस्थित होने से मनकी सात पँसेरी शेष रहितीहैं इत्यादि अनेकभाँतिसे यह देशोंका विचारहै (और) इसीप्रकार शीत बर्षा आतपकाल आदि या अतिकाल थोड़ काल धरींरहने आदि अनेकधा काल विचारहैं (और) इसीप्रकार भोगनाम बस्तुका वर्त्तावा किंतु जितनीअधिक यद्वाथोड़ी मलनी दलनीपरी हो इत्यादि बहुधाभोगोंके विचारहैं (और) इसीप्रकार वस्तुका बलाबल दोनों सोचेजायँ किइस बस्तुमें कितनीअधिकयद्वा थोड़ीसत्ताथी-इनसवहीके अनुसार उनको सोचि विचारिकर समुझाना योग्यहै अर्थात् केवल कहदेनेकाही नियम नहीं १८६॥

इतिक्रीतानुशयनामकव्यवहारप्रकरणम्॥

यह क्रीतानुशयनामकप्रकरण केवलइसीएक७१संख्याकेपरिच्छेदमेंसमाप्तहुआ॥

अथसेवाधर्मप्रसंगे-अभ्युपेत्याशुश्रूषाख्यव्यवहारपदविशेषवर्णनोनाम द्विसप्ततितमःपरिच्छेदः (७२)

इस बहत्तरि संख्याके परिच्छेदमें (अभ्युपेत्य अशुश्रूषा) नाम उस व्यवहारकी विशेषता वर्णनहोगी जिसमें सेवाधर्म्म का विवाद खड़ाहोवै॥

इस व्यवहार पदका नाम(अभ्युपेत्याशुश्रूषा)इसहेतुसे कहलाता है कि जब कोई किसीप्रकारका सेवक अपने करसकने योग्य कोईभाँतिकी शुश्रूषा सेवाकरनेका स्वीकार अपने ऊपर लेकर उसके करनेमें अवरोध या इनकार खड़ाकरताहै या जब कोई स्वामी किसी ऐसे सेवकसे कुछ नीचकर्मकरनेको बल करता है कि जिसको उसका करना योग्य नहीं तब इस उक्त नामका विवाद खड़ाहोकर उसकी मर्यादों का सब निर्णय कियाजाता है-तदाहनारदः-(अभ्युपेत्यचशुश्रूषांयस्तांनप्रतिपद्यते। अशुश्रूषाभ्युपेत्यैतद्विवादपदमुच्यते)-अर्थात्-जो कोई सेवक शुश्रूषामें प्रविष्टहोकर भी उस आज्ञाको संसिद्धनहीं करता तब यह विवादपद (अभ्युपेत्यअशुश्रूषा) नामकहाजाता है-शुश्रूषाकरनेवाले सेवक पाँचप्रकारके होतेहैं-यथाहनारदः (शुश्रूषकःपंचविधःशास्त्रेदृष्टोमनीषिभिः। चतुर्विधःकर्मकरस्तेषांदासास्त्रिपंचकाः॥ शिष्यांतेवासिभृतकाश्चतुर्थस्त्वधिकर्मकृत्। एतेकर्मकराज्ञेयादासास्तुगृहजादयः॥ सामान्यमस्वतंत्रत्वमेषामाहुर्मनीषिणः। जातिकर्मकृतस्तूक्तोविशेषोवृत्तितस्तथा) अर्थात्-नारदकहते हैं कि

शास्त्रमें मनीषीलोगोंने सेवक पाँचभाँतिका निर्णीतकिया तिनमें चारभाँतिके कर्मकर अर्थात् कर्मेरे कामकरनेवाले और पाँचवां दास पंद्रह भाँतिकाहोता है-किंतु चारकर्म करोंमेंसे एक शिष्य जो किसीप्रकारका वेद शास्त्रपढ़े १ दूसरा अंतेवासी जो किसी प्रकारका शिल्पकाम सीखे जिसको इतरभाषा में शागिरद कहाकरते हैं २ तीसरा भृतकजो मूल्यद्वारा कामकरेकिंतु नोकर या उत्कृष्टम जूरभार वाहक आदि ३ चौथा अधिकर्मकृत्जो और कामकरने वालोंपर किसी भांति का अधिष्ठाता वा अध्यक्ष कियाजाय ४ यहसवचारों भांतिकेसेवक कर्मकार संज्ञकजानो और दासनामा सेवक पंद्रहभांतिके गृहजात आदिहोते हैं किजिनका ब्यौरा आगे बढ़कर वर्णन होगा-सो इन पांचोंभांतिके सेवकोंको मनीषीलोग अस्वातंत्र्य कहतेहैं अर्थात् यह सबकोई भी स्वतंत्रनहीं रहसक्ते किन्तु निजनिज स्वामी वा आचार्य की अनुज्ञाके आधीनहोतेहैं पर-इन सबहीमें दो भेदविशेषहैं किउक्त सेवाधर्म यातो अपना जातीकर्म करनेसे या जीवनवृत्तिके हेतुसे कर्तव्यहोता है सोइन दोहीभेद विशेषों के अनेक लक्षणहोते हैं और अपनी अपनी जुदी विशेषता भी सब सेवाधर्मोंकी अपेक्षा शास्त्र विहितहै सो अभी वर्णनहोगी-इसवातका-यहव्यौराहै किजैसेधीवर अपनी जातिसेही दासकहाता है (कैवर्तंदासधीवराविति शास्त्रं)किंच दासकर्म उसकी जातिका यद्कामहैपर दासत्वका स्वीकारकरना उसके आधीन है कि अपनी जीवन वृत्तिके निमित्त दासकर्म को स्वीकारकरै यद्वानहीं और स्वीकार करनेमेंभी भेद है किया तो दासवृत्तिके अनुरूप दासकर्म को स्वीकारकरै यद्वाभृतक वृत्तिके अनुरूप दासकर्मको स्वीकारकरै परइस में कुछ संदेहनहीं यथार्थसे वह दासजाति है इसीप्रकार और भी वे जातिकरकेदास हैं जोघरकी दासीकेही पेटसे उत्पन्नहों या दासोंकी संतानहों परन्तुउनमें यहीएकजातिकी विशेषतामात्रहोती है कुछवृत्तिका वैशेष्य उनमेंनहीं क्योंकि उनकीवृत्ति उनके स्वामीकेही आश्रयहुआ करतीहै कुछवृत्तिके निमित्तसे वेदास नहींबनते किन्तुजन्म सेहीदास पैदाहोतेहैं-इनकेसिवाय बिरले ऐसेदासहोते हैं कि जिनमें दासजातिका वैशेष्यकुछ भी नहींपरवे दासकर्मसेही दास बनाकरते हैं और वेही वृत्ति विशेष्यदास कहाते क्योंकि जीवनवृत्तिके हेतुसे वे दासबने-एकतो यहदास पक्षभरका ब्यौराहुआ दूसरा यह निम्नोक्त आशयउसी अर्द्धश्लोक से शिष्य और अंतेवासीके भी पक्षमें संबंधित होताहै कि यहदोनों कर्मकरमें गिनती हुयेथे इस हेतुसे कियहभी दोनोंगुरू तथा आचार्यके ज़रूरी उत्तममध्यम कामसाधन करतेहैं पर दासोंवाले नीचकामनहीं और इन दोनोंकी संज्ञाएकविशेष(जातिकर्मकृत)भी कहीजाती है इसहेतुसे कि येदोनों अपनी जाति पेशेवाला काम सीखाकरतेहैं कुछ वृत्तिकरके कर्मकर येनहींहैं इसलिये इनके करने योग्य सेवा टहलोंका विशेष नियमजो कुछपहले कहीं कहागयाहो सोसब

समुझिलेना यहसिद्धांतहै (और) इसीप्रकार वृत्तिसे दो शेष कर्मकरोंका अर्थात् भृतक और अधिकर्मकृत् ये शेष दोनों कर्मकर आजीवन वृत्तिकेही अर्थसे निज स्वामीकी आवश्यक अपने योग्य टहलें कियाकरतेहैं इसहेतुसे इन दोनोंकी संज्ञा एक विशेष (वृत्तिकर्मकृत्) भी कहीजातीहै इसलिये इनके करनेयोग्य सेवा टहलोंका विशेष नियम जो कुछ कहीं अन्य स्थलपर दर्शायाहो सो सब समुझिलेना यह सिद्धांतहै उस ऊपर लिखे अर्द्धाका और वह अर्द्धा ऊपर यह था (जातिकर्मकृतस्तूक्तोविशेषोवृत्तितस्तथा) इसी अर्द्धामें इन कहेहुये अर्थोंके सिवाय (वृत्ति) शब्द धर्म चर्याका भी बोधक है कि अमुकामुक भाँतिके सेवकोंको स्वकीय जातिकर्मके अनुसार सेवाधर्मका वर्तावाकरना योग्यहै-तिनमें पहले शिष्योंकी जो धर्मवृत्तिहै सो आचाराध्यायगत ब्रह्मचारि प्रकरणमें वर्णनहुईथी और यहाँभी कुछ लक्षण उसके कहतेहैं-तदाहबृहस्पतिः-(विद्यात्रयीसमाख्याताऋग्यजुःसामलक्षणा। तदर्थंगुरुशुश्रूषांप्रकुर्याच्छास्त्रचोदिताम्) अर्थात्-ऋक् यजुःसाम तीनोंवेदके लक्षणवाली विद्या त्रयी कहलाती है कि जिस जिस किसी शास्त्र में इन तीनिमेंसे किसी का भी लक्षण पायाजाय तिसके पढ़ने अर्थ गुरुकी शुश्रूषा जैसी शास्त्र में कुछ कही हो खूबकरै-नारदोपि (आविद्याग्रहणाच्छिष्यःशुश्रूषेत्प्रयतोगुरुम्।तद्वृत्तिर्गुरुदारेषुगुरुपुत्रेतथैवच।समावृत्तश्चगुरवेप्रदायगुरुदक्षिणाम्। प्रतीयात्स्वगृहानेषाशिष्यवृत्तिरुदाहृता) अर्थात्-विद्याग्रहणकरने पर्यंत शिष्य अपने आत्माको जीतेहुये गुरुकी शुश्रूषाकरै और यहीसेवाधर्म गुरुकी दाराओंमें और पुत्रमेंभीराखे और समावर्तन करने समय यथाशक्ति गुरुको दक्षिणा देकर अपने घरोंके प्रतिजावे यह सब शिष्यकी वृत्तिकही-मनुस्तु (प्रतिगृह्येप्सितंदण्डमुपस्थायचभास्करम्। प्रदक्षिणम्परीत्याग्निञ्चरेद्भैक्षंयथाविधि) दूसरे अन्तेवासीकी अपेक्षामें जो वृत्तिविशेष धर्महै सो सब १८९ की अधिकोक्तिमें विचारो तीसरे भृतक और चौथे अधिकर्मकृत्भी भृतकविशिष्टहोतेहैं तिनदोनोंका जो धर्मविशेषहो सो सब ७४ संख्याके परिच्छेदमें विचारो किंतु यहाँ केवल अपने अपने योग्य सेवाधर्मोंसे अपेक्षा अधिकहै-इसलिये इनका जो कुछ ब्यौरा कहागया तिसको समुझि लेनेके सिवाय पाँचवें दासका अब चर्चाकरतेहैं कि यद्यपि चारोंभाँतिके कर्मकरशुश्रूषकभी पराया अर्थ साधकहोते हैं परन्तु अधिकतर अत्यन्तभावसे पराया अर्थ साधन करनेवाले शुश्रूषक एकदास किंतु टहलुआलोग होतेहैं जो अपने पुरुषार्थरूप वृत्तियोंका निरोध रखकर पराया अर्थ साधन करनेमें प्रविष्ट होतेहों और शुभाशुभ नीचकर्म पर्यंतसभी कामकरना अङ्गीकार करलेहों-किन्तु-कर्मभी दोभाँतिका होताहै-यथाहनारदः-(कर्मापिद्विविधंज्ञेयमशुभंशुभमेवच। अशुभंदासकर्मोक्तंशुभंकर्मकृतांस्मृतम्। गृहद्वाराशुचिस्थानरथ्यावस्करशोधनम् गुह्यांगस्पर्शनोच्छिष्टविण्मूत्र

ग्रहणोज्झनम्। इच्छतस्स्वामिनश्चांगैरुपस्थानमथांततः॥ अशुभंकर्मविज्ञेयंशुभमन्यदतः परम्) अर्थात्-नारद कहते हैं किकर्म भी दोभाँतिका होताहै एक शुभ दूसरा अशुभकाम तिनमें अशुभकाम दासोंका शुभकाम कर्मकरोंका कहलाताहै-घर,द्वार,अशु.चिस्थ.न किन्तु उच्छिष्ट फेंकनेका गड़हिला आदि,रथ्यागली,अवस्कर किन्तु कूड़ी घूरा आदि जहाँ घरका कूरा करकट जमा होताहो,इन सबका साफ़करना,गुह्यांग केवल स्वामी केही मलमूत्रादि इंद्रिय स्थान बीमारी आदि आवश्यक दशामें तिनका स्पर्श छूना किन्तु फोड़ा फुंसी आदि हेतुओंसे औषध लगाना वा प्रक्षालन करना आदि,उच्छिष्ट जूठनि सदाही और विष्टामूत्र इनको केवल आवश्यक दशामें लेकर फेंकि आना, और स्वामीकी इच्छा नाम आज्ञामात्रसे देहदावना पैंचप्पी आदि यह सब कर्म दासों केही करने योग्य अशुभकाम कहलाते हैं इनकामोंके सिवाय और सभी काम शुभकर्म गिनेजाते हैं जो कर्मकरों के भी करने योग्यहोते हैं और दासोंके भी करने योग्य (इतिशुश्रूषाकर्मनिरूपणम्) यह प्रत्येक प्रकार के सेवकों का शुश्रूषाकर्म निरूपण हुआ अब निचले मूलश्लोकों से अधिकोक्ति पर्यंत पंद्रहदासों के स्वरूप आदि कहेजायँगे॥

बलाद्दासीकृतश्चौरैर्विक्रीतश्चापिमुच्यते। स्वामिप्राणप्रदोभक्तत्यागात्तन्निष्क्रयादपि १८७॥
प्रव्रज्यावसितोराज्ञोदासस्स्यामरणांतिकम्। वर्णानामानुलोम्येनदास्यंनप्रतिलोमतः १८८॥

ऐ०-बलसे दासीभूत कियाहुआ या चोरोंकाबेंचाहुआ भी छुटिजाताहै एवं स्वामी के प्राणबचाने वाला और भक्तत्यागसे और उस निष्कृतिसे भी छुटिजाताहै १८७॥ प्रव्रज्यावसित मरने पर्यंत राजा का दासहै-वर्णोंके अनुलोम क्रमसे दास्यहोताहै प्रतिलोम क्रमसे नहीं १८८ अर्थात् याज्ञवल्क्यजी यह कहते हैं कि जो कोई दास प्रबलतासे करिलियाजाय या चोरोंकाबेंचाहुआ ख़रीदकरभी दासबनायाजाय तिसको राजा छुड़वादेवै (यहां बेंचनेके उपलक्षण में आधी करण और दान भी समुझना किन्तु यहभी दोनों छुड़वायेजायँ) या जिसकिसी दासने चोरशत्रु व्याघ्र आदि विपत्तिसे अपने स्वामीके प्राण बचायेहों वह प्रत्येक भाँतिकाभी दास छूटिसक्ताहै-या पन्द्रहमेंसे भक्तदास अपने स्वामीका भक्त छोड़िदेनेसे छुटिजाताहै-या (तन्निष्क्रयादपि) अर्थात् उस प्रतिबन्ध के निष्क्रय नाम उद्धारहोजानेसे भी बहुधा दास दासत्व से छुटिसक्तेहैं कि जिस प्रतिबन्धकेहेतुसे दासत्वमें प्रविष्टहुयेथे-१८७-प्रव्ज्यावसित जो संन्यासधर्मलेकर फिर उस आश्रमके नियमोंसे परिच्युत होजाय सो वह अपने जीवनपर्यंत धरणीपालके दासत्वमेंरहै किंतु उसकोछोड़िदेना योग्यनहीं-परन्तु इसके साथ यहभी नियमहै कि दास्यभाव वर्णों के अनुलोमक्रमसेहो किंतु ऊँचे ऊँचे वर्णों का दासत्व नीचे नीचे वर्ण भर करसक्ते हैं पर इसक्रम से विपरीत ऊँचे वर्णवाला

नीचे वर्णोंका दासत्व नहींकरसक्ता-विशेष ब्यौरा इनकादेखो अधिकोक्ति में १८८॥

अधि०—दास जिसका चर्चाहोता चलाआताहै सो पन्द्रहभाँतिके प्रसिद्धहैं-यथाह नारदः (गृहजातस्तथाक्रीतोलब्धोदायादुपागतः। अनाकालभृतश्चैव आहितःस्वामिनाचयः॥ मोक्षितोमहतश्चर्णात्युद्धप्राप्तःपणेजितः। तवाहमित्युपगतःप्रव्रज्यावसितःकृतः॥ भक्तदासश्चविज्ञेयस्तथैववडवाहृतः। विक्रेताचात्मनःशास्त्रेदासाःपंचदशास्मृताः) अर्थात्-घरकीदासीसे जो घरहीमें उत्पन्नहो सो (गृहजात) कहाताहै १ जो कोई दास मूल्यदेकरकिसी ऐसेमालिकसेलियाहो जिसका पहलेसे वहदासहो या जिसकी दासीसे उत्पन्नहुआहो या जिसकी दासजाति होनेसे निजपुत्र उसनेबेंचाहो तौ वह (क्रीतदास) कहाताहै २ जो कोई दासदान आदि प्रतिग्रह मार्गोंसे किसी स्वामीका दियाहुआ पायाहो सो (लब्धदास) कहाताहै ३ पिता पितामह आदि किसीके रिक्थद्वारा मिलाहो तौ वहदास (दायादुपागत) किंतु दायलब्ध कहलाताहै ४ किसी जातिका पुरुष जो दासत्व करने योग्यहो अन्नाकालमें दासत्वकेही अर्थउसकी प्राणरक्षा करिके पालाहो तौ वह (अनाकालभृत) कहलाताहै ५ किसी स्वामीने जो अपनादास कुछ ऋण लेकर किसी द्वितीय धनीपास गहनेरक्खाहो तौ यह (आहितदास) कहाता है ६ किसी प्रबलका घनाऋण उद्धार करके जो छुड़ायाहो और उस ऋणीने जो नवीन धनीका दासत्व अनुलोम अपनी जातिके अनुसार अंगीकार कियाहो तौ (ऋणदास) कहाताहै ७ किसी महायुद्ध की लूटिमें जो प्रतिपक्षीका दास हाथ आया हो सो (युद्धप्राप्त) कहलाताहै ८ जहां कहीं द्यूतक्रीड़ा आदि या औरही किसी विवाद पर इसभाँतिसे पण अर्थात् शर्त्त बदीगईहो कि जो इस प्रयोजनमें हारों तौ मैं तेरा दासहोऊँगा और वह अनुलोम क्रमसे हाराहुआ दासहोजावै तौयह (पणजित) दास कहाताहै ९ जबकोई किसीपीड़ा या भयके दूरहोने आदि कारणोंसे निजरक्षा आदि फल की वांछारखता हुआ किसी शरण्यके समीप जाकर स्वतःऐसा अंगीकारकरै कि मैं तेरादास होके रहूँगा तौ यह दासभी अनुलोमक्रमसे (स्वयमुपागत) अर्थात् स्वयंप्राप्त कहलाताहै १० कोई पुरुष जो संन्यास आश्रम लेकर उसके नियमोंसे च्युत होजाय और वह प्रायश्चित्त न करने से धर्मानुसार धरणीपालके दासत्वमें प्रवेश कियाजाय तौ (प्रव्रज्यावसितदास) कहाताहै ११ (कृतः-एतावत्कालंतवदासोभवामीति) अर्थात् (कृतदास) वह कहाताहै जो किया हुआ वनाया हुआ दासकाल नियमके अनुसार जैसे कहार आदि टहलुआलोग यह निमय निश्चित करलेते हैं कि इतनाकाल अमुक समयतक अमुकामुक टहलेंकरिके निजघरको चलेजाया करेंगे अथवा अमुक देशाटनकी सफ़रतक छेमहीना साथरहकर टहल करेंगे फिर नहीं सो यह भाव उसीटहलुआके स्वीकारसे संबंधितहै-परंचकृत अर्थात् वनाया हुआ कहने

से द्वितीयभाव यहभी है कि जहांकहीं राजकाजों के परिसिद्ध होनेकी ज़रूरतसे तात्कालिक यान विग्रह आदिकामोंमें कुछ अधिकदास चाहेजायँ या साधारणमें भी मख्यदासोंके अनुपस्थित होनेमें जे कोई दासकर्म योग्य समुझै जाकर इच्छारहित भी दासत्वमें लगाये जायँतिनको भी कृतदास जानो क्योंकि एक ज़रूरतमात्र नियमितकालकेहीलिये बनायेगये १२ (भक्तदासःसर्वकालंभक्तार्थमेवदासत्वमभ्युपगम्य यःप्रविष्टः-इतिमिताक्षरावीरमित्रोदयौ) अर्थात् हमेशा जो भात अथवा अन्नमात्र खानेकेअर्थ अपनेआपदासबनिकेरहै सो(भक्तदास)कहावे यहदोनोंग्रंथकहतेहैं १३बड़वा नामघरकी दासी तिसका हराहुआपुरुष (बड़वाहृतदास) कहाता है अर्थात् दासीभोगके लोभसे दासीके स्वामीका दासत्व अंगीकारकरिके जिसनेदासीसे विवाहकियाहो १४ जो कोई अपने पुत्रादि कुटुम्ब का भला करने के अर्थ या औरही किसी हेतुसे कुछ द्रव्यलेकर अपनेआत्माको बेंचिकर अनुलोमक्रमसे दासबनाहोवही (आत्मविक्रेतादास) कहाताहै १५ शास्त्रमें ये पन्द्रह दासकहे-सो-इनपन्द्रहका सामान्य और विशेषब्यौरा दोनोंभांतिका दासत्वके स्वरूपसहित कात्यायनके वचनानुसार अब दर्शाते हैं-यथाहकात्यायनः(स्वतंत्रस्यात्मनोदानाद्दासत्वंदारवद्भृगुः। त्रिषुवर्णेषुविज्ञेयंदास्यंविप्रस्यन क्वचित्-वर्णानामानुलोम्येनदास्यंनप्रतिलोमतः। राजन्यवैश्यशूद्राणांत्यजतांचस्वतंत्रताम्)अर्थात्-स्वतंत्र अपनाशरीरहै तिसको निपटपराये अर्थमें देदेना अंगीकारकरने से दासत्व दारचर्या तुल्यहोताहै किजैसेभर्त्ताके संभोगनिमित्त शरीर देदेनेसे दारत्व कहलाता तैसेस्वामीके अनेक सौख्योंके निमित्त अपना स्वातंत्र्य अर्पण करदेनेसे दासत्व कहाता है परयहदास्य तीनवर्णोंमें समुझना किंतु ब्राह्मणको दासत्व किसी वर्णमेंभी नहीं और उन क्षत्रियवैश्य शूद्रतीन वर्णोंमेंभी दास्य अनुलोम क्रमसेहोता है प्रतिलोम क्रमसेनहीं और अनुलोम क्रमसेभी उसदशामें होसक्ता है जबउक्ततीनों वर्णवाले कोईपुरुष निजस्वातंत्र्यका परित्याग करनाचाहैं किंतु अन्यथानहीं-तथापि-एक प्रव्रज्या वसित नाम भ्रष्ट संन्यास परिव्राजक रूपदास जो कहिचुके तिसको प्रतिलोम क्रमसे भी धरणी पालका दासत्व करना नारदके वचनानुसार प्रायःसंग्रहकारों ने प्रतर्कित कियाहै-तथाचनारदवचनं (वर्णानांप्रातिलोम्येनदासत्वंनविधीयते। स्वधर्मत्यागिनोऽन्यत्रदारवद्दासतामता) अर्थात्-वर्णोंके विपरीत क्रमसे दासत्व नहीं होसक्ताहै परएक स्वधर्म त्यागी जो संन्यास भ्रष्टहो तिसको छोड़िकर यह नियम समुझना किन्तु उसके लिये यह प्रतिषेध नहींहै और दारकर्म केही तुल्य दासता होतीहै और सिद्धांत इसका यह प्रतिपादन कियाहै कि ब्राह्मणको दासत्वका प्रतिषेध है इसलिये जो संन्यास भ्रष्ट ब्राह्मणहो तिसको देश निकाला कियाजाय और जो क्षत्रिय अथवा वैश्य कोई संन्यास लेकर भ्रष्टहोय तिसपर दास्यकर्म धरणी पालकरावै

अर्थात् जहाँ वैश्य कोई देश पालहो तौ क्षत्रिय जातिके प्रव्रज्यावसितसे भी दास्यकर्म करावै(सो)यह अर्थ कुछ असंगतसा प्रतीतहोताहै क्योंकि योगीश्वर याज्ञवल्क्यजीने १८८ वाले मूलश्लोकसे ठेठ प्रव्रज्याव सितकोही उसके जीवन पर्यंत राजाका दास होना कहकर उसके साथदूसरे अर्द्धसे प्रतिषेध भी करदियाहै कि (वर्णाना मानुलोम्येन दास्यंन प्रतिलोमतः)इसहेतुसे उसनारदकेभी वचनका अर्थांश इसके अनुकूल ऐसा करनायोग्यहै कि-वर्णोंके विपरीतक्रमसे दासत्वनहीं कियाजासक्ताहै और स्वधर्म त्यागी संन्यासी से अन्यत्र दारकर्मकेही तुल्य दासताकही है अर्थात् जो संन्यासी दास बनायाजाय तौ उसपर दारकर्मकेही तुल्यनीच दास्यनहीं करायाजाय किंतुऔर भांतिके सामान्यकाम धंधेउस्से लियेजायँ यहइतना अधिक वैशेष्य नारदने दर्शाया है कुछ प्रतिलोम क्रमसे दासबनाने वाला अध्याहार नहींरक्खा (और)यहीअर्थ इस हेतुसेभी न्यायात्मक समुझाजाता है कि जहांऋणके बदलेपरिक्षीण हीनजातिसे कुछ कामलेना कहागया तहांभी यहन्याय सूचितहुआ है किवहीकाम लेनायोग्यहै कि जिसका वह औचित्य और अभ्यासरखता हो-ब्यौराइसका देखो पच्चीसवें परिच्छेद में ४४ वाले मूलश्लोकसे किऋणका उद्धारकरना बड़ीएक प्रबल अवस्था मानीगई तिसमेंभी जबइतनी बड़ी रियायतसे अनुग्रहकरना सूचितहुआतौ संन्यासीकी अपेक्षामें अवश्य देशकाल बस्तुओंके विवेकन्यायसे यह ध्यानकरना योग्यहै कि यद्यपि अपने नियमोंसे परिच्युतहुआ परंच उसका देहवेश दोनोंकैसी उत्तमबस्तुमें गणनीयहैं कि जिसको नीचकामोंका औचित्य और अभ्यास दोनोंनहीं इसीलिये नारदका यहबचनऊपर आयाथा कि(स्वधर्म त्यागिनोऽन्यत्रदारवद्दासतामता)और जोराजाके सामान्य कामधंधे रूपदासता निःसंदेह उसकेलिये निरूपितहुई तिसका यहसिद्धांत है कि राजनीतिके अनुसार चारकर्म उनको सौंपे किन्तु चार यद्वा गूढ़चर नामक जासूस राजाको येही लोग विशेषतर करणीयकहेहैं क्योंकि परिव्राजक सब देशोंको अटन करने का अभ्यास अपना स्वाभाविक सदारखता है इस लिये उसका मनभी उन्हीं कामोंमें लगिसक्ताहै कि जिनका उसकोपहल्मे से अभ्यासहो बल्कि ठेठइसीहेतुसे राजाका दासत्व करना उसके अर्थमें निरूपित कियागया है पर नीचटहलें दारकर्म के समान उसकेलिये कहना निपट असंगतहै(चारान्विचारयेत्तीर्थेष्वात्मनश्चपरस्यच। पाखंडादीनविज्ञातानन्योन्यमितरेपिच। तर्केङ्गितज्ञःस्मृतिमान्स्वीयभावाप्रकाशकः॥ क्लेशायाससहोदक्षःसर्वत्रभयवर्जितः। सुभक्तोराजसुतथाकार्याणांप्रतिपत्तिमान्॥ पाखंडिनस्तापसादीन्परराष्ट्रेनियोजयेत्। स्वदेशपरदेशज्ञान्सुशीलान्सुविचक्षणान्॥ नीरेतोवामनाःकुब्जास्तद्विधायेचकारवः)इत्यादि वहुधा लक्षण और भी मनुस्मृति ग्रंथ इसके अर्थदेखो यहसब लक्षण प्रायःपरिव्राजक जो संन्यास भ्रष्टहो तिसहीसे संबं-

धितहैं और इसीलिये सिर्फ राजाकादासत्व करना कहा बलिक ऐसीउक्तरीतिसे धरणी-पालमें प्रतिलोम क्रमसे भी दासत्वकरना या करवाना कुछ अन्यायनहीं अन्यथा कुछ मलमूत्रआदिउठवाने वालादास्य कर्म उनके योग्य नहीं है न राजाको इनकामों वाले दास मिलनेका कुछटोटाहै जो ऐसे नीचकाम उनमे करवावे-कदाचित् यहाँ-ऐसा तर्क उपस्थितकियाजाय कि यह दासत्व उनको प्रायश्चित्तात्मक एक दंडके प्रकारसे विनिश्चित हुआहै और इसीलिये ऐसे नीचकाम उनसे इच्छा रहित भी करवाने योग्य हैं-सो यह तर्क निपट थोथाहै इसहेतुसे कि प्रायश्चित्तात्मक दंडरूप जो कुछ नियम है सो उन्हीं नारदने दूसरे वाक्यसे दर्शाया बलिक नारदकेही तुल्य दक्षजीने भी—यथाहतुर्दक्षनारदौ-(पारिव्राज्यंगृहीत्वातुयःस्वधर्मेनतिष्ठति। स्वपदेनांकयित्वातुराजा शीघ्रंप्रवासयेत्) अर्थात्-दक्ष नारद दोनोंही यह कहते हैं कि जो कोई परिव्राजक वाला आश्रम लेकर अपने नियत धर्म्मपर आरूढ़ न हो तिसको राजा शीघ्र अपने राज चिह्नवाली तप्त मुद्रासे अँकवाइकर निज राज्यसे निकासिदेवै-इस बचनमें कुछ वर्ण भेद नहीं किन्तु तीनों वर्णों का सामान्य एक दण्ड है-उन्हीं नारद ने-फिर और दूसरा नियम कहाहै-यथा-(राज्ञएवतुदासःस्यात्प्रव्रज्यावसितोनरः। नतस्यप्रतिमोक्षोस्ति नविशुद्धःकथञ्चन) अर्थात्-संन्यास भ्रष्ट पुरुष राजाका दासही यद्वा हो क्योंकि न तो किसी प्रायश्चित्तसे विशुद्धहोना संभवहै न कोई भाँति उसका मोक्ष है-सिद्धान्त इसका यह कि तप्त मुद्रासे अँक वाइकर निकासने से कुछ मुक्ति अथवा आत्मशुद्धि नहीं हैपर औरोंको भय शिक्षा होकर आगे मार्ग नहीं बिगड़ने पावै सिर्फ इतनाही प्रयोजनहै इसलिये यह भी उत्तम है कि जो वह पुरुष राजा के कुछ काम साधन कर सकने योग्य समुझाजाय तो निज राजाकाही दास बनै पर जो राजाके भी कामोंयोग्य नहीं समुझाजाय तो निस्सन्देह उसको अँकवाइकर प्रवासी करना सिद्धहुआ-इसीलिये विरले संग्रहकारोंका यह सम्मतहै कि ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण के संन्यास भ्रष्टोंको दो बातोंमें विकल्पहै कि यातो राजाका दासबनै या अँकवाइकर उस राज्यसे निकासाजाय सो यह सम्मत उनका बहुत उत्तम और न्यायात्मक है कुछ किन्तू देनेयोग्य नहीं-एक बचन कात्यायन का यह और है कि (प्रव्रज्यावसिता यत्रत्रयोवर्णाद्विजातयः। निर्वासंकारयेद्विप्रंदासत्वंक्षत्रविट्भृगुः)अर्थात्-भृगुका उद्देश देकर कात्यायन आप कहते हैं कि जहां तीनों वर्णके द्विजाती लोग प्रव्रज्यावसित होयँ तो उस देशका राजा उनमें ब्राह्मणको निज राज्यसे निकासिदे और उन क्षत्रिय वैश्य दोनोंसे दासत्व करावै-सो यह बचन केवल बहुत्वकी अपेक्षा लेकर कहाहै कि जहां तीनों वर्ण इकट्ठेहों तहां उनमें ब्राह्मण को अवश्य देश निकाला देकर शेष दोनों को यदि सेवायोग्य समुझै और वे दोनों उसीब्राह्मणका अपकार देखे पीछे राजसेवा

अंगीकार करैं तौ दासत्व करायाजाय (पर) सर्वत्र इनके मध्ये दासकर्म वही सूचित है कि जैसा चर्चा ऊपर हुआथा अर्थात् नीच कर्म्मका संबन्ध इनसे कहीं नहीं क्यों कि नारदने यह साफ़ कहाथा कि (स्वधर्मत्यागिनोऽन्यत्रदारवद्दासतामता) यहसब निर्णय केवल संन्यासीकी अपेक्षा लेकर हुआ अब सामान्य और दासोंका प्रसंग वर्णनकरतेहैं कि दार कर्मके अनुरूप दासता कहनेसे समान वर्ण में भी दास्य होना सूचितहुआ किंतु शूद्र वैश्य क्षत्रिय यहसब अपने अपने वर्णका भी दास्य कर्मकरने के अधिकारी हैं पर ब्राह्मणको निज वर्णमेंभी दास्यका प्रतिषेधहै-तथाह कात्यायनः-(सवर्णेपिहिविप्रंतुदासत्वंनैवकारयेत्।शीलाध्ययनसंपन्नेतदूनंकर्मकामतः॥ तत्रापिना शुभंकर्मप्रकुर्वीतद्विजोत्तमः)अर्थात्-विप्रलक्षणवान् ब्राह्मणसे सवर्ण में भी दास्यकर्म नहींकरावे पर जो शील और अध्ययन आदि गुणोंसे संपन्न किसी महात्माका दासत्व कोई ब्राह्मण अपनी प्रेमिक इच्छासेही ऐसा समुझिकर कुछ करनेलगै कि सत्सेवा यद्वा परोपकारसे अदृष्ट फल भी होताहै तौ इस दशामें भी दास्य कर्मसे कुछ ऊन कर्म करै किंतु निपट दास्यकेही तुल्य नहीं और यह बात भी कि सिर्फ़ परोपकारा बुद्धिसेही करै किंतु वेतनके प्रतिकार द्वारा कहीं तिसमें भी मल मूत्र आदि अतिशय नीच कर्मोंको द्विजोत्तम कुलका जन्मा हुआ न करै-मनुजी-अब स्वामीको कर्तव्य शिक्षा देते हैं-यथा (क्षत्रियंचैववैश्यंचब्राह्मणोवृत्तिकर्षितौ। बिभृयादानृशंस्येनस्वा मी कर्माणि कारयन् (स्वानिकर्माणिकारायन्नितवापाठः)अर्थात्-क्षत्रिय या वैश्यकोई जो अपनी जीवन वृत्तिसे कर्षित होकर ब्राह्मणके घर दासबनिके रहै तौ उस घरका पोषक स्वामी ब्राह्मण अपने आत्मीय कर्म करवाते हुये आनृशंस्य भावसेही पालन करै-अर्थात् उनसे अतिशय मन्दकामलेने या भरने पोषनेमें क्रूरत्व न करै किन्तु अक्रौर्य लक्षणकेसाथ उनकाभरणकरै और अकौर्यसेही दास्यकर्म केवलअपने आत्मा का अर्थात् अपने औरसंवन्धीजनकानहीं करावै तिसमेंभी(कर्माणि)यहसामान्यसभी कर्मोंका अभिधानहोनेसे जघन्यकर्म यद्यपि अवसरके अनुकूल कराने सूचितहुयेतौ भी यहकुछ निर्विकल्प नियमनहींहै कि दासवनिजानेके हेतुसे अवश्यहीमन्दकामलेने योग्यहों किंतु(वृत्तिकर्षितौ)ऐसा कहनेसे भी यहध्वन्यर्थ है कि जवतक स्वामी उनका पालन किसी और सामान्य काम धन्धोंसे होसकना संभवजानै तवतक दोनोजातोंमें कुछ दास्य कर्म कराना अंगीकार न करै पर जव निपट कोई और मार्ग संभवनहो वा मार्गसंभव होतेहुये वेही किसीमार्ग योग्यनहीं समुझेजायँ तौ फिर आपद्धर्मकेप्रावल्य से कुछ करने या करानेवाले किसीकोभी दोषनहीं-जैसा यहां ब्राह्मण स्वामीकेउद्देश करकेकहा तैसा जहां क्षत्रियस्वामी सेवकवैश्यहो तहांभी यहन्याय समुझिलेना-इच्छा रहितको प्रवलता से दासत्वमें लगानेमध्ये दण्ड मनुकहतेहैं-यथा (दास्यंतुकारयँल्लो

भाद्ब्राह्मणःसंस्कृतान्द्विजान्। अनिच्छतःप्रभावत्वाद्राज्ञादाप्यःशतानिषट्)अर्थात्-यदिकोई ब्राह्मण अपने ऐश्वर्य्य के प्रभाव यद्वा लोभसेही संस्कार कियेहुये द्विजाती लोगोंसे उनकी इच्छाविना भी प्रावल्यमें कुछ दास्यकर्म करावे तो अपराधके अनुसार छःसौपणतक दण्डनीयहै-यहाँ संस्कारयुक्त द्विजाती और प्रावल्य कहनेसे असंस्कृतकी अपेक्षामें या शूद्रजातिकी अपेक्षामें सामान्यभाव कोईदास्यकाम लेनेसे यह दोष अथवा दण्डभी कुछनहींहै पर इच्छा रहित प्रबलतासे करवानेमध्ये दण्डसर्वथा सूचितहै-शूद्रकी अपेक्षा लेकर फिरभी मनुकहतेहैं-किञ्च(शूद्रन्तुकारयेद्दास्यंक्रीतमक्रीतमेववा। दास्यायैवविसृष्टोऽसौब्राह्मणस्यस्वयम्भुवा)-अत्र-इनपन्द्रहकेसिवाय बिरले दासाभासोंकाभी लक्षणयहाँकहतेहैं कि-चोरोंके हरिलाकर कहींबेंचेहुये या बेंचे बिना औरही किसीभाँतिसे निजइच्छारहित प्रबलतासे जो दासबनायेगयेहों वे सबराजाको छुड़वाने योग्यहैं क्योंकि दास्यकर्म उनमें चहिये नहीं—दासाभासनाम कहनेका यह अर्थहै कि वे कुछसच्चे दासनहीं किंतु उनमें झूँठाही दासत्वदेखने मात्रमें आभासित होताहै-यथाहनारदः (चौरापहृतविक्रीतायेचदासीकृताबलात्। राज्ञामोचयितव्यास्ते दास्यंतेषुहिनेष्यते)यहीबात योगीश्वरभी पूर्वार्द्ध १८७ मूलश्लोकसे कहचुके जिसकी यह अधिकोक्ति वर्तमानहै-इच्छा रहित दासाभासों केसिवाय-जहाँ इच्छासे भी ठेठ पन्द्रहमें से कोई मुख्यदासही एकस्वामी को जबछोड़िदूसरे स्वामीका दासत्वअङ्गीकार करैतबयह मुख्यभी अमुख्य दासाभासकेसमान दूसरेस्वामीकी अपेक्षासमुभा जाकरपूर्वस्वामीको दिलवाने योग्यहोताहै-यथाहनारदः(तवाहमितिचात्मानंयोऽस्वतंत्रःप्रयच्छति। नसतंप्राप्नुयात्कामंपूर्वस्वामीलभेततम्)अर्थात्-जोकोई अस्वतंत्रपरायादासहोतेहुये किसीऔरको इसभांति अपनी ओरसेभी देहको समर्पण करताहैकिमैं अबतेराहुआ तो उस(काम)चाहनाको वहनहीं पहुँचने पावैकिंतु पहलास्वामी उसकोलेवै (अथमुख्यदासानामपिदासत्वनिवृत्तिः)तदाहनारदः(यश्चैषांस्वामिनंकश्चिन्मोचयेत्प्राणसंशयात्। दासत्वात्सविमुच्येतपुत्रभागंलभेतच)अर्थात्-इन पन्द्रहमुख्य दासोंमें जोकोई अपनेस्वामीको कदाचित् व्याघ्रचोर आदि प्राणघातिक दशामें घिरजानेपर पुरुषार्थ करके प्राण संकटसे बचावैसो दासत्वसे छुटिकर पुत्रोंके तुल्यदाय भागपावै-किंतु स्वामीको यहयोग्यहै किउस्सेदासकर्म करानाबर्जित रखकर पुत्रोंके समानदाय भागी निश्चितकरै पर जो स्वामीइतने सहायपर भीऐसा नहींकरैऔर वहदास अपना छुटकारा होनाचाहै तभी राजाको छुड़वानेका अधिकारहै-यही नियम योगीश्वरने (स्वामिप्राणप्रदो-मुच्यते)इसइतनेपदसे१८७मूलश्लोकमें कहदिया(सो)यहस्वामीकी रक्षारूपहेतु एकसभी प्रकारके दासोंका छुटकारा होनेमें मुख्यहै परउस दशामें कुछ नियम इसका नहीं है जो वेही अपने प्रेमसौख्यआदि हेतुसे छुटकारा होनानहींचाहैं

इसके सिवाय-उन्हीं १५ मेंसे ९ दासों के छुटकारामध्ये जुदाजुदा प्रातस्विक हेतु भी होताहै-यथाहनारदः-(अनाकालभृतोदास्यान्मुच्यतेगोयुगंददत्। सम्भक्षितंयद्दुर्भिक्षे नतच्छुद्ध्येतकर्मणा॥ आहितोपिधनन्दत्त्वास्वामीयद्येनमुद्धरेत्। ऋणंतुसोदयन्दत्त्वा ऋणीदास्यात्प्रमुच्यते॥ तवाहमित्युपगतोयुद्धप्राप्तःपणेजितः। प्रतिशीर्षप्रदानेनमुच्येरंस्तुल्यकर्मणा॥कृतकालव्यपगमात्कृतोदासोविमुच्यते।निग्रहाद्बडवायास्तुमुच्यतेबडवाहृतः॥भक्तस्योत्क्षेपणात्सद्योभक्तदासःप्रमुच्यते)अर्थात्-अकालमें जोदासबना हो वहदोबैल या दोगाय देकर जबचाहै तभीछूटि सक्ताहै बैलका जोड़ादेना इसहेतु से कि जो दुर्भिक्ष में खायासो वहकेवल कामकरनेसेही नहींशुद्ध होसक्ता-आहित नाम गिरबी रक्खाहुआदास उत्तमर्ण के दासत्वसे तबछूटताहै कि जबउसका पूर्वस्वामी ऋणउद्धारकरके उसेछुड़ावे-ऋणीदास ब्याजसहित अपना दिलवायाहुआ ऋण उद्धारकर देनेपर दासत्वसे छुटिजाताहै-जो आपही आकर दासबनाहो सो और युद्धकी जो लूटिमेंसे दासपायाहो सोभी और द्यूतादिपणमें दासजीतागयाहो सोभीयहतीनों दासअपने छुटकारेके निमित्तसे अपनेबदले (प्रतिशीर्ष) कहिये वहीकामकरसकनेवाला अन्य दास देकर छूटिसक्ते हैं-किसी अवधिके नामसे ठहराकर दास बनायागया हो सो उस अवधिके बीतने पर छुटिसक्ता है-गृह दासी के लोभसे जो दास बना हो सो उस दासीका सम्भोग छोड़िदेने से छुटिसक्ता है-भक्तदास भी भक्षित अन्नका मूल्य फेंकि देने से तत्काल छूटिसक्ता है पर इसका मुख्य ब्यौरा कहीं नीचे बढ़िकर देखो-यह प्रत्येक नौ दासों के छुटकारे का हेतु अपना जुदा २ परिनियमित है और इसके सिवाय स्वामी अपनी इच्छा तथा प्रसन्नतासे जब चाहै तब हरएक भांतिके दासको पन्द्रहमेंसे जिसको चाहे छोड़िसक्ता है पर एक (आहित) नाम गिरबी दासका छूटना जब उसके धार्ता स्वामीकी भी इच्छातुल्यपहुँचै तभीसंभवहै अर्थात् केवल इसीस्वामी की इच्छापर आरूढ़नहीं क्योंकि उसका गिरबी सौंपाहुआधनहै(पर)जब धार्त्तास्वामी नष्टहोजाय तो फिर इसी एकस्वामीकी इच्छापर आरूढ़है या वह गिरबीदास अपने पूर्व स्वामी के पलटे ऋण उद्धारकरै तो यहबात द्वितीयहै पन्द्रहमेंसे पूर्वोक्त.गृहजात. क्रीत.लब्ध.दायप्राप्त.चारदासोंका दासत्व केवल स्वामीकेप्रसादसेहीछुटिसक्ताहै और उसी भांति पाँचवाँ आत्मविक्रेताकोभी जानो-यथाहनारदः-(तत्रपूर्वश्चतुर्वर्गोदासत्वान्नविमुच्यते। प्रसादस्वामिनोऽन्यत्रदास्यमेषांक्रमागतम्॥ विक्रीणीतेस्वतंत्रःसन्यआत्मानंनराधमः। सजघन्यतमस्तेषांसोपिदास्यान्नमुच्यते)अर्थात्-पंद्रहमेंसबसे पहलेचार दास कभीदासत्वसे छूटिनहीं सक्ते क्योंकि उनका दास्य जन्मसेही पितृ पैतामह आदिक्रमागत चला आताहै पर सिर्फ इतनी राह उनके छुटकारे मध्ये है कि यातो स्वामी अपनी इच्छा तथा प्रसन्नतासे जब चाहै तभी दास्यकर्म छुड़ाकर

कोई और उहदादे यहां वहसामान्य कारणहै कि जबइनसे स्वामीकी प्राणरक्षाकिसी संकट समय हुईहो- इसीप्रकार जो कोई अधम अपने आप स्वतंत्र होतेहुये शरीर बेंचिदेताहै वह सब दासोंकी अपेक्षा तुच्छ समुझाजाताहै और वह भी उन्हीं चारों के तुल्य दास्यकर्म से छुटिनहीं सक्ता पर सामान्य हेतु स्वामीकी प्राण रक्षा या निज स्वामीकी प्रसन्नतामात्रसे छुटिसक्ताहै-छठे प्रव्रज्यावसितके निमित्तमें प्रायःसभीग्रंथोंने यहलिखाहै कि उसकादास्यकर्म कोईभांतिसे भी नहीं छूटिसक्ता किंतु मरजानेपरछुटि सक्ताहै तथापि यहां ऊहा यहकर्तव्यहै कि स्वामीको संकटसे बचानेवाला सामान्यहेतु और स्वामीका प्रसाद या इच्छाजो है सो सभी दासोंके छुटकारेपर आरूढ़है क्योंकि-(यश्चैषांमोचयेत्कश्चित्स्वामिनंप्राणसंशयात् । दासत्वात्सविमुच्येतपुत्रभागंलभेतच) यह नारदजीका वचन सब सामान्य दासोंकी अपेक्षालेकर कहागयाहै और इसपक्षमें प्रव्रज्यावसितकी अपेक्षा जो विशेष वाक्यहै कि (प्रव्रज्यावसितोराज्ञोदासआमरणांतिकं) सो यह मरणांतिक अवधिकहने का ध्वन्यर्थ केवल इतना है कि वह अपने जीवन पर्यंत धरणी पालोंकी सेवामें रहसक्ता किन्तु गृहस्थी में फिर नहीं मिलाया जासक्ता है-ऊपर-भक्तदासके छुटकारे का यह नियम जो दर्शायागया कि भक्तदास अपने भक्षित अन्नका मूल्यफेंकि देनेसे छुटिसक्ताहै इसबातका कुछ निर्णय नहींकिया जासक्ताहै कि प्राचीनोंने क्याकुछ समुझिकर यह लिखाथा क्योंकि प्रथम तो (भक्तदास) इसनामका अर्थ सबनेयही रक्खाहै कि हमेशा अन्नही खानेके लिये जो दासत्वमें आपसे आप घुसाहो सोई भक्तदास कहावै-तथाच वीरमित्र विज्ञानेश्वराचार्यौ (भक्तदासःसर्वकालंभक्तार्थमेवदासत्वमभ्युपगम्ययःप्रविष्टः) इसकथनस यह भ्रांतिखड़ी हुई कि शायद और कोई दास अन्ननखातेहों यथार्थमें सभी दास अन्नखाते अन्नखाये विनाकोई दासकाम नहीं करसक्ताहै उसमें हमेशाकी विशेषता कही सो भी व्यर्थ ठहरी क्योंकि कोई दास ऐसा नहींहै जो कभी अन्नखाताहो कभी नखाताहो किन्तु सभी हमेशेखाते हैं-अथवा एक दूसरी भ्रांतिखड़ीहुई कि इसको केवल अन्नकहा और दास कुछ तनख्वाह पातेहोंगे तिसमें भी यहबात है कि यद्यपि कहार आदि कृतदास बहुधा तनख्वाहके भी दास होतेहैं पर सिद्धांतमें कुछ दासोंका तनख्वाहमध्ये नियम नहीं बल्कि तनख्वाह वाले मनुष्यको दासोंमें गिनती नहीं किया किंतु (मूल्येनयःकर्मकरोतिसभृतकः) ऐसा कहकर उसको कर्मकरोंमें से एक नौकर मानागयाहै इस्से सभीदासोंको तनख्वाहका कुछ नियमनहीं प्रायःअन्नबस्त्रपातेहैं-कदाचित् ऐसा कहनेमें आवे कि अन्यदास वस्त्रभी पहिरते हैं और इसको सिर्फ़ अन्नहीकहा तौ भी ध्यान करनेका यह स्थल है कि ऐसा होनेपर भी उसका क्या अपराधहै जो खाया हुआ अन्नदेकर छूटै बल्कि उसने और दासोंकी अपेक्षा थोड़ाखर्चकराया किंत सिर्फ़

बची खुची रोटीखाकर काम किया क्या उस अन्नकी बराबरभी दासत्व उसने नहीं किया-कदाचित् ऐसा कहनेमें आवै कि यह भ्रांति वर्तमान कालके अनुसार है वह नियम उनप्राचीनोंने प्राचीनकालके अनुसार लिखाथा तौ यह अधिकतर विपरीतहै कि उस प्राचीन कालमें अधेला पैसासेही पेट भरताथा अब दो तीन आने विना एक दासका पेट नहीं भराजासक्ताहै और काम जितनातब करतेहोंगे तिससे अब कुछ न्यून जानो बल्कि अन्नोंकी बहुताइत और सुलभतासे प्राचीनकालमें यह शिष्टाचार शास्त्रविधिके अनुसार अतिशय भावथा कि अपनेनिकट या परिग्रहभूमिमात्रमें जो कोई गैरठहराहो तिसकोभी खवाये विनाकोई अन्नपहले आपनहीं खालेताथा न अपने मुखसेकभी यह कहसक्ता था कि यहाँ का टिकना छोड़िदो फिर निजदासको परिश्रमसे खवाया हुआ उस्से चलते समय माँगाजाय यह अन्याय अब के महा भयानकनिर्लज्ज लोलुपस्वार्थी समयमेंभी नहींहै कि कोई अपनेदासका खवाया अन्नमाँगताहो अगर उसके पास खायाहुआ अन्नदेदेने को कुछ पूँजी जमाहोती तौ वह व्यर्थ ऐसे नीचकामों को क्योंकरने आता-इसके सिवाय उसके नामलक्षणके अर्थमें कोई ऐसा इक़रार भी कुछ नहीं पायाजाताहै कि जिसके हेतुसे वह छूटिनहींसकै या दासत्व करने के प्रारंभसे अबताईं जो कुछखाया सो सबदेकर छूटै क्योंकि वह अपनापेटभरने के अर्थ से इक़रार कुछ ठहराने बिना आपही दासकर्म करने लगा—इससेयही सर्वथा निश्चित हुआ कि मूलकारोंने इसभक्तदासका न्यायबहुत ठीकलिखाहै परटीकाकारोंने कुछ अर्थउसका समुझानहीं-किन्तुमूलकार योगीश्वर याज्ञवल्क्यने १८७मूलवचनके उत्तरार्द्धमें (भक्तत्यागात्-मुच्यते) यहस्पष्टकहाहै कि भक्तजोहै अन्नतिसके त्यागसे वहभक्तदास छूटताहै किजिसने भक्तखानेके अर्थसेदासत्व अंगीकार किया हो अर्थात् जिसवेरा स्वामीकाभक्त खानाछोड़िदे उसीबेरा छूटिसक्ता है फिरउसको कोईरोकि नहींसक्ता यहसिद्धांत है-इसीप्रकार-नारदने भी साफ़कहा है कि (भक्तस्योत्क्षेपणात्सद्योभक्तदासःप्रमुच्यते) अर्थात् भक्तखाने वाला जोदास है सोभक्तके उत्क्षेपणमात्रसे अर्थात् अन्नखाना छोड़िदेनेसे सद्यःछूटिजाताहै बल्कि(प्रमुच्यते)इसमें (प्र)शब्दके योगसे यह भाव दर्शित कियाहै कि निपट विना रोक टोक छूटिसक्ता है अर्थात् फिर कोई उसेरोकनेवाला नहीं-नारदके इस वचनमें भक्त शब्द जो सामान्य अन्नमात्रका वाचक है तिसको टीकाकारोंने खायेहुये अन्नकेभावार्थ में समुझा और उत्क्षेपण शब्द जो यहाँपर (उदञ्चन) अर्थात् ढँकिदेनेका बोधक है दृष्टांत जैसे हाथ उठाकर कहाकि अब अपना अन्न ढाँकिधरो मैंने खानाछोड़ासो यहहाथही एकढकना के आकारहोकर यह दर्शाता है ढाँकिदिया रोकिदिया बंदकरदिया लेना छोड़ि दिया उसका उसीमें रहनेदिया लेने खानेकामार्ग शेषनहीं रक्खा-तिसको टीकाकारोंने फेंकने

और देदेनेके भावार्थमें लगाया-ऐसे न्यायात्म दोनों शब्दोंके असंगत अर्थमिलाकर उसपरखाया पिया दिलानेवाला न्यायनिश्चितकिया बल्किविरलोंने अकालिया दास को भी उसकेसाथ व्यर्थ लपेटा है-तद्यथा (अनाकालभृतभक्तदासौभक्तस्यत्यागात् दासभावादारभ्यस्वामिनोद्रव्यंयावदुपभुक्तं तावदत्त्वामुच्यते-इतिमिताक्षरा)अन्यच्च-(भक्तदासस्तुभक्तस्योत्क्षेपणात् भक्षितभक्तमूल्यसमर्पणाद्विमुच्यते- इतिवीरमित्रोदय धृतपाठः)ऊपरली प्रकृतचर्चापर अवध्यानकरना योग्यहै कि जो कुछ निर्णयदासोंका पुल्लिंगत्वके निर्देशद्वारा वर्णनकियागया सो सवयथा संभवदासीमेंभी यहीसमुझना-और-यह बातभी कि जोपहलेदासी नहीं थी पर दासको विवाहीजानेसे वहभी दासी होजातीहै-यथाहकात्यायनः (दासेनोढात्वदासीयासापिदासीत्वमाप्नुयात्।यस्माद्भर्त्ता प्रभुस्तस्याःस्वाम्यधीनःप्रभुर्यतः) अर्थात्-अदासीभी दासकी विवाही उसीस्वामीके दासीत्वको पावै क्योंकि भर्त्ता उसका मालिक है वह मालिकही जबस्वामी के अधीन है तो उसको भी स्वातंत्र्य नहीं-और-इसबातपर भी ध्यान धरनायोग्य है कि दास कोई ऐसी निंद्यवस्तु में गणनीय नहींहै कि जिसकेलिये कोई भाँति असंगत न्याय निरूपण कियाजाय बल्कि बहुधा विज्ञ जो यहबात प्रतर्कित करते हैं कि नौकर की अपेक्षा दास अतिशय निंद्य नीच पीड्यहोता होगा जिसको कुछ द्रव्यादि नियमित तनख्वाह तकभी नहीं मिलती(सोभी)केवल समुझका यहअन्तरहै कि उसको केवल पेटका आधारमात्र मिलताहोगा-सुनो इनबातोंका निर्विकल्प कोई नियम प्रत्यक्षलौकिकबर्त्तावामें या शास्त्रमें भी नहींहै (और) बहुधा संग्रहकार टीकाकारोंने जो नाम लक्षणमें यह भेदकियाहै कि (मूल्येनयःकर्मकरोतिसभृतकः) अर्थात्-जो तनख्वाह लेकर कामकरै सोई भृतकनाम नौकरजानो इसीसे यहबात पाईजाती है कि दासको तनख्वाह नहीं (सो) यहलक्षण इतना व्यर्थ और कुछ समुझि सोचिकरके नहीं लिखागयाहै क्योंकि जिसको नौकर समुझा वहभी प्रायःरुटिहा नौकरहोताहै जो सिर्फ़ रोटीखाकर कामकरता है और बहुधा दास भी तनख्वाहपातेहैं दृष्टांत जैसे कहार आदि कृतदास अवश्य विना तनख्वाह नहीं रहते बलिक गृहजात आदि मुख्य दास भी कदाचित् अपने स्वामीके प्रबंध सौगम्यसे निज पत्नी पुत्रादिके निमित्त जुदाखर्च पायाकरतेहैं तो वही उनका वेतन मूल्यहै-इसलिये नाम लक्षणका वह भेद निपट व्यर्थहै अर्थात् नाम लक्षणका भेद केवल शुभ और अशुभ कामोंके अनुसार निश्चित है कि भृतक नाम नौकर सिर्फ़ अच्छे निर्मल कामकरसक्ताहै और दास नाम टहलुआ भलेबुरे सभीकाम करताहै-बल्कि तनख्वाहकी अपेक्षामें जो निर्गुण और सामान्य नौकर होतेहैं तिनसे दास बहुत अच्छा समुझाजाता है क्योंकि जो सामान्य तीन पाँच रुपयेका नौकरहो उसको अपने कुटुंबका पालनकरना कठिन होजाता

बल्कि नाना भाँतिकी चिंता खड़ीरहती हैं और स्वामीको कुछ दयाभाव उसकी चिंतामध्ये प्रायःनहीं पहुँचता बल्कि तीव्र आज्ञाका आवेश बना रहता है-और दास रोटी कपड़ा आदि सब सामग्री ऐसी रीतिसे निर्द्वन्द्वपायाकरते हैं कि जैसे उसी घरके सब स्वकीय पालेजातेहों-केवल उतना जो वह लांछन है कि आवश्यक मैले कामों काभी भार उनपर आरूढ़ सो उसभारकेही प्रभावसे उन दासोंपर निज स्वामी और उस घरके सभी मनुष्योंकी कुछ इतनी बड़ी अनुग्रह दृष्टि रहती है कि जिसका रूप लिखना कुछ आवश्यक नहीं किन्तु लोकमें प्रत्यक्षहै सब देखिलेउ जैसाघर उसघरहीके अनुरूप उनके हाथ पैरो में सोने चाँदी के आभूषण परे रहते हैं जो छोटेमोटे नौकरको कदाचित स्वप्नमें भी हाथ न आतेहों बल्कि नौकरको जब अपने संतानोंके विवाह आदि मंगल करनेहोते हैं तब उनमें बिरले ऐसे नौकर अथवा स्वामीहोंगे जिनको स्वामीसे सहायता प्राप्तहोतीहो परन्तु दासकोई ऐसा नहीं होता जिसको स्वामीसे इनकामोंमें सहायता नहीं मिलै बल्कि स्वामीऐसे ढंगसे इन कामोंमें सहायता देते हैं कि तद्रूप अपने लड़का लड़कीकेही तुल्य-क्योंकि वे गृहजात आदि दास गैरनहीं समुझेजाते किन्तु घरहीके मनुष्योंमें सब गिनेजातेहैं-और उनके प्राचीनत्व के अनुकूल घरके लड़का लड़की उनसे काका चाचाआदि शिष्टाचारिक शब्दों का यथोचित बर्त्तावा उसी भाँति रक्खा करते हैं कि जैसे अपने काका चाचासे-बल्कि ऐसे दास भी उसघरको ऐसा पचते हैं कि ठेठ अपनाही घर जानिकर लाचारी अवसरमें कमाई करिके लाते हैं और स्वामीको समर्पण करते हैं कि जैसे उसके बेटे पोतेआदि बड़प्पन के अनुकूल आगेलाकर धरा करते हैं (अस्मत्पितामहने एक भोलानाम लोधा ठाकुर कभो अकाल में पाला था अकाल में अवस्था उसकी न मालूम कितनीथी पर पीछे उसे नवाबी पलटनिमेंभर्तीभी करवादियाथा- लेखकने निजबाल्यभाव में सिपाही वेश उसको कभी कभी देखा है कि युद्धोंकीलूटिमेंसे जो कुछ द्रव्यलाता सोसब अपनेपूर्व पालयितास्वामी अस्मत्प्रपिताको समर्पण करिकरिजाताथा और उनकादास कहाताथा यहदास्यधर्मका स्वाभाविक लक्षण उसमेंदेखा यहीचर्या सतयुगआदि युगोंसे स्वाभाविक चलीआती है कुछदास किसी निंद्यपीड्यवस्तुमें गणनीयनहीं है युद्धमें उसभोलादासका माराजाना सुनिकर घरमें बड़ाशोकमानागयाथा कि जैसेकोई घरहीकामनुष्यहो) प्रायःज़मींदारोंके घरानों में इसभाँतिकेपैतृक या पैतामहदास गृहजातआदि बहुधा रहाकरते बल्कि (रहुआ) इसीनामसे प्रसिद्धरहते हैं और वेही अपने स्वामियों के कुटुंबका जीवन पैदाकरते हैं अर्थात् खेतीपातीआदि सब धंधेठेठ उनहींपर आरूढ़होते हैं और उसीरीतिसे वेखेत कमातेहैं कि जैसे कोई निजघरकाखेत-इसीभाँतिके-गृहजातआदि पैतृकदासोंकाविभा-

ग दायधनकेसाथ होताहै पैतामहदास रूपीधनमें पितापुत्रदोनोंका स्वामित्वबराबर होताहै मर्यादा इसकी दायभागमें कहिचुकेहैं-सायथा (भूर्यापितामहोपात्तानिबंधोद्रव्यमेवच। तत्रस्यात्सदृशंस्वाम्यंपितुःपुत्रस्यचैवहि) अन्यच्च (स्थावरंद्विपदंचैवयद्यपि स्वयमर्जितम्। असम्भूयसुतान्सर्वान्नदानन्नचविक्रयः) और जो उनदासोंमेंसे कोईदास भार्या पुत्रोंसे विहीन होतेहुये अपना कुछधन छोड़िमरै तौ उसधनका मालिकस्वामी होताहै-तथाचकात्यायनः (दासस्यतुधनंयत्स्यात्स्वामीतस्यप्रभुःस्मृतः) दासोंके छुटकारेका जो हेतु पहले वर्णन हुआ सो सबदासी मेंभी सूचितहै तथापि दासीके छुटकारेमध्येएकहेतु अधिकहै-यथाहकात्यायनः (स्वान्दासींयस्तुसङ्गच्छेत्प्रसूताचभवेत्ततः अवेक्ष्यबीजङ्कार्यास्यादऽदासीसान्वयातुसा) अर्थात्-जो कोईस्वामी अपनी दासीसे यदि सङ्गमकरै और वहदासी भी प्रसूताहोय तब निजबीजसे सन्तानहुई जानकर वहदासीभी इसहेतु से सन्तानों सहित अदासी करने योग्यहै कि अपने बीजकीसन्तान आदि दास कर्मसे बचिजाय-कदाचित्कोई-दासी अथवा दासको दासत्वसे बचानाचाहै तिसकी विधिभी नारद कहतेहैं-यथा (स्वन्दासमिच्छेद्यःकर्तुमदासंप्रीत मानसः। स्कन्धादादायतस्यासौभिन्द्यात्कुंभंसहांभसा॥ साक्षताभिःसपुष्पाभिर्मूर्द्धन्य द्भिरवाकिरेत्। अदासइतिचोक्त्वात्रिःप्राङ्मुखंतमथोत्सृजेत्॥ ततःप्रभृतिवक्तव्यःस्वाम्यनुग्रहपालितः। भोज्यान्नोप्यप्रतिग्राह्योभवत्यभिमतःसताम्) अर्थात्-जोकोईअपने दासपर प्रसन्न होकर उसेअदास करनाचाहै तौ उसदासके कन्धेपरसे जलकाभराघड़ा लेकरपानीसहित फोरिडालै और माथेपरसे अक्षतफूलोंसहित जलकीधारादेवै और (अदास) ऐसा तीनिबारकहिकर पूर्वओर थोड़ीदूरचलताकरै अर्थात् पीठिऊपर हाथ ठोंकि ठोंकि तीनिबार ऐसाकहाहै कि आजसे तूदासनहीं दासनहीं दासनहीं उसदिन सेफिर दासकहना छोड़िदे किंतु (स्वाम्यनुग्रहपालित) ऐसानाम कहनाचाहिये-दासोंकी अपेक्षालेकर ऊपरकहेहुये नियम यथासंभव दासीमेंभी सूचितहैं और क्रीत दासका खरीदना निश्चितहोनेसे दासदासीका विक्रयभी संसिद्धहुआ क्योंकि मोल लेनाभी उसदशामें होसक्ताहै जबकोई एकबेचै-परंच-बिरलीदासीके विक्रयमध्येदंड होनाकहाहै-यथाहकात्यायनः (विक्रोशमाणांयोभक्तांदासींविक्रेतुमिच्छति। अनापदिस्थःशक्तःसन्प्राप्नुयाद्विशतंदमम्) अर्थात्-रोदनकरतीहुई भक्तानाम सुशीला दासीको यदिकोई शक्तिमान्होकर किसी विपत्तिके न होतेहुये विक्रयकरना चाहै तौ वहदोसौ पणतकदंडपावै- इसमें भक्ता किंतु सुशीला कहने का यह आशय है कि दुःशीला प्रतिकूलाके विक्रयमध्ये दंडनहीं या कोई प्रबल विपत्तिमें यदिबेंचै तौ अपराध नहीं इसके सिवाय-ब्राह्मणी आदि कुलवतीस्त्री के बेंचने यद्वा दासीकरने में भी दण्ड है-यथाहकात्यायनः (आदद्याद्ब्राह्मणींयस्तु विक्रीणीयात्तथैवच। राज्ञातदकृतंकार्यं दं

ड्याःस्युःसर्वएवते ॥ कामात्तुसंश्रितांयस्तुकुर्याद्दासींकुलस्त्रियम् । संक्रामयेत्तुवान्यत्र दण्ड्यस्तच्चाकृतंभवेत् ॥ बालधात्रीमदासींचदासीमिवभुनक्तियः । परिचारकपत्नींवा प्राप्नुयात्पूर्वसाहसम्) अर्थात्-ब्राह्मणी को जो कोई मोललेवे या बेंचै तौ राजाको वह क्रय विक्रय अकृत करना योग्यहै अर्थात् न करनेदे या होचुकाहो तौभी उसेनिवर्तितकरै और सभीकर्त्तालोग दण्डपावैं-यहां ब्राह्मणी शब्दभी कुलपात्रनारीमात्रकाबोधकहै- कामबाधासे पहुँची तथा समाश्रितहुई कुलस्त्रीको यदि कोई बशमें लाकर या फुसिलाकर अपनी दासीकरै यद्वा और कहींपहुँचावै सोभी दण्डपावै और वहकाम अकृतहोवे किंतु दासी यदिहोगईहो तौभी दासीनहीं है यह न्याय राजाकरै-बालक पालन कर्त्री धाइको या ऐसीकिसी नारीको जो दासीनहीं है यदि कोई दासीकीभाँति भोगै या परिचारक पत्नीनाम अपने चाकरकी पत्नीकोही दासीकी भाँतिभोगै तौ वह उत्तम साहस दण्डपावै १८७। १८८॥

(अथअन्तेवासिनोधर्मः)

कृतशिल्पोपिनिवसेत्कृतकालंगुरोर्गृहे। अंतेवासीगुरुप्राप्तभोजनस्तत्फलप्रदः १८९॥

ऐ०-गुरु प्राप्तभोजन अंतेवासी गुरुकेघरमें कृतशिल्पभी उसकामका फलप्रद होकर कृतकालतक निवासकरै-अर्थात्-अंतेवासीनाम शागिर्द जो किसी प्रकार का शिल्पकर्मसीखै तिसकेलिये यहनियम है कि जो उसको सिखलानेवाले(आचार्य)उस्तादसेही भोजनमिलना ठहिराहो तौ शिल्पकर्म सीखिजानेपरभी उतने कालतक ठहिरै जितनी काल अवधि उसके आचार्यनेपहले निश्चितकरदी हो कि दो या चारवर्षों तक हमारेपास जामिकेठहिरैगा तौ इसकामसे संपन्न करिदेवैंगे-आशय इसकायह कि ठहिरेहुये कालकेभीतरभी यदि अंतेवासी कामसीखिजाय तौभी उतने शेषकाल तक उसकामकोही गुरुकेअर्थ करताहुआ उसकालाभ उसको देताहुआ निवासकरै क्योंकि उस आचार्यने भोजन देकर काम सिखाया १८९॥

मधि०-अंतेवासीकी अपेक्षामें शिल्पकर्मोंकासंक्षेप लक्षणभी बृहस्पतिने दर्शाया है-तथाहि (विज्ञानमुच्यतेशिल्पेहेमकुप्यादिसंस्कृतिः। नृत्यादिकंचतत्प्राप्तुं कुर्यात्कर्म गुरोर्गृहे) अर्थात्-हस्तक्रियारूपी शिल्पविद्यामें भी नानाभाँतिका विज्ञान होता है (दृष्टान्त)जैसे सोनेराँगे आदि अनेकधातोंके संस्कारकरने वा आभूषण आदि पदार्थ निर्मितकरने एवंनृत्यगीत आदिका अभ्यास यद्वावीणाआदि वहुधावाद्यनिर्मित करने इसदृष्टांतमें प्रायः(आदि)शब्दोंके भावार्थसे अनेकधाशिल्पकामोंका विवेकजानिलेना जैसे स्तंभकुम्भ आदि जो जो शिल्पकाम कारुकलोग वनाया करतेहों तिसके प्राप्त होनेको आचार्यके घरजाकर कामकरै-बृहस्पतिके इसकथनसे सुनारआदिकारीगरोंका स्वस्वजाति कर्मकृत विशेष नियम निश्चितहुआ इन्हीं कारीगरों का-जातिकर्मकृत

विशेष और वृत्तिकृत विशेष दोनोंनारदजी स्पष्ट व्योरेवार सब दर्शाते हैं-यथा-(स्वशिल्पमिच्छन्नाहर्तुंबांधवानामनुज्ञया। आचार्यस्यवसेदंतेकृत्वाकालंसुनिश्चितम् ॥ आचार्यःशिक्षयेदेनंस्वगृहेदत्तभोजनम् । नचान्यत्कारयेत्कर्मपुत्रवच्चैनमाचरेत् ॥ शिक्षयंस्तमसंदुष्टंयआचार्यपरित्यजेत्। बलाद्वासयितव्यःस्याद्वधबंधौचसोऽर्हति ॥ शिक्षितोपिकृतंकालमंतेवासीसमापयेत्। तत्रकर्मचयत्कुर्यादाचार्यस्यैवतत्फलम् ॥ गृहीतशिल्पःसमयेकृत्वाचार्यंप्रदक्षिणम् । शिक्षितश्चानुमान्यैनमंतेवासीनिवर्तते)-अर्थात्-नारदकहतेहैं कि अपनी जातिपेशेवाला शिल्पकर्म हरनेको इच्छाकरताहुआ पिता भ्राता आदि बंधुओंकी अनुज्ञासे आचार्यके समीप एक अवधिनिश्चित करिकै बसै किन्तु जितना काल उस आचार्य ने उच्चारण कियाहो कि इतने वर्ष मेरे पास टिंकना होगा वही अंगीकार करिकै टिकै-उस आचार्य का यह धर्महै कि अपने घरसे भोजन देकर इसको काम सिखावै और उस कामके सिवाय कोई और घरका धंधा नहीं करावै औरइस अंतेवासी को निज पुत्रोंके समानवर्तै-अंतेवासी जो आचार्यकी दूकान वाला काम सीखने हेतुसे सहायक बनिकर करताहै सो वही सहायता गुरु शुश्रूषा तुल्य होतीहै इसलिये उसपर औरकुछ शुश्रूषा नहीं करावै पर उसकामको आचार्य अपनी इच्छाके अनुसार जितना अधिक चाहै तैसे ढंगसे लेसक्ताहै और अपने घरसे भोजन देना इसमें नियमात्मकहै सो वही उसकी वृत्तिजानो- अच्छीतरह सिखातेहुये सज्जन आचार्यको जो कोई छोड़िभागै सो बलात्कारसे आचार्यके समीप राखिदेने योग्यहै और मारपीटके भी योग्य-अंतेवासी नियत कालके भीतर सीखिजाने परभी उतना काल पूराकरै और उस काल भीतर जो कुछ कामकरै तिसका लाभरूपी फल आचार्य काही स्वत्वहै शागिर्दका कुछ दावी उसमें नहीं पर उसकालके उपरांत भी यदिकाम करावै तिसके फलमें अंतेवासी काभी यथासंभव स्वत्व होगा यह सिद्धांत है-शिल्प कर्म सीखलिया हुआ अंतेवासी नियत समय पूराहोनेपर आचार्यकी आज्ञालेकर उसका मान बढ़ाता हुआ दाहिने देकर लौटि आताहै अर्थात् काल पूराहोने के उपरांत अपनी इच्छाके अनुसार चाहै आगेभी टिकिसक्ताहै परंतु फिर आचार्य रोकि सकने का अधिकारी नहीं—अनंतरोक्त मर्यादा उसी अवसर पर आरूढ़है कि जब आचार्य सज्जनहो और निज पुत्रोंकेही तुल्य रखिकर कामसिखावै किन्तु अन्यथा बीचमें भी लौटिसक्ता है—तदाहकात्यायनः—(यस्तुनग्राहयेच्छिल्पंकर्माण्यन्यानिकारयेत्। प्राप्नुयात्साहसंपूर्वंतस्माच्छिष्योनिवर्तते) अर्थात्-जो आचार्य शिल्प काम नहीं सिखावै और और कामों को करावै तौ वह पूर्व साहस दंडपावै और शागिर्द उससे लौटिआताहै—दुष्ट अंतेवासीकी अपेक्षासे (वधबंधौचसोऽर्हति) यह शिक्षा ऊपर हुईथी कि मारपीट करके भी सिखावै सो इस बातका भी आशय सिर्फ़ यहीहै

कि सज्जन आचार्य उसके हितके लिये कदाचित् लाचारी अवसरमें कुछ स्वल्प ताड़नामात्र करसक्ताहै कि जिस्से नेत्र डाटबनीरहै किन्तु दिनंप्रति निरंतर या कुरीति वा अधिकतासे नमारै–यथाहगौतमः–(शिष्यादिशिष्टिरबधेनाशक्तौरज्जु वेणुविदलाभ्यां तनुभ्यामन्येनघ्नन्राज्ञाशास्यः) अर्थात्-शिष्यादिकोंकी शिक्षा बिनामारे नहोसकने में हलकी जेउरी या पतली बाँसकी खरपर्चीके सिवाय किसी भारी चोटसे मारता हुआ शिक्षक राजा करके शास्यहै १८९ ॥

इतिसेवाधर्मविवादप्रकरणम् ॥

अभ्युपेत्यअशुश्रूषा नामक सेवाधर्म का यह प्रकरण केवल इसीएक ७२ संख्याके परिच्छेद से समाप्त हुआ ॥

अथसंविद्व्यतिक्रमाख्यविवादपदधर्मविशेषविवेकोनामात्रिसप्ततितमःपरिच्छेदः ७३॥

इस तिहत्तरि संख्याके परिच्छेदमें राजसंबंधीगूढ़ संविद् समय संकेतोंके व्यतिक्रम का विबादपद समुझाया जायगा ॥

संविद्व्यतिक्रम नाम इसका इसहेतुसे कि (संविद्) कहतेहैं समयसलाहको किजो संकेत सहित अंगीकार कियाहो तिसका व्यतिक्रम होजाना किंतु ज्यों का त्यों तद्रूपन रहिना उसकाअर्थहै-तिसको नारदने व्यतिरेक रुखसे दर्शितकिया है-यथा-(पाखंडनैगमादीनांस्थितिःसमयउच्यते।समयस्यानपाकर्मतद्विवादपदंस्मृतम्) अर्थात्-राजप्रबंध से पाखंड नैगमादिकों का स्थापनहोना (समय) कहाताहै कि जिसकेद्वारा राजसंबंधी गूढ़ प्रयोजन सिद्धहोतेहैं तिसका (अनपाकर्म) कहिये परिपालन होना किन्तु अंगीकारकरने वालोंको यथावत् सिद्धकरना योग्यहोताहै परजब उसमें कोईभांतिका व्यतिक्रम भी उत्पन्नहो तबयह संविद्व्यतिक्रम नामका विवाद खड़ाहोताहै-पाखंड नैगम आदि का स्थापनएक पारिभाषिक धर्मरीतिसे अर्थात् कृत्रिमधर्ममार्गसे बनावटद्वारा होता है कि जिसके कियेविना राजसंबंधी मुख्यकामोंकी सिद्धि दुर्घटहोती है-पाखंड नैगमआदि का स्पष्ट व्योरानिचली १९० की अधिकोक्तिमें देखो इसीहेतु से योगीश्वर उसका प्रारंभ दर्शितकरते हैं ॥

राजाकृत्वापुरेस्थानंब्राह्मणयंन्यस्यतत्रतु। त्रैविद्यंवृत्तिमद्ब्रूयात्स्वधर्मःपाल्यतामिति १९०॥

ऐ०– राजा अपनेपुरमें किन्तु दुर्गआदि किसी मुख्यस्थलमें एक दिव्यस्थानबनाकर उसमें त्रैविद्य विप्रोंके समूहको बैठारिकर धन धरतीआदि पुष्कल वृत्तियोंसे संपन्नकरिकै आज्ञादेवै कि आपलोगोंको अपना धर्मपालन करनाचाहिये जैसाश्रुति वा स्मृतियोंमें विहितहो-यहां विप्रोंके प्राधान्यकरके और भांतिके भी कार्यसाधक लोक समुझने तिनकाव्योरा देखो अधिकोक्तिमें १९०॥

अधि०–अत्रोक्त समयरूपी संवित्कार्यमें लगाने योग्य पुरुषोंको बृहस्पतिने स्पष्ट

करिकैकहाहै-यथा(वेदविद्याविदोविप्रान्श्रोत्रियानग्निहोत्रिणः। आहृत्यस्थापयेत्तत्रतेषांवृत्तिंप्रकल्पयेत्॥अनाच्छेद्यकरास्तेभ्यःप्रदद्याद्गृहभूमयः। युक्तंभाव्यंचनृपतिर्लेखयित्वास्वशासनम्)अर्थात्-वेदविद्याके विज्ञाताविप्रोंको श्रोत्रियोंको अग्निहोत्रियोंको लेकर तहां स्थापितकरै तिनकीवृत्तिभी प्रकल्पितकरै किन्तु राजा अपने शासनपत्र में वर्तमान कालका औचित्ययोग और आगामी नृपतियोंको भी शपथयोग लिखवाकर उनको ऐसेऐसे माफ़ीग्राम धरती और घरबनेबनायेही देदेवैजिनका आगेपीछे राजकर भी कोई नलेसकै-ऊर्ध्वोक्त नारदके वचनमें(पाखंडी)जो वैदिकरीतिके विद्वेषीहों जैसे क्षपणक बुद्धिभेदमें दिगम्बर या संन्यस्त प्रव्रज्यावसित आदि और कोई और (नैगम)जो बहुधाधन संपन्न वणिक्व्यापारी दूरदेशोंके गमागमसे व्यापारकरते हों और इसीनैगम शब्दसे वेदप्रामाण्यके अभ्युपगंता विद्वान्भी पाशुपत आदिशैव तंत्रवाले समुझिलेने-इतने मूलभूत पुरुष (पाखंडनैगमादीनां) इसपदसेनारद ने कहे और इसपदमें (आदि)शब्दके आशयसे अनेक और भी इसभांतिके साधारण प्रत्येक विद्यावानोंको समुझने जो अपनीअपनी किसीएक विद्यामेंप्रवीण और उस विद्याकी सिद्धाई चमत्कारभी दिखलासक्तेहों दृष्टांत जैसे सांपकाटे मरेहुये कोभीगारुड़िविद्यासे जिवायदेता हो-रसायन विद्यावाला अपनीविद्यासे तांबाफूँकि चांदीसोना करदेताहो-यक्षिणी सिद्धहोनेआदिसत्य प्रकारोंसेही मूकप्रश्न कहदेताहो-चिकित्साकर्म करनेमें अद्वितीय गिनाजाताहो-अष्टासिद्धिआदि किसीदैवी विद्या वा स्वरोदय योगयुक्तपद्मासन आदिका अभ्यास पूरारखता हो-जलोत्तीर्ण विद्या अस्त्रशस्त्र विद्याआदि नानाभांतिके समर्थ पुरुषोंकाप्रत्येक समूहउसी आदिशब्दके आशयद्वारा समुझिलेना तिनका संग्रहकरै औरउनसबहीकी यथोचित वृत्तियां कल्पितकरै १९० ॥

(नियुक्तैस्तैःकिंकर्त्तव्यम्)

निजधर्माविरोधेनयस्तुसामयिकोभवेत्। सोपियत्नेनसंरक्ष्योधर्मोराजकृतश्चयः १९१ ॥

ऐ०-अपने धर्मके अविरोध से जो सामयिक धर्महो सो भी सम्यक् यत्नपूर्वरक्षणीयहै और जो कोई धर्म राजाकरके नियतहुआहो सोभी अपने धर्मके अविरोधसे-अर्थात्-जो कोई धर्म सबकेसमयसे उत्पन्न हुआहो जैसे गौओंका चराना जलकीरक्षा करनी देवालयकी सेवाआदि नानाभाँतिजो कुछधर्मनिरूपण हुआहो तिसकोभी निज श्रौतस्मार्त्त धर्मका निर्वाह बनारखकर अच्छीभाँति सेवनकरै और जोकोईधर्म राजा ने भी अपनेधर्मके अविरोध पूर्वसमयसे उत्पन्नकियाहो दृष्टान्त जैसे यावन्मात्रपथिक मुसाफ़िर मिलतेजायँ सबको भोजन देतेरहना-हमारे शत्रुओं केमण्डलमें घोड़ाहाथी आदि नहीं घुसाना-इत्यादि नानाभाँति से जो कोईधर्म राजाने सङ्केतित कियाहो सो भी अपने धर्म के अविरोध पूर्व अच्छीभाँति पालन करनेयोग्यहोताहै १९१ ॥

अधि०—बृहस्पति ने समुदाय का स्पष्टकर्म दर्शित कियाहै-यथा (नित्यंनैमित्तिकं काम्यंशांतिकंपौष्टिकन्तथा। पौराणांकर्मकुर्युस्तेसन्दिग्धेनिर्णयन्तथा) अर्थात्-राजाने जो पुरमें मुख्यसमूह नियुक्तकियाहो वे समुदायवाले,विद्वान् पौरलोगोंके इनकामोंको भी करैं किन्तु नित्यकर्म, नैमित्तिककर्म, काम्यकर्म, शान्तिककर्म पौष्टिककर्म,पौरलोगों के इनकर्मोंको सब अपनी२ विद्यासे करवायाकरैं और सन्देह खड़ेहोनेमें उनबातों के निर्णय भी करदेवें-यह तो ठेठराज नियुक्त समूह विशेषका कर्तव्य विशेषकहा-इसके सिवाय-और सब समुदायोंका कर्तव्य विशेष उन्हीं बृहस्पतिने दर्शायाहै-यथा-(ग्राम श्रेणिगणानाञ्चसङ्केतःसमयक्रिया। बाधाकालेषुसाकार्याधर्मकार्येतथैवच॥ चाटचौर भयेबाधाःसर्वसाधारणाःस्मृताः। तत्रोपशमनङ्कार्यंसर्वैर्नैकेनकेनचित्) अर्थात्-ग्राम, श्रेणी गण इनसवका और (च) शब्दके अभिप्रायसे-पूर्वोक्त पाखण्ड नैगम आदिभी समुझने तिनका सङ्केत जोहै सोई समयक्रिया होती है अर्थात्-यहसर्वथा निश्चित हुआ कि ऊर्ध्वोक्त मुख्यामुख्य सभी समुदायोंके परस्पर जोकुछ सङ्केतहो सोईसमय कहाता और उससमय के अनुसार जोकुछ कामकियाजाय वहीसमय क्रिया कहाती है(ग्रामश्रेणी आदि समुदाय बाचक शब्दोंके अर्थआगे १९७ मूलश्लोक में विचारो) और उक्तसमय क्रियाभी सर्वत्रबाधाकालोंमें तथैव धर्मकार्योंमें कर्तव्य होतीहै-बाधा-यें भी सर्वत्र चोरचाट आदिसेभयउत्पन्नहोना आदि कहातीहैं चाहै राजाको या प्रजाको कुछहो, तबउस बाधाका उपशमन विनाशभी कुछएकसेही नहीं किंतु मिलकर सबही को कर्तव्यहै कि जैसे ढङ्गसे होसक्ताहो-सबहीको कर्तव्य ऐसा कहनेका यहआशयहै कि नानाभाँतिकी विद्याओं तथा प्रयत्नोंके विज्ञाता वहां उपस्थितहैं जिसभाँति की वहबाधाहो तैसेही शमयिता पुरुषोंसे उपशमन करायाजाय-चोरचाट ऐसा कहनेसे चोर प्रसिद्धहै जो छिपकर चोरीकरै (चाट) बिरले संग्रहकारोंने (वृक) अर्थात् भेडिया को बतलायाहै यथा (चाटोवृकः) सो यहअर्थ निरर्थकजानो किन्तु ऐसेमहाप्रयोजन मध्ये केवल तुच्छभेड़िया से भयसूचक अर्थ लगाना कोईभाँति सुसङ्गत नहीं है अर्थात् यहाँ (चाट) नाम योद्धाका और कलह प्रियकाभी कि जिसको सदाकलह प्यारी हो और (चाट) नाम प्रतारक अर्थात् वंचक ठगिया जो पहले विश्वास देकर पीछेपर धनहरै और (चाट) नाम वटमार लुटेहरा डाकू तस्कर इनसवका है कि जिनसे सदा राजा प्रजासवही को भयखटका लगारहताहै-इसीलिये जबतक छोटीमोटी बाधाहो जिसको इतर मनुष्य दूरकरसक्तेहों तबतक समुदायिक समय क्रियाकी आवश्यकता नहींहोती परजब ऐसावड़ा उपद्रव समुझाजाय जो समुदायिक सम्विद् समय करने विनादुःपरिहरहो यद्वाकोई धर्मकार्य दुःसाध्य समुझाजाय यथा ताड़कावनमें विश्वामित्र करके रामचन्द्रको लेजानेविना यज्ञकर्मोंका संसाधन दुर्घटहुआथा इत्यादि क्लिष्ट

अवसरमें गणपाखण्ड नैगम श्रेणी आदि सबसमुदाय मिलकर समय विचारसेही कोईएक पारिभाषिक धर्मरूपी समय कियाकरने का उद्योग करते हैं कि जिसकेद्वारा महाउपद्रव शान्तहोय-इसके सिवाय इनसमुदायों के साधारण में जो कामहोतेहैं सो देखो अगली अधिकोक्तिमें-और-अपने नित्य नैमित्तिक धर्मके अविरोधसे जोसमय धर्मतद्वत् राजकृतधर्म पालनीयकहा तिसका यहीभावहै कि जिसधर्मसे अपने मुख्य धर्मका विरोध होताहो तिसको नहीं पालनकरै दृष्टान्त जैसे उत्सर्ग कियेपीछे विना शौचहाथ मुखशोधेविना चलेआना तो यह अपने नित्यधर्मका विरोधहुआ यद्वा शवदाह तो करचुकाहोगा स्नानकियेविना बुलालाना तौयह नैमित्तिक धर्मकाविरोध हुआ इत्यादि ऐसे विपरीत धर्मरूपी आज्ञाका स्वीकार नकरै जहाँकिसी ऐसेधर्मका विरोध होताहो जिसका आगेपीछे होसकना सम्भवहो तहाँ राजासे आज्ञालेकर उसको आगेपीछे साधनकरै-यथाहकात्यायनः-(अवरोधेनधर्मस्यनिर्जितंराजशासनम् तस्यैवाचरणंपूर्वंकर्तव्यन्तुनृपाज्ञया)-अर्थात्-जहाँधर्मके अवरोधसे कुछराज शासन मिलाहो तहाँपहले उसहीका आचरण करनायोग्य है पर नृपकी आज्ञासे १९१ ॥

(समयातिक्रमादौदण्डः)

गणद्रव्यंहरेद्यस्तुसंविदंलंघयेच्चयः । सर्वस्वहरणंकृत्वातंराष्ट्राद्विप्रवासयेत् १९२ ॥
कर्त्तव्यंवचनंसर्वैःसमूहहितवादिनाम्। यस्तत्रविपरीतःस्यात्सदाप्यःप्रथमंदमम् १९३ ॥

ऐ०—जो कोई उनमें गणका द्रव्यहरै किन्तु एक द्रव्य जो अनेकों का साधारण होतिसे पचावै या जो कोई नियत संविद्को उलाँघै किन्तु व्यतिक्रमकरै तिसको उसका सबधन हरिकै राज्यकी सीमाबाहर निकासिदे यहीदंडहै-सो-यहदंड किसी महापराधमें समुझना जिसके हेतुसे कुछ बहुत बड़ी हानि या कुछ तीव्रआज्ञा भंगहुईहो और यह दंड मुख्य समूहके अधिकर्ता लोगोंके अपराध पर आरूढ़ समुझना किन्तु और सबसामान्य अधिकारी यद्वा छोटे मोटे अपराधोंका दंडनीचे जुदाजुदा सामान्य भावकहैंगे १९२ समूहका हितकहने वालों का वचन समूहमात्रको कर्तव्य है पर जो कोई उनमें विपरीत हो किन्तु हितवक्ताका कहना नहीं मानै तौ वह पूर्व साहसदंड देवे योग्यहै अर्थात् उसी कार्यकी उत्तमता मध्यमता के अनुसार यथापराध २७० पणतक धनदंड देने योग्य १९३ ॥

अधि०—सभी समूहों का साधारण में जो कामहै सो वर्णन करना यहाँयोग्यहै(तदाहबृहस्पतिः(सभाप्रपादेवगृहतटाकारामसंस्कृतिः।तथाऽनाथदरिद्राणांसंस्कारोयजनक्रिया ॥ कुलायननिरोधश्चकार्यमस्माभिरंशतः । यत्रैतल्लिखितंपत्रेधर्म्यासासमयक्रिया॥ पालनीयासमस्तैस्तैर्यःसमर्थोविसंवदेत् । सर्वस्वहरणंदंडस्तस्यनिर्वासनंपुरात)अर्थात्-(सभा)नाम कोई धर्मशालाआदिस्थान जिससे बड़ेशहरोंकी शोभातथावि

अधि०—बृहस्पति ने समुदाय का स्पष्टकर्म दर्शित कियाहै-यथा (नित्यंनैमित्तिकं काम्यंशांतिकंपौष्टिकन्तथा । पौराणांकर्मकुर्युस्तेसन्दिग्धेनिर्णयन्तथा) अर्थात्-राजाने जो पुरमें मुख्यसमूह नियुक्तकियाहो वे समुदायवाले,विद्वान् पौरलोगोंके इनकामोंको भी करैं किन्तु नित्यकर्म,नैमित्तिककर्म, काम्यकर्म, शान्तिककर्म पौष्टिककर्म,पौरलोगों के इनकर्मोंको सब अपनी२ विद्यासे करवायाकरैं और सन्देह खड़ेहोनेमें उनबातों के निर्णय भी करदेवें-यह तो ठेठराज नियुक्त समूह विशेषका कर्तव्य विशेषकहा-इसके सिवाय-और सब समुदायोंका कर्तव्य विशेष उन्हीं बृहस्पतिने दर्शायाहै-यथा-(ग्राम श्रेणिगणानाञ्चसङ्केतःसमयक्रिया । बाधाकालेषुसाकार्याधर्मकार्येतथैवच ॥ चाटचौर भयेबाधाःसर्वसाधारणाःस्मृताः । तत्रोपशमनङ्कार्यंसर्वैर्नैकेनकेनचित्) अर्थात्-ग्राम, श्रेणी गण इनसबका और (च) शब्दके अभिप्रायसे-पूर्वोक्त पाखण्ड नैगम आदिभी समुझने तिनका सङ्केत जोहै सोई समयक्रिया होती है अर्थात्-यहसर्वथा निश्चित हुआ कि ऊर्ध्वोक्त मुख्यामुख्य सभी समुदायोंके परस्पर जोकुछ सङ्केतहो सोईसमय कहाता और उससमय के अनुसार जोकुछ कामकियाजाय वहीसमय क्रिया कहाती है(ग्रामश्रेणी आदि समुदाय वाचक शब्दोंके अर्थआगे १६७ मूलश्लोक में विचारो) और उक्तसमय क्रियाभी सर्वत्रबाधाकालोंमें तथैव धर्मकार्योंमें कर्तव्य होतीहै-बाधा- यें भी सर्वत्र चोरचाट आदिसेभयउत्पन्नहोना आदि कहातीहैं चाहै राजाको या प्रजाको कुछहो, तबउस बाधाका उपशमन विनाशभी कुछएकसेही नहीं किंतु मिलकर सबही को कर्तव्यहै कि जैसे ढङ्गसे होसक्ताहो-सबहीको कर्तव्य ऐसा कहनेका यहआशयहै कि नानाभाँतिकी विद्याओं तथा प्रयत्नोंके विज्ञाता वहां उपस्थितहैं जिसभाँति की वहबाधाहो तैसेही शमयिता पुरुषोंसे उपशमन करायाजाय-चोरचाट ऐसा कहनेसे चोर प्रसिद्धहै जो छिपकर चोरीकरै (चाट) विरले संग्रहकारोंने (वृक) अर्थात् भेड़िया को बतलायाहै यथा (चाटोवृकः) सो यहअर्थ निरर्थकजानो किन्तु ऐसेमहाप्रयोजन मध्ये केवल तुच्छभेड़िया से भयसूचक अर्थ लगाना कोईभाँति सुसङ्गत नहीं है अ- र्थात् यहाँ (चाट) नाम योद्धाका और कलह प्रियकाभी कि जिसको सदाकलह प्यारी हो और (चाट) नाम प्रतारक अर्थात् वंचक ठगिया जो पहले विश्वास देकर पीछेपर धनहरै और (चाट) नाम बटमार लुटेहरा डाकू तस्कर इनसबका है कि जिनसे सदा राजा प्रजासबही को भयखटका लगारहताहै-इसीलिये जबतक छोटीमोटी बाधाहैं जिसको इतर मनुष्य दूरकरसक्तेहों तबतक समुदायिक समय क्रियाकी आवश्यकता नहींहोती परजब ऐसाबड़ा उपद्रव समुझाजाय जो समुदायिक सम्विद् समय करने विनादुःपरिहरहो यद्वाकोई धर्मकार्य दुःसाध्य समुझाजाय यथा ताड़कावनमें विश्वा- मित्र करके रामचन्द्रको लेजानेविना यज्ञकर्मोंका संसाधन दुर्घटहुआथा इत्यादि छिट

अवसरमें गणपाखण्ड नैगम श्रेणी आदि सबसमुदाय मिलकर समय विचारसेही कोईएक पारिभाषिक धर्मरूपी समय क्रियाकरने का उद्योग करते हैं कि जिसकेद्वारा महाउपद्रव शान्तहोय-इसके सिवाय इनसमुदायों के साधारण में जो कामहोतेहैं सो देखो अगली अधिकोक्तिमें-और-अपने नित्य नैमित्तिक धर्मके अविरोधसे जोसमय धर्मतद्वत् राजकृतधर्म पालनीयकहा तिसका यहीभावहै कि जिसधर्मसे अपने मुख्य धर्मका विरोध होताहो तिसको नहीं पालनकरै दृष्टान्त जैसे उत्सर्ग कियेपीछे बिना शौचहाथ मुखशोधेविना चलेआना तौ यह अपने नित्यधर्मका विरोधहुआ यद्वा शवदाह तौ करचुकाहोगा स्नानकियेविना बुलालाना तौयह नैमित्तिक धर्मकाविरोध हुआ इत्यादि ऐसे विपरीत धर्मरूपी आज्ञाका स्वीकार नकरै जहाँकिसी ऐसेधर्मका विरोध होताहो जिसका आगेपीछे होसकना सम्भवहो तहाँ राजासे आज्ञालेकर उसको आगेपीछे साधनकरै-यथाहकात्यायनः-(अवरोधेनधर्मस्यनिर्जितंराजशासनम् तस्यैवाचरणंपूर्वंकर्तव्यन्तुनृपाज्ञया)-अर्थात्-जहाँधर्मके अवरोधसे कुछराज शासन मिलाहो तहाँपहले उसहीका आचरण करनायोग्य है पर नृपकी आज्ञासे १९१ ॥

(समयातिक्रमादौदण्डः)

गणद्रव्यंहरेद्यस्तुसंविदंलंघयेच्चयः । सर्वस्वहरणंकृत्वातंराष्ट्राद्विप्रवासयेत् १९२ ॥
कर्त्तव्यंवचनंसर्वैःसमूहहितवादिनाम् । यस्तत्रविपरीतःस्यात्सदाप्यःप्रथमंदमम् १९३ ॥

ऐ०-जो कोई उनमें गणका द्रव्यहरै किन्तु एक द्रव्य जो अनेकों का साधारण होतिसे पचावै या जो कोई नियत संविद्को उलाँघै किन्तु व्यतिक्रमकरै तिसको उसका सबधन हरिकै राज्यकी सीमाबाहर निकासिदे यहीदंडहै-सो-यहदंड किसी महापराधमें समुझना जिसके हेतुसे कुछ बहुत बड़ी हानि या कुछ तीव्रआज्ञा भंगहुईहो और यह दंड मुख्य समूहके अधिकर्ता लोगोंके अपराध पर आरूढ़ समुझना किन्तु और सबसामान्य अधिकारी यद्वा छोटे मोटे अपराधोंका दंडनीचे जुदाजुदा सामान्य भावकहैंगे १९२ समूहका हितकहने वालों का वचन समूहमात्रको कर्तव्य है पर जो कोई उनमें विपरीत हो किन्तु हितवक्ताका कहना नहीं मानै तौ वह पूर्व साहसदंड देवे योग्यहै अर्थात् उसी कार्यकी उत्तमता मध्यमता के अनुसार यथापराध २७० पणतक धनदंड देने योग्य १९३ ॥

अधि०-सभी समूहों का साधारण में जो कामहै सो वर्णन करना यहाँयोग्यहै(तदाहबृहस्पतिः(सभाप्रपादेवगृहतटाकारामसंस्कृतिः ।तथाऽनाथदरिद्राणांसंस्कारोयजनक्रिया ॥ कुलायननिरोधश्चकार्यमस्माभिरंशतः । यत्रैतल्लिखितंपत्रेधर्म्यासासमयक्रिया ॥ पालनीयासमस्तैस्तैर्यःसमर्थोविसंवदेत् । सर्वस्वहरणंदंडस्तस्यनिर्वासनंपुरात)अर्थात्-(सभा)नाम कोई धर्मशालाआदिस्थान जिससे बड़ेशहरोंकी शोभातथावि

ख्याति और बहुधा अच्छेकामोंमें राजाप्रजासबहीको आराम होती है(प्रपा)जलकी प्याऊ जिससे सर्वजीवोंकी प्राणरक्षा होती है(देवगृह) मन्दिर आदि पुण्यस्थान जिन से धर्मशालाकेहीतुल्यसबगुण होनेके सिवाय अधिक यहगुणहै कि प्रजालोग ईश्वर-सम्बन्धी धर्ममार्गमें पगधरे रहकर अपने देशाधीश कोभी ईश्वरका प्रतिबिम्ब समुझते और मर्यादोंसे उच्छृङ्खल होनेनहीं पातेहैं (तटाक) पद्माकर पक्केतालाब आदि कमलोंसे संयुक्त जलाशय और सामान्यभी कि जिनसे सर्वजीवों को सब सौख्य तथा बस्तीभी सम्पन्न प्रतीत होती है (प्रशस्तभूमिभागस्थोबहुसंवत्सरोषितः। जलाशयस्तडागःस्यादित्याहुःशास्त्रकोविदाः) (आराम) उपवन बागआदि जिनसे तद्रूप यथा नाम तथा गुण आराम सभीजीवोंको उत्पन्नहोती है इनसब चीज़ोंकी संस्कृत नाम दुरुस्ती जो पुरानी बिगड़ीपरीहों तिनकाउद्धार जारीकरदेना या मरम्मत आदि जोकुछ उचितहो और इन चीज़ोंकी उपरालू वृद्धिभी जिसभाँतिसे होसक्तीहो करते रहना-तद्वत्-अनाथ जिनका कोईपालयिता निपटनहो या दरिद्री जो अकिंचनहों तिनका देहसंस्कार तथा कर्मसंस्कार आदि प्रयत्न और यजनक्रिया यज्ञादि उत्तम कर्मकरनेवाले असमर्थों को धनदान आदिसे प्रबंधकरना जिससे सृष्टि भ्रष्टाचारिक नहोजाय और (कुलायन) का निरोध भी अर्थात् कुलायन दुर्भिक्ष आदि दशाका रोकना किसीउपायसे इतिकेचित् यद्वा (कुल्यायन) ऐसापाठ कल्पतरु में देखागया है और उसकाअर्थ ऐसाहोताहै कि कुल्यानामनदी तिनकाअयनचढ़ाव अहिलाआदि चढ़िआना तिसका निरोधनाम रोकना किसी युक्तिसे-और निरोधश्च-इसके अंत्य चकारसे प्रवर्तन अर्थलेकर (कुल्या) नाम कृत्रिमनदी नहेर नाली आदि जहाँ कहीं आवश्यक समुझीजायँ तिनका जारीकरवाना भी-अथवा कुलायनपाठ होनेमें कुल-संज्ञाजन पद आदि कुलों की तिनका अयन कहिये मार्ग यद्वा मोर्चा किसी आवश्यकदशामें तिसका निरोध नाम रोकना भी औचित्यजानिकर यह अर्थहो परंच अगले वचनमें धर्म्यासमयक्रिया कहने से यह मोर्चेवाला अर्थ संगत नहीं समुझा जाताहै-यह सबकाम हम सबलोगोंकरके (अंश) नाम कंधादेकर कियेजायँगे-जिसपत्र में यह ऐसा अंगीकार लिखाजाय वही धर्म्यासमय क्रिया कहाती सो उन सबहीकर के यथा अवसर पालनीय होती है यदि कोई उनमें मुख्य समर्थ अधिकारी होतेहुये विसंवादकरै किन्तु अन्यथा करैया अन्यथा कहकर कोई भाँतिका व्यतिक्रम करवावै यद्वा आपकरै तिसकादंड पुरसे निकासिदेना और सर्वस्व छीनलेना है-इसव्यवस्थामें धर्म्या समयक्रिया एक दृष्टान्त उदाहरणमात्रसे दर्शाईगई किन्तु समुदायी लोगोंका काम केवल इमीधर्म्या क्रियापर आरूढ़नहीं वलिक ऐसे समुदायों को बहुतेरे काम सौंपेजातेहैं और विनासौंपेभी आवश्यक दशामें जबकोई काम संधि विग्रह आदि

अपूर्व आनिपरता है तब सभी समुदायी अपने संविद्से प्रतिकार उसका सोचि विचारिकर उत्पन्नकरते हैं और जिसकेद्वारा सिद्धि उसकी संभव देखिपरतीहो तिसही को उस कार्यमें नियुक्त कियाजाताहै दृष्टान्त जहाँ पाखंडीगण नग्नाट सौगत आदि दिगंबरलोगोंसे कुछकाम चलता समुझाजाय तहाँ उनहींको वह आज्ञादीजाती है कि ऐसाकरौ बल्कि इसीहेतुसे समुदायोंमें प्रत्येक विद्याकर्मोंके विज्ञातालोग संग्रह करने कहेथे-इस अत्रोक्त आशयसे ऊपरला मोर्चेवाला अर्थभी असंगतनहीं क्योंकि इन समुदायोंके कर्तृत्वकी कुछनियत अवधि नहीं है अर्थात् जैसा एक धर्म्यासमय क्रियामध्ये पत्रलिखना कहागया तैसा औरभी प्रत्येकसमय क्रियाका स्वीकार पत्र लिखना सूचितहै-कात्यायनजी-अब समयबिचारकी मर्यादानियतकरते हैं कि उसमें कोई अनुचितरीतिसे नबोलै-यथा-(युक्तियुक्तंवचोहन्याद्वक्तुर्योऽनवकाशतः। अयुक्तं चैवयोब्रूयात्सदाप्यःपूर्वसाहसम्)-अर्थात्-यदि कोई समय विचारकी बेरा किसी प्रबीण करके न्याययुक्ति साथ उच्चारण किये ठीक उपाय रूपी बचन को निकलते साथसमुझे सोचेबिना अनंतर काटिदेवै या जो कोई अपने आप अयुक्त बोलै तौ वहपूर्वसाहस दंडदेने योग्य है-बृहस्पतिस्तु-(यस्तुसाधारणंहिंस्यात् क्षिपेत्त्रैविद्यमेववा। संधिक्रियांविहन्याच्चसनिर्वास्यस्ततःपुरात्)-अर्थात्-जो कोई किसी साधारण दंडआदिसे आगामी धनको हिंसितकरै किंतु दंड्यआदिका सहाय करनेआदि प्रकारोंसे मिटावै यद्वा किसी त्रैविद्य पूरे अधिकारीको कुछ आक्षेपकरै किंतु किसी भाँतिसे कुछ तिरस्कार उसकाकरै यद्वाहोतीहुई संधिक्रियाको कुछखोंटी अनुमति देकर मेटिदेवै सो उसपुरसे बाहर काढ़िदेनेयोग्यहै-बृहस्पतिजी-समूही लोगोंके परस्परद्वेष आदिसे मर्यादा रहित कामकरनेमध्ये दंडकहितेहैं-यथा(बाधांकुर्युर्दैविकस्य संभूताद्वेषसंयुताः। राज्ञातुविनिवार्यास्तेशास्याश्चैवानुबन्धतः)-अर्थात्-जेकोईअधिकारी अपने कामरूपी ऐश्वर्यसे संभूतहुये परस्पर द्वेषभावसे संयुक्तहोकर दैविकबाधा करैं वे सबराजाकरके प्रथम निवारणीयहैं पश्चात् दंडविधिके मार्गसे सब यथापराध दंडनीयहैं-यहाँ दैविकबाधा मंत्रयंत्र आदिनहीं किंतु निज निज अधिकारवाले कार्यमें विधिहेतुकी प्रदर्शकहै दृष्टांत जैसे कोई लघुअधिकारी अपने कार्यपत्रोंमें पराये द्वेष करके जानिबूझिकर कुछगूढ़ छिद्ररहिनेदे कि निःसंदेह इसकादोष अमुकामुक मेरे द्वेषियोंपर आरूढ़होगा और वे दंडपावैंगे क्योंकि ऐसेछिद्रोंका उत्तरदान उनके जिम्मेहै तो यह दैविकबाधाकरी- दूसरायह दृष्टांतहै कि कोई लघुअधिकारी अपनेकाम को धर्मानुसार शुभचिंतकतासे निर्लेपहोकर करताहो और उसमें दैवयोगसे कदाचित् कोईस्वल्पछिद्रभी होजाय जिसतेसिर्फ अनुक्रमकाही विघ्नसमुझा जानेके सिवायकोई हानि संभवनहींथी अर्थात् ऐसाछिद्र शिक्षादेकर क्षमाकरने योग्यथा परंच कोईगुरु

अधिकारी निजअधिकार बलसे उसपर द्वेषभाव रखनेकेहेतुसे उसछिद्रको अनुक्रम विधि प्राबल्यहेतुक तर्कोंसे बढ़ाकर ऊँचेबाँसपर धरदेवै जिसते पूरादण्ड उसको होय तो यह दैविक बाधाकरी-अस्यदृष्टांतस्यप्रमाणंयथा- (यत्तुसम्यगुपक्रांतंकार्यमेतिविपर्ययम्। पुमांस्तत्रानुपालंभ्योदैवान्तारितपौरुषः)अर्थात्- जहाँ कोईकाम अच्छीहोशियारीसाथ दबाकर वशमें लायाहुआ दैवाधीन विपर्ययको अर्थात् उलटा विकृतिको पहुँचता है तबउसकामका कर्तापुरुष अनुपालंभ्यहोवै क्योंकि दैवयोगसे अंतरित पौरुषहुआ-अर्थात् उसने अपनापौरुष करनेमें कुछ किंतुशेष नहींरक्खा तौभीदैवने मर्दानगी उसकी दूरकरी तौ इसअवसरमें अबउसका दोषनहींहै इसहेतुसे उसकर्ता को कुछ उपालंभनाम दुर्वाक्यदेना योग्यनहीं॥(अथममोद्घाटकादीनांदंडः)-तदाहबृहस्पतिः-(अरुंतुदःसूचकश्चभेदकृत्साहसीतथा। श्रेणिपूगनृपाद्विष्टःक्षिप्रंनिर्वास्यतेततः॥ पूगश्रेणिगणाध्यक्षाःपुरदुर्गनिवासिनः। वाग्धिग्दंडपरित्यागंप्रकुर्युःपापकारिणाम्॥तैःकृतंयत्स्वधर्मेणनिग्रहानुग्रहंनृणाम्।तद्राज्ञाप्यनुमन्तव्यंनिसृष्टार्थाहितेस्मृताः)-अर्थात्-एक(अरुंतुद)जो मर्मभेदकरै किंतु गूढ़संविद् समयोंका असलीतत्त्व उघाड़ै (सूचक) पिशुन जो उसबातमेंसे और बातसूचन करिकेफैलावै (भेदकारी)जो समुदायीलोगोंमें परस्पर फूटकरावै (साहसी)जो कोईभाँतिका अनिष्ट साहस कर्मकरै पाँचवांवह कि जो श्रेणी यद्वापूग तथाराजामें कुछ द्वेषखड़ाकरै अथवा (द्विष्टः) ऐसाठःकारांतपदहोने से श्रेणी पूगराजामेंदो भाँतिरहै किंतुउनसे और भाँति उनसे और भाँतिमिलापरक्खै यह सिद्धांतहै- यह पाँचभाँतिका मनुष्य उन समुदायोंमेंसे शीघ्रदूर कियाजाय-इसमें यह संदेह शेषरहा कि वे समुदाय जब देशांतरमें उपस्थितहोयँ जहाँ राजानहीं तौ फिर कौन इनको दूरिकरनेका अधिकारीहै जो शीघ्रदूरिकरै तिसके लिये अगला वचन कहितेहैं कि-पूगश्रेणी गणोंके अध्यक्षलोग जो कुछ अंतरसे पुरदुर्गोंमें निवास करते हों वेही पापकारियों को यथापराधके अनुसार वाग्दंड धिग्दंड या परित्याग नाम उहदासे उतारिदेना आदि जो जो उचित समुझैं सो सबकरैं-वाग्दंडका रूपयथा तू पापिष्टहै तू बुराहै इत्यादि और धिग्दंड तुझेधिक्कार है जो ऐसाकिया फिर न करना कभी-परित्यागके दोरूप हैं कि या तौ निपट निकासिदेना अधिक दोषमें या दोषकी लाघवताजानि ऊँचेउहदासे उतारिदेना यद्वा श्रेष्ठकामोंमध्ये अनुमतिलेनी छोड़िदेनाही अतिस्वल्प दोषमें और इसकेसाथ यथासंभव कुछ धनदंडभी या बंधन वा अधिकारआदि जोकुछ उचितहो सोभी निग्रहशब्दके भावार्थसे सबसूचितहै-उनअध्यक्षोंने मनुष्योंको यदि निग्रहनाम कोईदंड या अनुग्रहनाम दोष क्षमा यद्वा उहदा वृद्धि प्रसादआदि जो कुछ अपनेधर्मके अनुसार कियाहो सो सबराजाकोभी माननीय है क्योंकि वे अध्यक्षलोग सदा निसृष्टअर्थ किंतु जीअस्त्यार कहाते हैं अर्थात् राजा

प्रबन्धसे इनकामोंके अख्त्यारकी अनुज्ञा सौंपेहोते हैं-अपनेधर्मके अनुसार करना कहिनेसे यहभाव सूचितहुआ कि जितना उनको अखत्यार सौंपागयाहो और जैसी कुछ मर्यादें उनकी नियतहों तिसते विपरीत यद्वा अधिक जो कुछ कियाहो तिसको राजानहींमानै किंतु निज अधिकारके अनुरूप करना योग्य है -तथापि-उन अध्यक्षों का यहधर्महै कि जो कुछकरैं पहले राजाको संबोधन देकरकरैं-यथाहकात्यायनः-(साहसीभेदकारीचगणद्रव्यविनाशकः । उच्छेद्याःसर्वएवैतेविख्याप्यैवनृपेभृगुः)-अर्थात्-साहसी, भेदकारी. और गणका द्रव्य विनाशकरने वाला इतने सभी निकासि देने योग्य हैं परन्तु राजापर विख्यापन करिकेही बरखास्त करै-यहां गणका द्रव्य कहिने से यह आशय नहीं कि सबहीका धनखोवै यद्वा हरै तब यहदोष मानाजाय किन्तु गणमेंसे यदिएक सिपाहीका भी कुछ धनहरै यद्वा नाशकरै तो गण द्रव्यविनाशक दोषलगताहै-समुदायोंमें परस्पर फूट करानेमध्ये दण्ड सबसे अधिक है-यथाहनारदः-(पृथग्गणांस्तुयेभिंद्युस्तेविनेयाविशेषतः । आवहेयुर्भयंघोरंव्याधिवत्तेह्युपेक्षिताः) अर्थात्-जुदे अन्तर सहित रहितेहुये गणोंको जे कोई भेद करावैं ते अपराधी लोग विशेषतासे दमनीय हैं कि उनको चाहै तैसे विविध प्रकार दंड दिये जायँ-और जे कोई कातर आदि महाघोर व्याधिवाले भयको अपने मनहीसे उत्पन्न करिकै मानैं और गणपूग आदि सब समुदायोंको भयभीतकरैं ते समुदायमेंसे त्यागि दियेजायँ किन्तु इनको कातरत्वके अनुकूल तीव्रदण्डनहीं परकातर्यसे अन्यत्र जैसा रूपकहो दण्डभी संसूचित है (बृहस्पतिस्तुधनदंडंविशेषयति) यथा (तत्रभेदमुपेक्षांवायःकश्चित्कुरुतेनरः। चतुःसुवर्णंषण्णिष्कास्तस्यदण्डोविधीयते) अर्थात्-उन समुदायोंमें जो कोई पुरुष फूटकराताहै या अपने अंगीकारकिये संविद्की उपेक्षा किंतु त्याग करने लगताहै तिसपर शास्त्रोक्त परिभाषावाले ४ सुवर्ण या ६ निष्कोंका दंड लियाजाताहै-दोनों दंडोंका विकल्प जैसे उत्तम मध्यम विषयवाला दोषहो या जैसीउस अपराधीकी शक्तिहो तिसकेअनुसार समुझाजाय परंच बड़ेछोटे या सोनेचाँदीकेभेदसे निष्क अनेकभाँतिकेहोते हैं इसलिये जहां जैसाअपराधहो तैसानिष्क मानाजाय-जहां किसी बलवान्से अपराधहुआहोजिसकादण्ड उनअध्यक्षोंकेअधिकार यद्वाशक्तिसेही बाहरहो तिसकोराजा आप दंडकरै-जैसा-राज सम्बन्धी समयातिक्रमका यहदण्ड विधान वर्णनहुआ तैसेही यदि प्रजामेंसे कोई अपने निजके कारखानेमें कुछथोड़े बहुत मनुष्यों से अपेक्षित समय अंगीकार करावै और वे अंगीकार करनेवाले समयों का अतिक्रमकरें तोभी राजा दण्डदेवै-यहां राजाके उपलक्षणमें अध्यक्ष प्राड्विवाक आदिभी सब समुझेजायँ जिनको राज्यसे अधिकार मिलाहो सो इनबातोंका व्योरा अगले मनुके बचनसे स्पष्टहै-यथा-(योग्रामदेशसंघानांकृत्वासत्येनसंविदम्। विसंव

देन्नरोलोभात्तंराष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥ निगृह्यदापयेच्चैनंसमयव्यभिचारिणम् । चतुःसुवर्णान्षण्णिष्कान्छतमानंचराजतम् ॥ एवंदण्डविधिंकुर्याद्धार्मिकःपृथिवीपतिः । ग्रामजातिसमूहेषुसमयव्यभिचारिणाम्) अर्थात्-मनुकहिते हैं कि जो कोई पुरुष किसी ग्रामसे या देशभर के साथ यद्वा संघनाम वणिक् व्यापारी आदि समूहोंकेही साथ सत्यधर्म किन्तु शपथ आदि सत्यप्रमाण सहित कोई भाँतिका संविद् समय अंगीकार करिकै कि हम अमुकामुक भाँतिके प्रयोजनों मध्येऐसा करैंगे या ऐसा करने से निजहाथ खींचैंगे और पीछेलोभ आदि किसी दुर्हेतुसे अतिक्रमकरै तौ उसपुरुष को राजा राज्य बाहर काढ़िदे क्योंकि आज उसके साथकिया कल्ह औरकेभी साथ यह विश्वास घात करैगा-राज्य भूमिसे बाहर काढ़िदेना उस अपराधकी अधिकता या उस कार्यकी गौरवतामें सुनिश्चितहै इसलिये जहां अपराध सूक्ष्महो यद्वा कार्य में कुछ लघुताहोय तहां कारखानेसे निकासिदेना यही राज्यबाहरहै औरऔर भाँति का धनदण्डभी अपराधके अनुसार लेनायोग्यहै सो अगले वाक्यसे दर्शाते हैं कि इस अपराधी समयातिक्रमकारी को घेरिकर यातौ चार सुवर्णवाले छे निष्क दण्ड दिलावै यद्वा शतमानवाला एक राजत उस्से दिलवावै और स्पष्टभाव इसका यह कि शास्त्रोक्त परिभाषावाले सोरह मासोंका एकसुवर्ण होताहै ऐसे चार सुवर्णकी बराबर तुलिकर बनाहुआ एकनिष्क ऐसे छे निष्कोंकी बराबरसोना दण्ड लियाजाय सो यह नियम इसलियेहै कि निष्क और भी अनेक भाँतिके हलुके भारीहोते हैं न जानें कैसे निष्कलेने योग्य हों इस्से चार सुवर्णोंवाले निष्क यह संदेह दूरकिया-अथवा शतमान एक राजत अर्थात् शतमान कहिते हैं एक पलभर चाँदीको और एकपल शास्त्रोक्त ४ तोले भरकाहोताहै और वही लौकिक तोलासे (तीनतोले दोमासे आठ रत्ती) का होताहै इसअन्तरका यह कारणहै कि तोला ८० गुंजाभर और एकतोला ९६ गुंजाभर होताहै-सिद्धान्तसे यह दण्डसिर्फ़ ३२० रत्ती चाँदी नियतहै और यही अर्थ ठीकहै कि उसको काढ़िदेने के सिवाय इन दोभाँति के धन दंडोंमेंसे यातौ सोने का गुरु दंड या चाँदी वाला दंड उस अपराधकी लघुता यद्वा कार्यकी मध्यमता या अपराधीकी शक्ति थोड़ी जानिकरले लियाजाय-तिसको प्रायःसंग्रहकारोंने अनेकभाँति करके लिखाहै-किसीने तौ चारदंड गिनतीकियेहैं कि एक देश निकाला १ चारसुवर्ण २ छेनिष्क ३ शतमान राजत ४ इन चारौंको जाति विद्या आदिकी अपेक्षासे व्यवस्था कल्पितकरै सो यह चार संख्या नहीं-किसीने कुछ और भी लावण्य प्रकट कियाहै कि इन चारौंको ब्राह्मण आदि चार वर्णोंपर यथा क्रमसे कल्पितकरै निपट असंगत मनु कहितेहैं कि धार्मिक धरणीपाल किसी बस्ती या जाति या समूहों में संकेत का व्यभिचार करने वालोंको याही विधिसे दंडकरै जैसा वर्णन किया गया १९२ । १९३ ॥

(अथसमूहसत्कारप्रकारः)

समूहकार्यआयातान्कृतकार्यान्विसर्जयेत्। सदानमानसत्कारैःपूजयित्वामहीपतिः १९४ ॥

समूहकार्यप्रहितोयल्लभेततदर्पयेत्। एकादशगुणंदाप्योयद्यसौनार्पयेत्स्वयम् १९५ ॥

ऐ०–कदाचित् किसी समूहके सहायरूपी कामोंमें बुलायेहुये समूहीलोग नौकर या बेनौकर किसीभाँतिकै जो आयेहों और वे अपने कामोंके संसाधनसे निवृत्तहोजावें तभी राजा उन कृतकार्य गणपतियों को उत्तमदान मानसहित खिलअत इनामके सत्कारों से परितुष्ट करिकै आप विसर्जनकरै सो इसढङ्गसे कि उनगणपतियों का सत्कार करनेके सिवाय उनकेगणका स्वत्वजुदासौंपै तिसको वेहीलेकर बाँटिदें १९४॥ कोई गणपति किसी समूहकार्य में लगायाहुआ पहले यद्वा पीछेही कुछद्रव्यगण सत्कार हेतुकपावै सो बिनमांगेही उनलोगोंको समर्पणकरै जिनके अर्थ पायाहो-जोयह पुरुष अपने आपनहीं समर्पणकरै तौयहदण्डहै कि ग्यारहगुना दिलायाजाय १९५॥

अधि०–बृहस्पतिजी विशेषता इसमें कहतेहैं-यथा-(ततोलभ्येतयत्किंचित्सर्वेषामेव तद्भवेत्। षण्मासिकंमासिकंवाविभक्तव्यंयथांशतः॥ देयंवानिःस्ववृद्धांधस्त्रीबालातुररोगिषु। सान्तानिकादिषुतथाधर्मएषसनातनः)-अर्थात्-तहाँराज्यस्थानसे जोकुछथोड़ा बहुतपावै चाहै षाण्मासिकहो यद्वामासिक मिलाहो सबकोअंशोंके अनुसारबाँटिलेना योग्यहै-आशय इसकायह किजो समुदाय किसीविदेशमें तैनाथ कियागयाहो यद्वादेशमेंकुछ अंतरसे व्यवस्थित हो उसकेलिये किसी प्रकारका कुछ खर्च उनकी तनख्वाहों मध्ये या भक्ता जिसे भाषामें भी भत्ता कहितेहैंसो राहखर्च के हिसाबों मध्ये मिलाहो यद्वा अनियत गोल खर्च कहिकर मिलाहो जिसका लेखा काम निपटे पीछे लेना संभवहो यद्वा गोल इनाम जिसका व्योरा वर्णनहुये बिना किसी गणपतिको मिलगया होकि अपने गणको यह वर्तावैगा इत्यादि किसी रीतिसे जो द्रव्य चाहै थोड़ा या कुछ बहुत मिलाहो तिसको पानेवाला लेकर उस गणमात्रको कि जिसका वह अध्यक्ष हो या जिस गणके उद्देश करके उसको सौंपागया हो शीघ्र सबके अंशोंके अनुसार बाँटिदे-छमाही और मासिक तथा अंशोंके अनुसार कहिनेका यह भावहै कि जहाँ साल या दोसालकी तनख्वाह या भत्ताआदि चढ़ाहो और उसमेंसे कुछ द्रव्यअनियत गोल गोलदियागयाहो जो उस एक अध्यक्षकी छमाही तुल्य समुझाजाय वही सबको बाँटि देनेसेपखवारेकी तनख्वाह निपटि सक्तीहो तौ इसदशामें अध्यक्षको यह योग्य नहींहै कि ठेठ अपनीही छमाही मध्ये रखकर शेष गणको भूँखामरनेदे इसलिये यह दृष्टांत दियाहै कि थोड़ीधनी सबहीकी तनख्वाहों के अनुसार उसको तुल्य बाँटिदेवै जिस्से सबहीको पखवारा या सबहीको अठवारा या सबहीको एकमाहा पहुँचै इसीप्रकार और भाँतिके भी लाभोंमें कर्तव्यहै कि जिनका चर्चाअभी कियागया अथवाजहाँ

पुण्यखाते के नामसे कुछमिलाहो तिसकेलिये अगला वचन कहते हैं कि-यद्वादेयधन कुछमिलाहो तौ उसधनको निर्धन,बूढ़े, अन्धे, स्त्रीजो अनाथहों,बालक,आतुर, रोगी, बहुतसी सन्तानयुक्त कुटुम्बी इनमेंबर्तावे किन्तु आप नहींपचावे यहीसनातन धर्महै-गणकेअर्थ लियाहुआ ऋणभी राजप्रसादकेही तुल्यसबकाहोता है—तदप्याहवृहस्पतिः(यत्तैःप्राप्तंरक्षितम्वागणार्थम्वाऋणंकृतम्।राजप्रसादलब्धंचसर्वेषामेवतत्समम्) अर्थात्-उन समुदायी लोगोंने जो कुछपाया यद्वा रक्खाहो या गणके अर्थ ऋणकुछ कियाहो यद्वा राजाके प्रसादसे कुछपायाहो सो सब सबहीका समानहै-समान शब्द यहाँभी उसन्यायका संसूचकहै कि जिसका जैसामासिकहो तैसाही वहअंशपावे या ऋणभरै क्योंकि अधिक मासिकवाला कार्यभी कुछअधिक साधन करताहै इसलिये प्रसाद अधिकपावै ऐसेही वहअधिक मासिकवाला खर्चभी सामान्य ऋणमें अधिक उठाताहै इसलिये ऋणका अंशभी निजमासिक संख्याके अनुसारभरै सो यहनियम उसीऋणमें है कि जहाँसबने मिलकर खायाखर्चाहो अन्यथा अपना अपना भिन्न हिसाब-इसवचन में (यत्तैःप्राप्तं) उन्होंने जो पायाहो इसकथनसे प्राप्तहोना किसीऐसे मार्गसे कि जोअपूर्वलाभ अचिन्त्यलाभसमुझाजाय जैसे किसीयुद्धकी लूटिमेंदशआदमीमिलकरकोई वस्तु पावें तौ उस उतने गणका सबहीका वह स्वत्वहै कि जोउन दशके साथ उपस्थितहों चाहे उनका हाथ उसमें लगाहो या नहो इसीप्रकार औरकोई लाभ जो अपूर्व जैसे निधिका प्राप्त होना आदि ऊहाकरनी सो उन सबहीका वह स्वत्व है औरउक्तरीतिके अनुसार सबके अंशहों-इसीबचनमें (रक्षितंवा) उन्होंनेजोरक्षाकिया हो इसका यह सिद्धांत है किजो कुछ खर्च उनको गोल गोलबिना हिसाब किये इकट्ठा मिलाहो या यह कहिकर मिलाहो कि इतने खर्चसे उसकामको संसिद्धकरना और वह खर्चइतना अधिक था कि उसदेशाटनआदि किसीअपेक्षितकामके संसिद्ध होजानेपर बचिरहा किन्तु उन अध्यक्षोंने युक्ति साथ खर्चकरनेसे बचाइ रक्खाहो उनकी कारगुज़ारी आदि किसी हेतुसे यदि राजाने उसद्रव्यका परिवर्तन करना योग्य नहींसमुझा उन्हींको यदि मुवाफ़रक्खाहो तिसका यहवर्तावाकहा कि सबका है कुछ एक पहचान नहींसक्ता-इसी वचनमें राज प्रसाद लब्ध कहिनेका यह भावहै कि निज अपने यत्न और किसी राजाने प्रसाद अर्पण कियाहो तौ उन सबका स्वत्वहै कि जितना गण उसकार्य में नियुक्त किया गयाहो-ऋण जो सबका तुल्यकहा-तिसके मध्ये किंचित् अपवादभी कात्यायनजी दर्शातेहैं-यथा-(गणमुद्दिश्ययत्किंचित्कृत्वर्णंभक्षितम्भवेत्। आत्मार्थंविनियुक्तंवादेयंतैरेवतद्भवेत)-अर्थात्-जोकुछ किसीगणके मुख्यलोगोंने निज गणके नामसे ऋणकरिके खायाहो यद्वा ठेठअपनेअर्थ लगायाहो सोसब उन्हीं देयहै-पूर्वोक्त वृहस्पतिके वचनानुसार इसमें जो प्रत्यक्षविरोध देखिपरता

मात्रहै कुछविरोध इसमेंनहीं क्योंकि इसमें सिर्फयही आज्ञाहै कि जो अध्यक्षोंके हाथ से ऋण लियागयाहो तिसके देनदार वेहींहैं अर्थात् गणके ऊपर कोईधनी दावानहीं करसक्ता और उसपहले वचनका यहभावथा कि सबहीलोग निजनिज अंशके अनुसारदेन दार हैं अर्थात् उनकी तनख्वाह यद्वा इनाम आदि किसी धनमें से अध्यक्ष लोग लेसक्ते हैं-इसी अपेक्षामें कात्यायनजी अबउनका नियम कहते हैं जो गणकी कृपासे उस गणमें कभी बीचमें प्रविष्टहुये हों यद्वा गणके क्षोभ आदि हेतुओंसे गण बाहरहुये हों-यथा-(गणानांश्रेणिवर्गाणांगताःस्युर्येपिमध्यताम्। प्राकृतस्यधनर्णस्यस मांशाःसर्वएवते॥ तथैवभोज्यवैभव्यदानधर्मक्रियासुच। समूहस्थोंशभागीस्यात्प्राग्ग तस्त्वंशभाङ्नतु) अर्थात्-गणश्रेणी वर्गोंमें जे कोई मध्यदशामें भी पहुँचेहों तौ वेसभी पहलाधन ऋणलेने देने दोनों बातके बराबर भागीहैं किजैसे गणके और लोग यहाँ धन कहिनेसे वह द्रव्य अपेक्षितहै कि उनके आनेसे पहले जो कुछ प्रसादपारितोषिक आदि आकर संचितहुआ हो और अबतक बँटने नहीं पायाहो (सो) इस अनायास प्रसादकेही स्वत्वसे पहला ऋण भी उनपर आरूढ़है कि जिसमें खाने के समय साथी नहींथे—तैसेही यदिकोई (भोज्य) वस्तुहो जैसे राजकीय यान बाहन आदि या (वैभव्य) नाम विभव योग्य कोई चिह्न हकूमति वाला एवं (दान) जैसे किसी कृत कार्यको इनामदेना दिलवाना आदि यद्वा और किसी भाँतिसे जो देना उन अध्यक्षों द्वारा होताहो एवं और जो कुछ धर्म क्रियाआदि राज कार्यके प्रभुत्वसे संप्राप्त होती हो तिनमें सबहीमें वह पुरुषभागी होताहै जो समूहमें उपस्थित हो किन्तु छुट्टीआदि कारणोंसे जो पहले चलागयाहो वह इन बातोंका अधिकारी तबकत नहींहै कि जब तक लौटि समूहमें न आवै १९४। १९५॥

(कथंभूताःकार्यचिंतकाभवेयुः)

धर्मज्ञाः शुचयोऽलुब्धाभवेयुःकार्यचिंतकाः। कर्तव्यंवचनंतेषांसमूहहितवादिनाम् १९६॥
श्रेणिनैगमपाखंडिगणानामप्ययंविधिः। भेदंचैषांनृपोरक्षेत्पूर्ववृत्तिंचपालयेत् १९७॥

ए०—धर्मशास्त्रके विज्ञाताहों-(शुचि)अर्थात् बाहरली इंद्रियोंकी चंचलता आदिसे रहित और शारीरिक संस्कार तथा शौच कर्मसे भी निर्मलहों और भीतरले मन बुद्धि चित्त अहंकार चतुष्टयसे भी शुद्धहों-(ऽलुब्ध) लोभी लोलुपनहों-ऐसे मनुष्य कार्य चिंतकहों अर्थात् उन कामोंका विचार करने मात्रमें नियुक्त कियेजायँ जिनमें पूर्वोक्त समुदाय तत्पर करने आवश्यकहों-तिनमें भी जेकोई अतिशय भावसे समूहोंका हित कहिनेवालेहों तिनका वचन सबहीको स्वीकार करना योग्यहै अर्थात् शेष विचार कर्ता लोग तथा राजा और समुदायोंको भी उनका वचन प्रमाण करना उचितहै १९६ यही विधान श्रेणीनैगम पाखंडी आदिगणोंका भी जानो अर्थात् प्रत्येक अपने गण

समुदायमें जेकोई हितके कहिनेवाले हों तिनका कहिना शेष औरोंको कर्तव्यहै और इन सबहीका (भेद) कहिये धर्म व्यवस्था जोकुछ गूढ़भाव नियतहुआहो तिसकी रक्षा जैसे बनिआवै राजा आपकरै और उस पूर्व वृत्तिका भी पालनकरै कि जैसा जैसा वचन जिस जिसके साथ पहिले राजाने स्वीकारकियाहो-यहाँ श्रेणी शब्द उनपंक्तियोंका वाचकहै कि जो एक पण्य वस्तुके क्रयविक्रयसे अनेक अपना व्यापार करतेहों या एकही शिल्पकामसे अनेक अपना पेशारखतेहों-नैगम शब्दसे पौरलोग नागरलोग वाणिज् लोग अपेक्षित हैं और इसी निगम शब्दसे वे लोग भी अपेक्षित हैं कि जो वेदको यथार्थ अंगीकार करतेहों-पाखंडी जो वेदका प्रमाण नहीं चाहते हों नग्नाट सौगत आदि-गण शब्द यद्यपि सामान्य भाव सब समुदायों का वाचक है पर यहाँ उसको जुदामानिकर हथिआरबंद सेना आदि समूहोंके भावार्थ में समुझना इनका नियम ऊपर सब कहिचुके १९७॥

अधि० सहृदयोः—बृहस्पति ने कार्य चिंतक लोगोंकी संख्याभी दर्शाईहै-यथा-(द्वौत्रयःपंचवाकार्याःसमूहहितवादिनः। कर्तव्यंवचनंतेषांग्रामश्रेणिगणादिभिः)-अर्थात्-समूहका हितकहिनेवाले कार्य चिंतक दो यातीन अथवा पाँचकरने चाहिये तिनका कहा वचन ग्राम श्रेणी गणोंआदि सबहीको कर्तव्यहै-यह दोतीन पाँचवाली संख्या कुछ परिनियमित नहींहै और कार्य चिंतक लोगोंकी संख्याका कुछ एक नियम नहीं किन्तु बहुधा भाँतिके वे नियतहोते और होसक्ते हैं और उनका नियम यह भी नहीं कि सिर्फ़ राज्यके नौकर हों या बेनौकर किन्तु यथा संभव दोनों भाँति के होसक्ते हैं परंच दो या तीन पाँचवाला नियम इसलिये है कि वेही जो अनेक भाँति के इस बात में प्रसिद्ध किये गये हों तिनमें से आवश्यक समय पर दो तीन पाँच योग्य जानिकर बुलालिये जायँ (दृष्टांत) जैसे किसी कार्यकी अपेक्षा में विचित्र बुद्धी समुदायियों ने संप्रार्थित किया कि यह काम सरकारी नौकरों के सिवाय किसी अमुकभाँतिके मनुष्यकी सहायता लेकर सिद्ध होसक्ता है तब तत्काल उनके कथनमात्रसे उस अन्यपुरुषकी सहायता खड़ी करनी योग्य नहीं किन्तु उसके लिये समय विचारभी कर्तव्य है इसलिये यद्यपि सभीकार्य चिन्तकलोग इकट्ठे नहोसक्तेहों या सबका आवाहनकरना कुछ आवश्यक नहीं समुझाजाय तो इसदशा में दो तीन पाँच योग्य जानिकर बुलायेजायँ तिनके द्वारा उसी अन्यपुरुषकी सहायता खड़ी करने मध्ये पूर्वापरका विचारहोकर जो कुछ उचितहो सो फिर किया जाय (कार्यचिन्तकेष्वपिहेयोपादेयत्वंराज्ञैवकर्तव्यं)-तदप्याहबृहस्पतिः-(विद्वेषिणोव्यसनिनःशालीनालसभीरवः। लुब्धातिवृद्धबालाश्चनकार्याःकार्यचिंतकाः॥ शुचयोवेदधर्मज्ञादक्षादान्ताःकुलोद्भवाः। सर्वकार्यप्रवीणाश्चकर्तव्याश्चमहत्तमाः) अर्थात्-जो विद्वेषीहों

व्यसनीहों, शालीन घरघुसा लज्जामानहों, जिनके मुखसे बातनहीं निकसै, आलसी हों, भीरुडरपोकाहों, लोभीहों, अतिबूढ़ेहों, बालकहों, राजा ऐसेलोगोंको कार्यचिन्तक नहीं बनावै किन्तु जो बनिचुकेहों तौभी इनको नहींरक्खै किंच उनकोकरै जो शुचिहों शुचिकाअर्थ ऊपरकहागया, वेद धर्मशास्त्रोंके विज्ञाताहों, दक्षचतुर जो शीघ्र किसी बातके प्रयोजनको समुझिसक्तेहों, दान्त जो बाहरली इन्द्रियोंको निजवशमें रखतेहों कुलोद्भव कुलीन जो अच्छेकुलमें जन्मेहों, पर सबतरहके कामोंमेंभी प्रवीणहों किन्तु प्रायः सभीकामोंका अभ्यास रखतेहों जो उनकामोंका बिचारकरना और करवाना कामलेना आदि उनको सुगमहो, महत्तमहों किन्तु बड़ेआदमी जोकुछ राज्यका सं-बन्ध इलाक़ारखतेहों, यद्वा इतनेगुण संयुक्त होतेहुये इलाक़ेदारनहों तौभी राजा उन्हें इलाक़ेदारबनाकर कार्यचिन्तक नियतकरै यहसिद्धान्तहै-अत्रापि-(युक्तियुक्तंवचोहन्या द्वक्तुर्योऽनवकाशतः। अयुक्तंचैवयोब्रूयात्सदाप्यः पूर्वसाहसमितिकात्यायनबचनस्य पूर्ववत्प्रयोजनंवर्तते)॥अथपाखंडादि सर्वसमूहेषु राज्ञाकथंवर्तितव्यं॥-तदाहनारदः-(योधर्मः कर्मयच्चैषामुपस्थानविधिश्चयः। यच्चैषांप्रत्युपादानमनुमन्येततत्तथा)-अर्थात्-इन पा-खंडीआदि उक्तसमूहोंका जोकुछ निज निज स्वाभाविकधर्मकर्महो या जैसी उपस्थान की बिधिहो एवं जोकुछ उपादानउनपरहो सो सबराजाभी यथावत्मानै-यहाँ उपस्थान कीबिधि कहनेसेयहभावहै किनमस्कारात्मक परिपाटी जैसे सेनाको एकत्रउपस्थितकरि कैजैसी राजनीतिके अनुसार उसकी रीतिहो तिसहीके अनुसार सलामीलेना उसमें ऊँचनीच वर्णभेदका कुछनियम जुदानहीं परंच सेनाकी सलामीकेसिवाय अन्यत्र साधारणभावकी दशामें पाखण्डीआदि जिसजिसगणके लोगोंमें राजाकेसाथ जैसा जैसा उपस्थानकरनायोग्यहो तैसा राजामानै-उपादान कहनेसे यहतात्पर्यहै कि जैसा कुछ क़वाअदके अनुसार उनको खींचकर मर्यादाकेवश करनायोग्यहो वही राजा मानै किन्तु इसमें किंचित्भी रिआयत नहीं (और) उसी उपादानशब्दसे दूसराअर्थ यहभी है कि जोकुछ किसी व्यापारीआदि गणसे कोईभाँतिका करलेना योग्यहो तिस को भी तथैवमानै-अन्यच्च-(प्रतिकूलंचयद्राज्ञःप्रकृत्याचमतंचयत्। बाधकंचयदर्थानां तत्तेभ्योविनिवर्तयेत्)-अर्थात्-नारद और भी यह कहते हैं कि जो कुछ कर्मराजा के प्रतिकूल उनमेंहो एवं जो कुछकर्म अर्थोंका बाधक समुझाजाय चाहे वह स्वाभाविक हो यद्वा मतसे कल्पित हुआहो तिसको राजा उनमेंसे निवर्तित करवावै किन्तु किसी उपायसे उसकामका करना वर्जित करवावै जिस्से राज अथवा लाभका कुछ अनिष्ट न होसकै-अन्यच्च-(दोषवत्करणंयत्स्यादनाम्नायप्रकल्पितम्। प्रवृत्तमपितद्राजाश्रेय स्कामोनिवर्तयेत्) अर्थात्-नारद और भी यह कहते हैं कि दोषवान् करण जो कुछ हो जो अशास्त्र विहित कल्पितहो यद्यपि बहुत कालसे प्रवृत्तभी होचुकाहो तिसको

श्रेयचाहने वाला राजादूरकरै-अस्ययथावदुदाहरणं-(यस्यराज्ञस्तुकुरुतेशूद्रोधर्मवि-वेचनम्। तस्यप्रक्षुभ्यतेराज्यंबलंकोशंचनश्यति) समय संकेतोंकी रक्षा यद्यपि सब-ही को कर्तव्यहै तथापि उसकी अतिशय भाव चौकसी करनी राजापर आरूढ़ है-यथाहनारदः-(पाखंडनैगमश्रेणिपूगव्रातगणादिषु । संरक्षेत्समयंराजादुर्गेजनपदेत था) अर्थात्-पाखंडी जो वेदोक्त लिंगोंसे व्यतिरिक्त कोई चिह्नवेश धारण करतेहों पूर्वोक्त क्षपणक नग्नाट दिगंवर आदि इनमें भिक्षाचरण आदि जो कुछ समय संकेत होतेहों नैगम धनाढ्य बणिक्जाती आदि इनमें (कुंचक) अर्थात् लिफ़ाफ़ा डाक थैली लेजानेवाले पुरुषोंका तिरस्कार करनेवाला अमुकामुक दंण्डपावे इत्यादि नानाभांति के जो समय संकेत होतेहों श्रेणीजो एक एक भांतिके शिल्पोंवाला पेशाकरनेवाले अनेकहों इनमें अमुकश्रेणीसेही अमुकवस्तु बिकनी चाहिये यद्वा अमुकहट्टस्थानमें अमुकामुक श्रेणियां बसिकर विक्रयकरें इत्यादि नानाभांतिके संकेत समय जो कुछ होतेहों-पूग समूह हाथी घोड़ा आदिके अर्थात इनमें असुक राजमार्गसे या दुर्गोंके समीप होकर कोई हाथी घोड़ा आदि सवारीके पूग नाम समूह लेकर नहीं निकसने पावे इत्यादि नानाभांतिसे संकेत समय जो कुछ होतेहों व्रात शब्दसे बहुभांतिशस्त्र अस्त्र संयुत सेनाका भाव है और गणकहनेसे अनेक कुलोंका समूह जिसमेंहो ऐसी सेनाकाभावहै या जनपद लोगोंका इकट्ठा होना जैसा कात्यायनके अग्रोक्तवचन में जो लक्षण है कि-(नानायुधधराव्राताः समवेतास्तुकीर्तिताः । कुलानांहिसमूहस्तु गणः संपरिकीर्तितः) इनमें अस्त्रशस्त्र छोड़िकर युद्धादि क्लिष्ट स्थानों को न जावें कभी यद्वा अमुक समय अमुक स्थानोंपर शस्त्रादि लेकर नहीं जावें यद्वा प्रतिस-प्ताह मनादी होतीरहे किकोई छिपकर गुपतौअर बातचीत न करने पावे यद्वा रात्रिसमय व्यूहों में जो कोईघुसे और वहतीनबार निरन्तर बूझ्ताहुआ अनुत्तर होकर चुपका रहे उसपर निःसंदेह शस्त्रपातकरना इत्यादि नानाभांतिके संकेतसमय जोकुछहोते हों-(गणादिषु) इसमेंआदि शब्द कहनेसे और भी अनेकलक्षण प्रकट होतेहैं-दृष्टांत-यथा ब्रह्मपुरी आदिमेंरहते हुये महाजन आदितद्वत् राजपुरोहित और दानाध्यक्षआदि इनमेंसंचितसमयों पर कदाचित् कोईगुरु दक्षिणाहेतुसे यदिआवें तौ वह अवश्य माननीय हैं अतिथिअभ्यागत कोईपुरमें आकर विमुखन जानेपावे (अ-तिथिर्यस्यभग्नाशोगृहात्प्रतिनिवर्तते । सतस्मैदुष्कृतंदत्वापुण्यमादायगच्छति)इत्या-दिनाना भांतिके संकेतसमय जो कुछहोतेहों-और इसी आदिशब्दसे मुख्यविचार क-र्तालोगोंपर इसभांतिके आदेशकिआपलोगोंके विचारसेकिसीपुरके धर्मविचारस्थान आदिमेंकोई अयुक्त अधिकारी नियत नहो।किंतुनिम्नोक्त लक्षणवाले नियतहु आकर यथा-(समःशत्रौचमित्रेचसर्वशास्त्रविशारदः । विप्रमुख्यःकुलीनश्चधर्माधिकरणेभवे

त्)धर्माधिकरणःप्राड्विवाकादिः-अन्यच्च-(कुलशीलवयोपेतःसर्वकर्मपरायणः।प्रवीणःप्रेषणाध्यक्षोधर्माध्यक्षोविधीयते)धर्माध्यक्षःप्राड्विवाकादिःप्रेषणाध्यक्षःस्थानपालादिःसतु वयोपेतःस्यान्नतुबालोवृद्धोवाकर्तव्यः नचनिर्गुणःकुंठितबुद्धिर्वाकर्तव्यः-अन्यच्च-(पुरुषान्तरतत्त्वज्ञाःप्रांशवश्चाप्यलोलुपाः। धर्मादिकरणेकार्याजनाह्वानकरानराः) अर्थात् प्रायःधर्मविचार स्थानोंमें मनुष्योंको बुलानेवाले राजदूत ऐसेरखने योग्यहैं जो पुरुषांतर दुर्जनआदि का यथार्थ तत्त्वउनका भेद जाननेवाले हों और प्रांशुकहिये ऊंचे कंधेवाले लंबे युवाअवस्थावाले हों और जो लोभीलोलुप न हों इत्यादि नानाभांति के संकेतसमय जो कुछहोतेहों राजा मुख्यविचार कर्त्तालोगों परभी संकेतित बनेरक्खें यहउस आदिशब्दका भावार्थहै-एवंदुर्गतथा जनपदमें भी-दृष्टांत-जैसेदुर्गमें अज्ञात पुरुषकोई कारणबिना न घुसनेपावे यद्वाधान्यादि संचयकभी इतनेसेभी कम न रहिने पावे-जनपदमें-दृष्टांत-जैसे अमुकराजकरके संग्रहकरने में अमुकामुक भांतिकाउपद्रव नहीं उठनेपावे यद्वा कोई दूरदेशी पाखंडीआदि वेशधारी उच्छृंखल होकरव्यर्थविचरने नहींपावे इत्यादि नानाभांतिके संकेतजो कुछहोतेहों राजासबसंकेत समयोंकीरक्षा जैसे होसक्तीहो बनीरक्खे किन्तु जैसीरीतिसे संकेतोंको विकारनहीं पहुँचनेपावे सोई राजाकरे-इसीलिये-बृहस्पतिजी अबकहतेहैं कि इसमेंकुछ विश्वास हेतुभी उत्पन्नकरनायोग्य है-यथा-(कोशेनलेख्यक्रिययामध्यस्थैर्वापरस्परं। कुर्युर्विश्वासमुत्पाद्यकार्याणि समनन्तरम्)अर्थात्-(कोशविधि)जिसमेंदेवताके स्नानजलका पानकराकर शपथली जातीहै तिससे यद्वा लेख्य क्रियासे कि जिसमेंसमयपत्र लिखवाकर,पण करवायाजाता या मध्यस्थ कोई प्रतिभूनाम जामिनि बीचदेकर धर्मकरायाजाय या उसकार्यकी गौरवतामें इनसभीबातोंका आचरणकराकर और विश्वास पैदाकरिकै स्वीकृतकामोंको अधिकारी लोग ऐसीभांतिसे संसाधन करें किजिस्से उनके स्वीकारमें कुछ अंतरनहीं आनेपावे-यहआचरण परस्पर दोनोंओरसे भी होताहै और एकओरसे भी जहांजैसा अवसरहो-कात्यायनः-(समूहानांतुयोधर्मस्तेनधर्मेणतेसदा। प्रकुर्युःसर्वकर्माणिस्वधर्मेषुव्यवस्थिताः) १९६-१९७॥

(इतिसंविद्व्यतिक्रमाख्यप्रकरणं)

यह संकेत व्यतिक्रम नामका विवाद वृत्तांत प्रकरण एकइसी ७३ संख्या के परिच्छेदसे समाप्त हुआ॥

अथ वेतनादानविवादपदधर्मविवेकोनामचतुःसप्ततितमःपरिच्छेदः ७४॥

इसचौहत्तरि संख्याके परिच्छेद में उसभांतिके विवादोंका न्यायसमुझा जायगा जो वेतनभृति मजदूरीआदि उजरत लेनेदेने मध्येंपड़ेहों या गृहगाड़ी धरती वेश्या आदि के भाडे मध्ये॥

इस व्यवहार पदका नाम (वेतनानपाकर्म) कहते हैं और स्वरूप इसका नारद जीने कहाहै-यथा-(भृतानांवेतनस्योक्तोदानादानविधिक्रमः । वेतनस्यानपाकर्मतद्वि-वादपदंस्मृतम्) अर्थात्-भृत या भृतक नौकर और मिहनतीमात्र सबको कहते हैंजे कोई किसी भांतिका वेतन मूल्य लेकर काम करतेहों तिनके वेतन मूल्यका देना या न देना यद्वा दिया हुआ भी लेलेना ऐसी विधिका क्रम जिस विवादमें आवै सोई (वेतनअनपाकर्म) नामका मुक़द्दमा जानो-सो उस वेतन मूल्यके देनेका प्रकार नारद कहते हैं-यथा-(भृतायवेतनंदद्यात्कर्मस्वामीयथाक्रमम् । आदौमध्येऽवसानेतुकर्मणोय द्विनिश्चितम्)अर्थात्-कामका मालिक किसी भृतकेलिये वेतन उसीक्रमसेदेवे जैसा पहले निश्चित हुआहो कि इतना वेतन कामके प्रारंभमें या बीचमें या पीछे उसके पूरे होजाने परही देवेंगे अर्थात् जो कुछ भाषा ठहरीहो (सो) यह नियम उसी अव-स्था पर आरूढ़है कि जहां वेतनका परिमाण भी ठहरायागयाहो किन्तु जहां वेतन के ठहराने बिना कोई काम कराया गयाहो तिसका न्याय राजा १९९ मूल श्लोक से विचारै-जहां कोई काम करना अंगीकार करिकै छोड़ै तिसका दण्ड याज्ञवल्क्यजी अब कहते हैं॥

गृहीतवेतनःकर्मत्यजन्द्विगुणमावहेत् । अगृहीतेसमंदाप्योभृत्यैरक्ष्यउपस्करः १९८॥

ऐ०—गृहीत वेतन भृतक जिसने वेतन पहले लियाहो सो उस अंगीकार किये कर्म को छोड़ता हुआ किंतु प्रमाद आदिसे न करता हुआ दूना वेतन स्वामीको भरे-न लिये में सम दिलवाया जाय किंतु जिसने वेतन पहले नहीं लिया और प्रारम्भ करिकै काम छोड़ै तिसपर दूना नहीं परन्तु उतना द्रव्य तौ भी कर्मस्वामीको दिला-या जाय जितना वेतन उसीकामका सब ठहराहो सिद्धांतमें यह दोनों बात एक हैं क्योंकि जहां दूना देना परा तहां इकहिरा उसी स्वामीका लियाहुआ धनथा उतना और देना परा जहां पहले स्वामीसे कुछ नहीं लिया तहांभी निज घरसे उतना किंतु दोनों भांति काम छोड़नेका प्रतिकारहै (और) उन भृत्योंको उसकाम निमित्त सौंपे हुये उपस्कर भी रखाने योग्य हैं ध्वन्यर्थ उसका यह कि जो उनसौंपी हुई चीजों में से कोई चीज उनसेखोई जाय तौ वे आपदें १९८॥

भधि०—बृहस्पतिजी समर्थकी अपेक्षा मध्ये दण्ड भी दर्शाते हैं-यथा-(गृहीतवेत-नःकर्मनकरोतियदाभृतः । समर्थश्चेदमंदाप्योद्विगुणंतच्चवेतनम्)-अर्थात्-वेतन लि-या हुआ कोई भृतजब कामको समर्थ होतेहुये नहीं करै तब अपराधके अनुसार यद्वा शक्तिके अनुमान दण्ड राजाको और वह वेतन भी जो ठहरा यद्वा लियाहो दूना कर्म स्वामीको दिलायाजाय-एवंनारदोपि-(भृतिंगृहीत्वाऽकुर्वाणोद्विगुणांभृतिमावहे त्) भृति अर्थात् मजूरी दूनी भरे-अथवा-जहां उसके अंगीकारकरके नाधेहुये काम

को करसकने वाला कोई तद्वत् और न हो तहां बलात्कार भी करवाना नारदकहते हैं-यथा(कर्माकुर्वन्प्रतिश्रुत्यकार्योदत्त्वाभृतिंबलात्)अर्थात्-कोईकाम अंगीकारकरिकै नहीं करताहुआ उसकी ठहिरी हुई मजूरी देकर काम प्रबलतासे करवाने योग्य है क्योंकि उसने निज विश्वासपर उसकामका प्रारंभ कराइकर सामग्रीसेद्रव्यादिकहानि कराई-बलसे भी न करताहुआ विशेष दंडनीयहै-तदाहकात्यायनः (कर्मारंभंतुयःकृत्वा सिद्धिंनैवतुकारयेत् । बलात्कारयितव्योऽसावकुर्वन्दंडमर्हति)अर्थात्-जो कोई निज विश्वासपर कुछकामका प्रारंभ करिकै सिद्धि नहींकरावै सो यह बलसेभी करवाने योग्यहै न करता हुआ दंडयोग्य-वृद्धमनु और बृहस्पतिजी इस दंडका परिमाणभी दर्शाते हैं-यथा(प्रतिश्रुत्यनकुर्याद्यःसकार्यःस्याद्बलादपि । सचेन्नकुर्यात्तत्कर्मप्राप्नुयाद्द्वि शतंदमम्)अर्थात्-कुबूल करिकै जो उसकामको न साधै सो बलकरके भी करवाया जाय यद्वा वहबलकरनेसे भी निपट न करै तौ वहदोसौ पणतक दंडपावै-यहां पणसामान्य चर्चा कियेगये किंतु जैसाकाम हलुका भारी हो तिसके तुल्यतांबे रूपेसोने के भी पण स्वीकार होनेयोग्यहैं-बहुतछोटेकामोंके नकरने मध्ये स्वल्पदंड मनुकहते हैं—यथा(भृतोऽनार्त्तोनकुर्याद्योदर्पात्कर्मयथोदितम् । सदंड्यःकृष्णलान्यष्टौनदेयंचास्यवेतनम्)अर्थात्-जो कोई भृतकुछ रोग आदि पीड़ासे रहित होतेहुये दर्प अहंकार से हीकामको उसभांति नहींकरै जैसे नियम से स्वीकार कियाहो किंतु बीचमेंसे छोड़ि दे सो यह आठ कृष्णलमात्र दंडपावै और जितनाकाम यहकरचुका हो तिसका चढ़ा हुआ वेतनभी न देवै-यह आठकृष्णल दंडभी २४ जौ भरिसोनेका संसिद्ध है सोऐसे छोटेकामोंवाले कारीगरोंपर कि जिसके करसकने वाले तद्वत् और भी अनेक शीघ्र मिलसकते हों-रोगीरोग छूटे पीछेकरै-यथाहमनुः(आर्तस्तुकुर्यात्स्वस्थःसन्यथाभाषितमादितः । सदीर्घस्यापिकालस्यतल्लभेतैववेतनम्)अर्थात्-यदि कोई रोगीहोकर काम छोड़ै तौ वह रोग छूटिजानेपर उसकामको करदे जैसा पहले वचन कुबूला हो उसीप्रकार करै तौ उस बहुतकालके ही पीछे वेतन पावै-कदाचित् अपना छुटकारा नहीं समुझै या रोग प्रबलजानै तौ वह औरसेही कामको बनवादेवै-यथाहमनुः(यथोक्तमार्त्तःस्वस्थोवायस्तत्कर्मनकारयेत् । नतस्यवेतनंदेयमल्पोनस्यापिकर्मणः) अर्थात्-कोई रोगी या नीरोगी हो अपने नाधेकामको यदि औरसेभी पूरानहीं करावै तौ वहकाम यद्यपि किंचिन्मात्र शेषरहे तौ भी उसका वेतन उसे न दे-और सिद्धांत इसका यह कि जो अत्यंतजरूरी कामके समाप्तकरने में कुछ व्यर्थ झमेल रोग आदि सेभी रोपै तौभी कर्मस्वामी अपनाकाम किसीऔरसेही पूराकरवाकरकाम चलावैऔर उसव्यर्थ झमेलियाको मजूरी जो इसकामके ही थोड़ेबहुत करचुकनेमध्ये समुझी जातीहो न दे किन्तु उसकायहकुछ उजर सुनिवे योग्य नहीं है कि मैं जबअच्छाहोता

तभी अतिशय कालके पश्चात् पूराकरता इस्से मुझे मजूरी मिलै क्योंकिउसकी मजदूरी पूरीकरवानेके निमित्त कोई मालिक अपना काम जो आवश्यकहो रोकि नहीं सक्ताहै ॥ अथकालावधिनियमः-तदाहनारदः(कालेऽपूर्णेत्यजन्कर्म भृतेर्नाशमवाप्नुयात्) अर्थात्-जो काम किसी कालकी अवधितकही पूरा करदेनेकी प्रतिज्ञा साथ रोपा हो तिसके भीतर त्याग करताहुआ पहिली चढ़ी भृतिका नाश पावै किंतु जितनी मेहनत उसमें हुईहो तिसका वेतन कुछ न पावै-बल्कि विष्णु इसपर दंडभी दर्शाते हैं-यथा (भृतकश्चापूर्णेकालेत्यजन्सकलमेवमूल्यंजह्यात्राज्ञेचपणशतंदद्यात्) अर्थात्-कोई भृतक अपना काल पूरा किये विना जो कुछ काम त्यागै तौ वहसारा मूल्य किंतु जितना उसका वेतन उसी कामकी अपेक्षा जो कुछ समझा जाताहो सोभी छोड़ि दे किंतु ऐसे अवसरमें मजूरीभी न माँगै बल्कि राजाकोभी १००एकसौ पण दण्डभरै-यहदण्ड ऐसे अवसरमें कि जहां इसके छोड़ि देनेसे उसकर्म स्वामीका नुक्सान होना संभव हो औरसौपणभी उस कार्यकी गौरवता लाघवताकी अपेक्षा सोने चांदी तांबे तक होसक्ते हैं॥ अथस्वामीदोषप्रसंगः- तदाहनारदः(स्वामिदोषादपक्रामन्यावत्कृतमवाप्नुयात्) अर्थात्-जहां निष्ठुरभाषण आदि स्वामीकेही दोषोंसे यदि छोड़िभागै तहां जितना कामकिया उतने दिवसों के अनुसार मजूरी पावै-क्वचिद्दंडमाहविष्णुः (स्वामीचेद्भृतकमपूर्णेकालेजह्यात्तस्यसर्वमेवमूल्यंदद्यात्पणशतंचराजनिवा) अर्थात्-जहां अवधि निश्चित हुईहो और जो स्वामी किसी भृतको उतनाकाल पूरा होनेविना छुड़ावै तौ उस भृतका पूरा वेतन स्वामी देय इसमें यह दृष्टांतहै कि जहां एकमासमात्र अवधि निश्चित हुईहो और उस एकमासके भीतर भृत्य छुड़ायाजाय तवउसमास भरका वेतन पावै पर जो स्वामी पूरा देनेमें अवरोध करै तव सौपणतक दंडराजाको भी देय- पणभीउसअपराधके अनुसारप्रायःतांवेयद्वाक्वचित् रूपेतकही जानो१९८॥

(अनिश्चित भृति नियमाः)

दाप्यस्तुदशमंभागंवाणिज्यपशुसस्यतः। अनिश्चित्यभृतिंयस्तुकारयेत्समहीक्षिता १९९॥

ऐ०-जो कोई स्वामी भृति परिमाण निश्चित किये विनावाणिज्य आदिकुछ व्यापार करावै तिसको लाभमेंसे दशवांभाग देनायोग्यहै यदि स्वामी अपनी इच्छासे न देय तव यह राजा करके दशवांभाग दिलाने योग्यहै सो उसमेंसे कि जोकुछ लाभ किसी भृतकने निज स्वामीको वाणिज्य अथवा पशुओं के पालन आदि यद्वाखेतमें उत्पन्न करायाहो (और) तनस्वाहका कुछ नियम नहो वा उस लाभमेंसे भाग पानेका कुछ नियम नहो किंतु दोमें कोई एक नियम निश्चित होनेसे यह दशवांभाग वाला न्याय निपट निरर्थक जानो १९९॥

अपि०-यही नियम नारदनेभी कहाहै यथा-(भृतावनिश्चितयांतुदशभागमवाप्नुयुः

लाभंगोवीर्यंशस्यानांवाणिग्गोपकृषीबलाः) अर्थात्-वणिक् वनिजा व्यापारी आदि जो जो उसी भांतिका कुछ काम करतेहों-गोपपशु रक्षकमात्र जो जो किसी भांतिके पशुओंका पालन करिकै लाभकरातेहों-कृषीबल किसान आदि जो जो खेतीकी भांति वाला काम करते हों-यह सब कर्मकर उसदशामें कि जो निज स्वामीसे इन कामोंकी भृति पहले निश्चित न करली हो-तौ-(गोलाभ) किंतु पशुओंके दुग्धादि लाभ याउन पशुओंकी संतान वृद्धि-एवं (वीर्यलाभ) किंतु जो जोकुछ वाणिज्य द्वारा लाभहो-एवं (सस्यलाभ) जो कुछ खेती आदि कामोंसे फलहुआ हो तिसमें दशवां अंश पावें-इसी अनिश्चितभृतिकेमध्ये-सिर्फ़ खेतीकी अपेक्षासे वृहस्पतिजी कुछ और नियम कहते हैं-यथा-(त्रिभागंपंचभागंवागृह्णीयात्सीरवाहकः । भक्ताच्छादभृतःसीराद्भागंगृह्णीत पंचमम् ॥ जातशस्यात्त्रिभागंतुप्रगृह्णीयादथाभृतः) अर्थात्-सीर बाहक नाम हल जोता भृतक अनिश्चित भृतिकी दशामें उत्पन्नहुये शस्यमेंसे एक तिहाई यद्वा पंचम भाग लेवे- इसमें जो दो नियमोंके विकल्पसे यह द्विविधा खड़ीहुई कि क्या दिलवाया जाय तिसके लिये कहते हैं कि जिसको रोटी कपड़ा मिलता रहा ऐसा भृतक पाँचवाँभाग लेवै जिसको अन्नवस्त्र नहीं मिला ऐसा भृतक तिहाई पावै-इसमें जो संदेह खड़ा होताहै कि नारद और योगीश्वरने दशांश देना कहा अबयह पंचम या तिहाई क्योंकर मानीजाय तिसमें यह संदेह भंजनहै कि वह ऊपरला नियम ऐसे खेतोंकी अपेक्षामें समुझना जिनकी धरती कमी कमाई सदा बोई जोतीजाती हो जिस्से थोड़ेही आयास करके शस्य पैदा होना संभवहो (और)अत्रोक्त नियम जहांधरती बिना कमाई बिना जोती बंजरपरीहो जिस्से बड़े परिश्रम साथ शस्य पैदाहोय तहां अपेक्षा रखताहै-इसकेसिवाय-जहां कोई ऐसा झगड़ा खड़ाहोय जिसमें भृतिका नियम न ठहराहो और अत्रोक्त किसी विधानसे निपटारा उसका दुर्घटहो क्योंकि प्रायःदेश काल वस्तुओंके स्वभावसे विवाद भी अनेक अद्भुत खड़े होते हैं तब उन अद्भुत झगड़ोंका निपटारा वृद्ध मनुके वाक्यसे कर्तव्यहै-यथाहवृद्धमनुः-(समुद्रयानकुशला देशकालार्थदर्शिनः । नियच्छेयुर्भृतिंयांतुसास्यात्प्रागकृतायदि)-अर्थात्-जो पहले भृतिका परिमाण कुछ न ठहराहो और वह झगड़ा तिरछा हो तौ उसरीतिसे भृतिकाल्पित करी जावै जैसी वे लोग अपने भृतकोंको निर्णीत करके देवें किंतु सदैव देते हों जो प्रत्येक भांतिके व्यापार समुद्र मार्गसे चातुर्य साथ करते हों या प्रत्येक देश कालोंके व्यवहारोंको समुझतेहों और प्रत्येक पदार्थोंके तत्त्वज्ञभी कहलातेहों क्योंकि ऐसे विज्ञाता लोग अपने भृतकोंको मजूरी अच्छे न्यायसे सदैव देते हैं इसलिये जैसा झगड़ाहो तैसे कामोंके विज्ञाता बूझे जायँ १९९ ॥

—०—

(अनाज्ञप्तकारिणांभृतिनियमः)

देशंकालंचयोऽतीयाल्लाभंकुर्याच्चयोऽन्यथा। तत्रस्यात्स्वामिनश्छंदोऽधिकंदेयंकृतेऽधिके २००॥

अक्ष०–देशको काल कोही जो उलाँघै और जो लाभको अन्यथा करै तहां स्वामी का छन्द होवै अधिक देय अधिक किये में २००॥

अभि०–जो कोई भृतक पण्य विक्रय आदिकेही उचितदेश जैसे अमुक छाउनी में यह अमुक पण्य विकिसक्ताहै या बहुत विका करताहै एवं उचितकाल जैसे अमुक मेलातक यह माल अच्छा विकिसक्ताहै फिर नहीं तौ यह विकने योग्य उचितकाल है तिनको जो अतीत करै उलाँघै किंतु उनमें नहीं जावे या जाकर माल बेचै नहीं अपने दर्प आदिसे अगारी कहीं चलाजाय जहां चलेजाने से वह पण्य वस्तु नहीं विकै या व्यय अधिक होकर थोड़ी विकै यद्वा उसी उचित देशकालमें रहकर किसी कुढंगसे कुछ खर्च बहुत करै लाभ थोड़ाकरै-तहां ऐसे भृत्यकी अपेक्षामें भृति दान मध्ये स्वामीकाही छन्दनाम इच्छा बहुत प्रधानहै कि जो कुछ देनाचाहै सोई देय किंतु ठहरीहुई मजूरी पूरी नहीं देय तौ कुछ राजाका अधिकार नहीं है कि ठहरी हुई मजूरी उसे दिलावै पर जो किसी भृत्यने स्वतंत्र होकर अधिकलाभ किया हो तौ उस मुख्य ठहरेहुये वेतनसे कुछ अधिक प्रसाद रूपसे दातव्य है २००॥

(अनेकभृत्यकार्यभृतिनियमः)

योयावत्कुरुतेकर्मतावत्तस्यतुवेतनम्। उभयोरप्यसाध्यंचेत्साध्येकुर्याद्यथाश्रुतम् २०१॥

ऐ०–दोसेभी असाध्य होय तब जो जितना काम करता है उतना उसका वेतन होय साध्यमें यथाश्रुतकरै-अर्थात्-जहां गृहादि कोई काम ठेकेकी रीतिसे इस भांति करना ठहराहो कि इसके सिद्धहोनेतक सब इतना वेतन देवेंगे और यद्यपि किसी एकने यह ठेका लेकर औरोंकोभी अपना साथी कियाहो जिसमें काम की अधिकता आदि होनेसे दो या तीन आदि अनेकभी उसकामको समापित न करसकैं यद्वा रोग बाधाआदि विघ्नोंसेही छोड़िभागें किंतु पूरानकरसकैं तब उनकर्मकारोंका रोजीना या मासिकयद्यपि नहींठहिराथा परतौभी जितने दिवसोंतक उसकामको करिगयेहों उतना वेतनरोजीना यद्वा मासिकरीतिसे दातव्य है-इसमें यह संदेह जो अद्यापि शेष है कि जिनका कुछ परिमाण नहींठहिराथा किस नियमसे देसकना अबहोसक्ता है तिसहीका यह नियम याज्ञवल्क्यने दर्शायाहै कि-(योयावत्कुरुतेकर्मतावत्तस्यतुवेतनं) किंतुजितना जैसाकाम जोजोकोई जितने रोजीनेपर या जितना मासिकलेकर सदाही अन्यत्र कियाकरताहो उसीहिसाबके अनुसार उनकावेतन कल्पितकरना यहाँयोग्यहै-दृष्टांत-जैसे इसठेकेमें दोराज एकबेलदार दोलड़के ईटगारावाले एकमहीना काम करतेरहे थे जो ठेकाउनका पूराहोजाता तौ न जानें उनको आपसके उसबांटमेंसे क्या कुछमिलता

पर अब अनियत वेतन कल्पित करनापरा इस्सेदाताको यहयोग्यहै उन बातोंपरभी ध्यानकरै कि एकराज न्यूनतरछ:रूपया मासिकपायाकरताहै या इनमें एकगुणीहोनेके हेतुसे १०) मासिकयोग्यहै बेलदारभी दोआना रोजीनासे कमनहीं आसक्ता और दोलड़के इसमें एक सिर्फ़एकआना रोजीनायोग्य है द्वितीय डेढ़आनायोग्य तौ इस न्यायसेही अनियत वेतनभी निजदेशस्थानवालीरीतिकी अपेक्षा यद्वा काल विशेष के अनुरूप कल्पितकरिके निपटारा उनकाकरै-सो-यहकथन इसलिये है कि शायद कोईकर्म स्वामी ऐसाआग्रह खड़ाकरनेलगै कि कामपूरा होजानेपरही कुछ वेतनदेना ठहराथा अब देनायोग्य नहीं यद्वाकर्म के प्रत्येकजुदे अंगोंकी समाप्ति होनेमात्र में देदेनेका कुछ नियमनहीं कल्पितहुआथा अब क्योंकरदेवें या सबहीको समान वेतन देवें ऐसाआग्रह शांत कियाहै-परन्तु-जहाँ इन्हींठेकेदार कर्मकरों ने स्वातंत्र्य भावमें कुढंगसे यदिकाम कियाहो जिसकोछोड़ि भागनेपीछे उनके दिवसोंकी कुछ संख्या निश्चितनहोसकै इसका दृष्टांत जैसेचारघंटे किसीदिन करिगये कभी दश दिन पीछे आकर फिर दोचारघंटे कामकिया कभीसबेरे कभीसाँझ कभीदिनमें कभीराति में स्वतंत्र हेतुसे निरन्तर कामनहींकिया इत्यादि बहुधा और जो कुढंग होतेहों तिनका वेतनभी मध्यस्थों द्वाराकल्पित होकर जैसा योग्यसमुझाजाय सो दातव्य है-ये सब नियम असाध्य कामोंके दर्शाये जो विनपूरेकिये छोड़ेजायँ अब संसाध्य कामोंकी अपेक्षालेकर चौथापद कहते हैं कि जो उसकामको उनदोहीने या कैयोंने समापित कियाहो तो फिर जो कुछ पहले ठहराथा सो उतना उसीरीतिसे दातव्य है ऊपरले नियमोंसे कुछ कामनहीं २०१॥

(भारवाहादीनांकृतहानिदानभाटकनियमाः)

अराजदैविकंनष्टंभांडंदाप्यस्तुवाहकः। प्रस्थानाविघ्नकृच्चैवप्रदाप्योद्विगुणांभृतिम् २०२॥
प्रक्रांतेसप्तमंभागंचतुर्थंपथिसंत्यजन्। भृतिमर्धपथेसर्वांप्रदाप्यस्त्याजकोपिच २०३॥

ऐ०—सहद्वयोः-राजदैविक विघ्नोंसे रहित विनष्ट भांडवाहकसे दिलाने योग्य है अ-र्थात् कोई वासनभँड़वा गठरी आदि जो कुछ बोझकिसी कहारबहिंगीवाले बोझैत मुटिहाआदिसे या गाड़ीघोड़ा आदिसे कुछ भाड़ादेकर कहींभेजाजाय और वहलेजाने वाला अपनी बुद्धिहीनता आदि किसीप्रकारसे खोदेवेयद्वा तोड़िफोड़िडाले तो वह चीज़उसकी लागति मूल्यदान आदि विधिकेद्वारा उसीवाहकसे दिलाईजाय पर जो राजदैविकविघ्नोंसे विनाशीगईहो तौफिरवाहक देनदारनहीं-येही नियमनारदआदि औरभी अधिकोक्तिमें दर्शावेंगे-प्रस्थान विघ्नकरनेवाला निस्संदेहदूनी भृतिदिलवाने योग्यहै अर्थात् जहाँविवाहआदि मंगलकार्योंका कुछकाम बाजन बोझसवारी आदि करना अंगीकारकरिके उसकीमुख्य लग्नसाधनआदि वेरापर उत्कर्षासहित प्रतिष्ठमा-

नहोतेहुये नकारखींचकर प्रस्थानमध्ये विघ्नखड़ाकरै ऐसा दुष्टनिस्संदेह उसीभृति से दूना द्रव्य स्वामी को दिलवाने योग्य है कि जितनी उसकी ठहरीहो-क्योंकि उसने अत्यन्त उत्कर्षवाले कामका निरोधकिया-सो-यह दूनी भृतिका प्रतिकार केवल प्रस्थानकेही समय विघ्न करनेपर आरूढ़ नहीं किंतु सर्वत्र ऐसी दशामें संसूचितहै कि जहां जहां तद्वत् कोई और मनुष्यमिलसकना संभव न हो और वह विघ्नकरैक्योंकि अगले वाक्यसे मनुष्य मिलसकने मध्ये जुदा नियम दर्शाते हैं कि २०२ प्रक्रांत होनेमें सातवांभाग मार्ग में त्यागतेहुये चौथाभाग आधे मार्ग जाचुकनेपर सम्पूर्ण भृति दिलानेयोग्यहै और इसीप्रकार त्याजकभी-अर्थात्-इसमें (प्रक्रांत) पद उच्चारण होनेसे दो अर्थ सूचितहोतेहैं एकतौ उसछोड़ेहुये कामयोग्यअन्य मनुष्यकी संप्राप्ति दर्शक अर्थ.दूसरा यह कि प्रक्रांत नाम चलते समय या चलि चुकनेपर जो विघ्नकरै तिसपर यद्यपिदूनी भृति दिलवानेवाला नियम ऊपर निश्चितहुआ तौभी जो तत्काल अन्यमनुष्य प्राप्त होसक्ताहो तौ उस ठहरीहुई मजूरीका सातवांभाग उलटा प्रतिकार उस्से लियाजाय.इसीप्रकार कहींमार्गमें जाचुकनेपर जो छोड़िभागै तिसपर यद्यपि दूनी भृति दिलवानेवाला नियम निश्चितहुआहै परतौभी जो तत्काल अन्य मनुष्य प्राप्त होसकनेवाला स्थलहो तौ उस ठहरीहुई मजूरी से चौथाई तुल्य उलटा प्रतिकार उससे लियाजाय. इसीप्रकार जिसने आधीदूरजाकर कामछोड़ाहो तिसपर यद्यपिदूनीभृति दिलवानेवाला प्रतिकार निश्चितहुआहै परतौभी जो तत्काल उसी स्थलमें भृतांतर.कोई और मनुष्यभी मिलसक्ताहो मनुष्यके उपलक्षणसे सर्वत्रइसमें घोड़ा गाड़ीआदि वाहनभी समुझने तौ उस ठहरी हुई मजूरी केहीतुल्य उलटाप्रतिकार उस्से लियाजाय-और जो इनमें किसीस्थलमें भृतांतरकोई और नमिलसक्ता हो तौ सर्वत्रदूनी भृति दिलवानेवाला नियम जैसा पहलेवाक्यसे दर्शाया सोकर्तव्य है-और-इसीप्रकार त्याजकस्वामीभी दिलवानेयोग्यहै अर्थात् जिसने भारवाहआदि भृत्यको या गाड़ी घोड़ाआदि सवारी कोहीभाड़े करिकै चलतेसमय त्यागाहो तौवह ठहिरेहुये वेतनका सप्तांश उसको देकर छोड़िसक्ताहै-जिसनेकहीं थोरीदूरमार्गमें लेजाकरत्यागाहो तौ उसठहरेहुये भाड़ेसे चौथाईउसको देवै या दिलवायाजाय-जिसने आधेमार्गमें लेजाकरछोड़ाहो ऐसास्वामी उसका ठहिराहुआ वेतन पूरादेवै या दिलवायाजाय जितना मुख्य ठिकानेके पहुँचानेमध्ये ठहिराहो-अर्धमार्गका उपलक्षण इसमें किंचिन्न्यून मार्गतक संसूचित जानो और इस विषयपर उसभारवाहको कुछ अन्यभाड़ेतू मिलसकनेवाला नियम सूचित नहींहै २०३॥

भवि०-सरहयोः-ऊपरला नियम नारदभी स्पष्ट कहते हैं-यथा (भांडंव्यसनमागच्छेद्यदिवाहकदोषतः। दाप्योयत्तत्रनश्येत्तुदैवराजकृतादृते)अर्थात्-भांड कोई बासन

गठरी संदूक आदि ढोनेवाले वाहक पुरुषकेही दोषसे यदि बिगड़े और जो उसमें कोई बस्तु नाशहोय सो दिलवाने योग्यहै पर दैव अथवा राजकेही किये उपद्रवसे जो नाशहुई हो तिसको छोड़िकर यह नियम समुझना-विष्णुरप्येवं (तद्दोषेणयद्विनश्येत्तत्स्वामिनेदेयमन्यत्रदैवोपघातात्) वृद्ध मनुइसमें द्रोहकाभी भेद विशेष कहतेहैं-यथा(प्रमादान्नाशितंदाप्यःसमंद्विर्द्रोहनाशितम्। नतुदाप्योहतंचौरैर्दग्धमूढजलेनवा) अर्थात्-किसीभृत्यके प्रमादनाम गफ़लतआदिसे जो चीज़ नाशहुईहो सो समअर्थात् उतनीही दिलाईजाय जितनी नाशहुई परजो किसीभृत्यने निजस्वामी से कुछ द्रोह मानिकर उनचीज़ोंको पटकनेआदि इच्छारूपसे विगाड़ाहो तो उस नाशहुई बस्तुसे दूनामूल्य उस्से दिलवायाजाय परन्तु जो कुछ चोरोंने हरिलिया यद्वा तोड़फोड़किया हो या अग्निसे जलिगयाहो या जलसे डूबिगयाहो सो दिलवानेयोग्यनहीं-इनवचनों में यहबोझ और बाहक एकनमूनाहै सो इसहीके अनुसार बैल किसानआदिऔरोंको भी समुझिलेना जो जो हानिकरें और अत्रोक्त द्रोहवाला न्याय भीसर्वत्र ऊहाकरना जैसाअवसरहो-योगीश्वरवाले २०२ के पहलेअद्धाकी अधिकोक्तिपूरीहुई-दूसरेअद्धा की अपेक्षामें कात्यायनजी अब कहते हैं(विघ्नंयोवाहकोदाप्यःप्रस्थानेद्विगुणांभृतिम्) अर्थात्-कोई भार वाहक जो प्रस्थान समय विघ्नकरै दूनी भृति उस्से उलटी दिलवाई जाय- इसमें वाहक शब्द नमूनामात्र जानो किंतु उसके उपलक्षण करके और भी आयुधीय नाम सिपाही आदि समुझने जो जो विघ्नकरें-इसीलिये नारदने सामान्यभाव दोषमात्र कहा है कुछ किसी काभी नाम नहीं रक्खा-तद्यथा (द्विगुणांतु भृतिंदाप्यःप्रस्थानेविघ्नमाचरन्) (परन्तु यह सब नियम उसीदशा तक स्वीकार हैं कि जहां भारवाहक आदि कोई भृत्य नीरोगहो किंतु रोगव्याधि खड़ीहोजाने में अपराध उनका नहीं जैसा १९८ की अधिकोक्तिमें मन्वादिवचनों से कहचुके सो सब यहां भी संबंधितजानो) स्वामीभी निज रोगीथके भृत्योंको एकाकीकहीं विदेश में न छोड़े-तदाहकात्यायनः (त्यजेत्पथिसहायंयःश्रांतंरोगार्तमेववा। प्राप्नुयात्साहसंपूर्वंग्रामेत्र्यहमपालयन्) अर्थात्-जो कोई कहीं मार्गमें सहायक अपने रोगी यद्वाथके को एकला छोड़िदे किन्तु तीन दिनतक वस्तीमें रहकर नहीं पाले तो वह पूर्व साहसदंडपावे योगीश्वरने जो इसी २०३ वाले मूल वाक्यसे भाड़ैतू कोभी वाहक छोड़िदेने में कुछ देना कहा तिसके मध्ये नारदजी अब कहतेहैं-यथा (अनयन्भाटयित्वातुभांडवान्यानवाहनम्। दाप्योभृतिचतुर्भागंसर्वामर्धपथेत्यजन्) अर्थात्-यदि कोई (भांडवान्) भाड़ैतू स्वामी किसी (यान) गाड़ी आदिको या(वाहन)घोड़ा आदि कोभाड़ेपर ठहराकर नहीं लेताहुआ ठहरेहुये भाड़ेका चौथाई भाग भारवाहोंको दिलाने योग्यहै या आधीदूर तक लेजाकर छोड़े तो वह पूरा वेतन दिलवाने योग्य है

कि जितना उसपर देना ठहराहो-इसमें भी योगीश्वरकेही तुल्य तीनोंरूप समुझना किंतु अवयव शक्तिके अनुकूल वहीन्याय इसमेंसम्भव है-कदाचित्-कोई भाड़ैतू स्वामी अपना भांड माल कहीं बीचमें भी बेंच देनेके हेतुसे शकटादि यान वा अश्वादि वाहन छोड़िदेय तिसका नियम वृद्धमनु कहते हैं-यथा (पथिविक्रीयतद्भांडंवणिग्भृत्यंत्यजेद्यदि । अथतस्यापिदेयंस्याद्भृतेरर्द्धंलभेतसः) अर्थात्-जो कोई वणिक् व्यापारी कहीं मार्गमें निज मालबेंचिकर पहुँचानेवाले भृत्यको जब त्यागै तभी उतनी दूरतक जो भाड़ा उसका लेखे जोखे से निकलताहो सोभी देवै और उस मुख्य ठिकानेतक पहुँचाने मध्ये जो कुछ भृति ठहिरीहो तिसका आधा फिरताभी वह पूरा पावै-परन्तु-जहां भांड माल कहीं मार्ग में चौरादि करके हराजाय या राजादि करके रोकाजाय तिसका नियम और है-तदाहकात्यायनः (यदाचपथितद्भांडमारुद्ध्येत ह्रियेतवा । यावानध्वागतस्तेन प्राप्नुयात्तावतोधनम्)अर्थात्-जब उस भांडकामाल कहीं रोकाजाय या हरलियाजाय तब जितने मार्गतक वह गयाहो उतना भाड़ा पावै किंतु अधिक नहीं (अथगृहपात्रयानादीनामवर्तनेपितद्भाटकंदेयं) जब कोई भाड़ा ठहराकर उसको कार्य में न लावै तौ भी भाड़ा देय है-तदाहबृहन्मनुः (योभाटयित्वाशकटं नीत्वावान्यत्रगच्छति । भाटंनदद्याद्दाप्यःस्या दनूढस्यापिभाटकम्) अर्थात्-जो कोई गाड़ी आदिको भाड़े ठहराकर यद्वा साथ लेकर कहींजाताहै उसगाड़ीको वर्तावे में वह लावै या न लावै पर यदि भाड़ा नहीं देवै तौ वर्तावे में न लाने के भी दिवसोंका भाड़ा उस्से दिलवायाजाय कोई भाड़े की चीज़ जबतक स्वामीको न सौंपी जाय उसकाभाड़ा देनाहोगा-यथाहकात्यायनः (हस्त्यश्वगोखरोष्ट्रादीनूगृहीत्वाभाटकेनयः । नार्पयेत्कृतकृत्यःसंस्तावद्दाप्यःसभाटकम् ॥ गृहवार्यापणादीनिगृहीत्वाभाटकेनयः । स्वामिनेनार्पयेद्यावत्तावद्दाप्यःसभाटकम्) अर्थात्-हाथी घोड़ा बैल गर्दभ ऊँट आदि वाहन भाड़े लेकर अपना काम निपटे पीछेभी जो स्वामीको न सौंपै तावत्काल काभी भाटक वह दिलवाने योग्यहै-जो कोई घर स्थान जलके पात्र और दूकान आदि चीज़ें भाड़े लेकर जबतक स्वामीको न सौंपैतबतक भाटक वह दिलवाने योग्यहै (अथपरभूमिवासभाटकनियमाः) तदाहनारदः(परभूमौगृहंकृत्वास्तोमंदत्वावसेत्तुयः । सतद्गृहीत्वानिर्गच्छेत्तृणकाष्ठेष्टकादिकम्) अर्थात्-जो पराई धरतीमें स्वकीय लागतिसे घर करके कुछ (स्तोम) किंतु भाड़ा देकर बसै सो जब निकसै तब उस फूस लकड़ी ईंट आदि लगाई हुई चीजोंको लेजाय कोई रोकन हारा नहीं-जो भाड़े विना बनाकर बसै तिसका नियम और है-तदप्याहनारदः (स्तोमाद्विनावासयित्वातुपरभूमावनिश्चितः । निर्गच्छंस्तृणकाष्ठानिनगृह्णीयात्कथंचन ॥ यान्यवदत्तकाष्ठानिरिष्टकाद्यानिवेशिताः । विनिर्गच्छंस्तुनत्सर्वंभूमिस्वामिनिवेदयेत्) अर्थात्

भाड़े बिना पराईधरतीमें अनिश्चित बसकर अपनी इच्छासेनिकलतेहुये फूसलकड़ी आदि कैसेहू न लेवै-किन्तु-जो कुछ फूस लकड़ी यद्वा ईंटैंभी लगाईहों सो सब भूमि स्वामी कोदेदेवै पर उसदशा में कि जो कुछ पहले निश्चय न करलियाहो किंतुजिसने पहले कोईचीज़ या सब चीज़ें अपनीलेजाना निश्चितकरिकै बासकिया हो सो उस निश्चयके अनुसारकरै-भाड़ेआई चीज़ोंके नुक्सान मध्ये नारदजी कुछकहते हैं-यथा (स्तोमवाहीनिभांडानिपूर्णकालान्युपानयेत्। गृहीतुराभवेद्भग्नंनष्टंचान्यत्रसंप्लवात्) अर्थात्-भाड़े चलनेवाले पात्र कलशाकराह टोकना आदि जो लेजावेतिनको तद्रूप स्वामीपासउतनेकालमें पहुँचादेवै जितना कहकर लियेहों-फूटिजावै सो लेजानेवाले का होय किंतुउसहीको जुड़वाकर देना परै यद्वा नष्टनाम निपट निकम्मा यदिहोजाय सोभीउसेबनाकरदेना परै परन्तु संप्लवसे अन्यत्र देनापरै किंतु यहांसंप्लव नाम पात्रों का संघर्षजो बर्तावे द्वाराछीजे घिसै सो भाड़ेतूको नदेना परै-इसका यहभावार्थहै कि छीजरगड़ के सिवाय जो उनपात्रोंको पटकने आदिसे कुछ तोड़ा फोड़ाहो यद्वा निपट निकम्मा कियाहो सो सब देनापरै (अथवेश्याभाटकनियमाः) यथाहनारदः(शुल्कंगृहीत्वापण्यस्त्रीनेच्छंतीद्विगुणंवहेत्। अनिच्छन्दत्तशुल्कोपिशुल्कहानिमवाप्नुयात्) अर्थात्-पण्यस्त्री वेश्या अपनाशुल्क भाड़ालेकर उसभाड़ेतू से फिर इच्छानहीं करती हुई दूना शुल्कवापिस करै-परवह भाटी देनेवाला भी यदि इच्छानहीं करै तौ निजदिया हुआ शुल्क वापिस नहींपावै-कदाचित्-एकसे जो भाटीलेकर और किहांचलीजाय तिसपर दंडभी संसूचितहै-तथाहि (गृहीत्वावेतनंवेश्यालोभादन्यत्रगच्छति। तांदमं दापयेद्दद्यादितरस्यचभाटकम्) अर्थात्-जो वेश्या पहले वेतनलेकर लोभहेतुसे अन्यत्र कहीं जाय तिसपर दंडभी दिलवाया जाय और उसपहले शुल्कदाताकादिया हुआ भाटकभी फिरवाया जाय-यहां केवल भाड़े के प्रसंग से संक्षेप कहा गया किंतु इसका अधिकब्यौरा आगेबढ़कर (स्त्रीसंग्रहण) संज्ञक प्रकरणमें २९६ तथा २९७ मूलश्लोकोंकी अधिकोक्तिमें सब देखो (अथसर्वसामान्यभृतानां कर्मवेतनात्मकनियमाः)— सेवा धर्मकेप्रकरणमें जो दासछोड़ि शेष चारभाँति कर्मकरों की दर्शाईगई तिनमें शिष्य तथा अंतेवासी इन दोका कर्म धर्म सब तत्रैव वर्णनहुआथा अवशेष उनमें भृतक और अधिकर्मकृत् इन दोका ब्यौरा यहाँकहते हैं कि इनकेलिये नतो प्रायः जातिकृत विशेष है न वृत्तिकृत विशेष है कि अमुकजाति अमुकवृत्तिसेही भृतकबनै यद्वा अमुकजातिकाही भृतकबनै-परंच इनकेलिये भृतिकृत विशेष तथा कर्मकृत विशेष तथा कालकृत विशेष हुआकरता है कि इतनी भृति अमुकामुक ढँगसे पावेगा और अमुकामुक इतनाकर्म करनाहोगा या इतनेकालतक उपस्थित रहना होगा— यह सबरीति बृहस्पतिजी दर्शाते हैं-यथा(योभुंक्तेपरदासींतुसज्ञेयोवनिताभृतः। कर्म

तत्स्वामिनःकुर्याद्यथाऽन्योऽर्थभृतोनरः ॥ बहुधार्थकृतःप्रोक्तस्तथाभागभृतोऽपरः। हीनमध्योत्तमत्वंचसर्वेषामेवचोदितम् ॥ दिनमासार्द्धषण्मासत्रिमासाब्दभृतस्तथा। कर्मकुर्यात्प्रतिज्ञातंलभतेपरिभाषितम् ॥ द्विप्रकारोभागभृतःकृषिगोबीजिनांस्मृतः। जातसस्यात्तथाक्षीरात्सलभेतनसंशयः ॥ आयुधीतूत्तमःप्रोक्तोमध्यमस्तुकृषीवलः। भारवाहोऽधमःप्रोक्तस्तथाचगृहकर्मकृत्) अर्थात्-जो पराई दासीको भोगै और उसदासीके स्वामीकाकाम अपनी भृतिकेपलटेकरताहो सो बनिता भृतसंज्ञक चाकर उसीसमान जानो जैसे औरचाकर अर्थभृत अर्थात् द्रव्यलेकर कामकरतेहों-आश-यइसका यह कि ऐसाचाकर जो तनख्वाहमध्येनालिशकरै यद्वास्वामी उसपरदासीके भोगमध्ये कुछअपराध लगावै यद्वाकामकरनेमें तकरार हो तब यहन्याय राजानिर्णय करैजोकुछ कहा (अर्थभृत)चाकर जो कुछ अर्थलेकर कामकरै तिसका अर्थकृत विशेष बहुधाभांतिका विख्यातहै कुछ एकसाहीनहीं क्योंकिभृतिका द्रव्यकिसीकोथोड़ा किसी कोघना किसीको मध्यम संख्यासे और किसीकोकुछ अन्यप्रकारसे अनेकधारीतों करकेमिलताहै सोयेहीबातैं उनकेअर्थकृत विशेषमध्ये गिनती हैं-तद्वत् और दूसरे (भागभृत)भी चाकरहोतेहैं जो किसीपैदावारीमेंसे निश्चितभागपाया करतेहैं औरचाहे भागभृत या अर्थभृतहों उनमें उत्तम मध्यमहीन भृतकसबतरह सबमें होतेहैं भृतिमि-लनेके नियम उनमें किसीका तौ प्रतिदिन रोजीनावेतन-किसीकापखवारा या मासिक या तिमाही या छमाही जहां जैसीभाषा ठहिरीहो और तथाकहियेतैसेही (च)शब्दके भावार्थसे बरसौड़ीतक भी होतीहै-जो अपना प्रतिज्ञातकर्म कियेजावे सो परिभाषित भृति को पाताहै अर्थात् इतनेकालतकमैं इतना अमुककाम कियाकरौंगा इसभाँति की प्रतिज्ञासे स्वीकारकिये कामको निर्विघ्न कियेजावे वही नौकर उस परिभाषित भृति को पाताहै कि जैसी भाषा ठहरीहो-भागभृत जो नौकर कहेगये वे दोभाँतिके कहाते किन्तु एकखेतीवाले तद्वत् एक गोबीजीलोगोंमें जो गौयें बहुत पालिकर उन गौओं केहीबच्चा दूध आदिसे व्यापार अपना रखतेहैं-यह दोनों उसी पैदाहुये अन्न भूसा आदि खेतीके फलमेंसे और बछरादूधआदि गौओंके फलमें से परिभाषितभाग पाते हैं कि जितना उनको ठहराहो इसमें संशय नहीं-बहुधा भाँतिके भृतकों में कदाचित् उत्तमता मध्यमता की अपेक्षासे कुछ तर्क वितर्क झगड़ाहोय तिसका निर्णय कहते हैं कि-उत्तम नौकर सिर्फ़ (आयुधी) लोग जो शस्त्रादि बन्धन कर्मकी भृति पावें सो विख्यातहै फिर चाहे काम कोईसा वह करै-और मध्यम नौकर वह कि जो (कृषीवल) किन्तु खेती आदि पैदाकरनेकी भृति पावे काम चाहे तैसा करै-अधम किन्तु हीन भृतक वह कहलाता जो कुछ भारवाही वाला कामकरनेकी भृति पावै चाहे शस्त्र भी फिर बाँधे तोभी आयुधीयमें वह गिनती नहीं-तैसेही जो घरके कामधंधे करनेका

नौकरहो तिसको जानो-इन्हीं तीनचार भेदोंके उपलक्षणमें सब सामान्य नौकरमात्र समुझेजाते हैं दृष्टांत जैसे एक आयुधीकी उत्तमता प्रकट करनेसे धनाध्यक्ष कलमा कर्षक आदिभी सब समुझेजाते हैं १ कृषीवलकी मध्यमता प्रकट करने से भांडारी आदि औरभी अन्नादि द्रव्यों के अधिकारी आदि समुझेजाते हैं २ भारवाह किन्तु मुटिहा बोझैतकी हीनता प्रकट करनेसे उसभाँतिके अनेक मेहनती मज़दूर घरामी गाड़ीवान् कूपखनक आदिसभी समुझेजाते हैं और इन्हींमेंसे चौथाभेद गृहकर्मकृत् के उपलक्षणमें मशालची फर्राश ख़िदमतगार आदिसभी समुझेजाते हैं ३-यह उत्तमता मध्यमता जैसी कहीगई सो कुछ थोड़ीघनी भृतिके ऊपरनहीं किंतु केवलकर्मकेही आश्रयभूत जानो (दृष्टांत) जैसे भारवाह एकदिनमें एकरूप्यतक पासक्ताहो वही रूप्य एक आयुधी आठदिन में पावै तौभी भारवाह उसके सन्मुखहीन है इत्यादि और सब को जानो-परन्तु-इन्हीं तीनों भेदके प्रत्येक भेदमें फिर तीनतीन भेद उनके आपसमें भी होते हैं और वेतीनों निःसंदेह उत्तम मध्यम कनिष्ठ उनकी न्यूनाधिक भृति के अनुकूल मानेजाते हैं और न्यूनाधिक भृतिका मिलना उनकी शक्ति भक्तियोंके अनुरूप सदाहोता है-तदाहनारदः (भृतकस्त्रिविधोज्ञेयउत्तमोमध्यमोऽधमः। शक्तिभक्त्यानुरूपास्यादेषांकर्माश्रयाभृतिः) अर्थात्-भृतक प्रत्येक निज निज भेदोंमें परस्पर तीन भाँतिकासमुझना किन्तु उत्तम मध्यम हीन-इनकी भृति उस मुख्यकर्मकेही आश्रय भूत शक्तिनाम समर्थ जैसा कुछ उत्तमता या मध्यमतासे उसकामको करसक्ताहो और भक्तिनाम सेवा आराधन तत्परता अभियुक्ति रचना परत्व किन्तु निरंतर मनोवृत्तिको समर्पण करिकै उसमें लगारहना यही भक्तिका स्वरूपहै सो जिसमें जैसी घनी थोड़ी भक्तिहो तैसी उसकी भक्ति शक्ति दोनों के अनुसार मासिक आदि भृति भी कल्पित करीजाय-परंच मुख्य कर्मकेही आश्रयभूत कल्पित करीजाय इसका यह दृष्टान्तहै कि एककाम इतना उत्कृष्ट जिसमें परमशक्ति भक्तिसे संयुक्त भृतक पाँच रूप्य रोजीना तक पासक्ताहै. और एकमध्यमकाम जिसमें परमशक्ति भक्तिवाला एकरूप्यरोजीनासे अधिक नहींपासक्ताहै और भीतर इसके अनेक भाँति निज निज शक्ति भक्तिके अनुसार कल्पित होंगी. एक निकृष्टकाम जिसमें परमशक्ति भक्तिसे संयुक्त होने परभी।) चारकलासे उपरान्त कोई रोजीना नहीं पासक्ता आगे जैसी जिसकी शक्ति भक्ति मंदहोगी तैसी न्यून भृतिके योग्य-ये निर्णय ऐसे अवसर काम आते हैं कि जहाँ कोई कुछ न्यूनाधिक तनख्वाहमध्ये झगड़ा रोपै-यह सब सामान्य भृतकोंके वृत्तान्त पूरेहुये-अब-अधिकर्मकृत्कारूप नारद कहते हैं-यथा(अर्थेष्वधिकृतायःस्यात्कुटुंबस्यतथोपरि । सोऽधिकर्मकृतोज्ञेयःसचकौटुंविकःस्मृतः)-अर्थात्-जो कोई श्रेष्ठ भृतक अपने स्वामीकरके (मर्थों) पर अध्यक्ष बनायाजाय सो (मधिकर्मकृत)

कहलाताहै तथैव जो (कुटुम्ब) परअध्यक्ष बनायाजाय सोभी एकदूसरीभाँतिका अधिकर्मकृत् कौटुम्बिक नामकहाताहै-अर्थोपर इसकथनसे जो अर्थ अनेकभाँतिके सब लोक प्रसिद्धहैं कि सोना चाँदी आदि खानि या टकसाल या व्यापार ग्रामक्षेत्रआदि जोकुछअर्थ प्रयोजन सिद्धकरनाहो तिसपर अन्यभृतकोंकी अपेक्षा जो विश्वासपात्र होनेसे या कर्मशक्तिमान् अधिक होनेसे अधिष्ठातारूप नियुक्त कियाजाय सो अधिकर्मकृत् कहलावै और याहीभाँति(कुटुम्ब)पर अर्थात् सिर्फ़ पोष्यवर्ग सिपाही आदि अनेक भृतकोंपर अध्यक्ष बनायाजाय सोकौटुम्बिक जमादार आदि संज्ञासे विख्यात होताहैदूसराअर्थ यहभीहै कि जहाँ किसी कुटुम्बीके कुटुम्बपर नियन्ता उसकारक्षण पालनआदिकरनेकेहेतुसेद्रव्यादि व्ययकारीनियत कियाजाय तहाँभी कौटुम्बिक अधिकर्मकृत्कहलावै (अत्रस्वामिदोपस्वरूपम्)यथाहबृहस्पतिः (प्रभुणाविनियुक्तःसन्भृतको विदधातियः। तदर्थमशुभङ्कर्मस्वामीतत्रापराध्नुयात् ॥ कृतेकर्मणियःस्वामीनदद्याद्वेतनंभृते। राज्ञादापयितव्यःस्याद्वेतनञ्चानुरूपतः)अर्थात्-जोकोई भृतक अपनेप्रभुकी आज्ञासे विनियुक्त समुद्यतहोते उसके अर्थ जोकुछ खोंटाकर्मकरै तिसमें स्वामीपर अपराधरक्खाजाय जोकोईस्वामी आज्ञाके अनुसार कामकरने परभी भृतको वेतन नहींदेवै तौ यहवेतन राजाको दिलवानाहोय परउसकर्मकेही तुल्य उसकीशक्तिभक्तिके अनुरूपसे दिलवायाजाय जैसा ऊपर वर्णनहुआ २०२। २०३॥

इतिवेतनादानप्रकरणम्

वेतन अनपाकर्म नामका यह प्रकरण एकइसी ७४ चौहत्तरि संख्याके परिच्छेद से समाप्तहुआ॥

अथद्यूतसमाह्वयाख्यव्यवहारपदविवेकोनामपंचसप्ततितमःपरिच्छेदः ७५॥

इस पचहत्तरि संख्याके परिच्छेद में द्यूत और समाह्वय इनदो नामोंवाले द्यूत कर्मोंका प्रकार जानाजायगा और वहीजुआरी धूर्त लोगोंका स्वाभाविकधर्महै॥

द्यूत समाह्वयकाजो प्रकरण यहाँ निरूपितहोगा तिसकोदेखि सुनिकर कोई यह न समुझैकिंतुयहभी एकधर्महोगा-क्योंकि जिसकी मर्यादैं शास्त्रगम्यहैं तिसकामके आचरणोंकीभी आज्ञाहोगी सो निर्मूलहै (दृष्टांत)जैसे वेश्यागामी पुरुषोंकी अपेक्षालेकर वेश्याभाटक दानादानकेभी नियम कल्पितहुये तौ उसबातसे यहआग्रह नहींबढ़ाहै सक्ताहै कि वेश्यागमन करनेकीभी आज्ञाहै-कदाचित् कोईकितव सहायक इसमेंगम तर्क उपस्थितकरै कि वेश्याभाटक नियमोंके अतिदेशकरके सिर्फ़ जुआरी लोगोंकेहै आज्ञाहोगी सो यहतर्कभी निर्मूलहै क्योंकि द्यूतकारी लोग निःसंदेह चोर प्रसिद्धहैं इसबात का सिद्धांत पीछे वर्णन होगा-और उसद्यूतकी मर्यादों का निरूपण होना इसी अपेक्षासे कि जब तक अध्यारोप न होय तबतक अपवादकाभी रूपसिद्धनहीं

होसक्ता इस्से अध्यारोपकरना आवश्यक ठहरा-द्यूत १ समाह्वय २ दोनोंकास्वरूप नारदने दर्शायाहै-यथा(अक्षबध्नशलाकाद्यैर्देवनंजिह्मकारितम् । पणक्रीडावयोभिश्च पदंद्यूतसमाह्वयम्)अर्थात् (अक्ष)नामपाशे (बध्न)नाम चमड़ेकी पट्टियां (शलाका)जो हाथीदांत आदिसे बनीहुई लंबी चौकोर खेलनेकी होतीहैं आदि शब्दके आशयसे और भी अनेक भांतिसे दृष्टांत जैसे चौपरि आदि जिसमें हाथी घोड़ा आदि भी कल्पितहोतेहैं इत्यादि चिह्नोंसे पणबदिकर (जिह्म) कुटिल मंदलोगोंका करायाहुआ खेलजीति हारिकीअपेक्षा से यह द्यूतकर्म कहाताहै-और जो साक्षात्कार प्राणियोंसे अर्थात् मुरगा मेढ़ा बुलबुल घोड़ा आदि या कुश्तीबाज पटेबाज आदि मनुष्यों से-हीपण बदिकर क्रीड़ाहोती है सो समाह्वय नामकहाताहै-इनमें जो कुछ विवादखड़ा होय तौ इसनामका विवादपद कहलावै-तथाचमनुः(अप्राणिभिर्यात्क्रियतेतल्लोकेद्यूतमुच्यते । प्राणिभिःक्रियमाणस्तुसविज्ञेयःसमाह्वयः) ऐसाद्यूतकर्म करनेवाला अधिष्ठाता जो कुछ अपनाहक्क लेतादेता हो तिसको योगीश्वरप्रकट करतेहैं ॥

ग्लहेशतिकवृद्धेस्तुसभिकःपंचकंशतम् । गृह्णीयाद्धूर्तकितवादितराद्दशकंशतम् २०४॥
ससम्यक्पालितोदद्याद्राज्ञेभागंयथाकृतम् । जितमुद्ग्राहयेज्जेत्रेदद्यात्सत्यंवचःक्षमी २०५॥

ऐ०-(धूर्तकितव) खिलाड़ी से (ग्लह) नाम एकदाव चाहै जितना लगाहो तिसमें शतिक वृद्धिवालेसे अर्थात् जिसकी जीति पूरेएक सौकी या इससे अधिक चाहे तितनीहो तिससे पांचरुपया सैकराके हिसाबसे वह (सभिक)अखाड़ेवाला अपना हक्क लेवै किन्तु जीतेहुये धनमेंसे प्रत्येक दावपीछे हक्क बीसवां अंशलेताहै (और) इतरसे कि जिसकी जीति सौसे नीचीहो दशवांभाग लेय इससे अधिकनहीं २०४ वह अखाड़े वाला जो राजाकरके अच्छीभाँति रक्षा कियागयाहो तौ उस अपने लाभमें से राजकोभी भागदेवै जो कुछदेना ठहराहो और यहभी उसकाकाम है कि जीताहुआ द्रव्य जीतनेवाले को हारनेवालेसे निकालकर दिलवावै और आप क्षमायुक्त होकर खिलाड़ियोंके विश्वास निमित्त उनको सत्य वचनदेवै किन्तु जैसा पहलेकहै तैसाही आचरणकरै दंगाबाजी उनके साथ न करै २०५॥

अधि०-नारदकथनं (सभिकःकारयेद्द्यूतंदेयंदद्याच्चतत्कृतम् । दशकंतुशतंवृद्धेस्ततःस्याद्द्यूतकारिता ॥ अथवाकितवोराज्ञेदत्त्वालाभंयथोदितम् ।प्रकाशंदेवनंकुर्यादेवंदोषोनविद्यते)अर्थात्-सभिक अखाड़ेवाला जो द्यूत कर्मकरावे तौ वह उसके निमित्त कियाहुआ राजकरभी देवे तथा खिलाड़ी लोगोंके लाभमें से आपदशांशलेवै-इसमें जो सामान्यभाव नारदने सर्वत्र दशवांभाग लेनाकहा सो प्रत्येक दावपीछे नहीं समुझना किंतु सबसे पीछे हारिजीतिका निपटारा होचुकनेपर यह लेना कहा-योगीश्वरने दो भेदकियेथे सो प्रत्येक दावपीछे इस्से यह वह दोनोंही तुल्यात्मक जानो-

अथवा विना अखाड़ेबाज़के खिलाड़ीलोग अपने आप जो कुछ देना ठहिरावैं सो निज लाभमेंसे राजाको देकर प्रत्यक्ष होकरखेलैं तौ कुछ दोषनहीं-बृहस्पतिस्तु(सभिकोग्राहकस्तत्रदद्याज्जेत्रेनृपायवा) अर्थात्-उस अखाड़े बन्धखेलमें सभिकजोहै सोई सबसे ग्राहकहै अर्थात वही हारेहुयोंसे लेकर जीतिवालेको देदेवै तथा राजाको भागभी वह अपने लाभमें से देवै-जोकि-द्यूत सभापतिको अन्य खिलाड़ियोंसे दशांश या बीसवांभाग लेनाकहा तिसके पलटेजीतिवाले का धनदिलवाना उसपर यहांतक आवश्यकहै कि अपने पाससे भी देय-तथाचकात्यायनः (जेतुर्दद्यात्स्वकंद्रव्यंजितंग्राह्यंत्रिपक्षिकम् । सद्योवाकितवेनैवसभिकात्तुनसंशयः) अर्थात्-जो कदाचित् हारेहुये के पास कुछतत्काल देनेयोग्य नहो तौ जीतनेवालेको वह सभिक अपना द्रव्य उसके पलटे देकर हारेहुयेसे तीनपक्षतक भी लेतारहै यद्वा उसीसमय लेवैपर उसजीते हुये खिलाड़ीका दावा उसीसभिकपर आरूढ़है जो ना लखाताहो इसमें संशयनहीं-कदाचित् सभिक उस्से दिलवाने में असमर्थ हो तब राजाको दिलवाना योग्यहै यह याज्ञवल्क्यजी दर्शाते हैं २०४ । २०५ ॥

प्राप्तेनृपतिनाभागेप्रसिद्धेधूर्तमंडले । जितंससभिकेस्थानेदापयेदन्यथानतु २०६ ॥

द्रष्टारोव्यवहाराणांसाक्षिणश्चतएवहि । राज्ञासचिह्नंनिर्वास्याःकूटाक्षोपधिदेविनः २०७॥

ऐ०—धूर्तमंडल द्यूतकर्मका अखाड़ा जो प्रसिद्धहो किंतु छिपानहो और नृपतिने भी राजभाग जिस्सेपाया हो ऐसे सभिकयुक्त स्थानमें जो किसीने कुछजीता हो तौ यह जीतिराजा दिलवावै परअन्यथानहीं अर्थात् जहाँ छिपेहुये अखाड़ेमें या सभिकहीन अखाड़ेमें या जिसने राजभाग नहींदियाहो ऐसे किसीमंडलमें जो जीति हुई हो तौ यहराजा नहीं दिलावै २०६ जहाँराजा दिलवानेका उद्योगबाँधै और यह निश्चित न होसकै कि इसकी जीतिझूठी अथवासच्चीहै तब उनके व्यवहार निर्णय करनेको वेहीलोग सभासद निर्णेता नियतकरै जो उस धूर्तमंडलके सभापति या खिलाड़ीहों किंतु इसकेलिये वैसानियम नहीं समुझना जैसा महत्प्रयोजनों के निमित्त वर्णनहुआथा कि (श्रुताध्ययनसंपन्ना धर्मज्ञाःसत्यवादिन इत्यादि)और वेही लोग साक्षी नियतकरै जो उसमंडलमें खिलाड़ीहों अर्थात् यहाँ वह प्रतिषेध योग्य नहींहै जो महत्प्रयोजनोंकी गवाहीमध्ये लिखाथा कि (स्त्री बालक वृद्धा जुआरी आदिनहीं) और वैसे लोग राजाको अँकवाइ कर निकासिदेने योग्यहैं जो छलके फाँसे आदि कूट प्रकार या कुछ टोना जादू आदि बुद्धि विनाशक हेतु उपाधिसे छल खेल करतेहों २०७ ॥

भा०—राजाकी आज्ञा विना द्यूतकर्मका प्रतिषेध नारद कहतेहैं-यथा(अनिर्दिष्टनृपोराज्ञ द्यूतंकुर्वंतिमानवः । नसतंप्राप्नुयात्कामांविनयंचैवसोर्हति) अर्थात्-जो कोई

राजाकी आज्ञाविना द्यूतकर्म करता है सो अपने मुख्यकामको संसिद्ध न करने पावै और वह राजदंडकेभी योग्यहै २०६ विष्णुभी इस निर्णयमध्ये उन्हींलोगोंका साक्षित्व प्रकट करते हैं-यथा(कितवेष्वेवतिष्ठेरन्कितवाःसंशयंप्रति। यएवतत्रद्रष्टारस्तएवैषान्तुसाक्षिणः) कदाचित् साक्षियोंमें परस्पर विरोधहो तिसकेलिये बृहस्पति कहते हैं-यथा(उभयोरपिसंदिग्धौकितवाःस्युःपरीक्षकाः।यदाविद्वेषिणस्तेतुतदाराजाविचारयेत्) अर्थात्-जहाँ दोनोंकी हारिजीतिमें संदेह खड़ाहोय तहाँ जो उपरालू कितव देखनेवालेहों वेहीउनको भाँपेंपर जो वे उपरालू भाँपकरनेवाले कुछ विद्वेषी होकरसत्य न बोलैं तत्पश्चात् राजा आप निर्णयकरै जैसीरीतिसे होसक्ता हो-कदाचित् ऐसा झगड़ा खड़ाहोय कि दावबदा अथवा नहीं बदा तिसके मध्ये नारद कहते हैं-यथा-(परिहासकृतंयच्चयच्चाप्यविदितंनृपे। तत्रापिनाप्नुयात्काममथवानुमतंतयोः) अर्थात्-किसीने जो हासी ठट्ठाकीरीतिसे कुछ दावबोलि दियाहो या राजापर जो अविदित रहे ऐसादाव झूंठाहै इसदावका जीतनेवाला पानेका अधिकारी नहीं परवहबात द्वितीयहै जो दोनोंके परस्पर अनुमति सहितसच्चा मानि लियाजाय परिहास कृतदाव का यहरूप है कि बहुधालोग मनबहिलानेके निमित्त चौपरि गंजीफा आदि खेला करतेहैं और उसमें केवल मुहकी हारिजीति मानीजाती है कि दो या तीनि आदि बाज़ी उसपर अमुक पुरुष जीता किंतु देनेलेनेका व्यवहार उसमेंनहींहै इस खेलमें कदाचित् कोई हास्यरीतिसे कहिउठै कि अबकीबाजी जो न जीतौं तौ यहमाला तुमसे हारिजाउँ ऐसा कहनेपर कदाचित् बाजीहारिगया या जीता जिस्से प्रतिपक्षी पर उसमालाके समान द्रव्यदेना सिद्धहोताहो तौ इसभाँतिके परिहासग्लहका कोई दावानहीं करसक्ता क्योंकि वाग्विनोदका यहढंगहै-परिहासकृतका एक औरभी उपलक्षणहै कि जहाँसच्चा द्यूतकर्महोताहो तहाँ देखनेवालेभी परस्पर खड़ेहुये सच्चीरीतिसे उपद्यूत खेलाकरते हैं अर्थात् मुख्य खेलनेवालोंकी हारिजीतिके अनुसार वे भी अपनी हारिजीति कल्पित करिलेतेहैं और बदाहुआ दावजैसे वे लोग देतेलेते तैसे येभी अपने आपसमें सबदेतेलेतेहैं परइनमें विरलेमौख्र्यभावसे कदाचित् अनपेक्षित हासीकीरीतिसे कुछ दावमुहसे कहिडारैं तौ यहदाव हास्यकृत कहिलावै किंतुदावा इसका सिद्धनहीं होसक्ता-अथवा दोनोंका अनुमत पहले पकाहुआहोकि तुम हमदोनों मिलकर उपद्यूत यहाँ खेलैं तौ यहबात दूसरीहै अर्थात्सच्ची समुझीजाय और यही इसमें हास्यकृतकी पहिंचानिहै कि पहले अनुमत पक्का कियेविना जो उच्चारण किया हो सो परिहासमात्र जानो कूटद्यूत करनेवालोंको निकासि देना दंडनारदभी दर्शाते हैं-यथा (कूटाक्षदेविनःपापान्राजाराष्ट्राद्विवासयेत्। कंठेऽक्षमालामासज्य सह्येषांविनयःस्मृतः) अर्थात्-छलके पाशेआदिसे (देविनः) किंतु खेलनेवालोंको राजाराज्यसे

निकासि दे ऐसे चिह्नोंसे अँकवाइकर कि उन्हीं पाँशोंकीमाला उनकेकंठमें सजाई जाय-विष्णु इसीदंडमें विशेषता प्रकट करते हैं-यथा(द्यूतेकूटाक्षदेविनांकरच्छेदः उपधिदेविनांनासाच्छेदः) २०७॥

द्यूतमेकमुखंकार्यंतस्करज्ञानकारणात्। एषएवविधिर्ज्ञेयःप्राणिद्यूतेसमाह्वये २०८॥

ऐ०—कदाचित् राजा द्यूतकर्म किसी परमहेतुसे करावैतौभी चोरोंके परिज्ञान हेतु करके एकमुख अर्थात् मुखरूप कोई एक प्रधान बनै जिसका बलिक राजाके अध्यक्ष भी अधिष्ठित कियेजायँ ऐसे ढंगसे करावे क्योंकि प्रायः कितव जुआरी लोगचोरी का धनलाकर द्यूतकरते हैं उसअवसर में उनचोरों का भी भेदजाना जासक्ता है जे कोई उनमेंहों-यहीविधि जो कुछ ऊपरकहीगई सो सर्वथा प्राणिद्यूतमेंभी जानोजिसे समाह्वय नाम कहते हैं २०८॥

अधि०—समाह्वय नामक प्राणिद्यूत मध्ये इतनी और विशेषता है कि उनप्राणियों के पलटेउनके स्वामी हारिजीति के अधिकारी होते हैं-तदाहबृहस्पतिः(द्वंद्वयुद्धेनयः कश्चिदवसादमवाप्नुयात्। तत्स्वामिनापणोदेयोयस्त्वत्रपरिकल्पितः)अर्थात्-द्वंद्वयुद्ध जैसे दो मेढ़ा या दो मुरगे किन्हीं दो पुरुषोंने लड़ाये यद्वा घोड़ा हाथीही घुड़दौर की रीतिसे दौड़ाये या रथगाड़ी आदि तौउन दोमेंसे जो कोईएकहारै तिसके पालयिता स्वामीको पणदेनाहोय जो इस द्वंद्वयुद्धकी पराजय में परिभाषित हुआ हो (अथास्यनिषेधप्रसंगः)-तत्रबृहस्पतिः (द्यूतंनिषिद्धंमनुनासत्यशौचधनापहम्। अभ्यनुज्ञातमन्यैस्तुराजभागसमन्वितम्॥सभिकाधिष्ठितंकार्यंतस्करज्ञानहेतुना)अर्थात्-यहांबृहस्पतिजी यह कहते हैं कि द्यूतकर्म मनुनेप्रतिषिद्ध कियाहै और औरों ने अनुज्ञादर्शित करीहै कि उसमें राजभागभी ठहरायाजाय इस्से-तात्पर्य केवल इतना है कि तस्कर लोगोंका परिज्ञान होने आदि किसी निमित्तसे कदाचित् उसकाकरनाही आवश्यक समुझाजायतौभी सभिक विनानहोनेदे-मनुस्तुनिर्विकल्पंप्रतिषेधति-यथा(द्यूतंसमाह्वयंचैवराजाराष्ट्रान्निवारयेत्। राज्यान्तकरणावेतौद्वौदोषौपृथिवीक्षिताम्॥प्रकाशमेतत्तास्कर्य्यंयद्देवनसमाह्वयौ॥ तयोर्नित्यंप्रतीघातेनृपतिर्यत्नवान्भवेत्॥द्यूतंसमाह्वयंचैवयः कुर्यात्कारयेतवा।तान्सर्वान्घातयेद्राजाशूद्रांश्चद्विजलिंगिनः॥ कितवान्कुशीलवान्क्रूरान्पाखंडस्थांश्चमानवान्॥ विकर्मस्थाञ्छौंडिकांश्चक्षिप्रंनिर्वासयेत्पुरात्॥ एतेराष्ट्रेवर्तमानाराज्ञःप्रच्छन्नतस्कराः। विकर्मक्रिययानित्यंबाधंतेभद्रिकाःप्रजाः॥ द्यूतमेतत्पुराकल्पेदृष्टंवैरकरंमहत्॥ तस्माद्द्यूतंनसेवेतहास्यार्थमपिबुद्धिमान्॥ प्रच्छन्नंवाप्रकाशंवातन्निषेवेतयोनरः। तस्यदंडविकल्पःस्याद्यथेष्टंनृपतेस्तथा)अर्थात्-द्यूतसमाह्वयदोनोंको राजाअपने राज्यसे निवारण करे क्योंकि धरणीपालों को यह दोनों दोष राज्यके नाशक होतेहैं-द्यूतसमाह्वय दोनोंका जो खेलहै सो प्रत्यक्ष चोरकर्महै इसलिये दोनों

कर्मके मिटाने मध्ये राजा नित्यंप्रति निजआप यत्नकरता रहै किंतु इस्से गाफ़िल कभीनहो-जो कोई इनको करै या करवावै यद्वा और कोईभांतिसे सहायक बनै तिन सबकोराजाहस्तत्रोट आदितीव्रदंड प्रहारकरै इसीप्रकार शूद्रजोजनेऊ तिलकआदि द्विजाती चिह्नधारणकरैं तिनकोभी-किनव जुआरी आदि कुशीलवही जरे नटनर्तक आदि. क्रूरदुःखदायी आदि. पाखंडी वेदद्वेषी आदि. विकर्मस्थ जो अनापत्काल में भी परजाति कर्मद्वारा जीवनकरै शौंडिकमद्यकार. इनको राजाशीघ्रपुरसे बाहर करै— तात्पर्य इसका यह कि उज्ज्वल वस्तीके भीतर इन्हें न बसनेदे क्योंकि इनके संसर्ग से सब और अच्छीप्रजा दुर्मतिहोजातीहै और दुःखभीपायाकरतीहै पर निपटराज्य बाहर काढ़िदेनेवाला अर्थ जैसाकुल्लूकभट्टने लिखदिया सो कुछ मूलश्लोकमें भीनहीं है न सृष्टिके संसरण मार्गसे संसिद्ध होना संगत है-पुरशब्दराज मंडलका प्रबोधक नहीं और इस्से आगेके श्लोकमें जोराष्ट्रशब्दहै सोभी यहांउपद्रव का भावार्थबोधक होनेसे मुख्यार्थ सिद्धकरताहै कि-एतेराष्ट्रे वर्तमाना-अर्थात् येही इतने कितव आदि जो जो ऊपर कहेगये सो सब अपने पैदाकिये उपद्रवमें वर्तमान होतेहुये नित्यवि-कर्म क्रियासे अर्थात् वंचनकर्मोंसे सज्जनरूपा प्रजाकोदुःखदेतेहैं इसलिये पुरसेबाहर कहीं बसनेदेय पुरकेभीतर नहीं क्योंकि राजाके ये ढँके हुये चोरहैं जो उसकी श्रेष्ठ प्रजाको धन हरने आदि अनेक भांतिसे दुःखदेतेहैं-इसीराष्ट्रशब्दकी भ्रांतिसेकुल्लूक भट्टने ऊपरले वाक्य में पुरशब्दकोभी राज्यके भावार्थ में प्रकल्पितकिया परन्तु यह भी ध्यानकरो कि राजबाहर काढ़िदेना सिर्फ़ कपटफांसे आदिसे कूटाक्षदेवीद्यूतकारों के निमित्तमें कहिचुके सोई ठीकहै और यहां परसामान्य कितव तथा कुशील व नट नर्तक आदि का यह चर्चाहै इनसबहीको इसअर्थ के अनुसार निज निजराज्यबाहर सभी राजाकाढ़िदें तौ फिर फालतू ऐसा कौनसा वहद्वीप है कि जिसमें जाकरबसें निपट उनके प्राण लेलेने का कुछ नियम इसमें नहीं क्योंकि भलेबुरे सभीईश्वर की सृष्टिहैं और देहवेश कर्म प्रकृति आदि का नानात्वभी जगदीशने विस्तार किया है इसलिये उनके कुत्सित कर्मोंसे निजश्रेष्ठ प्रजाकी रखवारी करना मुख्यप्रयोजनजानि कर यहकहा है कि उनको उज्ज्वलपुरमें नहीं बसनेदेय इसकेआगे उनके खोटे कर्म प्रकट होनेपर अपराधके अनुसार दंड होना जुदीबातहै कि जैसा कूटाक्षदेवी द्यूतका-रोंके निमित्त में कहचुके-प्रकृत वार्ताकी अपेक्षा में अब चर्चा करते हैं कि-द्यूतकर्म पहले कल्पमेंभी वडा वैरखड़ा करनेवाला देखासुना है कुछ आजसेही नहीं तिससे बुद्धिमान् पुरुष कभी हास विनोदके भी नामसे इस कामको न सेवे-जो कोई द्यूतकर्म चाहे छिपकर या प्रत्यक्ष होकर सेवे तिसकेदंडमें बहुभाँति का विकल्प जैसाराजा इच्छा करै तैसा नाना भाँति से हो सक्ता है-अबयहनिर्णय होना शेष है कि-जबऐसे तीव्र

निकासि दे ऐसे चिह्नोंसे अँकवाइकर कि उन्हीं पाँशोंकीमाला उनकेकंठमें सजाई जाय-विष्णु इसीदंडमें विशेषता प्रकट करते हैं-यथा(द्यूतेकूटाक्षदेविनांकरच्छेदः उपधिदेविनांनासाच्छेदः) २०७॥

द्यूतमेकमुखंकार्यंतस्करज्ञानकारणात्। एषएवविधिर्ज्ञेयःप्राणिद्यूतेसमाह्वये. २०८॥

ऐ०-कदाचित् राजा द्यूतकर्म किसी परमहेतुसे करावैतौभी चोरोंके परिज्ञान हेतु करके एकमुख अर्थात् मुखरूप कोई एक प्रधान बनै जिसका बलिक राजाके अध्यक्ष भी अधिष्ठित कियेजायँ ऐसे ढंगसे करावे क्योंकि प्रायः कितव जुआरी लोगचोरी का धनलाकर द्यूतकरते हैं उसअवसर में उनचोरों का भी भेदजाना जासक्ता है जे कोई उनमेंहों-यहीविधि जो कुछ ऊपरकहीगई सो सर्वथा प्राणिद्यूतमेंभी जानोजिसे समाह्वय नाम कहते हैं २०८॥

अधि०-समाह्वय नामक प्राणिद्यूत मध्ये इतनी और विशेषता है कि उनप्राणियों के पलटेउनके स्वामी हारिजीति के अधिकारी होते हैं-तदाहबृहस्पतिः(द्वंद्वयुद्धेनयः कश्चिदवसादमवाप्नुयात्। तत्स्वामिनापणोदेयोयस्त्वत्रपरिकल्पितः)अर्थात्-द्वंद्वयुद्ध जैसे दो मेढ़ा या दो मुरगे किन्हीं दो पुरुषोंने लड़ाये यद्वा घोड़ा हाथीही घुड़दौर की रीतिसे दौड़ाये या रथगाड़ी आदि तौउन दोमेंसे जो कोईएकहारै तिसके पालयिता स्वामीको पणदेनाहोय जो इस द्वंद्वयुद्धकी पराजय में परिभाषित हुआ हो (अथास्यनिषेधप्रसंगः)-तत्रबृहस्पतिः (द्यूतंनिषिद्धंमनुनासत्यशौचधनापहम्। अभ्यनुज्ञातमन्यैस्तुराजभागसमन्वितम्॥सभिकाधिष्ठितंकार्यंतस्करज्ञानहेतुना)अर्थात्-यहांबृहस्पतिजी यह कहते हैं कि द्यूतकर्म मनुनेप्रतिषिद्ध कियाहै और औरों ने अनुज्ञादांशत करीहै कि उसमें राजभागभी ठहरायाजाय इस्से-तात्पर्य केवल इतना है कि तस्कर लोगोंका परिज्ञान होने आदि किसी निमित्तसे कदाचित् उसकाकरनाही आवश्यक समुझाजायतौभी सभिक विनानहोनेदे-मनुस्तुनिर्विकल्पंप्रतिषेधति-यथा(द्यूतंसमाह्वयंचैवराजाराष्ट्रान्निवारयेत्। राज्यान्तकरणावेतौद्वौदोषौपृथिवीक्षिताम्॥प्रकाशमेतत्तास्कर्य्यंयद्देवनसमाह्वयौ॥ तयोर्नित्यंप्रतीघातेनृपतिर्यत्नवान्भवेत्॥द्यूतंसमाह्वयंचैवय कुर्यात्कारयेतवा। तान्सर्वान्घातयेद्राजाशूद्रांश्चद्विजलिंगिनः॥ कितवान्कुशीलवान्क्रूरान्पाखंडस्थांश्चमानवान्॥ विकर्मस्थाञ्छौंडिकांश्चाक्षिप्रंनिर्वासयेत्पुरात्॥ एतेराष्ट्रेर्तमानाराज्ञःप्रच्छन्नतस्कराः। विकर्मक्रिययानित्यंबाधंतेभद्रिकाःप्रजाः॥द्यूतमेतत्पुराकल्पेदृष्टंवैरकरंमहत्॥ तस्माद्द्यूतंनसेवेतहास्यार्थमपिबुद्धिमान्॥प्रच्छन्नंवाप्रकाशंवातन्निषेवेतयोनरः। तस्यदंडविकल्पःस्याद्यथेष्टंनृपतेस्तथा)अर्थात्-द्यूतसमाह्वयदोनोंको ही राजाअपने राज्यसे निवारण करै क्योंकि धरणीपालों को यह दोनों दोष राज्यके नाशक होतेहैं-द्यूतसमाह्वय दोनोंका जो खेलहै सो प्रत्यक्ष चौरकर्महै इसलिये दोनों

कर्मके मिटाने मध्ये राजा नित्यंप्रति निजआप यत्नकरता रहै किंतु इस्से ग़ाफ़िल कभीनहो-जो कोई इनको करै या करवावै यद्वा और कोईभांतिसे सहायक बनै तिन सबकोराजाहस्तत्रोट आदितीव्रदंड प्रहारकरै इसीप्रकार शूद्रजोजनेऊ तिलकआदि द्विजाती चिह्नधारणकरैं तिनकोभी-कितव जुआरी आदि कुशीलवही जरे नटनर्तक आदि. क्रूरदुःखदायी आदि. पाखंडी वेदद्वेषी आदि. विकर्मस्थ जो अनापत्काल में भी परजाति कर्मद्वारा जीवनकरै शौंडिकमद्यकार. इनको राजाशीघ्रपुरसे बाहर करै—तात्पर्य इसका यह कि उज्ज्वल वस्तीके भीतर इन्हें न बसनेदे क्योंकि इनके संसर्ग से सब और अच्छीप्रजा दुर्मतिहोजातीहै और दुःखभीपायाकरतीहै पर निपटराज्य बाहर काढ़िदेनेवाला अर्थ जैसाकुल्लूकभट्टने लिखदिया सो कुछ मूलश्लोकमें भीनहीं है न सृष्टिके संसरण मार्गसे संसिद्ध होना संगत है-पुरशब्दराज मंडलका प्रबोधक नहीं और इस्से आगेके श्लोकमें जोराष्ट्रशब्दहै सोभी यहांउपद्रव का भावार्थबोधक होनेसे मुख्यार्थ सिद्धकरताहै कि-एतेराष्ट्रे वर्तमाना-अर्थात् येही इतने कितव आदि जो जो ऊपर कहेगये सो सब अपने पैदाकिये उपद्रवमें वर्तमान होतेहुये नित्यवि-कर्म क्रियासे अर्थात् वंचनकर्मोंसे सज्जनरूपा प्रजाकोदुःखदेतेहैं इसलिये पुरसेबाहर कहीं बसनेदेय पुरकेभीतर नहीं क्योंकि राजाके ये ढँके हुये चोरहैं जो उसकी श्रेष्ठ प्रजाको धन हरने आदि अनेक भांतिसे दुःखदेतेहैं-इसींराष्ट्रशब्दकी भ्रांतिसेकुल्लूक भट्टने ऊपरले वाक्य में पुरशब्दकोभी राज्यके भावार्थ में प्रकल्पितकिया परन्तु यह भी ध्यानकरो कि राजबाहर काढ़िदेना सिर्फ़ कपटफांसे आदिसे कूटाक्षदेवीद्यूतकारों के निमित्तमें कहिचुके सोई ठीकहै और यहां परसामान्य कितव तथा कुशील व नट नर्तक आदि का यह चर्चाहै इनसबहीको इसअर्थ के अनुसार निज निजराज्यबाहर सभी राजाकाढ़िदें तो फिर फालतू ऐसा कौनसा वहद्वीप है कि जिसमें जाकरबसैं निपट उनके प्राण लेलेने का कुछ नियम इसमें नहीं क्योंकि भलेबुरे सभीईश्वर की सृष्टिहैं और देहवेश कर्म प्रकृति आदि का नानात्वभी जगदीशने विस्तार किया है इसलिये उनके कुत्सित कर्मोंसे निजश्रेष्ठ प्रजाकी रखवारी करना मुख्यप्रयोजनजानि कर यहकहा है कि उनको उज्ज्वलपुरमें नहीं वसनेदेय इसकेआगे उनके खोटे कर्म प्रकट होनेपर अपराधके अनुसार दंड होना जुदीबातहै कि जैसा कूटाक्षदेवी द्यूतका-रोंके निमित्त में कहचुके-प्रकृत वार्ताकी अपेक्षा में अब चर्चा करते हैं कि-द्यूतकर्म पहले कल्पमेंभी बड़ा वैरखड़ा करनेवाला देखासुना है कुछ आजसेही नहीं तिस्से बुद्धिमान् पुरुष कभी हास विनोदके भी नामसे इस कामको न सेवै-जो कोई द्यूतकर्म चाहे छिपकर या प्रत्यक्ष होकर सेवे तिसकेदंडमें बहुभाँति का विकल्प जैसाराजा इच्छा करै तैसा नाना भाँति से हो सक्ता है-अबयहनिर्णय होना शेष है कि-जबऐसे तीव्र

दंड औरप्रतिषेध इसमें नियतहैंतौ राजभाग लेने आदि नियम निरर्थक नियत किये गयेक्योंकि जो काम एक निपट अशुभ और निर्मूल हैतौ उसके नियमकल्पितकरनाभी तुषकंडन हुआ-तिसके लिये कहते हैं कि सिर्फ़ दीपमालिका में अधिकार इसका माना गयाहै-तथाच हेमाद्रौ ब्राह्मे(तस्माद्द्यूतंप्रकर्तव्यंप्रभाते तत्रमानवैः। तस्मिन्द्यूतेजयोयस्य तस्यसंवत्सरंजयः॥ पराजयोविरुद्धश्चलाभनाशकरोभवेत्। दयिताभिश्च सहितैर्नेयासाचभवेन्निशा॥ अन्यच्चहेमाद्रावेव-प्रातर्गोवर्धनंपूज्यद्यूतंचापिसमाचरेत्। भूषणीयास्तथागावःपूज्याश्चावाहदोहनाः) यह अधिकार दीपमालिकामें सर्वत्र और सबकेलिये सुनिश्चितहै इसहेतुसे किआगामीवर्षमात्र का शुभाशुभहानिलाभ आदि फूलसंसूचनहोय-यहाँपहलेबचनमें जोसंवत्सरका जयपराजय कहा तिसकायहसिद्धांत नहींहैकि द्यूतकर्मद्वारा हानि लाभहुआकरैंकिंतु अन्य सब सामान्य व्यापारों काफल सूचनाकियाहै औरयद्यपि इन अत्रोक्त वचनोंमेंसमस्याकेवल दोदिनकीदर्शाईगईपरं पदोसप्ताहमात्रका आचरणकार्तिकमासमें परिपाटीसेसंसिद्धहै औरअवधिउसकी वत्सद्वादशीसेदेवोत्थानतिक आवश्यकहै अर्थात्इतने दिवसोंके निमित्तसेजोकोईद्यूत अखाड़ेका फड़नियत करनाचाहिकरकुछराजद्वारमेंनिवेदनकरै तिसकेलियेराजाराज भागनिश्चित करिकेनिःसंदेह आज्ञादेवै और यहराजभाग सिर्फ़इसलियेहै कि ऐसे द्यूत स्थानोंकी रखवारी यद्वा तस्कर ज्ञान आदिहेतुसे अध्यक्ष नियत करनेहोंगे तिनका वेतन संग्रह करनाभी आवश्यकहै और इन्हींदो सप्ताहोंके निमित्त परवे नियम सब आरूढ़हैं कि जो जो हारिजीतिका मुकद्दमा खड़ाहोना आदि ऊपर कहेगये-उक्त दो सप्ताहोंमें संतृप्तहुये मनुष्य फिर इसकामका कुछ नामनहीं लेसक्ते हैं न उनकी इच्छा इसपर पहुँचसक्ती है परन्तु जो कोई राजा इन सप्ताहोंमें भी द्यूतका प्रतिषेध बना रखताहै तौ उसके राज्यमें सर्वत्र निरन्तर बारहमासी द्यूत छिपकर हुआ करताहै संदेह इसमें नहीं क्योंकि नियत समयपर जो अग्नि उनकी बुझने नहीं पाती है सो तृष्णारूप वायुसे समृद्धहुई कुमतिरूप आँधीके झकोरे खाकरलंबी फैलजाती हैं और उनके तथा औरोंके भी धनधाम ग्राम आदि फूंकाकरतीहै इसहेतुसे धर्मज्ञों ने सब नियम कल्पितकिये हैं कि जिस्से कोई भाँति रक्षा बनीरहे २०८॥

इतिद्यूतसमाह्वयविवादप्रकरणम्

यहद्यूत प्रकरण एकइसी ७५ संख्या में समाप्त हुआ॥

अथवाक्पारुष्यनामकव्यवहारपदविवेकोनामषष्ठसप्ततितमःपरिच्छेदः ७६॥

इसछेहत्तरि संख्याके परिच्छेदमें क्रोशाकरी आदि गालीदेने या कुछ और उसी भाँतिका जो कर्कश वाक्यहो तिसके दण्ड वर्णनहोंगे॥

इसविवादको वाक्पारुष्य नाम कहनेका यहअर्थहै कि (परुष) तीव्र निष्ठुर कठोर

वाक्वाणीकी अपेक्षासे विवादहोय जिसमें तिसकी संज्ञावाक् पारुष्य कहीजाय-इसका रूपनारदने प्रदर्शित कियाहै-यथा(देशजातिकुलादीनामाक्रोशंन्यङ्गसंयुतम्। यद्वचः प्रतिकूलार्थंवाक्पारुष्यन्तदुच्यते) अर्थात्-किसीदेश या जाति या कुलकेलिये यद्वा आदि शब्दके आशयसे किसीविद्या या शिल्प अथवा किसीमनुष्यमात्रके निमित्त में जोकुछ आक्षेप अभिशाप गालीगलौज न्यंगशब्दों सहित कियाजाय या जोवचन कोईभाँतिसे प्रतिकूल कहिये विपरीत अर्थवाला कहाजाय जिस्से देशजाति कुलादि किसीको उद्वेग पैदाहोय तौ यह वाक्पारुष्य झगड़ा कहलाताहै-इनका दृष्टांत जैसे गौड़ देशी बडे मांसभक्षी और इसके साथ न्यंगवचनभी कुछ लगा हो तौ देशाक्रोशरूपी वाक्पारुष्य हुआ-एवं ब्राह्मण बड़ेभिखमंगा और इसकेसाथ न्यंगशब्दभी कुछ होय तौ जात्याक्रोशरूप वाक्पारुष्य हुआ-एवंसरावगी लोग बड़े मलीन या विश्वामित्र कुलवाले बड़े क्रूरकर्मा और इसके साथ न्यंगशब्दभी कुछ होय तौ यह कुलाक्षेपरूप वाक्पारुष्य हुआ इसीप्रकार विद्या शिल्प आदि यद्वा देहमात्रमें समुझनाआक्रोश कहते हैं बड़े ऊँचे शब्दसे घुड़कना भर्त्सना डपटना और यही आक्षेपहै जो कोई लानतानयुक्त होय जैसे धिङ्मूर्ख धिग्जालम इत्यादि अनेक भांतिसे आक्षेप होताहै-सो इतनेतक तौ स्वल्प वाक्पारुष्य समुझा जाताहै पर इसके साथ कोई शब्द न्यंग लक्षण वालाभी लगिजानेसे वहवाक्पारुष्य अपनी पूरी पदवीको पहुँचताहै— न्यंग जिसे भाषावाले नंगबोलतेहैं कि अमुकआदमी बड़ानंगहै अर्थात्न्यंगशब्दों को उच्चारण करताहै (न्यंग) संज्ञा बड़े निष्ठुर नीच कठोर कर्कश वचनोंकी होतीहै— तथाचोक्तं(गुह्यांगामेध्यसंज्ञानांवचनंनिष्ठुरंविदुः । यदन्यद्वावचोनीचंस्त्रीपुंसोर्मिथुनाश्रयम्)अर्थात्-शरीरमें छिपाने योग्य अंगोंके नाम प्रकटकरना तथा अमेध्यमैली चीजोंके नाम जैसे कुत्ताका मांस या विष्ठा आदि मुहमें देदेना आदि उच्चारणकरना ऐसे वचनोंको निष्ठुरजानो इसके सिवाय और जो कुछ नीच वचन स्त्री पुरुषोंके मिथुनाश्रय भूत अवद्य होताहो तिसको न्यंग निष्ठुरजानो जिसके श्रवणमात्रसे उद्वेग सहित हृदय मर्म फटने लगें-जिस वाक्पारुष्यका यहरूप दर्शित किया तिसको दण्ड भेद करनेके निमित्त करके तीनभांति जानो-यथाहकात्यायनः (यत्वसत्संज्ञितैरंगैःपरमाक्षिपतिकिंचित्। अभूतैर्वाथभूतैर्वानिष्ठुरावाक्स्मृतातुसा ॥ न्यंगावगोरणंवाचाक्रोधात्कुरुतेयदा। वृत्तदेशकुलानांतुअश्लीलासाबुधैःस्मृता॥ महापातकयोक्त्रीचरागद्वेषकरीचया। जातिभ्रंशकरीवाथतीव्रासाप्रथितातुवाक्) अर्थात्-जहां कोई असत् नामवाले अंगोंके उच्चारण करके किसीको आक्षेप करताहै फिर वे अंग उसमें हों या नहों इसका नियम नहीं जैसे पुरुषमात्रके योनिका अभावहोताहै और कोई इसीनाम का उच्चारण करे तो यह अभुत अंगोंके उच्चारणवाला आक्षेपहै या जो जो अंग जिस-

में हुआ करतेहों तिनहींका उच्चारण होना भूतअंगोंवाला आक्षेपहै-अभूतैर्वाथभूतैर्वा-ऐसेही सर्वत्र जानो सो यह निष्ठुरवाणी कहलाती है और इसीके उपलक्षणमें अमेध्य चीज़ोंकेभी नामसमुझना और इसनिष्ठुरभेदमें इन अंगों यद्वा चीज़ोंका उच्चारणमात्र निष्ठुरभावको दर्शाताहै-दूसराभेद इससे अधिक अब दर्शाते हैं कि-जब कोई क्रोधवा-चासे अवगोरण किंतु गुरेरना हाथउठाकर यद्वा लकड़ी आदि मारनेको उठाकर या मुहकी सूरत ऐंठिकर कुछ न्यंगवचन बोलै जिसमें अवद्य मैथुनरूप शब्दोंका उच्चा-रण होय या अमेध्यचीज़ोंके भक्षणवाला उच्चारण होय ऐसा डौलचाहे किसीके वृत्त चरित्रोंकी अपेक्षा यद्वा देशमात्रकी अपेक्षा यद्वा किसी कुलका संबंधलेकर यद्वा किसी एक देहमात्रकी अपेक्षासे उच्चारण कियाजाय तौ यह अश्लील वाणीके भेदवालावा-क्पारुष्य कहा जाताहै और (अश्लील) का यह अर्थहै कि जिस्से उसकी श्रीशोभा या मंगलता दूर होकर लज्जा और निंदा प्राप्तहोय सो अश्रीर इसमें रकारके लकार होकर अश्लील संज्ञा रक्खी गई-तीसरा भेद इससेभी कठोर अबदर्शाते हैं कि-उक्त लक्षणवाले कर्कश वचनोंके सिवाय महापातक आदि लगानेवाली वाणीहो जैसे तू अपनी मातृ भगिनी आदि गमन करै या करिचुका तौ इस वाणी ने यह महापातक युक्तकिया अथवा रागद्वेष खड़ा करनेवाली वाणी हो जिस्से औरोंके परस्पर वैरभाव खड़ाहोना संभवहो या (राग) नाम अभिरति जो किसीमें अनपेक्षितहो तिसका खड़ा होना संभवहो इसका दृष्टांत जैसे ऐसाकोई शब्द उच्चारण कियाजाय जिसके श्रवण-मात्रसे किसीका लड़का अपनी परिणीता बधूका निरादर करिकै वेश्या जनमें राग पैदा करै तौ यह रागद्वेषवाला परुषवचन हुआ अथवा जाति भ्रंशवाला वचन होय जिसके हेतु किसीकी जातिमें कलंक खड़ाहोय दृष्टांत जैसे तू मद्यपहै इत्यादि जो जो बातें जातिमेंसे बाहर करनेवालीहों तौ यह अत्रोक्त सभी लक्षण एक तीव्रा वाणीके नामसे विख्यातहैं कि इनमें कोई एक शब्दभी उच्चारण होनेपर यह कहा जाताहै कि तीव्र वाणीवाला वाक्पारुष्य उसने किया-इसीप्रकार-तीनभेद नारदनेभी दर्शित किये हैं-यथा (निष्ठुराश्लीलतीव्रत्वात्तदपित्रिविधंस्मृतम्। गौरवानुक्रमात्तस्य दंडोपिस्या त्क्रमाद्गुरुः॥ साक्षेपंनिष्ठुरंज्ञेयमश्लीलंन्यंगसंयुतम्। पतनीयैरुपाक्रोशैस्तीव्रमाहु र्मनीषिणः) अर्थात्-निष्ठुर अश्लील तीव्रभेदसे वह वाक्पारुष्य तीन विधिका होता है और यथाक्रमसे उसमें गौरव होनेके हेतुसे दंडभी उसक्रमके अनुसार बढ़ताजाय यह सिद्धांतहै-इसलिये आक्षेपसहित जो पारुष्यहो तिसको निष्ठुर जानो-न्यंग शब्दों से संयुक्तहो तिसको अश्लील जानो-जाति पतित करनेवाले आदि पतनीय उपाक्रो-शोंमें संयुक्तहो तिसको तीव्रजानो-इसका अधिक व्योरा कात्यायनवाले वचनोंमें लिखचुका इस्से यहां नहीं लिखा उसीसमान इसको जानो-बृहस्पतिनेभी-इसीप्रकार

तीनदर्जे नियत किये हैं-यथा (देशग्रामकुलादीनांक्षेपःपापेनयोजनम्। द्रव्यंविनातुप्रथमंवाक्पारुष्यंतदुच्यते॥ भगिनीमातृसंबंधमुपपातकशंसनम्। पारुष्यंमध्यमंप्रोक्तंवाचिकंशास्त्रवेदिभिः॥ अभक्ष्यापेयकथनंमहापातकदूषणम्। पारुष्यमुत्तमंप्रोक्तंतीव्रंमर्माभिघट्टनम्) अर्थात्-देशग्राम कुल आदिकों मेंसे किसीको आक्षेप कियाजाय जैसा ऊपर वर्णन हुआथा या द्रव्य कहिये किसी नामविना पाप करके योजन किया जाय अर्थात् पापका कुछ नाम विशेष चिह्न देने विना सामान्य भाव पापी कहा जाय तो यह प्रथम वाक्पारुष्य नाम अपराध कहा जाताहै-जहां मातृ भगिनी आदि संबंधी कुछ उपपातक नाम चिह्नों सहित कहाजाय तो यह मध्यम वाक्पारुष्य नामक अपराध शास्त्र वेत्ता लोगों ने कहा-जहां बचन मात्र से कुछ अभक्ष्य वा अपेय बस्तु खाने पीने वाला दोष लगाया जाय यद्वा महापातक रूप शब्द कहा जाय जिसके दोष करके जाति में कुछ विग्रह खड़ा होना संभव हो तो यहउत्तम वाक्पारुष्य नामक अपराध बुद्धिमान् कहते हैं यह सबसे अधिक तीव्र है और मर्म बेध करनेवाला है-यहांतक-वाक्पारुष्य का स्वरूप कल्पित हुआ और (प्रथम निष्ठुर. मध्यम अश्लील उत्तम तीव्र) तीनों दर्जा उसके इन्हीं नामों से दर्शाये गये तिनका दंड यथाक्रमसे याज्ञवल्क्यजी और नारदआदि सभी अब दर्शावेंगे-परंच इन अपराधोंका उत्पन्न होना उसी दशा में समुझा जासक्ता है कि जब अपवाद करनेवाले ने कुछ क्रोध करके ऐसे बचन किसीको दुःखदेने या उद्वेगपहुंचाने यद्वातिरस्कार करनेकेअर्थसे उच्चारण कियेहों जैसा निम्नोक्त कात्यायनके वचनानुसार सिद्धहोताहै अर्थात् जहांप्रयोजनके अवलंबसे कुछअवगुण वा कलंकोंका प्रकाश करिदेना या दृढ़ताको पहुंचाना भी आवश्यक होतो वहकथनसच्चा होनेपर अपराध में कुछगिनती नहींहै और झूंठा कथनभी उसदशा में कुछगिनती नहीं है किजो वहबातपरस्पर उनके मामूली हास विनोदमें सुव्यक्तहो यद्वावैवाहिक आदिकिसी उत्सवके प्रभावसे कुछलोकाचार मात्र हासविनोदी गालि दानहोतो भी वाक्पारुष्यके अपराधमें वहगिनतीनहीं यहसब आशय इस अग्रोक्तवचनसे संसिद्धहै-यथाहकात्यायनः(योगुणान्कीर्तयेत्क्रोधान्निर्गुणेवागुणज्ञताम्। अन्यसंज्ञानियोजीच वाग्दुष्टंतंनरंविदुः)अर्थात्-जोकोई पुरुषकिसी परक्रोध करके उसकेसच्चेसच्चे श्रेष्ठगुणोंकोभीतानदेकर कहनेलगे दृष्टांतजैसे हांहां तूने अमुकयज्ञ कियाथा हम उसकी दशाजानतेहैं इत्यादि अथवा निर्गुणीमें अगुणज्ञता किन्तुउसकी निर्गुणता यद्यपि सच्चीहै परक्षोभदेने के अर्थउसपरक्रोधसे बखान करने लगैतिसको तथा उसकोभी जोअन्यसंज्ञाओं का नियोक्ता हो दृष्टांत जैसे देवदत्तको अदेवदत्त या चोरदत्तआदि नामसे पुकारे एवं निर्णयसिन्धुको निरयसिन्धु नरकसिंधु आदि नामभेद से उच्चारणकरे वाणीदुष्ट पुरुष जानो-कात्यायन के इसवचन में क्रोध

प्रधानहोने से ऊपरली छूटेंसब संसिद्धहुई-इसीप्रकार नारदनेभी क्रोधप्रधान रूपसे इनछूटों को दर्शायाहै-यथा (दुष्टस्यैवतुयोदोषान्कीर्त्तयेत्क्रोधकारणात्। अन्याऽपदेशवादीचवाग्दुष्टंतंनरंविदुः) अर्थात्-किसी दुष्टकेभी दोषोंको जोकोई क्रोधहेतुसे बखान करै यद्वा क्रोधबिनाभी अन्यापदेशवक्ता होय किंतु अन्य के अपदेश बहानेसे और परकुशब्द पातकरै जैसे कुत्ता बिल्ली आदि जीवोंके नामसे यावृक्षादिकों के बहाने से किसीपर आक्षेप करना. दृष्टांत यहकुत्ता बड़ा भौंकनाहै इसभांति कुत्तेपरढाल कर बातून किसी आदमी पर आक्षेप कुत्ताके उपस्थित होतेहुये करना. यह बिल्लीबड़ी उछालैं खाती फिरतीहै इसभांति किसी फिरने वाली स्त्रीपर आक्षेप सन्मुख बिल्लीके मौजूद होतेहुये शब्दप्रहार करै-यह पीपल बड़ासूखा ठूँठहै इसभांति किसीजातेहुये सूमको सन्मुख पीपल होतेहुये खिझावै सो अन्याऽपदेशवाद कहाता है इनसब को वाणीदुष्ट मनुष्यजानो. इस अन्याऽपदेशके साथमें कुछ क्रोधका संसर्ग नहींहै परदुष्टों के दोष कथनमध्ये क्रोधप्रधान किया है अर्थात् विना क्रोध दुष्ट के परित्याग आदि किसीहेतुसेप्रकाश करनेतक अपराध नहीं-इसध्वन्यर्थको-कात्यायनजी स्पष्ट कहतेहैं-यथा (यत्रस्यात्परिहारार्थंपतितस्तेनकीर्तितम्। वचनात्तत्रनस्यात्तुदोषोयत्नविभावयेत्) अर्थात्-जहांपातित्यादि दोषके परिहार निमित्त से अभियोग लगायाजाय चाहे राज में या पंचबंधू आदिके समीप इसीहेतु करके पतित बखान कियागया हो और वह दोष परम सिद्धिको न पहुंचै किंतु पतितमें निर्मलता ठहिराईजाय तौ उसकथनरूप वचनसे उस दोष के कहनेवाले वाक्पारुष्य के अपराधी निश्चित नहींकिये जासक्ते क्योंकि उन्होंने कुछ क्रोधलड़ाई वैर भावसे यहनहींकहा किंतु निर्णय होजानेकीअपेक्षासे उद्घाटन किया बलिक दोषीके निमित्तमें यहश्रेष्ठहुआ कि जो कुछ उसपरशंका खड़ी हुईथी सो उद्घाटक पुरुषकी प्रेरणाके प्रभावसे निर्णीतहोकर धोईगई-विरली दशामें-क्रोधसे उच्चारणकियाभी अपराधके ध्रुवातक नहीं पहुँचसक्ताहै दृष्टांत जैसेकिसी मूढ़ मंद बुद्धीको कुछकाम सिखाते हुये आचार्य या स्वामीआदि कोई वारम्वार मूड़ पचाकर उसपरक्रोधसे दुर्वाक्यदेनेलगै तौ यह वाक्पारुष्यके ध्रुवातक पहुँचानान्याय विरुद्धहै क्योंकि ऐसे शिक्षकजनोंको स्वल्परूप ताड़नकरनेकाभी अधिकारहै-तथाच गौतमः (शिष्यादिशिष्टिरवधेनाशक्तौ रज्जुवेणुविदलाभ्यां तनुभ्यामन्येनघ्नन्राज्ञाशास्यः) अर्थात्-शिष्यआदि अंतेवासी दासपुत्रआदि शिष्यवर्गियोंकी (शिष्टि) नामशिक्षा सिखलाना जो मारने विनाशक्तिसे वाहरदेखपरै किंतुदुर्वाक्यसेभी न होसकै तौभी हलुकी जेउरी या बांसकी पतली कुंचीकेसिवाय किसीभारीचोटसे मारताहुआशिक्षकराजा करके शासनीय होताहै अन्यथा नहीं-इत्यादि देशकालवस्तुओंके विवेकसे व्यवस्था देखीजाय तिनमें उक्तछूटोंके सिवायपहले तुल्यजातियोंका पारुष्यवर्णनकरते हैं॥

(समजातिगुणविशिष्टानांनिष्ठुराक्रोशदण्डः)

सत्यासत्यान्यथास्तोत्रैर्न्यूनांगेंद्रियरोगिणाम्। क्षेपंकरोतिचेद्दंड्य.पणानर्धत्रयोदशान् २०९॥

ऐ०–सत्यअसत्य अन्यथास्तुतियोंसे हीनांग हीनेन्द्रिय रोगियों को यदि निष्ठुर आक्षेपकरै तो वह अर्धत्रयोदशपणपरिमाण धनसे दंडनीय है-अर्थात्-न्यूनांग लूले लँगड़े आदि–न्यूनेन्द्रिय अंधे बहिरे आदि. रोगी कोढ़ीआदि–तिनकी सत्यस्तुतिका दृष्टांत जैसे अंधा अमुक प्रयोजनके निमित्त बहुतअच्छा पूजनीय होता है. बहिरामें गुणएक सहनशीलता बड़ी उत्तम है कि चाहे तैसा गालिदानकरो किसी से भी बुरा नहीं मानता.काना समदर्शी होता किंतु सबको एक दृष्टिसे अवलोकन करताहैइत्यादि औरों में भी जानो–इनकी असत्यस्तुतियों का दृष्टांत जैसे इसके तुल्यकोई भी आँखिआरानहीं इसको कौन अंधाकहे. देवदत्तकाना नहींहै यहपहले जन्मसे बंदूखों की निशानेबाजी करतेहुये मराथा सो आँखि मींचे जन्म पाया. देवदत्त सूरानहीं अपनी इच्छासे यह आँखिमींचे रहता है इत्यादि औरों में भी जानो. अन्यथास्तुति वे कहलाती हैं कि जिनमें साक्षात्कार उसके विद्यमान गुणोंकी प्रशंसाद्वारा अवगुण प्रकटकरे यद्वा ऐसीरीतिसे कि देवदत्त बड़ा विकृत रूपहोय तिसको ऐसाकहनेलगैकि आप बड़े दिव्यरूपहैं-तो यहनिष्ठुर आक्षेपमें सबगिनतीहै और दंडइसमें साढ़ेबारह पणकायोग्य है पर उसदशातक कि जो समवर्ण या समजातिवालोंमें से उसके तुल्य प्रतिष्ठावान् पर यह आक्षेपहुआहो–यहां केवल एक देहमात्र का यहप्रसंगहै अर्थात् जहाँ किसीदेश या कुलजाति की अपेक्षा निष्ठुरआक्षेप जैसा पहले वर्णनहुआ तैसा कियाजाय तिसका दंड २१६वालेमूलश्लोकसे विचारो-अर्धत्रयोदशपणका अर्थयद्यपि साढ़े तेरहपण मिताक्षराकारने स्वीकारकिये पर वहअर्थ किसीन्यायके अनुसार नहीं है इसलिये(आधाहैतेरहवां जिनमें ऐसे अर्धत्रयोदशपण) अर्थात् साढ़ेबारह पणका दण्ड संख्या सूत्र न्यायसे सुनिश्चितजानो क्योंकि पचासकी चौथाई तथा पचीसका अर्धांश साढ़े बारह होते हैं सो यथाक्रमसे मूल श्लोकोंमें सबदेखो २०९॥

अधि०–अनंतरोक्त नियमोंको वृहस्पतिभी स्पष्ट सूचित करते हैं-यथा (समजातिगुणानांतुवाक्पारुष्येपरस्परम्। विनयोविहितःशास्त्रेपणाअर्धत्रयोदशाः) अर्थात्-समानजाति और समान गुणवालों के परस्पर वाक्पारुष्य होनेमध्ये शास्त्रमें साढ़े बारहपणका विनय नाम दण्डनियतहै-परस्परका यहतात्पर्य्यहै कि दोनों एकसाथ जो बकिउठेहों तो यह साढ़ेबारह बारहका दण्ड दोनोंपर कर्त्तव्यहै या एक पहिले बोला हो एकपीछेतहां पहिलेपर कुछ अधिक और पीछे वालेपर थोड़ापर जो एक चुपका रहा निश्चित होय तिसपर दंडनहो-विष्णुरपि (समवर्णाक्रोशनेद्वादशपणान्दंड्यः) मनुनारदौच (समवर्णेद्विजातीनांद्वादशैवव्यतिक्रमे) शंखलिखितौच (समवर्णव्यति

क्रमेद्वादशपणा यथारूपविशिष्टाक्षेपेषु अविशिष्टस्यचतुर्विंशतिरविशिष्टस्यातिक्रमे चविशिष्टस्यततोऽर्धम्) अर्थात्-शंख लिखितदोनों भ्राता कहते हैं कि जब एकही वर्णमें समान गुण प्रतिष्ठावाले दोनोंपुरुष एकसे तुल्यात्मकहों और उनमें एकदूसरे परकुछ निष्ठुर भेदका पारुष्य फेंके तौ इसभाँतिका व्यतिक्रम होनेमध्ये बारहपणका दंडहै पर जो उन्हीं एकजातिवालोंमेंसे कोई एकअच्छा और कोई एक ओछाहो तौ यह न्यायहोनायोग्यहै कि अच्छेका अपमान करनेवाले ओछेपर चौबीसपणका दंड और ओछेका अपमान करनेवाले अच्छेपर चौबीसके आधेबारहपण ले लियेजावैं दोनों एकसाथ या पहलेपीछे वालेहों तिसकान्याय जो कुछ ऊपरकहा सो सब इसमें भी समुझाना जैसे एकसाथ बोलनेवाले अच्छे ओछेदोनोंहीपर दण्ड किन्तु ओछेपर चौबीस और अच्छेपर बारह पणकादण्ड इस व्यवस्थामें जहां जहां बारहकहे तिन कोभी सर्वत्र साढ़ेबारह समुझो और चौबीसको पचीसके स्थानापन्न समुझना-निष्ठुर क्रोश विशेषका कुछ दण्डभेद २१३ मूलश्लोकमें भी देखो २०९ ॥

(अश्लीलाक्षेपदण्डः)

अभिगंतास्मिभगिनींमातरंवातवेतिह। शपंतंदापयेद्राजापंचविंशतिकंदमम् २१० ॥
अर्धोऽधमेषुद्विगुणःपरस्त्रीषूत्तमेषुच। दंडप्रणयनंकार्यंवर्णजात्युत्तराधरैः २११ ॥

ऐ०-जो कोईकिसी अपने समवर्ण या समजातिवाले अपनेही समानगुण प्रतिष्ठासे तुल्यात्मक पुरुष को इसभाँति लोकप्रसिद्ध गालीदेताहो कि तेरी मा बहिन गमनकरूँ तौ राजा ऐसीगाली देतेहुयेसे पचीसपणका दण्डदिलावै (यहां मा बहिन की गाली एक नमूनाहै अर्थात् इसके उपलक्षणमें वह सभीबातें समुझिलेनी जोजो अश्लीलावाणीकेरूपमें कहिचुके हैं २१० जे कोई अपने समवर्ण या समजातिवाले गुणसे तुल्यनहों किंतु प्रतिष्ठा आदि गुणमें अधम न्यूनहों तिनको गाली देने से यह दण्ड २५ का आधासाढ़े बारहपण परिमाण कियाजाय.पर जे कोईगाली बकने वालेसे प्रतिष्ठागुणमें उत्तमहों तिनकोगालीदेनेसे यहदण्ड पचीसकादूनाकरे पचास पण परिमाण कियाजाय.तथा पराई स्त्रियोंको भी गालीदेनेमें पचास पणका दण्ड है कुछ इसमें ऊंच नीचवाला भेद नहीं किंतु परस्त्रीमात्र कोई हो यहांतक समजाति मध्ये दण्डकहा—अब इतरेतर वर्णजातों मध्ये दण्डप्रकार प्रकटकरते हैं कि (वर्णजात्युत्तराधरैः)किंतु ब्राह्मण आदिवर्ण और मूर्द्धावसिक्त आदिजातैं इनमेंउत्तम अधर किंतु ऊँचेनीचे जो परस्पर आक्षेपकरैं तिनके दण्डका विचार उसी उँचाई वा निचाई के अनुसार करना योग्यहै-इसका यह दृष्टांत है कि आगे २१२ वाले मूल श्लोकमें जो दण्ड नियत होंगे तिनके अनुसार ब्राह्मण क्षत्रियको कुछ आक्रोश करिकै पचास पणके दण्डयोग्यहै कदाचित् वहीब्राह्मण किसीमूर्द्धावसिक्त जातिवालेको कुछ आक्रोश

करै तौ पचाससे कुछ अधिक दण्ड अर्थात् ७५ पणका दण्डदेय क्योंकि क्षत्रियसे मूर्द्धावसिक्त उत्तमहै-कदाचित् उसीमूर्द्धावसिक्तपरकुछ आक्षेप कोईक्षत्रियकरैउस्सेभी ७५ पणकादण्ड राजालेय क्योंकि क्षत्रिय ब्राह्मणआक्षेप करिकै १०० सौपणदण्ड देनेयोग्य होताहै और ब्राह्मणसे मूर्द्धावसिक्त किञ्चित्हीनहैइसहेतुसेही पौन सैकड़ा निश्चितरहा-कदाचित् मूर्द्धावसिक्त किसीक्षत्रियपर कुछआक्षेपकरै तौभीयही ७५ पणकादण्डहै क्योंकि क्षत्रियके निमित्त आक्षेप करनेवाले ब्राह्मणपर ५० दण्डनियतहै और ब्राह्मणसे मूर्द्धावसिक्त किञ्चित्हीन है इसहेतुसे पचास पणकाड्योढ़ा देनेयोग्य ठहरा-कदाचित् मूर्द्धावसिक्त किसी ब्राह्मणपर कुछ आक्षेपकरै तौभी यही ७५ पणका दण्डहै क्योंकि सौकादण्ड ब्राह्मणके अपराधी क्षत्रियपर ठहरायागयाथा उसक्षत्रियसे यहउत्तमहै इस हेतु इसपर पौनसैकड़ा योग्य ठहरा-जैसा यह मूर्द्धावसिक्त जातिका दृष्टान्त दोवर्णों से बनायागया तैसा अन्यजातोंकाभी वर्णोंसे स्वबुद्धि कल्पित ऊहा कर्तव्यहै-जहाँ वर्णोंका संसर्ग नहो केवल जातोंके परस्पर आक्षेप हुआहो तहाँ बहुत सुगमहै कि जैसा क्षत्रियवर्णकी अपेक्षा ब्राह्मण वर्णमात्र उत्तमहै तैसेही अंबष्टजातिसे मूर्द्धावसिक्त जाति उत्तमहै तो जैसा ब्राह्मण क्षत्रियके परस्पर आक्षेपहोनेमध्ये जोजो दण्ड जिस पर इस दृष्टान्तमें दर्शायागया सोसो तद्रूप दोनों मूर्द्धावसिक्त और अंबष्टके परस्पर आक्षेप खड़ाहोनेमध्ये न्याय कल्पित कर्तव्य है क्योंकि ब्राह्मणका स्थानीभूत मूर्द्धावसिक्त और क्षत्रियका स्थानीभूत अंबष्ट है पुनिइसीप्रकार अन्यवर्णोंकी स्थानीभूत अन्यजातैं समुझिलेनी-इसका मुख्यब्यौरा समुझिपाने के निमित्त अगले २१२ के मूलश्लोकमें जो दण्डभेदहै सो देखो(और)जातोंकी उँचाई वा निचाई आचाराध्याय केउसप्रकरणमें अवलोकनकरो जहाँजातोंकी उत्पत्ति वर्णन हुईहो २११ ॥

अधि०–जातिगुण प्रतिष्ठा आदिकी अपेक्षासे बृहस्पति भी विशेषता प्रकट करते हैं-यथा (समानयोःसमोदण्डोन्यूनस्याद्द्विगुणोदमः । उत्तमस्यार्धिकःप्रोक्तोवाक्पारुष्ये परस्परम्) अर्थात्-परस्पर दोनों ओरसे पारुष्य होनेमें दोनों जो समानहों तौ उन दोनोंपर समदंड बराबरलियाजावै यद्वा न्यूनउत्तमहों तहां न्यूनसे दूना और उत्तम से आधादण्ड और जो सिर्फ़ एक ओरसे पारुष्यहुआ हो तौभी इसी ढँगसे उस एकपर वह दण्डहोय जो कुछ ऊपर नियतहुआ था २१० । २११ ॥

(वर्णानांप्रातिलोमानुलोमाक्षेपेदण्डः)

प्रातिलोम्यापवादेषुद्विगुणत्रिगुणादमाः । वर्णानामानुलोम्येनतस्मादर्द्धार्धहानितः २१२ ॥

ऐ०–वर्णोंके परस्पर जो अपवाद कुत्सितवाद वाक्पारुष्य प्रातिलोम क्रमसे होयँ किन्तु नीचे वर्ण ऊंचेवर्णोंको कुछ गालीआदि परुषकाढ़ैं तिनपारुष्योंमें दुगुनेतिगुने दण्डउस परिमाणसे समुझने जो समवर्णकेपारुष्यमध्ये २१० के मूलश्लोकमें पचीस

पणदर्शोकर पीछे द्विगुण पचास कियेगये और उनपचासके दूने क्षत्रियके दण्डरूप सौपणसे आधी आधी हानि क्रमसे होतीहुई अनुलोम क्रमके पारुष्यों में समुझना अर्थात्- ब्राह्मणको पारुष्य करनेवाले क्षत्रियपर उनउक्त पचासके दूने एक १०० सौपणदण्ड तथा वैश्यपर उनपचासके तिगुने १५० डेढ़सौ पणदण्ड और जोशूद्रने पारुष्य कियाहो तौ धनदण्डका कुछ नियम उसपर नहीं किंतु जीभछेदना यह्वाताड़ न करना मनुके वाक्यसे अधिकोक्तिमें सुनिश्चितहै एवं क्षत्रियको पारुष्य करनेवाले वैश्यपरभी एक १०० सौपण तथा शूद्रपर डेढ़सौ १५० पणदण्ड-एवं वैश्यको पारुष्य करनेवाले शूद्रपर एक १०० सौकादण्डजानो आधी आधी हानका यहव्यौराहै कि जहाँ अनुलोम क्रमका पारुष्यहो किंतु ब्राह्मण आक्षेपकरै क्षत्रियपर या वैश्यपर या शूद्रपर तहाँ क्षत्रियकी अपेक्षा उसपर पचास और वैश्यकी अपेक्षासे पचीस और शूद्रकी अपेक्षा साढ़ेबारहपणका दण्डहोनायोग्यहै-इसीप्रकार क्षत्रियनेअनुलोमक्रमसे वैश्यपर या शूद्रपर आक्षेप कियाहो तौ यहवैश्यकी अपेक्षासे पचास और शूद्रकी अपेक्षासे पचीस पणका दण्डभरै-क्योंकि (ब्राह्मणराजन्यवत्क्षत्रियवैश्ययोः) यह गौतमजीका सूत्र यहां क्रमका सूचकहै-इसीप्रकार वैश्यने यदिशूद्रपर पारुष्य फेंका हो तौ यह पचास पणका दण्डभरै-क्योंकि (विट्शूद्रयोरेवमेवस्वजातिम्प्रतितत्त्वतः) यह मनुवाक्य इसमें क्रमका सूचकहै यही दोसौ बारहवाली उक्त व्यवस्था निजअधिकोक्ति सहित दोनोंभेद में समुझनी किंतु निष्ठुर और अश्लील दोनोंभाँतिके पारुष्योंका व्यवहारहै (पर) तीव्रभेदके पारुष्यमध्ये दण्डविधान आगे २१५ के श्लोक द्वारा कहेंगे २१२॥

अधि०-शंखलिखितौच (आक्रोशेब्राह्मणस्यक्षत्रियःपणशतंदंड्यः शतार्धंवैश्यस्य पंचविंशतिंशूद्रस्य)अर्थात्-ब्राह्मणको आक्रोश करनेवाला क्षत्रियएक १०० सौपण दण्ड योग्य.वैश्यको आक्रोश करनेवाला क्षत्रियसौके आधे पचास पणसे दण्डनीयहै शूद्रको आक्रोश करनेवाला क्षत्रिय २५पचीस पणसे दण्डनीय-बृहस्पतिः(विप्रेशतार्धंदण्डस्तुक्षत्रियस्याभिशंसने। विशस्तथार्धपंचाशच्छूद्रस्यार्धत्रयोदश॥ सच्छूद्रस्यः यमुदितोविनयोऽनपराधिनः। गुणहीनस्यपारुष्येब्राह्मणोनापराध्नुयात्॥ वैश्यस्तुक्षत्रियाक्रोशेदंडनीयःशतंभवेत्। तदर्धंक्षत्रियोवैश्यंक्षिपन्विनयमर्हति॥ शूद्राक्रोशेक्षत्रियस्यपंचविंशतिकोदमः। वैश्यस्यचैतद्द्विगुणःशास्त्रविद्भिरुदाहृतः॥ वैश्यमाक्रोशयञ्छूद्रो दाप्यःस्यात्प्रथमंदमम्। क्षत्रियंमध्यमंचैव विप्रमुत्तमसाहसम् (उत्तमसाहसोऽत्रजिह्वाच्छेदनरूपः) यतःसएवाह-धर्मोपदेशकर्ताचवेदोदाहरणान्वितः। आक्रोशकस्तुविप्राणांजिह्वाच्छेदेनदंड्यते)अर्थात्-क्षत्रियको पारुष्य कहने मध्ये ब्राह्मणपर पचासदंड-वैश्यको पारुष्यकरनेवाले ब्राह्मणपर पचीसदंड-शूद्रको पारुष्य कहने

वाले ब्राह्मणपर साढ़ेबारहपण का दंड (पर) यहदंड ऐसी दशामें आवश्यक है जब निरपराधी या गुणयुक्त शूद्रको पारुष्य कियाहो किंतु गुणहीन या अपराधकरनेवाले शूद्रकोपारुष्य करनेसेभी ब्राह्मणउक्तदंडयोग्यनहीं-क्षत्रियको पारुष्यकरनेवालावैश्य पूरे १०० सौपण दंडभरै एवंक्षत्रिय उसको परुष कहिकर आधादंड ५० पचासपण तक भरै-शूद्रको पारुष्य कहनेवाले क्षत्रियपर २५ पचीसपणका दंड और शूद्रकोपारुष्य कहनेवाले वैश्यपर ५० पणका दंडलेना सबशास्त्रज्ञोंने निर्णीत किया-शूद्रवैश्य को पारुष्य कहिकर पूर्व साहस दंडदेवै-क्षत्रियको पारुष्य कहिकर मध्यमसाहस दंड भरै एवंविप्रको पारुष्य कहिकर उत्तमसाहस दंड पावै (यहांउत्तम साहस दंडजीभ छेदन रूपसमुझना)इसीसे फिर कहते हैं कि धर्म के उपदेश करै या वेदोक्त दृष्टांत उत्तम वर्णोंके सन्मुख कथनकरने लगै या विप्रोंपर पारुष्य फेंकै ऐसाशूद्रजीभछेदन-रूप उत्तम साहस दंडपावै-आपस्तंबः(जिह्वाछेदनंशूद्रस्यार्यंधार्मिकमाक्रोशतः)अर्थात्-आपस्तंब कहते हैं कि जीभछेदरूप दंड शूद्रका उसदशामें जब उत्तम धार्मिक विप्र आदि किसी द्विजातीमात्रको पारुष्य बोलै-तथाचगौतमः(शूद्रोद्विजातीनभिसंधायाभिहत्यचवाग्दंडपारुष्याभ्यामंगंमोच्योयेनोपहन्यात्- द्विजातीनित्यत्रार्यवृत्तसंपन्नान्वैश्यपर्यन्तानपि अभिसंधायबुद्धिपूर्ववाचातिक्रम्य अभिहत्यउग्रेणदंडेनताड़यित्वेतिवाक्पारुष्यदंडपारुष्याभ्यामित्यर्थः तत्रतेनैवांगेनवियोजनीयःशूद्रः)मनुस्तु-शतंब्राह्मणमाक्रुष्यक्षत्रियोदंडमर्हति । वैश्यःसार्धशतंद्वेवाशूद्रस्तुवधमर्हति॥ पंचाशद्ब्राह्मणोदंड्यःक्षत्रियस्याभिशंसने । वैश्येस्यादर्धपंचाशच्छूद्रेद्वादशकोदमः॥ एकजातिर्द्विजातींस्तुवाचादारुणयाक्षिपन्। जिह्वायाःप्राप्नुयाच्छेदंजघन्यप्रभवोहिसः॥ नामजातिग्रहंत्वेषामभिद्रोहेणकुर्वतः। निःक्षेप्योऽयोमयःशंकुर्ज्वलन्नास्येदशांगुलः॥ धर्मोपदेशंदर्पेणविप्राणामस्यकुर्वतः। तप्तमासेचयेत्तैलंवक्त्रेश्रोत्रेचपार्थिवः॥ श्रुतंदेशंचजातिंचकर्मशारीरमेवच। वितथेनब्रुवन्दर्पाद्दाप्यःस्याद्द्विशतंदमम्)अर्थात्-मनुकहते हैं कि ब्राह्मणको पारुष्य कहिकर क्षत्रिय एक १०० सौपण दंड और वैश्य १५० या दोसौ दंड देनेयोग्य हैं और शूद्र ताड़नरूप वधदंड पानेयोग्यहै ब्राह्मण क्षत्रियको पारुष्य कहिकर पचासपण और वैश्यको पारुष्यकहिकर पचीसपण और शूद्रको पारुष्य कहिकर बारहपण का दंडभरनेयोग्यहै एकजाती नाम शूद्र किसीद्विजाती विप्रक्षत्रिय वैश्यको कुछ दारुणवाणीसहित आक्षेप करता हुआ जिह्वाच्छेदरूप दंडपावै क्योंकि नीच जन्म उसका निश्चितहै (और)इन्हीं द्विजातीलोगों के नाम या जातिकाउच्चारण अभिद्रोहसे अर्थात् कोशाकरीके ढंगसे करतेहुये शूद्रके मुखमें दशअंगुल लंबीलोह कील तपाकर डाले यहीदंडहै (नामजाति उच्चारणका दृष्टांत जैसे अरे यज्ञदत्त तूब्राह्मण जैसाहै मैं जानताहूँ-अरे अमुक सिंहतूठाकुर असलहो तो अवश्य ऐसाकरियो

यद्वा अभीकरौ इत्यादि नानाभांति या एकभांतिसेही तीनों वर्णोंमेंसे किसीकोभीआक्षारितकरै सो यह (नामजातियह) कहलाताहै) कदाचित् शूद्र अपने ज्ञानित्वरूपी दर्प अहंकारसेही विप्रोंको कुछ धर्मका उपदेशकरनेलगै कियें अमुक तुमने अपना अमुक धर्म कर्म करना कैसे छोड़िदिया ब्राह्मणहोकर तुम्हें ऐसा करना योग्य नहीं अमुक तुम्हारा जाती धर्म अमुक पुराणमें विख्यातहै.तब राजा ऐसे अभिमानी शूद्र पुरुषके मुख और कानोंमें भी तत्ता तेलभरावै श्रुत. देश. जातिकर्म.शारीर संस्कार. इनको दर्पसे जो वितथ नाम उलटे सुलटे मिथ्यारूप तर्कोंसे अभियुक्तकरिके बोलै तौ यह दोसौ पणका दंड दिलानेयोग्यहो-इन्हीं पाँचोंके दृष्टांत जैसे. यह बात तुमने सुनीतक भी न होगी. तुम इस देश यद्वा अमुक देशके पैदाहुये नहीं देखिपरतेहौ.तुम अमुकजातीहौ या नहीं. यह कर्म तुमने सीखा भी न होगा. तुमने शरीर संबंधी अमुक संस्कार अबतक नहींकिया. इत्यादि अन्यप्रकारोंसे भी जानो-अत्र (समानजातिविषयमिदंदंडलाघवान्नतुशूद्रस्यद्विजात्याक्षेपविषयमितिकुल्लूकभट्टस्तच्चिंत्यंअयुक्तंचविज्ञेयं)(अथगुर्वाद्युत्तमसंबंधीनामाक्षेपेदंडः) तत्राहतुःशंखलिखितौ-तथाधिकृतान् विप्रान् गुरूंश्च निर्वासनं मुण्डनं ताडनं वा गोमयानुलेपनं खरारोहणं वा दण्डोवा) अर्थात् अधिकारवाले विप्रोंको और गुरुओंको जो कोई आक्षेपकरै तिसको इतने दंडविकल्प हैं कि यातौ निपट निकासिकर स्थानच्युत करिदियाजावै या शिर मूड़न करवायाजाय या ताड़न पीटन कियाजावै या गोबरका देहलेप करिके बूढ़े गदहापर चढ़ायाजाय या और कोई दण्ड जिस्से दर्पदूरहोना संभवहो या धनदण्ड उस परिमाणसे कि जिस्से दर्प शांतिहोनी संभवहो इतने दण्ड विकल्पभी इस आशयपर संसूचित कियेहैं कि उस अपराधीकी योग्यतामें जो कोई एक दण्ड योग्य समुझाजाय सो कर्त्तव्यजानो. इसमें धन दण्डका परिमाण यद्यपि सामान्य सूचितकियाहै कि जितना दण्डलेने से अपराधीका दर्प शांतहोसकना संभवहो सो परिमाणकल्पितकरौ (पर) अग्रोक्तविष्णु वाक्यसे सौ मुद्रातक परिमाण भी सुव्यक्तहै कि इस्से अधिकनहीं-तथाहविष्णुः (गुरुनाक्षारयन् कार्षापणशतंदाप्यः) मनुनेभी सौपणका दण्ड मातापिता आदि को अपशब्द कहनेमध्ये नियतकियाहै-यथा(मातरंपितरंजायांभ्रातरंश्वशुरंगुरुम्। आक्षारयन् शतंदाप्यःपंथानंचाददद्गुरोः) अर्थात्-माताको या पिताको या निजभार्य्या निरपराधा को या ज्येष्ठ भ्राताको या ससुराको या गुरुको अपशब्द कहताहुआ मनुष्यसौपण दंडयोग्यहै और जातेहुये मार्गमें सीधीराह गुरुओंको न देनेपर भी सौपणकादंड-मो यह नियम भी उसदशामें कि जहां गुरु माता पिता आदि से अपराधभी कुछ हुआ हो तौभी उन्हें कुशब्द कहनेवाला उक्त दण्डपावे किन्तु निरपराध होनेकी दशामें शंखोक्त गर्दभयान आदि तीव्रदंडपावै परंचएकभार्या जो अपराधकर्त्री किन्तुकर्क्श

हो तिसपर आक्षेप करनेमध्ये पतिको दण्ड नहीं इससे निरपराधा भार्याके आक्षेपमें यह दण्ड समुझनाबृहस्पतिजीने-सासू आदिको कुशब्द कहने मध्ये पचास पणका दण्डनियत कियाहै यथा (क्षिपन्श्वश्रूआदिकंदद्यात्पंचाशत्पणिकंदमं) इसमें आदि शब्दके भावार्थ सेमावसी नानी फूफी आदि अनेक समुझनी २१२ ॥

इत्यश्लीलसंज्ञकमध्यमाक्षेपविशेषेदंडाः २१२

(पुनरपि निष्ठुराक्षेपविशेषेदंडः)

बाहुग्रीवानेत्रसक्थिविनाशेवाचिकेदमः। शत्यस्तदर्धिकःपादनासाकर्णकरादिषु २१३

अशक्तस्तुवदन्नेवंदंडनीयःपणान्दश। तथाशक्तःप्रतिभुवंदाप्यःक्षेमायतस्यतु २१४

ऐ०—जब कोई किसी मनुष्यकी भुजा घेंट नेत्र जंघा तोड़ि फोड़ि विनाश करिदेने योग्य परुषवचन मुखसे काढ़े कि तेरी बांह काटिलेउँ आंखि फोड़डालूं तिसपर शतसंख्यक दम अर्थात् सौपणका दंड लियाजाय-और तदर्धिक पचासपणका दण्ड तिसपर कियाजाय जिसने पैर नाक कान हाथ आदि कोई अंग विनाश करना कहाहो सो यह दंड ऐसे किसी अपराधीपर संसूचितहै जो देह पराक्रमसे प्रतिपक्षीके तुल्य समुझाजाय २१३ किंतु जो कोई किसी रोग या बुढ़ापे आदि हेतुसे अशक्त होकर अपनेसे बलवालेको इसभाँति कहै तौ यहसिर्फ दशपण दंडदेवै परजो कोई शक्त समर्थ बलवान् होकर किसी दुर्बल असमर्थको इसभाँति अंगभंग करना कहताहो तौ वह उक्त सौ पणका या पचास पणका दंड देनेपरभी आगेको उस हीनशक्ति पुरुषकी कुशल क्षेमके निमित्त अपना (प्रतिभू) जामिन मये मुचलिके देकर छूटिसकै अन्यथा नहीं २१४ ॥

अधि०—उक्त व्यवस्थामें कुछ वर्णभेदसे अपेक्षा नहीं किंतु सामान्यभाव सभी वर्णोंका यह एकन्याय समुझना जोकुछ ऊपर कहा परन्तु-शिष्यादिकी अपेक्षा जो गुर्वादि कोई शिक्षादेने आदि हेतुओंसे कुछ क्रोधसे उच्चारण ऐसा करैं कि जैसा ऊपर कहा तौ इस दंडसे अपेक्षा उनको नहीं किंतु गौतमजीका वचन कहीं पहिलेभी लिखचुका है सो देखो २१३। २१४ ॥

(अथ तीव्राक्रोशेदंडविशेषः)

पतनीयकृतेक्षेपेदंडोमध्यमसाहसः। उपपातकयुक्तेतुदाप्यःप्रथमसाहसम् २१५

त्रैविद्यनृपदेवानांक्षेपउत्तमसाहसः। मध्यमोजातिपूगानांप्रथमोग्रामदेशयोः २१६

ऐ०—पतनीय आक्षेप करने में मध्यम साहसदंड किंतु ब्रह्महत्या आदि अनेक महापातक जो जो प्रायश्चित्तके अध्यायमें प्रदर्शितहोंगे तिनसे आक्षेप जिसने किया हो तिसपर प्रथम साहसदंड २७०पणतक योग्यहै २१५ जिसने त्रैविद्य वेदत्रय संपन्न विप्रोंको या नृपतियोंको देवताओंको कुछ किसी प्रकार आक्षेप कियाहो तिसपर

उत्तम साहसदंड १०८०पण परिमाणतक दिलवायाजाय-जिसने जातिपूगोंको अर्थात् ब्राह्मण आदि या मूर्धावसिक्त आदि किसी जातिके समूहमात्रको कुछ तीव्रआक्षेप कियाहो तिसपर मध्यमसाहसदंड ५४०पणतक लियाजाय-जिसने किसीग्राम यद्वा देशमात्रको कुछ तीव्र आक्षेप कियाहो तिसपर प्रथम साहसदंड २७० पणतकयथापराधके अनुसार लियाजाय २१६ ॥

अधि०—यद्यपि दोसौपंद्रहके श्लोकवाले दोनोंदंड याज्ञवल्क्यने समानभाव सभी वर्णोंको दर्शाये हैं तथापि निम्नोक्त मनुके वचनोंवाले नियमोंका विरोध शांत करनेके अर्थ उनको तुल्यात्मक एक वर्णमें परस्पर आक्षेप होनेके अवसरमें समुझना किंतु भिन्न वर्णोंकी व्यवस्था मनुके बाक्यसे लेलेनी-तथाचमनुः(ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यांतुदंडः कार्योविजानता। ब्राह्मणेसाहसःपूर्वःक्षत्रियेत्वेषमध्यमः ॥ विट्शूद्रयोरेवमेवस्वजातिं प्रतितत्त्वतः। छेदवर्जंप्रणयनंदंडस्येतिविनिश्चयः)अर्थात्-जहांब्राह्मण क्षत्रिय दोनों वर्ण परस्पर या दोमें एक दूसरे कोही आक्षेप करै जो पतनीयवाणी समुझीजाय तहां दंडशास्त्रका विज्ञाताराजा इसी निर्णय साथ दंड करै कि क्षत्रियको पातित्यदोष लगानेवाले ब्राह्मणसे पूर्वसाहसदंड २५० पणतक लेय और ब्राह्मणको पतनीय क्षेपकरनेवाले क्षत्रियसे मध्यमसाहस ५००पणदंडलेय-ऐसेही यदि वैश्य और शूद्रमेंसे कोई एक दूसरेको पतनीय आक्षेप उसकी जातिपर कुछकरै तौ ये दोनोंभी ब्राह्मण क्षत्रियकेअनुरूप दंडनीयहैं अर्थात् वैश्यपर२५० तकदंड और शूद्रपर५०० तकदंड होय परन्तु जिह्वाच्छेदरूप दंड इसमें वर्जितहै यह शास्त्रका विशेष निश्चय जानो-इसके मध्ये मुक्तावली टीकामें (कुल्लूकभट्टने यह लिखाहै कि पहले प्रतिलोम क्रमके आक्षेपोंके प्रसंगमें (एकजातिर्द्विजातींस्तु) इत्यादि वाक्यसे सामान्य सभीवर्णोंको अश्लील भाषण करनेके अपराधमध्ये जीभछेदनरूप दंडशूद्रको दर्शाया सो अत्रोक्त नियमविशेषके अनुसार सिर्फ ब्राह्मण क्षत्रिय दोहीकी अपेक्षा निश्चित रहा क्योंकि वैश्यके अपेक्षा यहां वर्जित हुआ) (अत्रनृपापेक्षायांविशेषः) तत्रनारदः (अवकुश्यचराजानं धर्मनिस्वेव्यवस्थितम्। जिह्वाच्छेदाद्भवेच्छुद्धिःसर्वस्वहरणेनवा) अर्थात्-अपने मर्ममें व्यवस्थितहुये राजाको कुछ आक्रोश करिके जिह्वा छेदरूप दण्डसेही शुद्धि उसकी होवै यद्वा सर्वधन हरलेनेसेही-आगे बढ़िकर ३०७ संख्या मूल श्लोकसे योगीश्वरभी यह कहेंगे कि(राज्ञोऽनिष्टप्रवक्तारंतस्यैवाक्रोशकारिणम्। तन्मंत्रस्यचभेत्तारंछित्त्वा जिह्वांप्रवासयेत्) अर्थ इसका उसीजगह वर्णनहोगा देशाद्यपेक्षयावृहस्पतिस्तदाह यथा(देशादिकंक्षिपन्दाप्यःपणानर्धत्रयोदश। पापेनयोजयन्दप्याँदाप्यःप्रथमसाहसम् एषदण्डःसमाख्यातःपुरुपापेक्षयामया। समंन्यूनाधिकत्वेन कल्पनीयोमनीषिभिः अर्थात्-वृहस्पति कहते हैं कि देशग्राम जातिसमूह आदि किसीको संक्षेप निन्द्य

भेदवाला आक्षेप करताहुआ मनुष्य साढ़ेबारह पणकादंड दिलाने योग्यहै औरइसीके अनुसारदूने पचीसपण अश्लीलवाणीके भेदमध्येजानो एवंदर्पसे कुछपाप किंतु उपपातकदोष लगता हुआ पूर्वसाहसदंड दिलाने योग्यहै और इसीके अनुसारदूनामध्यम साहसदंड महापातक ब्रह्महत्याआदि लगानेमध्ये जानो यहसबदंड मैंने केवल पुरुषकी अपेक्षासे निर्णीत कियाहै किजहांकोई अपनेतुल्यगुणजाति वालेपुरुष कोही परुषवचन कहताहोइस्से देशग्राम जातिसमूहआदि और न्यूनाधिक जातिगुणवालों कीअपेक्षा में मनीषीलोग इसीबीजके अनुसारअपनी बुद्धिसे धनदंडके परिमाण कल्पितकरैं किजैसा औरोंने स्पष्टसबको कहा (क्वचिदर्धदंडकरणंचाविज्ञेयं) तच्चोक्तंउशनसामोहात्प्रमादात्संघर्षात्प्रीत्याचोक्तंमयेतियः। नाहमेवंपुनर्वक्ष्येदंडार्धंतस्यकल्पयेत्)अर्थात्-उशनाने यहदशा भी दर्शाईहै कि जोजोकोई परुषबाणीकहनेसे अभियुक्त होकर पीछे ऐसीभांति आधीनी करनेलगै कि मेरेमुखसे मोहमूर्च्छाआदि हेतुसे यहपरुषवाणीनिकसिगई या प्रमाद भ्रांतिभूलकरके निकसिगई या संघर्ष परस्पर स्पर्धाभाव यद्वादवाभिंची केहेतु करके निकसिगई उसअवसरमें संकोचसे अवकाश ऐसानहीं था जो इनके मैं स्वरूप ज्ञानको पहुंचता या मैंने प्रीतिभावसे कहडाला परअब कभी ऐसा बचन मुखसे फेरि न काढ़ौंगा यहक्षमाकरो ऐसे पुरुषपर उस दंडसे आधादंड कल्पित कियाजायजो कुछन्यायके अनुसार उसपरसूचित हुआहो-सो-यहआधेवाला नियम सज्जन पुरुषोंके निमित्तमें समुझना जिनका अभ्यास क्रूरवचनोंके उच्चारण में न हो-किन्तु-अनृत भाषण का अभ्यास रखनेवाले दुर्वृत्त लोगों का दण्ड जीभछेदन पर्यंतजानो--यथाहकात्यायनः(अनृताख्यानशीलानां जिह्वाच्छेदोविशोधनं) हारीतोऽपिविशेषयति--यथा(मिथ्याभाषिणांमेलकानांच राजाजिह्वांछिन्द्याद्दंडयेद्वा)अर्थात् अभ्यास पूर्वक मिथ्यावाणी बकनेवाले किन्तुनिपट असत्य दोषलगानेका अभ्यास रखनेवाले और मेलक जोव्यभिचारी पुरुषोंसे स्त्रियों को मिलातेहों तिनकी जीभराजाकटवावै क्योंकि यहसब खोटेकाम जीभसेहीकियेजातेहैं यद्वा जीभ कटाना उचित न समुझै तौभी इसी समानकोई और तीव्रदण्ड या धनदण्ड कृतअपराधके अनुरूप करै--निपट यही नियमनहींहै कि झूठा दोषलगानेसे अपराधी ठहरै यद्वाकोशाकरी की रीतिसे जो परुष काढ़ै सोईदण्डपावै-किन्तु सच्चादोष कहनेपरभी या दोषयुक्तनाम से पुकारने परभीवाक्पारुष्य काअपराध लगताहै-तदाहनारदः(पतितंपतितेत्युक्त्वा तथाचौरेतिवापुनः। वचनात्तुल्यदोषःस्यान्मिथ्याद्विर्दोषतांव्रजेत्)अर्थात्-पतितको अरे पतित या चोरको अरे चोर इत्यादि किसी और को भी ऐसासच्चानाम कहिकरउसे पुकारै याकुछ वातचीत कहिनेलगै तौभी ऐसेवक्तापर तुल्यात्मक वहीदोष खड़ाहोता है कि जैसागाली देनेमें संसूचित हुआथा और जो मिथ्यानाम धरै किंतु चोरनहींहै

और चोरकहकेटेरै तिसको दूनादोषहोताहै अर्थात् दूनादंड लियाजाय-विष्णुरपि-(काणखञ्जादीनांतथ्यवाच्यपि कार्षापणद्वयम्) अर्थात्-विष्णु कहते हैं कि काने लँगडे आदि किसीको सच्चेदोषवाले नामसे कुछ कहनेवाला दोकार्षापण दंडभरै (दोकार्षापण यहां दोरूप्यमुद्रामात्रजानो) मनुस्तु(काणंवाप्यथवाखंजमन्यंवापितथाविधम्। तथ्येनापिब्रुवन्दाप्योदंडंकार्षापणावरम्)अर्थात्-कानेको या लँगड़ेको या तद्वत् किसी और अंग भंगको जो कोई सत्यदोषवाले नामसेभी किंचिन्मात्र बोलै तौभी अवर नामक ऐसाछोटा दंड उस्से दिलवायाजाय जो एकपणके भीतर उसअपराध केअनुरूप तुल्यसमुझाजाय (पण और कार्षापण दोनों एकबस्तु समुझनी) कार्षापण यद्यपि सोरह पणकी संज्ञाभी कहाती है परंच वे सोरहपणभी ताम्रपण अर्थात् सोरह आने समुझेजातेहैं और मनुने जो यहां अवर शब्दका चिह्नदेकर छोटादंड सूचित किया तिसकाभीप्रयोजनमुख्ययहीहै कि सोरह आनेकेभीतरभीतर या पूरे सोरहआने तकभी जो कुछलेना योग्य समुझाजाय सोई उसअपराधके अनुरूप कल्पित करै-यद्यपि-यहां विरोधभी दिखाई देताहै कि २०९ के मूलश्लोकमें योगीश्वरने यहदंड साढ़ेबारहपण का नियत कियाहै फिर क्योंकर यहां एकपणके भीतर या दोपण पूरे मनुविष्णुके अनुसार मानेजायँ (सो)इसविरोध यह शांतिभी मितांक्षराकारनेदर्शाई है कि यह थोड़ादंड ऐसीदशापर आरूढ़है कि जहां किसी दुर्वृत्त या दुर्वर्णकानेखंजे के यथार्थ नाम दूषणसे संबोधन आदि कियाजाय-इसीप्रकार माधवीय धर्मशास्त्र में भी विद्यारण्यश्रीपादोंने यह कहाहै कि (यह थोड़ादंड दुर्वृत्त काने खंजे आदिको यथार्थ नाम दूषण देकर कहनेवालेपर आरूढ़है) और सिद्धांत इसका यहकि जहां किसी सत्पुरुष या सद्वर्ण काने खंजे आदिको यथार्थ सच्चेदोषरूपी नामसे या और किसी युक्तिसे कुछ कुत्सित आक्षेप कियाजाय तहां २०९ के मूलश्लोकसे योगीश्वर का दर्शाया साढ़ेबारहपण का दंडजानो ऐसीरीतिसे विरोधका संसर्गइसमें नहींहै॥

इतिषट्सप्ततितमः परिच्छेदः २१५। २१६॥

वाक्पारुष्य का यह प्रकरणपूराहुआ परंच इसमें किंचित्(साहस)रूप विवादों का भी लक्षणसमुझाजाने के निमित्त करके इससे तीसरासाहस नामका प्रकरणभी विचारो जिसका प्रारंभआगे २३५ मूलश्लोक द्वाराहोगा-क्योंकि साहसकेभी चारपांच रूपहोतेहैं इसहेतुसे यह प्रकरण उसीसाहसप्रकरणके आधीन और वहसाहसप्रकरण एकप्रकीर्णक नामसवसे पिछलेप्रकरणके आधीनजानो क्योंकि उसमें नानाभांति से राजाश्रय व्यवहार वर्णन होंगे तहां प्रायःइसप्रकरणकेभी संबंधी अत्युग्रव्यवहार लेकर पुनःप्रदर्शित होंगे २१५। २१६॥

इति वाक्पारुष्यविवाद प्रकरणम्॥

गाली गलौजआदि दुर्वाक्योंका यहप्रकरण एक इसी छिहत्तरसंख्याके परिच्छेदसे समाप्तहुआ॥

अथ दण्डपारुष्यनामक व्यवहारपद विवेकोनामसप्तसप्ततितमःपरिच्छेदः (७७)

इस सतहत्तरिसंख्याके परिच्छेदमें डण्डाबाजी आदि मारपीट या कुछ तोड़फोड़ आदि और कोई भाँतिके उपद्रवहों तिनके रूपदण्डवर्णनहोंगे

दण्डपारुष्यका यह अर्थ है कि (दण्ड) नाम लाठी डंडा तिसको (पारुष्य) नाम कठोरता अर्पणकरनी किन्तु बिरुद्धमार्गसे चलाना या टेढ़ासूधाकरना आदि झगड़ा जिसमेंहो वही विवाद दण्डपारुष्यनाम कहलावे-इसको लौकिक बोलचालमेंभी डंडा बाजीका बखेड़ा कहाकरते हैं-यहाँ डण्डा एक निदर्शनमात्रजानो किन्तु डंडाके उपलक्षणसे सर्वथा कोईशस्त्र या लातघूँसा मट्टीका ढीम आदि सभीसमुझने जिनका किंचित्भी तकरारमें समुद्यतकरना सम्भवहो-इसकारूपलक्षण ब्यौरेवार नारदने दर्शायाहै-यथा (परगात्रेष्वभिद्रोहोहस्तपादायुधादिभिः। भस्मादिभिश्चोपघातोदंड पारुष्यमुच्यते) अर्थात्-परायेगात नाम अंगोंमें निज हाथ पैर शस्त्र काँकर पाथर आदिसे अभिद्रोह कहिये दुःखपीड़ा देना या भस्म आदि राख धूलि कीचड़ विष्ठा आदि किसी चीज़से उपघातकरना किन्तु फेंकना मारना या स्पर्शकरानेमात्रसे पराये मनको दुःखदेना इत्यादि कोईभाँतिका उपद्रवहो सो सब दंडपारुष्य कहाजाता है-यहाँ परायागातकेवल मनुष्यकाही नहीं किन्तु जंगम और स्थावर दोनोंभाँति सभी प्राणियोंके अंग समुझिलेनेचाहे किसी भीति या वृक्षादि स्थावरको कुछपीड़ादे तौ भी दंडपारुष्यका व्यवहार खड़ाहोताहै-उन्हीं नारदने-इस दंडपारुष्यके फिरतीनतीन भेद दोभाँतिसे दर्शायेहैं-यथा (तस्यापिदृष्टंत्रैविध्यंहीनमध्योत्तमक्रमात्। अवगोरण निःशंकपातनक्षतदर्शनैः॥ हीनमध्योत्तमानांचद्रव्याणांसमतिक्रमात्। त्रीण्येवसाहसान्याहुस्तत्रकंटकशोधनम्) अर्थात्-उस दंडपारुष्यकेभी तीनभेद हीन १ मध्यम २ उत्तम ३क्रमसे देखेगये हैं कि जहाँ केवल अवगोरण किन्तु गुरेरना कोईचीज़ लाठी पत्थर आदि यद्वा हाथ पैर आदि मारनेको उठाकर सन्मुख दिखलायाजाय सो तौ पहली हीन संज्ञक डंडाबाजीजानो-जहाँकहीं निःशंकपातनहोय किन्तु निधड़क फेंकि चलायाजाय कुछभी आगापीछा चोटलगनेका न सोचाजाय तौ यह मध्यम संज्ञक द्वितीय डंडावाजीहुईजानो-जहाँकोई ऐसी तीव्रचोट लगाईजाय जिस्से घावहोकर कुछकुछ रक्तपातभी होआवे तौ यह उत्तम संज्ञक तृतीय डण्डावाजीहुई कहातीहै-इसीप्रकार हीन मध्यम उत्तम तीनि दर्जाके जो प्राणी वा पदार्थभी संसार में सर्वत्र होतेहों तिनमें जिसजिस भाँतिके प्राणियों या जिस भाँतिके कुछ द्रव्योंका अतिक्रम कियाजावे उसीभाँतिका तत्रत्य डण्डावाजी भी कहातीहै और इसीआशय से यह तीनों साहस कहलाते किंतु साहस कर्मसेही कियेहुये यहतीनों दण्डपारुष्य मानेजा-

तेहैं तिन सबमें कण्टकरूप दुर्जन लोगोंका परिशोधन करना सदाराजापर आरूढ़है और-आशय इसकादेखो एकप्रकीर्णकनाम सबसे पिछले प्रकरणमें (अत्रोक्त साहस लक्षणकी दृढ़ता आगे साहस प्रकरण में से देखो क्योंकि यह प्रकरणभी उसप्रकरण के आधीन और वह साहस प्रकरणभी प्रकीर्ण प्रकरण के आधीन है-परिशिष्टग्रन्थ-कारने कुछ और भी सामान्य लक्षण कहेहैं यथा-(दुःखंरक्तंव्रणम्भङ्गञ्छेदनम्भेदनन्त-था। कुर्याद्यःप्राणिनान्तद्धिदण्डपारुष्यमुच्यते) अर्थात्-जोकोई किसीभाँतिके स्थावर जङ्गम प्राणियों को कुछ दुःखदेय यद्वा रक्त चलावे या हाड़ आदि तोड़ा फोड़ीकरै या काँटे सूजा आदि से कोंचै छेदै या नखछुरी आदिसे भेदनकरै चुभावेचीरै सोसब डण्डाबाजी कहीजातीहै-व्यासने कुछ और भी सामान्य चिह्न दर्शितकियेहैं-यथा-(भस्मादिनाप्रक्षिपणन्ताडनञ्चकरादिना। आवेष्टनञ्चांशुकाद्यैर्दण्डपारुष्यमुच्यते)अ-र्थात्-राखधूलि कङ्कर विष्ठा आदि किसीके ऊपर यद्वा सन्मुख दिखलाकर फेंकिदेना या हाथ पावँ लाठी खड्ग पत्थर आदिसे मारना यद्वा वस्त्र रस्सी साँकल आदि से लपेटना वा बाँधना यहसब दण्डपारुष्यकेही लक्षणकहेजातेहैं-नारदने-इस दण्डपारु-ष्य मध्ये पाँचप्रकार विधिभी वर्णन करीहै कि जो सर्वत्र कामआवै-सायथा (विधिःप ञ्चविधस्तूक्तएतयोरुभयोरपि। पारुष्येसतिसंरम्भादुत्पन्नेक्रुद्धयोर्द्वयोः॥ समान्यतेयः क्षमतेदण्डभाग्योऽतिवर्तते। पूर्वमाक्षारयेद्यस्तुनियतंस्यात्सदोषभाक्॥ पश्चाद्यःसोऽ प्यसत्कारीपूर्वेतुविनयोगुरुः। द्वयोरापन्नयोस्तुल्यमनुबध्नातियःपुनः॥ सतयोर्दण्डमा प्नोतिपूर्वोवायदिवेतरः॥ पारुष्यदोषावृतयोर्युगपत्सम्प्रवृत्तयोः। विशेषश्चेन्नलक्ष्येत विनयःस्यात्समस्तयोः॥ श्वपाकषण्डचण्डालव्यंगेषुवधवृत्तिषु। हस्तिपव्रात्यदासेषुगु र्वाचार्यनृपेषुच॥ मर्यादाऽतिक्रमेसद्योघातएवाऽनुशासनम्। यमेवह्यातिवर्तेरन्नेतद्धि नयभाङ्नृपः॥ मलाह्येतेमनुष्याणान्धनमेषाम्मलात्मकम्। अतस्तान्घातयेद्राजाना र्थदण्डेनदण्डयेत्)अर्थात्-नारद कहतेहैं कि अत्रोक्त दण्डपारुष्य और पूर्वोक्त वाक् पारुष्य इन दोनोंकी विधि पाँचप्रकारकी सबकही हैं तिनमें एकतौ विधि यही है कि जहाँ क्रोधसे भरेहुये दोनोंबीच बड़ेवेगसे पारुष्य दोनोंभाँतिका या कोईएक भाँतिका उत्पन्नहोय तिसके होनेपर उन दोमेंसे जोकोई एक क्षमाकरै अर्थात् अपनेहाथ और मुहको रोकि शीघ्र चुपका होजाय वहीमनुष्य मान बड़ाई पूजा सत्कार पानेयोग्यहै और जो कोई एक बढ़कर वर्तै किंतु प्रतिपक्षी के शान्त होजानेपरभी पीछाकरैसोई दण्डपावै दूसरी इसमें यह विधिहै कि पहले जो ललकारि उठाहो सो तौ निपट दोष-भागी कियाजाय और पीछे जो ललकाराहो सोभी असत्कारी ठहरै परउस पहलेवा-लेपर दण्ड अधिकहोय-तीसरी इसमें यहविधिहै कि दोनों भिड़ेहुयों में जोकोई एक बराबरी करना चाहकर बारम्बार पीछाबाँधै जिरसे मेरी एकऊपर बनीरहै यद्वा इस

भाँति पूरावैर बाँधै कि प्रतिपक्षी यद्यपि निर्बल होकर या आगापीछा सोचिकर छुटि जाने तरह देजानेपर समुद्यत हुआहो तिसको छोड़ैनहीं बरन अधिक पीछाकरै तो फिर दोनोंबीच वही एकला दण्डपावे चाहे पहले भिड़ाथा या पीछे इससे अब कुछ कामनहीं-चौथी इसमें यह बिधिहै कि जहाँ पारुष्यरूपी दोषकरके दोनोंयुक्तहों और दोनों एकसाथ ऐसे वेगसे भिड़िपरेहों जिनमें पहले पीछेकी विशेषता न पहिंचानी जाय कौन पहले कौन पीछे इनमेंभिड़ाथा तबदोनोंको बराबर दण्डकियाजाय पाँचवीं इसमें यहविधिहै कि जहाँ कोई श्वपच श्वपाक कञ्जरआदि या शण्ड लुङ्गाड़ाआदि या चण्डाल भङ्गी आदि या बधवृत्ति कसाई चिड़ीमार आदि या हस्तिप हाथीमान आदि या व्रात्य धर्महीन जातिभ्रष्ट आदि या दासादिक नीच टहलुआ इनमें कोईभी जो गुरुओंसे आचार्योंसे नृपतियों से नियमात्मक मर्यादाका अतिक्रमकरै किंतु वाक्पारुष्य दंडपारुष्य करके सन्मुखहोय तहाँ शीघ्रइनका देहघातकरना एकयही शासन है-और इनमें कोईएकभी मनुष्योंमें जिस किसी उक्तसज्जनपर मर्यादाके अतिक्रमसेप्रवर्त्तितहो तिसअपराध मध्ये वहीसज्जन या उसके कोई और पक्षीलोग दंडदेने के अधिकारीहैं या उनकी निपटअशक्ति में यदि राजातक यहवाद पहुँचे तहाँराजा भी उसपीड़ित या अवमानित सज्जनसेही न्याय निश्चितकरवावे और वहउक्त सज्जन जो कुछ दंडकल्पितकरै सोईराजाकरै किंतु उसकान्याय विचारकरने मध्येराजा को अधिकारनहीं और अत्रोक्त अपराधी लोगोंसे धनदंडभी न लेवै क्योंकि उक्त प्राणी नरजातिमें मलरूपहैं और धनभी उनका विष्ठातुल्यहै इसलिये घातदंडराजा करै इनकोअर्थ दंडसे नदंडे-यही पाँचप्रकारोंवाली विधि सबसामान्य पारुष्योंके विवादोंमें सर्वत्र विचारणीयहै (पर)देशकाल वस्तुओंका विवेकभी सर्वत्र साधनीय है-इन्हीं पाँचविधियोंके प्रसंगमें-अग्रोक्त एकवृहस्पति केवचनानुसार किंचित् विरोधसा प्रतीत होताहै तिसवचनकाभी अभिप्राय यहाँ समुझिलेना आवश्यकहै-तद्यथा(आक्रुष्टस्तुसमाक्रोशन्ताडितःप्रतिदापयन्। हत्वाऽपराधिनंचैवनापराधीभवेन्नरः)अर्थात्-वृहस्पति कहतेहैं कि जो कोईपुरुष किसीकरके क्रोशाहुआ क्रोशनेलगै यामाराहुआ मारनेलगै तो अपराधी नहींठहरै एवंवहभी जोकि अपने किसी अपराध करनेवाले को पहले मारिडठै तो अपराधी नहीं ठहरै क्योंकि उसने सिर्फबदला किया-सो-यह कथनभी अनंतरोक्त नारदकी पाँचवींविधिसे निपट कुछ सम्बन्धनहींरखताहै क्योंकि यह अत्रोक्त कथन एक सामान्यविधिमें गिननीहै और नारदकी वह पाँचवीं विधि विशेष विधिकेरूपसे दर्शाईगईथी(सामान्यशास्त्रतोनूनंविशेषोबलवान्सदा)परन्तुउसको छोड़िकर अन्यत्रसिर्फ इसआशयपर आरूढ़ है कि यहपीछे बदलाकरने वाला थोड़ादंडपावे किंतु पहिले भिड़नेवालेकी बराबर नहीं-परंच इसआशयपर आरूढ़

नहींहै कि निपट दंडनहींपावै क्योंकि ऊपर द्वितीयविधिका रूपयह दर्शायाहै कि(पूर्वं माक्षारयेद्यस्तुनियतंस्यात्सदोषभाक्। पश्चाद्यःसोऽप्यसत्कारीपूर्वेतुविनयोगुरुः)व लिकइसके सिवाय जो तृतीयविधिका लक्षण पायाजाय तौफिर उसीके अनुसार दंड होगा चाहे पहले यद्वापीछे भिड़ाहो यहकुछ नियमनहीं -कदाचित्-दंडपारुष्यका उपद्रव किसीने होतेहुये न देखाहो तिसके संदेहोंमें स्वरूपनिर्णयकरनेका उपाययाज्ञ-वल्क्यजी दर्शाते हैं॥ (अदृष्ट दंडपारुष्यस्यविवेकः)

असाक्षिकहतेचिह्नैर्युक्तिभिश्चागमेनच। द्रष्टव्योव्यवहारस्तुकूटचिह्नकृतोभयात् २१७॥

अक्ष०—साक्षीरहित पिटनेमें चिह्नोंसे और युक्तियों तथा आगमसेभी व्यवहार विचारणीय है कल्पित चिह्नकरनेके संदेहसे २१७॥

आभि०—राजापर जब कोई जाकर यह आवेदनकरै कि मुझको अमुकामुकने एकांतमें इसभाँतिमारा-तभीराजा इसव्यवहारको शरीरमें उत्पन्नहुये चिह्नोंसे किजोकुछ लालकाले दागयद्वा सूजनिआदिहों देखिभाल निर्णयकरै परंच केवल चिह्नोंसे विश्वासहोना विरले अवसरमें असंभवहुआ करताहै क्योंकि विरले परद्रोही उच्छृंखल पुरुष किसीसत्पात्रको निरर्थक दंडदिलानेके अर्थसे निजदेहमें बनावटकेभी चिह्न कल्पित करलातेहैं अथवा प्रायःलुंगाड़ेलोग भलेआदमीको एकांत निर्जनपंथआदिमें पाकर निपट निष्कारणभी किसी ऐसीवस्तुसे प्रहार करदेते हैं कि जिसका कुछभी चिह्न उसकीदेहमेंदिखाई नहींदेसक्ताहै फिर क्योंकर चिह्न ढूँढ़ेजायँ कदाचित् ऐसे व्यवहारका निपटारा विनाकिये निवर्तन कियाजाय तो फिर न्यायनकरना यह अन्याय खड़ा होताहै और दुर्जन पंक्तियोंकी बढ़वारीहोना संभव है इसहेतु राजायुक्तियोंसे भी निर्णय करै अर्थात् उसी उपद्रवके होसकनेवाला कोई कारण प्रथमखोजे कि इनदोनों के परस्पर किंचित् वैरआदि कोई कारण या प्रयोजन पहिलेसे है या नहीं अथवा उसस्थान में कि जहाँ उपद्रवहुआ कहते हैं इनदोनोंका पहुँचना किसी हेतुकरके संभवहै या नहीं और उसकालकेभी कोई लक्षण विशेष उन्हीं दोनांसे भिन्न भिन्न पूँछिकर उच्चरित भाषाके अर्थोंसेभी निर्णय करैकि इनमें कौनझूँठा कौन सच्चाहै इत्यादि अनेक भांतिकी युक्तियों से विचारै-तत्पश्चात् आगमसेभी निर्णय करै कि इसवार्ता का प्रसंग अन्यमनुष्योंसे किसभांति सुनाजाताहै या मुद्दआअनेक कभी पहलेभी इसभांति के अपराध में फँसिचुका है या उसकी प्रकृति चालचलन आदि कैसाकुछ विख्यातहै या मुद्दईकिसभांति प्रमाणिकोंमें गिनतीहै अर्थात् उसकी प्रकृतिसे झूँठी या सच्ची नालिशकरना संभवहै यानहीं-इसके आगे यथासंभवदिव्य प्रमाणोंका आचरणभी आवश्यकजानिकर करवायाजाना योग्यहै २१७॥ इसभांति जो कुछअपराध निश्चित होवैं तिनकेदंड नीचे कहते हैं२१७॥

अधि०—नारद और बृहस्पति नेभी इसके निर्णय का स्वरूप दर्शित किया है कि जब कोई अपने हाथसेही मारपीटवाले चिह्न अपनी देहमें बनाकर नालिश करै—तथाचनारदबृहस्पती (कश्चित्कृत्वात्मनाश्चिह्नंद्वेषात्परमभिद्रवेत्। हेत्वर्थमतिसामर्थ्यै स्तत्रयुक्तंपरीक्षणम्) अर्थात्-कोई अपने हाथसे निजदेहमें कुछ चोटचपेटवालाघाव आदिचिह्नकरके किसी परायेपर कुछद्वेष वैरभावसे जो दौड़े फैलिजाय कि मुझको मारातहाँ परीक्षा करनायोग्यहै यथार्थ किसीहेतुके अर्थादि प्रयोजनसे कि जैसाउनके आपसमें कुछ पायाजाय औरभी (अतिसामर्थ्योंसे) अर्थात् (अति) अव्ययके भावार्थसे असांप्रतिकक्षेप जो कुछ कहासुनी तकरारआदि उनमें पहलेसे हमेशा या थोड़े दिन से चलीआईहो और सामर्थ्यकेभावार्थ से परस्पर उनके देहबलकाअंतर संगतता असंगतताआदि देखीजाय कि यहपुरुष इसको मारसक्ताहै या नहीं यद्वा किसहेतुसे यहइसको मारसक्ताथा और जहाँतकबनिआवै कोईसाक्ष्य आदि प्रमाणभी अन्वेषण कियाजाय यद्वा उसके निपट नमिलने में कुछदिव्य प्रमाण मांगाजाय-अत्रकात्यायनः (हेत्वादिभिर्नपश्येच्चेद्दंडपारुष्यकारणम्। तदासाक्षिकृतंतत्रदिव्यंवाविनियोजयेत्) अर्थात्-जहाँऐसे झगड़ेकी संदिग्ध डंडाबाजीहो जिसका मुख्यकारण किसीहेतु अर्थ सामर्थ्यआदि लक्षणोंसे न समुझाजाय तब सामान्य साक्षीलोगोंकी कहावतिमात्र लेकर उसी कहावतिके अनुसार अर्थीसहित साक्षीलोगोंसे कुछ दिव्यप्रमाणभी शपथादि जैसा निर्णयके अनुकूल योग्य समुझाजाय सो करवावै २१७॥

(रजोऽमेध्यादि स्पर्शेदंडः)

भस्मपंकरजःस्पर्शेदंडोदशपणस्स्मृतः। अमेध्यपार्ष्णिनिष्ठ्यूतस्पर्शनेद्विगुणस्ततः २१८॥
समेष्वेवंपरस्त्रीषुद्विगुणस्तूत्तमेषुच। हीनेष्वर्धदमोमोहमदादिभिरदंडनम् २१९॥

ऐ०—जिसने अपने समान वर्णवालोंको राखकीच काँदो या धूलिसे स्पर्शकराया हो किंतु उनकेऊपर अहंकारसे यदिफेंकीहो तिसपर दशपण दंडहोय जिसने उन्हीं समान जातियोंपर कुछ अमेध्यनाम अपवित्र कफवाल आँसू उच्छिष्ट आदिफेंकाहो यद्वापैरकी एड़ीमात्रभी स्पर्शकराईहो या निष्ठ्यूतनाम कुल्लेका पानीफेंकाहो तिसपर दूनादंड बीसपण दिलवायेजायँ २१८ सो यह दश और बीसपणका दंडसिर्फ़ अपने तुल्यगुण प्रतिष्ठाआदि से संयुक्तका अपराध करनेमध्ये नियत है-यदि कोईइन्हीं अपराधोंको पराईस्त्रियोंमें उत्पन्नकरे किंतुस्त्रीमात्र सामान्य किसी अवस्था यद्वाकिसी वर्णकीहो तो यह उक्तदण्डदूना लियाजायगा अर्थात् राखधूलिआदि मध्ये दशकेबीस तथा अमेध्यआदिकी अपेक्षा बीसपणके दूने चालीसभरै-इसीप्रकार अपनेसे उत्तम जो जो सवर्ण पुरुष किसीभाँतिकी गुण प्रतिष्ठामें कुछ अधिकहों तिनकेसाथभी यथोक्त अपराधोंका करनेवाला दूनादंड दशकेबीस बीसके चालिस भरै-ऐसेही जब

अपनेसे कुछहीन गुणप्रतिष्ठावालेका अपराधकरै तब उस मुख्यदंडसे आधादंडदश केपाँच बीसके दशपणभरै-पर जो मोहमदादि किसी चित्त विकारकरके ये अपराध कियेहों तौफिर दंडनहीं-मोहसे अर्थात् अपने चित्तकी विकलतासे विक्षिप्त सिड़ीदीवानाहोकर या मद्यादि पानभक्षणके हेतुसे और आदिशब्दके आशयसे भूतोन्माद ग्रहोन्माद सन्निपातआदि समुझने इनसे युक्तप्राणी ऊर्ध्वोक्त अपराधोंकी अपेक्षा क्षमाकरनेयोग्यहैं पर जो बनाहुआ सिड़ीहो तिसकेलिये यह अपवाद रूपछूट नहीं समुझनी २१९॥

अधि०—विष्ठाआदिके स्पर्शकरानेमें कात्यायनजीने दंडविशेष नियतकियाहै-यथा-(छर्दिमूत्रपुरीषाद्यैःस्पर्शनेसचतुर्गुणः। षड्गुणःकायमध्येस्यान्मूर्द्धित्वष्टगुणःस्मृतः) अर्थात्-छर्दिउलटी रद्द मूत्र विष्ठा और (आदि)शब्दके आशयकरके बसा चरबी वीर्य पीब रक्तमज्जा आदि अनेक समुझने इनसे जो स्पर्श करावै तिसपर वहीदण्ड चौगुना लियाजावे जो दशपणका कहागयाहै परन्तु यह चालीस पणका तबतकहै कि जवतक पैरगोड़ोंतक स्पर्श करायाहो किन्तु देहके बिचलेभाग कमर आदि में लगानेवालावही दण्ड छेगुना साठि पणतकभरै-कात्यायनजीका यह वचन विशेष अपने तुल्य गुणादि प्रतिष्ठावालेकी अपेक्षा में समुझना किन्तु अपनासे उत्तमके अपराधों मध्ये यहभी यथाक्रम से द्विगुणहोगा एवं न्यूनप्रतिष्ठा वालेकी अपेक्षा यथाक्रम से आधादण्ड जैसा ऊपर वर्णन हुआ सोसब इसमें भी समुझना २१८।२१९॥

(प्रातिलोम्यापराधानान्दण्डविशेषः)

विप्रपीडाकरञ्छेद्यमंगमब्राह्मणस्यतु। उद्गूर्णेप्रथमोदण्डःसंस्पर्शेतुतदर्धिकः २२०॥

ऐ०—ब्राह्मण को कुछपीड़ा करनेवाला अङ्ग छेदनीय है जो ब्राह्मणका नहो-उद्गूर्ण करनेमध्ये पूर्वसाहस दण्ड और स्पर्शकरनेमात्रमें तदर्धिक दण्डहोवे-अर्थात्-क्षत्रिय आदिनिचले वर्णोंके मनुष्यने जिसअङ्ग हाथपावँआदिसे कुछपीड़ा किसीप्रकारकी कि जो जो राख धूलि आदि ऊपर वर्णनहुई कदाचित् ब्राह्मणको पहुँचाईहो तिसकावही अङ्गछेदन करना दण्डहो-एवं क्षत्रिय अथवा वैश्यको कुछपीड़ा वा अपमान शूद्रजातीने पहुँचायाहो तौभी अङ्गछेदन रूपदण्डहै और विशेष निर्णय इसका इसी अध्याकी अधिकोक्तिमें विचारो इनसबन्यायोंके अनुरूप जहाँक्षत्रियको उसभाँति कोईपीड़ा वा अपमान वैश्यजातिने पहुँचायाहो तिसकोभी तथैव दण्डजानो और उद्गूरण करने किंतु उगानेमात्रका जो पूर्वसाहस दण्डकहा तिसका अभिप्रायिक आशय यह कि जहाँ समान जातीने या अनुलोम क्रमसे उत्तम जातीने कुछ हाथपावँ यद्वाकोई शस्त्र आदि मारनेको उद्गूरणकिया उगायाहो किंतु सिर्फ उठाकर ऊँचाकियाहो फेंका अबतकनहीं तिसपर २७० पणका प्रथम साहस दण्डलियाजाय अथवा ऊँचा

यद्यपि नहींकिया पर तेहाखाकर सिर्फ़ उठाने के निमित्तसे शस्त्रादि किसीप्रहारयोग्य वस्तुको निजहाथ मात्रका स्पर्श करतेहुये दिखायाहो तौफिर आधा पूर्वसाहस दण्ड १३५ पणतक लियाजाय (औरजो) क्षत्रिय या वैश्यने शस्त्रादिकों के सिवाय सिर्फ़ राख धूलि आदि कोई तुच्छ वस्तु जिसके प्रहारसे भी पीड़ा होसकनी सम्भवनहो प्रतिलोम क्रमसे उत्तम जातिको सिर्फ़ उठाने के निमित्त से स्पर्श करतेहुये दिखाई हो तौ इनदोनोंको अत्रोक्त दण्डनहो किंतु पूर्वोक्त वाक्पारुष्य मध्ये दोसौबारहमूल श्लोकद्वारा (प्रातिलोम्यापवादेषुद्विगुणात्रिगुणादमाः) इत्यादि नियम जो जो उसी अधिकोक्ति पर्यंत कहेगयेहों तिन्हीं के अनुसार दण्डहोय-परन्तु शूद्रने प्रतिलोमक्रम से चाहे शस्त्रोंको उठानेके निमित्त से स्पर्शकियाहो यद्वा राख धूलि आदि मारनेको उठाने के निमित्त से स्पर्शकियाहो तौभी हस्तच्छेदन रूपदण्डहै और विशेष निर्णय इसका इसीअद्धाकी अधिकोक्तिसे विचारो २२० ॥

अधि०-शूद्रकी अपेक्षा से जो अर्थ ऊपर लिखेगये तिनकानिर्णय यहाँमनुकेवच-नोंसे सब जुदा जुदा समुझो-यथाहमनुः (येनकेनचिदङ्गेनहिंस्याच्छ्रेयांसमन्त्यजः। छेत्तव्यंतत्तदेवास्यतन्मनोरनुशासनम् ॥ पाणिमुद्यम्यदण्डंवापाणिच्छेदनमर्हति । पादेनप्रहरन्कोपात्पादच्छेदनमर्हति ॥ सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः। कट्यां कृताङ्कोनिर्वास्यःस्फिगंवास्यावकर्तयेत् ॥ अवनिष्ठीवतोदर्पाद्द्वावोष्ठौछेदयेन्नृपः । अवमूत्रयतोमेढ्रमवशर्द्धयतोगुदम् ॥ केशेषुगृह्णतोहस्तौछेदयेदविचारयन् । पादयोर्दा ढिकायाञ्चग्रीवायांवृषणेषुच) अर्थात्-मनुजी कहते हैं कि शूद्रजाति जिस किसी हाथ पैर आदि से या डण्डा आदि किसीप्रहार चिह्नसेभी उत्तम वर्णियोंको कुछपीड़ादेय तिसका वहीअङ्ग छेदन कर्त्तव्य है यहमनुने उपदेशकिया इसहीका पकाहट उदाहर-णोंसे स्पष्ट दर्शित करते हैं कि जबशूद्र हाथको या डण्डेको उगाकर अपनादर्पदिखा-वैतौ उसहाथकेही छेदनहोनेयोग्यहै या कोपकरके पावँसेही सन्मुखधरतीमात्रमें प्रहार करतेहुये दर्पदिखावै तौ उसपावँ के कटिजानेयोग्यहै जो अपकृष्टज नाम शूद्रजाति होकर उत्कृष्ट जातियोंकी वरावरी आसनवाँधि वैठिजाय तिसके करिहाउँवींचतपाई हुई लोहकील शलाकासे चिह्नाङ्क देकर देशान्तरमें निर्वासनकरै अर्थात् कालापानी आदि विकट वनचर देशमें अपराधके अनुरूप शिक्षामात्र किञ्चित् अवधितक पर-वास करवाकर फिरभी देशमें आजाने देय या अपराध की प्रवलता में निरन्तर देश निकालाहोय अथवा देशनिकाला क्षमारखकर कमरका निचला पिछलाभाग ऐसेढङ्ग से कटवावै जिस्से मरने नहींपावै सिर्फ़ शिक्षामात्रसी होजाय-दर्पसे जवकोई शूद्रअव-निष्ठीवनकरै अर्थात् ब्राह्मण आदि उत्तम वर्णियों के सन्मुख उन्हेंचिताकर थूकिदेवै तिसके दोनोंओठ राजाकटवावै इसीप्रकार मूतकीधार जो दिखलाकर उत्तम वर्णियों

का अपमानकरै तिसकी किञ्चित् इन्द्रियको कटवावै-इसीप्रकार जो अवशर्द्धनकरै किंतु दर्पयुक्त होकर उनकेसन्मुख उन्हेंचितातेहुये गुदासे अपशब्द करिकरि उत्तमवर्णियो का अपमानकरै तिसकी राजा किंचित् गुदाकटावै परजो भूल प्रमाद आदिसे होजाय तिसको दोषमात्रहै पर दण्डनहीं-इसीप्रकार दर्पसे जो शूद्र किसीउत्तम जातीके वाल पकड़े खींचै तिसके बिनाविचार दोनोंहाथ छेदन कियेजायँ अर्थात् बालपकड़ने से कुछ पीड़ाभी उत्पन्नहुई यद्वा नहीं ऐसाहेतु ढूँढ़नेबिना दण्डहोय–एवं दर्पसेही पैरपकड़ करखींचै या दाढ़ी पकड़ै या घींचपकड़ै यद्वा वृषण अण्डकोश को कुछपीड़ादेय या पीड़ा देनेके अर्थसेही पकड़ैखींचै तिसके दोनोंहाथ काटेजायँ-यहीव्यवस्था-नारद ने संक्षेप केवल ब्राह्मण और नृपतियोंका उद्देश देकर कही है-यथा-(येनाङ्गेनापरोवर्णो ब्राह्मणस्यापराध्नुयात् । तदङ्गन्तस्यछेत्तव्यमेवम्बुद्धिमवाप्नुयात् ॥ राजनिप्रहरेद्यस्तुकृ तागस्यपिदुर्मतिः । शूलयन्तमग्नौविपचेद्ब्रह्महत्याशताधिक) अर्थात्-अपर वर्णवाला पुरुष जिसकिसी अपने अङ्गसे ब्राह्मणका अपराधकरै तिसका वहीअङ्ग छेदनकर्त्तव्य है कि जैसे उसको शिक्षाबुद्धि पहुँचे और जो कोई दुर्बुद्धी किसी राजापर कुछ प्रहार करै यद्यपि राजासे अपराधभी कुछ हुआहो तौभी उसदुर्बुद्धीको शूलीपर चढ़वाकर नीचे अग्निसे पचावै ऐसातीव्र दण्ड दियाजाय क्योंकि उसने (अवध्योनृपतिःसदेति नियममतीत्य) शतधा ब्रह्महत्याओं के तुल्य पापकिया किसी अन्यभाँति से संशुद्धि उसकी नहींहै-इसकेभीसिवाय-जो कुछ प्रतिलोम या अनुलोम क्रमके दण्डपारुष्यमें अपराधोंकी गौरवता या लाघवता तथादण्डभेद निर्णयकरनेकी आकांक्षा आवश्यकता जहाँ उपस्थितहो तहां वाक्पारुष्यवाले प्रकरणमेंदर्शाईहुई विधिजैसी २१२ तथा २११ मूलश्लोकों की अधिकोक्तिमें निर्णीतहुईथी उसही के अनुसार व्यवस्था इस में भी प्रकल्पन करनी योग्य है सो यह नियम कात्यायन के अग्रोक्त वचन से संसिद्ध है तथाच(वाक्पारुष्येयथैवोक्ताःप्रातिलोम्यानुलोमतः । तथैवदंडपारुष्येपात्यादंडायथा क्रमम्)अर्थात्-जैसे दंड प्रतिलोम या अनुलोम क्रमसे वाक्पारुष्यमें कहचुके तैसे उन्हींके अनुरूप दंड दंडावाजीमें भी कर्तव्यहैं कि जैसाजैसा क्रम उसस्थलमें निरूपण हुआहो-किंच शूद्रको उसस्थलकी व्यवस्थामें भी प्रातिलोम्य अपराधमध्येअंग छेदनरूप दंडहै-तथापि जहां शूद्रने या और किन्हींवर्णोंने प्रतिलोमसे विशेपताड़न करने आदि प्रकारोंसे कुछदुःसहव्रण उत्पन्न कियाहो यद्वा और कोई चोट जोअति कालमें परिशुद्ध होसकनीसंभवहो तबउन पूर्वोक्त सभी दंडोंके परिमाणमें अधिकता यथापीड़ाके अनुरूप कल्पित कर्तव्यहै और दंडके सिवाय चोट अच्छीहोजानेयोग्य औषध पथ्यादिक जो आवश्यक हों तिनका व्ययभी उस अपराधीसे दिलाया जाय वलिक चुटहिल पुरुषकी संतुष्टिहोसकने योग्य औरभी कुछद्रव्य उसपर दिलवाया

जाय जो कुछ अच्छे लोग उचित निर्णयसे अनुमान करें-तदप्याहकात्यायनः(देहेन्द्रियविनाशेतुयथादंडंप्रकल्पयेत् । तथातुष्टिकरंदेयंसमुत्थानंचपंडितैः) अर्थात्-जहां कोई अंगदेह यद्वा इन्द्रियां घायल हुईहों अथवा निपट विनाश हुईहों तहां पूर्वोक्त दंड पारुष्यवाले दंडोंका कुछ नियमनहीं किंतु जैसाजैसा अपघात या विनाश और अपराध हुआ समुझाजाय तैसा अधिकदंडभी प्रकल्पित कियाजाय तथैव चुटाहिल पुरुषकी संतुष्टि करसकनेवाला देयद्रव्य भी प्रकल्पित कियाजाय और उतनासमुत्थान काभी खर्च विधिज्ञ लोगों के द्वाराकल्पित कियाजाय जितने द्रव्यसे वह चोट जितने दिनमें अच्छीहोकर चुटाहिल पुरुष अपने काम धंधोंमें रमिसकें क्योंकि (समुत्थानव्ययंचासौ दद्यादाव्रणरोपणमितिच कात्यायनएव)

इति प्रातिलोम्यापराधानांदण्ड निर्णयः २२० ॥

(समजाति गुणाविशिष्टानांदंडः)

उद्गूर्णेहस्तपादेतुदशविंशतिकौदमौ । परस्परंतुसर्वेषांशास्त्रेमध्यमसाहसः २२१ ॥
पादकेशांशुककरोल्लुंचनेषुपणान्दश । पीडाकर्षांशुकावेष्टपादाध्यासेशतंदमः २२२ ॥
शोणितेनविनादुःखंकुर्वन्काष्ठादिभिर्नरः । द्वात्रिंशतंपणान्दंड्योद्विगुणंदर्शनेऽसृजः २२३ ॥

ऐ०-अपने अपने वर्ण अथवा जाति में परस्पर गुण प्रतिष्ठासे तुल्यात्मक होते हुये जो कोई हाथमारने के निमित्तसे उगावे किंतु उठाकर सिर्फ़ ऊँचाकरै तौ दश पणकादंड एवं पैरउठाकर ऊँचाकरनेवाले से वीस पणकादंड लियाजाय-जिसने शस्त्र उठाकर ऊँचा कियाहो तिसपर मध्यमसाहसदंड ५४० पणतक जैसाशस्त्रहो तिसहीके अनुसार लियाजावे यद्वाकोप विशेषके अनुसार-कदाचित् दोनों ओरसे परस्पर शस्त्रउद्यत हुयेहों तौ यह दंड दोनों ओरसे प्रत्येकपरभी लियाजाय २२१ ॥ एवंपैर यद्वा बाल या कपड़े अथवा हाथपकरकर खींचै वा मिरोड़ै या नोचै खोंचे तिसपरदश पणदंडहोय और जिसने अग्रोक्तसभीकाम इकट्ठे एकसाथ कियेहों किंतु पीड़ासाहित किसी अंगका नोचना तथा वस्त्रोंका नोचना यद्वावस्त्रसे उसपुरुषको लपेटकरखैंचना जिस्सेपरवश होजाय तद्वत् लातोंसे मारना यद्वा वस्त्रसे लपेटे पीछेलातउगाकर कुछ दबकाना ऐसे अपराधीपर सौपणका दंडलियाजाय २२२ ॥ जिसने लकड़ी आदिसे मारतेहुये ऐसी कोमलपीड़ा पहुँचाई हो जिस्से अबतक रक्तनहीं निकसने पाया तौ बत्तीस पणका दंड लियाजायपर जो किंचित्रक्तभी दिखलाई दियाहो तौ यहदंडदूना उसपर चौंसठि पणका लियाजाय २२३ ॥

अधि०-हाथ उगानेमध्ये कात्यायनजी विशेषता प्रकट करतेहैं-यथा (उद्गूर्णेतुहस्तस्यकार्योद्वादशकोदमः । सएवद्विगुणःप्रोक्तःपातनेतुसजातिषु) अर्थात्-अपनेसजातीमात्र किसीपर भी हाथउठाकर ऊँचाकरने से बारह साढ़ेबारह पणका दण्डकरना

योग्यहै परजो हाथलेकर मारदियाहो तौ यहदण्डदूना किंतु पचीस पणका लियाजाय-बृहस्पतिजी- पत्थर लाठी आदि उठानेमें विशेषता प्रकट करते हैं-यथा (उद्यतेऽश्मशिलाकाष्ठेकर्त्तव्यःप्रथमोदमः) अर्थात्-पत्थर शिला लकड़ी आदि उगानेवाले पर प्रथम साहसदण्ड २५० पणतक यथापराधके अनुसार कियाजाय-विष्णुजी-शस्त्र उठाने में विशेषता दर्शित करते हैं-यथा (हस्तेनोद्गूरयित्वादशकार्षापणान् पादेन विंशतिंकाष्ठेनप्रथमसाहसंशस्त्रेणोत्तमम्) अर्थात्-हाथ उगाकर जो गुरेरै तिसपर दश कार्षापणदण्ड एवं पैरउगाकर जो गुरेरै तिसपर बीसपणकादण्ड एवं लाठी कड़ी आदि से गुरेरै तिसपर पूर्वसाहस दण्ड २५० पणतकहोय एवं लोह शस्त्रोंसे गुरेरै तिसपर उत्तम साहसदण्ड १००० पणतकहोय परयह विष्णुका दर्शाया उत्तमसाहस दण्ड किसीऐसे अवसर में संसूचितहै कि जहाँकोई अधम जातीहोकर उत्तम पुरुषपर कुछलोह शस्त्र उठाकर उद्यतकरै २२१ ॥ शस्त्रोंके चलजाने में बृहस्पतिजी विशेषता प्रकट करतेहैं -यथा (मध्यमःशस्त्रसम्पातेसंयोज्यःक्षुब्धयोर्द्वयोः । कार्यःकृतानुरूपस्तु लग्नेघातेदमोबुधैः ॥ इष्टिकोपलकाष्ठेनताडनेतुद्विमाषकः । द्विगुणःशोणितोद्भेदेदण्डः कार्योमनीषिभिः) अर्थात्-जिसने लोह शस्त्रको उठानेके सिवाय उसका पातभी कर दियाहो किंतु चलायाहो तिसपर मध्यम साहसदण्ड पर जो दोनोंनेही क्षुब्ध होकर शस्त्र चलायेहों तौ यहदंड दोनोंओर वालोंपर भिन्नात्मकसबसे लियाजाय परयहभेद भी आवश्यकहै कि जो इनशस्त्रपातों से कुछ घावचोट आदि भी लगजाय तौ फिर दण्डभी उसघावके अनुरूप न्यून अधिक जैसाघाव जिसने कियाहो तैसादण्ड तिस पर पण्डितलोग प्रकल्पितकरैं किंतु पूरेपाँचसौकाही कुछनियम नहीं-जहाँसिर्फ़ छोटी ईंट छोटेपत्थर छोटीहलकी लकड़ीसे कुछ कोमल ताड़न हुआहो तहाँदोमाष सोना दंड लियाजावै पर जो इस में भी कुछरक्तपात फूटिआवै तौ फिर दूनादंड चारमाष सोना लियाजाय मनीषी लोगों का यह न्यायजानो-विष्णुने भी योगीश्वरकेही तुल्य रक्तपातमध्ये कहाहै-यथा(शोणितेनविनादुःख मुत्पादयित्वा द्वात्रिंशत्पणान् सहशोणितेनचतुःषष्टिं)अर्थात्-जिस ने रक्त निकासे विना सूखीपीड़ा करीहो तिसपर बत्तीस पणका दंड और जिसने रक्त निकासि देने सहित पीड़ा करीहो तिसपर उससेदूना चौंसठिपणका दंड लियाजाय इसमेंभी यह भाव कल्पित करणीयहैकि जिसने नाममात्र किंचित् रक्त निकासाहो तिसपर इन्हीं चौंसाठि के भीतर थोड़ादंड जो कुछरक्त के अनुरूप योग्य समुझाजाय सोई लियाजावै पूरे चौंसठि या बत्तीस का अभंग नियम नहीं बल्कि विरले अवसर इसीअपराधकी गढ़वारीमें इन चौंसाठिसेभी अधिक दंड होसक्ताहै यथार्थभेद इसका देखो निचली दोसौ चौबीस और पचीसकी अधिकोक्तिमें प्रारंभ सेही मनुकावाक्य जो कुछ कहताहो-और इसबातपरभी ध्यानकरना

योग्यहै कि जहांजहां मुनिवर्य्यों के वचनांतर में कुछ दंडभेद पायाजाय तहां तहां सर्वत्र उस अपराध के गुरुत्व या लघुत्वसे उन बचनों का विकल्प अंगीकार करना सूचितहै २२२। २२३॥

(रक्तपातादिविषयेसजातित्वेदंडाःएकस्यवहुभिःताडनेचनष्टद्रव्यादेःप्रतिहाननियमाः)

करपाददतोभंगेछेदनेकर्णनासयोः। मध्योदंडोव्रणोद्भेदेमृतकल्पहतेतथा २२४॥
चेष्टाभोजनवाग्रोधेनेत्रादिप्रतिभेदने। कंधराबाहुसक्थ्नांचभंगेमध्यमसाहसः २२५॥
एकंघ्नतांवहूनांचयथोक्ताद्विगुणोदमः। कलहापहृतंदेयंदंडश्चाद्विगुणस्ततः २२६॥
दुःखमुत्पादयेद्यस्तुससमुत्थानजंव्ययं। दाप्योदंडंचयोयस्मिन्कलहेसमुदाहृतः २२७॥

ऐ०-जब कोईअपनेजाति वर्णमात्रवाले किसीको कुछ ऐसाताड़न करै कि जिस्से उसकाहाथ या पावँ या दांत टूटिजायँ या नाक या कान काटिलेय या उसकी देह में कुछ फोड़ाफुंसी हो तिसको मसलै यद्वा फोड़िडालै या इनबातोंमें से कुछभी नहींसिर्फ ऐसामारै पीटै जिस्से मरनेकेही तुल्यअचेतसा होजाय तौ इनप्रत्येक ७ दे अपराधों का जुदा जुदा दंड मध्यम साहस ५४० पणतक लियाजाय अर्थात् जहां इन में से दो तीन आदि कई अपराध जिसने कियेहों तिसपर यहीदंड दूना तिगुनाआदि उन अपराधोंके अनुसार लियाजाय अथवा जहांकिंचित् किंचित् कईकर्म इनहींमेंसे किये गयेहों तौ उनसबही को इकट्ठा करिकै पूराएक मध्यम साहसदंड कियाजाय २२४॥ इसीप्रकार जहां इतना गाढ़ाताड़न हुआहो कि जिस्से उसकी चेष्टायें किंतु चलना फिरना उठना वैठना आदि वंद होजाय यद्वा भोजन या मुंहकाबोल वंदहोजाय तौ भी प्रत्येक दोष पीछे मध्यम साहस दंड होय एवं नेत्रआदि जीभ पर्यंत कोई इन्द्री भंग होने यद्वा ग्रीवा भंग होने या भुजाटूटिजाने या जंघा टूटिजाने में भी प्रत्येक अपराध पीछे मध्यम साहस दंड जानौ २२५॥ जहां किसी एकले को अनेकमिलकर मारैं पीटैं तहां जिस जिस किसीदोष या अपराध का जो जो दंड ऊपरकहागया सो सो दूना होकर प्रत्येक मारनेवालों से दूना दूना लियाजावे-सो यह दूना दूना प्रत्येकोंपर सजाती के अपराध मध्ये नियमित हुआ है इसहेतु जहां प्रतिलोम क्रम से या अनुलोम क्रमसे किसी एकले पुरुष को अनेक मिलकर मारैं तहां इसीसजाती नियम से प्रत्येकों का दंड पहिले कल्पित करिकै पीछे उसी कल्पितपरिमाण को फिर वाक्पारुष्य में दर्शाये हुये नियमों से वढ़ाना या घटाना जो आवश्यकहो सो कर्तव्य है कि जैसा जैसा २१२ तथा २११ के श्लोकों से विधान वर्णन हुआ था-किंतु (शास्त्र में यह आज्ञा है कि प्रतिलोम और अनुलोमक्रमका नियम जैसा वाक्पारुष्य में कहचुके सो सब दंडपारुष्य में भी राजामसुझै) कलह खड़ी होते समय जो जिसकोचीज माला मुंदरी कपड़े आदि खोइजाय सो भी उन

अपराधी लोगोंसे दिलाईजावे जिनके ऊपर उस अपराधकी जड़पाईजाय और इस दशामें भी कहेहुये दंडोंसे दूनादंड लियाजावे यद्वाकलह में हरीहुई वस्तुके मूल्यसेही दूनादंड जैसा अवसरके अनुकूल योग्य समुझाजाय सोई कियाजावै क्योंकि वस्तु हरनेवाले पर चौर्यरूप साहसका अपराध विशेष खड़ाहुआ यद्वा वस्तु हरनेवाला कोई न पहिंचानाजाय तौ उनकलह कर्त्ताओंपर इसवस्तु खोइजानेका अपराधरखना योग्यहै कि जोजो कोईकलह खड़ी करनेके अगुआ निश्चितहोयँ २२६॥ जोजो कोई जिसको मारातोरी करिकै दुःख पैदाकरै सो सो उसके घावचोट पूरण शोषण पर्यंतके दिनोंतक औषध पथ्यआदिका सबखर्च यथापराधके अनुसार शीघ्रं दिलवायेजाने योग्यहै और वहदण्डभी कि जो उसकलह के अपराधमध्ये देनाकहा हो राजघर में भरवायाजाय २२७॥

अधि०-खाल मांस हाड़ोंके तोड़नेमध्येमनुजी जुदाजुदा दंडकहतेहैं-यथा(त्वग्भेदकः शतंदंड्योलोहितस्यचदर्शकः। मांसभेत्तातुषण्णिष्कान्प्रवास्यस्त्वस्थिभेदकः)अर्थात्- जहांसमानजातिवाला किसीसवर्णकोयदि इतनामारे पीटे जिससेखाल उसकीफटिजाय तौ सौपणकादंड लियाजावे तद्वत् जिसने थोड़ा लोहूभी निकासिदियाहो तिसपरभी सौपणका दंड परंतुजिसने मांसफाड़िकर कुछघावभी करदियाहो तिसपर सौवर्णिकछै निष्कोंवाला दंडालियाजाय जिसने हाड़तकभी तोड़ाहो तिसको देशान्तरद्वीप विशेष आदिकिसी बिकट भूमिके निवासरूप देशनिकाला दंडदियाजाय-कात्यायनजी-कुछ अंगोंके छेदन भेदन होजानेमध्ये दंडकहते हैं यथा (कर्णोष्ठघ्राणपादाक्षिजिह्वाशिश्नक रस्यच। छेदनेचोत्तमोदंडोभेदनेमध्यमोभृगुः)अर्थात्-कान, ओठ,नाक,पैर,नेत्र,जीभ, शिश्नेन्द्रिय, हाथ इनमें किसी एकअंगको भेदन किंतु विदारणमात्र कियाहो तिसपर मध्यमसाहस दंड पाँचसौतक लियाजाय जिसने इन्हींअंगोंमें से कोईएकअंग निपट छेदन कियाहो कि जिस्से वहीअंग अपनी कर्मशक्तियोग्य न रहसकै तिसपरउत्तम साहसदंड१००० पणतक लियाजाय-मनु तथा कात्यायनजीने एकविशेषवाक्य और भी दर्शायाहै कि जहाँ कहीं खाल रक्त हाड़ इनका फटनाआदि कुछ प्रत्यक्षमें न देख परे परन्तु ताड़न ऐसा गाढ़ाकियागयाहो जिस्से देहभीतर पीड़ाहोतीहो यद्वा शोथ गूमड़े प्रकटहोयँ तौभी उसकेअनुरूपदंड कियाजाय-यथाह मनुः(मनुष्याणांपशूनांच दुःखायप्रहतेसति। यथायथामहद्दुःखंदंडंकुर्यात्तथातथा) अर्थात्-मनुष्योंको या पशु-ओंको दुःखदेनेके निमित्तसे कुछप्रहार कियाजाने किन्तु चोटलगाई जानेमें जैसाजैसा अधिक दुःखपीड़ा प्रकटहोय तैसा दंडअधिक दिलायाजाय-यह अधिकदंड उसपरि-माणसे उपरालभी प्रकल्पित कियाजासक्ताहै कि जो जो दंड खाल रक्त हाड़ आदि टूटने फटनेमध्ये नियत कियेगये क्योंकि वहां पीड़ाके ससर्ग विना भी खाल रक्तहाड़

आदि टूटने फटने मध्येदंड सूचितहुयेहैं तिसहेतु जहाँपीड़ाअधिक पाईजाय तहाँउन संसूचित दंडोंसे उपराल दंडकल्पितकरना यहाँपर दर्शायागया सो यह यादिरक्खो अथवा जहाँ स्वल्पपीड़ामात्र हुईहो किन्तु खाल रक्त हाड़ आदि कोईअंग न टूटेफूटे हों जिसकादंड दोसौतेईस मूलश्लोकमें योगीश्वरभी बत्तीसपणकहचुके तिसकेमध्ये भी अत्रोक्त मनुकेवाक्यसे व्यवस्था कल्पितहोसक्ती है कि अतिशय स्वल्पपीड़ाके अनुरूपदंड कियाजाय इसहितुसे उस दोसौतेईसकी अधिकोक्तिमें यहकहाथा कि पूरे चौंसठि या बत्तीसका अभंग नियम नहींसमझना-एवमेवं कात्यायनोपि (मनुष्याणां पशूनांचदुःखायप्रहतेसति । यथामहत्तरंदुःखंदंडंकुर्यात्तथातथा) २२४। २२५ जहाँ किसी एकको अनेकमिलकर मारैं तिसकादंड विष्णुनेभी योगीश्वरकेही तुल्यदर्शित कियाहै-यथा (एकंघ्नतांबहूनां प्रत्येकश उक्तोदंडोद्विगुणः)अर्थात्-एकको अनेकमारने वालों में प्रत्येकअपराधीसे वहदंड दूनालियाजाय जो उसअपराधमध्ये छेदन भेदन ताड़नआदि रूपोंसे जहाँ जहाँ वर्णन ऊपरहोचुकाहो या फिरभी कहीं आगे उसका चर्चाहो-जहाँकहीं-पिटताहुआ कोईपुरुष ऊँचेशब्दसे हाय मारागया बचाना आदि पुकार करताहो तिसका शब्द सुनकर जो तत्रत्य समीपवर्ती लोग उपेक्षारखकर दौड़ें नहीं तिनपर ठेठमारनेवालों सेभी दूनादंडहोना योग्य है-यथाहविष्णुः (द्विगुणउक्तः क्रोशंतमनभिधावतांतत्समीपवर्तिनांसतांच) अर्थात्-दूनादंडउनको कहा है कि जो विक्रोशमाण पिटतेहुयेको बचाने के अर्थकरके दौड़ें नहीं उपद्रवके स्थानसे समीप रहते बसते हों या उसकाल में मौजूद समर्थ सज्जनहों-सतांच-इस पदके अंत्य (च)कारसे यह आशयभी प्रत्यक्ष है कि सत्तावान् समर्थलोग जो कुछ अन्तरसे निवासकरते या कुछ अन्तरसे मौजूदहों वेभी अन्यलोगों का कोलाहल सुनकर शीघ्र दौड़ें और उस पिटते हुये निर्बल को बचावें बलिक समीपवासी जो असमर्थहों तिनको भी यह योग्य है कि यद्यपि आपबचाने में असमर्थहों पर साधारण धर्मों की मर्यादासे अवश्य कुछ कोलाहल करते हुये वेभी दौड़ें और दूरस्थ समर्थों को तत्काल बोधित करें कि अमुक उपद्रव अमुकस्थान में होरहा है-ऐसे नियमोंसे विपरीत उपेक्षा करिके जे कोई निकट वर्ती या दूरस्थ समर्थोंमें मौजूद होतेहुये रक्षाकरनेके प्रयत्नपर आरूढ़नहों तिनपर ठेठमारनेवालों से भी दूनादंड लियाजावे जिस्से आगेको फिर ऐसाकभी नहो—कलह लड़ाई का उपद्रव होते समय जो कुछ वस्त्रगहना आदि किसीकाभी खोयागयाहो सो सब उन अपराधी लोगोंसे दिलायाजाना और उनखर्चोंका दिलाना भी बृहस्पतिने दर्शायाहै कि जो उसचोट अच्छीहोनेतक आवश्यक हो-यथा (अंगावपीड़नेचैवभेदनेछेदनेतथा । सर्वथातद्व्ययंदाप्यःकलहाय हृतंचयत्) अर्थात्-बृहस्पति कहते हैं कि अंग हाथपैर आदि मिरोड़े जाने आदि

पीड़न होनेमें या (भेदन) किंतु विदारण कियेजानेमें या (छेदन) होने किंतु काटेजाने में उसपर बश दुखिया पुरुषका जो औषध आदि प्रकारों से कुछ खर्च होना संभव या कुछ कार्य बाधरूप हानिहुईहो सो सब उनअपराधी लोगोंसे दिलाना योग्यहै कि जिन्होंने यह दशाउसकी करीहो और वह वस्तुभी कि जो कुछ कलहकालमें अपहरण हुईहो उन्हींसे दिलवाई जाय (वस्तुहरीजाने मध्ये जैसा निर्णय ऐक्यार्थ में कहिचुके सोई यहांभी समुझना) यहां (औषध आदि प्रकारों का खर्च तथा हानिका यह तात्पर्यहै कि मरहम पट्टी पथ्यआदि जो कुछ खर्च उसके निपट अच्छे होनेपर्यंत जैसा देह उसका पहिले था तद्रूप तैसा होजाने योग्य सभी खर्च दिलायेजायँ और वह हानिभी कि जोकुछ द्रव्यादिक आगमउसके खाट परजानेसे न होनेपाये) खर्च दिलाना मनुनेभी कहाहै-यथा (अङ्गावपीड़नायांचव्रणशोणितयोस्तथा। समुत्थानव्ययंदाप्यःसर्वदंडमथापिवा) अर्थात्-अंगोंमें पीड़ाकुछ पहुँचाईजानेमें या घाउहोनेमें या रक्तपातहोने में जोकुछ उसकाखर्च अच्छे होजानेतक अनुमान कियाजाय सो अपराधीसे दिलायाजाय परन्तु जो अपराधी देनानहींचाहै या देनेयोग्य धन संयुक्तनहो तौइस खर्चतथा राजदंडके भी पलटे सभी बातोंका जोदंड उसकेयोग्य समुझाजाय किंतु कारागार वन्धनआदि जोकुछ उचित समुझाजाय सो कर्त्तव्यजानो-इसकामुख्य ब्यौरा सबसेपिछले राजाश्रय व्यवहारोंवाले प्रकरणमें (सर्वदंडविधिशेषप्रकार) नामकपाठ द्वारा देखो जोकि व्यवहाराध्याय के अंत्यस्थानपर दर्शावेंगे २२६ २२७ इसव्यवस्था में जोकुछ किसीका अंगभंग आदिहोजाने मध्येदवादारूआदि खर्चोंका दिलानायद्वा समीपवर्त्तियों कोभीदूना दंडहोनाकहा याआगे २३४ मूलश्लोक पर्यंत जोकुछ वर्णन होनेवालाहै सोसब दंडपारुष्यका स्वरूपहै और इच्छापूर्व जानिबूझिकर कुछद्रोह सहितमारनेया नुकसानकरने किसीवृक्षादिक स्थावरकी काटाकूटीतोड़ाफोड़ीआदि करनेमध्ये नियतहैं-कदाचित्-कोई गाड़ीघोड़ाआदि सवारियोंको दौड़ाकर किसी मनुष्य या पशुओंका हाथपैर तोड़े या खूनकाढ़े या खालफाड़े या वृक्षादि गृहादिक स्थावरधनकी हानि तोड़ाफोड़ी आदिकरै तिसपरभी पथ्यादिखर्च और धनहानिका दिलायाजाना ऐसीदशामें संसूचितहै कि जिसनेअपनी गफलतसे परायेधनकी हानियद्वा देहपीड़ा पैदाकरीहो और धनदेहवाले पुरुषकी कुछनिपट गफलत नहीं पाईजाय-तदाहमनुः(द्रव्याणिहिंस्याद्योयस्यज्ञानतोऽज्ञानतोऽपिवा। सतस्योत्पादयेत्तुष्टिंराज्ञोदद्याच्चतत्समम्) अर्थात्-जोकोई जिसके कोईभांति द्रव्योंका विनाशकरै चाहै जानिबूझि इच्छासहित यद्वानिज अज्ञानभावसे कुछहानि पीड़ापहुँचावै सोउसवस्तुवाले की संतुष्टि पैदाकरै किंतु बदलेमें कुछअन्य द्रव्यदेकर उसका राजीनामा दिलवावे क्योंकि पहिलेसेही राजीकरना योग्यथाकि जिस्से राजद्वारतक पुकारनहीं आती

तबतक उसकी हानिमात्र देकरभी संतुष्ट यह करसक्ताथा परंच राजद्वारमें पहुँचने पीछे राजदंडभी दातव्यहै-यहअत्रोक्त मनुके वचनवाला दंडकापरिमाण जोकि हानि हुयेधनके तुल्यकहागया सोउसभांतिके खफ़ीफ़ तुच्छद्रव्योंकी हानिमें समुझनाजिन का दंडकहीं द्रव्योंकेनामसे न कल्पितहुआहो-यद्यपि-गाड़ीघोड़ाआदि यान वाहनों से उत्पन्नहुये अपराधोंका दंडानिर्णय इसी प्रकरणकी प्रथमोक्त मर्यादोंसेभी होसक्ताहै कि जोजो नियमऊपर वर्णनहोतेआये या कुछशेषहैं सोआगे २३४ मूलश्लोकतक निर्णीतहोंगे तिन सबकाभाव गाड़ीघोड़ा आदिके अपराधों परभीआरूढ़ कियाजावै क्योंकि एकभांतिकीडंडाबाजी यहभीहै अर्थात् जैसाअपने हाथपांव आदिसदुःखदेना तैसा गाड़ीघोड़ा आदिसे दिलवाना एकलक्षणहै और इसीआशयके हेतुकरके मनुने इनगाड़ी घोड़ाआदिके अपराधोंकोभी डंडाबाजीके प्रकरणमें संमिश्रित कियाहै कुछ भेदनहीं रक्खा (पर) योगीश्वर उनकोआगे बढ़िकर ३०३ औ ३०४औ ३०५मूल- श्लोकों द्वाराकहेंगे सोउसका निर्णय उसीस्थलमें कर्तव्यहै और उसकेभीसंबन्धमेंजो औषध पथ्यआदिका दिलवाना योग्य समुझाजाय सोसब यहांसेही निर्णयकरना सू- चितहैकिजैसा जैसाऊपर वर्णनहुआथा-योगीश्वरने उसवादको जोयहांसेकुछभिन्नकिया तिसकेकईहेतुहैं कि ठीकठीक डंडाबाजी तबहींतक समुझनी जबतक डंडाबाजी द्वारा मनुष्य निपटमृत्युको न पहुँचै सिर्फ़ मारापीटाजाय या कुछघायल चुटहिलहोजाय- किंतु कदाचित् कोईमृत्युको यदिपहुँचै तौफिर मारडारनेवाला पूरादंडवध पर्यंतअव- श्यपावैगा क्योंकि इच्छासहित मनुष्यमारडारनाएकबहुत बड़ाअपराधहै और डंडा- बाजीसे यहऊपरहै (और)गाड़ीघोड़ा आदिकेअपराध यद्यपि डंडाबाजीसेभी बढ़िकेहैं परञ्च गाड़ी घोड़ा आदिसे मनुष्यके मरजाने परभी मारडारने वाला प्राजक पुरुष प्रायः पूरेदंडसे बचसक्ता है और उसके बचसकनेवाली छूटैं उसीस्थल में दर्शावेंगे सो देखो ३०३-३०४-३०५ मूलश्लोकोंकी अधिकोक्तिमें (अथभार्यापुत्रादीनांताडनविषयिकनियमाः) सर्वथा जो इसप्रकरण में पर देहताड़न कर्मोंका प्रतिषेधहै और प्रायः विरले अवसरमें निज भार्या पुत्रादिक विरले पाल्यवर्गियों के कुछताड़न विनाभी सं- सारिक शिष्टाचारों की संसिद्धि और दृढ़ता होनी दुर्घट होजातीहै तिस हेतुसे मुनी- श्वरलोग उसके नियमोंको दर्शाते हैं-तत्राहयमः(भार्यापुत्रश्चदासश्चदासीशिष्यश्च पंचमः। प्राप्तापराधास्ताड्याःस्युरज्ज्वावेणुदलेनवा॥ अधस्तात्तुप्रहर्तव्यंनोत्तमांगेकथंचन। अतोऽन्यथाप्रवृत्तस्तुयथोक्तंदंडमर्हति)अर्थात्-यमनाम के मुनि कहते हैं कि भार्या पुत्र दास दासी पांचवाँ शिष्यभी यह पांचों जब कदाचित् किसी अपराधको यदि प्राप्तहोयँ किंतु कुछ अपराध करें तभी ताड़नीयहैं अर्थात् इनके ताड़नमध्येकुछ उसभांति का प्रतिषेधनहींहै कि जैसा अन्यमनुष्यों के निमित्त में सर्वत्र वर्णन हुआ

परञ्च इनके ताड़न का यह नियम है कि यातौ हलुकी रस्सीसे या बांसकी खरपची कुंचीआदिसेही मारै किंतु और किसी स्थूलकाष्ठ आदिसे न मारै-और अत्रोक्तइन दो चीजोंसेभी सिर्फ़ देहके निचले अंग प्रहारकरना योग्यहै ऊपरले उत्तम अंग में न कैसेहू अर्थात् हलुकी पतरी किसी चीज़से और किसी प्रकारसेभी उत्तम अंगमस्तक आदिमें न मारै इस कहेहुये नियमसे विपरीत किसी अन्यप्रकारसे जो कोई इन्हें मारने पर प्रवृत्तहो सो सर्वत्र सब दर्शाये हुये दंडोंयोग्य होताहै अर्थात् जिस अपराधका जो दंड इसीप्रकरणमें कुछ कहीं लिखाहो सो सब उसकोभी होसक्ता है-एवमन्येऽपि(भार्यापुत्रश्चशिष्यश्चदासोभ्राताथसोदरः । प्राप्तापराधास्ताड्याःस्यूरज्ज्वावेणुदलेनवा॥पृष्ठतस्तुशरीरस्यनोत्तमांगेकेथंचन।अतोऽन्यथातुप्रहरन्प्राप्तःस्याच्चौरकिल्बिषम्)अर्थात्-इसमें याहीभांति अन्यऋषियों ने भी नियम दर्शित कियाहै कि भार्या पुत्र शिष्य दास दासी छोटाभाई ये सब जब जब कभी ऐसाकुछ अपराध करैं जिसमें ताड़न रूपी दंडकी जरूरत समुझीजाय तौ फिर हलुकी जेउरीयापतली कमची आदिसे कुछ ताड़न कियेजायँ-सो इसनियमसे कि सिर्फ देहके निचले पिछले भागोंमेंही चोट लगावै किंतु मस्तकआदि ऊपरले या सन्मुखवाले अंगोंमें न कैसेहू कुछ मारै पर जो इस दर्शाये हुये नियमसे विपरीत मस्तक आदि में या सन्मुख या मोटी लकड़ी आदिसेही ताड़न करनेलगै तौ वह चोरोंकेही तुल्य किल्बिषभोगै किंतु जैसे चोर आदि दुर्जन को दुर्वाक्य आदि वाग्दंड या धिग्दंड याधनदंड दियाजाता हैसो इसपरभी यथोचित होनायोग्य समुझौ-एवंगौतमोप्याह (शिष्यादि शिष्टिरवधे नाशक्तौ रज्जुवेणुविदलाभ्यांतनुभ्यामन्येनघ्नन् राज्ञाशास्यः) आपस्तंबोऽपिशिष्यानुवृत्तौ (अपराधेषुचैनंसततमुपालभेत अतित्रासउपवास उदकोपस्पर्शनामितिदंडाः यथा तन्मात्रनिवृत्तिरिति-अपराधनिवृत्तिपर्य्यन्तं अपराधानुरूपं दंडपातनंकर्तव्यमित्यर्थः)२२४। २२५। २२६। २२७॥ यहांतकजो वर्णन हुआ सो नरजाति मात्रको कुछ पीड़ा देनेमध्ये हुआहै अब आगे जो कुछ वर्णनहोगा सो पशु पक्षी आदि जीवों कोदुःख देने या गृहवृक्ष आदि कुछ स्थावर वस्तु विनाश करने मध्ये होगा॥

(अथमनुष्येतरचरस्थावराणामभिद्रोहविषयः)

(तत्रगृहादिस्थानाभिद्रोहदंडः)

अभिघातेतथाछेदेभेदेकुड्यावपातने। पणान्दाप्यःपंचदशविंशतिंतद्व्ययंतथा २२८॥
दुःखोत्पादिगृहेद्रव्यंक्षिपन्प्राणहरंतथा। षोडशाद्यःपणान्दाप्योद्वितीयोमध्यमंदमम् २२९॥

ऐ०-कुड्यनाम भीत दीवार आदि जो पराईहो तिसका द्रोहकरके मुग्दर मोगरी आदि किसीप्रहार वस्तुसे जो कोई अभिघात करै ठोंके पीटै तिसपर पांच पण का दंड दिलाना योग्यहै तथैव जो उसभीतको (छेदन) करै तोड़ै फोड़ै तिसपर दश

पण दंड दिलायाजाय तथैव जो उसभीतको(भेदन)करै किंतु चीरिफाड़ि भिन्नभिन्नसी करिदे जिस्से द्विपद चतुष्पद आदि किसीजीवके घुसिजाने योग्य राहसी होजाय या होजानी संभवहो इसअपराधमध्ये बीसपणका दंडहोय और जो निपट किसी भीतका अवपातनकरै ढहावैकिन्तु गिराइदेवै तिसपर ये सबतीनोंदंड इकट्ठे मिलकर ३५पण का दंड लियाजानेके सिवाय उसदीवार के बनाने योग्यहानिभी दीवारके अधिकारी स्वामी आदि को दिलाई जाय जितने खर्चसे बन सकती समझीजाय २२८ पराये घरमें काँटे आदिकोई बस्तु जो दुखदेनेवालीहो कोई फेंकै यद्वा ऐसी बस्तुफेंकै जो जीवों के प्राणहरनेवाली हो जैसे सर्प बीछी आदि या बिषमिश्रित अन्नदानाआदि फेंकै जिसे कबूतर आदि पक्षी या पशु जीवखाकरमरसक्केहों यद्वाघात कृत्याआदि फेंकै जिस्से प्राणहानि होनीसंभवहो तो इनदोनों में से पहिलाअपराधी सिर्फ काँटे आदि दुखदायीचीज फेंकनेवाला सोरहपणका दंडपावै और दूसरा प्राणघातिक चीजफेंकनेवाला मध्यमसाहसदंड ५४० पणतक २२९॥

(पशुपक्ष्यादिजीवानामभिद्रोहदंडः)

दुःखेचशोणितोत्पादेशाखांगच्छेदनेतथा। दंडःक्षुद्रपशूनांतुद्विपणप्रभृतिःक्रमात् २३०
लिंगस्यछेदनेमृत्यौमध्यमोमूल्यमेवच । महापशूनामेतेषुस्थानेषुद्विगुणोदमः २३१

ऐ०-क्षुद्रजाती पशुओंको दुखदेने या शोणित काढ़िदेने या शाखा यद्वा अंग छेदनकरनेमें क्रमसे दोपण आदि दंडबृद्धिजानौ-अर्थात्-भेड़ बकरी हिरन आदि छोटी जातिके पशुओंको जोकोई पीटापाटी आदि किसीप्रकारसे दुखदेवे तिसपर दोपण दंड सिर्फ एकपशुको दुःखहोनेमध्ये जानौ.जिसने ऐसीभाँतिसे दुखदीन्हाहो कि जिस्से रक्तभी बहिचलै तिसपर चारपणकादंड सिर्फ एकपशुकेमध्ये जानौ. जिसने हाथपावँ आदि कोई अंग तोड़दियाहो तिसपर सोरहपणका दंडचाहिये २३० उन्हीं छोटे पशुओंका जो(लिंग)देह छेदनकियाहो या उसपशुकी मृत्युभी होजाय तौ फिर मध्यम साहस दंड राजमें और पशुकामूल्य उसकेस्वामी को दिलायाजाय-गाय भैंस घोड़ा ऊँट हाथी आदि बड़ेपशुओंके पूर्वोक्त स्थानों तथा अंगोंमें उसभाँतिके अपराधकरने मध्ये उनसे दूने दंडजानौ जो जो छोटेपशुओंके अपराधमें कहचुके. और निपट मारणकरनेमध्ये मध्यम साहसके स्थान उत्तम साहसदंडजानौ तद्वत मूल्य जैसा पशुहो तैसा लोकसिद्ध नियमोंसे दिलवायाजाय २३१॥

भाषि०-पशुओंकीअपेक्षा दंडभेद के निमित्त करके विष्णुने अरण्य ग्राम्यलक्षणसे दोभेद नियत किये हैं तिसका ब्यौराभी अग्रोक्त वचनोंसे स्पष्टजाना जायगा-यथाह विष्णुः(सर्वे पुरुषपीड़ाकराः समुत्थानव्ययंदाप्याः ग्राम्यपशुपीड़ाकराश्च-ग्राम्यपशु

घाती कार्षापण शतंदंड्यःपशुस्वामिनेतु तन्मूल्यंदद्यात्-पशूनांपुंस्त्वोपघातीतुकार्षाप णशतंदद्यात्-गजाश्वोष्ट्रगोघाती त्वेककरपादःकार्यो विमांसविक्रयीग्रामपशुघातीच कार्षापणशतंदंड्यः पशुस्वामिनेचतन्मूल्यंदद्यात्-अरण्यपशुघातीपंचाशत्कार्षापणान् पक्षिघाती मत्स्यघातीचदशकार्षापणान् कीटोपघाती कार्षापणं)अर्थात्-विष्णु कहते हैं कि सब अपराधीलोग जो जो किसीमनुष्य जातिमात्रको कुछ पीड़ा पैदाकरैं यद्वा ग्राम्यपशुओंको कुछ पीड़ादेयँ समुत्थान व्ययदिलवाने योग्यहैं अर्थात् जितनेदिन में जितने द्रव्यका व्ययकरने से वहमनुष्य यद्वा ग्राम्यपशुअच्छा होकर अपने काम धंधेकरसकने योग्यहोसकना संभवहो तितना द्रव्यउसके उठनेकेनिमित्तमें अपराधी से दिलायाजाय इसके उपरांत राजदंडभी कि थोड़ीघनीपीड़ाके अनुसार लियाजाय- जिसने किसीग्रामवासी पशुको निपटघात कियाहो तो उसग्राम्य एकपशुकेमरजानेके अपराध मध्ये एक सौकार्षापण दंडालियाजाय और उस पशुका मूल्य उसके स्वामी को दिलायाजाय.जिसने पशुओंका पुंसत्व विनाश कियाहो तिसपरभी सौपणका दंड लियाजाय.पशुपुंसत्वका विनाश एक वहभी यद्यपि होताहै कि वृषभकी बधियाकरना आदि परंच यहां प्रयोजन इतनाहै कि जब कोईद्रोहभावसे या अपनी खोटीप्रकृति से परायेपशुओं को इसभांति मारै पीटै जिस्से संतान पैदाहोनेवाली शक्तिउनकीमि- टिजाय चाहे योनि से या लिंगसे कुछ इसका नियम नहीं है परजैसानर मादीनदेही पशुहो तैसा नियम समझना-ग्राम्यपशुओंमेंविशेषकर जो कोई हाथी घोड़ा ऊँट गऊ बैल इनकाघात करै तिसका एक हाथ एकपावँ काट लियाजाय और जोखोंटा किंतु अभक्ष्य मांस बेचै या जो कोई ग्रामपशु को मारडालै ये सब सौ सौपणकादंड दिलाये जायँ और उसपशुका मूल्यभी पशुस्वामीको-आरण्य पशुको घातकरनेवाला पंचाश कार्षापण दंड देवै और उसपशुका मूल्यभी पशुस्वामीको दिलायाजाय यह सर्वत्र समझना एवं पक्षीघातकरनेवाला और मत्स्यघात करनेवालाभी दशपणका दंड देवै (यहांमत्स्यका उपलक्षण सब जलजीवोंमें समझना) एवं कीटजाती जीवों का अपघात करनेवाला सिर्फ एकपणकादंड देवै यहसब दंड केवल एक एक जीवके उपघात मध्ये कहेगये किंतु अनेकजीवोंका उपघात होनेमेंउस हिसावसेही लियाजाय (यहांकीटजाती कहनेसे गिलहरी नकुलआदि अनेकजीव समुझने) (इसव्यवस्था में जहां जहां कार्षापण संज्ञा लिखीगईहो तिसकोभी पणसंज्ञाकेस्थानी भूतसमझना सिर्फ नाम काहीभेदहै) इस अधिकोक्ति का सब लेख जो कुछ यहांतक दर्शायागया विष्णुस्मृतिके अनुसारहै-अब कुछ कात्यायनजीका कथन यहां दर्शातेहैं-यथाहकात्या यनः(द्विपणोद्वादशपणोवधेतुमृगपक्षिणाम् । सर्पमार्जारनकुलशूकरश्ववधेनृणाम् ॥ गोकुमारीदेवपशुमुक्षाणंवृषभंतथा। वाहयन्साहसंपूर्वंप्राप्नुयादुत्तमंवधे)अर्थात्-कात्या

यन कहते हैं कि बनके पैदाहुये मृगों और सामान्य पक्षियों यद्वा सांप बिलाईनेवर शूकर श्वानइनको सामान्य ताड़न रूप वधकरने के अपराधमें मनुष्योंको दो पणका दंड करना योग्यहै परंच जो प्राणांतिकही वध कियाहो तो प्रत्येक जीव पीछे बारह पणका दंड जानो-जिन जीवोंके अपराध मध्येदंड यहां दर्शाये गये तिनका आशय यह कि या तो येही जीव किसीके पाले बांधेहों तब तो राजदंड के सिवाय मरेजीव का मूल्यभी पालयिताको दिलायाजाय यद्वा ऐसे जीवमारेहों जिनका माराजाना उसी भूमि के अधिकारी और बाशिंदोंको अनिष्ट हो तो भी केवल राज उसवध-कर्त्तासे लेलियाजाय—गऊ- क्षारीकन्या-देवनिमित्त छोड़ा या देवनिमित्त पालाहुआ कोईपशु-उक्षानाम वीजार जो गौओंके वीजदान अर्थ कोई वृषभ किसीने छोड़ा या पालाहो-इन्हें जो कोई पुरुष वाहे तो वह सिर्फवाहन करते हुये वाहनकर्मके अप-राधमध्ये पूर्वसाहसनाम २५० पणसे दंडनीयहै और जो वाहन करने के प्रभाव से इनचारों मेंसे किसीका भी वधहोजाय यद्वा वाहन करने बिनाभी इनचारों में से किसी प्राणीकावध अन्यप्रकार सेहीकरै तोवह उत्तमसाहस दंडपावै जिसमें धनप-रिमाण पूरे एकसहस्र पणतकहै औकियेहुये अपराधकी विशेषता किसी कुढंगसे यदि पाईजाय तो वधदंड या सर्वस्व हरिलेना या पुरसे काढ़िदेना या कोईअंग छेदन क-रना आदि उसअपराधके अनुरूप ऐसे दंडभी होसकतेहैं धनदंडके उपरांत जिनका वर्णन आगे साहसनामक प्रकरणमें सबआवेगा-इसी पिछले वचनका यह आशयहै कि गऊको हल गाड़ी आदिमें वृषभोंके समान वाहनकरना या कुछ पीठिपर सवारी आदिकरना यह प्रतिषिद्धहै-एवं क्षारीकन्याको कदाचित् वाहनकर्म किंतुभोगमें सं-युक्तकरना एकधर्ममार्गसे प्रतिषिद्धहै सिद्धांत इसका यहकि यद्यपिकोई किसी कुमारी को भार्यात्व केहीअर्थ कहींसे डोलाआदि लोकप्रसिद्ध रीतोंद्वारा या क्रयकर्म द्वारा लायाहो या कुछदिन रखकर वालअवस्थासेही पालाहो कि अमुक अवधितक वि-वाहविधिसे पाणिग्रहण इसकाकरैंगे इसदशामें वहकन्या उसकीभार्या समझीजानेका संदेह शेषनहींहै तथापि जबतक शास्त्रविधिसे करपीड़न कियानजाय तबतक वाहन करना किंतुभोगमें लगाना यह अपराध विशेषहै कि जिसकादंड २५० पणतक ऊपर कहागया कदाचित् उसी कुमारीको कुछ ऐसेढंगसे भोगे जिससे सामान्य वधकीदशा प्रवर्त्तितहो अर्थात् रक्तपात आदि उपद्रवसहित मरनेके समान यदिहोजाय तो फिर उत्तम साहसदंड सिर्फ एकसहस्र पणतक उसअपराधके अनुसार जैसा योग्यहो सो धन दंडमात्र कियाजावे अथवा जो कुछ ऐसेढंगसे वाहन कियाहो जिससे प्राणघात भी होजाय तोफिर उत्तमसाहस धनदंडके उपरांतभी वधदंड आदि जो कुछ पण्य-माण साहस प्रकरणके अनुसार उस अपराधकेही गौरवलाघव से तुल्यात्मक सम-

भाजाय सोहोसकताहै-यहीप्रकार चारोंमें सर्वत्र समझलेना किंतु गऊ याउक्षा या देवपशुभी गाड़ी आदिमें लगाये जानेके असह्य परिश्रमको न सहकर शीघ्र मरजायँ या मरनेकेहीतुल्य अचेतसे होजायँ तो फिर उत्तम साहसदंड यथापराधके अनुसार सूचन कियाजाय परप्राणांतिक दंड इसमें कोई भाँति किसी दशामें भी नहीं समझना २३० । २३१ अगिले तीनमूल श्लोकोंसे वृक्षादिक तोड़ाफाड़ीमध्ये व्योरेवार दंड वर्णन होंगे २३०।२३१ ॥

(वृक्षादीनामभिद्रोहदंडः)

प्ररोहिशाखिनांशाखास्कंधसर्वविदारणे । उपजीव्यद्रुमाणांचविंशतेर्द्विगुणोदमः २३२ ॥
चैत्यश्मशानसीमासुपुण्यस्थानेसुरालये । जातद्रुमाणांद्विगुणोदमोवृक्षेचविश्रुते २३३ ॥
गुल्मगुच्छक्षुपलताप्रतानौपधिवीरुधाम् । पूर्वस्मृतादर्द्धदंडःस्थानेषूक्तेषुकर्त्तने २३४ ॥

ऐ०—प्ररोहवालीशाखा जिनकीहोतीहों अर्थात् जिनकी शाखाकाटि कलम लगाई जातीहो सो वटवृक्षआदि अनेकपेड़ प्ररोहिशाखी कहेजाते हैं और शाखा काटिलेने के स्थानशेष ठूँठसे अनेक शाखारूपी अंकुर फूटिआतेहों तिनको भी प्ररोहिशाखी जानो-ऐसे वृक्षोंकी शाखाओंको जो कोई तोड़े काटै या मोटागुद्दाकाटै या जड़मूलसे- ही पेड़ काटिडाले या उपजीव्यवृक्षजे फलादिकसे उपजीवनदेते हों ऐसे आम्रआदि अनेक जानो तिनकी शाखाकाटिडारै या मोटागुद्दा काटै या सारावृक्ष जड़से काटिडारै तिसपर बीसपणसे दूनादंड यथा क्रमसे होनायोग्य है अर्थात् जो शाखामात्र काटै तिसपर बीसपण जो मोटागुद्दाकाटै तिसपर चालीसपण जो पूराएक वृक्षकाटै तिस पर अस्सीपण का दंड-और इनके उपरांत जो जो सामान्यवृक्ष हों किंतु प्ररोहिशाखी भी नहीं और उपजीव्यभी न हों तिनकेमध्ये दंड यथापराधके अनुसार उसीन्याय से अनुरूपित करनायोग्यहै कि जैसा जैसा लाभ या आराम जिस जिस वृक्षसे हो- सकतीहो २३२ ॥ सब समान्यवृक्षकोई जो स्थानविशेषमेंउत्पन्नहों तिनकी तोड़ाताड़ी के अपराधमध्ये दूनादंड कहते हैं कि-चैत्य-श्मशान-सीमा-पुण्यस्थान-देवालय इन में पैदाहुये वृक्षोंकी और स्वतःप्रसिद्ध नामी वृक्षोंकी शाखाआदि काटने मध्ये दूने दंडउन परिमाणों से कि जो जो २३२ मूलश्लोक में कहचुके हों-अर्थात् यहां चैत्य संज्ञा अग्नि का समूहस्थान यथा पजावा आदि और भी मनुष्यों की साधा- रण सभा अथाई आदि स्वतःइकट्ठी होती हो यद्वा जहां मनुष्यों के विश्रामलेने योग्य कोई स्थलहो तिनकी संज्ञा चैत्य जानो या कोई यज्ञस्थानहो या पशुओं के विश्राम योग्य वृक्षोंका संघातहो तिस स्थानको भी चैत्यजानो वलिक चैत्यसंज्ञावहुत वड़े उनवृक्षोंकीभी होतीहै कि जिनके नामरूपी चिह्नोंवाला पतालगाकर कोई ग्राम कोई खेत कोईमार्ग और तालाव आदि जलाशयभी विख्यात होतेहों जैसेवेरीवाला

सड़कटेढ़े नींबकामुहल्ला खोखेसेमरवाला नगरा इत्यादि बहुधाजानो और जिनवृक्षों की अत्यन्त उँचाई कई क्रोशों से दिखलाई देने के हेतु उनके निकटवर्तीग्राम या गढ़कोट मन्दिर आदि शीघ्रजाने जातेहों या जिनवृक्षों से अति निर्जन मार्गवाली योजन संख्या समुझी जातीहो या जिनवृक्षोंसे कुछ पथिक समाजको सुखबोध या विश्रामका अवलम्बमात्र मिलताहो येसब चैत्य वृक्षकहातेहैं और ऐसेवृक्षोंकीशाखा आदि काटनेवालेपर सबउक्त दण्डदूने होनेयोग्यहैं-एवं श्मशान भूमिपर जो वृक्षहों जिनसे मृतक समाजी लोगोंको विश्राम आदि कुछउपकार होताहो.एवंसीमासम्बन्धी जो जो वृक्षहों चाहे उत्तम मध्यम आदि किसीप्रकार केभीहों जिनसे भूमिभाग समुझाजाताहो. एवं घाट तीर्थ कूप आदि किसी पुनीत स्थानोंमें जो वृक्षहों या देवालय मन्दिर आदि के समीपहों या जो वृक्ष अपने प्राचीनत्व आदि किसीहेतुसे विख्यात चाहे कहींहों तिनकी शाखा आदि काटनेवालेपर पूर्वोक्त दण्डोंसे दूनेदण्ड लियेजायँ २३३॥ परञ्च, गुल्म, गुच्छ, क्षुप, लता, प्रतान, औषध, वीरुध् इनको शाखाआदि उक्त स्थानों में काटनेवालेपर पूर्वोक्त दण्डों से आधे दण्ड लेनेयोग्य हैं-अर्थात् यहाँ गुल्मसंज्ञा उनवृक्षोंकी कि जिनमें गुद्देनिपटनहों किंतुएकही सूधास्तंब गोलाहोताहो यथा खजूर आदि और गुल्मसंज्ञा उनकीभी कि जो जो वृक्ष मालती आदि लतायें सामान्य गोलाकार झुण्डझाड़ीसी बाँधतेहों गुच्छसंज्ञा उनपेड़ोंकी कि जिनकाथोड़ा ही स्तम्बऊँचा होनेपाकर उसकी लतायें बहुत मिलकर एकगुच्छेके आकार सबहो-जातीहों जैसा झुण्डमल्लिका तथा कुरण्टक आदि जानो. क्षुपसंज्ञा छोटे उनपेड़ोंकी कि जिनमें नतौवेलिहो न कोई उसमें काष्ठके स्तंबहों सूधी सरलप्राय शाखाओंकी बहुताइतहो यथा कनेर आदि. लतासंज्ञा उनकी है जो प्रायःवेलिरूपसे प्रसिद्ध प्रतानसंज्ञा उनवृक्षों और बल्लियोंकी भी जिनका अतिशय विस्तार तनाव के रूपसे विख्यात होताहो. औषध संज्ञा उनकीहै कि जिनमें फलउत्पन्न होने [illegible] सहित वृक्षोंका अन्तभी होजाताहो

वैषामुपभोगोयथायथा। तथातथादमःकार्योहिंसायामितिधारणा) अर्थात्-सभी वनस्पति मात्रमें जिस जिसका जैसा जैसा भोग या जैसी उनसे कार्यकी साधकतालोक प्रसिद्धहो कि अमुक वृक्षसे बहुत अथवा थोड़ाकाम निकलताहै तैसा तैसा उत्तम मध्यम दण्डभी प्रत्येक वृक्षोंकी थोड़ी बहुत हिंसाहोने में उस हिंसक अपराधी पर कर्त्तव्यहै यह मार्गजानो-इसमें वनस्पति शब्द सामान्य जातिवाचक अङ्गीकार किया जानेसे वृक्षादिक सबस्थावर जो जो उद्भिद् नाम धरतीको उद्भेदन करिकै पैदाहोतेहों समुझेजातेहैं-आशय इसका यहाकि वनस्पति संज्ञा यद्यपि विशेषकर उनवड़ेबड़े वृक्षों की होतीहै कि जिनमें पुष्पोंविनाही फलहोतेहों जैसे बटपीपर गूलर आदि वनकेपति कहलातेहैं तथापि यहाँ जातिवाचकत्व अङ्गीकार करना उस नियमसे आवश्यकहै कि जैसे अठारहभार वनस्पति सर्वसाधारण मिलकर मानीजातीहैं (दृष्टान्त) जैसेएक पत्ता इमिलीका और एक आक एकढाक एक आँब एक केलेका और चना एकमटर एकदूर्वा आदि घासोंका इत्यादि धरतीमात्र पर जो घासफूस आदि कुछभी होताहो सबका एकएक पत्तालेकर एकत्र समूहराशि उनकी करनेसे अठारहभार तौलभरि होजातेहैं और एकभारका परिमाण यहाँ दोसहस्रपलका समुझिलेना(पलानांद्विसहस्रन्तुभारमेकम्प्रकीर्तितम्) यह प्रासङ्गिक चर्चाजानो इसीचर्चाके अनुसार मनुके वाक्यमें वनस्पति शब्द यहाँ उद्भिद्मात्रका संबोधक है और उसमें पाँचभेद हुआ करते हैं यथा. तृण १ वृक्ष २ गुल्म ३ लता ४ वल्ली ५-इनका जैसा जैसा भोगप्रसिद्ध हो इस कथनका यह आशयथा कि आँबआदि जिनवृक्षोंके फलभोगेजातेहों तिनकी हिंसाकरनेवालेको अधिकदंड दियाजाय-चंपकआदि जिनवृक्षोंकेफूल कामआतेहों तिनकी हिंसावालेको कुछ न्यूनदंड दियाजाय. पान तमाकू आदि जिनके पत्ते भोगे जातेहों तिनमें फूलोंसेभी कुछन्यूनदंड इत्यादि अपनीवुद्धिसे सर्वत्र ऊहाकरनी-इसी मनुके कथनका-स्पष्टविवरण विष्णुने दर्शायाहै-यथा (फलोपभोगद्रुमच्छेदीतूत्तमसाहसं पुष्पोपभोगच्छेदीमध्यमसाहसं वल्लीगुल्मलताच्छेदीकार्षापणशतंतृणच्छेद्येककार्षापणं सर्वेतत्स्वामिनांतदुत्पत्तिंचदद्युः)इतिसप्तसप्ततितमःपरिच्छेदः२३२।२३३।२३४ दंडपारुष्यका यहप्रकरणपूरा यहाँतकहोचुकाहैपर इसमेंकिंचित् साहसरूपकर्मोंकाभी लक्षणसमुझाजानेकेनिमित्त इसमें अगिलासाहसनामक प्रकरण इसकेसाथविचारो॥

इति दण्डपारुष्यविवादप्रकरणं॥

मारपिटाईआदि रक्तपात प्राणहानिपर्यंत डंडावाजीका यहप्रकरण एक इसी मतहत्तरि संख्याके परिच्छेदमें समाप्तहुआ॥

अथसाहसाख्यविवादपदविशेषस्यविवेकनिदर्शनोनामअष्टसप्ततितमःपरिच्छेदः७८॥

इस अठहत्तरि संख्याके परिच्छेदमें साहसकर्मोंके करनेवाले साहसिक आततायी

डाकू, बटमार, लुटेरे, लेभागू, नरघाती आदि अनेकखल समुदायोंके कुकर्म लक्षण और सामान्यभाव दंड वर्णनहोंगे-किंतु-छोटे बड़े विशेष लक्षणवाले पापकर्मों के दंडइसके आगे सभीप्रकारसे उनहत्तरि आदिकई परिच्छेदोंमें सर्वत्रनिज निजस्थलके अनुरूप नामोंसहित वर्णनहोंगे और कुछपहलेभी होचुकेहैं सब इसकीछाया रूपजानो-क्योंकि इसीसाहस प्रकरणके अनुगामी छेसातक और प्रकरण हैं अर्थात् द्यूतप्रकरण १ वाक्पारुष्य २ दंडपारुष्य ३ यहतीनों पहिलेवर्णनहुये सोभीइसके अनुगामी हैं और आगेचौर्य ४ पारदारिक ५ विक्रीया संप्रदान ६ यहतीनों वर्णनहोंगे वेभी साहसके अनुगामीहैं इनसबको साथलेकर साहसआपभी प्रकीर्णक नामएक सबसेपिछलेप्रकरणके आधीनहै कि(जिसमें राजाश्रय व्यवहारोंका विस्तारविशेषवर्णनहोगा)इनसब के अंतर्भूत जो संभूय समुत्थानक नामएक प्रकरण आगे आवैगा वहयद्यपि फौजदारीसे संबन्ध नहींरखता था तथापि राजशुल्क राजभाग आदि हरनेके हेतुसेवह प्रकरणभी प्रकीर्ण प्रकरणके आधीनजानो क्योंकि राजधनका हरनाभी प्रत्यक्ष एक साहसहै-किन्तु साहसके अनेकरूप होतेहैं (साहस अर्थात् संगिह फ़ौजदारीआम) जो द्यूतप्रकरणसेलेकर व्यवहाराध्याय की समाप्ति पर्यंत सात आठ प्रकरणों में विस्तरित हैं॥

अन्यत्रोक्त पापकारियोंकी अपेक्षा यह अत्रोक्त वक्ष्यमाण लक्षणवाला साहसकर्त्ता पुरुषअधिकतर पापात्माहोता है-यथाहमनुः (वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैवदंडेनैवचहिंसतः। साहसस्यनरःकर्त्ताविज्ञेयःपापकृत्तमः)अर्थात्-एकतौवहपापीजो वाग्दुष्टहो किन्तुवाक्पारुष्य करनेवालाहो दूसराचोर पापीहोताहै तीसरा दंडपारुष्यके अपराधोंसे संयुक्त जो डंडाबाजी करके पीड़ादेताहो इनतीनोंकी अपेक्षा साहसकारी पुरुष अधिकतर पापात्मा महापराधी जानो-नानाभांति साहसकर्मोंका यहप्रकरण जोदर्शाते हैं इसहेतु साहसनामका भावार्थ भी समुझना पहिलेयोग्यहै कि (सहस्) बलकानामहै तिसके प्रभावसे जोक्रूर कर्मकिया जाय अर्थात् प्रवलता ज़बरदस्तीसे कुछवस्तु छीनीजाय या कुछ और कुकर्म कियाजाय सोसबसाहस नामहोताहै यतः(सहोवलंतद्भवंसाहसं) यहउसकी सिर्फनामकी निरुक्तिहै और लक्षण वहुधाभांतिसे दर्शायेजायँगे इसहेतु उसकाभाषामें मुख्यात्मक एकनाम कोई होसकना यद्यपि तथापिउसका रूपसमुझा जानेके निमित्तमें डकैती लूटिमारु आदिनामोंको साहसके स्थान समझने-अस्यस्वरूपमाहनारदः(सहसाक्रियतेकर्मयत्किञ्चिद्बलदर्पितैः। तत्साहसमितिप्रोक्तंसहोवलमिहोच्यते)अर्थात्-नारदउसके रूपकायथार्थ व्यौराकहते हैं किजोकुछकर्म बलदर्पित मानुषजातियों करके सहसा कियाजाताहै वहकर्म साहसनामसे विख्यातहोताहै क्योंकि यहां सहस्बलको कहतेहैं-सहसाकरना यहाकि अपने बलकेदर्पसेही विनाविचारके

अविवेक सहित आगेपीछेका शुभाशुभ सोचकियेविना जो करिडारै सोईसहसाकिया कहाताहै और इसीसेउस कामका साहसनाम रक्खागया-अस्यैवविवरणंकेनाप्युक्तं-यथा (राजदंडंजनाक्रोशंचोल्लंघ्यजनसमक्षं यत्किंचिद्धरणमारणपरदारप्रकर्षणादिकं क्रियतेतत्सर्वंसाहसं) अर्थात्-किसी और ने भी इसीसाहसकारूप इस निर्मलता से दर्शायाहैकि-राजदंडके भयशोचको भी छोड़िकर मनुष्योंका चिल्लानाआदि आक्रोशकोभी गिनतीमें नलाकर उलांघिकरअनेकोंके समक्ष किसीबस्तुका हरलेना या मारना या परस्त्रीको पकरना वा खैंचना या रखिलेना आदिजो कुछकामदुर्जनतासाथ कियाजाय सोसवसाहस कर्महोताहै और यही डकैतीका सबरूपहै-मनुस्तुविशेषयति (स्यात्साहसंत्वन्वयवत्प्रसभंकर्मयत्कृतम्। निरन्वयंभवेत्स्तेयंहत्वापह्नूयतेचयत्) अर्थात्-अन्वयवत् धनीआदि किन्हींमनुष्योंके सन्मुख(प्रसभ)नाम जबरदस्तीसे जोकाम धनधान्यका हरनाआदि कियाहो सोतौ साहसजाना और जो निरन्वय किन्तुधनी आदि मनुष्योंके परोक्षमें छिपकर धनहरना आदि कोई खोंटाकामकियाहो सो स्तेय नाम चोरीहुआकरती है अर्थात् उसको साहसमतसमुझो और वहभी चोरीहोती है कि जोकुछवस्तु हरणकरिकै फिर इन्कारकरै कि मैंने नहींहरी (सो) इस भेदवाली चर्चासे सिद्धान्त यहाँ यह कि जिसवस्तुके चुरानेमध्ये चोरीका जोदंड नियतहो तिस से अधिकदंड उसीवस्तुको साहसद्वारा हरनेवालेपर कर्तव्यहोगा क्योंकि साहसकर्म चोरीसे अनेकगुणातीव्र है(याज्ञवल्क्यभी २३५ मूलश्लोक पूर्वार्धसे यहलक्षण प्रकट करैंगे) बृहस्पतिजीने वे स्थानभी दर्शाये हैं कि जहाँ जहाँसाहसका निवासहुआकरताहो-यथा(मनुष्यमारणंचौर्यंपरदाराभिमर्शनम्। पारुष्यमुभयंचेतिसाहसंस्याच्चतुर्विधम्)अर्थात्-मनुष्यका मारडारना १ चोरी जो प्रत्यक्ष ऊपर वर्णन हुये के अनुसार मनुष्योंके समक्षवल के दर्पद्वारा हुईहो २ पराई स्त्रीका अभिमर्शन किंतु पकड़ना वा खींचनाआदि अनेक भांतिजानो पर जो सिर्फ प्रवलतासेही कियाजाय ३ दोनोंभांति के पारुष्य किंतु वाक्पारुष्य तथा दंडपारुष्य ४ ये दोनोंभी उसदशा में समुझने जहां प्रवलतासे प्रत्यक्ष कियेजायँ यहीचार भांतिका साहस कर्म होताहै अर्थातइन्हीं चारों स्थानोंमें साहस कर्म निवास करताहै परजव येही चारोंकर्म प्रवलतासे न हों किंतु लुकिछिपि कियेजायँ तव जुदे जुदे निज नामोंसे विख्यात रहते हैं कि जो जो जिसका नाम है और उनके दंड काभी निर्णय ठेठ निज निज प्रकरण के अनुसार कियाजाता है-किसी ने-ग्रंथांतर मतसे इसके पांचप्रकार किये हैं-यथा (मनुष्यमारणंस्तेयंपरदाराभिमर्शनं । पारुष्यमनृतंचैवसाहसंपंचधास्मृतं) इसमें एकपांचवां अनृतभाषण अधिकहै सो ऐसी दशामें वहसाहस की पदवीपरआरूढ़ हुआ समुझना योग्यहै कि जहां कहीं सत्यसंभाषण के निमित्तसेही शपथआदि कोई दिव्या-

चरण करनेपरभी अनृत बोलै जैसी (अलफ़दरोगी) लोक प्रसिद्धहै तौ वहभी एक साहस काहीरूपजानो यह सिद्धांतहै तथापि सिर्फ़ चारस्थान जोबृहस्पतिजीनेनियत किये तिनको मुख्यजानो-और-उन्हींचार या पांचोंकीअपेक्षा लेकर नारद सबकेतीन भेद नियतकरतेहैं-यथा(तत्पुनस्त्रिविधंज्ञेयंप्रथमंमध्यमंतथा । उत्तमंचेतिशास्त्रेषुतस्योक्तंलक्षणंपृथक् ॥ फलमूलोदकादीनांक्षेत्रोपकरणस्यच। भंगाक्षेपोऽपमर्दाद्यैःप्रथमंसाहसंस्मृतम् ॥वासःपश्वन्नपानानांगृहोपकरणस्यच।एतेनैवप्रकारेणमध्यमंसाहसंस्मृतम्॥ व्यापादोविषशस्त्राद्यैःपरदाराभिमर्शनम् । प्राणोपरोधियच्चान्यदुक्तमुत्तमसाहसम्)-अर्थात्-वहसाहसभी लघुदीर्घआदि होनेके हेतु तीन विधकाजानो किंतु प्रथममध्यम उत्तम यह सब शास्त्रोंमें त्रैविध्यउसका कहाहै सो जुदे जुदे लक्षणदेखो-फल मूलजल कोआदि बहुधा चीज़ों या खेतके उपकरणों का (भंग) नाम विध्वंस करना किंतु सिर्फ़ तोड़ फोड़ आदि विगाड़ करना जैसा दंडपारुष्यवाले प्रकरणमें उपद्रव करनावर्णन होचुका है और (आक्षेप) किंतु वाणीकरके तिरस्कारकरना जैसा वाक्पारुष्यवाले प्रकरणमें कहिचुके हैं और (अपमर्द) करनाकिंतु वस्तुका मूलरूपशेषबनारखकरउस का दलन मलन आदि करना या लेभागना अन्यमनुष्योंके उपस्थित होतेहुये और भी इसभांतिकी छोटीबातें अनेकसमुझिलेनी इनकेकरनेसेप्रथमसाहस कियाकहाता है-इसीप्रकार वस्त्रपशु अन्नपान खानीपीनी चीज़ें और घरमें रहनेवाले उपकरणबासन भँड़वा आदि या दीवारमकान आदि इनका तोड़ फोड़ प्रवलता साथकरनाया लेभागना अन्य मनुष्योंके मौजूद होतेहुये तौ यहमध्यमसाहस कियाकहाताहै और इसीप्रकार वाली अन्यबातेंभी सबइसके साथसमुझनी जहांकहीं विषशस्त्रादि किसी भांतिसे मनुष्यका व्यापादन प्राणघात कियागयाहो या पराईदाराका अभिमर्शन जो प्रवलता साथकियागयाहो अथवा और कोई वात जो इसभांति में गिनतीहो प्राणों की उपरोध करनेवाली हो जैसे अग्निदाहदेकर किसी मकानके भीतरबंदकरना या जलवायु आदि पहुंचने नहींदेना इत्यादिक जिसमें प्राणवियोगवाला कोईकर्महो सो सबसमुझिलेना यहसब उत्तमसाहस किया कहाता है(अत्रसाहसस्यसामान्यदंडनियमः) तदप्याहनारदः(तस्यदंडःक्रियापेक्षःप्रथमस्यशतावरः।मध्यमस्यतुशास्त्रज्ञैर्दृष्टःपंचशतावरः॥ उत्तमेसाहसेदंडःसहस्रावरइष्यते। वधःसर्वस्वहरणंपुरान्निर्वासनांकने ॥ तदंगच्छेदइत्युक्तोदंडउत्तमसाहसः)अर्थात्-उसकादण्ड क्रियाओंकी अपेक्षासेही कर्त्तापावे दृष्टांत जैसे प्रथमसाहस अपराध मध्ये सौपणके भीतर एकपण सेलेकर सो पणतक दंडउतना राजा कल्पितकरे कि जितना कुछअपराध समुझै तिसके तुल्यहो. और मध्यमसाहस कर्मके अपराधमध्ये पांचसौतकदंड शास्त्रज्ञोंने इसभांति नियमिताकिया है कि जैसा कुछअपराध समुझै तैसा सौपणसेलेकर पांचसौतक दंडकल्पित करै

एवं उत्तम साहस कर्मके अपराधमध्ये पांचसौ से लेकर एक सहस्र भीतरइच्छा के अनुसार उसअपराध केही तुल्यदंडकल्पित करै कि जितना कुछअपराध उस्से हुआ हो-परन्तु जहांउत्तम साहस कर्म अतिशयतीव्र हुआहो तबअग्रोक्त दण्डभीहोसक्ते हैं कि यातौ उसअपराधी का बध कियाजाय या सर्वस्वहार दंडहोय या देशांतरद्वीप विशेषआदि बिकटस्थान का परवास करायाजाय या केवल देशनिकालामात्रहो या मस्तक आदिअंगमें अंकवायाजाय या अंकवाना देशनिकाला सहितदोनोंदंड या वह अंगछेदनकरवायाजायजिसके द्वारा अपराधी ने अपराधकियाहो ये सबदण्ड इकट्ठे या दोही एक तीव्रउत्तमसाहसके अपराधमध्येकहेहैं परउसमेंभी न्यूनाधिक जैसीदशा समुझीजाय कि इतनातीव्र उत्तमसाहस कर्महुआ तिसके अनुसारये सबदंडइकट्ठेया दोही एकजुदेकियेजायँ-सर्वस्वहार दंडका जो चर्चायहांतीव्र उत्तमसाहसके अपराधों मध्येआया यद्वा उत्तमचोरी आदि अन्य कुकर्मों में भी आवैगा या पहिलेकहीं आया हो तहांतहां सर्वत्रएकछूट नारदकहते हैं सो यादरक्खो-यथा (आयुधानायुधीयानां बीजानिकृषिजीविनाम् । यच्चयस्योपकरणंयेनजीवंतिजीविकाम् ॥ सर्वस्वहरणेप्येतं नराजाहर्तुमर्हति) अर्थात्-नारदकहते हैं कि जिसके बहुत बड़ेअपराधों मध्ये सर्व धनहरिलेनादंड राजादेवै तबयह छूटभी कर्तव्यहोगी किंतु सिपाही आदि आयुधी लोग जोजो सिर्फ़ आयुधमात्र से आजीवन करतेहों तिनके आयुध छोड़िदेवै-एवं कृषिजीवीलोग जोजो खेतीआदिसे आजीवन करतेहों तिनके बीजभूत द्रव्योंको अर्थात् कृषिकर्मोंके साधनयोग्य कारणभूत हलादिक उपकरणोंको नछीनै जिनके होने विना खेतीका अवरोध होना संभवहो-एवं जिस जिस पेशेवालेके विशेषकर मुख्यात्मक जो उपकरण होतेहों जिनसे वेसब जीवनका उद्योग करिकर जीतेहैं दृष्टांतजैसे नापितकी छुड़हरी किसबत यह मुख्यात्मकहै इत्यादि सबको समुझिलेना इन उपकरणोंको सर्वस्व हरेजाने परभी राजाहरने योग्यनहीं—और उपरांत इसके जो जो पाल्यवर्ग उसकेद्वारा जीवनपातेहों तिनके जीवनका प्रबंधराजा उसहीके सर्वस्व मेंसे देवै यह मर्यादाहै-इतना कहनेपीछे वेहीनारद कहते हैं कि-येही साहसकर्म कदाचित् ब्राह्मणसे उत्पन्नहों तब धन दंडआदि अन्यदंड करनेके सिवाय उसको देहदंडनहीं-यथाह (अविशेषेणसर्वेषामेषदंडविधिःस्मृतः। वधादृतेब्राह्मणस्यनवधेब्राह्मणोऽर्हति) अर्थात्-यह जो अंगच्छेदन आदि दंडविधान वर्णनहुआ सो सबजातोंको सामान्य कहातिसमें वधसे रहित ब्राह्मणको समुझना किंतु ब्राह्मणवध बंधरूप देहदंड योग्य नहीं एवंयमोऽप्याह(नशारीरोब्राह्मणस्यदंडोभवतिकस्याचित्। गुप्तेतुबंधनेबध्वाराजा भक्तंप्रदापयेत्)अर्थात्-किसीभी ब्राह्मणको शारीर दंडनहींहोता परअपराधकेमहत्वमें उस ब्राह्मणको भी गुप्तबंधनागारमें रखवाकर भोजनमात्र राजा अच्छी रीतिसे पहुँ-

चावै यहीदंडहै-नारदेनचदंडांतरमुक्तं-यथा(शिरसोमुंडनंदंडस्तस्यनिर्वासनंपुरात्।ललाटेचाभिशस्तांकःप्रयाणंगर्दभेनच) अर्थात्-नारदने कुछ अन्यदंड भी दर्शाये हैं कि ब्राह्मणको बहुतबड़े अपराध में भी यातौशिर मुड़वायाजाना एकदंडहै याराज्य बाहर काढ़िदेनादंड जहां औरभी अपराधकी अधिकताहो तहांमाथेपर कुछचिह्न उसके दगवावै यद्दागदहाकी सवारी देकर नगरयात्रा करवावै पर शारीरक दंडनहीं- ये सब दंड जोकुछ यहांपर दर्शायेगये ब्राह्मणको उसअवसर में संसूचित हैं किजहां उसका बधहोना पायागयाहो-तथाचमनुः (ब्राह्मणस्यवधोमौण्ड्यंपुरान्निर्वासनांकने। ललाटेचाभिशस्तांकंप्रयाणंगर्दभेनतु)अर्थात्-ब्राह्मणका बधयहीहै कि उसका मूड़मुड़ाना या पुरसे काढ़िदेना या माथेपर कुछदाग चिह्नदेना या गर्दभयान कराकर यात्राकरवानी यहाँतक-सामान्यभाव जोजो दंडप्रकार ऊपरसे कहतेआये सो सबडाका आदि शस्त्र घातयुक्त अपराधोंवाले साहसका व्यवहारहै अर्थात् जहां उठाईगीरे आदि किसी का कुछधन अपहरण करैं यद्यपि अन्यमनुष्यों के सन्मुख लेभागने आदि चिह्नों से वहभी एक चौर्यरूप साहसहै तथापि जबतक किसी मनुष्यपर कुछचोट लगानेबिना वस्तुको लेभागैं तबतक अत्रोक्त दंडप्रकारों से संबंध उनको नहीं पहुँचता इससे उन तुच्छात्मक धनापहारों का विशेष लक्षणवालादंड आगे याज्ञवल्क्य २३५ मूल श्लोकसे दर्शावैंगे॥

(अथद्रव्यापहाररूपसाहसलक्षणम्)

सामान्यद्रव्यप्रसभहरणात्साहसंस्मृतम्। तन्मूल्याद्द्विगुणोदंडोनिह्नवेतुचतुर्गुणः २३५॥

ऐ०-सामान्य कहिये चाहे तिसका या कोईसा धनहो तिसका प्रसभहरण करना साहस कहाहै (यहसाहसका लक्षणमात्र प्रकटकिया) मिताक्षराकारने इस अद्धा का यह अर्थ लिखाहै कि सामान्य कहिये साझेका जो द्रव्यहो जिसको सिर्फ़ अपनी इच्छासे एकला कोई एकसाझी विक्रयकरने या गिरवीधरने आदि वियोगरूप विनियोगोंमें लगानेका अधिकारी निपट न होतेहुये प्रबलतासाथ ऐसाकरै या उसद्रव्य को औरही किसीभांति से प्राबल्य करिके हरै तौ भी साहस कर्मका अपराधी होय और परायाद्रव्य प्रबलतासाथ हरनेसे प्रत्यक्षहै कि साहसका अपराधी होताहै जो बलसे घेर घारकरिकेहरै-इसीअद्धाका अर्थ श्रीमन्मित्रमिश्रने-यहलिखाहै कि सामान्य कहिये बहुत मनुष्योंने जोचौकीपहरेके ढंगसे नौकरी बदलातेहुये कालक्रमसे रक्षित कियाहो ऐसे धनका हरना साहस कहलाता है-सो इस अर्थ से यह दूषणभी उत्पन्न होता है कि जिसधनपर पहिरा लगा न हो तिसका हरना साहस न कहिलावै बल्कि मिताक्षराकार का जो अर्थ ऊपर लिखागया सोभी यहां अशोभितहै क्योंकि साझेके धनका यहां कुछ संबंध विशेष नहीहै अर्थात् याज्ञवल्क्यने जोबात यहां कहनीचाही

तिसका सूधासूधा मुख्यार्थ एक वहीहै कि चाहे तिसकाधनहो या कैसाही कुछ कोई भांतिका धन हो सो सामान्यहै और उसही के अंतर्भूत एक साभेकाभी धन स्वतः समुझि लियागया इस्से उपरालू दोनोंअर्थ केवल अनमेल वाग्विनोद मात्र जानो-और योगीश्वरकी विवक्षाका यह तात्पर्यहै कि जहां कोई तीव्रसाहस प्राणघातआदि न हुआहो सिर्फ कोई द्रव्यमात्र अपने ढीठापनसे या हिम्मतिसे मनुष्योंके समक्ष जो लेभागै याधूर्तबनिकर छीनिलेवै तौ इत्यादिक तुच्छसाहसोंके अपराधमध्येदंडअगिले श्रद्धा के अनुसार कल्पित करै सो अब कहते हैं कि-उस छीनी या लेभागी हुई वस्तु के मूल्यसेही दूनादंडदिलावै और वहवस्तु जिसकीहो तिसको दिलवाई जाय परंचनिह्नव होनेमें चतुर्गुण दंडजानो किंतुसाहसी जो धनहरनेपीछे भयभीत होकर साफ नकार खींचै कि मैंने नहींछीना या मैं नहींलेकर भागाथा तबहरीहुई वस्तुकेमूल्य से चौगुनादंड लेवै और बस्तुके अधिकारी की तद्रूपवही वस्तुयावस्तु काजो मूल्य ठहरैसो दिलवायाजाय ॥ २३५ ॥

(साहसिकप्रयोक्तॄणांदंडाधिक्यम्)

यःसाहसंकारयतिसदाप्योद्विगुणंदमम् । यश्चैवमुक्त्वाऽहंदाताकारयेत्सचतुर्गुणम् २३६ ॥

ऐक्यार्थः-जोकोई साहस औरसे करवाताहै कि तू अमुकामुक धनको लूटले या फूंकिदे इत्यादि कहकर करवानेवाला उससे दूनादंडदिलायाजाय जितना कर्तापर नियमानुसार निश्चितहोकर लियागयाहो जोकोई यहकहकर साहसकरवावै किंतूअ-मुकामुक साहस करना मैं तुझको उसके करनेका अवकाश स्थलअवसर आदिभेद और यह वेतन देनेवाला हूँ इस भांति साहस कर्ताके प्रयोक्ता परउस दंडसे चौगुना दंड लेवै जितना कर्तापर आरूढ़हुआ हो २३६ ॥

आधि० अज्ञातकर्तृकसाहसंनिर्णयः(अज्ञातकर्तृकेसाहसेषुमित्रारिबांधवाः । प्रष्टव्याराजपुरुषैःसामादिभिरुपक्रमैः ॥ विज्ञेयोऽसाधुसंसर्गाच्चिह्नैर्होढेनवानरैः । एषोदिताघातकानांतस्कराणांचभावना ॥ गृहीतःशंकयायस्तुनतत्कार्यंप्रपद्यते। शपथेनाववोद्धव्यःसर्ववादेष्वयंविधिः) अर्थात्-जहां साहसकर्म करनेवाला गुप्तसाहसी निपट नजानाजाय साहस किसने किया तिसको जानिपानेयोग्य निर्णय यहां लिखते हैं कि ऐसी भांति तहक़ीक़ात उसकी करै कि जिसके घरमें लूटिमार प्राणघात आदि कोई साहस का उपद्रव खडाहुआहो तिसकेमित्र शत्रुबंधुलोग ये सबराजपुरुषों द्वाराबूझेजायँबल्कि उसकेभी ये लोग बूझनेयोग्यहैं कि जिसके ऊपर वही मुद्दई कल्पित शंकासी आरोपित करताहो कि अमुक मनुष्यने यहकाम कियाहोगा क्योंकि मैं अमुकामुक हेतुसे अनुमान या विश्वास करताहूँ या मैंने उसे भागतेसमय ऐसे डीलडौल और वस्त्रादि वेश चिह्नोंसे पहिंचानाथा-सो अत्रोक्त लोगों के बूझनेमध्ये राजपुरुष थानेदारआदि

को सामादि प्रयत्नभी कर्तव्यहैं इसहेतुसे कि ऐसे साहस कर्मोंकी तहक़ीक़ातमेंबहुधा लोग यथार्थ कहनेसे हिचकते हैं इस हेतु सामदान दंडभेद इनकाभी बर्ताव यथा-क्रमसे करतेहुये ऐसी युक्तिसे सब निर्णय करवावें जिस्से जो कुछउन्हें यथार्थ मालूम हो सो कहिदेने को वे हिचकें नहीं-और भी इसभांति निर्णय कर्तव्यहै कि वहपुरुष जिसपर साहस करनेकी शंकासमुझी गईहो या उसभांति के अनेकदुर्जीवी घातिक आदि प्रसिद्ध जो जो निर्णय के अर्थ पकड़े जायँ तिनमें मुख्यसाहसीकी पहिंचानि इतनी बातोंसे करावे किंतु (असाधु) आदि दुष्टोंके संसर्गसे कि यह पुरुष किस किस दुष्ट असज्जनसे संसर्ग मिलाप रखता है या नहीं इसके उपरांत (होठ) चिह्नसे अ-र्थात् उसीकर्मका कुछ रूपक या लक्षण उसके पास पायाजाय जैसे चोरोंकेपासकूमल देने संधिकाटने वाले कोई लोहेके औजार निकसैं या महलोंपर चढ़िजानेकी कमंद निःश्रेणीआदि पकड़ीजाय तौ यह चोरीका सब होढ़ चिह्नजानो अथवा और कोई वस्तु उनपर ऐसीहो जिस्से उनकासाहस पहिंचानाजाय किंतु लूट मारे आदिपुरुष का कुछ वस्त्र शस्त्रादिक या फांसी फंदा आदि यहभी डाकूबटमारों वाला होढ़ चिह्नहै इसहोढ़के उपरान्त अन्य प्रकारकेभी चिह्न जैसे रक्तलेप रक्तबिन्दु आदि ढूँढ़ेजायँ क्योंकि होढ़चिह्न पायेबिना चोरोंका बधकरना या कुछ और दण्डदेना भी प्रतिषिद्धहै यह आगेकहीं वर्णनहोगा अथवा जिसपर होढ़ चिह्नभी न पावै या पायाजाने परभी निश्चितहोना दुर्घटहो तिसकेलिये असेसर आदि अन्य मनुष्योंसेभी भिन्नात्मक सब से बूझै कि यहकाम तुम्हारे ज्ञानध्यानके अनुसार इसकाकिया निश्चितहोताहै यानहीं और जो होताहै तौ होनेकाभी क्या अनुमान प्रमाण और विश्वास्य है यहकहोक्योंकि इसको करतेहुये किसीनेभी नहींदेखा सिर्फ़ आनुमानिक शङ्कासे लक्षणमात्र पायाजा-ताहै और मुख्य साहसीका पहिंचानाजाना यहाँ ज़रूरतहै. यहीभावना गूढ़ साहसी की पहिंचानिमध्ये सब घातक पुरुष खूनीलोगोंकी और चोरोंकीभी कही सो सर्वत्र जानो-पर जबकोई उक्त शङ्कामध्ये पकड़ाहुआ उसअपराधके कर्तृत्वमें सबूत को न पहुँचै या अपने मुखसे करना नहीं कबूलै तौ फिर शपथ सौगन्द से विवेचनकरना योग्यहै कि जैसा दिव्य प्रकरणमें प्रकार उसका कहाहो यहीविधान साहसवाले सब झगड़ाओंमध्ये जानो-इसीव्यवस्थाका वृत्तान्त जोकुछकर्मभेदसे भिन्नात्मक आवश्य-कहो सो सब आगे दोसौपचासी २८५ तथा २८६ वाले मूलश्लोकोंके ऐक्यार्थमेंअन्वे-षणकरो-इत्यादिउक्तप्रकारोंसे-अपराधीका स्वरूप ज्ञान होजानेऔर अपराधका सबूत उसपर होजानेपीछे जो कर्त्तव्यहै सो आगे वर्णनकरतेहैं-तदाहव्यासः-(ज्ञात्वातुघातकं सम्यक्ससहायंसबान्धवम्। हन्याच्चित्रवधोपायैरुद्वेजनकरैर्नृपः)अर्थात्-राजा अच्छी भाँति पक्काहटसाथ घातक पुरुषको पहिंचानि उनको सर्वसहायक और बन्धुओंसहित

चित्रविचित्र वधरूप नानायत्नोंसे वधबंध आदिकरै कि जिनसे उसकोभीउद्वेग पैदाहो. बृहस्पतिरपि(प्रकाशघातकायेतुतथाचोपांशुघातकाः। ज्ञात्वासम्यग्धनंहत्वाहंतव्याविविधैर्वधैः)अर्थात्-जेकोई घातिक प्रकाशभावमें अपघात करनेहारेहों तथैवजे उपांशु में अर्थात् एकांत निर्जन देशमें अपघातकरैं कि जिस भूभाग में पुकारकरने परभी कोई न सुनिसकै ये सबघातिक पहिले निर्णय सहित जानिबूझिकर पश्चात् इनका धनहरिकै विविध प्रकारके वधबंधोंसे मरवाये जाने योग्यहैं-ऊपर जो सहायक और बंधुओंसहित वधकरना कहा या उनका सर्वधन हरनाकहा सो उनघातिकोंको समझना जो निजकुटुंब आदि बंधुओंके सहायसे बटमारलुटेरे डाकूबनिकर यही निरंतर धंधा करतेहों चाहेकोई जातिहों और प्रत्यक्ष वा उपांशु निर्जनभूमिमें कुछ इसकानियमनहीं-और जो-साधारण भाव कहासुनी गाली गलौज करतेहुये कोई शस्त्रादि साहसकरै तिसके दंडजातिवर्णों के अनुलोम और प्रतिलोम क्रमसे आगे कहते हैं-तदाहबौधायनः (क्षत्रियादीनांब्राह्मणस्यवधेवधःसर्वस्वहरणंचतेषामेवतुल्यापकृष्टवधे यथाबलमनुरूपंदंडंचकल्पयेत्) अर्थात्-क्षत्रियादि कोईजाति जो ब्राह्मणका वधकरै तिनका वधकरिकै राजासर्वस्वभी हरिलेवै जहां क्षत्रिय आदिमेंसे कोई अपने समवर्ण का या अपनेसे नीचे वर्णवालेका वधकरै तहां जैसा उस अपराधका बलपायाजाय तिसके अनुरूप राजाधनदंड और शारीरदंड कल्पितकरै (और) इसकल्पित करनेके निमित्तमें पूर्वोक्त डंडावाजीका प्रकरण अच्छीरीतिसे विचारै तिसकेद्वारा कल्पन करै (एकस्यघातार्थप्रवृत्तानांबहूनांदंडः)तदाहकात्यायनः(एकंचेद्बहवोहन्युःसंरुद्धाःपुरुषंनराः। मर्मघातीतुयस्तेषांसघातकइतिस्मृतःसंरुद्धमित्यपिवापाठः) अर्थात्-जो एकहीको अकेला घेरकर बहुतसे मनुष्य मिलिकरमारैं तिनमें जोकोई एकमर्मघाती ठहरै जिसनेकिसीदेहके ऐसे मर्मस्थानपर निशाना ताकिमाराहो जहां प्राणोंका निवासप्राय होने से तत्काल मौतहोजातीहै यह मर्मघात कर्त्ताही उनबहुतों में नरमारकजानों किंतु सबसे तीव्रदंड इसको योग्यहै पर औरोंको अपराधके अनुरूपदंड-अब आगे साहसकर्मके सहायकोंका वृत्तांत ब्यौरेवार वर्णन करतेहैं-तदप्याहकात्यायनः(आरंभकृत्सहायश्चदेशवक्ताऽनुदेशकः।आश्रयःशस्त्रदाताचभक्तादायोविकर्मिणाम्॥युद्धोपदेशकश्चैवतद्विनाऽऽशुप्रवर्त्तकः।उपेक्षाकार्ययुक्तश्चदोषवक्ताऽनुमोदकः ॥ अनिषेद्धाक्षमोयस्यात्सर्वेतेकार्यकारिणः।यथाशक्त्यनुरूपंतुदंडमेषांप्रकल्पयेत्) अर्थात्-सबसे पहिले ऐसाकहकर जो आरंभकरै हेदोस्तो कहींसे मालमारनाचाहिये या अमुकामुक मनुष्यों का अपघात करनाचाहिये.दूसरा जो इस कहनेके अनुकूल सहायक होकर साथी बनै तीसरादेश बतलानेवाला इस भाँतिसे कि यहकाम अमुकठिकानेपर होसकैगा.चौथा अनुदेशक जो उसस्थलके ठिकानेतक लेजाकर साथपहुँचादेवे.पाँचवां जो इनसभी

विकर्मी लोगोंको अपनेपास टिकाकर इनका आश्रयबनै.छठवां जोऔजार शस्त्रमाँगे देकर इनकी मददकरै.सातवाँ जो कोई राहखर्च आदिभक्ता अन्नरसद देकर आप सहायकरै-आठवाँ जो युद्धादि लड़ाई का उपदेशकरै-नववाँ जो उसयुद्धके नहोते हुये आशुप्रवर्तक बनै अर्थात् यद्यपि और लोग कुछकुछ आगापीछा सोचिकर हिचकते थे या अधिक विलंब करतेथे इसदशामें भी कोई एक उठिकर शीघ्र शस्त्रप्रहारआदि युद्धकर्मजारी करै. दशवां जो उपेक्षा कार्ययुक्त हो अर्थात् उपेक्षारूपी जोकुछ कार्यहो तिसमें आप लगाहो इसका यह दृष्टांतहै कि जैसे उक्तकामके विचार करनेवालों का भेदपानेके अर्थसे यदि कोईग्रामाधीश आदि समर्थ जो उसकाम का निवारण करना चाहिकर विश्वासपात्र देवदत्तसे कुछ ब्यौरा उनका बूझै कि तू उन मनुष्योंके समीप रहतावसताहै अब संप्राति उनका क्याकुछ खोंटा डौल विचार आदिहै या नहीं या तू रोज भेदलेता रहकर खबर लायाकर और देवदत्त इस्से विपरीत दुर्जन लोगों का अतिगूढ़ सहायक होना चाहिकर कुछ ब्यौरा नहींबतावै किंतु उपेक्षा रूपसेकह देवै या कहदेतारहै कि वहांकुछभी नहीं जो जो बातैं सुनीथींसब झूठीहैं और वहां प्रबंध पूराहुआहो तौ यह देवदत्तभी (उपेक्षाकार्ययुक्त) कहाया क्योंकि औरों को उपेक्षा करवातारहा दुष्टोंकी निगरानी निपट न होनेदी कि जिस्से खोंटेकामका निवारण होसक्ताथा अथवा इसभांति सेभी अर्थ कियाजासक्ता है कि यद्यपि कोईपुरुष अपने आप अयुक्तहै कि दुष्टोंसे कुछमेलमिलाप नहींरखताहै पर उनकेढंग प्रबंधोंको निज आपजानि बूझिभी उपेक्षाकारी होजाय किंतु समर्थ सज्जन पुरुषोंकोसंबोधन या समस्या उसकी न करदे कि अमुकामुक दुर्जीवीघातक लोगोंने यहदुष्टउपाय बांधाहम नेदेखा अथवासुनाहै.ग्यारहवांदोष वक्ताका अनुमोदक अर्थात् उनमेंजो जो कोई कातर या कुछ दूरंदेश दूरदर्शी होनेके हेतुसे उसकार्यमें विघ्नादि दोषप्रकटकरतेहों कि ऐसा साहस करने में अमुकामुक दोष उपद्रव खड़े होजायँगे इसबातसे यह संभव था कि शायद सभी विकर्मी ऐसासुनिकर काम करनेसे रुकिजातेपरंच कोई एक उनमें दोष वक्ताका अनुमोदक बनै कि ऐसी दोषकल्पना करनीव्यर्थ है इनदोषोंका परिहार भी अमुकामुक भांतिसे होसक्ताहै इसकरते कामका अवरोधन करनामूलमंत्रहै और जो कुछउपाय सबनेसोचा तिसपर आरूढ़ होनायोग्यहै यहऐसा कथन करनेवालादोष वक्ताका अनुमोदकजानो.बारहवां यद्यपि आपउनकासंसर्गी नहीं बलिक सज्जनहैपर जो आप रोकि सकनेमेंसमर्थ होतेहुयेरोकै नहींवहभी साथी समुझाजाय इतनेसभी मनुष्य कार्य्यकारीजानो इनमेंकोईभी अपराधसेभिन्नात्मकनहीं इस्सेजैसेजिसकीशक्ति हो तिसके अनुरूप सबकादंडकल्पितकरै-एवंवृहस्पतिरपि(एकस्यबहवोयत्रप्रहरंतिरुषान्विताः। मर्मप्रहारकोयस्तुघातकःसउदाहृतः ॥ मर्मघातीतुयस्तेषांयथोक्तंप्रापयेद्दम

म्। आरम्भकृत्सहायश्चदोषभागीतदर्धतः॥ क्षतस्याल्पमहत्त्वञ्चमर्मस्थानञ्चयत्नतः। सामर्थ्यंचानुबन्धञ्चज्ञात्वाचिह्नैःप्रसाधयेत्) अर्थात्-बृहस्पतिभी यहकहते हैं कि जहाँ क्रोधयुक्त बहुतसे एकहीपर प्रहार करते हैं तिनमें मर्मप्रहार करनेवाला जो है सोई घातकसमुझाजाताहै इससे जोकोई मर्मघातीहो तिसकोराजायथोक्त दमतक पहुँचावे किंतु जो कुछ दण्डघातक पुरुषके निमित्तमें शास्त्रोक्त पायाजाताहो सो सब इसकोकरै. प्रथम आरम्भ करनेवाला उसका सहायक जो उसते अर्धदोषका भागीहो यहाँसहायकमात्र कहनेसे वे सभीसमुझने जोजो ऊपर वर्णनहुयेथे इसलिये राजा इनसबको और घाव चोट आदिका अल्पत्व महत्त्व जैसाहो तिसकोभी और मर्मस्थान कोभी यत्नसे और उनसबहीकी प्रत्येक जुदीसामर्थ्य और अनुबन्ध उनके वैरबदले आदि कोभी उक्तचिह्नोंद्वारा समुझिकर निर्णय पूर्वदण्ड कल्पनाकरै (क्वचिद्वधकर्तुरपिनदोषः) जो कि सर्वथा इसीप्रकरणमें और डण्डाबाजी के प्रकरण में भी सिद्धान्त यहीरक्खा है कि कोईकिसी प्रकारसे भी शस्त्रनहीं चलावै तो यह दोषापत्ति खड़ी होतीहै कि चौरादि घातक पर्यंत दुर्जन साहसिकोंका वध क्योंकरहोगा उनकीरोक न होनेसे अत्यन्त वृद्धिहोगी-इसहेतुसे अवशस्त्रचलाने के भी विषय दर्शित करतेहैं-तदाहमनुः (शस्त्रंद्विजातिभिर्ग्राह्यंधर्मोयत्रोपरुध्यते। द्विजातीनांचवर्णानांविप्लवेकालकारिते॥ आत्मनश्चपरित्राणेदक्षिणानांचसङ्करे। स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौचधर्मेणघ्नन्नदुष्यति) अर्थात्-द्विजाती ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों वर्णोंको खड्गादिक शस्त्रबाँधने तथा चलाने योग्यहैं उसदशा में कि यदि वर्णों वा आश्रमियोंका कुछ धर्म रोकाजाताहो अर्थात् जहाँजहाँ कोई धर्मकर्म इष्टापूर्त मेंसे यज्ञ तड़ाग बागीचा देवालय होमादिक जोजो धर्मके सम्बन्धी कामहों तिनका विध्वंस कोईकरताहो या करतेसमय न करनेदेताहो तहाँ द्विजातीलोग निःसन्देह शस्त्रचलावें इसमें दोषीनहीं होतेहैं-तथैव जहाँद्विजाती लोगोंसे शूद्रेतर वर्णसङ्कर आदि मलीनों से परस्पर धर्मवाद में बिगाड़हो या परदारा हरने आदि धर्मबाधकरूपी किसीविशेष कारणसे संग्रामहो यद्वा राजा रहित भूभाग में कुछकाल कारित विप्लवहो तौभी परदेशी राजसेना आदि घुसने और डाकुओं के भयसे शस्त्रबाँधै-यहाँ(विप्लवअर्थात्गदर)समुझना-और जहाँपरायेसे अपने प्राणोंको संशयहो तहाँ अपनी रक्षाहेतुसेभी शस्त्रबाँधै या दक्षिणाओं के निमित्त से जोयुद्धहो अर्थात् धनगऊ आदि द्रव्योंके अपहार निवारण हेतुसे जब युद्धकरनापरै तौभीशस्त्र बाँधै तथैव जहाँ स्त्री या ब्राह्मणकी प्रतिष्ठा रक्षाकरनेमें या उनकी दुर्बलता में पीड़ा दूरनेसे जबयुद्ध करनापरै तहाँभी सर्वत्र इनस्थानों में धर्मविकार जानिकर उनपीड़ा देनेवालोंको पीड़ा प्रतिफलदेनेसे द्विजातीलोग दोषभागी नहींहोतेहैं और ऐसेअवसरमें धर्मपीड़क साहसिकोंका वधकरनेसे भी साहस कर्मवाला दण्ड द्विजातीलोगोंको

नहो यह सिद्धान्तहै कि ब्राह्मण वैश्य जोजो क्षत्रिय वालाधर्म शस्त्रादिक धारण कर्मकभी न करतेहों वेभी ऐसे अवसर में सबकरैं-एवंबौधायनः (ब्राह्मणार्थेगवार्थेच वर्णानांवापिसङ्करे । गृह्णीयात्तांविप्रविशौशस्त्रंधर्मव्यतिक्रमे) अर्थात्-ब्राह्मण गऊ इनकी रक्षार्थसे और वर्णोंमें परदार संग्रह आदि से कुछ सङ्करदोष खड़ाहोने में या और किसीभाँतिसे कुछ धर्मका अवरोध व्यतिक्रम होनेलगने में ब्राह्मण वैश्य दोनों वर्ण शस्त्रबाँधें-इसमें क्षत्रिय को इसलिये नहींदर्शाया है कि उसको प्रजापालनआदि हेतुसे सदैव यही धर्महै-अब इसमें एकशङ्का शान्त करतेहैं कि (हास्यार्थमपिब्रह्म आयुधंनाददीतइतिबौधायनएव) तथा (परीक्षार्थमपिब्राह्मणआयुधंनाददीतइत्यापस्तंबः)अर्थात्-उन्हीं बौधायनका यहवचनहै कि ब्राह्मणकभी हासीकेभी नामसे कुछ शस्त्र नहींउठावे तद्वत् आपस्तंब काभी यह कथनहै कि ब्राह्मण कभी परीक्षा केभी अर्थसे कुछ शस्त्रनहीं उठावे सो ये दोनों नियम केवलसाधारण भाव की उनदशाओं पर आरूढ़हैं कि जहां ऊर्ध्वोक्त धर्म विरोध आदि कुछ नहो(किंतु)आततायीका बध करनेमें कुछ दोष नहीं-तथाचमनुः-(नाततायिबधेदोषोहंतुर्भवतिकश्चन । प्रकाशंवाऽप्रकाशंवामन्युस्तंमन्युमृच्छति) अर्थात्-आततायी जो साहसी भी कहिलाता है तिसके ताड़न करने या प्राणोंसेभी मारिदेनेमें कुछ हंताका दोषकोईभांतिसेभी नहीं होता क्योंकिआततायीने साहस कर्मचाहै अन्यमनुष्योंके समक्ष या निर्जनतामें कुछ गुप्तभावसेही कियाहो यद्वा करनेका प्रारंभ कियाहो तौभी हंतामें उत्पन्न हुये क्रोध में उस आततायीके क्रोधरूपपापका विनाशकिया इस्सेहंताको कुछ दोषनहीं-आततायी कास्वरूपयद्यपि ऊपर साहस कर्मोंके लक्षण वर्णन होनेमें निर्णीतभीहोचुका है पर यहां प्रसंगमात्रसे फिर लिखते हैं किदंड निर्णयके निमित्त करके रूपउसका विस्मृत नहोजाय—यथाहि (अग्निदोगरदश्चैवशस्त्रपाणिर्धनापहः । क्षेत्रदाराऽपहारी चषडेतेह्याततायिनः) अर्थात्-एकवह जो आगि लगाता या लगाइ चुकाहो १ विषदेदिया यद्वा देताहो २ शस्त्रहाथ लियेहुये मारता यद्वा मारिचुकाहो ३ किसीका धनलूटे लेताहो यद्वा लूटि चुकाहो ४ खेत आदि भूमिको प्रवलता से छीनताहो ५ पराई स्त्रीको छीनता या भगाये लियेजाताहो ६ येही छे साहसी पुरुष आततायी कहलातेहैं(आततायिनमायान्तंहन्यादेवाविचारयन् । आततायिवधेदोषोहंतुर्भवतिकश्च न ॥ गुरुंवाबालवृद्धौवाब्राह्मणंवाबहुश्रुतं । आततायिनमायान्तंहन्यादेवाविचारयन्) यह अधिकार यहाँसमर्थ प्रजालोगोंका दर्शायागया-किंतु-राजाकी अपेक्षा से अवकहते हैंकि राजा साहसिकों को दण्डादियेविना न छोड़ै कभी-यथाहमनुः (ऐन्द्रंस्थानमभिप्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम् । नोपेक्षेतक्षणमपिराजासाहसिकंनरम् ॥ साहसेवर्तमानन्तुयोऽमर्षयतिपार्थिवः । सविनाशंव्रजत्याशुविद्वेषंचाधिगच्छति ॥ नमित्रकारणाद्राजाविपुल

द्वाधनागमात्। समुत्सृजेत्साहसिकान्सर्वभूतभयावहान्) अर्थात्-राजाका यहधर्महै कि ऐन्द्र पदवी तुल्य बड़ाई तथा यश विख्यात अतिशय भावसे जो चिरकालतकभी नाश न हो तिसके प्राप्तहोने के अर्थ से साहसीको अपराध दण्डदेने में उपेक्षा कभी क्षणमात्रभी न करे क्योंकि-जो कोई राजा साहस करतेहुये कोभी सहिलेताहै सोउन पापकारियोंकी उपेक्षारूप अधर्म बुद्धिके प्रभाव से विनाश को पहुँचताहै और प्रजा लोगोंका विद्वेषी भी होजाताहै क्योंकि जिसको पीड़ा मिलतेहुये कुछ दण्डन्याय न हुआ वहीराजाको बैरी समुझिकर नानाभाँति के शापदिया करताहै जबकि अनेकोंके मुखसे यद्वा हृदय करके शापरूपी वचनमन्त्र अनेकभाँति से उच्चरित होनेलगे वेही लक्षों संख्या होकर दुष्प्रयोगवत् होजाते हैं--इन्हींकारणों से राजा उन साहसिकोंको कि जोजो सभी प्राणियोंको भयखड़ाकरनेवालेहों न तौ मित्रों के कहनेकरके छोड़े न कुछ धनकालाभसमुझिकरछोड़े किन्तु यथापराधके अनुसार दंडभागी करे ॥

इत्यष्टसप्ततितमःपरिच्छेदः ७८॥

(इतिमुख्यात्मक साहसकर्मविवेकः)

इन साहसिकोंके कुछलक्षण आगे चौर्य प्रकरणमेंभी आवैंगे तथैव स्त्रीसंग्रहण नाम प्रकरणमेंभी आवैंगे और पहले वाक्पारुष्य दंड पारुष्यके दोप्रकरण जो हो चुके कुछ कुछ उनमेंभी संसर्ग इनका जानो क्योंकि साहस चारपाँच रूपोंसेहोताहै और आशय उसका यह कि जोजो क्रूरकर्म प्रबलतासाथ कियेजायँ सो सब साहस हैं-और-उनकेभी उपरान्त नाना भाँतिके कुकर्म हैं कि जो जो छलसे या अभिमान से या लोभसे या क्रोध तथाअसत्यसे उत्पन्न होते हैं और वे भी साहस कर्मोंकेही तुल्यमानेजाते हैं उन सबके रूप लक्षण तथादण्डभी यथोचित ब्योरेवार नीचे (उपसाहस) नामक परिच्छेदमेंदर्शावैंगेइसहेतुसे इससाहस प्रकरणमें दो परिच्छेद हुये जानो २३६॥

अत्रप्रभिन्नानामुपसाहसरूपकुकर्माणांदण्डविधिदर्शनोनाम
ऊनाशीतितमःपरिच्छेदः ७९॥

यहाँ उनासी संख्याके परिच्छेदमें मुतफ़र्रिक नानाभाँतिके कुकर्मोंवाले उपसाहस ढूँढ़ेपावैंगे कि जो जो किसी और प्रकरण परिच्छेद में न मिलसक्तेहों और जो न किसी फरेब छलसे या क्रोधसे या लोभसे अभिमानसे प्रमादसे उत्पन्नहुयेहों वह करणीय कर्मके त्यागसे वा हिंसासे या तोलमाप आदि कूट तराजू बांटोंसे या कूट राजमुद्रासे या खोटीचीज मिलानेसे असत्यसे परीक्षासे निरखसे अयोग्य सत्वदान से चिकित्सासे वाणिज्यसे पिता पुत्रादि वैरभावसे उत्पन्नहुयेहों इत्यादि और भी अनेक भाँतिके विवाद इसमें ढूँढ़ेपावैंगे कुछ सबकानाम यहाँनहीं आसक्ता॥

(केषांचित्साहासिकविशेषाणांदंडानियमः)

अर्घ्याक्रोशातिक्रमकृद्भ्रातृभार्याप्रहारदः। संदिष्टस्याप्रदाताचसमुद्रगृहभेदकृत् २३७॥
सामंतकुलिकादीनामपकारस्यकारकः। पंचाशत्पणिकोदंडएषामितिविनिश्चयः २३८॥

ऐ०—यहाँ मुख्यसाहसकर्मोंके प्रसंगमें दूसरीभाँतिके साहासिक विशेषोंका कुछदंड प्रकार कहतेहैं कि-अर्घ्योंको आक्रोश तथा अति क्रम करनेवाला अर्थात् (अर्घ्य) नामगुरु आचार्य आदि जेकोई पूजनीय गिनेजातेहों तिनको आक्रोश आक्षेपरूप कोईसा कुवाक्य मुखसे कहनेवाला तद्वत् उनकी आज्ञाका अतिक्रम किन्तु उलाँघना आज्ञाभङ्ग हुकुमउदूली करनेवाला और भ्राताकी भार्याको मारपीट करनेवाला और संदिष्ट काभी अप्रदाता किंतु जोकोई कहीं शिष्टाचारिक धर्म मर्यादा से आभूषण यान बाहनस्थान आदि विश्वासिक वाक्यमात्रसे मांगे तो देनाकहकर या कुछवचन सहायमात्र करनेका विश्वास देकर कार्य कालमें विश्वास घातकरै समुद्र गृहका भेद करनेवाला किंतु मुँदेहुये मकानको मालिक से परोक्ष में खोलनेवाला-एवं-सामन्त कुलिकादिकोंका अपकार करनेवाला अर्थात् अपने घरखेतआदिसे भिड़ेहुये घरखेतों के मालिकअपने परोसीलोग तद्वत्अपने कुलकेलोग जोजुदेबसतेहों औरआदिशब्द के आशय से उसदेश ग्रामटोला में जो बसतेहों तिनका किसीभाँतिसे निरर्थक अपकार वा अपमान आदि करनेवाला इनसबही को पचास पणका दण्डनियतहै-क्योंकि यहभी एकप्रकार के साहसी गिनेजातेहैं इनमें जिसने कुछदेना अङ्गीकारकरके नदेने का मनोरथ कियाहो तिसपर वह स्वीकार कियाहुआ दिलाने के उपरान्त यहीपचास पणकादण्ड समुझना और सामन्त कुलकादिकोंमेंसे किसीएकही दोका कुछअपकार करनेमध्ये पचासका यहदण्डसमुझना किंतुजहाँअनेकोंका अपकारकरनेवालाएकहो तहाँउन प्रत्येकों की अपेक्षा उसपर जुदाजुदा यहदण्डहोना न्यायजानों २३७।२३८॥

(अत्रकेषांचित् साहसिक विशेषाणां दंडाधिक्यं)

स्वच्छंदंविधवागामीविक्रुष्टेनाभिधावकः। अकारणेचविक्रोष्टा चंडालश्चोत्तमान्स्पृशेत् २३९॥
शूद्रप्रव्रजितानांचदैवेपित्र्येचभोजकः। अयुक्तंशपथंकुर्वन्नयोग्यायोग्यकर्मकृत् २४०॥
वृषक्षुद्रपशूनांचपुंस्त्वस्यप्रतिघातकः। साधारणस्यापलापीदासीगर्भविनाशकृत् २४१॥
पितृपुत्रस्वसृभ्रातृदंपत्याचार्यशिष्यकाः। एषामपतितान्योन्यत्यागीचशतदंडभाक् २४२॥

ऐ०—यहाँ कुछेक साहसिक विशेषोंको ऊपरवालोंकी अपेक्षा दंड अधिक वर्णनकरते हैं कि-एकतो स्वच्छंद अपनी इच्छासेही नियोगधर्मकी रस्मनिठहर बिना विधवा गमन करनेवाला दूसरा वह कि जबकोई चोर चिकारके भयमे पीड़ितहोकर चिल्लाने लगे तिसकाशब्द सुनकर शक्तिमान् होनेभी तत्काल दौड़ेनहीं इसका निर्णय देखो दोसोइक्यासीकी अधिकोक्ति पिछले अन्त में-तीसरा वह कि जो चौरादिक भयके

बिनाही निष्कारण चिल्लानेलगे हाय दौड़ियो मारागया इत्यादि व्यर्थ विक्रोश करके औरोंको दौड़ायमारै चौथावह कि जो चण्डाल जातिहोकर उत्तम जातियों को मार्ग आदि में सङ्घर्ष करिकै निकसै २३९ पाँचवां वह कि जो शूद्र जातों में से कल्पित संन्यासी वा दिगम्बर आदि वेशधारी बनेहों तिनको देवकर्म तथा पित्र्य कर्मके सम्वन्ध में जिमावै-छठा जोकोई पुरुष अयुक्त शपथ किंतु खोंटीसौगन्द खानेलगै दृष्टांत जैसे अपनी मातृगमनकरूँ जो इसमेंझूठ कहताहोउँ इत्यादि नानाभाँतिसे समुझना जो जो सुनकर सज्जन पुरुषोंको कुवाक्य से प्रतीत होतेहों. सातवां जो अयोग्य होकर योग्य पुरुषोंवाले कर्मकरनेलगे दृष्टांत यथा निकृष्ट शूद्र आदि जाती या चण्डाल आदि कोई जो अयोग्य लोकप्रसिद्धहो द्विजाती लोगोंके षट्कर्म सम्वन्धी कोईकाम करनेलगै यद्वा लोकचर्या में जो कर्म महानुभावों के प्रसिद्धहों तिनकोकरै जैसे भङ्गीहोकर शाहूकारों के समान बरात साजिकर उनकी नक़लउतारै या दुशाला आदि उत्तम वस्त्रधारणकरै या उत्तम यान विमान आदि पर आरूढ़ होकर उनके सन्मुख निकसै या जैसी पचमेल मिठाई आदि से भोजन पंक्तिहोनेका प्रचार उत्तम जातोंमें प्रवर्तितहो तिसकी नक़लउतारै किंतु वैसाही आचरण नीचजातिहोकर करनेको उतारूहो इत्यादि नानाभाँति से समुझना २४० आठवां जो बृषभ या बकरा आदि छोटे पशुओं का पुंसत्व वधिया खस्सी करने आदि प्रकारों से विनाशकरै अर्थात् निज अपनेभी चौपायोंकी जो उद्भवशक्तिमिटावै अथवा (वृक्षक्षुद्रपशूनांच) ऐसामूलपाठ होनेसेभी वृक्षोंकापुंसत्व विनाशकरना यह कि गंधक सज्जी हींग आदि तेज़ाबरूप औषधियोंसे फल फूल आदि गिराने यद्वा आगेको पैदायश मारीजाने वालारोग बिकार परायेवृक्षोंमें करदेना- नवमा जो साधारण कई साझियोंका धन अपनेपास जमाहोतेहुये या और किसीकार्यमें अंतरीय साझाहोतेहुये अपलापकरै किन्तु निपट नाटिजावे कि इनका उसमें या मेरेपास कुछभी नहीं-दशवाँ जो दासीका गर्भगिरावै किन्तु दासी संगमकरनेपीछे गर्भहोजाने में सन्तानकीउत्पत्तिभयसे औषधियोंके योगसे जो गर्भपातकरावै २४१ ग्यारहवाँ पिता पुत्र परस्पर जो कोई दोमें एकदूसरेको त्यागै-वारहवाँ वहिनभाईपरस्परजोकोई दोमें एकदूसरेको त्यागै-तेरहवाँ भार्या भर्त्ता परस्पर जो कोई दोमें एक दूसरेको त्यागै-चौदहवाँ आचार्य शिष्य परस्पर जोकोई दोमें एक दूसरेको त्यागै पर इन सबके त्यागमेंयह एक परमकारण है कि जो जो कोई अपतितका परित्यागकरै वही त्यागकरनेका अपराधी ठहरै किंतु पतित का परित्याग करनेवाले पर अपराधनहीं लगायाजासक्ताहै-येसब चौदह अपराधीलोग जो चारो मूलश्लोकों से दर्शायेगये सौसौ पणतक दंडभरने योग्य हैं कि जितनाकुछ अपराध इसकेभीतर समुझाजाय किंतु कहींअपराधकी प्रवलता में सौ

पणसेभी उपरालू दंड कल्पित होसक्ताहै पर ऐसीदशा विशेष किसी बिरले अवसर में उत्पन्न होगी क्योंकि यद्यपि २४२॥

मधि०-यहां सबसे पिछले दोसौ बयालिस मूलश्लोक मध्ये मनुजी छःसौ पण तक दंड बताते हैं-यथा(नमातानपितानस्त्रीनपुत्रस्त्यागमर्हति । त्यजन्नपतितानेतान् राज्ञादंड्यःशतानिषट्)अर्थात्-माता.पिता.भार्या.पुत्र इनमें कोई भी परित्याग करने योग्य नहीं किंतु पालन पोषण या शुश्रूषण आदि जो जो कर्म जिसको करनेयोग्य जैसीरीति से आवश्यक है सो अपने अपने धर्मोंको कदाचित्‌भी न छोड़े क्योंकि ऐसे कर्मोंका न करनाही परित्याग कहाताहै कुछ घरसेबाहर त्यागिदेनेका भावार्थ नहीं-यस्मात्(वृद्धौचमातापितरौसाध्वीभार्यासुतःशिशुः। अप्यकार्यशतंकृत्वाभर्तव्या मनुरब्रवीत्)पर जोकोई इनमें किसी अपतितका परित्यागकरनेलगै तिसको साहस का अपराधीजानि राजा छःसौपणतक दंडलेय-यद्यपि काव्यरीतिसे स्पष्ट प्रतीत होताहै कि पूरेछःसौपण सर्वत्र राजालियाकरै पर धर्मशास्त्रकेअभ्यन्तर यह अर्थ असंगत मानाजाताहै इसलिये छःसौपणतक यथापराधके अनुरूप लियाजाना न्याय समुझो क्योंकि पालन पोषणआदिका परित्याग प्रायः निधनतामें उत्पन्न होताहै अर्थात् जिनमें छःसौपण देसकनेकी सामर्थ्यहोगी तिनमें ऐसे त्यागरूप साहसकी उत्पत्तिभी कदाचित् किसी अधर्मीसे होसक्तीहोगी इस्से मनुकाकहा छःसौवालादंड केवल ऐसे साहसियोंकी अपेक्षापर आरूढ़है कि जो जो लोग पूरेऐश्वर्योंसे सम्पन्न होकर उक्तत्यागके अपराधीबनैं और हठके पूरेआवेशकरके पंचों अथवा राजाका समुझाया नहींमानैं सो उनलोगोंपरभी यथापराधके अनुरूप छःसौपणतक जितना योग्य समुझाजाय उतनाही न्यायात्मकजानो किन्तु उनसेभी कुछनिर्विकल्प छःसौ पणका नियमनहीं (और) यहदंडभी सर्वत्र थोड़ाघना राजा तब लेसक्ताहै कि पहले उसी त्यागेहुये संबन्धीका उपकार पंचों द्वारा निर्णय सहित जैसा योग्यसमुझै सो करवा लेवै २४२॥

(रजकादीनांवस्त्राद्यपेक्षयादंडः)

वसान.त्रीन्पणान्दंड्योरजकस्तुपरांशुकम्। विक्रयावक्रयाधानयाचितेषुपणान्दश २४३॥

ऐ०-नेजक रजक वस्त्रधावक धोबी छीपी रंगरेज आदि कार्मिकलोग परायेवस्त्रों को (वसानः)किन्तु पहिरतेहुये तीनपणके दंडयोग्यहैं-कदाचित् वस्त्रबेंचिदेवै याअवक्रय नाम भाड़ेपर देदेवै या आधानकरै किन्तुगिरवीरक्खे यद्वा अपनेमित्रादिकिसी प्यारेको मगेतुदेवै तौप्रत्येक अपराधमध्ये दशपणदंड भिन्नभिन्नजानो और उनवस्त्रों कोभी जैसेलाया हो सो तद्रूप यद्वा मूल्यद्वारा स्वामीको समर्पणकरै २४३॥

मधि०-कदाचित् वस्त्रोंको पत्थरआदि परपीटिपाटि फाड़ैतौ भी दंडनीय है-यथा-

हमनुः(शाल्मलेफलकेश्लक्ष्णेनिज्याद्वासांसिनेजकः। नचवासांसिवासोभिर्निर्हरेन्नच वासयेत्)अर्थात्-सेमलवृक्षकी लकड़ीवाले चिकने पट्टेपर धोबीवस्त्रधोवै किन्तु खरदरी लकड़ी या पत्थरआदि परनपीटै और परायेवस्त्रोंसे बदलैनहीं तथैव अपनेघरमें बहुत दिनतक नहींबसावै किन्तु जो इनबातोंमेंसे कोईबातकरै धोबी तौभीदंडपावै जैसाअभी ऊपर कहागया-कदाचित् अपनी गफ़लतसे कपड़े खोइदेवै तिसकान्याय नारदके वचनानुसार जानो-यथाहनारदः(मूल्याष्टभागोहीयेतसकृद्धौतस्यवाससः। द्विः पादस्त्रिस्तृतीयांशश्चतुर्द्धौतेऽर्द्धमेवच॥ अर्द्धक्षयात्तुपरतःपादांशापचयःक्रमात्।यावत् क्षीणदशंजीर्णंजीर्णस्यानियमःक्षयः)अर्थात्-एकधोव पहिराहुआ वस्त्रजोधोबीखोइदेवै तौउसवस्त्रका आठवांभाग मूल्यकमकरके धोबीभरै इसकादृष्टांत जैसे आठरुपयेकी खरीदि वा तैयारीवाला वस्त्रसिर्फ़ एकवारधुलाहो दूसरीबार देनेपरधोबी खोइदेवै तिसमें अष्टमांश का एकरुपया कमकरिके धोबी सातरुपयेदेवै.एवंदोधोव पहिरेपीछे जो तीसरी धोवखोयाजाय तिसका चौथाई मूल्यकम करिकै धोबीदेय जैसेआठमें से दो तोड़िकर छःरुपये मालिकपावै.एवंतीनिधोव पहिराहुआ चौथीधोव खोयाजाय तिसमेंएक तिहाईमूल्य काटिकरशेषदोभाग मूल्य धोबीभरै.एवंचारधोव पहिराहुआ पांचवींधोवपर जोवस्त्र खोयाजाय तिसका आधामूल्य धोबीभरै इसभांति अर्धपुराना होनेके उपरांतभी यदि खोयाजाय तौभी आधेमूल्यमेंसे एक एक चौथाईमूल्यप्रत्येक धोव पीछे हानि समुझनी योग्यहै. यह नियम जबतक वस्त्र अतिशय क्षीण दशा की जीर्णताको न पहुँचाहो तबतक संभव है फिर आगे अतिशय जीर्ण वस्त्रखोयाजाने पर इसउक्तक्षय का नियमनहींहै अर्थात् जितनीकुछ मालियत समुझी जाय उतना मूल्यधोबीसे दिलायाजाय-यहां धोबीकेनिदर्शनमात्रसे रँगरेज छीपी दर्जी धुनाआदि सभी समुझने २४३॥

(पितृपुत्रविरोधेसाक्ष्यदंडः)

पितृपुत्रविरोधेतुसाक्षिणांत्रिपणोदमः।अंतरेचतयोर्यःस्यात्तस्याप्यष्टगुणोदमः २४४॥

ऐ०-पितापुत्र दोनोंमें जो कलहखड़ीहो तिसको देखिसुनिकर जो समीपी कोईगवाहीदेना अंगीकारकरै बल्कि उसकलह को समुझाकर शांतनहीं करै तो उसभाँति के साक्षियों परभी तीनतीन पणकादंड राजालेवै-और जोकोई दोनोंमें फूटकरवानेवाली बुद्धिदेताहो या उनके बीच कलह बढ़ानेके अर्थ आप मध्यस्थ प्रतिभूवनिवेकी हामीभरता हो तिसपर चौबीसपणका दंडलियाजाय-यहां पिता पुत्र के उपलक्षणसे वैसभी समुझनजोजोभाई बहिनमें या स्त्रीपुरुषमें याआचार्य शिष्यमें या नौकरऔर स्वामीमें या साझियोंमें परस्पर बैरखड़ाकरानेपर उपस्थितहों २४४॥

(तुलानाणकयोःकूटकारिदंडः)

तुलाशासनमानानांकूटकृन्नाणकस्यच। एभिश्चव्यवहर्तायःसदाप्योदंडमुत्तमम् २४५ ॥

ऐ०—तुलाडंडी तक तराजू कांटा पैमाना गज जरीब आदि सबको तुला समझना तिनमें कूटनाम प्रपंच जालसाजी करनेवाला अर्थात् कमती बढ़ती तोलनापकरसकने वाली इन्हीं चीजोंको बनानेवाला तद्वत् (शासनमान) किंतु हुक्मीबांट आदिजिनका नियम निर्माण राजद्वारकी आज्ञासे संबन्धित हो कि अमुकबांट इतने तोले इतने मासेका हुआकरै तिनका कूटकरनेवाला किंतु हलुकेभारी उन्हींमोहरोंसे चिह्नितकरिके घड़नेवाला तद्वत् (नाणक) सरकारी सिक्का किंतु अशरफ़ीरुपयापैसा आदि या और कोई चपरासआदि राजचिह्नहो तिसकोभी समझना तिनका कूटकरनेवाला जैसे पीतल की अशरफ़ी या राँगेका रुपया आदि बनानेवाला यद्वा चपरास आदि राजमुद्रा चिह्नोंको राजाज्ञा विनापराये अर्थ कपटरूपसे बनानेवालाभी उत्तमसाहस रूप कर्मोंका जोदंड उत्तमसाहस एकसहस्रपणतक धनदंडसो दिलवाने योग्यहै-और वहपुरुषभी कि जो इनउक्त चीजोंसे व्यवहारकरै अर्थात् अपने आप यद्यपि नहीं बनावै किंतुबनी वनाई लेकर निजव्यवहारोंके बर्त्तावे में जो रखता हो जिनसे ठगई की दूकानदारी होनी लोकप्रसिद्ध है यहभी उत्तमसाहस दंडपावै-पर यहदंड उसका नहींहै कि जिसने विनाजाने कभी धोखेसे बर्त्तावा कियाहो-इसहीसे यह मर्यादा लोक प्रवर्तितहै कि जब सच्चेसाहूकार आदि व्यवहारीके हाथकोई खोंटामुद्रा धोखे से आजाय और वहपीछे उसको जानिपावै तव तत्काल खंडखंड करिके नद्यादि गहिरे जल में फेंकिदेताहै कि फिर यह किसीके हाथनहीं आवै २४५ ॥

अधि—मनुने तराजू वाँटोंका परिशोधनभी छठेमहीना करना कहाहै क्योंकि सवदूकानदार एकसे पुण्यात्मा नहीं होसकते जो कुछकपट नकरैं-यथा (तुलामानंप्रतीमानंसर्वंचस्यात्सुलक्षितम्। षट्सुषट्सुचमासेषुपुनरेवपरीक्षयेत्) अर्थात्-तुलामान कहिये डंडीतराजू काँटा पैमाने जरीवगज इत्यादि सवचीजें जोजो तुलामानमें गिनती हों तथैव प्रतिमान कहिये बाँट तोलामासा मन पसेरा सेरआदि सवचीजें राजमुद्रासे सुलक्षित हों किंतु सवके ऊपर अच्छी जगजगाती हुई मोहरें ठप्पाहों या खुदीहों जिससे सच्चेबाँटों तथातराजू आदिकीपहिंचानभीहोसकै (फिर) इनचीजोंको प्रत्येक छमाही पीछे राजा वारवार परीक्षा करता रहै कि जैसे चिह्नोंसे जो चीजें इनकोदी थी सवतोलनाप में अवठीकहैं या नही मँगाकर उनकोदेखै और जोजो उनमें अशुद्ध पायेजायँ या मोहरें जिनकी वर्तावे से घिसगई हों तिनको फेरि ठीक करवाकर उन्हें सौंपिदे २४५ ॥

(नाणकपरीक्षिव्यतिक्रमेदंडः)

अकूटंकूटकंब्रूतेकूटंयश्चाप्यकूटकम्। सनाणकपरीक्षीतुदाप्यउत्तमसाहसम् २४६ ॥

ऐ०–(नाणकपारीक्षी)नाम सिक्का अशरफ़ी रुपया आदिकी परीक्षाकरनेवाला परसै-या यद्वारत्नोंकी परीक्षा करनेवाला जौहरी (अकूट)नाम खरेरुपये आदि को कूटनाम खोंटाबतलावे ऐसा नाणकपरीक्षी भी उत्तम साहस दंडदिलाने योग्य है-यहां नाणक-परीक्षीके उपलक्षण से औरभी वे सभीसमुझने जो जो हाथी घोड़ा आदिकी परीक्षा करते हों २४६ ॥

(चिकित्सक व्यतिक्रमेदंडः)

भिषङ्मिथ्याचरन्दंड्यस्तिर्यक्षुप्रथमंदमम् । मानुषेमध्यमंराजपुरुषेषूत्तमंदमम् २४७॥

ऐ०–यदिकोई भिषक् चिकित्सकवैद्य आदि आयुर्वेद वैद्यशास्त्र को न जानते हुये सिर्फजीविका के निमित्तसेही मिथ्यारूप चिकित्साका आचरणकरै जिससे किसी हाथी घोड़ाआदि पशुयोनिको दुःखहोय यद्वाप्राण हानिहोना संभवहो तौ वहवैद्य प्रथम साहस दंडकरके दंडनीयहै और जो मानुषजातिमें यह झूंठ चिकित्साकरीहो तिसपर मध्यमसाहस दंडहो जिसने राजसंबंधी पुरुषोंकी चिकित्सा धोखादेकर करीहो तिस पर उत्तम साहस दंडहोना योग्यहै-यहां वैद्यके निदर्शनमात्रसे औरभी अनेक जैसे आंखिबनानेवाले साथिया वा जर्राह आदि समुझने जो जो अपने गुणमें कच्चे होते हुये धोखादेकर पीड़ाजनक उपायकरैं २४७ ॥

अधि०–प्रथम मध्यम उत्तम तीनभाँतिके जो दंडकहे तिनका निर्विकल्पआशय नहीं है कि पूरापूराउत्तम या मध्यम या पूर्वदंड करना किन्तु सर्वत्र वही आशय है कि यथापराध के अनुरूप जितनायोग्य समुझाजाय सोइन परिमाणोंवाली नियत अवधिके भीतर कल्पितकरना यहसिद्धांतहै अपराधकी गुरुता लघुताके सिवायचिकित्स्य प्राणियोंकी भी उत्तमताआदि ध्यानकरनी जैसे पशुआदि तिर्यक् प्राणियोंकी चिकित्सामें उनजीवोंका मूल्य जैसा अधिक अथवान्यूनहो तैसाअधिक अथवान्यून दंडभी अपराधके अनुरूप दोसौसत्तरि पणकेभीतर कल्पितकरना एवंजहां मनुष्यों की चिकित्सामें व्यतिक्रम कियाहोतौ उन मनुष्योंके भी ऊँचे नीचेवर्णके अनुसार अधिकदंड अथवा न्यूनदंड उस अपराधके अनुरूप पांचसौचालीस पणकेभीतर जैसायोग्य समुझाजाय वही प्रकल्पितकरना-एवंराजपुरुषोंकी चिकित्सामेंव्यतिक्रम कियाजानिकर उनपुरुषोंके अधिकार यद्वाराजासे समीपता जैसीअधिक अथवाथोड़ीहो तैसाअधिक अथवा न्यूनदंड उसअपराधके अनुरूप एकहजार अस्सीपणके भीतर जितनाउचित समुझाजाय सो करणीयहै-एवंमनुरपि (चिकित्सकानांसर्वेषांमिथ्याप्रचरतांदमः । अमानुषेषुप्रथमोमानुषेषुतुमध्यमः) २४७ ॥

(बन्धनागाराद्यधिकारिव्यतिक्रमेदंडः)

अबन्ध्यंयश्चबध्नातिबद्धंयश्चप्रमुंचति । अप्राप्तव्यवहारंचसदाप्योदममुत्तमम् २४८ ॥

ऐ०- यदिकोई बन्धनकर्म का अधिकारी किसीऐसे निरपराधी को कि जोबन्धनमें पहुँचाने योग्यनहीं तिसकोबांधे यद्वाकिसी बँधुआको कुछलालच आदि किसीहेतुसे या गफ़लतसेही छोड़िदेय या अप्राप्त व्यवहारको कि जिसका व्यवहार अबतकफ़ैसलनहीं होनेपाया हवालातमेंसे छोड़िदेय वहभीउत्तमसाहसदंड दिलाने योग्यहै २४८॥

अधि०-रिशवतलेकर जो विपरीत मुक़द्दमा फ़ैसलकरैं ऐसे प्राड्विवाक आदिजी अख्त्यार ओहदेदारोंका दंडव्यास कहतेहैं-यथा (न्यायस्थानेगृहीत्वार्थमधर्मेणविनिर्णयम्।कुर्वंत्युत्कोचकास्तेतुराजद्रव्यविनाशकाः॥ उत्कोचजीविनोद्रव्यहीनान्कृत्वाविवासयेत्) अर्थात्-व्यासकहते हैं कि न्यायकेस्थान कचहरी आदिमेंजे कोईहाकिम आदि अर्थी या प्रत्यर्थीसेधन लेकर धर्म मर्यादोंसे विपरीत (ख़िलाफ़क़ानून) तसफ़ीयह कियाकरतेहों वेहीउत्कोचक रिशवतख़ोर लोग राजद्रव्यके विनाशीजानो क्योंकि जिन अपराधी लोगोंका ठीकन्यायहोनेसे जुरमाना राजघरमेंआता तिनहींको उत्कोचलोभ से निर्दोषीकरिके छोड़िदेतेहैं या प्रायः शुद्धवादीको अपराधीनिश्चितकरतेहैं-इसहेतुसे उत्कोचजीवी लोगोंको धनहीनकरिके राजानिपट विवासकरावै किंतुसर्वथा उसअपराधके अनुरूप धनहरिलेने पीछेओहदेसे उतारिदेवै यद्वाराज्यसे भी बाहरकाढ़िदेय-परयह तीव्रदंडकेवल उनकोही कि जिनपर घूसखाना निपट प्रमाणकोभी पहुँचै किंतु जिनकेमध्ये घूसखानेकी विख्यातिमात्र होकर कोई बात सबूतमें न आवै तिनकादंड केवल स्थानांतर करना किंतु अदलीबदली आदि प्रकारोंद्वारा शिक्षादेना योग्यहोगा-इसकास्वल्प तात्पर्यदेखो दोसौअस्सीकी अधिकोक्तिसबसे पिछलेआंक बृहस्पतिके नौ वचनोंमें (अन्यायवादिनःसभ्या) इत्यादिचतुर्थ श्लोक जिसकाअर्थ नीचेलिखा (अदालती अहल्कारजोजो)इत्यादि पायाजावै-बल्कि-प्रायःकर्मभेदके अपराधोंवाला न्यायविशेषपूरेतीनसौके मूलश्लोकसे दर्शावैंगे और उसकेआगेतीनसौदशके मूलश्लोकसे भी कहेंगेउनदोनोंकी अधिकोक्तेंदेखो २४८॥

(तोलानादिभिर्न्यूनदातृवणिजांदंडः)

मानेनतुलयावापियोंऽशमष्टमकंहरेत्। दंडंसदाप्योद्विशतंवृद्धौहानौचकल्पितम् २४९॥

ऐ०-बांटोंकी न्यूनतासे या तोलडंडीकी चालाकीसेही यद्वा और किसीप्रकारसेजो कोई बनियाँ अष्टमभाग हरै किन्तु सेरका साढ़ेतीनपावदेवै तिसपर दोसौपणका दंड दिलाना योग्यहै औरजो इससेअधिक या थोड़ा घाटिदिया होतोभी इसीकेअनुसार दंडअधिक यद्वाथोड़ा कलिपतकरिके लियाजाय-अर्थात् सेरपीछे आधपाव घटनेका यहदोसौ दंडकहागया कदाचित् सेरपीछे तीनछटांक घाटितौले तिसपरदोके तीनसौ करादियेजायँ इसीप्रकार जिसने सेरपीछे एकछटांक घाटिदियाहो तिसपर दोकेएकसौ रहिजायँ इत्यादि यथाकर्मके अनुसार दंडजानो २४९॥

(हीनवस्तुमिश्रीकरणेदंडः)

भेषजस्नेहलवणगंधधान्यगुडादिषु। पण्येषुप्रक्षिपन्हीनंपणान्दाप्यस्तुषोडश २५०॥

ऐ०—भेषजनाम औषधवाली कोईवस्तुहो और स्नेहघृतादिरस और लवणऔर गन्ध सुगन्धवाली वस्तुयें और धान्य नाजगुड़को आदिलेकर नानाभांतिकी वस्तुयें जो जो खानेपीने योग्यहों विक्रयके निमित्तकरके खोंटी सड़ीगली आदिहीनवस्तुउसीजातिकीया और किसीजातिकी उसवस्तुमें मिलानेसे वहविक्रयकर्त्ता सोरहपणका दंडदिलाने योग्यहै २५० इसबातको प्रकीर्ण प्रकरणमेंभीढूँढ़ो मनुकावाक्य दोसो छियासी संख्यक श्लोक जो नवमाध्याय संबंधी (अदूषितानांद्रव्याणां)इत्यादिजहां पावै तहां देखो २५०॥

(द्रव्याणांबहुमूल्यजातिकरणेदण्डः)

मृच्चर्ममणिसूत्रायःकाष्ठवल्कलवाससाम्। अजातौजातिकरणेविक्रेयाष्टगुणोदमः २५१॥

ऐ०—कोईचीज बेंचने योग्य जो मट्टी या चमड़े या मणिकी जाति मेंसेहो या सूत या लोहा या लकड़ी या बक्कल या कपड़ा मेंसेहो यद्वा इसीप्रकार कोईखानेकी वस्तुओंमेंसेहो जो पुरानी यद्वा सड़ीगली वा ओछीजाति आदि अवगुण युक्तहोने करके थोड़े मूल्यको विकिसकनेवालीहो तिसको कोई विक्रेता अपने लाभलोभों से सुजाति कल्पितकरै तौ वह आठ गुणादण्ड उसविक्रेय वस्तुसेहीपावै-अर्थात्-किसी ओछी खोंटीचीजको बहुत मोलमें बेंचने के मनोरथसे जबकोई विक्रेता पुरुष किसी अन्य वस्तुकी सुगन्धि या रङ्गति आदि लगाकर बड़ेमूल्यवाली कल्पितकरै और इसधोखेसेही बहुत मूल्यको उसवस्तुका विक्रयकरै तौ उसबनीहुई चीज़के बढ़ेहुये मूल्यके हिसाबसे वहवस्तु जितनेकी ठहरै तिससे आठगुणा द्रव्य उसपरदंड लियाजाय-यहाँ ओछीजातिकी चीजोंको अच्छीजाति बनानेके दृष्टांत जैसे मट्टी में मल्लिकाकी सुगन्धिसे भावना देकर सुगन्धामलकनाम औषधकी हैसियतसे बेंचै. बिलाई के चमड़ पर किसीरङ्गवर्णकी उत्कर्षा कल्पित करिकै व्याघ्र चर्मकी हैसियत से बेंचै. स्फटिक मणिपर कोई रङ्गवर्ण कल्पित करके पद्मरागकी हैसियत से बेंचै. कपासकेही सूत्र में किसी कल्पित गुणकी उत्कर्षा पैदाकरके रेशम सूत्रकी हैसियत से बेंचै. लोहे पत्रमें रङ्गवर्ण आदि गुणोंकी उत्कर्षा कल्पित करिकै रजतपत्रकी हैसियत से बेंचै. बिल्व काष्ठ में चन्दन चूराकी सुगन्धि भावना देकर उसको चन्दनकी हैसियतसे बेंचै. कपास से या और किसीसूत्रसे किसीयुक्ति साथ बुनेहुये वस्त्रको रेशमी कहकर विक्रय करना. गुड़हाई लालशकर में सुफ़ेद खरियामाटीकी भावना देकर उत्तम जातिकी शक्करमें बेंचना. गलीहुई बदरङ्ग इलायचीपर खरियामाटीका कल्पदेकर उन्हें अच्छी की हैसियत में बेंचना. कुसुमके फूल यद्वा मसूर के अंकुर में केसरिका छींटा देकर

कृत्रिम केसर बेंचना. इत्यादि नानाभाँति से समुझना सो सब अजातिकाजातीकरण कहाताहै और वस्तुके अनुमानसेही आठगुणा दण्ड उसपर होताहै २५१ ॥

(कस्तूरिकादिकृत्रिमकरण-मुद्गपण्यव्यत्यासयोदण्डाविवेकः)

समुद्गपरिवर्तंचसारभाण्डंचकृत्रिमम् । आधानंविक्रयंवापिनयतोदण्डकल्पना २५२ ॥
भिन्नेपणेतुपंचाशत्पणेतुशतमुच्यते । द्विपणोद्विशतोदण्डोमूल्यवृद्धौचवृद्धिमान् २५३ ॥

ऐ०-मुद्गनाम ढकना ढक्कन तिसकरके युक्त मुँदाहुआ डिब्बा डिबिया आदि जिसके भीतर कोईबस्तु ढकीमुँदी डिब्बासहित नियमात्मक बिका करतीहो कि एक डिब्बाबक्स बंडल इतनेका होताहै-यहां डिब्बाके निदर्शन करके पुड़ियाआदिभी समुझनी जैसे घुटेहुये ईंगुरकीपुड़िया या हुलासकी बनारसी पुड़िया आदि ऐसीपण्य वस्तुओंको जो कोई दिखलाने और पसंद करवाने पीछे देतेसमय हस्तलाघव हथचालाकी करकेपरिवर्तनकरै अर्थात् बदलिकर देदेवै जैसे मुक्ताभराडिब्बा दिखलाया वा ठहरायाथा देतेसमय हथचालाकी से स्फटिक भराडिब्बाउसके हाथादिया इत्यादि व्यत्यास्वरूप छलसे जोकुछ बदल करै यद्वा कृत्रिम सारभांड किंतु बनाहुआ नकली कस्तूरी का नाफ़ाआदि सच्चेनाभेकी हैसियत करके गिरवीधरै या बेंचै तो इन लोगों को जो दंड चाहिये तिसके लेनेकी कल्पना आगे कहते हैं कि २५२ जबतक भिन्न पण अर्थात् एकरुपयाके भीतर भीतर क़ीमतवाला यहछलहुआहो तबतौ पचासपण का दंड उसपर लियाजाय. जिसने पूरे एकपण अर्थात् एकरुपये वाला छल किया हो तिसपर एक सौपण दंड लियाजाय.जिसने दोपणकेमूल्यअनुमानका छल कियाहो तिसपर दोसौपणका दंड कियाजाय. इसीप्रकार जैसाछल का मोल बढ़ताजाय तैसा अधिक दंड हिसावसहित कियाजाय २५३ ॥

(अर्घविकारकारकवणिजांदंडः)

संभूयकुर्वतामर्घंसवाधंकारुशिल्पिनाम् । अर्घस्यहासंवृद्धिंवाजानतांदमउत्तमः २५४ ॥
संभूयवणिजांपण्यमनर्घेणोपरुंधताम् । विक्रीणतांवाविहितोदंडउत्तमसाहसः २५५ ॥
राजनिस्थाप्यतेयोऽर्घःप्रत्यहंतेनविक्रयः । क्रयोवानिस्रवस्तस्माद्वणिजांलाभकृत्स्मृतः २५६ ॥

ऐ०-(अर्घ)नाम मूल्य निर्खबाजार का जो राजसे निरूपित हुआहो तिसकाह्रास यद्वा वृद्धि किंतु घटिजाने या बढ़िजानेको जानतेहुये वनियांलोग आपसमें मिलकर कोई ऐसा निर्खजारी करैं कि जिस्से कारुक और शिल्पियों को कुछवाधा होय तो प्रत्येक मिलेहुओंको एकत्र उत्तमसाहस दंड किंतु एक साहस पणका दंड इकट्ठा मिलकर उनसे लियाजाय सबसे जुदा जुदा नहीं-कारुक धोबी आदि कर्मान शिल्पी चित्रकारी आदि कामोंके बनानेवाले मजदूर तिनको पीड़ाजिसमें न हो ऐसाप्रत्येक सभी चीजों यथा कारीगरी आदि कामोंका भी निर्खहोना योग्यहै २५४ जब कि

व्यापारी बनियां लोग आपसमें कुछ सम्मति करिके बाहरसे आईहुई भर्तीके माल को (अनर्घ) से रोकतेहों अर्थात् थोड़े मूल्यको मांगने आदि आग्रहसे उसमाल को बिकने नहीं देतेहों यद्वा इसते विपरीत किसीहेतु करके महँगा बहुत मूल्यसे बिकवातेहों तिनकेलिये उत्तमसाहस दंडकहाहै मन्वादि ऋषियोंने २५५ जबकि दोनों भाँति उनपरदंड निश्चित हुआ तो किसअर्घसे क्रय विक्रय करना योग्यहै सो कहतेहैं कि वणिक व्यापारी आदि समूहसे इकट्ठे राजसन्मुख जोकुछ(अर्घ)मूल्य रोज़ीना निर्ख़ निरूपण होताहै तिस निर्ख़से क्रयविक्रय दोनोंहोसक्ते हैं उनदोनोंसे जो (निस्रव) नामभारभूर विचली बचति जितनी राजसे निरूपित होकरछोड़ीजाय कि अमुकामुक पण्यवस्तुके क्रयविक्रयसे प्रत्येक रुपया पीछे एकआना पौनआना की निकासी होगी या बिरली स्वर्णादिक रोकपण्योंमध्ये एक पैसामात्रकी निकासी होगी या बिरले पण्य जोजो मनगातिकी दरिसे बिकतेहों मनपीछे चारआना आठ आनाआदि जैसालोक प्रसिद्धहो सोई निस्रव बनियांलोगोंका लाभकारी धर्मयह मन्वादिकऋषियोंने स्मरणकरायाहै २५६ अबइसलाभका निरूपण करनानीचे कहते हैं कि राजाऐसीभांतिसे खरीद विक्री दोनोंकाहीअर्घ नियतकरिके बनियांलोगों का भीलाभ निरूपण कियाकरै २५४॥ २५५॥ २५६॥

(अर्घनिरूपणनियमाः)

स्वदेशपण्येतुशतंवणिग्गृह्णीतपंचकम्। दशकंपारदेश्येतुयःसद्यःक्रयविक्रयी २५७॥
पण्यस्योपरिसंस्थाप्यव्ययंपण्यसमुद्भवम्। अर्घोऽनुग्रहकृत्कार्यःक्रेतुर्विक्रेतुरेवच २५८॥

ऐ०—अपने देशीपण्यमें बनियां पांचरुपया सैकड़ालाभलेवै और परदेशीपण्य में दशरुपयासैकड़ापावै जोशीघ्रक्रयऔरविक्रयकरै-अर्थात् जोजो बनियांरोजरोजमाल ख़रीदकर तत्कालबेंचतेहों तिनकेलिये राजा ऐसानिर्ख़ निरूपितकरै किजो कुछवस्तु अपनेदेशकी उत्पन्नहुई खरीदे तिसमें वीसरुपये केमालपीछे एकरुपया नफ़ा उन्हें वांचिसकै किंतुएकरुपया पीछे पौनआना और जोजो वस्तु विदेशसे भरि आई हों तिनकोशीघ्र बेंचिदेनेपरभी इससेदूनी नफ़ा किंतु दशरुपये का मालबाहर से लाकर जो तत्कालबेंचै तौभी एकरुपया लाभका मिलसकना उसको योग्यहै परजो कोईबाहरसे लाकर माल शीघ्र नहींबेंचै किंतु कोठी में रखछोड़कर कालांतर से यदि बेंचा चाहे या निज अपने देशका खरीदा हुआमाल जो कालांतर से कदाचित् बेंचाचाहै तिनके लियेयहकुछ नियमनहींहै क्योंकिजबजब कभी बेंचैंगे उसादिन का तात्कालिक निर्खजो कुछहोगा तिसकेअनुसार चाहे थोड़ा अथवा बहुतलाभ यद्वाटोटाहोगा सो प्रारब्धके आधीन होगा किंतु राजा केवल शीघ्रकालके क्रयविक्रय मध्ये अर्घनिरूपित करै २५७ तिसकोभी इस रीतिसेकि पण्यवस्तुके खरीदनेमें जो भाड़ानौलाई

आदि खर्चलगतेहों तिनकोभी उसमुख्यसौदामें जोड़कर पश्चात् उसका अर्घनिरूपणकरै जिस्सेक्रेता और विक्रेता दोनोंकीरिआयतरहै कि दोनों मेंसे किसीको उस अर्घसे कुछहानि या दुःखनहीं पहुंचै २५८ ॥

अधि०–मनुने इसअर्घमध्ये विशेष नियम दर्शितकियेहैं-यथा(आगमंनिर्गमंस्थानं तथावृद्धिक्षयावुभौ । विचार्यसर्वपण्यानांकारयेत्क्रयविक्रयौ ॥ पंचरात्रे पंचरात्रेपक्षेपक्षेऽथवागते । कुर्वीतचैषांप्रत्यक्षमर्घसंस्थापनंनृपः)अर्थात्-आगम, निर्गम, स्थान, वृद्धि क्षय, यहपांचोंबात प्रत्येक सभी पण्यों में विचार करके राजाअर्घ नियतकरै तिसके द्वाराक्रयविक्रय करवावै सो इनपाँच बातों का विचारकरना यहकि यहअमुक सौदा कितने योजनदूर देशावर सेभरआया यहतो आगम काविचारहै और(निर्गम)कितनी दूरतक यहसौदा कहींआगे कोभी जाताहै यानहीं यद्वा इसी देश की उत्पन्नहुई अमुक चीज निकसिकर कितनेदूर देशतक जातीहै और (स्थान) कितने कालतक यहवस्तुधरी रहसकतीहै और धरीरहने पीछे कितने भावसे विकसकतीहै और कितनानिर्ख इसका सर्वमनुष्योंको प्रियहोताहै या कितनाभाव रहजाना क्रेता विक्रेता में से किसको दुःस्सहहोजाताहै और (वृद्धि) इसमें कितना नफ़ा होसक्ता यद्वाहोताहै और (क्षय) उसी वृद्धिमेंसे कितनीहानि अर्थात् कामकरनेवाले मज़दूर नौकर आदि का कितनाखर्च और हरवक्त ऐसी चीजोंमें किस किसभाँति कितनी कितनी चीज हुआकरतीहै इत्यादि सभी चीजोंके विवेक सहित अर्घनिर्ख राजा नियत कियाकरै-सो इसरीतिसे कि जो जो चीजें शीघ्र २ भाव पलटतीहों किंतु एकभावसे जो बहुत दिनतक न विकसकती हों तिनकाअर्घ पाँचपाँच रातोंपीछे राजा फिरस्थापन किया करै किंतुपाँचरात्रि पर्यंत एकवस्तुको एकहीभाव विकनेदेय(और) जोजो चीजें स्थिर भावहों किंतु शीघ्रभावनहीं पलटतीहों तिनका अर्घ पखवारे पीछे फिर स्थापनहुआ करै (सो)यहस्थापन राजा अपने विश्वासपात्र पुरुषोंद्वारा उनके सन्मुखकरै जो जो वणिज व्यापारीलोगअर्घ भावकी विधि अच्छीतरह जानतेहों २५७ । २५८ ॥

इतिसाहसतुल्यविवादानामुपसाहसरूपाणां प्रभिन्नानांदंडविधिविषयिकऊनाशीतितमःपरिच्छेदः ७९ ॥

इसपरिच्छेद में व्यवहार जो जो वर्णनहुये सो प्रत्यक्ष गौण साहसरूप कुकर्म हैं अर्थात् मुख्यसाहसका स्वरूप पहिले डकैती आदि भेदोंसे कहचुके हैं (और)आगे अस्सी इक्यासीवाले परिच्छेदोंके व्यवहारको भी साहसका संबंधीजानो क्योंकि ये भी तुच्छ साहसरूप कर्महैं ॥

इतिसाहसाख्यविवादप्रकरणम् ॥

साहसका यह प्रकरण अठहत्तरि तथा उन्नासीवाले दोनोंपरिच्छेदमे समाप्तहुआ॥

अथविक्रीयासम्प्रदानन्नामव्यवहारपदन्तस्यविवेक वर्णनविषयिकअशीतितमःपरिच्छेदः ८०॥

इस अस्सी संख्याके परिच्छेदमें वहव्यवहार कहाजायगा कि जिसने कोईमालवेचिकर फिर लेनेवालेको अच्छीतरह सौंपि न दियाहो और इसहेतुसेही उसकोहानि पहुँचीहो॥

इसपरिच्छेद से विक्रीया सम्प्रदान संज्ञक व्यवहार वर्णन करतेहैं और अर्थइस का यह कि (बेचिकरनसौंपिदेना) किसीसौदाका मूल्य वा बयाना क्रेता से लेकर पीछे फ़रेब या झमेल से वह सौदा नहीं समर्पण करना तिसका न्याय वर्णन करतेहैं-और तात्पर्य इसका यह कि ७१ संख्या के परिच्छेद में जो न्याय वर्णनहुआ सो वहक्रय और विक्रय के अनुशयका बर्तावाथा कि सौदालिये पीछे क्रेता खोंटा समुझिकर न लेनाचाहै या विक्रेतावेचे पीछे गप्पाखाया समुझिकर न देनाचाहै या देचुकनेपर भी वापिस करलेनाचाहै तिसकी मर्यादें और अवधियाँ नियत हुईथीं कि इसइसभाँति इतनी अवधि भीतर अनुशय होसक्ताहै-अब इसपरिच्छेद में यहतात्पर्यहै कि यद्यपि दोमें कोई एकभी अनुशय करना नहींचाहै तौभी जो विक्रेता अपने क्रेताकोवेचे पीछे माल हवाले नहींकरताहो तबइस प्रकरणके अनुसार न्यायहोवै-तथाहनारदः (विक्रीयपण्यंमूल्येनक्रेतुर्यन्नप्रदीयते। विक्रीयासम्प्रदानन्तद्विवादपदमुच्यते) अर्थात्-पण्यकहिये विकने योग्य चीजकोई सौदा वेचिकर जो क्रेताको न दियाजाय तिसके मध्ये जो कुछ बिवाद खड़ाहोवै सोई (विक्रीयासम्प्रदान) नामक व्यवहारपद कहलाताहै-बेचने योग्यद्रव्योंके दोभेद और षट्प्रकारहुआकरतेहैं-तदप्याहनारदः (लोकेऽस्मिन्द्विविधम्पण्यंजङ्गमंस्थावरन्तथा। षड्विधस्तस्यतुबुधैर्दानादानविधिःस्मृतः॥ गणिमन्तुलिमंमेयंक्रियया रूपतःश्रिया) अर्थात्-इस संसारमें सौदामात्र सभी चीजों के दोभेद हुआ करतेहैं कि उनमें एक जङ्गम तथा द्वितीय स्थावर जानो-इन्हीं दोनों भेदमें छःरीति सौदा लेनेदेनेकी ज्ञानियों ने प्रकल्पित करीहैं उनमें एकरीति प्रथम (गणिमा) की विख्यातहै कि जैसे पान आँव नारियर आदि सहस्रों जङ्गम चीजें गिनकर बेचीजातीहैं १। दूसरी (तुलमा) की यह रीतिहै कि सोना चाँदी चन्दन कपूर आदि लाखोंजङ्गमचीजें तराजू से तौलीहुई विकतीहैं २ तीसरी (मेय) मपमा की यह रीतिहै कि गजसे वा पैमानेसेभी मपिकर यथा कपड़ा आदि सहस्रों चीज जङ्गम तथा धरती आदि बिस्ली स्थावर भी नपानेसेही विकतीहैं यहाँ पैमाना कहनेसे मनदोमन आदि के टोकरेभावे सन्दूक मृत्पात्र आदि जिनमें अन्नादि नन्हींचीज भरिकर भरमा विकतीहैं वा जालफाँसी में बाँधिकर भूसा आदि विकता जानो ३ चौथीरीति क्रियासेही विकने की प्रसिद्धहै कि बहुतेरे पशुपक्षी आदि नरपर्यंत जङ्गमजीव और अद्भुत कामकरनेवाली कलको आदि लेकर नानाभाँति के स्थावर भी समुझने इनसे उत्तम मक्खन

काम चलसकनेवाली क्रियाकेही अनुसार इनकामोल कियाजाताहै दृष्टांत जैसे यह भैंस इतना दूध देसक्तीहै. यह बैल इतना बोझ खींच सक्ताहै. यहघोड़ा पाँचगजकी ऊँचीभीत कूदजाताहै. इसमें इतना सिर्फ़ क़दमहै. यहऊँट सौकोस धावा करनेकी दम रखताहै.यहकुत्ता घरमें चोरनहीं आनेदेता. यहमैना बड़ीभेदूहै. इसदास यद्वा दासी में अमुकामुक स्वामि शुभचिन्तकता आदि अपूर्वगुण विख्यातहैं. इस घटिका यन्त्र में पल विपलकाभी अन्तर नहीं आता और इतनी दीर्घ अवधितक यह झूँठी नहीं पड़तीहै. यह घटिका सोते स्वामीको अपेक्षित कालपर सम्बुद्ध करदेतीहै. इत्यादि असंख्य चीज़ें सिर्फ़ क्रियाकेही गुणसे विक्रय होतीहैं कुछ तौलनापसे अपेक्षा अधिक नहीं रखती ४ पाँचवीं (रूपसे) क्रय विक्रयकी यहरीतिहै कि पण्यवस्तुका स्वरूप आकार डीलडौल आदि सिर्फ़ निगाहसेही देखकर मुलाई जातीहै कुछतौलनाप गिनती से सम्बन्ध विशेष नहीं ऐसी लक्षोंचीज होतीहैं और इनमें से भी होतीहैं जो ऊपर वर्णन करीगई ५ छठे (श्रिया) अर्थात् कान्तिसेही सौदा बिकनेकी यहरीतिहै कि जैसे मरकत पद्मराग आदि रत्नोंका मूल्य उनकीदीप्ति कान्तिकेही अनुसार ठहरा करता है ६ इनमें यह कुछ नियम नहीं है कि एकएकभाँतिकी चीजें सिर्फ एकही रीतिसे बिकसक्तीहोंगी किंतु बहुधा चीजें कईकई रीतिसेभी बिकतीहैं जैसे सुपारी नारियर आदि चीज़ें तोल और गिनतीसेभी एवं घोड़ा उक्त क्रियासे और डीलडौल आदि रूपसेभी देखाजाताहै एवं दासीमें रूप तथा क्रियाकर्म आदि गुणभी देखेजायँगे. एवं रत्नोंमें कान्ति और बड़ाई छुटाई तथा गुणदोषभी परीक्षा कियेजायँगे धरती में नाप के सिवाय उसके स्थलकी विशेषता तथा पैदावारी आदि गुणभी देखेजायँगे इत्यादि और सबको समुझिलेना-उक्त छःप्रकारों में से कोई भाँतिका सौदा जो विक्रेता विक्रय करनेपीछे अनुशय रहित क्रेताको मांगने परभी नहींदेवै तब जो न्याय करनायोग्य है सो वेही नारद कहतेहैं-यथा (विक्रीयपण्यंमूल्येनक्रेतुर्योनप्रयच्छति। स्थावरस्यक्षयं दाप्योजङ्गमस्यक्रियाफलम् ॥ अर्घश्चेदवहीयेतसोदयंपण्यमावहेत् । स्थायिनामेष नियमोदिग्लाभंदिग्विचारिणाम् ॥ उपहन्येतवापण्यंदह्येतापह्रियेतवा। विक्रेतुरेवसो ऽनर्थोविक्रीयासंप्रयच्छतः) अर्थात्-जो कोई विक्रेता अपने वेचेहुये सौदाका मोल लेकर किसी अनुशयके न करनेवाले क्रेताको मांगनेपरभी नहीं समर्पणकरे और वह सौदा यदि स्थावर धनकाहो तो स्थावरका क्षयद्रव्यभी विक्रेतासेही क्रेताको दिलाया जाय अर्थात् जितने दिनों सौदा रोकिरक्खाथा उतने दिनमें उसीवस्तुको वर्तावे में लानेआदि उपभोगों से जो वस्तुका क्षय समुझाजाय या विक्रेतापर उसवस्तुका भाड़ा आदि लेना सूचित होसक्ताहो यद्वा क्रेता सच्चीरीतिसे कुछ और हानि सबूतको पहुँचादेवे कि इसस्थावर सौदाके रुकेरहनेसे मुझको इतना नुक्सान अमुक मार्गसेहुआ

तौ यह क्षयका द्रव्यभी उस स्थावर के साथ उसे दिलायाजाय कदाचित् सौदा कोई जङ्गम धनमें गिनतीहो तौ उसवस्तुसे जो काम धन्धा सुखआराम आदि क्रियाफल मिलसक्ताथा विक्रेताने वहरोकिरक्खा उतनेक्रियाफलका प्रतिकार जो कुछद्रव्य समुझाजाय सोभी उसी सौदाकेसाथ उसे दिलायाजाय(सो)यहदोनों नियम जो नुक्सान दिलानेमध्ये कहेगये केवल उसभाँति के सौदाओंसे सम्बन्ध रखतेहैं कि जो व्यापारी माल नहो किंतु बर्तावे के निमित्त से क्रयकियाहो क्योंकि वणिज व्यापारवाली वस्तुओंका न्याय अगले वाक्यसे दर्शातेहैं-जब कोईसौदा ऐसारोकि रक्याजाय जो व्यापारके निमित्त से खरीदा गयाहो तिसका मूल्य जो घटिजाय तौ वहसौदा उदय सहित विक्रेताभरै इसका दृष्टांत जैसे दोआनाकम दो रुपया मनकी दरिमें सौमनकोईमाल क्रेतानेविक्रेतासे क्रयकिया और विक्रेता आठ दिनतकमाल रोकेरहा आठवें दिवस देते समय वहीवस्तु डेढ़रुपया मनकी दरिमें बिकनेलगी तौ अब देतेसमय वहीवस्तु दो आनाकम दोरुपयेकी सवामन मिलसक्तीहै इसलिये सौमनके बदले सवासौमन देकर उसकापीछा छूटिसक्ताहै और आठदिनका व्याजभी कि जितने रुपये उसकेपास क्रेता के पहुँचेथे और आठदिनतक जमारहे (औरजो) मूल्य घटा नहो किंतु ज्योंका त्यों तुल्यात्मक वहीभाव अबतक हो या कुछमूल्य अधिक लगने लगाहो तौ फिर सिर्फ व्याज और जो राजद्वारमें पहुँचनेहेतु हानिहो तिसके सहित वही पण्यक्रेताको दिलायाजाय यहभी नियम केवल स्थायी लोगोंका समुझना जो जो उसीनगर में उस मालको खरीदे पीछे वेचसकतेहों किंतु बाहरको लेजाकर जो बिचरनेवालेहों तिनको वहीलाभ दिलवायाजाय जो देशांतरमें वेचनेसे मिलसकताथा-कदाचित् मालरुका रहनेके हेतुसे विक्रेताकेपास टूटि फूटिगया यद्वा आगि से जलिगयाहो यद्वा चौरोंकरके हरागयाहो इत्यादि कोई भाँतिसे जो नाशहुआ सो विक्रेताका अनर्थजानो किन्तु उसहीको सबदेना होगा क्योंकि उसने वेचेपीछे रोकिरक्खा अब इनसभी वचनोंके भावार्थको योगीश्वर सिद्ध करतेहैं॥

गृहीतमूल्यंयःपण्यंक्रेतुर्नैवप्रयच्छति। सोदयंतस्यदाप्योऽसौदिग्लाभंवादिगागते २५९॥

ऐ०-गृहीतमूल्यपण्य अर्थात् जिस किसी सौदाकामूल्य विक्रेता ने लेलिया वही सौदा जो माँगतेहुये क्रेताको न देवै और वह क्रेता उसी वस्तुमें व्यापार करताहो तौ विक्रेतासे उदय सहित पण्य दिलवायाजाय (उदयशब्द यहां लाभनफा और व्याजवृद्धिकाभी बोधकहै) अर्थात् विक्रयकरते समय जितना सौदा जितने मूल्यसे ठहरा था वहीसौदा अब कालांतर में समर्पण करते समय थोड़े मूल्यसे मिलनेलगा तौ इसमूल्य घटिजानेसे जो पण्यवस्तु का उदय समझागया कि इतनासौदा अधिक बढ़ाने से तुल्यात्मक उतने मूल्यकी मालियत अब होसकेगी जो पहले मूल्यदिया था

तौ यह उदयरूप सौदा इतना अधिक बढ़ाकर उससे वही चीज दिलवाईजाय यद्वा वहचीज एकरूपवाली ऐसी हो जिसका बढ़िसकना या मिलसकना दुर्लभहो तौ फिर उतनेदाम रोकवापिसकरवाकर चीज वही उतनी दिलवाईजाय यद्वा मूल्यघटा न हो किंतु पहिलाभाव अब तकदेतेसमय प्रवर्तित हो तौ फिरवहीचीज दिलवानेके उपरांत उतने दिनका व्याजभी विक्रेता से दिलायाजाय जितने दिनतक मूल्यद्रव्य उसके पास निरर्थक रुकारहा और यहव्याज उसी प्रकरणकी मर्यादोंसे दिलायाजाय जिसमें सिर्फ व्याजवृद्धिकी मर्यादैंनियत हुईथीं अथवा(निक्षेपंवृद्धिशेषंचक्रयंविक्रयमेवच। याच्यमानमदत्तंचेद्वर्धतेपचकंशतं) इसवचनकी मर्यादा से उसव्याजका हिसाब जोड़ा जाय यद्वा इसी दशामें वह लाभ उसको दिलवायाजाय जो पहिले सौदा मिलने से अबतक उसी नगरमें बेचतेहुये नफाखड़ा होसक्ताथा परपण्यके न मिलनेसे मिटगयापर जो सौदा महँगा होकर मोलअधिक लगने लगाहो जिससे क्रेताको अब हाथ आने परभी नफाहोना संभवहै तौ भी उसी पण्यके दिलाये जाने उपरांत क्रेता की हानिभी दिलाईजाय जैसीस्थावर जंगमभेदसे नारदके वचनानुसार ऊपरकहीथी कि विक्रेताका उपभोग भाड़ाआदि जोकुछ संभवहो. यहतो तीनपादोंका सब अर्थहुआ चौथे चरणसे अबकहतेहैं कि दिगागतक्रेताको दिग्लाभसे दिलायाजाय अर्थात् जो कोईक्रेता किसीदेशांतर से इसमालको खरीदनेआया और देशांतरको लेजानेकेही अर्थसे यह सौदाउसनेकियाहो जिसको विक्रेताने मोल पटिजानेपर भी अबतकनहीं समर्पण कियातौ उसपण्यके दिलवानेसे उपरांत में वहलाभभी दिलायाजाय जितना उतनेदिनोंतक देशांतरमें लेजानेसे होसकना संभवहो उसीभांति के व्यापारीजनसे निर्णयसब करवायाजाय २५९ ॥

अधि०—विक्रेतासे क्रेताकीसामान्य हानिमात्र जहांजहां दिलानीइसमें वर्णनहुई तहांतहां उसहानिकाभी दिलवाना समुझाजाय जोकुछ राजद्वारमें पुकारकरने आदि उपायोंमें व्यय करनापराहो-केवलक्रेताकी हानिकाही दिलवाना नियमनहीं समुझना किन्तु विक्रेतापर कुछ राजदंडभी आवश्यकहै कि जिससेकोई फिरभी ऐसा न करे-तथाचविष्णुः(गृहीतमूल्यंयःपण्यंक्रेतुर्नैवदद्यात्तस्यसोदयंदाप्योराज्ञाचपणशतंदंड्यः) अर्थात्-लियेहुये मूल्यकापण्य जोक्रेताको न देवै तौवहपण्य उसका उदयसहित दिलवानेयोग्य है और राजाकोभी सौपणतक दंडदिलाने योग्यहै-यहांतक-जोकुछन्याय वर्णनहुआ सोसब उसीअवस्थामें समुझना जबकि विक्रेताअनुशयकरनानहीं चाहिकर संतुष्टबैठाहो यद्वा अनुशयकी अवधि बीतगईहो-परंतु —जो अनुशय करनेकी अवधि वर्तमानहो और विक्रेता अनुशयकरना चाहिकर बेचेहुये सौदाको न देताहो या क्रेताउसी अवधिभीतर अनुशयकरना चाहिकर उसवस्तुको न लेताहो तिनदोनों

की अपेक्षामें कात्यायनजी कुछविशेष विधिकहतेहैं-यथा (क्रीत्वाप्राप्तंनगृह्णीयाद्यो नदद्याददूषितम्। समूल्याद्दशभागंतुदत्त्वास्वंद्रव्यमाप्नुयात्॥ अप्राप्तेऽर्थक्रियाकालेक्र तेनैवप्रदापयेत्। एषधर्मोदशाहात्तुपरतोऽनुशयोनतु)अर्थात्-जोकुछसौदा(प्राप्त)रूपहो किन्तु प्रकर्षसहित आप्तनाम बहुतठीक और निर्दोषहो ऐसेपण्यको क्रयकरने पीछे क्रेता अनुशय चाहिकर संप्राप्तहोतेहुये न लेवै यद्वा विक्रेताबेचे पीछे अनुशय चाहि कर उसबस्तुको न देवै किन्तु देचुकनेपरभी वापिसकरलेना चाहै तौयहक्रेता या वि- क्रेता उसी ठहरेहुये मूल्यका दशांश अपने प्रतिपक्षीको कर्दारूपदेकर अपनामूल्य रूपीद्रव्य यद्वासौदारूपी द्रव्यवापिस करिपावे अथवापहिले दिया न हो तौ फिरदेने से छुटकारापावै-परइस उक्तदशांशका दिलवाना दोनोंपक्षियोंमें से किसीपर उसदशा में आवश्यकहै यदिपण्यरूपी अर्थकोकुछ क्रियाकाल पहुँचाहो और दशदिन भीतर आदि अनुशय होसकनेवाली अवधियां वर्त्तमानहों अर्थात् पण्यवस्तुओंकी कुछ क्रियाकाल जबतकनहीं पहुँचाहो तो अवधियोंके भीतर अनुशय कर्त्तापर दशमांश नहीं दिलायाजाय-क्रियाकालका यहभाव है कि जैसेगऊ खरीदीगई वहीपण्य द्रव्यहै वहजब तक दुहीं न जाय तद्वत् बैलहै वह जोतानहीं जाय तबतक क्रियाकाल को न पहुँचा समुझाजायगा इत्यादि अन्य बस्तुओंमेंभीयथासंभव उनके क्रियाकालजानो तिनके बर्त्तावासे पहिलेयह दशमांश देनेबिनाही निजद्रव्य वापिस करिपावे यहसि- द्धांतहै परदश दिवसोंके भीतरमें यहधर्मजानो क्योंकि दशदिनके उपरांत अनुशय होतानहीं-यहांदशदिनके निदर्शनमात्रसेउनसबही अवधियोंकोसमुझनाजोजो १८२ वाले मूलश्लोक और अधिकोक्तिमेंभी निश्चितहुईहों क्योंकियहां अनुशयकाप्रास- गिक चर्चामात्रहै अर्थात् यदिअनुशयकेही नामसे विवादखड़ाहोवैतौ इकहत्तरि ७१ संख्यावाले परिच्छेदसे निपटाराकरनाहोगा जिसमें वहुधाहीविशेष और सामान्यभी मर्यादैंउसकी नियतहैं तत्रैव १८२वाले मूलश्लोकद्वारा अवधियांभी अनेकभांतिकी कि जैसीजैसी पण्य बस्तुओंकी भिन्नात्मकजाति विशेषहों तिनकीभिन्नभिन्न अवधी जानो किन्तु दशादिनवाला कथन यहसामान्य एक निदर्शन है २५९॥

(विक्रीतस्यपुनर्विक्रयणंच)

विक्रीतमपिविक्रेयंपूर्वक्रेतर्यगृह्णति। हानिश्चेत्क्रेतृदोषेणक्रेतुरेवहिसाभवेत् २६०॥

२६०—पूर्वक्रेताके न लेनेमें विक्रीतभी विक्रेयहै अर्थात् जो पहिला खरीदार सौदा ठहि[illegible]ने पीछेलेतानहीं हो या लेनेमें कुछआग्रह खड़ाकरताहो तौ विक्रेताउसी बेचेहुए सौदाको अन्यत्रबेचिदेवै इसमेंदोषीनहीं बलिकजोक्रेताकेही दोषोंसे कुछहानि खड़ीहो सोउस क्रेताकोही पहुँचे अर्थातजोअच्छी निर्विकार चीजहोतेहुये और विकनाकरके देनेकीइन्कार न होतेहुये न ली होतौउस विकनेद्वारा सस्तेमहँगेका जो टोटाहोगा

विक्रेता उसकेमूल्य वा बयानामेंसे काटिलेवै या राजदैविक विघ्नोंसे उसभमेलेमें कुछ हानिहो तौभी उसीक्रेतासे भरलीजाय २६० ॥

अधि०—नारदोपि(दीयमानंनगृह्णातिक्रीत्वापण्यंचयःक्रयी । विक्रीणानस्तदन्यत्र विक्रेतानापराध्नुयात्)अर्थात् नारदभी योगीश्वरकेही तुल्यन्याय कहतेहैं कि-सौदाकियेपीछे विक्रेताकरके देतेहुयेभी जबक्रेता नहींलेताहै तबअन्यत्र बेचताहुआ विक्रेता भी अपराधी नहींठहरै-परंचनिरपराधी उसीअवस्थामें होसक्काहै जो सौदाउसकानिर्विकारहो और वह क्रेतानहींलेताहोतबयह पुनर्विक्रयकरै अर्थात् जोसौदाकी बानगी अच्छी दिखलाकर पीछेखोंटा सौदादेदेनेको समुद्यतहुआहो और इस खोंटापनसेही क्रेतानेलेना थांभिदिया हो तो फिरचाहे तैसीहानि इस विक्रेताकोहोजावे उसमेंक्रेता को कुछहानि भरनेसे अपेक्षानहीं समुभनी क्योंकि इसमेंक्रेताका कुछदोषनहीं इसी निमित्त ऊपरमूल श्लोकमें योगीश्वर ने यहकहाहै कि जो क्रेताके दोषकरके हानिहो वहीहानि क्रेताको पहुँचाई जासक्तीहै न उस्से अधिक(और) इसी हेतुसे सदोष चीज देनेवालेको दण्ड नारद कहतेहैं-यथा(निर्दोषंदर्शयित्वातुसदोषंयःप्रयच्छति । समूल्यांद्विगुणंदाप्योविनयन्तावदेवतु) अर्थात्-अच्छी चीज की बानगी दिखलाकर पीछे सड़ी गली भीगी आदि खोंटी जो देदेता है वहउस दी हुई खोंटी वस्तुकेही मूल्य परिमाणसे दूनाद्रव्य क्रेताको दिलाने योग्य है और उसी समान राजदण्डभी दिलवायाजाय २६० ॥

(अप्रयच्छतोविक्रेतुर्हानिः)

राजदैवोपघातेनपण्येदोषमुपागते । हानिर्विक्रेतुरेवासौयाचितस्याप्रयच्छतः २६१ ॥

ऐ०—क्रेताका मांगाहुआ सौदा यदि विक्रेता नहीं समर्पणकरै और इस विलम्ब में जो वहीसौदा राजदैव सम्बन्धी किसी उपघात से कुछ विकृत होकर दोषिल होजाय तो यह नुक्सान उसी विक्रेताके जिम्मेहै इसलिये उसकेतुल्य वहीवस्तु विक्रेता और खरीदकर या घरसे निपट अदोषिल जैसी पहले देनी ठहरीहो तैसी क्रेता को दिलवाने योग्यहै २६१ ॥

अधि०—यहाँ मांगतेहुये भी न देवै ऐसा कहनेसे यहन्याय समुभाजाताहै कि जो उसक्रेताने न मांगाहो और इसविलम्बमें वहसौदा किसी राजदैविक उपघातसे विनाशहोय तो विक्रेता उसकी हानिभरनेका अपराधी नहीं है-इसीलियेनारदकहते हैं-यथा (उपहन्येतवापण्यंदह्येतापह्रियेतवा । विक्रेतुरेवसोऽनर्थोविक्रीयासंप्रयच्छतः) अर्थात्-वहसौदा चाहे बिगड़जाय या जलिजाय चोरी आदि से भी हराजाय यहसब हानिरूप अनर्थ उस विक्रेताकाही निश्चितहै जो उसने बेचेपीछे अच्छीतरह क्रेता को न सौंपिदियाहो किंतु विक्रेताको यह योग्यथा कि क्रेताके न मांगनेपर भी उसको

चीज उसके जिम्मे थापिदेता-इसीसमान क्रेताका अपराध नारद कहतेहैं-यथा (दीयमानन्नगृह्णातिक्रीतंपण्यंचयःक्रयी । सएवास्यभवेद्दोषोविक्रेतुर्योप्रयच्छतः) अर्थात्-क्रय कियाहुआ सौदा जो कोई क्रेता देतेहुयेभी न लेवै तौ इसक्रेताको भी वहीदोष होवे जो विक्रेताको न देतेहुये होताहो-इस में न्यायदृष्टिसे यहध्यान करना योग्यहै कि जहाँक्रेताका अपराध पायाजायकि उसनेदेतेहुये भी निजसौदा नहींसम्हारिलियातहाँ इसका यहफलहै कि विक्रेता उसकामूल्य वापिस न करै जोकुछ पहले पहुँच गयाथा (पर) इसकथन से कि देतेहुये न लेवै एकयहभीबात खड़ीहोतीहै कि जो विक्रेताने सम्हारिलेनेकी प्रेरणा उसपर न करीहो तौ इस न लेनेसेभी मूल्य हानिका कुछचर्चा नहीं समुझना-इसी द्विविध आशयसे कदाचित् जहाँ ऐसा वानक बनिआयाहो कि नतौ क्रेतानेमांगा न विक्रेताने लेजानेकी प्रेरणाकरी इस अलसेट में जो सौदाबिगड़े यद्वा चोरीजाय तहाँ कौनसे का अपराध निश्चित कियाजाय और वहहानि किसके जिम्मेहै सो इसअवसरमें उनदोनोंकी बराबर हानिहोगी क्योंकि उसकातौ न मांगने का अपराधहुआ दूसरेका न देनेका कि उसने यादकराकर उसेसौंपि नहींदिया इसे दोनोंही तुल्यात्मक हानिभोगैं यहीन्याय दाक्षिणात्य देवणभट्टनेभी स्मृतिचन्द्रिकामें निरूपण कियाहै (और) यही आशय ऊपरले २६० वाले मूलश्लोक में योगीश्वर ने दर्शायाथा कि जहाँ क्रेता के दोषकरके हानिहुई समुझीजाय तहाँ उसका भोग भी उसक्रेताकेही जिम्मेहै २६१ ॥

(अहेतुकपुनर्विक्रयणेदण्डः)

अन्यहस्तेचविक्रीतंदुष्टंवाऽदुष्टवद्यदि । विक्रीणीतेदमस्तत्रमूल्यात्तुद्विगुणोभवेत् २६२ ॥

ऐ०-जोकोई विक्रय करनेवाला किसीके हाथबेचै पण्यको अनुशय विनाभी जब और के हाथ वेचिदेवे या दुष्टदोषयुक्त वस्तु अदुष्टके समानबेचै किंतु दृष्टांत जैसे गुड़ह्वाई खोंटी शक्करमें सफेदखरियामाटीकी पुटदेकर उसेसफेद शक्करके भावसेहीबेचै इत्यादि तबइन प्रत्येक जुदे अपराधों में यहदण्डहै कि वस्तुकेही मूल्यसे दूनाद्रव्य उसपर लियाजाय और उसक्रेताकोभी अच्छीवस्तु जैसी प्रथम वानगी देखकर क्रय ठहराहो सो दिलवाईजाय २६२ ॥

मधि०-नारद ने भी यहीनियम कियाहै-यथा(अन्यहस्तेतुविक्रीययोऽन्यस्मैतत्प्रयच्छति । द्रव्यन्तद्विगुणंदाप्योविनयन्तावदेवतु ॥ निर्दोषंदर्शयित्वातुसदोषंयःप्रयच्छति । समूल्याद्विगुणंदाप्योविनयन्तावदेवतु) अर्थात्-नारद कहतेहैं कि अन्यक्रेता के हाथ पहले वेचिकर जो और को देदेवे ऐसा विक्रेता उतनेमूल्य या बयानासेही दूना द्रव्य वापिस करवाने योग्यहै कि जितना उसने पहिले लियाहो और उसदूनेके समान राजदण्डभी इसीप्रकार जो निर्दोष वानगी दिखलाकरपीछे खोंटीचीजभेजै वह

भी दूनामूल्य वापिस करवाने योग्यहै और उसीसमान राजदण्ड-सो-यहदण्ड ऐसी दशामें समुझना जिसने जानिबूझिकर यहकियाहो कि अच्छी दिखलाकर खोटीतौलि दी यह सिद्धान्त इस अग्रोक्त वचन से संसिद्धहै-यथा बृहस्पतिः (ज्ञात्वासदोषंयः पण्यंविक्रीणीताविचक्षणः । तदेवद्विगुणंदाप्यस्तत्समंविनयन्तथा) अर्थात्-जानि बूझिकर जो कोई अविचक्षण विक्रेता किसी क्रेताको सदोष पण्य बेचै वहीदूना दिलवाया जाय और उसी समान राजदण्ड भी-आशय इसका यह कि जिसने इच्छाविना किसीभूलसे देदियाहो तिसको दंड नही सिर्फ सौदा वापिस करवाया जाय और क्रेताकाभी वही उतना मूल्य जो कुछ दियाथा सो वापिस कियाजाय–बलिक जहां धोखेसे देदेना हुआहो तिसके लिये सिर्फ सौदा वापिस होजाना किसी अन्यविषयके स्थलपर बृहस्पतिने दर्शायाहै-यथा(मत्तोन्मत्तेनविक्रीतंहीनमूल्यंभयेन वा। अस्वतंत्रेणमूढेनत्याज्यंतस्यपुनर्भवेत्)अर्थात्-जो मतवारेने या उन्माद युक्तने बेचाहो या हीन मूल्य किसी औरनेभी या भयसे बेचि दियाहो जिसका बेचिदेना कुछ आवश्यक नहींथा यद्वा अस्वतंत्र किसी स्त्री पुत्रादिकने या मूढ़ने कि जिसको सौदा करने का अधिकार तथा ज्ञान न हो तिसने बेचाहो यह सब सौदावापिस करने होते हैं और किसीकीकुछहानि यद्वादंडइसमें नहींहोता(अथादत्तमूल्यपण्यस्यव्यवहारः)-ऊर्ध्वोक्त सभी मर्यादें जो जो सौदाकेक्रय विक्रय मध्ये दंडआदि कहेगयेसोसब उसीअवस्था का वर्तावाहै कि जहांमूल्य पहिले लियादिया गयाहो-तदप्याहनारदः(दत्तमूल्यस्यप ण्यस्यविधिरेषःप्रकीर्तितः । अदत्तेऽन्यत्रसमयान्नविक्रेतुरविक्रयः) अर्थात्-मूल्यदिये हुये पण्यका यहविधान ब्यौरेवार कहागया किंतु मूल्यके नदेनेमें ऊर्ध्वोक्त दंडआदि नियमोंका कुछ नियम नहीं-इसीलिये उत्तरार्धसे फिर कहते हैं कि विनादिये मूल्यके सौदामेंसमयसे अन्यत्र विक्रेताका अविक्रय नहींहै अर्थात् मूल्यके न देनेमेंभीसौदा वाणीमात्रसे ठहरने पर जो दोनोंके परस्पर कोईभांति का (समय) नाम इक़रारपक्का हुआहो कि देखो अमुक समयतक यह मालमेराहुआ अगर उक्तसमय तक मैंनहीं आऊं तब तुम औरको देदेना.देखो भाई बदालि मतपरना में अमुक मनुष्यके हाथ अमुक मालभेजोंगा रुपये का भुगितान इस इसढंगसे करलेना मुझको स्वीकारहै यह मालतुम्हारा हुआ.इत्यादि कोई भांतिकाइकरार परस्पर पक्काहुआहो तब तो मूल्यका भुगतान आदि प्रथम न होजानेपरभी विक्रेता किसी औरको यह सौदा नहीं देसक्ताहै कदाचित् इक़रारको उलांघकर देदेवे तव यह विक्रेता संविद्व्यतिक्रम का अपराधी निश्चित होगा (या) वहक्रेताही इकरारको उल्लांघे तो अपराधीहोगा पर जब ऐसाकोई इकरार भी न ठहराहो तो फिर मूल्यके न देने में सामान्य वाणी-मात्रसे ही सौदाके ठहराने पीछे विक्रेता या क्रेता बदलि जावें किंतु किसी और को

देदेवे या वहलेने नहींआवे तौ इनदोमें कोई एकभी अपराधीनहींहै (अथसत्यंकारव्यवस्यव्यवहारः)सत्यंकार द्रव्य अर्थात् बयानासाई का रुपया पैसा जहांइस हेतुकरके दियागयाहो कि सिर्फ बातोंकाही सौदा न कहिलावे किन्तु बयानादेनेसे पक्काहोजाय-इसका कोई निश्चित नियम नहींहै कि कितनाहो किन्तु जैसाबड़ा सौदाहो तैसाअधिक बयाना दियाजाता है इस अनियमकेही हेतु बयाने में भी एक और दशवीस आदि लेकर सौ दोसौ बल्कि सहस्रोंतक रुपया पहले विश्वासार्थ दियाजाताहै कि जिस्से ग्राहक पक्कासमुझाजाय-जहां बयाना दिये पीछे क्रेता पण्यझूंठा करै तिसका न्यायव्यासजीने कहाहै-यथा (सत्यंकारंचयोदत्त्वायथाकालंनदृश्यते। पण्यंभवेन्निसृष्टं तद्दीयमानमगृह्णतः)अर्थात्-जो कोई क्रेता सत्यंकारसंज्ञक द्रव्य बयानाभी कुछदेकर सौदालेनेके यथोक्त कालपर दिखाई नहीं देवै किन्तु लेने नहीं आवे तौ वह पण्य निसृष्ट होवे अर्थात् वह सौदा झूँठाहोकर छूटिजावै और सिद्धांत इसका यह कि ऐसे क्रेताकाबयाना नहीं वापिस होगा और विक्रेताको यथोक्त कालबीते पीछे यह स्वातंत्र्यहै कि सौदाचाहे तिसके हाथ बेचिदेवैइसीआशयसे यह चौथापादहै कि(दीयमानमगृह्णतः)अर्थात् सौदाऐसी भांतिसे छूटिजावै जैसे देतेहुये न लेनेकी दशामें विक्रेताको अन्यत्र बेचिदेनेका स्वातंत्र्य हुआकरताहै किंतु यहांउसका समयपर मौजूद नहोनाही यह समुझाजाय. कि उसनेदेतेहुयेभी लेनेमेंइन्कार वा अलसेट करी-जहां कहीं-बयाना दाखिल हुये पीछे विक्रेता उसके संविद् आदि नियमोंको उल्लंघै किंतु यथोक्त अवधि भीतर अन्यत्र बेचिदेवै या निपट विक्रय करनेसे हटिजावै इत्यादि किसी भांतिसे अपराधी बनै तौ वहलियाहुआ सत्यंकार द्रव्य दूना करिके वापिस करै यह ऊपरले व्यासवाक्यसे भी स्वतःसिद्धहोचुकाहै कि जैसे बयानामें दशरुपये दियेहुये क्रेताके अपराध हेतुसे फिर लौटि उसके हाथ न आवें तैसे विक्रेताके अपराध हेतुसे विक्रेताको बयानाकी बराबरद्रव्य देनापरैअर्थात् दशरुपये उसकेवापिस करने के सिवाय अपने पाससेभी दशरुपये देनेपरैं (सो) इसबार्ताको योगीश्वर ने प्रथमही अधिप्रकरणके स्थलमें ६२ बासठि मूलश्लोक वाले उत्तरार्धसे दर्शायाहै-तद्यथा(सत्यंकारकृतंद्रव्यंद्विगुणंप्रतिदापयेत्)अर्थात्-सत्यंकार द्रव्यजोबयानाआदि रीतोंसे विक्रेताको कुछ दियागयाहो चाहे रोक रुपया यद्वा कोई भूषणआदि वस्तु जो बयानाके प्रकारसे विक्रेताको समर्पण हुईहो और विक्रेता उसकेलियेपीछे संविद् का व्यतिक्रम करै जिस्से ठहिराहुआ सौदाक्रेताके हाथ नहीं आवे तो उसक्रेता के संतुष्टिके निमित्त उतना द्रव्य उस्से दूना करिके वापिस करवायाजाय और वापिस करनेमें इन्कार आदि कोईआग्रह खड़ाकरै तिसका दंडभी उसद्रव्य के समान होना सूचित है २६२ आगे दोसौतिरसठि मूलश्लोकसे विशेषकर वाणिज्यआदि

व्यापारोंके निरन्तर करनेवाले बणिग्जनों के मध्ये अनुशय करनेका प्रतिषेध करते हैं कि उन्हें ७१ संख्यावाले परिच्छेद से निरर्थक अनुशय करना योग्यनहीं २६२॥

(अनुशयोपिवणिग्भिर्नैवकर्तव्यः)

वृद्धिंक्षयंवावणिजापरायानामविजानता। क्रीत्वानानुशयःकार्यःकुर्वन्षड्भागदंडभाक् २६३॥

अक्ष०– पण्योंकी वृद्धि या क्षयको नहींजानते हुये क्रयकरने पीछे व्यापारीको अनुशय करना योग्यनहीं.करता हुआ षष्ठांश दंडभागीहो २६३॥

अभि० – इसवचनका सिद्धांत सिर्फ इतनाहै कि अनुशयका स्वरूप जो इकहत्तरि ७१ संख्याके परिच्छेद में यथार्थ वर्णन हुआथा उस अनुशयको कदाचित् भी व्यापारीलोग नकरैं क्योंकि हरवक्त उनका कामयहीहै कि प्रत्येक सौदाके गुणदोष यद्वा भावकीक्षय वृद्धिआदि समुझि बूझिकरखरीदैं तथाबेचैं बल्कि अनुशय करनेका नाम लेतेसार वही बनियाँ अपने व्यापारमध्येकच्चा बड़ामूर्ख समझाजाताहै इसलिये कदाचित् धोखाभी खाजाय तौ भी अनुशयका नामनहींलेवै अथवा कोई कच्चाव्यापारी बनिकर अनुशय करनेलगै तौ उसबस्तुका षष्ठांश यद्वा मूल्यका षष्ठांश राजदंड देना होगा बल्कि राजदंड पीछे किंतु प्रथम उसका प्रतिपक्षी छठाभाग लेनेका अधिकारीहै कि जैसा कात्यायन केवचनानुसार उसी७१ संख्याके परिच्छेदमें लिखचुकेहैं इसलिये उसको योग्यहै कि अपने प्रतिपक्षीकोही छठाभाग हानिदेकर आपसमें निपटाराकरै जिससे राजदंडसे बचिजाय अन्यथा दुहरा छठाभाग देनाहोगा इसीहेतुसे योगीश्वर ने प्रतिषेध कियाहै कि पण्योंकी क्षय वृद्धिको जानते वा नजानतेभी व्यापारी को अनुशय करना योग्यनहीं क्योंकि इसबातसे तिहाई धनकी हानि और वदनामी उसकी होती है २६३॥

अधि०–अनुशय करनेकी मर्यादैं जो कुछ उसी ७१ संख्याके परिच्छेदमें दर्शाईगई सो सबअन्यसाधारण क्रयविक्रय करनेवालोंके निमित्तपर आरूढ़हैं कि जिनकोकुछ व्यापारसे संबंध नहो और अनुशयठीक उसहीको समुझना जहां सौदाके मूल्यका भुगितानभी होचुकाहो और दोमें कोई एकउसे निवर्तन करनाचाहै किंतु यातो क्रेता अपनामूल्य वापिस करनाचाहै या विक्रेता अपनी वस्तुफेरि लेनाचाहै तिसकी अवधि जो कुछ उसी७१संख्याके परिच्छेदमें कहिचुके सो सबठीकहै और उसीसे निपटारा कियाजावेगा और वह अनुशय सिर्फऐसी दशामें उत्पन्नहोना है कि यातोक्रेतावस्तु को खोटीसमुझै या ठगहाईद्वारा मूल्य बहुतलगा समुझै या विक्रेताही ठगहाईद्वारा थोडा मूल्यपाया समुझै तौ उसउक्त अवधिभीतर अनुशय कियाजासक्ता है पर इनबातोंके सिवाय जो कुछ सौदाकेदेने या न देनेमध्ये झगड़ाहो तिसको अनुशय नहीं समुझना इसकादृष्टांत जैसेइन्ही ८० संख्याके परिच्छेदमें अनेकभांतिके जो

झगड़े वर्णनहुये इनमेंप्रासंगिक चर्चाकेसिवाय कोई अनुशयका स्वरूप मुख्यनहींहै ये झगड़े सिर्फ़इस आशयपर आरूढ़हैं कि सौदाबेचे पीछेदेना नहींचाहै या देरभ: मेल करकेदेना चाहै तिसकीहानि आदिका निपटारा कियागया है कुछ अनुशय का विवाद यहांनहीं २६३॥

इतिविक्रीयासंप्रदानविवादप्रकरणम्.

बेचिकर न देने या अलसेट झमेलमें लटकानेकेविवादोंवाला यहविक्रीय असंप्रदान नामक प्रकरण एकइसी ८० अस्सी संख्याके परिच्छेदसे समाप्तहुआ-यहभी एक फौजदारीके विवादोंवाला भेदहै॥

अथसंभूयसमुत्थानकर्मणिविवादविधिविवेकोनामएकाशीतितमःपरिच्छेदः ८१॥

इसइक्यासी संख्याके परिच्छेदमेंउन विवादोंकेविवेक वर्णनहोंगे जिनमें किसीएक कर्मको अनेकोंने मिलकर साझेकिया हो जिसमें हानिलाभ आदिसे विवादखड़ेहोंवं बलिकसाझेके प्रसंगसे बहुतेरीवातें औरभी उपरालू भिन्नात्मकसी दर्शाईजायँगी अर्थात् जैसेराजसे बाजारू निरख निरूपणहोने आदिमध्ये चुंगीआदि राजकरका वर्णन एक भिन्नबात है और उसहीके प्रसंगमें फिर घाटचुंगी मार्गचुंगी जलमार्गभाटक आदि एकबात है.उसहीके प्रसंगमें फिरजलकी डूबीनावोंका धनदेनेमध्ये एकवातहै. उसहीके प्रसंगमें फिर मालचुंगीके महसूलोंका चुरानाएक बातहै.उसहीके प्रसंगमें प्रतिषिद्ध पण्यकरने या कुछराज योग्यदुर्लभ चीजोंकोविनबूझे विक्रयकरनेकी भिन्नात्मक एकवातहै.साझी या विनसाझी के देशांतरमें मरजानेका व्यवहार एकवात है समीपीछोड़ि दूरस्थोंकोनिमंत्रण देनेवाली एक भिन्नबात है इत्यादिप्रासंगिक और बातेंभी दर्शाईजायँगी॥

नारदने इस विवादका स्वरूप ब्यौरेवार दर्शित कियाहै-यथा (वणिक्प्रभृतयोयत्रकर्मसंभूयकुर्वते। तत्संभूयसमुत्थानंव्यवहारपदंस्मृतम्) अर्थात्-जहां अनेक बनियां व्यापारी आदि (संभूत)नाम मिलकर किसी कामको साझेते करैं वही साझेकाकाम (संभूयसमुत्थान) का व्यवहार कहाजाताहै जब उसमें उनके आपसमें कुछ विवाद होय तभीयह संभूय समुत्थान का विवाद पद अर्थात् मुक़द्दमा गिनती होताहै-यहां व्यापारी आदि कहने से हरएक जो कोई किसी पेशेवाला अपने कामको अनेकों के साझेते करै सबहीको समुझना कुछ व्यापार के शिरटीका नहीं सो सब आदि शब्दका भावार्थ आगे निर्णय सहित वर्णन होगा) बृहस्पति ने इस कर्म साझे रूपमें लगानेयोग्य पुरुषोंके लक्षणभी प्रदर्शित किये हैं-यथा(कुलीनदक्षानलसैःप्राज्ञैर्नाणकवेदिभिः। आयव्ययज्ञैःशुचिभिःशूरैःकुर्यात्सहक्रियाम्)अर्थात्-जो कुलीनहों दक्षहों.निरालस हों.प्राज्ञहों-नाणक परखैयाहों.लाभ खर्चोंकी विधि जानतेहों.निष्कप

हों शूरजो उत्साह युक्तहों.तिनके साझे होकर कोई क्रियाकरै यह सामान्यभाव एक शिक्षामात्र कही-परञ्च-पंडित मित्र मिश्रने इसवचन में से एक विचित्र अर्थमथिकर काढ़ा और उसअर्थसे यहबात पैदाकरी है कि सिर्फ इन्हीं इतने कामोंमें साझाकरने का ध्वन्यर्थ पायाजाताहै-सो वहअर्थयहहै कि-सहक्रियां कुर्यात् अर्थात् क्रतुक्रियां.कृषिक्रियां.शिल्पक्रियां. स्तेयक्रियां.वाणिज्यक्रियां. तत्तत्क्रियाभिज्ञैःसहकुर्यात्.क्योंकिबृहस्पतिके इसबचनमें अशरफी रुपया पैसाआदि नाणकसिक्कोंका परखना यहवाणिज्य क्रियाको इसहेतुसे दर्शाताहै कि वाणिज्यमें परखने काही काम एक होताहै कुछ और नहीं-और लाभ खर्चोंका जानना सिर्फ कृषिक्रियामें आवश्यकहोताहै इसलिये लाभ खर्चों के विधिज्ञों साथ खेतीवाला साझाकरै. इसीप्रकार प्राज्ञहोना केवलशिल्पक्रिया तथा संगीतक्रियामें आवश्यकहै.और क्रतुक्रियाओंमें कुलीनहोनाप्राज्ञहोनाशुचिहोना यह तीनोंबातअपेक्षितहैं.चौर्य क्रियामध्ये सिर्फ शूरत्वकी अपेक्षा है इसलिये जो जो शूरहोंतिनकेसाथ चोरीकरनेवाले कार्यमें साझाकरै-दोगुण शेषबचेचतुराई और निरालसता सोयह दोनों सबहीमें समझने-हमारे ध्यानसे इसविचित्रअर्थमें कुछसिद्धिनहीं निकसी बल्किखाली मूड़पचाना यहतकलीफहुई क्योंकि यहसभीगुण सर्वत्र यथासंभव आवश्यकहैं केवलपरखैयासे कुछ काम नतो वाणिज्यमें चलिसकै बल्किलाभ खर्चोंका विज्ञानविशेषतर वाणिज्यमें आवश्यकहै जो खेतीमें संयुक्त किया यह कुछ नियम नहीं है दूसरे उसबातकाभी नियम नहींहै कि सिर्फ यही इतने पेशेवाले साझाकरैं जो इस विचित्रअर्थसे समझायेगये इनकेउपरांत कोईसाझा नहींकरै-यह प्रत्येक पेशेको स्वातंत्र्यहै कि अपनी इच्छाके अनुसार साझाकरैं यद्वा नहीं धर्मशास्त्र केवल उनके किये हुयेका निपटारा कारकहै-बृहस्पतिने पूर्वोक्त अर्थके अनुसार केवल शिक्षामात्रदीहै सो-शील्य विद्याके सिद्धांत से और उसीके तुल्यात्मक एक दूसरे वाक्यसे प्रतिषेध भी यह कियाहै कि अमुकामुक अवगुण वालोंके साथ साझानहींकरै-तथाच (असक्तालसरोगार्त्तमंदभाग्यनिराश्रयाः।वाणिज्याद्यासहैतैस्तुनकर्त्तव्याबुधैःक्रिया)अर्थात्-असक्त जो उसकार्य में तत्पर न रहसक्ताहो.आलसी.रोगपीड़ित.मंदभागी. निराश्रय जो स्थान ठिकाना बांधकर निवासकहीं न रखताहो.इसका अर्थ मित्रमिश्रने यह किया है कि जिसके पास मूलधन कुछ साझेमें मिलानेयोग्य न हो तिसे निराश्रयजानो सो यह अर्थ भी इसहेतुसे असंगतहै कि विना जमाके भी साझीहुआकरतेहैं और उनके किये विना बहुधा काम नहीं चलता क्योंकि जिसके पास जमाहै वह काम नहींकरसक्ता या जानता नहीं और विन जमावाला अच्छाकाम जानता और करसक्ता है तब दोनोंकीही गरज़ सन्मुख होनेसे वे दोनोंसाझी होतेहैं और यही नियम आगे वर्णन होगा-बल्कि विरले स्थल अधिक प्रयोजन समझाजाताहै कि एक नवीन माल

कोठी बहुब्यापारोंके अर्थ निज पुत्रादि संतानोंके नाम जहां जारीकरनी आवश्यक है और उसमें किसी मनुष्य निज विश्वासपात्रको मुनीमरखनेका बिचारकिया और यद्यपि वह संतान मालिक बनकर आप उपस्थितहोते काम लेवेगा और लेखा जोखा नित्य समझेगा पर तौभी ऐसे अवसर वणिक्प्रधानोंका सिद्धांतहै कि उक्त मुनीम को यदि मासिक या बरसौड़ी वेतन देना कहकर नियतकरैं तौ यह लापरवाई साथ उपेक्षा रखकर बृद्धिकरनेमें उद्योग थोड़ा बांधेगा इसहेतु इसको नौकर नहीं राखैं किंतु तिहाई या चौथाई पत्तीका धनहीन साझीरूप मुनीमबनावैं जिस्से अपनी भी चौथाई मध्ये हानि वृद्धि शोचकर उद्योग अधिकरक्खै जो दूकान तर्क्की पावै सो इसभाँति पातीदेखीगई॥

(अनेकसमुदायिवणिजादीनांकर्मकथनम्)

समवायेनवणिजांलाभार्थंकर्मकुर्वताम्। लाभालाभौयथाद्रव्यंयथावासंविदाकृतौ २६४॥

अक्ष०—समवायसे लाभार्थ कर्मकरतेहुये ब्यापारियोंके लाभ अलाभ दोनों जैसा द्रव्यहो यद्वा दोनों जैसी कुछ संविदासे कृतहों २६४॥

अभि०—(समवाय)नाम अनेक मिलेहुये साझियोंका समूह जोकिसीभांतिका ब्यापार उद्योग मिलकरकरैं किन्तुयहां वणिज्शब्दसे कुछकेवल वैश्यवृत्तिकोहीनहीं समझो और (संविदा) नामसमयसम्मतिजो परस्परसबके नियमठहरेहों कि अमुकाम ढंगोंसेवर्त्तावा सबसाझियों को कर्त्तव्यहोगा-याज्ञवल्क्यने इसवचनमेंदो मार्ग दर्शित किये हैं किजहां किसीभांतिके व्यापारियोंने अपनालाभार्थ कोईसा व्यापारकर्मसाझी होकर समूहसे प्रारंभकियाहो तिनमें कोईभांतिका (विवाद)खड़ाहोनेपर सामान्यभाव एकतो निपटारेका यहमार्गहै कि लाभअलाभ नफाटोटादोमें जोकुछहुआहो सोसब साझियोंके द्रव्यानुसार सबहीको बटवारा होनायोग्य है अर्थात् जिसनेजितना थोड़ा घनाद्रव्य उसीसाझेके व्यापारमें समुच्चयकियाहो जैसेतीनसाझी उनमेंएकने दो भाग द्रव्यलगाया दोने एकएकभाग तो इसदशामें दोभागवाला आधेलाभ तथाआधीहानिका अधिकारीहै और शेषदोनों एकएक चौथाईलाभ तद्वत्हानिके अधिकारी होंगे (सो) यह सामान्यमार्ग सिर्फ़ऐसी सभीदशाओंसे संबन्धरखताहै किजहांउनके लाभखर्चोंका कुछ ठहराहुआ नियम विशेषनहीं पायाजाय और सबसाझी कुछधन देकर साझीहुयेहों तोइसमार्गसे निपटारा होनायोग्यहै-यद्वाकहीं नियम विशेषठहरा पायाजाय या साझियोंमेंसे कोई साझी विनाधनका कर्मकारहो या वहकर्मऐसाहो कि जिसमें धनकाकामनहीं किन्तुसभी साझीकेवल कर्मकारहों तबइस उक्तमार्गसे निपटारा नहींहोगा किन्तुउसकेलिये द्वितीयमार्गहै कि जहांजैसा उनकेआपसमें कुछनियम बिशेषठहरा हो तिसहीके अनुसार लाभहानि दोनोंसबको भरनेहोंगे इसकाथोड़ासा

दृष्टांतहै कि जैसे एकसाभेमें चारमनुष्योंने बराबरसबने सौसौमुद्रादेकर कामजारी किया उनमेंतीन साभीउसीकामके अभिज्ञनहींचौथा उसीकामसे अभिज्ञहै उसकाम का समस्तभार अपनेऊपर लियाइसी प्रधानगुणके हेतुसेसब साभियोंने यहसंविदा निरूपणकरी किइसको दोभाग मिलाकरैं हमसब एकएकभागलेवेंगे तोयहनियम वि शेषउनमें पायागया कि यद्यपिद्रव्य उसनेभी बराबरदिया परंच कार्यभार हेतुसेदो- भागउसको ठहरे तो यह ध्यानकरना योग्यहैकि जैसेलाभमें दोभागउसको ठहरेतैसे खर्चभी प्रत्येक अवसरमें जोलगतेहों सोभीउसको दूने अपनेलाभमेंसे देनेहोंगेयद्वा पहिले सवसामान्य खर्च इकट्ठेलाभमें से उठकर पीछेशेषलाभ का बटवाराहोगापर जबकभीटोटाकाकुछ अवसरआवे तबउसटोटामें दोभाग न देगा किन्तु अपनेधनकेही अनुसार एकभाग टोटासबके तुल्यवहभी देगा क्योंकिसाभेमध्ये सौसौ रूप्यसबही के बराबरलगे यहांद्वितीयटोटाकेभागमध्येउसके कियेहुये शारीरिकआयासकाबिनाश हुआ-इसीप्रकार जहां कोई एकसाभी बिनाधनका और शेषजमा पूँजीवालेहों तहांपूंजी वालोंका लाभहानि दोनों निज निजधनके अनुरूपहोंगे परउसपूँजी रहित साभीको जितना लाभभाग सबकी सम्मति सहित ठहराहोगा सो मिलसक्ता है परटोटामें कुछ उसे न देना होगा क्योंकि जैसे उनके धनमें हानिहुई तैसे उसके निपट परिश्रम का विनाश हुआ-इसीप्रकार जहांसभी साभी विनाधन के किसी कामको शरीरिक आ- यासों से सब करतेहों तहां उनके गुण उद्योग उपाय यत्न परिश्रम के अनुसार जो जो नियम विशेष पहले ठहरा हो कि अमुक साभीएकभाग अमुक डेढ़पत्तीअमुक दो पत्ती पायाकरेंगे तो इस ठहरीहुई संविदासे निपटारा कियाजाय यद्वा इसीदशामें कुछ नियम विशेष नहीं ठहराहो और उनमें लाभद्रव्योंका बटवारा होतेसमय विवाद कुछ न्यूनाधिक भागपत्तीकी अपेक्षासे उठ खड़ाहो तोभी उनके गुणउद्योग उपाय आदि के अनुसार कुछ न्यूनाधिक जैसान्यायके अनुकूल संभवहो सोदिलवायाजाय अथवा सभीसाभी गुणमें एकसे यदिहों तो फिर सबकेभागबराबर होंगे २६४॥

भयि०-ऊर्ध्वोक्त वार्त्ताका संक्षेप नारद भी स्पष्ट कहतेहैं-यथा (समोऽतिरिक्तोहीनो वायत्रांशोयस्ययादृशः। क्षयव्यौतथावृद्धिस्तत्रतस्यतथाविधाः) अर्थात्-जिसव्यापार में जिसका जैसा अंशहो किन्तु समान वा अतिरिक्त नाम अधिक यद्वा हीन कहिये कमती अंशहो तिन्हीं के अनुसार उसका टोटा और खर्च जो जो उसव्यापारसे सम्बन्ध रखतेहों तद्वत् वृद्धि जोकुछ नफ़ाहोताहो उसमें भी वटवारा होना योग्यहै-एवं बृहस्पतिरपि (प्रयोगंकुर्वतेयेतुहेमधान्यरसादिना समन्यूनाधिकैरंशैर्लाभस्तेषांतथा विधः-समोन्यूनोऽधिकोवांशोयेनाक्षिप्तस्तथैवसः। व्ययन्दद्यात्कर्मकुर्याल्लाभंगृह्णीतचै वहि) अर्थात्-जेकोई किसी व्यापारको साभीहोकर हेमनगदी या धान्य -

चीज़ों वा रसादिक से करतेहों तिनकालाभ जैसे सम न्यून अधिक अंश मूलधन के हों तैसाहोताहै-इसीसे यहनियमहै कि जिसने जमामें समअंश यद्वा न्यूनअंश वा अधिक अंश डालाहो तैसाही सम न्यून अधिक व्ययभी जो उपरालू खर्चहों तिनमेंदेवे और शरीर सम्बन्धी कामकरै तद्वत् लाभकोभी लेवै-बृहस्पतिजी-अब और भाँतिके भी साझे वर्णन करतेहैं-यथा (बहूनांसंमतोयस्तुदद्यादेकोधनंनरः। करणङ्कारयेद्वापि सर्वैरेवकृतंभवेत्) अर्थात्-जहाँ बहुत से साझियों की सम्मति मानाहुआ कोईएक धनीमनुष्य अपना धनदेवे यद्वा करणाही करवावै तहाँ सबही करके कियाहोता है इस अर्थका यह आशयहै कि जहाँ सब साझियों की अनुमति से एकही कोई धनवान्साझी सब की ओरसे निज अपनाद्रव्य लगाकरसाझा करवावै उनसे ब्याज और निज लाभ काभी भाग लेवै यद्वा ब्याज न लेकर सिर्फ़ अपने बदले (करणं) किंतु करना जो कुछ कामधंधे उसब्यापार मध्ये होतेहों सब उनहीं से करवाता रहे उनके लाभभाग ठहरे के अनुरूप देकर अपना लाभभाग इकहरादुहरा आदिजैसा ठहरा हो तैसा आप लेवैतोभी सब का किया कहाता है अर्थात् जोधन वाला ऐसे साझियों का कदाचित् लाभभाग न देना चाहै या अपराधों बिना अपने साझे में से निपट निकासि देना चाहै तो वहधूतजानो क्योंकि ये सबसाझी हैं कुछ नौकर नहीं-इसश्लोक में बृहस्पति नेजो ब्याज और बिन ब्याज से दो भाँतिसाझे कहे तिनमें अधिक लाभकी उत्पत्तिदेखि परनेसमय बिरले धनी लोभकी तृष्णाप्रेरित होकरनिर्धन साझियों को नौकर तुल्य समझ ऐसा अभिमान करने लगते हैं कि इन सबने क्याकिया हमारे धन से यह सब लाभ हुआ इसअभिमानसे सब साझियों को चटकाइदेता या चटकानेके अर्थ से वह सौ सौ पेंच लड़ाता है और उनको प्रायःनौकर या रोटिखावा साबित करताहै इसलिये बृहस्पतिनेयहराजाको समस्यादी है किइनदो साझों में भी लाभ सब का किया कहाताहै धनवाले काही नहीं-आद्योपांत सभी भाँति के साझियों को सर्वत्र परस्पर जो कर्त्तव्य है सोव्यासजी दर्शाते हैं-यथा (समक्षमसमक्षंवाऽवंचयंतःपरस्परम् नानापण्यानुसारास्तेप्रकुर्युःक्रयविक्रयौ) अर्थात्-आगे और पीछे भीपरस्परसाझियों साथ किसी भाँतिठगविद्याको नकरतेहुये सब साझी लोग नानाभाँतिके सौदाओंकी जो सारा भाव बजारसे विख्यातहो तिसके अनुसार क्रय विक्रयका बर्त्ताव ठीक ठीक कियाकरें-यही वार्त्ता नारदजी कुछ अधिक ब्यौरेवार वर्णनकरतेहैं-यथा (भांडपिंडव्ययोद्धारसारासारत्ववेक्षणम्। कुर्यास्तेऽव्यभिचारेणसमयेस्वेव्यवस्थिताः) अर्थात् यहाँ (भांड) नाम मूलधनकाहै जो सबसे पहिले सब साझियोंने लगाया यद्वा बीचमें कुछ और मिलायाहो और (पिंड) नाम मिलित वापरार्थ मिलितका भी हैकि जो कुछ द्रव्य किसी असाझीका उसमूलधनमें मिश्रित

हो सोई मिलित पिंडजानों इसका यह दृष्टांत है कि यातो कोई अपना द्रव्य रक्षा चाहकर धरगयाहो यद्वा साहूकारेकी मर्यादोंसे कुछ ब्याजकेही लालचसे रखगयाहो या आवश्यक जानिकर कुछ ऋणकी रीतिसे मँगायागयाहो इत्यादि मिलित पिंड हैं— और जो कुछ द्रव्यकिसी प्रधान वा धनाढ्य साझीका पराये अर्थ से अर्थात् किसी निर्द्धन साझीके अर्थसे ब्याज़ आदि रीतोंपर मिलिरहाहो यही(परार्थमिलितपिंड) कहाता और (व्यय)नाम हानि खर्च त्याग उठावा आदि कईबातों का अर्थात् हानि जो कुछ किसी मितिके दिनमें किसीभांति नुकसान हुआहो यद्वा किसी एकसौदा में कुछ टोटा बैठि गयाहो या कर्दाबद्वाआदि देनापराहो इत्यादि बट्टेखातेका व्ययजानो एवं खर्च जो कुछ व्यापारू वारदाना आदि चीज़ों में आवश्यक लागति लगी हो यद्वा नौकर आदिको रोज़ीना मासिक आदि कोई बेतन दियागयाहो एवं त्याग जो कुछ दान पुण्य इनाम आदि हेतुओंमें दूकानकेही नामसे द्रव्यादिक देनापराहो एवं नियत उठावा जो कुछ रोक या वस्त्वंतर सौदा अन्यबस्त्र आदि उधारे दियागयाहो एवं किसी साझीकेही नामसे स्वकीय खर्चों मध्ये कुछ दे दियाहो इत्यादि नानाभांति के व्ययजानों और (उद्धार) नाम उभरना किंतु निकसना जोकुछ पहिलादियाहुआ ऋणादिकमें से आकर जमाहोय-इनसब कामोंको निरंतर नित्य ब्यौरेवार लेखे जोखे सहित वे सब साझी आपलिखते तथा समुझतेहुये निज निज चित्तोंका व्यभिचार छोड़ि संविद् समयोंवाले नियमोंपर आरूढ़ होकर करैं किंतु विचलैं नहीं और इनकामोंका सिद्धांतरूपी यहीफलआवश्यक हैजो सारासारका अवलोकनभी सदैव करतेरहैं कि इसदूकान में हम साझीलोगों की इतनी रोकड़ इतना अमुकामुक ब्यापारूमाल है इतना बाहरलेनाहै और इतनाहमैंपरायाभी ऋणदेनाहै औरइतनी वारदानाकी सामग्रीहै इत्यादि मितीवार या मासिक चिट्ठा जैसा उसव्यापारकादस्तूर हो बाँधे रक्खाकरैं—कदाचित्—अग्नि लगिजाना अहिला चढ़िआना आदि दैवी विघ्नोंसे या राजसंबंधीआदि विघ्नोंसे कुछ धनकी हानि हो सो सब साझीभरैं-तदाह बृहस्पतिः(द्रव्यहानिर्यदातत्रदैवराजकृताद्भवेत् । सर्वेषामेवसाप्रोक्ताकल्पनीयायथांशतः) अर्थात्-जो व्यापारमें कुछ दैवअथवा राजके उत्पन्न किये उपद्रवसे धन हानि होवे तो वहसबकी हानि होनी कहीहै कि जिनका जितना अंशहो तिसहीकेअनुसार उनके मूड़मढ़ी जावे-इस में दैवराज कृतका यह सिद्धांत है कि जहां किसीसाझी के अपराधोंसे कुछ हानिहुईहो सो सब उसीएक साझीकोभरदेनी होगी यहसब नियम निचले मूलवाक्यसे अब कहते हैं-और शेष निर्णय इनसाझियोंकाअगारी २७० वाले मूल श्लोकसे दर्शावेंगे २६४॥

(विनाशितद्रव्यदानेनियमाः)

प्रतिषिद्धमनादिष्टंप्रमादाद्यच्चनाशितम्। सतद्दद्याद्विप्लवाच्चरक्षिताद्दशमांशभाक् २६५॥

ऐ०-(प्रतिषिद्ध) कुछ धन वहकि जिसकेलिये साझियोंने प्रतिषेध कोईभांतिसे दियाहो कि अमुक वस्तु अमुकप्रकारसे क्रयविक्रयमें लगाना नहीं क्योंकि उससेह होना संभवहै उसवस्तुको यदि कोई साझीनाश करै या जिसकामकी अनुज्ञासब ओर से नहो ऐसे अनादिष्टकर्म को करतेहुये कोईसाझी कुछधनहानिकरै यद्वा कि साझीने निजबुद्धिकी हीनतासे कुछनाश कियाहो तौयहद्रव्य नाशकर्त्ता आपभरै वि इसमें कोई और साझी कुछनुकसान उठानेका अधिकारीनहीं-परंच इसके पलटे म भी एकन्यायहै किजबकभी चोरआदि किसी उपद्रवसे कुछधनकी हानिहोनेलगै औ इस विप्लवसे यदि कोईएकसाझी अपनी हिम्मत करके रक्षाकरै तौ उसरक्षावि धनमेंसे दशमांश उसको रक्षाभाग मिलनेका अधिकार है २६५॥

मधि०-हानिदेना नारदनेभीकहाहै-यथा(अनिर्दिष्टोवार्य्यमाणःप्रमादाद्यस्तुनाशये तेनैवतद्भवेद्देयंसर्वेषांसमवायिनाम्)अर्थात्-जोकोई विनाआज्ञा पायाहुआ याप्रतिषे कियाहुआ या कर्त्तव्य अधिकारोंमें जो अपनेही प्रमाद गफ़लत आदिसे धन खो तौयह खोयाद्रव्यउसही को दातव्यहोगा जो कुछसबसमवायी लोगोंकाहो-विनाश होतेसे बचाये हुयेका दशमांश उसे बृहस्पतिनेभी मिलना कहाहै-यथा(दैवराजभय द्यस्तुस्वशक्त्यापरिपालयेत्। तस्यांशंदशमंदत्त्वागृह्णीयुस्तेंऽशतोपरम्)अर्थात्-अप नी शक्तिसेजोकोई साझी दैवराजभयसे घिरे धनकीरक्षाकरै तिसको उसमें दशव भागदेकर शेष जिसका जितनाधनहोवे सबअपनाअपना लेवें इसमेंभी दशमांशक लेचुकनेवाला स्वकीयधनका भागलेवेगा-कात्यायनभी इस नियमको दृढ़करतेहै यथा(चौरतःसलिलादग्नेर्द्रव्यंयस्तुसमाहरेत्। तस्यांशोदशमोदेयःसर्वद्रव्येष्वयंवि धिः)अर्थात्-चोरोंके लेभागते हुये या लेजाने पीछेकभी जो कोईउनसे छीनिपावे एवं जलमें डूबेहुये द्रव्यको जो कोई काढ़िलावै एवंअग्नि मेंसे जलतेहुये निकासि लावै तिसधनमेंसे दशमांश उसको देनायोग्यहै यहसभी द्रव्योंकीविधि जानो-यहांसभीद्र व्यकहनेकायहभावहै कि सिर्फ़साझेकेहीधनमें नहीं समुझना किंतु चाहतेसाकोईक धनकहींहो रक्षाकरनेवाले का दशांश उसमें जानों यहएक निर्मल स्वत्वरक्षक लोगों कापरिनिष्ठितहै-एवंनारदोपि-यथा(दैवतस्करराजाग्निव्यसनेसमुपस्थिते। यस्तस्य शक्त्यारक्षेततस्यांशोदशमःस्मृतः)२६५॥ यहांव्यापारी मालभर्तीके प्रसंगसे मण रमुद्दईहोनाभी आवश्यक संभव जानकरकुछ उसके नियम नीचेकहते हैं २६५॥

(राजकरदानादिप्रासंगिकनियमाः)

अर्घप्रक्षेपणाद्विंशंभागंशुल्कंनृपोहरेत्। व्यासिद्धंराजयोग्यंचविक्रीतंराजगामितत् २६६॥

मिथ्यावदन्परीमाणंशुल्कस्थानादपासरन्। दाप्यस्त्वष्टगुणंयश्चसव्याजंक्रयविक्रयी २६७॥
तरिकःस्थलजंशुल्कंगृह्णन्दाप्यःपणान्दश। ब्राह्मणप्रातिवेश्यानामेतदेवानिमंत्रणे २६८॥

ऐ०— अर्घनाम बाजारूभावका (प्रक्षेपण) किन्तु निकासना सो यहराजा का ही कर्महै कि अमुकामुक सबचीजें इतनेनिरखोंसे क्रय विक्रयहोयँ ऐसा लिखकर प्रचलित करनेके कर्तृत्वसे बीसवांभाग शुल्कराजा लेवै अर्थात् आईहुई मालभर्तीका निरख नियतकरनेसे जोलाभ निश्चितहोताहो तिसकाविंशांश किन्तु सैकरापीछेपांच रुपया राजाअपना शुल्कनाम राजकरभीउन ब्यापारीलोगोंसे लेयजोजो मालबाहर से भर्तीकरकेलावें-इसपर बिरलेटीकाकारोंने यहअर्थ कल्पितकियाहै कि सबरेमूलधन मेंसे विंशांशराजा हरे सोयहअर्थ किसीप्रकारभी न्यायात्मक नहींहोनेसे अनर्थक है- कुल्लूकभट्टने स्पष्टलाभधनमेंसे विंशांश लेनाकहाहै-व्यासिद्धनाम कोईवस्तु जिसका सर्वत्र विक्रयहोने का प्रतिषेध राजद्वारसे होचुकाहो यद्वा किसीएक जगह बिकनेका अनुशासन होनेकेहेतुसे अन्यत्र बेंचेजानेका प्रतिषेधहोय जैसे मद्यादिक ठेकेदारी वाली चीज़ेंजिनकाराजसे प्रवन्ध विशेषहोताहो ऐसी व्यासिद्धचीज़ें कोईकहींवेंचै. तद्वत् राजयोग्य चीज़ें मणिमाणिक्य आदि रत्नभूत वस्तु जिनकीग्राहकता राजघरमें होनीयोग्य हो ऐसी अप्रतिषिद्ध भीजो विनादिखाये कहींबेंचिदे तौ यहसभी चीज़ैंराजगामीहोयँ किन्तु राजाउनको मूल्यादिये विनाहरै यहीदंडहै २६६॥ ऊर्ध्वोक्त राजकरकेदेनेमें कुछठगई करनेकेअर्थसे जोकोईभर्ती वाला अपनेलाये हुये सौदाका परिमाण ठीकनहीं वतावै.दूसरा जो शुल्कस्थान किन्तुचुंगी आदि महसूलघरका मार्ग छोड़िकर ऊपरऊपर चलाजावै जिस्सेशुल्कदेना वचै तौयेदोनोंउस परिमाणसेअठ गुणाधन दिलवाने योग्य हैं कि जितनादेनेसे वचाया वा वचानेका उपायकिया हो. तीसरे उसपरभी अठगुणा लेनायोग्यहै जो सव्याज क्रय विक्रय करै अर्थात् कपटसे कुछ सौदाबेंचै या ख़रीदै इसका दृष्टांतनीचे अधिकोक्तिमें देखना २६७॥ तरिकमात्र कोईहो स्थलजशुल्कलेतेहुये दशपण दंडदिलानेयोग्यहै अर्थात् शुल्कनाम चुंगीआदि अनेकरूप राजकर दोभांतिक सबहोतेहैं किएकस्थलमें जो लियेजायँ दूसरेजल में पोतनौका सेतुबन्धनआदिप्रकारोंसे जो लियेजावें जिनकेलक्षण मनुकेवचनोंसे अधिकोक्तिमें दर्शावैंगे तिनदोके मध्ये योगीश्वरआप कहतेहैं कि(तरिक)जोपोत नौका आदिजलके शुल्कलेनेका अधिकारी ठेकेदारआदि कियाजावे वही कदाचित् अपने आप या उसके अनुकर्त्ता कर्मकार आदि किसीबटोही व्यापारी आदिसे कुछस्थलयोग्यशुल्क भी लेलेवै जिसकेलेनेका अधिकार उसे नहो तौ दशपणका दंडादिलाया जाय और वह शुल्क राजगामी यद्वा निर्णयके अनुसार दाता पुरुषकोही वापिसहोय यह दशपणदंड केवल एक बटोही आदिसे लेलेनेमध्येजानो किन्तुअनेकोंसे अभ्यासिक

ऐसा करनेपर प्रत्येक मध्ये दश दश पणकादंड होगा-यही दशपण दंड उस पुरुष परभी होनायोग्यहै जो अपने घर समर्थ होतेहुये श्राद्धादि काम काजोंमें कि जहांकहीं ब्राह्मणोंके निमंत्रणका प्रसंगहो अपने ठेठ परोसी निकट बसनेवाले श्रुत वृत्त संपन्न प्रातिवेशी विप्रोंको छोड़कर प्रायः दूरवर्त्तियोंको निमंत्रित करै २६८॥

अधि०-यहां प्रासंगिक पहले राजग्राह्य द्रव्योंके नाम दर्शित करते हैं कि खेती आदिसे उत्पन्न हुये अन्नादिक मेंसे छठाभाग आदि राजघरमें लियाजाना या उसके पलटे रोक रुपये सो यह राजबलि कहलाताहै-और खेती विना ग्राम नगर आदि बस्तियोंके निवासी जो कुछ और भांतिका ब्यापार आदि करतेहों तिनसे प्रतिमास या वरसौंड़ी यद्वा भाद्र पौष आदि नियमित समयोंपर जो थोड़ा बहुत आमदके अनुरूप राजघरमें लियाजाताहो सो यह राजकर कहलाताहै-और फल, फूल, शाक, तृणादिक चीज़ैंजो बाजारोंमेंबिकने आवें तिनमेंसे जो थोड़ी थोड़ी चीज़ैं लेकर भेंट उपायन उपहारके प्रकार राजघरमें पहुँचें सो यह प्रतिभाग नाम चुंगीरूपकहाताहै-और एकराज शुल्क वह कहलाताहै जो घाटी घट्टे आदि मार्ग स्थलमें शुल्कादानगृह बनकर उनमें राजपुरुषों या ठेकेदार लोगोंकी संस्थिति द्वारा वह महसूल लिया जाताहो जो क्रय विक्रय योग्य आने जानेवाली माल भर्तियोंपर द्रव्यानुसार या लाभानुसार कल्पित होकर नियत होय.इस (कर) की संज्ञा शुल्क इसकारणसे कि प्रायः लूटि फूटि आदि मार्गविघ्नोंसे रक्षाकरने आदिके प्रतिकारों मध्ये समुझाजाताहै पुनि इसीकारण और भी जो कोई भाँतिका महसूल किसी कामके प्रतिकार मध्ये समुझाजाय सोभी शुल्क जानो जैसे डाकघरोंके महसूल डाकशुल्कहैं इत्यादि बहुधा औरभी सब स्थलशुल्क जानो जो जो जलसे भिन्नहों.इसका एक औरभी द्वितीय भेद जलका शुल्क होताहै कि जो जल मार्गके उतारा आदि कामोंका प्रतिकार समुझाजाताहो जैसे पोत नौका सेतुबंधन आदि मार्गोंके महसूल जलके शुल्कहैं-और इन सबहीसे उपरालू एकदंड धन वह होताहै जो किसी भांतिके अपराधों मध्ये लियाजाय॥ इतिप्रासंगिककथनम्॥ दोसौ छासठि आदि मूल श्लोकोंकी अपेक्षा शुल्कस्थानोंके प्रबंध मध्ये मनुने कुछ अधिक व्यवस्था कही है यथा(शुल्कस्थानेषुकुशलाः सर्वपण्यविचक्षणाः। कुर्युरर्घंयथापण्यं ततोविंशंनृपोहरेत्॥ राज्ञःप्रख्यातभांडानि प्रतिषिद्धानियानिच। तानिनिर्हरतो लोभात्सर्वहारंहरेन्नृपः) अर्थात्-स्थलमार्ग या जलमार्गसे व्यवहार करनेवाले व्यापारियोंसे जो लेने योग्य राजभाग तिसका शुल्कनाम होताहै उसके लेनेके ठिकाने शुल्कस्थान कहेजाते हैं तिनमें रखने योग्य चतुर प्रवीण मनुष्य जो जो सभी पण्यों का क्रय विक्रय आदि व्यवस्थामें विचक्षण उसका सारासार जाननेवालेहों वेही रक्खे जायँ वे सब आयेहुये विदेशी पण्योंका मोल भाव जैसा जिसका उचितहो तिसके

अनुरूप कल्पित करै उसमें होनेवाले लाभकोभी समुझलेवें उसी भावी लाभका विंशांश राजभागहै सो राजालेवे- राजाके संबंधमें जो भांड गठिया बोरा आदि माल प्रसिद्धहों जिनका शुल्क राजमें न पहुँचाहो यद्वा राजकी उपयोगी चीजें चाहै उसी देशमें उत्पन्नहों हाथी घोड़ाआदि जिन्हें राजाआप ख़रीद सकै एवं जो जो कुछ प्रतिषिद्धहो जैसे दुर्भिक्षमें धान्यादि चीजें किसी देशांतरको न जानेदेना इत्यादि ऐसी चीजें लोभ हेतुसे अन्यत्र लेजाने बेचिदेने आदि प्रकारोंसे हरतेहुये व्यापारीका यह दंडहै कि राजा चाहै सर्वधन हरिलेवै-यहां सर्वधन हरिलेना कुछ नियमात्मक नहीं समुझना किंतु किसी अवसरमें जो राजा अपनी आज्ञाभंग यद्वा कोई और प्रबलहानि जानकर यदि इच्छा करै तो सर्वस्व उसी धनका हरा जासक्ताहै कि जिसधनके द्वारा यह अपराध हुआ समुझाजाय कुछ सर्वस्व उसके घरका नहीं इसलिये प्रायः और और भांतिसे कुछ थोड़ा दंड कियाजाय जिस्से प्रजा बिगड़ने नहीं पावै २६६ छल कपटोंसे बचाया हुआ राजशुल्क अठगुना लेना मनुनेभी कहाहै-यथा (शुल्कस्थानंपरिहरन्नकालेक्रयविक्रयी। मिथ्यावादीचसंख्याने दाप्योऽष्टगुणमत्ययम्) अर्थात्-कोई व्यापारी राजशुल्क न देनेके विचारसे यदि शुल्क स्थानवाला मार्ग छोड़कर कुराह जावै यद्वा राति बिराति कुबेरा कुछ गुपतौअर माल खरीदै या बेचै अथवाशुल्क स्थानमें पहुँचने परभी मालकी तादाद ठीक नहीं बतावै तौभी उस परिमाणसे अठगुना शुल्क उसपर दंड लियाजावै जितना लोभसे छलकरके शुल्क बचायाहो व्यासजीने-सिर्फ़ दोहीगुणा लेना कहाहै-यथा (अगोपयंतोभांडानि दद्युःशुल्कंचतेऽध्वनि। अन्यथाद्विगुणादाप्याः शुल्कस्थानाद्बहिःस्थिताः) अर्थात्-भांड नाम गठिया बोरा संदूक़ आदि मालभरी ठेकैंनहीं छिपाते किंतु ठीक ठीक बतलातेहुये मार्गमें व्यापारी लोग राज शुल्कदेवें-अन्यथा इससे विपरीत करनेवाले शुल्कथानेकी सीमासे बाहर माल रखतेहुये पकड़े जानेपर वह दूना शुल्क दिलाने योग्यहैं कि जितना शुल्क देनेसे बचायाहो-व्यासजीका वाक्य यह सर्वत्र न्यायगम्य और सामान्य भावसे बर्तावा करने योग्य है-योगीश्वर तथा मनुकाभी अठगुनेवाला नियम केवलउसी अवस्थामें बर्तावे योग्यहै कि जहां व्यापारी बहुधनवान् होकर ऐसा करै यद्वा थोड़े धनवाला कभी एक या दोबार पहले पकड़े जानेपरभी बारम्बार ऐसा करै या सव्याज क्रय विक्रय करै तब अठगुना दंड लियाजानाभी अन्याय नहींहै अन्यथा इनदोतीन उत्कट बातों विनादूनाही व्यासोक्त नियम ठीकजानो क्योंकि (पुष्पंपुष्पंविचिन्वीनम्लच्छेदंनकारयेत्) इत्यादि बहुधा और वाक्य भी इसराजकर्मके संग्रहकरने मध्य विचार पर आरूढ़हैं-अब-सव्याज क्रय विक्रय का दृष्टांत एक देतेहैं कि जैसे किसी कपटी व्यापारीने कुछ सौदा एक बहुतसा भरलेने पीछे दूसरे किसी व्यापारीको भी

अपना कपटी क्रेता गुपतौअर नियत करिकै दोनोंने परस्पर संमत गांठिकरविख्यात किसी दिसावर को गुपतौअर एक मनुष्य अपना भेजकर कापट्यजाल रोपितकिया कि उसने जाकर उसीसौदाकी अत्यंत झूंठी तेजी लिखकर यहां दूसरे कपटी क्रेता की दूकानपर पहुँचादी जबतक उसी दिसावर से कुछ सच्चे समाचार औरोंकीदूकान पर न आनेपाये तबतक शीघ्र उसी कपटी क्रेतानेउस झूंठी चिट्ठीकी सचावटजाहिर करके अपने गाँठेहुये दूसरे कपटी सौदागरसे परस्पर उसीसौदाकी असत्यखरीदि करनी प्रारंभकरी यह दशा उसकी देख सुनकर अन्यव्यापारी भी ललचाने लगे कि यह इतनी बड़ी खरीद करता इस्से यह विश्वासजानो यही सौदाकुछ दिन पीछे हाथ न आने पर बहुतेरालाभ होगा इस्से हमको भी खरीद लेना योग्य है यहबात प्रायः प्रसिद्धहै कि व्यापारी लोग हवाबाँधा करतेहैं और सौदातेजीके रुखमें बहुत बिकताहै इसलिये उसी कपटी की हिर्साहिर्सीबहुतों ने खरीद करनी शुरूकरी जिस कपटीके घरमाल बहुत भराथा और जिसके लिये ऐसी रचनारचीगई थी तिसने एकन्नी रुपयेकी सुरखीसे लाखोंकामाल अपना बेचादिया इतनेमें सब और व्यापारियों के भी सच्चे समाचार उसी दिसावर से जो आने लगे तो मालूम हुआकि यह सौदा महँगा नहींहै हम लोगों ने एकन्नी रुपयेका नुकसान उठाया और निज द्रव्य भी फँसाया शायद कलह और सस्ताहोजाय तो फिर जमामें बारह आने रहजाने संभव हैं.इसभभकी से क्रय करने वालों में किसीको हजारका टोटा किसीको पाँचसौ इत्यादि अनेकोंके सन्मुख जब अंधियारा होनेलगा बुद्धिमानों ने अनुमान किया कि निःसंदेह इसमें कपटहै कुछ साराका बाज़ार नहीं बिका क्योंकि तेजीकी चिट्ठी सिर्फ एकही के घरआई सिर्फ एकहीने सौदाका क्रय विक्रय किया निःसंदेह दोनोंसव्याज क्रय विक्रयी परस्पर बनेहोंगे यद्यपि उन दोनोंने यह समुझाथा कि भावोंका अकरा मंदा घरी घरी बदलता रहताहै इसहेतुसे हम दोनोंका यह कपट भी छिप जायगा दशबीस हजारकी कमाई होनी सुगमहै परंच पाप छिपतानहीं इसभांति के अनेक और भी दृष्टांत कुछ कुछ अंतर वाले जो जो हों सो सबसव्याज क्रय विक्रय जानों क्योंकि व्याज नाम छलकपट तिसके द्वारा जो खरीदे यद्वा बेचे तिसके लिये अवश्य वही दंडहै जो आठगुना धनदंड याज्ञवल्क्यजीने कहा २६७॥

(अथजलमार्गशुल्कनियमाः)मनुने जलमार्ग तथा उतारेकेभी शुल्क नियमदर्शित किये हैं-यथा(पणंयानंतरेदाप्यंपौरुषोऽर्द्धपणंतरे। पादंपशुश्चयोषिच्चपादार्द्धंरिक्तकःपुमान्॥ भांडपूर्णानियानानितार्यंदाप्यानिसारतः । रिक्तभांडानियत्किंचित्पुमांसश्चापरिच्छदाः॥ दीर्घाध्वनियथादेशंयथाकालंतरोभवेत् । नदीतीरेषुतद्विद्यात्समुद्रेनास्तिलक्षणम्॥ गर्भिणीतुद्विमासादिस्तथाप्रव्रजितोमुनिः । ब्राह्मणालिंगिनश्चैवनदाप्यान्तारि-

कंतरे) अर्थात्-यान सवारी हाथी गाड़ी आदि जो रीतीहो तौ वह (तरे) नाम
उतारे केस्थलमें पुल यद्वा नाव आदि पर उतरनेसे एक पण उतराई देवै एवं(
नाम एक बलवान् पुरुषके उठाने योग्य भार जो कि दोसहस्र पल परिमाणसे
पल्लेदारों का पूरापल्ला लोकप्रसिद्धहै तिसको लेकर जोकोई पल्लेदार पारजावै
वह आधापण उतराई देवै-यहां यह भी न्यायदृष्टियों से विचार करना योग्यहै
(पण)सामान्य संज्ञा कही वह दोतीनभांति सोनेचाँदी ताँबेतकका भी होताहै
पणमें इतना और भेद है कि ताँबेकापण यद्यपि एक आनाठीकहोताहै और
मासे ताँबेका परिमाण उसका पायाजाताहै पर प्रायशः बुद्धिमानोंने(पण)संज्ञा
रहमासे ताँबेको विनिश्चित कियाहै इसीहेतुसे जो पक्का पैसासोरह माषताँबेका
हैसोभी (पण) कहलाताहै और अन्यभांतिके जो छोटे पैसे होतेहों वे भी पणमें
हैं पर उनसे यहां प्रयोजन नहीं समुझना-औरइसीप्रकार चाँदीका पण
लोक प्रसिद्धहै सोउसमेंभी अनेकऊँचनीच भेदहोते हैं उन भेदोंका कुछ
यहां जरूरत नहीं क्योंकि शास्त्रमें परिभाषा मात्र लिखीहै और लोकमें
निज देशोंकी परिपाटीका व्यवहारहै तौ कोईभाँति से तुल्यात्मक होना दुर्घट है
इसीसे सिद्धान्त में (पण) धातु है सो उसका अर्थ भी व्यवहार वाचक उन
का कुछ कोईएक नियम निश्चित नहीं है-इसलिये मुख्य प्रयोजनपर अवध्यान
योग्यहै कि हाथी गाड़ी आदि की उतराई मध्ये एकपण जो कहा तिसको चँ
एकरुपया जानो क्योंकि इसकेलिये ताँबेका पण एकपैसा यद्वा एकआना भी
सकना योग्य नहीं समुझाजाता बल्कि न कहिसकनेका यह कारणभी उपरि
कि यह उतराई केवल वेतन मात्र नहीं किंतु राजकरकी भाँति कल्पित होतीहै
इसीसे इसकर्मका अधिकारी सिर्फ राजाके सिवाय कोई और नहीं है इत्यादि
के प्राबल्यसेही रीति गाड़ी हाथी आदि पर जिस देशकाल कर्मके अनुरूप जहाँ
योग्य समुझाजाय तहाँ तैसाही वैकल्पिक एकरुपया तक उतराई लेना न्यायसम्भ
अर्थात्उसी गाड़ी आदि यान वाहन की उत्तमता मध्यमता आदिअनेक भेद
अनुरूप जिसपर जितना लेना योग्य समुझाजाय सो इस एक रुपये केही भी
कल्पित कियाजाय यह सिद्धान्त है कुछ निर्विकल्प सबसे एकरुपयेकाही निय
(पर) उसहाथी गाड़ी आदि पर जो प्राजक रक्षकरूपी एक या दो नियत मनु
उपरान्त मालिक आदि कोई यानारूढ़ भी कुछ बैठेहों तो फिर पूरा
मूचितहै और बल्कि जो व्यापारके प्रकारसे भाड़ेतू पुरुष अनेक भरेबैठेहों तो
गाड़ी आदि उत्तम मध्यम यान भेदके भाड़े आदि लाभोंके अनुरूप इससे अ
भी कुछ लेनामूचित है यह चर्चा अगिले वचनवाली व्याख्यामें व्यापारमाल भ

योंवाली गाड़ी आदि के वर्णनमध्ये आगे फिर भी होगा तहाँ समुझना-एवं पौरुष भारमध्ये आधापण अठन्नी तथा अधन्नी भी संसूचित है उसदशामें कि जो वहभार केवल व्यापारूमाल भर्तियोंकाहो तिसमें उत्तम मध्यम आदि पण्योंके अनुरूप जैसा योग्य समभाजाय तैसाही वैकल्पिक आठ आनेतक उतराईलेना न्याय सम्भव है और नीच पण्योंके भारहोने मध्ये एक आनेवाला पण संसूचितहै अर्थात् उनमेंआधे पणका आधआना लेनायोग्यहै और इसके भी उपरान्त जो जो भार केवल घास फूस लकड़ी आदि तुच्छ चीजोंके उतारेजायँ तिनके मध्ये (पण) भी ताँबेका पक्कापैसा जानों तिसका अर्द्ध अधेला लेना योग्यहोगा-एवं चौथाई पण उतराई बैल भैंसा घोड़ा आदि पशुओं से और पशुओंकी स्त्रियोंसेभी जो खाली पीठिहों लीजावें(और) चौथाई पणका आधाभाग उतराईरीते पुरुष वा स्त्रियोंसे भी लीजावै (मनुष्यरीता कहनेका यह भावहै कि जिसके पास कपड़ा बर्तन खानीपीनी चीज आदि जो आवश्यक बर्त्तावे योग्यहों तौ यह बोझमें कुछ गिनतीनहीं रीताही कहलावेगा) इसमेंभी पण चाँदी ताँबेकी अपेक्षासे यह ध्यान करना योग्यहै कि जहाँ राजकरसे हीन घाटहो तहाँ ताँबेका पणठीकहै और उसमें भी उताराका सुगमता या दुर्गमता के भेदकरके पक्केपैसा यद्वा आनारूप ताम्रपणका चौथाईरीते पशुओं से और अष्टमभाग मनुष्य से उतराईलेना सूचित है परञ्च जहाँ राजकरका घाटहो तहाँ चाँदीकापण समुझिकर सामग्री सहित मनुष्य से पणाष्टम भागके दो आनेतक वैकल्पिक रीतिसे कि जितना योग्य समुझाजाय लेना सूचित है और पशुओं से चौथाई पणके चारआनेतक वैकल्पिक रीतिसे कि जितना देशकाल कर्मके अनुरूप और उन पशुओं की भी जाति भेदके अनुरूप लेना योग्य समुझाजाय सोई लेना सूचित है कुछ पूरे दोआने चार आनेकाही नियम नहीं वल्कि भेड़ बकरी आदि छोटे पशुओं की अपेक्षा में सर्वत्र केवल ताम्र पणका चौथाई पक्केपैसाकी छदाम लेना राजकर से हीनघाट में समुझनी किंतु राजकर के घाटमें भी आना रूप (पण) की चौथाई पाव आनातककी लेना योग्य समुझो (भाण्ड) नाम मालभरे गठिया बोरा आदि तिनसे भरे (यान) गाड़ी आदि (तार्य) उतराई ऐसे ढङ्गसे दिलाने योग्य हैं कि जैसा उनमें (सार) हो अर्थात् सारहीनरीते यानोंकी उतराई ऊपर नियमितहुई सारयुक्त भरे यानोंकी उतराई उसमें अधिक लेनीहोगी सो अब कहतेहैं कि जैसा उत्तम मध्यम जाती उनमें सारनाम मालहो यद्वा थोड़ा बहुत यान भेदकरके जितनामाल कूताजावे उसीसार के अनुसार उनसे उतराई लेना योग्य हैं (यहाँ उत्तम मध्यम जातीमालका दृष्टांत यह कि जैसे एकगाड़ी में कसेरहटवाले धातुद्रव्य अथवा सादेकपड़े की गाठेंहों द्वितीय में कुछ रेशम आदि कपड़े की गाठें या जोजो चीज महर्घ्य मूल्यवाली या दुर्लभ लोकप्रसिद्ध

हों तीसरी में घी तेल आदि मध्यम चीजोंके कुप्पे यद्वा टाट चटाई रस्सी बान
हों चौथी में कुछ भूसा लकड़ी आदि तुच्छ चीजेंहों इत्यादि सभी जिंसोंकी
के अनुसार और बोझकरके थोड़ी बहुत होनेकेभी अनुसार कल्पित कियाजाय
स्त्री पुरुष आदि प्राणीमात्रही असवारहों तौभी मध्यम न्याय कल्पित
जिसमें कुछ अन्यायका संसर्ग न पायाजाय इसके मध्ये पहिले वचनकी भी
देखो-और जो रिक्त भांडनाम छूंछेबोरा गोनि कुप्पा कण्डोला आदि पात्रोंसेही
वाहन कुछ लदिरहाहो तिसपर जो कुछ थोड़ीसी उतराई योग्य समुझीजाय
ल्पितरूप लेनी सूचितहै-और इसीप्रकार पुरुष जो अपरिच्छदहों किंतु जिनके
कुछ असबाब नहो या दरिद्रीहों तिनसे भी अतिस्वल्प जोकुछ देशकाल के
योग्य समुझीजाय सो उतराई लेनी सूचित है अर्थात् ऊपरली उक्तरीति
सामग्री सहित मनुष्य से पणाष्टम भागके दो आनेतकभी लेने देशकाल
अनुरूप कभी सूचित हैं उसरीतिवाले नियमों से इसभाँति के मनुष्योंको
नहीं किंतु इनसे सिर्फ़ दमड़ी या छदामलेना तात्पर्य है-यह सब नियम केवल
के उसपार जानेमध्ये कहेगये-अब यहबात निर्णय करते हैं कि जहाँ जलके मार्ग
कुछ दूरवर्ती देशोंको पहुँचनाहो तहाँ दूरमार्ग की अपेक्षा जैसा देश जैसा
तैसा योजन संख्याके अनुसार उनसब जुदे जुदे जलयानोंका भाड़ा कल्पित
जाय जिनके द्वारा पहुँच होतीहो (यहाँ जैसा देश कहनेका यह भावहै कि
प्रवल वेगवाले जलका है कि जिसमें शीघ्र नावजाती है वा एकदेश ऐसाहो
स्थिर जलके हेतुसे नौकादि जलयान शीघ्र नहीं चलतेहों यद्वा उलटेधार स-
नाव खींचकर लेजानीहो एवं जैसा काल कहनेका यह भावहै कि एकवर्षाकाल
में जलकी बहुताइत या नदियों की विकलता वा वक्रता से सुगमता या
सम्भवहो यद्वा एक ग्रीष्मकाल जिसमें सूधी नदियाँ या थोड़े जलके हेतुसे
में सुगमता या कठिनाई जो कुछ सम्भवहो इत्यादि प्रायः और भी अनेक हेतु
लक्षण जैसे सम्भवहों तिनके अनुसार योजन संख्याके हिसाब से जो भाड़ा
योग्य समुझाजाय सोई ठीकहै कुछएक नियमउसका नहीं) सो यहयोजन
दि लक्षणकेवल नदियोंके जलमार्गमें समुझना किंतु समुद्रके जलमार्गमें
लक्षणवाले नियमोंका कुछकाम नहीं क्योंकि उसमें वायुके अवलंबसे जहाज
हैं और निपट तारक लोगोंकेही स्वाधीनमें नहोनेसे कुछमार्ग भाटक आदिले
योजनसंख्या आदिरीतोंके अनुसार नियमित नहीं पायाजाता इसमेंजहां
उसीस्थलके संबंधी उसीकामके विज्ञाता लोग जैसा कालविलंब आदि
नियमों सहित ठीकप्रमाण देकर निर्णयकरें सोई लेनादेना सूचितहै (प्रथापवादाः)

योंवाली गाड़ी आदि के वर्णनमध्ये आगे फिर भी होगा तहाँ समुझना-एवं पौरुष भारमध्ये आधापण अठन्नी तथा अधन्नी भी संसूचित है उसदशामें कि जो वहभार केवल व्यापारूमाल भर्तियोंकाहो तिसमें उत्तम मध्यम आदि पण्योंके अनुरूप जैसा योग्य समझाजाय तैसाही वैकल्पिक आठ आनेतक उतराईलेना न्याय सम्भव है और नीच पण्योंके भारहोने मध्ये एक आनेवाला पण संसूचितहै अर्थात् उनमेंआधे पणका आधआना लेनायोग्यहै और इसके भी उपरान्त जो जो भार केवल घास फूस लकड़ी आदि तुच्छ चीजोंके उतारेजायँ तिनके मध्ये (पण) भी ताँबेका पक्कापैसा जानों तिसका अर्द्ध अधेला लेना योग्यहोगा-एवं चौथाई पण उतराई बैल भैंसा घोड़ा आदि पशुओं से और पशुओंकी स्त्रियोंसेभी जो खाली पीठिहों लीजावें(और) चौथाई पणका आधाभाग उतराईरीते पुरुष वा स्त्रियोंसे भी लीजावे (मनुष्यरीता कहनेका यह भावहै कि जिसके पास कपड़ा बर्तन खानीपीनी चीज आदि जो आवश्यक बर्त्तावे योग्यहों तो यह बोझमें कुछ गिनतीनहीं रीताही कहलावेगा) इसमेंभी पण चाँदी ताँबेकी अपेक्षासे यह ध्यान करना योग्यहै कि जहाँ राजकरसे हीन घाटहो तहाँ ताँबेका पणठीकहै और उसमें भी उताराका सुगमता या दुर्गमता के भेदकरके पक्केपैसा यद्वा आनारूप ताम्रपणका चौथाईरीते पशुओं से और अष्टमभाग मनुष्य से उतराईलेना सूचित है परञ्च जहाँ राजकरका घाटहो तहाँ चाँदीकापण समुझिकर सामग्री सहित मनुष्य से पणाष्टम भागके दो आनेतक वैकल्पिक रीतिसे कि जितना योग्य समुझाजाय लेना सूचित है और पशुओं से चौथाई पणके चारआनेतक वैकल्पिक रीतिसे कि जितना देशकाल कर्मके अनुरूप और उन पशुओं की भी जाति भेदके अनुरूप लेना योग्य समुझाजाय सोई लेना सूचित है कुछ पूरे दोआने चार आनेकाही नियम नहीं बल्कि भेड़ बकरी आदि छोटे पशुओं की अपेक्षा में सर्वत्र केवल ताम्र पणका चौथाई पक्केपैसाकी छदाम लेना राजकर से हीनघाट में समुझनी किंतु राजकर के घाटमें भी आना रूप (पण) की चौथाई पाव आनातककी लेना योग्य समुझो (भाण्ड) नाम मालभरे गठिया बोरा आदि तिनसे भरे (यान) गाड़ी आदि (ताप्यं) उतराई ऐसे ढङ्गसे दिलाने योग्य हैं कि जैसा उनमें (सार) हो अर्थात सारहीनरीते यानोंकी उतराई ऊपर नियमितहुई सारयुक्त भरे यानोंकी उतराई उससे अधिक लेनीहोगी सो अब कहतेहैं कि जैसा उत्तम मध्यम जाती उनमें सारनाम मालहो यद्वा थोड़ा बहुत यान भेदकरके जितनामाल कूताजावे उसीसार के अनुसार उनसे उतराई लेना योग्य है (यहाँ उत्तम मध्यम जातीमालका दृष्टांत यह कि जैसे एकगाड़ी में कसेरहटवाले धातुद्रव्य अथवा सादेकपड़े की गाठेंहों द्वितीय में कुछ रेशम आदि कपड़े की गाठें या जोजो चीज महर्घ्य मूल्यवाली या दुर्लभ लोकप्रसिद्ध

हों तीसरी में घी तेल आदि मध्यम चीजोंके कुप्पे यद्वा टाट चटाई रस्सी बान आदि हों चौथी में कुछ भूसा लकड़ी आदि तुच्छ चीजेंहों इत्यादि सभी जिंसोंकी मालियत के अनुसार और बोझकरके थोड़ी बहुत होनेकेभी अनुसार कल्पित कियाजाय यद्वा स्त्री पुरुष आदि प्राणीमात्रही असवारहों तौभी मध्यम न्याय कल्पित कियाजावे जिसमें कुछ अन्यायका संसर्ग न पायाजाय इसके मध्ये पहिले वचनकी भी व्याख्या देखो-और जो रिक्त भांडनाम छूँछेबोरा गोनि कुप्पा कण्डोला आदि पात्रोंसेही यान वाहन कुछ लदिरहाहो तिसपर जो कुछ थोड़ीसी उतराई योग्य समुझीजाय सोईक-ल्पितरूप लेनी सूचितहै-और इसीप्रकार पुरुष जो अपरिच्छदहों किंतु जिनके साथ कुछ असबाब नहो या दरिद्रीहों तिनसे भी अतिस्वल्प जोकुछ देशकाल के अनुसार योग्य समुझीजाय सो उतराई लेनी सूचित है अर्थात् ऊपरली उक्तरीति जिसमें सामग्री सहित मनुष्य से पणाष्टम भागके दो आनेतकभी लेने देशकाल कर्मके अनुरूप कभी सूचित हैं उसरीतिवाले नियमों से इसभाँति के मनुष्योंको कुछकाम नहीं किंतु इनसे सिर्फ़ दमड़ी या छदामलेना तात्पर्य है-यह सब नियम केवल घाटों के उसपार जानेमध्ये कहेगये-अब यहबात निर्णय करते हैं कि जहाँ जलके मार्ग से कुछ दूरवर्ती देशोंको पहुँचनाहो तहाँ दूरमार्ग की अपेक्षा जैसा देश जैसा कालहो तैसा योजन संख्याके अनुसार उनसब जुदे जुदे जलयानोंका भाड़ा कल्पित किया जाय जिनके द्वारा पहुँच होतीहो (यहाँ जैसा देश कहनेका यह भावहै कि एकदेश प्रबल वेगवाले जलका है कि जिसमें शीघ्र नावजाती है वा एकदेश ऐसाहो जिसमें स्थिर जलके हेतुसे नौकादि जलयान शीघ्र नहीं चलतेहों यद्वा उलटेधार सन्मुख नाव खींचकर लेजानीहो एवं जैसा काल कहनेका यह भावहै कि एकवर्षाकाल जिस में जलकी बहुताइत या नदियों की विकलता वा वक्रता से सुगमता या कठिनाई सम्भवहो यद्वा एक ग्रीष्मकाल जिसमें सूधी नदियाँ या थोड़े जलके हेतुसे लेजाने में सुगमता या कठिनाई जो कुछ सम्भवहो इत्यादि प्रायः और भी अनेक हेतुभूत लक्षण जैसे सम्भवहों तिनके अनुसार योजन संख्याके हिसाब से जो भाड़ा लेना योग्य समुझाजाय सोई ठीकहै कुछएक नियमउसका नहीं) सो यहयोजन संख्याआ-दि लक्षणकेवल नदियोंके जलमार्गमें समुझना किंतु समुद्रके जलमार्गमें अत्रोक्त लक्षणवाले नियमोंका कुछकाम नहीं क्योंकि उसमें वायुके अवलंबसे जहाज चलता है और निपट तारक लोगोंकेही स्वाधीनमें नहोनेसे कुछमार्ग भाटक आदिलेना योजनसंख्या आदिरीतोंके अनुसार नियमित नहीं पायाजाता इससेजहां प्रयोजनहो उसीस्थलके संबंधी उसीकामके विज्ञाता लोग जैसा कालविलंब आदि लक्षणवाले नियमों सहित ठीकप्रमाण देकर निर्णयकरें सोई लेनादेना सूचितहै (अथापवादाः)यद्वा

योंवाली गाड़ी आदि के वर्णनमध्ये आगे फिर भी होगा तहाँ समुझना-एवं पौरुष भारमध्ये आधापण अठन्नी तथा अधन्नी भी संसूचित है उसदशामें कि जो वहभार केवल व्यापारूमाल भर्तियोंकाहो तिसमें उत्तम मध्यम आदि पण्योंके अनुरूप जैसा योग्य समझाजाय तैसाही वैकल्पिक आठ आनेतक उतराईलेना न्याय सम्भव है और नीच पण्योंके भारहोने मध्ये एक आनेवाला पण संसूचितहै अर्थात् उनमेंआधे पणका आधआना लेनायोग्यहै और इसके भी उपरान्त जो जो भार केवल घास फूस लकड़ी आदि तुच्छ चीजोंके उतारेजायँ तिनके मध्ये (पण) भी ताँबेका पक्कापैसा जानों तिसका अर्द्ध अधेला लेना योग्यहोगा-एवं चौथाई पण उतराई बैल भैंसा घोड़ा आदि पशुओं से और पशुओंकी स्त्रियोंसेभी जो खाली पीठिहों लीजावै(और) चौथाई पणका आधाभाग उतराईरीते पुरुष वा स्त्रियोंसे भी लीजावे (मनुष्यरीता कहनेका यह भावहै कि जिसके पास कपड़ा बर्तन खानीपीनी चीज आदि जो आवश्यक बर्त्तावे योग्यहों तौ यह बोझमें कुछ गिनतीनहीं रीताही कहलावेगा) इसमेंभी पण चाँदी ताँबेकी अपेक्षासे यह ध्यान करना योग्यहै कि जहाँ राजकरसे हीन घाटहो तहाँ ताँबेका पणठीकहै और उसमें भी उताराका सुगमता या दुर्गमता के भेदकरके पक्केपैसा यद्वा आनारूप ताम्रपणका चौथाईरीते पशुओं से और अष्टमभाग मनुष्य से उतराईलेना सूचित है परञ्च जहाँ राजकरका घाटहो तहाँ चाँदीकापण समुझिकर सामग्री सहित मनुष्य से पणाष्टम भागके दो आनेतक वैकल्पिक रीतिसे कि जितना योग्य समुझाजाय लेना सूचित है और पशुओं से चौथाई पणके चारआनेतक वैकल्पिक रीतिसे कि जितना देशकाल कर्मके अनुरूप और उन पशुओं की भी जाति भेदके अनुरूप लेना योग्य समुझाजाय सोई लेना सूचित है कुछ पूरे दोआने चार आनेकाही नियम नहीं बल्कि भेड़ बकरी आदि छोटे पशुओं की अपेक्षा में सर्वत्र केवल ताम्र पणका चौथाई पक्केपैसाकी छदाम लेना राजकर से हीनघाट में समुझनी किंतु राजकर के घाटमें भी आना रूप (पण) की चौथाई पाव आनातककी लेना योग्य समुझौ (भाण्ड) नाम मालभरे गठिया बोरा आदि तिनसे भरे (यान) गाड़ी आदि (तार्य) उतराई ऐसे ढङ्गसे दिलाने योग्य हैं कि जैसा उनमें (सार) हो अर्थात् सारहीनरीते यानोंकी उतराई ऊपर नियमितहुई सारयुक्त भरे यानोंकी उतराई उसमें अधिक लेनीहोगी सो अब कहतेहैं कि जैसा उत्तम मध्यम जाती उनमें सारनाम मालहो यद्वा थोड़ा बहुत यान भेदकरके जितनामाल कूताजावे उसीसार के अनुसार उनसे उतराई लेना योग्य है (यहाँ उत्तम मध्यम जातीमालका दृष्टांत यह कि जैसे एकगाड़ी में कसेरहटवाले धातुद्रव्य अथवा सादेकपड़े की गाठेंहों द्वितीय में कुछ रेशम आदि कपड़े की गाठें या जोजो चीज महर्घ्य मूल्यवाली या दुर्लभ लोकप्रसिद्ध

हों तीसरी में घी तेल आदि मध्यम चीजोंके कुप्पे यद्वा टाट चटाई रस्सी बान आदि हों चौथी में कुछ भूसा लकड़ी आदि तुच्छ चीजेंहों इत्यादि सभी जिंसोंकी मालियत के अनुसार और बोझकरके थोड़ी बहुत होनेकेभी अनुसार कल्पित कियाजाय यद्वा स्त्री पुरुष आदि प्राणीमात्रही असवारहों तौभी मध्यम न्याय कल्पित कियाजावे जिसमें कुछ अन्यायका संसर्ग न पायाजाय इसके मध्ये पहिले वचनकी भी व्याख्या देखो-और जो रिक्त भांडनाम छूँछेबोरा गोनि कुप्पा कण्डोला आदि पात्रोंसेही यान वाहन कुछ लदिरहाहो तिसपर जो कुछ थोड़ीसी उतराई योग्य समुझीजाय सोईक-ल्पितरूप लेनी सूचितहै-और इसीप्रकार पुरुष जो अपरिच्छदहों किंतु जिनके साथ कुछ असबाब नहीं या दरिद्रीहों तिनसे भी अतिस्वल्प जोकुछ देशकाल के अनुसार योग्य समुझीजाय सो उतराई लेनी सूचित है अर्थात् ऊपरली उक्तरीति जिसमें सामग्री सहित मनुष्य से पणाष्टम भागके दो आनेतकभी लेने देशकाल कर्मके अनुरूप कभी सूचित हैं उसरीतिवाले नियमों से इसभाँति के मनुष्योंको कुछकाम नहीं किंतु इनसे सिर्फ़ दमड़ी या छदामलेना तात्पर्य है-यह सब नियम केवल घाटों के उसपार जानेमध्ये कहेगये-अब यहबात निर्णय करते हैं कि जहाँ जलके मार्ग से कुछ दूरवर्ती देशोंको पहुँचनाहो तहाँ दूरमार्ग की अपेक्षा जैसा देश जैसा कालहो तैसा योजन संख्याके अनुसार उनसब जुदे जुदे जलयानोंका भाड़ा कल्पित किया जाय जिनके द्वारा पहुँच होतीहो (यहाँ जैसा देश कहनेका यह भावहै कि एकदेश प्रवल वेगवाले जलका है कि जिसमें शीघ्र नावजाती है वा एकदेश ऐसाहो जिसमें स्थिर जलके हेतुसे नौकादि जलयान शीघ्र नहीं चलतेहों यद्वा उलटेधार सन्मुख नाव खींचकर लेजानीहो एवं जैसा काल कहनेका यह भावहै कि एकवर्षाकाल जिस में जलकी वहुताइत या नदियों की विकलता वा वक्रता से सुगमता या कठिनाई सम्भवहो यद्वा एक ग्रीष्मकाल जिसमें सूधी नदियाँ या थोड़े जलके हेतुसे लेजाने में सुगमता या कठिनाई जो कुछ सम्भवहो इत्यादि प्रायः और भी अनेक हेतुभूत लक्षण जैसे सम्भवहों तिनके अनुसार योजन संख्याके हिसाब से जो भाड़ा लेना योग्य समुझाजाय सोई ठीकहै कुछएक नियमउसका नहीं) सो यहयोजन संख्याआ-दि लक्षणकेवल नदियोंके जलमार्गमें समुझना किंतु समुद्रके जलमार्गमें अत्रोक्त लक्षणवाले नियमोंका कुछकाम नहीं क्योंकि उसमें वायुके अवलंबसे जहाज चलता है और निपट तारक लोगोंकेही स्वाधीनमें नहोनेसे कुछमार्ग भाटक आदिलेना योजनसंख्या आदिरीतोंके अनुसार नियमित नहीं पायाजाता इस्सेजहां प्रयोजनहो उसीस्थलके संबंधी उसीकामके विज्ञाता लोग जैसा कालविलंब आदि लक्षणवाले नियमों सहित ठीकप्रमाण देकर निर्णयकरें सोई लेनादेना सूचितहै (अथापवादाः)यद्वा

अबकुछथोड़े से अपवादभी दर्शातेहैं कि. दोमासके उपरांत जो सगर्भा स्त्रीहो.तथा प्रव्राजित किंतु भिक्षुक. मुनि अर्थात् बानप्रस्थ जो स्त्री सहित वनमें तपकरतेहैं.लिंग युक्त ब्राह्मण किंतु ब्रह्मचारी दोनों भांतिका. यहसब इतने प्राणीकहीं उतारा के स्थानघाट आदिपर उतराई देनेयोग्यनहीं हैं यहकेवल पारावारउतरने मध्येजानो-इसके सिवायभी-जलस्थलदोनोंभांति मार्गशुल्कों मध्ये कुछअपबाद विशेषहैं-सयथा-(नभिन्नकार्षापणमस्तिशुल्कंनशिल्पवृत्तौनशिशौनदूते। नभैक्षवृत्तेनहृतावशेषेनश्रोत्रियेप्रव्रजितेनयज्ञे)अर्थात्-नतो भिन्नकार्षापण राजशुल्कहै न शिल्पवृत्ति करनेवालोंपर न छोटे बालक बच्चेपर न राजाके संदेशहारक आदि दूतोंपर न भिक्षावृत्तिरखनेवालोंपर न किसी हृतावशेषजन पर शुल्कलागे और प्रायः श्रोत्रियलोगोंपर भी और प्रव्रजितों परभीनहीं एवं यज्ञोंपरभी नहीं-अबइन सबके क्रमसे रूप दर्शित करतेहैं कि इनमें भिन्नकार्षापण का यहब्यौराहै (भिन्नंस्फुटितंयत्कार्षापणंताम्रविकारंतत्परिनियमितशुल्कगणनायांनास्तीति ताम्रपणादपिन्यूनंशुल्कंनकल्पनीयंनचग्राह्यं) यहचर्चा केवल घाटोंके उतारा तद्वत् विरलेस्थल मार्गके महसूल जगाइत आदिपर आरूढ़है और आशय इसका यहकि इसमेंन्यूनतरभी एकपैसासे न्यूनशुल्क छदाम दमड़ी आदिनहीं लियाजावै किंतु यद्यपि पूर्वोक्तकिसी मर्यादाके हिसावसे छदाम आदिलेना सूचित किसी अवसर किसीपरहोसकताहो तौभी पूरापैसा लियाजावैयद्वा छोड़दियाजावै इसका यह दृष्टांतहै कि जैसे भेड़बकरी आदि छोटे पशुओंपर प्रत्येक पूंछपीछेएक छदामलेना किसी नियमित मर्यादासे संसूचितहै और कोई सिर्फएकही या दो भेड़उतारै जिसमेंपूरा एकपैसाभी महसूल का न आताहो तौभी पूरापैसा लेना योग्यहै और छोड़देनेका यहअर्थहै कि जहां भेड़ोंकी वहुताइत इक्कीस या पच्चीस या उनतीस आदि होंतो फिर वीस या चौवीसके पूरेपैसे पांच या छःसातआदि जो कुछ होतेहों सोई लेकर उपरालूकी दो एकछदामछोड़ि देवै बलिक विरली वस्तुओं मध्य पैसासे न्यूनशुल्क निपट छोड़िदेना एकधर्महै(दृष्टांत)जैसे घासफूस आदि तुच्छ चीजों के मानुषभारपीछे एकपैसा जहां जगाति का तहसीलकरना नियमित ठहराहो तहां जोजोदीन दुखिया कोई ऐसाथोड़ा घासफूस आदि लेकर आवैं जिसका विक्रय होनेसे उसएक मनुष्य कीभी उदर पूर्णाहोनी दुर्घट समझीजाय तिनको निपट मुआफ करना योग्यहै इसहेतुसे कि उनपर थोड़ी चीजके अनुरूप छदाम दमड़ी आदि यद्यपि लेनासूचित होताथा परंच भिन्नकार्षापण राजशुल्कमें गणनीयनहीं इस्से दीनदुखिया को यह छोड़ादिया जावै यहसब फूटे पैसे का वृत्तांत हुआ-और शिल्पी कारुक पेशेवालेजो राजकाजोंमें लागिरहेहोंसो जलस्थलदोनों शुल्कोंमे सर्वत्रमुआफरक्खे जायँ किंतु कोईठेकेदार भी इनलोगोंसे उताराआदि कुछमहसूल लेनेकाम-

धिकारीनहीं-और छोटेबालक बच्चेकायह भावहै कि जिनस्त्री पुरुषोंके साथकोई शिशु बालक या पशुओंकेहीसाथ कोईबच्चेहों तिनकाशुल्क न लेवै परजो बालकबहुत बड़े हों तिनको अर्धभागआदि शुल्कजैसा देशकाल अवसरके अनुरूप योग्यसमुझाजाय कल्पितहोवै और कोई बालक भूलाभटका आदि एकाकीभी कदाचित् कहींजाताहो तौभी घाटउतारा या जलयान स्थलमार्गडाकयान आदि शुल्कोंसे मुआफ़रक्खाजावे-और दूतजोजो राजाके संदेशहारक धावक आदि और आकुंचितडाक थैलीआदि के पहुंचानेवाले हों जलस्थल मार्गशुल्कोंसे ये माफ़हैं अर्थात् इनसेकोई राजकीय ठेकेदार तकभी मार्गशुल्कनलेवै-भैक्षवृत्त भिक्षुकआदि प्रसिद्धहैं और हृतावशेषका यहलक्षणहै कि जिसका मार्गआदिमें धनचोरीलूटि फूटिसे हरिगयाहो तिसपर कहीं पहुंचनेमेंभी जलस्थलमार्ग राजशुल्क न मांगेजायँ इसहीकादूसराआशय यहभीहै कि जबकोई व्यापारूमाल दोसौछासठि दोसौसरसठि मूलश्लोकों और अधिकोक्तों की मर्यादासे अपराधमध्ये राजमेंहरलीन्हाजाय तौउसमाल का ब्यापारी आदिकोई अधिकारी यद्यपि हृतावशेषहो जिसपर साधारण बर्त्तावेकी सामग्री यद्वा उसीमाल काकोई अंशहरने से अवशिष्ट छोड़ागयाहो तौ इसदशाके अनंतर उस्सेदेशकाल बस्तुके अनुरूप जैसायोग्य समुझाजाय मार्गशुल्क न मांगेजायँक्योंकि यहरिआयत भी इसध्यान से आवश्यकहै कि वह अपने मुख्य ठिकाने आदि परपहुंचनेसेभी न रहजाय या रुकजाय-और उनश्रोत्रियलोगों परभी राजशुल्कनहोवै जो वेदादिक शास्त्र विद्याकाअध्ययनसंग्रह करतेहों या करिचुकने परभी उसीविद्याके व्यापारोंसे संपन्नहों एवंप्रव्राजितसंन्यासी आदि-एवंयज्ञके निमित्तसे जो कोईसी सामग्री आईहो तिसपर शुल्क न होवै-जैसा-यहां जलस्थल मार्ग शुल्कोंके नामसे अपवादवर्णन हुआ, तैसे अन्य भांति के भी राजशुल्कों पर दृष्टांत देश काल वस्तुओं के अनुरूप यथोचित कल्पित करिके समुझिलेने-अत्रोक्त मार्ग शुल्कों के सिवाय-अन्यभाँति के सामान्य राजकर भी अंधे आदि विरले औरोंको न देने योग्य जानो-तदाह मनुः (अंधो जडःपीठसर्पीसप्तत्यास्थविरश्चयः। श्रोत्रियेषूपकुर्वंश्चनदाप्याःकेनचित्करम्) अर्थात्-एकअंधा. बहिरा-पीठसर्पी किंतु खँजा अपाहिज लूला. पूरे सत्तरिवर्षों का बूढ़ाइस के उपरांतभी कि जबतक जीवै.ऐसा कोईभक्त पुरुषजो अपने धनधान्य आदि लाभों तथा शरीर को विद्वान् श्रोत्रिय लोगों के उपकार में लगातारहता हो-एवं श्रोत्रियपुरुष भी.ये इतने संसूचित प्रजा लोगयद्यपि कोई भाँतिका व्यापार भी स्वकीय जीवन योग्य करते हों जिस में लाभभागोंसे आवश्यक राजकर का लेनाभी मर्यादा मे आरूढ़ पाया जाता हो तोभी किसी राजा क्षण कोप कोभी इतने लोग राज कर दिलवाने योग्य नहीं हैं अर्थात् सर्वथा मुआफ़ करने योग्यहैं-यहतो २६८ वाले

पूर्व अद्धा की अधिकोक्तिहुई-उत्तर अद्धाकी अपेक्षा में अग्रोक्त मनुके वाक्यहैं-यथा (प्रातिवेश्यानुवेश्यौच कल्याणेविंशतिद्विजे। अर्हावभोजयन्विप्रोदंडमर्हतिमाषकम्॥ श्रोत्रियःश्रोत्रियंसाधुंभूतिकृत्येष्वभोजयन्। तदन्नंद्विगुणंदाप्योहिरण्यंचैवमाषकम्) अर्थात्-निरंतरगृहवासीप्रातिवेश्य कहलाताहै जो उसी अहातेके भीतर यद्वा भिड़मा बसताहो एवं उसघरसे कुछअंतरमें परोस यद्वा सन्मुखबसता हो सो अनुवेश्य कहाजाताहै.यह दोभांतिके ब्राह्मण ऐसे अवसरमें अवश्य नौतादेनेयोग्य हैं किजब जब किसी कल्याणोत्सव की अपेक्षा लगभगबीसके यदिअन्य विप्रभी जिमायेजावें तबजोकोई विप्रजातीमात्रहोकर ऐसेदोनोंका अतिक्रमकरै किन्तु बीसऔरोंके जिमानेपरभी इनकोनहीं नौते तौवहएक माषरौप्य दंडराजमेंप्रत्येक उपेक्षित विप्रपीछेभरै-और जोकोई आपविद्याचारवान्होकर अपनेतुल्य द्वितीयश्रोत्रिय को सुशीलहोनेपरभी जोनिज प्रातिवेश्य वा अनुवेश्यहो ऐश्वर्य संयुतमंगल कामोंमें जिमावैनहीं तौ उसउक्त अभोजित श्रोत्रिययोग्य द्विगुणाअन्न दिलायाजाय पीछे एकमाष सौवर्णिक दंडराजमें भी-क्योंकि राजासर्वधर्मोंका स्थापकहै इसहेतुसे जोकोई बिप्रहोकर ऐसेशिष्टाचारिक सद्धर्मोंका विलोपकरै तिसकोदंडसे सुमार्गमें चलावे २६८॥ प्रसंगसेकुछ हानिकाभी चर्चा नीचेकरतेहैं (अथजलमार्गेधनहानिरापिदातव्या)तदप्याहमनुः(यन्नावि किंचिद्दाशानांविशीर्य्येतापराधतः। तद्दाशैरेवदातव्यंसमागम्यस्वतोंऽशतः॥एषनौयायिनामुक्तोव्यवहारस्यनिर्णयः। दाशापराधतस्तोयेदैविकेनास्तिनिग्रहः)अर्थात्-नौकापरआरूढ़हुये व्यापारीयद्वा अन्यमनुष्योंका कुछद्रव्य नाविक मल्लाहोंके अपराधसे यदिडूबै यद्वा खोयाजाय सोउनखेवक दाशोंकोही देनाहोय किन्तुसभी खेवकमिलकर अपने अपनेभागोंके अनुसार हानिभरैं-यहव्यवहार निर्णय नौकामार्गसे विदेशयद्वा पारजाने वालोंका सर्वथाखेवक लोगोंके अपराधपरहीकहा किन्तुदैवसे उत्पन्नहुयेतीव्रवायुआदि विघ्नोंसे यदिनौका भंगहोकर द्रव्यडूबै तबउनखेवक दाशोंका अपराध नहींहोने से कुछदंड न हो २६८॥

(परदेशमृतव्यापारिधनप्रसंगः)

देशांतरगतेप्रेतेद्रव्यंदायादबांधवाः। ज्ञातयोवाहरेयुस्तदागतास्तैर्विनानृपः २६६

५०-देशांतरगत के प्रेतहोनेमें उसद्रव्यको दायाद या बांधव या ज्ञातीलोग हरैं यद्वा उसकेसाथ या पीछेसेही आयेहुयेसाथी व्यापारी साभीआदिही लेजावें इनसब के विना राजाहरै-अर्थात्-जबकोई एकविदेशी व्यापारीयद्वा कोई और बटोहीआदि एकला आयाहुआ विदेशमें मरजाय यद्वाउसके साथकोई और स्वकीयसाथी वा साभी व्यापारीआदिआयेहों तिनको छोड़िकर मरजायतबउसका जोकुछद्रव्यउसके साथहो या छोड़ेहुये साझियोंमें कुछअंश मिश्रितहोय सो मरजानेवाले के (बाधव)

पुत्रादिक संतानवर्गजे कोईसाथ उपस्थितहों या पीछेसेही सुनकरशीघ्रआवैं वेहीपावैं यद्वाउन दायादोंके न होने या सुनकरनहीं आनेमें आसन्नबन्धु लोग मातृपक्षीमामा नानाआदि साथ उपस्थितहों या पीछेसेहीसुनकर शीघ्रआवैं वेहीपावैं अथवाज्ञाती लोग जो संतानवर्गसे उपरांत भ्राता चचाआदि सपिंड समुझेजातेहों या सपिंडोंके उपरांत सोदकआदि जोजो दायभागकी मर्यादोंसे अधिकारी समुझेजातेहों वेहीसाथ उपस्थित हों या पीछेसेही सुनकरशीघ्रआवैं तौ उसधनकोपावैं परयहबात भी आवश्यकहै किजहां इनमेंकईभांतिके अधिकारी शीघ्रपहुँचें और उसधनके लेनेमध्येकोई झगड़ारोपैं तहां (पत्नीदुहितरश्चैवपितरौभ्रातरस्तथा) इत्यादि दायभागवालेमूल श्लोकोंकी व्यवस्थासे क्रम सूचितहोने पीछे क्रमानुसार जिसकोयोग्य समुझाजाय सोईधनको लेनेपावे किन्तु झगड़ासे विहीनकोई एकही अधिकारी जहांपहुँचे यद्वा साथ उपस्थित हो तौवहक्रम संसूचनहोने विनाभी वैकल्पिकन्यायसे धनपानेका अधिकारीहै क्योंकि ऊपरमूलश्लोकमें योगीश्वरने(वा)शब्दजो प्रयुक्तकिया तिसकाभाव यहीहै कुछ और नहीं और इसभावकाभी यह सिद्धांतहैकि यद्यपि तत्कालकोईवैकल्पिक अधिकारसे अधिकारीभी होजावे और मुख्यात्मक तत्कालीन अधिकारीकिसी हेतुसे न पहुँचाहो सो कालान्तरमें भी आइकर उस हेतुको दर्शाताहुआ निजमुख्यात्मक तत्कालीन सच्चे अधिकार को संसिद्ध करावे तो फिर वहीधनको पावेगा-परन्तु जो कालान्तर में भी कोई ऐसा अधिकारी धनका ग्राहक नहीं आवे तौ वैकल्पिक अधिकारीही धनभोगे-इसीआशय के अनुकूल चौथे पादमें फिर कहतेहैं कि (आगतावाग्रह्लीयुः) अर्थात् जे कोई व्यापारी साझी आदि उसके सङ्गआये पास उपस्थितहों या पीछेसेही सुनकर शीघ्रआवैं वेभी उसके धनको पाइ सक्ते हैं-इन सबके निकट न होने और सुनिकर शीघ्र नहीं आनेमें उसदेशका धरणीश धनको रक्खे और दश वर्षोंतक रखवारीकरै जब दशवर्षमें भी कोईलेने नहीं आवे तभी राजाउस अस्वामिकधनको आपलेवै-यहीप्रकारनारदने स्पष्टवर्णन कियाहै अधिकोक्तिमें २६९॥

अधि०-एवंचनारदआह (एकस्यचेत्स्यान्मरणन्दायादोऽस्यतदाप्नुयात् । अन्योवाऽसतिदायादेसक्तश्चेत्सर्वएवतं॥तदभावेतुगुप्तन्तत्कारयेद्दशवत्सरान्। अस्वामिकमदायादन्दशवर्षस्थितन्ततः। राजातदात्मसात्कुर्यादेवन्धर्मोनहीयते) अर्थात्-अनेक साझियों में यदि किसी एकका मरनाहो तब इसका द्रव्यजो कुछ साझियों मध्ये अंश मिश्रितहोय तिसको उसका पुत्रादिक दायाद जो तत्रैव साथमें या घरपरहो सोई पावे यद्वा और कोई बन्धु आदि जिसको दायभाग से अधिकार पहुँचताहो वहीपावै यद्वा किसीभाँतिका दायाद आदि अधिकारी धनको हरनेवाला जिसका साथमें या भी निपट न सावितहो तबउन साझियों में जो कोई उसका हितू समीपी सं-

कर श्राद्ध आदि क्रियाकर्म करने का उत्साह रखताहो वही धनकोलेवे तद्वत् ऋण भी उसपर जो कुछहो सो उद्धारकरै कदाचित् ऐसा पुरुषभी साक्षियों में नहो तौफिर सभी साक्षी मिलकर उसके धनको बाँटिलें-साक्षियों के भी निपट न होने में अर्थात् एकाकी विना साक्षेवाला कोई पुरुष व्यापारी आदि जो देशान्तर में मरजाय जिस के ऊर्ध्वोक्त कोई भाँति के दायाद उसका मरना सुनकर शीघ्र नहीं आवैं और यह भेद भी न जानाजाय कि इसके घरके वा सम्बन्धी आदि कहाँ रहतेहैं तबउस पुर का राजा डिण्डिम घोष कराकर धनको राजकोषों में रखवावे और दशवर्षतक दायाद वन्धु आदि की प्रतीक्षा करतारहै कि उतनी अवधि भीतर भी यदि कोई लेनेवाला डिण्डिम घोष के पश्चात् आवे तिसका पता ठिकाना रूपज्ञान समुझेपीछे द्रव्यसौंप देवे-जब दश वर्षतक धनस्वामी और दायादहीन रक्खारहे तब लावारिस उसको मानकर धरणीश अपनाकरै तौ इसरीति से सदैव धर्म बढ़ता है-मरे पुरुषके धनको दायभाग में कहचुकने परभी यहाँकहने से यह सिद्धि है कि वहांपर(पत्नीदुहितरश्चैवपितरौभ्रातरस्तथा। तत्सुतोगोत्रजोवन्धुःशिष्यःसब्रह्मचारिकः) इसीवचनके अन्त में जो शिष्य और सब्रह्मचारीका अधिकार वर्णन हुआथा सो यहाँ उसको छोड़िकर साक्षियोंका अधिकार निश्चित कियागया-यद्यपि-पत्नी दुहिताआदि क्रम उसजगह निरूपण जैसा हुआथा सो यहाँ भी आवश्यक है पर जिस दशामें अति दूरदेशीके मरजानेपर एकाकी आदि हेतुओंसे कुछ पता पहले न लगसकै और पत्नी पुत्रादिक न पहुँचसकैं तबयह विशेषनियम नहींहै कि उसीक्रमके अनुसारआवें वेहीपावें किन्तु ऐसे अवसर में जेकोई पहुँचसकैं सो वैकल्पिक अधिकार से भी धनलेआने के अधिकारी हैं किंतु विदेश में धन व्यर्थ चलाजानेकी दृष्टि से इसविकल्प में कुछ दोषनहीं बल्कि वहांसे ले आनेवालेका यह धर्म विशेष है कि जिसको उसके पानेका अधिकार विशेषहो तिसहीको समर्पणकरै पर जब इसमें कभी व्यतिक्रम होतादेखै तिसका न्यायभी तत्रत्य राजाकरै कि जहाँ कहीं धन पहुँचाहो यद्वा पानेके अधिकारी वसतेहों-इसके सिवाय-धनका व्यर्थ विनाश होजाने के ध्यानसे हरकोई उसके अर्थ में लगानेका अधिकारी है जो कुछ भी उस मृतधनीसे संसर्ग रखताहो (दृष्टांत) जैसे अन्तेवासी जो कदाचित् उसके साथहोय यद्वा मरना सुनिकर जापहुँचे तो वह अपने मरेहुये आचार्यका धनउसीके निमित्त ब्रह्मभोज पुण्य दान श्राद्ध कर्म आदि में लगानेका अधिकारी है या कोई और मित्रादिक ऐसा करसक्ता है-परञ्च-धनके ढेर थोरेहोनेपर भी ध्यान करना योग्य है कि जो धन उसके ऊर्द्धदैहिक पुण्य आदि कर्ममें लगानेके ही तुल्यहो तौ अधिकार ठीकहै अन्यथा जहाँ धन कुछढेर समझाजाय तहाँ राजाको यह योग्यहै कि उसी अन्तेवासी आदि मर्मायी के द्वारा उसके घरका ठीकलगाकर

ठेठ दायादों को पहुँचादेवे राजाका यह धर्म सनातनहै-अथवा-जहाँ कोईधनी विदेश में जो माराहो मरते समय राजासे या राजपुरुषों या तत्रत्य वरिष्ठोंसेही जो कुछ अन्त्यकालिक शिक्षा के आकार अपने धनके मध्ये करना धरना आदि प्रकट करके माराहो सो सब यथासम्भव तद्रूप उन्हीं लोगोंको कर्तव्यहै कि जिसने उसकीअन्त्य शिक्षाका स्वीकार कियाहो तौभी राजा उनका द्रष्टा बनकर स्वतःभी करवानेका अधिकारीहै क्योंकि वक्ष्यमाण सबसे पिछले एकप्रकीर्ण प्रकरणकी मर्यादों से सर्वत्र ऐसे कामों में धरणीश को स्वहस्तपात करनेका अधिकार धर्म मूलकहै २६९ ॥

(कस्यचिल्लाभहानिः)

जिह्मंत्यजेयुर्निर्लाभमशक्तोऽन्येनकारयेत् २७० ॥ पूर्वार्द्धोऽयम्

ऐ०–जिह्मको निर्लाभत्यागैं. असमर्थ अन्यसे करावे-अर्थात्-जिह्मनाम वंचक छलिया जो कोई सब साझियों वीचहो तिसको अन्यसब साझीलोग नफादिये विन साझेसे काढ़िदें आशय इसका यह कि उसकी जमा जो कुछ लगीहो तिसका लेखा जोखा वेबाक करिके साझेमें न रक्खें और जो छलकरनेसे पहले किंचित्‌लाभ खड़ाहुआ हो तिसका भागउसे नदें. पर जो कोई साझीउसी साझेके उपयोगी काम धंधे करनेमें असमर्थ यद्वासुखिया होने के हेतुसे बराबर सब के न करसकै तौ वह अपनी ओरसे किसी करसकनेवाले पुरुषको अपना प्रतिनिधि किंतु मुनीम नियतकरिके उस्से कामकरावै २७० ॥

अधि०–जो कोईएक साझी सब साझियों के सामान्य धनका ऋणियोंसे तगादा आदि करनेकी उपेक्षा करै यद्वा और किसीभांति से सहायता नहींकरताहो तिसके लिये बृहस्पतिजी अग्रोक्त नियम कहते हैं-यथा(समवेतैस्तुयद्दत्तंप्रार्थनीयंतथैवतत् । नयाचतेचयःकश्चिल्लाभात्सपरिहीयते) अर्थात्-सब साझियों ने मिलकर जो कुछ रोकदाम या सौदा किसीव्यापारी आदिको उधारे दियाहो सो वह दियाहुआ जिस अवधिके निमित्त दियाहो उसीसमान उस्से माँगनाभी आवश्यक है कदाचित् कोई साझी अपने अवसर पर मौजूद होतेहुये मर्याद के अनुसार उस्से मांगै नहीं और इस अवसरकी उपेक्षासे उसदियेहुये धनका डूबिजाना संभव हो तौ इसउपेक्षाकरने वालेकोभी उतने उसीधनके लाभका कुछभाग न दियाजाय-यहां तगादाके नकरनेसे जो लाभ हानि उसकी कहीगई इसीके उपलक्षण करके यहभी न्याय अपेक्षित है कि जिसकिसीसाझीके करनेयोग्य जो कुछकाम जितनाउसके अंशकेअनुरूपहो तिसको औरोंकी प्रसन्नता रहित निजमनमौजसेही नहींकरै तौ भी लाभ हानि उसकी होगी पर जो औरोंकी प्रीतिसे जिसकामके न करनेवाली दशा पैदा हुईहो या जिसकामके बदले में कुछ और काम उसने कियाहो तिसमें लाभ हानि का कुछचर्चानहीं२७० ॥

(अथातिदेशधर्माः)

अनेनविधिराख्यातऋत्विक्कर्षककर्मिणाम् २७० ॥

ऐ०—इसीसे विधि कहीहै. ऋत्विक्.कर्षक;कर्मियोंकी-अर्थात्-इसही उक्तप्रकार से कि जो कुछ वणिज व्यापार के साझियों की व्यवस्था मध्ये ऊपर निर्णय कियागया तद्वत् ऋत्विक् होता होमकरनेवालातथा किसान और कर्मीनामकारीगर शिल्पी नट नर्तक आदि औरोंकेभी साझेमें समुझना २७० ॥

अधि०—ऋत्विक् आदि औरों का जो विशेषहै सो अपनीहीव्यवस्था द्वाराजाना जासक्ताहै क्योंकि वणिज व्यापारी लोग अपना अपना द्रव्यलगाकर साझाकरतेहैं और ऋत्विक् यद्वा अन्य कारीगरोंका जो साझाहै सो केवल कर्मसे होजाताहै पुनिउस में भी यहभेदहै कि विरले साझीसभी एकसेगुणवान् और विरलोंमें कुछ उत्तममध्यम आदि ऊँचे नीचे साझीहोतेहैं इसलिये सबका भिन्न भिन्न वर्णनहोनाही आवश्यकहै. तिनमें प्रथम ऋत्विजोंकाही साझावर्णनकरतेहैं-यथाहमनुः(ऋत्विजःसमवेतास्तुयथा सत्रेनिमंत्रिताः। कुर्युर्यथार्हतत्कर्मगृह्णीयुर्दक्षिणांतथा॥ ऋत्विग्यदिवृतोयज्ञेस्वकर्मप रिहापयेत्। तस्यकर्मानुरूपेणदेयोंऽशःसहकर्तृभिः॥ दक्षिणासुचदत्तासुस्वकर्मपरिहा पयन्। कृत्स्नमेवलभेतांशमन्येनैवचकारयेत्॥ यस्मिन्कर्मणियास्तुस्युरुक्ताःप्रत्यंगद- क्षिणाः। सएवताआददीतभजेरन्सर्वएववा॥ रथंहरेतचाध्वर्युर्ब्रह्माधानेचवाजिनम्। होतावापिहरेदश्वमुद्गाताचाप्यनःक्रये॥ सर्वेषामर्द्धिनोमुख्यास्तदर्द्धेनार्द्धिनोऽपरे। तृतीयिनस्तृतीयांशाश्चतुर्थांशाश्चपादिनः) अर्थात्-एक तो यह नियम है कि ऋ- त्विज् नाम होता लोग यज्ञमें बुलाये तथा इकट्ठे मिश्रीभूत सभीलगाये हुये जैसे जैसे कामोंमें नियुक्त होकर अपने योग्य कर्म करें तैसेही प्रत्येक दक्षिणा लेवें.किंतु जिस जिसकर्मकी जो नियत दक्षिणा शास्त्रविहित हो तिसके करने वाले वेही पावें परंच यदि कोई ऋत्विक् यज्ञमध्ये वरणी होजाने पीछे थोड़ा कर्म करिचुकने पर उस अपने कर्मको बीमारी आदि हेतुसेही छोड़िदेय तिसको कि हुये कर्मके अनुरूपअंश उसीनियत दक्षिणामें से अन्यकर्ता लोगोंसे विचार करवाकर जितना उचितहो सब के साथ देनायोग्यहै अर्थात् इसका अंश देकर शेष उसको दियाजाय जिसनेइसके पलटे कर्म कियाहो कदाचित् माध्यंदिनसवनादिकर्मों में दक्षिणा दे देने योग्यउस काल पर दक्षिणाओं के देचुकने में यदि कोई ऋत्विक् सिर्फ़ दैवीगति बीमारी आदि से निज कर्म त्यागै तो यह पूराअपना अंश पावै और वह शेपकर्म औरसे कर- वायाजाय तिसको फिर यजमान देवै अब इसबातमें संदेह खड़ाकरते हैं कि-अग्न्या- धानआदि जिस जिसकर्मकी प्रत्यंग दक्षिणा जो जो शास्त्रविहित कही हो सो मो उन्हीं कर्मों के करनेवाले जुदी जुदी लेलेवें यद्वा सब ऋत्विक् सभी दक्षिणा मिल-

करबाँट करैं-इसी संशय का सिद्धांतरूप निर्द्धारण आगे दो श्लोकों से अबकरते हैं कि किन्हींएक साखियों की आम्नाय में यहबात विश्रुतहै कि आधान कर्मसमय अध्वर्यु को रथ दियाजाय एवं ब्रह्माको चालांक घोड़ाएवं होताको भी घोड़ा और उद्गाता को सोमक्रय कर्म मध्ये (अनस्) किंतु छकड़ा गाड़ी सोम ढोउने वाली दीजाय-सो इसउक्त व्यवस्थाकी सामर्थ्य से तौ जहां ऐसा नियम अंगीकार कियाजावे तहाँ उसका वही प्रकार होना योग्यहै कि जिस जिस कर्मके संबंधमध्य जो जो नियत दक्षिणा विश्रुतहो सो सो उसी कर्मका कर्त्ता लेवे-परंतु जहाँ सबही का एकत्र दाक्षिणा संचितहोकर बांट करनापरै या कोई एक द्रव्य जोकुछ सबके अर्थसे सामान्य प्राप्त हुआहो तिसकाभाग हो सकने वाला नियम आगे कहतेहैं कि सबमें मुख्य ऋत्विक् अर्द्धी नाम आधे के अधिकारीहैं-उस अर्द्ध सेभी अर्द्ध के अधिकारीउनसे अपरदूसरे दर्जावाले ऋत्विक् जानो-तृतीय दर्जा के ऋत्विक् उसी अर्धसे तृतीय भागपाने के अधिकारी हैं-चौथे दर्जाके ऋत्विक् उसी अर्द्धका चौथाईभाग पाने के अधिकारीहैं-अब-इसउक्त अर्थ का स्पष्ट ब्यौरा समुझौ किंतु (ज्योतिष्टोमेनतंशतेन दीक्षयंति) इंत्यादि श्रुतिवाक्य से यह बात पाई जाती है कि जिस यज्ञ में समस्त ऋत्विज् लोगों को दक्षिणा पूरी एक सौ गौवें कल्पितहुई हों तिसमें कितनीगौवें किसको मिलैं ऐसे संशय पर यह नियमविशेषभी आरोपित कियेदेते हैं कि जैसे होता आदि प्रायःसोरह ऋत्विक् हुआ करते हैंऔर उनमें चार दर्जा के चार चार होते हैं अर्थात् पहले मुख्य ऋत्विज्-होता१ अध्वर्यु२ ब्रह्मा ३ उद्गाता ४ इन चारों काहक्क उनमें आधेकी ४८ गौवेंहुईं यद्यपि ठीकआधे पूरम्पूर पचासहोने योग्यथे परअड़तालिसभीपचासकेहीपासहैं और उन्हींसे तुल्यात्मक भागभी लगसक्ताहैकि बारहबारह चारों ऋत्विक् बांटिलें (यहीबात कात्यायनके वाक्यसे अगाड़ी कहीं निश्चितकरी जायगी) इनके सिवाय द्वितीय कक्षावाले ऋत्विज्लोग. मैत्रावरुण१ प्रतिप्रस्थाता २ ब्राह्मणाच्छंसी ३ प्रस्तोता ४ ये चारों उसमुख्यार्धसेभी आधाभाग २४ गौवें पाने के अधिकारी हैं और इनके आपसमें बराबर छचौक चौबीसवाला भागहोकर छे छे हाथआवेंगी—इनके सिवायतृतीय कक्षावाले ऋत्विज्लोग. अच्छावाक् १ नेष्टा २ अग्नीध्र३ प्रतिहर्त्ता ४ यह चारों उसी आधेकी तिहाई भागपाने के अधिकारीहैं कि जितना अर्धभाग मुख्यऋत्विजों कोमिलचुकाहै अर्थात अडतालीस की तिहाई सोरहगौवें इनको मिलें तिनमें चारचार चारोंकाबराबर भागआपसमेंफिरहो—इन के सिवायचौथी कक्षावाले ऋत्विज्लोग. ग्रावस्तुत १ उन्नेता २ पोता ३ सुब्रह्मण्य ४ यहचारों उसी अर्धका चौथाई भाग बारह गौवें पानेके अधिकारीहैं फिरआपस में बराबर भाग तीनतीन गौवें हाथआवेंगी इसरीतिसे यज्ञोक्तसोरह ओहदेदारोंको सौ

गौवोंका बटवाराउनके साथकी सामग्री सहित पूरंपूरहोना योग्य है और गौवों के सिवायजो कुछ नगदी जुदीहो सोभी इसी रीतिसे सौभाग पहिले कल्पित करकेसब को बांटिदीजाय—और जो यज्ञस्थ ऋत्विज् ओहदेदार कहीं यज्ञोंके बड़प्पन करके दूने तिगुने आदि नियत हुयेहों तौभी इसी कल्पना के अनुसार दक्षिणा भागकल्पित होसक्तेहैं (दृष्टांत) जहांसोरह के बत्तीस ऋत्विज् बरणी कियेजायँ तहांदक्षिणा के भी दोसौ अंशकल्पना करके भागलगायाजाय यद्वाएकसौ अंशोंसे भी भागलगाना दुर्गम नहींहोगा क्योंकि जिनको बारह बारह अंशपहले समुझायेगये तिनको यहां छेछे अंश और जिनको वहां छेछे कहे तिनको यहां तीनतीन इत्यादि लेखाजोखापूरा करलेनेसे सिद्धांत है कुछऔर नहीं--यहांव्यवस्था जो कुछ (सर्वेषामर्द्धिनोमुख्याः) इत्यादि मनुके वाक्यपर विस्तार सहितलिखीगई तिसका डौलमात्र इस अग्रोक्तसूत्र से कात्यायन भी दर्शातेहैं-यथा(द्वादशद्वादशाद्येभ्याषट्षट्द्वितीयेभ्यश्चतस्रश्चतस्रस्तृतीयेभ्यस्तिस्रस्तिस्रश्चतुर्थेभ्यः)अर्थात्-जहांहोताआदि सोरहऋत्विजहों तहां एकसौ गौवें यद्वा रोकदक्षिणा के सौ अंशकल्पित होकर उनमें बारह बारह अंशपहले होता आदि उत्तमदर्जा की चौकड़ीवाले चारों ऋत्विक्पावें एवंछेछे अंश द्वितीय कक्षाकी चौकड़ीवाले चारों ऋत्विक्पावें एवं चार चार अंश तीसरी कक्षाकी चौकड़ी वाले चारों ऋत्विक् पावें एवंतीनतीन अंशचौथे दर्जाकीचौकड़ीवाले चारों ऋत्विक्पावें-मनुने-संपूर्ण उक्तव्यवस्था का अतिदेशभीदर्शायाहै-यथा (संभूयस्वानिकर्माणि कुर्वद्भिरिहमानवैः। अनेनविधियोगेनकर्तव्यांशप्रकल्पना)अर्थात्-गृह निर्माणआदि अपने कर्मोंको संसारमें(संभूय) नामसाझे मिलकर करतेहुये शिल्पीऔर नट नर्तक आदि मनुष्योंको इसउक्त विधिके योगसे निजलाभों मध्येअंशकल्पना करनी योग्यहै-इसकथनका यहआशय नहींघटताहै कि निपट उनकामोंमें भी सोरहकर्त्ता तिनमें चारकक्षा और सौ अंशहोंक्योंकि जुदे२कामोंकी परिपाटी लोकप्रसिद्ध अपनी जुदी२ होतीहै फिर यज्ञकेही तुल्य विधान शिल्पकामों या नटनर्तकआदि कामोंमध्ये क्योंकरमानाजासक्ताहै परंच इसकाआशय सिर्फ़इतना है किजैसे यज्ञवालेओहदेदारों की उत्तमता मध्यमताआदिके अनुसारउनको उत्तममध्यमआदि भागमिलने कहेगये तैसेही अन्यत्रभी साझियोंमें कर्मज्ञोंके गुणागुण पर्यालोचन करिकेकर्मगुणके अनुसारलाभधनके अंशपावेंसो यहऐसे साझेका चर्चाहै कि जिसमें किसीसाझीको कुछ द्रव्य लगानेकी ज़रूरत वणिजव्यापारके अनुरूपनहो किंतुकेवलगुणकर्मआदि शारीरिक उद्योगों से कुछसाझलाभहुआहो(मथकरिकर्मनमुत्थानम्)साझेहोकरखेतीकरनेवालोंकीव्यवस्थाकोरहस्पानिनेदर्शायाहै-यथा(वाह्यबीजात्ययाद्यन्यक्षेत्रहानिःप्रजायते नेनैवमाप्रदातव्यासर्वेषांकृषिजीविनाम्)अर्थात्- (वाह्य) हलवृषभआदि बीजबोनेया-

ग्य इनकेजिस किसी साझीकी ओरसेन होनेकरकेखेतीकीहानि खड़ीहोवैतिसहीकरके वहसब साझियोंकी हानिदेनेयोग्य है-इसमेंबाह्य तथा बीजमात्र कहने से खेतीकेसब उपकरण जोजो आवश्यक समुझेजाते हों तिनकेनिपट न देनेयद्वा देरकरके देनेयद्वा अंगभंग देदेनेका सिद्धांतहेतु गर्भित प्रकटकियाहै कि जिनकेबिना कोईभांति खेतीमें हानिहोनी संभवहो-इसीलिये-साझेमें निकम्मा बैल देनालेनाभी प्रतिषिद्धहै-तथाच बृहस्पतिः(कृशातिवृद्धंक्षुद्रंचरोगिणंप्रपलायिनम्।काणंखंजंचनादद्याद्वाह्यंप्राज्ञःकृषीवलः)अर्थात्-चतुरकिसान किसीसाझेमें वृषभआदि कोईऐसा बाह्यपशु न लेवै या न देवैजोकि दुर्बल अतिबूढ़ाहो बहुतछोटाहो रोगीहो हलको छोड़िभागताहो कानाहो लूला लँगड़ाहो क्योंकिइनसे खेतीमें हानिहोनी संभवहै इसीलिये साझाभीउनके साथकरै जो अपनेसे प्रत्येकबातमें बराबर समुझेजायँ-तदप्याहबृहस्पतिः(वाह्यकर्षकबीजाद्यैःक्षेत्रोपकरणेनच। येसमानास्तुतैःसार्द्धंकृषिःकार्याविजानता) अर्थात्-जेकोई खेतीकरनेवाले.बाह्य.कर्षक.बीजआदि औरभी जोखेतकीसामग्रीबहुतज़रूरीहों तिस से संपन्नअपने तुल्यजिनको समुझै तिनकेसाथ खेतीकासाझाकरै जिस्सेपीछेहानिका पछितावा यद्वा औरकोई झगड़ानहोसकै-हानिकेहीध्यान से अग्रोक्तखेत न जोतैऐसा नियम बृहस्पतिने दर्शायाहै-यथा(विवीतनगराभ्यासेतथाराजपथस्यच।ऊषरंमूषकव्याप्तंक्षेत्रंयत्नेनवर्जयेत्)अर्थात्-विवीतनाम रखाकेस्थानवाला खेत.एवंबस्तीके समीप वालाखेत.एवं राजमार्गके समीपवाला खेत-और ऊषरभूमिका खेत जिसमेंरेह लोनी आदि विकारोंसे बोयाहुआ बीज न जमताहो.मूषकव्याप्त जहां मूसाबहुत लगताहो इनखेतोंको जहांतक होसकै बड़ेयत्नसहित वर्जितरक्खें किन्तुजोतैं बोवैंनहीं या यदि बोयेहों तो रखवारी अच्छीरीतिसे कर्त्तव्यहोगी (अथशिल्पिनांसमुत्थानप्रसंगः)यहांशिल्पी लोगोंका साझावर्णन करैंगे इसलिये पहले शिल्पियोंका रूपलक्षण प्रकटकरते हैं-यथाहबृहस्पतिः(हिरण्यकुप्यसूत्राणांकाष्ठपाषाणचर्मणाम्। संस्कर्त्तातत्कलाभिज्ञःशिल्पीप्रोक्तोमनीषिभिः) अर्थात्-हिरण्य, सोना,चांदी और कुप्यनाम रांगासीसा पीतल आदि और सूत और लकड़ी और पत्थर और चमड़ाइत्यादि वस्तुओंके संस्कारकरने वालेतथा इन्हीं वस्तुओंकी विशेषकला जाननेवालेयहसब शिल्पीनाम दस्तकारकारीगर कहलाते हैं (यहां संस्कर्त्ता और कलाभिज्ञमें यहभेदहै कि जैसे एकचमार चमड़ेको रंगतिआदिसे पकाकर सिद्धकरताहो तोयह संस्कार करनेवाला ठहरा और मोचीआदिजो उसचमड़ेको विशेषकामोंमें लगानेवाली विद्याजानैं वे उसकर्मकेकलाभिज्ञठहरे इसीप्रकार सबका व्योरा समुझलेना किन्तु मनीषीलोगोंने सामान्य और विशेषकाम के भेदसे सभीमेंदोभांति वर्णनकरी हैं-इनकेसाझेका वृत्तांतभी बृहस्पतिजीदर्शातेहैं-यथा(हेमकारादयोयत्राशिल्पंसंभूयकुर्वतेः। कर्मानुरूपंनिर्वेशंलभेरंस्तेयथां

शतः)अर्थात्-सुनारआदि कोईकारीगर लोगजहां अनेकसाझे होकरकामकरैं तौ वे अपनेअपने कामके अनुरूपउसीलाभमेंसे अंशपावैंया जैसाउनका भागउसमेंनियत हो-कात्यायनजी इसबातका स्पष्ट वर्णनकरतेहैं कि इतनाइतना भागपावैं-यथा(शिक्षिताभिज्ञकुशलाआचार्यांश्चेतिशिल्पिनः।एकद्वित्रिचतुर्भागान्हरेयुस्तेयथोत्तरम्)अर्थात्-प्रत्येकभांतिके शिल्पीलोग चारदर्जा समुझिलेने किन्तुएक शिक्षित जो हाल सीखेहों १ दूसरे अभिज्ञजोआशयको समुझतेहों २ तीसरेउनसेभी कुछउत्तमकुशल प्रवीण समुझेजाते हों ३ चौथे आचार्यकहिये मिस्तरीजो इनसबसे कामलेनेमें अधिष्ठाताहों ४ येसब यथाउत्तरक्रमसे एकाधिक भागहरें-किन्तु जितनेसाझी शिक्षितहों वे सब केवल एकएक भागपावैं-एवं जितनेसाझी अभिज्ञउनसे श्रेष्ठहों वे सबदोदोभाग पावैं.एवं जितनेसाझी कुशलप्रवीण समुझेगयेहों वे सबतीन तीनभागहरैं. एवंजोजो साझी आचार्यहों वे सबचार चारभागहरें-पर यहभाग विधानभी उसदशामें संभाव्य है कि जहांकाम अपना अपनासबहीने बराबरदिनों कियाहो किन्तु बीमारीआदि हेतुओंसे जो जिसने हरजकिया हो सो सबउसके ज़िम्मेसमुझौ जैसाऊपरयज्ञप्रक्रिया मध्ये वर्णनहुआथा-अब-उन कारीगरोंका विभाग आगेकहते हैं कि जोजोसभीपके महल तालाव कूपआदि निर्मित करनेवाले राजबढ़ई आदि साझेमिलकर कामकरैं यथाहबृहस्पतिः(हर्म्यंदेवगृहंवापिवचिकोपस्कराणिच।संभूयकुर्वतांतेषांप्रमुख्योद्व्यंशमर्हति)अर्थात्-बड़ामहल यद्वा देवमंदिर या सामान्य कोई कच्चा पक्का घरअथवा और कोईवाचिक उपस्कर प्याऊकूप तालाव आदि जो नैत्तिक वेतनविना ठेकेदारीआदि रीतोंसे परस्पर कतिपय कारीगरोंने मिलकर निर्मितकिया हो जिसका वेतनद्रव्यइकट्ठा मिलनेका अधिकार किसीएकही पर आरूढ़हो तौ बँटवारेका यहडौलहै किअन्य साझियोंकी अपेक्षा सिर्फ़मुखिया को दोभाग पहुँचैं और सबको एकएकभाग यद्वा जैसा उनके आपसमें कुछ नियमठीक हुआहो तैसाबाँट कियाजावै (अथनर्तकादीन विशेषः) यही दोभागोंवाला नियम किंचित् और विशेषता सहित नट नर्तक आदिमें अतिदेशकरतेहैं-यथा (नर्तकानामेषएवधर्मःसद्भिरुदाहृतः। तालज्ञोलभतेऽध्यर्धंगायनास्तुसमांशिनः) अर्थात-यहीधर्म जो राज बढ़ई आदि कारीगरके मध्ये कहा सोई नर्तक लोगोंमें भी सत्पुरुषोंनेउदाहृत किया किंतु जो कोई सबका मुखियाहो वह दो भागलेवै-बलिक इतनी और विशेषताहै कि उसके नीचे जो तालज्ञ कहातेहों वे सब डेढ़ डेढ़भागपावैं शेष गायन लोग एक एकअंश सभी बराबरपावैं (अथचौगणमंद्त्यानप्रसंगः) तत्रबृहस्पतिः (स्वाम्याज्ञयातुयच्चौरैःपरदेशात्समाहृतम्। राज्ञेदत्त्वातुषड्भागंभजेयुस्तेयथांशतः॥ चतुरोऽंशान्भजेन्मुख्यःशूरस्त्र्यंशमवाप्नुयात्। समर्थस्तुहरेद्द्व्यंशंशेषास्त्वन्येसमांशिनः)अर्थात्-चोरोंने निजराजाकी अनुज्ञापाकर जो कुछ

द्रव्य पराये राज्यसे समाहृत कियाहो तिसमें पहले षष्ठांश राजाको देकर वे सब निज निज ठहिरे अंशों के अनुसार बाँटिलेवें-यद्वा राजाको षष्ठांशदेने पीछे उनमें सबका मुखिया चारभागलेय. जो जो और शूरमाहों वे सब तीन तीन भागपावें. जे कोई काम करसकनेमें समर्थहोंवे सब दो दो भागपावें. और जे सामान्य बोझढोवा रखवारे आदि साथीहों वे सब एकएक अंशपावें-कात्यायनजीने सिर्फ इतना अंतर इसमें किया है कि राजभाग केवल दशवाँभाग रक्खा-तद्यथा (परराष्ट्राद्धनंयत्स्याच्चौरैःस्वाम्याज्ञयाहृतम्। राज्ञेदशांशमुद्धृत्यविभजेरन्यथाविधि ॥ चौराणांमुख्यभूतस्तुचतुरोंऽशांस्ततोहरेत्। शूरोंऽशांस्त्रीन्समर्थोद्वौशेषास्त्वेकैकमेवच ॥ तेषांचेत्प्रसृतानांचग्रहणंसमवाप्नुयात्। तन्मोक्षणार्थेयद्दत्तंवहेयुस्तेयथांशतः) अर्थात्-कात्यायनजी यह कहतेहैं कि चोरोंने निज राजाकी अनुज्ञासे बैरियोंके राज्यमेंसे जो कुछ द्रव्यहराहो तिसमें राजा को दशांश पहिले देकर जैसी ठहिरीहुई विधिसे सभी आपस में बँटवाराकरैं यद्वा राजाको दशांश देनेपीछे उनका मुखिया पूरे चारभागहरै शूरमाको फिर तीनभाग दियेजायँ. समर्थ जो उसकामके उद्योगमें विख्यात शक्तिमानहो वहदोभागपावै शेष और सब चोर एक एक भाग (यहाँ जो यह अंतर पायागया कि राजाको बृहस्पति ने षष्ठांशलेना कहा कात्यायनजीने सिर्फ दशवाँभागलेनाकहा सो इस द्विविधामें यह समाधान है कि जहाँ चोरोंने अत्यंत कठिनाईसे धनहराहो तहाँ राजा सिर्फ दशांश लेय जहाँ चोरोंको सुगमतारहीहो तहाँ राजा छठा भागहरै यद्वा राजाको उन चोरों की सहायताकरनीपरीहो तहाँ भी षष्ठांशलेय-कदाचित् उनके चोरीमें प्रवृत्तहुये चोरोंमेंसे कोई एक पकड़ाजाय तिसके छूटिआने या छुड़ाइलानेके निमित्तमें जो द्रव्यका व्ययकरनापराहो सो सब चोर मिलकर निज निज अंशोंके अनुसारभरें-किंतु सिद्धांत इसका यह कि पकड़ेचाहै दोही एक चोरगयेहों तिनके मध्ये जो कुछ खर्चपरे सो सब साझी मिलकरभरें और निज अंशोंके अनुसारभरें दृष्टांत जैसे मुखिया चार भागलियाकरताहो तौ इसखर्चमें भी चारभागभरै इसीप्रकार सबकोजानौ-इसव्यवस्थामेंसर्वत्र (जो कुछ अंश कल्पना वर्णनहुई सो उसदशा में आवश्यकजानौ जब कुछ पहिलेसे परस्पर सबके अंशों मध्ये नियम न ठहिराहो-तथाह कात्यायनः (वणिजांकर्षकाणांचचौराणांशिल्पिनांतथा। अनियम्यांशकर्तॄणांसर्वेषामेवनिर्णयः) अर्थात्-वणिजों तथा किसानों तद्वत् चोरों और शिल्पीयों नट नर्तक पर्यंतों सबका निर्णय यह अनियम्यकर्तॄयों का समुझना जिनमें नियम ठहिराये विना साझी होकर कर्म करनेलगेहों-अर्थात् सबके भागों के परिमाण जहाँ परस्पर पहिले जो जो निश्चित हुयेहों तहाँ वेही भाग ठीकजानौ २७० ॥

यह संभूय समुत्थान विधिका प्रकरण मात्र यद्यपि साझेकेही नामसे विख्यात है

परंच साभियोंका धन हरने या कुछ हानिकरने आदि झगड़े और प्रायः स्थलमार्गके उतारा आदि राजकर की चोरीहोने रूप झगड़े और राज कल्पित अर्घसे न्यूनाधिक विक्रयकरने और प्रतिषिद्ध चीजोंका विक्रयकरने आदि बहुधा द्वंद्वरूपी झगड़ोंके प्रभावसे इस प्रकरणको भी फौजदारी के प्रकारों में समुझना-क्योंकि-फौजदारीका प्रासंगिक चर्चा यद्यपि जहाँ तहाँ सीमादि विवादोंमें अन्यत्रभी उपद्रवके अनुसार दंड प्राप्तियोग्यहोतारहा-तथापि ठेठ फ़ौजदारीके विवादोंवाला रूपक द्यूत प्रकरण की आदिसे प्रारंभहुआथा सो ग्रंथकी समाप्ति तकही वर्तैगा-इसहेतुसे इस प्रकरण को भी नुक़सान रसानी आदि फौजदारी से व्यतिरिक्त नहीं समुझना २७० ॥

इतिसंभूयसमुत्थानाख्यप्रकरणं ॥

यह संभूय समुत्थान संज्ञक व्यापारी आदि साभियोंका विवाद प्रकरण एक इसी इक्यासी संख्याके परिच्छेदसे समाप्त हुआ ॥

अथस्तेयाख्यविवादपदविवेकोनामद्व्यशीतितमःपरिच्छेदः ८२ ॥

इस बयासी संख्या के परिच्छेद में प्रत्येक भाँति चोरोंके लक्षण और सब चौर्य कर्मों के प्रकार और उन चोरोंके अनेकधा दण्ड वर्णनहोंगे बल्कि चोरीके प्रसङ्गसे कुछ और भी आवश्यक बातें मिश्रीभूत होंगी ॥

(स्तेय) नाम चोरीका यह प्रकरण वर्णन करते हैं इसहेतु पहले चोरीका स्वरूप ज्ञानभी आवश्यक जानि उसका व्योरेवार लक्षण मनुने दर्शाया है-यथा (स्यात्साहसंत्वन्वयवत्प्रसभंकर्मयत्कृतम् । निरन्वयम्भवेत्स्तेयंहृत्वापह्नूयतेचयत्) अर्थात् किसीद्रव्य अथवा स्त्री बालक आदि प्राणीका हरिलेना या कुछ और कुकर्म करना जो कुछ मालिक या रखवाले आदि अन्य मनुष्यों के सन्मुख सहसा जोरावरी साथ कियाजाय सो तौ साहस कर्म कहाताहै और लोक में डकैती लूटि आदि उसकेनाम भेद अनेकहैं-परंच- चोरी वहकहलाती है जो इसउक्तप्रकार से विपरीत निरन्वयहो किंतु मालिक या रखवारे आदि के परोक्षमें या छिपकर जो कुछ कियाजाय (या) प्रत्यक्षमें करचुकने पर जो भयसे निजकरना नहीं मानै किंतु मैंने नहींकिया यह कहकर निपटनकार खींचे तौभी चोरीमेंगणनीय है फिर साहस नहीं समुझना-इसीप्रकार-नारदने भी साहस और स्तेयके संबंधमें जो अंतर है सो कहतेहुये छलमे धन हरनेकोभी चोरी निश्चित किया है-यथा (तस्यैवभेदःस्तेयःस्याद्विशेषस्तत्रतूच्यते। आधिःसाहसमाक्रम्यस्तेयमाधिःछलेनतु)अर्थात्-उसी पूर्वोक्त साहसकर्म काहीएकभेद चोरीहोतीहैउस चोरीमेंभी कर्म भेदसे विशेष लक्षण कहा जाताहै कि (आधि) नामधन हरनेरूपपीड़ा जो कदाचित् जोरावरीसाथ करीजाय तब तौ साहस नामहै परन्तुजसको छिपकर हरना केवल चोरीकहीजाती है-इसीबातका आशय लेकर फिर भी नारदजी

का रूप वर्णन करतेहैं-तथाच(उपायैर्विविधैरेषांछलयित्वापकर्षणम्। सुप्तमत्तप्रमत्तेभ्यः स्तेयमाहुर्मनीषिणः)अर्थात्-एषांदृश्यधनादीनां किंतु लोक में जो नानाभांति पदार्थ रूपधनधान्य आदि द्रव्यदिखाई देतेहों तिनका नानाभांति उपायों से छलिकर भी अपकर्षण करना बुद्धिमान् लोग चोरी कहते हैं तथैव सोते के पासते हरिलेना या मतवारे से गफलत में अपकर्षण करना तथा प्रमत्तोंसे ठगिलेना यह सब चोरी के स्वरूपजानौ-अब निचले मूलश्लोकोंसे योगीश्वर आप सभी चोरोंके पकड़ने बलिक तहक़ीक़ात उनकी होनेकाप्रकार वर्णनकरते हैं॥

(विविधचौराणांज्ञानोपायः)

ग्राहकैर्गृह्यतेचौरोलोप्त्रेणाथपदेनवा। पूर्वकर्मापराधीचतथाचाशुद्धवासकः २७१॥
अन्येपिशंकयाग्राह्याजातिनामादिनिह्नवैः। द्यूतस्त्रीपानसक्ताश्चशुष्कभिन्नमुखस्वराः २७२॥
परद्रव्यगृहाणांचपृच्छकागूढचारिणः। निरायाव्ययवंतश्चविनष्टद्रव्यविक्रयाः २७३॥

ऐ०—ग्राहकों करके चोर पकड़ाजाताहै लोप्त्रसे वा पदसेही-तथैव पहले कर्मोंका अपराधी बलिक अशुद्ध बासभी-अर्थात्-चोरी होजानेपर या होतेहुये जिसे मनुष्य चोरहै यह कहिने लगते हैं सो थानेपाल आदि राजपुरुषों यद्वा अन्यपकड़ने वालों करके पकड़ाजाता है परंच (लोप्त्र) नाम हरे हुये वस्त्रपात्रआदि चोरीके चिह्नसे या खंता वा कमंद आदि चौर्यकर्मके उपकरणोंवाले चिह्नसे पकड़िये यद्वा (पदसे) हीअ-र्थात् चोरी होजानेके दिनसे लेकर जहांताई चोरीकापग रूप खोजपायाजाय तिसके भी अनुसार पकड़ना योग्यहै यद्वा खोजके न मिलनेपरभी उसका पकड़लेना योग्यहै जो पहले कभी चोरीवालेकामोंमें अपराधी ठहिराहो तद्वत उसकाभी पकड़नायोग्यहै कि जिसकावास ठौर ठिकाना नामालूमहो २७१ जब कि इनपरभी कुछ पतानचलताहो तब अग्रोक्त लिंगचिह्नोंवाले और भी अनेक लोगकेवल शंकासेही पकड़ेजानेयोग्यहैं अर्थात् जे कोई अपनीजाति नामआदिसे इन्कार करतेहों किन्तु असलीजाति छिपा-तेहों या निज मुख्यनामको न अंगीकार करतेहों (दृष्टांत)जैसे मैं अहेड़ीजाति नहींहूं मेरानाम कलुआनहीं है और आदि शब्दके भावार्थ से निजदेश ग्रामनिवासस्थान कुलनामआदि स्वरूपज्ञानवाले चिह्नोंको छिपातेहों या द्यूतक्रीड़ामें अत्यंत तत्पररहते हों या वेश्यादि परायस्त्री जनमें अति संसक्त फिरतेहों यामद्यादिपान में अहर्निश जे लयलीन विचरतेहों ते सब दुर्जनमात्र पकड़ेजायँ और भी जबचोरोंके अन्वेषणकर्ता लोग जिनकोंकिंचिन्मात्र भी यहबूझैं कहाँरहिताहै क्या करताहै इत्यादि पूंछने मात्रसे मुहँ सूखिजायँ या घाँटीकास्वर फाटिजाय हिचकी लेकरबोलें यद्वा गूँगेसे होजायँ यद्वा माथेमें प्रस्वेद टपकने लागे या कुछ उलटी सुलटी वे तालमेल बातें कहिनेलगें तोयह लोगभी पकड़नेयोग्यहैं २७२ तद्वत् जे कोई निःसंबंध मनुष्य किसीउपस्थित कारण

विना परायेधन पूँजी का वृत्तांत और घर भीतर के स्थान भेद कोष्ठोंकी रहाइस आदि जिस तिसते सदैव बूझाकरतेहों कि अमुकामुक नामी घरवालोंके कितने धन की आस्तिहै और किस किसके अधीन पूँजी रहती है कमानेवाला इनका कौन विदेशमें व्यवस्थित है घरके अमुकामुक मुखिया किस कोठे वा चौवारेमें निवासरखतेहैं इत्यादि भेद हरनेवालेभी उस वक्त पकड़ेजायँ तद्वत् जे कोई फेरीदेने आदि निमित्तों करके अपनेमुख्य शरीर वेशोंको छिपातेहुये अपूर्व कुछ वेशांतर चित्र विचित्र आदि धारणकिये विचरतेहों पकड़ेजायँ तद्वत् जे कोई लाभागम योग्यमार्गोंके न होनेपर भी बहुतसा व्ययकरतेहों या जे कोई जीर्णवस्त्र पुराने फूटेपात्र आदि अज्ञात स्वामिक द्रव्योंको सदैव वेचाकरतेहों इत्यादि नानाभाँतिसे जे कोई और इसीप्रकारवाले चौर्य चिह्न विशेषोंसे संयुक्त समझेजातेहों वे भी सब इस निर्णय की अपेक्षा मध्ये चोरोंकेही तुल्य पकड़ेजाकर साम दाम दंडभेद आदि नानाभाँतिकी युक्तियोंसे परीक्षाहोनी योग्यहै कि इनमें कौन चोर कौन साधूहै और चोर समुझाजानेपर भी ठेठ इसी चोरीका यह चोरहै या नहीं २७३॥

अधि०—परीक्षाकरना इसी निमित्तसे आवश्यक है कि चोरोंके धोखे कोई साधूभी न चोर समुझाजाय क्योंकि ऊर्ध्वोक्त चोरीके चिह्न जो जो वर्णनहुये प्रायः साधुवों से भी उन्हीं चिह्नोंका संबंध कभी होताहै अर्थात् निर्विकल्प नियम नहींहै कि ऐसे चिह्न निपट चोरोंसे संबंधरखतेहों-एतदेवाहनारदः (अन्यहस्तात्परिभ्रष्टमकामादुत्थितंभुवि । चौरेणवाप्रतिक्षिप्तंलोप्त्रंयत्नात्परीक्षयेत् ॥ असत्याःसत्यसंकाशाःसत्याश्चासत्यसन्निभाः । दृश्यंतेविविधाभावास्तस्माद्युक्तंपरीक्षणम्) अर्थात्-लोप्त्र नाम चोरीका खोज जो कुछ थोड़ा वहुतकहींसे हाथआयाहो तिसको वड़ेयत्नोंसे परीक्षाकरे कि यहवस्तु क्या तो और किसीकेहाथसे गिरपरीहुईइसकेहाथपरीहो तिसको इसने वेची या वेचतेहुयेपकड़ागया यद्वा स्वतः पृथ्वीसेदवीहुई निकलिआईहो तिसकोपाकर लियेजातेहुये चोर तुल्य पकड़ागया यद्वा किसीकेघर चोरनेही फेंकीहो तिसकोखोजी पुरुष लेकर आयाहै इत्यादि नानाभाँतिसे विचार उसका करै किंतु खोजरूप चीजके संसर्गसेही संसर्गी चोर नहीं मानाजासक्ताहै कि जवतक उसपर चोरीका सबूत सबै मार्गसे न पहुँचै क्योंकि-प्रपंचमय संसारमें वहुतेरे झूठे वेशवाले सच्चेसाधूसे प्रतीत होतेहैं झूठापन उनका कपटसे पहिंचाना नहींजासक्ता और वहुतेरे सच्चे साधूलोग अपने भावोंको छिपायेहुये झूठेसे मालूम होतेहैं इत्यादि विविधाभाव दिखाईदेते हैं तिसहेतुसे परीक्षाकरनी योग्यहै-विशेषकर मनुष्योंकी कहावतिपर भी कुछ विश्वास को अवकाश नहीं मिलसक्ताहै क्योंकि प्रायः ईर्ष्याद्वेष आदिभावोंसे मनुष्योंकेपरस्पर वैरहोतेहैं-अतएवोक्तं (नपरस्यापवादेनपरेषांदंडमाचरेत् । आत्मनावगतंकृत्वाबध्नी

यात्पूजयेत्तुवा)-ऊपर जैसे चोरोंके अनेक चिह्न वर्णनहुये तैसे चोरी भी अनेकभाँति की समुझनी किंतु चोरीका कुछ एकरूप कोई नियत विशिष्ट नहींहै-तदाहनारदः— (उपायैर्विविधैरेषांछलयित्वाऽपकर्षणम्। सुप्तमत्तप्रमत्तेभ्यःस्तेयमाहुर्मनीषिणः) अर्थात्-किसी सोतेहुये मनुष्यसे या मादक वस्तुखाने पीनेवाले मतवारेसे या सिड़ीदीवाने आदि विक्षिप्तोंसे या विविधभाँतिके उपायोंसे छल करिकै सावधानों से भी वक्ष्यमाण द्रव्योंका अपकर्षण किंतु हरिलेना चोरीके रूप ये मनीषी लोग कहतेहैं(दृष्टांत) इनके शतधा हैं विस्तार जानि छोड़े गये लोकमें सब जानिलेउ (अथद्रव्याणांस्वरूपभेदानाहनारदः) चोरोंकरके हरने योग्य द्रव्योंके भी तीनभेद नारदने निर्मलता साथ ब्यौरेवार निरूपितकिये हैं-तथाच(मृद्भांडासनखट्वास्थिदारुचर्मतृणादियत्। शमीधान्यंकृतान्नंचक्षुद्रंद्रव्यमुदाहृतम्॥वासःकौशेयवर्जंचगोवर्जंपशवस्तथा।हिरण्यवर्जंलोहंचमध्यंव्रीहियवादिच॥ हिरण्यरत्नकौशेयस्त्रीपुंगोगजवाजिनः। देवब्राह्मणराज्ञांचविज्ञेयंद्रव्यमुत्तमम्) अर्थात्-मट्टीके वासन टाट चटाई आदि बिछावना आसन खाट पीढ़ी हाड़ हाथीदाँत आदि लकड़ी चमड़ा तृण घासफूसआदि (शमीधान्य) अर्थात् केवल उड़द मूँगआदि जो जो फलीके भीतर नाजहोतेहों (कृतान्न) जो जोलडुआ सतुवा रोटी आदि करेहुये अन्नहों यहसब क्षुद्र द्रव्यकहलातेहैं अर्थात्इनके हरनेसे छोटी चोरी कहीजातीहै. औरमध्यम ये कहलातेहैं. रेशमी और पशमीना छोड़िसूती आदि कपड़े तद्वत् गऊ हाथी घोड़ा छोड़ि सवसामान्य पशु और सोना चाँदी छोड़ि सव असामान्य धातु चीजें और यव धानआदि अन्नभी ये मध्यमद्रव्यहरेजाने करके मध्यम चोरी होतीहै.उत्तमद्रव्य इनकोजानो किंतु हिरण्य सोनाचाँदी.तथा रत्न और कौशेय नामरेशमकी जो चीजहों. स्त्रीमात्र सवसामान्य जोपराईहो.पुरुष बालकअज्ञान और विक्षिप्त आदि एवं बँधुआ यद्वा दासआदि हाथी गऊ.घोड़ा.या जो कोईचीज देवसंवन्धी तद्वत् ब्राह्मणकी या राजाकीयदिहो सोसवउत्तम द्रव्यहैं इनद्रव्योंकाअपहर्त्ता उत्तमचोरीका अपराधीहोता है-तथाचनारदः(तदपित्रिविधंज्ञेयंद्रव्यापेक्षंमनीषिभिः। क्षुद्रमध्योत्तमानांतुद्रव्याणामपकर्षणात्)अर्थात्-वहस्तेयकर्मयथाद्रव्यकी अपेक्षातीनभांति का समुझना किन्तु क्षुद्रमध्यम उत्तमत्रिविध द्रव्योंके अपहरणकर्मसे मनीषीलोगों ने त्रैविध्य इसकोकहा॥ (पुनरपिचौरस्वरूपाणांविशेषभेदा)बृहस्पतिने-सामान्य सभीचोरोंके दोभेद कल्पितकियेहैं-यथा (प्रकाशाश्चाप्रकाशाश्चतस्कराद्विविधाःस्मृताः। प्रज्ञासामर्थ्यमायाभिःप्रभिन्नास्तेसहस्रधा)अर्थात-एक प्रकाश तस्करजो प्रत्यक्षरहते चौर्य कर्मकरतेहों दूसरे अप्रकाशनाम लुप्तचोरजो निजआत्माको छिपाकर चोरीकरते हों ऐसे दो थोकोंमें फिर अपनी अपनी जुदीविलक्षण प्रज्ञा और सामर्थ्य और मायाओंकरके वेहीचोर सहस्रोंभांतिके भिन्नात्मक हुआकरतेहैं-इनदो

थोकोंमेंसे एक प्रकाशतस्कर लोगोंको बृहस्पतिजी दर्शातेहैं-यथा (नैगमावैद्याकितवः सभ्योत्कोचकवंचकाः।दैवोत्पातविदोभद्राःशिल्पज्ञाःप्रतिरूपकाः॥अक्रियाकारिणश्चैव मध्यस्थाःकूटसाक्षिणः। प्रकाशतस्कराह्येतेतथाकुहकजीविनः)अर्थात्-नैगमनामवणिजकरनेवाले जो जो कपटका वाणिज्यकरते हों.वैद्याकितव जो बनेहुये बैद्यकपटरूपहों राजसभ्य लोगोंके संबन्धसे उत्कोचकद्रव्य घूसआदिके बहानेकरके ठगनेवालेयद्वा घूसखानेवाले सभ्यजनभी.दैवी उत्पातोंका फलकपोल कल्पित कहनेवाले.भद्रा वा अभद्राजो विशेषमंगल साधुरूप या अमंगल विकटरूप धारणकिये विचरनेवाले पापोंसे धनहरते हों.चित्रकलाकर्म तसवीरआदि नानाशिल्पोंके जाननेवाले.प्रतिरूपकार बहुरूपी आदि अनेकजो जो तद्रूप औरोंकावेष चेष्टाआदि कल्पितकरते हों. अक्रियाकारिणः कुकर्मोंके करनेवाले.मध्यस्थजो प्रायःधनके दुर्लोभसे अनेकोंकेबिचवई वा दलालवनिकर एकपक्षीको ठगवाते हों.झूठी जालसाजीकी गवाहीदेनेवाले जो सदैव इसीकामका पेशारखते हों.कुहकजीवी किंतु जोजो (कुहक)माया इन्द्रजाल कपटफ़रेवसे उड़ीविद्या वा वरुआरी विद्याआदिसेआजीवनकरने वालेवरुआर तैलिकपंडे तथासेवड़े इन्द्रजालिक आदि अनेकजानो.यहसब इतने दुर्जीवीलोग प्रकाशचोर होतेहैं कुछगूढ़नहीं-नारदनेभी-इसीप्रकार इनकेलक्षण प्रकटकियेहैं-यथा-(प्रकाशवंचकास्तत्रकूटमानानृताश्रितः।उत्कोचकाःसोपाधिकावंचकाःपरयोषितः॥प्रतिरूपकराश्चैवमंगलादेशवृत्तयः। इत्येवमादयोज्ञेयाःप्रकाशास्तस्कराभुवि) अर्थात्-एक तौ(प्रकाशवंचक)जो प्रत्यक्षठगई वटमारीका पेशारखते हों कूटकर्मोंके करनेवाले जैसे कूटमुद्रा तांबे पीतलकी अशरफ़ी या राँगेका रुपया वा प्राणेश्वर आदि झूँठी औषधियाँ कल्पितकरैं यद्वा झूँठा साक्ष्यदेना आदि और किसीभाँतिका प्रपंच ऐसे नानाभाँति कूटकर्महोते हैं.अनृतभाषणयद्वा कपटचरित्रोंका व्यापारकरते हों.उत्कोचक जोजोकार्यियोंसे उत्कोचलेकर काम अयुक्तकरते हों.सोपाधिक जोजो धनवानोंको भयदेकर धौंसखाते हों.पराईस्त्रियोंको जे किसीप्रकारसे भी ठगतेहों.प्रतिरूप करनेवाले किन्तु भँडेले बहुरूपी भानमती नटनर्तकआदि.मंगलादेश वृत्तिवाले जोजो धनपुत्र लाभहोना आदि शीघ्रभावी मंगलरूप चापलोसीआदेशोंसे धनहरतेहों.इनको आदिलेकर और भी अनेक इसीभांतिके प्रकाशतस्कर धरतीमें विचरतेजानो किन्तुआशय इसकायह कि जोजो वणिजव्यापारी वैद्यआदि नारद वा बृहस्पतिवाले वचनोंमें दर्शायेगये तिनहीके बहाने वेषधारण करकेजेकोई परधनहरते हों तेसब खुल्लमचोरजानौकुछव्यापारी वैद्य आदिमात्रसबही चोरनहीं-इसीप्रकार-मनुनेभी ऐसेचोरोंको दर्शायाहै-यथा(द्विविधांस्तस्करान्विद्यात्परद्रव्यापहारकान्।प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्चचारचक्षुर्महीपतिः॥ प्रकाशवंचकास्तेषांनानापण्योपजीविनः।प्रच्छन्नवंचकास्त्वेतेयेस्तेनाटविकादयः॥उत्क

चकाश्चोपधिकावंचकाःकितवास्तथा। मंगलादेशवृत्ताश्चभद्राश्चेक्षणिकैःसह ॥ असम्यक्कारिणश्चैवमहामात्राश्चिकित्सकाः। शिल्पोपचारयुक्ताश्चनिपुणाःपण्ययोषितः ॥ एवमादीन्विजानीयात्प्रकाशांल्लोककंटकान्। निगूढचारिणश्चान्याननार्यानार्यलिंगिनः)अर्थइनकाउस स्थलमें देखनाजहां २११ की अधिकोक्ति पूरीहोने पीछेभी नृपाश्रयव्यवहारोंके सामान्यचर्चा मध्येमनुके पन्द्रहश्लोक अर्थोंसहित वर्णनहोंगे उनमेंयेही पांचपहिले आवैंगे क्योंकि मुख्यठिकाना इनकावहीहै पर यहांकेवल चोरीकेप्रसंगमें सवरूप लक्षणबहुधा चोरोंके इसहेतुसे दर्शायेहैं कियहचोरीका प्रकरणभी उसप्रकरणके आधीन है परस्पर दोनोंका सम्बन्धजानो-यहांतक यहलक्षणभेद प्रकाशचोरोंका दर्शाया-इनकेभी उपरांतएक दूसरे (अप्रकाश)नामलुकेहुये चोरों को व्यासजीने दर्शितकिया है-यथा (साधनांगान्वितारात्रौविचरंत्यविभाविताः। अविज्ञातनिवासाश्चज्ञेयाःप्रच्छन्नतस्कराः ॥ उत्क्षेपकःसंधिभेत्तापांथमुद्ग्रंथिभेदकः। स्त्रीपुंसोश्चपशुस्तेयीचौरोनवविधःस्मृतः) अर्थात्-यह अत्रोक्तनवभांति के प्रच्छन्नतस्कर किन्तु ढँकेहुये चोरसमुझेजायँ इनमें एकतो वहलोग हैं जो चोरीसाधन करसकने योग्य (अंग)नाम उपकरणों सहितप्रायःरात्रि में अविभावितरूप विचरतेहों जिनका लक्ष्य कुछपहिंचाना नहींजाय (यहांरात्रिके प्रायस्त्वकरके दिनमेंभी वन वेहड़ आदिशून्य स्थानोंमें विचरते हुये समुझो) दूसरे इनमें वहलोग हैं किजिनका वासस्थान कोई नहींजानताहो:तीसरेफिर उत्क्षेपकनामउठाईगीरे जो धनी या रखवारोंको असावधान देखकर उनके पासरक्खेद्रव्यों को लेभागें या उठाकर कहींलंवा तिरछा फेंकदें जिसको कोई और उनका साथीलेकर भागिजाय फिरवह उछालदेनेवाला उठाईगीरा निज आपचाहे मौजूदरहे अथवा भागिजाय यहकुछ नियम नहीं. चौथे (संधिभेत्ता) सेंधिलगानेवालेकिंतु भीति छतिछप्परटट्टे आदि काटिखोदिकर कूमलदेनेवाले. पांचवें (पांथमुट्)अर्थात् वटोहियोंको प्रत्येक भांति ठगनेवाले आदि. छठे (ग्रंथिभेदक)गँठिकटे जोचलते या बैठेहुये मनुष्योंकी गांठिमें वँधेहुये द्रव्योंकोगांठि सहित काटिकेलेजायँ. सातवेंस्त्रियोंको ठगनेवाले और फुसिलाकर लेभागनेवाले. आठवें पुरुषोंको लेभागनेवाले. नववें पशुओंको उड़ानेवाले यहनव भांतिकेचोर गूढ़चोर कहातेहैं-यहांतकयह दोनों भांतिके सबचोरोंके स्वरूप लक्षण दर्शित कियेगये कि ऐसे ऐसे लक्षणवालेलोग चोरोंकीशंका मध्येपकड़े जासकतेहैं-(दृष्टांत)इनके जुदेजुदे बहुत से असंख्यजो सब लोकसेही जानेजासकतेहैं इसलिये यहांलिखना कुछआवश्यक नहीं समुझा-दंडइनके आगेबढ़कर २७८ तथा ७९ की अधिकोक्तिमें विचारो-और चर्चाइनका फिरभीअभी (प्रकर्णिक) नाम प्रकरणमें विशेष करके आवेगा उसप्रकरण में सर्वथा नृपाश्रयव्यवहारवर्णन होंगे जिनमेंधर्म के प्रावल्यसे सरकारमुदई होतीहो२७१।२७२।२७३॥

(चौरशंकयागृहीतैनिजात्माशोधनीयः)

गृहीतःशंकयाचौर्येनात्मानंचेद्विशोधयेत्। दापयित्वागतंद्रव्यंचौरदंडेनदंडयेत् २७४॥
चौरंप्रदाप्यापहृतंघातयेद्विविधैर्वधैः। सचिह्नंब्राह्मणंकृत्वास्वराष्ट्राद्विप्रवासयेत् २७५॥

ऐ०–चोरके धोखेमें ऊर्ध्वोक्तजोकोई पकड़ागयाहो सोयदि अपने आत्मा को सचावटसाथ प्रमाण देकर शुद्धनहींकरावे किंतु अपनेसाधुत्वकी अपेक्षामेंसफाईके गवाह यद्वा पताठिकाना आदि मांगेहुये प्रमाणों को न देवै या नकार खींचै अथवा मौन साधे या अनमेलगल्ल हांकै तौवहचोरीगये धनको दिलवाया जाकर चोरोंयोग्य दमसे दंडपावे परउसदशामें किजबकोई मुख्यात्मक चोरनहीं निश्चितहोय और उस पुरुष परविश्वासिक शंकाका आरोप सर्वथा निश्चित होताहो अन्यथाकोई पक्काचोर पायाजानेमें उसचोरकोहीदंडहोगा जिसपर चोरीसाबित हुईहो अर्थात्फिरउनलोगों में कि जिस जिसनेनिज आत्मा कीपरिशुद्धी नहींकराईहो थोड़ाथोड़ा दंडकेवल चोरों वाले चिह्नों सहित विचरनेके अपराध मध्येसूचितहै या जैसारूपक देखाजाय तिसही के अनुसारमुचलिके प्रतिभू आदि लेकरदंड देनेविना छोड़िदिये जायँ २७४ चोरों योग्यदंड अब दर्शातेहैंकि जिसपर या जिनपर चोरीसाबितहोयतिसपर या तिनपर वहीचुराहुआ द्रव्ययथारूपसे या मूल्यद्वाराधनीको दिलवाकर विविध भांति के वध वंधरूप दंडों करके मारे किंतु यथोचित हिंसादेनी योग्यहै-परंच इतनी इसमें छूटहै किजहांचोरकोई ब्राह्मणहो तिसके माथेपर अपराधरूपी चिह्नदेकर अपनी राज्यसीमासे निकासिदेय किंतुदेहदंड उसकोनहींहै परचोरीका धनस्वामी को दिलायाजाकर पीछे धनदंड उत्तमसाहसतक होसकताहै अपराधकेअनुसार जैसायोग्यहो किंचदेश निकाला केवल देहदंड का अनुकल्पहै-और उत्तम साहसपूरे तक धनदंडहोना सिर्फ निर्गुण ब्राह्मण की अपेक्षामें समुझना किंतु गुणवान् की अपेक्षानीचे अधिकोक्ति में अपवाद भी कुछमनुजी दर्शावेंगे (यहांचोरीका अपराधरूपीचिह्नकुत्तेकापंजा मनु अनुशासनहै) परयहदागदेना भी उसदशामें कि जवधनदंडदेने पीछे शास्त्र विहित प्रायश्चित्तको न करना चाहै इसका आशय देखो अधिकोक्तिमें २७५॥

अधि०–यहां २७४ मूलश्लोकवाली व्यवस्थापर यहतर्कवितर्कहै कि चोरके धोखे से पकड़ाहुआ कोई पुरुष अपनी आत्मशुद्धि साक्षीआदि मानुषप्रमाणोंसे करवावै यद्वा छत्तीस आदि४२ पर्यंत सातपरिच्छेदोंके अनुसारकिसी दिव्यप्रमाणसे करवावै तहांपहले साक्षीआदि मानुष प्रमाणसे करवानायोग्यहै और उसके निपटनहोने में फिर दिव्यप्रमाणभी आवश्यकहै परंच केवल इसभांतिसे मिथ्योत्तर देनेमेंकि(मैंचोर नहीं)कोई साप्रमाणनहीं पायाजासकताहै क्योंकिऐसाउत्तर चोरभीदेसकताहैइसलिये मिथ्योत्तर और कारणोत्तर जहांमिलाहुआ प्रवेशहोय तहां प्रमाणमानाजासकता

(दृष्टांत)जैसे (मैंचोरनहीं क्योंकि चोरीहोनेके समयपर मैं अमुकदेशांतरमें मौजूदथा अमुकामुक इसके साक्षीहैं तौइत्यादि प्रकारोंसे संशुद्धि औरछुटकारा उसकाहोसकता है-परजबऐसे मानुष प्रमाणोंको न देसकताहो तो फिर दिव्यप्रमाण का आचरण होना योग्यहै और उसके मध्ये ९८ मूलश्लोकके पूर्वार्द्धसे दर्शायेहुये नियमों करके प्रतिपक्षीधनी आपभी कदाचित् उसआचरण को करसकताहै कि इसके मध्ये देखो उसी स्थलको २७४ यहां दोसौ पचहत्तरिवाले पहिले अद्धा में जो दण्डका बाहुल्य कहागया सो सर्वत्र फूल वस्त्रादिक छोटी चोरी या मध्यम चोरी होनेमध्ये नहीं समुझना किन्तु उत्तम साहस अपराधके समान उत्तम चोरी जो हिरण्य आदि उत्तम द्रव्योंकी होगईहो तिसही में समुझना किंतु यहां यह सामान्यमात्र आज्ञा है और आगे दोसौ अठहत्तरिवाली अधिकोक्ति से लेकर उत्तम मध्यम छोटी मोटी सभी चोरियों के सब जुदे जुदे दण्ड कहेजायँगे (साहसेषुयएवोक्तस्त्रिषुदण्डोमनीषिभिः। सएवदण्डःस्तेयेऽपिद्रव्येषुत्रिष्वनुक्रमात्) इसनारद के वचनानुसार उत्तमचोरी भी उत्तम साहस बधरूप खूनी अपराधों के समान है-वृद्ध मनुके अग्रोक्त एकवचन से यह भाव पायाजाता है कि चोरोंपर जुर्मानारूपी धन दण्ड कभी न करै केवल देह दण्ड उनको हुआकरे-यथा (अन्यायोपात्तवित्तत्वाद्धनमेषांमलात्मकम्। अतस्तान्घातयेद्राजानार्थदण्डेनदण्डयेत्) अर्थात्-ये लोग धनको चोरी आदि अन्यायों से उपार्जन करतेहैं इसहेतु इनका धनभी विष्ठारूपहै इसलिये उनको राजा देहदण्ड सेही घातकरै अर्थ दण्डसे न दण्डदेवे-सो इसवचनका भी आशय सिर्फ यही माना गयाहै कि जहाँ साहसी चोरोंने कुछ महापराध कियाहो (दृष्टांत)जैसे किसी प्राणीका बध करिकै धनको हराहो यद्वा किसी स्त्रीको वा पुरुषको लेभागेहों इत्यादि साहस रूप महापराध में धनदण्डपर कुछ दृष्टि नहीं करनी अर्थात् प्रायः वधदण्ड करना योग्य है परञ्च छोटी मोटी चोरी के अपराधों में धनदण्ड केवल एकभी होसक्ता है या जैसा रूपकहो दोनों दण्ड कियेजायँ-इसी दोसौ पचहत्तरिवाले उत्तरार्द्धकी अपेक्षा मनु का वचन है-यथा (प्रायश्चित्तन्तुकुर्वाणाःसर्वेवर्णायथोदितम्। नांक्याराज्ञाललाटेतु दाप्यास्तूत्तमसाहसम्) अर्थात्-किसी अपराध मध्ये ब्राह्मण आदि कोई वर्ण राजदण्ड दियेपीछे उसका शास्त्र विहित प्रायश्चित्त भी करिदेवे यद्वा करना अङ्गीकारकरै तो फिर देशाधिपका यह धर्महै कि उसके माथेपर अपराधरूपी चिह्नवाला दाग नहीं दिलावै किन्तु उत्तम साहस अपराधों मध्ये उत्तम साहस दण्डमात्र करै-परञ्च-गुण सम्पन्न ब्राह्मणकी अपेक्षा यह अपवाद मनु कहते हैं कि उसपर प्रायश्चित्त कराने पीछे सिर्फ मध्यम साहस धनदण्ड लियाजावै किंतु उत्तम साहस नहीं-यथाह (आगस्सुब्राह्मणस्यैवकार्योमध्यमसाहसः। विवास्योवाभवेद्राष्ट्रात्सद्रव्यःसपरिच्छदः)अर्था-

तू-ब्राह्मणस्यैव इसमें (एव) शब्द के संयोग से यह भाव दर्शित किया है कि जोकोई ब्राह्मण अपने धर्म कर्म आदि गुणोंसे सम्पन्नहो तिसही के निमित्त में यह नियम समुझना योग्य है कि उसके परम अपराधों में जो इच्छाबिना दैवयोग से होगयेहों प्रायश्चित्त कराने परभी मध्यमें साहस धनदण्ड कियाजावे यद्वा धन देनेमें असमर्थ हो तौ उसराजसीमासे निकासि देनाही अनुकल्प है पर जो गुण सम्पन्न होकर इच्छासहित इन अपराधों को उत्पन्नकरै तिसको उसके द्रव्यों तथा परिच्छद नाम घरकी सामग्री सहित राज्यसीमा से निकासि देवे (यहांभी उसबातका संयोग है कि जो कोई प्रायश्चित्त करके जानाचाहै तिसके माथेपर कुछ दागदेना अनुचित है विपरीत में विपरीत भाव) ब्राह्मणके उपरान्त इसी चर्चा मध्ये अन्य वर्णोंकी व्यवस्था मनु कहतेहैं-तथाच (इतरेकृतवन्तस्तुपापान्येतान्यकामतः। सर्वस्वहारमर्हंति कामतस्तुप्रवासनम्) अर्थात्-इन्हींपापोंको यदि ब्राह्मण के उपरान्त इतर वर्णों के लोग इच्छारहित अकामसेहीकरैं तव सर्वस्वधन हरिलेने योग्य हैं पर जो इच्छा सहित कामना पूर्व पापकियेहों तिनको एक प्रवासन दण्डहै कि जिसके दोअर्थ एक देश निकाला और वधकरना भी शब्दार्थ है पर कुल्लूकभट्ट ने इसदण्ड के प्रयोजन मध्ये वधकरना निश्चित किया है आगे जैसा रूपक जैसा अवसरहो वही व्यवस्था मानीजाय-यद्यपि-यहां उत्तम चोरीका प्रसङ्ग है पर उस प्रसङ्ग से जिन महापापों की व्यवस्था वर्णनहुई तिनका रूपभी दर्शाना योग्य है-यथाहमनुः (ब्रह्महाचसुरापश्च स्तेयीचगुरुतल्पगः। एतेसर्वेपृथग्ज्ञेयामहापातकिनोनराः॥ गुरुतल्पेभगःकार्यःसुरापानेसुराध्वजः। स्तेयेचश्वपदङ्कार्यंब्रह्महण्यशिराःपुमान्) अर्थात्-ब्रह्महत्या करनेवाला. सुरापान करनेवाला इसमें पुनि यह भेदहै कि ब्राह्मण होकर. पैष्टी. गौड़ी. माध्वी. कोईभाँतिकी मदिरापीवै या क्षत्रिय वैश्य केवल पैष्टी मदिरा जो किसीअन्नके पिसानसे वनतीहो पीवै तौवह सुराप ठहिरै (गौड़ी गुड़से और माध्वी महुआ पेड़ के फलोंसे जो वनतीहै सोक्षत्रिय वैश्यके निमित्तमें कुछअधिक निषिद्धनहीं)इस्सेइनका पीनेवाला क्षत्रियवैश्य उक्तदंडों की दशातकनहीं पहुंचसकता यहसिद्धांतहै) पर ब्राह्मणको सर्वथाही प्रतिषेध है.स्तेयी तस्कर जो ब्राह्मणका सुवर्ण आदि उत्तमचोरी करै.गुरुतल्पग जो गुरानीआदि अगम्यागमन करै.यहसवचारों पुरुषजुदेजुदेमहापातकी समुझलेने-इनमें गुरुतल्पके माथेपरजवकभी दागदेनेका कामहोतभी तपाये हुये लोहेमें भागाकृति चिह्न ऐसादागिदेवे जो मरणांतकालतकभी नमिटसके-सुराप जो निषिद्ध मदिरापीकर उसका प्रायश्चित्तन करनाचाहै तिसके माथेपरसुराध्वज नामक चिह्न जो कलालोंका नल्लकाभभका आदि यंत्रविशेष लोकप्रसिद्ध है तद्वत चिह्नलगायाजाय- उत्तमचोरी करनेवाला यदिवारम्बार दंडपाकर भी उसकर्म को न

छोड़ै बलिक प्रायश्चित्त करनेपर कुछनिपटध्यान नहींलावै. तिसके माथेपर कूकुरका पंजा तुल्यदाग लगायाजाय.ब्राह्मणका बधकरनेवाले के माथेपर शिरहीन पुरुषके रुंडतुल्यदाग देवै-इनको-सिर्फ़ यहीदंड नहीं किंतु औरभी सामान्य लोकाचारदंड मनुने दर्शाये हैं-यथा(असंभोज्याह्यसंयाज्याअसंपाठ्याविवाहिनः।चरेयुःपृथिवींदीनाः सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥ ज्ञातिसंबंधिभिस्त्वेतेत्यक्तव्याःकृतलक्षणाः । निर्दयानिर्नमस्कारास्तन्मनोरनुशासनम्)अर्थात्-यह इतने दागेहुये कुकर्मी पुरुष असंभोज्यहैं कि इन के माथे चिह्न देखि कोई सत्कारसे जिमावै नहीं.असंयाज्य हैं कि इनसे कोई यजन याजने आदि क्रियाका संबंध न रक्खै.असंपाठ्य हैं कि इनसे कोई पठन पाठन का संबंध न जोड़ै.यह सब अविवाही जानो किंतु इनसे कन्यादान आदि विवाहकासंबंध भी न करनाचाहिये.श्रौतस्मार्त आदि सभी धर्म कर्मोंसे वर्जित और धनहीन हुये याचनाआदि दैन्यभाव युक्तहोकर धरतीपर बिचरैं यहउपराल दंडहै-जहां जहांकहीं पहुँचैं तहां तहां इनके चिह्न देखि जाति संबंधी आदि जनोंको भी योग्यहै कि इनका त्यागरक्खैं इनपर दयाभी न करनी चाहिये नमस्कार भी न करना चाहिये मनु की यहीआज्ञाहै २७५ ॥

(चौरादर्शनेऽपहृतद्रव्यप्राप्त्युपायः)

घातितेऽपहृतेदोषोग्रामभर्तुरनिर्गते । विवीतभर्तुस्तुपथिचौरोद्धर्तुरवीतके २७६ ॥
स्वसीम्निदद्याद्ग्रामस्तुपदंवायत्रगच्छति । पंचग्रामीबहिःक्रोशाद्दशग्राम्यथवापुनः २७७ ॥

मक्ष०-घातित होने हरेजानेमें अनिर्गत होनेपर ग्रामभर्त्ता तथा विवीत भर्त्ता का दोषहै और मार्गतथा अवीतक में चौरोद्धर्त्ताकाही दोष जानो २७६ और निज सीमा भीतर ग्राम देवै यद्वा जहां कहीं पद पहुँचै. क्रोशमात्रसे वाहर पंचग्रामी देवै अथवा दशग्रामी २७७ ॥

मभि०-जहां किसीग्राम के भीतरबस्ती माँझमनुष्य आदि कोई प्राणीमाराजाय या कुछ चोरी यद्वा लूटिसे धनादिक हरेजावें तव उसग्राम भर्ता जमींदारका अपराध समुझाजाना योग्यहै क्योंकि उसने चोरोंके पकड़ने आदि से उपेक्षाकरी सो इसदोष के परिहार निमित्त से अव चोरको भी वही प्रधान लाकर देशाधीश के समर्पणकरै यद्वा चोरको तलाश करने परभी धनीका धन आप देवै जो लुटिगया यद्वाचोरीगया हो परयह दोष उसका तवतकहै कि जो निजग्रामसे वाहर निकसा (चौरपद) अर्थात् चोरोंकी पैंचालिआदि खोज नहीं दिखादेवै किंतु दिखानेपर उस खोजकाचिह्न जहांतक पहुँचै तहांका अधिकारी जमींदारआदि चोरसमर्पण करै याधनदेय यहअधिकोक्ति मेंभी देखो-एवं विवीतनामरखा अहातागोंड़ा वाग इजाराआदि विशेष धरतियोंपर उपद्रवहोने में विवीतके अधिकारी का भी दोषजानो किंतु ग्रामभर्ताके समानयहभी

चोर या अपघातीको पकड़ाने यद्वा नष्टधनके देनेतक अपराधीहै-कदाचित् सिर्फमार्गमें उपद्रव हुआहो यद्वा मार्गतथा विवीतसे अन्यत्र किसी रीपटखेतआदि सूनीधरती परउपद्रव हुआहो तबचौरोद्धर्ता नाम चोरपकड़नेवाले मार्गपाल या दिक्पाल थानेदार आदिकाअपराध जानो किंतुयहभी ग्रामभर्ताके समानचोर अपघाती को लादेनेके अधिकारीहैं २७६ जहां किसीवस्तीके बाहर ग्रामसीमाभीतरउक्त उपद्रव हुयेहों तबउसग्रामके निवासी लोगदेवैं परउसदशामें कि जबतक सीमाकेबाहर निकसी चोरपैंचलिका खोजनहीं पायाजाय किंतु खोजनिकसने परवहखोजजहां पहुंचा हो तिसस्थान का अधिकारी चोरआदि को लादेने तकअपराधी होगा कदाचित् कहीं अनेकग्रामोंके बीचमें बस्तियोंसे बाहर प्राणीमाराजाय या धनलूटाजाय जिसकी चोरपैंचलि आदि खोजभी नपायाजाय किंतुमनुष्योंके संमर्दआदि लागोंसे मिटजाय तहांकेवल पंचग्रामी यादशग्रामी किंतुपांचवादश ग्रामों का चौधरी जो उसभूमिका अधिकारीहो घातिक चोरको लादेवै यद्वालुटिकरखोयेहुये धनको आपदेवै यहमर्यादाहै.इनप्रत्येकोंसे यथोचित जानकरादिलानेवाला एकराजाहै २७७॥

अधि०-उक्तउपद्रव कीचर्चामध्ये खोजकेनिकसनेवापहुंचनेका व्यवहारनारदमुनि भी कहतेहैं-यथा(गोचरेयस्यलुप्येततेनचौरःप्रयत्नतः।ग्राह्योदाप्योऽथवाशेषंपदंयदिन निर्गतम्। निर्गतेपुनरेतस्मान्नचेदन्यत्रपातितम्। सामंतान्मार्गपालांश्चदिक्पालांश्चै वदापयेत्) अर्थात्-ग्रामाधीशआदि जिसाकिसीके (गोचर)में अर्थात् वनवेहड़ आदि देशइलाके में पहुंचाहुआ खोजपगलुपि जावै किंतुआगे चलता नहींपायाजाय-तिसहीको वहचौर वड़े यत्नोंसे पकड़ाइ देनायोग्यहै वालुटिकर आदिखोयाहुआ धनदिलवानाहोगा परउसदशामें कि जबतकशेषखोजउसकी सीमासेबाहर नहीं निकसै-पर जो किंचित् खोजइसकी सीमासे वाहरनिकलजानेपर अन्यत्र कहींठिकानेपरनपहुंचा पायाजायकिंतुमार्ग यद्वा रीपटआदि बीचमें लुपिजाय तो उसदिशाके सामन्तों यद्वा मार्गपाल और दिक्पालोंसे दिलायाजाय (यहांमार्गपाल उनको जानो जो सर्वत्र दीर्घमार्ग के रखवारे चौकीअड्डोंपर नियुक्त कियेजातेहैं और यहीप्रतिज्ञा उनसेलीजातीहै कि अपने अपने देशीमार्ग अवसरमें उपद्रवका निवारण करतेरहेंगे)(दिक्पाल ज़िलेदार थानेदार आदि जोजो ग्रामोंकी रक्षाहेतु नियुक्त कियेजातेहों) जबकि राजाउक्त मनुष्योंसे या चोरोंसे दिलवानेमें असमर्थहो तोनिज राजकोशोंसेदिलवावै यहमर्यादाहै-तदाहगौतमः (चौरहृतमवजित्ययथास्थानंगमयेत्स्वकोशाद्वादद्यात्) जहांकहीं मुषिता मुषितकासंदेह किन्तु चोरीहुईअथवा नहींऐसा संशयखड़ाहो तहां पहले मानुष प्रमाणोंसे या उनके निपट न होने में फिरदिव्यप्रमाणोंसेही निर्णयहोना योग्यहै-तदाहबृहन्मनुः(यदितस्मिन्दाप्यमानेभवेन्मोषेतुसंशयः । मुषितःशपथंदाप्यो

वंधुभिर्वापिसाधयेत्-अर्थात् यदि उस चोरी के दिलवाते हुये चोरी में कुछ संशयहो तो फिर मुषितधनीसे शपथ करानायोग्य है या निज बंधु लोगों सहित प्रमाण देकर चोरीका साधनकरवावै २७६-२७७॥

(विविधचौरभेदात्सर्वेषांभिन्नदण्डाः)

बन्दिग्राहांस्तथावाजिकुंजराणांचहारिणः। प्रसह्यघातिनश्चैवशूलानारोपयेन्नरान् २७८॥
उत्क्षेपकग्रंथिभेदौकरसंदंशहीनकौ। कार्यौद्वितीयापराधेकरपादैकहीनकौ २७९॥

(तत्रदण्डकल्पनोपायः)

क्षुद्रमध्येमहाद्रव्यहरणेसारतोदमः। देशकालवयःशक्तीःसंचित्यदण्डकर्मणि २८०॥

ऐ०-बंदि ग्राहोंको अर्थात् यहाँ (बंदी) नाम क़ैदी बँधुआ तिसके (ग्राह) नाम पकड़नेवाले किंतु कारागार आदिसे चुराकर या प्रवलतासे लेभांगजानेवाले साहसियों को तथैव राजकीय घोड़ा हाथी आदि उत्तम बाहन यान हरिलेजानेवालोंको तथैव जोरीकरिकै मानुषआदि प्राणियों का अपघात करनेवाले घातियोंको फाँसियों पर लटका देवै जिस्सेउनका प्राणवध होजाय २७८ उत्क्षेपक नाम उठाईगीरा तथा ग्रंथिभेदक नाम गँठिकटा करसंदंशहीन करनेयोग्यहैं अर्थात् उठाईगीरेका पहुँचाकाटिलेवै और गँठिकटाका संदंश नाम चुकुटी किंतु अँगूठा और तर्जनी दोनों काटि लीजायँ ऐसा दंड मिलनेपर दुसराकर यहीकर्म करैं तो उस द्वितीय अपराधमें फिर दोनोंकाही एक एक हाथ और एकएक पावँ काटिलेना योग्य है-तिसराकर यहीकर्म करनेमें फिर इनका भी वधयोग्य होगा इसके मध्ये मनुका वचन देखो अधिकोक्ति में पर यह तीव्र दंड उत्तम द्रव्योंके उत्क्षेपमें या उत्तमधन की गाँठि काटिलेनेमें समझना क्योंकि अगले २८० वाले मूलश्लोक की रिआयतभी सर्वत्र योग्य होगी उसको अच्छीरीति से विचारो-यह शारीर दंडभी धन दंडके उपरांत जानो क्योंकि नारदने यहवात निश्चित राखीहै कि जो जो दंड तीनोंसाहस कर्मोंपर दर्शाये गये सो सब तीनोंभांतिकी चोरीमेंभी यथाक्रमसे समझलेने और यहवातभीसर्वथाशास्त्र से प्रत्यक्ष है कि साहस कर्मोंके अपराध मध्ये शारीर और धनदंड दोनों कहेगये हैं २७९ अब इसदंड कल्पनाका उपायभी दर्शाते हैं कि चोरी अथवा साहस के कुछ नाममात्रसेही उक्तदंड नियत नहींकरने किंतु क्षुद्र.मध्यम.उत्तम.तीन भेद द्रव्यों के जो नारदके वचनानुसार पहले २७१-२७२-२७३ की अधिकोक्तिमेंदर्शायेगये तिन में जैसाद्रव्य हरागयाहो तिसही के अनुसार दंड कल्पित कियाजाय वल्कि उन्हीं द्रव्योंके कुछ नाममात्र सेभी दंड नहीं कल्पित कियाजासक्ता किंतु थोड़े बहुत मूल्य की वह जितनी चीजहो तिसही के अनुसार दंड कल्पित कियाजाय वल्कि.देश.काल अवस्था.शक्ति इनकोभी सब जुदे जुदे नियमोंसे विचार करके दंड कर्मकी कल्पना

में प्रारंभ करै-किंच (जातिद्रव्यपरिमाणतोमूल्याद्यनुसारतोदंडःकल्पनीयः) इन सब नियमों का यथार्थ व्यौरा नीचे इसी की अधिकोक्ति में स्पष्ट वर्णन होगा तहां देखौ २८० ॥

अधि०—यहां जो जो अपराधी २७८ में दर्शाये गये तिनहींकी अपेक्षाएकमनुका वचन है कि जिसमें विरले और भी अपराधी पायेजाते हैं-यथा(कोष्ठागारायुधागार देवतागारभेदकान्। हस्त्यश्वरथहर्तृंश्चहन्यादेवाविचारयन्)अर्थात्-राजसंबंधी धन धान्य आदि भरनेका कोष्ठस्थान.शस्त्रोंका स्थान.देवताकास्थान.इनका तोड़फोड़करने वालोंको तथैव.हाथी.घोड़ा.रथ आदि उत्तम बाहन यान हरनेवालोंको शीघ्र विना विचार किये मारै (इसमें विनाविचार किये ऐसाकथन केवल आवश्यक भावका दर्शाने वाला जानो किंतु यही आशय नहींहै कि उसके अपराध का कुछ निर्णय किये बिना मारडालै) क्योंकि (नहोढेनविनाचौरंघातयेद्धार्मिकोनृपः । सहोढंसोपकरणंघातयेदविचारयन्नित्यपिमनुः) अर्थात्-मनुयहभी कहते हैं कि धर्म शास्त्रोंका जाननेवाला राजा किसी अनिश्चित चौरभाव चोरको होढाविना न मारै किंतु जिसके पास चोरीकाद्रव्य यद्वा चोरीकरनेके उपकरण कमंद खंताआदि कुछऔजार पायेजायँ औरपश्चात् चोरी करने आदिका अपराधभी प्रमाण पावै तभी उसको शीघ्रदंड देय-एवं प्रजालोगोंकेभी-घोड़ाआदि पशुओंका व्यतिक्रम करै या रथदास आदि हरै सो भी चोरोंवाला दंडपावै तथाचमनुः(असंधितानांसंधातासंधितानांचमोक्षकः । दासाश्वरथहर्त्ताचप्राप्तःस्याच्चौरकिल्बिषम्)अर्थात्-यदि कोईहास्यमार्गसेभी छूटेहुयेचरतेआदि बिराने चौपायोंको बांधिरक्खै या घुड़शाल आदि स्थानोंमें बँधेहुये चौपाये छिपकर खोलिदेवै जो छुटकर खोयजायँगे या खेत परायाखायँगे.तथैव यदि कोई किसी का दास याघोड़ा या रथ गाड़ीही निजदर्प अथवा हास्य करके हरलेजाय तौभी चोरोंके समान दंड पावै और यहदंड उसके थोड़ेघने अपराधोंके अनुसार जैसा संभव हो तैसाही धनदंड देहदंड अंगच्छेदन मारण पर्यंत कल्पित होगा-खेत में से खेतीकी सामग्री हरनेवाले के दंड मनुकहते हैं-यथा (सीताद्रव्यापहरणेशस्त्राणामौषधस्यच। कालमासाद्यकार्यंचराजादण्डंप्रकल्पयेत्)अर्थात्-धरती खेत जोतनेवोने आदिसमयं पर यदि कोईचोरहल कुदालफालवीज बैलआदि कोईद्रव्यसन्मुखसे लेभागेयद्वाछिपकर आँखबचाते हरै.एवंकहीं खेत कूपखलिहान आदि स्थलमें किसीके रक्खेहुये शस्त्र यद्वानीकी औषध कोई सन्मुखसे लेभागे अथवा छिपकर हरै तब इनचोरोंकी अपेक्षा राजा अगिलेपिछलेकाल और उसवर्त्तमानकालके विचारसेतथैवहरनेवाले और उस चीजवाले के न्यूनाधिक उत्तम मध्यम आदि कार्यों के विचारसे प्रयोजन उनके हानि लाभ सहित जानकर यथोचितदंड कल्पितकरै-कूप ऊपर धरेहुये घट रस्सीके हरने

में भी दंड मनु कहते हैं-यथा (यस्तुरज्जुंघटंकूपाद्धरेद्भिंद्याच्चयःप्रपाम्। सदंडंप्राप्नुया न्माषंतच्चतस्मिन्समाहरेत्) अर्थात्-जो कोई कूप कुइयाँ परसे रस्सी या माटी का भी घट लेजाय यद्वा पशुत्रों की प्याऊ तोड़डाले सो अपराधी एक माषसुवर्ण दंडपावै और उस हरी बिगाड़ी बस्तुकोभी तद्रूप ज्यों की त्यों करदेवै (अनिर्दिष्टंतुसौवर्णंमाषंत त्रप्रकल्पयेत्) इस कात्यायन के वचनानुसार माषदंड के सौवर्णिक होने में संदेह नहीं करना-संधि काटकर चोरीकरनेवाले का दंड मनु कहते हैं-यथा (संधिंछित्त्वातुये चौर्यंरात्रौकुर्वंतितस्कराः। तेषांछित्त्वानृपोहस्तौतीक्ष्णशूलेनिवेशयेत्) अर्थात्-जेकोई रात्रिसमय किसी मकान की (संधि) नाम जोड़काटकर चोरी करैं तिनके दोनों हाथका-टनेपीछे राजा तीक्ष्ण शूली पर लटकादेवै जिस्सेउसकाप्राण वध होजाय-इसमें दोनों दंड एक साथ नहीं समझने किंतु पहली वार चोरी करने में एक हाथ काटाजाय दूसरी वार करनेमें दूसरा हाथ तिसरी वारमें फिर शूली पर चढ़ाना दंड जानो-एवं वृहस्पतिरपि (संधिच्छेदकृतोज्ञात्वाशूलमाग्राहयेत्प्रभुः) २७८॥ उठाईगीरे का संदंश नाम चुटकी काटलेना दंड विष्णुनेभी कहाहै-यथा (उत्क्षेपकस्यसंदंशंछेत्तव्योराजपूरुषैः) यहाँ सहचारित्वधर्म से उठाईगीरेके उपलक्षणमें गँठिकटे कोभीसमझि लेना मनुने उठाईगीरा वा गँठिकटे कोभी सब से पीछे बधदंड होना कहाहै-यथा (अंगुलीग्रंथिभेदस्यच्छेदयेत्प्रथमेग्रहे। द्वितीयेहस्तचरणौतृतीयेवधमर्हति) अर्थात्-ग्रंथिभेदगँठि-कटा और उत्क्षेपक नाम उठाईगीरा योगीश्वरके वचनानुसार इनकी पहली वार उत्तम धनहरनेमध्ये अँगुठा तथा तर्जनी उँगुली दोनोंकाटलेय दूसरीवार हरने में फिर एक हाथ एकपैर काट लेवै एवं तृतीय वार हरनेमें वधदंड योग्य होता है-नारदस्तु (प्रथमे ग्रंथिभेदानामंगुष्ठहस्तयोर्वधः) २७६ इसके आगे दोसौ अस्सी में जो निर्णयकरना लिखा गया जिसमें. जाति. द्रव्य. परिमाण. मूल्य. संख्या. परिग्रह आदिके विचार सहित दंडों का गुरु लघुभाव करना दर्शाया गया तिसका व्यौरा यहाँ प्रत्येक जुदे अपराधों की व्यवस्था द्वारा समझो-तहाँ पहले जाति की अपेक्षालेकर मनु एकही वाक्यसे दोहरा व्यौरा कहते हैं कि कोई जाति एक तौ अज्ञान होकर चोरी करै तिसका दंडजो कुछ लिखा हो तिससे कई गुणादंड ऐसी दशामें समझना जहाँ उसी चोरीको उसी जातिवाला ज्ञानी होकर उस चोरी के गुण दोष जानते हुये करै-तथाहमनुः (अष्टापाद्यंतुशूद्रस्यस्तेयेभवतिकिल्विषम्। षोडशैवतुवैश्यस्यद्वात्रिंशतक्षत्रियस्यच॥ ब्राह्मणस्यचतुःषष्टिःपूर्णंवापिशतंभवेत्। द्विगुणावाचतुःषष्टिस्तद्दोषगुणविद्धिनः) अर्थात्-जिस चोरी का जो कुछ दंड नियतहै उस चोरी केगुण दोषजाननेवाला शूद्रजहाँ उसी चोरीको करै तौफिर उससे आठगुणा दंडउसको कियाजाय यहभी एकप्रकार है इसी प्रकार जिसचोरीके गुणदोष जाननेवाला वैश्य उसीचोरीको करै तिसपर सोरहगुणा

दंड कियाजाय इसीप्रकार जिसचोरीके गुणदोष जाननेवाला क्षत्री चोरीकरै तिसपर बत्तीसगुणा दंड कियाजाय-जिसचोरीके गुणदोष जाननेवाला ब्राह्मण चोरीकरै तिस पर चौंसठिगुणा दंडकियाजाय अथवा सौगुणा कियाजाययद्वा चौंसठिकादूना १२८ गुणा कियाजाय-इसमें इच्छा रहित इच्छासहित आदि करनेकी अपेक्षामध्ये दोतीन भांति दंडोंका विकल्प केवल ब्राह्मणकेही निमित्तकरके जानो सो धनदंडकीव्यवस्था है अर्थात् देहदंडका अपवाद पहिले कहचुकेहैं-यह अत्रोक्त प्रकारजो कुछइन्हीं दोश्लो- कोंद्वारा कहागया सोसामान्य सभीचोरोंकी व्यवस्थानहीं समझनी किन्तुयह विश्वा- सपात्र लोग चोरीकरैं तिनकादंड विशेषहै-थोड़ेबहुत बस्तुके परिमाण यद्वासंख्यासे भी दंडोंकाविचार है-यथाधान्य रत्नादिविषयेमनुः(धान्यंदशभ्यःकुंभेभ्योहरतोऽभ्यधि कंवधः।शेषेष्वेकादशगुणंदाप्यस्तस्यचतद्धनम्।तथाधरिममेयानांशतादभ्यधिकेवधः॥ सुवर्णरजतादीनामुत्तमानांचवाससाम्। पंचाशतस्त्वभ्यधिकेहस्तच्छेदनमिष्यते॥शेषे ष्वेकादशगुणंमूल्याद्दंडंप्रकल्पयेत्)अर्थात्-घरमेंरक्खाहुआ दशकुंभोंसे अधिकधान्य हरतेहुये चोरकोवध दंडहोवै शेष दशकुंभोंकेभीतर एकआदिलेकर दश कुंभोंतक जो चोरीकरै तिसपर ग्यारहगुणा दंडराजा कल्पितकरै और उस धान्यस्वामीका चुराया हुआ धान्यभी तद्रूप यद्वामूल्यद्वारा स्वामीको दिलवायदेवै (इसमेंकुंभका परिमाण भी दोसौपलका एकद्रोण कहलाता ऐसेबीसद्रोणोंकापूरा एक कुंभनाममट्टीकामटका भर कहलाता ऐसे दश कुंभजानो) (वधदंडका भावार्थभी उसचोर और धनस्वामीके गुणागुणतुल्य निर्णयके अनुसार जैसायोग्य समझाजाय तैसा सुभिक्ष वा दुर्भिक्षका- लके भी अनुरूप ताड़न अंगच्छेदन मारण पर्यंत समझलेना)धान्यके सिवायजहां- धरिमनाम तुलातराजू कांटा तिसकेद्वारा(मेय)नाम तौलकरनेयोग्य पल परिमाणकि न्तु शास्त्रोक्त तोलेकाबांट ऐसे बांटकरके तुलेहुये सोनेचांदी आदि उत्तमद्रव्यतथैव रेशमी आदि उत्तमवस्त्र इनकेसौपलसे अधिक हरनेमें वध उसीप्रकार जानोजैसे धान्यकेचुरानेमध्ये ऊपरकहा-इनहींचीजोंके पंचाशपलसे अधिक सौ पलतक चोरी करनेमध्ये सिर्फ़हाथ काटलेना यह मन्वादि ऋषियोंने कहा है और शेष पचास के भीतर एकपलको आदि लेकर पंचाशपल पर्यंत उक्तद्रव्योंकी चोरीमध्ये जितने मूल्यका वहद्रव्यहो तिससे ग्यारहगुणा धनदंड कल्पितकरै और उसचोरेहुये द्रव्यको दिलवाना यह सर्वत्रजानो-इसकेआगे द्रव्योंकी विशेषतासेभी दंडभेद बहुधा होतेहैं सो यथाक्रम से आगेदेखोगे-अबउनमें पहले पुरुषादिक रत्नोंपर्यंत हरणका दंडम- नुकहतेहैं-यथा(पुरुषाणांकुलीनानांनारीणांचविशेषतः। मुख्यानांचैवरत्नानांहरणेवध मर्हति)अर्थात्-बड़ेकुल में जन्मे पुरुषोंको विशेषकरके उत्तमकुलकी स्त्रियोंको और मुख्यात्मक महारत्नोंको वैडूर्य्य वज्रआदिके हरिलेनेमें वधदंड योग्यहोता है-उत्तम

कुल दर्शानेका यहभाव है कि सामान्यकुलके स्त्री पुरुषोंको हरिलेनेमध्ये और दंडहै सयथा(पुरुषंहरतोदंडउक्तउत्तमसाहसः। स्त्र्यपराधेतुसर्वस्वंकन्यांतुहरतोबधः)अर्थात्-सामान्य पुरुषहरतेहुये उत्तमसाहस धनदंडजानो और सामान्यस्त्रीहरनेमें सर्वस्व धनहरिलेना दंडहै परकन्याको हरिलेनेमें बधदंडजानो-नारदस्तु(सर्वस्वंहरतोनारींकन्यांतुहरतोवधः। वाजिवारणलोहानांचाददीतबृहस्पतिः) अर्थात्-यहां बृहस्पति का प्रमाण देकर नारदआप कहतेहैं कि सामान्य स्त्री हरनेमें सर्वस्वहार दंडपावे परजोकन्याहरै तौउसकन्या की मध्यमता उत्तमताके अनुरूपताड़न अंगच्छेदन मारणपर्यंत दंडपावे किंच घोड़ा हाथी लोहेके शस्त्रास्त्रोंका समूह जो चुरावै तौभीसर्वधन हरिलेना दंडहोवे-उत्तमस्त्री पुरुषोंको हरनेमध्येदंड व्यासकहतेहैं-यथा (स्त्रीहर्त्तालोहशयनेदग्धव्योवैकटाग्निना। नरहर्त्तुर्हस्तपादौछित्वास्थाप्यश्चतुष्पथे)अर्थात्-उत्तमकुलकी स्त्री हरनेवाला लोहशय्या पर बैठारकर पुनिघासफूसके समूहसे जलादेनेयोग्य है नरहर्त्ता का एकएकहाथ पैर काटिकर चौराहेमें बैठारकर सबलोगोंका दृष्टिपातकरवाना योग्य है-गोहर्त्तुर्दंडमाहबृहस्पतिः(गोहर्त्तुर्नासिकांछित्वाबध्वांभसिनिमज्जयेत्) अर्थात्-गऊ हरनेवाले की नाक काटिकर हाथ पैर बांधिकर जलमें डुबोदेवै-पशुहर्त्तुर्दंडमाहव्यासः (पशुहर्त्तुस्त्वर्धपादंतीक्ष्णशस्त्रेणकर्त्तयेत्) अर्थात्-छोटे मोटे सामान्य पशुहर्त्ताका आधापांव पैनेशस्त्र से काटिदेवै-नारदजी यहकहते हैं कि पशुओंके अनुरूप दंडपावे-तथाच(महापशून्स्तेनयतोदंडमुत्तमसाहसम्। मध्यमंमध्यमस्तेयी पूर्वंक्षुद्रपशूंस्तथा) अर्थात्-वड़ेपशुओंको चुराताहुआ उत्तमसाहसदंडपावै मध्यमपशुओंका चुरानेवाला मध्यमसाहस दंडपावै क्षुद्रपशुओंका हरनेवाला पूर्वसाहस दंडपावे-इसमेंयहभी ध्यान करनायोग्य है किजैसा पूर्वसाहस दंड एकपणसे लेकर दोसौपचास पणतक होताहो तथैव क्षुद्र पशुओंकी भी थोड़ी बहुत संख्याके अनुसार उसने जितनेपशु चुरायेहों तिनके अनुसार दोसौपचास पणतक थोड़ावहुतजोकुछ उचित समझाजाय वहीदंड होसक्ताहै इसीप्रकार मध्यमपशुओंकी थोड़ीवहुत संख्याके अनुसार दोसौ इक्यावन से लेकर पांचसौतक दंड जैसायोग्य समझाजायसो होसक्ताहै पुनि इसीप्रकार महापशुओंकी थोडीवहुत संख्याकेअनुसार पांचसौएकसे प्रारंभलेकर पूरेसहस्र पणतक जैसायोग्य समझाजाय सोहोसक्ताहै-अत्रमनुस्तु (महापशूनांहरणेशस्त्राणामौषधस्य च। कालमासाद्यकार्यंचदंडंराजाप्रकल्पयेत्)अर्थात्-हाथी घोड़ा ऊँटभैंसा गऊऐसेवड़े पशुओंके हरनेतद्वत् अस्त्रशस्त्रोंके हरनेतद्वत् उत्तमरसरूप औषधके हरनेमध्येराजा दुर्भिक्ष वा सुभिक्षआदि कालोंके विचारसे पुनि आवश्यक प्रयोजनकिहानिलाभआदि उत्तममध्यम कार्योंके विचारसेभी दंड अपनीइच्छाके अनुसार कल्पित करे-(क्षुद्रद्रव्याणांस्वल्पपरिमाणहरणेपंचगुणोद्विगुणोवादंडः) तत्रपंचगुणोनारदआह (काष्ठ

भांडतृणादीनांमृण्मयानांतथैवचावेणु वैणवभांडानांतथास्नाय्वस्थिचर्मणाम्॥शाकाना मार्द्रमूलानांहरणेफलमूलयोः।गोरसेक्षुविकाराणांतथालवणतैलयोः॥ पक्वान्नानांकृतान्ना नांमत्स्यानामामिषस्यच।माषतोन्यूनमूल्यानांमूल्यात्पंचगुणोदमः) अर्थात्-काठकेबासन आदि.तृणादिक चीजें. मट्टीकांच आदिकीचीजें. बांस बांसुरीआदि. बांसकी पुटारी आदिपात्र. स्नायु तांतिआदिचर्मनाल.हाड़दांत सींगआदि.चमड़ेकीचीजें. आर्द्रमूल शाकनाम आलू घुँइयांआदि गीलीजड़वाले शाक.फल.मूल.गोरस घी दूधआदि.इक्षु विकार जो कुछ ईखसे मिठाईआदि होताहो.लवण.तैल.पक्वान्न किसीभांतिके.कृतान्न रोटी भातआदि.मत्स्य.मांस.इन सबचीजोंमेंसे कोईचीज उतनीहरनेसे कि जितनी अल्प मूल्यवालीहो किन्तुएकमाष सुवर्णके मूल्यसेभी न्यूनमूल्यको आसक्तीहो यद्वा उत्तम मध्यम द्रव्योंमेंभी कोईचीजइतनीथोड़ीहो जोएकमाष सुवर्णके मूल्यसेभीन्यून मूल्यको मिलसक्तीहो तिसको चोरीकरने यद्वाजोरीसे हरलेनेमध्ये उसीवस्तुके मोलसे पचगुना दंड राजालेवे और वस्तुजिसकीहो तिसकोतद्रूप यद्वा मूल्यद्वारा दिलवादेवे ऐसीही अतिस्वल्प वस्तुओंके हरनेमध्ये सिर्फ़दूना दंड मनुजीकहते हैं परंच उसका भावभेदभी कुछऔर है-तथाचमनुः(सूत्रकार्पासकिण्वानांगोमयस्यगुडस्यच। दध्नःक्षी रस्यतक्रस्यपानीयस्यतृणस्यच॥ वेणुवैदलभांडानांलवणानांतथैवच। मृण्मयानांचहर णेमृदोभस्मनएवच॥मत्स्यानांपक्षिणांचैवतैलस्यचघृतस्यच। मांसस्यमधुनश्चैवयच्चा न्यत्पशुसंभवम्॥अन्येषांचैवमादीनांमद्यानामोदनस्यच।पक्वान्नानांचसर्वेषांतन्मूल्याद्द्वि गुणोदमः) अर्थात्-सूतजो ऊनसनी कपासआदि किसीसे उत्पन्नहुआहो.कार्पास रुई बिनौराआदि कोईचीज कपासवालीहो.किण्वनाम सुराबीजकिन्तु महुआदि जिनचीजों से सुरापैदाहोतीहो.गोमय गोबर कंडाआदि.गुड़मिठाई. दही.दूध.मट्ठा.पानी.तृण.सींकासिरकीआदि-बांसकी खपाचोंसे बुनेहुयेपात्र आदि.लमक सभीप्रकारके. मट्टीकेपात्र आदि.मट्टीसेलखड़ीआदि कोईभांतिकी.राख.मत्स्यमछलीआदि.पक्षी तोता मैनाआदि कोईभांतिके.तैल.घृत.मांस.सहत.और जोकुछ पशुओंसेउत्पन्नहुईवस्तुहो जैसेमृगछाला सावर बारहासिंगा दांतपूँछ खोपड़ी तांति वसाचरबीआदि-इसीभांतिकी और चीजें जोजो तुच्छ समझीजाती हों जैसे मनामिल गेरूआदि शतधाचीजें जिनकेनामयहां नहींकहे. मद्य द्वादशभांति मेंसे कोईभा.भात कच्चीरोटी आदि.पक्वान्न सभीप्रकारके. इनमें कोईचीज चोरीकरने यद्वाजोरीसे हरलेनेमध्ये उसीवस्तुके मोलसे कि जितनेकी वहचीज हो दूनादंड राजालेकर स्वामीकी चीजवही तद्रूप यद्वा मूल्यद्वारा स्वामीको दिलवादेवे-इनमेंमनुका उच्चारणकिया दूनादंड सिर्फ़ऐसी तुच्छचीजोंकी अपेक्षामें समझना जिनसे थोड़ाही प्रयोजन सिद्धहोसक्ता हो बल्कि मूल्यकी अपेक्षामध्ये इतनी थोड़ी हरीगईहो जिसका मूल्यसिर्फ़ एकरूप्यमापसेभी न्यून समझाजाय क्योंकि

माषसुवर्णके मूल्यसे कमचीज हरीजानेमध्ये नारदने पचगुना दंडकहाथा-कदाचित् यही सूतकपास आदि तुच्छचीजें जिनकाथोड़ादंड यह कहचुके तिनको ऐसे स्थलसे यदिकोई हरै कि जिसमेंस्थावर कल्परचना सहित चिनिकर चीज लगाईगईहो यद्वा तात्कालिक उपभोग आदि महाप्रयोजन के अर्थ जंगमरचना रूपसजाकर कहींहाट बजारआदि में स्थापितकरीगईहो तिसअपहर्त्ताका यहथोड़ा दंडनहीं समझना किंतु उसको पूर्वसाहस तकभी दंडहोनायोग्यहै-यथाहमनुः (यस्त्वेतान्युपल्कृप्तानिद्रव्याणि स्तेनयेन्नरः। तमाद्यंदंडयेद्राजायश्चाग्निंचोरयेद्गृहात्) अर्थात्-जोकोईचोरउठाईगीरा आदि इतने उक्तद्रव्योंमें से कोईचीजभी उपल्कृप्तनाम रचनायुक्त चुरावै तिसकोपूर्व साहस दंड राजाकरै-उपल्कृप्तके दोभांतिसे दृष्टांतहैं कि जैसे किसीमकानमें लगाईहुई सोंट तखता पत्थरआदि उखाड़ि करलेजावे इत्यादिप्रायः स्थावरल्कृप्त चोरीकेदृष्टांत जानो(तथा)द्वितीयभांतिसे भी जंगमल्कृप्तके दृष्टांतहैंकि जैसे रथ गाड़ीआदि यंत्रोंमें खिंचावटवाले सूती चामीआदि रस्से खोलिकर लेजावै या बजाजआदि किसी सौदागरकी दूकानसे सजाईहुई चीजोंकोलेभागैइत्यादि यथापराधों के अनुरूप पूर्वसाहस पूरातक धनदंड कभीहोसक्ताहै और-यही पूर्वसाहसदंड उसपरभी कर्त्तव्यहै किजिसने घरके भीतरजाकर सिर्फ़अग्नितक चुरायाहो क्योंकि सूनेअथवा परोक्षवर्त्ती मानुष युक्त मकानके भीतरजाकर बिनापुकारे वा चितायेबिना अग्निका लेआना एकचोरी करनेवाला दाव न लगनेका बहानाहै कि मैं सिर्फ़ अग्निलेने भीतरगयाथा यहबात निपट छोटीनहीं समुझीजासक्ती है और यद्यपि एकमनुष्य चाहै निज संबन्धजानि सच्चेभावसे अग्निही लेनेगयाहो परयहमार्ग अतिशयखोटा है कि उसकी देखादेखी चोरकोभी अग्निका बहाना एकआड़है इसहेतु राजा पूर्वसाहस दंड यथापराधके अनुरूप जितनायोग्य समुझाजाय सोई दोसौपचास पणतक अवसरके अनुसार कल्पितकरै जिस्सेखोटेमार्गकी निवृत्तिहोय यहसिद्धांत लौकिक अग्निसे संबन्धरखता है त्रेताग्नि वा गृह्याग्निसे अपेक्षा इसमें कुछभी नहीं समुझनी-चुरायाहुआ धनचोरों केपास बिरानाजानिकर व्यवहारों केभीमार्गसे कोईपुरुष न लेवै किन्तु लेताहुआचोरोंके समान दोषीहोगा-तदाहमनुः(योऽदत्ताऽऽदायिनोहस्ताल्लिप्सेतब्राह्मणोधनम्। याजनाध्यापनेनापियथास्तेनस्तथैवसः) अर्थात्-यदिकोई ब्राह्मणहोकर भी चोरोंकेहाथसे पराया द्रव्य जानिकर याजन अध्यापनआदि कर्मकेभी द्वारा लेनाचाहै तौफिर जैसा दोषी चोर तैसा वहभी जानो-इसमें ब्राह्मणकी मुख्यताद्वारा सभीवर्णोंको प्रतिषेध जानो तद्वत् याजन अध्यापन बल्कि प्रतिग्रहके प्रतिषेध करके सभीलौकिक व्यवहारों द्वारा लेनेका प्रतिषेध दर्शितकियाहै-पुष्पहरेधान्य आदि हरनेमध्ये दंड मनुकहते हैं-यथा(पुष्पेषुहरितेधान्येगुल्मवल्लीनगेषुच। अन्येष्वपरिपूतेषुदंडःस्यात्पंचकृष्णलः)

भांडतृणादीनांमृण्मयानांतथैवचावेणु वैणवभांडानांतथास्नाय्वस्थिचर्मणाम्॥शाकाना माद्र्रमूलानांहरणेफलमूलयोः।गोरसेक्षुविकाराणांतथालवणतैलयोः॥ पक्वान्नानांकृतान्ना नांमत्स्यानामामिषस्यच।माषतोन्यूनमूल्यानांमूल्यात्पंचगुणोदमः) अर्थात्-काठकेबास-नआदि.तृणादिक चीजें. मट्टीकांच आदिकीचीजें. वांस वांसुरीआदि. वांसकी पुटारी आदिपात्र. स्नायु तांतिआदिचर्मनाल.हाड़दांत सींगआदि.चमड़ेकीचीजें. आद्रमूल शाकनाम आलू घुंइयांआदि गीलीजड़वाले शाक.फल.मूल.गोरस घी दूधआदि.इक्षु विकार जो कुछ ईखसे मिठाईआदि होताहो.लवण.तैल.पक्वान्न किसीभांतिके.कृतान्न रोटी भातआदि.मत्स्य.मांस.इन सबचीजोंमेंसे कोईचीज उतनीहरनेसे कि जितनी अल्प मूल्यवालीहो किन्तुएकमाष सुवर्णके मूल्यसेभी न्यूनमूल्यको आसक्तीहो यद्वा उत्तम मध्यम द्रव्योंमेंभी कोईचीजइतनीथोड़ीहो जोएकमाष सुवर्णके मूल्यसेभीन्यून मूल्यको मिलसक्तीहो तिसको चोरीकरने यद्वाजोरीसे हरलेनेमध्ये उसीवस्तुके मोलसे पचगुना दंड राजालेवे और वस्तुजिसकीहो तिसकोतद्रूप यद्वा मूल्यद्वारा दिलवादेवे ऐसीही अतिस्वल्प वस्तुओंके हरनेमध्ये सिर्फदूना दंड मनुजीकहते हैं परंच उसमें भावभेदभी कुछऔर है-तथाचमनुः(सूत्रकार्पासकिण्वानांगोमयस्यगुडस्यच। दध्नःक्षी रस्यतक्रस्यपानीयस्यतृणस्यच॥ वेणुवैदलभांडानांलवणानांतथैवच। मृण्मयानांचहर णेमृदोभस्मनएवच॥मत्स्यानांपक्षिणांचैवतैलस्यचघृतस्यच। मांसस्यमधुनश्चैवयच्चा न्यत्पशुसंभवम्॥अन्येषांचैवमादीनांमद्यानामोदनस्यच।पक्वान्नानांचसर्वेषांतन्मूल्याद्द्वि गुणोदमः) अर्थात्-सूतजो ऊनसनी कपासआदि किसीसे उत्पन्नहुआहो.कार्पास रूई विनौराआदि कोईचीज कपासवालीहो.किण्वनाम सुराबीजकिन्तु महुआदि जिनचीजों से सुरापैदाहोतीहो.गोमय गोबर कंडाआदि.गुड़मिठाई. दही.दूध.मट्ठा.पानी.तृण.सी-कासिरकीआदि-बांसकी खपाचोंसे बुनेहुयेपात्र आदि.नमक सभीप्रकारके. मट्टीकेपात्र आदि.मट्टीसेलखड़ीआदि कोईभांतिकी.राख.मत्स्यमछलीआदि.पक्षी तोता मैनाआदि कोईभांतिके.तैल.घृत.मांस.सहत.और जोकुछ पशुओंमेंउत्पन्नहुईवस्तुहो जैसेमृगछा लासावर बारहसिंगा दांतपूंछ खोपड़ी तांति बसाचरवीआदि-इसीभांतिकी और चीजें जोजो तुच्छ समझीजाती हों जैसे सनामिल गेरूआदि शतधाचीजें जिनकेनामयहां नहींकहे. मद्य द्वादशभांति मेंसे कोईसा.भात कच्चीरोटी आदि.पक्वान्न सभीप्रकारके. इनमें कोईचीज चोरीकरने यद्वाजोरीसे हरिलेनेमध्ये उसीवस्तुके मोलसे कि जितनेकी वहचीज हो दूनादंड राजालेकर स्वामीकी चीजवही तद्रूप यद्वा मूल्यद्वारा स्वामीको दिलवादेवे-इनमेंमनुका उच्चारणकिया दूनादंड सिर्फऐसी तुच्छचीजोंकी अपेक्षामें सम झना जिनसे थोड़ाही प्रयोजन सिद्धहोसक्ता हो बल्कि मूल्यकी अपेक्षामध्ये इतनी थोड़ी हरीगईहो जिसका मूल्यसिर्फ एकरूप्यमाषसेभी न्यून समझाजाय क्योंकि यह

माषसुवर्णके मूल्यसे कमचीज हरीजानेमध्ये नारदने पचगुना दंडकहाथा-कदाचित् यही सूतकपास आदि तुच्छचीजें जिनकाथोड़ादंड यह कहचुके तिनको ऐसे स्थलसे यदिकोई हरै कि जिसमेंस्थावर कल्परचना सहित चिनिकर चीज लगाईगईहो यद्वा तात्कालिक उपभोग आदि महाप्रयोजन के अर्थ जंगमरचना रूपसजाकर कहींहाट बजारआदि में स्थापितकरीगईहो तिसअपहर्त्ताका यहथोड़ा दंडनहीं समझना किंतु उसको पूर्वसाहस तकभी दंडहोनायोग्यहै-यथाहमनुः (यस्त्वेतान्युपक्लृप्तानिद्रव्याणि स्तेनयेन्नरः। तमाद्यंदंडयेद्राजायश्चाग्निंचोरयेद्गृहात्)अर्थात्-जोकोईचोरउठाईगीरा आदि इतने उक्तद्रव्योंमें से कोईचीजभी उपक्लृप्तनाम रचनायुक्त चुरावै तिसकोपूर्व साहस दंड राजाकरै-उपक्लृप्तके दोभांतिसे दृष्टांतहैं कि जैसे किसीमकानमें लगाईहुई सोंट तखता पत्थरआदि उखाड़ि करलेजावे इत्यादिप्रायः स्थावरक्लृप्त चोरीकेदृष्टांत जानो(तथा)द्वितीयभांतिसे भी जंगमक्लृप्तके दृष्टांतहैंकि जैसे रथ गाड़ीआदि यंत्रोंमें खिंचावटवाले सूती चामीआदि रस्से खोलिकर लेजावै या बजाजआदि किसी सौदा-गरकी दूकानसे सजाईहुई चीजोंकोलेभागैइत्यादि यथापराधों के अनुरूप पूर्वसाहस पूरातक धनदंड कभीहोसक्ताहै और-यही पूर्वसाहसदंड उसपरभी कर्त्तव्यहै किजिसने घरके भीतरजाकर सिर्फ़अग्नितक चुरायाहो क्योंकि सूनेअथवा परोक्षवर्त्ती मानुष युक्त मकानके भीतरजाकर बिनापुकारे वा चितायेबिना अग्निका लेआना एकचोरी करनेवाला दाव न लगनेका बहानाहै कि मैं सिर्फ़ अग्निलेने भीतरगयाथा यहबात निपट छोटीनहीं समुझीजासक्ती है और यद्यपि एकमनुष्य चाहै निज संबन्धजानि सच्चेभावसे अग्निही लेनेगयाहो परयहमार्ग अतिशयखोटा है कि उसकी देखादेखी चोरकोभी अग्निका बहाना एकआड़है इसहेतु राजा पूर्वसाहस दंड यथापराधके अनुरूप जितनायोग्य समुझाजाय सोई दोसौपचास पणतक अवसरके अनुसार कल्पितकरै जिस्सेखोटेमार्गकी निवृत्तिहोय यहसिद्धांत लौकिक अग्निसे संबन्धरखता है त्रेताग्नि वा गृह्याग्निसे अपेक्षा इसमें कुछभी नहीं समुझनी-चुरायाहुआ धनचोरों केपास बिरानाजानिकर व्यवहारों केभीमार्गसे कोईपुरुष न लेवे किन्तु लेताहुआचो-रोंके समान दोषीहोगा-तदाहमनुः(योऽदत्ताऽऽदायिनोहस्ताल्लिप्सेतब्राह्मणोधनम्।या जनाध्यापनेनापियथास्तेनस्तथैवसः)अर्थात्-यदिकोई ब्राह्मणहोकर भी चोरोंकेहाथसे पराया द्रव्य जानिकर याजन अध्यापनआदि कर्मकेभी द्वारा लेनाचाहै तौफिर जैसा दोषी चोर तैसा वहभी जानो-इसमें ब्राह्मणकी मुख्यताद्वारा सभीवर्णोंको प्रतिषेध जानो तद्वत् याजन अध्यापन बल्कि प्रतिग्रहके प्रतिषेध करके सभीलौकिक व्यवहा-रों द्वारा लेनेका प्रतिषेध दर्शितकियाहै-पुष्पहरेधान्य आदि हरनेमध्ये दंड मनुकहते हैं-यथा(पुष्पेषुहरितेधान्येगुल्मवल्लीनगेषुच। अन्येष्वपरिपूतेषुदंडःस्यात्पंचकृष्णलः)

अर्थात्-फूल.हराधान्य जो खेतमें उपस्थितहो.और भी वहधान्य जो कटाहुआ छिल-का दूरकरने के निमित्तचाहे खेत वा खलिहानोंमें लांकबनाया रक्खाहो.तद्वत्गुल्मव-ल्लीवृक्ष जोकुछ कटेटूटे यद्वा वायुसे गिरपरेहों जिनको अबतक छांटि छूँटिकर एकत्र न-हीं करनेपाया.फूलोंके सिवाय इनको एकपुरुषके बोझमात्रतक लेजाय तिसको देशकाल आदि सभी विचारोंके अनुसार जैसायोग्य समुझाजाय तैसे सौवर्णिक पांचकृष्णल यद्वा रूपेकेही पांचकृष्णल दंड राजाकरै और वहवस्तु उसकेस्वामीको दिलवादेवै-खलिहानों में संसिद्ध किये धान्यआदिके अपहार मध्ये दंडमनुकहते हैं (परिपूतेषुधा न्येषुशाकमूलफलेषुच।निरन्वयेशतंदंडःसान्वयेऽर्धशतंदमः) अर्थात्-परिपूतकोईधान्य जोकुछ गाहिमीज उड़ाकर साफ़किया हुआ खलिहानोंमें उपस्थित हो.इसीप्रकार शाकमूल फलकी चीजें खलस्थानमें जो संचितहों तिन्हें निरन्वय हरनेमें सौपणका दंड परंच सान्वय हरनेमध्ये सिर्फ़ पचासपण का दंडजानो (यहां निरन्वय सान्वयक-हनेसे अन्वयनाम धनके स्वामियोंका संवन्धजानो किन्तु चीजवालेसे जब हरनेवाले का कोईभी संवन्ध न हो जैसे एकग्राम या मुहल्लेकी सहवासता तकभीनहीं तबउस हरनेवाले का निरन्वय वेवास्ता कर्मजानो जहांकोईसा कुछवास्ताहो तहां सान्वयकर्म जानो)॥ किंचिदपवादश्च॥ तदाहमनुः (वानस्पत्यंमूलफलंदार्वग्न्यर्थंतथैवच। तृणंचगो भ्योग्रासार्थमस्तेयंमनुरब्रवीत्) अर्थात्-वानस्पत्य नामवीरुध् लताविशेष यद्वादीर्घवृक्ष जोजोकहीं परिग्रह आदिघेरेमेंपराये होतेहुयेभीन घिरेहों तिनकेपुष्प मूलफलइत्यादि और होम योग्य अग्निके निमित्त करके लकड़ी भी और गौवों के ग्रास निमित्तघास फूस आदि तृण भी कोईलेवे तो यह चोरी नहीं है अर्थात् ऐसा करनेसे अधर्म और अपराध भी कुछ नहीं है इसलिये इसमें दण्डका कुछ चर्चा नहीं-पथिकादीनांवि-शेषस्तु-यथाहमनुः(द्विजोध्वगःक्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षूद्वेचमूलके। आददानःपरक्षेत्रान्नदण्ड न्दातुमर्हति)अर्थात्-मार्ग जातेहुये द्विजातीमात्र कोई क्षीण वृत्तीहो अर्थात् जिसपर कुछ पाथेय राहखर्च आदि संवल वँधानहो ऐसा पुरुष पराये खेत से भी केवल दो गाँड़े या दो मूली तोड़ लेताहुआ दण्डदेने योग्य नहीं है यह छूटजानो-अन्यत्र (च णकव्रीहिगोधूमयवानांमुद्गमाषयोः। अनिषिद्धैर्ग्रहीतव्योमुष्टिरेकःपथिस्थितैः॥ तथै वसप्तमेभक्तेभक्तानिषडनश्नता। अश्वस्तनविधानेनहर्त्तव्यंहीनकर्मणः) अर्थात्-पथि-स्थित पान्थ लोगोंको पराये खेत में विनरोकेहुये केवल एकमुट्ठी. चने. धान. गेहूँ. यव. मूंग. उरद. आदि धान्यों की ले लेनेका प्रतिषेध नहीं है-तैसेही जिस किसीने छै दिन तक भोजन नहीं पायाहो सातवें दिनमें उसको हीनकर्म होनेपर अश्वस्तन विधि से एक दिनभरका आहार हरना योग्यहै अर्थात् पराया अन्न छै दिनका निपट भूँखा पुरुष जहाँ कहींदेखे और वह सिर्फ़ एकदिनके भोजन मात्रका लेभागे तोभी चोरी-

वाला दण्ड उसको नहीं है पर अधिक लेनेमें फिर दण्डभी यथोचित जानकर होसक्ता बल्कि इसीलिये अश्वस्तन विधिका लक्षण भी दर्शाया है कि दूसरे दिनके अर्थ में कुछ नहीं लेवे इत्यपवादविशेषः॥ अथपथिकलुण्ठकादीनांदण्डभेदः॥ तत्रबृहस्पतिः (सन्धिच्छेदकृतोज्ञात्वाशूलमाग्राहयेत्प्रभुः। तथापान्थमुषंवृक्षङ्गलेबध्वाऽवलम्बयेत्) अर्थात् राजा सेंधि काटनेवालेको यथार्थ से पहिंचानकर पश्चात् फाँसीदेय तद्वत् पथिकोंका धनमोष करनेवालेको गलेमें फाँसीबांधिके वृक्षादिकपर लटकादेवै-आशय यह कि प्राणोंका बधहोने पीछेभी अनेक दिनतक लटकारहै जिस्से चोर बटमारोंका गण देखकर भयभीत होय (मोष नाम चुराना तथा लूटना ठगना आदि) पूर्वोक्त प्रकाशतस्कराणांदण्डमाहव्यासः (स्त्रीपुंसौवञ्चयंतीहमङ्गलादेशवृत्तयः। गृह्णन्तिछ्द्मनाचार्थमनार्यास्त्वार्यलिङ्गिनः॥ नैगमाद्याभूरिधनादण्ड्यादोषानुरूपतः। यथातेना निवर्त्तन्तेतिष्ठंतिसन्नयेतथा) अर्थात्-मङ्गलादेश वृत्तिवाले जो धन पुत्र आदि लाभ शीघ्र होनेवाला कहकर यद्वा सामुद्रिक हाथपञ्जा आदि देहलक्षण कहकर चापलोसी बातोंसे स्त्री पुरुषोंको सदैव ठगतेहैं या और भी अनेक जो जो नीचहोकर उत्तम जातियों के चिह्नों से छलकरके द्रव्य लेतेहैं या बहुतेरे धनवान् भी व्यापारी आदि बनकर बड़ी सचावट से धन हरतेहों यह सब अपने अपने दोषों के अनुसार दण्ड पावैं किंतु धनादिक बहुताइत वा बड़प्पनके अनुरूप नहीं और आशय इसका यह कि उनका जितना जितना थोड़ा बहुत दोष प्रकट होताजावै उतनाही तत्कालदण्ड पायाकरें किन्तु चोरोंकेही तुल्य इनको एकसाथ तीव्रदण्ड न देवै-इसीलिये फिर कहते हैं कि जैसे जैसे थोड़ा दण्ड पाकर भी वे अपने दोषों से निवर्तित नहींहोवैं तैसे क्रम से दण्ड बढ़ताजाय-बृहस्पतिभी-बहुतेरे इसीभाँति के प्रत्यक्ष तस्कर लोगोंका दण्ड आगे कहतेहैं-यथा(प्रच्छाद्यदोषंव्यामिश्र्यपुनःसंस्कृत्यविक्रयी। पण्यंतद्द्विगुणंदाप्यो वणिग्दंडञ्चतत्समम्॥ अज्ञातौषधिमन्त्रस्तुयश्चव्याधेरतत्त्ववित्। रोगिऽभ्योर्थंसमादत्तेसदण्ड्यश्चोरवद्भिषक्॥ कूटाक्षदेविनःक्षुद्राराजभाव्यहराश्चये। गणकावञ्चकाश्चैव दण्ड्यास्तेकितवाःस्मृताः॥ अन्यायवादिनःसभ्यास्तथैवोत्कोचजीविनः। विश्वस्तवञ्चकाश्चैवनिर्वास्याःसर्वएवते॥ ज्योतिर्ज्ञानन्तथोत्पातमविदित्वातुयेनृणाम्। श्रावयन्त्यर्थलोभेनविनेयास्तेप्रयत्नतः॥ दण्डाजिनादिभिर्युक्तमात्मानन्दर्शयंतिये। हिंसंति छद्मनानृणांवध्यास्तेराजपूरुषैः॥ अल्पमूल्यन्तुसंस्कृत्यनयन्तिबहुमूल्यताम्। स्त्रीबालकान्वंचयन्तिदण्ड्यास्तेऽर्थानुसारतः॥ हेमरत्नप्रवालाद्यान्कृत्रिमान्कुर्वतेनुये। क्रेतुर्मूल्यम्प्रदाप्यास्तेराज्ञातद्द्विगुणंदमम्॥ मध्यस्थंवंचयंत्येकंस्नेहलोभादिनायदा। साक्षिणश्चान्यथाब्रूयुर्दाप्यास्तेद्विगुणंदमम्) अर्थात्-बृहस्पति कहतेहैं कि जोकोई बणियां बेपारी किसी दोषिल सौदाका दोष ढँकिकर या अच्छे में कुछ बुरा मिलाकर यद्वा

भीगीहुई चीजको फिर संस्कार करके श्रेष्ठपण्यों का धोखादेकरबेंचै तौ उसपण्य सेदूना पण्य उसपरक्रेता को दिलवाया जाकर उसी समान राजदंडभी दिलवायाजाय(पुनःसंस्कारकेदृष्टांतजैसे कुसुंभकारंग पहिला एक निकासिकर फिर उसके वर्णांतरकीभावनासे तद्रूपकरके बेंचदेना या जैसेंचाहपीहुई टहलुआ लोगोंसे लेकर उसकोवर्णांतरकीभावना में तद्रूप करके फेरिबेंचै इत्यादि बहुधाजानो)बिनाजानीहुई औषध यद्वा मंत्रयंत्र जोकोई वैद्यरोगोंके निदानको न जानतेहुये देकर अज्ञानी रोगियोंसे धनहरताहोतौ वहछोटभैया तुच्छचोरोंके समानदंडपाने योग्यहै-छलके पाशोंसे जो नीचखिलाड़ी द्यूतकर्मद्वारा धनको हरतेहों-और जेकोई राजभाग संबंधी किसीभांतिका करदेने से छिपातेहों एवंगणकानाम जोसी पड़िये भड्डरी आदि बहुधा जोजो तिथिबारादि संवत्सरकापत्र सुनाते फिरतेहों-एवंवंचक नामठगिये जोरसायन आदि युक्तियोंसे सोना चांदीआदि लेकर अन्य द्रव्योंके प्रक्षेप आदि ठगईके प्रकारोंद्वारा व्यसनियोंकाधन हरतेहों.ये अवसरके अनुसार निजनिज दोषोंकेही तुल्यदंडपाने योग्यजानो क्योंकि छलियालोक प्रसिद्धहैं- अदालती अहल्कार जोजो अन्यायवादी समुझेजातेहों या घूसपच्चड़ खातेहों याजेकोई लोगधर्मसे विश्वासदेकर सच्चेसूधेविश्वस्तों कोसदैवठगते हों ये सब दुष्ट निकासिदेने योग्यहैं अर्थात् निज अधिकारों वा स्थानोंसे परिच्युतमात्र कियेजावैं यहीदंड है परतवहीं तक कि जबतक उनके अपराधोंकी विख्यातिमात्र होकर निपट सबूत नहींपाया जाय किंतु निपटप्रमाण पायाजाने में फिर(उत्कोचजीविनोद्रव्यहीनान्कृत्वाविवासयेत्)इस व्यासोक्त वाक्यसे जो दंड दोसौअरतालीस की अधिकोक्ति द्वारा निश्चित होय सो कर्तव्य होगा.इसका रूप पूरे तीनसौ की अधिकोक्तिमेंभी देखो-जे कोई अज्ञानी मूर्ख लोग ज्योतिर्ज्ञान और उत्पात रूप भावी लक्षणको असत्य विना जाने धनके लोभसे सर्वत्र सुनाते फिरते हों येभी उत्तमयत्नों सहित शासनाशिक्षा पानेयोग्यहैं क्योंकि ऐसे ढँगोंसेभी प्रायः लोकव्यतिक्रम होना संभवहै-जे कोई मायावी लोग मृगछाला दंड आदि से संयुक्त होकर दंडाजिन रूप दंभधारण किये शरीरको दिखलाते फिरते छल से सभी मनुष्यों के धन हरते हों वे तत्काल राजपुरुषों करके बाँधिलेने योग्य हैं अर्थात् थानेपाल आदि खुद अख्तियारी से इत्यादि धूर्त लोगोंको पकड़ने के अधिकारी हैं कि उनको दंड दिलानेआदि प्रयोजन से लेजाकर प्राड्विवाकों के समर्पण करें-जे कोई ठगियालोग थोड़े मोल वालीवस्तुका लिफाफा संस्कार करिके ढेर मोलवाली धोखे की टट्टीसीबनाकर उन्हीं चीजोंसे स्त्रियों तथा बालकोंको क्रय विक्रय आदि प्रकारों से ठगिलेते हों वे उस अर्थके अनुरूप दंड पानेयोग्य जानो जितने धनकी हानि उसक्रय विक्रयद्वाराहोनी समुझीजाय यद्यपि हानि होनेपाईहो या नहो किंतु हानिके होजाने में उस हानि का

दिलवानाभी विशेष जानौ-हेम सोने चाँदीकाभूषण आदि कृत्रिम कल्पितकरैं यद्वा रत्नमूँगा आदि कृत्रिम कल्पित करते हों ऐसे लोग क्रेताका मूल्यवापिस करनेयोग्य हैं पुनि राजाको भी दूनादंड दिलाया जाय सो उस दशामें कि जो इन कल्पितचीजों को न कहकर सच्ची चीजोंका धोखादेकर विक्रयकरते हों-जे कोई दुर्जन एक मध्यस्थ किंतु दलालआदि किसीबिचवईको स्नेह यद्वा लोभआदिसे मभ्कार देकर ठगतेहों या जे कोई साक्षी बनकर कुछ विपरीत बोलैं ते उस धनसे दूनादंड पावैं जितनेकेलोभ से अपराध कियाहो यद्वा जितने धनकी हानि उनके उस अपराधसेही समुझीजाय तिससे दूना ॥ २७८। २७९। २८०॥

(अथचौरोपकारिणांदंडः)

भक्तावकाशाग्न्युदकमंत्रोपकरणव्ययान्। दत्त्वाचौरस्यवाहंतुर्जनतोदमउत्तमः २८१॥

ऐ०-(भक्त)भोजन (अवकाश) टिकने को स्थान. (अग्नि) चोरों का जाड़ा शांत करने आदि कामोंको.(जल) प्यासे चोरोंको पिलाना आदि. (मंत्र) चोरी होसक ने का उपाय वा प्रकार आदि बतलाना. (उपकरण) चोरी करने वाली सामग्री खंता कमंद गदाला निःश्रेणी अस्त्र शस्त्रआदि चीजें देनी. (व्यय) खर्च संवल पाथेयनगदी आदि से सहायता करनी.इनमेंसे जो कोई चीजचोर बटमारोंको या हंता अपघाती साहस कारीकोही उनकाभेद जानते हुये देवै तिसको उत्तम साहस दंड उनअपराधों के अनुसार दियाजावै-किंतु चोर वा अपघाती को न जानकर जो अच्छे जनके धोखे से कुछ और संसारीकाम समुझतेहुये सहाय करै तिसको यद्यपि दंडदेनायोग्यनहीं है पर तो भी देशकाल बस्तुओंके अनुसार विचारकरना योग्यहै कि जहांसिर्फकमंद खंता निःश्रेणी आदि चीजें एकांत देश रात्रि समय समर्पण करीजायँ तहांपर यह संभव नहीं समुझाजासक्ताहै कि दाताने इसदशामें भी दुष्टोंकोनसमुझाहो २८१॥

अधि०-कात्यायनजी ने चोरोंके सहायक लोगोंको भी चोरबटमारों के तुल्यकह कर उनके साथमें दर्शायाहै-यथा(चौराणांभक्तदायेस्युस्तथाग्न्युदकदायिनः। क्रेतार श्चैवभांडानांप्रतिग्राहिणएवच॥ समदंडाःस्मृताह्येतेयेचप्रच्छादयंतितान्)अर्थात्-जे कोई चोरोंको भोजन देनेवालेहों तद्वत् अग्नि जल पहुँचानेवालेहों याजे कोईचोर बटमार आदि (भांड) नाम भर्तीके माल मार्ग जातेहुये छिपकर काटैं किन्तु चुरावें यद्वा लूटैं (और) उनके फिर जे कोई प्रतिग्राही बनकर हराहुआधन उनसेलेलेंअपने घरमें धरें इतने सभी दुर्जन एकसावराबर दंड पाने योग्यकहेहैं और इसीप्रकार वे भी जोउन चोरों वा बटमारोंको छिपावें-मनुनेभी-चोरीकाधन घरमें धरनेवाले आदिचोरोंके सहायक चोरतुल्य निश्चित कियेहैं-यथा(अग्निदान्भक्तदांश्चैवतथाशस्त्रावकाशदान्। सन्निधातॄंश्चमोषस्यहन्याच्चौरमिवेश्वरः)अर्थात्-गाँठिकटे बटमारआदिचो-

राको जानतेहुये उनको अग्नि या भोजन या शस्त्र या टिकने वा विश्रामको स्थानजे कोईदेते हों यद्वाचोरोंकी सौंपीचोरी अपनेघर धरिलेतेहों इनसबको राजाचोरोंकेही भांति दंडदेवै-राजधानी आदिबड़ेनगरोंके सिवायजहां ग्रामोंमेंभी ऐसेलोगहों तिनके हेतुमें वचनांतर मनुकहते हैं-यथा(ग्रामेष्वपिचयेकेचिच्चौराणांभक्तदायकाः। भांडावकाशदाश्चैवसर्वांस्तानपिघातयेत्) इसकाअर्थ देखौ जहांप्रकीर्ण प्रकरणमें प्रभिन्न मुतफर्रिक व्यवहारोंकी पंक्तिमध्ये २७१ अंकपर यहवाक्य हो-चोरोंकी उपेक्षा करनेवालोंको भी दंडहोना नारदकहते हैं-तथाच(शक्ताश्चयेउपेक्षंतेतेऽपितद्दोषभागिनः। उत्क्रोशतांजनानांतुह्रियमाणेधनेतथा॥श्रुत्वायेनाभिधावंतितेऽपितद्दोषभागिनः)अर्थात समर्थभी जेकोई चौरादिक दुर्जनलोगोंको दुर्जनतामें प्रवृत्तहोते जानकर इसभांति उपेक्षाकरते हों किहमको किसी साह यद्वाचोरकी भलाई या बुराईजाहिर करनेसे कुछ काम नहीं तो इसभांतिके उपेक्षा करनेवालेभी उसदोषके समान भागीहोंगे जोकुछ चोरोंसे उत्पन्नहो.तथैवधनके हरेजातेहुये पुकारकरते धनीलोगोंके शब्द सुनकर जे अत्यंत दौड़ैंनहीं वेभी उसीदोषके भागीजानों जोकुछ तस्कर लोगोंसे उत्पन्नहोय-मनुने इनलोगोंको कदाचित् देशनिकाला दंड कहाहै-यथा(ग्रामघातेहिताभंगेपथिमोषाभिदर्शने। शक्तितोनाभिधावन्तोनिर्वास्याःसपरिच्छदाः) अर्थात्-किसीग्रामकेलूटमारजाने समयतद्वत्(हिता)नाम मर्यादाभंगहोतेसमय एवं मार्गमें चौरादि उपद्रव लूटिफूटिदेखि परने समयजे कोई निकट वर्तीलोग अपनी शक्ति के अनुसार नहीं दौड़ैं वे सब निजनिज धनधान्यआदि सामग्री सहितदेशबाहर काढ़िदेने योग्यहैं (हिता नाम मर्यादाभंगहोनेका यह अर्थहै किजब कोईदुर्जन किसी प्रतिष्ठितस्त्री पुरुष की प्रतिष्ठा भंग करता हो यद्वा कोई और भाँतिशिष्टाचारीक मर्यादा का व्यतिक्रम हुआ जाता हो तब साधारणधर्मों की मर्यादा से तत्कालसबके रक्षाकरनेका अधिकारहै पर जितनी जिसमें शक्तिहो) योगीश्वरने यह बात दोसौ उनतालिसवाले मूलश्लोकद्वितीय पाद में (विक्रुष्टेनाभिधावकः) इसरूपसे कहदीथी तत्रैव देखौ २८१ ॥

(क्वचिच्चौर्येणच साहसकर्मप्रवृत्तानांदंडः)

शस्त्रावपातेगर्भस्यपातनेचोत्तमोदमः। उत्तमोवाधमोवापिपुरुषस्त्रीप्रमापणे२८२॥

ऐ०—अब उसचोरीका स्वरूप वर्णन होगा जिसमें चोरोंने कुछ लोगोंके सोने व दौड़ते में हथियार भी चलायाहो यद्वा घिरकरकिसी स्त्री पुरुषों पर कुछ धक्कामुक्कीहीकरिभागेहों तो यहचौर्य कर्म साहसयुक्त जानों तिसकादंड याज्ञवल्क्यजी अबकहतेहैं कि-धनीआदि किसी मनुष्य या पशुजाति पर यदिकोई चोरशस्त्रका अवपात करैं यद्वा धक्कामुक्की आदिप्रकारों द्वारा किसी गर्भिणीका यदि गर्भही गिरजाय तौफिरतिन चोरोंको अवश्य उत्तमसाहस दंडदिलायाजाय जिसमें वधबंध अंगछेदन आदिहै

दंडभी संयुक्तहोसकताहै-एवंकिसी पुरुषयद्वा स्त्रीके प्रमापणहोने किंतु निपट मारेजाने में भी उत्तमसाहसदंड जानो परउस मरेहुये पुरुषयद्वा स्त्रीकी उत्तमता मध्यमता आदि भेदोंसे कदाचित् अधमदंड यद्वा मध्यमदंड भी होसकता जानो जोकुछशास्त्र के अनुसार व्यवस्थित पायाजाय-इसमें यहभी शंकाहोतीहै कि शस्त्रचलाकर घायल करने मध्ये केवल उत्तमसाहसदंड बताया और इसनिपटमारेजानेके प्रत्यक्ष गुरुतर अपराधमें कदाचित्कालनीच दंडभी होसकना कहा यहबिपरीतहै इसहेतुसे यहनीच अथवा मध्यमदंडका विकल्प पूर्वार्द्धमेंभी समझलेनायोग्यहै अर्थात् केवल उत्तरार्द्ध मेंहीनहीं क्योंकि पाठक्रमका स्वल्पविरोध होनेपरभी अर्थक्रम बलवान्होताहै २८२॥

अधि०-इसी२८२ वालेमूलश्लोक पूर्वार्द्धका जो अर्थ मिताक्षराकारने निरूपण किया सोभी देखो-यथा(परगात्रेषुशस्त्रस्यावपातने-दासीब्राह्मणगर्भव्यतिरेकेणगर्भस्य पातनेचोत्तमोदंडः। दासीगर्भनिपातनेतुदासीगर्भविनाशकृदित्यादिनाशतंदंडोऽभिहितः। ब्राह्मणगर्भेतुहत्वागर्भमविज्ञातामित्यत्रब्रह्महत्यातिदेशंवक्ष्यति) भावार्थइसका यहकि दासी और ब्राह्मणके दो गर्भोंके सिवाय किसी और का यदिगर्भ निपातहोय तो यह उत्तमदंडजानो क्योंकि २४१ वालेमूलश्लोकमें दासीके गर्भमध्ये सिर्फसौपण कादंड बर्णनहोचुकाहै और ब्राह्मणके गर्भमध्ये(अविज्ञातगर्भका पातकरकेब्रह्महत्या वाला प्रायश्चित इसलियेकरना आगे कहेंगे किउसाविनाजाने गर्भमें नजाने ब्राह्मण काहीगर्भहोय)सो यहव्याख्या निपटअसंगतहै इसहेतुसे कि वहां२४१वालेमूलश्लोक में सौपणकादंड सिर्फ साहसकर्मोंके प्रसंगसे उसदशा परदर्शायाहै कि जोकोई दासी गमन करनेवालाअपने बीजकी संतानहोना एकबुराई जानकर गुपतौअर भ्रूणहिंसा करेकिंतुरेचक औषधदेने आदि प्रकारोंद्वारा गर्भगिरावै तिसका दंडसाहसप्रकरणके अनुसारहोना सूचित करनेके आशयसे उसकर्म कोभीसाहस कर्मोंके साथगिनती कियाहै और दासी एकनिदर्शनमात्र जानो किंतुदासीके उपलक्षणकरके वृषलीवेश्या आदि औरोंके भी गर्भ निपात होनेमें सौपणका दंडजानो क्योंकि प्रायःवृषलीगामी आदि अपने बीजकी संतानों का नहोना चाहकर यहकाम कियाकरतेहैं परंतु चोरी कासंसर्ग उसमें कुछभी नहीं यहप्रत्यक्ष है-और इस२८२ वाले वाक्य में चोरियोंका प्रकरण वर्णन करते करते चोरोंके गुपतौअर और प्रत्यक्ष साहस कर्मों का संसर्गदर्शितकियाहै कि जबकोई चोरचोरी करतेहुये घिरकर तथा भागतेहुये राहपाने आदि निमित्तों करके किसी गर्भिणीको कुछधकामुकी आदि देनाजावे तिसके प्रहारसे या गिरकर गर्भपातहोवै तौयहकर्म उनका चोरीके संसर्गसे बलवान् होकर उत्तमसाहस तुल्य ठहरा इसी आशय करके उत्तमदंड भी दर्शायागया परंच इसमें दासी अथवा ब्राह्मण की अनपेक्षित छूटजोड़िलेनी कोई भांतिभी न्यायात्मकनहींपाईजातीहै क्यों-

कि चोरोंके समीप चाहेदासीतथा ब्राह्मणी आदि कोईभी सगर्भावा अगर्भाहो उनको अपने मुख्यप्रयोजनसे सिद्धांतहै इसलिये उनसौंपणका चर्चायहांकुछआवश्यकनहीं किंतुयहांचाहेदासी काभी गर्भनिपात होयतौभी यहीदंडहै जो यहांपर दर्शायागया इसी हेतुयोगीश्वरने निजमूलवाक्य में सामान्य गर्भपातकरना कहा है कि (गर्भस्यपातने) इसमें केवल नारीमात्र केहीगर्भनहीं किंतुगऊघोड़ीआदि पशुओंकेभी गर्भसूचितहो तेहैं दृष्टांत जैसे गाभिन घोड़ीको चोर सवारहोकर पकड़ेजाने के भयसे ऊंचीखाली राह उसको तीव्रवेगभगावै जिस्सेघोड़ीका ओछागर्भ निपातहोय इसी प्रकार औरों को भी समझलेना-और जो ब्राह्मणके गर्भमध्ये ब्रह्महत्याका अतिदेश विनाजानेग-र्भका प्रसंग लेकर लिखा सोभी एकवृथा का तुषकण्डनहै क्योंकि यहांप्रायश्चित्तोंकी गुरुता लघुतादर्शितकरने से कुछदंडकाभावार्थ सिद्धनहींहोता बल्कि दंडपरिमाणकी यदि गुरुता लघुताका प्रमाण दियाजाता तो कुछशायद कामआता यद्वा नहीं-कदा-चित् यहतर्कणाउठाईजायकि यहांपहिले अद्धामेंदंड केवल उत्तमसाहस कहागर्भसब सामान्य मानेगये इसमेंक्योंकर दंडविवेकहोगा किन्तु दासीब्राह्मण क्षत्रिय आदिब-ल्कि गायभैंस घोड़ीआदि पशुओंकोभी लेकरसबका एकदंडकहा तिसकायह संतोष है कि यहां केवलगर्भका गिरानाएक अपराध विशेषहै कुछ ऊँचनीचजाति अथवा योनिभेदसे अपेक्षा अधिकनहीं समझनी और जो देशकालवस्तुके अनुसार कभी भेद करनेकी आवश्यकता संभवहो तोफिर ऐक्यार्थमें द्वितीयअद्धाका जोअर्थ ऊपर लिखागया तिसहीके अनुसार जैसाचाहो तैसादंड भेदभी होसक्ताहै क्योंकि इसी अपेक्षाकरके उत्तमदंड पहिले कहकर पीछेअधम मध्यमयहभी दोनों विकल्पसे कह-दियेहैं और उसमें जैसेमरेहुये पुरुषकी उत्तमताआदि भेदमानेगये तैसेइसमें उत्तम मध्यमआदि गर्भवती योनिजातिकी उत्तमता मध्यमता आदि मानीजायँ २८२॥

(अथस्त्रीणांसाहसविशेषकर्तृत्वेदंडः)

विप्रदुष्टांस्त्रियंचैवपुरुषघ्नीमगर्भिणीम्। सेतुभेदकरींचाप्सुशिलांबध्वाप्रवेशयेत् २८३॥
विषाग्निदांपतिगुरुनिजापत्यप्रमापिणीम्। विकर्णकरनासौष्ठींकृत्वागोभिःप्रमापयेत् २८४॥

ऐ०—विशेषकर प्रदुष्टानारी जो सामान्य भ्रूणघ्नी या निजगर्भ निपातकरने वाली या विश्वासघातिक मार्गसे परस्त्रीको परपुरुषोंमें फँसानेवाली आदि खोटकर्मोंमेंरत हो यद्वा पुरुषघ्नी जो धन युक्त व्यभिचारी आदि स्त्रीपुरुषोंका वधकरे यद्वा सेतुभंग करनेवाली जो जलाशय कीमर्यादा बंधन आदि सेतुओंको निज इच्छा सहितजाकर तोड़े जिस्सेप्राणियों का वध होय या होनासंभवहो या कोई सी असाध्य पीड़ापैदा होय तो इसभांतिकी स्त्रियोंको यहदंडहै कि भारीपत्थरकी शिला उनके कंठबांधिअ-गाध जलमें छोड़िदेय जो फिर डूबीहुई न निरनेपावै परयहछूटभी आवश्यक है कि

जो अगर्भाहों तिनहींको यहदंड होय किंतु सगर्भाको यह मृत्युदंड नहीं २८३ ऐसे-हीं जे कोई स्त्रियाँ किसी स्त्री पुरुषमात्र को विषदेवें या अन्य किसीकेद्वारा आपदेकर उसे दिलावें यद्वा अन्नपानादिकमें मिलाकर आप खिलावें तद्वत् ग्रामघर खलिहान आदि में कदाचित् आगिलगावें या लगवावें अथवा निज अपनेही भर्त्तारको या सासूससुरा आदि गुरुओंको या संतानोंको वधकरैं तिनके कान हाथ नाक ओठ काट करवेनाथे दुष्टबैलोंसे मैदान या चौराहेमें लेजाकर मर्दनकरवातेहुये प्राणांतिक बध करवादेवें जिस्से प्रायः फिर स्त्रियोंको इसभांति दुष्कर्मों में उत्साह न होनेपावे-इसमें भी ऊपरली छूटसमझनी योग्य है कि जो जो स्त्रियां ऐसेपापकरते समय सगर्भा हों वे उस अवधितक अवरोध बंधन आदि में सुरक्षित रहकर पीछे दंड पावेंगी कि जितनेकालमें वहगर्भ पैदाहोकर जीतेरहने योग्यपालाजाय २८४॥

मधि०—दोसौ बयासीको आदि लेकर यहांतक यह तीनोंवाक्य यद्यपि धनहरना आदि चोरी नहीं प्रतीत होतेहैं अर्थात् साहस कर्महैं तथापि ऐसेकर्म प्रायः छिपकर चोरी चोराकिये जातेहैं तिसहेतुसे इस चौर्य प्रकरणमें मिलायेगये दूसरा कारणएक यहभीहै कि प्रायः ऐसे कर्मोंके करनेवाले उसकाधन भी जो कुछपावैं सो हरलेतेहैं कि जिसके प्राणोंका बधकरैं इस्से चोरीका प्रसंगभी अवश्य इनमें होता है-और यद्यपि ठेठ साहस कर्मोंमेंभी प्रायः ऐसे द्विविधकर्म होतेहैं कि प्राणोंका बधकरके पीछेधनभी हराजाताहै परउसमें यहीअंतरहै कि वे बटमार लुटेरेआदि प्रबलतासे धनहरतेऔर बधकरतेहैं तब साहसकहाजाता और अत्रोक्त दोनोंवाक्योंका यहडौलहै किछिपकर चुपके कोई कुत्सित कर्म कियाजावै जैसे चुपके जाकर गुपतौअर जलकासेतु आदि भंग करना या विषदेना यद्वा आगिलगाना या सोतेको बधकरना और धन हरना यह सब चोरी तुल्यकर्महैं इसहेतुसे उनसाहस कर्मोंके प्रकरण में मिलाये नहींजा सक्तेथे-सिवाय इसके चोरी और उनसाहस कर्मोंका सदैवही संबंधहै कि जब जब कभी चोरी अथवा साहस कर्मोंके व्यवहार विचारकरने हों तब तब दोनों प्रकरण एकसाथ विचार करने होंगे २८४ दोसौ बयासी को आदि लेकर तीनों वाक्य में दर्शाये हुये उपद्रव जब अज्ञात कर्तृक हों तिनकाकर्त्ता अपराधी पकड़ेजानेकाउपाय नीचे कहते हैं २८४॥

(अविज्ञातकर्तृकहननेहंतृज्ञानोपायः)

अविज्ञातहतस्याशुकलहंसुतबांधवाः। प्रष्टव्यायोषितश्चास्यपरपुंसिरताःपृथक् २८५॥
स्त्रीद्रव्यवृत्तिकामोवाकेनवायंगतःसह। मृत्युदेशसमासन्नंपृच्छेद्वापिजनंशनैः २८६॥

ऐ०—जब कोई पुरुष ऐसेचुपके माराजाय जिसका हंता अपराधी अबतक नमालूम हो तिसकी तहक़ीकात का यह ढँगहै कि मरेहुये मनुष्य का मरना सुनकर तत्काल

राजपुरुषों करके उसके पुत्रादिक तथा समीप वासी भाई स्नेही चाचा ताऊ पिता माता आदि बंधु लोग जे कोई ऐसे अवसरमें उपस्थित हों पहिले कलह विवाद बूझेजायँ कि इसकी किसीसेतकरार कोशाकर्रीआदि कलह लड़ाई क्योंकरहुईथी या नहीं ब्यौरेवार बूझें किंतु जहां कदाचित् उनसे उत्तरपानेमें संदेह शेषरहे तो उसमरे मनुष्य के घर ठेठ कुटुंबकी स्त्रियाँ जो कुछ नाते रिश्ते के संबंध वालीहों वेभी भिन्न भिन्नबूझी जायँ तत्पश्चात् जेकोई स्त्रियाँ उसी कुटुंब या सहवासवाली परपुरुषोंमेंरत लोकप्रसिद्ध हों या व्यभिचार गूढ़ा हों वे प्रत्येक प्रियवचनों से फुसिलाकर बुझीजायँ. अवइन सबसे ब्यौरेवार बूझेजानेका प्रकार आगेकहतेहैं कि २८५ क्यायहपुरुष कुछस्त्रियोंकी संभोग वांछा रखताथा या कुछद्रव्यहरने तथा उपार्जन करनेकी तृष्णा अधिकरखता था या कोईसी वृत्तिमें लयलीन रहाकरताथा और इनउक्तलाभोंकी लालसासे यहकिसके साथहोकर कहां पहुंचताथा या पहुंचाथा कबगया यहा आयाथा या किसस्त्रीके साथइसकी प्रीति वा रतिहुईथी वहस्त्री किसी औरसे कुछप्रीति वास्तारखतीहै या नहीं किसवस्तुमें यह अधिक प्रीति रखताथा जीविकावृत्ति किसके द्वाराकरता तथा चाहता था इत्यादि नानाभांतिसे एकांतमें व्यभिचारवती स्त्रियोंको विश्वासदेकर बूझे क्योंकि ऐसे भेद प्रायः उनको साधारणमें भी विदित हुआकरतेहैं कदाचित् इनसे ब्यौरा नहीं पायाजाय तो फिर जिसस्थल पर वहमारागयाहो तिसकेनिकटवर्त्ती लोगगोपकिसान बटोही आदि जोजो पायेजायँ वेविश्वास देकरप्रीतिपूर्व बूझेजायँ जिस्से कहनेमें न हिचकैं इत्यादि नाना यत्नोंसे हंताको सुनिश्चित करके उसके योग्यदंडदेवे-यद्यपि यहांपुरुषका उद्देशलेकर तहक़ीक़ात का प्रकार वर्णन किया तौभी मूलश्लोकमें(अविज्ञातहतस्यमनुष्यस्य) इसभावासिद्ध मनुष्यपदसे सवसामान्य मानुष जातिमात्र नर नारी वालक पर्यंत समझलेने किंतु स्त्री वालक आदि कोईभी यदि माराजाय तिसकी तहक़ीक़ात इन्हीं ढंगोंसे उसकार्यके अनुरूपही कर्त्तव्यहै कि जैसे अवसरमें जिसभांतिका वहप्राणी माराजाय और बालक आदिके भावार्थसेभी गर्भपातवाली दशातक आवश्यक है-और-माराजाना एक निदर्शन मात्र समझो किंतु मारेजाने के उपलक्षणसेही आत्मघात करके मरिजाना डूबिजाना आदि या भगिजाना वा भगालेजाना या भगायाजाना छिपिजाना लुकिजाना वा लुकाइ रखना आदि उपद्रव की भी तहक़ीक़ात इन्हीं ढंगोंसे कर्त्तव्यहै २८६ एतस्मादेवोक्तंच(अज्ञातकर्तृकेमारेषुमित्रारिवांधवाः। प्रष्टव्याराजपुरुषैःसामादिभिरुपक्रमैः॥ विज्ञेयाऽसाधुसंसर्गात्रिहोढेनवापुनः। एषोदिताघातकानांतस्कराणांचभावना॥ गृहीतःशंकयायस्तुननतत्प्रपद्यते॥ शपथेनाववोद्धव्यःसर्वकार्येष्वयंविधिः)अर्थ इनश्लोकोंका पहिले दाम्न तीसकी अधिकोक्ति के प्रारंभमें लिखचुके हैं तत्रैव देखो-पर जब किसीभांति के

वेश्याओंके स्थानपर इसभांतिके उपद्रव होयँ तिनकीतहक़ीक़ात दोसौ सत्तानवे की अधिकोक्ति में जो अंत्यव्यवस्था पावै तिसकेद्वारा करनी होगी २८५ । २८६ ॥

(ग्रामादिदाहकानांदंडः)

क्षेत्रवेश्मवनग्रामविवीतखलदाहकाः । राजपत्न्यभिगामीचदग्धव्यास्तुकटाग्निना २८७ ॥

ऐ०—क्षेत्रखेत जिसमें पके सूखे अन्नादिक सस्यखड़े हों या (वेश्म) गृहमकान या वन बाग आदि यद्वा ग्राम या (विवीत) बाड़ागोंड़ा नौहरा आदिअहाते या खलिहान इनमें आगिलगानेवाले साहसिक एवं राजदाराओंके अभिगामी दुर्जन खरीसरपता सेंठा आदि जलतेहुये तृण कटपुंज से जलाने योग्यहैं-दाहक लोगोंका दंड यहां इस हेतुसे निरूपण हुआहै कि चोरीके प्रसंग मध्ये छिपकर प्राणवध करनेवालोंकाचर्चा छोडागया था यह लोगभी छिपकर आगिलगाने द्वारा नानाजीवों के प्राणवध कर देते हैं २८७ चोर बटमार आदि प्रायः दुर्जन पंक्तियोंको निज राज्यसेनिर्मूलकर-देनेवाले राजाको उभयत्र जो अमेय फल उत्पन्न होता है सो सबसे पिछले एक प्रकीर्ण संज्ञक प्रकरण में यथार्थ व्यौरेवार सब दर्शावेंगे तत्रैव देखोक्योंकि यहचोरों वाला प्रकरणभी प्रथमोक्त साहस प्रकरणके अधीन होकर उसीप्रकीर्ण संज्ञकपिछले प्रकरणके आधीनहै २८७ ॥

इतिचौर्यप्रकरणंसमाप्तम्

यहसब चौर्य कर्मोंकाप्रकरण एकइसी ८२ बयासीसंख्याके परिच्छेदसेसमाप्तहुआ ॥

अथपरस्त्रीसंग्रहणंनामविवादपदव्यवहारस्वरूपवर्णनविषयिकः

त्र्यशीतितमःपरिच्छेदः(८३)

इस पर स्त्री संग्रहण संज्ञक विवाद का स्वरूप इसी तिरासीसंख्याके परिच्छेदमें इस व्यौरासे दर्शावेंगे कि तीनो भांतिकेपरस्त्री संग्रहका विज्ञान और प्रत्येक नाना लक्षण भेदकीस्त्रियां जो अगम्याआदि लेकर दासीवेश्यापर्यंत तिनके संग्रह मध्ये दंड भेद और अपवादभी यथोचित वर्णन होंगे ॥

पर स्त्री संग्रह कर्म तीनिभांतिका बृहस्पति ने समझायाहै-यथाच(पापमूलंसंग्रहणंत्रिप्रकारंनिवोधत। बलोपधिकृतेद्वेतुतृतीयमनुरागजम् ॥ अनिच्छंत्यायत्क्रियतेमत्तोन्मत्तप्रमत्तया। प्रलपन्त्यावारहसिबलात्कारकृतंतुतत् ॥ छद्मनागृहमानीयदत्त्वास्वंमदकारणम् । संयोगःक्रियतेयत्रतत्तूपधिकृतंविदुः ॥ अन्योऽन्यंचक्षुरागेणदूतीसंप्रेषणेनवा ॥ कृतंरूपार्थलोभेनज्ञेयंतदनुरागजम् । तत्पुनस्त्रिविधंप्रोक्तंप्रथमंमध्यमोत्तमम्)अर्थात्-पापोंका मूल परस्त्री संग्रह कर्म तीन प्रकारका ऋषियोंने होतादेखा कहा तिनमें दोतो एकबलसे एक (उपधि) नाम छलमे किये जातेहैं तीसरेका अनुरागज होनाजानो किंतु परस्त्रीको अनुराग दिलाने यद्वा स्वतः पैदाहोने में होसक्ता है

अब इनके लक्षण समझो किंच एकतो बलात्कार किया उसको जानो जो पर पुरुष की अनिच्छा रखनेवाली स्त्रीमादक वस्तुओं के खिलाने से नशेमें मत्तहो या उन्माद मिरगीरोग आदि रोगोंसे उन्मत्तहो यद्वा निद्रा आदि प्रमादों से जो गाफिलहो तिस के साथ कुकर्म जो कुछ कियाजाय यद्वा एकान्त निर्जन गेह आदि सूने देशों में घेर कर सुसावधान को भी बहुतसा प्रलापटेर पुकार आदि रोदन करतेहुये कुकर्म जो कुछ कियाजाय यहसब जबरदस्तीकेही रूपहैं-जहाँ छलसे किसी बहाने द्वारा अपने घर बुलवाकर मदको करनेवाला धनदेकर जो संयोग कियाजाय तौ यह छलसेकिया कुकर्म जानो-यहाँ मदको करनेवाला धन अर्थात् परस्त्रीको सन्तृप्त किंतु हर्षमय कर देनेवाला यद्वा दैन्ययुक्त जड़तामय करदेनेवाला पुष्कल द्रव्य यह सब अर्थजानो॰ जहाँ दोनो के परस्पर नेत्रप्रीति होनेद्वारा यद्वा दूतियोंकेभेजनेद्वारा रूप लोभसे या उसका धन हरने के लोभसे जो कियाजाय सो अनुरागज स्त्री संग्रह कर्मजानो फिर यह अनुरागज स्त्री संग्रहकर्म तीनभेदका अर्थात् प्रथम मध्यम उत्तम विधिसे कहाहै कि जिसके रूप लक्षण अगले वचनों से दर्शाते हैं-तथाचबृहस्पतिरेव (कटाक्षावेक्षणं हास्यंदूतीसंप्रेषणंतथा । स्पर्शोभूषणवस्त्राणांप्रथमःसंग्रहःस्मृतः ॥ प्रेषणंगन्धमाल्या नांफलधूपान्नवाससाम् । सम्भाषणञ्चरहसिमध्यमंसंग्रहंविदुः ॥ एकशय्यासनंक्रीड़ा चुम्बनालिङ्गनेतथा । एतत्संग्रहणंप्रोक्तमुत्तमंशास्त्रवेदिभिः) अर्थात्-बृहस्पति जी वि-शेषता दर्शित करते हैं परस्त्री साथ कटाक्ष दृष्टिसे निहारना यद्वा हास्य करना तथा दूतियों का भेजवाना तद्वत् पहिरेहुये भूषण वस्त्रोंका स्पर्श करना मात्र प्रथम संग्रह कर्म कहाताहै पर स्त्रीपास गन्धमाल्य फल पुष्पधूप अन्नवस्त्रोंका पहुँचाना वा एकान्त में प्रियवचनों से बोलनामात्र मध्यम संग्रह कर्मजानो एकशय्या यद्वा एक आसनपर बैठना एवं खेल क्रीड़ा आदि करना एवं चुम्बनकर्म और आलिङ्गन अङ्ग अङ्गों में मिलाना इतने कर्मोंको शास्त्रज्ञों ने उत्तम संग्रह कर्मकहा-इसीप्रकार व्यासनेभी-इस अनुरागज संग्रह के तीनभेद कहे हैं-तथाचव्यासः (संग्रहस्त्रिविधोज्ञेयःप्रथमोमध्यम स्तथा । उत्तमश्चेतिशास्त्रेषुतस्योक्तंलक्षणंपृथक् ॥ अदेशकालसम्भाषानिर्जनेचपर स्त्रियाः । कटाक्षावेक्षणंहास्यंप्रथमःसंग्रहःस्मृतः ॥ प्रेषणंगन्धमाल्यानांधूपभूषणवास साम् । प्रलोभनञ्चान्नपानैर्मध्यमःसंग्रहःस्मृतः ॥ सहासनंविविक्तेषुपरस्परमुपाश्रयः । केशाकेशियहश्चैवसम्यक्संग्रहणंस्मृतम्) (स्त्रीपुंसयोर्मिथुनीभावःसंग्रहणं) अर्थात्-व्यास कहतेहैं कि अनुरागज स्त्रीसंग्रह तीनभेदका समझना एक प्रथम १ द्वितीय मध्यम २ तृतीय उत्तम ३ तिसके भिन्न लक्षण बहुधा शास्त्रों में सब कहेहैं कि-यदि कोई पुरुष पराई स्त्रीकेसाथ कहीं कुजगह एकान्त में या कुसमय रात्रिविरात्रि दुपहरी आदि में या निर्जन गेह आदि में सम्भाषणकरै कटाक्ष दृष्टिसे निहारै हास्यकरै तो

यह प्रथम संग्रहकर्म कहाता है-एवं गन्धमाल्य आदि चीजोंका भेजवाना तथा धूप सुगन्ध भूषण वस्त्रोंका पहुँचाना यद्वाअन्नपानादि खानीपीनीचीजोंसे लोभदिखानायह सबमध्यम संग्रह कर्मजानो-ऐसेही एकान्त निर्जनगेहआदि देशोंमें कुछ खाट खटोला आदि आसनपर एकत्र दोनों मिलकरबैठें यद्वा दोनोंका परस्पर प्रेमयुक्त होकर अङ्ग मिलाना अथवा दोनोंके परस्पर बालमिड़ोर खैंचखाँच करनेवाली केशा केशि क्रीड़ा का होना यह सबकर्म सम्यक्संग्रहण कहेजाते किंतु पूरे संग्रह कर्मकी पदवी पहुँचे समुझे जाकर उत्तम संग्रह रूप कहातेहैं-मनुस्तु (परस्त्रियंयोऽभिवदेत्तीर्थेऽरण्येवनेऽपिवा । नदीनांवापिसंभेदेससंग्रहणमाप्नुयात् ॥ उपचारक्रियाकेलिःस्पर्शोभूषणवाससाम्। सहखट्वासनंचैवसर्वंसंग्रहणंस्मृतम्-अपिच-स्त्रियंस्पृशेददेशेयःस्पृष्टोवाऽमर्षयेत्तया। परस्परस्यानुमतेसर्वंसंग्रहणंस्मृतम्) अर्थात्-जो कोई पुरुष परस्त्रीसे अभिभाषाकरै किंतु निज नेत्र आदि चेष्टाको अभिलाष युक्त बनायेहुये एकतार अभिमुख होकर गुप्त वा अगुप्त किसी ध्वनिकेसाथ लय सम्पन्न होकर बहुधा वार्त्तालाप किसी तीर्थके स्थान मेला आदि में या निर्जन किसी स्थलमें या वनमें या नदियोंकी छाँड़ खोले आदि में सामान्य और लोगों के चक्षु कान बचातेहुये मुखसे या सङ्केतोंसेही करै तो संग्रहण कर्मके अपराधको वह पहुँचे-अथवा गन्ध सुगन्ध अनुलेपन आदि पहुँचानेका उपचारकरै एवं परिहास और आलिंगन आदि केलि किलोलकरै एवं भूषण वस्त्रोंको निजहाथ लगावे यद्वा मिलकर खाट आदि आसनपर एकत्रबैठे यह सब संग्रहकेही रूपहैं-औरभी-जो कोई पुरुष परस्त्रीके अदेश में अर्थात् स्तन जङ्घा आदि कुअङ्ग में निजहाथ डारै यद्वा उसी परस्त्री करके आप छेड़ाहुआ या वृषणादि कुअंग में स्पर्श कियाहुआ जो सहिलेवे उसको कोईभाँति डपटै नहीं यह संकेत भी परस्पर इच्छासहित अंगीकार भूतसंग्रह कर्मजानो-इन्हीं उक्त सबकर्मोंके विज्ञान लक्षण मात्रसे इनकर्मों के वर्त्तावा करनेवाले पापकर्त्ता लोगभी पहिंचाने जासक्तेहैं कि जिसके बिनाजाने दण्ड विधान भी अन्यायपर आरूढ़होना सम्भव है तिस हेतुसे योगीश्वर इन्हीं कर्मों के कर्त्ताओं की परीक्षा वर्णन करते हैं॥

(परस्त्रीसंग्रहणकर्तृज्ञानोपायः)

पुमान्संग्रहणेग्राह्यःकेशाकेशिपरस्त्रिया। सद्योवाकामजैश्चिह्नैःप्रतिपत्तौद्वयोस्तथा२८८॥
नीवीस्तनप्रावरणसक्थिकेशावमर्शनम्। अदेशकालसंभाषंसहैकासनमेवच २८९॥

ऐ०—परस्त्रीके संग्रहण कर्ममें प्रवृत्त हुआ पुरुषइतने चिह्नोंमें पहिंचानकर पकडने योग्यहै कि एक तो परस्परबाल खैंचने आदि केशाकेशि क्रीड़ाहोती हो या सद्यस्क नवीन कामज चिह्नोंसे कि जो नखदांत आदि से कुछ व्रणउत्पन्न हुयेहों अथवा दोनोंकी राजी साथराग प्रीति के आकार संभव हुयेहों २८८ या जो कोईपुरुष

कामकी अभिलाषा प्रकट करते हुये घाँघरा नाड़ेकी फूँद तक निजहाथको लेजाय यद्वा स्तनका परिधान कंचुक चोलीको स्पर्श करै या जंघामसलै एवंबाल उँगुली आदि कोई और अंगथांभै अथवा अदेशनाम कुठौर किंतु निर्जन स्थलमें तथैवजन संकीर्ण स्थलमें भी अंधकार युक्त कुसमय राति बिराति आदि कालों में परस्त्री से संभाषण करै यद्वा खट्वा आदि किसीएकही आसनपर रिरंसाके अनुरूप वैठे तौ भी संग्रह कर्ममें प्रवृत्तहुआ जानो किंतु ऐसे पुरुषभी पकड़ने योग्यहैं-इसमें रिरंसा के अनुरूप किंतु रमण करने के अनुरूप यह कहनेसे तथैव कामकी अभिलाषा प्रकट करतेहुये यह कहनेसेभी आशय सिर्फ़ इतनाहै कि यदि कोई पुरुषफोड़ा फुंसी आदि आवश्यक कर्म निमित्तों से अत्रोक्त अंगदेशोंका स्पर्श करता हो यद्वा लोक प्रसिद्ध प्रायःनिर्मलकर्म निमित्तों से एकासन बैठ जाने का अवसर किसी सज्जन संबंधी आदि जनको वनिआया हो तो यह आवश्यक बातें स्त्री संग्रह कर्मकी पदवीतक न पहुँचेंगी २८९॥

अधि०—ऊर्ध्वोक्त निर्मलता का डौल इस अग्रोक्त वचन विशेषद्वारा समझाजा-सक्ताहै-यथोक्तंवशिष्ठेन(मनःकृतंकृतंरामनशरीरकृतंकृतम् । येनैवालिंगिताकांतातेनैवालिंगितासुता॥इतियोगवाशिष्ठे) अर्थात्-श्रीरामचन्द्रको संवोधित करतेहुये वशिष्ठ जी यह कहतेहैं कि हे राम जो कुछ कर्म मनकी वृत्ति द्वारा कियाहो सो उस वृत्तिके अनुरूप किया कहलाता किंतु निपट शरीर मात्रसेही कियाहुआ करनेकी पदवीतक वहनहीं पहुँचता इसका यह दृष्टांतहै कि जिसकायासे मनुष्य अपनी भार्याको आ-लिंगित करता किन्तु शरीर में चिपटाता है पुनि उसीशरीर करके पुत्रीकोआलिंगित करताहै परंच मनकी वृत्ति जो है सोई किसीपाप अथवा पुण्यको उत्पन्न कियाकरती है कि जैसे कांताको आलिंगनकरते समय मनकी वृत्ति विषयवासना पर आरूढ़ होतीहै इसलिये वह आलिंगन भोग विषय मध्ये किया समझाजाताहै और सुताके आलिंगन समय मनकी वृत्ति शिष्टाचारिक निर्मलता पर आरूढ़ होती है इसलिये वह आलिंगन कुछ आलिंगन किया नहीं समझाजासक्ता है-इत्यादि लोकाचारों के अनुसार संग्रह कर्त्ताओंके मनकी वृत्तियांभी विचार करने योग्यहैं-क्योंकि संग्रह कर्म के सब चिह्न प्रायः उन्हीं पुरुषोंकी परीक्षापर आरूढ़हैं कि जिनमें दोष पायाजानेकी आशंका होय-किंतु विरले संभाषण आदि केवल बातचीत वाले लक्षण कर्मीकार्य कारणके अनुकूल संग्रह कर्मवाले दोषमेंगणनीय नहींहोतेहैं-इसकेसिवाय-जिसजिस देश और कुलजातिमें परिपाटी जैसी सबलोगों को प्रियहो वहभी छूटमें गणनीयहै दृष्टांत जैसे बहुधा देशों में जो देवर और ननदेऊ वा बहनोई जीजा होतेहैं तिनके साथ किंचित हास विनोद के भी ढँगमें चलजाना अनुचित नहीं समझाजाता है य

बिरले देशमें निज भर्ताके भानजेसेभी हास्यरीति की परिपाटी वर्तमान है (बल्किबंगाले संबंधी किसी देशविभागमें सौबरसका बूढ़ाससुरा बालक पुत्रबधुओंसे भी शुद्ध वृत्तिसहित होलीखेलता निज बंगालियोंकेही मुखसे सुनागया है) तो इत्यादि लोग निज निज देशकी परिपाटी तुल्य हास्यरूपी बातकरते भी कुछ संग्रह कर्म के अपराधी निश्चित नहीं किये जासक्ते जब तक संग्रह कर्मका यथार्थरूपउन से न उत्पन्न हो-उक्त संबंधीजनके उपरांत प्रायःपांचाल आदि बहुधा देशों में सामान्य यह परिपाटीहै कि निःसंबंधी जो अज्ञात परजनहो तिससेभी स्त्रियोंसे परस्परवार्तालापमात्र करनेमें कुछ संग्रह कर्मका अपराध रोपित नहीं कियाजासक्ता-परंच इन सब देशोंमेंभी ठेठ जिस कुलमें या जिसजातिमात्रमें प्रशंसित संबंधीजन से हास्य या परजन से सामान्य वार्तालाप आदि करने का प्रतिषेध या परित्यागहो तिसकुल में ऐसी छूटैं भी प्रमाणता योग्यनहीं समुझी जासक्ती हैं-उक्तसब दृष्टांतों के सिवाय सब सामान्य देशोंमें सर्वत्र एक नियम विशेष यहभीहै कि जो कोईपुरुष कदाचित् पहिले किसीहेतुसे ललकारा धुधकारागया हो तिसको फिर उस स्थलकी या गेहकी स्त्रियोंसे कुछबातचीतकरना संग्रहकर्मके अपराधमें अवश्य गिनतीहोगा सोअग्रोक्त दो वचनोंसे संसिद्धहै-यथाहमनुः(यस्त्वनाक्षारितःपूर्वमाभिभाषेतकारणात्। नदोषंप्राप्नुयात्किंचिन्नहितस्यव्यतिक्रमः-किंच-परस्यपत्न्यापुरुषःसम्भाषांयोजयन्रहः। पूर्वमाक्षारितोदोषैःप्राप्नुयात्पूर्वसाहसम्) अर्थात्-जो कोई पुरुष निज सौशील्य आदिशुभ लक्षण के हेतुसे पहले कभीललकारा धुधकारा नहींहो और वह किसीकार्यरूपकारण से मनुष्योंके सन्मुख यदि संभाषण करे तो वह किंचित्भी अपराध यद्वा दंडको न पावे क्योंकि उसका कभी व्यतिक्रम अबतक नहीं देखा गया-परंच-यदि कोईपुरुष अपने पूर्व दोषोंसे धुधकारा फटकारा हुआ फिर भी कभी पराई पत्नी से निष्कारण भी एकांत में गुपतौअर बात चीतकरै तो यह पूर्वसाहस दंड दोसौ पचासपणपर्यंत उस अपराधके अनुसार पावे जितना दोषहो-संभाषण आदिनहोनेमेंभी केवलनिज मुखसे कुत्सित चर्चाकरनेवाला संग्रहकर्म का अपराधी होताहै-तदाहनारदः(दर्पाद्वाय दिवामोहात्श्लाघयावास्वयंवदेत्। पूर्वमयेयंभुक्तेतितच्चसंग्रहणंस्मृतम्)अर्थात्-जोकोई पुरुष अपने दर्पसे या मोहसे श्लाघासेही कुटिलोंके सन्मुख ऐसा कहने लगे कि यह अमुकी बहुतप्रवीणहै और पहिले एकबार मैंने भोगीथी अबहाथ नहींआतीहै तो यह भी संग्रह कर्मजानो किंतुऐसा वक्ता शीघ्रपकड़ा जाकरदंडपावे २८८। २८९॥

(निवारितस्त्रीपुंसयोःसंग्रहणेदंडः)

स्त्रीनिषेधेशतंदद्याद्द्विशतन्तुदमंपुमान्। प्रतिषेधेनयोर्दण्डोयथासंग्रहणेनथा २९०॥
स्वजातावुत्तमोदंडमानुलोम्येतुमध्यमः। प्रातिलोम्येवधःपुंसोनार्याःकर्णादिकर्तनम् २९१॥

ऐ०-निषेधहोनेमें स्त्री एकसौ और पुरुष दोसौ दंडदेय अर्थात् जिसस्त्रीको पात पिता आदि किसी ने पहिलाढंग देखकर प्रतिषेध कियाहो कि अमुकामुक पुरुषों के साथकभी संभाषण आदि मतरक्खो और वह स्त्री फिरभी उसीभांतिका वर्तावाउस्से करै तबसौ पणकादंडभरै एवं पुरुषको जिस स्त्रीसे संभाषण आदि रखने का प्रतिषेध पहिलेहुआहो और वहपुरुष उसी प्रकारका बर्तावा जारीरक्खे तौ यहदोसौ पणका राजदंडभरै-जहांकहीं स्त्रीपुरुष दोनोंको प्रतिषेध कियागयाहो और वे दोनों उसीप्रकारका बर्तावा नहींछोड़ें तौ फिर जो कुछदंड जैसा साक्षात्कारसंग्रह कर्ममें होसकता हो तैसाही-इनदोनोंको कर्तव्यहै उसदंडका स्वरूप भी अबकहतेहैंकि २९० अपनी अपनी जातिमें सजाती की परभार्या पर्देवालीसे बलात्कार संगमकरने मध्ये उत्तम साहसदंड एकहज़ार अस्सीपणतकपुरुष परकर्तव्यहै जिसपुरुषने अनुलोमक्रमसे हीनवर्णवाली पर्दारहित स्त्रीसे बलात्कारसंगम कियाहोय तिसपर पांचसौचालीसपण तक मध्यम साहसदंडयोग्यहै जो कोई पुरुष हीनजातिहोकर प्रतिलोम क्रमसे उत्तम जाति की परस्त्रीसे बलात्कार संगमकरै तौ वधदंडहोनायोग्य है और इसमें पर्दे या विनपर्देका कुछनियम नहीं-कदाचित् कोईनारीही निजइच्छा सहित हीनवर्णसे रत हुईहो तौउसनारी को भी वधसे आधादण्ड किंतुकाननाक आदि कोई उत्तम अंग काटना योग्यहै-इन्हीं नियमोंके ध्वन्यर्थसे यहआशय भी संसिद्धहै कि जो कोई पुरुष सजाती विनापर्देवाली स्त्री कोविगाड़े तिसपर उत्तमसाहस छोड़ि मध्यमसाहसदंड दिलायाजाय एवं जो अनुलोमक्रमसे हीनवर्णा पर्देवाली कोविगाड़े तिसपर मध्यम साहसछोड़ि उत्तमसाहस दंडदिलायाजाय- एवंजहां बलात्कार करना लिखा है उस स्त्रीकी यदिइच्छासेही संगमहोय तौउसपुरुषपर तत्रोक्त दंड आधाछोड़ि आधाभाग दिलायाजाय-इनध्वन्यर्थोंका स्पष्टरूप मनुकेवचनोंसे अधिकोक्तिमें सबआवेगा तत्रवदेखो २९१ ॥

मधि०--याज्ञवल्क्यीय-२९० मूलश्लोक मध्ये मनुके यह अग्रोक्त वचनहैं-यथा-(भिक्षुकावंदिनश्चैवदीक्षिताःकारवस्तथा । संभाषणंसहस्त्रीभिःकुर्य्युरप्रतिवारिताः ॥ नसंभाषांपरस्त्रीभिःप्रतिषिद्धःसमाचरेत् । निषिद्धोभाषमाणस्तुसुवर्णंदंडमर्हति ॥ नैष चारणदारेषुविधिर्नात्मोपजीविषु । सज्जयन्तिहितेनारीर्निगूढाश्चारयंतिच ॥ किंचिदेवतुदाप्यःस्यात्संभाषांताभिराचरन् । प्रैष्यासुचैकभक्तासुरहःप्रव्राजितासुच) अर्थात-भिखारीलोग और भाटआदि प्रशंसकलोग और यज्ञादि पूजनपाठवाले दीक्षायुक्त रसोई आदि कर्मकरनेवाले भी और विरलेशिल्पी लोग यहसब अपने अपने कामोंके निमित्त जो गृहस्थी लोगों की स्त्रियोंसे संभाषण करैतौ कुछइनको संग्रहदोष नहीं लगता पर यहनियमहै कि इनमेंभी अनिवारितहों जिनको कभीनिषेध नहींकियाहोवेहै

बोलिसकतेहैं-अर्थात् जिसको रोकहुईहोसो प्रतिषिद्ध कभी परस्त्रीसे संभाषण आदि न आचरै किंतुऐसाप्रतिषिद्ध पुरुष बोलचाल करताहुआ सोरहमाष परिमित एक सुवर्णदंड देनेयोग्यहै-परंचस्त्रियोंसे संभाषण आदि करनेका प्रतिषेध विधिजो कुछ कहीं वर्णनहुई सो यह विधि नटनर्तक आदि चारणदाराओं में और तद्वत् आत्मोपजीवियोंमें भी नहींसमुझनी क्योंकि नटगायन आदि लोगोंका यहकामहै कि अपने आप निजदाराओंको सजाकर धनके लोभसे परपुरुषोंसे प्रत्यक्ष मिलातेहैं तथैवएक और प्रकारके आत्मोपजीवी जो निजदाराओंसे ही जीवन ऐसीरीतिसे उत्पन्न करते हैं कि स्वतः अपने घरमें आये परपुरुषोंसे आप छिपतेहुये अजान बनकर उन कासंगमहोने देतेहैं इसभांति की स्त्रियोंकी सर्वत्र (खानगी) संज्ञालोकप्रसिद्धहै इस लियेइनमें उक्तविधि प्रतिषेधोंका संबंधनहीं समुझना-तौभी राजप्रबन्धोंके लावण्य हेतुसे भूपालोंको सदैव यहआवश्यकहै कि ऊर्ध्वोक्त चारण आदि की स्त्रियोंसे या किसी की अवरुद्धा आदि जानेआनेवाली दासियोंसे तथैव एकाहारी व्रतरखनेवाली-आदि बहुधा स्त्रियोंसे कि जोजो तपोलक्षणसे संयुक्त प्रायःफिरनेवालीहों या प्रव्रजिता आदि बहुधा भिक्षुकियोंसे यदि कोई दुर्जन पुरुषकहीं एकांत निर्जन देशमें संभाषण आदि करतेहुये देखाजाय तिसपरभी कुछथोड़ासाधन दंडमात्रजो उसदेखीहुई दशाके अनुसारभी अतिस्वल्पसमुझाजाय सो कर्तव्यहै परदेहदंडोंका कुछचर्चा इस में नहीं समुझना क्योंकि इसभांति की स्त्रियोंमें परस्त्री संग्रहवाले दंडोंकाकुछ नियम विशेषयद्यपि नहींहै परथोड़ासाधनदंडकेवल शिक्षामात्र इसआवश्यकतासे दर्शायाहै कि ऐसे एकांतसंगमआदिमें कदाचित् प्राणहिंसारूप उपद्रव या प्रबलतासे धनहरने तथाप्रबलतासेही संगमकर्म करनेके उपद्रवनहींहोनेपावें जोकि उत्तमसाहसमेंगणनीय हैं इसलिये ऐसे लोगोंको सदैव डाटरही आवे यहसिद्धांतहै २९० परस्त्री संग्रह तीन भांतिका कहचुके हैं कि एकबलसे दूसराछलसे तीसरा स्त्रीके अनुरागसेभी होता है इस हेतुसेही छलसे या बलसे कर्म होनेमें उस स्त्रीका कुछ दोष न होने करके दंडका भी चर्चा उसपर नहीं है-परंच तीनोंभेदमें जिसपुरुषको प्रबलता तथा छलसे जो परस्त्री संग्रह करनेका दंडकहीं लिखा हो उसी दंडसे आधा दंड उसपर होना योग्यहै कि जिसको स्त्रीने निज इच्छासे प्रमोहित कियाहो इसका ब्योरा सब निम्नोक्त मनुकेवचनोंसे अत्रैव निश्चित होगा (पर) अनुरागज स्त्री संग्रहमें उस स्त्रीपरभी उससे आधा दंड होताहै कि जितना पुरुषपर ठहराया गयाहो-अतएवकात्यायनः (सर्वेषुचापराधेषुपुंसोह्यर्धदमस्तथा। तदर्धंयोषितोदद्युर्वधेपुंसोऽङ्गकर्तनम्) अर्थात्-दंड विधानकी सामान्य मर्यादा मध्ये कात्यायनजी यह कहते हैं-सभीभांतिके अपराधोंमें कि जिनमें पुरुषको धन दंड जितनानिश्चितहोय उससे आधाधन दंड वे स्त्रियांदेवें जिनसे उसी

भांतिके अपराध हुयेहों परंच जिस अपराधके करने मध्ये पुरुषको बधदंड निश्चित होय तिस अपराधके करने मध्ये स्त्रीके अंग नाक कान आदि काटेजायँ क्योंकि अंग कर्तन दंडवधसे आधा समुझा जाताहै-मनुने जो दंडका प्रकार वर्णभेदसे दर्शाया सो अत्र देखो-यथाह मनुः (सहस्रंब्राह्मणोदंड्योगुप्तांविप्रांबलाद्व्रजन् । शतानिपंचदंड्यः स्यादिच्छंत्यासहसंगतः ॥ सहस्रंब्राह्मणोदंडं दाप्योगुप्तेतुतेव्रजन् । शूद्रायांक्षत्रियवि शोःसहस्रंतुभवेद्दमः ॥ अगुप्तेक्षत्रियावैश्येशूद्रांवाब्राह्मणोव्रजन् । शतानिपंचदंड्यः स्यात्सहस्रंत्वन्त्यजस्त्रियम् ॥ क्षत्रियायामगुप्तायां वैश्येपंचशतंदमः । मूत्रेणमौंड्यमि च्छेत्तुक्षत्रियोदंडमेववा ॥ वैश्यश्चेत्क्षत्रियांगुप्तां वैश्यांवाक्षत्रियोव्रजेत् । योब्राह्मण्या मगुप्तायांतावुभौदंडमर्हतः ॥ ब्राह्मणींयद्यगुप्तांतुगच्छेतांवैश्यपार्थिवौ। वैश्यंपंचशतंकु र्यात्क्षत्रियंतुसहस्रिणम् ॥ वैश्यःसर्वस्वदंड्यःस्यात्संवत्सरनिरोधतः। सहस्रंक्षत्रियोदं ड्योमौंड्यंमूत्रेणचार्हति ॥ उभावपितुतावेवब्राह्मण्यागुप्तयासह। विप्लुतौशूद्रवद्दंड्योदग्ध व्यौवाकटाग्निना ॥ शूद्रोगुप्तमगुप्तंवाद्वैजातंवर्णमावसन् । अगुप्तमंगसर्वस्वैगुप्तंसर्वेण हीयते ॥ भर्तारंलंघयेद्यातुस्त्रीज्ञातिगुणदर्पिता । तांश्वभिःखादयेद्राजासंस्थानेबहुसं स्थिते ॥ पुमान्संदाहयेत्पापंशयनेतप्तआयसे । अभ्यादध्युश्चकाष्ठानितत्रदह्येतपाप कृत् ॥ मौंड्यंप्राणांतिकोदंडोब्राह्मणस्यविधीयते। इतरेषांतुवर्णानांदंडःप्राणांतिकोभवे त् ॥ नजातुब्राह्मणंहन्यात्सर्वपापेष्वपिस्थितम्। राष्ट्रादेनंवहिःकुर्यात्समग्रधनमक्षतम्॥ नब्राह्मणवधाद्भूयानधर्मोविद्यतेभुवि। तस्मादस्यवधंराजामनसापिनाचिंतयेत् ॥ अब्रा ह्मणःसंग्रहणेप्राणांतंदंडमर्हति। चतुर्णामपिवर्णानांदारारक्ष्यतमाःसदा ॥ संवत्सराभि शस्तस्यदुष्टस्यद्विगुणोदमः। व्रात्ययासहसंवासेचांडाल्यातावदेवतु) अर्थात् ब्राह्मण होकर जो पर्देवाली संरक्षित किसी ब्राह्मणीपास उसकी इच्छा विना बलसे पहुँचे तो वह एक सहस्र पणसे दंडनीयहै और जो उसी ब्राह्मणीकी इच्छा पाकर पहुँचे तौभी एक बारकेही संगमसे पांचसौ पण राजदंड दिलायाजाय-एवं पर्देवाली संरक्षित क्ष- त्राणी वा वैश्यानी पास कोई ब्राह्मण जो प्रबलता साथ पहुँचे तौभी एकसहस्र पण का दंड दिलायाजाय तद्वत् क्षत्रिय वैश्यइनमेंसे जो कोई किसीपर्देवाली रक्षित शूद्राणी पास प्रबलता साथपहुँचे सोभी एकसहस्र पणका दंड दिलायाजाय औरजो जोकोई उसी स्त्रीकी इच्छा पाकर पहुँचे तिसपर पांचसौ पण ऊपर कहेके अनुसार जानो-क- दाचित् किसी अगुप्ता विना पर्देकी रखाई क्षत्राणी या वैश्यानी या शूद्रीमें जब कोई ब्राह्मण गमनकरे तबयह पांचसौपण दंडलेने योग्यहै और जो ब्राह्मण किसी अंत्यज नाम चांडाल अतिशय नीच भंगी आदि प्रसिद्ध अधमोंकी स्त्री साथ संगम करे तो यह एक सहस्रपणसे दंडनीयहै (इस चंडाली संगमकादंड आदि विशेष वर्णन आगे २९९ मूलश्लोकमें सब देखो (और) थोड़ासा प्रासंगिक ब्योरा इसका २९४ की व्यवि-

कोक्ति मेंभी हीनास्त्री के प्रसंग मध्ये सोचो जो उस स्थलमें अंत्यावसायिनिका निरर्थकनाम रक्खागया) अरक्षित विना पर्देकी क्षत्राणी गमन करनेवाले वैश्य परभी पांचसौ पणदंड एवं उसी बिना पर्देकी क्षत्राणीमें जो क्षत्री गमन करै तौ उस क्षत्रीपर भा पांचसौपणदंड यद्वागर्दभ मूत्रसे मूड़न करवाना दंडकियाजाय-कदाचित् पर्देवाली क्षत्राणीमें जो कोई वैश्यगमन करै या पर्देवाली वैश्यानीमें जो कोई क्षत्रीगमन करै तौ इन दोनोंपर वह दंड कियाजाय जो जो इनके लिये विना पर्देकी ब्राह्मणी गमन करने मध्ये निचले वाक्यसे अब कहेंगे-अर्थात् अरक्षित विना पर्देकी ब्राह्मणीमें यदि कोई वैश्य अथवा क्षत्री संगम करै तौ इस वैश्यपर पांचसौ पण और इस क्षत्रीपर सहस्र पणका दंड कियाजाय यही दंड ऊपरले वाक्यमें आवश्यक जानो (और यह पांचसौ का दंड वैश्यपर उस दशामें जो निर्गुण किसी फिरनेवाली ब्राह्मणीमें शूद्राके धोखेसे संयोग हुआहो अन्यथा और भांतिकी ब्राह्मणी जो उत्तम कुलकी समुझी जातीहो विना पर्देकी होनेमेंभी वैश्यपर हज़ार पणका दंड जानो इसका आशय और वचनों से अन्यत्र पायाजायगा)-कदाचित् कोई वैश्य किसी पर्देवाली गुप्त ब्राह्मणी साथ संगम करै तिसको एक सालभरका बंधनदंड होकरभी सर्वस्वहारदंड होवे एवंक्षत्री ने यदि पर्देकी रहनेवाली किसी ब्राह्मणी साथ संगम किया होतौ उसक्षत्रीको हज़ार पणका दंड होकर गर्दभ मूत्रसे मुड़वायाजाय-कदाचित् किसी पातिव्रत आदि उत्तम गुणवाली वा उत्तम कुलवाली किसी ब्राह्मणी साथ क्षत्री वैश्य दोनों मेंसे कोई एक विगड़ै तौ यह दोनों निम्नोक्त शूद्रकेही तुल्य दंडनीय हैं या शरपत्र घास फूस आदिसे लपेटिकर कटाग्निमें जलाइदेने योग्यहै (तत्रवैश्यंलोहितदर्भैःक्षत्रियंशरपत्रैर्वावेष्टयं-इतिवसिष्ठोक्तविशेषस्तु)कदाचित् कोई शूद्रजातीपुरुष द्विजातीमात्रमें से किसीकी भी रक्षित वा अरक्षित नारीमात्रसेयदि संगमकरै तौयह दंडभेदहै किविना पर्देवाली नारीसाथ कुकर्मकरनेसे भी प्राणवचाकर किंचितलिंगच्छेदन और सर्वस्व हारदंड पावैकिंच सुरक्षित पर्देवाली साथसंगमकरनेमें सर्वथाउसको देह और सर्वस्व धनसेहीन करै अर्थात् सवधन छीनाजाकरभी प्राणांतिक दंडपावै-तथाचगौतमोपि) (आर्यस्त्र्यभिगमनेलिंगोद्धारःसर्वस्वहरणंगुप्तांचेद्वधोऽधिकः)कदाचित् कोई स्त्री किसीजारके साथ अपनी इच्छासहित फँसकर निजगुणज्ञाति आदिदर्पांसे दर्पितहुई भर्त्ता को उलांघै किन्तु अपने बापआदि वन्धुजन के धनवल प्रभुताआदि गुणवहुताइत गर्वसे या अपनी सुन्दरताआदि विशिष्टगुणसे दर्पितहुई अदालत आदि जनताके सन्मुख साफजवाव देकर भर्त्तासे इसभांति हाथ खींचलेवै किमैं अव इसमेंराजीनहीं वलिक मैं अमुकामुक अपने जारसेही राजीहूँ तव राजाऐसी स्त्रीकोचौराहे आदिउस स्थानमें पहुँचाकर जिसमेंवहुत मनुष्योंका संघातहो शिकारी वारहकूकुर छुड़वाकर

भक्षण करवादेवै-और उसपापीजार पुरुषकोकि जिसकेसाथ राजीहोकर पतिकेत्याग पर आरूढ़हुईथी तपाईलोह शय्यापर पौढ़ाइकर जलवादेवै और वहजबतक जलै तबतक वध्यघाती जल्लादोंसे लकड़ी बारंबार छुड़वातेहुये राजादेखै-परंचजो इसभांतिका पापीकोई ब्राह्मणहो तौ बधदंडके स्थानउसका शिर मुड़वाना यह प्राणांतिक दंडशास्त्र संमत है और अन्यवर्णोंको प्राणांतिक उक्तप्रकारसेही दंडहोवै (आज्ञाभंगोनरेन्द्राणांविप्राणांमानखंडनम्। पृथक्शय्यावरस्त्रीणामशस्त्रवधउच्यते) ब्राह्मणसर्व पापोंसेभी अपराधीहुआ हो तौभीकभी नमारै किन्तुइसको सबधनसहित् और विन चोट शरीरसेभी मुंडनकरवाकर अपनेराज्यसे निकासिदेय-यहांसबधन सहितकहने का यहआशय नहींहैकि पूर्वोक्त एकसहस्र यद्वापांचसौ पणदंडभी न लेवै किन्तुकेवल देहदंड और सर्वस्वहार इन दोदंडोंका प्रतिषेधजानो शेष माथेदागदेना आदिजैसा जहां निरूपणहुआ हो सोसवहोना योग्यहै-ब्राह्मणके वधरूप अधर्मसेभी वड़ाअधर्म कोई और धरतीभर परनहींहै इसलिये राजाइसको वधदंड कभीमनसे भी न सोचै-कदाचित्-कोई परदारगामी पुरुषकेवल बातचीतआदि करते हुये देखाजाकर या संगमकरते पकड़ाजाकर दंडपानेविना शिक्षापाकर छूटाहो या कुछथोड़ा वहुतदंडही पाकरछूटाहो और वहफिरभी उसीस्त्रीसे अभ्यासिकपीछाकरै तिसकोदूना दंडमनुकहते है-यथा(संवत्सराभिशस्तस्यदुष्टस्यद्विगुणोदमः। व्रात्ययासहसंवासेचांडाल्यातावदेव तु)अर्थात्-जोएक वर्षपहिले वर्षभीतर किसीस्त्रीसाथ दूषितहुआ बदनामहोकर छूटा हो फिरभी बर्षभीतर उसकेसाथ पकड़ाजाय तिसको उसदंडसे अबदूना दंडदेना योग्य है कि जितना उसपर पहिलीवार कियागया और फिरभी उसीकामका अपराधीहुआ अथवा यदि पहिलीवार दंडपानेविना छूटाहो और अबकीवार में अपराध अधिक समुझाजाय तौफिर जितनादंड अबकीवारके अपराधमध्ये शास्त्रविहित निश्चितहोय तिससेदूना कियाजाय क्योंकि पहिलीवार छोटेसे अपराधमध्ये दंडविहीन छूटिजानेपर भी अबकीवार वहुतवड़ा अपराधकिया-ऐसेहीयदि व्रात्यजातिया चांडालीसेही दूषितहोकर पहिलेछूटाहो तौभीजोकुछ उसकेमध्ये दंड विनिश्चितहोय तिससे दूना (अथगुरुतल्पगदंडविशेषः) तदाहनारदः (मातामातृष्वसाश्वश्रूर्मातुलानीपितृष्वसा॥ पितृव्यसखिशिष्यस्त्रीभगिनीतत्सखीस्नुषा॥ दुहिताऽऽचार्यभार्याचसगोत्राशरणागता। राज्ञीप्रव्रजिताधात्रीसाध्वीवर्णोत्तमाचया। आसामन्यतमांगच्छन्गुरुतल्पगउच्यते। शिश्नस्योत्कर्तनात्तत्रनान्योदंडोविधीयते) अर्थात्-एकमाता विमाता. मातृष्वसामउसी. श्वश्रूसासु. मातुलानीमामी. पितृष्वसाफूआबुआ. पितृव्यस्त्रीचाचीताई. सखिस्नुषा सपत्नीमित्रकीभार्या. शिष्यस्त्रीअंतेवासीआदिशिष्योंकीपत्नी. भगिनीवहिन. तत्सखी बहिनकी सहचरी वयस्याजो उससे बहिनला मैत्रीभाव रखनेवाली सखीकहातीहै

स्नुषाबेटेकीबधूटी.दुहिताबेटी. आचार्यभार्या गुरुपत्नीगुरानी.सगोत्रा अपनेतुल्यगोत्र भरकी कोईस्त्रीमात्र.शरणागता जो कुछभय खटकाआदि हेतुओंसे किसीको विश्वास पात्र जानिकर तथैवउसके घरकोभी निजरक्षा होसकनेमें शरण्य जानिकर जातिकीहो या घरवालोंने सौंपीहो.राज्ञी राजपत्नीरानीआदि.प्रव्रजिता संन्यासिनि आदि जो अपने धर्मकर्मसे संयुक्त सच्चेव्रतवालीहो.धात्री उपमाता दूध पिलानेवाली धाइ-साध्वी पतिव्रता जिसके लक्षणभी इसबचनके अनुसारहों(आर्ताऽऽर्तेमुदिताहृष्टेप्रोषितेमलिनाकृषा। मृतेम्रियतेयापत्यौसाध्वीज्ञेयापतिव्रता) वर्णोत्तमाजोकामी पुरुषकी अपेक्षा ऊँचेवर्णवाली हो.इतनी स्त्रियों में से किसीको भी गमन करतेहुये गुरुतल्पग पुरुष कहाताहै अर्थात् गुरुपत्नी गमन करनेके समान दोषीहोताहै इसलिये इन अपराधों में अपराधीकी शिश्नेन्द्रिय काटिलेनेके सिवाय कोई और छोटादंड नहीं होताहै परंच ऊपर मनुके और योगीश्वर के निरूपण किये प्राणांत बधदंड आदि तीव्रदंडभीसब अपने अपने अवसरमें अवश्य होतेहैं अर्थात् अत्रोक्त और दंडोंके अभावसे उन दंडोंका प्रतिषेध नहीं समुझना क्योंकि प्रायः विरली स्त्रियां जो उनदंडोंमें दर्शाई गई वेहीइन अत्रोक्त में भी विद्यमानहैं २९० । २९१ ॥ यहांतक यह दंडविधान जो दर्शाया गया सो सब केवल संग्रह कर्म पर आरूढ़ है अर्थात् जब कोई किसीस्त्रीको लेभागिजाय तो वह चोरीमेंभी गिनती है तिसहेतु उसके दंड प्रकार दोसौ अस्सी मूलश्लोक की अधिकोक्ति में कहिचुके हैं तत्रैवदेखो-पर जो कन्यामात्र को लेभागे तिसके दण्ड प्रकार २९२ तथा २९३ मूलश्लोक और अधिकोक्तिमें भी देखो आगे वर्णन होंगे २९० । २९१ ॥

(कन्याहरणेदण्डविशेषः)

अलंकृतांहरन्कन्यामुत्तमंह्यन्यथाऽधमम्। दण्डन्दद्यात्सवर्णासुप्रातिलोम्येवधःस्मृतः २९२ ॥
सकामास्वनुलोमासुनदोषस्त्वन्यथाधमः। दूषणेतुकरच्छेदउत्तमायांवधस्तथा[1] २९३ ॥

ऐ०-अलंकृत सजी सजाई जो कन्या कभी विवाह आदि मंगलके निमित्त से अलंकृत हुईहो तिसको हरतेहुये उत्तम साहस दण्डदेवे किंतु अन्यथा सब सामान्य अवसर में अलंकृत होनेबिना जो अपहारकरै तिसको पूर्वसाहस दण्डदेवे सो यह दोनोंदण्ड सिर्फ उस अपराधी को कि जो सवर्णा कन्याहरे किंतु प्रतिलोम क्रमसे उत्तम जाती या कन्या नीचीजाति जो अपहारकरै तो उस पुरुषको वधदण्ड होना कहाहै २९२ परन्तु जो अनुलोमा तथा सकामा कन्याहो किंतु नीचे वर्णवाली कन्या जो कामपीड़ित होकर अपनी इच्छामेंही ऊँचे वर्णोंसाथभागे तो फिर हरने वाला दोषी नहीं अन्यथा जो अनुलोमा कन्या होनेपरभी कन्याकी इच्छा तद्गतकाम

१-दम इत्यपि क्वचित् पाठान्तरंचतन्निर्मूलम्

पीड़ाका अभाव होतेहुये अकामाको लेभागै तिसको पूर्व साहस नामक अधमदण्ड कियाजाय परंच विरले ग्रन्थ में (अन्यथादमः) ऐसापाठ पायागया कदाचित् यही पाठ ठीकहो तौ फिर दम शब्दकी सामान्य शक्तिसे गुञ्जायश इतनी है कि चाहे थोड़ा दण्ड समुझौ या बहुतका भावार्थ अंगीकार कियाजावे पर यहपाठ लेखक प्रमादने पाठान्तर किया प्रतीत होताहै ऊपरलाही योगीश्वरका मुखोक्तहै जो विज्ञानेश्वरने स्वीकार किया-कदाचित् किसी अनुलोमजाती कन्याको सकामा सानुरागा नहीं होनेपरभी केवल नख दाँत हाथ आदि से बलात्कार दूषितकरै तिसका एकहाथ काटिलेना यहीदण्ड है-पर यदि यही दूषण उत्तम जातीया कन्याकेसाथ कोई हीनेवर्ण वालाकरै और वह कन्याभी सकामा वा अकामाहो इसका नियम नहीं है उस पुरुषको बधदण्ड कियाजाय-इसवार्त्ताका विशेषब्यौरा मनुके वचनोंसे अधिकोक्तिमें २९३॥

अधि०-योगीश्वर के इनवचनों में स्थूल वुद्धिद्वारा पहिले कई वितर्क पायेजाते हैं परंच सूक्ष्म वुद्धिके विवेकसे पश्चात् वे सब समताको पहुँचतेहैं सो उनमें एकयह आशंकाहै कि सिर्फ़ अलंकृत कन्या हरने मध्ये उत्तमदण्ड कहकर और सबसामान्य दशामें हरलेनेवालेको छोटादण्ड २७० पणका बतलाया इसमें शंकाको अवकाश यों मिलसक्ताहै कि चोरीमें भी सब द्रव्यों के तीनभेद क्षुद्र १ मध्यम २ उत्तम ३ जो निरूपितहुये तिनमें कन्याउत्तम द्रव्योंमें गणनीयहै-यथाहनारदः (हिरण्यरत्नकौशेयस्त्रीपुंगोगजवाजिनः। देवब्राह्मणराज्ञांचविज्ञेयंद्रव्यमुत्तमम्) इसमें स्त्रीपुरुष दोनोंवस्तु उत्तमधनमें गिनतीहुये उत्तमधनका हरनाउत्तम चोरी गिनीजाकर उत्तमसाहस दंड योग्यहोती है-स्त्रीअथवा पुरुषके हरनेमध्ये दंडभी उत्कृष्टहै-यथाहव्यासः (स्त्रीहर्त्तालोहशयनेदग्धव्योवैकटाग्निना। नरहर्त्तुर्हस्तपादौछित्वास्थाप्यश्चतुष्पथे) इसीप्रकार साहसकर्मों के भी तीनभेद होकर कन्याकाहरना उत्तमसाहस पापकर्मोंमें गणनीय समुझाजाता है-तदप्याहनारदः (व्यापादोविषशस्त्राद्यैःपरदाराभिमर्शनम्। प्राणोपरोधियच्चान्यदुक्तमुत्तमसाहसम्) बल्किमनुनेराजाओंपर यहअतिशयभावसे ताकीदकीहै कि परदारगामित्वमें पगधरनेवालोंकोअत्यंत तीव्र दंडदेकर अंगच्छेदरूप चिह्नोंसहित देश निकालादेवै-यथा (परदाराभिमर्शेषुप्रवृत्तान्नॄन्महीपतिः। उद्वेजनकरैर्दंडैश्चिह्नयित्वाप्रवासयेत्) ध्यानकरना योग्यहै कि इतने तीव्रदंडोंके विधानपरभी याज्ञवल्क्य ने इस अवसरमें जोसबसे छोटादंडकहा तिसका कौनहेतुहै इसप्रश्नके प्रत्युत्तरमें यहसमाधान है कि यहछोटा दंडकेवल इतनेही अपराधपर आरूढ़है कि जबकोई कन्याले कर भगनेपर उतारूहो किन्तु भगनेका इकदामकियाहो अबतक भगने नहींपाया और लोगोंने घेरलिया यहीआशय (हरन्गमन) इनक्रियाने स्पष्टहै सोयहभी केवलसवर्ण पुरुषको सवर्णाकन्या हरनेमध्ये कहाहै प्रतिलोमक्रममें हर्त्ताका वधदंड इसीतरहान

के अपराधमें भी चौथेपादसे कहदिया है (इकदाम अर्थात् किसी अपराधके प्रारंभ में पगधरना मात्र) इस इकदामके उपरांतमें यदि कोईलेकर भगिजानेपावै या भगि-जाने विनाभी कुछअंग दूषित करनेपावै तिसके दंडस्त्रीहर्त्ता तथा परस्त्रीसंग्रहकर्त्ताओं केहीतुल्य यथापराध के अनुसार निर्णयकरने होंगे इसमें कुछसंदेहनहीं २९२ बल्कि कन्याके अंगदूषण आदिकुछ अपराध विशेष जोजोउक्त परस्त्रीसंग्रहके लक्षणसे वि-लक्षणसमुझेजाते हैं या जोजो उसकेतुल्य हैं उनसबहीको मनुजीने ब्यौरेवार तीव्र दंडोंसे दर्शायाहै सो समुझो-यथाहमनुः(योऽकामांदूषयेत्कन्यांससद्योवधमर्हति। सकामांदूषयंस्तुल्योनवधंप्राप्नुयान्नरः॥शुल्कंदद्यात्सेवमानःसमामिच्छेत्पितायदि।उत्तमांसेवमानस्तुजघन्योबधमर्हति॥कन्यांभजंतीमुत्कृष्टंनकिंचिदपिदापयेत् जघन्यंसेवमानांतु संयतांवासयेद्गृहे॥अभिसह्यतुयःकन्यांकुर्याद्दर्पेणमानवः।तस्याशुकर्त्येअंगुल्यौदंडंचार्हतिषट्शतम्॥सकामांदूषयंस्तुल्योनांगुलिच्छेदमाप्नुयात्। द्विशतंतुदमंदाप्यःप्रसंगविनिवृत्तये॥कन्यैवकन्यांयाकुर्यात्तस्याःस्याद्विशतोदमः।शुल्कंचद्विगुणंदद्याच्छिफाश्चैवाप्नुयाद्दश।यातुकन्यांप्रकुर्यात्स्त्रीसासद्योमौंड्यमर्हति।अंगुल्योरेवचच्छेदंखरेणोद्वहनंतथा) अर्थात्-कोईतुल्य जातिवाला किसी सजातीकी अकामाकन्याको कुछ मैथुनआदि प्र-कारोंसे यदि अंग दूषितकरै तौवह पुरुष ब्राह्मणके सिवाय अन्यजातिका तत्काल लिंगच्छेदनआदि वधपर्यंत दंड योग्य है परंतु जो सकामाकन्या को समजाती पुरुष दूषितकरै तौ वध दंड नहीं पावै-पर समजाती कन्या जो कामपीडित होकर इच्छा करतीहो तिसको कामसेवा से अभिसेवन करने वाला समजाती पुरुष कन्या का शुल्क एकबैलों का जोड़ा या जो कुछ उसका पिता विचारै यद्वा जोकुछ मूल्य कन्या का उसपिताको अन्यत्रकहीं डोलादेने आदि प्रकारोंसे मिलसकना संभवथा सोदेकर कन्याब्याहिलेवै पर यदि पिताको स्वीकारहो क्योंकि डोलादेने आदिशुल्कलेनेकी परि-पाटीजिसकेकुलमें होगी वही यह स्वीकारभी करसकताहै अन्यथा जो उसपिताको यह वातअंगीकार न हो तो फिर इतनाहीधनदंडरूप से वह राजमें दिलायाजाय यद्वा पिता विवेकी हो तो फिर शुल्क न लेकरभी वह कन्या उसको व्याहदेवै राजदंड से कुछ काम नहीं यह मर्यादा उस परिपाटी से अत्युत्तमजानो किंतु विवेकी लोगों का यह शिष्टाचारहै पर उस पुरुष का सुपात्र होनाभी आवश्यक समुझो बलिक गोत्र दूषण का विचार जैसा आपद्धर्म्मके अनुसार योग्य हो-और जो ऊँची जाति की कन्या कोई नीची जाति वाला सेवन करे चाहे कन्या की ओर से कुछ इच्छा कामा-तुरता खड़ी हुईहो या नहो दोनों दशामें वधदंड पानेयोग्यहै-और उसकन्याको कि जिसने अपनी जाति से उत्कृष्ट जातिवाला पुरुष सेवनकिया हो कुछभी दंड न देवै किंतु जिसने नीची जातिवाला पुरुष सेवनकियाहो तिसको बाँधि डाटिकर निजवशमें

तबतकरक्खै जबतक उस्से कामवृत्तिउसकी हटिजाय-यहाँ यद्यपि कन्याशब्द विशेषकर कुमारी से आवश्यक है तथापि किसी अवसर के अनुकूल उस कन्याकोभीसमुझि लेना जो विवाही हो और कामातुर होजानेकी अवस्था तक निज पिता माता की मूढ़ता से उसघरमें रही आकर ऐसा काम करै- अब उन दोषों के दंड मनु कहते हैं कि मैथुन विनाभी जबकोई अन्यप्रकारों सेही कन्या दूषितकरै-अर्थात् जोकोई पुरुष समानजाती या विजाती किसीकन्याकेगुप्तांगमें निजदर्पसे बलात्कार सिर्फ़ अंगुलीही प्रविष्ट करै तिसकी दो अंगुलीतत्काल काटिलीजाकर छःसौ पण का दंडभी दिलाया जाय-परंतु जो समानजाती पुरुष सकामा किंतु कामक्रीड़ा इच्छा करतीहुई कन्या के योनिस्थल में सिर्फ़ अंगुली का प्रवेश करै तिसकी अँगुली नहीं काटीजायँ सिर्फ़ कुचाल बंदकरने के निमित्त दोसौ पण का दंड दिलाया जाय- या यदि किसी कन्याने द्वितीय कन्याके अंगुली करीहो तौ उस कन्या परभी दोसौ पण का दंड होवै और जो कन्याने उस कन्या के योनिस्थल को अतिशय लकड़ी आदिसे बिगाड़ाहो तौ इस दंड के उपरांत कन्याशुल्क दूना उसके पिता को दिलवाया जाकर अपराध करनेवाली कन्या के दश बेंतभी लगाये जायँ (कन्या शुल्क का परिमाण यहाँ जितना जिसकी जातिमें जिसरीतिसे प्रसिद्ध हो वही समुझना)कदाचित् किसी विदग्धा स्त्री ने ही कन्याके अंगुलीआदि प्रवेशितकरीहो तौ वह स्त्री उसअपराधकी छोटाई तथाबड़ाई के अनुरूप शीघ्र मूड़मुड़ानेवाला दंड पावै यद्वा दो अंगुलीभी कटवाईजायँ या गदहापर चढ़वाकर ग्राम यात्राही करवाई जाय अथवा तीनों दण्ड इकट्ठेकिये जायँ जैसा रूपकहो इसमेंदोनों केकुलजातों की उत्तमता मध्यमता परभी दृष्टि करिकेदंड कल्पित होय (अत्रदुराग्रहप्रसंगनिवृत्तिः)दोसौ तिरानवे मूल श्लोक योगीश्वरके पहिलेपाद में यह एक वितर्क है कि अनुलोम क्रमसे छोटे वर्णों की कन्या जो सकामा हुई हो तौ लेभागने में कुछ ऊँचे वर्णों को दोष नहीं लगता इस्से राजदंडभी नहोवै-ऐसेही-अत्रोक्त मनुके वचनों में सवर्णोंकी अपेक्षासे यहधर्म निरूपित हुआ कि जब कोई तुल्यजाति वाला परकन्याकी इच्छा कामातुरतासेही संगम करै तौ यह दंड न पावै बल्कि कन्याका मूल्यदेकर कन्या व्याहिलेवै (और) योगीश्वर ने इस तुल्यजातीको भी उत्तम साहस पूर्व साहस दो भांतिकेधनदंड दर्शित किये तिसमेंभी यह (अंतर) है कि योगीश्वर के ये दोनोंदंड सिर्फ़ कन्याको लेभागि चलने में और यह मनुकी उक्तव्यवस्था निपट कन्यासे भोग सेवन करनेमें व्यवस्थित है तौ मनुने इस तुल्यजातीभोक्तापर कुछ बहुत रिआयत करी समुझो और योगीश्वर ने अनुलोम क्रमसे ऊँची जातिवर्णोंपर कुछ बहुत रिआयत रक्खी बल्किसकामाकन्या कोभी निपट अदंड्य रक्खा इस्मे दोनोंमें यहदूषण खड़ाहोताहै कि अत्रोक्त लेभागि

और भोगियोंको तथैव कामातुर हुई कन्याओंकोभी निपट स्वतंत्र होजाने को अवकाश मिलसक्ताहै कि प्रायः विज्ञाकन्यायें इसीआशयसे व्यभिचारपर आरूढ़होंगी इसकासमाधान-ये सब तर्क वितर्क यद्यपि ठीक प्रतीत होते हैं परंच आपद्धर्मों की रिआयत मूलमंत्र है कि जिसकी छायामात्र से अपराधीकी रिआयत समुझीजाती है यह बुद्धि विचारकी चंचलतामात्र जानो और इसकागूढ़ आशय एक यहभी हैकि कन्याकी रक्षापिता माताके आधीन उस कौमार अवस्थामें कि जब तक कन्याक्वारी अथवा ब्याहीपातिको सौंपे बिना पिताके घरमें बासकरै-इसीहेतु से उस पिताको यह योग्यहै कि सूचित दानकालमें अदोषाकन्याका दानकरने पीछे पुनिऋतुकालसे पहिले उसे प्रदानभी करिदेवै जिस्से कामातुर होजाने का अवसर उसके घरमें नहीं आवै यहां प्रदानशब्द कन्याके द्विरागमका प्रबोधक है (प्रदानंप्रागृतोरितिगोतमः) एवं (कन्यादान) शब्द विवाहकाही वाचक लोकप्रसिद्धहै और इसी प्रयोजनसे अग्रोक्त मनुकावाक्य भी प्रेरणा रोपित करताहै-यथाहमनुः-(कालेऽदातापितावाच्योवाच्यश्चानुपयन्पतिः। मृतेभर्तरिपुत्रस्तुवाच्योमातुररक्षिता)अर्थात्-कन्याकेदान तथाप्रदानरूपी दोनों कर्मकरनेका कालहै ऋतुमती होजाने से पहिलेही तिसकाल में पतिको नहीं सौंपनेवाला किन्तु झिखाइकर अतिकाल में विवाह या प्रदानकर्म करनेवाला पिता वाच्य होताहै अर्थात् पिताके घरमें रहती कन्याके ऋतुधर्म,आदि यौवनचिह्न यद्वा कामातुरता आदि कुमार्गदेखि सुनिकर उसके पिताकोही दोषदेना और ताकीद करनायोग्य होताहै किजिसने अबतक उसे पतिके पल्लेनहीं बाँधीइसीसे कुछकन्या का भी दोष इसमें नहींहै जो चर्चाऊपर वर्णनहुआ इसीभांति पतिकेपल्ले बँधिजाने पीछे पितादोषी नहींरहता किंतु भर्त्ताही ऋतुकालोंमें संयोग नकरतेहुये निंदायोग्य होता है यदि कोई निंद्यबात पैदाहोय एवं भर्ता के मरजाने पीछे पुत्रभी यदिमाताकी सर्वथारक्षानहीं रक्खै तौ वह निंद्यहोवै-इत्यादि शास्त्रसिद्धांतके अनुकूल प्रशंसितकन्या जारों की रिआयत नहीं समुझनी किन्तु आपद्धर्मका निर्वाहजानो२९२।२९३॥

(स्त्रीणांसत्यासत्यदोषाभिकथनेदंडः)

शतंस्त्रीदूषणेदद्यात्द्वेतुमिथ्याभिशंसने २९४ पूर्वार्द्धः॥

ऐ०-स्त्री दूषणमें सौ देवै और दोसौ मिथ्याकहने में-अर्थात्-किसी कुलवतीस्त्रीमें कदाचित् कोई दोषदैवी इच्छासे आशंकित हुआहो या कोई कुत्सितरोगही उत्पन्न हुआहो तिसको कोई पुरुष जनताके प्रत्यक्ष वारंवार वर्णन करतेहुये प्रकाशकरै या उसरोग भगंदरआदि के संबन्धसे व्यभिचार दोष कल्पनकरै तोइसदूषणके लगाने मध्ये सौपण दंडभरै और जो निपट ऐसेदोषोंका संसर्गभी न हो किन्तु झूँठेदोषकल्पना करतेहुये दूषणदेवै तिसपर दोसौपणका दंड दिलायाजाय-इसीप्रकार यहां भी।

शब्दके सामान्य जातित्वकरके कन्यापक्षमें भी अर्थघटता है किजब किसीकुमारी कन्यामें कुछ खोटारोग मृगी मेमनी आदियद्वा राजयक्ष्माआदि या मैथुनदोष उपस्थित हो तिनकोकोई उद्घाटन करिकै दूषणदेय तिसपरसौपणदंड और जो दोषोंकेअभाव म निज उक्तिसेही झूठी दोषकल्पनाकरै जिस्सेकन्याके वैवाहिक संबन्धमें कुछविघ्नहोना संभवहो तौफिर दोसौपणका दंड उसपर लियाजाय २९४॥

(पशूनांहीनानारीणांचाभिगमेदंडः)

पशूनगच्छञ्छतंदाप्योहीनांस्त्रींगांचमध्यमम् २९४॥

ऐ०-गऊ विना अन्य पशुओंके प्रतिगमन करते हुये सौपण दंड दिलानेयोग्य है और हीनास्त्री तद्वत् गऊ गमन करते हुये मध्यम साहस दंड उसपर ५४० पण तक लियाजावे २९४॥

अधि०-अत्र (हीना) शब्दविशेषविवेकः-हीना यह सामान्य पद कहनेसेस्त्री चाहे निज इच्छा वा अनिच्छासे सकाम या अकाम होकर संगम करीगईहो पुरुषको यह मध्यम साहस दंड दोनों दशामें यह अर्थ मिताक्षराकारने दर्शाया-यद्यपि हीनास्त्री को मिताक्षराकारने अंत्यावसायीजाति लिखाहै उस अर्थको इसलिये अंगीकार नहीं करसक्ते हैं कि (निषादस्त्रीतुचंडालात्पुत्रमंत्यावसायिनम्। श्मशानगोचरंसूतेबाह्यानामपिगर्हितम्) मनुने इस वचनमें अंत्यावसायी जाति चंडालसेभी गई गुदरी दर्शाई है कि जो श्मशानमें रहकर मुर्देका अंश लेवै सभी नीचजातोंसे वह नीचहै क्योंकि निषादीके पेटमें चंडालबीजसे यह पैदा हुआ-यथार्थ वर्तमानमें सिवाय भंगीके यह कोई और जाति नहीं है और यद्यपि इसी वचनमें चंडालसेभी नीच अंत्यावसायी जाति कही गई पर इस कथनसे चंडालको कुछ उत्तम निश्चित नहीं करसक्ते क्योंकि चंडालमें और भंगी में कुछ अंतर नहीं बल्कि भंगीही चंडाल संप्रति माना जाताहै या श्वपचभी जो कुत्ते आदि पकाकरखातेहैं चंडाल कहेजाते हैं. चंडालकी पैदायश यद्यपि शास्त्रमें इसभांतिसेभी कही है कि शूद्रके बीजसे ब्राह्मणके पेटमें उत्पन्नहुई चंडाल जाति कहावै पर इसबातका कुछ नियम संप्रति नहीं रहा सिर्फ इतनालक्षण भेदमानि सक्ते हैं कि कंजर आदि जातें जो जो श्वान आदिको पकाकर खातेहों वे चंडाल समझो उनसेभी अत्यंत नीच भंगियोंको अंत्यावसायी संज्ञामें जानिलो क्योंकि वे कंजर लोग सिर्फ श्वान आदि जीवोंकी हिंसा तथा भोजन मात्र करते हैं येभंगी अतिशय मलिन कर्म मुर्दे जीवोंका ढोनाविष्ठा आदिका उठाना और जल्लादीकापेशा खूनीआदि का वधकरने यह प्रत्यक्षहै-इन्हींमें अंत्यावसायी भंगी आदिकी भार्या गमन करनेपर तीव्र दंड प्रायश्चित्तोंके निरूपण सहित आगे २९९ मूलश्लोकमें दर्शावेंगे उस दंड की अपेक्षा यहां मध्यमसाहस दंडहीना स्त्रीकेप्रसंगमें जो कहा सो यह अतिशय थोड़ा

है फिर क्योंकर हीनास्त्रीको अंत्यावसायी जातिमानिसकें इसीसे इस हीनास्त्री शब्दको उन जातोंके भावार्थमें समुझना जो चंडालीसे कुछ न्यून कुत्सितहों जैसे रजकी चर्मकारी आदि-क्योंकि वह अंत्यावसायी शब्दभी सामान्यभावसे चंडाल आदि सातनीच जातोंका वाचकहै-यथाहांगिराः- (चंडालःश्वपचःक्षत्तासूतोवैदेहकस्तथा । मागधायोगवौचैवसप्तैतेऽन्त्यावसायिनः) भला जबकि ये चंडाल आदि सातोंही अंत्यावसायी ठहरे ताफिर हीनास्त्रीको अंत्यावसायिनि कहनेसे इन सातोंकाही संग्रह ठहरा तिनमें क्योंकर मध्यम दंडको न्यायात्मक समुझैं-अब कुछ इसी प्रसंगमें प्रासंगिक भी दर्शाते हैं (अथप्रासंगिकविषयः) इन्हीं सातनीच जातों के संसर्ग आदिसे द्विजाती लोगोंको तथैव शूद्रजातोंकोभी दोष लगताहै और प्रायश्चित्त करना होता है-यथाहापस्तम्बः (अंत्यजातिरविज्ञातोनिवसेद्यस्यवेश्मनि । सवैज्ञात्वातुकालेनकुर्यात्तत्रविशोधनम् ॥ चांद्रायणंपराकोवाद्विजातीनांविशोधनम् । प्राजापत्यंचशूद्राणांतथासंसर्गदूषणे ॥ यैस्तत्रभुक्तंपक्वान्नंकृच्छ्रंतेषांविनिर्दिशेत् । तेषामपिचयैर्भुक्तंतेषामर्द्धंविधीयते ॥ तेषामपिचयैर्भुक्तंकृच्छ्रपादोविधीयते।इतिप्रायश्चित्ततत्त्वनामग्रंथेऽभिहितं) यह प्रासंगिक चर्चा और ऊपरला अर्थ विधानभी सब उसी अर्थकी छायापर अर्थांतरसे संबंधित कियाहै कि जैसा (हीना) शब्दका भावार्थ पहले टीकाकारनें अंत्यावसायी निश्चित किया परंच अवतक यह मालूम नहीं होताहै कि योगीश्वरने इस (हीना)शब्दको किस आशयके विशेषणमें दर्शायाथा क्योंकि अंत्यानाम चांडाली गमन करनेका दण्ड आगे २९९ मूलश्लोक में दर्शावैंगे पुनरुक्ति कोईभाँति से होसकनी सङ्गत नहीं है और चाण्डाली से कुछ श्रेष्ठ नीच जातेंभी सब उसहीके साथ गिनीजासक्ती थी और जिस (हीना) शब्दपर सब झगड़ा है सो हीना शब्द यद्यपि स्त्री शब्दका विशेषण है पर उस्से किसी ऊँची नीची जातिका भावार्थ नहीं निकलता बल्कि हीना स्त्री रक्षक हीनाभी कहलासक्ती है कि जिसके पति पित्रादि कोई रक्षकलोग नहों या दूरस्थहों एवं हीना स्त्री यौवन हीनाभी कहलासक्ती है कि जिसको रजोधर्म सहित कामयौवन अवतक न उत्पन्नहुआहो एवं हीनास्त्री कायहीना भी कहलासक्ती है कि जिसकी कायानाम देह किसी रोगादि हेतु करके लटीहो इन स्त्रियोंके अभिगमन में यह मध्यम साहस ५४० पणका दण्ड विशेष जानों किंतु जो कुछ दण्ड २९१ मूलश्लोकद्वारा जाति वर्णोंके अनुसार स्त्री संग्रहमध्ये निश्चितहोय तिसके भी उपरान्त इतना अधिक लियाजासक्ता है कि जो अत्रोक्त भाँतिकी वह स्त्री हीना समुझीजाय क्योंकि यह अपराध विशेष है २९४॥

(पररक्षितदासीवेश्यादिगमनेदण्डः)

अवरुद्धासुदासीषुभुजिष्यासुतथैवच । गम्यास्वपिपुमान्दाप्यःपंचाशत्पणिकंदमम् २९५॥

शब्दके सामान्य जातित्वकरके कन्यापक्षमें भी अर्थघटता है किजब किसीकुमारी कन्यामें कुछ खोंटारोग मृगी मेमनी आदियद्वा राजयक्ष्माआदि या मैथुनदोष उपस्थित हो तिनकोकोई उद्घाटन करिकै दूषणदेय तिसपरसौपणदंड और जो दोषोंकेअभाव म निज उक्तिसेही झूँठी दोषकल्पनाकरै जिस्सेकन्याके वैवाहिक संबन्धमें कुछविघ्नहोना संभवहो तौफिर दोसौपणका दंड उसपर लियाजाय २९४॥

(पशूनांहीनानारीणांचाभिगमेदंडः)

पशून्गच्छञ्छतंदाप्योहीनांस्त्रींगांचमध्यमम् २९४॥

ऐ०-गऊ विना अन्य पशुओंके प्रतिगमन करते हुये सौपण दंड दिलानेयोग्य है और हीनास्त्री तद्वत् गऊ गमन करते हुये मध्यम साहस दंड उसपर ५४० पण तक लियाजावै २९४॥

अधि०-अत्र (हीना) शब्दविशेषविवेकः-हीना यह सामान्य पद कहनेसेस्त्री चाहे निज इच्छा वा अनिच्छासे सकाम या अकाम होकर संगम करीगईहो पुरुषको यह मध्यम साहस दंड दोनों दशामें यह अर्थ मिताक्षराकारने दर्शाया-यद्यपि हीनास्त्री को मिताक्षराकारने अंत्यावसायीजाति लिखाहै उस अर्थको इसालिये अंगीकार नहीं करसक्तेहैं कि (निषादस्त्रीतुचंडालात्पुत्रमंत्यावसायिनम्। श्मशानगोचरंसूतेबाह्यानामपिगर्हितम्) मनुने इस वचनमें अंत्यावसायी जाति चंडालसेभी गई गुदरी दर्शाई है कि जो श्मशानमें रहकर मुर्देका अंश लेवै सभी नीचजातोंसे वह नीचहै क्योंकि निषादीके पेटमें चंडालबीजसे यह पैदा हुआ-यथार्थ वर्तमानमें सिवाय भंगीके यह कोई और जाति नहीं है और यद्यपि इसी वचनमें चंडालसेभी नीच अंत्यावसायी जाति कही गई पर इस कथनसे चंडालको कुछ उत्तम निश्चित नहीं करसक्ते क्योंकि चंडालमें और भंगी में कुछ अंतर नहीं बल्कि भंगीही चंडाल संप्रति माना जाताहै या श्वपचभी जो कुत्ते आदि पकाकरखातेहैं चंडाल कहेजाते हैं. चंडालकी पैदायश यद्यपि शास्त्रमें इसभांतिसेभी कही है कि शूद्रके बीजसे ब्राह्मणके पेटमें उत्पन्नहुई चंडाल जाति कहावै पर इसबातका कुछ नियम संप्राति नहीं रहा सिर्फ इतनालक्षण भेदमानि सक्ते हैं कि कंजर आदि जातें जो जो श्वान आदिको पकाकर खातेहों वे चंडाल मनुष्यो उनसेभी अत्यंत नीच भंगियोंको अंत्यावसायी संज्ञामें जानिलो क्योंकि वे कंजर लोग सिर्फ श्वान आदि जीवोंकी हिंसा तथा भोजन मात्र करते हैं येभंगी अतिशय मलिन कर्म मुर्दे जीवोंका ढोनाविष्टा आदिका उठाना और जल्लादीकापेशा खूनीस्त्रीका वधकरने यह प्रत्यक्षहै-इन्हींमें अंत्यावसायी भंगी आदिकी भार्या गमन करनेका तीव्र दंड प्रायश्चित्तोंके निरूपण सहित आगे २९९ मूलश्लोकमें दर्शावेंगे उस दंडकी अपेक्षा यहां मध्यमसाहस दंडहीना स्त्रीकेप्रसंगमें जो कहा सो यह अतिशय भेद

है फिर क्योंकर हीनास्त्रीको अंत्यावसायी जातिमानिसकें इसीसे इस हीनास्त्री शब्दको उन जातोंके भावार्थमें समुझना जो चंडालीसे कुछ न्यून कुत्सितहों जैसे रजकी चर्मकारी आदि-क्योंकि वह अंत्यावसायी शब्दभी सामान्यभावसे चंडाल आदि सातनीच जातोंका वाचकहै-यथाहांगिराः- (चंडालःश्वपचःक्षत्तासूतोवैदेहकस्तथा । मागधायोगवौचैवसप्तैतेऽन्त्यावसायिनः) भला जबकि ये चंडाल आदि सातौंही अंत्यावसायी ठहरे तोफिर हीनास्त्रीको अंत्यावसायिनि कहनेसे इन सातौंकाही संग्रह ठहरा तिनमें क्योंकर मध्यम दंडको न्यायात्मक समुझैं-अब कुछ इसी प्रसंगमें प्रासंगिक भी दर्शाते हैं (अथप्रासंगिकविषयः) इन्हीं सातनीच जातों के संसर्ग आदिसे द्विजाती लोगोंको तथैव शूद्रजातोंकोभी दोष लगताहै और प्रायश्चित्त करना होता है-यथाहापस्तम्बः (अंत्यजातिरविज्ञातोनिवसेद्यस्यवेश्मनि । सवैज्ञात्वातुकालेनकुर्यात्तत्रविशोधनम्॥ चांद्रायणंपराकोवाद्विजातीनांविशोधनम् । प्राजापत्यंचशूद्राणांतथासंसर्गदूषणे ॥ यैस्तत्रभुक्तंपक्वान्नंकृच्छ्रंतेषांविनिर्दिशेत् । तेषामपिचयैर्भुक्तंतेषामर्द्धंविधीयते ॥ तेषामपिचयैर्भुक्तंकृच्छ्रपादोविधीयते।इतिप्रायश्चित्ततत्त्वनामग्रंथेऽभिहितं) यह प्रासंगिक चर्चा और ऊपरला अर्थ विधानभी सब उसी अर्थकी छायापर अर्थांतरसे संबंधित कियाहै कि जैसा (हीना) शब्दका भावार्थ पहले टीकाकारनें अंत्यावसायी निश्चित किया परंच अबतक यह मालूम नहीं होताहै कि योगीश्वरने इस (हीना)शब्दको किस आशयके विशेषणमें दर्शायाथा क्योंकि अंत्यानाम चांडाली गमन करनेका दण्ड आगे २९९ मूलश्लोक में दर्शावैंगे पुनरुक्ति कोईभाँति से होसकनी सङ्गत नहीं है और चाण्डाली से कुछ श्रेष्ठ नीच जातैंभी सब उसहीके साथ गिनीजासक्ती थीं और जिस (हीना) शब्दपर सब झगड़ा है सो हीना शब्द यद्यपि स्त्री शब्दका विशेषण है पर उस्से किसी ऊँची नीची जातिका भावार्थ नहीं निकलता बल्कि हीना स्त्री रक्षक हीनाभी कहलासक्ती है कि जिसके पति पित्रादि कोई रक्षकलोग नहों या दूरस्थहों एवं हीना स्त्री यौवन हीनाभी कहलासक्ती है कि जिसको रजोधर्म सहित कामयौवन अबतक न उत्पन्नहुआहो एवं हीनास्त्री कायहीना भी कहलासक्ती है कि जिसकी कायानाम देह किसी रोगादि हेतु करके लटीहो इन स्त्रियोंके अभिगमन में यह मध्यम साहस ५४० पणका दण्ड विशेष जानों किंतु जो कुछ दण्ड २९१ मूल श्लोकद्वारा जाति वर्णोंके अनुसार स्त्री संग्रहमध्ये निश्चितहोय तिसके भी उपरान्त इतना अधिक लियाजासक्ता है कि जो अत्रोक्त भाँतिकी वह स्त्री हीना समुझीजाय क्योंकि यह अपराध विशेष है २९४ ॥

(परग्क्षितदासीवेश्यादिगमनेदण्डः)

अवरुद्धासुदासीषुभुजिष्यासुतथैवच । गम्यास्वपिपुमान्दाप्यःपंचाशत्पणिकंदमम् २९५॥

ऐ०–अवरुद्धा दासी जो किसी के घरभीतर अन्तःपुर में रक्षाकरीहुई रहतीहो इसीहेतु से कि पर पुरुषोंका सङ्ग इनको न होसकै क्योंकि दासीभी किसी वर्णकी स्त्रियाँ हुआकरती हैं तिनमें कोई गैरपुरुष प्रवलता आदि से जो सङ्गमकरै तद्वत् किसी भाँतिकी भुजिष्या गम्या नारियों में भी कोई सङ्गमकरै तौ वहपुरुष पचास पणकादमदिलवायाजाय क्योंकि ये स्त्रियाँ भी परभार्या तुल्य होती हैं २९५॥

अधि०–गम्यानारी वे कहातीहैं जो सवके गमनकरिवे योग्यहों जैसे एक स्वैरिणी. वेश्या. बिनाघिरीदासी. निष्कासिनी निकासीहुई-इतनी स्त्रियाँ साधारण होनेपर भी. इनमें जोकोई स्त्री किसी एक पुरुष के परिग्रह में होजाय इसका (दृष्टांत) जैसे किसी वेश्याको जब कोई पुरुष ठेठ अपने भोग निमित्त से पर पुरुषों के संगम से वचाकर जुदीरक्खै तभी भुजिष्या वेश्या वह कहलाती है. इसीप्रकार. भुजिष्यादासी. भुजिष्या स्वैरिणी आदि औरोंको भी जानो यही व्यौरा नारदके अग्रोक्त कथनसे संसिद्ध है-यथा-(स्वैरिण्यब्राह्मणीवेश्यादासीनिष्कासिनीचया। गम्याःस्युरानुलोम्येनस्त्रियोन प्रतिलोमतः॥ आस्वेवतुभुजिष्यासुदोषःस्यात्परदारवत्। गम्यास्वपिहिनोपेयाद्य त्ताःपरपरिग्रहाः)-अर्थात्-ब्राह्मणीमात्र छोड़िकर स्वैरिणी जो निज इच्छासे स्वतन्त्र हो व्यभिचार से संयुक्तहो. वेश्या जो किसी ने घेर न रक्खी हो. दासी जो किसी की अवरुद्धा नहो किन्तु सर्व साधारणों की सेवा टहल करतीहों-निष्कासिनी जो निज कुटुम्ब से निकासि दीगईहो. ये स्त्रियाँ सब साधारणों के गमनकरिवे योग्य हैं पर अनुलोम क्रमसेहैं प्रतिलोम क्रमसे नहीं परञ्च इनहींमें जेकोई किसी पुरुष विशेषकी भुजिष्याहों तिनसे संगम करने में परदार संगम तुल्य दोष होताहै इसलिये उक्तगम्याओं में भी जे कोई किसीकी घेरीहुई भुजिष्याहों तिनमें संगम न करै-इसलिये योगीश्वरने पचास पणकादण्ड अवरुद्धा तथा भुजिष्या के सम्भोगमध्ये कहा-मौर व्यासजी स्पष्ट कहते हैं-यथा-(परोपरुद्धागमनेपंचाशत्पणिकोदमः)-अर्थात्-पराई घेरी हुईकिसी भाँतिकी नारी गमन करनेमें पचास पणका दण्डहै-यहांपर-साधारण स्त्रियों का गम्यत्व कुछ पापके अभाव का प्रतिपादक नहीं समुझना किन्तु राजदण्ड का अभाव मात्र जानो २९५॥

(दासीस्वैरिण्यादिषुभाटींविनागमनेबलाद्बहुभिर्गमनेचप्रत्येकंदण्डाः)

प्रसह्यदास्यभिगमेदण्डोदशपणःस्मृतः। बहूनांयद्यकामाऽसौचतुर्विंशतिकःपृथक् २९६॥

गृहीतवेतनावेश्यानेच्छंतीद्विगुणंवहेत्। अगृहीतेसमंदाप्यःपुमानप्येवमेवच २९७॥

ऐ०–दासी.वेश्या.स्वैरिणी आदि जो जो इसीकामसे आजीवन अपना करतीहैं तिनका शुल्क दियेविना वलकरके जवर्दस्तीसे जोकोई अभिगमनकरै तिसको दासी आदि का मामूली शुल्क दिलानेपीछे दशपण दण्डजानो-वा यदि एक शुल्क देकर ब

न देकरभी अनेक इसकी इच्छाबिना प्रबलता साथ अभिगमकरैं तब उन सबहीपर प्रत्येक पुरुषपीछे चौबीस २४पणका दण्ड लियाजावे और प्रत्येकोंसे भिन्नात्मक उसके मामूली शुल्क दिलायेजायँ-परन्तु जो कोई दासी वेश्या आदि अपनी इच्छासाथ अनेक पुरुषों से भाटक लेकर पीछे तत्पर होनेमें यदि आग्रहकरै और वे पुरुष प्रबलतासेही अभिगमकरैं तौ इस दशामें कुछ दोष यद्वा दण्ड उनको नहीं है २९६ ॥ वेश्या भी कदाचित् वेतनलिये पीछे देनेवाले साथ सङ्गम की इच्छा नहींरोपै तौउस लियेहुये वेतन को दूनाभरै. पर जो वेतन पीछे लेनेके इकरारसे प्रतिज्ञा देकर सङ्गम करने नहींजावै तौ भी जितना वेतन मिलना ठहराहो उतना उलटा दण्डभरै (इस में जहाँ जहाँ दूना वा इकहरा जितना शुल्क वापिस करना कहा तहाँ तहाँ सर्वत्र उतना राजदण्डभी समुझना इसका ब्यौरा कुछ अधिकोक्तिमें भी देखो) इसीप्रकार पुरुष भी जो शुल्क देकर इच्छा नहींकरै तौ वह दियेहुये शुल्क से हाथ धोबैठे और जो विनादिये इकरार करके अवसर पर फिर इच्छा नहीं करै तौ भी उसकी ठहरी हुई भाटी की हानि देकर शुद्धहोवै २९७ ॥

अधि०—व्यासने भी योगीश्वरकेही तुल्य दशपणदण्ड इसमें कहाहै-यथा(प्रसह्यवेश्यागमनेदण्डोदशपणःस्मृतः) ग्रंथांतरेविशेषस्तु-यथा(नीत्वाभोगंनयोदद्याद्दाप्योद्विगुणवेतनम्। राज्ञश्चद्विगुणंदंडंतथाधर्मोनहीयते॥बहूनांव्रजतामेकांसर्वेतद्विगुणंधनम्। तस्यै दद्युःपृथग्राज्ञेदंडंचद्विगुणंपरम्) अर्थात्-ग्रंथांतरकायहसंमतहै कि जोपुरुषकिसीवेश्यादासीआदिको निजभोगमें लगाकर उसकाठहराया मामूलीवेतननहीं देय तौवहदूना फिर दिलवायाजाय एवं राजाकोभी दूनादंडदेवै तौ मर्यादाकी हानिनहीं होसक्ती है-कदाचित् बहुतपुरुष मिलकर संगम उसकी इच्छाविनाकरैं तौयेसभी उसकोदूनादूना धन प्रत्येकपुरुष दिलवायेजायँ तिससे दूनादंड राजाकोभी देयँ २९६ ॥ अत्रनारद आह(शुल्कंगृहीत्वापण्यस्त्रीनेच्छंतीद्विगुणंवहेत् । अनिच्छन्दत्तशुल्कोपिशुल्कहानिमवाप्नुयात्॥व्याधितासश्रमाव्यग्राराजकर्मपरायणा । आमंत्रिताचेन्नागच्छेददंड्यावडवा स्मृता)एवंबृहस्पतिरपि (व्याधितासश्रमाव्यग्राराजकार्यपरायणा । आमंत्रिताचनागच्छेदवाच्यावडवास्मृता) अन्यदपिनारदः(अप्रयच्छंस्तथाशुल्कमनुभूयपुमान्स्त्रियम्। आक्रमेणचसंगच्छेत्घातदंतनखादिभिः॥ अयोनौयःसमाक्रामेद्बहुभिर्वापिवासयेत् । शुल्कमष्टगुणंदाप्योविनयंतावदेवतु) ग्रंथांतरविशेषस्तुयथा (अन्यमुद्दिश्यवेश्यांयोनयेदन्यस्यकारणात् । तस्यदंडोभवेद्राज्ञःसुवर्णस्यचमाषकम्॥(पुनरपिनारदः) वेश्याप्रधानायास्तत्रकामुकास्तद्गृहोषिताः।तत्समुत्थेषुकार्येषुनिर्णयंसंशयेविदुः) अर्थात्-नारद कहतेहैंकि बाजारू पण्य स्त्रीमात्रकोई हो अपनाशुल्क पेशगीलेकर दाताके पास जाना नहींचाहै तौवह दूनाशुल्कभरै एवं शुल्कदेनेवाला भी जोदिये पीछेइच्छा नहींकरै तौ

निजदिये दामकी हानिपावै-परंच इतनीछूट इसमेंनारद और वृहस्पतिभी दर्शातेहैंकि ठहरीहुई दासी वेश्याको तत्कालकोई रोग पैदाहोजाय या थकहरिआदि श्रमउत्पन्न होय या कुछ चिंतायुक्त खबरसुनने आदिसे उदास चित्तहोय यद्वा किसीभांतिके कुछ राजकाज में वहउलझीहो और वुलवानेपरभी नहींआवै तौकुछ दंडयोग्यभी वहनहीं है और दोषलगाने योग्यभीकुछ नहीं-नारदजी फिर और प्रकारसेभी अधिकउपद्रव करनेमध्ये दंडकहतेहैं किकोईपुरुष पण्यस्त्रीके साथ संगमकरिकै उसकाशुल्कनहींदेवै और अचानक विनाविवेक आक्रमसाहित संगमकरि बैठे जिस्से आंत पसुलीआदि किसी भीतरले अंगमें कुछपीड़ा खड़ीहोजाय यद्वा किसी अंगप्रहार भूतघातसे या दांतोंसे नखादिकों से अयोग्य चिह्न याकुछपीड़ा पैदाकरै-योनिस्थान छोड़ि अयोनिमें जो संगम करै अथवा अपनेनामसे एकाकी वुलवाकर उसको कईपुरुषोंसे प्राबल्यसंगमकरवावै तिसपर आठगुणावेतन उसको दिलवायाजाकर उसीसमान राजदंड लियाजावै (और जो) वहुतपुरुषोंने येउक्त उपद्रवकियेहों तौप्रत्येक उनसबहीसे अठगुना दंड या प्रत्येकसे चौवीसपणका दंड जैसा याज्ञवल्क्यने दर्शाया दोमें कोई एकभांतिसे उस अवसर वा अपराधके अनुसार दण्डहोवे (यहाँपरग्रन्थान्तरसे) यह इतना और विशेष है कि जो कोई उनका मध्यस्थ वा दलाल आदि वेश्या को यदि और पुरुष के नाम से अन्यत्र किसी और के निमित्त में लेजाफँसावे तिसपर एकमाष सौवर्णिक द्रण्ड राजालेय क्योंकि ऐसी दगावाजी से कुछ हिंसा आदि उपद्रव होजाने का भी खटकाथा अर्थात् यह एकमाष सौवर्णिक दण्ड विना उपद्रवकेही जाना किंतु उपद्रव के होजाने में जिस भाँतिका उपद्रवहो तैसा दण्ड विधान साहस प्रकरणके अनुसार देखाजाय-कदाचित् कहीं उपद्रवही कुछहिंसा आदि हुआहो तिसके निर्णय का प्रकार नारद कहतेहैं कि-वेश्याओंके प्रसङ्गवा संसर्ग से उत्पन्नहुये उपद्रव आदि कार्यों में संदेह खड़ा होनेपर यथार्थ निर्णय राजपुरुषों के सन्मुख वेही वर्णनकरें जो जो वेश्याओं की प्रधाना वृद्धा नायिका आदि हों या जे कोई वहाँ कामुकपुरुष आदि उनके देह गेहों के समीप रहतेहों या किंचित्काल कुछ विश्राम लेले रमते हुयेहों इनसे तहकीक़ात अच्छी होसक्ती है २९७॥

(योनित्यक्त्वाऽन्यत्रगमनेपुंगमनेप्रव्राजितायांचप्रत्येकन्दण्डः)

अयोनौगच्छतोयोषांपुरुषंवापिमेहतः। चतुर्विंशतिकोदण्डस्तथाप्रव्राजितागमे २९८॥

ऐ०-स्वकीया वा परकीया योषायों के योनिद्वार में अन्यत्र मुखादि छिद्रों के प्रति संगम करनेहुये मनुष्य को या पुरुषके प्रतिवीजपान करतेहुये मनुष्य को चौवीस पणका दण्डहै तथैव प्रव्राजिता जो संन्यासिनि आदि तपसे युक्तहो तिसमें गमनकरने पर भी दण्ड यही चौवीस पणका जानो २९८॥

(चाण्डालीगमनेदंडप्रायश्चित्तविवेकः)

अन्त्याभिगमनेत्वंक्यकुबन्धेनप्रवासयेत् । शूद्रस्तथान्त्यएवस्यादन्त्यस्यार्यागमेवधः २९९ ॥

ऐ०-(अन्त्या) नाम चाण्डाली तिसके साथ संगम करने में द्विजाती लोगोंको दण्ड प्रायश्चित्त भी ये दोनों धर्म समाश्रित होतेहैं-यदि कोई उनमें चाण्डाली गमन करने पीछे प्रायश्चित्त करनेपर आरूढ़नहो तो वह पुरुष कुबन्ध से अँकवाइकर प्रवासित कियाजावै किंतु कुत्सित पापरूप चिह्न भगाकृति उसके माथेपर दगवाकर अपनी राज्यसीमासे निकासि देय (यद्वा कोई अन्य प्रकारका कुछ महापातक निश्चित होय तौ फिर देशकाल अवसर के अनुसार योग्य समुझाजाकर निर्जनद्वीप विशेषोंतक पहुँचायाजाय क्योंकि ऐसा दण्ड प्रायशः मृत्यु दण्डका अनुकल्प समुझा जाता है) परंच केवल सीमाबाहर करनेमात्रकेही साथ उत्तम साहसनाम वहधन दंडभी कि जिसकी संख्या एक सहस्रपणसे अधिक नहो पहिले लेकर सीमाबाहर करै-पर जो प्रायश्चित्त करनेको समुद्यत होय तिसपर उक्त धनका दंड होना योग्यहै कुछ देश निकाला यद्वा माथेदाग देनाभी आवश्यक नहीं-और जो शूद्रजातीने चांडाली संगम कियाहो तौ वह तथा शब्दके कारण कुत्सित चिह्नसेही अंकित होकर और धन दंड देकर चांडालही होजावै किंतु इसको सीमासेभी बाहरकरना योग्यनहीं है और प्रायश्चित्तसे कुछ काम नहीं क्योंकि इसकी शुद्धि प्रायश्चित्तसेभी होनी सूचित नहीं-और जो किसी (अंत्यज) चांडाल आदिने उत्कृष्टजाती स्त्रीसेसंगम कियाहोतौ उसचांडाल को बधदंड होवै उसपर धनदंडसे कुछ काम नहीं २९९ ॥

अधि०-अंकनप्रायश्चित्तयोर्विषयेमनुः (प्रायश्चित्तंतुकुर्वाणाःपूर्वेवर्णायथोदितम्। नांक्याराज्ञाललाटेस्युर्दाप्याश्चोत्तमसाहसम्) अर्थात्-ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंके लोग महापापोंमेंसे कोई पापकरते हुये शास्त्रविहित प्रायश्चित्तभी करदेवैं तो फिर राजा करके माथेपर कुछ दागदेने योग्य नहीं हैं पर केवल उत्तम साहस दंड दिलाने योग्य होवैं (और) इस बातका यह आशयभी आवश्यकहै कि जहां जहां प्रायश्चित्त किया जाय तिनको देशनिकासीकाभी दंडनहो-इसी हेतुसे योगीश्वरने इस २९९मूल-वाक्यमें यह कहाहै कि चांडाली गमन करने रूप महापापवाली दशामें अंकवाइ कर निज राज्यसे निकासै सिर्फ़ उनहींको जो प्रायश्चित्त न चाहैं यद्वा न करसकें-और-चौथे पादमें योगीश्वरने चांडालोंको धनदंड विनाही बधदंड होनाकहा तिसकाहेतु इसअग्र प्रोक्त मनुके वाक्यसे प्रत्यक्षहै-यथा (नाददीतनृपःसाधुर्महापातकिनोधनम्। आददानस्तुतल्लोभात्तेनदोषेणलिप्यते) बल्कि धनदंड लेना जैसा दोसौ इक्यानवेकी अधिकारिमें प्रारंभमेंही मनुके कई वचनोंसे जोलिखा तहां (सहस्रंत्वन्त्यजस्त्रियं) वाक्यभी लिखचुके सोउस स्थलका प्रयोजन यद्यपि यहीप्रतीतहोताहै कि इतनाइत

नाधन दंडलेकर छोड़िदेना योग्यहोगा परयह आशयउसका नहींहै क्योंकि इसअधि-कोक्तिमें दोवाक्य मनुके अभी अनंतर जो दर्शाये तिनकेहेतुसे उसस्थलमें भी अत्रो-क्त दोवचनों के अनुकूल अर्थसूचित है कि जोजो महापापी लोग प्रायश्चित्त करके अपनी आत्मशुद्धि करें तिनहींसे तत्रोक्तधन दंडमात्रलियाजाय अन्यथा प्रायश्चित्त के अभावमें अत्रोक्त मर्यादावर्तीजाय २९९ ॥

इतिपरस्त्रीसंग्रहणाख्यंविवादप्रकरणम् ॥

यहपरस्त्रीसंग्रहनामकाप्रकरणएकइसीतिरासीसंख्यावालेपरिच्छेदसेसमाप्तहुआ ॥

अथप्रकीर्णकइत्युपनाम्नाख्यातोनृपाश्रय विशिष्टव्यवहाराणांसवंशेषांविधिप्रदर्श-कोनाम चतुरशीतितमःपरिच्छेदः ८४ ॥

इस चौरासी संख्याके परिच्छेदमें प्रकीर्ण प्रकरण संबन्धी नानाभांतिके राजाश्रय व्यवहार वर्णनहोंगे जिनमें पूर्वोक्तसभी विवादोंका संक्षेप चर्चालेकर उनमेंयथावकाश के अनुरूप नृपाश्रयत्वकी संप्राप्तिभी दर्शाईजायगी कि जिस्से राजमुद्दई होनेकोअव-काश कभी मिलसक्ता हो ॥

यह प्रकरण एक विशेष वर्णनकरते हैं-इसप्रकरणका(प्रकीर्णक)नामहोनेका यहअर्थ है कि इसमें भिन्नभांति के व्यवहार अनेकामिल भुल वर्णनहोंगे किन्तु जितनेकुछ व्यवहार पहिले भिन्नभिन्न वर्णनहुये वेहीसव एकत्रमिश्री भूतहोकर भिन्नात्मकअन्य प्रयोजनों से दर्शायेजायँगे और उनसेभी कुछ अधिक विलक्षणवाद जोजो पहिले व-र्णनमें न आयेहों-अत्रत्य व्यवहारोंका यहमुख्य प्रयोजनहै कि जो व्यवहार ठेठराजा से या राजासे भी कुछसंवन्ध रखतेहों तिनकीरीतिभांति जानीजायगी अर्थात् जिन व्यवहारों में सरकार मुद्दईहोनेका संवन्धसर्वथा या कुछ कारणमात्र पायाजाय तिनके लक्षणसंग्रह इसीनिमित्त से कर्त्तव्यहैं कि राजमुद्दई किन व्यवहारों वा विवादोंमें होस-क्ताहै-चारभांतिसे सरकार मुद्दईहोती है अर्थात् एकउन व्यवहारों में कि जिनमेंकोई और मुद्दईहोनेका अधिकारी निपटन हो या तदुपास्थित नहींठहरै(और) दूसरे उन व्यवहारों में कि यद्यपिकोई मुख्यमुद्दईहोनेका अधिकारीहै पर शक्तिहीन होनेसेपुका-र करनेमें प्रवृत्तहोना उसका संभवनहीं(और) तीसरेविरले उन व्यवहारोंमें कियद्यपि कोईमुख्य मुद्दई वनकर किसी प्रतिपक्षीको अभियुक्तकरै और व्यवहार निर्णयहोने समय वादी या प्रतिवादीदोमें किसीपर यदिकोई कारणऐसा साबितहोय जिस्सेउसका राजाभी मुद्दईहोना संभवहो एवं किसी गवाहआदि उनकेअन्य सहायक मेंभी सम्भिलेना (और)चौथे उन व्यवहारोंमें किजिनमें राजकाजोंके अधिकर्ता आदिलोगों से कुछ राजकार्यमें अपराध पैदाहोय-अवइनचारोंके स्वरूपज्ञानकी अपेक्षालेकरथो-डेसे दृष्टांत लिखदेतेहैं किजैसेकोई पूरा या अपूरागर्भ निपातकराकर उसकोछिपावै

कहींफेंके और वह देखाजाय यद्यपि निपट दावीदार कोईहोना संभवनहींहै परतौभी इसमें राजमुद्दईहोनेका अधिकारी है.और एकयह दृष्टांतहै किजबकोई बालकमाता पिता विहीनहोकर निपटअनाथ फिरताहो जिसकाकोई दावीदार और पालयिताभी न हो तिसके पालनआदि मध्ये राजमुद्दई होनेका अधिकारीहै. और एकयह दृष्टांतहै किजबकोई किसीअस्वामिक धरतीको घेरिकर उसधरतीपर परिग्रह अपनारक्खे कि-न्तु कोईभांतिकी आबादी या खेतीआदि चयनाचियारसे संपन्नकरिके भोगे और अ-स्वामिक होने के हेतुसेही कोई उसकारोकटोक करनेवालाभी न पैदाहोय बलिकइसी अवाधहेतुसे वहभोग मानुषीस्मृतिके विहीन कालतकभी चाहे पहुँचै या थोड़ेसेही कालमें त्रैपूरुष भोगरूपी उसकाक़ब्ज़ा दृढ़होजाय या न हो और इनउक्तहेतुओंके-हीवलसे शास्त्रन्यायद्वारायद्यपि क़ब्ज़ा उसका उसहीकोतद्रूप यथावस्थित बनारहना योग्य निश्चितहो या न हो तौभी देशकाल कारणकार्यके अनुसार विरलेअवसर उ-समें राजमुद्दईहोना न्यायविशेषहै इसकारणसे किराजा धरणीपाल है.इसका अनुचर एक और भी दृष्टांतहै किजबकोई किसी शूनीधरती पर कुछ पक्केढँगसे ईंट पत्थरआ-दि चयनाचिनाव रूपी पूर्त्तकर्मका प्रारंभकरना चाहे और वहधरती यद्यपिशुद्ध प्रति ग्रह वा क्रयकर्मसे संप्राप्तहुई हो यद्वा पिता पितामह प्रपितामह आदिपूर्व स्वत्वोंसे क्रमागत पहुँचीहो याकुछ अन्यमार्गसेही पाईहोतौभीउस प्रारंभके निमित्त राजघरमें तत्त्वनिवेदन करिके राजनिदेशलेनेकी मर्यादाहै-यदिकोई पुरुषनिदेश लेनेविनाही उ-न कर्मोंका प्रारंभकरै यद्यपि कोई और मुद्दईबाधक आदिहोना संभवनहीं है पर हो या न हो तौभी राजमुद्दईहोनेका अधिकारीहै इसहेतुसे कि धरतीसहित प्रजाओंकेभी राजाही भर्त्तारहैं (नानिवेद्यप्रकुर्वीतभर्तुःकिंचिदपिस्वयम्) और एकयह दृष्टांतहै कि जैसे किसी जांगलभमि या प्राचीनटीले आदिमेंकुछ भांडद्रव्य ऐसानिकसै जिसका मुख्यस्वामी कोईनहींहै या पीछेकोई कल्पितस्वामी होसकना संभवहो या न होतौभी राजमुद्दई होनेकी मर्यादाहै.ऐसेही जबकोई और भांतिका अस्वामिक धनकुछ देखा-जायजैसे कोई एकाकी गोत्रहीन पुरुषविदेशी या स्वदेशी अपनेधनको फैलाछोड़िक र मरजाय यद्यपिशास्त्रकी मर्यादोंसे पश्चात्कोई कल्पितस्वामीभी होसकना संभवहो या न हो तौभी राजमुद्दई होनेकीमर्यादा है. ऐसेही जबकोई कहीं बटोहीआदि लूटा माराजाय जिसकेसाथ कोईऐसा और न हो जो तत्काल मुद्दईबनिके राजद्वारमें पुका-करता तौभी राजमुद्दई होने की मर्यादा है. ऐसेही जब कोई पुरुष अपने फैलेहुये द्रव्य औरअप्राप्त व्यवहारकाल बालक पुत्र निजविश्वास्य जनको सौंपेबिन मरजाय यद्यपि बालक पुत्रके सिवाय उसके गोती वा स्त्रियाँ तथा धनादि कामोंके अधिकर्त्ता नौकर कारिन्दे आदि भी कुछहों या न हों तो भी राजमुद्दई होने की मर्यादा है

कि राजा अपने हस्तपात पूर्व जिसको सज्जन और विश्वासपात्र होनेसे अधिकर्त्ता करना योग्य समुझै तिसके द्वारा गोत्र सम्मति सहित प्रबन्ध करावे जिस्से बाल्य भावतक उसधनका नाश न होनेपावे (एवं) जहाँ पुत्रनहो केवल स्त्रीमात्र विधवा या प्रोषितपतिकाहों तौभी धनकी रक्षाहेतु राजमुद्दईहोनेकी मर्यादाहै. ऐसेही जब किसी कुलवती स्त्री या सज्जन साधु पुरुषको एकाकीजानि कोई दुर्जन कहीं प्रतिष्ठा भंग करताहो तब तत्काल ऐसे दुर्जन और उनलोगोंकाभी राज मुद्दई होनेका अधिकारी है जो शक्त समीप होतेहुये वचावैंनहीं. एवं किसी बालक आदिका बधहोते जहाँ समस्यामात्रसेभी समुझाजाय जैसे कोई ठगिनी नटिनी आदि कहीं एकान्तमें कुछ व्यंगाकार बनायेबैठीहो किन्तु घांघरेको फैलाये डौलकुडौलसे यदि बैठी देखीजाय और वहराज पुरुषोंकी छायामात्र देखिकर चौंकन्नी कोईभाँतिसे यदि होनेलगै तब तत्काल राजपुरुषोंको इसप्रकरणके सिद्धान्तसे अवश्य उसकीतहक़ीक़ातमात्र करनेका अधिकारहै कि यद्यपि उक्तठगिनीआदि ऐसे ऐसे कारण भी उत्पन्नकरनेलगै कि अधुना पुत्र जनतीहूं समीप मेरे कोई भी मतआना तौ भी भूषणयुक्त पराये बालकआदिको छिपाये यह वधकरतीहोगी ऐसी शंकाके आवेशमें लयलीनहोकर उक्त राजपुरुषों को समीप उसकेजाने और वस्त्रादिक आवरणोंका अन्वेषण करवानेमें अधिकारहै इसहेतुसे कि यद्यपि कोई और मुद्दई इसमेंहोनासंभवहो या नहो तौभी राजमुद्दईहोनेकाअधिकारी है-येसब दोहीभाँतिके दृष्टान्तजानो किन्तु तीसरीभाँतिमें दोभेद मिश्रित होते हैं किएक यद्यपि कोई आपमुद्दई बनकर किसीविवादमध्ये नालिशदायरभी करदेवे और वह ठेठ विवाद उन्हीं विवादोंमेंसे समुझाजाय जिनमें राजाभी निजआपवादी होनेका अधिकारी हो जिनके मध्ये येदो भांतिके दृष्टांतभी कहिचुके.तब उसनालिश की यथार्थ तहक़ीक़ात होतेसमय परभी राजाआप मुद्दई होताहै इसहेतु ऐसे व्यवहारों में दो वादी समुझे जातेहैं (और) ऐसेही यदि पहिले केवल राजावादी होकर पीछे तहक़ीक़ात होते समय पर जो कोई और मुद्दई सावित होय तौ भी ऐसेव्यवहारोंमें दो वादी समुझे जाते हैं परन्तु जिस दावेकी तहक़ीक़ात होने पर वह दावीदार मुद्दई झूँठाठहरै किंतु दावाकरने का अधिकारी निपटनहो तौ फिर केवलराजमुद्दई रहता है कि जबतक ठीकदावीदार मुद्दई कोई और न सावितहो यह ब्यौरा एकभेद का होचुका. दूसरे भेदका यह डौलहै कि यद्यपि कोई आप मुद्दई बनिकर किसी विवाद मध्ये नालिश दायरभी करदे और वहठेठ विवाद उक्त विवादों में न हो किंतु उनके उपरान्त अन्य विवादों में गणनीय हो जिनमें राजाअपने आप मुद्दई होने का अधिकारी नहीं तौ भी तहक़ीक़ात होनेसमय कदाचित वादी या प्रतिवादी दो में किसी पर या उन दोनोंके सहायक साक्षी आदि किसी औरही पर कुछ फंदफरेब झूँठदावा

या झूँठीशपथ या झूँठासाक्ष्य आदि कोई अपराध भूत कारण पायाजाय तौभी राज-मुद्दई होताहै यह दोनोंभेद के दृष्टांत केवल उक्त तीसरी भांतिमें समुझने जो सरकार मुद्दई होनेवाली चारभांति पहिले कहीगई-चौथीभांतिके दृष्टांत बहुत सूधेहैं कि जब सरकारी किसी मुलाजिमसे सरकारी ठेठ कामोंमें कर्तृत्वका अपराध या धन काटकपट करना आदि कुछ उत्पन्नहो यद्वा न्यायस्थानके अधिकारी किसी वादी या प्रतिवादी आदिसे उत्कोचक आदि लेकर कामसुधारें या बिगाड़ें तब सरकार मुद्दई होतीहै दृष्टांत लिखना कुछ आवश्यक नहीं-जिन चारों भाँतिकेकुछथोड़े से दृष्टांत यहाँ उपोद्घातके अनुरूप दर्शित किये तिनको प्रकरणमात्रकेही बीज समस्यारूपजानो क्योंकि आगे प्रकरणमें जो नानाभाँतिके व्यवहार लक्षण वर्णन होंगे सो इनचारबीजोंसे व्यतिरिक्त कोई एकभी न होंगे इनके भीतरही सबजानो-बृहस्पतिजीने-इन व्यवहारों की अपेक्षा में सामान्य एक प्रतिज्ञा भी दर्शाईहै-यथा (एषवादिकृतःप्रोक्तोव्यवहारःसमासतः। नृपाश्रयम्प्रवक्ष्यामिव्यवहारम्प्रकीर्णकम्) अर्थात्-यह व्यवहार विधान मैंने जो कुछ ग्रन्थका प्रारम्भ लेकर वादीका उत्पन्नकिया प्रकर्षसे बखाना-तिसको यहाँ नृपाश्रय लक्षण रूपसे (समास) कर दर्शाताहूँ अर्थात् कुछ कुछ सबहीका संक्षेप समाहृत लेकर उसे समर्थन भी अब करताहूँ इसहेतुसे प्रकीर्ण उसका नाम जानो क्योंकि उसमें नानाभाँतिके व्यवहार भरेहोंगे (समर्थनम्-इदंइत्थंएवइतिनिश्चयहेतूपन्यासेननिश्चायकव्यापारभेदः) नारदने कुछ लक्षण भेद भी दर्शाये हैं-यथा(प्रकीर्णकेपुनर्ज्ञेयाव्यवहारानृपाश्रयाः। राज्ञामाज्ञाप्रतीघातस्तत्कर्मकरणन्तथा॥ पुरप्रदानंसंभेदःप्रकृतीनां तथैवच। पाखंडनैगमश्रेणिगणधर्मविपर्ययाः॥ पितापुत्रविवादश्चप्रायश्चित्तव्यतिक्रमः। प्रतिग्रहविलोपश्चकोपआश्रमिणामपि॥ वर्णसंकरदोषश्चतद्वृत्तिनियमस्तथा। नदृष्टंयच्चपूर्वेषुसर्वंतत्स्यात्प्रकीर्णकम्) अर्थात्-नारदकहते हैं कि-फिर प्रकीर्णक नाम प्रकरण में उसभांतिके व्यवहार जानो जो नृपाश्रयहों किंतु जिनमें राजवादी होताहो या होसक्ताहो उनके थोड़ेसे दृष्टांत भी अबदेते हैं कि एक तो जिनराजकाजोंमें राजाओंकी कुछ आज्ञाभंग होय किन्तु हुकमअदूली कोई करे तिनमें केवल राजवादी होताहै- तथैव उसके तुल्यकाम करने में अर्थात् राजसिंहासन ऊपर बैठ जाना आदि बहुधाकर्म जो राजाओंकेही करने योग्य हों तिनको कोई राजनिदेश पाने विनकरिबैठै ईदृग्व्यवहारोंमेंभी राजवादी होताहै इसबातका यथार्थ ब्यौरा आगे तीनसौ आठवाले मूल श्लोकमें विचारो-एवं पुरप्रदान कर्म ग्रामघात किन्तु गाँव माराजाना लूटाजाना फूंकाजाना आदि विनाश होने में सरकार मुद्दई अपने आपहो यद्यपि मारे गांववाले पुरुष मुद्दई होने संभवहैं तथापि उनकी ओरसे पुकार होने या न होनेमें भी राजा आप मुद्दई बनकर दंड कल्पितकरै-एवं प्रकृतियोंका संभेद कर-

ना उनमें फूट करानी जैसा संविद्व्यतिक्रम नाम के विवाद प्रकरण में यथार्थ इसका वर्णन है सब उसीमें अवलोकनकरो उनमें केवल राजमुद्दई होताहै-तथैव गण पाखंड नैगम श्रेणियों के जो धर्म हैं वे अपने अपने धर्मोंका विपर्यय जोजो करें किन्तु निज अख्त्यारी अहद पैमानोंको उलाघें या बिगाड़ें तिनके व्यवहार निर्णय करने मध्ये केवल राजाको स्वातंत्र्यहेतु कोई और वादीहोनेका अधिकारी नहीं-एवं पिता पुत्रों का विवाद पारस्पर्य भी प्रकीर्ण पदहीमें गणनीयहै अर्थात् यद्यपि राजाको इसबात का प्रतिषेधहै कि अपनीओरसे मुद्दई वा मुद्दआअलेहको कुछनालिशकरनेकाउत्साह नहीं दिलावै और विनहुये किसी नालिशके व्यवहारमें निजहाथ नहीं लगावै यह सामान्यसी मर्यादाहै और ठेठपिता पुत्रके झगड़े में यह शिष्टाचार विशेषहै कि जहां तक बनि आवै राजादोनोंका व्यवहार परस्पर खड़ा न होनेदेवै (तौभी) यहां नृपाश्रय व्यवहारोंके प्राबल्यसे यहधर्म है कि विरलीदशा विशेषामें कदाचित् यही झगड़ा राजा नालिशके न होनेपर भी अपने आप संग्रह करके फैसलकरै और सिद्धांत इसका यही है कि साधारण छोटे मोटे झगड़े पितापुत्रोंके परस्पर जो उत्पन्न प्रायश होते हैं तिनसबमें हाथ न डारैपर उसदशा विलक्षणमें कि दोमें कोई एक अनीति करताहो जिस्से द्वितीयकेधन प्राण प्रतिष्ठा और शारीरिक सौख्यमें कुछ अधिक अन्तर आताहो या इनबातों मेंसे किसी बातकी हानि होनी संभवहो इतना राजा शिष्ट प्रजाके द्वारा क्रमसे सुनकर भी या आंखोंसे कुछ देखपानेपर भी स्वतःबुलाकर उनको शिक्षाकरै कि जिस्से आगेको उत्पात न उठनेपावै और उत्पातों के उठ खड़े होनेपर भी राजाको स्वातंत्र्यहै कि उनको किसी ओरसे नालिश निपट न होनेपरही घिरवाकर निर्णय करनेपीछे सिर्फ़ मीठादंडदेवै किन्तु कड़ुवा नहीं क्योंकि यहां राजा के स्वातंत्र्य और इसदंडसे अपेक्षा केवल इतनीहै कि पिता पुत्रके वैरमें घर शीघ्र ऊजड़ होते हैं न होनेपावें इनके वैरोंके दृष्टांत यद्यपि विरलेभी अनेकहैं पर एकदो के रूप यहां विवेचन करने योग्यहैं कि जैसे अपतित पिताको यदि पुत्र त्यागे देता हो यद्वा अपतित पुत्रकोही पिता त्यागे देताहो (या) असमर्थ पिताका परिपोषण पुत्र समर्थहोकर नहीं करताहो एवं पिता समर्थहोकर भी असमर्थ पुत्रके परिपालन में कुछ गई करताहो यह शारीरिक सौख्य तथा प्रतिष्ठाके दृष्टांत दोनोंजानो इसी प्रकार पिता कदाचित् पैतामह धनका व्यर्थ वियोग किसी कारण विना पुत्रके असमर्थ होते किये देताहो यद्वा अपनेही उपार्जन किये धनको आधेसे अधिक या सर्वस्वदान किये देताहो और इस हेतुसेही पुत्रसे परस्पर उसका तीव्रद्वंद्व होताहो जिस्से दोमें एक प्राणहत होजानेका संदेह संभवहो अथवा पुत्र निपट अजान या असमर्थ हो तौभी राजा द्वंद्वके न होनेपर भी धनकी रक्षा करने के आशयसे निज आप मुद्दई

होने का अधिकारी है या पिताके वृद्धापन रोगपीड़ित होने आदि असावधानी की दशाओं में यदि पुत्र उस अधिकारको पहुँचे विना पिताके धनको या पैतामह धन को किसी अयोग्य रीतिसे विनाश किये देताहो तौ भी राजाधनकी रक्षा करने आदि हेतुओं से अधिकारी है कि नालिश हुये विना भी निज हाथ डाले ये दृष्टान्त प्रायः धन प्राणों से संबंधित हैं इत्यादि बहुधा और भी समुझने किंच और भी बहुतेरी दशा ऐसी हैं कि जिनमें पिता पुत्रकेही अनुरूप धनकी रक्षा मध्ये राजा को स्वातंत्र्य है-यथा (बालदायादिकंरिक्थंतावद्राजाऽनुपालयेत् । यावत्सस्यात्समावृत्तो यावच्चातीतशैशवः २७ वशाऽपुत्रासुचैवंस्याद्रक्षणंनिष्कुलासुच । पतिव्रतासुचस्त्रीषुविधवास्वातुरासुच २८ इत्यष्टमाध्यायेभृगुः) इनका अर्थ कहीं आगेबढ़कर तीन सौ मूलश्लोकसेही पहले वर्णनहोगा तहाँदेखो (और) ऊपरली प्रकृत चर्चामें जो नारद ने यह पिता पुत्रका वादबताया सोभी एक निदर्शनमात्र जानो किन्तु उसहीके उपलक्षणसे उसभाँतिके कुछ अन्यविवादोंमेंभी राजाको स्वातंत्र्यहै कि बिरली उनकी दशा विशेषमें पुकारके नहोनेपरभी हाथडालै और उसरीतिसेहो निर्णयकरै कि मानो एक पीड़ितपक्षीने पुकारकरी (सो) उनवादोंके स्वरूप अगलेवचनोंमें प्रत्यक्षहैं-यथा (नमातानपितानस्त्रीनपुत्रस्त्यागमर्हति । त्यजन्नपतितानेतान्राज्ञादंड्यःशतानिषट् ३८९ इत्यष्टमाध्यायेमनुः) इसमें छःसौ ६००) का यह दंड विरले ऐसे अवसरकी अपेक्षापर आरूढ़है कि जबजब इन्हीं विवादों में कुछमीठादंड या सामान्य शिक्षामात्रकरीजानेपर भी बारबार अभ्यास यद्वा हठका चिह्न प्रवर्तितहोय अन्यथा केवल सौ १००) का दंड याज्ञवल्क्यने जोकहा सोभी विरले वादविवादवाले अवसर में कर्तव्यहै सर्वत्रनहीं-तद्यथा (पितृपुत्रस्वसृभ्रातृदंपत्याचार्यशिष्यकाः। एषामपतितान्योऽन्यत्यागीचशतदंडभाक् २४२ इतिसाहसप्रकरणेयोगीश्वरः) यहाँमीठेदंडकाजो चर्चा वारंवारआया तिसका भाव सिर्फ़ इतनाहै कि अत्रोक्तद्वंद्वकारियों में परस्पर कोई एक जोकुछ दोषीसमुझाजाय तिसको नैषेधिकशिक्षाके अनुरूप कानताते करने के निमित्त में धर्माधिकारी अपनेमनसे नवतम कल्पितकरके ऐसा सूक्ष्म कोमलरूपदंड देवै जो सबदंडोंकी प्रशंसामें न आवै इसका दृष्टान्त जैसे दोचार या दशपांचमुहूर्तों के विलंबतक मलीनस्थानमें अवरोध उसकारक्खै यद्वा आँखे पट्टीमें बाँधिकर दो चारघंटे उसकी शिक्षाकरै अथवा वानरशालामें दो एक रात्रि उसको वासकरावै अथवा पशूचरानेको दो एकदिनतकभेजे इत्यादि बहुधाजानो जहाँ दोनोंका अपराध कुछ कुछ पायाजाय तहाँ दोनोंको दोभाँतिका कुछ भिन्न भिन्न मीठादंडकियाजावै जिस्से आगेको उसद्वंद्वसे वे दोनों हाथखींचें पर इस मीठेदंडमें धनदंड कुछआवश्यक नहीं (इतिपितृपुत्रविवादः) इसकेपीछे नारदकहते हैं कि प्रायश्चित्तोंका व्यतिक्रम भी

नृपाश्रयहोताहै अर्थात् जबकोई प्रायश्चित्ती प्रायः महापापोंकी संशुद्धिकरनेसे कदाचित् हाथखींचै या मनमौजीरीतिसे करदेनाचाहै अथवा महापापोंकी तत्परता रखकर प्रायश्चित्तोंका कुछ नामनरक्खै और बंधुओंकेभी कहनेपर कुछध्यान न लावै तिसका राजवादी बनकर उस्से प्रायश्चित्तकरावै यद्वा निपट नकरनेमें वहदंड उसको देवै जोकुछ शास्त्रसे संसिद्धहोय-एतस्यैवप्रमाणंतुयथा (ब्रह्महाचसुरापश्चस्तेयीचगुरुतल्पगः। एतेसर्वेपृथक्ज्ञेयामहापातकिनोनराः २३५ चतुर्णामपिचैतेषांप्रायश्चित्तमकुर्वताम्। शारीरंधनसंयुक्तंदंडंधर्म्यंप्रकल्पयेत् २३६ गुरुतल्पेभगःकार्य्यःसुरापानेसुराध्वजः। स्तेयेचश्वपदंकार्य्यंब्रह्महण्याशिराःपुमान् २३७ प्रायश्चित्तंतुकुर्वाणाःसर्वेवर्णायथोदितम्। नांक्याराज्ञाललाटेस्युर्दाप्यास्तूत्तमसाहसम् २४० इतिनवमाध्याये मनुः) कदाचित् कोई तर्क वितर्कसे यह कहनेलगै कि राजा दंडदेनेका व्यवहारमार्गसे अधिकारीहै कुछ प्रायश्चित्तोंकी अपेक्षामें आवश्यकनहीं होताहै कि इसमेंभी सरकार मुद्दईहोय क्योंकि प्रायश्चित्तकर्म उसकी आत्मशुद्धिका उपायहै वहकरै या न करै अथवा बंधूलोगकरावैं यह आवश्यकहै सो यह ऐसा तर्कवितर्क अपक्वबुद्धिकेही चित्त भ्रांतिमात्रसे उत्पन्नहोताहै निर्मूलजानो क्योंकि राजा दंडदेनेका अधिकारीहै और प्रायः दंडदेनेविना प्रायश्चित्तभी होसक्तेनहीं उनकेहोनेबिना प्रायचित्तीकी शरीर शुद्धिनहींहोतीहै और उसहीके संसर्गोंसे बंधुओंको संसर्गदोषलगताहै और बंधु जहाँ निर्बलहोयँ तौ बंधुओंकेभी कहनेसे बलवान् प्रायश्चित्ती अपनी आत्म शुद्धि नहींकरताहै कदाचित् बंधुलोग उसको त्यागरूपी जातिदंडदेवैं तोभी उलटे नाना भाँतिके उपद्रव खड़ेहोते हैं कि इसीप्रकार क्रम क्रमसे अनेकबंधु प्रायश्चित्ती होकर सभी सबको छोड़देनेपरैं बंधुओंका संघातफूटिजानेसेभी जातिसमूहभ्रंशहुआ जिसका होनेदेना राजाको प्रतिषिद्ध औरहोजाना राजबाधकहै इत्यादि और अनेकहेतुहैं सो सभी केवल राजदंडके नहोनेसे उत्पन्नहोते हैं इसलिये राजा दंडभयसे प्रायश्चित्तकरावै यह सिद्धान्तहै-अबसे अड़तालीसवर्ष पहिला एक देखाहुआ छोटासादृष्टांत है कि शाकेतदेशीय एकठाकुर कतिपय ग्रामाधीशकी बस्तीमें निरक्षर एकब्राह्मण जो कृष्यादि ग्रामीणासम्पत्तिमें सम्पन्नथा गोरसकी बहुताइतसे बिलाई उसकेघरमें बहुत आतीजाती एक बिआईबिल्लीके चारोंबच्चे घरमेंफिराकरते प्रायःगोरसमें मुखडालदेने उन्हें मारनेको जबकोईजाता शीघ्र भागिजाते किन्तु हाथ किसी के आते नहीं इसीसे उसमूर्खने अतिक्रोधमानि एक बड़ेमटकेमें कुछमट्ठारखकर ताकलगाई जब उसमटकाकेभीतर चारोंपाँचों घुसकर मट्ठापीनेलगे तभी उसकेमुखपर शीघ्र ढकन देकर उसे चूल्हापरचढ़ाया नीचे आँच जलादी कि ये इसतौरसे मरजायँगे-यद्यपि अपनेघरके भीतर उसने कियाथा पर किसी परोसी ने यहकरते उसे अपनेघरमें देख

लिया उसकेदर्पघमंडके भयहेतुसे प्रतिषेध उसेकरनेमें संकुचितहोकर चुपकेचुपकेग्राम पतिकी चौपालपर यहखबर उसनेपहुंचाई ग्रामठाकुर भोजनकरनेको घरभीतरजाकर चौकेमें बैठनेपायेथे कि इतनेमें यहखबरभीतरपहुंची सुनतेसाथ नंगीचांदि लाठीलेकर दौड़े उसकेघरपरपहुँचे दरवाज़ा उसकाबंदथा मनुष्योंकोचढ़ाकर द्वारखुलेपीछे भीतर जाकर देखाचारोंबच्चे मैया सहित मथनाभीतरबंदहैं और जैसेजैसे मट्ठा गरमहोताआता वे सबच्याऊँ म्याऊँ रोतेथे तत्काल पहिले उन्हें निकासा बहुत आँच अब तक नहीं लगनेपाई थी वे प्राणों से बचिगये पीछे ग्रामाधीशने उस ब्राह्मण को चौपाल पर ले जाकर उसीके हाथसे निज कानाबूची सहित उठा बैठीका आयास केवल इक्कीस बार दिलवाकर आज्ञा प्रचलित करी कि आजसे इसके मंगल कामों की ज्योंनार में घर भोजनकरना ग्रामपतिने छोड़िदिया जबतक प्रायश्चित्त नकरै कोईब्राह्मण इसका सहभोजीबनै उसकेघरभी ग्रामठाकुर नहींजायँगे और जोएक मासभीतरप्रायश्चित्तकरने परआरूढ़ नहो तौ धनधान्य आदि सहित इसको ग्रामाधीश अपने ग्रामसे निकासि देवैंगे इतना सुनिकरसभी विप्रों ने सहभोज्य धर्म उसका त्यागि दिया क्योंकि वह की परिपाटी यही थी कि मंगल आदि उत्सव कामोंमें जिस किसी के घर ग्रामठाकुर भोजन करना नहीं कबूलें तिसके कोई ब्राह्मण भी नजावै इसकी पंचायत पहिलेहोजाती थी इसभय से अन्य विप्रोंने भी त्याग किया तब घबड़ाकरउसने शीघ्रनैमिष तीर्थ का विधान प्रायश्चित्त निमित्तक अंगीकार करके यात्रा करी और फिर आकर ग्राम ठाकुर सहित सभी विप्रों की ज्योंनार करी-इस दृष्टांतसे सिद्धांत सिर्फ़ इतना है कि प्रायश्चित्तभी कुछ राजदंडभय के विना मनुष्य करते नहीं(सर्वोदंडजितोलोकोदुर्लभोहिशुचिर्नरः।दंडस्याहिभयात्सर्वंजगद्भोगायकल्पते—इतिमनुः) यद्यपि राजदंड के सिवाय एक ज्ञातिदंड भी अत्यंत प्रबल है पर उसको थोड़े लोग हैं जो डरतेहों इसलिये उसमेंभी कदाचित् राजसहाय की अपेक्षा हुआ करती है इत्यादि हेतुओंसे इस (प्रायश्चित्तव्यतिक्रम) को भी इसीप्रकीर्ण प्रकरण में संमिश्र कियाइसमें तर्कवितर्कसे कुछकामनहीं (इतिप्रायश्चित्तविवादः) इस पीछे नारद कहते हैं प्रतिग्रहका विलोप जोहै सोभी एक नृपाश्रय व्यवहार है और विरली दशा विशेषोंके अनुसार इसके अर्थ कई प्रकारसे उत्पन्न होतेहैं अर्थात् प्रतिग्रह जोकुछ किसी प्रामाणिकजन को नियमोंसाथ सौंपाजाय जिसका प्रतिग्रहीता उसी प्रतिग्रहको विलोपै किंतुपचावै या मिटावै यद्वा अन्यप्रकार से व्यतिक्रमकारी उस में होय तब उसदेश और उस कालकाही राजाआप स्वतंत्र है कि इनव्यवहारों को निज इच्छासेही संग्रह करिके निर्णय करै-यहां सबसे पहिले एक यह दृष्टांतहै कि जैसे कोई मंदिर धर्मशाला आदि मकान जो कुछ भाटक आदि लाभगुण संपन्न हो एवंग्राम और वनबागआदि या

स्थापित करी किसी रोकड़िका कुछ ब्याजबट्टा आदि किसीप्रामाणिक सत्कर्मी और विश्वासपात्रको भविष्यत्काल सनातनकेहीपुण्य अर्थ किसी प्रतिज्ञा साथ दानमार्ग से देदियागयाहो कि इसके लाभ में से अमुकामुक भांतिका पुण्यइतना सदा सर्वदा करते रहना किंतु तुम्हारे बेटेपोते आदि जे कोई सत्पात्र इसकेऋक्थी होयँ तिनको भी यह लक्षित पुण्य सर्वदा करना होगा ऐसे नियमोंका स्वामित्व जिसको दानपत्रों द्वारा मिलाहो सो यह एक प्रतिग्रहजानो अथवा दानमार्गसे व्यतिरिक्त कोई और भांतिसेही सौंपागया हो जैसे अनंतरोक्त धन और धनके लाभ तुमको अमुकामुक पुण्य करनेके अर्थ सौंपे जातेहैं तुम धर्मानुसार इसके लाभोंमेंसे इतना द्रव्यस्वकीय परिजनके परिपालन में लगाकर शेष इतना यद्वा यथा संभव द्रव्य इन अमुकामुक पुण्य कर्मोंमें लगाते रहना किंतु तुम्हारे बेटे पोते आदि यद्वा शिष्यप्रति शिष्यभी जब ताईं स्वीकृत नियमोंको धर्मानुसार साधन करैं तबतक यहीप्रतिग्रह तेरेवंश में सनातनकोही निश्चलहोय किंतु कदाचित् काल विशेष में जब कोई उक्तनियमोंका विलोप या व्यतिक्रम करे तबहीं देशकालके भूपालको स्वातंत्र्य होगा जिसकोचाहै योग्य समुझै पीछे यही प्रतिग्रह मेरे तत्कालीन कुलप्रधानोंकी भी अनुमति लेकर उसको सौंपदेवै पर यह जितनाद्रव्य तुम्हारे परिजन पालनके अर्थ में आदेशहुआ सो उस दशामेंभी वंदन होगा किंतु देशकाल का भूपालही दिलवाने का अधिकारी होगा इत्यादि दाता पुरुषके उच्चारण किये नियमोंकी लिखावट से जिसपुरुषकोधन सौंपाजाय यहभी एक प्रतिग्रहजानो-अत्रोक्त दो भांतिमेंसे किसी एकभांतिके प्रतिग्रहका स्वीकार जिसने कियाहो या जिसके पूर्व पुरुषों का स्वीकारकिया क्रमागत चलाआताहो सो कुछकालपीछे प्रतिग्रहीताही निज आप यद्वा बेटे पोते आदि उस के ऋक्थी कोई अतिकालांतर में भी निपट विलोपकरैं अर्थात् उक्तपुण्य करनाबंद करें उसका सब सर्वस्व अपने अर्थमें लगाने लगें यामनमौजी न्यून पुण्यकरनेलगें या उस दानपत्रकोही निपट छिपाकर अपना केवल स्वत्व बताने लगें तौ इस भांति के विलोप का व्यवहार खड़ाकरने में उस देशकालका भूपाल आप स्वतंत्रहैसरकार मुद्दई बनिकर उसका निर्णय करे और उसपुण्य कर्मके प्राचीन लिखित नियमों में विशेषता आप कल्पित करिके उसी प्रतिग्रहयुक्त के स्वाधीन रक्खे यद्वा उसको पूर्व नियमोंवाले संविद्का व्यतिक्रमकारी और अपराधी समुझै तो उसवंशके प्रधानों को समाजी भूत करके संमति लेवै जिनके पूर्व पुरुषों ने यह नैरंतर्य पुण्य कर्मरूप पादप आप लगाकर निज विश्वासपात्र किसी एक या दो तीनको प्रतिग्रह इसका सौंपाथा उस वंशके प्रधानोंकी जो सम्मति पाईजाय तिसही के अनुसार किसी और को विश्वास्यपात्र जानकर उस कर्मका प्रतिग्रह सौंपिदेवै-यद्यपि यहाँ विशेष कर के

बन्ध उसकाहो या नहो तौ भी गूढ़ आशयका भावार्थ समुझे जानेके निमित्तसेही एकसौ इक्यासी मूलश्लोक पिछले अङ्काकी अधिकोक्तिको भी ध्यान लगाकर देखो उसकी छायामात्र इसपर झुकतीहै-एक और भी दृष्टांत है कि जहाँ किसी मरतेहुये धनिकने निजधनकी रक्षामात्र सोचिकर कुछ अन्त्यकालिक शिक्षासाथ किसी प्रामाणिक और विश्वास पात्रको धन सौंपिकर यहकहाहो कि जबतक मेराबालक पुत्र यह व्यवहार साधन करने योग्यहोवे इतनी वर्षोंतक इसधनकी रक्षा या परिवर्द्धन आदि पालन कर्म करते रहकर मेरे पुत्रको संप्राप्त व्यवहार काल होनेपर सब सौंपिदेना यह भी एक प्रतिग्रह जानो जोकि मरनेवालेसे विश्वासपात्रने धनलेकर अपनी सौंप में उस अवधितक परिपालन करना अंगीकार किया (यद्वा) पुत्रादिक निपट अभाव आदिकिसी हेतुसे मरणांत कालमें यह शिक्षा करीहो कि इसधनको मेरे मरने पीछे देवालय निर्मित करना आदि अमुक पुण्यों में लगादेना तौ यह सौंपभी प्रतिग्रह जानो ऐसेधनको प्रतिग्रहीता जो निज आप बिलोप करे पचावै किंतु धनीके बालक पुत्रको उस अवधिमें नसौंपै यद्वा देवालय आदि नहीं बनावै तौ सरकार मुद्दई होने का अधिकारीहै कि स्वतःमुक़द्दमा संग्रह करिके उन सब कामोंको संसिद्ध करवावै जैसी शिक्षा अन्तकालिक हुईहो-इन ऊपरले निचले सब दृष्टांतों में यहबात कुछ विशेषकर आवश्यक नहीं है कि दाताने ग्रहीता से भी कुछ इकरार लिखायाहो या नहो किंतु दाताकी शिक्षा में जो नियम लिखेहों वेही प्रतिग्रहीता के इकरार में भी दाखिल समुझे जासक्तेहैं और इसपर भी कुछ तर्क विशेष नहीं है कि दाताने निज शिक्षापत्र में यह लिखा या न लिखाहो कि इसमें नियम व्यतिक्रम होनेपर सरकार मुद्दईहोय क्योंकि इन दृष्टांतों के अनुरूप जो जो और भी प्रतिग्रह इनके तुल्य समुझे जायँ जिनमें कोईभाँति विलोप होनेका कुछ खटकाहोय सबही में सरकार मुद्दई होना एकधर्म है-इन दृष्टांतों से भिन्नात्मक एक और भी दृष्टान्तहै कि जैसे किसीराजा ने निज देशी किसी ग्रामकी धरती में से थोड़ी धरती किसी चिकित्सक आदि विद्यावान् को या शूरवीर को प्रसन्न होकर दानपत्र मे लिखिदीहो और उसधरती के पलटे यद्यपि राजाने उसग्रामके अधिकारी को अन्यत्र कहीं धरती भी देदी या न दीहो यद्वा उतनी धरती की भेज कमतीकी या न कीहो इनबातों से अपेक्षा नहीं समुझना क्योंकि राजा जैसे चाहे प्रजाकी सन्तुष्टिमात्र करने में स्वाधीन है न जानें उतनी धरती दानकरने से कुछ पहले पीछे कितनी बड़ीभलाई ग्रामपतिके साथ करीहो और वह ग्रामपति कुछ कालबीते यद्वा गद्दीदार पलटने पीछे या बहुदीर्घकाल पीछे उसके बेटे पोते आदि कोई ग्रामके अधिकारी उसीधरतीका प्रतिग्रह जो ग्रहीता वा ग्रहीताके सन्तान आदि कोई रखथी जो यद्यपि लाभखानाथा निम ग्में राजदानक

प्रतिग्रहका विलोपकरैं किंतु किसी प्रपञ्चरूप युक्तिसे छिपावैं या मिटावैं या प्रत्यक्ष
होकर छीनैं और उसग्राम की निज धरती में मिलाकर अपना स्वत्व कल्पितकरैं ते
इसभाँति से प्रतिग्रहका विलोप होनेमें भी यद्यपि दानका ग्रहीता जिसकी धरतीव
विलोपहुआ अपनेआपनालिशकरनेआवेगा यहसम्भवहै तथापि नालिशदायरहो
राजदानका विलोपहोना सुनतेसार देशकालका अधिकारी राजा आप मुद्दई वनक
उसका निर्णयकरै यह सिद्धान्त है-केवल इसी एक दृष्टांत की अपेक्षा लेकर पैंसठिसं
ख्यावाले परिच्छेद में एकसौ अट्ठावनकी अधिकोक्ति मध्ये नद्यादिदत्तभूमिकेपश्चात
राजदत्त भूमिकाव्यवहारजितनाउसअधिकोक्तिके समाप्तहोनेतकदर्शायागया तिसके
देखो-किन्तु ऐसेदान प्रतिग्रहको जबकोई ग्रामपालआदिपचावै तबहीं राजमुद्दईहोना
एक धर्महै क्योंकि राजदानका बिलोपहुआ-इसहीका-अनुचर एक यह दृष्टान्त है कि
जब किसी धनाढ्यपुरुषने कोई देवालय धर्मशालाआदि पूर्तकर्म अपनी वस्तीमांभ
रचना तथा प्रतिष्ठाकरवाकर पार लौकिक पुण्यअर्थ किसी अति दूरस्थनामी विद्वान
आदि सुपात्रको संकल्प लेख्यद्वारा अर्पणकिया उक्तसुपात्र प्रतिग्रहीता अपनेआप
दूरनिवासीहोनेकेहेतु उसस्थानमें रहनहींसक्ता इस्से निज विश्वासपात्र किसी सेवक
शिष्यादिको प्रतिनिधि अपनीओरसे निमित्तमात्र उसमेंरखकर उसके अखिलप्रबंध
दाता पुरुषके आधीनरक्खे क्योंकि दाताके सामीप्य और सामर्थ्यप्रभावसे स्थान के
उपलाभआदि फलभी संचितहोकर पहुंचाकरेंगे और यथायोग्य रक्षाभी होसकेगी
इसरीतिसे उसदाताके जीतेजीतक तौ निर्वाहठीक होतारहा किन्तु दाताके मरनेपर
पुत्रादिक जेकोई उसकेरिक्थीहुये तिनकेहाथमें उसधर्मशालाका प्रबंध पहुँचा कुछ
दिनबीते उनकी नीतिमें जब अन्तरआया तबहीं प्रतिग्रहीताका शिष्यादि जो कोई
प्रतिनिधिरहताथा तिसप्रातिनिधिको वेदख़लकरके उपलाभोंकाधन अपनेअर्थमें ल-
गानेलगे तौ यह दानका बिलोपकिया ऐसादानाविलोप चाहे मुख्यदाताके मरनेपीछे
शीघ्र अथवा कईपीढ़ीवीतजानेपरभी हुआहो तौभी यहीसमुझाजाताहै कि मुख्यउसी
दाताने निज दानका विलोप किया क्योंकि पुत्रादिक सब रिक्थी जेकोई उसके प्रति-
स्थानीहों उसी दाताका रूप समुझे जातेहैं-ऐसादान विलोप कभी होनेमें उसदेश
और उस कालका धरणीश मुद्दई होनेका अधिकारी है-क्योंकि (देयंप्रतिश्रुतंचैवद-
त्वानापहरेत्पुनरितियाज्ञवल्क्यः) अर्थ इसका १८१ की अधिकोक्ति मध्येदेखो-और
आशय इसका यह कि ऐसाकरना एकडकैतीमें गणनीयहै (इतिप्रतिग्रहविलोपविचारः)
इस पीछे नारद कहतेहैं कि आश्रमियोंका परस्पर कोप जो है सो भी एक नृपाश्रय
व्यवहार है अर्थात् (लड़ाईदीनकीयादिहो) और आशय इसका यह कि अग्रात्कमनु
के दो वचनों में जो राजाको प्रतिषेध है कि आश्रमियों के परस्पर धर्म विवाद में

कदाचित् राजा सहसा हाथ न डारे तिस प्रतिषेधका यह प्रतिप्रसव नारद कहते हैं कि बिरलीदशा विशेष में निज राज मुदईहोनेका अधिकारी है-इसआशयकास्वरूप सिद्ध करने के प्रयोजनसे उस निषेधकाही रूप पहिलेदेखो यथाहमनुः (आश्रमेषुद्विजातीनांकार्येविवदतांमिथः । नविब्रूयान्नृपोधर्मंचिकीर्षन्हितमात्मनः ३९० ॥ यथार्हमेतानभ्यर्च्यब्राह्मणैःसहपार्थिवः । सान्त्वेनप्रशमय्यादौस्वधर्मंप्रतिपादयेत् ३९१ ॥ इत्यष्टमाध्यायेभृगुः) अर्थात्-द्विजाती लोगोंका गार्हस्थ्यादि आश्रमों के विशेष विषयवाला कोई कार्य वा आचार उनके आपस में उत्पन्न होकर उनहीं के परस्पर ऐसा वादविवाद खड़ाहोवे कि इसबात में यह शास्त्रार्थ है यह नहीं दूसरा पुरुष अन्यरीति से कुछ कहताहो अथवा अमुकआश्रम अमुकवर्णको न लेना यद्वालेना योग्यहै या शैव वैष्णव आदि पन्थवाले निजनिज धर्मों वा आचारोंका कुछबाद विवाद चर्चाकरते हों तो इत्यादि विवादोंमें सदैवराजाअपनी क्षेमचाहताहुआ सहसा कुछ इसभांतिकी विशेष वार्त्तानहीं घुसेड़े कियह शास्त्रार्थ इसमेंरक्खो या न रक्खो किंतु अपनी इच्छाके अनुसार जैसाचाहैं तैसावेही प्रजालोग अपनेआपसमें निपटारा या वर्त्तावाकरैं ३९० कदाचित् राजद्वारतक वे लोग झगड़ालेकर पहुँचैं तौभी ऐसे झगड़ेको व्यवहार मार्गसे अदालतनहीं चढ़ावे किंतु पहुँचेहुये द्विजातीलोग जिसजिस पूजाकेयोग्य जोजो समझेजायँ तिनकीवही पूजाकरके राजा विद्वानब्राह्मण जो उसवादमें न हों तिनको साथलेकर पहिले उन झगड़ालूलोगोंको अतिप्रीति युक्त मधुरवचनोंसे कोपदूर कराकर उन्हें शांतकरै तिसपीछे उनकाजो कुछमुख्यधर्म होसो कोमलतासे समझाकर बोध करादेवै)इसका प्रतिप्रसव जैसा नारदजीने कहा तिसकारूप विशेषभी यह समझलेना योग्यहै किजबजब कभी वे झगड़ालू लोग उन्हीं विवादोंमें कुछऐसा द्वंद्व उपस्थितकरैं कि जिस्सेकिसी आश्रमके या पन्थकेमनुष्योंको दुख पीड़ाखड़ी होवे यद्वाहोना संभवहोय या उनकेनिज आचारोंके कर्तृत्वमें कुछ विघ्न दिखाईदेवे तोफिरइस प्रतिषेधसे अपेक्षा शेषनहींहै किराजानिपट न बोले किंतु राजा ऐसेअवसरमें तत्काल मुदईबनकर मुख्य अदालतकेही मार्गसे व्यवहार निर्णयकरने और अपराधी वा अभिमानी जनका दंडदेनेका अधिकारी होताहै यह नारदने दर्शाया-यहां द्विजातीशब्द निदर्शनमात्र की अपेक्षालेकर कहाहै इसलिये भिन्नजाती लोगभी सबसमझे जासक्तेहैं किजैसादेश जैसाकालहो इसीप्रकार इसमें आश्रमशब्दभी निदर्शनमात्र की अपेक्षालेकर भिन्नजातियों यद्वा भिन्नदेशियोंके जोपन्थमार्ग हों तिनकाभाव अंगीकारकिया जासक्ताहै अर्थात् जबकोई भिन्नजाती भिन्नदेशी अपनेजाती वा स्वदेशी निजआचारोंके विरोधवाद हेतुसे द्विजातीको प्रपीड़ित करे अथवा करनाचाहै तौभी देशकालका राजा उक्तरीतीसे अधिकारीहै

(इत्याश्रमिणांकोपाविवादः)इसपीछे नारदकहते हैं किवर्णसंकर दोषकी उत्पत्तिवाला कोईझगड़ा किसी प्रकारकाभी हो(या)उन वर्णसंकर जातोंकेकरने योग्य वृत्तियोंका नियम कल्पितकरनाहो या कुछ पूर्वकल्पित नियमोंकी अपेक्षालेकर वादविवाद उन्हीं जातोंमें उत्पन्नहुआ हो-इनकेभी उपरांत किसीऐसे अद्भुत या अपूर्व वादविवादका व्यवहार खड़ाहोवै जो कदाचित्भी ग्रंथोक्त किसीविवादके व्यवहारमें न देखासुनाहो सोसब इसीप्रकीर्णकेही रूपमें समझना किंतुराजाहीप्रतिपक्षी इनकाहोताहै-अपूर्व वाद विवादका दृष्टांतजैसेकोई धूर्त्तपुरुषलड़कीदेनेके नामसेकुछ शुल्कलेकर अपना दास आदि कोईलड़का लड़कीतुल्य सजाकर व्याहिदेवै यद्वा डोलाकीरीतिसे व्याहे विना समर्पणकरै और वहडोला लेजानेवाला धोखापाकर पीछे राजद्वारमें पुकारकरै तोयह एकअपूर्व व्यवहारजानो एवंकोई पुरुषअपना सिर्फ विवाहकिये पीछेकहींवि-देश निकसिजाकर अपनीखबर न भेजैऐसेकईवर्षें बीतजाने और ससुरारिवालेसा-सू ससुराआदि मरजानेपर यदिकोई धूर्त्त उसीलड़के की अवस्था डीलडौल आदि वालाऐसा उक्तअवसर पाय आपहीबनिके आवैऔर उसमुख्य बिवाहेलड़केकेनामसे यह धोखादेकर गौना करलेजाय कि मैं इतनी वर्षों अमुक देश में रहतारहा विद्या संग्रहआदि हेतुसे कुछ खबरनभेजी थी ऐसायह विश्वासघात होनेपर और भेदइस-का खुलनेपर अविलंवित राजमुद्दई होकर तहक़ीक़ात आदिदंड दानपर्यंत बिना पु-कारकेभी हाथ लगानेका अधिकारी है क्योंकि यहभीएक अपूर्व व्यवहार है इत्यादि नानाभांतिसे समझना क्योंकि (क्रियाभेदान्मनुष्याणांशतशाखोनिगद्यते)यहांतक यह नारदवाले चारोवचनों का अर्थभी दृष्टांतोंसहित पूराहुआ-अब-उन खोयेहुये पु-रुषोंकी धनादिक रक्षामेंभी राजमुद्दई होना शिवजीकहतेहैं कि जिनकाढूँढ़ेसे भीपना न लागै-तथाच(नृणामुद्देशहीनानांपरिवारान्धनानापि । पालयेद्रक्षयेद्राजायावद्द्वादशवत्सरम्॥द्वादशाब्देगतेतेषांदर्भदेहान्विदाहयेत् । त्रिरात्रांतेतत्सुताद्यैःप्रेतत्वंपरिमोचयेत्॥ततस्तत्परिवारेभ्यःपुत्रादिक्रमतोधनम् । विभज्यनृपतिर्दद्यादन्यथापातकीभवेत्॥ यद्यागच्छेदनुद्दिष्टोविभागांतेपिकालिके। तस्यैवदाराःपुत्राश्चधनंतस्यैवनान्यथा)अर्थात्-शिवजीकहते हैं कि हेकालिके देशांतरमें रमिजानेवाले जिनपुरुषोंका कुछपताठि-काना चिट्ठीपत्री आदि किसीप्रकारसेभी न मालूम होय तिनके परिवारोंऔर स्थावर जंगम धनोंकाभी पालनरक्षण जैसेकुछ होसकना संभवहो तैसे राजाआप मुद्दई बनकर द्वादशवर्षायुग पर्यंत करातारहै-बारह वर्षोंतक जो नहींआवें तिनकी अज्ञात मौतें समझकर पुत्रादिक अधिकारी वर्गद्वारा पुत्तलविधिसेकुशकल्पित देहदाहकरावे जिसको नारायण बलिभीकहते हैं फिर तीनिरात्रि बीतेपर प्रेतत्वभी छुड़वावै-निस पीछेउनके परिवारोंमें से पुत्रादिकजे कोईधनके अधिकारी ठहरैंतिनको यथाविभाग

रीतिसे और कालविवेकसे धन सौंपिदेवैइतना करनेविना पातकी राजाहोय-हेकालि-के यदिउक्त विभागधनका होजानेपर भीवह विनपते ठिकानेवालाआवै तौभीउसीका वहधन है और दारापुत्रादिक भी सबउसका है अर्थात् राजा फिरभी उनको सौंपा हुआ धन परिवर्त्तन करके आयेहुये धनीको देदेवै इसमें क्रियाकर्म होजाने का कुछ तर्क वितर्क नहीं है-और-इसही के उपलक्षणवाला आशय अंगीकार करके ईदृक् अन्य विवाद जो अपूर्व पैदा होयँ वे भी राजमुदई रूपसे निर्णीत होने सूचित हैं दृष्टांत जैसे कोई एक सर्प काटा पुरुष विषसे प्राण घुटिकर मृतक समझाजाने के हेतुसे देहांत क्रिया कर्मोंको पहुँचायाजाय परकुछ दैवी गति के हेतु ऐसे ढँगसे कि जिस्से उसका देह भस्मीभूत न होवै किंतु इसका भी दृष्टांत जैसे केवल जलही में प्रवाहि दियाजावै या साधु सन्त होने से समाधि में बैठाराजाय इत्यादि कोई भांति जिसका देहरूप जलने नहीं पाया और पश्चात् वही कदाचित् कहीं प्राणों से चैतन्यभी होजाय और कुछ कालबीते घरके लोगोंमें आजावै तौभी दारा पुत्रादिक तथा धनादिकमें स्वामित्व उसका सच्चाहै अर्थात् देहांत संबंधी क्रिया कर्मोंके होजाने वाले तर्क वितर्क इसमें झूठे हैं (और) आशय इसका यह कि यह रूपक निपट अपूर्व व्यवहारोंमें गणनीयहै इसहेतुसेही राजवादी होनेका अधिकार इसमें योग्य है इत्यादि प्रायः औरभी समझने-यह आशय पहिले नारदभी कहचुके हैं कि (नदृष्टंयच्चपूर्वेषु सर्वंतत्स्यात्प्रकीर्णके) ऊपरले शिवके वाक्यमें जो काल विवेकसे धन सौंपिदेना कहा तिसका आशय यह कि वारहवर्ष वीते यद्यपि नारायणवलि का होनाकहा परउस वारह वर्ष पीछे तक पुत्रादिक जो अप्राप्त व्यवहारकाल वालक समझे जातेहों तोफिर उनके तरुण होनेतक पश्चात्भी भूपालधनका रक्षणकरै जिस्से अन्यायी चाचा ताऊआदि सपिंड वा अनघेरी कोई धनको लूटि न खायँ-सोई-मनुके वाक्यसे संसिद्ध आगे होताहै यथा (वालदायादिकंरिक्थंतावद्राजाऽनुपालयेत्। यावत्सस्यात्समावृत्तोयावच्चातीतशैशवः ॥ अपिच-वशाऽपुत्रासुचैवंस्याद्रक्षणंनिष्कुलासुच । पतिव्रतासुचस्त्रीषुविधवास्वातुरासुच ॥ जीवंतीनांतुतासांयेतद्धरेयुःस्ववांधवाः। ताञ्छिष्याच्चौरदंडेनधार्मिकःपृथिवीपतिः) अर्थात्-अनाथ वालक जिनके माता पिता आदि सुहृद हितू नहीं और वे आप अशक्तहों या विद्या संग्रह करनेको विदेश जायँ तिनका दायभाग द्वारा पाया हुआ बांट या पूरारिक्थ जो उनको पितृ पैतामह क्रमसे या मातामहआदि किसीसेसंप्राप्त हुआहो और इसमें हानिहोनेमध्ये कोईभांति राजा खटकासमझै तोनिज आपवादी वनकर उसकी रक्षा तवतक करवावै जवतक वह विद्या पढ़कर लौटै वल्कि वालपनसे रहित होकर तरुणभी होजाय (क्योंकि) वहुधा वालक विद्या पढ़ने विनाभी निज वालपनमें लौट आते हैं तो इसका कोई ठीक नियम नहीं समझना किंतुवाल-

पनका दूरिहोना सोरह वर्षकी अवस्था पूरी होनेतक प्रामाण्य यद्यपि ठीकहै पर विरला बालक सोरहवर्ष तकभी बालपनसे नहीं छूटता तौ उस बालकके निमित्तमें दोवर्ष और अधिकभी आवश्यक जानो-औरभी-धनरक्षा जैसी बालक आदिके निमित्तमें यह कही तैसे स्त्रियोंकेभी धनकी रक्षाराजावादी बनकरकरै सोई कहते हैं कि (वशा) नाम कन्या जिसके ऊपरली विधिके तुल्य कोई धनका रक्षक निपट नहो यद्वा (वशा) नाम वंध्या और अपुत्रा जिसके पुत्र न जीतेहों तिसका धन उसदशामें किपतिने अपना और विवाह करके उक्त दोनोंके निर्वाह योग्य धनदेकर निपट उपेक्षाभाव धारण किया हो तबही राजा रक्षाकरै (यद्वा) अपुत्रा जिसके पुत्र निपट नहों या शिशुबालक धनकी रक्षामें असमर्थहों और भर्त्तासदा विदेशवासी रहताहो तिसके धनकी रक्षा राजा करै एवं (निष्कुला) जिसके कुलमें कोई धनका रक्षक निपट नहो तौभी राजवादी बनकर आप रक्षाकरै एवं पतिव्रता जो पतिको अपना इष्टदेव जानि कहीं विदेशमेंभी पीछे उसके धनछोड़ दौड़ीजाय तौभी राजवादी बनकर आपरक्षाकरै इसीभांति विधवा तथा रोगिणीकेभी धनकी रक्षा मध्ये राजमुदई होनेका अधिकारी है इसीआशय से फिर कहते हैं कि इन स्त्रियोंके जीवतेही यदि कोई भांतिकाधन उनका गैर लोगोंके सिवाय दोनोकुलके बंधूलोगभी कदाचित् छलसे या प्रबलतासे कुछ हरैं तिनको धार्मिक पृथिवीपाल चोर तुल्य दंडदेवै॥ अब योगीश्वरकी विवक्षा आगे वर्णन होगी उसमेंभी बहुतेरे वादविवाद भिन्नरूपोंसे दर्शावैंगे कि जिनमेंराजवादी होताहो तिनकोभी दर्शाये हुये चारबीजोंकेही अंतर्भूत समझना क्योंकि उक्त बीजोंका प्रभावमार प्रकरणमात्रमें विस्तरित होगा॥

(ऊनाधिकशासनकल्पकादिजालकाराणांदंडः)

ऊनंवाभ्यधिकंवापिलिखेद्योराजशासनम्। पारदारिकचौरंवामुंचतोदंडउत्तमः ३००॥

अक्ष०—ऊन यद्वा अधिक राजशासन जो कोई लिखे या पारदारिक और चोरको छोड़ते हुये उत्तम दंड ३००॥

अभि०—इस बातका दृष्टांत है कि जैसे राजाका दियाहुआ बसौंड़ी आदि निबंध यद्वा ग्रामक्षेत्र आदि भूमि जोराजमेंसे कोई वा अनेक पुरुष पातेहों तिसको कोई अहलकार अपने अधिकारकी घमंडया कुछ लोभ लालच आदि कारणोंसे कदाचित् गद्दीदार पलट जाने आदि कोई अवसर पाकर उन्हीं निबंध और धरतियों के परिमाण राजशासन के ही तौरसे प्राचीन मुद्रांक आदि प्रमाणको पहुँचाकर किंचित् कम लिख देय या उनलोगों की रिआयत चाहकर कुछ बढ़ती लिखे कि अगिले गद्दीदार अजानभावसे अब इतना देनेलगे इस अपराधकी व्यवस्था खुलने पर अपराधी उत्तम साहस दंडपावै इसमेंकेवल राजमुदई जानो और इस प्रकरणमें

के अनुसार अनेक और भी इसभांतिके अपराध समझलेने जिनमें कोई भांतिराज-शासन लिखने में छलकियाजाय-ऐसेही वहराजपुरुषउत्तम दंड पावै जिसनेपरदारा गामीजारको या चोरको पकड़ने पीछे किसीलालच से या अपने राज काज की ग़फ़लत सेही छोड़दिया हो-इसमें केवल राजमुद्दई होताहै कुछ पूर्वपक्षी वादी के होने या न होने पर आवश्यक नहीं ३०० ॥ मिताक्षराकार सिर्फ़ इसही एक वचन को नृपाश्रय व्यवहार कहकर अगले वचनों को फुटकर भिन्नात्मक मुतफ़र्रिक व्यवहार नीचे बतलावैंगे ३०० ॥

अधि०–जालसाज़ अहल्कारोंको सर्वस्वहारतकभी दंडहोना कहाहै-यथाहमनुः(येनियुक्तास्तुकार्येषुहन्युःकार्य्याणिकार्यिणाम् ।धनोष्मणापच्यमानास्तान्निस्वान्कारयेन्नृपः॥ कूटशासनकर्तॄंश्चप्रकृतीनांचदूषकान् । स्त्रीबालब्राह्मणघ्नांश्चहन्याद्विट्सेविनस्तथा) अर्थात्-जे कोई राजकाजोंके अधिकारी धर्मनिरूपण आदिकिन्हीं कामों में नियुक्तहों और उत्कोचरूपी धनके लाभतेजसे घमंडीहोकर निजअधिकारों के प्रभावसेही दाँव पेचोंको लड़ातेवादीप्रतिवादी आदिकार्यी लोगोंके व्यवहारआदि सच्चेकामोंकोबिगाड़ें या झूंठेकाम सुधारें तिनकासर्वस्व राजाछीनिकर धनहीन वसनेदेय आशययह किउस अधिकारको भी छीनिले-कूटशासनकी कल्पना करनेवाले जिनकोऊपर योगीश्वरभी कहचुकेऔर प्रकृतियोंके परस्परभेद करानेवाले जिनका चर्चाप्रायः संविद्व्यतिक्रम नामक प्रकरणमें आचुकाहो और भूपालके शत्रुओं की मिलावट आदि सेवा रखने वालेअधिकारी लोग और स्त्रीबालक ब्राह्मणइनका घातकरनेवाले राजसेवी लोगचाहैंतैसी ऊँचीनीची पदवीवाले हों इनसबको राजा तीव्रदंडोंसे वधकरै-अत्रोक्तऊपरली सहित व्यवस्थाका प्रयोजन कुछकुछ दोसौ अरतालिस मूलश्लोक और उसहीकी अधिकोक्ति में भी देखो-बलिक-कर्मभेदके अपराधोंका व्यवहार विशेषआगे तीनसौ दशके मूलश्लोकसे दर्शावैंगे सोउसकी भी अधिकोक्ति पर्यंतपाठदेखो ३०० ॥

(अभक्ष्यंखादयितुर्दंडविधानः)

अभक्ष्येणद्विजंदूष्यन्दंडमुत्तमसाहसम्। मध्यमंक्षत्रियंवैश्यंप्रथमंशूद्रमार्द्धिकम् ३०१

ऐ०–ब्राह्मणको अभक्ष्य किसीवस्तुसे जो दूषितकरै अर्थात् पुरीषमूत्र आदि व कुमांस आदि अभक्ष्यसे तथैव अन्नपान आदि जोउस विप्रके न खाने योग्यहोतिसे मिलाकर यद्वाकेवल एकवस्तुसेही दूषितकरै किन्तुछलसे या प्रबलतासे खवावै या सन्मुखलेकर दर्पसे दिखलावै कि यहवस्तु तुझेखवाऊँगाइसभांतिका अपराधीउत्तम साहसदंड पावै इसीप्रकार क्षत्रियको यदिकोई दूषितकरै किन्तु खवावै या दिखलावै तिसपर मध्यमसाहस दंडहोय इसीप्रकार वैश्यकोयदि कोई दूषितकरै तिसपर पूर्व साहस दंडहोय इसीप्रकार शूद्रकोयदि कोईदूषितकरै तिसपर पूर्वसाहसकाभी आधा

दम कर्तव्यहै-यहदंडभेद यद्यपि वर्णभेदसे निरूपणहुआ परंचवस्तुके अनुसारभी व्यवस्था देखीजाय किन्तुलहसुन प्याजआदि जैसीचीज मध्यमउत्तम समुझीजाय तैसाउक्त दंडमें न्यूनाधिकभाव कियाजानाभी आवश्यकहै (और) इसीप्रकार वर्णों में जोपुरुष दूषितहुआ हो तिसकीभी मध्यमता उत्तमताके अनुरूपयथोक्तदंडमें न्यूनाधिक भाव करनायोग्य है (और)इसमेंभी इसभांतिदंड भेदकरना सूचितहै कि जिसने उक्तअभक्ष्य चीजें निपटखवाई हों तिसकोपूरा दंडजो जिसवर्णकी अपेक्षाऊपर कहा सोईलेकर उक्तदंडकी अधिकता हेतु जो खवाईहुई चीजें अतिशयमलिन समुझीजायँ तो कुछमारपीटरूपी बधदंडभी कर्तव्यजानो या बन्धन में अवरोधरखना आदि जैसा रूपक योग्य समुझाजाय और जिसने सिर्फखवाना कहकर आंखिसे दिखलाई हों तिसपर आधादंड कियाजावै-इन अपराधोंमेंभी राजमुदई होनेका यहकारण है कि धर्मोंका प्रवर्त्तक तथा रक्षक राजाहोता है और वर्णियोंकी धर्मरक्षा राजाके विश्वासपर आरूढ़है उसधर्मको जोकोईमेटै तिसकाप्रतिपक्षी मुद्दअदार दूषितपुरुष उपस्थित होनेपर भी राजमुदईहोवै यहसिद्धांतहै-परन्तु-जिसनेकेवल देहमें अभक्ष्य वा अमेध्यका स्पर्शमात्र कियाहोतिसका राजमुदईहोनेसे कुछकामनहीं उसकादंडभी अत्रोक्तविधिसे नहींहोगा किन्तु दोसौअठारह २१८ मूलश्लोक द्वारादंड पारुष्यके व्यवहारसे निपटारा कियाजावैगा सोदेखो उसीस्थलमें-परजिसने बस्तुखवाने या दिखानेके सिवाय मारपीटभी कुछ कियाहो तिसको दोनों प्रकरणके अनुसार दोहरादंड करनाहोगा किन्तु अत्रोक्तदंड विधानकल्पित करनेपीछे दंडाबाजी वाले प्रकरणसेभी दंड विचार करनाहोगा ३०१॥

भाधि०-इसी तीनसौएकवाले मूलश्लोकसे प्रारंभलेकर अगिलेदशग्यारह सभीवचनोंकीअपेक्षा श्रीमद्विज्ञानेश्वरने निजलेखमयअवतरण पंक्ति यहलिखदीहै कि(प्रसंगान्नृपाश्रयव्यतिरिक्तव्यवहारविषयमपिदंडमाह)अर्थात्-उन्होंने सिर्फ एक३००तीनसौकावचनराजमुदईकेव्यवहारमें प्रमाण मानिकर दशग्यारह वक्ष्यमाणमूलश्लोकोंकी उत्थानिका रूपइसी पंक्तिमें यहकहाहै कि नृपाश्रयके प्रसंगसे अब जुदे व्यवहारोंका भीदंड आगेकहते हैं (सो) यह उत्थानिका निपट निरर्थकजानो क्योंकि योगीश्वरकी विवक्षा न्याय सिद्धासे ये आगिले सभी मूलश्लोक नृपाश्रय में प्रत्यक्ष और स्पष्टहै संदेह का कुछ अवसरइनमें नहीं ३०१॥

(कूटस्वर्णविमांसविक्रेतॄणांदंडाः)

कूटस्वर्णव्यवहारीविमांसस्यचविक्रयी। अंगहीनस्तुकर्तव्योदाप्यश्चोत्तमसाहसम् ३०२॥

ऐ०-(कूटस्वर्ण) कल्पित सोना चांदी आदि तिसका व्यवहार करने वाला कोई सुनार आदि जानो किंतु जो रसवेध आदि लोगोंसे भड़कीला पानदेकर अन्यथात

में सुवर्ण का आभास यद्वा चांदीका आभास दर्शित करते हुये भूषण आदि बनाकर बेचै यद्वा राजसिक्के कूटबनाकर उन्हें चलाताहो एवं अन्यचीजों से रत्नादि कूटकर्म से व्यवहारअपना रखता हो-और जो सौनिकआदि कोई दूकानदार जो जो मांसकी दूकान करतेहों कुत्ता आदि अभक्ष्य जीवोंका कुमांस यद्वा मरी भेड़बकारी का भी मांस जो जो मांसखानेवालों के निमित्तमें विमांस निश्चित होयँ तिनका विक्रयकरने वाला कोई सौनिक आदि ये सब अपराधी लोग नाककान हाथ तीन अंगोंसेप्रत्येक अंगहीन भी कर्तव्यहैं और उत्तम साहस दंडभी दिलाने योग्यहैं-इसमें स्वर्ण व्यवहारिशब्द दोनों आशयपर आरूढ़ जानो किंतु बनावै या बनवाकर कोई और चलावै किंच इतनाभेद औरभी आवश्यकहै कि भूषण आदि कल्पितको अकल्पितकेही तुल्य विनाजताये बेचै सो अपराधीहै पर २४५ के बचनानुसार नाणकआदि बनानेवाला सिर्फ बनानेमात्रसे अपराधीहोताहै और बनीहुईको पासरखनेवाला भी ३०२॥

मधि०—अत्र-यत्पुनर्मनुनोक्तं-(सर्वकंटकपापिष्ठंहेमकारंतुपार्थिवः। प्रवर्त्तमानमन्याये छेदयेल्लवशःक्षुरैरितितद्देवब्राह्मणराजस्वर्णविषयमितिविज्ञानेश्वराचार्यः) मिताक्षराकी यहपंक्तिहै पर इसमें न्यायमार्गसे यह ध्यानकरना योग्यहै कि देव ब्राह्मण राजाओंके भी स्वर्णका अपहार एकवार किञ्चिन्मात्रकरने में यह इतना तीव्रदंड निपट असंगत है और मनुके मूलवाक्यों में सामान्यउक्तिहोने से यह तात्पर्य भी निकलता नहीं और मनुमुक्तावली टीकाभी इसवातका प्रमाण नहींदेती है इसलिये यह सामान्यवाक्य उस अपराध विशेषपर आरूढ़है कि जोकोई स्वर्णकार सदैव वाने वंदीसे अभ्यासिक अपनापेशा इसीकुकर्मसे प्रवर्तितरखताहो और वह बारम्बार दंड देनेपरभी छोड़ैनहीं तब यह तीव्रदंड न्यायात्मक समझाजावैगा और यही आशय मनुने इसवाक्यमें निज आपभी (प्रवर्तमानमन्याये) और (सर्वकंटकपापिष्ठं) इनदोयुक्त प्रयोगों से प्रदर्शिताकिया है कुछ इसमें और व्याख्याकरनी संगतनहीं-और उस उक्तस्वर्णकारके कुकर्मभी प्रत्यक्ष फरेब हथचालाकी चीजवदलने यद्वा कूट कल्पित करदेने बालिक राजसिक्के कूट कल्पितकरनेपर्यंत पूरेअपराधोंमें गणनीयहैं-क्योंकि (तुलाशासनमानानांकूटकृन्नाणकस्यच) इत्यादि २४५ वाला मूलश्लोक याज्ञवल्क्यने जो साहस प्रकरणमें दर्शाया तिसकाभाव कुछ अत्रोक्त ३०२ के मूलवाक्यसे भिन्नात्मक नहींमानाजासक्ता सिर्फ स्वर्णकारकी पुनरुक्तिका यहकारणहै कि उस स्थलमें साहसिकोंकेसाथ कूटसिक्केकारकोभी गिनलेना आवश्यक था और यहाँपर सरकार मुद्दईहोसकनेवाला-मुद्दा-लक्षितकरनेके प्रयोजनसे कुमांस विक्रेताकेसाथ उसको गिनतीकिया और कुछदंडमें आधिक्यभी दर्शाया इसमें राजमुद्दईहोनेका विशेष हेतु एक यहभीहै कि जबकोई स्वर्णकार कूटस्वर्ण कल्पितकरनेकी अभ्यासिक वृत्तिरक्खे

गा वह क्रम क्रमसे कदाचित् राजसिक्केकोभी कूटबनावैगा तब राजकोशोंकी समृद्धि में कुछ हानिहोनी संभवहै और ऐसे हानिकारक अपराधीको कुछदंड नहोनेसे उस भाँतिके अनेक औरभी सुनार ऐसाकरनेमें प्रवृत्तहोंगे जिनसे राजकोशोंको निरन्तर हानि पहुँचैगी इसहेतु इनका पहलेसेही शासनकरना सूचित कियाहै कि स्वल्पकूट कर्मोंमें प्रवृत्ति पाईजानेपरभी राज मुद्दईहोकर इनका शासनकरै-ऐसेही कुमांस विक्रेता के प्रतिपक्षमेंभी राजमुद्दई होनेके ये कारणहैं कि प्रथम तो जो मांसखानेवाले हैं तिन सबहीको कुमांस भक्षणकरवाकर उनकाधर्म नाशकरताहै दूसरे मृतमांसआदि भक्षणके बिकारसेभी खानेवालोंके प्राणनाशहोजानेकी आशंकाहै तीसरे प्राणोंके बचिजाने परभी कुष्ठादिक महाभयंकर रोग उनकेदेहोंमें होजानेकी आशंकाहै यह तीनों बातें मनुष्यमारणके अपराधतुल्यहोती हैं इसहेतुसे कुमांस विक्रयहोनेकी समस्यापाई जानेपरभी राजमुद्दईहोकर शीघ्र शासन करै ३०२॥

(पथिबिचलितहस्त्यश्वरथादीनांदोषादोषौतद्वत्काष्ठपाषाणादीनांतु)

चतुष्पादकृतोदोषोनापैहीतिप्रजल्पतः। काष्ठलोष्टेषुपाषाणबाहुयुग्यकृतस्तथा ३०३॥
छिन्ननस्येनयानेनतथाभग्नयुगादिना। पश्चाच्चैवापसरताहिंसनेस्वाम्यदोषभाक् ३०४॥

ऐ०-चौपाये हाथी घोड़ा बैल आदि इनका किया अपराध मनुष्यमरजाना आदि इनके उनस्वामियोंपर आरूढ़ नहींहोसक्ता है जो उच्चस्वरसे ऐसाजल्पन करतेजाते हों कि आगेसे हटजाओ मार्गछोड़ो बचिजाओ आदि देशभाषा जैसीहो तथैव(काष्ठ) नाम मुगदरका घुमाना या डंडा सोंटा पटेबाजीसे फिराना वा फेंकना आदि या बहुत लंबीलकड़ी बाँसवल्लीआदि मार्गमें लेजाना एवं (लोष्ठ) कहिये मट्टीका ढेला किंवा बाँधेहुये गिलोलेआदि जो गुल्ला गुफनीकी रीतिसे चलायेजायँ यद्वा और किसी भाँतिसे चलाने वा गिरानेका कुछकामहो एवं (इषु) कहिये बाण भाला आदि चलाने का यदि अवसरहो एवं (पाषाण) पत्थर जो स्थानोंके बनातेहुये चढ़ातेसमय गिराने समय कोई भाँतिसे गिराऊ समझाजावै जहाँ मनुष्यों के निकसनेवाला मार्ग होय इनको आदि लेकर ऐसी औरबातोंकोभी समुझि लेना इनसे कोई प्राणीमरजाय यद्वा घायल होजाय तद्वत् (वाहयुग्य) नाम चलती गाड़ीकी जूअरसे जो दोषहोय किंतु गड़ उचोका आदि लगनेसे यदि कोई प्राणी गिरजाय वा मरजाय तो इन चीजोंके चलाने वा फेंकनेवाले आदि वेही इनके दोषकृत अपराधोंसे संयुक्त न होंगे और कुछ दंड न पावैंगे कि जो जो ऊँचेस्वरसे बचिजाना हटिजाना आदि जल्पन करतेहों अर्थात् जे कोई ऐसे जल्पनको न करतेहों तिनके चौपायों यद्वा काठ पत्थर ढीमा आदि कामोंसे कुछ हिंसा होय तो वे दोषभागी होकर दंड पावैंगे(दृष्टांत)जैसेखच्चर आदि चौपायेकी पीठपर बेंडी सोंट बल्ली आदि रखकर किसी गलीके बीच अँधियारी गलिके

जा चुपके लिये जाताहो उसके सन्मुख कोई बूढ़ा आदि दूधालिये आताहो सो उस लकड़ीकी टक्कर खाकर गिरजाय उसके चोट आजानेके सिवाय क्षीरपात्र गिरकर फूटि जाय तौ इस दशामें वह चुपकेसे अँधियारेमें कुढंग लकड़ीले चलनेवाला हिंसा और नुक़सानकाभी दोषी हुआ इत्यादि नानाभांतिसे दृष्टांत समुझिलेने ३०३ जिसगाड़ी आदि सवारीके बाहन बैल आदिकी रस्सी नाथ नकेल आदि टूटिजावै यद्वा जुआं टूटि जावै या पहिया धुरा कमानी आदि कोई औरअंगटूटै जिस्से गाड़ी गाड़ीमानसे बेकाबू होकर पथिकोंके पीछे दौड़े या सन्मुख आकर भिड़जावै यद्वा तिरछी बिचलै जिस्से प्राणियोंकी हिंसाहोय तौ उस गाड़ीका स्वामी यद्वा प्राजक पुरुष जोतनेवाला दोषभागी नहीं होगा जो ऊँचे स्वरसे पथिकोंको प्रबोध सावधानी देता जाताहो पर उस दशामें कि जो उसभगी गाड़ीके साथ रहने पायाहो क्योंकि गाड़ी छुटकर तीव्र वेगसे भगिजानेमें प्रबोध करनेकाभी नियम कुछ रहसक्तानहीं तौ भी गाड़ीमानको यहयोग्य है कि भागीहुई गाड़ीके पीछे दौड़ा जाकर पथिक समाजको संबोधित करता जावै तौ धन प्राणआदि कोई हानि उसकी गाड़ीसे होजाने पर भी दंडसेबचिसक्ताहै ३०४॥

अधि०-निम्नोक्त दश भाँतिके उपद्रव से उत्पन्न हुई हिंसा और धन हानिमें मुआफ़ीभीहै होसक्ती-तथाचमनुः (यानस्यचैवयातुश्चयानस्वामिनएवच । दशातिवर्तनान्याहुःशेषेदंडोविधीयते॥ छिन्ननास्येभग्नयुगेतिर्यक्प्रतिमुखागते। अक्षभंगेचयानस्य चक्रभंगेतथैवच॥ छेदनेचैवयंत्राणांयोक्तृरश्म्योस्तथैवच-आक्रंदेचाप्यपैहीतिनदंडंमनुरब्रवीत्) अर्थात्-रथ गाड़ी आदि यानको और (यातुर्नाम) पंथ चलनेवाले यद्वारथमान आदि जोतनेवाले को और उसयानके स्वामीकोभी निम्नोक्त दशनिमित्त हैं सोदंडके अति वर्तनकहेजाते हैं किदंड और अपराधको उलांघिकर वे अपना दर्परखतेहैं मन्वादि ऋषियोंने यहकहा पर उनदशोंके उपरांत जोकुछ और प्रकार ग़फ़लत आदिसे अपराध हुआ समुझाजाय तिसमें दंड कियाजाता है-दशोंनिमित्त अबदर्शाते हैं किनाथ नकेलआदि टूटिजानेमें जुआं टूटिजानेमें ऊँचीनीचीधरतीकी विषमतामे रथगाड़ी आदि तिरछे विचलिजानेमें या सन्मुख दौड़िपरनेमें धुराकाठकीलके फटिजाने टूटिजानेमें पहिया निकलजाने में यंत्र कमानी आदि किसी कलके ढीलेहोने या चमड़ेके बन्दकोई छिहजानेमें कंधोंके जोत निकलजानेमेंगाड़ीके जोतवाले दोनों रस्से छिहजानेमें और आगेसेहटजाओ बचिजाओ आदि ऊँचाशब्द बारंबार गाड़ीमान हाथीमानआदि प्राजकलोगोंके पुकार करनेमेंभी जो चौपाये यद्वागाड़ी आदि यानसे कुछप्राणहिंसा या धनहानि भी होजाय तौ उन प्राजकलोगों या स्वामियोंको कुछदंड न होगा ऐसा मनुजीकहगये.क्योंकि ऐसे अवसरमेंउन पथिकोंको भी अपने देहधनकी सावधानी रखनायोग्यथा-परंच-प्राजकलोगोंके निमित्तमें अत्रोक्तछूटेंनभी

तक होसक्तीहैं कि उनकीकोई ग़फ़लतनहीं पाईजाय किन्तु ग़फ़लत पाईजानेमध्ये अगिले वाक्यसे योगीश्वर दंडकहते हैं ३०४॥

(पूर्वोक्तेष्वपिस्वाम्याद्युपेक्षायांदंडःकार्यः)

शक्तोऽप्यमोक्षयन्स्वामीदंष्ट्रिणांश्टृंगिणांतथा। प्रथमंसाहसंदद्याद्विक्रुष्टेद्विगुणंततः३०५॥

ऐ०-दाढ़वालों तद्वत् सींगवालोंसे पीड़ितको समर्थहोकरभी स्वामीनहीं छुड़ातेहुये पूर्वसाहस दंडदेवै और विक्रोशहोने में उसदंडसेभी दूनादंड-अर्थात्-जहांकोई स्वामी कच्चेप्राजकलोगोंसेदांतवाले हाथीआदि या सींगवाले बैल आदिको जुतवाकर उनसे प्राणियोंको दुःख मिलतेसमय समर्थ होतेहुये बचावे नहीं उपेक्षा करिके आप भागेतहां अनारी हाथीमान गाड़ीमानसे जुतवानेके अपराधमध्ये पूर्वसाहसदंड देवै और जोदुःखपानेवाला घवड़ाकर ऐसा चिल्लायाहोकि हायमारा मुझे बचानातौइस भांतिसे चिल्लातेकोभी नहीं वचानेमध्ये उससेदूना दंडदेवै ३०५॥

अधि०-मनुने इसपक्षको विशेषब्यौरेवार वर्णन किया हैं-तथाच(यत्रापवर्ततेयुग्यं वैगुण्यात्प्राजकस्यतु। तत्रस्वामीभवेद्दंड्योहिंसायांद्विशतंदमम्॥प्राजकश्चेद्भवेदाप्तःप्राजकोदंडमर्हति। युग्यस्थाप्राजकेऽनाप्तेसर्वेदंड्याःशतंशतम्॥सचेत्तुपथिसंरुद्धःपशुभिर्वारथेनवा।प्रमापयेत्प्राणभृतस्तत्रदंड्योऽविचारितः(अत्रदंडानांपरिमाणम्)मनुष्यमारणेक्षिप्रंचौरवत्किल्विपंभवेत्। प्राणभृत्सुमहत्स्वर्द्धंगोगजोष्ट्रहयादिषु॥क्षुद्रकाणांपशूनांतुहिंसायांद्विशतोदमः।पञ्चाशत्तुभवेद्दंडःशुभेषुमृगपक्षिषु॥ गर्दभाजाविकानांतुदंडःस्यात्पंचमाषिकः।माषकस्तुभवेद्दंडश्श्वशूकरनिपातने)अर्थात्-जहांअनारीरथमानगाड़ीमानकी निर्गुणतासे यानकहीं विचलै तहां प्राणियोंको पीड़ाखड़ी होनेमें अनारीप्राजकसे जुतवानेके अपराध मध्ये स्वामी दोसौपणका दंड दिलानेयोग्य है.कदाचित् वहीअनारी प्राजकआप मालिकहो तौयहदंड उसीपर आरूढ़होगा-परजोप्राजक रथमान आदि शिक्षित कुशलप्रवीण होकर अपनी ग़फ़लतसे रथादियानको विचालै जिस्से प्राणियोंको पीड़ा या धनहानि खड़ीहोवै तौयह प्राजकही अत्रोक्त दोसौवाला दंड्या निम्नोक्त और दंड निजनिज अवसरके अनुरूप दिलानेयोग्य होगा किंतु स्वामीनहीं और भी यहएक विशेष हैं किजहां सगुणरूप जूअरिपर अनारी कच्चाप्राजक हांकने बैठाहोयद्वा निपटऐसा पुरुषहांकने वैठाहो जो प्राजकनहीं कहाताहो और इसदशा में यदिगाड़ी विचलिजानेसे प्राणियोंको कुछ पीड़ाहोय तौउस गाड़ीपर जे कोई और मनुष्य बैठेहों तिनप्रत्येकोंमें भी सौसौपणका दंडलेनायोग्यहै क्योंकि जानिबूझिकेंमें यानोंपर आरूढ़होना भी अपराधहै यहदंड प्राजकलोगों या स्वामियोंवाले दंडमें उपराळू होनाकहा है-कदाचित् गाड़ीमान मार्गमें अनेक पशुओंसे घिरकरयद्वा और किसीरथकेही अवरोधसे उसमार्गमें तत्काल गाड़ीलेजानेका अवकाश न मिलतेहुये

मूढ़ता और निज ग़फ़लतसे रथघोड़ा आदि आगेकोबढ़ावै और प्राणियोंको मारिदेवै तौ अविचारित किन्तु अवश्यभाव उसकोदंड कियाजावै (इन्हींदंडोंकोअबकहते हैं)किएक मनुष्य मारिदेनेमध्ये शीघ्रहीवह प्राजकचोर तुल्य दंडपावै किन्तुसहस्र पणतक दंड उसपर कियाजावै परवधदंड उसकोनहीं बैल,गऊ,हाथी,ऊँट,घोड़ाआदि बड़े चौपाये जोजो अपनीजाति मेंभी बड़ीकीमतके या उत्तमगुणवाले समुझेजातेहीं तिनके मरिजानेमें उसदंडसे आधादंड किन्तु पांचसौ पणतक दिलवायाजाय-उनहीं पशुओंमें जेकोई अपनीजाति में अत्यल्प मूल्यवाले छोटेडीलके और बच्चेआदि या इनकेतुल्य कोई वनकेजीव जिनके नाम इन श्लोकों में नहीं थोड़े मूल्यवाले समुझे जायँतिनके मारिदेनेमें भी दोसौपणतक दण्डदिलायाजाय औरपचासपणतक दण्ड उत्तमरूप के मृगजीव और पक्षियों के मरिजाने में दिलवायाजाय-शुभरूप के मृग जीव किंतु रुरुपृषत् आदि बनकेजीव इनमें बन्दर आदि भी समुझने और शुभ रूपवाले पक्षी तोता मैना सारस हंस आदि जानो-एवं गदहा बकरी भेड़ मारिदेने में भी पाँचमाष दण्डहोवे एवं श्वान शूकर मारिदेनेमें भी एकमाष दण्डहोवे ३०५॥ योगीश्वर के अत्रोक्त ३०३।३०४। ३०५ इन श्लोकों के आशयवाला एक प्रकरण यद्यपि सबसे भिन्नकिया जानाभी सुयोग्यथा (पर) योगीश्वर ने इनवचनों को अत्रैव प्रकीर्णक नाम प्रकरणमें इसहेतु से मिलायाहै कि इनअपराधों में मनुष्य मरजाना आदि प्राणघात भी होजाता है कि जिसमें राजमुद्दई होनेकी मर्यादा लोक प्रसिद्धहै भिन्नात्मक इसका कल्पितहोना योग्य नहीं-और मनुने यहीवार्त्ता जो अन्यत्र डण्डावाजीवाले प्रकरणमें मिलाकर वर्णनकरी तिसका भी यह कारणहै कि यद्यपि डण्डावाजी के अपराध वेही ठीकहैं कि जिनमें अपराधी ने निजइच्छा सहित डण्डावाजी करीहो परञ्च तौभी जहाँ सवारी आदि से कुछ ग़फ़लत वा उपेक्षा करने से विनाश होय तिसको भी निजइच्छा सहित करनेमें गिनसक्तेहैं इत्यादि गूढ़ आशय के प्रयोजनसे यहतर्क करनी निपट निरर्थक है कि मनुने उस प्रकरणमें और याज्ञवल्क्यने इस प्रकरणमें किस हेतु से संयुक्त किया किंतु कर्त्ताकी इच्छा भी सर्वत्र सभी नियमों पर बलवान् होतीहै ३०५॥

(पारदारिकस्यमुञ्चनेगोपनेऽपिचदण्डः)

जारंचौरेत्यभिवदन्दाप्यःपंचशतन्दमम्। उपजीव्यधनंमुंचंस्तदेवाष्टगुणीकृतम् ३०६॥

ऐ०—कोईजार जो जानाबूझा सिर्फ़ जारीहेतु किसी के घरमें पैठाहो तिसको जानि बूझि घरका मालिक चोर कहनेलगे कि अरेचोर निकल दुष्ट ऐसा कहकर उसे भगानेवाला पाँचसौपण दण्ड योग्य है क्योंकि उसको जारकही नाम से पकड़ना या पकड़ाइदेना योग्यथा कि जिस्से दण्डपाता और निजहाथ को भी ऐसा करने से

फिर खींचसक्ता- और जो कोई किसी जारसे कुछ घूस आदि ढङ्गसे धन खायकर अर्थात् लेकर उसको छोड़िदे तो उस धनसे उसपर आठगुणातक राजदण्ड दिलायाजाय जितना जारसे लेलियाहो-इसमेंभी प्रत्यक्ष केवल राजमुद्दई होताहै कुछ पूर्वपक्षी वादी कोई होनेकी अपेक्षा नहीं ३०६ ॥

अधि०—यद्यपि घरवालेपर यह उलटा पाँचसौका दण्ड कोईभाँति से न्यायात्मक नहीं समुझा जासक्ताथा तौभी एंक सुदीर्घसा यह कारणहै कि निपट भगानेवाला ढङ्गकिया यह अपराध विशेष जानो किंतु कदाचित् इसी भागने रूपी दशामें वह पकड़ा जाता तौभी चोरोंवाले होढ़ चिह्न उसपर निपट नहोनेसेही चोरीवाला दण्ड विना पाये छूटि जासक्ताथा सो न्यायसे विपरीत होता ३०६ ॥

(राज्ञःप्रतिकूलस्थादीनान्दण्डाः)

राज्ञोऽनिष्टप्रवक्तारन्तस्यैवाक्रोशकारिणम्। तन्मन्त्रस्यचभेत्तारंछित्त्वाजिह्वांप्रवासयेत् ३०७ ॥

ऐ०—राजाका अनिष्ट कहनेवाला किंतु प्रकर्ष सहित बारम्वार राजा के अनिष्ट अप्रिय शत्रुओं की प्रशंसा आदि कहताहो या निज राजाकोही निन्दारूप आक्रोश वचन हमेशा कहाकरताहो या उस राजा के स्वराज वृद्धिवाले मन्त्रोंको तथैव परराष्ट्रक्षय कार्यरूपी मन्त्रोंको परिभेदन कियाकरताहो किंतु राजाकेशत्रुओंसे कहदेताहो तिसकी जीभ काटकर निज राज्य से निकासिदेय-इसमें भी प्रत्यक्ष केवल राजमुद्दई जानो ३०७ ॥

अधि०—राजकोश हरने आदि महापराधों में वधदण्ड मनु कहतेहैं-यथा (राज्ञः कोशापहर्त्तॄंश्चप्रतिकूलेषुचस्थितान् । घातयेद्विविधैर्दण्डैररीणाञ्चोपजापकान्) अर्थात्-जे कोई दुर्जन ठेठ राज कोशागार में से धनको हरैं यद्वा कोशमें रखवाने हेतु आतेजाते धनकोलूटैं (और) जेकोई अभिमानी दर्पीले होकर राजा के प्रतिकूल होवैं किंतु राजा की यथोचित आज्ञाका व्याघातकरैं यद्वा राजके विपरीत होकर शस्त्र उठावैं तथा उठाने के प्रारम्भ में पगरोपैं यद्वा इसी प्रकार के दर्पीलों को सहायदेवें (और) जेकोई मात्सर्यपूरित लोग राजवैरियों को कुमन्त्र देकर उनमें राज में अनपेक्षित वैर विरोधको बढ़वावें या बढ़वानेवाला यत्नकरतेहों इनसबहींको अपराधों के अनुरूप हाथपैर जीभ छेदन आदि नानाभाँति दण्डोंसे तथैव उनका सब धनछीन लेनेमे भी देशकाल वस्तुके अनुसार घातकरै-इनमें भी प्रत्यक्ष केवल राजमुद्दई जानो-सर्वस्व के अपहार में अग्रोक्त एकलूट नारद कहतेहैं कि-जिसकी जीविका वृत्तिवाले जो उपकरण प्रसिद्धहों तिनको राजा छोड़िदेय इनहींका दृष्टांत जैसे धनुषकी धनुही मूठिया एवं बढ़ईके बसूला आदि सबऔजार एवंराजममार्गकेक्रमकी कंघी आदि हरने योग्य नहीं हैं-तदाहनारदः(आयुधानायुधीयानांवाह्याद्दीनवर

जीविनाम्। वेश्यास्त्रीणामलङ्कारान्वाद्यतोद्यादितद्विदाम् ॥ यच्चयस्योपकरणंयेनजीवन्तिकारुकाः। सर्वस्वहरणेप्येतन्नराजाहर्तुमर्हति) अर्थात्-शस्त्रोंसे आजीवन करनेवाले के आवश्यक शस्त्रोंको और धरती वाहन आदि कर्मों से आजीवन करनेवालों के बाह्य वृषभ आदि सब उपकरणों को और इसीप्रकार वेश्यादि स्त्रियोंके वस्त्रादिक अलङ्कार जिनसे वे नृत्यादि कर्मों से आजीवन करसक्तीहों तिनको और उनलोगोंके सारङ्गी बीणा आदि नानाबाद्य बाजनरूप उपकरणों को कि जिनकी विद्या जानिकर आजीवन उनसेकरतेहों एवंतोद्य चाबुक अंकुश आदि जिन उपकरणोंसे प्रत्येकपशुओंको सुदान्त करनेकी सुधारनी शिक्षा होतीहों तिनको उन्हीं लोगोंसे कि जोजोउन विद्याओंकेजाननेवाले होकर उनसे जीवनअपनाकरतेहों. इन्हीं उक्तदृष्टांतोंकेअनुरूप जो जो और भी अनेक कारुक लोग निजनिजकारके उपकरणोंसे आजीवन करतेहों तिनके भी उपकरणोंको सर्वस्वहार दंड उनको देनेमेंभी राजाहरनेका अधिकारी नहीं (अथात्रवितर्कशांतिः) जब कि विशेषकर यह नियम निश्चित हुआहै कि आजीवनवृत्ति के उपकरणों को न छीनै तो फिर किसरीति से सर्वस्वहार दंड होसक्ता होगा क्योंकि प्रायः सभी कारीगरोंके (और) और और पेशेवालों के भी जो कुछ कारहोता उसी कारके औजारोंकी बहुताइत हुआकरतीहै और वही उनकाधन है बल्कि प्रायः ऐसे भी बहुतेरे हुआकरतेहैं कि जिनके उसीसामग्री के सिवाय किसी और भांतिकाधन संचय नहीं तो उसस्थल में इस दंड का उद्धार क्योंकर कियाजाय-ऐसी आशंका में यह समाधानिक निर्णयहै कि जिनके किसी और धनका संचय नहीं तिनके यद्यपि वही कारीगरी आदि पेशेकी सामग्रीही धन होताहै और धनमें गिनाजाताहै पर तो भी दंड बिधान आदि बिरले नियत निमित्तों में वह उक्तसामग्रीधनकी पदवी तक पहुँचाई नही जासक्ती किंतु ऐसे अवसरमें धनवही कहाताहै जो उसउक्त सामग्रीके उपरांत जंगम स्थावर कोई भांतिका धन संचित हो और जिसधनमें उस अपराधी का भिन्नात्मक स्वत्व उपस्थित हो किंतु ऐसे अवसरमें उस भांतिका संसृष्टधन भी कुछ सर्वस्वहार में गणनीय नहीं होता जिसके विक्रय आदि वियोगों में स्वातंत्र्य उस अपराधीको न हो जबतक और सब संसृष्टी लोग अनुमति नहीं देयँ जैसायह संसृष्टधन अपराधीके भिन्नात्मक धनमें गिनती नहीं कियाजासक्ता तैसे आजीवन पैदाकरनेकी सामग्रीभी भिन्नात्मक धनमें गिनती नहींहै फिरचाहै उसके औरकुछ धन होय या न हो इसपर कोई तर्क वितर्क नहींहै क्योंकि जिसके कोई भांतिका धन संचय होगा तब तो निस्संदेह ज़ब्ती जायदाद करीजावेगी और जिसके निपट धनका संचयनहीं होगा तिसको ज़ब्ती जायदादके पलटे कोई और दंड देश निकामी यद्वा कारागार बंधन आदि कल्पित होगा इसमें कुछ संदेह नहीं और यहदंड प्रतिनिधि-

फिर खींचसक्ता- और जो कोई किसी जारसे कुछ घूस आदि ढङ्गसे धन खायकर अर्थात् लेकर उसको छोड़िदे तौ उस धनसे उसपर आठगुणातक राजदण्ड दिलायाजाय जितना जारसे लेलियाहो-इसमेंभी प्रत्यक्ष केवल राजमुदई होताहै कुछ पूर्वपक्षी वादी कोई होनेकी अपेक्षा नहीं ३०६ ॥

अधि०-यद्यपि घरवालेपर यह उलटा पाँचसौका दण्ड कोईभाँति से न्यायात्मक नहीं समुझा जासक्ताथा तौभी एंक सुदीर्घसा यह कारणहै कि निपट भगानेवाला ढङ्गकिया यह अपराध विशेष जानो किंतु कदाचित् इसी भागने रूपी दशामें वह पकड़ा जाता तौभी चोरोंवाले होढ़ चिह्न उसपर निपट नहोनेसेही चोरीवाला दण्ड विना पाये छूटि जासक्ताथा सो न्यायसे विपरीत होता ३०६ ॥

(राज्ञःप्रतिकूलस्थादीनान्दण्डाः)

राज्ञोऽनिष्टप्रवक्तारन्तस्यैवाक्रोशकारिणम्। तन्मन्त्रस्यचभेत्तारंछित्त्वाजिह्वांप्रवासयेत् ३०७ ॥

ऐ०-राजाका अनिष्ट कहनेवाला किंतु प्रकर्ष सहित बारम्वार राजा के अनिष्ट अप्रिय शत्रुओं की प्रशंसा आदि कहताहो या निज राजाकोही निन्दारूप आक्रोश वचन हमेशा कहाकरताहो या उस राजा के स्वराज वृद्धिवाले मन्त्रोंको तथैव पर-राष्ट्रक्षय कार्यरूपी मन्त्रोंको परिभेदन कियाकरताहो किंतु राजाकेशत्रुओंसे कहदेता हो तिसकी जीभ काटकर निज राज्य से निकासिदेय-इसमें भी प्रत्यक्ष केवल राज मुदई जानो ३०७ ॥

अधि०-राजकोश हरने आदि महापराधों में वधदण्ड मनु कहतेहैं-यथा (राज्ञः कोशापहर्तॄंश्चप्रतिकूलेषुचस्थितान्। घातयेद्विविधैर्दण्डैररीणाञ्चोपजापकान्) अर्थात्-जे कोई दुर्जन ठठ राज कोशागार में से धनको हरें यद्वा कोशमें रखवाने हेतु आतेजाते धनकोलूटें (और) जेकोई अभिमानी दर्पीले होकर राजा के प्रतिकूल होवैं किंतु राजा की यथोचित आज्ञाका व्याघातकरें यद्वा राजके विपरीत होकर शस्त्र उठावें तथा उठाने के प्रारम्भ में पगरोपें यद्वा इसी प्रकार के दर्पीलों के सहायदेवें (और) जेकोई मात्सर्यपूरित लोग राजवैरियों को कुमन्त्र देकर उनमें राज में अनपेक्षित वैर विरोधको बढ़वावें या बढ़वानेवाला यत्नकरतेहों इनसबहीको अपराधों के अनुरूप हाथपैर जीभ छेदन आदि नानाभाँति दण्डोंसे तथैव उनका सब धनछीन लेनेसे भी देशकाल वस्तुके अनुसार घातकरै-इनमें भी प्रत्यक्ष केवल राज मुदई जानो-सर्वस्व के अपहार में अग्रोक्त एकछूट नारद कहतेहैं कि-जिसकी जैसी वृत्तिवाले जो उपकरण प्रसिद्धहों तिनको राजा छोड़िदेय इनहींका दृष्टांत जैसे सिपाहीकी धनुही मुठिया एवं बढ़ईके बसूला आदि सबऔजार एवंराजमेंमांगेंके कूर्म रस्सी आदि हरने योग्य नहीं हैं-तदाहनारदः(आयुधानायुधीयानांवाद्यादीनां वा

जीविनाम्। वेश्यास्त्रीणामलङ्कारान्वाद्यतोद्यादितद्विदाम् ॥ यच्चयस्योपकरणंयेनजीवन्तिकारुकाः। सर्वस्वहरणेप्येतन्नराजाहर्तुमर्हति) अर्थात्-शस्त्रोंसे आजीवन करनेवाले के आवश्यक शस्त्रोंको और धरती वाहन आदि कर्मों से आजीवन करनेवालों के वाह्य वृषभ आदि सब उपकरणों को और इसीप्रकार वेश्यादि स्त्रियोंके वस्त्रादिक अलङ्कार जिनसे वे नृत्यादि कर्मों से आजीवन करसक्तीहों तिनको और उनलोगोंके सारङ्गी वीणा आदि नानावाद्य बाजनरूप उपकरणों को कि जिनकी विद्या जानिकर आजीवन उनसेकरतेहों एवंतोद्य चाबुक अंकुश आदि जिन उपकरणोंसे प्रत्येकपशुओंको सुदान्त करनेकी सुधारनी शिक्षा होतीहों तिनको उन्हीं लोगोंसे कि जोजोउन विद्याओंकेजाननेवाले होकर उनसे जीवनअपनाकरतेहों. इन्हीं उक्तदृष्टांतोंकेअनुरूप जो जो और भी अनेक कारुक लोग निजनिजकारके उपकरणोंसे आजीवन करतेहों तिनके भी उपकरणोंको सर्वस्वहार दंड उनको देनेमेंभी राजाहरनेका अधिकारी नहीं (अथात्रवितर्कशांतिः) जब कि विशेषकर यह नियम निश्चित हुआहै कि आजीवनवृत्ति के उपकरणों को न छीने तो फिर किसरीति से सर्वस्वहार दंड होसक्ता होगा क्योंकि प्रायः सभी कारीगरोंके (और) और और पेशेवालों के भी जो कुछ कारहोता उसी कारके औजारोंकी बहुताइत हुआकरतीहै और वही उनकाधन है बलिक प्रायः ऐसे भी बहुतेरे हुआकरतेहैं कि जिनके उसीसामग्री के सिवाय किसी और भांतिकाधन संचय नहीं तो उसस्थल में इस दंड का उद्धार क्योंकर कियाजाय-ऐसी आशंका में यह समाधानिक निर्णयहै कि जिनके किसी और धनका संचय नहीं तिनके यद्यपि वही कारीगरी आदि पेशेकी सामग्रीही धन होताहै और धनमें गिनाजाताहै पर तो भी दंड विधान आदि बिरले नियत निमित्तों में वह उक्तसामग्रीधनकी पदवी तक पहुँचाई नहीं जासक्ती किंतु ऐसे अवसरमें धनवही कहाताहै जो उसउक्त सामग्रीके उपरांत जंगम स्थावर कोई भांतिका धन संचित हो और जिसधनमें उस अपराधी का भिन्नात्मक स्वत्व उपस्थित हो किंतु ऐसे अवसरमें उस भांतिका संसृष्टधन भी कुछ सर्वस्वहार में गणनीय नहीं होता जिसके विक्रय आदि वियोगों में स्वातंत्र्य उस अपराधीको न हो जबतक और सब संसृष्टी लोग अनुमति नहीं देयँ जैसायह संसृष्टधन अपराधीके भिन्नात्मक धनमें गिनती नहीं कियाजासक्ता तैसे आजीवन पैदाकरनेकी सामग्रीभी भिन्नात्मक धनमें गिनती नहींहै फिरचाहै उसके औरकुछ धन होय या न हो इसपर कोई तर्क वितर्क नहींहै क्योंकि जिसके कोई भांतिका धन संचय होगा तब तो निस्संदेह ज़ब्ती जायदाद करीजावैगी और जिसके निपट धनका संचयनहीं होगा तिसको ज़ब्ती जायदादके पलटे कोई और दंड देश निकासी यद्वा कारागार बंधन आदि कल्पित होगा इसमें कुछ संदेह नहीं और यहदंड प्रतिनिधि-

फिर खींचसक्ता- और जो कोई किसी जारसे कुछ घूस आदि ढङ्गसे धन खायकर अर्थात् लेकर उसको छोड़िदे तो उस धनसे उसपर आठगुणातक राजदण्ड दिलायाजाय जितना जारसे लेलियाहो-इसमेंभी प्रत्यक्ष केवल राजमुद्दई होताहै कुछ पूर्वपक्षी वादी कोई होनेकी अपेक्षा नहीं ३०६ ॥

अधि०-यद्यपि घरवालेपर यह उलटा पाँचसौका दण्ड कोईभाँति से न्यायात्मक नहीं समुझा जासक्ताथा तौभी एंक सुदीर्घसा यह कारणहै कि निपट भगानेवाला ढङ्गकिया यह अपराध विशेष जानो किंतु कदाचित् इसी भागने रूपी दशामें वह पकड़ा जाता तौभी चोरोंवाले होढ़ चिह्न उसपर निपट नहोनेसेही चोरीवाला दण्ड विना पाये छूटि जासक्ताथा सो न्यायसे विपरीत होता ३०६ ॥

(राज्ञःप्रतिकूलस्थादीनान्दण्डाः)

राज्ञोऽनिष्टप्रवक्तारन्तस्यैवाक्रोशकारिणम्। तन्मन्त्रस्यचभेत्तारंछित्त्वाजिह्वांप्रवासयेत् ३०७ ॥

ऐ०-राजाका अनिष्ट कहनेवाला किंतु प्रकर्ष सहित बारम्बार राजा के अनिष्ट अप्रिय शत्रुओं की प्रशंसा आदि कहताहो या निज राजाकोही निन्दारूप आक्रोश वचन हमेशा कहाकरताहो या उस राजा के स्वराज वृद्धिवाले मन्त्रोंको तथैव पर-राष्ट्रक्षय कार्यरूपी मन्त्रोंको परिभेदन कियाकरताहो किंतु राजाकेशत्रुओंसे कहदेता हो तिसकी जीभ काटकर निज राज्य से निकासिदेय-इसमें भी प्रत्यक्ष केवल राज मुद्दई जानो ३०७ ॥

अधि०-राजकोश हरने आदि महापराधों में वधदण्ड मनु कहतेहैं-यथा (राज्ञःकोशापहर्तृंश्चप्रतिकूलेषुचस्थितान् । घातयेद्विविधैर्दण्डैररीणाञ्चोपजापकान्) अर्थात्-जे कोई दुर्जन ठेठ राज कोशागार में से धनको हरैं यद्वा कोशमें रखवाने हेतु आतेजाते धनकोलूटैं (और) जेकोई अभिमानी दर्पीले होकर राजा के प्रतिकूल होवैं किंतु राजा की यथोचित आज्ञाका व्याघातकरें यद्वा राजके विपरीत होकर शस्त्र उठावैं तथा उठाने के प्रारम्भ में पगरोपें यद्वा इसी प्रकार के दर्पीलों के सहायदेवें (और) जेकोई मात्सर्यपूरित लोग राजवैरियों को कुमन्त्र देकर उनमें राज में अनपेक्षित वैर विरोधको बढ़वावें या बढ़वानेवाला यत्नकरतेहों इनसबहींको अपराधों के अनुरूप हाथपैर जीभ छेदन आदि नानाभाँति दण्डोंसे तथैव उनका सब धनछीन लेनेमें भी देशकाल वस्तुके अनुसार घातकरें-इनमें भी प्रत्यक्ष केवल राज मुद्दई जानो-सर्वस्व के अपहार में अग्रोक्त एककूट नारद कहतेहैं कि-जिनकी जीवन वृत्तिवाले जो उपकरण प्रसिद्धहों तिनको राजा छोडिदेय इनहींका दृष्टांत जैसे धनुर्धनाकी धनुही मुठिया एवं बढ़ईके बसूला आदि सबऔजार एवंराजमेंमार्गकीकसूर रस्सी आदि हरने योग्य नहीं हैं-नदाहनारदः(आयुधानायुधीयानांवाह्यादीनव

जीविनाम्। वेश्यास्त्रीणामलङ्कारान्वाद्यतोद्यादितद्विदाम् ॥ यच्चयस्योपकरणंयेनजीवन्तिकारुकाः। सर्वस्वहरणेप्येतन्नराजाहर्तुमर्हति) अर्थात्-शस्त्रोंसे आजीवन करनेवाले के आवश्यक शस्त्रोंको और धरती वाहन आदि कर्मों से आजीवन करनेवालों के वाह्य वृषभ आदि सब उपकरणों को और इसीप्रकार वेश्यादि स्त्रियोंके वस्त्रादिक अलङ्कार जिनसे वे नृत्यादि कर्मों से आजीवन करसक्तीहों तिनको और उनलोगोंके सारङ्गी बीणा आदि नानाबाद्य बाजनरूप उपकरणों को कि जिनकी विद्या जानिकर आजीवन उनसेकरतेहों एवंतोद्य चाबुक अंकुश आदि जिन उपकरणोंसे प्रत्येकपशुओंको सुदान्त करनेकी सुधारनी शिक्षा होतीहों तिनको उन्हीं लोगोंसे कि जोजोउन विद्याओंकेजाननेवाले होकर उनसे जीवनअपनाकरतेहों. इन्हीं उक्तदृष्टांतोंकेअनुरूप जो जो और भी अनेक कारुक लोग निजनिजकारके उपकरणोंसे आजीवन करतेहों तिनके भी उपकरणोंको सर्वस्वहार दंड उनको देनेमेंभी राजाहरनेका अधिकारी नहीं (अथात्रवितर्कशांतिः) जब कि विशेषकर यह नियम निश्चित हुआहै कि आजीवनवृत्ति के उपकरणों को न छीने तो फिर किसरीति से सर्वस्वहार दंड होसक्ता होगा क्योंकि प्रायः सभी कारीगरोंके (और) और और पेशेवालों के भी जो कुछ कारहोता उसी कारके औजारोंकी वहुताइत हुआकरतीहै और वही उनकाधन है वल्कि प्रायः ऐसे भी वहुतेरे हुआकरतेहैं कि जिनके उसीसामग्री के सिवाय किसी और भांतिकाधन संचय नहीं तो उसस्थल में इस दंड का उद्धार क्योंकर कियाजाय-ऐसी आशंका में यह समाधानिक निर्णयहै कि जिनके किसी और धनका संचय नहीं तिनके यद्यपि वही कारीगरी आदि पेशेकी सामग्रीही धन होताहै और धनमें गिनाजाताहै पर तो भी दंड विधान आदि विरले नियत निमित्तों में वह उक्तसामग्रीधनकी पदवी तक पहुँचाई नहीं जासक्ती किंतु ऐसे अवसरमें धनवही कहाताहै जो उसउक्त सामग्रीके उपरांत जंगम स्थावर कोई भांतिका धन संचित हो और जिसधनमें उस अपराधी का भिन्नात्मक स्वत्व उपस्थित हो किंतु ऐसे अवसरमें उस भांतिका संसृष्टधन भी कुछ सर्वस्वहार में गणनीय नहीं होता जिसके विक्रय आदि वियोगों में स्वातंत्र्य उस अपराधीको न हो जवतक और सब संसृष्टी लोग अनुमति नहीं देवें जैसायह संसृष्टधन अपराधीके भिन्नात्मक धनमें गिनती नहीं कियाजासक्ता तैसे आजीवन पैदाकरनेकी सामग्रीभी भिन्नात्मक धनमें गिनती नहींहै फिरचाहे उसके औरकुछ धन होय या न हो इसपर कोई तर्क वितर्क नहींहै क्योंकि जिसके कोई भांतिका धन संचय होगा तव तो निस्संदेह ज़ब्ती जायदाद करीजावेगी और जिसके निपट धनका संचयनहीं होगा तिसको ज़ब्ती जायदादके पलटे कोई और दंड देश निकाला यद्वा कारागार वंधन आदि कल्पित होगा इसमें कुछ संदेह नहीं और यहदंड प्रतिनिधि-

रूपी पलटा उसीन्याय से संसूचित है कि जैसे जिसपर एकसहस्र पणका उत्तमसाहस दंड यद्वा पांचसौपण वाला मध्यम दंड शास्त्रके अनुसार निश्चित हुआहो वह अपराधी निपट अकिंचन होनेके हेतुसे इसदंडको देसकने में असमर्थ हो तिसको निस्संदेह कारागार बंधन आदि कोई दंड जो निर्णीतदंड केही तुल्य समुझाजावै कियाजावैगा परंच जीवनवृत्ति पैदाकरनेकी सामग्री उसकी निर्धनतापरभी छोड़ि देने योग्य होगी अथवा विरले स्थल जिसके सामग्रीमें संख्यादि परिमाणों से बहुताइत ऐसी हो कि निर्धनता के होनेपरभी उन उपकरणों से सधनतासीप्रतीत होतीहो तौभी अपराधों की उत्कटता में आवश्यक जानिकर यह डौल कुछ अन्याय नहींहै कि उन उपकरणों में से सिर्फ़ उतनी सामग्री उसको छोड़िदीजाय जिस्से ठेठ कुटुंब के परिपालन करसकने योग्य जीवन वृत्ति पैदा होसक्ती हो चाहे उसके पुत्रादि कोई और करने वालेहों या वह आपही प्राणांतिक दंडकी अवस्था को न पहुँचाहो यद्वा थोड़ी अवधिवाला कारागार निरोध दंड भोगे पीछे घरको आना संभव हो सर्वथा उसके गृहजन मात्रका परिपालन भंग न होनेपावै अथवा जिस अपराधीके स्थावर जंगम कोई भांतिकी धन बहुताइत हो और सर्वस्वहार दंड उसको मृत्यु सहित या वनवास पूर्व निश्चित होकर दियाजावै तिसके ठेठ कुटुंब आदि पाल्य वर्गोंकी आजीवन वृत्ति जैसी उत्तमता या मध्यमता से निज उसके द्वारा पहले होतीहो तथैव धन का हर्ता राजाभी प्रकल्पित करै (योयस्यधनहर्तास्यात्सतद्धर्माणिपालयेत्। मंक्षेन्नियमांस्तस्यतद्बंधून्परिपालयेत्)या यदि केवलही सर्वस्वहारहोकर उसकेप्राणों और स्वस्थान वासकी मुआफी हुई हो तौ इसदशा में आजीवन वृत्ति पैदाकरसकने वाले सब उपकरणों को सामग्री सहित राजा छोड़िदेवै किंतु उनमें से कुछ एक भी न छीनै क्योंकि उसके धनकी बहुताइत छीन लेनेपरभी उपकरणों की बहुताइत विना वह अपराधी अपने पाल्यवर्गोंका परिपालन फिरभी करसकनेमें असमर्थ न होनेपावै-सो यह नियमभी अग्रोक्त दो दशाओंके उपरान्तमें सर्वत्रसमुझना चिन्ह एकतो यहदशाहै कि जिन उपकरणोंसे अपराधकरताहो दृष्टान्त जैसेचार जिन औजारोंसे सदैव चोरीकरताहो यद्यपि उसकेभी आजीवन वृत्तिकी सामिग्रीमें यह गिनतीहैं परंच इनको छोड़देना योग्यनहीं दूसरी वहभी एकदशासमुझनी जिसमें अपराधोंके विलक्षणरूप उपस्थितहोनेमे कदाचित् किसी अपराधी के कुटुम्बको भी दंडदियेजानेवाला न्याय निश्चितहोय तौफिर उपकरणोंकेभी छीनलेने यद्वा छोड़ने का कुछ नियम नहींहै (पर) तात्कालिक अवसरके आधीन जैसायोग्यहो सो होसक्ता है-इसी व्यवस्थाका मुख्यात्मकरूप जो सामान्य मर्यादामें गणनीय और सर्वत्र वर्तावाकरनेयोग्यहै सो देखो आगे प्रभिन्नव्यवहारोंकी समाप्ति होने पश्चात् (सर्व

डविधिशेषप्रकारनामक) पाठ विशेषवर्णनहोगा तिसमें मनुके दो श्लोकोंसे व्यवस्था सिद्ध होगी (इतिवितर्कशांतिः) अथात्रब्राह्मणपक्षे-नशारीरोब्राह्मणस्यदंडइतिनिषेधाद्व घस्थानेशिरोमुंडनादिकंकर्तव्यम् (ब्राह्मणस्यवधोमौञ्ज्यंपुरान्निर्वासनांकने। ललाटेचाभिशस्तांकंप्रयाणंगर्दभेनतु इतिमनुस्मरणात्) ३०७॥

(राजयानासनारोहादिराजक्रीडायांदण्डःमृतांगलग्नवस्तु विक्रेतुर्गुरोस्ताडयितुश्चतत्तुल्यत्वात्)

मृतांगलग्नविक्रेतुर्गुरोस्ताडयितुस्तथा। राजयानासनारोहेदण्ड[1]उत्तमसाहसः ३०८॥

ए०—मरेमुर्दा के शरीर से उतरेहुये वस्त्र पुष्पादि किसी चीज़को जो कोई किसी उत्तमकेहाथ विनाजताये बेंचै या बाज़ारमें रखकर सब सामान्य सौदाओंकीसीभाँति बेंचै-और जोकोई पिता माता आचार्य आदि गुरुओं को मारै पीटै और जो कोई राजाकी अनुमतिविना उसके हाथी, घोड़ा आदि सवारी तद्वत् आसन किन्तु सिंहासन, कुरसी, चौकी आदि जो जो राजआसन समझे जातेहों तिनपर बैठिजावै तिनको उत्तम साहस दंडहोवै-इतने इन अपराधोंमें सरकार मुद्दई जानो किन्तुयद्यपि कोई पूर्वपक्षी वादी इनमेंहो या नहो तौभी राजमुद्दई होता है ३०८॥

अधि०—कात्यायनभी विशेषतासे इसपक्षको दर्शाते हैं-यथा (राजक्रीडासुयेसक्ताराजवृत्त्युपजीविनः। अप्रियंचास्ययोवक्तावधंतेषांप्रकल्पयेत्) कात्यायनके इसवचनका अर्थांश कुछकुछ याज्ञवल्क्यजीके ऊपरलेनिचले दोवचनोंसहित तीनोंवाक्यमें संसृष्ट है-अर्थात्-जेकोई धनवान् आदि राजक्रीड़ाओंमें संसक्त होनेलगेंकिन्तुइनके दृष्टान्त जैसे नक्कारा धौंसा चोब निशान आदि चिह्नों सहित सवारीलेकर राजधानी आदि उनस्थानोंमें निकसैं जिनमें ऐसाकरनेका प्रतिषेधहोय यद्वा राजमुकुटके तद्रूप मौलिचिह्न शिरपरधारण किये निकसैं यद्वा राजयान वाहनकेहीतुल्ययान वाहन अपना कल्पितकरैं एवं जो जो चिह्न विशेष राजक्रीड़ा सम्बन्धी होतेहों तिनमें किसी चिह्नका प्रतिरूप उतारैं इतना अर्थ प्रयोजन तो योगीश्वरके अत्रैव तृतीयपादसे सम्बन्धरखताहै (और) जेकोई राजवृत्तिसे उपजीवन अपना कल्पितकरैं इनकेभी दृष्टान्त जैसे छोटेमोटे ठाकुर आदि ग्रामाधीश जिनको राजसे उसकर्मकी अनुज्ञा नहींप्रसिद्ध होवै उसभाँतिसे जगाति वा उतराई आदि कोई राजकरभी लेनेलगें जैसाराजको अधिकारहै इत्यादि कोई और वृत्ति विशेष जिसको निज निज देशकालका अधिकारी राजाकरताहो जैसे रेल डाक आदि तिसको कोई राज अनुज्ञाविना स्वतंत्रकरनेलगे इतना अर्थ यहभी इसी तृतीयपादकी विशेषनामें गणनीयहै-और जो कोई राजाका अप्रियवक्ताहोय इसकेभी दृष्टान्त जैसेजोजो अर्थ योगीश्वरने ऊपरले ३०७

१ (दण्डोमध्यमसाहसः) इतिपाठान्तरमपिपश्यन्तु)

वाले मूलश्लोक पहिलेपादमें दर्शाये सो सब समुझलेने एवं ३०९ वाले मूलश्लोक
द्वितीयपादसे जो अर्थ आगे वर्णनहोंगे तिनकोभी अत्रैव समुझिलेना इन सबकर्मों
में जेकोई एकदोभी कर्म करनेलगें तिनकोउस अपराधके अनुसार जैसा योग्यहो
वधदंड कल्पितकरै-यद्यपिइसमें वधशब्द यहसामान्य देहदंडों या प्राणांतिक दंडका
भी बोधकहै तथापि कुछ नियमात्मक नहीं समुझना किंतु उत्तम साहसके उपलक्षण
में भी समुझिलेना क्योंकि प्रायः उक्त कामोंके अपराधमें सर्वत्रही प्राणांतदंडयद्वादे-
ह दंडहोना निपट असंगतहै इसीलिये उत्तमसाहसके उपलक्षणमें समुझनेसे फल
सिद्धियह उत्पन्नहोतीहैकि उत्तमसाहस दंडकहनेसेहीपांचसौपणकेउपरांत एकसहस्र-
तकजोचाहौ सो विकल्पभी होसक्ताहै और पूरेएक सहस्रपणभी लियेजासक्तेहैं और
उसकेसाथ अपराधोंकी विशेषता पाईजानेपर वधबंध आदिदेह दंडभी होसक्ते हैं
इसलिये जैसा थोड़ाघना जोकुछ अपराध समुझाजाय तैसावध पर्यंतदंड करसकने
की गुंजायशमात्र विद्यमानहै कुछनिपट वधकरदेनाही सिद्धांतनहींक्योंकि प्रायःदंडों
की कल्पनामें यहएक विशेषरीतिहै कि पहले कानताते करनेके निमित्तसे दोएकबार
छोटेमोटे अपराधमें कुछथोड़ा दंडदेकर उसको शिक्षाकरी जावै जिस्सेआगेको उन
कामोंसे निजहाथ खींचे परयदि ऐसाहोनेपर भी हाथनखींचै तिसकोक्रमसे दंडवृद्धि
होतीजावै किन्तु विरलेही अपराध ऐसेढंगसे कियेजातेहैं कि जिनमेंसबसे पहिलेती-
व्रदंड या प्राणांतदंड देनापरै.इसीप्रयोजनसे कात्यायनके अत्रोक्तवाक्यमें वधशब्दका
प्रयोगहै संदेह नहींकरना-(अथपाठांतरचर्चा) इसीतीनिसौ आठवाले मूलश्लोकमें जो
चौथापाद द्विपाठसे पाठांतर वर्तमानहै.द्विपाठइसमें लिखनेका यहकारणहै कि वीर-
मित्रोदय नाम ग्रंथजो मुद्राक्षरीय संस्कृत यंत्र कलकत्ता खिदिरपुर में कभी पहले
शुद्धिकर मुद्रितहुआ तिसमें (दंडोमध्यमसाहसः)यहपाठ मुद्रित पायागया.मिताक्ष-
राजो दोतीन पुस्तक भिन्नछापों और प्राचीनहस्तलेखकी इकट्ठीहोकर यहांशोधीग-
ई तिसमेंसभी पुस्तकोंके अनुसार (दंडउत्तमसाहसः)यहपाठ वर्तमानहै परयह नि-
र्णयहोना दुर्घटहै कि योगीश्वरने निजमुखसे दोमें कौन पाठबोलाथा और कौनसा
विद्वानों के विनोदसे पाठांतर हुआहोगा क्योंकियहां पहले तीनपादोंमें अपराधों के
स्वरूप जोजोकहे तिनकी गुरुता लघुतामें कदाचित् उत्तमसाहसही न्यायात्मक स-
मुझाजाता है कदाचित् मध्यमसाहस दम तुल्यात्मक पायाजाताहै.इसलिये देशका-
लके अनुरूप जहां जैसान्याय करनायोग्य समुझाजाय बुद्धिविचार परयहचाट है
पाठान्तरके निर्णायक हेतुमिलसकने या न मिलनेमें कुछहानिका सिद्धांतनहीं ३०८

(परनेत्रयोर्भेदने.राज्ञोऽनिष्टकथनेदंडःशूद्रस्यचविप्रवृत्तिकरणे)

द्विनेत्रभेदिनोराजद्विष्टादेशकृतस्तथा। विप्रत्वेनचशूद्रस्यजीवतोऽष्टशतोदमः ३०९॥

ऐ०-दोनोंनेत्र भेदीको तथैव राजमें कुछ द्विष्टादेशकरनेवाले को और शूद्रको विप्रत्व से आजीवन करतेहुये आठसौका दण्ड है-अर्थात्-जो कोई क्रोध आदि से पराये दोनोंनेत्र फोड़िदेवे तो यहकर्म सब अपराधों से विलक्षण साहस होनेके हेतु से सरकार मुद्दईहोना इसमें सूचितहै उसन्यायसे कि जैसे किसी मनुष्यका बधहोनेमें सरकार मुद्दई होतीहै और दण्ड इसका आठसौ पणकेहै-एवं जो कोई पुरुषज्योतिषी होकर जो राजाका हितकर्त्ता अधिकारी गुरू पुरोहित आदि में नहो और वह राजाके विनबूझे सत्यविचार से भी ऐसा द्विष्टादेश कहने लगै कि अबके वर्षमात्र या वर्षांत आदि अमुक अवधितक तुम्हारा राज्य भ्रष्ट होगा यद्वा देह पातहोगा यद्वा अमुक प्रियतम तथा प्रधान मंत्री आदिका वियोग होगा इत्यादि कोई और अनिष्ट बात सूचन करने लगै तिसपर आठसौ पणदंड हो इसमें भीप्रत्यक्ष केवल राजमुद्दईजानो किसी अन्यवादीका संसर्गनहीं-एवं यदि कोई शूद्र जाति होकर भोजन करने आदि निमित्तों से जनेऊ आदि चिह्न विशेष धरण करिकै ब्राह्मणके अनुरूप जीवन वृत्ति करनेलगै तिसपर आठसौ पणदंडहो इसमें भी सरकार मुद्दई होनेकायह कारणहै कि लोभी शूद्र जातैं ब्राह्मणबनकर देश विदेशों में त्रैवर्णिकसे पादार्घ्यआदि पूजाकरवाकर धर्म लोपकरनेपर उतारू होंगे और उसधर्मका अधिकारी तथा सर्वदा रक्षक एकराजा हैइसहेतुसे वह आप मुद्दई हो कर उनको धर्मविलोपसेनिवारणकरै३०९॥

भाषि०-अत्रशूद्रपक्षविशेषयतिकात्यायनः-यथा(प्रव्रज्याधिगतंशूद्रंजपहोमपरंतथा। वधेनशासयेत्पापंदंड्योवाद्विगुणंदमम्)योगीश्वरनेइस तीनसौनौवाले मूलश्लोकमें जोनेत्र फोड़िदेना कहा तिसकोदोसौ पच्चीसवाले मूलश्लोकसे पुनरुक्ति नहींसमुझनी क्योंकि वहां डंडावाजीके व्यवहारमध्ये केवलएक नेत्रकाअपराध कहकर उसका दंडमध्यम साहस पांचसौ चालीस पणतकउस अपराधके अनुरूप दर्शित किया था कि जितनी पीड़ा अथवाहानि एकनेत्र में उत्पन्नहुई हो और वह पीड़ित आँखिवला पुरुषमुद्दई बनकर नालिशकरने आवै तवहीदंड दिलायाजाय राजमुद्दईहोने का कुछ कामनहीं(किंतु)यहांदोनों नेत्रनिपट विनाशकरनेका अपराधविशेष छांटिकर सरकार मुद्दईहोनेके अपराधों में दर्शायाहै कि चाहे फूटीआँखोंवाला अपनेआप मुद्दईहो या नहो तोभी राजमुद्दई होकर इसव्यवहार को निर्णीतकरावे क्योंकि निपट अँधेका अवशेष जन्म निरर्थकजाता है और इसीमें अत्रोक्तदंड पूरेआठसौका निर्तकिया है कि इसमें कभी मध्यम उत्तमदंडोंके अनुरूप न्यूनसंख्याकल्पितकरनेको अवकाश नहीं पायाजाय वलिक आठसौकेसाथ(नदंगच्छेदइत्युक्तोदंडउत्तमसाहसः) इसन्यायसे भी राजाको स्वातंत्र्यहै कि अंधाकिये पुरुषकी उत्तमता आदि किसीकारण के प्राबल्य से यदि योग्य समुझै तो अपराधी को कुछ हस्तच्छेदन आदि देहदंड

भी बढ़ावे(इतिसर्वसामान्यवर्णज्ञातीनांनियमः)अथशूद्रस्यापराधविशेषेदण्डाधिक्यंत त्रविज्ञानेश्वरः-(श्राद्धभोजनार्थमेवविप्रवेशधारिणःशूद्रस्यतप्तशलाकयायज्ञोपवीतवद्ध पुष्यालिखेदितिस्मृत्यंतरोक्तन्द्रष्टव्यं पुनर्वृत्त्यर्थंयज्ञोपवीतादिब्राह्मणलिंगधारिणोवध एवद्विजातिलिंगिनःशूद्रान्घातयेदितिस्मरणादितिमिताक्षराकारःसर्वंगदति)३०९॥

(दुर्दृष्टव्यवहाराणांपुनर्दर्शनेनियमःअन्यथाव्यवहारदर्शिनांदण्डश्च)

दुर्दृष्टांस्तुपुनर्दृष्ट्वाव्यवहारान्नृपेणतु। सभ्यास्सजयिनोदंड्याविवादाद्द्विगुणन्दमम् ३१०॥

ऐ०-दुर्दृष्ट व्यवहारोंको फिर देखकर जय पानेवाले सहित सभ्यलोग नृपसेदंडनीय हैं विवाद से भी दूनादण्ड-अर्थात्-राग लोभ आदि से जे कोई अहेलकारलोग जिन व्यवहारों को बिगाड़ैं किन्तु स्मृति और आचार की मर्यादों से विपरीत विचारैं जिससे झूठाजीतै सच्चाहारै यद्वा महापराधी दण्ड पानेसे बचिजायँ तौ इसभाँतिके सन्देहमय व्यवहारों को फिरनिर्णयसे तजवीज़सानी करवावै यद्वा राजा अपनेआप देखभालकर निर्णीतकरै और उन सभ्यों को कि जिनकी लाग लपेटवाले दोष पाये जायँ झूठीजय करिपानेवाले पक्षी सहित दूनादण्ड उस परिमाण से प्रत्येक दिलाये जायँ जितना दण्ड उसीविवाद में पराजित होनेवालेपर आवश्यकथा-इसमें भी इस भाँति से सरकार मुद्दई जानो किंतु जब जब कभी जालसाज़ी से व्यवहार बिगाड़े जायँ तब तजवीज़सानी के अनुसार जिनकेदोष पायेजायँ तिनके दोषोंका मुक़द्दमा जुदा विचार करने और दोषियों को फिर दण्ड देने में भी केवल राजमुद्दई होनेका नियमात्मक एक धर्म है ३१०॥

अधि०-मनुने भी योगीश्वर के इसवचनवाला पक्ष वर्णन कियाहै-यथा(अमात्याः प्राड्विवाकोवायत्कुर्य्युःकार्य्यमन्यथा। तत्स्वयंनृपतिःकुर्य्यात्तान्सहस्रंचदण्डयेत्)अर्थात्-राजाके अमात्यलोग यद्वा प्राड्विवाक लोग जो व्यवहारों के विचारमें नियुक्त होकर जिस व्यवहार को अन्यथा निर्णयकरैं किंतु अच्छीभाँति नहीं विचारैं तिनका राजा अपने आप निर्णयकरै और उन उक्तविचार कर्त्ता लोगों को प्रत्येक सहस्र पणतक दण्डदेवे-अत्रोक्त मनु योगीश्वरवाले इन्हीं दोनों वचनोंका यह तात्पर्य है कि रिशवत घूसलेने पानेविना जो व्यवहार बिगाड़ेहों यद्वाधर्मशास्त्रकी अतिगूढ़ मर्यादोंका विवेक अपनीबुद्धिकी दुर्बलता या प्रमादसेही समुझेविना बिगाड़ेहों यद्वा राग प्रीति भय हेतुक आदि लक्षण से बिगाड़ेहों तिनकी यह मर्यादा जानो-क्योंकि उत्कोच लेकर जो व्यवहार बिगाड़ैं तिनका चर्चा पूरे तीनसौकी अधिकोक्ति में जो मनुके दो वाक्यलिखे तिनहीं में होचुका-कदाचित्-साक्षियोंकेही दोष प्रपञ्च आदि से मुक़द्दमा बिगड़ाहो तब उन साक्षी लोगोंको अपराध के अनुरूप दण्डहोवे किंतु सभ्यों या उस विजयी को फिर नहीं-बलिक जिसमें कूट प्रपञ्चवाला साक्ष्य समर्थ

जाय तिसव्यवहार को भी सिद्धहोनेविना निवर्तित करके फेरि निर्णयकरै-तदाहमनुः (यस्मिन्यस्मिन्विवादेतुकौटसाक्ष्यंकृतम्भवेत्। तत्तत्कार्यंनिवर्त्तेतकृतञ्चाप्यकृतम्भवेत्)अर्थात्-जिस जिस किसी विवाद में कुछ कूट साक्ष्यकिया प्रतीतहोवे तिस तिस कार्यको बिनपूरेहुये निवर्तितकरै पर जोकोई कूट साक्ष्यवाला कार्य पूरे निर्णयकोभी पहुँचाहो सो भी अकृत मानाजाकर फिर के निर्णयहोय (अथपुनरुक्तिप्रसंगनिराकरणम्) तत्रविज्ञानेश्वरः(अप्राप्तजेतृ दंड विधि परत्वाद्वचनस्यरागाल्लोभादित्यादि नाश्लोकेनापौनरुक्त्यम्) अर्थात्विज्ञानेश्वरने इसपंक्ति से यहकहाहै कि व्यवहाराध्याय के प्रारंभ चौथे मूलश्लोक मेंभी सभ्यों को तद्रूप यही दंड इसी दोष मध्ये याज्ञवल्क्य जी कहचुके हैं और यहाँ तीन सौ दशमें भी फिर कहा तौ इसबातसे पुनरुक्तिकीसी भ्रांति यद्यपिहोतीहै परंच यहपुनरुक्तिनहींहै अर्थात् वहाँ झूंठी जय करि पाने वाले पक्षी कीदंड विधि नकहिसके थे सो उसको यहाँ मिलाकर कहनेके हेतुसे फिर बचन को दुहरायाहै पुनरुक्ति इसको नहीं समुझना-यह कथन उनका-इसध्यानसे उत्पन्न हुआहै कि उन्होंने अत्रत्य दशग्यारह मूल वचनोंको प्रत्यक्ष नृपाश्रय होतेहुये नृपाश्रय नहीं माना है वृत्तांत इसका ३०१॥ तीन सौ एक की अधिकोक्ति में सब देखो और इस कथन की अपेक्षा में यहशोच भी कर्तव्य है कि झूंठ जेताकी दंडविधि न कहसके अथवा उसके कहने की प्राप्ति वाला अवसर तवतक नहीं था यह दोनों हेतु निपट असंगतहैं क्योंकि अवसरजैसा सभ्योंके निमित्त में होसका तैसा जेताके भी अर्थमें होसक्ताथा या यदि काव्य के प्रयोग मिलने दुर्घट थे तौ उसको निपट त्यागिके पुनि यही तीनसौ दशका वाक्य जिसमें पूरे अर्थसमुझै तिसको उसी चौथे के स्थान पर प्रमाणीभूत रखते तौ फिर यहां कुछ दुहराने की ज़रूरत भी न होती वलिक अब यह दूषण देसक्ते हैं कि सिर्फ़ जेता की अपेक्षासे पुनरुक्ति करीगई-परंच-इसमें कारण केवल इतनाहै कि यहपुनरुक्ति दूषणमें गणनीय नहींहै पुनरुक्ति भूषणमें गणनीय है क्योंकि इसके उसके कार्यमें परस्पर वड़ावढ़ाहै कुछआशय एक होने के शिरटीका नहीं क्योंकि वहां तौ सामान्य उनव्यवहारोंके विगाड़नेमध्ये कात्प्रारंभथा कि जिनमें राजमुद्दई होना कुछ आवश्यक नहीं और यहां इनव्य विशेषों के विगड़ने मध्ये उसी दंड की पुनरुक्ति कीगईहै कि जिनमें राजमुद्दई है संवंध अवश्यहों ३१०॥

(न्यायतोनिर्णीतस्यप्रत्यावर्तयितुर्दंडः)

योमन्येताजितोऽस्मीतिन्यायेनापिपराजितः। तमायांतंपुनर्जित्वादापयेद्द्विगुणंदमम् ३११॥

ऐ० —न्याय मे पराजित भी यदि कोई ऐसामाने में हारा नहीं तिसआये हुये को फिर जीतकर द्विगुणा दंड दिलावे-अर्थात्-मुक़द्दमे का जो कोई एक फ़रीक़

भी बढ़ावे(इतिसर्वसामान्यवर्णज्ञातीनांनियमः)अथशूद्रस्यापराधविशेषेदण्डाधिक्यंतत्रविज्ञानेश्वरः-(श्राद्धभोजनार्थमेवविप्रवेशधारिणःशूद्रस्यतप्तशलाकयायज्ञोपवीतवद्वपुष्यालिखेदितिस्मृत्यंतरोक्तन्द्रष्टव्यं पुनर्वृत्त्यर्थंयज्ञोपवीतादिब्राह्मणलिंगधारिणोवध एवद्विजातिलिंगिनःशूद्रान्घातयेदितिस्मरणादितिमिताक्षराकारःसर्वंगदति)३०९॥

(दुर्दृष्टव्यवहाराणांपुनर्दर्शनेनियमःअन्यथाव्यवहारदर्शिनांदण्डश्च)

दुर्दृष्टांस्तुपुनर्दृष्ट्वाव्यवहारान्नृपेणतु। सभ्यास्सजयिनोदंड्याविवादाद्द्विगुणन्दमम् ३१०॥

ऐ०-दुर्दृष्ट व्यवहारोंको फिर देखकर जय पानेवाले सहित सभ्यलोग नृपसेदंडनीय हैं विवाद से भी दूनादण्ड-अर्थात्-राग लोभ आदि से जे कोई अहेल्कारलोग जिन व्यवहारों को बिगाड़ैं किन्तु स्मृति और आचार की मर्यादों से विपरीत विचारैं जिससे झूँठाजीतै सच्चाहारै यद्वा महापराधी दण्ड पानेसे बचिजायँ तौ इसभाँतिके सन्देहमय व्यवहारों को फिरनिर्णयसे तजवीज़सानी करवावै यद्वा राजा अपनेआप देखभालकर निर्णीतकरै और उन सभ्यों को कि जिनकी लाग लपेटवाले दोष पाये जायँ झूँठीजय करिपानेवाले पक्षी सहित दूनादण्ड उस परिमाण से प्रत्येक दिलाये जायँ जितना दण्ड उसीविवाद में पराजित होनेवालेपर आवश्यकथा-इसमें भी इस भाँति से सरकार मुद्दई जानो किंतु जब जब कभी जालसाज़ी से व्यवहार बिगाड़ जायँ तब तजवीज़सानी के अनुसार जिनकेदोष पायेजायँ तिनके दोषोंका मुक़द्दमा जुदा विचार करने और दोषियों को फिर दण्ड देने में भी केवल राजमुद्दई होनेका नियमात्मक एक धर्म है ३१०॥

अधि०-मनुने भी योगीश्वर के इसवचनवाला पक्ष वर्णन कियाहै-यथा(अमात्याप्राड्विवाकोवायत्कुर्युःकार्य्यमन्यथा। तत्स्वयंनृपतिःकुर्य्यात्तान्सहस्रंचदण्डयेत्)अर्थात्-राजाके अमात्यलोग यद्वा प्राड्विवाक लोग जो व्यवहारों के विचारमें नियुक्त होकर जिस व्यवहार को अन्यथा निर्णयकरैं किंतु अच्छीभाँति नहीं विचारैं तिनको राजा अपने आप निर्णयकरै और उन उक्तविचार कर्त्ता लोगों को प्रत्येक सहस्र पणतक दण्डदेवै-अत्रोक्त मनु योगीश्वरवाले इन्हीं दोनों वचनोंका यह तात्पर्य है कि रिशवत घूसलेने पानेविना जो व्यवहार बिगाड़ेहों यद्वाधर्मशास्त्रकी अतिगूढ़ मर्यादोंका विवेक अपनीबुद्धिकी दुर्बलता या प्रमादसेही समुझेविना बिगाड़ेहों यद्वा राग प्रीति भय हेतुक आदि लक्षण से बिगाड़ेहों तिनकी यह मर्यादा जानो-क्योंकि उत्कोच लेकर जो व्यवहार बिगाड़ैं तिनका चर्चा पूर्व तीनसौकी अधिकोक्ति में उ मनुके दो वाक्यलिखे तिनहीं में होचुका-कदाचित्-साक्षियोंकेही दोष प्रपञ्च आदि से मुक़द्दमा बिगड़ाहो तब उन साक्षी लोगोंको अपराध के अनुरूप दण्डहोवै किन्तु सभ्यों या उस विजयी को फिर नहीं-बल्कि जिसमें कूट प्रपञ्चवाला साक्ष्य मस्म

जाय तिसव्यवहार को भी सिद्धहोनेविना निवर्तित करके फेरि निर्णयकरै-तदाहमनुः (यस्मिन्यस्मिन्विवादेतुकौटसाक्ष्यंकृतम्भवेत्। तत्तत्कार्यंनिवर्त्तेतकृतञ्चाप्यकृतम्भवेत्)अर्थात्-जिस जिस किसी विवाद में कुछ कूट साक्ष्यकिया प्रतीतहोवे तिस तिस कार्यको बिनपूरेहुये निवर्तितकरै पर जोकोई कूट साक्ष्यवाला कार्य पूरे निर्णयकोभी पहुँचाहो सो भी अकृत मानाजाकर फिर के निर्णयहोय (अथपुनरुक्तिप्रसंगनिराकरणम्) तत्रविज्ञानेश्वरः(अप्राप्तजेतृ दंड विधि परत्वाद्वचनस्यरागाल्लोभादित्यादि नाश्लोके नापौनरुक्त्यम्) अर्थात्विज्ञानेश्वरने इसपांक्ति से यहकहाहै कि व्यवहाराध्याय के प्रारंभ चौथे मूलश्लोक मेंभी सभ्यों को तद्रूप यही दंड इसी दोष मध्ये याज्ञवल्क्य जी कहचुके हैं और यहाँ तीन सौ दशमें भी फिर कहा तौ इसबातसे पुनरुक्तिकीसी भ्रांति यद्यापिहोतीहै परंच यहपुनरुक्तिनहींहै अर्थात् वहाँ भूंठी जय करि पाने वाले पक्षी कीदंड विधि नकहिसके थे सो उसको यहाँ मिलाकर कहनेके हेतुसे फिर बचन को दुहरायाहै पुनरुक्ति इसको नहीं समुझना-यह कथन उनका-इसध्यानसे उत्पन्न हुआहै कि उन्होंने अत्रत्य दशग्यारह मूल वचनोंको प्रत्यक्ष नृपाश्रय होतेहुये नृपाश्रय नहीं माना है वृत्तांत इसका ३०१ ॥ तीन सौ एक की अधिकोक्ति में सब देखो और इस कथन की अपेक्षा में यहशोच भी कर्तव्य है कि भूंठ जेताकी दंडविधि न कहसके अथवा उसके कहने की प्राप्ति वाला अवसर तवतक नहीं था यह दोनों हेतु निपट असंगतहैं क्योंकि अवसरजैसा सभ्योंके निमित्त में होसका तैसा जेताके भी अर्थमें होसक्ताथा या यदि काव्य के प्रयोग मिलने दुर्घट थे तौ उसको निपट त्यागिके पुनि यही तीनसौ दशका वाक्य जिसमें पूरे अर्थसमुझै तिसको उसी चौथे के स्थान पर प्रमाणीभूत रखते तौ फिर यहां कुछ दुहराने की ज़रूरत भी न होती वलिक अव यह दूषण देसक्ते हैं कि सिर्फ़ जेता की अपेक्षासे पुनरुक्ति करीगई-परंच-इसमें कारण केवल इतनाहै कि यहपुनरुक्ति दूषणमें गणनीय नहींहै पुनरुक्ति भूषणमें गणनीय है क्योंकि इसके उसके कार्यमें परस्पर वड़ावट्टाहै कुछआशय एक होने के शिरटीका नहीं क्योंकि वहां तौ सामान्य उनव्यवहारोंके विगाड़नेमध्ये वचन काप्रारंभथा कि जिनमें राजमुद्दई होना कुछ आवश्यक नहीं और यहां इनव्यवहार विशेषों के विगडने मध्ये उसी दंड की पुनरुक्ति कीगईहै कि जिनमें राजमुद्दई होनेके संबंध अवश्यहों ३१० ॥

(न्यायतोनिर्णीतस्यप्रत्यावर्तयितुर्दंडः)

योमन्येताजितोऽस्मीतिन्यायेनापिपराजितः। तमायांतंपुनर्जित्वादापयेद्द्विगुणंदमम् ३११ ॥

ऐ० —न्याय से पराजित भी यदि कोई ऐसामाने में हारा नहीं तिसआये हुये को फिर जीतकर द्विगुणा दंड दिलावे-अर्थात्-मुकद्दमे का जो कोई एक फ़रीक़ सच्चे

न्यायमार्गसे पराजित होकर अपने उद्धत पनसे व्यर्थ अपील वा तजवीज़सानी रोपिकर कुछकूटलेख्य रूपजाल की तहरीर आदि बीचमें अवलंब देकर फिर धर्माधिकारी पासमुराफ़ा करै कि मैं अद्यापि हारा नहीं किंतु मैं अमुकामुक अन्यायों से पछाड़ा गया-तिसको फिर भी निर्णय पूर्वक धर्मन्याय सेही जीति कर उसदंडसेअब दूनादंड दिलावै जितना पहिली हारिमें आवश्यक था-इसमें भी सरकार मुद्दई जानो चाहे पहली हारि किसी पक्षीके प्रतिपक्ष में भी हुईहो परंच झूंठा प्रत्यावर्तन करने वाले की दुसराकर हारिहोने में यहबात फिर आवश्यक नहीं है कि उसका प्रतिपक्षी दंड दिलाना चाहै तभी राजादंडदे पर जिसने सच्चीरीति से तजवीज़सानी या मुराफ़ेका प्रारंभाकिया हो तिसका चर्चा इसमें नहीं समुझना क्योंकि वह नियमात्मकएक मर्यादा है ३११ ॥

अधि०--इसी तीनसौ ग्यारह के योगीश्वरवाले वाक्यमध्ये मनुजी कुछधर्म विशेष भी दर्शाते हैं कि विरले अवसरऐसा भी कर्तव्य होगा-तद्यथा(तीरितंचानुशिष्टंचयत्र क्वचनयद्भवेत्। कृतंतद्धर्मतोविद्यान्नतद्भूयोनिवर्तयेत्)अर्थात्--जहां कहींऋणादि किसी भाँति के व्यवहारमें जोझगडा धर्ममार्गसेही तीरित हुआ समुझाजाय (यहां तीरित होना शास्त्रकी मर्यादोंसे निर्णीत होना किंतु फैसल होना मात्रसमुझोजिस्से किसी पक्षी की हारि जीति निश्चित होजाय परउस दावेकाद्रव्य अथवा दंड अबतक नहीं दिलायागया ऐसाजयपत्र सच्चेन्यायसेही सिद्धहुआ समुझाजाय) यद्वा अनुशिष्टं नाम उस जयपत्र के अनुसार द्रव्य दान या कुछदंड प्रकार उसपर जारी भी होगयाहो जिसकी हारिहुई सो यहदंड प्राप्तिपर्यंत कार्य उसपर सच्चे न्यायसेही कियागया यदि समुझाजाय और इनदोनोंमेंसे किसी एकदशामें यदि उक्तपक्षी अपने उद्धतपनसेही तजवीज़सानी या मुराफ़ा रोपितकरै तो धर्माधिकारी यद्वा राजाको यह योग्यहै कि ऐसे धर्मन्यायसे निपटायेहुये कार्यका निवर्तन फिरनकरै और इस दशामें कुछदूनादंडभी आवश्यकनहीं किन्तु जोकुछ पहलीवारमें निर्णीत वा अनुशिष्ट हुआ सोई ठीकरक्खै-आशय यह कि उस तजवीज़सानी या मुराफ़ाके प्रविष्ट होने और सामान्य अवलोकन उसका होनेपीछे जो पूर्व सिद्धकार्य सब न्यायानुकूल पाया जाय तो यह पुनर्निर्णयकी दरख्वास्त नामंजूरीद्वारा खारिजकरै-इसव्यवस्थामें यह तात्पर्य सिद्धहुआ कि जबकभी हारपक्षीके धोखादेने आदि किसी हेतुसे सामान्य अवलोकन होते समय यह प्रतिभान होनेलगे कि निस्संदेह यह तजवीज़सानी व मुराफ़ा इसका सच्चा और मंजूरकरने योग्यहै इसकारणसे मंजूरहुयेपीछे जो निःशेष निर्णयकरनेपरभी हारापक्षी फिर धर्मानुसार हारै तब योगीश्वरके वचनानुसार इस अपराधमें सरकार मुद्दईहोकर उसपर पूर्व निश्चितदंडके परिमाणसे फिर दूनादंडमें

करसक्तीहै-अर्थात् ऐसीदशा उपस्थित होनेविना यह योगीश्वरवाला न्याय कुछ प्राबल्यसे आरूढ़करनेयोग्य नहीं समुझना-परञ्च-यदि कोई व्यवहार लाग लपेटों से निर्णीत वा अनुशिष्टहुआ समुझाजाय तिसको निस्संदेह राजा सद्य निवर्तनकरै कि जैसा ऊपर तीनसौदशके मूलश्लोक आदि बर्णनहै सो देखो ३११॥

(अथपंचात्मकदुर्जनपांक्तेयानांशासनकर्मप्रबंधविशेषः)

नृपाश्रय व्यवहार केवल येहीनहीं समुझने जोजो ऊपरबर्णनहुये हैं अर्थात् इनसे उपरालभी बहुतेरे मुक़द्दमात इसी प्रकीर्णप्रकरणमें निजअवसरके अनुकूल गिनती होते हैंइसहेतु कुछ कुछ ब्यौरा यहाँ उनकाभी अबसमुझौ-किन्तु पहलेसाहसप्रकरण में व्यवहार जो जो वर्णनहुये सो सब इसीप्रकरणके आधीनहोते हैं अर्थात् उनमें भी सरकार मुद्दईहोतीहै (और) उस साहसप्रकरणके आधीन चार और प्रकरण होते हैं अर्थात्-वाक्पारुष्य, दंडपारुष्य, चौर्य्य, स्त्रीसंग्रहण यह चारोही सदैव साहसप्रकरणके अनुगामीरहाकरते क्योंकि साहसकर्मोंकानिवास इन्हीं चारोंभाँतिके अपराधों में सुनिश्चितहै यहबात पाँचोप्रकरण के अवलोकनसे यथार्थ समुझीहोगी इसी विलक्षणहेतुसे यह पाँचोप्रकरण एक इसी(प्रकीर्णप्रकरण)केआधीनहैं और इसी आधीनीके विशेषकारणसे उन पाँचोप्रकरणमें अपराध विशेष जो जो होतेहों तिनके कर्ताओंके प्रतिपक्षी किन्तु मुद्दई केवल वेहीलोग नहींसमुझने जिनको पीड़ापहुँची हो अर्थात् उनकाराजाभी प्रतिपक्षी होताहै और इतनी अधिक विशेषतासे कि पीड़ा पानेवाले सिर्फ़ उसीअवस्थामें प्रतिपक्षी होसक्तेहैं कि जब जब उनको पीड़ा मिले और सरकार उन अपराधोंमध्ये सदा मुद्दईहोती है इस भाँतिसे कि मनुने इसपक्ष की संसिद्धिकरनेके अर्थ एक महक्मा जुदारखनाकहाहै कि जिसकेद्वारा सदाही इस भाँतिके साहासिकप्रमुख सब अपराधी नानाभाँति जो विख्यात प्रकाशरूपहों या निज आपेको छिपायेनामी रहतेहों खोजिखोजि पकड़आकर दंडपावें और निर्मूल कियेजायँ क्योंकि ऐसी दुर्जनपंक्ति बनीरहनेसेभी राजप्रबंध ढीलेरहते हैं इसकारण दुर्जनपंक्तिका प्रशासनकर्म जोहै सोई राजप्रबंधोंकी विशेषचौकसाई मानीगईहै-तथा चमनुः(यस्यस्तेनःपुरेनास्तिनान्यस्त्रीगोनदुष्टवाक्। नसाहसिकदंडघ्नौसराजाशक्रलोकभाक् ३८६ एतेषांनिग्रहोराज्ञःपंचानांविषयेस्वके। साम्राज्यकृत्सजात्येपुलोकेचैव यशस्करः ३८७ इत्यष्टमाध्यायेभृगुः) अर्थात्-जिसराजाके पुरमें किन्तु राजभरमें एक चोरनहो १ तथा परस्त्रीगामीभी नहो २ एवं दुष्टवाक् बदज़बान जिभार मुँहफट्ट परुषवादी वाक्पारुष्यकरनेवाला निपटनहो ३ और साहसिक डाकू ठग बटमार ग्रामदाहक नरघाती आदि कोई आततायी भी नहो ४ एवं दंडघ्न डंडाबाज़ी करनेवाला किन्तु लाठी लकड़ी पत्थर ढेल लोहशस्त्र आदिसे कुछ चोटलगानेवाला दंड

पारुष्यकर्ता निपटनहो ५तौ वहराजाइन्द्रलोकभोगनेवाला है अर्थात् जैसे इन्द्रलोक में ये कोईभाँतिके उपद्रव नहीं होतेहैं तथैव इसकाराज्यभी निर्विघ्नहोकर निर्मलस्वर्ग समान सबसुखदायक हुआकरताहै ३८६ ॥ इस्से राजामात्रको सदैव अपने राज्यमें इन पाँचोका निर्मूलकरना अपने तुल्य राजाओंके सन्मुख साम्राज्य गुणका दर्शकहै और अन्यसबसामान्य लोगोंमेंयशविस्तृत करनेवाला३८७ (अन्यच्चमनुरेवाह)यथा-सम्यङ्निविष्टदेशस्तुकृतदुर्गश्चशास्त्रतः । कंटकोद्धरणेनित्यमातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् २५२ रक्षणादार्य्यवृत्तानांकंटकानांचशोधनात्। नरेंद्रास्त्रिदिवंयांतिप्रजापालनतत्पराः २५३ इतिनवमाध्ययेभृगुः)अर्थात्-जो राजा अपने राष्ट्रदेशमें निर्विघ्न बैठाहो और आचार शास्त्रके अनुसार सर्वथा दुर्गबनायेबैठाहो तिसकेयोग्य यहीप्रबंधकर्महै कि नित्यंप्रति साहसिक आततायी तस्कर आदि कंटकरूप दुर्जन पंक्तियों के निर्मूल करनेवाले उत्तमयत्नपर आरूढ़होवे २५२ क्योंकि शुभआचारवाले आर्य्यवृत्तोंकी यथोचित रक्षाकरनेसे और उक्तकंटकरूप दुर्जनपंक्तियोंके निर्मूलकरदेने से सब राजालोग स्वर्ग जाते हैं २५३ इसकारण आगे वहीप्रबंध वर्णनहोगा (तदप्याहमनुरेव)यथा(द्विविधांस्तस्करान्विद्यात्परद्रव्यापहारकान्।प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्चचारचक्षुर्महीपतिः २५६ प्रकाशवंचकास्तेषांनानापण्योपजीविनः।प्रच्छन्नवंचकास्त्वेतेयेस्तेनाटाविकादयः२५७ उत्कोचकाश्चोपधिकावंचकाःकितवास्तथा । मंगलादेशवृत्ताश्चभद्राश्चेक्षणकैःसह २५८ असम्यक्कारिणश्चैवमहामात्राश्चिकित्सकाः । शिल्पोपचारयुक्ताश्चनिपुणाःपण्ययोषितः २५९ एवमादीन्विजानीयात्प्रकाशाँल्लोककंटकान् । निगूढचारिणश्चान्यानानार्य्यानार्य्यलिंगिनः २६० तान्विदित्वासुचरितैर्गूढैस्तत्कर्मकारिभिः । चारैश्चानेकसंस्थानैःप्रोत्साद्यवशमानयेत् २६१ तेषांदोषानभिख्याप्यस्वेस्वेकर्मणितत्वतः । कुर्वीतशासनंराजासम्यक्साराापराधतः २६२ नहिदंडादृतेशक्यःकर्तुंपापविनिग्रहः ॥ स्तेनानांपापबुद्धीनांनिभृतंचरतांक्षितौ २६३ (एतस्मादेव)(सभाप्रपापूपशालावेशमद्यान्नविक्रयाः । चतुष्पथाश्चैत्यवृक्षाःसमाजाःप्रेक्षणानिच २६४ जीर्णोद्यानान्यरण्यानिकारुकावेशनानिच । शून्यानिचाप्यगाराणिवनान्युपवनानिच २६५ एवंविधान्नृपोदेशान्गुल्मैःस्थावरजंगमैः । तस्करप्रतिषेधार्थंचारैश्चाप्यनुचारयेत् २६६ तत्सहायैरनुगतैर्नानाकर्मप्रवेदिभिः । विद्यादुत्सादयेच्चैवनिपुणैःपूर्वतस्करैः २६७ भक्ष्यभोज्यापदेशैश्चब्राह्मणानांचदर्शनैः । शौर्य्यकर्मापदेशैश्चकुर्य्युस्तेषांसमागमम् २६८ ये तत्रनोपसर्पेयुर्मूलप्रणिहिताश्चये । तान्प्रसह्यनृपोहन्यात्समित्रज्ञातिबांधवान् २६९ नहोढेनविनाचौरंघातयेद्धार्मिकोनृपः । सहोढंसोपकरणंघातयेदविचारयन् २७० इति नवमाध्यायेमनुः)अर्थात्-मनु कहते हैं कि राजा चारचक्षु बनिकर द्विविध चोरोंको सदैव जाने किन्तु अनेक मुखबिर जासूस अपनी आँखिरूपी मानिकर इसतरहके

निमित्तसे फैलावै तिनकेद्वारा प्रकाश १ अप्रकाश २ दोनोंभाँतिके चोर जो जो लोक में पराया द्रव्यहरनेवालेहों खूबसबकोसमुझै और पहिंचाने २५६ तिनमें एकप्रकाश वंचक उनकोजानै जो जो नानाभाँतिके सौदागर आदि निज निज व्यापारोंके अवलंबसेही कमती बढ़ती तौलिकर या खोटी खरी बस्तुओं के मिलाप योग आदि कपटों से या सत्यासत्य बोलने आदि फंदफरेबों से या चलती सड़कों परजाकर झूँठा कल्पित नीलाम खड़ाकरने आदि प्रकारों से पराया द्रव्य हरतेहों-और-प्रच्छन्न वंचक इतने हैं कि जे स्तेनक नाम संधि छेदने आदि द्वारा लुसिकर चोरी करते हों या अटवियों में छिपकर आदि परधन लूटि लेतेहों-इनहीं में उठाईगीरे आदि समुझने-इसका यह सिद्धान्त है कि जो जो कोई सिर्फ़ चोरी आदि वाले यत्नोंसे धन हरतेहों वे सब लुकिया चोर जानो-पर जे कोई वणिज् व्यापार आदि कर्मोंके बहानेसे अपहार करतेहों वेही खुल्लम चोर हैं जो अभी ऊपर वर्णन हुये २५७ ॥ (अत्रोक्त) इन दो भेदों में से एकप्रकाश चोरोंके लक्षण अब दर्शातेहैं कि एक तौ उत्कोचक जो घूस पच्चड़ खातेहों. औपाधिक जो धौंसका धन खातेहों. वञ्चक जेरसायन आदि युक्तियों से बिराना सोना चाँदी लेकर बदलेमें ताँबा आदि छोड़िकर चलदेने आदि प्रकारों से ठगतेहों. कितव जे द्यूत आदि प्रकारों से धनहरैं. मंगलादेश वृत्तिवाले जो मङ्गलका आदेश करके धन हरतेहों. भद्राजे कल्याणरूपी आचारोंसेही ढँके रहते पाप राशिहों.ईक्षणिक जे हाथरेखा आदि शरीर चिह्नों से शुभाशुभ फलके वक्ता बनकर दुर्जनता से धन हरतेहों २५८ ॥ महापात्र चिकित्सक जो परिमाण विना बहुत औषधदेयँ और उस कर्मको भी अच्छीतरह न करसक्तेहुये जीविका उस्से करतेहों. चित्रलेख्य तसवीर आदि शिल्प कर्मोंके उपचार से आजीवन करतेहों. निपुण पण्य स्त्री वेश्या आदि जो जो पर पुरुषों को वश करने में प्रवीणहो २५९ ॥ इनको आदि लेकर इसीभाँति के जो जो और कोई होतेहों तिनको भी प्रकाशरूप लोक कण्टक राजाजानै बल्कि और भी निगूढ़चारी अपने जन्म कर्मोंको छिपाये हुये जोजो शूद्र आदि नीचहोने ऊँचोंके वेशलेकर फिरतेहुये बहाने से धन हरतेहों तिनसबको राजा अपने गूढचारों द्वाराजानै (यहां तीनोंही श्लोकएक साथ समुझने ॥ २५८। २५९। २६० ॥ तिनसबको राजासुचरित गूढ़ों औरतत्कर्मकारियों से यथार्थ जानकर अनेक स्थानपर टिकाये वा छिटकायेहुये चारों से उभार कर निजवशमें करे क्योंकि वशमें आने पीछे जो कुछ अधिक विलक्षण उनका गुण पहिंचाना जाय तो इसबात का उत्साह उन्हें दिलायाजाय कि यह दुष्कर्म अपना छोड़कर तुमराज सेवा अंगीकार करो-इसमें मनुने ध्वनिहेतु प्रविष्ट कियाहै कि राजा को इनसब में से प्रत्येक विलक्षण कामजाननेवाले टगबटमार आदि चुनि चुनि

पारुष्यकर्ता निपटनहो ५ तौ वहराजाइन्द्रलोकभोगनेवाला है अर्थात् जैसे इन्द्रलोक में ये कोईभाँतिके उपद्रव नहीं होतेहैं तथैव इसकाराज्यभी निर्विघ्नहोकर निर्मलस्वर्ग समान सबसुखदायक हुआकरताहै ३८६ ॥ इस्से राजामात्रको सदैव अपने राज्यमें इन पाँचोका निर्मूलकरना अपने तुल्य राजाओंके सन्मुख साम्राज्य गुणका दर्शकहै और अन्यसबसामान्य लोगोंमेंयशविस्तृत करनेवाला ३८७ (अन्यच्चमनुरेवाह) यथा-सम्यङ्निविष्टदेशस्तुकृतदुर्गश्चशास्त्रतः । कंटकोद्धरणेनित्यमातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् २५२ रक्षणादार्य्यवृत्तानांकंटकानांचशोधनात् । नरेंद्रास्त्रिदिवंयांतिप्रजापालनतत्पराः २५३ इतिनवमाध्ययेभृगुः) अर्थात्-जो राजा अपने राष्ट्रदेशमें निर्विघ्न बैठाहो और आचार शास्त्रके अनुसार सर्वथा दुर्गबनायेबैठाहो तिसकेयोग्य यहीप्रबंधकर्महै कि नित्यंप्रति साहसिक आततायी तस्कर आदि कंटकरूप दुर्जन पंक्तियों के निर्मूल करनेवाले उत्तमयत्नपर आरूढ़होवै २५२ क्योंकि शुभआचारवाले आर्य्यवृत्तोंकी यथेचित रक्षाकरनेसे और उक्तकंटकरूप दुर्जनपंक्तियोंके निर्मूलकरदेने से सब राजालोग स्वर्ग जाते हैं २५३ इसकारण आगे वहीप्रबंध वर्णनहोगा (तदप्याहमनुरेव) यथा (द्विविधां स्तस्कारन्विद्यात्परद्रव्यापहारकान् । प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्चचारचक्षुर्महीपतिः २५६ प्रकाशवंचकास्तेषांनानापण्योपजीविनः । प्रच्छन्नवंचकास्त्वेतेयेस्तेनाटाविकादयः २५७ उत्कोचकाश्चोपधिकावंचकाःकितवास्तथा । मंगलादेशवृत्ताश्चभद्राश्चेक्षणकैःसह २५८ असम्यक्कारिणश्चैवमहामात्राश्चिकित्सकाः । शिल्पोपचारयुक्ताश्चनिपुणाःप ण्ययोषितः २५९ एवमादीन्विजानीयात्प्रकाशाँल्लोककंटकान् । निगूढचारिणश्चा न्याननार्य्यानार्य्यलिंगिनः २६० तान्विदित्वासुचरितैर्गूढैस्तत्कर्मकारिभिः । चारैश्चा नेकसंस्थानैःप्रोत्साद्यवशमानयेत् २६१ तेषांदोषानभिख्याप्यस्वेस्वेकर्मणितत्त्वतः । कुर्वीतशासनंराजासम्यक्सारापराधतः २६२ नहिदंडादृतेशक्यःकर्तुंपापविनिग्रहः ॥ स्तेनानांपापबुद्धीनांनिभृतंचरतांक्षितौ २६३ (एतस्मादेव) (सभाप्रपापूपशालावे शमद्यान्नविक्रयाः । चतुष्पथाश्चैत्यवृक्षाःसमाजाःप्रेक्षणानिच २६४ जीर्णोद्यानान्यर ण्यानिकारुकावेशनानिच । शून्यानिचाप्यगाराणिवनान्युपवनानिच २६५ एवंविधा न्नृपोदेशान्गुल्मैःस्थावरजंगमैः । तस्करप्रतिषेधार्थंचारैश्चाप्यनुचारयेत् २६६ तत्स हायैरनुगतैर्नानाकर्मप्रवेदिभिः । विद्यादुत्सादयेच्चैवनिपुणैःपूर्वतस्करैः २६७ भक्ष्यभो ज्यापदेशैश्चब्राह्मणानांचदर्शनैः । शौर्य्यकर्मापदेशैश्चकुर्य्युस्तेषांसमागमम् २६८ ये तत्रनोपसर्पेयुर्मूलप्रणिहिताश्चये । तान्प्रसह्यनृपोहन्यात्समित्रज्ञातिबांधवान् २६९ नहोढेनविनाचौरंघातयेद्धार्मिकोनृपः । सहोढंसोपकरणंघातयेदविचारयन् २७० इति नवमाध्यायेभृगुः) अर्थात्-मनु कहते हैं कि राजा चारुचक्षु बनिकर द्विविध चोरोंको सदैवजानै किन्तु अनेक मुखबिर जासूस अपनी आँखिरूपी मानिकर इसकामके

निमित्तसे फैलावै तिनकेद्वारा प्रकाश १ अप्रकाश २ दोनोंभाँतिके चोर जो जो लोक में पराया द्रव्यहरनेवालेहों खूबसबकोसमुझै और पहिंचाने २५६ तिनमें एकप्रकाश वंचक उनकोजानै जो जो नानाभाँतिके सौदागर आदि निज निज व्यापारोंके अवलंबसेही कमती बढ़ती तौलिकर या खोंटी खरी बस्तुओं के मिलाप योग आदि कपटों से या सत्यासत्य बोलने आदि फंदफरेबों से या चलती सड़कों परजाकर झूँठा कल्पित नीलाम खड़ाकरने आदि प्रकारों से पराया द्रब्य हरतेहों-और-प्रच्छन्न वंचक इतने हैं कि जे स्तेनक नाम संधि छेदने आदि द्वारा लुसिकर चोरी करते हों या अटवियों में छिपकर आदि परधन लूटि लेतेहों-इनहीं में उठाईगीरे आदि समुझने-इसका यह सिद्धान्त है कि जो जो कोई सिर्फ़ चोरी आदि वाले यत्नोंसे धन हरतेहों वे सब लुकिया चोर जानो-पर जे कोई वणिज् व्यापार आदि कर्मोंके बहानेसे अपहार करतेहों वेही खुल्लम चोर हैं जो अभी ऊपर वर्णन हुये २५७॥ (अत्रोक्त) इन दो भेदों में से एकप्रकाश चोरोंके लक्षण अब दर्शातेहैं कि एक तौ उत्कोचक जो घूस पच्चड़ खातेहों. औपाधिक जो धौंसका धन खातेहों. वञ्चक जेरसायन आदि युक्तियों से बिराना सोना चाँदी लेकर बदलेमें ताँबा आदि छोड़िकर चलदेने आदि प्रकारों से ठगतेहों. कितव जे द्यूत आदि प्रकारों से धनहरैं. मंगलादेश वृत्तिवाले जो मङ्गलका आदेश करके धन हरतेहों. भद्राजे कल्याणरूपी आचारोंसेही ढँके रहते पाप राशिहों.ईक्षणिक जे हाथरेखा आदि शरीर चिह्नों से शुभाशुभ फलके वक्ता बनकर दुर्जनता से धन हरतेहों २५८॥ महापात्र चिकित्सक जो परिमाण विना वहुत औषधदेयँ और उस कर्मको भी अच्छीतरह न करसक्तेहुये जीविका उस्से करतेहों. चित्रलेख्य तसवीर आदि शिल्प कर्मोंके उपचार से आजीवन करतेहों. निपुण पण्य स्त्री वेश्या आदि जो जो पर पुरुषों को वश करने में प्रवीणहो २५९॥ इनको आदि लेकर इसीभाँति के जो जो और कोई होनेहों तिनको भी प्रकाशरूप लोक कण्टक राजाजानै वल्कि और भी निगूढ़चारी अपने जन्म कर्मोंको छिपाये हुये जोजो शूद्र आदि नीचहोते ऊंचोंके वेशलेकर फिरतेहुये बहाने से धन हरतेहों तिनसबको राजा अपने गूढचारों द्वाराजानै (यहां तीनोंही श्लोकएक साथ समुझने॥ २५८। २५९। २६०॥ तिनसबको राजानुचरित गूढों औरतत्कर्म कारियों से यथार्थ जानकर अनेक स्थानपर टिकाये वा छिटकायेहुये चारों से उभार कर निजवशमें करै क्योंकि वशमें आने पीछे जो कुछ अधिक विलक्षण उनका गुण पहिचाना जाय तौ इसबात का उत्साह उन्हें दिलायाजाय कि यह दुष्कर्म अपना छोड़कर तुमराज सेवा अंगीकार करो-इनमें मनुने ध्वनिहेतु प्रविष्ट कियाहै कि राजा को इनसब में से प्रत्येक विलक्षण कामजाननेवाले ठगदटमार आदि चोरि चुगि

नौकर करने योग्यहैंकि उनको शुद्ध मुलाजिम लोगोंके आधीन रखकरएक समूहरूप महक्मा इनका जुदाप्रकल्पित करै और जिसभांतिके जिसतस्कर में जिसकर्म की विलक्षण कोई दशा विशेष पाईजाय तिसहीके अनुसार उसको उत्तम मध्यम आदि कर्म नायक भी करदेना योग्यहै कि जिसउत्साहसे वे अपने योग्य कर्मोंका संसाधन करतेरहैं-यहसबलोग अपनेमुख्यस्वरूप कर्मों को छिपाये रहकरदेशकालके अनुरूप राजदत्त लिवासवेशोंको बदलतेहुये उनस्थानों में सदैवविचरैं या टिकासर पावेंगे कि जिनकाचर्चाआगे दोसौ चौसठिआदि वचनोंसे विचारो राजशासनसे बतायेजायँ यह (दुष्कर्मिशोधक) नामकासमाज महक्माठगई अपने उनहीं सबआचरणों में सदैव तत्पर होताहै कि जिनसे ठग बटमार आदि लुकिया चोर और निर्मूलकल्पित व्यापारी आदि खुल्लमचोर भी नरहने पावैं इसी आशयसे इस दोसौ इकसठिवाले वाक्य में ऊपरलीओर यहकहचुकेहैं कि (सुचरितगूढों और तत्कर्म कारियोंसे यथार्थजानै) अर्थात् जिस किसी भांतिका चोर आदि कोई दुर्जन तहक़ीक़ात विना पकड़ागयाहो यद्वा विना पकड़ेही कुछशंका जिसपर आरोपित करीजाय कि अमुक पुरुष इतने दिनसे अमुकस्थान परऐसा ऐसा करता है वह दुर्जन पंक्तिमें गणनीय होकर पकड़ा जानायोग्यहै तबऐसे अवसरमें यथार्थ उसका भेदपाया जानेके अर्थ उसी भांति के वे दुर्जन अपनी काररवाई पर समुद्यत कियेजायँ जो कि पहलेपकड़े हुये राजसेवारूपसे उसउक्त समाजके प्रयोजन पर आरूढहैं और वेही (सुचरित)कहलातेहैं सो ऐसे सुचरितगूढ़ किंतु अपने पूर्व कर्मों कोछिपाये हुये इसआधुनिक चोरके सन्मुख जायँ और तत्कर्मकारि कहने का भी अर्थ यह कि ठेठ उसी भांति का नौकर चोर उसका भेद लेसक्ताहै कि जैसा यह आधुनिक दुर्जन पकड़ा जाय इसकायह दृष्टांत है कि जहांव्यापारीचोर पकड़ाजानेका प्रयोजनहो तहां व्यापारी पहला चोर जो अवराज सेवक हो भेद निकासै एवं वैद सथिया आदि चोर हो तहां वैद सथिया आदि पहला दुर्जन जो अबराज सेवीहै सो भेद निकासै क्योंकि अपनेअपने कामों की मरकैं सबकोई जानसक्ताहै-इसमें एक विशेपताभी यहयादि रखनी योग्यहै कि राजाका यहउक्त समाज कभी खुल्लमनहीं रहसक्ता किंतु कोईतकमा चिह्न विशेष उनपर ऐसा कुछ प्रत्यक्ष नहीं रहता जिस्से यह तत्काल बोध होवै राजपुरुष है और इसवातका भी नियम नहींहोता है कि जो चौरादिक राजसेवक हुये सवएकत्र छावनीडालैं किंतुइसमें यही विशेषताहै कि फूटेफटके रहकर निजनिज काम साधैं इसका यहभी एकरूपकहै कि जैसे कोई एक मद्यका व्यापारी वेशवाला चोर पकड़ा जाकर पीछे राजसेवक हुआ तब उस चोर से सर्वथाधर्मकर्म आदि शपथ लेकर उसको राजशासन यह गुपतौअर हुआ कि अपनी मद्यकी दूकान अमुकस्थान पर

जमाकर इसदूकान केही द्वारा प्रायः दुर्जनलोगोंकी पहिंचानकरिकर भेदउनकाराजमें पहुंचातेरहो एवं संधिच्छेदआदि कोई चोर जबकिराजसेवक बनै उसकोभी गुपतौंअर एकआज्ञा मिलीकि अमुकामुकधनिक निवासस्थानआदि स्थलमें विचरते रहकरसंधि लगानेवाले आदि चोरों को निजअपनेमें मिलाकर उनकाभेद हरो किंतु ऐसेचोरोंको यह प्रकृति हुआ करतीहै कि चाहेसौदोसौ कोशके अंतरसे भी आयेहों चोरीकरने के निमित्त से परस्पर सबमिलजाते हैंऔर निज निज भेदों को कहदेतेहैं-परंच-राजाको इसबात में सदैव ध्यान रखना योग्य है कि यद्यपि राजसेवक भी बनाया इनको तौ भी ऐसी दुर्जन पंक्ति को कदाचित् निपट स्वतंत्र न करदे और बहुधा इनके कथन पर विश्वास भी निरंतर नहीं लावे क्योंकि जैसे कौआ यद्यपि दिव्य भोज्यों से सुपालित कियाजाय तोभी विष्ठामें मुँहडारे बिना नहींरहता तैसे दुर्जनभी स्वकीय स्वाभाविक दुर्जनतासे विरक्तिनहींलेताहै और प्रायःअपने पूर्ववैर आदि तुच्छतर हेतुओंसे निष्कारण अच्छेलोगोंको फँसाताहै इत्यादि गूढ़हेतुओंसे इसदुर्जन पंक्तिको सदैव शुद्धसेवकजन समूहोंके आधीन वशवर्त्तीकरकेरक्खे और इनके गूढ़चरित्रोंकी परीक्षाहेतु शुद्धगूढ़चरभी छूटेरक्खे और निज आपभी निरालसहोके राजाभेदूबनै क्योंकि (नपरस्यापवादेनपरेषांदंडमाचरेदित्यादि नियमस्तुसर्वत्रैवयोज्यः) २६१ इसभाँति तहकीकातहोनेपीछे उनकेदोष और अपराध जोजो निज निजकाममें उत्पन्न कियेहों तिनको तत्त्वसे सबलोगोंको सुनायकर अपराधके अनुसार और अपराधी की धन देह आदि कर्म शक्तिकेअनुसार विचारकरके दंडदेवे-इनके दंड आगे जुदे जुदे प्रत्येकबर्णनहोंगे और कुछसाहस प्रकरणमेंभी पहले वर्णनहुयेथे तत्रैव देखो-सबलोगोंको सुनाना इसीप्रयोजनसे कि ऐसाकर्म जो जोकोईकरे तिनको यहीदंडहोगा जोकुछ इसकोहुआ २६२ क्योंकि पापहीमें निजबुद्धिको फैलानेवाले चोर जो शुभ वेशोंसे निजकर्मको छिपायेफिरतेहों तिनको दंडपहुँचे विनाधरित्रीपर अति पापकर्मों की बढ़वारी नहींरुकतीहै यह वाक्यभी उनलोगोंको सुनादेवै २६३ उक्तदुर्जन क्योंकर हाथ आसक्तेहैं इसबातका प्रबन्ध मनु कहते हैं कि सभानाम ग्राम नगर आदि में अथाई के स्थान जहाँ रोकटोक बिना हरकोई बैठि सक्ताहो. प्रपा प्याऊके स्थान-अपूपशाला हलवाई की दूकान. वेश नाम वेश्याओं के स्थान सराय आदि. मद्यान्न विक्रय अर्थात् मदिरा चरस भाँग आदि बिकने की दूकानें तद्वत् अन्न बिकनेकी दूकानें. चतुष्पथ चौराहे. चैत्य वृक्ष बहुतबड़ेऊँचे भमड़े विख्यात पेड़ जिनकी जड़के पास प्रायः पथिकजन विश्राम लेतेहों. बहुत घनें मनुष्यों के समाज मेला जात्रा आदि. प्रेक्षणानि दर्शनीय तमाशे रासलीला कर्णाटक सौंग आदि. और २६४ जीर्ण उद्यान किंतु टूटेफूटे पुराने बाग बगीचे जिनमें पक्षि बैंगन्ने आदि निवास स्थान

भी कुछ खालीहों. अरण्यकोई निर्जन भूमिभाग. कारुक आवेश किंतु शिल्पी आदि कारीगरों के दूकान आदि कारखाने जहाँ प्रायः वैतनिकों का समाज रहाकरताहो. खालीपड़े मकान भी. बन अर्थात् आम्र आदि वृक्षोंके समूह.उपवन किंतु फुलवाड़ी आदि किआरियों से सम्पन्न दर्शनीय क्रीड़ा बाग २६५॥ ऐसे ऐसे स्थानोंको सदैव राजा चोरोंके निर्मूल करने को स्थावर जङ्गम द्विविध पदाती सेनाके लघ्वादि यथोचित भागोंसे और गूढ़चारी चारोंसे भी अनुचारितकरै ढुँढ़ावै क्योंकि प्रायः ऐसेठौरों पर चौरादिक दुर्जन अपना कृत्यविचार आदि कम्पलगाने और पण्यस्त्री अन्नपान आदि भोगों के अन्वेषण करनेको भी आतेजाते यद्वा टिकतेहैं (स्थावर जङ्गम द्विविध पदाती सेना. किंतु पदाती नाम प्यादेही स्थावर जोकि चौकी अड्डा आदि प्रकारों से एकत्र टिकायेजायँ और कुछ फुटकर भी प्यादे जो प्रचारी बनकर आठोंयाम रौंद गश्त लगावैं घूमैं) जिस्से चोर चिकारआदि दुर्जन पंक्तियों के अभ्यन्तर पायेजायँ (अत्रोक्त चोर चिकार आदि दुर्जन पंक्तियों के कुछ लक्षण पहले चौर्य प्रकरणमें भी नारद और बृहस्पति आदि वचनों से दर्शायेगये सो सब २७१। २७२। २७३ की अधिकोक्तों में अवलोकन करो) २६४। २६५। २६६॥ उक्त दुर्जन लोगों को इसभाँति राजा पकड़ै और निर्मूलकरै कि चोरी आदि नानाकर्मोंके जाननेवाले जो पुराने चोर मुखबिर जासूस बनके राजसेवक हुयेहों और इस राजकाज के संसाधन में भी निपुणहों वेही उक्तदुर्जनों के अनुगामी तथा सहाय्यकबनैं यद्वा उनके और भी जेकोई निज अनुगामी तथा सहायकहों तिनको आप अपने में मिलालेवें तिनकेद्वारा राजा उक्त दुर्जनों के अभ्यन्तर तथा स्वरूप भी प्रत्यक्षजानै और निर्मूलकरै २६७ भला वे अनुगामी तथा सहायक यद्वा ठेठ राजा के जासूस जो छलसे उनके अनुगामी तथा सहायक बनेहों किसभाँति राजाको पकड़ावैं या दिखावैं सो अब कहतेहैं कि-भक्ष्य भोज्यकेअपदेशोंसे या विप्रोंके शुभदर्शनरूपी लालचसे या शौर्यरूपीकर्म के अपदेशों से ये लोग उनका राजाके प्रत्यक्ष अथवा राजपुरुषों के प्रत्यक्ष समागम करैं-अर्थात् इनके ये दृष्टांत हैं कि येही छली सहायक उनसे ऐसाकहें कि चलोहमारे घरको चलैं मीठी दूधिया पीकर खीर मोदक आदि उत्तम भोजन करैंगे इत्यादि किसी वहाने से लेजाना भक्ष्य भोज्य का अपदेश है अथवा एक हमारे गावँ में जो ब्राह्मण हैं अपूर्व प्रश्न कहताहै कि जो अभिलाषा जिसकीहो सोई फल मिलसक्ताहै इसलिये उसको चलकर आज देखैंगे इत्यादि व्याज वहाने जो हैं विप्रदर्शन के अपदेशहैं अथवा अमुकस्थान एक पटेवाज ऐसा आया है कि अकेलाही अनेकों साथ लड़ता है सो चलकर आज उसके हाथ देखैंगे इत्यादि बातैं शौर्य कर्मोंके अपदेशहैं इन युक्तियों से लेजाना और पकड़ाइदेना उनका काम है २६८॥ पर जे कोईचोर

इन युक्तियों के भी भेदूहों ऐसा कहने से पकड़नेका भय मानकर न जावें यद्वा मूल प्रणिहितहों अर्थात् मूलसंज्ञक राजनियुक्त चौरवर्ग जो गिराई संप्रतिलोक प्रसिद्धहै तिस मुख्य समाजसेही प्रणिहितनाम सावधानचौकसहों छलकेभयसे ऐसीसङ्गतिमें कदाचित् भी न पड़तेहों और विख्यातचोरहों तिनको राजा उन्हींपुरानेचोरोंसेयथार्थ जानिबूझिकर जेकोई उनमेंमिलेझुले मित्रादि यद्वा पिता भाई आदि उसीकर्मकाबाना रखतेहों तिनसबसहित उनको बलसे राजा घेरिकर विध्वंसकरै २६९ परञ्च इतनी और प्रतिज्ञाहै कि धार्मिक राजा ऐसे चोरोंकोभी चोरीकेचिह्नबिना नमारै किंतु जबहीं कभी चोरीके उपकरण और कुछ चोरीकाधन उनकेपास निकसै तबहीं चोरी उनपर निश्चितकियेपीछे शीघ्र घातकरै २७० ॥ (अथप्रभिन्नव्यवहारांविशेषास्तेचनृपाश्रयाभवन्ती त्यत्रप्रकीर्णकेसंवक्ष्यते) प्रभिन्नव्यवहार जो भिन्नात्मक फुटकर मुतफरकात बहुतेरेमुकद्दमात ऐसेहोतेहैं कि यद्यपि अष्टादश व्यवहारोंमध्ये कोईएकपद विख्यातउनका नहीं-परंच प्रायः साहस प्रकरण में सब गिनती हैं या बिरले चौर्य प्रकरण में भी माने जासक्ते हैं और मुख्य ठिकाना सबका इसी प्रकीर्ण प्रकरण पर इसहेतु से आरूढ़ है कि राजमुद्दई होने विना प्रबंध दुर्घट होता है इस आशय से सरकार उनमें सदा मुद्दई होती है उन सबके भिन्नरूप आगे मनु के वचनों द्वारा समुझो पहिले चोरों और बागियों के सहाय वर्णन होते हैं-अग्रोक्त मनु के वचनोंवाला चोर शब्द दुर्जनमात्र का प्रबोधक है यह याद रक्खो--यथाह नवमाध्याये मनुः- (ग्रामेष्वपिच येकेचिच्चौराणांभक्तदायकाः। भांडावकाशदाश्चैवसर्वांस्तानपिघातयेत) २७१ अर्थात्-राजधानी आदि नगरों में तथैव कर्वट खर्वट आदिग्रामोंमें भी जेकोई बाशिन्दे लोग चोरों और डाकुओं के दुष्कर्म जाने पीछे उनको मार्ग आदि हेतुओं में अन्नादिक रसद देवें या पहुँचावें या जेकोईचोरी आदि कर्मोंके औजारशस्त्र पात्र आदिउनकोदेवें या यदि टिकने वा छिपरहनेको स्थान यद्वा मार्ग आदि निकसनेको अवकाश वा अवसरदेवें या कुछ और सहाय करतेहों तिन सबकोभी अपराधकेही तुल्य राजाघातकरै (याज्ञवल्क्य भी यह वार्ता दोसौइक्यासी मूलश्लोकसे कहिचुकेहैं तत्रैव देखो) पर यह एक विशेष भी समुझना इसमें योग्य है कि जब कोई धनिकशिरोमणि आदि किसी ऐसे अवसरमें कुछडाकू आदि समूहोंको भक्तावकाशरूपसहायभी प्रत्यक्ष दव कर देवै जब कर्तारिकातुल्य अवसर आनि उपस्थित हो जिसमें आनतायी गणको अन्नादिकरसद देनेविना निस्संदेहसंभवथा कि भूखेडाकू कर्वट खर्वट आदि बस्तीलूटि खातेतो यह देना साहस कर्मों के अपराध में गणनीय न समुझो बल्कि बस्ती रक्षा करिलेने रूप यहभी एक यत्नन् कर्म जानो-पर इत्यादिसूचित छूटों के सिवाय कोई भाँति दुर्जन लोगों का सहाय करनेवाले ग्राम वासी दंडदान योग्यहोंगे २७१ ॥

बाशिन्दों के सिवाय राजसंबंधी भी यदि ऐसेहों तिनको मनु कहते हैं (राष्ट्रेषुरक्षाधिकृतान्सामन्तांश्चैवचोदितान् । अभ्याघातेषुमध्यस्थान्शिष्याच्चौरानिवद्रुतम् २७२ अर्थात्-राष्ट्रके भिन्नात्मक देशविभागोंमें जे कोई दिक्पाल सूबाआदिरक्षाके अधिकारी किये हों या जेकोई राजसीमा के पासदेशपाल आदि राज प्रेरितबसते हों जाहर में शुभचिंतक वा अक्रूर समुझे जातेहों. वेही उक्त चोरों के दुष्कर्मों का उपदेशआप करनेमें मध्यस्थहों तिनको यही व्यवस्था जानि परनेपर अतिशीघ्र राजा चोरोंकेही तुल्य शासनकरै २७२॥ दिक्पाल देशपालों के सिवाय जोनिजराज का मुलाज़िम कोई अंगीकृतअहेदसंविद् आदि उलाँघैतिसकोसंविद्व्यतिक्रमधर्मके अनुसारमनुकहतेहैं (यश्चापिधर्मसमयात्प्रच्युतोधर्मजीवनः । दण्डेनैवतमप्योषेत्स्वकाद्धर्माद्विच्युतम्) २७३ अर्थात्-राजधर्मोंकी मर्यादा में परिनिष्ठित होकर उसही की मुलाज़िमत से आजीवन करताहो तिसकी धर्मजीवन संज्ञाजानो किंतु ऐसा धर्मजीवनी पुरुष मुतअहिद अधिकारी अपने अहेद संविद्रूपी धर्म समयोंसे परिच्युतहोवे किंतु समयों को उलाँघै तिसको राजा दण्डसे तपावै तद्वत् उसको भी कि जो निज अपने धर्मसे परिच्युतहोय सो यह दण्ड संविद्व्यतिक्रम नामाप्रकरण के अनुसार जो कुछ पाय जाय वही कर्त्तव्यहोगा-इसमें दोभाँति का परिच्युतहोना कहनेसे यहतत्त्वहै कि राजा सेवक भी दोभाँति के समुझने किंतु मुतअहिद गैरमुतअहिद जोभाषान्तर से कहलाते उनका लक्षण केवल इतनाहै कि एकसेवक मुख्य संविद्का स्वीकार करके नियत होतेहैं दूसरे यद्यपि संविद्का कुछ अङ्गीकार नहींकरायेजाते तौभी धर्मशास्त्र में जो उन्हींके अधिकार योग्य नियमों की मर्यादाहोय सोई उनकोअपना धर्मजानो किंतु ऐसे भी निज अपने धर्मसे परिच्युत होयँ-यद्यपि धर्मजीवन संज्ञा किसीएक विप्र विशेषकी भी होतीहै और उसहीके अनुसार इसका अर्थ भी कुछ और सिद्ध होताहै (पर) इस वर्त्तमान प्रकरणके प्राबल्य से वह अर्थ सूचित नहीं है २७३ उचित सहाय करनेसे मुखमोरैं तिनका दण्डहै कि-(ग्रामघातेहिताभङ्गेपथिमोषाभिदर्शने । शक्तितोनाभिधावन्तोनिर्वास्याःसपरिच्छदाः) २७४ अर्थ इसकादेखो ब्यौरेवार दोसौ इक्यासीकी अधिकोक्ति में प्रसङ्गसे दर्शाया गयाथा औरउसकेसाथ और भी ग्रन्थान्तर कई वचनहैं-और-योगीश्वर भी इसबातको निज मूलश्लोक दोसौउनतालिस के द्वितीय पादमें (विक्रुष्टेनाभिधावकः) इसरूप से कहचुके तहाँ देखो २७४ राजख़ज़ाना हरनेवाले आदि चोर डाकू बाग़ियोंका यह दण्डहै कि-(राज्ञःकोशापहर्तॄंश्चप्रतिकूलेषुचस्थितान् । घातयेद्विविधैर्दण्डैररीणांचोपजापकान्) २७५ अर्थात्-राज कोशागारमें से धनको हरनेवाले यद्वा आतेजाते धनकोलूटि लेनेवाले तद्वत् जे कोई दर्पीले लोग राजके प्रतिकूलहों किन्तु राजासे फिरगयेहों तद्वत् राजाके शत्रुओं

से मिलाप रखकर उनसे राजाका बहुवैर जे बढ़ातेहों तिनको उस अपराधकेही तुल्य राजा इच्छाके अनुसार विविध प्रकारकेबधबन्ध आदि दण्डोंसे अपघात करावै २७५ संधि काटकर चोरी करनेवालों को शूली दण्ड कहतेहैं-(संधिंछित्त्वातुयेचौर्यंरात्रौकुर्वन्तितस्कराः। तेषांछित्त्वानृपोहस्तौतीक्ष्णशूलेनिवेशयेत्) २७६ अर्थ इसका चौर्य प्रकरणमें योगीश्वरवाले दोसौ अठहत्तरि मूलश्लोक की अधिकोक्ति में लिखिचुके तहाँ देखो २७६॥ गँठिकटे उठाईगीरे आदि तीसरीबारमें बधदण्ड योग्य होते हैं-(अंगुलीग्रंथिभेदस्यछेदयेत्प्रथमेग्रहे। द्वितीयेहस्तचरणौतृतीयेबधमर्हति) २७७ अर्थ इसका ब्यौरेवार देखो दोसौ उनासी की अधिकोक्तिमें २७७ गँठिकटा उठाईगीरा आदिकी सहाय करनेवालेको अब कहतेहैं (अग्निदान्भक्तदांश्चैवतथाशस्त्रावकाशदान्। सन्निधातॄंश्चमोषस्यहन्याच्चौरमिवेश्वरः) २७८ अर्थ इसका दोसौइक्यासी की अधिकोक्ति में से देखो २७८ तड़ाग तोड़िदेने या जलमात्र काटिदेनेका यह दण्डहै कि-(तडागभेदकंहन्यादप्सुशुद्धवधेनवा। तद्वापिप्रतिसंस्कुर्याद्दाप्यस्तूत्तमसाहसम्)२७९ अर्थात्-स्नानपानआदि नानाभाँतिसे सहस्रोंकाउपकारजिससेहोताहै ऐसे उत्तम तड़ागको यदि कोई उसकासेतुकाटिदेने आदि प्रकारोंसे विनाशकरै तिसको जलहीमें डुबाकर प्राणघात करै यद्वा और किसी शस्त्रादिक से वध करै पर जो वह अपराधी उसको ज्योंका त्यों फिर संस्कृत करिदेना अंगीकारकरै और यहशक्ति उसकी संभव हो तो तड़ागकी दुरुस्ती उसपर करवाने पीछे मृत्यु दंडकेस्थान उत्तम साहसका धनदंडमात्र लियाजाय-यहां तड़ाग शब्दके उपलक्षण में जलाशयमात्र और भी समुझने जो जो पक्केनिर्मित्त हों यद्वा बहूपकारक हों और वे निपटविनाश कियेजावैं तब सर्वत्र यहीदंडहै २७९ राजकोष्ठागार आदि भेदनकरने या रथ हाथी आदि हरनेकायहदंडहै (कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान्। हस्त्यश्वरथहर्तॄंश्चहन्यादेवाविचारयन्) २८० अर्थ इसका ब्यौरेवारदोसौअठहत्तरिकी अधिकोक्तिमें से देखो किंतु उसीदोसौ अठहत्तरिवाले मूलश्लोक से योगीश्वरने भी बंदिग्राह आदि अपराधी दंड्यकहेथे २८०॥ तालावमें कुछ थोड़ीभी जलहानि करनेवालेका यहदंड है(यस्तुपूर्वनिविष्टस्यतडागस्योदकंहरेत्। आगमंवाप्यपांभिंद्यात्सदाप्यःपूर्वसाहसम्) २८१ अर्थात्-कोई पहिला बना तालाव जो प्राचीन किसी महात्मा ने सब लोगों के स्नानपान आदि सौख्य हेतुसे बनाकरछोड़ाहो तिसकेजलको कोईपुरुष दुनी सींचा सांचीआदि प्रकारोंसेहरिलेवै याकुछगादिलाकरै अथवाउसमें नादेयवावरसातीजलके आनेवालामार्गमेटिदेवै जिस्सेपीने औरस्नान करनेवालोंकोतकलीफहो यद्वाहोनीसंभव हो तो अपराधी पूर्वसाहस दंडदियाजाय क्योंकि(देवार्थंदनकूपादीनथास्रोतस्वनीजले।पानाधिकारिणःसर्वेसेचनेजन्तिकवासिनः-तथापि-यत्नोयमेचनाल्लोकामत्रेयुर्जल

कातराः। नसिंचेयुर्जलंतस्मादपिसंनिधिवासिनः) इत्यादि सूचितनियमोंकाव्यतिक्रम उसने किया-यहां दोसौ इक्यासी में भी तड़ाग शब्द जलाशयमात्रपर आरूढ़ है २८१ राजमार्ग सड़कों में मलीनता करने का अपराधहै(समुत्सृजेद्राजमार्गेयस्त्व मेध्यमनापदि। सद्वौकार्षापणौदद्यादमेध्यंचाशुशोधयेत् २८२ आपद्गतोऽथवावृद्धो गर्भिणीबालएववा। परिभाषणमर्हन्तितच्चशोध्यमितिस्थितिः)२८३ अर्थइनकाछास-ठि संख्यावाले परिच्छेद में एकसौ उनसठि मूलश्लोक की अधिकोक्ति मध्ये (सीमा शुद्धिप्रसंग) नामकपाठसे प्रारंभ लेकर उस अधिकोक्ति के समाप्ति होनेताई जाक-रदेखो उतने पाठमात्रकी व्यवस्था भरमें जो जो बातें वर्णन हुईहों सो सबराज मुद्दई होने के व्यवहार हैं और लिखना उनका इसी जगह आवश्यक था परंच सीमा कीसफाई रूपकारण मुख्यमाना जाकर उसही के प्रसंग में दर्शाई गईं-उनमें सबसे प्रथम पराई भीतके समीप मैलाकरने का जो चर्चाहै सो यद्यपि राजमुद्दई होने से व्यतिरिक्त समुझाजाताहो क्योंकि जिसकी वह दीवार आदि होगीसोई पुरुष मुद्दई होना संभव है तथापि ऐसासंभव सिर्फ़ कूचे आदि भीतरले वास वसायतसे अपे-क्षित है अर्थात् जहां पराई भीत राज मार्ग आदि सड़कों के समीप या चौराहाके समीप यद्वा देवस्थान आदि के समीप होगी तब सरकार मुद्दई होनाभी अविरुद्धहै (और)मैलाकरना एक निदर्शनहै कि जिसके उपलक्षणसे वे सभीबातें समुझीजाती हैं जो सड़क रूँधनेवाली हों जैसे टीला वा गड़हिला करना या गाड़ी और चौपाये आदि खड़ेकरने इत्यादि सभीबातोंका चर्चा वहांदेखो जबतक एकसौउनसठिकीअ-धिकोक्तिपूरीहोय-इसभांति की कुछ अधिकविशेषबातें आगे दोसौअट्ठासीके श्लोक द्वारामनुकी उक्तिदेखो २८२।२८३ वैदसाथिया जर्राहआदि सभी चिकित्सकलोग जो जो विद्यावलसेहीन कच्चेहोकर यद्वा लोभसे विपरीत चिकित्सा करतेहों तिनकादंड-(चिकित्सकानांसर्वेषांमिथ्याप्रचरतांदमः। अमानुषेषुप्रथमोमानुषेषुतुमध्यमः)२८४ अर्थ इसका देखो दोसौ सैंतालिसकी अधिकोक्तिमें २८४ चरख ध्वजा आदितोड़ फोड़ करनेवाले का दंड(संक्रमध्वजयष्टीनांप्रतिमानांचभेदकः। प्रतिकुर्याच्चतत्सर्वंपंच दद्याच्छतानिच) २८५ अर्थात्-संक्रम नाम चलनेवाली कलैं जैसेतोप चढ़ाने योग्य चरख आदि अनेक संक्रमसमुझिलेने और ध्वजा तथाध्वजाकीयष्टीवांसवल्ली आदि जो कि वहुत ऊँचाचिह्न विशेष खड़ाकरते जिस्से राजसेना आदिके स्थान अतिशय दूरसेभी देखपरते हैं इत्यादि कोई और वस्तु जो जो इनके तुल्य डेरा तंबू आदि समुझे जायँ और प्रतिमातसवीरें आदि जो आवश्यक राजकाजों वाले चिह्न विशेष समुझे जाकर कहीं लगाये यद्वा रक्खे जायँ किन्तु यहां प्रतिमा स्थापित देवमूर्ति नहीं समझनी उसका दंडवधपर्यंत है इनचीज़ोंका तोड़फोड़ करनेवाला ज्यों

का त्यों उस वस्तुको बनवादेवे और फिर पांचसौ तकदंडभी वहभरै २८५ माणिक्य आदि मणिरत्नों के विगाड़ने तद्वत् अन्य चीज़ों को मिलाकर दूषित करनेकायहदंड है(अदूषितानांद्रव्याणांदूषणेभेदनेतथा। मणीनामपवेधेचदंडःप्रथमसाहसः) २८६ अर्थात्-रसादि कोई द्रव्य जो अदूषित किंतुएक रूपीहो तिसमें खोंटाद्रव्यमिलाकर दूषित करिदेने मध्ये पूर्वसाहस दंडहै दृष्टांत इसका यह कि जैसे दशमनघी में आठ मनमहुआ का तेलामिलाकर यद्वा दशमनघीमें पांचमनकरड़ कुसुंभ का तेलयद्वा पशुओंकी चरबी आदि कोई और बस्तुमिलाकर उसको सस्ता बिकने के अर्थसे बिगाड़ै एवं सर्षप तैलमें कँटसीला सत्यानाशी आदि कुतैलों को मिलाकर बेचें एवंहलवाई यद्वा कोई और दूधवाला सायंकालिक सद्यस्कता जे दूधमें जोकच्चा या पक्का हो कुछप्रातःकालिक दिनका रक्खादूध मिलावे यद्वा घोसीही बीमारपशुकादूधनीरोगी पशुओं के दूधमें मिलाकरहलवाईको देदेवे तौ इत्यादि कुकर्म सुनते सारहीसरकार मुद्दईहोनेकी अधिकारी है इसहेतुसे कि ऐसी सविकार चीज़ें खानेसेविस्फोटकहै. जा- महामारी आदि प्रायःरोगोंकी उत्पत्ति शीघ्रहोतीहै कि जिनसे प्राणबाधामें संदेहनहीं एवं माणिक्यादि अभेद्यमणी जो जो भेदन करने योग्यनहीं तिनकोकोई कच्चादूकानदारआदि किसीबहानेसेभी तोड़ैफोड़ै यद्वा वेधनकरनेयोग्यभी मुक्तादि प्रसिद्धमणियों को कुठौर वेधै जिस्से निपट निकम्मी या लघुमूल्य की होजाय तौभी पूर्वसाहस दंड उसपर योग्यहै इसहेतुसे कि ऐसीचीज़ें टूटे पीछेप्रायःजुड़तीनहीं और सिद्धांतमेंअलभ्यहोने से तद्रूपशीघ्र मिलतीनहीं इस्से कारीगरको योग्यथा कि अपनेगुणसे पक्का होने विन इसकार में निजहाथ लगाने को उत्साह न करता-योगीश्वर ने इस पिछले अद्धावाली बातको स्पष्टयद्यपि नहींकहा तौभीदोसौ चालीस मूलश्लोक में (अयोग्योयोग्यकर्मकृत्)इसचौथे पादके अनेकार्थत्वसे संसूचित कियाहै और यहां मनुके पहिले अद्धामें जोखोंटी वस्तुओंका मिलानाहै तिसबातको योगीश्वरनेभी दो सौपचासवाले मूलश्लोकसेकुछ ब्योरेवार कहकर आगे दोसौपचपन मूलश्लोकपर्यंत इन्हींबातोंका विस्तार निरन्तर दर्शितकियाहै तत्रैवदेखो (और) यहजो इतनाअंतरहै कि उन्होंने केवल सोरहपणका दंडकहा सो उसबात में समुझना जबकि उसीजाति की खोंटीचीज़ अपनीजाति में हमजिन्समिलाई जाय जैसे मीठे नमकमें फीकानमक मिलना एवंश्रेष्ठ घीमें खोंटाघी मिश्रितकरना तथा नवीनउरद मूँगमेंपुराने उरदमूँग का मिलाना आदिजानो और यहांपूर्व साहसदंड दोनों पचासपण कासनुने जोकहा तिसकावही प्रयोजन है जो ऊपरअर्थोंमें दृष्टांत दियागया किघीमें महुआ तथाकरडकातेल यद्वा चरबीआदि मिलावै ऐसी गैरजिन्स की मिलावट यहांसमझना २८६ ग्राहक लोगोंसाथ पण्य अथवामूल्यकी हिंभांति या दहुभांति करनेकादंड (समेहिवि

षमंयस्तुचरेद्वैमूल्यतोपिवा ।सप्राप्नुयाद्दमंपूर्वंनरोमध्यममेववा) २८७अर्थात्-(समैः)स-
ममूल्य देनेवालोंसे इसभांतिकी विषमताकरै कि एकोंको अच्छीचीज़ दूसरोंको खोटी
वही चीज़देवै जिसकेदाम सबहीने बराबरदिये अथवा चीज़सबको एकसीही देकर
उनमें मूल्यकी विषमताकरै किविना उधारआदि हेतुओंकेभी एकोंसेकुछ थोड़ामूल्य
औरोंसेकुछ बहुतमूल्य ऐसा कहकर जोलेले कि उन अमुकामुक ग्राहक लोगोंसेजो
लियाथा सोतुमसे लिया तो इसभांतिकी विषमता करनेवाले किसी सौदागरको अ-
नुबन्ध के अनुसार पूर्वसाहस दंडयद्वा मध्यमसाहस भी कदाचित्होय-परंचये अप-
राध ऐसी दशापर आरूढ़होते हैं किजबकोई चीज़ राजकल्पित निरखोंके अनुसार
देनी कहकर उसकेनिपट अजानको कुछधोखादेय क्योंकि बिरलेअवसरमें व्यापारी
या दूकानदार अपने किसी प्रयोजनसे निजमालको कुछऔने पौनेसेभी टोटाखाकर
वेंचिदेताहै वहरूपक इसदृष्टांतमें निरर्थक है कि उसकोइतना क्यों देदियाथा २८७
राजमार्ग सड़कोंमें कुछबन्धन खड़ाकरने और प्राकारनाम शहरपनाह तोड़देने यद्वा
खाईं आदिदेने मध्येदंड है(बन्धनानिचसर्वाणिराजमार्गेनिवेशयेत्। दुःखितायत्रदृश्ये
रन्विकृताःपापकारिणः २८८ प्राकारस्यचभेत्तारंपरिखाणांचपूरकम्। द्वाराणांचैवभं
क्तारंक्षिप्रमेवप्रवासयेत्) २८९ अर्थात्-सभी भांति के बन्धन जो जो होतेहों उनमें
कोईसा यदि बन्धन राजमार्ग में आरोपै जैसे मोटा लक्कड़ लेकर तिरछा बीचसड़क
में रखिआवै यद्वा मोटारस्सालेकर सड़कसमीपी वृक्षोंमें दुतरफा बाँधिआवै या गज़
दो गज़ ऊँचीलकड़ी गाड़िआवै या छोटीमेखें ठोंकिआवै जिस्से रातिमें निकसनेवाले
बाहन आदि पीड़ा पाते देखिपरैं एवं जो कोई राजमार्गमें दीवारआदि राजासे बिन
बूझे खड़ीकरावै या बेमौक़े एकछोटादरवाज़ा खिड़कीआदि जैसाकूँचेबंदीमें आवश्यक
होताहै लगवावै जिसमें हाथी आदि निकसने का संकोच होय या दूरस्थ दिव्यस्था-
नोंका अवलोकन रुकताहो तो ये पापकारीभी प्रत्येक विकृतहोवैं किन्तु राजदंडपा-
कर ये सब विकृत कियेजावैं-इनकादंड प्रकार निचले वाक्यमेंभी देखो (यत्रबंधना
दिहेतुभिर्मार्गेगजरथादिवाहनादयः प्राणिनोदुःखितादृश्येरन् तत्रतेष्वपराधेषुयेपाप
कारिणस्तेपि विकृताभवेयुरितिदंडोक्तिर्ज्ञातव्यानह्यत्रमनुमुक्तावालिकल्पितभावसंग
तिः)२८८ एवं जोकोईदुर्जन (प्राकार) नामशहरपनाह कोटक़िलेकीरैनीपरकोटाआदि
तोड़ै फोड़ै (या) परिखानाम खाईं खंदक कूराकर्कटसे भरिदेवै या वृक्षादिकउसमेंभ-
रिकै आटिदेवै यद्वाशहरपनाहऔरपरकोटाके दरवाज़ेतोड़िडाले इनकोशीघ्रदेशनिका-
लादेवै और धनदंडभी कि जैसा साहसप्रकरणकेअनुसार उत्तमसाहस दंडपायाजाता
हो २८९मंत्र यंत्र आदि प्रयोगोंसे यदि कोई मारणहेतुमें अभिचारकरै तिसका दंड
(अभिचारेषुसर्वेषुकर्त्तव्योद्विशतोदमः । मूलकर्मणिचानाप्तैःकृत्यासुविविधासुच) २९०

अर्थात्-सबतरहके अभिचारों में और मूलकर्म में और विविधाभांति कृत्याओं में भी दोसौपणका दंडहै-आशयइसका यहकि(अभिचार)नामहिंसारूपी मंत्रयंत्रहोमादिक जो अथर्ववेदके विधानसे या तंत्रशास्त्रके प्रयोगोंसे वा इन्द्रजालसे यदिकोई मारणअर्थ किसीकेहेतु करताहो यद्वालौकिक टोनाजादू आदिकरनेलगै यद्वा (मूलकर्म) नाम कोई औषधबूटी खोदि गाड़िकर मंत्रादि विधान करनेलगै या पदकी धूलिउठानेलगै तौ इत्यादि प्रकारोंके प्रारंभहोतेसार दोसौपणका दंड तबहींतक होसक्ता है कि जबतक ऐसेकर्मोंसे किसीको मारणफलकी प्राप्ति न होसकीहो किंतु मरजाने में फिर मनुष्यमारणकाही पूरादंडहोगा-एवं विविधभांति की (कृत्या) साधारण वशीकरण व्यामोहन आदि जोकि माता पिता भार्य्या आदि आत्मीयोंके सिवाय कोई गैर उसकाधन हरने आदि निमित्तोंसे यदि करै तोभी दोसौपणकादंड उसपर करणीय है (माता पिता भार्य्या आदिकी छूट इसमें इस हेतुसे कि प्रायः ये लोग अपने बिमुख मनुष्यका हितचाहकर बशकरने हेतु ऐसाकरते हैं कुछ मारण हेतु नहीं करते इस्से इनको दंडनहीं देना) २९० खोंटाबीज बेंचनेवाले और ग्रामादि सीमा भंगकरनेवालोंका अपराधदंड (अबीजविक्रयीचैवाबीजोत्कृष्टंतथैवच। मर्यादाभेदकश्चैवविकृतंप्राप्नुयाद्वधम्) २९१ अर्थात्-अबीज जो निपट जमिसकनेयोग्य नहीं तिसको अच्छा बीज कहकर बेंचै यद्वा खोंटे बीजमें कुछ थोड़ा अच्छा बीजभी मिलाकर सबको उत्तमकहकर देदेवै ऐसा विक्रेता और वहपुरुष जो ग्राम क्षेत्रआदि की सीमाओंवाले चिह्न मिटावै सो वधबंध रूप तीव्र दंडपावै-योगीश्वरने यहबीज विक्रयवाला नियम परीक्षा सहित एकसौ इक्यासी मूलश्लोक से कहदिया था कि बीजपरीक्षा करके लेनायोग्य है इसलिये उसकादंड विषयिक चर्चा नहीं किया परजो खोंटा बीजकोई बेंचि बैठै तिसका दंड निर्णय दोसौ पचासको आदि लेकर दोसौ बावन मूलश्लोक तकजो साहसकर्मोंकी व्यवस्था है उसमार्गसे होसक्ताहै इसलिये भिन्नवाक्य नहीं कहा. मनुने इसबात को कुछउग्रसाहस जानकर भिन्नात्मक दर्शितकियाहै कि बीजप्रायःविक्रेताके विश्वास पर भी लियाजाताहै औरउसके खोंटे निकसि जाने से उसखेत की फ़सल मारीजाती है कि जिस्से राजभागमें भी हानि संभव होतीहै इसलिये खोंटाबीज देनेकामार्ग मेटि देनेके निमित्त से यहकहाहै कि मारपीटरूप तीव्रदण्ड पावै-इसके पिछले अद्धामें जो सीमा भङ्गकरना कहा तिसको याज्ञवल्क्यने भी एकसौसाठि मूलश्लोक में (मर्यादायाःप्रभेदेच) इत्यादि पाठसीमा निर्णयका स्थल मुख्य जानकर तत्रैव दर्शित किया है और मनुने सरकार मुद्दईहोना मुख्य प्रयोजन लेकर यहाँ प्रकीर्ण प्रकरणमें दर्शाया दोनों ऋषियोंका सिद्धान्त न्याय वरिष्ठहै २९१ ॥इतिप्रभिन्नव्यवहाराणांलक्षणानि ॥(अथात्रसर्वदण्डविधिशेषप्रकारः)

यद्यपि प्रत्येक व्यवहारों के अपराध में सर्वत्र जैसा योग्यथा सो दण्ड उत्तम मध्यम आदि भेदों से दर्शायागया तथापि यह आशङ्का भी सर्वत्र इतनी शेषहै कि जितना दण्ड उत्तम या मध्यम आदि जिस अपराधीपर न्यायानुसार लेनानिश्चितहोय उतना द्रव्य उसके घरमें भी न होय तिसपर क्या प्रतिकार करना योग्यहोगा तिसकी शेष-विधि अब कहतेहैं सर्वत्र काम आवेगी-तदाहमनुः (क्षत्रविट्शूद्रयोनिस्तुदण्डन्दातुमशक्नुवन्। आनृण्यङ्कर्मणागच्छेद्विप्रोदद्याच्छनैःशनैः २२९ अपिच-स्त्रीबालोन्मत्तवृद्धानांदरिद्राणांचरोगिणाम्। शिफाविदुलरज्ज्वाद्यैर्विदध्यान्नृपतिर्दमम्) २३०इतिनवमाध्यायेभृगुः-अर्थात् क्षत्रिय, वैश्य,शूद्र तीनोंजातिके मनुष्य जबकि बोला राजदण्ड जुरमाने रूप धनकी कमताईसे देसकने में असमर्थहों तब ये निज निज करने योग्य राजकर्म करके उस धनदण्डसे उद्धारपावें किंतु जितनी अवधितक उद्धारहोनान्याय-सूत्र से यथोचित समुझाजाय उतनी अवधितक येलोग निजनिज कर्मोंके वशहोकर कारागार आदि निरोध स्थान में निरोधित रक्खेजायँ यह सिद्धान्त है (और) अधिक विशेष इसका आगे बढ़कर निचली चौरादिक सर्व दुष्टोंकी दण्डादि व्यवस्था में जो मनुके अष्टम अध्यायवाला तीनसौ दशवांवाक्य हो तिसके अर्थ को अवलोकन करो-पर जब कोई अपराधी विप्र जातीहो और तत्काल ऐसे धनको देसकनेमें अस-मर्थहो तौ वह धीरे धीरे क्रम क्रमसे आप कमाकर देता रहे और ध्वन्यर्थ इसकायह कि उस्से दंडकमाकर देनेकी प्रतिज्ञासाथ प्रतिभूपक्कालेकर छोड़ि देवै किन्तु कारागार में कुछकर्म कराना योग्यनहीं २२९–और भी-जब कोई अपराधी स्त्री मात्रहो या बालकहो या उन्मत्त सिड़ीदिवानाआदि कोईसा विक्षिप्तहो या बूढ़ाहो या रोगीहो यद्वा निपटदरिद्री जो आगेको भी धनपैदा करसकनेकी शक्तियोंसे संयुक्त न हो तौ सर्वत्र ऐसेदुर्बलतुच्छोंका यहदंडप्रकारहै कि शिफाविदुल किन्तुबाँसी कमची बेत औरचामी सुतीरस्सी आदि से कुछमारपीट या बँधवाना आदि जैसा योग्य समुझाजाय तैसा देशकालअवसर और भूतात्मक वस्तुओंके अनुरूपराजाकरै २३० इन्हींदो श्लोकों मेंसे पहिलादोसौ उनतीसवाला वाक्यमनुके नवयेंअध्याय में जोद्यूतकर्मों का प्रति-षेध करनेपीछे सेवनकर्त्ताकेदंडराजइच्छाके अनुकूलभृगुनेदोसौअट्ठाइस में दर्शा कर नीचेरक्खा तिसका अर्थ जो कुल्लूकजी ने हारेहुये जुआरी लोगों के पक्षमें दर्शाया सो सब निपट असङ्गतजानो क्योंकि प्रथम तौ यह दूषण पायाजाताहै कि हाराहुआ जुआरी निर्धन होनेपर भी जीतेहुये जुआरीका दास वनकर धनशोधन सिर्फ उसी दशामें करसक्ताहै जो पहिले उसे प्रतिज्ञा देकर खेलाहो अन्यथा धनकी हारिजीति बदिकर खेलाहो तिसमें राजसे यह न्यायहोना सूचित नहींहै कि राजा उसको दास वनाकर किसी जीतेहुये पक्षीके हवालेकरै बल्कि हाराद्रव्य दिलानाभी यहसिर्फ नारद

आदि बिरली स्मृतियों का सिद्धान्तहै अर्थात् मनुजी ने द्यूतकर्मका प्रतिषेध सर्वथा यहाँतक आरोपित कियाहै कि राजा अपने राजभर में द्यूतकर्म सँचरने भी न दे तौ फिर हाराधन दिलवाना या उसके पलटे उसका दास बनाना मनु क्योंकर आपकहते इस्से मनुकी मुख्य विवक्षा से विपरीत अर्थ क्योंकर मानाजाय जिसकी मूलवाक्यमें कुछ निपट समस्यातक भी नहींहै और द्यूत विवादवाले प्रकरणमें भी दोसौ उनतीसवाला वाक्य नहीं-किंतु सिर्फ़ उसकी सीमापर इसहेतु से उपस्थितहै कि आगेआगे सर्व सामान्य दुष्कर्मोंके दण्ड वर्णन होनेलगे तिनमें यही व्यवस्था है जोऊपर दोसौ उनतीसवाला अर्थ यहाँ दर्शायागया (अथचौरादीनांसर्वदुष्टानांप्रत्यवश्यन्दण्डधारणफलादिकंत्वाहमनुः)-परमंयत्नमातिष्ठेत्स्तेनानांनिग्रहेनृपः। स्तेनानांनिग्रहादस्ययशोराष्ट्रञ्चवर्द्धते ३०२ अभयस्यहियोदातासपूज्यःसततन्नृपः। सत्रंहिवर्द्धतेतस्यसदैवाभयदक्षिणम् ३०३ सर्वतोधर्मषड्भागोराज्ञोभवतिरक्षतः। अधर्मादपिषड्भागोभवत्यस्यह्यरक्षतः ३०४ यदधीतेयद्यजतेयद्ददातियदर्चति। तस्यषड्भागभाग्राजासम्यग्भवतिरक्षणात् ३०५ रक्षन्धर्मेणभूतानिराजावध्यांश्चघातयन्। यजतेऽहरहर्यज्ञैःसहस्रशतदक्षिणैः ३०६ योऽरक्षन्बलिमादत्तेकरंशुल्कञ्चपार्थिवः। प्रतिभागञ्चदण्डञ्चससद्योनरकंव्रजेत् ३०७ अरक्षितारंराजानंबलिषड्भागहारिणम्। तमाहुःसर्वलोकस्यसमग्रमलहारकम् ३०८ अनपेक्षितमर्यादंनास्तिकंविप्रलुम्पकम्। अरक्षितारमत्तारंनृपंविद्यादधोगतिम् ३०९ (एतस्मादेव) अधार्मिकंत्रिभिर्न्यायैर्निगृह्णीयात्प्रयत्नतः। निरोधनेनबन्धेनविविधेनवधेनच ३१० निग्रहेणाहिपापानांसाधूनांसंग्रहेणच। द्विजातयइवेज्याभिःपूयन्तेसततंनृपाः) ३११ इत्यष्टमाध्यायेभृगुः-अर्थात्-मनु कहते हैं कि राजा अपने राज्यमें सदैव चोरचिकारों के पकड़नेमध्ये बहुतउत्तम यत्नपर आरूढ़ होय क्योंकि चोर आदि दुर्जन पंक्तियों का अच्छा निग्रह कियेरहने से इस राजाका सदैव यश विख्यात होता है पुनि राज्यभी निरुपद्रव होकर बढ़ता है ३०२ चोरआदि को दंडदेनेद्वारा सज्जन प्रजा लोगोंको जो राजा सदा सर्वदा अभयदान करता रहताहै निरंतर सबका पूज्य और श्लाघ्य वही होताहै (और) यहसर्वकालिक अभयदानरूपी बहुत दक्षिणावाला सत्र नामक यज्ञ उसका सदा बढ़ता रहता है अर्थात् (बहुभ्योदीयतेयत्रतृप्यंतिप्राणिनोबहु। कर्तारोबहवोयत्रतत्सत्रमभिधीयते) इस वचन के अनुसार सत्र वही कहाता है कि जिसमें बहुतों को दक्षिणा दीजावे बहुतप्राणी जिसमें भोजन आदि से संतुष्ट होवें यज्ञ करने करवानेवाले कर्ता जनभी बहुत होवें बल्कि इसका आशय यह भी है कि बहुत दिन तक होतारहै-परंच तो भी ऐसे सत्र में कुछ अवधि नियतअवश्य होगी उतने काल पीछे करना बंदहोगा इसमें संशय नहीं है और अत्रोक्त अभयदान की दक्षिणावालासत्र सदैव होता रहताहै और

सत्र के ही तुल्य फल को सदा असंख्यगुण परिमाण देता रहता है यह सत्र उससे बहुत बड़ा जानो ३०३ और एक बहुत बड़ा कारण प्रकट करते हैं कि-प्रजा की रक्षा करने वालेराजा को प्रजा के धर्म कर्मोंका षष्ठांश फल पहुँचता है और प्रजाकीरक्षा नहीं करनेसे षष्ठांश उनके पापकर्मोंकाभी राजाको पहुँचताहै इसलिये निरंतरउनकी रक्षाकरै ३०४ क्योंकि प्रजामें जो कोई किसी पुनीत विद्याका आराधन करताहै या पूजापाठ जप यज्ञादि कर्मकरताहै या दान विशेषकरताहै या देवपूजनआदि जोकुछ उत्तम कर्म करताहो तिसकी भलीभांति से रक्षापालन करने से उस कर्मका षष्ठांश भागी राजाहोताहै ३०५ स्थावर जंगम सभी प्राणियोंकी रक्षा राजा शास्त्रविहितशासन कर्मद्वारा करते हुये और चौरादिक वध्यप्राणियों को ताड़नआदि घातकर्मकरतेहुये नित्यंप्रति उस पुण्यफलको पाताहै जो लक्षगौओंके दान से प्रत्येक यज्ञहोता हो ३०६ जो राजा उसकी रक्षानहीं करतेहुये प्रजाओंसे कुछ राजबलिको लेताहै या राजशुल्क लेता या प्रतिभाग नामक राजभाग लेताहै या दंडधनको लेताहै सो मरतेही तत्काल नरकमें जाताहै-अर्थात् (बलि) संज्ञक एक राजकर उसभांति का समुझना जोधान्य आदि पैदावारीसे षष्ठांशआदि भागलियाजाताहै और (कर)संज्ञक एक राजकर उसभांति का समुझना जो खेतीके सिवाय कोई और पेशाग्राम नगरों के निवासी वा सुखवासीआदि करतेहों तिनसे प्रतिमास या भाद्र पौषमास आदिनियमसे कुछ लियाजाता हो और (शुल्क) संज्ञक एक राजकर उसभांति का समुझना जो स्थलमार्ग या जलमार्ग आदि नियतस्थानोंमें व्यापारी आदि वणिजकरनेवालों से कुछ द्रव्यउनकी माल भर्तीके अनुसार लियाजाताहो और (प्रतिभाग) संज्ञक एक राजकर उसभांति का समुझना जो बाज़ारोंमें विक्रय हेतु पहुँचेहुये फलफूल वा शाकादिक तथा तृणादिक वस्तुओंसे कुछ चुंगीके अनुरूप उपायन मात्र लियाजाताहो और (दंड) संज्ञक एक राजकर उसभांति का समुझना जो व्यवहारोंके प्रयोगमें कुछ बादी प्रतिवादी आदि लोगोंसे या और किसी अपराधी आदिसे जुरमानेरूपलिया जाताहो ३०७ रक्षानहीं करनेवाला राजाप्रजा लोगोंसे जो राजबलि षष्ठांशपैदावारी आदि हरताहै तिसराजाको सब लोगों के अशेष पापरूपी मैलउतारा खानेवालासमुझो यह मन्वादिक सब ऋषिवर्य्य ऐसा कहते हैं ३०८ यदि कोई राजाशास्त्र की मर्यादाको नमानिकर उलांघैऔर निजप्रकृतिसेही नास्तिकहो अर्थात् परलोक झूठ कहकर उसके पक्षपरआरूढ़ बनारहताहो और बहुधा अनुचित दंड करने आदि से धन हरताहो लाभ विहीन रक्षाकर्मोंसे उपेक्षारखताहो कुसमय आपत्काल में भी राजकर बलिद्रव्य लेने आदि में कठोर चित्तहोय ऐसे राजाको अवश्य नीचगतिको जानेवाला जानो ३०९ राजाको यह योग्यहै कि चोर चिकार आदि अधर्मी जो जो

हाथ आवैं तिनको सत्यनिर्णयकियेपीछे जैसा छोटाबड़ा तीव्र उसका अपराध निश्चित होय तिसके अनुरूप तीन उचित कल्पों से प्रयत्न करके शासन करै अर्थात् या तौ कारागार में निरोध नाम क़ैद रक्खे या निगड़ बेड़ीकाष्ठ आदि से भी बंधनअधिक दोषमें करवावे अथवा तीव्र महापराधों मध्ये ताड़न आदिलेकर अंगच्छेदनवधपर्यंत जैसा योग्यहो यद्वा प्राणवियोग विनादोनोंतीनों कल्पइकट्ठे कियेजायँ सो यहकल्पभी उस दंडकेउपरालू जानो जो जो धनदंड उत्तम मध्यम पूर्वसाहसरूपकहींसर्वत्र जैसा नियतहो३१०पापियोंका निग्रहकर्म और साधुओंकासंग्रह कर्मकरनेसे राजालोगनित्यं-प्रति उसभांति पवित्र होते हैं कि जैसे प्रतिदिन पंचमहायज्ञों के कर्त्तव्यसे द्विजाती शुद्ध होतेहैं ३११ अब आवश्यक छूटैंभी कुछ नीचेवर्णन करतेहैं (क्वचिद्राज्ञांक्षांतिरेव श्लाघ्यानप्रतिकारः)-एतदप्याहमनुः (क्षन्तव्यंप्रभुणानित्यंक्षिपतांकार्यिणांनृणाम्। बालवृद्धातुराणांचकुर्वतांहितमात्मनः ३१२ (कुर्वताइत्यपिपाठांतरं-तच्चप्रभुणाइत्यस्यविशेषणमितिकेचित्) यःक्षिप्तोमर्षयत्यार्तैस्तेनस्वर्गेमहीयते । यस्त्वैश्वर्यान्नक्षमतेनरकंतेनगच्छति) ३१३ इत्यष्टमाध्यायेभृगुः-अर्थात्-राजकर्म साधन करते हुये राजाओंको यह एक और प्रतिज्ञा शिक्षारूप है कि सर्वशक्तिमान् समर्थ होकरभी अग्रोक्ततेरहवें श्लोकमें दर्शायाहुआ सदैव अपना हितचाहिकर आक्षेप करनेवाले कार्यियों की और वालक बूढ़े रोगियोंकी असंगत आक्षेपरूपी उक्तियों को सहलेना योग्य है अर्थात् अपने नेत्र कान दोनोंसे प्रत्यक्ष देखसुनकर भी कुछ दंड न देवै वलिक जो वनि आवै संभव हो उनकी उसी पीड़ाका प्रतिकारभी कुछ करै कि जिसके मुख्यहेतु से असंगत आक्षेपकी उत्पत्ति हुई समुझीजाय-क्योंकि-प्रायः विरले कार्यीलोग मुद्दई या मुद्दआअलेह जिनके व्यवहार देशपालों या धर्माध्यक्षों से कुछ अच्छे निर्णय नहीं होसक्के यद्वा राग लोभ भयादिक से विपरीत कियेजाते हैं और उनमें सत्ता इतनी नहीं है कि निज व्यवहार को अव राजा तक पहुँचावें तवहीं दुःखित होकर क्षोभ पूरितहुये असंगत कोई आक्षेपरूप उक्तियुक्ति कल्पितकरके कहीं विहारमार्ग आदि अवसर पाकर ठेठराजाके सन्मुखजाकर व्यक्त करनेलगते हैं इसभांतिकी उक्तियों वा युक्तियोंका कुछ कोई एकस्वरूप निश्चितनहींहै अर्थात् वही प्रयोजनवाला अपनी उत्तममध्यम नीचवुद्धि के अनुरूपजो वनिआवै सोई करताहै सिद्धांतसवका एक लक्ष्यपर आरूढ़ है कि उनउक्तियों वा युक्तियोंमें निजराजाको शरमिन्दा करने लगताहै(दृष्टांत) जैसा दिवसमें मशालका उजीनालेकर सन्मुख दिखलाना यह तो युक्तिकास्वरूपहै इत्यादि नानाभांतिजानो और (उक्ति) नाम केवलमुखसेही कुछवात वनाकर कहनी (इसकादृष्टांत) जैसा एकविदेशस्थपुरुष एकार्कीका मार्ग जो अज्ञान निवासस्थान होनेके हेतुकोई वारिसउसका तत्काल न मालूमहुआ इस्से टिंडिमघोष

करवाने पीछे सीगे लावारिस मध्येनाजिर अदालतके सुपुर्दहुआ कईबर्षोंतक लेने वाला कोई नहींआया इतनेमें दोतीनहाकिमयहां बदलेगये नाजिर आदि अदालती कईलोगोंने इसबातको ख़फ़ीफ़ जानकर उसकीकोई अग्रिमउक्ति युक्ति गांठिगूँठि उक्तमालको मिलि बांटकर पचालिया-पीछे उसके वारिस खबरपाकर आनिपहुँचे और उसमालके मिलनेहेतु उपाय करतेकरते वर्षमात्र ठहरे खर्च खाया परवहमाल उनकेहाथ न आया किन्तु अदालतीलोग नवीनहाकिमको समुझादेतेथे कि दावीदार बहुत मुद्दत पीछेआया और इसदफ़तरकोठीमें दीमक की बहुताइतहै बरसातैंखाकर मालमट्टी हुआ क़सूर उसकाहै सो यही सुनकर हाकिम उसको उत्तर दे देते रहे कि तुमने बहुतकाल पीछे ख़बर ली हम लाचार हैं जो माल तुम्हारा दीमक ने खा लिया-आख़िर एक दिवस दावीदारने दुखियायकर झल्लाहटसे इजलास आगे ऊंचे स्वरसे यह उच्चारण किया कि (अगरऐसी प्रबल दीमकहै इसदफ़तरमें कि जिसने मेरे बापका लोहापीतल आदि भी सब इतना इतनाधन भँछि लिया तो क्योंकर यहां हजूरी कुरसी सिंहासन और दफ़तर कागज़ात उसके खानेसे बचगये)यह कथन उसकी एक आक्षेप रूप उक्तिहै इत्यादि नानाभांतिसे बहुतेरी और भी उक्तियां समुझलेनी-यद्यपि इसमें संभवथाकि हाकिम ऐसे कुरसी दफ़तरवाले कटुक शब्द सुनकर उसको जो चाहे सोई दंड भी देसक्ता था परंच हाकिम का यह धर्मनहीं है अर्थात् अगले तेरहवें श्लोकमें जो धर्महै तिसधर्मके अनुसार ऐसासुनते सारउसके कानोंमें सन्नहटाहुआ क्षणमात्र ध्यानकरते साथ कहा कि शायद दोपांववाली दीमक हो अहेल्कारोंको तत्काल आज्ञादी कि इसबातका सबूतकामिल जल्दतर पहुंचाओ और मुद्दई का राज़ीनामा दाख़िल करवाओ नहीं तुम्हारी कुशल क्षेमनहींहै लाचार जैसे बना तैसे नगदी देकर उसका राज़ीनामा दिलवायागया-यह दृष्टांतकेवलकार्य्यी लोगोंके आवश्यक जानकरदर्शायेगये-इनके उपरांतकभी बालकअपने बाल स्वभाव से और बूढ़ेनिज विक्षिप्त प्रकृतिसे याकोई अद्भुतक्लेश पानेसेकि जिसमें किंचित्राज का संसर्ग पायाजाताहो या बिरलेवृद्ध प्रतिष्ठित अपनी सिर्फ़ अवस्थाकी अधिकता सेही-एवं महारोगी आदि अपनेचित्तकी आकुलता या कुछदुःखविशेष पानेसेभी मुँहफट्ट होकर आगापीछा सोचेबिन जबचाहें तभीराजाको कुछ अनुचित आक्षेपरूप उक्तियां कहनेलगते हैं और बिरले आत्मरूप का हित करनेवाले ज्ञानवान्भी बहुश्रुत अपने निर्मलज्ञान विचारसे निर्लेप और निर्लोभसत्ता युक्तहोकर प्रायः ऐसे अवसरमें कि जबजब कभीराजासे या राजाकी अधिकारी आदि राजसमाजी लोगों से सामान्यजन को कोई दुर्जरपीड़ा पहुँची समुझीजाती हो यद्वा सार्वलोकी कुछ उत्पात होजानेवाला लक्षण संभवहोताहो तब सामान्यजनकी पीड़ाशांति यद्वा सार्व-

लोकी शंकित उत्पातोंका अभाव इच्छाकरतेहुये प्रतर्कित राज विकारोंका निर्मूल होना चाहकर निजराजाको या राजसमाजी आदि मुख्यप्रधान लोगोंको कुछशिक्षा-युक्त प्रबोधवाक्य प्रायःआक्षेपरूपी कटुका उक्तियोंसे संभावित करिकैचाहे जिह्वामा-त्रसे या कोईभांतिके लिपिकर्मकाव्य आदिसेभी एक या अनेक बारम्बारतक दर्शाते हैं कि जिस्से शीघ्र बोधहोवै ऐसेलोग प्रायःराजा प्रजामात्रके शुभचिंतक समुझेजाते हैं-इनसबके आक्षेप समर्थराजाको सर्वत्र सर्वकालोंमें क्षन्तव्यहै अर्थात् इनकोदंडदेने से सदैव मुआफ़रक्खै २१२ क्योंकि जो कोई राजाउक्त दुखियाआदि इनसबलोगों का आक्षेप सुनिकर सहिलेताहै सोउसी सहिलेनेके फलमात्रसे कदाचित् स्वर्गलोक में भी जाकर महती महिमा पाया करताहै इस लोक में भी स्वर्गकेही तुल्य अपना राज्य शासन करते यशकोपाता (पर) जो कोई अपने ऐश्वर्यों के घमण्डसे दर्पीला बनकर सहता नहीं कुछ इन लोगों कोभी दंड देने लगता है सो उसी कर्मके फलसे शीघ्रदोनोंलोक नरकनिवासीहोताहै और महतीनिंदाभरनेकाभी ओछापात्र २१३ (दंडकरणेहेत्वंतराण्यप्याहमनुः) राजनिर्धूतदंडाश्चकृत्वापापानिमानवाः। निर्मलाःस्वर्ग मायान्तिसन्तःसुकृतिनोयथा३१८(तस्मात्)येनयेनयथांगेनस्तेनोनृषुविचेष्टते।तत्तदे वहरेत्तस्यप्रत्यादेशायपार्थिवः३३४पिताचार्यःसुहृन्माताभार्यापुत्रःपुरोहितः।नादंड्यो नामराज्ञोस्तियःस्वधर्मेनातिष्ठति३३५(क्वचिद्राज्ञोऽपराधेधनदंडस्यैवसहस्रगुणवृद्धिः) कार्षापणंभवेद्दंड्योयत्रान्यःप्राकृतोजनः। तत्रराजाभवेद्दंड्यःसहस्रमितिधारणा ३३६ (अस्यचफलविशेषः)अनेनविधिनाराजाकुर्वाणःस्तेननिग्रहम्। यशोऽस्मिन्प्राप्नुयाल्लो केप्रेत्यचानुत्तमंसुखम् ३४३ (अतश्च) ऐन्द्रस्थानमभिप्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम्। नोपेक्षेतक्षणमपिराजासाहसिकंनरम् ३४४ (यतः) वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैवदंडेनैवचहिंस तः। साहसस्यनरःकर्ताविज्ञेयःपापकृत्तमः ३४५ नमित्रकारणाद्राजाविपुलाद्वाधनाग मात्। समुत्सृजेत्साहसिकान्सर्वभूतभयावहान् ३४६ साहसेवर्तमानन्तुयोमर्षयाति पार्थिवः। सविनाशंव्रजत्याशुविद्वेषंचाधिगच्छति) ३४७ इत्यष्टमाध्यायेभृगुः-अर्थात-मनु कहते हैं कि महापापोंको मनुष्य करिकै जो जो राजाओं करके दंड धारण किये जातेहैं वे अपने पूर्व संचित पुण्य रोकनेवाले महापापोंके धुलिजाने से सुनिर्मल हुये पूर्व संचित पुण्योंकेवशहोकर स्वर्ग जातेहैं कि जैसे पुण्यात्मामनुष्य जायाकरतेहैं-इसकथन से यह सूचन कियाहै कि महापापकरनेवाला केवल प्रायश्चित्तसेही [illegible] शुद्ध होसक्ता किंतु राजदंडभोगे पीछे प्रायश्चित्तकरना योग्य है और दंड [illegible] नहीं आवश्यक जानो ३१८ इसीलिये राजाको यह योग्य है कि चोर [illegible] महापापी अपने जिस जिस अंगहाथ पावँ आदि से जिसभांति [illegible] निज कोईसी विरुद्ध चेष्टाकोआचरै वही वहीअंग उसका अंग[illegible]

नेके अर्थ से हरलेवै-पर यह अंगच्छेदरूप दंड ऐसी दशा में कि जहां चोर आदि अपराधीकी अत्यंत नीचता और धनस्वामी आदि मुद्दईकी उत्तमता दोनों एकत्र होयँ ३३४ अन्यथा दंडराजा सबहीको देसक्ताहै अर्थात् राजाका पिता आचार्यमित्र माता पत्नी पुत्र पुरोहित इनमेंभी जो कोई अपने नियत धर्मपर आरूढ़ न रहताहो कोई ऐसा नहींहै जो राजाका अदंड्यहो ३३५ किसी अपराधके होजाने मध्ये राजा अपने कोभी उत्तम सभासदों के द्वारा दंडदानका स्वीकार करै-सोई मनु कहते हैंकि जहांकिसी अपराध मध्येराजाके उपरांत प्राकृत पुरुष कोई एक पणसे दंडनीय ठहरै उस अपराध मध्ये राजाएकसहस्र पणसे दंडनीयहै अर्थात् राजा पर सर्वत्र सहस्र गुणादंड है यह निश्चय जानो(पर) धनदंड मात्र की मर्य्यादाहै कुछ और नही-अत्र (स्वार्थदंडंतुअप्सुप्रवेशयेत् ब्राह्मणेभ्यो वादद्यात् ईशोदंडस्यवरुण इति वक्ष्यमाणत्वादितिकुल्लूकभट्टस्तच्चिंतनीयम्) (अस्मन्मतेतुयस्यकस्यचिदपराधोजातःस्यात्तमेवधनदंडमपिदद्यादितिनविरोधः) इसमर्यादा का विधि रूपधारण करने की अपेक्षा लेकर प्रायः धर्मधुरीण राजाओं की यह प्रकृती सुनिबे में आई हैं कि मार्गजातीहुई सवारी घोड़ा आदि से कदाचित् बालक्रीड़ा निर्मित धूलिसेतु खंडित होजाने में भी बालसमूह क्रोश सुनकर शीघ्र घोड़े को लौटारि उनको शिक्षा दी कि हम से यहअपराध हुआ जुरमाना करना योग्य है यह सुनकर बालसमूह बालप्रकृती से यह कहने लगा कि पांच रूप्य जुर्माना देउ राजाने तत्काल उनको देकर आगे राह ली-यथार्थ उनके ऐसे ऐसे नियमों से अद्यापि एक अविचल यश विख्यात हैं और यह भी निश्चितहोताहै कि जबऐसे तुच्छहेतु परभी५) दण्डदेकर आगेबढ़ेनिःसन्देह उन अपराधों में भी आत्मदण्ड करतेहोंगे जो अपराध किसी पापकी गिनतीमें आसके-अविचल यश विख्यात होनेकी प्रशंसा आगे करतेहैं कि ३३६ ऐसी उक्तविधि से राजा अन्य प्राणियों को आदि लेकर अपने आत्मपर्यंत चोर आदि पापी जनका निग्रह करतेहुये इसलोक में यशपावे और उसलोक में अनुत्तम सुखको पावे ३४३ इसीलिये राजा ऐन्द्र पदवी पानेकी अभिलाषा और इसलोक में भी अक्षय अविचल यश विख्यात पानेकी अभिलाषा सदा रखतेहुये आगिल गानेवाले और धन दारा आदि बलसे हरनेवाले आदि आततायी साहसिकों को निर्मूल करनेमेंक्षणमात्र भी उपेक्षा नहीं रक्खै ३४४ क्योंकि साहस करनेवाला डाकू आदि पुरुष इनपापियों से भी अधिक पापकृत्तम हुआकरताहै अर्थात् वाक्पारुष्य करनेवाले से और चोर से और डण्डाबाजी करनेवाले से भी अधिक पापी होता है इस हेतुसे कि उसमें ये भी अवगुण होतेहैं और इनसे अधिक विलक्षण और भी अनेक साहस कर्मरूप अपगुण होतेहैं कि जिनकी यहाँ संख्या करीजानी सुगम नहीं है ३४५ सभीप्राणि-

यों को भय पैदाकरनेवाले साहसिकों को कदाचित् राजा निज मित्रोंके कहने आदि कारणसे न छोड़ै और कुछ बहुत से धनागमके भी लोभसे नछोड़ै यहमर्यादाहै ३४६ क्योंकि जो राजा किसी साहसी को अति साहस में प्रवर्तित होनेपर भी सहिलेताहै सो पापियोंकी उपेक्षारूप अधर्म बुद्धिसेही दबकर शीघ्र नाशको पहुँचता और निज राज्य के अपकार से महान्त सज्जन आदि समर्थ लोगोंके विद्वेष प्रवाह में भी गिरता है ३४७ (अत्रमहापातकिनोधन गृहीत्वादेहदण्डाभावनिषेधः) महापातकी जिसने गुरु अपमान आदि महापराधकियेहों तिनसे धनदण्डलेकर देहदण्डसे बचानेका प्रतिषेधहै—तदप्याहमनुः (नाददीतनृपःसाधुर्महापातकिनोधनम्। आददानस्तुतल्लोभात्तेनदोषेणलिप्यते२४३अप्सुप्रवेश्यतन्दण्डंवरुणायोपपादयेत्। श्रुतवृत्तोपपन्नेवाब्राह्मणेप्रतिपादयेत् २४४ ईशोदण्डस्यवरुणोराज्ञान्दण्डधरोहिसः। ईशःसर्वस्यजगतोब्राह्मणोवेदपारगः २४५ यत्रवर्जयतेराजापापकृद्भ्योधनागमम्। तत्रकालेनजायन्तेमानवादीर्घजीविनः २४६ निष्पद्यन्तेचशस्यानियथोप्तानिविशांपृथक्। बालाश्चनप्रमीयन्तेविकृतन्नचजायते २४७(एतस्मादेव)ब्राह्मणान्बाधमानन्तुकामादवरवर्णजम्। हन्याच्चित्रैर्वधोपायैरुद्वेजनकरैर्नृपः २४८ यावानवध्यस्यवधेतावान्वध्यस्यमोक्षणे। अधर्मोनृपतेर्दृष्टोधर्मस्तुविनियच्छतः २४९ एवंधर्म्याणिकार्य्याणिसम्यक्कुर्वन्महीपतिः। देशानलब्धाँल्लिप्सेतलब्धांश्चपरिपालयेत्)२५१इतिनवमाध्यायेभृगुः-अर्थात्-कोईधार्मिकराजा महापातकीका धनदण्ड रूपसे न लेवे किंतु लोभसे उसधनको राजालेताहुआ महापातकसे संयुक्तहोताहै २४३ परंच जो अपराध विशेपकी अपेक्षा किसी विरले महापातकीका सर्वस्वहारकरना लिखाहो यद्वा उत्तम साहसदंड एकसहस्रपणका लेनाकहाहो तौ उसधनको लेकर उत्तम तीर्थरूपजलमें ऐसीभांति छोड़ि वरुणदेव को प्रत्यर्पणकरै कि जिस्से तीर्थघाटके अधिकारी विप्रोंके हाथभी आसके अथवा शास्त्रसे संपन्न कोईविप्र जो अग्रोक्त वृत्तचरित्र सेभी युक्तहो तिसकोही समर्पणकरे (गुरुपूजाघृणाशौचंसत्यमिंद्रियनिग्रहः। प्रवर्तनंहितानांचतत्सर्वंवृत्तमुच्यते) २४४ महापातकियोंके दंडरूपधनकास्वामी वरुणदेवहै इसहेतुसे कि वहसबजलोंका अधिकारी वरुणदेव राजाओंकोभी दंडदेनेमें समर्थ है और वेदपारग ब्राह्मण सारे जगत काही प्रभुहै इसलिये इन्ही दोनोंको उसदंडरूपधनका देनाकहा २४५ जिस देशमें राजा महापातकियोंसे धनदंडलेना वर्जितरखकर देहदंड अधिकदेता है तिस देशमें उसकालके प्रभावसे मनुष्य दीर्घजीवी पैदाहोते हैं २४६ और खेती आदि शस्यभी जो जैसा बोयागयाहो तैसाही प्रत्येक भिन्न भिन्न उन सबदेशोंमें उत्पन्नहोते हैं और बालकनहीमरते हैं और कोई परम उपद्रव नहीउठता है २४७ इच्छासेहित ब्राह्मणों को कुछपीडा धनापहार आदि बाधाकरतेहुये नीच जातिको अनेकविधिके उद्वेग पैदा

करनेवाले चित्र विचित्र बधबंधरूप दंडों से ताड़ना राजाकरै २४८ जितना कुछ अधर्म राजाको अबध्यका बधकरनेमें शास्त्रद्वारा निश्चित है उतनाही बधयोग्य अपराधी छोड़देनेमेंभी निश्चितहै और शास्त्रकेअनुसार दंडदेना यहीधर्म है २४९ इस भाँति जैसा आदिसे अबताईं धर्म वर्णनहुआ तैसे धर्मसे व्यवहाररूपी कामों को सदैव राजा सम्यक् युक्तिबलकेसाथ करतेहुये अलब्धदेशोंके लेनेमेंभी लिप्साकरै और निजपूर्वलब्ध स्वकीय हस्तगत सबदेशोंको परिपालनकरै २५१॥

अथ कदाचिदनुक्तोक्त व्यवहारेष्वपि वैलक्षण्यात्सर्वशास्त्रविधिविरोध पत्तिर्जायेत तत्रापि निर्णयमार्गमाहमनुः-अर्थात्-कदाचित उक्त सबसाधारण व्यवहारोंमें से कोईव्यवहार यद्वा उक्तव्यवहारोंके सिवाय कोई अद्भुतरूप अनुक्तही व्यवहार ऐसा पेशआवै जो अपने किसीविलक्षणहेतुसे सबशास्त्रोंके संसूचित विधि निर्वाहोंसे विरोध पैदाकरताहो-तहाँ भीउसआयेहुये विचित्रव्यवहारका निर्णय होसकनेवालामार्ग मनुकहतेहैं-तथाच(जातिजानपदान्धर्मान्श्रेणीधर्मांश्चधर्मवित्। समीक्ष्यकुलधर्मांश्चस्वधर्मंप्रतिपादयेत्) ४१ अर्थात्-धर्मविवेकी राजा ऐसे व्यवहारमध्ये जातिधर्मों को और जानपदीयधर्मों को और श्रेणीधर्मोंको कुलधर्मोंकोभी तहक़ीक़ातसे विचारकर निजधर्मको प्रतिपादनकरै-अभिप्राय इसका यह कि पहले इतनीबातोंका अन्वेषण करके पीछे इनहींके अनुसार अपनेधर्मको आचरै किन्तु सार्वलोक मनोहरमार्गसे व्यवहार फ़ैसलकरै क्योंकि यहाँ अपना धर्मकहनेसे यथार्थ शास्त्रविहित प्रतिज्ञाद्वारा राजाका यह धर्महै कि ऊँचेनीचे सभीविवादोंका निपटारा ऐसे मार्गसेहीसाधै जिसमें ठेठवादी प्रतिवादी और सबलोग देखनेवालेभी मनमोहितहोयँ-अब इनबातोंके दृष्टान्त क्रमसे लिखते हैं कि जातिधर्म कहने से सौगम्यअर्थ यद्यपि यही है कि ब्राह्मणआदि जातियों के धर्म जो जो नियतहों तिनकोढूँढ़ै पर अभ्यन्तर इसका यह कि जैसे ब्राह्मण आदि चातुर्वर्ण्य प्रसिद्धजातोंके धर्म याजन अध्यापन आदि शास्त्रमें आवश्यक स्थानोंपर सब सूचितहैं तथैव इनके उपरान्त प्रायशः अव्यक्त जातियोंके भी जातीधर्म जो जो शास्त्रों में निरूपित वा संसूचित नहींपायेजायँ पर उनजातोंमें परिचर्याजातिप्रियता के अनुकूल पाईजाय जिसका शुद्धप्रमाण उनजातियोंकेही मुखसे और वर्तावा सेभी निश्चितहोय तो उनधर्मोंकोभी उसीप्रकारसे प्रमाणमें लेलेवै जानो येभी शास्त्रविहित हैं और उनहींके अनुसार मुक़द्दमा फ़ैसलकरै-इसकायह दृष्टांतहैकिजैसे जैनमतवाली एकजाति सरावगी नामसे विख्यातहै और शास्त्रमेंइसजातिकी समस्यापूर्व कोईनियम किसी व्यवहारकी अपेक्षालेकर नहीं वर्णनहुआ है और यद्यपि लोकमें यहजाति प्रायःवैश्यनाम संज्ञासे विख्यातहै इसहेतुसे इसजातिके भी वेहीधर्म समुझेजासक्ते हैं कि जोजो वैश्यवर्णके सबशास्त्रोंमें निरूपित वा संसूचित हों परइस जातिवालोंके

धर्म बहुधा भिन्नप्रकार हैं इसदशातक कि उनके तीर्थरूपी जगन्नाथभी द्विती खरनामसे विख्यातहैं-कदाचित् उनहींलोगों का व्यवहार कोई दायभाग मध्ये दा हो और वे लोगवाद विवादसे यहतर्क रोपितकरैं कि हमइसदायभागसे निपटाराहो मेंनाराज़हैं क्योंकि यहधर्मशास्त्र चातुर्वर्ण्योंका प्रतिनियतहै हमारानहीं तबहींराजा यहयोग्य है कि उनकी नाराज़ी शांतकरनेके निमित्तसे उसजातिमें प्रवर्तित मर्यादें जो हों तिनकी तहक़ीक़ात करै जब यहबात निश्चित होकर पाईजायकि इनकीजाति में जबधनी कोई मरता है तबधनीके पुत्रादिक संततिहोने परभी सबसे पहलेधनक मालिक पत्नीहुआ करतीहै पुत्रादिक नहीं और उसपत्नीके मरजानेपीछे पुत्र मा होताहै यहबात यद्यपि दायभागकी मर्यादोंसे प्रत्यक्ष विरोधकरती है कि दायभाग अनुसार पत्नी निपट निपूताधनी मरनेसे धनपायसक्ती पर इस जातीधर्म कोही राज अंगीकार करै-यहजैसा एकसरावगी जातिका दृष्टांतकेवल दायभागकी समस्यादेक कहा तैसे नानाभांति औरभी व्यक्ताव्यक्तजातोंमें अनेकभांतिके साधारण सभीविवा दोंकी अपेक्षापर निजबुद्धिसेसमुझना (जैसा) इसीनिमित्तएक और भी दृष्टांतमें दृष्टां है कि जैसे नीचजातोंमें सँपरा जो निजजातिका सँपेराहो अपनी जातिमध्ये लड़क व्याहिदेने पीछे दानदहेज में दोचार या दशपांच अपनेवैभवके अनुमान सांपदेता यहउसका जातीधर्म जानो किन्तु सँपेरोंके विवाहमध्ये दान दहेजकी अपेक्षा झगड़ दायरहो तोइसधर्मको भी राजा अंगीकार करिकैइसकी और विशेपता उनहींलोगों अन्वेषण करै इत्यादि नानाभांति ऊहाकरनी जातीधर्म का विचारहै-एवं-जानपदी धर्म किन्तु जनपदनाम कोईएकदेशविभाग ज़िलअ विशेप जिसमेंअन्य देशोंकी अपे- क्षाकुछ मर्यादें यद्वाकोई एकही मर्यादा भिन्नरूपसे प्रवर्तितहो जो सबदेशोंके और शास्त्रोंकेभी सन्मुखव्यक्त विरोधीसी प्रतीतहोती हो परउस देशमात्र में सबलोगोंको प्रिय निश्चितहोय तौवह (क़ानूनमुखतसुल्मुकाम) जनपद धर्मकहाताहै उस देशमात्र की अपेक्षा सीमाभीतर या तत्रत्य निवासीलोगों के देशांतर होनेहतुमे अन्यत्रसीमा बाहरभी उसधर्मको प्रमाणमाने इसकाभी (दृष्टांत) है किजैसे पंजाबदेशी किसीविभा- गके निवासी दायस्वत्वका व्यवहार प्रवेशकरिकै वाद विवादमे यहआग्रह रोपितकरैं किशास्त्रोक्त दायमर्यादासे जोसगे औरसौतेलेसभीभाइयोंको न्यूनाधिक पंक्तिहोनपर भी मरेबापके धनमेंसे समभागमिलनाकहाहै सोहमको अंगीकारनहीं किन्तु हमारेदेश विभागमें परिपाटीहै कि जिसधनीके दो तीन आदि अनेकभार्याहोयँ और उन सबके पुत्रसमान संख्यासेनहों किन्तु विषमसंख्यासेहों एकस्त्रीके एक दूसरीके दो तीसरी केतीन पुत्रहोयँ इन छपुत्रोंमें छभाग नहींहोते किन्तु अपनी अपनी माताओंकाभाग लेकर आपसमें सहोदर भाई बाँटिलेते हैं अर्थात तीनोंपत्नीके तीनभागहोकर पहली

पत्नीकाभाग उसके एकपुत्रने सबलिया दूसरीके दोपुत्रोंने निजमाताकाभाग लेकर आधा आधा बाँटपाया तीसरीपत्नीकाभाग उसकेतीन पुत्रोंमें त्रिभाग तीनठौर होकर एक एक तिहाईमात्र तीनोंकोमिले हमारेदेशमें यहरीति सनातन है-राजा भी यह आग्रह सुनकर तहक़ीक़ातकरै जो यहरीति यथार्थ निश्चितहोय तो फिर यद्यपि दायभागसे प्रत्यक्ष विरोधरखती है पर उनकेलिये इसहीधर्मका स्वीकारकरै-दूसरा एक और भी (दृष्टांत) इसकेतुल्यहै कि जैसे किसी ज़िलअके लोग ऐसा आग्रहरोपैं किन्तु हमारेदेशमें निपूताधनी मरनेमें यदि पत्नीभी नहो तो उसधनीका धन बेटी नहींपातीहै अर्थात् बेटी तथा धेवतोंकेभी होतेहुये गोतीलोगपाते हैं वे चाहे निकट सपिंड अथवा दूरसपिंड आदि कोईहों गैरगोत्रमें धननहींजाता किन्तु बेटियाँ यद्यपि अपने गोत्रसे उत्पन्नहुईं तोभी निपट परायेघरका धन कहलाती हैं इस्से जो यह अमुकमरेधनीका धन अमुक बेटी या धेवता दाबेबैठाहै सो मुझेदिलायाजाय क्योंकि मैं उसमरेधनीकाही गोती अमुक सपिंड अथवा सोदकहूँ-राजा ऐसी देशकी परिपाटी सुनकर तहक़ीक़ातकरै जो यह सच्चीनिकसै तो उसदेशकी अपेक्षा राजा यही जानपद धर्म अंगीकारकरै-यद्यपि (पत्नीदुहितरश्चैव) इत्यादि दायभाग सम्बन्धी मूलश्लोकसे प्रत्यक्ष विरोध इसमें शास्त्रसेउत्पन्न होताहै पर जानपदीयधर्मसे विरोध में गणनीयनहीं (यहदृष्टान्त वैसाहै कि जैसा मिथिलामें दौहित्रोंका अधिकार नहीं और बंगालेमें स्वकीय दौहित्रोंके सिवाय अपनेभाईकेभी दौहित्रोंका अधिकार बल्कि भानजेकाभी-यहाँ बाराणसी सम्बन्धी देशविभागोंमें निज अपनेही दौहित्रका) सो ये नियम इनके निज निज शास्त्रविहितहैं और दायभागमात्रके सम्बन्धी हैं पर यहाँ केवल उपमाहेतुसे फिर याददिलाई किन्तु उपरलीप्रकृत व्याख्या सर्वशास्त्रोंसे उपराल माननीयहै और नानाभाँतिके व्यवहारोंसे सम्बन्धरखती है कुछ दायभागसेही नहीं इसकाभीदृष्टान्त में दृष्टान्तहै कि जैसे पूर्वदेशी कान्यकुब्ज विप्रों में विशेषकर परिपाटी है कि पक्वान्न वा शाकादि व्यंजनमेंभी लवणमिलाकर नहींपकातेहैं तब उसको चौकेसेबाहरभी देशान्तरमें लेजासक्ते किन्तु भोजनकरतेसमय मिलालेते हैं क्योंकि जो लवणमिलाकर कोईवस्तु पकावैं तो फिर कच्चीरोटी भातमें गिनकर उसको चौकेसेबाहर नहींनिकालसक्तेहैं-परन्तु यहपरिपाटी उनकेदेशमें निर्विकल्प कुछसर्वत्र नहींमानीजाती किन्तु किसी किसी देशविभागमें उन पूर्वदेशी कान्यकुब्जोंकेभी लवणमिलानेकी परिपाटी वर्तमानहै यहबात उनके जानपदीयधर्ममें गणनीय है (और) यद्यपि यह आचारशास्त्रका विचार है व्यवहारका सम्बन्ध इससेंकुछभीनहीं तथापि किसीझगड़ेके हेतुसे यहबात कभी अदालतमें यदि पहुँचै तभी विवादारूढ़ होनेमें व्यवहारमें गिनलीजाकर यथा संभव इसका निर्णयभी कर्तव्यहोगा-अर्थात् जबकोई

कान्यकुब्ज ऐसेढंगसेअभियोगलगावै कि मैं अमुकदेशी अपने संबंधीके घरजाकरए रात्ति वहां ठहराथा और उसने जो अगारी जानेयोग्य मार्गके निमित्तसे पक्कान्नमु बँधादिया तिसमें लवण मिलादिया मैंने जाकर अमुकस्थलके विश्रामपर जो भोज किया तौ मालूम हुआ कि इसमें लवण मिश्रितहै इस हेतु उसपर कोई राजदंड ज्ञातीदंड कियाजाना मुझे अपेक्षितहुआ क्योंकि उसने मेरा आचारधर्म भ्रष्टकिया तबहीं राजा अथवा पंच आदि जिनको निर्णयका अधिकार सौंपागयाहो लवण ि लानेवाले के निवासस्थानकी परिपाटीका अन्वेषण करैं जो परिपाटी उसकी य निश्चित पाईजाय तौ वह अपने जानपदीय धर्मके अभ्यासिक हेतुसे कुछ दोषी न है न उसको कोई दंडहोना योग्यहै परवादीको यदि ग्लानि अधिक पैदाहुईहो तौ व शास्त्र विहित प्रायश्चित्त जाकरकरै इत्यादि अन्य बातोंको भी समुझिलेना-ऐसे कदाचित् किसी देश विभाग वाले कहनेलगैं कि ऋणके देनलेन मध्ये यद्यपि शा में अमुकामुक रीतैं विहितहैं और हमकोभी मालूम है पर इसअमुकनामा पट्टन - थवा कर्वट खर्वटमें विशेष यह परिपाटी इतनी सदासेही चलीआती है कि जो को पुरुष ऋणीहो जबतक सिर्फ़ ब्याज मात्र देकर नहीं चुकादे तबतक अपने घर किसी संतति आदिका विवाह नहीं कर सक्ता किंतु ब्याह करने से पहले उत्तम का ब्याजमात्र जितना चढ़ाहो सो सब देदेताहै तिसपीछे ब्याह रोपता है और मूर का धन पीछे कभी अवसर के अनुकूल देगा तौ यह धर्म्म उसी जनपदकी परिपा टीरूप जानो. बल्कि जिसजनपद में कुछ मूल ब्याज दोनों के उद्धार करदेने के परिपाटी हो इत्यादि नाना भांति से समुझना—एवं—श्रेणी धर्म्मों को भी उनक अवसर पायकर अन्वेषण करै अर्थात् एकही किसी व्यापार आदि कामको अने जाती लोग जहाँ करते हों तिन सबकी मिलकर एक श्रेणी नाम कहाती है ऐसेही दूसरे किसी एकहीकारके अनेककरनेवालोंकी दूसरीश्रेणी ऐसेही तीसरी आदि श्रेणी जानो तिन श्रेणियों के जो धर्म्म प्रचलितहों तिनहीं के अनुसार मुक़द्दमा फ़ैसलकरै आशय इसकायह कि जहाँ अनेक वर्णजातियोंके मनुष्य किसी एकही कामको मिल कर या निजानिज भिन्न भिन्न करतेहों तहाँ उसीकामका सम्बन्धी जो कुछ विशेष धर्म तरीक होताहो सो उन भिन्नजातियों के सब धर्मोंसे भी प्रबलहै (दृष्टान्त) जैसे राज सेना एकप्रकारकी श्रेणीहै कि जिसमें यद्यपि ब्राह्मण पर्यन्त सातो जाति भर्त्ती हों तो वह क्षात्रधर्म्महै इसहेतु उसमें शस्त्र बाँधने तथा कान्नीपीली वर्दी धारण करनेका य धर्म एक सबहीका साधारण है और विशेष में इस हेतुसे गणनीय है कि ब्राह्मणके और वैश्यके जो शस्त्रोंका प्रतिषेधहै सो उसमें भर्त्तीहोकर नहीं मानाजासक्ताहै औ एकअन्य विशेष धर्म है कि राजाकी सलामी सबको एकरीतिसे करणीयहै अर्था

ऐसेस्थल में कुछ ब्राह्मणत्वकी अपेक्षालेकर सावधान करनेआदि शिष्टाचारोंका प्राबल्यनहींहै ऐसेही व्यापारवर्गी किसीश्रेणीमें व्यापार करनेवाले को जोकोई उसीश्रेणी का विशेष धर्महोताहो सो वर्त्तावा करनाहोगा (दृष्टांत) जैसेआती जाती राजसेनाके निमित्तजो रसददेनेकी ज़रूरतहो तौउनसभी जातियोंकोवह चीज़ैंराज कल्पितनिरख से पहुँचानी होंगी जिनसे जिसजिसका व्यापारहो जैसे घसियारोंकी श्रेणीवाला घास और नाजकीश्रेणीवाला नाज़ कपड़ बेंचाकीश्रेणीवाला कपड़े आदि (और)वहबातएक छूटरूपजुदीहै कि किसीपट्टन या क़सबे कर्वट खर्वटमें ठेठ कोईजाति या कोई देहमात्र किसीश्रेणीका संसर्गीहोने परभी उसकेकिसी विशेषधर्मके वर्त्तावासे मुआफ़हो तौवह बातउसी स्थल संबन्धी जनपदधर्ममध्येजानो-ये दोनोंदृष्टांत सिर्फ़राजकासंबन्धलेकर दियेगये ऐसेही वे श्रेणीवाले ज़ोकुछ धर्म परस्पर उत्सव आदि विशेषधर्म रूपक्रिया करतेहों उसमें भी सब श्रेणीमात्रके लोगचाहे भिन्नजाती अथवा भिन्न पंथ मतवाले बहुधाहों तौभीसबको मिलकर उसीधर्मका वर्त्तावा एकपेशेकी खसूसियतलेकर करना होताहै दृष्टांत जैसे चंदा, नाच, तमाशा,कथा,पूजा आदि लोकसे अन्वेषण करना-इत्यादि नानाभांति असंख्य श्रेणीधर्म जानो तिनकोराजा अवसरके अनुकूल छानबिनानसे निर्णीत करै-एवं-कुलधर्मोंकोभी देखै किंतु (आचारोविनयोविद्याप्रतिष्ठातीर्थदर्शनम्। निष्ठावृत्तिस्तपोदानंनवधाकुललक्षणम्) यह नौलक्षण यद्यपि कुलकी उत्तमताके प्रसिद्धहैं पर यहां इन नौगुणोंसे कुछकाम नहीं है अर्थात् यहां ब्राह्मण आदि किसी एकहीवर्ण जातिके अनेक गोतरूपी थोक टूटि फूटिकर भिन्नात्मकसे होजानेयद्वा देश भेदसे बसिजानेमेंभी कुछकुछ उनके वर्त्तावेमेंभी अंतरसा होजाताहै फिर उनकी अगली संतानें निज निज बापदादे आदि पूर्व पुरुषोंके वर्त्तावेको सनातन अपनी परिपाटी मान मानकर निज हाथों कीसी रेखा निश्चित करते हैं-इसमें एक छोटासा दृष्टांतहै कि यद्यपि धर्मशास्त्रोंमें इस बातका प्रतिषेध लोक प्रसिद्धहै कि कन्या देकर शुल्क नले परंच बिरले देशवासी किसी उत्तम कुलमेंभी परिपाटी यह परिगई हो कि पुष्कल द्रव्य लेनेबिना कन्या नहीं देतेहों तौ यह बातठेठ उनहींके कुलधर्ममें गणनीय होगी-इसका यह सिद्धांतहै कि राजद्वारमें कदाचित् यही झगड़ा ऐसे ढँगसे पहुँचाहो कि मैंने इसको एक सहस्र संख्याधनके पलटे कन्या देनी कही थी और इसने पहिले एकशतमुद्रा मुझे बयानातुल्यदेकर कन्या व्याहिली शेष नौसौदेता नहींदिलायेजायँ-तौ इस झगड़ा मध्ये राजाको यह आग्रह करना सूचित नहीं कि शास्त्रमें तौ कन्याशुल्क लेनेका प्रतिषेधहै जिस धनके लेने देने मध्ये शास्त्रसे संप्राप्ति सिद्ध होती नहीं दिलाया क्योंकर जाय या यह वादभी आदेय क्योंकर समुझाजाय-आशय यह कि राजा ऐसे वादकोभी संग्रह करके उनहींके कुल धर्मकी परिपाटी निश्चित होनेमें निपटारा

करै-अन्यथा जिस कुलमें यह परिपाटी नहीं पाईजाय तिसको वेही धर्मशास्त्रोंके प्रतिषेध सब आरूढ़ जानो-इत्यादि कुलधर्मभी अनेकरूप होते हैं तिन सबको राजा अवसरके अनुकूल निर्णय करके उनके आचारोंसे व्यवहारोंका निपटारा करै-इन सबदृष्टांतोंके दर्शानेका यह कारणहै कि शास्त्रविहित मर्यादोंसे उपरालूकभी विलक्षण कोई झगड़ा खड़ा होनेमें कदाचित् राजा ऐसे आग्रहपर आरूढ़ न होने लगै कि जो कुछ शास्त्रमें निरूपित वा संसूचितहै तिस मार्गके सिवाय कोई लौकिक मार्गसे व्यवहारका निपटारा नहींहोगा चाहे वादी या प्रतिवादी इसमें कोई राजीहों या न हों ऐसा आग्रह करना एक अनीतिहै इस हेतुसेही यह इकतालिसका श्लोक अष्टम अध्यायगत सामान्य सभी व्यवहारोंकी परिभाषारूप मनु ऋषिने दर्शायाहै कि लौकिक परिपाटीको भी एकशास्त्रजानो-परंच-इसमर्यादामेंभी किंचित्अपवादहै सो गौतमऋषिके वाक्यसे विचारो-तदाह गौतमः (देशजातिकुलधर्माश्चाम्नायैरप्रतिषिद्धाःप्रमाणम्) अर्थात्— गौतम कहते हैं कि देशके और जातिके और कुलके धर्मभी सर्वत्र केवल वेहीधर्म प्रमाणमें आसक्ते हैं कि जोजो धर्म आम्नायोंसे अविरुद्धहों किंतु आम्नाय संज्ञा वेदोंकी और शास्त्रोंकी और तंत्रोंकी और संप्रदायोंकी सदुपदेशकीभी वंशकीभी कुलक्रमकी भी होती है तो इन्हीं बातोंसे जो धर्म विरुद्ध समुझाजाय सो वह आम्नायोंसे विरुद्ध होनेके हेतुसे प्रमाणमें न आवैगा अर्थात् राजा उसे उपरले मनुके वाक्यसेभी अंगीकार नहीं करसक्ता जैसे कोई पुरुष उपरला मनुकावचन प्रमाण देकर कहने लगैं कि हम अमुकामुकवंशी ठाकुरहैं हमारे कुलमें अथवा जातिमात्रमें पुत्रियां पैदाहोतेसार गाड़ देना कुलका धर्महै या जातीधर्महै क्योंकि पूर्व पीढ़ियोंसे होता चलाआया अब हम छोड़ि नहीं सक्ते तो यह बात किसी धर्म पदवीकी प्रमाणतामें न लीजावे क्योंकि आम्नायोंसे प्रत्यक्ष विरुद्धहै और पूर्व पुरुषोंने कदाचित् किसीमहान्भयसे यह आचरण कुछ लाचारी अवसर किया होगा तो वह आपद्धर्मथा कुलधर्ममें गणनीय नहीं— एवं किसी पहाड़ी देशवाले कहने लगैं कि हम अपने देशमात्रमें स्त्रियां बिकना सदासेही देखते और वर्तावेमेंभी लाते रहे यहभी एक हमारा जनपदधर्महै या सिर्फ़हमारा अमुकजाती धर्महै तो यह आम्नायोंसे विरुद्ध होनेके हेतु किसी धर्मकी प्रमाणतामें न लीजावै इत्यादि नानाभांतिसे अपवाद समुझना ४१ जब कि यह बात निश्चितहुई कि मनुके उक्त वाक्यसे बहुतेरी लोक परिपाटी अंगीकार योग्य होती हैं और गौतम जीके वाक्यसे कुछ विरली चाल अनंगीकारमें भी आती हैं तो राजाको इस द्विविधा में अत्यंत सोच विचार करना योग्य ठहरा इसीलिये मनुजी दो तीनवाक्य औरभी दर्शाते हैं-तथाहि (यथानयत्यसृक्पातैर्मृगस्यमृगयुःपदम्। नयेत्तथानुमानेनधर्मस्यनृपतिःपदम् ४४ सत्यमर्थंचसंपश्येदात्मानमथसाक्षिणः। देशंरूपंचकालंचव्यवहारवि-

धौस्थितः ४५ सद्भिराचरितंयत्स्याद्धार्मिकैश्चद्विजातिभिः। तद्देशकुलजातीनामविरुद्धंप्रकल्पयेत्) ४६ अर्थात्-ऐसे द्विविधाके व्यवहारों मध्ये राजाधर्मकी गति ऐसी भांति अनुमानोंसे और लोक शास्त्र दोनों के प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे भी ढूँढ़लेवै जैसे भागे हुये घायल मृगके पीछे व्याध उसके रक्त बिंदुओंको देखि देखि खोजलगाते ठेठ मृगके स्थलको पहुँचताहै ४४ किंतु व्यवहारोंके विचारमें प्रवृत्तहुआ राजा छलको त्यागि सत्यलक्षणको विचारे और व्यवहारके उस अर्थ प्रयोजनको भी सोचै जिस पर वाद विवादहो और निजआत्माकोभी सोचै कि जो इसवादका यथार्थ निर्णयहो तौ शास्त्रोक्त स्वर्गादि फलकी प्राप्ति और इस लोकमें भी यश विख्यात मेरा होगा और उसवादके उपस्थित साक्षियोंको भी सोचै कि येसबक्याक्याकहतेहैं और किस किस लक्षणवाले हैं फिर उस देशकोभी सोचै जिसमें वाद विवादहो या जिसदेशके निवासी वादीलोग हों कि उसमें क्याक्या रीति प्रवर्तितहै और वादका जो रूपक हो तिसकोभी विचारे किंतु एक ऐसातुच्छवादहै कि इसनेमुझको आँखि तिरछीकरके उपहास किया तौ इत्यादि तुच्छरूपकवाले व्यवहारों से राजा अपना हाथ खींचै पर जो रूपक प्रबल पायाजाय तौ फिर हेतुका अन्वेषण करै और उसकालको भी सोचै जिसमें वादकी उत्पत्ति हुईहो किंतु एकवाद ऐसाहै कि जिसकी उत्पत्ति अबसे बीस या पचास वर्ष पहिले होकर अधुना राजद्वारमें प्रवेशहुआ तौ उस पहिलेकाल के भी ढँगोंको आधुनिक परिपाटी से मिलावै क्योंकि कालके परिणामसे मर्यादों का भी कुछ कुछ परिणाम होता रहता है ४५ अत्रोक्त सभीबातों का विचार किये पीछे राजाइसबातका अन्वेषणकरै कि जो जो धर्मकर्म नवीनढँग या प्राचीनढँगवाले किसी छोटी मोटी जातिमें उसजाति के सत्पुरुषोंने आचरित कियेहों अथवा धर्मयुक्त द्विजाती लोगोंने निज कुलमें या निजवर्णमें या जातिमें या देशमात्रमें आचरित किये हों और उसदेश या कुलजाति में अविरुद्ध समुझेजायँ सो सो शास्त्रकेही तुल्यप्रमाण मानिकर व्यवहार का निपटाराकरै ४६ अबयोगीश्वर अपनेसबसे पिछलेवाक्य से वहबात प्रकाश करते हैं कि राजाने कदाचित् किसी धोखे में अन्यायसेही दण्ड लियाहो तिसको क्या कर्तव्य होगा॥

(अन्यायेनगृहीतधनस्यगतिमाह)

राज्ञाऽन्यायेनयोदंडोगृहीतोवरुणायतम्। निवेद्यदद्याद्विप्रेभ्यःस्वयंत्रिंशद्गुणीकृतम् ३१२॥

ऐ०—राजाने जो दंड कभी धोखे में या जानिकर अन्यायसे लेलियाहो तिसको आप तीसगुणाधन वरुण देवके निमित्त में निवेदन करके विप्रोंको दे देवै पर यह नियम केवल उसीदशामें धर्मात्मकहै कि जहां दंडधनका पहिला स्वामी फिर मिल सकना निपट असम्भव हो या उसको वापिस करदेना किसी मर्य्यादा से न सूचित

अन्यस्मृतियों में भिन्नात्मक नहीं है और नाम उसका (स्त्रीपुंसयोगविवादपद) यह रक्खाहै इसहेतु से कि उसमें केवल दाम्पत्य विवाद वर्णन कियेहैं और नारद ने उस नामकी उत्थानिकाभी अग्रोक्त यह दर्शाईहै कि (विवाहादिविधिःस्त्रीणांयत्रपुंसांचकीर्त्यते। स्त्रीपुंसयोगसंज्ञंतद्विवादपदमुच्यते) अर्थात्-जिसमें स्त्रीपुरुषों के विवाह आदि वहुधा झगड़ों की विधि निर्णय करीजातीहै सो स्त्रीपुंसयोगनाम विवादपद कहलाताहै इत्यादि उनके झगड़े भी दर्शायेहैं-और मनुने भी नवम अध्याय के प्रारम्भसे लेकर ५६ छप्पन श्लोकोंतक जो वर्णन किया तिनमें इसीविवादपदकारूप सर्वथा रक्खा है कुछ और नहीं बल्कि छप्पनसे आगे भी कुछ आपद्धर्म निर्णय कियेहैं-योगीश्वरने इन बातोंको एकत्र संग्रह नहीं किया जो इनका कोई मुख्य विवादपद भिन्नात्मक मानाजाय क्योंकि योगीश्वरने आचार और व्यवहार दोनों काण्डमें सर्वत्र यथावकाश निज निज हेतु स्थलको पाइकर उनबातों को दर्शाया है एकत्र संग्रह करना कुछ आवश्यक नहींमाना क्योंकि पति पत्नीका व्यवहार अदालत चढ़नेको प्रतिषिद्ध है पर जब जब कभी अदालत चढ़ने योग्यही व्यवहार उनका समुझाजाय तौभी उन्हीं नियमों से निपटारा कियाजाना सूचित कियाहै कि जो जो अवसर पाइकर आचार और व्यवहार में दर्शातेरहे या नारद और मनुजी ने जो कुछ वर्णन किया॥ इतिपतिपत्नीवादप्रसंगः (अथशास्त्रीयमानानांसंज्ञांतरभ्रमापहम्। साम्यंम्वक्ष्येस्फुटंकृत्वाछात्राणांबोधहेतवे १ शतमानन्तुनिष्कन्तुतथैवपलमेवतु। चतुःषष्टिकमाषानांसंज्ञान्तरमितित्रयम् २ माषस्त्वत्रविशेषेणपञ्चकृष्णलकम्भवेत्। यवानांमध्यमानांचात्रितयंकृष्णलंत्विह ३ गौरसर्षपषट्केनयवमानंविधीयते। राजिकात्रितयंत्वत्रगौरसर्षपमानकम् ४

(राज्ञांकोपसमृद्धिकरणोपायः)

(अथभूपहिताकांक्षीराष्ट्रसम्पत्करंपरम्। यत्नंवक्ष्येसुसंचिन्त्यनृपवर्य्यमनास्विनाम १ यथाकथञ्चित्सान्तिष्ठन्राजधानींमहोदयः। भूपोराष्ट्रसमृद्ध्यर्थंयत्रतत्रविचक्षणः २ चिन्तयानोविचिन्वंश्चसुस्थलानिबहूनिवा। उषितानिकचिद्वापिकचिद्वाऽनुषितानिच ३ पुनर्निवासयेत्स्वैरंबहुभिर्वाजनैःशुभैः। तत्रतत्रपुरींकृत्वाराजधानीमिवापराम ४ तत्रपुष्पफलादीनिशाकानिविविधानिच। सर्वर्तुजायमानानिनानादेशोद्भवानिच ५ मनोहराणिपुष्पाणिमूलानिसुवहूनिच। दर्शनीयानिचान्यानिअपूर्वाण्यद्भुतानिच ६ वस्तूनिपक्षिणश्चापिवृक्षांश्चपरदेशजान्। संपादयेत्स्वकेराज्येतत्कर्मज्ञविशेषतः ७ क्रीडागृहैःशिल्पगृहैर्विचित्रैःकेदारपंक्त्यन्वितवाटिकाभिः। विद्यागृहैर्वेदगृहैःसुरम्यैःसभागृहैर्वाबहुभिस्सुधर्म्यैः ८ प्रसर्पियानाश्रितवाह्यमार्गैःसुसंस्कृतैःपांथजनोपकार्य्यैः। भांडादकैर्वाहनवाहकाद्यैःसुरक्षितैर्लुण्ठकचौरवर्गात् ९ मनन्दुर्गैर्दशहट्टैर्जनैश्चगृहैश्चनक्रसर्पैःसचिन्हैः। संस्थापनैःपूरुषमुख्ययुक्तराकुञ्जसंप्रेष्यवियोग्यैः १० कूपैस्तटाकैःपथिकाश्रमैश्च

में सामान्य अन्य जनका दंड कार्षापण एक निश्चित होय तिस अपराधको यदि राजाकरै तौ वहराजा एक सहस्रपणसे दंडनीय है यह निश्चय जानो-यही व्यवस्था सब अपराधों मध्ये समुझि लेनी-यह धन दंड सहस्रगुणा जो दर्शाया सो उस भांति के अपराधोंकी व्यवस्था है कि जो जो साहस कर्मोंसे सम्बन्ध रखते हों(दृष्टांत) जैसे किसी परस्त्रीको प्रबलतासे संग्रहण करना आदि या अपराध विना कोई ग्राम लूटिलेना फूँकिदेनाआदि या प्राणियोंको विषदेना आदि वा निष्कारण कोई और भांतिकी बाधा खड़ी करना आदि जिनमें जुरमाना कल्पित होनेका संयोगहो तिस जुरमानेसे यह एकसहस्र गुणआधिक्य जानो-और योगीश्वरके ऊपरले ३१२ वाले मूलश्लोकमें जो तीसगुणे धनदंडकी व्यवस्थाहै सो केवल उन व्यवहारोंमेंकि जिनमें कुछ अन्यायसे धन हरनेका अपराधहो तौ उस धनसेही वह तीसगुणा आधिक्य जानो यही बड़ा अंतरहै-और-राजाधिराज वा सम्राट्का जो हस्तपात करने में अधिकार सूचितहै सो बहुत बड़े अपराधमें आवश्यकहै या कोई और जहां आतंक वाला निपट नहो और वह राजा अपने आप अपनी दंड कल्पनापर कुछ दृष्टि न रक्खै-अन्यथा इससे विपरीतमें जब कोई और सामान्यभी यदि ऐसाहो जो जिस राजमें जिस राजापर आतंक थोड़ा बहुत कुछभी रखताहो तौ फिर छोटे मोटे सामान्य अपराधोंमध्ये उसहीका स्वातंत्र्यहै कि ऐसे राजाकोभी दंड कल्पनाकरै किंतु सम्राट् वा राजाधिराजकी अपेक्षा उनमें नहीं है ३१२ इस अधिकोक्तिकी व्यवस्था वाले झगड़ेमें कदाचित् अवसर पाइकर वह न्यायभी संयुक्त कियाजासक्ताहै कि जो सामान्यवादी प्रतिवादीके व्यवहारोंमें योगीश्वरके प्रथमोक्त३११ मूलश्लोकसे संबंध रखताहो सो अग्रोक्त पंक्तियोंसे विवेचन करना योग्यहै-यथाहनारदः (तीरितंचानुशिष्टंवायोमन्येतविधर्मतः । द्विगुणंदंडमास्थायतत्कार्यंपुनरुद्धरेदिति तीरितंसाक्षिलेख्यादि निर्णीतमनुद्धृतदंडं अनुशिष्टमुद्धृतदंडं दंडपर्यन्तंनीतं-यत्पुनर्मनुनोक्तम् (तीरितंचानुशिष्टंचयत्रक्वचनयद्भवेत् । कृतंतद्धर्मतोज्ञेयंनतत्प्राज्ञोनिवर्तयेदिति तदर्थिप्रत्यर्थिनोरन्यतरस्यवचनाद्व्यवहारस्याधर्मतोवृत्तत्वाशंकायां पुनर्द्विगुणदंडप्रतिज्ञापूर्वकंव्यवहारंप्रवर्तयेत् नपुनर्धर्मतोवृत्तत्वनिश्चयेपिराज्ञालोभादिना प्रवर्तयितव्यइत्येवंपरम्-यत्पुनर्नृपांतरेणापिन्यायापेतंकार्यं निवर्तितं तदपिसम्यक्परीक्षणेन धर्म्येपथिस्थापनीयम्-न्यायापेतंयदन्येनराज्ञाऽज्ञानकृतंभवेत् तदप्यन्यायविहितंपुनर्न्यायेनिवेशयेदितिस्मरणात्) इन पंक्तियोंको उस स्थलमेंभी युक्त करके समुझ लेना जहां ३११की अधिकोक्ति पूरीहुईहो क्योंकि प्रायःवादी प्रतिवादीके व्यवहारों का यह निर्णय कहा ३१२(इतिप्रकीर्णसंज्ञंराजवादिप्रकरणम्)यादरखनेमात्रका यहचर्चा है कि मनुने और नारद ने भी व्यवहारमध्ये एकविवादपद उपराल्लू कल्पित कियाहै जो

अन्यस्मृतियों में भिन्नात्मक नहीं है और नाम उसका (स्त्रीपुंसयोगविवादपद) यह रक्खाहै इसहेतु से कि उसमें केवल दाम्पत्य विवाद वर्णन कियेहैं और नारद ने उस नामकी उत्थानिकाभी अग्रोक्त यह दर्शाईहै कि (विवाहादिविधिःस्त्रीणांयत्रपुंसांचकीर्त्यते । स्त्रीपुंसयोगसंज्ञंताद्विवादपदमुच्यते) अर्थात्-जिसमें स्त्रीपुरुषों के विवाह आदि वहुधा झगड़ों की विधि निर्णय करीजातीहै सो स्त्रीपुंसयोगनाम विवादपद कहलाताहै इत्यादि उनके झगड़े भी दर्शायेहैं-और मनुने भी नवम अध्याय के प्रारम्भसे लेकर ५६ छप्पन श्लोकोंतक जो वर्णन किया तिनमें इसीविवादपदकारूप सर्वथा रक्खा है कुछ और नहीं बलिक छप्पनसे आगे भी कुछ आपद्धर्म निर्णय कियेहैं-योगीश्वरने इन वातोंको एकत्र संग्रह नहीं किया जो इनका कोई मुख्य विवादपद भिन्नात्मक मानाजाय क्योंकि योगीश्वरने आचार और व्यवहार दोनों काण्डमें सर्वत्र यथावकाश निज निज हेतु स्थलको पाइकर उनवातों को दर्शाया है एकत्र संग्रह करना कुछ आवश्यक नहींमाना क्योंकि पति पत्नीका व्यवहार अदालत चढ़नेको प्रतिषिद्ध है पर जव जव कभी अदालत चढ़ने योग्यही व्यवहार उनका समुझाजाय तौभी उन्हीं नियमों से निपटारा कियाजाना सूचित कियाहै कि जो जो अवसर पाइकर आचार और व्यवहार में दर्शातेरहे या नारद और मनुजी ने जो कुछ वर्णन किया॥ इतिपतिपत्नीवादप्रसंगः (अथशास्त्रीयमानानांसंज्ञांतरभ्रमापहम् । साम्यंम्वक्ष्येस्फुटंकृत्वाछात्राणांबोधहेतवे १ शतमानन्तुनिष्कन्तुतथैवपलमेवतु । चतुःषष्टिकमापानांसंज्ञान्तरमितित्रयम् २ माषस्त्वत्रविशेषेणपञ्चकृष्णलकम्भवेत् । यवानांमध्यमानांचात्रितयंकृष्णलंत्विह ३ गौरसर्षपषट्केनयवमानंविधीयते । राजिकात्रितयंत्वत्रगौरसर्षपमानकम् ४

(राज्ञांकोषसमृद्धिकरणोपायः)

(अथभूपहिताकांक्षीराष्ट्रसम्पत्करंपरम् । यत्नंवक्ष्येसुसंचिन्त्यनृपचर्य्यंमनस्विनाम १ यथाकथञ्चित्सान्तिष्ठन्राजधानींमहोदयः । भूपोराष्ट्रसमृद्ध्यर्थंयत्रतत्रविचक्षणः २ चिन्तयानोविचिन्वंश्चसुस्थलानिवहूनिवा । उषितानिक्वचिद्वापिक्वचिद्वाऽनुषितानिच ३ पुनर्निवासयेत्स्वैरंबहुभिर्वाजनैःशुभैः । तत्रतत्रपुरीकृत्वाराजधानीमिवापराम् ४ तत्रपुष्पफलादीनिशाकानिविविधानिच । सर्वर्तुजायमानानिनानादेशोद्भवानिच ५ मनोहराणिपुष्पाणिमूलानिसुवहूनिच । दर्शनीयानिचान्यानिअपूर्वाण्यद्भुतानिच ६ वन्यानिपक्षिणश्चापिवृक्षांश्चपरदेशजान् । संपादयेत्स्वकेराज्येनत्कर्मज्ञैर्विशेषतः ७ क्रीडागृहैःशिल्पगृहैर्विचित्रैःकेदारपंक्त्यन्वितवाटिकाभिः । विद्यागृहैर्वेदगृहैःसुरम्यैःसभागृहैर्वाबहुभिस्सुधर्म्यैः ८ प्रपापियानाश्रितवाह्यमार्गैःसुसंस्कृतैःपांथजनोपकार्य्यैः । भांडावकैर्वाहनवाह्यकार्यैःसुगर्जितैर्लुण्ठकचौरवर्गान् ९ स्वस्वदुर्गन्देशगृहैर्जनैःस्वगृहेऽस्वतन्त्रकर्मपरैःसचिन्त्यैः । संस्थापिते पुरुषमुख्ययुतःराकुलसंप्रेष्यविचार्यसर्वान्ः १० कूपस्तटाके पथिकाश्रमंरच

चतुष्पथैश्चापणपंक्तिभिश्च। देवालयारामगृहैर्बहूत्तैः कुर्यात्पुरींस्वामिवतत्रतत्र ११ पु
र्य्यांवणिग्यूथविवर्द्धनंचव्यापारवृद्धयास्वधनेनवापि। दत्त्वासहायंवणिजांप्रकुर्य्याद्राजा
सदालाभफलाभिकांक्षी १२ दत्तधनेलाभफलार्धभागीतेभ्योऽथलाभार्द्धफलंहरेद्वा। शेषे
षुशास्त्रीयकरंगृहीत्वाकोशंसमुच्चीयमहाधनेन १३ विदेशजैःकर्मकरैश्चप्रीत्यानिवासितै
श्चार्थपरैर्विधिज्ञैः। नानागुणज्ञैर्बहुमूल्यवर्य्यैर्विचक्षणैःस्वामियशोऽनुरक्तैः १४ धनेनमा
नेनप्रवर्द्धितैस्तुप्रोत्साहितैर्भाविफलानुवादैः। स्वेस्वेचकर्मण्यधिनिष्ठितैस्तुपुरींस्फुरन्ती
मिवदर्शयेच्च १५ एतेनकर्मणाराज्ञांकीर्तिश्चैवातिदूरगा। लोकजिह्वाश्रयानूनंभवतीहनसं
शयः १६ तेनदेशांतरीयाश्चश्रुत्वालोकामहोदयाः। स्वस्वकर्मरथारूढाःप्रसर्पंतिपुरींप्रति
१७ विश्वकर्मरताधीराःशिल्पिनोगायनादिकाः। नटाभटाश्चमल्लाश्चशूराश्चैवाथशा
स्त्रिणः १८ आगच्छन्तिस्वयंसर्वेद्रष्टुमितस्ततः। तस्मात्सघनतांयातासुविस्तारा
पुरीशुभा १९ अथनारसमूहैस्तुरत्नादिक्रयविक्रयैः। स्वैःस्वैश्चपरिवर्तैर्द्धिलक्ष्मीवृद्धि
श्चजायते २० सालक्ष्मीराजकोशस्यराज्यस्यापिप्रवार्द्धिनी। भवतीहविशेषेणसत्यंस
त्यंनराधिपाः २१ जलबिन्दुनिपातेनक्रमशःपूर्य्यतेघटः। तथैवराजकोशस्तुस्तोकस्तो
केनवर्द्धते २२ (मुक्ताकनकरत्नाढ्यःपितृपैतामहोचितः। धर्मार्जितोव्ययसहःकोषःको
षज्ञसम्मतः) (धर्महेतोस्तथार्थायभृत्यानांभरणायच। आपदर्थंचसंरक्ष्यःकोषःकोष
वतासदा) तस्मादेतत्प्रकारेणकोषवृद्धिकरांपुरीम्। राष्ट्रंचवर्धयेदेवनीतियुक्तयानिराल
सः २३ यस्यसर्वगुणानांतुरत्नंसौशील्यमुत्तमम्। शिष्टाचारमणिश्चापितस्यसर्वेगु
णाःशुभाः २४ शिष्टाचारविहीनायेयेचसौशील्यरिक्तकाः। अपिसर्वगुणोपेताःसमु
द्रइवदूषिताः २५ ततोरत्नद्वयंराजासमुच्चीयाद्विशेषतः। क्रमशःशीलवृत्ताभ्यांमर्याद
प्रियतामियात् २६ (ग्रंथफलादेशः) यद्यपि प्रत्यक्ष का प्रमाण कुछ आवश्यक नहीं
तथापि यहमर्यादापरिपाटी जो अपूर्व सबसे पहिले बनिके प्रकट हुई इसके फलभीसू
चन करने आवश्यक ठहरे क्योंकि इसके दूर देशोंमें पहुँचने से तत्रत्य विदेशी लोग
जिनकीभाषामें कुछ अंतर हो शीघ्र नहीं समुझते सो इसका फलादेशपढ़िकर वेभी
शीघ्र समुझैंगे- सबसेप्रथम हमारेदेशियों को यह लाभ है कि जो अपनी संतानों को
मर्यादापरिपाटी बालअवस्थासे पढ़ानेलगें तौवे इसीग्रंथकोपढ़ते२ चतुरप्रवीणहोकर
अपने आप सर्व विद्याओं का संग्रह करने लगैंगे और संसारी आचार व्यवहार
बालपन से उनकी दृष्टि में जमजानेसे यथोक्त कालपर फलदायकहोंगे क्योंकिइसमें
सभीप्रकार की शिक्षायें जोनिःशेष वर्णन हुई हैं सो उनके अंतःकरण चतुष्टय में सर्व-
थाव्याप्त होंगी-इसको पढ़कर जिस विद्याका आराधन अभ्यास किया चाहेंगे सोइसका
बोध सहाय पाकर सूधी सुगमसी होजायगी जो कोई विद्वान् इसको पढ़कर सदा
विचारैंगे तौ एक विशेष लाभहै कि जिसने कुछ व्यवहारकाण्ड केवल संस्कृत ग्रंथों

सेही पढ़ाहो जिसका तत्त्व गूढ़होनेसे न समुझाहो तौ इसग्रन्थ के विचारसे वहमँजि-कर स्वच्छहोगा-ऐसे पुरुष जो आराधन इसका रक्खैंगे जो संस्कृत बाणीसे बिहीन हों वेभी मुख्य प्रयोजन इसकी भाषासेही समुझकर कुछ थोड़ाबोध संस्कृत वाणीमें करसकैंगे क्योंकि मर्यादा परिपाटीकी बनावट कोरीभाषा नहीं किंतु संस्कृताक्त कृशर भाषाहै और बहुधा इसमें पदयोजन संस्कृत वाणीके अनुरूप समास क्रमसे रक्खा गया है कि जिस्से धर्मशास्त्र के पारिभाषिक आदि शब्दोंका विलोप न होजाय उन का बोध सबको होतारहै-दूरदेशों के निवासी जिनकी बोलचाल में कुछ बहुत अन्तर हो और वे एतद्देशी बोलचाल आदि समुझनेके जिज्ञासुहों तिनको इसकेपढ़ने और अवधारण किये रहने से उसवाणी का अभ्यास प्राप्त होसक्ता है जो भारतवर्षीय विद्वानों की सामान्य बातचीत करनेकी भाषा है परन्तु जो इनदेशोंकी ग्रामीणा बोली कोई सीखाचाहै तौवह इसकेद्वारा नहीं सीखपावेगा-और-एतद्देशी बहुधा देशविभाग जिनमें प्राकृतबाणी बहुत अटपटीहै वहबोली इसके पढ़ने का प्रचार अधिक होनेसे इस ग्रन्थरूपी सानपर खरादी जाकर सूधी सुगमसी होजायगी पर जहाँ ताईं अ-धिक प्रचार इसका होनेसकै यह सिद्धान्तहै-क्योंकि (सुसिद्धमप्यौषधमातुराणान्ननाम मात्रेणकरोत्यरोगताम्) इसके सिवाय जो केवल संस्कृतके आराधक पण्डित कोईसी कल्पना वा अनुवाद क्रिया जानते नहीं न उसके लक्षण को अद्यापि कुछ कहसक्ते या करसक्ते हैं तिन सबको इस मर्यादापरिपाटी के यथोचित विधिसे पढ़ने तथा समुझने और आराधन कियेरहनेसे यहबहुतबड़ालाभहै कि वेभी अपनी विद्याशक्तिके और बोधके अनुसार कल्पना करने और अनुवाद उलथा आदि के करसकने में प्र-वीण होनेलगैंगे-परन्तु जे कोई अज्ञानी साक्षर होकर भी यह भाषा है क्या देखैंगे यों कहतेहुये उपेक्षा के आवेश में पड़िजायँगे वे जैसे थोथे अबहैं तैसे तबहूँरहे आ-गे यह दैवका प्रकोप उनपर जानो-इस मर्यादा परिपाटी में मर्याद प्रियका यह आ-शासन है कि केवल संस्कृत का आराधक पण्डित जिसने धर्मशास्त्र के अनेक ग्रन्थ यद्यपि देखेहों दूसरे किसी मर्यादा परिपाटी के आराधक विद्वान् से वह धर्म चर्चामें तुल्यात्मक नहीं उतरेगा (और) जहाँ कहीं दोनोंही मर्यादापरिपाटी के आराधकहों तिनमें अधिक संस्कृत स्मृतियों का विज्ञाताहो सो श्रेष्ठहोगा क्योंकि उसमें दोगुणहुये और मर्यादा परिपाटी भी यह उन्हीं संस्कृतस्मृतियों का अनुकल्प है ॥

धर्मशास्त्रप्रयोजकऋषीणांनामावली—मनुः १ अत्रिः २ विष्णुः ३ हारीतः ४ याज्ञवल्क्यः ५ उशना ६ अङ्गिराः ७ यमः ८ आपस्तम्बः ९ संवर्तः १० कात्यायनः १२ पराशरः १३ व्यासः १४ शङ्खः १५ लिखितः १६ दक्षः १७ तातपः १९ वसिष्ठः २० गार्ग्य २१

स्त्यः २५ भृगुः २६ नारदः २७ विश्वामित्रः २८ देवलः २९ ऋष्यशृङ्गः ३० बौधायनः ३१ पैठीनसिः ३२ जावालिः ३३ सुमन्तुः ३४ पारस्करः ३५ लौगाक्षिः ३६ कुथुमिः ३७ अग्निः ३८ च्यवनः ३९ छागलेयः ४० जातूकर्ण्यः ४१ पितामहः ४२ प्रजापतिः ४३ शाठ्यायनः ४४ बुधः ४५ सोमः ४६ धौम्यः ४७ आश्वलायनः ४८ आत्रेयः ४९ औपजन्धनिः ५० भरद्वाजः ५१ छिदम्बरः ५२ दत्तः ५३ हिरण्यकेशी ५४ जमदग्निः ५५ कण्वः ५६ काण्वः ५७ कपिलः ५८ कृष्णाजिनः ५९ कार्ष्णाजिनिः ६० कुत्सः ६१ कौत्सः ६२ लोहितः ६३ मार्कण्डेयः ६४ मौद्गल्यः ६५ नाचिकेतः ६६ पुलहः ६७ पौष्करसादिः ६८ शाकल्यः ६९ शाकटायनः ७० शांडिल्यः ७१ सत्यव्रतः ७२ शौनकः ७३ सुमतिः ७४ वत्सः ७५ वार्षायणिः ७६ व्याघ्रः ७७ व्याघ्रपादः ७८ यास्कः ७९ गोभिलः ८० भागुरिः ८१ उत्तरीमुनिः ८२ पैंग्यः ८३ इत्यादि और भी अनेक ऋषी धर्मकारकहैं और इन सबही ने निज निज धर्म शास्त्रकी संहिता वर्णन करीहैं बलिक कितनेही ऋषिवर्यों ने बड़छोटी के भेदसे दुहरे तिहरे ग्रन्थ निरूपण कियेहैं और बिरलोंने केवल व्यवहारकाण्ड बिरलोंने आचार प्रायश्चित्तही निबंधन कियाहै इन सबमें से मनु याज्ञवल्क्य कात्यायनआदि दो चारक स्मृतियाँ पूरे विस्तारसे अर्थात् आचार व्यवहार प्रायश्चित्त तीनों काण्डसे विनिर्मितहैं और बहुधा उक्त ऋषीन की विनिर्मितकरी संहिता हाथआतीहै अनेकों की श्रवण करने मात्रमें आतीहैं-और-कितनीही स्मृतियों के बड़े बड़े अनेक टीका विद्यमानहैं और मिलतेहैं जैसे एक मनुस्मृति के अनेक टीकाहैं और उनमें कईएक ऋषियों के किये टीका विख्यात हैं परन्तु एक भागुरि मुनिका किया टीका मनुस्मृति का अबहूँ हाथआताहै यह कहतेहैं- ऋषियों के सिवाय अन्य विद्वानों के बनाये जो जो टीका हैं उनमें एक मेधातिथिका किया टीका इनदेशोंकी अपेक्षा बहुत प्रमाणिक है एवं गोविन्दराजकृता टीका तथा धरणीधर कृताटीका भी मनुस्मृति के प्रमाणिक हैं और चौथा मनुमुक्तावली टीका जो उनतीनों के पश्चात् गौड़देशके निवासी विप्र कुल्लूक भट्टजीने किया वह सबसे अधिक उत्तम ठहिरा यह चारोंटीका वाराणसी सम्बन्धी देशविभागों की अपेक्षा में प्रधान हैं (और) महाराष्ट्र देशमें शायणाचार्य कृता माधवी टीका और नन्दराजकृता टीका दोनों अधिक मानीजाती हैं और यहीं एक नन्दराजकृता टीका कर्णाटक में भी प्रचलित है और भी मन्वर्थचन्द्रिका नाम एक टीका प्रसिद्ध है और श्रीधराचार्यकृत स्मृतिसार नाम ग्रन्थ में किसी एकमनु टीका कामधेनु नामका बहुत चर्चा है पर देखने में यहटीका प्रायः नहीं है-दूसरी विष्णु संहिता की वैजयन्ती नाम टीका जो दत्तक मीमांसाके बनानेवाले नन्दपण्डित ने बनाई विद्यमान है और इन्हींने पराशर संहिता की भी टीका एक लिखी है-तीसरी

याज्ञवल्क्य संहिता के भी अनेक टीका हैं तिनमें अपरार्कजी का किया टीका प्राची प्रतीत होताहै परञ्च मिताक्षरा जो विज्ञानेश्वर ने पश्चात् बनाई बहुत प्रमाणिकहु बहुधा अन्य देशों में भी प्रचलित है एक टीका देवबोध की बनाई देखीजाती है ए विश्वरूप की बनाई यद्यपि देखने में नहीं आतीहै पर अन्य ग्रन्थों के निबन्धमें प्र माण उसकालिखा देखागया है एकटीका शूलपाणिकृता दीपकालिका नाम गौड़दे में प्रमाणिक है-चौथी यमसंहिता की एकटीका ऊर्ध्वोक्त कुल्लूक भट्टकी बनाई वि ख्यात है-पांचवीं गौतम संहिताकी टीका एकहरदत्ताचार्यकी बनाई वर्त्तमान है-छठें नारद संहिता जो व्यवहार काण्डमात्रहै तिसकी टीका आर्कटदेशनिवासी वरदारा की बनाई बहुविस्तरित है और द्राविड़ देशमें प्रमाणिक मानीजातीहै और वरदा राज्य उसका नामहै-सातवीं पराशर संहिता जो केवल आचार और प्रायश्चित्त का ण्डमात्र है तिसकी टीका माधवाचार्य की बनाई माधव्या उसका नाम है दक्षिणाव में प्रमाणिक मानीजाती है- इत्यादि अन्य स्मृतियों के भी टीका अन्वेषण से मिल सकने सम्भव होंगे परञ्च जो जो स्मृतियाँ निपट दिखाई नहीं देती हैं उनके टीका भी मिलसकनेको कहना एक असङ्गत है॥

(अथास्यभारतवर्षस्यैव)

(पंचदेशभेदेननिबन्धमतभेदधर्मशास्त्रग्रन्थाः)

काश्यादिप्रदेशेषु-मिताक्षरा जो विज्ञानेश्वर आचार्य विज्ञानयोगी नाम किसी परम हंसने बनाई जो विक्रमादित्य राज्यसमय उन्हींका अमात्यथा पश्चात् परमहंस हो की दशामें यह ग्रन्थ निरूपणकिया ऐसा कहतेहैं काशी आदि बहुधा देशोंमें प्रधा- नता इसकी अधिक है और मिथिला तथा द्राविड़ महाराष्ट्र इनतीनोंमेंभी सामान्य- भाव कुछ कुछ मानीजाती है और उत्कल राज्य में भी इसी मिताक्षरा की प्रधानता अधिक मानीजाती है अर्थात् मिताक्षराही यहग्रन्थ एकऐसाहै कि सबदेशोंमें प्रमा- ण इसका होता है-दूसरा वीरमित्रोदय ग्रन्थ यह भी मिताक्षराकेही तुल्य है और वीरसिंह राजा की अनुज्ञासे पण्डित मित्रमिश्रने बनाया इसीहेतुसे वीरमित्रोदय उस का नामहुआ और बुद्धिमानोंने यह अनुमान किया है कि यह ग्रन्थ अनुमान तीन सौ वर्षके भीतरका बनाहै परञ्च वीरमित्रोदय की लिखावट से यह निश्चित अबतक नहीं है कि वीरसिंह राजाकी राजधानी किस स्थलमेंथी और क्या उसका नामथा— तीसरा परशुराम माधव-चौथा व्यवहार माधव्य-पांचवां विवाद ताण्डव यह ग्रन्थ कमलाकरभट्टका बनायाहै जिन्होंने निर्णयसिन्धु आदि और भी अनेक ग्रन्थ निर्मित किये हैं-पांचवांनिर्णयसिंधु यहभी कमलाकर भट्टने बनाया और यहग्रंथ विक्रमादित्य के ६६८ संवत में बनकर समाप्त हुआ-छठा सुबोधिनी नाम ग्रंथ जो विश्वेश्वर

भट्टने मिताक्षराकी टीका निर्मित करी-सातवाँ ग्रंथ मिताक्षराका बालमभट्टीय नाम टीका जो पापगुंडोपाख्य लक्ष्मीदेवी विरचित व्यवहार प्रकरण जिसका लक्ष्मी यही नाम है इत्यादि बहुधा अन्यग्रंथ भी प्रमाण कियेजाते हैं-यहाँका धर्म शास्त्रठेठ वाराणसी सम्बन्धी देशों में और भी पश्चिमोत्तर सब देशोंमें और और जो जो देश भेद राजपूताना आदिभारतवर्ष में प्रसिद्धहैं तिन सब में प्रचलित है और उड़ीसामें भीप्रचलितहै और नदियाशांतपुर आदिमेंभी॥

मिथिलासंबंधीदेशमें-- मिताक्षरा-विवाद चिंतामणि जो वाचस्पति मिश्रने निबंधित किया-विवादरत्नाकर जो मिथिला राजके अमात्य चंडेश्वरने प्रणीत किया-व्यवहार चिंतामणि यह भी वाचस्पति मिश्र का निबंधहै-विवादचंद्र जो लक्ष्मीदेवी का कर्तृत्व है-स्मृतिसार जो हरिनाथोपाध्याय का कर्तृत्व है-स्मृतिसमुच्चय-मदनपारिजात जो विश्वेश्वरभट्टने बनाया और जाटजातीय मदनपालनाम भूपति के नामसे विख्यात किया-कल्पतरु-द्वैत-परिशिष्ट जो केशवमिश्रका कर्तृत्वहै-और एक श्रीकराचार्यका बनायाग्रंथ-आचार्य्यचंद्रिका जो श्रीनाथाचार्यका कर्तृत्वहै-इत्यादि कुछ और ग्रंथ भी मिथिलामें प्रमाण कियेजाते हैं-यहांके ग्रंथ विहारके उत्तर मुज़फ्फरपुरतक प्रचलित हैं-और मिथिला का प्रदेश मंडल ठेठमिथिला और समग्र तिरहुत औरकुछ कुछभाग पूर्णिया तथा भागलपुर तथा मुंगेर तथा सारण इनका भी लेकर समुझा चाहिये॥

बंगदेशमें-व्यवहार मातृका-दायभाग जो जीमूतवाहनका कर्तृत्व है-उसी दायभाग की टीका जो श्रीकृष्णतर्कालंकारने बनाई दायक्रम संग्रह नाम ग्रंथ जो ऊर्ध्वोक्त तर्कालंकारने बनाया-दायतत्त्व आदि अट्ठाइस तत्त्वनाम के ग्रंथजो रघुनन्दन भट्टाचार्य ने बनाये-विवाद भंगार्णव जो जगन्नाथ तर्क पंचानन का कर्तृत्व है-जीमूतवाहन ग्रंथ जिसके कर्ता जीमूतवाहन हैं-व्यवस्था दर्पण-इत्यादि प्रायशः अन्य ग्रंथ भी प्रमाणीभूत प्रचलित हैं॥

द्राविड़ देशमें-माधवीयानाम ग्रंथ जो माधवाचार्य का कर्तृत्व है-स्मृतिचंद्रिका जो देवानंदभट्टका कर्तृत्वहै और द्राविड़ तैलंग. कर्णाट इन देशों में अत्यन्त प्रमाणीभूत है-सरस्वतीविलास नाम ग्रंथ जो कृष्णा नदीके उत्तरतीरनिवासी काकत्य बंशराजा प्रताप रुद्रदेवकी अनुज्ञासे विनिर्मित हुआ कहते हैं और यह ग्रंथ हैदराबादसे उत्तर तैलंगों में भी व्यवहृतहै-वरदाराज्यं नाम ग्रंथ जो व्यवहारकांड नारद संहिताकाहै पर बहुत बड़ा विस्तारितहै कि जिसको आर्कटनिवासी वरदाराजने निर्माण किया-मिताक्षरा-इत्यादि और ग्रंथ भी प्रमाणीभूत प्रचलितहैं-और यहांके धर्मशास्त्र कुल दक्षिणभाग हिन्दुस्तान में माने जाते हैं॥

(महाराष्ट्रदेशमें) व्यवहार मयूखजो पण्डितनीलकंठने बारह मयूख एकहीग्रंथमें नि-

माणे किये तिनमेंसे यह छठामयूख है-संस्कार कौस्तुभ जो अनंतदेवका कर्तृत्व व्यवहारकौस्तुभ-धर्मसिन्धुजो काशीनाथ उपाध्यायने निर्माण किया-निर्णयसिन्धु कमलाकारभट्ट वा निर्णयकमलाकार उपनामने निर्माणकिया-हेमाद्रिनामग्रंथजो द्रिभट्ट काशीकरका निर्माण किया बहुत प्राचीनहै-मिताक्षरा-इत्यादि बहुधा ग्रंथभी प्रमाण कियेजाते हैं-और यहां के धर्मशास्त्र मरहटोंके सब देशमात्रमें भुतहैं और प्रचलितहैं-यह पांचदेश भेदोंसे जो ग्रंथोंकी प्रधानता दर्शितहुई इस्से तर्कणा न करनीचाहिये कि जो ग्रंथ एक देशमें प्रचलित हैं वे अन्यदेशमें नि समूझेजातेहोंगे किन्तु धर्मशास्त्रएकहै और सभीग्रंथ सर्वत्र माने जासक्तेहैं पर केवल भेदहै कि जिनकीनिपट प्रधानता मानीगई उनका आद्योपांतही प्रमाण करते हैं और अन्यदेशी ग्रंथोंमें जो अधिक विशेष कोई बात पाईजातीहै तो भी स्वीकार करते हैं॥

(दत्तकविषय) दत्तकमीमांसा जो नंद पंडितकी बनाई है और दत्तकचंद्रिका देवानंद भट्ट स्मृतिचंद्रिकाकारकी बनाई है ये दोहीग्रंथ सबदेशोंमें प्रमाणीभूतहैं बांगदेशमें और द्राविड़देशमें विशेष दत्तकचंद्रिकाही प्रधान मानीजाती है कि दो ग्रंथोंके परस्पर कुछ मत भेदहै-यद्यपि प्रमाणीभूत और प्रसिद्ध संप्रति ग्रंथहैं पर इस विषयके कुछ और भी प्राचीन ग्रंथ सुनेजाते हैं यथा- की बनाई एक द्वितीय दत्तकमीमांसाहै-गंगादेव वाजपेयीकी बनाई एक द्वितीय चंद्रिकाहै-व्यासाचार्यका बनाया दत्तकदीपकहै-नागजीभट्टका बनाया दत्तककौस्तुभ कृष्णमिश्रका बनाया दत्तकभाषण है-भवदेवभट्ट का बनाया दत्तकतिलक है-रा कृष्णकी बनाई दत्तकसिद्धान्तमंजरी है-श्रीनाथभट्टका बनाया दत्तकनिर्णय है-औ भी दत्तककौमुदी-दत्तकदीधिति-दत्तकदर्पण आदि बहुधाग्रंथहैं जो मृत्युंजय-नि लंकार आदि कर्त्ताओंके बनाये सुनेजाते हैं-इसीप्रकार-धर्मशास्त्रके अनेक और ग्रं जो संप्रतिवर्तावमें कुछ कहीं कहीं आते हैं और कुछ कुछ निपट वर्तावमेंही नहीं अ केवल नाम उनके सुनेजाते हैं यथा वृहदभिधानक, कृत्यकल्पतरु, स्मृतिसंग्रह, व्यवहारपारिजात, धर्मप्रदीप धनंजयकृत, गोत्रनिर्णय, प्रयोगपारिजात, द्वैतनिर्णया मृत, विवादचंद्रिका, प्रवरमंजरी श्रीकराचार्य के पुत्र श्रीनाथाचार्यकी बनाई आचार्य चंद्रिका, भवदेवभट्टकी बनाई व्यवहारकला, हलायुधकृतग्रंथ जो गौडदेशावि लक्ष्मणसेन राजाके गुरु हलायुधका बनायाहै, लक्ष्मीधरका बनाया कल्पतरु, परशु रामप्रतापग्रंथ जो प्राच्यतैलङ्गदेशी भूपति सर्वज्ञप्रतापकी अनुज्ञा से विर हुआ, नागजीभट्ट का बनाया व्यवहारस्वीकार, मदनरत्न नामग्रंथ जो मदनसिंह का बनाया और आचार व्यवहार प्रायश्चित्तरूप विभाग है, शंकरभट्टकाशी

का बनाया आचारार्क नाम ग्रंथ जिसमें व्यवहार भी समाश्रित है-योगभट्ट काशीकर का उद्योत नामग्रंथ-दिनकरद्योत नामग्रंथ जो विश्वरूप रामकयोग भट्ट काशीकर का बनाया व्यवहाराचारविषयिक है-गोविंदार्णव नाम ग्रंथ जो गोविंद चंद्रनाम काशिराज की अनुज्ञासे रामचन्द्र पंडितकेपुत्र नरसिंहजी ने निर्मित किया शंभुकर बाजपेयी के बनाये ग्रंथ-उदयकर बाजपेयी के बनायेग्रंथ-ब्राह्मणसर्वस्व,न्यायसर्वस्व,पंडितसर्वस्व-इत्यादि बहुधा और भी अनेक धर्मशास्त्रकेही ग्रंथहैं कि जो अब श्रवण मात्रकेही काम आते हैं ॥

संग्रहकारटीकाकारोंकी नामावली संक्षेप—मेधातिथि १ गोविंदराज २ धरणीधर ३ कुल्लूकभट्ट ४ शायनाचार्य ५ नन्दराज ६ श्रीधराचार्य ७ नंदपंडित ८ अपरार्क ९ विज्ञानेश्वराचार्य १० देवबोध ११ विश्वरूप १२ शूलपाणि १३ हरदत्ताचार्य १४ वरदाराज १५ माधवाचार्य १६ विद्यारण्यस्वामी १७ पंडितामित्रमिश्र १८ कमलाकरभट्ट १९ विश्वेश्वरभट्ट २० शंभुकरबाजपेयी २१ उदयकरबाजपेयी २२ श्रीकराचार्यमिथिलाजात २३ तत्पुत्रश्रीनाथाचार्य २४ भवदेवभट्ट २५ हलायुध २६ लक्ष्मीधर २७ नागजीभट्ट २८ मदनसिंहभूपति २९ शंकरभट्टकाशीकर ३० योगभट्टकाशीकर ३१ विश्वरूपरामकयोगभट्ट काशीकर ३२ जितेन्द्रिय ३३ धारेश्वर ३४ बालरूप ३५ हरिहर ३६ मुरारिमिश्र ३७ गंगादेवबाजपेयी ३८ व्यासाचार्य ३९ कृष्णमिश्र ४० रामकृष्ण ४१ श्रीनाथभट्ट ४२ मृत्युंजय ४३ विद्यालंकार ४४ वाचस्पतिमिश्र ४५ मिथिलाराजका अमात्यचंडेश्वर ४६ हरनाथोपाध्याय ४७ केशवमिश्र ४८ देवानंद वा देवणभट्ट ४९ आर्कटनिवासीवरदारज ५० नीलकंठ ५१ अनंतदेव ५२ काशीनथोपाध्याय ५३ हेमाद्रिभट्ट काशीकर ५४ वोपदेव ५५ सर्वोरु त्रिवेदी ५६ देवस्वामी ५७ देवशतक ५८ संग्रहकार ५८ रायमुकुट ६० व्यर्द्ध मानोपाध्याय ६१ विज्ञानयोगी ६२ प्रकाशकार ६३ व्यवहार पारिजातकार ६४ आचार्यचूडामणि ६५ हरिनाथ ६६ धनंजय ६७ शवरस्वामी ६८ सत्याषाढ ६८ त्रिकांड ७ सर्वज्ञपंडित ७१ गोपाल ७२ सोमेश्वरभट्ट ७३ भवभूति ७४ वादभयंकरकृत ७५ उदय नाचार्य्य ७६ वांग देशीजीमूत वाहन ७७ रघुनन्दन भट्टाचार्य ७८ श्रीकृष्ण तर्कालंकार ७८ जगन्नाथतर्कपंचानन आदि ८० इत्यादि बहुधा और भी अनेक संग्रह कार टीकाकार पंडित हुये हैं कि सबके नाम लिखा जाना बड़ा दुर्घट है. संक्षेप चर्चा किया गया ॥

—०—

काश्यादि प्रदेशेषु विभक्त असंसृष्टस्यमृतस्यधनेकाशीप्रचलितग्रंथेभ्योदायक्रमः

	मिताक्षरावीरमित्रोदयानुसारेण		मर्यादापरिपाट्यनुसारेण
१	पुत्र.	१	पुत्राणां विभाग कालेहि मातृणां समाश्रता नतु विभजनात् प्रागेवतासां स्वत्वस्या अगृहीत्वा मृतानां तासां स्त्री धनवत् दुहित्रा दीनां मधिकार:
२	पौत्र:	२	ऊर्ध्वोक्तपौत्राणां विभागे माता मह्याअपि
३	प्रपौत्र	३	प्रपौत्राभावेसतितु तत्पुत्रे धनाधिकारित्वमवश्यं तस्यज्ञेयः नतत्र पत्न्यादि क्रमो बलवान्
४	पत्नी	४	
५	अनूढा दुहिता	५	
६	ऊढा अप्रतिष्ठिता दुहिता	६	अप्रतिष्ठिता धनहीना
७	ऊढा प्रतिष्ठिता दुहिता	७	
८	दौहित्र.	८	
९	जननी	९	पिता } द्वयो: सहाधिकारो वेति प्राधान्यम्
१०	पिता	१०	माता
११	सोदर भ्राता	११	
१२	असोदर भ्राता	१२	
१३	सोदर भ्रातृ पुत्र:	१३	भ्रातृजा: सर्वेहि स्वस्वपितृ सतान विषमत्वेपि समभागिन:
१४	असोदर भ्रातृ पुत्र:	१४	भ्रातृ पुत्राणामभावे भ्रातृ पौत्राश्च धन भाज:
१५	पिता मही	१५	पितामह: } द्वयो: सहाधिकारोवा
१६	पिता मह:	१६	पितामही
१७	पितामह पुत्र: (पितृव्य:)	१७	
१८	पितामह पौत्र (पितृव्य पुत्र:)	१८	पितामह पौत्राभावेतत्पुत्रा दयोपि धनभाज: . तेच पितामह मारभ्यतत् सप्तम संतान पर्यंतज्ञेया:
१९	प्रपिता मही	१९	प्रपितामह.
२०	प्रपितामह:	२०	प्रपितामही
२१	प्रपितामह पुत्र (पितामह भ्राता)	२१	
२२	प्रपितामह पौत्र (पितामह भ्रातृपुत्र)	२२	प्रपिता मह पौत्रा भावे तत्पुत्रादयोपि धनभाज:तेच प्रपिता मह मारभ्यतत्सप्तमसंतान पर्यन्त बोध्या:
२३	वृद्ध प्रपिता मही	२३	वृद्ध प्रपितामह:
२४	वृद्ध प्रपितामह:	२४	वृद्ध प्रपितामही
२५	वृद्धप्रपितामह पुत्र: (प्रपितामहभ्राता)	२५	
२६	वृद्ध प्रपितामह पौत्र. (प्रपितामह भ्रातृ पुत्र:)	२६	वृद्ध प्रपितामह पौत्रा भावेतत्पुत्रा दयोपिधन भाज:तेचवृद्ध प्रपितामह मारभ्य सप्तम सतान पर्यन्त ज्ञेया ॥
२७	अतिवृद्ध प्रपितामही	२७	अतिवृद्ध प्रपितामह:
२८	अतिवृद्ध प्रपितामह:	२८	अतिवृद्ध प्रपितामही
२९	अतिवृद्ध प्रपितामहपुत्र (वृद्धप्रपितामहभ्राता)	२९	
३०	अतिवृद्ध प्रपितामहपौत्र (वृद्धप्रपितामहभ्रातृपुत्र:)	३०	अतिवृद्धप्रपितामह पौत्राभावेतत्पुत्रादयोपि धनभाज.तेचअति वृद्धप्रपितामहमारभ्यसप्तमसंतान पर्यन्त बोध्या:
३१	अत्यतिवृद्ध प्रपितामही	३१	अत्यतिवृद्ध प्रपितामह:
३२	अत्यतिवृद्ध प्रपितामह:	३२	अत्यतिवृद्ध प्रपितामही
३३	अत्यतिवृद्ध प्रपितामहपुत्र (अतिवृद्धप्रपितामहभ्राता)	३३	
३४	अत्यतिवृद्ध प्रपितामहपौत्र (अतिवृद्धप्रपितामहभ्रातृपुत्र:,	३४	अत्यतिवृद्धप्रपितामह पौत्राभावेतत्पुत्रादयोपि धनभाज. तेच

काश्यादिप्रदेशेषुविभक्तअसंसृष्टस्यमृतस्यधनेकाशीप्रचलितग्रंथेभ्योदायक्रमः

मिताक्षरावीरमित्रोदयानुसारेण		मर्यादापरिपाट्यनुसारेण
	(इत्येतेसप्तसपिंडावेद्या:) एतेषामनंतरसप्तयङ्क्यासमानोदकाभवन्ति तेषामप्येवमेवक्रमोवेदितव्य:यथा	अत्यतिवृद्धप्रपितामहस्य सप्तमसतान पर्यन्तवोध्या. (एवमेवाधोधश्चक्रमोवेदितव्य.) यावत्सप्तसमानोदका:स्युरिति
३५	आद्यसमानोदक: प्रथमगृह्णाति	
३६	आद्यसमानोदकस्यपुत्र:	
३७	आद्यसमानोदकस्यपौत्र:	
	इत्येवमासन्नतरक्रमेणउपरितन षट्समानोदका.सप्तसमानोदकावातेषासततिपर्य्यन्तदायाधिकार:तेषामप्यभावेबन्धवादयोयथा	इतिकाश्यादिप्रदेशव्यवस्था
३८	आत्मपितृष्वसु: पुत्रा:	
३९	आत्ममातृष्वसु:पुत्रा.	
४०	आत्ममातुल पुत्रा.	
४१	पितु: पितृष्वसु: पुत्रा:	
४२	पितुर्मातृष्वसु: पुत्रा:	
४३	पितुर्मातुल पुत्रा:	
४४	मातु:पितृष्वसु: पुत्रा:	
४५	मातुर्मातृष्वसु: पुत्रा:	
४६	मातुर्मातुल पुत्रा.	
४७	आचार्य्य:	
४८	शिष्य:	
४९	सब्रह्मचारी	
५०	ब्राह्मण.	
५१	राजाब्राह्मणधनेराज्ञोनाधिकार	

मिथिलायांविभक्तासंसृष्टस्यमृतस्यधनेदायाधिकारः

वाचस्पतिमिश्रकृतविवादचिन्तामण्याद्यनुसारेण		वाचस्पतिमिश्रकृतविवादचिन्तामण्याद्यनुसारेण	
१	पुत्र:	१२	असोदरभ्रातृपुत्र
२	पौत्र:	१३	पितामही
३	प्रपौत्र:	१४	पिता मह:
४	पत्नी	१५	सोदर पितृव्य:
५	अनूढा दुहिता	१६	असोदर पितृव्य.
६	ऊढा दुहिता	१७	सोदर पितृव्यपुत्र:
७	जननी	१८	असोदर पितृव्य पुत्र
८	पिता	१९	प्रपितामही
•	दौहित्रोपिपितुरनन्तरमेवेत्वाचस्पतिग्रन्थेनविज्ञायतेनान्येषु तट्ठ्यग्रचलितग्रन्थेषुपरिपाट्या वा विज्ञायते	२०	प्रपितामह:
		२१	प्रपितामहपुत्र. (पितामहभ्राता)
९	सोदरभ्राता	२२	प्रपितामहपौत्र. (पितामहभ्रातृपुत्र)
१०	असोदरभ्राता	२३	वृद्धप्रपितामही
११	सोदरभ्रातृपुत्र:	२४	वृद्धप्रपितामह:

वाचस्पतिमिश्रकृतविवादचिन्तामण्याद्यनुसारेण

२५ वृद्धप्रपितामहपुत्र: (प्रपितामहभ्राता)
२६ वृद्धप्रपितामहपौत्र. (प्रपितामहभ्रातृपुत्र.)
(अनेनैवक्रमेणसप्तमपुरुषपर्यन्तसपिण्डानामधिकारोबोध्य:)
सपिण्डानामभावे चतुर्द्दश पुरुषपर्यन्तसप्तसमानोदकानामधिकारो वोध्य समानोदकानामभावेत्रिविध बन्धबोधनभाज: तेचका श्यादिदेशलिखिताएव ज्ञेया:—सब्रह्मचारिराजा पर्यन्तंचतथैवा त्रापिक्रमोविज्ञेय. ॥

वांगदेशेमृतस्यधनेदायाधिकारः

श्रीकृष्णतर्कालंकारकृतदायक्रमसंग्रहाद्यनुसारेण

१ पुत्र.
२ पौत्र —मृतपितृकपौत्रस्यपितृव्यै.सहतुल्याधिकार:
३ प्रपौत्र.—एवमृतपितृपितामहकप्रपौत्रस्यापिबोध्य:
४ पत्नी—विभक्ताविभक्तसंसृष्टस्यापिभर्तुर्दायंगृह्णाति
५ कुमारीदुहिता
६ ऊढादुहिता—पुत्रवतीसंभावितपुत्राचसहाधिकारिण्यौअनयो रसत्वेपिवन्ध्या पुत्रहीनविधवयोर्नाधिकार:
७ दौहित्र:
८ पिता
९ माता
१० सोदर भ्राता } अत्रसंसृष्टासंसृष्टभ्रातृविषयिकोव्यवस्थाद्रष्टव्या
११ असोदरभ्राता }
१२ सोदरभ्रातृपुत्र.—नह्य सोदरपुत्र —किंचसंसर्ग्यसंसर्गिसोदर भ्रातृपुत्रेपुअसोदरभ्रातृपुत्रेपुचव्यवस्थाद्रष्टव्या
१३ भ्रातृपौत्र:
१४ पितृदौहित्र: (भागिनेय.)
१५ भ्रातृदौहित्र:
१६ पितामह:
१७ पितामही
१८ पितृव्य.
१९ पितृव्यपुत्र'
२० पितृव्यपौत्र
२१ पितामहदौहित्र (पितुर्भागिनेय)
२२ पितृव्यदौहित्र.
२३ प्रपितामह
२४ प्रपितामही
२५ प्रपितामहपुत्र (पितामहभ्राता)
२६ प्रपितामहपौत्र. (पितामहभ्रातृपुत्र)
२७ प्रपितामहप्रपौत्र. (पितामहभ्रातृपौत्र.)
२८ प्रपितामहदौहित्र (पितामहभागिनेय:)
२९ पितामहभ्रातृ दौहित्र.

श्रीकृष्णतर्कालंकारकृतदायक्रमसंग्रहाद्यनुसारेण

(अथ मातृसपिंडाः)

३० मातामह:
३१ मातुल:
३२ मातुल पुत्र.
३३ मातुलपौत्र:
३४ मातामह दौहित्र: (मातुलभागिनेय:)
३५ प्रमातामह:
३६ प्रमातामह पुत्र: (मातामहभ्राता)
३७ प्रमातामहपौत्र: (मातामहभ्रातृपुत्र.)
३८ प्रमातामह प्रपौत्र: (मातामहभ्रातृपौत्र:)
३९ प्रमातामहदौहित्र: (मातामहभागिनेय.)
४० वृद्ध प्रमातामह:
४१ वृद्धप्रमातामह पुत्र: (प्रमातामहभ्राता)
४२ वृद्धप्रमातामह पौत्र: (प्रमातामहभ्रातृपुत्र')
४३ वृद्धप्रमातामह प्रपौत्र: (प्रमातामहभ्रातृपौत्र:)
४४ वृद्ध प्रमातामह दौहित्र: (प्रमातामहभागिनेय:)

(एतेषामभावे सकुल्यानामधिकारः)

(तेचद्विधाअधस्तनाऊर्ध्वतनाश्च)

(तत्रादावधस्तनाअधिकारिणोयथा)

४५ धनिन: प्रपौत्रस्यपुत्र:
४६ प्रपौत्रस्य पौत्र:
४७ प्रपौत्रस्य प्रपौत्र.

(अथोर्ध्वतना.सकुल्याः)

४८ वृद्धप्रपितामह: तत्सततयोऽपिक्रमात्
४९ अतिवृद्धप्रपितामह: तत्सततयोपि
५० अत्यतिवृद्ध प्रपितामहा: तत्सततयोपि

(अत्र सकुल्याएव समानोदकाः पदान्तरेण मन्तव्याः)

५१ आचार्य्य
५२ शिष्य:
५३ सब्रह्मचारी (सहविद्याध्यायी)
५४ स्वग्रामस्था: सगोत्रजा:
५५ स्वग्रामस्था:समानप्रवरा:
५६ स्वग्रामस्था. वेदविद्ब्राह्मणा.
५७ राजाहिब्राह्मणधनवर्जंगृह्णीयात्

इतिवांगदेशव्यवस्था

द्राविढदेशविभक्तासंसृष्टस्यमृतस्यधनेदायाधिकारः

स्मृतिचन्द्रिकाऽनुसारेण

१ पुत्र:
२ पौत्र.
३ प्रपौत्र:

स्मृतिचन्द्रिकानुसारेण

४	पत्नी	
५	अनूढा दुहिता	
६	ऊढा अप्रतिष्ठितादुहिता	
७	ऊढा प्रतिष्ठिता दुहिता	
८	दौहित्र:	
९	पिता	
१०	जननी	
११	सोदर भ्राता	
१२	असोदर भ्राता	
१३	सोदर भ्रातृपुत्र:	
१४	असोदर भ्रातृपुत्र:	
१५	पितामहस्य पुत्र:	(पितृव्य:)
१६	पितामहस्य पौत्र:	(पितृव्यजाभ्राता)
१७	प्रपितामहपुत्र:	(पितामहभ्राता)
१८	प्रपितामहपौत्र:	(पितामहभ्रातृपुत्र:)
१९	वृद्धप्रपितामहपुत्र:	(प्रपितामहभ्राता)
२०	वृद्धप्रपितामहपौत्र:	(प्रपितामहभ्रातृपुत्र:)
२१	अतिवृद्धप्रपितामहपुत्र:	(वृद्धप्रपितामहभ्राता)
२२	अतिवृद्ध प्रपितामहपौत्र:	(वृद्धप्रपितामहभ्रातृपुत्र:)
२३	सपिण्डातीत पुरुषसुत:	
२४	तत्सुतश्च	
२५	आद्यसमानोदकसुत:	
२६	तत्सुतश्च	
२७	द्वितीय समानोदकसुत:	
२८	तत्सुतश्च	
२९	तृतीय समानोदक सुत:	
३०	तत्सुतश्च	
३१	चतुर्थसमानोदकसुत:	
३२	तत्सुतश्च	
३३	पंचम समानोदक सुत:	
३४	तत्सुतश्च	
३५	षष्ठ समानोदक सुत:	
३६	तत्सुतश्च	
३७	सप्तम समानोदकसुत:	
३८	तत्सुतश्च	
३९	आत्म बन्धव: क्रमेण धनभाज:	

अथबन्धूनामाधिकार.

४०	पितृ बन्धव: क्रमेण धनभाज.	बन्धवोहि वाराणसी देशलिखिताएवज्ञेया:
४१	मातृ बन्धव: क्रमेण धनभाज	
४२	आचार्य्य:	

स्मृतिचंद्रिकाऽनुसारेण

४३	शिष्य:
४४	सब्रह्मचारी
४५	ब्राह्मण:
४६	राजा

इतिद्राविड़देशव्यवस्था

महाराष्ट्रेविभक्तासंसृष्टस्यमृतस्यधनेदायाधिकार:

व्यवहारमयूखानुसारेण

१	पुत्र:	
२	पौत्र:	
३	प्रपौत्र:	
४	पत्नी	
५	अनूढा दुहिता	
६	ऊढा अप्रतिष्ठिता दुहिता	
७	ऊढा प्रतिष्ठिता दुहिता	
८	दौहित्र:	
९	पिता	
१०	जननी	
११	सोदरभ्राता	
१२	सोदर भ्रातृ पुत्र:	
१३	पितामही	
१४	भगिनी	
१५	पितामह:	
१६	असोदरभ्राता	
१७	प्रपितामह:	
१८	पितृव्य:	
१९	असोदरभ्रातृ पुत्र:	
२०	सपिण्डा आसप्तमात् आसन्नतर क्रमेण धनभाज	
२१	समानोदकाजन्मनामज्ञानावधिकाआसन्नतरक्रमेणधनभाज:	
२२	आत्म बधव: क्रमेण धनभाज:	बधव. काश्युक्ताएवात्र विज्ञेया:
२३	पितृ बधव: क्रमेण धन भाज:	
२४	मातृ बधव: क्रमेण धन भाज:	
२५	आचार्य्य:	
२६	शिष्य:	
२७	सब्रह्मचारी	
२८	ब्राह्मण:	
२९	राजा ब्राह्मण धन विनान्येषा धनं गृह्णीयात्॥	

इतिमहाराष्ट्रदेशव्यवस्था॥

इतिपंचदेशभेददायाधिकारक्रम:॥

इतिश्रीमच्छुक्लख्यातिवंशीयेनमर्यादाप्रियपंडितदुर्गाप्रसादेनकृतायांमिताक्षराद्यनुवादरूपायांमर्यादापरिपाट्यां व्यवहाराध्याय: समाप्त:

तीसरे भागमें (८) कर्णपर्व्व (९) शल्यपर्व्व (१०) सौप्तिकपर्व्व (११) योषिक व विशोकपर्व्व (१२) स्त्रीपर्व्व (१३) शान्तिपर्व्व—राजधर्म्म, आपद्धर्म्म, मोक्षधर्म्म सफ़े ४५६ जुज़ २८ वर्क़ ४ क़ीमत ३)

चौथे भागमें (१४) शांतिपर्व्व दानधर्म्म व अश्वमेध (१५) आश्रमवासिकपर्व्व (१६) मुसलपर्व्व (१७) महाप्रस्थानपर्व्व (१८) स्वर्गारोहण व हरिवंशपर्व्व सफ़े ५२८ जुज़ ३३ क़ीमत ३)

महाभारत के पर्व्व अलग २ भी मिलते हैं ॥

१ आदिपर्व्व	१	क़ीमत	१)	२ सभापर्व्व	२	क़ीमत	।–)
३ वनपर्व्व	३	तथा	१।=)	४ विराटपर्व्व	४	तथा	।)
५ उद्योगपर्व्व	५	तथा	॥)	६ भीष्मपर्व्व	६	तथा	॥=)
७ द्रोणपर्व्व	७	तथा	॥≡)	८ कर्णपर्व्व	८	तथा	॥)
९ शल्यवगदा ९ सौप्तिक १० योषिकवविशोक ११ स्त्रीपर्व्व					१२	तथा	।=)
१० शांतिपर्व्व १३ राजधर्म, आपद्धर्म, मोक्षधर्म्म, दानधर्म्म,					सफ़े ५२८	तथा	३)
११ अश्वमेध १४ आश्रमवासिक १५ मुसलपर्व्व १६ महाप्रस्थान १७ स्वर्गारोहण १८						तथा	।)
१२ हरिवंशपर्व्व १९						तथा	१=)

महाभारत सबलसिंह चौहान कृत ॥

यह पुस्तक ऐसी उत्तम है कि सम्पूर्ण महाभारत की कथा दोहे चौपाई आदि छन्दोंमें है ऐसी सरलहै कि कमपढ़ेहुये मनुष्यों को भी भली भांति समझमें आती है इसका आनन्द देखनेही से मालूमहोगा नीचे लिखेहुये पर्व्व छपेहुये तय्यार हैं यह पुस्तक बहुतही कम मिलती हैबड़ी मुश्किलों से जो पर्व मिलेहैं वह छापेगये ॥

(१) आदिपर्व्व सफ़े ७४ जुज़ ४ वर्क़ ५ क़ीमत ।) पैमाना ११+७ छपीहुई सन् १८८४ ई०
(२) सभापर्व सफ़े ७८ जुज़ ४ वर्क़ ७ क़ीमत ।)

ऊपर लिखेहुये अलंकारों सहित पैमाना ११ + ७ छपीहुई सन् १८८३ ई०

(३)	वनपर्व्व	तथा तथा	सफ़े	४२	जुज़	२	वर्क़ ५	क़ीमत ।)
(४)	विराटपर्व्व	तथा तथा	सफ़े	७६	जुज़	४	वर्क़ ६	क़ीमत ।)
(५)	उद्योगपर्व	तथा तथा	सफ़े	१४४	जुज़	९		क़ीमत ।)॥
(६)	भीष्मपर्व, द्रोणपर्व, कर्णपर्व, शल्यपर्व व गदापर्व		सफ़े	१७६	जुज़	११		क़ीमत ॥)
(७)	स्त्रीपर्व	तथा	सफ़े	२४	जुज़	१	वर्क़ ४	क़ीमत)॥।
(८)	स्वर्गारोहण	तथा	सफ़े	२८	जुज़	१	वर्क़ ६	क़ीमत –)

बाक़ी जब इसके पर्व्व मिलेंगे छापेजावेंगे जिनमहाशयों को मिलसक्ती हैं कृपाकरके भेजदें तो छपजावें ॥

भगवद्गीतानवलभाष्यकाविज्ञापनपत्र ॥

प्रकटहो कि यहपुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता सकल निगम पुराण स्मृति सांख्यादि सारभूत रहस्यगीताशास्त्रका सर्व्वविद्यानिधान सौशील्य विनयौदार्य्य सत्यसं शौर्य्यादि गुणसंपन्न तार महानुभाव अर्जुनको परमअधिकारी जानके हृदयजनित मोहनाशार्थ सबप्रकार निस्तारक भगवद्भक्तिमार्ग दृष्टिगोचरकराया है वही उक्त भगवद्गीतावज्रवत्वेदान्त व थो न्तर्गत जिसको अच्छे २ शास्त्रवेत्तार अपनीबुद्धिसे पारनहींपासक्ते तबमंदबुद्धी जिनको कि देशभाषाही पठनपाठन करने की सामर्थ्य है वह कब इसके अन्तराभिप्रायको जानसक्ते हैं प्रत्यक्षही है कि जबतक किसी पुस्तक अथवा किसी बस्तुका अन्तराभिप्राय अच्छेप्रकार बुद्धिमें भासितहो तबतक आनन्द क्योंकरमिलै इसप्रकार सम्पूर्ण भारतनिवासी भगवद्भक्तपादाब्जरसि कजनों के चित्तानन्दार्थ व बुद्धिबोधार्थ सन्तत धर्म्मधुरीण सकलकलाचातुरीण सर्व्वविद्याविला सिभगवद्भक्तअनुरागी श्रीमन्मुन्शीनवलकिशोरजी (सी, आई, ई) ने बहुतसाधनव्ययकर निवासि स्वर्गवासिपण्डितउमादत्तजीसे इसमनोरंजन वेदवेदान्तशास्त्रोपरिपुस्तकको श्रीशंकराचा र्य्य निर्मितभाष्यानुसार संस्कृतसे सरलदेशभाषामें तिलकरचाय नवलभाष्यआख्यसे प्रभातकालि ककमलसरिस प्रफुल्लित करादियाहै कि जिसको भाषामात्रके जाननेवालेपुरुषभी जानसक्ते हैं ॥

जबछपनेका समयआया तो बहुतसे विद्वज्जन महात्माओंकी सम्मतिसे यहविचारहुआ किइस अमूल्य व अपूर्व्व ग्रन्थकी भाष्यमें अधिकतरउत्तमता उससमयपरहोगी कि इसशंकराचार्य्य कृत भाष्य भाषाके साथ और इस ग्रन्थके टीकाकारोंकी टीका भी जितनीमिलें शामिलकीजावें कि उन टीकाकारोंके अभिप्राय का भी बोधहोवे इसकारणसे श्रीस्वामी शंकराचार्य्यजी की शंकरभ कातिलक व श्री आनन्दगिरिकृत तिलक अरु श्रीधरस्वामिकृत तिलकभी मूल श्लोकों सहितइस पुस्तकमें उपस्थित है ॥

इश्तिहार ॥

माहमार्च सन् १८८६ ई० से मुमालिक मग़रबी व शिमालीका बुकडिपो इलाहाबाद अयोध्या बुकडिपो से मतबा मुंशीनवलकिशोर मुक़ाम लखनऊमें आगया है इस बुकडिपो में मग़रबी व शिमाली एजूकेशनलबुक किताबोंके सिवाय औरभी हरएक विद्याकी किताबें मौजूदहैं इन हरएक किताबोंकी ख़रीदारीकी कुलशर्तैंक़ीमतके सहित इस छापेख़ानेकी छपीहुई फ़ेहरिस्तमें दर्ज हैं जो दरख्वास्त करनेपर हरएक चाहनेवालोंको बिलाक़ीमत मिलसक्ती हैं जिनसाहबोंको इनकिताबोंको ख़रीदकरनाहोवे इसेख़रीदकरें और फ़ेहरिस्त तलबकरें ॥

द० मैनेजर प्रबंधकर्त्ता
लखनऊमुहल्लाह गंज



मिताक्षरा सटीक ॥

आचाराध्याय का मूलसहित भाषाऽनुवाद

जिसमें

गर्भाधानादि संस्कारों की विधि; आठप्रकारके विवाहोंके लक्षण; वर्णों और विविधजातोंकी उत्पत्ति; वर्णाश्रमधर्म; पंच यज्ञादि; स्नातक पुरुषोंके नियम;साधारण शिक्षा और वेदाध्ययनकी मर्य्यादा;भक्ष्याभक्ष्य वस्तुओं का विवेक;वस्तुओंके शुद्धकरनेके उपाय; दानलेने देनेकीरीति; सबप्रकारके श्राद्धोंका निर्णय;नवग्रहादिकी शांति; राजाओं के धर्म,आचारआदि अनेकानेक विषययुक्ति- उक्ति पूर्वक सब स्मृतियों के मतसे अति विस्तार पूर्वक वर्णित हैं—

जिसको

आगरानिवासि श्रीविद्वज्जनशिरोमणि मर्य्यादाप्रिय पंडित दुर्गाप्रसादजी ने सम्पूर्ण मर्य्यादाहितैषी पुरुषोंके अवलोकनार्थ साधारण भाषा में निर्मित कियाथा उसीको श्रीमान् मुंशीनवलकिशोरजी (सी,आई,ई) ने उक्त पण्डितजी को बहुतसा धन पारितोषिकको रीतिपर देकर मुद्रित करनेका हक़लिया और वही सर्वसाधारण के उपकारार्थ

प्रथम वार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपा

एप्रिल सन् १८९० ई० ॥

मिताक्षरा भाषा टीका सहित ॥

यह पुस्तकसम्पूर्ण धर्म्मशास्त्रोंका शिरोमणिहै जिसमें आचारकांड, व्यवहारकांड और प्रायश्चित्तकांड नामक तीनकांड हैं, जिनसेगृहस्थादिचारों आश्रम और ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके सम्पूर्णकर्म धर्मादि और राजसम्बन्धी कार्योंमेंदायभागादि व्यवहारोंमेंवादी प्रतिवादियोंके धर्म्मशास्त्र सम्बन्धी मामिले और मुक़द्दमोंकी व्यवस्था वर्णितहै,

इस यन्त्रालयमें जितने प्रकारकी महाभारतें छपी हैं उनकी सूची नीचे लिखी है ॥

महाभारत बार्त्तिक ॥

जोकि सम्पूर्ण पुराणोंमें श्रेष्ठहै जिसको पंचमवेद भी कहते हैं जिसमें आदि १ सभा २ वन ३ बिराट ४ उद्योग ५ भीष्म ६ द्रोण ७ कर्ण ८ शल्य ९ सौप्तिक १० बिशोक ११ स्त्री १२ शांति १३ अनुशासन १४ अश्वमेध १५ आश्रमबासिक १६ मुशल १७ स्वर्गारोहण १८ और हरिवंशपर्व १९ हैं जिसको आगरापुर पीपलमंडी निवासि चौरासियागौड़ बंशावतंस प्रधान पंडित कालीचरणजी संस्कृताध्यापक केनिंगकालेज लखनऊने संस्कृत महाभारतसे प्रत्यक्षरका भाषामें उल्था किया इसके पृथक्२ पर्व्वभीख़रीदारोंको मिलसक्तेहैं—यहपुस्तकभी अवश्यही अवलोकन करनीचाहिये ॥

महाभारतदर्पण काशीनरेश कृत ॥

जो काशीनरेश की आज्ञानुसार गोकुलनाथादिक कवीश्वरों ने अनेक प्रकारके ललितछन्दों में अठारहपर्व औरउन्नीसवें हरिबंशको निर्माण किया-यह पुस्तक सर्बपुराण और वेदकासारहै बरु बहुधा लोग इसविचित्र मनोहर पुस्तकको पंचमवेद बताते हैं क्योंकि पुराणान्तर्गत कोई कथा इतिहास और वेदकथित धर्माचारकी कोई वात इससे छूट नहीं गई मानों यह पुस्तक वेद शास्त्र का पूर्णरूपहै—अनुमान ६० वर्षके बीते कि कलकत्तेमें यह पुस्तक छपीथी उस समय यह पोथी ऐसी अलभ्य होगईथी कि अन्तमें मनुष्य ५०) रु०देनेपर राज़ीथे पर नहीं मिलती थी पहले सन् १८७२ ई० में इस छापेख़ाने में छपीथी और क़ीमत वहुत सस्ती याने वाजिवी १२) थे जैसा कारख़ानेका दस्तूर है ॥

अब दूसरीवार डबलपैका वड़ेहरफ़ोंमें छापीगई जिसको अवलोकन करनेवालोंने वहुतही पसन्द किया है—और सौदागरी के वास्ते इससे भी क़ीमत में किफ़ायत होसक्ती है पैमाना १२×१८ छपीहुई सन् १८८४ ई० २५६८ सफ़े क़ीमत१०) पुख्ता। इस महाभारतके भागनीचे लिखे अनुसार अलग २ भी मिलतेहैं ॥

पहिले भागमें (१) आदिपर्व्व(२)सभापर्व्व(३)वनपर्व्वसफ़े५२० जुज़ ३२ वर्क़ १ क़ीमत ३) दूसरे भागमें (४) विराटपर्व्व(५) उद्योगपर्व्व (६)भीष्मपर्व्व (७) द्रोणपर्व्व सफ़े ४०१ जुज़ २५ वर्क़ १ क़ीमत ३)

भूमिका॥

भगवान् याज्ञवल्क्यजीने संसारमें मर्यादास्थित रखने और सर्वसाधारण केउपकारदृष्टिसे अनेकानेक प्राचीन आचार्यों और महर्षिगणोंके मतलेकर मिताक्षरा नामक धर्मशास्त्र आचार,व्यवहार,प्रायश्चित्तकाण्ड नामक तीनभागोंमें निर्माण कियाथा--

यह याज्ञवल्क्यस्मृति, भारतवासी मात्र चतुर्वर्णों का मुख्य धर्मशास्त्रहै और इसीके अनुसार यहकेलोगोंके धर्मसम्बन्धी समस्तकार्य होते चलेआते हैं--

इस आचाराध्याय नामक प्रथमखंडमें गर्भाधान से लेकर मरण पर्यन्त के समस्त संस्कार चतुर्वर्णों और विविध जातियोंकी उत्पत्ति ब्राह्मण आदि चतुर्वर्णों और ब्रह्मचर्यादि चतुराश्रमों के धर्माचरण,साधारण शिक्षा,आठप्रकार के बिवाहों के लक्षण,भक्ष्याभक्ष्य पदार्थोंका विवेक, दान लेने देने की विधि,सर्वप्रकारके श्राद्धोंका निर्णय,नवग्रहोंकी शांति,राजाओंके धर्म आचारादि अनेक विस्तारपूर्वक वर्णन कियेगये हैं--

परन्तु यह विस्तृत ग्रंथ संस्कृतमें होनेके कारण सर्व साधारण के देखनेमें नआताथा इस भारत देशनिवासी पुरुषों के उपकारार्थ इस यंत्रालयके अध्यक्ष ने बहुत सा धन पारितोषिक रीतिपर देकर आगरा निवासी मर्यादाप्रियपण्डित श्रीदुर्गाप्रसादजी से श्लोकका उल्थाकराय यंत्रालयमें मुद्रितकराया--

आशाहै कि धर्मसम्बन्धी कामोंमें सर्वसाधारणको यथादर्शक होनेके सिवाय भाषाग्रंथोंकेभंडा यहभी एक अपूर्वग्रंथ होगा और मर्यादाप्रियबंधुगण इसे आदर पूर्वक स्वीकार करेंगे--

द० मालिक मतवा अवधअख़बार
लखनऊ हज़रतगंज

अथ मिताक्षरा स० आचाराध्याय का सूचीपत्र ॥

आशय प्रयोजनोक्त	श्लोक मूल	अर्थप्रमाण	आधिक्यांक	भेद
गर्भाधानआदिदशकर्मोंकाप्रारंभ॥	११ १२	अर्थेर	११	०
गुरुशालागमन,विद्यासंग्रह,आचारों का सीखना॥	१५	अर्थेर	० ०	०
गुरु सेवामें जाना और पढना॥	२०	अर्थेर	०	०
गुरु,आचार्य, उपाध्याय, इनके लक्षण,माताका बड़प्पन॥	३४ ३५	अव०	०	०
गोब्राह्मणअग्नि विषय संबन्धी धर्म॥	१५४	ए०	१५४	०
गोदानविधि और फलप्रशंसा॥	२०३से २०७तक	+	+	+
गोदानवत्फलदायकअनुकल्प॥	२०८	ए०	२०८	०
गृह, धान्य, छत्र, शय्या, आदि अनेक और प्रिय वस्तु का दान॥	२१०	ए०	२१०	+
गो ब्राह्मणादि हत पुरुष की सपिण्डी का निषेध॥	″		″	६
ग्रहपूजा फल कथन॥	२९२	अर्थेर	०	०
ग्रह यज्ञफल,नवग्रहशान्ति का विधान॥	२९४ से ३०५तक	+	+	०
ग्रहशान्ति में राजा को विशेष अधिकार॥	३०७	ए०	३०७	०
(घ)				
घृतादि द्रवद्रव्योंकी शुद्धि और विशेष कर सब द्रव्यों का शुद्धि निर्णय॥	″		१८९	+
घोड़ा बकरी आदि और मार्गो की शुद्धि॥	१९३	ए०	१९३	०
(छ)				
छः प्रकार के स्मार्त्त धर्म॥	″	०	१	०
(ज)				
जात्यन्तर संकीर्ण संकर से॥	९५	अर्थेर	०	०
जातों की उत्कर्षा जाति शुद्ध और हीनता भी पाचवें सातवें जन्म से॥	९६	अर्थेर	०	०
जलाशयोंकी तट शुद्धि नित्यके स्नान जो पराये जलसे करे॥	१५८	अर्थेर	१५८	०
जलशुद्धि, नासशुद्धि, जलाशयों का विचार॥	१९१	ए०	१९१	०
(त)				
तीसरे प्रहर का समाचार स्नान आदि॥	११२	ए०	०	०

आशय प्रयोजनोक्त	श्लोक मूल	अर्थप्रमाण	आधिक्यांक	भेद
तात्कालिक अनध्याय जो दैव योग से तत्काल होजातेहैं॥ (३०)	१४०से १५०तक	+	+	०
(द)				
द्विजाती मात्र तीनो वर्णो के क्रिया कर्म मन्त्रों से॥	१०	अव०	०	०
द्विजाती के मुख्य लक्षण और वेद की मुख्यता॥	३९ ४०	अर्थेर	०	०
द्विरागमनकी उपेक्षामें दशगुणा दण्ड॥	″		″	०
दीहुई कन्या हरलेने का दण्ड और हरलेनेकी योग्यता भी॥	६५	अर्थेर	०	०
द्वितीयविवाहके कारण पहिली भार्या का पालन॥	७३ ७४	अर्थेर	७३	०
दम्पत्य प्रीतिका फल॥	″		७४	०
दन्तधावन आदि प्रातःक्रिया॥	९८ ९९	अर्थेर	०	०
द्विजाती आदि वर्णो के कर्म अधिकार भिन्नाभिन्न॥	११७से १२०तक	+	+	+
दुग्धजो वर्जितहैं सधिनीआदिके॥	१६९	अर्थेर	१६९	०
दानपात्रों के लक्षण और दानो के स्वरूप भेद अनेक॥	१९७से २००तक	+	+	+
दान मिलतेहुये न लेनेमें उसी दानका फल होता है॥	२१२	ए०	२१२	०
दाह दिवस और मरणदिवस॥	″		″	०
देशाचार की प्रवृत्ति देशान्तर और कालान्तर होने से॥	″		″	०
दुष्टस्थानस्थ ग्रहकी शान्ति में विशेषता॥	३०६	ए०	०	०
देशाचार की रक्षा करनी॥	३४२	ए०	०	०
दुर्वृत्तोंको दण्ड देना धर्महै॥	३५३से ३५६तक	ए०	०	० ०
दण्ड्य और अदंड्य और दण्ड के प्रकार॥	३५७से ३५९तक	ए०	+	०
दण्डोंके भेद धिग्दण्ड आदि॥	३६६	ए०	३६६	०
दण्ड की अपेक्षा में देश काल अपराध अवस्था आदि विचार॥	३६०	अर्थेर	३६०	०
(ध)				
धर्मदेशों को सीमा के चिह्न॥	″	०	२	०
धर्मशास्त्रकारों के मुख्यनाम॥	४ ५	अर्थेर	०	०
धर्म के लक्षण अनेक॥	६	अर्थेर	६	०
धर्मके मूल जिनमें धर्म उत्पन्न होता है॥	७	अव०	०	०

आशय प्रयोजनीक	श्लोक मूल	अर्थप्रमाण	अधिकोक्ति	भेद
मासादि द्रव्योंके श्राद्धों की अपेक्षा में पुलस्त्य की व्यवस्था ॥	=		३५६/३६०	१
महागणपत्यादिकल्प: ॥	२९३	अर्थ २	०	०
मन्त्रियोके लक्षण राज्यका विचार उपधाशोधन ॥	३११	ऐ०	३११	+
मन्त्र की रक्षा मन्त्रों का भेद नही होनेदे ॥	३४३	अर्थ २	३४३	०
(य)				
योगीश्वर याज्ञवल्क्यसे ऋषियों ने धर्म बूझा ॥	१	अर्थ २	०	०
योगीश्वरने काले मृगवाले देश में बतलादिये ॥	२	अर्थ २	०	०
योगीयती आदि धूर्तो का सग नही करना ॥	=		९८	०
यानकाल और यानके सम्बन्ध से पूर्वोक्त छे गुणोंके भी काल ॥	३४७	ऐ०	३४७	
याज्ञवल्क्यीयशास्त्रकी परिभाषा उत्तम मध्यम अधम दण्ड ३ ॥	३६५	ऐ०	३६५	०
(र)				
राजा के स्वाभाविक लक्षण शारीरक ॥	३०८ से ३१० तक	अर्थ २		०
राजाको आन्वीक्षिकी आदि विद्याओं का सग्रह करना ॥	=		३०८ से ३१०तक	+
राजा को दु:खदायक व्यसन अठारह १८ ॥	=		=	+
राजा को सप्तांग राज्य की रक्षा करनी ॥	=		=	+
राजा का निवासस्थान – दुर्ग निर्माण – अध्यक्षों के लक्षण ॥	३२०/३२१	ऐ०	३२०/३२१	०
रणसामयिक धर्मा. ॥	३३४/३३५	ऐ०	+	०
राजा की आठों प्रहर के धन्धे दूत और चारों का भेजना – दूत या चारों के लक्षण ॥	३२६ से ३३२तक	ऐ०	३२६ से ३३२ तक	०
राजाका स्वभाव और प्रजा की रक्षा आदि पालन विधि ॥	३३३ से ३३६तक	ऐ०	३३३ से ३३६तक	०
राजाका अन्याय – प्रजा पीडा राज्यपालन का फल ॥	३३९ से ३४१तक	ऐ०	०	०
राजनीतिके षट्गुणसन्धिविग्रह आदि ॥	३४६	ऐ०	०	०
(व)				
वृद्धोंसेअभिवादनप्रत्यानआदि।	२६	अर्थ २	२६	०

आशय प्रयोजनीक	श्लोक मूल	अर्थप्रमाण	अधिकोक्ति	भेद
विद्यार्थीकी भिक्षावृत्ति ॥	=		२९	०
वेद पढने की अवधि तीनो वर्णो को ॥	३६	अर्थ २	०	०
वेद – शास्त्र आदि सब साधारण भी विद्याओं का नित्य पाठ करने के फल ॥	४१ से ४८ तक	+	+	०
विवाह करना पर ऐसी स्त्रीसे करना ॥	५२/५३	अर्थ २	०	०
वरके ऐसे लक्षण हो तिसको कन्या देना ॥	५५	अर्थ २	०	०
विवाह में दिये और आये हुये धनका चर्चा – वर परीक्षा ॥	=		५५	
विवाह करनेके हेतु तीनि ॥	=		५६	०
विवाहो के अनुकल्प पहिली रीतो के अनुसार ॥	५७	अर्थ २	५७	०
विवाहोके आठ भेद ब्राह्मआदि उनसबोके लक्षण और विधि ॥	५८ से ६२ तक	+	+	०
व्यभिचारिणीकाअधिकारहरना॥	७०	अर्थ २	७०	
व्यभिचारसेशुद्धिऔर गर्भसेत्याग ॥	७२	अर्थ २	०	०
विवाह करनेके फल स्त्रियों की रक्षा = सेवन ॥	७८	अर्थ २		०
वर्ण सकर प्रतिलोम जातों की उत्पत्तिसूत वैदेहिक आदि ॥	९३/९४	अर्थ २	०	०
वर्जित कर्म परपाक रुचि आदि इनका विचार ॥	१११	ऐ०	०	०
वेद पढनेकीमर्यादे औरसमय॥	१४१/१४२	+	+	+
विकृत हुये इतने अन्नो को छोडदे मासवासी आदि ॥	१६६/१६७	ऐ०	१६६/१६७	०
विद्यादिहीनकोप्रतिग्रहनहीलेना॥	२०१	ऐ०	२०१	०
विद्यादान सब दानो का फल देता है ॥	२११	अर्थ २	२११	०
वृद्धि श्राद्धकी समस्त विधि ॥	२४९	अर्थ २	२४९	०
विघ्नकारकहेतुविघ्नोकेकारण॥	२७०	अर्थ २	२७०	०
विघ्नज्ञापक हेतु – विघ्नो के बतलानेवाले स्वप्न ॥	२७१ से २७३तक	ऐ०	०	०
विघ्नज्ञापक प्रत्यक्षहेतु – जाग्रत अवस्था में ॥	२७३ से २७५तक	ऐ०	०	०
विघ्नशान्तिके लिये विनायक स्नपन आदिककर्म ॥	२७६ से २९१तक	+	+	०
विघ्नशान्तिप्रयोगक्रम ॥	२९१		२९१	०
[illegible] धनदान का फल [illegible] ॥	[illegible]	ऐ०	०	०

आशय प्रयोजनीक	श्लोक मूल	अर्थप्रमाण	व्याख्याकोटि	भेद
(श)				
शौचकर्मकेआचारप्रातःकालसे॥	१६ १७	अर्थ२	१७	०
शूद्रकन्यासे विवाह नहीं ॥	५६	अर्थ २	०	०
श्रौतकर्म – वेदोक्त यज्ञादि प्रकार और अन्नादिकी संचयरीति॥	१२३ से १२७ तक	+	+	०
शिशुआदिइतनीचीजेंऔरभोजवर्जितहै	१००	ए०	१००	०
शरीर शुद्धि और शौररजमलों का निर्णय ॥	१६०	अर्थ २	१६०	६ ०
श्राद्ध करनेके काल और श्राद्धों के स्वरूप अथवा मुख्य ॥	२१६ २१७	अर्थ२	२१६ २१७	०
श्राद्ध की सम्पदारूप इतने ब्राह्मण योग्य हैं निमन्त्रण में ॥	२१८ से २२० तक	ए०	०	०
श्राद्ध कर्म में इतने ब्राह्मण निन्द्य हैं ॥	२२१ से २२३ तक	ए०	+	+
शूद्रों का सपिण्डी कर्म ॥	״		״	६
श्राद्ध के प्रसंग से मांसाहारी देश और जातों का आचार ॥	״		״	२
(स)				
सर्वशास्त्र और १४ विद्या सीखने का धर्म ॥	३	अर्थ २	३	०
स्नान कर्म प्राणायाम सन्ध्योपासन आदि कर्म ॥	२२ से २५ तक	+	+	०
सपिण्डता का स्वरूप कन्या के गोत्र प्रवर आदि का विचार ॥	״		५२ ५३	०
स्त्रियां इसहेतु से शुद्ध होती हैं	७१	अर्थ २	०	०
स्त्रियों का बड़प्पन सुकीर्त्ति ॥	७५	अत्र०	०	०
स्त्रीके त्यागमें धन दण्ड ॥	७६	अर्थ ״	०	०
स्त्रियों की धर्मशिक्षा ॥	७७	अत्र०	०	०
स्त्री गमनकी विधिऋतुकाल॥	७९ ८०	अर्थ ״	७९ ८०	०
स्त्री सेवाऋतु के विनाभी इस नियम से ॥	८१	अर्थ ״		०
स्त्रियोंकी रक्षा और भ्रूणहत्या हेतुसे साथ लेजाना ॥	״		८१	०
स्त्रियोंकासत्कार सबकोउचितहै॥	८२	अत्र०	०	०
स्त्री घरके धन्धे इसप्रकारसेकरै॥	८३	अर्थ० ״	०	०
स्त्रियोंकीरखवारीकाअधिकार ॥	८५	अत्र०	०	०
सजाती पुत्रों की उत्पत्ति ॥	९०	अर्थ ״	०	०
समर्थों के पास जाना और मध्याह्न स्नान धन्धा ॥	[illegible]	ए०	०	०
सम्बन्धीजनों को इसहाल तक घर अवश्य भोजन करवाना ॥	१०९	अर्थ ״	१०९	०

आशय प्रयोजनीक	श्लोक मूल	अर्थप्रमाण	व्याख्याकोटि	भेद
सायंकाल की सन्ध्यासे शयन करने ताईं का समाचार ॥	११३	ए०	११३	०
सबजातोंकेसाधारणधर्म एकसे॥	१२१	ए०	०	०
सर्बसाधारणशिक्षा प्रत्येकसमय के वर्त्ताव मध्ये स्नातक के उपदेशतेबिरुद्ध और अविरुद्धकर्म॥	१२८ से १४० तक	+	+	+
स्थानशुद्धि जिसमेंआपरहताहो॥	״		१५३	०
स्त्रीकेवशवर्त्तीका दृष्टान्तप्रत्यक्ष॥	״		१६२	०
सलेप चिकनाई आदिसे लिटे द्रव्यों की शुद्धि खुर्चनेआदिसे ॥	१८४	ए०	१८४	०
सलेप वस्त्रोंकी शुद्धि ऊनी या रेशमी आदि ॥	१८५	ए०	१८५	०
सलेप मृत्पात्र फिर अग्नि में देनेसे कारुजाती के लोग ॥	१८६	ए०	१८६	०
सिद्धांतशुद्धिभक्ष्यभोज्यादिवस्तु॥	१८८	ए०	१८८	०
सूर्य रश्मि आदिकी शुद्धि ॥	१९२	ए०	१९२	०
सपिण्डीकरण श्राद्ध की विधि और सपिण्डी का सर्वनिर्णय ॥	२५२ २५३	अर्थ२	२५२ २५३	०
सपिण्डीके प्रसंग से मातृगोत्र का निर्णय ॥	״		״	२
सपिण्डीके प्रसंग से प्रेत शब्द का निर्णय ॥	״		״	३
सपिण्डी के प्रसंग से व्युत्क्रम मृत्यु में सपिण्डताका निर्णय ॥	״		״	४
सपिण्डीमें व्युत्क्रम मृत्युवालो के नामोका उच्चारण प्रयोग ॥	״		״	५
सपिण्डी करनेकी अवधि और सालभरकेमासिकश्राद्धोंकानिर्णय ॥	२५४	अर्थ२	२५४	+
सपिण्डीके प्रसंगसे १६ षोड़श श्राद्धोंका निर्णय ॥	״		״	७
संन्यासियों का सपिण्डी आदि श्राद्ध धर्म ॥	״		״	४
सब ऋषीश्वरोंका सिद्धांत यह सिद्धातकी छठा भेदहै (६) ॥	״		״	[illegible]
सब श्राद्धोंका अंत्यव्यवहार ॥	२५६	ए०	२५६	०
सामदाम दण्डभेद ४ उपाय ॥	३४५	ए०	३४१	०
सप्तांग राज्य के सातों अंग ॥	३५२	ए०	०	
(त्र)				
त्रसरेणुआदि परिमाणोंकी नाम संज्ञा ॥	३६१ से ३६४ तक	ए०	+	

इति ॥



मिताक्षरा सटीक॥

आचाराऽध्याय ॥

प्रथमकाण्ड ॥

श्रीमच्छास्त्रानुसारेण क्रियतेयाजगद्रतिः । साविश्वरूपिणोभक्तेर्भावंगत्वाऽभिवर्द्धते १ ॥

अक्षरार्थः—श्रीमान् शास्त्रके अनुसार जो जगत् में रति करिये है सो विश्वरूपी के भक्तिभावको जाइकर सर्वथा बढ़े है १ ॥

अभिप्रायार्थः—श्रीमान् कहिये चमत्कारवाले वा तपस्यावान् सामर्थ्यवान् योगधारी ऐसे मुनीश्वरों के कहेहुये शास्त्रों के अनुसार—अथवा—श्रीमान् कहिये लक्ष्मी प्राप्तकरनेकी शक्तिवाले किन्तु जिनकी मर्य्यादपरचलनेसे धनसम्पत्ति और सन्तान देनेवाले ऐसे जो कोई शास्त्र स्मृति आदि तिनके अनुसार-अर्थात् उनकी रीति से जगत् में जो रति कहिये प्रीति किन्तु संसारीमार्गोंमें जो आसक्ति करीजाती है वह आसक्तिही विश्वरूपी भगवान्की भक्तिरूपहोजातीहै पुनि भक्तिरूपहोकर सवओर से बढ़ती चलीआती है १ ॥

अधिकोक्तिः—अर्थात् जिसईश्वरने मनुष्यको बनायाहै उसकी भक्ति भजन करना सबको उचितहै और यहबात भी बहुधा लोग कहते हैं कि (सर्व्वंत्यक्त्वाहरिम्भजेत्) अर्थात् सब झगड़े छोड़कर हरिकी भक्ति करें सो इसवाक्यमें यह दोषलगता है कि जो सभीलोग ऐसेहोजायँ-कि संसारकेझगड़ेछोड़कर हरिकोभजें तो उसकी ईश्वरता भी नष्टहोजाय क्योंकि यह संसार उसने आप रचाहै और अपनारूप इसको कहाहै कि मैं संसाररूप आपही प्रकट होरहाहूं और ब्रह्मा आदिको भी इसीलिये बनायाहै कि दिनोंदिन इसकी बढ़वारीकरो इसीप्रकार सबजीवोंकोआज्ञाहै कि अपनी २ आयु भर अपने प्रारब्धोंके फलभोगतेहुये इस मेरे संसारकी रक्षा और बढ़वारीकरो और वह संसारकी रक्षा तथा वृद्धिही मेरीभक्तिहै क्योंकि भक्तिमें भी किसी के देहकी सेवा

टहलें करीजाती हैं तब उनसेवाटहलोंको भक्ति और सेवाकरनेवालेको भक्तजनकहते हैं सो यह संसारही मेरा देहहै इसकी सेवा टहलें सबकोई करो-अर्थात् इसकी रक्षा और बढ़वारी में मर्य्यादापूर्व्वक तत्पर बनेरहकर अपने२ घर और देहों के भी धन्धे मर्यादापूर्वक साधनकरो परन्तु जोकोई भिन्नमर्यादा होकर अपनेघर वा देहोंके धन्धे साधनकरतेहैं वे मेरीभक्तिसे रहितकहलाते हैं-इसीलिये उसजगत्कर्ता ने मुनीश्वरोंके हृदयमें निर्मलबुद्धिरूप आपही विराजमानहोकर नानाभांतिके मर्यादप्रचारक शास्त्र भी निर्माणकरवाये हैं कि इनशास्त्रोंकीमर्यादा अनुसार जो कोई संसारका आचरण राखेगा वही मेरा भक्तकहलावेगा—और वह आचरण उसका मेरी भक्तिरूप होकर दिनों दिनबढ़वारी पावेगा जिसके बढ़वारी पानेसे उसमेरे भक्तको संसारकी सारीही सम्पत्तें मिलनी सुगमहोजायँगी १॥

नज्ञायतेजगद्रीतिर्विनाशास्त्रैःपुरातनैः। तस्माद्धियाज्ञवल्कीयमतरीतिःप्रकाश्यते २॥

अक्ष०—नहीं जानिये है जगत्की रीति विनापुरातनशास्त्रों के तिस्सेही याज्ञवल्क्य के मतकीरीतिको प्रकाशकरियेहै २॥

भा०— अर्थात् यद्यपि संसारका बर्ताव सब कोई कराकरताहै पर उस बर्तावे की रीति तौ प्राचीनशास्त्रों के देखेबिना नहीं जानीजाती है तिसकारणसे याज्ञवल्क्य मुनिकेमतसे जो रीति निर्मितकरीगईथी उसे प्रकाशितकरतेहैं २॥

अधि०—यद्यपिसंसारकी वहुधारीतें और पृथ्वीआदि दृश्यपदार्थोंका स्वरूप,आकार,डौल और मनुष्योंकी प्रकृतिबोलचाल आदि यहसबबातें परिणाम पाकरबारह बारह वर्षोंपीछे पलटकरकुछ औरही और भांतिकी होजायाकरती हैं-क्योंकि- सारा संसारही परिणामवान् कहाता है फिरयह वस्तुसंसार से वाहरतौ हैहीनहीं- सो यह परिणामभी कुछबारहवर्षपीछे इकट्ठाएकही दिनमें नहीं होजाताहै अर्थात् निरन्तर दिनोंदिन किंचित् किंचित् परिणाम प्रतिक्षण होता रहता है परवह प्रतिक्षण होताहुआ किसीको मालूम नहींहोता किंतु वारहवर्ष वीतजानेपर जवकोई बुद्धिमान् उससमयसे वारहवर्ष पहली दशाओंको ध्यानलगाकर यादकरता है और अपनी ज्ञानदृष्टि से शोचता है तब उसे दिखाईदेता है किजो वस्तु अथवावातें या मर्यादें पहिलेकुछ अन्यथाथीं वह अवकुछ अन्यथाही प्रतीतपड़ती हैं-इसीप्रकार ९ वर्षमें पौना और ६ वर्षमें आधा और तीनवर्ष में चौथाईभाव उसका प्रकट होजाता है- इसपरिणामके लिखने का यह अभ्यन्तर है कि बहुधा शास्त्रोक्तरीतें मर्यादेंभी परिणामपाती हैं उनमें वहुतेरी तौनष्टाग्निवत्प्रलोप होजाती हैं१ और वहुतेरी भस्माग्निवत् निगूढ़ होजाती हैं२वहुतेरी धूमाग्निवत् निरुद्धहोजाती हैं ३वहुतेरी निर्धूमाग्निवत् चमत्कृत रहती हैं ४वहुतेरी प्रदीप्ताग्निवत् सदाही प्रकाशकरा करती हैं ५-इनमें

पूर्वोक्तोंके स्थान बहुतेरी नवमर्य्यादेंभी प्रतिपक्षी होजाती हैं किभाव जिनका चिह्नभी पुरातनोंमें न मिलताहो बहुतेरी रीतें नवसंचरितभी ऐसीहोती हैं किजो प्राचीनोंसे सम्बान्धित और उन्हींके आधीनहोती हैं-इनकारणों से बहुधा लोगोंको भ्रमउत्पन्न होजाताहै सो वह उनकीबुद्धि भ्रमताभी शास्त्रों के देखनेसे मिटसक्ती है और शास्त्र भी दोप्रकारके होते हैं एकतोप्राचीन दूसरे नवीन तहां थोड़े मनुष्यतो प्राचीनोंपर अभिरुचि रखते हैं और बहुधा नवीनोंपर परन्तुऐसे मनुष्य तो बहुतही थोड़े देखने में आते हैं कि प्राचीन और नवीन दोनोंपर अभ्यास रखते हों-और संसारकी निर्वि-काररीति तथा निर्मल मर्यादेंतभी जानीजातीहैं कि जब नवीन और प्राचीन इनदोनों प्रकारके शास्त्रों का आलोकन और विचार करै और उन दोनों के मध्य अन्तरको समुझै क्योंकि नवीनभी प्राचीनों केही अनुसार और आधीनहुआ करते हैं केवल किसी वार्त्तामें परिशोधनकी रीति से अन्तर होजाताहै-इसहेतुसे याज्ञवल्क्य मुनिके मतसे जो प्राचीनरीतें उनके धर्म्मशास्त्रमें लिखी हैं उन्हें प्रकाशित करते हैं कि सब लोग उनको देखें और नवीनोंमें जो उनका आशयहै उसको समुझैं २ ॥

योजानातिजगद्रीतिंकुशलःकुलवानपि। परेपांधनमनोहर्त्तुंवेश्याःकिंनमहाशयाः ३ ॥

अक्ष०–जो जानताहै जगत्की रीतिको कुशल और कुलवान्भी है औरों के धन मन क्या हरनेको वेश्यानहीं महाशय होती हैं ३ ॥

अभि०–इसजगत्में आकर जो कोई जगत्कीरीति मर्यादको विधिपूर्वक जानताहै वहीप्राणी कुशल कहिये चतुरोंमें चतुर और कुलवानोंमें कुलवान्भी वहीहै–अर्थात् धन जनसे हीन भी जगत्की रीतिको जाने तो वहचतुर और कुलीनहै और जो धन जनसे संयुक्तहोकर जगत्कीरीतिको न जाने वह अज्ञानी और अकुलीनकहाताहै–क्योंकि यद्यपि उसमें धनोपार्जनकी अनेक चतुराइयां भी हों परन्तु पराया धन और पराया मन हरलेने को क्या वेश्या वड़े मनवाली नहीं हैं अर्थात् इनदोनों वातोंकी चातुर्यतामें तो वेश्याभी बड़े उत्साह और मनवालीहोती हैं-सोई किसीभाषा कविका वचन भी दोहाहै कि-जानत जो जगरीतिको सोइनर चतुरकुलीन। परधन परमन हरनको वेश्या परम प्रवीन ३ ॥

योगीश्वरंयाज्ञवल्क्यंसंपूज्यमुनयोऽब्रुवन्। वर्णाश्रमेतराणांनोब्रूहिधर्मानशेषतः १ ॥

अक्ष०–योगीश्वर याज्ञवल्क्यको अच्छे पूजिकर मुनिलोग बोलतेभये–वर्ण आश्रम इतरोंके अशेषधर्म हमसे कहो १ ॥

अभि०–योगवालों में ईश्वर कहिये मान्य और समर्थ ऐसेयाज्ञवल्क्यमुनीश्वरका पूजन कहिये सत्कार मनसे वाणीसे कर्म्मनेभीकरिके सामश्रवा आदि मुनिलोगवोले कि हमसेवर्णोंके और आश्रमोंके और इतरकहिये अनुलोम प्रतिलोमजातें जो मूर्द्धा-

वसिक्त आदि वर्णसंकर कहलातीहैं इनसबकेधर्म्माचरणोंको निश्शेष बर्णनकरो १॥

अधि०—अनुलोम प्रातिलोम जातोंकी उत्पत्ति आगे इसीशास्त्रमें आवेगी और जो धर्मोंकाआचरण मुनिलोगोंने ऊपरपूँछाहै सो वहधर्मभी छःप्रकारकाहोताहै और धर्मशास्त्रकी स्मृतियोंद्वारा जानाजाताहै जैसे १वर्णधर्म २आश्रमधर्म ३वर्णाश्रमधर्म ४गुणधर्म ५निमित्तधर्म ६साधारणधर्म-इनछःप्रकारोंमेंसेही एक२के सहस्रोंभेदहोनेसेधर्म के लाखों किरोड़ों लक्षणहोतेहैं(दृष्टांत)जैसे ब्राह्मणआदि तीनिवर्णोंको संध्याआदिकर्म नित्यही करना उचितहै-या जैसे ब्राह्मणको मद्यकदाचित्भी न पीनाचाहिये—या जैसे शूद्रको तीनोंकी सेवाइत्यादि नानाभेद एकबर्ण धर्मकेहोते हैं १ दूसराआश्रमधर्म सो वह आश्रम चारप्रकारकाप्रसिद्धहै १ब्रह्मचारी २ गृहस्थी ३ बानप्रस्थ जो स्त्रीसहित वनमेंतपकरै ४ संन्यस्त ये चारों केवल गृहस्थोंमेंसेही होजातेहैं जोकोई इनचारोंको क्रमसे विधिपूर्वक सेवनकरताहै वह परमगतिको पहुँचताहै सोइनचारोंके भिन्न२ धर्म-जैसे-ब्रह्मचारीका धर्म्म स्वाध्याय कहिये वेदकापढ़ना नियम शुश्रूषाआदि अनेकलक्षणहोतेहैं जोआगे इसीशास्त्रमें आवेंगे १ ऐसेही गृहस्थीका धर्मदमदान यज्ञआदि अनेकलक्षणवाला होताहै वहभीआगे इसीशास्त्रमेंआवेगा २ ऐसेही वानप्रस्थकाधर्म नियमसे बनमेंरहिकर स्त्रीसहित तपकरनाआदि ३ ऐसेहीयतीकहिये संन्यासीकाधर्म शम अभयसत्त्वकी संशुद्धि ज्ञानयोगमें आरूढ़ होनाआदि ४ जोकोई जिसआश्रम का सहारालेकर उसके अधिकारोंका विधिपूर्वक बर्तावाकरता है वही आश्रमधर्मा कहलाताहै कलियुगमें वानप्रस्थका चिह्नभी दिखाई या सुनाईनहींदेताहै-ब्रह्मचर्यका चिह्नकहीं २ कल्पित देखपड़ताहै पर कलियुगमें उसकीभी नास्ति है संन्यस्ताश्रम जिसकाहोना कलियुगमेंनिषेधहै परवहबहुधाबर्तमानहै तथापिउसमें स्वाभाविकधर्मों का होनानहीं दिखाईदेताहै-गृहस्थआश्रम यहसबसे उत्तमहै क्योंकि यह भिक्षादेकर सबके फलमें साझीहोजाता और वहतीनों आश्रमइसकी आशा किया करते हैं पर इसकी उत्तमता उसीअवस्थामें होसक्तीहै जो धर्मशास्त्रोंकी रीति अनुसार आचरण हो २ तीसरावर्णाश्रमधर्म जिसमेंवर्ण और आश्रम इनदोनोंके लक्षणहोते हैं-जैसे वर्णसे ब्राह्मणहै और आश्रमउसने ब्रह्मचर्यकालिया या गृहस्थका-या वर्णसेक्षत्रिय अथवा वैश्यहै और आश्रमउसने ब्रह्मचर्य या संन्यस्तकालिया इत्यादि दोनों वातें जिसमें हों और उसकेलिये ढाकेकादंड आदिजोमर्यादें नानाभांतिकी उचित होतीहैं तिनको वर्णाश्रम धर्मकहते हैं ३ चौथागुणधर्म उसको कहते हैं किजैसे वर्णसे तो कोईजातिका मनुष्यहो वहकिसी दूसरेवर्णका गुणधारणकरे या दैवयोगसे पावे तो उस गुणसंबंधी जोमर्यादें होतीहों वहभीउसको करनीचाहिये उन्हींमर्यादोंको गुणधर्मकहतेहैं (दृष्टांत) जैसे कोईजातिका मनुष्यहो अभिषेकआदि गुणोंसेसंयुक्त राजाहोनेपर उसको अपने

जातीधर्मोंके सिवाय प्रजाकी रक्षाआदि भी करनाचाहिये(दूसरादृष्टांत)जैसेजातिअथवा कर्मसे या आश्रमसे वह भिक्षुकहै इसकारण राजकर देनेसे मुआफ़है पीछेवहीमनुष्य व्यापार आदि वैश्यजाति काजो गुणहै उसको अङ्गीकारकरै तो उसगुणकाधर्मयहभीहै कि उस ब्यापारके लाभमेंसे राजकर देवै ४ पांचवानिमित्तधर्म जोनिमित्तकहिये हेतुसे करनापड़ै(दृष्टान्तजैसे)जो करनाउचितथा वहनहीं किया अथवाजो न करनाउचितथासो कियाउसकाप्रायश्चित्त अथवादण्डआदि जोकुछप्रतिकारहोताहैतिसकोनिमित्तधर्मकहतेहैं५-छठासाधारणधर्म वहकहलाताहै कि जोएकसूतसे सबको करनाउचितहो अर्थात् चाहेकिसीजाति या किसीवर्ण या किसीआश्रमका मनुष्यहो(दृष्टांत)जैसे किसीजीवकी हिंसानहींकरना किसीको पीड़ानहींदेना चोरीनहीं करना असत्यनहीं बोलना औरोंके धनप्राणोंकी रक्षासे अपनी सामर्थ्यहोते हुये गई नहींकरना इत्यादि नानालक्षण एक साधारण धर्मकेहोतेहैं ६ यद्यपि इसशास्त्रके आचरणसे धर्मअर्थ काममोक्ष इनचारों की प्राप्तिहोतीहै और इनचारोंकेही लक्षण इसमें आवेंगे तथापि धर्मकी प्रधानतासे धर्मशास्त्र इसकानामहै—अर्थात्-धर्मनामहै मर्यादोंका सो इनचारोंकी मर्यादें इसमें मिलतीहैं क्योंकि मर्यादाविना कोईकाम नहींहोता इसहेतुसे सर्वथा धर्मही सबमें मुख्यहै सो उसधर्मको उन सामश्रवाआदि मुनियोंने याज्ञवल्क्यजीसे पूँछा-और एकउस कोभी धर्मकहतेहैं कि जिस्से परमगति मिलसकै सो वहभी यहीधर्महै जो ऊपरलिखचुकेहैं कुछइसमेंयाउसमें अंतरनहींहै केवल अज्ञानियोंकी समुझका अंतरहै अर्थात्जो परमगति मिलनेकी मर्यादेंहैं वहभी उन्हीं मर्यादोंमें मिलरहीहैं जो संक्षेपतासे ऊपर कहीगईहैं-हाँ-केवलइतना अंतरहै कि जो और सब संसारीधंधों के परिसाधन करने कीरीतें मर्यादेंहोतीहैं उनकानामतो धर्महै और जो परमगति मिलनेके उपकारीधंधों के परिसाधन करनेकी मर्यादेंहोती हैं तिनको परमधर्म कहते हैं अर्थात् वहसबधर्मोंसे बड़ाधर्महै इस्से उसेपरमधर्मकहते हैं-परन्तु-जो ध्यानलगाकर शोचौतो धर्मकाकोईभी दूसरारूप नहींदेखपड़ता अर्थात् वहधर्मएकहीहै फिरवही अनन्त और असंख्यलक्षणवालाहै इसकारणसे कि कहींउसकीशाखा देशभेदोंसे बढ़जातीहैं-कहींमनुष्योंकी जातिभेदसे-कहीं कर्मभेदसे-कहींप्रकृतिभेदसे-कहीं गुणभेदसे-कहींस्वरूप आकार आचार आदिभेदसे शाखाबढ़जाती हैं-कहींकालभेदसे विस्तृत होजाती हैं-और वहधर्म पशुपक्षी आदि सबजीवोंमें होताहै क्योंकि वहधर्म परमात्मा विश्वरूपीका चित्प्रतिबिंबरूप होताहै इसहेतुसे वायुकेतुल्य अतिसूक्ष्मरूपी और अदृश्यमान होकर सारे विश्वमें फैलारहाकरताहै-देखोजोहाथी आदि प्रबलजीवोंके हृदयमें धर्मकीछाया का निवासनहींहोवे तो क्षणमात्रमें वह अनेक मनुष्योंको फाड़डालें क्यों अपनेऊपर मनुष्यको चढ़ाकर उसकीइच्छाके अनुसार अंकुशके वशहोकरचलें-देखोपक्षीजाति में

कौआ बड़ामलीन और हिंसक और चंडालपक्षी कहलाताहै इससे कि वहबहुधा पक्षियोंको मार२कर भक्षणकरताहै परंतु जो ध्यानलगाकर शोचौ तौ उसमेंभी धर्मका वास है क्योंकि जीवोंका भक्षणकरना यहतौउसका जातीधर्म स्वाभाविकहै सो क्यों करछूटै-परंतु जिसस्थलपर किसी द्वितीयधर्मका औचित्य देखता है तहाँवह कौआ भी धर्मनीतिकी रीतिसेही कामकरताहै अर्थात् जिससमय गायभैंस आदिपशुओंकी आँखें या कानों या गुदामेंसे मैल अथवाकीड़े काढ़करखाताहै उससमयकी चतुराई उसकीदेखो कि ऐसीसुहाती२चोंचलगाकर मैलकोनिकासलेताहै कि उसपशुकीआँख में चोंचकाधक्का या चोटकिंचित्भी नहीं लगनेदेताहै-अबकहो कि जो उसकौआमें धर्मछाया नहींहोती तौ अचानक चोंचके झटकासे आँखेंफोड़देता या कान और गुदामेंसे मैलकेबदले मांसभीनोचकर खानेलगता क्योंकि मांसउसका आहारहै परंतु वहस्वार्थीकाक इसधर्मको जानताहै कि (नहिधर्म्मोऽभिरक्तानां लोकेकिञ्चनदुर्लभम्) किंतुजोप्राणी धर्ममर्यादमें तत्परबने रहतेहैं उनको संसारमें कुछभी दुर्लभनहींहै-अर्थात् जो आजमैंइसकी आँखेंफोड़ डालोंगा तौ मुझेइसमैलका निकालना दुर्लभहो जावेगा क्योंकि ये पशुमुझे अधर्मीजानिकै फिर अपनेपास कदाचित् नहींआनेदेवेंगे इस्से उलटी मेरेहीस्वार्थकी हानिहोजायगी अर्थात् यहभीएक धर्मकालक्षणहै कि जो कोईजीव किसीसे अपनास्वार्थसाधाचाहै तौ ऐसीरीतिसे कामनिकालै जिस्से उसको पीड़ा नहीं पहुँचे(दृष्टान्त)जैसे कौआ मैलको निकालताहै ऐसेही सब जीवोंकी धर्ममर्यादाको अपने अनुमानसे जानलो और यहजानो कि यह सारासंसार केवल एक धर्मरूपी बंधनमें फँसाहुआ खड़ाहै-जिससमय कोई जीव या कोईदेश या कोईकाल या कोईवस्तु अपनी नियत मर्यादाको छोड़देतीहै उससमय जोजो उत्पात उठाकरते हैं वे सब अधर्म के लक्षणहैं इसहेतुसे उन मुनियोंने धर्माचरणकी मर्यादैंपूछीं जिनसे सृष्टिका कल्याण और बढ़वारीहो १॥

मिथिलास्थःसयोगीन्द्रः क्षणंध्यात्वाऽब्रवीन्मुनीन्। यस्मिन्देशेमृगःकृष्णस्तस्मिन्धर्मान्निबोधत २॥

अक्ष०-मिथिला में बैठाहुआ वह योगीन्द्र क्षणभर ध्यानकरिके मुनियों के प्रति बोलताभया-जिसदेशमें कृष्णमृग हो तिसमें धर्मोंको समुझो २॥

अभि०-मिथिलानाम नगरी में विराजमान वह योगीन्द्र याज्ञवल्क्य एकक्षणमात्र मनमें ध्यानसे शोचकर मुनियोंसे बोला कि जिसदेशमें कृष्णसार मृग अर्थात् काला हिरण होताहै किंतु स्वाभाविक अपनी प्रकृतिसे फिरता है तिस देशमें उन धर्मोंको जानो जो हमआगे कहेंगे २॥

भवि०-उसदेशमें उनधर्मोंको समुझो अर्थात् जिनधर्मोंको हम अब कहते हैं उनको श्रवणकिये पीछे जो समुझनेमें संदेह शेषरहजावै तो वहां जिसदेशमें कालामृग

होताहै तहां आंखोंसे देखकर समुझलेना क्योंकि सुनीहुई वार्ता प्रत्यक्ष देखेबिना निश्चित नहीं होती है अर्थात् उसदेशमें इनधर्मोंका सदैवही आचरणहोतारहताहै-कालाहिरण कहनेका यह अभिप्रायहै कि जहां कालामृग होताहै वहदेश यज्ञादि धर्म कर्मोंकेलिये उत्तम और पवित्र गिनाजाताहै और कालेहिरणका होनाभी यहनहीं है कि किसी ऐसे देशमें पालकर बाँधाजाय जहां वह न होताहो अर्थात् उसकी स्वाभाविकउत्पत्ति यज्ञेश भगवान्कीइच्छासे होतीहो सो वह देश यह भरतखण्डसंबंधीही निश्चितहै किन्तु कोई और नहीं-सोई मनुसंहितामें बहुधा देशों के सीमा चिह्न भी लिखे हैं-तथाच-सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्। तन्देवनिर्म्मितंदेश ब्रह्मावर्त्तंप्रचक्षते १ कुरुक्षेत्रञ्चमत्स्याश्च पाञ्चालाःशूरसेनकाः। एषब्रह्मर्षिदेशोवै ब्रह्मावर्त्तादनन्तरः २ हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यंयत्प्राग्विनशनादपि। प्रत्यगेवप्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्त्तितः ३ आसमुद्रात्तुवैपूर्वादासमुद्रात्तुपश्चिमात्। तयोरेवान्तरंगिर्योरार्यावर्त्तंविदुर्बुधाः ४ कृष्णसारस्तुचरतिमृगोयत्रस्वभावतः। सज्ञेयोयाज्ञियोदेशो म्लेच्छदेशस्त्वतःपरम्५इतिमनुः-इनपांचों श्लोकोंका यहभावहै कि सरस्वती और दृषद्वतीइन दोनों देवनदियोंके बीचमें जो देशबसता है उसको देवनिर्मितदेश और ब्रह्मावर्त्तभी कहते हैं अर्थात् ब्राह्मणआदि वर्णोंके रहनेका आवर्त्त कहिये घेरायहनामहै-कुरुक्षेत्र और मत्स्य पांचाल शूरसेनक इनदेशोंको ब्रह्मर्षिदेशकहतेहैंयेसबदेश ब्रह्मावर्त्तसे अनन्तर कहियेमिलेहुये आसपासमें हैं—उत्तरमें हिमालय और दक्षिण में विंध्याचल इनदोनोंके बीचमें पश्चिम सीमा कुरुक्षेत्रसे लेकर पूर्वसीमा प्रयागताईं जो बीचका देशहै वहमध्यदेश कहलाताहै-ऐसेही पूर्वसमुद्रसे लेकर पश्चिम समुद्रतक उत्तर दक्षिण उन्हींदोनों हिमालय और विन्ध्याचल पहाड़ोंके बीचबीचका देश आर्यावर्त्त कहलाताहैइस आर्यावर्त्तकेही बीचमें वह ब्रह्मावर्त्त आदि भी सबआगये-कृष्णसार मृगभी जहां इनदेशों में स्वाभाविक अपनी इच्छासे विचरता है वहदेश यज्ञकरने योग्यहै यहजानलो २॥

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिताः। वेदाःस्थानानिविद्यानां धर्म्मस्यचचतुर्दश ३॥

अक्ष०—पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, अंगोंसे मिलेहुये वेद,विद्याओं के धर्म केभीचतुर्दशस्थान ३॥

अभि०—अर्थात् प्राचीन रीतिके अनुसार ब्राह्मण आदि तीनिवर्णोंकालघु अवस्था सेही पहले पहल एकधर्म तो यहीहै कि-पुराणोंको न्यायशास्त्रको मीमांसाशास्त्रको धर्मशास्त्रको और वेदके ६ अंगोंकरके सहित वेदको और लोकमें प्रसिद्ध विद्याओं के १४ स्थान और धर्मके भी १४ स्थानोंको पढ़ें और सीखें ३॥

अधि०—वेदके ६ अंगोंकेनाम-यथा-१ शिक्षा २ कल्प ३ व्याकरण ४ निरुक्त ५ छंद

६ज्योतिष॥ विद्याओंके १४ स्थान यद्यपि लोकहीमें सब प्रसिद्धहैं परंतु उनकेनाम योगविद्या, जलविद्या, अस्त्रशस्त्रविद्या गानविद्या, वैद्यविद्या, वाजिविद्या, चित्रविद्या यंत्रविद्या, विश्वकर्मविद्या, नटविद्या, दास्यविद्या, आदि सब शंखस्मृतिमें कहेहैं-और यद्यपि वह १४ विद्यायें क्षत्रिय वैश्य आदिजातोंके कामकीहैं परंतु ब्राह्मणको उन सबोंका पढ़ना सीखना इसहेतुसे उचितहै कि ब्राह्मण सबको शिक्षादेनेवाला गुरुहै इसलिये यद्यपि उसको उन विद्याओंसे कोई पेशाकरनेकी अपेक्षा नहीं भी हो परंतु पहले आप सीखेगा तब पीछे औरोंको सिखलासकैगा और गुरु कहलावेगा नहीं तौ कोरे वाबाजी—अर्थात् प्राचीन शास्त्रोंकीरीति अनुसार यह क्रमहै कि शूद्रजातें केवल अपने २ कामकी विद्यासीखें-और वैश्य अपनी और शूद्रकी विद्याओंको भी जाने क्योंकि जो शूद्रकी विद्याओंको न जानेगा तौ उनसे क्योंकर अपनेकामोंको बनवासकैगा-क्षत्रियको ब्राह्मणके समान अपनी और वैश्यकी और शूद्रकी और ब्राह्मणकी भी विद्याओंका सीखना आवश्यकहै ३॥

मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोंगिराः। यमापस्तम्बसम्बर्त्ताःकात्यायनबृहस्पती ४॥
पराशरव्यासशंखलिखितादक्षगौतमौ। शातातपोवसिष्ठश्चधर्मशास्त्रप्रयोजकाः ५॥

अक्ष०—मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अंगिरा, यम, आपस्तंब, सम्बर्त्त, कात्यायन, बृहस्पति ४ पराशर, व्यास, शंखलिखित, दक्ष, गौतम, शातातप, वसिष्ठ, यहसब धर्मशास्त्रोंके संग्रहकरनेवाले हुयेहैं ५॥

अभि०—याज्ञवल्क्यजीने अपना नाम सबके संगमें मिलाकर इसहेतुसे कहाहै कि धर्मशास्त्रका निर्माणकरनेवाला केवल मैंहीं नहींहूं अर्थात् मनुको आदि लेकर इतने यह सब और इनके सिवाय और भी अनेकों मुनिलोग धर्मशास्त्रोंके बनानेवाले पहले से भी होते चलेआयेहैं-और धर्मशास्त्रके ग्रंथों या बनानेवालोंकी बाहुल्यताका यही कारणहै जो पहले श्लोककी अधिकोक्तिमें लिखाहै कि देश, जाति, काल आदि भेदोंसे धर्मकी अनंत शाखा और परिणामहोजातेहैं किंतु वह सदा और सर्वत्र एकसा नहीं होताहै ४।५॥

अब यहाँ पहले थोड़ेसे परमधर्मके लक्षण जतलातेहैं सो देखो नीचे॥

देशेकालउपायेनद्रव्यंश्रद्धासमन्वितम्। पात्रेप्रदीयतेयत्तत्सकलंधर्मलक्षणम् ६॥

अक्ष०—देशमें कालमें उपायसे जो द्रव्य श्रद्धापूर्वक पात्रमें दीजियेहै सो यह सब धर्मके लक्षणहैं ६॥

अभि०—देशके कहनेका यह अभिप्रायहै कि जैसे जहाँ कालामृग होताहै उस देश में बैठकर दानकरना यह अन्यदेशोंकी अपेक्षा अधिक फलदायक है फिर कालेमृगवाले देशमें भी जहाँ२ उत्तम तीर्थ प्रयाग कुरुक्षेत्र आदि प्रसिद्धहैं या राजद्वार और

गोशाला आदि उनमें करना यह भी एकधर्मकाही लक्षणहै-ऐसेही कालके कहनेका यह अभिप्रायहै कि जो२ समय दानकेलिये लोकमें प्रसिद्धहैं जैसे संक्रांति आदि पर्वं या पाणिग्रहणका समय या पुत्र जन्मका समय या प्राणांत समय आदि इनमें दान करना यह भी एक लक्षण धर्मकाहीहै-उपायसे कहनेका यह अभिप्राय है कि दान करनेके लिये जो२ विधि शास्त्रमें या लोकमें प्रसिद्धहों उन संपूर्ण विधियोंसे दानकरना यह उपायपूर्वक दान कहलाताहै सो यहभी एकलक्षण धर्मकाहीजानो-ऐसेहीद्रव्य कहनेका यह अभिप्रायहै कि उसद्रव्यका दानकरना जो अपनेसत्य परिश्रमसेकमाया हो या ब्राह्मणत्व के कारणसे कहीं प्रतिग्रह आदि में पायाहो सो यह भी एकलक्षण धर्मकाहीहै अर्थात् परसंबंधी धनकादानकरदेना धर्मका लक्षणनहींहै-श्रद्धा समन्वित कहनेका यह अभिप्राय है कि श्रद्धा जो आस्तिक्य बुद्धिहै तिसकरके सहित दानका करना किंतु नास्तिकताका प्रवेश बुद्धिमें न होने देना यहभी एकलक्षण धर्मकाहीहै—पात्रमें कहनेका यह अभिप्रायहै कि दान देनेयोग्य जो सुपात्र कोईहोवे जिसकीसुपात्रताकेलक्षण आगे इसीशास्त्रमेंआवेंगे ऐसेकोदेना किंतु अयोग्यकोनदेना सो यहभी एकलक्षण धर्मकाही जानो-प्रदीयते यह कहनेका अभिप्राययहहै कि-दीयते का अर्थ तौ दीजिये है इतनाही होताहै अर्थात् देना सोवह देना एकऐसाभी होताहै कि कोई वस्तु किसीकोदेकर फिर उसके लौटारलेनेका अधिकारबनारहै और श्लोकमेंप्रदीयते लिखाहै तहां (प्र) उपसर्ग इस प्रकर्षताके लियेहै कि अतिशय करके बिल्कुल्हिही दे दियाजावे जिसके लौटारलेनेका अधिकारनबाकीरहै अर्थात् वहधनदूसरेका कहलाने लगै किंतु चाहैदानपत्रके द्वारा या संकल्पवाक्यके संबंधसेही दियाजावे सोयहभीएक लक्षण धर्मकाहीहै इत्यादि और भी नानाप्रकारके लक्षण जो शास्त्रोंमें जातिगुणयाग होम आदि लिखेहोते हैं सोसब परमधर्मके लक्षणहैं ६ ॥

अधि०—परमधर्मका लक्षण मनुस्मृतिमेंभी लिखाहै कि(धृतिःक्षमादमोऽस्तेयं शौच मिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकन्धर्मलक्षणमितिमनुः) अर्थात् परमधर्मके दशलक्षण होतेहैं एकतौ १ धृति जिसको धीरज या संतोष कहते हैं ॥ दूसरा २ क्षमा जो अपनी सामर्थ्य होतेहुये भी दूसरेकीबात सहलेना ३ दम किंतु बाहरली इंद्रियों को चंचलतासे रोकलेना ४ अस्तेय अर्थात् किसीकाधन बिनादिये नहीं हरलेना व चुराना ५ शौच अर्थात् नित्यक्रिया ६ इंद्रिय निग्रह अर्थात् इंद्रियोंको कुमार्ग से रोकना ७ धीः अर्थात् शास्त्रोक्त ज्ञानकीधारणा बुद्धिबनीराखना ८ विद्या [illegible] बोलना १० अक्रोध अर्थात् क्रोधकी वार्त्तापरभी क्रोध न करना-ये [illegible] मधर्म्म के हैं (अन्यत्रापिषड्विधम्) यथा (पात्रेदानंमतिःकृष्णे [illegible] नम्। अद्यावलिर्ग्गवांग्रासः षड्विधंधर्म्मलक्षणम्) अस्यार्थः [illegible]

त्रोंकोही १ परमेश्वर में बुद्धि बनीराखना २ मातापिताकी सेवाभक्ति राखना ३ पुण्यमें-श्रद्धाराखनी ४ बलिवैश्वदेव नित्यकरना ५ गो ग्रास निकालना ६ ये भी छः प्रकारके लक्षण परमधर्म्म केही होते हैं ॥ ६ ॥

श्रुतिस्स्मृतिस्सदाचारस्स्वस्यचप्रियमात्मनः। सम्यक्संकल्पजःकामोधर्ममूलमिदंस्मृतम् ७ ॥

अक्ष०— श्रुति-स्मृति-सदाचार-अपनी आत्माका प्रिय भी-सम्यक्संकल्प जातकामना- ये धर्म्म के मूल कहे हैं ७ ॥

अभि०—श्रुति कहिये वेद-स्मृति कहिये धर्म्मशास्त्र-सदाचार कहिये सज्जनों का आचार अर्थात् जिस आचरणको अच्छे प्रमाणिकलोग करतेहों सो-और अपना आत्माकहिये मनबुद्धि तिसमेंजो बात समावे अर्थात् जहांएकही कामकी दो मर्य्यादें लिखीहों यालोकमें प्रसिद्धहों जैसे जनेऊकरना ब्राह्मणके पुत्रको गर्भकालसे और जन्मकालसे भी आठवेंबर्ष में लिखाहै और दोनोंरीतें धर्ममर्यादसे उचितहैं तहांइ दोनोंमें से जोकोईसी एकरीति अपने मनबुद्धिमें अच्छीमालूम हो तिसकेअनुसार कामकरना सो यह अपनेआत्माका प्रियकहलाताहै और जनेऊ यहएक दृष्टांतमात्र यहांपरलिखाहै किन्तु ऐसेसहस्रोंकाम संसारमेंहोतेहैंकि जिनमें दुभाँतितिभाँतिकीरीतें होतीहैंतिनमेंअपने मनबुद्धिका विचारहोताहै और जिसमेंएकहीरीतिहो उसमेंभीफिर अच्छेलोगोंका आचार अर्थात् बर्तावा प्रमाण होताहै-चौथी-सम्यक्संकल्पकामना उसे कहतेहैं कि सम्यक्नामहै अच्छेका और संकल्पनामहै मनकेविचारका कि ऐसा काम करनाचाहिये सो मनकाविचार दो प्रकारका होताहै एक तौबुरा दूसराअच्छा तिसमें अच्छेसंकल्पसे जो कामनामनमें पैदाहुईहो कि अपने या औरोंके कल्याण वाला अमुककाम इसउपायसे करनाचाहिये तिसको-सम्यक्संकल्पजातकाम-कहतेहैं सोयेचारोंबातें धर्मकीमूलहैं अर्थात्वेद १ धर्मशास्त्र २ सदाचार ३ सम्यक्संकल्पज कामना ४ इनचारोंसेही धर्मकी मूल वस्तु पहिंचानी जातीहै ७ ॥

अधि०—ऊपर लिखाहै कि एकरीति में भी अच्छेलोगोंका वर्तावा प्रमाणहोताहै तिसकायह अभ्यन्तरहै कि किसी २ केवलमर्यादामें भी अपनीवुद्धिके भ्रमसे गड़बड़ झालासाप्रतीत होताहै इससे कि उसएकही परिनियमित मर्यादाको कोईतौ सुरीति से आचरणकरतेहैं और कुछलोग कुरीतिसे-तहांपर अच्छेसत्पुरुषोंकी सुरीतिको प्रमाणमानिकर आपभी अंगीकारकरै इसका एकसंभूत और संदृष्टदृष्टांतहै-जैसे-प्रातःक्रियामध्येशौचाविधिमें दिशाजानेकी केवल एकही मर्यादा शास्त्रमें लिखीहैकि पहले जंगलजाकर उत्सर्गकर्मसेनिपटै फिरपीछे मुखमंजनदंतधावनकरै और इसीएकमर्यादा के वर्त्तावामध्ये कुरीतिऔरसुरीतिवालेदोनोंभांतिकेलोगयद्यपि थोड़ेवहुत सर्वत्रहोतेहैं परन्तु-विशेषतरएक अच्छा चातुर्वर्ण्योषित शहरजो यहांसे पश्चिमोत्तरकोणमें समीप-

हीबसताहै वहांके निवासीबड़े धनाढ्य और गुणवान् और कुलवानोंकी भी यहरीति है कि सारेनगरके पुरुष और स्त्रियां भी बालकसे बूढ़े पर्य्यंत शहरके बाहरशौचको जातेहैं घरोंमेंशौचस्थान नहीं बनाते यहकहते हैं कि हिन्दूको घरमें मलीनता करना अनुचितहै बहुधारातिबिरातिकी आवश्यकताकेलिये जो किसी२ ने बनारक्खाहै सो भी घरकेअन्दरनहीं किंतुबाहरड्योढ़ीके आगे चबूतरापर पत्थरआदिखड़ेकरवालिये हैं परंतुजातेवेभी बाहरहैं-और सफ़ाईके धर्मक़ानूनसे सरकारी रक्षकछूटे रहतेहैं इस हेतुसे बहुधादूरजाने पड़ताहै-इससेशीतकालमें चिल्लाजाड़ेकेमारे दिनके दशग्यारह बजेतक शौचकोजातेहैं तबखेतों और कूपोंपरपर्वसीपड़तीहैं- एकदिनकासंयोगहै कि एक बिदेशी बिद्वान् बिज्ञानी दो घटिकादिन चढ़ेपरकूपके समीपबैठिकर मुखमंजन करनेलगा उसको वहांकेलोगोंने देखकर टोका कि आपऐसे ज्ञानीहोकर ऐसाअनुचितकरतेहो कि अभी आपशौचकोगये नहीं और कुल्लाकरनेलगे- उसमहात्माने उत्तरदिया कि हम एकाहारीरहतेहैं इससेशौचतो दोचारघटिकादिनचढ़े आवेगा तब तकबासी मुखकैसेबैठेरहैं मुखमंजन तोदोघड़ीके तड़के हमकरचुकतेहैं तबयहांशौचको आतेहैं आजनिद्राने दिनचढ़ेआँखखोली सो हमसीधे यहांचलेआये और कुल्लाकिया तब तुमनेजाना किन्तु हम पूंछतेहैं कि जबशौचको जायँगे तब क्या फिरकुल्लानहीं करेंगे और मुखमंजन तो चित्तकी शुद्धि और प्रसन्नताका हेतुहै जो मुखमंजन बिना हमशौचकोचलेजाते तो चित्तकीमलीनता और अप्रसन्नतासे प्रथम तो उत्सर्गभी भलीभांति नहींहोता और बारम्बार मलीन मुखसे थूकनापड़तातो वहबात क्याअच्छीथी-इतना निर्णयसाथ समुझानेपर भी वहसबलोग एक मुखहोकर उस बिदेशी बिज्ञानीकोही उलटेकायल करनेलगे और तालीपीटकरबोले कि वाह २ पण्डितजी आपभलेज्ञानी मिले हमारेयहां यहरीति नहीं है कि उत्सर्गसे पहले कुल्लादांतोंनिकरें परंतु आपभलेपढ़ेहो कहोकौनसे शास्त्रमें लिखाहैकि जंगलपीछेजाना और मुखपहलेधोना-तब उनमहात्माने फेर उनकुविचारियोंको समुझाया कि हांठीकहै शास्त्रमें वहीबातहै कि जो तुमकहतेहो परंतु किसकेलिये कि जिसेउठतेके साथही शौचबाधाका तीव्रवेग वेदनासहितहोआवै और वहतत्कालचलाजाय- और जिसको उठेपीछे आधी घड़ीकाभी बिलंब होजानेकी संभावनाहो तिसको यह उचितहै कि तत्कालखट्वासेउठतेही चाहैतैसा शीतहोपर आधेकपालताईं सब छिद्रोंसहित मुखमंजनकरै और मूत्रेन्द्रियकोभी प्रक्षालनकरै तब पीछे किसीसे वार्त्तालापकरै क्योंकि जो पहले किसीसे बोलेगा तो बासीमुखमेंसे मलीनलार जो छूटेगी सो घूँटनीपरेगी-इस्से यह जानो कि शास्त्रजोहैं सो बुद्धिबोध्यहोते हैं क्योंकि शास्त्रों में प्रत्यक्षशिक्षाकी समस्या मात्र लिखीहोतीहै इसीसे शास्त्रोंमें बुद्धिकाविचारतो सारहै और बिचारबिना शास्त्रका अ-

क्षरभी अपारहै-इतनानिर्णय साथसमुझाने परभी उन कुविचारियोंने तानादिया कि जो सब लोग तुमसेही ज्ञानीहोजावें तौ शीघ्रही सबशास्त्र उलटे होजावें हम तुम्हारी इस कपोलकल्पनाका प्रमाण नहीं मानते और तुम्हारे कहनेपरभी शास्त्रसे विरुद्धभी नहीं करसक्ते हैं यह तुम्हाराज्ञान तुम्हींको फलदायकहो-तब उनमहात्मानेकहा कि तुमलोगनकी यहशास्त्रबुद्धिहीब्यर्थहै क्योंकि जब दशग्यारहबजेताईं तुमलोग यहां शौचको आतेहौ तभी मुखमंजनकरतेहौ तौ निश्चित्तहुआ कि क्या यहशास्त्रबुद्धि जिसे एक तौ उदरमें मलकाबोझदाबेहुये घर या दूकानपर बैठेरहते हौ दूसरे बासीमुख भी नहीं धोतेहौ तीसरे जो ऐसेही तुमशास्त्रपर आरूढ़हौ तौ शास्त्रमें शौचजाना भी प्रातःकालकहा है सो क्यों नहीं करते हौ चौथे तुमलोगों ने जो निजदरवाजे आगे शौचस्थान बनाये हैं यह भी शास्त्रसे अनुचित है क्योंकि पितर तौ रोजरोज और देवता पर्वोंके दिन आनिकर गृहस्थीके दरवाजेपर बिश्राम इसहेतुसे करतेहैं कि न जाने आजकुछ हमारे नामका इसघरमें होताहो सो वह उसदुर्गंधिको देखकर उलटे फिरजाते हैं इसके सिवाय संसारीमनुष्य जो अपनेइष्टमित्र किसीआवश्यकतासेआते या जोकोई उसमार्गमें जातेआते हैं वेसब नाक सकोड़कर थूकते और दुर्नामता देते जातेहैं ईस्से मार्गनिर्मलता धर्म्मजो प्राचीन और सनातनहै उसकीमर्य्यादाअनुसार शौचस्थान का बनानाभी घरके किसीऐसे कोणमें उचितहोता है कि जहां किसीकी दृष्टिनहीं पहुंचे-इतनावाद विवादहुआ परउन कुविचारियों से अपनीकुटेव अबतक नहीं छोड़ीगई- हेजिज्ञासो अब उसवातके सिद्धांतपर दृष्टिधरनी चाहिये कि यद्यपि वह एकहीरीति शास्त्रमेंलिखीहै परन्तु आत्माजो मन बुद्धि चित्त अहंकाररूप चतुष्टय तिसकाप्रिय (प्रसन्नता) सोउस लिखीहुई रीतिसे न होसकी तबउन महात्मान अपने विचारके अनुसार उत्सर्गसे पहलेही मुखमंजन नियतकिया और यथार्थमें यही धर्मका लक्षणहै-और उन उक्तलोगोंकी शास्त्रबुद्धि यद्यपि शास्त्रोक्त है परन्तुधर्मके लक्षणमें गिनती न रही अर्थात् अधर्म औरमलीनता निश्चितहोगई क्योंकि उन्होंने शास्त्रोक्त आचारका बिचार करना नहींजाना-अबउस ऊपरलीवात को शोचो कि वे महात्मातौ अच्छेलोगोंकी गिनतीमें हैं १ औरवेलोग कुविचारी हैं २ इनदोनोंमें से जिस किसीका आचरण-तीसरे ज्ञानवान् जिज्ञासुओं को अपने आत्माके बीच प्रियमालूम हो तिसके आचरणको आपभी सीखें*धर्मकीमूल पहिंचाननेके और भी उपलक्षण ग्रंथांतरमेंलिखेहैं-यथा(अद्रोहश्चाप्यलोभश्चदमोभूतदयातपः। ब्रह्मचर्य्यंततःसत्यमनुक्रोशःक्षमाधृतिः) अर्थात्-एकतो १ अद्रोह किंतु किसीका द्रोहनहींकरना २ अलोभ किंतु अपने परिश्रमके यथोचित फलके सिवाय वृथालोभका न करना ३ दम किंतु बाहरली इंद्रियोंकी चंचलताका रोकना ४ भूतदया ५ तप ६ ब्रह्मचर्य्य ७

सत्य ८ अनुक्रोश अर्थात् किसीकी मूर्खता या पीड़ा या अप्रतिष्ठा आदिको देखसुनि कर अपने चित्तमें क्लेश मानकर दयापूर्वक जोकुछ मुखसेकहै या मनमें बिचारकरै सो अनुक्रोश कहाताहै ९ क्षमाकिंतु दूसरेकी प्रबलता या कुवाक्यों को अपनी सामर्थ्यके होनेपरभी सहलेना १० धृति अर्थात् धीरज संतोष ये भी दशलक्षण सनातन धर्मकी मूल कहलाते हैं-सो ये दशोंलक्षण मनुष्यको मिलने बड़े दुर्लभहोते हैं किंतु इनका साधनकरना बड़ा कठिनहै और जिस मनुष्यमें ये सब लक्षण पायेजायँ उसे यहजानो कि यहसाक्षात् आपही धर्मकीमूर्त्ति है ७॥

इज्याचारदमाहिंसादानस्वाध्यायकर्म्मणाम्। अयन्तुपरमोधर्मोयद्योगेनात्मदर्शनम् ८॥

अक्ष०-पूजा आचार दम अहिंसा दान स्वाध्याय कर्मोंका परमधर्म यही है कि जिसके योगसे आत्मदर्शनहो ८॥

अभि०-ऊपरलिखेहुये पूजाआदि अनेककर्मोंका परमधर्मसिद्धांतरूप केवल इतनाही है कि जिसके करनेसे आत्माका दर्शनहोसकै अर्थात् आत्माशब्दके यद्यपि अनेक अर्थहैं परन्तु यहां उनमेंसे एकमुख्यहै किंतु आत्माशुद्ध निर्मल ज्ञानको कहते हैं सो ऐसाशुद्ध और निर्मलज्ञान जिसकामके साधन करनेसे मिलसकै बस वही काम परमधर्म रूपहोता है फिर उसमें कुछ देशादिक लक्षण जो वहुधा ऊपर कहेगये हैं उनका नियम नहीं होता क्योंकि वे सबबातें उपकरणमात्रहैं जैसे कूप खोदने और उसमेंसे जलकीप्रवृत्ति करनेके झाम, टोकरा, खंता, पंप, फाउड़ा, रस्सी आदि अनेक उपकरणहोते हैं सो उनकानियम और आवश्यकता भी तभीतक रहतीहै कि जबतक उसमें जलकाझरना सोत अच्छीतरह जारीनहीं होता ८॥

अधि०-अर्थात् धर्मके नानाप्रकारके चिह्न लक्षण देश जाति आदिभेदोंसे जो वारम्वार वर्णन कियेजाते हैं सो इसलिये हैं कि धर्मजिज्ञासु की वुद्धि उनमें सवओरको फैले और फैलनेपीछे सवओरसे इकट्ठीहोकर निर्मलज्ञानका विम्वरूपी होकर हृदय में प्रकाश करनेलगे ८॥

चत्वारोवेदधर्मज्ञाःपर्षत्त्रैविद्यमेववा। साब्रूतेयंसधर्म्मःस्यादेकोवाध्यात्मवित्तमः ९॥

अक्ष०-वेद-धर्म-के जाननेवाले चारयह पर्षत् अथवा त्रैविद्यसमूह यहपर्षत् होती है यहपर्षत् जिसबातको कहेहै या अध्यात्मवित्तमपुरुष एकही जोकुछ कहेहै वहीधर्म होताहै ९॥

अभि०-यहवात कि चार ब्राह्मण वेद और धर्मशास्त्र के जाननेवाले एकत्रवैठें उसको पर्षत् किंतु सभाकहतेहैं- अथवा त्रैविद्य जोतीन विद्याओंको जाने और धर्मशास्त्रभी जानतेहों ऐसे मनुष्योंका समूह यहभी सभाहोती है तीनविद्या अर्थात् शि-

क्षाशास्त्र १ राजनीति शास्त्र २ आन्वीक्षिकी जिसे तर्कशास्त्र कहतेहैं ३ अथवा ये तीनविद्या कि प्रथम अपनेकुल जातिकी समस्तविद्या १ दूसरी बर्त्तमान समयके राजाकी सारी विद्यायें २ तीसरी उसदेशकी विद्याकि जहांकी किसी वार्त्ताका निर्णय या जिसदेशके मनुष्यका कोई निर्णयकरना हो ३ यह ऊपर कहीहुई दोनोंप्रकार की पर्षत् जो कुछ निर्णयकरके कहैं वहीधर्म्म कहलाता है-और वहभीधर्महै किजोएकही पुरुष अध्यात्मविद्या जाननेवालोंमें बड़ा चतुरहो और धर्म्मशास्त्रको जानताहो वह अपने मुखसे विचारकर कहै ९ ॥

अधि०—निर्णयकरके औरबिचारकर मुखसे कहनेका यह सिद्धांतहैकि धर्म केवल वहीनहीं है किजो धर्मशास्त्रोंके क़ानूनमें लिखाहोताहै अर्थात् कोईवार्त्ता या किसी पद या मुक़द्दमेका ऐसा बिचारकरनेको आनिपड़े कि जिसकाचिह्नभी शास्त्रोंमें न पाया जाय तब उसवार्त्ता या पदका वही धर्महै जो ऊपरली पर्षत्कहैं किंतु इस आग्रह से उसका त्याग वा उपेक्षा उचितनहींहै कि धर्मशास्त्र में तोकुछ लिखा नहीं अब हमक्या करैं-और वेद वा धर्मके जाननेवाले ब्राह्मण यह एक उपलक्षण है अर्थात् वैसे विद्यावान् ब्राह्मणोंके अभावमें और प्रकारके ब्राह्मणभी ग्राह्यहैं-ब्राह्मणोंके अभावमें अन्यवर्णभी ग्राह्यहैं-देश जाति कालके अनुसार सर्वत्र सबको अपनी योग्यताके अनुसार धर्म निरूपण करने का अधिकार होताहै सोई अनंतरोक्त आठवें श्लोक में कहचुके हैं ९ (इत्युपोद्घातप्रकरणम्)इन ९ श्लोकोंमेंसारेशास्त्रकासिद्धांतरूप आशयकथन करके अब आगेवर्ण आदिकोंके धर्मकहनेके लियेवर्ण विनिश्चय ॥

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रावर्णास्त्वाद्यास्त्रयोद्विजाः। निषेकाद्याःश्मशानांतास्तेषांवैमंत्रतःक्रियाः १० ॥

अक्ष०—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र येवर्णहैं इनमें पहले तीनों द्विजकहातेहैं उनतीनों के गर्भाधानसे लेकर श्मशान ताईंकी सारीक्रियायें वेदमंत्रों से होती हैं किंतु शूद्रकी वेदमंत्रोंके बिना १० ॥

अवनीचेइनकी सबक्रियाओंकी संख्या और अनुक्रम कहतेहैं ॥

गर्भाधानमृतौपुंसःसवनंस्पंदनात्पुरा। षष्ठेऽष्टमेवासीमंतोमास्येतेजातकर्म्मच ११ ॥

अक्ष०—ऋतुकालमेंगर्भाधान—गर्भचलनेसेपहलेपुंसवन—छठे वा आठवेंमासमेंसीमंत-गर्भमेंसेनिकल जानेपर जातकर्मकरै ११ ॥

अभि०—द्विजातीलोगोंकासबसेपहला कर्म गर्भाधान होताहै सो स्त्रियोंका ऋतुकाल जोप्रसिद्धहै और उसकीनियमविधि आगे इसीशास्त्रमें कहेंगे उसनियमके भीतर २वेद मंत्रोंकी विधिक्रियासे गर्भधारणकरें १-इसपीछे दूसराकर्म पुंसवन नामहोताहै उसको उससमयसे पहले करलेनाचाहिये कि जबउदरमें गर्भफरकने लगताहै २-तीसराकर्म सीमंत और उन्नयनभी उसीकेसाथ होताहै सो ये दोनों गर्भधारण समयसे छठे और

आठवें मासमेंकरै ३-चौथाजातकर्मजो नालछेदनआदिक्रियाकहाती हैं सोबालकपैदा होनेपर करै ४। ११॥

अभि०(सकृत्सुसंस्कृतानारीसर्वगर्भेषुसंस्कृता)इसदेवलऋषिकेवाक्यका यह अर्थांशहै कि सीमंत और उन्नयन येदोकर्म यद्यपि प्रत्येकगर्भ में करनेउचितहैं परंतु एक बार सबसेपहलेगर्भमेंतो अवश्यहीकरनाचाहिये-इसलिये उन्होंने इसश्रद्धामें यहकहाहै कि-जो स्त्रीएकबारअच्छीरीतिसे संस्कारकरीजावै वहसभीगर्भोंमेंसंस्कारवतीबनी रहतीहै-स्त्रीक्षेत्ररूपहै यहदोनोंकर्म खेतकाकमाना और नलावना सींचना आदि संस्कारहैं जैसे जिसखेतकीधरतीको किसान एकबारअच्छीतरह कमालेताहै वहधरती फिर सदाको फलदायकबनीरहती है और जो हरसाल उसीतरहकमातारहै तो और भी अधिकफलती फूलती है ऐसेही स्त्रीका हिसाब है ११॥

अहन्येकादशेनामचतुर्थेमासिनिष्क्रमः। षष्ठेऽन्नप्राशनंमासिचूडाकार्यायथाकुलम् १२॥

अक्ष०—ग्यारहवें दिवस नामकर्म-चौथे महीना निष्क्रमकर्म्म-छठेमास अन्नप्राशन-चूड़ाकर्म अपनेकुलके अनुसारकरै १२॥

अभि०—जन्मकेदिनसे ग्यारहवें या बारहवें दिवस नामकरण किंतु दसूठनि दष्टौन आदि भाषामें प्रसिद्धहै जिसदिन बालककानाम धराजाताहै सो वह नाम दादा या नाना या कुलदेवता या गुरुकुलकी संप्रदायसे संबद्धकरकेधरै यह पाँचवां कर्म है ५-चौथेमहीनामें निष्क्रम अर्थात् बालकको बाहरनिकासना और सूर्यकेदर्शन कराना यह छठाकर्महै ६-छठेमहीनामें अन्नप्राशन किंतु बालकको अन्नचटाना यह सातवां कर्महै ७- आठवांकर्म चूड़ाकहिये मुंडनहै सो जैसी जिसके कुलमें रीतिहो तैसाकरै किंतु किसीके वर्षभीतर होजाताहै किसीके तीसरी में किसीके पाँचवीं या सातवीं में किसीके स्थानभेदसे अमुक तीर्थआदिमें होताहै १२॥

एवमेनःशमंयातिबीजगर्भसमुद्भवम्। तूष्णीमेताःक्रियाःस्त्रीणांविवाहस्तुसमंत्रकः १३॥

अक्ष०—इसप्रकार बीज और गर्भसे उत्पन्नभया एनस् जोपापहै सो नाशको पहुँचताहै-इतनी क्रियायें स्त्रियोंकी चुपके होतींहैं और विवाह उनकाभी मंत्रोंसे १३॥

अभि०—इसप्रकारकहिये पूर्वोक्तरीतिसे गर्भाधानआदि संस्कारकर्मोंके करनेसे यह फलहोताहै कि माताके गर्भरक्तमें जो बवासीरआदि रोगरूपीपाप या पिताके बीजमें कोई कुष्ठआदि रोगरूपीपापहो सोनाशहोजाताहै अर्थात् वर्णसंकरत्वआदि पापनहीं नाशहोतेहैं किंतु केवल रोगमात्र जो पीछे पुत्रकेभीशरीरमें होजातेहैं-यह इतनीपूर्वोक्तक्रियायें स्त्रियोंकीभी अर्थात् कन्याकीभी होतीहैं परंतु मंत्रोंके विनाही चुपचाप हुआकरती हैं ऐसेही शूद्रोंकीभी चुपचाप परंतु द्विजातीकी स्त्रियोंकाविवाह मंत्रोंसेही होताहै और शूद्रकाविवाहभी मंत्रों विना १३॥

अब नीचे ब्रह्मचारीके नियम कहनेकेलिये जनेऊका प्रारंभकरते हैं ॥

गर्भाष्टमेऽष्टमेवाब्देब्राह्मणस्योपनायनम्। राज्ञामेकादशेसैकेविशामेकेयथाकुलम् १४ ॥

अक्ष०-गर्भसे आठवें अथवा जन्मसे आठवेंबर्षमें ब्राह्मणका उपनयनहो क्षत्रियों का ग्यारहवें में बैश्योंका बारहवें मेंहो और एक यहकहतेहैं कि अपने २ कुल आम्नायके अनुसार हो १४ ॥

अभि०-एक यहकहते हैं अर्थात् थोड़ेसेआचार्य ऐसाकहते हैं कि कुलरीतिके अनुसारहो परंतु यह वाक्यनिर्मूलहै क्योंकि थोड़ेओंका कहना प्रमाणमेंनहीं आता है और गर्भ अथवा जन्मसे जो अवधिहै वह तीनोंबर्णमें लगतीहै और दोनों अवधि मेंसे जिसएकके अनुसार बनसक्ताहो या जो कोईसी एक अपनेमनभावे उस्से करै १४-सो यह उपनयन कहिये यज्ञोपवीत कर्म नववां है १४ ॥

उपनीयगुरुःशिष्यंमहाव्याहृतिपूर्व्वकम्। वेदमध्यापयेदेनंशौचाचारांश्चशिक्षयेत् १५ ॥

अक्ष०-यज्ञोपवीतकरिके उस शिष्यको अपनेपासरखकर गुरुसातमहाव्याहृतियों सहित वेदपढ़ावै और शौचके आचारभी सिखावै १५ ॥

अबनीचे शौचके आचारोंको कहते हैं ॥

दिवासंध्यासुकर्णस्थब्रह्मसूत्रउदङ्मुखः। कुर्य्यान्मूत्रपुरीषेचरात्रौचेद्दक्षिणामुखः १६ ॥

अक्ष०-दिनमें दोनोंसंध्याओंमें कानपरधरेहुये ब्रह्मसूत्रको उत्तरमुख बैठाहुआ मूत्र और पुरीष इनदोनोंको करै-जो रात्रिमेंकरै तौ दक्षिणमुख बैठके करै १६ ॥

अभि०-किंतु शंका या लघुशंका करनाचाहै तौ दाहिनेकानपर जनेऊरखकर जो दिनहो या साँझ सवेरेका संध्याकालहो तौ उत्तरमुख और रात्रिसमय होय तौ दक्षिणमुखबैठे और मार्गआदि तथा राख आदि स्थानोंको छोड़कर बैठे १६ ॥

गृहीतशिश्नश्चोत्थायमृद्भिरभ्युद्धृतैर्जलैः गंधलेपक्षयकरंशौचंकुर्य्यादतन्द्रितः १७॥

अक्ष०-फिरइन्द्रियथांभकर उठिके भरेधरेहुये जलोंसे निरालसीहोकर गन्धि और लेपकाक्षयकरनेवालाशौचकरै १७ ॥

अभि०-इंद्रियथाँभकर उठना इसलिये है कि बिनाथाँभे मूत्रकीछिटकारोंसे जंघा आदिअशुद्ध होजायँगी-और उठना इसलियेकहाहै कि उसीजगह विष्ठाकेऊपर जल को नहींलेवे यहभी बड़ामैलापनहै मक्खियोंके उड़ने भिनभिनाने और जलके छींटे मलकेऊपरसे उछलआने आदि कारणोंसे-भरेहुये जलसे इसलिये कहाहै कि नदी आदि बहते जलमें शौच न करै क्योंकि उसमेंसब लोगस्नान और पानभी करते हैं और यहभी कि जल वरुणात्माहै और पंचमहातत्त्वोंमेंगिनतीहै इस्सेबड़ादोषहै कदाचित् कोई यहकुतर्कणाकरै कि लोटामेंभी वहीवरुणात्मा जलहै तहांयह बातहै कि इसी कारण से शौचकेजलको पहले जुठारलेते हैं तबलेजातेहैं-गंधलेप काक्षय करनेवाला

यहबात कि यहांतक निरालसी होकर शौचकरैकि दुर्गंधि अथवालेप शेषनहींरहै १७

भाषि०— शौचलिये पीछेउस बामेहाथसे लोटाकोभी नहींछूवै और अधोवतीको भीनहींछूवै किंतुऐसी बुद्धिमानी और चतुराईसे कामसाधै कि दाहनेहाथ से पहले कांछलगा करपीछे उसीसेलोटा को उठाले और बामेहाथको सबसेदूर कियेहुये उठ आवै इसीलिये शौचकेस्थान में कोईझिलमिला वस्त्र ओढ़ने या पहरनेका नहींले जावै जो एकहाथके वशमें नहीं आसकै १७ ॥

अन्तर्जानुःशुचौदेशउपविष्टउदङ्मुखः। प्राग्वाब्राह्मेणतीर्थेनाद्विजोनित्यमुपस्पृशेत् १८॥

अक्ष० —अंतर्जानु होकर शुचिदेश में उत्तर वा पूर्वमुख बैठकर ब्राह्मनाम तीर्थ से द्विजाती पुरुष नित्य आचमनकरै १८॥

अभि०— अंतर्जानु अर्थात् दोनोंघूंटों के बीचमें हाथोंकोकरले-शुचिदेशमें अर्थातूप-वित्रभूमिपर किंतु जहां थूक खँखारआदि कुछनहो और इसी उपलक्षण से जूता या खाट पीढ़ीआदिसेभी अलग बैठकर द्विजातीकहिये ब्राह्मणआदि तीनोंवर्णका मनुष्य प्रतिदिनपूर्व या उत्तरमुख बैठके आचमन करै सो कैसेकरै कि ब्राह्मतीर्थ जो अँगूठाके पास हथेलीका स्थानहै तिसपर जलधरके तीनबार आचमनले १८ ॥

अब नीचे तीर्थोंके नाम और स्थानचिह्न भी लिखतेहैं ॥

कनिष्ठादेशिन्यंगुष्ठमूलान्यग्रंकरस्यच। प्रजापतिपितृब्रह्मदेवतीर्थान्यनुक्रमात् १९॥

अक्ष०—कनिष्ठा १ आदेशिनी २ अँगूठाकामूल ३ हथेलीकाआगा ४ ये क्रमसे चारोंतीर्थ प्रजापति १ पितृ २ ब्रह्म ३ देवतीर्थ ४ कहातेहैं १९॥

अभि०—ये चारोंतीर्थ हाथकी हथेलीमेंही इसभेदसे होते हैं कि कनिष्ठा सबसे छो-टी उँगली तिसकी जड़के निकट हथेलीपर प्रजापति नामतीर्थ १ इसी प्रजापतितीर्थ को ऋषितीर्थभी ग्रंथांतरमें इसीको मनुष्य तीर्थ या नृतीर्थ भी कहतेहैं इसीसे ऋषि-योंका तर्पण कियाजाताहै १-आदेशिनी तर्जनी किन्तु अँगूठाके समीपकी उँगली ति-सकी मूलके निकटहथेलीपर पितृतीर्थ कहाताहै इससे पितरोंको जलदियाजाता है२-अँगूठाकी जड़के निकटहथेलीपर ब्रह्मतीर्थ होताहै यह आचमनका स्थानहै इसी जगह जलधरके आचमनकरना अनंतरोक्त १८ के श्लोक में कहचुके हैं३-हाथका अग्रभाग अर्थात् उँगलियोंकी जड़के निकट हथेलीपर देवतीर्थ कहाताहै इससेदेव तर्पण किया जाताहै १९ ॥

त्रिःप्राश्यापोद्विरुन्मृज्यखान्यद्भिःसमुपस्पृशेत्। अद्भिस्तुप्रकृतिस्थाभिर्हीनाभिःफेनबुद्बुदैः २०॥

अक्ष०—तीनवार जलप्राशन करिके दोवार पोछकर फेन बुलबुलाओंसे रहित ऐसे प्रकृतिस्थजलों से छिद्रोंको जलका स्पर्श करै २० ॥

अभि०—अठारहके श्लोकमें जो आचमन करना लिखाथा उसकी विधिकहतेहैंकि

ब्रह्मतीर्थ में धराहुआ जलतीनबार पीकर फिर अँगूठाके मूलभागकी गुद्दीसे दोबार मुखको पोंछकर-ऊपरलीकायाके नाक कान आदि छिद्रोंको जलस्पर्शकरै-वे जलभी कैसेहों कि प्रकृतिस्थहों किन्तु जैसे तालाव नदी आदिमें स्वयंभूतहोतेहैं और फेना या बुलबुला आदि विकारोंसे बिगड़ेहुये नहों निर्मलहों-अर्थात् कोई अमीर अपनी अमीरीसे यह चाहै कि गुलाव आदिके खींचेहुये जलोंसे आचमन या संध्यावंदनकरलें क्योंकि वेभी जलहैं और बड़ेकीमती हैं सो नहीं प्रकृतिस्थ जलसे करै २० ॥

हृत्कंठतालुगाभिस्तुयथासंख्यंद्विजातयः। शुद्ध्येरन्स्त्रीचशूद्रश्चसकृत्स्पृष्टाभिरंततः २१॥

अक्ष०—हृदयकंठ तालुमें पहुँचेहुये जलोंसे यथोक्त संख्याके क्रमसे द्विजातीलोग शुद्ध होवें-स्त्री-शूद्र ये भी एकवार तालुमें पहुँचेहुये जलसे शुद्धहोवें २१॥

अभि०—यथासंख्य कहिये ब्राह्मण तो हृदयतक पहुँचेहुये जलसे और क्षत्रियकंठ तक पहुँचेहुये से और वैश्य तालुताईं पहुँचेहुये जलसे शुद्धहोताहै-ऐसेही स्त्री और शूद्र यह तालुतक पहुँचेहुये जलसे शुद्धहोतेहैं परंतु एकहीबार पीनेसे और इनके लिये कुछ तीर्थकाभी नियम नहींहै कि कौनसे तीर्थमें धरके पीवें-ऊपरकहेहुये द्विजातियोंको तीनवार आचमन और ब्रह्मतीर्थका नियमहै- और जो नियम इसमें स्त्री और शूद्रका लिखाहै वही द्विजातीके विना जनेऊवालेलड़के का है २१॥

स्नानमब्दैवतैर्मंत्रैर्मार्जनंप्राणसंयमः। सूर्यस्यचाप्युपस्थानंगायत्र्याःप्रत्यहंजपः २२॥

अक्ष०—स्नान वरुणके मंत्रोंसे मार्जन प्राणायाम सूर्य्यके सन्मुख उपस्थान गायत्रीका जप- ये सब बातें जैसी संध्याकी पुस्तकमें लिखी हैं उसीरीतिसे द्विजातीलोग प्रतिदिन कियाकरैं २२॥

गायत्रींशिरसासार्द्धंजपेद्व्याहृतिपूर्विकाम्। प्रतिप्रणवसंयुक्तांत्रिरयंप्राणसंयमः २३॥

अक्ष०—ऊपरकहीहुई गायत्रीको (आपोज्योतिः) इत्यादि शिरसेकरके सहित सात व्याहृतियों पूर्वक प्रत्येक व्याहृतिमें प्रणव लगीहुईको-तीनिवार मनमें जपे इसरीति से कि मुखनाकमें निकलनेवाली वायुको रोककर सो यह प्राणायाम कहाताहै- इसकी विधि संध्यामें विस्तारसे कहीहै २३॥

प्राणानायम्यसंप्रोक्ष्यत्र्यृचेनाब्दैवतेनतु। जपन्नासीतसावित्रींप्रत्यगातारकोदयात् २४॥
संध्यांप्राक्प्रातरेवंहितिष्ठेदासूर्यदर्शनात्। अग्निकार्यंततःकुर्यात्संध्ययोरुभयोरपि २५॥

अक्ष०—पूर्वोक्तऋचाके तीनों मे पूर्वोक्तरीतिपर प्राणायाम करके और वरुण देवकी ऋचा किंतु मार्जनके मंत्रसे शरीरको छींटादेकर प्रातःकाल तारात्र्योंकी उदयअवधिसे पहले २ अर्थात् जबतक तारा अस्त न होनेपावें गायत्रीको जपताहुआ सूर्यके उदयताईं पूर्वमुखखड़ाहो अथवा बैठे तिसपीछे अग्निकार्य अर्थात् अग्निहोत्रादिक करै-येसारी बातें जैसी एक संध्याकी कहीं ऐसेही दोनों संध्याकालमें करै २४। २५॥

भधि–संध्याविधिकी पुस्तकमें यद्यपि संध्याकरनेका प्रचार मध्याह्नकाभी लिखाहै परन्तु यह धर्मशास्त्रकावाक्य सबकेऊपर प्रमाणहोताहै क्योंकि धर्मशास्त्र जिसवातकी आज्ञादेदेताहै वहबातचाहै दूसरेविषयमेंनहींभीहो तो भी कर्त्तव्यहोतीहै और जोबात धर्मशास्त्रमें पाईनहींजावे और किसीद्वितीय विषयमें कहीहो तौभी निर्मूलसीहोती है अर्थात् धर्मशास्त्रमें संध्याबंदन दोहीकालका आवश्यकहै-परन्तु यहबात सत्य है कि (अधिकस्यअधिकंफलम्) किंतु पुण्यकर्मका अधिककरनाभी कुछ दोष नहींहै-तथापि गृहस्थीको उतनाही नियमलेनाचाहिये जितनाआवश्यकहो और सुखसाध्यहो जिस्से उसकी कोईसी जीविका आदिकामोंकी हानि नहींहोनेपावे क्योंकि जीविकाआदिकामोंकी हानिसे पीछेसबधर्मकीहानि होसक्तीहै क्योंकि धनके बिना कोईसाभी धर्मनहीं सधिसक्ताहै-ऐसाधर्म मी अधर्मकी गिनती में होजाता कि जिसएकहीकाम के व्यसन से अनेककामोंकीहानि होजाय-इसीलिये धर्मशास्त्रउतनीही आज्ञादेताहै कि जिस्सेमनुष्यकाकल्याणहो-धर्मशास्त्र संसारकेकल्याणकेही लियेहोताहै-और (अधिकस्यअधिकंफलम्) इसबातका यह सिद्धांतहै कि जोसत्कर्म जिसमनुष्यसेसधिसकनेयोग्यहो वह जो कुछ अधिककरैतौ अधिकफलकाभागीहो अर्थात्तपसंबंधी सत्कर्मकोवानप्रस्थ और नैष्ठिकब्रह्मचारी नियमसेभी अधिकसाधैं तो अच्छीबातहै नैष्ठिकब्रह्मचारीकीचर्चा आगे ४९ केश्लोकमें आवैगी-और ४९ केपहिले अनेकश्लोकोंमें साधारणब्रह्मचारी के नियम लिखे हैं उसकोभी नियमसे सिवायकरना नहीं चाहिये क्योंकि वहसाधारण ब्रह्मचर्य्य केवल विद्यासंग्रहका हेतुहै फिर विद्यासंग्रहकरनेवाला नियमोंसेभी अधिक तपकरनाचाहैगा तो विद्यासंग्रहमें हानि होजायगी और विद्याकीहानिसे उसके सारे जन्मकी हानिहै-और गृहस्थीको उनकामों में अधिकताका अधिक फल होताहै कि जिस्से उसके सौख्य और सुकीर्त्तिकी वृद्धिहो-और तपसंबंधी नियमों में अधिकता जो गृहस्थीको करनी भी उचितहै जो उसकी यह रीति है कि जिस घरके दशपांच पुरुषोंमें मुखिया एक बड़ाबूढ़ाहै कि उसको धनोपार्जनकी चिंतानहीं है वह घरबैठे हुये चाहै तितनो अधिक नियम साधो जैसे त्रैकालिक संध्या एक दृष्टांतहै और जो युवान्हैं वे धन उपार्जनकरैं और बालक विद्योपार्जनकरैं और सबके सबछोटे बड़े उस मुखिया बड़ेबूढ़ेकी आज्ञामें तत्पर रहिकर घरके पालन योग्यधन उसके आगे लाकर धरैं और वह बड़ाबूढ़ा भी उनसबोंकी यथोचितरक्षा और पालनमें तत्पर बनारहकर अपने नियम और धर्मको साधै तो उस एकहीके पुण्य प्रभावसे सारे कुटुम्बको पुण्यफल पहुँचताहै और किसी भाँतिके कल्याणमें हानि नहींपड़ती है जैसे वृक्षकी केवल एकमूलमें पानीभरदेने से सारे वृक्षकी चोटीताईं ठंढकपहुँचकर फल, फूल, शाखा, पत्रों आदिसे अमित संपन्नताहोती है-जो कदाचित् वृक्षकी जड़को छोड़

पल्लव सींचेजायँ तौ उस वृक्षकी संपत्तिमें हानि पड़जाय-ऐसीही कुल वृक्षकी व्यवस्था है २५॥

ततोभिवादयेद्वृद्धानसावहमितिब्रुवन् २६॥

अक्ष०—तिसपीछे बड़ोंको यह कहताहुआ अभिवादनकरै कि यह अमुक नामा मैंहूं २६

अभि०—तिसपीछे अर्थात् सबेरे साँझ दोनों संध्याओंके पूर्वोक्त नित्यकर्मोंसे निपटे पीछे जुदी जुदी दोनों वेलामें पिता, माता, गुरु आदि बड़ेबूढ़ोंके सन्मुख जाकर अभिवादनकरै अर्थात् यह कहताहुआ कि यह मैं फलानाहूं प्रणामकरताहूँ २६॥

अधि०—मैं फलानाहूं इस प्रकार नामसुनादेनेका यह हेतुहै कि अँधेराहो या ओट हो या उन बड़ेबूढ़ोंकी मंददृष्टिहो जिस्से वे अपनेको न चीन्हैं और न चीन्हनेसे किसी और के धोखेमें या उनकी क्रोध प्रकृतिके कारणसे न जानिये उनके मुखसे क्या कुवाक्य निकलजावे तौ अशीशके बदलेमें शापहोजावे-दूसरा यह हेतुहै कि वे बड़े बूढ़े जिसस्थानमें विद्यमानहैं एकांतमें जाने किसदशामें बैठेहैं या किस्से बातचीत कररहे हों जहाँ अपनेको पुकारे विना चलाजाना उचितनहीं है इस्से नाम कहदेने में वे उचितसमुझेंगे तौ पास बुलावेंगे या वहींसे अशीशकहदेंगे या कुछ और उत्तरदेवेंगे २६॥

गुरुंचैवाप्युपासीतस्वाध्यायार्थंसमाहितः। आहूतश्चाप्यधीयीतलब्धंतस्मैनिवेदयेत्॥ हितंतस्याचरेन्नित्यंमनोवाक्कायकर्मभिः २७॥

अक्ष०—फिर पढ़नेके लिये भी समाहितचित्त होकर गुरुके समीप जावे-और गुरुके मुखसे पुकाराहुआ संथालेवै पहला पढ़ाहुआ गुरुको सुनादेवै और मन वाणी कर्मसे उस गुरुकी नित्यही भलाई आचरणकरै २७॥

अभि०—समाहितचित्त अर्थात् चंचलता छोड़दे-पुकाराहुआ अर्थात् गुरुपर आपही प्रेरणा न करै कि शीघ्र संथादेदो अलगबैठा अपना पाठकरतारहे संथाके लिये बुलानेपर पासजावे-और शुद्धवाणीबोलै किंतु गुरुके सन्मुख जाकर गलेसे हिचकी नहीं लेनेलगे इत्यादि और भी शिष्टाचार अपनी बुद्धिसे जानो २७॥

कृतज्ञाद्रोहिमेधाविशुचिकल्यानसूयकाः। अध्याप्याधर्मतःसाधुशक्ताप्तज्ञानवित्तदाः २८॥

अक्ष०—कृतज्ञः अद्रोही मेधावी शुचिः कल्पः अनसूयकः साधुः शक्तः आप्तः ज्ञानदः वित्तदः-इतने लक्षणवाले जो शिष्यहों वह धर्मके अनुसार पढ़ाने योग्यहैं २८॥

अभि०—इन ग्यारह लक्षणोंका यह भावहै कि-कृतज्ञ जो कियेहुये उपकारको न भूलै १ अद्रोही-दयावान् २ मेधावी बुद्धिमान जो ग्रंथके समझने और याद रखने में समर्थहो ३ शुचि जो भीतरसे चित्त और बाहरसे क्रिया और आचरणों में स्वच्छहो ४ कल्प उसे कहतेहैं जिसका शरीर आधि और व्याधिसे रहितहो ५ अनसूयक जो दोषके ढाँकने और गुणके प्रकटकरनेका स्वभाव रखताहो किंतु निंदक न हो ६ साधु

जो चाल चलनका अच्छाहो ७ शक्त जो शुश्रूषाकी शक्तिवालाहो ८ आप्त उसे कहतेहैं जो ठीक विश्वासका पात्रहो और विक्षिप्त न हो ९ ज्ञानद जो विद्यापाकर और को पढ़ावै किंतु विद्याको छिपावै नहीं १० वित्तद जो धनदेनेवालाहो ११ ये लक्षण जिनमें सब या आधे पर्दे भी हों ऐसे शिष्य तौ अवश्यही धर्मके अनुसार पढ़ावने योग्यहैं किंतु विद्या सबहीको देनी उचितहै पर इनको तौ अवश्यहीदेना यह भावहै २८॥

दंडाजिनोपवीतानिमेखलांचैवधारयेत्। ब्राह्मणेषुचरेद्भैक्ष्यमनिंद्येष्वात्मवृत्तये २९॥

अक्ष०—दंडअजिन उपवीत मेखला इनकोधारणकरै और अनिंद्य ब्राह्मणोंमें अपनी वृत्तिकेलिये भिक्षाको आचरणकरै २९॥

मभि०— दंडजोमनुस्मृति में तीनोंवर्णके ब्रह्मचारियों के लियेढाकेआदिकाष्ठ के जुदे२ कहेहैं-अजिनकहिये कृष्णमृगछाला आदि-उपवीत कहिये जनेऊ जो तीनोंवर्णका जुदा कपास आदिका कहाहै-मेखला जो मूँज आदिके बनायेहुये कहेहैं ये चीजें जातिलक्षण पहिंचाननेके चिह्नहैं तिनकोधारणकरै और शुद्धब्राह्मणोंके घर जाकर भिक्षा अपने आजीवनके लिये माँगै-ब्राह्मणके घरयह उपलक्षणमात्र है किंतु असंभवता में द्विजातीमात्र तीनोंवर्णकी भिक्षालेनी २९॥

मधि०—यह ऊपरले कईश्लोकोंसे ब्रह्मचारीका प्रकरण वर्णनकररहेहैं सो यह ब्रह्मचर्य जनेऊहोने पीछे बालापन सेही धारण कियाजाता है और इसका अभिप्राय केवलविद्या संग्रहकरनाहै अर्थात् ब्रह्मचर्यके नियमोंसे शरीरकी रक्षा करताहुआ और संसारकी मर्य्यादैं शिष्टाचारी आदि सीखताहुआ विद्या संग्रहकरै तब पीछे दशवां संस्कार जो विवाहहै तिसकेहोनेका अधिकार उसकोहोता है इसलिये यह ब्रह्मचर्य का प्रकरण वर्णनकिये पीछे विवाहका प्रकरण कहेंगे-और ब्रह्मचर्य की धारणामें जो भिक्षावृत्तिलिखीहै सोकेवल निर्वाहकी रीतिहै अर्थात् भिक्षाका मांगना यहबात कुछ धर्म संबंधी नहींहै कि भिक्षामांगे विनाधर्म पूरानहीं होता किंतु भिक्षाका मांगना परम निंदितहै-और जो कि यहबात कहतेहैं कि ब्राह्मणका कर्महै सोयहभी कहनावृथाहै यहबात ऐसे मूर्ख कहतेहैं जिन्होंने शास्त्रनहींदेखा है क्योंकि शास्त्रमें ध्यान लगाकर देखोकि भिक्षा ब्रह्मचारीके लियेलिखीहै और ब्रह्मचारी ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य इनतीनों काही बालकहोताहै और तीनोंका भिक्षा मांगनेकी मर्यादैं जुदी२ इस श्लोकमें और इससे नीचेके श्लोकमें विशेष प्रत्यक्षकरके कहाहै सोदेखो-जो यहकर्म ब्राह्मणकी जातिकाहोता तौ तीनोंकेलिये क्योंलिखते-अर्थात् ब्रह्मचारी होनायह उपलक्षण विद्यार्थीकाहै चाहेवह किसीवर्णका विद्यार्थीहो-सोउस विद्यार्थीकाभी भि कुछधर्मकी गिनतीमें नहींहै कि भिक्षामाँगे विना विद्यानहीं पढ़सक्ता अ ऋषियोंने केवल इसनिर्वाहके लिये लिखीथी कि पहलेसमय में विद्याके

थोड़ेथे और दूरदेशों में जानेपर मिलसक्तेथे और विद्यार्थीलोग अनेक वर्षोंतक उनकेपास विदेशमें रहकर विद्या संग्रहकरतेथे और ऐसेमाता पिता धनवान् कुछ सबही नहीं होतेहैं कि उनकेलिये वर्षोंतक घरसे खर्च भेजाकरें और घरके खर्च नामिलनेसे सहस्रोंलड़के विद्यापढ़नेसे रुकजाते केवलवेही लड़केथोड़े बहुतपढ़ने कि जिनकोघरसे खर्चमिलसक्ता इसलिये धर्ममर्यादों के वक्ता मुनीश्वरोंने प्रजाका कल्याण विचारकर धर्मशास्त्रोंमें विद्यार्थीको भिक्षामांगनेकी मर्याद लिखदई क्योंकि लिखीहुई बातपरकोई निंदानहीं करसक्ता वरन उत्साह देसक्ताहै इसकारणसे विद्यार्थीलोग मांगनेकीलज्जाको छोड़कर द्रव्यके नहोनेपर भिक्षावृत्तिकी सहायतासे पढ़नानहीं छोड़ेंगे इसलिये भिक्षावृत्तिको उनकाधर्म निश्चितकिया कि विद्याकी बढ़वारी बनीरहे-सोई विद्यार्थीके लिये अबतकभी वह परिपाटी बनरहीहै और विद्यार्थीको देनेसे पुण्यभी बड़ाभारीहै किंतुऐसेविद्यार्थीकोदेना अधिकपुण्यहै किजिसविद्याकेपढ़नेसे पीछेवह विद्यार्थी उसविद्याकेद्वारा सौपचासमनुष्योंका पालनकरसके चाहैकोईविद्याहो और विद्यार्थीकादेना कुछइसकानामनहींहै किवहलोटालेकर जबदरवाजे आगेआवे तबचुटुकीभर आटादेदेना अर्थात् जैसीयोग्यताकाविद्यार्थीहो या जैसीयोग्यताअपनी होवैसादेना औरवर्त्तमान समयकीरीतिके अनुसारदेनेमेंधर्म और पुण्यभी अपरिमित होताहै अर्थात् चुटुकीआदिका देनायेपहले समयकीरीतैंथीं अबइसकालमें विद्यार्थी भीऐसे २ प्रतिष्ठितहैं किवे मांगनहींसक्ते परंतुजोदेनेवाले हैं वे विनामांगेही सैकड़ों और हजारोंरुपया विद्याकेउपकारमेंदेते हैं किंतुदेनाकुछयहीनहीं है किउसकेहाथमेंही देवैतब देनाकहावे अर्थात् देनेकेअनेकप्रकारहैं किंतुचाहैं विद्यार्थियोंको प्रसादकीरीतिसेदेवै यामासिककीरीतिसेदेवै यापुस्तक और विद्याकेस्थान आदिकीरचनामें लगावै या पढ़ानेवालोंकी पालनाकरै अर्थात् कोईतरहका उपकारजोविद्यासे संबंधरखताहो वह विद्यार्थीकी भिक्षाकहलाती है-इससमय में विद्यार्थियोंके भिक्षासंबंधी उपकारों में जैसाकुछ उद्योग और द्रव्यका उठाना धर्मज्ञ सरकार अँगरेजी गवर्नमेंट और उसके शुभचिंतकलोग करतेहैं सोयह सनातनधर्मकी परमअवधिहै-परंतु शास्त्रोंके सिद्धांतमें यहकहींनहींपायाजाता कि विद्यापढ़ने पीछेभीगृहस्थीधर्म धारणकरके भिक्षामांगे २॥

आदिमध्यावसानेषु भवच्छब्दोपलक्षिता। ब्राह्मणक्षत्रियविशांभैक्ष्यचर्यायथाक्रमम् ३०॥

भ०- आदिमें मध्यमें अंतमें (भवत्) शब्द से उपलक्षित करीहुई भैक्ष्यचर्या यथाक्रमसे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यकीहोती है ३०॥

मि०—यथाक्रमका यहअभिप्राय है कि जो ब्राह्मणकापुत्र ब्रह्मचारीहो और वह किसीकेघर भिक्षामाँगने जायतो (भवत्) शब्दकोआदिमेंहीलगावै अर्थात् इसप्रकार कहेकि (भवानिभिक्षांदेहि) इस (भवत्) शब्दको आदिमें जोड़नेसे सुननेवालोंने भवत्शब्द

लिया कि यहकोईब्राह्मणका बालकहै-ऐसेही जो क्षत्रियकापुत्र ब्रह्मचारीहोतौ मध्यमें लगावै-जैसे (भिक्षांभवतिदेहि)इसआवाजकेसुननेसे जानागया यहकोईक्षत्रियका बालक है-ऐसेही वैश्यकापुत्र ब्रह्मचारीहोतो अंतमेंलगावै-जैसे (भिक्षांदेहिभवति) इस्सेसुनने वालीस्त्रीने झट पहिंचाना कि यहकोई वैश्यका बालकहै ३० ॥

मधि०—२९ के श्लोकमें जोदंड अजिन उपवीत मेखला जुदेजुदेसबके जतलायेथे वे तौआँखोंसे देखकर जातिपहिचाननेके चिह्नथे और इसश्लोकमें जो भवत्शब्द काभेदहै सोआँखोंसे बिनादेखेभी आवाजहीसुनिकर वर्णजातिका पहिंचाननाहै ३० ॥

कृताग्निकार्योभुंजीतवाग्यतोगुर्वनुज्ञया। अपोशनक्रियापूर्वंसत्कृत्यान्नमकुत्सयन् ३१ ॥

मक्ष०—अग्निकार्य कियाहुआ ब्रह्मचारी बाणीको रोकेहुये गुरुकीअनुज्ञासे अपोशन क्रियापूर्वक अन्नका सत्कारकरके उसकीनिन्दा नहींकरताहुआ भोजनकरै ३१ ॥

मभि०—पूर्वोक्तविधिसे भिक्षालाकर उसेगुरुको दिखलाकर और आज्ञापानेपर अग्नि कार्य्य करचुकाहो ऐसा ब्रह्मचारी अन्नकी अपोशनक्रिया अर्थात् (अमृतोपस्तरण मसि) इत्यादि वेदऋचासे अन्नको सत्कार पूजादेकर उसकी निंदाको न करताहुआ भोजन करै ३१ ॥

मधि०—गुरुका दिखलाना-कदाचित् गुरुकहींगयाहोतौ गुरुकीस्त्री या पुत्रआदिजो घरमें मुख्यहो उसेदिखलाकर और आज्ञालेकरभोजनकरै ३१ ॥

ब्रह्मचर्येस्थितोनैकमन्नमद्यादनापदि। ब्राह्मणःकाममश्नीयाच्छ्राद्धेव्रतमपीडयन् ३२ ॥

मक्ष०—ब्रह्मचर्यमें स्थितब्रह्मचारीविना आपत्कालके एकअन्नको न भोजनकरै-ब्राह्मणचाहै श्राद्धमें व्रतकोपीड़ा नहींदेताहुआ भोजनकरै ३२ ॥

मभि०—अर्थात् किसीएकअन्न इकल्लेकाभोजन न करै जैसे केवल चाँवलराँधखाये उनकेसाथको दालऔरघी मीठाकुछनहींहै—या चर्वण चाबलिया इसकायह अभिप्राय है कि इसप्रकारसे ब्रह्मचर्यकी साधनामें भंगहोजाताहै क्योंकि वैद्यकशास्त्रकेमतसे यह विरुद्धभोजन कहलाताहै अर्थात् इसदशामें रोगउत्पन्नहोजाताहै फिरउसमें ब्रह्मचर्य नहींबनसकता परन्तु जोकोई विपत्तिकाल आनिपड़ेतौ उसमें लाचारी है एकअन्नसे भी निर्वाहकरले-और जो ब्रह्मचारी ब्राह्मणहो इसकारणसे उसेकोई श्राद्धमें जिमावै इसप्रतिज्ञासे कि मैं केवल मिठाईही या दूधही या सहतही अपनेपितरोंकी तृप्तिहेतु जिमानांचाहताहूं और वहब्राह्मण ब्रह्मचारी अपनीप्रसन्नतासे एकहीअन्नजीमि आवैतौ कुछचिंतानहीं परन्तु अपनेव्रतको पीड़ानहींदेवै अर्थात् कोईऐसा अन्ननहो जो ब्रह्मचारीको खानाउचित नहींहै-यहां अन्नशब्दकाअर्थ घृत,गुड़, मांस आदि जोकुछ खानेकी वस्तुहोतीहैं उनसबका वाचकहै ३२ ॥

मधुमांसांजनोच्छिष्टशुक्तस्त्रीप्राणिहिंसनम्। भास्करालोकनाश्लीलपरिवादादिवर्जयेत् ३

अक्ष०—मधुमांस, अंजन, उच्छिष्ट, शुक्त, स्त्री, प्राणिहिंसा, भास्करालोकन, अश्लीलप-रिवादआदि औरभी यहसब वार्जितकरै ३३ ॥

अभि०—मधुकहियेमदिरा और सहतभी-मांस-अंजन अर्थात् कज्जलआदिसे आँखों और तैल सुगन्धआदिसे गात्रकालेप-उच्छिष्ट कहिये जूठागुरुके सिवाय-शुक्तकहिये निठुरवचनऔर माड़आदिअन्नकेमैलकारसभी-स्त्रीकाभोग-प्राणिहिंसाकिंतुकिसीजीव कामारना-भास्करालोकन अर्थात्सूर्यकोउदयहोते और अस्तहोतेहुयेदेखना-अश्ली-लकहिये असत्यबोलना परिवादकहिये परायेगुण अवगुणकाव्याख्यान और आदि शब्दसेवहबातैंभी लेनीकिजो इसमेंनहींकही अन्य स्मृतियों मेंहास्यगंधमाल्य आदि वर्जित हैं इनसबका परित्याग रक्खे यह ब्रह्मचर्यके नियमहैं ३३ ॥

सगुरुर्यःक्रियाःकृत्वावेदमस्मैप्रयच्छति । उपनीयददद्वेदमाचार्यःसउदाहृतः ३४ ॥

अक्ष०—जोगर्भाधानसे आदिलेकर जनेऊताईकी सबक्रियायेंकरके इसब्रह्मचारीको वेदपढ़ाताहै सोगुरुहै और जो केवल जनेऊमात्र कराकरवेदपढ़ाता है सो आचार्य कहलाताहै ३४ ॥

एकदेशमुपाध्यायऋत्विग्यज्ञकृदुच्यते । एतेमान्यायथापूर्वमेभ्योमातागरीयसी ३५ ॥

अक्ष०—वेदकाएकदेशकहिये एकविभागजोपढ़ाता है सोउपाध्यायकहाता है- जो यज्ञादिकर्मकराताहै वहऋत्विक्कहलाताहै यहचारोंजो ३४ । ३५ के श्लोकमें कहेग-ये सोयथापूर्व मान्यहोते हैं अर्थात् चौथे से तीसराअधिक-तीसरे से दूसराअधिक-दूसरेसे पहलासबसेबड़ाहै- और माताइनचारोंसेही अधिकपूज्यहोतीहै ३५ ॥

अबनीचेब्रह्मचर्य्यबनाराखनेकीअवधिकहतेहैं ॥

प्रतिवेदंब्रह्मचर्यंद्वादशाब्दानिपंचवा । ग्रहणान्तिकमित्येकेकेशान्तश्चैवषोडशे ३६ ॥

अक्ष०—वेदप्रतिबारह या पांचवर्षं ब्रह्मचर्यराखै-एकयहकहतेहैं कि ग्रहणकर्मकने के अन्तताईराखै-औरकेशान्तसोलहवेंवर्षमेंकरे ३६ ॥

अभि०—वेदप्रति अर्थात् एक २ वेदकेपढ़नेमेंबारह २ वर्षं अथवा जोइतनीसामर्थ्य नहो तौ पांच २ वर्षं ब्रह्मचर्यसाधै- अर्थात् जो एकहीवेदपढ़े तो बारहअथवा पांच-औरजोदोवेदपढ़ैतौ २४ अथवा १०जोतीनोंवेदपढ़ैतौ ३६ अथवा १५ वर्षब्रह्मचर्य साधै-और कोई मुनीश्वर यह कहतेहैं कि बारह और पांचका नियम नहींहै ग्रहणा-न्तिक अर्थात् जबतक वेदकाग्रहण करसकै तभीतक ब्रह्मचर्य राखै-और केशांतकर्म जिसकानाम गोदानकर्म भी कहतेहैं-गोदान कहनेका यहअर्थहै कि गो संज्ञाबालोंकी भीहै तिनकादान किंतु कटवाना सोई केशांतका अर्थहै कि केशजोबालहैं तिनका अन्तहोना-सो इसकर्मको गर्भसे लेकर सोलहवें वर्षमें करैयह अवधिब्राह्मण ब्रह्मचा-रीकीहै क्योंकि आठवेंवर्ष में जनेऊभया उससेदूना वर्षोंमें केशांतहुआ यह केशांत

कर्म ब्रह्मचर्यके बीचहीमें संभवितहै क्योंकि उसकी अवधिबहुत कहचुके इसकी थोड़ीहै-ऐसेही क्षत्री और वैश्य ब्रह्मचारीकी अवधि अपने २ उपनयन से दूनीजानो-सोई मनुजीने स्पष्टकरके कहदियाहै कि(केशांतःषोडशेवर्षेब्राह्मणस्यविधीयते। राजन्यबंधोर्द्वाविंशेवैश्यस्यद्व्यधिकेततः) अर्थात् ब्राह्मणका केशांत सोलहवेंवर्षमें करिये है राजन्यबंधु का बाईसवेंमें वैश्यका चौबीसवेंमें ३६॥

आषोडशादाद्वाविंशाच्चतुर्विंशाच्चवत्सरात्। ब्रह्मक्षत्रविशांकालऔपनायनिकःपरः ३७॥

अक्ष०—ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य इन्होंके उपनयन सम्बन्धीकालकी परमअवधिसोलह बाईस चौबीस वर्षोंसे पहले२है ३७॥

अभि०—अर्थात् आठ और ग्यारह और बारहकी अवधिजो उपनयनकी कहचुके हैं वह परमउत्तम है परन्तु जब किसीकारणसे उस अवधि पर न होसका तौ केशांत कीकहीहुई अवधिके भीतरभीतर मध्यमकाल और भीहै तिसमेंहोना चाहिये अर्थात् इससे आगे नहीं ३७॥

अतऊर्द्ध्वंपतंतेतेसर्वधर्मबहिष्कृताः। सावित्रीपतितावात्यावात्यस्तोमादृतेक्रतोः ३८॥

अक्ष०—इस्से उपरांत येतीनों व्रात्यस्तोमक्रतुके बिना पतित होजाते हैं सब धर्म्मों से बाहर गिनेजातेहैं सावित्रीसेभी पतित और व्रात्यकहलातेहैं ३८॥

अभि०—किंतु ऊपरकहाहुआ उपनयनका मध्यमकालभी जबउल्लंघजाताहै तब ये तीनों द्विजाती पतितहोतेहैं और सर्वधर्मोंसे बाहर अर्थात्किसीधर्म्म संबंधीकर्मके अधिकारी नहीं रहते और सावित्रीसेपतित अर्थात् गायत्रीकी मंत्रदीक्षा देनेयोग्य नहीं रहते और व्रात्यकहिये संस्कारहीन गिनेजाते हैं किन्तु केशांतकी अवधि पीछे उपनयनकरने परभी असंस्कृतदोष लगताहै-परन्तु व्रात्यस्तोमक्रतुके बिना-अर्थात् लाचारीअवस्थामें जो केशांत अवधिकेपीछेही उपनयनकरनापड़े तौव्रात्यस्तोमनामयज्ञ करके फिरउपनयन करेतो धर्मकर्मोंके अधिकारी बनेरहतेहैं ३८॥

अबनीचेद्विजाती शब्दका अर्थ कहतेहैं॥

मातुर्यदग्रेजायंतेद्वितीयंमौंजिबंधनात्। ब्राह्मणक्षत्रियविशस्तस्मादेतेद्विजास्स्मृताः ३९॥

अक्ष०—जिसकारण ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य येतीनों पहले तो मातासेजन्मलेतेहैं फिर दूसरा जन्म उनका मौंजीबंधनकर्म से कहाता है इसलिये ये तीनों द्विज अर्थात् द्विजन्मा कहलातेहैं क्योंकि इनका जन्म दोबार भया ३९॥

यज्ञानांतपसांचैवशुभानांचैवकर्मणाम्। वेदएवद्विजातीनांनिःश्रेयसकरःपरः ४०॥

अक्ष०—द्विजातियोंको यज्ञोंका औरतपोंका और शुभकर्मों काभी परम कल्याणकरनेवालावेदही है ४०॥

अभि०—श्रौतकहिये वेदोक्त और स्मार्त्त कहिये धर्मशास्त्रोक्त ये दो प्रकारके यज्ञ

होतेहैं तिनका और तपजो चांद्रायणआदिशरीरसे कियेजातेहैं और शुभकर्मजो उपनयनआदि संस्कार होतेहैं इन सबका परम कल्याणकारी द्विजातियोंकेलिये निस्संदेह वेदहै- वेदके उपलक्षणसे धर्मशास्त्रभी समुझना क्योंकि धर्मशास्त्रकी मूलवेदहै और श्रुतिस्मृतिका स्वाभाविक जोड़ा मनुसंहितामें कहाहै इसीहेतुसे इस ४० के श्लोक में श्रौत और स्मार्त्त दोनोंभांतिके यज्ञोंका बहुबचनहै इसलिये द्विजातियोंको श्रुति और स्मृतिकहिये धर्मशास्त्र ये दोनों अवश्यपढ़ने चाहिये क्योंकि पूर्वोक्त सब यज्ञादिक इन्हींदोनोंसे जानेजातेहैं ४० ॥

सोईनीचे उसकापाठकरनेका माहात्म्य और फल आठ श्लोकोंसे कहते हैं ॥

मधुनापयसाचैवसदेवांस्तर्पयेद्द्विजः। पितॄन्मधुघृताभ्यांचऋचोऽधीतेचयोऽन्वहम् ४१ ॥

मक्ष०—जो द्विजाती ब्रह्मचारी या गृहस्थी होकर प्रतिदिन ऋग्वेदोंका पाठकरै तो वह देवताओंको सहत और दूधसे तृप्तकरै-और पितरोंको भी सहत और घृतसेतृप्त करै-अर्थात् केवल पाठमात्रके करनेसेही यह फल मिलै जो सहतदूध-या सहत घृत से संतृप्तकरनेवालेको मिलता है ४१ ॥

यजूंषिशक्तितोऽधीतेयोऽन्वहंसघृतामृतैः। प्रीणातिदेवानाज्येनमधुनाचपितॄंस्तथा ४२ ॥

मक्ष०—जो कोई यजुर्वेदोंका पाठ शक्तिके अनुरूप प्रतिदिन करताहै वहघृत और अमृतोंसे किंतु अतिस्वादुवाली वस्तुओंसे देवताओंको-और तैसेही पितरोंको भी सहत और अतिस्वादुवस्तुओं से प्रसन्नकरै ४२ ॥

सतुसोमघृतैर्देवांस्तर्पयेद्योऽन्वहंपठेत्। सामानितृप्तिंकुर्याच्चपितॄणांमधुसर्पिषा ४३ ॥

मक्ष०—जो कोई सामवेदोंका दिनप्रति पाठकरै सोभी अमृत और घृतोंसे देवताओंको संतर्पितकरै- और पितरोंकी भी तृप्ति सहत और घृतसे करै ४३ ॥

मभि०—ऊपरलेतीन श्लोकोंमें जो वेदका बहुवचन अर्थात् ऋग्वेदों यजुर्वेदों सामवेदों ऐसा लिखाहै उसका यह अभिप्राय है कि वेद एकहै परंतु रोजरोज समस्तका पाठ होसकना असंभवहै इसलिये उसके अंगभेदोंका बहुवचन कहाहै ४३ ॥

मेदसातर्पयेद्देवानथर्वांगिरसःपठन्। पितॄंश्चमधुसर्पिभ्यामन्वहंशक्तितोद्विजः ४४ ॥

मक्ष०—द्विजाती दिनप्रति अपनी शक्तिके समान अथर्वांगिरसका पाठकरताहुआ देवताओंको मेदासे और पितरोंको सहत घीसे संतर्पितकरताहै ४४ ॥

मभि०—अपनी शक्तिके अनुसार यह ऊपरले चारों श्लोकमें समुझना अर्थात् जितना पाठ मनुष्य से होसकै अपने छुटकारे के अवकाश में और मेदा जो मनुष्य या अन्यबड़े जीवों के मांस और हड्डी इनदोनों के विचारे में घृतके तुल्य नरम एक प्रकारकी धातुहोती है और शरीरकी सातधातुओंमेंसे चौथी धातु कहाती है जिसको वसा भी कहते हैं-और अभक्ष्यकी शङ्का नहीं करनी क्योंकि प्रथम तो समर्थके लिय

नहीं यहवाक्य मनुष्यपरभी संभवितहै फिर देवतातो अग्निमुखहैं-अन्यथा(जीवो जीवस्यभोजनमिति) श्रीमद्भागवतेपि (अहस्ताश्चसहस्तानामित्याद्यापितत्रैव) अर्थात्‌जो मांसग्राह्यहै तो बसाभीग्राह्यहै और जहां मांसत्याज्य है तहाँ बसाकाभी त्यागहै (किञ्च वारुण्यादिभिरिंद्रादिदेवाभोगिनःप्रसिद्धाः) ४४ ॥

वाकोवाक्यंपुराणंचनाराशंसीश्चगाथिकाः। इतिहासांस्तथाविद्याःशक्त्याधीतेहियोऽन्वहम् ४५ ॥
मांसक्षीरौदनमधुतर्पणंसदिवौकसाम्। करोतितृप्तिंकुर्याच्चपितॄणांमधुसर्पिषा ४६ ॥

भक्ष०—वाकोवाक्य १ पुराण २ नाराशंसी ३ गाथिक ४ इतिहास ५ तैसेही विद्याओं को जो कोईप्रतिदिन शक्तिअनुसारपढ़ताहै ४५ वहमनुष्यमानो-मांस,दूध,भात, सहत इनसे देवताओंकीतृप्तिकरताहै-और पितरोंकीभीतृप्ति सहतघीसेकरै है ४६ ॥

भभि०—वाकोवाक्यनामकहिये स्मृतिआदि धर्मशास्त्र १ और पुराण जिनमेंपुराने वृत्तांत होतेहैं २ नाशशंसीसे रुद्रदैवतमंत्र-और गाथिक शब्दसे इंद्रगाथा यज्ञगाथा आदि टीकाकारोंने कल्पितकियेहैं परन्तु रुद्रदैवत्य और इंद्रगाथाआदि ये सबवेदकेही अंशांशहैं और वेदोंकोपहलेही कहचुके तो दूसरीबारकहना असंभवितहै क्योंकि वहपाठकरनेका प्रकारक्रमसे नीचेकोउतरताचलाआताहै इसलिये याज्ञवल्क्यमुनिका कथनसंसारपक्षमें घटता निश्चितहोताहै-इसकारण से नाराशंसी शब्दका अर्थनर सम्वन्धी आशंसाकहिये स्तुति अर्थात् जिनग्रंथोंमें राजाआदिसत्पुरुषोंके आचरण वृत्तांतलिखे होतेहैं उनकापाठ किंतुविचारना क्योंकि वेभी ईश्वरकीविभूति गीतामें कहेहैं उनके आचरणवृत्तांतोंके विचारनेसेमनुष्यकी बुद्धिशुद्धहोजाती है और वैसेही आचरणकरनेका उत्साहवढ़ानेमें निपुण होजाताहै ३ चौथेगाथिकशब्दसे गानविद्या का अभ्यास क्योंकि यहगांधर्वीविद्याभी ईश्वरकी विभूतिभागवतमें निश्चितहै ४ इतिहासमहाभारत आदि प्रसिद्धहैं ५ तैसेही विद्याशब्द से चौदह विद्यायेंजो जलविद्या आदि प्रसिद्धहैं ६-इनसारीचीजोंमेंसे जिसकिसी वस्तुको अपनीशक्तिके समान जो कोई प्रतिदिनपढ़ता और विचारताहै ४५ वहछिआलीस ४६ के श्लोकमें कहेहुयेफल का भागीवनताहै ४६ ॥

तेतृप्तास्तर्पयंत्येनंसर्वकामफलैःशुभैः। यंयंक्रतुमधीतेऽसौतस्यतस्याप्नुयात्फलम् ४७ ॥

भक्ष०—वेपूर्वोक्त देवता और पितरभी संतर्पितहुयेभये इसपाठकर्त्ताको सारे शुभ कामोंसे तृप्तकरतेहैं-जिस २ यज्ञका पाठयहकरताहै उसी उसकाफलपाताहै-अर्थात्‌वेद मेंसे जिसयज्ञकी विधिकापाठ करै तो उसीयज्ञके करनेभरेका पूराफल पावै ४७ ॥

भभि०—सर्व शुभकामोंसे तृप्तकरनेका यह अभिप्रायहै कि जिन २ शुभकामों की विधिका विचारवेदमेंसे अथवा पूर्वोक्त किसीशास्त्रमेंसे नित्यकरतारहेगा तो अवश्यही नित्यकेआराधन प्रभावसेकोईशुभकाम उस्से वनिआवेगा-शुभकाम अर्थातअपने

यासंसारकेकल्याणकाकरनेवाला अच्छाकाम जिस्सेमनुष्यकी सुकीर्त्तिवढ़तीहै-सोईपि-छले अर्द्धमें प्रत्यक्षकहादियाहै कि जिस २ क्रतुकापाठ किंतु आराधना करैगा उसी का फलपावैगा-यहां क्रतुशब्दका अर्थकेवलयज्ञहीनहींहैकिंतु क्रतुकामनाको मनकेसं कल्पको और काम या कार्यकोभीकहतेहैं तौयहांक्रतुकेअर्थसे वहसभीकामअपेक्षितहैं जोवेदके सिवाय और सबशास्त्रया विद्याओंके ग्रंथोंमें उनकामोंके प्रकारलिखे होते हैं इसीलिये याज्ञवल्क्यजीने वेदकोआदिलेकर संसारके सभीशास्त्र और सभीविद्याओं का विचार करनेमें उत्साह देकर पीछेसे यह कहाहै कि जिस २ क्रतुका आराधनकरै-गा उसीउसका फलपावैगा-सोई इसबातको जो कोई समुझाचाहोवह ४१ से लेकर ४८ केश्लोकोंताईं आठश्लोकोंको देखलो ४७॥

त्रिर्वित्तपूर्णपृथिवीदानस्यफलमश्नुते। तपसोयत्परस्येहनित्यंस्वाध्यायवान्द्विजः ४८॥

अक्ष०—नित्यस्वाध्यायवान् द्विजातीधनसे भरीहुई पृथिवीको तीनवार दानकरनेका फल और परमतपस्याकरनेकाभी फल इसीसंसारमें भोगताहै ४८॥

अभि०—किंतुदान वा तपकरनेविनाही उतनाफल पाताहै यहनित्यस्वाध्यायकरने का उत्साहवढ़ानेकी प्रोत्साहताहै-यहांस्वाध्यायका अर्थकेवल वेदहीका नहींहै अर्थात् स्वकहिये अपनाअध्याय किंतु अपनापाठजो द्विजातीकी तीनोंजातोंका पढ़नाअपनी अपनीजाति वा कर्म या पेशाकेअनुरूप उचितहो-अर्थात् जोपूर्वोक्तवेद आदिपाठोंके करनेमें समर्थनहोतो केवलअपनीजाति या कर्मजीविका संबंधीपाठको अवश्यकरके नित्यकरतारहैतो वहभी दानतपके तुल्यफल भागीहोताहै ४८॥

अभि०—विदितहोवेकि १४ केश्लोकसे लेकरयहांताईं यहसबप्रकरण ब्रह्मचारीके धर्मोंमध्येकहाहै और ब्रह्मचारीका उपलक्षण केवलविद्यार्थीमें घटताहै क्योंकि यहब्रह्म-चर्यकेवल विद्याग्रहणकरनेताईं होताहै फिरपीछे विवाहकरके गृहस्थीहोना कहाहै इस कारणसे यहपूर्वोक्त लक्षणतोसामान्य ब्रह्मचारीके जानो-और दूसराब्रह्मचर्य वहकह-लाताहै कि जोकोई विवाहकरके गृहस्थीनहींबने अर्थात् इसीब्रह्मचर्यको निरंतर अ-पनीजीवन अवधि ताईं बनारक्खे सोवह नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहलाताहै उसकी मर्यादा नीचेके श्लोकमें कहतेहैं ४८॥

नैष्ठिकोब्रह्मचारीतुवसेदाचार्यसन्निधौ। तदभावेऽस्यतनयेपत्न्यांवैश्वानरेपिवा ४९॥

अक्ष०—नैष्ठिक ब्रह्मचारीतो आचार्यकेसमीप वासकरै उसके न होनेमें उसकेपुत्रके समीप वा पत्नीके समीप अथवा अग्निके समीप ४९॥

अभि०—किंतु पूर्वोक्तरीतोंब्रह्मचर्यको साधताहुआ विद्यापढ़ेपीछे जो विवाहकर-ना नहींचाहै नैष्ठिकहोनाचाहै तौवहअपने आचार्यहीकेनिकट वासकरतारहै प्रायः

के अभावमें उसकेपुत्रके निकट औरपुत्रकेभी अभावमें गुरुपत्नीकेनिकट औरगुरुपत्नी केभी न होनेमें अग्निका सेवनकरै ४९ ॥

अनेनविधिनादेहंसाधयन्विजितेंद्रियः। ब्रह्मलोकमवाप्नोतिनचेहजायतेपुनः ५० ॥

अक्ष०—इसकहीहुई बिधिसे वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी इंद्रियोंकोजीतेहुये और देहको साधताहुआ जोआचार्यआदिके समीप बसकर जीवनअवधिके कालकोबितातहै सो वह ब्रह्मलोकको पावताहै और फेर कदाचित्भी यहांजन्म नहींपाताहै ५० ॥

व्यक्तिः०—अब इसकलियुगसंबंधीसमयमें ब्रह्मचर्यकीमर्यादा भस्माग्निवत् होगई है किन्तुजैसेराखमें अग्निदबीरहतीहै इसप्रकार केवलग्रंथोंमें दबीपड़ीहै अर्थात्दोनों प्रकारोंमेंसे एकप्रकारकाभी ब्रूह्मचर्य अब कोईनहीं करसक्ता केवलनाममात्र शेषहै परंतु पूर्वोक्त ब्रूह्मचर्यका अनुकल्पमात्र केवल एकदोघटिकामेंही जनेऊ के दिवस करलेतेहैं कि जिसकी अवधि १२ और २४ और ३६ अथवा ५ और १० और १५ वर्षोंकीकहीहै-किंतु जो यथार्थदृष्टिसे बिचारकरके देखौतौ हमारीबुद्धिसे यही निश्चितहोतीहै कि ३६ के श्लोक में जिनएकप्रकारके ऋषियोंने ब्रूह्मचर्यकी अवधि को बिद्याकेग्रहणांतिकसमयतक निश्चितकिया है वे लोगबड़े दूरदर्शीथे (इति ब्रूह्मचारिप्रकरणम्) अब आगेबिवाहका प्रकरण बर्णनकरते हैं॥ वहबिवाह दशवां संस्कार कहलाता है॥

गुरवेतुवरंदत्त्वास्नायीततदनुज्ञया। वेदव्रतानिवापारंनीत्वाह्युभयमेववा ५१॥

अक्ष०—वेदको या व्रतोंको वा दोनोंको पारपाकर पुनि गुरुको वरदेकर उसकी आज्ञासेस्नानभी करै ५१ ॥

अभि०—जोकोई ४९। ५० इनदोश्लोकोंकी मर्यादाअनुसार(नैष्ठिक)होनानहींचाहै किंतुब्रह्मचर्यका बिसर्जन करिके बिवाहकरनेकी इच्छाकरैतौ पूर्वोक्त रीतोंसे वेदको पढ़कर या ब्रह्मचारीके नियमोंकोही पारउतरकर या दोनोंमें सिद्धार्थहोकर अपने गुरुको वरकहिये निजइच्छाके अनुसार कुछधन देकर और उसकी आज्ञालेकर स्नान अर्थात् ब्रह्मचर्यके विसर्ज्जनका जो स्नान कहलाताहै उसकोविधि सहितकरै ५१ ॥

अधि०—वेदको या नियमोंको या दोनोंको यह कहनेसे प्रकट होताहै कि जिस्से नियम नहीं साधेजायँ वह केवल वेदहीको पढ़ै या जिसकी बुद्धि और समुझ मंदहोनेसे वेदपढ़नेमें सिद्धार्त्थ न होसक्तीहो वह केवल नियमोंकाही साधनकरै अथवा उच्चप्रारब्धीहो वह दोनों बातमें सिद्धार्थता पैदाकिये पीछे गुरुके परिश्रम और साफल्य सम्बन्धी दक्षिणादे और स्नानकीआज्ञामांगे-और जिसे दक्षिणा देनेकी सामर्थ्यनहीं हो वह विना दियेभी उसकी आज्ञालेकर स्नानकरै और पीछे जबकभी अपने को शक्तिहो तब उद्धार करदे-और वेद शब्दसे केवल वेदहीका पढ़ना सम्भावित नहीं है

अर्थात् वेदके संज्ञोपलक्षणमात्र से सारी विद्याओंका पढ़ना संभवित है किंतु संसार की कोईसी विद्यापढ़े वह वेदही कहलाताहै क्योंकि वेदसंज्ञा ज्ञानमात्रकी होती है किंतु जिसकिसी विद्यासे कुछ जानाजाय वही वेदहै ५१ ॥

अविप्लुतब्रह्मचर्योलक्षण्यांस्त्रियमुद्वहेत् । अनन्यपूर्विकांकांतामसपिंडांयवीयसीम् ५२ ॥

अक्ष०—अविप्लुत ब्रह्मचारी लक्षणी स्त्रीको विवाहे अनन्य पूर्विकाको कांताको असपिंडाको यवीयसीको ५२ ॥

अभि०—ब्रह्मचर्यका मुख्यअर्थांश केवल वीर्यकी रक्षामात्रमेंघटताहै इसलिये अविप्लुत कहिये अस्खलित ब्रह्मचर्य अर्थात् जिसने अपनेवीर्यका बिध्वंसनहोने दियाहो ऐसाब्रह्मचारी स्नानकेपीछेऐसीस्त्रीकोविवाहै जो लक्षणवालीहो तहाँलक्षणभी दोप्रकार केहोतेहैं किंतु एकतौ वाहरले दूसरेभीतरले तिनमेंबाहरले जो मनुसंहितामें कहेहैं कि स्त्रीकेरोमाकेश दाँतआदिसूक्ष्महों किंतुमोटेबालमोटेलोम वड़ेदाँतनहों-और भीतरले लक्षणोंकी परीक्षा यद्यपि आश्वलायनजीनेकही है परंतु उसका लिखना अब समयके अनुरूपकुछ आवश्यक नहींहै क्योंकि वे मर्यादें अवनष्टाग्निवत् होगईहैं-पुनि अनन्यपूर्विकाहो अर्थात् सगाई आदि दानकरनेसे या उपभोगसे किसीदूसरे पुरुषके परिग्रह वाली नहोचुकीहो॥ और कांताकहिये कमनीयाहो जो विवाहनेवालेके मन औरनेत्रोंको कामनाके अनुसार आनंद देनेवाली ऐसीसुंदरहो क्योंकि आपस्तम्ब ऋषिनेभी निज शास्त्र में कहाहै कि जिस विवाहिता स्त्रीमें पतिकामन और नेत्र विंधेरहतेहैंउसमें ऋद्धि सिद्धिभी भरीरहती हैं-असपिंडा कहिये अपनी सपिंडा न हो सपिंडा और असपिंडाका विस्तारार्थनीचे अधिकोक्तिमें देखो-यवीयसी कहिये-छोटीसी अर्थात्अपनेसे अवस्था और डील डौलमें भी थोड़ीहो-और स्त्री हो अर्थात् नपुंसकी नहीं क्योंकि नपुंसक पुरुष जैसेहोताहै तैसेही विरली स्त्री भी नपुंसकी होतीहै सो नहो इसलिये पहलेमेंही किसीयुक्तिसे भेद लेलेवै ५२ ॥

अधि०—यहाँपर सपिंडताका स्वरूप वर्णनकरतेहैं कि क्या वस्तुहै और कैसे जानी जाती इसलिये कि इसका आगे भी वहुधा काम आवेगा-तहाँ पिंडकहतेहैं गात्र अर्थात् देहको और पिंड शब्दसे पहले जो (स) लगिरहाहै सो वह सकार एकताको प्रतीतकरताहै अर्थात् सपिंडकहिये एकहीसा शरीर जिनकाहो उन्हें सपिंड या सपिंड्यकहतेहैं (दृष्टांत) जैसे पुत्रकी सपिंडता पिताके साथ क्योंकि पुत्र भी पिताकेही देहमेंसे निकलाहै इस्से इनदोनोंका देह एकहीसा जानो कुछ अन्तर नहीं-ऐसेहीपिताके शरीरकी सपिंडता कहिये एकता उसके पितामें मिलरही है तो इस हेतुमें पौत्र की सपिंडता दादेमेंभी निश्चित हुई ऐसेही परदादामें भी इसीप्रकार सहस्रों पीढ़ीताईं ऊपर और नीचेकोभी सपिंडता हुआ करती है- परन्तु विवाहादि व्यवहारोंमें

वर्त्तावामें केवल सातही पीढ़ी ताईं मानीजाती है और सातपीढ़ीकें उपरान्त उसी कुलके मनुष्य केवल गोत्री कहलाते हैं क्योंकि सपिंडता तौ निवृत्त होगई परन्तु गोत्रवही बनारहैगा- ऐसेही उस पुत्रकी सपिंडता मातासेभी होती है क्योंकि माताकेभी उदरमेंसे जन्माहै और माताकी सपिंडता उसके नानासे होतीहै क्योंकि वहभी अपने पिताके शरीरमेंसे निकलीहै तौ इस हेतुसे धेवताकी सपिंडता नानासेभी निश्चितहुई इसीप्रकार परनाना आदिसेभी ऊपर और नीचेकोभी माता पक्षकी सपिंडता कहलाती है परन्तु विवाहादि व्यवहारोंके वर्त्तावामें केवल पांचही शाखतक मानीजातीहैपाँचके पीछेवेभी नानाके गोत्री या माता कुलके गोत्रीकिहलाते हैं सोयह पाँचपीढ़ी माताको आदि लेकर गिनीजाती हैं जैसे माता १ नाना२ परनाना३ इत्यादि औरभी जानो-ऐसेही संतानभेदकी सपिंडताभी होतीहै अर्थात् अपनेपिताकेभाइयोंसे और पिताकीबहनोंसेभीसपिंडता कहीजातीहै क्योंकि जिसदादाके शरीरमेंसे अपना पिता निकलाउसीके देहमेंसेचचा और फूआभी पैदाहुईहैं इसहेतुसे जैसे अपने आत्माकीसपिंडतापिताकेसाथमानीगईथी तैसेही चचा और फूआसेभी अपनेआत्माकी सपिंडता निश्चित हुई-इसीप्रकार माताके कुलमेंभी संतानभेदसेमामा और मौसीसे भी अपने आत्माकी सपिंडता माताकेही तुल्यनिश्चितहुई ॥ अभीतक सपिंडताकाप्रयोजनसिद्धनहींभया क्योंकि ऊपरजो वर्णनाकियाउसमें केवल शरीरोंके संबंधमात्र जानेगयेउन्हीं संबंधोमेंसे मुख्यसपिंडता उसेसमुझो कि जिनमनुष्योंकेजन्मकाआरंभ एकसाथहुआहोऔर एक साथकहनेका यह अभिप्राय नहींहै कि एकघड़ी या एकदिन या एकमास या एकवर्ष में जन्महुआहो-अर्थात् यह सिद्धांतहै कि तुल्य पीढ़ीके मनुष्योंसे जन्म जिनकाहुआ हो वे साпिंड्य ठीकहैं फिर चाहै उनकी अवस्थामें दश बीसवर्षोंकी छुटाई वड़ाई भी हो परंतु वे तुल्य सापिंड्यकहाते हैं (दृष्टांत) जैसे एकपुरुषकी दश संतानेंहुई वे दशों भाई बहनें परस्पर तुल्यसापिंड्यहैं फिर उनदशोंके जुदीजुदी संतानें पैदाहुई तौ जैसे एकपिताकी संतानोंमें सपिंडता हुईथी तैसेहीउनचचेरे और ममेरे या फुफेरेभाईवहनों में परस्पर सापिंडता सगेकेहीतुल्यमानीजायगी-फिर उनसंतानोंकी संतानें जो होवेंगी उनमें यद्यपि दो पीढ़ीका अंतर पड़गया परंतु सपिंडता सगोंकेही तुल्य परस्परकही जायगी-इसी हिसाबसे नाना और दादाकी संतानोंमें परस्पर तुल्यताहै-मामा और फूआकी संतानोंमें परस्पर भाई वहनके नातेसेतुल्यताहै-मौसी और चचाकी संतानों में भाई वहनके नाते से तुल्यताहै-फिर उन संतानों की संतानें जो होंगी उनकी भी परस्पर तुल्यताहै इसीको तुल्य सापिंडताकहतेहैं इससपिंडनामें विवाहका संबंधहोना अनुचितहै-इसीलिये ऊपर श्लोक और उसके अर्थ में कहाथा कि असपिंडाहो- और इसीहेतुसे पतिके साथ पत्नीकी भी सपिंडताहोतीहै क्योंकि उन दोनोंका भी

जन्म एकसाथ आरम्भ होताहै अर्थात् कन्याका पिता और वरका पिता यह दोनों संबंधी तुल्य पुरुषकहाते हैं यद्यपि वे भिन्न भिन्न कुलों के दोनों पुरुष हैं और चाहें उनदोनोंकी अवस्थामें छुटाई वड़ाई भी दश बीसवर्षकीहो परंतु वे तुल्यअवस्था के गिनेजाते हैं-इसीहेतुसे भाइयोंकी भार्याओंसे भी देवर और जेठकी सपिंडता गिनी जाती है क्योंकि वेभी तुल्यपीढ़ीके मनुष्योंसे पैदाहुईहैं-इसीहेतुसे भावज और ननँद की भी सपिंडता गिनीजाती है क्योंकि उनके भी जन्मकीतुल्यता एकसी पाईजातीहै-ऐसेही जहां२ जिसके जन्मकी तुल्यतापाई जावे उसके साथ उसकी सपिंडता गिनी-जायगी सो यहसपिंडता सातपीढ़ीकेअंतरताई पिताकेवंशमें और पाँचपीढ़ीके अंतर ताई माताके वंशमें जहांतक पाईजाय तहाँ विवाहके संबंध का निषेधहै-क्योंकि यह मनुष्यका शरीर (गर्भोपनिपत्) के प्रमाणसे (षाट्कौशिक) कहाताहै अर्थात् छःप्रकार की मींग इसके भीतर होती है किन्तु तीन तो पितासे और तीनमातासे अर्थात् हा-ड़१ और नसोंकेवंधान २ और मज्जा ३ ये तीनवस्तु पिताकेवीर्यसे-त्वचा १ मांस २ रुधिर ३ यह तीन माता के रक्तसे वनती हैं तव शरीर उत्पन्न होताहै-इसी कारणसे पिता और माता दोनोंके वंशभरमें सारेमनुष्योंके शरीर संवंध मिले रहते हैं (सन्देह) वड़े आश्चर्य्यकी वात है कि इसरीतिसे तो सारे संसारमें एक जाति मात्रके मनुष्यों का शरीर संवंध मिलाहुआ होसक्ताहै फिर विवाह किसघरमेंकरै (उत्तर) इसीलिये उसकी अवधि सात और पाँच पीढ़ीकी नियतकरदीगईहै ५२ ॥

अरोगिणींभ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम्। पंचमात्सप्तमादूर्ध्वंमातृतःपितृतस्तथा ५३ ॥

पक्ष०—अरोगिणीको भ्रातावालीको और पांचसातसे पीछेभी असमानार्षगोत्रजाकोमातासे तथा पितासेआदि लेकर ५३ ॥

भाभि०—अरोगिणी अर्थात् उसकेशरीरमें कोई ऐसारोग नहो जिसकी असाध्यता से वैद्यसेभी उपाय न होसके किन्तु साध्यरोगकाहोना कुछ अवगुणमें गिनतीनहीं है भाईवालीभीहो क्योंकि न जानिये पीछे उसका अपनी पुत्रीका पहलाफल गोदलेनेके लिये माँगनेलगै तो धर्मके अनुसार उसको नाहींनहींकरनीपड़ैगी और दूसरामुख्य सिद्धांतयहीहै कि जोउसके भाईहोगातोवंशकी स्थितिवनीरहेगी और वंशकेवनरहने से अपने को वनेविगड़े समयपर प्रत्येक भाँतिकी सहायता वनीरहैगी-तैसेही वरके माताको आदिलेकर नानाकी पाँचपीढ़ियोंके उपरांत और पितासेलेकर सातके उप-रांतभी अर्थात् सपिंडताके निवृत्त होजानेपर भी असमानार्षगोत्रजाहो किन्तु जा-स्त्री के पिता कुलका(आर्ष)और गोत्र ये दोनोंवरके समतुल्यनहों ऐसेघरमें पैदाहुईहो तिसे विवाहै ५३ ॥

भाभि०—संदेहभला जव (आर्ष)कहिये ऋषिप्रवर और गोत्र जिस्से वंशकी प्रसिद्ध

जानीजातीहै इनदोनोंकाभीनिषेधकरदिया तबसपिंडता जो पूर्वश्लोकमें कहीथी उसके कहनेका क्या प्रयोजनथा(समाधान)शास्त्रकेसंमतसे सपिंडतातो शूद्रजातिको भी बचानी चाहियेइसलिये उसको साधारण भावसे पहले ५२के श्लोक में कहकर पीछे इस ५३ केश्लोकमें त्रैवर्णिक जातोंका विशेष दिखलाया कि उन द्विजातियोंको प्रवर और गोत्रभी बचानाचाहिये-यद्यपि क्षत्रिय औरवैश्यके गोत्र और प्रवरोंकाअभावकहीं हो तहां उनके पुरोहितके गोत्र और प्रवरमानेजातेहैं यह आश्वलायन ऋषिकासम्मत है- और जहां कहीं अज्ञातभाव के धोखे से ऐसा होजाय तहां उसका प्रायश्चित्त भी यह कहाहै कि(मातुलस्य सुतामूढ्वा मातृगोत्रांतथैवच ॥ समानप्रवरांचैव कृत्वाचांद्रायणंचरेत्)अर्थात् धोखेसे मामाकी बेटीको बिवाहिलेवे या माताके गोत्रभरकी कन्या बिवाहिलेवे तो चांद्रायणका प्रायश्चित्त करे तबअदोषहोवे और अरोगिणीके उपलक्षणसे कन्याके शरीर भरमें कोई साभी अंग भंगनहो किंतु लूली लुंजी अंधी कानी आदि न हो और कोई अंग अधिकभी नहो जैसे षडंगुली आदिऔरभी जानो-हाँ-जो वरके देहमें कुछ अंग भंगहो या कुछ अधिकांग हो तो कन्याकी भी अंगभंगता या अंगाधिक्य अंगीकारकरनाचाहिये अर्थात् परस्परदोनोंका एकसाजोड़ायुग्ममिलाना धर्ममर्यादाके अनुसार संसूचितहै सो इसकाविशेषभाव आगे ५५के श्लोकमेंभीकहेंगे कि जिस्से पीछे कोईसा उत्पात न उठनेपावे क्योंकि उत्पातों के उठनेसे धर्मकी हानि होतीहै और धर्मकीहानिसे मनुष्योंके कल्याणोंकाविनाशहोजाताहै कल्याणोंकेविनाश में कुलका नाश होजाताहै इससे इसपर विचार दृष्टि बनीराखनी श्रेयस्करी है ५३॥

दशपुरुषविख्याताच्छ्रोत्रियाणांमहाकुलात्। स्फीतादपिनसंचारिरोगदोषसमन्वितात् ५४ ॥

अक्ष० —दशपुरुषोंसे विख्यात श्रोत्रियोंके महाकुलसे कन्यालेनी चाहिये- परन्तु संचारीरोग और दोषोंसे समन्वित ऐसे स्फीत कुलसेभी न लेवे ५४॥

अभि०— दशपुरुषोंसे विख्यात अर्थात् जिस कन्याके पिताकी पांचपीढ़ी पिछलीं प्रसिद्धहों और कन्याकी माताकीभी पांचपीढ़ी नाना के वंशमें नामीहों-और कन्याके पिताका वंश श्रोत्रिय अर्थात् वेद आदि विद्याओं से पांडित्य वालाहो-और महाकुल का यह अर्थ है कि पुत्र पौत्र आदि कुटुंब तथा पशु दास दासी धन ग्राम आदि समृद्धिसे सम्पन्नहो तिसकुलकी कन्या ग्रहणकरे-परन्तु ऐसे सम्पन्न कुल में भी जो कदाचित् कुष्ठ आदि या मृगी आदि रोग जो एक दोके होनेसे घरभरके मनुष्योंके होजाते हैं तिनकी बहुताइत हो-या दोष जो पिता के वीर्य्य और माताके रक्त द्वारा संतानोंके भी होजाते हैं तिनकी बहुताइतहो अथवा वे दोष जो क्रियाहीनत्व और निःपुरुषत्व आदि मनुजीने कहे हैं उस कुलमें बहुधाकरके हों तो उस कुलकी कन्या

नहीं लेवे क्योंकि कन्याके द्वारा होकर इस कुलमें भी फैल जावेंगे और मनुके कहेहुये दोषोंके होनेसे लोकापवाद और असौख्यकी भीति है ५४ ॥

अभि०—कन्याके कुलका विशेषण जो श्रोत्रिय शब्दहै तिसकाभाव केवल यही नहीं है कि वेदादि विद्यासे सम्पन्नहो उसी कुलकी कन्या ग्रहण करीजाय क्योंकि जो यही भावहोवे तौ अश्रोत्रिय कुलकी कन्या विना विवाही बैठीरहैं उनको कोई अंगीकार नहीं करै- अर्थात् वह श्रोत्रिय शब्द एक साधारण विशेषण है सो इसलिये कहा है कि जो वर श्रोत्रिय कुलका पुत्रहो और आपभी श्रोत्रियहो तौ उसको कन्याभी श्रोत्रिय कुलकी ढूँढ़नी चाहिये सोई आगे ५५ के श्लोकमें कहैंगे और इसी हेतुसे कन्याकाभी पढ़ी लिखी होना संभवितहै क्योंकि धर्म्मशास्त्रने कन्या और वर दोनोंकी एकसी तुल्यता सर्वथा निश्चित करी है और ऊर्द्धोक्त श्रोत्रिय शब्द जो कन्या कुलका विशेषणहै तिसके साधारण भावसे यह तात्पर्य्य है कि कन्याकाकुल मूर्ख न हो किंतु विद्यावान्हो और विद्याकाकुछ नियमनहीं है कि कौनसीविद्या अर्थात् किसीप्रकारकी विद्याकरके वहकुल श्रुताध्ययनसंपन्नहो और (किसीप्रकारका) यहसिद्धांतहै कि उसके कुलमें जिसविद्याका अधिकार या परिपाटी या प्रचार उसकेपेशाके अनुरूप या कुलके अनुसार उचितहो तिसविद्यासे संपन्नहोतौ उसको श्रोत्रिय कुलकहना और समुझना चाहिये-हाँ-इतनीवात अवश्य पाईजाती है कि जवकन्या और वरकी सर्वथा समता और तुल्यता निश्चित होचुकीतौ कन्याकेभी कुलमें वहीविद्या होनी चाहिये कि जिस विद्याका अधिकार वरकेघरमेंहो यहवात अतिउत्तमहै इनसव वातोंको अगलेश्लोक में नीचेदेखकर निश्चय करलो ५४ ॥

एतैरेवगुणैर्युक्तःसवर्णःश्रोत्रियोवरः । यत्नात्परीक्षितःपुंस्त्वेयुवाधीमान्जनप्रियः ५५ ॥

भक्ष०—इतनेही गुणोंसेयुक्त सवर्ण और श्रोत्रियवरहो-यत्नसे पुंसत्वमें परीक्षाकिया हुआ युवा धीमान् जनप्रियहो ५५ ॥

अभि०—इतनेही गुण जो ऊपर कन्याकेलिये कहेगये उनसे युक्तहो और जो दोष कन्याके निमित्तमें गिनायेगये तिनसे रहितहो और सवर्ण कहिये तुल्य वर्णका वरहो अर्थात् जिसवर्णकी कन्याहो उसीवर्णका वरहो और श्रोत्रिय कहिये पढ़ागुनाहो और वह ऐसावरभी-पुंसत्वनपुंसत्वके मध्ये युक्तिपूर्वक परीक्षाकरलियाजावे पुनि युवा अवस्थावालाहो किंतु अतिबालक या अतिवृद्धनहो और बुद्धिमान्कहिये लोकव्यवहार और शास्त्र व्यवहारमें निपुणहो-फिर जनप्रियहो अर्थात् चातुर्य्य वा मन्दमुसकानि सहित मधुरवाणीकी बोलचाल नम्रता आदिसे मनुष्योंकी दृष्टिमें प्रियहो ऐसे वरको कन्यादान करै ५५ ॥

अभि०—ऊपरकहाहुआसवर्णशब्द जो वरकाविशेषणहै उस्से केवल ब्राह्मण क्षत्रिय

आदि जातिमात्रकीहीतुल्यतानहींसमुझनी किंतु सभीबातोंकी तुल्यताग्रहणकरनी अ-र्थात् जो कन्यागोरीहो तौवरभीगोरा या कन्याश्यामवर्णहो तौवरभी श्यामवर्णहो-या कन्याकी जन्मकुंडलीमें राजयोगआदि कोईउत्तमयोगहो तौवरभी उत्तमयोगवालाढूँढ़ा चाहिये अथवा कन्याकेजन्ममेंकोईग्रहदूषितहो तौवरमेंभीकोईदोषढूँढ़ाचाहिये-या-क-न्याकेकुलमेंकोईदोषहो तौवरभी कुलदूषितकाढूँढ़ाचाहिये-या-कन्याकेशरीरमें कोईदोष हो तौवरकेदेहमेंभी कोईदोषढूँढ़ाचाहिये-जोकन्याधनवान्‌कीबेटीहो तौवरकाभीधनवा-न्‌घरदेखाचाहिये इत्यादि नानाप्रकारकीबातें जो२कन्यामेंपाईजातीहों सोसभीबातेंव-रमेंभी केवल एक(सवर्ण)शब्दकेविशेषणसे ग्रहणकरनीचाहिये तबसर्वथासौख्य और सौभाग्यकी वृद्धिहोतीहै अन्यथा समतासेविपरीत ऊँचनीच लक्षणहोनेमेंदुःख और दुर्भागताका निवासहोजाताहै इसी सवर्णशब्दके आशयसे जोकन्याबड़ेनगरमें जन्मी और पालीगईहो तौवरभी बड़ेनगरमेंढूँढ़ाचाहिये अर्थात् शहरकीकन्याको छोटेग्रामोंमें नहींबिवाहै-परंतु जोकन्याग्रामकीरहनेवालीहो तौवरकानियमनहींहै किंतु चाहे वरग्रा-मीणहो या नागरहो इसमेंदोनोंशुभहैं परंतु शहरकीकन्या ग्रामीणवरकोनहींदेवै-देखो धर्मशास्त्रने कोईबातसंसारकीऐसीनहींछोड़ी जिसकानियम और मर्याद न बाँधीहो प-रंतु विवाहसंबंधकेमध्ये किसीभीलक्षणसे यहनहींपायाजाताहै कि कन्यादानअपनेसे अधिकोच्चकुलमेंकरना सर्वथा समताकहतेचलेआतेहैं क्योंकि सुख और सुकीर्त्ति स-मतामेंहीमिलतीहै सोईनीतिशास्त्रमेंभीकहाहै कि वैर और प्रीति और विवाद और व्यवहार और विवाहसंबंध इतनीबातें अपनेबराबरवालेकेसाथकरै तो उसमेंकोईतर-हकीहानि या उत्पातनउठै-इसकालमें किसी२जातिवालेलोग अपनाइसीमें वड़प्पन गिनाकरतेहैं कि कन्यादानअधिकोच्चकुलमेंकरै सो यहरीति अपने कान्यकुब्ज समूह में वहुधा पाईजाती है और इसीहेतुसे इससमूहको अधिक धन देनापड़ताहै-यद्यपि कन्याके निमित्त अधिक धनकादेना शास्त्रकासम्मत है और अतिउत्तमहै परंतु उस अवस्था में कि जो अपनी श्रद्धा और उत्साहसेदेवै पुनि दिये पीछे भी वह धन वहां जायकर कन्या और वरकेहीभोगमें लगै तव सुकृतहोता है-परंतु जहां दियेहुये धनको वरका पिताअपनाहक निश्चय करके सवअपनी वगलमें दावताहै और निज लोभ या उच्चताके अभिमानसे वधूके शरीरमेंसेभी आभूषण उतारलेताहै तहांदेनेवाला तो इसहेतुसे नरकभागी होताहै कि क्योंउसने जानिबूझकर ऐसेअधम कुलमें कन्या दानकरीजो वर और वधूको लक्ष्मीनारायणकी मूर्तिनहीं समझते अर्थात् जिसवधू और वरकापूजा रूपसे सत्कार करना लिखाहै धर्म्मशास्त्रमें तिसका आभूषण उता-रने आदिसे अपकार करते हैं और वे अपकार करनेवाले भी नरकको जाते हैं-त-थाच-(स्त्री धनानि तु ये मोहादुपजीवंति बान्धवाः। नारीयानानिवस्त्रंवातेपापायांत्य

धोगतिम्) अर्थात् जे कोई बांधव मोहसे स्त्रियोंके धनोंको छीनकर भोगते हैं या स्त्रियोंके वस्त्र और सवारी आदि अपने खर्चमें लाते हैं वे पापीलोग नीचगतिको जाते हैं-इसी एक श्लोकके प्रमाण और दृढ़ताके मध्ये औरभी पचास श्लोक स्मृतियोंमें विद्यमानहैं परन्तु यहांपर लिखनेसे विस्तार होजाता इससे वे यथाक्रमसे जहांतहां लिखे जावेंगे- और बिवाहमें जो कुछ वस्तु या रोकधन या सवारी आदि दियाजाता है वह यथार्थमें कन्याके निमित्तका होताहै क्योंकि कन्याके सौख्य और भोगोंके लिये दिया जाताहै परन्तु वरभी उसधनका मालिक इसहेतुसे कहाताहै कि वह उसकन्याका मालिकहै तौ उस धनकाभी मालिकहै-और वरका पिता केवल उतनेही धनका अधिकारी है कि जो उसे उसकी पूज्यताकी रीतिसे दियाजावै-परन्तु वह पिता वैवाहिक सारे धनका मालिक अपनेको इसतर्कणासे निश्चित करताहै कि मैंने पुत्रका पालन और विवाह किया इसमें मेराधन लगा-सो यह उसका वृथा अनुमानहै क्योंकि पुत्रके साथ जोकुछ पिता करताहै सो केवल विवाहका धनहरने सेही नहीं उद्धार होसक्ताहै अर्थात् विवाहका धनतो एक तुच्छवस्तुमें गिनती है- और पुत्रतो अपनी जीवन अवधि भरमेंभी पिताका बदला नहीं देसकैगा बल्कि पिताके मरेपीछेभी जो कुछकरे सो सब थोड़ाहै- और पिता जो पुत्रकी पालना आदि करताहै सो कुछ उसके ऊपर अहसानमें गिनती नहीं करसक्ता क्योंकि जो संसारमें रहकर अपना वंश वृक्ष और सुकीर्ति चाहैगा तौ सब कुछ करना पड़ेगा इससे वैवाहिक धनके अधिकारी कन्या और वरही होतेहैं-बल्कि पिताको तो उस धनके सिवाय और कुछ अपने पाससे उन दोनोंको सत्कारकी रीतिसे देना चाहिये सोई मनुऋषिका वाक्यहै मोटेंसा पांच श्लोकोंमें-यथा(शोचंति जामयो यत्र विनश्यत्याशुतत्कुलम् । नशोचंतितुयत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा१ जामयो यानि गेहानि शपंत्यप्रतिपूजिताः । तानि कृत्याहतानीव विनश्यंति समंततः २ तस्मादेताःसदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः । भूतिकामैर्नरैर्नित्यंसत्कारेषूत्सवेषुच ३ पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा । पूज्याभूषयितव्याश्चबहुकल्याणमीप्सुभिः ४ यत्रनार्यस्तुपूज्यंते रमंतेतत्रदेवताः । यत्रैतास्तुनपूज्यंते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः५)इनपांच श्लोकोंका यह अर्थहै।कि जिसघरमें वे स्त्रियां (जामी) अर्थात् नवोढ़ा बहू बेटी भगिनी पत्नी आदि किसी कारणसे परितापां करशोकित रहा करती हैं वह कुलशीघ्र नाश होजाताहै- और जहां वे (जामी) स्त्रियां शोक या शोच नहीं पाती हैं वह घर सदैव फला फूला होकर बढ़ताहै १ जिन घरोंको वे (जामी)स्त्रियां अपना सत्कार न होने और अपकारके पानेसे शाप दिया करतीहैं वे घर सब ओरसे ऐसे नाश होजाते हैं कि मानो महाभयंकरी पिशाचनीने खा लिया होवे- कृत्या उसे कहते हैं कि जो तीक्ष्णमंत्र विधानों सहित यंत्रोंके द्वा-

हारेसेघात फेंकीजाती है २ तिसी कारणसे यह (जामी) संज्ञा वाली स्त्रियां ऐश्वर्यके चाहने वाले मनुष्योंको नित्यके सत्कारोंमें और विवाह आदि उत्सवोंमें अच्छे भोजन वस्त्र आभूषणोंसे सदाही सत्कार पूजा करिबे योग्यहैं- सदाही इस हेतुसे कहाहै कि भूत भविष्यत् वर्त्तमान तीनों कालमें स्त्रियोंकी पूज्यता प्रसिद्ध है ३ अपना बहु कल्याण चाहनेवाले पिता चचा भाई पति देवर इनसबों करकेही स्त्रियां पूज्यहैं आभूषणोंसे भूषित कराइबे योग्यहैं ४ क्योंकि जहां स्त्रियोंका पूजा सत्कार होताहै तहां देवताबासकरतेहैं और जहाँ ये नहीं पूजीजातीहैं तहाँ सारेहीकाम निष्फलहोजातेहैं— यहाँ पूजा शब्द सत्कार और प्रतिष्ठाका वाचक है किंतु कुछ षोड़शोपचारसे अपेक्षा नहींहै ५ इस बार्त्ताके भावको आगे ८२के श्लोकमें योगीन्द्र याज्ञवल्क्य भी कहेंगे— और व्यवहाराध्यायमें (स्त्रीधन) का निर्णय विशेषकरके कहेंगे तहाँ सर्वथा निश्चित है कि जो वैवाहिक धनहै सो बर और बधूकाही होताहै-परंतु इस योग्यताके आग्रह से किसी बरको यह अधिकार नहींहै कि वह अपने पिताके हस्तगत वैवाहिक धनको मांगे और झगड़ाकरै क्योंकि वह शिक्षा केवल उस पिताकेही लिये दृढ़ताहै कि वह अपने पुत्रको समर्थ और सुमार्गी समुझै तो उसधनको और कुछ अपने धनमेंसेभी सत्कारकी रीतिपूर्व्वक अपने हाथसे लेकर पुत्र और बधू दोनोंको सौंपदे-अथवा उन्हें बालक या उड़ाऊ समुझै तौ उस धनको अपने द्वारा बर और बधूके सौख्यमें लगावै और जो आप धन पात्रहो तौ कुछ अपने धनमेंसे भी किसीप्रकारसे उनके सौख्य म लगावै यह बर बधूके सत्कारकी मर्यादहै-अथवा जो आप असमर्थहो तौ उस वैवाहिक धनको निस्संदेह शिवनिर्माल्य समुझकर अपने स्वार्थ में न लावै-और जो दैवयोगसे उसके आगे भी कोई कन्या विवाहने योग्यबैठीहो और वह इसहेतुसे उसधन को व्ययकरनाचाहै तौ भी उसमेंसे आधा अपने पुत्रके संबंधसे लेकर उस कन्याके विवाह में लगावै क्योंकि उस पुत्रको भी अपनी भगिनी के कार्य्य में जैसा पैदाकरके लगानायोग्यथा तैसा इसमेंसे भी देनायोग्यहै-परंतु आधा जो विशेषतर वधूकेनिमित्त में गिनाजाता है उसपर दुर्नीति नहीं करै-और जो कदाचित् वह उस आधेपर भी दुर्दृष्टि करै तौ उसवधू अथवा वधूकी बाल्यतासे उसके पिता, माता आदिको अधिकारहै कि वे उसमें हाथ नहीं लगानेदें-ऐसे ऐसे सिद्धांतोंसे सर्वथा यही निश्चितहै कि कोई कन्याका पिता अपनी बेटी और जामातृको निज इच्छापूर्वक चाहो लाख रुपयेका धनदेदेवै कुछ इस बातका निषेध नहींहै परंतु ऐसे ढंगसे न देवै जो दिये पीछे वहधन उसकी कन्या और जामातृके सौख्यमें न लगसके-अर्थात् जो कुलके क्रय विक्रयके प्रकारसे दिया लियाजाताहै वह सर्व्वथा अनुचित है क्योंकि (प्रथम) तौ धर्म्मशास्त्र से विरुद्ध इसहेतुसे निश्चितहोताहै कि शास्त्रमें इसबातकी आज्ञाकहीं

भी नहीं पाई जाती है कि कुलका क्रय विक्रय कियाजावै (दूसरे) इस क्रय विक्रयके अनुसार देनेसे वह धनदाताकी कन्याके अधिकारसे दूरहोजाताहै इसीहेतुसे वहुतेरे लोभी और निर्मर्यादलोग अपनीपुत्रवधू के आभूषणको भी उसकेशरीर से छल्ला छल्ला तकउतार लेते हैं पश्चात् कन्यापिताअपनी पुत्रीकीदया अथवा लोकलाजके लिये फिरपहनाकर भेजताहै उसकोभी विवाहसे आधागौनेकाहक्क वताकरलेलेते हैं तव कन्यापिता फिर तीसरी वार भी देता है परंतु ऐसे सामर्थ्यवान् और धनाढ्य पिताथोड़ेहोतेहैं जो वारम्वार फटेकोसीतेहैं-इस्सेकन्याके पिताकोपहलेसेही इसवातका विचार और प्रवंध और प्रतिज्ञादृढ़ करलेनीउचितहै कि जो कुछमैंदेताहूं सो सवमेरी कन्याके निमित्तका समुझाजाय (तीसरे) इसी क्रय विक्रयके वंधनसे यहवड़ा लाञ्छनहै कि धनकेअभावमें वहुधाकन्यायें अधिक अवस्थाकी होजातीहैं उनके संवंधका ठिकाना नहींलगता और इसवातसे जो कुछ दोषउत्पन्न होतेहैं सो संसारमें सवको विदितहै और शास्त्रमेंभी आगेवढ़कर ६३ के श्लोकमें देखो क्या लिखाहै-यद्यपि ऊपर लिखे हुये गुणदोष कुछसभीमनुष्यों में नहींहोते परंतु जिसवातकी वाहुल्यता होतीहै वही गिनतीमें आयाकरतीहै-और यहवात कुछ किसीकी निंदास्तुतिके लिये नहीं लिखी गईहै अर्थात् केवलसार्वलोकी कल्याण वा हितकीदृष्टिसे संदर्शितकरीहै-और जो निंदा समुझीजाय तो लिखनेवाला सवसेपहले उनलोगोंमें गिनतीहै और वेही गुण दोष इसमेंभी आद्योपांत भरेपरेहैं फिर ऐसाकौनहै जोअपनी निंदा अपनेहाथसे लिखैगा-परंतु कारण इसमें इतनाहै कि भले मनुष्योंकी यह परिपाटीसनातनसे चलीआई है कि उनको जवकभी किसीस्थलपर किसीहेतुसे सद्धर्म अर्थात् द्वितयलोक सुखदायक वार्त्ताका निर्णयकरना पड़े या उसनिर्णयमें साक्षीभूत होनापड़े तहां अपने और पराये का पक्षपात छोड़कर अपने शत्रुके भी गुण प्रकाशित करे किंतु शत्रुता तो अन्य स्थानपर होगी और यहअवसर उसकेगुण कहनेकाहै इसमें अपनी धर्मनीतिमें उस के गुणोंका लोप न करनाचाहिये-ऐसेही अपने अथवा अपनेगुरुओंकेभी दोषकहने का अवसरहो तहां निस्संदेह दोषकहने उचितहैं इसमें स्पष्टवक्ता दोषभागी नहींहो सक्ताहै-तथाच (शत्रोरपिगुणावाच्या दोषावाच्यागुरोरपि। सद्भिःसद्धर्मकथने विनाश परपक्षयोः) इसीपचपनके श्लोकमें यह जो कहाहै कि यत्नपूर्वक पुंसत्व नपुंसत्वके सर्व परीक्षाकरे तिसका यहभाव है कि प्रत्यक्षप्रकारोंसे परीक्षाकरना तो सर्वथा अनुचित है परंतु जहांकहीं इसवातकी आवश्यकता आनिपड़े तहांकेलिये नारदजी ने कहा हुआ यहउपाय है कि-जिसमनुष्यकावीजजलकेऊपर तैरनेलगे डूवैनहीं तिसको पुंस जानो और जिसकामूत्र (झागि) हो अर्थात मूत्रकीधारमें धरतीमें विशेष गढ़हाहोय जाय तिसकोपुंसजानो और जिसके मूत्रमें फनावहुतउठे उसकोपुंसजानो-और जिस

पुरुषमें यहकहेहुये लक्षणउलटेहों तिसको नपुंसकजानो-तथाच(यस्याप्सुप्लवते बीजं ह्रादि मूत्रंचफेनिलम्। पुमान्स्याल्लक्षणैरेतैर्विपरीतैस्तुषंढकः ५५॥

यदुच्यतेद्विजातीनांशूद्राद्दारोपसंग्रहः। नैतन्ममहतंयस्मात्तत्रात्माजायतेस्वयम् ५६॥

अक्ष०– जो कहिये है द्विजातियोंको शूद्रसे दाराका उपसंग्रह नहींहै यह मतमेरा जिस्से उसमें आत्मा आपही उत्पन्नहोवैहै ५६॥

अभि०–द्विजातियोंके लिये जो मनुस्मृति शास्त्रमें शूद्रकुलसेभी स्त्रीका संग्रहणकरना कहतेहैं सो यह मेरा संमतनहींहै क्योंकि उस शूद्रास्त्रीके उदरमें यह द्विजातियों का आत्मावीर्यरूपहोकर आपही जन्मलेताहै सो यहमेरी समुझसे अनुचितहै ५६॥

अधि०–इस्से पहलेजो ५२। ५३। ५४। ५५। इनचार श्लोकोंमेंबिवाहकीमुख्य रीति कहचुके हैं सोवह मुख्यबिवाहभी तीनप्रयोजनों से कियाजाता है अर्थात् एक तौ केवल स्त्रीके भोगमात्रकी बांछासे अर्थात् जिसकेपुत्र तौ विद्यमानहै और भार्या नष्ट होगई ऐसामनुष्य जो बिवाहकरना चाहै तौ भोगमात्रकी बांछा १ दूसरा कोई प्रकारका धर्मसाधन करनेकी आकांक्षासे कि जो धर्मस्त्रीबिना नहीं होसक्ताहो २ तीसरापुत्र पैदाकरने की अपेक्षासे ३ तहां जो पुत्रके प्रयोजनसे कियाजाताहै सोभी दो प्रकारका होताहै एक तौ (नित्य) जो गृहस्थीमात्रको संतानकी अपेक्षा सबहीको अवश्यहुआ करतीहै दूसरा(काम्य)वहकिजो ठेठकर पुत्रहीकेअर्थसे बिवाह करनाचाहै– तिसमें (नैमित्तिक)संतानकी अपेक्षामें तौ विशेषकर सवर्णासेही विवाहकरना मुख्यहै और यद्यपिसभी प्रयोजनोंमें सवर्णामुख्य है परन्तु जब सवर्णाकालाभ नहीं होसक्ता हो तौ (काम्य) संतानवाला और भोगमात्रकी बांछावाला असवर्णा से भी विवाहकरै सोयहमुख्य विवाहका (अनुकल्प)कहलाताहै उसअनुकल्पके मध्ये मनुस्मृतिने ब्राह्मण के लिये चारोंवर्णकी कन्या लेनीकही। और क्षत्रियकेलिये ब्राह्मणी छोड़कर तीनवर्ण कीकही वैश्यकेलिये ब्राह्मण क्षत्रियको छोड़कर दोवर्णकीकही और शूद्रकेलिये केवल शूद्रकीही कन्यालिखी अर्थात् अपनेसे उत्तमवर्ण की नहीं इसलिये याज्ञवल्क्यजीने ऊपर निषेधकिया है ब्राह्मणआदि तीनवर्णोंको अपनेसेहीन वर्णोंमेंभी (अनुकल्प) विवाहमें शूद्रकीकन्यासे विवाह न करनाचाहिये परन्तु शेषवर्णोंकी कन्याकेलिये याज्ञवल्क्य भी नीचेके श्लोकमें आज्ञादेते हैं सो इसहेतुसे आज्ञादेते हैं कि किसीप्रकार से सृष्टिकी बढ़वारीमें न्यूनतानहीं होनेपावे परन्तु वहआज्ञा ऐसीनहीं है कि जैसे वर्त्तमान समयके बहुधा उत्तम वर्ण चांडाली पर्यंत भीबिना विवाहेही घेरलेते हैं और उनको कोईप्रकार का दंडनहीं दियाजाता है ५६॥

तिस्रोवर्णानुपूर्व्येणद्वेतथैकायथाक्रमम्। ब्राह्मणक्षत्रियविशांभार्य्यास्वाशूद्रजन्मनः ५७॥

मक्ष०–यथाक्रम से पहले पहले से लेकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जातों को तीन

दो एक वर्णों की भार्य्या और शूद्रजन्मा को अपने वर्णकी भार्य्या उचित है ५७ ॥

अभि०—ब्राह्मणको तीनवर्णकी भार्य्या इसक्रमसे कहीहैं कि ब्राह्मणीके अभावमें क्षत्रियकन्या और क्षत्रियाके न मिलनेमें वैश्यकन्या-ऐसेही क्षत्रियको सवर्णाके अभाव में वैश्यकन्या-और वैश्यको केवल सवर्णा ५७ ॥

अधि०—अनुमानसे प्रतीतहोता है कि मनुजीने जो द्विजातियों के लिये शूद्रकन्या से भी विवाह करना लिखाथा तौ उस समयमें शूद्र भी कुछ उज्ज्वल गिनेजाते होंगे किन्तु अबकीसी मलीनता उनमें न होगी पर पीछे पीछे याज्ञवल्क्यजी के समय में मलीनता का प्रवेश उनमें अधिक होगया इससे उन्होंने निषेध करदिया और जो कुछ हो सो हो-परन्तु अब उन दोनों ऋषियों की कही हुई यह मर्य्यादें जो ऊपर ५६। ५७ के श्लोकों में कही हैं सो सब (नष्टाग्निसंज्ञक) होगई इससे इनका प्रचार उठगया ५७ ॥

अब नीचे आठप्रकारके विवाहों के लक्षण और उनके फलभी भिन्न२ कहते हैं॥

ब्राह्मोविवाहआहूयदीयतेशक्त्यलंकृता। तज्जःपुनात्युभयतःपुरुषानेकविंशतिम् ५८ ॥

अक्ष०— वह(ब्राह्मविवाह)कहलाताहै जिसमें वरकोबुलाय कर अपनीशक्तिकेअनुसारकन्या को अलंकृत करके दानकरते हैं-उसविवाहसे पैदाहुईपुत्र संतान दोनोंओर से इक्कीसपुरुषों को पुनीत करताहै-अर्थात् पिताआदि दशपहले और पुत्रआदि दश पिछले इक्कीसवां आप ५८ ॥

अधि०— यह (ब्राह्मविवाह) सबसेउत्तमहै किंतु आठ विवाहोंमें यही मुख्यहै और वर्त्तमान समयमें सर्वत्रतीनों वर्णके मनुष्योंमें यहीरीति प्रधानहै और आचरण कीं जाती है-परन्तु याज्ञवल्क्यजी यही कहकर चुपकेहोगये कि शक्तिके अनुसार कन्याको अलंकृत करके दानकरैअर्थात् कन्यापिता कीशक्तिकोही प्रधानरक्खा किजैसी उसकी शक्ति और सामर्थ्यहो तैसावस्त्र आभूषण आदिदेवै-परन्तुयह इतना शब्द अपनेमुख सेनहीं काढ़सके कि चाहै उसकेपासहो या न हो परसमधीके बड़प्पनके अनुसार पहले करारकरके पीछेबहुत कुछदेवै तब उसविवाहको (ब्राह्मविवाह)कहैं ५८ ॥

यज्ञस्थऋत्विजेदैवआदायार्षस्तुगोद्वयम्। चतुर्दशप्रथमजःपुनात्युत्तरजश्चषट् ५९ ॥

अक्ष०—यज्ञमेंस्थित ऋत्विज को कन्यादेना दैव-और दोबैललेकर (ब्राह्म) पहलेमें जन्मा चौदह पिछलेसे जन्माछःको पवित्रकरता है ५९ ॥

अभि०—यज्ञकरातेहुये आचार्यको यथाशक्तिसे अलंकृतकरी कन्याका दानदेना यह (दैवविवाह) कहाताहै-और वरसे दोबैललेकर कन्यादानकरना यह (आर्षविवाह) कहलाताहै-इनमेंदैव विवाहकी पत्नीसे पैदाहुआ पुत्र पहली पिछली १४ पीढ़ियोंको और (आर्षविवाह) की भार्य्यासे जन्माहुआ पुत्र ६ पीढ़ियोंको पवित्रकरता है ५९ ॥

अथि०—(दैवविवाह)का यहअर्थहै कि देवताओंकीरीति अनुसार (आर्षविवाह) का यहअर्थहै कि ऋषियोंकीरीति अनुसार-तहां ऋषियोंकी रीतिमें जो दोबैल वरसेलेने कहे सोउस अवस्थामें कि जबकन्या पिताकेपासकुछनहो सो वहबैलोंका लेनाकुछ यह नहींहै कि सदेह बैलहीउससे लियेजावें अर्थात् शास्त्रवक्ता का यह सिद्धांतहै किकुछ थोड़ासाद्रव्य उससेलेकर कन्याकेवस्त्र आभूषण आदिका प्रबंध उसीद्रव्यसे करके कन्यादान करदेवै सोउसद्रव्यके लेनेका नियमनिश्चय करनेकेलिये बैलकहेहैं किजितने मूल्यसे दोबैलआसक्तेहों उतना उससेलेवै-इसमेंभी यह तर्कणाहै किदोबैल २०) रुपयेसेभी आजातेहैं और विरलेबैल दोसौ २००)रुपयेके भी होतेहैं फिर इसकाक्या नियमहोसक्ताहै-तहां परमसिद्धांतयहीहै कि जैसे मूल्यके बैल खरीदसकने की सामर्थ्य वरमेंहो उसीकेअनुसार उससेले और उसमेंसे एक कपर्दिकाभी अपने स्वार्थमें नहींलगावै क्योंकि जो अपने स्वार्थमें लगावेगा तौकन्याके बिक्रयकरनेका दोषभागी होजावैगा-और यह मर्य्याद केवल इसीनिर्बाहके लियेकहीहै कि कोई प्रकारसे किसी निर्धनकी कन्याकुमारी नहींरहने पावै-और यहरीति कोईनिर्द्धन करै तौ इसमें उसकी निंदानहीं है किंतुप्रशंसामें गिनतीहै उनलोगोंकी अपेक्षासे कि जो निर्द्धनतासे कन्या घरमें बैठी राखते हैं-अन्यथा साक्षात्कार बैलोंका जोड़ालेना यह सर्व्वथा अनुचित और असंभव है ५९ ॥

इत्युक्त्वाचरतांधर्म्मंसहयादयितेऽर्थिने। सकाय:पावयेत्तज्जःषट्षड्वंश्यान्सहात्मना ६० ॥

प्रक्ष०—साथ मिलकर दोनों धर्म्मका आचरण करो यह कहकर जो अर्थीको कन्या दीजिये है सो (कायविवाह) है उससे जन्मा पुत्र आप सहित छेछेवंशियों को पवित्र करताहै ६० ॥

मभि०—जबकोई अर्थी किसी कन्यापितासे अपने आपकन्या मांगताहै उससे यह प्रतिज्ञा ठहराली जातीहै कि यहकन्या और तुमदोनों मिलकर परस्पर प्रीतिपूर्वक धर्म्म के अनुसार आचरण करना अर्थात् कोईसी लोकविरुद्ध या शास्त्रसे विपरीत अनीतिनहीं प्रकटहो-सोइसको (काय) विवाह अर्थात् (प्राजापत्य) विवाह कहते हैं इस विवाहकीभार्याका पुत्रअपनी आत्माको आदिलेकर छे पीढ़ी पहली और छे पिछलीके पुरुषोंके पापधोदेताहै ६० ॥

आसुरोद्रविणादानाद्गांधर्वःसमयान्मिथः। राक्षसोयुद्धहरणात्पैशाचःकन्यकाछलात् ६१ ॥

प्रक्ष०—द्रविणलेनेसे(आसुर)परस्पर संमतिसे(गांधर्व)युद्धमें हरनेसे(राक्षस)कन्याछल से पैशाच ६१ ॥

मभि०—कन्याकापिता द्रव्यलेकर विवाहकरदेवै सो(आसुर) विवाहकहाताहै क्योंकि द्रव्यलेकर कन्यादेना या द्रव्यदेकर भार्यालेनी यहदोनों लक्षण असुरोंके प्रसिद्धहैं—

कन्या और वर परस्पर अपने अनुरागसे विवाह ठहरालेवैं सो(गांधर्व)विवाहकहाताहै क्योंकि यहरीतिगंधर्वोंकी प्रसिद्धहै-युद्धकरके कन्याछीनलावै और उस्से विवाहकरले सोयह(राक्षसी)विवाह कहाताहै-सोवतीहुई या किसीभाँति भूलीभटकी कन्याको छल करलेजावै और विवाहकरै सो(पैशाच)विवाहहोताहै क्योंकि यहदुर्नीति पिशाचोंकी प्रसिद्धहै ६१ ॥

अबसवर्णा और परवर्णा कन्याओंके विवाहमें विशेषलक्षण कहतेहैं ॥

पाणिर्ग्राह्यःसवर्णासुगृह्णीयात्क्षत्रियाशरम्। वैश्याप्रतोदमादद्याद्वेदनेत्वग्रजन्मनः ६२॥

अक्ष०—सवर्णाओंमें पाणिग्रहणउचितहै-क्षत्रियाशरथाँभै-वैश्याप्रतोदलेवे-यहरीति अग्रजन्माके विवाहमें ६२॥

अभि०—सवर्णा अर्थात् जिसजातिकावरहो उसीजातिकी कन्याहो तौसवर्णास्त्री कहलातीहै सो अपनीअपनी जातिकी सवर्णा कन्याओंकेविवाहोंमें पाणिग्रहण करना किंतु कन्याका हाथवरको थाँभना उचितहै जैसीकुछरीति संसारमें प्रवर्तितहै-परंतु जहाँपराये वर्णकी कन्यासे विवाहस्वीकार हुआहो जैसा ५७ के इलोकमें कहचुकेहैं तहाँउस विवाहमें कन्याका हाथपकड़ने का अधिकार वरकोनहीं है-अर्थात् हाथपकड़ने के पलटे कुछविशेषताहै सोकहतेहैं कि क्षत्रिय कन्याजब अपनेसेअग्रजन्मा जो ब्राह्मणहै तिसमें विवाहकरै तौ हाथथँभावनेके स्थानमें उस ब्राह्मणकेहाथसे थाँभीहुई छड़ी, लाठी,बेत आदिको दूसरीओरसेपकड़लेवै-ऐसेही वैश्यकीकन्या अपनेसेबड़ाक्षत्रिय या ब्राह्मणना से विवाहकरै तौ उस वरके हाथका थाँभाहुआ प्रतोद पैना चाबुक सो थाँभलेवै ६२॥

अधि०—याज्ञवल्क्यजीने ५७ के इलोकमें द्विजातियोंको शूद्रासे विवाहका निषेध कियाथा इसलिये उसके विवाहका विशेष लक्षण भी इस इलोकमें नहींकहा-परंतु मनुजीने उसका भी विशेष लक्षण कहाहै कि शूद्र कन्या अपनेसे उत्कृष्ट जो वैश्य और क्षत्रिय और ब्राह्मण इनतीनों द्विजातियोंमें किसीकेसाथ विवाहकरै तो पाणिग्रहणके स्थानपर वरके काँधेका पटका दुपट्टा आदि जो कुछ वस्त्र तिसका एक अंग अर्थात् खूँट किनारा थाँभले-तथाच (वसनस्यदशाग्राह्याशूद्रयोत्कृष्टवेदने) यद्यपि इसबातमें कुछ प्रयोजन अब नहीं है परंतु ज्ञानमात्रके लिये लिखीगईहै ६२॥

अब यहबात कहतेहैं कि कन्याको दानकरनेका अधिकार किस किसकोहै॥

पितापितामहोभ्रातासकुल्योजननीतथा। कन्याप्रदःपूर्वनाशेप्रकृतिस्थःपरःपरः ६३॥

अक्ष०—पिता, दादा, भ्राता, सकुल्यकहिये कुलका कोई प्रधान तैसेही माता-कन्या देनेका अधिकारी पहले पहले के नाशमें पिछला पिछलाहै जो प्रकृतिस्थहो ६३॥

अभि०—प्रकृतिस्थ अर्थात् अपनी शुद्धि बुद्धिमें सावधानहो किंतु सिड़ी वा विक्षिप्त और असाध्य न हो ऐसा पिता कन्याके देनेका अधिकारी है-जो पिता नाशहोगया हो

जीवताहो पर विक्षिप्त आदि दोषोंसे विवाहकरसकनेमें असमर्थहो तौ कन्याके दादा को अधिकारहै-जो दादा भी नहो या वैसाहो तौ कन्याका भाई अधिकारीहै-जो भाई भी नहो या वैसाहोतौ उसकुलमें जोकोईप्रधान गिनाजाताहो या अप्रधानभीसामर्थ्य वालाहो तौ यहभार उसकेऊपर निश्चितहै-जब ऐसाकोईभीनहो तौ मातापरइसबात का भारहै ६३॥

अधि०-अशक्त या असमर्थ कहनेका केवल यहीसिद्धांत नहींहै कि वे अपनेशरीर सेहीअसमर्थहों अर्थात् जो धनसेहीनहै वहभी प्रकृतिस्थोंमें गिनतीनहींहै किंतु जो उसका उत्तरोत्तर अधिकारीकोईभी धनवान्हो वहीप्रकृतिस्थ कहलावेगा-और ऊपर केकहेहुये जो पांचअधिकारी हैं उनका कुछ यह भी नियमनहींहै कि वे कन्यापिता के साझेमेंरहतेहों या न रहतेहों-अर्थात् चाहेवेपांचकेपांचोअपनाखाने कमानेकाव्यवहार जुदारखतेहों या चाहे उनकेघरकी धनसम्पत्तेंभी विभागता में आचुकीहों जो पहले सबकी एकथीं-परन्तु इसकन्यादान के अधिकारभार में ऐसे समुझे जायँगे कि जानो सबके सब एकहैं ६३॥

अप्रयच्छन्समाप्नोतिभ्रूणहत्यामृतावृतौ। गम्यंत्वभावेदातॄणांकन्याकुर्यात्स्वयंवरम् ६४॥

अक्ष०-वह न देताहुआ ऋतुऋतुमें भ्रूणहत्याको प्राप्तहोताहै-दाताओंके अभाव में कन्याआपही गम्यवरको करै ६४॥

अभि०-कन्यादानमें जिससमय जिसका अधिकारहै सो कन्याका विवाह न करै तौ एक २ ऋतुकाल मासिकधर्म होनेसेएक २ गर्भहत्याकाभागी सदा होतारहताहै-जिस कन्याका विवाहकरनेवाला कोईभीअधिकारी नहींरहाहो वहकन्या आपही किसी गम्यवरको वरै-गम्यकहनेका यह आशयहै कि जो वरउसके गमनयोग्यहो अर्थात्जैसे वरकोउसके अधिकारी उसेदेसक्तेथे वैसाही वरकन्या अपनेआपढूंढ़े सो उसवर के लक्षण पहले ५५ के श्लोकमें कहचुकेहैं ६४॥

अधि०-अपने आप ढूंढ़नेका यह सिद्धांत नहीं है कि वहकन्याअपने मनसे किसी वरकोविचार लेवे या कहींग्रामांतर में ढूंढ़ती फिरे-किंतु अपने नष्टभूत अधिकारियों के शुभचिंतक इष्टमित्रोंसे कहकर उसबस्तीके पंचों और नरेशोंमें यहबात प्रवेशित करवाकर अपनेयोग्यवर ढुंढ़वावे-और इसीआशयसे उनपंचोंवा नरेशोंकोभी यहसम्मतहै कि इसप्रकारकी कोईकन्या उनकी वस्तीमें विनाविवाही नहीं रहनेपावे अर्थात् केवल यहीनियम नहीहै कि जबकन्याउनके पास निजप्रार्थनाका प्रवेश करवावे तभी उसके लिये वरढूंढ़ाजाय-किंतु-उनको प्रजारक्षाके नियमोंअनुसार सदाही यह योग्यहै कि वे इसप्रकारकी अनाथकन्याओं के विवाहोंमें प्रबंधकरतेरहें-और प्रबंधका करनाकेवल यहीनहींहै कि उसके लिये वरढुंढ़वाकर चुपके होरहें अर्थात् प्रार्थना या विनाप्रार्थना

वाली ऐसी अनाथकन्याओंके पास जो धन नहींहोवे तो उसविवाहकेयोग्य कुछ धनभी उसस्थान औरसमय और शक्तिऔरयोग्यताके अनुसारसंचित करदेवें(अथवा)जहां किसी हेतुसे धनकाउपस्थित होना दुर्लभ समुझाजाय तव निरसंदेह आर्षविवाह की रीतिसे उपकार करवादेवैं और इस उपकारमें उनको वैसाही उद्योगकरना सूचित है कि जैसे गृहस्थी अपनीसंतानोंके मंगलमेंउत्साह रखताहै(भेद २) इसकहेहुये आशय से यह योग्यतापाईजातीहै कि इसप्रकारका धनसंचयभी थोड़ा वहुतप्रत्येक बस्तीके अधिष्ठाताके उपायसे संग्रहपाकर किसीधनपात्रके आश्रयभूत रहकरसदैव वृद्धिपाया करै जिस्से तत्काल किसीनबीन उपकारमें वहुधोपाय न करना परे-इसीआशयसे उन पंचों वा नरेशोंकी योग्यताभी सब ओरसे आकर्षित होकर देशकेराजापर आरूढ़होतीहै क्योंकि जिस किसीआपत्ति में फँसेहुये दीनदुखियाका रक्षाकरनेवाला कोई भी नहीं होताहै उसकारक्षक राजा हुआ करताहै जिस्से राजाप्रजाका स्वामीहै-तथाच(नकोपिरक्षितायस्यदीनस्यापद्गतस्यच । तस्यैवनृपतिःपातायतोभूपःप्रजाप्रभुः) (भेद ३)ऊपरके भेदमेंकहेहुये धनसंचयका होना कुछबड़ीसीकाठिन्यता नहीं है क्योंकिप्रथम तो अनेकरीतेंउसकी लोकमेंप्रसिद्धहैं कि जिनसेवहुतेरे संसारीकामोंके लिये उपकारी धनकासंचय कियाजाता है फिर एकपुण्यार्थी धनकासंचयहोना क्यावड़ीवातहै कदाचित् उनरीतोंसे असंभवता समुझीजातीहो सबसेसुगम यहरीतिहै कि जो चातुर्वर्ण्य मनुष्योंके बिवाहोंमें बरकेहाथसे कुछधनसंकल्प यथाशक्ति कियाजाताहै वहधनकन्याके ग्रामबासीविप्रोंको बर्त्तायाजाताहै उसधन के दानकरनेका परमसिद्धांत तो यही है कि बर और कन्या इनदोनों के जन्मभरकी कुशलक्षेमके हेतुसे पुण्यकियाजाता है कि इसपुण्यके प्रभावसे यहदोनों फूलतेफलते रहैं परन्तु वहुधालोग उस्से अपनानाम भी समुझते हैं सोभीसत्यहै किंतुयथार्थता उसकीपुण्य औरप्रतिष्ठादोनोंपर पहुंचती है-और जब अवश्याभाव करकेदियाजाताहै तो एकऐसीरीतिसे देना कि जिस्से वह पुण्य और प्रतिष्ठारूपी वृक्ष उनकासदा सर्वदा हराफरा दृष्टि में आयाकरै तो क्या अच्छीबात है किंतु वहीधन एकत्र उस बस्ती में संचितहोता रहे और साहूकारे की रीति से उसका ब्याजभी बढ़ता रहै और हरसाल उक्तमार्गसे संग्रह भी होतारहै तो इसप्रकारसे अनेकों लक्षरुपया प्रत्येकबस्ती में संचितहोजाय औरआवश्यकता पर काम आयाकरै (भेद ४)और कदाचित् बिप्रकुल [illegible] मनमेंइस बातकादुःख मानताहो कि वहधन हमाराहक्क सो क्योंकर एकत्र संचित [illegible] तहां प्रथमतो उनको इस अभिमानसे प्रसन्नता धारणकरनी चाहिये कि [illegible] रक्षाकाहेतु निश्चित कियागयाहै अर्थात् वहधन एकत्र संचितहोनेपर [illegible] कहलावेगा और उसमेंसे किसी उपकारमें लगाना भी उनकी आज्ञा [illegible] नहीं हो सकैगा

अर्थात् जबवही विप्रकुल अपनेहस्ताक्षरकरदेवैगा कि इतनाद्रव्यब्राह्मधनमेंसे अमुक उपकारमें दियाजावे तबकोई हाथ लगासकैगा-और यहकैसी बड़ीबातहै कि उसी विप्रकुल मेंसे जबकिसी एकपर कन्यादान आदिकोई सी बिपत्तिआनि पड़ैगी तब उसमेंसे सबकी संमति और आज्ञासे उसकाबेड़ा पारकियाजायगा किन्तु कुछयही नियमनहीं है कि केवल अनाथ कन्याओंकेही उपकारमें लगै-और जब विप्रकुलमें ऐसा सुखदायी प्रबंध और लोगदेखेंगे तो वेभी उनकीदेखा देखी लोकलाज के लिये ऐसे नानाभांति के प्रबंधबांधेंगे जिससे कोईमनुष्य किसीभांति दुःखीनहीं रहनेपावे तो सर्वथा इसबातके मुखिया विप्रही गिनेजायँगे-और विप्रकुलको जो बड़प्पन या आचार्यकी पदवीमिली थी तो इन्हींबातोंसे कि वेपहले आप शुभकामों का आचरण करते और औरोंसे करवातेथे- शोचनेकी बातहै किजब किसीने पांचरुपये के पैसेबर केहाथसे सङ्कल्प कराये और एक२ या दो२आने कुछमनुष्योंके हाथआये तौदोदिन के पान तमाखूखानेसे क्याफल सिद्धिहुई अथवा कहीं कालांतरमें किसी अमीरने कदाचित् विप्रोंके हज़ारघरकीबस्तीमें हज़ारका संकलपकिया और घरपीछे १)आगया तौभी क्या बड़ी बातहुई(भेद ५)कदाचित् देनेवाला यहसंकोचमाने कि मैं विप्रोंकोदेता तो पुण्य और प्रतिष्ठाथी एकत्र संचितकरनेमेंक्याहै सो यहसंकोच उसकाद्वथा है क्योंकि पुण्यकी ओरसे तो उसकी यह विशेषताहै कि वहांतो दो २ पैसे कुछआदमी चाटिके फिर ज्योंकेत्यों और इसमें जोधनकी वृद्धिहोयगी सोभी लौटकर उन्हींकेपरम कल्याणोंमें लगैगी और सदैवकाम आवेगी और यहबात सबकोई जानताहै कि दाताकापुण्य उसदानमें अधिक होताहै कि जिस्से किसीको अधिक आराम निकले फिर इस्सेअधिक आराम और क्याहोगी कि एकवारकादेना सदा सर्वदा कामआया करै और प्रतिष्ठाकी ओरसे यह बड़प्पनहै कि वहां तो अपनीशक्तिकेअनुसार जितने विप्रोंके हाथपरधरा उतनोंने कुछवाह वाहकरी और जिनकेहाथ कुछनआया उन्होंने आगे औरपीछेभी निंदाकरी और यहाँ जिसकिसी धनाढ्य साहूकारके खजानेमें वह रुपयाजमाहुआ और विप्रकुलके जोप्रधान और प्रतिष्ठितसब मिलकरके जमाकराने गये उनके सन्मुख उसकानाम लिखकर जमाकिये गये और प्रमाणके लिये उसकी दूकान या कोठीआगे दो पंक्तिका प्रसिद्धपत्र चिपटायागया कि अमुकमासमें अमुक मनुष्यके पाँच या पचास रुपये (ब्राह्मधन) में चढ़े तो इस्सेअधिक प्रतिष्ठा क्याहोगी (भेद ६)इसप्रकारके धर्मसंबन्धी प्रयोजनोंका प्रबन्ध वहलोग करसक्तेहैं कि जोसंप्रति सभाओंका प्रकाश नानानामसे करतेहैं-और जो वह इनदानोंमें उद्योग न करसक्तेहों तो इस्सेआगे और क्या शतघ्नीका बाँधना उनके जिस्से कियाजायगा किन्तुधर्मशब्द के विशेषणवाली वस्तुतो धर्मसंबन्धी कामोंमें सहायनाकरनेसेही यथानाम तथागुण

होसक्तीहै अन्यथा धर्मकोई ऐसीवस्तुनहींहै कि जिसकी मूर्तिके ध्यान या नामके आराधनमात्रसे कुछकाम चलसक्ताहो किन्तुधर्मशब्दसे द्वितयलोकी मर्यादोंका भाव पाया जाताहै उसमेंभी पहले यहलोक और पीछे परलोकहै जो इसलोकका प्रबन्ध अच्छा करसकैगा तौ परलोकभी सुगम होजायगा परन्तु किसी प्रबलकी दीहुई तीन बातोंके विना न करसकनेमेंभी उनका क्यादोषहै सो उनतीन बातोंमें एक तौ जो कुछ शुभचिंतकताके प्रकारसे सभावाले कहें उसको और लोग प्रमाणकरें दूसरी जो उस वार्ताका उत्पादनकरै वह किसी प्रकारका दण्डपासके तीसरी निर्लोभता जिसमें कुछ अपनास्वार्थ नहींदेखें-इनबातोंका अधिकार जैसे सभासदोंके लिये उचितहै तैसेही प्रत्येक जातिकी बिरादरीमें जो मुखियाहों उनकोभी उचितहै कि जो मनुष्य उनकी बिरादरीका बिवाह योग्यकन्याके विवाहमें अधिक उपेक्षाकरै वह उनकेद्वारा ज्ञातिदंड का भागीहो और जो वेही उसको दंडदेनेसे उपेक्षाकरें तौवेभी उसग्रामकी सभाद्वारा शिक्षापानेके योग्य निश्चित कियेजायँ(भेद७)इसी ६४ केश्लोकमें बिवाहकी उपेक्षासे भ्रूणहत्याका पाप निश्चितहुआ और उसीआशयसे उपेक्षावाला दंड्य निश्चितहोचुका-फिर जव विवाहकी उपेक्षा इतनीवड़ी समुझीगई तौ द्विरागमनकी उपेक्षाको इससे भी सहस्रगुण समुझनी चाहिये क्योंकि विवाहके नहोनेमें अविवाहित या अविवाहिताको एकप्रकारके संतोषकी धारणा बुद्धिबनी रहतीहै और विवाहके होजानेपर दोनों को एकप्रकारका उत्साह उत्पन्न होजाताहै फिर जबऐसी दशापर द्विरागमनके बंधनसे उचित अवस्थाके उपरांतभी पाँच२ सात२ वर्षोंका वियोग करदेना तौ यहअपराध सर्वथा उनके अधिकारियोंकाही प्रत्यक्षहै कि जो इसआग्रहसे उपेक्षा करतेहैं कि जब विवाहसे आधाखर्च हाथआवै तब यहबातहो या इसआग्रहसे कि अब समबर्षका प्रारम्भहोगया जब फेर विषमआवे तब दोबर्षके अंतरसेहो-तहां आधेखर्चका आग्रह तौ सर्वथा निरर्थकहै क्योंकि जब निर्धनतासे बिवाहकीही उपेक्षा अनुचितहै तौ द्विरागमनमें धनकी क्या अपेक्षाहै प्रथम तौ वर्षोंतक बिवाहके उद्योगमें चिंतारही जबदैवयोगसे उसबातका ठिकानालगा तब करेकरायेपर फेरकुआँमें डालदिया कि अबफेर आधाखर्च मिलै तौ यहबिवाह बिवाहोंकी गिनतीमेंआवै नहीं तौ ढोलोंसे खालगई फिर क्या इस्से फलसिद्धिहुई कि आपतौ दोनोंपक्षी भ्रूणहत्या के भागीहोना और जिन दोनोंके सौख्यकेलिये धनलगायाथा वे दोनों आपको संतापित होतेरहे और गुरुओंके सन्मुख यद्यपि कुछ कहतेनहीं परन्तुवेभी उनको अपराधी निश्चित करतेहैं यहबात उस भ्रूणहत्यासे भी अधिकहुई-और कालकी अवधिका जो आग्रह यद्यपि ज्योतिषविद्यामें नियतहै सो वह कुछ अधिकप्रमाणके योग्यनहींहै क्योंकि धर्मशास्त्रने बिवाह संबन्धी कोईसी छोटीमोटीभी बातकीआज्ञा और नियमको कहनेसे नहींछोड़ा

फिर इतनी बड़ीबात जो बिवाहसे आधीगिनी जाती और घंटाघोषसी प्रसिद्धहै उस की किंचित् सम्मस्याभी नकरता जो प्रमाण योग्यहोती-और जोयहबातकहो कि ज्योतिषभी एकप्रकारका शास्त्र है क्या उसकीबात प्रमाण योग्यनहीं होसक्ती है तिसका यह सिद्धांतहै कि ज्योतिषमें चोरोंकेलिये चोरीकरनेकेभी मुहूर्त्तलिखेहैं अपघातियोंके लिये किसीके घातकरनेकेभी मुहूर्त्तलिखेहैं तौ क्या उसमुहूर्त्तके लिखेहोनेसे चोरीकरनेकी प्रमाणता या बधकरनेकी प्रमाणता धर्मशास्त्रमेंभी मानलीजायगी अर्थात् ज्योतिषमें यहबातहै किचाहै कोईअच्छा अथवा खोंटेसेखोंटा कामभीकरनेचलै और मुहूर्त्तबूझै या कोई ऐसानवीन कामकरनेचलै जिसकामुहूर्त्त लिखाहुआनहींहै उसकाभी मुहूर्त्त ज्योतिषीको शुभाशुभनक्षत्रोंकेअनुसार कहदेनापरैगा तौ क्या वहबात धर्मसंबंधी समझीजायगी-और भलाजो लोकाचारसे प्रमाणभीकरो तौ किसकेलिये वहद्विरागमनका कालपरिमाणहै कि जिनके अतिबाल्यअवस्थामें बिवाहहोजातेहैं उनको वर्षोंतक पिताकेघर निवासकरनाहोताहै जब गमनाकियाजाताहै तब बिषमवर्षै लीजातीहैं-परंतु जिनके पूर्णअवस्थामें बिवाहहोतेहैं उनकेलिये यहपरिमाण अनुचित और असंभवहै और भलाजो उनकेलियेभी कोईलीकपीटनाचाहै तौ उनविषमबर्षोंका अनुकल्प विषममासस सूचितहै उसन्यायसे कि जैसे यज्ञोपवीतमें(ब्रह्मचर्य्य)का अनुकल्प एकघटिका दोघटिकामात्रमें होजाताहै-कदाचित् यहकहो कि हमारीबुद्धितौ ज्योतिष केऊपर आरूढ़है जबकोई ज्योतिषका विधिनिषेधपायाजाय तभी अनुकल्पमें बुद्धि जमै और मनको संतोषआवै-तहाँ-पित्र्येगृहे चेत्कुचपुष्पसंभवस्तदानदोषः प्रतिशुक्रसंभवः-यह ज्योतिषकावाक्य जोसारेलोकमें घंटाघोषवत्प्रसिद्धहै तिसका यह भावार्थहै कि जो कन्या पिताकेघरमें कुच और पुष्पवतीहोनेलगे तौ गौनेमें जो सन्मुख शुक्रका बड़ादोषगिनाजाताहै सो उसकन्याकेलिये वहदोषनहींहै अर्थात् ऐसीकन्या कागौना शुक्रकेसन्मुखभी निःसंदेहकरौ-अबकहो कि जोशुक्र केवल कोईमहीनोंका माहिमानहोताहै किंतु कुछमहीनोंपीछे वह सन्मुखसे हटजाताहै तिसपीछे गौनाहोसक्ताथा परंतु उतनेमहीनोंकेलियेभी ऐसीकन्याका निवासपिताकेघरमें उचितनसमझा गया इसलिये ज्योतिषनेभी यह कहदिया कि निःसंदेह शुक्रकेसन्मुखभेजदो कुछदोष नहींहै-फिर भला धनकेआग्रहसे अथवा विषमवर्षोंकेआग्रहसे तीनवर्ष या पाँच या सात या नौवर्षताईं ऐसीकन्याकाराखना ऐसाहै या नहीं कि जैसे कोईकिसीपक्षीकोपर बशपीजरामेंबंदकरै-अब ध्यानधरनाचाहिये कि गौनेकेविचारमध्ये सम और विषम का भेद यह एक साधारणभावसे लोकाचारकी रीतिहै कुछ धर्मशास्त्र विहित नहींहै और यद्यपि लोकाचारकेहेतुसे पीछे२ ज्योतिषमेंग्रथितहुई और प्रमाणपाईगई तथापि जिनयुग्मवर्षोंका दोषमानतेहैं तिनकेआगे सन्मुख शुक्रकादोष बड़ाप्रबलहै तिसका

होसक्तीहै अन्यथा धर्मकोई ऐसीवस्तुनहींहै कि जिसकी मूर्तिके ध्यान या नामके आराधनमात्रसे कुछकाम चलसक्ताहो किन्तुधर्मशब्दसे द्वितयलोकी मर्यादोंका भाव पाया जाताहै उसमेंभी पहले यहलोक और पीछे परलोकहै जो इसलोकका प्रबन्ध अच्छा करसकैगा तौ परलोकभी सुगम होजायगा परन्तु किसी प्रबलकी दीहुई तीन बातोंके विना न करसकनेमेंभी उनका क्यादोपहै सो उनतीन बातोंमें एक तौ जो कुछ शुभचिंतकताके प्रकारसे सभावाले कहें उसको और लोग प्रमाणकरें दूसरी जो उस वार्ताका उत्पादनकरै वह किसी प्रकारका दण्डपासके तीसरी निर्लोभता जिसमें कुछ अपनास्वार्थ नहींदेखें-इनबातोंका अधिकार जैसे सभासदोंके लिये उचितहै तैसेही प्रत्येक जातिकी विरादरीमें जो मुखियाहों उनकोभी उचितहै कि जो मनुष्य उनकी विरादरीका बिवाह योग्यकन्याके विवाहमें अधिक उपेक्षाकरै वह उनकेद्वारा ज्ञातिदंड का भागीहो और जो वेही उसको दंडदेनेसे उपेक्षाकरें तौवेभी उसग्रामकी सभाद्वारा शिक्षापानेके योग्य निश्चित कियेजायँ(भेद ७)इसी ६४ केश्लोकमें विवाहकी उपेक्षासे भ्रूणहत्याका पाप निश्चितहुआ और उसीआशयसे उपेक्षावाला दंड्य निश्चितहोचुका-फिर जब बिवाहकी उपेक्षा इतनीवड़ी समुझीगई तौ द्विरागमनकी उपेक्षाको इस्से भी सहस्रगुण समुझनी चाहिये क्योंकि विवाहके नहोनेमें अविवाहित या अविवाहिताको एकप्रकारके संतोषकी धारणा बुद्धिबनी रहतीहै और विवाहके होजानेपर दोनों को एकप्रकारका उत्साह उत्पन्न होजाताहै फिर जबऐसी दशापर द्विरागमनके बंधनसे उचित अवस्थाके उपरांतभी पाँच२ सात२ वर्षोंका वियोग करदेना तौ यहअपराध सर्वथा उनके अधिकारियोंकाही प्रत्यक्षहै कि जो इसआग्रहसे उपेक्षा करतेहैं कि जब विवाहसे आधाखर्च हाथआवै तब यहबातहो या इसआग्रहसे कि अब समबर्षका प्रारम्भहोगया जब फेर विषमआवे तब दोबर्षके अंतरसेहो-तहां आधेखर्चका आग्रह तौ सर्वथा निरर्थकहै क्योंकि जब निर्धनतासे बिवाहकीही उपेक्षा अनुचितहै तौ द्विरागमनमें धनकी क्या अपेक्षाहै प्रथम तौ वर्षोंतक बिवाहके उद्योगमें चिंतारही जबदैवयोगसे उसबातका ठिकानालगा तब करेकरायेपर फेरकुआँमें डालदिया कि अबफेर आधाखर्च मिलै तौ यहबिवाह बिवाहोंकी गिनतीमेंआवै नहीं तौ ढोलौंसे खालगई फिर क्या इस्से फलसिद्धिहुई कि आपतौ दोनोंपक्षी भ्रूणहत्या के भागीहोना और जिन दोनोंके सौख्यकेलिये धनलगायाथा वे दोनों आपको संतापित होतेरहे और गुरुओंके सन्मुख यद्यपि कुछ कहतेनहीं परन्तुवेभी उनको अपराधी निश्चित करतेहैं यहबात उस भ्रूणहत्यासे भी अधिकहुई-और कालकी अवधिका जो आग्रह यद्यपि ज्योतिषविद्यामें नियतहै सो वह कुछ अधिकप्रमाणके योग्यनहींहै क्योंकि धर्मशास्त्रने बिवाह संबन्धी कोईसी छोटीमोटीभी बातकीआज्ञा और नियमको कहनेसे नहींबोड़ा

फिर इतनी बड़ीबात जो बिवाहसे आधीगिनी जाती और घंटाघोषसी प्रसिद्धहै उस की किंचित् समस्याभी नकरता जो प्रमाण योग्यहोती-और जोयहबातकहो कि ज्योतिषभी एकप्रकारका शास्त्र है क्या उसकीबात प्रमाण योग्यनहीं होसक्ती है तिसका यह सिद्धांतहै कि ज्योतिषमें चोरोंकेलिये चोरीकरनेकेभी मुहूर्त्तलिखेहैं अपघातियोंके लिये किसीके घातकरनेकेभी मुहूर्त्तलिखेहैं तो क्या उसमुहूर्त्तके लिखेहोनेसे चोरीकरनेकी प्रमाणता या बधकरनेकी प्रमाणता धर्मशास्त्रमेंभी मानलीजायगी अर्थात् ज्योतिषमें यहबातहै कि चाहे कोईअच्छा अथवा खोटेसेखोटा कामभीकरनेचलै और मुहूर्त्तबूझै या कोई ऐसानवीन कामकरनेचलै जिसकामुहूर्त्त लिखाहुआनहींहै उसकाभी मुहूर्त्त ज्योतिषीको शुभाशुभनक्षत्रोंकेअनुसार कहदेनापरैगा तो क्या वहबात धर्मसंबंधी समझीजायगी-और भलाजो लोकाचारसे प्रमाणभीकरो तो किसकेलिये वहद्विरागमनका कालपरिमाणहै कि जिनके अतिबाल्यअवस्थामें बिवाहहोजातेहैं उनको वर्षोंतक पिताकेघर निवासकरनाहोताहै जब गमनाकियाजाताहै तब बिषमवर्षें लीजातीहैं-परंतु जिनके पूर्णअवस्थामें बिवाहहोतेहैं उनकेलिये यहपरिमाण अनुचित और असंभवहै और भलाजो उनकेलियेभी कोईलीकपीटनाचाहै तो उनविषमबर्षोंका अनुकल्प विषममाससं सूचितहै उसन्यायसे कि जैसे यज्ञोपवीतमें(ब्रह्मचर्य्य)का अनुकल्प एकघटिका दोघटिकामात्रमें होजाताहै-कदाचित् यहकहो कि हमारीबुद्धितो ज्योतिष केऊपर आरूढ़है जबकोई ज्योतिषका विधिनिषेधपायाजाय तभी अनुकलपमें बुद्धि जमै और मनको संतोषआवै-तहाँ-पित्र्येगृहेचेत्कुचपुष्पसंभवस्तदानदोषःप्रतिशुक्रसंभवः-यह ज्योतिषकावाक्य जोसारेलोकमें घंटाघोषवत्प्रसिद्धहै तिसका यह भावार्थहै कि जो कन्या पिताकेघरमें कुच और पुष्पवतीहोनेलगे तो गौनेमें जो सन्मुख शुक्रका बड़ादोषगिनाजाताहै सो उसकन्याकेलिये वहदोषनहींहै अर्थात् ऐसीकन्या कागौना शुक्रकेसन्मुखभी निःसंदेहकरो-अबकहो कि जोशुक्र केवल कोईमहीनोंका माहिमानहोताहै किंतु कुछमहीनोंपीछे वह सन्मुखसे हटजाताहै तिसपीछे गौनाहोसक्ताथा परंतु उतनेमहीनोंकेलियेभी ऐसीकन्याका निवासापिताकेघरमें उचितनसमझा गया इसलिये ज्योतिषनेभी यह कहदिया कि निःसंदेह शुक्रकेसन्मुखभेजदो कुछदोष नहीहै-फिर भला धनकेआग्रहसे अथवा विषमवर्षोंकेआग्रहसे तीनवर्ष या पाँच या सात या नौवर्षताईं ऐसीकन्याकाराखना ऐसाहै या नहीं कि जैसे कोईकिसीपक्षीकोपर बशपींजरामेंबंदकरै-अब ध्यानधरनाचाहिये कि गौनेकेविचारमध्ये सम और विषम का भेद यह एक साधारणभावसे लोकाचारकी रीतिहै कुछ धर्मशास्त्र विहित नहींहै और यद्यपि लोकाचारकेहेतुसे पीछे२ ज्योतिषमेंग्रथितहुई और प्रमाणपाईगई तथापि जिनयुग्मवर्षोंका दोषमानतेहैं तिनकेआगे सन्मुख शुक्रकादोष बड़ाप्रबलहै तिसका

कुछ अनुकल्पभी नहीं रक्खा किंतु समूल उसका परिहार करदियागया उस परिहारकी अपेक्षासे यद्यपि समवर्षोंकाभी परिहारही उचितहै कुछ अनुकल्पकी आवश्यकता नहीं रही परंतु लोकाचारकीदृष्टिसे युग्मवर्षोंकेबीच विषममासोंका अनुकल्पहोना यह सर्वोपरि उत्तमहै-इन सबकारणोंके सिद्धांतसे द्विरागमनकी उपेक्षावाला उससे दशगुण दंडनीयहै कि जोकुछदंड विवाहकीउपेक्षामें उचितहोताहो ६४ ॥

सकृत्प्रदीयतेकन्याहरस्तांचोरदंडभाक्। दत्तामपिहरेत्पूर्वाच्छ्रेयांश्चेद्वरआव्रजेत् ६५ ॥

अक्ष०–एकबारकन्या दीजियेहै उसको हरनेवालाचोर दंडकाभागीहै-दीहुईको भी हरलेवे जो पहलेसे श्रेय वरआवै ६५ ॥

अभि०–शास्त्रका यह नियमहै कि कन्याएकहीवार दानकरीजातीहै उसे जो कोई पिता देकर फिरहरै वह चोरकेसमान दंडदेनेयोग्यहै-परंतु जो पहलेवरकी अपेक्षा विद्या कुटुंब आदि बिशेषताओंसेयुक्त ऐसा कोईवर हाथआजावै तौ उस दीहुईको भी नदेवै किंतु उस दूसरेको विवाहिदेवै तौ वह दंडकेयोग्यनहींहै-परंतु यहबात उसी अवस्थामें होसक्तीहै कि जब पहलेवरमें कोईसा पातकयोग या प्रबलरोग या कुछ दुराचरण उसकाप्रकटहो अन्यथा श्रेष्ठवरके मिलनेसेही नहीं होसक्तीहै क्योंकि जब यहीबात निश्चितहुई तौ एकसेएकअधिक श्रेष्ठवर प्रतिदिन हाथआसक्तेहैं-सो यहदेदेनाभी सप्तपदीके सातवेंपदसे पहले२ नियतहै अर्थात् जब सातवांपदपूराहोजाय तब उसबरकेदोष प्रकटहोनेपरभी दूसरेको नहीं देसक्ताहै ६५ ॥

अनाख्यायददद्दोषंदंड्यउत्तमसाहसम्। अदुष्टांतुत्यजन्दंड्योदूषयंस्तुमृषाशतम् ६६ ॥

अक्ष०–दोषको न कहकरदे तहांउत्तम साहसदंड-अदुष्टाको छोड़ताहुआभी दंड्य है-मृषा दूषण देताहुआ एकसौसे ६६ ॥

अभि०–जोकोई नेत्रोंसे दिखाईदेनेयोग्य कन्याके किसीदोषको कहेबिना कन्यादान करताहै वहपिता उत्तम साहसनामका दंडदेने योग्यहै-और जोकोई अदोषा कन्याको लेकर पीछेत्यागनेलगै वह वरभी उत्तम साहसकी संख्यावाला दंडदेने योग्य होताहै या जोकोई बिवाहसे पहलेही अदोषा कन्याको महारोगादि कुदोषोंका झूँठा दूषण लगाताहै वहबर एकसौ १०० पणका दंडदेने योग्यहै ६६ ॥

अधि०–उत्तम साहसदण्डका परिमाण एकहजार १००० पणका मनुजीने कहाहै और याज्ञवल्क्य योगीश्वरने १०८० पणका कहाहै और पणका परिमाण जोसमुझा चाहोतौ इसआचाराध्यायके अंतमें ३६४ केश्लोकमें देखना परन्तु यहबातभीस्मरण बनीराखौ कि यहपणको और उत्तमसाहसको आदिलेकर परिमाणोंका जाननाकेवल ज्ञानमात्रकेलिये उचितहै अन्यथा इनसे संप्रति कुछकाम नहीं चलसक्ता क्योंकि ये प्राचीन ब्यवहारोंके प्रकार कहेहुयेहैं औरतुलापरिमाण या मुद्रापरिमाणअपनी आव-

श्यकता पर वर्त्तमान राज्यसेअपेक्षा रखताहै और यद्यपि उसके हिसाबकी परिगणना करिके वर्त्तमान समयके मुद्रातथा तुलामानसे तुल्यताभी करली जासक्तीहै परन्तु इस्से कोईसीफल सिद्धिनहींहै जोइतनाबड़ा तुषकंडनकरो क्योंकि जो दंडइसश्लोकमेंकहे हैं वेभी राजद्वारके आधीन हैं और यद्यपि कदाचित् कोई स्थल ऐसाभी आनिपड़ै कि राजद्वारसेभिन्न किसीप्रकारके मनुष्योंके आधीन यहबार्त्ताहो तहांभी वे मनुष्य उसी मुद्रा अथवा तुलामानसे दंडकरैंगे किजो उनके वर्त्तावामें आरहाहो-हाँ केवल इतनी वातहै कि जबशास्त्रके अनुसार दृष्टिकरैंगे तब इतनाध्यान करलेवैंगे कि शास्त्रमें इस विषयपर इतने पण लिखेहैं हमैंभी उसके अनुसार चलना चाहिये जिस्से इसदंडके विचारमें हमसे कुछ अन्याय न होजावे-परन्तु उस अनुसारतामेंभी कुछ यही नियम नहींहै कि जोकुछ लिखाहो वही दंडसर्वत्रहोसक्ताहो अर्थात् दण्डके विचारमें पहलेतो विचारकरने वालेका बलाबल फिर अपराधका बलाबल फिर अपराधीका बलाबल फिर देशकाल शक्तिव्यवहार ब्यवहारकाहेतु इनसबके बलाबलका निर्णयकरलिये पीछेजोकुछ सबकी संमति या एकहीप्रधानकी बुद्धिमें समावै सो कियाजाताहै ६६॥

अक्षताचक्षताचैवपुनर्भूःसंस्कृतापुनः। स्वैरिणीयापतिंहित्वासवर्णंकामतःश्रयेत् ६७॥

अक्ष०–अक्षता और क्षताभी पुनः संस्कारकरीहुई पुनर्भू-और स्वैरिणीजोपतिको छोड़कर कामसे सवर्ण के आश्रयहो ६७॥

अभि–दोप्रकारकी(पुनर्भू)होतीहैं एकतौ क्षतादूसरी अक्षता तिनमें क्षतातौ वहकिजो विवाहपहले किसीपुरुषके संसर्गसे दूषितहो और अक्षतावह किजो पुरुषदूषित नहो परंतु संस्कार दूषितहो किंतु पहलेभी किसीके साथसगाई आदिकुछसंस्कार होचुका हो जैसा ६५के श्लोकमें पिछले अद्धाकाभावहै कि सातवें पदसे पहले२ औरको देदेवे यह दोनोंप्रकारकी कन्या जबकिसीके साथ विवाहीजाती हैं तब(पुनर्भू)कहलातीहैं यह (पुनर्भू) भीजो पतिको छोड़कर कुमारअवस्था में कामके हेतुसे सवर्ण अर्थात् जातिमात्रके मनुष्यका आश्रयले रहे वह स्वैरिणी कहलातीहै ६७॥

अपुत्रांगुर्वनुज्ञातोदेवरःपुत्रकाम्यया। सपिंडोवासगोत्रोवाघृताभ्यक्तऋतावियात् ६८॥

अक्ष०–अपुत्राको पुत्रकी कामनासे गुरुओंसे अनुज्ञापायाहुआ देवर या सपिंडया सगोत्रघृतकालेप कियेहुये ऋतुकालमें गमनकरे ६८॥

अभि०–अपुत्राका यहनियम नहींहै कि विधवा या सधवा किंतु साधारण वाक्यसे विधवा और क्लीवादिभार्या इसकाभावहै ऐसीअपुत्राकेपुत्र उत्पादन करनेकी कामना से गुरुकहिये पितामाता पुरोहित आदिकी सुसंमतिपूर्वक आज्ञामिलनेपर देवरअपने सारेशरीरमें घृतका लेपकरिकै केवल ऋतुकालमें गमनकरे-स्वकीय देवरके अभावमें

सपिण्डदेवरहो सपिण्डदेवरके अभावमें सगोत्रदेवरहो-सपिण्ड और सगोत्रका लक्षण ५२ केश्लोककी अधिकोक्तिमें निश्चितहै ६८ ॥

अधि०—इसश्लोकमें कहीहुईवार्त्ता(संदिग्धधर्म) मेंगिनतीहै क्योंकि याज्ञवल्क्यजीके वचनका स्पष्टअर्थतो यहीहै जो ऊपरलिखागया-और यद्यपिसमयका प्रतिपालकरने केलिये इसश्लोकका-अनुकर्षभी कियागयाहै कि (यस्याम्रियेतकन्याया वाचासत्येकृतेपतिः । तामनेनविधानेननिजोविंदेतदेवरः) अर्थात जिसकन्याकेविवाहकी वाचासत्य होचुकीहो कि यहअमुकवरको विवाही जायगी सो वाचासत्यहोना सगाईको कहतेहैं किसीदेशमें उसीको वररक्षाकहतेहैं कहीं रुकावानिकहतेहैं इसदशाकेउपरांत वहपति मरजाय जिसको सगाई दीगईथी तोउसीका छोटाभ्राता उसकन्याको उसीविधिसे विवाहलेवे जो विधि उसकेलिये विवाहमें होनी उचितथी-इसआशयके अनुकर्षसे उस ऊपरली वार्त्ताको भी वाग्दत्ता कन्याका विषय निश्चय किया है परन्तु यह अनुकर्ष ऐसा है कि जैसा जल तैल विंदुन्याय क्योंकि वह विषय और है यह और है उसमें क्षेत्रजसन्तान का विषयकहा है इसमें विवाहका विषयकहा है दूसरे यह बात कि वाग्दत्ता कन्याके संतान उत्पादन करना यह असंभव है और वाग्दत्ता का विवाह जोछोटेभाई से कहा तो इसकाकुछ आश्चर्य नहीं है क्योंकि वाग्दत्ता उस मरेहुये की पत्नी नहीं कहसक्ती है भला वाचासत्य होना यहतोबहुत छोटीबात इससे कुछ विवाह नहीं कहलासक्ताहै परन्तु ६५ केश्लोकमें उत्तरार्द्धमें सप्तपदीके छठे पद ताईभी वहकन्या किसी अन्यवरको देदेनीकही है जो पहलेकी अपेक्षा दूसरा श्रेष्ठ आजावे-इससे यह अनुकर्ष तो उसमें कोईप्रकारसे घटतानहीं है क्योंकि जो वाग्दत्ता कन्या देवरको विवाहीजातीहै वहउस देवरकीही भार्य्या औरउससे जो संतानहोतीहै सोभी उसी देवर की संतानकहातीहै मरेहुयेकी क्षेत्रजनहीं कहाती और वह देवर उसका देवर नहीं कहासक्ता क्योंकि उसमरेहुयेका भार्य्यात्व उसकन्यामें केवलनाममात्र उत्पन्नहुआ था कुछउसकी भार्य्यानहीं होगईथी (भेद२) यद्यपि ऊपरका लेख सबसत्य है और शास्त्रकीबिधि वहीहै जो याज्ञवल्क्यजीने कही परन्तु सिद्धांतउसका इतनाहै किवह बिधिलोक विरुद्धप्रत्यक्षहै इससे उसकाप्रचारनहींहै तथापि वहलोक बिरुद्धता सार्वलोकी और सार्वदेशी नहींहै किंतुअद्यापि किसीकिसी देश बिभागमें उत्कृष्टजातों और बहुधा शूद्रजातों में प्रचारभी पायाजाता है परजहांनिंद्य है तहां अनुचित है ६८ ॥

आगर्भसंभवाद्गच्छेत्पतितस्त्वन्यथाभवेत् । अनेनविधिनाजातःक्षेत्रजोस्यभवेत्सुतः ६९ ॥

भक्ष०—गर्भके संभवताईं से पीछे या अन्यथा गमनकरै तो पतितहोवे-इसबिधिसे भयासुत इसका क्षेत्रज होवै ६९ ॥

अभि०—ऊपरके अरसठके श्लोकमें कहीहुई बिधिसे जोपुत्रउत्पन्न होवे सो उसपति काक्षेत्रजपुत्र कहावे जिसकीवह भार्य्या है-परन्तु वहगमन करनेवाला देवरजो गर्भ होजाने पीछेभी गमनकरै या अन्यथा कहिये गुरुओंकी आज्ञाबिना याशरीरमें घृत कालेप कियेबिना या ऋतुकाल बिनातौ वह पतित कहिये पातकीहोवे ६९ ॥

अधि०—घृतकालेप इसलिये है कि परस्पर देहका सौख्यनहीं ब्यापै किंतुकेवल गर्भके प्रयोजन की आवश्यकता है ६९ ॥

हृताधिकारांमलिनांपिंडमात्रोपजीविनीम्। परिभूतामधःशय्यांवासयेद्व्यभिचारिणीम् ७० ॥

अक्ष०—व्यभिचारिणीको अधिकारसे हीनमलीन पिंडमात्र भोजनवती परिभूता नीचे शयनवाली करिके बासकरावे ७० ॥

अभि०—जोस्त्री ब्यभिचार करनेलगै उसको इसप्रकार से घरमें बासदेवे अधिकार से हीन अर्थात् जो घरकी मालकियत का अधिकार पालनपोषण देनालेना आदि स्त्रियोंके आधीन होताहै सोउसके आधीन न रक्खै-और मलीनाकहिये वस्त्रआभूषण आदिश्रृंगार सेभीहीन करदेवे-और पिंडमात्र कहियेशरीर और प्राणोंके बनेरहने योग्य साधारणभोजनदेवै-परिभूता कहिये धिक्कारआदिसे असत्कारकरीहुईधरतीमेंशयन करावै-इसप्रकारकीदशा सहितघर में राखै किंतुघरसे बाहरनहीं निकालदेवै ७० ॥

अधि०—यहदशा इसलिये है किजिससे ब्यभिचारसे वैराग्यहोजाय परन्तु इससे अधिककोईसी पीड़ाअथवा शरीर दंडनहीं देवै क्योंकि स्त्रियोंकेलिये बड़ेसेबड़े अपराधपरभी चाहै किसी अवसरमें घरसेबाहर विसर्जनभी करदेनापड़े परंतु देहदण्ड या प्राणदण्ड यह किसी अवस्थामें नहीं उचितहै-तथाहि (महताचापराधेनदंडःस्त्रीणांविसर्जनम्) सोइसकाविशेष आशयआगे ७२ के श्लोकमें कहेंगे ७० ॥

सोमःशौचंददावासां गंधर्वश्चशुभांगिरम्। पावकःसर्वमेध्यत्वंमेध्यावैयोपितोह्यतः ७१ ॥

अक्ष०—इन्होंको सोमतौ शौचदेताभया और गंधर्वशुभवाणी-अग्निसर्वमेध्यत्वदेता है इस्से स्त्रियाँ मेध्य हैं ७१ ॥

अभि०—स्त्रियोंको विवाहसे पहले कुमार अवस्थामें चंद्रमा गंधर्व अग्नि येतीनोंभोगतेहैं तहाँचंद्रमातौ शौचदेताहै इसीहेतुसे स्त्रियोंकेलिये अधिक शौचविधि पुरुषों के समान नहीं कहीहै-और गंधर्व इनकोभोगकरके मधुरवचनों का बोलनादेते हैं-अग्नि इनको सर्वमेध्यत्व कहिये पवित्रतादेताहै अर्थात् जिसवस्तुको ये छूवें वह इनके छूनेसे पवित्रहो इसकारणसे स्त्रियाँ सदाही पवित्र हैं ७१ ॥

व्यभिचारादृतौशुद्धिर्गर्भेत्यागोविधीयते। गर्भभर्तृवधादौचतथामहतिपातके ७२ ॥

अक्ष०—व्यभिचारसेऋतुमेंशुद्धि-गर्भमेंत्यागकहियेहै-गर्भ और भर्त्ताके वध आदि में भी-तैसेही महापातकमें ७२ ॥

अभि०—व्यभिचारकी संभावनाहोनेसे मासिक रजोदर्शनमें स्त्रियां शुद्धहोजाती हैं परंतु व्यभिचारसे गर्भहोजानेमें उनकात्यागकरदेना उचितहै और गर्भकावध कहिये गर्भपातन और अपने भर्त्ताका मारडालनाआदि अपराधों में भी त्याग-तैसेही महापातक ब्रह्महत्या आदि करनेवालीका भी त्याग कहते हैं ७२॥

अधि०—भर्त्ताकामारडालना आदि-इस(आदि)शब्दसे शिष्यआदि का गमनभीलेना सोई व्यासजीने कहाहै कि(चतस्त्रस्तुपरित्याज्याःशिष्यगागुरुगाचया।पतिघ्नीचविशेषणजुंगितोपगताचया)अर्थात् चारस्त्रियाँये भी त्यागकरने योग्य हैं एकतौ शिष्य कहिये नौकर चाकर आदि से गमनकरनेवाली दूसरी गुरु कहिये अपने बड़ोंसे गमन करनेवाली तीसरी विशेषकर पतिकाबधकरनेवाली जिसकाचर्चाऊपर आयाथा चौथी जुंगितोपगता अर्थात् जुंगितकाहिये प्रतिलोम जातें जो चमारआदि प्रसिद्धहैं तिनसे गमन करनेवाली ७२॥

अबयहबातकहते हैं कि पुरुषको दूसराबिवाह किस२ दशापरकरना चाहिये॥

सुरापीव्याधिताधूर्त्तावन्ध्यार्थघ्न्यप्रियंवदा। स्त्रीप्रसूश्चाधिवेत्तव्यापुरुषद्वेपिणीतथा ७३॥

अक्ष०—सुरापीनेवाली १ व्याधिमती २ धूर्ता ३ वंध्या ४ अर्थनाशिनी ५ अप्रियवचा ६ तथा स्त्री पैदाकरनेवालीभी ७ पुरुषबिरोधिनी ८ अधिवेत्तव्य हैं ७३॥

अभि०—ये आठस्त्रियाँ अधिवेदनयोग्य हैं अर्थात् ऐसी स्त्रियाँ जिसके घरमें हों वह पुरुष दूसराबिवाह निःसंदेहकरै इसदूसरे बिवाहकोही(अधिवेदन)कहतेहैं-आठों के स्पष्टलक्षण एकतौ जो मदिरापान करतीहो १ व्याधिता जो बड़ेप्रबलरोगोंसे ग्रसीहो २ धूर्ताजो छलकरतीहो ३ बांझ ४ अर्थघ्नी जोधन या बड़ेप्रयोजनों का नाशकरदेतीहो ५ अप्रियंवदा जो कटुकबचन शस्त्रकेसमान कहतीहो ६ बारंबारकन्या पैदा करतीहो ७ पतिसे बैरकरतीहो ८।७३॥

अधि०—इनलक्षणोंके कहनेसे यह सिद्धांतहै कि इनकहेहुये अवगुणों के अभावमें पुरुषको दूसरा बिवाहकरने का अधिकारनहीं है-और यद्यपि अवगुणोंके होनेपर उसको अधिकारतो यहाँतकहै कि जो इनमेंसे एकभी अवगुणहोतो द्वितीय भार्याका संग्रहकरसक्ताहै परंतु इसमें इतनी बिचार दृष्टि अधिकहै कि जो वहएक अवगुणउस पुरुषकी सत्पात्रताके अनुसार असह्यहो तो उसस्त्रीकी संमति बिनाभी अधिकारीहै अन्यथा जो वही अवगुण उसपुरुषमेंभीहो या उसकीप्रकृति और कुपात्रताके अनुसार असह्यहो तौ उसस्त्रीकी संमतिबिनाकरनेका अधिकारी नहीं है-इसके सिवाय कोईकोई अवगुण उनआठमेंसे ऐसाभीहै कि जिसकेहोनेपर सदाही उसअवगुणवतीकी प्रसन्नता या संमति लेलेनी उचितहै क्योंकि वह अवगुण सदैवही ईश्वरके आधीनहै उसमें कुछस्त्रीका अपराधनहींहै जैसा बहुत कन्याओंकाहोना इसमें जोस्त्री अपनी प्रसन्नतामें

अभिलाषा पूर्वकसंमति देदेवै कि तुम दूसरा(अधिवेदन)करौ तबकरनासुफलहै-अन्यथा जहाँकई अवगुण एकत्रहोजायँ तहाँकुछ प्रसन्नता या संमतिका नियम नहींहै-परंतु किसी अवगुणरूप कारणके बिनाही जब कोई पुरुष(अधिवेदन) करना चाहै तिसका निषेध और करनेवालेका दंडभी आगे ७६ केश्लोकमें कहैंगे ७३ ॥

अधिविन्नातुभर्त्तव्यामहदेनोऽन्यथाभवेत्। यत्रानुकूल्यंदंपत्योस्त्रिवर्गस्तत्रवर्द्धते ७४ ॥

अक्ष०—अधिविन्नाभी भरने योग्यहै अन्यथा महान् एनस्‌होवे-जहाँ दोनोंदंपत्यमें अनुकूलताहै तहाँ तीनोंवर्ग बढ़ैंहैं ७४ ॥

अभि०—(अधिविन्ना) पहलीभार्या कहातीहै कि जिसकेऊपर दूसरीसौत आईहोसो वह(अधिविन्ना)उसदूसरीके आवनेसे कुछ निरादर योग्य नहींहै किंच जैसे पहले उसका पालनपोषण होताथा तैसेही अबभी दानमान सत्कारोंसहित करनाउचितहै अन्यथा जो पहलेके समान नहीं करैतौ बड़ापापहोवे और उसीपापसे उसकुटुंबीकी सर्वथाहानि होतीहै-क्योंकि त्रिवर्ग जोधर्म १ अर्थ २ काम सौख्य और कामना ३ इनतीनोंका जो(वर्ग)कहिये समूह सोवह ऐसात्रिवर्ग नामका ऐश्वर्य उसीघरमेंहोताहै और बढ़ता है कि जिसघरमें स्त्रीपुरुष दोनोंमेंपरस्पर अनुकूलता अर्थात् प्रीतिभाव और आज्ञाकारित्व दोनोंका दोनोंओरसे होताहै ७४ ॥

अधि०—इस वार्त्ताकेमध्ये मनुजीनेभी अपने शास्त्रमें बड़ेउत्साहसे कहाहै सो उनके कहे तीनश्लोक हमलिखतेहैं-यथा(संतुष्टोभार्ययाभर्त्ताभर्त्रा भार्यातथैवच। यस्मिन्नेवकुलेनित्यंकल्याणंतत्रवैध्रुवम् ॥ यदिहिस्त्रीनरोचेत पुमांसंनप्रमोदयेत्। अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजननंन प्रवर्त्तते॥स्त्रियांतुरोच मानायां सर्वंतद्रोचतेकुलम्। तस्यान्त्वरोचमानायां सर्वमेव नरोचते)इनतीनोंका साधारण भावसे यहअर्थहै कि जिसकुलमें निरंतर भर्त्ता तौ निजभार्यासे संतुष्ट और भार्या अपनेभर्त्तासे संतुष्ट रहाकरतीहो तहाँ निश्चयकर कल्याणका निवासबनारहताहै-जोस्त्री वस्त्रआभूषण आदिसे अच्छीभाँति शोभितनहीं होतीहै वहस्वामीको प्रहर्षनहीं देसक्तीहै पुनि उसीअप्रमोदके हेतुसे पुरुषकी संतति नहींहोती और न बढ़तीहै-स्त्रीके आभूषण आदिसे शोभावती कांतिका प्रकाश घरमें होनेमे वह साराहीकुलप्रकाशित होताहै-पुनिउसी के चमत्कृत नहींहोने और निज भर्त्ताकी उपेक्षामें वहसाराही कुलमलीन होजाताहै-यह मुनीश्वरोंका सिद्धांत ऐसाठीक और यथार्थ मिलताहै जो सारे संसारपर भिन्न २ दृष्टिकरनेमे तद्रूपप्रतीत होजाताहै कि जहाँ वहबातहैतहाँ वहीफलहै और जहाँ वहदशाहै तहाँ वही तद्रूपहै ७४ ॥

मृतेजीवतिवापत्यौयानान्यमुपगच्छति। सेहकीर्तिमवाप्नोतिमोदतेचोमयासह ७५ ॥

अक्ष०—जोनारी पतिकेमरेपीछे और जीवतेहुयेभी अन्यपुरुषके समीप नहींजातीहै सो इसलोकमें सुकीर्त्तिको पावती और परलोकमें उमानाम भगवतीके साथक्रीड़ा

करतीहै-अथवा इसीलोकमें सुकीर्त्तिको पायकर उमानाम जो कीर्त्तिकहिये प्रशंसा और कांतिकहिये शोभा और शांतिकहिये क्षेमइन सबकेसाथ आनन्द करती है ७५ ॥

आज्ञासंपादिनींदक्षांवीरसूंप्रियवादिनीम्। त्यजन्दाप्यस्तृतीयांशमद्रव्योभरणंस्त्रियाः ७६ ॥

अक्ष०—आज्ञासाधिनी १ दक्षा २ वीरसू ३ प्रियवादिनी ४ ऐसीस्त्रीको त्यागताहुआ तिहाईदेने योग्यहै निर्धनभीस्त्रीका भरणमात्र ७६ ॥

आभि०—आज्ञाको तत्काल साधन करनेवाली १ दक्षाकहिये अतिचतुरा जो बुद्धिके विचार सहित कामकरै २ वीरसूपुत्रवाली ३ मधुरबोलनेवाली ४ इनचारों लक्षणवालीको छोड़कर जोकोई द्वितीयभार्याका संग्रह करलेवे तो उसके सारेधनमेंसे तिहाई दण्डराजा उसकीभार्याको दिलावे और जो वह निर्धनहोवे तौभी उसभार्याके पालन मात्रका अन्नबस्त्र दिलवायाजाय ७६ ॥ अबस्त्रियोंके धर्म्मकहते हैं ॥

स्त्रीभिर्भर्तृवचःकार्यमेषधर्मःपरःस्त्रियाः। आशुद्धेःसंप्रतीक्ष्योहिमहापातकदूषितः ७७ ॥

अक्ष०—स्त्रियोंकोभर्त्ताका कहाकरना यह परमधर्म स्त्रीका है जो भर्त्ता महापातक से दूषितहो तौ शुद्धिहुये पीछेसेप्रतीक्षा करिवेयोग्यहै-अर्थात् जैसीआधीनी उसकीपहले राखतीथी तैसीही प्रायश्चित्त आदिहोजाने अथवा अवधि बीतजाने पीछेभीकरै७७॥

अबशास्त्र विधिसे बिवाहकरनेका फलकहते हैं ॥

लोकानन्त्यंदिवःप्राप्तिःपुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः। यस्मात्तस्मात्स्त्रियःसेव्याःकर्तव्याश्चसुरक्षिताः ७८ ॥

अक्ष०—जिस्से लोकानन्त्य और दिवःप्राप्ति पुत्रपौत्र प्रपौत्रों करके है तिसहेतुसे स्त्रियांसेव्यहैं और सुरक्षित कर्तव्यहैं ७८ ॥

अभि०—जबस्त्रियोंमें यहबड़ाहेतु निश्चित हुआ कि उनकेहोनेसे दोबस्तुओं का लाभहोताहै एकतौ लोकमें (आनंत्य)अर्थात् पुत्र पोता परपोता आदिसे बंशकी स्थितिदूसरा (दिवःप्राप्ति)अर्थात् अग्निहोत्र आदि गार्हस्थ्य कर्मधर्मोंके प्रभावसे स्वर्गका मिलना तौ इसी कारणसेस्त्रियोंका बिवाहद्वारा संग्रह और भोगभी संतानकी अपेक्षा से करनाउचितहैऔर धर्मकीअपेक्षासे उनकीरखवालीभी अच्छीरीतिसेकर्तव्यहै ७८॥

अधि०—रखवाली का अधिकार यद्यपि यथायोग्य सबकोहोताहै परन्तु उसकी मुख्यता जो विशेषकर तीनमनुष्योंके ऊपर आरूढ़है तिनकाकाल नियम कहते हैं कि (पितारक्षतिकौमारेभर्त्तारक्षतियौवने। पुत्रस्तुस्थविरेभावेनस्त्रीस्वातंत्र्यमर्हति) अर्थात् कुमारअवस्थामें पितारक्षाकरताहै यौवन अवस्थामें पतिरक्षाकरताहै और वृद्धापनमें पुत्रोंको रक्षाका अधिकारहै क्योंकि स्त्री किसीभी अवस्थामें स्वतंत्रहोनेयोग्य नहीं है सोई इसमर्यादको आगे ८५ के श्लोकमें कहैंगे(प्रश्न)इसीश्लोकमें यहबातभी कहीगई कि स्त्रियोंका संग्रह और भोगभी अमुकामुक हेतुसे करना उचितहै फिर इसबातसे क्या सिद्धांत निकला क्योंकि यहबातसबकोईजानताहै कि स्त्रियोंकेसंग्रह और भोगसे

यहफलहोताहै फिर वृथातुषकंडन से क्याहाथआया (उत्तर) ठीकहै इसबार्त्तामें अपने अपनेफल और लाभको मूर्खसे मूर्खभी पहिंचानताहै-परन्तु इसअपार संसारमें एक यहबातबड़ी अद्भुतहै कि संगतिकाप्रभावहुये बिना नहींरहता और यद्यपिमजेहुये पक्के मनुष्यपरवह अपना असर बहुधानहीं करसक्तीहै तथापिउसकी यहतीव्रताहै कि एक प्रकारकेगेरूविगाड़ा निहंगलोगोंकी संगतिसेसहस्रोंघर ऊजड़होजातेहैं क्योंकिअपने अपनेपरिकर और समूहकी बढ़वारीसबकोई चाहताहै इसलिये वहलोग अतिशयभाव से गृहस्थीलोगोंके थोड़ीअवस्था के मनुष्योंको प्रपंच बार्त्ताकी प्रेरणापूर्वक बहकाकर अपनेमें मिलालेतेहैं किंतु अपना चेलाबनाकर ऐसे दूरदेशोंमेंलेजातेहैं कि जहांउन के पिताआदि पक्षीलोग पताभी नहींलगासक्ते हैं कि वह कहांगया दश २ पंद्रह २ वर्षोंतक रोतेहुये ढूंढ़ते फिरतेहैं जहां कहीं भूंठाभी पतासुनते हैं मोहके हेतुसे दशमं-ज़िलपरभी दौड़ेजातेहैं जबवहांसे किसीअन्यदेशकी खबरपातेहैं वहांभगेजातेहैं और माथापीट २ कर बूझते फिरतेहैं तौभी पतानहींलगता अथवा किसीका दोचार या दशपांच वर्षमें सच्चापताभी मिलगया और वह दुःखीपिता उसकेपासतक पहुंचभी गया तौ उसने उसे देखतेही सूखाउत्तरदिया कि जाओ यहांतुम्हाराकुछकामनहीं जि-तनावह समुझाताहै सारीबातें उसकीकाटदेताहै कि किसका पिता किसकीमाता किस कीस्त्री हमें तो इनसेकामहै औरयद्यपि वहकालेजाने वालाऊपरकी दिखावट के लिये उस्से प्रपंचरूपसे कहता है कि जाओ परन्तु उसने वर्षोंसे पहले सिखाकर पक्काकर दिया और उसकेचित्तकी वृत्ति अपनेमें फांसरक्खीहै इस्से यह बनावटकी आज्ञाभी उसदुखियाकी कामनाको पूरीनहींकरसक्ती-बहुतेरे ऐसेभीहैं कि मरेमें गिनतीहोचुके परन्तु बहुत वर्षोंपीछे किसीमंडलीके साथ या एकल्लेही देहकीचेष्टाको कुरूप किये और तोंबालेकर भीखमांगतेहुये उसीजन्मभूमिपर आटिके उनमें बहुतेरे तौ ऐसे हैं कि वहचाहतेहैं कि अबघरकेलोग हमको अपनेमेंमिलालें परन्तु वहघरवाले उसको भ्रष्टजानिकर पासनहीं खड़ाहोनेदेते-और बहुतेरोंको घरवालेभी यहबात चाहते और कहतेहैं कि यह अपनी दुखियास्त्रीके समीप बसै तौ अच्छीबातहै परन्तु वहउलटा और भूलेहुये दुःखको यादिकरा और मुँहफेरि चलेजाते हैं इसप्रकार से सहस्रों प्र-तिष्ठितलोगोंकी बहूवेटीअपना साराजन्म रो रोकर दुःखमें बितातीहैं कि जिनको वे विवाहिकर या गौनाहोनेसे पीछे तत्कालही छोड़कर चलेगये-बहुतेरे ऐसे भी होते हैं कि उसी अपने नगरके किसी भगमा वस्त्रवालेके फंदेमें फँसगये और घरको छोड़कर उनके पास रहने लगे और दिनरातगांजे या चरसकी चिलमें उनकी भरनेलगे और घरकेलोग जिन्होंने बड़ेदुःखोंसे पैदाकिया पाला ब्याहशादीमें धनलगाया वे अपने घरका कुतार और उसकी बाल वनिताका दुःख देखरकर मन्नापिन होतेहैं और वे

धूर्त उनके पुत्रसे उन्हीं के देखते हुये चेलापने से सेवाटहलैं करवाते हैं-बहुतेरेऐसे हैं कि अपने घरके घरही में रहते और घरमें करीकराई रोटी बिनकमाईकी खाते हैं और घरके लोगोंके कहने से घरकाकाम एकपत्ताभी उठाकर इधरसे उधर नहींधरते परन्तु बाबाजीकीचाकरीमें आठोंपहर तत्परबने रहते और बहुधाउनकी भाँग बूटी और चिलमोंमेंभी शामिल होजाते बल्कि जोहाथ लगजाताहै तौकुछ घरसे भी उठाकर बाबाजीकी भेटकरि आतेहैं और यद्यपि चाहें किसीसमय आनिकर घर हीमें पड़रहतेहैं परन्तु बाबाजीकी दीहुई शिक्षाके अनुसार अपनी विवाहितासे कभी दुखसुखकीबातभी नहींबूझते-और यद्यपि बाबाजी आपचाहें सो कुकर्मकरि आतेहों परन्तु नौसीखतरको यहीशिक्षा देतेहैं कि स्त्रीका प्रसंग मतकरना नहींतो सिद्धिहाथ नहींआवेगी-बहुतेरे इसप्रकारसे शिक्षादेतेहैं कि तेरेएकसंतान होचुकी अबयहस्त्रीतेरी माता तुल्यहोचुकी-ऐसी२ कुशिक्षाओंसे गृहस्थीका कच्चाबालक घरकेलोगोंके हाथसे जातारहताहै तभीउसकाघर ऊजड़सा होजाताहै-और बाबाजी बहुधाथोड़ी अवस्था के मनुष्यको इसलिये बहकातेहैं कि प्रथमतौ थोड़ीअवस्थाका मनुष्य सेवाटहलैंअच्छीतरह करसक्ताहै दूसरे जैसे कच्चीमट्टीको कुम्हारचाहै तैसा तोड़मोड़सक्ताहै तैसेही कच्चे बालकको जो कुछ समुझाया सिखलायाजाय सोसब उसकी समुझमें शीघ्रबैठ जाताहै इससे वहउनके ढबमेंशीघ्र आजाताहै-फिर क्योंरेप्रश्नकर्त्ता क्यातूनहींजानता है कि जबगृहस्थीके कच्चेबालकोंको छोटीसी अवस्थामें हितपूर्वक समुझाकर यहबात सिखलाई जायगीतौ पीछेवे क्योंकर किसीधूर्त्तके फंदेमें फँसजायँगे-या-क्योंकर अपनी पत्नीआदि घरकेलोगोंसे निर्मोही होजायँगे-क्योंकि जबधूर्तोंकी सिखाईहुई बातउनके कच्चेपनमें ऐसीपक्की जमजातीहै तौक्या उसकच्चेहृदयमें अपने पितामाताकी सिखाई हुई धर्मकीशिक्षा उनके हृदयमेंनहीं जमजायगी-फिर क्योंकर तूकहताहै कि इस ७८ केश्लोकमें कहीहुई(मर्याद) केवलवृथातुषकंडनहै-परन्तु कारणइसमें इतनाहै किकच्चा बालक पहले जिसके फंदेमें फँसजाताहै उसीकी शिक्षाउसके हृदयमेंजमजातीहै इसलिये गृहस्थीको यह उचितहै कि अपनेलड़कोंको किसी गेरू बिगाड़ाकी संगति में न जानेदे क्योंकि वे केवलगेरूही बिगाड़ानहीं होते किन्तुगृहस्थी के घर बिगाड़भी होतेहैं-हां-इतनीबात आवश्यकहै कि जो कुछ अपनी शक्ति अथवाश्रद्धामें बनिआवै सो अपना हाथ उठाकर ईश्वरहेतुसे उनकोदेघालै पर इससेऊपर उनकीकोईसी शिक्षाको अपनेभी कानमेंनलावै-क्योंकि उनकीकोईसी भी शिक्षाऐसे नहींहै कि जिसमें किसीको अपने आधीनकरलेनेका सिद्धांतनहींपायाजाय अर्थात् यद्यपि वे अपनेमुख से बहुधाकिसीको यह नहीं कहते कि तू हमारा चेलाहोजाय परन्तु नानाप्रकारकी बातोंकाजाल ऐसाफैलाते और दिखलाते और सुनातेहैं कि जिसको देखसुनकर एकबार

कैसाहीचतुर और बिद्वान्हो उसकाभी मन फिरजाताहै कि ये बाबाजीपूरेसिद्ध दिखाईदेतेहैं कदाचित् ऐसाबानक बनिआवे कि इनसिद्धजीकी संगतिमें सदैव आयाजाया करों या इनकोहीअपने स्थान परठहरालूं तौ नजानिये इनसेकोईसी सिद्धि मुझेमिल जाय जिससे मैं त्रिलोक विजयी होजाऊं या मेरी अमुक कामना पूरी होजाय-इसप्रकार जब उनकी संगतिकरनेलगताहै तब क्रम२से महीनों अथवा वर्षोंताईं उसको वहीपट्टीदियेजातेहैं जिससे सबको छोड़कर यह मेरेही आधीनहोजाय और मुखसे कहनेकी यहबातहै कि बहुतेरे मुखसेभी कहतेहैं कि तू चेलाहोजाय तौ तेरेकोपरमसिद्धि मिलैगी या जो मुखसे नहीं कहते वे अपनेचेलाओंसे या खुशामदीसाधकलोगोंसे कहलवातेहैं अर्थात् उसजालमेंसेकोईही बड़भागी ऐसाहोताहै कि जो संगतिकरनेपर भी फँसनेसे बचजाय नहीं तौ जो दरिद्रीहैं वेधनकेलिये सिद्धिचाहकर फँसतेहैं कोई शत्रुकी विजयमांगतेहैं जो धनवान्हैं वे धनकी वृद्धियाकोई केवल संतानकोई मंत्रकी सिद्धि या सोनेचांदीकी रसायनकावनाना आदि नानाप्रकारके लालच जो अपनेमें वे बताते या दिखलाते तिनकेहेतुसे उनके जालमें फँसे बिना नहींबचसक्के-इससे गृहस्थीको यह योग्यहै कि अपनीसंतानोंको उनकीसंगतिसे बचावें और छोटीसीअवस्थामें धर्म शास्त्रकी शिक्षाको सिखलाकरपहलेही पक्काकरदेवैं जिससे पीछे उनको कोईसा दुःखदायीरंगन लगनेपावे ७८॥

षोडशर्तुनिशाःस्त्रीणांतस्मिन्युग्मासुसंविशेत्। ब्रह्मचार्येवपर्वाण्याद्याश्चतस्रश्चवर्जयेत् ७९॥

अक्ष०-स्त्रियों का ऋतुकाल सोलहरात्रोंकातिसमें युग्माओंमें सम्यक् प्रवेश करें तौ ब्रह्मचारीहो किंच पर्वें और चार पहली भी बचावे ७९॥

जोबलंचक्षुरायुश्चैवप्रवर्धते) ३ इनतीनोंकायहअर्थहै कि-मनुष्य चाहैतैसाकामकी पीड़ासे ब्याकुल होकर प्रमत्तभी हो तथापि रजोदर्शनके दिनसेजो चाररातैंनिषिद्ध कहलातीहैं तिनमें स्त्रीसंगमकोनजावे और उसकेसमीपमें निजशय्याभीनहींबिछावेअर्थात् छूने और संभाषण आदिसेभी बचै १-क्योंकि उसरजस्वलानारी के समीपजानेसे ही उसकी अग्निसे पुरुषकी इतनीहानि होतीहैं एकतौ बुद्धिभ्रष्टहोतीहै-शरीरकातेज और उत्साहमाराजायहै-बलपराक्रमनष्टहोजाताहै-नेत्रोंकीदृष्टिमंद होजातीहै-क्रम २ से आयुभी क्षीण होतीजातीहै २-उसरजस्वलाको बचावतेहुये पुरुषकी प्रज्ञातेज बल दृष्टि आयुये सब दिनोंदिनबढ़ते हैं ३-इसलिये यह नियम उचितहैकि-ऋतुकालाभिगामीस्यात्स्वदारनिरतःसदा। पर्ववर्जंव्रजेच्चैनांतद्व्रतोरतिकाम्यया ४-अर्थात् संतानपैदा करनेकेमनोरथवाला पुरुष ऋतुकालके भीतर २ संगमकरै और सदाअपनी दारामेंही रतिरक्खै किन्तु परदारगामीनहो-अथवा जिसको संतानकी अपेक्षा नहींहै परन्तुवह अपनी दाराकीप्रीतिको उल्लंघननहीं करसक्ताहो तौ ऐसापुरुषकेवल भोगमात्रकीअपेक्षा से १६ दिनकेपीछेभी सुखसंगमकरै परन्तु यहनियम इसमेंभी है कि पर्वोंको बचावै४-ऋतुःस्वाभाविकःस्त्रीणांरात्रयःषोडशस्मृताः। चतुर्भिरतरैसार्द्धमहोभिःसद्विगर्हितैः ५ तासामाद्याश्चतस्रस्तुनिंदितैकादशीचया। त्रयोदशीचशेषास्तुप्रशस्तादशरात्रयः ६ अर्थात् स्त्रियोंकोस्वाभाविक ऋतुकालकी जो सोलहरात्रैंकही हैं सोउनचारदिवसोंकरके सहितहैं कि जो सत्पुरुषोंकरके विशेषानिंदितहैं ५-तिनसोलहमेंसे पहलीचाररात्रै और ग्यारहवीं तथा तेरहवीं रातिभी निंदितहै शेषदशरातैं शुद्धहैं६-युग्मासुपुत्राजायन्तेस्त्रियोऽयुग्मासुरात्रिषु। तस्माद्युग्मासुपुत्रार्थीसांविशेदार्त्तवेस्त्रियम् ७-पुमान्पुंसोऽधिकेशुक्रे स्त्रीभवत्याधिकेस्त्रियाः। समेऽपुमान्पुंस्त्रियोबाक्षीणेऽल्पेचाबिपर्ययः-८-अर्थात्उनअच्छी दशरातोंमें भी यहभेदहै कि समरातोंके संगममें पुत्रहोतेहैं विषमरातोंमें कन्याहोतीहैं तिसहेतुसे पुत्रकीकामनावाला ऋतुकालकेभीतर युग्मरातोंमें स्त्रीसंगमकरै और कन्या की कामनावाला अयुग्मरातोंमें परन्तु यहव्यवस्थास्त्रीपुरुष दोनोंकाबीर्यतुल्य होनेमें होसक्तीहै ७-अन्यथाजोवीर्यतुल्य नहींहो तौ विषमरातों के संगमसेभी पुत्रहोसक्ताहै उसअवस्थामें कि जबसंगमकेसमय पतिकाबीजअधिकहो और जो पुत्रनहो तौपुरुष के आकारवाली कन्या-ऐसेही समरातोंकेसंगमसेभी कन्याकीउत्पत्तिहोसक्तीहै कि जब संगमके समय स्त्रीका शोणित अधिकहो पतिकावीर्यथोड़ाहो और जो कन्या नहींहो तौ स्त्रीकेआकारवाला पुत्रहो-परन्तु जहांदोनोंकाही वीर्यथोड़ाहोकर तुल्यहोताहै तहां नपुंसक पैदाहोताहै-अथवाजहां दोनोंके बीजमें अधिकताहो और समबिषम रातोंका कुछफेर होजाय तहां कन्यापुत्र दोनोंपैदाहोते हैं-और जहांदोनोंकाही वीर्य क्षीण या अतिशयअल्परहजाताहै तहां गर्भकीसंभावनानहींरहतीहै ८-आगेजो परमेश्वरकरता

है सोहोताहै क्योंकि उसकीइच्छाका अभ्यंतरपाया जाना यह असंभवहै इसलिये कि परमेश्वरमें तीन शक्तिबड़ीविलक्षण होतीहैं अर्थात् वह प्रभुनहोनेवाली बातको करसक्ताहै १ और होनेवालीको तत्काल मेटसक्ताहै २ और अन्यथाहोनेवालीको किसी औरही प्रकारसे करसक्ताहै ३-तथाहि(कर्तुंअकर्तुंअन्यथाकर्तुंयःशक्यःसईश्वरः)अर्थात् करनेको न करनेको अन्यथा करदेनेकोसमर्थहो सोईश्वरहै-परन्तु तौभी मनुष्यकोउसकी इच्छाके भरोसे बैठारहना और उपायका न करना यहदुःखदायक हुआकरताहै-इसलिये जो कोई पुत्रकी कामनारखनेवालेहों और उन विषम रातोंमेंभी संगमकरना चाहैं तौ धातोंके बढ़ानेवाले उत्तम औषधों वा आहारोंसे अपने बीजको बढ़ावें और धातोंकेसुखानेवाली वस्तु रूक्ष अथवा थोड़ेभोजनआदिउपायोंसे स्त्रीकेवीर्यकोघटाकर संगमकरैं तौ भी पुत्रहोसक्ताहै सोइसकाभाव अबदेखोनीचे अस्सीकेश्लोकमें ७९ ॥

एवंगच्छन्स्त्रियंक्षामांमघांमूलंचवर्जयेत्। सुस्थइन्दौसकृत्पुत्रंलक्षण्यंजनयेत्पुमान् ८० ॥

प्रक्ष०—इसप्रकार सुस्थचंद्रमामें क्षामास्त्रीको गमनकरतेहुये मघामूलको भी वर्जितकरै तौ एकही बारमें लक्षण्यपुत्रको पुमान् जन्मावे ८० ॥

प्रभि०—ऊपर७९के श्लोकमें कहेहुये प्रकारसे रजकेसूखजानेपै क्षामास्त्रीका संगम करै क्षामाकहिये हीनवीर्यवाली सो वह क्षामता उसकी रजस्वलाके चारोंदिनतक यथोचित नियमोंसे होतीहै जो कदाचित् नियमोंसे भी न हो तौ जैसा अभी ऊपर अधिकोक्तिकेअंतमें कहचुकेहैं उनप्रकारोंसे क्षामताकरनीचाहिये पुत्रकीकामनासे और मघामूल दोनक्षत्रजो निषिद्धहैं इन्हें बचावे और वह संगम ऐसीलग्नमेंकरै कि जिसमें चंद्रमाग्यारहवें या त्रिकोण आदि शुभस्थानों में पड़ाहो आगे शुभयोग और पुंनक्षत्रहों ऐसी विधि सहित एकही रात्रिके संगमसे अच्छेलक्षणवाला बलवान् पुत्र पैदा होवे-परंतु ऐसापुत्र उसी पुरुषके होसक्ताहै कि जिसने बालापनसे तरुणाई पर्य्यंत अपने वीर्यका विध्वंस किसीहेतुसे न होने दियाहो ८० ॥

प्रधि०—पुत्रसेआगे संसारमें कोई वस्तुउत्तम नहींहै जिसकारणसे बड़ेप्रतापी और बलवान् शूरवीर भी कि जो संसारमें सबसे अपनी जयजीति चाहाकरतेहैं वेभी केवलपुत्रसे पराजय चाहाकरतेहैं अर्थात् सभीलोग यह अभिलाप कियाकरते हैं कि मेरा बेटा मुझसे भी सहस्रगुण ऊँचाहो-तथाच (नचपुत्रात्परंलोकेकिंचिदस्तियतःपुमान्। सर्वेभ्योजयमान्विच्छेत्पुत्रादेकात्पराजयः) ८० ॥

यथाकामीभवेद्वापिस्त्रीणांवरमनुस्मरन्। स्वदारनिरतश्चैवस्त्रियोरक्ष्यायतःस्मृताः ८१ ॥

प्रक्ष०—या स्त्रियोंके वरको यादिकरताहुआ यथाकामीभीहो किंच स्वदार निरतहो जिस्से स्त्रियां रक्षा योग्यकही हैं ८१ ॥

प्रभि०—स्त्रियोंके वरका यादिकरना यहकिजो किसीसमय इन्द्रने वरदान कियाथा

किजो पुरुष तुम्हारी काम अभिलाषाको उलाँघेगा सोपातकी होवेगा-इसलियेजो पुरुष इसबरके प्रतिपालके हेतुसे यथाकामी होनाचाहे अर्थात् निजभार्याकी अभिलाषका विध्वंसनकरनाचाहे-या-आपही ऋतुकालके पीछेभी संगमकी कामना रखनेवाला होतो वह ऋतुके १६ दिवसके पीछेभी अपनी इच्छाके अनुरूप सुख संगमकरै परंतु यह प्रतिज्ञाहै कि अपनी दारामेंही प्रीतिरखकर परदारासे बचतारहे क्योंकि जिसलिये ७८ के श्लोकमें स्त्रियोंकी रक्षाकरनी कहचुके हैं-सो वह रक्षारखवाली इसीरीतिसे होसक्तीहै कि पुरुष आप यथाकामी होकर परदारा गमनको बचावे ८१ ॥

अधि०-स्त्रियोंकी बिशेष रक्षाकी अपेक्षासेमनु ऋषिभी कहते हैं कि-निंद्यास्वष्टासुचान्यासुस्त्रियोरात्रिषुवर्जयन् । ब्रह्मचार्येवभवतियत्रतत्राश्रमेवसन् - अर्थात्-ऋतुकालकीपहलीचार और पर्वै चार इनआठ निंदित रातोंमें और इनके सिवाय ग्यारहवीं तेरहवींमें भी याजो कोई औरभी निंदितहोतीहों तिनमें स्त्री संगमको बचातेहुये पुरुषचाहे तहाँ बसताहुआ भी स्त्रीसंगम करनेसे ब्रह्मचारीही बनारहताहै-और चाहै तहाँ बसताहुआ इसकहनेसे यह निश्चितहुआ किजो मनुष्य अपने ब्रह्मचर्यकी रक्षा बनीरखनाचाहै वह चाहैतहाँ बिदेशमें जानेपरभी भार्या अपनेसाथ लेजावेतो उसका ब्रह्मचर्य रहसक्ताहै और स्त्री रक्षाभी यथोचित गिनतीमें आसक्तीहै-और यद्यपि यह(सहगामित्व)कुछदश पाँचदिनकी साधारण यात्राके लिये परिनियमित नहींहै परंतु इसनियमका होना दोनोंकेहीलिये फलदायकहै इसीहेतुसे श्रीमहाराणी सीताजी और द्रौपदीआदि सत्कुलकी स्त्रियोंने महानिर्जनवनमें भी जानेपर अपने २ पतियोंका पीछानहींछोड़ा था-और पहले ऋषीश्वरलोग तो सदैवही अपनी भार्याको कोशमात्र कीयात्रामें भी साथलेजाते थे क्योंकि वह तपोबरिष्ट ऋषिलोग बालहत्यासे बहुत डराकरतेथे सोई यहश्लोककहाहै कि-सुस्नातायाश्चभार्यायाःसन्निधिंयोधिगच्छति।पुरुषोबालहत्यायाः पापंप्राप्नोत्यसंशयम्-अर्थात्-जोकोई पुरुष मासिकऋतुसे स्नानकरी हुई भार्य्याके समीप नहींजाता है वह निस्संदेह बालहत्याके पापको पहुंचताहै ८१ ॥

भर्तृभ्रातृपितृज्ञातिश्वश्रूश्वशुरदेवरैः। बंधुभिश्चस्त्रियःपूज्याभूषणाच्छादनाशनैः ८२ ॥

अक्ष०-भर्त्ता भ्राता पिताजाति के लोग सासु ससुर देवर बंधुजन इनसबोंकरके स्त्रियां आभूषण बस्त्र भोजन पुष्प सुगंधिआदि से सत्कारके योग्य हैं ८२ ॥ इसका बिशेषभाव ५५ के श्लोककी अधिकोक्तिमेंकह चुकेहैं ॥

संयतोपस्करादक्षाहृष्टाव्ययपराङ्मुखी। कुर्यात्श्वशुरयोःपादबंधनंभर्तृतत्परा ८३ ॥

अक्ष०-अभि०-संयतोपस्करा अर्थात् घरकीसूप चालनीआदि सामग्रीसब जहांकी तहां ठौरठीकराखनेवाली-दक्षाकहिये अतिचतुराघरके कामोंमें-हृष्टाकहिये प्रसन्नमुखी-व्ययपराङ्मुखी अर्थात् खर्चसेमुँह फेरेहुये रहनेवाली किंतुसबकामकरे परन्तुखर्चकी

वार्त्तामें घरकेबड़ोंके आधीनरहे इसप्रकार अपनी मर्यादोंको बाँधेहुये भर्त्तामें तत्पर वनी रहकर सासु और ससुरकी पादवंदना करतीरहै ८३॥

क्रीडांशरीरसंस्कारंसमाजोत्सवदर्शनम्। हास्यंपरगृहेयानंत्यजेत्प्रोषितभर्तृका ८४॥

अक्ष०- क्रीड़ाको शरीरके संस्कारोंको समाज और उत्सवके देखनेको हासबिलासको पराये घरजाने को प्रोषितभर्तृका छोड़दे ८४॥

अभि०-दैवयोगसे जिसकिसी स्त्रीकापति बिदेशमें निवासकरै वह इतनीबातों को न करै एकतौक्रीड़ा चौपड़ शतरंजगेंद आदि-शरीरके संस्कार उबटना शिरगूँधनाआदि-समाजमेला आदिका देखना-उत्सव किसीके बिवाहआदि में तमाशा का देखना-हँसी पराये घरकाजाना ८४॥

रक्षेत्कन्यांपिताविन्नांपतिःपुत्रास्तुवार्धके। अभावेज्ञातयस्तेपांनस्वातंत्र्यंक्वचित्स्त्रियाः ८५॥

अक्ष०- कन्याके विवाहसे पहलेपिता रखवालीकरै-पीछेबिन्ना जो बिवाहिताहै तिस की रक्षाभर्त्ताकरै-भर्त्ताके अभाव और वृद्धापनमें पुत्ररखवालीकरैं-इनतीनोंके नहोनेमें इन्हींतीनोंके जातीलोग रक्षाकरैं-स्त्रीको स्वतंत्रता कभीनहीहै ८५॥

पितृमातृसुतभ्रातृश्वश्रूश्वशुरमातुलैः। हीनानस्याद्विनाभर्त्रागर्हणीयाऽन्यथाभवेत् ८६॥

अक्ष०-पिता माता पुत्र भ्राता सासुससुर मामा इन्होंकरके रहितनहोवे विनाभर्त्ता के अन्यथा निंदाहोतीहै-अर्थात् जिसका भर्त्ता नहींहो वह भर्त्तासेहीनस्त्री पिता आदि से रहित अर्थात् जुदीनहोवे किंतु उनकेवशमें वनीरहै क्योंकि इससे विपरीततामेंनिंदित हुआ करतीहै ८६॥

पतिप्रियहितेयुक्तास्वाचाराविजितेंद्रिया। सेहकीर्त्तिमवाप्नोतिप्रेत्यचानुत्तमांगतिम् ८७॥

अक्ष०-पतिके प्रियकार्यमें और हितकार्यमें लगीहुई श्रेष्ठ आचरणवाली विशेष कर इन्द्रियोंको जीतकर वशमें रखनेवाली सोवहस्त्रीइससंसारमें सुकीर्त्तिको और परलोकमें अतिउत्तम गतिको पावतीहै ८७॥ अबनीचेके श्लोकमें ऐसेपुरुषका धर्म्म कहतेहैं कि जिसके कईभार्याहों॥

सत्यामन्यांसवर्णायांधर्मकार्यंनकारयेत्। सवर्णासुविधौधर्म्येज्येष्ठयानविनेतरा ८८॥

अक्ष०-सवर्णास्त्रीकेहोतेहुये असवर्णासे धर्मसंबंधी कामनहीकरावे जिसके सवर्णा ही कईस्त्रियांहोंतो ज्येष्ठाकोछोड़कर औरोंको धर्मकार्यमें नहींलगावे॥ ८८॥ अब उसका धर्मकहतेहैं कि जिसकीभार्या शांतहोगईहो॥

दाहयित्वाग्निहोत्रेणस्त्रियंवृत्तवतींपतिः। आहरेद्विधिवद्दारानग्नींश्चैवाविलंबयन् ८९॥

अक्ष०-वृत्तवती स्त्रीको अग्निहोत्रसे दाहकरके पतिविलंब न करताहुआ विधिवत्दाराओं और अग्नीनूकोभी आहरणकरै ८९॥

अभि०-पहले कईश्लोकोंमें वर्णन करीहुई शुभआचरणवाली स्त्री मरीहुईको उस-

का पति अग्निहोत्र नामश्रौत अग्निसे जो श्रुतिवेदमंत्रोंसे सदाघरमें स्थापित रहा करतीहै उसीको गार्हपत्य अग्निभी कहतेहैं तिससे दाहकरै-अथवा जिसकेघरमें इस वेदोक्त अग्निहोत्रकी स्थापना नहींहो तौ वहस्मार्त्त अग्निसे दाहकरै स्मार्त्तअग्निके लक्षण समुभाचाहोतौ आगेबढ़कर ६७ केश्लोकमें देखौउस अग्निसे या इससेदाह कियेपीछे शीघ्रही बर्षमात्रके अंतरसे वहपति फिर विवाहकी विधिसे स्त्रीका आहरण किंतु आकर्षणकरै-आहरण या आकर्षण कहनेका यह अभिप्रायहै कि इसद्वितीय स्त्री संग्रहको परिश्रम और उपाय पूर्वकभी करै क्योंकि द्विजातीमात्रकोइस्से उपेक्षाकरनी अनुचितहै परन्तु उसके लिये कि जिसके उस मृताभार्य्याके सिवाय द्वितीया नहींहो और संतान भी नहींहो या संतानके होनेपर भी जिसकी मनोवृत्ति विषयबासना से विकृतहोसक्तीहो या जिसको यज्ञादि कर्मकरनेकी कामना शेषहो सोतत्काल आहरण करै और अग्नीनूका भी आहरणकरै अर्थात् अग्निकी स्थापना गृहस्थीमें भार्या के बिना असंभवहै क्योंकि जिसअग्निको साक्षीभूत करके विवाहकियाजाता है वहीअ-ग्निगृहस्थीके घरमें स्थापित करीजातीहै और निरंतर उसकी रक्षाकरीजातीहै उसीसे प्रतिदिन के अग्निहोत्र हवनपाकयज्ञ बैश्वदेव आदिसब होतेहैं फिर वही अग्निउस बिवाहिताके मरनेपर उसकेदाहके साथ विसर्जन होजातीहै-अब ऐसाघरपृथ्वीपर क-दाचित् कहींढूँढ़नेसे मिलसक्ताहो ८९॥ इतिविवाहप्रकरणम्॥

द्विजातीलोगों के गर्भाधानसेलेकर विवाहताईं दशोंकर्मोंका विधान पूराहोचुका परंतु दशवांकर्म जो विवाहथा तिसमें कईप्रकारकी भार्याकहीथीं उनसे जोसंतानें उ-त्पन्नहोवेंगी तिनका जातिभेद अबनीचेकहते हैं कि किसभार्याकीसंतान कौनजातिमें गिनीजाती है॥

सवर्णेभ्यःसवर्णासुजायंतेहिसजातयः। अनिंद्येषुविवाहेषुपुत्राःसंतानवर्द्धनाः ९०॥

अक्ष०—सवर्णपुरुषोंसे सवर्णाभार्याओंमें सजातीपैदाहोते हैं किंच अनिंद्यविवाहों में बंशकेबढ़ानेवाले पुत्रहोते हैं ९०॥

आभि०—चारोंवर्णोंके भिन्न२ पुरुष और अपने२वर्णकी विवाहिताभार्याओंमें जो संतानैंपैदाकरतेहैं वेसंतानें उनकीसजातीहोती हैं अर्थात् जो जाति मातापितादोनो कीहो उसीजातिके वे पुत्रकहाते हैं-परंतु इतनाबिशेष इसमें और है कि सवर्णा विवा-हिताभी आठप्रकारके विवाहोंकेअनुकूल आठप्रकारकीहोती हैं इसीलिये कहतेहैं कि उनमें पहले चारविवाहजो अनिंद्यहैं जिनका चर्चा ५८।५९ के श्लोकोंमें आचुकाहै उन विवाहोंकी सवर्णाभार्याओंमें संतानकेबढ़ानेवालेपुत्र अर्थात् बंशकोउज्ज्वलतासे प्रसिद्धकरनेवाले होतेहैं-और पिछले चारप्रकारकेबिवाह जो निंदाकेयोग्यहैं जिनका चर्चा ६०।६१ के श्लोकोंमेंआयाहै उनबिवाहोंकी सबर्णाभार्याओंकीभीसंतानें बंशको

मलीनकरनेवाली होती हैं ९० ॥ यह तो ठीक२ वर्णोंकी उत्पत्ति कहीगई-अबनीचे-अनुलोमजातोंकी उत्पत्तिकहते हैं ॥

विप्रान्मूर्द्धावसिक्तोहिक्षत्रियायांविशःस्त्रियां। अंबष्ठःशूद्र्यांनिषादोजातःपारसवोपिवा ९१ ॥

अक्ष०-ब्राह्मणसे क्षत्राणीमें (मूर्द्धावसिक्त) होताहै-वैश्यानी में (अंबष्ट) शूद्रिनी में उत्पन्न भयो (निषाद) या (पारसव) कहाताहै ९१ ॥

अभि०-ब्राह्मणसेबिवाहिता क्षत्रियकन्याकेउदरमें जोपुत्रहोताहै वह मूर्धावसिक्त क्षत्रीजाति कहाताहै-ब्राह्मणसे बिवाहिता वैश्यकन्याके उदरमें जो संतानहोती है वह (अंबष्टवैश्य)जातिकहलातीहै-ब्राह्मणसेबिवाहिता शूद्रकन्याकेउदरमें जो संतानहोतीहै वह (निषादनामशूद्र) जातिहोती है-देशकेबिकल्पसे अथवा कालके बिकल्पसे उसीको (पारसवनाम) शूद्र भी कहते हैं ९१ ॥

आधि०-यद्यपि क्षेत्रजसंतानकीउत्पत्ति जिसकीबिधि ६८।६९ के दोश्लोकोंमें कही थी उसकाजातिभावभी माताकीजातिकेसमान निश्चितहै इसमें यहतर्कवादहै किजब यहाँपर कहीहुई बिवाहितास्त्रियोंकीसंतानें माताकेसमानजातिवाली निश्चितहोनेपर भी मूर्धावसिक्तआदि कलंकरूप बिशेषणवाली कहलाईं तो उसक्षेत्रजसंतानमें भी कोईसाकलंक विशेषणहोनाचाहियेथा-तहाँयहहेतुहै कि वहबात निंद्यबिवाहोंमेंगिनती नहींहोसक्तीहै क्योंकि वह विवाहकाप्रसंगहीनहीं है अर्थात् वह केवल शास्त्रसंमतसे नियोग बिधिपूर्वकशिष्टसमाचारकहाहै फिरउसमेंकलंक या किंतुलगानेका क्याअवसरहै-और उसकीमाताकेसमान जातिकहना यहभी एकबुद्धिभ्रमहै क्योंकि माताके समान जातिकहना उसअवस्थामें होसक्ताहै कि जहाँ माताअन्यजाति पिताअन्य जातिकाहो- उसकागर्भाधान स्वर्यात्पुरुषके अथवा जीवत्पुरुषके कनिष्ठभ्राता या सपिंडभ्राता या सगोत्रभ्रातासे कहाहै सो ये तीनों उसीस्वर्यात् या जीवत्पुरुषकी जातिसे दूसरीजातिनहींहैं क्योंकि जो भाईकीजाति सो उसकीजातिहै उसकीवह भार्याथी इनकीभाभीहै फिर उसकीसंतानमें माताकीजातिकहना परमअसंभवहै क्योंकि हसंतानक्षेत्रज उसीपुरुषकाकहाताहै और उसीका दायभाग भी पाताहै कि जिस रेहुये या जीवत्पुरुषकी भार्यामेंगर्भाधानहुआ इसहेतुसे जिसका वहक्षेत्रजकहलाया और जिसकादायभागभीपाया उसीकेलभतुल्य उसकीजातिभी प्रत्यक्षभावसेनिश्चित है फिर उसकीजातिमेंकलंक अथवा किंतुलगासकनेका क्याअवसरहै-कदाचित उसको (गोलक)या(कुण्ड)कहनाचाहो सो यहबातबडीदूरहै क्योंकि (गोलक)संतान वहीकहलाती है कि मुख्यपिताकेमरेपीछे जारपुरुषकेवीर्यसे पैदाहो-ऐसेही (कुण्ड) वहीकहलातीहै जो मुख्यपिताकेजीवतेहुये जारपुरुषके वीर्यसेपैदाहो और फिर जारपुरुषकी जातिकाभी नियम सर्वत्रनहींहोसक्ताहै कि वहकौनजातिथा याहै इनहेतुने (गोलक) और (कुण्ड)

इनदोनोंकाजन्म जारपुरुष और ब्यभिचारिणीस्त्रीसे होताहै यह निषेधका प्रसंगहै और वह विधिकाप्रसंगहै इसका उसबातसे किंचित्‌भी संसर्गनहीं है-यद्यपि वहक्षेत्रजसंतानकीमर्यादा सर्वदेशब्यापिनी या सर्वलोकब्यापिनी या सर्वजातिब्यापिनी या सर्वकालब्यापिनी नहींदेखपड़तीहै और यद्यपि इसशास्त्रमें केवल देवरोंकेनियोगसे क्षेत्रज संतानका जन्मकहाहै परंतु अन्यशास्त्रोंकेसंमतसे देवरोंकेअभावमें पुरोहित आचार्य ऋषि ब्रह्मचारी आदिसेभी बीजलेनाकहाहै जैसे धृतराष्ट्र पांडु बिदुर येतीनों भाई बेदब्यासजीके नियोगसे चित्रांगद और विचित्रवीर्य राजाकेक्षेत्रजसंतान और क्षत्रीजाति बड़ेप्रतापीप्रसिद्धहैं-अद्यापिबर्त्तमानमें किसी २ देशबिभागके त्रैवर्णिकमें यहाँतक प्रवृत्तिदेखीसुनीजातीहै कि भानजेकाभी बीजलियाजाता है और उनकी वे संतानें मुख्यपितामाताकी जातिमें उसीसमान गिनतीमें रहतीहैं कि जानो अपने मुख्यपिताकेवीर्यसे जन्मपायाहो और कोईप्रकारकाकलंक या किंतु लोकदृष्टिसेभी उनमें नहींलगता क्योंकि वेलोग इसवार्त्तामें केवलशास्त्रविधिपर आरूढ़हैं ९१॥

वैश्याशूद्र्योस्तुराजन्यान्माहिष्योग्रौसुतौस्मृतौ । वैश्यात्तुकरणःशूद्र्यांविन्नास्वेषविधिःस्मृतः ९२॥

अक्ष०—वैश्यानी शूद्रिनी दोनोंमें राजन्यजातिसे माहिष्य उग्रदोनोंसुतकहेहैं-वैश्य पुरुषसे शूद्रिनीमें करण होताहै यह विधिविवाहिताओंमें कहीहै ९२॥

आभि०—बिवाहिता बैश्यकन्याके उदरमें क्षत्रीपतिसे माहिष्यनाम जातिका वैश्य पुत्रहोताहै-बिवाहिता शूद्रकन्याके उदरमें क्षत्रीपतिसे उग्रनामजातिका शूद्रपुत्रहोता है-बिवाहिता शूद्रकन्याके उदरमें बैश्यपतिसे करणनामजातिका शूद्रपुत्रहोताहै-यह विधि जो ९०।९१।९२ इन तीनश्लोकोंमें कहीगई सो सब विवाहितास्त्रियोंकी कहीहै अविवाहिताका कुछनियम नहींहै ९२ यहाँतक तीनश्लोकोंमें वर्ण और अनुलोम जातोंकीब्यवस्था कहचुके-अबनीचे प्रतिलोमजातोंका बृत्तांतकहतेहैं-अनुलोम तो उसेकहतेहैं कि जो उत्तमजातिकावीर्य हीनजातिकेक्षेत्रमेंपड़े सो ऊपरकहचुके-और प्रतिलोम उसकोकहतेहैं कि जो हीनवर्णकाबीज उत्तमजातिकेक्षेत्रमें बोयाजाय सो यह प्रतिलोमकहिये उलटाजन्म जैसा नीचेकहते हैं॥

ब्राह्मण्यांक्षत्रियात्सूतोवैश्याद्वैदेहिकस्तथा । शूद्राज्जातस्तुचांडालःसर्वधर्मबहिष्कृतः ९३॥

अक्ष०—ब्राह्मणीमें क्षत्रीसे सूत और वैश्यसे वैदेहिक तथा शूद्रसेउत्पन्नभया चांडाल जो सर्वधर्मोंसे बाहरकियाहै ९३॥

आभि०—यह प्रतिलोमजातिकाजन्म बिवाहितामेंनहींहै क्योंकि जहाँ ५७के श्लोक में बिवाहोंकाअनुक्रम कहाथा तहाँ प्रतिलोमबिवाह नहीं कहेहैं-इस्से यह निश्चित हुआ कि विनाबिवाहिता घेरीहुई ब्यभिचारिणीब्राह्मणीमें क्षत्रीजातिकेपुरुषसे जो पुत्रहो वह (सूतजाति) कहलावै-याऐसीब्राह्मणीमें वैश्यजातिसे पुत्रहो वह (वैदेहिक) जा-

ति कहलावै-या ऐसीब्राह्मणीमें शूद्रसेजोपुत्रहो वह(चांडाल) मेंगिनाजाताहै और सब धर्मकर्मोंसे पतितहोताहै अर्थात् वह शूद्रकीभीजातिमें गिनतीनहीं है ६३ ॥

क्षत्रियामागधंवैश्याच्छूद्रात्क्षत्तारमेवच । शूद्रादायोगवंवैश्याजनयामासवैसुतम् ९४

एकार्थः—क्षत्राणीस्त्री वैश्यपुरुषसे (मागधनाम)जातिकापुत्र-औरशूद्रसे (क्षत्तारनाम) जातिकापुत्र-और शूद्रसे वैश्यानीस्त्री (आयोगव)नामजातिकापुत्र पैदाकरतीभई-यहदो श्लोकोंमेंकहेहुये सूतबैदेहिक चांडाल मागधक्षत्ता (आयागेव) छःजातें प्रतिलोमजहोती हैं इनकी जीविकावृत्ती पूर्बसमयके अनुसार विशेषकर औशनस्नाम शास्त्र और मनुशास्त्रमेंभी शिल्पकर्म्मों के द्वारा कहीहैं सोई उनजातोंके मनुष्य अबतकभी उन्हीं कामोंको अपनी२ जातिके अनुसार करते चलेआते हैं ९४ ॥ अब संकीर्ण संकरसे जात्यंतर कहतेहैं अर्थात् फिर उनजातोंसे जो जातें बढ़ींतिनका व्योरायद्यपि विस्तार होनेसे अपार सागरहै परन्तु संक्षेप करके थोड़ासा निदर्शन मात्र नीचे कहते हैं ॥

माहिष्येणकरण्यांतुरथकारःप्रजायते । असत्संतस्तुविज्ञेयाःप्रतिलोमानुलोमजाः ९५ ॥

अक्ष०—माहिष्य जातिके पुरुषसे करणी जातिकी स्त्रीमें (रथकार) पैदा होताहै-अ-सत् और सत्भी समुझने चाहिये जो प्रतिलोम और अनुलोमसे पैदाहुये ९५ ॥

अभि०—(दृष्टांत) जैसे क्षत्रीने वैश्यानीमें माहिष्य जातिका पुत्र पैदा कियाथा और वैश्यने शूद्रिनीमें करणीजातिकी कन्या पैदा करी तिस करणी स्त्रीमें उस माहिष्य पु-रुषने जो संतान पैदाकरी उसकी (रथकार) नाम जातिहुई इसकाभी यज्ञोपवीत आदि सब संस्कार करना चाहिये क्योंकि (शंख) जी कहते हैं कि क्षत्री और वैश्यके अनुलो-म वंशसे जो रथकार पैदा होताहै तिसको पूजा दान उपनयन आदि संस्कार क्रिया और शालोत्तरी आदि घोड़ा की विद्यारथका हांकना और स्थानोंकी रचना आदि राज मिस्त्रियोंकी विद्यापढ़ना और इन्हीं कामोंसे जीविका करनेका अधिकारहै-इसी दृष्टांतके अनुसार ब्राह्मण क्षत्रीसे उत्पन्न भया जो (मूर्द्धावसिक्त) और क्षत्री वैश्यसे उ-त्पन्नभया जो(माहिष्य)इनके अनुलोम संकरसे जो जात्यन्तरपैदाहोवे उसकोभी द्विजा-तित्व लक्षणसे सब संस्कारोंका अधिकार समुझना चाहिये इसीप्रकार जो नानानाम की जातें होती हैं तिनके विशेषभेद और नाम अन्य स्मृतियों में पायेजाते हैंइनसवों में जो२ अनुलोम जातों और अनुलोम मार्गोंसे पैदाहुई हों उनको अच्छी समुझनी चाहिये और जो२प्रतिलोम कहिये उलटीजातों और उलटेमार्गोंसे पैदाहुई हों उन्हें उनसे हीनसमुझनी चाहिये ९५ ॥ यह तो जातोंकी हीनता कहीगई अब इन्हीं जातों की उत्कर्षा कहते हैं कि कौन२सी जाति किस२ प्रकारसे और कितने२ कालके अंतर से फिर अपने मुख्य वर्णमें शुद्धहोकर मिलजाती है ॥

जात्युत्कर्षोयुगेज्ञेयःपंचमेसप्तमेपिवा । व्यत्ययेकर्मणांसाम्यंपूर्ववच्चाधरोत्तरम् ९६ ॥

भक्ष०—जातिका उत्कर्ष युगपांचवें वा सातवें जानिये-कर्मोंके व्यत्ययमें भी समता और पूर्ववत् (अधरों) वा (उत्तरों) का न्यूनाधिक भाव जानिये ९६ ॥

भाभि०—जातें जो मूर्द्धावसिक्त आदि चारोंवर्णोंसे उत्पन्न भईथीं तिनका उत्कर्ष कहिये उत्तमता अर्थात् ब्राह्मणआदि वर्णोंकेसमान होजाना सो पांचवें या सातवें युगमें कहिये जन्ममें और (आप) शब्दके विकल्पसे छठाजन्मभी गिनतीमें लेना सो इसकी व्यवस्था इसप्रकारसे लगाई जाती है कि जैसे पूर्वोक्त श्लोकोंके अनुसार ब्राह्मणके वीजसे शूद्राके गर्भमें निषादी जातिकी कन्या पैदाहुई थी सो वह कन्या ब्राह्मण कोही विवाही गई और उस्से फिर कन्याभई तौ यह दूसरा जन्म हुआ या इसीको दूसरा युगकहो सो यह दूसरी कन्याभी किसी ब्राह्मणको विवाही गई फिर उस्से जो तीसरे जन्मकी कन्याहुई सोभी किसी ब्राह्मणको विवाही अर्थात् इसीप्रकार निरन्तर जोकन्या होतीगई सो ब्राह्मण कोही विवाहीगई तौ छठेजन्मकी कन्या जो संतान पैदाकरैगी सो वह सातवें जन्मकी संतान ठीकर ब्राह्मणवर्णकी पदवीको पहुँचैगी अर्थात् ब्राह्मणवर्णकी गिनतीमें आकर ब्राह्मणोंमें मिलजावेगी परन्तु जो बीचमें कुछ अन्तर पड़कर किसी और जातिको विवाही जाय या और जातिसे पैदाहो तौ यह उत्कर्ष नहीं हो सक्ताहै-ऐसेही ब्राह्मणके वीजसे वैश्यानीके गर्भमें अंबष्ठाजाति कन्या हुईथी वह भी इसीक्रमसे पांचवेंजन्मकी कन्या छठेजन्म की संतानको ब्राह्मण बर्ण पैदाकरैगी-ऐसेही ब्राह्मणके बीजसे क्षत्राणीके गर्भमें मूर्द्धावसिक्ताजाति कन्याहुई थी वहभीइसीक्रमसे चौथेजन्मकी कन्या पांचवेंजन्मकीसंतानको ब्राह्मणबर्ण पैदाकरैगी-ऐसेही क्षत्रियके बीजसेशूद्रा के गर्भमें उग्राजाति कन्याहुईथी वहभी इसीक्रम से क्षत्रियको विवाहीजाकर छठेजन्मकी संतानको ठीकर क्षत्रियबर्ण पैदाकरैगी-ऐसेही क्षत्रियके बीजसे बैश्यानी के गर्भमें माहिष्या जातिकन्या हुईथी वहभी इसीक्रम से क्षत्रियको विवाही जाकर पांचवेंजन्मकी संतानकोठीकरक्षत्रियबर्ण पैदाकरैगी-ऐसेही बैश्यके बीजसे शूद्राकेगर्भ में करणीजाति कन्याहुईथी वहभी इसीक्रमसे बैश्यको विवाहीजाकर पांचवेंजन्मकी संतानको ठीकर बैश्यबर्ण पैदाकरैगी-ऐसेही और भी सर्वत्र अपनी वुद्धिसे बिचारकर समझलेना-यहांतक आधेश्लोकका अर्थ पूराहुआ अब पिछले अर्द्धाका अर्थ कहतेहैं कि-कर्मोंके व्यत्ययमें अर्थात् जीविका वृत्तिकेकर्मों में उलटा पुलटा होजानेपर भी पांचवें याछठे या सातवें जन्ममें जातिकी समताहोजातीहै किंतु जिसहीनबर्ण के कर्मसे जीविकावृत्ति करताहै उसीजातिका होजाताहै जैसेब्राह्मण अपने कामोंसे निर्बाह न करसकने में क्षत्रियका कर्म करनेलगे उससेभी निर्बाह न होनेमेंबैश्यकी वृत्तिकरै उससेभी निर्बाह न होनेमें शूद्रकीवृत्तिकरै-ऐसेही क्षत्रिय अपने कर्मसे निर्बाहनहो सकनेमें बैश्यकीवृत्ति करै उससेभी निर्बाहनहोने में शूद्रकीवृत्ति

करै-ऐसेही बैश्यभी अपनेकामसे निर्बाह न होनेमें शूद्रकीवृत्तिकरै-यहअनुकल्प जीविका वृत्तिका यद्यपिशास्त्रोक्तहै और इसीकोकर्मों का व्यत्यय कहतेहैं परन्तु यह भी उचितहै कि जब अपनाआपत्काल कटिजावै तबउस नीचवृत्तिको छोड़कर अपनी मुख्यवृत्ति फिर करनेलगै-और जोआपत्काल कटिजानेपर भीउसनीचवृत्तिको नहीं छोड़ै और उसवृत्तिके करतेहुये जिसपुत्रको पैदाकरै वहपुत्रभी उसीवृत्तिको करनेलगै फिर उसपुत्रका पुत्रभी उसीवृत्तिकोकरै तौ इसीकर्मसेइसव्यवस्थामें जो ब्राह्मणने शूद्र वृत्तिकरी होतौ सातवेंजन्मका संतान ठीक२ शूद्रपैदा होताहै-जोब्राह्मणने बैश्यवृत्ति करीहो तौ छठीसंतान बैश्य पैदाहोताहै-जो ब्राह्मणनेक्षत्रियकी वृत्तिकरीहो तौपांचवीं संतान क्षत्रिय पैदाहोताहै-जो क्षत्रियने शूद्रकीवृत्तिकरीहो तौ छठीसंतान शूद्रपैदाहोताहै-जो क्षत्रियने बैश्यकी वृत्तिकरी होतौ पांचवीं संतान बैश्य पैदाहोताहै-जो बैश्य ने शूद्रवृत्तिकरी हो तौ पांचवींसंतान शूद्रपैदाहोता है-यहांतक तीनपाद अर्थात् पौन श्लोकका अर्थहोचुका अब चौथेचरणका अर्थकहतेहैंकि(पूर्ववच्चाधरोत्तरम्)अधरवाले और उत्तरवालेइन्होंका नीचहोना या ऊंचहोना पूर्वोक्त श्लोकके उत्तरार्द्धके अनुसार जानो(जैसे) मूर्द्धावसिक्ताजातिकी कन्या में क्षत्रिय बैश्यशूद्रोंकी पैदाकरीहुई संतानें औरअंवष्टा जातिकी कन्यामें बैश्यशूद्रों की पैदाकरी हुई संतानें और निषादीकन्यामें शूद्रसे पैदाहुई संतानें येसव (अधर) कहातेहैं इनको प्रतिलोमज भी कहतेहैं-(तैसेही) मूर्द्धावसिक्ताकन्या अंवष्टाकन्या निषादीकन्या इन तीनोंमें ब्राह्मणकी पैदा करीहुई संतानें और माहिष्या कन्याउग्रा कन्याइनमें ब्राह्मणकी पैदाकरीयाक्षत्रियकी पैदाकरी संतानें और करणीकन्या में ब्राह्मणकी पैदाकरी या क्षत्रियकी याबैश्यकी पैदाकरी संतानैंये सव(उत्तर)कहातेहैं इनकोअनुलोमजभी कहते हैं ऐसेही और [illegible] अपनीबुद्धिसे समुझलेना इनमेंजो अधरजातिके गिनायेवहनीचे हैंजो(उत्तर [illegible] केगिनाये वहऊंचेहैं जैसेपहले ९५ के श्लोकके पिछलेअर्द्धमें प्रतिलोम [illegible] मोंमे [illegible] पैदाहुये नीचेऊंचे कहेथे ९६ ॥

लौकिक जो अन्नपाक आदिकर्म प्रतिदिन कियेजातेहैं तिनकोभी गृहस्थी जो घरका धनीहो सो बिवाहकी अग्निमेंकरै अर्थात् जिसअग्निके हवनकर्मको प्रत्यक्ष करके बिवाह कियाजाताहै वही अग्नि उसकेघरमें सदैव रक्षापूर्वक रक्खीजाती है तिसमेंकरै किन्तु और कहींसे अग्निलाकर न करै अथवा किसीहेतु से वह अग्निनहीं हो तौ उसअग्निमें करै जोघरका हिस्साबांट होनेकेसमय अपनेबांटमें पाईहो अथवाजिसके घरमें ऐसीअग्निभीनहो तौ वैश्यकेघरसे या किसीसत्कुल धनपात्रकेघरसेया भाड़मेंसे ल्यायकर अग्निसंस्कारकी बिधिसे संस्कारकरके उसमें उन कर्मोंकोकरैजो ऊपरकहे और श्रौतकर्म्म जो बेदोक्तरीतों से अग्निहोत्र आदि कर्म्म होते हैं तिनको (वैतानिक) नाम आहवनीय आदि अग्नि जो बेदकी बिधिसे स्थापन होती हैंतिनमें करै ९७॥

शरीरचिंतांनिर्वर्त्यकृतशौचविधिर्द्विजः। प्रातःसंध्यामुपासीतदंतधावनपूर्वकम् ९८॥

एकार्थः—द्विजाती गृहस्थी शंकालघु शंकाआदि शरीरकी चिंतासे निपटकर यथोक्त शौचबिधि कियाहुआ दन्तधावन पूर्व्वक स्नान आदि करिके प्रातःकालकी सन्ध्या उपासनाकरै ९८॥

अधि०—दंतधावनमंत्रश्च(आयुर्बलंयशोवर्चः प्रजाःपशुवसूनिच। ब्रह्मप्रज्ञांचमेधां चत्वंनोदेहिवनस्पते) इति यद्यपि शास्त्रांतरमें कहींकहीं ब्रह्मचारीकेलिये दंतधावनका निषेधपाया जाताहै और उसीके अनुसार श्रीमत्परमहंस परिव्राजक बिज्ञानेश्वरभट्टारक मिताक्षराकार भी यहांपर प्रमाणदेते हैं कि गृहस्थीको दंतधावन सहित संध्या आदिकर्म करनेकी आज्ञादेने के लिये यहांपर दुसराकर संध्याकाचर्चा कियागया है क्योंकि संध्याकी चर्चा यद्यपि ब्रह्मचारीके प्रकरणमें आचुकीथी परन्तु वहांपरदंतधावनका चर्चानहीं आयाथा इसहेतुसे कि ब्रह्मचारीको दंतधावन करनानिषेध है तथापि इसप्रमाणके देनेपरभी कोईसाहेतु नहींलिखतेहैं कि क्यों उसको दंतधावनका निषेधहै फिर बिनाहेतुकी बार्ताकाप्रमाण क्योंकर मानाजाय-और जो यौंकहो कि यहभी एकधर्मकालक्षणहै तौजिसमें शौचिताकी बिशेषता पाईजाय ऐसेधर्म लक्षणका बिना हेतुकेभी प्रमाण होसक्ताहै और जहांप्रत्यक्ष भावसे मलीनता पाईजाती है तिसको बिनाहेतुके प्रमाणकैसे करसकैं-इससे प्रत्यक्षभाव में दंतधावन का करनाही ब्रह्मचारीकेलियेभी धर्मका लक्षण प्रतीत होताहै और नकरना अधर्मका लक्षणहै और जो यहकहो कि जो करना धर्मकेलक्षणमें गिनतीहोता तौ क्या याज्ञवल्क्यजी आज्ञानहीं लिखसक्तेथे-हम कहतेहैं किजो उन्होंने आज्ञा नहींलिखी तौ निषेधभीतौ नहींलिखा है कि वहदंत धावनको नकरै और दूसरे यहबात कि जैसे इसबातका चर्चा उन्होंने वहाँपर नहीं लिखा तैसेही औरभी अनेकबातें तुच्छ समुझकर नहीं लिखीहैं क्योंकि जब ब्रह्मचारीकेलिये प्रातःकालकी शौचबिधिकरनालिखा तौ उसकेसाथमें दंतधावन

आपही समझलियागया फिर उसको भिन्नलिखनेकी क्या आवश्यकता थी शौचकहने मेंउसकेउपयोगी सभीकाम आगये-और जिनऋषियोंने दंतधावनका निषेधलिखा है उनके लिखनेकाहेतु और अभिप्राय केवलइतना तो साधारणभावसे पायाजाताहै कि विद्या संग्रहकरनेवाला ब्रह्मचारी नृत्य गीत सुगंधि उबटना अंजन आदिकामोंमें यहाँ तक उपेक्षाकरदेवे कि वहअच्छीतरह दंतधावनभी नकरै अर्थात् जोदातौनि अनायास हाथलगजावे तो करलेवे नहींतो आवश्यकतापूर्वक ढूँढ़तानहींफिरै क्योंकि उसकेढूँढ़ने और करनेमें विलंब लगैगा उसविलंबसे गुरुकी सेवा और विद्योपार्जनमें हानिपड़ैगी इसहेतुसे विद्यासंग्रहमें उत्साह और उत्कर्षादिखलानेकेलिये और नृत्यगीत उबटना अंजन तैल आदि संस्कारोंसे मन हटानेकेलिये निषेध लिखाहै कि इनकामोंको यहां तकछोड़देवे कि दातौनिका करना जो बड़ा आवश्यक और शौचधर्मकी गिनतीमेंहै तिसकोभी नकरै तो दोषभागी नहीं होसक्ता परन्तु तौभीदातौनिका करना यह ऐसा कामनहींहै कि जिसकेकरनेसे ब्रह्मचारीका ब्रह्मचर्य जातारहे या वहपापभागीहोजाय इसीलिये याज्ञवल्क्यजी ने इसकी विधि या निषेध दोमेंसे एकभी नहींलिखा क्योंकि विधितो शौचकर्मकी आज्ञाकेसाथ आपही पाईगई(दृष्टांत) जैसे किसीने कहाकि रोटी करो तहांयहभाव नहींहै कि केवल रूखीरोटी करलो किंतुरोटी कहनेसे दालभाततर-कारी आदि उसके उपयोगी सभी पदार्थ समुझे गये-और निषेधको इसलिये नहीं लिखा कि वहानिषेध निर्विकल्प आज्ञापूर्वक नहींहै किंतु उसमें केवल साधारण हेतुहै जो ऊपर नृत्यगीत आदिके निदर्शनमें लिखागया फिर ऐसे वृथा तुषकंडनकी क्या आवश्यकताहै जो निष्प्रयोजन बातकोलिखें और ग्रंथकाविस्तार बढ़ावें इससेउसकी इच्छारही कि जैसा अवसरदेखै उसके अनुसारकरै या न करै ९८॥

हुत्वाग्नीन्सूर्यदैवत्यान्जपेन्मंत्रान्समाहितः। वेदार्थानधिगच्छेच्चशास्त्राणिविविधानिच ९९॥

प्रक्ष०–अग्नीन्को होमिकर सूर्यदैवत्य मंत्रोंकोजपै पुनि समाहितहुआ वेदकेअर्थों को अधिगतहोवे और विविध भाँतिके शास्त्रोंकोभी ९९॥

भभि०–अग्नीन्को पहले होमिकर यह असंभवहै इसलिये सूर्यदैवत्य मंत्रोंको यह ८६केश्लोकमेंजो प्रातःकालकी सन्ध्या दन्तधावन पूर्वककहीथी तिसकेसाथ जुड़ा अ-र्थात्प्रातःसन्ध्याको उपासनकरै और सूर्यदैवत्य मंत्रोंको जो संन्ध्याकीविधिमें होते हैं तिन्हें जपै-तिसपीछे आहवनीय आदि अग्नि जो जिसके घरमें कोईभी स्थापितहो तिसकोया औपासन अग्निको होमिकर स्वस्थचित्तहुये पीछे वेदके अर्थकहिये पदार्थ जो निरुक्तकल्प व्याकरणादि प्रसिद्ध हैं तिन्हें श्रवण मनन निदिध्यासन प्रकारों में समुझै और अनेकभांतिके संसारीशास्त्रोंकोभी सुनै और विचारै अथवापढ़ै यहप्रातः काल का धंधाकहा ९९॥ अब कुछेक दिनचर्द्दका धंधाकहते हैं॥

उपेयादीश्वरंचैवयोगक्षेमार्थसिद्धये। स्नात्वादेवान्पितॄंश्चैवतर्पयेदर्चयेत्तथा १००॥

एका०—(योग) कहिये मुक़द्दमा आदिकोईसा अपनाउपाय(क्षेम)कहिये रक्षासंबन्धी काम जो अपने धनजन आदिसे अपेक्षितहो-(अर्थ) कहिये धनका लाभकरना ऐसे२ कामोंकी सिद्धिकेलिये ईश्वर जो कोई नगरकाराजा या प्रधान साहूकार आदि समर्थ तिसकेपासभी जावै-वहांसे आकर फिर स्नानकरिकैंदेवताओं और पितरोंकोभी तर्पण और पूजनकरै १००॥

वेदाथर्वपुराणानिसेतिहासानिशक्तितः। जपयज्ञप्रसिद्ध्यर्थंविद्यांचाध्यात्मिकींजपेत् १०१॥

एका०—वेदत्रयी अथर्व पुराण इतिहास और अध्यात्मिकी नाम वेदांतविद्या इन सबोंको या किसी किसीको बहुत अथवा थोड़ा२ अपनी सामर्थ्यके अनुमानसे जप यज्ञ आदिकामोंकी सिद्धिकेलिये जपै १०१॥

बलिकर्मस्वधाहोमस्वाध्यायातिथिसत्क्रियाः। भूतपित्रमरब्रह्ममनुष्याणांमहामखाः १०२॥

अक्ष०—बलिकर्म १ स्वधाकर्म २ होमकर्म ३ स्वाध्यायकर्म ४ अतिथिसत्कार ५ यहपाँचोक्रमसे-भूतयज्ञ १ पितृयज्ञ २ देवयज्ञ ३ ब्रह्मयज्ञ ४ मनुष्ययज्ञ ५ महायज्ञ कहाते हैं १०२॥

अभि०—यहपाँचो महायज्ञ गृहस्थीको रोजरोज करने उचितहोतेहैं और श्लोकमें जो क्रमलिखाहै सोतौ केवल संख्यामात्र जानलेनेके लियेहै और इनके करनेका क्रम जैसाविधिके ग्रंथोंमें होताहै वहठीकहै इनमेंसबसे पहले ब्रह्मयज्ञ उसेकहतेहैं कि(ब्रह्म) जो परमात्मा तिसके नामसे वेदपाठ गीतापाठ उसके नामोंका जप वेदांतपाठ या उसकेनामसे कुछदेना सो सब ब्रह्मयज्ञमें गिनाजाताहै१-देवतर्पण या देवपूजन वैश्व देव होमआदि जो कुछ देवताओंके नामसे कियाजाय वह देवयज्ञ कहाताहै २-तर्पण या श्राद्ध भोजन दानआदि जो कुछ पितरोंकेनामसे कियाजाय या पितृ संहिता का पाठही कियाजाय वह पितृयज्ञ कहाताहै ३-भूतयज्ञ जो भूतप्रेत प्राणियोंके नामसे सिद्धान्नका बलिदान कियाजाता है ४-नृयज्ञ जो पूर्वोक्तयज्ञोंके पीछे आयेहुये अतिथि अभ्यागतोंको जिमायाजाय या शक्तिके अनुसार कुछ देदियाजाय ऋषितर्पणभी इसी नृयज्ञमें गिनती है ५॥

अधि०—इनको पंचमहायज्ञ कहते हैं यह यज्ञ यद्यपि नित्य कियेजातेहैं परंतुकिसी कामनासे नहींहोसक्ते हैं किंतुगृहस्थीको पाँचपाप जो अवश्यभावसे बिनाकियेभी रोज रोजलगतेहैं तिनकीशांति और शरीरअथवा कुटुम्बकी निर्मलताके निमित्तमेंकियेजाते हैं-पाँचपाप एकतौ ओखली मोगरी कुल्हाड़ी खल्लड़आदि कूटनेके कामोंसे जो जीव जंतुमरतेहैं १-दूसरेचक्की सिलबट्टा आदि पीसनेकेकामोंसे जो जीवनाश होतेहैं २-तीसरेचूल्हा अँगीठीआदि अग्निकेकामोंसे ३-चौथेजलकेकामोंसे ४-पाँचवें बुहारी

और लीपापोतीआदिसे ५-इसीलिये संन्यासीलोग सबधंधे छोड़देतेहैं कि किसीधंधेमें जीवनहींमारेजायँ-ऊर्ध्वोक्त पंचयज्ञोंके करनेवालेलोग वर्त्तमानमेंभी बहुधा सहस्र में पाँच पायेजाते हैं और ऐसेतौ बहुताइतसेहोंगे कि जो एकही या दोतीन यज्ञोंको थोड़ा या बहुत अपनी शक्तिके अनुसार करते हैं-हिंदूलोगों में अत्यंत दयाभाव होनेका यहीहेतु है-जिसदिन कलियुग अपना कालका प्रभाव फैलावेगा और यह नैत्तिक पंचकर्म इनसे किसीहेतुसे जातेरहैंगे तब इनमेंभी कठोरता अन्यजीवोंकी हिंसातौ कुछ गिनतीमें भी नहीं आसक्ती किन्तु नर हिंसामें भी प्रवृत्तिहोजाना कुछ आश्चर्य नहीं है और अद्यापिसबलोग एकसे नहींहैं किन्तु जिनमें इनकामोंका संसर्ग नहींहै उनकी प्रकृति और कठोरता को देखाचाहिये परंतु जो सृष्टिकर्त्ता को यह अनर्थ करना अंगीकार नहींहै तौ इनसे इनकर्मोंका छूटना भी बड़ादुर्लभहै आगे उसकी ईश्वरता वही जाने कि वह किसबातमें राजीहै या किसबातमें नाराज १०२॥

देवेभ्यश्च हुतादन्नाच्छेषाद्भूतबलिंहरेत्। अन्नंभूमौश्वचांडालवायसेभ्यश्चानिक्षिपेत् १०३॥

मक्ष०—देवताओं के अर्थहोमे हुये अन्नसे शेषमेंसे भूतबलि हरै-अन्नको भूमिमें श्वानचांडालकाकों के लियेभी छोड़े १०३॥

अभि०—ऊपरके श्लोकमें कहेहुये यज्ञोंका थोड़ासा प्रकार भी सूक्ष्मभावसे कहते हैं कि गृहस्थी अपनी रसोईमें सिद्धहुये अन्नको ब्रह्मयज्ञ किये पीछे इन्द्रादि देवताओं के नामसे अपनी गृह्योक्त विधि सहित अग्निमेंहोमे फिर उससे बचेहुये अन्नमें से भूतबलि भी करै इसपीछे अपनी शक्तिके अनुसार कुछ अन्नलेकर कुत्ता चांडाल कौआ आदिजीवों के लिये भी धरतीमें धीरेसे रखदेवे १०३॥

मधि०—आदिशब्दसे कीड़े और पापरोगी कुष्ठी आदि पतित इनके लियेभी रख देवे-सोई मनुजीने कहाहै कि-(शुनांचपतितानांचश्वपचांपापरोगिणाम्। वायसानांकृमीणांचशनकैर्निक्षिपेद्भुवि) अर्थात्-कुत्ताओं पतितों चांडालों पापरोगियोंकाकों कीड़ाओंके लिये भी धीरेसे धरतीमें छोड़देवे-यह सवेरेसाँझ दोनों समय कर्त्तव्यहै १०३॥

अन्नंपितृमनुष्येभ्योदेयमप्यन्वहंजलम्। स्वाध्यायंचान्वहंकुर्यान्नपचेदन्नमात्मने १०४॥

ऐ०—पितरों वा मनुष्यों को भी अन्न और जलभी अनुदिन दातव्य है स्वाध्याय भी अनुदिनकरै केवल अपनेलिये अन्नको नहीं पकावे-अर्थात देवता आदिके नामसे पकावे-अन्नके अभावमें कंदमूल फलादि कुछदेदे यहभी नहींहो तौ जलही देवे-और स्वाध्याय कहिये अपना पाठनिरंतर करना इसलिये कहाहै कि भूलैनहीं १०४॥

बालस्ववासिनीवृद्धगर्भिण्यातुरकन्यकाः। सम्भोज्यातिथिभृत्यांश्चदंपत्योःशेषभोजनम् १०५॥

ऐ०—बालक और स्ववासिनी कहिये विवाहिताकन्या जो पिता के घरमेंहो वृद्धा गर्भिणी-आतुर जिस्से भूख न थँभतीहो (कन्याअविवाहिता) अतिथि जो पाहुने

किसी तिथिमें अपने यहां न आयाहो ऐसा कोई जातिहो-भृत्य नौकर चाकर आदि इनसबोंको तृप्तिपूर्व्वक जिमायकर पीछे घरका धनी स्त्री पुरुष दोनों जने बचेहुये अन्नको भोजन करें १०५॥

मधि०—अतिथिका निराश फिरजाना यह गृहस्थीको बड़ाअपराधहै-तथाच (अतिथिर्यस्यभग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्त्तते । सतस्मैदुष्कृतंदत्वा पुण्यमादायगच्छति) अर्थात् अतिथि जिसकेघरसे आशातोड़कर लौटजाताहै तिसको वह अपनासंचित पापदेकर और उसके संचितपुण्यकोलेकर जाताहै-इसमें कुछसन्देहनहीं इसीसिद्धांत के आशयसे यह भी निश्चितहै कि जो अतिथिका सत्कारकरताहै वह गृहस्थी उस अतिथिको अपने संचित पाप देकर उसके संचित पुण्यको हरलेताहै-इसीसे अच्छे सज्जन गृहस्थीलोगोंके घरमें बिछावना चटाई आदि १ धरती बैठनेको २ जल सत्कारकेलिये ३ सूनृता कहिये सत्य मधुरभाषिणी यथार्त्थ बाणी मनहरनेकेलिये ४ जो कुछभी और न हो तौ यहचारबस्तु तौ सदैवही बनीरहती हैं जिनसे आयेगयेकासत्कारहो जिस्से उनका पुण्य लेकर पाप बांटदियाजावै-तथाहमनुः (तृणानिभूमिरुदकं वाक्चतुर्थीचसूनृता । एतान्यपिसतांगेहे नोच्छिद्यन्तेकदाचन१०५॥

आपोशनेनोपरिष्टादधस्तादश्नतातथा । अनग्नममृतंचैवकार्यमन्नंद्विजन्मना १०६॥

एका०—भोजनकरतेहुये द्विजातीको पहले (आपोशन) नाम कर्म्मकी भोजनविधि से अन्नकोऊपर और नीचेसेभी अनग्न और अमृतकल्प भी करलेनाचाहिये१०६॥

सत्कृत्यभिक्षवेभिक्षादातव्यासुव्रतायच । भोजयेच्चागतान्कालेसाखिसंबंधिबांधवान् १०७॥

भक्ष०—भिक्षुको भिक्षा दातव्यहै और सुव्रतकेलिये सत्कारसे-समयपर आये हुये सखा सम्बन्धी बान्धवोंको भी भोजनकरावै १०७॥

मभि०—साधारण भिक्षुको साधारण भिक्षादेवै और सुव्रत कहिये ब्रह्मचारी या यती तिसको सत्कार सहित देवै अर्थात् स्वस्ति शब्द उच्चारण करवाकर जल दान सहित उत्तम भोजनदेवै-ऊर्ध्वोक्त साधारणभिक्षाका परिमाण एक ग्रासमात्रका कहा है और ग्रासका परिमाण मयूरके अण्डामात्रका कहाहै सो यह मन्दभिक्षाहै-और ४ ग्रासमात्रके परिमाणको एक (पुष्कल) कहतेहैं इतना जो कुछ अन्न दियाजावै सो मध्यमभिक्षाहै-चारपुष्कल अर्थात् सोलहग्रासका एक (हन्त) कहलाताहै इतना जो कुछ दियाजावै यहपूराआहार और उत्तमभिक्षा कहलाती है-जोइससेत्रिगुणादियाजावैतिसकी (भय) संज्ञा कहते हैं यहभी किसी अतिआहारीका आहारहै-यह शातातप स्मृतिका प्रमाणहै यहांतक आधेश्लोकका अर्थ होचुका-भोजनके समयपर आयेहुये सखा कहिये अपने प्रेमीमित्रसम्बन्धी जिनसे अपने लड़का या लड़कीका सम्बन्ध हो- बान्धव शब्दसे अपने सम्बन्धियों के सम्बन्धी जहांतक नाते रिश्ते में कोई हों

उनको भी जिमावे-भोजनके समयपर आयेहुये कहनेका यह अभिप्रायहै कि इनकहे हुये मनुष्योंमेंसे कोई मनुष्य जो अपने उसी नगर या उसीमुहल्ले या उसी मकानके घेरामें रहनेवाला है कि जहां अपना निवासहै और वह साधारणभावसे मिलनेको या किसी कामकेहेतुसे अपने भोजनके समय सन्मुख आजावै तौ उसकोभी भोजनकरावै यहभी एकसत्कार और प्यारकीमर्यादा है इस्सेअपना और बिराना जानाजाता है-अन्यथा विदेशी नातेदारका आनातौ बिनाभोजनके समयपरहोगा तौभी उसकेलिये रसोई फिर बनवाईजायगी उसकेलिये भोजनका समयकहना यह असंभवहै १०७॥

महोक्षंवामहाजंवा श्रोत्रियायोपकल्पयेत्। सत्क्रियान्वासनंस्वादुभोजनंसूनृतंवचः १०८॥

अक्ष०—महोक्ष या महाजको श्रोत्रियकेलिये उपकलिपतकरै-सत्क्रियाकरै स्वादुभोजनदेवै सूनृत वचनकहै १०८॥

अभि०—बड़ेबैलको (महोक्ष) कहतेहैं बड़ेबकराको (महाज) कहतेहैं सो यहदोवस्तु एक उपलक्षणमात्र कहाहै किंतुवा२शब्दोंके विकलपसे और पशुभी समुझलेने अर्थात् जोकोईसा उत्तमपशु अपनेघर पालरक्खाहो उसकोअपने घरआयेहुये श्रोत्रियकहिये वेदपारग ब्राह्मणकेनामसे उपकलिपतकरै इसकाभाव नीचे अधिकोक्तिमें देखौ सो यह बातकबकरै कि पहले उसआयेहुये श्रोत्रिय अथवा श्रोत्रियके उपलक्षणसे और कोई अपनामान्यभी समुझना ऐसाजोकोई बहुतदिनोंपीछे अपनेघरआवे तिसकापहलेतौ सत्कार किंतु कुशलक्षेमका बूझना बातचीतसे खातिर्दारी करना बैठनेकोऊँचा आसनदेना हाथ पैर धुलाना कुल्ला और स्नानकरवाना आदि यहसब सत्कार करै-फिर अन्वासनका यहअर्थहै कि जबतक वहनबैठे तबतक आपभी खड़ारहै जब उसको आसनपर बैठारलेवे तबपीछे आपभी उस्सेनीचाबैठै-फिर स्वादुकहिये मीठे और अपेक्षित प्रियभोजन करवावै-तिसपीछे सूनृतवचन अर्थात् हमआपके आगमनसेधन्य और बड़भागीहुये जो आपने इसघरको अपनेचरणोंसे पवित्रकिया और भी देश काल कार्यकारणके अनुरूप जैसाउचितहो सोकहै-यहसब कियेपीछे बीचमेंही अथवा चलतेसमय पूर्वोक्तपशु उपकलिपतकरै १०८॥

अधि०—उपकलिपतकरना केवल देदेनेकाही अर्थनहींहै किंतु यातौ पहिलेसेही उसकेनामसे कोई पशु संकलिपरक्खाहो कि वहआवेंगे तौ उनकीभेंट कियाजायगा तौभेंटहीकरदेवै अथवा पहलेसेनहीं परउसीसमय यहविचारमेंआया कि इनकीभेंटकुछकरना उचितहै तौ कोईसापशु जो अच्छासमुझाया जैसा देनाचाहा उनकेसाथकिया-इसके सिवाय जिसको देनेकीसामर्थ्य तौ नहींहै क्योंकि उनके एकही या दोपशुहैं उन्हींसेघर कापालन होताहै तौ लोकाचारकी सुघड़भलाईके लिये उनपशुओंके पासउनकोलेजा करखड़ाकरै और यहकहै कि यहसब संपत्तिआपहीकीहै इनमेंसे जो कुछआपकीइच्छा

मेंआवैसोलेजाइये इतनाकहनेपर वहउसकीशुश्रूषाअंगीकारकरआशीर्वाददेकर और उसमेंसे कुछनलेकर चले जायँगे-परंतु इसमें इतनी दृढ़ता औरभीहै कि वह श्रोत्रिय जोलालचीहोगा और संसारके शिष्टाचारको नसमुझकर उस कहनेसे किसीवस्तुपर लोभदृष्टि करनेलगे तौ फिर देदेनाभी उचित-यह पशुदानकी मर्याद यद्यपि अद्यापि कहीं२ देश और कालकी अपेक्षासे पाईजाती है परंतु प्रवर्तित समयसे बिपरीतहै-पहले समयमें इसकी प्राधान्यता इसहेतुसे लिखीगईथी कि उससमयमें बहुधा तृण की बहुताइतसे पशुधन को उत्तम गिनाकरते थे और उसधनसे प्रजाका अच्छा पालनहोताथा इसीसे उसधनका अधिकार हुआ करताथा उससमयमें एकगऊ या भैंस का देना लेना ऐसाथा कि मानो लेनेवाले ने एक ग्राम पाया हो सिद्धांत इसका केवल इतनाहैकि जो अपनेपास कुछ और वस्तु रत्नवस्त्रादिक या रोकदेनेकोनहो तौ कोईसा पशुही अर्पणकरदेवे जो इसकोभी नदेसक्ताहो तौ यह कहकर हाथजोड़देवै कि यह सबसंपत्ति तुम्हारीहै-यद्यपि उपकल्पितकरनेका अर्थ कुछ और भीहै और वह बड़ी दूरपहुँचताहै परंतु वृथातुषकंडनसे क्या हाथआताहै १०८ ॥

प्रतिसंवत्सरन्त्वर्घ्याःस्नातकाचार्यपार्थिवाः। प्रियोविवाह्यश्चतथायज्ञंप्रत्यृत्विजःपुनः १०९॥

अक्ष०—संवत्सरपीछे अर्घदेवे योग्यहैं स्नातक आचार्य पार्थिवप्रिय बिवाह्यऋत्विक् तैसेही ऋत्विजलोग यज्ञोंमेंभी १०९॥

भभि०—हरसाल यहसबलोग मधुपर्क भोजन आदिसे सत्कारकरिवे योग्यहैं-एक तौ स्नातक जोतीनप्रकारके होतेहैं विद्यास्नातक १ व्रतस्नातक २ विद्याव्रतस्नातक ३ जैसा ब्रह्मचारी प्रकरणमें कह चुके हैं-आचार्य जैसा ३४ श्लोकमें कहचुके हैं-पार्थिव राजा जिसके लक्षण आगे आचाराध्यायके अंतमें कहैंगे-प्रिय जोकोई अपना प्रेमी हो-विवाह्य जामाताआदि जोकोई अपने घर या कुलमात्रमें बिवाहेहों-ऋत्विक्जिसके लक्षण मनुसंहितामें कहेहैं और वहवेद बिधिकी रीतिसे १६ प्रकारकेऋत्विजहैं-और इनके सिवाय आश्वलायन ऋषिके प्रमाणसे चचा मामा श्वशुरादि जो कोई अपने संबंधीहों तिनको भी-परन्तु ऋत्विज वर्षकेभीतरभी कि जबकभी यज्ञके हेतुसे आवें सत्कार करिवे योग्यहैं १०९ ॥

भभि०—ऊपरके लोगोंको हरसाल जो कहा तिसका यहअभिप्रायहै कि जो वेलोग आपही किसीहेतुसे आतेजाते बनेरहैं और बीच२उनका सत्कारहोतारहे तौ इसबात की कुछ आवश्यकता नहींहै परन्तु जिनका आनाजाना न होसक्ताहो उनकोतौ अवश्यही सालभरपीछे एकबार किसी वहानासे बुलाकर सत्कारकरदियाकरौ क्योंकि जो ऐसा नहींकरौगे तौ कईबर्षों के व्यतीत होजानेपर स्नेहमें रूक्षता पड़जायगी उस रूक्षताके प्रभावसे वहलोगभी ऐसेहो जायँगेकि जानोकोई गैरहों फिर जबकभी तुमको

उनकी सहायता अथवा मेलमिलाप किसीहेतुसे चाहना पड़ैगा तब कदाचित् भी वह तुम्हारे साथी नहीं होसकैंगे याजोहोभी सकैंगे तौ तुमको बड़ासापरिश्रम और दामों काभी व्यय करनापड़ैगा तौ भी वह मेलमिलाप ऐसा समुझाजायगा कि जैसे किसी विपत्तिसेगैरों की खुशामद करीजातीहै इसलिये इस शिष्टाचारसे कदाचित् भी मुहँ मतफेरौ-और ऐसेही वे लोग जबतुमको किसीहेतु अथवा संवत्सरके अंतरसे यादि करैं तब उनके पासजानेसेभी मुहँमतफेरौ इसमेंचाहे कुछ तुम्हारीहानि भी होती हो परस्नेहको मत सूखने दो १०९ ॥

अध्वनीनोऽतिथिर्ज्ञेयःश्रोत्रियोवेदपारगः। मान्यावेतौगृहस्थस्यब्रह्मलोकमभीप्सतः ११० ॥

ऐ०—अध्वनीन जो बटोहीहै वह अतिथि जाननाचाहिये चाहे कोईहो-जोवेदपारग है वह श्रोत्रिय कहनाचाहिये-यहदोनों उस गृहस्थीमात्रके मान्य होतेहैं जो ब्रह्मलोक की इच्छा करनेवाला है-अर्थात् जो गृहस्थीनरककी इच्छाकरता हो वह चाहौ इनको मानो या मतमानो-और श्रोत्रिय अथवा वेदपारग पर्य्यायह केवलकिसीयोग्यविद्या-मात्रकानिदर्शनहै-औरब्रह्मलोक अथवा नरकयहदोनोंभीइसीदेहसेसंभवितहैं ११०॥

परपाकरुचिर्नस्यादनिंद्यामंत्रणादृते। वाक्पाणिपादचापल्यंवर्जयेच्चातिभोजनम् १११ ॥

ऐ०—अनिंद्य के आमंत्रण विना पराये पाकमें रुचिनकरै-किन्तु निन्दित मनुष्यके नौतामें भी जीभ नहीं ललचावै और अनिंद्यके निमंत्रणसे मुखभीनहींफेरै-और वाणीकी चपलता जो अनृत भाषण या सभामेंकहने योग्यबात नहीं-हाथोंकी चपलता मटकाना या तालीपटकाना आदि-पावोंकी चपलता उछलना या निरर्थक दौड़कर चलना आदि इनबातोंको छोड़ देवै और अतिभोजन भी नहींकरै क्योंकि अतिभो-जनसे प्रथम तौ शरीरमें शिथलता अधिक होजातीहै उससे वह कोईकाम उत्साहसे नहीं करसक्ता और कामोंके न करनेमें सर्वथा हानिहै और देहकोदाब पीड़ादेकर काम करनेसे वात पित्त कफ सम्बन्धी अनेकरोग होजाते हैं इससे सूक्ष्म भोजनकरै-इसके वाय गौतमस्मृतिके प्रमाणसे नेत्रमुख लिंगेन्द्रिय आदिके विकारोंकोभी न करै १११॥

अतिथिंश्रोत्रियंतृप्तमासीमांतमनुव्रजेत्। अहःशेषंसमासीतशिष्टैरिष्टैश्चबन्धुभिः ११२ ॥

ऐ०—पूर्वोक्त अतिथि और श्रोत्रियके भोजन से तृप्तहुये पीछे चलतेसमय अपने ग्रामकी सीमा ताईं पीछे२ साथ जाकर पहुँचाइआवै तिस पीछे कुछ दिन शेषरहेपर शिष्टों और इष्टों और बंधुजनों सहित बैठकर शास्त्र चर्चा या लोक चर्चा करै-शिष्ट उनको कहतेहैं जो अच्छे आचारवाले इतिहास पुराणादिके जाननेवालेहों-इष्ट अपने प्रियमित्रादिक जो धर्मज्ञहों-बंधु अपनेनाते गोतके सम्बन्धी आदि जो कोई अनुकूल बार्त्ताके वक्तहों ११२ ॥

उपास्यपश्चिमांसंध्यांहुत्वाग्नींस्तानुपास्यच। भृत्यैःपरिवृतोभुक्त्वानातितृप्त्याथसंविशेत् ११३ ॥

मेंआवैसोलेजाइये इतनाकहनेपर वहउसकीशुश्रूषाअंगीकारकरआशीर्वाददेकर और उसमेंसे कुछनलेकर चले जायँगे-परंतु इसमें इतनी दृढ़ता औरभीहै कि वह श्रोत्रिय जोलालचीहोगा और संसारके शिष्टाचारको नसमुझकर उस कहनेसे किसीवस्तुपर लोभदृष्टि करनेलगे तौ फिर देदेनाभी उचित-यह पशुदानकी मर्याद यद्यपि अद्यापि कहीं२ देश और कालकी अपेक्षासे पाईजाती है परंतु प्रवर्तित समयसे विपरीतहै-पहले समयमें इसकी प्राधान्यता इसहेतुसे लिखीगईथी कि उससमयमें बहुधा तृण की बहुताइतसे पशुधन को उत्तम गिनाकरते थे और उसधनसे प्रजाका अच्छा पालनहोताथा इसीसे उसधनका अधिकार हुआ करताथा उससमयमें एकगऊ या भैंस का देना लेना ऐसाथा कि मानो लेनेवाले ने एक ग्राम पाया हो सिद्धांत इसका केवल इतनाहैकि जो अपनेपास कुछ और बस्तु रत्नवस्त्रादिक या रोकदेनेकोनहो तौ कोईसा पशुही अर्पणकरदेवे जो इसकोभी नदेसक्ताहो तौ यह कहकर हाथजोड़देवै कि यह सबसंपत्ति तुम्हारीहै-यद्यपि उपकल्पितकरनेका अर्थ कुछ और भीहै और वह बड़ी दूरपहुँचताहै परंतु बृथातुषकंडनसे क्या हाथआताहै १०८ ॥

प्रतिसंवत्सरन्त्वर्घ्याःस्नातकाचार्यपार्थिवाः। प्रियोविवाह्यश्चतथायज्ञंप्रत्यृत्विजःपुनः १०९॥

अक्ष०-संवत्सरपीछे अर्घदेवे योग्यहैं स्नातक आचार्य पार्थिवप्रिय विवाह्यऋत्विक् तैसेही ऋत्विजलोग यज्ञोंमेंभी १०९॥

अभि०-हरसाल यहसबलोग मधुपर्क भोजन आदिसे सत्कारकरिवे योग्यहैं-एक तौ स्नातक जोतीनप्रकारके होतेहैं विद्यास्नातक १ व्रतस्नातक २ विद्याव्रतस्नातक ३ जैसा ब्रह्मचारी प्रकरणमें कह चुके हैं-आचार्य जैसा ३४ श्लोकमें कहचुके हैं-पार्थिव राजा जिसके लक्षण आगे आचाराध्यायके अंतमें कहैंगे-प्रिय जोकोई अपना प्रेमी हो-विवाह्य जामाताआदि जोकोई अपने घर या कुलमात्रमें विवाहेहों-ऋत्विक्जिसके लक्षण मनुसंहितामें कहेहैं और वहवेद बिधिकी रीतिसे १६ प्रकारकेऋत्विजहैं-और इनके सिवाय आश्वलायन ऋषिके प्रमाणसे चचा मामा श्वशुरादि जो कोई अपने संबंधीहों तिनको भी-परन्तु ऋत्विज वर्षकेभीतरभी कि जबकभी यज्ञके हेतुसे आवें सत्कार करिवे योग्यहैं १०९॥

अधि०-ऊपरके लोगोंको हरसाल जो कहा तिसका यहअभिप्रायहै कि जो वेलोग आपही किसीहेतुसे आतेजाते बनेरहें और बीच२उनका सत्कारहोतारहे तौ इसबात की कुछ आवश्यकता नहींहै परन्तु जिनका आनाजाना न होसक्ताहो उनकोतौ अवश्यही सालभरपीछे एकबार किसी वहानासे बुलाकर सत्कारकरदियाकरो क्योंकि जो ऐसा नहींकरोगे तौ कईवर्षों के व्यतीत होजानेपर स्नेहमें रूक्षता पड़जायगी उस रूक्षताके प्रभावसे वहलोगभी ऐसेहो जायँगेकि जानोकोई गैरहों फिर जबकभी तुमको

उनकी सहायता अथवा मेलमिलाप किसीहेतुसे चाहना पड़ैगा तब कदाचित् भी वह तुम्हारे साथी नहीं होसकैंगे याजोहोभी सकैंगे तौ तुमको बड़ासापरिश्रम और दामोंकाभी व्यय करनापड़ैगा तौ भी वह मेलमिलाप ऐसा समुझाजायगा कि जैसे किसी विपत्तिसेगैरों की खुशामद करीजातीहै इसलिये इस शिष्टाचारसे कदाचित् भी मुहँ मतफेरौ-और ऐसेही वे लोग जबतुमको किसीहेतु अथवा संवत्सरके अंतरसे यादि करैं तब उनके पासजानेसेभी मुहँमतफेरौ इसमेंचाहै कुछ तुम्हारीहानि भी होती हो परस्नेहको मत सूखने दो १०९ ॥

अध्वनीनोऽतिथिर्ज्ञेयःश्रोत्रियोवेदपारगः । मान्यावेतौगृहस्थस्यब्रह्मलोकमभीप्सतः ११० ॥

ऐ०—अध्वनीन जो बटोहीहै वह अतिथि जाननाचाहिये चाहै कोईहो-जोवेदपारग है वह श्रोत्रिय कहनाचाहिये-यहदोनों उस गृहस्थीमात्रके मान्य होतेहैं जो ब्रह्मलोक की इच्छा करनेवाला है-अर्थात् जो गृहस्थीनरककी इच्छाकरता हो वह चाहौ इनको मानो या मतमानो-और श्रोत्रिय अथवा वेदपारग पर्यायंयह केवलकिसीयोग्यविद्यामात्रकानिदर्शनहै-औरब्रह्मलोक अथवा नरकयहदोनोंभीइसीदेहसेसंभवितहैं ११०॥

परपाकरुचिर्नस्यादनिंद्यामंत्रणादृते । वाक्पाणिपादचापल्यंवर्जयेच्चातिभोजनम् १११ ॥

ऐ०—अनिंद्य के आमंत्रण विना पराये पाकमें रुचिनकरै-किन्तु निन्दित मनुष्यके गौतामें भी जीभ नहीं ललचावै और अनिंद्यके निमंत्रणसे मुखभीनहींफेरै-और वाणीकी चपलता जो अनृत भाषण या सभामेंकहने योग्यबात नहीं-हाथोंकी चपलता नटकाना या तालीपटकाना आदि-पावोंकी चपलता उछलना या निरर्थक दौड़कर चलना आदि इनबातोंको छोड़ देवै और अतिभोजन भी नहींकरै क्योंकि अतिभोजनसे प्रथम तौ शरीरमें शिथलता अधिक होजातीहै उससे वह कोईकाम उत्साहसे नहीं करसक्ता और कामोंके न करनेमें सर्वथा हानिहै और देहकोदाव पीड़ादेकर काम करनेसे वात पित्त कफ सम्बन्धी अनेकरोग होजाते हैं इससे सूक्ष्म भोजनकरै-इसके सिवाय गौतमस्मृतिके प्रमाणसे नेत्रमुख लिंगेन्द्रिय आदिके विकारोंकोभी न करै १११॥

अतिथिंश्रोत्रियंतृप्तमासीमांतमनुव्रजेत् । अहःशेषंसमासीतशिष्टैरिष्टैश्चबन्धुभिः ११२ ॥

ऐ०—पूर्वोक्त अतिथि और श्रोत्रियके भोजन से तृप्तहुये पीछे चलतेसमय अपने ग्रामकी सीमा ताईं पीछे२ साथ जाकर पहुँचाइआवै तिस पीछे कुछ दिन शेषरहेपर शिष्टों और इष्टों और बंधुजनों सहित बैठकर शास्त्र चर्चा या लोक चर्चा करै-शिष्ट उनको कहतेहैं जो अच्छे आचारवाले इतिहास पुराणादिके जाननेवालेहों-इष्ट अपने प्रियमित्रादिक जो धर्मज्ञहों-बंधु अपनेनाते गोतके सम्बन्धी आदि जो कोई अनुकूल वार्त्ताके वक्ताहों ११२ ॥

उपास्यपश्चिमांसंध्यांहुत्वाग्नींस्तानुपास्यच । भृत्यैःपरिवृतोभुक्त्वानातितृप्त्याथसंविशेत् ११३ ॥

ऐ०–पिछली सांझकी संध्याको उपासना करिके और साँझकी अग्नीनूको भी होमिकर और उपासना करिके पुनि १०५ श्लोकमें कहेहुये सब भृत्यवर्ग सहित साधारण तृप्तिसे भोजनकरिके और चकारके ध्वन्यर्थसे घरके लाभखर्चकी चिन्तासे निपटारा करिके तबसोवै ११३॥

अधि०–९८ के श्लोकमें प्रातःसंध्याकी विधि कहकर यहांताईं १५ श्लोकोंसेसारे दिनभरका धंधाबतलाया और इसश्लोकमें सायंकालके संध्याआदि कामोंकीविधि कहकर सोनेकी आज्ञादेचुके अबआगे-दूसरेदिनके प्रभात ताईका क्रमबतलाकर पीछे गृहस्थी की और साधारण मर्यादोंको कहेंगे ११३॥

ब्राह्मेमुहूर्त्तेचोत्थायचिंतयेदात्मनोहितम्। धर्मार्थकामान्स्वेकालेयथाशक्तिनहापयेत् ११४॥

अक्ष०–ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर अपने हितका चिंतमन करै धर्म अर्थकाम इन्होंको अपने २ नियतकालपर यथाशक्तिके अनुसार त्यागैनहीं ११४॥

अभि०–चारघड़ीकेतड़के ब्राह्ममुहूर्त्त कहलाताहै उसमें पहलीराति कासोयाहुआ उठकर अपनाहित जो कुछकाम पहलेप्रारम्भ कररक्खाहो या आगेकोकरनाहो तिनको उसीसमय खाटपर बैठाहुआ पहले शोचविचारलेवे कि उसमें यों करनाउचितहै और उसीसमय वेदशास्त्र सम्बन्धी संशयरूप गाँठोंकोखोललेवे क्योंकि उससमय चित्तसावधान होताहै फिरधर्मअर्थ कामसम्बन्धी नित्यकेधंधोंको जैसा जिससमय करनाकहचुकेहैं अपनीशक्तिके अनुरूप करनेसे चूकैनहीं ११४॥

विद्याकर्मवयोबंधुवित्तैर्मान्यायथाक्रमम्। एतैःप्रभूतैःशूद्रोपिवार्धकेमानमर्हति ११५॥

अक्ष०–विद्या १ कर्म २ अवस्था ३ बांधव ४ वित्त ५ इनसे संपन्नलोग यथाक्रमसे मान्यहैं इनवढ़ीहुई चीजोंसेयुक्त शूद्रभी वृद्धावस्थामें मानके योग्यहै ११५॥

अभि०–विद्या यहसामान्य वचनहै कोईविद्याहो जिस्से कुछअपना या परायाभला होसक्ताहै ऐसापुरुष सबकामान्यहै १ कर्मयहभी सामान्य वचनहै इसलिये श्रौतस्मार्त कर्मोंको आदिलेकर नानाकर्म और इसीउपलक्षणसे पुरुषार्थपूर्वकपेशा सम्बन्धिकाम भी कि जिनसेमनुष्यकी उत्तम प्रसिद्धिहोतीहो इनमें यन्त्रादि निर्माताभी आसक्तहै (दृष्टांत) जैसे एकघड़ीसाजहै २ अवस्थामें जो जिस्सेअधिकहो वहभी उसकामान्यहै ३ बांधवजनों की सम्पन्नता जिसकेघनीहो वह साधारणोंका मान्यहै ४ वित्तकहियेग्रामयानस्थानरत्नादि धनसंपत्तैं जिसकेघनीहों वह औरोंका मान्यहै ५-यहपाँचों यथाक्रमसे मान्यहोतेहैं इनपाँचों या इनमेंसे किसी२ अतिबढ़ेहुये पदार्थसे सम्पन्नशूद्रभी वृद्धापनमें मानके योग्यहै ११५॥

अधि०–वृद्धापन केवल उसीका कहना यहबात इसहेतुसे असंभव देखपड़तीहै कि वृद्धापनसे पहले २ इन पदार्थोंका बड़प्पन उसका निष्फल गया इसलिये इस अ

को इस रीतिसे लगाना चाहिये कि उक्तपदार्थोंसे संपन्न शूद्रभी औरोंके वृद्धापनमें माननीयहै किंतु जो और लोग बड़ोंकी गिनतीमेंहों वे भी उसका सत्कारकरें-और गौतमजीकी स्मृतिमें जो यह कहाहै कि अस्सी ८० वर्षकी अवस्थावाला शूद्र भी श्रेष्ठहै सो यह बचन केवल उन शूद्रोंके लिये कहाहै कि जो पूर्वोक्त पदार्थोंसे संपन्न नहींहों-और ऊपर अभिप्रायार्थमें जो पाँचोंका यथाक्रम लिखाहै उसका भावार्थ यद्यपि यहींहै कि पहला २ श्रेष्ठहै परंतु यह निर्विशेष नहींहोसक्ता किंतु किसी अवसरकी अपेक्षा पिछला २ भी पहले २ से श्रेष्ठहोसक्ताहै यह बार्त्ता जो व्यवस्थापूर्वक लिखी जावै तौ विस्तारहै इसलिये सिद्धांतसे इन पाँचोंकी मान्यतामें परस्परका व्यवहार ठीक निश्चितहोताहै ११५॥

वृद्धभारिनृपस्नातस्त्रीरोगिवरचक्रिणाम्। पंथादेयोनृपस्तेषांमान्यःस्नातश्चभूपतेः ११६॥

ऐ०—बूढ़ा-भारी जो बोझलिये आताहो-राजा-स्नातक जो विद्या और वेदोक्त व्रत इन दोनों में संसिद्धहो-स्त्री-रोगी-वर जो बिवाहकरने जाताहो-चक्री जो गाड़ी लिये आताहो इनको पंथादेना उचितहै किंतु इनको आतेदेख आप मार्गछोड़दे-और राजा उनका भी मान्यहै किंतु राजाका पंथबोझ और गाड़ीवाले सभीको छोड़नाचाहिये-परंतु स्नातक राजाका भी मान्यहै-जिसराहमें यह बूढ़े आदि परस्पर इकट्ठेहोजावें तहाँ ऊपरले ११५ के श्लोकमें कहीहुई बातोंका भी विवेककरलेना चाहिये यह शिष्टाचारकी मर्यादाहै-इनके सिवाय बालक मत्त उन्मत्त पतित आदिका भी ध्यानराखना उचितहै ११६॥ अबनीचे वर्णोंके प्रधान कर्मोंका वर्णनकरतेहैं॥

इज्याध्ययनदानानिवैश्यस्यक्षत्रियस्यच। प्रतिग्रहोधिकोविप्रेयाजनाध्यापनेतथा ११७॥

मक्ष०—इज्या १ अध्ययन २ दान ३ वैश्यके क्षत्रियके भी ब्राह्मणमें प्रतिग्रह४अधिक तथा याजन अध्यापन भी ११७॥

अभि०—इज्या कहिये पंचयज्ञ आदि यज्ञोंका करना १ अध्ययन पढ़ना २ दान करना ३ यह तीनों काम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन सबके साधारण हैं परंतु ब्राह्मण में यह तीन कर्म अधिकहैं-प्रतिग्रह दानका लेना १ याजन यज्ञोंका कराना २ अध्यापन पढ़ाना ३ इसीसे ब्राह्मण षट्कर्मा कहातेहैं ११७॥

अधि०—इन छः कामोंमेंसे पहले तीन काम तो धर्मकी साधना संबंधीहैं और पिछले तीन जीविकाके हेतुमें हैं-सोई मनुनेकहाहै कि(षण्णांतु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका। याजनाध्यापनेचैवविशुद्धाच्चप्रतिग्रहात्) परंतु इसमें प्रतिग्रहभी शुद्धजाति से लेना कहाहै पतितसे नहीं-और आपत्काल या ब्राह्मणके अभावमें विद्या पढ़ना और जातिसे भी ब्राह्मणको कहाहै-ब्राह्मणकी प्रेरणासे क्षत्रिय और वैश्यको पढ़ाना भी उचितहै ११७॥

प्रधानंक्षत्रियेकर्मप्रजानांपरिपालनम् । कुसीदकृषिवाणिज्यपाशुपाल्यंविशःस्मृतम् ११८ ॥

ऐ०—प्रजाका पालनकरना यह कर्म क्षत्रियका प्रधान है यही उसका धर्म संबंधी कामहै यही जीविकाका भी हेतुहै-और वैश्यके जीविका संबंधी प्रधान काम कुसीद कहिये ब्याज बट्टा करना खेती बाणिज्य पशुपालना ११८ ॥

शूद्रस्यद्विजशुश्रूषातयाऽजीवन्वणिग्भवेत् । शिल्पैर्वाविविधैर्जीवेद्द्विजातीहितमाचरन् ११९ ॥

ऐ०—शूद्रका प्रधान काम द्विजातियोंकी सेवा नौकरी आदि उससे निर्वाह नहीं होतेहुये बणिक् कर्म करै अथवा नाना भाँतिके शिल्प कर्मोंसे द्विजातियोंका हित करताहुआ जीवै जैसे राजगीरी आदि ११९ ॥

भधि०—याज्ञ बल्क्यजी ने एक निदर्शन मात्र कहदियाहै परंतु देवल ऋषिने अपने शास्त्रमें शूद्रके कामोंकी कुछ गणना भी करीहै-तथाच(शूद्रधर्मोद्विजाति शुश्रूषा पाप वर्जनं कलत्रादि पोषणं कर्षण पशुपालन भारोद्वहना पणव्यवहार चित्र कर्म नृत्यगीत वेणुवीणा मुरज मृदंग वादनादीनि) अर्थात् द्विजातीकी सेवाकेसिवाय पापसे बचना भार्या आदि कुटुंब का पोषण-कर्षण कहिये हल चर्ष और गाड़ी आदिका जोतना-पशुओंका पालना-भारका उठाना ढोना आदि-आपण दूकानदारी-व्यवहार लेन देन-चित्रकर्म शिलपकाम किन्तु लोहा लकड़ी ईंट बस्त्र आदिका बनाना-नृत्य नाचना-गीत गाना-और बाँसुली बीणा मुरज मृदंग आदि सब बाजाओंका बजाना आदि औरभी ऐसे २ काम यहशूद्रजातिके कर्महैं ११९ ॥

भार्यारतिःशुचिर्भृत्यभर्ताश्राद्धक्रियापरः । नमस्कारेणमंत्रेणपंचयज्ञान्नहापयेत् १२० ॥

ऐ०—ऊपरलीबातों के होनेपरभी शूद्रकोऐसाहोना उचितहै कि केवल अपनी भार्यामें रति करै-मनसे शुद्धहो-अपने भृत्यवर्गका पालनकरै-श्राद्धकरै-क्रियासे भी शुद्धरहै-केवल नमःइसमंत्रसे पंचयज्ञोंके करनेसेभी न चूकै-नमःजिसके नामके अंत में लगालियाजाताहै तिसका यही मंत्रहोजाताहै जैसे गणेशायनमः सूर्यायनमः-परन्तु वैश्वदेवकर्मको शूद्रकरै तो इसीलौकिक अग्निमें करै किंतु वैवाहिकमें नहीं यह विवेक है १२० ॥ यहचारों वर्णकेजुदे २ धर्मकहे अबनीचे साधारणधर्म कहतेहैं कि जिनका करना या न करना सबजातोंको एकसाहीहोताहै ॥

अहिंसासत्यमस्तेयंशौचमिंद्रियनिग्रहः । दानंदमोदयाक्षांतिःसर्वेषांधर्मसाधनम् १२१ ॥

ऐ०—अहिंसा किंतु किसीको पीड़ा नहींदेना-सत्य अर्थात् ठीकबोलना और जिस्से किसीको पीड़ा नहींपहुंचै-अस्तेय किंतु विनादीहुई वस्तु चोरीआदि के ढँगोंसे नहींलेना-शौच शरीरकी और चित्तकीभी शुद्धता-इंद्रिय निग्रहः ५ ज्ञानइन्द्रिय ५ कर्म इंद्रियइनका जो २ विषय या कामनियतहै वहीकरना उस्से अधिक या विपरीत नहींदान किंतुदीनको कुछ देना जिस्से उसका दुःख दूरहो-दम अर्थात् मनबुद्धि

चित्तअहंकार इनचारोंको अपनेबश में बनाराखना-दया किंतु दुखीकीरक्षामें तत्परता-कोई अपना अपकारकरै उसकोभीसहलेना और चित्तमेंबिकार नहींलाना सोयह (क्षांति)है इन धर्मोंकी साधना सबकेलिये तुल्यहै १२१॥

वयोबुद्ध्यर्थवाग्वेषश्रुताभिजनकर्मणाम्। आचरेत्सदृशींवृत्तिमजिह्मामशठांतथा १२२॥

प्रश०—वयस् १ बुद्धि २ अर्थ ३ वाक् ४ वेष ५ श्रुत ६ अभिजन ७ कर्म ८-इन्हों के सदृशअजिह्मातथा अशठा वृत्तिको आचरण करै १२२॥

भाषि०—इनकेसदृश वृत्तिका आचरणकरना यहबात कि अपनेगुणोंकी सत्ता और हैसियतके अनुरूप कोई कामकरै याचाहै या कोईबातकहै किंतु अपनी सत्ता और हैसियतसे बढ़कर या गिरकरभी कुछकाम न करै और मुखसेभी न कहै-अर्थात् बयस् जो अवस्थाहै सोतीनप्रकारकी होतीहै तिसमें दृष्टांत जैसे बूढ़ाअपनेयोग्य पहरैया खावै और गुरुतावालीबात कहै किंतुबालक या तरुणोंकीसी भांति छछोरपनसेनहीं ऐसेहीबालक अपने मुँहके अनुरूपबोलै या करै किंतु बूढ़ों या युवानोंकीसी भांतिनहीं १ बुद्धि जिसमें जैसीहो उसीके अनुसार बोलैयाकरै २ अर्थशब्दके दो अर्थहैंएक तो धनसंपत्ति जिसकेपास जैसीहो उसके अनुरूपकाम अथवाबातकरै दूसरे अर्थ प्रयोजनको कहते हैं किंतु जहां जैसा प्रयोजनदेखै उसके अनुसारकरै अथवा कहै ३ वाक वाणी और वार्ताकथनको कहते हैं किंतु जहांजैसीवार्ता का कथन या चर्चा होरहाहो उसीकेअनुसार बोलै या न बोलै ४ वेषकहिये लिवासबाना किंतु जिसकिसीने किसी हेतुसे जहाँजैसाबाना धारणाकियाहो या जिसकाजैसा स्वाभाविकचलाआताहो उसकी भी लाजपालन करनीचाहिये मसलप्रसिद्धहै कि जैसाकाछ काछिये तैसानाचनाचिये (दृष्टांत) जैसे एकनापितहै किसीहेतुसे कोतवालहुआ उसको वहक्षात्रिय वेपलेनेसे डाकुओंका पीछाकरनापड़ा ऐसेस्थलपरचाहो मृत्युभीहोजावे परउसबानेकीलाजनिवाहना यहीएक धर्महै उत्तरोक्त स्वाभाविक का (दृष्टांत) जैसे किसी (निर्द्धनवर) केसाथकोई नापित ऐसीचमकीली पोशाक पहनकरजावे जो उसवरकी पोशाककोलजातीहोतो यह कहाजायगा किउसनेअपने स्वाभाविकवाना और पेशासेभी तथाउसअवसरके प्रयोजनसेभीविपरीतकिया और इसीहेतुसे वहदंडनीय निश्चितकियाजायगा-ऐसेहीकिसी राजकुमार या राजा आदि किसीप्रतापीका खवासी जो उसकासहगामी होकरमलीन कपड़े पहनैतो वहभीदंडनीयहै या घसियारा जो मुंशियाना वेपबनायेहुये घासबेचै तो वहभीदंडनीयहै इत्यादि ५ श्रुतअर्थात् पुरुषार्थकेदेनवाले शास्त्रोंकापढ़ना या सुनना पाकर जहांतक होसक्ताहो उसकीलाजपालनकरै ६ अभिजन कहियेवंश किंतु जिस कुलमें जैसेआचारसे सुकीर्त्तिहोसक्तीहो उससेऊँच नीचनहीं ७ कर्मकहिये आजीवन पेशा संबंधी काम जिसने जैसा धारण कियाहो उसकी मर्यादाके अनुसार आचारकरै

(दृष्टांत)जैसेकोई ब्राह्मण अथवा साधुहै वह बनियांकी दूकानकिये बैठाहै जबसरकारी आवश्यकतासे सब दूकानोंसे (रसद) मांगीजायउसकोभी उस पेशाके अनुसार देनेसे इनकारकरना अनुचितहै ऐसे ऐसेनानाप्रकारके(दृष्टांत)एकएकपेशेमें संभवितहैंतिनको अपनी बुद्धिसेजानों ८-इनकहेहुये आचारोंमें यहउत्कर्षहै कि उक्तरीतिसे करनेपरभी अजिह्मा १ और अशठा २ वृत्तिबनीराखे अर्थात् उनआचारोंमें कुटिलताकहिये अकड़पन और १ मत्सरतानाम चुगलीचाई २ का प्रवेशनहोनेदेवै-यह धर्मभी सबलोगों के साधारणहैं १२२॥

यहांतक जो २ कर्म धर्म वर्णनाकिये गये सो सबस्मार्त्त कहलातेहैं अर्थात् स्मृतियों कीरीतिसेहैं-अब नीचे कुछेकश्रौत कर्मोंको कहतेहैं कि जिनके करनेकेप्रकार श्रुति जो वेदहैं तिनसे जानेजाते हैं पहले समय के ऋषिलोग बहुधा उन्हींकर्मों का आचार कियाकरतेथे॥

त्रैवार्षिकाधिकान्नोयःसहिसोमंपिबेद्विजः। प्राक्सौमिकीःक्रियाःकुर्याद्यस्यान्नंवार्षिकंभवेत् १२३॥

मक्ष०—जो त्रैवार्षिक या अधिक अन्नवाला द्विजातीहो सोई सोमपीवे-जिसके वार्षिक अन्नहो वे वहप्राक्सौमिकी क्रियाओंकोकरे १२३॥

मभि०—जिसकेघरमें तीनवर्षके उठावेयोग्य अन्नहोवे या इससेभी अधिक वहीद्विजाती सोमपीवे अर्थात् सोमयज्ञको वहीकरे किंतु इससे थोड़े अन्नवालानहीं क्योंकि उस यज्ञमें अन्नरसके अधिकारसे अधिक अन्नकी अपेक्षाहै इसीहेतुसे जोकोई थोड़ेअन्न वाला सोमपान करताहै वह करनेपरभी उसके फलको नहींपाताहै यहदोषभी ग्रंथांतरोंमेंकहाहै परन्तु यहदोषभी काम्य सोमयज्ञकेलिये निश्चितहै कि जोकिसीकामना से कियाजावे और नैत्तिक अवश्यभावसे कर्त्तव्यहो उसकेलिये कुछनियम नहींहै किंतु जहाँजैसा संभवहो-जिसके घरमें एकवर्षके जीवनयोग्य अन्नहोवेवहद्विजाती प्राक्सौमिकी क्रियाओंकोकरै अर्थात् सोमसे पहले जिन क्रियाओंका करना उचितहै तिन्हीं कोकरै सोवेक्रियायें यहहैं-अग्निहोत्रकर्म वेदोक्तदर्शकर्म वेदोक्त जो अमावसकेदिन होताहै-पूर्णमासकर्मवेदोक्त जोपूनोपरहोता है पशुकर्म्म वेदोक्तजोषाण्मासिक अयन कालपर होताहै-चातुर्मास्य कर्मवेदोक्त जो देवशयनमें होताहै-इस बातसे यहभी निश्चितहुआकि सोमकरनेका अधिकारउसीकोहै कि जोपहलेइनकर्मोंकोकरलेवे१२३॥

प्रतिसंवत्सरंसोमःपशुःप्रत्ययनंतथा। कर्त्तव्याग्रयणेष्टिश्चचातुर्मास्यानिचैवहि १२४॥

ऐ०—सोमयज्ञ वर्षवर्षपीछे संवत्सरके पलटनेपर-पशुयाग छै महीनापीछे अयनके बदलनेपर उत्तरायण दक्षिणायनमें सदैव-तथैव आग्रयणेष्टि जिसे आग्रयण कर्मभी कहतेहैं सोभी अयनके बदलनेपर-चातुर्मासिक कर्मभी हरसाल देवशयनमें होतेहैं-इनचातुर्मास्य कर्मोंमें प्रतिमास एकएक चारपर्वें बड़ीप्रतिष्ठितहैं उनमें जोयज्ञ

होतेथे तिकेनाम-वैश्वदेवः १ वरुणप्रघासः २ शाकमेधः ३ शुनासीरीयः ४। १२४॥

एष्वसंभवेकुर्यादिष्टिंवैश्वानरींद्विजः। हीनकल्पंनकुर्वीतसतिद्रव्येफलप्रदम् १२५॥

ऐ०-इनपूर्वोक्त सोमयाग आदि (नित्य) यज्ञोंकी असंभवतामें द्विजाती (वैश्वानरी इष्टि) को। करदेवे-यहउनके नहो सकनेकाहीन अनुकल्प कहाहै-परन्तु धनके होनेमें इस (हीकल्प) को नकरै क्योंकि धनके होतेहुये हीनकल्प फलका देनेवाला नहींहै-और फाप्रदनाम काम्ययागजो कामना सहित कियाजावे उसकोतौ कदाचित्भीधन केहोतेहुवे हीनकल्पसे नहींकरै १२५॥

भा०-ऊपरकी पंक्तिमें (नित्ययज्ञों) का चर्चा आयाहै अथवा जहाँ कहीं औरभी (नित्य)या नैत्तिकशब्द आयाहो उसकायहभावनहीं है कि वहकामरोजरोज कियाजावे अर्थात् नित्यया नैत्तिक उसेकहतेहैं कि जिसमें कुछकामनाकी अपेक्षातौ नहींहै परंतु करनाउसका अवश्यभावसे कहाहै और चाहै वह रोजके करनेवाला कामहो जैसे संध्यावंदन अथवा पाक्षिक या प्रतिमास करनाकहाहो जैसे दर्शपौर्णमासकर्म अथवा षाण्मासिक जैसे अयनपीछे-अथवा वार्षिक जो संवत्सरपीछे परन्तु यहनियम जहाँ होवियहकाम हमेश उसीनियत अवधिपर कियाजायसो(नित्य)है-और (काम्य) केवल वहीहै किजो किसीकामनासे जबचाहै तब कियाजाय १२५॥

चांडालोजायतेयज्ञकरणाच्छूद्रभिक्षितात्। यज्ञार्थंलब्धमददद्भासःकाकोपिवाभवेत् १२६॥

ऐ०-शूद्रसे भिक्षा किये हुये धनसे यज्ञकरने से चांडाल जातिमें जन्मपाता है-यज्ञकेनामसे पायेहुये धनको नहींलगानेसे भासनामपक्षी जिसे शकुंतभी कहतेहैं सो जन्मांतरमें होताहै अथवा काकभी १२६॥

भा०-भास अथवा काकयोनिमें रहनेकाप्रमाण मनुजीने सौवर्षोंका कहाहै-यथा (यज्ञार्थमर्थंभिक्षित्वायः सर्वन्नप्रयच्छति। सयातिभासतांविप्रः काकतांवाशतं समाः) अर्थात् जो ब्राह्मण यज्ञकेनामसे धनकी भिक्षालायकर सबरा नहींलगाता वह सौवर्ष-ताईं भास यद्वा काकयोनिको जाताहै १२६॥

अब तपोविशिष्ट भिक्षुक आदिगृहस्थी विप्रोंके गुणकर्म कहते हैं॥

कुशूलकुंभीधान्योवात्र्याहिकोश्वस्तनोपिवा। जीवेद्वापिशिलोंछेनश्रेयानेषांपरःपरः १२७॥

कुशूलधान्य १ कुंभीधान्य २ वा-त्र्याहिकधान्य ३ वा अश्वस्तनधान्य ४ चाहेशिलों-छहीसे जीवे इनमें पिछला २ श्रेष्ठहै १२७॥

भा०-(कुशूल) बुखारी जिसमें अन्न धराजाता है इतने अन्नवाला गृहस्थी (कुशूलधान्य) कहाताहै १ (कुंभी) यद्यपि ऊँटनी और हाथी काभीनामहै परन्तु यहांपर (कुंभी) डिहारैया डिहरामटेला जो मिट्टीके बनाकर नाज धराजाताहै इतने अन्नवाला गृहस्थी (कुंभीधान्य) कहलाता है २ या (त्र्याहिकधान्य) जिसकेघरमें तीनदिनका

नाजहो ३ या (अश्वस्तनधान्य) जिसकेघरमें केवल एकादिनका हो ४ यद्यारोंचाहै शिलोंछवृत्ति जिसे लौकिकमें शिल्ला चुगनाकहतेहैं उससेही जीवें परन्तु इनमें पहले २ से पिछला २ अधिकश्रेष्ठहै-इसहेतुसे कि जो संतोषसे तपस्यामें तत्पबनारहे और संचयकी तृष्णासे किसीसे द्रोहनहीं बांधे १२७॥

अधि०— यद्यपि एक और तीनादिनके लक्षणसे टीकाकारोंने (कुंभी) को ६दिन और (कुशूल) को बारहदिनके अन्नवाला निश्चितकियाहै परयह योजनाअसंभवहै क्योंकि बुखारीमें कईमासके उठावेका नाज आसक्ताहै फिर १२ दिनका नियमकैसे कहैं-डिहरामें भी एकमहीनेसे अधिकउठावे कानाज आसक्ताहै फिर ६ दिनकानियम कैसेकहैं- इसकेसिवाय उसके कुटुंबकी गुरुता लघुतापर दृष्टिकरने सेभी १२या ६ दिनका नियम असंभव है इसकेसिवाय मूलश्लोक में १२ या ६ दिनका ग्रहणभी नहीं पायाजाता-इसके सिवाय वह नियम अंगीकार करलेने परभी यह असंभवता है कि जबआज १२या ६ दिनका मौजूद हैतौकलहको ११ या ५ दिनकारहजायगा परसोंको १० या ४ दिनका रहजायगा फिर इसनियम कोकैसे मानसकें-इसकेसिवाय १२ या ६ या ३ या १ दिनों के अन्नसंचय का उपाय शिलोंछवृत्ति निर्णय सहित बतलाते हैं सोभी यह असंगत इसहेतुसे होता है कि वह शिलोंछवृत्तिका संचाभी केवल षाण्मासिक श्रावणी अषाढ़ी अर्थात् रवी और खरीफ़की फसलोंपर दार होसक्ता है फिर उनपरिनियमित दिवसों के उपरांत वे बारहमास कैसे काटेंगे इसे प्रत्यक्ष प्रतीत होताहै कि यह टीकाकार की खींखा खाँची तुषकंडनहै-निर्लेपवक्ता याज्ञवल्क्यजी ने साधारण भावसे एक निदर्शनमात्रजो इसीश्लोक में कहा है तिसका यह सिद्धांतहै कि जिस चौथे पदवाले को एक दिन का अन्नकहाहै तिसके घरमें चाहै दोचार दिन काभी अन्नहो तौ भी वही बातहै-तीन दिनवाले के घरमें चाहै दश पाँच दिनकाहो तौ भी वही बातहै-कुंभी धान्यवाले के डिहरामें चाहै चार पाँचमनभीहो तौ भी वही बातहै परछःदिनका कहना निपट असंगतहै-कुशूल धान्यवाले की बुखारी चाहै बीस पच्चीसमन भी हो तौ भी वही बातहै पर बारहदिन का कहना निपट असंगत है-और शिलोंछसे कहने का यह सिद्धांतहै कि यह चारों प्रकारके संचयवाले किसी ऐसीवृत्तिसे जीविकाकरें जिस्से किसीसे द्रोहनहीं करनापड़े सो उस किसीप्रकार के निदर्शनमात्र एक शिलोंछवृत्तिकहदीहै कि चाहैशिलोंछसेही जीवै पर किसीसे द्रोह नहींकरै परंतु यह नियम नहींहै कि केवल शिलोंछके सिवाय और कुछनकरै-सोईमनुसंहितामें कहाहै कि(अद्रोहेणैवभूतानामल्पद्रोहेणवापुनः। यावृत्तिस्तांसमास्थायविप्रो जीवेदनापदि॥कुशूलधान्यकोवास्यात्कुंभीधान्यकएववा) अर्थात्-आपत्काल के बिना प्राणियोंके अद्रोहसे अथवा अद्रोहकी असंभवता में थोड़े द्रोहसे जो कोईसी वृत्ति

होसक्तीहो उसमें आश्रित होकर ब्राह्मण अपना कालक्षेपकरै-यद्यपि ऐसी सौम्य वृत्तिसे बिशेष धनका संचयहोना कठिनहै-इसीलिये तीसरे अद्धामें कहते हैं कि चाहै केवल बुखारी मात्र नाजवाला होकेरहे या इतना भी उसवृत्तिसे न होसक्ताहो तौ चाहै केवल डिहरामात्र नाजवाला होकेरहै-परंतु कुछ इसबात का निषेधनहींहै कि अद्रोहके द्वारा भी इस्से अधिक धनका संचय नहींकरै क्योंकि पहले १२३ के श्लोकमें त्रैवार्षिकसे भी अधिक अन्नवालेको उत्तमता कहचुकेहैं (भेद२) और जोकि इसी १२७केश्लोक में थोड़े२ अन्नवाला बहुत २ वालेसे श्रेष्ठ कहागयाहै तिसका यह हेतु है कि गृहस्थी ब्राह्मणोंमें भी दो भेदहोते हैं सोई देवलऋषिने यह कहाहै कि(द्विविधो गृहस्थोया यावरः १ शालीनश्च २ तयोर्यायावरः प्रवरः याजनाध्यापन प्रतिग्रह रिक्थसंचय वर्जनात् १ षट्कर्माधिष्ठितः प्रेष्यचतुष्पदगृहग्राम धनधान्ययुक्तोलोकानुवर्तीशालीनः २) अर्थात् दोप्रकार का गृहस्थी ब्राह्मण जिसमें एकतौ(यायावर) नामसो वह दूसरे से उत्तमहै क्योंकि वह यज्ञकराने आदिकी जीविका भी नहीं करता पढ़ानेकी जीविका भी नहीं करता प्रतिग्रह जो दानहै सोभी नहींलेता धनका संचय भी नहीं करताहै क्योंकि इनकामों में औरोंसे द्रोहकरनापड़ताहै इसलिये इन्होंने अपने निर्वाहके वेही चारप्रकार साधारणभाव से रक्खे हैं कि जिनका चर्चा इसी १२७ के श्लोक मूल या उसके अर्थमें कहाहै और थोड़े२ अन्नवाला इसलिये उत्तम समुझागयाहै कि जहाँतक थोड़ा संचय और थोड़ी तृष्णा करैगा तहाँतक द्रोहभी थोड़ा करना पड़ैगा-दूसरेप्रकार का गृहस्थी ब्राह्मण जो (शालीन) नाम कहलाताहै वह यद्यपि उनसे मंद कोई प्रकार सेभी नहीं होसक्ता परंतु उसे केवल इसलिये सामान्य कहा गयाहै कि उसको जीविका की तृष्णा से वहुधा द्रोहकरने पड़ते हैं क्योंकि वे षट्कर्म प्रधान जैसे अस्मदादि हमतुम सभी जो लोकानुवर्ती किन्तु गृह ग्राम धन धान्य यान पशु सेवक आदिसे संपन्न होते हैं सोई इन शालीन संज्ञक गृहस्थोंके कर्म धर्मोंको ११७ के श्लोकसे कहचुकेहैं-परंतु इनमें भी चारभेद होते हैं तहाँ एकतौ इनछःकामों से जीविका करते हैं-याजन यज्ञादिकों का कराना १ अध्यापन पढ़ाना २ प्रतिग्रह दानलेना३ कृषी खेतीकरना ४ वाणिज्य व्यापार करना ५ पशुओंसे जीविका ६ इनकामोंमें से चाहेकोई सा एक दो कामकरै चाहै सबके सब कामोंको करै परवह एक प्रकारकी गिनतीमें है १-दूसरे इन्हीं कामोंमें से तीन काम किन्तु याजन १ अध्यापन २ प्रतिग्रह ३ से-तीसरे याजन १ अध्यापन २ इनदोसे ३-चौथे इनमें से पाँचकामों को निंद्य समुझकर केवलपढ़ानेकीही जीविका करते हैं ४-सोई मनुजीने स्पष्टकहाहै कि (षट्कर्मैकोभवत्येषांत्रिभिरन्यः प्रवर्तते। द्वाभ्यामेकश्चतुर्थश्च ब्रह्मसत्रेणजीवति) १२७॥ इतिगृहस्थधर्मप्रकरणम्॥

इसप्रकार गृहस्थीके स्मार्त और श्रौतकर्मोंको कहकर अब स्नानसे लेकर जो २

विधि और निषेध और मानस संकल्परूप व्रत स्नातकके लिये आवश्यक होते हैं सो कहते हैं॥

नस्वाध्यायविरोध्यर्थमीहेतनयतस्ततः। नविरुद्धप्रसंगेनसंतोपिचभवेत्सदा १२८॥

ऐ०—स्वाध्याय के बिरोधी धनकी बांछानहीं करै और जहाँ तहाँसे भी नहीं अर्थात् किसी एक प्रतिष्ठित मार्गसे और निज श्रमोपार्जित विद्याके आश्रयसे धनकी बांछा करै-बिरुद्ध प्रसंगसे भी धनकी बांछा नहींकरै किन्तु जैसे ब्राह्मण को अयाज्य का यजन कराना आदि या सबोंको किसीसे घूँसलेना आदि या नृत्यगीतादि जो बिरुद्ध प्रत्यक्ष हैं और सदा संतोषी भी हो किन्तु लाभके न होनेमें भी धीरज बनाराखै १२८॥

राजांतेवासियाज्येभ्यःसीदन्निच्छेद्धनंक्षुधा। दंभिहैतुकपाखण्डिबकवृत्तींश्चवर्जयेत् १२९॥

ऐ०—क्षुधासे पीड़ितहुआ स्नातक राजासे या शिष्योंसे या याज्यजो यजनकराने योग्यहों तिनसेही धनलेनेकी इच्छाकरै-और दंभीहेतुक पाखंडी बकवृत्ती इनसेयहां तकबचै कि जो बनिपरै तौमुखसे भी न बोलै १२९॥

अधि०—इसबातकोमनुजीने बिशेषतासे कहाहै कि (पाखंडिनोविकर्मस्थान्बैडालव्रतिकान्शठान्। हैतुकान्बकवृत्तींश्चवाङ्मात्रेणापिनार्चयेत्) अर्थात् पाखंडियों १ बिकर्मस्थों २ बैडालब्रतिकों ३ शठों ४ हैतुकों ५ बकवृत्तियों ६ को बाणीमात्रसे भी सत्कारनहीं करै-शास्त्रोक्तसे सिवायनया आश्रम कल्पना करनेवाला पाखंडी १-जिस कामका निषेधहै तिसका सेवनकरनेवाला बिकर्मस्थहै २-बैडालब्रतीमें इतने अवगुण होतेहैं धर्मध्वजी सदालोभी छाद्मिकछलिया लोकदांभिक हिंसावान् सबसेमिलाप और सभीसे अभिमान यहबैडालब्रती है किंतु बिलावके से लक्षणवाला ३ सर्वत्र अकड़पन राखनेवाला शठहै ४ कुतर्कसे सर्वत्र संशय आरोपित करनेवाला हैतुक है ५ बगुलाभगत सोबकवृत्ती है ६-दंभी अथवालोकदांभिक उसे कहते हैं जो लोक रिझावे के लिये कर्मोंका अनुष्ठान करै-धर्मध्वजी जोजीविका के लालचसे नखजटा आदि धारणकरै-इनसबोंसे मुखसेभी न बोलै यह कहनेका यह सिद्धांत है कि आप ऐसा न होजाय १२९॥

शुक्लांबरधरोनीचकेशश्मश्रुनखःशुचिः। नभार्यादर्शनेऽश्नीयान्नैकवासानसंस्थितः १३०॥

ऐ०—स्नातक पुरुष शुक्लांबरधारी हो अर्थात्सुपेद उज्ज्वलबस्त्र पहिरै-और नीच केशश्मश्रुनखहोवै अर्थात् शिरऔर डाढ़ीकेबालोंको मुड़ाये हुयेनखोंकोकाटेहुये निर्मल बनारहै-और शुचि कहिये मनसे तथा शरीरसेभी शुद्धबनारहै-भार्या के दर्शन किंतु संगम समय या उसकेपास बैठाहुआ कुछभोजन नहींकरै-और एकवस्त्रसेभी भोजन नकरै-और संस्थितहुआभी भोजन नहींकरै-अर्थात् लिखनेपढ़नेआदि किसी धंधेके लिये नियत बैठकमें बैठाहुआ नहींखाने लगे किंतु भोजनकेलिये चौकाआदि नियत-

स्थानों में जाकरखावै-और एकवस्त्रसे कहनेका यह सिद्धांत नहींहै कि बहुतसे कपड़े पहनेहुयेखावै अर्थात् केवल एकधोतीसेही नहीं बैठजावे किंतु दूसरावस्त्रकांधेपर अँगोछाभी रखलेवे जिस्से वामेहाथसे मक्खीआदिभी उड़ासकै या कदाचित् दूसराहाथ भी जूठाहोजावे तौ उसमें पोंछकर शुद्धकरसकै १३० ॥

भाषि०—यहां १२८ के श्लोकसे जो प्रसंग चलाहै यद्यपि विवाह और गृहस्थीके धर्मोंपीछे कहागयाहै परन्तु यहप्रसंग स्नातकपुरुषकाहै और स्नातक उसे कहते हैं कि जो विद्या और ब्रह्मचारीके नियमोंका पारपाकर शास्त्रोक्त विधिसे स्नानाकियेपीछे गृहस्थमें आयाहो फिर चाहे उसका विवाहभी हुआहो या न हुआहो कुछ इसबातका नियमनहींहै परन्तु संज्ञा उसकीस्नातकहोचुकी इसलिये उसकोवह बातैंभीअब करनी उचितहैं कि जिनका निषेध ब्रह्मचारीके लिये कियागयाथा-सोई गौतमजीने कहाहै कि(स्नातको नित्यंशुचिः सुगंधिःस्नानशीलः) अर्थात्स्नातक पुरुष नित्यंप्रति नखबाल आदिसे शुद्धबनारहै किंतु नख या बालोंको रखावैनहीं और चंदनानुलेपनधूप स्रक्अतर फुलेल तैलपुष्पमालाआदि सुगंधवस्तुओंसे सुगंधीरहै और स्नानशील होवे अर्थात् उबटनाआदि प्रकारोंसेभी स्नानकरनेमें प्रवृत्तिराखे-सो यहबातैं सबघर में कुछऐश्वर्यहोनेपर संभवितहैं अर्थात् यहबातैं कुछ ऐसी नहीं हैं कि जिनकेनकरने से वहमनुष्य अधर्मीगिनाजाय किंतु जिसकोप्रभुने अपनेअनुग्रहसे कुछऐश्वर्य दिया हो वहइसरीतिसेरहै और जो कोईअसमर्थहो वहअपनी शक्तिकेअनुसारचले क्योंकि जो शक्तिसे अधिकया शक्तिसेगिरकर कोईसाकामकरैगा या कोईसी चाल चलैगा तौ वहमनुष्य १२२ श्लोकमें कहीहुई मर्यादासे प्रतिकूल गिनाजायगा-इसी लिये यह स्मृतिभी कहीहै कि (नजीर्णमलवद्वासाभवेच्चविभवेसति) अर्थात्-धनसंपत्तिहोने परभी फटे और मैलेवस्त्रोंको न धारण करे-किंच-धनसंपत्तिके न होने में जीर्णयामलीनवस्त्रों का पहिरना कुछ अधर्मनही है-ऊपरऐक्यार्थमें भार्याकेसमीप भोजनकरनेका जो निषेधकिया तिसका यहकारणहै कि उसकेसमीप भोजनकरनेसे जो संतानें पैदाहोती हैं सो तेजोबलवीर्य पराक्रमआदिसे हीनहुआ करतीहैं-सोईश्रुतिभी प्रमाणहै कि (जाया या अंतेनाश्नी यादवीर्यवद पत्यंभवति) इसकेसिवाय लोकदृष्टिसेभी एक ऐसागूढ़ हेतु है कि वह इससे भी विलक्षण है-अर्थात् जो कोई पुरुष ऐसाढँगडालेगा उसके लिये यह बड़ीहानि है कि जो भार्या उसके नेत्रों के संकेतमात्रमे आज्ञामानिकर सबकामों का यथावत् साधनकरती है वहभी उसकी यह प्रकृतिदेखकर ऐसी शिरपर चढ़जायगी किआगेको उसे तुच्छसमुझकर कोईसी आज्ञाभी यथावत्नहीं साधन करसकैगी १३० ॥

नसंगच्छेत्पतिं चेन्ना ऽकल्यादनिपंवदेत्। नाहितंनानृतंचैवनस्तेनःस्यान्नवार्धुषी १३१ ॥

भक्ष०—अकस्मात् संशयको न पहुँचे अप्रियनहींबोले अहितभीनहीं अनृतभीनहीं स्तेननहींहोवे वार्द्धुषीनहीं १३१ ॥

अभि०—अकस्मात् कहिये विनाकारण किसी संशयरूपकाममें जो प्राणोंको विपत्ति देनेवालाहो नहींकूदे (दृष्टांत) जैसे व्याघ्रकेसन्मुख या चोरबटमारोंके सन्मुख या प्रदीप्त अग्निकेसन्मुख या अगाधजलमें इत्यादि और भीजानो-अकस्मात् विनाहेतु कोई अप्रियबचन जो किसीको बुरालगे अपनेमुखसे नहींकाढ़ै-अहितवार्त्ता जो किसीके या अपनेही कल्याणमें हानिकरसक्तीहो अकस्मात् मुखसेनहींकाढ़ै और न ऐसाकोई कामकरै-अनृत जो असत्यहो या जिस्से कुछउत्पात पैदाहोनेकी शंकाहो अकस्मात् मुखसेनहींकाढ़ै और न ऐसाकोई कामकरै-स्तेनकहिये चोरनहींहोवे किंतु विनादिये किसीकी कुछबस्तुनहींलेवै-वार्द्धुषीउसेकहतेहैं जो निषिद्धवृद्धिसे जीविकाकरै सो वार्द्धुषी की वृत्तिनहींकरै (दृष्टांत) जैसे कसाईआदि किसी जीवघातीको धनदेकर व्याजखाना मुर्देकाकफन खरीदकरबेंचना आदि और भी अपनीबुद्धिसे जानलो १३१ ॥

दाक्षायणीब्रह्मसूत्रीवेणुमांसकमंडलुः। कुर्यात्प्रदक्षिणंदेवमृद्गोविप्रवनस्पतीन् १३२ ॥

ऐ०—दाक्षायणी अर्थात् दाक्षायण जो सुवर्णहै तिसका धारणकरनेवाला-ब्रह्मसूत्री अर्थात् यज्ञोपवीत धारणकरनेवाला-बेणुमान् बाँसको लियेहुये-कमण्डलु जो लोटाहै तिसको लियेहुये कहींजाताहुआ इतनी चीजोंको प्रदक्षिणा करकेजावे एकतौ देवता मृत्तिका गौ विप्र बनस्पतीनूको १३२ ॥

अधि०— सुवर्णका धारणकरना सुवर्णआदि पंचरत्नी या नवरत्नी माला आदि आभूषणों का उपलक्षण है परन्तु अनुकर्ष केवल इतनाहै कि जो और कुछ न होसके तौ सुवर्ण अवश्यभावसे शरीर में राखै क्योंकि यहबस्तु बड़ेपवित्र रत्नों में गिनती है जिसके शरीर में किसीप्रकारसे मालाकुंडल मुद्रिकाआदि कोई चिह्न सुवर्णकाहोता है वह किसीप्रकारसे अपवित्र नहींहोसक्ता अर्थात् जोभीड़ भटका में किसी मलीनकोभी छूजावे तौ अशुद्धनहीं होसक्ता दूसरेबुद्धि का प्रकाश बनारहता है तीसरेदारिद्रकीबाधाउसको नहींसतासक्तीहै चौथेकिसी संकटदशामेंभी वहकाम देसक्ताहै पांचवें शरीरकी शोभा और प्रतिष्ठा भी है-और ब्रह्मसूत्रका यह सिद्धांत नहींहै कि पहिरेहुये कहींजावे क्योंकि पहिरना तौ सदैवही उचितहै फिर उसको क्या कहेंगे किंतु तात्पर्य इसका इतनाहैकि जो कहींजावै तौ पहिरेहुये के सिवाय कोई यज्ञोपवीत अपने पास बँधारक्खै न जानिये किसदशामें टूटजाने या अशुद्धहोजानेसे उसके वदलनेकी जरूरत आनिपड़े या अपने किसी हितूको देनेकी आवश्यकता आनिपड़े तौ फिर तत्काल कहाँ मिलसक्ताहै-बाँस कहनेका यह भावहै कि कहींजावै तौ लाठी लकड़ीलिये विना खाली हाथ नहींचलाजावै न जानियेकोई दुर्जन या कूकुर व्याघ्रादिमिलजावैं तौ इस्से

बड़ाभरोसाहै-लोटा कहनेका यह प्रयोजनहै कि जो कहींजावै तौ लोटाको अवश्यही लेजावै न जानियेकहीं दिशा शौचकी ज़रूरतहो या जलपानकी आवश्यकताहो अर्थात् लोटा बिनाधर्म और प्राणोंकी भी हानिमें संशयहोताहै-इस प्रकार जातेहुये मार्ग में जहाँ कहीं देवता या देवताका स्थान दृष्टिआवै उसको दाहिने देकर निकलै-मृत्ति-का कहनेका यह सिद्धांतहै कि जो कोई पृथ्वी खेड़ा आदि प्रकारोंसे ऊंचीहो उसको या किसी उत्तम मृद्विकार वस्तुको अर्थात् स्वर्णादि नाना धातु भेद और गैरिकमनः-शिला आदि नानाभाँतिके उपधातु भेद जो पृथ्वी धातुमें गिनतीहैं तिनकी राशि दे-खकर श्रद्धासहित हाथजोड़े और दाहिने देकर निकलै क्योंकि ये वस्तु भी परमऋद्धि सिद्धिरूपहोतीहैं-तथैव गऊ और ब्राह्मण कहीं दृष्टिआवै उसको भी दाहिने देकर निकलै-बनस्पतीका यह सिद्धांतहै कि जो जो वृक्ष वृक्षोंमें बड़े उत्तम या पवित्रगिने जातेहैं जैसे आम्र, केला, पीपल आदि इनको भी दाहिने देकर निकलै (भेद २) अबके समयके विरले अश्रद्धक लोग अपनी चतुराईसे यह भी कहनेलगतेहैं कि इन बातोंसे क्या होताहै किंतु यहबातें सिर्फ़ फ़जूलगोई या निरर्थक आचारमें गिनती हैं परंतु जो विचारदृष्टिसे सूक्ष्म ध्यानलगाकर देखो तौ यही निश्चितहोताहै कि उन-को परमेश्वरने केवल उदरभरने मात्रकी चतुराईदी होगी क्योंकि उस जगत्कर्त्ताको सबतरहकी सृष्टिरचना करनी अंगीकारथी फिर जो ऐसे लोग नहींबनाता तौ उसकी ईश्वरतामें न्यूनतापड़जाती-उनसे यह भी बूझा चाहिये कि जो सबकी बुद्धि ऐसीही होजावे तौ सृष्टिकी बड़ाई और छुटाई कैसेजानीजाय और किसलिये कोई किसीके बड़प्पन या प्रतापकी गुरुताकोमानै और जो यही ढंग चलजावे तौ क्रम२ से सारा संसार ऐसी चतुराईकी गरमीसे पिघलकर पानीहोजावे फिर कोई किसीकी बड़ाई या छुटाई को न मानै-विद्या देनेवालेको किसलिये गुरु या उस्तादकी पदवीमें समुझते हैं जैसे और तैसा वह भी एक मनुष्यहै बल्कि दामलेकर विद्यादेनेवाला और नौक-रोंकी गिनती में आजावे-पिता किसलिये ईश्वरके समान समुझाजाता है जैसे और तैसा वह भी एक मनुष्यहै-राजा किसलिये ईश्वरका अंश मानाजाताहै जो पंचतत्त्व औरोंमें सो उसमें हैं-कदाचित्कहो कि राजाका भय बड़ा प्रबलहोताहै इससे उसका बड़प्पन लाचार मानाजाताहै तहाँ यह भी ध्यानकरनाचाहिये कि भय वस्तु केवल समक्षभावमें होतीहै कि जो उसके सन्मुख कहेंगे कि तू ईश्वरका अंश नहीं है तौ वह दंडदेवेगा परंतु परोक्षभावमें या हृदय कोष्टमें कि जहाँ इसभयकी संभावना नहीं है तहाँ किसलिये उसको साक्षात् ईश्वरका अंश समुझतेहैं-कदाचित्कहो कि हृदयका अभ्यंतर किसको मालूमहोसक्ताहै कि तुम उसको ईश्वर तुल्यमानतेहो या नहीं नहीं सीधासा एक प्रत्यक्ष प्रमाणहै कि जब कोई राजा या राजाधिराज बादशाह किसी

राजापर चढ़ाई और विजयकरिके उसको पकड़लेताहै उस समय उसका मारडालना भी उसको सुगमहै क्योंकि उस्से किसीतरहकाभय उसको नहींहै बलिक उसे जीवता बनाराखनेमें खटकाभीहै परंतु वह विजयकर्त्ता बादशाह उसको इसीहेतुसे बध नहीं करताहै कि राजा ईश्वरका अंशहोताहै और इसीसे वहअवध्य भी होताहै-अब कहो कि उस्से क्या उसको भयकी संभावनाथी जो बधनहीं किया केवल नज़रबंदरखकर सर्वथा सत्कारपूर्वक उसके सब खर्चों और सेवक वा सवारी आदि आरामोंका प्रबंध करदिया इस्से ठीक२ निश्चितहुआ कि उस विजयकर्त्ता के हृदयमें भी विश्वासहै कि यह राजा साक्षात् ईश्वरका अंशहै इसका अपकारकरना मेरेलिये अधर्महै और जो यह विश्वास उसके हृदयकेभीतर नहींहोता तौ तत्काल उसे अपना शत्रु और बाधक समुझकर मरवाडालता-और यह प्रत्यक्षहै कि जो कोई अन्यायी राजा ऐसा अन्याय कर बैठताहै वह प्रथम तौ सारे संसारमें अन्यायी प्रसिद्धहोकर दुर्नामता पाताहै दूसरे इसी अधर्मके प्रभावसे वह शीघ्र नष्टहोजाताहै-इस सारे कथनका सिद्धांत केवल इतनाहै कि ईश्वरने जिसकी जितनी गुरुता या लघुता अपनी ईश्वरतासे निर्माणकरी है सो यथावत् सबको कहनी और माननी भी चाहिये जिस्से उसकी ईश्वरताकी विलक्षणता प्रकटहोतीरहै-अब जो तुम यह कुतर्ककरनाचाहो कि मनुष्यादि सृष्टिकी वात भिन्नहै पर माटी२ सब एकसी और वृक्ष२ सब एकसे इनमें उत्तमता या मध्यमता वृथाहैतौ इसकुतर्ककाउत्तरसिवाय इसकुतर्कके और कुछध्यानमेंनहीं आसक्ता कि इस बुद्धिकेआगे स्त्री२भी सबएकसी होंगी फिर भार्या और भगिन्यादिकाभीभेद वृथाहै क्योंकिवेहीपंचतत्त्व और वेही दश इंद्रियाँ और वेही सातधातु सबकेशरीरमें होती हैं सुनो भगवद्गीताका विभूति अध्याय या उस प्रकारके अन्य शास्त्रोंकेस्थलभी तुमने देखेहोंगे या सुनेहोंगे-जड़ और चैतन्यपर भी कुछ आरूढ़ता नहींहै यद्यपि जगत्कर्त्ता अपनी चिच्छक्तिरूपसे सर्वव्यापी प्रत्यक्षहै इसमें कुछ संदेह नहीं तथापि जिसजीवमें या जिसवस्तुमें या जिसदेशमें या जिसकालमें उसकी चिच्छक्तिरूप सत्ताका आधिक्य विशेषहै वहविशेष माननीयहै अर्थात् जिसजाति या जिसभेदमें जो२वस्तुकुछ उत्तमहै सो२ सब ईश्वरकी विभूतिहै तौ इस व्यवस्थासे उसकी विभूतिका सत्कारकरना यह भी एक उसीका सत्कारहै और यही सत्कार उसकी भक्तिभावमें गिनतीहै सोई देखो इसका प्रमाण मर्यादापरिपाटी के प्रारंभमें सबसे पहले श्लोक और उसकी अधिकोक्तिमें क्या कहचुकेहैं (भेद२) कदाचित् अबतक भी तुम्हारी बुद्धि नहीं जमतीहो तौ अब तुम अपनीही बुद्धिके अनुसार समुझो और ईश्वरकी ईश्वरता को दूरकरौ केवल संसारपर दृष्टिडालकर ऐसे स्थानों में जाकर तमाशा देखौ कि जहांकहीं जंगीफौजोंकी कवाअद होरही हो उसमें नानाप्रकारके संकेत ऐसेभी होते

हैं कि जो बोलीके साथही तत्काल बंदूकको बामे हाथके सहारासे छातीमें चिपटीहुई बामे कांधेके ऊपरतक खड़ी करलेना या दोनोंहाथोंका मिलाना या पैरोंकापैतराबदलना आदि अनेक बातें ऐसीहोती हैं जिनकाकाम युद्धके समय कुछभी नहीं पड़ता क्योंकि युद्धके समयकी क़वाअ़द जुदी सिखाई जाती है औरपीछे सिखलाई जाती है और यह एकप्रकारकी साधारण क़वाअ़द जो सबसे पहले अभ्यास कराई जाती है सोऐसीहै कि जैसेगानविद्यामें पहले स र ग म आदि स्वरोंका अभ्यासकराना या वाद्य विद्यामें पहले जुदे२ बाजेकी अपनी तालका मिलाना जैसे सितारमें डिड़डा आदि शब्दोंसे अभ्यास कराना या लिखने पढ़नेमेंपहले वर्णमात्रके हिज्जे करवाना आदि-शोचो पूर्वोक्त चतुराईके आगे ये सारी बातें वृथाहैं परन्तु सिद्धांतमें एकभी वृथा नहीं है इन सबके प्रयोजन कहना तो बड़ा विस्तारहै परसीधी सीधी राहसे समुझलो कि उन साधारण संकेतों से सीखनेवालेको उस ढंगमार्गमें जमाना ऐसाहै कि जैसे नवीन बछेड़ेको जब सवारीमें जोड़ना चाहैंगे तब सबसे पहले उसे काठके घसीटामें जोड़कर सड़कमें निकालेंगे फिरपीछे रेतके मार्गमेंभी जब उसमें अभ्यास होजायगा तब खड़खड़ामें जोड़कर दश पांचरोज फेरैंगे जब उसमें पक्काहोजायगा तब इक्का या बग्घी आदिमें लगावेंगे तो क्रम२से अभ्यास होजानेसे ठीक२ काम देसकैगा जोएक सूत पहले बग्घीमें जोड़देते तो चौंककर बग्घीकोभी तोड़देता और घोड़ाकी आदति भी विगड़ जाती-ऐसेही साधारण क़वाअ़दके संकेतोंको सुनतेही तत्काल उसने उस आकृतिको बनाकर दिखला दिया तो यह निश्चय होगया कि अब आगेको जोकुछ विशेष वार्त्ता सिखलावेंगे तो उसआज्ञाको भी मानेगा और उस आकृतिको बनासकेगा और जो इसमें सीधा न होसका तो जानागया कि आगेको बड़े संकेतोंमें क्या करसकैगा-ऐसेही ये धर्म शास्त्रकी साधारण क़वाअ़द के संकेतहैं जो क्रम२से इन माटी और वृक्षादिकों की गुरुता लघुतामें श्रद्धा पूर्वक यथा योग्य दृष्टिजमिजायगी तो आगेको माता पिता गुरु तथा राजा आदि गुरुओंके बड़प्पन और पदवीको उनसे भी लक्षगुणी कोटिगुणी समुझैगा और जो उनमें श्रद्धानहीं बांधैगा तो यहजानो कि पहला प्रारम्भ विगड़ा हुआ सर्वत्र शिष्टाचारको चंचलकर देवेगा-इस्से धर्मशास्त्रका लिखाहुआ एक अक्षरभी वृथा नहीं केवल समुझनेवालेकी समुझका अन्तरहै

(भेद ४) कुछ यही नियम नही है कि जो पांच वस्तुइस १३२के श्लोकमें कही हैं को दाहिने देकर निकले किंतु जो२ वस्तु उत्तम गिनीजाती हों उन सबकाही करे क्योंकि यह पांचका कहदेना एक निदर्शनमात्रहै बल्कि मनुजीने आठव यथा (मृदंगांदैवतांविप्रं घृतंमधुचतुःपथम। प्रदक्षिणानिकुर्वीत प्रज्ञातांश्च अर्थात्-मृत्तिका १ गऊ२ देवता३ विप्र४ घृत५ मधु-सहत आदि उ

राहा७ प्रसिद्धबनस्पती८ इन सबोंको दाहिनेदेकर निकलै-सो यह आठका कहनाभी निदर्शन मात्रहै किंतु ऐसी२ औरभी जो कोई बस्तु उत्तमहों वे सभी इनमें गिनती हैं- और इसके सिवाय कुछ यही नियम नहीं है कि इनकोचाहे तिसदशामेंभी दाहिने दियेविना अधर्मी कहला सक्ताहै किंतु सिद्धांत केवल इतनाहै कि इस मर्यादमें अभ्यास और तत्परता बनीराखै अश्रद्धा नहींकरै जब किसी ऐसी सावधानीकी दशामें कहीं जाताहो कि इनको दाहिने करनेमें अवकाश मिलसक्ताहो तब अवश्य भावसे लोकरीतिको पूरीकरनी चाहिये-या-जब किसी ऐसी दशामें कहीं जाताहो कि इनको दाहिने करनेका अवकाश नहीं मिलसक्ता और किसी अपेक्षित कार्यमें बिलम्ब या उत्पात होनेकी शंकाहै तो उस अवस्थामें दाहिने और बामेका कुछ विवेक नहीं-किंतु निःसंदेह बामे देकर चलाजावै और मनकी भावना मात्रसे हाथजोड़कर ऐसाध्यान करता चलाजावे कि जानों हम इनको दाहिनेंदिये जाते हैं तो दोष नहीं- परन्तु शिष्टाचारमें उपेक्षा या निरादर आरोपित करना यह अधर्मका हेतुहै १३२॥

नतुमेहेन्नदीछायावर्त्मगोष्ठाम्बुभस्मसु। नप्रत्यगन्यर्कगोसोमसंध्यांबुस्त्रीद्विजन्मनः १३३॥

ऐ० —नदी छाया मार्ग गोशाला जल भस्म इन्होंमें मूतै नहीं और हगैनहीं-अग्नि सूर्य गऊ चन्द्रमा संध्या जल स्त्री द्विजाती इनके सन्मुख अर्थात् इनको देखताहुआ हगै मूतै नहीं १३३॥

अधि० —शंखजीने कुछ और बस्तुभी गिनाई हैं-यथा- गोबर-जुता और बोयाहुआ खेत-चिता या किसी बस्तुकी ढेरी-श्मशान-खलिहान स्थान-जलका किनारा इनमेंभी नहींहगै मूतै-यह सिद्धांत नहींहै कि इन कहीहुई चीजोंके सिवाय और किसी बस्तुमें हगने या मूतनेका निषेध नहीं है-अर्थात् इसकहेहुये निदर्शन मात्रसे वे सभीवस्तु और सभी स्थान इनमें गिनती हैं कि जो शास्त्रसे या लोक दृष्टिसे बिरुद्ध पाये जातेहों या जिसमें मलकरनेसे किसीको प्रत्यक्ष या अज्ञात भावसे भी कोई तरहकी हानि अथवा पीड़ा पहुँच सकती हो-और यद्यपि बिस्तारके भयसे इन सबका हेतु लिखनेकी उपेक्षाहै परंतु एक २ निषेधमें अनेक २ हेतुभी ऐसे प्रत्यक्ष हैं जिनसे अपनेको दोष और परायेको पीड़ाकी संभावनाहै(जैसे)नदीमें जलका बिगड़जाना उससे रोगोंकी उत्पत्तिहोनी-छायामें जो कोई आनकर बिश्राम लेवेंगे उनको क्लेशहोना-मार्गमें सबको ग्लानिहोनी इत्यादि सबके हेतु प्रत्यक्ष हैं-और अपने को उसदोषके सिवाय तत्काल या कुछ विलंबसे भी दंड मिलनेकी शंकाहै-और जो दंडसे बचजावे तो ऐसे गूढ़पापों से कुष्ठादि और श्वासादि असाध्य राजरोगों के होजानेकी भीतिहै किन्तु-पाप अपना बदला लिये विना पीछा नहीं छोड़ता १३३॥

नेक्षेतार्कंननग्नांस्त्रींनचसंसृष्टमैथुनाम्। नचमूत्रंपुरीषंवानाशुचीराहुतारकाः १३४॥

ऐ०—सूर्यको-नग्नास्त्रीको-संसृष्ट मैथुनास्त्रीको भी नहीं निहारै-मूत्र और पुरीषको भी नहीं देखै-आप अशुचि हुआ राहु और ताराओंको भी नहीं निहारै १३४॥

अधि०—सूर्यको न देखै यह असंगतहै क्योंकि सूर्यके दर्शन पुनीत हैं परंतु इसका प्रयोजन मनुजी के वाक्यसे सिद्धहोसकता है-यथा-(नेक्षेतोद्यंतमादित्यंनास्तंयातं कदाचन नोपसृष्टंनवारिस्थंनमध्यंनभसोगतम्) अर्थात्-उदयहोतेहुये आदित्यको नदेखै किन्तु जब पूराबिंब उदयहोचुकै तबदर्शनकरै-अस्तहोतेहुये कोभी कभी नहींदेखै किन्तु जबतक पूराबिंबबनारहै तबतक देखनेका दोषनहीं-राहुसे ग्रसेहुये सूर्यको नदेखै-जल में सूर्यकेप्रतिबिम्बको नदेखै-मध्याह्न कालमें आकाशके मध्य पहुँचेहुये सूर्यको नदेखै-यद्यपि सन्ध्याबन्दनकी उपासनासमय अवश्यभावसे ऐसे अर्द्धोदय या अर्द्धास्त बिम्बका देखनाहोता है पर उसका निषेधनहीं है क्योंकि वह विधिकाप्रसंग है-यहबात जुदी है इसमें साधरणभावसे दृष्टिजमा-करदेखने का निषेधहै इस्से प्रथम तो सूर्यदेवका अपकार है दूसरे नेत्रोंकी दृष्टि मारीजातीहै-नग्नास्त्रीका निषेध मैथुनकालकेसिवाय निजभार्याका भी निश्चितहै-संसृष्ट मैथुना स्त्रीका यहअर्थहै कि किसीसे मैथुनमेंतत्परहुईकोनदेखै दूसराअर्थ यहभीहै कि मैथुनसेनिपटेपीछे तत्काल अनग्नाकोभी नहींनिहारै क्योंकि इस्से उसको अधिकलज्जा प्राप्तहोतीहै और इसीसे वह शापभीदेतीहै और (च) शब्दकेअभिप्रायसे वे बातेंभी-लेनीचाहिये कि जो इसमें नहींकहीं-पर मनुजीनेकहीहैं-यथा-(नाश्नीयाद्भार्ययासार्द्धं नैनामीक्षेत्चाश्नतीम्।क्षुवतींजृंभमाणांचनचासीनांयथासुखम्।नांजयंतींस्वकेनेत्रेनचाभ्यक्तामनावृताम्। नपश्येत्प्रसवंतींचश्रेयस्कामोद्विजोत्तमः) अर्थात्-जोकोई द्विजाती मात्रमें उत्तमगिनाजाताहो और वह सर्वथा अपनेकल्याणोंकी कामनारखताहो वह इतनीबातैं नहींकरै-किन्तु-भार्याकेसाथ भोजननहीं-भोजनकरतीहुई भार्याको नदेखै-छींकतीहुईको नदेखै-जंभाईलेतीहुईको भी नहीं-स्वतंत्र अपनीइच्छाकेअनुसार बैठी हुईकोभी नहीं-अपने नेत्रोंमेंअंजन करतीहुईको भी नहीं-उबटनाकरीहुई या लगाती हुईकोभी नहीं-वस्त्रोंबिना नहातीधोतीको भी नहीं-गर्भकाप्रसवकरतीहुईकोभी नहीं-यद्यपि इन कहीहुई सारी बातोंके हेतु अनेकहैं और सबके भिन्न २ भी हैं परन्तु साधारण भावसे यह हेतुहै कि यहांपर जिनबातों का निषेध किया है तिनके करनेवाले पुरुषकातेजो बल बुद्धि पराक्रम यश पुण्य सुकीर्त्ति आयु प्रताप ये सब शीघ्र नष्ट होजाते हैं १३४॥

स्वपेनवज्रइत्येवंसर्वमंत्रमुदीरयेत्। वर्षत्यप्रावृतोगच्छेत्स्वपेत्प्रत्यक्शिरानच १३५॥

पद०—यह मेरावज्र इसप्रकार जोमंत्रहै ताहि मारा उच्चारणकरै वर्षामें उघाड़ा जावै- पश्चिमको शिरकियेहुये सोवै भी नहीं १३५॥

भाभि०—बर्षाहोतेसमय कहींजानापड़े तौ वेखटके नंगाचलाजाय किंच-अयंमेवज्रः पाप्मानमपहंतु-यह जो वेदकामंत्रहै इसे संपूर्ण उच्चारण करलेवै तौ कुछचिन्तानहीं उत्पन्नहोगी-और पछाँहको सिरहानाकरके सोवैभी नहीं १३५॥

अधि०—मंत्र जोबस्तुहै सो उसीकीरक्षाकरसक्ताहै जिसने मंत्रोंको किसीप्रकारसे सिद्धकरपायाहो सो ऐसेमनुष्य थोड़ेहोतेहैं-और यहप्रकरण यद्यपि स्नातकपुरुषके नामसे कहरहे हैं सो स्नातक अवश्य बिद्यावान्होताहै-परन्तु स्नातक यह एक निदर्शनमात्रकहाहै अर्थात् यह सिद्धांतनहींहै कि इसप्रकरणकी कहीहुई मर्यादें स्नातक के सिवाय और कोईनहींमानै किन्तु द्विजातीमात्रके सबकेलिये कहींहैं-इसीहेतु से ऊपर जो वज्रमंत्रका उच्चारणकरनाकहाहै तिसका यह सिद्धांतहै कि बहुतेरे मनुष्य ऐसे कायरहोतेहैं कि वे बर्षाकेसमय निकलनेसे भयमानतेहैं कि जानै ऊपरसे बिजली गिरै या कोई और उत्पातहोजावै सो ऐसेमनुष्योंको हिम्मतिबँधानेकेलिये यह उपाय लिखाहै कि जिस्से उनकेकल्याणरूपीकामोंकी हानि नहींहोनेपावे क्योंकि हिम्मतहार जानेसे मनुष्यकाउत्साह माराजाताहै और उत्साहकेबिना फिरकोईकामनहीं चलसक्ता-अन्यथा जो दैवकरताहै सोईहोताहै बिनाउसकीइच्छा उत्पातनहीं होसक्ता और बचभीनहींसक्ताहै पर नेत्रोंकेआगे सींकओटकरनेसे पहाड़कादीखना बंदहोजाता है (भेद २) मन्वादि अन्यशास्त्रोंके अभिप्रायसे बर्षासमय दौड़केभी नहींचले नग्नहोकर नहींसोवै किसीशून्यस्थानमें एकल्ला नहींसोवै १३५॥

ष्ठीवनासृक्शकृन्मूत्ररेतांस्यप्सुननिक्षिपेत्। पादौप्रतापयेन्नाग्नौनचैनमभिलंघयेत् १३६॥

ऐ०—ष्ठीवन, थूक, खखार, आदि-असृक रक्त-शकृत् विष्ठा-मूत्र-रेतस्वीर्य-इनको जलोंमें नहींफेंकै-अग्निमें पैरोंको तपावैनहीं-इस अग्निको उलाँघैभी नहीं १३६॥

अधि०—इसमें शंखजीने कुछ और बस्तुभी निषेधकरीहैं-यथा-तुषकेशपुरीषभस्मास्थिश्लेष्मनखलोमान्यप्सुन निक्षिपेत् पादेनपाणिनावा जलंनाभिहन्यात्-अर्थात्-तुषभूसी आदि, केशबाल, पुरीष विष्ठा, भस्म राखकूड़ा, अस्थिहाड़, श्लेष्म खखार, नखमुह, लोमरोमा इनको जलोंमें नफेंकै क्योंकि प्रथमतौ जल देवरूपहै दूसरेलोक दृष्टिसे जलोंका बिगड़जाना उस्सेपीने या नहानेवालों को रोगोंकी उत्पत्ति होना यह अधर्महै तीसरे जोकोई ऐसाकरते देखैगा वहबुरा कहैगा और मारपीटभी होजावैगी और पैरसे या हाथसे जलकोपीटैनहीं इस्से अपनी या औरोंकी आँखोंमें जलका पड़जाना और हाथपैरोंकी नसोंमें कफ वातका विकृत होजाना यहबड़ी शंकाहै-अग्निके मध्ये मनुजीने बहुत कुछ कहाहै-यथा-(नाग्निंमुखेनोपधमेन्नग्नांनेक्षेतचस्त्रियम्। नामेध्यंप्रक्षिपेदग्नौ नचपादौ प्रतापयेत् अधस्तान्नोपदध्याच्चनचैनम भिलंघयेत् नचैनंपादतः कुर्यान्नप्राणाव धिमा चरेत्)अर्थात् अग्निको मुँहसे नहीं फूकै क्योंकि चिटकारी

आँखमें पड़ेंगी या नेत्रोंकी ज्योति मंद होजायगी-नंगीस्त्रीको नदेखै-अग्निमें अशुद्ध बस्तुनहींछोड़े क्योंकि प्रथमतौ वह देवतारूपहै दूसरे उससेचिड़ाइँध छूटैगी तबकिसी को पीड़ापहुँचेगी वह भलाबुरा कहेगा-पैरोंको भी नहींतपावे क्योंकि नेत्रोंकी ज्योति मारीजायगी और त्रिदोष कुपित होनेकी शंका है-नीचे अग्निको कपड़ोंसे ढाँककर न बैठे क्योंकि इसभाँतिसे तापतेहुये बहुधा मनुष्य कपड़ों सहित जलजातेहैं और आगभी लगजातीहै-इसको कूदकर उल्लँघे नहीं क्योंकि जो ऐसाअभ्यास पड़जायगा तौ एकदिन पूरा धोखा खायगा-इसको पैरकेनीचे भीनहींदबावे क्योंकि प्रत्यक्ष पीड़ा काहेतुहै तीव्रता उसकीआँखोंतक पहुँचतीहै औरखाल जलजावेगी तौ लँगड़ेहुये फिरोगे तबसारेकाम बन्दहोजायँगे-इसको प्राणोंकीअवधिताईं न आचरणकरै अर्थात् जो लोग पंचाग्नि आदि प्रकारोंसे अग्निसेवनकरनेवालेहैं वेभी ऐसाअतिशय सेवन नहींकरैं जिस्से प्राणजातेरहैं क्योंकि जो प्राणोंकीरक्षाबनीराखौगे तौ अनेक धर्मकर्म और तपस्याओंका संचय करसकौगे और प्राणोंकी हानिकरदेना यह तपस्यानहींहै किंतु आत्महत्यामें गिनतीहै १३६॥

जलंपिबेन्नांजलिनानशयानंप्रबोधयेत्।नाक्षैःक्रीडेन्नधर्मघ्नैर्व्याधितैर्वानसंविशेत् १३७॥

अक्ष०-अंजलीसे जलनहींपीवै-और सोवतेहुयेको जगावैनहीं-अक्षोंसे क्रीड़ानहींकरै-धर्मघ्नोंसेभीनहीं-व्याधितोंकेभी साथबैठेनहीं १३७॥

अभि०-जलको दोनोंहाथ बाँधकेनपीवे इसकहनेसे पीनेमात्रकी कोईवस्तुहो उसको हाथसेनहीं क्योंकि यह एकप्रकारका गमारू लक्षणहोताहै इस्सेकपड़े छींटछाँटजातेहैं और पीतेहुये जो श्वासलेलेवै तौ आँतोंमें पानीघुसजानेकी शंकाबनीरहती है और प्रमाणसे अधिकभी पीजाताहै इससे उदरशूलभी होजानेकी शंकारहती है इसलिये किसीपात्रसेही पीवे-और सोवतेहुयेको अपनेसे अवस्था या विद्याआदि गुणोंसे श्रेष्ठ को तौ अवश्यही नहीं जगावे परवहबात जुदीहै कि जो तत्काल कोई उपद्रव आनि खडाहो क्योंकि(आपत्कालेमर्यादानास्ति)अक्ष कहिये पाशे जो द्यूतक्रीड़ामें प्रसिद्ध होतेहैं तिनसे कभीसाधारण भावसेभी नहींखेले क्योंकि उसमेंसाधारणमेंभी तत्काल सञ्चाखेल खडाहोजाताहै पीछे जो कुछ दशाहोतीहै सो सब युधिष्ठिर और राजानल के इतिहासोंसे प्रसिद्धहैं-धर्मघ्नोंसे न खेलै अर्थातजो धर्मघ्नपुरुष होतेहैं तिनके साथ न खेलै और न बैठे और एकप्रकारके धर्मघ्नखेलभीहोते हैं जिनमें किसी जीवकी हिंसाहोतीहो जैसे कुत्तासे खरगोश आदिका तोडवाना ऐसे अनेकखेल होतेहैं तिन खेलोंसे आपनहींखेले और नेत्रोंसे देखैभीनहीं-और व्याधितपुरुष जो किसीप्रकारके ज्वर या विस्फोटक या कुष्टआदिरोगोंसे संयुक्तहो उनकेसाथभी न खेले और न बैठे क्योंकि संसर्गसे वहीरोग दूसरेकोभी होजाताहै १३७॥

विरुद्धंवर्जयेत्कर्मप्रेतधूमंनदीतरम् । केशभस्मतुषांगारकपालेषुचसंस्थितिम् १३८॥

अक्ष०—विरुद्धकर्मको बर्जितराखै-प्रेतधूमको-नदी तरणेको भी-बाल-राख-भूसी-अँगार-कपाल-इनमें स्थिति बार्जित करै १३८॥

अभि०—बिरुद्धकर्मभी दो प्रकारके होतेहैं एक तौ आहार बिहारआदि-दूसरे कुल ग्राम जनपद देशकाल आदिसे बिरुद्ध तिनसबोंको बचावै-प्रेत धूमकहिये चिताका धुआंभीबचावै-नदीका तैरना भुजाओंके बलसे पारउतरनाभी न करै-जहांबाल पड़ेहों तहां ऊलजलूलीसे नहीं बैठजावै बालों के उपलक्षणसे नखदांत आदि जो शरीर से गिरेहुये द्वादश १२ मलप्रसिद्धहैं वे सभी समुझलेने-राख और भूसीपरभी नहीं बैठ जावै इसके उपलक्षणसे सभीकूड़ामात्र समुझलेना-अँगारकहनेका यह अभिप्राय है कि जहांअग्निकाफैलावाहो तहां जोबैठाचाहै तौपहिलेपृथ्वीपर दृष्टिकरदेखलेवै किंतु धोखाखाकर कहींअँगारी चिनगारीके ऊपरनहींबैठजावै या खड़ाहोजावै-कपालकहने का यह अभिप्राय है कि हाड़ आदि किसी मलीन बस्तुपर न बैठजावै या वहां होकर निकसै १३८॥

अधि०—दोप्रकारके विरुद्धकर्म जो कहेगयेतिनमें पहलेआहार बिहारसेविरुद्ध कर्मों का (दृष्टांत) जैसे आहारभोजनकी बस्तु जो कोईसी जिसको सात्म्य नहींहैअर्थात् मुवाफ़िक नहींहै वहउसीको खावै तौ बिरुद्धहै या जिसरोगवालेको जो बस्तुसात्म्यनहीं है वहउसीको खावै तौ विरुद्धहै या जो बस्तुसात्म्यभीहो उसकोअपनी खुराकसे अधिकखाजावै तौ भी बिरुद्धहै या जिसबस्तुकेसाथ मिलाकर जिसबस्तुकाखाना उचित नहींहै वह उसीमेंमिलाकरखावै तौ विरुद्धहै जैसेदूध और मछली या घी और सहत या नमक और मीठा या खटाई और दूध अथवा जिसबस्तुके ऊपर जो बस्तुखानी उचित नहींहै उसीके ऊपर खाय तौ यह भी विरुद्धहै जैसे दूधकेऊपर दहीकाखाना या अफ़ीमके ऊपर तेलकापक्वान्न और गुड़ आदिकाखाना इत्यादि असंख्य लक्षण जो बैद्यशास्त्रसे और निजपरीक्षासेभीजानेजातेहैं सो तौ आहारविरुद्धहैं औरविहार बिरुद्धका (दृष्टांत) जैसे हलनाचलना फिरना आदि शरीरकी चेष्टाओंको बिहारकहते हैं सो जब कोई ऐसा बिहार करै जिस्सेकिसीप्रकारका रोग या पीड़ाया भय पैदाहोने की शंकाहो तब उसको बिरुद्ध बिहारकहते हैं जैसे भरीदुपहरी में दमखींचकर एक सन्नाटामें दशपांच कोशकाधावा करिके तत्काल किसीजलाशयमें स्नानकरलेना यह बिरुद्धहै या उलटी कलाबाजीखाना या उलटाहोकर पेड़मेंलटकना यह विरुद्धविहार है या किसीऐसे बोझका खींचना और उठाना जो अपनी शरीर सत्तासे अधिकहो सो यह विरुद्ध बिहार है अथवा दोचारपहर लगातार ऐसे ऊंचे और तीव्रस्वरसे गाना या रोना या पढ़नाआदिकाकरना कि जिस्सेसारे शरीरका पराक्रमनिकालदेनापड़े

तौ यह विरुद्ध बिहार है या किसी ऐसे मार्गमें चलना जहां चलनेकानिषेधहै या किसी ऐसे स्थानमें जाघुसना जहां जानेका निषेधहै तौ भी यहविरुद्ध बिहारकर्महै इत्यादि और भी असंख्य लक्षणअपनी बुद्धिसे जानो १-दूसरे प्रकारकेविरुद्धकर्मोंके (दृष्टांत) प्रथमतौकुलसे विरुद्ध किंतु जिसकुलमें जो बातनिंदित गिनीजातीहो तिसकाकरना उसकुलके आचारसे विरुद्धकहलाताहै (जैसे) कान्यकुब्ज या गुर्जर या दाक्षिणात्यकुलोंमें बाजारसे पक्वान्नलेकरखाना-तथा-गौड़ या अगरवाल आदिकुलोंमें आमिषादि का सेवनकरना इत्यादि असंख्य लक्षण और भीजानो और इसकुलके निदर्शनमात्र से कुलान्तर्वर्त्तीभिन्न २ वंशोंको भी जानो-ऐसेही जिसग्राम की बस्ती में जो काम निंदित गिना जाताहो चाहे केवलस्वार्थ या सर्वोपकारी दृष्टिसे भी कियाजावे वह उस बस्तीसे विरुद्ध है तहां केवलस्वार्थ का दृष्टांत जैसे मृगयार्थी कोईपुरुष उसबस्ती में जाकर वहांकी बागात या बसायतके पशुपक्षी आदिका आखेटकरे-सर्वोपकारी का दृष्टांत जैसे वर्षाकालमें सूखापड़नेसे जलवृष्टिकी अपेक्षामें ग्रामकीसीमा पै मदिरा आदिसे धारादेना या भैंसाआदि पशुओंका बलिदान करना-ऐसेही जनपदएक छोटे मोटे धरणीपालके बशवर्त्ती ज़िलाको और क़सबाको भी कहते हैं जिस जनपदमें किसीकामका निषेधहो तिसकाकरना उससे विरुद्धहै जैसे किसी जनपदमें यहआनि चलीआती है कि उससीमाके भीतर या उसगढ़के आगेकोई छत्रीनहीं लगावे यानिशानोंसहित हाथीपर चढ़के नहींनिकले या बंदूक़ नहींदागे या मुर्दाको लेकर कोलाहल करतानहीं जावे किंतु चुपचाप चलाजावे इनकामोंमें से कोईकामकरे तो वहविरुद्धहै-अथवा जिसजनपदमें चोर बटमारोंकी भीतिसे कोई मालदार या व्यापारी रातबिरात चलनेका अधिकारी नहींहै और इसीहेतुसे वहांकी यहपरिपाटी है किवह धरणीपाल किसीएक नियतसमयपर सारे देशोंके आयेहुये बटोहियोंको अपनी सिपाहकी रक्षापूर्वक सीमासेबाहर निकालदेता है इसदशापर भी कोईपांथ अपनीउतावलीसे कुसमयपर चलनिकसे तौभी यहकाम उस जनपदसे विरुद्धहै इत्यादि नानाभांतिसे जानो-ऐसेहीदेश शब्द यद्यपि साधारणभावसे स्थानमात्र का बोधकहै परन्तु विशेषलक्षण में द्वीपांतर अथवा दिशाभेदसे कहनेमें आताहै जैसे पूर्वदेश पश्चिमदेश इत्यादि जिसदेशमें शीत और उष्णादि हेतुओंसे या वहांके आचारोंके अनुसारजोकाम अथवा जोआहार विहारकरना निषेधहो तिसकाकरना उसद्वीप या देशसेविरुद्धहै और जबयहीदेश शब्दसाधारण भावसे स्थानमात्रका बोधक समुझा जाय तब द्वीपांतर आदिकेसिवाय सारेदेशोंकी व्यवस्था इसीसे देखतेहैं जैसे श्रीजगन्नाथपुरी में जाकरजुदा चूल्हाफूंके इसआग्रहसे कि मैं किसीका छुआनहीं खाताहूं तो उसदेशसे विरुद्धहै या जिसदेशकी यह परिपाटीहै कि कूपके किनारेसे जबएकके

जलपात्र उठलेतेहैं तबदूसरा अपनेधरता है इसदशापर जो कोई पहले के उठलेने बिना अपने मृत्पात्रोंको निजदेशी अथवाजाती चालिकेअनुसार धरदेवै तौ उसदेशसे बिरुद्धहै या जिसदेश में इसबातका बिबेकनहीं है और कूपोंपरसबका एकसाथ जमघटहोताहै इस ब्यवस्थापर कोई ऐसाबिबेकी यह कहनेलगै कि तुमसब हटजाओ मुझेभरलेनेदो तौयहभी उसदेशसे बिरुद्धहै इत्यादि असंख्यभेद और भी अपनी बुद्धिसे नानाभांतिकेजानो-देशसंबन्धी आहार बिहारकी अपेक्षासे देशोंके तीनलक्षण बैद्यशास्त्रके मतसे गिनेजातेहैं यथा जांगल १ अनूप २ साधारण३-जांगल अर्थात् जंगलकादेशसोईयह कहाहै कि(अल्पोदकतृणोयस्तुप्रवातःप्रचुरातपः।सज्ञेयोजांगलो देशोबहुधान्यादिसंयुतः) अर्थात् जोदेश थोड़ेजल वाला थोड़ेतृणवाला अत्यंत वायु वाला घनी घामवाला बहुतायतसे अन्नादिकोंसे संयुक्तहो सो जांगलजानो इसमें बात पित्तरोगोंकी प्रधानताहै १ अनूपदेशका लक्षण जलकी बहुतायत सेहै यथा(बह्वम्बुर्बहुवृक्षश्चनानाशस्यफलान्वितः।अनूपदेशोज्ञातव्योवातश्लेष्ममयार्त्तिमान्) अर्थात्घनेजलवाला घनेबृक्षोंवाला नानाभांतिकी खेती और फलादिकोंसे संपन्न और कफबातरोगोंकी पीड़ावाला यह अनूपदेशजानो २ साधारणदेश उसेकहते हैं जिसमें थोड़े२ दोनोंलक्षण मिलतेहों पूर्वोक्त किसीबस्तुकी बहुतायतभीनहीं और विशेष हीनताभीनहो और बात पित्त कफ यहतीनोभी बराबरहों किंतु इनमेंसे किसीकी पीड़ा की अधिकतानहींहो ३-इन तीनोंभाँतिके देशोंमें जो२ आहार या बिहार बैद्यशास्त्रके संमतसे सेवनकरने उचितहोतेहों तिनसेविपरीत सेवनकरना यहभी उनदेशोंसे विरुद्ध है ऐसेहीकालसे विरुद्धकहनेका यहभावहै कि जिसकालमें जो कामकरना निषेध है उसकोकरै तौ कालसेविरुद्धहै (दृष्टांत) जैसे बर्त्तमानमें सतीहोनेका निषेध है जोकोई ऐसाकरै या देखतेहुये करनेदेवै तौ इसकालसे विरुद्धहै-ऐसे२ विरुद्धकामोंको सर्वथा अपनी शक्तिकेअनुसार बचावै यहयाज्ञवल्क्यजीका सिद्धांतहै इसीसेयाज्ञवल्क्यजीने यद्यपि संसार या परलोककी कोईबातकहनेसे न छोड़ी परसतीकेहोने या नहोनेकाभी कुछ चर्चानहींकिया क्योंकि यद्यपि प्राचीनशास्त्रोंमें पहलेयुगोंकी अपेक्षासे सतीहोने की आज्ञाथी क्योंकि उनयुगोंमें सत्यधर्मकी विशेषताथी परपीछे२ कलियुगकेआनमें अनेकऋषियोंने इसका अपवादकिया और स्मृतियोंमें अनेकभाँतिसे निषेधलिखा तबसे यह परिपाटीजातीरही तिसपीछे याज्ञवल्क्यजीने अपनेसमयमें इसपरिपाटीको न देखकर और कालसे विरुद्ध निश्चितकरके इसकाकुछभी चर्चानहींकिया इसीसे अब कदाचित् जोकोई ऐसाभूलकर करताहै या करनेदेताहै वह पूरादंडपाताहै इसीसे वहसतीभी स्वर्गभागिनी नहींहोतीहै क्योंकि प्रथम तौ समयसे विपरीत कामकरना एकयहीबड़ापापहै दूसरे जिसकेहेतुसे अनेकबांधवोंने पीछेदंडपाया और कारागारादि

नरकोंको भोगा वह अनेकोंको दुःखदेनेवाली एक क्योंकर स्वर्गफल पावेगी-सोई याज्ञवल्क्यजीसे पहले ऋषियोंनेकहाहै कि(पुरुषाणामिवस्त्रीणामप्यात्महननंस्मृतम्। मृतानुगमनंनास्ति ब्राह्मण्या ब्रह्मशासनात्॥जीवन्ती तद्धितंकुर्यान्मरणादात्मघातिनी। या स्त्रीब्राह्मणजातीया मृतंपति मनुव्रजेत् ॥ सास्वर्गमात्मघातेन नात्मानंनपतिंनयेत्) अर्थात्-आत्महत्या करनेकाअपराध जैसा पुरुषोंको होताहै तैसाही स्त्रियोंकोभी-ब्रह्माजीकी आज्ञाकेअनुसार ब्राह्मणीको मरेहुये पतिकेपीछे मरजानानहीं है-इसलिये जीवती बनीरहकर उसमरेहुयेका हितकरतीरहे क्योंकि मरजानेसे आत्मघातिनी होती है-जोकोई ब्राह्मणजातिकी स्त्रीमरेहुये पतिकेपीछे मरजातीहै-सो वह आत्मघातके पापसे नतो अपनेआपेको और न उसपतिकोभी स्वर्गलेजातीहै-अबकहो कि जब इनअपराधोंकेसिवाय अपने बांधवोंकोभी दण्डादि नरकभुगवाये तब आपकैसे स्वर्गजासक्ती है-ब्राह्मणीके कहनेसे चारोंवर्णकीअपेक्षाहै क्योंकि जो काममुख्य एकब्राह्मणके लिये करना या न करनालिखाजाताहै वहतीनों अथवा चारोंवर्णोंपर संभवित होजाताहैदृष्टांत जैसे १२८ केश्लोकसे जो मर्यादैंकहते चले आते हैं वह यद्यपि (स्नातक) पुरुषके निमित्तसे कहरहे हैं परंतु इनमें थोड़ी बातें ऐसी हैं जो केवलस्नातकसेही अपेक्षा रखती हैंऔर सारी बातें सब गृहस्थीमात्रके लियेसंसूचितहैं किन्तु स्नातक एकनिदर्शनमात्र है-एक सतीके दृष्टांत मात्रसे और भी सहस्रों काम अपनी बुद्धिसे विचारलो जो काल से विरुद्ध हुआ करते हैं-आहार विहार की अपेक्षासे कालके भी तीनभेद शीत १ उष्ण २ वर्षा ३ काल प्रसिद्धहैं इनमें भी वैद्यशास्त्रके संमतसे जोजो आहार या विहार करना अनुचितहो तिनका करना यहभीकाल विरुद्धहै १३८॥

नाचक्षीतधयंतींगांनाद्वारेणाविशेत्क्वचित्। नराज्ञःप्रतिगृह्णीयाल्लुब्धस्योच्छास्त्रवर्त्तिनः १३९॥

ऐ०-धयंती गऊ अर्थात् बच्चेको दूध पियाती हुई या प्यारसे चाटतीहुई अथवा परस्पर दोतीन आदि गौयें प्यारसे किलोल क्रीड़ा करतीहुई सूँघतीहुई परस्पर थनोंको चाटतीहुई यह सब धयंती कहलाती हैं और वहभी धयंती कहलाती है जो गाय और बैल परस्पर मैथुनके उद्योगमें तत्परहों इनको किसी दूसरेको दिखलावे नहीं अर्थात् अपनी दृष्टिपरजाय तो दृष्टिको निवर्तन करलेवे और किसी औरको भी नहीं दिखावे इसहेतुसे कि जाने कोई चंचल मनुष्य उन्हें देखकर छेड़ या हटादेवे-और कहीं भी अद्वारसे प्रवेश नहीं करे किन्तु चाहे किसीका घरहो या बागहो हानाहो ग्रामहो जो मार्गउसके प्रवेशके निमित्तसे नियत किया गयाहो उसीमें प्रवेश करे-कृपण लोभी और शास्त्रसे विरुद्ध वर्तावा करनेवाले राजाका प्रतिग्रह नहींलेवे १३९॥

गधि०-धयंती गौओंका न देखना यद्यपि पृच्यना पक्षमें सद संभवित और यथोचितहै पर जो कोई उनमें पशुबुद्धि रखताहो उनके लिये भी यहदान फलदायकहै मि-

ष्टांत इसका यहहै कि जब पशुओंमें भी यह बुद्धि आरोपित करी जायगी कि उनके आनंदमें उपद्रव नहीं करना तो मनुष्यके लिये तो आपसे आप यह दया भाव प्रकट होजायगा कि किसीके आनंदमें विघ्नकरना अनुचितहै और जब साधारण आनंदमें विघ्नकरना अनुचित ठहरा तब आगेको हिंसा आदि कोईसा कठिनदुःख भी किसीको क्योंदेसकेंगे इस्से यह मर्याद भी मनुष्योंकी रक्षा विषयके प्रबंध पर आरूढ़है-और द्वारबिना प्रवेश करना यह प्रत्यक्ष अकल्याणहै कि जबऐसा करेगा तब अवश्यकहीं न कहीं प्रतिष्ठा भंगकरवावेगा और प्रतिग्रहके लेने या न लेने में जो दोषादोषहै सो नीचेके श्लोकमें प्रत्यक्षहै १३९ ॥

प्रतिग्रहेसूनिचक्रिध्वजिवेश्यानराधिपाः। दुष्टादशगुणंपूर्वात्पूर्वादेतेयथाक्रमम् १४० ॥

ऐ०—प्रतिग्रहों के लेनेमें सामान्य दशापर भी सूनी आदि पाँचों पहले २ सेपिछला २ यथा क्रमसे दशगुणा दुष्टहोताहै इस्से इन पांचोंका प्रतिग्रह नहींलेवै-पांचों के नाम-सूनी अर्थात् जिसके घरमें सूना कहिये जीवहिंसा का स्थान या पेशाहो किंतु कसाई इतिलोके प्रसिद्धिः १ चक्रीतेली २ ध्वजी मदिराबेचनेवाला ३ वेश्या ४ राजा जिसके अवगुणऊपर १३९ केश्लोकमें कहचुकेहैं अर्थात् सबहीनहीं ५-१४० ॥

अध्यायानामुपाकर्मश्रावण्यांश्रवणेनवा। हस्तेनौषधिभावेवापंचम्यांश्रावणस्यतु १४१ ॥

अबअध्ययनधर्मकहते हैं ॥

ऐ०—अध्यायोंका उपाकर्म अर्थात् अध्याय जो वेदहैं तिनकाउपाकर्म कहिये उपक्रम किंतु विधिसहित प्रारम्भकरना सो यहकर्म ओषधियोंके उत्पन्नहोनेपर श्रावणमासकी पौर्णमासीकोकरै अथवा उसीपौर्णमासीके समीप जिसदिन श्रवणनक्षत्रहो तिसदिन करै अथवा श्रावणशुक्लापंचमी जो हस्तनक्षत्रसे संयुक्तहो तो उसदिनकरै और अपनी गृह्योक्तविधि अर्थात् गृह्यसूत्रादि शास्त्रनियमों अनुसारकरै १४१ ॥

अधि०—और जो श्रावणमासमें ओषधियां नहींउत्पन्नहोवें तो भाद्रपदमहीनाके श्रवण नक्षत्रमेंकरै तिसकेपीछे साढ़ेचारमहीना पर्य्यंत वेदोंकोपढ़ै-सोई मनुजीका यहकथन है कि (श्रावण्यांप्रौष्ठपद्यांवाप्युपाकृत्ययथाविधि। युक्तश्छंदांस्यधीयीतमासान्विप्रोऽर्द्धपंचमान्) १४१ ॥

पौषमासस्यरोहिण्यामष्टकायामथापिवा। जलांतेछंदसांकुर्य्यादुत्सर्गंविधिवद्बहिः १४२ ॥

अक्ष०—पौषमासकी रोहिणीमें अथवा अष्टकामें जलकेनिकट बाहर विधिकेअनुसार छंदोंका उत्सर्गकरै १४२ ॥

अभि०—पौषमासमें रोहिणीनक्षत्रके दिवस या उसीमहीनामें (अष्टका)नामपर्व जो कृष्णाअष्टमीतिथि प्रसिद्धहै तिसादिन बाहर जलाशयनदी आदिके निकट जाकरवेदों का उत्सर्गकर्म जो उसविषयके ग्रन्थोंमेंलिखाहो तिसकेअनुसार विधिपूर्वककरै १४२ ।

भाषि०—अष्टका यद्यपि पौराणमतसे भी सप्तमी १ अष्टमी २ नवमी ३ यें तीन दिन प्रत्येकमहीनाके दोनोंपक्षमेंकहेहैं और इनतीनोंदिवसमें शास्त्रकापढ़ना औरव्रतबन्धकाहोनाभी निषेधकियाहै। और पितरोंकेउद्देशमें श्राद्धभेदसे पौष१ माघ २ फाल्गुन ३ इनतीनोंमहीनाकी केवल कृष्णाअष्टमीही अष्टका कहलातीहैं इनतीनोंमें भिन्न२ श्राद्धोंकेप्रकारभी प्रसिद्धहैं-यथा(पूपाष्टका पौषमासे १ मांसाष्टका माघमासे २ शाकाष्टका फाल्गुनमासे ३) इनतीनोंमें इन्हीं तीनबस्तुसे पितरोंकी तृप्तिकरीजाती है-दो प्रकारकी अष्टकादशापर श्रीमत्परमहंस परिव्राजक विज्ञानेश्वर भट्टारकनेभी इसका निर्णय स्पष्टभावसे नहींकिया और इनआचारोंकी न्यूनतासेभी हेतु निश्चित नहीं होता परजिनस्थानोंमें इनआचारोंकी प्रवृत्ति संप्रतिहोगी वे इसबातके मेदूहोंगे क्योंकि शास्त्रकाप्रमाण लोकव्यवहारसे और लोकव्यवहारकी प्रमाणता शास्त्रकेवाक्यों से परस्परदोनोंका सम्बन्ध निर्वचनीयहै-इस्सेप्रत्यक्ष विदितहोताहै कि श्रीमत्परमहंस परिव्राजक विज्ञानेश्वर भट्टारककेभी समय और स्थानमें इनआचारोंकी न्यूनताहोगी और मनुसंहिताकेकथनसे अष्टका या रोहिणीकाभी कुछनियमनहीं निश्चितरहा किंतु केवल पौषमासहीकहाहै और उसकेसाथमें माघमहीनाभी अधिक लेलियाहै पर उस माघमेंभी कुछअष्टका या रोहिणी अथवा कृष्णपक्षकाभी कुछनियम नहींपायाजाता-तथाच(पौषेतुछंदसांकुर्याद्बहिरुत्सर्जनंबुधः।माघशुक्लस्यवाप्राप्तेपूर्वाह्णेप्रथमेहनि) अर्थात्ज्ञानीपुरुष पौषमासमें बाहर जाकरछंदोंका उत्सर्गकर्मकरै या माघमहीनाका शुक्लपक्ष प्राप्तहोनेपर पहलेदिवस दोपहरसे पूर्वकालमेंकरै यहमाघशुक्ला प्रतिपदा उसअवस्था में संभावितहै कि जोश्रावणीका उपाकर्म भाद्रपदमें कियाहो॥ देखोजिसश्लोकमूलकी यह अधिकोक्तिहै उस्से और इसमनुसंहिताके प्रमाण भूतश्लोक अनंतरोक्तसे पृथ्वी और आकाशका अंतरहै क्योंकि पूसके सिवाय और कोई अंग इसका और उसका एकतानहीं पासक्ता फिर दोनोंकी समता किसबाजारसे खरीदीजाय इसीहेतुसे शास्त्रों की कठिनाई लोकमें प्रसिद्धहै और इसीहेतुसे यहबातभी प्रसिद्धहै कि ऐसे असंभव स्थलोंमें जोकोई ग्रंथिभेदनकरै वहशास्त्रज्ञ विज्ञकहलावै परन्तु यहग्रंथि यद्यपिअतिशय तुच्छहै तथापि खुलसकना इसका परम दुस्तरहै कदाचित् कोईदुस्तर नहींसमुझै तो जिसकी इच्छामेंआवे प्रमाण पूर्वक सुलझावै कुछ निषेधनहींहै-इसके सिवाय जिज्ञासुको यह उचित होताहै कि जहांतक बनिआवे संशय और संदेहोंकी निवृत्ति पर दृष्टिजमीरक्खे दृष्टिके सन्मुख सीकखड़ी करनेसे पहाड़भी ओट होजाताहै उसी सीकको दूर करदेनेसे तद्रूप पहाड़ दिखाई देने लगता है इसीलिये पहलेभी मानवें श्लोककी अधिकोक्तिमें यथावत् निर्णय दृष्टांतो सहित होचुकाहै कि जिस प्रकारमर्कटरीति ग्रंथांतरोंसे या देशांतरोंसे प्रवीन होतीहो तिनसे अपने आत्मा कहिये मन

बुद्धि चित्त अहंकाररूप चतुष्टय तिसमें जोबात समावे या अच्छी प्रतीतहोवे सोकरै या अपने आत्माको इतनी सामर्थ्य न हो तो अच्छे लोगोंका आचार जो प्रमाणीक सज्जन वर्तावा जहां जैसा करतेहों उसीको आपभी अंगीकारकरै-क्योंकि ग्रंथोंमें जो एकही कामके कईभेदहोजातेहैं तिनकाभी मुख्ययहीहेतुहै कि जो२ऋषि या आचार्य अपने २ समयमें निज २ स्थानोंकी अपेक्षा या अन्यस्थानोंकी अपेक्षा जैसा जहांका शुद्धआचार देखतेहैं तैसाशास्त्रोंमें लिखकर प्रमाण करदेतेहैं इस्से उनसबकी एकता होनी दुस्तर होजातीहै-अष्टकानामकी पर्वदोप्रकारकी लिखीगई उनमेंजोतीनमहीना के तीनअष्टका कहेगये वहतौ श्राद्ध विषयमें श्रेष्ठहैं और दूसरे जो प्रत्येक महीनाके दोनोंपक्षमें होतेहैं वे पठनपाठनसे संबंध रखतेहैं क्योंकि उनमें शास्त्रका पढ़नानिषेध कियाहै इससे इस वेदोत्सर्गमें वेही मुख्यहैं और अभिप्रायार्थमें जो कृष्णा अष्टमी कही है सो इसलिये कि कृष्णाअष्टमी सदाही पर्वोंमें प्रसिद्धहै इससे शुक्लपक्षको छोड़कर मुख्यता उसपरल्ली गई और यद्यपि पठन पाठन सम्बन्धी अष्टका प्रत्येक पक्ष में ७।८।९ यह तीनदिनमें होते हैं परन्तु केवल पौषका महीना शास्त्रोक्त होनेसे अष्टमीभी पौषहीकी अंगीकार करनी हुई इस अष्टमीके ग्रहण करनेसे दोनोंप्रकारके अष्टकामें मुख्यता बनीरही-इसके सिवाय रोहिणी नक्षत्र इस्सेभी अधिकश्रेष्ठहै क्योंकि वह मुख्यवचन पूर्वोक्तहै और अष्टका उसका विकल्पार्थ भावसे गौणपक्षहै और मनुजीका प्रमाण जो इसके साथमें लिखागया वह इसकेआगे मध्यमहै क्योंकि याज्ञवल्क्य जीकी स्मृति उस्से पीछेहुई है और जो बात पीछेहोती है वह पहलीकी अपेक्षा श्रेष्ठ होती है क्योंकि पहले नियमोंके गुण दोष छांटकर पिछली संसिद्धि होती है परन्तु पिछलेकी उत्तमता परभी पहलेकी गौरवता नहीं मिटसक्ती किंतु उसकी गौरवता इसलिये अधिक बनी रहती है कि उसीकी प्रमाणतासे पिछलाभी प्रमाणमें आसक्ताहै जैसे पिता या पितामह प्रपितामह आदि पुत्रादिकोंके आगे बल पराक्रमसे हीन यद्यपि होजाते अर्थात् पुत्रादिकोंके समान उनसे कोईकाम नहीं चलसक्ता पर पुत्रादिक उन्हींके नाम या कुलग्रामसे प्रमाण पाते हैं (भेद२)(यथाशास्त्रंतुकृत्वैवमुत्सर्गं छंदसांबहिः।विरमेत्पक्षिणींरात्रिंयद्वाप्येकमहर्निशम्॥अतऊर्ध्वंतुछंदांसिशुक्लेपुनियतःपठेत्।वेदांगानिचसर्वाणिकृष्णपक्षेषुसंपठेत)अर्थात् यह मनुजीका कथनहै कि जैसा इसविषयका कर्मट शास्त्र होताहो उसकेअनुसार ऊपर कहीहुई रीतिसे इसभांति वेदोंका उत्सर्गकिये पीछे पक्षिणी रात्रि मात्र या एकदिन रात्रिमात्र पठन पाठनको थांभ कर बाहर उसी तीर्थमें विश्राम करै जहां उत्सर्ग कियाहो इसके उपरान्त श्रावणमास ताई जितने शुक्लपक्ष आते जावें उन सबोंमें वेदोंको नियत होकर पढ़ै और जितने कृष्णपक्ष आते जावें उन सबोंमें वेदके समस्त अंगोंको अच्छी रीतिसे पढ़ै-यह मर्यादे

जो १४१ और १४२ इन दो श्लोकोंमें अधिकोक्ति सहित कहीगई सो केवल वेद केही पढ़नेके लिये कही हैं किंतु और किसी विद्या अथवा शास्त्रके लिये यह बन्धन नहीं है तहां श्रावणीके उपाकर्मसे लेकर ४॥ साढ़ेचार महीने जो १४१में कहे हैं तिन में शुक्ल या कृष्णपक्षका कुछ भेद नहीं है और न यह भेदहै कि वेदको जुदापढ़ै और उसके अंगोंको भिन्न दिवसोंमें पढ़ै किंतु साधारण भावसे साढ़ेचार महीने ताईं वेदका पढ़ना कहाहै तिसपीछे इधरके शेष महीनाओंमें पक्ष भेद और पाठभेदभी कियाहै इसप्रकारसे पूरे १२ महीनोंका हिसाब समझा दिया-और पक्षिणीरात्रि उसे कहते हैं कि बीचमें एकरात्रि और पहला पिछला दोनों दिवस उसके साथमें गिनलिये जायँ-तथोक्तम्(आगामिवर्त्तमानाहर्युक्तायांनिशिपक्षिणी)और पहला दिवस वही कहलाता है जिसमें पूर्वोक्त उत्सर्ग कर्मकियाहो ऐसेहीऔर कामोंमेंभी जहांकहीं पक्षिणीरात्रिका चर्चा हो यही लक्षण जानो यद्यपि वेदोंके अध्ययन करनेवाले वर्त्तमानमें भी बहुतेरे हैं पर इस रीतिसे पढ़नेवाले भाव कहीं मिलसक्तेहों और यहभी है कि जो इसी रीति से संप्रति कोई वेदोंका संग्रह करना चाहै तो अचंभा नहीं कि इस बन्धनमें ढोलसे भी खालजाती रहै परन्तु इसमें कुछ संदेह नहीं कि इसबन्धनके नियमों सहित पढ़ने से उस वेदका यह प्रभाव होताथा कि जो २ मंत्र जिसविषयका प्रसिद्ध है अपने कार्य को तत्काल प्रकट करताथा जैसे तत्काल अग्नि या जलका आवाहनसे उत्पन्न हो जाना आदि १४२॥ अब वेदके अनध्याय कहते हैं॥

त्र्यहंप्रेतेष्वनध्यायःशिष्यर्त्विग्गुरुबंधुषु। उपाकर्मणिचोत्सर्गेस्वशाखाश्रोत्रियेतथा १४३॥

ऐ०—ऊपरके श्लोकोंमें कहीहुई रीतिसे वेदका अध्ययन करते या करातेहुये पुरुषों का शिष्य ऋत्विक् गुरु बन्धु इनमेंसे कोई मृतक होजावे तो तीनदिनका अनध्याय करै- और पूर्वोक्त उपाकर्म जो १४१ श्लोक अनुसार किया हो तोभी तीनदिवसका अनध्याय करै या पूर्वोक्त उत्सर्गकर्म जो १४२ श्लोक अनुसार किया हो तोभी तीन दिनतक पढ़ना बंद राखै-तैसेही वेदकी जो शाखा आप पढ़ता हो वही शाखा कोई दूसराभी पढ़ता हो और वह मरजावे तौभी तीनदिन पढ़ना बंदराखै १४३॥

भधि०—इस ऐक्यार्थमें उत्सर्ग कर्म परभी तीन दिनका अनध्याय कहाहै और १४२ श्लोककी अधिकोक्तिमें उत्सर्ग कर्मपर जो मनुजीके दोश्लोक दूसरे भेदमें लिखे हैं उनमें उत्सर्गके पीछे जो पक्षिणीरात्रि या एकही दिनरात्रि मात्रका विश्राम वा अनध्याय कहाहै यद्यपि इसमें उससे अन्तरभी है क्योंकि यहां तीनदिवस निषेध किये हैं परन्तु इन दोनों रीतोंमें विकल्पहै अर्थात् चाहै इसरीतिसे तीनदिवस मानो चाहै उस रीतिके अनुसार जैसा अपने मन बुद्धिमें समावै सोकरो कुछ विरोध नहीं है किंतु अपना अपना सम्मतहै १४३॥

सन्ध्यागर्जितनिर्घातभूकंपोल्कानिपातने। समाप्यवेदंद्युनिशमारण्यकमधीत्यच १४४॥

ऐ०—द्युनिश अर्थात् एक दिनरात भरका अनध्याय इतनी बातोंमें होताहै एक तो सन्ध्यासमय मेघके गर्जनेमें १ निर्घात अर्थात् आकाशमें वज्रपात आदि उत्पात का शब्द होनेमें २ भूकम्पके होनेमें ३ उल्कातारोके गिरनेमें ४ वेदकी समाप्ति अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण जो वेदमें प्रसिद्धहैं तिनके पूरे होनेमें ५ आरण्यक अर्थात् काण्व शाखा और माध्यन्दिनीय शाखा संबन्धी ब्राह्मण विशेष जो वेदका अंगहै तिसको पढ़करभी एकदिन रात्रिका अनध्याय ६ और आरण्यक (अध्याय) कोभी कहते हैं- ऊपर जो सन्ध्यामें गर्जना लिखा है वह संध्या प्रातःकाल और सायंकाल दोनों की संभवितहै १४४॥

पंचदश्यांचतुर्दश्यामष्टम्यांराहुसूतके। ऋतुसंधिषुभुक्त्वावाश्राद्धिकंप्रतिगृह्यच १४५॥

ऐ०—पंचदशी १५ अमावास्या और पूर्णिमाभी चतुर्दशी १४ अष्टमी ८ राहु सूतक अर्थात् सूर्य और चन्द्रमाके ग्रहणका दिवस-और ऋतुकी संधि अर्थात् दो दो मास में जो ऋतुकाल पलटताहै तिसकी संधिके दोदिन होते हैं किंतु एक तो व्यतीत ऋतु के मासांतकी अमावास्या ३० और आगंतुक ऋतुके प्रारम्भकी प्रतिपदा १ तिनमें अमावास्या ऊपरभी कहचुके हैं शेष एक प्रतिपदाका निषेध यहां पायागया-और श्राद्धका निमंत्रण भोजन करके या श्राद्धके नामका कुछप्रतिग्रह लेकर इन सभी बातों में एक एक दिन रात्रिका अनध्याय करना उचितहै-एक एक दिनरात्रि यह पूर्वश्लोक मेंसे द्युनिश शब्दका अनुकर्ष हुआहै १४५॥

अधि०— राहुसूतकमध्ये स्मृत्यंतरमें तीन दिवस निषेधहैं-तथाच (त्र्यहंनकीर्त्तयेद्ब्रह्मराज्ञोराहोश्चसूतके) अर्थात् राजाके सूतक होनेमें और राहुकेभी सूतकमें तीन दिन ताईं ब्रह्म जो वेदहै ताको कीर्त्तन नहीं करै और ऊपर एकही दिन रातका निषेध लिखाहै तहां यह कारणहै कि एक दिवस साधारण राहु सूतकमें लियाहै और तीन दिवसका निषेध ग्रस्तास्त और ग्रस्तोदय और सर्वग्रासमें लिया है-और प्रतिपदा का अनध्याय केवल दोदो मास पीछेकी प्रतिपदामें शास्त्रके अनुसार पायागया और लोकमें बहुधा जो पाक्षिक प्रतिपदाका अनध्याय किया जाताहै इसका कोई निषेध चिह्न शास्त्रमें नहीं पायागया इस्से संभवितहै कि भेड़ा चालि पड़ गई होगी-और श्राद्ध विषयके भोजन वा प्रतिग्रह मध्ये जो एक दिवसका निषेधहै सो एकोदिष्टश्राद्ध के सिवाय अन्य श्राद्धमें जानो क्योंकि एकोद्दिष्टके लिये यह स्मृत्यंतर वाक्य है कि (प्रतिगृह्यद्विजोविद्वानेकोद्दिष्टस्यकेतनम् त्र्यहंनकीर्त्तयेद्ब्रह्मेति) अर्थात् विद्यावान् द्विजोत्तम एकोद्दिष्ट श्राद्धका केतन अर्थात् निमन्त्रण अथवा कुछ प्रतिग्रह लेकर तीन दिवस ब्रह्मका कीर्त्तन नहीं करै १४५॥

पशुमंडूकनकुलश्वाहिमार्जारमूषकैः। कृतेंतरेत्वहोरात्रंशक्रपातेतथोच्छ्रये १४६ ॥

ऐ०–पशु चतुष्पद-मंडूकमेंढक-नकुल नेवला-श्वाकूकुर-अहि सर्प-मार्जार बिलाव-मूषक-मूसा-इन जीवोंमेंसे कोई जीव पढ़ने पढ़ाने वालोंके बीचमें निकलजावे तौ एक दिन रात्रि ताईं अनध्याय होवे-तैसेही शक्रपात और उच्छ्रय मेंभी एक दिन रात्रिका अनध्याय-यहां शक्रपातके शब्दसे शक्रध्वजनाम उत्सव जो अनावृष्टिमें वर्षाके हेतुसे राजालोग इन्द्रध्वजा खड़ी करके किया करते हैं तिसके विसर्जनका दिवस और उच्छ्रयसे उसके खड़ी करनेका दिवस संभवितहै १४६ ॥

अधि०–अनध्यायोंकेनिमित्त जो बहुधा यहाँपर कईश्लोकोंमें कहे हैं तिनमें जहाँ२ एक दिनरात्रिकानिषेधहै तहाँ जिससमयसे कोईनिमित्त उत्पन्नहुआहो उस समयसे लेकर दूसरेदिवस उसीसमयताईं उसनिमित्तका दोषसम्भवितहै उस्से आगेनहीं-और गौतमजीने जो इसबिषयमें तीनदिवस और कुछबिशेषता कहीहैकि (श्वानकुलसर्पमंडूकमार्जाराणांत्र्यहमुपवासोविप्रवासश्च)अर्थात् कूकुर नेवला साँप मेंढुक बिलाई इन्होंके बीचमें आजानेसे तीनदिनताईं अनध्याय और उपवासकहिये निराहार और विप्रवासकहिये वस्तीकेबाहर किसीतीर्थ देवस्थानमें निवासकरै सो यहबिशेषता केवल उसकेलिये है कि जिसनेउसीदिन प्रथमारंभकियाहो उसमें निमित्तहोजावे १४६॥

अब आगे सैंतीस ३७ अनध्याय तात्कालिकहैं सो ४ चारश्लोकोंमें कहतेहैं ॥

श्वक्रोष्टुगर्दभोलूकसामबाणार्त्तनिःस्वने। अमेध्यशवशूद्रांत्यश्मशानपतितांतिके १४७ ॥

ऐ०–श्वा कूकुर-क्रोष्टा शृगाल-गर्दभ गदहा-उलूक घुघुआ इनकाशब्द सुनाईदेनेमें और साम अर्थात् सामवेदकागान सुनिपड़नेमें-बाणशब्दसे यहाँ बाँसकातड़तड़ाहट होनेमें-आर्त्तकहिये किसी दुःखीजीवका चिल्लाहट सुनिपड़नेमें उतनीदेरताईं पढ़ना बंदकरे-और अमेध्य अर्थात् कोई अशुचिवस्तु या शव कहिये मृतक या शूद्र जो अतिनीचहो या श्मशान चिताभूमि या पतित कहिये चांडाल इनके समीप होने में उतनीदेरताईं अनध्यायकरै जबतक इनकी समीपतारहै १४७॥

अधि०–गौतमजीने कुछ और भी कहे हैं यथा (वेणुवीणामृदंगगंत्र्यार्त्तशब्देष्वनध्यायः) अर्थात् वेणुबांस-वीणानाम का बाजा-मृदंग-गंत्रीगाड़ी-आर्त्तपीडावान इनके शब्दोंमें तावत्काल अनध्यायहो १४७॥

देशेऽशुचावात्मनिचविद्युत्स्तनितसंप्लवे। भुक्त्वार्द्रपाणिरंभोन्तर्द्धरात्रेऽतिमारुते १४८ ॥

ऐ०–अशुद्धस्थानमें-अपनेशरीरकी अशुद्धतामें-विद्युत्संप्लवमें अर्थात् बारम्बार बिजलीके चमकनेमें-स्तनितसंप्लवमें अर्थात् बारम्बार मेघोंके गर्जनेमें-तात्कालिक अनध्यायकरै और भोजनकरके जबतक जूठे हाथ रहैं तबतक-और जबतक जलके

सन्ध्यागर्जितनिर्घातभूकंपोल्कानिपातने। समाप्यवेदंद्युनिशमारण्यकमधीत्यच १४४॥

ऐ०—द्युनिश अर्थात् एक दिनरात भरका अनध्याय इतनी बातोंमें होताहै एक तो सन्ध्यासमय मेघके गर्जनेमें १ निर्घात अर्थात् आकाशमें बज्रपात आदि उत्पात का शब्द होनेमें २ भूकम्पके होनेमें ३ उल्कातारके गिरनेमें ४ वेदकी समाप्ति अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण जो वेदमें प्रसिद्धहैं तिनके पूरे होनेमें ५ आरण्यक अर्थात् काण्व शाखा और माध्यन्दिनीय शाखा संबन्धी ब्राह्मण विशेष जो वेदका अंगहै तिसको पढ़करभी एकदिन रात्रिका अनध्याय६ और आरण्यक (अध्याय) कोभी कहते हैं. ऊपर जो सन्ध्यामें गर्जना लिखा है वह संध्या प्रातःकाल और सायंकाल दोनों की संभवितहै १४४॥

पंचदश्यांचतुर्दश्यामष्टम्यांराहुसूतके। ऋतुसंधिषुभुक्त्वावाश्राद्धिकंप्रतिगृह्यच १४५॥

ऐ०—पंचदशी १५ अमावास्या और पूर्णिमाभी चतुर्दशी १४ अष्टमी ८ राहु सूतक अर्थात् सूर्य और चन्द्रमाके ग्रहणका दिवस-और ऋतुकी संधि अर्थात् दो दो मास में जो ऋतुकाल पलटताहै तिसकी संधिके दोदिन होते हैं किंतु एक तो व्यतीत ऋतु के मासांतकी अमावास्या ३० और आगंतुक ऋतुके प्रारम्भकी प्रतिपदा १ तिनमें अमावास्या ऊपरभी कहचुके हैं शेष एक प्रतिपदाका निषेध यहां पायागया-और श्राद्धका निमंत्रण भोजन करके या श्राद्धके नामका कुछप्रतिग्रह लेकर इन सभी बातों में एक एक दिन रात्रिका अनध्याय करना उचितहै-एक एक दिनरात्रि यह पूर्वश्लोक मेंसे द्युनिश शब्दका अनुकर्ष हुआहै १४५॥

भाषि०— राहुसूतकमध्ये स्मृत्यंतरमें तीन दिवस निषेधहैं-तथाच (त्र्यहंनकीर्त्तयेद्ब्रह्मराज्ञोराहोश्चसूतके) अर्थात् राजाके सूतक होनेमें और राहुकेभी सूतकमें तीन दिन ताईं ब्रह्म जो वेदहै ताको कीर्त्तन नहीं करै और ऊपर एकही दिन रातका निषेध लिखाहै तहां यह कारणहै कि एक दिवस साधारण राहु सूतकमें लियाहै और तीन दिवसका निषेध ग्रस्तास्त और ग्रस्तोदय और सर्वग्रासमें लिया है-और प्रतिपदा का अनध्याय केवल दोदो मास पीछेकी प्रतिपदामें शास्त्रके अनुसार पायागया और लोकमें बहुधा जो पाक्षिक प्रतिपदाका अनध्याय किया जाताहै इसका कोई निषेध चिह्न शास्त्रमें नहीं पायागया इस्से संभवितहै कि भेड़ा चालि पड़ गई होगी-और श्राद्ध विषयके भोजन वा प्रतिग्रह मध्ये जो एक दिवसका निषेधहै सो एकोद्दिष्टश्राद्ध के सिवाय अन्य श्राद्धमें जानो क्योंकि एकोद्दिष्टके लिये यह स्मृत्यंतर वाक्य है कि (प्रतिगृह्यद्विजोविद्वानेकोद्दिष्टस्यकेतनम् त्र्यहंनकीर्त्तयेद्ब्रह्मेति) अर्थात् विद्यावान द्विजोत्तम एकोद्दिष्ट श्राद्धका केतन अर्थात् निमन्त्रण अथवा कुछ प्रतिग्रह लेकर तीन दिवस ब्रह्मका कीर्त्तन नहीं करै १४५॥

पशुमंडूकनकुलश्वाहिमार्जारमूषकैः। कृतेंतरेत्वहोरात्रंशक्रपातेतथोच्छ्रये १४६ ॥

ऐ०-पशु चतुष्पद-मंडूकमेढुक-नकुल नेवला-श्वाकूकुर-अहि सर्प-मार्जार विलाव-मूषक-मूसा-इन जीवोंमेंसे कोई जीव पढ़ने पढ़ाने वालोंके बीचमें निकलजावे तौ एक दिन रात्रि ताईं अनध्याय होवे-तैसेही शक्रपात और उच्छ्रय मेंभी एक दिन रात्रिका अनध्याय-यहां शक्रपातके शब्दसे शक्रध्वजनाम उत्सव जो अनावृष्टिमें वर्षाके हेतु से राजालोग इन्द्रध्वजा खड़ी करके किया करते हैं तिसके विसर्जनका दिवस और उच्छ्रयसे उसके खड़ी करनेका दिवस संभवितहै १४६ ॥

अधि०-अनध्यायोंकेनिमित्त जो बहुधा यहाँपर कईश्लोकोंमें कहे हैं तिनमें जहाँ२ एक दिनरात्रिकानिषेधहै तहाँ जिससमयसे कोईनिमित्त उत्पन्नहुआहो उस समयसे लेकर दूसरेदिवस उसीसमयताईं उसनिमित्तका दोषसम्भवितहै उस्से आगेनहीं-और गौतमजीने जो इसविषयमें तीनदिवस और कुछविशेषता कहीहैकि (श्वानकुलसर्पमंडूकमार्जाराणांत्र्यहमुपवासोविप्रवासश्च) अर्थात् कूकुर नेवला साँप मेढुक विलाई इन्होंके बीचमें आजानेसे तीनदिनताईं अनध्याय और उपवासकहिये निराहार और विप्रवासकहिये वस्तीकेबाहर किसीतीर्थ देवस्थानमें निवासकरै सो यहविशेषता केवल उसकेलिये है कि जिसनेउसीदिन प्रथमारंभकियाहो उसमें निमित्तहोजावे १४६ ॥

अब आगे सैंतीस ३७ अनध्याय तात्कालिकहैं सो ४ चारश्लोकोंमें कहतेहैं ॥

श्वक्रोष्टुगर्दभोलूकसामबाणार्त्तनिःश्वने। अमेध्यशवशूद्रांत्यश्मशानपतितांतिके १४७ ॥

ऐ०-श्वा कूकुर-क्रोष्टा शृगाल-गर्दभ गदहा-उलूक घुघुआ इनकाशब्द सुनाईदेने में और साम अर्थात् सामवेदकागान सुनिपडनेमें-बाणशब्दसे यहाँ बाँसकातडतड़ाहट होनेमें-आर्त्तकहिये किसी दुःखीजीवका चिल्लाहटसुनिपड़नेमें उतनीदेरताईं पढ़ना बंदकरै-और अमेध्य अर्थात् कोई अशुचिवस्तु या शव कहिये मृतक या शूद्र जो अतिनीचहो या श्मशान चिताभूमि या पतित कहिये चांडाल इनके समीप होने में उतनीदेरताईं अनध्यायकरैजबतक इनकी समीपतारहै १४७ ॥

अधि०-गौतमजीने कुछ और भी कहे हैं यथा (वेणुवीणामृदंगगंत्र्यार्त्तशब्देष्वनध्यायः) अर्थात् वेणुबांस-वीणानाम का बाजा-मृदंग-गंत्रीगाड़ी-आर्त्तपीडावान इनके शब्दोंमें तावत्काल अनध्यायहो १४७ ॥

देशेऽशुचावात्मनिचविद्युत्स्तनितसंप्लवे। भुक्त्वार्द्रपाणिरंभोंतर्र्धरात्रेऽतिमारुते १४८ ॥

ऐ०-अशुद्धस्थानमें-अपनेशरीरकी अशुद्धतामें-विद्युत्संप्लवमें अर्थात वारम्वार विजलीके चमकनेमें-स्तनितसंप्लवमें अर्थात वारम्वार मेघोंके गर्जनमें-तावत्कालिक अनध्यायकरै और भोजनकरके जबतक जूठे हाथ रहैं तबतक-और जबतक जलके

भीतर रहै तबतक-और अर्द्धरात्रिके समय जो महानिशीथ काल होता है तिसमें और अतिभयानक झंझावायुके चलनेमें भी १४८॥

पांशुप्रवर्षेदिग्दाहेसंध्यानीहारभीतिषु। धावतःपूतिगंधेचशिष्टेचगृहमागते १४९॥

ऐ०-उत्पातरूप अंधकारकी धूलिवर्षांके समय-और दिग्दाहजो ज्वलती हुईसी दिशायें देख पड़तीहैं जितनीदेर ऐसा लक्षण रहे तबतक और दोनों संध्याओंकेसमय तक-और नीहारकहिये कुहुर जो बादलीछँटकर धुआँसा छाय जाताहै जितनीदेर वह रहे तबतक-और भीति जो चोर उचक्का वा राजदूत आदिसेअचानक आनिपड़तीहैं जितनीदेर वहरहें तबतक अनध्यायकरै और शीघ्रतासे दौड़ते हुये भी उतनी देरतक अनध्यायराखे जबतक दौड़े या अतिशीघ्रचलै-पूतिगंधमें भी अर्थात् जबतक कोई अशुचि दुर्गंधि कहींसे मद्यादिवस्तुओंकी बायुके संयोगसे आनेलगै तवतक भी-और शिष्ट अर्थात् श्रोत्रिय आदिकोईसत्पुरुष अपनेघर आवे या जहाँ अध्ययन का स्थानहो तहाँ आजावे तो जितनीदेर उसकी आज्ञा या सत्कारका पालनकरना हो उतनीदेरतक अध्ययनको बिलम्बितराखै १४९॥

खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौवृक्षेरिणरोहणे। सप्तत्रिंशदनध्यायानेतांस्तात्कालिकान्विदुः १५०॥

ऐ०-खरगर्दभ औरखच्चर, उष्ट्रऊँट, यानरथगाड़ी आदि, हाथी, घोड़ा, नौका, वृक्ष, ऊरिणं अर्थात् ऊषर भूमि या मरु भूमि यद्वा शून्य स्थानकोभी कहतेहैं-इनमेंसे किसी पर आरोहण होते समय उतनीदेरतक अनध्यायकरै इतने सैंतीस ३७ अनध्याय तात्कालिककहेजातेहैं इसीहेतुसे कि यह केवल उतनेही कालतक होतेहैं-और इनके सिवाय और भी बहुतेरे मनुजीने सोतेहुये या पैर पसारेहुये इत्यादिलक्षण कहेहैं पर कुछ लिखनेकी आवश्यकतानहीं पाई जातीहै १५०॥

इसप्रकार अनध्यायोंको कहा अब फेर उन्हीं स्नातकव्रतोंको
कहते हैं जिनका चर्चा बड़ी दूरसे चला आताहै॥

देवर्त्विक्स्नातकाचार्यराज्ञांछायांपरस्त्रियाः। नाक्रामेद्रक्तविण्मूत्रष्ठीवनोद्वर्त्तनादिच १५१॥

ऐ०-देवता ऋत्विक् स्नातक आचार्य राजा परस्त्री इन्हों की छायाको जानबूझकर दबावे नहीं और उलाँघैभी नहीं और रक्त विष्ठा मूत्र ष्ठीवनकहिये खँखारथूक आदि यहां आदिशब्द से बमन कुल्ला इत्यादि जोड़लेना उद्वर्त्तन कहिये उवटनका मैल तिसको आदिलेकर और भी अनेक भांतिके मैल स्नान धोवन आदि जोलोकमें प्रसिद्धहैं इनकोभी पैरसे दाबै या उलांघै नहीं १५१॥

भधि०-इस ऐक्यार्थके बीचमें जो जान बूझकर यह विशेषलिखा है सो मनुजीके कथन में से लियाहै इसको इस सारेही श्लोक में रक्तादिकोंसेभी सम्बन्धित करलेना अर्थात् इस श्लोकमें निषेधकरीहुई छाया या रक्तादिकोंके उलांघने वा दबानेमें

दोष उस अवस्था में नहींहै कि जो धोखेमें बिना जाने ऐसा होजाय १५१ ॥

विप्राहिक्षत्रियात्मानोनावज्ञेयाःकदाचन। आमृत्योःश्रियमाकांक्षेन्नकंचिन्मर्मणिस्पृशेत् १५२ ॥

ऐ०—हि-अवश्य भावसे क्षत्रियात्मानोविप्राः अर्थात् जो ब्राह्मण क्षत्रियात्मा किंतु क्षत्रियोंके अधिकारी कामदार उनके आत्मा कहिये शरीरके समान प्रियहों यद्वा आत्माकहिये मन या बुद्धि तिसमें एकतावान्हों किन्तुमंत्रादि संमतिदेनेमें प्रमाणीक हों वे कभीभी अवज्ञाकिन्तु अपमान करिबेयोग्य नहीं हैं-अथवा दूसरायह अर्थहैकि विप्रबहुश्रुत और अहिसर्प और क्षत्रिय-राजा और क्षत्रियात्मा कहिये उनकेमंत्रीआदि ये सब कदाचनभी अपमान करिबेयोग्य नहीं हैं-आमृत्योःअपनी मृत्युकाल पर्यंत श्रियं आकांक्षेत् लक्ष्मीसंचय करनेकी आकांक्षाकरै परन्तुकिसीको भी मर्ममें स्पर्श नहींकरै अर्थात् किसीका हृदयऐसा नहींदुखावे जिससे वहलौटकर अपनेही बिनाश करनेके उपायमें उद्यत होजावे १५२ ॥

दूरादुच्छिष्टविण्मूत्रपादांभांसिसमुत्सृजेत्। श्रुतिस्मृत्युदितंसम्यक्नित्यमाचारमाचरेत् १५३ ॥

ऐ०—दूरात् निवासस्थानसे दूर भोजनकी जूठ और विष्ठा और मूत्र और पैरधोवनाजलइन्हें फेंकवादे-श्रुतिवेद-स्मृति धर्मशास्त्र इनदोनों में कहाहुआ आचारसम्यक् रीतिसे नित्यंप्रति आचरणकरै १५३ ॥

अधि०—ऊपर कहेहुये उच्छिष्ट विष्ठादिकेवल चारमलोंके निदर्शनमात्रसे और भी सारेही मलोंकादूर फेंकवादेना उचितहै क्योंकि मलोंकी समीपतासे बिकृतहुई वायु जो सड़ाइँध आदि दुर्गंधिको कपालमें प्रवेशकरदेती है उससे वैद्यविद्याके सिद्धांतसे नानारोगों की उत्पत्ति होजाती और बुद्धिकीतीव्रता कुंठितहोजाती और बारम्बार उसपर दृष्टिपड़नेसे चक्षुभीस्थूल होजातेहैं औरदेवादिसत्सृष्टिके आराधन सिद्धांतसेकोई देव या सज्जन उसस्थानमें आतानहीं या दैवयोगसे आजाता है तौ उस मलीनताके ध्यानसे शीघ्र चलाजाता और फिर झांकनेकी इच्छानहीं करताहै इसी लिये यहमर्यादा स्थान शुद्धिपर आरूढ़ है-तथाचाहंकश्चिद्विषये (सर्वकर्मपरित्यज्यकेवलंघटिकाद्वयम् स्वकीयंपरकीयंवानिजस्थानंसुशुद्धयेत्-नित्यमेतत्प्रकुर्वीतशरीरेणधनेनवा शुद्धस्थानेवसंतीहदेवर्षिपितृमानवाः)अर्थात् गृहस्थीकेआवश्यकसबकामोंकोछोड़कर केवल दो घटिकामात्रके समयतक चाहै अपनाहो या बिरानाहो परजिस स्थानमें जिसका निज निवासहोवे उसस्थानको अच्छीभाँतिसे शुद्धकरवावै-इतनायह दो घटिकामात्रका आयास नित्यंप्रति चाहै शरीरसे या धनसेकरै परकरनेमें प्रकर्षता की आवश्यकतासे आलस्य वा उपेक्षा नहींराखै क्योंकि इससंसारमें जो स्थान शुद्ध और निर्मल देखपड़ता है उसमें देवता वा ऋषि वा पितर और सज्जन मनुष्यभी किसीहेतुसे आनिकर कुछदेरतक वास किंतु विश्रामलेतेहैं-ऊपर दोघटिका जो लिखी

हैं सो निरन्तर नित्यंप्रति करने में कही हैं सो यह थोड़ेसे थोड़ाकाल निर्मलता में इसीलिये नियत किया है कि जो कदाचित् किसीहेतुसे कोईदिनका अंतरभी पड़जावै तौ फिर जिसदिन उसकामका अवसरमिलै तिसदिन उनव्यतीत दिवसोंका लेखा जोड़कर उतना आयास कियाजावे अर्थात् जो एकहीदिनकाअंतर हुआहो तौ तीसरे दिनके अवकाश अवसरमें चारघड़ीका आयासकियाजावे ऐसेही जो दोदिनका अंतर हुआहो तौ चौथेदिनमें छःघटिका आयास कियाजावे इसीप्रकारचाहै दैवयोगसे एक पखवाड़े वा महीनेकाभी अंतर हुआहो तौ उनसबका लेखा जोड़कर जितने प्रहर होतेहों उतने प्रहरों के आयासमें यहनियंम नहीं है कि वहसब एकही दिनमें किया जावे किन्तु कर्त्ताकी इच्छा और अवकाशपर आरूढ़ है कि वह चाहै तितने दिनों पर फैलादेवैपर निरन्तर उसलेखे में न्यूनता नहीं होनेदे-शरीर से या धनसे जो लिखा है तहाँ जो निर्द्धनहो वह शरीरसे और धनवान्हो उसकेदास या वैतनिक जो कुछकरैं सो धनसेहै-आलस्य वा उपेक्षा जो लिखीहै सो आलस्यतौ शरीरसेकरने वालेकी अपेक्षामें कहाहै और उपेक्षा धनवान्के पक्षमेंकहीहै इसलियेकि बहुधाधन-पात्रभी ऐसेमलीन प्रकृति होतेहैं जिनके दासादिकोंकी बहुताइतपर भी स्थान शुद्धि नहीं होसक्ती सो यह एकस्वामीकी उपेक्षा प्रबल हेतुहै किन्तु जिसघरका स्वामी इस बातमें अपेक्षा पूर्वक ध्यानरखकर दासोंपर प्रेरणाबनाये रखताहै उसघरमें मलीनता का निवास नहींहोसक्ता-अन्यथा ऐसेदास बड़ेउत्तम प्रारब्धी धनपात्रों वा अमीरोंके समीप हुआकरते वा उनके प्रारब्धोंके अनुकूल स्वतःआमिलतेहैं जो स्वामीकी उदासीन प्रकृतिसे विपरीतभी शुभचिन्तकताके अनुकूल यद्वास्वकीय स्वच्छस्वभावके हेतुसे मलीनता नहींदेख सक्के १५३॥

गोब्राह्मणानलान्नानिनोच्छिष्टोनपदास्पृशेत्। ननिंदाताडनेकुर्यात्पुत्रंशिष्यंचताडयेत् १५४॥

ऐ०-गऊ ब्राह्मण अग्नि अन्नजो संसिद्ध भोजनयोग्य कोई बस्तुहो इनको आप जूठेहो तौ नहींछूवे या बिनाजूठेभी लातसे न छूवे-पुत्र और शिष्यकी शिक्षा हेतुसे ताड़नाकरै और इनकेयोग्य ताड़न करनेवालेकी निन्दाभी न करै १५४॥

अधि०-ऊपर निषेधकियेहुओंको कदाचित् भूलचूकमें जूठे या लातसेछूलेवे तौ मनुजीकाकहा प्रायश्चित्तकरना उचितहै तथाच (स्पृष्ट्वैतानशुचिर्नित्यमद्भिःप्राणानुपस्पृशेत्। गात्राणिचैवसर्वाणिनाभिंपाणितलेनतु) अर्थात्-इतनोंको जूठे या लातसे छूकर आप नित्यअशुचिहोजाताहै इसलिये अपनेशरीरकी शुद्धिकरनेकेलिये शुद्ध जलोंसे प्राणोंको और सबगात्रोंकोभी स्पर्शकरै और नाभिको हाथमें जलरक्खेहुये हँथेलसेकुछदेरतक स्पर्शराखै-ताड़नविषय यद्यपि यहबात सामान्यलिखीहै पर इसमें अधिकाविवेककी आवश्यकताहै क्योंकि पुत्र और शिष्य ये अधिकताड़नासे भी बिगड़

जाते और अधिक लाड़प्यारसेभी शिरपरचढ़जाते हैं इसलिये इनकीशिक्षा और सौशील्यकी परिसिद्धिकेहेतुसे ताड़न और प्यारभी यहदोनों एकतुल्यबराबर काँटेकी तौलसे करनेउचितहैं सो वहताड़नभी जबतक केवलनेत्रोंकीताड़नासे कामदेसक्ताहो तबतक और कोईरीतिनहीं और वह प्यारभी अतिबाल्यअवस्थासे जोकुछ किया जाय केवल शिक्षा वा सौशील्यके आश्रयभूत होकरहो-योग्य ताड़नकरनेवाले की निन्दाकानिषेध जोकियाहै सो केवल उसीअवस्थामें कि जो ताड़ना उचितरीतिकीहो या पुत्र वा शिष्यादिक अपने पिता और गुरुओंका सामनाभी करतेहों अन्यथा जहाँ जैसा सम्भवहो १५४॥

कर्मणामनसावाचायत्नाद्धर्मंसमाचरेत्। अस्वर्ग्यंलोकविद्विष्टंधर्ममप्याचरेन्नतु १५५ ॥

भक्ष०–कर्मसे मनसे बचनसे यत्नसे धर्मकोसम्यक् आचरै-अस्वर्ग्यलोक विद्विष्ट धर्मकोभी नहीं आचरै १५५॥

भभि०–कर्मकहिये शरीरद्वाराकरनेसे अपनीशक्तिकेअनुसार जोकुछ होसकै धर्म का आचारकरै-मनसेभी धर्मकाध्यानकहिये शोचबिचार लगारक्खै-बचनसेभी उसकी प्रशंसा वा कर्त्तव्यता वा न्यूनाधिक्य वा शुभाशुभका कथन उच्चारणकरतारहै इन तीनोंप्रकारोंसे यत्नपूर्वक जहांतकबनिआवै धर्मका समाचारकरै-परन्तु अस्वर्ग्यकहिये जिसधर्मकेआचरणकरनेसे प्रत्यक्षभावमें स्वर्गकामिलना नहींप्रतीतहोताहो अथवा लोकविद्विष्टकहिये लोकनिंदितहो किन्तु जिसधर्मका आचारकरनेसे लोकनिन्दाहो-नेकीशंकाहो ऐसाधर्मभी यद्यपि शास्त्रविहितहो पर उसकाआचार कदाचित्भी नहीं करै (दृष्टांत) जैसा सतीकाहोना यद्यपि शास्त्रविहितहै और किसी कालांतरमें उसकी प्रवृत्तिभी अधिकथी परन्तु प्रत्यक्षभावसे उसमें कोईलक्षण स्वर्गप्राप्तिकाभी नहीं पायाजाता क्योंकि बहुधा ऋषीश्वरोंने पीछे २ अनेकस्मृतियोंमें निषेधभी किया है जो स्वर्ग प्राप्तिका हेतु होता तो ऐसे त्रिकालज्ञ दूरदर्शी उसका निषेध क्यों करते और यथार्थसे लोकमें भी वहबात निंदितहै जैसा १३८ के श्लोकमें पीछे वर्णन हो चुकाहै ऐसेही और भी अनेकबातें अपनी बुद्धिसे समझी जायँ १५५॥

मातृपित्रतिथिभ्रातृजामिसम्वन्धिमातुलैः। वृद्धबालातुराचार्यवैद्यसंश्रितबांधवैः १५६॥
ऋत्विक्पुरोहितापत्यभार्यादाससनाभिभिः। विवादंवर्जयित्वातुसर्वान्लोकानजयेद्गृही १५७॥

भक्ष०–सहृद्योः माता, पिता, अतिथि, भ्राता, जामयः,सम्वन्धी,मामाओंसे-वृद्ध, बालक, आतुर-आचार्य-वैद्य-संश्रित-बांधवोंसे १५६ ऋत्विक्-पुरोहित-अपत्य-भार्या-सनाभियोंसे-विवादको वर्जितकरिकैभी सबलोकोंको गृहस्थी जीतै १५७॥

भाभि०-सहृद्योः–यहाँ (माता) के नामसे चाची, ताई, फूआ, मामी, मावसी आदि

भी अपेक्षित हैं-(पिता) केनामसे चाचा, ताऊ, फूफा, मावसाआदिभी सम्बन्धित हैं-(अतिथि) अभ्यागत बटोही जो कोईजातिकाहो जिस्सेअपनी चिन्हारभी नहींहै-(भ्राता) शब्दसे चचेरे ममेरेआदि जो कोईहों-(जामी) शब्दसे नवोढ़ा बहू बेटीआदि जिनके पतिविद्यमानहैं कोईहों-(सम्बन्धी)जिनसे बिवाहसम्बन्ध हालमेंहुयेहों-(मामा)केनामसे सगे और चचेरेआदि सब अपेक्षितहैं-(बूढ़ा) जो अपनीइन्द्रियों और अंगोंसेशिथिलहो चाहे अपना या बिरानाकोईहो-(बालक) जो षोड़श १६ बर्ष अवस्थासे नीचाचाहै अपना या बिरानाकोईहो-(आतुर) शब्दसेरोगी और कातर जिसकोडरपोंका कहतेहैं-(आचार्य) जो विद्या वा ज्ञानदेवै या कोईसी जीविकावृत्ति करनीसिखलावै-(वैद्य) जो विद्वान् किसीबिद्यामें निपुणहो या केवल चिकित्सामें तत्परहो-(संश्रित) जो अपनेआश्रय भूतरहकर जीविकाआदिसे निर्वाहकरताहो-(बांधव) शब्दसे पितापक्ष और मातापक्षकेभी गोत्रीलोग चाहे कोईहों १५६ (ऋत्विक्) यज्ञादि कर्म करवानेवाला(पुरोहित) प्रसिद्धहै पर अपना या अपने नातेदारका भी हो (अपत्य) पुत्रादि संतानैं चाहे अपनी या अपने किसी गोत्री आदिकीभी हों (भार्या) वामांगी (दास) कर्मकार सेवक चाहे अपने या अपने संबंधीके भी हों (सनाभि) कहिये सहोदर चाहे भाईहो या बहन-इन ऊर्ध्वोक्त सबोंसे बिवादको छोड़कर गृहस्थी सबलोकोंको जीतलेताहै १५७॥

अधि०-लोकशब्द प्रजापति आदि लोकोंका वाचक और संसारके मनुष्योंका भी वाचकहै किन्तु लोके भवालोकाः इसी लोक शब्दका अपभ्रंश होनेसे मनुष्योंको लोगकहा करते हैं-संसारमें आकर जो कोई गृहस्थी प्रजापति आदि लोक पालोंके लोकों को जीता चाहै अर्थात् अप्रतिहताज्ञ होकर उन लोकोंकी रचना में ईश्वरकी ईश्वरता मध्ये सैर बिहारकरना चाहै या इसीसंसारके सम्पूर्ण मनुष्योंको अपनेवशकरना चाहै तौ इन कहेहुये मनुष्यों से वाणी कलह कदाचित् भी नहोनेदे और नहोनेदेने का यह सिद्धांतहै कि जब उनके कुछेक अनुचित वचनको भी सुनिकर आप मौनकर जावैगा तौ आगेको उत्तर प्रत्युत्तर तक दशा नहीं पहुँचेगी और पीछे वेहीलोग आप अपने मनमें संकुचित होजावैंगे बरन वेही संकुचित हुये वशीभूत बनेरहकर किसीभीर पर सहायता करनेकी अभिलाष अपने आपपैदा करैंगे इसहेतुसे सारालोक अपनाहितू सादिखाईदेवेगा १५६। १५७॥

पंचपिंडाननुद्धृत्यनस्नायात्परवारिषु। स्नायान्नदीदेवखातह्रदप्रस्रवणेषुच १५८॥

अक्ष०-(पांचपिंडों) को उद्धारनकरके पराये जलोंमें स्नान नहीं करै-स्नान करैनदीमें देवखातमें ह्रदमें प्रस्रवणमें १५८॥

अभि०-परायेजल उन्हैं कहते हैं कि जो जलाशय बनाकर किसी देवता के नामसे या सारे संसारके नामसे नहींछोड़े गयेहों अर्थात् किसीनेकोई जलाशय ठेठअपने

घरके या अपने सारे गोत्री लोगोंकी आरामके लिये अपने स्थानकेआगे या अपनी बगीची फुलवाड़ी आदि किसीजगहबनारक्खाहो जिनमें सबलोगोंकोन्हानेका अधिकार नहींहै उनमें जो कोई दैवयोगसे स्नानकरनाचाहै तौ पहलेपांच पिंडउद्धार करलेवे तब स्नानकरै-और (पिंड)शब्दका अर्थ एकग्रासमात्र अन्न जो मुखमें एकबार धराजाय और मुरगाके अंडामात्रकोभी ग्रासकहते हैं-और उसीकेउपलक्षणसे मुट्ठी मात्र अन्न जो एक हाथ के बकोटे में आजावै-और एक आदमी के पूरे आहार को भी पिंड कहते हैं-और दोनों हाथमें जितनी गीली मट्टी आजावै उतने गोले को भी एक पिंड कहते हैं-यहांपर इन सभी प्रकार के पिंडोंसे अपेक्षा है अर्थात् अवसर के अनुसार जहां जैसे (पिंड) का संभव हो उसी प्रकार के पांच पिंड उद्धार करै अर्थात् देदेवै (या) निकाले तब स्नानकरै सो यह प्रकार रोज रोज के स्नान मध्ये किसीकाल में बड़ी सी आवश्यकता ऊपर कहाहै-(अन्यथा) जो नैत्तिक स्नानका प्रकार मुख्यभाव से होता है सो यही है कि नदी जो अवाध अर्थात् किसीकी रोक टोक से रहित प्रवाह वाली हो या (देवखात) कहिये देव निर्मित पुष्कर आदि तीर्थ या (ह्द़) अर्थात् जलप्रवाह के तीव्र अभिघात से स्वयंभूत अतिनिम्न प्रदेश जो जल से पूरित हो जिसको लौकिक भाषामें झील और तालाब भी कहतेहैं या (प्रस्त्रवण) जो पर्वतआदि उच्चस्थान से बहता हुआ जल झरना प्रसिद्ध है इन्हों में स्नानकिया करै तौ पांच पिंडों के उद्धारकरने की आवश्यकता नहीं है-और उनमें भी पिंडों के उद्धार करनेकी आवश्यकता बिशेष नहीं है जो जलाशय किसीठेठ अपने आत्मीय भ्रातृ मित्रादिक ने बनाया और स्वकीय भावसे स्नानादि करने की आज्ञादेरक्खी हो १५८॥

अधि०—कई प्रकार के पिंड कहने का यह हेतुहै कि स्नान करनेवाला मनुष्य जैसा हो तैसे प्रकार का पिंड उद्धार करै सो (उद्धार) का अर्थ देना और निकालना इनदोनों पर आरूढ़ है अर्थात् जो स्नानवाला राजा वा अमीर हो तो पांच पिंड आहारमात्र किंतु पांचखुराकें उसजलाशयवाले वा उसकेसमीपियों वा चाहै जिस किसीको उचित समुझकर भिन्न २ वर्त्ता देवै (अथवा) स्नानकर्त्ता जो सामान्य होवै तो निज शक्तिके अनुसार कुक्कुटांड प्रमाणके पिंडसे पांचपिंड मात्र कुछ उत्तम या मध्यम वस्तु देवै या पांच मुट्ठी मात्र कुछ अन्न अथवा पांच मुख ग्रासमात्रही कुछ वस्तु देदेवै तव स्नान करै (जो) स्नान कर्त्ता इतना देनेकी भी शक्ति नहीं रखता हो वह उस जलाशय में से पांच पिंड मट्टीकेही काढ़कर वाहररखदेवै जिस्से वह जलाशय मट्टी से भरने नहीं पावै जहां कोई ऐसा जलाशय होवे जिस्से मट्टी के पिंडभी निकलनेकी संभवता नही हो (दृष्टांत) जैसे कूप या बावड़ी आदि हों तहां केवल उनके ऊपरकी कीचड़जो अन्य लोगों की धोवामांजी से जमरही हो उसकोही धोडाले या उस जलाशय पर

दूसरा कुण्ड जो गदीले पानी या कीचड़से भराहो उसकोही निर्मल करदेवै या उस कुण्ड में मनों कीचड़ भरीहोवै तो केवल पांच पिंडमात्र किन्तु पांचलोंदे उसमें से निकालकरपीछे स्नान करै तब उस जलाशय के स्नान भारसे उद्धार होवे-क्या सुन्दरसुगमरीति है कि जो पांच २ पिंड दश आदमी निकालेंगे तौ पचास लोंदा माटी उसमें से बिना मजूरी दिये निकलजावेगी और इधर स्नानवालाभी बिना दाम खर्चे अपने ऋण से उद्धार होगया-स्नानके उपलक्षण भावसे जहांकेवल हाथ पैरोंआदि शौचकाही कामहो तहां भी पहले या पीछेही दो लोटा जलकाढ़कर जलाशय का तट धोडालै तब उस जलकाब्यय करने के ऋणसे उद्धार होवे-क्योंकि (तटशुद्धि) आदि के बिषयमें वे जलाशयभी परसंबंधी हैं कि जो ठेठकर अपनेनहीं किन्तु देवताके नाम से या सब लोगों के बर्त्तावा के नामसे किसी ने बनाकर छोड़दिये हों यद्वा छूटेहुयेप्राचीन चलेआतेहों कुछ यह नियम नहीं है कि उनके कर्त्ता का नाम प्रसिद्ध है या नहीं अर्थात् इसप्रकार के जलाशयों में जैसे जलपीनेका सबको अधिकार है तैसेही उनकी रक्षा और तटशुद्धि आदिमें भी सबके ऊपर ऋणभार है-पांच पिंडों में जहां अन्न देना कहा वह केवल एक निदर्शन है किन्तु चाहै अन्न दे या उसके पलटे कोई और वस्तु यथायोग्य या दाम भी देदेवै तो वही बात है १५८ ॥

परशय्यासनोद्यानगृहयानानिवर्जयेत् । अदत्तान्यग्निहीनस्यनान्नमद्यादनापदि १५९॥

अक्ष०—पराईसेज, आसन, उद्यान, गृह, यान ये बिना दियेहुये वर्जित करै-अग्निहीनका अन्न आपत्काल बिना न खावै १५९॥

अभि०—शय्या सेज अर्थात् पलँग आदि और भी जो कुछ वस्तु सोवने लेटनेकी पराईहो-आसन जो कोईसी बैठनेकी पराई वस्तुहो चाहै बस्त्रकाहो चाहै पीढ़ा मोढ़ा चौकी आदि कुछहो-उद्यान बगीची फुलवाड़ी आदि जो पराईहो-गृह स्थान घर बैठक आदि-यान रथ गाड़ी घोड़ा आदि जो कुछ सवारीकी वस्तुहो इन वस्तुओंको पराई जानकर बचावै किन्तु बिना बताये भोगै नहीं-और अग्निहीन मनुष्य अर्थात् शूद्र जाति या प्रतिलोम जातें जिनको अग्निहोत्रका अधिकार नहीं अथवा जिनको अधिकारहै वेभी जो अग्निकर्म करते नहीं इनका अन्न अच्छे भलेमें लोभ लालचसे न खावै पर जो आपत्काल हो तौ लाचारी है १५९॥

अधि०—ऊपर कहीहुई बिरानी कोई वस्तु बिना दियेहुये नहीं भोगै इसका यह सिद्धान्त नहीं है कि वह वस्तु अपनेको निपट मिलजावे अर्थात् इसमें यह तात्पर्य है कि जिसकी वह वस्तुहै वह अपनेको आज्ञा देवै कि इसपर लेटौ या बैठौ या सवारी करौ या बिहारकरौ या निवास वा विश्राम करौ तब जितनी देर या जितने प्रहर वा जितने दिवसोंके लिये उसने आज्ञादीहो उतनेही प्रमाणताई बर्त्तावा करै तो दिया

हुआ भोग कहलावेगा और जब उसकी परिनियमित आज्ञासे अधिक दिनोंका बर्त्तावा करैगा तौ वही बर्त्तावा अदत्त भोगमें गिनती है-इसके सिवाय बिना आज्ञाका जो भोग है उसके लिये यहां तक निषेधहै कि जब किसी दूसरेके समीप या घरजावै तौ उसकी खाट या मोढ़ा आदि पर उसकी समस्या वा संकेत बिना न बैठजावे चाहे वह अपना सगा भाईभी हो किन्तु पराया या बिराना शब्द यह अपने शरीरके सिवाय सगेभाई आदि पर भी आरूढ़है फिर भाईके सिवाय औरोंका क्या लेखा है-(उद्यान) यहां पर सम्बन्धका दृष्टांत जैसे किसी एक प्रतापी अमीरका अति रमणीक बहु बिस्तारवान् बाग जो बिचित्रतामें जानौ नन्दनबन कल्पहो जिसका कोई एक बिभाग जिसमें अलभ्य पुष्प बाटिका या फलबाटिका लगी है जिसकी रक्षा उस सम्पूर्ण बाग से भी अधिक निर्विकल्प रहाकरती है-उस अमीरका पुरोहित या पुरोहितका पुत्र आदि कोई प्रिय आत्मीय उसी परिरक्षित फुलवाड़ी में से उत्तम फूल जो केवल नेत्रविषय मात्रके लिये लगायेगयेहैं नित्यंप्रति तोड़ तोड़ लावै और जब कोई सिपाही आदि रक्षक उसे निषेध करैं तौ यही उत्तर देवे कि यह रक्षा मेरे लिये नहीं है यद्यपि वे रक्षक लोग कुछदिन इस शोच बिचारसे निषेधसे चुपके रहैं और मालिकको संबोधन भी नहीं करैं कि हां इनके लिये आज्ञा देरक्खी होगी पर जिस दिन वह संबोधन होगा या किसी हेतुसे भेद खुलैगा उसदिन मालिक यही कहेगा कि उसमें पुष्प तोड़ने को निर्विकल्प मेरे पुत्रको भी आज्ञा नहीं है फिर पुरोहितका पुत्र किस हेतुसे तोड़सक्ताहै और यथार्थ में यह बात है कि जो कोई इस बातका दावा रखकर बिना आज्ञाकी कोई वस्तु भोगे या भोगना चाहे कि मैं इस वस्तुके मालिकका खास या सगाहूं तौ यह दावा उसका अनुचितहै क्योंकि जो वह सगाहै तौ बनाने के लिये सगा है पर बिगाड़नेके लिये कोई सगा नहीं होसक्ता-कदाचित् पुरोहित इस बातका दावा अपने मनसे आरोपित करै कि मैं उसकी रक्षाका हेतु प्रसिद्ध और पूज्यहूं मुझको ऐसी बातोंकी आज्ञा मिलने या न मिलनेसे क्या अपेक्षा है सो यह मनकी भ्रांति उसकी वृथाहै क्योंकि पूज्यता और बड़प्पनके अनुसार मालिकको यहां तक अधिकार है कि वह चाहै अदेय वस्तु और सर्वस्वभी उसे देदेवै पर आज्ञा बिना वह भोगने का अधिकारी इस हेतुसे नहीं है कि जब उसकी रक्षाका हेतु वह प्रसिद्धहै तौ जैसे और बातोंकी रक्षा पुरोहितको करनी उचित होती है तैसेही उस मालिककी निर्विकल्प आज्ञाकी भी रक्षा करनी उचितहै अर्थात् जिस बातमें वह निषेधकी निर्विकल्प आज्ञा देवे उसमें पुरोहितको चाहिये कि आप भी उस निषेधको मानै और अन्य भी प्रतिष्ठित सेवक वा सम्बन्धी जनोंको उसी रीतिपर चलावै तब उसकी रक्षाका हेतु आप निश्चित होसक्ताहै-अन्यथा जब पुरोहितने उसकी निर्विकल्प आज्ञा वा निषेधमें वि-

दूसरा कुण्ड जो गदीले पानी या कीचड़से भराहो उसकोही निर्मल करदेवे या उस कुण्ड में मनों कीचड़ भरीहोवे तो केवल पांच पिंडमात्र किन्तु पांचलोंदे उसमें से निकालकरपीछे स्नान करे तब उस जलाशय के स्नान भारसे उद्धार होवे-क्या सुन्दरसुगमरीति है कि जो पांच २ पिंड दश आदमी निकालेंगे तो पचास लोंदा माटी उसमें से विना मजूरी दिये निकलजावेगी और इधर स्नानवालाभी विना दाम खर्चे अपने ऋण से उद्धार होगया-स्नानके उपलक्षण भावसे जहांकेवल हाथ पैरोंआदि शौचकाही कामहो तहां भी पहले या पीछेही दो लोटा जलकाढ़कर जलाशय का तट धोडाले तब उस जलकाव्यय करने के ऋणसे उद्धार होवे-क्योंकि (तटशुद्धि) आदि के विषयमें वे जलाशयभी परसंबंधी हैं कि जो ठेठकर अपनेनहीं किन्तु देवताके नाम से या सब लोगों के वर्त्तावा के नामसे किसी ने बनाकर छोड़दिये हों यद्वा छूटेहुयेप्राचीन चलेआतेहों कुछ यह नियम नहीं है कि उनके कर्त्ता का नाम प्रसिद्ध है या नहीं अर्थात् इसप्रकार के जलाशयों में जैसे जलपीनेका सबको अधिकार है तैसेही उनकी रक्षा और तटशुद्धि आदिमें भी सबके ऊपर ऋणभार है-पांच पिंडों में जहां अन्न देना कहा वह केवल एक निदर्शन है किन्तु चाहै अन्न दे या उसके पलटे कोई और वस्तु यथायोग्य या दाम भी देदेवै तो वही बात है १५८ ॥

परशय्यासनोद्यानगृहयानानिवर्जयेत् । अदत्तान्यग्निहीनस्यनान्नमद्यादनापदि १५९॥

मक्ष०–पराईसेज, आसन, उद्यान, गृह, यान ये विना दियेहुये वर्जित करै-अग्निहीनका अन्न आपत्काल बिना न खावे १५९॥

मभि०–शय्या सेज अर्थात् पलँग आदि और भी जो कुछ वस्तु सोवने लेटनेकी पराईहो-आसन जो कोईसी बैठनेकी पराई वस्तुहो चाहै वस्त्रकाहो चाहे पीढ़ा मोढ़ा चौकी आदि कुछहो-उद्यान बगीची फुलवाड़ी आदि जो पराईहो-गृह स्थान घर बैठक आदि-यान रथ गाड़ी घोड़ा आदि जो कुछ सवारीकी वस्तुहो इन वस्तुओंको पराई जानकर बचावै किन्तु बिना बताये भोगै नहीं-और अग्निहीन मनुष्य अर्थात् शूद्र जाति या प्रतिलोम जातें जिनको अग्निहोत्रका अधिकार नहीं अथवा जिनको अधिकारहै वेभी जो अग्निकर्म करते नहीं इनका अन्न अच्छे भलेमें लोभ लालचसे न खावै पर जो आपत्काल हो तो लाचारी है १५९॥

मधि०–ऊपर कहीहुई बिरानी कोई वस्तु बिना दियेहुये नहीं भोगै इसका यह सिद्धान्त नहीं है कि वह वस्तु अपनेको निपट मिलजावे अर्थात् इसमें यह तात्पर्य है कि जिसकी वह वस्तुहै वह अपनेको आज्ञा देवै कि इसपर लेटौ या बैठौ या सवारी करौ या बिहारकरौ या निवास वा बिश्राम करौ तब जितनी देर या जितने प्रहर वा जितने दिवसोंके लिये उसने आज्ञादीहो उतनेही प्रमाणताईं बर्त्तावा करै तो दिया

हुआ भोग कहलावेगा और जब उसकी परिनियक्षित आज्ञासे अधिक दिनोंका बर्त्तावा करेगा तो वही बर्त्तावा अदत्त भोगमें गिनती है-इसके सिवाय विना आज्ञाका जो भोग है उसके लिये यहां तक निषेधहै कि जब किसी दूसरेके समीप या घरजावे तौ उसकी खाट या मोढ़ा आदि पर उसकी समस्या वा संकेत विना न बैठजावे चाहै वह अपना सगा भाईभी हो किन्तु पराया या बिराना शब्द यह अपने शरीरके सिवाय सगेभाई आदि पर भी आरूढ़है फिर भाईके सिवाय औरोंका क्या लेखा है-(उद्यान) यहां पर सम्बन्धका दृष्टांत जैसे किसी एक प्रतापी अमीरका अति रमणीक बहु विस्तारवान् बाग जो विचित्रतामें जानो नन्दनबन कल्पहो जिसका कोई एक बिभाग जिसमें अलभ्य पुष्प बाटिका या फलबाटिका लगी है जिसकी रक्षा उस सम्पूर्ण बाग से भी अधिक निर्विकल्प रहाकरती है-उस अमीरका पुरोहित या पुरोहितका पुत्र आदि कोई प्रिय आत्मीय उसी परिरक्षित फुलवाड़ी में से उत्तम फूल जो केवल नेत्रविषय मात्रके लिये लगायेगयेहैं नित्यंप्रति तोड़ तोड़ लावे और जब कोई सिपाही आदि रक्षक उसे निषेध करैं तो यही उत्तर देवे कि यह रक्षा मेरे लिये नहीं है यद्यपि वे रक्षक लोग कुछदिन इस शोच विचारसे निषेधसे चुपके रहैं और मालिकको संबोधन भी नहीं करैं कि हां इनके लिये आज्ञा देरक्खी होगी पर जिस दिन वह संबोधन होगा या किसी हेतुसे भेद खुलैगा उसदिन मालिक यही कहेगा कि उसमें पुष्प तोड़ने को निर्विकल्प मेरे पुत्रको भी आज्ञा नहीं है फिर पुरोहितका पुत्र किस हेतुसे तोड़सक्ताहै और यथार्थ में यह बात है कि जो कोई इस बातका दावा रखकर बिना आज्ञाकी कोई वस्तु भोगे या भोगना चाहे कि मैं इस वस्तुके मालिकका खास या सगाहूं तो यह दावा उसका अनुचितहै क्योंकि जो वह सगाहै तो बनाने के लिये सगा है पर विगाड़नेके लिये कोई सगा नहीं होसक्ता-कदाचित् पुरोहित इस बातका दावा अपने मनसे आरोपित करै कि मैं उसकी रक्षाका हेतु प्रसिद्ध और पूज्यहूं मुझको ऐसी बातोंकी आज्ञा मिलने या न मिलनेसे क्या अपेक्षा है सो यह मनकी भ्रांति उसकी वृथाहै क्योंकि पूज्यता और बड़प्पनके अनुसार मालिकको यहां तक अधिकार है कि वह चाहै अदेय वस्तु और सर्वस्वभी उसे देदेवै पर आज्ञा विना वह भोगने का अधिकारी इस हेतुसे नहीं है कि जब उसकी रक्षाका हेतु वह प्रसिद्धहै तो जैसे और बातोंकी रक्षा पुरोहितको करनी उचित होती है तैसेही उस मालिककी निर्विकल्प आज्ञाकी भी रक्षा करनी उचितहै अर्थात् जिस बातमें वह निषेधकी निर्विकल्प आज्ञा देवे उसमें पुरोहितको चाहिये कि आप भी उस निषेधको माने और अन्य भी प्रतिष्ठित सेवक वा सम्बन्धी जनोंको उसी रीतिपर चलावे तब उसकी रक्षाका हेतु आप निश्चित होसक्ताहै-अन्यथा जब पुरोहितने उसकी निर्विकल्प आज्ञा वा निषेधमें वि-

कल्प करदिया तो उसकी देखादेखी अन्यभी प्रतिष्ठित सेवक वा उस मालिकके ठेठ सम्बन्धी लोग भी ऐसा करने लगेंगे तभी वह पुरोहित रक्षाका हेतु नहीं बल्कि उस के विनाशका हेतु होगया जिसने उसके निर्विकल्प निषेधमें विकल्प डालकर आज्ञा की दृढ़तामें भंग किया इसी एक दृष्टांतके निदर्शन मात्रसे सारी वस्तुओंका सिद्धांत समझलेना चाहिये कि विना आज्ञाके कोई भी किसी वस्तुको नहीं भोग सक्ता है और यद्यपि इस १५९ के श्लोकमें केवल पांच वस्तु लिखीहैं पर उनके निदर्शनसे और भी संसारकी सारी वस्तुओं का सिद्धांत यही है १५९ ॥

अब यहांसे आगे अन्नोंको कहते हैं पर इसका चर्चा थोड़ासा ऊपरके श्लोकमें भी आया है अग्नि हीन इति ॥

कदर्यबद्धचोराणांक्लीवरंगावतारिणाम् । वैणाभिशस्तवार्द्धुष्यगणिकागणदीक्षिणाम् १६० ॥

ऐ०—(कदर्य) कहिये लुब्ध अतिलोभी—बद्ध बँधुआ निगडादि बंधनसे यद्वा वाग्बंधन सेहीहो-चोर प्रसिद्ध है जो साधारण चोरीभी करता हो-क्लीव नपुंसक जो सर्वथा पुरुषार्थ हीनहो-रंगावतारी अर्थात् नट चारण मल्ल आदि-इनसबोंका-औरवैण कहिये वंश फोड़ जो बांस को चीर फाड़कर उपजीवन के काम करै-अभिशस्त जो पतनीय कर्मों से अभियुक्त हो पतनीय कर्म जिनके करने से पतित कहावै ऐसे कर्म जिसमें बहुधा हों सो अभिशस्त-वार्द्धुष्य जो निषिद्धवृद्धिसे उपजीवनकरै जैसेकसाई आदि जीवघातियों को धनवृद्धिपर किस्तैं देनी या मुर्दे का धन सस्ताखरीदकर बेंचना या चोरीका धन किसी से सस्तालेकर लाभउठाना आदि-गणिका पण्यस्त्री वेश्या प्रसिद्ध हैं-गण दीक्षी जो बहुतेरे गणसमूहों को दीक्षा करवावें अर्थात् शिष्यों के गुणदोष विचारे विना सहस्त्रों सब जातों के मनुष्यों को दीक्षा देकर कंठी बांधैं औरउनके असत्कर्मोंके भागी बनें यद्वा बहुतों को यजनकरावै वह भी गणदीक्षी है इनसबों का भी अन्न अच्छेभलेमें न खावै पर आपत्कालमें लाचारीहै यहअनुकर्ष इस्से पहलेश्लोक मेंसे लियागया १६० ॥

अधि०—ऊर्ध्वोक्तसबों में से एक कदर्यका माहात्म्य समक्ष कहतेहैं-यथा (आत्मानं धर्मकृत्यंचपुत्रदारांश्चपीडयेत् लोभाद्यःपितरौभृत्यान्सकदर्यइतिस्मृतः) अर्थात् जो पुरुष अतिलोभकी तृष्णासे अपने आत्माको और धर्म कृत्यको और पुत्रदाराओंको भी और माता पिता को भी भृत्यवर्गों को भी पीड़ादेवै सो कदर्य कहलाताहै(दृष्टान्त) इसका प्रत्यक्ष संभूतहै कि औरों को कहांतक शोचैं पर जो मनुष्य दशबीस हजारकी धन संपत्ति संचित होने और दश पांच मुद्रा नैत्तिक आमदि होने और सहस्त्रों में प्रतिष्ठापद मिलनेपरभी ऐसा लोभी हो जो संध्यासमय छदाम का तैल नहीं बाले और आये गये को पान या तमाकू तौ कठिनहै पर बैठने को चटाईभी न देवै अपने

आत्माके भोजन वस्त्रादिक और दवा दारू में भी सूम खींच जावै-यह सब एक ओर पर एक दो मुद्राके व्ययहोने से सारे कुटुंबका आनन्द बल्किदोही एक आनेके उठाने से प्राण रक्षामात्र प्रत्यक्ष होसक्तीथी मित्रादिकों के उपदेश परभी ध्यान नहीं लावै केवल लोभ तृष्णामें उन्मत्त है और ठेठ उस २) या =) के हेतुसे ऐसा प्राणांतिक दुःख पावै कि शायद एक जन्म तौ थोडाहै पर सात जन्म भी न भूलै बल्कि उसके सर्वसम्बन्धी और मित्रादिक भी न भूलैं उस दुर्दशाको देखकर क्योंकि उस दुःखमें आयेहुये सम्बन्धी लोग रातौदिन दुःखसाथी होने परभी खानेको न पावैं पुनि उसी हेतुसे सौ दोसौका आवश्यक व्यय तत्काल करनापड़े और आगेको उसी हेतुसे नैत्तिक आमदिमें भी कमताई होजावै सो यह अपने आत्माको पीड़ा देनाहुआ-और (धर्मकृत्य) को पीड़ा देना यथा उसी घरमें तरुणकन्या जो गौनेके होजाने पर भी आरात् किसी हेतुसे अपने घर आईहो वर्षों ताईं इसी शोचसे चालेमें उपेक्षाकरै कि जो अभी इसको भेजेंगे तौ सवारी आदि खर्चोंमें दशबीस मुद्रा वृथा उठिजावेंगे इस्से घर आये हुये जामातृको केवल एक मुद्रा देकर दो तीनबार पैरों लौटार देना यह कुछ ओछी बात नहीं है और अगिले साल काका देवदत्त गयाजीको जानेवाले हैं उनके साथ भेज देवेंगे तौ सवारी नहीं करनी होगी वे अपने साथ लेजाकर पहुँचाते चलेजावेंगे और भरोसाहै कि वे हमसे इसका भाड़ा नहीं मांगेंगे पर जो जाना उनका होसकै और जो यह नहीं तौ तीसरे साल तक हमकोभी सकुटुम्ब गोकर्णनाथजी को लड़केका मूड़-न करवानेको अवश्य जाना होगा तब साथ लियेजावेंगे तब तक जो आधसेर आटा यह खावैगी सो काम धन्धाकी आराम रहीआवेगी-सो यह लोभसे धर्मकार्यको पीड़ा देनाहुआ क्योंकि ऐसे दुर्ज्ञानियोंको शास्त्रकी सम्पन्नता पर भी यह नहीं सूझपड़ता कि ऐसी कन्याका पिताके घरमें रहनाही निषेधहै फिर जिस धर्मकी रक्षा और अधर्म की निवृत्तिके लिये पहले सौ दोसौ चारसौ मुद्रा व्याह और गौनेमें भी खर्च करचुके अब केवल दश बीसके लोभ लालचसे वही अधर्म तीन वर्षोंतक अपने शिरपर कैसे रक्खे रहेंगे-पुत्र दाराओंको पीड़ा देना यह कि प्रथम तौ जैसा खाना पहिरना उस घरके अनुरूप उनके योग्यहो तैसा लोभसे न करना दूसरे आधिक्यता यह कि [illegible] कुत्सित काम छोटे २ उन्हीं पुत्र दारादिकों से करवाना जिनको देख सुनकर [illegible] विराने सब निंदाकरैं क्योंकि जिनमें पैसा दोपैसा की प्राप्ति और वह [illegible] के योग्य न उस प्रतिष्ठाके योग्य परंतु उनका यह सिद्धांतहै कि निंद[illegible] लब्धंतल्लब्धं किन्तु ये पुत्र दारादि जो खाते हैं उस्से आधा भी [illegible] होतारहै तौ घरकी आमदि या धनमें दाग न लगनेपावे-(मात[illegible] लोभसे यह बात कि पुत्रकी योग्यता में उनको वृद्धावस्था पर [illegible]

योग्यथा परंतु उनकी परमशिथिलता पर भी उनसे अनुचित परिश्रम करवाना और ऐसी निंद्य नौकरी आदि करवाना जिसको देख सुनकर गैरोंके रोवां खड़ेहों और जो कदाचित् कोई रोज वे नौकरी आदिसे रहितहों तो घरसे भी एक आना रोजके हिसाब नौकरीकी रीतिपर जुदा देदेना और चतुर्गुण मिहनत लेना बल्कि यहांतक बैठा नहीं देखसकना कि तुच्छ तगादेके निमित्तसे ग्रीष्मऋतुमें पचास कोसके अन्तर पर विना जूता भेजदेना और केवल चारआने खर्चको बँधादेना इस प्रकार दो महीने की ग्रीष्मऋतुमें चारबारका दौड़ाना भी एकही लक्ष्यपर सुगम है चाहे वहांसे कुछ लाभहो या नहो पर लौटिआनेके साथही तत्काल निवर्त्तनकी आज्ञा करदेना यह कुछ हिंसामें गिनती नहीं है पर उस एक आनासे अधिक जो कुछ उनसे पैदा करवाना किसी निंद्यकामसे वह उनसे लेलेना यह धर्म इन्साफमें गिनती है-(भृत्यवर्ग) में नौकर चाकर दासादिकोंका होना तो ऐसे घरमें एक जन्म क्या सात शाखमें भी असम्भवहै पर कुछ खुशामदी लोग जो अपने २ किसी झूठे स्वार्थकी आशा किये अपने कठिन कालको काटतेहुये पड़े रहते हैं वेही भृत्यवर्ग हैं जिनको सिर्फ इसीलिये कुछ झूठी दमदिलासा देदीजाती है कि इनके पड़े रहनेसे कुछ काम निकलैगा उनको यहां तक लोभसे पीड़ादेनी कि प्रथम तो कोई स्थल ऐसा नहीं दरवाजे आगे अधिक राखना जहां कोई दशदिन भी आरामसे काटिसकै पर भाग्योंके मारे हुये जो ऐसी दशापर भी भड़भूजाके भाड़में आनि घुसे कि निराश्रय से दुःखाश्रय भी बेहतर है और उन्होंने अपने उदर पूर्णमात्रका कोईसा परिश्रम जहां तहां से लाकर आरम्भ किया कि बरस छःमहीने इस रीतिसे काटैं फिर न जानैं कुछ यहांके झूँठे दमदिलासा में भी कोई फल उत्पन्न होजावे तथापि उन विचारों को यहां तक पीड़ा देना कि वह काम पूरा करना दुर्लभ करदेना बल्कि रोटी भी बनाकर खाना कठिन करदेना क्योंकि घरके घर धनीसे लेकर दो बरसका बालक पर्यंत एक एक घड़ीमें तीन तीन बार ऐसा तीव्र हुक्म करताहै कि उस मन्दभागीकी प्रतिष्ठा पर भी दृष्टि नहीं डालकर करने और न करनेके भी सबकाम करवाना चाहैं उसने अपने घरभी कभी न भराहो पर कोस आधकोसके अन्तरसे पानीके घड़े और मट्टी आदि मँगवाना बाजार की यह दशाहै कि एक छदामके सौदापर तीनबार चक्कर लगवाना जो आने दोआनेका सौदा होतौ मातिबरीके लिये दो तीन और भी साथजावें तब सौदा आवै पर दो तीन बार बानगीका आना और सौदेका फेरमारना यह तो साधारण परिनियमितहै इस प्रकार उनको संकटमें राखना पर होली और अन्नकूटमें भी यह न बूझना कि दोपैसे भर प्रसाद तुम भी लेलो क्योंकि यह अन्नकूट एक दूसरे प्रकारका होता है किन्तु अपने घरू घराके लड़के बालोंकाही और भाई बिरादरी या मित्रादिक इसमें इसलिये साभी

नहीं होसक्के कि उनके घर चाहे सालमें दशबार वे बुलावें तौ सारा घर मिलकर खाइ आना पर उनको किसी बहानेसे बुलाकर कभी अपने घर खवाना यह अशुभ होता है-और यह बात भी अच्छी है कि उन मन्दभागी भृत्यवर्गोंको किसी काम पर दौड़ा देना तत्काल बोलीके साथही और पीछे उनका कपड़ा लत्ता जो मकानके न होनेसे छुट्टा पड़ारहता है उसको कोई घरका छोटा बड़ा खोल खखोलकर पैसा टका हाथलगा तौ निकासलेना वे बिचारे जानते हैं कि देवदत्तने लिया पर यह कहना तौ अनुचित है इसके सिवाय उनकी कोई साधारण वस्तु मांगेसे बातोंमें फुसलानेसे घरका कोई लड़का लड़की झपट लेवे तौ यह बात घरके धनीको भी देख सुनकर बहुत अच्छी लगे क्योंकि कदर्योंकी यह नीति तौ प्रसिद्धही है कि यार तुम हमारे आवोगे तौ क्या लाओगे और हम तुम्हारे आवेंगे तो क्या खिलाओगे-यह सारे लक्षण जिस मनुष्य में या जिस घरमें हों वही मुख्य कदर्य्य कहलाताहै किन्तु एक दो बातके होनेसे नहीं यद्यपि (कदर्यों) के लक्षण जो प्रत्यक्ष देखनेमें आये हैं उनको अशेष लिखना चाहें तौ हमारा एक मासका परिश्रम और लागति उन (कदर्यों) केही निमित्तमें लगजावे क्योंकि जिनके घरमें इस प्रतिष्ठा पर भी घरकी मालिकनीसे लगा बहू बेटी पर्य्यंत इकहरी चद्दर ओढ़कर दिनभरमें चारबेर तगादेको शूद्रादिकों के घर पहुँचती हैं इस हेतुसे कि वे मुफ्तके नौकर जो बारम्बार हैरान किये जाते हैं और दुःखी होकर झूँठी सच्चीबात बनाकर उत्तर देतेहैं तभी झुंझलाहटकी तेजीमें आप उठ दौड़ती हैं ऐसेही बाजारके सौदा मध्ये किसीका बिश्वास न मानिकर आप खरीदती फिरती हैं इसहेतु से कि निरख हरवक्त हमको मालूम रहे जिसका सौदा घर बुलाकर खरीदती हैं उस विचारेको प्राण छुटाने मुश्किल होजाते हैं यह सब लोभका हेतु है वलिक घर धनी आप इन आचरणोंमें सन्मुख देखतेहुयेभी नहीं दखलदेता वलिक बाजारके कामोंको वह आप नहीं जासक्ता क्योंकि प्रतिष्ठाका माहात्म्य कुछ तौ चाहिये फिर इन इतिहासों को किसकी सामर्थ्य है कि जो अशेष लिखसक्ता है-इसलिये हजार बातोंमें एक बात सो उसको भी ऐसा तत्त्वभूत स्वल्प करिकै लिखाहै जैसे मनभरमें एक रत्ती क्योंकि इतनेसे भी समझने वाले बहुत समझ लेंगे-कदाचित् कोई ऐसा मनुष्य जिसने संसारको थोड़ा देखाहो वह इस बात पर अविश्वासता लाकर हास्यपूर्वक यह कहने लगै कि ऐसा होही नहीं सक्ता कि ये सारे लक्षण एकत्र इकट्ठेहों-तहां-उस जगत्कर्त्ता ने यदि अद्यावधि पर्यंत असत्यके बोलने और लिखने पर प्रकृति नहीं दौड़ने दी है यह बात सत्यहै तो हम भी प्रतिज्ञापूर्वक वचन देतेहैं कि मुजरिम् को मये माल बांध कर हाजिर करदेना स्वाधीनहै पर दूर पहुँचाना बड़ा कठिनहै यद्यपि वर्षोंका विलंब और कोसोंका अन्तर हमसे परचुका है पर ऐसे लुब्धोंका निकट आकर्षण क्या मु-

श्किलहै-परंतु इन बातोंमें कुछ वाद विवादकी अपेक्षा नहीं है सिद्धांत केवल इतनाहै कि जो कोई इस अपार संसारमें सुकीर्त्ति अपनी चाहो तो बाल्य अवस्थासे इन बातों के जिज्ञासु होकर ऐसी वृत्ति धारणकरो जिस्से तुमको इनकी गिनतीमें न आना पड़े अर्थात् तुम ऐसा कभी न करना और अपने संसर्गियोंका भी निषेध युक्ति साथ करते रहना इसलिये इसके लिखने की आवश्यकता थी क्योंकि गुण और दोष सुने और सुनाये विना कोई नहीं जानिसकता और जब जाने नहीं तब संग्रह या त्याग किसका करे इस्से जो बात बाल अवस्थामें जानीजायगी वही सारे जन्मभर फलदायक होगी-अन्यथा यह (दृष्टांत) उस बात पर लिखा गयाथा कि जो कोई इस भांतिका कदर्य होवे उसका अन्न न खाना चाहिये क्योंकि प्रथम तो ऐसे लोभीका अन्न मिलसकनाही असम्भवहै पर जो कदाचित् दैवयोगसे पश्चिम सूर्य उदय होजावे तो (स्नातक) पुरुष को उस अन्नसे वचना चाहिये क्योंकि उन विपरीत आचरणोंसे जो कुछ अधर्म उस कदर्यको होताहै उसका अन्न खानेसे उसी अधर्मका भागी होना पड़ेगा दूसरे यह बात कि वह देतेहुये अपने हृदयमें अनेक दुःख मानिकर देवैगा तभी वह अन्न खानेवाले को न पचिकर सात धारहो निकलैगा और नानारोगोंके अंकुर पैदा करैगा-और कदाचित् किसी हेतुसे निरन्तर ४० दिन ताईं ऐसे कदर्य्यका अन्न जो खाना परै तो निःसंदेह वेही लक्षण उसमें भी होजावें १६० ॥

चिकित्सकातुरक्रुद्धपुंश्चलीमत्तविद्विषाम्। क्रूरोग्रपतितव्रात्यदांभिकोच्छिष्टभोजिनाम् १६१॥

ऐ०—(चिकित्सक) जो वैद्यकर्मसे जीविका करै-(आतुर) जो महा कुष्ठादि राजरोगों से ग्रसित हो-(क्रुद्ध) जो सदैव कोपरूप बनारहताहो या थोड़े हेतुपरभी अमित कोपसागर में डूब जाया करता हो-(पुंश्चली) व्यभिचारिणी जो प्रत्यक्ष भावमें प्रसिद्धहो-(मत्त) जो विद्या आदिकी अधिकता से गर्वित हो-(विद्विष) अर्थात् विद्विट् जो अनेकों से शत्रुता रखता हो यद्वा ठेठकर अपना शत्रु-(क्रूर) कुटिल अर्थात् अकड़पनवाला मनुष्य जो किसी को अपनी कुटिलता के आगे गिनती में न लाता हो-(उग्र) अर्थात् जो वाणी के और शरीर के व्यापारों से सज्जनों को उद्वेग पहुँचानेवाला हो-पतित अर्थात् ब्रह्मघाती आदि-व्रात्य जिसकी चर्चा ३८ अर्तीस के श्लोक में आचुकी है दांभिक पाखंडी वा छलिया-उच्छिष्ट भोजी जो और का भोजन शेष खानेवाला-इन सबोंकाभी अन्न अच्छे भलेमें न खावे पर आपत्काल में लाचारी है यह अनुकर्षभी १५९ श्लोक से लियागया १६१ ॥

आधि०—महारोगोंके लक्षण-यथा (वातव्याध्यश्मरीकुष्ठमेहोदरभगंदराः। अर्शांसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाः प्रकीर्तिताः) अर्थात् १ बात व्याधि जो केवल एक बातकेही कोपसे अरसी ८० बात रोग उत्पन्न होतेहैं जिनमें अर्द्धांग धनुर्वात पक्षाघात आदि

भी गिनती हैं-२ अश्मरी पथरी शर्करा आदि रोग प्रसिद्ध हैं-३ कुष्ठ जो अठारहप्रकारके कोढ़ प्रसिद्ध हैं-४ मेहकहिये प्रमेह जो २० प्रकार के होतेहैं-५ उदरव्याधि-जो जलोदर काष्ठोदर आदि प्रसिद्ध हैं और मुख्य उनकी जाति आठ ८ प्रकारकी होती है-६ भगंदर रोग जो गुदा अथवा योनि द्वारा होता है-७ अर्शस् बवासीर के रोग जो छः प्रकार के होते हैं-८ ग्रहणी जो संग्रहणी नामका रोग प्रसिद्ध है ये आठ महारोग कहलाते हैं १६१॥

अवीरास्त्रीस्वर्णकारस्त्रीजितग्रामयाजिनाम्। शस्त्रविक्रयकर्मारतंतुवायश्ववृत्तिनाम् १६२॥

ऐ०-अवीरास्त्री अर्थात्स्वतंत्रा निरंकुशा-स्वर्णकारसुनार-स्त्रीजितः अर्थात् सर्वत्रस्त्री के वशवर्त्तीरहे-ग्रामयाजी अर्थात् सब जातों सहित सारेग्रामभरको छठी दसूठनिआ-दिशांति विषयकरवाने वाला-इनसबोंका और-शस्त्रविक्रयी जोशस्त्रोंकोबनावै या खरी-दकरबेंचै-कर्मार अर्थात् लुहार और बढ़ई आदिभी-तंतुवाय अर्थात् कोली जोकपड़ा बुनताहै और दर्जी आदिभी-श्ववृत्ती अर्थात् श्ववृत्तिमान् किंतु जो कुत्ताओंके द्वारा जीविका करै चाहै कुत्ताओं को मारखावै चाहै कुत्ताओं से अन्यजीवों की आखेट करै-इनसबोंका भी अन्न अच्छे भलेमें न लेना चाहिये पर आपत्काल में लाचारी है यह अनुकर्ष भी उसी १५९ श्लोकसे लियागया १६२॥

आधि०-सर्वत्रस्त्रीकेवशवर्त्ती रहने का दृष्टांत जैसे ठेठ अपने गुरु अथवा अन्यकिसी पूज्यके लिये श्रावणी रक्षाबंधन की दक्षिणा एकमुद्रा लिखचुके एवं अन्य सेवकों के लियेभी कुछइनाम अपनेहाथसेलिखचुके और निजकारपर्दाजको आज्ञाभी देचुके यह समाचार सबको विदित होचुके पीछेजब घरवालीने सुना और घुड़की दिखलाई और अपने सामने कलमसे कटवादिया तबउसकी आज्ञासे सबकापरिमाण चौथाई २ करादिया जोकुछ पहले लिखचुके थे—उसीघरका दूसरा दृष्टांत कुछ दिन पीछे पौत्रका जन्महुआ जिसकीअपेक्षा अनेकवर्षोंसे लगरहीथी कि कोई रीतिसे इसघरमें वंशवृक्ष का अंकुर जमै वल्कि इसबातकेलिये कुछदिनोंसे जपभी होरहेथे कि अबकीबार कन्या नहीं होवे परमेश्वर ने वहीकिया इस प्रसन्नतासे एक सहस्रताई व्ययकरनेका उत्साह किया और आज्ञाहुई कि जिस ज्योतिषी ने पहलसे जपकिया है वही इसकी राशि गणनाको भी आवै क्योंकि जो दशबीस रुपये दियेजावें सो उसीको मिलें तौ अच्छी बातहै इसलिये जन्म कालसे तीन घंटा पहले अर्द्धरात्रिके पीछेसे ज्योतिषीजी बुलाये हुये अति फूलेफाले आनि पहुँचे और अपने शास्त्रोंको सँभालकर निद्राको रोकेहुये संबुद्ध हरिका स्मरण करनेलगे जैसे तैसे वह रात्रिकटी ब्राह्ममुहूर्त्तमें प्रसव हुआ परंतु जब घरवालीने यह खबरपाई तब अत्यन्त घर धनीको घुड़काघुड़की करी और तत्काल उस ज्योतिषीको बुलवालिया कि जो विद्यामें तौ निपुण थोड़ाथा पर सदैव बहू

जी वहूजी कहकर जनानी ड्योढ़ीकी खुशामदिमें होशियार अधिकथा उसने राशिगणना करी और देने लेने की प्रसन्नता में वहूजी की प्रशंसाकर घरकी राहली और जापक ज्योतिषी ने यामिक सेवा कियेपीछे कुछ साधारण दक्षिणा पाकर मुखमलीनता अंगीकारकी-यद्यपि घरधनी जो उनदोनों की विद्या और प्रभाव या धूर्त्तता को भलीभांति जानताथा इस व्यतिक्रम से अप्रसन्नभी हुआ परइसवात से लाचारथा कि स्त्री के वशवर्त्तित्व को छोड़ नहींसक्काथा इस्से सब अंगीकारकिया दूसरेदिनसे नौवतरखवायेपीछे सातसौ रुपयेके वस्त्रआभूषण आदिकी तैयारीमें निरंतरतत्परहुये और यावन्मात्र मान्य और पूज्य और प्रतिष्ठित अधिकारी वा साधारणसेवक और पंडित वा नापित भांड़ भँड़ेले आदि उनसे संसर्गरखते और शुभ चिंतक थे सबकेलियेजुदे २ यथायोग्य पांचों कपड़े वा आभूषण या रोक रुपये जो कुछदेनाचाहा सो एकफर्द चिट्ठामें लिख २ कर तैयारकरवातेरहे और छठीकेदिन परम उत्सव और नाचरंग सहित विरादरी की ज्योनारका सामान वड़ी धूमधामसे संसिद्धकिया और छठीसेएक दिन पहलेसंध्यासे आधीरात्रितांई घरवाली को वह चिट्ठा सुना २ कर समझातेरहे कि यह चीज उसकेलिये यह अमुकामुकों के निमित्त वनवाई है उससमय जो २उस घरिणी की इच्छामें आयासो२ उचित और अनुचित भी घटावढ़ाकर काटकपटकरवाया और पीछे से यह शिक्षादई कि अभी यह सवचीज देने वा लुटानेका कुछकाम नहीं है कल छठीके रोज सिर्फ विरादरीकी महफिल और विरादरी या मान्योंकेलिये जो कुछ वनवाया और मैंने लिखवायाहै सो दीजिये जिस्सेनामहो नौकरआदि अन्य गजरभत लोगों को देनेसे क्या नामहै इस्से यह चीजें अभीरक्खो आगेपीछे समुझ २ कर जिसको जैसा उचित जानोंगी तैसा दूंगी सिद्धांत इसका यह कि उस आलिम और फाजिल और इकवालमंद संभावित घरधनी को स्त्रीके वशवर्त्तित्व से यह भी करना अंगीकारहुआ औरपांचदिन से जो समस्त सेवक रातोंदिन उसकामकी धूमधाम और वहुताइत से काठकी पुतलीसी नाचते फिरते थे वल्कि ठेठ छठीकेदिन शामियाने और चँदोवे आदिकी खींचाखांची और दोसौ मनुष्यकी भोजन वस्तु तैयार करने वा कराने में लगेरहने से उनसेवकों ने नहाने और जलपीनेकाभी अवसर नहीं पाया पर इसउत्साहसे काम करनेसे हटे नहीं कि आजरात्रि को नानावस्तु का भोजन मिलैगा और पोशाकें वा आभूषण जो हमारेलिये बने हैं या और कुछ इनआम यह सबसारे समाजके सन्मुख हमको मिलैगा इस अभिमानमें डूबेरहे और घरके अधिकारियों ने यह भी नहीं बूझा कि तुम दो घड़ी की छुट्टी लेकर एक पैसे का चर्वण करलो अर्थात् रात्रिके दो तीनबजेतक सबको जिमाजुठाकर और समाज की सेवा शुश्रूषा से निपटकर मुहँ देखते से रहगये वह पोशाकें तौ भला संदूकों में

बंद हैं पर उस भोजन वस्तुमें सेभी सिवाय बिरादरी के किसी नौकर ने कुछ न पाया जिन बिचारों ने बेशरमाई लादकर भोजन मांगा उनको बीचके अधिकारियों ने टकासा उत्तरदिया कि मालिकों से कहो-उन सेवकों में से शायद् कोई ऐसा निर्लज्ज होगा कि जिसको दूसरेदिनभी वहरुकीहुई नींदलौटकर आई हो-उसघरधनीने फिर भी दो दिन पीछे वह चीज वस्तु खोली और यह कहा कि लोगोंको देदेनी चाहिये पर उस चातुर्यलहरी घरिणी ने घुड़कीदी कि अब क्या देकर होगा अगर उसदिन सबके सामनेदियाजाता तो कोई जानताभी अब इस फजूली की क्या जरूरत है-वह वंशांकुर जिसके हेतु से एक सहस्रका ब्यय कियागया उसकी पीठमें उसी छठीकी रात्रिमें इधरतो महफिल होतीरही उधर उसके पीड़ारूपी कोई चिह्न उत्पन्नहुआ वह निरंतर वृद्धिको पहुंचेगया यहांतक पीड़ा उसके होनेलगी कि अंदर घरमें आहि २ ऐसी करताथा कि बाहरवालोंको यह मालूम होताथा कि यह कोई बूढ़ा मनुष्यआह भरता है यद्यपिकईदिनतक रातौंदिनअनेक सयाने और खिलाड़ियों ने झाड़ फूँक दौड़ धूप उतारे पुतारे बहुतेरेकिये दश २ कोस के बाबाजीबग्घी भेजकर बुलायेगये सबने अपनी बिद्या दौड़ाई पर किसीसे भी कुछ न हुआ वह जन्म से तेरहवेंदिवस अपनी राहलेगया-घरधनीनेपीछेभी यह चाहा कि यह वस्तु जिसके नामसेबनी है देदीजावे पर स्त्रीके बशवर्त्तित्व को न छोड़सके और स्त्रीने बड़ी चतुराई से यह कहा कि मेरी हजार वर्षकी नीँउँउठकर जातीरही तुमको अबतकभी इनाम का अनुमान चलाजाता है इस्से क्रमक्रम से वह वस्तु कुछबेचीगई कुछ घरमें खर्चकरलीगई इस बात में अभी बहुतकुछ शेष है सो यह बात केवल एक बारका नमूना है किंतु उन घरोंमें निरंतरयहीरीति है १६२ ॥

नृशंसराजरजककृतघ्नवधजीविनाम् । चैलधावसुराजीवसहोपपतिवेश्मनाम् १६३ ॥
पिशुनानृतिनोश्चैवतथाचाक्रिकवंदिनाम् । एषामन्नंनभोक्तव्यंसोमविक्रयिणस्तथा १६४ ॥

ऐ० सहद्वयोः—नृशंसराज अर्थात् निर्दय राजा निर्दयी इतिलोकेपि अथवा दोनोंपद भिन्न २ करनेसे नृशंस लक्षण वाला कोईहो और राज शब्दसे राजा जिसके अवगुण १३९ श्लोकके अन्त्यपदमें कहचुके हैं अर्थात् लुब्ध और उच्छास्त्रवर्त्ती भूपति किंतु सभी राजामात्र नहीं-रजक रँगरेज जो नील कुसुंभ आदिसे वस्त्रोंको रंजना करताहै-कृतघ्न कृतघ्नी जो कियेहुये उपकारको न मानकर मेटिदेवै-वधजीवी जो प्राणियोंका वध करिकै जीवन करै-चैल धाव धोबी-सुराजीव जो मद्यादि वस्तु विक्रयसे जीवै-सहोपपतिवेश्म अर्थात् उपपति जो जार है तिस करके सहित एकही घरमें बसै इन सबोंका अन्न और १६३ पिशुन जो पराये दोषोंको चुगुलीचाई की रीतिसे कहे-अनृती जो प्रयोजनके मामिले परभी बारम्बार प्रत्यक्ष भावसे ऐसा झूँठ बकाकरै जैसे

कोई सबके सन्मुख गुड़का डला लियेहुये खारहाहै और कहताहै कि मेरे हाथमें गुड़ कहाहै अर्थात् वह भूँठ उसके मुखमेंसे निकलतेके साथही प्रतीत होजावे कि यह भूँठ कहताहै पर उसको इस बातकी लज्जा कभीभी न आवे जिसकी यह प्रकृति निर्विकल्प हो वह अनृती कहलाताहै-इन दोनोंका भी अन्न और तथा-चाक्रिक अर्थात् तेली और गाड़ीमान् भी-वंदिनःस्तावकाः अर्थात् बंदी उन्हें कहते हैं जो स्तवोंका पेशा करते हैं जैसे भाटभँडेले आदि इन्होंका अन्ननहीं खानाचाहिये तैसेही सोम विक्रयीकाभीनहीं-पर जो आपत्कालहो तो लाचारीहै यहअनुकर्ष उसी १५९के श्लोकसे लियागया१६४॥

अधि०-सोमविक्रयी सोमलता वा सोमालताका बेंचनेवाला यद्वा सोम नाम अमृत काहै अर्थात् अमृतके तुल्य स्वादु और गुणवाली जो वस्तुहैं तिनका विक्रय कर्त्ता-और १५९श्लोकके अन्त्यपदसे यहां ताईं जो निरन्तर अन्नका निषेधकिया सो आ-मान्न या सिद्धान्नका निषेध कहाहै किन्तु पक्वान्न आदिके निषेधका अवसर यहां पर नहीं है क्योंकि जिन जातोंसे पक्वान्न आदि ग्रहण करनेकी प्राप्तिही प्रत्यक्षमें नहीं या जिसका निषेध अपने उचितस्थल पर प्रत्यक्षहै फिर उसकी चर्चाका क्या अवकाश है सोई नीचेके श्लोकसे स्पष्ट हुआ जाता है १६४॥

शूद्रेषुदासगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः। भोज्यान्नानापितश्चैवयश्चात्मानंनिवेदयेत् १६५॥

इतिस्नातकव्रतप्रकरणम्॥

अक्ष०-शूद्रोंमें दास गोपाल कुल मित्र अर्द्धसीरी नापित भी ये इतने भोज्यान्नहैं पर जो आत्मा को निवेदन करै १६५॥

अभि०-उपर जो शूद्र आदि अनेकों का अन्नखाना निषेधकरचुके हैं उसमें कुछ विशेष कहते हैं कि शूद्र जातों में एक तो दासकहिये धीवर अथवा पंद्रह १५ प्रका-र के दास जो नारद जीने अपनी संहिता में स्पष्ट लक्षणों सहित गिनायेहैं-दूसरेगो-पालजो गौओंका पालनकरैं किंतु अहीर आदि-तीसरे कुलमित्र जो कोईसा उत्तम शूद्रअपने कुलमें दादा परदादा आदि से संतान पूर्वकमेल मिलापमें मित्रता की रीति से रहता चलाआया हो-चौथे अर्द्धसीरी अर्थात् अपनी सीर कहिये खेती में आधा साझा जिस किसी उत्तम शूद्रकाचलाआताहो इतने शूद्र भोज्यान्नहोतेहैं किंतु इनका आमान्न सिद्धान्नआदि जोकुछ वे प्रीति पूर्वकदेने लगैं सोलेलेना चाहिये और नाई भी भोज्यान्नहै परन्तु उसअवस्थामें कि जोयेलोग अपने आत्माका निवेदनकरैं अर्थात् सदैवही सत्यभावसे यहकहैं कि हम आपहीके हैं १६५॥

अधि०-हम आपहीके हैं इसकहनेका यह सिद्धांतहै कि जो इसप्रकारसे एकतावा-न्होकर समीप रहेगा वह अपने सत्संगके प्रभावसे कुछ उज्ज्वलता क्रियाकर्म आदि भी करने लगैगा और यथार्थ में ग्राह्य या अग्राह्यके विषयमें क्रियाकर्मही प्रधानहै

नापित यहां पर वहग्राह्यहै कि जो केवलदीवा बत्तीआदि गृहव्यापारोंका सेवकहोकिंतुक्षौरकर्म और मृतकादि यजमानी धंधोंसे रहितहो-पंद्रह १५ दास जो नारदजीने कहेहैं तिनकी परिगणना और लक्षणयथा-(गृहजातस्तथाक्रीतोलब्धोदायादुपागतः। अन्नाकालभृतस्तद्वदाहितःस्वामिनाचयः॥ मोक्षितोमहतश्चार्णाद्युद्धेप्राप्तःपणेजितः। तवाहमित्युपगतःप्रव्रज्यावसितःकृतः॥ भक्तदासश्चविज्ञेयस्तथैववडवाकृतः। विक्रेताचात्मनःशास्त्रेदासाःपंचदशस्मृताः) अर्थात्-एक तौ (गृहजातदास) उसको कहते हैं जो अपने घरहीमें दासीसे उत्पन्न भयाहो १ (क्रीतदास) जो मोलको खरीदाहो२ (लब्धदास) जो स्वतः दैवइच्छासे पागयाहो३ (दायादुपागत) दास जो क्रमागतहो जैसे अपने दादाके दासका पुत्र अपने बापका दास हुआथा पुनि उसका पुत्र अपना दास हुआ पुनि उसका पुत्र अपने पुत्रका दास होवेगा ४ (अन्नाकालभृतदास) उसे कहते हैं जिसको दुर्भिक्षमें पालाहो ५ (स्वामिनाआहितः) अर्थात् आहितदास उसे कहते हैं जिस दासके स्वामीने किसी आवश्यकतासे गहने रक्खाहो या धरोहरकी रीतिसे सौंपा हो ६ (ऋणमोक्षितः) अर्थात् मोक्षितदास जिसने अपने ऊपरका महत् ऋण उद्धार कराकर छुड़ानेवालेका दास्य अंगीकार कियाहो ७ (युद्धेप्राप्तः) अर्थात् ध्वजाहृतदास जिसके स्वामीको युद्धमें पराजय करके अन्य धनके साथमें दासभी लेलियाहो ८ (पणेजितः) जो किसीसे उसका दास द्यूत आदि कर्मोंकी बाजीमें जीताहो ९ (तवाहमित्युपगतः) अर्थात् उपगतदास वह कि जो किसीका दास नहींथा पर आपही आनकर दासरूप होकर यह कहताहुआ रहनेलगा कि अब मैं तुम्हाराहीहूँ मेरा और कोई रक्षक नहीं सो यह दास शरणागतके रूपमें है १० (प्रव्रज्याऽवसितः) संन्यासभ्रष्टः अर्थात् संन्यास धर्मसे भ्रष्टहोकर किसीके दासत्वमें रहनेलगा सो प्रवज्याऽवसितहै ११ (कृतः) अर्थात् कृतदास जो नौकरी ठहराकर दास रक्खाजाताहै और वह भी कि जो किसी पेशेका काम सिखलाने के लिये दासरूपसे कुछदिनों को रक्खाजाय १२ (भक्तदास) जो सुकाल के होनेपरभी अपनी श्रद्धा भक्तिसे सत्सेवा समुझकरदास्य अंगीकारकरै जिसे उदरपूरण से अधिकवांछानहीं १३ (वड़वाकृत) अर्थात् वड़वाकृतदास जो वड़वाकेनिमित्त से दासहोवै या कियाजावै किंतुवड़वा जो दासी है किसी अमीर की उसदासी के लोभसे जो कोई दासबनै इस्से कि वह अमीर भी यह चाहता है कि इसदासीका घरवसादेवैं परउसी को यहदासी दीजावे जो आपभी दास होकर यहीं रहै १४ (आत्मविक्रेतादास) जिसने अपने पुत्रदारादिकों के किसी परमकल्याणके लिये धन [illegible] कर अपने आत्माको दासत्वरूप से वेंचदियाहो १५-शास्त्रमें यह पंद्रहप्रकारके [illegible] कहेहैं-यद्यपि वर्त्तमान काल परिपाटी में मूल्यक्रीत संबंधी कई दासों का [illegible] करना भी निषेध वा अनुचित है तथापि जिस भूतकालकी यह व्यवस्था है [illegible]

इसी की प्रधानता थी शेषको दोनों कालमें समता है पर लिखना इनका इस हेतुसे उचित है कि सार्वकालिकमर्यादों के जिज्ञासुओं को संसारी तत्त्व की विवेचनामध्ये पूर्वापरका अंतरसमुझाजाना हितकारी हुआ करता है १६५॥

इति स्नातकव्रतप्रकरणम्॥

यह (स्नातक) पुरुषका प्रकरण १२८ के श्लोकसे प्रारम्भहुआ था और यहां ताईं पूराहोचुका स्नातक पुरुष के लक्षण पीछे १३० की अधिकोक्ति में कहचुके हैं और यद्यपि स्नातक पुरुषके लक्षणभी विशेषतर विद्याव्रत स्नात ब्राह्मणपर आरूढ़हैं परंतु यह निर्विकल्प नियम नहीं है कि केवल स्नातकही इनबातोंको मानें और कोई नहीं मानें अर्थात् यहसारी मर्यादें उसीस्नातक के निदर्शनसे त्रैवर्णिक जाति मात्रकेलिये संसूचितहैं-हां-उनमें कहीं २ बिरली बातें ऐसीभीहैं कि जिनसे केवल (स्नातकही) को अपेक्षा होसक्ती है-और इस्से नीचे जो अब द्विजातियों के नाम से धर्मों को कहतेहैं उनमेंभी यहनिर्विकल्पता नहींहै कि केवल द्विजातीही उनबातोंको मानें और स्नातक नहीं मानें पर द्विजातियों के नामसे कहने का यह सिद्धांत है कि स्नातकको उन बातों से कोई भांति अपेक्षा नहीं होसक्ती है अर्थात् उसकेलिये स्वतः उनबातों का निषेधही हो रहा है फिर उसमें विधि या निषेध के कहने की क्या आवश्यकताहै परन्तु साधारण द्विजातियों को उनबातों से कुछ संबंधभीहै इस्से उनकेलिये विधि या निषेध कहने की आवश्यकता है (दृष्टांत) जैसे स्नातकको मांसभक्षण से कुछ भी संसर्ग नहीं और साधारण द्विजाती बहुधा मांसभी खातेहैं इसलिये उनको मांसके भक्षण में बिधि या निषेध कहने की आवश्यकता हुई ऐसेही और भी सारीबातों को जानलो–

अथसाधारणद्विजातिधर्मकथनम्॥

यहांपर साधारण यह बिशेषण देने का यह भाव है कि द्विजाती शब्द से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनोंका बोधहोताहै परन्तु साधारण कहनेसे वे इस गिनतीमें नहीं आये कि जो स्नातक पदवी को पहुँचे हों क्योंकि उनका प्रकरण ऊपर हो चुका है इसव्यवस्था से वे ब्राह्मण भी साधारण द्विजाति में गिनतीहुये कि जो बिद्याव्रतस्नात नहीं हों और मांसादि भक्षण में तत्पर हों इसीलिये उनके धर्मों को अवनीचे भिन्न कहते हैं १६५॥

अनर्चितंवृथामांसंकेशकीटसमन्वितम्। शुक्तंपर्युषितोच्छिष्टंश्वस्पृष्टंपतितेक्षितम् १६६॥
उदक्यास्पृष्टसंघुष्टंपर्यायान्नंचवर्ज्जयेत्। गोघ्रातंशकुनोच्छिष्टंपदास्पृष्टंचकामतः १६७॥

अत्रद्वितीयपाठे(पर्याचान्तंचवर्ज्जयेत्) तथातृतीयपाठे (पार्श्वाचान्तंचवर्ज्जयेत्)
ऐ०सहृदयोः–मांस यहऊपरके श्लोकसे अन्न यह नीचेके श्लोकसे लेना क्योंकि इ

दो श्लोकोंमें इन्हीं दोनों वस्तुका मुख्यविधि निषेध कहाहै कि-अनर्चित अर्थात् अर्चा कहिये सत्कार तिससे रहित जो मांस अथवा अन्नहो तिसको वर्जितकरै किन्तु जो कोई सत्कारपूर्वक देने योग्यहै उसको असत्कारसे यह दोनों वस्तु दीजावें तौ न लेवे यद्वा किसी हेतुसे लेलेनापरै तौ न खावै किसी और को देदेवै-ऐसेही वृथा मांस अथवा वृथा अन्नको भी वर्जितकरै-ऐसेही केश कहिये बाल या रोमा और कीट कहिये कृमि जीव जंतु जिस मांसमें या जिस अन्नमें पड़जावें उसेभी छोड़देवै-ऐसेही शुक्त मांस या शुक्तान्नकोभी छोड़देवै शुक्त उसको कहते हैं कि कोई अन्नादि वस्तु कच्ची या पकाईहुईको जलके या सीरा आदिके योगसे या राई नमक आदि किसी द्रव्यांतर योगसे धूप या गरमी देकर कुछ दिनों तक स्थापन करनेसे खटाईंधको पहुँचाई जाय जैसे कांजी या कांजीके वड़े आदि अनेक भांतिके शुक्त होते हैं शुक्त मदिराके प्रकार में भी बनताहै शुक्त मांसका भी होताहै शुक्तोंकी अनेक जातें लोकमें प्रसिद्ध हैं उनको नहीं खावै-ऐसेही पर्युषित कहिये बासी तिवासी मांस अथवा अन्नको न खावै-ऐसेही उच्छिष्ट जो खातेहुये आगेसे बचजावै चाहै मांसहो अथवा अन्न उसकोभी उस काल के सिवाय फिर न खावै-ऐसेही श्वस्पृष्ट कहिये कुत्तेकासूँघा या छुआहुआ मांस यद्वा अन्न भी न खावै-ऐसेही पतितेक्षित कहिये चांडालादि या ब्रह्मघाती आदिका देखा हुआ मांस और अन्न भी न खावै १६६॥ ऐसेही उदक्या स्पृष्ट अर्थात् उदक्या जो रजस्वला पुनि उसके उपलक्षणसे चांडालीभी पुनि उसके उपलक्षणसे चांडालभी पुनि उसके उपलक्षणसे अमेध्य कुनखी कुष्ठी आदिभी जो शंखजीने कहे हैं इनका छुआहुआ मांस और अन्नभी न खावै-ऐसेही संघुष्ट कहिये जो मांस या अन्न किसी ने घुड़ककर कुरवुराकर कुछ वकतेहुये दियाहो उसको भी बचावै-ऐसेही पर्याय मांस और पर्याय अन्नभी न खावै-पर्यायवस्तु उसको कहते हैं कि जो कोई वस्तु किसी अन्यके नाम संकल्प कीगईहो उसे कोई और किसी औरको देदेवै या वही जानि बूझकर आप लेलेवै जो किसी द्वितीयके नामसे रक्खीथी और उसकोभी पर्याय वस्तु कहते हैं जो अन्यकी वस्तु अन्य दान करदेवै-ऐसेही गोघ्रात कहिये गऊ वृषभ आदि से सूँघाहुआ या चाटाहुआ जो मांस अथवा अन्न होवै उसको भी न खावै-ऐसेही शकुनोच्छिष्ट अर्थात् शकुन कहिये काकआदि पक्षीमात्रका जुठाराहुआ मांस या अन्न भी न खावै-ऐसेही कामतःपदास्पृष्टं अर्थात् जिस मांस अथवा अन्नको जानि बूझ कर बुद्धिपूर्व लातसे छूदियाहो उसको भी न खावै-किन्तु अज्ञातभावमें छूगया हो उसका दोष नहीं है १६७॥

अधि०-यहां पर दोष दूषित मांस या अन्नोंका निषेध जो वारम्वार किया है सो मांस तौ आम अर्थात् पाकरहितभी पूर्वोक्त दोषोंसे दूषित होजाताहै पर अन्न केवल

वही जो परिपक्कहुये पीछे अदनीय होजावै सो दूषित होसक्का है-वृथा मांस और वृथा अन्न जो कहाहै सो वृथा मांस तो उसको कहते हैं कि जो गुल्ला गुलेल या ईट पत्थर आदिसे माराहो या किसी जीवने तोड़ाहो या आपही किसी रोगसे मरगयाहो पुनि वहभी वृथा कहलाताहै कि जो देवादिपूजा या यज्ञादि हेतुसे न व्यापादन हुआहो जिसकी निर्दोष मर्यादा आगे १७८ के श्लोकमें आवेगी किन्तु केवल जिह्वा स्वाद के हेतुसे होवै सो वृथाहै-और अन्नभी वह वृथाहै जो अभक्ष्यहो या भक्ष्यभी जो प्रत्युकारा शक्तिसे हीनहो किन्तु जिसका बदला देनेकी शक्ति वा श्रद्धा अपनेको नहो-पर्याय अन्नका खाना जो निषेध कियाथा तिसका प्रायश्चित्तोपदेश-यथा (ब्राह्मणान्नं ददच्छूद्रःशूद्रान्नंब्राह्मणोददत्। उभावेतावभोज्यान्नौभुक्काचांद्रायणंचरेत्) अर्थात् ब्राह्मणका अन्न शूद्र दानकरै या शूद्रका अन्न ब्राह्मण दानकरै यह दोनों अन्न अभोज्य हैं जो कोई भोजन करिलेवै चान्द्रायण नामका प्रायश्चित्तकरै तब शुद्धात्माहो-और इसी पर्यायान्न शब्दके प्रतिस्थान जहां द्वितीय पाठसे (पर्याचांत) शब्द होवै तहां यह अर्थहै कि जिस अन्नको भोजन करते हुये भोक्ता पुरुप कुल्ला करलेवै तिस पीछे उसी शेष अन्नकी संज्ञा (पर्याचांत) होजाती है तिसको छोड़देवै फिर चाहै पूर्ण तृप्ति होने पाईहो या नहीं-सोई अन्यत्रभी स्पष्टभावसे यह कहाहै कि(गंडूपग्रहणादूर्ध्वमाचमनात्प्राङ्नभोक्तव्यम्)अर्थात्-भोजनके अन्त्य आचमनसे पहले किन्तु भोजनके बीचही में कुल्ला लेलेनेके उपरांत शेष अन्नको न खाना चाहिये-पुनि उसी पर्यायान्न शब्दके प्रतिस्थान तृतीय पाठसे (पार्श्वाचांत) शब्द होवै तहां यह भावहै कि किसी पार्श्वस्थ के आचमन करलेने पर पश्चात् उसी शेष भोजनकी संज्ञा (पार्श्वाचान्त) होजाती है यथा एक निर्भेद पंक्तिमें अनेकलोग बैठेहुये भोजन करतेहों वे परस्पर एक दूसरे का पार्श्वस्थ कहलातेहैं उनमेंसे कोई एक असुशील जब आचमन या गंडूष करडाले तब औरोंको भी भोजन छोड़देना उचितहै चाहे तृप्ति होनेपाई हो या नहीं-निर्भेद पंक्ति कहनेका यह आशयहै कि जिनके लिये जलकाष्ठ भस्म आदि रेखासे पंक्तिमें आसन भेद कियागयाहो उनको वह गंडूष बाधक नहीं है किन्तु निरंतर एक पंक्तिवालोंसे अपेक्षाहै-और गंडूष संज्ञा उसीको कहसक्के हैं कि जब आचमन का जल मुखमें से उद्गीर्ण कियाजावै किंतु घूंटिजानेको नहीं आचमन संज्ञायद्यपि जलप्राशकीभी होतीहै पर इसविषय में केवल ओष्ठादि प्रक्षालनकोही आचमन मानाहै-और जलोद्गीर्णके तद्रूपलक्षण से वहगंडूष निषेधरूप नहीं है जो जलपान समयश्वासा ग्रंथिसे स्वतःउद्गीर्ण होजाताहै पर जो किसी पार्श्वस्थके अन्नादिपर इसधांसके उद्गीर्णका छींटा पहुँचजावै तोजहांताईं पहुँचाहो उतनीपंक्ति और वहआपभी तावत्कालपर्यंत भोजनको बिश्राम देकरमौन बैठारहै जबतकवहशेष पंक्तिभोजन करिलेवै १६६।१६७॥

पर्युषित अर्थात् बासी तिवासी आदि चिरकालस्थ अन्नमें विशेषता कहते हैं॥

अन्नंपर्युषितंभोज्यंस्नेहाक्तंचिरसंस्थितं। अस्नेहाअपिगोधूमयवगोरसविक्रियाः १६८॥

ऐ०—अन्न अर्थात् अदनीय वस्तु जो परिसिद्धहुई भोजन योग्यहो ऐसा अन्नयदि स्नेहाक्तहो अर्थात् घृतादि स्नेहोंसे संयुक्तहो जिसे पकवान कहतेहैं वहचिरकाल संस्थितभी पर्युषितहोवे तथापि भोजनकरने योग्यबना रहताहै-इसके सिवाय अस्नेहा अपिकिंतु बिना चिकनाई के भी अन्नजोगोधूम यव गोरसके बिकारसे बनतेहैं वे भी पर्युषित कहिये धरेहुये भोजनकरिबे योग्यबनेरहते हैं-पर जो बिकारांतरको न पहुँचे हों-गोधूम बिकारके अन्नजैसे गेहूंकाचूर्ण जो कड़ाहीमें भूनिलिया जाताहै या भूनेहुये गेहूंपीसलिये जातेहैं या गुड़ धानी आदि-और यवके विकारसे सत्तू या धानाआदि धानाबहुरी को कहते हैं-गोरस बिकारके अन्न दधि तक्र किलाट अर्थात् मावा खोवा और किलाटी अर्थात् खड़ी और पायस अर्थात् खीर इत्यादि औरभीजानो १६८॥

अधि०—यह पर्युषित अन्न की विशेष बिधि यहांपर इसलिये कहीगई कि इस्से पहले १६६ श्लोकमें पर्युषितका निषेध सामान्य वचनसे करचुकेथे पर उसकी अतिव्याप्ति नहींथी-और गोधूम यव गोरस के बिकार स्नेहरहितभी जो अंगीकार कियेहैं तिसमें केवलता नहीं है अर्थात् गोधूम यव गोरस इनके निदर्शन मात्रसे और अन्न भी उसी रीतिसे समुझलेने परन्तु उस अवस्था ताईं कि जबतक उनपदार्थोंमें किसी भाँति की विकृति नहीं होजावै और विकृति के न होनेपरभी जो पदार्थ भुक्तशेष होजावे वहभी त्यागयोग्यहै सो यह त्याग केवल इन्हींमें नहीं किन्तु पूर्वोक्त पक्वान्नमेंभी संभवित है क्योंकि इस्से पहले १६६ के श्लोकमें उच्छिष्टका निषेध जो सामान्य वचन से कियाथा उसका कोई विशेषवाक्य इसमें नहीं पायागया जिस्से भुक्तशेष पकवान खाना उचित जानाजाय १६८॥

संधिन्यनिर्दशावत्सागोपयःपरिवर्जयेत्। औष्ट्रमैकशफंस्त्रैणमारण्यकमथाविकम् १६९॥

भक्ष०—संधिनीगोःपयः अनिर्दशागोःपयः अवत्सागोःपयः (अथ) औष्ट्रंपयः ऐकशफंपयः स्त्रैणंपयः आरण्यकंपयः आविकंपयः परिवर्जयेत् यह प्रत्येकमें जोड़लेना १६९॥

अभि०—जिसगऊपर वृषभछोड़ाजावै गर्भके हेतुसे वह संधिनी कहातीहै उसकादुग्ध छोड़देवै पुनि उसकोभी संधिनी कहतेहैं जो एकबेला छोड़ दूसरेसमय दुहीजावै और जो अपनाबच्चा छोड़ किसी औरके बच्चेसे लगाईजावै उसका दूधभी छोड़देवै—जिस ब्याईहुई गऊको पूरे दशादिन नहीं बीतेहों वह (अनिर्दशा) कहाती है अर्थात् दशदिन भीतर दूध नहीं खावे (अवत्सा) वह कि जिसकाबच्चा मरजावै और भूसी आदि बाट से लगतीहो उसका दूध छोड़देवै (अथ) औष्ट्रकहिये ऊंटका दूध और मूत्र आदिभी सदैववर्जितराखै-ऐकशफ अर्थात् एक खुरवाले जो घोड़ीखच्चरी खरीआदिपशु जिन

के खुर फटेनहीं होते उनका दूध न खावे अस्तैणकहियेस्त्रीका दूधनहींखावै-आरण्यक अर्थात् अरण्यमें रहनेवालेमृग पशुओंका दूधनहींखावे-आविक अर्थात् अविसंज्ञा भेड़कीहोती है उस्से उत्पन्नहुआ दूध आविक सो न खावै १६९॥

भाषि०—यद्यपि संधिनी दो प्रकार की अधिक पीछेसे लिखीगई परंतु विचारदृष्टि से भी उनके दुग्ध पानमें कुछ दोष नहीं देखपड़ता क्योंकि प्रथम तो इसबात की साधना भी असंगत है दूसरे वह दोनों संधिनी भी (गौण) संज्ञक हैं अर्थात् संधिनी मुख्यभाव से वह एकही है जो पहले कहीगई और उसीका प्रमाणभी त्रिकांडी स्मरणसे पायाजाता है-यथा(वंशांवंध्यांविजानीयाद्रूपाकांतांचसंधिनीम्)परन्तु संधिनीके निदर्शन मात्रसे स्यंदिनी और यमलप्रसूके भी दुग्धका निषेध संभवित है क्योंकि गौतम ऋषिने तीनों का निषेध एकसाथ एकपदमें किया है (स्यंदिनीयमप्रसूसंधिनी नांचेति)स्यंदिनी उसेकहतेहैं जिसकेस्तनोंसे दुग्धकेबूंद या धारैंटपकाकरैं-यमप्रसू या यमलप्रसू या यमलप्रसूता-या यमलप्रसविनी उसेकहते हैं जो दोबच्चे एकसाथदेवै-जो जोबातैं गऊके विधि निषेधमेंऊपर लिखीगई सोई सबनिदर्शन बकरी और भैंसकाभी जानलो क्योंकि वसिष्ठमुनि ने इन तीनों का चर्चा एकसाथ एकपदमें किया है-यथा (गोमहिष्यजानामनिर्दशानामिति)ऊँटऔर एक शफवालोंके दूधका सदाही निषेधहै इसलिये उनका कोई विशेष भेद कहने की आवश्यकता नहीं है- स्त्रीदुग्धका निषेध करने से मानुषी मात्र कोई हो और इसीके उपलक्षण से दो थनोंवाला और भी जो कोई जीव होताहो उसकाभी निषेध है पर बकरी का नहीं क्योंकि बकरी भी दोथनों की होती है परन्तु उसका दूधगऊ के समान ऊपर अंगीकार हो चुका है-अर्थात्बन मृगोंका दूधजो निषेध कियाहै तहां भैंसभीबन पशुओंमें गिनतीहै पर उसके दूधका निषेध नहीं है क्योंकि ऊपर उसको गऊ और बकरी के साथमें समान अंगीकार कर चुके हैं सोई इसका वाक्य भी स्पष्ट प्रमाण हो रहाहै-यथा-(आरण्यानांचसर्वेषांमृगाणांमहिषींविनेति) (आविक) जो भेड़ों का दूध निषेध किया है यद्यपि उसकी ग्राह्यता भी बहुधा लोकमें जहां तहां दिखाई देती है अर्थात् जो लोगबकरी का दूधग्रहण करते हैं वे भेड़ से भी बचाव नहीं करते किंतुभेड़ और बकरी को तुल्य समुझलेते सो यह मूर्खता उनकी वृथा है क्योंकि आविक दूधका निषेध नित्य और निर्विकल्प है सोई गौतमऋषिने स्पष्ट कहा है-यथा(नित्यमाविकमपेयमौष्ट्रमैकशफंचेति)बल्किबिरले अज्ञानी अजा को भी अति अशुद्ध और अशुभ कहदेते हैं सो यह उनकादोष नहीं किन्तु केवल अज्ञानताकाही दोष है क्योंकि यह शास्त्र तो केवल विधि औरनिषेधकाही प्रत्यक्ष है तिसमें भी बकरी के दुग्ध की ग्राह्यता ठेठ इसी श्लोकमें लिखीहै इसके सिवायअन्य शास्त्र जो महानुभाव ऋषीश्वरों के निर्माण कियेहैं जिनमें बड़े २

प्रकरण केवल छाग माहात्म्यकेही लिखे हैं और वह माहात्म्य कुछ मांसपक्षमें नहीं किन्तु केवल छागके पालने या पवित्रता मध्ये और उनके नानाभेदसे शुभाशुभ फल कर्तृत्व के बिषय में आरूढ़हैं- इसके सिवाय वैद्य शास्त्र में जैसा छागीदुग्धका गुण प्रसिद्ध है तैसाऔर किसी का नहीं फिर इस दशापरभी छागीको अशुद्ध या अशुभ क्योंकर कहसकें १६९॥

देवतार्थहविःशिग्रुंलोहितान्व्रश्चनांस्तथा। अनुपाकृतमांसानिविड्जानिकवकानिच १७०॥

ऐ०—देवताकेअर्थ कहियेनिमित्तसे जो कोई वस्तु बलिउपहार आदि कल्पितकरीहो किजो देवताको अर्पण नहीं करिपाईहो क्योंकि उसकार्यमें अभीबिलम्ब शेषहै-हवि जो हवनकेनामसे बनाई हो पर अबतक हवन नहीं होचुका है-शिग्रु सहिंजना-लोहितान् अर्थात् लोहित वर्णके वृक्षनिर्यास कहिये गोंदोंको तथा-व्रश्चनान् अर्थात् व्रश्चनकर्म जो हरेवृक्षोंका छेदनकरना तिस्से उत्पन्नहुये गोंदोंको-अनुपाकृतमांसानि अर्थात्यज्ञ बिधिसे नकल्पितकिये पशुओंकेमांस-बिड्जानि अर्थात् मनुष्यादिकोंके खायेहुयेफल बीजोंसे बिष्ठाद्वारा निकलकर उत्पन्नहुये शाकादिकों को यद्वाबिष्ठाके स्थान में उत्पन्न हुयोंकोभी-कवकानि अर्थात् छत्राक जो बर्षाऋतुमें होतेहैं-इनवस्तुओं को भी बर्जित करे बर्जितकरना यह पहलेश्लोकमेंसे लियागया है १७०॥

अधि०—लोहित और व्रश्चनशब्दकाअर्थ यद्यपि इसके श्लोकसूत्रसे अच्छास्पष्ट नहींहोता पर मनुजीका कहा प्रमाण इसमें प्रत्यक्ष है कि-(लोहितान् वृक्षनिर्यासान् व्रश्चनप्रभवांस्तथेति)-लोहितनिर्यासों के निषेध से शाल कर्पूर हिंगुआदि निर्यासों का निषेध नहींपायागया १७०॥

क्रव्यादपक्षिदात्यूहशुकप्रतुदटिट्टिभान्। सारसैकशफान्हंसान्सर्वांश्चग्रामवासिनः १७१॥

ऐ०—क्रव्यादतो वेजीव जो अन्यजीवोंका कच्चा और मरामांसभी भक्षणकरतेहैं यथा श्वान शृगालआदि-और पक्षीभी उसीप्रकारके यथा काक ढेंक गृध्रादि अनेकप्रसिद्ध हैं-और दात्यूह चातक जिसे पपैया वा पपीहा कहतेहैं-शुक तोता-और प्रतुदपक्षी वे कहलातेहैं जो किसी कीड़ेको या किसी रोटीआदिवस्तुकोभी जब खातेहैं तब अपनी चोंचसे बारम्बार तोद कहिये पीड़ादेकर अर्थात् कूट पीटकर उछालतेहुये और अपनी ग्रीवाको भी पिड़ासीपातेहुये किन्तुग्रीवाको हिलाते झुलातेहुये खाते हैं-और टिट्टिभ टटीहरी जो श्येनपक्षीका शब्दानु कारी प्रसिद्धहै-सारस यहलोकमें भी अतिविदितहै-एकशफा यह घोड़ा आदि एक सुमवाले प्रसिद्धहैं-हंस जो अपने नामसे विख्यातहैं-औरभी ग्रामवासी पक्षी जोपारावत पंडुकी आदि अनेक वस्तीमें रहतेहैं वे सबके सब और वे पशुभी कि जो ग्रामचरप्रसिद्ध हैं-इनकहेहुये जीवोंका मांसभी न खावै किंतु वर्जितकरै यह १६९ श्लोकसे सम्बन्ध जोड़ा गया १७१॥

अधि०—प्रतुद पक्षियोंका उदाहरण-यथा(हारीतोधवलःपांडुःचित्रपक्षोबृहच्छुकः। पारावतःखंजरीटःपिकाद्याःप्रतुदाःस्मृताः १ प्रतुद्यभक्षयंत्येतेतुंडेनप्रतुदास्ततः । पिकाद्याइतिआदिशब्देनश्येनादयोप्यन्येबहवः यथाश्येनःकंकःकाकःद्रोणकाकःउलूकःमयूरः एवमन्येपिबहवोभवंति एषांकेचित्प्रसहापि प्रतुदलक्षणाद्ग्रहीताः कार्यापेक्षयानतुलक्षणमात्रपरिज्ञानार्थमित्याशयः) १७१ ॥

कोयष्टिप्लवचक्राह्वबलाकाबकविष्किरान्। वृथाकृशरसंयावपायसापूपशष्कुलीः १७२॥

ऐ०—कोयष्टि नामजल कुक्कुटपक्षी क्रौंच इति मिताक्षराकारः-प्लवनामजल कुक्कुट चक्राह्वनाम चक्रवाक—बलाकास्वनाम प्रसिद्ध है-बक बगुला-विष्किरा वे पक्षी कहलाते हैं जो नखों या चोंचसे फैलाकर चुगते हैं जैसे मुर्गा और चकोर आदि अनेक इन का मांस नहीं खावे और वृथा कृशर वृथा संयाव वृथापायस वृथाअपूप वृथा शष्कुली इनको भी वर्जित करै यह योजना १६९ के श्लोक से हुई-कृशर खिचरीको कहते हैं वह खिचरी दाल चावर आदि से जैसी सनातन से होती आई और सबलोक में प्रसिद्ध है सो तौ वृथा नहीं है पर जो विपरीत और असंगत या अभक्ष्य वस्तुओं से बनाई जाय सो वृथा है-संयाव गुझिआ पिराकों को कहते हैं जैसी उनकी क्रिया प्रसिद्ध है सो तौ वृथा नहीं है पर जब असंगत या अभक्ष्य वस्तुओं से बनाई जाय सो वृथा है-ऐसेही पायस खीर जो असंगत या अभक्ष्य वस्तुओंसे बनाई जाय वहवृथाहै-ऐसेही अपूप कहिये पुआ वा कसार-और शष्कुली नामपूरी ये परिनियमित रीतोंसे असंगत या अभक्ष्य वस्तुसे बनाये जावें सो वृथाहै इनकोभी वर्जितकरै १७२॥

अधि०—विष्किर पक्षियोंका उदाहरण-यथा-वर्त्तिकोलावचिकुरकपिञ्जलकतित्तिराः कुलिंग कुक्कुटाद्याश्चविष्किराःसमुदाहृताः १ कपिञ्जलइतिप्राज्ञैःकथितोगौरतित्तिरः विकीर्य्यभक्षयंत्येतेयस्मात्तस्माद्विविष्किराः २ आदिशब्दादन्येपिबहुशःसंबोध्याः यद्यप्येषांकेचिल्लावादयोभक्ष्याअपिलोकप्रसिद्धाः तथापि शास्त्रवाक्यपरिसिद्धिनिमित्तमेतल्लक्षणम् १७२॥

कलविंकसकाकोलंकुररंरज्जुदालकम्। जालपादान्खञ्जरीटानज्ञातांश्चमृगद्विजान् १७३॥

ऐ०—कलविंक नाम कुलिंग चटक या ग्राम चटक अर्थात् गरगैया गौरैया चिड़ा इतिच लोके प्रसिद्ध जो घरों में घुसिलारखता है-काकोल नाम द्रोणकाक अर्थात् कगार जो अशेषकाला और इसकाक से कुछ ऊँचा भी होताहै—कुररनाम उत्क्रोश पक्षी जो निरंतर रुदन सम शब्द करताहै जिसेलोक में भी कुररी कहतेहैं-रज्जुदालक नाम वृक्षकुट्टकपक्षी जिसे खुटक बढ़ैया कहते हैं-जालपाद पक्षी उन्हें कहते हैं जिनके पंजाओंके बीच २ खालकी जालीहोतीहै-खंजरीट नाम खंजन ममला किरखिंदा इति

लोके प्रसिद्ध जिसका कार्त्तिकमें आगमन और चैत्रमें प्रस्थान होता है-अज्ञात कहिये बिनाजानेहुये जिन्हें कभी देखा और सुनाभी न हो ऐसे मृग अर्थात् बनकेजीव चतुष्पद और द्विजकहिये पक्षी-इन सबका मांस बर्जितराखे यह योजना १६९श्लोक से हुई १७३॥

अधि०—कलविंक यद्यपि १७१ श्लोक में भी ग्राम बासियों के निषेधमें आचुका क्योंकि इस कलविंक का दूसरानाम ग्राम चटक होताहै और १७२ की अधिकोक्तिमें भी बिष्किरगणना में कुलिंगनामसे आचुका परंतु यह संदेहका स्थल नहींहै क्योंकि इसी प्रकार और भी अनेक पक्षी जो अपने २ नामसे इन्हीं श्लोकों में निषेध हुये फिर वेही बहुधा प्रतुद और बिष्किरमें भी पाये जाते हैं इसका यहहेतु है कि वे प्रतुद या विष्किर या ग्रामनिवासी केवल उनके निषेध में दर्शाये हैं कि जिनके नाम इन श्लोकों में प्रत्यक्ष नहीं आयेथे और निषेध उनका योग्य था इससे किसी किसी की पुनरुक्ति हो जानाभी कुछ दूषण नहीं बल्कि पुनरुक्ति से निषेध में बिशेषता पाई जातीहै १७३॥

चापांश्चरक्तपादांश्चसौनंवल्लूरमेवच। मत्स्यांश्चकामतोजग्ध्वासोपवासस्त्र्यहंवसेत् १७४॥

ऐ०—चाषनाम किकीदिव पक्षीजिसे पुण्य दर्शन कहा करतेहैं अर्थात् नीलकंठ जिस की ग्रीवा नीलमणिके समान और चोंच स्वर्ण वर्ण होतीहै इसकी उपजाति में और भी कई पक्षी छोटे२ उसी समान होतेहैं(रक्तपादाःकादंवादयः) अर्थात् कलहंसआदि अनेक पक्षी जिनके पंजालाल होतेहैं-सौन कहिये सूनाका स्थान किंतु क़साइयों का घातस्थान तिस्से उत्पन्न भया जो मांस तिस को भी सौन कहते हैं वहमांस चाहै भक्ष्यजीवों का भी हो-बल्लूर कहिये सूखामांस-मत्स्यभी जो नाना प्रकारके जलजीव प्रसिद्ध हैं-इनको वर्जितकरै यह योजना १६९ श्लोक से हुई-इन सबों को कि जो १६९ श्लोकसे यहांताईं गिनाये गये अर्थात् इनमें से एक वस्तुको भी कामना पूर्वक भक्षण करिलेवे तौ तीनदिनताईं उपवासकहिये निराहार होकरवसे तव शरीर शुद्धि होवै या जो अकामभक्षणकिया होतौ एकहीदिनरात्रिके उपवासमें शुद्धिहोवे यह एक दिनरात्रि मनुजी के कथनसे प्रमाण है १७४॥

अधि०—जो कि शंखजीने इस विषयमें १२ दिवस इस प्रकार से कहे हैं कि-वक वलाका हंस प्लव चक्रवाक कारण्डव गृहचटक कपोत पारावत पांडुशुक सारिका सारस टिट्टिभ उलूक कंक रक्तपाद चाष भास वायस कोकिल शाङ्गलि कुक्कुट हारीत भक्षणे (द्वादश रात्र मनाहाराःपिवेद् गोमूत्रयावकमिति) सो यह शंखजीकावचन बहुतकाल पर्यंतजानि बूझिकर भक्षण करनेपर संभवित है १७४॥

पलांडुंविड्वराहंचछत्राकंग्रामकुक्कुटम्। लशुनंगृंजनंचैवजग्ध्वाचांद्रायणंचरेत् १७५॥

ऐ०–पलांडु पिआज-विड्वराह ग्रामसूकर-छत्राक सर्प छत्र जो छत्राकार वर्षाऋतु में होता है जिसका चर्चा १७० श्लोकमें कवक शब्द पर आयाथा-ग्रामकुक्कुट पालतूमुर्गी-लशुनंलहसुन इतिलोकेपि-गृंजन गाजर-इन चीजों को धोखेसेभक्षण करिकै चांद्रायणकरै तव शरीर शुद्धिहोवै अन्यथा जानिकर खानेका प्रायश्चित्तनहींहै१७५॥

मधि०–ग्रामकुक्कुट और छत्राक इन दोनों का निषेध पहले हो चुकाथा पर यहांपर पुनरुक्ति इसहेतु से हुई कि पिआज आदि अति निषिद्ध वस्तुओं के समान इनका भी प्रायश्चित्त दर्शाना अंगीकार था-और इन्हीं को जानिवूझि कर वहुत दिनोंखाने से द्विजाती पतित होजाता है सोई मनुजीका वाक्य प्रमाण है कि(छत्राकं विड्वराहंच लशुनं ग्राम कुक्कुटम्। पलांडुंगृंजनंचैव मत्याजग्ध्वापतेद्विजः)और जो विनाजानेधोखे में खालेवै तिसके मध्ये भी मनुजी ने यह कहा है कि(अमत्ये तानिषट्जग्ध्वाकृच्छ्रंसांतपनंचरेत्)अर्थात्-विनाजाने इन छःमेंसे कोई वस्तु खालेवै तो कृच्छ्र सांतपन नामका व्रत आचरै तव शरीर शुद्धि होवै-इस्से प्रत्यक्ष विदितहुआ कि इन वस्तुओंकोजानिकरखानेपर प्रायश्चित्तसे भी शुद्धि नहीं होती क्योंकि केवल पतित होजानाहीलिखा उसका प्रायश्चित्त मनुजीने भी नहीं कहा १७५॥

अव नीचे भक्ष्य मांसोंको कहते हैं॥

भक्ष्याःपंचनखाःसेधागोधाकच्छपशल्लकाः। शशश्चमत्स्येष्वपिहिसिंहतुंडकरोहिताः १७६॥
तथापाठीनराजीवसशल्काश्चद्विजातिभिः। अतःशृणुध्वंमांसस्यविधिंभक्षणवर्जने १७७॥

ऐ० सहद्वयोः–(सेधाश्वावित्)अर्थात् पंचनखोंमें एक मृग विशेष-गोधा गोही गोह इतिच कच्छप कछुआ-शल्लकसेह सेही-शश खरहा खरगोश-इतने पंचनखवाले भक्ष्य हैं अर्थात् वानर मार्जार आदि जो अनेक जीव पाँचनखोंवाले होतेहैं तिनमें यह इतने मांसखाने योग्य हैं-और मत्स्यों में भी(सिंहतुंडक) अर्थात् सिंहमुख नाम मच्छी (रोहित) कहिये लोहित वर्ण जिसको रोहू मच्छी कहते हैं १७६ तैसेही (पाठीन) जिसे पाठा या चंदानाम मछली कहते हैं-(राजीव) जो पद्मवर्ण की मच्छी होतीहै (सशल्क)अर्थात् जिस मच्छी के ऊपर सीपके आकार चिह्न हों-सब जाति की मछली में से इतनी मछली भी द्विजातियों को भक्ष्य हैं-इसके आगे तुम सब सुनो मांसभक्षणके निषेध में जो विधि है १७७॥

अधि०–पंचनखों के प्रमाणमें गौतमजीका बचन-यथा (पंचनखाःशशशल्लकश्वाविद्गोधाखड्गकच्छपाइति) इसीपर मनुजी का बचन-यथा (श्वाविधंशल्लकं गोधां खड्गकूर्मशशांस्तथा। भक्ष्यान् पंचनखेष्वाहुरनुष्ट्रांश्चैकतोदतइति)और जो कि वासिष्ठजीने खड्ग नाम मृगके मांस भक्षण मध्ये कुछ विवाद पूर्वक अभक्ष्यत्व भी कहाहै सो वह श्राद्धके सिवाय अन्य दशापर कहा है क्योंकि इसके फल विशेष पर भी वाक्य प्र-

माण है कि (खड्गमांसैर्भवेद्दत्तमक्षय्यंपितृकर्मणिइति) उक्तमत्स्यों के भी प्रमाणमेंमनुजी का वाक्य है कि (पाठीनरोहितावाद्यौनियुक्तौहव्यकव्ययोः। राजीवाः सिंहतुंडाश्च सशल्काश्चैवसर्वशइति) यह साधारण द्विजातियों के धर्म कहे अर्थात् इनमेंस्नातक ब्राह्मण गिनती में नहीं है और शूद्रभी इस गिनतीमें नहीं है-क्योंकि शूद्र उसगिनती में आवेंगे जो नीचे अब चारों वर्ण के धर्म कहे जायँगे परन्तु इसमें यह बिचार दृष्टि अधिकहैकि मांसादि भक्षणमें जो विधि शास्त्रोक्त भी प्रमाण पूर्वक लिखीहै उसकेआशय से कोई ऐसा द्विजाती नहीं भक्षणकरसक्ता है कि जिसके कुल या देश या जाति में उसबातका प्रचार नहीं है क्योंकि वह बिधिभी केवल उन्हींके लिये कही है कि जो द्विजाती पूर्वकाल से ग्रहण करते चले आये हों और उस प्रकृति को अब छोड़नहीं सक्के हैं-अन्यथा जो शास्त्रमें द्विजाती यह सामान्य संज्ञा अविशेष लिखी है उसके लिये वह वाक्य भी बाधक है जो १५५ के श्लोकमें कहचुके हैं-कि (अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टंधर्म्मंपर्य्याचरेन्नतु) १७६। १७७॥

अथ चातुर्वर्ण्य धर्म्मों को कहते हैं॥

प्राणात्ययेतथाश्राद्धेप्रोक्षितंद्विजकाम्यया। देवान्पितॄन्समभ्यर्च्यखादन्मांसंनदोषभाक् १७८॥

अक्ष०-प्राणोंके अत्ययमें तथा श्राद्धमें प्रोक्षित मांस द्विजकामनासेसाधाहुआ मांस देवताओंको पितरोंको सम्यक् अभ्यर्चना करिकेमांसखातेहुये दोषभागी नहीं १७८॥

अभि०-प्राणों का अत्यय कहिये नाशहुआ जाताहो जैसे अन्नकी प्राप्ति नहीं है या कोई रोग ऐसा है कि वह मांस के खाने बिना प्राणलेजायगा तो निःसंदेह प्राणों की रक्षाकेलिये उसका भक्षण नियमों के साथ करै-तैसेही श्राद्धमें निमंत्रितहुआ भी नियम से खावै-प्रोक्षित मांस अर्थात प्रोक्षण नामसे वेद विधिमें पशुका संस्कार जो कहा है उसके अनुसार जो पशु संस्कृत कियागया हो अर्थात् अग्नीषोमीय आदि यज्ञों में विधि सहित होमागया हो उसकाशेष मांस-द्विजकाम्यया अर्थात् ब्रह्मभोज के निमित्तसे और देवअर्चाके निमित्तसे-और पितृकर्मके निमित्त से जो मांस साधन हुआ हो उसकेखाने से दोषभागी नहीं होसक्ता १७८॥

अधि०-नियमसे भक्षणकरना यह कि जैसी उसकी विधि या निषेध ऊपरसे कहतेचले आतेहैं उसके अनुसार-प्राणोंकी रक्षाकेलिये जो कहाहै सो प्राणोंकी रक्षा सब धर्मोंके ऊपर प्रधानहै-यथा(सर्वतएवात्मानंगोपयेदित्यात्मरक्षणाविधानम्-तस्मादिहनपुरायुषः स्वःकामीप्रेयादितिमरणानिषेधस्तु) अर्थात्-आत्मा जो प्राण अथवा शरीरहै तिसको सबसेही अधिकसमुझकर रक्षाकरै यह आत्मरक्षण विधानहै-तिस हेतुसे इह संसारमें स्वर्गकीकामनावाला आयुसे पहले न परलोकजावै यहनिरर्थ मरणका निषेध भीहै-और श्राद्धमें निमंत्रित हुआ भी नियमोंसे मांसभक्षणकरै यह कहाहै तहां निमंत्रणचाहै ब्राह्म-

णत्वकाहो अथवा गोत्रित्वका क्योंकि यह स्थल चारों वर्णके मध्ये कहरहेहैं और श्राद्ध में न भक्षण करने का दोष भी मनुजीने कहा है कि (यथाविधिनियुक्तस्तुयोमांसंनात्तिमानवः। सप्रेत्यपशुतांयातिसंभवानेकविंशतिम्)अर्थात्-जो मानव यथाविधिसेनियुक्त हुआ भी मांस नहीं खावै है सो मरे पीछे इक्कीस जन्मताईं पशु योनिमें जाताहै-परंतु इस दोष में भी यह बडा निर्वाह पायाजाता है कि जो यथा विधिसे नौतागया हो वह न खावै तौ दोष भागी हो पर जो उस भेद को न जानेविना नौति दियागया हो और न खावै तौ दोष भागी नहीं है इसलिये जिसको उसबातका त्याग है वह उस प्रकार के निमंत्रण कोही यथा विधिसे क्यों मानैगा-यथाविधिसे नियुक्तहोनायह कि जब श्राद्धसे पहले दिन सायंकालमें उसको शास्त्रोक्त विधिसे पादप्रक्षालन आदि प्रकारों से नौतादियागया और यह सुना दियागया कि तुम आज ब्रह्मचर्य आदि संयमसे रहना और भोजनमें असुकासुक वस्तु भोजन करनी पडैंगी तव उसने अधिक दक्षिणा या वस्त्रादिक मिलना सुनिकर लोभ लालच से अंगीकार करलिया पर भोजन समय विवेकी वना तौ निःसंदेह दोषभागी है ऐसेही जहां केवल गोत्रित्व भाव का निमंत्रण है या साधारण है तहां भी प्रथम उसबात का संबोधनहो-और प्रोक्षित मांस जो यज्ञोंमें संस्कार विधिसे संसाधनहुआ उसको यज्ञका यजमानही नहीं खावै तौ यज्ञमें असिद्धि कही है-अन्यथा मांस वहभी यज्ञार्थ है जो केवल भृत्यभरणापेक्षा से संपादन हुआहो क्योंकि-भृत्यभरणभी एक प्रकारका यज्ञ है-ऐसेही अतिथि आदि का सत्कार करना यह भी एक यज्ञ है इसमें से भी जो सत्कार से वचाहुआ मांस वह यज्ञार्थसंज्ञावान्है-और दोषभागी न होना इसका यहसिद्धांतहै कि दैवयोगसे स्वतः इन प्रकारों के आनि पड़ने में खाने से दोष भागी नहीं पर केवल मांस की अभिरुचि सेही इन यज्ञों का प्रारम्भ करिके मांस खाने से निःसंदेह दोषभागीहोगा इस्से जिन जीवों का मांसखाना भी १७६ और १७७ श्लोकमें उचित लिखचुके हैं उनका मांस भी इस १७८ में कहीहुई मर्यादों से रहित खानेवाला निःसंदेह दोषभागीहोगा सोई नीचे कहते हैं १७८॥

वसेत्सनरकेघोरेदिनानिपशुरोमभिः। संमितानिदुराचारोयोहंत्यविधिनापशून् १७९॥

ऐ०-वह दुराचारी जो पशुओंको बिधिविनामारैहै सो घोर नरक में उतनी संख्या के दिनों ताईं बसता है जितने उस पशू के रोमा हों १७९॥

अब मांसके परित्याग का फल कहते हैं॥

सर्वान्कामानवाप्नोतिहयमेधफलंतथा। गृहेपिनिवसन्विप्रोमुनिर्मांसविवर्जनात् १८०॥

ऐ०-सब कामनाओं को पूराकरि पावै है और अश्वमेधयज्ञका फलभी तथा गृह में निवास करताहुआ भी विप्र मांस के छोड़ने से मुनि होता है १८०॥

भधि०-विप्रके उपलक्षणसे चारोंवर्ण संभवित हैं-और मुनि होताहै अर्थात् मुनिके तुल्यमाननीय बिना तपस्याके भी होता है-अश्वमेध फलके विषयमें मनुजी ने भी कहा है कि-(वर्षेवर्षेऽश्वमेधेनयोयजेतशतंसमाः। मांसानिचनखादेद्यस्तयोःपुण्यफलंसमम्) अर्थात् एक तौ वह पुरुष जो हरसाल अश्वमेध यज्ञसे सौ वर्षताईं प्रभुकायजन करै और एक वह जिस्से कुछ और तौ न होसकै पर मांसों को न खावै इन दोनोंका पुण्यफल बराबर होता है १८० ॥

इतिभक्ष्याऽभक्ष्यप्रकरणम् ॥

अथ द्रव्यशुद्धिकथनम् ॥

सौवर्णराजताब्जानामूर्ध्वपात्रग्रहाश्मनाम्। शाकरज्जुमूलफलवासोविदलचर्मणाम् १८१ ॥
पात्राणांचमसानांचवारिणाशुद्धिरिष्यते। चरुस्रुक्स्रुवसस्नेहपात्राण्युष्णेनवारिणा १८२ ॥

ऐ० सहद्वयोः-(सौवर्ण) कहिये सुवर्णकेपात्र-(राजत) रजतके पात्र अर्थात् चांदीकेबने हुये-(अब्ज) अर्थात् मुक्ताफल शंखसीपी आदि चीजें-(ऊर्ध्वपात्र) अर्थात् यज्ञसंबंधी उलूखलआदि इति मिताक्षराकारःयद्वा ऊर्ध्वपात्र सुवर्ण और रजत इन दो धातुओंसे ऊर्ध्व उपरांत जो अन्य धातु ताम्र आदि तिनके पात्र-(ग्रह) अर्थात् यज्ञ संबंधी सोम धारणपात्रआदि यथा (सौत्रामण्यांसुराग्रहान्गृह्णाति इतिवाक्यप्रमाणात्) (अश्म) जो पत्थरके सिलबट्टाआदि अनेकप्रसिद्धहैं इनसबोंकीशुद्धि और-(शाक) सागतरकारी यावन्मात्र होतेहैं-(रज्जु) रस्सी डोरीआदि-(मूल) आर्द्रक आदि यावन्मात्र नानामूल वस्तु होतीहों-(फल) आम्र आदि यावन्मात्र खानेयोग्य होते हैं-(वासो) वस्त्रमात्र-(विदल) वैणव आदि किंतु बांसआदिसे जो वस्तुपिटारी बिलहरा आदि बुनीजातीहैं-(चर्म) चामबकरीआदिका-इनसबोंकी शुद्धि १८१ और (पात्र) अर्थात् प्रोक्षणी पात्रआदि-(चमस) अर्थात् होतृचमसआदि और काष्ठका बनाया हुआ यज्ञपात्रोंमेंसे एकपात्र विशेष और सोमपान पात्रकोभी चमसकहतेहैं-इनसबोंकी शुद्धिकेवलजल से होतीहै परउस अवस्थामें कि जो किसीवस्तुकालेप इनमेंनहींहो अर्थात् केवल उच्छिष्टवस्तुके स्पर्शमात्र की भ्रांतिमें जलसे धोलेना उचितहै और जोउच्छिष्टादिका लेपभीहोवै तौभस्ममृत्तिका गोमयआदिसे शुद्धकिये पीछे जलसेधोवै-और (चरु) कहिये चरुस्थाली-(स्रुक्) और (स्रुवा) यह दोनों होमके उपकरण प्रसिद्धहैं यह और अन्यभी जो चिकनाई लगे पात्र हों सो सबउष्ण जलसे प्रक्षालनकरै तबशुद्धहोवें १८२ ॥

भधि०-यद्यपि बकरी आदिके चर्मकी शुद्धिभी जलसे कही और लोकमें यहभीप्रसिद्धहै कि चर्मकी शुद्धितैलादि स्नेहोंसे होतीहै सोभी असंगत नहीं क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाणमें कुतर्क नहीं होसक्ती परन्तु इसमें यह आशय है कि जैसे चामकामढ़ाहुआ संदूक वा पिटाला अथवा खड्गका पड़तला आदि कोई वस्तु जो अवश्यवर्त्तावामें

रहतीहै उसके ऊपर काक या बिलाई आदि कोई बीटकरदेवै तो प्रथम जलसेप्रक्षालनकरै फिरसूखे पीछे तैलका स्पर्शकरै तबशुद्ध होतीहै ऐसेही बुद्धिका विचारसर्वत्र मुख्यहै कुछ लिखेपरभी केवल आरूढ़ता नहीं होसक्ती क्योंकि अभी ऊपर ऐक्यार्थ में कहचुकेहैं कि विनालेपकी वस्तुकेवल जलसे शुद्धहोती है और उन्हींवस्तुओंमेंचामकोभी गिनती करचुकेहैं और यथार्थमें चामजलसे भीगजाने पर प्रत्यक्ष अशुद्धहो जाताहै परन्तु वह संघातवाक्यथा इसलिये उसमें भिन्न २ वस्तुपर दृष्टिडालकर यथायोग्य व्यापार करना उचित है क्योंकि उच्छिष्टादिके स्पर्शमात्र की भ्रांतिमें केवल जलसे प्रक्षालन कहा तो चर्मके साथमें स्पर्श भ्रांति यह असंगत है क्योंकिजब चर्म की वस्तुमें केवल स्पर्शमात्रकी भ्रांति है तब जल से धोना अनुचित है किंतु केवल तैलके घर्षण मात्र से उसकी शुद्धि हो जायगी अन्यथा जलसे धोना उसी अवस्थामें उचित है कि जब पूर्वोक्त अनुसार विष्ठा आदिकालेप होजाय ऐसेही प्रत्येक वस्तुका भिन्न २ निर्णय करलेना उचित है-मनुजी का वाक्य-(निर्लेपंकांचनंभांडमद्भिरेवविशुद्ध्यति। अब्जमश्ममयंचैवराजतंचानुपस्कृतम्)-अर्थात् कांचनकापात्र जिसमें किसी उच्छिष्ट का लेप नहीं होवै वह जलोंसेही शुद्ध होजाता है और अब्जकहिये शंख सीपी मुक्ताफल आदि चीजैं तथा अश्ममय कहिये पत्थरकी पियाली आदि जो कुछ होता हो और राजत कहिये चांदी के पात्र आदि यह सब जल से शुद्ध होजाते हैं परंतु जो अनुपस्कृत हों अर्थात् जिनमें रेखा खुदी होवें कूँची आदिसे रगड़नेपर शुद्ध होवेंगे-और जिनमें किसी वस्तु का लेप लगा हो उच्छिष्ट आदि तिनके मध्ये मनुजी ने कहा है कि-(तैजसानांमणीनांचसर्वस्याश्ममयस्यच। भस्मनाद्भिर्मृदाचैवशुद्धिरुक्तामनीषिभिः)-अर्थात्-चांदी आदि सबधातुओंके और मणियोंके और सर्वजाति के पत्थर के भी जो पात्र आदिलेप सहित होवें उनकी शुद्धि भस्म और जलसे अथवा मृत्तिका और जलसे बुद्धिमानों ने कही है-अन्यथा जिन पात्रों में काक अथवा श्वान आदि मलीन जीव मुख डालैं उनकी शुद्धि जो धातुके होवैं तो अग्निमें देनेसे अथवा जो पत्थर या सीपी आदिके होवें तो शाण अर्थात् खराद आदि से खुर्चाने पर शुद्धहोते हैं १८१। १८२॥

स्फयशूर्पाजिनधान्यानांमुसलोलूखलानसां। प्रोक्षणंसंहतानांचबहूनांधान्यवाससां १८३॥

ऐ०-(स्फय)अर्थात् वज्रजो एक प्रकार का यज्ञांग होताहै-(शूर्प) सूपया छाजकेनामसे प्रसिद्धहै (अजिन)यद्यपि चर्म मात्रका नामहै पर चर्मको पहले १८१ मेंभी कहचुकेहैं इसलिये यहां पर वह मृगछाला आदि चर्म समुझने जो यज्ञादि कर्म या पूजनपाठ में काम आते हैं-(धान्य)नाजमात्र-इनसबों की शुद्धि और-(मुसल) मूसल जो अन्नादि कूटने का होता है-(उलूखल)ओखली या गाली प्रसिद्ध है-(अनः)शकटं अर्थात् गाड़ी

आदि यानयंत्र (एतेषांप्रोक्षणंशुद्धिः) अर्थात् इनकी शुद्धिजलका छींटा देनेसेही होजाती है (तथैवसंहतानांबहूनांधान्यवाससांचशुद्धिःप्रोक्षणं) अर्थात् बहुत से अन्न और वस्त्रों का संघात कहिये ढेर लगाहो उनकी शुद्धि भी केवल जल के छींटा मात्र से होजाती है ॥

अधि०—यहां पर धान्य या वस्त्रादि वस्तुओंका ढेर किंतु राशि जो कही सो अशुचिके स्पर्श की अपेक्षा में कही है तिसका शास्त्रांतर वाक्यों से यह विवेक है कि उस राशिमें से एक ओर थोड़ी या बहुत वस्तु को कोई चांडाल आदि छूजावे या कुछ मलीनता लगजावे तौ उसमें से जितनी वस्तु अशुद्धहुई हो उतनी की शुद्धि तौ उसी रीति से करी जायगी जैसे पूर्व से कहतेचले आतेहैं शेषकी शुद्धि केवल जलके छींटा देनेसे (दृष्टांत) जैसे एक गठरीभर कपड़े सुखानेको रक्खेगये उनमें काकनेविष्ठाकरदिया तौ जहां२ विष्ठाका स्पर्शहुआहो तहां२ तो पूर्वोक्तरीतोंसे धोनाचाहिये शेष और सब कपड़े जलके छींटा सेही शुद्धहो जायँगे-तथाचस्मृत्यंतरम् (वस्त्रधान्यादिराशीनामेकदेशस्यदूषणात्।तावन्मात्रंसमुद्धृत्यशेषंप्रोक्षणमर्हति) इसका अर्थ ऊपरके कथनसे प्रकट होचुका-अथवा जिसराशिमें बहुतसाविभाग तौ छुयागयाहो और थोड़ासा बिनाछुया शेषहो तहां समस्तराशिमात्रका धोडालना उचितहे क्योंकि थोड़ीसी जो नहीं छुईगई उसकाधोना तौ उस बहुतकेस्पर्श दोषसे १८१-१८२ में कहचुके हैं और बहुतसी जो चांडालादिने छुई या किसी मलीनवस्तुसे लिपगई उसकाधोना प्रत्यक्षही संभवितहै किंतु अशुचिलेपकी शुद्धि बिना धोने के नहीं होती चाहैं थोड़ी हो या बहुत-सोई मनुजी ने भी कहा है-कि (अद्भिस्तुप्रोक्षणंशौचंबहूनांधान्यवाससाम्। प्रक्षालनेनत्वल्पानामद्भिःशौचंविधीयते) अर्थात्-बहुतसेधान्यवस्त्रादिकोंकाशुद्धहोनां जलोंके छींटा से और थोड़ोंका शुद्धहोना भ्रांतिमेंभी जलोंसे धोनेपर होताहै-इसी कहेहुये न्यायसे जिस राशिमें शुद्ध और अशुद्ध दोनों भाग बराबरहों उसको समस्त धोडालना उचितहै-जहां यह विवेक निश्चय नहीं होसक्ताहो कि इस राशिमें कितना भाग शुद्धहै कितना अशुद्ध परस्पर्श दोषकी भ्रांति प्रत्यक्षहै तहांभी समस्तका धोडालना संभवित है-इसी न्यायसे जो वस्तु पंद्रहदिवस ताईं बिना वर्त्तावा अज्ञातभावसे रक्खी रहीहो उसकोभी वर्त्तावेके समय जलका छींटा देकर शुद्ध करलेना उचितहै-इसी न्यायसे उन धान्य वस्त्रादिकोंकाभी जलके छींटासे शुद्ध करलेना उचितहै कि जिनको अनेक पुरुष ढोढोकर भारवाही से लातेहों चाहैं उनमें स्पर्श अथवा अस्पर्शकाविवेकहो या नहो-(दृष्टान्त) यथा रेलाख्य धूम्राकर्षक यानसे उत्तीर्णहोनेपर अनेक भारवाहों से वस्त्रादि उठवाना पड़ता है एवं अन्यदशाओंमेंभी समझलेना १८३-यहां ताईं मूलके तीन श्लोकोंमें यद्यपि कहीं २ अर्थकी पंक्तिमें काक विष्ठा आदिके लेपका दृष्टांतभी दिया

है पर शास्त्रवक्ताका अभिप्राय यहां तक निर्लेप शुद्धिमें है किन्तु जो वस्तु चांडाल आदिने छूलीहोवे उसका शुद्धिविधान कहाहै सलेप शुद्धिके विषयमें अब आगे कहते हैं और अबतक जो कहींकहीं लेपका दृष्टान्त दियाथा वह केवल इसलियेहै कि थोड़ी बुद्धिवालोंकीभी समझमें सुगमतासे आजावै॥

तक्षणंदारुशृंगास्थ्नांगोवालैःफलसंभुवां। मार्जनंयज्ञपात्राणांपाणिनायज्ञकर्मणि १८४॥

ऐ०-(दारु) कहिये काष्ठके पात्र-(शृंग) मेष महिषादि पशुओंके सींगोंसे बनेहुयेपात्र-(अस्थि) हाड़ अथवा दांत जो हाथी और बनवाराह यद्वा बारहसिंगा आदि जीवोंके वर्त्तावेमें आतेहैं तथैव हाड़के उपलक्षणसे शंख वा सीपी आदिभी इन सबोंकी शुद्धि (तक्षण) कर्मसे होती है और (फल) अर्थात् बिल्वादि फलोंकी खोपड़ी यद्वा नारिअर का ठीकरा यद्वा तोमड़ीका तूँबा इनसे बनीहुई वस्तुओंकी शुद्धि गऊके बालोंकी कूँची से यथा संभव जल मृत्तिका सहित रगड़नेसे होती है-यज्ञकर्मके बीच जो यज्ञसम्बन्धी अनेक सामान्यपात्र होते हैं तिनकी शुद्धि केवल हाथसे कुशाओंकी कूँची अथवा दशा पवित्र थांभकर जलमात्रसे होती है किन्तु भस्म या मृत्तिकाका कुछ काम नहीं और (दशापवित्र) साफा वा अँगोछाको कहते हैं पर अंग पोंछनेका नहो किन्तु केवल नवीन वस्त्रका टुकड़ाहो-यज्ञोंका यहभी एक संस्कार भूतकर्मका अंगहै कि जिस रीतिसे कहा हो उसी रीतिसे करना किन्तु मनमौजी नहीं १८४॥

अधि०-(तक्षण) कर्म उसको कहते हैं कि जो कोई वस्तु घिसीजावै या छीलीजावै जिस्से कुछ पतली होजाय सोई कहाहै कि काष्ठ सींग हाड़ दांतोंके पात्र जो जूठ या चिकनाई आदिसे लिपटेहों और भस्म जल मृत्तिकादिसे धोने परभी लेप दोष नहीं दूर होसक्ताहो तो उतने स्थलको ऐसा किसी कंकण या लोहे आदिसे घासिडाले जिस्से वह लेप या चिकनाई या दुर्गंधि उसकी उड़जावै-परंतु जो जल मृत्तिकासेही रगड़ने से शुद्ध होसक्ताहो तो इस बातकी अपेक्षा नहीं है क्योंकि लेपवाली सामान्यभावसे सभीवस्तुका शोधना प्रथम जल मट्टीसे कहा है-यथा (यावन्नापैत्यमेध्याक्तोगंधोलेपश्चतत्कृतः। तावन्मृद्वारिवादेयंसर्वासुद्रव्यशुद्धिषु) अर्थात्-सभी प्रकारकी द्रव्यशुद्धि के विषयमें जबताईं अशुचि वस्तु का लगाहुआ लेप या उसकी करीहुई दुर्गंधि दूर नहीं होवै तबताईं बारम्बार मृत्तिका और जलसे शोधन करता रहै-गऊ के बालोंकी कूँची यह एक निदर्शनमात्रहै किन्तु घोड़े के बाल और मूँज आदि औरभी उचित वस्तुओंकी कूँची संभवित है १८४॥

सोषैरुदकगोमूत्रैःशुध्यत्याविककौशिकं। सश्रीफलैरंशुपट्टंसारिष्टैःकुतपंतथा १८५॥

ऐ०-सोषैः अर्थात् सहित ऊषर मृत्तिकाके उदक और गोमूत्रों से शुद्ध होता है (आविक) जो ऊनी वस्त्र प्रसिद्ध है और (कौशिक) जो रेशमी आदि कहाता है वहभी

(अंशुपट्ट) अर्थात् किसी देशके वृक्ष विशेषते उत्पन्न हुये बल्कल सूत्रों से बुनाहुआ वस्त्र सो यह श्रीफल सहित शुद्ध होता है अर्थात् श्रीफल जो बेल तिसका औटाया जल अथवा गूदाही यथा संभव और पूर्वोक्त गोमूत्र और ऊषर मृत्तिकाभी इनसबों से शोधाजाय तब शुद्ध होवे-तथा (कुतप) कहिये पहाड़ी बकरी के रोमा से बुनाहुआ ऊनवस्त्र सो रीठासहित पूर्वोक्तचीजोंसे धोयाजाय तब शुद्धहोवे पूर्वोक्त अर्थात् ऊषर मृत्तिका और गोमूत्र इनमें रीठाका फेन भी मिलावे अथवा पहले पूर्वोक्तों से धोकर पीछे रीठाके फेन से शोधै यह भावहै-ऊषर मृत्तिकारेहको कहते हैं जिसको धोबीखर्च में लातेहैं-जहांरेह गोमूत्र बेल जलकई वस्तु कहीहैं तहां कुछ यही सिद्धांत नहीं है कि सब चीजें मिलालीजावें अर्थात् किसीसे पहले किसीसे पीछे किंतु जैसी उसकीक्रिया उसकामके ज्ञाता को संबिदित हो सो उचित है ॥

भाषि०—इस श्लोकमें कही हुई क्रिया उस अवस्थामें करनी योग्य है कि जबकोई चिकनाई आदिकी जूठ या अशुद्ध वस्तु का लेप दृढ़तर उन वस्त्रों में प्रवेश होगया हो-अर्थात् जहां किंचित्मात्र लेशहुआ हो तहां छींटा आदि साधारण क्रियाओं से काम चलावे क्योंकि उसप्रकारके वस्त्रोंसे गाढ़ीधोव नहीं सहीजाती किंतु गाढ़ीधोव से फट जाते या झड़जाते हैं और शुद्धि का करना उस भांतिसे अपेक्षित है जिस्से वस्त्रादि द्रव्यों का बिनाश नहीं होनेपावे-सोई इसका प्रमाण देवल ऋषिने प्रथम तौ यह कहाहै कि-(ऊर्णाकौशेयकुतपपट्टक्षौमदुकूलजाः। अल्पाशौचाभवंत्येतेशोषण प्रोक्षणादिभिः)-अर्थात् ऊनके रेशमके पहाड़ी ऊनके वृक्षकी छालिके क्षौम कहिये अतसी तन्तुके दुकूल कहिये और भी बारीक बहुमूल्य वाले बस्त्र यह सब अल्पाशौच होतेहैं अर्थात् ये स्पर्श दोषमात्रसे किंचित् अशुद्ध समझेजाते हैं इसलिये केवल धूपमें सुखाने अथवा जलसे छिड़क देनेसेही शुद्ध होजाते और आदि शब्द से कभी वायुके संयोगसेही किन्तु पवन चलतीमें फैलानेसे विना धूपकेभी शुद्ध होजाते हैं कभी झाड़ने फटकारनेसेही शुद्ध होजातेहैं जहां जैसा सम्भवहो-यह कहकर फिर उन्हीं देवल ऋषिने यहकहाहै कि (तान्येवामेध्ययुक्तानिक्षालयेच्छोधनैःस्वकैः। धान्यकल्कैस्तुफलजैरसैःक्षारानुगैरपि) अर्थात्-वेही पूर्वोक्त वस्त्र जो किसी अमेध्य वस्तुसे लिप्टपजावें तौ उनको भी अपने २ शोधन प्रकारोंसे धोवै तवशुद्धिहो परन्तु धोबी आदिसे नहीं धुवावै किंतु अपने हाथसे बनायेहुये धान्य कल्क अर्थात् वेशन या चूनापिट्ठी आदि जहां जिसकी योग्यताहो तिनसे और नींबू अथवा रीठाआदि फलकेरसोंसे जो क्षार कहिये रेह अथवा चूना कलई आदिसे मिलेहों तिनसे अपने हाथसेही धोवे-यद्यपि ऊर्णा वस्त्रको सबके साथमें पहलेही कहचुकेहैं पर वेही देवल ऋषि अब ऐसे ऊन आदि वस्त्रोंको कहतेहैं कि जिनमें कभी सूतकाभी संयोग हुआकरता है अथवा चाहे

केवलभीहों-तथाच(तूलिकामुपधानंचपुष्परक्तांबरंतथा। शोषयित्वातपेकिंचित्करैःसंमार्जयेन्मुहुः। पश्चात्तुवारिणाप्रोक्ष्यविनियुंजीतकर्मणि। तान्यप्यतिमलिष्टानियथावत्परिशोधयेत)–अर्थात्–तूलिका कहिये तोसक वा गलीचा और उपधान कहिये तकिआ तथा कुसुम कुंकुम आदि पुष्पोंके रँगेहुये रक्तांबर जो धोव नहीं सहसक्तेहों यद्वा रक्तांबरके उपलक्षणसे पीतांबरभी जोहरिद्रा आदिसे कच्चे रँगवालेहों किंतु मंजिष्ठआदिपक्के रँगवालोंको छोड़कर इनकहे हुये वस्त्रोंको थोड़ेलेपकी भ्रांतिमें मध्यमघामसे सुखाकर उतने खूंटको दोनों हाथसे बारम्बार मींजे मसले जिस्से वह अमेध्यलेपमड़जावे तिसपीछे जलके छींटादेकर बर्त्तावामें लगावे-और जो वेही कपड़े अतिशय मलीनहोवें तौ उनकोभी पूर्वोक्तरीतोंसे यथावत् प्रक्षालन करवावे-सोई शंखजीनेभी एकपदमें यहकह दियाहै कि-रागद्रव्याणिप्रोक्षितानिशुचीनीति-अर्थात् रँगवालीचीजें छिड़कडालनेसे शुद्ध होजातीहैं १८५॥

सगौरसर्षपैःक्षौमंपुनःपाकान्महीमयम्। कारुहस्तश्शुचिःपण्यंभैक्ष्यंयोषिन्मुखंतथा १८६॥

ऐ०–पीली सरसोंके चूर्ण सहित जल गोमूत्रोंसे पूर्वोक्त (क्षौम)अर्थात् अतसीतंतुनिर्मित वस्त्रकी शुद्धीहोतीहै-और (महीमय)कहिये मट्टीके पात्र जो अन्नादि उच्छिष्टसेलिटेहों उनकी शुद्धि फिर अग्निमें पकानेसे होजातीहै-(कारु) जाती लोगोंका हाथ सदा शुद्धहोताहै-एवं(पण्य)वस्तु अर्थात् जो अन्नअथवा नोनामिठाई आदि विक्रयकरनेके निमित्तसे खोलकरदूकान आगे धरीजाती है जिसमें अनेकोंका हाथपाँव लगजाताहै वह भी सदाशुद्धहै-तथैव(भैक्ष्य कहिये भिक्षाका अन्न जो अनेक घरसे ब्रह्मचारी आदिकोई आश्रमीलायाहो वहभी सदाशुद्धहै-तथैव(योषित)कहिये भार्याका मुखभी भोग समय सदाशुद्ध है वरन स्मृत्यंतर मतसे रति कालमें स्त्रीका सर्वांग शुद्धहोताहै और स्त्रियां पादत्राण विनामलीन मार्गके आक्रमणसे भी नहीं अशुद्ध होतीहैं १८६॥

अधि०–गोरीसरसोंके साथमें जल गोमूत्र यह दोनों १८५ के श्लोकमेंसे जोड़े गये क्योंकि उनका संबंध चला आताहै-(कारु)जातीके यह लोग कहलातेहैं रँगरेज छीपी धोबी सूपकार अर्थात् खटीक आदि जो छाज बनाताहो इत्यादि औरभी इनकाहाथ सदाशुद्ध केवल अपनेकारमें और कारकी अपेक्षासे सूतकादि दशाका सिद्धांतहै किंतु अन्यथा प्रत्यक्ष चांडालादि में गणनीयहैं-सोई सूतक दशाकी अपेक्षासे स्मृत्यंतरवाक्यभी दृढ़ताकारहै कि(कारवःशिल्पिनोवैद्यादासीदासास्तथैवच। राजानोराजभृत्याश्चसद्यःशौचाःप्रकीर्त्तिताः)अर्थात्-(कारव)कहिये कारुजाति के लोग जिनको अभीऊपरकहाथा-और(शिल्पी)कहिये राज बढ़ईआदि कारीगरलोग-और वैद्य पेशावाले-औरदासी दास-तथैव राजालोग और उनके भृत्यवर्ग सेवक आदि यहसबलोग अपने २ घर सूतक होनेपरभी (सद्यःशौच) कहातेहैं अर्थात् इनकेलिये दशाहद्वादशाहआदि

अवधिकाबंधन नहीं है क्योंकि इनके संबंधीकामोंकी हानिसे अनेक संसारी फलसाधकतामें अप्रमेय हानिहोजावे इसलिये धर्मशास्त्र ऐसी आज्ञा नहीं देता जिस्सेपर-महाहानिहोजानेकी संभावनाहो क्योंकि धर्मशास्त्रकेवल कल्याणके आशयपर आरूढ़ होताहै १८६ ॥

अब आगे भूशुद्धिकहते हैं ॥

भूशुद्धिर्मार्ज्जनाद्दाहात्कालाद्गोक्रमणात्तथा । सेकादुल्लेखनाल्लेपाद्गृहंमार्ज्जनलेपनात् १८७ ॥

अक्ष०—भूशुद्धि —मार्ज्जनसे १ दाहसे २ कालसे ३ गोक्रमणसे ४ तथासेकते ५ उल्लेखनते ६ लेपते ७ गृह मार्जनसे १ लेपसे २ । १८७ ॥

आभि०—बिगड़ी हुई धरती इनसात प्रकारोंसे शुद्धहोती है एक तो झारने बहारनेसे १ लकड़ी घासफूस उसपर फूँकदेनेसे २ (काल)से कहनेका यहअभिप्रायहै कि जितने दिनों या महीनाओंतक सूनीपड़ीरहने या उसपर बहुत मनुष्योंकी चलाफिरीहोनेसे उसधरतीका पहलादोष लेपादि अथवा जो कुछहो वहनाशहोसक्काहो उतने कालमें आपही शुद्धहोजातीहै ३ ऐसेही जितने दिनोंतक गौओंके फिरने या बँधीरहनेसे दोषदूर होसकै वह गोक्रमण कहाताहै ४(सेक)छिड़कावको भी कहतेहैं कहीं तो दोषकी लघुता या गुरुताके अनुसार छिड़कावसेही शुद्धहोसक्ती है कहीं दोषकी अधिकता पर दूध गोमूत्र गोबरजल या गंगाजल इनसबका प्रसेक किया जावे या इनमें से एकही दोवस्तु जो हाथलगै या दोषके अनुसार छिड़की जावे तब शुद्धहो तिसको (सेक) कहतेहैं-अथवा दैवयोगसे उसपर वर्षाहोजाय सो यह सबसेउत्तम(सेक)है ५ (उल्लेखन) कर्म अर्थात् दोषके अनुसार उसधरतीको छीलडालै या खोदडालै६ (लेप) शब्दसे चूनाकी गचकरनी मट्टीकालेस गोबरआदिसे लीपनापोतना सबसंबंधितहैं७ यहसात प्रकार जो धरती शोधनके कहेगये इनमेंसे जहां जैसी संभावना या योग्यताहो उसके अनुरूप सबके सब संस्कार कियेजावें अथवा जहां एकही दोप्रकारोंसे शुद्धि समझी जाय तहां एकही दोका करना उचितहै सोई नीचे अधिकोक्तिमें देखो और नित्यके वर्त्तावेका गृहस्थानझारने और लीपने पोतनेसेही शुद्धहोताहै क्योंकि यह इतना संस्कार नित्यकरना उचित है इस नित्यगृहसंस्कार कर्मको साधारण धर्मकी शिक्षाओं मध्ये १५३ के श्लोकमें विस्तारसहित लिखचुकेहैं सोदेखलो १८७ ॥

अधि०—भूशुद्धिका प्रकार देवलऋषिने भिन्न २ समझाकर कहाहै (तथाच) (यत्रप्रसूयतेनारीम्रियतेदह्यतेपिवा । चांडालाध्युषितंयत्रयत्रविष्टादिसंगतिः। एवंकश्मलभूयिष्टाभूरऽमेध्याप्रकीर्त्तिता । श्वशूकरखरोष्ट्रादिसंस्पृष्टादुष्टतांव्रजेत् । अंगारतुषकेशास्थिभस्माद्यैर्मलिनाभवेत् । पंचधावाचतुर्धावाभूरमेध्यापिशुद्ध्यति । दुष्टान्वितात्रिधा द्वेधाशुद्ध्यतेमलिनैकधा) अर्थात् जहां स्त्रीने प्रसव कियाहो १ जहां कोई मराहो २

जहां कोई फूँकागयाहो ३ जहां चांडाल आदि कोई बसाहो ४ जहां विष्ठा आदि कोई से महामलका संसर्ग रहाहो ५ इस भांति (कश्मल) कहिये मलोंसे यद्वा उक्त दोषोंसे दूषित हुई धरती (अमेध्या) कहलाती है १ इत्येकभेदः अर्थात् इन पांचो दोषवाली पृथ्वी एक अमेध्यानामसे विख्यात होती है-और कुत्ता शूकरगर्दभ ऊंट आदि अशुचि जीवोंसे बिगाड़ीहुई (दुष्टा) कहलाती है २ इति द्वितीयोभेदः-अंगार-तुष कहिये भूसी कूड़ा आदि-केश बाल-अस्थि हाड़-भस्मराख आदि और भी इन्होंसे बिगड़ीहुई धरती (मलिना) कहाती है किंतु केवल मैली गिनीजाती है कुछ बड़े दोषवाली नहीं ३ इति तृतीयोभेदः-इन तीनों भेदमें जैसे यह तीसरा सबसे छोटा गिनागया ऐसेही पहला सबसे बड़ाथा और बीचका मध्यमदोषहै इनकीबड़ाई छुटाईके अनुसारशुद्धिसंस्कारभी कियेजातेहैं सोई ऊपर (पंचधा)इत्यादि श्लोकसेदेवलऋषिने यहकहाहै कि-तीन भेदोंके प्रथम भेदमें जिसधरतीको कई भांतिसे अमेध्याकहचुकेहैं वह(अमेध्या)धरती पंचधा अथवा चतुर्धा संस्कारोंसे शुद्धहोतीहै-और (दुष्टा)धरती जो बिचलेभेदमें कहीथी वहत्रिधा अथवा द्वेधा संस्कारोंसे शुद्धहोतीहै-और(मलिना)जो तीसरे भेदमें गिनती है वह एकधा संस्कारसेही शुद्धहो जातीहै॥ इसअर्थका स्पष्टभाव यहहै कि याज्ञवल्क्य ऋषिने १८७ के इसी श्लोकमें जो सातप्रकारके भूसंस्कार कहेहैं उनमें से पंचधा वा चतुर्धा वा त्रेधा वा द्वेधा और एकधा देखलेने-अर्थात् जहां मनुष्यफूँकेगयेहों या चांडालबसेहों इनदो लक्षणोंवाली(अमेध्या)पंचधासंस्कारोंसे किंतुदहन१ काल२गोक्रमण३सेक४उल्लेखन५इनपांचोंके करनेसे शुद्धहोतीहै-औरजहांमनुष्योंका प्रसूतहुआहो या जहांपरमनुष्योंके प्राणछूटेहों या जहांअत्यन्त विष्ठाआदिकी संगतिहुईहो इनतीन लक्षणोंवाली (अमेध्या) चतुर्धासंस्कारोंसे किंतु अभी जो पंचधाकहे थे इनमें से एकदहनकहिये दाहको छोड़कर शेषचारों संस्कारकरै तब शुद्धहोवै अमेध्याके चतुर्धा पंचधाका स्पष्टकथनहो चुका अब (दुष्टा) के त्रिधाद्वेधाको स्पष्टकहते हैं कि जहां कुत्ता या सूअर या गर्दभ बहुत दिनोंबसेहों ऐसी(दुष्टा)तो त्रेधा संस्कारोंसे किंतु गोक्रमण १ सेक २ उल्लेखन ३ इनतीनोंके करनेसे शुद्धहोतीहै-और जहां परऊंट अथवा आदि शब्दसे मुर्गाआदि और कोई साधारणजीव कुछदिनों बसाहो तो ऐसी(दुष्टा)द्वेधा संस्कारोंसे किंतु सेक १ और उल्लेखन२ इनदोहीसे शुद्धहोजाती है॥ आगे(मलिना)शेषरही वह एकधा संस्कारसेही किंतु उल्लेखनकर्मसे शुद्धहोजातीहै॥ इसप्रकार पांचसंस्कार याज्ञवल्क्यजीके कहेहुये यथास्थान कामआये पर उन्होंने सातकहेथे तिनमेंसे मार्जन कहिये(झारना)और(लेप)यह दोशेषरहे सोसर्वत्रकाम आवेंगे किंतु उनकहे हुये संस्कारोंके भी साथमें पीछेसे यहदोनों अधिक लगेरहते हैं अर्थात् इनके बिनाकहीं काम नहीं चलता १८७॥

अब सिद्धान्न शुद्धिकहते हैं॥

गोघ्रातेऽन्नेतथाकेशमक्षिकाकीटदूषिते। सलिलंभस्ममृद्वापिप्रक्षेप्तव्यंविशुद्धये १८८॥

ऐ०–गऊके सूँघेहुये किंतु श्वासमारे हुये अन्नमें-तथा बाल मक्खी कीट पिपीलिकाआदि इनसे दूषितहुये अन्नमें उसकीशुद्धिके लिये यथासंभव अवसर या उसअन्नकी अपेक्षा अनुसारजल या भस्म जो अतिशुद्धपूजन आदि कर्मकी शेषहो या मृत्तिका जो निर्विकारहो सो किंचित् प्रक्षेपकरनीचाहिये-यहां पर अन्न जो संसिद्धहुआ भोजन योग्यहो तिसका चर्चाहै और अन्नशब्दसे कोई वस्तु जो खाने योग्यहो तिसकाभावहै-और बालोंके निदर्शनसे ऊनवस्त्रादिकेभी रोमसंभवितहैं-और सलिलआदिका यथासंभव यह अपेक्षितहै कि जिसवस्तुमें जलके पड़नेसे वस्तु बिगड़े नहीं उसमें तौ मुख्य जल काही प्रक्षेप उचितहै जैसे दही आदिमें-और जो वस्तु जलके पड़ने से बिगड़ सकतीहो जैसे बूराआदि इनमें भस्म या मृत्तिका उपकल्पहै १८८॥

अधि०–गौतम ऋषिने यहकहाहै कि (नित्यमभोज्यंकेशकीटावपन्नम्) अर्थात् जिसमें केशआदि या मक्खी मकरी आदि कोई कीट पड़गयाहो वह अन्न नित्यं प्रति अभोज्यहै किन्तु कभी नहीं खानाचाहिये–सो उनके इसकथनके दोसिद्धांत हैं किएक तौ जिसके साथ मिलकर केशकीटादिभी रँधगयेहों या पकगयेहों उसअन्नका परित्यागही उचितहै किंतु उसकी शुद्धि नहीं होसकती–दूसरे यह कि पक्केहुये संसिद्ध अन्नमें जब केशकीटादि कुछपड़जावे या जुठार जावे तब उसमेंसे उतना अन्नअभोज्यहै जितनेके निकासडालनेसे दृष्टिकी भ्रांति या ग्लानि दूरहोजावे अर्थात् उतनेको निकासडालने पीछे संस्कारकरै जो जल मृत्तिका भस्मसे कहाहै १८८॥

अब सोना चांदीके सिवाय अन्य धातुओं और घृतादि रसोंकी शुद्धि कहते हैं॥

त्रपुसीसकताम्राणांक्षाराम्लोदकवारिभिः। भस्माद्भिःकांस्यलोहानांशुद्धिःप्लावोद्रवस्यतु १८९॥

ऐ०–(त्रपु)कहिये रांग और जस्ता अर्थात् यसद-(सीसक)सीसा-तांवा और तांवे के उपलक्षण से पीतल भी इन सबोंकी शुद्धि क्षारोदक और अम्लोदक और केवल उदक से भी यथा संभव दोष विकारकी अपेक्षा अनुसार सबसे या एकहीदो उदकों से होतीहै-कांसा और लोहाइन्हों की शुद्धि भस्मोदक अर्थात् भस्म और उदकमिले हुये अथवा भिन्न २ से भी होती है-औरद्रवस्य नाम द्रव द्रव्यस्य अर्थात् पिघलेहुये बहते द्रव्य जो घृत सहत आदि अनेक प्रसिद्ध हैं उनकी शुद्धि (प्लाव) कर्मसे होतीहै प्लावकहतेहैं वह चलनेको अर्थात् जिसपात्रमें रक्खेहुये घृतादि किसी द्रव्यको किसी प्रकार का अशुद्धि दोषलगेतो उसीपात्रमें वहीवस्तु अधिकमँगाकर ऊपरतक भरता चला आवे यहांतक कि वह उमड़कर पात्र के मुखमें से वहनेलगे तब उसमें मिल

कर वहभी शुद्धहोजायगा-अन्यथा जहां यह वात असंभवहो तहां नीचे अधिकोक्ति में लिखाहुआ मनुजी का प्रकार करै १८९ ॥

अधि०—मनुजी का वाक्य-यथा(द्रवाणांचैवसर्वेषांशुद्धिरुत्पवनंस्मृतम्)अर्थात्-सबही द्रवरूप वस्तुओं की शुद्धि (उत्पवन) कर्म कहा है-वस्त्रसे छानडालने को उत्पवन कहते हैं-इसके सिवाय जो वस्तु किसी प्रकार से दूषित नहीं है पर शूद्रजातिकेपात्र में रक्खीआईहै जैसे गांड़ेका रस सहत घी दूध आदि कोई द्रवरूप द्रव्य हो तौ वह बौधायन ऋषि के वाक्य अनुसार अपने घरके शुद्धपात्रमें भरलेने से पवित्र होजाताहै-इसके सिवाय शंखजी के वाक्य अनुसार उनवस्तुओं की शुद्धि (पुनःपचन) कर्म करने से होती है जो घृत के अनुरूप वस्तु हों और अधमजातिके हाथसे आई हों-घृत के अनुरूप कहने का यही सिद्धांत है कि जो वस्तु आगपर औटाने योग्य हो जैसा घी तेल दूध सहत रस आदि किंतु दही मट्ठा आदि नहीं क्योंकि ये अग्निपर नहीं धरेजासक्ते-भेद २-इसी १८९ श्लोकके अनंतरोक्त ऐक्यार्थमें क्षारोदक अम्लोदक से जो ताम्रादिकों की शुद्धिकहीहै सो कुछ नित्य शुद्धिका विषय नहीं है और (यहभी) नियम नहींहै कि क्षारोदक अम्लोदकसे सिवाय और किसी वस्तुसे न शुद्धि करीजाय क्योंकि (नित्यशुद्धि)का विषय तौ १८१ के श्लोक में ऊर्ध्व पात्र शब्द से सब धातुओं का दर्शाय चुके हैं अर्थात् यहां पर क्षारोदक आदि से अति कालांतर शुद्धि कहीहै कि जिन पात्रोंमें अतिकाल वितीत होनेसे काई आदि जटिजावें तिनकीशुद्धि क्षारोदक अम्लोदकसे करै—सोई मनुजीने भी यहकहाहै कि(ताम्रायःकांस्यरैत्यानांत्रपुणः सीसकस्यच।शौचंयथार्हंकर्त्तव्यंक्षाराम्लोदकवारिभिः) अर्थात्-ताँबा लोहा कांसा पीतल इनकेपात्रों वा रांगके पात्रों वा सीसेके पात्रोंका शौचकर्म किंतु परिशोधन करना सो क्षारोदक से अम्लोदकसे और केवलवारिनाम जलसे भी यथार्हकर्त्तव्यहै अर्थात् जैसीयोग्यतादेखै तैसाही उसमलकेअनुसार शोधनकरै-किंतु जो औरही किसीवस्तुसे होसकताहो तौ इनचीजोंकीभी कुछ आवश्यकता नहीं है—या—जबकभी बिशेषदोषकी संभावनाहो तबकईचीजोंसे बारम्बारशोधनकरै—सोई यहबाक्यभी प्रमाणहै कि (गवाघ्रातानिकांस्यानिशूद्रोच्छिष्टानियानिच । शुद्ध्यन्तिदशभिःक्षारैःश्वकाकोपहतानिच) अर्थात्-गऊकेसूँघे चाटे या शूद्रकेजूठेकिये या कौवा कुत्ता आदिके बिगाड़ेहुये ऐसे कांस्यपात्र क्षारोंसे दशबारशोधेजाकर शुद्धहोतेहैं-किंतु यह भावनहीं है कि दशप्रकारके क्षार इकट्ठेकरके शोधे-हां-जोकुछ दोचार अम्लोदक क्षारोदक आदि बस्तुमिलजावें तिनसे दशबार शोधनकरै यह भावार्थहै-और जोकि यहां पर केवल कांस्यकाचर्चा कियाहै सो भीयथार्थमें निदर्शनमार्गहै अर्थात् उसकासिद्धांत सभीपर आरूढ़है क्योंकि काँसा ताँबे और राँग इनदोनोंसे वनताहै फिर उसीतांबेमें जसदकायोग होनेसे पीतल बनतीहै इस

हेतु काँसाकहनेसे सबआगये क्योंकि इनके परस्पर संबन्ध मिलरहे हैं-और जोकि यह वाक्यस्मृतियोंमें प्रसिद्धहै कि(भस्मनाशुद्ध्यतेकांस्यंताम्रमम्लेनशुद्ध्यति) अर्थात्-भस्मसे कांसाशुद्धहोताहै-और खटाईसे तांबा शुद्धहोताहै-इस वाक्यसे यद्यपि भिन्न २ विशेषता पाईगई परन्तु यह विशेषता कुछ इसलिये नहींहै कि इनकेसिवाय औरकिसी वस्तुसे न शोधै किंतु यह परमदशा दर्शाई है कि जब कांसा या तांबा किसीऔरवस्तुसेन साफ़ होसक्ता हो उस अवस्थामें यह दोनों वस्तु भिन्न २ इनकी निर्मलतामें उस्ताद हैं और यह भी नियमनहीं है यह पंक्तिजो ऊपरलिखचुके हैं तिसका साधारण शुद्धि वाक्यसे यह आशय है कि(मलसंयोगजंतज्जंयस्ययेनोपहन्यते। तस्यतच्छोधनंप्रोक्तं सामान्यंद्रव्यशुद्धिकृत्) अर्थात्-जिस किसी वस्तुमें ऊपर से लगेहुये किसीमलसेजो कुछ दोष लांछनदाग उत्पन्नभया हो जैसे वस्त्रादिकों में तैल आदिका चिह्न जमजाताहै यद्वा उसी वस्तुमें से कुछ विकार उत्पन्नभया हो जैसे मोर्चा काई आदिपात्र या शस्त्रादिकोंमें जमती है इसभांतिके दोष जहां२ जिस२ वस्तुके लगाने या जिस किसी उपायके करनेसेदूरहो सकतेहों तहां उनवस्तुओंका शोधन उन्हीं प्रकारोंसेकरै अर्थात् निर्विघ्नता से कार्य की सिद्धि करलेना यही मुख्य सिद्धांत है सो यह सभी प्रकारके द्रव्यों काशोधन प्रकार सामान्यभावसे कहा है-इसमर्यादकी अपेक्षा उस नियमकीभी दृढ़ता नहीं रही कि केवल क्षारोदक या अम्लोदक सेही धोवै तब शुद्धि हो-हां यह सिद्धांत है कि जब और किसीउपायसे शुद्ध नहीं होसक्ता हो तब क्षारोदक या अम्लोदक में आलिप्तकरके रख छोड़ैं कुछ काल पीछे जलसे शुद्धकरलेवे तौ शीघ्र मलछुटजायगा यह परमदशाबतलाई है-इसीलिये बौधायन ऋषि का यह वाक्य सर्वोपरि प्रमाण है कि (देशंकालंतथात्मानंद्रव्यंद्रव्यप्रयोजनम् । उपपत्तिमवस्थांच ज्ञात्वाशौचंप्रकल्पयेत्) अर्थात्-जब किसी वस्तुका परिशोधनकरने की आवश्यकता आनिपरै तहां प्रथमतौ-देश १ काल २ आत्मा ३ द्रव्य ४ द्रव्यकाप्रयोजन ५ उपपत्ति कहियेसिद्धान्त ६ अवस्था कहिये दशा ७ इनसातोंको जानिकर किंतु विधिपूर्वकइनका निर्णयकरके तबउसद्रव्यका शौचकर्म आरम्भकरै-किंतु द्रव्यशुद्धिके विषयमें सर्वत्र या सर्वदा कुछलिखेहुये नियमपरभी आरूढ़तानहीं होसकती क्योंकि किसीदेशमें या किसीकालमें या किसी अवसरपर कोईवस्तु ऐसीहै कि वह मिलही नहीं सकती या मिलसकतीहै परउसदेश अथवा कालसे विरुद्धहै या उसद्रव्यकी अवस्थासे विरुद्धहै इत्यादि अनेकसंकेत ऐसेहैं जिनके अनुसार कोई आग्रहकरने लगै कि अमुक हेतुसे अमुकद्रव्यकी शुद्धिनहीं होसकती अबइसका त्याग करना उचितहै सो नहीं इसीसे बौधायनजीने संदेहदूरकियाहै कि जैसादेश अर्थात् जैसीजगहपर वहकामहै तैसाही विचारकरै १ या जैसाकाल अर्थात् ऋतु अथवा वर्तमान समयका अवसरसंयोग २

से बारम्बार यहां तक मंजन करने से होती है कि जबतक उसमें से गंधादि अर्थात् दुर्गंधि और दाग चिह्न मिटजावें-वाक्शस्तसे भी शुद्धिहोती है अर्थात् यथोक्त रीतों से शौचकरने परभी मनकीभ्रांति नहीं जावै तब ब्राह्मणादि शस्तवाक्योंसे शुद्धिहोतीहै यथा (एतत्शुद्धमस्तु)--इत्यादि ब्राह्मण वाक्यसहित जलका छींटालगनेसे यद्वा (अपवित्रःपवित्रोवा)--इत्यादि वेद मंत्रोंसहित जलका छींटालगनेसे मनकीभ्रांतिभीदूरहोजातीहै तिसको (वाक्शस्त)--कहते हैं-अन्यथा अंबुनिर्णिक्तं अर्थात् जिनदशाओं की शुद्धिशास्त्रोक्त नहीं पाई जावै तहाँभी जलसे धोडालना कहाहै या जहां परधोडालनाभी असंभवहो तहां केवल जलकेछींटाओंसे शुद्धिहोवैगी-और अज्ञातदोष सदाही शुचिहोताहै अर्थात् जो कोईसी मलीनता देखने यद्वा सुननेमेंभी नहीं आईहो उसमें दोष नहीं है १९० ॥

अधि०--प्राणियोंके शरीरसे उत्पन्नहुये १२ मलप्रसिद्धहैं वेही अमेध्य कहिये अपवित्रकहलातेहैं तथाच(वसाशुक्रमसृङ्मज्जामूत्रविट्कर्णविड्नखाः । श्लेष्माश्रुदूषिकास्वेदोद्वादशैतेनृणांमलाः) अर्थात्-वसाकहिये मेदा जो बसके नामसे प्रसिद्ध है १ शुक्र वीर्यको कहतेहैं२ असृक् रक्त३ मज्जा जोहाड़की पोंगमेंसे मींगनिकलतीहै कुछ गीली कुछसूखी यह उसका स्वरूपहै ४ मूत्र ५ विट् विष्ठा६ कर्णविट् कानकामैल ७ नख ८ श्लेष्म कफ खँखारआदि ९ अश्रु आँशू १० दूषिकाकीचर गीड़नेत्रमल ११ स्वेद पसीना १२ यह बारहमल मनुष्योंके कहेहैं परसभी जीवोंका उपलक्षणहै-इनके साथ मद्यभीअमेध्यमेंगिनतीहै सोईकहाहै कि(मानुषास्थिशवंविष्ठारेतोमूत्रार्तवंवसा। स्वेदोश्रुदूषिकाश्लेष्ममद्यंचामेध्यमुच्यते) अर्थात्-मनुष्यकाहाड़-शवंमृतक-विष्ठा-रेतः शुक्र वीर्य-मूत्र-आर्तवं रजोदर्शनकारक्त-वसा-बस-स्वेदपसीना-अश्रु आँशू-दूषिका नेत्रमलश्लेष्मखँखार-मद्यंच मदिराभी यहइतने अमेध्यकहेजातेहैं-ऐसेमनु और देवल आदि सबनेकहाहै और मनुष्य यह एकनिदर्शनहै किंतु सभीजीवोंकेसमझने पर जब तक शरीरमें लगेरहें तबतक (अमेध्य)नहीं किंतु शरीरसे छूटजाने पर अमेध्य होतेहैं जैसे अंगुलीमेंसे नखकाट डालागया तब अशुद्धहुआ-इनकरहेहुये अमेध्यमलोंसे जो वस्तु या अपना शरीरहीलिप्तहो जावै तिसको (अमेध्याक्त)कहतेहैं-अमेध्याक्तकी शुद्धि जैसे याज्ञवल्क्यजीने मट्टी और जलसे कही तैसेही गौतमजीनेभी यहकहाहै कि(लेपगंधापकर्षणैःशौचममेध्यलिप्तस्य)अर्थात् अमेध्यलिप्तकाशौचलेप और गंधकेअपकर्षणकरनेके उपायोंसे करै तहां वे उपायभी मट्टी और जलसेही संभवितहैं(यथा-सर्व शुद्धिपुचप्रथमंमृत्तोयैरेवलेपगंधापकर्षणंकार्यं) अर्थात्-सभीविषयकी शुद्धियोंमें पहलेमट्टी और जलोंसेही लेप और दुर्गंधिकोदूरकरै जब इनसे न होसकै तब और किसी उपायसे जल मट्टी सहित-परन्तुकेवल नखके स्पर्शसे स्नान या मृत्तिकासे मंजन

याआतमा कहिये शरीर यद्वामनबुद्धिसो किसकी किजिसको उसद्रव्यसेसंबंधहोतिसके अनुरूपविचारकरै ३ या द्रव्यजिसका शोधनकरना अपेक्षितहै उसकेअनुरूपक्रियाकरै ४ याद्रव्यका प्रयोजन कि इस द्रव्यसे यहप्रयोजन आगेकोपरैगा या वर्त्तमान हैउसकेअनुरूपकामकरै ५ याउपपत्तिकिंतुसिद्धान्तइनसेभीलक्षणोंकाजैसाकुछसंभवित हो उसको भी शोचै ६ या अवस्था कहिये दशा किंतु जैसीदशामें परिशोधनकी आवश्यकताहुईहो उसके अनुरूप शोधनकरै(दृष्टांत)जैसे एकदशा तो ऐसे अवकाशकी है कि चाहै दशदिनों तकशोधनकरतेरहो कुछहानि नहीं है और एकदशा ऐसीहै कि तत्काल उसवस्तुसे आवश्यकताहै फिर अवस्था शब्द वयसकाभी वाचकहै अर्थात जैसी उमिर उसवस्तुकीहो उसके अनुसार शोधनकरै (दृष्टांत)जैसे एक दुशालामें तैलादिस्नेहकागहिरा दागपड़गया जो विशेष परिशोधनसे छूटसकताहै परन्तु वहदुशाला ऐसाजीर्ण अवस्थाहै कि विशेष मर्दनसे झड़जायगा तो ऐसी अवस्थामें थोड़ाही शोधनकरना थोड़ादाग शेषरहजायगा तो चिंतानहीं परजो कदाचित् वहदाग दीप शेष तैलसे पड़ाहो जिसमें अनेक पतंग भस्महुयेथे और वहदुशाला ठेठकरपूजनके समय परिनियमित कामआताहै तो उसजीर्ण अवस्थामें भी अधिक शोधन करना उचितहै इत्यादि लक्षधाभेद अपनी बुद्धिसे विचारलेने तब उसकाम का आरंभकरना-इसप्रकरणमें जहां तहां कहीं क्षार और कहीं भस्मका चर्चा बहुधा आयाहै यद्यपि क्षारभस्मकोभी कहतेहैं परन्तु यहां उसमें भेदहै किंतु भस्मसे तो राखसमझनी और क्षार शब्दसे उचित खारोंका भावार्थहै जैसे रेहखार चूनाखार सज्जीखार आदि जहांपर जिसवस्तुके लिये जिस२ खारकी योग्यता लोकमें प्रसिद्धहो सोसमझलेना १८९॥ यहां ताईं १८१ से लेकर १८९ तक नौश्लोकोंसे जो शुद्धि विषय वर्णन किया सो सबसोना चांदी रत्नताम्रादि धातु पत्थर काष्ठ वस्त्र शस्त्रादि अन्नादि वस्तुओंके परिशोधन मध्ये चांडालादि स्पर्श और मलके संयोग और स्नेह उच्छिष्टादिके लेप और अमेध्यादिकी उपघात दशाओंपर आरूढ़था अबआगे जो १९० मे प्रारंभकरते हैं वहशुद्धि विषय मनुष्यके शरीरों पर आरूढ़है किंतु शरीरोंसे अमेध्यका स्पर्श यद्वा लेपहोने पर शुद्धिका प्रकारकहतेहैं पर इसकोभी शरीरोंके उपलक्षण से पूर्वोक्तवस्त्र शस्त्रादि पात्रादि द्रव्योंपर यथा संभव संबंधित करलेना यहसिद्धान्तहै॥

अमेध्याक्तस्यमृत्तोयैःशुद्धिर्गंधादिकर्षणात्। वाक्शस्तमंबुनिर्णिक्तमज्ञातंचसदाशुचि १९०॥

अक्ष०-अमेध्याक्तकी शुद्धि मट्टी जलोंकरके गंधादि अपकर्षणसे-वाक्शस्तभीशुचिहोताहै-अंबुनिर्णिक्तभी शुचिहोवे-और अज्ञातसदाही शुचिहोताहै १९०॥

अभि०-अमेध्याक्त कहिये अमेध्यलिप्त शरीर या जिनका चर्चापहले ९ श्लोकोंमें होचुका है उन्हींमेंसे कोई द्रव्य अमेध्यमलसे लिपजावै तिसकी शुद्धि मट्टी और

याआत्मा कहिये शरीर यद्वामनबुद्धिसो किसकी किजिसको उसद्रव्यसेसंबंधहोतिस-
के अनुरूपविचारकरे ३ या द्रव्यजिसका शोधनकरना अपेक्षितहै उसकेअनुरूपक्रि-
याकरे ४ याद्रव्यका प्रयोजन कि इस द्रव्यसे यहप्रयोजन आगेकोपरैगा या वर्त्तमान
हैउसकेअनुरूपकामकरे५ याउपपत्तिकिंतुसिद्धान्तइनसेभीलक्षणोंकाजैसाकुछसंभवित
हो उसको भी शोचे ६ या अवस्था कहिये दशा किंतु जैसीदशामें परिशोधनकी आ-
वश्यकताहुईहो उसके अनुरूप शोधनकरे(दृष्टांत) जैसे एकदशा तो ऐसे अवकाशकी
है कि चाहे दशदिनों तकशोधनकरतेरहो कुछहानि नहीं है और एकदशा ऐसीहै कि
तत्काल उसवस्तुसे आवश्यकताहै फिर अवस्था शब्द वयसकाभी वाचकहै अर्थात
जैसी उमिर उसवस्तुकीहो उसके अनुसार शोधनकरे (दृष्टांत)जैसे एक दुशालामें तै-
लादिस्नेहकागहिरा दागपड़गया जो विशेष परिशोधनसे छूटसकताहै परन्तु वहदु-
शाला ऐसाजीर्ण अवस्थाहै कि विशेष मर्दनसे भड़जायगा तो ऐसी अवस्थामें थो-
ड़ाही शोधनकरना थोड़ादाग शेपरहजायगा तौ चिंतानहीं परजो कदाचित् वहदाग
दीप शेष तैलसे पड़ाहो जिसमें अनेक पतंग भस्महुयेथे और वहदुशाला ठेठकरपू-
जनके समय परिनियमित कामआताहै तौ उसजीर्ण अवस्थामें भी अधिक शोधन
करना उचितहै इत्यादि लक्षधाभेद अपनी बुद्धिसे विचारलेने तव उसकाम का आ-
रंभकरना-इसप्रकरणमें जहां तहां कहीं क्षार और कहीं भस्मका चर्चा वहुधा आयाहै
यद्यपि क्षारभस्मकोभी कहतेहैं परन्तु यहां उसमें भेदहै किंतु भस्मसे तौ राखसमझ-
नी और क्षार शब्दसे उचित खारोंका भावार्थहै जैसे रेहखार चूनाखार सज्जीखार
आदि जहांपर जिसवस्तुके लिये जिस२ खारकी योग्यता लोकमें प्रसिद्धहो सोसम-
झलेना १८९॥ यहां ताईं १८१ से लेकर १८९ तक नौश्लोकोंसे जो शुद्धि विषय
वर्णन किया सो सवसोना चांदी रत्नताम्रादि धातु पत्थर काष्ठ वस्त्र शस्त्रादि अन्नादि
वस्तुओंके परिशोधन मध्ये चांडालादि स्पर्श और मलके संयोग और स्नेह उच्छि-
ष्टादिके लेप और अमेध्यादिकी उपघात दशाओंपर आरूढ़था अबआगे जो १९०
से प्रारंभकरते हैं वहशुद्धि विषय मनुष्यके शरीरों पर आरूढ़है किंतु शरीरोंसे अमे-
ध्यका स्पर्श यद्वा लेपहोने पर शुद्धिका प्रकारकहतेहैं पर इसकोभी शरीरोंके उपलक्षण
से पूर्वोक्तवस्त्र शस्त्रादि पात्रादि द्रव्योंपर यथा संभव संबंधित करलेना यहसिद्धान्तहै॥

अमेध्याक्तस्यमृत्तोयैःशुद्धिर्गंधादिकर्षणात्। वाक्शस्तमंबुनिर्णिक्तमज्ञातंचसदाशुचि १९०॥

अक्ष०-अमेध्याक्तकी शुद्धि मट्टी जलोंकरके गंधादि अपकर्षणसे-वाक्शस्तभीशु-
चिहोताहै-अंबुनिर्णिक्तभी शुचिहोवे-और अज्ञातसदाही शुचिहोताहै १९०॥

अभि०-अमेध्याक्त कहिये अमेध्यलिप्त शरीर या जिनका चर्चापहले ९ श्लोकोंमें
होचुका है उन्हींमेंसे कोई द्रव्य अमेध्यमलसे लिपजावे तिसकी शुद्धि मट्टी और

से बारम्बार यहां तक मंजन करने से होती है कि जबतक उसमें से गंधादि अर्थात् दुर्गंधि और दाग चिह्न मिटजावें-वाक्शस्तसे भी शुद्धिहोती है अर्थात् यथोक्त रीतों से शौचकरने परभी मनकीभ्रांति नहीं जावे तब ब्राह्मणादि शस्तवाक्योंसे शुद्धिहोतीहै यथा (एतत्शुद्धमस्तु)--इत्यादि ब्राह्मण वाक्यसहित जलका छींटालगनेसे यद्वा (अपवित्रःपवित्रोवा)–इत्यादि वेद मंत्रोंसहित जलका छींटालगनेसे मनकीभ्रांतिभीदूरहोजातीहै तिसको (वाक्शस्त)–कहते हैं-अन्यथा अंबुनिर्णिक्तं अर्थात् जिनदशाओं की शुद्धिशास्त्रोक्त नहीं पाई जावे तहाँभी जलसे धोडालना कहाहै या जहां परधोडालनाभी असंभवहो तहां केवल जलकेछींटाओंसे शुद्धिहोवेगी-और अज्ञातदोष सदाही शुचिहोताहै अर्थात् जो कोईसी मलीनता देखने यद्वा सुननेमेंभी नहीं आईहो उसमें दोष नहीं है १९०॥

भधि०–प्राणियोंके शरीरसे उत्पन्नहुये १२ मलप्रसिद्धहैं वेही अमेध्य कहिये अपविवकहलातेहैं तथाच(वसाशुक्रमसृङ्मज्जामूत्रविट्कर्णविड्नखाः। श्लेष्माश्रुदूषिकास्वेदोद्वादशैतेनृणांमलाः) अर्थात्-वसाकहिये मेदा जो बसके नामसे प्रसिद्ध है १ शुक्र वीर्यको कहतेहैं२ असृक् रक्त३ मज्जा जोहाड़की पोंगमेंसे मींगनिकलतीहै कुछ गीली कुछसूखी यह उसका स्वरूपहै ४ मूत्र ५ विट् विष्ठा६ कर्णविट् कानकामैल ७ नख ८ श्लेष्म कफ खँखारआदि ९ अश्रु आँशू १० दूषिकाकीचर गीड़नेत्रमल११ स्वेद पसीना १२ यह बारहमल मनुष्योंके कहेहैं परसभी जीवोंका उपलक्षणहै-इनके साथ मद्यभीअमेध्यमेंगिनतीहै सोईकहाहै कि(मानुषास्थिशवंविष्ठारेतोमूत्रार्तवंवसा। स्वेदोश्रुदूषिकाश्लेष्ममद्यंचामेध्यमुच्यते) अर्थात्-मनुष्यकाहाड़-शवंमृतक-विष्ठा-रेतः शुक्र वीर्य-मूत्र-आर्तवं रजोदर्शनकारक्त-वसा-बस-स्वेदपसीना-अश्रु आँशू-दूषिका नेत्रमलश्लेष्मखँखार-मद्यंच मदिराभी यहइतने अमेध्यकहेजातेहैं-ऐसेमनु और देवल आदि सबनेकहाहै और मनुष्य यह एकनिदर्शनहै किंतु सभीजीवोंकेसमझने पर जब तक शरीरमें लगेरहें तबतक (अमेध्य)नहीं किंतु शरीरसे छूटजाने पर अमेध्य होतेहैं जैसे अंगुलीमेंसे नखकाट डालागया तब अशुद्धहुआ-इनकहेहुये अमेध्यमलोंसे जो वस्तु या अपना शरीरहीलिप्तहो जावे तिसको (अमेध्याक्त)कहतेहैं-अमेध्याक्तकी शुद्धि जैसे याज्ञवल्क्यजीने मट्टी और जलसे कही तैसेही गौतमजीनेभी यहकहाहै कि(लेपगंधापकर्षणैःशौचममेध्यलिप्तस्य)अर्थात् अमेध्यालिप्तकाशौचलेप और गंधकेअपकर्षणकरनेके उपायोंसे करें तहां वे उपायभी मट्टी और जलसेही संभवितहैं(यथा-सर्व शुद्धिषुचप्रथमंमृत्तोयैरेवलेपगंधापकर्षणंकार्यं) अर्थात्-सभीविषयकी शुद्धियोंमें पहलेमट्टी और जलोंसेही लेप और दुर्गंधिकोदूरकरे जब इनसे न होसके तब और किसी उपायसे जल मट्टी सहित-परन्तुकेवल नखके स्पर्शसे स्नान या मृत्तिकासे मंजन

की आवश्यकता नहीं शेषमलोंके स्पर्शमें स्नान और लेपहोजानेपर मृत्तिकासे मंज-नकरै-सोई कहाहै कि-पुरुषस्यनाभेरूर्ध्वंकरव्यतिरिक्तांगानामन्यामेध्यस्पर्शेस्नानम्-अर्थात्-हाथका मलकहिये नखतिसको छोड़कर अन्यअंगोंके अमेध्यमल पुरुषकेना-भिसे ऊपर किसी शरीर स्थलमें लगजावें तबस्नान करै-यह स्नानपूर्वोक्त मट्टी जलसे माँजेपीछे समुझना-और नखको छोड़करकहनेका यहभावहै कि नखके स्पर्शमें केव-लउतने अंगके प्रक्षालनकरनेसेही शुद्धिहो जातीहै-औरनाभिसे ऊपरकहनेका यहआ-शयहै कि नाभिसे नीचे किसी अंगस्थलमें जो स्पर्शहोवे तो केवल उतने अंगका प्र-क्षालनकरनेसेही शुद्धि होजातीहै इसी श्लोकार्द्धका दूसरा अर्थ यहभीहै कि-पुरुषके नाभिसे ऊपरके सब अंग (करव्यतिरिक्त) अर्थात् हाथको छोड़कर ऊपरके और किसी अंगमें जब (अमेध्य) मलकालेप या स्पर्श होजावे तबस्नानकरै किंतु जो हाथहीमें मल कास्पर्श होजावे तो हाथके माँजने धोनेसेही शुद्धिहोजायगी-सोई इसअर्थकी दृढ़ता में यह वाक्यभी प्रमाणहै कि(ऊर्ध्वंनाभेःकरौमुक्तायदंगमुपहन्यते। तत्रस्नानमधस्तात्तु प्रक्षाल्याचम्यशुद्ध्यति)अर्थात्-नाभिके ऊपरले अंगोंमें हाथोंको छोड़कर और कोई अंग जो दूषितहो जावै तब उसके धोने माँजने पीछे स्नानभीकरै और नाभिसे नि-चले अंगोंमें कहीं मलका (स्पर्श)होजावे तब उतनेअंगकोधोकर और आचमनआ-दिकरके शुद्धहोजाताहै-आचमन आदि पवित्रीकरण क्रियाओंकी योजना सर्वत्र समुझलेनी जहां नहीं भी कहीहो-परन्तु इस अर्थसे और अर्थकी अनंतरोक्त दृढ़ता के प्रमाणसे भी वह पहला अर्थ असंगतहुआ जाताहै जिसमें नखोंका चर्चाऊपर आयाथा-तथापि वह असंगत नहीं किंतु दोनों अर्थ यथार्थ हैं क्योंकि वहांपर नखों के स्पर्शमें स्नानकी आवश्यकता नहीं पाई गईथी सो प्रथम तो प्रत्यक्षभावमेंभी न-खऐसा महामलीन नहींहोता जिसकालेप शरीरमें होसकै जिस्सेस्नानकी आवश्य-कतापाईजाय दूसरे यह प्रमाण है कि-देवल ऋषिने स्नानकी आवश्यकताके साथमें नखोंकानाम तक नहीं लिखा (तथाचदेवलः-मानुषास्थिवसांविष्ठामार्तवंमूत्ररेतसी।म-ज्जानंशोणितंस्पृष्ट्वापरस्परस्नानमाचरेत्॥तान्येवस्वानिसंस्पृश्यप्रक्षाल्याचम्यशुद्ध्य-ति) अर्थात्-मनुष्यकाहाड़-वसा-विष्ठा-आर्तवरजोरक्त-मूत्र-वीर्य-मज्जा-शोणितरक्त यह पराये शरीरसे उत्पन्नहुयेहों तो इन्हें छूकर स्नानकरै-और येही जो अपने शरीरसे उत्पन्नहुयेहों तो इन्हेंछूकरधोने और आचमनकरनेसेही शुद्धहोजाताहै किंतु स्नानकी आवश्यकता नहीं-अब ध्यानकरना चाहिये कि मल वस्तु औरभी कईशेषहैं परयहां उन्हींका चर्चा कियाहै जिनसे स्नानोंकी आवश्यकता थी इसलिये नखोंकाभी चर्चा इनमें नहीं आया सोई उसपहले अर्थका भावथा-यहांभी यद्यपि मनुष्यकेनामसे हा-ड़आदि कहेहैं परन्तु वसाके उपलक्षणसे सभी जीवोंका भावार्थ समुझलेना क्योंकि

वसामनुष्यके शरीरमें यद्यपिहोतीहै पर उसका स्पर्शके लिये मिलना या होना असंगतहै-और यह बात जो अक्षरार्थ यद्वा अभिप्रायार्थमें कहीथी कि (अज्ञात) का दोष नहीं है-पुनि-प्रायश्चित्त विषयमें यहभीकहाहै कि (संवत्सरस्यैकमपिचरेत्कृच्छ्रंद्विजोत्तमः। अज्ञातभुक्तशुद्ध्यर्थंज्ञातस्यतुविशेषतः) अर्थात्-द्विजातीमात्रमें जो कोई अपनेको जातित्वसे यद्वा आचारसे उत्तम समुझाकरताहो या औरोंकेनिकट उत्तम समुझा जाताहो वह द्विजोत्तम होताहै ऐसे द्विजोत्तमको यह उचितहै कि वह अज्ञातभुक्तशुद्धिके लिये संवत्सरमें एकवार तो अवश्यही कृच्छ्रचांद्रायणनामका व्रतकर डालाकरै और जानेहुये दोषका प्रायश्चित्त विशेष लक्षणसे किंतु जैसी उसकीविधि जहांकहीं लिखीहो तिसके अनुसारकरै-अज्ञातभुक्तशुद्धि यह कि विनाजाने किसीके हाथसेदूषित अन्नखायाहो तिसकी शुद्धिसंवत्सरके अंतमें एकवार चांद्रायण करनेसे होजाती है फिरचाहे कुछखायाहो या न खायाहो पर केवल अपने शरीरके तेजोबलबुद्धिआदिकी उन्नतिके हेतुसे मनकी भ्रांति दूरकरदेवै-इसवाक्यसे उसमें यह विरोधदृष्टि आताहै कि यहां तो अज्ञातकाभी प्रायश्चित्त कहा और वे कहतेहैं कि अज्ञातका दोष नहीं वह सदाही शुचिहोताहै-परन्तु यहविरोधदृष्टि वृथाहै अर्थात् विरोधकिंचित्भी नहीं है क्योंकि यह प्रायश्चित्तकेवल अज्ञातभुक्त विषय पर कहाहै किंतु इसमें खाने पीनेका चर्चाहै और वहबात केवल अमेध्यालिप्तके ऊपर कहीहै किंतु उसमें शरीर शुद्धिका चर्चाहै तिसके लिये यह कहाहै कि विनाजाने कोई अमेध्य मल शरीरमें छूजावै या शरीरके उपलक्षणसे औरही किसी वस्त्र या पात्रादिक द्रव्यमें छूजावै तो उसका दोष नहीं है १९०॥

शुचिगोतृप्तिकृत्तोयंप्रकृतिस्थंमहीगतम्। तथामांसंश्वचांडालक्रव्यादादिनिपातितम् १९१॥

ऐ०-गोतृप्तिकृत्-अर्थात् एक गऊ जिसकेपीने से छकजावै इतनाजल जंगलकी पृथ्वी में पड़ाहुआ अर्थात् किसी निर्मल निम्न स्थानमें भराहुआ शुचि होताहै किंतु उसमेंसे आवश्यकदशा पर आचमन आदि करलेना दोषनहींहै पर उसदशामें किवह जल प्रकृतिस्थहो अर्थात् ज्योंकात्यों बनरहाहो किंतु नतो उसका रूप बिगड़ा हो न रसमें अंतरहुआ हो न दुर्गंधिआनेलगीहो न उसमें कोई गुदाआदि प्रक्षालनकरताहो और न उसके निकट चांडालोंका संसर्गहो-तैसेही श्वान चांडाल क्रव्याद आदि इन्होंसे निपातित मांस भी शुचि होताहै अर्थात् मांसके आहारी लोगों के लियेजो २ मांस खाने योग्य पहले कहचुके हैं उन्हीं में से कोई जीव ऐसाहो जिसको कुत्ताने मारागिराया जैसे विरले मांसभक्षीकुत्तासे आखेटकरवाते हैं सो वह उनके निकट शुद्धमें गिनती है पर जो कुत्ताने उसमें से कुछखाया भी हो तो अशुद्ध है-एवं चांडालने मारा हो पर उसमें से खायानहीं तो शुद्ध में गिनती है-एवंक्रव्याद कहिये मांसभक्षीपक्षी

तिसका माराहुआ जैसे श्येन किंतु बाजका गिराया हुआ जो बाज ने खाया नहीं हो तो पवित्र में गिनती है ऐसेही आदि शब्द से और भी पुल्कस आदि जातोंके हाथ का माराहुआ समुझलेना १९१ ॥

भा०—गोतृप्तिमात्रजल जोकहा सोयह परमन्यूनतर मानबतलायाहै किंतु इससे अधिक जितनाहो उतना अधिक पवित्रहै पर इससे कमतीनहीं और यहमर्याद उस में नहीं जो नदी या कूपादिमेंसे भराहुआ आताहै किंतु उसके लिये (देवल)जीने यह मर्याद कहीहै कि(उद्धृताश्चापिशुद्ध्यंतिशुद्धैःपात्रैःसमुद्धृताः।एकरात्रोपिताआपस्त्याज्याःशुद्धाअपिस्वयम्)अर्थात्-भरेहुये जलभी शुद्धहोतेहैं जो शुद्ध पात्रोंसे भरलिये जावें किंतु जबकहीं दूरसे भराहुआ जल मँगायागया और मार्गमें अधमादि जातों का स्पर्श होजानेकी संभावनाप्रबलहै तबउसजलको मँजेधुये अन्यपात्रोंमें बदलकर भरलेवे तौवहभी शुद्धहोजाता है-और एकरातिका बसाहुआ जलचाहै आपसेआप वह शुद्धभीहो पर दूसरे दिवस उसका त्याग करदेना उचितहै-और चांडालआदिके बनायेहुये जलाशयों मध्ये शातातपऋषिने यहकहाहै कि(अंत्यैरपिकृतेकूपेसेतौवाप्यादिकेतथा। तत्रस्नात्वाचपीत्वाचप्रायश्चित्तंनविद्यते)अर्थात्-चांडालों करकेभी बनाये हुयेकूपमें या सेतुमें तथा बावड़ी आदिमें भी स्नानकरके और पीकरभी प्रायश्चित्त नहीं पहुँचताहै अर्थात् प्रायश्चित्तकरने की आवश्यकता नहीं-परयह दोषका अभावकेवल उनकेबनायेहुये पर कहाहै किंतु जिसजलाशय परचांडालोंका संघातरहताहो चाहे वह उत्तमजातिका बनायाहो पर उसमें स्नान अथवा पानसे प्रायश्चित्तकी आवश्यकता प्रत्यक्षहै-मांसपक्षमें जो कुछकहा वह संदेहका स्थल नहीं है क्योंकि धर्मशास्त्र संसार और समयकी रीति अनुसार चलताहै यद्यपि मांसके प्रकरणमें अत्यंत निंदाभी लिखचुकेथे परन्तु मांसभक्षीलोग मुँहदेखतेसे रहजाते इसलिये यहां पर आनि कर उनकाभी मान रखदियागया यहांतक कि कुत्ता और कौवा और चांडाल आदिभी उनके सहायक उनकी आरामके लिये बतलादिये क्योंकि धर्मशास्त्रके हृदयमें यहदयाभाव और कोमलता प्रविष्टहै कि वह किसीका अपमान नहीं करसकता और न किसीको दुःख देसकता है किंतु उसकी प्रतिज्ञा यहीहै कि मैं संसारका दुःख दूरकरूं और जो कोई मेरा आदरकरै उसकानिरादर मैं कभी नहीं होनेदूं १९१ ॥

रश्मिरग्नीरजश्छायागौरश्वोवसुधानिलः। विप्रुषोमक्षिकास्पर्शोवत्सःप्रस्नवनेशुचिः १९२॥

ऐ०—(रश्मिः)अर्थात्सूर्यआदि प्रकाशमान अन्यवस्तुओंकीभीकिरण-(अग्नि) ... आदिकीनहो-(रज)धूलिजो उड़कर आयाकरतीहै-(छाया) जो वृक्षआदिकी ... तल-वश्यकहो-गऊ-घोड़ा-(वसुधा)धरती जो पड़ीहुई निर्लेप जंगलकी-(अनिल)वायु-(विप्रुष) अर्थात् ओसकेबूँद जो अतिमलीनवस्तुपर नहो-यहसब कहीहुईचीज़ें ...

आदिनेभी छुईहों तौभीशुद्धहैं किंतु उनकी छुईहुई फिरअपनेको छूनीपड़ें तौदोषनहीं-ऐसेही मक्खी यद्यपि मलीनवस्तुपरभी बैठआतीहै परउसकेछूजानेया अपनेऊपर बैठ जानेका दोषनहीं-ऐसेही बछरा(प्रश्नवन)कर्मे किंतु दूधउतारनेमें पवित्र है अर्थात् वाख मेंभरेहुये दूधके उतारनेमें बछराकीलार जोदूधमें मिलजातीहैतिसकादोषनहीं १९२॥

अधि०—(रज)धूलिभी यद्यपि पवित्रकहीहै तथापि जो२धूलें निषेधकरीहैं तिनकाबिवेक उचितहै—तथाच(श्वकाकोष्ट्रखरोलूकशूकरग्राम्यपक्षिणाम्।अजाविरेणुसंस्पर्शादायुर्लक्ष्मीश्चहीयते)अर्थात्-कुत्ताके देहमें की धूलि कौवाके परोंमें की-ऊंटकेदेहकी-गर्दभके शरीरकी-उलूक उल्लूनाम पक्षीके परोंमेंकी-सुअरके शरीरकी-ग्राम्यपक्षी मुर्गा आदि तिनके देहकी-बकरी और भेड़के शरीरकी-इतनी धूलोंके स्पर्शमात्रसे आयु और लक्ष्मीभी कमहोतीहै किंतु घटती जातीहै इसलिये उनका बचावकरना उचितहै पर ऐसाबचाव नहीं करना जिस्से किसीसमय किसी कार्य्यमें हानि प्रकटहो १९२॥

अजाश्वयोर्मुखंमेध्यंनगोर्नंनरजामलाः। पंथानश्चविशुद्ध्यंतिसोमसूर्यांशुमारुतैः १९३॥

ऐ०—अजाबकरी-अश्वघोड़ा इन दोनोंका मुखपवित्रहै-परन्तु नगोःकिंतु गऊका मुखपवित्र नहीं है-ननरजामलाःअर्थात् नरदेहसे उत्पन्नहुये मल पवित्र नहीं हैं-और पंथाशुद्धहोतेहैं सोमांशु १ सूर्यांशु २ मारुत ३ इनतीनोंसे अर्थात् चांडाल आदिमलीनोंसे छुयेहुये किंतु चलेहुये मार्ग रास्ते यहरात्रिमें चन्द्रमाकी किरणों और बायुके स्पर्श मात्रसे आपही शुद्धहोजातेहैं और दिनमें सूर्यकी किरणों तथा बायुके लगनेसे बिशुद्धहोते रहतेहैं इसलिये उनका दोष नहीं अर्थात् उनपर कोईचलो १९३॥

अधि०—मार्गोंके शुद्धहोजानेका रूपक दृष्टांत सहित जैसे किसीबस्ती या बाजारके मार्गमें किसी मरेहुये पशु अथवा कुत्ताआदिको चांडाल घसीटकरलेगये तो प्रत्यक्ष लोक दृष्टिसे वह मार्ग अशुद्ध समझागया तहां जोतात्कालिक अवश्यचलने फिरने वाले साधारण बाजारू लोगहैं उनकेलिये तौतत्काल उसकीशुद्धिकार्यकी आवश्यकता अनुसार संभवितहै क्योंकि सूर्यका प्रकाश और वायुका संचार तौसर्वत्रहोहीरहा है या जो रातिहै तौ चन्द्रमाका प्रकाश अथवा वायु और चन्द्रमाके उपलक्षणसे उसके अभावमें तारागणभी अंगीकारहैं-अथवा जो कोई (स्नातक) वा (विवेकी) है उसके लिये इतने कालमें शुद्धिहोवेगी कि जब कोई और साधारण मनुष्य यद्वा गऊआदि पुनीत जीव पहले उसदूषित मार्ग परचला जावै तव उसके मनकीभ्रांति दूरहोवैगी यथा जहां किसी नरसमूहको(ठाकुर)का बिमान किसी उत्सवसे याबिवाहको उद्यत (वर) का बिमान लेजानेकी आवश्यकता है और सिवाय उसदूषित मार्गके कोई मार्गभी ऐसा नहीं कि उसेछोड़ वहांको लेजावें और मनकीभ्रांति लोकदृष्टिसे हीं होतीहै तहां एक याम काल यद्वा चार घटिकाके अनुमान या दोही घटिका

के परिमाण ताईं सूर्यकी किरणों और वायुके संघातसे वह दूषितमार्ग शुद्ध होजावेगा-यहां पर विलंबकालकी अधिकता वा न्यूनताको वायुकी मंदता और प्रवलताके अनुसार यथाक्रमसे जानलेना क्योंकि उससे वहदूषित धूल उड़जाती है-जहां जिस कालमें वायु नहीहोवे और सूर्यमें किरणें भी वादलके प्रभावसे न होवें तहां उसदूषित पंथा पर एक सहस्रआदमियों के निकलनेसे परम शुद्धिहोजाती है इसमेंभी कार्यकी गुरुता लघुताके अनुरूप थोड़ेभी मनुष्योंके निकलनेसे शुद्धिहोजाती हैं-जिस कालमें वर्षाभीहोरहीहो तहां कोईसाविवेक आवश्यक नहीं है क्योंकि वहदैवीगतिसे आपसे आप शुद्धिहोरही है १९३॥

मुखजाविप्रुषोमेध्यास्तथाऽचमनविंदवः। श्मश्रुचास्यगतंदंतसक्तंत्यक्त्वाततःशुचिः १९४॥

ऐ०—मुखजा मुखसे उत्पन्नहुये विप्रुषकहिये लारकेबूँदमेध्यहैं अर्थात् अशुद्ध नहीं पर उसी अवस्थातक जो मुखमें वनेरहें किंतु देहपर गिरनेसे अशुद्धहैं तथा आचमनविंदु किंतुकुल्लाकरते हुये जो छींटे उड़कर पैरोंपर गिरतेहैं वे भी अशुद्ध नहीं-तथा श्मश्रुकहिये डाढ़ी मूँछके वाल वेभी आस्यगत मेध्यहैं अर्थात् मुखमें प्रवेशहुयेअशुद्ध नहीं कहलाते-तथा दंतसक्त जो दांतमें लगीहुई अन्नादि वस्तु वह जवतक दांतमें लगीरहे तवतक मेध्यहै पर जव छुड़ाई जावे या आपही छूटपरेतव अमेध्यहोजातीहै अर्थात् छूटपरे पीछे उसका त्यागकरै तव आचमनकरिके शुद्धहोवे १९४॥

अधि०—मुखविप्रुषों के मध्ये गौतमजीका वाक्य-यथा-नमुखेविप्रुषउच्छिष्टंकुर्वंतिनचेदंगेनिपतंति-अर्थात्-मुखमेंविप्रुष रहतेहुये अशुद्ध नहीं करतेपर जो अंगपर गिरने नहीं पावें-दांतमें लगाहुआ अन्न जव तक दांत में लगारहे तवतक दांत के समान गिनाजाकर अशुद्ध नहीं समुझाजाता-इसके मध्ये गौतमजीने यह कहा है कि-दंतश्लिष्टंतुदंतवदन्यत्रजिह्वाभिमर्शनात्प्राक्च्युतेरित्येके-अर्थात्-दांत में लगाहुआ दांत के तुल्य है पर जिह्वाभिमर्शनसे अलहदे किंतु जव तक उसमें जीभकी नोक नहींलगाई जाय और कोई यह कहतेहैं कि गिरनेसे पहले किंतु जव तक दांत में से न छूटै तवतक दांतके समान गिना जायगा कुछ जीभलगनेपरभी नियमनहीं-परंतु समय २ के अनुसार यह दोनों मत ठीक हैं-शातातपऋषिकावाक्य-(तांबूलेचफलेचैवभुक्तेस्नेहावशिष्टके। दंतलग्नस्यसंस्पर्शेनोच्छिष्टोभवतिद्विजः)-अर्थात् तांबूलके खानेमें फलके खानेमें भोजनके स्नेहावशिष्टमें किंतु भोजन करनेसे घृत आदि चिकनाई जो मुखमंजनकरने परभी लगीरहजातीहै तिसकी दशामें द्विजाती जूठा नहीं होताहै १९४॥

स्नात्वापीत्वाक्षुतेसुप्तेभुक्त्वारथ्योपसर्पणे। आचांतःपुनराचामेद्वासोविपरिधायच १९५॥

ऐ०—स्नानकिये पीछे कुछ शर्वत आदि पानकिये पीछे छींक आनेपीछे सोये पीछे कुछ भोजन किये पीछे मार्ग चलकर विश्राम लेने में वस्त्रों को उतारने और

हिरने पीछे भी आचमनकिया हुआ फिर आचमन करै अर्थात् चाहै पहले से आ-
चमनकरिकै शुद्धभीथा परइतनीबातोंकोकिये पीछेआवश्यक फिर आचमनकरै १९५॥
अधि०—शास्त्रांतरम्-यथा(चर्वणेत्वाचमेन्नित्यंमुक्त्वातांबूलचर्वणम्। ओष्ठौविलोम
कौस्पृष्ट्वावासोविपरिधायच)-अर्थात्-कोई वस्तुयद्वा तांबूलभीचबानेसेपहले और तां-
बूलको चबाकर थूकदेने पीछे सदाही आचमनकरै-दोनों ओठों को परस्पर उलटे
सीधे ओठसे ओठलगाकर और वस्त्रों को उतारकर और पहिरके भी आचमन
करै-वशिष्ठऋषि का वाक्य-यथा-सुप्त्वाभुक्त्वाक्षुत्वास्नात्वापीत्वारुदित्वाचाचांतःपुन
राचामेत्-अर्थात्-सोवने पीछे कुछखाने पीछे छींकआने पीछे स्नानपीछे कुछपानकिये
पीछे रोनेपीछे आचमनकियाहुआभी फिर आचमनकरै-मनुजीका वाक्ययथा-(सुप्त्वा
क्षुत्वाचभुक्त्वाचष्ठीवित्वोक्त्वानृतंवचः।पीत्वापोध्येष्यमाणश्चआचामेत्प्रयतोपिसन्)
अर्थात्-सोयकर छींककर खायकर खँखारिकर वृथाबचन बोलकर जलोंको पीकर और
पढ़नेको उद्यत हुआ मनुष्य सावधानीके होतेहुये भी आचमनकरै-शातातप ऋषिका
वाक्य-यथा-भोक्ष्यमाणस्तुप्रयतोद्विराचामेत्-अर्थात्-भोजन को उद्यतहुआ मनुष्य
चाहै पहलेसे शुचिभी हो पर भोजनसे पहले दो बारआचमनकरलेवै-स्नान और जला
दिकोंकेपानसे पहले एकबारआचमनकरै पढ़नेकेआरम्भसेपहले दो बारआचमन करै-
यद्यपि आचमन शब्दका अर्थ शास्त्रोंमें सर्वत्र जहां तहां यही कहाहै कि हथेली पर जल
रखकर आचमन किंतु जलका पीजाना-सोई मर्यादा परिपाटीमें भी १८।१९।२०।२१
इन चारों श्लोकों से याज्ञवल्क्यजी के आशय अनुसार लिखचुकेहैं और वहीविधि
ठीक है पर यथार्थ में जो भाव यहां पर १९५ श्लोक में कहा गया अथवा जहांकहीं
आचमन का चर्चा आया हो तहां सर्वत्र गंडूष और मुख प्रक्षालनसे अपेक्षाहै(कुतर्क)
भला ऋषियों के वाक्य पर खाक डालना यह कहां की विज्ञता है क्योंकि जव चारों
वर्णों को भिन्न २ आचमन की मर्यादें और उनके हृदय कंठ तालू आदि स्थान भी
कहे और ब्राह्मतीर्थ आचमन को बतलाया और यहां पर भी अभीलिखचुके हो कि
भोजनसे पहले दोवार संथासे पहले दोबारस्नान और पानसे पहले एकबार आचम-
न लेवै फिर इसवात में कुल्ला और मुख मंजनसे क्या अपेक्षा है—मुखभंजन चपेटि
कासुनो-खाकनहीं किंतु ऋषियों के वाक्य पर अज्ञानियों की कुबुद्धि रूप जाले का
आवरण दूर करने को मयूर पक्षों का व्यजन परिवर्त्तन है क्योंकि-(यदेवरोचतेयस्मिं
स्तस्मिन्नेवप्रयुज्यते। लवणंनचतांबूलेखदिरश्चनव्यंजने)-अर्थात्- जो वस्तु जिसमें
रुचती है उसीमें प्रयुक्तकरी जाती है कोई कहे कि पानों में नोन लगायाजाय सो
नहीं होसक्ता या यहकहे कि शाकादि व्यंजन वस्तुमें लवणके स्थानकत्थाडालाजाय
तो क्या यह वाक्य भी प्रमाण होसक्ता है चाहै वह कहनेवाला ऋषियोंकाभी परम

ऋषीश्वर हो कुछ उसके वाक्य का प्रभाव अंगीकार नहीं है किंतु लोक प्रचार का सौगम्य और शास्त्रोक्त वाक्यों की सात्म्यता पाई जावै तभी दृढ़ विश्वास और आस्तिकता भी प्रमाण में आती है-परंतु यह अज्ञानियों की बुद्धि भ्रमता है कि अमुक ऋषीश्वर ने यह कहा-कोई ऋषिअसंभव नहीं कहसक्के किंतु उस आशय का पूर्वापर आलोचन करना जिज्ञासुके आधीन है-जो शास्त्रोंमें ऐसीही कठिनतानहीं होती तो क्या केवल अक्षरार्थ से प्रयोजन की सिद्धि नहीं होसक्की थी-जिसपर यह कुतर्क आरोपित करते हो वह आचमन भी आचमन कहलाता है पर उसका अवसर पूजनादिक स्थानों पर आरूढ़ है दूसरा गंडूप और मुख प्रक्षालन को भी आचमन कहा करते हैं उसीसे यहां पर अपेक्षा है क्योंकि जो गंडूप को न मानोगे तो इसबात का उत्तर देना होगा कि इसी १९५ श्लोक में कहेहुये शर्वत आदिके पीनेवालेजब हथेलीपरधरेहुये तीन बूँद जलको कंठ या तालू तक पहुँचाकर चीखलेवेंगे तबक्या मूँछ या ओठों का चिपचिपाहट दूर होसक्का है या सोनेवाले जिनकी आंखों और ओठों पर लिबलिबाहट उतर आया है वे तीन बूँद जल पीकरउलटा उसमल को हृदयमें प्रवेश करदेवेंगे तो इस्से क्या शरीर की मलीनता नहीं समुझोगे ऐसेहीछींकने वाले या कुछ खानेवाले या राहके चलनेवाले जिनके मुखप्रत्यक्ष अशुद्ध होजाते हैं वे उस तीन बूँद जल को चीखकर क्योंकर ग्लानि रहित होसक्के हैं या तांबूलके चवानेवाले या ओठों को उलटे ओठ पर फिरानेवाले जिनके ओठलारसे सनजाते हैं या रोनेवाले जिनका सारामुख आंसूसे भीगजाता है या बहुतभांति अनृत कहिये वृथावाद बकने से जब ओठों के जोड़ वा किनारोंपर दुर्गंधि सहित लारजमजातीहै क्या तीनबूँद जल पीकर उसमलको भीतर प्रवेश करलेने से पवित्र होजावेंगे-कदाचित् फिर भी यह कुतर्क करसक्के हो कि जो वह बात नहींथी तो इसभांति से व्यौरेवार क्यों लिखाहै कि भोजनसे पहले दोबार संथासे पहले दोबार स्नान वा पानसे पहले एक वार आचमन करै-तहां यह सिद्धांतहै कि प्रथम तो आवश्यकता जानै तो चरण भी धोवै नहीं तो कुल्ला और मुख प्रक्षालन विधिपूर्वक जलसे आँखों पर्यंत कानों पर्यंत करिलेवै फिर उसरीतिसे एकया दोवार जलपीवै तब आचमन कहलाता है सोई श्लोकोंमें यह कहा है कि-आचांतःपुनराचामेत्-अर्थात्-आचमन कियाहुआ भी फिर आचमनकरै-इसी प्रकार सर्वत्र हेतु गर्भित आशयहुआ करताहै जो ऋषीश्वर लोग हेतु गर्भित नहीं कहते तो छोटे २ श्लोकों में इतनी बड़ी २ बातों को क्योंकर कहसक्के जिनका सिद्धांत दो २ पत्रों में पूरा होता है-यद्यपि यह सिद्धांतथोड़े से कथन में भी लिखाजासक्काथा परंतु पाखंडियों की बहुताइत से लाचारीहै कि वे साधारण बात को भी पाखंड की निश्रेणी से आकाश पर चढ़ाते और निज बुद्धि की जड़ता

से निरक्षर लोगों को भ्रमजालमें फँसातेचलेआते हैं ऐसेही आचारका भ्रष्टाचार होकर नास्तिकताने बड़ाई पाई इस्से इतना विस्तार करना पड़ता है कि अब ऐसी उपकारी दशापरभी किसीको संदेह नहीं रहनेपावे-कोई यह उच्चारणकरै कि हम थोड़े कथनको समझते हैं-वह इसबातका ठेकाकरै कि मुझसेही सब होंगे १९५॥

रथ्याकर्दमतोयानिस्पृष्टान्यंत्यश्ववायसैः। मारुतेनैवशुद्ध्यंतिपक्वेष्टकचितानिच १९६॥

ऐ०-रथ्यामार्ग बड़ी छोटी सबतरहकी तिनमें कर्दम कहिये कीचड़ और तोय कहिये जल इत्यादि औरभी जो कुछ पड़ाहो यह सब चांडालों वा कुत्ताओं वा काकोंसे छुयेभीहों पर केवल वायुसेही शुद्ध होतेरहते हैं किन्तु और कोभी इनके छूजानेमें कुछ बड़ाभारी दोष नहीं ऐसेही पकीहुई ईंटकेचिनेहुये स्थान आदिभी चाहैं चांडालोंसे छुयेहों पर वायुके लगने से शुद्ध होजाते हैं १९६॥

अधि०-यद्यपि सब द्रव्योंकी शुद्धि कहचुके तिनमें ईंटभी आचुकीथी और गृहकी शुद्धिभी लीपा पोतीसे कहचुके हैं पर यहां पर पकीहुई ईंटके कहनेसे यह भाव है कि १९३श्लोक उत्तरार्द्धमें यहकहाथा कि-प्रोक्षणंसंहतानांच-अर्थात् संहतकहिये मिली हुई बहुतसी चीजोंकी शुद्धिप्रोक्षण किन्तु छिड़कदेना होती है सो यहांपर वह छिड़कना भी निषेध किया किन्तु कोई यह समझै कि बहुतसी ईंट और पत्थर आदि इकट्ठे लगे हैं प्रासादमें इसप्रासादकोभी किसीके छूजानेपर छिड़कना चाहिये सो नहीं-और पक्कीईंट कहनेसे दूसरा यहसिद्धांतभी है कि जो स्थान घास फूस लकड़ी पत्ता आदिसे बनायाहो उसको किसी अधमका स्पर्श होने पर छिड़कडालना उचित है १९६॥

इतिद्रव्यशुद्धिप्रकरणम्॥

अब आगे दानधर्म कहनेके प्रयोजनसे उसके अंगभूत पात्रकी प्रशंसा लिखते हैं कि दानयोग्य ऐसा पात्र चाहिये॥

तपस्तप्त्वासृजद्ब्रह्माब्राह्मणान्वेदगुप्तये। तृप्त्यर्थंपितृदेवानांधर्मसंरक्षणायच १९७॥

अक्ष०-वेद गुप्तिके लिये ब्रह्मा तप तपिकर ब्राह्मणोंको सृजताभया-देवता वा पितरोंकी तृप्तिके अर्थ और धर्मसंरक्षण के भी लिये १९७॥

अभि०-ब्रह्मा कहिये हिरण्यगर्भ तिसने कल्प रचनाकी आदिमें तपको तपिकर अर्थात् यह ध्यान धरिकर कि मैं किनको मुख्य बनाऊं जिनसे संसारकी मर्यादा बँधे ऐसा विचार किये पीछे प्रथम ब्राह्मणोंको बनाया इसलिये कि ये वेदोंकी रक्षा और प्रचार बना रखकर उनकी विधिद्वारा देवताओंकी यज्ञादि कर्मों से और पितरों की श्राद्धादि करिकै तृप्तिकरें और यथोचित अनुष्ठान तथा उपदेश द्वारा धर्मकी मर्याद बँधी राखैं-वेदके निदर्शनमात्रसे सभीशास्त्र और विद्याओंका उपलक्षणहै किन्तु यह नहीं कि वेदकी रक्षाकरें और औरोंका निरादरकरें अर्थात् यावन्मात्र शुभ शास्त्र या

शुभ विद्या हैं वह सभी वेदका रूपहैं-वेद शब्द ज्ञानमात्रका वाचकहै जिस्से कुछ क-ल्याण विषय जाना जाय १९७॥

सर्वस्यप्रभवोविप्राःश्रुताध्ययनशालिनः। तेभ्यःक्रियापराःश्रेष्ठास्तेभ्योप्यध्यात्मवित्तमाः १९८॥

ऐ०-सर्वस्य अर्थात् सब क्षत्री आदि वर्णोंके मध्ये ब्राह्मण प्रभवहैं किन्तु श्रेष्ठहैं जाति और कर्मसेभी फिर उन ब्राह्मणोंमेंभी जो श्रुताध्ययनशाली अर्थात् श्रुताध्ययन सम्पन्नहों वे अधिक श्रेष्ठहैं किन्तु श्रुत कहिये ज्ञान और अध्ययन कहिये शास्त्रादि विद्याओंका पढ़ना तिन संयुक्तहों वे साधारणोंसे उत्तम-फिर उनमें सेभी जो क्रिया परहों किन्तु शास्त्रोक्त कर्मोंका अनुष्ठानभी करतेहों वे अधिक श्रेष्ठ हैं-फिर उनसेभी अधिक वे उत्तमहैं जो अध्यात्म वित्तमहों अर्थात् इसी शास्त्रमें जो मार्ग आगे कहा जायगा उसके द्वारा आत्मतत्त्व ज्ञान किन्तु आत्मा जो परब्रह्म है तिसका तत्त्वज्ञान कहिये स्वरूप ज्ञान तिसमें यथार्थ निपुण और तत्परहों १९८ इसप्रकार जाति १ विद्या २ कर्मानुष्ठान ३ आत्मतत्त्व ज्ञान ४ इनके द्वारा एकएक लक्षणसेभी उत्तरोत्तर पात्रता कहकर अब उन्हींके समुच्चयसे परिपूर्ण पात्रता कहते हैं॥

नविद्ययाकेवलयातपसावापिपात्रता। यत्रवृत्तमिमेचोभेतद्धिपात्रंप्रकीर्त्तितम् १९९॥

ऐ०-केवल विद्यासे नहीं अर्थात् श्रुताध्ययन सम्पन्न होनेसेही पात्रता नहीं-तपसा वापि अर्थात् सूखे शमदम आदिकी तपस्यासेभी पात्रता नहीं-अपि शब्दकी लक्षणासे केवल अनुष्ठानमात्र यद्वा केवल जातिमात्रसेभी पूर्ण पात्रता नहीं-किन्तु-जिस पुरुष में वृत्त कहिये अनुष्ठान अर्थात् शास्त्रोक्त धर्मों का आचारभी हो और इमेचोभेकिंतु यह दोनों भी हों कौन एक तो विद्या १ दूसरी तपस्या २ इन तीनों की एकता में पूर्ण पात्रता समुझी चाहिये परन्तु (च) शब्द के तात्पर्य से ब्राह्मण जाति भी अपे-क्षित है अर्थात् ब्राह्मण जातिके पुरुष में यह तीनों लक्षण हों तब पूर्ण पात्रता हो अन्यथा जहां यह तीनों असंभव हों किंतु एकही दो लक्षण की प्राप्तिहो तहां उसके अनुरूप पात्रता समुझी जायगी पर जातित्व लक्षण इस बार्त्ता में अवश्य भावसे अपेक्षित है १९९॥

अधि०-जहां एकही एक लक्षण की प्राप्तिहै तहांभी उत्तरोत्तर उत्तमता ज्ञातव्य है अर्थात् प्रथम तो केवल एकलक्षण जातिमात्रका फिर उस्से अधिक विद्या विशिष्टका फिर उस्से अधिक आचार विशिष्ट का फिर उस्से अधिक तपो विशिष्ट का और इ-सीक्रमके अनुसार इनपात्रों में दान करने से फलमें भी उत्तरोत्तर विशेषताहै १९९॥

गोभूतिलहिरण्यादिपात्रेदातव्यमर्चितम्। नापात्रेविदुषाकिंचिदात्मनःश्रेयइच्छता २००॥

अक्ष०-गऊ धरती तिल हिरण्य आदि अर्चित किया हुआ पात्रमें देना उचित है-अपना श्रेय इच्छा करनेवाले विदुष करके अपात्रमें किंचित् भी नहीं देना २००॥

अभि०—यह आदि शब्द सबमें लगता है अर्थात् गऊआदि कहनेसे हाथीघोड़ा आदि भी समुझने जो चतुष्पद दान योग्य प्रसिद्ध हैं-धरती आदि कहने से पृथ्वी ग्राम स्थान यह सभी समुझलेने और धरित्री में बीज ग्रहण वा जनन शक्ति के उपलक्षणसे कन्यादान आदिभी संबंधित हैं-तिल आदिके कहनेसे सर्व धान्यमात्रका निदर्शन है-हिरण्य आदि कहने से सर्व धातुमात्र वा रत्नादि द्रव्योंका निदर्शनहै-यथार्थ में आदि शब्द कहने से सभी प्रकार के दान समुझेगये तिनमें कोई दान करनाहो सो वह दानकी वस्तु अर्चित कहिये संकल्पित करीहुई विधिसहित उनपात्रों को देनी चाहिये जिनका चर्चा इस्से पहले श्लोक में आयाथा-न अपात्रे किंतु क्षत्रियादि यद्वा पतितादि ब्राह्मण को भी नहीं देवै वह कि जो विद्वुष होवे किंतु पात्र विशेषके द्वाराफल विशेष को जानता हो और दान देकर अपनाश्रेयभी चाहताहो सो। किंचित्अपि अर्थात् थोड़ाभी नहीं देवै २०० ॥

अधि०—थोड़ा भी नहीं देवे इस कथन का यह सिद्धांत नहीं है कि क्षत्रियादियद्वा पतितादि ब्राह्मणों को कुछ भी नहीं या किसी दशा में भी नहीं देवे-किंतु-यहांपर केवल शास्त्रोक्तदान का चर्चा है कि जो वस्तु किसी विशेष फल की कामना से संकल्प द्वारा देनी हो चाहै वह थोड़ी भी हो पर पात्रकोही देवै अपात्रको न देवै-अन्यथा अपना श्रेय भी चाहता हो यह कहने से प्रकट होताहै कि कोई आवश्यक दशापर अपात्र में भी देनेसे निःसंदेह कुछ फल होताहै-हां-पात्रमें देनेसे उत्तमश्रेय की प्राप्ति थी अपात्रमें देनेसे तामसफल होगा यह सिद्धांत है-सोईभगवद्गीतामेंकृष्णद्वैपायन का यहवाक्यहै-कि(अदेशकालेयद्दानमपात्रेभ्यश्चदीयते। असत्कृतमवज्ञातंतत्तामसमुदाहृतम्) अर्थात्-जो दान-कुदेशमें-कुकालमें-कुपात्रोंमें-दीजिये है यद्वा सुपात्र को भी असत्कारसे अर्थात् विधि बिना दियाजाता है यद्वा अवज्ञातदान अर्थात् अपमान करके दियाजाताहै सो तामसदान कहाताहै-तामसदान कहनेसे यह सिद्धि पाईगई कि अपात्र को देना भी एक प्रकार का मंददान है किंतु उसकी मंदताके अनुसार फल भी मंदहोगा-और यह बात जो कहीगई कि अपात्रको न देनाचाहिये तिसका यह सिद्धांत है कि उत्तम देश उत्तमकाल उत्तमद्रव्य की निकटतामें कदाचित् पूर्वोक्त पात्रदूरहोवै तौभी उसके निमित्तसे संकल्प छोड़ै और पीछे भेजदेवै या दान वस्तु स्थावर हो तो पात्रको संबोधन पहले भेजकर पीछेदान उसके नामसेही करै-यद्वादेश काल और पात्रभी उपस्थितहै पर दान वस्तु जंगम या स्थावर हो कहीं दूरहै तौभी उसको संबोधन देकर दानछोड़े-फिरभी अपात्र को न देना चाहिये इसका दूसरायह सिद्धांतहै कि जिसको पात्रजानकर संबोधन किया हो कि अमुकामुक देशकालपरअमुकामुक दान वस्तु आपके नामसे संकल्पितकरी जायगी इसप्रकार से सुपात्रको

शुभ विद्या हैं वह सभी वेदका रूपहैं-वेद शब्द ज्ञानमात्रका वाचकहै जिस्से कुछ क-ल्याण विषय जाना जाय १९७॥

सर्वस्यप्रभवोविप्राःश्रुताध्ययनशालिनः। तेभ्यःक्रियापराःश्रेष्ठास्तेभ्योप्यध्यात्मवित्तमाः १९८॥

ऐ०-सर्वस्य अर्थात् सब क्षत्री आदि वर्णोंके मध्ये ब्राह्मण प्रभवहैं किन्तु श्रेष्ठहैं जाति और कर्मसेभी फिर उन ब्राह्मणोंमेंभी जो श्रुताध्ययनशाली अर्थात् श्रुताध्ययन सम्पन्नहों वे अधिक श्रेष्ठहैं किन्तु श्रुत कहिये ज्ञान और अध्ययन कहिये शास्त्रादि विद्याओंका पढ़ना तिन संयुक्तहों वे साधारणोंसे उत्तम-फिर उनमें सेभी जो क्रिया परहों किन्तु शास्त्रोक्त कर्मोंका अनुष्ठानभी करतेहों वे अधिक श्रेष्ठ हैं-फिर उनसेभी अधिक वे उत्तमहैं जो अध्यात्म वित्तमहों अर्थात् इसी शास्त्रमें जो मार्ग आगे कहा जायगा उसके द्वारा आत्मतत्त्व ज्ञान किन्तु आत्मा जो परब्रह्म है तिसका तत्त्वज्ञान कहिये,स्वरूप ज्ञान तिसमें यथार्थ निपुण और तत्परहों १९८ इसप्रकार जाति १ विद्या २ कर्मानुष्ठान ३ आत्मतत्त्व ज्ञान ४ इनके द्वारा एकएक लक्षणसेभी उत्तरोत्तर पात्रता कहकर अब उन्हींके समुच्चयसे परिपूर्ण पात्रता कहते हैं॥

नविद्ययाकेवलयातपसावापिपात्रता। यत्रवृत्तमिमेचोभेतद्धिपात्रंप्रकीर्त्तितम् १९९॥

ऐ०-केवल विद्यासे नहीं अर्थात् श्रुताध्ययन सम्पन्न होनेसेही पात्रता नहीं-तपसा वापि अर्थात् सूखे शमदम आदिकी तपस्यासेभी पात्रता नहीं-अपि शब्दकी लक्षणासे केवल अनुष्ठानमात्र यद्वा केवल जातिमात्रसेभी पूर्ण पात्रता नहीं-किन्तु-जिस पुरुष में वृत्त कहिये अनुष्ठान अर्थात् शास्त्रोक्त धर्मों का आचारभी हो और इमेचोभेकिंतु यह दोनों भी हों कौन एक तौ विद्या १ दूसरी तपस्या २ इन तीनों की एकता में पूर्ण पात्रता समुझी चाहिये परन्तु (च) शब्द के तात्पर्य से ब्राह्मण जाति भी अपे-क्षित है अर्थात् ब्राह्मण जातिके पुरुष में यह तीनों लक्षण हों तब पूर्ण पात्रता हो अन्यथा जहां यह तीनों असंभव हों किंतु एकहीं दो लक्षण की प्राप्तिहो तहां उसके अनुरूप पात्रता समुझी जायगी पर जातित्व लक्षण इस वार्त्ता में अवश्य भावसे अपेक्षित है १९९॥

अधि०-जहां एकही एक लक्षण की प्राप्तिहै तहांभी उत्तरोत्तर उत्तमता ज्ञातव्यहै अर्थात् प्रथम तौ केवल एक लक्षण जातिमात्रका फिर उस्से अधिक विद्या विशिष्टका फिर उस्से अधिक आचार विशिष्ट का फिर उस्से अधिक तपो विशिष्ट का और इ-सीक्रमके अनुसार इनपात्रों में दान करने से फलमें भी उत्तरोत्तर विशेषताहै १९९॥

गोभूतिलहिरण्यादिपात्रेदातव्यमर्चितम्। नापात्रेविदुषाकिंचिदात्मनःश्रेयइच्छता २००॥

मक्ष०-गऊ धरती तिल हिरण्य आदि अर्चित किया हुआ पात्रमें देना उचित है-अपना श्रेय इच्छा करनेवाले विदुष करके अपात्रमें किंचित् भी नहीं देना २००॥

भभि०—यह आदि शब्द सबमें लगता है अर्थात् गऊआदि कहनेसे हाथीघोड़ा आदि भी समुझने जो चतुष्पद दान योग्य प्रसिद्ध हैं-धरती आदि कहने से पृथ्वी ग्राम स्थान यह सभी समुझलेने और धरित्री में बीज ग्रहण वा जनन शक्ति के उपलक्षणसे कन्यादान आदिभी संबंधित हैं-तिल आदिके कहनेसे सर्व धान्यमात्रका निदर्शन है-हिरण्य आदि कहने से सर्व धातुमात्र वा रत्नादि द्रव्योंका निदर्शनहै-यथार्थ में आदि शब्द कहने से सभी प्रकार के दान समुझेगये तिनमें कोई दान करनाहो सो वह दानकी वस्तु अर्चित कहिये संकल्पित करीहुई विधिसहित उनपात्रों को देनी चाहिये जिनका चर्चा इस्से पहले श्लोक में आयाथा-न अपात्रे किंतु क्षत्रियादि यद्वा पतितादि ब्राह्मण को भी नहीं देवै वह कि जो विदुष होवे किंतु पात्र विशेषके द्वाराफल विशेष को जानता हो और दान देकर अपनाश्रेयभी चाहताहो सो। किंचित्अपि अर्थात् थोड़ाभी नहीं देवै २०० ॥

अधि०—थोड़ा भी नहीं देवे इस कथन का यह सिद्धांत नहीं है कि क्षत्रियादियद्वा पतितादि ब्राह्मणों को कुछ भी नहीं या किसी दशा में भी नहीं देवे-किंतु-यहांपर केवल शास्त्रोक्तदान का चर्चा है कि जो वस्तु किसी विशेषफल की कामना से संकल्प द्वारा देनी हो चाहे वह थोड़ी भी हो पर पात्रकोही देवै अपात्रको न देवै-अन्यथा अपना श्रेय भी चाहता हो यह कहने से प्रकट होताहै कि कोई आवश्यक दशापर अपात्र में भी देनेसे निःसंदेह कुछ फल होताहै-हां-पात्रमें देनेसे उत्तमश्रेय की प्राप्ति थी अपात्रमें देनेसे तामसफल होगा यह सिद्धांत है-सोईभगवद्गीतामेंकृष्णद्वैपायन का यहवाक्यहै-कि(अदेशकालेयद्दानमपात्रेभ्यश्चदीयते। असत्कृतमवज्ञातंतत्तामसमुदाहृतम्) अर्थात्-जो दान-कुदेशमें-कुकालमें-कुपात्रोंमें-दीजिये है यद्वा सुपात्र को भी असत्कारसे अर्थात् विधि बिना दियाजाता है यद्वा अवज्ञातदान अर्थात् अपमान करके दियाजाताहै सो तामसदान कहाताहै-तामसदान कहनेसे यह सिद्धि पाईगई कि अपात्र को देना भी एक प्रकार का मंददान है किंतु उसकी मंदताके अनुसार फल भी मंदहोगा-और यह बात जो कहीगई कि अपात्रको न देनाचाहिये तिसका यह सिद्धांत है कि उत्तम देश उत्तमकाल उत्तमद्रव्य की निकटतामें कदाचित् पूर्वोक्त पात्रदूरहोवै तौभी उसके निमित्तसे संकल्प छोड़ै और पीछे भेजदेवै या दान वस्तु स्थावर हो तो पात्रको संबोधन पहले भेजकर पीछेदान उसके नामसेही करे-यद्वादेश काल और पात्रभी उपस्थितहै पर दान वस्तु जंगम या स्थावर हो कहीं दूरहै तौभी उसको संबोधन देकर दानछोड़े-फिरभी अपात्र को न देना चाहिये इसका दूसरायह सिद्धांतहै कि जिसको पात्रजानकर संबोधन किया हो कि अमुकामुक देशकालपर अमुकामुक दान वस्तु आपके नामसे संकल्पितकरी जायगी इसप्रकार से सुपात्रको

प्रतिश्रुत किया हो तिस पीछे उसमें कोईसा पातक आदि संयोग भी प्रत्यक्ष पाया जाय तौ उस कहेहुये दान में से किंचित भी न देवै यह शास्त्रोक्तदानों की प्रतिज्ञाहै॰ भेद-२ अन्यथा दान शब्द केवल देने के भावार्थ पर आरूढ़ है सो वह देना यथा संभव यथाकाल यथाकार्य के संबंधसे सर्वत्र और सबही मानुषजाति मात्रसे अपेक्षित है उसमें भी पात्रता देखीजाती है किंतु प्रथम तौ एक यथा संभव उसमें यहीहै कि किसी को दीनदयालुताकी रीतिसे कुछ देना यद्वा आतिथ्य सत्कार की रीतिसे कुछ देना तहां फिर जाति विद्या आचारतप इनका विवेक नहीं है किंतु कोई जाति हो और विद्या वा आचार आदि उसमेंहों या न हों—सोईदीनकी अपेक्षासे श्रीकृष्णजी ने भगवद्गीतामें यहकहा है कि-(दरिद्रान्भरकौंतेयमाप्रयच्छेश्वरेधनम् । व्याधिनश्चौषधंपश्येन्निरुजस्यकिमौषधम्)-अर्थात्- हे कौंतेय कुंतीपुत्र अर्जुन दरिद्रान्भर किंतु दरिद्रसेपीड़ितोंकाभरणपोषणकुरु —ईश्वरेधनंमाप्रयच्छ-किंतु समर्थमें धनमत अर्पण करो-क्योंकि-औषधंचव्याधिनःपश्येत्-किंच औषधी भी रोगियों कीही करनी उचित है-निरुजस्यकिंऔषधम्-निरोगी पुरुष को औषधी क्या करना-इस लक्षण से यद्यपि कोईसा पूर्वोक्त नियम शेष नहीं है तथापि यह सिद्धांत है कि देना तौ सबही दीनमात्र को चाहै कोई जाति हो परंतु उनमें भी जो कोई दीन जाति या विद्या या आचारया तपस्या से उत्तम हो तौ उसे उसकी उत्तमता के अनुसार अपनी शक्तिकेअनुरूप अधिक देना जो न्यून हो उसे न्यून-ऐसेही आतिथ्य सत्कार की रीति में भी जाति आदि का नियम नहींहै (तथाच)(बालोवायदिवावृद्धोयुवावागृहमागतः। तस्यपूजाविधातव्यासर्वस्याभ्यागतोगुरुः) अर्थात् चाहै बालकहो या बूढ़ा हो या युवान् हो जो कोई अपने घरआवै वह अभ्यागत सबका गुरु किंतु सत्कार योग्यहोताहै इसलिये उसकी पूजाकहिये खान पान दान स्थान आसन आदिसे सत्कारकरनाउचितहै-इसकी दृढ़ता मध्ये याज्ञवल्क्यजीने भी जो कुछकहा है सो ११० के श्लोकमें देखलो-भेद-३ इसके सिवाय प्रत्युपकार भी एक प्रकारका दानहै उसमें भी जाति आदिका नियमनहीं होता अर्थात् जिसमनुष्यसे किसीप्रकारका अपना उपकार होताहो किन्तु कोईभाँतिके छोटेमोटे कामसे भी सहारा मिलता हो या केवल वचनसम्बंधीही सहायता मिलतीहो उसको कुछदेना अथवा किसीप्रकारसे उसका बदला पूराकरदेना यहप्रत्युपकार दानहै कदाचित्कोई अपनी कुबुद्धिसे यहकहे कि इसदानसे क्या कुछपुण्यहोगा यहतौ लोकव्यवहारहै उसे इसप्रकारसे ध्यान कर सोचना चाहिये कि सभी लोक व्यवहारहैं और सभी लोक व्यवहारों में पुण्य होताहै जो धर्म मर्यादके अनुसार कियेजायँ और इसके समुझनेके लिये एक सीधा मार्गहै कि जिसकाम के न करनेसे पापहोगा उसके करनेसे अवश्य पुण्यहोगा भला जब किसीने अपने साथ कुछ भलाई करी और उस

का बदला अपनेसे न दियागया तब कृतघ्नी आपहुयेया नहीं किन्तु जब किसीकेकरे को मेट दिया तब निःसंदेह कृतघ्नीहुये फिर कृतघ्नी के लिये क्या २ प्रायश्चित्त लिखे हैं तौ इस्से निश्चित हुआ कि कृतघ्नी भी पापीहोताहै फिर जब किसी का प्रत्युपकार हमने करदिया तौ कृतघ्न दोष जातारहा और दोषका मिटजाना यही पुण्यका स्वरूप है-हाँ-इतना अंतरहै कि वे शास्त्रोक्तदान संकल्पआदि विधियोंसे होते हैं यहदानदेदेने मात्रसेही होजातेहैं-परन्तु-इसमें पुण्यकेस्वरूपका लक्षण बड़ेसे बड़ा एकयही है कि उनपूर्व उपकारियोंकी योग्यताके अनुरूप प्रत्युपकारकरै अथवा जहांतक बनिआवै अपने पूर्व उपकर्त्ताके साथकमसेकम दूना प्रत्युपकारकरै अथवा निजअशक्तिमेंभी ड्योढ़ेसेभी न्यूनकदाचित्भी न होनेदे क्योंकि उसकेतुल्य उपकारकरनेमेंभी दोषलगा रहताहै और इसप्रत्युपकारके करनेमें बड़ेबड़े योग्यताओंके बिचार आवश्यकहैं और यद्यपि उनसबका लिखना तौ अब यहां पर अपेक्षित नहींहै तथापि एकछोटासा दृष्टांत लिखेदेतेहैं कि तुल्य प्रत्युपकारमें इसभांतिसे दोषलगताहै जैसे एकमनुष्य इतना प्रतिष्ठितहै कि जो अपने जीविका संबंधी कामको करता तौदोघंटेमें ॥) आठआनेपैदाकरलेता उसीने तुम्हारी किसी आवश्यकता परदोघंटेतक लकड़ीचीरीं कि जिस के विना तुम्हाराबड़ा अकाजहुआ जाताथा किंतुचीरनेवाला उसबेरा नहींथा अबइस दशामें यद्यपि उसने मैत्रीभावसे या लोकरीतिसेभी तुम्हारा यह उपकारकिया और यद्यपि लक्कड़फाड़ मिलजाता तौ उसे इतनेकामका एकही -) आनादेनापड़ता परन्तु अब उसका प्रत्युपकार न करनेसे तौतुम्हैं कृतघ्न और कदर्यदोष लगताहै और तुल्य प्रत्युपकार किंतु एकआना देनेसे अधर्मज्ञता और कार्पण्य दोषलगताहै इस्से उचितहै कि उसकीयोग्यताके अनुसारकरना तथापि जो वहमनुष्य ऐसासाधारणहो कि प्रत्यक्ष परिश्रमका वेतन लेसक्ताहै तौ दामोंपर उसकी योग्यता अनुमानकरनी उसभलाईके अनुसार कि इसने हमारेलिये वहकाम किया कि जिसको यहनहीं करता या अपनेलिये औरोंसे करवाताथा (अथवा) वह मनुष्य ऐसाहै कि प्रत्यक्ष परिश्रमका वेतन नहीं लेसक्ता वरनइस वातके चर्चासेभी चिड़परैगा तौ तुमभी उसकेसाथ कोई ऐसा प्रत्युपकारकरौ जिस्से उसकी कोई बड़ीभीर पारहोजाय कुछ इसवातपर ध्यान मतरक्खो कि वहकाम एकआनेकाथा (अथवा) वह मनुष्य ऐसामध्यमहै कि प्रत्यक्षले नहीं सक्ता परहृदयसे कामना रखता है तौ केवल दशपांच रोजटालकर किसी और वहानेसे देदो परउसकी योग्यताका विचारवना रक्खो सो यहवातें उसकेलिये नहींहैं कि जो प्रत्यक्ष वेतनको चुकाकर कामकरै किंतु उसकेलिये वहीरीति जो उसकामकेपेशावालेसे अपेक्षितहो-बस इसीप्रकारसे सर्वत्र सव उपकारोंमें नानाभांतिकीयोग्यताओंका अनुमानकरके प्रत्युपकार करो जिस्से पुण्यकी उन्नतिहो और पापनहीं लगने

पावै यहां पर पापकाभी बड़ालक्षण यहीहै कि कोईअपनेमनमें प्रत्युपकारके न मिलने से दुःखमाने और आगेको उपकारमें हानिहो क्योंकि यहसारासंसारही उपकार और प्रत्युपकार रूपदोचक्रोंके सहारेसे चलता फिरताहै येही इसके पैरहैं-यहदोनों पहिये नहीं होते तो यह संसार शकट एक ठिकाने से हिलभी नहींसक्ता और कोई प्राणी मात्र किसी की बात भी न बूझता कि तुम दुखिया हो या सुखिया इसलिये उसप्रभु ने ऐसा जाल वंधनरचा है कि परस्पर एक एक के आधीन है चाहै राजा हो चाहै प्रजा पर दूसरे की आधीनी सबकेलिये आवश्यकहै इसीलिये उपकार और प्रत्युपकार का परस्पर संबंध है (भेद ४) वह भी एक दान है जो किसी को वेतन ठहरा कर कामालिये पीछे दियाजाता है उसमें भी अपरिमित पुण्य होताहै जो धर्म मर्यादा के अनुसार दियाजावे अन्यथा जो कुरीति से तौ वह भी पापका मूलहै छोटे२ अति स्वल्पकामों का चर्चा है कि जिनकेवेतन का नियम परिनियमित नहीं हो उनमेंपुण्य का यह लक्षण है कि जहां तक बनिआवे वैतनिकों को संतुष्टराखे संतुष्टिकाभी यही बड़ा लक्षण है कि जो उनसे प्रथम ठहरा हो उस्से कुछ अधिक अपनी ओरसे प्रसाद की रीति अनुसार देदेवै तौ संतुष्टहोजावेंगे इस देदेने में कुछ बड़ीसी हानिनहीं किंतु मनकी हारिजीति है कि जब एक दीनसे किसी कामके चारपैसे ठहरे और उसने उसकाम को अपेक्षा अनुसार साधनकरादिया तौ एक छदाम अधिक देदेने में उसकी परमतुष्टि होजायगी और फिर आगे को वही वैतनिक तुम्हारेकामको दौड़कर अतिश्रद्धासे करैगा-मनकी हारिजीति का यह सिद्धांत है कि अपने मनको यह समझालेना कि अगर पहलेसेही सवाचार पैसेठहरे होते तौभी देने होते इस्से हम यही समझैंगे इसकामके सवाचारठहरेथे-इस्से यह सिद्धांत भी है कि ठहराते समय जितना चाहै उतना खींचकर कमठहरालेवे पर देतीसमय ठहरे हुये से कुछ अधिकदेवै और इसवार्त्ता में वैसे कदर्यों के आचरण पर ध्यान नहीं लावै कि अमुक मनुष्यने जो पैसे ३७॥ साढ़े सैंतीसटके बिकते हैं वेही अमुक वैतनिक को छत्तीस के भावमें लगाकरदिये इसमें धेलापैसा रगड़कर कमदेनेसेउसे कुछबड़प्पन मिलाहोगा लाओ ऐसा हम भी किया करैं यह बात अतिमंदों वा कदर्यों की प्रसिद्ध है (बिरले) मंदयही कियाकरते हैं कि प्रत्येक मिहनतीकी मिहनत में काटकपटकरते और उसमें से कुछ पुण्य भी करते हैं वरन वे अपना सिद्धांत यही प्रकट करते हैं कि नीचसे काटकर ऊँच कोदेवैं जिससेपुण्यहो सो यह उनका या तौ पाखंडहै या अज्ञानपनकी छायाहै अर्थात् उनको पुण्य कदाचित् नहीं होसक्ता सिवाय पापके क्योंकि पुण्य अपनी निर्मल कमाईसेही होता अथवा कमाई किसीभांति की हो पर प्रथम परिश्रम करनेवाले की तृप्ति रूप पुण्य करलेवै तब उस प्रकार का किया हुआ पुण्य लगता है अन्यथा जो पुण्य

इसकी शेष व्यवस्था अगले नम्बर में

की शक्ति अपने को न हो तौ न करना उत्तमहै पर यह अन्याय नहीं कि परिश्रमकरनेवाले रोतेजायँ और बिना परिश्रम के लोगों को मुफ्त में देकर पुण्य हो यह सर्व्वथा धर्म्म से विरुद्ध है-सो इस प्रकारके लोग तौ (मंद) कहलाते और वे लोग (कदर्य) होते हैं जो इस प्रकार से काटकपट भी करते और पुण्यका नाम नहीं जानते परन्तु पापी दोनों होते हैं-तथापि उसदशामें पापी नहीं होसक्के जो कोई मिहनती अपने कर्त्तव्य कामको जान बूझकर या निर्गुणता से बिगाड़ैं वरन उस दशा में निपट न देने से भी पुण्य है क्योंकि जो बिगाड़ू दंड पावेंगे तौ आगेकोभी किसी और को दुःख न देवेंगे किंतु कामके बिगाड़ने पर भी वेतनका पाना यह पाप की वृद्धि है (भेद ५) वह भी दान है जो किसी काम का परिनियामित मूल्य प्रसिद्ध होता है जैसे नापित की मिहनत क्षौर कामके मध्ये किसी नगर में अधेला किसी में पैसा किसीमें दो पैसे जहां जैसी रीति हो ऐसेही धोबी आदि औरों कोभी समझ लेना इसमें यह पुण्य और पाप है कि जिस नगर में जिसकाम का जो कुछ परिनियमित हो उसके ऊपर सब किसी को आरूढ़ बुद्धि होजाना अनुचित है क्योंकिवह नियम न्यूनतरसाधारण मनुष्यों के लिये इस हेतु से प्रसिद्ध किया जाताहै कि इस्से न्यून कोई कंगाल भी न देवै या इस्से अधिक किसी कंगाल से न मांगाजाय जिस्से कहा सुनी का उपद्रव उठै परंतु यह सिद्धांत नहींहै कि इस्से अधिक कोई भी न देवै और पूर्वोक्त नियमके आग्रह से अनीति करे (जैसे) बिरले अन्यायी कहीं स्थानांतर में जाकर सिपाही को आज्ञा देदेते हैं कि जाओ किसीनाई को बुलालाओ भला उनके महत्व से नाई भी उपस्थित हुआ दो घड़ी तक उस्से बोलने का भी अवकाश नहीं अपने काममें लगरहे हैं वह उनके प्रताप से कुछकहनहींसक्ता चुपका बैठा है और यह भी अनुमान है कि यह कोई प्रतापी मनुष्य है न जानैं प्रसन्न होकर अपने नामरूपी पुण्यके हेतु से क्या कुछ देडाले भला जव अवकाश हुआ तव हुक्महुआ कि औजार धोओ आप शौच को उठभागे अंत्य दशा उनका क्षौर कर्मभी औरोंकी अपेक्षा दूने तिगुने कालमें होसका जव छुट्टीपाई तव आप तौ स्नान ध्यान को चल दिये किसी नौकरने उसनगर के नियमानुसार पैसा या दो पैसा हाथरक्खे जव उसने कुछ कहा और सेठतक व्यवस्था पहुँची तव पूँछागया कि यहां क्या दस्तूर है किसी ने कहा दो पैसे तव घुड़की मिली वस और क्या चाहता है जो दस्तूर था सो मिलगया निकाल दो गुलकरता है-भला ऐसे अन्यायियों से बूझै कि वह दस्तूर तुम्हारे लिये है जो दो घंटेतक उसके प्राण और जीविका की हानि करी किंतु ऐसे स्थलपर जो काम उस्से दो आनेका लिया हो तौ ढाई आनेके अनुमान देना चाहिये जिस्से पूण्य और प्रतिष्ठा दोनों वनीरहैं नहीं तौ पाप और अपकीर्त्ति तौ सन्नद्ध खड़ीहोटी

रही हैं-पर यह बात उनके लिये नहीं है कि जिनसे सदैव लेना पाता रहैं किंतु वे अवसर पर इकट्ठा समझा करते हैं अर्थात् वह तात्कालिक लोगों का चर्चा है-और उन्हीं तात्कालिकों में जो प्रतापी नहीं किन्तु मध्यम आजीवी हों और नापितआदिकी प्रीति द्वारापुण्य और प्रतिष्ठाके अभिलाषीहों तौ केवल इतनी बात आवश्यकहै कि जहां अधेलेका नियमहो तहां एकपैसा जहां एकपैसेका नियमहो तहां दोपैसे जहां दोपैसेका नियमहो तहां चार अथवा तीन तौ अवश्यहीदेवैं चाहै इसके बदलेमें दो चारपैसे मासिक अपने अन्य खर्चोंमें संकोचकरलें पर इसप्रकारके दान द्वारा अपना पुण्य और प्रतिष्ठा संचयकरैं तबपीछे शास्त्रोक्त दानोंपर दृष्टिडालें निःसंदेह इतना अधिक देनेसे वे नापितआदि उसपरिमाणसे कुछपरिश्रमभी अधिकदेवेंगे जो परिनियमित वेतनसे देतेहैं-जो वारम्वारसदा इसरीति से अधिक देनेमें कुवंधन समझै उसकोभी यहउचितहै कि कभी २ मध्यदशाओंमें जब अपनी इच्छा में आजावे तब दोपैसे उठाकर प्रसादकी रीतिसे अधिकदेदेवै या उत्तीर्ण वस्त्रादिक जैसा लोकव्यवहारहो तौ वहमनुष्यनिःसंदेह धर्मज्ञ और पुण्यात्मानिश्चितहै अन्यथा जो इनमर्यादोंमेंकृपणताकरके उसप्रकारकेदानकिया चाहै तौ पुण्यात्मानहीं वरन पापात्माप्रत्यक्षहै जो किसीकेपरिश्रमको नहींपहिंचानै और दानोंकेफलढूंढ़ताफिरै तो क्या ढूंढ़ेसेमिलसक्तेहैं(भेद ६)वहभी एक (दान) है जो सेवाधर्मसे मासिकआदिरीतों अनुसार दिया जाताहै परउसी अवस्थाताईं दान है जो मर्यादिक और श्लाघ्यरीतोंसेही दियाजावे अन्यथा वहीपीड़ादानहोजाताहै-अर्थात् जिसप्रतिष्ठाका सेवकहो या जिस प्रतिष्ठा वाला काम उसके आधीनहो या जैसीकामकी अधिकताहो या जैसी श्रद्धासे वह कामका परिसाधन करताहो या जैसीउसके परिवारके निर्बाहमें योग्यतापाईजातीहो या जैसीअपने लाभ और ऐश्वर्यो परसंभावना समझी जातीहो इनसभी बातों को न्यूनाधिक भावाभावकी दृष्टिसे बिचारकरके सबकी ऐक्य समताके अनुसार उसके सत्कारसे जोदेवै सोसबदान है फिरचाहै उसके परिनियमित मासिक मध्येहो या उस्से उपरांत किसी और ढंगसे प्रसादआदि रीतोंसेही दियाजावै अथवा किसी अन्यसंबंध द्वारा दिलवाया जावे पर सिद्धांत इस्से इतनाहै कि उसकीसंतुष्टि और योग्यता और परिश्रमका यथावत् इक्कीस बल्कि पच्चीस प्रतिकार और आवश्यक निर्बाह इनमें किंतु नहीं लगने पावै तौ सेवादानहै नहीं तौ इनकी बिपरीततामें पीड़ाप्राण और अपमानमान है और वहीपापका स्थानहै (भेद७) वहभी (सेवादान) है जो मासिक रीतोंसे नियमित नहीं परसेवाके प्रतिकारमें पालन कियाजाय सो यहसेवा भक्तदासकी संभवितहै और भक्तदासवही है जो मासिकआदि रीतोंसे परिश्रमका मुल्य तौ नहीं ठहरावै और न मांगै पर निरंतरसंतोष वृत्तिसे किसीकी सेवामें तत्पर

बनारहताहो ऐसेदासका माहात्म्य पूर्वोक्तसेभी अधिकहै पर जोइच्छाके अनुसारसेवा करसक्ताहो इसका दानमान सत्कारऊर्द्धोक्तसे बिशेषकरना उचितहै क्योंकि वहमुखसे कुछकहता या मांगता नहीं यह पात्रता उसमें अधिकहै परन्तु जबइसकी पात्रताके अनुरूप नहींदियागया तभी केवलदुःखदानहै-क्योंकि दानशब्दका अर्थहीदेनेकेसि-वायरक्षण और पालनआदिपर समाश्रितहै सोजबयथार्थ नहींहोसके तबकेवल दुःख दानउसकी सेवाद्वारा निश्चितहुआ-फिरवहीदान शब्द शुद्धिकेभी अर्थपर समाश्रितहै और शुद्धिशोधनमात्रसे अपेक्षितहै अर्थात् अपनेऊपरसे किसीके ऋणभारका शोधन करना या किसीके परिश्रमका प्रतिकार शोधनकरना या पापसंचयका शोधनकरना फिर वहीदानशब्द छेदन अर्थकाभी बाचकहै और इसमेंभी जो भावशोधनार्थसे पायेगये वह सबसंभवितहैं इसकी कहावतभी लोकमें प्रसिद्ध है कि अमुक बातका पाप काटदो छुट्टीहो इत्यादिनानालक्षण रूपअर्थ एकदानशब्दके प्रसिद्धहैं(भेद८)यद्यपिदानशब्द की अर्थलक्षणा इतनीहैं कियहांपर उनसबका लिखाजानाभी कठिनहै इसलियेयथा संभव अपने२स्थलपर जहांतहां सबलिखेजायँगे तथापि केवलदानमात्रका साधारण स्वरूप एकलिखेदेतेहैं कि-(अर्थानामुदितेपात्रेश्रद्धयाप्रतिपादनम्। दानमित्यभिनिर्दिष्टंव्याख्यानंतस्यवक्ष्यते॥दाताप्रतिग्रहीताचश्रद्धादेयंचधर्मयुक्। देशकालौचदानानामंगान्येतानिषड्विदुः)अर्थात्-पात्रके उदितहोतसंते अर्थोंकाश्रद्धासे पतिपादनकरना यहीदानकालक्षण अभिनिर्दिष्ट है किंतु अभि कहिये सर्वथा कहागया अर्थात् कोई तरहका दानहो परलक्षण सबका यही है उसदानका व्याख्यानभी अगलेश्लोक में कहतेहैं-और पात्रोंका उदितहोना यहकि ऊपरजोछःसात भेदोंसे पात्रोंकेलक्षण कह-चुकेहैं उन्हींमेंसे किसीप्रकारके पात्रको कुछ देनेका समय बर्त्तमान हो कि इससमय इसप्रकारके पात्रको अमुकवस्तु अमुकहेतुसे देनीउचितहै बसयहीउसका उदयहोना कहलाताहै अर्थात् वह अपने लेनेके उचितसमयपर उद्यतहोरहा है उसअवस्थामें अर्थकहिये पदार्थवस्तु जोजो उससमय के देनेयोग्य होतेहों उनका श्रद्धासे प्रतिपा-दनकरना किंतु उससमयपर यहश्रद्धाभी उत्पन्नहो कि अवश्य इसदशा में यहवस्तु इसको देदेनीउचितहै इसप्रकारकी अभिलाषा से प्रतिपादन करै अर्थात् देदेवै सो यह सबतरहके दानोंका अभिलक्षणहै-इसकहनेका यहसिद्धांतहै कि जो इसीरीतिसे दियाजाय सो सबदानमें गिनतीहै चाहै किसीहेतुसे दियागयाहो-अन्यथा वही देना जोसमयटालकर आपहीदिया अथवा अश्रद्धासेदिया किंतु देतेहुयेदुःखमाना अथवा लेनेवालेने मांगनेसे तगादाकरनेसे थुक्काफजीहतीसे लिया इत्यादि कोईसीविपरीत-ता जहांउत्पन्न होगई तौफिर वहदाननहीं किंतुदाता प्रतिग्रहीताआदि दानोंकाप्रत्यक्ष अपमानहै इससे उसदानका व्याख्यान अगलेश्लोकमें यहकहतेहैंकि-दाता १ प्रति-

ग्रहीता २ श्रद्धा ३ देयवस्तु ४ देश ५ काल ६ यह इतनेछः अंग सर्वप्रकारके दानोंमें कहेहैं परन्तु उसअवस्थामें कियह सबकेसब धर्मयुक्तहों किन्तु किसी एकमेंभी कोई सी अधर्मता नहो-सो अधर्मताका स्वरूपयही है कि शास्त्रकी संमति और लोक व्यवहार से कोई विपरीत मर्याद इनमेंनहो-यथा-दाताकी अधर्मता जिसे नदेना चाहिये उसेदेना या कुकर्मके प्रतिकारमेंदेना या सुकर्मके प्रतिकारमें औचित्यसेन्यून देना या समयटालकरदेना या ग्रहीताका जी दुखाकरदेना या अपमानसेदेना अश्रद्धा सेदेना इत्यादि १-प्रतिग्रहीताकी अधर्मता अनौचित्यसेमांगना दाताका जी दुखाकर लेनेकी अपेक्षा करनी या किसकार्य निजसंबंधीकी अपूर्णता यद्वा समयकी अप्राप्ति में अथवा किसीकार्यका विध्वंसकिये पीछेभी प्रतिकारकी अपेक्षाकरनी या धूर्त्तता से या किसीदूसरेके नामसे व्यर्थनिजभागता दृढ़करनी याखई निन्दकता करनीइत्यादि २-श्रद्धाकी अधर्मता भविष्यकालमें किसीकुकर्मकेहेतुसे श्रद्धाकाउत्पन्नहोना याविश्वास घातकीवांछासे श्रद्धाका उत्पन्नहोना इत्यादि ३-देयधनकी अधर्मता अर्थात् वहधन अपनानहीं किंतु परसंबंधीहो यद्वा देकरकुछप्रतिकार लियेपीछे लौटारलेनेके अभिप्राय वालाहोया उतने का लालच दिखलाकर कुछ अधिक आकर्षण करनेके हेतुवालाहो इत्यादि ४-देशकी अधर्मता अर्थात् जो देश जिस वस्तुके देने अथवालेने के लिये प्रति-नियतहै उस्से अन्य देशमें देनेकहे या मांगे या उस मुख्य देशके नामसे लेजाकरकिसी अन्य देश अनुचित में उपस्थित करे इत्यादि ५-काल की अधर्मता जो काल जिस वस्तुके देनेअथवालेनेका प्रति नियत अथवा मर्यादके अनुरूप पायाजाताहो उस्से न्यूनाधिक अवस्था में मांगना यद्वा देना इत्यादि ६॥ ये सब लक्षण केवल सूत्रमात्र यहां पर दर्शाये गये किंतु इनके दृष्टांत बड़े लंबे चौड़ेहैं इसलिये लिखने से छोड़े गये सो सब यथा संभव यथा स्थान अपनी बुद्धिसे अनुमानकरो २०० ॥

पात्र में देने की विधि और अपात्रमें देनेका निषेध दाता के प्रति कहचुके अब आगे प्रतिग्रहीता से कहते हैं॥

विद्यातपोभ्यांहीनेननतुग्राह्यःप्रतिग्रहः। गृह्णन्प्रदातारमधोनयत्यात्मानमेवच २०१ ॥

ऐ०-विद्या और तप इन दोनों से हीन ऐसे पुरुष को प्रतिग्रह नहीं लेना उचित है क्योंकि ऐसा पुरुष प्रतिग्रह को लेताहुआ प्रदान करनेवाले को और अपने आत्माको भी नरक में पहुँचाता है २०१ ॥

अधि०-जहां शास्त्रोक्त अकाम्य दानका चर्चाहो तहां शास्त्रादि संबंधी विद्या और ईश्वर संबंधी तपस्याकी योजना है-जहां केवल प्रतिकार दान या सेवादान आदि का चर्चा हो तहां विद्याके निदर्शन से अपनी २ जाति पेशा यद्वा शरीर संबंधी गुणोंका उपलक्षण है और तपस्या के निदर्शन से निज २ गुण संबंधी उपकार परिश्रमसेवा

कार्य साधकता स्वामिभक्ति आदि समुझना और नरक को पहुँचाना उसमें तद्रूप और इसमेंभीहैं परन्तु इसमें लोक दृष्टिसे प्रथमनिन्दा दुर्नामता अविश्वासताआदि ये अधिक हैं २०१॥

अब यहांपर पात्रदानमध्ये कुछ विशेषता दाताके प्रति कहते हैं॥

दातव्यंप्रत्यहंपात्रेनिमित्तेतुविशेषतः। याचितेनापिदातव्यंश्रद्धापूतंतुशक्तितः २०२॥

अक्ष०–पात्रमें प्रतिदिन देना और निमित्तमें विशेषतासे याचितहुये करकेभीश्रद्धा पूत और शक्ति से दातव्य है २०२॥

अभि०–पात्रों में नित्यही जो कुछ बनि आवै सो अपनी शक्तिके अनुसार और निज कुटुंब के अविरोधसे देना-और निमित्त कहिये ग्रहण आदि पर्व या पुत्रजन्म विवाह यज्ञया किसीअवसर संबंधी सत्कर्मोंके समाज उत्सवपरोपकार सार्वक कल्याणी प्रक्रिया आदि आपड़ने में विशेषता से अधिक और मांगने पर भी देना-परन्तु जो देना सो श्रद्धापूत करके अर्थात् अनिंदासे पवित्रकरके देना किंतु ऐसी श्रद्धा सहित देना जो किसी प्रकार से देने पर भी निंदा न हो और शक्ति से अधिक भी न देना जिस्से पीछे किसी तरहका दुःख उत्पन्न हो-और निज कुटुंबके अविरोधका यह सिद्धांत है कि जिस वस्तुके देदेने से अपने कुटुंब का कोई भृत्यबर्ग स्त्री पुत्रादि में सेयद्वा गुरुवर्ग में से विरुद्धखड़ा करसक्ता हो तौ ऐसी वस्तु नहीं देवै या जिस्से अपने कुटुंब के पालन में न्यूनता पड़नेकी संभावना हो उसको भीन देवै-दूसरा ध्वन्यर्थ इसके पहले चरण में मुख्यता से यही है कि पात्रे प्रत्यहंदातव्यं अर्थात् पात्र जो २०० की अधिकोक्ति में छः सात भेदों से भिन्न २ दर्शायेगये उनको तौ नित्यही देना उचितहै किंतु उनसे नित्यही देने का संबंध लगारहता है इस्से उनकी पात्रता के अनुसार यथा संभव नित्य देना उचितहै और निमित्ते विशेष तो दातव्यं अर्थात् निमित्त जो अभी ऊपर कहचुके हैं उनमें निमित्त के अनुरूप पात्रों को विशेषतासे अधिक देना अपनी शक्ति आदिके विचार सहित-और मांगनेपर देनेका केवल यही अभिप्राय नहीं है कि कोई भिक्षुकता की रीति से निज स्वार्थ के हेतुसेही आपमांगे किंतु कोई सज्जन किसी परोपकार सार्व कल्याणी प्रक्रिया की सिद्धिके निमित्त से मांगे कि तुम अमुक प्रयोजन में हमारे कहने से कुछ देदो तौ ऐंसी दशामें देनेसे अधिक पुण्य और प्रतिष्ठा मिलती है २०२॥

अधि०–युगव्यवस्था के अनुरूपभी दानों के भिन्नरूप पराशरजीने कहेहैंकि-(अभिगम्यकृतेदानंत्रेतास्वाहूयदीयते।द्वापरेयाच्यमानंतुकलौदानञ्चसेवया) अर्थात्-कृत युगमें दाता आपजाकर देतेथे-त्रेतायुगमें ग्रहीताको वुलाकर देनेलगे-द्वापरमेंमांगने पर तत्काल दियाजानेलगा-कलियुगमें सेवा किंतु वड़परिश्रम की मांगा तांगी से देना

दियाजाता है॥ इस का यह सिद्धांत नहीं है कि कलियुगमें इसी प्रकार से देना चाहिये-किंतु इस वाक्य में यह अभिप्राय हेतु गर्भित है कि अद्यापिजो कोईदाता जिसे किसी को किसीरीतिसे कुछदेना अंगीकारहै चाहे कोईभांतिका देनाहो वह ग्रहीताके घर आप जाकर देआवे अथवा किसीरीति से घरबैठे बिना मांगेही पहुँचादेवे तो यह कहाजायगाकि उसने सतयुगरूपी दानकिया अर्थात् सतयुगी रीतोंसे देना उद्धारकिया-ऐसेही जो ग्रहीताको बिना मांगेही बुलाकरदिया तो यह कहनाचाहिये कि उसनें त्रेतायुग की रीति अनुसार देनादिया-अथवा जो ग्रहीताने तगादाकिया और करनेसे तत्काल देना दियागया तो यह कहा जायगा कि उसने द्वापर की रीति अनुसार दान किया-जब ग्रहीता उस्से बारम्बार जाने आने या कहने सुन्ने आदि के परिश्रमसे निकाल पावे तब यह जानो कि वह दान कलियुगरूपी हुआ इस परिश्रमके हेतुसेही, इसको सेवा दान कहते हैं (और) एक वह भी सेवा दान है कि कलियुगमें जब कोई किसीको कुछ पुण्य दृष्टि से भी देना कहता है तब उस्से अनेक भांति के निज स्वार्थरूपीकाम धंधे आदि के प्रयोजन पहले सिद्धकरलेताहै तब देताहै बल्कि बहुधा तो यही कुरीति प्रवर्त्तित है कि उपकारीकोही दानदेतेहैं अर्थात् शास्त्रोक्त अकाम्यदानभी उसीकोदेते हैं जिससे अपनाकुछ उपकार निकलतारहताहै इसीलिये श्रीकृष्णजीने गीतामें कहा है कि (दातव्यमितियद्दानंदीयतेऽनुपकारिणे। देशेकालेचपात्रेचतद्दानंसात्त्विकंस्मृतम्) सोयहसात्त्विकदान अकाम्यदशापर कहाहै-अन्यथा जो राजसदानहै वहउपकारीकोही देनाउचितहै-तथाचश्रीकृष्णः(यत्तुप्रत्युपकारार्थंफलमुद्दिश्यवापुनः। दीयतेचपरिक्लिष्टंतद्दानंराजसंस्मृतम्)इसराजसदानके तीनभेद जो इसीश्लोकमें कहेहैं तिनमें पहलाभेद जो प्रत्युपकारार्थ कहा सोवहीहै जिसकेलक्षण २००कीअधिकोक्तिव्यवस्थामें छःसात भेदोंसे कहचुकेहैं इसलिये यहांपर विशेष लिखनेकी अपेक्षा नहींरही—और ऊपरइसी अधिकोक्तिमें चारोंयुगरूपीदान जो लिखचुकेहैं तिनकेफलभी स्मृत्यन्तरमेंकहे हैं कि (गत्वायद्दीयतेदानंतदनन्तफलंस्मृतम्। सहस्रगुणमाहूययाचितेतुतदर्द्धकम्)—अर्थात् जोदान घरबैठे पहुँचायाजाता उसकाफल अनन्तहै-औरजोबुलाकर दियाजाता उसका फल एकसहस्रगुण रहजाता-औरजोमांगेपर तत्काल दियाजावे तिसकाफलउससे भी आधा किंतु पांचसौगुण रहजाताहै-इसकेपीछे जो कलियुगरूपीदान ऊपरकहचुके उसमें कुछभी फलशेष नहींरहता किंतु निष्फल होजाताहै-सोई पराशरजीनेभी कहाहै कि-सेवा दानंतुनिष्फलम्—अर्थात् सेवारूपी कलियुगदान निष्फलहै-परन्तुयहांपर सेवादानका यहअर्थ नहींहै कि नौकरीआदि काम टहलके बदले दियाहुआ निष्फलहोताहै क्योंकि उससेवाके दानका माहात्म्य २००की अधिकोक्तिमें देखो कैसाउत्तम कहाहै अर्थात् यहां सेवाकासिद्धान्त यहीहै किमांगातांगी आदिकाक्लेश देकरउद्धार करै सो सेवादानहै २०२॥

अबयहांपर सब दानोंकेमध्ये प्रथम गोदानकी विशेषता कहतेहैं॥

हैमशृंगीखुरैरौप्यैःसुशीलावस्त्रसंयुता। सकांस्यपात्रादातव्याक्षीरिणीगौःसदक्षिणा २०३॥
दातास्याःस्वर्गमाप्नोतिवत्सरान्रोमसंमितान्। कपिलाचेत्तारयतिभूयश्चासप्तमंकुलम् २०४॥

ऐ०सह०—(हैमशृंगी) हेमजोसुबर्णतासेमढ़ेहुयेसींगजिसके (खुरैरौप्यैः) अर्थात् रूपा चाँदी केबनेहुये खुरोंसे संयुक्त (सुशीला) कहिये सूधीस्वभावसे किन्तु भरकनीनहीं और बस्त्रभी ओढ़ेहुये (सकांस्यपात्रा) अर्थात् काँसेकापात्र उसकेसाथमें दूधदुहने के लिये उसपात्रका परिमाण यहीहै कि जितना दूध वहदेतीहो उसके भरजानेयोग्य-और (क्षीरिणी) अर्थात् घनादुग्ध देनेवालीहो और (सदक्षिणा) अर्थात् दाताकीशक्ति अनुसारकुछ दक्षिणाभी उसकेसाथहो सोयहदक्षिणा गऊके आहारनिमित्तमें संसूचितहै इसलियेचाहे एकबर्ष मात्रके आहारयोग्य दक्षिणाहो चाहे एकमासकेया जितनेदिनोंतक दूध देसकैगी तब ताईके अनुमानपरहो परन्तु मुख्यसिद्धांत इसकायही है किजितनीबर्षोंताईं वहगऊ प्रतिग्रहीताकेपास रहकरजीसकै उतनेबर्षों के प्रबन्धयोग्य दक्षिणाहो तब ऐसीगऊ दानकरनेकेयोग्यहै२०३॥ इसगऊका दानकरनेवाला दाता स्वर्गकोपाताहै किंतुस्वर्ग में जाकर वहांके भोगोंको भोगताहै उतनी बर्षोंताईं कि जितनेरोमा उसगऊके शरीरमें होतेहैं—और जो कदाचित् यहीगऊ कपिलाभी हो तौ सातकुल पिछलेभी उसदाता सहित निःसंदेह तारदेतीहै २०४॥

भाषि०—निःसंदेह तारदेती है यह निःसंदेहता भूयःशब्दके अर्थसे लीगईहै परन्तु निःसंदेहतारदेना सातकुलका उसीअवस्थामें समझना चाहिये कि जो२ लक्षणगऊके ऊपर ऐक्यार्थमें कहेगये वहसभी बातें यथावत्हों तौ वहकपिला ऐसाफल करसक्ती है किंतुकेवल कपिलाबर्णमात्रके होनेसे यहफल नहींकरसक्ती है क्योंकि कपिलबर्ण नील पीतमिश्रित दोनोंआभाको कहतेहैं किजो ऐसेबर्णकी गऊहो वहकपिला है औरकोई आचार्य रोचनाछबि बर्णको कपिलवर्णकहतेहैं प्रथमतौ बर्णकाबिनिश्चयहोना दुर्लभ है दूसरे निश्चयहुयेपरभी कपिलाकामिलना दुर्लभहै तीसरेकपिलाचाहे एकयासहस्र भी मिलजायँ परउसबातकाहोना क्यासुगमहै कि उसगऊकेजीवन अवधिपर्यंतका प्रबन्ध आहारमध्ये करदियाजाय-संप्रति बहुधा इसप्रकारसे गोदान करतेहैं किजबदेखा यहगऊबूढ़ीहोगई दूधभी थोड़ादेतीहै इसकागर्भिणीहोनाभी अबअसंभवहै अबइसकाखर्चनहीं उठायाजाता लाओ दान करदेवें तौ पुण्यहोगा क्योंकि इसकोबेचैं तौकोई लेतानहीं दूसरे-दुर्नामताभी होगी इससेयही अच्छा है कि एकहलकीसी घंटी और आधआनेका अँगोछा और ढाईपावअन्न आगेरखकर किसीब्राह्मणके पल्लेबाँधें तौ दोआनारोजकी दस्तकसेछूटें-हाधिग् यहनहींसमझते कि जो ऐसीगऊ दानकरने से सातकुलतरतेहोते तौनरकोंकी छावनीउजाड़ होजाती-हां यहकहो कि ऐसीगऊदेने से

निःसंदेह नरकदेशोंकी वसापतमें संपन्नताहोगी क्योंकि दाता और प्रतिग्रहीताआदि अनेकोंको जाकर वहांवसनाहोगा-भला जो गऊकेहाड़ या नाममात्र दानकरने से कुछपुण्यमें विशेषताहोती तौआचार्योंको यहकहनेसे क्याआवश्यकताथी कि घनेदुग्ध वालीहो और जीवन अवधिके आहारयोग्य दक्षिणासेभीसंयुक्तहो कांस्यपात्रभीसाथ हो ओढ़नेकावस्त्र उसकेसाथहो-इनबातोंसे सर्वथा निश्चितयहीहै कि पुण्यका स्वरूप किसीसज्जनके सुखआरामका लक्षण है किंतु जिसमें कोई सज्जन वहुतसी आराम और सुखभोग आदिपावेगा उसमें वहुतसापुण्यहोगा इससे यहबातपाईगई कि ऐसी रीतिसे गऊदीजावे जो उसगऊके पालने या खवाने आदिका झगड़ा प्रतिग्रहीता को न करनापड़े केवल अनायासका दुग्धपानकरनेको मिले जिससे उसके शरीरकेरोमा २ प्रसन्नहोकर आशीर्वादकरें तौ इससे यहभी निश्चितहुआ कि प्रतिग्रहीताकेपास उस गऊकीसेवायोग्य कोईअधिक मनुष्य जो नहो तो एक सेवकभी साथ दियाजावे जैसे कन्याकेसाथमें टहलिनी दीजातीहै जिससे औरभी अधिकपुण्यकी वृद्धिहो सर्वथापुण्य का स्वरूप दूसरेकी आराम निश्चितहै-फिरजबकिसीनेबूढ़ी औरव्यर्थगऊकेहाड़ किसी के पल्लेबांधकर उलटी दोआना रोजकी दस्तक उसकेशिर खड़ीकरी तहां प्रथमतौ उसपर जो विपत्तिवढ़ी यही एकबड़ापापहै दूसरेजो वहग्रहीता कुछसमर्थ और विवेकीहुआ तौ उसगऊका पालन अपने स्वार्थबिना भी करैगा कदाचित् उसमें समर्थ और विवेकताभी नहुई तौनिःसंदेह यातौबेंचैगा या खड़ी २दुःखपावेगी उदरकीअपूर्त्तिमें अथवा किसी संबंधीके ग्राममें करदेगा तौ वहांभी आधुनिक समयमें निर्बाह बड़ादुर्लभहै ग्रामकी हांकीहुई गौओंकी जो दशाहोजातीहै सो आँखोंदेखनेमेंआईहै परअकथनीय है अथवा उसने अपनी ओरसे किसीको पुण्यकर के देदी तौ भी क्या निश्चितहै कि वहग्रहीता उसको कैसेरक्खैगा या किसकेहाथ बेंचैगा-बड़ीसे बड़ी यह बातहै कि उसबेंचनेवालेने अपनी ओरसे किसीको हिंदू या सत्पात्र समझकरबेंची पर नहीं निश्चित कि उससे उसकाभार उठायाजाय या नहीं या वह कहांसेकहां पहुँचावे तौ सर्वथा यहपापकी शृंखला उसपूर्वदाताकेशिरआरूढ़है कि जिसने पहले दानकरके अपनाभार उताराथा-इससे सर्वथादृढ़बिश्वासहै कि यहबिकराल समय अबगोदान करनेका निर्बिकल्प नहींहै क्योंकि जिसकालमें यहआज्ञा उन्नतहुईथी उसकालका प्रभावकुछ औरथा यथार्थ में गोदानसे वहीफलहोताथा कि जो शास्त्रोक्त है—क्योंकि प्राचीन समयोंमें गऊऐसारत्न गिनाजाताथा जैसा संप्रति धरतीका बिसों समझाजाताहै इससे कि जैसा अबछोटेमोटे ग्रामका बिसों कुटुम्बका पालन करसक्ता है उससे भी इक्कीस पहलगोधनसे प्रतिपालहुआकरताथा इसहेतुसे किबनजंगलोंकीवहुतायतके सिवाय प्रत्येक ग्रामों में कुछधरती केवल गौओंके निमित्त छुटी रहती जिसमें

लाखोंगोधनका प्रतिपाल बिनादामोंकेहीहोताथा तबएकगऊका मिलजाना एकग्राम केसमान समझाजाताथा वरनउसदशामें बूढ़ीगऊकाभीलेनादेना इसलिये फलदायक समझाजाताथा कि अगर इससे दूधकासुख नहीं परएकदोबच्चादेदेवेगी तौभी दोबर्षों पीछे गोधन वा गोरसकी वृद्धिघरमें होजायगी जिसने दोबर्षोंकी रखवाली करनीकठिनसमुझी उसनेचाहे तिसग्रामके गोधनमें छोड़दी प्रसूतपीछे घरलाकरबांधी अबइन मेंसे एकौबात नहींबनसक्ती कहीं किसके गोधन में छोड़आवे घर २ मटियाले चूल्हे एकसेहोगये ग्रामोंकी व्यवस्था शहरोंसे पच्चीसहै इनकारणोंसे गोदानकाकाल तौ परधामको सिधारगया परन्तुकहीं२गोदानकादेश अबताईभी बनरहाहै किजैसीव्यवस्था अभी ऊपर लिखचुकेहैं तैसीउनमें बर्त्तमानहे जिसकीइच्छाहो उनदेशोंमें बैठकर गोदानकरै तौ यथोचितफल होसक्ता है परन्तु वहदेश जहांहोंगे तहां तिसकेलिये होंगे हमको कौथिवेदेश यहां नहींआसक्ते हम वहां नहींजासक्ते—अन्यथा जिसको इसदेशमें गोदानकरनेकी श्रद्धाहो उसकेलिये यहीबात बड़ीउत्तमहैहै कि जैसी गऊदेनेकी सामर्थ्य अपनीहो तैसेमूल्यका अनुकल्पकरके दानकरिदेवै यद्वायहबात किजिसकिसीउत्तमपात्र केपास उसकीपालीहुईगऊहो उसेउसका मूल्यदेकर उसीको पूजिकर देदेवै तौ कोई भांतिसे दोषभागीनहींहोसक्ता-या-जोप्रत्यक्षगऊ दानकरनेको इतनीबड़ी सामर्थ्य उसमेंहो कि वहसदेव उसकेदानाघासका प्रबन्धकियेजावे तौ कुछचिंतानहीं-अथवा-सदैव का प्रबन्ध नकरसकनेपरभी एकप्रकारहे परन्तुजब वैसापात्र मिलसकै अर्थात्गोदानका ग्रहीतापात्र ऐसाहो कि प्रथमतौ ग्रामआदि कुछधरतीसे संबन्धवान्हो ऐश्वर्य्य वान्हो उदारहो विवेकीहो जिसके गोविक्रयकी निषेधप्रतिज्ञा निर्बिकल्पहो उदार यहांतकहोकि चाहेगऊ बहिलाहोजाय परसबकेतुल्य बांधकरखवावे जिसमें यहलक्षणहों उसको चाहे तैसीगऊदेदेवै तौभीदोषनहीं परजो ऐसाहोगा वह गोदान लेनेसेभी निषेधरखताहोगा किंतुऐसासंयोग बनिपड़ना बड़ादुर्लभ है इस्से यहीसबसेश्रेष्ठहै कि जो गोदान करनेकी श्रद्धा उत्पन्नहो तौ समयको हाथजोड़कर गोदानका ध्यानकरलेवै और जो कुछबनि आवै सो उसका कल्पकरिकै देदेवै—यतः-(अस्वर्ग्यंलोकविद्विष्टंधर्ममप्याचरेन्नतु) अर्थात् जो बात यथार्थसे शास्त्रोक्तहै औरधर्मरूपभीहै परजिसकेकरनेसे अस्वर्ग्यलक्षण प्रतीतहो किंतु नरककीनिशानी देखपड़तीहो अथवा लोकीनिन्दाकाहेतुहो तौ उसका आचारकरना उचितनहीं-सोइसव्यवस्थामें लोकनिंदासे कुछअपेक्षानहींहै परअस्वर्ग्य लक्षणप्रत्यक्षहै जैसाऊपरसेबर्णनहोता चलाआया सो सबसमझलो २०३।२०४॥

अब सवत्साकाफल कहते हैं॥

सवत्सारोमतुल्यानियुगान्युभयतोमुखीम्। दातास्याःस्वर्गमाप्नोतिपूर्वेणविधिनाददत् २०५॥

ऐ०—सवत्सा बच्चासहित जोगऊ दानकरीजावे पहले कहीहुईविधिसे वहअपने और

बच्चाकेभीरोमतुल्य युगोंपर्यन्त स्वर्गमेंवास करवाती है-युगयहांपर कृतयुग त्रेता आदि से अपेक्षाहै-और यदिपूर्वकहीहुई विधिसे उभयतो मुखी दानकरीजावे तो इसकादाता भी स्वर्गके ऐश्वर्यभोगताहै दोनोंके रोमतुल्य युगोंपर्यंत-उभयतोमुखी अर्थात् जिसका दोनोंओरको मुखहो किन्तु एकओर अपना और एकओर बच्चेका सोईनीचेकेश्लोक में इसके लक्षण कहते हैं २०५॥

यावद्वत्सस्यपादौद्वौमुखंयोन्यांचदृश्यते। तावद्गौःपृथिवीज्ञेयायावद्गर्भंनमुंचति २०६॥

ऐ०—जबताईं बच्चाके दोनोंपैर और मुखभी योनिमें निकलताहुआ याउलभादेख पड़ताहै उतनेकालताईं वहउभयतोमुखीकहलातीहैक्योंकि दोनोंओरको मुखहोगये-और तबताईंगऊ पृथिवीरूपज्ञातव्यहै किजबतकगर्भको नहींछोड़तीहै-अर्थात्इसका दानकरनेसे पृथ्वीदान करनेकाफल होताहै २०६॥

यथाकथंचिद्दत्त्वागांधेनुंवाऽधेनुमेववा। अरोगामपरिक्लिष्टांदातास्वर्गेमहीयते २०७॥

ऐ०—कथंचित् कहिये अतिप्रयत्नसे जैसे बनिआवे तैसेही अर्थात् हेमशृंग आदि विधिनहोसके तौनहींभीसही परपूर्वोक्तविधिसे धेनुकहिये दूधदेतीहुईगऊ यद्वा अधेनु कहिये विनादूधकीभीसही जो वंध्यानहो परन्तु अरोगिणीहो अपरिक्लिष्टा कहिये अतिदुर्बलानहो इसीउपलक्षणसे अतिवृद्धाभीनहो तो ऐसीगऊको भी दानकरके दाता स्वर्गमें पूज्यहोताहै किन्तु वहांसत्कारसहित रहता है—परन्तु ये सबउत्कर्षा उसीसमयकेलिये कहीथीं किन्तुअबकेलिये २०३ और २०४ कीव्यवस्था अनुसार गोदान करना शुभदायक है २०७॥

अब आगेगोदानके अनुकल्प लिखतेहैं॥

श्रांतसंवाहनंरोगिपरिचर्यासुरार्चनम्। पादशौचंद्विजोच्छिष्टमार्जनंगोप्रदानवत् २०८॥

ऐ०—यद्यपि श्रांत संबाहनका अक्षरार्थ तो केवल यही है कि थकेहुये को अपनी पीठपर या अपनी सवारी वा भाड़ेकी सवारीपर चढ़ाकर अपेक्षितस्थानपर पहुंचा देवै परंतु अभिप्राय यहहै कि श्रांत जो कहींसे थकाहुआ आवे उसको आसन शय्या स्थान सेवा आदि आराम देना श्रांतसंबाहन कहलाता है इसमें वह बातें भी सब समझलेना जो अक्षरार्थसे दर्शाई गई—यह श्रांतसंबाहनरूप पुण्यभी गोदानके समान होताहै—ऐसेही रोगीकी सेवा करनी गोदानके समान फल देतीहै—ऐसेही सुरार्चन कहिये देवताकी पूजाभी गोदानके समान फलदेतीहै-ऐसेही महात्माओंके चरण प्रक्षालन करना यहभी गोदानके समान है-ऐसेही द्विजोंकी उच्छिष्ट बुहारनी धोनी मांजनी यह सब गोदानके समान हैं २०८॥

मधि०—देवताका पूजन किंतु हरि हर हिरण्यगर्भादिकोंका गंधमाल्यादिसे आराधन द्विजोंका पादशौच अपने समानोंका और अधिकोंकाभी-रोगीकी सेवा यथा सम्भव

औषधीआदिके देनेसे-यहसब अनुकल्प इसीलिये कहेहैं कि जिसे गोदान करनेकी शक्तिनहो अथवा शक्तिकेहोनेपरभी देशकाल आदिकी विरुद्धता से गोदानकाहोना असंगतहो तहांये अनुकल्पही उसफलको देनेसक्केहैं २०८॥

भूदीपांश्चान्नवस्त्रांभस्तिलसर्पिःप्रतिश्रयान्। नैवेशिकंस्वर्णधुर्यंदत्वास्वर्गेमहीयते २०९॥

ऐ०-भूःपृथ्वी जिस्से किसीप्रकारके लाभकाफल मिलसक्काहो तिसकादान-दीप दीपक जो नित्यंप्रति यद्वा अवसरपाय देवस्थानों वा सत्पुरुषों के स्थानमें पुण्यहेतुसे प्रदीप्त कियेजायँ-अन्नजो असमर्थों वा देवपर अनुद्योगियों को दियाजाय-एवं बस्त्रजो समय २ वा ऋतु २ के अनुरूपदियेजायँ-अंभः जल जो प्रपा आदिसे यद्वा साधारण प्रकारसेभी आवश्यक दशाओंपर पानकरायाजाय-तिलजो अपनीऋतुमें दियाजाय-सर्पिः घृत जो सदैव साधारण अवस्थामेंभी दियाजाय(प्रतिश्रय) जो प्रवासियोंको आ-श्रयदियाजावै(नैवेशिक)जो गार्हस्थ्य धर्मकेलिये कन्यादान दियाजावै-स्वर्ण सुवर्ण जो आभूषणआदि प्रकारोंसे समर्पितकियाजावे(धुर्य)जोयानआदि भारखींचनेके निमित्त से वृषभआदि चतुष्पद दियेजावें-इनपदार्थोंको दानकरनेवाला दातास्वर्गमें जाकर पूज्य होताहै २०९॥

भाषि०-स्वर्गफलहोना यहबाक्य एकसाधारणभाव से मुख्यतात्पर्य पर आरूढ़ है इस्से स्वर्गफल कहनेसे सभीफल समभेगये अर्थात् इसकथनसे उनफलोंका अभाव नहीं समझनाचाहिये जो कहीं शास्त्रांतरमें भिन्नव्यवस्थासे कहेहों-यथा(यत्किंचित्कुरुतेपापंज्ञानतोऽज्ञानतोऽपिवा।अपिगोचर्ममात्रेणभूमिदानेनशुद्ध्यति-एवं-(वारिदस्तृप्तिमाप्नोतिसुखमक्षय्यमन्नदः।तिलदश्चप्रजामिष्टांदीपदश्चक्षुरुत्तमं॥वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः)-इत्यादि-अर्थात् भूमिदानका यहभीफल कहाहै कि जो कुछपाप कराजाता है चाहे ज्ञानसे अथवा अज्ञातभावसे सोसव गोचर्ममात्र धरती दानकरनेसे शोधन होजाताहै-किंतु स्वर्गफल कहनेसे उसमें यहभी गिनतीमेंआगया क्योंकि पापके शोधनहुये विनास्वर्गका मिलनाभी असंगत है-एवं-वारिदः जल दान करनेवाला सर्वतृप्तिरूप फलपाताहै सोभीठीकहै स्वर्गमेंनिःसंदेह तृप्तिहुआकरतीहै-अन्नदानकरनेवाला अक्षयसुखपाताहै-तिलकादानी अपेक्षितप्रजापाताहै किन्तुजैसी प्रजापुत्रादि वहचाहै तैसीमिलती है-दीपदानकरनेवाला नेत्रोंकी उत्तमदृष्टि पाता है-बस्त्रदान करनेवाला चंद्रलोकमें निवासपाता है-घोड़ादेनेवाला अश्विलोकमें निवास पाताहै-इत्यादिफल यहसव स्वर्गफलकहनेसेभी वनेरहे-और गोचर्ममात्रधरतीदान से जोपापोंका परिशोधनकहा सो केवल चर्साभर का अर्थ नहीं है किन्तु गोचर्म का परिमाण वृहस्पतिजीने कहाहै कि-(सप्तहस्तेनदंडेनत्रिंशद्दंडांनिवर्त्तनम्। दशतान्येवगोचर्मदत्वास्वर्गेमहीयते) अर्थात्-सातहाथलंबा वांस एक दंडकहलाता है इसदंडसे

तीस ३० बांस धरतीको एक (निवर्त्तन) कहतेहैं ऐसे दश १० निवर्त्तन परिमाण धरती गोचर्म मात्र कहलातीहै तिसके दान करने से पापों का क्षय होता और पीछे स्वर्गमें पूज्यतामिलतीहै-अतःपरम् (अधिकस्यअधिकंफलम्) यहशंकाकरनीबुद्धिकीभ्रमताहै कि २००की अधिकोक्ति व्यवस्थासे इस स्थलमें अंतर देखपड़ता है-किन्तु दोनोंका सिद्धांत एकहै और अंतरकिंचिन्मात्र भी नहींहै पर जबतक बुद्धिमें समावै नहीं२०८॥

गृहधान्याभयोपानच्छत्रमाल्यानुलेपनम्। यानंवृक्षंप्रियंशय्यांदत्त्वात्यंतंसुखीभवेत् २१०॥

ऐ०-(गृह) स्थान घर जो बनाहुआ संसिद्धहो-(धान्य) नाज अन्नमात्रकोईसा-(अभय) अर्थात् भयभीत का भय दूरि करिके उसको निर्भय करदेना-(उपानत्) जूता मोजा खड़ाऊं आदि पादत्राण मात्र (छत्र) छाता छत्री आदि कोईवस्तु जोवर्षा वा आतप से रक्षा करसक्ती हो-(माल्य) शब्दसे चमेली आदि सुगंधिमान् पुष्प माला अतर फुलेल आदि इनसबका उपलक्षण है-और (अनुलेपन) शब्दसे चंदन कुंकुम आदि अनेक वस्तु जिनका लेपकरने से शरीर और मनोवृत्ति को शीतलता वा प्रसन्नता प्राप्त होती हो-(यान) सवारीमात्र कोई भांतिकी हो-(वृक्ष) जिनसे किसी प्रकारकाफल या छाया आदि का लाभ सुख मिलसक्ताहो-(प्रिय) अर्थात् जिसवस्तु या जिसप्राणी के मिलने पर लालसा किसी को धर्मानुसार अतिशय अभिलाषासहित रहतीहो और वह वस्तु उसको अलभ्यहो उसका प्राप्तकरदेना सो यह प्रिय दान कहलाता है-(शय्या) शयन करने की कोई वस्तुमात्र हो पलँग आदि चाहै वस्त्रों आदि सब उपकरणोंसे संपन्न हों चाहै अपनी अशक्ति अनुसारकेवल एक दो वस्तु शयनसंबंधी हों तौ भी उसका नाम शय्यादान है-इन कहेहुये पदार्थोंको देकर दाता अत्यंतसुखी होता है २१०॥

भाषि०-सिद्धांत निरंतर वही चलाआताहै जो२००की अधिकोक्ति व्यवस्थामें कथन होचुकाहै अर्थात् इन पदार्थोंकोचाहै तिसरीतिसेचाहै तिसको योग्य समझकर देदेने से दानकहलाताहै किन्तु केवल वहीदान नहींहै जो जलकुशके साथदियाजावै अर्थात् अपने संसर्गी और सेवक दासादि को भी पृथ्वी में शयन करते देख दयाभावसेखाट देदेना यह शय्यादान है फिर चाहै पीछे किसी अवधिपर उनसे निवर्त्तनभी करलेनी परै तौ भी उतनी अवधिका शय्यादानहोचुका जितनाआराम उनकोदियागया परंतु (उस)दानी का शय्यादान दानकी पूर्णपदवी को नहींपहुँचसक्ता जिसके आधीन संसर्गी या दासादिक कुऋतुमेंभी बिकृत धरतीपरलोटतेफिरैं और वह धनी किसीकालांतरमेंसौदोसौ मुद्राव्ययकरकेसांगोपांग शय्यादान जलकुशकेसाथकरनेबैठे-सत्यंच (धिक्तस्यचोपदेष्टारंधिग्दानंतञ्चदानिनम्॥धिगीदृग्दानश्रद्धाञ्चयत्रापन्नाहिदुःखमाक्)अर्थात्-आपन्नकहिये संप्राप्तजन आधीन संसर्गी-जहांप्रथम जिसके आपन्नजन-

ही दुःखभागीबनेरहे उसकी ईदृशदान श्रद्धाकोभी धिक्कारहै कि वह शय्यादान आदि दानोंपर बहु व्ययकरनेकी श्रद्धाकरै-और ऐसे कुश्रद्धावान्दानीकोभी धिक्कारहै-और उस कुदानकोभी धिक्कारहै जो उचित पात्रों का भागहरिकैदानहुआ-उसदानी के उपदेष्टाको सबसे अधिक धिक्कारहै जो ऐसा कुत्सित उपदेशकरै-सबसे अधिक यहभाव मूलपाठमें नहीं परंतु उसकी अधिकताकेहीलिये प्रथम नम्बरपर उच्चारणहुआ किंतु पहलापदसबसे उत्तमप्रसिद्ध है इसलिये पहलेपदपर उच्चारणहोनेसे दर्जेअव्वलकी धिक्कार उसकोमिली (भेद २) ऊपर अभिप्रायार्थ में प्रियदान का चर्चाआया और उसका स्वरूप भी वहांपर लिखागया पर उसके स्वरूपका केवल वही लक्षण नहीं है कि कोई ठेठकर अपने शरीरकेही प्रियपदार्थोंको चाहताहो किन्तु धर्म प्रियताभी उसका स्वरूप है दृष्टांत जैसे प्रपा अर्थात् पिआऊका लगाना किसी असमर्थको प्रियहो या विद्यादानादि का प्रबंध करना प्रियहो या दीनोंकी कन्यादान करवानायद्वा कोईसा उपकार करवाना प्रियहो जिसमें सर्व प्रियताके भी लक्षणपायेजातेहों जिसके करवाने में वह आप निष्किंचन है इत्यादि बहुधा लक्षण और भी जानो इसमें यहां तक विशेषता है कि अपना संचित पुण्यभी देदेवै जिस्से प्रियदानकी पदवीसमुभीजातीहो-सोई स्मृत्यंतरका यह वाक्यहैकि-(देवतानांगुरूणांचमातापित्रोस्तथैवच।पुण्यं देयंप्रयत्नेननापुण्यंचोदितंक्वचित्) अर्थात्-देवताओंको और गुरुओंको तथा माता पिताकोभी अपना पूर्वोपार्जित पुण्य किसी आवश्यकता में उनका प्रियसाधनके हेतुसे प्रयत्नकरके देदेवै-किंतु ऐसे संकल्पादिक यत्नों से समर्पित करदेवै कि अपनाफलाधिकार उस्से दूरकरलेवै-सो यहबात केवल मनकी आड़ है अर्थात् फलाधिकार दूरकरनेपरभी दूरहोना बड़ीदूरहै क्योंकि यद्यपिउसपुण्यके दाताने फलका अधिकार अपना दूरइसहेतु से किया कि इसकाफल ग्रहीतापावै जिसके पासकुछ भी पुण्यसंचय नहीं था परंतु अबइस तात्कालिक पुण्यका आनंत्यफलकैसेदूरहोगा जो उसने अपना बहुपरिश्रम या बहुकाल से कमायाहुआ पुण्यएकसाथदानकरिकै परोपकार में लगाया-अर्थात् तत्काल उसके फलकी वृद्धि अनंत गुणहोजाती है-परंतु-चौथे चरणमें कहते हैं कि-(अपुण्यंउदितंचनक्वचित्देयं) अर्थात्-अपुण्य जो अपना पापहै सो कहनेपरभी किंतु मांगेसेभी न कहीं देना यद्वा (अपुण्यं चोदितंक्वचित्नदेयंइत्यन्वयः तत्रापिसएवार्थः) अर्थात् इस अन्वयसेभी वही अर्थहै कि प्रेरितहुआभी पाप कभी न देवै-पापकेभी न देने अथवा देनेका वही हेतुहै कि जैसे पुण्य देदेनेसे बढ़ताहै तैसेही पापभी अनन्तगुण बढ़ताहै किन्तु जो वस्तु दानकरीजायगी वही वृद्धिको पहुँचेगी जैसे धरती में बीज तौ थोड़ा परताहै पर उस बीजकी वृद्धि पीछे बहुतसीहोतीहै-सोई इसका प्रमाण शास्त्रमें यह कहा है कि (यःपापमबलंज्ञात्वा प्रतिगृह्णाति

दुर्मतिः। गर्हिताचरणात्तस्य पापंतावत्समाश्रयेत्। समंद्विगुणसाहस्रमाऽऽनन्त्यंचप्रदातृषु) अर्थात्-जो कोईदुर्बुद्धिजन पापको अवलकहिये थोड़ा यद्वा निर्बलजानिकेदूसरे से लेलेताहै तभीवहपाप उसकेइसगर्हितआचरणसे अर्थात् इसीपापिष्ठकर्मके प्रभाव से उसकी कर्मरेखामें दोहजार गुणकेसमान वृद्धिपाकर समाश्रित होजाता है चपुनः उसपापके प्रदानकरनेवालोंमें अनन्तगुणा होजाता इस्से पापकादेना और लेनाभी निःसंदेह अशुभहोताहै—अनन्तगुणा या दोहजारगुणा उसपरिमाणसे कि जितनावह पाप पहलेथा २१० ॥

सर्वधर्ममयंब्रह्मप्रदानेभ्योधिकंयतः तद्ददत्समवाप्नोतिब्रह्मलोकमविच्युतम् २११॥

भक्ष०—जिस्से ब्रह्म सर्वधर्ममयहोता इसहेतुसे सर्वप्रदानोंसे अधिकहै उसका देनेवाला अविच्युत ब्रह्मलोक पावता है २११ ॥

भभि०—ब्रह्मकहिये वेद उसके निदर्शनसे सभी शुभशास्त्र वा शुभविद्याओंका उपलक्षणहै वहवेद जब सर्वधर्ममय प्रसिद्ध और प्रत्यक्षठहरा क्योंकि वेद वा शास्त्रोंसेही सारेधर्म जानेजातेहैं किन्तु उसकी प्राप्तिसे मनुष्यमें मनुष्यताके लक्षण सर्वथा प्रकट होजाते और सभीपदार्थ धर्म अर्थआदि उसकोसुलभ होजाते हैं तो इसवेदका दान करना सबदानोंसे अधिक फलदायक निश्चितहुआ इसहेतुसे वेदकादान ऐसाप्रबल है कि इसको दानकरनेवाला चाहै और कोईसादान नकरसक्काहो परसभीदान धर्मोंकाफल उसकोमिलताहै कि उसफलके प्रभावसे अविच्युत ब्रह्मलोकका निवास वह पाता है-अविच्युत अर्थात् फिरबीचमें च्युति जिसकी न होसके—और वेदशास्त्रविद्या आदिका दानकरना कुछयहीनहीं कि पोथीको उठाकर जलकुशकेसाथ देदेवै अर्थात् विद्यार्थियोंको पढ़ाना या पोथीदेना वा किसी से दिलवादेना या उनकेअन्न वस्त्रादि का प्रवन्ध करवादेना या उसप्रकारके प्रबन्धमें सबकेसाथ कुछआपभीदेना या विद्या दान शालाओंका निर्माणकरानां किन्तु कोई भांतिसे विद्यासंबंधी कामोंकी सहायता करनी सो सब ब्रह्मदान है २११ ॥

भधि०—इसप्रत्यक्ष सर्बधर्ममय ब्रह्मरूप शास्त्रके ग्राहक आधुनिक जो अपने को यह समुझते होंगे कि हम केवलग्राहक हैं क्योंकि मूल्यभेजा और पत्रमँगवाया सो नहीं किन्तु वेभी ब्रह्मदानके फलभागीहैं इसहेतुसे कि बिचारदृष्टिमें जब सौ ग्राहकोंके निमित्त से यहकाम आरोपितहुआ या आरंभइसका बिच्युत नहीं होनेपाया तो सर्बथा वेही सौमनुष्य इसके मूलकारण समझेगये क्योंकि वेमूल्यदेतेहैं उनकेनिमित्त से इसकी संसिद्धि होतीहै तिसमेंसे दशबीसपचास ऐसे मनुष्यभी इसकी प्राप्तिकरते हैं कि उनसेमूल्य या तो किसीहेतुसे नहींलियाजाता या वे देनहींसक्के या संपादक से मैत्रीभावरखते या उसके संबंधीहैं या सेवकहैं या भिक्षुकहैं या अभ्यागत महात्मा हैं

या सज्जन वा सहायकहैं-याधूर्त्तहैं कि जोलेतेजाते और पीछे से धोखादेदेते या तस्कर हैं जो आंखबचाकर अधिकारीके पीछे लेभागते या कपटीहैं जो कार्यकी साधकतामें कुछकाटकपट करलेतेहैं अर्थात् नानाभांति से अनेक अभिलाषी जो बिनामूल्यदिये अपनी अभिलाष पूरीकरपातेहैं या दशमनुष्य ऐसेहैं जो इसकार्यकी साधकतामेंसे वा धर्मसे अपनापरिवार पालनकरसक्तेहैं यह सारापुण्य उन्हींकेहेतुसे होसक्ता है क्योंकि जो वेभी मूल्य नहीं देते या ग्राहकता नहीं करते तौ किसके शिरपर यहबरात जोड़ी जाती-यथार्थसे वे सत्पात्रग्राहक इसब्रह्मदानके हेतु और फलभागीभी निश्चितहैं-उनसेभी अधिक वे लोग सर्व्वशिरोमणि समझे चाहिये जो ग्राहकों की वृद्धिद्वारा या सहायताकी दृष्टिसे अपनाधन अधिक लगाने द्वारा इसकार्यकी सिद्धिमें तत्परहोरहे हैं-इनसबके पीछे सम्पादकभी निजशारीरक आयास वा उद्योग द्वारा भाव इसब्रह्मदानमें कुछ पुण्यभागी होसक्ताहोगा क्योंकि जो उसने इतना उद्योग बाँधा तौ वेभी सहायतापर उद्यतहुये किन्तु जो उद्योगमें आयास नहीं करता तौ सहायताभी किसकी करीजाती २११॥

दानोंके करनेसे फल कहागया अब एकदशा ऐसीहै कि उसमें दानके न करने परभी दानका फल होताहै सो कहते हैं॥

प्रतिग्रहसमर्थोपिनादत्तेयःप्रतिग्रहम्। येलोकादानशीलानांसतानाप्नोतिपुष्कलान् २१२॥

ऐ०-जो मनुष्य प्रतिग्रह कहिये दानलेने में समर्थ अर्थात् दानलेनेकी योग्यता वाला पात्रभी है और जब कोई दान उसको मिलनेलगै उससमय वह न लेवै किन्तु नकार करदेवै तौ जिस २ दानको मिलतेहुये उसने नहींलिया उसी उस दानके दाताओं को जो लोकफलभागितासे मिलतेहैं उन सारेलोकोंको वहभी पाताहै-यथार्थ से यह बात सत्य है और इसी हेतुसे विरले देश या विरली जातिके ब्राह्मण आदि प्रतिग्रह नहीं अंगीकार करते हैं २१२॥

अधि०-ब्राह्मणआदि कहनेसे इस आदि शब्दका यही सिद्धान्त है कि अन्यजातीय लोगभी क्षत्रिय आदि२०० की अधिकोक्ति व्यवस्था अनुसार उस प्रकारके प्रतिग्रह जो उनको किसी प्रत्युपकार के हेतु से लेलेने योग्य हों जिनके लिये वे पात्रभूत कहलासक्तेहैं अपनी इच्छासे न लेवें किन्तु लेनेसे नकारकरदेवें तौ वेभी उसदान केफलभागी होतेहैं जैसा ऊपर ऐक्यार्थमें लिखागया क्योंकि यथार्थसे जोवस्तुउनको लेलेनी योग्यहै तौउनकीहै किंतु उसकेलेनेसे कोईभांतिकादोष उनको नहींलगसक्ता था जब ऐसीवस्तुको उन्होंने मिलतेहुयेभी न लिया तौ प्रत्यक्ष पुण्यहुआ कि उनकी वहवस्तु जिसकिसीने भोगी तौ वहीपुण्यहुआ जो अपनेहाथमें आजाने पीछे किसीको देदेनेसे पुण्यहोता-यहांपरप्रतिग्रह केवल उसदानकाहीनामनहींहै जो जलकुशकेसाथ

कियाजाता किंतु किसीभांतिकादान२००कीव्यवस्थाअनुरूप अपनेकोमिलताहोचाहै अपनाऋण किसीपरआताहो चाहै किसीपरिश्रमका प्रतिकार कोईदेताहो या अपना धरतीआदिका हक किसीपरशेपहो सो सभी प्रतिग्रहरूपहै इसीलिये ऊपर मूलश्लोकमें ब्राह्मण या क्षत्रियआदि कुछनामनहींखोला किन्तु केवल(प्रतिग्रहसमर्थोपि)यह लिखाहै सो इसीलिये हेतुगर्भितपद रक्खागया कि चाहैकोईहो और वह किसीहेतुसे कुछ प्रतिग्रहलेनेका अधिकारी किसीसे हुआहो और उसप्रतिग्रहको मिलतेहुये भी अपनीइच्छासे चाहैसबछोड़दे या उसमेंसे कुछभाग छोड़देवै तौ उसफलकाभागीहो जो उतनाधनअपनेहाथमें आजानेपीछे दानकरनेसे होनासंभाव्यथा-यतः(प्रतिगृह्णातीतिप्रतिग्रहः) सिद्धांत से इसवार्त्तामें इतनाभेद है कि जोवस्तु ठेठकर अपनेहकमें गिनतीथी जिसका लेलेना अपनेको योग्यथा उसके लेलेनेमें कुछदोषनहीं बरनछोड़ देनेमें पुण्यप्रत्यक्षहै (परंतु) जो प्रतिग्रह ऐसाहो कियथार्थमें वस्तुकिसीभांतिसे अपनी नहींथी किन्तु जलकुशकेसाथ दानकरिकै कोईदेनेलगा तिसप्रतिग्रहके नकार करदेने में तौ वही पुण्यहोगा जो उसकेदानीकोहोता क्योंकि उसको लेलेनेपरभी दानअपनी ओरसेकरदेते तौभी पुण्यहोता इसहेतुसे वहवस्तु अब अपनीमें गिनतीहोचुकी चाहै ली या न ली कुछइसका नियम नहींहै पर लेलेनेमें यह दोषभागिता निःसंदेह अपने को लगैगी कि उसदाताके पापकाभागीहोनाहोगा इसीसिद्धांतसे उसप्रतिग्रहको हाथ में लेलेनेपीछे दानकरनेसे पुण्यनहींहोगा क्योंकि जितनापुण्यहोगा उस्से अधिक पूर्व दातृकापाप अपनेऊपर आरूढ़हुआ तौ ऊँटमटीलाभी बरावर हुआ और प्रतिग्रह लेने का लांछन अपने को निःसंदेह लगा इस्से पहलेसेही नकारकरदेना यह अपनी ओरसे निर्मलपुण्य ठहरा और उसदाताकोभी पाप नहींलगसक्ता जिसकादान इसने फेरदिया क्योंकि वह इसकेपलटे किसी औरको देवैगा-परन्तु इसआशय से पूर्वोक्त दाताओंको निःसंदेह उसग्रहीताके पापोंका भागीहोना होगा जिसका चर्चा यहां पर अभी पहलेआयाथा कि वह अपनी योग्य बस्तुको भी मिलतेहुये सारी या कुछभाग उसमेंसे छोड़देवै तौ दानका फलभागीहो-पुनिवेभी उसकेपापभागी नहींहोसक्तेहैं उस दशामें कि जितनाभाग उनपर किसी ग्रहीताने लेतेहुये छोड़दिया हो उतना किसी पुण्यकार्य में लगादेवै किन्तु अपने भोगोंमें न लावैं २१२॥

अब उन प्रतिग्रहोंका चर्चा करते हैं जिनकालेना किसी दशामेंभी निषिद्ध नहीं और न उनके लेलेनेसे कुछदोष बल्कि नलेनेसे दोष पैदाहोता है॥

कुशाःशाकंपयोमत्स्यागंधाःपुष्पंदधिक्षितिः। मांसंशय्यासनंधानाःप्रत्याख्येयंनवारिच२१३॥

ऐ०-(कुशा) प्रसिद्ध हैं-(शाक)तरकारी फल मूल कंद आदि कोईभी हो(पयः)दूध जो केवल एकदिनके उठावे योग्यहो-(मत्स्याः) प्रसिद्धाः परन्तु जिसको इनसे अपेक्षा हो-

(गंधाः)सुगंधिबस्तु जोकुछदिवसोंके उठावेयोग्यहों-पुष्पं फूलमात्र पूजाआदिकेनिमित्त से-(दधि)दहीथोड़ासा प्रसादयोग्य यद्वा ब्रह्मभोज आदिके हेतुसे अधिकभी कदाचित् (क्षितिः)अर्थात् मृत्तिकामात्र और कुछदिनोंके निवासयोग्य धरती और धरती सदा कोभी(मांस)परजिसको इस्से संबंधहो(शय्या)खाटआदि शयनकी बस्तुचाहे कुछ दिवसोंको आरामयोग्य यद्वासदाकोभी-(आसन)बिस्तर जो बैठने बिछानेयोग्य सदाकोभी (धानाः)बहुरीददरी होलेआदि हरितअन्नके बनायेहुये चाहेथोड़े या बहुतभी(बारि)जल यहचीजें जो कोई आपही बिनामांगे लाकर उपस्थितकरै और प्रसादकी रीतिसे देने लगै किंतु संकल्पकीरीतिसेनहीं तो इनका लेलेनाउचितहै और फेरना या दुलखनकी रीतिसेकुछकहनाअनुचितहैअर्थात्प्रसन्नहोकरअनुग्रहकीदृष्टिसेलेलेनाचाहिये २१३॥

अधि०—मनुजीके कथनसे इनकेसाथमें औरभी कोई२ बस्तु पाईजातीहैं-यथा-(गंधोदकंमूलफलमन्नमभ्युद्यतंचयत्।सर्वतःप्रतिगृह्णीयान्मध्वाज्याभयदक्षिणाम्)अर्थात्-गन्धसुगन्ध अपूर्वताकीरीतिसे-उदक जल किसीतीर्थका यद्वा मिष्टादिहेतुसे कूपकाभी या अलभ्यतामें किसीप्रकारकाभी-मूलफलजातिकी कोईबस्तु अलभ्य यद्वा सुलभ्य हो-अन्न जो आतिथ्यादिरीति या अपूर्व और नबीन जानिकर प्रसादकी रीतिसे कोई बिनामांगे देनेलगे-मधुसहत आदि जो सदाही अलभ्यमें गिनतीहै-आज्य घृत गऊ आदि का जो सद्योत्थितादि हेतुसे प्रसादवत् समर्पणकरै किंतु बाजारसे खरीदकर दानादि कल्पनासे नहीं-अभयकर्म जो अपनीभयभीत दशामें कोई दयादृष्टिसे करने लगै-दक्षिणा जो महत्व वा पूज्यतासे सत्कारादिरीतोंद्वारादेवै किंतु दानादि कल्पनासे नहीं- इसप्रकारसे उद्यतकरीहुई यहसारीचीजें प्रतिग्रहण करलेवै तौ प्रतिग्रहका दोष नहीं लगसक्ता किंतु यह संसारकी शिष्टाचारी मर्यादहै बरन इनके लेनेसे निषेधकर जानेमें उलटादोष लगताहै-क्योंकि जब कोईसज्जन बड़ेउत्साहसे कोई बस्तु तोफह या अपूर्व या प्रसादसमुझकर देनेआया कि अमुकमहात्मा मेराउपहार वा उपायन अंगीकारकरैं तौ मुझकोभी कुछबड़प्पन शिष्टाचारी मध्येमिलै और जब ऐसीदशामें उसने लेनेसे नकारकरके प्रसाद फेरमारा तो देनेवालेकामन कैसा कुम्हिलाकर छोटा सा होगया जानो एकप्रकारकी हत्यासीचढ़गईहो और अपनेमनमें उसने दुःखमानकर यहभीकहा कियहमहात्मानहीं कोईअविवेकी है जोलौकिक शिष्टाचार नहींजानता सो यह इसके चित्तकी दुखमनी और हृदयगत कुवाक्य वा संकोचआदि उसकेपूर्व संचित पुण्यको हरिलेतेहैं जिसने लेनेसे नकाराकियाथा और संचितपुण्यका हरिजानाय हीपापकालक्षणहै-शास्त्रांतरेपि(शय्यांगृहान्कुशान्गन्धानाऽपःपुष्पंमणीन्दधि।मत्स्यान्धानाःपयोमांसंशाकंचैवननिर्णुदेत्) अर्थात्- शय्या खाट जो साधारणरीतिसे किन्तु शय्यादानकी कल्पनासेनहीं-गृहचाहैतिसरीतिसे-कुशा गंधवस्तु-आपःजल-पुष्पपूज-

नादिनिमित्त और मालाआदि रीतोंसेभी-मणि जो दूरदेशी अलभ्य अपूर्व आदि ल-क्षणवाला सोगातके प्रकारसे देवै-दधि दहीप्रसादवत्-मत्स्य जिसके योग्यहों-पयः दुग्ध-मांसजिसके योग्यहो-शाकतरकारीफल मूलआदि इनको नहींत्यागै २१३॥

अत्रआगेइसी २१३श्लोकमेंकहीहुईमर्यादामध्येकुछत्याज्यविशेषभी
कहतेहैं कि सबसे नहींलेलेना॥

अयाचिताहृतंग्राह्यमपिदुष्कृतकर्मणः। अन्यत्रकुलटापंढपातितेभ्यस्तथाद्विषः २१४॥

ऐ०—अयाचित अर्थात् बिनामांगे आहृतकहिये लायाहुआ किसीकरके कोईपदार्थ जिनकीचर्चा ऊपर २१३ में आचुकीहै वह दुराचारीसेभी लेलेनाचाहिये पूर्वोक्तरीति के अनुसार परन्तु कुलटास्त्री १ पंढकहिये नपुंसकआदि पुरुष २ पतित चांडालआदिया जातिसेभ्रष्ट हुआ चाहे स्त्रीहो यापुरुष ३ तथा अपनाशत्रु पुरुष स्त्री कोईहो ४ इनचारों से अन्यत्र अर्थात् इनकादिया पदार्थ उसरीतिसेभी नहीं लेनाचाहिये जोरीति २१३में कहीथी-नपुंसकआदिइसआदिशब्दसेगुदयोनि पुरुषभीसंग्रहीतहै-तस्य लक्षणंचयथा॰ (स्वेगुदेऽब्रह्मचर्याद्यःस्त्रीषुपुंवत्प्रवर्त्तते।सकुम्भीकइतिज्ञेयोगुदयोनिस्तु सस्मृतः२१४॥

अभी इसबार्त्तामें औरभी कुछ विशेषता नीचे कहते हैं॥

देवातिथ्यर्चनकृतेगुरुभृत्यार्थमेवच। सर्वतःप्रतिगृह्णीयादात्मवृत्त्यर्थमेवच २१५॥

ऐ०—ऊपर २१४ की कहीहुई मर्यादा अनुसार आईहुई वस्तुको फेरदेनेसे जिस गृहस्थीके नित्यकर्मधर्मोंमें हानि देखपड़तीहो उसको उनचारोंकाभी दियापदार्थ फेर देना अनुचितहै-अर्थात् देवता अतिथि इनकीपूजा सत्कार के लिये और माता पिता आदि गुरुओं तथा स्त्री पुत्रादि भृत्यवर्गों और निजआत्माकी भी वृत्तिकहिये आजी-वनकेलिये सभीतरहका जो कुछ मिलजावै सो प्रतिग्रहणकर लेवै किन्तु केवलपतित चांडाल आदि अतिकुत्सितोंका तौ भी छोड़देवै पर सिद्धांत इस्से यही है कि जो इतने कहेहुये मुख्यकारणोंमेंसे कोईकारण प्रबलहो तौ ऐसाकरना उचित है अन्यथा केवल अपने आत्माकेही निमित्तसे अनुचित है २१५॥

इतिदानधर्म प्रकरणम्॥

अथ श्राद्ध प्रकरणम्॥

अमावास्याष्टकावृद्धिःकृष्णपक्षोऽयनद्वयम्। द्रव्यंब्राह्मणसंपत्तिर्विषुवत्सूर्यसंक्रमः २१६॥
व्यतीपातोगजच्छायाग्रहणंचन्द्रसूर्ययोः। श्राद्धंप्रतिरुचिश्चैवश्राद्धकालाःप्रकीर्त्तिताः २१७॥

भक्ष॰सह०—अमावास्या अष्टका वृद्धिकाल कृष्णपक्ष दोनों अयन द्रव्यकी प्राप्ति ब्राह्मण यथोक्त का मिलना विषुवती दोसंक्रांतैं सूर्यकीसंक्रांतैं बारह २१६ व्यतीपात योग गजछाया ग्रहणकाल चन्द्रसूर्य दोनोंका श्राद्धकेप्रति रुचिका उत्पन्नहोना यह सब श्राद्धकरनेके काल कहे हैं २१७॥

अभि० सह०—इन दोश्लोकोंसे पार्वणश्राद्ध और वृद्धिश्राद्ध इनके करनेकेकाल निश्चय करते हैं कि कब २ इनको करना चाहिये पुनि इसी प्रसंगसे अन्यश्राद्धोंका भी चर्चा करैंगे-तहां अमावस किन्तु जिसदिन चन्द्रमा नहीं देखपड़ताहै तिसदिनमें भी यह श्राद्ध कियेजाते हैं परन्तु वह अमावास्या जब साठिघड़ीसे अधिक वृद्धिपाकर दोनों दिनमें व्याप्तहो तब दो दिनमेंसे जिस किसीदिन अपराह्णव्यापिनी मिलसक्ती हो तिसदिन करै क्योंकि अपराह्ण पितरोंका प्रसिद्धहै सो उस अपराह्णका यहलक्षणहै कि दिनमानके पांचभाग करिकै चौथाभाग मुख्य समझना जैसे तीसघड़ीके दिनमान में दो २ घड़ीके १५ मुहूर्त्तहुये तिनमें तीन २ मुहूर्त्तके पांचभागहुये ऐसे तीनभागोंके उपरांत चौथाभाग जो तीन मुहूर्त्त यद्वा छःघटिकाकाठहरा तिसको अपराह्णकाल कहते हैं इस अपराह्णकालके समयतक जिसदिन अमावसकी प्राप्तिहोसकै तिसमें श्राद्ध करै सो यह अमावस बारहोंमासकी कही हैं जिस्से बनिआवै बारहमास निरन्तरकरौ अथवा एकदो अमावसमें अवसरके आधीन १ ॥ (अष्टका) चारप्रसिद्धहैं हेमन्त और शिशिर इन दो ऋतुके चारमासमें कृष्णपक्षकी अष्टमीतिथि अष्टका कहलाती हैं तिनमें आश्वलायनऋषिके मतसे श्राद्धकरने का माहात्म्य अधिकहै २ ॥ (वृद्धिकाल) अर्थात् पुत्रजन्म आदिसमयमें जो श्राद्ध कियाजाय वह वृद्धिश्राद्ध कहलाताहै आदि शब्दसे पुत्रका विवाह या द्विरागमन आदिभी अपेक्षितहै क्योंकि उनमेंभी एकमनुष्य की वृद्धि घरमें होजाती है अन्यथा यज्ञोपवीत आदि जिनमें मनुष्यकी वृद्धि नहींहोती पर उनमेंभी संस्कार विशिष्ट जातित्वकर्म धर्मोंकी वृद्धि मंगलकीवृद्धि पुण्यकी वृद्धि हुआ करतीहै इसलिये यह सबकालवृद्धि श्राद्धकेप्रसिद्ध हैं ३ ॥ (कृष्णपक्ष) भी पितरों का पक्षकहलाताहै इसलिये सदैव कृष्णपक्षोंमें चाहै तिसदिन पार्वणश्राद्ध करौ यद्वा उसपक्षमें अपने किसी पितर विशेषकी तिथिमें पार्वणकरौ चाहै समर्थहो तौ रोज २ करौ पर संयोग और बानकके आधीन है ४ ॥ (अयनद्वयम्) अर्थात् उत्तरायण दक्षिणायनकेसूर्य जिसदिनपलटतेहैं वहदिन पार्वण यद्वा वृद्धिश्राद्धकेलिये परमपुनीतहै ५ ॥ (द्रव्यम्) अर्थात् जो २ द्रव्य श्राद्धके लिये उत्तम कहलातेहैं उनमेंसे कोई द्रव्य जिस दिन मिलजावै वही दिन श्राद्धकरनेका मुख्यकाल होजाताहै फिर उसमें किसीपर्व या पुनीतकालकी अपेक्षा शेष नहीं रहती (दृष्टांत) जैसे कृष्णसारनाम मृगमांसके पिंड देनेका अनन्तफल शास्त्रोंमें कहाहै और जिसको इसबातकी अपेक्षा किसी मर्यादा से दृढ़हो कि मेरे पितर मांस पिंडोंसे अतिशय तृप्तहोंगे ऐसे पुरुषको जिस किसीदिन वह अलभ्यमांस मिलजावै उसीदिन श्राद्धकरनेका मुख्यकाल है ऐसे अन्यद्रव्योंके भी मिलजाने पर समझलेना ६ ॥ (ब्राह्मणसम्पत्तिः) अर्थात् जिसप्रकारके ब्राह्मण श्राद्धमें अपेक्षितहोतेहैं जिनकाचर्चा आगे २१८ । २१९ । २२० । इनतीन श्लोकों

में आवेगा ऐसे अलभ्य ब्राह्मण जबकभी मिलजावें या यथोक्त विधिसे करानेवाला आचार्य जबकभी मिलजावे चाहै श्राद्धके कहेहुये काल उसदिन नहींभीहों परउस अवस्थामें वहीकाल मुख्यहोजाताहै ७ ॥ (विषुवत्) अर्थात् विषुवती नामकी दो संक्रांतें प्रसिद्ध हैं उत्तरायण में मेष संक्रांति दक्षिणायन में तुलाकी संक्रांति इनमेंभी श्राद्धका माहात्म्य अधिक उत्तम है ८ ॥ सूर्यकी संक्रांतें जो प्रत्येकमास पीछेआया करती हैं वह भी श्राद्धका उत्तमकाल है-यद्यपि संक्रांति कहनेसे दोनों अयन और दोनों विषुवतीभी आगईं परंतु साधारण संक्रांतोंकी अपेक्षा उनकाफल अधिक प्रकट करनेकेलिये भिन्न कथन है २१६ (व्यतीपात) जो २७ योगोंमें एक योग विशेष प्रसिद्धहै वहभी श्राद्धकालहै ९॥ (गजच्छाया) यद्यपि कोई२ पुरुष हाथीकी छायामेंही श्राद्ध करने को गजच्छाया मानते हैं परंतु यहांपरकालके प्रसंग से वहबात अप्रसंग है किंतु यह योग इसमें यथार्थ घटता है कि-(यदेन्दुःपितृदैवत्येहंसश्चैवकरेस्थितः। याम्यातिथिर्भवेत्साहिगजच्छायाप्रकीर्त्तिता)-अर्थात्-जब चंद्रमा पितृ दैवत्य कहिये मघा नक्षत्रपरहो किंतु मघा जिसदिनहो और हंस जो सूर्यहै सो करनाम हस्तनक्षत्र पर स्थित हो और ऐसी मघाके दिवस याम्यातिथि अर्थात् त्रयोदशीभीहो तो उसदिन गजच्छाया योगजानो परंतु इसमें कृष्णपक्षकीभी अपेक्षा है क्योंकि पितरों का पक्ष वह विख्यात है और यही गजच्छाया योग (कृत्यचिन्तामणि) में भी कहा है तहां प्रत्यक्ष भावसे कृष्णपक्ष कहदियाहै-तथाच-(कृष्णपक्षेत्रयोदश्यांमघास्विन्दुःकरेरविः। यदातदागजच्छायाश्राद्धेपुण्यैरवाप्यते)-अर्थात्- यह गजच्छाया योगश्राद्ध करने के लिये पूर्व पुण्यों के उदयसे मिलसक्ताहै किसी बड़भागी को-इसके सिवाय गजच्छाया योग और भी अनेक प्रकारके शास्त्रों में जहां तहां कहे और वे भी श्राद्धसे संबंधरखते हैं उनकाचर्चा देखो नीचे अधिकोक्तिमें १०॥ (ग्रहणं) अर्थात् चंद्रसूर्यदोनों का उपराग जो राहु करके होताहै वहभी श्राद्धकरने का पर्वरूप एककाल है ११ ॥ इनके सिवाय बिनाकालके भी जबकभी श्राद्धकरनेकी श्रद्धाउत्पन्न होनेसेरुचि आजावै तभीकरो किंतु वहभी एक पर्वकालहै १२ ॥ यह सब श्राद्धकाल विशेषता करके कहे हैं इनसे यह सिद्धांत भी अपेक्षित है कि जिसकिसी कर्त्ताको जिसदिन अपने किसी पितर विशेष का श्राद्ध करना आवश्यकथा वह किसी प्रतिबंधके हेतुसे न होसका तो पीछे उक्तकालोंमेंसे जो कोई काल समीप आजावै उसमें करदेना उचित है २१७॥

अधि०—अष्टका यद्यपि इसके अभिप्रायार्थमें दोऋतुओंसे चार अष्टकाकहे हैं और पहले किसी स्थलपर शास्त्रांतरसे पौषादि तीन मासोंकी कृष्णाष्टमी द्वारा तीन अष्टका सिद्धहुयेथे परन्तु वे तीन तो पूपाष्टका १ मांसाष्टका २ शाकाष्टका ३ इनभेदोंकी विशेषविधि परकहेहैं और यहां पर साधारण भावसे श्राद्धकापर्वकाल निश्चितकिया

है-इस्से दोनोंठीकहैं विरुद्ध नहीं-अथअन्यान्यपिगजच्छायालक्षणानितत्रैकंलक्षणं दर्शोपराह्णकालएवगजच्छाया अर्थात् एकलक्षण तो अमावास्याके दिवस अपराह्ण कालगजच्छाया कहलाताहै-तद्यथा(द्विगुणाह्यात्मनश्छायादर्शेस्यादापराह्णिकी। गज च्छायेतिसाप्रोक्तापितॄणांतृप्तिकारिणी)अर्थात्-अमावसके दिवसठीक २ जिससमय अपने शरीरकी छाया आतपमें खड़ेहोनेसे दूनो अपने शरीरके परिमाणसे लंबीआ-जावे वहछाया आपराह्णिकी कहलातीहै पुनिवही गजच्छायाभी कही है और पितरों की तृप्तिकरनेवाली होतीहै॥ अथद्वितीयलक्षणं-यथा(अमावास्यांगतेसोमेछायाया प्राङ्मुखीभवेत्। गजच्छायातुसाप्रोक्तातत्रश्राद्धंप्रकल्पयेत्)अर्थात्-अमावसमें सोम-बार आजानेपर जिससमय अपने शरीरकी छाया आतपमें खड़ेहोनेसे प्राङ्मुखीहो जावै किंतु पूर्वकी ओरको सीधी चलीजावे वहीगजच्छायाभी कहलातीहै उसीसमय श्राद्धकी कल्पनाकरै तो पितरोंकीतृप्तिहो॥ अथवराहोक्ततृतीयलक्षणं-यथा(सैंहिकेयो यदाभानुंग्रसतेपर्वसंधिषु।गजच्छायातुसाप्रोक्ताश्राद्धंतत्रप्रकल्पयेत्)अर्थात्-सैंहिकेय नामराहुजब पर्वकी संधियोंमें सूर्यको ग्रसताहै वहसमयभी गजच्छाया कहलाताहै उससमय श्राद्धकी कल्पनाकरै तौपितरोंकी अधिकतृप्तिहो-यद्यपि चंद्रसूर्यग्रहणे भो-जनस्य निषेधस्तथापिभोक्तुर्दोषोदातुरभ्युदय इतिमिताक्षराकारः किन्त्वस्मन्मतेभो जनस्यनिर्विकल्पनिषेधान्नतत्रभोजनावसरः भोक्तुरपिदोषापत्तिप्रसंगलक्षणयालोका तिगर्हितत्वाच्चकथंदातुरभ्युदयः यत्रस्वाचारेपिपरस्यपूर्वपुण्यविनाशकत्वावयविदोषा पत्तिस्तत्रनकस्यापिद्वयोःश्रेयइतिनिर्विकल्पान्मैवं-किंतुग्रहणकालमें श्राद्धमात्र करना संसूचितहै और भोजन उसके पश्चात निर्दोषता प्रकटहोने पर संभवितहै क्योंकि मूलवाक्योंमें भी कहीं भोजनकी आज्ञा नहीं पाई जातीहै-यद्यपि भोजनभी सिद्धांत से श्राद्धरूप निश्चितहै उसअवस्थामें कि जबयथोक्ताविधि अनुसार श्राद्ध कियाजाय परन्तु वहबात असंसाध्यहोनेसे वर्तावेमें नहींआती किंतु कुशाओंके पितर औरब्रा-ह्मणभी वनाकर श्राद्धकरनेका प्रचार अव निर्विकल्पहै इसहेतुसे ब्राह्मण भोजनका कर्म पिंडदान क्रियाओंसे भिन्नवत् समझा जाताहै या मतसमझाओ तथापि देशका-ल दोषादोष ग्राह्याग्राह्य प्रयोजनआदिकी व्यवस्था अनुसारसर्वथा अनुचितहै किन्तु ऐसापुण्यभी वृथाहै जिस्से किसीके पुण्य और प्रतिष्ठामें हानिहो ध्यानधरो कि जव अग्रोक्त २१८।२१९।२२० श्लोकोंके अनुसार तो श्राद्धमें ब्राह्मण चाहिये जिन्होंने कैसी २ विद्या वा तपस्या वा त्यागआदिके साधनसे उतनी वड़ी योग्यतापाई फिर वेही जवग्रहणमें परान्नखाने लगेंगे तव क्या पतित नहोजायँगे जोकहो कि होजाओ हमें अपने कामसे कामहै तो निश्चितहुआ कि एकवेरखवाकर फिर उनसे कुछकाम नहीं रक्खोगे किंतु अन्यदशाओंमें और ब्राह्मण ढूंढ़लियेजावेंगे और उनकोभद्दरि-

योंमें मिलादिया जावेगा इससे अगर मिताक्षराकार यहभी लिखदेते कि ग्रहणमें श्राद्धकरे तो भड्डरियोंको जिमावै क्योंकि उनकायहकामहै और जैसीदशाका वहकाम है तैसेही वे भोक्तापात्रहैं तौहमभी उनकेइसलेखको मनोज्ञकरसक्के----श्राद्धनामइससे है कि श्रद्धारूपीप्रेमसे खानेपीनेकी कोईवस्तु या उसके स्थानकुछरोक द्रव्यकिसीप्रेतके नामसे श्रद्धापूर्वक दियाजाय यह तौ श्राद्धका स्वरूपहै सोयही-श्राद्धदोप्रकारका होताहै एक तौ (पार्वण) जो तीन पुरुषोंके नामसे किंतु बाप दादा परदादा या नाना परनाना सरनाना इनकेनिमित्तसे एकसाथ किसीपर्वमेंकियाजावै इसलिये उसको पार्वण कहतेहैं दूसरा (एकोद्दिष्ट) उसे कहतेहैं जो एकहीकिसी प्रेतकेनामसे उसकी तिथिमें या तिथिकेबदले और किसी शास्त्रोक्तकालमें कियाजावै-फिर येहीदोनोंश्राद्ध तीन२प्रकारके होतेहैं अर्थात् नित्यं १ नैमित्तिकं २ काम्यं ३ क्योंकि जो नियतनिमित्तकी उपाधिसे बारम्वार उसीनियतसमयपर कियेगये तौ (नित्य) कहलाये जैसेहर अमावसको या सदाकी अष्टकाओंमें या प्रतिसंक्रांति या प्रतिवर्ष उसकी तिथिमें इत्यादि नाना लक्षण (नित्य) के जानौ-और जो अनियत निमित्तकीउपाधिसे वहसमय आपरनेपर हीकियेजायँ तौ (नैमित्तिक) जानौ जैसेपुत्रजन्मआदि दैवयोगमें-और जोफलकामनाकी उपाधिसेकरना कहाहो वहकियाजावै सो (काम्य) जानौ जैसेस्वर्गफल आदिकीकामनासे कृत्तिकादि नक्षत्रोंमें करना कहाहै या कियाजावै अथवा घरकी प्रेतबाधाआदि शांतकरनेकी कामनासे या संतानआदि होनेकी कामनासे इत्यादि-फिर येहीश्राद्धपाँचविधिके कहलातेहैं अर्थात् एक तौअहरहःश्राद्ध १ पार्वणश्राद्ध २ वृद्धिश्राद्ध३ एकोद्दिष्टश्राद्ध ४ सपिंडी करणश्राद्ध ५ तहां अहरहः श्राद्ध कहिये रोज २ दिन दिनप्रतिमामूली जो कुछ पितरोंके निमित्तसे कियाजाय जैसा १०४ के श्लोकमें पहलेअद्धासे कहचुकेहैं कि-(अन्नंपितृमनुष्येभ्योदेयमप्यन्वहंजलम्) सोई मनुजीनेभी यहकहा है कि-(दद्यादहरहःश्राद्धमन्नाद्येनोदकेनवा। पयोमूलफलैर्वापिपितृभ्यःप्रीतिमक्षयाम्) अर्थात्-दिनदिन प्रति अन्नादि से वा जलसेही या दूध और मूलफल आदि चीजोंसेही श्राद्धदेवै तौ पितरों की अक्षय प्रीतिपावै-शेषनाम सब श्राद्धोंके स्पष्टहैं जिनका चर्चा पहले भी आचुका और इन पांचकी गणनामें फिरआया है २१६ । २१७॥

अबआगे तीनश्लोकोंसे श्राद्धकी संपत्ति रूपभोक्ताजनोंका लक्षणकहते हैं कि ऐसे२ ब्राह्मणादि भोक्ताहों सो यहसंपत्ति विशेषकर चारप्रकारके श्राद्धोंमें समझनी अर्थात् श्राद्धोंके पांचप्रकार जो ऊपर कहचुकेहैं तिनमेंसे पहलाजो (अहरहः) श्राद्धकहलाताहै उसमें कुछइसबातकीअपेक्षानहींहै और जो उसमेंभीकिसीदिवस ऐसावानकबनिआवै तौ अधिक अच्छीबातहैकिंतु-अधिकस्यअधिकंफलम्॥

अग्र्याःसर्वेषुवेदेषुश्रोत्रियोब्रह्मविद्युवा। वेदार्थविज्ज्येष्ठसामात्रिमधुस्त्रिसुपर्णिकः २१८॥

ऐ०–सर्वेषुवेदेषु (अग्र्याः) अर्थात् सभीवेदों में अग्रणी हों इसप्रकार से कि एकाग्र मनोवृत्ति सहित निरंतर निर्भंग पाठकरसक्केहों-दूसरे (श्रोत्रिय) अर्थात् श्रुताध्ययन संपन्न किन्तु अध्ययन तो पढ़ना और पढ़े पीछे विद्वानों के वार्त्तालाप द्वारा अति-कालताईं श्रवण करते करते पढ़ेहुये का सिद्धांत और उससेभी उपरांत अनेकशास्त्रों वा संसारसागर का तत्त्वसार निज हृदयमें हस्तामलकवत् समाश्रित करलेना यह दोनों बात जिनमेंहों वे श्रोत्रिय यद्वा श्रुताध्ययन संपन्न कहलाते हैं या ऐसे समुझ लेना कि श्रुत कहिये परमज्ञान और अध्ययन पढ़ना इनसे संयुक्त हों सो इन दोनों प्रकारोंसे तात्पर्य एकही है-तीसरे (ब्रह्मवित्) कहिये ब्रह्मके जाननेवाले सो उसब्रह्मका स्वरूप आगे इसी शास्त्रमें यथावत् कहा जायगा-चौथा लक्षण (युवा) अवस्थाहै सो सभी लक्षणवाले के साथमें चाहिये किन्तु पूर्वोक्त यद्वा अग्रोक्त सभीब्राह्मण युवाहों अर्थात् अति बालक या अतिबूढ़े शिथिलेन्द्रिय नहीं-पांचवें किन्तु चौथे (वेदार्थवित्) उन्हें कहते हैं जो वेद के अंगभूत मंत्र और ब्राह्मण प्रसिद्ध हैं तिनके अर्थ जानते या लगासक्के हों-पांचवें (ज्येष्ठसामा) उन्हें कहते हैं कि ज्येष्ठसामा नाम सामविशेष किन्तु सामवेदका एक अंगहै तिसके पढ़ने में जो २ व्रत उसकी सांगता में गिनती हैं उनव्रतों के आचरण सहित उसको जो पढ़ता है वहभी ज्येष्ठसामा कहलाता है-ऐसेही छठें (त्रिमधु) नाम ऋग्वेद का एक स्थल है उसके भी पढ़ने में जो २ व्रत नियम कहे हैं उनव्रतों की साधना सहित जो कोई उसको पढ़े वह त्रिमधु कहलाता है-ऐसेही सातवें (त्रिसुपर्णिक) वे हैं कि जिन्होंने त्रिसुपर्ण नामएक देश यजुर्वेद का उसके व्रताचरणों सहित पढ़ाहो-यह इतनेलक्षणवाले ब्राह्मण श्राद्धकीसंपदामें गिनती हैं यह योजना २२० के श्लोकमें से हुई २१८॥

स्वस्रीयऋत्विग्जामातृयाज्यश्वशुरमातुलाः। त्रिणाचिकेतदौहित्रशिष्यसंबंधिबांधवाः २१९॥

ऐ०–(स्वस्रीयः) भानजा-(ऋत्विक्) जिसकेलक्षण पहलेभी किसी२स्थलपर कईबार कहचुकेहैं-(जामातृ) जमाई-(याज्य) जो कोईअपना पूज्यहो-(श्वशुर) ससुरा-(मातुल) मामा-(त्रिणाचिकेत) उसे कहतेहैं जो त्रिणाचिकेत नाम एकस्थल यजुर्वेदका उसके व्रताचरणों सहित अध्ययनकरै-(दौहित्र) धेवता-अपने शिष्य संबंधी बांधव येभीसबश्राद्ध की संपदामें गिनतीहैं २१९॥

कर्मनिष्ठास्तपोनिष्ठाःपंचाग्निर्ब्रह्मचारिणः। पितृमातृपराश्चैवब्राह्मणाःश्राद्धसंपदः २२०॥

ऐ०–(कर्मनिष्ठाः) अर्थात् शास्त्रोंमें कहेहुये कर्मधर्मोंके अनुष्ठानमें तत्परहों-(तपोनिष्ठाः) तपमें शीलरखनेवालेहों-(पंचाग्निः) पांच प्रकारकी अग्निसेवन करनेवाले अर्थात् षट्प्रकारकी अग्निमेंसे एक गार्हपत्य अग्निको छोड़कर शेषपांचोंका सेवनकरै सो पंचाग्नि यद्वा पंचाग्नि विद्याकोही पढ़ाहो-(ब्रह्मचारी) दोप्रकारकेहोतेहैं एकतो उप-

कुर्वाण जोअवधि सहित ब्रह्मचर्य धारणाकरके विद्यासंग्रहकरै दूसरा नैष्ठिकब्रह्मचारी इनदोनोंके लक्षण मर्यादापरिपाटीके आदि खंडमें कहचुके हैं-(पितृमातृपराः) अर्थात् जो माता पिताकी सेवाटहल आराम रक्षा पालन आदिमें व्यसन पूर्वक तत्परहों ये भी सब श्राद्धकी संपदाकही हैं और भी ब्राह्मण शब्द यहां पर फिर कहनेसे पूर्वोक्तों के अभावमें यद्वा उपस्थितिमें भी उनके उपरांत कोरे ब्राह्मणभी दर्शाये गये किंतु यह शब्द किसीका विशेषण नहीं है २२० ॥

अब यहां पर जो वर्जितहैं तिनके लक्षण ३ श्लोकोंसे कहतेहैं ॥

रोगीहीनातिरिक्तांगःकाणःपौनर्भवस्तथा। अवकीर्णीकुंडगोलौकुनखीश्यावदंतकः २२१ ॥

ऐ०-(रोगी) जो प्रसिद्ध महारोगोंसे ग्रसितहो-(हीनातिरिक्तांगः) कोई अंग जिसकेदेह में हीनहो यद्वा अधिकहो जैसे छःउंगली या गूमड़ा बतोड़ा आदि-(काणः)काना एकाक्ष (पौनर्भवः) अर्थात् पुनर्भूस्त्री जिसके लक्षण विवाहके प्रकरणमें६७ के श्लोकसे कहचुकेहैं तिसका पुत्र सो पौनर्भव-(अवकीर्णी) उसे कहतेहैं जिसने ब्रह्मचर्यकी धारणामें स्खलन किंतु वीर्यका विध्वंस किया-कुंड १ गोलक २ इन दोनोंके लक्षण परदारामें उत्पन्नहोना प्रसिद्धहै किंतु पतिके जीवतेहुये अन्य पुरुषतेहो सोतौकुंड और पतिकेमरेपीछे गर्भमें आवै सो गोलक-(कुनखी)जिसके नखसंकुचित होकर बिगड़जावें-(श्यावदंतक)जिसके दांत जन्मके साथही कालेहों और वहभी कि जोपीड़ा बिना मिस्सीआदि से रँगै यह इतने निंदितहैं यहयोजना २२३ में से हुई २२१ ॥

भृतकाध्यापकःक्लीवःकन्यादूष्यभिशस्तकः। मित्रध्रुक्पिशुनःसोमविक्रयीपरिविन्दकः २२२॥

ऐ० -(भृतकाध्यापक)जो वेतन लेकर पढ़ावै-(क्लीव)नपुंसक-(कन्यादूषी)जोभले बुरे दोषोंसे किसी कन्याको कलंकलगावै-(अभिशस्त) उसेकहतेहैं जो ब्रह्महत्याआदिसेंयुक्तहो (मित्रध्रुक्) जो मित्रद्रोहीहो-(पिशुन)जो परायेदोष प्रकटकरनेका स्वभावरखताहो-(सोमविक्रयी) जोयज्ञमेंसे सोमबेंचै यद्वाअमृत बेंचनेवाला अर्थात् जोअन्नादि अमृत वस्त को ब्राह्मण बेंचै तौ अमृतविक्रयी या सोमविक्रयी कहलावै-(परिविन्दकः) परिवेत्ता जो जेठे भाईसे पहले बिवाहकरलेवै या अग्नि परिग्रह जेठसे पहले छोटा करलेवै ये भी इतने निषिद्ध हैं २२२ ॥

अधि०-परिवेत्ता और परिवित्तिदार संग्रहके सिवाय अग्नि परिग्रहसेभी होतेहैं सोई मनुजीने यहकहाहै कि (दाराग्निहोत्रसंयोगं यःकरोत्यग्रजेस्थिते। परिवेत्तासविज्ञेयः परिवित्तिस्तुपूर्वजः)अर्थात् दारा या अग्निहोत्रका संयोग जो कोई छोटाहोकर जेठेसे पहले करताहै वहपरिवेत्ता जानना चाहिये और परिवित्ति दोषवाला वहजेठा कि जिसने अपने होतेहुये ऐसाहोने दिया-ऐसेहीकन्याका दाता जिसने दानकरी वह (परिदायी) दोषवान् कहाताहै और याजक जिसने फेरेकरवाये वह (परियष्टा) दोषवान

कहाताहै-और वह कन्या जिसका दान या परिग्रह हुआ सो (परिवेदनी) दोषवती कहलाती है ये सभी नरकभागी होतेहैं (तथाच) (परिवित्तिः परीवेत्तायया च परिविद्यते। सर्वे तेनरकं यांति दातृयाजकपंचमाः) इस्सेइनको श्राद्धमें भोजन करवानेवालेको भी अतिदोषहै २२२

मातापितृगुरुत्यागीकुण्डाशीवृषलात्मजः। परपूर्वापतिःस्तेनःकर्मदुष्टाश्चनिंदिताः २२३॥

ऐ०-जो कोई किसी परम बलवान् कारण बिना माता पिता गुरुओंको त्याग देवै वह और (कुंडाशी) जो कुंड या गोलक इनका अन्नखावै और (वृषलात्मज) अर्थात् वृषलकहिये अधर्मी जो अपने जातीधर्मको न मानै या जातीधर्मकी निंदा किसीरीतिसे भी करताहो किन्तु किसीरीतिसे धर्मको पीड़ादेताहो उसकी संतान सो वृषलात्मज और (परपूर्वापतिः) अर्थात् पिछला और पहला ऐसेदोपति जिसस्त्रीकेहों तिसकापति परपूर्वापति कहलाताहै किन्तु उन्हींदोमेंसे कोई एक और (स्तेनः) जोबिनादिये किसी की कोईवस्तु किसीरीतिसे हरिलेताहो और (कर्मदुष्टाः) अर्थात् दुष्टकर्मोंके करनेवाले जोशास्त्र बिरुद्ध आचरणवान्हों और (च) शब्दके अभिप्रायसे कितव देवलकआदिभी मनुके कथनसे अपेक्षितहैं येभी इतने श्राद्धविषयमें निन्दितहैं २२३॥

अधि०-(कितव) छलियाको खलको द्यूत आदिखेलनेवालेकोभी कहतेहैं और (देवलक) जो जीविकादि निमित्तसे प्रतिमाओंका परिचार वा स्थापन वा पूजनआदिकरैं और औरोंकोभी प्रोत्साहितकरैं अर्थात् पुजारीजी इतिभाषा प्रसिद्ध पेशेवाले-सोई मनुजीने यहकहाहै कि(चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्रयिणस्तथा। विपणेनचजीवंतो वर्ज्याःस्युर्हव्यकव्ययोः)अर्थात्-चिकित्सक जोचिकित्सासे जीविकाकरैं-देवलक मठोंके पति किन्तु पुजारी-मांसविक्रयी और जो दूकानदारीकी जीविकाकरतेहों ये सर्वप्रकारके ब्राह्मण-हव्यकहिये देवकर्म और कव्यकहिये पितृकर्म इनदोनोंमें वर्जितहैं-और मांसविक्रयी वह कहलाताहै कि जो ब्राह्मणहोकर कोई ऐसी जीविकाकरै जिसमें मांसवेंचनेका अभिप्राय किसी आशयसेभी पाया जाताहो क्योंकि सद्भावसे प्रत्यक्षमांसकाविक्रय कोई तुच्छ ब्राह्मणभी नहीं करताहै जिसकेलिये यहनिषेध लिखाजाता इस्से वहीहेतु मुख्यहै कि किसी लक्षणाकी ध्वनिसे मांस विक्रयका अर्थ जिसपर घटताहो वहमांस विक्रयीहै दृष्टांत जैसे कबूतरोंको पालना और उनके अंडे वा बच्चे ऐसे मनुष्योंके हाथ वेंचना जो मांसभक्षीहों तो यही मांसका विक्रयकरना उनपर निश्चित हुआ इसी प्रकार और भी अनेक लक्षण जानो-देवलकोंका निषेध यहमनुजीका कियाहुआहै और वर्त्तमान समयके लोगबहुधा देवलकों कोही अन्य ब्राह्मणोंकी अपेक्षा उत्तमसमुझकर श्राद्धमें ढूंढ़२कर बुलाते हैं इसीलिये याज्ञवल्क्यजीने इनका निषेध नहींलिखा कि जिसबातकी परिपाटी परगई उसकानिषेधभी क्योंकरना किंतु वहबात उसीसमयमें निषिद्ध समुझीजातीथी और यहभी है कि जब आधुनिक समयमें उस

प्रकारके योग्य ब्राह्मण मिलते नहीं फिर देवलकों कोभी नहीं बुलावे तौ और कहांसे आसक्तेहैं इसलियेवेही अब ग्राह्योंमें गिनती होगये-शास्त्रवक्ताने २१८ से लेकर तीन श्लोकोंमें ग्राह्य ब्राह्मणोंका चर्चालिखा उसीसे प्रयोजन सिद्धहोचुकाथा फिर २२१ से लेकर तीनश्लोकोंमें निषिद्ध ब्राह्मणोंकाचर्चा जोकिया तिसकी कुछ आवश्यकता नहीं रहीथी परन्तु यह निषेध इसी अपेक्षासे लिखागयाहै कि जब पूर्वोक्त योग्य ब्राह्मणों का मिलना न होसके तब अन्यसाधारण ब्राह्मणभी निमंत्रितकियेजांय तिनमें ऐसाकोई न हो जिनका निषेध यहां पर होचुकाहै तीनश्लोकोंसे-(भेद२) इसव्यवस्थासे आधुनिक समयमें देवलकभी लाचारी अवस्थामें ग्राह्यहुये क्योंकि याज्ञवल्क्यजीने समय का रूपक देखकर उनके लिये ग्राह्यताभी नहीं लिखी और त्याज्यताभी नहीं लिखी केवल बीचके साधारणोंमें रखदिये इस्से श्रेष्ठोंके अभावमें वेही न्योतादियेजातेहैं और मनुजीने जब इनकेलिये निषेध लिखाथा तब उससमयमें श्रेष्ठ ब्राह्मण बहुतसे मिल सक्तेथे और देवलक आदि पाखंडी लोगविरले होतेथे क्योंकि प्राचीनसमयमें माठापत्यकर्मोंकी जीविका निन्द्य और वेदशास्त्रसे विरुद्धभी समुझकर कोई नहींकरताथा अद्यापि अवधिसम्बन्धी देशोंके ब्राह्मण माठापत्य नहींकरते परएतद्देशीय गौड़ादि विप्र उसके विना अपने जन्मकी सुफलता नहीं समुझते वरन जिसकुलमें या जिस घरमें मठपरिचर्य्या नहीं होती उसको अन्यलोग और वह आपभी अपनेको मंदसमुझता इसलिये जिसघरमें पहलेसे शून्यताभीहो उसमें कोई ऐसाउद्योगी पैदाहोजाताहै कि ज्यों त्यों कर छोटामोटा मठमन्दिर अपने आजीवनका हेतुखड़ाकरलेता वही कुलदीपक गिनाजाताहै फिरचाहै वह साक्षरहो वा निरक्षर तथैव आचार सुकर्मों वा कुकर्मोंकाभी रखताहो कुछ इसपरदृष्टि नहीं करीजाती किंतु वह प्रतिष्ठितोंकी श्रेणी में आजाताहै-जिस्से कुछभी नहींबनिआता वह इतना तौ अवश्यकरताहै कि अपनेरहने के मकानमेंसे एककोठेमें लीप पोत कुछ सिंहासनआदि उपकरण स्थापितकरके ठाकुरद्वारानाम रखलेताहै अगर मकान नहीं भाड़ेकी दूकानहो तौभी ऐसाकरलेना यह उसकुलमें अहोभाग्यता समुझी जातीहै-इसके सिवाय जिसके पौरोहित्यवृत्तिके दश बीसघरभीहों तौ वह परमभाग्यवंतोंमें गिनाजाता और बिसैवाला कहलाताहै जिस पौरोहित्यके लिये शास्त्रमें कहाहै कि (पौरोहित्यंकर्मगर्ह्यंचलोके) अर्थात्-(च) शब्दसे शास्त्रके सिवायलोकमेंभी पौरोहित्यकर्मनिंद्यहै-तात्पर्य इसकाकेवल यहीहै कि यह मठ मंदिरादि वृत्ति तीर्थवासियों और योगी वैरागियोंका आचरणहोताहै गृहस्थीके लिये शास्त्रोक्त बिधिसे देवाराधन और निर्मलवृत्ति उचितहै क्योंकि जोदेवलक लक्षण संबंधिनी वृत्ति या आचरण उसका द्विजातीको उचितहोता तौ आचाराध्यायमें कहीं तौ उसका चर्चाआता बल्कि एकबड़ा लंबाचौड़ा प्रकरण उसका सबसे भिन्नहोनाचाहिये

यहां का शेष पाठ अगले नम्बर में देखो

था जैसे अन्य आचारोंके प्रकरण भिन्नभिन्न क्रमसे कहतेचले आतेहैं और निषेधके लिये यही प्रमाण उसमें यथावत् संभवितहै जोउसकर्मके कर्त्ताओंकोभी श्राद्धविधिके भोक्तृत्वसे बर्जितकरदिया और उसकर्म संबंधी नामका बिशेषणभी यथार्थसमुझकर दियागया-किन्तु-पूजायाअरिःपूजारिः तद्भाषायामपभ्रंशेपुजारीयदरिवत्पूजनार्थमागतान्द्रव्यानत्तीति(भेद३)इसीश्लोकमें सबसेपहलेमाता पितृगुरुत्यागी जोनिषिद्ध लिखा था उसके साथमें भार्या वा पुत्रादिकोंका त्यागीभी संग्रहीतहै किन्तु वहभी गुरुत्यागी में गिनतीहै जो भार्या अथवा पुत्रादि भृत्यवर्गोंको बिना किसी प्रबलहेतुके त्यागिदेवै-तथाचधर्मः(वृद्धौचमातापितरौसाध्वीभार्यासुतःशिशुः।अप्यकार्यशतंकृत्वा भर्त्तव्या मनुरब्रवीत्)अर्थात्-बूढ़ी अवस्थाके माता पिता और भार्या साध्वी कहिये सुशीला व्यभिचारहीना और शिशु अवस्थाकापुत्र जो अपने आप अपना पालन करने में असमर्थहो यह इतनेसभी भरनेयोग्यहैं चाहै शतधा अकरणीय कर्मोंसेभी धनलावै पर इनका पालन अवश्यकरै इनको त्यागै नहीं और जो त्यागदेवै वही अधर्मीहै उसको श्राद्धमें जिमानेसे पितरोंकी तृप्तिमें न्यूनता होतीहै २२३॥

यहांतक श्राद्ध करने के काल और ब्राह्मणोंकी व्यवस्थाभी कहीगई अबनीचे पार्वणनाम श्राद्धकरनेका प्रकार बतलातेहैं॥

निमंत्रयेतपूर्वेद्युर्ब्राह्मणानात्मवान्शुचिः। तैश्चापिसंयतैर्भाव्यंमनोवाक्कायकर्मभिः २२४॥

ऐ०-श्राद्धकर्त्ता एकदिन पहले शुचिहोकर और आत्मवान् अर्थात् शोक उन्माद आदिसे रहित हो और नियतेंद्रीहोकर पहलेदिवस जाकर पूर्वोक्त लक्षणवाले ब्राह्मणों को निमंत्रितकरै यह कहकर कि कल्हआप श्राद्धका उत्सव अवलोकनकरैं इसप्रार्थना सहित कुछकाल वहां बिलंबितभी होजावै किन्तु कहकर भागैनहीं-और उनब्राह्मणों कोभी निमंत्रित होनेपर मनवाणी कर्म आदिसे संयत होनाचाहिये २२४॥

अपराह्णेसमभ्यर्च्यस्वागतेनागतांस्तुतान्। पवित्रपाणिराचांतानासनेपूपवेशयेत् २२५॥

ऐ०-अपराह्ण अर्थात् मध्याह्नकालमें उन्हीं निमंत्रित ब्राह्मणोंको बुलाकर आवते हुये देखप्रथम समभ्यर्चन करिके अर्थात् स्वागत वचन रूपी पूजासे पूजिकर दृष्टांत यथा आइये विराजिये बड़ा अनुग्रहकिया अहोभाग्य हमारे आपने इसघरको पवित्र किया इत्यादि सत्कार और अभ्युत्थान देकर श्राद्धकर्त्ता पाणि कहिये हाथमें पवित्रा धारण कियेहुये उन्हें पादप्रक्षालन और आचमन कराकर श्राद्धस्थान में विरचेहुये आसनोंपर उपवेशकरावै २२५॥

माधि०-यद्यपि मूल श्लोक में अपराह्ण काल सामान्य भावसे कहा है और अपराह्ण शब्दके भी अर्थ अनेक होते हैं परंतु यहांपर अपराह्ण (कुतप) काल से अपेक्षा रखता है किन्तु कुतप कालके प्रारम्भसेही आसनपर बैठारनेका प्रारम्भ करके पांच

मुहूर्त्त अर्थात् १० घटिकामें सारीक्रिया संपूर्णकरै तो सर्वथा श्रेयस्करहोता है-तथाच-(अह्नोमुहूर्त्ताविख्यातादशपंचचसर्वदा। तत्राष्टमोमुहूर्त्तोयःसकालःकुतपःस्मृतः)-अर्थात् दिनभरके मुहूर्त्त विख्यात हैं सर्वदा दश और पांच १५ दो दो घड़ीके-तिनमें जो आठवां मुहूर्त्त किन्तु ठीक मध्याह्नसे एक घड़ी पहले और मध्याह्न से एकघड़ीपीछे ताईं यह दोनों घटिका कुतप काल कहलाताहै-अपिच-(ऊर्ध्वंमुहूर्त्तात्कुतपात्यन्मुहूर्त्तचतुष्टयं। मुहूर्त्तपंचकंह्येतत्स्वधाभवनमिष्यते)-अर्थात्-कुतपनाम मुहूर्त्त से उपरांतके भी चार मुहूर्त्त उसमें जोड़कर यहमुहूर्त्तपंचक स्वधाभवन होताहै इसमें पितरोंकेनिमित्त से जो कुछ श्राद्ध आदि स्वधाकर्म कियाजावै सो अपने यथोक्त फल को देताहै मुहूर्त्तका परिमाण निर्विकल्प दो घटिकाका परिनियमितहै परंतु दिनके१५मुहूर्त्त कहनेसे केवल ३० घड़ी के दिनमानपर आतेहैं और यद्यपि दिनमान की न्यूनाधिक दशामें दो घटीसे कुछ न्यूनाधिक परिमाण एक मुहूर्त्त का दिनमान के अनुसार करिलेनेसेभी १५ मुहूर्त्त ठीक होसक्ते हैं तथापि श्राद्धकर्मकी व्यवस्थामें कुछ इसबात से अपेक्षा नहीं है अर्थात् केवल वही प्रमाण इसमें लेना संसूचित है कि ठीक २ मध्याह्नके बारह बजे से एकघटी पहले (कुतप) काल का प्रारम्भ होजाता है उसीसे लेकर दश घटिकाताईं स्वधाकर्मोंका विशेष अधिकारहै फिर दिनमान चाहै तितना हो-श्राद्धकी सुफलता मध्ये जैसा एक यह अयोक्त काल संबंधी कुतप होता तैसेही सात कुतप औरभी होतेहैं-यथा-(मध्याह्नःखड्गपात्रंचतथानेपालकम्बलः।रौप्यंदर्भास्तिलागावोदौहित्रश्चाष्टमःस्मृतः॥ पापंकुत्सितमित्याहुस्तस्यसंतापकारिणः। अष्टावेतेयतस्तस्मात्कुतपाइतिविश्रुताः)-अर्थात्-एक तो वही मध्याह्नकाल जिसका चर्चा ऊपर आचुकाहै १ दूसरा खड्गपात्र कहिये गैंड़ेका अर्घा२ तीसरा नैपालदेशकाबहुमूल्यवाला कंबल जो पर्वतीबोली में खार्चा विख्यातहै३ चौथा रौप्यं रुपया चांदी४ पांचवांदर्भकुशा ५ छठां कुतप तिल और तिलके फूल विशेष कर ६ सातवां कुतप गावः गौवें ७ आठवां कुतप दौहित्र कहिये दुहिता का पुत्र धेवता८ यह आठों इस हेतुसे कुतप कहलातेहैं कि (कु) शब्दका अर्थहै कुत्सित बुरा सो कौनहै अपनेपाप कुत्सित होतेहैं तिनको यह आठों वस्तु (तप) शब्दके अर्थसे संताप करनेवाले हैं किन्तु पापों को पीड़ा देकर नाशकरदेतेहैं इसलिये (कु) और (तप) मिलकर कुतपइनकी संज्ञाहुई इस्से श्राद्धमें इनआठों को अवश्य भावसे संग्रहकरै-परंतु इन आठोंमें सातवां कुतप जो गोदानकहाहै सो२२३ और२२४ इनदो श्लोकोंकी उचित मर्यादा अनुसार तौ होसकनाअसंभव और दुर्लभहै इस्से उन्हींदोश्लोकोंकीनिषेध व्यवस्था से प्रत्यक्ष गऊ तौनदेना पर उनकीअनुकल्प व्यवस्थासे उसका अनुकल्प स्वर्णमयी कादानकर्त्तव्यहै सोभी गऊकीसांग मूर्त्तिबनवाकर न करना किन्तु केवलस्वर्णपवश्रद्धा

अधिकशक्तिहो तौ स्वर्णमुद्रा अशर्फी आदि कल्पितकरलेना यहश्रेयस्कर समाचारहै क्योंकि यद्यपि कहीं किसी स्वार्थी शास्त्रमें प्रतिमा बनवाकर दान करना लिखाभीहो तथापि परमार्थी शास्त्र मर्यादापरिपाटी समाचार का यह सिद्धांत नहींहै कि यह ऐसे अनर्थ रूपी भ्रष्टाचार की आज्ञादेसकै जिस्से दाता और ग्रहीता आदि अनेकनरक वासी हों किन्तु ऐसी दशामें उपदेष्टाको सबसे आगे बढ़कर वहांकीभी राह दिखलानेको अवश्यजाना होता है पर जिसको यह स्वीकार हो-अन्यथा ध्यानकरना योग्य है कि जो किसीकी प्रतिमाका पूजन करनेसे ठेठ उसको पहुँचसक्ताहोगा जिसके नाम की वह प्रतिमा किन्तु उपमूर्त्ति कल्पितहुई हो तो क्या उसमूर्त्ति का अपकार या चरण प्रहार आदि नहीं पहुँचताहोगा भला मूर्त्तितौ साक्षात् उसकारूप समुझाजाता पर किसी के हाथसे पत्थर भी फूटजाने का प्रायश्चित्त कियाजाताहै क्या उसमूर्त्ति को तोड़ फोड़कर बेंचने या सांचे में गलवाने वाले अपराधी नहीं होते या केवल स्वार्थ की साधकताही धर्म की निशानी है संप्रति कोई ब्राह्मण ऐसा नहीं जो मूर्त्तिको ले जाकर घरमें दोदिनभी सत्कारसे रखसक्ता हो किंतु सुनारका हथौड़ा उसकी पूजाहै-स्वार्थलिप्सूकहते हैंकि देवता भाव उसमें तभी तकथा कि जब दानसमय मंत्रसे आवाहन किया पीछे बिसर्जन कालसे देवता भाव जातारहा अच्छा जबमंत्रों को यहशक्तिहै तौ आवाहनसे क्या अशर्फी अथवा स्वर्णपत्रमें देवतात्व नहीं आसक्ता-हां-सांगमूर्त्तिमें देवतात्वके न होने परभी उसका खंडनकरना अपराधहै सो भी तत्काल देवताको उसी प्रकार पहुँचैगा जैसामूर्त्तिका पूजन उसको पहुँच सक्ताथा-भलादेवता तौ दूरहैं किसीकी मूर्त्तिमें आवाहनसे नहीं आसक्के पर प्रेमसे दिया अथवा कियाहुआ दूरसेभी अंगीकार करलेतेहैं किसीसे यहनहींकहते कि तुम हमारे नामकी मूर्त्तिकल्पितकरौ या न करौ केवलश्रद्धा और प्रेमके भूखेहोतेहैं (दृष्टांत) मात्रसेमनुष्य परभी ध्यान करनाचाहिये कि तुम किसी प्रतिष्ठित या समर्थ राजाआदि या किसीतपस्वी मनुष्यके नामका एकपुतलाबनाकर अपने द्वार आगेरखकर उसकी पूजा और बहुतसी स्तुति नित्यंप्रति किया करौ या पुतलाके विनाभी नित्यंप्रतिवही आचरण किया करौ अथवा नित्यंप्रति उठकर दो चार घड़ी उसको कूटा पीटा करौ या पुतला के विनाही उसका नामलेकर धरतीमें हाथपैर पीटाकरौ और स्तुतिके बदले दुर्वाक्य मुखसे काढ़ाकरौ-यह वृत्तांत उसको आँखोंसे देखने या कानोंसे सुने परहीदेखो पीछे क्या २ आनन्द उठतेहैं अर्थात् इस उत्तर दशाका करनेवाला अपराधी ठहरकर दंडपावैगा अब कहो कि उसमनुष्यका आवाहन किसने मंत्रों सहित कियाथा जो उसने बुरामाना और दंडदिया वा दिलवाया इसनेतौ विना आवाहनके पुतला या धरती को उसके नामसेही कूटापीटाथा फिर यह अपकार उसको क्योंकर पहुँचगया पुतला

सें भी मट्टीथी-धरतीमें भी मट्टी थी-ऐसेही उस सोने या चांदीकीमूर्त्तिमें यद्यपि केवल धातु है क्योंकि देवताका आवाहन जो कियाथा सो विसर्जनकरदिया वतलातेहो पर नाम तो उसका वही वनरहाहै जिसके नामसे तुमने वनवाई या दानमें पाई फिरउसको जवहथौड़ा से तुड़वाई और सांचेमें गलवाई तो वह दंड क्या न देगा जिसके नामसे वनवाकर यह अपकार किया या करवाया इस्से यह निश्चय जानो कि संसारमें सारे काम केवल नामसेही सिद्धहोते हें नामकेही लिये किये जातेहैं नामके लिये नामीनर अपने धनप्राण देदेतेहं नामसे मारेजाते हें नामसे कुब्रकमाखाते हैं नामसे लज्जित होजाते हें नामसे प्रशंसापाते हैं नामसे दुर्नाम होजाते हैं नामविना किसी चीज का पतानहीं लगसक्ता नामसे दुर्लभ वस्तु भी सुलभ होजातीहै जिनको मंत्रकहतेहैं उनमें भी देवताओंके नाम या उनके वीजोंके नाम मात्रहोतेहैं नामके वंधनमें सारा संसार फँसाहुआ खड़ा है-सोई गोसाईंतुलसीदासजीने कहा है कि-(देखियरूपनाम आधीना। रूपज्ञाननहिंनामविहीना)२२५॥

युग्मान्दैवेयथाशक्तिपित्र्येऽयुग्मांस्तथैवच। परिस्तृतेशुचौदेशेदक्षिणाप्रवणेतथा २२६॥

मक्ष०—देवश्राद्धमें यथाशक्ति युग्म ब्राह्मणोंको तथैव पित्र्यश्राद्धमें अयुग्मोंकोशुचिदेश तथापरिस्तृत और दक्षिणाप्रवण में-बैठारै यहऊपरसे जुड़ा २२६॥

अभि०—शुचिदेश कहिये गोमय आदिसे लिपेपुतेमें वहीदेश अर्थात् स्थानदक्षिणाप्रवणभीहो किंतु दक्षिणओरको अवनत झुँकाहुआहो फिर वही स्थल परिस्तृतकहिये सव ओरसे प्रच्छादित कियाहो तिसमें पूर्व श्लोकमें कहेहुये सूचित आसनोंपर पूर्वोक्त ब्राह्मणोंको बैठावै तिनकी यहसंख्याहै कि जोश्राद्धकर्म देवसंबंधी अर्थात् आभ्युदयिक वृद्धिश्राद्ध कियाहो तो युग्मकहिये समसंख्या ब्राह्मणोंकी अपनी शक्तिअनुसारकरै जैसे पितापक्षमें बिश्वेदेवाओंके दोदो और माता दादी परदादी इनके दो दो भिन्न २ एकएकके यद्वा शक्तिअनुसार तीनोंके नामसे दो ब्राह्मण ऐसेही पिता पितामह प्रपितामह इनतीनोंके दो दो भिन्न २ या तीनोंके नामसे दोही और जो इस्से अधिक शक्ति अपनेको हो तो चार २ छः२ आठ२ इत्यादि समसंख्या करिलेवै-(इसी प्रकार)-नाना पक्षमेंभी तीनों वर्ग भिन्न२ समुझलेने समसंख्या द्वारा (औरजो) पितृसंबंधी अर्थात् पार्वण श्राद्ध किया हो तो अयुग्म कहिये बिषम संख्या ब्राह्मणोंकी करै दृष्टांत जहां दो दो कहेथे तहां एक २ या तीन२ या पांच २ इत्यादि दोनों पक्षमेंसमुझलेना २२६॥

यहदोनों श्राद्धोंका सामान्यभेद कहा-अबकेवल पार्वणमध्ये दैव औपित्र्यकर्मका विशेष प्रकार कहतेहैं॥

द्वौदैवेप्राक्त्रयःपित्र्येउदगेकैकमेववा। मातामहानामप्येवंतंत्रंवावैश्वदेविकम् २२७॥

अक्ष०-द्वौदैवेप्राक्-त्रयःपित्र्येउदक्-वाएकैकंएव-एवंमातामहानामपि-वैश्व देवि-कंतंत्रंवा २२७॥

भभि०-(दैवे) नामवैश्वदेवे अर्थात् देवसंबंधी स्थान जो बिश्वेदेवाओंका तिसमें दो ब्राह्मण-प्राक् अर्थात् पूर्वमुख बैठारने चाहिये-और-पित्र्येनाम पित्रादिस्थाने अर्थात् पिता पितामह प्रपितामह इनतीनोंके स्थानपर त्रयोब्राह्मणा उदक् किंतुतीन ब्राह्मण उत्तर मुखबैठारे सोई तीनोंकाएकएकहोगया (अथवा) यहभी न होसके तौ इसकाबि-कल्पहै कि सर्वत्र एकैकं अर्थात् सभीजगहएकएकहो किन्तु बिश्वेदेवाओंकेस्थानपर भी एक और पिता आदितीनोंके स्थानपरएकही यह निर्वाहकी रीतिहै-ऐसेही नाना आदिकाभी व्यौरासमुझलेना किन्तु जोकुछ ऊपर अर्द्धश्लोकके अभिप्रायार्थमें पिता पक्षकाबर्णन किया सोईबिधि नानापक्षमें भी जानो-और-वैश्वदेविकंतंत्रंवा अर्थात् वै-श्वदेवकर्म किन्तु बिश्वेदेवाओंके ब्राह्मणसोबिकल्पसे तंत्ररूपभीकरलेना अर्थात् जहां ऊर्ध्वोक्त बिकल्पभी न होसक्ताहो तहां विश्वेदेवा पितापक्ष और नानापक्ष दोनों के एकत्रकरलेना यहभी एकनिर्वाहकी रीतिहै (तंत्रशब्दसमुदायकावाचकहै) २२७॥

मधि०-जब किसीको दोही ब्राह्मण मिलसकें या दोसे अधिक करनेकी सामर्थ्य न हो तब वैश्वदेवके स्थानपर पत्तल कल्पित करके उन दोनों ब्राह्मणों को पिता और नाना दोनों पक्षोंके स्थान पर बैठारै-सोई वशिष्ठजीने कहाहै कि-(यद्येकंभोजयेच्छ्राद्धे दैवंतत्रकथंभवेत्। अन्नंपात्रेसमुद्धृत्यसर्वस्यप्रकृतस्यच॥ देवतायतनेकृत्वाततःश्राद्धंप्रव र्त्तयेत्। प्रास्येदन्नंतदग्नौतुदद्याद्वाब्रह्मचारिणे)-अर्थात्-जो श्राद्धमें एकहीको जिवांवे तहां दैवश्राद्ध किन्तु विश्वेदेवा सम्बन्धी कर्म कैसे होवै इसलिये उनसबोंके नाम का अन्नपात्रोंमें निकालकर उनके और देवताके भी स्थानपर रखकरपीछे श्राद्धका प्रवर्त्तन करै फिर वह अन्न भी या तो अग्निमें जिमादेवै या किसी ब्रह्मचारीको देदेवै-यथार्थ से आभ्युदयिक और पार्वण श्राद्ध में कुछ विशेष अंतर नहींहै क्योंकि आभ्युदयिक उसी को कहते हैं जो वृद्धि श्राद्धके नाम से विख्यात है इसलिये कि वह अभ्युदयके समय पर कियाजाताहै और उसके करनेसे आगेको धनजन आदि अभीष्टकामोंकी वृद्धि अभ्युदय पूर्वक होती है-परंतु उसमें भी श्राद्ध वही पार्वण किया जाता और उ-सकी विधिमें किंचित् अंतर होताहै-उस विधानांतरके सिवाय (मुख्यपार्वण) विधिसे भी जो श्राद्ध किसी दैवकल्प पर्वमें कियाजाय जैसे सूर्य संक्रांति आदि पहले कहचुकेहैं या किसीतीर्थपर्वमें या किसी देवताके नामसे मानकरपीछे कियाजाय या व्यतीपातमें या ग्रहणमें तौ वही पार्वण दैव संज्ञक होजाताहै या जो पितर संबंधी पर्वमें कियाजाय जैसे अमावास्या गजच्छाया पितृपक्ष अष्टका इत्यादि में यद्वा किसीके क्षयाहमेंकि-याजावै तौ वही पार्वण श्राद्ध पितृ सम्बन्धी गिनाजाता है सो कर्म उसदैव सम्बन्धी

में भी पित्रोंके नामसे होता है परन्तु वह पितरों की तृप्ति देवताकी प्रीतिके अर्थ आरोपितकरीजाती है २२७॥

पाणिप्रक्षालनंदत्वाविष्टरार्थंकुशानपि। आवाहयेदनुज्ञातोविश्वेदेवासइत्यृचा २२८॥

ऐ०-उनबैठेहुये ब्राह्मणों के हाथमें विश्वेदेवा के निमित्तसे जल हस्तप्रक्षालनके लिये देकर पुनि विस्तरकेलिये कुशाभी अर्थात् युग्म कहिये दो कुशा द्विगुणितकिये हुये उनके आसनके दक्षिणओररक्खे फिर उन्हीं ब्राह्मणोंकी आज्ञापाकर विश्वेदेवाओं का आवाहनकरै उसऋचासे कि जिसकी आदिमें (विश्वेदेवासआगत) इत्यादिपाठ आताहै-और आज्ञापाकर कहने का यह भावहै कि उनब्राह्मणोंसे आज्ञामांगै कि अब आवाहन करें फिर वे आज्ञादेवैं कि अच्छाकरो तब आवाहन करै २२८॥

यवैरन्ववकीर्याथभाजनेसपवित्रके। शन्नोदेव्यापयःक्षिप्त्वायवोसीतियवांस्तथा २२९॥
यादिव्याइतिमंत्रेणहस्तेष्वर्घ्यंविनिक्षिपेत्। दत्वोदकंगंधमाल्यंधूपदानंसदीपकम् २३०॥
तथाच्छादनदानञ्चकरशौचार्थमंबुच। अपसव्यंततःकृत्वापितृणामप्रदक्षिणम् २३१॥

ऐ० त्रयाणांसह-इसपीछे विश्वेदेवाके निमित्त से ब्राह्मणकेसमीप दाहिनीओर पृथ्वी पर (यव) फैलाकर तिसपीछे चांदीआदि यथा लब्धपात्रसपवित्रमें किन्तु दोकुशाछोड़े हुये में (शन्नोदेवीरभिष्टय) इत्यादिपाठवाली ऋचासे जलछोड़कर और (यवोसि धान्यराजोसि)इत्यादिपाठवाली ऋचासे (यव) छोड़कर गंधपुष्पभी छोड़े तिसते अनंतर उसी अर्घ्यपात्रकेकुशा निकाल ब्राह्मण के हाथोंमें रखकर (यादिव्याआपःपयसा) इत्यादिमंत्रसे (विश्वेदेवाइदंवोर्घ्यं) यह कहकर अर्घ्योदकछोड़े फिर हाथधोने के निमित्त से विनामंत्र के जलदेकर यथाक्रम से गंध पुष्प धूप दीप दानं कुर्यात् तथा आच्छादनवस्त्रदानभी करे और फिर भी हाथ धोनेकेनिमित्त से जलदेवै यह अढ़ाई श्लोकों से विश्वेदेवा का पूजनकहा-अब शेष आधे श्लोकसे कहतेहैं। कि ततः अपसव्यंकृत्वा अर्थात् ऊपर का कर्म तो सव्य में हुआथा तिसपीछे यज्ञोपवीत वा अँगौछासे अपसव्य होकर पितरोंके अप्रदक्षिण कहिये बाईओर-अबआसनआदि जो कुछ कहेंगे सो अगले श्लोकोंमें देखना २२९। २३०। २३१॥

अधि० त्रयाणांसह-गंधादि वस्तु जिनका चर्चा ऊपर आयाथा तिनमें स्मृत्यंतर से विशेषताज्ञातव्यहै-तथाचविष्णुः-(चंदनकुंकुमकर्पूरागुरुपद्मकान्युपलेपनार्थम्)-अर्थात्-चंदन सुपेद कुंकुमकहिये केसर कपूर अगुरुपद्माख यह सब गंधकेस्थान उपलेपनके योग्य हैं-ऐसेही पुष्पों कोभी कहा है कि-(श्राद्धेऽत्याज्याःप्रशस्ताःस्युर्मल्लिकाश्वेतयूथिका)-अर्थात्-श्राद्धमें जो अत्याज्य पुष्प किंतु जिनका नाम लेकर निषेधनहीं लिखा वे सभी प्रशस्त होतेहैं और मल्लिका तथा श्वेत जूहीकाफूलभी और जो फूल जलमें होतेहैं वे सभी और चंपाभीश्रेष्ठहैं-तथावर्ज्यपुष्पाणि-(उग्रगंधीन्यगंधीनिचैत्य

वृक्षोद्भवानिच। पुष्पाणिवर्जनीयानिरक्तवर्णानियानिच)-अर्थात्-उग्रगंधवाले-निर्गंध भी चैत्यवृक्ष से उत्पन्न हुये भी चैत्यवृक्ष वे कहलाते हैं जो बड़े ऊँचे वृक्ष सीमा या देवस्थानों आदिपर होतेहैं येसारे पुष्पबर्जित हैं और रक्तबर्ण के होतेहों वे अन्यवृक्षों के भी वर्जितहैं और कांटेवालेवृक्ष काभी वर्जितहै पर बिरला पुष्प जो आपकँटीला न हो तौ नहींभी वर्जित है-रक्त पुष्प वर्जित हैं परंतु कुंकुम लालहोता है वह वर्जित नहीं और जलसे उत्पन्नहुये पुष्पजो लालहों तौ वे भी वर्जित नहीं इत्यादि-धूप विषय में भी कुछ विशेषता विष्णुजीनेकहीहै कि-(प्राण्यंगंसर्वंधूपार्थेनदद्यात्)-अर्थात्-प्राणीके अंगसे उत्पन्न हुई सारी बस्तु धूपमें नहीं लगावै-किन्तु-(घृतमधुसंयुक्तंगुग्गुलुंश्रीखंडागुरुदेवदारुसरलादिदद्यात्)अर्थात्-घृत सहत मिलाहुआ गूगुल सुपेद चंदन अगुरु देवदारु राल आदि यह सब देवैदीपके बिषयमें कुछ विशेषता शंखजी ने कही है कि-(घृतेनदीपोदातव्यस्तिलतैलेनवापुनः। वसामेदोद्भवंदीपंप्रयत्नेनविवर्जयेत्)-अर्थात्-दीपकघीसेदेना चाहिये अथवा घी नहीं तौ तिलके तैलसे भी परंतु बसा मेदा इत्यादि चीजोंसे बनायाहुआ दीपकनहीं बारै किंतु यत्न सहित इन्हेंबचावै-ऐसेही आच्छादन वस्त्रको भी कहाहै कि शुभ्रकहिये उज्ज्वलहो नवीन हो-फटा कटा नहीं हो-सदश अर्थात् दशासहित किंतु किनारे वालाहो यहसब वैश्वदेवका अनुष्ठान काण्ड (कर्त्ता) उत्तरमुख बैठकर करै-और पित्र्यकांड जहांतक हो वह सब दक्षिणमुख बैठकरकरै-सोई वृद्धशातातपने यह कहाहै कि-(उदङ्मुखस्तुदेवानांपितॄणांदक्षिणामुखः। प्रदद्यात्पार्वणेसर्वंदैवपूर्वंविधानतः) अर्थात्-पार्वण श्राद्धमें सब जो कुछ करै सो दैव पूर्व किंतु भाग पूर्व यथा विभाग सहित विधानसे देवताओंको उत्तरमुखहोकरदेवै और पितरोंकोदाक्षिण मुखहोकर २२९। २३०। २३१॥

द्विगुणांस्तुकुशान्दत्वाह्युशंतस्त्वेत्यृचापितॄन्। आवाह्यतदनुज्ञातोजपेदायंतुनस्ततः २३२॥

ऐ०-इसपित्र्य कांडका आधा श्लोक जो २३१ में पीछे गया तहां से ध्यानकरना चाहिये कि अपसव्य होकर पितृसंबंधी तीनों ब्राह्मणोंके आसनों पर बाईंओर विषम ३कुशा जो द्विगुणभुग्नकिये किंतु मिरोड़ीदियेहुये विष्टरके निमित्त उदक पूर्वकदेकर फिरभी उदकदेवै तिसपीछे ब्राह्मणोंसे आज्ञामांगे कि हमपित्रादि तीनोंका आवाहन करैं फिर उनकी आज्ञामिले पीछे (उशंतस्त्वानिधीमही) इत्यादि ऋचासे आवाहन करिकै (आयंतुनःपितर) इत्यादि मंत्रसे बैठारै अपने बुलायेहुये पितरोंको २३२॥

मधि०-उदकपूर्वक देकर फिरभी उदकदेवै यहभाव यद्यपि मूलश्लोकमें नहींहै पर आश्वलायन ऋषिने यहकहाहै कि(अपःप्रदायद्विगुणभुग्नकुशान्दत्वापःप्रदाय)इत्यादि-अर्थात्-जलदेकर फिर द्विगुणभुग्नकुशाओंको आसनकल्प देकर फिरभी जलदेकर इसके आगे और विधिकही है-आदि और अंतमें भी जो उदकदान कहा सोयह

प्रकार पित्र्यकर्म और वैश्वदेवकर्म दोनोंमें समझलेना यथास्थलके अनुसार २३२॥

अपहताइतितिलान्विकीर्यचसमंततः। यवार्थास्तुतिलैःकार्याःकुर्यादर्घ्यादिपूर्ववत् २३३॥

दत्वार्घ्यंसंस्रवांस्तेषांपात्रेकृत्वाविधानतः। पितृभ्यःस्थानमसीतिन्युब्जंपात्रंकरोत्यधः २३४॥

ऐ०—सहृदयोः—(यवार्थाः) अर्थात् यवोंसे करनेवाले कर्म जो २ पहले विश्वेदेवाओं के कांडमेंकहचुके हैं पृथ्वी पर फैलानाआदि सो सबकाम तिलोंसे इसमेंकरै और अ- र्घ्योदिकर्म अर्थात् पात्रासादन से आच्छादन पर्यंत जो २ कुछपहले कियाथा उसी समान इसमेंभी करै परन्तु-इसमें इतना कर्म और भी विशेषहै कि (अपहतासुरार- क्षांसि) इत्यादि ऋचासे तिलोंको ब्राह्मणोंके सबओर प्रदक्षिण मार्गसे रक्षाकल्पवत् बिथोरिफैलाकर तिसपीछे चांदीआदि यथालब्ध तीनों पात्रोंमें तीन तीन कुशारख- कर उनमें (शन्नोदेवी) इत्यादि ऋचा पढ़कर जलछोड़ै फिर (तिलोसिसोमदैवत्य) इत्यादि मंत्रसे तिलपुष्पगंध ये सबछोड़कर (स्वधार्घ्या) यह उच्चारण करिके ब्राह्म- णोंके आगे अर्घ्यपात्र भिन्न २ स्थापितकरै पुनि (यादिव्या) इत्यादि मंत्रको उच्चारण किये पीछे अंतमें (पितरिदंतेर्घ्यं) १ (पितामहेदंतेर्घ्यं) २ (प्रपितामहेदंतेर्घ्यं) ३ यह जोड़२ कर तीनों ब्राह्मणोंके हाथोंमें अर्घ्य समर्पणकरै फिर उनकोदियेहुये अर्घ्योंके (संस्रव) अर्थात् ब्राह्मणोंके हाथोंसे गिरेहुये जलोंको पितृपात्रमें लेकर एकलंबा कुशा का स्तंब सीधा दक्षिणको अग्रभाग करिके भूमिमेंधरै तिसके ऊपर वहपात्र जलस- मेत (पितृभ्यःस्थानमसी) इत्यादि मंत्रसे (न्युब्ज) कहिये औंधाकरिदेवै तिसके ऊपर अर्घ्य पात्रमेंसे पवित्रा निकालकर रखदेवै तिसते अनंतर गंध पुष्पधूपदीप आच्छा- दन यह सब (पितरयंतेगंधः) (पितरिदंतेपुष्पं) इत्यादि कल्पित मंत्रोंसे चढ़ावै-इससे आगे और जोकुछ विधिबिशेषहो सोसबश्राद्धकर्मकी पद्धतिसे समझलो २३३।२३४॥

अधि०—ऊपर ऐक्यार्थके बर्णनमें पिताआदि तीनोंके निमित्तसे तीन ब्राह्मणोंके आगे भिन्न २ तीनों अर्घ्यपात्र कहेगये परन्तु जहां तीनोंके निमित्तसे एकही ब्राह्मण कियाहो तहांभी अर्घ्यपात्र जुदे तीनकल्पित करिलेना और उसी एकब्राह्मणके द्वारा सारी क्रिया भिन्नवत् आचरणकरनी यहसिद्धांतहै २३३।२३४॥

अग्नौकरिष्यन्नादायपृच्छत्यन्नंघृतप्लुतं। कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातोहुत्वाग्नौपितृयज्ञवत् २३५॥

हुतशेषंप्रदद्यात्तुभाजनेषुसमाहितः। यथालाभोपपन्नेषुरौप्येषुचविशेषतः २३६॥

अक्ष०सहृदयोः—(अग्नौ) करनेकीइच्छाकरतेहुये घृतप्लुत अन्नकोलेकर पूंछताहै करों यह आज्ञापायाहुआ अग्निमें पितृयज्ञवत् होमिकर-फिर हुतशेषको प्रदानकरै समा- हितहुआ यथा लाभसेउपपन्नहुयेभाजनोंमेंबिशेषतासेरौप्यपात्रोंमेंदेवै २३५।२३६॥

भाभि० सहृदयोः—पहले कहेहुये कर्मके अनंतर अग्नौ कर्मका प्रारम्भ करने की इ- च्छाकरता हुआ श्राद्ध कर्त्ता घृतप्लुत कहिये घृताक्त अर्थात् घीसे मिलाहुआ अन्न

पात्रस्थहाथमें लेकर ब्राह्मणोंसे पूँछै कि अग्नौकर्म करें फिर उनसे (कुरुष्व) इसप्रकार आज्ञापायाहुआ प्राचीनावीती किंतु अपसव्य होकर (सोमायापितृमतेस्वधानमः। अग्नयेकव्यवाहनायस्वधानमः) इनमंत्रों से अग्निमें यथाभागपूर्वक पिंड पितृयज्ञके बिधानसेहोमिकर २३५ फिरहुतशेष कहिये होमसे बचाहुआ अन्न थोड़ा २ उनपात्रों में समाहित कहिये सावधान होकर परोसै जो ब्राह्मणोंके आगे प्रथम तौ बिशेषतासे चांदी के चाहिये अथवा जिसाकिसी के हों किंतु ढाक आदिपत्तों केभी जैसे लाभहो-सकें और उपस्थित कियेगये हों परंतु मट्टी के पात्र इसमें बर्जित हैं २३६ ॥

दत्वान्नंपृथिवीपात्रमितिपात्राभिमंत्रणम् । कृत्वेदंविष्णुरित्यन्नेद्विजांगुष्ठंनिवेशयेत् २३७ ॥
सव्याहृतिकांगायत्रींमधुवाताइतितृचम् । जप्त्वायथासुखंवाच्यंभुंजीरंस्तेपिवाग्यताः २३८ ॥

ऐ०सहृदयोः—अन्न जो कुछ भोजनके निमित्त सिद्धकियाहो वह उक्त पात्रों में देकर (पृथिवीतेपात्रं) इत्यादि मंत्रसे पात्रों का अभिमंत्रण करिकै (इदंविष्णुर्विचक्रमे) इत्यादि ऋचा से अन्नपर ब्राह्मणों से हाथ का अँगूठा रखवावै तहां वैश्वदेव कर्म में यज्ञोपवीती अर्थात् सव्यहोकर (विष्णोहव्यंरक्ष) यह मंत्रकहै और पित्र्यकर्ममेंप्रा-चीनावीती अर्थात् अपसव्यहोकर (विष्णोकव्यंरक्ष) यह मंत्रकहै-तिसके अनंतर सव्यहोकर (विश्वेदेवेभ्यइदमन्नंपरिविष्टंपरिवेश्यमाणंचातृप्तेः) इसमंत्र करके यव और उदक से वह अन्न विश्वेदेवाओं को निवेदन करिकै-तथा-अपसव्यहोकर पिता के निमित्त में (पित्रेअमुकगोत्राय अमुकशर्मणेइदमन्नंपरिष्टंपरिवेश्यमाणंचातृप्तेः) इसमंत्र करके तिल और उदक दानसे वह अन्न पिता को निवेदन करिकै (इसी) प्र-कार इसमंत्र की योजना में (पितामहाय) (प्रपितामहाय) यहसंयुक्त करिकै उनदोनों कोभी उक्तविधिसे निवेदनकरै तिसके अनंतर आपोशान देकर पूर्वोक्त व्याहृतियोंस० हित गायत्रीको और (मधुवाताइतितृचं) अर्थात् मधुवाताआदि ऋचाओंका तीया किंतु वे तीनौं ऋचा और मधुमधुमधुयहभी तीनवारजपिकै (यथासुखंजुषध्वं) अर्थात् इच्छा पूर्वक भोजनकरो यहउच्चारणकरै फिर वे ब्राह्मणभी मौनीभूत होकर भो-जनकरैं २३७। २३८ ॥

अधि०—ऊपर (हव्य,(कव्य) यह मूलसे विशेष कथन जो ऐक्यार्थमें आया तिसका प्रमाण मनुजीका वाक्य-यथा-(विष्णोहव्यंचकव्यंचब्रूयाद्रक्षेतिवैक्रमात्)२३७ आपो शानादि शब्द जो मूलसे अधिकआये तिनका प्रमाण पारस्करादि वचनों से-यथा-(संकल्प्यपितृदेवेभ्यःसावित्रीमधुमज्जपः। श्राद्धंनिवेद्यापोशानंजुषप्रैषोथभोज तथा-(गायत्रींत्रिःसकृद्वापिजपेद्व्याहृतिपूर्विकाम्। मधुवाताइतितृचंमाध्वित्ये तथा) २३८ ॥

अन्नमिष्टंहविष्यंचदद्यादक्रोधनोऽत्वरः। आतृप्तेस्तुपवित्राणिजप्त्वापूर्वजपंतथा२३९॥
अन्नमादायतृप्ताःस्थशेषंचैवानुमान्यच। तदन्नंविकिरेद्भूमौदद्याच्चापःसकृत्सकृत् २४०॥

ऐ०सहृद्वयोः—अन्नं अर्थात् भक्ष्य१ भोज्य२ लेह्य ३ चोष्य ४ पेयात्मक ५ यह पांच प्रकारकी वस्तु और-इष्टं अर्थात् प्रियवस्तु जो ब्राह्मणको या प्रेतको या कर्त्ताको भी जो कुछरुचताहो सोभी-हविष्यं अर्थात् श्राद्ध हविके योग्य जोकुछहोताहो सोभी दद्यात्-नाम परोसै किन्तु जिनचीजोंका निषेधहो वे हविष्यमें गिनती नहीं हैं परन्तु अक्रोधनहोकर परोसै अर्थात् क्रोधकरनेका कोईसा हेतुभी उत्पन्नहोजावै तौ भी क्रोधको बचाकर और अत्वर होकर परोसै अर्थात् घबराहटसे अव्यग्रहोकर शीघ्र२ नहींफेंकै किन्तु सावधानी साथ जैसीरुचिसे वे भोजनकरैं उसीकेअनुसार (आतृप्तेः)अर्थात् तृप्ति पर्यंत और (तु) शब्दके अभिप्रायसे बारम्बार बूझ२ करपरोसै-तथा उनकी तृप्तिपर्यंत (पवित्राणि) अर्थात् पुरुषसूक्त पावमानी आदि जपिकर जब उनको तृप्तहुये जानै तब पहला जपभी जपै जिसकाचर्चा २३८ के श्लोकमें आयाथा कि व्याहृतियों सहित गायत्री और (मधुवाताइतितृचं) और मधुमधुमधु तीनबार यहभीजपै२३९तिसकेअनंतरबचाहुआ सारा अन्नहाथमें लेकर या उसपर उद्देशकरिकै ब्राह्मणोंसेपूंछै कि आपतृप्तहुये खूबछके वहकहैं कि (तृप्ताःस्म) हमतृप्तहोगये तबयह बूझै कि अभी अन्न औरभी शेषहै क्याकरैं इसपर वे कहें कि (इष्टैःसहोपभुज्यतां) अर्थात् अपने प्रियपरिवारआदि सहित भोजनकरना चाहिये यहआज्ञालेकर उसअन्नको पिताके स्थानीय ब्राह्मणके आगे उच्छिष्टके समीप दक्षिणाग्रदर्भांतरितभूमि पर तिलोदक छोड़कर (ये अग्निदग्धाश्च) इसऋचासे उसअन्नको छोड़कर फिरभी तिलोदक ऊपरसे छोड़ैतिसपीछे ब्राह्मणोंके हाथमें गंडूषके निमित्तसे एकएकबार जलदेवै २४०॥

अधि०—यद्यपि परोसनेका प्रकार तौ ऊपरके-ऐक्यार्थोंमें सबकहचुके और यहभी कहा कि (तु) शब्दके अभिप्रायसे बारम्बार परोसै परन्तु उसी (तु) शब्दके अभिप्रायसे बारम्बार परोसनेका यह सिद्धांतभीहै कि यहां तक बारम्बार परोसै जो थोड़ाबहुतकुछ आगे उनके बचिभीरहै क्योंकि वह आगेकी जूठउनकी दासवर्गोंका भागहोताहै-(दासवर्ग) अर्थात् बारी या भंगीआदि जो कोई उसकेलेने खानेके अधिकारीहों और पितरोंके अपने योग्यकाम धंधामें सौम्यतासे तत्परहों-सोई मनुजीनेकहाहै कि (उच्छेषणंभूमिगतमजिह्मस्याशठस्यच।दासवर्गस्यतत्पित्र्येभागधेयंप्रचक्षते)अर्थात् पित्र्ययज्ञकेबीचमें उच्छेषणकहिये उच्छिष्टजो भूमिगतहो किंतु जूठलेकर पृथ्वीपरडालीजाय सो वह दासवर्गका भागधेय कहतेहैं परंतु वे दासभी कैसेहों कि (अजिह्म) अर्थात्-अकुटिल किंतु अपने योग्यकामोंमें कुटिलता नहीं करतेहों-ऐसेही (अशठ) कहिये शठताभी न करतेहों तौ वह उनका भागहै अन्यथा जो कुटिल या शठहों तौ वह उन

का भाग नहीं किंतु और जो कोई उनके योग्यकामोंको सौम्यतासे साधनकरैं वे उस जूठके भागीहों २३९।२४० ॥

सर्वमन्नमुपादायसतिलंदक्षिणामुखः। उच्छिष्टसन्निधौपिंडान्दद्याद्वैपितृयज्ञवत् २४१ ॥

अक्ष०—सब अन्नलेकर तिलसहित-दक्षिण मुखहोकर उच्छिष्टके समीप पितृयज्ञ की बिधिवत् पिंडोंकोदेवै (वै) अर्थात् सावधानीसे २४१ ॥

अभि०—पूर्वोक्तरीतिसे केवल एकएकबार जलगंडूषको दियेपीछे-सर्वं अन्नंसतिलं उपादाय अर्थात् सारे अन्न जो २ संपादन कियेहों उनको किंचित्२ अग्नौकरण से बचेहुये चरुसमेतलेकर उसमें तिल मिलाकर उसी पूर्वोक्त अग्नौकरणकी अग्निके सन्निधि दक्षिण मुखबैठाहुआ पितृयज्ञके (वत्) कहिये कल्पनाअनुसार किन्तु जैसी उसकीबिधि श्राद्धपद्धतिमें कहीहो उसीरीतिसे पिंडोंका दानकरै-अथवा जिसनेअग्नौ करण न कियाहो पुनि इसीहेतुसे उसका शेषचरुभी न हो तब अग्नि और चरुइनदो-नोंके अभाव कहिये न होनेमें (वह) अन्न जो ब्राह्मणोंके निमित्तसे बनायाहो जिसमेंसे जिमाचुके उसीके सर्वशेषमेंसे किंचित् किंचित्लेकर उसमें तिल मिश्रितकरिकै आप दक्षिण मुखबैठकर ब्राह्मणोंकी उच्छिष्टके समीप पिंडदेवै क्योंकि अग्नि तौहै नहीं इस लिये-परन्तु (वै) शब्दके अभिप्रायसे सावधानी और (वत्) शब्दकी अंत्ययोजनासे यथोक्त बिधि जो (पिंडपितृयज्ञ) के बिधानोंमें होतीहै सबकरनी चाहिये २४१ ॥

अधि०—ऊपरके अभिप्रायार्थमें मूलश्लोकसे अधिक वार्त्ता अर्थात् अग्निके समीप पिण्डदेना कहा और अग्नौकरणका शेषचरुभी अन्नके साथमेंलेना कहा तिसका यह हेतुहै कि याज्ञवल्क्यजीने मूलमें मुख्यविस्तरको उलांघकर निर्वाहबिधि कहदीहै इस लिये कि जोबात घंटाघोषवत् प्रसिद्धहै वह नकहनेसेभी नष्टनहींहोती और यथार्थसे जबउन्होंने(पितृयज्ञवत्)यहकहातौ सभीकुछ कहदिया क्योंकि पितृयज्ञकी कल्पाबिधि जोश्राद्धपद्धतिहै उसमें अग्नौकरणकाहोना मुख्यहै फिर जहां अग्नौकरणहोगा तहां (चरु)भी अवश्यभावसेहोगा सोईयाज्ञवल्क्यजी अग्नौकरणको यथाक्रमसे उचितस्थ-लपर २३५ के श्लोकमें प्रतीतकरचुकेहैं इसहेतुसे यद्यपि यहांपरभी कथनकी प्राप्ति थी परन्तु पिष्टपेषणदृष्टिसे प्रत्यक्षभावमें नकहा किंतु(पितृयज्ञवत्) यहकहकर उसबात को गोल २ दर्शादिया-सो-यह इसप्रकारके हेतु गर्भितस्थल(अतिदेशधर्म)कहलातेहैं कि जोबात धर्मसम्बन्धी किसीस्थलपर देखी अथवा सुनीहो वहीबात किसी अन्यस्थल पर उचित जानिकर योजना करीजाय-तद्यथा-(अन्यत्रैवप्रतीतायाःकृत्स्नायाधर्मसंत तेः। अन्यत्रकार्यतःप्राप्तिरतिदेशोऽभिधीयते।प्रकृतात्कर्मणोयस्मात्तत्समानेषुकर्मसु।धर्म प्रवेशोयेनस्यात्सोऽतिदेशइतिस्मृतः) (भेद २)वर्त्तमानसमयमें अत्रत्यदेशीलोग तो निर्विकल्पही अग्नौकर्मको(निरग्नि) किन्तु उपकल्पकीरीतिमें विनाअग्निकेही करलेते

अन्नमिष्टंहविष्यंचदद्यादक्रोधनोऽत्वरः। आतृप्तेस्तुपवित्राणिजप्त्वापूर्वजपंतथा२३९॥
अन्नमादायतृप्ताःस्थशेषंचैवानुमान्यच। तदन्नंविकिरेद्भूमौदद्याच्चापःसकृत्सकृत् २४०॥

ऐ०सहृदयोः—अन्नं अर्थात् भक्ष्य१ भोज्य२ लेह्य ३ चोष्य ४ पेयात्मक ५ यह पांच प्रकारकी वस्तु और-इष्टं अर्थात् प्रियवस्तु जो ब्राह्मणको या प्रेतको या कर्त्ताको भी जो कुछरुचताहो सोभी-हविष्यं अर्थात् श्राद्ध हविके योग्य जोकुछहोताहो सोभी दद्यात्नाम परोसै किन्तु जिनचीजोंका निषेधहो वे हविष्यमें गिनती नहीं हैं परन्तु अक्रोधनहोकर परोसै अर्थात् क्रोधकरनेका कोईसा हेतुभी उत्पन्नहोजावै तौ भी क्रोधको बचाकर और अत्वर होकर परोसै अर्थात् घबराहटसे अव्यग्रहोकर शीघ्र२ नहींफेंके किन्तु सावधानी साथ जैसीरुचिसे वे भोजनकरें उसीकेअनुसार (आतृप्तेः)अर्थात् तृप्तिपर्यंत और (तु) शब्दके अभिप्रायसे बारम्बार बूझ२ करपरोसै-तथा उनकी तृप्तिपर्यंत (पवित्राणि) अर्थात् पुरुषसूक्त पावमानी आदि जपिकर जब उनको तृप्तहुये जानै तब पहला जपभी जपै जिसकाचर्चा २३८ के श्लोकमें आयाथा कि व्याहृतियों सहित गायत्री और (मधुवाताइतितृचं) और मधुमधुमधु तीनबार यहभीजपै२३९तिसकेअनंतरबचाहुआ सारा अन्नहाथमें लेकर या उसपर उद्देशकरिकै ब्राह्मणोंसेपूंछै कि आपतृप्तहुये खूबछके वहकहैं कि (तृप्ताःस्म) हमतृप्तहोगये तबयह बूझै कि अभी अन्न औरभी शेषहै क्याकरैं इसपर वे कहें कि (इष्टैःसहोपभुज्यतां) अर्थात् अपने प्रियपरिवारआदि सहित भोजनकरना चाहिये यहआज्ञालेकर उसअन्नको पिताके स्थानीय ब्राह्मणके आगे उच्छिष्टके समीप दक्षिणाग्रदर्भांतरितभूमि पर तिलोदक छोड़कर (ये अग्निदग्धाश्च) इसऋचासे उसअन्नको छोड़कर फिरभी तिलोदक ऊपरसे छोड़ैतिस पीछे ब्राह्मणोंके हाथमें गंडूषके निमित्तसे एकएकबार जलदेवै २४०॥

अधि०—यद्यपि परोसनेका प्रकार तौ ऊपरके-ऐक्यार्थोंमें सबकहचुके और यहभी कहा कि (तु) शब्दके अभिप्रायसे बारम्बार परोसै परन्तु उसी (तु) शब्दके अभिप्रायसे बारम्बार परोसनेका यह सिद्धांतभीहै कि यहां तक बारम्बार परोसै जो थोड़ाबहुतकुछ आगे उनके बचिभीरहै क्योंकि वह आगेकी जूठउनकी दासवर्गोंका भागहोताहै-(दासवर्ग) अर्थात् बारी या भंगीआदि जो कोई उसकेलेने खानेके अधिकारीहों और पितरोंके अपने योग्यकाम धंधामें सौम्यतासे तत्परहों-सोई मनुजीनेकहाहै कि (उच्छेषणंभूमिगतमजिह्मस्याशठस्यच।दासवर्गस्यतत्पित्र्येभागधेयंप्रचक्षते)अर्थात् पित्र्ययज्ञकेबीचमें उच्छेषणकहिये उच्छिष्टजो भूमिगतहो किंतु जूठलेकर पृथ्वीपरडालीजाय सो वह दासवर्गका भागधेय कहतेहैं परंतु वे दासभी कैसेहों कि (अजिह्म) अर्थात्-अकुटिल किंतु अपने योग्यकामोंमें कुटिलता नहीं करतेहों-ऐसेही (अशठ) शठताभी न करतेहों तौ वह उनका भागहै अन्यथा जो कुटिल या शठहों तौ वह

का भाग नहीं किंतु और जो कोई उनके योग्यकामोंको सौम्यतासे साधनकरैं वे उस जूठके भागीहों २३९।२४० ॥

सर्वमन्नमुपादायसतिलंदक्षिणामुखः। उच्छिष्टसन्निधौपिंडान्दद्याद्वैपितृयज्ञवत् २४१ ॥

अक्ष०—सब अन्नलेकर तिलसहित-दक्षिण मुखहोकर उच्छिष्टके समीप पितृयज्ञ की बिधिवत् पिंडोंकोदेवै (वै) अर्थात् सावधानीसे २४१ ॥

अभि०—पूर्वोक्तरीतिसे केवल एकएकबार जलगंडूषको दियेपीछे-सर्वं अन्नंसतिलं उपादाय अर्थात् सारे अन्न जो २ संपादन कियेहों उनको किंचित्२ अग्नौकरण से बचेहुये चरुसमेतलेकर उसमें तिल मिलाकर उसी पूर्वोक्त अग्नौकरणकी अग्निके सन्निधि दक्षिण मुखबैठाहुआ पितृयज्ञके (वत्) कहिये कल्पनाअनुसार किन्तु जैसी उसकीबिधि श्राद्धपद्धतिमें कहीहो उसीरीतिसे पिंडोंका दानकरै-अथवा जिसनेअग्नौ करण न कियाहो पुनि इसीहेतुसे उसका शेषचरुभी न हो तब अग्नि और चरुइनदोनोंके अभाव कहिये न होनेमें (वह) अन्न जो ब्राह्मणोंके निमित्तसे बनायाहो जिसमेंसे जिमाचुके उसीके सर्वशेषमेंसे किंचित् किंचित्लेकर उसमें तिल मिश्रितकरिकै आप दक्षिण मुखबैठकर ब्राह्मणोंकी उच्छिष्टके समीप पिंडदेवै क्योंकि अग्नि तौहै नहीं इस लिये-परन्तु (वै) शब्दके अभिप्रायसे सावधानी और (वत्) शब्दकी अंत्ययोजनासे यथोक्त बिधि जो (पिंडपितृयज्ञ) के बिधानोंमें होतीहै सबकरनी चाहिये २४१ ॥

अधि०—ऊपरके अभिप्रायार्थमें मूलश्लोकसे अधिक वार्त्ता अर्थात् अग्निके समीप पिण्डदेना कहा और अग्नौकरणका शेषचरुभी अन्नके साथमेंलेना कहा तिसका यह हेतुहै कि याज्ञवल्क्यजीने मूलमें मुख्यविस्तरको उलांघकर निर्वाहबिधि कहदीहै इस लिये कि जोवात घंटाघोषवत् प्रसिद्धहै वह नकहनेसेभी नष्टनहींहोती और यथार्थसे जबउन्होंने(पितृयज्ञवत्)यहकहातौ सभीकुछ कहदिया क्योंकि पितृयज्ञकी कल्पबिधि जोश्राद्धपद्धतिहै उसमें अग्नौकरणकाहोना मुख्यहै फिर जहां अग्नौकरणहोगा तहां (चरु)भी अवश्यभावसेहोगा सोईयाज्ञवल्क्यजी अग्नौकरणको यथाक्रमसे उचितस्थलपर २३५ के श्लोकमें प्रतीतकरचुकेहैं इसहेतुसे यद्यपि यहांपरभी कथनकी प्राप्ति थी परन्तु पिष्टपेषणदृष्टिसे प्रत्यक्षभावमें नकहा किंतु(पितृयज्ञवत्) यहकहकर उसबात को गोल २ दर्शादिया-सो-यह इसप्रकारके हेतु गर्भितस्थल(अतिदेशधर्म)कहलातेहैं कि जोवात धर्मसम्वन्धी किसीस्थलपर देखी अथवा सुनीहो वहीवात किसी अन्यस्थल पर उचित जानिकर योजना करीजाय-तद्यथा-(अन्यत्रैवप्रतीतायाःकृत्स्नायाधर्मसंततेः। अन्यत्रकार्यतःप्राप्तिरतिदेशोऽभिधीयते।प्रकृतात्कर्मणोयस्मात्तत्समानेपुकर्मसु।धर्मप्रवेशोयेनस्यात्सोऽतिदेशइतिस्मृतः) (भेद २)वर्त्तमानसमयमें अत्रत्यदेशीलोग तौ निर्विकल्पही अग्नौकर्मको(निरग्नि) किन्तु उपकल्पकीरीतिमें विनाअग्निकेही करलेते

अन्नमिष्टंहविष्यंचदद्यादक्रोधनोऽत्वरः। आतृप्तेस्तुपवित्राणिजप्त्वापूर्वंजपंतथा॥२३९॥

अन्नमादायतृप्ताःस्थशेषंचैवानुमान्यच। तदन्नंविकिरेद्भूमौदद्याच्चापःसकृत्सकृत्॥२४०॥

ऐ०अन्वयार्थः—अन्नं अर्थात् भक्ष्य१ भोज्य२ लेह्य३ चोष्य४ पेयात्मक५ यह पांच प्रकारकी वस्तु और-इष्टं अर्थात् प्रियवस्तु जो ब्राह्मणको या प्रेतको या कर्त्ताको भी जो कुछरुचताहो सोभी-हविष्यं अर्थात् श्राद्ध हविके योग्य जोकुछहोताहो सोभी दद्यात् अर्थात् परोसे किन्तु जिनचीजोंका निषेधहो वे हविष्यमें गिननी नहीं हैं परन्तु अक्रोधनहोकर परोसे अर्थात् क्रोधकरनेका कोईसा हेतुभी उत्पन्नहोजावे तौ भी क्रोधको बचाकर और अत्वर होकर परोसे अर्थात् घबराहटसे अव्यग्रहोकर शीघ्र२ नहींकिन्तु सावधानी साथ जैसीरुचिसे वे भोजनकरें उसीकेअनुसार (आतृप्तेः)अर्थात् तृप्तिपर्यंत और (तु) शब्दके अभिप्रायसे वारम्वार वृक्षा२ करपरोसे-तथा उनकी तृप्तिपर्यंत (पवित्राणि) अर्थात् पुरुषसूक्त पावमानी आदि जपिकर जब उनको तृप्तहुये जाने तब पहला जपभी जपे जिसकाचर्चा २३८ के श्लोकमें आयाथा कि व्याहृतियों सहित गायत्री और (मधुवाताइतितृचं) और मधुमधुमधु तीनवार यहभीजपे२३९तिसकेअनंतरबचाहुआ साग अन्नहाथमें लेकर या उसपर उद्देशकरिके ब्राह्मणोंसेपूछे कि आपतृप्तहुये खूबछके वहकहें कि (तृप्ताःस्म) हमतृप्तहोगये तबयह बूझे कि अभी अन्न औरभी शेषहै क्याकरें इसपर वे कहें कि (इष्टैःसहोपभुज्यतां) अर्थात् अपनेप्रियपरिवारआदि सहित भोजनकरना चाहिये यहआज्ञालेकर उसअन्नको पिताके स्थानीय ब्राह्मणके आगे उच्छिष्टके समीप दक्षिणाग्रदर्भांतरितभूमि पर तिलोदक छोड़कर (ये अग्निदग्धाश्च) इसऋचासे उसअन्नको छोड़कर फिरभी तिलोदक ऊपरसे छोड़ैतिसपीछे ब्राह्मणोंके हाथमें गंडूषके निमित्तसे एकएकवार जलदेवै २४०॥

अधि०—यद्यपि परोसनेका प्रकार तौ ऊपरके-ऐक्यार्थोंमें सबकहचुके और यहभी कहा कि (तु) शब्दके अभिप्रायसे वारम्वार परोसे परन्तु उसी (तु) शब्दके अभिप्रायसे वारम्वार परोसनेका यह सिद्धांतभीहै कि यहां तक वारम्वार परोसै जो थोड़ाबहुतकुछ आगे उनके बचिभीरहै क्योंकि वह आगेकी जूठउनकी दासवर्गोंका भागहोताहै-(दासवर्ग) अर्थात् बारी या भंगीआदि जो कोई उसकेलेने खानेके अधिकारीहैं और पितरोंके अपने योग्यकाम धंधोंमें सौम्यतासे तत्परहों-सोई मनुजीनेकहाहै कि (उच्छेषणंभूमिगतमजिह्मस्याशठस्यच।दासवर्गस्यतत्पित्र्येभागधेयंप्रचक्षते)अर्थात् पित्र्ययज्ञकेबीचमें उच्छेषणकहिये उच्छिष्टजो भूमिगतहो किंतु जूठलेकर पृथ्वीपरडालीजाय सो वह दासवर्गका भागधेय कहतेहैं परंतु वे दासभी कैसेहों कि (अजिह्म) अर्थात्-अकुटिल किंतु अपने योग्यकामोंमें कुटिलता नहीं करतेहों-ऐसेही (अशठ) कहिये शठताभी न करतेहों तौ वह उनका भागहै अन्यथा जो कुटिल या शठहों तौ वह उन

का भाग नहीं किंतु और जो कोई उनके योग्यकामोंको सौम्यतासे साधनकरैं वे उस जूठके भागीहों २३९।२४० ॥

सर्वमन्नमुपादायसतिलंदक्षिणामुखः। उच्छिष्टसन्निधौपिंडान्दद्याद्वैपितृयज्ञवत् २४१ ॥

अक्ष०—सब अन्नलेकर तिलसहित-दक्षिण मुखहोकर उच्छिष्टके समीप पितृयज्ञ की बिधिवत् पिंडोंकोदेवै (वै) अर्थात् सावधानीसे २४१ ॥

अभि०—पूर्वोक्तरीतिसे केवल एकएकबार जलगंडूषको दियेपीछे-सर्वं अन्नंसतिलं उपादाय अर्थात् सारे अन्न जो २ संपादन कियेहों उनको किंचित्२ अग्नौकरण से बचेहुये चरुसमेतलेकर उसमें तिल मिलाकर उसी पूर्वोक्त अग्नौकरणकी अग्निके सन्निधि दक्षिण मुखबैठाहुआ पितृयज्ञके (वत्) कहिये कल्पनाअनुसार किन्तु जैसी उसकीबिधि श्राद्धपद्धतिमें कहीहो उसीरीतिसे पिंडोंका दानकरै-अथवा जिसनेअग्नौ करण न कियाहो पुनि इसीहेतुसे उसका शेषचरुभी न हो तब अग्नि और चरुइनदोनोंके अभाव कहिये न होनेमें (वह) अन्न जो ब्राह्मणोंके निमित्तसे बनायाहो जिसमेंसे जिमाचुके उसीके सर्वशेषमेंसे किंचित् किंचित्लेकर उसमें तिल मिश्रितकरिकै आप दक्षिण मुखबैठकर ब्राह्मणोंकी उच्छिष्टके समीप पिंडदेवै क्योंकि अग्नि तोहै नहीं इस लिये-परन्तु (वै) शब्दके अभिप्रायसे सावधानी और (वत्) शब्दकी अंत्ययोजनासे यथोक्त बिधि जो (पिंडपितृयज्ञ) के बिधानोंमें होतीहै सबकरनी चाहिये २४१ ॥

अधि०—ऊपरके अभिप्रायार्थमें मूलश्लोकसे अधिक वार्त्ता अर्थात् अग्निके समीप पिण्डदेना कहा और अग्नौकरणका शेषचरुभी अन्नके साथमेंलेना कहा तिसका यह हेतुहै कि याज्ञवल्क्यजीने मूलमें मुख्यविस्तरको उलांघकर निर्वाहबिधि कहदीहै इस लिये कि जोबात घंटाघोषवत् प्रसिद्धहै वह नकहनेसेभी नष्टनहींहोती और यथार्थसे जबउन्होंने(पितृयज्ञवत्)यहकहातौ सभीकुछ कहदिया क्योंकि पितृयज्ञकी कल्पाबिधि जोश्राद्धपद्धतिहै उसमें अग्नौकरणकाहोना मुख्यहै फिर जहां अग्नौकरणहोगा तहां (चरु)भी अवश्यभावसेहोगा सोईयाज्ञवल्क्यजी अग्नौकरणको यथाक्रमसे उचितस्थलपर २३५ के श्लोकमें प्रतीतकरचुकेहैं इसहेतुसे यद्यपि यहांपरभी कथनकी प्राप्ति थी परन्तु पिष्टपेषणदृष्टिसे प्रत्यक्षभावमें नकहा किंतु(पितृयज्ञवत्) यहकहकर उसबात को गोल २ दर्शादिया-सो-यह इसप्रकारके हेतु गर्भितस्थल(अतिदेशधर्म)कहलातेहैं कि जोबात धर्मसम्बन्धी किसीस्थलपर देखी अथवा सुनीहो वहीबात किसी अन्यस्थल पर उचित जानिकर योजना करीजाय-तद्यथा-(अन्यत्रैवप्रतीतायाःकृत्स्नायाधर्मसंततेः। अन्यत्रकार्यतःप्राप्तिरतिदेशोऽभिधीयते।प्रकृतात्कर्मणोयस्मात्तत्समानेषुकर्मसु।धर्मप्रवेशोयेनस्यात्सोऽतिदेशइतिस्मृतः) (भेद २)वर्त्तमानसमयमें अत्रत्यदेशीलोग तो निर्विकल्पही अग्नौकर्मको(निरग्नि) किन्तु उपकल्पकीरीतिमें बिनाअग्निकेही करलेते

अन्नमिष्टंहविष्यंचदद्यादक्रोधनोऽत्वरः। आतृप्तेस्तुपवित्राणिजप्त्वापूर्वजपंतथा२३९॥
अन्नमादायतृप्ताःस्थशेषंचैवानुमान्यच। तदन्नंविकिरेद्भूमौदद्याच्चापःसकृत्सकृत् २४०॥

ऐ०सहद्वयोः—अन्नं अर्थात् भक्ष्य१ भोज्य२ लेह्य ३ चोष्य ४ पेयात्मक ५ यह पांच प्रकारकी वस्तु और-इष्टं अर्थात् प्रियवस्तु जो ब्राह्मणको या प्रेतको या कर्त्ताको भी जो कुछरुचताहो सोभी-हविष्यं अर्थात् श्राद्ध हविके योग्य जोकुछहोताहो सोभी दद्यात्नाम परोसे किन्तु जिनचीजोंका निषेधहो वे हविष्यमें गिनती नहीं हैं परन्तु अक्रोधनहोकर परोसे अर्थात् क्रोधकरनेका कोईसा हेतुभी उत्पन्नहोजावै तौ भी क्रोधको बचाकर और अत्वर होकर परोसे अर्थात् घवराहटसे अव्यग्रहोकर शीघ्र२ नहींफेंकै किन्तु सावधानी साथ जैसीरुचिसे वे भोजनकरें उसीकेअनुसार (आतृप्तेः)अर्थात् तृप्ति पर्यंत और (तु) शब्दके अभिप्रायसे वारम्वार बूझ२ करपरोसै-तथा उनकी तृप्तिपर्यंत (पवित्राणि) अर्थात् पुरुषसूक्त पावमानी आदि जपिकर जव उनको तृप्तहुये जानै तव पहला जपभी जपै जिसकाचर्चा २३८ के श्लोकमें आयाथा कि व्याहृतियों सहित गायत्री और (मधुवाताइतितृचं) और मधुमधुमधु तीनवार यहभीजपै२३९तिसकेअनंतरबचाहुआ सारा अन्नहाथमें लेकर या उसपर उद्देशकरिकै ब्राह्मणोंसेपूछै कि आपतृप्तहुये खूबछके वहकहैं कि (तृप्ताःस्म) हमतृप्तहोगये तवयह बूझै कि अभी अन्न औरभी शेषहै क्याकरैं इसपर वे कहें कि (इष्टैःसहोपभुज्यतां) अर्थात् अपने प्रियपरिवारआदि सहित भोजनकरना चाहिये यहआज्ञालेकर उसअन्नको पिताके स्थानीय ब्राह्मणके आगे उच्छिष्टके समीप दक्षिणाग्रदर्भांतरितभूमि पर तिलोदक छोड़कर (ये अग्निदग्धाश्च) इसऋचासे उसअन्नको छोड़कर फिरभी तिलोदक ऊपरसे छोड़ैतिसपीछे ब्राह्मणोंके हाथमें गंडूषके निमित्तसे एकएकवार जलदेवै २४०॥

अधि०—यद्यपि परोसनेका प्रकार तौ ऊपरके-ऐक्यार्थोंमें सबकहचुके और यहभी कहा कि (तु) शब्दके अभिप्रायसे बारम्बार परोसै परन्तु उसी (तु) शब्दके अभिप्रायसे बारम्बार परोसनेका यह सिद्धांतभीहै कि यहां तक बारम्बार परोसै जो थोड़ावहुतकुछ आगे उनके बचिभीरहै क्योंकि वह आगेकी जूठउनकी दासवर्गोंका भागहोताहै-(दासवर्ग) अर्थात् बारी या भंगीआदि जो कोई उसकेलेने खानेके अधिकारीहों और पितरोंके अपने योग्यकाम धंधामें सौम्यतासे तत्परहों-सोई मनुजीनेकहाहै कि (उच्छेषणंभूमिगतमजिह्मस्याशठस्यच।दासवर्गस्यतत्पित्र्येभागधेयंप्रचक्षते)अर्थात् पित्र्ययज्ञकेबीचमें उच्छेषणकहिये उच्छिष्टजो भूमिगतहो किंतु जूठलेकर पृथ्वीपरडालीजाय सो वह दासवर्गका भागधेय कहतेहैं परंतु वे दासभी कैसेहों कि (अजिह्म) अर्थात्-अकुटिल किंतु अपने योग्यकामोंमें कुटिलता नहीं करतेहों-ऐसेही (अशठ) कहिये शठताभी न करतेहों तौ वह उनका भागहै अन्यथा जो कुटिल या शठहों तौ वह उन

का भाग नहीं किंतु और जो कोई उनके योग्यकामोंको सौम्यतासे साधनकरैं वे उस जूठके भागीहों २३९।२४० ॥

सर्वमन्नमुपादायसतिलंदक्षिणामुखः। उच्छिष्टसन्निधौपिंडान्दद्याद्वैपितृयज्ञवत् २४१ ॥

अक्ष०-सब अन्नलेकर तिलसहित-दक्षिण मुखहोकर उच्छिष्टके समीप पितृयज्ञ की बिधिवत् पिंडोंकोदेवै (वै) अर्थात् सावधानीसे २४१ ॥

अभि०-पूर्वोक्तरीतिसे केवल एकएकबार जलगंडूषको दियेपीछे-सर्वं अन्नंसतिलं उपादाय अर्थात् सारे अन्न जो २ संपादन कियेहों उनको किंचित्२ अग्नौकरण से बचेहुये चरुसमेतलेकर उसमें तिल मिलाकर उसी पूर्वोक्त अग्नौकरणकी अग्निके सन्निधि दक्षिण मुखबैठाहुआ पितृयज्ञके (वत्) कहिये कल्पनाअनुसार किन्तु जैसी उसकीबिधि श्राद्धपद्धतिमें कहीहो उसीरीतिसे पिंडोंका दानकरै-अथवा जिसनेअग्नौ करण न कियाहो पुनि इसीहेतुसे उसका शेषचरुभी न हो तब अग्नि और चरुइनदो-नोंके अभाव कहिये न होनेमें (वह) अन्न जो ब्राह्मणोंके निमित्तसे बनायाहो जिसमेंसे जिमाचुके उसीके सर्वशेषमेंसे किंचित् किंचित्लेकर उसमें तिल मिश्रितकरिकै आप दक्षिण मुखबैठकर ब्राह्मणोंकी उच्छिष्टके समीप पिंडदेवै क्योंकि अग्नि तोहै नहीं इस लिये-परन्तु (वै) शब्दके अभिप्रायसे सावधानी और (वत्) शब्दकी अंत्ययोजनासे यथोक्त बिधि जो (पिंडपितृयज्ञ) के बिधानोंमें होतीहै सबकरनी चाहिये २४१ ॥

अधि०-ऊपरके अभिप्रायार्थमें मूलश्लोकसे अधिक वार्त्ता अर्थात् अग्निके समीप पिण्डदेना कहा और अग्नौकरणका शेषचरुभी अन्नके साथमेंलेना कहा तिसका यह हेतुहै कि याज्ञवल्क्यजीने मूलमें मुख्यबिस्तरको उलांघकर निर्वाहबिधि कहदीहै इस लिये कि जोबात घंटाघोषवत् प्रसिद्धहै वह नकहनेसेभी नष्टनहींहोती और यथार्थसे जबउन्होंने(पितृयज्ञवत्)यहकहातो सभीकुछ कहदिया क्योंकि पितृयज्ञकी कल्पबिधि जोश्राद्धपद्धतिहै उसमें अग्नौकरणकाहोना मुख्यहै फिर जहां अग्नौकरणहोगा तहां (चरु)भी अवश्यभावसेहोगा सोईयाज्ञवल्क्यजी अग्नौकरणको यथाक्रमसे उचितस्थ-लपर २३५ के श्लोकमें प्रतीतकरचुकेहैं इसहेतुसे यद्यपि यहांपरभी कथनकी प्राप्ति थी परन्तु पिष्टपेषणदृष्टिसे प्रत्यक्षभावमें नकहा किंतु(पितृयज्ञवत्) यहकहकर उसबात को गोल २ दर्शादिया-सो-यह इसप्रकारके हेतु गर्भितस्थल(अतिदेशधर्म)कहलातेहैं कि जोबात धर्मसम्बन्धी किसीस्थलपर देखी अथवा सुनीहो वहीबात किसी अन्यस्थल पर उचित जानिकर योजना करीजाय-तद्यथा-(अन्यत्रैवप्रतीतायाःकृत्स्नायाधर्मसंत तेः। अन्यत्रकार्यतःप्राप्तिरतिदेशोऽभिधीयते।प्रकृतात्कर्मणोयस्मात्तत्समानेषुकर्मसु।धर्म प्रवेशोयेनस्यात्सोऽतिदेशइतिस्मृतः) (भेद २)वर्त्तमानसमयमें अत्रत्यदेशीलोग तो निर्विकलपही अग्नौकर्मको(निरग्नि) किन्तु उपकलपकीरीतिसे बिनाअग्निकेही करलेते

हैं और वे उपकल्पभी सवशास्त्रोक्तहैं-परन्तु दाक्षिणात्यादि ब्राह्मण अद्यापि(साग्निक) अग्नौकर्म करतेहैं बलिक ब्राह्मणोंका निमंत्रण और भोजनआदिभी सर्वविधि जैसी कुछपूर्वश्लोकोंसे कहते चलेआतेहैं उसीप्रकार साक्षात्ब्राह्मणोंको वैठारकर अर्घ्यादि उनकेहाथमें देतेहैं और अत्रत्यदेशी ब्राह्मणोंके स्थानपर कुशाओंके ब्राह्मण कल्पित करके साराकर्म निपटाय पीछे ब्राह्मणोंको भोजनसमय वैठारते हैं सो यथार्थ से जो ऐसा नहींकरैं तौ इसदेशमें श्राद्धकाहोनाभी दुर्लभहोजाय इस्से आचार्योंने सौगम्य निर्वाहके निमित्तसे प्रत्येक वार्त्ताके अनुकल्प नियतकरादिये हैं और पहलीवातैं तौ पहले समयके साथगईं २४१॥

मातामहानामप्येवंदद्यादाचमनंततः। स्वस्तिवाच्यंततःकुर्यादक्षय्योदकमेवच २४२॥
दत्वातुदक्षिणांशक्त्यास्वधाकारमुदाहरेत्। वाच्यतामित्यनुज्ञातःप्रकृतेभ्य स्वधोच्यतां २४३॥
ब्रूयुरस्तुस्वधेत्युक्तेभूमौसिंचेत्ततोजलम्। विश्वेदेवाश्चप्रीयंतांविप्रैश्चोक्तमिदंजपेत् २४४॥

ऐ०सहत्र०-(एवंमातामहानां) अपि अर्थात् जैसे पिता पितामह प्रपितामह इनतीनों का कर्म वर्णनकिया ऐसेही नानाओंकाभी तीनपुरुषके उद्देशते विश्वेदेवा आवाहन अर्घ्यआदि पिण्डदान पर्यंत सब यथोक्तविधिसे कर्त्तव्यहै तिसपीछे किन्तु पिंडदानके अनन्तरब्राह्मणोंकोआचमनदेवै-(ततःस्वस्तिवाच्यंकुर्यात्)अर्थात्ब्राह्मणोंसेस्वस्तिउच्चारणकरनेकोकहे पुनिवेभी स्वस्तिवाचन उच्चारणकरैं फिर ब्राह्मणोंकेहाथमें(अक्षय्योदक) अर्थात् कमंडलु आदि पात्रसे जलदेकर अक्षय्य उच्चारण करनेको कहे फिरि ब्राह्मण उच्चारणकरैं कि(अक्षय्यमस्तु) २४२तिसपीछे अपनीशक्ति अनुसार सोनेचांदी आदि की दक्षिणा देकर यहकहे कि(स्वधाकार)उच्चारण करवावेंगे पुनि ब्राह्मणकहें कि(वाच्यताम्) अर्थात् करवाइये यह अनुज्ञापायाहुआ फिर कहे कि (प्रकृतेभ्यःस्वधोच्यताम्) अर्थात् पित्रादिकों केलिये और मातामहादिकोंके लियेभी स्वधाकार कहना चाहिये २४३ फिर (अस्तुस्वधा) यहशब्द ब्राह्मण उच्चारण करैं यह किये पीछे लोटालेकर पृथ्वी में जल की धारदेवै और यहकहे कि (विश्वेदेवाःप्रीयंतां) फिर ब्राह्मणोंने भी कहा कि (विश्वेदेवाःप्रीयंतां) तिसपीछे (इदंजपेत्) अर्थात् यह जो अगलेश्लोकमें अब कहेंगे सो जपै २४४॥

दातारोनोभिवर्द्धंतांवेदाःसंततिरेवच। श्रद्धाचनोमाव्यगमद्बहुदेयंचनोस्त्विति २४५॥
इत्युक्तोक्त्वाप्रियावाचःप्रणिपत्याविसर्जयेत्। वाजेवाजइतिप्रीतःपितृपूर्वंविसर्जनम् २४६॥
यस्मिंस्तेसंश्रवाःपूर्वमर्घ्यपात्रेनिवेशिताः। पितृपात्रंतदुत्तानंकृत्वाविप्रान्विसर्जयेत् २४७॥

ऐ०सहत्र०—यह पढ़े कि (नोदातारःअभिवर्द्धंतां)अर्थात् हमारेकुल में दातालोग बहुत से होवें-(वेदाश्चवर्द्धंतां)अर्थात् वेदभी वृद्धिपावें किंतु हमारेकुलमें अध्ययन या अध्यापन और उसके अर्थोंके अनुमनन और कर्मोंके अनुष्ठान द्वारा वेदादि सर्वशास्त्रोंका

सत्कार होवे-(संततिश्चवर्द्धतां)अर्थात् पुत्रपौत्रादि परंपरासे बंशकीवृद्धि बनीरहे-(नःश्रद्धाचमाव्यगमत्)अर्थात् हमारी या हमारेकुलकी श्रद्धाभी मतजावो-(नोवहुदेयंचास्तु)अर्थात् हमारेघर और कुलमेंभी देयवस्तुकहिये सोनाचांदीआदि बहुतसा अत्यन्तहोउ (एवच)अर्थात् औरभी जोकुछ पशु यान दास दासी आदि संसारयोग्य होताहो सो भीबढ़ौ(इति)अर्थात् यहजपै जिसकाचर्चा२४४के अन्तमें आयाथा२४५॥ इसप्रकार प्रार्थना मंत्रपढ़ाहुआ प्रियबचनोंको कहकर और(प्रणिपत्य)अर्थात् प्रदक्षिणपूर्व नमस्कार देकर बिसर्जनकरे-भलाकैसे बिसर्जनकरै सो कहतेहैं कि (बाजेबाजेवतबाजिनो न)इत्यादि ऋचासे(प्रीतः)कहिये प्रसन्नमन होताहुआ कर्ता (पितृपूर्वंविसर्जयेत्) अर्थात् पहले पिताकेस्थानी ब्राह्मणरूप जो कुश कल्परक्खागयाथा उसकोउठावै फिर पितामहका फिर प्रपितामहका फिर विश्वेदेवाओं का इसक्रमसे ऊर्ध्वोक्त ऋचाकोपढ़कर (उत्तिष्ठपितर) इत्यादि यथोक्त बिधिसे बिसर्जनकरै २४६॥ परन्तु इसमें इतनी बात औरभी शेषरहीहै कि जिस अर्घ्यपात्रमें वे (संश्रव)कहिये ब्राह्मणोंके हाथसे गिरेहुये अर्घ्यजल पहले स्थापित कियेगयेथे जिनकाचर्चा २३४ के श्लोकमें आयाथा वही पितृपात्र जो (न्युब्ज)काहिये औंधाकियागया था उसको उत्तानकहिये चितकरिकै तब उनब्राह्मणोंके कुशकल्प बिसर्जनकरै जिनकाचर्चा अभीऊपर(बाजेबाजे)इसऋचा के साथमें आयाथा अर्थात् इसऋचासे पहले और २४५ वाले प्रार्थनामंत्रसे पीछेवह पात्र चितकर लियाजावै तब बिसर्जन कर्महो तिसपीछे ब्राह्मण अपने स्थान को सिधारैं २४७॥

भाषि०—ऊपर २४६ के श्लोकमें प्रियबचनोंकाचर्चा आयाथा तिनकास्वरूप(धन्या वयंभवच्चरणयुगलरजःपवित्रीकृतमस्मन्मंदिरंशाकाद्यशनक्लेशमविगणय्यभवद्भिरनुगृहीतावयमित्येवंरूपावाचः)अर्थात्-हमधन्यहुये जो आपके चरणोंकी रजने हमारा मंदिर पवित्रकिया और सागपात आदि कुभोजनके क्लेशको गिनतीमें न लाकर आप लोगोंकरके हम अनुगृहीतहुये इत्यादि वाणीकोप्रियबचनकहतेहैं२४५।२४६।२४७॥

प्रदक्षिणमनुव्रज्यभुंजीतपितृसेवितम्। ब्रह्मचारीभवेत्तांतुरजनींब्राह्मणैःसह २४८॥

ऐ०—फिर उनब्राह्मणोंके साथ (सीमांत) अर्थात् अपने ग्राम या मुहल्ला या स्थान आदिकी यथा संभवसीमा पर्यंत पीछे या उन्हें दाहनेदियेजावै-वे उच्चारणकरैं कि जाओ बैठो भोजनकरो इत्यादि आज्ञापायाहुआ उन्हें प्रदक्षिण देकरलौटै फिर (पितृसेवित) कहिये श्राद्धसे वचाहुआ अन्न अपने प्रियपरिवार आदि सहित भोजनकरै और (तांरजनींब्रह्मचारीभवेत्) अर्थात् उसरात्रिमें ब्रह्मचर्यसे रहै ब्राह्मणों सहित किंतु वे ब्राह्मणभी ब्रह्मचर्यसेरहैं जिन्होंने श्राद्धका अन्नखायाहो और (तु) शब्दके अभिप्रायसे पुनर्भोजनादि से बचै उसदिन २४८॥

अधि०-श्राद्धकरनेवाले और भोजनकरनेवाले ब्राह्मणोंकोभी जो कुछ वर्जितहैं सो यथा(दंतधावनतांबूलंस्निग्धस्नानमभोजनम्।रत्योपधपरान्नानिश्राद्धकृत्सप्तवर्जयेत्) अर्थात्-काष्ठसे दंतधावन १ तांबूलभक्षण २ तैलादि मर्दन सहितस्नान ३ अभोजन किंतुलंघन ४ रतिकहिये स्त्रीप्रसंग ५ औषधी भक्षण६ पराया अन्न ७ श्राद्धकरनेवाला यह सातकाम वर्जितकरै॥ अपिच(पुनर्भोजनमध्वानंभाराध्ययनमैथुनं। दानंप्रतिग्रहंहोमंश्राद्धभोक्ताष्टवर्जयेत्)अर्थात्-दुसराकरभोजन करना१ मार्गचलना२ भारका उठाना ३ विशेषतर अध्ययन ४ मैथुन ५ दानकर्म ६ प्रतिग्रहकालेना ७ होमकर्म अपनेलिये या बिरानेलिये ८ यह आठबातें श्राद्धभोक्ताभी वर्जितकरै २४८॥

यहांतकपार्वणश्राद्धकीबिधिबर्णनहोचुकी-अबआगेवृद्धिश्राद्धकाप्रकारकहतेहैं॥

एवंप्रदक्षिणावृत्कोवृद्धौनान्दीमुखान्पितॄन्। यजेतदधिकर्कंधुमिश्रान्पिंडान्यवैःक्रियाः २४९॥

मक्ष०-इसीप्रकार वृद्धिमें (प्रदक्षिणावृत्कयजमान) नांदीमुख पितरोंके प्रतिदधि और कर्कंधु मिश्रित पिंडोंको यजनकरै यवोंसे क्रियायें साधै २४९॥

मभि०-एवंकहिये जैसे पार्वणश्राद्धकी बिधिकही तैसेही किंतु त्रिपुरुषके उद्देशते पुत्रजन्म आदि वृद्धिमें जोश्राद्धकरै तौभी उसीरीतिसे पितरोंका यजनकरै परन्तु इसमें इतना विशेषहै कि वह यजमान प्रदक्षिणावृत्क होकर यजनकरै अर्थात् प्रदक्षिण मार्गके प्रचारवाली अनुष्ठान पद्धतिसे श्राद्धकरै क्योंकि पार्वण विधिकी अपेक्षा उसमें कुछ२ अंतरहै इसीसे उसकी संज्ञाभी (प्रदक्षिणाआवृत्) हुई तहां पितरोंका विशेषण (नांदीमुखान्) कहनेसे औरभी यह विशेषताप्रकट हुई कि आवाहनआदि प्रकारोंमें ऐसे उच्चारणकरै कि (नांदीमुखान्पितॄन्आवाहयिष्ये) (नांदीमुखान्पितामहान्) इत्यादि प्रयोग उसपद्धतिमेंआतेहैं औरभी यह विशेषताहै कि दही और कर्कंधु नाम बनबेरोंकाचूर्ण मिलाकर तिसके पिंडदेवै औरभी यहबिशेषताहै कि (यवैःक्रियाः) अर्थात् जो २ क्रियायें तिलोंसे करनी कहीथीं वे भी सबयवोंसे साधै २४९॥

अधि०-इसवृद्धि श्राद्धके ब्राह्मणोंकी संख्याभी पार्वण प्रारंभसाथ उसी २२६ के श्लोकमें पहलेचरणसे कहचुकेहैं कि (युग्मान्दैवेयथाशक्ति) अर्थात् दैवनाम आभ्युदयिक जिसे वृद्धिश्राद्ध कहतेहैं तिसमें यथाशक्तिके अनुसार (युग्म) कहिये समसंख्यावाले ब्राह्मण बैठारै वा निमंत्रितकरै किंतु इसके वैश्वदेवके सिवायपितरोंकेस्थानमेंभी युग्मसंख्याकरै-इसमें प्रदक्षिणा वृत्कत्वजो कहाथा उसके प्रमाणमध्ये अन्य स्मृतियोंकाभी संमतपाया जाताहै (जैसा) आश्वलायन ऋषिने कहाहै कि(अथाभ्युदयिके युग्माब्राह्मणाः अमूलादर्भाःप्राङ्मुखोयज्ञोपवीतीस्यात्प्रदक्षिणमुपचारोयवैस्तिलार्थोगंधादिदानंद्विर्द्विःऋजुदर्भानासनेदद्यात्)अर्थात्-आभ्युदयिकनामवृद्धिश्राद्धके अधिकारमें(युग्मा)कहिये दो चार छः आदि समसंख्यावाले ब्राह्मण-बिनाजड़के कुश

पूर्वाभिमुखयजमानका बैठना-यज्ञोपवीती अर्थात् सव्यहोकर कर्मकाकरना किंतु पार्वणवत् अपसव्य नहीं-प्रदक्षिणमार्गसे कर्मका उपचार अर्थात् आसनका देना या यवोंका फेंकनाआदि दाहनीओरसे यवैस्तिलार्थो किंतु तिलोंकेप्रयोजन यवोंसेसाधै-गंधआदि चीजोंका चढ़ानादोदोबार-आसनकेलिये सूधेकुशादेवै किंतु पार्वणके समान द्विगुणभुग्न नहीं-(अन्यच्च)-यवोंका फैलानाइसमंत्रसे कि (यवोसिसोमदैवत्योगोसवोदेवनिर्मितःप्रत्नवद्भिःप्रत्तःपुष्टयानांदीमुखान्पितृन्इमांल्लोकान्प्रीणयाहिनःस्वाहा) अर्घ्यदेनेके मंत्रयथा (विश्वेदेवाइदंवोर्घ्यं) (नांदीमुखाःपितरइदंवोर्घ्यं) इत्यादि यथा लिंगभेदके अनुसार अर्घ्यदानके मंत्रहोतेहैं उसपद्धतिमें-और भी वहां तो अग्निमें होमकहाथा यहां ब्राह्मणके (हाथ) में ही होमहोताहै-वहां होमकेमंत्रांतमें स्वधानमःउच्चारण कियागयाथा इसमें(अग्नयेकव्यवाहनायस्वाहा)(सोमायपितृमतेस्वाहा)उच्चारणहुआ-वहां तो (मधुवाताऋतायते) इत्यादि तीनऋचाका उच्चारणहुआथा यहां इनके बदले (उपास्मैगायते) इत्यादि पंचमधुमती सुनावै (अक्षन्नमीमदंत) छठी यह भी-औरभी ब्राह्मणोंको आचमन करवाये पीछे भोजनके स्थानोंको गोमयसेलीपकर पूर्वओरको अग्रभाग कियेहुये कुशाओं को बिछाकर उनपर उसअन्नसे जो पितृब्राह्मणोंको जिमानेसे बचाहो किंचित् घी मिलाकर एकएकके नामसे दोदो पिंडदेवै इत्यादि बहुधा बातोंकाभेद उसपद्धतिमें होताहै-औरभी इसकेमूलश्लोक इसी २४९ में यद्यपि (पितृन्यजेत्) यह वाक्यसामान्यतासे कहाहै किंतु इस्से कोईसाक्रम अथवा नियम नहीं पाया जाता परन्तु इसवृद्धि श्राद्धमें तीनिश्राद्धहोतेहैं सोई (शातातप)ऋषिने यथायोग उनकाक्रमभी कहादियाहै कि(मातृश्राद्धंतुपूर्वस्यात्पितृणांतदनंतरम्। ततोमातामहानांचवृद्धौश्राद्धत्रयंस्मृतम्)अर्थात्-पहले मातुःश्राद्ध किंतु माताआदि का होवै तदनन्तर पिताआदि तीनोंका फिरसपत्नीक नानाआदि का इसप्रकारवृद्धि कालमें श्राद्धत्रय कहेहैं २४९ ॥

यह वृद्धिश्राद्धका वर्णन होचुका-अब आगे एकोद्दिष्ट नाम श्राद्धका प्रकारकहतेहैं॥

एकोद्दिष्टंदैवहीनमेकार्घ्यैकपवित्रकम्। आवाहनाग्नौकरणरहितंह्यपसव्यवत् २५० ॥

अक्ष०-एकोद्दिष्टश्राद्धदैवहीन-एकअर्घ्य और एकपवित्रवाला-आवाहन और अग्नौकरणसे रहित-अपसव्यवत् होताहै २५० ॥

भमि०-एकोद्दिष्ट यह नामकर्म नामधेय इसहेतुसे कहलाया कि इसमेंएकहीपुरुष का उद्देश कियाजाताहै किंतु त्रिपूरुषनहीं-क्योंकि त्रिपूरुषकर्म पार्वण और वृद्धिश्राद्धों में होताहै-यद्यपि कर्म इसमेंभी पार्वणकीहीरीति अनुसारहोताहै परन्तु बहुधाबातोंमें कुछ २ अन्तर होताहै सो उसअन्तरको प्रकटकरते हैं कि एकोद्दिष्टं(दैवहीनं) अर्थात् एकोदिष्टश्राद्धमें देवकर्म कहिये विश्वेदेवाओंका आवाहन पूजन आदि सो न करना

चाहिये-और एकही अर्घ्यपात्रभी करनाचाहिये तथा एकही दर्भपवित्रक उसमें छोड़े औरभी इसएकोद्दिष्टनामश्राद्धमें आवाहनकाविधानभीनहींहोता और अग्नौकरणभी नहींहोता परन्तु(अपसव्यवत्)अर्थात् यज्ञोपवीत और अँगौछासे प्राचीनावीती किन्तु अपसव्यहोकर कर्मकरै(हि) अर्थात् इसमेंसंदेह नहीं--अब ध्यानकरो कि इसकथनसे अनन्तरोक्त वृद्धिश्राद्धमें(सव्य)होकर कर्मकरनेकी सूचनाहोगई अर्थात् २४९केश्लोक में जहां वृद्धिश्राद्धका प्रकारदर्शाया तहां उसके मूलपाठमें(सव्य)या(अपसव्य) काचर्चा नहींआया और यद्यपि उसकी अधिकोक्तिमें आश्वलायनऋषिके वाक्यसे सिद्धिभी करदीगई तथापि कोई यहकहे कि वह द्वितीय ग्रंथकी बातहै किंतु याज्ञवल्क्यजी ने अपनेमुखसे कुछनहींकहा सो यहसंदेह व्यर्थहै क्योंकि उन्होंने पार्वणको अपसव्य से करना कहाथा बीचमें वृद्धिश्राद्धके स्थान(सव्य)या(अपसव्य)कुछभी नहींकहा फिरइस एकोद्दिष्टमें आकार अपसव्यकहदिया इस्सेप्रत्यक्ष उनकाकहनाभी संसूचितहोगया कि मध्योक्त वृद्धिश्राद्धको सव्यहोकर करना चाहिये २५० ॥

उपतिष्ठतामक्षय्यस्थानेविप्रविसर्जने। अभिरम्यतामितिवदेद्ब्रूयुस्तेऽभिरताःस्मह २५१ ॥

अक्ष०--अक्षय्यस्थानमें उपतिष्ठतां यहकहे विप्रविसर्जनमें अभिरम्यतां यहकहे वे विप्र यहकहें कि अभिरताःस्म(ह)प्रसिद्ध अर्थमें २५१ ॥

अभि०--इसमें औरभी बिशेषता कहतेहैं कि २४२ के चौथेचरणसे पार्वण श्राद्धमें (अक्षय्योदक)अर्थात् यहकहाथा कि ब्राह्मणोंके हाथमें जलदेवै और ब्राह्मण उसको लेकर(अक्षय्यमस्तु)यहवाक्य उच्चारणकरैं-इसबिधिके स्थानपर यहांयहउच्चारणकिया जावै कि(उपतिष्ठतां)औरभी ब्राह्मणोंके बिसर्जनमध्ये जहां २४६ के श्लोकमें (बाजे बाजे) इत्यादि जपकियेपीछे(उत्तिष्ठपितर)इत्यादि कहकर कुशाकल्पका उठानाकहाथा इसकेबदले यहां कुशाकल्पके उठातेसमय(अभिरम्यतां)यह उच्चारणकरै फिरवेब्राह्मण अपने मुखसे यह उच्चारणकरैं कि(अभिरताःस्म)--श्लोकान्तमें एक (ह) यहअक्षरजो अधिकहै सो प्रसिद्धअर्थको देताहै अर्थात् यह निशेषता जो एकोद्दिष्टमध्येदोश्लोकों से बर्णनकरीगई सो सर्वत्र प्रसिद्धहै श्राद्धकी पद्धतोंमें किंतु कुछ नवीनबात नहींहै- यह अर्थ(ह)शब्दसे प्रकट होताहै २५१ ॥

अधि०--आगे २५३ के श्लोकमें सपिंडी करणकी बिशेषता कहकर यहकहेंगे कि (शेषंपूर्ववदाचरेत्)अर्थात् कहीहुई बिशेषताके सिवाय जोकुछ बिधिकहनी रहगईहो सो सबपूर्ववत् आचरणकरै किंतु जैसा २ पहलेपार्बणमें कहचुकेहैं उसीकेअनुसारकरै सो यही अनुकर्ष इसएकोद्दिष्टमें भी लगता है अर्थात् इसमें भी यहसमुझलेना कि (शेषंपूर्ववदाचरेत्)इस एकोद्दिष्टनाम श्राद्धका प्रारंभ मध्याह्नकालमें कर्तव्य है-सोई (देवल)ऋषिने यह कहाहै कि (पूर्वाह्णेदैविकंकर्मअपराह्णेतुपैतृकम्। एकोद्दिष्टंतुमध्याह्ने

प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्)अर्थात्-देवसंबन्धीकर्म तो दुपहरसेपहले और पितरों संबंधीकर्म दुपहरसे पीछे परन्तु एकोद्दिष्टश्राद्ध मध्याह्न किन्तु ठीकदुपहरकेबीचमें और वृद्धिश्राद्ध प्रातःकाल करनाचाहिये—यह ठीकदुपहर या मध्याह्न जो कहा सो कुतपकालका उपलक्षण है जिसकीचर्चा २२५ में आचुकीहै देखलो-इसीएकोद्दिष्टकी औरभीविशेषता कहते हैं कि २४८के श्लोकमें पार्वणविधिमध्ये यहकहाथा कि (भुंजीतपितृसेवितम्)अर्थात् श्राद्धसे बचाहुआअन्न भोजनकरे सो यहीवाक्य सबश्राद्धोंपर संबंधित है-इसीहेतुसे यद्यपि एकोद्दिष्टनामश्राद्धका बचाहुआअन्न भोजनकरना उचितहै परंतु उसअवस्थामें कि जब एकोद्दिष्ट बार्षिकहो-किंतु एकोद्दिष्ट(नवसंज्ञक)हो तो उसका बचाअन्न भोजनकरना नहीं चाहिये-तथाच(नवश्राद्धेषुयच्छिष्टंगृहेपर्युषितंचयत्। दंपत्योर्भुक्ताशिष्टंचनभुंजीतकदाचन) अर्थात्-नवश्राद्धोंमें जो बचाहो (या) जोअन्नगृहस्थीके घरमें बचाहुआ रक्खे २ पर्युषित होगयाहो(और)वहभी किजो दंपत्यदोनोंके भोजन पीछे बचाहो ऐसे अन्नको कदाचित् नहींभोजनकरै-(दंपत्य)अर्थात् स्त्री पुरुष दोनोंजो घरके स्वामीहों वे जबतक नहींभोजनकरैं तबतक चाहै कितनेही मनुष्य भोजन कर जावैं वहरसोई शुद्धबनीरहतीहै परन्तु जबघरधनी दोनोंनेभोजनकरलिया तबरसोई उच्छिष्टमें गिनती होजातीहै ऐसाअन्न विवेकीके भोजनयोग्य नहींरहता-इसीलियेघर के धनीकायहधर्म गार्हस्थ्यप्रकरणमें कहचुके हैं कि वहसबको भोजनकरवाकर पीछे भोजनकरै-यद्यपि उसघरके बहूबेटा आदिकेलिये उनके भोजनकरलेनेसे रसोईउच्छिष्ट नहीं कहलासक्ती परन्तु बड़ोंका यहसनातनधर्म है और इसलिये है कि नजानै कोई अभ्यागत या संबंधी आदि विवेकी बीचमें आजावे तो उसकेयोग्य वह रसोई नहीं रहेगी—नवश्राद्धोंका चर्चा ऊपरआयाहै तिनकेलक्षण कहतेहैं कि (प्रथमेह्नितृतीयेह्नि पंचमेसप्तमेतथा । नवमैकादशेचैवतन्नवश्राद्धमुच्यते) अर्थात्-मनुष्यके मरनेमें पहले दिवस जो एकोद्दिष्ट कियाजाता अर्थात् घरसे लेचलनेके समयसे चिताकेअन्तताईं जोपांच या छः पिंडादियेजातेहैं तिसपीछे यातो दशग्यारह दिनताईं रोजरोज अथवा तीसरे पांचवें-सातवें-नववें-ग्यारहवें दिवसोंमें जोएकोद्दिष्टकियेजाते हैं उनकोनवश्राद्ध कहतेहैं क्योंकि वहमरनेके प्रारंभमें सबसे पहलेकियेगये इस्सेनवीनहैं इसीसे नवश्राद्ध उनका नामहुआ तिनकाबचा हुआ अन्नखानेका निषेधहै इस्सेपीछे जो वर्ष वर्ष प्रति एकोद्दिष्ट होताहै उसमेंनिषेध नहीं २५१ ॥ यहविधिएकोद्दिष्टकीकही सो यहएकोद्दिष्ट स्त्रियोंकाभी उनके क्षयाहके दिनमें जुदा केवल उनके नामसेही होताहै ॥

अब आगे सपिंडी करण श्राद्ध कहतेहैं ॥

गंधोदकतिलैर्युक्तंकुर्यात्पात्रचतुष्टयम् । अर्घ्यार्थंपितृपात्रेषुप्रेतपात्रंप्रसिंचयेत् २५२ ॥
येसमानाइतिद्वाभ्यांशेषंपूर्ववदाचरेत् । एतत्सपिंडीकरणमेकोद्दिष्टंस्त्रियामपि २५३ ॥

भक्ष०सहद्वयोः—गंध उदक तिलोंकरके युक्त अर्घ्यार्थ पात्र चतुष्टयकरै-पितृपात्रोंमें प्रेतपात्रको प्रसिंचनकरै २५२ (येसमाना) इन दोमंत्रों से--शेष पूर्ववत् आचरै-यह सपिण्डीकरण-एकोद्दिष्ट-स्त्रीकाभीहै २५३ ॥

अभि०सहद्वयोः—सपिंडी करण श्राद्धमें जो कुछ विशेषताहै सो कहतेहैं कि (अर्घ्यार्थ) कहिये अर्घ्य बिधिउद्धार करनेकेलिये चार पात्र ऐसेकल्पितकरै जोपूर्वोक्त विधिके अनुसार गंधउदक तिलोंसे संयुक्तहों सो इन चार पात्रोंके कथनसे याज्ञवल्क्यजीने यहां पितृपक्षके चार ब्राह्मण दर्शायेहैं क्योंकि पात्र ब्राह्मणोंकेही निमित्तहोतेहैं और विश्वेदेवाके पक्षमें पार्वणके अनुसार दोहीबनेरहे क्योंकि नीचेके श्लोकमें कहाहै कि जो कुछ न कहाहो सो पूर्ववत् आचरै पर यहां पर इतना विशेष औरभीहै कि प्रेतपात्रमें से उसप्रेतको अर्घ्यादिये पीछे बचेहुये जलको उनतीनों पात्रोंमें थोड़ा २ भाग पूर्वक सींचदेवै सो इन मंत्रोंसे सींचै कि (ये समानाःसमनसः) इत्यादि-इसके सिवाय जो कुछ कहना शेषरहाहो सोसब विश्वेदेवा आवाहनआदि विसर्जन पर्यंत पूर्ववत् कहिये पार्वणके अनुसार बिधि आचरणकरै परन्तु इतनी विशेषता औरभीहै कि प्रेत पात्रके जलसे प्रेतस्थानी ब्राह्मणके हाथमें अर्घ्यदेकर और बचेहुयेको उनतीनों पात्रोंमें सींचकर पीछे उसप्रेतका साराकर्म भिन्नएकोद्दिष्टवत् समाप्तिकरै (और)पित्र्य पात्रों यद्वा पित्र्य ब्राह्मण तीनोंके स्थानशेषविधि पार्वणवत् आचरै-यह वर्णन किया हुआ सपिंडीकरण और इस्से पहले कहाहुआ एकोद्दिष्ट ये दोनों श्राद्धस्त्रीके भी अर्थात् माताकेभी करने चाहिये सो इसकथनसे यहसिद्धांतभी पायागया कि पार्वण बिधिमें मातृश्राद्धजुदा नहीं करना चाहिये किन्तु पिताआदि तीनोंका सपत्नीक आवाहन करनेसे मातृश्राद्धभी उनकेसाथमेंहोगये (परन्तु)वृद्धिश्राद्धमें सपत्नीक आवाहनसे नहीं होता किन्तु मातृश्राद्ध पहले जुदाकरलिया जाता है जिसमें मातादादी परदादी इनतीनोंका आवाहनहोताहै तिसपीछे पितृश्राद्धकिया जाताहै जिसमें पिता आदि तीनोंका आवाहन भिन्नहुआ करताहै सोई नीचे अधिकोक्तिमें सबसे पहलेदेखो और यहभी यादरक्खो कि २२६ के अभिप्रायार्थमें नीचे जाकर यहबात जोलिखीहै कि इसीप्रकार नानापक्षमें भी तीनोंवर्ग भिन्न २ समुझलेने-तिसका यहसिद्धांत नहीं है कि नानापक्षमेंभी तीसरामातृश्राद्ध भिन्नकरै किन्तु वहां परनानापक्षमें दोही वर्गहोंगे एक विश्वेदेवाओंका दूसरा सपत्नीक नाना परनाना सरनानाका और पिता पक्षमें वहांभी तीनवर्ग जैसे भिन्नलिखे हैं उसी प्रकारहोंगे अर्थात् सबजोड़कर पांच वर्गहुये परन्तु वहां परतीनोंवर्ग नानाकेभी इसलियेलिखेहैं कि ब्राह्मणोंकी संख्याका विभाग शीघ्रसमुझमें आजावै २५२ । २५३ ॥

अधि०सहद्वयोः—(अन्वष्टकासुवृद्धौचगयायांचक्षयेहनि। मातुःश्राद्धंपृथक्कुर्यादन्यत्र

तिनासह) अर्थात्-माताकी सपिंडताहोचुके पीछेभी जो अन्वष्टका पर्वमें श्राद्धकरै या वृद्धिकालमें नांदीमुख श्राद्धकरै अथवा गयाजीमें करै या क्षयाहके दिन एकोदिष्टकरै तब तौ माताका श्राद्धपृथक् कहिये जुदाकरै सो जुदाकरनेकीभी यहपरिपाटी है कि जो क्षयाहके दिनका एकोदिष्टहोवै तब तौ केवलमाताकेही नामसे एकपिण्डदेवै शेष और जो तीनिभेद इसमें कहेगये उनमें जुदा इसरीतिसे करै कि जैसे पिता पितामह प्रपितामह तीनोंका पार्वण एक साथहोताहै तैसेही मातादादी परदादी तीनोंका एक साथ पार्वण बिधिसे करै-(अन्यत्रपतिनासह) अर्थात् इनप्रकारोंके सिवाय और२ दशाओंमें जो पार्वण श्राद्धकरै पतिके साथ सपत्नीक आवाहन करलेवै किंतु जुदाश्राद्ध नहीं करै-सपत्नीक श्राद्धके करनेमें कुछ औरभी निर्णयकरना शेषहै अर्थात् जिसस्त्री की पतिके साथ सपिंडता करीगईहो उसका तौ पतिके साथ आवाहन करिकै सपत्नीकश्राद्धकरै क्योंकि वह उसीकी अंशभागिनीहुई परन्तु जिसस्त्रीकी सपिंढता उसके पिताके साथकरी गईहो उसका श्राद्धभी पिताकेही साथकियाजावै किंतु उसका पुत्र जब अपने नानाका श्राद्धकरै तभी अपने नानाके साथमें अपनी माताकाभी एकसाथ आवाहनकरै क्योंकि उसकी सपिंडता उसके साथहुईथी इस्से वह उसीकी अंशभागिनीहोचुकी इसहेतुसे उसके श्राद्धका अधिकार सदैवकेलिये अपनेपिताके साथहो चुका किंतु पतिके साथका अधिकार नहींरहा-सोई शातातपऋषिने यहकहाहै कि-(एकमूर्त्तित्वमायाति सपिंडीकरणेकृते। पत्नीपतिपितॄणांचतस्मादंशेनभागिनी)-अर्थात्-सपिंडकिरण श्राद्धके करचुकने पीछेपत्नी अपने पतिके साथ यद्वा अपने पितृयोंकेसाथएक मूर्त्तित्वमें आजातीहै किन्तु जिसके साथसपिण्डताहुई तिसमें और उसमें कुछ अंतरनहीं रहता तिसहेतुसे उसीकी अंशभागिनीहुआ करती है-इसनिर्णयसे अब एक और वार्त्ता यह उत्पन्नभई कि जिस पुत्रने अपनी माताकी सपिण्डता अपने नानाके साथकरीहो उसको सदैव अपने नानाका श्राद्ध उसमुख्यतासे करना चाहिये कि जैसे पिताके श्राद्धमें पुत्रको नित्यअधिकारहै परन्तु इसमुख्यतामेंभी कुछपिताके श्राद्धका अधिकार नहीं नष्टहोताहै (और) जो उसने अपनी माताकी सपिण्डतापति के साथ या सासूके साथ अर्थात् अपने पिता या अपनी दादीके साथकरीहो तौ फिर नानाके श्राद्धमें कुछसदैवकी मुख्यता नहीं आवश्यकहै-हां-केवल इतनीबात कि जो अपनेसे बनिआवै तौ अपना अभ्युदय उस्से निःसंदेह होगा पर न बनिपरनेसे दोष भागी नही होसक्ता-यहवार्त्ता तौसर्वथा निश्चितहोगई पर इस्से एक नवीनसंदेह और भी उत्पन्नभया कि सपिण्डताभी कई प्रकारकी होतीहै और किस२ के साथमें होतीहै और न जानै वह किस२ दशामें किस२ के साथ करनी चाहिये या चाहै तिस के साथ जबचाहै तबअनाबसनाब करदेवै-इसलिये अब शास्त्रांतरवाक्यभी प्रमाण

देकर लिखनेपरे जिनमें कई२ भांतिकी रीतें देखनेमें आतीहैं-तहां प्रथम तो यहीएक रीति पैठीनसिऋषिने निर्विशेष कहीहै कि-(पितामह्यादिभिःसार्द्धसपिंडीकरणंस्मृतं। तथाभर्त्रापिभार्यायाःस्वमात्रादिभिरेवच) अर्थात्-माताका सपिंडीकरण पुत्रकी दादी आदि तीनोंके साथ करना कहाहै तथैव जहां कर्मकर्त्ता पति होवै तहां वह भर्त्ता अपनी भार्याका सपिंडीकरण अपनी माता आदि तीनोंके साथकरै यहबात दोनों भांतिसे एकही रही-अब इसबातके देखनेसे कर्त्तामेंभी यह संदेहउठा कि भर्त्ताको किस दशा में कर्त्ता होना चाहिये और पुत्रको किस दशामें इसलिये कहते हैं कि-(अपुत्रायांमृतायांतुपतिःकुर्यात्सपिंडताम्। श्वश्वादिभिःसहैवास्याःसपिण्डीकरणंभवेत्) अर्थात् पुत्रकी विद्यमानतामें भर्त्ताके होतेहुयेभी पुत्रही कर्त्ताहोवै परंतु अपुत्राके मरनेमें भर्त्ताही सपिण्डताकरै और इसका सपिंडीकरणभी सासू आदिके साथहोवै-जैसा ऊपरले वाक्यमेंभी कहचुके हैं-अपुत्राके निदर्शनसे सपुत्राकेभी मरनेमें भर्त्ता कर्त्ता होगा कि जब पुत्र उस स्थानपर उपस्थित नहीं है १-अब दूसरी रीतिसे पतिके साथ सपिंडता कहते हैं जैसा (यमआचार्य) ने कहा है कि-(पत्याचैकेनकर्त्तव्यंसपिंडीकरणं स्त्रियाः । सामृतापिहितेनैक्यंगतामंत्राहुतिव्रतैः) अर्थात्-पतिसे एकल्लेकेही साथ स्त्रीका सपिंडीकरण कर्त्तव्यहै क्योंकि वह मरीहुईभी मंत्राहुति नियमोंसे उसकेही साथ ऐक्यभावको पहुँची २-अब तीसरी रीतिसे नानाके साथ किन्तु उसीके पिताके साथ सपिंडता कहते हैं जैसा (उशनाआचार्य) ने कहाहै कि-(पितुःपितामहेयद्वत्पूर्णेसंवत्सरेसुतैः । मातुर्मातामहेतद्वदेषाकार्यासापिंडता)-अपिच-(पितापितामहेयोज्यःपूर्णेसंवत्सरेसुतैः । मातामातामहेतद्वदित्याहभगवान्शिवः)-अर्थात्-उशनाने यह कहा कि-जैसे मरनेके दिनसे लेकर संवत्सरके पूर्णहोनेमें पुत्रों करके पिताकी सपिंडता पितामहके साथ किन्तु दादा आदि तीनोंके साथ करनी उचितहै उसीके समान माताकी यह सपिंडता मातामहके साथ किन्तु नाना आदि तीनोंके साथ करनी चाहिये-सोई भगवान् शिवजीनेभी कहाहै कि-संवत्सरके पूर्ण होनेपर पुत्रोंकरके पिता तो पितामह के बीचमें जोड़ना उचित है तैसेही माता मातामहके बीच ३-इत्यादि अनेक भांति की रीतोंके प्रमाणवाक्य मिलनेपरभी परस्पर एकसेएक विरुद्ध देखपड़तीहै कि किस रीतिको ठीकमानैं या किस दशामें किस रीतिका बर्त्तावाकरैं इस दृष्टिसे अब इनका विरोध शांत कियाजाताहै कि-जिस पुरुषकी भार्या निपूतीमरै वहपति आपही कर्त्ता होकर निजभार्याकी सपिंडता अपनी माताकेही साथकरै १-और जहां दैवगतिसे यह संयोग होजावै कि पति और पत्नी दोनोंका एकसाथ मरण होजाय तहां उसके पुत्र अपनी माताकी सपिंडता उस पिताकेही साथकरैं सो इस भेदमें पुत्रोंका कुछ नियम नहीं है कि किस प्रकारके विवाहसे उत्पन्न हुयेहों २ -परंतु जहां पुत्र तो (आसुर)

आदि निन्द्य विवाहों से उत्पन्न हों और वह निन्द्य विवाह करनेवाला पिता उनका चाहै विद्यमानहो चाहै पूर्वकाल में मरचुकाहो अर्थात् वह निन्द्य विवाहिता माता उनकी मरै तौ उन पुत्रों को उसमाताकी सपिण्डता अपने नानाकेही साथ करनी चाहिये और उस पुत्र को भी नानाके साथ सपिण्डता करनीचाहिये जो पुत्रिका सुत अर्थात् पुत्रकेस्थान गोदलियाहुआ बेटीका पुत्र धेवता प्रसिद्धहै ३-और जो (ब्राह्म) आदि शुभ बिवाहोंसे उत्पन्नहुये पुत्रहों उनको तीनोंभांतिकी रीतोंमें (बिकल्प) से स्वाधीनताहै अर्थात् अपनीमाताकी सपिंडता चाहै अपने पिताके साथ या अपनेनाना केसाथ या अपनी दादीकेसाथकरैं तौ कोईरीतिसेभी यद्यपि दोषनहींहै तथापि जैसा उनकेवंशमें नियतसमाचार चलाआताहो उसीके अनुसारकरैं अर्थात् यातौ उनके देशकी परिपाटीसे या ग्रामकी मर्यादासे या ठेठ अपने कुलकी परंपरासे यह नियम चलाआताहो कि सासूकेसिवाय और किसीकेसाथ नहींहोती या नानाआदि जैसी जहांकी व्यवस्थाहो उसके अनुसारकरैं—अथवा-जिसके बंशमें इसबार्त्तामध्ये कोईसा नियम परिनियमित नहीं या जिसको अपनेबंशका समाचार जो पहलेकभी था वह अब किसीहेतुसे मालूम नहींरहा तौ ऐसे कर्मकर्त्ता को सर्वथा अपनी रुचिके ऊपर स्वाधीनताहै कि वह तीनोंरीतिमेंसे कोईएक मनोज्ञसमुझै जैसा सबसेपहले उपोद्घात प्रकरणमें सातवें श्लोकमें यह कहाहै कि (स्वस्यचप्रियमात्मनः) इसकाअर्थ बिस्तारभी उसीजगह लिखचुकेहैं देखलो (भेद२) अब माताके सपिंडीआदि कर्मोंमें गोत्रके उच्चारणमध्ये निर्णय करतेहैं कि—भर्त्ताकेगोत्र या पिताकेही गोत्रसे उच्चारण करिकै पिण्डदानआदि कर्मकरै क्योंकि दोनोंकाप्रमाण शास्त्रवाक्यों से पायाजाताहै-यथा (स्वगोत्राद्भ्रश्यतेनारीविवाहात्सप्तमेपदे। स्वामिगोत्रेणकर्त्तव्यातस्याःपिण्डोदक क्रिया) अर्थात्-नारीकहिये स्त्रीमात्र बिवाहके सातवेंपदसे उपरांत अपने पितागोत्र से च्युत होजावैहै इसहेतुसे उसके पतिके गोत्रसे करनी चाहिये उसकी पिण्डोदक दानक्रिया इत्यादि अनेकवाक्य तौ पतिगोत्रका प्रमाण करतेहैं—और पितापक्षमेंभी यहकहाहै कि(पितृगोत्रंसमुत्सृज्यनकुर्याद्भर्तृगोत्रतः। जन्मन्येवविपत्तौचनारीणांपैतृकं कुलम्) अर्थात्-पितृगोत्र को छोड़कर भर्तृगोत्रसे न करै क्योंकि जन्मके मध्ये और विपत्ति कहिये मरणमेंभी स्त्रियोंका पैतृककुल अंगीकार है किन्तु पिताकेही गोत्र से जन्म और मरणमें भी उनकी सारीक्रिया करवावै इत्यादि अनेकवाक्य पिताके भी गोत्रका प्रमाण देतेहैं तौ इसमेंभी वहीसंदेह फिर उत्पन्नभया जैसा सपिंडीके स्थल में हुआथा कि किसका प्रमाण मुख्यसमझाजाय इसलिये अब इनका भी विरोध शांत कियाजाताहै कि—आसुरादि निन्द्य विवाहों वाली स्त्री तथा पुत्रिका करणवाली स्त्री किन्तु जिसकापुत्र अपने नानाकी गोद बैठाहो इनस्त्रियोंकी क्रियातौ पितृगोत्र

सेही करनी चाहिये-और (ब्राह्म) विवाहादि शुभ विवाहों वाली स्त्रीकी क्रियामध्ये (बिकल्प) अंगीकार है अर्थात् चाहै पितृगोत्र से करो चाहै भर्तृगोत्र से परन्तु इस बिकल्प में भी यहबात मुख्य है कि जिसके बंशमें जैसी परंपरा चली आतीहो उसको उसीके अनुसार चलना चाहिये सोई इसमें यहवाक्यभी प्रमाण है कि (येनास्यपितरोयातायेनयाताःपितामहाः। तेनयायात्सतांमार्गंतेनगच्छन्नदुष्यति) अर्थात् जिसमार्गसे इसमनुष्यके पितरकहिये पिता काका चाचा ताऊआदि गयेहों किन्तु जिसरीतिमें चलतेरहेहों-या-जिसमार्गसे पितामह कहिये दादा परदादा सरदादाआदि बर्त्तावाकरिगयेहों उसीमार्गसे यहआपभी जावै क्योंकि उसमार्गमें चलनेसे इसको दोष नहीं लगताहै पर इसमें इतना लक्ष्य और भी विशेषहै कि (सतांमार्गंयात) अर्थात् वह उनके बड़ोंका चलायाहुआ मार्ग जो सत्पुरुषोंके बर्त्तावे या प्रमाण योग्यहोवै तौ निःसंदेह उसपर चलैं अन्यथा जो सत्पुरुषोंके बर्त्तावे या प्रमाण योग्य नहीं होवै जिसमें कोई प्रकारका (किंतु) लगसक्काहो या कोई प्रकारके दुःखों वा निरादरोंकी संभावना देखपड़तीहो तौ उसमार्गका प्रतिरोधकरिकै निजप्रभावसे प्रशंस्य वा सुखदायी मार्ग आरोपणकरैं या इनबातोंके न होनेपरभी शंसितमार्गमें कठिनता से चलसक्काहो तौ निःसंदेह उसकी कंटाकिता वा नतोन्नतभावका परिशोधनकरैं जिस्से सौगम्य और सरलताकी प्रवृत्तिसे कठिनताका प्रतिबंध जातारहै (अथच) (यत्र शास्त्र तोनव्यवस्थानाप्याचारतस्तत्राप्यात्मनस्तुष्टिरेवेतिवचनादात्मनस्तुष्टिरेवव्यवस्थापिका) अर्थात्-जहां शास्त्रसेभी कुछव्यवस्थानियत न होवै और न आचार कहिये वंशपरंपरासे तहांभी निजआत्मा कहिये मन बुद्धि आदि इनकी प्रीतिके अनुसारकरै किन्तु दोरीतोंमेंसे जैसा अपने मन बुद्धिमें समावै तैसाकरै सो यहआत्मतुष्टिही व्यवस्थाहो जातीहै जैसापहले संस्कार प्रकरणमें १४ के श्लोकसे यहकहाथा कि (गर्भाष्टमेऽष्टमेवाब्दे) अर्थात् जनेऊचाहे गर्भसे आठवें यद्वाजन्मसे आठवें सालकरै तौ भी दोष नहीं (भेद३) इसव्यवस्थामें (प्रेत) शब्दका चर्चा मूलमेंभी २५२ के श्लोक में आया तथा अर्थोंमेंभी वहुधा आचुका और अभीनीचेके वर्णनमें विशेपतर प्रेत का चर्चा आवेगा इसलिये प्रकाशकरना योग्यहै कि प्रेत शब्दके अर्थ तौ यद्यपि कई प्रकारसे होतेहैं इसीहेतुसे प्रेतशब्दके ऊपर एकवड़ा लंबा चौड़ा शास्त्रार्थहै जिसमें नानाप्रकारके वाक्य अन्यशास्त्रोंके भी संग्रहीत और प्रमाणीभूतहैं कि जिनके अर्थाशभी शास्त्रयुक्तिके अनुसार दोदोपक्षमें यथार्थ घटजातेहैं (तहां) एक पक्षमें तौ (इत प्रपितामहका) वोध होताहै किन्तु पूर्वकी चौथी पीढ़ीपर सरदादा प्रेतनिश्चितहोजाताहै क्योंकि प्रथम तौ उसके अक्षरोंसेही यहअर्थ प्रकटहोताहै कि (प्र-इतः) प्रेत (किन्तुयः(प्रकर्षेण)(इतः)गतः)सःप्रेतः (अर्थात् जो निपटतीनोंपीढ़ीको छोड़कर ऊपरको

चलागया सो प्रेतकहलाया) इसप्रकार अर्थकी सिद्धिहुये पीछे औरभी अनेकवाक्य इसकी दृढ़तामें प्रमाणदेतेहैं यहांतक कि (उदक) (पिंड) दान आदिमें जो २ उलटा पुलटीहुई जातीहै उसकोभी सिद्धकरदेतेहैं पुनि वही सिद्धिमूलश्लोकपरभी यथार्थ घटजातीहै दृष्टांत जैसे २५२ के श्लोकमूलमें कहाहै कि (पितृपात्रेषुप्रेतपात्रंप्रसिंचयेत्) इसका भाव यह निश्चयहुआ कि चार अर्घपात्र जो कल्पित कियेहैं तिनमें पिताकी मुख्यता अनुसार तीन तौ पितृपात्रहुये अर्थात् पिता दादा परदादा इनके सो इन्हीं तीनोंपितृपात्रोंमें वहचौथे सरदादेका जोप्रेतपात्रहै तिसका जलसींचदेवै-इत्यादिअनेक वाक्य इसीपक्षको दृढ़करते चलेजातेहैं-सो उनसमस्त वाक्योंका लिखना तौ यहांपर अतिविस्तारकी भीति और वृथातुषकंडनकी दृष्टिसे अनुचितसमुझा-परंतु अब अपने मुख्य प्रयोजनपर दृष्टिकरनेकेलिये यहसमुझौ कि इसतीसरे भेदका सारालेख यहां ताईं व्यर्थ है क्योंकि प्रथम तौ वेही बहुधा वाक्य जो उसपहले पक्षकी दृढ़ताकरतेथे यथार्थसे इसपक्षमेंभी सबके सबघटते और साक्षीदेकर प्रमाणकरतेहैं किन्तु उनमें दोदो अर्थोंकी ध्वनिभरीहै दूसरेयहकारणहै कि सर्वत्र अक्षरोंकेध्वन्यर्थसे प्रयोजनमें अनर्थ नहीं कियाजासक्ता-भला जो अक्षरार्थकी सिद्धिसे वैद्यको गदहा कहनेलगै तौ क्योंकर उचितहोसक्ताहै क्योंकि यद्यपि (गदंरोगंहंतीतिगदहा) अर्थात् गदनामहै रोगका तिसे जो कोई दूरकरै वहगदहा ठीकरहै परन्तु यहबातलोकाचारमें प्रत्यक्ष विरुद्धहोनेसे अनर्थरूपहुई जातीहै किंतु जब अपने कल्याणकेहेतुसे वैद्यको बुलानेगये और चलौ गदहाजी यों पुकारकर संबोधन किया तबतत्काल द्वंद्वरूप अनर्थहोने लगैगा क्योंकि यहबात उस्से सही न जायगी फिरकल्याण कहां-इस्से-यह निश्चय जानौ कि (प्रेत) नाम उसीका होताहै जोसबसे पीछे हालमें मराहो सो यह प्रेत संज्ञा उसकी (रूढ़ि) भावसे होतीहै और केवल एकवर्ष पर्यंत मानीजातीहै जबतक सपिंडता नहीं होवै-सोई मार्कंडेयमुनि ने यह कहाहै कि(प्रेतलोकेतुवसतिर्नृणांवर्षंप्रकीर्त्तिता। क्षुत्तृष्णेप्रत्यहंतत्रभवेतांभृगुनंदन)अर्थात्-हे भृगुनंदनमनुष्योंकीवसति कहिये निवासमरजानेपीछे एकवर्षताईं प्रेतलोकमें विख्यात है जहां क्षुधा और तृष्णायह दोनों नित्यंप्रति बनीरहतीहैं-उसप्रेतलोकमें जबतक प्रेतरहताहै तब तकभूंख और प्यास इनदोनोंसे अत्यंतदुःखी होताहै और तबतक उसकी नामसंज्ञा भी पितर या पितृ शब्दके विशेषणसे नहीं बोलीजाती किंतु सपिंडी ताईं जो २ श्राद्ध उसकेहोतेहैं उनमें (प्रेत) के उद्देशसेही पिंडदानआदि होताहै-परन्तु सपिंडीके उपरांतसे उसका (प्रेतत्व) दूरहोकर (पितृत्व) प्राप्तहोताहै-यह प्रेतत्व उसका कुछएकदिन में नहीं दूरहोजाता किन्तु ३६० दिनमें सोलहश्राद्धोंके द्वाराक्रम २ से दूरहोतारहता है शेषरहा सहा बरसवेंदिन एकोद्दिष्ट सहित सपिंडी करणहोनेसे सबदूरहोजाता और

पितृभाव उसको मिलताहै इसलिये उनषोडश श्राद्धोंका करना आवश्यकहै-तथाच (यस्यैतानिनदत्तानिप्रेतश्राद्धानिषोडश।प्रेतत्वंचस्थिरंतस्यदत्तैःश्राद्धशतैरपि) अर्थात् जिसके यह सोलह प्रेत श्राद्ध नहीं दियेगये तिसका प्रेतत्वपीछे सैकरों श्राद्धदेनेसेभी बनारहताहै ॥ सोलहश्राद्धोंकी गणनायथा(द्वादशाहेत्रिपक्षेचषण्मासेमासिचाब्दिके। श्राद्धानिषोडशैतानिसंस्मृतानिमनीषिभिः)अर्थात्-एक तौ द्वादशाहका श्राद्धजोएकादशाके भोरहोताहै-दूसरा त्रिपक्षी श्राद्ध जिसे त्रिपखी कहतेहैं-तीसरा षड्मासिक जो छमाहीसे पहले साढ़ेपांचमासपर होताहै-चौथा वार्षिक जो ऊनाब्दिक साढ़े ग्यारह मासपर होताहै चारयह और बारह प्रतिमासके यह इतने षोड़शश्राद्धनामसे मनीषियों करके कहेहैं(भेद४)यहसापिंडीकरणभी जिसकाचर्चा ऊपरदूरसे चलाआताहै सो जिसकोअपनेपिताकाकरनाहो तौ उसीअवस्थामें करसकताहै कि जबदादा परदादा सरदादा तीनोंमरचुकेहों क्योंकि पितातौ प्रेतरूप निश्चितहै इसहेतुसे इसके अर्घ्यपात्रकाजल उन्हींतीनों पितरोंके पात्रोंमें सींचाजावेगा तथैव इसकापिंडभी उनतीनोंके पिण्डोंमें मिलायाजावेगा-इस्से यहभी निश्चितहुआ कि जिसका पिता प्रेत होजावै और दादा या परदादा दोमें कोई एकभी जीताबैठाहो तौ सपिण्डीकरण श्राद्धका अधिकारनहींहै-सोई यह वाक्यभी प्रमाण पायागया कि(व्युत्क्रमाच्चप्रमीतानांनैवकार्य्यासपिण्डता) अर्थात् व्युत्क्रमकहिये उलटापुलटीसे मरेहुयोंकी सपिण्डता नहींकरनी चाहिये—और मनुजी ने जो यहकहाहै कि (पितायस्यतुवृत्तस्याज्जीवेच्चापिपितामहः। पितुःसनामसंकीर्त्यकीर्त्तयेत्प्रपितामहम्) अर्थात्-जिसका पितामराहोवे और निश्चय जो पितामह कहिये दादा जीताहो वह कर्त्ता पहले पिताकाहीनाम उच्चारणकरिकै फिर प्रपितामह कहिये परदादे को उच्चारण करै-किंतु बीचमें पितामह जो जीताहै तिसके नामको छोड़देवै परन्तु इसबातमें यह सिद्धांत नहींहै कि पिता और परदादा इन दोहीका उद्देश करै या दोहीपिण्डदेवै या परदादा आदि पूर्वकेतीन अंगीकारकरिकै उनकेसाथ पिताको भी सापिंड्यकरदेवै सो नहीं क्योंकि यहवात केवलनामोंके मंत्रप्रयोग जतलानेके निमित्तसे कहीहै—इसलिये अब सपिण्डीकेस्थान यद्वा उस्सेपीछेभी जवकभी पार्वण की आवश्यकताहो उसके नियमों को कहते हैं कि इसरीतिसे उद्धारकरै-तथाहि (ध्रियमाणेतुपितरिपूर्वेषामेवनिर्वपेत्। पितायस्यतुवृत्तःस्याज्जीवेच्चापिपितामहः) अर्थात्-यह सिद्धांतहै कि-पिताकेजीतेहुये उस्सेपहले तीनोंकेनामसे पिण्डदेवै और जिसकापिता मराहोवै और पितामह जीताहोवै सोभी उसजीतेहुये पितामहसेपहले तीनोंके नाम पिण्डदेवै अर्थात् इसदशामें पिताका भिन्नश्राद्ध एकोद्दिष्टकीरीतिसे पहलेही करलिया जावेगा तिसपीछे उनतीनोंके पिंडएकसाथ दियेजावेंगे क्योंकि सपिण्डता तौ होहीनहीं सक्ती और श्राद्धकाकरना आवश्यकहै—सोई इसमें विष्णुजीका वाक्यभी प्रमाणहै कि

(यस्यपिताप्रेतःस्यात्सपितृपिण्डंनिधायपितामहात्पराभ्यांद्वाभ्यांदद्यात्)अर्थात्-जिस का पिता तौ प्रेतहोजावै औरपितामह जीताहो वहकर्त्तापहले पिताकेनामसे एकहीपिण्ड एकोद्दिष्टके बिधानसे जुदासमर्पणकरिकै तिसपीछे(पितामहात्पराभ्यांद्वाभ्यां) अर्थात् अपने पिताके पितामहको और उस्से परे दो औरोंकोभी इसहिसाबसे अपनेपरदादा आदि पूर्वके तीनों पितरों को पिण्डदेवै पार्वणके प्रकारसे यह सर्वोपरि सिद्धान्त है परन्तु इससिद्धांतसे यहबात पाईजातीहै कि जिसकिसीकी सापिंडी इसनिर्णयके अनुकूलकरनेसे छोड़ीगईहो उसकी फिर उसके मरनेपर होगी जिसके हेतुसे छोड़ीगईथी इस्सेआगे जिसके कुलका आचार जैसाहोताहो वहअपना २जानलो॥(भेद५)अवइनके नामोंके मंत्रप्रयोगभी जिस२अवस्थामें जिसरीतिसे उच्चारणकरने उचितहों सो कहने चाहिये क्योंकि सीधेक्रमके मरणमें तौ सर्वत्र (पितृभ्यःपितामहेभ्यःप्रपितामहेभ्यः) यहमंत्र प्रयोग वोलाजाताहै और सर्वत्रपद्धतियोंमेंभी इसीक्रमसे लिखाहोताहै परंतु व्युत्क्रमके मरणवाला किसप्रकारसे उच्चारणकरै इसलिये यहनियम कहतेहैं कि जिसका पिताजीताहो वह (पितुःपितृभ्यःपितामहेभ्यःप्रपितामहेभ्यः) इसयुक्तिसे उच्चारणकरै-और जिसका दादा जीताहो वह (पितामहस्य पितृभ्यःपितामहेभ्यः प्रपितामहेभ्यः) इसप्रकारसे कहै-ऐसेही मातृश्राद्धोंमें माता दादी परदादी आदिके व्युत्क्रम मरण मध्ये यहनामोंका प्रयोग और इस्से पहले चौथे भेदमें वर्णनकरी सपिंडताका भी निर्णय अपनीबुद्धिसे अनुमानकरलेना॥(भेद६)उसचौथेभेदमें वर्णनकरी सपिंडताके निर्णयमें इतनीबात औरभी विशेषहै कि गोब्राह्मणआदिसे मृत्युपाये पिताकी भी सपिंडता नहीं होतीहै-सोई कात्यायन ऋषिका यहवाक्यभी प्रमाणहै कि(ब्राह्मणादिहतेताते पतितेसंगवर्जिते।व्युत्क्रमाच्चमृतेदेयंयेभ्यएवददात्यसौ)अर्थात्-ब्राह्मणगऊ आदिसे पिताके मारेजाने या पतित कहिये वैधर्म्य किंतु जातिच्युतहो जाने या संग वर्जित कहिये संन्यासीहोजाने अथवा व्युत्क्रमकीमृत्युपाजाने परभी उनको पिंडदेने चाहिये कि जिनको यह आपदियाकरताथा-अर्थात् इसप्रकारकी मृत्युवालोंकी सापिंडता तौ नहीं करनी परइनसे पहलेतीनों पितरोंकेनामसे पार्वण विधिकरदेनी चाहिये-और भी यहविशेषताहै कि जो व्युत्क्रममृत्युके हेतुकरके सापिंडीकर्मसे वर्जितरहे हों तिनका यह सापिंडीकर्म उसदशामें फिर कियाजावेगा कि जवकभी व्युत्क्रमसेजी तारहनेवाला मरै इसका चर्चा ऊपरभी चौथे भेदके अन्तमें आचुकाहै परन्तु यहां पर और जो गोब्राह्मणादिहतगिनायेगये उनकी पीछेभी न होगी किंतु उनकीगया श्राद्धहोनासंभवितहै और संग वर्जित जो संन्यासी इनकेसाथमें गिनतीहुआ तिसका चर्चा फिरभी आगे २५४की अधिकोक्तिके चौथेभेदमें आवेगा वहां इसका बिधिपूर्वक निर्णय देखलेना-इस्से आगे जिसके कुलमें जैसाजैसा शिष्टसमाचार चलाआता हो वहअपना २जानलेना २५२।२५३॥

अब इस्से आगेसालभरके मासिकश्राद्धसंयुक्तसोलह श्राद्धोंका निर्णय करतेहैं॥

अर्वाक्सपिंडीकरणंयस्यसंवत्सराद्भवेत्। तस्याप्यन्नंसोदकुंभंदद्यात्संवत्सरंद्विजे २५४॥

अक्ष०—जिसका सपिंडीकरण संवत्सरसे पहले होवै तिसके अर्थभी संवत्सरतांई अन्न और जल सहित कुंभ द्विजको देवै २५४॥

अभि०—सपिंडीकरण श्राद्ध जिसप्रेतका वर्षभीतर करलियाहो तिसकेलियेभी निजशक्ति अनुसार अन्न और जलकाभरा घट यह रोजरोज या मास२ प्रतिउसके नामके उद्देशते सालभरतक ब्राह्मणको दिये जावे २५४॥

अधि०—इसऊपरके कथनसे दोबातें प्रकटहुईं-एक तो यह कि सपिंडीकरणकी अवधि जो याज्ञवल्क्यजीने अनन्तरोक्त मूलश्लोकोंमें नहीं कहीथी सो यहां परदर्शाईहै कि होना तो सालपूरेमेंही उचितहै परकहीं किसीहेतुसे सालके भीतरभी करलेना उचितहै और दूसरी यहबात कि पूरेसालकी सपिंडी तांई प्रेतको अन्न और जलकुंभदेना होताहै कदाचित् कोई सालभीतर करलेनेसे आग्रहकरै कि सपिंडी तो होहीगई अब उसबातसे क्याकामहै जो अन्न और जलकुंभका झगड़ा शेषरक्खैं सो नहीं किंतु सालभीतर करलेने परभी वहकाम सालपूरे तांई कियेजावे-वर्षभीतर सपिंडी होजानेके मध्ये (आश्वलायन) ऋषिनेभी यहकहा है कि(अथसपिंडीकरणंसंवत्सरांतेद्वादशाहेवा)अर्थात्-अब सपिंडीकरणका होना संवत्सरके अन्तमें अथवा द्वादशाहके दिनमें-(कात्यायनजी) ने यह कहाहै कि(ततःसंवत्सरेपूर्णेसपिंडीकरणंभवेत्। त्रिपक्षेवा यदावावृद्धिरापद्यतेतदा)अर्थात्-तिसपीछे संवत्सरपूराहोनेपर सपिंडी करणहोवे या जबसंवत्सरके भीतरहो तब या तो त्रिपक्षकहिये तीन पखवाड़े पूरेहोने पर या जब कभी वृद्धिप्राप्तहोवे किंतु पिताके मरे पीछे सपिंडीका समयआनेसे पहलेही किसीके उसघरमें पुत्रजन्महोजावे तो फिर उसीसमय सपिण्डी करदेवै किन्तु वर्ष या त्रिपक्षपूराहोनेकी आवश्यकता नहींहै-इनसभी आचार्योंके कथनसे द्वादशाह १ त्रिपक्ष २ वृद्धिकाल३ संवत्सरका अन्त ४ यहचार पक्षसपिण्डीके निश्चितहुये तिनमेंसे द्वादशाहमें तो पिताका सपिंडीकरण साग्निक द्विजको करना चाहिये क्योंकि उसको नित्यंप्रति पितृयज्ञकीभी आवश्यकता बनीरहतीहै और सपिंडी विना पिंड या पितृयज्ञ आदि कर्मोंकी सिद्धिनहीं होतीहै इस्सेवहशीघ्र निपटजावै-सोई यहवाक्यभी प्रमाण है कि (साग्निकस्तुयदाकर्त्ताप्रेतोवाप्यग्निमान्भवेत्। द्वादशाहेतदाकार्यंसपिंडीकरणंपितुः) अर्थात्-जहां कर्मकाकर्त्तासाग्निकहोवे या प्रेतही अग्निवान् हो तब द्वादशाहमेंही पिताका सपिंडी करणकर देना चाहिये-और जो मनुष्य निरग्निकहो वह तो त्रिपक्षमें करै या वृद्धिकालमें करै या संवत्सरके पूरेहोनेमें करै॥ (भेद२) यहबातो तो इसप्रकारसे निश्चय होगई (परन्तु) अब यह एकबड़ाभारी संदेहदेख पड़ताहै कि जब

संवत्सरके भीतर कोई सपिंडी करना चाहै तब सोलहश्राद्ध कैसेहोंगे किंतु षोडशश्राद्धोंको पहलेदेकर पीछे सपिंडीकरै या सपिंडी पहलेकरलेवे और षोडशश्राद्धोंको अपने२ आगंतासमयों परपीछे करतारहे क्योंकि वे सोलहश्राद्ध तौ सालभरमें पूरेहोतेहैं (और) इसबार्त्तामें पूर्वापरके मध्ये दोनों भांतिके वाक्य पायेजातेहैं-यथा-एकपक्षवाला तौ यहवाक्यहै कि(श्राद्धानिषोडशादत्वानतुकुर्यात्सपिंडनम् । श्राद्धानिषोडशापाद्य विदधीतसपिण्डताम्) अर्थात्-सोलह श्राद्धों के दिये बिना सपिण्डन श्राद्धको नहीं करै किन्तु सोलह श्राद्धों को करलिये पीछेही सपिण्डी करै-और दूसरा पक्ष यह कहता है कि (यस्यापिवत्सराद्‌र्वाक्सपिण्डीकरणंभवेत् । मासिकंचोदकुंभंचदेयंतस्यापिवत्सरम्) अर्थात्-जिसकी किसीहेतुसे वर्ष भीतर भी सपिण्डी होवै तिसकाभी मासिक श्राद्ध और जलकुंभआदि जो कुछहोताहै सो वर्षताई दिये जावें-अब इनदो पक्षोंकी बिरोधतामें शांति वर्णन करतेहैं कि-जबसपिण्डी वर्षभीतर करनीपड़े तहां (उत्तमकल्प) तौ यहीहै कि सपिण्डीकोही पहलेकरै और सोलहश्राद्धोंको पीछे अपने२ सूचितकालोंमें करतारहे क्योंकि सूचितकालकी अप्राप्तिमें करनेका अधिकार नहीं होताहै और सपिण्डीका तौ वर्ष भीतरभी कालसंसूचितहै इस्से उसको करनेमें दोष नहीं (और) वहबात जो कहीथी कि सोलहश्राद्धों के किये बिना सपिण्डी नहीं करनी तिसका यहभावार्थहै कि उनश्राद्धोंकाकरनाअतिशय आवश्यकहै किन्तु करनेमेंउपेक्षा नहीं करनी चाहिये और आगापीछा तौ यथाक्रमसे संभवितहोगा सोई होसक्ताहै-और दूसरे पक्षमें यहवाक्य जो प्रमाणहै कि सोलहश्राद्धोंको पहले एकसाथ इकट्ठे करिकै पीछे संवत्सरके भीतरभी सपिण्डीकरै सो यह (आपत्कल्प) गौणकहलाताहै अर्थात् जिसको कोई ऐसीही आपत्ति देख पड़तीहो कि जानैं पीछे मुझ से इसबातका निर्वाहहोगा या नहीं तौ ऐसापुरुष एकसाथसोलह श्राद्धोंकोउद्धारकरिकै फिर सपिंडी करै-(परन्तु) इसदशामें औरभी कुछ विशेषता चिंतनीयहै कि जबसपिंडीसे पहलेही (आपत्कल्प) की रीतिसे सोलहश्राद्ध एकसाथ निपटावै तब उनश्राद्धोंको केवल एकोद्दिष्टकेही विधानसेकरै अन्यथा नहीं-और जो (उत्तमकल्प) की रीतिसे सपिंडीको पहलेकरलेवे तौ उस्से उपरांतके बचेहुये षोडशश्राद्धोंमें कर्त्ताको साधारण भावसे भी अपनी शक्ति और श्रद्धाके अनुकूल स्वाधीनताहै तथा अपनेकुलाचार या देशाचार सेभी यहस्वाधीनताहै कि चाहै एकोद्दिष्ट विधिसेकरै चाहै पार्वण विधिकरै परन्तु इस (विकल्प) का सिद्धांत केवल इतनाहै किवर्षकेउपरांत हरसालके वार्षिक श्राद्धोंमें जिसको जैसा अधिकार अपने अपने कुलाचारके अनुसारहो वैसीही स्वाधीनतावर्ष भीतर सपिंडीके उपरांत सोलहश्राद्धोंके शेषमेंभी उचितहै कि चाहै पार्वणकरै चाहै एकोद्दिष्टकरै-सोई इसविशेषता मध्ये यहस्मृतिभी प्रमाणहै कि (सपिंडीकरणाद‌र्वाक्कुर्वन्

श्राद्धानिषोडश। एकोद्दिष्टविधानेनकुर्यात्सर्वाणितानितु॥सपिंडीकरणादूर्ध्वंयदाकुर्यात्तदापुनः।प्रत्यब्दंयोयथाकुर्यात्तथाकुर्यात्सतान्यपि) अर्थात्-सपिंडीकरणसे अर्वाक्कहिये इधर किन्तु भीतर२ षोडश श्राद्धकरताहुआ एकोद्दिष्ट विधानसे उनसबोंको करै (तु) शब्दके अभिप्रायसे निर्विकल्प यहबातसमझनी-और जबसपिंडीकरणसे उपरांतकरै तब उनकोभी वहकर्त्ता उसभांतिकरै जो जिसभांति प्रत्यब्दकरै या करनेका अधिकारीहो॥ (भेद३) यहपूर्वोक्त प्रेतश्राद्ध सहित सपिंडी करणभी अनेक भाइयोंकेहोने और धनबांटकर जुदे२होजाने परभी एकहीको कर्त्तव्यहै किन्तु सबके सबजुदा२ श्राद्धभी उसप्रकारसे न करनेलगैं जैसे देवकर्म या दानकर्म और तीज त्योहार अपने२ घर सबजुदा करतेहैं-तथाच(नवश्राद्धंसपिंडत्वंश्राद्धान्यपिचषोडश।एकेनैवतुकार्याणिसंविभक्तधनेष्वपि) अर्थात्-नवश्राद्ध जो द्वादशाहसे पहले२ किये जातेहैं और सपिंडीश्राद्धऔर षोड़शश्राद्धभी यहसब एकही करके कर्त्तव्यहैं धनोंके बँटजानेमेंभी-परन्तु यह वात निर्विकल्प आवश्यकहै कि जोकोई एकभ्राता कर्म करनेका अधिकारीहो उसको थोड़ा२धनसभी मिलकर कामकी अपेक्षा और अपनी शक्ति वा प्रभुता अनुसारदेवें जिस्से कर्मफलके भागीहों और बिभागमें पायेहुये पैतृकधनके ऋणभारसे उद्धारहों॥ (भेद४) यह प्रेतश्राद्ध सहित सपिंडी करण पुत्रादिकों करके उनमनुष्योंका अवश्य भाव नियमसे करनाचाहिये जो संन्यासी न होगयेहों किन्तु जो संन्यासीहुयेहों उनका नहीं-तथाचउशनाः (एकोद्दिष्टंनकुर्वीतयतीनांचैवसर्वदा।अहन्येकादशेप्राप्तेपार्वणंतुविधीयते॥सपिंडीकरणंतेषांनकर्त्तव्यंसुतादिभिः।त्रिदंडग्रहणादेवप्रेतत्वंनैवजायते) अर्थात्-यतियोंका सदैव प्रतिवर्ष एकोद्दिष्टभीनकरै और पुत्रादिकों करके सपिंडी करणभी न करना चाहिये क्योंकि (त्रिदंडग्रहण) करनेसेही उनकोप्रेतत्वनहीं होताहै परन्तु ग्यारहवाँ दिवसप्राप्त होनेमें उनकाभी पार्वण कियाजाताहै-इसमें भी चित्तकी स्थिरता या विचारकी लघुतासे संदेहहोसक्ताहै कि जवसपिंडीके होने विना पार्वणका निषेधही करते चलेआतेहो फिर संन्यासियोंका क्योंकर पार्वणहोगा जिनकी सपिण्डीका निषेधभी इन्हीं श्लोकोंमें कहाहै-समुझो यहकेवल चित्तकीभ्रमताहै किन्तु जोसपिण्डीका निषेध उनको किया पर इन्हीं श्लोकोंमें यहभी तौ कहाहै कि उनको त्रिदंडके लेनेमें प्रेतत्व नहीं लगताहै फिर सपिण्डीकी या प्रेतश्राद्धकी क्या आवश्यकतारही क्योंकि सपिण्डी यद्वा प्रेतश्राद्धभी केवल इसनिमित्तसेहोताहै कि उनका प्रेतत्वछूटजावे और अपने पूर्व पितरों में मिलजावें भला यहभी सबठीक है परसंदेहकी प्रबलता अभी जाती नहीं क्योंकि प्रेतत्व तौ लगता नहीं इसहेतुसे सपिण्डी और प्रेतश्राद्ध इनका नहीं किया परन्तु सपिण्डी बिना किसके साथ इसका उच्चारणकरै जो क्रमसे तीनों पिण्डदिये जावें सोकहो-समुझो इसीलिये २५३ की अधिकोक्ति व्यवस्थाके छठेभेद

में कात्यायन ऋषिका वाक्यलिखचुकेहैं सो देखौ उसमें यहकहाहै कि (संगवर्जित) अर्थात् जो संन्यासी होगयाहो उसके मरेपर पार्वण श्राद्ध उनके नामसेदेना चाहिये कि जिनतीनोंको यहसंन्यासी आपदेताथा किन्तु संन्यासीके बापदादे परदादे इनतीनों का पार्वणकरे क्योंकि पार्वणमें तीनही पिण्डहोतेहैं इसलिये तीनसे न्यून या अधिक पितरोंका उद्देश नहीं होता अगर तीसरा पिण्ड इसका होता तौ चौथा परदादाका छूटजाता परन्तु इसका तौ सपिण्डी बिनाहोता नहीं इसलिये उन्हीं तीनोंकी तृप्तिद्वारा इसकी परमतृप्तिहोवेगी अन्यथा वहसिद्धांतसे किसीके पिण्डोंका भूंखानहीं किन्तु करनेवालेके वंशका साक्षात् अभ्युदयरूपहै जिसके हेतुसे पूर्वपितरोंका उत्सव आरोपितहुआ-इसवार्ता में त्रिदंडकाचर्चा आयाथा सो संन्यासियोंका त्रिदंडनाम एकप्रकारकादंड विशेष यद्यपि वस्तुरूपसे होता किन्तु चतुरंगुल गो वालोंकी त्रिवलीगूँथ कर कृत्रिम कियाजाता और उसके धारणकरनेवाला त्रिदंडी कहलातावरन उसकापंथभी उसके नामसे भिन्न विख्यातहो जाताहै (परन्तु) यहांपर ठेठकरउसकाचर्चा नहींहै क्योंकि प्रथम तौ उसकृत्रिम दंडके धारणकरनेसेही प्रेतत्वका अभाव संभवितनहीं यद्वा संभवित होने परभी दूसरा यहदोष लगताहै कि उसकेवल त्रिदंडीकोही प्रेतत्व नहीं लगसक्ता किन्तु अन्यसंन्यासियों को प्रेतत्व लगताहोगा . क्योंकि इसभेदके लिखेहुये दो श्लोकोंमें त्रिदंडग्रहणका विशेषण आयाहै (इसलिये) यहां पर संन्यासीमात्रकाचर्चा है क्योंकि (त्रिदंड) संन्यासके आश्रममात्रकी संज्ञाहै इसहेतुसे कि उसआश्रमके सामान्यलक्षण यहप्रसिद्धहैं कि मन१ वाणी२ शरीर३ इनतीनोंको अपने आप दंडदेवै सो (त्रिदंडी) अर्थात् यती और इनतीनोंको दंडदेना यहीहै कि असत्संकल्प १ और असद्वाक्य२ और असद्व्यापार३ इनसेहोने नहींदेवै-सोई मनुजीने यहकहाहै कि (वाग्दंडोऽथमनोदंडःकायदंडस्तथैवच।यस्यैतेनिहिताबुद्धौत्रिदंडीतिसउच्यते)अर्थात् वाग्दंड१ मनोदंड२ कायदंड३ जिसकी बुद्धिमें यहतीनोंदंड उपस्थितहों वह (त्रिदंडी) कहाजाताहै-और उसीको प्रेतत्व नहीं लगताहै (अन्यथा) केवल गैरिक वस्त्रोंकोहीपीड़ा देनेसे प्रेतत्व दूरहोना तौ दूरहै वरन वहकहावतभी सद्भावहोजाती है कि ढोलहूसेखालगई क्योंकि यहत्रिदंड कुछऐसा मद्दानहीं विकताहै जो हरकिसी संन्यासीके भागमें लुटताहो ॥ (भेद५) यहां ताईं सारीक्रिया केवलपुत्रोंद्वारा बतलाईं इस्से कहते हैं कि पुत्रोंकी अनुपस्थितिमें सगोत्रीआदि जिसकिसीने आवश्यकतासे स्वर्यातकी दाह क्रियाकरीहो उसीको दशदिन ताईंका साराकर्मकरना योग्यहै-तथाच(असगोत्रःसगोत्रोवास्त्रीदद्याद्यदिवापुमान्। प्रथमेहनियोदद्यात्सदशाहंसमापयेत)अर्थात्-असगोत्री चाहै अपनासगोत्रीही और स्त्री यद्वा पुरुषदाहदेवै परइनमें जो कोई पहले दिवस देवै सोई दशदिनभर सारा कर्म समापनकरै-तिसपीछे जो कुछहोताहो सो उसकेअनु-

श्राद्धानिषोडश। एकोद्दिष्टविधानेनकुर्यात्सर्वाणितानितु॥सपिंडीकरणादूर्ध्वंयदाकुर्यात्त दापुनः।प्रत्यब्दंयोयथाकुर्यात्तथाकुर्यात्सतान्यपि) अर्थात्-सपिंडीकरणसे अर्वाक्कहिये इधर किन्तु भीतर२ षोडश श्राद्धकरताहुआ एकोद्दिष्ट विधानसे उनसबोंको करै (तु) शब्दके अभिप्रायसे निर्विकल्प यहबातसमझनी-और जबसपिंडीकरणसे उपरांतकरै तब उनकोभी वहकर्त्ता उसभांतिकरै जो जिसभांति प्रत्यब्दकरै या करनेका अधिकारीहो॥(भेद३)यहपूर्वोक्त प्रेतश्राद्ध सहित सपिंडी करणभी अनेक भाइयोंकेहोने और धनबांटकर जुदे२होजाने परभी एकहीको कर्त्तव्यहै किन्तु सबके सबजुदा२ श्राद्धभी उसप्रकारसे न करनेलगैं जैसे देवकर्म या दानकर्म और तीज त्योहार अपने२ घर सबजुदा करतेहैं-तथाच(नवश्राद्धंसपिंडत्वंश्राद्धान्यपिचषोडश।एकेनैवतुकार्याणिसंविभक्तधनेष्वपि)अर्थात्-नवश्राद्ध जो द्वादशाहसे पहले२ किये जातेहैं और सपिंडीश्राद्धऔर षोडशश्राद्धभी यहसब एकही करके कर्त्तव्यहैं धनोंके बँटजानेमेंभी-परन्तु यह वात निर्विकल्प आवश्यकहै कि जोकोई एकभ्राता कर्म करनेका अधिकारीहो उसको थोड़ा२धनसभी मिलकर कामकी अपेक्षा और अपनी शक्ति वा प्रभुता अनुसारदेवैं जिस्से कर्मफलके भागीहों और बिभागमें पायेहुये पैतृकधनके ऋणभारसे उद्धारहों॥ (भेद४) यह प्रेतश्राद्ध सहित सपिंडी करण पुत्रादिकों करके उनमनुष्योंका अवश्य भाव नियमसे करनाचाहिये जो संन्यासी न होगयेहों किन्तु जो संन्यासीहुयेहों उनका नहीं-तथाचउशनाः (एकोद्दिष्टंनकुर्वीतयतीनांचैवसर्वदा।अहन्येकादशेप्राप्तेपार्वणंतुविधीयते॥सपिंडीकरणंतेषांनकर्त्तव्यंसुतादिभिः।त्रिदंडग्रहणादेवप्रेतत्वंनैवजायते)अर्थात्-यतियोंका सदैव प्रतिवर्ष एकोद्दिष्टभीनकरै और पुत्रादिकों करके सपिंडी करणभी न करना चाहिये क्योंकि (त्रिदंडग्रहण) करनेसेही उनकोप्रेतत्वनहीं होताहै परन्तु ग्यारहवाँ दिवसप्राप्त होनेमें उनकाभी पार्वण कियाजाताहै-इसमें भी चित्तकी स्थिरता या बिचारकी लघुतासे संदेहहोसक्ताहै कि जबसपिंडीके होने विना पार्वणका निषेधही करते चलेआतेहो फिर संन्यासियोंका क्योंकर पार्वणहोगा जिनकी सपिण्डीका निषेधभी इन्हीं श्लोकोंमें कहाहै-समुझो यहकेवल चित्तकीभ्रमताहै किन्तु जोसपिण्डीका निषेध उनको किया पर इन्हीं श्लोकोंमें यहभी तौ कहाहै कि उनको त्रिदंडके लेनेमें प्रेतत्व नहीं लगताहै फिर सपिण्डीकी या प्रेतश्राद्धकी क्या आवश्यकतारही क्योंकि सपिण्डी यद्वा प्रेतश्राद्धभी केवल इसनिमित्तसेहोताहै कि उनका प्रेतत्वछूटजावै और अपने पूर्व पितरों में मिलजावैं भला यहभी सबठीक है परसंदेहकी प्रबलता अभी जाती नहीं क्योंकि प्रेतत्व तौ लगता नहीं इसहेतुसे सपिण्डी और प्रेतश्राद्ध इनका नहीं किया परन्तु सपिण्डी विना किसके साथ इसका उच्चारणकरै जो क्रमसे तीनों पिण्डदिये जावें सोकहो-समुझौ इसीलिये २५३ की अधिकोक्ति व्यवस्थाके छठेभेद

में कात्यायन ऋषिका वाक्यलिखचुकेहैं सो देखो उसमें यहकहाहै कि (संगवर्जित) अर्थात् जो संन्यासी होगयाहो उसके मरेपर पार्वण श्राद्ध उनके नामसेदेना चाहिये कि जिनतीनोंको यहसंन्यासी आपदेताथा किन्तु संन्यासीके बापदादे परदादे इनतीनों का पार्वणकरै क्योंकि पार्वणमें तीनही पिण्डहोतेहैं इसलिये तीनसे न्यून या अधिक पितरोंका उद्देश नहीं होता अगर तीसरा पिण्ड इसका होता तौ चौथा परदादाका छूटजाता परन्तु इसका तौ सपिण्डी बिनाहोता नहीं इसलिये उन्हीं तीनोंकी तृप्तिद्वारा इसकी परमतृप्तिहोवेगी अन्यथा वहसिद्धांतसे किसीके पिण्डोंका भूखानहीं किन्तु करनेवालेके बंशका साक्षात् अभ्युदयरूपहै जिसके हेतुसे पूर्वपितरोंका उत्सव आरोपितहुआ-इसवार्ता में त्रिदंडकाचर्चा आयाथा सो संन्यासियोंका त्रिदंडनाम एकप्रकारकादंड विशेष यद्यपि वस्तुरूपसे होता किन्तु चतुरंगुल गो वालोंकी त्रिवलीगूँथ कर कृत्रिम कियाजाता और उसके धारणकरनेवाला त्रिदंडी कहलातावरन उसकापंथभी उसके नामसे भिन्न विख्यातहो जाताहै (परन्तु) यहांपर ठेठकरउसकाचर्चा नहींहै क्योंकि प्रथम तौ उसकृत्रिम दंडके धारणकरनेसेही प्रेतत्वका अभाव संभवितनहीं यद्वा संभवित होने परभी दूसरा यहदोष लगताहै कि उसकेवल त्रिदंडीकोही प्रेतत्व नहीं लगसक्ता किन्तु अन्यसंन्यासियों को प्रेतत्व लगताहोगा, क्योंकि इसभेदके लिखेहुये दो श्लोकोंमें त्रिदंडग्रहणका विशेषण आयाहै (इसलिये) यहां पर संन्यासीमात्रकाचर्चा है क्योंकि (त्रिदंड) संन्यासके आश्रममात्रकी संज्ञाहै इसहेतुसे कि उसआश्रमके सामान्यलक्षण यहप्रसिद्धहैं कि मन१ बाणी२ शरीर३ इनतीनोंको अपने आप दंडदेवै सो (त्रिदंडी) अर्थात् यती और इनतीनोंको दंडदेना यहीहै कि असत्संकल्प १ और असद्वाक्य२ और असद्व्यापार३ इनसेहोने नहींदेवै-सोई मनुजीने यहकहाहै कि (वाग्दंडोऽथमनोदंडःकायदंडस्तथैवच। यस्यैतेनिहिताबुद्धौत्रिदंडीतिसउच्यते) अर्थात् वाग्दंड१ मनोदंड२ कायदंड३ जिसकी बुद्धिमें यहतीनोंदंड उपस्थितहों वह (त्रिदंडी) कहाजाताहै-और उसीको प्रेतत्व नहीं लगताहै (अन्यथा) केवल गैरिक वस्त्रोंकोहीपहिरा देनेसे प्रेतत्व दूरहोना तौ दूरहै वरन वहकहावतभी सद्भावहोजाती है कि ढोलहूसेखालगई क्योंकि यहत्रिदंड कुछऐसा मद्दानहीं विकताहै जो हरकिसी संन्यासीके भागमें लुटताहो॥ (भेद५) यहां ताईं सारीक्रिया केवलपुत्रोंद्वारा वतलाईं इस्से कहते हैं कि पुत्रोंकी अनुपस्थितिमें सगोत्रीआदि जिसकिसीने आवश्यकतासे स्वयंतकी दाह क्रियाकरीहो उसीको दशदिन ताईंका साराकर्मकरना योग्यहै-तथाच (असगोत्रःसगोत्रोवास्त्रीदद्याद्यदिवापुमान्। प्रथमेहनियोदद्यात्सदशाहंसमापयेत) अर्थात्-असगोत्री चाहै अपनासगोत्रीही और स्त्री यद्वा पुरुषदाहदेवै परइनमें जो कोई पहले दिवस देवै सोई दशदिनभर सारा कर्म समापनकरै-तिसपीछे जो कुछहोताहो सो उसकेअनु-

पस्थित पुत्रादिक आकरकरैं यद्वा किसीहेतुसे पीछेभी उसीको करनाहो तवसपिंडी ताईं तो आवश्यकहै किन्तु सपिण्डीसे उपरांत जो वार्षिकपार्वणादि कियेजाते हैं उन में पुत्रोंका अधिकार तो निर्विकल्प नियमसेही निश्चितहै परसगोत्री आदि जिसने दाह कियाहो उसकेलिये बिकल्पहै अर्थात् वहअपनी इच्छा और श्रद्धाके अनुसार चाहे करो या मतकरो ॥ (भेद६) इसीप्रकार पूर्वोक्तरीतोंके अनुसार यहसपिण्डी कर्म शूद्रोंकाभी बारहवें दिवसकरना योग्यहै पर मंत्रोंबिना-तथाच विष्णुस्मरणम्-एवंस-पिण्डीकरणंमंत्रवर्ज्यंशूद्राणांद्वादशेह्नि २५४ ॥

अबनीचेकेश्लोकमें एकोद्दिष्ट श्राद्धकरनेके कालबतलाते हैं ॥

मृतेऽहनितुकर्तव्यंप्रतिमासंतुवत्सरम् । प्रतिसंवत्सरञ्चैवमाद्यमेकादशेऽहनि २५५ ॥

अक्ष०—एकवत्सर-प्रतिमास मरे दिनमें फिर२कर्तव्यहै-और प्रतिसंवत्सरभी फिर फिरकर्त्तव्यहै-आद्यश्राद्ध ग्यारहवें दिनमें २५५ ॥

अभि०—एकसाल भर ताईं प्रतिमास उसके क्षयाह दिनमें एकोद्दिष्ट करना चाहिये पुनिसपिण्डीहुयेपीछे हरसालभी एकोद्दिष्ट उसके मरेदिनमें करनाचाहिये-(आद्य) कहिये सबसे पहला श्राद्ध जिसको लोकमें एकादशाहभी कहते हैं सो ग्यारहवें दिनमें करै २५५ ॥

अधि०—यहां पर सावधानहोकर ध्यान धरना चाहिये कि योगीश्वर याज्ञवल्क्य जीको जो कुछ कहना था सो कहचुके जैसा कि अभिप्रायार्थ में लिखागया है और मुख्य प्रयोजन भी यही अंत में भी सिद्धकिया जावेगा (परंतु) संसारकी प्रकृति अनुसार इसके निर्णय मध्ये जो अगाध सागर सम शास्त्रार्थ है जिसको इसी अधिकोक्ति के दूसरे भेदसे लिखनाप्रारम्भ करैंगे और चौथे भेदमें समाप्ति पावेगा-यद्यपि उसके लिखने की बड़ीसी आवश्यकता नहीं है क्योंकि (कार्य) कीसाधकता तो मुख्य सिद्धांत केही ध्रुवा से अपेक्षा रखती है-तथापि जिज्ञासु लोगों को यथावत् उसके पूर्वापर का बोध और उस्से न्यूनाधिक या बिपरीत दृष्टिका सिद्धांत यद्वा सार्वदेशिक आचार की परिपाटी समझलेनेके हेतुसे लिखनाभी आवश्यक है इसलिये उक्तभेदोंमें जाकरदेखो-परअभी इसमें एक व्यवस्था औरभी कहनी शेषहै जिसका लिखना इसीजगह आवश्यकहै तिसके मध्ये यह अग्रोक्त स्मृति कुछ विशेष कहती है कि-(अपरिज्ञातेमृतेऽहन्यमावास्यायांश्रवणादिवसेवा) अर्थात्-मरणका दिवस जिसका नहीं जानाजाय तव उसका श्राद्ध अमावास्यामें करै या उसदिन करै जिसदिन उस के मरनेकी वात सुनीगईहो-सो-इन दोनों में यह सिद्धांत है कि जिसका दिन तो निश्चय नहीं पर मरण का महीनामात्र मालूम हो तिसकातो उसीमासकी अमावसमें करै और जिसका मासभी निश्चित नहीं होवे उसकेलिये अमावस नहीं किंतु जिस

दिन मरनेकी बातसुनीगई तिसदिनकरै-इसके सिवाय जिस किसीका महीना या दिन भी नहीं मालूम और मरने की बातभी सुनिबेमें न आईहो अर्थात् जबसे कभी बिदेशगया तबसे कोई भांति की खबर उसकी नहीं पाई और इसी हेतुसे शास्त्रोक्त अवधिबीति जानेपर उसका मरना निश्चय करिकै देहांत क्रिया तौ करनीचाही पर किसदिन करै इस अपेक्षा में यह व्यवस्था है कि जिसदिन घरसे निकसा हो तिसदिन करै अथवा वह दिन भी याद नहीं है कि वह किसदिन घरसे गयाथा क्योंकि बारह वर्षोंकी बात हर कोई नहीं यादरखसक्ता है तब ऐसी दशामें उस महीना की अमावस के दिन करै कि जिस महीना में वह घरसेगयाथा सोई इसबार्त्ता में यह स्मृति भी प्रमाणहै कि-(प्रबासदिवसेदेयंतन्मासेन्दुक्षयेपिवा)अर्थात्-प्रबासकहिये परस्थानके दिन श्राद्ध बिधिदेयहै यद्वा उसी महीनाकी इन्दुक्षयनाम अमावसके रोज देवै-यह तौ मूलवाक्यहै और इसकी व्यवस्था ऊपर स्पष्ट होहीचुकी-परंतु यहांपरशास्त्रोक्त अवधिका चर्चा आयाथा उसका ज्ञानहोनाभी आवश्यकहैकि वह कितनी अवधिहोती है सो वह अवधियद्यपि कई भांति से होतीहै और जहां तहां अनेक शास्त्रोंमें उसका चर्चाआयाकरताहै और बिधि उसकी पुत्तलबिधानद्वारा प्रसिद्धहै परंतु मुख्य अवधि उसकी बारहवर्षकी होतीहै और वही प्रमाण के योग्य है सोई महादेवजीने पार्बती से सहा निर्वाण तंत्रमें यह कहाहै कि-(नृणामुद्देशहीनानांपरिवारान्धनानपि।पालयेद्रक्षयेद्राजायावद्द्वादशवत्सरम् ॥ द्वादशाब्देगतेतेषांदर्भदेहान्विदाहयेत् । त्रिरात्रांते तत्सुताद्यैःप्रेतत्वंपरिमोचयेत् ॥ ततस्तत्परिवारेभ्यःपुत्रादिक्रमतोधनम् । विभज्यनृपतिर्दद्यादन्यथापातकीभवेत् ॥ यद्यागच्छेदनुद्दिष्टोविभागांतेपिकालिके। तस्यैवदाराः पुत्राश्चधनंतस्यैवनान्यथा)अर्थात्- जो कोई प्रबासी लोग ऐसे कहीं विदेशमें रमिजावें जो मनुष्योंके(उद्देश)कहिये ढूँढ़ने या पताल्गानेसे हीनहों किन्तु कोई उनको ढूँढ़ न सक्ताहो उनके परिवारोंको औरधनोंको बारह वर्षोंपर्यंत राजापालै तथा रक्षाकरै इसप्रकार बारहवां वर्षभी पूराहोजानेपर न आवै तौ उनका मरजाना निश्चय करिकै उनके (दर्भदेह) कहिये पुत्तलविधानसे दाहकरवावे और उन्हींकेपुत्रादिकोंद्वारा तीनरात्रि पीछे उनका प्रेतत्वभी छुड़वादेवै तिसपीछे उनके परिवारोंमेंसे पुत्रादि जोकोई धनके अधिकारीहों या जोकोई वृथाके अधिकारी बनकर दावसक्तेहों इत्यादि अधिकारियों को दायभागकी रीति से बांटकर राजा आप देवै इस्से विपरीत करनेमें वह राजाभी पातकीहोवै-हे कालिके यदिकदाचित् धनका विभागहोजाने पीछेभी वह (अनुद्दिष्ट) कहिये नेपतेवाला आजावै तौ उसीकी स्त्रियांहैं उसीके पुत्रभी और वह बँटाहुआ धनभी फेर उसीका है किन्तु इसमें कुछ अन्यथा नहीं-अर्थात् जो स्त्रियां यह कहनेलगें कि इसका तो दाह कर्मभीहोचुका अबहमारे कामकायह नहीं सो यह कहना उनका वृथा

है ऐसेही पुत्र या जिस किसीने बिभाग में धन पाया हो वह कहनेलगैं कि हमने तौ बांट में पाया यह धन अबहमाराहीहोचुका सो सब झूंठ है किन्तु ऐसी दशामेंराजा फिर उसधनको लौटारकर धनीको दिलवावै और सारा घरबार उसीको स्त्रियोंसहित सौंपदेवै और जो राजाके बिनाही यह सारीबात शुभरीतिसेहोजावें तौ राजाकी आवश्यकता नहींहै॥ (भेद २) वह शास्त्रार्थ जिसकी चर्चा अधिकोक्ति के प्रारम्भमें हुई थी सो अब यहांसे लेकर चौथे भेद पर्यन्त भिन्न २ देखो मरण दिवस और दाह दिवस इनदोनों की अपेक्षामें (जातूकर्ण) के मतसे कुछ विशेष उक्ति है यथा (ऊर्ध्वंत्रिपक्षाद्यच्छ्राद्धंमृतेऽहन्येवतद्भवेत्। अधस्तुकारयेद्दाहादाहिताग्नेर्द्विजन्मनः) अर्थात्-जो द्विजाती (आहिताग्नि) कहिये अग्निमान् हो उसका जो २ कर्म मासिकश्राद्ध आदि त्रिपक्षके उपरांतहो सो तौ मरने की तिथिमें होवै और तीन पक्षके भीतर जो कुछ प्रेतकर्म आदि होताहै सो दाहके दिनसे गिनतीकरै-इस्से यह सिद्धांत निकला कि जो द्विजाती अनाहिताग्नि किन्तु निरग्निकहो उसका त्रिपक्षसे उपरांत और भीतरभी साराकर्म मरणकेही दिवसमें करै दाहसे कुछ अपेक्षा नहींहै॥ (भेद ३) इसके सिवाय (आद्यमेकादशेहनीत्याशौचोपलक्षणमितिकेचित्) अर्थात्-मूलश्लोकमेंयहबात जो कही है कि सबसे पहला श्राद्ध ग्यारहवें दिवसकरै इसबात को कोई २ आचार्य अपने मतसे या किसी और सिद्धांत से यह कहतेहैं कि यह ग्यारहवेंदिन का श्राद्ध शौच श्राद्धमें गिनती है क्योंकि ग्यारहवेंदिन का श्राद्धभी नव श्राद्धों में गिनती आचुकाहै-तथाच-(प्रथमेह्नितृतीयेह्निपंचमेसप्तमेतथा। नवमैकादशेचैवतन्नवश्राद्धमुच्यते) किंतु ये नव श्राद्धभी मलिन षोडशीमें गिनतीहैं और पहले जिन सोलहश्राद्धोंका चर्चा २५३ अधिकोक्तिके तीसरेभेदके अंतमें आयाथा वह उत्तम षोडशी कहलातीहै इस्से यह ग्यारहवेंदिन का श्राद्ध निःसंदेह शौच श्राद्धका उपलक्षण देखपड़ता है-दूसरे यहबात जो शास्त्रोंमें प्रसिद्धहै कि (शुचिनाकर्मकर्त्तव्यं) अर्थात् शुद्धहुये मनुष्य करके कर्म कर्तव्यहै-किन्तु अशुद्धशरीरसे कर्मकोन करना चाहिये-इसलिये योगीश्वर याज्ञवल्क्यने यह कहाहोगा कि (आद्यं) नाम शौचश्राद्ध ग्यारहवें दिनमेंकरै तिसपीछे बारहवें दिनमें उत्तम षोड़शी संबंधी पहला श्राद्धहोगा-तथाच (द्वादशाहेत्रिपक्षेचषण्मासेमासिचाब्दिके। श्राद्धानिषोडशैतानिसंस्मृतानिमनीषिभिः) इस्से वह ग्यारहवेंदिनका श्राद्ध शौचश्राद्धका उपलक्षणदेख पड़ताहै-पुनि इसहेतुसे भी निश्चित होताहै कि (विष्णुऋषिने) भी ग्यारहवें दिनमें सामान्य रीतिसे चारोंवर्णोंकी सूतकशुद्धि और एकोद्दिष्ट करना कहाहै-परन्तु-इसबातको मिताक्षराकार अपने निर्मलविचारसे अशुद्धबतलानेहैं किन्तु वे कहतेहैं कि इसबातमें अयोक्त (पैठीनसि) ऋषिके वाक्यमें विरोधआताहै-तथाच (एकादशेह्नियच्छ्राद्धंतत्सामान्यमुदाहृतम्। चतुर्णामपिवर्णानांसू

कंचपृथक्पृथक्)अर्थात्-पैठीनसिने यहकहाहै कि ग्यारहवेंदिनमें जो श्राद्धकियाजाता वह सामान्य भावसे चारों वर्णको उसीदिन कर्त्तव्यहै और सूतक चारों वर्णोंका जुदा२ होताहै-उसमें शूद्रको महीना ताईं सूतकरहताहै ऐसेही अपनी २जाति अनुसार सूतकदूरहोताहै तभी उस जातिवालेका शौचश्राद्धभी होना उचितहै फिर ग्यारहवें दिनके श्राद्धको कैसे शौच श्राद्धकहसकें-अब इसमें जो यहबात कहना चाहो कि फिर शौच कर्मके होने बिना वह (आद्यं) श्राद्ध क्योंकर होसक्ताहै क्योंकि कर्म तौ शुचिहोकर करना कहा और शुचिका होना किसी २ को मासपर्यंतमें संभवितहै तौ यह बिरोधकैसे शांतहो सो कहो-तहां-(शंखऋषि) का यहवाक्य प्रमाणमें अच्छीरीतिसे घटताहै कि(आद्यंश्राद्धमशुद्धोपिकुर्यादेकादशेऽहनि। कर्तुस्तात्कालिकीशुद्धिरशुद्धः पुनरेवसः) अर्थात्-शंखजीने यहकहाहै कि-आद्यश्राद्धको अशुद्धमनुष्यभी ग्यारहवें दिनमें करै क्योंकि इस (आद्य) श्राद्धके करनेमें कर्ता पुरुषको तात्कालिक शुद्धिहो जातीहै किंतु जितनी देर उस (आद्य) श्राद्धको करताहै उतनीदेर तक शुद्धसमझाजाता है उस्से पीछे फिर ज्योंकात्यों अशुद्धहोजाता है उतनेदिनकेलिये कि जितनी अवधि उसके सूतकमध्ये उचितहो-अशुद्ध मनुष्यभी करै इसबातका यहआशयहै कि जो कोई अपने वर्णजाति अनुसार उसदिन ताईं शुद्ध होचुकाहो सो तौ शुद्धहुये पीछे करै और जिसका सूतक अभी कुछ दिनको शेषरहाहो वह अशुद्धभीकरै अर्थात् यह आद्यश्राद्ध कोईभी ग्यारहवें दिनकरनेसे न छोड़ै क्योंकि यहश्राद्ध किसीभी षोडशी में गिनती नहीं है किंतु उत्तम मध्यम मलिन इनतीनों षोडशियोंसे भिन्न है-इसका (आद्यश्राद्ध) जुदानाम है इसीको लौकिकमें एकादशाहभी कहतेहैं यद्यपि एकादशाह के दिन और भी अनेक श्राद्ध मध्यम षोडशी आदि खीरिपाकसे होते हैं परन्तु यह सबसे भिन्न कियाजाता इसलिये योगीश्वरने ग्यारहवाँ दिवस इसका बतलाया है तथैव संवत्सर मात्रके प्रतिमास या रोज२ और प्रति संवत्सरके जुदेकहेहैं मूलश्लोकमें कुछ असंभव नहीं है (परंतु) विष्णु आचार्यका वाक्य अभी विरुद्धदेख परताहै क्योंकि उन्होंने चारोंवर्णका अशौच दूरहोना और एकोद्दिष्टका करना कहाहै ग्यारहवेंदिनमें तहां यद्यपि सभीवाक्योंका प्रमाण यहां परलिखनेसे विस्तारहुआ जाता है इसलियेयथाक्रमसे अपने २ स्थलपर लिखेजावेंगे पर उसकाभी यह सिद्धांत है कि चारोंवर्णोंका सूतक यद्यपि विशेषतासे अपनी २ अवधि अनुसारहोता है परन्तु सामान्यनिर्वाहकी मर्यादासे चारोंवर्णोंकी दशाहिकशुद्धिभीहोतीहै इसलिये(विष्णुजी)के दोनोंकथन दशाहिक शुद्धिपर यथार्थभावसे घटतेहैं क्योंकि जब दशवेंदिवसमें शुद्ध क्रियाकरीगई तौ वहदिन शरीरकी शुद्धतामें गिनती नहींआसक्ता किन्तु उसदिन तौ शुद्धक्रियाके करनेमेंरहे उसकेभोर ग्यारहवेंदिनसे शरीरकी शुचिता समझीगई सोई

ग्यारहवेंदिनमें एकोद्दिष्ट कियागया जो उन्होंने चारोंवर्णोंको करनाकहाहै सो यथार्थ से वही(आद्य)श्राद्धहै जिसको(योगीश्वर)नेभी सामान्यभावसे चारोंवर्णों को करनाकहा पुनिउसीकीदृढ़ता(पैठीनसि)केभीबाक्यसेऊपरहोचुकीहैउसीका(शंखजी)केवाक्यसेप्रमाण ऊपर होचुकाहै अर्थात् याज्ञवल्क्यजीका सिद्धांत किसीकेभी वाक्यसे विरुद्धनहींहोसक्ता यह सर्वथा और सभीस्थलपर निश्चितहै॥(भेद ४)यहांपर मूलमें योगीश्वरने प्रति संवत्सरके लियेभी एकोद्दिष्टका उपदेशकिया और२५०के श्लोकमें एकोद्दिष्टकाविधान जो बतलायाथा उसमें दैवकर्मका निषेधकहाहै सोई स्मृत्यन्तरसेभी प्रमाणपाताहै तद्यथा-(वर्षेवर्षेतुकर्त्तव्यामातापित्रोस्तुसत्क्रिया । अदैवंभोजयेच्छ्राद्धंपिंडमेकंचनिर्वपेत्)-अर्थात्-बर्षबर्षमें सदैव माता और पिताकीभी भिन्न २ (सत्क्रिया)कहियेश्राद्धसंबंधी क्रियाकरनी योग्यहै तिसमें (अदैव) कहिये देवकर्मसेहीनश्राद्ध भोजनकरवावे और पिंडभी एकहीदेवे-ऐसेही-(यमआचार्य)केभीवाक्यसे प्रमाण मिलता है-तद्यथा-(सपिंडीकरणादूर्ध्वंप्रतिसंवत्सरंसुतः । मातापित्रोःपृथक्कुर्यादेकोद्दिष्टंमृतेहनि) अर्थात् सपिंडी के उपरांत पुत्र प्रतिसंवत्सर मातापिता दोनोंका एकोद्दिष्ट उनकेमरे दिनमें भिन्नकरे-(व्यासजी)के कथनसेभी एकोद्दिष्टकाकरना निश्चित होताहै किन्तु वे बार्षिक तिथिमें पार्वणकेकरनेसे उलटा दोषबतलातेहैं -तद्यथा-(एकोद्दिष्टंपरित्यज्यपार्वणंकुरुतेनरः। अकृतंतद्विजानीयाद्भवेच्चपितृघातकः)-अर्थात्-व्यासजी यहकहते हैं कि जो मनुष्य माता पिताके दिनमें एकोद्दिष्टको छोड़कर पार्वणकरैहै वह उसका कियाहुआभी न करनेमें गिनतीसमझै और जो ऐसाकरै सो पितृघातकभी होवै—और (यमदग्नि) ऋषि साक्षात् पार्वण काही करना बतलातेहैं-तद्यथा-(आपाद्यचसपिंडत्वतौरन्तौविधिवत्सुतः । कुर्वीतदर्श वच्छ्राद्धंमातापित्रोःक्षयेहनि) अर्थात्-और सपुत्र माता पिताओं का सपिंडत्व बिधिवत् करचुकनेपीछे उनके क्षयाहके दिनमेंभी दर्शवच्छ्राद्ध करें अर्थात जैसे अमावसमें पार्वण कियाकरते हैं तैसेही प्रतिबर्ष उनके मरेदिनमें भी पार्वणकरे-(शातातप) ऋषिभी यहीबात कहतेहैं तद्यथा(सपिंडीकरणंकृत्वाकुर्यात्पार्वणवत्सदा।प्रतिसंवत्सरंविद्वांश्छागलेयोदितोविधिः)अर्थात्-ज्ञानीपुरुष सपिण्डीकरण करिके फिर सदा प्रतिसंवत्सर पार्वण विधिसेही कियाकरै क्योंकि यहविधि उन (छागलेय,मुनिने) कही है जो आत्रेयगोत्रमें छगलकी संतान प्रसिद्धहै-इत्यादि बहुधा वाक्य दोनों पक्ष में प्रमाण मिलनेपर दाक्षिणात्यलोग यहव्यवस्था निश्चयकरतेहैं कि औरस पुत्र तथा क्षेत्रजपुत्र यहदोनों तोमाता पिताके क्षयाहमें पार्वणही करैं (और) दत्तकआदि अन्य दशपुत्रों करके एकोद्दिष्ट करना चाहिये-सो यहबात दाक्षिणात्यलोग (जातूकर्ण) नाम एकऋषि विशेषके मतसे कहतेहैं-तथाच जातूकर्णः-(प्रत्यब्दंपार्वणेनैवविधिनाक्षेत्रजौरसौ।कुर्यातामितरेकुर्युरेकोद्दिष्टंसुतादश)अर्थात्-जातूकर्णमुनिने यहकहाहै कि औरस

और क्षेत्रजदोनोंप्रातिवर्ष पार्वणकीहीविधिसेकरै पर इतरदशपुत्र एकोद्दिष्टकरैं-(परन्तु) मिताक्षराकार अपने निर्मल विचारसे इसव्यवस्थाको असत् बतलाते हैं किन्तु वे कहतेहैं कि इस जातूकर्णके वाक्यमें कुछ विशेषकर क्षयाहकाचर्चा नहींहै और (प्रत्यब्द) यह शब्द जो इसवाक्यमें आयाहै तौ प्रत्यब्द श्राद्ध क्षयाहसे भिन्न औरभी अनेक होतेहैं कुछ मेरेदिनकेही शिरटीका नहीं है क्योंकि अक्षयतृतीया माघी वैशाखी आदि अनेक श्राद्ध प्रतिवर्ष करनेयोग्य शास्त्रोंमें कहेहैं तिनकेलिये औरस औरक्षेत्रजको करना कहाहोगा-इसहेतुसे क्षयाह संबंधी एकोद्दिष्ट और पार्वणकी यहव्यवस्था नहीं है-और जो (पराशर) स्मृतिका यहवाक्यहै कि(पितुर्गतस्यदेवत्वमौरसस्यत्रिपौरुषं सर्वत्रानेकगोत्राणामेकस्यैवमृतेऽहनि)इससेभी यहव्यवस्थानहीं सच्चीहोसक्तीहै क्योंकि इसकाभी यहअर्थहै कि-देवत्वको पहुँचेहुये पिताका अर्थात् जिसकी सपिंडीहोचुकी हो तिसपिताका औरस पुत्रकरके (सर्वत्रत्रिपौरुष) कहिये पार्वण श्राद्ध कर्त्तव्यहै-यहां (सर्वत्र) कहनेसे यह विशेषता पाईगई कि क्षयाहमेंभी सपिण्डीके पीछे पार्वण करसक्ताहै पर इसविशेषतासे कुछ एकोद्दिष्टका निषेध नहीं पायागया और (अनेक गोत्राणां)अर्थात् अपने पितासे भिन्नगोत्रवाले मातुलादिकोंका (मृतेहनि) कहिये उनकेमरे दिनमें जो करनाचाहै तौ (एकस्यैवकुर्यात) किन्तु उसएकहीके नामसे एकोद्दिष्ट मात्र करै-परन्तु (मृतेहनि) इसकथन से केवल मरे दिनमें भिन्नगोत्रियों के पार्वणका निषेध पायागया अन्यत्रइनकेभी पार्वणका निषेध नहींपायागया इसीसंवर्णित पराशरवाक्य में औरसको सपिण्डीपीछे क्षयाहमेंभी पार्वण करनेका अधिकार निश्चितहुआ जैसा अभी ऊपर लिखचुकेहैं उसके साथमें यहभी लिखाहै कि इसविशेषतासे एकोद्दिष्ट का निषेध नहीं पायागया तिसकी दृढ़ताके लिये (पैठीनसि) ऋषिके वाक्य प्रमाणसे औरसको सपिण्डीके उपरांत प्रतिवर्ष अपने पिताके क्षयाहमें एकोद्दिष्टकाभी अधिकारपाया जाताहै-तद्यथा(एकोद्दिष्टंहिकर्त्तव्यमौरसेनमृतेऽहनि।सपिण्डीकरणादूर्ध्वंमातापित्रोर्नपार्वणम्)अर्थात्-पैठीनसिने यहकहाहै कि औरसको माता पिताके मरेदिनमें एकोद्दिष्टही कर्त्तव्यहै क्योंकि सपिण्डी करलेनेके उपरांत माता पिताके क्षयाहमें पार्वण नहीं होता किन्तु अमावसआदि अन्यपर्वोंमें पार्वणकरै-फिर इसीव्यवस्थाको उदीच्य लोग पहाड़ी आदि इसप्रकार निश्चयकरतेहैं कि(अमावास्यांक्षयोयस्यप्रेतपक्षेऽथवापुनः।पार्वणंतत्रकर्त्तव्यंनैकोद्दिष्टंकदाचन)अर्थात्-अमावास्याके दिवसजिसके प्राणछूटेहों अथवा प्रेतपक्षमें छूटेहों तिसके मरेदिनमें पार्वणकर्त्तव्य है कदाचनभी उसके मरेदिनमें एकोद्दिष्टनकरै-इसवाक्यसे सिद्धांत यह पायागया कि अमावास्या और प्रेतपक्षके सिवाय और किसी दिनमराहो उसके मरेदिनमें प्रतिवर्ष एकोद्दिष्टही करै किंतु उसदिन पार्वणका अधिकार नहीं और पार्वण अन्य पर्वोंमें निःसंदेहकरै-

वरन वे उदीच्य लोग बर्तावाभी इसीप्रकारकरते हैं (परन्तु) मिताक्षराकार यहकहतेहैं कि वृद्धलोग जो अनेकशास्त्रोंके अधिकारीहैं वे इसबचनका भावार्थ मात्र अंगीकार करतेहैं किंतु इसके सिद्धांतका आदर नहीं करते इसहेतुसे कि प्रथम तौ इसवचन का उत्पत्तिमूल किसीको निश्चित नहीं कि यहकौनसी स्मृतिमेंसे लियागयादूसरे यह बात कि जो अनेकवाक्यप्रसिद्ध मुनीश्वरोंके कहेहुये मरेदिनमें पार्वण करनेकाप्रमाण देते हैं उनका प्रतिपक्षी इसका सिद्धांतहुआ जाता है क्योंकि यहवाक्यकेवल अमा- वस और प्रेतपक्षके मरेदिनमें पार्वणकरनेको कहताहै सो तौ प्रमाणके योग्यहै पर इसका सिद्धांत जो औरोंको निषेधबतलाताहै तिससे उनप्रसिद्ध मुनीश्वरोंके वाक्य झूठेहुये जातेहैं इसलिये इसबचनका केवल अक्षरार्थमात्रस्वीकार होसक्ताहै-क्योंकि क्षयाहके निर्णयमध्ये माता पिता पुत्र इनतीनोंकी लक्षणासहित पार्वण और एको- द्दिष्ट दोनोंका अधिकार सिद्धहोताहै सोई दोनोंकी सिद्धि विषयिक अनेकवाक्यपहले भी इसी चौथेभेदके प्रारम्भमें लिखचुके हैं और यहांभी फिर लिखतेहैं-तथाच (स- पिण्डीकरणादूर्ध्वंप्रतिसंवत्सरंसुतैः । मातापित्रोःपृथक्कार्यमेकोद्दिष्टंमृतेऽहनि) इससे तौ एकोद्दिष्टका अधिकार निश्चित है और पार्वणका अधिकार इसअग्रोक्तसे नि- श्चितहै-यथा(आपाद्यसहपिण्डत्वमौरसोविधिवत्सुतः। कुर्वीतदर्शवच्छ्राद्धंमातापित्रोः क्षयेऽहनि)और कोई कोई जो (सुमंतु) के कथनानुसार यहकहते हैं कि माता पिताके क्षयाहमें(साग्निक) द्विजाती पार्वणकरें और (निरग्निक) द्विजाती एकोद्दिष्टकरें-तद्यथासुमं तुः(वर्षेवर्षेसुतःकुर्यात्पार्वणंयोग्निमान्द्विजः।पित्रोरनग्निमान्धीरएकोद्दिष्टंमृतेऽहनि) अर्थ इसका ऊपर होहीचुका-(परन्तु) मिताक्षराकार यहकहतेहैंकि यह वाक्यभी उपेक्षा करने योग्यहै क्योंकि एक तौ अच्छे सत्समाचारमें प्रतिपक्षी होताहै दूसरे यहस्मृति भी प्रमाणहै कि (वह्वग्नयस्तुयेविप्रायेचैकाग्नयएवच । तेषांसापिंडनादूर्ध्वमेकोद्दिष्टंन पार्वणम्)अर्थात्-जो वहुत अग्नियोंवाले विप्रहैं और जो एकअग्निवाले विप्रहैं उनके भी सपिंडनके उपरांत एकोद्दिष्ट होताहै पार्वण नहीं (एवच)इसके अभिप्रायसे विप्रों के सिवायअन्य साधारण द्विजातीभी संग्रहीतहैं किन्तु केवल विप्रही नहीं इसप्रकार के-फिर उस (सुमंतु) वचनकी विशेषता क्योंकर प्रमाण मानीजाय-इसलिये अवश्य चौथेभेद मात्रके समस्त वाक्योंका पूर्वापर आलोचन किये पीछे विरोध शांतिपूर्वक निर्णयरूप (सिद्धांत) लिखतेहैं कि इसप्रकारसे वर्तावा करना चाहिये-तहां-अमावस के मरेदिनमें और प्रेतपक्ष जो करणागत प्रसिद्धहै उसमें जो कोई माराहो तिसके मरे दिनमें पार्वण कर्तव्यहै-क्योंकि ऊपर उदीच्यलोगोंके प्रमाणदियेहुये वचनके सिद्धांत का निरादर करके उसका अक्षरार्थमात्र स्वीकारकरचुके हैं १ ॥ और संन्यासियोंका भी उनके मरेदिनमें पुत्रोंकरके पार्वण कर्तव्यहै एकोद्दिष्ट नहीं चाहे वे किसी पक्ष

किसी दिनमें मरेहों इसमें कुछभेद नहीं-क्योंकि (प्रचेतस) स्मृतिका यहबचन इसमें प्रमाणहै कि(एकोद्दिष्टंयतेर्नास्तित्रिदंडग्रहणादिह।सपिण्डीकरणाभावात्पार्वणंतस्यस र्वदा)अर्थात्-(इह) संसारमें-(त्रिदंड) लेनेके हेतुसे (यती) का एकोद्दिष्ट नहीं होता किन्तु उसका सपिण्डी करणके अभावसे सर्वदा कहिये प्रतिवर्षभी पार्वण कर्तव्यहै-उसरीति से कि जैसा चर्चा २५३ की अधिकोक्तिके छठे भेदमें कात्यायन ऋषिके वाक्य अनुसार आचुकाहै पुनि वहीचर्चा २५४की अधिकोक्तिके पांचवेंभेदमें आयाहै जहां चाहो तहां देखलो २ इसके सिवाय और सर्वत्र साधारणभावसे चाहै साग्निकहो चाहै निरग्निकहो किन्तु सभी द्विजातीमात्र को पिता माताके क्षयाह दिनमें प्रतिसंवत्सर के लियेभी (बिकल्प) अंगीकारहै अर्थात् चाहै पार्वण करो चाहै एकोद्दिष्टकरो दोष किसी मेंभी नहीं है और फलकी सिद्धिदोनोंमें संभवितहै-तथापि इसबिकल्पमें अपने२वंश के आचारपर दृष्टिकरनी उचितहै किन्तु जिसके वंशमें जैसाहोताहो सो समझलो३ ये तीन प्रकारके सिद्धांत इसमें अनिर्वचनीय निश्चितहुये-(शंका) क्योंजी अनिर्वचनीय कैसेहुये इसीजगह ऊपर यहकहतेहो कि दोष किसीमेंभी नहींहै और इसीचौथे भेदके प्रारंभस्थलमें (व्यासजी) का यहवाक्य जो लिखचुकेहो कि(एकोद्दिष्टंपरित्यज्य पार्वणंकुरुतेनरः।अकृतंतद्विजानीयाद्भवेच्चपितृघातकः)इसके साथमें यहभी लिखचुके हो कि व्यासजी पार्वणके करनेमें उलटादोष बतलातेहैं सो प्रत्यक्ष इसवाक्यसे पार्वणकरनेमें (पितृघातकत्व) और (अकृत) शब्दसे फलाभाव दोदोषहैं फिर कैसे दोष नहीं और क्योंकर अनिर्वचनीय तीनों सिद्धांतहुये सो कहो (समाधान) सुनो व्यासजीके वाक्यसे जो भावार्थ तुमने समझा या पूर्वस्थलमें लिखागया तिसका आशयवड़ी दूरहै किन्तु व्यासजीने यहकहाहै कि जो कोई एकोद्दिष्टको इसप्रकारसे परित्यागकिये पीछे पार्वण करताहै कि आजहमारे पिताका वार्षिक क्षयाहका दिनआयाहै जिसमें मैं पार्वण कियाकरताहूं पर अवकीवार पार्वण करनेकी या उसकी लागति लगानेकी मेरी सामर्थ्य नहीं यद्यपि एकोद्दिष्ट करसक्ताहूं क्योंकिउसमें थोड़ीलागति और थोड़ा कामहै परन्तु मैंने कभी एकोद्दिष्ट नहीं किया किन्तुमेरा नियमहै कि करों तो पार्वण करों नहीं तो न करों इस्से अवकीवार जानेदो अगलेसाल अच्छी लागतिसे पार्वण करोंगा-वसऐसे पुरुषने जवएकसाल इसआग्रहसे एकोद्दिष्टका परित्याग किया और अगले सालवड़े धडिल्लेसेभी पार्वण किया तव उसका वहपार्वण न करनेकी गिनती में आया और पहले सालमें उसको निपट न करनेसे (पितृघातकत्व) दोष निःसंदेह लगा-इसीलिये योगीश्वरने समयकी सामर्थ्यका अनुमान करिके क्षयाहमें केवल एकोद्दिष्टका आदेश किया है जिस्से किसीको (पितृघातक) न होनापरे किन्तु योगीश्वरने सभीवातोंमें सीधी२ निर्वाह विधिकहीहै सोई व्यासजीका आशय उसवाक्यसे पाया

गया कि उसप्रकारके पार्वणसे एकोद्दिष्ट काही करनाश्रेष्ठहै और जिस्से बनिआवै सो पार्वणकरो यहअधिक अच्छीबातहै-अन्यथा कुछ व्यासजी अज्ञानी नहींथे जो एक अतिउत्तम कर्मके करनेको उलटा दोष बतलाते जोअनेक ऋषियोंके द्वारा घंटा घोषवत् प्रसिद्धहोचुकी या कुछपहले ऋषीश्वरोंसे व्यासजीका बैरभावनहींथा जो उनके सिद्धवाक्यों पर वज्रसा दे मारते-परन्तु ऋषीश्वरोंके स्वल्पोक्तिरूप और अनंतार्थहेतुगर्भित वाक्योंका आशय समुझिपाना वज्रहै किंतु देखनेमें बड़ेसीधे २ अन्वयवान् प्रतीत होतेहैं पर विचारनेमें भूलभुलैयाका अजायबघर होजातेहैं इस्से शंकाकरने का अवसर नहींहै॥ (भेद ५) दृष्टिकरो उर्ध्वोक्त चौथे भेदका सारा शास्त्रार्थ जोबड़े २ चारपृष्ठोंपर आया सोमूलमें केवल (प्रतिसंवत्सरञ्चैव) इतने पदके ऊपर लिखागया ऐसेही इस्से पहले तीसरेभेदका शास्त्रार्थ जो दोपौनेदो पृष्ठोंपरआया सोमूलमें केवल (आद्यमेकादशेऽहनि)इसपदके ऊपरलिखाहै-पुनि उस्से पहले दूसरे भेदका शास्त्रार्थ मूलमें (मृतेऽहनितुकर्तव्यं) इसपदके मध्येलिखाहै-पुनि उस्सेभी सबसे पहलेभेदमें अधिकोक्तिके प्रारंभसे लेकर दोडेढ़पृष्ठोंमें जोआया सोमूलमें(मृतेहनितुकर्तव्यं)(प्रतिमासंतुवत्सरं) इनदोनों पदोंपर मरेहुयेका दिन और महीनाआदिके निर्णयमध्ये लिखागया-इसलिये उनपूर्व संवर्णित चारोंभेदका सिद्धांत यहांसे लेकरसातवें भेदतक स्पष्टकरतेहैं॥(भेद ६) (सिद्धांत) पहलेभी इसबातका चर्चाहोचुकाहै कि इतनाविस्तार करनेकी कुछ बड़ीसी आवश्यकता नहींथी क्योंकि योगीश्वरने जोमुख्य सिद्धांतका ध्रुवाथा सोमूलमें कहदिया और इसनिर्णयसेभी उसीकी सिद्धिकरीगई-हां-इतनीबात अधिक निकसी कि माता पिताके क्षयाहमें पार्वणकाभी अधिकारहै किंतु केवल एकोद्दिष्टकाही नहीं पर योगीश्वरने एकही इसलिये बतलाया कि इसमें थोड़ा आयास और थोड़ा व्यय अपेक्षितहै(तथैव) समयकी शक्ति और श्रद्धाके अनुरूप योगीश्वरने सारीबातों में निर्वाहविधि आदेशकरी है कि जिसका भार उठाने में साधारणों को अरुचि नहींहोवे-तथापि-इस निर्णयरूप शास्त्रार्थका विस्तार लिखनेसे बड़े २ अड़न लाभसमुझे गयेहैं कि एक तो शक्ति और श्रद्धा सर्वत्र सबजनोंकी एकसी नहीं होती किंतु न जानैं कोई किसबातके करने या समुझने मात्रकी अपेक्षारखताहो और मर्यादापरिपाटी के आलोकनकरने परभी उसको संदेहशेषरहजावे तौइतने बड़े ग्रंथका विचारनाभी वृथाहुआ-दूसरे यहबात कि बहुधाशुभ आचारके बर्तावा करनेवाले मनुष्य तौ थोड़े मिलते पर वाद विवाद की कचरियां बेंचनेवाले संप्रतिभी बहुतेरे धूर्त्तखड़ेहोजाते उनका मुख भंजन करने को बाणगुल्ला बहुतेरे इसमें मौजूद हैं अर्थात् बहुधा अपक्क मनुष्यों की यह प्रकृतिहुआ करतीहै किजब कोई सज्जन किसी वार्त्ता के निर्णय मध्ये वह सिद्धांत उच्चारण करताहै कि जो उचित है और मिलता

निर्णय कियाहुआ उपस्थितहै ऐसे समयपर वे धूर्त्तलोग जो शास्त्रमें तौ निपुणनहीं पर वृथा कुतर्कबादमें अभ्यासरखतेहैं उन्होंने एक ऐसा संक्षिप्त ग्रंथोंका वाक्य उसमें पत्थरसा उछालकरमारा जिस्से प्रत्यक्षमें उसमुख्य सिद्धांतपर न्यूनताका लांछनसा प्रतीतहोनेलगा यथार्थ से वह लांछन उसमें लगने योग्य नहींहै क्योंकि उसपत्थराकार वाक्यमेंभी अर्थांश कुछ और है और सिद्धांत कुछ और है परंतु अब तत्काल उस लांछन की शांतिकरनेको दशपांच अन्यशास्त्रोंके वाक्यभी उपस्थित होनेचाहिये फिर ऐसाहरकोई नहींहोता जो दशपांचग्रंथोंके अनेकवाक्योंको प्रत्येक छोटीमोटीबातपर उपस्थितकिये फिरताहो जिस्से तत्कालउसदुर्जनका मुख भंजनकियाजावे-हां-जिसको कोईपरिहार उसकायादआया उसनेतौ यथोचित प्रतिपादनकिया और धूर्त्तकोपरास्त किया नहीं तौ वृथाही तत्कालसच्चे को झूठाहोनापड़ा (और) यद्यपि बहुधा सज्जन प्राचीन ग्रंथोंका संग्रह रखते हैं परंतु वहसंग्रह भी तत्काल काम नहीं आता क्योंकि उनमें बड़े २ क्लिष्टस्थल संस्कृतमें जिनके एकएकमूल वाक्यपर दो चार पत्रोंकाटीका और ग्रंथांतर अनेक वाक्योंकी प्रमाण योजना जिसमें जितने वाक्य हैं उतनेही मत भिन्न २ प्रतीत होतेहैं यथार्थ से सिद्धांत सबका एक है पर ऐसेग्रंथ अतिकाल पीछे देखने में पढ़ेहुये भी बिस्मृतहोजाते हैं फिर बिनापढ़ा केवल बिचारसे उत्तर क्योंकर तत्काल देसक्ताहै-इसहेतुसे निर्णय बिस्तारका लिखानाही सर्वथा उचित समझागया जिसमें इसएकही ग्रंथके पढ़ने से अनेक ऋषीश्वरों का संमत वा अनेक शास्त्रोंका अभ्यन्तर बिरोध शांतिके सिद्धांत सहित जानाजाय और तत्काल सारीबातों के मनोरथ पूरेहों-तीसरे यह कैसा उत्तमलाभ है कि जो कोई सोत्साह विद्याके अनुरागी होकर अन्यस्मृतियोंको उल्था द्वारा प्रकाश करनाचाहैं या प्रथमारंभ से भाषानुबाद की रीति सीखाचाहैं उनकेलिये यह एक परम निदर्शन विद्यमान है कि दीपकसे दीपक जोड़ैं-चौथालाभ उनसेभी अपेक्षा रखताहै कि जिनको इसके आचारसे तौ कुछ सम्बन्ध नहीं पर शास्त्रोंके विचारमें निपुणता और बुद्धिकी सुगमता इच्छा करते हों उनको इसप्रकारके स्थल इसके पारसकी पथरी होजायँगे किन्तु यथार्थ रीतिसे जो इसकोपढ़ि समुझिलेवेंगे उनको विनागुरुकेभी अन्यविषयोंकेनिर्णयमध्ये बुद्धिप्रवेश करना सुगम होजावेगा-इस्से निज प्रयोजनकी संपूर्त्तिपरभी इन स्थलोंका छोड़ना उचित नहीं समुझा-तिसपरभी कदाचित् कोई यह संदेह कुतर्क वा सुतर्कसेहीकरना चाहै कि ऐसीझगड़ालू बातोंसे क्या अपेक्षाथी जो ऋषीश्वरलोग सीधी २ एकबात या एकहीमार्ग नहीं बोले किंतु अपनी २ ओरको खींचाखांची होतीरही तिसका क्या हेतुहै तहां-सद्भाव यह सिद्धांतहै कि वे ऋषीश्वरभी कुछ एकहीकाल याएकही भूमिभागमें नहीं हुये अर्थात् अपने२देशविभागोंमें अवतरे पुनि उसीमंडलके विशेष धर्माचारोंको अपने

ज्ञान और उसकालके अनुरूप तथा उसमंडलके मनुष्योंकी प्रकृति और प्रसन्नता और कल्याण कुशलक्षेमके अनुसार उसीसमयके कालात्माजगदीशकी इच्छा और प्रेरणासे परिकल्पनकिया इसप्रकारसे अनेक देशोंमें अनेकलक्षणके आचारहुये-तिस पीछे उनसबोंका संघात इसहेतुसे होतागया कि संसारी मनुष्यभी जहां उत्पन्नहोतेहैं सबके सब उसीमंडलमें नहीं बनेरहते किंतु अन्यदेशीने जाकर अन्यदेशी ऋषियोंसे विद्यापढ़ी उन्हींके आचारसीखे पुनि वहांसे आकरयातौ अपने या किसी दूसरेदेश के निवासीहुये वहां अपने शास्त्रके सीखेधर्मोंका आचार प्रचारितकिया और आचार्य कहलाये तथा जो वहांकेभी कुछ आचार जिनमें कुछ भिन्नरीतैंथीं अंगीकारकिये इस्से आगे जो लोग इनके आश्रयभूतहुये या अन्यदेशी आचार्योंके अनुगतहुये उन्होंने परस्पर जहां तहांके निवासोंसे कुछ आचार अपने वहां सँचारे और वहांके जो उत्तम समझे कुछ२ अंगीकारकिये इसीप्रकार कालांतरोंमें क्रम२ से अनेकवाक्य वा अनेकरीतैं प्रतीत होनेलगीं और यथार्थमें सभीश्रेष्ठ और सभीजगदीशकी इच्छा के आश्रयभूत परंतु मनुष्योंके निवासभेद वा स्थानांतर और उन्हींकी प्रकृति और समझ और आत्मप्रियता परोपेक्षा आदि परस्पर बिरोध दृष्टिसे बाद बिवाद को देखकर किसीमहात्मा परोपकारीने कोई ऐसाशास्त्रनिर्माणकिया जिसमें सबकेआचार और सबकीरीतैं और सबके वाक्योंका प्रमाण देकर सबकी बिरोध शांति और सब की एकता सबके निर्वाह अपनी इच्छा और निज२ देशाचारोंके अनुसार संग्रहकिये जिस्से कोईभी किसीसे (विरुद्ध) नहींमानै किंतु अपने २ योग्य अपना विचार करिके समझले जब यह ढंगचला और इसमें कुछ कल्याणदृष्टिआया तब उसीप्रकार के अनेक शास्त्र उसकी देखादेखी निर्माण होनेलगे परंतु जो२ हुये सो केवल संस्कृतमें जिनको पहले समयके लोग तौ संस्कृत बहुधा पढ़तेथे और खूब समझतेथे पीछे२ संस्कृत की न्यूनतामें उनका लोपसा होनेलगा इसलिये समयके राजा आदि प्रता-पियोंने भाषाके प्रचारपर दृष्टिकरी जिस्से कल्याणमें हानि नहीं होनेपावै ॥ (भेद ७)

ऊपरकी व्यवस्था जो देशभेदोंसे बतलाई इसमें कोई यह कहे कि उनदेशों का क्या परिमाण या अवधिहै-सो कुछ परिनियमितनहीं क्योंकि देशोंकेअनुसार जो व्यवहार या मर्यादें और बोली आदि बदलतेहैं उनकी अत्यन्त भिन्नता तौ द्वीपांतरसेही हो-तीहै और यह व्यवस्था केवल एक जंबूद्वीपके भीतरभी विशेषकर भरतखण्ड संबंधी आर्यावर्त्त से अपेक्षा रखती है तिसमेंभी चातुर्वर्ण्यादि लोगोंपर मुख्यता है-तथापि एकआर्यावर्त्तकेभी अनेकदेशविभाग और उनमें निज२ मंडलके कुछभिन्न२ आचार और बोली आदि भूम्यन्तर और जात्यन्तरसे प्रत्यक्षहैं यद्यपि जात्यन्तर तो सर्वथा अकथनीयहै परंतु भूम्यन्तरकी साधारणभावसे यहव्यवस्थाहै कि भूम्यन्तर एकप्रकार

धरतीकोभी कहसक्तेहैं अपनेअपेक्षित स्थानसेचाहै तिसओरको मापलो पर इस्सेकुछ प्रयोजनकी सिद्धिनहीं यहकेवल बीजांकुरहै किंतु अपनेचाहै तिस अपेक्षित स्थानसे बारहपग परभी भूम्यंतर होताहै ऐसेही बारहदंडका भूम्यंतर फिर बारहक्षेत्रका भूम्यंतर होताहै परन्तु बारहखेतके भूम्यंतर पर जो मनुष्य बसतेहोंगे उनमें और अपनेमें कुछ अंतरबोली आदिका निःसंदेहहोगा किन्तु वहअंतर ऐसा नहींहै कि जिसको हर कोई पहिंचानसके क्योंकि एकग्राम मात्रका साराचालचलन बोली वाणी एकसीहोती है तथापि जोग्राम बड़ा नगरहोगा तौ निःसंदेह उसके मुहल्लोंके अनुसार कुछअंतरहो जायगा ऐसेही बारह छोटेग्राम या बारह क्रोशके भूम्यंतरके जो निवासीहोंगे उनकी बोली आदिमें इतना अंतर होजायगा कि जिसको अनारी मनुष्यभी समझलेगा तथापि वहअंतर ऐसा नहींहै कि जिस्से वहांके मनुष्योंमें कुछभिन्नता समझीजाय परंतु जबबारह योजनका अंतर होजायगा तब अनेक बातों में इतना बड़ाभेदहोजायगा कि उनमनुष्योंमें अपनेसे कुछ२भिन्नता प्रतीत होजायगी इसके उपरान्त मनुष्यकी बारहकोसी मंजिलसे बारहदिनकी राहका भूम्यंतर जबहोजायगा तब औरही कुछ बोली औरही खानपान चाल व्यवहार आदिसारी बातें ऐसीनिकलैंगी जो एकदूसरे की कठिनतासे पहिंचानसकैगा और एकदूसरेकी प्रवृत्तिको मनोज्ञनहीं जानकर शीघ्र अंगीकारभी न करैगा और एक दूसरेसे चौकन्ना होजायगा-परन्तु-मिलनेके समयसे पल घड़ी मुहूर्त्त प्रहरआदि बारह२ काल व्यतीत होतेहोते क्रम२से बारहदिनमें परस्पर जानपहिंचानसी होनेलगैगी फिर बारहसप्ताह १२ पखवाड़े आदि क्रम२से बढ़ती२ वह पहिंचान १२मासमें परस्पर प्रीतिभावहोजायगा और एक दूसरेकी प्रवृत्तिको थोड़ा बहुत अंगीकार करने लगताहै पुनि बारहवर्ष परस्पर सहवास पूर्वकरहते२उनमें केवल जाति आदिका अंतरशेष रहजाताहै बहुधा प्रवृत्ति उनकी२ एकसी होजातीहै ऐसेही बारहयुग उपरांत जो उनकी संतानें होजातीहैं वे परस्पर ऐक्यभाव जानाकरतेहैं-और जाति आदिका अंतर जो शेषरह जाता कहा तिसमें एकबड़ी लंबी चौड़ी व्यवस्था जो निपट लिखनेसे छोड़ीहै किंतु उसमेंभी बड़े२भेदहैं कि जो उनजातोंमें कुछ थोड़ाभेद देशमात्रकाही हुआ अन्यथा वर्णमात्र दोनोंका एकहो तौ फिर एकताभी यहांतकहोजातीहै कि परस्पर खानपान संबंधआदिभी होजानेलगते इत्यादि नाना भेदहैं कुछ एकहीनियम नहींहै सो सब लिखनेसे छोड़ेगये-बस इसीप्रकारके वर्त्तावेको मनुष्योंका प्रकृति व्यवहार कहतेहैं और इन्हींकारणोंसे व्यवहारोंमें नाना लक्षणसे भिन्न२और मिलेभी प्रतीतहोनेलगते हैं इस्से कोई भांति संदेह करनेका स्थल नहींहै कि ऋषीश्वरोंने यह क्याकिया क्योंकि इस (प्रकृतिव्यवहार) में कुछ ऋषीश्वरोंकोभी स्वाधीनता नहींहै किंतु यह प्रकृति व्यवहार यद्वा आचार यद्यपि मनुष्यों

की प्रकृतिमेंसे उत्पन्नहोताहै परन्तु वह प्रकृतिभी विशेषकर मनुष्योंकेही वशकी नहीं अर्थात् उसप्रकृतिकी प्रेरणाकरनेवाला वहीएक जगदीशहै जिसकीमाया वा शक्ति प्रकृतिरूपहोकर सारेसंसारमें विस्तरितहोरहीहै वहीजगदीश नानाप्रकारकेदेशबनाता और वही उनदेशोंमें नानाजातिके मनुष्य पैदा करता और उनकी भिन्न प्रकृतीभी कल्पित करता और परिणामको पहुँचाता रहताहै इन्हींतरंगोंकी अगाधतासे संसार सागर इसका नामहै २५५ ॥

अब यहां से आगे केवल नित्य श्राद्धको छोड़कर अन्य सब श्राद्धोंका शेषव्यवहारवर्णन करते हैं ॥

पिंडांस्तुगोऽजविप्रेभ्योदद्यादग्नौजलेपिवा। प्रक्षिपेत्सत्सुविप्रेषुद्विजोच्छिष्टंनमार्जयेत् २५६॥

ऐ०-पूर्वोक्त श्राद्धोंमें दियेहुये पिंडोंको (गऊ) यद्वा गऊके न होनेमें (अज) कहिये बकरीहीकोदेदेवै अथवा कोई ब्राह्मण जोलेसके या मांगनेलगै तिसको देदेवै या यहभी नहीं तो अग्निमें छोड़देवै पर अग्नि ऐसीहो जिसमें भस्महोजाय अथवा गहिरेजल में छोड़देवे-और (सत्सुविप्रेषु) अर्थात् होतेहुये किंतु बैठेहुये ब्राह्मणोंके भोजनके स्थान पर द्विजोंकी उच्छिष्ट न मार्जनकरै किन्तु बुहारैनहीं २५६ ॥

मधि०-इसका सिद्धांत केवल यहीहै कि ब्राह्मण चलेजावें या भोजनपंक्तिसे उठे पीछे किसी द्वितीय स्थानमें जाबैठें तबजूठ बुहारै किंतु उनके सन्मुख नहीं परन्तु यह सिद्धांत नहींहै कि उनके चलेजाने परभी जूठकोनिपट बुहारै नहीं २५६ ॥

हविष्यान्नेनवैमासंपायसेनतुवत्सरम्। मात्स्यहारिणकौरभ्रशाकुनच्छागपार्षतैः २५७॥
एणरौरववाराहशाशैर्मांसैर्यथाक्रमम्। मासवृद्ध्याभितृप्यंतिदत्तैरिहपितामहाः २५८॥

मक्ष०सहृदयोः-निःसंदेहहविष्यान्नसेमासमात्र-औरखीरिसे एकवत्सर-मात्स्य-हारिणक-औरभ्र-शाकुन-छाग-पार्षत-इन्होंसे २५७॥ एण-रौरव-बाराह-शाश-दियेहुयेइन मांसोंसे मासवृद्धि पूर्वक यथाक्रमसे इससंसारमें पितामह अभितृप्त होते हैं २५८॥

अभि०सहृदयोः-यहां पर भोज्य विशेष वस्तुसेफल विशेषवर्णन करतेहैं कि-निःसंदेह इससंसारमें (पितामह) कहिये बाप दादा परदादा यहतीनों हविष्यान्नसे श्राद्धके एक दिन करनेसेभी एकमास पर्यंत तृप्तबने रहते हैं (और) पायस कहिये दूधकी खीरिमे श्राद्ध भोजनकरवानेसे एकवर्षमात्र अभिकहिये भलीभांति तृप्तरहते हैं इसके सिवाय जिनमांसोंकी चर्चा अबकरतेहैं तिनसे उत्तरोत्तर यथाक्रमसे एकएकमास अधिकतृप्ति होतीजातीहै अर्थात् जैसे हविष्यान्नके श्राद्धसे एकमास तृप्तिऊपर बतलाईथी परन्तु जो पाठीनआदि भक्ष्यमत्स्योंसे श्राद्ध भोजनकरवावे तो(मात्स्यश्राद्ध)कहलाताहै उस्से दोमासतक अच्छी तृप्तिरहती है-जब ताम्रमृगकहिये लालहरिणके मांसका श्राद्धकरै तब (हारिणकश्राद्ध) कहलाताहै उस्से तीनिमास तृप्तिरहती है-जब(उरभ्र) नाममेंषकिंवा

मेढ़ाके मांसकाकरै तब (औरभ्रश्राद्ध) कहलाताहै उस्से चार मासतृप्तिरहती है-जब (शकुन) कहिये पक्षीमात्र जो भक्षोंमें गिनतीहों उनके मांसकाकरै तब (शाकुनश्राद्ध) कहलाताहै उस्से पांचमास तृप्तिरहतीहै-जब (छाग) नाम वर्करमांसकाकरै तब (छागश्राद्ध) कहलाताहै उस्से षड्मासिकतृप्तिरहती है-जब (पृषत्) नाम चित्रमृग जिसे चीताकहतेहैं उसकाकरै तब (पार्षतश्राद्ध) कहलाताहै इस्से सात मास तृप्तिरहती है जब (एण) कहिये काले हिरनकाकरै तब (ऐणश्राद्ध) कहलाताहै उस्से आठमास तृप्तिरहती है-जब रुरुनाम बनमृग जिसको शंवर यद्वा भाषामें शावरभी कहतेहैं तिसकाकरै तब (रौरवश्राद्ध) कहलाताहै उस्से नवमास तक तृप्तिरहती है-जब बराहनाम बनसूकरसेकरै तब (बाराहश्राद्ध) कहलाताहै उस्से दशमास तृप्तिरहती है-जब शशनामखरहा वा खरगोशकाकरै तब (शाशश्राद्ध) कहलाताहै उस्से ग्यारहमास तृप्तिरहतीहै २५७। २५८॥

अधि०—ऊपर हविष्यान्नका चर्चा आयाथा-हविष्यान्न तिलव्रीहि आदिको कहतेहैं सोई मनुजीने सबके नामभीस्पष्ट कहदियेहैं-यथा(तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेनवा। दत्तेनमासंप्रीयंतेविधिवत्पितरोनृणाम्)अर्थात्-तिलोंसे-व्रीहिनामधानचावलोंसे-यवोंसे-माषनाम उड़दोंसे-जलोंसे-यद्वा मूलसे फलसेही विधिवत् दियेहुये श्राद्धकरके मनुष्योंके पितर एकमास तृप्तरहतेहैं-यहसारी वस्तु हविष्यान्नमें गिनतीहैं सोई याज्ञवल्क्यजीने एक शब्दसे कहदियाथा-पायसके उपलक्षणसे दुग्धभी संबंधितहै सोई यह स्मृतिभी स्पष्ट भावसे कहतीहै कि (संवत्सरंतुगव्येनपयसापायसेनच)अर्थात्-गव्येन पयसा किंतु गऊके दूधसे तथा पायसेन कहिये खीरिसेभी संवत्सर मात्रकी तृप्तिहोती है-इस्से निश्चित हुआ खीरिसबसे उत्तमहै क्योंकि पूरे संवत्सरकी तृप्ति और किसी वस्तुसे नहीं वतलाई २५७। २५८॥

खड्गामिषंमहाशल्कंमधुमुन्यन्नमेवच। लोहामिषंमहाशाकंमांसंवार्ध्रीणसस्यच २५९॥
यद्ददातिगयास्थश्चसर्वमानंत्यमश्नुते। तथावर्षात्रयोदश्यांमघासुचविशेषतः २६०॥

ऐ०सहद्वयोः—औरभी कुछविशेषता कहतेहैं कि (खड्गामिषं) अर्थात् खड्गनाम गैंडा तिसका आमिष कहिये मांस१ (महाशल्क) एक प्रकारका उत्तमजातीमत्स्य विशेषहोताहै२ मधु सहत३ (मुन्यन्नं) मुनिलोगोंका अन्न नीवार आदि सभी प्रकारका जोवनमें होताहो४ (लोहामिषं) अर्थात् लोहकहिये लालबकरा तिसकामांस५ (महाशाकं) अर्थात् कालशाकभी इसको कहतेहैं श्राद्धशाकभी कहतेहैं वास्तवमें नाड़ीशाक प्रसिद्धहै जो वर्षा ऋतुमें तालावोंके किनारे होताहै६ और (वार्ध्रीणस) काभी मांस७। २५९॥ (यद्दातिगयास्थश्च) अर्थात् इनमेंसे किसी वस्तुकरके गयामें बैठाहुआ जो कोई श्राद्धदेताहै यद्वा (च) शब्दकी लक्षणासे गंगाद्वारादि तीर्थोंमें बैठकरदेताहै वह मनुष्यआनंत्यफल भोगताहै अर्थात् जो२ फलभोगनेको उसेमिलतेहैं तिनकाअंत नहींहै तथा

जो कोई उन्हींपूर्वोक्त चीजोंसे वर्षा त्रयोदशी कहिये वर्षाऋतुमें भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशीमें विशेषकर मघानक्षत्रसेभी संयुक्त उसीत्रयोदशीमें श्राद्ध करताहै वह अधिकतर आनंत्यफल भोगताहै २६० ॥ भाद्र०कृष्ण पितृपक्षका नामहै ॥

अधि०सहृदयोः—(वार्ध्रीणस) उसेकहतेहैं जोबहुत बडाबकरा श्वेतवर्णका खस्सीकिसी देश विशेषका होताहै उसका नाम (त्रिपिवन्) या (त्रिपिव)भी कहतेहैं-तद्यथा(त्रिपिवन्त्विंद्रियक्षीणंश्वेतंवृद्धमजापतिम्।वार्ध्रीणसंतुतंप्राहुर्याज्ञिकाःश्राद्धकर्माणि-इतियाज्ञिकप्रसिद्धःत्रिपिवःपिवतःकर्णौजिह्वाचयस्यजलंस्पृशातिसत्रिभिःपिवतीतित्रिपिवः)अर्थात् इसलिये उसको त्रिपिव कहतेहैं कि जलपीतेहुये उसके दोनों कानभी जलमें छूजाते हैं अतिलंबे होनेसे और तीसरी जीभ जिस्से पीताहै-(च)शब्दकी लक्षणासे गंगाद्वारादिका प्रमाण-यथा(गंगाद्वारेप्रयागेचनैमिषेपुष्करेऽर्बुदे।संनिहत्यांगयायांचश्राद्धमक्षय्यतांव्रजेत) २५७ के श्लोकसे लेकर यहां ताईं जोमुन्यन्न और मांसआदि सारीवस्तुसाधारण भावसे कहीहैं कुछ वर्णभेद इसमें नहींकहा तथापि पुलस्त्य मुनिकी कहीहुई व्यवस्थासे कुछ विशेषतापाई जातीहै-सायथा(मुन्यन्नंब्राह्मणस्योक्तंमांसंक्षत्रियवैश्ययोः।मधुप्रदानंशूद्रस्यसर्वेषांचाविरोधियत्)अर्थात्-पुलस्त्यजीने यहकहाथा किनीवार आदि मुन्यन्न जोश्राद्ध योग्यवतलाया सोतो ब्राह्मण मात्रकेलिये प्रधानहै और यथोक्तफलका देनेवालाहै जैसाकुछ गयाआदिमें जहां२का फलकहाहो-और मांसकाजो अधिक फलकहा सोक्षत्री औरवैश्य इनदोनोंको यथोक्त फलका देनेवालाहै-और सहत जोकहाहै सो विशेषकर शूद्रजातीको यथोक्तफलका देनेवालाहै-इसके सिवाय(सर्वेषांचाविरोधियत्)अर्थात् जो वस्तु अविरोधीहो किंतु चाहै शास्त्रमें कहीहो जैसे कालशाक आदि चाहै बिना कहीहुईभी जैसे वास्तूक आदि या कोई वस्तुहो परजिसकेकुल आचार आदिसे विरुद्धतानहीं रखतीहो वहवस्तु सबकेलिये उचितहै-परन्तु अवयथार्थ दृष्टिसे समयके अनुकूल यह पुलस्त्यजीका वाक्यभी कुछ२विरुद्धहै जिससमयमें उन्होंने यह व्यवस्था कहीथी तब तो किसी समयमें विरुद्धनहींथा परअब निःसंदेह विरुद्धहै किंतु मांसादिके व्यवहारसे अब कोई भांति श्राद्ध नहीं होसक्ता क्योंकि यद्यपि और सबको छोड़कर केवल क्षत्रीमात्र पर अंगीकार करो उनके जातीधर्मके हेतुसे तथापि श्राद्धभोक्ता तो ब्राह्मणके सिवाय और कोईनहीं होसक्ता फिर वहक्षत्री क्योंकर करसक्ताहै-हां-उसदशामें करसक्ताहै कि जब श्राद्धभोक्ता ब्राह्मणभी पहले समयकेसे समर्थ ऋषिलोगहों सो यहवातभी असंगत है-कदाचित् कोईकहे कि अद्यापि कान्यकुब्जों या मैथिलोंमें वहुत ऐसेविद्यमानहैं सोभी असंगतहै क्योंकि कान्यकुब्ज या मैथिल मात्र निमंत्रणके भोजनसेही संबंध पक्वान्नसेभी नहींरखते फिरमांसको तो कच्चीरोटीमें गिनतेहैं दूसरे वैश्योंकाभी चर्चा इसमेंआया सो वैश्यजातिमें अधि

तर इसबातकी उपेक्षा और निरादरहै इस्सेवर्ण या जातिमात्रके अनुसार यहव्यवस्थाकोई रीतिसेभी सच्चीनहीं होसक्तीहै फिरव्यवस्थाके झूंठीहोजानेसे पुलस्त्य और योगीश्वर याज्ञवल्क्य दोनों झूंठहुये जातेहैं क्याऐसे अज्ञानीथे जिनको आगापीछा कुछनहीं सूझपरा जो चाहै सोमुँह आया सोईबकडारा-भला इनदोनोंका समयप्राचीनथा इस्से इनको कुछनहीं कहसक्के पर सबसे अधिक लांछन श्रीमद्विज्ञानेश्वरमिताक्षराकार पर आरोपित होताहै जिन्होंने पुलस्त्यजीका वाक्यवर्ण जातिकी व्यवस्था परप्रमाण किया क्योंकि मिताक्षरा अभीहाल कालिहपरसोंकी संग्रहकरी है क्याउन्होंने लोकाचारपर दृष्टिनहीं करी जोपुलस्त्यजीका विरुद्ध वाक्यभी प्रमाणमेंलेलिया-परन्तु-अब अपने मुख्य प्रयोजनपर दृष्टि करनी चाहिये जिस्से यह विरोध भी शान्तहो और वे महानुभावऋषिभी सच्चे बनेरहें-यद्यपि मिताक्षराकारकी इतनी मूल निर्विकल्प है कि उन्होंने इसबातपर कुछ निर्णय नहीं किया तिसकाभी यह हेतु अनुमान से प्रतीत होता है कि भाव उन्होंने बंगालेमें बैठकर मिताक्षरा संग्रह करीहो-तथापि-यह व्यवस्था वर्ण और देश दोनोंके संयोग से सिद्ध होतीहै क्योंकि ऋषिलोग कदाचित् भी असम्भव नहीं कहते-इसलिये मुन्यन्न और दूध पायस कालशाक आदिसे श्राद्ध जो फलदायक या परम तृप्तिकारक बतलाये सो तौ उन जातों और देशोंके लिये बतलाये जिनमें मांसका त्याग और निरादरहै चाहै कोई वर्णहो इस्से कुछ तर्कणा नहीं है-दूसरे जो मांसके अधिकारवाले श्राद्ध फलदायक या परम तृप्तिकारक वर्णन किये सो उन्हीं जातों और उन्हीं देशोंके लिये बतलाये हैं जिनमें सर्वथा मांस का आदर और सत्कारहै जैसे बंगाला काश्मीर पहाड़ आदि देशों में जहां श्राद्ध के कर्त्ता और भोक्ता दोनों मांस खाते हैं चाहै कोई वर्णहो कुछ इस बातपर तर्कणा नहीं है-तीसरे जो सहतके अधिकारवाले श्राद्ध फलदायक या परमतृप्तिकारक बतलाये और पुलस्त्यजीने शूद्रोंके शिरथापे सो यहएक ओछी बातहै और शूद्र एक उपलक्षण मात्र इसलिये कहदियाहै कि पहाड़ोंमें बहुधा डोम आदि जातोंके शूद्र विख्यात होते हैं उनको इन देशोंके समान और कोई उत्तम पदार्थ नहीं हाथ आते हैं किन्तु वनमेंसे मनों सहतले आतेहैं और वहींके पहाड़ी ब्राह्मण उनके श्राद्धभोक्ता होते हैं जिनको दो २ सेर सहत पीजाना एक सहजसी बातहै क्योंकि और कोई देशी मिठाई तौ वहां होती नहीं और देशोंसे जाती है तौ वंशलोचनके भाव विकती है इस्से वे उसीको अमृत समझा करते हैं-यद्यपि-सहतके गुण और स्वादुभी अमृतकेही तुल्य यथार्थ होतेहैं परन्तु इसलिये नहीं होते कि केवल वही पीकर पेटभरलेवे तथापि उन ब्राह्मणों को इसबातका अभ्यास होताहै दूसरे उन डोम आदि शूद्रोंके हाथका अन्न तौ खाते नहीं फिर कोई रीतिसे उनका उद्धार करैं या न करैं इसलिये पुलस्त्यजीने शूद्रोंके उ-

पलक्षणसे कहदियाहै-भला इसपर भी कोई यह (शंका) करे कि यह व्यवस्था तौ सच्ची है पर पुलस्त्यजीने पूर्वोक्त वाक्यमें क्षत्री और वैश्य दोनोंको मांसका अधिकार श्राद्ध में बतलाया सो तौ अबतकभी असंगत बनारहा सो यह शंका केवल बुद्धिकी भ्रमता है किन्तु सावधानीसे ध्यान लगाकर सोचौ कि जब देश व्यवस्था कल्पित होचुकी इस बातमें फिर संदेहका क्या अवसर है देखौ सरस्वती सम्बन्धी पश्चिम देशों में सारस्वत ब्राह्मण और सारस्वत क्षत्री जिनको बहुधा खत्री कहते हैं और सारस्वत वैश्य जो बहुधा उन्हीं खत्रियोंके भेदमें कोई २ खत्री वहांके वैश्यों में गिनती होते हैं यह सभीलोग निर्विकल्प मांसाहारी होते हैं उन क्षत्री वैश्योंके लिये पुलस्त्यजीने कहा है कुछ सभी वैश्योंके लिये नहीं क्योंकि उन्होंने उसी वाक्यके चौथेचरणमें सबझगड़ा निपटादिया यह कहकर कि (सर्वेषांचाविरोधियत्) अर्थात् जो २ वस्तु जिसके निकट अविरुद्धहो किन्तु जिस्से जिसको ग्लानि नहींहो वह सभीके लिये अपने २ कुलदेश जातिके अनुसार श्रेष्ठहै फिर किसलिये (शंका) करतेहो॥ (भेद २) काश्मीरी लोगों वा सारस्वत वैश्य और सारस्वत क्षत्री और सारस्वत ब्राह्मणोंका चर्चा जो मांसके अधिकार मध्ये कहागया सो इसलिये कि काश्मीरियोंकी परिपाटी तौ इस देशमें आ-बसनेपरभी बनिरही है कि बहुधा काश्मीरी लोग पिंडभी मांसकेही प्रत्यक्षभावसे देते हैं वरन वे अपने पितरोंकी तृप्तिही बिना मांसके अधिकार नहीं समझते क्योंकि उनके पितर जीवतेहुये भी मांस बिना तृप्त नहीं होतेथे किन्तु एक दिनभी मांस बिना भोजन नहीं करसक्तेथे फिर मरेहुये क्योंकर सूखे अन्नसे तृप्ति उनकी होसके सिद्धांतसे भी यह बात ठीकहै क्योंकि इस देशमेंभी यह परिपाटी अपने लोगोंकी प्रत्यक्ष है कि जो वस्तु प्रेतको जीवतेहुये बहुत प्रिय लगतीहो वह वस्तु अवश्यभावसे उसके श्राद्धमें दीजाती है-इसीलिये काश्मीरी लोग जब कभी ऐसी दशामें श्राद्ध करते हैं कि जिस स्थानपर मांस नहीं मिलसक्ताहै या और कोई प्रवल हेतु आरूढ़ हुआ जिस्से मांस की असम्भवता हुई तब खोया मावा पेड़ा आदिमें किंचित् साँभरिनोन मिलाकर पिंड वनाते हैं कि मांसके अभावमें वहभी मांसका अनुकल्प होजाता है यहां तक उनकी अपने पितरोंकी तृप्ति करनेमें श्रद्धा और विश्वासहै-दूसरे सारस्वतोंकी यह व्यवस्था है कि यद्यपि अपने सरस्वती तट सम्बन्धी देशोंमें तौ सर्वथा मांसके अधिकारी होते हैं यह बात निर्विकल्प निश्चितहै परन्तु जो २ सारस्वत अपना देश छोड़कर इन देशों में आघसे हैं उनमें अनेक भांति होगई हैं किन्तु वहुतेरे प्रत्यक्ष खाते हैं वहुतेरे छिपकर वहुतेरे इस देशकी लज्जासे निपट त्यागी होगये हैं तथापि अपने देश या कुल प्रथा पर इतनी श्रद्धा रखतेहैं कि श्राद्धकर्मको विना मांसके संसर्ग नहीं होनेदेते वहुतेरे ऐसे होंगे कि जो इस देशकी मर्यादा अनुसार श्राद्ध करतेहों अन्यथा वहुधा तो

प्रथा चलीआतीहै कि जोलोग उनमें यहांकी देखादेखी त्यागी बनिरहेहैं वेभी गुप्त भावसे श्राद्धमें मांसामिश्रित पक्वान्नकी गोलियां घीमें पूरियोंकेसाथ पकवालेतेहैं वेही गोलियां पित्रोंको अर्पितकियेपीछे पितृब्राह्मणोंको जिमादेतेहैं तब अपने पितरोंकी तृप्तिमें बिश्वास लातेहैं इसीलिये बहुधा तो अपनेदेशी और सजातियोंकोहीन्योता देतेहैं परन्तु जबयह संयोग आबनताहै कि स्वदेशी और सजाती नहीं मिलसक्तेतब औरोंकोहीन्योतदेतेहैं और वहगुप्तभेद प्रकटनहींकरते हैं क्योंकि प्रकटकरें तो अन्य जाती ब्राह्मण उनगोलियोंका खाना अंगीकार नहींकरें और जोलोगअन्यजाती ब्राह्मण इसबातकेभेदू होतेहैं वे सारस्वतोंका निमंत्रण श्राद्धविषयका अंगीकारनहींकरते-इसी प्रकार पहाड़ी और बंगाली आदि ब्राह्मण वा क्षत्री और वैश्योंकी भिन्न २ अनेक भांतिकी व्यवस्था हैं तिनकेलिये ऋषीश्वरोंने मांसका श्राद्धकरना फलदायक लिखा है किंतु सबकेलिये नहीं और उन्हींकेलिये जहां २ मांसकी चर्चा या प्रशंसा धर्मशा-स्त्रोंमें भक्ष्याभक्ष्य बिबेकसे या और किसीरीतिसे आईहो सब संभवितहै(दृष्टांत)जैसे इसीशास्त्रमें १७६-१७७ इन दोश्लोकोंसे पंचनखादि जीवोंकामांस भक्ष्यबर्णनकर चुकेहैं सोभी उक्तलोगोंका ब्यवहार बतलायाथा फिर १७८ के श्लोकमें जो मांसखान कीबिधि बर्णनकरीथी सोभी उक्तलोगोंका ब्यवहारथा फिर १७९ में जो चर्चाकिया था सोभी उक्तलोगोंका ब्यवहारहै फिर द्रब्यशुद्धिके प्रकरणमें आकर १९१ के उत्त-रार्द्धश्लोकमें जोकुछ कहा सोभी उक्तदेशोंका ब्यवहारहै अन्यथा और सबसाधारण अत्रत्य संबंधीदेशों वा मनुष्योंकेलिये १८०के श्लोकमें प्रत्यक्षभावसे मांसकानिषेध कियाहै इसकेसिवाय जहांकहीं एकशब्दसेभी मांसका प्रसंग आयाहो सो सबइसी व्यवस्थाके अनुकूल है-इनदेशोंमें विशेषतर कायस्थजाती लोग मांसके व्यवहारमें प्रसिद्ध हैं उनमेंभी सहस्रों ऐसेत्यागीहैं कि ब्राह्मणोंकोभी मातकरते हैं किन्तु बड़े २ विवेकी शास्त्रविद्याके अनुरागी सत्संगी और मांसखानेवालेके संसर्गसेभी बचते हैं और जो कि उनकेकुलमें मांसका व्यवहार अधिक प्रसिद्धहै सो केवल क्षात्रधर्म के हेतुसे विदितहै किन्तु क्षत्रीवर्णमें मांसकीप्रवृत्तिहै और येभी एकप्रकारके उपक्षत्री वर्णमें गिनतीहैं अर्थात् कायस्थनाम गौणक्षत्री कहलातेहैं इस्से वहमांसकाव्यवहार उनमें विदितहै- इनकेसिवाय कान्यकुब्ज ब्राह्मणभी इसदेशमें मांसके व्यवहारमध्ये विख्यातहैं तिनकी यहअद्भुत व्यवस्थाहै कि प्रथम तो समस्तोंमेंसे चतुर्थांश मांस के अधिकारी हैं शेषतीनभाग मांसकेत्यागी हैं-हां-इतनीबात अधिकहै कि उनदोनों भांतिके परस्पर विवाहसंबंध होतेहैं इसबातमें कुछत्याग और संग्रहका विचार नहीं है परन्तु इसबातकी प्रतिज्ञा उनदोनोंभांतिमें निर्विकल्पहै कि विवाहादि मंगलकार्यों के समाज बरातआदि या श्राद्धकर्म या अन्यप्रतिष्ठा यज्ञादि कामोंमें किसीके भी

मांसका संचार नहींहोता किंतु केवल एक दुर्गोत्सव यज्ञमें निःसंदेह उसका सं उनलोगोंके घरहोताहै जो दुर्गाकेउपासक उसरीतिसे प्रसिद्धहैं यद्वा कुछलोग ऐसे हैं कि वे कभी २ साधारणभी बिनादुर्गोत्सवके अपनेघर संचारवान् होतेहैं प जब अपनेघरके सिवाय कभी निजगोत्रके दोचारघरकाभी भोजनएकत्र किसीहेतु होगा उसमें उसकासंचार कदाचित् नहीं होनेदेंगे जैसे अन्यदेशी या अन्यजा लोगोंमें प्रत्यक्ष बिवाहादि यज्ञोंमेंभी धूमधाम से उसबातका संचार कियाजाता सो इसहेतुसे ऐसानहींकरते कि उनचारघरमें कोईघर निपटत्यागीहै या किसीघर एकदोमनुष्य त्यागीहोतेहैं तिनकी अप्रीतिहोजावे इसकेसिवाय जोलोग इसकेत्याग नहीं हैं तिनकीभी कुछ बिरादरीमें प्रशंसानहीं किन्तु परस्परभी इसबातसे निन्दाभा समझा करते हैं परन्तु अन्यदेशी और अन्यजाती लोगोंमें कि जिनके इसबातक अधिकारहै उनमेंकुछ परस्पर उपेक्षा वा निरादरनहीं बरनइसबात का बड़ा उत्साह और बड़प्पन समझाकरते हैं क्योंकि उनके कुलमें सभी एकसेहोतेहैं फिर निन्दा वा निरादर किसकाकौनकरै-और कान्यकुब्जोंमें जोकुछ थोड़ाबहुत इसकाप्रचारचलग-या सो इसहेतुसे कि उनमें पहले समय दुर्गाके उपासक बड़े २ शक्तिमान् तेजस्वी होतेरहे जिनकी अद्यापि बहुधा ऐसीबातें प्रसिद्धहैं कि अमुकमहात्माकी धोती आ-काशमें सूखती थी किन्तु स्नान कियेपीछे निचोड़कर ऊपरको उछालदी वह उनके शक्तिप्रभावसे ऊँचीचलीगई और सूखकर हाथों में आपड़ी अमुक महात्मा पूजन समय गंगाजीको गँगियानामसे पुकारकर आवाहन करते तभीतत्काल उनकेसन्मुख थोड़ासाकार्यमात्र जलप्रवाह आजाता जिसमें बलिवैश्वदेव किया और फिर उसी नामसे विसर्जनकिया इत्यादि अनेकोंकी प्रसिद्ध ऐतिह्यपूर्वक चलीआतीहै उनमें से किसी २ महात्माने भगवती को पशुबलिदानदेना अंगीकारकिया उनसे उसबातकी परिपाटी चली परन्तु उन्होंने अपनी किसी चैतन्यशक्तिके अनुकूल अंगीकारकिया था फिर पीछे २ समयके प्रभावसे वहशक्तिनरही परकेवल पशुदानकीलीकसी पीटने लगे-संपादक ठेठ निजकुलाचारकी व्यवस्था दृष्टांतमात्रसे कहताहै कि उसनेयद्यपि अपने प्रपितामहके दर्शन नहींपाये पर उनका यहआचार निःसंदेह सुनतेचलेआ-तेहैं कि वे सिंहवाहिनीके परमउपासक अनन्यगतिसेहुये और बलिदान पड्मासिक नवरात्रोंमें तथा अपने वंशमें किसीके पुत्रजन्म और पुत्र विवाहके होनेमेंभी केवल अपनीजिह्वाकी नोकलेकरचढ़ातेथे और तत्काल वहजिह्वाकाक्षतपूराहोजाताथा परन्तु जब उन्होंने अपने देहांतसमय अपने पुत्रसे यहकहा कि यह कुलदेवकी पूजा अब तुमलो हम चलतेहैं तब अस्मात्पितामहने यहकहा कि मुझसे जीभ नहीं चढ़ाई जा-यगी-उन्होंने प्रसन्नहोकर यह कहा कि अच्छा जो तुम्हारी इच्छा और समर्थहो सो

कहो इन्होंने कहा कि मैं मेष पशुका बलिदान दिया करौंगा उन्होंने कहा एवमस्तु इस प्रकारसे पितामहने बीचमें अपनी जीवन अवधि ताईं मेष बलिदान किया और उसका प्रसाद भी अंगीकार किया और कुलदेवकी प्रीति इसप्रकारसे भी अधिक पाई गई क्योंकि यह बात उन्हों ने समर्थकी आज्ञालेकर करीथी परन्तु उनके सर्वसम्पन्न तीनों पुत्रोंने निज विज्ञान वशहोकर हिंसा विषयकी दृष्टिसे उसबातकी उपेक्षा करके अहिंस्य अनुकल्प नियतकिये और उस बातके त्यागीहुये पर इन अनुकल्पोंसे कुछ देवताकी अप्रीतिभी प्रकटहुई तथापि उस अप्रीतिको गिनतीमें न लाकर अनुकल्पों को ऐसा समझा कि हाथीके दांत निकसे सो निकसचुके-ऐसे २ असंख्य घरोंके नाना विध लक्षण देखनेसे सर्वथा निश्चित होताहै कि इनमें और मैथिलोंमेंभी यह संचार कुछ देश अथवा कुल रीतिसेभी सनातनका नहीं है किन्तु जो सनातनका होता या देश वा कुलके आचारमें गिनती होता तौ सारे देशमात्र या जातिमात्रके लोगोंकी एकसी परिपाटी होती और श्राद्धादि यज्ञ प्रतिष्ठा रामादि यज्ञोंमेंभी इसबातका कुछ संचार होता जैसा अन्य देशों वा जातोंमें प्रत्यक्ष है-परन्तु यह व्यवस्था उन कान्य-कुब्जों वा मैथिलोंकी नहीं है जो पहाड़ देशोंमें जाबसे किन्तु केवल उनके निजदेश मात्रका चर्चा कियाहै क्योंकि पहाड़ देशोंमें दशौंप्रकारके ब्राह्मण मिलकर सब एक रंग होरहे हैं इस्से वहांपर सबकी रीति भांति एक तुल्यहै बरन उनके सम्बन्धभी परस्पर ब्राह्मणत्वमात्रकी अपेक्षासे होते हैं फिर अन्य व्यवहारोंमें भिन्नता क्योंकर कहीजाय २६० ॥

इति द्रव्यविशेष श्राद्धफलम् ॥

अब आगे तिथि विशेषमें श्राद्ध करनेका फल विशेष वर्णन करते हैं॥ सो यहां से लेकर आगे २६९ श्लोक तक (काम्यविधि) का चर्चाहोगा ॥

कन्यांकन्यावेदिनश्चपशून्वैसत्सुतानपि । द्यूतंकृषिंचवाणिज्यंद्विशफैकशफंतथा २६१ ॥
ब्रह्मवर्चस्विनःपुत्रान्स्वर्णरूप्येसकुप्यके । जातिश्रैष्ठ्यंसर्वकामानाप्नोतिश्राद्धदःसदा २६२ ॥
प्रतिपत्प्रभृतिष्वेकांवर्जयित्वाचतुर्दशीम् । शस्त्रेणतुहतायेवैतेभ्यस्तत्रप्रदीयते २६३ ॥

ऐ० त्रयाणांसह—एक चतुर्दशी को वर्जित करिकै अन्यसारी तिथौं पड़वा आदि में क्रमसे सदा कहिये नियम सहित निरंतर श्राद्ध देनेवाला यहां पर कहेहुये सर्वकामों को प्राप्त होताहै-अर्थात् जो कोई रूप लक्षणवती (कन्या) मिलनेकी कामना रखता हो वह सदैव प्रतिपदामें निरन्तर पार्वण कियाकरै तौ निःसंदेह वैसी कन्या पावै किंतु कुभार्या नहीं पावै १ (कन्यावेदिनश्च) अर्थात् जो कोई कन्या वेदी कहिये जमाई अच्छे रूप लक्षण सम्पन्न बुद्धिमंत अपनी कन्याओंके निमित्तमें चाहताहो वह द्वितीयामें श्राद्ध कियाकरै तौ कुत्सित जामातृ उसके नहींहों २ (पशून्) किन्तु जो कोई बकरी

आदि पशुओंकी सम्पत्ति चाहै वह तृतीयामें श्राद्ध कियाकरै ३ (सत्सुतान्) किन्तु जो कोई सन्मार्गवर्त्ती पुत्रोंकी कामना रखताहो वह चतुर्थीमें कियाकरै ४ (द्यूतं) जो कोई द्यूतकर्मकी विजय चाहताहो वह पंचमीमें ५ (कृषिं) जो कोई खेती मात्रकी फल सिद्धि चाहै वह षष्ठी तिथिमें ६ (वाणिज्यं) जो वणिज व्यापारसे बहुलाभ चाहै वह सप्तमीमें ७ (द्विशफं) अर्थात् दो खुरोंवाले गाय भैंस आदि पशु चाहै वह अष्टमीमें ८ तथा (एकशफं) अर्थात् घोड़ा आदि एक सुमवाले पशुचाहै वह नवमी में ९ (ब्रह्मवर्चस्विनःपुत्रान्) किन्तु वेदादि विद्याका अध्ययन पुनि उसके आचारसे उत्पन्नहुआ तेज सोई ब्रह्मवर्चस तिस करके संयुक्त ऐसे ब्रह्मवर्चस्वी पुत्रोंकी कामनावाला दशमी तिथिमें १० (स्वर्ण) किंतु सोनेकी बहुताइत चाहै वह एकादशीमें ११ (रूप्यं) किन्तु चांदीकी बहुताइत चाहै वह द्वादशीमें १२ (कुप्यं) किन्तु सीसा तांबा आदि धातोंसे जो लाभ चाहै वह त्रयोदशीमें १३ (जातिश्रैष्ठ्यं) किन्तु अपनी जाति बिरादरीमें उत्कर्षा आदि श्रेष्ठता चाहै वह अमावसमें निरन्तर श्राद्ध कियाकरै ३० और चतुर्दशी जो छोड़ीगई सो इस हेतुसे कि जो कोई जिसके कुल में शस्त्रसे मारेगये हों तिनके लिये उस दिन श्राद्ध कियाजाता है २६१।२६२।२६३॥

अ०त्रयाणांसह—यद्यपि इसमें तिथि कहने से पक्षकी विशेषता नहीं पाईगई परन्तु पितरोंके अधिकारमें कृष्णपक्ष परिनियमितहै इस्से कृष्णपक्षकी तिथैं समझीजाती हैं तथापि केवल कृष्णपक्षका सिद्धांत नहीं निश्चित होता किंतु यह तिथौं सम्बन्धी श्राद्ध कुछ (नैत्तिक) या (नैमित्तिक) में गिनती नहीं अर्थात् यह प्रयोग (काम्य) विषय पर आरूढ़है इस्से आगे नक्षत्रोंपर कहेंगे वहभी (काम्य) विषयपर आरूढ़है इस हेतु से दोनों पक्ष पायेजाते हैं क्योंकि जो निपट कृष्णपक्षसे अपेक्षा पितरोंके अधिकार से स्वीकार करीजावे तौ अग्रोक्त सत्ताईस नक्षत्रोंमेंभी कृष्णपक्षकी अपेक्षा होनी चाहिये सो असंगतहै किंतु सत्ताईस नक्षत्र दोनों पक्षमें आवेंगे इसलिये कर्त्ता पुरुषको अधिकारहै कि वह जिस किसी तिथिका नियम साधै उसको चाहै कृष्णपक्षसेही निरन्तर नियम अंगीकार करै चाहै केवल शुक्लपक्षसे अथवा दोनों पक्षसे निरन्तर नियम साधै तौ अधिकश्रेयस्करहो-अर्थात् कृष्णपक्षमें पितरोंका अधिकार प्रसिद्ध हैं से इस (काम्य) विधिमें शुक्लपक्षका निषेध नहीं पाया जाता किंतु कृष्णपक्षका अधिकार जो प्रसिद्धहै वह केवल (नैत्तिक) विधिसे अपेक्षा रखता है उस्से सिवाय (नैमित्तिक) में भी कृष्णपक्षसे अपेक्षा नहीं है अर्थात् पुत्र जन्मादिक समयपर नैमित्तिक अवश्य भावसे तत्काल कियाजाताहै फिर उसदिन चाहै कृष्णपक्षहो चाहै शु पर कुछ तर्कणा नहीं होती ऐसेही इस (काम्य) विधिमें भी केवल तिथि पक्ष मात्रसे अपेक्षा अंगीकारहै कुछ कृष्ण यद्वा शुक्लपक्षपर तर्कणा नहीं है॥ (मंदर)

तुर्दशीभी केवल इसी हेतुसे वर्जित करी है कि यह विधि काम्य विषयसे अपेक्षा रखती है इसको शुभकार्यमें गिनते हैं और चतुर्दशी शस्त्रहतोंकी तिथिहै इस्से उसमें काम्य विधि वाला न करे यद्यपि काम्य विधिवालेको निरंतर सब तिथोंसे अपेक्षा बारहमास में होती है और शस्त्रहतोंकी चतुर्दशी केवल पितृपक्षमें होती है तथापि नाम दूषित भाव अंगीकार कियाहै-और शस्त्रहतका श्राद्ध उस चतुर्दशीमें भी पार्वणके स्थान एकोद्दिष्ट कियाजाताहै-तथाच (समत्वमागतस्यापिपितुःशस्त्रहतस्यवै। एकोद्दिष्टंसुतैः कार्यंचतुर्दश्यांमहालये)-अर्थात्-(समत्वंआगस्य) कहिये सपिंडीकरणको पहुँचेहुये शस्त्र हत पिताका एकोद्दिष्ट पुत्रों करके महालयमें अर्थात् पितृपक्षमें कर्त्तव्यहै-यद्यपि एकोद्दिष्टमें दैवकर्मका निषेधहै तथापि यह पार्वण स्थानी एकोद्दिष्ट जो शस्त्रहतोंका ... द्दशीमें करना कहा तिसमें दैवकर्म भी होता है-तद्यथा-(विश्वेदेवांश ... ततोऽमलान्। येवैशस्त्रहतास्तेषांश्राद्धंकुर्यादतंद्रितः)-अर्थात्-उसमें निरालस्य हुअ विश्वेदेवाओंको भी पहले पूजिकर तब शस्त्रहतोंका श्राद्धकरे-अन्यच्च-(तच्छ्राद्धंदैवहीनंचेत्पुत्रदारधनक्षयः। प्रेतपक्षेचतुर्दश्यामेकोद्दिष्टविधानतः॥ ... च्छ्राद्धंपितॄणामक्षयंभवेत्)-अर्थात्-प्रेतपक्षकी चतुर्दशीमें जो श्राद्ध शस्त्रहतोंका हो... है सो एकोद्दिष्टके विधानमें निषेध कियेहुये हेतुसे जो कोई दैवहीन करै तो पुत्र ... धन इनके क्षय करनेवाला वह श्राद्ध होताहै इसलिये वह श्राद्ध दैवकर्म संयुक्त ...य जावे तो पितृयोंको अक्षय तृप्तिकरै और उस्से फलभी अक्षय हो-जिसके कुलमें ... मनुष्य शस्त्रहत हुयेहों वह दोनोंका भिन्न २ एकोद्दिष्ट चतुर्दशी में करै-परन्तु जि... कुलमें निरन्तर बाप दादा परदादा तीनों शस्त्रहत हुयेहों वह तीनोंका एक साथ ...र्वण करै उस चतुर्दशी में-तथाच-वृहत्पराशरः-(पित्रादयस्त्रयोयस्य२ ... मातासभूतेपार्वणंकुर्यादाब्दिकानिपृथक्पृथक्)-अर्थात्-वृहत्पराशर स्मृतिमें य... कि जिसके पिताआदि तीनोंपितर शस्त्रमृत्युसेगयेहों वहकर्त्तापुरुष(भूत)नाम च...दर तिथिमें तीनोंका पार्वणकरै (और) आब्दिक जो वर्षोड़ी श्राद्ध प्रति संवत्सर ... कियेजाते हैं सो जुदे२उनकेक्षयाहकोदिनाजिस२महीनामें होतेहों तिनमेंकरै-इस्से यह निश्चितहुआ कि शस्त्रहतका वार्षिकश्राद्ध उसके क्षयाहकेही दिन होगा किन्तु ... चतुर्दशीसे कुछ अपेक्षा नहीं है-इसके सिवाय जिसके कुलमें एक पुरुष शस्त्रहत हु... हो जिसके एकोद्दिष्टका चर्चा ऊपरसे चला आता है उसका भी चतुर्दशी में अवश्... करना है और दूसरा कोई ऐसाहै कि शस्त्रहतनहीं पर चतुर्दशी उसका क्षयाहका ... है इस्से उसका भी उसी दिन होना चाहिये तब उन दोनोंका भिन्न २ उसी ... में होगा ऊपर कहेहुये प्रकारोंसे अर्थात् यह सिद्धान्त नहीं है कि शस्त्रहतके क्षयाहवालेको चतुर्दशीमें नहो-और केवल एक शस्त्रहतके निदर्शनसे अन्यभी

आदि पशुओंकी सम्पत्ति चाहै वह तृतीयामें श्राद्ध कियाकरै ३ (सत्सुतान्) किन्तु जो कोई सन्मार्गवर्त्ती पुत्रोंकी कामना रखताहो वह चतुर्थीमें कियाकरै ४ (द्यूतं) जो कोई द्यूतकर्मकी विजय चाहताहो वह पंचमीमें ५ (कृषिं) जो कोई खेती मात्रकी फल सिद्धि चाहै वह षष्ठी तिथिमें ६ (वाणिज्यं) जो वणिज व्यापारसे बहुलाभ चाहै वह सप्तमीमें ७ (द्विशफं) अर्थात् दो खुरोंवाले गाय भैंस आदि पशु चाहै वह अष्टमीमें ८ तथा (एकशफं) अर्थात् घोड़ा आदि एक सुमवाले पशुचाहै वह नवमी में ९ (ब्रह्मवर्चस्विनःपुत्रान्) किन्तु वेदादि विद्याका अध्ययन पुनि उसके आचारसे उत्पन्नहुआ तेज सोई ब्रह्मवर्चस तिस करके संयुक्त ऐसे ब्रह्मवर्चस्वी पुत्रोंकी कामनावाला दशमी तिथिमें १० (स्वर्णं) किंतु सोनेकी बहुताइत चाहै वह एकादशीमें ११ (रूप्यं) किन्तु चांदीकी बहुताइत चाहै वह द्वादशीमें १२ (कुप्यं) किन्तु सीसा तांबा आदि धातोंसे जो लाभ चाहै वह त्रयोदशीमें १३ (जातिश्रैष्ठ्यं) किन्तु अपनी जाति बिरादरीमें उत्कर्षा आदि श्रेष्ठता चाहै वह अमावसमें निरन्तर श्राद्ध कियाकरै ३० और चतुर्दशी जो छोड़ीगई सो इस हेतुसे कि जो कोई जिसके कुल में शस्त्रसे मारेगये हों तिनके लिये उस दिन श्राद्ध कियाजाता है २६१। २६२। २६३॥

अ०त्रयाणांसह—यद्यपि इसमें तिथि कहने से पक्षकी विशेषता नहीं पाईगई परन्तु पितरोंके अधिकारमें कृष्णपक्ष परिनियमितहै इस्से कृष्णपक्षकी तिथैं समझीजाती हैं तथापि केवल कृष्णपक्षका सिद्धांत नहीं निश्चित होता किंतु यह तिथौं सम्बन्धी श्राद्ध कुछ (नैत्तिक) या (नैमित्तिक) में गिनती नहीं अर्थात् यह प्रयोग (काम्य) विषय पर आरूढ़है इस्से आगे नक्षत्रोंपर कहेंगे वहभी (काम्य) विषयपर आरूढ़है इस हेतु से दोनों पक्ष पायेजाते हैं क्योंकि जो निपट कृष्णपक्षसे अपेक्षा पितरोंके अधिकार से स्वीकार करीजावै तो अग्रोक्त सत्ताईस नक्षत्रोंमेंभी कृष्णपक्षकी अपेक्षा होनी न-हिये सो असंगतहै किंतु सत्ताईस नक्षत्र दोनों पक्षमें आवेंगे इसलिये कर्त्ता पुरुषको अधिकारहै कि वह जिस किसी तिथिका नियम साधै उसको चाहे कृष्णपक्षसेही नि-रन्तर नियम अंगीकार करै चाहे केवल शुक्लपक्षसे अथवा दोनों पक्षसे निरन्तर नि-यम साधै तौ अधिकश्रेयस्करहो-अर्थात् कृष्णपक्षमें पितरोंका अधिकार प्रसिद्ध है इस से इस (काम्य) विधिमें शुक्लपक्षका निषेध नहीं पाया जाता किंतु कृष्णपक्षका अधि-कार जो प्रसिद्धहै वह केवल (नैत्तिक) विधिसे अपेक्षा रखता है उस्से सिवाय (नैमित्तिक) में भी कृष्णपक्षसे अपेक्षा नहीं है अर्थात् पुत्र जन्मादिक समयपर नैमित्तिक श्रा० अवश्य भावसे तत्काल कियाजाताहै फिर उसदिन चाहे कृष्णपक्षहो चाहे शु० पर कुछ तर्कणा नहीं होती ऐसेही इस (काम्य) विधिमें भी केवल तिथि यद्वा मात्रसे अपेक्षा अंगीकारहै कुछ कृष्ण यद्वा शुक्लपक्षपर तर्कणा नहीं है॥ (मंदर)

तुर्द्दशीभी केवल इसी हेतुसे वर्जित करी है कि यह विधि काम्य विषयसे अपेक्षा रखती है इसको शुभकार्यमें गिनते हैं और चतुर्द्दशी शस्त्रहतोंकी तिथिहै इस्से उसमें काम्य विधि वाला न करै यद्यपि काम्य विधिवालेको निरंतर सब तिथोंसे अपेक्षा बारहमास में होती है और शस्त्रहतोंकी चतुर्द्दशी केवल पितृपक्षमें होती है तथापि नाम दूषित भाव अंगीकार कियाहै-और शस्त्रहतका श्राद्ध उस चतुर्द्दशीमें भी पार्वणके स्थान एकोदिष्ट कियाजाताहै-तथाच (समत्वमागतस्यापिपितुःशस्त्रहतस्यवै । एकोद्दिष्टंसुतैः कार्यंचतुर्द्दश्यांमहालये)-अर्थात्-(समत्वंआगस्य) कहिये सपिंडीकरणको पहुँचेहुये शस्त्र हत पिताका एकोदिष्ट पुत्रों करके महालयमें अर्थात् पितृपक्षमें कर्त्तव्यहै-यद्यपि एको द्दिष्टमें दैवकर्मका निषेधहै तथापि यह पार्वण स्थानी एकोदिष्ट जो शस्त्रहतोंका चतुर्द्दशीमें करना कहा तिसमें दैवकर्म भी होता है-तद्यथा-(विश्वेदेवांश्चतत्रापिपूजयित्वा ततोऽमलान् । येवैशस्त्रहतास्तेषांश्राद्धंकुर्यादतंद्रितः)-अर्थात्-उसमें निरालस्य हुआ विश्वेदेवाओंको भी पहले पूजिकर तब शस्त्रहतोंका श्राद्धकरै-अन्यच्च-प्रयोगपारिजाते (तच्छ्राद्धंदैवहीनंचेत्पुत्रदारधनक्षयः। प्रेतपक्षेचतुर्दश्यामेकोद्दिष्टविधानतः॥दैवयुक्तंतुत च्छ्राद्धंपितॄणामक्षयंभवेत्)-अर्थात्-प्रेतपक्षकी चतुर्द्दशीमें जो श्राद्ध शस्त्रहतोंका होता है सो एकोद्दिष्टके विधानमें निषेध कियेहुये हेतुसे जो कोई दैवहीन करै तो पुत्र दार धन इनके क्षय करनेवाला वह श्राद्ध होताहै इसलिये वह श्राद्ध दैवकर्म संयुक्त किया जावै तौ पितृयोंको अक्षय तृप्तिकरै और उस्से फलभी अक्षय हो-जिसके कुलमें दो मनुष्य शस्त्रहत हुयेहों वह दोनोंका भिन्न २ एकोदिष्ट चतुर्द्दशी में करै-परन्तु जिसके कुलमें निरन्तर बाप दादा परदादा तीनों शस्त्रहत हुयेहों वह तीनोंका एक साथ पार्वण करै उस चतुर्दशी में-तथाच-वृहत्पराशरः-(पित्रादयस्त्रयोयस्यशस्त्रैर्यातास्त्वनुक्रमात्।सभूतेपार्वणंकुर्यादाब्दिकानिपृथक्पृथक्)-अर्थात्-वृहत्पराशर स्मृतिमें यहकहाहै कि जिसके पिताआदि तीनोंपितर शस्त्रमृत्युसेगयेहों वहकर्त्तापुरुष(भूत)नाम चतुर्द्दशी तिथिमें तीनोंका पार्वणकरै (और) आब्दिक जो बर्सौड़ी श्राद्ध प्रति संवत्सर एकोदिष्ट कियेजाते हैं सो जुदे२उनकेक्षयाहकोदिनजिस२महीनामें होतेहों तिनमेंकरै-इस्से यहभी निश्चितहुआ कि शस्त्रहतका वार्षिकश्राद्ध उसके क्षयाहकेही दिन होगा किन्तु वहांपर चतुर्द्दशीसे कुछ अपेक्षा नहीं है-इसके सिवाय जिसके कुलमें एक पुरुष शस्त्रहत हुआ हो जिसके एकोद्दिष्टका चर्चा ऊपरसे चला आता है उसका भी चतुर्दशी में अवश्य करना है और दूसरा कोई ऐसाहै कि शस्त्रहतनहीं पर चतुर्दशी उसका क्षयाहका दिन है इस्से उसका भी उसी दिन होना चाहिये तब उन दोनोंका भिन्न २ उसी चतुर्दशी में होगा ऊपर कहेहुये प्रकारोंसे अर्थात् यह सिद्धान्त नहीं है कि शस्त्रहतके कारणसे क्षयाहवालेको चतुर्दशीमें नहो-और केवल एक शस्त्रहतके निदर्शनसे अन्यभी अप

आदि पशुओंकी सम्पत्ति चाहै वह तृतीयामें श्राद्ध कियाकरै ३ (सत्सुतान्) किन्तु जो कोई सन्मार्गवर्त्ती पुत्रोंकी कामना रखताहो वह चतुर्थीमें कियाकरै ४ (द्यूतं) जो कोई द्यूतकर्मकी विजय चाहताहो वह पंचमीमें ५ (कृषिं) जो कोई खेती मात्रकी फल सिद्धि चाहै वह षष्ठी तिथिमें ६ (वाणिज्यं) जो वणिज व्यापारसे बहुलाभ चाहै वह सप्तमीमें ७ (द्विशफं) अर्थात् दो खुरोंवाले गाय भैंस आदि पशु चाहै वह अष्टमीमें ८ तथा (एकशफं) अर्थात् घोड़ा आदि एक सुमवाले पशुचाहै वह नवमी में ९ (ब्रह्मवर्चस्विनःपुत्रान्) किन्तु वेदादि विद्याका अध्ययन पुनि उसके आचारसे उत्पन्नहुआ तेज सोई ब्रह्मवर्चस तिस करके संयुक्त ऐसे ब्रह्मवर्चस्वी पुत्रोंकी कामनावाला दशमी तिथिमें १० (स्वर्णं) किंतु सोनेकी बहुताइत चाहै वह एकादशीमें ११ (रूप्यं) किन्तु चांदीकी बहुताइत चाहै वह द्वादशीमें १२ (कुप्यं) किन्तु सीसा तांबा आदि धातोंसे जो लाभ चाहै वह त्रयोदशीमें १३ (जातिश्रैष्ठ्यं) किन्तु अपनी जाति बिरादरीमें उत्कर्षा आदि श्रेष्ठता चाहै वह अमावसमें निरन्तर श्राद्ध कियाकरै ३० और चतुर्दशी जो छोड़ीगई सो इस हेतुसे कि जो कोई जिसके कुल में शस्त्रसे मारेगये हों तिनके लिये उस दिन श्राद्ध कियाजाता है २६१।२६२।२६३॥

अ०त्रयाणांसह—यद्यपि इसमें तिथि कहने से पक्षकी विशेषता नहीं पाईगई परन्तु पितरोंके अधिकारमें कृष्णपक्ष परिनियमितहै इस्से कृष्णपक्षकी तिथैं समभीजाती हैं तथापि केवल कृष्णपक्षका सिद्धांत नहीं निश्चित होता किंतु यह तिथौं सम्बन्धी श्राद्ध कुछ (नैत्तिक) या (नैमित्तिक) में गिनती नहीं अर्थात् यह प्रयोग (काम्य) विषय पर आरूढ़है इस्से आगे नक्षत्रोंपर कहेंगे वहभी (काम्य) विषयपर आरूढ़है इस हेतु से दोनों पक्ष पायेजाते हैं क्योंकि जो निपट कृष्णपक्षसे अपेक्षा पितरोंके अधिकार से स्वीकार करीजावै तौ अग्रोक्त सत्ताईस नक्षत्रोंमेंभी कृष्णपक्षकी अपेक्षा होनी चाहिये सो असंगतहै किंतु सत्ताईस नक्षत्र दोनों पक्षमें आवेंगे इसलिये कर्त्ता पुरुषके अधिकारहै कि वह जिस किसी तिथिका नियम साधै उसको चाहै कृष्णपक्षसेंही निरन्तर नियम अंगीकार करै चाहै केवल शुक्लपक्षसे अथवा दोनों पक्षसे निरन्तर नियम साधै तौ अधिकश्रेयस्करहो-अर्थात् कृष्णपक्षमें पितरोंका अधिकार प्रसिद्ध हैं से इस (काम्य) विधिमें शुक्लपक्षका निषेध नहीं पाया जाता किंतु कृष्णपक्षका अधिकार जो प्रसिद्धहै वह केवल (नैत्तिक) विधिसे अपेक्षा रखता है उस्से सिवाय (नैमित्तिक) में भी कृष्णपक्षसे अपेक्षा नहीं है अर्थात् पुत्र जन्मादिक समयपर नैमित्तिक अवश्य भावसे तत्काल कियाजाताहै फिर उसदिन चाहै कृष्णपक्षहो चाहै शु० पर कुछ तर्कणा नहीं होती ऐसेही इस (काम्य) विधिमें भी केवल तिथि यद्वा मात्रसे अपेक्षा अंगीकारहै कुछ कृष्ण यद्वा शुक्लपक्षपर तर्कणा नहीं है॥ (मंदर)

तुर्दशीभी केवल इसी हेतुसे वर्जित करी है कि यह विधि काम्य विषयसे अपेक्षा रखती है इसको शुभकार्यमें गिनते हैं और चतुर्दशी शस्त्रहतोंकी तिथिहै इस्से उसमें काम्य विधि वाला न करै यद्यपि काम्य विधिवालेको निरंतर सब तिथोंसे अपेक्षा बारहमास में होती है और शस्त्रहतोंकी चतुर्दशी केवल पितृपक्षमें होती है तथापि नाम दूषित भाव अंगीकार कियाहै-और शस्त्रहतका श्राद्ध उस चतुर्दशीमें भी पार्वणके स्थान एकोद्दिष्ट कियाजाताहै-तथाच (समत्वमागतस्यापिपितुःशस्त्रहतस्यवै । एकोद्दिष्टंसुतैः कार्यंचतुर्दश्यांमहालये)-अर्थात्-(समत्वंआगस्य) कहिये सपिंडीकरणको पहुँचेहुये शस्त्र हत पिताका एकोद्दिष्ट पुत्रों करके महालयमें अर्थात् पितृपक्षमें कर्त्तव्यहै-यद्यपि एकोद्दिष्टमें दैवकर्मका निषेधहै तथापि यह पार्वण स्थानी एकोद्दिष्ट जो शस्त्रहतोंका चतुर्दशीमें करना कहा तिसमें दैवकर्म भी होता है-तद्यथा-(विश्वेदेवांश्चतत्रापिपूजयित्वा ततोऽमलान् । येवैशस्त्रहतास्तेषांश्राद्धंकुर्यादतंद्रितः)-अर्थात्-उसमें निरालस्य हुआ विश्वेदेवाओंको भी पहले पूजिकर तब शस्त्रहतोंका श्राद्धकरै-अन्यच्च-प्रयोगपारिजाते (तच्छ्राद्धंदैवहीनंचेत्पुत्रदारधनक्षयः। प्रेतपक्षेचतुर्दश्यामेकोद्दिष्टविधानतः॥दैवयुक्तंतुतच्छ्राद्धंपितॄणामक्षयंभवेत्)-अर्थात्-प्रेतपक्षकी चतुर्दशीमें जो श्राद्ध शस्त्रहतोंका होता है सो एकोद्दिष्टके विधानमें निषेध कियेहुये हेतुसे जो कोई दैवहीन करै तौ पुत्र दार धन इनके क्षय करनेवाला वह श्राद्ध होताहै इसलिये वह श्राद्ध दैवकर्म संयुक्त किया जावै तौ पितृयोंको अक्षय तृप्तिकरै और उस्से फलभी अक्षय हो-जिसके कुलमें दो मनुष्य शस्त्रहत हुयेहों वह दोनोंका भिन्न २ एकोद्दिष्ट चतुर्दशी में करै-परन्तु जिसके कुलमें निरन्तर बाप दादा परदादा तीनों शस्त्रहत हुयेहों वह तीनोंका एक साथ पार्वण करै उस चतुर्दशी में-तथाच-वृहत्पराशरः-(पित्रादयस्त्रयोयस्यशस्त्रैर्यातास्त्वनुक्रमात्।सभूतेपार्वणंकुर्यादाब्दिकानिपृथक्पृथक्)-अर्थात्-वृहत्पराशर स्मृतिमें यहकहाहै कि जिसके पिताआदि तीनोंपितर शस्त्रमृत्युसेगयेहों वहकर्त्तापुरुष(भूत)नाम चतुर्दशी तिथिमें तीनोंका पार्वणकरै (और) आब्दिक जो वर्सोंडी श्राद्ध प्रति संवत्सर एकोद्दिष्ट कियेजाते हैं सो जुदे २ उनकेक्षयाहकोदिनजिस२महीनामें होतेहों तिनमेंकरै-इस्से यहभी निश्चितहुआ कि शस्त्रहतका वार्षिकश्राद्ध उसके क्षयाहकेही दिन होगा किन्तु वहांपर चतुर्दशीसे कुछ अपेक्षा नहीं है-इसके सिवाय जिसके कुलमें एक पुरुष शस्त्रहत हुआ हो जिसके एकोद्दिष्टका चर्चा ऊपरसे चला आता है उसका भी चतुर्दशी में अवश्य करना है और दूसरा कोई ऐसाहै कि शस्त्रहतनहीं पर चतुर्दशी उसका क्षयाहका दिन है इस्से उसका भी उसी दिन होना चाहिये तव उन दोनोंका भिन्न २ उसी चतुर्दशी में होगा ऊपर कहेहुये प्रकारोंसे अर्थात् यह सिद्धान्त नहीं है कि शस्त्रहतके कारणसे क्षयाहवालेको चतुर्दशीमें नहो-और केवल एक शस्त्रहतके निदर्शनसे अन्यभी अप

मृत्युवाले संगृहीत हैं-यथा पृथ्वीचंद्रोदयेप्रचेताः-(वृक्षरोपणलोहाद्यैर्विद्युज्जलविषाग्निभिः। नखिदंष्ट्रिविपन्नायेतेषांशस्ताचतुर्दशी)-अर्थात्-वृक्षादिकोंके लगाने आदि समयोंपर किसी वृक्षके गिरने आदि हेतुसे मराहो या शस्त्र आदि किसी लोहेसे या बिजली गिरने आदि उत्पातोंसे या जलसे डूबाहो या विषसे मराहो या अग्निसे जलिगयाहो या नखवाले मृगोंसे मारागयाहो या दाढ़वालोंसे ऐसे २ सभी शस्त्रहत कहलाते हैं तिनके लिये चतुर्दशी श्रेष्ठहै-ध्यानकरना चाहिये कि इस दूसरे भेदका चर्चा केवल चतुर्दशी के प्रसंगसे करनापड़ा अन्यथा यह चर्चा (नैत्तिक) विधिमें गिनती है इससे यहां पर इसके लिखने की अपेक्षा नहीं थी-क्योंकि-याज्ञवल्क्यीय मूल श्लोक तीनों जिनमें सब तिथोंका चर्चा है वह (काम्य) विधिका प्रसंगहै और पितृपक्षका विशेष वर्णन इसमें नहीं किया क्योंकि वह प्रेतपक्षभी सामान्यभावसे (नैत्तिक) विधिमें गिनती है॥ (भेद ३) और तिथि क्रमके मध्ये (कन्या) शब्दसे यद्यपि शुभ लक्षणा सुताका भी भाव निश्चितहै पर विशेष भाव कन्या शब्दसे शुभ लक्षणा भार्याकी अभिलाषा पर आरूढ़है तिसका यह सिद्धांतहै कि जिसकी भार्या मरजातीहो या बारम्बार दुःशीला कर्कशा आदि कुभार्या मिलतीहो या जिसको निपट न मिलती हो वह इस बातका नियम साधै कुछ सबके लिये नहीं-और पशु या सोना चांदी आदि धातोंकी अपेक्षा से जो तिथैं बतलाईं तिनका यह सिद्धांतहै कि उन चीजोंकी वृद्धि चाहैं अथवा जो कोई उन चीजोंमेंसे जिस किसी वस्तुका व्यापार करताहै उसके द्वारा अधिक लाभ चाहै जैसे सीसा तांबा रांगा आदिकी भरती करताहै उसमें बारम्बार टोटा देखपड़ता है यह उसके पूर्वकाल या पूर्वजन्मके पापोंका उदय प्रत्यक्ष है तब ऐसी दशामें यह नियम कर्त्तव्यहै किन्तु साधारण दशामें नहीं २६१। २६२। २६३॥

अब इससे आगे इसी प्रकार नक्षत्र विशेषमेंभी श्राद्धकरनेका फल विशेषकहतेहैं॥

स्वर्गंह्यपत्यमोजश्चशौर्यंक्षेत्रंबलंतथा। पुत्रंश्रैष्ठ्यंससौभाग्यंसमृद्धिंमुख्यतांशुभम् २६४॥
प्रवृत्तचक्रतांचैववाणिज्यप्रभृतीनपि। अरोगित्वंयशोवीतशोकतांपरमांगतिम् २६५॥
धनंवेदान्भिषक्सिद्धिंकुप्यंगाअप्यजाविकाम्। अश्वानायुश्चविधिवद्यःश्राद्धंसंप्रयच्छति २६६॥
कृत्तिकादिभरण्यंतंसकामानाप्नुयादिमान्। आस्तिकःश्रद्दधानश्चव्यपेतमदमत्सरः २६७॥

ए०–चतुर्णांसह–पहले २६६ के उपरांतसे दृष्टिकरौ-कृत्तिकाको आदिलेकर भरणी के अन्तताईं २७ नक्षत्रोंमें जोकोई सम्यक्‌विधिसे श्राद्धदेताहै सो वहपुरुष इनश्लोकोंमें कहेहुये कामोंको पावैहैपरन्तु जो(आस्तिक)होकरकरै अर्थात् निजहृदयसे उत्पन्न हुये विश्वासपूर्वक-और(श्रद्दधान)भी हो किन्तु जोकुछकरै सोअतिशय आदरसहित-और(व्यपेतमदमत्सर)भीहो किन्तु मदकहियेगर्व और मत्सरकहिये ईर्ष्या इनसे व्यपेत कहिये रहित होकरकरै तौ यथोक्त भिन्न २ नक्षत्रोंमें करनेसे जैसा २ फलकहा है सो

तद्रूप मिलै तिसका वर्णन २६४ के प्रारम्भ से देखौ-(कृत्तिका) नक्षत्रमें करनेसे (स्वर्ग) फल अर्थात् स्वर्गके समान इसी देहसे इसी संसारमें निरतिशय सुखपावै १-(रोहिणी) नक्षत्रमें करनेसे (अपत्य) फल अर्थात् पुत्र पौत्र प्रपौत्र कन्या आदि सब तरहकी संतान वृद्धिहो २-(मृगशिर) में करनेसे (ओजस) फल अर्थात् आत्मशक्तिकी अतिशयता किन्तु निज शरीरमें अत्यन्त पराक्रमका होना ३-(आर्द्रा) में करनेसे (शौर्य) फल अर्थात् निर्भयत्व सब ओरसे ४-(पुनर्वसु) में करनेसे (क्षेत्र) फल अर्थात् खेती आदिमें संपन्नता की वृद्धि ५-(पुष्य) में करनेसे (दल) का फल अर्थात् शरीर सम्बन्धी पराक्रम और अनुगामी मनुष्योंकी सहायता ६-(श्लेषा) में करनेसे (पुत्र) फल अर्थात् गुणवान् और आज्ञाकारीपुत्रहों ७-(मघा) में करनेसे (श्रैष्ठ्य) फल अर्थात् अपनी जातिमें बड़प्पनका मिलना ८-(पूर्वाफाल्गुनी) में करने से (सौभाग्य) फल अर्थात् सर्वत्र सर्वजनोंमें अविरोध पूर्वक प्रियता और दर्शनीयताहो ९-(उत्तराफाल्गुनी) में करने से (समृद्धि) फल अर्थात् धन जन आदिकी संपन्नता उन्नति पूर्वकहो १०-(हस्त) में करने से (मुख्यता) फल अर्थात् अग्रणी होना किन्तु प्रत्येक व्यवहारोंमें मुखिया कहलाना ११-(चित्रा) में करने से (शुभं) फल अर्थात् सभी प्रकारके मंगलोंकी वृद्धि किन्तु कोई भांतिसे अमंगल नहीं १२।२६४-(स्वाति) में करने से (प्रवृत्तचक्रता) फल अर्थात् सर्वत्र अप्रतिहत आज्ञाका होना किन्तु जिसकी उचित आज्ञामें विघ्न प्रतिवन्ध नहीं होने पावै १३-(विशाखा) में करनेसे (वाणिज्य) आदि फल अर्थात् वाणिज्य तौ सर्व वस्तुका क्रयविक्रय और आदि शब्दसे कृषी और कुसीद कहिये व्याज बट्टेका देनलेन और गोरक्षकर्म कहिये पशुओं को व्यापारकी रीतिसे पालना यह बातैंभी समझलेनी किन्तु इन सारी बातोंकी सिद्धि का होना १४-(अनुराधा) में करनेसे (अरोगित्व) फल अर्थात् शरीर और कुटुम्बमें निरोगताका होना १५-(ज्येष्ठा) में करनेसे (यशः) फल अर्थात् संसारमें प्रख्यातिका होना १६-(मूल) नक्षत्रमें करनेसे (वीतशोकता) फल अर्थात् सर्व शोकोंका नाश किन्तु प्रिय वियोग आदि शोकोंका न होना १७-(पूर्वाषाढ़) में करनेसे (परमागति) फल अर्थात् ब्रह्म लोकोंकी प्राप्ति १८।२६५-(उत्तरापाढ़) में करनेसे (धन) अर्थात् सुवर्णादि द्रव्योंकी प्राप्ति १९-(श्रवण) में करनेसे (वेद) फल अर्थात् वेदादि धर्मशास्त्रादि सर्वशास्त्रोंकी संपन्नता होना २०-(धनिष्ठा) में करनेसे (भिषक्सिद्धि) फल अर्थात् जो वैद्यक शास्त्रकी विद्या सीखै या जो रसादिक औषध बनावै या सीखीहुईके द्वारा किसीपर हाथ डारै तौ तत्काल उसके हाथसे आरामकी सिद्धिहो और यश मिलै २१-(शतभिषा) में करने से(कुप्यं)फल अर्थात् सोना चांदीसे भिन्नताम्रादि सबधातोंके व्यापार आदि फलकी सिद्धि २२-(पूर्वाभाद्रपद)में करनेसे(गावः)फल किन्तु गाःगौवें और अपिशब्दकीलक्षणा से औरभी बैल भैंसआदि सबकामोंकी सिद्धि २३-(उत्तराभाद्रपद) में करनेसे(अजा)फल.

किन्तु बकरी संबन्धी कामोंकीसिद्धि २४-(रेवती) में करनेसे (आविक)फल अर्थात् भेड़ों
संबंधी कामोंकी सिद्धि २५-(अश्विनी)में करनेसे(अश्व)फल अर्थात् घोड़ासंबन्धीकामों
कीसिद्धि २६-(भरणी)में करनेसे(आयुः)फल अर्थात् पूर्णायुभर जीवै २७-इसमें भी सि-
द्धांत वही समुझना जैसा तिथोंके फलकथनमें लिखाथा किंतु जिसबस्तुकी पीड़ा वा
अपेक्षा जिसकोहो वहउसीबस्तुके संबंधी नक्षत्रमें निरंतर पार्वणविधिसे श्राद्धकियाकरै
तौ निःसंदेह उसकीवहपीड़ा दूरहोवै और कामनापूरीहो २६६। २६७॥

अधि०--(समुत्थितसंदेहानामत्रनिर्णयश्च)-यहांपर यहसंदेह निर्णय करतेहैं कि २५७
और २५८ इनके पिछले अङ्कमें जो कहाथा कि हविष्यान्न आदि उक्तवस्तुओं के
श्राद्धदेनेसे इससंसारमें पितामहसंबंधी तीनोंपितर मासमासकी वृद्धिपूर्वक अभितृप्त
होतेहैं सो यहकथन(अनुपपन्न)अर्थात् ठीक नहींहै क्योंकि अपने २ शुभ अशुभ
कर्मोंके बशहोकर स्वर्ग अथवा नरकमें पहुँचेहुये मनुष्योंकी पुत्रादिकों करके दियेहुये
अन्नपानादिसे तृप्तिहोनी असंभव है किन्तु न जानिये उन्होंने कहां २ उत्तमलोकों में
जन्मपायेहों या किस २ योनिमें अपनेपापोंके फल भोगतेहों फिर उनकीतृप्ति अबके
दियेहुये अन्नपानादिसे क्योंकर होसक्ती है-भलायहभीमाना कि भावतृप्ति होतीहोगी
क्योंकि अबका दियाहुआ उनको उस पापिष्टयोनिमें पहुँचकर सहायता करताहोगा
जिसमें उन्होंने जन्मपाया और क्लेशितहोरहेहों किन्तु उसयोनिमेंभी अबकेदियेसे कुछ
क्लेशकीशांति होतीहोगी अथवा पुण्ययोनिमें जन्मपायाहोगा तौ यद्यपि उसमें सुखी
होंगे पर अबकेदियेकी सहायतासे कुछअधिकसुख मिलताहोगा(तथापि)शंकाहोती है
कि जब आपही पराधीन और असमर्थहैं कि पुत्रादिकोंके दियेहुयेकी सहायता और
तृप्तिमें आकांक्षा वा लालसा रखतेहैं फिर पुत्रादिकोंको क्योंकर स्वर्गादिफल देसक्ते
हैं जो नानाप्रकारके फल बर्णनकरते चलेआतेहो क्योंकि दूसरेको कुछदेना यह अ-
पनी शक्तिविना कदाचित् नहींहोसक्ता(फिर)उन पराधीनोंमें ऐसीकौनसी वहशक्तिहै
जिस्से वे पुत्रादिकोंको सबसंसारी वा असंसारी सुखदेसक्तेहैं-इसी शंकाकी शान्तिमें
नीचे दोश्लोक बर्णनकियेजातेहैं सो देखो २६४।२६५।२६६।२६७॥

वसुरुद्रादितिसुताःपितरःश्राद्धदेवताः । प्रीणयंतिमनुष्याणांपितॄन्श्राद्धेनतर्पिताः २६८॥
आयुःप्रजांधनंविद्यांस्वर्गंमोक्षंसुखानिच । प्रयच्छंतितथाराज्यंप्रीतानृणांपितामहाः २६९॥

अक्ष०सहृदयोः--वसु १ रुद्र २ अदितिकेपुत्र ३ यहतीनों पितर और येही श्राद्धके
देवताहैं श्राद्धद्वारा तर्पितहुये मनुष्योंके पितृन्को प्रीणन करतेहैं २६८ तथा येही
पितामह प्रीतहोतेहुये मनुष्यों को-आयु-प्रजा-धन-विद्या-स्वर्ग-मोक्ष-सर्वसुख-राज
यह सबदेतेहैं २६९॥ यहांपर पहले श्लोकमें (पितर)और दूसरेमें(पितामह) यह दोनों
शब्द देवताओंके वाचकहैं सो इसकाभाव अभिप्रायार्थमें समुझलो॥

भाषि०सहृद्वयोः—इनदोनों से पहले चार श्लोकोंकी अधिकोक्तिवाली शंकामें समाधान करतेहैं कि यद्यपि देवदत्त १ कृष्णदत्त २ विष्णुदत्त ३ इत्यादि पिता १ पितामह २ प्रपितामह ३ तीनोंके नामगोत्र उच्चारणकरिकै श्राद्ध कियाजाता है तथापि श्राद्ध कर्मकीव्यवस्थामध्ये देवदत्तआदि तीनों बाप दादा परदादाही श्राद्धके(संप्रदानभूत) नहीं अर्थात् जिनकानामलेकर श्राद्धकियाजाताहै यथार्थमें केवलउनकोही नहींदिया जाता किन्तु कुछ वेही श्राद्धके भोक्ता या फलदाता नहींहैं क्योंकि उनके नतो पहलेसे देहमात्रहैं न आत्मामात्रहैं केवलदेवदत्तआदि नाममात्र उच्चारणकियेजातेहैं सो इस नाममात्रके उच्चारणसे उनके एकभिन्न प्रकारके शरीरविशेषोंका उद्देश कियाजाता है (तथापि)केवल देवदत्त आदि इन्हींनामोंसे उद्देश नहींकियाजाता किन्तु उनके साथ वसु १ रुद्र २ आदित्य ३ इनकाभी उच्चारण कियाजाता है(उदाहरण)जैसे अमुक गोत्र अस्मत्पिता देवदत्तशर्मा वसुस्वरूपः(एवं)अस्मत्पितामहः कृष्णदत्तशर्मा रुद्र स्वरूपः(एवं)अस्मत्प्रपितामहो विष्णुदत्तशर्मा आदित्यस्वरूपः-अथवा-तीनोंका एक साथ उच्चारण करनाहुआ तौ इसरीतिसे कि-पितृपितामहप्रपितामहाः वसुरुद्रादित्य स्वरूपाः-सो यथार्थमें वसु रुद्र आदित्य येही तीनों पितामह शब्दवाच्यहैं किन्तु पितामह येहीकहलातेहैं और येहीतीनों श्राद्धके अधिष्ठातृ देवताहैं इसलिये इनतीनों का और देवदत्त आदि तीनोंका एकसाथ आवाहन कियाजाताहै-इसीहेतुसे देवदत्त आदि तीनों बाप दादा परदादाभी तीनों अधिष्ठातृ देवताओंकरके सहित पित्रादि शब्दोंसे विख्यातहैं-इसीकारणसे पुत्रादिकों करके दियेहुये अन्नादि वस्तुसे प्रथम वसु आदि तीनों देवता भोक्ताहोकर तृप्तहोतेहैं फिर वे आप तृप्तहुये देवदत्त आदि मनुष्योंके पितॄन्कोभी तृप्तकरतेहैं और वेहीदेवता अपने ज्ञान १ शक्ति २ अतिशय योग ३ इनतीनों उपकरणोंसे श्राद्ध कर्त्ता लोगोंकोभी कहेहुये फलोंसे संयुक्त करतेहैं-इसभांति पितरोंके श्राद्धसे मनुष्योंको फलमिलताहै किन्तु उनके अधिष्ठाता देवता संपूर्ण फलदेते हैं सो वह उन्हींकादेना कहलाता है इसलिये शंकाकरने का अवसर नहींहै २६८। २६९ ॥

अधि०सहृद्वयोः—यह उपशंकाभी निर्मूलहै कि वेही पितरोंकोभी तृप्तकरते और वेही श्राद्धकर्त्ताको फलदेतेहैं क्या एकसे दोकामहोना संभवहै-इसमें(दृष्टांत)दियाजाता है कि जैसे सगर्भास्त्रीको बहुभांति अन्नोंकी लालसा पूरीकरने तथा शरीर पोषणके भी लिये पति आदि करके अन्नदियेजातेहैं वह सगर्भा उन्हीं अन्नोंसे प्रथम आपभोजन करके तृप्तहोती है पुनि आप संतर्पितहुई गर्भगत संतानकोभी संतर्पित करती किंतु गर्भगत बालक अपनी माताकेही आहारसे पलताहै-पुनि वही सगर्भा संतर्पित हुई संतानको तर्पित कियेपीछे पुत्रादिफल उत्पत्तिद्वारा अन्नदाता पतिआदिको भी फल

संयुक्त करतीहै फिर देवताओंको ऐसाकरना क्याअसंभवहै-क्योंकि-बसु रुद्र आदित्य जो तीनोंकहे सो केवल एक२नहीं किन्तु बसुभी आठ८हैं सो पितापक्षके अधिष्ठाता तथा ग्यारह११रुद्रहैं सो दादापक्षके अधिष्ठाता और बारह१२आदित्यहैं सो परदादा पक्षके अधिष्ठाता पुनि येही नानापक्षमें तीनोंपुरुषके अधिष्ठाता इसीक्रमसेहोतेहैं फिर इतनोंको मिलकर श्राद्धकर्त्ताको फलदेना क्याअसंभवहै इस्से कोईभांति शंका करने का अवकाश नहींहै २६८।२६९॥

इतिसर्वश्राद्धप्रकरणम्॥

ज्ञातव्यहै कि २१६ और २१७ श्लोकसे श्राद्धप्रकरण का प्रारम्भ हुआथा और २५३ के श्लोकतक इसप्रकरणका पूर्वार्द्ध पूराहोगयाथा वहांपर पूर्वार्द्धकी समस्या लिखनी रहगई सो अबकीबार छपने में लिखीजायगी इनपुस्तकों में अपनी बुद्धिसे समझलेना और २५४ से उत्तरार्द्धका प्रारंभहोकर यहांतक पूराहुआ॥

अथ सर्वविघ्नादिशांति प्रकरणम्॥

विनायकःकर्मविघ्नसिद्ध्यर्थंविनयोजितः। गणानामाधिपत्येचरुद्रेणब्रह्मणातथा २७०॥

अक्ष०—कर्मोंकी बिघ्नसिद्धिके लिये ब्रह्माकरके तथा रुद्रकरकेगणोंके आधिपत्यमें बिनायक बिनयोजित कियाहै २७०॥

अभि०—(विनायक)कहिये विघ्नेश्वर किन्तु महागणपति गणोंके(आधिपत्य)में अर्थात् पुष्पदन्त आदि भयंकरगण समूहोंके सेनापतित्वमें नायकरूप(विनयोजित)किया अर्थात् उस धंधेमें लगायाहै-किसने ब्रह्माने तथा रुद्रने और चकारके आशयसे विष्णु ने भी-सो किसलिये कि संसारी फल साधकरूप कर्मोंमें(विघ्नसिद्धि)केलिये अर्थात् भयंकर गणोंकेद्वारा यथोचित बिघ्नपूर्वक उनकर्मोंकी फलसिद्धिका बिघात करने के लिये-यद्वा-(गौणपक्ष)से यहअर्थभी होसक्ताहै कि कर्मोंमें बिघ्न और सिद्धिकेलिये किंतु विघ्न कियेपीछे अपनी मान्यता वा पूज्यताहोनेपर कर्मकी सिद्धिकेअर्थ परन्तु यह अर्थ श्रेष्ठनहींहै किंतु मुख्यअर्थ वहीहै जो पहलेकहा २७०॥

अधि०—इसकथनसे यह तात्पर्य है कि जो मनुष्य किसीप्रकारकी फल साधनाके लिये पूर्वोक्त उत्तम कर्मोंको बारम्वार करताहै और उसमें बिघ्नोंकी उत्पत्ति बारम्बार होती यद्वा उनकर्मोंसे यथोक्तफलकी प्राप्तिनहींदेखपरती तिसका यहीकारणहै कि बिघ्नोंकेकारकहेतु असंख्यगण जगत्के अधिष्ठाता ब्रह्मा विष्णु रुद्रों करके नियुक्त किये हुये फिरते हैं-यद्यपि वेभी प्रारब्धों के अनुकूलही विघ्नकरते किन्तु उत्तम प्रारब्धों के नहीं छेड़सक्ते परकदाचित् यहभ्रांतिहो कि जगत्के अधिष्ठाताओंका रक्षा और पालन आदि कामहै कि बनतेको बिगाड़ते फिरना यहक्याउनकी शोभाहै सोयहबातनहीं किंतु ये विघ्नकारक हेतुभी केवल जगत्की रक्षाकेही लिये नियुक्त किये हैं अर्थात् प्रजाके

यह एक प्रकारका भय दिखलाना केवल सुमार्गताके निमित्त से ब्रह्मा रुद्रने निरूपित कियाहै क्योंकि भयके बिना प्रीतिभी नहीं होती और जब उसके बनायेहुये संसारी मनुष्य राजा आदि अपने आतंक या प्रजाकी सुमार्गताके लिये नाना भांतिकी भय कल्पना करते हैं कि जिस्से प्रबन्धमें दृढ़ता बनी रहै और प्रजा हमसे विमुख नहीं होनेपावै फिर सारे जगत्के अधिष्ठाता ऐसा नहींकरैं तो जगत् उनके बशमें कैसेरहै २७०॥

तेनोपसृष्टोयस्तस्यलक्षणानिनिबोधत । स्वप्नेऽवगाहतेऽत्यर्थंजलंमुंडांश्चपश्यति २७१ ॥
काषायवाससश्चैवक्रव्यादांश्चाधिरोहति । अंत्यजैर्गर्दभैरुष्ट्रैःसहैकत्रावतिष्ठते २७२ ॥
व्रजन्नपितथात्मानंमन्यतेऽनुगतंपरैः २७३ ॥

ऐ० सार्द्धद्वयोःसह–(हेमुनयःतस्यलक्षणानिनिबोधत) इस प्रकार योगीश्वर याज्ञवल्क्य फेर उन मुनियोंको संबोधित करते हैं जिनसे सबसे पहले प्रश्न करनेपर द्वितीय श्लोकमें यह कहाथा कि-(यस्मिन्देशेमृगःकृष्णःतस्मिन्धर्मान्निबोधत) हे मुनयः जो कोई पुरुष (तेन-उपसृष्टः) कहिये तिस पूर्वोक्त विनायकसे पकड़ाहुआ होवै तिसके लक्षणसमझो कि वह विनायकसे पकड़ाहुआ स्वप्नमें (अत्यर्थजलावगाह) करैहै अर्थात् अत्यंतही अगाध जलमें गोतेसे खावै है और (मुंडान्पश्यति) किन्तु मुड़ेहुये शिरों के मनुष्योंको देखताहै २७१ (काषायवाससश्च) किन्तु गेरुआ और नीले खाकी आदि वस्त्रवालोंको भी देखताहै (एव) निश्चय जानो (क्रव्यादांश्चाधिरोहति) किन्तु क्रव्याद नाम मांस भक्षी व्याघ्र आदि या गृध्र आदि पक्षीभी तिनपर आप आरोहण करता है या उनके साथ घिरा फिरताहै ऐसेही (अंत्यज) चांडाल और गर्दभ और ऊँट इन करके सहित एकत्र बैठताहै या इनपर भी चढ़ता है २७२ तैसेही (व्रजन्) अर्थात् जाताहुआ मार्गमें (आत्मानं) कहिये अपनेको (परैः) अर्थात् शत्रुओं यद्वा राजदूतों अथवा बटमारों आदि करके (अनुगतं-मन्यते) किन्तु घेराहुआ मानै है अर्थात् जैसे यह लोग पीछेसे दौड़ेहुये पकड़ने या मारनेको झुके चलेआते हैं तैसी अति खिन्न दशा स्वप्नमें भोगताहै॥ यहां तक अढ़ाई श्लोकों से अतिभयानक स्वप्नरूप विघ्न ज्ञापक हेतु कहे अर्थात् इन लक्षणों से जानाजाता है कि यह पुरुष विघ्नविनायकसे गृहीत है २७३ ॥

अब नीचेके अढ़ाई श्लोकोंसे साक्षात् जाग्रत् अवस्थामें विघ्न ज्ञापक हेतुओं के स्वरूप लक्षण कहते हैं ॥

विमनाविफलारंभःसंसीदत्यनिमित्ततः २७३ ॥
तेनोपसृष्टोलभतेनराज्यंराजनन्दनः । कुमारीचनभर्त्तारमपत्यंगर्भमंगना २७४ ॥
आचार्यत्वंश्रोत्रियश्चनशिष्योऽध्ययनंतथा । वणिग्लाभंनचाप्नोतिकृषिंचापिकृषीवलः २७५ ॥

ऐ०सार्द्धद्वयोःसह–(विमना) कहिये बिगड़ा हुआ मन किन्तु विकृत चित्त विक्षिप्तसा

मनुष्य होजाता है और (विफलारम्भः) किन्तु जो कुछ आरम्भ उद्योग आदि करता है सो विफल होजाता अर्थात् कियाहुआ कर्म संसिद्ध नहीं होता जिस्से फल पावै औरभी (अनिमित्ततः–संसीदति) अर्थात् बिना कारणकेही अकस्मात् खिन्नमन खिन्न शरीर होकर दीनसा होजाता और मुखकी कांति जाती रहती है २७३ उस विघ्नवि-नायकसे पकड़ाहुआ राजनन्दनभी राज्य नहीं पाता अर्थात् राजकुलमें जन्म पाकर और श्रुत शौर्य धैर्य आदि गुण संयुक्त होकर भी राज्यका अधिकार नहीं पाता-(कुमारीच–नभर्त्तारं) अर्थात् कन्याभी रूप लक्षण अभिजन आदि सम्पन्न होने पर भी यथेप्सित बरढूंढ़े नहीं पाती-और (अंगना-अपत्यं) अर्थात् स्त्री गर्भवती होकर भी संतान नहींपाती-और (गर्भं) ऋतुमती अर्थात् मासिक धर्म होनेपर भी गर्भनहीं पातीहै२७४ (आचार्यत्वं-श्रोत्रियश्च) अर्थात् श्रुत अध्ययन तदर्थ ज्ञान इनके होने परभी आचार्यत्व की पदवी वा अधिकार श्रोत्रिय नहींपाताहै-तथैव (शिष्य) भी विनय आचारादि युक्त होने परभी (अध्ययन) अर्थात् पढ़ना या तौ प्राप्त नहीं करसक्ता यद्वा पढ़ाहुआ याद वा स्पष्ट नहीं करसक्ता-(वणिग्लाभंनचाप्नोति) अर्थात् बाणिज्यवाला अपने व्यापारसे लाभनहीं करसक्ता और (कृषिंचापि-कृषीबलः) अर्थात् कृषीबल कहिये कृषाण सो खेती से फल नहींपाता-तब इनकेहहुये लक्षणों से जानाजाताहै कि यहमनुष्य विघ्नविना-यकसे गृहीतहै २७५॥

इसप्रकार बिघ्नोंकेकारकहेतु और ज्ञापकहेतु भी कहे-अब आगे इनकी शांतिका बिधान कहते हैं॥

स्नपनंतस्यकर्त्तव्यंपुण्येह्निविधिपूर्वकम् । गौरसर्षपकल्केनसाज्येनोत्सादितस्यच २७६॥
सर्वौषधैःसर्वगंधैर्विलिप्तशिरसस्तथा। भद्रासनोपविष्टस्यस्वस्तिवाच्याद्विजाःशुभाः २७७॥

ऐ० सहद्वयोः–पुण्यदिवसमेंउसकाविधिपूर्वक(स्नपन)कर्त्तव्यहैअर्थात्पुण्यदिनकहिये अपनी राशिआदिके अनुकूल चन्द्रनक्षत्रादिसे दिनदेखकर यथोक्त पद्धति आदिकी विधिसे(स्नपन)कहिये अभिषेक करै उसका कि जो पुरुष विनायक से उपसृष्टहो-अथवा-उपसृष्ट तौ नहींहै पर किसी उत्तमकार्यके प्रारम्भसे पहले विनायक से उपसृष्ट नहोनेकी वांछासे अर्थात् निर्विघ्न परिसमाप्तिके हेतुसे विनायकसे न पकड़ाहुआ भी अभिषेचन कर्मकरै सो यहअभिषेक दिनमेंकरै किंतु रात्रिमेंनहीं सोइसविधिसे कर्त्तव्य है कि पहले पीली सरसों छिलका उतारीहुईका कल्क अर्थात् लुगुदी या नुगुदी कुटी हुई घृतसहित गाढ़े लेपकेअनुमान वनाकर उस्से(उत्सादित)कहिये उद्वर्त्तित किंतु उब-टना कियेहुयेका अभिषेककरै जैसा २८० । २८१ । २८२ इन तीनों मंत्रसे स्नान तिसकीविधि आगे कहतेहैं २७६ सर्वौषधी जिनके नामनीचे अधिकोक्ति में कहेहैं और सर्वगन्धभी जिनकेनाम अधिकोक्तिमें कहेहैं सब मिलाकर शिरमें लेपकियेहुये

और भद्रासन पर बैठेहुयेके प्रति पहले शुभ ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचनहो-ब्राह्मण शुभशब्दके विशेषणसे श्रुताध्ययन आचारादि संपन्नहों और अग्रोक्त चार कलशोंके उपलक्षणसे संख्यामेंभी ब्राह्मण चारहों पर गुरु यद्वा आचार्य इनसे पांचवांहो और (स्वस्तिवाच्याः)इसबिशेषणसे(स्वस्तिभवंतोब्रुवंतु-इतिवाच्याः) अर्थात् उससमयब्राह्मणोंसे कर्त्तापुरुष कहै कि आप स्वस्तिवाचनबोलैं तब अभिषेचनकेसाथही गृह्यशास्त्र के मार्ग से पुण्याहवाचन कियाजावै-भद्रासनका स्वरूप अगले श्लोकों से जाना जायगा २७७॥

अधि०सहद्वयोः—(कुष्टंमांसीहरिद्रेद्वेमुराशैलेयचन्दनम्।वचाकचोरकंमुस्तासर्वौषध्यः प्रकीर्त्तिताः)-अर्थात्-कूट-जटामांसी-दोनोंहरिद्रा किंतु हरिद्रा १ दारुहरिद्रा २ मुरामांसी शैलेय-अर्थात् बालछड़ा या छारछबीला जिसे कहतेहैं-चन्दनसुपेद-बच-कर्चूर-मुस्ता दोनोंप्रकारके यहां मुस्ता नागरमोथा को कहते हैं-इनकानाम सर्वौषधी कहाहै परन्तु इनके सिवाय औरभी प्रियंगु नागकेसर आदिजो प्रसिद्ध हैं वेभी इनमें संयोज्यहैं—ऐसेही सर्वगंधोंमें भी चन्दन अगुरु कस्तूरी आदिबस्तु प्रसिद्धहैं सो सबलेनीचाहिये इनसबको मिलाकर लेपकरै उसकेशिरमें तब पीछे स्नानको बैठारै २७६।२७७॥

अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्संगमाद्ध्रदात्। मृत्तिकांरोचनांगंधानगुग्गुलुंचाप्सुनिक्षिपेत्२७८॥
याआहृताह्येकवर्णैश्चतुर्भिःकलशैर्ह्रदात्। चर्मण्यानडुहेरक्तेस्थाप्यंभद्रासनंततः २७९॥

ऐ०सहद्वयोः—अब स्नानकेजलकीबिधिकहते हैं कि-घोड़ाके स्थानकी मृत्तिका-हाथीके स्थानकी-सर्पकी बांबीमेंकी मृत्तिका-(संगमात्)अर्थात् दोआदि नदियोंके मिलापस्थानसे-(ह्रदात्)अर्थात् जिसतालावकाजल कभी सूखतानहींहो तिसकी-यह पांचप्रकारकी मँगाईहुई मृत्तिका और रोचनाकहिये गोरोचन-और गन्धकहिये सुपेद चन्दन अच्छी सुगन्धिवाला और कुंकुम अगुरु आदि जो प्रसिद्धहैं तिनको और गुग्गुलकोभी यह सवचीजें कूटकर उन जलों में छोड़ै २७८ किनमें-कि-जौनसे जल इसी कार्यके नामसे मँगायेहुये एकवर्णवाले चारकलशों करके अशोष्यह्रदमेंसे उपस्थित कियेहों-अशोष्य (ह्रद)अर्थात् जिसतड़ागका जलकभी सूखतानहो अथवा ऐसातड़ागनहींमिलै तोनदी संगमसेभी मँगवाना उचितहै और चारोंकलश अर्थात् कुम्भ एकवर्णके इसलियेकहे कि चाहैपीतवर्णहों चाहै रक्तवर्ण यद्वा श्वेतभी पर सभी एकरंगकेहों और कालेवर्णके नहोंऔरफूटेनहों छिद्रवाले न हों टेढ़ेमेढ़े कूबरे नहों स्वरूपमें अतिसुन्दरहों तिनमें ऊर्ध्वोक्तमृत्तिका और गंधादि वस्तुछोड़कर फिर तिसके अनन्तरलाल अनडुहके चर्म पर भद्रासन स्थाप्य है अर्थात् आंडू वृषभका लाल चमड़ा संपूर्ण अखंड जिसकी उत्तरको पूँछ और पूर्वको ग्रीवाकरके बिछाया तिसपर भद्रासन अर्थात् भद्रकहिये अतिसुन्दर मनोरम आसन जो श्रीपर्णीसे निर्मित किया हुआ और श्वेतवस्त्र से

प्रच्छादित कियाहो सो स्थापित करै तथापि भद्रासन संज्ञा इसकी यथार्थ उस दशामें होगी कि जब लिपेहुये शुद्धस्थानमें पँचरंगा आदि से रचेहुये स्थंडिलवेदी पर स्वस्तिबाचन पूर्वक उक्तचर्मसमेत स्थापितकरै और वेदीके चारों दिशामें पूर्वोक्त जलके चारोंकलश आम्रादि पंच पल्लवोंसे शोभित किये हुये अनेक भांतिके पुष्प माला गन्धादिसे चर्चित कियेहुये अतिउत्तम नवीनबस्त्रोंसे बिभूषित कियेहुये स्थापितकरै इसभांति सारीरचना होचुकनेपर उसकीसंज्ञा भद्रासन होतीहै तिसभद्रासन पर वेदीके बीचमें उसमनुष्यको बैठारकर तब उससमय(स्वस्तिवाच्याः-द्विजाः)यह संबंध पूर्वोक्त २७७ के पिछले पदसे लियागया-अर्थात् इस बिधिसे बैठारे हुयेका स्वस्तिवाचनहोवै जैसा अगले तीनश्लोकों में कहते हैं २७९॥

सहस्राक्षंशतधारमृषिभिःपावनंकृतम्। तेनत्वामभिषिंचामिपावमान्यःपुनन्तुते २८०॥
भगंतेवरुणोराजाभगंसूर्योबृहस्पतिः। भगमिंद्रश्चवायुश्चभगंसप्तर्षयोददुः २८१॥
यत्तेकेशेषुदौर्भाग्यंसीमंतेयच्चमूर्द्धनि। ललाटेकर्णयोरक्ष्णोरापस्तद्घ्नंतुसर्वदा २८२॥

ऐ० त्रयाणांसह—(सहस्राक्षं) यहजलका विशेषणहै अर्थात् अनेक शक्तिसम्पन्नजल-शतधारं अर्थात् बहु प्रबाहवाला (ऋषिभिः)अर्थात् मन्वादि ऋषियोंकरके यद्वा वेदोंकरके(पावनंकृतं)अर्थात् पवित्र कियागया पूर्वकालमें अथवा इसीसमय घटोंमें रक्खा हुआ बेदमंत्रोंसे ब्राह्मणोंने पवित्रकिया यह दूसरा अर्थहै परन्तु पहलाअर्थ मुख्यहै (तेन)कहिये तिसीजल से(त्वां)अर्थात् तुम्हें बिनायकसे पकड़ेहुयेको उपसर्ग शांतिके लिये(अभिषिंचामि)अभिषेचन करूँहूं (पावमान्यः-पुनंतुते) ये पावमान्यजल तुम्हें पवित्र करैं-यह पहलामंत्रहुआ २८० अब दूसरा कहते हैं कि-(भगं) अर्थात् कल्याण यद्वा ऐश्वर्य(ते) तुम्हें बरुण राजादेवै-(फेर)भग नाम कल्याण तुम्हें सूर्य देवै-फेर(भग) नाम ऐश्वर्य तुम्हें बृहस्पति देवै-फेर (भग) नाम सौख्य तुम्हें इन्द्रभीदेवै-वायुभी देवै-और (भग)तुम्हेंसप्तऋषिभी देवैं २८१ अब तीसरामंत्र कहते हैं कि जो तुम्हारे बालोंमें या सीमंत में या मूड़में या ललाटमें या कानोंमें या आंखोंमें (दौर्भाग्य) कहिये अकल्याण बर्त्तमानहो तिसको ये पवित्रकियेहुये जल सर्वदा नाशकरैं २८२॥

प्रधि० त्रयाणांसह—इनमंत्रोंसे पहलेजो स्वस्तिवाचन बतलायाथा तिसके कियेपीछे अभिषेक करनेका यह प्रकारहै कि सौभाग्यवती स्त्रियां जिनकेपति और पुत्र दोनों विद्यमानहों पुनि वेस्त्रियांभी रूपवती गुणवती शीलवती पतिव्रता इन लक्षणोंवाली हों जो इस मंगलकार्यके बुलावेमें घरकी या बाहरकी उपस्थितहों दिव्य बस्त्राभरणों से सुवेषवालीहों ऐसी स्त्रियोंके हाथसे वे पूर्वोक्त घट संस्कार मंगल कियेहों उनमें पूर्वदिशामें स्थापित कियाहुआ कुंभ गुरु अथवा आचार्य अपने हाथसे उठावै तब उठाते हुये वेही स्त्रियां गान वाद्य आदि मंगल उच्चारणकरैं इसप्रकार उसघटके जल

से स्नान गुरु करवावै इन तीनमेंसे पहले मंत्रको पढ़तेहुये-पुनि इसी विधिसे दक्षिण दिशाका कलश लेकर दूसरे मंत्रसे अभिषेक करै-पुनि इसी विधिसे पश्चिमादिशाका कलश लेकर तीसरे मंत्रसे अभिषेककरै-पुनि इसी विधिसे उत्तर दिशाका चौथा कुंभ लेकर इन तीनों मंत्रसे स्नान करावै २८०। २८१। २८२॥

स्नातस्यसार्षपंतैलंस्रुवेणौदुंबरेणतु। जुहुयान्मूर्द्धनिकुशान्सव्येनपरिगृह्यतु २८३॥

मक्ष०—स्नान किये हुयेके मूड़पर कुशाओंको सव्य हाथसे थांभकर गूलरके स्रुवा करके सरसों पीलीके तैलको (जुहुयात)-अर्थात् अग्रोक्त मंत्रोंको पढ़कर आचार्य अपने दाहने हाथसे तेल छोड़े क्योंकि बायें हाथसे कुशा थांभे है २८३॥

मितश्चसंमितश्चैवतथाशालकटंकटौ। कूष्मांडोराजपुत्रश्चेत्यंतेस्वाहासमन्वितैः २८४॥
नामभिर्बलिमंत्रैश्चनमस्कारसमान्वितैः। दद्याच्चतुष्पथेशूर्पेकुशानास्तीर्य्यसर्वतः २८५॥

ऐ०सहद्वयोः—मित१ सम्मित२शाल३कटंकट४कूष्मांड५राजपुत्र६ यह छः नाम विनायकके कहे इनके ॐकार आदि में और स्वाहा अन्तमें जोड़ेहुये इन्हीं छः मंत्रोंसे उर्ध्वोक्त सार्षपतैल होमै-सो इसप्रकारसे जानौ-ॐमितायस्वाहा१ॐसंमितायस्वाहा२ ॐशालायस्वाहा३ ॐकटंकटायस्वाहा४ ॐकूष्मांडायस्वाहा५ ॐराजपुत्रायस्वाहा६ इस पीछे लौकिक अग्निमें स्थालीपाक विधिसे पकायेहुये (चरु) को अग्रोक्त इन्हीं छः मंत्रोंसे उसी अग्निमें होमिकर (उसमेंसे) बचीहुई खीरिका बलिदान बलिके मंत्रों से अर्थात् चतुर्थ्यंत दशादिग्पाल नामोंके नमस्कार अन्तमें जोड़ेहुये बलिदान के मंत्रों से-इन्द्र१ अग्नि२ यम३ निऋति४ बरुण५ बायु६ कुबेर७ ईशान८ ब्रह्मा९ अनन्त१० इनको उसी कर्मशालाके भीतर दशोंदिशामें यथाक्रमसे दद्यात् यह दो सौ पचासीके उत्तरार्द्ध प्रारम्भ तक सम्बन्ध रहा-पुनि इस्से आगे निचले श्लोकोंमें कहीहुई सामग्रीका उपहार लेकर (शूर्पे-सर्वतः कुशान्-आस्तीर्य-चतुष्पथे) (निदध्यात्) इत्यधिकायोजना-अर्थात् सूपमें सब ओर कुशा बिछाकर उसमें नीचे कहीहुई सामग्री का उपहार रखकर चौराहे में रख देवै-किन्तु वहां जाकर उसके रखने का प्रकारभी नीचेके श्लोकोंसे प्रकट होगा (और) यह भी प्रकट होगा कि वह उपहार वस्तु पहले विनायक और अम्बिका उसकी जननीको भी अर्पण किये पीछे उसका शेष सूपमें रक्खाजावै सो अब कहते हैं २८४। २८५॥

कृताकृतांस्तन्दुलांश्चपललौदनमेवच। मत्स्यान्पक्कांस्तथैवामान्मांसमेतावदेवतु २८६॥
पुष्पंचित्रंसुगंधंचसुरांचत्रिविधामपि। मूलकंपूरिकापूपंतथैवोंडेरकस्रजः२८७॥
दध्यन्नंपायसंचैवगुडपिष्टंसमोदकं। एतान्सर्वान्समाहृत्यभूमौकृत्वाततःशिरः २८८॥
विनायकस्यजननीमुपतिष्ठेत्ततोम्बिकाम्। दूर्वासर्षपपुष्पाणांदत्वार्घ्यंपूर्णमञ्जलिम् २८९॥

ऐ०चतुर्णांसह—यहां पर सबसे पहले २८८ और २८९ के श्लोक पर दृष्टि करो कि

इन्हीं श्लोकोंमें अढ़ाई श्लोकसे सब सामग्रीका उपहार बिनायक और उसकी जननी अम्बिकाके आगे रखकर और भूमिमें शिर झुकाकर दोनोंके समीप स्थित होवै इस कर्मको (उपस्थान) कहते हैं उपस्थानकी बिधिका मंत्र भी २९० श्लोकमें कहेंगे परंतु उपस्थान पीछे करै किन्तु पहले उपहार देकर तिसके अनन्तर दूर्वा सरसों पीली और पुष्प सुगंधिमान् और चन्दन इनसे भरीहुई जल सहित अंजलीका अर्घ्य दोनोंको देकर तब पीछे उपस्थान करै पुनि उपहारसे बचीहुई सामग्रीको पूर्वोक्त बिधिसे सूपमें लेजाकर चौराहे में धरै यह सम्बन्ध २८५ से चलाआता है-अब ऊपरके अढ़ाई श्लोकोंकी सामग्री समझो-(कृताकृतांस्तंदुलान्) अर्थात् कुछेक उसिजेहुये अधकच्चे चावर १ (पललौदनं) अर्थात् पलल कहिये तिलकुटा तिसमें मिलाया हुआ ओदन कहिये भात २ (मत्स्य) मछरी पक्की कच्ची दोनों भांतिकी ३ (मांसमेतावदेवतु) अर्थात मांसभी कच्चापक्का दोनों तरहका ४ (पुष्पंचित्रं) अर्थात् पीले काले लाल सुपेद आदि सब तरहके फूल ५ (सुगंधंच) चन्दनआदि नानाभांतिकी सुगन्धबस्तु ६ (सुरांचत्रिविधामपि) तीनों भांतिकी मदिरा किन्तु एक तौ (गौडी) जो गुड़से बनती है दूसरी माध्वी जो सहत आदिसे बनती है तीसरी (पैष्टी) जो पिष्टादि वस्तुसे बनती है ७ (मूलकं) मूली मूरी इतिच भाषा विख्याता ८ (पूरिका) पूरी इति प्रसिद्धा ९ (अपूपः) अर्थात् गोधूम चूर्णका कसार और पुआ भी १० (उंडेरकस्रजः) अर्थात् चूनकी कच्ची और घृतपक्क गोलियोंकी प्रोहीहुई मालावत् सूधी लड़ी ११ (दध्यन्नं) अर्थात् दही मिलाहुआ उड़द का चूर्ण भूनाहुआ यद्वा कच्चा भी १२ (पायसं) दूधकी खीरि १३ (गुडपिष्टं) गुड़ मिला हुआ धान आदिका चूर्ण १४ (मोदक) लडुआ लड्डू कई प्रकारके १५ यह सारी वस्तु उपहार मध्ये कहीगई २८६।२८७।२८८।२८९॥

अधि०चतुर्णांसह—यहकहीहुई सामग्रीकाउपहार भिन्नभिन्नविनायकके आगे और उनकी जननीकेभी आगेरखकर और पृथ्वीमेंशिर झुकाकर भिन्न२उपहारसंबंधी मंत्रउच्चारणाकरै-यथा-(तत्पुरुषायविग्रहेवक्रतुण्डायधीमहितन्नोदन्तीप्रचोदयात्)-यह गणपतिकेआगे-और-(सुभगायैविग्रहेकाममालिन्यैधीमहितन्नोगौरीप्रचोदयात्)-यह जननीकेउपहारमध्येमंत्र है-इन मंत्रों को शिरझुकाते समय उच्चारण करिकै नमस्कार करै तिसपीछे पूर्वोक्तरीतिसे अंजली देवै तिसपीछे अग्रोक्त २९० के मूलश्लोकी मंत्र में उपस्थान करै तिसपीछे उपहार शेषबस्तु सूपमें पूर्वोक्तविधिसे लेजाकर चौराहे में धरै तहांपर इनमंत्रोंको शिरझुकातेहुये बोलै-यथा-(बलिंगृह्णंत्विमेदेवाआदित्यावसवस्तथा १ मरुतश्चाश्विनौरुद्राःसुपर्णःपन्नगाग्रहाः २ असुरायातुधानाश्चपिशाचोरगमातरः ३ शाकिन्योयक्षवेतालायोगिन्यःपूतनाःशिवाः ४ जृंभकाःसिद्धगंधर्वामाया विद्याधरानराः ५ दिक्पालालोकपालाश्चयेचविघ्नविनायकाः ६ जगतांशांतिकर्त्तारो

ब्रह्माद्याश्चमहर्षयः ७ माविघ्नंमाचमेपापंमासंतुपरिपंथिनः ८ सौम्याभवंतुतृप्ताश्चभूतप्रेताःसुखावहाः ९-अवनीचे उपस्थान का मंत्रदेखो जिसकी चर्चा ऊपर कईबार आचुकीहै २८६। २८७। २८८। २८९॥

रूपंदेहियशोदेहिभगंभवतिदेहिमे। पुत्रान्देहिधनंदेहिसर्वकामांश्चदेहिमे २९०॥

मक्ष०-हेभवति अंविके मुझेरूपदेहि यशदेहि(भग)ऐश्वर्य और कल्याणदे अनेक पुत्रदे धनदेहि और मुझे सर्व अपेक्षित कामोंके फल देहि २९०॥

अभि०-यद्यपि मूलश्लोकी मंत्र और उसका अक्षरार्थ जो ऊपर लिखागया सो केवल एकपक्षमें कहा अर्थात् भगवती अंबिका के उपस्थान पर घटता है परन्तु अभिप्राय इसका दोनोंके उपस्थान पर निश्चितहै क्योंकि मुख्यभावसे गणपतिका यहविधानहै इसलिये गणपति के सन्मुख उपस्थानकी प्रार्थनामें इसप्रकारसे उच्चारण करना चाहिये-यथा-(रूपंदेहियशोदेहिभगंभगवन्देहिमे। पुत्रान्देहिधनंदेहिसर्वकामांश्चदेहिमे २९० अर्थइसका जो अक्षरार्थमें ऊपर लिखागया वहीठीकहै पर इसमें संबोधन (हे भगवन् गणपते) इसप्रकारसे हुआ २९०॥

ततःशुक्लाम्बरधरःशुक्लमाल्यानुलेपनः। ब्राह्मणान्भोजयेद्दद्याद्वस्त्रयुग्मंगुरोरपि २९१॥

ऐ०- तिसपीछे वह अभिषेकवान् यजमान शुक्लाम्बर धारण कियेहुये और शुक्ल माल्य अनुलेपन आभूषण आदिसे संयुक्तहुआ ब्राह्मणोंको भोजनकरवावे और यथा शक्ति संभवके अनुसार बिनायक के निमित्तकी दक्षिणा देवे और गुरुको यथाशक्ति दक्षिणाके सिवाय उत्तम दो वस्त्रभी देवे-यहांपर गुरुशब्दसे कुछमंत्र वा विद्यादाता वा कुलगुरु आदि गुरुओंसे अपेक्षानहींहै किंतु जो श्रुताध्ययन वृत्तआदिसे संपन्न हो और विनायक स्नपन विधिका जाननेवाला निश्चित करिकै इस कार्यमात्रमें गुरु हुआहो-और (अपि)शब्दकी लक्षणासे अपनेपूर्वोक्त गुरुओंकोभी पूज्यताकी रीतिसे जो बनिआवे सो देवे और इसी (अपि)शब्दकी लक्षणासे कर्मकर्तृत्वका परिश्रम उन ब्राह्मणोंको जुदादेवे उसमें कुछ गणपति का उद्देश अपेक्षित नहीं है २९१॥

आधि०-इस अधिकोक्तिमें प्रकृत वर्णन मात्रका संक्षेप अनुक्रम कथन करतेहैं इसलिये कि कोईवात प्रकृत वर्णनमें व्यतिक्रम से आगेपीछेभी कहीगईहो तो अग्रोक्त अनुक्रमकेअनुसार यथोचित समुझलीजावे-(अथ प्रयोगक्रमः)-प्रथम चारोंब्राह्मणों सहित उक्तलक्षण वाला गुरुमंत्रों पूर्वक भद्रासन की रचनाकरै-फिर उसभद्रासन के समीप विनायक और अंविका उसकी जननीको कहेहुये दोनोंके मंत्रोंसे गंध पुष्पादि से पूजिकर-फिर चरुपकावै-फिर भद्रासन पर वैठेहुये यजमान प्रति पुण्याह वाचन करै-फिर चारोंकलशोंसे उक्त विधिपूर्वक अभिषेक करै-फिर सरसोंका तैल शिरपर होमै-फिर चरुसे अग्निमें होमकरै-फिर अभिषेकशालामें दशदिक्पालोंको इससेकही

हुई बिधिसे वा पंचलोकपालोंकोभी अन्यग्रंथोक्त बिधिसे वलिदान करै-और यजमानभी स्नानके अनन्तर शुक्लबस्त्र शुक्लमाल्यादि धारण कियेहुये गुरुके साथहोकर विनायक और अंविका को उपहारदेकर भूमिमें शिरसे झुकै पुनि पुष्पोदकसे अर्घ्य देवै फिर दूर्बा सरसों और फूलोंसे अंजलिभरिकै चढ़ावै-फिर विनायक और अंविका के सन्मुख उपस्थानकरै-तिसपीछे उपहार शेषबस्तुओंको सूपमें गुरुलेजाकर चौराहेमें रक्खे और शिरझुकाकर पृथ्वी में प्रणाम पूर्वक अर्पणकरै पूर्वोक्त बिधि से-फिर वहांसे गुरुके लौटिआनेपर ब्राह्मण भोजन-फिर पहले गुरुको दक्षिणा और दोवस्त्र फिर अन्यब्राह्मणों को दक्षिणादान-इस्सेआगे अपने कुलका आचार जोकुछ उचित हो किंतु अपने निजगुरु कुलगुरु आदिका सत्कार वा मान्यता-इसक्रम के अनुकूल एकप्रयोग पद्धति विद्वानोंको उचित है कि जो प्राचीन पद्धति नहीं हाथ आवै तो अपनी बुद्धि और बिद्याबलसे सम्पादन करलेवैं जिस्से औरोंका और उनका भी कल्याणहो परन्तु यह स्मृतरहे कि इसबिधिमें कोई प्रकारका अनुकल्प श्रेयस्कर नहींहै किंतु इसकी यथोक्त बिधि तद्रूप फलसाधक निश्चित है जो किसीसे बनिपरै इसमें केवल एक दिनका प्रयोग है और जिस्से हरसाल होसकै तौ अधिक अहोभाग्य हैं २९१॥

इति विनायक स्नपनविधिः॥

अथ ग्रहशांतिकरणापेक्षा कथनम्॥

एवंविनायकंपूज्यग्रहांश्चैवविधानतः। कर्मणांफलमाप्नोतिश्रियंचाप्नोत्यनुत्तमाम् २९२॥

अक्ष०—इस विधान से बिनायक को पूजि कर ग्रहोंकोभी पूजिकर कर्मोंका फल पावताहै और अनुत्तमा लक्ष्मी कोभी पाताहै २९२॥

अभि०—विनायक के कहेहुये विधानके उपसंहारसे संयोगांतर दिखलानेके लियं यह श्लोक कहाहै-अर्थात्-पूर्वकहेहुये विधानसे विनायकको सम्यक् पूजिकर प्रारंभित कर्मोंकाफल निर्विघ्न पावताहै यह तौ पूर्वबर्णन कियेहुयेका उपसंहारहै (अबइसी से संयोगांतर कहते हैं कि) केवल कर्मोंकाही फल नहीं किन्तु उत्तम लक्ष्मी भी पावता है जो हरसाल इसी प्रकार एक दिन कियाकरै-अर्थात् केवल कर्म विघ्नोंकी शांति चाहै उसको तौ एकही दिवसके प्रयोगसे कर्म सिद्धि मिलती है परन्तु जो लक्ष्मी मिलने की कामना रक्खे वह प्रतिवर्ष नियमसे किया करै (इसी प्रकार) सूर्यादि पीड़ा की शांति अथवा लक्ष्मी की कामना करने वालेके लिये ग्रहपूजादि प्रारम्भ करतेहुये ग्रहपूजाकाभी उपक्षेप इसीश्लोकसेकरतेहैं किन्तु (अ... सूर्य आदि ग्रहोंकोभी अग्रोक्त विधिसे सम्यक् पूजिकर कर्मोंकी निर्विघ्न ... है तथैव प्रतिवर्ष एकबार नियमसे करनेवाला अनुत्तमा लक्ष्मीभी पावताहै २९२

यहांपर वक्ष्यमाण नवग्रहशांति से पहले नित्य काम्य संयोगों को कहते हैं दोसौतिरानबे के श्लोक द्वारा॥

अथ महागणपत्यादिकल्पफल कथनम्॥

आदित्यस्यसदापूजांतिलकंस्वामिनस्तथा। महागणपतेश्चैवकुर्वन्सिद्धिमवाप्नुयात् २९३॥

अक्ष०—सदा आदित्य की पूजा वा तिलकभी तथा स्वामिकार्त्तिक और महागणपतिकीभी करताहुआ सिद्धिको पावै २९३॥

अभि०—सूर्यरूपी आदित्य भगवान् की पूजा सदा कहिये प्रतिदिवस रक्त चन्दन कुंकुम कुसुमादि वस्तुसे तथैव(स्वामिनः)स्वामिकार्त्तिक और महागणपतिकीभी पूजा यथा योग्यवस्तुओं से नित्यंप्रति करताहुआ सिद्धि आत्मज्ञानादि और नित्यसंबंधी कामोंकीभी सिद्धिपावै है-यद्वा-पूजाकी असंभवता में आदित्य १ स्वामिकार्त्तिक २ महागणपति ३ इनतीनोंके (या) इनमेंसे किसी एक दोके (तिलक) अर्थात् सोना चांदी आदिसे बनाईहुई तदाकार तिलक मुद्रासे तिलक छापामात्र भी करताहुआ पूर्वोक्त अभिलषित सिद्धिपावै है-यह नित्यकाम्य संयोग है २९३॥

इतिमहागणपत्यादिकल्पः॥

अब यहांसे आगे २९२में दर्शाईहुई ग्रहपूजाका प्रकार वर्णन करतेहैं॥

अथनवग्रहशांति विधानफलकथन प्रकरणम्॥

श्रीकामःशांतिकामोवाग्रहयज्ञंसमाचरेत्। वृष्ट्यायुःपुष्टिकामोवातथैवाभिचरन्नपि २९४॥
सूर्यःसोमोमहीपुत्रःसोमपुत्रोबृहस्पतिः। शुक्रःशनैश्चरोराहुःकेतुश्चेतिग्रहाःस्मृताः २९५॥
ताम्रकात्स्फटिकाद्रक्तचन्दनात्स्वर्णकादुभौ।राजतादयसःसीसात्कांस्यात्कार्याग्रहाःक्रमात्२९६॥
स्ववर्णैर्वापटेलेख्यागंधैर्मंडलकेपुवा। यथावर्णप्रदेयानिवासांसिकुसुमानिच २९७॥
गंधाश्चवलयश्चैवधूपोदेयश्चगुग्गुलुः। कर्त्तव्यामंत्रवंतश्चचरवःप्रतिदैवतम् २९८॥

ऐ० सर्वेषांपंचानांसह—(श्रीकामः) लक्ष्मी आदि धन संपत्ति की कामनावाला-यद्वा-(शांतिकामः)अर्थात् ग्रहपीड़ा आदिकी शांति चाहैसोभी (ग्रहयज्ञ)कहिये नवग्रह शांति होमादि विधिसे सम्यक् आचरै-यद्वा-(वृष्टि) बर्षा अनावृष्टिसमय पर-(आयु)किंतु अपमृत्यु को जीतिकर दीर्घ कालजीवन-(पुष्टि) कहिये शरीर सौख्य निरोगता से-इन बातोंका चाहनेवाला भी ग्रहयज्ञकरै-तथैव-(अभिचरन्नपि)अर्थात् अदृष्टोपायपूर्वकनिज निष्कारण शत्रुको पीड़ादान की वांछा करता हुआ भी ग्रहयज्ञ करै-२९४-इस ग्रहयज्ञमें ये नवग्रह देवता प्रधान हैं-सूर्य-सोम-महीपुत्र-सोमपुत्र-बृहस्पति-शुक्र-शनैश्चर-राहु-केतु-२९५-इनकहेहुये नवग्रहोंकी प्रतिमा यथाक्रमसे इनवस्तुओंसे करै-अर्थात् सूर्यकी तांवेसे-चन्द्रकी स्फटिकसे-भौमकी रक्तचन्दनसेबुधकीसुवर्णसे-बृहस्पतिकीभी सुवर्णसे-शुक्रकी चांदीसे-शनैश्चरकी लोहेसे-राहुकी सीसेकरके-केतुओंकीकांस्य

करके-२९६-अथवा यह नहोसके तो इसका अनुकल्प कहतेहैं कि पट्टेपर अपने २ बर्णोंसे जैसा जिसका वर्णहै उसीबर्णकी बस्तु रक्तचन्दन आदि गंधोंसे लिखलेवै-या पट्टेपरभी नहीं तो(मंडलकेषु)वा अर्थात् पृथ्वीपर बनायेहुये मंडलों किंतु कोष्ठोंमें तंदुल आदिसे तदाकार बनाकर उनमें अपने २ बर्णभर देवै यह तो स्थापन विधिकही-तथैव पूजाबिधिमेंभी-बस्त्र और पुष्पभी(यथावर्ण)अर्थात् जैसा जिसकावर्णहो तिसको उसीप्रकारके देनेचाहिये-२९७ गन्धभी उसीप्रकारके वलिदानभी उसीप्रकारके और धूप सभीको गुगुलकी देनी चाहिये-प्रतिदैवत कहिये भिन्न २ अपने २ मंत्रोंसे चरु भी अर्पण कर्त्तव्य हैं २९८॥

अधि०सर्वेषांसह —यद्यपि इस बिधानमें नवग्रहों की प्रतिमा सामान्यभावसे कहीहै किन्तु कोई प्रकारका आकार विशेष नहीं कहा औरभी यद्यपि आकार विशेष के लक्षण कईप्रकारसे जहांतहां अन्य शास्त्रोंमें या ज्योतिषमें या हवनकी पद्धतिमें जोर पायेजातेहैं तिनमें परस्परकुछ अन्तर देखपरताहै तथापि(यादृशीभावनायत्रसिद्धिर्भवतितादृशी)इत्यादि प्रमाणोंसे और विशेषकर इस बिधानमें कामना विषय होनेसे भी-मत्स्य पुराणका कहाहुआ प्रकार इसमेंसंभवहै-तद्यथा-(पद्मासनःपद्मकरःपद्मगर्भसमद्युतिः। सप्ताश्वरथसंस्थश्चद्विभुजःस्यात्सदारविः१)अर्थात्-सूर्यकी प्रतिमासदा-ही द्विभुजी करनी चाहिये(और)ऐसा ध्यान यद्वा संभवहो तो प्रतिमाभी ऐसी करनी चाहिये कि सातघोड़ोंके रथपर पद्माकार बनेहुये आसन किंतु सिंहासन पर बैठेहुये और पद्म जिनके हाथमें और पद्मकीसी आभावाली किरणोंसे संयुक्त और पद्मराग मणिके गर्भस्थ झलझलाहट चमचमाहटके समानहै द्युतिकांति शोभा जिनकी यद्वा पद्मगर्भ कहिये कमलके किंजल्कवत् आभा जिनकी १-अथ चन्द्रस्य-(श्वेतःश्वेतांबरधरोदशाश्वःश्वेतभूषणः। गदापाणिर्द्विबाहुश्चकर्त्तव्योवरदःशशी१)अर्थात्-शशीनाम चंद्रमा जब कदाचित् वरका देनेवाला कर्त्तव्य हो किंतु काम्यबिधिमें उसकी प्रतिमा करनी हो तब दोभुजी कर्त्तब्य है गदा जिसके हाथमें श्वेत जिसका बर्णहो श्वेतबस्त्र धारीहो दशघोड़ोंकेरथपर और श्वेतही आभूषण जिसका ऐसाध्यान या ऐसीप्रतिमा करै २-अथ भौमस्य-(रक्तमाल्यांबरधरःशक्तिशूलगदाधरः। चतुर्भुजोमेषगमोवरदःस्याद्धरासुतः ३)-अर्थात्-धरासुत मंगल जब ऐसाहो तब वरका देनेवाला हो किंतु रक्तमाल्य रक्तअम्बर धारणकिये और इसीसंकेतसे रक्तवर्ण देहभी शक्ति बरछी शूल माला यह धारणकिये चारभुजावाला-मेषमेंढ़ापर चलनेवाला ३-अथ बुधस्य-(पीतमाल्यांबरधरःकर्णिकारसमद्युतिः। खड्गचर्मगदापाणिःसिंहस्थोवरदोबुधः४)-अर्थात् पीतमाल्य पीतअम्बरधारणकिये और (कर्णिकार) के पुष्पोंकीसी कांतिवालावर्ण जिसका खड्ग और ढालकोबांधेहुये गदा हाथमेंलियेहुये सिंहपरसवार ऐसेआकारवाला बुध

वरदायकहोताहै-बुधकीभुजाओंका चर्चा नहींकिया इस्सेद्विभुजमूर्त्ति समुझीजाती है (तथापि)अग्रोक्त श्लोकमें बृहस्पति और शुक्रकेसाथ इसकासादृश्यपदकरनेसे चतुर्भुज निश्चितहुआ-कर्णिकार नाम एकवृक्ष जिसे छोटाधनबहेड़ा या कणिआर या कनियारी-किरियारीभी कहतेहैं जिसकीफलीमेंसे अमिलतास औषध निकलती है उसके पुष्प अतिपीतसुनहरे और बिना गूँथेहुयेभी दूरसेमालाकीसीलड़ीप्रतीत होतीहैं इसीलिये संस्कृतमें कृतमालभी कहते हैं यद्यपि अमिलतास इस्से बड़ा और फलीभी उसकी बड़ी होती है पर यहभी उसकी जातमें छोटा कहलाता है ४-अथबृहस्पतेः-शुक्रस्य च-द्वयोःसह (देवदैत्यगुरूतद्वत्पीतश्वेतौचतुर्भुजौ। दंडिनौवरदौकार्यौसाक्षसूत्रकमंडलू ५।६)अर्थात्-देवगुरु-बृहस्पति और दैत्यगुरु शुक्र यहदोनों चतुर्भुजकहिये चारभुजा वाले तद्वत कहिये बुधके समान पीतवर्ण पीतमाल्य पीताम्बरधारी बृहस्पति (और) श्वेतवर्ण श्वेतमाल्य श्वेतअम्बरधारी शुक्र और दंडधारी दोनों और (अक्षसूत्र) नाम जप मालाको लियेहुये दोनों और कमंडलुको लियेहुये दोनों बरके देनेवाले कर्तव्य हैं-(तद्वत) यह बुधका सादृश्य पद करने से इन दोनोंका भी सिंहबाहन और खड्ग चर्म गदा यह शस्त्रप्रतीत हुये ५। ६-अथ शनैश्चरस्य-(इन्द्रनीलद्युतिःशूलीवरदोगृध्रवाहनः। बाणबाणाशनधरःकर्तव्योऽर्कसुतःसदा ७)अर्थात्-अर्कसुतशनैश्चर सदा-ही इन्द्रनील नाममणिके समान कांतिवाला शूल धारण किये गृध्रपर सवार हुआ बाण और बाणाशन कहिये धनुष बांधेहुये बरका देनेवाला कर्तव्यहै-इसकी भुजाओं का चर्चा नहीं किया इस्से दोही समझलेनी ७-अथराहोः-(करालवदनःखड्गचर्म शूलीवरप्रदः। नीलःसिंहासनस्थश्चराहुरत्रप्रशस्यते ८)-अर्थात्-(अत्रच) कहिये इस काम्य विधिमें भी राहु करालवदन नीलवर्ण और खड्ग ढाल शूल बांधेहुये सिंहासन किन्तु सिंहवाहन पर बैठा हुआ ऐसे आकारवाला बरप्रद श्रेष्ठ कहलाता है-इसकी भी दो भुजा समझनी ८-अथकेतूनां-(धूम्राद्विबाहवःसर्वेगदिनोविकृताननाः। गृध्रासनगतानित्यंकेतवःस्युर्वरप्रदाः ९)-अर्थात्-केतुके जितने आकार बनावें वह सभी गदाधारीहों दो २ भुजा वालेहों विकृतानन किंतु भयानक मुखवालेहों गृध्रकी सवारी पर बैठेहों नित्यं कहिये सदाही ऐसे आकारवाले केतु बरप्रद होवें-केतुका बहुवचन केवल इस हेतुसे कहाहै कि यह नानारूप धारी होताहै इसलिये इसका ध्यान और आवाहन मात्र तो बहुतों के उद्देश और उच्चारणसे करलेना परंतु प्रतिमा केवल एक हो ९-अथ सर्वेषांप्रकृतनवग्रहाणांपरिमाणविशेषमाह-तद्यथा-(सर्वेकिरीटिनःकार्या ग्रहालोकहितावहाः। स्वांगुलेनोच्छ्रिताःसर्वेशतमष्टोत्तरंसदा)-अर्थात्-सभी नवग्रह लोक हितके देनेवाले किरीटी किन्तु मुकुटवाले करनेचाहिये (और) कर्त्ता अपनेअं-गुलसे एकसौ आठ अंगुल ऊँची मूर्त्ते सबकी करै तब लोक हितके देनेवालेहों-अथ

स्थापनदेशः-(मध्येतुभास्करंविद्याल्लोहितंदक्षिणेनतु। उत्तरेणगुरुंविद्याद्बुधंपूर्वोत्तरेण तु॥पूर्वेणभार्गवंविद्यात्सोमंदक्षिणपूर्वकोपश्चिमेनशनिंविद्याद्राहुंपश्चिमदक्षिणे॥पश्चि मोत्तरतःकेतुंस्थाप्यावैशुक्लतंडुलैः)-अर्थात्-सबकेमध्यमें सूर्यकोस्थापै-मंगलको दक्षिणदिशामें-वृहस्पतिकोउत्तरमें-बुधको ईशानकोणमें-शुक्रको पूर्वओर-चन्द्रमाकोअग्नि कोणमें-शनिको पश्चिमओर-राहुको निर्ऋतिकोणमें-केतुको वायव्यकोण में-यह सब सुपेद तंडुलोंसे स्थापनकरिकै पूर्वोक्त निज२बर्णभर देवै उसअवस्थामें कि जो पूर्वोक्त बिधिसे प्रतिमा न होसकैं २९४। २९५। २९६। २९७। २९८॥

अब नवग्रहोंके वेदोक्त मंत्रोंकी समस्या लिखते हैं॥

आकृष्णेनइमंदेवाअग्निर्मूर्धादिवःककुत्। उद्बुध्यस्वेतिचऋचोयथासंख्यंप्रकीर्त्तिताः २९९॥
वृहस्पतेरतिअदर्यस्तथैवान्नात्परिश्रुतः। शन्नोदेवीःकयानश्चिकेतुंकृण्वन्निमांस्तथा ३००॥

ऐ० सहृदयोः—सूर्यादि नवग्रहोंके क्रमसे यथासंख्य यह नवमंत्र वेद ऋचाओंसे कहे अर्थात्-(आकृष्णेनरजसावर्त्तमानो) इत्यादि पाठ वाली ऋचा सूर्यकी १ (इमंदेवा) इत्यादि पाठवाली ऋचा चन्द्रमाकी२ (अग्निर्मूर्धादिवःककुत्पत्ति) इत्यादि पाठवाली मंगलकी ३ (उद्बुध्यस्व) इत्यादि बुधकी ४। २९९ (वृहस्पतेःअति अदर्यो) इत्यादि वृहस्पतिकी ५ (अन्नात्परिश्रुतो) इत्यादि शुक्रकी ६ (शन्नोदेवीः) इत्यादि शनैश्चर की ७ (कयानश्चित्रा) इत्यादि राहुकी८ (केतुंकृण्वन्) इत्यादि केतुकी ९। ३००॥

अब आगे नवसमिधें बतलाते हैं॥

अर्कःपलाशःखदिरअपामार्गोथपिप्पलः। औदुम्बरःशमीदूर्वाकुशाश्चसमिधःक्रमात् ३०१॥
एकैकस्यत्वष्टशतमष्टाविंशतिरेवच। होतव्यामधुसर्पिभ्यांदध्नाक्षीरेणवायुताः ३०२॥

ऐ०सहृदयोः—(अर्क) अँकौआ१ (पलाश)ढाखा२ (खदिर)खैर३ (अपामार्ग) चिटचिटा४ (पिप्पल) पीपर५ (औदुम्बर) गूलरकी६ (शमी) छोंकर७ (दूर्वा) दूब८ (कुशा)९-यह नव वृक्षोंकी हरी लकड़ी साफ अखंडित छिलका समेत हाथके प्रादेशमात्रसे नपी हुई क्रमसे सूर्यादि ग्रहोंके हेतुसे एक एक वृक्षकी यथाक्रमसे करनी चाहिये ३०१ एक एक ग्रहके निमित्त उसकी यथोक्त समिध भिन्न२ पूरी आठसौ संख्यामें होनी चाहिये आठ २ सौ न होसकैं तौ अट्ठाईस २ करलेवै तिनको पूर्वोक्त मंत्रोंसे सहत और घृत लगाकर होमै अथवा सहत घी नहीं मिलै तौ दहीसेही यद्वा गाढ़े दुग्धमें लगाकर होमै पर इनमें भी शर्करा मिश्रित करलेवै ३०२॥

गुडौदनंपायसंचहविष्यंक्षीरषाष्टिकम्। दध्योदनंहविश्चूर्णंमांसंचित्रान्नमेवच ३०३॥
दद्याद्ग्रहक्रमादेवद्विजेभ्योभोजनंद्विजः। शक्तितोवायथालाभंसत्कृत्यविधिपूर्वकम् ३०४॥

ऐ०सहृदयोः—नवग्रहोंकी प्रीतिकेलिये उनके निमित्तके भिन्न२नवब्राह्मणोंकी भोजन बस्तु बतलाते हैं कि सूर्यसम्बंधी ब्राह्मणको (गुडौदन) अर्थात् गुड़में रांधाहुआ भात

भात१ चन्द्रमाको खीर२ भौमको (हविष्य) कहिये सामाकँगुनी आदि मुन्यन्न जिमावै ३ बुधके ब्राह्मणको (क्षीरषाष्टिक) अर्थात् दूधमें सट्ठी चावलोंका भात मिलाकर ४ बृहस्पतिको (दध्योदन) दहीभात५ शुक्रको हविः अर्थात् घृत और भात इति मिताक्षराकारः६ शनैश्चरको (चूर्ण) अर्थात् तिल चूर्ण मिश्रभात इतिमिताक्षराकारः ७ राहुके लिये मांस किन्तु मांस मिला भातपर जो भक्ष्य मांसोंमें गिनतीहो और जिस प्रकार का ब्राह्मण इस निमंत्रणको अंगीकार करै किन्तु राहुकी प्रीतिसे विधिक्रम अंगीकार है (यद्वा) इसका अनुकल्पहो ८ केतुके निमित्तसे (चित्रान्न) अर्थात् अनेकवर्णका भात यद्वा सतनजा-यहवस्तु मुख्यविधिमें कहीगई परन्तु अपनी शक्ति और संभवता के अनुकूल यह नहीं तौ और ही जो वस्तु होसक्ती या मिलसक्ती हो सोई विधिपूर्वक सत्कारसे उन ब्राह्मणोंको द्विजाती लोग देवैं ३०३।३०४॥

अधि०—योगीश्वरने मुख्यविधिके पश्चात् यथालाभ या यथासंभवता जो आदेश करी सो इसहिहेतुसे कि इन पदार्थोंमें मांसआदि विरलीवस्तु ऐसीहैं कि जिनको दाता और भोक्ताकेभी विवेकहै तौ नहीं करनी चाहिये ३०३। ३०४॥

अब दक्षिणा बतलाते हैं॥

धेनुःशंखस्तथानड्वान्हेमवासोहयःक्रमात्। कृष्णागौरायसंछागएतावैदक्षिणाःक्रमात् ३०५॥

ऐ०—सूर्यादि नवग्रहोंके निमित्तसे भिन्न २ यह दक्षिणा क्रमसे उन ब्राह्मणों को देवै-धेनु दूधवाली १ शंखबजना २ आंडूवृषभ ३ सुवर्ण कुछ भूषण बस्तु ४ वस्त्रपीत वर्णका ५ घोड़ासुपेद ६ कृष्णागऊ ७ लोहाशस्त्रादि ८ बकरा९।३०५॥

अब प्रकृत विधानमें कुछ विशेषता दुष्टग्रहकी अपेक्षासे कहते हैं॥

यश्चयस्ययदादुष्टःसतंयत्नेनपूजयेत्। ब्रह्मणैषांवरोदत्तःपूजिताःपूजयिष्यथ ३०६॥

ऐ०—प्रकृत विधानमें यहबात कहीथी कि शांतिकी कामना से सभीग्रह एकसाथ पूजनीय हैं-परन्तु-यहां यह विशेषता कहते हैं कि जो कोईसाग्रह जिसकिसीको जब कदाचित् दुष्टहो अर्थात् जन्मराशिसे छठे आठवें आदि यथोक्त दुष्टस्थानोंमें स्थित हो वह पुरुष उसीग्रहको विशेषकर यत्नपूर्वकपूजे क्योंकि ब्रह्माने इनग्रहोंको वरदिया है कि तुम मनुष्यों करके पूजेहुये उनमनुष्योंकोपूजो अर्थात् उनके इष्टकीप्राप्ति और अनिष्टका विनाशकरो-यहवार्त्ता यद्यपि सामान्य सबकेलिये कहीगई तथापि अभिषेकयुक्त राजाको विशेषकर इसबातका अधिकारहै सो नीचेकेश्लोकसे कहतेहैं ३०६॥

ग्रहाधीनानरेंद्राणामुच्छ्रायाःपतनानिच। भावाभावौचजगतस्तस्मात्पूज्यतमाग्रहाः ३०७॥

ऐ०—नरेंद्राणां अर्थात् अभिषेकादि गुणयुक्त राजाआदि क्षत्रियोंको नवग्रह पूज्यतम होतेहैं किंतु उनको विशेषकर ग्रहोंकीपूजा कर्त्तव्यहै पुनि जोबात राजाको कर्त्तव्य है तौ औरभी सब साधारणोंको कर्त्तव्यहै तिसकाहेतु कहते हैं कि जगत्का भावाभाव

अर्थात् जंगम और स्थावरमात्रकीभी उत्पत्ति और प्रलय यह जगत्कर्त्ता ने ग्रहोंके आधीनरक्खेहैं तथैव जीवोंकाउच्छ्राय कहिये उन्नति उँचाई वृद्धिआदि और पतनादि कहिये हीनता क्षीणता निपात आदि यहभी सबग्रहोंके आधीनरक्खेगये-तिसहेतुसे जो कोई उच्छ्राय और पतनके अधिकारीहों तिनकरके पूज्यहैं-क्योंकि जो इनकीपूजा सत्कार होतारहा तो उत्पत्तिभी अन्नादि यद्वा किसीवस्तुकी अपने नियत समय पर होवैगी और प्रलय निरोधभी अपने उचितकालमें होगा अन्यथा उनकी पूजाविना यह सारीबातें विपरीत जानो-राजा जगत्का ईश्वर होताहै उसको प्रजाकी उन्नति आदिसे अपेक्षा होतीहै इस्से जो राजा विशेषकर ग्रहोंको पूजैगा तो उसके पुण्य प्रभावसे सारीप्रजाके योगक्षेम आदिमें यथोचित कल्याण बनारहेगा-राजाके निदर्शन से कुटुंबी अपनेघरका राजाहै उसका कुटुम्ब उसकी प्रजाहै कुटुम्बी ग्रहोंको पूजैगा तो उसके सारे कुटुम्बके योगक्षेम आदिमें कल्याण रहेगा ३०७॥

अधि०—यह संदेह मतकरना कि जगत्की उत्पत्ति और प्रलय यद्वा उच्छ्राय और पतनादि यह सबकाम केवल एक जगत्कर्त्ता का कर्तृत्वहै इसमें ग्रहोंके आधीन होना यह असंगत है-क्योंकि जो ग्रहों का करना कहा सोई उस जगत्कर्त्ता का कर्तृत्व है जगत्कर्त्ता अपने हाथसे कोईकाम नहींकरता क्योंकि वह निर्लेप और निस्संग सर्वथा विदितहै किन्तु उसकी इच्छामात्रसे उसीकी मायाकरके नियुक्त कियेहुये नवग्रह सब कुछ करसक्तेहैं(दृष्टान्त)जैसे संसारमें राजा अपने हाथसे कोईकाम नहीं करता उसके प्रधान करके नियुक्त कियेहुये कोतवाल थानेदार आदि सबकुछ करसक्तेहैं और जोकुछ वे करतेहैं सो सब उसीएक राजाका करना कहलाताहै और यथार्थ मेंभी उसीकाकरना निश्चितहै क्योंकि उसके प्रतापके भयसे सब अपने २ कामोंपर उद्यत बनेरहतेहैं जब कदाचित् एकदिनकोभी राजाका प्रताप उठिजाताहै तबदेखो उस एकही दिनमें प्रजा में क्या२विध्वंस होनेलगतेहैं कि उन रक्षाकरनेवालोंकोभी तुच्छप्राणी विध्वंसकरदेतेहैं इस्से उनसबोंकाकरनाधरना केवलउसकेप्रतापकेआधीनहै-परन्तु-इतनाइसमेंविलक्षण है कि उन अधिकारियों का सत्कार जो प्रजालोग करते रहते हैं तिनके तो सबकाम अपने२ उचित समय और उचितन्याय तक पहुँचते हैं और जो कोई उनका निरादर वा अपमान वा उपेक्षा रखते हैं तिनके सच्चे कामभी विपरीत होजाते और उचित समयपर इंसाफ़ तक पहुँचने नहींपाते क्योंकि जैसे वे जगत्कर्त्ता के नियुक्त किये ग्रह उलटा सूधा करदेनेको समर्थहैं तैसे यह राजाके नियुक्तकिये ग्रह उलटासुलटा करनेको समर्थहैं इस्से इन राजग्रहोंकीभी पूजासत्कार प्रजाको नवग्रहोंके समान करनी उचित होतीहै किन्तु यहभी एक अपने योगक्षेमादिके हेतुसे धर्म मर्यादा में गिनती है (दग्ध बुद्धिका संदेह) भला ये बातें तो जुदीहैं पर हमग्रहोंका विश्वास नहीं करसक्ते क्योंकि

यहनवग्रह एक झूँठीकल्पना देखपड़तीहै(आक्षेप) ठीकहै इससेअधिक और क्याझूँठ होगी कि जो सूर्यकाबिम्ब झूँठाकल्पितकरके नियतकिया जिसकेसायंकालछिपजातेके साथही अन्धकार और प्रातःकाल उदयहोतेकेसाथही प्रकाशहोजाता ऐसेही चन्द्रमा आदिके बिम्ब जो रात्रिमें अपने२ नियत समयपर उदितहोते और छिपजातेहैं और जिसने इनकोनिर्मितकियेहैं उसकेनिकट सबयथार्थमेंझूठेहैं किन्तु वह सबसेनिस्संगहै केवल इन्द्रजालमात्र उसनेरचाहै परन्तु जो ऐसाइन्द्रजाल नहींबनाता तौ एकसूर्यकेही नहोनेमें संसारका कोईकाम नहीं चलसक्ता किन्तु जलोंका शोषणमात्रभी न होनेसे यावन्मात्र संसारी आर्द्रपदार्थ होतेहैं सब सड़जाया करते अंधकार बनारहता बर्षा होनीदुर्लभहोजाती बीजोंमें अंकुरआदिकी उत्पत्तिकठिनहोजाती फिर इनबातोंकेहोने विना जीवोंका पालनभी असंभवथा-ऐसेही चन्द्रमाके नहोनेमें अमृतवर्षण अन्नपोषणआदि रसोत्पत्ति आदिभी असंभवथी इत्यादि सभीग्रह अपने२कामोंको प्रत्यक्ष करतेहैं और ज्योतिस्सिद्धांतवेत्ता लोग भूगोलखगोलविद्याके प्रभावसे उनकेसमय२ के रूप लक्षण गुण कर्म आदिको प्रत्यक्ष देखसक्ते और देखतेहैं इस्से रचना करनेवालेने चाहे यहझूंठा इंद्रजाल रचाहो पर अस्मदादि इस प्रत्यक्षविषयको क्योंकर झूंठाकहैं-यद्यपि अन्यग्रहोंकी अपेक्षा केवल राहुकेतु यहदोग्रह अदृश्यहैं क्योंकि इनका उदय प्रायः देखने में नहीं आता पर येभी कभी निजस्वापेक्षित समयपर अवश्य उदय होतेहैं तब इनकोभी सबसंसार देखलेताहै अभी केवल थोड़ेदिनोंकी बात है किंतु वैक्रम १९१० के और नौकेसंवतमें भी बरन ग्यारह पर्यंत दो अढ़ाई वर्षके अंतरमें कईवार और कईप्रकारके राहुकेतु पुँछरिआ ताराके आकारसे उदय होतेरहे अतिकाल तक सायंकालके समयसेही सबलोग दर्शन करनेलगतेथे परन्तु अच्छी तरह यादहै कि उसकी शांति किसीनेभी नहींकरी और उसनेभी जैसा कुछ फल ज्योतिश्शास्त्रोंमें लिखाहै सो प्रत्यक्षकर दिखाया सो सबको याद है कि सारी पृथ्वीपर विध्वंस फैलगया-उस्से पहले १८५४ और ९६ केभी अंतरमें बहुधा इनके दर्शनहमनेभी किये जोदक्षिण दिशा और पश्चिमके कोणमें बड़ेलंबे लट्ठाके आकार उदय होताथा जिसमें बुहारीकी पूँछके समान कँटीले जीरेसेप्रतीतहोते थे इसीहेतुसे बहुधालोग उसको बुहारीभी कहतेथे कोई उसके लंबावको देखकर खेतकी [illegible]कहने लगतेथे उसनेभी प्रत्यक्ष अपनाफल अनावृष्टि और अन्नाकाल जीवन[illegible] और युद्ध आदि सबयथार्थ कर दिखायाथा-अन्यथाग्रहण और भूकंपआदि [illegible] अनेक ग्रहोत्पात जब२ कभी होतेहैं तब निस्संदेह अपना प्रभावकिये[illegible] पर यह ठीकहै ये सारीबातें उसजगत्कर्त्ताके निकट निस्संदेह झूँठा इंद्रजालहै यद्यपि अस्म[illegible] दादि जो एकलौकिक बाजीगरके या नटके इंद्रजालको [illegible] देखकर[illegible]

प्रतीत करने लगते हैं सो जगत्कर्त्ता के इंद्रजालको कैसे झूँठा कहसकैं ३०७॥

इति सर्वविघ्नशांत्यादिग्रहशांतिप्रकरणम्॥

यहांतक आचाराध्यायके प्रारंभसेलेकर योगीश्वरके कहेहुये ३०७ मूलश्लोकोंके अवलंबसे अनेक धर्मशास्त्रों के प्रमाण और सिद्धांतद्वारा विस्तारसहित-जो२ धर्म कर्म आचारआदि विधि और निषेधरूप वर्णन किये सो सबसाधारण गृहस्थों के आचारहैं अर्थात् उनमें राजा तथा प्रजाकोभी अधिकार एकसा बराबरहै-परन्तु-जो२ धर्म अब आगे वर्णनकिये जावेंगे उनमें राज्याभिषेक आदिगुणसंयुक्त गृहस्थों का अधिकारहै अर्थात् केवल राजाकाही किंतु प्रजाका नहीं उनमें-क्योंकि यहअग्रोक्तमर्यादें राजाके विशेष धर्महैं किंतु अन्यसब साधारण गृहस्थियोंकी अपेक्षा इतने कामराजाको अधिक आचरणीयहैं सो अबनीचेसे कहतेहैं-तथापि इसकथनका यह सिद्धांत नहीं है कि राजाके आचरणकरिबेयोग्य कामोंको कोईसीखै नहीं किंतु सबकोहीसीखना उचितहै वरन विशेषकर उनलोगोंको कि जो राजाओंके संगतीवा निकटवर्त्ती होते या किसी प्रकारका संबंध राजाओं से रखतेहों॥

अथ राजधर्मप्रकरणम्॥

महोत्साहःस्थूललक्षःकृतज्ञोवृद्धसेवकः। विनीतःसत्त्वसंपन्नःकुलीनःसत्यवाक्शुचिः३०८॥
अदीर्घसूत्रःस्मृतिमानक्षुद्रोपरुषस्तथा। धार्मिकोऽव्यसनश्चैवप्राज्ञःशूरोरहस्यवित् ३०९॥
स्वरंध्रगोप्तान्वीक्षिक्यांदंडनीत्यांतथैवच। विनीतस्त्वथवार्तायांत्रय्यांचैवनराधिपः ३१०॥

अक्ष०—त्रयाणांसह—महोत्साहः-स्थूललक्षः-कृतज्ञः-वृद्धसेवकः-विनीतः-सत्त्वसंपन्नः-कुलीनः-सत्यवाक्-शुचिः॥ अदीर्घसूत्रः-स्मृतिमान्-अक्षुद्रः-अपरुषः-धार्मिकः-अव्यसनः-प्राज्ञः-शूरः-रहस्यवित्॥ और स्वरंध्रगोप्ताभीहो-(तथैव)-आन्वीक्षिकीमें दंडनीतिमें और वार्त्तामें और त्रयीविद्यामें विनीतहो ऐसा नराधिपहो ३०८।३०९।३१०॥

अभि०—त्रयाणांसह—(नराधिप) राजा उसको कहिये कि जिसको राज्यगद्दीका अभिषेक हुआहो परन्तु वह अभिषेकभी उसकोहोना चाहिये जिसमें इतनेगुणहों अर्थात् प्रथम तौ बड़े उत्साह वालाहो किंतु पुरुषार्थ साधन कर्मोंके आरंभमें अध्यवसाय नामपूरे निश्चयका होना सो उत्साह कहलाताहै जिसमें यह अधिकतरहो वही (महा उत्साहवान्) या बड़ा उत्साही कहलाता सो यहनराधिपमें अवश्यहोना चाहिये१दूसरागुण (स्थूललक्ष) उसको कहतेहैं जो अनेक शास्त्रोंके देखने और मथन करनेमें अभ्यासराखै और प्रयोजनकेध्रुवापर विशेषदृष्टिपातकरै२तीसरे (कृतज्ञ) उसे कहते हैं जो पराये कियेहुये उपकार वा अपकारकोभी अधिक समुझै और भूलै नहीं किंतु अवसरके अनुकूल दोनोंका प्रतिकारभीकरै३ चौथागुण (वृद्धसेवक) अर्थात् तपज्ञान तुर्य्य विद्याआदि सर्वगुण वृद्धोंकी सेवा करनेवाला और अपनी सेवामें रखनेवाला

किंतु सबीभांति अच्छोंकी संगति वा आराधन करताहो४ (विनीत) कहिये सौशील्य आदि विनयसे संयुक्तहो अर्थात् किसी अपने संसर्गीसे विरुद्ध नहीं बांधे और स्नातक प्रकरणमें कहीहुई शिक्षावोंको बहुधा यादबनीराखे५ (सत्त्वसंपन्न) कहिये संपत्ति और विपत्तिमें भी एकसारहे किंतु न उसमें अतिहर्ष न इसमें अति विषादमाने ६ (कुलीन) कहिये कुलवान् अर्थात् पिताके कुलसे और माताकेभी कुलसे नाना मामा आदि बहुतसे जनसमूह वालाहो७ (सत्यवाक्) अर्थात् झूँठका अभ्यास नहीं डाले और मुखसे कहेहुये वचनपर आरूढ़ता धर्मके अनुकूल बनीराखे८ (शुचि) अर्थात् भीतरसे मनसेभी शुद्धहो किंतु कपट आदिसे शून्यहो और बाहर इंद्रियोंसेभी शुद्ध रहे ९ (अदीर्घसूत्री) उसे कहते हैं जो ज़रूरी कर्तव्य कामोंके प्रारंभकरनेमें और नँधे हुये कामोंके पूरे करदेनेमें व्यर्थ विलम्ब को न करताहो सो यहगुण राजामें अवश्य होना चाहिये १० (स्मृतिमान्)अर्थात् जिसबात को एकबार अच्छीभांति समुझले फिर उसको नहींभूले ऐसी प्रकृति होनीचाहिये ११ (अक्षुद्र) अर्थात् क्षुद्रकहिये असद्गुण असद्विद्या असद्वार्त्ता असत्पुरुष बंध्या पुत्रादि इन सबकेसंग औरसंसर्गसेभी अलगहो और छछोरपन छोड़दे १२ (अपरुप)अर्थात् परुष वचन कहिये प्रत्यक्ष पर दोषोंका कथन करना तिससे अलग हो १३(धार्मिक)अर्थात् वर्ण और आश्रम केभी नियम धर्मों से समन्वित हो किंतु वर्ण तौ क्षत्रिय अथवा जो कुछहो और आश्रम गृहस्थ राजाकाभी होताहै सो इनदोनोंके यथोक्त आचारोंसे सम्पन्नहो१४(अव्यसन) अर्थात् कोईतरहका विशेष दुर्व्यसन जिसमें न हो व्यसन अठारह प्रसिद्ध हैं उनके नाम नीचे अधिकोक्तिमें देखो १५ (प्राज्ञ)अर्थात् अतिगंभीर वार्त्ताके अर्थ प्रयोजन समुझलेनेमें समर्थहो १६(शूर)अर्थात् निर्भय जो किसीसे डरता न हो१७ (रहस्यवित्) अर्थात् गुप्त करनेयोग्य अर्थ प्रयोजनोंके छिपानेमें चतुरहो किंतु जिसका भेद उसके निकटवर्तीभी न पासकैं १८(स्वरंध्रगोप्ता)कहिये अपने छिद्रोंको ढाँकनेवाला किंतु अपने राज्यके प्रसिद्ध सात अंगोंमें शत्रुके प्रवेशहोनेयोग्य मार्गोंकी शिथिलता रूप छिद्रोंका अवरोध करसकनेवाला हो १९ (तथैव) (आन्वीक्षिकी) में विनीतहो अर्थात् आन्वीक्षिकी नाम यद्यपि तर्कविद्याका विख्यातहै तिसमें चतुरहो पर विशेषतर आन्वीक्षिकी नाम आत्मविद्या मेंभी चतुरहो यहांपर आत्मविद्या कहनेसे यह सिद्धान्तहै कि जो विद्या पढ़े सुने पीछे निज आत्मद्वारा सुपरीक्षितभी करलीहो इसी परीक्षाको आन्वीक्षा और उस विद्याको आन्वीक्षिकी कहतेहैं इसभांति अनेक विद्याओंकी परीक्षा जिसने निज बुद्धिद्वारा करीहो यहभावहै २० तथैव (दण्डनीति)में विनीत हो किंतु दंडनीति नाम अर्थशास्त्रोंको कहतेहैं जिनसे अनागत अर्थोंका साधन और समागत अर्थोंकी रक्षा विधिदण्ड पूर्वक जानीजातीहै अर्थात् राजाको विशेषकर उशना और बृहस्पति

आदि आचार्यों के कहेहुये नीतिशास्त्र और कृष्णद्वैपायनकृत महाभारत संबन्धी राजधर्मके पढ़ने वा समुझने में विशेषता हो २१ तथैव वार्त्तामें विनीत हो अर्थात् कृषि वाणिज्य पशुपालन धनवृद्धि आदि कामोंकी मूलविद्या वा कुशलता को वार्त्ता कहतेहैं तिसमेंभी राजाको निपुणता हो २२ तथैव (त्रयीविद्या) में विनीत हो अर्थात् ऋक् यजुःसाममयी तीनों विद्यामें प्रवीणहो किन्तु भिन्न२ उनके ज्ञाताओंसे प्रावीण्य संग्रह कियाहो २३ इत्यादि सर्वगुणसंयुक्त होनेपर अभिषेक पानेका अधिकारी राजकुमार होताहै २०८।२०९।२१०॥

अधि० त्रयाणांसह—यहांपर बीस इक्कीस बाईस तेईस इनचारों अन्त्य संख्याओं में कहीहुई वार्त्तामध्ये मनुजीने अच्छीरीति कहीहै-सायथा (त्रैविद्येभ्यस्त्रयींविद्यांदण्डनीतिंचतद्विदः। आन्वीक्षिकींचात्मविद्भ्योवार्त्तारम्भांश्चलोकतः) अर्थात्-राजात्रैविद्य लोगोंसे जुदी २ एक २ विद्या जिसमें जोहो उस्से वही संग्रहकरे और दण्डनीति उसके जाननेवालेसे संग्रहकरे आन्वीक्षिकी नाम आत्मविद्या आत्मविद्याके जाननेवालोंसे किंतु जिस२विद्याकीपरीक्षा जिसने अपनेआत्मद्वारा करलीहो उस्से वही संग्रह करै सो ये विद्यायें चतुर्दश विद्याओंसे अपेक्षितहैं और(वार्त्तारंभांश्चलोकतः)अर्थात् कृषि वाणिज्य पशुपालन आदि नाना लक्षणवती वार्त्ता जो लोकमें प्रसिद्धहैं उनको भी उनकेजानने वाले लोगोंसे सीखै समुझै-ऐसेही ऊपर पंद्रहवीं संख्यामें कहेहुये अठारहव्यसनोंके नाम जैसे (मनुजी) ने कहे हैं-तथाच (मृगयाक्षादिवास्वप्नःपरिवादः स्त्रियोमदः। तौर्यत्रिकंवृथाघातःकामजोदशकोगणः-पैशुन्यंसाहसंद्रोहईर्ष्याऽसूयार्थदूषणम्।वाग्दण्डजंचपारुष्यंक्रोधजोपिगणोष्टकः)अर्थात्-(मृगया) नाम आखेट या शिकार १ (अक्षाः)अर्थात् कईप्रकारके द्यूतकर्म जो पाँशेआदिसे खेलेजाते २ (दिवास्वप्न) दिनका सोना ३ (परिवाद) वृथावाद थोथी कुतर्कणा आदि आपसके मनुष्यों से ४ (स्त्रीसेवा)अधिकतर या अनुचित मर्यादसे या दिवसमें स्त्रीप्रसंग ५ (मद)मदिरा आदिका सेवन ६ (तौर्यत्रिक)नृत्य १ गीत २ वादित्र ३ इन तीनोंमें अधिक तत्पर होना (वृथाघात)किसी प्राणीमात्रको विनाकारणके वधकरना या करवाना ८ आठहुये परंतु सातवेंके साथमें तीनकहे इस्से उन दोनोंको जोड़कर दशहुये सो ये दशअवगुणों का गणकहिये समूह कामसे अर्थात् मनकी अभिलाषसे उत्पन्नहुये व्यसन कहलाते हैं ये दशव्यसन राजाको अत्यन्त पीड़ा तथा राज्य हानिके हेतु प्रसिद्ध हैं इसलिये इनमें तत्पर न हो-ऐसेही क्रोधसे उत्पन्नहुआ आठ अवगुणोंका अष्टगण कहलाता है उनमें पैशुन्य पराई चुगुली चाई आदि परोक्षनिन्दा १ (साहस) विना विचार किये किसीपर प्रवलता आदि करबैठना २ (द्रोह)विना कारणका द्रोह वैर आदि बढ़ाकर लेना ३ (ईर्ष्या) ईर्षा जो परोत्कर्ष आदिके नसहने से या क्रोधमे या दुर्जनतासे अन्

पूर्वक वधकारिणी हो ४ (असूया) निन्दा ५ (अर्थदूषण) प्रत्येक शुद्धकामों में भी दोष लगाना ६ (वाक्पारुष्य) क्रोधसे गाली आदिका उच्चारण करना ७ (दण्डपारुष्य) दंडे आदिसे निज अपने हाथसेही या बिना अपराध के ताड़नकरना आदि ८ ये आठौ व्यसन क्रोधसे उत्पन्न होतेहैं और राजाके प्राण तथा राज्यके विनाश करनेकेहेतु प्रसिद्धहैं इसलिये राजाको प्रथम तौ क्रोध नहीं करना उचित और क्रोधके आजाने परभी इनका ध्यानरखकर इनका अवरोध करना उचितहोता-इन अठारहमेंभी सात व्यसन छांटकर अतिकष्टदायक बतलाते हैं-यथा (पानमक्षाःस्त्रियश्चैवमृगयाचयथा क्रमम्। एतत्कष्टतमंविद्याच्चतुष्कंकामजेगणे-दण्डस्यपातनंचैववाक्पारुष्यार्थदूषणे। क्रोधजेपिगणेविद्यात्कष्टमेतात्त्रिकंसदा) अर्थात्-एकतौ(पान)मद्यादिवस्तुका १ (अक्षाः) जूये का साधारणभावसेभी खेलना २ स्त्रियों का सेवन ३ मृगया शिकार अतिशय करके ४ ये चारों यथाक्रम से उत्तरोत्तर अधिकाधिकभाव से कष्टतम कामजगण में से छँटेहुये व्यसनजाने- और दण्डका पातन किन्तु निज अपने हाथसे जैसा ऊपर लिखागया १ (वाक्पारुष्य) धिक्कार या गाली आदि जैसा ऊपरकहा २ (अर्थदूषण) ऊपर कहेहुये के अनुसार ३ ये तीनों भी क्रोधजगणमें से छँटे हुये व्यसन सदाही कष्टतम जानो-ऐसेही उन्नीसवीं संख्यामें कहेहुये सप्तांग राज्यके सातोंअंग-यथा(स्वाम्यमात्यसुहृत्कोषाराष्ट्रदुर्गबलानिच। परस्परोपकारित्वाद्राज्यंसप्तांगमुच्यते) अर्थात्-एक तौ (स्वामी) १ (अमात्य)जिसे प्रधान मंत्री या दीवानआम या देशदीवान कहतेहैं २ (सुहृत)मित्र जो अन्यराजा उस राज्यके शुभचिंतकहों ३ (कोष)धनागार, अन्नागार वस्त्रागार, शस्त्रागार आदि जो प्रसिद्धहोते हैं तिनके उपलक्षणसे उनकोषोंके अध्यक्ष भी समुझने ४ (राष्ट्र)राज्य ५ (दुर्ग) क़िलागढ़ इसी उपलक्षण से गढ़का अध्यक्ष भी समुझना ६ (बलानि)फ़ौजें ७ ये सातों परस्पर उपकारके हेतुसे राज्यके अंगकहलाते हैं अर्थात् इनमेंसे एकभी नहो तो राज्यनष्ट होसक्ता और परस्पर उपकार का यह भावहै कि फ़ौजोंके नहोनेमें शेष छः अंगोंकी रक्षा नहोनेसे छहू नष्ट होजायँ-ऐसेही कोषोंके नहोनेमें सेनासहित उन छःअंगोंकी पालना नहींहो तौभीमरे-ऐसेही मित्रोंके नहोनेमें शत्रु प्रबल होजायँ तब उस फ़ौज और खज़ाने आदि छः अंगोंसे कुछभी नहीं होसक्ता-ऐसेही उन पूर्वोक्त मित्रोंको इस मित्रसे भरोसा है इसी प्रकार परस्पर सातोंकी रक्षा और कल्याण उन्हीं सातोंसे होताहै-तब सप्तांगराज्य कहलाता और अभेद्य गिनाजाताहै-सिद्धांत इसका यह कि उन्नीसवीं संख्यामें जो कहाथा कि राजा (स्वरंध्रगोप्ता) हो अर्थात् अपनेइन्हीं सातअंगोंके रंध्रकहिये(छिद्रों)को ढांकतारहै जिस्से इनमें किसी एकमेंभी कोईशत्रु प्रवेश करनेका मार्गनहींपावे और(छिद्र)कहने से मार्ग यहएक उपलक्षणमात्र है किंतु इसमें दोनों बातकी लक्षणा दर्शाई हैं अर्थात् एकतौ

पूर्वक वधकारिणी हो ४ (असूया) निन्दा ५ (अर्थदूषण) प्रत्येक शुद्धकामों में भी दोष लगाना ६ (वाक्पारुष्य) क्रोधसे गाली आदिका उच्चारण करना ७ (दण्डपारुष्य) दंडे आदिसे निज अपने हाथसेही या बिना अपराध के ताड़नकरना आदि ८ ये आठौ व्यसन क्रोधसे उत्पन्न होतेहैं और राजाके प्राण तथा राज्यके विनाश करनेकेहेतु प्रसिद्धहैं इसलिये राजाको प्रथम तौ क्रोध नहीं करना उचित और क्रोधके आजाने परभी इनका ध्यानरखकर इनका अवरोध करना उचितहोता-इन अठारहमेंभी सात व्यसन छांटकर अतिकष्टदायक बतलाते हैं-यथा (पानमक्षाःस्त्रियश्चैवमृगयाचयथा क्रमम्। एतत्कष्टतमंविद्याच्चतुष्कंकामजेगणे-दण्डस्यपातनंचैववाक्पारुष्यार्थदूषणे। क्रोधजेपिगणेविद्यात्कष्टमेतत्त्रिकंसदा) अर्थात्-एकतौ(पान)मद्यादिवस्तुका १(अक्षाः) जूये का साधारणभावसेभी खेलना २ स्त्रियों का सेवन ३ मृगया शिकार अतिशय करके ४ ये चारों यथाक्रम से उत्तरोत्तर अधिकाधिकभाव से कष्टतम कामजगण में से छँटेहुये व्यसनजानै- और दण्डका पातन किन्तु निज अपने हाथसे जैसा ऊपर लिखागया १ (वाक्पारुष्य) धिक्कार या गाली आदि जैसा ऊपरकहा२ (अर्थदूषण)ऊपर कहेहुये के अनुसार ३ ये तीनों भी क्रोधजगणमें से छँटे हुये व्यसन सदाही कष्टतम जानो-ऐसेही उन्नीसवीं संख्यामें कहेहुये सप्तांग राज्यके सातोंअंग-यथा(स्वाम्यमा त्यसुहृत्कोषाराष्ट्रदुर्गबलानिच। परस्परोपकारित्वाद्राज्यंसप्तांगमुच्यते) अर्त्थात्-एक तौ (स्वामी) १ (अमात्य)जिसे प्रधान मंत्री या दीवानआम या देशदीवान कहतेहैं २ (सुहृत)मित्र जो अन्यराजा उस राज्यके शुभचिंतकहो३ (कोष)धनागार,अन्नागार वस्त्रागार,शस्त्रागार आदि जो प्रसिद्धहोतेहैं तिनके उपलक्षणसे उनकोषोंके अध्यक्ष भी समुझने ४ (राष्ट्र)राज्य ५ (दुर्ग) क़िलागढ़ इसी उपलक्षण से गढ़का अध्यक्ष भी समुझना ६ (बलानि)फ़ौजें ७ये सातों परस्पर उपकारके हेतुसे राज्यके अंगकहलाते हैं अर्थात् इनमेंसे एकभी नहो तो राज्यनष्ट होसक्ता और परस्पर उपकार का यह भावहै कि फ़ौजोंके नहोनेमें शेष छः अंगोंकी रक्षा नहोनेसे छहू नष्ट होजायँ-ऐसेही कोषोंके नहोनेमें सेनासहित उन छःअंगोंकी पालना नहींहो तौभीमरे-ऐसेही मित्रोंके नहोनेमें शत्रु प्रबल होजायँ तब उस फ़ौज और खज़ाने आदि छः अंगोंसे कुछभी नहीं होसक्ता-ऐसेही उन पूर्वोक्त मित्रोंको इस मित्रसे भरोसा है इसी प्रकार परस्पर सातोंकी रक्षा और कल्याण उन्हीं सातोंसे होताहै-तब सप्तांगराज्य कहलाता और अभेद्य गिनाजाताहै-सिद्धांत इसका यह कि उन्नीसवीं संख्यामें जो कहाथा कि राजा (स्वरंध्रगोप्ता) हो अर्थात् अपनेइन्हीं सातअंगोंके रंध्रकहिये(छिद्रों)को ढांकतारहै जिस्से इनमें किसी एकमेंभी कोईशत्रु प्रवेश करनेका मार्गनहींपावै और(छिद्र)कहने से मार्ग यहएक उपलक्षणमात्र है किंतु इसमें दोनों बातकी लक्षणा दर्शाई है अर्थात् एकतौ

मार्गरूपी छिद्र यहभी कि कोई घुसजाने नहींपावे दूसरा मुख्य यहभाव है कि इन कहेहुये अंगोंके अध्यक्षोंसे कोईशत्रु मिलाप नहीं करने पावे क्योंकि शत्रु जब किसी अंगमें प्रवेश करताहै तो दोनों प्रकार से अर्थात् कभी तो अध्यक्षों की शिथिलता प्रमाद गफ़लत आदिके हेतुसे और कभी उनसे मिलाप करिके प्रवेश करता है सो यह मिलाप आदि कारण उसी अवस्थामें होतेहैं कि जब राजा पूर्वोक्त अठारह महाव्यसनोंमें आसक्तहोताहै किंतु अठारहमेंसे कोई एकव्यसनभी जबराजामें अधिकतर होगा तभी इनसातों अंगमें से किसी न किसी अंगमें प्रवेशकरने का अवकाश शत्रु को अवश्य मिलजावैगा इसलिये अठारह व्यसनों से राजा हाथखींचै और अपने छिद्रोंका ढाँकना इसका नामहै कि अपने राज्यके सातअंगों यद्वा उनके अध्यक्षों को साम आदि नीतिसे अपने वशमें यथासंभव, यथाकाल, यथाशक्ति, यथाअवसर के अनुकूल काम और क्रोधोंको रोकताहुआ बनारक्खे बसयही छिद्रोंका ढांकनाहै-यथा (सद्भावेनहरेन्मित्रंसद्भावेनचबांधवान् । स्त्रीभृत्यौदानमानाभ्यांदाक्षिण्येनेतरंजनम्) अर्थात्-मित्रको सद्भाव कहिये निष्कपटतासे वशमेंरक्खे ऐसेही निज बांधवों को भी सद्भाव कहिये सत्कारसे वशमें रक्खै-स्त्रियों तथा समस्त भृत्यवर्गों कोभी दान और मानसे वशमें रक्खै इनके सिवाय अन्य मनुष्योंको शिष्टाचार आदि चतुरतासे हरै-तद्यथा(लुब्धमर्थेनगृह्णीयात्स्तब्धमंजलिकर्मणा । मूर्खंछन्दानुसारेणयथातथ्येनपंडितम्)ऊपर कहेहुये सात अंगोंमें पहलाअंग जो(स्वामी)कहाथा यद्यपि(स्वामी) शब्द से केवल राजासे अपेक्षा है किन्तु जैसे छः अंग और हैं तैसेही सातवाँ अंग राजा आपहै जैसे अन्य छः अंगोंकी रक्षा तैसे अपनी रक्षाके छिद्रमार्गों का अवरोधकरै-परन्तु-इसीस्वामी शब्दके अभिप्राय से यहांपर(युवराज)सेभी अपेक्षा है किन्तु जैसे अन्य अध्यक्षों वा मित्रोंसे निज शत्रुओंका मिलाप होजाने के छिद्रोंको ढांकै तैसेही युवराजसेभी किसी शत्रुका मिलाप होजानेवाले छिद्रोंको ढांकतारहै यह सिद्धांत है-पुनि इसी स्वामीशब्द के विशेषणसे प्रदेशाधिप भूपालभी अपेक्षितहैं किंतु जैसे अन्य छः अंगोंमें निज शत्रुके प्रवेश होनेवाले छिद्रोंका अवरोध कियाजाताहै तैसेही सातवांअंग जो प्रदेशाधिप भूपाल कहिये सूबालोग तिनसेभी किसीशत्रुके मिलाप होजानेवाले मार्गोंको ढांकै या उन्हींकी पराङ्मुखताका ध्यान रखकर तत्संबंधी छिद्रों को ढांकै यह सिद्धांत है-इसीलिये उनकेभी लक्षण पहले देखलेने आवश्यक हैं-यथा (यःकुलाभिजनाचारैरतिशुद्धःप्रतापवान् । धार्मिकोनीतिकुशलःसस्वामीयुज्यतेभुवि) अर्थात्-वह पुरुष किसी भूमिभागमें स्वामी नियत कियाजाताहै जो अपनेकुलके और अभिजन कहिये संबंधियोंके भी आचारसे अति शुद्धहो किंतु अपनी कुलपरिपाटी पर आरूढ़हो और किसी अपने संबंधीसे विरुद्ध नहीं रखताहो और प्रतापवान

कहिये प्रतापी रूअबसे संयुक्त हो जिसके प्रतापसे वहसौंपाहुआ भूमिभाग स्वाधीन बनारहे किन्तु हाथसे नजातारहे पुनि धार्मिकहो किंतु ऐसी अधर्मवृत्ति उसकी नहो जिस्से उस भूमिभागकी प्रजाको बिगाड़दे और नीतिमें प्रवीणहो जिस्से वहांके प्रबंधमें न्यूनता नहींआनेपावे वह स्वामी नियत कीजिये-अन्यच्च-(क्षात्रधर्मरतोनित्यं वृथाहिंसांपरित्यजेत्। शुष्कवैरंमृषालापंपरानिन्दांचवर्जयेत्॥ क्रोधंद्वेषंभयंशाठ्यंपैशुन्यमसदाग्रहम्। कौटिल्यंदंभमुद्वेगंयत्नेनपरिवर्जयेत्)-अर्थात्-क्षात्र धर्म राज्य संबंधी आचरणमें तत्परहुआ राजा नित्यंप्रति वृथा हिंसाका परित्याग करै-सूखाबैर किसी अपने नौकर चाकर या मित्रादिकोंसे न बांधे-मृषालाप व्यर्थ वार्त्ताका कथन करना-पराईनिंदा सन्मुख या पीछेभी करनेकात्यागरक्खै-क्रोध-परायाद्वेष-भयभीत रहना या होजाना-शठता धारण करनी-पिशुनता का स्वभावकरना-असद्वार्त्ताका आग्रहकरना कुटिलता-दंभ-उद्वेग मनको ब्याकुलकरलेना-इन सारीबातों को राजा यत्नपूर्वक छोड़ देवै जो अकंटक राज्य करना चाहे ३०८। ३०९। ३१०॥

यह तौ राजा के (अंतरंग) अर्थात् आत्मीयगुण कहे जो शरीरमें होने चाहिये॥

अब नीचे (वहिरंग) गुण कहतेहैं जो शरीरके बाहर होने चाहिये॥

समंत्रिणःप्रकुर्वीतप्राज्ञान्मौलान्स्थिरान्शुचीन्। तैःसार्द्धंचिंतयेद्राज्यंविप्रेणाथततःस्वयम् ३११॥

ऐ०-(स) कहिये वही अभिषेकयुत राजा जिसकेगुण ऊपर कहेगये सो ऐसे मंत्रियों को अपने मंत्रित्वमें राखै जो(प्राज्ञ)हों अर्थात् हित अहित की बात समझने में चतुर हों पुनि(मौलान्)अर्थात् जो अपने वंशकी परंपरा में चले आतेहों वे मौल कहलातेहैं तिनको करै पुनि(स्थिरान्)अर्थात् जो अतिहर्ष के स्थान तौ विशेष हर्षित होकर फूलैं नहीं और अति विषाद के स्थान कुम्हिलाकर घबरावें नहीं वेस्थिर कहलातेहैं तिन को करै पुनि(शुचीन्)अर्थात् धर्म अर्थ कामके भयसे जिनको राजाने उपधाद्वारा शोधिलियेहों वे शुचि यद्वा उपधाशुचि कहलातेहैं तिनकोकरै-तिनकेसाथ राज्यकाचिंतमनकरै किंतुसंधिविग्रह आदि राजवृद्धिके लक्षणवाले कामोंका बिचारकरै तहां सभी मंत्रियोंको इकट्ठे करके एकसाथभी और आगे पीछे एक २ से जुदी २ भी संमतिलेवै पुनि (विप्रेणाथ) अर्थात् उनके साथ संमतिकिये पीछे सकल शास्त्रार्थ के विचार में कुशल ऐसे ब्राह्मण वा पुरोहितसे संमति लेवै पुनि ततःस्वयं अर्थात् ब्राह्मणसे विचारांश किये पीछे केवल आप भी निज वुद्धि से विचार करै ३११॥

भाषि०-मंत्री जनों के लक्षण जोअन्य शास्त्रोंमें कहेहैं तिनमें कोई२वार्त्ता अधिक पाई जातीहै इसलिये उनका लिखनाभी यथोचितहै-तद्यथा(स्वदेशजंकुलाचार विशुद्धमुपधाशुचिम्।मंत्रज्ञमव्यसनिनंव्यभिचारविवर्जितम्।अधीतव्यवहारांगंमौलंस्यात विपश्चितम्।अर्थस्योत्पादकंसम्याङ्विद्ध्यान्मंत्रिणंनृपः)अर्थात् राजा ऐसामंत्री नियत

करै जो अपने देशमें जन्माहो और निज कुलके आचारसेभी शुद्धहो और उपधासे भी शुचिहो किंतु उपधाद्वारा राजाने शोधन उसका कियाहो मंत्रज्ञभीहो किंतु मंत्र संमति सलाह में प्रवीणहो और अव्यसनीहो किंतु कोई तरहका व्यसन दुर्व्यसन जिसमें न हो व्यभिचारसेभी रहितहो यहां पर व्यभिचार उसकी प्रकृतिसे अपेक्षा रखताहै अर्थात् ऐसी व्यभिचारवती प्रकृति न हो कि अभी कुछ कहा और थोड़ीदेर में उसीबातसे पलटगया-और व्यवहारांग उसने पढ़ाहो जिस्से प्रजाकेन्यायमें गड़बड़ झाला न करदे और मौलहो जिसके लक्षण ऐक्यार्थमें कहचुकेहैं और विख्यात हो और विपश्चितहो अर्थात् किसी वार्त्ताके समझनेमें बुद्धि जिसकी रुकती या उलझती न हो इनबातोंके होनेपरभी भलीभांति अर्थका उत्पादनकरसकने वालाहो तिस को मंत्रीकरै-अन्यच्च-युक्तिकल्पतरुनामक नीति शास्त्रे-यथा (शांतोविनीतःकुशलःसत्कुलीनःशुभान्वितः।शास्त्रार्थतत्त्वगोऽमात्योभवेद्भूमिभुजामिह)अर्थात्-शांतप्रकृतिवालाहो किन्तु क्रोधीस्वभाव जिसका न हो विनीतहो किन्तु सौशील्य विद्यामें निपुणहो और कुशल अतिचतुरहो और सत्कुलीन कहिये श्रेष्ठ कुलमें जन्माहो और शुभान्वित कहिये शुभ आचरणवालाहो किन्तु कुमार्गी न हो पुनि शास्त्रार्थ तत्त्व कहिये व्यवहारांग आदि जानताहो ऐसा अमात्यनाम मंत्री इहसंसार यद्वाराज्य प्रबंधमें राजाओंका होवै-मनुजीके कथनसे मंत्रियोंकी संख्याभी सात यद्वा आठ निश्चितहोतीहै-यथा-(मौलान्शास्त्रविदःशूरान्लब्धलक्षान्कुलोद्भवान्।सचिवान्सप्तचाष्टौवाकुर्वीतसुपरीक्षितान्)अर्थात्-सचिवनाम मंत्रीजन सात अथवा आठ ऐसेकरै जो भलीभांति परीक्षा कियेहों किन्तु उपधाद्वारा राजा ने शोधिलियेहों और मौलहों जिनके लक्षण ऐक्यार्थ में कहेथे और शास्त्रोंके जानने वालेहों शूरमाहों पुनि लब्धलक्षहों किन्तु जिनका चिह्नकोईसा विख्यातहो और कुलोद्भवकहिये यातो राजाकेही कुलमें हुयेहों या किसी अन्य सत्कुलमें जन्मेहों-यहां पर बहुधा उपधाकाचर्चा आया यद्यपिइसमें कहींभी उसके लक्षण कहे नहीं परन्तु कालिका पुराणमें उपधाके लक्षणकहेहैं-यथा (धर्मार्थकाममोक्षैश्चप्रत्येकंपरिशोधनैः।उपेत्यधीयतेयस्मादुपधापरिकीर्तिता॥ अर्थकामोपधाभ्यांतुभार्याःपुत्रांस्तुशोधयेत्। धर्मोपधाभिर्विप्रांस्तुसर्वाभिःसचिवान्नृनः)अर्थात्-राजाकोयहउचितहै कि धर्म अर्थ काम मोक्ष इनचारोंसे प्रत्येक मनुष्यका यथायोग्य परिशोधनकरै-तहां इन चारों से यद्वा किसी एकहीसे परिशोधनों करके किन्तु परिशोधनके उपायोंसे (उपेत्य-धीयते) अर्थात् जिसलिये परिशोधनका उपाय उसके उप कहिये समीप पहुँचाकर धारण किया जाता और निज बुद्धिद्वारा उसका अभ्यंतर अपने मनमें धारण किया जाता इस्से उसकर्मको (उपधा) कहते और उस पुरुषको (उपधाशुचि) कहते हैं जो उसमें पूराउतरे पर यथार्थ में यह भी एकप्रकारका

गुप्तपरीक्षा होतीहै जिसको राजा धर्मकेभयसे अर्थकेभयसे कामकेभयसे मोक्षकेभय से इनके संबंधी मनुष्योंकी जुदी२नाना भांतिकी रीतोंसे करताहै दृष्टांत जैसेअर्थकी परीक्षामें गुप्तभाव उसके समीप कुछ धन रखवादेना या किसी निजमनुष्यके द्वारा चोरी आदिका कुछलालच दिखलाना इत्यादि नाना प्रकार-ऐसेही कामकी उपधा नाम परीक्षा मध्ये किसीस्त्रीसे छलवार्त्ता करवाना आदि नानाप्रकार-ऐसेही सबमें जानौ-तहां-दूसरे श्लोकसे उपधाका भिन्न व्यवहार बतलातेहैं कि-(अर्थउपधा) और (कामउपधा) इनदोनोंसे भार्याओं और पुत्रोंकाभी परिशोधन करलेवै-और (धर्मकीउपधाओं) से विप्रोंका परिशोधनकरै पुनि सचिव जो मंत्रीलोगहैं तिनके आशयका परिशोधन सर्भासे किन्तु चारोंप्रकारकी उपधाओं से परीक्षा करै (उपधीयते शुद्धि ज्ञानमत्र) ३११ ॥

पुरोहितंप्रकुर्वीतदैवज्ञमुदितोदितम्। दंडनीत्यांचकुशलमथर्वांगिरसेतथा ३१२ ॥

ऐ०—वह राजा पुरोहितभी करै किंतु सभीप्रकारके दृष्टा दृष्टार्थरूप कर्मोंमें पुरतः कहिये आगे बढ़कर हितकरनेवालेको दान मान सत्कारोंसे अपनेमें युक्तकरै अर्थात् सदैवकेलिये अपना करिकै मानै सो वह पुरोहितभी (दैवज्ञ) हो अर्थात् होनेवालेग्रहोत्पातोंको प्रथमसे जाननेवाला और उनकीशांति आदि प्रक्रियाका जानने वालाहो पुनि (उदितोदितं) अर्थात् विद्या अभिजन अनुष्ठान आदि उदित कहिये शास्त्रोक्त तिनसे उदित कहिये समृद्ध संपन्न ऐसाहो और (दंडनीति) में कुशलहो किंतु अर्थ शास्त्रका वेत्ताहो तथा (अथर्वांगिरस) में भी कुशलहो किंतु प्रतिष्ठाशांत्यादि कर्मोंमें प्रवीण हो ३१२॥

श्रौतस्मार्त्तक्रियाहेतोर्वृणुयादेवचर्त्विजः। यज्ञांश्चैवप्रकुर्वीतविधिवद्भूरिदक्षिणान् ३१३ ॥
भोगांश्चदत्वाविप्रेभ्योवसूनिविविधानिच। अक्षयोयंनिधीराज्ञांयद्विप्रेपूपपादितम् ३१४ ॥
अस्कन्नमव्यथंचैवप्रायश्चित्तैरदूषितम्। अग्नेःसकाशाद्विप्राग्नौहुतंश्रेष्ठमिहोच्यते ३१५ ॥

ऐ०त्रयाणांसह—(श्रौत)कर्मअग्निहोत्रादि और(स्मार्त्त)कर्मउपासनाआदि क्रियाओंकी अनुष्ठान सिद्धिकेलिये ऋत्विजोंकोभी करै अर्थात् उनकर्मोंके जाननेवालोंको अपना ऋत्विक् बनावै-और-बहुतसी दक्षिणावाले राजसूयादि यज्ञोंकोभी विधिवत्करै३१३ पुनि उन्हींयज्ञोंकी क्रियासाधनाके दानद्वारा विप्रोंको नानाप्रकारकेभोग कहिये सौख्य वस्तु अनेक देकर और (वसूनि) कहिये धनभी सुवर्ण रूप्य आदि देवै क्योंकि यह ब्राह्मणों को अर्पण कियाहुआ धन राजाओंका अक्षयनिधि कहलाता किंतु इसका नाश नहींहोता ३१४ वरन हवनादि द्वारा अग्निमें होमेहुये यद्वा यज्ञादिकों में लगाएहुयेकी अपेक्षा(विप्राग्नि)में होमाहुआ श्रेष्ठ इससंसारमें कहलाता-(विप्राग्नि) विप्र रूप अग्निमें होमाहुआ अर्थात् विप्रोंको दियाहुआ इसलिये श्रेष्ठहोताहै कि जिस्से

यह विप्रोंका दियाहुआ(अस्कन्न)होताहै किन्तु फैलता या खिंडता नहीं और (अव्यथ) होता किन्तु उसयज्ञमें पशुहिंसा आदिभी होती इसमें हिन्सानहीं और प्रायश्चित्तों सेभी अदूषित होता किन्तु यज्ञादि संबंधी पशुहिन्सा के प्रायश्चित्तभी करने होते इसमें प्रायश्चित्तकी अपेक्षा नहीं ३१५॥

अलब्धमीहेद्धर्मेणलब्धंयत्नेनपालयेत्। पालितंवर्द्धयेन्नीत्यावृद्धंपात्रेषुनिक्षिपेत् ३१६॥

ऐ०-ऊपर कहाथा कि विप्रोंको धनादिक बस्तुदेवै तिसकी परिपाटी कहते हैं कि इसरीतिसे देवै-किन्तु जो बस्तु हाथमें नहींआई उसके लाभहोनेके लिये धर्मके अनुकूल बांछा और उपायभी अनेक भांतिसे करै और यत्नसे हाथ आएहुये की रक्षा करै किंतु निज आप उसकी अपेक्षा बनीरक्खै पुनि रक्षा कियेहुये कोभी नीति नाम युक्ति से बढ़ातारहै पुनि वृद्धिको पहुँचेहुये धनों को पात्रोंमें निक्षेप करै अर्थात् धर्म अर्थ कामरूप श्रेष्ठ पात्रोंको देतारहै पुनि दूसरा अर्थ यहभीहै कि बढ़ेहुये को निधि रूप पात्रोंमें निक्षेपनाम संचयभी करतारहै पर मुख्यार्थ वहीहै ३१६॥

अब कदाचित् भूमिआदि दानकियाहो उसकीरीति कहतेहैं॥

दत्वाभूमिंनिवंधंवाकृत्वालेख्यंतुकारयेत्। आगामिभद्रनृपतिपरिज्ञानायपार्थिवः ३१७॥

ऐ०-यथोक्त बिधिसे भूमि ग्राम क्षेत्र आदिदेकर अथवा(निबंध)नियतकरिकै(लेख्य) पत्र अर्थात् सनद उसकी करवावै-किसलिये कि-(आगामि) समय भविष्यत्कालमें जो होनेवाले(भद्रनृपति)युवराज आदि यद्वा जो कोई किसीहेतुसे किसी कालांतरमें वहां के राजा हों तिनके परिज्ञानके लिये लेख्यपत्र करवावै जिस्से उनको यह मालूम हो कि अमुक राजा ने अमुक मनुष्य को अमुकबस्तु अमुक समयपर दीथी सो यह (भूमिदान) या (निबंधों)का नियत करना और (लेख्य) पत्रोंका करवाना भी सब उसी (पार्थिव)के आधीन किंतु भूपतिके सिवाय किसी भोगपतिको अधिकार इसमें नहीं-और निबंध वे कहलातेहैं जो राजा किसीको बसौंड़ी या मासिक या नैत्तिक आदि अनेक रीतोंसे कुछ बन्धान नियत करताहै ३१७॥

लेख्यपत्र किसरीतिसे करवावै सो कहते हैं॥

पटेवाताम्रपट्टेवास्वमुद्रोपरिचिह्नितम्। अभिलेख्यात्मनोवंश्यानात्मानंचमहीपतिः ३१८॥
प्रतिग्रहपरीमाणंदानच्छेदोपवर्णनम्। स्वहस्तकालसंपन्नंशासनंकारयेत्स्थिरः ३१९॥

ऐ०सहद्वयोः-(पटे)अर्थात् कपास आदि सूत्रके बुनेहुये और माड़ी चढ़ेहुये बस्त्र पर या कसीदा आदिकी रीतिसे जैसी जहांकी परिपाटी हो या जैसी राजाकीइच्छा हो उसकेअनुसार अथवा(ताम्रपट्टे)तांबेकेपत्रपर लिखवाकर खोदवावे इत्यादि कागद पर्यंत औरवस्तु भी द्वितीय (वा) शब्दके अभिप्रायसे समुझनी तिसके ऊपर पहले राजानिज (आत्मनोवंश्यान्) अर्थात् अपने प्रपितामह पितामह पिता और (आत्मानं)

अपने नामको इन सबों के गुण वीर्य आदिकी विख्याति सहित (अभिलेख्य) कहिये लिखकर वा लिखवाकर तथैव (च) शब्दकी लक्षणा से प्रतिग्रह लेनेवाले का भी नाम उसकी विख्याति सहित लिखे और (प्रतिग्रहपरिमाणम्) अर्थात् प्रतिग्रह जो वह दान वस्तु किन्तु जितना निबन्ध या जितनी धरतीहो तिसका परिमाणभी इसप्रकार से लिखवावे कि इतने मुद्रा मासिक या बसौंड़ी तथैव (दानच्छेदोपवर्णनम्) अर्थात् जो पृथ्वी आदि का (दान) हो तौ उसका (छेद) कहिये परिच्छेद किन्तु अन्य धरतीसे भिन्नता करदेनी लिखै (दृष्टान्त) जैसे अमुकनाम धरतीका एकनिवर्तन अर्थात् क़ितश्च अमुकनाम नदीके अमुकनाम घाट वा किनारेसे लेकर अमुकठिकाने पर्यंत-जिसका इतनेबीघे या बिस्वे आदि परिमाणहै और इतना उसका भूमिलाभ होताहै-फिर इसपीछे उस धरतीका(उपवर्णन)भी इसप्रकार से लिखवावै कि उसके दक्षिण ओर अमुक क्षेत्र वा अमुकग्राम है पूर्वओर अमुक नदी वा भीलहै पश्चिम ओर खेड़ाहै पहाड़है उत्तरओर वन या राजमार्ग आदि जो कुछहो इत्यादि लिखे पीछे(स्वहस्तकालसम्पन्नम्)अर्थात् स्वहस्त सम्पन्न तथा कालसम्पन्नकरिके स्थिर शासन करै किन्तु दृढ़आज्ञाकर देवै(दृष्टांत)यथा अपने हस्ताक्षरों से संयुक्त करना तौ स्वहस्तसंपन्नता कहलाई सो इसप्रकारसे कि हमने अपने संमत पूर्वक निजहाथसे हस्ताक्षर किये और अमुक नामा मनुष्य अमुकनामाके पुत्रको जो इसपर लिखदिया सो प्रमाणहो-ऐसेही (कालसंपन्न) का यह भावहै कि पंचांगविधि सहित शाके और संवत्सर आदि दोप्रकारके कालपरिमाण उसमेंलिखै कि जोएकसे भूलपरनेकी संभावनाहो तौ दूसरेसे निश्चंय होजावै कि इतनीवर्षें इसपत्रके लिखे पीछे बीती हैं और उनपर्व आदिकालोंसेभीसंपन्नकरै कि उसदिन चंद्रग्रहण या संक्रांति आदि जोकुछहो-औरदृढ़ आज्ञाकाकरदेना यह कि जो कुछहमनेलिखा सो आगेकोभी कोई(भद्रनृपति) नहींमेटै किंतु इसलिखेहुयेका शिष्टमार्ग सबकोई पालनकिये जावे इसप्रकार सर्वथा उसपत्रको संपन्नकिये पीछे (स्वमुद्रोपरिचिह्नितम)अर्थात् अपनी राजकार्यसंबंधी मुहरसे लिखावटकेऊपर भिन्नकिसी योग्यस्थलपर चिह्नितकहिये अंकितकरदेवै३१८।३१९॥

भाषि०-(पार्थिवःस्वयंकुर्यात्) इस कथनसे संधिविग्रह आदि करनेवाले किसीअन्यमंत्री आदिको इसबातमें अधिकार नहीं सोई यहस्मृतिभी प्रमाणहै कि(संधिविग्रहकारीतुभवेद्यस्तस्यलेखकः।स्वयंराज्ञासमादिष्टःसलिखेद्राजशासनम्)अर्थात्-संधिविग्रह करनेवाला कोई मंत्री आदि जो उसका लेखकहो सो निज राजाकरके ठीक आज्ञा पायाहुआ राजशासन लिखै-किंतु राजाकी अधकची आज्ञापरभी स्वातंत्र्य सेही न लिखबैठे ३१८।३१९॥

अब राजाका निवास स्थान कहतेहैं ॥

रम्यंपशव्यमाजीव्यंजांगलंदेशमावसेत्। तत्रदुर्गाणिकुर्वीतजनकोपात्मगुप्तये ३२० ॥

ऐ०–राजा ऐसेदेशमें बसै जो (रम्य) कहिये रमणीय किंतु अशोक चंपक आदिवन वृक्षोंसे संपन्नहो और (पशव्य) कहिये पशुओंको हितकारीहो किंतु चारा आदिकी बहुताइतसे पशुओंकी वृद्धिकरनेवालाहो और (आजीव्य) कहिये कंदमूल पुष्पफल अन्नादिनाना वस्तुवालाहो जिस्से सबका पालनहोसकै और (जांगल) हो अर्थात् यद्यपि जांगल देश उसीको कहतेहैं जिसमें थोड़ा जल थोड़ेवृक्ष थोड़ेपर्वतहों परन्तु यहां पर जांगल शब्द एक उपलक्षण मात्र केवल एकांत देशका बाचकहै अर्थात् राजाके निवासयोग्य ऐसाजांगल देशहो जो बस्तीसे कुछदूर और अधिकजलवान् अधिक वृक्षवान् अधिक पर्वतवान्हो-तहां-निजमनुष्योंकी और कोषोंकी औरनिज आत्माकीभी रक्षाकेलिये एक अथवा अनेक दुर्गबनावै ३२० ॥

अधि०–दुर्ग उसस्थानको कहतेहैं जिसमें कोई शत्रुआदि जानाचाहै तौप्रथम तौ जाही नहींसकै अथवा बड़ेदुःखोंसे गतिकरके पहुँचसकै इसलिये दुर्गके न होनेमें राजाका निर्वाह नहींहोसक्ता-क्योंकि(अदुर्गोविषयःकस्यनारेःपरिभवास्पदम्। अदुर्गोऽनाश्रयोराजापोतच्युतमनुष्यवत्) अर्थात्-विना दुर्गका राज किस राजाका निजशत्रु के पहुँचायेहुये पराभवका आस्पद नहीं होजाता इसलिये विनादुर्गके अनाश्रयभूत राजा ऐसा गिनाजाता जैसा जहाज़से गिराहुआ मनुष्य विनआश्रय होजाताहै-मत्स्यपुराणके १९१ अध्यायमें दुर्गरचनाकी अपेक्षासे यह कहाहै कि(दुर्गंचपरिखोपेतं वप्राट्टालकसंयुतम्। शतघ्नीयंत्रमुख्यैश्चशतशश्चसमावृतम्-गोपुरंसकपाटंचतत्रस्यात्सुमनोहरम्। सपताकंगजारूढोयेनराजाविशेत्पुरम्)अर्थात्-दुर्गभी सब ओरसे खाई करके युक्त और वप्रनाम मट्टीके ऊँचे२टीले दमदमे जो मोरचाओंके योग्यहों और अट्टालक नाम अटारी अंटे और ऊंचेऊंचे बुरज इनसेभी संयुक्तहो और शतधाप्रकारकी शतघ्नी नाम तोपों और यंत्रचरख आदि सबचीजोंसेभराहो-तिसदुर्गमें गोपुर कहिये द्वारफाटिक सहित सुन्दरमनका हरनेवाला और इतना ऊंचाहो जिसमें होकर हाथीपर सवारहुआ राजा निशानोंसहित दुर्गपुरमें प्रवेशकरै-दुर्गभी छःप्रकारके होतेहैं सोई मनुजीने उनके यहलक्षण कहेहैं कि(धन्वदुर्गंमहीदुर्गमब्दुर्गंवार्क्ष्यमेव च। नृदुर्गंगिरिदुर्गंचसमावृत्यावसेत्पुरम्) अर्थात्-इनछःमें से कोईसा एकदुर्ग अपने वासपुरके प्रति सबओरसे घेरादेकर निवासकरै-तिनमें एकतौ (धन्वदुर्ग) उसे कहतेहैं जो अपने निवासपुरके सब ओर पाँच२योजन भूमिपर्यंत मरुदेश निर्जलहो वहांभी वड़े दुःखोंसे पहुँचना होताहै जैसा बीकानेर आदि मारवाड़ देश मरुभूमि प्रसिद्धहै १ दूसरा (महीदुर्ग) उसे कहतेहैं जो पत्थरईंटसे बनायाहुआ द्वादशहाथ ऊंचाकोटसब

ओरसे घेराहुआ वहु विस्तारवाला युद्धके हेतुसे ऊपर सेनाके फिरने योग्य अति चौड़ाकोट जिसमें साधारण अनेक भांतिके गवाक्षझरोखेभी वनेहों सुन्दर कपाटों सहित द्वारहो जैसे दिल्ली आगरा आदिके क़िले २ तीसरा (अब्दुर्ग) उसे कहते हैं जो सब ओर अगाधगहिरे जलसे घिराहो जैसे काश्मीर और ब्रह्माके देशआदि में क़िले प्रसिद्धहैं३ चौथा (वार्क्षदुर्ग) उसे कहतेहैं जो सब ओर वृक्षोंसे घिराहो जैसा रुहेलोंके रामपुरमें वांसोंका घेरा और कटियारी मुल्क अवधमें ववूरोंका४ पांचवां(नृदुर्ग)उसे कहतेहैं जो चार प्रकारकी सेनासे चाहे तिसमैदानमें रचना करिके बांधिलिया जाताहै जैसे महाभारत और भोजप्रवंध आदि ग्रंथोंमें विशेषकर चक्रव्यूह शकटव्यूह पद्मव्यूह आदिनाना भांतिसे कहेहैं और लोकमेंभी युद्धसमय वहुधारचेजातेहैं उसको चाहे सदैव कोई उसीप्रकारसे वनाकर उसमें निर्भय वासकरतारहै तौ स्थावरदुर्ग बनानेकी ज़रूरत न हो क्योंकि यहजंगमदुर्ग इसीसे कहलाताहै कि इसको चाहे तहां उठाकर लेजासक्के हैं वरन ऐसे राजा सदैव इसीदुर्गसे निर्वाहकरते कि जो किसी प्रवल के भयसे वनमें भागे फिरतेहैं ५ छठा (गिरिदुर्ग) उसको कहतेहैं जो सब ओर पहाड़ोंसे घिराहो जैसे नैपाल और जयपुर आदिकेदुर्ग प्रसिद्धहैं ६-यद्यपिदुर्ग सभीश्रेष्ठहैं पर इनमें छठा गिरिदुर्ग सबसे उत्तम होताहै-यथा(एषांहिवाहुगुण्येनगिरिदुर्गंविशिष्यते) इनमें (धन्वदुर्ग) के रहनेवाले तौ मरुमृगोंके समान निर्भयगिने जातेहैं १ (महीदुर्ग) के रहनेवाले ऐसे निर्भय कहलातेहैं जैसे बिलमें रहनेवाले जीवोंको शत्रुनहीं पीड़ादेसक्का२ (जलदुर्ग)के रहनेवाले ऐसे निर्भय कहलातेहैं जैसे जलचरजीव जलमें निजशत्रु के वशमें नहीं आते३ (वृक्षदुर्ग)में रहनेवाले ऐसे निर्भय कहलातेहैं जैसे वृक्षोंपर बसने वालेजीव किसीके वशमें नहीं आते४ (सेनादुर्ग) के रहनेवाले इतना निर्भय कहलातेहैं जितना मनुष्य अपने मनुष्यत्वसे किसी अन्य जीवके वशमें नहीं आता५ (गिरिदुर्ग) केरहनेवाले इतना निर्भय कहलाते जैसे देवता स्वर्गमें बैठेहुये मनुष्यके वशमें नहीं आसक्केहैं इसीसे गिरिदुर्गसबसे उत्तम कहलाता६-तथाच (त्रीण्याद्यान्याश्रितास्त्वेषांमृगगर्ताश्रयाप्चराः। त्रीण्युत्तराणिक्रमशःप्लवङ्गमनरामराः-यथादुर्गाश्रयानेतान्नोपहिंसंतिशत्रवः।तथारयोनहिंसंतिनृपंदुर्गसमाश्रितम्)यह बड़ाई दुर्गमें रहनेवालों की रक्षामध्ये लिखीगई अब आगे दुर्गद्वारा कामोंकी सिद्धिवर्णन करतेहैं मनुजीके कथनसे-यथा(एकःशतंयोधयतिप्राकारस्थोधनुर्द्धरः। शतंदशसहस्राणितस्माद्दुर्गंविधीयते-तत्स्यादायुधसंपन्नंधनधान्येनवाहनैः।ब्राह्मणैःशिल्पिभिर्यंत्रैर्यवसेनोदकेनच-तस्यमध्येसुपर्याप्तंकारयेद्गृहमात्मनः। गुप्तंसर्वर्तुकंशुभ्रंजलवृक्षसमन्वितम्) अर्थात्-प्राकारमें बैठा हुआ धनुष्धारी एकही वाहरले सौ मनुष्योंकेप्रति लड़ताहै एवं प्राकार में बैठेहुये मनुष्योंका सैकरा एक वाहरले दशहज़ारोंके साथ लड़सक्काहै तिसकारण

से दुर्गबनातेहैं-वह दुर्गशस्त्रों से संपन्नहोवै तथैव धन धान्य और चतुष्पदादि बाहनों और ब्राह्मणोंसे और शिल्पिनाम कारीगरोंसे अनेक यंत्रोंसे और यवसनाम घासफूस भूसाआदिसे जलसेभी संपन्नहोना चाहिये-तिसके मध्यमें अपने रहने योग्य सुपर्याप्त कहिये बहुत ठीक रचनावाला विस्तारवान् घरबनवावे-पुनि वह स्थानभी सब ओरसे (गुप्त) हो अर्थात् खाई अंतर कोट छारदीवारी आदिकी रक्षातथा सेना की तैनाथी आदिकी रक्षाओंसे सुरक्षित और अगम्यहो और (सर्वर्तुक) हो किन्तु वर्षा शीत आतप आदि सभी ऋतुकी आरामयोग्यहो और (शुभ्र) कहिये अतिनिर्मलहो जलों और वृक्षोंसेभी संयुक्तहो यह मनुजीने कहाथा-इसभांति निर्मित किये हुये दुर्गोंके(अध्यक्ष) कहिये अधिष्ठाता और उन्हींके उपलक्षणवान् रक्षकभी जैसेहोने चाहिये तिनके लक्षणकहतेहैं-यथा(अनाहार्य्यश्चशूरश्चतथाप्राज्ञःकुलोद्गतः।दुर्गाध्यक्षःस्मृतोराज्ञस्तद्युक्तःसर्वकर्मसु)अर्थात्-राजाका दुर्गाध्यक्ष ऐसा होनाकहाहै जो प्रथम तौ (अन्-आहार्य्य) हो किन्तु जिसे कोई घेरकरपकड़ न सक्ताहो ऐसेपराक्रम और चालांकी वालाहो और युद्धकरनेमें विख्यात शूरमाभीहो तथैव (प्राज्ञ) कहिये अतिचतुरहो और कुलोद्गतहो किन्तु प्रथम तौ राजाकेही कुलकाहो अथवा किसी ऐसे उत्तम कुलकाहो जो अपने कुलमें सर्वोपरि अंकुशरूप नियमित कियागयाहो-जो२ लक्षण इसमें कहे वेही इसके आधीनकी सेनामेंभीहों अर्थात् ठेठदुर्गकी रक्षासंबंधी सेनाके सभी लोग इसभांतिके चुगमाहों ३२० ॥

तत्रतत्रचनिष्णातानध्यक्षान्कुशलाञ्छुचीन्। प्रकुर्यादायकर्मांतव्ययकर्मसुचोद्यतान् ३२१॥

ऐ०—(तत्रतत्र) जहांके तहां ठौरठौर अर्थात् धर्म,अर्थ,काम, मोक्ष संबंधी कार्य्योंमें श्रेष्ठ (अध्यक्षों) को नियतकरे जो उन्हीं कामोंके करनेयोग्यहों १-सो कैसे अध्यक्षोंको नियतकरे (निष्णातान्) अर्थात् जो उसीएक अपने२ व्यापारमें तत्परहों किंतु बहुधंधी न हों जिस्से उनका चित्तएकाग्र न होसके२पुनि (कुशलान्) अपनेसंबंधी कामोंकी प्रक्रियामेंभी प्रवीणहों३-और (शुचीन्) अर्थात् चार प्रकारकी उपधा जिनका चर्चा ३११ की अधिकोक्तिमें आयाथा तिनसे शुधेहुयेहों४-पुनि (आयकर्मांत-उद्यतान्) अर्थात् आय कहिये लाभसंबंधी कर्म जो सुवर्णादि उत्पत्तिके (आकर) स्थानों पर आवश्यक होतेहैं तिनके (अंत) कहिये निकट जाकर निज २ कामकी अवेक्षामें उद्यतर हैं किंतु उपस्थित बनेरहाकरैं ऐसा उनका स्वभावहो ५-पुनि (व्ययकर्मसु-उद्यतान्) अर्थात् सुवर्णादि अन्नादि शस्त्रादिके खर्चकरने किंतु देनेवाले कामोंपर उपस्थित रहने वालेहों६-और(च)शब्दकेअभिप्रायसे(प्राज्ञत्व)आदिगुणयोग्यतासेभी संपन्नहों३२१॥

अधि०—ऊर्ध्वोक्तबातोंका निर्णय-ऊपर कहाथा कि धर्म,अर्थ,काम, मोक्ष संबंधीकार्योंमें जो लोग उन्हींकामोंके योग्यहों तिनको नियतकरै सो कहतेहैं-यथा (धर्मकृत्येषु

धर्मज्ञानर्थकृत्येषुपंडितान्।स्त्रीषुक्लीवान्नियुंजीतनीचान्निंद्येषुकर्मसु)अर्थात्-पंचयज्ञादि और दानादि धर्म संबंधी कार्योंके स्थान धर्मज्ञोंको अधिष्ठाताकरै (और) अर्थकृत्य कहिये धनकी आमदि संबंधी कार्योंमें पंडितोंको अर्थात् शास्त्र और लोकसेभी अतिचतुरोंको कि जो हानि लाभकी विवेचनामें समर्थहों (और) काम संबंधी कार्योंपर अर्थात् स्त्रियोंकी रक्षा और पालन आदि स्थानोंमें क्लीवोंको किंतु जो नपुंसकहों तिन कोही अधिष्ठाता करै (और) निंद्य यद्वा मलीन कामोंके स्थान नीच जातोंको अध्यक्ष बनावै-तिसपर वे आपभी उनकार्योंमें कुशल कहिये प्रवीणहों यहकहाथा-तद्यथा-(यो यत्रकुशलःकार्येतंतत्रविनियोजयेत्। कर्मस्वदृष्टकर्मायःशास्त्रज्ञोपिविमुह्यति) अर्थात्-जो२ मनुष्य जिसकार्य्यमें निपुण और प्रवीणहो उसीको उसकार्य में आरोपितकरै-क्योंकि-कर्मोंमें जो अदृष्टकर्मा होता वहशास्त्रज्ञभी विमोहित होजाता अर्थात् जिसने किसी कामका ढंगकेवल उसकामके विधिनिषेधरूप शास्त्रद्वारापढ़ा और समझाभी यद्यपिहो पर उसकामको करतेहुये कभीनदेखाहो तौवह ऐसाशास्त्रज्ञभी अदृष्टकर्मा होनेके हेतुसे उसकामके करने या करवानेमें विमोहितहोता अर्थात् घबराता और उसका जीउलझताहै (च) शब्दकेअभिप्रायसे प्राज्ञत्व आदिगुण योग्यता जोऊपर कहीथी-सायथा-(प्राज्ञत्वमुपधाशुद्धिरप्रमादोभियुक्तता। कार्येषुव्यसनाभावःस्वामिभक्तिश्चयोग्यता) अर्थात् (प्राज्ञत्व) कहिये चतुरता-और उपधाशुद्धि जैसी ३११ की अधिकोक्तिमें कहचुकेहैं तिसका होना-और (अप्रमाद) कहिये गफ़लत वा असावधानीका न होना-और (अभियुक्तता) कहिये जिसकाम पर लगायाजाय तिसमें तत्परबनारहना-और (कार्येषु-व्यसनाभावः) किंतु निजसंबंधी कार्योंमें व्यसनका अभावकहिये न होना सो इसबातके कई सिद्धांतहैं तिनमें एकतौ यह कि जिसकामको अपनेस्वामीके लिये करता या करवाताहो उसी कामका व्यसन अपनेलियेभी उत्पन्न करिकै उसकामको जुदानिज अपनेलिये प्रारंभकरलेना किसीलाभकी दृष्टिसे-दूसरा यहकि उसकामकेकरने या करवानेमें व्यसन कहिये बिपत्तिझगड़ा टंटा बिघ्न उपद्रव आदि बारम्बार खड़े करदेने-तीसरा यह कि उसकार्यके सिवाय अन्य कामोंमें आत्मीयव्यसन उत्पन्न करलेने-इत्यादि अनेक सिद्धांतरूप व्यसन जिसमें न हों किंतु चित्तकी एकाग्रतासे उसीकामकी साधनामें तत्परबनारहै-इनकहेहुये शुभगुणोंका होना उस मनुष्यकी योग्यता अर्थात् लियाक़त कहलातीहै ३२१॥

नातःपरतरोधर्मोनृपाणांयद्रणार्जितम्। विप्रेभ्योदीयतेद्रव्यंप्रजाभ्यश्चाभयंसदा ३२२॥

यआहवेषुवध्यंतेभूम्यर्थमपराङ्मुखाः। अकूटैरायुधैर्यांतितेस्वर्गंयोगिनोयथा ३२३॥

ऐ०सहृदयोः—पहले ३१४ श्लोकसे लेकर सामान्य धनों और भोगोंका दान फल कहाथा अब यहांपर विक्रमार्जित धनोंकादान फल विशेष कर कहतेहैं कि-राजाओं

को इस्से अधिक परतर धर्म और कोई नहीं जो विप्रोंको (रणार्जित) कहिये रणके द्वारा संग्रहकिया धन और प्रजाओंको अभयदान सदैव दियाजाताहै ३२२ रणमें विपत्तिभी आपरतीहै फिर कहांसेधन और दान या धर्महोसक्ताहै किंतु न जानें पीछे क्याहो इसलिये कुछ न करनेमेंही कल्याण है इस हेतुसे कहते हैं कि-ये भूपालभूमि आदिरत्नोंके अर्थ(आहवेषु)कहिये युद्धोंमें(वध्यंते) मारेजातेहैं ते उसप्रकार सुखसे स्वर्ग को जातेहैं जैसे योगाभ्यासमें रतहोतेहुये योगीपुरुष चलेजातेहैं परन्तु वेही कि जो (अपराङ्मुखा) अर्थात् सन्मुख होकर मारेजातेहैं किंतु मुहँफेरकर भागतेहुये जो पीछे शस्त्रखातेहैं वे नहीं और वेभी कि जो आप (अकूटशस्त्रों) से लड़तेहैं किन्तु ये विषदग्धआदि नानाकूट शस्त्रोंसे बधकरतेहैं ते नहीं ३२३॥

अब साधारण सभी युद्धकारियोंका धर्म कहतेहैं॥

पदानिक्रतुतुल्यानिभग्नेष्वविनिवर्तिनाम्। राजासुकृतमादत्तेहतानांविपलायिनाम् ३२४॥

ऐ०-भग्नेषु-अविनिवर्तिनाम्-पदानि-क्रतुतुल्यानि-इतिपूर्वार्द्धसंबंधः-अर्थात् हाथी घोड़ा रथ पदातीरूप अपने बलोंके भग्न होजाने किंतु सेना भंग होजानेमें जो कोई धैर्यवान् होकर अविनिवर्तीहोते अर्थात् उलटेनहीं फिरते किन्तु शत्रुओंके सन्मुख लड़ते चले जातेहैं तिनके जातेहुये एक२पग अश्वमेधादि यज्ञोंके तुल्य फल देनेवाले होतेहैं-इस्से बिपरीत करनेमें दोषहै सो पिछले अर्द्धसे कहतेहैं कि-विपलायिनां-हतानां-सुकृतं-राजा आदत्ते-अर्थात् पराङ्मुखहोकर भागतेहुये मारेजानेवालों का पुण्यपहला संचित कियाहुआभी राजालेलेता है ३२४॥

परन्तु अग्रोक्तोंको मारनेमें निषेधहै सो कहतेहैं॥

तवाहंवादिनंक्लीवंनिर्हेतिंपरसंगतम्। नहन्याद्विनिवृत्तंचयुद्धप्रेक्षणकादिकम् ३२५॥

ऐ०-किंतु इतनोंको कदाचित्भी न मारै एक तो (तवाहंवादिनं) अर्थात् जो यहकह कर आधीन होनेलगे कि मैं तुम्हाराहूं १ (क्लीव) नपुंसक जोयुद्धके भयसे भिन्नछिपता फिरताहो२ (निर्हेति) निःशस्त्र जिसके हाथमें शस्त्रनहों या हों और उसने फेंकदियेहों या युद्धकरतेहुये गिरगयेहों किंतु किसीतरहसे निहत्थाहो३(परसंगत) जो और किसी से लड़रहाहो ४ (विनिवृत्त) जो लड़तेहुये भागपड़ाहो या लड़ाईसे हाथ खींचाहो ५ (युद्धप्रेक्षणक) जो युद्धका तमाशा देखरहाहो६ (आदिकम्) इस आदिशब्दसे देखनेवाले को आदिलेकर औरभी अनेक संगृहीतहैं तिनका चर्चानीचे अधिकोक्तिमें ३२५॥

अधि०-ऊर्ध्वोक्त आदि शब्दकासिद्धांत(गौतमजी) के वाक्यसे अपेक्षितहै-यथा-(न दोषोहिंसायामाहवेऽन्यत्राश्वसारथ्यनायुधकृतांजलि। प्रकीर्णकेशपराङ्मुखोपविष्टस्थलवृक्षारूढदूतगोब्राह्मणवादिभ्यः) अर्थात्-(गौतम)ऋषिने यहकहाथा कि रणमेंहिंसा का दोष नहीं है परन्तु इनके सिवाय किंतु घोड़ा१ सारथी२अनायुध-निहत्था३कृतां-

जलि-हाथ जोड़ताहुआ ४ प्रकीर्णकेश-जो अपनी दाढ़ी हाथमें लेकर आगेकरै कि चाहै मारो चाहै छोड़ो और वहभी प्रकीर्णकेशहै जिसकी आंखों आगे शिरके बाल या बालोंके उपलक्षणसे कुछवस्त्रआदि आड़हो जिसके हेतुसे वह तत्काल अपने हंताको देखनहीं सक्ता५ पराङ्मुख-जिसने लड़ाईसे मुँहफेरलियाहो६उपविष्ट-बैठाहुआ ७ स्थलारूढ़-जो युद्धभूमिसे अलहदे किसी स्थलमें खड़ाहो तिसको यद्वा बाहनसे उतराहुआ भी स्थलारूढ़ कहलाता उसको बाहन पर सवारहुआ नहीं मारै यहधर्म युद्धकीमर्यादहै८वृक्षारूढ़-जो वृक्षपरचढ़ाहो९दूत-जो चिट्ठी या ज़बानीख़बरलायाहो १०गो-गऊ या वृषभ और वृषभकेउपलक्षणसे अन्यभारवाहभी११ब्राह्मण-साधारण मात्रभी परन्तु जो सन्मुख युद्धनकरताहो १२ वादी-जो लड़ाईको थाँभकर तर्कवादमें तत्परहो १३-अर्थात् इनको मारनेसे रणमेंभी हिंसादोष लगताहै-इसवार्त्तामध्ये कुछ विशेषतासे(शंखाचार्य)ने भी वर्जित किये हैं-यथा-(नपानीयंपिबंतंनभुंजानंनोपानहौमुंचंतंनावर्माणंनसवर्माणं नस्त्रियंनकरेणुंनवाजिनंनसारथिं नदूतंनब्राह्मणंनराजानमराजाहन्यात्-अर्थात-एक तो पानीआदि कुछपीतेहुये को नमारै१ नभुंजानं-खातेहुयेको भी नहीं२ नोपानहौमुंचंतं-जूताउतारतेहुये और इसी उपलक्षणसे पहिरतेहुयेकोभी नहीं३ नावर्माणं-जिसने कवच उतारदियाहो तिसको नहीं४ नसवर्माणं-कवचपहिरतेहुयेको नहीं५ नस्त्रियं-स्त्रीको नहीं६ नकरेणुं-हाथीको नहीं७ नवाजिनं-घोड़ेको नहीं ८ नसारथिं-सारथीको नहीं९ नदूतं-दूतको नहीं १० नब्राह्मणं ११ (नराजानं-अराजा हन्यात्) अर्थात् राजाको सन्मुख युद्धकरतेहुयेको भी राजाही अपने हाथसेमारै परंतु जो राजा नहीं किन्तु राजाका नौकर मात्र कोईहो सो प्रतिपक्षी राजाको मारै नहीं अर्थात् पकड़लेना यह जुदीबातहै पर उसपर शस्त्र नहीं डाले क्योंकि राजा साक्षात् ईश्वरकारूप होताहै ३२५॥

अब दरबार आदि धंधोंका नियम कहतेहैं॥

कृतरक्षःसमुत्थायपश्येदायव्ययोस्वयम्। व्यवहारांस्ततोदृष्ट्वास्नात्वाभुंजीतकामतः ३२६॥
हिरण्यंव्यापृतानीतंभांडागारेपुनिक्षिपेत्। पश्येच्चारांस्ततोदूतान्प्रेषयेन्मंत्रिसंगतः ३२७॥

ऐ०सहद्वयोः-(कृतरक्षः-समुत्थाय) रक्षा किया हुआ किंतु यथा संभव सिपाहियों की रक्षासे संपन्न ऐसा दिनप्रति प्रातःकाल उठिकर (आयव्ययो-स्वयं-पश्येत्) लाभ और खर्च दोनोंका लेखा जोखा आपदेखै (ततः) तिसपीछे (व्यवहारान्-दृष्ट्वा) मुक़दमातके इंसाफोंको देखभालकर मध्याह्नसमय यद्वा (कामतः) जिस किसीसमय अपनी इच्छा हो तब (स्नात्वा-भुंजीत) स्नानकरिकै भोजनकरै ३२६ तिसपीछे (हिरण्य) कहिये सोना चांदी आदि जो कुछधन (व्यापृतानीतं) किन्तु (व्यापृतैः-आनीतं) अर्थात् व्यापृतोंकरके लायाहुआ उक्तधन आप देखकर (भांडागारेषु) भंडारोंमें (निक्षिपेत्) डालदेवै किन्तुरख

देवै या रखवादेवै जैसा उचितहो-व्याप्टतोंका लायाहुआ अर्थात् व्याप्टत उन्हें कहते हैं जो धनके उत्पत्ति स्थानोंपर अधिकारी नियत किये जातेहैं-यह कामकिये पीछे (चारान्-पश्येत्) चार नाम गूढ़चर किन्तु मुखबिरखुफिया जो विश्वासकिये और कहीं भेजेहुये गूढ़वृत्तांत लेकरआयेहों तिनकोदेखै अर्थात् उनकोदेखकर कहींटिकावै और पीछे किसी उचित समयपर उनकीबात बूझै सो इकल्ला आपनहीं किन्तु (मंत्रिसंगतः पश्येत्) मंत्रीके साथ होकर देखैबूझै ततः तिसके अनन्तर मंत्रीके साथहुआ राजा (दूतान्-प्रेषयेत्) दूतोंको भेजे अर्थात् अन्यत्रभी जरूरी कामोंको जहां भेजनाहो और पूर्वोक्त गूढ़चारोंकेभी कहेहुये वृत्तान्त का दृढ़ निश्चय करनेको दूतभेजे जो उचित समझै ३२७॥

अधि०सहृदयोः-पूर्वश्लोकमें व्यवहारोंका देखनाकहाथा सोतो व्यवहाराध्यायआदि व्यवहारांगरूप शास्त्रोंकेअनुसारदेखै-उक्तंच(व्यवहारान्नृपःपश्येद्विद्वद्भिर्ब्राह्मणैस्सहाधर्मशास्त्रानुसारेणक्रोधलोभविवर्जितः)-अर्थात्-राजा क्रोध और लोभोंको छोड़कर धर्मशास्त्रकेअनुसार व्यवहारोंको देखै पर इकल्लानहीं किन्तु विद्वान्ब्राह्मणों और मंत्रियों को साथलेकर देखै ३२६ (चार)और दूतोंका चर्चा कियाथा तिनमें चार का दूसरा नाम (प्रणिधि)कहतेहैं उसीको गूढ़चर भी कहते हैं इसहेतुसे कि वह छिपकर अन्य राज्योंका भेदभाव और अपने राज्यकाभी सारावृत्तांत गूढ़रूपसेचल फिर लेआता है-इसप्रणिधिमें इतनेगुण होनेकहे हैं नीतिवाक्यामृतमें-(अमौढ्यममान्द्यममृषाभाषित्वमभ्यूहकत्वंच)-अर्थात्-जिसमें मूढ़ता मन्दता असत्यभाषिता नहो और(अभ्यूहकत्व) कहिये प्रत्येक वार्त्ताको ऊहासेही पहँचानलेना यहप्रकृतिहो इसके बिशेषलक्षणदेखो आगे३३१की अधिकोक्तिमें-दूत उनको कहतेहैं जो किसीराजाके समीप प्रत्यक्षभाव से प्रकटभेजे जायँ परन्तु यहतीन प्रकारके होते हैं तिनकेनाम-यथा-निसृष्टार्थ १ संदिष्टार्थ२ शासनहर३-तहां-(निसृष्टार्थ) वे कहलातेहैं जो राजकार्योंको देशकालके औचित्य अनुकूल आपही कथनकरनेमें समर्थहों किन्तु किसीकामकी आज्ञानाम मात्र सेही मिलनेपर तत्काल उसकामके करनेवालोंको अपनी बुद्धिसेही यथायोग्य समझादिया अथवा जहांकहीं आपही भेजेगये तो वहांजाकर सबउत्तर प्रत्युत्तर अपनी प्रज्ञासे आपही साधन करिआये बरन अन्त्य सिद्धांत इनका यहीहै कि बिनाआज्ञा भी देशकाल के अनुकूल योग्य कामोंका साधन स्वतःकरसकै१(संदिष्टार्थ)वे कहलाते हैं कि जितनीबात उनको आदेश पूर्वक सुनादीगई उतना संदेशा जाकर कहसुना देवें उसको कि जहांभेजेजायँ २ (शासनहर)वे कहातेहैं कि जिनको मुखसे तो सुनीहुई भी कहआनेमें चतुरता नहीं परन्तु लिखेहुये आज्ञापत्रों को पहुँचासकैं ३-इन दूतों के गुण और लक्षणभी पहले मनुजीके कहे दर्शातेहैं-यथा-(दूतंचैवप्रकुर्वीतसर्वशास्त्र

विशारदम्। इंगिताकारचेष्टज्ञंशुचिंदक्षंकुलोद्गतम्) अर्थात्-राजा ऐसेपुरुष को दूत नाम वकीलबनावै जो सर्वशास्त्रों किंतु देखेबिनदेखेभी नीत्यादि अर्थ शास्त्रोंकेसमझने में बुद्धि विशारद हो पुनि (इंगित-आकार-चेष्टज्ञं)इन तीनबातोंकाज्ञाता तहां(इंगितज्ञ)जो मनोगत अभिप्रायमात्र का सूचन करनेवाला वचन स्वरादि से और (आकारज्ञ) जो मुख प्रसन्नता मुखमलीनता आदि देह धर्मोंकी समस्या से बातको पहँचानै और (चेष्टज्ञ) हाथ उँगुली नेत्र आदिके इशारे से तत्ववार्त्ता को सूचन करसकै और (शुचि) जो धन तथा स्त्रीव्यसनसे शुद्धहो(दक्ष)चतुर हो और कुलोद्गतभीहो किंतु यातौ राजा केही कुलकाहो यद्वा किसी प्रतिष्ठित कुलका हो-क्योंकि (अनुरक्तःशुचिर्दक्षःस्मृतिमान्देशकालवित्। वपुष्मान्वीतभीर्वाग्मीदूतोराज्ञःप्रशस्यते) अर्थात्-राजाका दूत ऐसा उत्तम होताहै जो(अनुरक्त)हो किन्तु अपने स्वामीके सिवाय सभीमनुष्योंमें स्नेह करनेवाला हो जिस्से किसी राजाकेपास भेजाजाय तो वहां बातों २ द्वेष नहींकरलेवे और(शुचि)जो धन तथा स्त्री व्यसनसे शुद्ध होवे जिस्से कोई प्रतिपक्षी राजा उसको धन या स्त्री देकर लोभसे तोड़नहींलेवे और(दक्ष)चतुरहोना इसलिये योग्यहै कि काम को और कामके समयको उलाँघै नहीं और(स्मृतिमान्)होना इस्से उचितहै कि सीख पायेहुये संदेशेको यादरक्खे इत्यादि किसीबातको भूलैनहींऔर(देशकाल)का जानने-वालाइसलिये कि देश और कालको पहँचानकर कुछ अपनीबुद्धिसेभी जैसा उचित समझै कहसकै इसीलिये प्रत्यक्ष देशों और कालोंकी व्यवस्थाभी सीमा आदि वा आचार आदि सार्वदेशी व्यवहारों को यथावत् रीतिसे जानताहो किन्तु शास्त्र और लोकसेभी जिस्से देशकालके अनुकूल किसीवार्त्तामें अनुत्तर न होजाय-और (वपुष्मान्) अर्थात् अच्छे डीलडौल स्थूलदेह सुरूपवान् वा निरोगीभीहो जिस्से उसका बचन शीघ्रहृदयमें स्वीकारहो और निरोगतासे किसीकामको अधकच्चाछोड़कर नहीं भागे-और(वीतभीः)किंतु निर्भय स्वभावहो जिस्से किसी अप्रिय संदेशकेभी कहनेमें भय-भीत न होजाय और (वाग्मी)हो किन्तु उक्तिपूर्वक मधुरभाषणसे बातचीत करता हो जिस्से सुननेवालेका मन उपरामको न पहुँचे ऐसे दूतसे राजाके सबकामसिद्धहोतेहैं-मत्स्यपुराणमेंभी इसके लक्षण कहेहैं-यथा (यथोक्तवादीदूतःस्याद्देशभाषाविशारदः। सक्तःक्लेशसहोवाग्मीदेशकालविभागवित्॥विज्ञातदेशकालश्चदूतःस्यात्समहीक्षितः। (तेषामपि) वक्तानयस्ययःकालेसदूतोनृपतेर्भवेत्) अर्थात्-दूत ऐसाहो जो यथोक्त वादी किन्तु जो बात राजाने कहकर भेजाहो उसीबात का चर्चा वादकरे किन्तु उस बातको छोड़कर कोई नईबात न खड़ी करलेताहो ऐसा स्वभावही उसका सदैवहो-अनेक देशभाषाओंके बोलने और समझनेमें विशारदहो क्योंकि अनेक देशोंमेंजा-ना परैगा जहां की भिन्न२ भाषाहोती हैं (सक्त) हो किंतु कामोंमें लगारहताहो (क्लेशों)

कोभी सहलेनेमें पक्काहो क्योंकि देशविदेश जानेमें क्लेश अवश्यहोतेहैं (वाग्मी) हो इसके लक्षण ऊपर कहचुके हैं (देशविभागवित्) भूगोल आदिके द्वारा देशोंकी सीमा आदि अनेक विभागोंका जाननेवाला (कालविभागवित्) तीनों कालका विभाग किंतु भूत भविष्य वर्त्तमानमें पलघड़ी आदिसे लेकर युगों पर्यंतका गणित हिसाब और राजाओंके शकसंवत्सर और वितीत राजाओंके मितिग्रंथ अर्थात् तवारीख़ोंकाभी जानने वालाहो-इसके सिवाय (विज्ञातदेशकाल) हो अर्थात् समय२का वर्तावा सर्वदेशों और कालोंकी रीतिभांति मर्यादें यहभी सब जानी सीखीहों सो मनुष्य राजाकादूत हो(तिनमेंभी)जो कोई उपस्थित समयपर तत्काल नयनीतिका वक्ताहो सोठेठ नृपति का समीपवर्त्ती दूतहोवै-जिसके द्वारा अन्य देशों के आये हुये विराने दूतों से वार्त्तालाप राजाकरै किंतु निजअपनेही मुखसे नहीं-चाणक्यमेंभी इसके लक्षणकहेहैं-यथा (मेधावीवाक्पटुःप्राज्ञःपरचित्तोपलक्षकः । धीरोयथोक्तवादीचएषदूतोभिधीयते)अर्थात् (मेधावी) बुद्धिमान्हो (वाक्पटुः)किन्तु जिसकी वाणीमें लावण्य और चतुरताहो (प्राज्ञ) पंडित विवेकीहो-और पराये चित्तकी भावना लखसक्काहो (धीर) धैर्य्यवान्हो (यथोक्तवादी) भीहो इसकेलक्षण ऊपर कहचुकेहैं-यहदूत कियाजाताहै-दूतोंकी महिमा वारम्वार इसलिये कहनीपरी कि दूत राजद्वारोंमें बड़ी पदवीका मनुष्यहोता और संधितथा विग्रह यह दोनों बात इसकेहाथमें रहती हैं इसीलिये (मनुजीने) कहाहै कि (अमात्येदंडआयत्तोदंडेवैनयिकीक्रिया । नृपतौकोशराष्ट्रेचदूतेसंधिविपर्ययौ॥दूतएव हिसंधत्तेभिनत्त्येवचसंहतान् । दूतस्तत्कुरुतेकर्मभिद्यंतेयेनवानवा॥सविद्यादस्यकृत्येषु निगूढेङ्गितचेष्टितैः । आकारमिंगितंचेष्टांभृत्येषुचचिकीर्षितम् ॥ तथाप्रयत्नमातिष्ठेद्यथात्मानंनपीडयेत्) ३२७॥अर्थात्-दंड जो वस्तुहै सोतौ (अमात्य)नाम सेनापतिकेआधीनहै किन्तु हाथी घोड़ा रथ पयादे यह चतुरंगिनीसेना और शस्त्र जोहैं सोईदंडरूप हैं सो उसके आधीनमें सौंपेहुये रहते हैं इसलिये दंडसंबंधी कामोंमें उसकी योग्यतादेखी चाहिये क्योंकि(दंडे-वैनयिकीक्रिया) अर्थात् यावन्मात्र बिनयक्रिया किन्तु जो२ नीति संबंधी प्रबंध हैं सो सबदंडके आधीन हैं दंडबिनावशमें नहीं आसक्के इसलिये उसका होनाभी सूचितहै-और कोशधनकास्थान तथा राज्य देश ग्राम यहदोनों वस्तु राजाके आधीनहोती किंतु औरके आधीन करदेना उचित नहीं इसलिये राजा आप इनका प्रबंधरक्खै-ऐसेही (दूते-संधिविपर्ययौ) अर्थात् संधिनाम फूटेहुयोंका मिलापकरादेना और विपर्य्ययनाम विग्रह किंतु मिलेहुयोंमें विरोध युद्धकरवादेना यह दोनोंवात दूतके आधीन होतीहैं वह जो चाहै सो राजाकीइच्छासे विपरीतभी करसक्काहै उसको थोड़ा नहीं समझना इसीलिये अबदूसरे श्लोकमें फिर सावधान करते और दूतकी प्रशंसाभी करतेहैं किंतु दोनोंपक्षमें यहकथनहै कि ॥ दूतही फूटेहुयोंको

मिन्नादेतेहैं दूतही मिलेहुयोंको फोड़देताहै दूतवह कर्मकरताहै परदेशमें जाकर कि जिसकर्मसे बड़ेरज्ञानमानभी आपसमें फूटजातेहैं-अवतीसरे श्लोकसे दूतको शिक्षा करतेहैं कि॥ वह दूत इसप्रतिपक्षी राजाके (कृत्येषु) कर्त्तव्य कामोंकेमध्ये (विद्यात्)भेद भावलेवे किसप्रकारसे (निगूढ-इंगितचेष्टितैः)अर्थात निगूढ़नाम जो भितरियालोग राजाके समीप रहनेवाले परिजन आदि तिनकी समस्या और चेष्टाओंसे जाने क्या जाने वहांका (आकार) डौल (इंगित) मनोगत अभिप्राय(चेष्टा)कर्त्तव्यता जैसी देखपरे-और उसराजाका (चिकीर्षित) कहिये जो कुछ वहकरना चाहताहो सोउसके (भृत्येषुच) जानीयात् अर्थात् क्षोभकियेहुये अपमान पायेहुये लोभी आदि लघुसेवकोंके वार्त्ता कथनसेभी जाने अव चौथेश्लोकमें इसदूतकी अपेक्षासे भेजनेवाले राजाको शिक्षा करतेहैं कि॥ उसदूतके द्वारा साराहाल वहांका तत्त्वपूर्वक जानिकै तैसा यत्नकरै जिस्से अपनेको पीड़ा नहीं पहुँचै-किसीका भेजाहुआ दूत जो अपने पासआवे उसका वधकरना निषेधहै-यथा (नदंडार्हःप्रतिनिधिस्तथादूतोपिसुव्रतैः। नियोक्तृकृतदोषेण विधिरेषसनातनः) अर्थात्-यह सनातन विधिचली आतीहै कि सुव्रतों धर्मज्ञोंकरके प्रतिनिधि नाम मुखतार तथा दूतनाम वकील यद्वा संदेशहर ये दोनों भेजनेवालेके दोषसे दंडयोग नहीं होते किन्तु जोआत्मीय कुछ अपराधकरबैठें तौ जुदीबातहै-यतः (स्वापकर्षपरोत्कर्षौदूतोक्तैर्मन्यतेतुकः। सदैवावध्यभावेनदूतःसर्वंतुजल्पति)अर्थात्-दूतकी उक्तियोंसे पराई उत्कर्षा और अपनी न्यूनता कौनमानै है किन्तु कोई नहीं मानता क्योंकि दूत अपने अवध्यभावसे निडर होकर सदैव सब कुछ कहनी न कहनी भी कहताहै-अन्यच्च (उद्यतेष्वपिशस्त्रेषुदूतोवदतिनान्यथा। नचहन्यात्तथाप्येनंराजा दूतमुखोयतः)अर्थात्-दूत अपने ऊपर शस्त्र उद्यत होनेपरभी अन्यथा नहीं कहता किन्तु जो आज्ञा लेआयाहै सो उसदशामेंभी कहेबिना नहीं रहता तथापि इसकोमारैनहीं क्योंकि जिसहेतुसे राजा दूतमुखहोता किन्तु दूतही राजाका मुखप्रसिद्धहै फिर जब राजाका मुख तोड़दिया तौ बात चीत उसके हृदयकी क्योंकर जानीजायगी-तस्मात् (वैरूप्यमंगेषुकशानिपातोमौंड्यंतथालक्ष्मणसन्निवेशः। एतान्वधानर्हतिरूक्ष वादीशास्त्रेषुदूतस्यवधोनदृष्टः)अर्थात्-किसीअंगमें विरूपता करनी-या कशानिपात चाबुक आदिका मारना-या मुड़वादेना-याकिसीचिह्नसे दागदेना-इतने वधोंके योग्य यद्यपि रूक्षवादीहोताहै तथापि शास्त्रोंमें दूतका वधकहीं नहीं देखागया रूक्षवाद पर भी इसलिये दूतको मारै नहीं ३२६। ३२७॥

ततःस्वैरविहारीस्यान्मंत्रिभिर्वासमागतः। बलानांदर्शनंकृत्वासेनान्यासहचिंतयेत् ३२८॥

ऐ०-(ततः) दुपहर पीछे (स्वैरविहारीस्यात) इच्छाके अनुकूल विहार करनेवाला हो किंतु चाहै अन्तःपुरमें आप एकाकी वार्त्ता विनोद करने जावै यद्वा बाह्यभूमि का

(विहार) सैर करने जहां कहीं जानेकी इच्छा हो तहां विश्वास पात्र मन्त्रियों करके (समागत)किन्तु उनके मध्यमें हाथी आदि पर बैठाहुआ रक्षापूर्वक विहार करने जावै वहांसे घूमघामकर फौजोंमेंजावे तहांवालोंका दर्शन किन्तु सज्जीभूत अलंकृत चतुरंगिनी सेनाओंकी गति परिपाटीआदि देखभालकर(सेनान्यासहचिंतयेत्)किन्तुसेनानी नाम सेनाका अधिपति उस्से आवश्यक बातोंका चिंतमन विचार करै अर्थात् सेना की रक्षा और शिक्षाआदिकी संमतिदेवै जैसा उचित हो ३२८॥

अधि०--मनुनेभी कहा है कि (विहृत्यचयथाकामंपुनःकार्याणिचिन्तयेत्) अर्थात्-इच्छाके अनुकूल विहार कियेपीछे फिरभी कार्योंका विचारकरै ३२८॥

अब सायंकालसेपीछेका धन्धा कहते हैं॥

सन्ध्यामुपास्यशृणुयाच्चाराणांगूढभाषितम्। गीतनृत्यैश्चभुंजीतपठेत्स्वाध्यायमेवच ३२९॥

ऐ०--वहां से लौटाहुआ राजा संध्याकी उपासना करिकै फिर (चाराणां-गूढभाषितं-शृणुयात्)अर्थात् पूर्वोक्त चार गूढचर जो आयेहुये कहीं टिकाये थे तिनका (गूढभाषित) किन्तु गुप्तवार्त्ता एकांत में सुनै फिर गीत नृत्य आदि संयुक्त यथारुचिके अनुकूल किंचित्काल विनोद कियेपीछे डौढ़ीमें जाकर भोजन करै फिर(स्वाध्याय) को भी पढ़े अर्थात् अपना वह पाठ जिस्से रातौदिन धन्धा करने परते हों किन्तु व्यवहारांग शास्त्र आदि तिनको रात्रिमें भोजन कियेपीछे फुर्सतमें विचारै जिस्से भूलैंनहीं यद्वा स्वाध्याय अपने जाती नियम का पाठ ३२९॥

अधि०--चार लोगोंकी गुप्त वार्त्ता श्रवण करने का प्रकारभी कहा है-यथा (संध्यांचोपास्यशृणुयादंतर्वेश्मनिशस्त्रभृत्। रहस्याख्यापिनांचैवप्राणिधीनांचचेष्टितम्) अर्थात्-संध्योपासन कियेपीछे(अंतर्वेश्मनि) राजमहलोंके भीतर एकांतमें जाकर(शस्त्रभृत्) किन्तु नंगीखड्ग आदि हाथमें लियेहुये राजा उन लोगोंकी वार्त्तासुनै जो(रहस्याख्यापी)हों किन्तु एकांतमें संमति करनेवाले और (प्रणिधीनांचचेष्टितम्) किन्तु प्रणिधिनाम चारलोगोंका चेष्टा कियाहुआ वृत्तांतहो सोभी इसीरूपसे सुनै क्योंकि न जानै कोई कुछ विश्वासघात करनेका विचारकरिआयाहो-भला जिसबातसे ऐसाखटका सम्भवितहै तो श्रवण करनाही अनुचितहै किन्तु न सुनना चाहिये इस अपेक्षा में कहते हैं कि सो नहीं किन्तु अवश्य सुनना चाहिये-यथा (गावःपश्यंतिगंधेनवेदैःपश्यंतिच द्विजाः। चारैःपश्यंतिराजानश्चक्षुर्भ्यामितरेजनाः) अर्थात्-गौयें किसी वस्तुको पहचाना चाहतीहैं तौ उसकी गन्ध सूँघनेसे पहचानती हैं और ब्राह्मण वेदोंसे देखकर पहचानते हैं ऐसेही राजालोग चारों की बात सुनकर देशों का वृत्तांत घरबैठे देखा करतेहैं और अन्य सब साधारण लोग नेत्रोंसेही देखसक्तेहैं-अर्थात्-चारलोग राजा के नेत्र कहलातेहैं इसीलिये (चारचक्षु) राजाका नामहै क्योंकि (चाराश्चक्षूंषियस्य)

यहांवान नीतिवाक्यामृतमेंभी कहीहै कि(स्वपरमंडलकार्याकार्यविलोकनेचाराश्चक्षूंषि क्षितिपालानाम्) अर्थात्-अपने और पराये मंडलोंका काज अकाज भलाई बुराई जो कुछ कहीं होताहो तिनके देखनेमें क्षितिपालोंके चक्षुचार लोगहोतेहैं-इसलिये चारों से अवश्यबातकरे-और पीछे जब भीतरली डोढ़ीमें भोजन करनेजावे तव किसी अन्य प्रधानको सौंपजावे-तथाचोक्तं-(गत्वाकक्षांतरंत्वन्यत्समनुज्ञाप्यतंजनम् । प्रविशेद्भोजनार्थंचस्त्रीभिरंतःपुरंसह) ३२९ ॥

संविशेत्तूर्यघोषेणप्रतिबुध्येत्तथैवच । शास्त्राणिचिंतयेद्बुध्वासर्वकर्तव्यतास्तथा ३३० ॥

ए०-भोजनकरचुकने और पूर्वोक्त स्वाध्याय पढ़े पीछे (संविशेत्) शयनकरै सो किस समयकरै कि (तूर्यघोषेण) अर्थात् तुरही आदि बाद्योंसे शब्द होनेके साथ किंतु एकप्रहर या सवापहर रात्रिगये का गजर बजनेपर सुनतेके साथसोवै क्योंकि वहगजर इसीलिये बजताहै कि सोरहनेकेलिये संबोधन होजाय किंतु अधिक जागने से भी रोगोंसे शरीर पीड़ित होजाताहै तब सभीकाम धंधे धन धर्मादिक बन्द होजाते हैं इसलिये अधिक जागैभी नहीं (तथैव-प्रतिबुध्येच्च) अर्थात् उसीप्रकार तूर्यघोषके साथ जागै किंतु चौघटिका रात्रिशेषका गजरसुनतेही उठखड़ाहो क्योंकि वह गजर इसीलिये बजताहै कि सोनेवालोंको जागनेका संबोधनहोजाय और गजरयद्वा तूर्यघोष यहएक निदर्शन मात्रकहाहै किंतु जहां जैसी परिपाटीहो अर्थात् कहीं अनेक बाजन एकसाथ बजतेहैं कहीं शंखआदि कहीं केवल तुरुही कहीं केवलघंटा कहीं तोप कहीं धोंसानक्कारा नौबतआदि किसी२बोलीमें इसीको उर्दीभी कहतेहैं (बुध्वा-शास्त्राणिचिंतयेत्) जागने पीछे शास्त्रोंका चिंतमनकरै तथा (सर्वकर्तव्यताः) किंतु औरभी जोकुछकरनाहो अगले दिनमें वहभी सबकरने योग्य कामधंधे उसीप्रकार फिर चिन्तमनकरै जैसे पहले दिनमें भिन्न२ समझायेथे-दूसरा अभिप्राय इसका अगले श्लोकसे अनुकर्षपूर्वक यहभीहै कि रात्रिके पिछलेपहरे गुप्तभाव चुपकेउठिकर विश्वासपात्र शास्त्रज्ञोंके साथयद्वा एकल्लाही निज आपशास्त्रोंका विचार किसी आवश्यक और सुगुप्तवार्ताके निमित्तसे करै तैसेही अन्यभी कर्तव्यकामोंका विचार अगले दिनकेलिये उसीसमयकरलेवे सो इनदोनों बातका व्योरा आगे ३३१ श्लोकमें भिन्न२खुलजायगा कि पहलेअर्द्धामें गुप्तभाव चारोंका भेजनाकहेंगे और पिछले अर्द्धामें दूसरेदिनमें प्रातःकालके वे धंधे कि जो पूर्वदिनके धंधोंमें कहने शेषरहगयेथे सो स्पष्ट करेंगे (परन्तु) पढ़नेवालेको दोनोंदिनके कहेहुये धंधेसब एकदिनका व्यवहार समझनाचाहिये किंतु किसीदिन दोकाम अधिक आनिपरतेहैं किसीदिन दोन्यूनहोते परनित्यके मामूली काम सदैव एकसेहोते इसलिये दोदिनकी लपेटमें कहेहैं ३३० ॥

अधि०-ऊपर कईश्लोकोंसे लेकर जो प्रतिदिनके आचार राजाको बतलाये गये

विदेशमें भी सब लोग आतेजाते और अपने मनकी पीड़ा भेद भाव सब उनसे कह देतेहैं अथवा ऐसे नहीं तो वेभी (सांवत्सर) में गिनती हैं कि जैसे जयपुरिया ब्राह्मण कच्चेपक्के सभी पत्रा बांधकर नित्यंप्रति नियमसे घर घर आप जाकर फेरीदेते और स्त्रियों तकमें जाने आनेका अभ्यास रखकर भिक्षा वृत्ति कियाकरते उनसे चाहे तिस घरका ब्योरा अखबार कीसी भांति मिलसक्ताहै तिनको करै और (चिकित्सकान्) जो वैद्यक वृत्तिसे विदेशमें बहुधा जाते आतेहों तिनको अथवा(सांवत्सराचिकित्सकान्) इन दोनों पदोंको मिलाकर एक तीसरा अर्थ यहभी संगृहीत है कि संवत्सर पर्यंत चिकित्सा करनेवालोंको अर्थात् जैसे आंखोंके बनानेवाले सथिया आदि अनेकवैद्य ऐसे होते हैं जो निरन्तर सालभर ताईं दवा करनेमें तत्पर होते और प्रतिज्ञा अपनी पूरी कर दिखलाते हैं तिनको (चार) बनावै क्योंकि अच्छा भेद एक साल बिना मिल सकना भी दुर्लभ होता-परन्तु (अक्रुद्धान्) अर्थात् यह लोगभी जो क्रोधी नहींहों तिन को करै क्योंकि क्रोधीसे कोई काम पूरा नहीं होता किन्तु वह बीचही में अपने कार्य सम्बन्धी मनुष्यसे तोड़फोड़कर बैठता है इसलिये क्रोधीको उन गुणोंके होने पर भी नहीं और (अलुब्धान्) जो लोभी नहींहों तिनको करै क्योंकि लोभी शीघ्र अपने स्वामी की शुभ चिन्तकता छोड़कर थोड़े लोभसे पराये वशमें होजाताहै इसलिये अतिलोभी को उन गुणोंके होनेपरभी नहीं और(दृष्टार्थान्)जिन्होंने संसारके अर्थकहिये प्रयोजन काम धंधे नानाभांतिके ऊंचनीच भलेबुरे अतिकाल और अति अवस्था और अति बर्ताव द्वारा खूब देखेसुनेहों किन्तु संसारका मथन अच्छी भांतिसे किया हो तिनको करै इसलिये थोड़ीसी अवस्था वालेकोभी नहीं और (तत्त्वभाषिणः) जो तत्त्वभाषी हों किन्तु जितनीबात देखी या सुनीहो उतनी कहसुनानेकास्वभाव जिनकाहो तिनकोकरै अर्थात् जो ऐसे बतफरोश हों कि पैसाभर देखी सुनी सेरभर अपनी ओरसे जोड़कर बकडारैं तिनको नहीं क्योंकि इसबातसे परमहानि राजाकी होतीहै औरभी (पाखंडिन-स्तापसादीन्) अर्थात् जो लोग जीविकाके अर्थी पाखंडरूपसे बनेहुये तपसीआदिअनेक चेटकनाटकवाले देशोंमें विचरतेरहते हैं तिनकोभीउनके चेलीचाँटोंसहित पर उसभेद को चेलेचाँटे न जानें कि यह हमारागुरुकिसराजाका साधकहै और कार्य अपने गुरुकी साधकतामें सबकरतेरहें इसभांतिसे उनको चारबनावै और परराज्यमें लगावै (फिरउन चाराकाभी गुप्तभेद लेनेकेलिये)कि यहलोग वहांजाकर क्याकरते हैं और यहांआकर क्याकहते हैं इसलिये उनकी वार्ताहरनेवाले और भी अनेकोंको लगावै ऐसे कि जो अपने और परायेदेशों का भेदजानने वालेहों और सुशीलहों सुविचक्षणहों-क्योंकि- राजा एकही चारके कहनेपर विश्वास न लावै इसलिये कि न जाने उसने कुछछल प्रपंचकी बनावट आनिकर कहीहो इसहेतुसे दोकीबात एकसी मिलती जानकर जो

कुछ उचित हो सो काम करें—इसलिये राजा एकही दो चारों को नहीं भेजै किंतु बहुत से मुखवाले बहुत चारोंको भेजे—बहुतसे मुखवाले अर्थात् एकएक चारके साथ अनेक २ साधक उसके आधीन हों यही उसके अनेक मुख हैं जिनके द्वारा वह एकत्र बैठाभी सब देखता सुनता और कहता रहे—इसलिये राजा ऐसे लोगों को उन (चारों) के आधीन साधकराखै जो (नंगित) नपुंसक हों (वामन) बौना हों (कुब्ज) लूले लँगड़े हों और भी (तद्विधाः—कारवः) अर्थात् उसीप्रकार के नपुंसक बौना लूला आदि अंगभंग कारुजाती के लोग जिन्हें कारीगर कहते हैं किंतु राजबाढ़ई दर्जी सूपकार आदि अनेक जो प्रसिद्ध हैं तिनको उन पूर्वोक्त चारोंके साधक नियतकरै क्योंकि ये लोग वहां जाकर अपने २ पेशे की नौकरीकरें और भेदूहोकर कार्यसाधैं और सदैव अपने अधिष्ठाता चारको संबोधित करतेरहें और वह अन्य दूतोंसे खबर पहुँचाता रहै अपने राजा पास-इसीलिये अनेक भिक्षुकी वैरागिनें आदि जोबाईबनिके घरोंमें भिक्षाके बहाने से जाकर और नाच गान दिखाकर बहुधारीति प्रीति करलेती हैं तिनको और भी (चारण) जो एक प्रकारके कीर्ति गान करनेवाले नटप्रसिद्ध होतेहैं तिनको करै क्योंकि वे राजा केभी सन्मुख जापहुँचते हैं-और भी अनेक दास दासी जो वहां जाकर सेवा में नौकरी करें या वहां के सेवकों से मिलाप अपनी रीति भांति से रखकर कामसाधैं और सदैव अपने अधिष्ठाता (चार) को संबोधित वहांके भेदों से करते रहें-और भी(मालाकारी) मालिनें जो फूलमाला के हेतुसे अंतःपुरमें भी नित्य जासकीं या सेवामें रहसक्ती हैं और भी (कलाविदः) किंतु चौंसठि प्रकार की कलाओं मध्ये जो कोईसी एक दो चारकलाके जाननेवाले भानमतीआदि पेशेवाले तिन्हैंउन पूर्वोक्त (चारों) के साधक नियत करै इसलिये कि ये सब अपने २ कर्म या कौतुक हेतु से धुर अंतःपुरके भीतरकी अलख वार्त्ता को हरलावें-परन्तु इस भांतिका आचरण भी राजाको सदैव निरर्थक में करना अनुचित है किन्तु इन बातोंका करना तौ बड़ीसी किसी आवश्यक दशामें समयके अनुकूल संभवहोताहै पर इनबातोंका याद रखना इस हेतु से उचित है कि इन प्रकारों से कोई अपना भेद न लेजानेपावै जिस्से पीछे कुछ उपद्रव उठै इस्से इसभांति के आयेहुये विदेशी नौकर चाकर और सेवक दासी आदिकी चेष्टासे चौकसरहे यहसिद्धांतहै-(चार) दो प्रकारके होतेहैं एकप्रकाशमान जो प्रत्यक्ष भेजेजायँ-दूसरे-अप्रकाश जो गुप्तभेजेजायँ तिनमें अप्रकाश तौ येही हैं जिनका चर्चा यहां पर कियागया और प्रकाशमानको दूतकहते हैं जिनका चर्चा ३२७ की अधिकोक्तिमें आयाथा ३३१। ३३२॥

ब्राह्मणेषुक्षमीस्निग्धेष्वजिह्मःक्रोधनोरिपु। स्याद्राजाभृत्यवर्गेषुप्रजासुचयथापिता ३३३॥

ऐ०—पूर्वोक्तबातोंके सिवाय राजा अपना स्वभाव और चेष्टा इसप्रकारकी राखै किंतु

ब्राह्मणों पर क्षमावान्हो निंदा आदिके करनेपरभी (स्निग्धेष्वजिह्मः) अर्थात् स्नेहकरने वाले मित्रादिकों पर सूधासरलभावहो-शत्रुओंपरक्रोधवान्-अन्यसाधारण भृत्यवर्गों पर और प्रजाओंपरभी ऐसाहोकेरहे जैसा पुत्रोंपर पिता अर्थात् उनके हितकाआचरण और अहितकी निवृत्तिमें तत्परबनारहै यह राजाओंका परमधर्महै ३३३॥

अब प्रजा परिपालनका फल कहतेहैं॥

पुण्यात्षड्भागमादत्तेन्यायेनपरिपालयन्। सर्वदानाधिकंयस्मात्प्रजानांपरिपालनम् ३३४॥
चाटतस्करदुर्वृत्तमहासाहसिकादिभिः। पीड्यमानाःप्रजारक्षेत्कायस्थैश्चविशेषतः ३३५॥

ए०सहृद्वयोः-जिसहेतुसे कि धर्मशास्त्रोक्त न्यायसे प्रजाओं का परिपालन रक्षण आदि करताहुआ राजा उनके कियेहुये पुण्यमेंसे छठाभाग लेताहै किंतुरक्षा करीहुई प्रजाके पुण्यमें षष्ठांशका भागी धर्मके अनुसार होताहै इसीसे प्रजाओंका परिपालन कर्म राजाओंको पूर्वोक्त सबदानोंसे अधिकदान फलहोताहै इसलिये पुत्रोंकेही तुल्य पालनकरै-किसप्रकारसे-सो कहतेहैं ३३४ (चाट) वे कहलातेहैं जो किसीतरहका विश्वासदे दिलाकर पराया धनहरलेते इन्हींको प्रतारकभी कहतेहैं-(तस्कर) जो छिपकर धनचुरावें-(दुर्वृत्त) वे कहलाते जोइन्द्रजाल आदि माया कितव छलकरके किसीकाधन या मनुष्य हरलेते-(साहसिक) वे कहलाते जो सहसा प्रबलता करिके छीनलेते तिनमें भी महासाहसी वे होते जो इसीबातका पेशाकरते बटमारआदि-आदि शब्दसे और भी अनेक धूर्त सेवड़ेआदि (कुहक) विद्याके मायावीहोतेहैं-इनसे पीड़ित कियेहुये और पीड्यमान प्रजालोगोंकी रक्षाकरै-इनके सिवाय विशेषकर कायस्थोंसेभी प्रजाकी रक्षा करै (कायस्थागणकालेखकाश्च) अर्थात् सभीकायस्थोंसे अपेक्षा नहीं किंतु जो राजद्वारों यद्वा बाह्यदेशोंके हिसाबी और लेखकहों तिनसेरक्षाकरै क्योंकि (तेषांराजवल्लभतयातिमायावित्वाच्चदुर्निवारत्वात्)अर्थात् वे राजाओंकेकार्य साधकता और उपक्षत्रियत्वसेभी बहुतप्यारे होते और मायावीभी उनमें बहुधाहोते इस्से उनके फंदेमेंफँसीहुई प्रजाका विगड़जाना संभवहै ३३५॥

अधि०-(स्मृत्यंतरेपि)चाटचारणचौरेभ्योवधबंधभयादिभिः। पीड्यमानाःप्रजारक्षेत्कायस्थेभ्योविशेषतः-अर्थ इसकाभी वहीहै जो ऊपर कहागया-और कायस्थ यह एक निदर्शन मात्र शास्त्रवक्ताने कहाहै किंतु कायस्थोंके उपलक्षणसे जो कोई उनकामोंपर नियतहो वहीकायस्थ समुझा चाहिये-परन्तु विशेषकर कायस्थका नामलेकर कहनेसे सर्वथा यहभी निश्चितहुआ कि कायस्थ जातीका यहकामसृष्टिकी आदिसेही चलाआताहै क्योंकि जो यह प्रधानता इनको नहीं होती किंतु सभीलोग उनकामोंके अधिकारी होते तो शास्त्रवक्ता उनकामोंकी अधिकार संज्ञासे आदेशकरते ३३५॥

अरक्ष्यमाणाःकुर्वंतियत्किंचित्किल्बिषंप्रजाः। तस्मात्तुनृपतेरर्द्धंयस्माद्गृह्णात्यसौकरान् ३३६॥

टी०-रक्षाके न करनेमें दोष कहतेहैं कि अरक्ष्यमाण प्रजालोग जोकुछ पापकरतेहैं उससें आधा पाप राजाको इसहेतुसे लगताहै कि जिस्से यहराजा उनसे अनेक राज करलेता और रक्षा उनकी नहीं करता ३३६॥

अधि०-(वरंविषाशनंराज्ञांवरमग्नौप्रवेशनम्। अनाथानांप्रपन्नानांकृपणानामरक्षणात्॥अनाथंकृपणंवृद्धंस्त्रियंबालंनिरागसम्।परिरक्षेद्धनैःप्राणैर्बुद्ध्याशक्तिबलेनच॥देशंकालंचशक्तिंचकार्य्यंचाकार्य्यमेवच।सम्यग्विचार्ययत्नेनकुर्य्यात्कार्याणिसर्वदा॥नकुर्य्यात्कस्यचिद्बाधांपरबाधांनिवारयेत्।चोरान्दुष्टांश्चशत्रूंश्चबाधयेच्चापिसर्वदा) अर्थात्-राजाओंको विष भक्षणकरलेना श्रेष्ठहै अग्निमें गिरपरना श्रेष्ठहै किन्तु अनाथोंकी आधीनोंकी कृपणोंकी दरिद्रोंकी रक्षा न करनाश्रेष्ठनहीं-इसलिये-अनाथ कृपण बालक वृद्ध स्त्री निरपराधी कोईहो तिसको अपराधीसे बचावे और इन सबकी रक्षाकरै अपने धन प्राण बुद्धि शक्ति बल इनमे किंतु इनमेंजिसकिसीसे होसक्तीहो तिसकालोभ नहींकरै-(परन्तु सहसा नहींकरै यह कहतेहैं)किन्तु देश १ काल २ शक्ति अपनी यद्वा अपराधीकी ३ (कार्य)अर्थात् करनेकी योग्यता ४ (अकार्य) न करनेकी योग्यता ५ इन सबोंको यत्नपूर्व्वक अच्छीभांति पहले विचारलेवै तब रक्षासम्बन्धी दण्ड आदिकार्य्योंकोकरै किन्तु (सर्वदा) सबदिन इसीरीतिसे आचरणकरै-और किसीकोभी बाधानहीं करै बरन जहांतक शक्तिहो पराई बाधाका निवारणकरै यहराजाकाधर्महै परन्तु चोरोंको दुष्टोंको शत्रुओंको इनसबोंको बाधाभी सदैव यथाकाल यथाशक्ति यथादेश यथासंभवके अनुकूल करतारहै तो अधर्म नहीं किंतु यहभी एकधर्म है ३३६॥

अब निग्रह और अनुग्रह का न्याय कथन करतेहैं॥

येराष्ट्राधिकृतास्तेषांचारैर्ज्ञात्वाविचेष्टितम्। साधून्संमानयेद्राजाविपरीतांश्चघातयेत् ३३७॥

टी०-जेकोई राज्यके अधिकारी कियेहों तिनका विचेष्टित कहिये कियाहुआ आचरण अपने२ अधिकारोंकी साधनामें भलाई बुराई सो पूर्वोक्त चारोंके द्वारा जानबूझकर (साधून्-संमानयेत्) किंतु जो सत्आचरणवालेहों तिनका राजा मान बढ़ावे किसीरीतिसे दान मान सत्कारोंकरके उन्हें प्रतिष्ठितकरै और जोविपरीतहों किंतु दुष्टवृत्तिवालेहों तिनकाभेद जानिकर घातकरै अर्थात् किसी प्रकारका दंड उनकी दुर्वृत्ति के अनुसार देवै ३३७॥

अधि०-(चारों) के द्वारा उसदशामेंभी भेदलेना उचितहै कि जब कोई किसी अधिकारीकी प्रत्यक्षमें निंदाकरताहो क्योंकिबहुतेरे किसी निजसंबंधी वैरभावसे वृथानिन्दाभी करनेलगतेहैं इसलिये उनकेकहनेसेही दंडनदेवै तथाचोक्तं(नपरस्यापवादेनपरेषांदंडमाचरेत्। आत्मनावगतंकृत्वाबध्नीयात्पूजयेत्तुवा)-अर्थात्-औरके अपवाद करनेसे हीऔरोंको दण्ड न आचरै यद्वा वैरीके अपवाद करनेसे उसके वैरियोंको दंडनहीं देवै

किन्तु अपने मनबुद्धिसे विचार पूर्वक निश्चयकरिके तब दंडदेवै या सत्कारकरें-परंतु मनबुद्धिका विचारभी पीछेकरै किन्तु पहले चारोंसेही भेदभावलेवै यहसिद्धांतहै और दंडदेवै या सत्कारकरै इसकथनका यह सिद्धांतहै कि जिसबातकी निन्दा उसकी हुई थी उसीकी दृढ़ता और सचेउटी चारोंसेभी मिलै तद्वत् अपनी आत्माका विचारभी उसीपर दृढ़ताकरै तब तौ दंड जैसायोग्यहो सोदेवै (अन्यथा) जब उसनिन्दाका कोई भांति उसपर चिह्न नहीं पाया जाय और सर्वथा वह निष्कलंक निश्चितहोजाय तब उसका सत्कार कुछ इसहेतुसे करना योग्यहै कि उसपर झूठाकलंक जो आरोपित हुआ जिसके कारण उसकी व्यर्थ निंदा उड़ीफैली तिसका प्रतिकार उसके सत्कार द्वारा कियाजावै-इसलिये राजाको एकचारकेभी कथनपर विश्वास न करना चाहिये किंतु कईचारोंके कथनमें सात्म्यतापावै तब कुछकरै या उनकई के कथनमें असात्म्यताहोनेपर अपने मनबुद्धिके अनुकूल जो संभवितहो-क्योंकि इसमें किंचित्भी व्यतिक्रमहोनेसे राजाकी परमहानि होतीहै-तथाचधर्मः-(अदंड्यान्दंडयन्राजादंड्यांश्चैवाप्यदंडयन् । अयशोमहदाप्नोतिपापंचैवतदच्युतम्) अर्थात्-राजा अदंड्यपुरुषोंको विनाविचारे दंडदेताहुआ और दंडनीयोंको प्रमादसे दंड न देताहुआ महाअयश तौ पहले लोकमेंही पाताहै पुनि उस्से पापभी ऐसाअच्युत होताहै कि जिसकीच्युति जन्मांतरमें भी नहीं होती-इसलिये राजाको दोषादोषके विचारमें प्रमाद और शिथिलता न चाहिये ३३७॥

अब घूस रिशवतका चर्चा करतेहैं॥

उत्कोचजीविनोद्रव्यहीनान्कृत्वाविवासयेत् । सदानमानसत्कारान्श्रोत्रियान्वासयेत्सदा ३३८॥

ऐ०—राजा उत्कोचजीवियों को द्रव्यहीन करिके विवासकरावै किंतु घूसखानेवालों से धनदंड लेकर उन्हें राज्यसे वाहरकरै और श्रोत्रियोंको दानमान सत्कारों सहित अपने राज्यमें सदैव जो आतेजायँ तिन्हें बसावै जिस्से उसके राज्यमें संपन्नता बनी रहै-(उत्कोच) कहतेहैं घूसारिशवतको कि जो किसीकार्यवालेसे कुछधन लेकर कार्य में अयुक्तता करीजातीहै उसधनके खानेवालेको उत्कोचजीवी अर्थात् रिशवतखोर या घूसखाऊ कहते हैं ३३८॥

अब ठेठ राजाकी अपेक्षामें अन्याय धनसे हानि कहतेहैं॥

अन्यायेननृपोराष्ट्रात्स्वकोशंयोभिवर्द्धयेत् । सोऽचिराद्विगतश्रीकोनाशमेतिसबांधवः ३३९॥
प्रजापीडनसंतापात्समुद्भूतोहुताशनः । राज्ञःकुलंश्रियंप्राणांश्चादग्ध्वाननिवर्तते ३४०॥

ऐ०सहद्वयोः—जोकोई नृपति अपने राज्यमेंसेधन अन्यायसे संग्रहकरिकै अपनाकोश बढ़ाताहै वह शीघ्र थोड़े कालमें लक्ष्मीहीन होकर निजबांधवों सहित नाशको पहुँचताहै३३९ क्योंकि प्रजाकी पीड़ारूपी संतापसे समुत्थितहुआ अग्नि-राजाके कुलको

और लक्ष्मीको और प्राणोंकोभी विनाजलाये नहीं जाता-इसलिये राजा जो धनलेवै सो न्यायसे विपरीत नहीं लेवै (तत्खादनेतुनारदः) (अन्यायेनापियद्भुक्तंपित्रापूर्वतरैस्त्रिभिः। नतच्छक्यमपाकर्त्तुंक्रमातत्रिपुरुषागतम्) ३४० ॥

अब आगे विजय फल कहतेहैं॥

यएवनृपतेर्धर्मःस्वराष्ट्रपरिपालने। तमेवकृत्स्नमाप्नोतिपरराष्ट्रंवशंनयन् ३४१ ॥

ऐ०—नृपतिका जो२ धर्म या फल अपने राज्यके परिपालन करने में कहागयाउसी धर्मका साराफल अपने शत्रुका राज्य वशमें लेताहुआभी पावैहै ३४१ ॥

वशमें आये हुयेकी परिपालन विधिकहतेहैं॥

यस्मिन्देशेयआचारोव्यवहारःकुलस्थितिः। तथैवपरिपाल्योसौयदावशमुपागतः ३४२ ॥

ऐ०—जब कोईदेश अपने वशमें आयाहो तब अपने देशके आचारोंका प्रचार वा मिलाव उसमें नहीं करे किंतु जिसदेशमें जो आचार और जो कुलव्यवहार और कुलोंकी परिपाटी जैसी चली आतीहों तैसीही परिपालन कियेजावें जिसमें प्रजालोग सुखी रहकर आशीर्वादकरें किंतु विपरीततामें शापदेतेहैं-परन्तु जो कोईबात विरुद्ध वा दुःखदायकहो उसको प्रजाकी संमति और प्रसन्नतासे परिशोधन करना अनुचितनहीं-तथापि जो उचित और संभाव्यरीतोंसेही कियाजावै किंतु कोई बात हठ धर्मीसे नहीं ३४२ ॥

मंत्रमूलंयतोराज्यंतस्मान्मंत्रंसुरक्षितम्। कुर्याद्यथास्यनविदुःकर्मणामाफलोदयात् ३४३ ॥

अक्ष०—यतःराज्यंमंत्रमूलंतस्मान्मंत्रंसुरक्षितं तथाकुर्यात् यथास्यराज्ञःकर्मणांमंत्रं आफलोदयान्नविदुरन्ये ३४३ ॥

अभि०—जिसहेतुसे ३११ में कहाथा कि उनमंत्रियोंके साथ राज्यका बिचार करै तौ यथार्थसे राज्य मंत्रमूल ठहरा किंतु राज्यके सारेकाम धंधोंकी मूलकेवल मंत्रके आधीनहै तिसहेतुसे विचारेहुये मंत्रको उसप्रकारसे सुरक्षितकरै किंतु जैसीभांतिसे इसराजाके संधिविग्रह आदि कर्मोंका मंत्रभेद तब ताईं कोई और न जानै जबतक उसमंत्र यद्वा उनकर्मों के फल यथावत् उदय न हो लेवें ३४३ ॥

अधि०—(मंत्रभेदेऽपियेदोषाभवंतिपृथिवीपतेः। नशक्यास्तेसमाधातुंमंत्रिभिस्सुभटैरपि) अर्थात्-पृथिवी पतिके-मंत्रभेद होजानेमें जो२ दोष उत्पन्न होतेहैं वे दोष फिर मंत्रियों और सुभटों अतिवीरोंसेभी सम्यक् आधानकर सकने योग्यनहीं होते-इस लिये राजा अपने राज्य संबंधी मंत्रोंकी रक्षाभली भांतिकरै-तथाचोक्तम्-(मंत्रंबीजवद्राजन्रक्षणीयंयथातथा। मनागपिनभिद्येततद्भिन्नंनप्ररोहति) अर्थात् हे राजन् मंत्र जैसाहो तैसाही बीजवत् रक्षाकरणीयहै किंतु उसमेंसे (मनाक् अपि) किंचित्भी न भेद होनेपावै क्योंकि वहमंत्रबीज किसीभांति भिन्नहुआ जमता नहीं अर्थात् बोयाहुआ

वीज धरतीमें से उभरकर भिन्नहोजाता वह जमता नहीं तैसेही मंत्रभी फूटाहुआ कार्यकी सिद्धिमें जमता नहीं-यद्वा किसानलोग जोवीज अगले सालकेलिये संचय करते उसमेंसे आवश्यकता परभी किंचित् नहीं निकालते क्योंकि उसमेंसे कुछभिन्न करलेनेमें फिर वहवीज अपनी ऋतुपर धरतीमें बोनेसे उपजता नहीं यहएक आनि होतीहै क्योंकि जबबोनेकेलिये निकालताहै तब उसमेंसे देवपितर आदिके नामसेमुट्ठी निकालकर पीछेबोताहै इसलिये किसान उसवीजकी परमरक्षारखताहै-और यथार्थ उसवीजकी रक्षा यद्वा आनि इसलिये होतीहै कि वीजमें बहुधा बारम्बार हाथलगने या अधिक वायुलगने या धूपलगने या सीलपहुँचने आदिसे उसका उपजना और फलावट न्यूनहो जातीहै इसलियेवीजकी वस्तु सबसे जुदी रखकर बारम्बार छेड़ते नहीं ऐसेही राजा अपने मंत्रको बारंबार उघाड़े नहीं तौ फल दायकहो ३४३॥

अब द्वादश राजमंडल यद्वा अपने सहित त्रयोदश राज मंडलका बिचार कहते हैं इस वार्ता को अतिसूक्ष्मबुद्धिसे बिचारना जिस्से तद्रूप इसका स्वरूप हृदय गतहो जाय॥

अरिर्मित्रमुदासीनोऽनंतरस्तत्परःपरः। क्रमशोमण्डलंचिंत्यंसामादिभिरुपक्रमैः ३४४॥

अक्ष०—अरि१ मित्रं२ उदासीनः३-अनंतरः १ तत्परः २ तस्मात्परः३-क्रमशः-अर्थात् यह तीनों यथाक्रमसे समझलेने-किंतु-ठेठ अपने राज्यसे (अनंतर) कहिये लगा हुआ भिड़ाहुआ दूसरा राज्य वहअपना अरि१ कहलाता-और (तत्पर) कहिये उस्से अगला तीसरा राज्य वह अपना मित्र२ कहलाता-और (तस्मात्परः) उस्सेभी अगला चौथा राज्य वहअपना उदासीन३ कहलाताहै-(यह तीनों अरि१ मित्र२ उदासीन३ यहां पर प्राकृत कहलातेहैं प्राकृतका अभिप्राय नीचे अभिप्रायार्थमें समझलेना) इसभांति क्रमसे चारोंदिशामें द्वादश राज्योंका मंडल और बीचमें तेरहवाँ आप बैठाहुआ सारेमंडलका चिंतमन बिचारसाम आदिनीतिके उपक्रमोंसे करतारहे३४४॥

अभि०—ऊपरके अक्षरार्थमें अरि १ मित्र २ उदासीन३ जो कहेगये सो यहतीनों प्राकृत कहलातेहैं इसहेतुसे कि अरिनाम शत्रुभी तीनप्रकारके होतेहैं-तिनमें प्रथम इन्हीं तीनोंके लक्षण समझने चाहिये सो अरि और मित्रके लक्षण तौ प्रसिद्धहैं पर तीसरा उदासीन वह कहलाता जो शत्रुताभी न करताहो और मित्रताभी न रखताहो किंतु जिसको वैरप्रीति दोनोंसे कुछ अपेक्षा नहीं वह उदासीन होता है-अब तीनोंके तीन प्रकार जो अभी ऊपर कहेथे तिनके लक्षण दर्शातेहैं कि सहज कृत्रिम प्राकृत इनभेदोंसे तीन२ प्रकारके तीनों होतेहैं अर्थात् सहजशत्रु तौ सापत्नको कहतेहैं और सापत्न भागी साझीको कहतेहैं जैसे अपना चचा या चचेरे भाई आदि जो बटवारीके भागीहों इनको सहज इसलिये कहतेहैं कि ये साथही अपने घरसेही शत्रुरूपज-

न्मलतेहैं फिर चाहै घरकेघरहीमें मौजूदहों अथवा कुछदूरीअन्तरसे वेभी कहींकेदेशाधिपहों कुछइनपर नियमनहींहै परदायभाग उनका निश्चितहो यहसिद्धांतहै १-दूसरे कृत्रिमशत्रु वे कहलातेहैं कि जिनका कुछअपकार किसी हेतुसे कियागया और पीछे वे शत्रुभाव करनेलगे अथवा उन्होंने कुछअपकार अपनाकिया इसहेतुसे उनकेसाथ वैर करनापड़ा फिर चाहै अपनेसे दशराज्यका दूरी अन्तर उनसेहो कुछ इसका नियम नहीं है इनको इसलिये कृत्रिम कहते हैं कि ये वनावट के बनेहुये शत्रुहोते कुछ घरमें जन्म नहीं पाया-या-पाया हो तौभी जो अपकार हेतुसे शत्रुता बांधैं तौ वेभी कृत्रिम कहलाते हैं अर्थात् सहज शत्रु उसी दशामें कहलासक्ते हैं कि हिस्सा बांटके हेतुसे वैर बांधै २-तीसरा प्राकृतशत्रु वह कहलाताहै जो अपनेराज्यसे अनन्तर भिड़ाहुआ दूसरा देशाधिप हो चाहै वह प्रत्यक्षमें शत्रुता नहीं भी करता हो परन्तु उसकी प्रकृति में यह वैर भाव रक्खारहता है कि कोई भांति से अपने अनन्तरवाले को दबालेवें जैसे वह अपना प्राकृत शत्रु गिनाजाता है तैसेही आपभी उसका प्राकृत शत्रु कहलाता है क्योंकि जैसे अपनी सीमासे वह अनन्तरहै तैसेही उसकी सीमासे आप अनन्तर है इसलिये वह प्राकृत अरिभाव परस्पर दोनों में समझाजाता और इसी हिसाब से अपनी चारों दिशाके चारो राज्य प्राकृत अरिकहलाते हैं-इसी प्राकृत अरिका चर्चाऊपर अक्षरार्थ में आयाथा किंतु वहां पर शेष दो शत्रुओंसे कुछ अपेक्षा नहीहै ३-अब तीनों भांति के मित्र बतलातेहैं कि-प्रथम तौ सहज मित्र वे कहलातेहैं जो साथही किंतु निजघरसेही मित्ररूप जन्मपाकर सबतरहसे सहायकबनेजैसे अपने भानजे या फूआ के बेटे या मावसीकेबेटे मामाके बेटे इत्यादि और भी १-दूसरे कृत्रिम मित्र वे कहलाते हैं कि जिन्होंने कुछ अपने साथ भलाई उपकार सहायता आदि किया हो या उनके साथ आपहीने किया हो या परस्पर दोनों का दोनोंने किया हो ये इसीसे कृत्रिम कहलाते हैं कि कार्य और कारण के अनुकूल मित्रबनजातेहैं चाहै अपने से दश राज्य का दूरी अन्तर उनसे हो कुछ इसबातका नियम नहीं है २-तीसरे प्राकृतमित्र वह कहलाता है जो अपने राज्य से एकांतरित राज्य हो किंतु बीच में उस पूर्वोक्त प्राकृत अरिका राज्य अन्तर देकर उस्से अगला राज्य प्राकृत मित्र कहलाता है इसीकी चर्चा अक्षरार्थ में आईथी किंतु वहांपर शेष दो मित्रों से कुछ सम्बन्ध नहीं है-इसको प्राकृत मित्र इसहेतु से कहते हैं कि चाहै वह अपना से कुछ मित्रता नहीं भी करता हो पर उसकी प्रकृति में यह बात समाई रहती है कि बीचवाले पूर्वोक्त प्राकृत अरिको कि जो बरले परले दोनों का अरिकहलाचुका तिसको यद्यपि मैं कुछ नहीं दबासक्ता पर इस्से परले तीसरे से कदाचित् मेरा मेल मिलाप होजाय तौ दोनों मिलकर इसको बीचमें दबालें या वही एक ऐसा प्रबल हो जो इसे

दबासकै तौ मैं उसको अपनामित्रसमभ्कौं और बनै तौ सहायताभीकरूं-इन कारणों से एकांतरितवाले परस्पर दोनों प्राकृतमित्रगिनेजातेहैं कुछमित्रता करनेपरही नियम नहींहै-इसी हिसाबसे चारों दिशामें जैसे चारिप्राकृत शत्रुबतलायेथे तैसेही उनसेपरे चार प्राकृत मित्रभी समभ्कने चाहिये इसप्रकार आठ राज्यका मण्डल होचुका और बीचमें नवां आप है ३-अब तीनों भांति के उदासीन बतलाते हैं तिनमें प्रथम तौ सहज उदासीन वे कहलाते जिनमें सहज शत्रु और सहज मित्र इनदोनोंके पूर्वोक्त लक्षण कोई भी न पायेजायँ (दृष्टांत) यथा जन्म सम्बन्धसे चचा भाई भतीजोंमें अवश्य गिनती हों परन्तु किसी हेतुसे दायभाग के अधिकारी नहीं हैं जो भ्कगड़ा टंटा करसकैं इसलियेवेही सहज उदासीन कहलानेलगे (और) किसी दशामें वेभी सहज उदासीन होसक्ते हैं कि जिनका दायभाग तौ निःसंदेह निश्चित है परन्तु वे उसके पानेका दावाकभी आगे पीछे भी न करेंगे-इनके सिवाय वेभी सहज उदासीन हैं कि जन्म सम्बन्ध से सहज मित्रोंमें गिनतीहुयेथे अर्थात् पहले जैसा कहचुकेहैं कि भानजे या फूआ और मावसी के बेटा आदि सहज मित्र कहलातेहैं परन्तु वेही लोग उनमेंसे जो २ कोई मित्र भाव सहायता आदि अपने साथ न करते और न मानते हों तौ सहज उदासीन कहलानेलगे फिर चाहै दूर या नगीच रहतेहों कुछ इसकानियम नहीं है यह तौ सहज उदासीन कहेगये १-अब दूसरे कृत्रिम उदासीन वे कहलाते हैं जिनमें पूर्वोक्त कृत्रिम शत्रु और कृत्रिम मित्र इनमें से एक केभी लक्षण नहीं पायेजायँ अर्थात् नतौ अपकार करतेहों न उपकार करतेहों न कुछ बैर न कुछ प्रीति ऐसे सामान्य भावहों और जन्मसम्बन्धसे कुछअपेक्षा जिनमें नहीं और चाहै दूर या नगीचहों कुछ इस बातकाभी नियम नहीं है २-और तीसरे प्राकृत उदासीन वे कहलाते जो अपने से चारों दिशामें चौथा २ राज्य अर्थात् पूर्वोक्त प्राकृत अरि और प्राकृत मित्र इन दो २ राज्यों को बीचमें देकर उनसे परेपरे प्राकृत उदासीन राज्य कहलाते हैं इन्हीं का चर्चा अक्षरार्थ में आयाथा किंतु शेष दो उदासीनों से वहांपर कुछसम्बन्धनहींहै-इस प्रकारसे बारहराज्यका मण्डल अर्थात् अपने से तीन आगे तीन पीछे तीन बामे तीन दाहने किंतु पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण चारों ओर और बीचमें तेरहवां आप है-यह राजमण्डल पद्माकार समभ्ककर अवश्य भावसे साम आदि नीतिके उपक्रमों से विचारता रहे अर्थात् उन बारहों का विचेष्टित जो कुछहो तिसका बिचार बलाबल के अनुकल अपने कल्याण की अपेक्षासे रातौदिन चिंतवन करता रहै कि कौन हमसे संधि और कौन विग्रह किया चाहता है किंतु उनसे गाफ़िल असावधान मत होजावे ३४४॥

अब यहां पर पहले चक्र का अवलोकन करो फिर पीछे इसकी अधिकोक्ति को विचारो।

पूर्व

छांतरितराज्य ४

यह अपना प्राकृत उदासीन है और इसी को अरि मित्र भी कहते हैं ॥

एकांतरित राज्य ३ यह अपना प्राकृत मित्र

अनंतर राज्य २ यह अपना प्राकृत अरि कहाता है

अपना राज्य १

इस मध्यवर्ती राजा को संज्ञा

भेदसे विजिगीषु भी कहते हैं

उस अवस्था में कि जब किसी अन्य

राजा को विजय करने का विचार

करै ॥

छांतरितराज्य ४ यह अपना प्राकृत उदासीन

एकांतरितराज्य ३ यह अपना प्राकृत मित्र

अनंतरराज्य २

यह अपना प्राकृत अरि कहलाता है -

यही पूर्व अरिका अरि और पूर्व मित्र का मित्र और पूर्व उदासीन

का उदासीन है यही उत्तर मित्र का अरि उत्तर उदासीन का मित्र ऐसे ही सर्वत्र

समझो यही दक्षिण अरि का मित्र दक्षिण मित्र का उदासीन - और पश्चिम अरि का अरि

पश्चिम मित्र का मित्र - पश्चिम उदासीन का उदासीन है ऐसे ऐसे ही इस उदाहरण के अनुसार

सब कोणों में अपनी बुद्धि से जानलो -

अनंतर राज्य २ यह अपना प्राकृत अरि कहाता

यही दक्षिण वाले उदासीन का मित्र है यही पूर्व के अरि का अरि

और पूर्व के मित्र का मित्र और पूर्व के उदासीन का उदासीन है यही दक्षिण

वाले मित्र का अरि - पश्चिम के अरि का अरि - पश्चिम के मित्र का मित्र - पश्चिम के

उदासीन का उदासीन और उत्तर के अरि का मित्र इत्यादि और भी जानो ॥

एकांतरित राज्य ३ यह अपना प्राकृत मित्र

छांतरित राज्य ४ यह अपना प्राकृत उदासीन

अनंतरराज्य २

यह अपना प्राकृत अरि कहलाता है

एकांतरित राज्य ३ यह अपना प्राकृत मित्र

छांतरित राज्य ४ यह अपना प्राकृत उदासीन

पश्चिम

उत्तर

दक्षिण

अधि०–इस ३४४श्लोकमें अक्षरार्थ यद्वा अभिप्रायार्थसे बिजिगीषू राजाके अरि १ मित्र २ उदासीन ३ यह तीन प्रकृती चारों दिशामें बतलाईं और उन्हीं का तद्रूप ज्ञानहोजाने के हेतुसे त्रयोदश राजमण्डलका पद्माकार चक्रभी निरूपण कियागया तथापि वह त्रयोदश राजमण्डलएक सामान्य रूपसे निदर्शनमात्र कहागया क्योंकि सर्वत्र और सदैव कुछ भूमि अथवा राजमण्डलों का एकहीसा डौलनहींहोसक्ता अर्थात् जहां कहीं इसीप्रकारसे राजमंडलोंका डौलहो तहां तौ तद्रूप इसीचक्रके अनुकूल समझाचाहिये और जहां कहीं अपनेसे चारों ओर बारह राज्य नहीं किंतुथोड़े बहुत जो कुछहों उनमेंभी प्रकार तौ सर्वत्र यही समझलेना पर इसबातका आग्रह नहीं है कि चारों ओर अरि और चारों ओर मित्र या उदासीन क्योंकर समझेजायँ अर्थात् दोहीतरफ समझलेने या तीनतरफ जहां जैसा राज्यकी सीमाका डौलहो तैसाही चक्रभी अंगीकारहोसक्ताहै-इसके सिवाय जहां पूरेबारह तेरह मंडलोंकीयथावत् प्राप्तिहो जैसी चक्रमें लिखी है तहांभी सदैव यहनियम नहींरहसक्ता कि चारशत्रु चारमित्र चार उदासीन ठीक २ हों क्योंकि यद्यपि शास्त्रोक्त संज्ञामात्रसे वेही प्राकृत शत्रु कहलातेहैं कि जिनकी सीमा अपने राजसे भिड़ीहो परन्तु जबकदाचित् उनसे अगले राज्यवाले जो प्राकृत मित्र निश्चित होचुकेहैं उनमेंसेकोई एक या दो अपना कृत्रिम शत्रु होगया किंतु उनसे अपना अपकार हेतुक वैर बँधगया उससमय शत्रु अधिक होगये और मित्र थोड़े रहगये या उन्हीं मित्रोंमेंसे कोई अपने शत्रुका सेवन करनेलगा तौ वहभी शत्रुगिनागया तौभी शत्रु अधिकहुये मित्र थोड़ेरहे-या प्राकृत शत्रुओंमें से कोई अपना उपकार करनेलगा तौ वह मित्र कहलाया इसहेतुसे मित्र अधिक होगये शत्रु थोड़ेरहे अथवा इनबारहमेंसे तौनहीं परइनसे उपरांतके अधिक राज्योंमेंसे कोई राजा दूरस्थभी अपने प्राकृत शत्रुओंसे मिलाप रखनेलगा तौ वह भी अपना अरि ठहरा तौभी शत्रु अधिक होगये और मित्र वेहीचार बनेरहे-सोई नीचे मनुवाक्यसे भी निश्चितहै-यथा (अनन्तरमरिंविद्यादरिसेविनमेवच। अरेरनन्तरंमित्रमुदासीनंतयोःपरम्)-अर्थात्-अनन्तर कहिये भिड़ेहुये राज्यको बिजिगीषू अपना अरि जानै और अरिसेवीकोभी अरिजानै किंतु अपने सीमाभिड़े राज्यवाले से जो कोई दूर या नगीचवाला मेल मिलाप अति प्रीतिभावसे रखताहो या उसके आधीन होताहो तिसकोभी अपना अरिजानै और अरिसे अनन्तर कहिये परली ओर सीमा भिड़ेराज्यवालेको विजिगीषू अपना मित्रजानै और उनदोनोंसे परे सीमा भिड़े राज्यको विजिगीषू अपना उदासीनजानै यह मनुजीने कहाथा(भेद २)मनुजी ने इस राजमण्डलको पद्माकार चक्रकीरीतिसे नहीं कहा-यद्यपि मनुजीके और योगीश्वरके कथनमें कुछ अन्तर नहीं किंतु सिद्धांत दोनोंका एकहै सोई अनन्तरोक्त मनुके

वाक्यमें योगीश्वरके मूलश्लोककी वाक्यसे एकता अभी ऊपर होचुकीहै तथापि उस पद्माकार मण्डलके स्थान मनुजीने कुछ और भांतिसे विलक्षणरूप मंडल दरशायाहै अर्थात् मनुजीने कुछ चारोंदिशाका नियम नहीं अंगीकार किया किन्तु आगे पीछे दोही तरफके डौलसे राजमंडल कहदियाहै-तिसकाभी यथार्थ कारण वहीहै जो इस अधिकोक्तिके प्रारम्भमें लेकर अनन्तरोक्त मनुवाक्य से पहले २ लिखागया क्योंकि सर्वत्र अपने से चारोंओर द्वादश राज यथोक्तक्रमसे नहींहोते अर्थात् कहींवैसा डौल भी होताहै और कहीं मनुजीके सिद्धांतसे केवल आगे पीछेकाही डौलहोताहै-दृष्टांत इसका ध्यानकरो कि जहां अपने राज्यसे दाहने और बायें दोनों तरफ़केवल पहाड़ यद्वा समुद्रहो किंतु दाहने बायें पार्श्वमें और कोई राज्य ऐसा नहींहै कि जिस्से कुछख-टका या प्रयोजन परै तहां केवल आगे और पीछेही निरंतर अनेक राजपंक्तिके आ-कार चलेजाते हैं इसलिये मनुजीने उसडौलसे राजमंडलका वर्णन कियाहै बल्किम-नुजीने अरि१ मित्र२ उदासीन३ इनके संज्ञाव्यपदेशभी अधिक बांधेहैं-इसलियेअब हम अपने जिज्ञासू लोगोंका संदेह यद्वा चित्तकी भ्रांति दोनों ओरसे निवृत्तहोने के लिये मनुजीका बांधा डौलभी इसी अधिकोक्तिमें विन्यास करतेहैं सो देखो-यथा(म-ध्यमस्यप्रचारंचविजिगीषोश्चचेष्टितम् । उदासीनप्रचारंचशत्रोश्चैवप्रयत्नतः) अ-र्थात्-मनुजी कहतेहैं कि राजमंडलके विचारमें राजाको यहउचितहै कि एक तो (मध्यमराजाका) चिंतवनकरै कि वहमेरेलिये या मेरे शत्रुओंकेलिये या मेरे मित्रोंकेलिये क्या करना चाहताहै या किस उपायमें समुद्यतहै यह प्रचार उसका सोचै १ ऐसेही (विजिगीषोश्चेष्टितं) अर्थात् विजिगीषूजो कोई राजा किसी एकको या अनेकोंको विजय करने पर समुद्यतहो तिसकाभी चेष्टित कहिये करना धरनाआदि अपने मनमें सोचै कि वहकिसकेलिये क्याकरना चाहैहै२ ऐसेही (उदासीन) काभी प्रचार कहिये करना धरनाआदि देखसुनिके अपने घरमें बैठा सोचै कि उसका क्याढँगहै किंतु वहकेवल उदासीनही बनारहेगा या आगेपीछे किसीका पक्षपातभी करैगा३ ऐसेही (शत्रोश्चैव) किंतु अपने शत्रुकाभी करना धरना इच्छाआदि प्रयत्नपूर्वक निजमंत्रियों सहित सोचै कि उसमेरे शत्रुका कोई औरभी सहायकहै या नहीं और उसका या उसके सहायकोंका कितनाबल या कितना धन या कैसा उनका राज्यहै यह सबसोच बिचार करतारहे-अब इन चारोंके लक्षण समझलेने चाहिये कि (मध्यमराजा) उसेकहतेहैं जो किसी विजिगीषू और उसके शत्रुकीभी दोनोंकी सीमासे भिड़ाहुआ तीसरा राजा इतना बड़ासमर्थहो कि जब कदाचित् वे अरि और विजिगीषू दोनों परस्पर अपने वैर भावसे लड़ैंभिड़ैं तबदोनोंको दंडदेसक्काहो या वे दोनों मिलापरक्खेंतब दोनोंपर कुछ अनुग्रहभी करसक्काहो वह (मध्यम) कहलाताहै इसीलिये विजिगीषूको या सा-

धारणहर किसीको सबसे पहले मध्यमका अभिप्राय सोचना उचित कहाहै-क्योंकि वहप्रबलहै न जाने पीछे किसकी ओरहो १ (औरविजिगीषूराजा) वही कहलाता है कि जो अतिप्राज्ञआदि गुणसंपन्न अतिउत्साहवाला अमात्यादि प्रकृतीं जिसकी उत्तम और अनुरक्तहों इतनी बातोंसे संयुक्तहुआ विजयकरनेपर उत्साह रखताहो इसलिये उसकाभी सोच विचार करना उचितहै२ और (उदासीनराजा) उसे कहते हैं जोपूर्वोक्त अरि विजिगीषु मध्यम इनतीनोंको लड़तेभिड़ते देखतीनोंकोही दंडदेनेमें समर्थ या तीनोंको परस्परमेल मिलापरखने परकुछ अनुग्रहकरनेमें समर्थहो पर निष्कारण में किसीको सताने परदृष्टि उसकीनहीं वह (उदासीन) है इसलिये उसकेभी अभिप्रायका विचार करना उचितहै३ चौथे (शत्रुराजा) वे कहलातेहैं जिनकाचर्चा पहलेभी अभिप्रायार्थमें होचुकाहै कि सहजशत्रु कृत्रिमशत्रु प्राकृतशत्रु यहतीन प्रकारके अरिहोते हैं ४॥ इतना कहकर फिर मनुजी कहते हैं कि (एताः प्रकृतयोमूलंमंडलस्यसमासतः। अष्टौचान्याःसमाख्याताद्वादशैवतुताःस्मृताः)-अर्थात्-इतनी जो चार प्रकृतीं ऊपर बतलाईं सोराजमंडलकी मूलप्रकृतीं (समासतः) संक्षेपसे कही गईं किंचआठ प्रकृतीं राजमंडलकी शाखारूप और भी कहीहैं वेभी इन्हीं मूलप्रकृतीनमें गिनतीहैं इसलिये चार और आठ मिलकर बारह प्रकृतीं राजमंडलमें विख्यात हैं-वे आठप्रकृतीं इसप्रकार से होती हैं कि शत्रु तो ऊपरवाली चार प्रकृतियों में गिनती होचुके अब उन्हीं पूर्वोक्त अपने शत्रुओंकी राजभूमिसे आगेआगे यथाक्रमसे पहिला राजा अपना मित्र कहलाता है सोई पूर्वनिर्मित चक्रमें देखलो१ पुनि उससे अगिलाराजा अपना (अरि-मित्र) कहलाता अर्थात् अपने शत्रुका मित्र यहभी उसी चक्रमें देखलो २ पुनि उससे अगला राजा अपना (मित्र-मित्र) कहलाताहै अर्थात् अपने मित्र का मित्र सो यहभी उस चक्रमें यद्यपि तीनसे अधिक राजा पूर्वदिशामें लिखेनहीं क्योंकि वह चक्र योगीश्वरके कहेहुये डौलपर बनाया है परंतु उसके अनुक्रमसे अधिक राजा अपनी बुद्धिसे जोड़कर समझलो३ पुनि उससे अगलाराजा अपना(अरि-मित्र-मित्र) अर्थात् अपने अरिके मित्रका मित्र गिनाजाता है यहभी उसी चक्रमें अपनी बुद्धिसे जोड़कर पूर्वदिशा में समझलो ४ यह चार तो अपने और अपने शत्रुसेभी आगे हुये-ऐसेही अपने से पीछे पश्चिम ओरभी यद्यपि इसी क्रमसे येही सब नाम संज्ञा होसक्तीथीं परन्तु मनुजीने आगे और पीछेमें कुछवैरभाव संबन्धी अधिकभेद समझकर संज्ञाभेद करदिया है-और यहभी कि आगे तो शत्रु भूमिसे आगे आगे गिनती करीथी और पीछे केवल अपनेसेही पीछेपीछे किन्तु अपने पृष्ठवर्त्ती शत्रुसेही नामसंज्ञा बदली हैं-यथा-अपनेसे पीछेवाला जो चक्रकेहिसाबसे शत्रु गिनाजाता उसीको (पार्ष्णिग्राह) कहते हैं परन्तु पार्ष्णिग्राह कोईछोटा मोटा नहींहोसक्ता अर्थात्-

विजिगीषुका पृष्ठवर्त्तीभीहो और देशादिकोंका आक्रमणभी आचरताहो तो अपना पार्ष्णिग्राह कहलावै-यहां पर विजिगीषूका या अपना कहना दोनों एकीबातहै १ पुनि उस्से पिछला जो चक्रके हिसावसे मित्र कहलाता उसीको (आक्रंद) कहतेहैं परन्तु आक्रंदभी वही कहलासक्ता कि जो पार्ष्णिग्राहका नियासक वनसके अर्थात् पार्ष्णि-ग्राह जो कुछ देशादिकोंका आक्रमण आदि आचरताहो तिसके आचरणोंका नियं-ताहो किंतु चाहै करतेहुयेको रोकदेवै चाहै अपनी प्रेरणासेकरवावै या चाहै उसके आचरणोंमें नियमबांधै कि इसप्रकारसे करो पर इस्से न्यूनाधिक या हमारी इच्छासे विपरीत नही सो यह राजा उस विजिगीषूका अर्थात् अपनाही आक्रंद कहलाताहै २ इस आक्रंदसेभी पृष्ठवर्त्ती राजा (पार्ष्णिग्राहासार) कहलाता३ पुनि इससेभी पृष्ठवर्त्ती राजा (आक्रंदासार) कहलाताहै४-आठ यह शाखा प्रकृतीं और चार पहली मूल प्रकृ-तींमिलाकर बारह राजमंडलोंका राजमंडल हुआ परन्तु पूर्वोक्त पद्माकार चक्रकी अपेक्षा इसमें कुछ अन्तरहै क्योंकि यहांपर बामे दाहनेका चर्चा नही किन्तु केवल आगे पीछेका हिसाबहै तिसका हेतु इसी अधिकोक्तिके प्रारंभमें लिखचुकेहैं समझ-लो अर्थात् किसी भूमिमें वहीडौल मुख्यहोसक्ता और किसी भूमिभागमें यहडौल ठीक होसक्ताहै इसलिये दोनों महर्षियोंका सिद्धान्त एकहै कुछ सन्देह का अवसर नहीं-इस अद्योक्त राजमंडलमें यद्यपि केवल आगे पीछेकाही चर्चा कियाहै तथापि इसमें इनआठसे पहले जो चार प्रकृतीं मूलरूप कहीथीं उनमें बामे दाहनेकीभी सं-भवता पाई जातीहै क्योंकि उनमें किसी ओरका निर्विकल्प नियमनहींहै-परन्तु यह भी यादरक्खो कि बारह राजोंका मंडल कहना यह शास्त्रवक्ताने नीतिज्ञोंकेलिये एक निदर्शन मात्रलिखाहै किंतु यही मंडल कहीं दश या आठ नौ इत्यादि न्यूनसंख्यासे होसक्ताहै और कहीं अधिक संख्यामें चौदह पन्द्रह अठारहसेभी होसक्ताहै अर्थात् जहां जैसा भूमिभागोंका डौलहो या समयके अनुकूल जैसे राजाहों या जैसी उनमें परस्पर संमति या विरुद्धहो या जिसकालमें जैसा सार्वदेशी सम्राट्हो इनसारीबातों के आधीन जहां जैसीसंभवताहो उसीके अनुकूल राजमंडलभी नीतिज्ञोंको चिंतनीय हैं पर सर्वत्र या सर्वथा या सब कालोंमें निर्विकल्प नियम कोई साभी नहीं रहसक्ता (भेद३) अब इस द्वादश राजमण्डलकी (द्रव्यप्रकृतीं) कहतेहैं अर्थात् प्रत्येक राज्यमें एक तौ (अमात्य) नाम देशदीवान् और अनेकमंत्री १ (राष्ट्र) कहिये देश२ (दुर्ग) क्कि-ला३ (अर्थ) कोष४ (दंड) अर्थात् शस्त्रोंसहित चतुरंगिणी सेनाकाबल और सर्वसेना-पति५ यह पांचवस्तु सभी राज्योंमें होतीहैं येही पांचद्रव्य प्रकृतीं कहलातीहैंइसहि-साबसे बारह राज्योंकी साठिप्रकृतीं द्रव्यरूपहुईं और वे बारह राजाभी मूलप्रकृति-रूपसे बारह प्रकृतीं समझेगये तिनमें साठिवेभी जोड़कर कुल्ल७२ प्रकृतींहुईं-सोयह

मनुजीने कहाहै-यथा(अमात्यराष्ट्रदुर्गार्थदंडाख्याःपंचचापराः। प्रत्येकंकथिताह्येताः संक्षेपेणद्विसप्ततिः)अर्थ इसका ऊपरहोचुका-इस बहत्तरि प्रकृतिरूप राजमंडलको अपने हानिलाभ या शुभाशुभके हेतुसे सामआदि उपायोंसे राजासदाही निजप्रधानों साथ एकांतमें बिचार करतारहे-जैसा ३११ के उत्तरार्द्धमें कहाथा कि (तैःसार्द्धंचिंतयेद्राज्यंविप्रेणाथततःस्वयम्) बहत्तरिप्रकृतीं कहनेका यहसिद्धांतहै कि अपनी और बिरानीभी ७२ प्रकृतियों का न्यूनाधिक भाव और अनुरक्तभाव या विरक्तभाव या अन्योन्योंका संहत वा मैत्रीभाव या अरिभाव आदि नानालक्षणसे बिचारै कि किस राजाकी प्रकृतीं मुझसे प्रबल या निर्बल या किससे किसको किसभांतिकी सहायता वा किसको किसकी उपेक्षा वा अनुराग आदि यह सारिबातैं भूत भविष्यत् वर्त्तमान तीनों कालकी अपेक्षासंयोगसे बिचारै-इसीलिये अबनीचे के श्लोकसे सामआदि उपायों को कहतेहैं ३४४॥

उपायाःसामदानंचभेदोदंडस्तथैवच। सम्यक्प्रयुक्ताःसिद्ध्येयुर्दंडस्त्वगतिकागतिः ३४५॥

ऐ०-(उपायाः) यह चार उपाय कहेहैं एक तौ (साम) प्रियभाषण आदि उपायसे कामचलाना१ (दान) सुवर्णादिरत्नों वा भूमिभाग आदि देकर काम चलाना २ (भेद) अर्थात् शत्रुके सामंत आदि अधिकारियोंमें किसीयुक्तिसे फूटकरवाकर अपनाकाम निकालना३ (दंड) अपकार जो धनहरणसे आदिलेकर बधपर्यंत ४ यह चार उपाय शत्रुआदिको बशकरनेके प्रकारहैं सो यह चारौ (सम्यक्प्रयुक्ताःसिद्ध्येयुः) अर्थात् देश काल वस्तुआदिके अनुकूल सम्यक् विधिसे लगायेहुये सिद्धहोते अपना फलदेते हैं पर इनमें (दंड) जोहै सो (अगतिकागतिः) प्रसिद्धहै इसलिये जबतक उनतीन उपायोंसे काम चलसक्ताहो तबतक दंड नहीं लगावै किंतु दंडसंबंधी आचरणका बर्तावा लाचारी अवस्थामें कियाजाताहै-तथापि-जहां२ दंडकी योग्यताहुआ करतीहै सो नीचे अधिकोक्तिमें कहतेहैं ३४५॥

अधि०-पहले त्रयोदश राजमंडलमें तीनप्रकारके शत्रु जो कहेथे वेही सबशत्रु चार२प्रकारके होतेहैं एक तौ यातव्य१ उच्छेत्तव्य२ पीडनीय३ कर्शनीय ४(यातव्य)उस परगमन करने योग्य सोऐसा कौनहोताहै अनन्तर भूपति जो अपना प्राकृत शत्रु गिनाजाताथा और वही किसीहेतुसे कृत्रिम शत्रुभीहोजाय तब उसदशामें यातव्य है और तभी दंडकी अपेक्षाहोगी फिरचाहै वहीअनन्तर भूपअपने सहज शत्रुओंमें भी गिनतीहो या न हो तौ इसबातपर कुछतर्कणा नहींहै १ (उच्छेत्तव्य) अर्थात् नाश करने योग्य कौनसा कि जो अपना कोईप्रकारका शत्रुहोने परभी व्यसनीहो किंतुउक्त अठारह व्यसनोंमेंसे अनेक व्यसनोंसे संयुक्तहो और हीनबलभीहो और उसकी पूर्वोक्त प्रकृतींभी उस्से विरक्तहों किंतु उस्से नाराज या उसमें श्रद्धा नहीं करतीहों या

विदुर्गहो या मित्रहीनहो या दुर्बलहो तो इसमेंभी दंडकी अपेक्षाहोगी २ (पीडनीय) अर्थात् केवल पीड़ादेने योग्य कौनसा कि जो अपना निःसंदेह शत्रु होनेपरभी मंत्र बलसे हीनहो या मित्रबल से हीनहो ३ (कर्शनीय) अर्थात् कृश दुर्बल करदेने योग्य कौनसा कि अपना शत्रुहोनेपरभी प्रबल मित्रकेबलसे संयुक्तहोनेसे बलवान्हो किंतु इसमें कुछदंडकी अपेक्षा तो नहीं परभेद उनमें फूटकरवानेके उपायोंसे निर्बलकरदेना यह तात्पर्यहै यद्वा थोड़ाबहुत उसकेकोश और दंडआदिका अपकर्षण किसीयुक्तिसे करलेना तौभी निर्बलता संभवितहै-तद्यथा (निर्मूलनाशमुच्छेदंपीडनंबलनिग्रहम्। कर्शनंतुपुनःप्राहुःकोशदंडापकर्षणात) शत्रु तो चार प्रकारके कहे पर मित्रभी दोप्रकार के होते हैं यथा एकतो बृंहणीय १ कर्शनीय २ (बृंहणीय) अर्थात् पुष्टबलवान् करदेने योग्य कौनसा कि जो अपने पूर्वोक्ततीनिप्रकारके मित्रोंमें होनेपरभी यथार्थ मैत्रीभावरखताहो परन्तु कोश और बलसे हीनहो तो उसकोकोश और बलसे बृंहणकरदेना चाहिये क्योंकि उससे कभी सहायता मिलेगी १ (कर्शनीय) अर्थात् अपने पूर्वोक्तमित्रों में होनेपरभी कोश और बलकी आधिक्यता उसमें विशेषहो तो किसीप्रकारसे कम करवादेनी चाहिये क्योंकि न जाने कोईसमय वही अपना शत्रुहोजाय या अपनेशत्रुओंका सहायक होजाय २-साम दान दंड भेद यहचार उपाय जो शत्रु और मित्रोंकी अपेक्षासे कहेगये सो केवल इन्हींदोनोंके वशकरनेमें नहीं किंतु छोटेमोटे सभीकामों के प्रबंधमें राजा इनका (योगविचार) देशकाल वस्तुके अनुकूलकरे तथैव राजाके निदर्शनसे औरभी सारालोक अपने साधारण व्यवहारोंकी अपेक्षामें उनकामोंके अनुकूलयोग सोचै-(दृष्टांत) यथा (अधीष्वपुत्रकाधीष्वदास्यामितवमोदकान्। यद्वान्यस्मै प्रदास्यामिकर्णमुत्पाटयामिते) अर्थात् जैसे पुत्रकी शिक्षामध्ये (पढ़ोबेटापढ़ो)इत्यादि प्रियभाषण (साम) उपाय जब इसमें नहीं पढ़ै तब (बेटातुम्हें लड्डूदेंगे) यह कहकर कुछलड्डूआदि देनाभी जिसके लालचसे वहपढ़ै सो यह (दान) उपाय जब इसमेंभी न पढ़ै तब (यहलड्डूअबदूसरेकोदेंगे) यह कहकर उसके देखतेहुये उनको देदेना कि जो पढ़तेहों सो यह (भेद) उपाय कहलाया यद्यपि इसमें देना कहागया परन्तु यहउपाय औरोंको देनेसे दानमें गिनती नहींरहा किंतु इसमें दानरूपसे भेदकर दिखलायाहै क्योंकि भेदशब्दका अर्थ केवल फूटकरवानाही नहीं किंतु भेदके अनन्त लक्षण होते हैं जब इसप्रकारसे भी नहीं पढ़ै तब (तेरोकान उखेड़डालूंगा)इत्यादि असंख्यलक्षण दंडके प्रसिद्धहैं-परन्तु इस दंडरूपी उपायमें राजाको बड़े२ बिचार आवश्यक हैं अर्थात् दंडनीयोंके साथमें अदंड्योंको दंडदेना निषेधहै-तथाचमनुः(यथोद्धरतिनिर्दाता कक्षंधान्यंचरक्षति। तथारक्षेन्नृपोराष्ट्रंहन्याच्चपरिपंथिनः)अर्थात्-जैसे खेतमें (निर्दाता) कहिये कटेहुये अन्नोंकी लावनी आदि करनेवाला एक साथही पैदाहुये अन्न और

तृणादिक दोनोंमेंसे (कक्ष) नाम तृणोंको दूरकरता जाता और अन्नको रखलेताहै तैसेही राजाभी राजकी रक्षाकरै और अपने परिपंथियोंको मारबहावै-अर्थात् दुष्टोंको दंडदेनेमें उनके सहजातभाई भतीजे आदिकुटुंब जोअदुष्टहों तिनको नहींमारै किंतु उनसुजनों सहित राजको बनारक्खे वरन उसराज्यको उन्हींके आधीनकरिकै उनकी और उसराज्यकीभी रक्षा आपकरै परनिपट उसराज्यका नाम चिह्ननहींमेटै तब तौ उसकी शोभा और प्रशंसा और धर्म और बड़प्पन येबनेरहें अन्यथा इनसे विपरीत करनेमें यहसारी बातें विपरीत होंगी क्योंकि जो उनको राज्य सहितबनारखकर अपने आधीन रक्खैगा तब तौ उनराजाओंका पूज्य और उनके मस्तकपर विराजमान उनसे बड़ा कहलावेगा और जब उनका नाम निशानभी मेटदिया तब क्या केवल हालीलोगोंसे बड़ाबनकर उसका बड़प्पन गिनतीमें आसक्ताहै-इसके सिवाय बड़प्पन मिलना तौ एक ओर पर उसअधर्मरूपदशामें राजाका नाशभी होजाताहै सोभी मनुजीने कहाहै-यथा (मोहाद्राजास्वराष्ट्रंयःकर्षयत्यनवेक्षया । सोऽचिराद्भ्रश्यतेराज्याज्जीविताच्चसबांधवः) अर्थात्-जो कोई राजा अपने पूर्व राज्यको या किसी राजको विजयकरिकै अपना करिपावै तिसको भलेबुरेके अविवेकरूप अनवेक्षासे सबको एकसी पीड़ादेताहै अर्थात् शास्त्रीय धनग्रहण और मारणआदि कष्टोंसे एकसाँसभीको दुःखदेताहै वहशीघ्र थोड़े कालमें जनपदवैराख्य प्रकृतिकोप अधर्मोंकरके बाधवों पुत्रादिकों सहित राज्यसेभी भ्रष्टहोजाता और जीवनसेभी नष्टहोजाताहै-इसलियेदंड संबंधी उपायमें अत्यंत सावधानी उचित है ३४५ ॥

अब राजनीतिके षड्गुण कहतेहैं ॥

संधिंचविग्रहंचैवयानमासनसंश्रयौ । द्वैधीभावंगुणानेतान्यथावत्परिकल्पयेत् ३४६ ॥

ऐ०--संधि१ विग्रह२ यान३ आसन४ संश्रय५ द्वैध-या-द्वैधीभाव६-(एतान्षड्गुणान्) इतनेछः गुणोंको (यथावत्) जैसे चाहिये तैसेही अन्य शास्त्रोक्त विधिके अनुकूल (परिकल्पयेत्) बर्तावाकरै-अर्थात् जहां परजिस किसीगुणसे कामचल सक्ताहो तहांउसीको आचरै या जहां दोतीन आदिकईकी आवश्यकताहो तहां कईको आचरै (अथवा) किसीसे संधि और किसीसे विग्रह इत्यादि क्रमसे जहां जैसा संभवहो सो तौ नीचे अधिकोक्तिमें समझना ॥ परइनके लक्षणपहले इसीमें समझो कि-(संधि) उसकर्मको कहतेहैं जो परस्पर किसीप्रकारकी व्यवस्था निश्चयकरिकै अहदनामा लिखलेते चाहे सदैवकेलिये चाहे किसी अवधिकेलिये चाहे किसी प्रतिज्ञाके अनुकूल या कुछदानादि व्यवस्थासे मिलाप करलेना सो इस१ संधिकेभी नीतिग्रंथोंमें सोलहलक्षण पर्यंत प्रसिद्धहैं१-(विग्रह) लड़ाई अपकार वैरयह प्रसिद्धहै२ (यान) यात्राको कहतेहैं कि जो किसीपर चढ़ाईकरी जातीहै३ (आसन) बैठरहना अर्थात् कोई अपनेसे विरुद्धभी कर

ताहो पर अपना अवसर न देखकर उपेक्षापूर्वक चुपके होरहना ४ (संश्रय) उस कर्म को कहते हैं कि जो किसी बलवानका आश्रय सहारा लेलेते हैं कि वह अपनी रक्षा करसके ५. (द्वैधीभाव) उस कर्मको कहते हैं कि जो अपने सेना बलको दोठौर स्थापन करना किसी रक्षा सम्बन्धी स्वार्थ सिद्धिके हेतुसे होता है ६-ये छहूगुण प्रत्येक दो २ प्रकारके होते हैं-तथाचमनुः-(समानयानकर्माचविपरीतस्तथैवच। तदात्वायतिसंयुक्तःसंधिर्ज्ञेयोद्विलक्षणः)-अर्थात्-जहां तात्कालिक या उत्तरकालिकफल सिद्धिके लिये किसी अन्य राजाको साथ लेकर किसीपर चढ़ाई आदि कर्म किया जाता तहां तो (समानयानकर्मा) संधि कहलाताहै १ तैसेही जहां कहीं तात्कालिक या उत्तरकालिक फल सिद्धिके लिये इस प्रकार विपसरूपसे चढ़ाई आदि करीजाती है कि उस द्वितीय नृपतिसे कहाकि तुम वहां जावो हम यहां जावेंगे तहां (असमानयानकर्मा) संधि कहलाता २ यह दो लक्षणवाली संधि मनुजीने कही पुनि इन्हीं दोमेंसे वह सोलह भेद भी उत्पन्न होजाते हैं कि जो विस्तार सहित नीति ग्रंथोंमें कहे अर्थात् युद्ध और जय पराजयके पश्चात् अथवा पहलेही दानादि कर्मोंसे जैसी संधि करीजाती है तैसाही उस कर्मभेद या प्रतिज्ञा भेदसे उसका नामभी प्रसिद्ध किया जाता है (दृष्टांत) यथा दारिकादान आदिसे करीहुई संधिको सन्तान संधिनाम-या द्रव्यादि भेंट देकर करी हो तो उपहार संधिनाम इत्यादि षोडश नाम संज्ञा होजाती हैं १ (अथद्विविधविग्रहः स्वयंकृतश्चकार्यार्थमकालेकालएववा। मित्रस्यचैवापकृतेद्विविधोविग्रहः स्मृतः) अर्थात्-एक तो (स्वयंकृतविग्रह) वह कहाता जो ठेठ अपनेकार्यकी सिद्धि।

अपनी कुछ हानि होतीहो अर्थात् किसी शत्रुने कुछ उपद्रव आदि किसी भूमिभाग में तत्काल खड़ा कियाहो तिसके हेतुसे या तौ आप शक्तिमान्हो तौ एकाकीही अपनी सेना साथ यात्राकरै सो यह एकप्रकार १ अथवा आप निर्बलहो तौ मित्रकोभी उसकी सेना सहित लेकर यात्राकरै सो यह दूसरा प्रकार २ (अथद्विविधमासनं-क्षीणस्यचैवक्रमशोदैवात्पूर्वकृतेनवा। मित्रस्यचानुरोधेनाद्विविधंस्मृतमासनम्) अर्थात् (आसन) उपेक्षाचुपका हो रहना दो प्रकारका ऐसे होताहै कि एकतौ जो कोई अपने (दैवात्) किन्तु पूर्वजन्मार्जित प्रारब्धरूप दैवसे अथवा (पूर्वकृतेन) किन्तु इसी जन्मसे पूर्वकाल में संचित किये दुष्कर्मके प्रभावसे धन बाहन कोश आदि से क्षीण हीन होगया हो तिसका लाचारीसे चुपका होजाना १ और दूसरा (मित्रस्यच-अनुरोधेन) अर्थात् उसका कि जो मित्रके अनुरोध कहिये रोकनेसे चुपकाहो किन्तु शुभचिन्तकतासे आगा पीछा सोचकर मित्र जिसको निषेध करै तिसका २ (अथद्विविधद्वैधं-बलस्यस्वामिनश्चैव स्थितिःकार्यार्थसिद्धये । द्विविधंकीर्त्यतेद्वैधंषाड्गुण्यगुणवेदिभिः) अर्थात्-प्रथम तौ (द्वैध) कहते हैं सेनाको द्विधाकर देना सो यहभी दो प्रकारका द्विधा करना उन लोगों ने कहाहै कि जो (षाड्गुण्यगुणवेदी) किन्तु संधि आदि छःप्रकारके नीति गुण जानने वालेहुये-सो इसमें दोप्रकार क्याहैं कि एक तौ बलकी द्विधा स्थिति और दूसरे स्वामी कीभी द्विधा स्थिति अपने कार्यरूप अर्थ सिद्धिके लिये-अर्थात् एक तौ जहां कहीं सेनापति सहित बलकी तैनाथी संयुक्ति हुईहो तहां किसी प्रयोजनके निमित्तसे द्विधा करना १ दूसरे किसी आवश्यक रक्षासम्बन्धी हेतुसे कभी (स्वामी)के उपलक्षणसे ठेठ राजधानी वा दुर्गसम्बन्धी सेनाका द्विधा करदेना २ यह मनुजीने कहा-परन्तु द्विधा करदेना यह एक निदर्शनमात्र कहाहै किन्तु इसी द्विधाके उपलक्षणसे स्वामीको या सेनापतिको अख्तियारहै कि वह जहां जैसी आवश्यकता देखै तैसाकरै किन्तु द्विधा नहीं त्रिधा चतुर्धा पंचधा करदेना भी द्वैधीभाव कहलावेगा यह सिद्धांतहै-इसके सिवाय केवल द्विधा करदेनेकोही द्वैधीभाव नहीं कहते किन्तु द्वैधीभावके और भी अनेक अर्थ सिद्धांतरूप नीतिशास्त्रों में कहे हैं तिनमें एक तौ यह सिद्धांतहै कि दो तरफ़ से दो शत्रुओंका खटकाहो और निज शक्ति उन दोके तुल्य नहीं देखै तौ उनमें एक से संधि करिके मित्र बनावै दूसरेसे विग्रह करै तौ इस कर्मका भी नाम द्वैधीभाव गुण कहेंगे क्योंकि उसने द्विधा वर्त्ताव किया-एक सिद्धांत यहभी है कि बलवान् दोशत्रुओं से एकसाथ युद्ध विरुद्ध कुछ करनापरै तौ पूर्वापर विचारिके बाणीसे तौ अपने आत्मा को उनके अर्पण करै कि हम तुम्हारे हैं क्षमाकरौ इत्यादि पर हृदय करके द्वैधीभावसे वर्तै सो उस प्रकार अलक्षित भाव से कि जैसे कौआके नेत्र कोई नहीं लखपाता इत्यादि और भी नानाभेद इस द्वैधीभावकेहोतेहैं (यथा)-बलिनोर्द्विषतोर्मध्येवाचात्मानं

समर्पयेत । द्वैधीभावेनवर्त्तेनकाकाक्षिवदलक्षितः) (अथद्विविधस्संश्रयः-अर्थसंपादनार्थं चपीड्यमानस्यशत्रुभिःसाधुपुव्यपदेशार्थंद्विविधःसंश्रयःस्मृतः)अर्थात् (संश्रयः) किसी का आश्रय लेना सो यह भी दो प्रकारका होताहै एक तौ शत्रुओंकरके पीड़ित किये का अपने (अर्थसंपादन) के अर्थ कहिये उन्हींशत्रुओंकी दीहुई पीड़ा निवृत्तिके लिये किसीकी शरणमें जाघुसना १ दूसरा संश्रय वह कि शत्रुकीपीड़ा वर्त्तमानमें नहींपर होनेवालीपीड़ा की शंका से किसी का अवलंबमात्र लेना क्योंकि (साधुपुव्यपदेशार्थं) अर्थात् अच्छे भलोंसे कि जब तक पीडा का प्रारम्भ न होने पाया तबतक सर्वत्रसर्व जनों पर यह व्यपदेश व्याजमात्र किंतु चर्चा का वहानामात्र प्रकट होजानेके लिये कि वह नृपति अमुक अतिवलवान् राजाके आश्रय होगया जिस्से कोई पीड़ादेनेका विचारही फिर न करसके ३४६ ॥

अब अगलेश्लोकमें यात्राके उद्देश पूर्व इनछहूगुणके भिन्न २ वर्तावामध्ये काल वर्णन करते हैं ॥

यदासस्यगुणोपेतंपरराष्ट्रंतदाव्रजेत् । परश्चहीनआत्माचहृष्टवाहनपूरुषः ३४७ ॥

ऐ०—जो निजशत्रुपर चढ़ाईकरने की आवश्यकता हो तौ जब उसका देश(सस्य) नाम धान्यादि सर्ववस्तु से संपन्न फलाफूला और गुणोंसे भी उपेतहो किन्तु समान जल ईंधन तृण घासफूस आदिसे संपन्नहो तब यात्राकरै सो यह ऐसा बानकबहुधा शरद्काल में होताहै इसीलिये मनुजीने मार्गशीर्षआदि मास युद्धयात्राको गुणकारी कहे और लोकमें भी विदित हैं क्योंकि उनमासोंमें युद्धकारियों को बहुधा आतप आदिसे पीड़ा नहींहोती परन्तु केवल कालसेही कुछ सिद्धिनहीं किंतु(परश्चहीन)अर्थात् वह अपना शत्रुभी बलादिकोंसे हीनहो और आप अपने वाहन और पुरुषोंसे भी हृष्टहो किंतु अपने हाथी घोड़ा आदि और सेनाभी हृष्टपुष्टहो तबयात्राकरै३४७॥

अधि०—पूर्वोक्त षट्गुणोंके वर्त्तावामध्ये जो २ कालउनके मनुजीने कहेहैं सो इस प्रसंगमें यथा क्रमसे दर्शाते हैं (तत्रादौ-यथासंधिः-यदावगच्छेदायत्यामाधिक्यंध्रुवमात्मनः। तदात्वेचाल्पिकांपीड़ांतदासंधिंसमाश्रयेत्) अर्थात्-जहां कहीं युद्धकरना परा हो और कदाचित् उसकी(आयत्यां)आयतीमें किंतु युद्धकेपीछे उत्तरकालमें(आत्मनःआधिक्यं-ध्रुवं-अवगच्छेत्)किंतु अपनी जयरूप अधिकता निश्चयजानै(तदातत्कालही) थोड़ा भी अपना धनादिक जो हानि हुआहो सोलेना अंगीकार करिकै संधिके आश्रय होजाय किंतु अरिसेमिलापकरलेवै-क्योंकि(तदात्वेचअल्पिकांपीड़ां)अर्थात् उसकालमें तौ थोड़ीहीपीड़ा या हानिको पहुँचाहै और इसमें अपनी बात रहती है न जानिये अबके युद्धमें क्याहो १ (अथविग्रहकालः-यदाप्रकृष्टामन्येतसर्वास्तुप्रकृतीर्भृशम् । उच्छ्रितंतथात्मानंतदाकुर्वीतविग्रहम्)अर्थात्-जब किसीसे अपना

उसदशामें निपट जब अपनी पूर्वोक्त द्रव्य प्रकृतीं अमात्य आदि सभी को (प्रकृष्ट) कहिये दान मानादि सत्कारोंसे संतुष्ट हुईं अपनेमें श्रद्धावान् मानै तथा निजआत्मा कोभी(अत्युच्छ्रित)कहिये अतिसमृद्ध जानै तौ बिग्रहकरै अन्यथानहीं २ (अथयानकालः-यदामन्येतभावेनहृष्टंपुष्टंबलंस्वकम् । परस्यविपरीतंचतदायायाद्रिपुंप्रति) अर्थात्-जब तबसे अपने अमात्य और सेनारूप बल (हृष्ट) हर्षयुक्त और (पुष्ट) धनादि संपत्ति से बलवान् जानै और शत्रुकाबल बिपरीतनाम दुर्बल समझै तब उसरिपुपर यान कहिये यात्रा करै अन्यथा नहीं ३ (अथआसनकालः-यदातुस्यात्परिक्षीणोवाहनेनबलेनच। तदाऽऽसीत्तप्रयत्नेनशनकैःसांत्वयन्नरीन्)-अर्थात्-जब कदाचित् आप हाथी घोड़े आदि वाहन और बल सेना और अमात्यादिक प्रकृतींभी इनसेपरिक्षीण दुर्बल हो तदा(प्रयत्नेनआसीत्)अर्थात् उसदशामें बड़े यतनकेसाथ अपनी रक्षापूर्बक आसन मार चुपकाहो बैठा रहे तथापि(अरीन् शनकैः सांत्वयन्)शत्रुओं को धीरे २ ठंढाकरता हुआ बैठारहे किंतु किसीको सामरूपी प्रियभाषण आदि उपायसेही ठंढाकरै किसी को(उपदान)से किंतु घूँस पच्चड़ आदि उपहारोंसे और किसीको(प्रदान)से अर्थात् पूर्वोक्तउपायोंसे भी न बनिआवै तौ किसी भूमिभाग आदि रत्नके देडालनेसे ठंढाकरता हुआ बैठारहै क्योंकि इसीमें सबकल्याण है ४ (अथद्वैधीभावकालः-मन्येतारिंयदाराजा सर्वथाबलवत्तरम्। तदाद्विधाबलंकृत्वासाधयेत्कार्यमात्मनः) अर्थात् जबराजा अपने अरिको सबतरहसे बलवान्तर समझै किंतु पूर्वोक्त साम उपदान प्रदान इनसे भी वशमें नहीं आसकता हो तबलाचार निजसेना बलके द्विधा बिभाग करिकै अपना कार्य साधनकरै अर्थात् कुछेक बलसे तौ आप अपने दुर्गमें रक्षासहित बैठारहे किंतु युद्धभूमिमें न जावै आप और कुछेकबलसे सेनापति द्वारा उनशत्रुओंसे युद्धको आरंभ करै जो इसपर उद्यत हुयेहों यद्वा युद्धकी संभवता वर्त्तमान तौ नहीं परतीव्र शंका उसकी संभवहो तौ सीमाकी रखवाली आदि आधेबलसे करताहुआ-और आधेबल से दुर्गमें बैठाहुआ आप मित्रादिकों का संग्रहरूप अपनाकार्य साधन करै ५ (अथसंश्रयकालः-यदापरबलानांतुगमनीयतमोभवेत्। तदातुसंश्रयेत्क्षिप्रंधार्मिकंबलिनंनृपम्) अर्थात्-जब कदाचित् पूर्वोक्त रीतिसे द्विधाबल करनेपरभी निजरक्षा न होसक्ती हो किंतु अमात्यादि प्रकृतियों वा सेनापतियोंके उत्पन्न किये दोषकी बहुताइत से अपने आपेको शत्रुओंके वशमें जाताहुआ समझै कि अब कोईभांतिसे रक्षा नहीं होसक्ती तब शीघ्र किसी अन्य राजाके पासजाकर उसकी शरणका आश्रय लेवै परन्तु ऐसे राजाका संश्रयकरै जो धार्मिक और निजशत्रुसे बलवान्भी हो क्योंकि उसमें इन बातोंविना वहांभी रक्षाहोनी कठिन है-इसलिये जो दैवाधीन ऐसाही मिलजाय तौ यह आचरण करना चाहिये सो कहते हैं ६ (यथा-निग्रहंप्रकृतीनांचकुर्याद्योरिबलस्य

च। उपसेवेततंनित्यंसर्वयत्नैर्गुरुंयथा) अर्थात्-वह बलवान् और धार्मिक राजा जो इसके उन प्रकृतियों कोभी निग्रह करे किन्तु उन अमात्यादिक और सेनापतियों को दंडदेवे जिनके दोषकरके यह गमनीयतम हुआथा और इसके शत्रुबलकाभी निग्रह करे अथवा जिसके आश्रयभूत होनेसे यह आपही उनदोनोंका प्रतिकार करसकैतिस बलवान राजा को यह नित्यंप्रति उसप्रकार से उपसेवन करै जैसे गुरुको निष्कपट होकर सेवनकरतेहैं-भलाजब ऐसानहींमिले और इसमेंभी निर्वाह न होसक्ताहो तब क्याकरे सो कहतेहैं कि-(यदितत्रापिसंपश्येद्दोषंसंश्रयकारितम्। सुयुद्धमेवतत्रापिनि र्विशंकःसमाचरेत्)-अर्थात्-संश्रयभी अगतिकागतिहोता है किन्तु जिसका आश्रय लेनेगये नजानिये वह कैसामिले इसलिये जब वहांभी संश्रयसे उत्पन्नहुआदोषकुछ विश्वास घात आदि भलीभांति देखे तब वहांभी निधड़क होकर फिर तीव्र युद्धको आचरे क्योंकि कहीं दुर्बलभी प्रबलको जीतलेता देखाहै अथवा यह नहीं तो मारे जाने में स्वर्गफल तो कहीं नहीगया-इसलिये दैवहुये समयपर केवल युद्धकेही करनेमें भलाई होतीहै-तथाचनीतिः(यत्रायुद्धेध्रुवंनाशोयुद्धेजीवितसंशयः। तमेवकालंयुद्धस्य प्रवदंतिमनीषिणः) अर्थात्-जहांदैवहुये समयपर युद्धके नकरनेमें तो निश्चय नाश होताहो और युद्धके करनेमें दोनों संशय किन्तु चाहे दैव सीधाभी होजाय तब ऐसे कालको मनीषीलोग युद्धकाही समय बतलाते हैं ३४७ भला वहकामही ऐसा क्यों करना जिस्से ये झगड़े और विपत्तें आदि खड़ीहों किन्तु सारा संसार दैवकेआधीन है उसीसे जीवोंके उदय और निपातभी होतेहैं-अर्थात् जोकुछ दैवमें बदा होगा सो सब आपसे आप चाहे उदय यद्वा निपात निस्संदेह सिद्धहोगा-और जो दैवमें नहीं सोआयास करनेपरभी नहींहोसक्ता इस्से उपायादिक आयास करनेही व्यर्थहैं-किंतु दैवपर होजाना उचितहै सोनहीं इसीलिये अबनीचे कहतेहैं॥

दैवेपुरुषकारेचकर्मसिद्धिर्व्यवस्थिता। तत्रदैवमभिव्यक्तंपौरुषंपौर्वदेहिकम् ३४८॥

अक्ष०-कर्मकी सिद्धि दैवमें और पुरुषकारमेंभी व्यवस्थापित हुईहै तहां दैव प्रत्यक्ष पूर्वदेहिक पौरुषहै ३४८॥

अभि०-यहबात जोकोईकहे कि साधनभूत कर्मोंकी फलसिद्धि केवल दैवकेआधीन है सो नहीं किंतु वहइष्टानिष्टफल सिद्धि दैव और पुरुषार्थ दोनोंमें संस्थापित करीगई उस जगदीश करके क्योंकि(पुरुषकार)पुरुषार्थके विना वह दैवही नहींहोता फिरदैवमें फलसिद्धि क्योंकर होसक्ती है इसीलिये पिछले अर्द्धसे यह सिद्धांत प्रकट करते हैं कि यद्यपि दोनोंमें फलसिद्धि धरीगई पर तथापि उनमें जिसकोदैव या प्रारब्धकहते हो सो वह दैवभी पूर्वदेहिक पौरुष रूप(अभिव्यक्त)है अर्थात पूर्वजन्मके देहसे भले बुरे जो २ कर्म पुरुषार्थरूप संचित कियेथे वेही इसजन्म के प्रारब्धरूप होकर प्रकटहुये

इसीको दैव कहा करतेहैं तौ यथार्थसे पुरुषकारही उसदैवसेभी बड़ा ठहरा कि जिसके प्रभावसे इष्ट या अनिष्टरूप दैवकी उत्पत्तिहुई जिस्से सुख या दुःख पाया इसहेतुसे अवश्यभाव करके पुरुषकारमें यत्नादिक उपाय कर्त्तव्यहैं तिसपीछे दैवपर अवलम्ब लेनाचाहिये कि इस पुरुषकारमेंदैवकेअनुकूल जोकुछफल होनाहोगा सोहोगा-इसलिये कि जो पूर्वदेहिक पुरुषार्थरूप दैवबलवान् होताहै तबतौ इसदेहसे थोड़ाभी उपाय करनेपर तत्काल वहीदैव महाफल सिद्धिरूप होकर उदय होजाताहै तथापि सिद्धांत में उस थोड़ेसे उपायकी आवश्यकता बनीरही किन्तु निपट न करनेमें उदयकीसंभवता नहींरही-अथवा-जहां दैव दुर्बल या पूर्वदेहिक दुष्कर्मोंके प्रभावसे दुर्दैव हुआ तौभी इसदेहके सुकर्मरूप यत्नोंसे यद्यपि थोड़े आयास पर महाफलका उदय नहीं होता परन्तु अति आयास और सुकर्मोंके प्रतापसे दुर्दैवत्वकी शांति होजाती है-अथवा-जहां यहभी नहीं किन्तु इस देहसे कियेहुये सुकर्म भी सर्वथा निष्फल देख परते तहां निस्संदेह वे सुकर्म संचित होकर अगले जन्मके प्रारब्धरूप दैव होजाते हैं-अर्थात् सर्वथा यही निश्चितहै कि पुरुषार्थ सेही दैवबनताहै फिर उसी पुरुषार्थ के प्रभावसे उन्नति और उदयको पहुँचता है इसलिये सुकर्मों के पुरुषार्थ मध्ये यत्न करनेकी उपेक्षा करनी अनुचित है ३४८ ॥

अब इसीमें कुछ औरभी मतान्तर दर्शातेहैं ॥

केचिद्दैवात्स्वभावाद्वाकालात्पुरुषकारतः। संयोगेकेचिदिच्छंतिफलंकुशलबुद्धयः ३४९ ॥

ऐ०–संसारमें कोई पुरुष तो नीके नागा लक्षणवाले फलको दैवसेही इच्छा करतेहैं कि जो कुछदैव करै सोईठीक है हमसे कुछ आयासमें उत्साह नहीं होता या कोईकरौ तौ कुछ होभीनहींसक्ता-और कोई पुरुषभलेबुरे फलोंको स्वभावसे अपेक्षा करते हैं कि आपसे आप जो कुछ होनहारहोता है सो हो जाताहै अर्थात् वे दैवको भी नहीं गिनते और न पुरुषार्थ आदि किसी को इसमें कारण कहते-कोई पुरुष कालके आधीन बतलातेहैं किकाल जो कुछ करताहै सो होताहै और किसीकेभी करने से कुछ नहीं होता-कोई केवल पुरुषकारसेही अर्थात् निज उपाय और पुरुषार्थके करने धरनेसे होजाय सोई ठीकहै यह अभिमान करतेहैं-और (केचित्कुशलबुद्धयः) किंतु कोई अतिप्रवीण बुद्धिवालेमनु आदिमहर्षिलोग (संयोगेफलंइच्छंति) अर्थात् दैव आदि जो २ पहले श्रद्धामें कहेगये तिनसबों के संयोग से फल होताहै यह कहते हैं किन्तु केवल किसी एक हेतुसे कुछ नहीं-इसीका दृष्टांत नीचे कहते हैं ३४९ ॥

यथाह्येकेनचक्रेणनरथस्यगतिर्भवेत्। एवंपुरुषकारेणविनादैवंनसिद्ध्यति ३५० ॥

ऐ०–जैसे एक पहिया से रथकी गति नहीं होती ऐसेही पुरुष कारके विनादैव भी नहीं सिद्धहोता किन्तु जब दोनों ओर चक्रलगते हैं तब चलता है ३५० ॥

हिरण्यभूमिलाभेभ्योमित्रलब्धिर्वरायतः। अतोयतेततत्प्राप्त्यैरक्षेत्सत्यंसमाहितः ३५१ ॥

ऐ०-पराये राज्यमें लाभके हेतु से पहुँचेहुये को किसलाभपर अधिक दृष्टिकरनी चाहिये क्योंकि मुख्यलाभ तीनप्रकारके होतेहैं एकतो धन१ पृथ्वी२ मित्र३ इसलिये कहते हैं कि-हिरण्य १ और भूमि २ इन दो लाभों की अपेक्षा मित्रलब्धि जिस हेतु से श्रेष्ठ कहलाती है इसीसे उस मित्रकी प्राप्तिमें यत्न करै पूर्वोक्त सामादिक उपायोंसे और समाहितहुआ सावधानी से अपने सत्यवचनकीभी रक्षाकरै किंतु जो कुछ वचन प्रतिज्ञारूपदिया हो संधिके हेतुसे तिसको पीछे मेटै नहीं क्योंकि मित्रलब्धिके विषय में सत्यता मूलमंत्रहै अर्थात् अपनी सत्यसे बिचलैगा तो मित्रभी फिर उसका शत्रु होजायगा और न जानै पीछे कितने शत्रुहोजायँ इस अधर्मसे ३५१ ॥

भला मित्रऐसी क्या वस्तुहै जिसके लिये इतना बड़ा आगा पीछा वर्णन किया सो कहतेहैं नीचेकेश्लोकसेकि मित्रविनाराज्यके सातअंगपूरेनहीं होसक्तेयहसिद्धांतहै॥

स्वाम्यमात्याजनोदुर्गंकोशोदण्डस्तथैवच। मित्राण्येताःप्रकृतयोराज्यंसप्तांगमुच्यते ३५२ ॥

ऐ०-एक तो (स्वामी) १ अर्थात् राजा आप और (अमात्याः) २ अर्थात् मंत्री और पुरोहित आदि (जनः) ३ अर्थात् चातुर्वर्ण्यादिसारे प्रजालोग जो राज्यके निवासी हों (दुर्ग)४ किला गढ़ कोट आदि अपने राज्यभरेमें जितनेहों (कोश)५ खज़ाने सबतरह के (दण्ड) ६ अर्थात् हाथी घोड़ा पैदल आदि सेना सब तरहकी (मित्राणि) ७ अर्थात् अनेक मित्र जितने होसकैं और मिलसकैं यह सात वस्तुराज्य की प्रकृतीं अर्थात् मूल कारण होतीहैं इन्हीं से सप्तांग राज्य पूरा कहलाता है ३५२ ॥

तदवाप्यनृपोदंडंदुर्वृत्तेषुनिपातयेत्। धर्मोहिदंडरूपेणब्रह्मणानिर्मितःपुरा ३५३ ॥

ऐ०-उस ऐसे राज्यको पाकर नृपति दुर्वृत्तोंमें दण्ड निपातकरै अर्थात् धूर्त्त,बंचक, शठ,परदार परद्रव्यापहारी परहिंसक आदि दुर्जनों को दण्डदेवै क्योंकि पहलेब्रह्माने (हि)जिसहेतुसे धर्म जोहै सोई दण्डरूप निर्मित कियाथा-किन्तु-अधर्मकी हानि और धर्म की प्रवृत्ति बिना दण्डके नहीं होसक्ती ३५३ ॥

सनेतुंन्यायतोशक्योलुब्धेनाकृतबुद्धिना। सत्यसंधेनशुचिनासुसहायेनधीमता ३५४ ॥

ऐ०-वह दण्डभी (लुब्ध) कृपण प्रकृतिवाले से या (अकृतबुद्धि) चंचल बुद्धिवाले से न्याय पूर्व नहीं लगसक्ता किन्च जो (सत्यसंध) हो अर्थात् सत्यभावसे धर्मानुकूलप्रजा की रक्षामें तत्परहो और (शुचि) भी हो अर्थात् काम क्रोध लोभ मोहादिसे निर्मलहो और (सुसहाय) कहिये पूर्वोक्त सहायक जिसके श्रेष्ठहों और(धीमान) हो किंतु नय अ-नयके बिचार में प्रवीणहो तबऐसे नृपतिसे वहदण्ड न्यायके अनुसारप्रयुक्तहोसक्ताहै

यथाशास्त्रंप्रयुक्तःसन्सदेवासुरमानवम्। जगदानंदयेत्सर्वमन्यथातत्प्रकोपयेत् ३५५ ॥

ऐ०-क्योंकि वह दण्ड यथायोग्य शास्त्र बिधिके अनुसार लगाया हुआ देव असुर

मानव इन सबों करके सहित सारे जगत् को आनंद करता है अन्यथा शास्त्र से विपरीत प्रयुक्त कियाहुआ उसी जगत् को प्रकोपित करदेता है-फिर सारे जगत् के प्रकोपित होनेमें राजाका भी कल्याणकहां ३५५ ॥

केवल जगत् का प्रकोपही नहीं किंतु और भी सर्वथा हानि होतीहै ॥

अधर्मदण्डनंस्वर्गकीर्त्तिलोकांश्चनाशयेत्। सम्यक्तुदण्डनंराज्ञःस्वर्गकीर्त्तिजयावहम् ३५६ ॥

ऐ०-क्योंकि अधर्म दण्ड नाम अन्यायरूप दण्डकरना यहराजाके(स्वर्ग) नामऐश्वर्य तथा स्वर्ग प्राप्तिकोभी और (कीर्ति) नाम सुयश कोभी और (लोकान्) अर्थात् मनुष्यों और देशों तथा परलोकोंकोभी विनाश करदेताहै-और जो सम्यक् न्याय की रीति से शास्त्रोक्त दण्ड लोभादिक बर्जित करिकै कियाजाता वही धर्मका हेतु निश्चयहोने से स्वर्ग कीर्ति जय इनका देने और वृद्धिकरनेवाला होजाता है ३५६ ॥

अपिभ्रातासुतोऽर्घ्योवाश्वशुरोमातुलोपिवा। नादंड्योनामराज्ञोस्तिधर्माद्विचलितःस्वकात् ३५७ ॥

ऐ०-(अपि)चाहे राजा का भ्राताहो या पुत्रहो अथवा (अर्घ्य) पूज्य हो या ससुराहो मामा आदि कोई हो जो अपने आत्मा सम्बन्धी धर्म मर्यादा से विचलित हों तौ ये भी सब दंडय हैं फिर इनसे इतरोंकी का कथा-क्योंकि- राजाकेनिकट कोई ऐसानाम नहीं जिसकोकहें कि वह अदंडय है अर्थात् जो कोई अपनी उचित मर्यादा से पगडिगावैं वह कोई भी अदंडय नहीं पर जैसा वह दोषहो या जैसादोषी मनुष्यहो उसी की योग्यता अनुकूल दण्ड योग्यहै ३५७ ॥

अधि०-स्मृत्यंतरेतु(अदंडयौमातापितरौ स्नातकपरिव्राजकपुरोहितवानप्रस्थाःश्रुतशीलशौचाचारवंतस्तेहिधर्माधिकारिणः) अर्थात्-अन्यशास्त्रोंमें यह कहाहै किएक तो मातापिता यह दोनों सदाही अदंडयहोते और इनके सिवाय स्नातक आदिचार येभीजो ऊपर मूलवाक्यमें गिनायेगये सो अदंडयहोते उस दशामेंकि जो ज्ञानशौच आचारसे संपन्न हों क्योंकि ये इनबातोंसे संपन्नहुये धर्मके अधिकारीहोतेहैं-इसकथन से और ऊर्ध्वोक्त योगीश्वर के मूल वाक्य से यद्यपि प्रत्यक्षभावमें बिरुद्धदेख परताहै तथापि दोनों का परस्पर सिद्धांत एक है कुछ अन्तर नहीं-क्योंकि योगीश्वरने पूज्यों को भी दंडय कहा उनके उपलक्षण से मातापिताभी गिनतीमें आगये परंतु योगीश्वरने यह नहीं कहा कि पूज्यों कोभी वेहीदंड देने जो अन्यसाधारणोंको दियेजातेहैं किन्तु पूज्यों के देनेयोग्य दंडभी कुछ और प्रकारके होतेहैं दृष्टांत जैसे मातापिता से कुछ अयोग्यता हो तौ उनके लियेपरम दंड यहीहै कि उनसेमुख संभाषण आदिका त्याग करना ऐसेही अन्य पूज्योंसे साधारण अपराधमें मुख संभाषण आदिकात्याग यद्वा अपराध की अधिकतामें आजीवनकी न्यूनता यद्वापरम अपराधमें निज उन्हीं का परित्याग आदि-इसीप्रकार अधिकोक्ति के प्रारंभमें जिस वाक्यने मातापिता को

अदंडय कहा उसनेभी यह नहीं कहा कि उनकी उपेक्षामात्रभी न करनी किंतुयथार्थ में अदंडय कहा सो इसलिये कहा कि जोर दंड औरोंको दियेजाते उनदंडोंके योग्य मातापिता नहींहैं पर उनके कियेहुये किसी अधर्मके अनुकूल उपेक्षा आदिके योग्य तो भी हैं ऐसेही-उन चारों कोभी समुझलेना इसप्रकारसे दोनोंका सिद्धांत मिलकर मध्यम है-इसीलिये ३५३ श्लोकसे लेकर ३५६ पर्यंत कहचुकेहैं कि दण्ड देनेसें अत्यंत न्यायदृष्टिकी आवश्यकता है-क्योंकि अज्ञानी राजा विरली वातोंमें इसआग्रह से अनर्थरूप दण्डकरता है कि जो शास्त्रमें लिखाथा सो किया परंतु यथार्थमें उसलेखका आशय सिद्धांत कहीं दूर होताहै इसलिये सवसे पहले दंडय और अदंडय काही निश्चय करना योग्य है ३५७॥

योदंड्यान्दंडयेद्राजासम्यग्वध्यांश्चघातयेत्। इष्टंस्यात्क्रतुभिस्तेनसमाप्तवरदक्षिणैः ३५८॥

ऐ०-जो राजा दंडनीयों को सम्यक् रीतिसे शास्त्र और विचार के अनुसार धिग्दंड आदिदंडों से दण्ड देवेहै और वधयोग्यों को सम्यक् रीतिसे घातकरै है उस राजाने जानो वहुतसी दक्षिणा वाले यज्ञोंसे यजन किया ३५८॥

अधि०-दंडनीयों को दंड न देने और अदंडयों को दण्ड देने में प्रायश्चित्तभी वसिष्ठजीने कहा है-यथा (दंडोत्सर्गेराजैकरात्रमुपवसेत्त्रिरात्रंपुरोहितः कृच्छ्रमदंड्यदण्डनेपुरोहितस्त्रिरात्रंराजा)अर्थात्-दंडनीयों से दण्ड त्यागकरने किंतु न देनेमें राजा एक रात्रि उपवासरूप प्रायश्चित्तकरै पुरोहित तीनरात्रिकरै और कदाचित् अदंडय कोही दण्ड दियाहोतौ राजा तीन रात्रि उपवासरूप प्रायश्चित्त और पुरोहित कृच्छ्र सांतपनव्रतकरै तव शुद्धहो परंतु यह प्रकार केवल अज्ञातभावमें होजानेपर कहा है किंतु जान वूझकर ऐसा करने में प्रायश्चित्तसेभी शुद्धिनहीं होती है ३५८॥

अब दंडय और अदंडय की परिज्ञान विधिकहते हैं॥

इतिसंचिंत्यनृपतिःक्रतुतुल्यफलंपृथक्। व्यवहारान्स्वयंपश्येत्सभ्यैःपरिवृतोऽन्वहम् ३५९॥

ऐ०-(इति) यही ऊपर कहाहुआ यज्ञ फल जो दुष्टोंके दण्ड देनेमें होताहै तिसको और अदंडयों को दण्ड देनेमें जो सर्वस्व नाश होना कहा तिसकोभी राजा सम्यक् रीतिसे चिंतमन करिकै कि मुझको केवलफलकी प्राप्तिहो पर दोष नहीं लगनेपावै इससे दुष्ट और अदुष्टोंकेपरिज्ञानकेलिये राजा निज आप नित्यंप्रति (पृथक्२) भिन्न२ वर्णादि क्रमसे(सभ्यैः)सभाजनों करके(परिवृत)संयुक्तहुआ उनकेसाथ व्यवहारोंको देखै भालै ये व्यवहार आगे व्यवहाराध्यायनाम द्वितीय खंड में सब कहेंगे और उसीके प्रारंभ में सभाजनोंकेभी लक्षण कहेंगे कि ऐसे २ होने चाहिये ३५९॥

कुलानिजातीःश्रेणीश्चगणान्जानपदानपि। स्वधर्माच्चलितान्राजाविनीयस्थापयेत्पथि ३६०॥

अक्ष०-स्वधर्म से चलित हुये कुलों को जातोंको श्रेणियों को गणोंको जानपदों

को (अपि) निःसंदेह राजा (विनीय) दण्डसे बश करिकै (पथिस्थापयेत्) उनके धर्म मार्ग में स्थापित करै ३६० ॥

अभि०-(कुलानि) अर्थात् ब्राह्मण आदि बर्णों के कुल कहिये परिकर (दृष्टांत) जैसे एक ब्राह्मणमें दशभेद या अनेकभेद ऐसेहीक्षत्रिय और वैश्यमेंभी तिनसबोंकोभिन्न२ और (जातीः) अर्थात् मूर्द्धावसिक्त आदि छोटीमोटी औरभी अनेक जातोंको भिन्न२ और (श्रेणीः) अर्थात् वे जातें कि जो अपने २ जाती नामसे किसी नियत पेशेको करती चलीआती हैं जैसे तमोली,भरभूजा, नाई,बारी आदि अनेकोंको भिन्न २ और (गणान्) अर्थात् समूह उन मनुष्यों के कि जो एकही किसी काम को अनेक जातोंके लोग करतेहैं और उसी कामकेनामसे सबएकही गणमें गिनेजातेहैं(दृष्टांत) जैसे बजाज सराफ आदि अनेकों को और (जानपदान्)अर्थात् जनपदनाम राज भूमिमें उत्पन्न हुये (कारुक) नाम कारीगरलोग जैसे लुहार,बाढ़ई,सूपकार आदि अनेकोंको-किजो२ अपनी उचित मर्यादासे बिचलैं पगडिगावें तिनको राजा निश्चय दंडदेकर उनकी धर्म मर्यादामें स्थापित करै जो उचित से अनुचित नहीं करने पावें इस्से यहभी निश्चितहुआ कि बहुधा खिच्चर जातैं और अज्ञातजातैं जो निज कपोल कल्पनाद्वारा अपने को शर्म वर्मादि पद प्रसिद्धि देतेहैं तिनको देशकालका राजा अपने देशकाल में निषेध करनेका अधिकारीहै और यही सिद्धांत३४२ केभीश्लोकसेनिर्णीतहै३६०॥

अधि०-स्वधर्म से बिचलित हुये दुर्वृत्तों को सर्वथादंड देनाकहा वह दंडभी दो प्रकार का होताहै-तथाचनारदः (शारीरस्त्वर्थदण्डश्चदण्डस्तुद्विविधःस्मृतः। शारीरस्ताडनादिस्तुमरणांतःप्रकीर्त्तितः॥काकिन्यादिस्त्वर्थदण्डःसर्वस्वांतस्तथैवच)अर्थात्-एकतौ शारीरदण्ड १ दूसरा अर्थ दण्ड२ यह दो प्रकार का दण्ड कहाहै तिसमें शारीर दण्ड वह कहलाता जो ताड़न पीटन आदिलेकर मरणपर्यंत होताहै क्योंकिवह शरीरसेही सम्बन्ध रखता है और अर्थ दंड धन दंडको कहते हैं वह एक कौड़ी से लेकर सर्वस्व हरलेने पर्यंत जो कुछहो क्योंकि वह केवल धनसेही अपेक्षा रखताहै-इन दो प्रकारोंमेंसे फिर अपराधके अनुसार अनेकप्रकार होजाते हैं-यथा (शारीरो दशधाप्रोक्तोह्यर्थदंडस्त्वनेकधा)अर्थात्-शरीर दण्ड दश प्रकारका कहा है और धन दण्ड अनेकधा असंख्य लक्षणवाला होताहै देश काल वस्तुके अनुसार सो सब लक्षण इन दोनोंके व्यवहारांग शास्त्र पढ़नेसे निश्चित होजाते हैं ३६० धनदंडको संज्ञा भेदसे कृष्णल माष सुवर्ण पल इत्यादि शब्दोंसे बोलतेहैं इसलिये कि धनवाचक शब्दोंके पर्याय देश भेदसे जुदे २ होतेहैं पर दंडके प्रयोजनमें एक रूपके अपराधमें भेद मतहो इस्से उन शब्दोंको नियतरूप से दर्शाते हैं कि निज २ देशकी अपेक्षासे तुल्यता करके दंडका व्यवहार किया जावै ॥

जालसूर्यमरीचिस्थंत्रसरेणूरजःस्मृतम्। तेऽष्टौलिक्षातुतास्तिस्रोराजसर्षपउच्यते ३६१॥

ऐ०-जाल झरोखेमें प्रवेश हुई सूर्य किरणोंमें उड़ती हुई रजके परम छोटे विभाग जो चमकते हैं वेही (त्रसरेणु) नामसे विख्यातहैं वही त्रसरेणु आठ मिलकर एक (लिक्षा) कहलाती हैं वे तीन ३ लिक्षा मिलकर एक (राजसर्षप) कही जाती है-लिक्षा लीखोंका नामहै जो बालोंमें पसीनेसे छोटी २ अंडेसे उत्पन्न होजाती हैं-और राजसर्षप यद्यपि गोरी या पीली सरसोंका नामहै पर इस वार्त्तामें राजसर्षप राईको कहते हैं ३६१॥

गौरस्तुतेत्रयःषट्तेयवोमध्यस्तुतेत्रयः। कृष्णलःपंचतेमाषस्तेसुवर्णस्तुषोडश॥पलंसुवर्णाश्चत्वारःपंचवापिप्रकीर्तितम् ३६२॥

ऐ०-वे पूर्वोक्त राजसर्षप तीन मिलानेसे एक (गौरसर्षप) किन्तु गोरी सरसों होती है यह सरसों सबकी सिद्धार्थरूपहै क्योंकि इसीसे सब बांट आदि बनते हैं-छःसरसों का एक मध्यम (यव) कहाताहै मध्यम इस्से कहा कि बहुत मोटाभी नहो बहुत पतला भी नहो उस जौ पर छः सरसों चढ़ती हैं-तीन मध्यम यवोंका एक (कृष्णल) कहलाता है कृष्णला गुंजा घुंघुची चौंटली यह नाम इसके लोकमें प्रसिद्धहैं बहुधा इसीको रक्तिकाभी कहते हैं-पांच कृष्णलोंका एक (माष) होताहै माष यद्यपि उड़दका नाम है पर इस वार्त्तामें उस्से कुछ अपेक्षा नहीं किन्तु मासेकी तौलसे अपेक्षा है पर लौकिक में जो आठ रत्तीका मासा प्रसिद्धहै उस्से इसकी तुल्यता नहीं होसक्ती अर्थात् यह दंड सम्बन्धी व्यवहारका मासा जुदाहै-ऐसे सोलह माषोंका एक (सुवर्ण) कहलाताहै और यथार्थ में यह सब नाम तौलसे भी अपेक्षा रखते हैं जैसे ऊर्ध्वोक्त सोलह मासोंभर तोलीहुई वस्तु एक सुवर्ण भर कहलावे-चार सुवर्णका एक (पल) कहलाताहै अथवा नारदादिकों ने पांच सुवर्ण काभी एक (पल) कहा है ३६२॥

अधि०-यद्यपि योगीश्वरका कहाहुआ मुख्य सिद्धांत ऊपर सिद्ध होचुका और इन बातोंसे बहुधा काम अब नहींपरता तथापि इस वार्त्तामें पहले लोगोंने अपने २ देश और काल और मतके अनुसार जो जो मान भेद संज्ञा रक्खीथीं उनमें परस्पर एकसे दूसरी तुल्य नहीं होसक्ती तिसका अन्तरमात्र जान लेनेके लिये एक दो भेद उनके इस अधिकोक्तिमें लिखते हैं-नारदादिकोंने पांच पलकाभी सुवर्ण होता बतलाया इस अपेक्षामें तीन ३ स्थूल अति मोटे यवोंसे कृष्णल एक माना इस कृष्णला को व्यवहारिक निष्कोंका सोलहवां अंश माना अर्थात् ऐसी १६ कृष्णलोंका एक (निष्क) हुआ परन्तु ऐसी पांच कृष्णलका एक (माष) माना इन्हीं १६ माषोंका एक सुवर्ण माना इस हिसाबसे व्यवहारिक पांच निष्कोंका एक सुवर्ण ठहरा इस हिसाबसे चार सुवर्णोंका एक पल माना तो वीस २० निष्कोंका एक पल हुआ-जहां तीन सूक्ष्म यवों का (कृष्णल) एक मानाहै तहां उस पूर्वोक्त व्यवहारिक निष्कका बारहवांभाग कृष्णल

कहलाता अर्थात् १२ कृष्णलका एक (निष्क) होता है इस पक्षमें सुवर्ण एक अढ़ाई निष्कोंसे होताहै और एक पल दश निष्कोंका होताहै-जहां मध्यम तीनि यवोंसे कृष्णल एक मानागया तहां उस व्यवहारिक निष्कका बीसवां अंश कृष्णल एक अर्थात् २० कृष्णलका एक निष्क होताहै और चार ४ निष्कोंका एक सुवर्ण होता है इसी हिसाबसे १६ निष्कोंका एक पल होता है-इसीसे-पांच सुवर्णों का (पल) जिसने माना उसका २० निष्कोंका एक पल हुआ-ऐसेही कहीं निष्कका चालीसवां भाग कृष्णल अर्थात्४०कृष्णलका एक निष्क और दोनिष्कोंका एकसुवर्ण आठनिष्कोंका एक पल इत्यादि मत भेदसे या देश भेदसे संज्ञा भेदभी नाना भांतिसे पाये जाते हैं इनमेंसे जिसको जहां जिस भांतिकी अपेक्षा हो वह अपने देशके व्यवहारिक बांट मान या मुद्राओंसे निज बुद्धिसे तुल्यता करलेवे ३६२॥

यह तो सुवर्णका उन्मान कहा-अब रजतका उन्मान कहते हैं॥

द्वेकृष्णलेरूप्यमाषोधरणंषोडशैवते। शतमानंतुदशभिर्धरणैःपलमेवतु ३६३॥

ऐ०-ऊपर सोनेके मानमें योगीश्वरके कहेहुये दो कृष्णलोंका रूपे सम्बन्धी मान में एक माष होताहै वे रूप्यमाष १६ मिलकर एक (धरण) कहलाता है इसीको मनुजीने पुराण भी कहाहै ऐसे दश१० धरणोंका एक (शतमान) कहलाता है इसीको चाँदी सम्बन्धी (पल) भी कहा करते हैं ३६३ पहले कहेहुये चार ४ सुवर्णोंभर एक (निष्क) चाँदी सम्बन्धी होताहै-यह नीचेके श्लोकसे लियागया ३६३॥

अब ताँबा सम्बन्धी उन्मान संज्ञा कहते हैं॥

निष्कंसुवर्णाश्चत्वारःकार्षिकस्ताम्रिकःपणः ३६४॥

ऐ०-इसके एक पादकाअर्थ ऊपरचाँदीमेंगया-दूसरे चरणमें ताँबा कहतेहैं किएक (पल) का चतुर्थांश (कर्ष)कहलाता यह लोकमें प्रसिद्ध है तिस कर्ष के उन्मानसे तुला हुआ ताम्र का बिकार पैसा आदि जो कुछ होताहो इसलिये उसको (कार्षिक) भी कहते हैं(ताम्रिक)भी कहतेहैं परन्तु उसका मुख्यनाम (पण)कहते हैं उसीको संज्ञा भेदसे (कार्षापण) भी कहते हैं ३६४॥

अधि०-इसताम्र संबंधी नामोंको मनुजीने स्पष्ट भावसे एकसाथकहा-यथा (कार्षापणस्तुविज्ञेयस्ताम्रिकःकार्षिकःपणः) अर्थ इसका वही है जो बात ऊपर कहचुके-जहां पांच सुवर्णों का एक (पल) बांट मानागया उस पक्षमें२०माषोंका एक (पण) ताम्रिक होताहै इस हिसावसे एक (माप) पणका बीसवांभाग होताहै-जहां चारसुवर्णोंका एक पल मानागया उसपक्षमें १६ माषोंका एक (पण) होताहै इसपक्षमें यद्यपि सुवर्ण कार्षापण पण इन शब्दों का समान अर्थ होताहै तथा सुवर्ण संज्ञा तो सुवर्णके दण्ड में होती और ताम्र विषयिक दण्डव्यवहार में पण अथवा कार्षापण कहते-इसप्रकार

सोना चाँदी तांबेके उन्मानकहेगये ऐसेही लोकव्यवहारांगभूत कांसे या पीतलआदि में समुझने चाहिये परन्तु यहां परकेवल दंडसंबंधी व्यवहारकेउपयोगी उन्मानकहे हैं अर्थात् वैद्यक परिभाषामेंजुदे और लौकिकव्यवहारमें जुदे२संज्ञाभेद होतेहैं ३६४ ॥

अव दंडपरिमाणोंकी परिभाषा कहते हैं ॥

साशीतिःपणसाहस्रोदंडउत्तमसाहसः। तदर्द्धंमध्यमःप्रोक्तस्तदर्द्धमधमःस्मृतः ३६५ ॥

ऐ०—(साशीतिः) अस्सीसहित (पणसाहस्रोदंडः) सहस्रपणका दण्ड अर्थात् १०८० पणका दंड(उत्तमसाहस) नामदंड कहलाता क्योंकि यह इतनादंड उसपर कियाजाता जो उच्चप्रकारसे साहस नामका अपराधकरै साहस अर्थात् किसीके साथ जोरावरी करना-उस्से आधा ५४० पणकादंड (मध्यमसाहस) दंडकहलाता क्योंकि जो मध्यम रीतिसे साहसरूप अपराधकरै उसके योग्य होताहै-इस्से आधा २७० पणकादंड (अधमसाहस) नामदंड कहलाता क्योंकि जो कोई अधमकहिये स्वल्परीतिसे साहस-रूपअपराध किसी परकरै तिसके योग्यहोताहै यह मन्वादिकोंने कहाथा ३६५ ॥

अधि०—मनुजीने पूरे एक हज़ार पणकहेथे किंतु अस्सी अधिक नहीं-यथा (पणानांद्वेशतेसार्धेप्रथमःसाहसःस्मृतः। मध्यमःपंचविज्ञेयःसहस्रंत्वेवचोत्तमः) अर्थात्-अढ़ाई सौ२५० पणोंका (प्रथमसाहस) नाम दण्ड किंतु सबसे छोटा१ और पांचसौ५०० पणोंका दण्ड (मध्यमसाहस) नाम २ और पूरेएक सहस्र १००० पणोंका (उत्तमसाहस) नाम ३ विज्ञेय है-मनुजीने जब एक सहस्रपण कहेथे तब सतयुगके प्रभावसे मनुष्यों की थोड़े अपराधमें तत्परताथी किंतु उनसे अज्ञातभावसे अपराधहोताथा जानबूझ कर इच्छा पूर्वक नहीं करते थे और योगीश्वर के समयतक मनुष्यों की प्रकृति अधिक अपराधों पर आरूढ़ होगई किंतु बहुधा जानि बूझकर अपेक्षा पूर्वकरनेलगे इस्से उन्होंने अस्सी और भी बढ़ादिये कि अधिक सुनिकर अपराधी भयमानैं और अपराधों से हाथ खींचैं-यह उत्तम मध्यम नीच जो तीनभेद धन दण्डके कहे तिनका यही नियम नहीं है कि उतनेका उतनाही सर्वत्रकरै किंतु तीन प्रकारकी परम अवधि कही हैं इसलिये कि जिस अपराध की लघुता गुरुता के समान एक कौड़ी से लेकर २७० पण पर्यंत जो कुछ दण्ड हो वह (अधम) या (नीचसाहस) दण्ड कहलावै १ जब इस्सेभी अधिक अपराध हो और उसकी समताके अनुसार २७० से कुछ अधिक एक कौड़ी से लेकरदूने पर्यंत अर्थात्५४०पण ताईं जो कुछदण्डहो वह(मध्यमसाहस) दण्डकहलावै २ जब इस्से भी कुछ अधिक अपराध निश्चितहो और उसकी समता के अनुसार ५४० के सिवाय एक कौड़ी से लेकर दूने पर्यंत अर्थात् १०८० पणतक जो कुछ दण्ड हो वह (उत्तमसाहस) दंड कहलावै यह सिद्धांत है-यह डौल केवल (जुरमाने) का वताया ३६५ ॥

अब दंड के मुख्यभेद कहते हैं ॥

धिग्दंडस्त्वथवाग्दंडोधनदंडोवधस्तथा । योज्याव्यस्ताःसमस्तावाह्यपराधवशादिमे ३६६ ॥

ऐ०—पहला (धिग्दंड) धिक्कार आदि देकर छोड़देना दूसरा (वाग्दंड) बाणीमात्रसे दंडदेना अर्थात् आगेको दंडदेना कहकर छोड़ना तीसरा (धनदण्ड) अर्थात् एककौड़ी से आदि लेकर १०८० पण तक जुरमाना जो ऊपर के श्लोकमें कहचुके वहभी इसीके भीतर आगया और उसके उपरांत(सर्वस्वहरण)जिसे यावनभाषामें (ज़ब्तीजायदाद) कहते हैं तहांतक सब दशायें धन दंडही कहलाता है तथैव चौथा (वधदण्ड)अर्थात् शारीर दंड इसके भी अनेक प्रकार हैं सो (तथा) शब्दसे सब लियेगये किंतु यद्यपि वधशब्द प्राणघात पर्यंत का बाचक है पर यथा धन दंड कहने से जुरमाना आदि सब दशायें समुझीगईं तथा इसमें भी (रोध) घेरना बंदकरना या (बंधन) क़ैद करना या (ताड़न) मारना पीटना या (देशनिकाला) आदि दशलक्षण सब एकही वधदंड के भीतर २ समुझेगये (इमे) यह चारोंदंड (अपराध-वशात्) अपराधके अनुकूल जैसा अपराधहो तैसेही (व्यस्ताः) एक२ जुदे या दोतीन या(समस्ताः) चारोंदंडएकही पर अपराध की प्रवलता में जोड़ने चाहिये ३६६ ॥

अधि०—यही चारभेद मनुने भी कहेथे-यथा(धिग्दंडंप्रथमंकुर्याद्वाग्दंडंतदनंतरम् । तृतीयंधनदंडंतुबधदंडमतःपरम्) अर्थ इसकाभी वहीहै जो ऊपर कहाथा-परन्तु-यथार्थ भावसे मुख्य दोही दंड होतेहैं किंतु एक धन दंड दूसरा बधदंड बसइन्हीं दोके अंतर्गत अनेक भेद होजाते हैं जैसा २ ऊपरसे कथन चला आताहै बरन धिग्दंड१ वाग्दंड २ यह दोनों भी उन्हीं के उपभेदमें आजाते हैं क्योंकि धिग्दंड तो शरीरदंड में गिनती होकर बधदंडमें समुझागया सो यह ऐसीदशामें कामआताहै कि जब कोई तुच्छनर अपराधीहो और तुच्छही उसका अपराधहोसोभी उसपरभलीभांति निश्चित नहीं होताहोतब धिग्दंडहोकर छूटजाताहै अथवा कोईसेवक बर्गोंमेंसे अपराधीहुआ और उसकेअधिकार संबंधीकुछ थोड़ा अथवा पहलाही अपराधहुआ तब धिग्दंडदेकर मुआफ़रहा-इसके सिवाय जब दुसराकर फिर उसने वहीअपराध यद्वा उस्सेभी कुछअधिक कोई अन्य अपराध किया तब उसपर वाग्दंडकी आवश्यकता हुई और (वाग्दण्ड)का सिद्धांत भाव (मुचल्कह) होनेपर आरूढ़ होताहै अर्थात् उसपर दंडकिया तो नहीं गया पर बाणी से यह कहागया कि फिर आगे को ऐसा करैगा तब या तो इतनाधनदंड लियाजायगा अथवा इतने दिनोंका बन्धन किया जायगा इत्यादि लक्षणों से जो कुछ मुखसे कहागया सोई उस्से लिखवालिया इसहेतु से यह वाग्दंड प्रथम तो विशेषकर धनदंडकीही गिनती में आजाताहै यद्वा उस मुचल्किमें शरीरसम्बन्धी भी कुछ दंड होने को लिखागया तो दोनोंकी गिनतीमें आगया परन्तु य-

थार्थ में दंड दोही प्रकारके होतेहैं और सब उपभेद गिनेजाते हैं-यद्यपि (वाग्दण्ड)को विरले गालिदान या शापादि आक्रोशन अर्थ कहतेहैं परन्तु वह बात धर्मसे विरुद्ध है क्योंकि गालिदान आदि यह अवगुण राजाके व्यसनों में गिनती होचुका है और लोकसेभी विरुद्धहै इसके सिवाय जब धिग्दंडपहले कहचुकेतौ वह धिक्कारही वाग्दंड कहलाचुकी फिर वाग्दंडका दूसराभेदगालिदान आदिकेसे निर्णय होसक्ताहै ३६६॥

अब दंडकी व्यवस्था निर्णय करने के लिये उसके निमित्तों को जतलाते हैं॥

ज्ञात्वापराधंदेशंचकालंबलमथापिवा। वयःकर्मचवित्तंचदंडंदंड्येषुपातयेत् ३६७॥

अक्ष०–अपराध को देशको भी कालको और वलकोभी अवस्था को कर्म को वित्तको जानिकर दंड योग्यों में दंडडाले ३६७॥

अभि०–किसी अपराधी को दंडदेना निश्चितहोजानेपरभी प्रथम इतनी बातोंका निर्णय करिलेवे तबदंड उसकोकरै क्योंकि इसमें न्यूनाधिकरूप अधर्म्म दण्डहोजाने का बड़ाभयहोताहै इसलिये प्रथम तौ (अपराध) का स्वरूपदेखै कि वह अपराधकिसविषयका हुआहै-फिर (देश) को इसलिये देखै कि वही अपराध एकदेशमें अधिक दंडके योग्यहोताहै पुनिवही अपराध किसीदेशमें वहांके आचारके अनुसार थोड़े दंडयोग्य होताहै पुनि वही अपराध किसीदेशके आचार अनुसार अपराधकी गिनतीमेंभी नहीं आसक्ता फिरदंड होना क्योंकर उचितहो-ऐसेही देशके दृष्टांतवत्(काल) काभी विचारकरै-फिर(वल)काभी विचारकरै कि इस अपराधीको कितना दंडसहलेने का बलहै या कितने दंडको यहगिनतीमेंभी कुछनहीं लासक्ता तबकुछ दंडहोनाचाहिये यद्वा अपनेवलका विचारकरै कि हमको कहांतक दंडदेनेका अधिकारहै और किस दंडमें नहीं-इसके सिवाय अपराधीकी अवस्था औरजिसके साथ वह अपराधकिया गया उसकीभी अवस्थाका विचारकरै-दृष्टांत जैसे एक अति बूढ़ा और कुरोगी जो थोड़े दिनमें मरनेहारथा दैवयोगसे किसीलघु अवस्थाके बालकने ईंटमारी वहमरगया इसमें वहबालक जो अतिअचेतहै तौ निपटअदंड्यहै यद्वा समर्थहै तौ थोड़े दंडयोग्यहै परप्राणांतिक दंडउसको नहीं इत्यादि कर्मभेदसे अवस्थाभेदका मिलानकरना अथवा-अवस्थाशब्दसे अपराधकी दशाकाभी विचारकरै कि किसदशाकी उपस्थितिसे अपराधहुआ (दृष्टांत) जैसे कईसहस्र आदिमियों के मेलेमें हाथीके सन्मुख आजानेसे वैल या घोड़ेने अकस्मात् गाड़ीको धर उड़ाया इसदशामें यद्यपि अनेक जीवोंका नाशहुआहो परगाड़ीवान्का अपराध थोड़ा है दूसरा (दृष्टांत) सावकाशके मार्ग में प्रमादसे गाड़ी दौड़ाई इसदशामें यद्यपि एकही जीवकानाश यद्वा अंगभंगहुआहो परगाड़ीवान्का अपराध अपरिमितहै इत्यादिनाना दशाओंकानिर्णयकरै-फिरउन्हीं सवदशाओंके साथमें कर्मका विचारहोना यह कि किसकर्म द्वारा

वहअपराध हुआ किंतु जो उसकर्मसे किसीकी प्रतिष्ठा अथवा धर्मकी हानि हुईहो तौ बालकभी दंडनीयहै या उसकर्मका अपराधीयुवा औरसमर्थ ज्ञानवान्है तौ अतिशयदंडनीयहै-इसके सिवायवित्त अर्थात् अपराधीकी हैसियतभी देखनीचाहिये किंतु उसी अपराध में निर्धनपर एक पैसा और उसी अपराधमें सधन पर एक रुपयादंड उचितहोताहै-इसीहेतुसे ३६५श्लोकमेंकहेहुये तीनभांतिकेधन दंडजोपणों द्वाराकहेथे वे नियमसाथ उतनेही नहीं होसक्के किंतु जहां जैसा उचितहो सो उनसे न्यूनाधिकभी होताहै-तिसपरभी वह अपराध बुद्धिपूर्व जानिबूझकर हुआहो या दैव योगसे धोखेमें हुआहो यह देखाचाहिये-तिसपरभी वह अपराध पहलीबार कियाहै या कईबारपहले भी ऐसा करचुका है यह देखा चाहिये ३६७॥

अधि०-यद्यपि राज धर्मका संपूर्ण कलापराजाके अवलंबसे बर्णनकियागया क्योंकि राजा इसकामुख्य अधिकारी होताहै तथापि केवल राजाकेही शिरटीका नहींकिंतुचाहे कोई बर्णहों जो राजाके अधिकारसे किसी देश बिभाग मंडल आदिके अधिकर्त्ता हों उनसभी का यह धर्महै-और राजकरकालेना प्रजारक्षाका हेतुहै और दंड इन दोनों का साधक है अर्थात् दंडसेहीकरभी लियाजाता और दंडसेही रक्षाकरीजाती है-दंड नाम यद्यपि मुख्यकर सज़ाको कहते हैं पर दंड सेनाका भी नाम है राजकरलेने को भी दंडकहतेहैं जुर्मानेकोभी दंडकहते हैं धर्मकोभी दंडकहतेहैं-यथा (दंडःशास्तिप्रजाः सर्वादंडएवाभिरक्षति। दंडःसुप्तेषुजागर्त्तिदण्डंधर्मंविदुर्बुधाः) ३६७॥

इतिश्रीशुक्लख्यातिवंशीयमर्य्यादप्रियपंडितदुर्गाप्रसादाभिधेयेनयोगीश्वरयाज्ञवल्क्यमुनिप्रणीतधर्मशास्त्रमधिकृत्यऋजुमिताक्षरार्थवादमवलंब्यसंपादितमर्य्यादापरिपाटीतिनामधर्मशास्त्रग्रंथेसदाचारःप्रथमोऽध्यायःसमाप्तः १॥

मुक़ाम लखनऊ मुंशीनवलकिशोर (सी,आई,ई) के छापेखाने में छपा
एप्रिल सन् १८९० ई० ॥

तीसरे भागमें (८) कर्णपर्व्व (९) शल्यपर्व्व (१०) सौप्तिकपर्व्व (११) योषिक व विशोकपर्व्व (१२) स्त्रीपर्व्व (१३) शान्तिपर्व्व—राज्यधर्म्म, आपद्धर्म्म, मोक्षधर्म्म सफ़े ४५६ जुज़ २८ वर्क़ ४ क़ीमत ३)

चौथे भागमें (१४) शांतिपर्व्व दानधर्म्म व अश्वमेध (१५) आश्रमवासिकपर्व्व (१६) मुसल पर्व्व (१७) महाप्रस्थानपर्व्व (१८) स्वर्गारोहण व हरिवंशपर्व्व सफ़े ५२८ जुज़ ३३ क़ीमत ३)

महाभारत के पर्व्व अलग २ भी मिलते हैं ॥

१ आदिपर्व्व	१	क़ीमत १)	२	सभापर्व्व	२	क़ीमत ।-)
३ बनपर्व्व	३	तथा १।=)	४	विराटपर्व्व	४	तथा ।)
५ उद्योगपर्व्व	५	तथा ॥)	६	भीष्मपर्व्व	६	तथा॥=)
७ द्रोणपर्व्व	७	तथा ॥≡)	८	कर्णपर्व्व	८	तथा ॥)
९ शल्यवगदा ९ सौप्तिक १० योपिकवविशोक ११				स्त्रीपर्व्व	१२	तथा ।=)
१० शांतिपर्व्व १३ राजधर्म, आपद्धर्म, मोक्षधर्म्म, दानधर्म्म, सफ़े ५२८						तथा ३)
११ अश्वमेध १४ आश्रमवासिक १५ मुसलपर्व्व १६ महाप्रस्थान १७ स्वर्गारोहण १८						तथा ।)
१२ हरिवंशपर्व्व १९						तथा १=)

महाभारत सबलसिंह चौहान कृत ॥

यह पुस्तक ऐसी उत्तम है कि सम्पूर्ण महाभारत की कथा दोहे चौपाई आदि छन्दोंमें है ऐसी सरलहै कि कमपढ़ेहुये मनुष्यों को भी भली भांति समझमें आती है इसका आनन्द देखनेही से मालूमहोगा नीचे लिखेहुये पर्व्व छपेहुये तय्यार हैं यह पुस्तक बहुतही कम मिलती है बड़ी मुश्किलों से जो पर्व मिलेहैं वह छापेगये ॥

(१) आदिपर्व्व सफ़े ७४ जुज़ ४ वर्क़ ५ क़ीमत ।) पैमाना ११+७ छपीहुई सन् १८८४ ई०
(२) सभापर्व सफ़े ७८ जुज़ ४ वर्क़ ७ क़ीमत ।)

ऊपर लिखेहुये अलंकारों सहित पैमाना ११ + ७ छपीहुई सन् १८८२ ई०

(३) वनपर्व्व तथा तथा सफ़े ४२ जुज़ २ वर्क़ ५ [illegible]
(४) विराटपर्व्व तथा तथा सफ़े ७६ जुज़ ४ वर्क़ ६ [illegible]
(५) उद्योगपर्व तथा तथा सफ़े १४४ जुज़ ९ [illegible]
(६) भीष्मपर्व, द्रोणपर्व, कर्णपर्व, शल्यपर्व, व गदापर्व सफ़े १७६ जुज़ ११ [illegible]
(७) स्त्रीपर्व तथा सफ़े २४ जुज़ १ वर्क़ ४ [illegible]
(८) स्वर्गारोहण तथा सफ़े २८ जुज़ १ वर्क़ ६ [illegible]

बाक़ी जब इसके पर्व्व मिलेंगे छापेजावेंगे जिनमहाशयों को मिलसक्ते हैं [illegible] छपजावें ॥

भगवद्गीतानवलभाष्यकाविज्ञापनपत्र ॥

प्रकटहो कि यहपुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता सकल निगम पुराण स्मृति सांख्यादि सारभूत परम रहस्यगीताशास्त्रका सर्व्वविद्यानिधान सौशील्य विनयौदार्य्य सत्यसंगर शौर्य्यादि गुणसंपन्न नरावतार महानुभाव अर्जुनको परमअधिकारी जानके हृदयजनित मोहनाशार्थ सबप्रकार अपारसंसार निस्तारक भगवद्भक्तिमार्ग दृष्टिगोचरकरायाहै वही उक्त भगवद्गीतावज्रवत्वेदान्त व योगशास्त्रान्तर्गत जिसको अच्छे २ शास्त्रवेत्तार अपनीबुद्धिसे पारनहींपासक्ते तबमंदबुद्धी जिनको कि केवल देशभाषाही पठनपाठन करने की सामर्थ्य है वह कब इसके अन्तराभिप्रायको जानसकेहैं—औरयह प्रत्यक्षही है कि जबतक किसी पुस्तक अथवा किसी बस्तुका अन्तराभिप्राय अच्छेप्रकार बुद्धिमें न भासितहो तबतक आनन्द क्योंकरमिलै इसप्रकार सम्पूर्ण भारतनिवासी भगवद्भक्तपादाब्जरसिकजनों के चित्तानन्दार्थ व बुद्धिबोधार्थ सन्तत धर्म्मधुरीण सकलकलाचातुरीण सर्व्वविद्याविलासीभगवद्भक्तअनुरागी श्रीमन्मुन्शीनवलकिशोरजी सी, आई, ई ने बहुतसाधनव्ययकर फ़र्रुखाबाद निवासि स्वर्गवासि पण्डितउमादत्तजीसे इसमनोरंजन वेदवेदान्तशास्त्रोपरिपुस्तकको श्रीशंकराचार्य्य निर्मितभाष्यानुसार संस्कृतसे सरलदेशभाषामें तिलकरचाय नवलभाष्यआख्यसे प्रभातकालिककमलसरिस प्रफुल्लित करादियाहै कि जिसको भाषामात्रके जाननेवालेपुरुषभी जानसक्ते हैं ॥

जबछपनेका समयआया तो बहुतसे विद्वज्जन महात्माओंकी सम्मतिसे यहविचारहुआ किइस अमूल्य व अपूर्व्व ग्रन्थकी भाष्यमें अधिकतरउत्तमता उससमयपरहोगी कि इसशंकराचार्य्य कृत भाष्य भाषाके साथ और इस ग्रन्थके टीकाकारोंकी टीका भी जितनीमिलें शामिलकीजावें जिसमें उन टीकाकारोंके अभिप्राय का भी बोधहोवे इसकारणसे श्रीस्वामी शंकराचार्य्यजी की शंकरभाष्य कातिलक व श्री आनन्दगिरिकृत तिलक अरु श्रीधरस्वामिकृत तिलकभी मूल श्लोकों सहितइस पुस्तकमें उपस्थित है ॥
